



स्व. विनोद चन्द्र पाण्डे सा  
की स्मृति में उत्तराधिकारी से  
प्राकृत भारती अकादमी जयपुर  
सन्दर्भ पुस्तकालय को भेंट स्वरूप प्राप्त ।





# हिंदी शब्दसागर

## प्रथम भाग

[ "अ" से "ईहित" तक, शब्दसंख्या-१८००० ]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट	रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह	जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन	रामचंद्र वर्मा

रत्न. विनोद चन्द्र पाण्डे सा



की स्मृति में उत्तराधिकारी से  
प्राकृत भाषा अकादमी जयपुर  
समर्पण पुस्तकालय का भेट रत्नसम प्राप्त।

संपादकमंडल

संपूर्णानंद	कमलापति त्रिपाठी
मंगलदेव शास्त्री	धोरेन्द्र वर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड़	रामधन शर्मा
हरवशलाल शर्मा	शिवनदनलाल दत्त
शिवप्रसाद मिश्र	सुधाकर पांडेय
भोलाशंकर व्यास	करुणापति त्रिपाठी
(सह० सयो०)	(संयोजक, संपादकमंडल)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री विश्वनाथ त्रिपाठी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

हिंदी शब्दसागर के संपादन का संपूर्ण तथा इसके प्रकाशन का पचहत्तर  
प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया ।

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण ( दूसरी बार )

शकाब्द १९०७

स० २०४२ वि०

१९८६ ई०

मूल्य

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ६३३)७५

मूल्य..... २५० २००

शम्भुनाथ वाजपेयी द्वारा

नागरी मुद्रण, वाराणसी

मे मुद्रित

## प्रथम संस्करण की भूमिका

किसी जाति के जीवन में उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। आवश्यकता तथा स्थिति के अनुसार इन प्रयुक्त शब्दों का आगम अथवा लोप तथा वाच्य, लक्ष्य एवं द्योत्य भावों में परिवर्तन होता रहता है। अतएव और सामग्री के अभाव में इन शब्दों के द्वारा किसी जाति के जीवन की भिन्न भिन्न स्थितियों का इतिहास उपस्थित किया जा सकता है। इसी आधार पर आर्यजाति का प्राचीनतम इतिहास प्रस्तुत किया गया है और ज्यों ज्यों सामग्री उपलब्ध होती जा रही है, त्यों त्यों यह इतिहास ठाक किया जा रहा है। इस अवस्था में यह बात स्पष्ट ममक्ष में आ सकती है कि जातीय जीवन में शब्दों का स्थान कितने महत्व का है। जातीय साहित्य को रक्षित करने तथा उसके भविष्य को सुचारु और समुच्चल बनाने के अतिरिक्त वह किसी भाषा की संपन्नता या शब्दबहुलता का सूचक और उस भाषा के साहित्य का अध्ययन करनेवालों का सबसे बड़ा सहायक भी होता है। विशेषतः अन्य भाषा भाषियों और विदेशियों के लिये तो उसका और भी अधिक उपयोग होता है। इन सब दृष्टियों से शब्दकोश किसी भाषा के साहित्य की मूल्यवान् संपत्ति और उस भाषा के भंडार का सबसे बड़ा निदर्शक होता है।

जब अंगरेजी का भारतवर्ष के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित होने लगा, तब नवागत अंगरेजों को इस देश की भाषाएं जानने की विशेष आवश्यकता पड़ने लगी; और फलतः वे देशभाषाओं के कोश, अपने सुभीते के लिये बनाने लगे। इस प्रकार इस देश में आधुनिक ढंग के और अकारादि क्रम से बननेवाले शब्दकोशों की रचना का सूत्रपात हुआ। कदाचित् देशभाषाओं में से सबसे पहले हिंदी (जिसे उस समय अंगरेज लोग 'हिंदुस्तानी' कहा करते थे) के दो शब्दकोष श्रियुक्त जे० फर्गुसन नामक एक सज्जन ने प्रस्तुत किए थे, जो रोमन अक्षरों में सन् १७७३ में लंदन में छपे थे। इनमें से एक 'हिंदुस्तानी अंगरेजी' का और दूसरा 'अंगरेजी हिंदुस्तानी' का था। इसी प्रकार का एक कोश सन् १७९० में मदरास में छपा था जो श्रियुक्त हेनरी हेरिस के प्रयत्न का फल था। सन् १८०८ में जोसेफ टेलर और विलियम हटर के समिलित उद्योग से कलकत्ते में एक 'हिंदुस्तानी अंगरेजी काश' प्रकाशित हुआ था। इसके उपरांत १८१० में एडिन्बरा में श्रियुक्त जे० वी० गिलक्राइस्ट का और सन् १८१७ में लंदन में श्रियुक्त जे० शेक्सपियर का एक 'अंगरेजी हिंदुस्तानी' और एक 'हिंदुस्तानी अंगरेजी' कोश निकला था, जिसके पीछे से तीन संस्करण हुए थे। इनमें से अंतिम संस्करण बहुत कुछ परिवर्धित था। परंतु ये सभी कोश रोमन अक्षरों में थे और इनका व्यवहार अंगरेज या अंगरेजी पढ़े लिखे लोग ही कर सकते थे। हिंदीभाषा या देवनागरी अक्षरों में जो सबसे पहला कोश प्रकाशित हुआ था, वह पादरी एम० टी० एडम ने तैयार किया था। इसका नाम 'हिंदी कोश' था और यह सन् १८२९ में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ था। तब से ऐसे शब्दकोश निरंतर बनने लगे, जिनमें या तो हिंदी शब्दों के अर्थ अंगरेजी में और या अंगरेजी शब्दों के अर्थ हिंदी में होते थे। इन कोशकारों में श्रियुक्त एम० डब्ल्यू० फैलन

का नाम विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य है, क्योंकि इन्होंने माधारण बोलचाल के छोटे बड़े कई कोश बनाने के अतिरिक्त, कानून और व्यापार आदि के पारिभाषिक शब्दों के भी कुछ कोश बनाए थे। परंतु इनका जो 'हिंदुस्तानी अंगरेजी कोश' था उसमें यद्यपि अधिकांश शब्द हिंदी के ही थे, फिर भी अरबी फारसी के शब्दों की कमी नहीं थी, और कदाचित् फारस के अटालती लिपि हाने के कारण ही उसमें शब्द फारसी लिपि में, अर्थ अंगरेजी में और उदाहरण रोमन में दिए गए थे। सन् १८८४ में लंदन में श्रियुक्त जे० टी० प्लाट्स का जो कोश छपा था वह भी बहुत अच्छा था और उसमें भी हिंदी तथा उर्दू शब्दों के अर्थ अंगरेजी भाषा में दिए गए थे। सन् १८७३ में म० राधेलालजी का शब्दकोश गया से प्रकाशित हुआ था जिसके लिये सरकार से उन्हें यथेष्ट पुरस्कार भी मिला था। श्रियुक्त पादरी जे० डी० वेट ने पहले सन् १८७५ में काशी से एक हिंदी कोश प्रकाशित किया था, जिसमें हिंदी के शब्दों के अर्थ अंगरेजी में दिए गए थे। इसी समय के लगभग काशी से कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी का हिंदी कोश प्रकाशित हुआ था, जिसमें हिंदी के शब्दों के अर्थ हिंदी में ही थे। वेट के कोश के भी पीछे से दो और संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हुए थे। सन् १८७५ में ही पेरिस में एक कोश का कुछ अंश प्रकाशित हुआ था, जिसमें हिंदी या हिंदुस्तानी शब्दों के अर्थ फ्रांसीसी भाषा में दिए गए थे। सन् १८८० में लखनऊ से सैयद जामिन अली जलाल का 'गुलशने फैज' नामक एक कोश प्रकाशित हुआ था, जो था तो फारसी लिपि में ही, परंतु शब्द उसमें अधिकांश हिंदी के थे। सन् १८८७ में तीन महत्व के कोश प्रकाशित हुए थे, जिनमें सबसे अधिक महत्व का कोश मिरजा शाहजादा कैसरबख्त का बनाया हुआ था। इसका नाम 'कैसर कोश' था और यह इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था (दूसरा कोश श्रियुक्त मधुसूदन पंडित का बनाया हुआ था जिसका नाम 'मधुसूदन निघंटु' था और जो लाहौर से प्रकाशित हुआ था। तीसरा कोश श्रियुक्त मुन्नीलाल का था जो दानापुर में छपा था और जिसमें अंगरेजी शब्दों के अर्थ हिंदी में दिए गए थे। सन् १८८१ और १८९५ के बीच में पादरी टी० केपन के बनाए हुए कई कोश प्रकाशित हुए थे, जो प्रायः स्कूलों के विद्यार्थियों के काम के थे। १८९२ में वांकीपुर से श्रियुक्त बाबा वैजदास का 'विवेक' कोश निकला था। इसके उपरांत 'गौरीनागरी कोश', 'हिंदीकोश', 'मंगलकोश', 'श्रीधरकोश' आदि छोटे छोटे और भी कई कोश निकले थे, जिनमें हिंदी शब्दों के अर्थ हिंदी में ही दिए गए थे। इनके अतिरिक्त कहावतों और मुहावरों आदि के जो कोश निकले थे, वे अलग हैं।

इस बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही मानो हिंदी के भाग्य ने पलटा खाया और हिंदी का प्रचार धीरे धीरे बढ़ने लगा। उसमें निकलनेवाले सामयिक पत्रों तथा पुस्तकों की सख्या भी बढ़ने लगी और पढ़नेवालों की भी सख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। तात्पर्य यह कि दिन पर दिन लोग हिंदी साहित्य की ओर प्रवृत्त होने लगे और हिंदी पुस्तकें चाव से पढ़ने लगे। लोगों में प्राचीन काव्यों आदि को

पढ़ने की उत्कठा बढ़ने लगी। उस समय हिंदी के हितैषियों को हिंदी-भाषा का एक ऐसा बृहत् कोश तैयार करने की आवश्यकता जान पड़ने लगी, जिसमें हिंदी के पुराने पद्य और नए गद्य दोनों में व्यवहृत होनेवाले समस्त शब्दों का समावेश हो, क्योंकि ऐसे कोश के बिना आगे चलकर हिंदी के प्रचार में कुछ बाधा पहुँचने की आशंका थी।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने जितने बड़े बड़े और उपयोगी काम किए हैं, जिस प्रकार प्रायः उन सबका सूत्रपात या विचार सभा के जन्म के समय, उसके प्रथम वर्ष में हुआ था, उसी प्रकार हिंदी का बृहत् कोश बनाने का सूत्रपात नहीं तो कम से कम विचार भी उसी प्रथम वर्ष में हुआ था। हिंदी में सर्वांगपूर्ण और बृहत् कोश का अभाव सभा के संचालकों को १८९३ ई० में ही खटका था और उन्होंने एक उत्तम कोश बनाने के विचार से आर्थिक सहायता के लिये दरभंगानरेश महाराजा सर लक्ष्मीधर सिंह जी से प्रार्थना की थी। महाराजाने भी शिशु सभा के उद्देश्य की सराहना करते हुए (१२५) उसकी सहायता के लिये भेजे थे और उसके साथ सहानुभूति प्रकट की थी। इसके अतिरिक्त आपने कोश का कार्य आरम्भ करने के लिये भी सभा से कहा था और यह भी आशा दिलाई थी कि आवश्यकता पड़ने पर वे सभा को और भी आर्थिक सहायता देंगे। इस प्रकार सभा ने नौ सज्जनों की एक उपसमिति इस अवधि में विचार करने के लिये नियुक्त की, पर उपसमिति ने निश्चय किया कि इस कार्य के लिये बड़े बड़े विद्वानों की सहायता की आवश्यकता होगी और इसके लिये कम से कम दो वर्ष तक (२५०) मासिक का व्यय होगा। सभा ने इस संवध में फिर श्रीमान् दरभंगानरेश को लिखा था, परन्तु अनेक कारणों से उस समय कोश का कार्य आरम्भ नहीं हो सका। अतः सभा ने निश्चय किया कि जबतक कोश के लिये यथेष्ट धन एकत्र न हो तथा दूसरे आवश्यक प्रबंध न ही जाँय तबतक उसके लिये आवश्यक सामग्री ही एकत्र की जाय। तदनुसार उसने सामग्री एकत्र करने का कार्य भी आरम्भ कर दिया।

सन् १९०४ में सभा को पता लगा कि कलकत्ते की हिंदी साहित्य सभा ने हिंदी भाषा का एक बृहत् बड़ा कोश बनाना निश्चित किया है और उसने इस अवधि में कुछ कार्य भी आरम्भ कर दिया है। सभा का उद्देश्य केवल यही था कि हिंदी में एक बृहत् बड़ा कोश तैयार हो जाय, स्वयं उसका श्रेय प्राप्त करने का उसका कोई विचार नहीं था। अतः सभा ने जब देखा कि कलकत्ते की साहित्य सभा कोश बनवाने का प्रयत्न कर रही है, तब उसने बृहत् ही प्रसन्नतापूर्वक निश्चय किया कि अपनी सारी सचित सामग्री साहित्य सभा को दे दी जाय और यथासाध्य सब प्रकार से उसकी सहायता की जाय। प्रायः तीन वर्ष तक सभा इसी आसरे में थी कि साहित्य सभा कोश तैयार करे। परन्तु कोश तैयार करने का जो यश स्वयं प्राप्त करने की उसकी कोई विशेष इच्छा नहीं थी, विघाता वह यश उसी को देना चाहता था। जब सभा ने देखा कि साहित्य-सभा की ओर से कोश की तैयारी का कोई प्रबंध नहीं हो रहा है, तब उसने इस काम को स्वयं अपने ही हाथ में लेना निश्चित किया। जब सभा के संचालकों ने आपस में इस विषय की सब बातें पक्की कर ली, तब २३ अगस्त, सन् १९०७ को सभा के परम हितैषी और उत्साही सदस्य श्रीवृक्ष रेवरेड ई० ग्रीव्स ने सभा की प्रवर्धकारिणी समिति में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि हिंदी के एक बृहत् और

सर्वांगपूर्ण कोश बनाने का भार सभा अपने ऊपर ले, और साथ ही यह भी बतलाया कि यह कार्य किस प्रणाली से किया जाय। सभा ने मि० ग्रीव्स के प्रस्ताव पर विचार करके इस विषय में उचित परामर्श देने के लिये निम्नलिखित मज्जनों की एक उपसमिति नियत कर दी— रेवरेड ई० ग्रीव्स, महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी, पंडित राम-नारायण मिश्र वी० ए०, बाबू गोविंददास, बाबू इन्द्रनारायण सिंह एम० ए०, छोटेलाल, मुर्शी सकटाप्रसाद, पंडित माधवप्रसाद पाठक और मैं।

इस उपसमिति के कई अधिवेशन हुए जिनमें सब बातों पर पूरा विचार किया गया। अतः १९ नवंबर, १९०७ को इस उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट दी, जिसमें सभा को परामर्श दिया गया कि सभा हिंदी-भाषा के दो बड़े कोश बनवावे जिनमें से एक में तो हिंदी शब्दों के अर्थ हिंदी में ही रहें और दूसरे में हिंदी शब्दों के अर्थ अंग्रेजी में हों। आजकल हिंदी भाषा में गद्य तथा पद्य में जितने शब्द प्रचलित हैं उन सबका इन कोशों में समावेश हो, उनकी व्युत्पत्ति दी जाय और उनके भिन्न भिन्न अर्थ यथामाध्य उदाहरणों सहित दिए जायें। उपसमिति ने हिंदी भाषा के गद्य तथा पद्य के प्रायः दो सौ अच्छे अच्छे ग्रंथों की एक सूची भी तैयार कर दी थी और कहा था कि इनमें से सब शब्दों का अर्थसहित संग्रह कर लिया जाय, कोश की तैयारी का प्रबंध करने के लिये उसकी एक स्थायी समिति बना दी जाय और कोश के संपादन तथा उसकी छपाई आदि का सब प्रबंध करने के लिये एक संपादक नियुक्त कर दिया जाय।

समिति ने यह भी निश्चित किया कि कोश के अवधि में आवश्यक प्रबंध करने के लिये महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी, लाला छोटेलाल, रेवरेड ई० ग्रीव्स, बाबू इन्द्रनारायण सिंह एम० ए०, बाबू गोविंददास, पंडित माधवप्रसाद पाठक और पंडित रामनारायण मिश्र वी० ए० की प्रवर्धकर्तृ समिति बना दी जाय, और उसके मन्त्रित्व का भार मुझे दिया जाय। समिति का प्रस्ताव था कि उस प्रवर्धकर्तृ समिति को अधिकार दिया जाय कि वह आवश्यकतानुसार अन्य सज्जनों को भी अपने में समिलित कर ले। इस कोश के अवधि में प्रवर्धकर्तृ समिति को समिति और सहायता देने के लिये एक और बड़ी समिति बनाई जाने की समिति भी दी गई जिसमें हिंदी के समस्त बड़े बड़े विद्वान् और प्रेमी समिलित हों। उस समय यह अनुमान किया था कि इस काम में लगभग ३००००) का व्यय होगा जिसके लिये सभा को सरकार तथा राजा महाराजाओं से प्रार्थना करने का परामर्श दिया गया।

सभा की प्रवर्धकारिणी समिति ने उपसमिति की ये बातें मान लीं और तदनुसार कार्य भी आरम्भ कर दिया। शब्दसंग्रह के लिये, उपसमिति ने जो पुस्तकें बतलाई थीं, उनमें से शब्दसंग्रह का कार्य भी आरम्भ हो गया और धन के लिये अपील भी हुई, जिससे पहले ही वर्ष २३३२) के बचन मिले, जिसमें से १९०२) तगद भी सभा को प्राप्त हो गए। इसमें से सबसे पहले १०००) स्वर्गीय माननीय सर सुंदरलाल सी० आई० ई० ने भेजे थे। सत्य तो यह है कि यदि प्रार्थना करते ही उक्त महानुभाव तुरत १०००) न भेज देते तो सभा का कभी इतना उत्साह न बढ़ता और बृहत् संभव था कि कोश का काम और कुछ समय के लिये टल जाता। परन्तु सर सुंदरलाल से १०००) पाते ही सभा का उत्साह बृहत् अधिक बढ़ गया और उसने और भी तत्परता से कार्य करना आरम्भ किया। उसी समय श्रीमान् महाराज ग्वालियर ने भी १०००) देने

का बंवन दिया। इसके अतिरिक्त और भी अनेक छोटी मोटी रकमों के बंवन मिले। तात्पर्य यह कि सभा को पूर्ण विश्वास हो गया कि अब कोश तैयार हो जायेगा।

इस कोश के सहायताार्थ सभा को समय समय पर निम्नलिखित गवर्नमेंटों, महाराजों तथा अन्य सज्जनों से सहायता प्राप्त हुई—

संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट	१३०००)
भारत गवर्नमेंट	५०००)
मध्यप्रदेश की गवर्नमेंट	१०००)
श्रीमान् महाराज साहब नेपाल	२०००)
„ स्वर्गवामी महाराज साहब रीवाँ	१८००)
„ महाराज साहब छत्रपुर	१५००)
„ महाराज साहब बीकानेर	१५००)
„ महाराजाधिराज वर्दवान	१५००)
„ महाराज साहब अलवर	१०००)
„ स्वर्गवासी महाराज साहब ग्वालियर	१०००)
„ स्वर्गवासी महाराज साहब काश्मीर	१०००)
„ महाराज साहब काशी	१०००)
डाक्टर सर सुंदरलाल	१०००)
स्वर्गवासी राजा साहब भिनगा	१०००)
कुंवर राजेंद्रसिंह	१०००)
श्रीमान् महाराज साहब भावनगर	५००)
„ महाराज साहब इंदौर	५००)
„ स्वर्गवासी राजा साहब गिद्धौर	५००)
डाक्टर सर जार्ज प्रियर्सन	१५०)

इनके अतिरिक्त और बहुत से महानुभावों से १००) अथवा उससे कम की सहायता प्राप्त हुई।

शब्दसंग्रह करने के लिये जो पुस्तकें चुनी गई थी, उन पुस्तकों को सभासदों में बाँटकर उनसे शब्दसंग्रह कराने का सभा का विचार था। बहुत से उत्साही सभासदों ने पुस्तकें तो मँगवा ली पर कार्य कुछ भी न किया। बहुतों ने तो महीनो पुस्तकें अपने पास रखकर अत मे ज्यों की त्यों लोटा दीं और कुछ लोगो ने पुस्तकें भी हजम कर ली। थोड़े से लोगो ने शब्दसंग्रह का काम किया था, पर उनमें भी सतोपजनक काम होने गिने सज्जनों का ही था। इसमें व्यर्थ बहुत सा समय नष्ट हो गया, पर घन की यथेष्ट सहायता सभा को मिलती जाती थी, अत दूसरे वर्ष सभा ने विवश होकर निश्चित किया कि शब्दसंग्रह का काम बतन देकर कुछ लोगों में कराया जाय। तदनुसार प्राय १६-१७ आदमी शब्दसंग्रह के काम के लिये नियुक्त कर दिए गए और एक निश्चित प्रणाली पर शब्दसंग्रह का काम होने लगा।

प्रारम्भ में कोश के सहायक संपादक पंडित बालकृष्ण शर्मा, पंडित रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन और बाबू श्रीमंथरसिंह के अतिरिक्त बाबू जगन्मोहन वर्मा, बाबू रामचंद्र वर्मा पंडित बासुदेव मिश्र, पंडित रामचन्द्रेश मिश्र, पंडित ब्रजमूपण श्रीवास्तव, श्रीयुत देवी कवि आदि अनेक सज्जन भी इस शब्दसंग्रह के काम में समिलित थे। शब्दसंग्रह के लिये सभा केवल पुस्तकों पर ही निर्भर नहीं रहती। कोश में पुस्तकों के शब्दों के अतिरिक्त और भी अनेक ऐसे शब्दों की आवश्यकता थी जो नित्य की बोलचाल के, पारिभाषिक अथवा ऐसे विषयों के शब्द थे जिनपर हिंदी में पुस्तकें नहीं थी। अतः सभा ने मुंशी रामलंगनलाल

नामक एक सज्जन को शहर में घूम घूमकर प्रहीरो, कहारो, लोहारो, सोनारों, चमारों, तमोलियों, तेलियों, जोलाहों, भालू और बंदर नचानेवालों, कूचेवदों, धुनियों, गाटीवानों, कुश्तीबाजों, कसेरों, राजगीरों, छापेखानेवालों, महाजनो, वजाजो, दलालो, जूआरियों, महावतों, पमारियों, साईसों आदि के पारिभाषिक शब्द तथा गहनों, कपड़ों, अनाजों, पेड़ों, वस्तुओं, देवताओं, गृहस्थी की चीजों, पक्वानों, मिठाइयों, विवाह आदि की रस्मों, तरकारियों, सागों, फलों, घासों, खेलों और उनके साधनों, आदि आदि के नाम एकत्र करने के लिये नियुक्त किया। पुस्तकों के शब्दसंग्रह के साथ साथ यह काम भी प्राय दो वर्ष तक चलता रहा। इस सब में यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि मुंशी रामलंगनलाल का इस सब का शब्दसंग्रह बहुत सतोपजनक था। इसके अतिरिक्त सभा ने बाबू रामचंद्र वर्मा को समस्त भारत के पशुओं, पक्षियों, मृदालियों, फूलों और पेड़ों आदि के नाम एकत्र करने के लिये कलकत्ते भेजा था जिन्होंने प्राय ढाई मास तक वहाँ रहकर इपीरियल लाइब्रेरी से 'प्लोरा और फॉना आफ ब्रिटिश इण्डिया सीरिज' की समस्त पुस्तकों में से नाम और विवरण आदि एकत्र किए थे। हिंदी भाषा में व्यवहृत होनेवाले अंगरेजी, फारसी, अरबी तथा तुर्की आदि भाषाओं के शब्दों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों की जीवनियों, प्राचीन स्थानों तथा कहावतों आदि के संग्रह का भी बहुत अच्छा प्रबंध किया गया था। पुरानी हिंदी तथा डिगल और बुदेलखड़ी आदि भाषाओं के शब्दों का भी अच्छा संग्रह किया गया था। इसमें सभा का मुख्य उद्देश्य यह था कि जहाँ तक हो सके, कोश में हिंदी भाषा में व्यवहृत होने या हो सकनेवाले अधिक से अधिक शब्द आ जायें और यथासाध्य कोई आवश्यक बात या शब्द छूटने न पावे। इसी विचार से सभा ने अंगरेजी, फारसी, अरबी और तुर्की आदि भाषाओं के शब्दों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों और स्थानों के नामों आदि की एक बड़ी सूची भी प्रकाशित कराके घटाने बढ़ाने के लिये हिंदी के बड़े बड़े विद्वानों के पास भेजी थी।

दो ही वर्ष में सभा का अनेक बड़े बड़े राजा महाराजाओं तथा प्रांतीय और भारतीय सरकारों से कोश के सहायताार्थ बड़ी बड़ी रकमें भी मिली, जिससे सभा तथा हिंदीप्रेमियों को कोश के तैयार होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह गया और सभा बड़े उत्साह से कोश का काम कराने लगी। प्रारम्भ में सभा ने यह निश्चित नहीं किया था कि कोश का संपादक कौन बनाया जाय, पर दूसरे वर्ष सभा ने मुंशे कोश का प्रधान संपादक बनाना निश्चित किया। मैंने भी सभा की आज्ञा शिरोधार्य करके यह भार अपने ऊपर ले लिया।

सन् १९१० के प्रारम्भ में शब्दसंग्रह का कार्य समाप्त हो गया। जिन स्लिपों पर शब्द लिखे गए थे, उनकी संख्या अनुमानत १० लाख थी, जिनमें से आधा की गई थी कि प्राय १ लाख शब्द निकलेंगे, और प्राय यही बात अत में हुई थी। जब शब्दसंग्रह का काम हो चुका, तब स्लिपें अक्षरक्रम से लगाई जाने लगीं। पहले वे स्वरो और व्यंजनों के विचार से अलग अलग की गईं और तब स्वरो के प्रत्येक अक्षर तथा व्यंजनों के प्रत्येक वर्ग की स्लिपें अलग अलग की गईं। जब स्वरो की स्लिपें अक्षरक्रम से लग गईं, तब व्यंजनों के वर्गों के अक्षर अलग अलग किए गए और प्रत्येक अक्षर की स्लिपें क्रम से लगाई गईं। यह कार्य प्राय एक वर्ष तक चलता रहा।

जिस समय कोश के संपादन का भार मुंशे दिया गया था, उसी

समय सभा ने यह निश्चित कर दिया था कि पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन तथा बाबू श्रीराम सिंह कोश के सहायक संपादक बनाए जायें और ये लोग कोश के संपादन में मेरी सहायता करें। अक्टूबर, १९०६ में मेरी नियुक्ति काश्मीर राज्य में हो गई जिसके कारण मुझे काशी छोड़कर काश्मीर जाना आवश्यक हुआ। उस समय मैंने सभा से प्रार्थना की कि इतनी दूर से कोश का संपादन सुचारु रूप से न हो सकेगा। अतः सभा मेरे स्थान पर किसी और सज्जन को कोश का संपादक नियुक्त करे। परंतु सभा ने यही निश्चय किया कि कोश का कार्यालय भी मेरे साथ आगे चलकर काश्मीर भेज दिया जाय और वही कोश का संपादन हो। उस समय तक स्लिप्स प्रक्षरक्रम से लग चुकी थी और संपादन का कार्य अच्छी तरह आरम्भ हो सकता था। अतः १५ मार्च, १९१० को काशी में कोश का कार्यालय बंद कर दिया गया और निश्चय हुआ कि चारों सहायक संपादक जब पहुँचकर १ अप्रैल, १९१० से वही कोश के संपादन का कार्य आरम्भ करें। तदनुसार पंडित रामचंद्र शुक्ल और बाबू श्रीराम सिंह तो यथासमय जब पहुँच गए, पर पंडित बालकृष्ण भट्ट तथा लाला भगवानदीन ने एक एक मास का समय माँगा। दुर्भाग्यवश बाबू श्रीराम सिंह के जब पहुँचने के चार पाँच दिन बाद ही काशी में उनकी स्त्री का देहांत हो गया, जिससे उन्हें थोड़े दिनों के लिये फिर काशी लौट आना पड़ा। उस बीच में अकेले पंडित रामचंद्र शुक्ल ही संपादन कार्य करते रहे। मई के आरम्भ में पंडित बालकृष्ण भट्ट और बाबू श्रीराम सिंह जब पहुँचे और संपादनकार्य करने लगे। पर लाला भगवानदीन कई बार प्रतिज्ञा करके भी जब न पहुँच सके, अतः सहायक संपादक के पद से उनका सबंध छूट गया। शेष तीनों सहायक संपादक महाशय उत्तमतापूर्वक संपादन कार्य करते रहे। कोश के विषय में समिति लेने के लिये आरम्भ में जो कोश कमेटी बनी थी, वह १ मई, १९१० को अनावश्यक समझकर तोड़ दी गई।

कोश का संपादन आरम्भ हो चुका था और शीघ्र ही उसकी छपाई का प्रबंध करना आवश्यक था, अतः सभा ने कई बड़े बड़े प्रेसों से कोश की छपाई के नमूने माँगाए। अतः में प्रयाग के सुप्रसिद्ध इंडियन प्रेस को कोश की छपाई का भार दिया गया। इस कार्य के लिये आरम्भिक प्रबंध करने के लिये उक्त प्रेस को २०००) पेशगी दिए गए और लिखापट्टी करके छपाई के सबंध में सब बातें तैयार कर ली गईं।

अप्रैल, १९१० में सितंबर, १९१० तक तो जब मैं कोश के संपादन का कार्य बहुत उत्तमतापूर्वक और निर्विघ्न होता रहा, पर पीछे इसमें एक विघ्न पड़ा। पंडित बालकृष्ण भट्ट जब मैं दुर्घटनावश सीढ़ी पर से गिर पड़े और उनकी एक टाँग टूट गई, जिसके कारण अक्टूबर, १९१० में उन्हें छुटी लेकर प्रयाग चले आना पड़ा। नवंबर में बाबू श्रीराम सिंह भी बीमार हो जाने के कारण छुटी लेकर काशी चले आए और दो मास तक यहीं बीमार पड़े रहे। संपादन कार्य करने के लिये जब मैं फिर अकेले पंडित रामचंद्र शुक्ल बच रहे। जब अनेक प्रयत्न करने पर भी जब मैं सहायक संपादकों की सख्या पूरी न हो सकी, तब विवश होकर १५ दिसंबर, १९१० को कोश का कार्यालय जब मैं से काशी भेज दिया गया। कोश विभाग को काशी आ जाने पर जनवरी, १९११ से बाबू श्रीराम सिंह भी स्वस्थ होकर उसमें सम्मिलित हो गए और बाबू जगन्मोहन वर्मा भी सहायक संपादक के पदपर

नियुक्त कर दिए गए। हमारे मास फरवरी में बाबू गंगाप्रसाद गुप्त कोश के सहायक संपादक बनाए गए। जब मैं तो पहले से सहायक संपादक अलग अलग शब्दों का संपादन करते थे और तब तब लोग एक साथ मिलकर संपादित शब्दों को दोहराते थे। परंतु अब गंगाप्रसाद गुप्त के आ जाने पर दो दो सहायक संपादक अलग अलग मिलकर संपादन करने लगे। नवंबर, १९११ में जब बाबू गंगाप्रसाद गुप्त ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया, तब पंडित बालकृष्ण भट्ट पुनः प्रयाग से बुला लिए गए और जनवरी, १९१२ में लाला भगवानदीन भी पुनः इस विभाग में सम्मिलित कर लिए गए तथा मार्च, १९१२ से सब सहायक संपादक संपादन के कार्य के लिये तीन भागों में विभक्त कर दिए गए। इस प्रकार कार्य की गति पहले की अपेक्षा घटती गई, पर फिर भी उसमें उनकी वृद्धि नहीं हुई जितनी चाहिए थी। जब मई, सन् १९१० में 'अ' 'आ' 'इ', 'ओ' 'ई' का संपादन हो चुका, तब उसकी काफी प्रेस में भेज दी गई और उसकी छपाई में हाथ लगा दिया गया। उस समय तक मैं भी काश्मीर में लौटकर काशी आ गया था, जिससे कार्यनिरीक्षण और ध्वन्या का अधिक सुधीता हो गया।

सन् १९१३ में संपादनशैली में कुछ और परिवर्तन किया गया। पंडित बालकृष्ण भट्ट, बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा बाबू श्रीराम सिंह अलग अलग संपादन कार्य पर नियुक्त कर दिए गए। सब संपादकों की लेखशैली आदि एक ही प्रकार की नहीं हो सकती थी, अतः सबकी संपादित स्लिप्स को दोहराकर एक मेल करने के कार्य पर पंडित रामचंद्र शुक्ल नियुक्त किए गए और उनकी नहायता के लिये बाबू रामचंद्र वर्मा रखे गए। उस समय यह व्यवस्था थी कि दिनभर तो सब सहायक संपादक अलग अलग संपादन कार्य किया करते थे और पंडित रामचंद्र शुक्ल पहले की संपादन की हुई स्लिप्स को दोहराया करते थे, और मध्य को चार बजे से पाँच बजे तक सब संपादक मिलकर एक साथ बैठते थे और पंडित रामचंद्र शुक्ल की दुहराई हुई स्लिप्स को सुनते तथा आवश्यकता पड़ने पर उसमें परिवर्तन आदि करते थे। इस प्रकार कार्य भी अधिक होता था और प्रत्येक शब्द के सबंध में प्रत्येक सहायक संपादक की संमति भी मिल जाती थी।

मई, १९१० में छपाई का कार्य आरम्भ हुआ था और एक ही वर्ष के अंदर ६६—६६ पृष्ठों की चार सत्याएँ छपकर प्रकाशित हो गईं, जिनमें ८६६६ शब्द थे। सर्वसाधारण में इन प्रकाशित सत्याओं का बहुत अच्छा आदर हुआ। सर जार्ज ग्रियर्सन, डाक्टर रडारफ हार्नली प्रोफेसर सिलवान लेवी, रेवरेंड ई० ग्रीन, पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी, मिस्टर रमेशचंद्र दत्त, पंडित श्यामबिहारी मिश्र आदि अनेक बड़े बड़े विद्वानों, पंडितों तथा हिंदीप्रेमियों ने प्रकाशित अकों की बहुत कुछ प्रशंसा की और अँगरेजी दैनिक लीटर तथा हिंदी साप्ताहिक बगवासी आदि समाचारपत्रों ने भी समय समय पर अच्छी प्रशंसात्मक आलोचना की। ग्राहकसंख्या भी दिन पर दिन बहुत ही सतोपजनक रूप में बढ़ने लगी।

इस अवसर पर एक बात और कह देना आवश्यक जान पड़ता है। जिस समय मैं पहले काश्मीर जाने लगा था, उस समय पहले यही निश्चय हुआ था कि काशविभाग काशी में ही रहे और मेरी



अनुपस्थिति में स्वर्गवासी पंडित केशवदेव शास्त्री कोशविभाग का निरीक्षण करें। परंतु मेरी अनुपस्थिति में पंडित केशवदेव शास्त्री तथा कोश के सहायक संपादकों में कुछ अनवरत हो गई, जिसने आगे चलकर और भी विलक्षण रूप धारण किया। उस समय संपादक लोग प्रबंधकारिणी समिति के अनेक सदस्यों तथा कर्मचारियों से बहुत रुष्ट और अननुष्ट हो गए थे। कई मास तक यह भगडा भीषण रूप से चलता रहा और अनेक समाचारपत्रों में उसके सबंध में कड़ी टिप्पणियाँ निकलती रहीं। सभा के कुछ सदस्य तथा बाहरी सज्जन कोश की व्यवस्था और कार्यप्रणाली आदि पर भी अनेक प्रकार के आक्षेप करने लगे, और कुछ सज्जनों ने तो छिपे छिपे ही यहाँ तक उद्योग किया कि अवतक कोश में जो व्यय हुआ है, वह सब सभा को देकर कोश की सारी मामूरी उससे ले ली जाय और स्वतंत्र रूप से उसके संपादन तथा प्रकाशन आदि की व्यवस्था की जाय। यह विचार यहाँ तक पक्का हो गया था कि एक स्वनामधन्य हिंदी विद्वान् से संपादक होने के लिये पत्रव्यवहार तक किया था। साथ ही मुझे उस काम से विरत करने के लिये मूँहपर प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न रीति से अनेक प्रकार के अनुचित आक्षेप तथा दोषारोपण किए गए थे। इस आंदोलन में व्यक्तिगत भाव अधिक था। पर थोड़े ही दिनों में यह अप्रिय और हानिकारक आंदोलन ठंडा पड़ गया और फिर सब कार्य सुचारु रूप से पूर्ववत् चलने लगा। 'श्रेयासि बहुविघ्नानि' के अनुसार इस बड़े काम में भी समय समय पर अनेक विघ्न उपस्थित हुए पर ईश्वर की कृपा से उनके कारण इस कार्य में कुछ हानि नहीं पहुँची।

सन् १९१३ में कोश का काम अच्छी तरह चल निकला। वह बराबर नियमित रूप से संपादित होने लगा और सख्याएँ बराबर छपकर प्रकाशित होने लगी। बीच बीच में आवश्यकतानुसार संपादनकार्य में कुछ परिवर्तन होता रहा। इसी बीच में पंडित बालकृष्ण भट्ट, जो इस वृद्धावस्था में भी बड़े उत्साह के साथ कोशसंपादन के कार्य में लगे हुए थे, अपनी दिन पर दिन बढ़ती हुई अशक्तता के कारण अभाध्यवश नवंबर, १९१३ में कोश के कार्य से अलग होकर प्रयाग चले गए और वहीं थोड़े दिनों बाद उनका देहांत हो गया। उस समय बाबू रामचंद्र वर्मा उनके स्थान पर कोश के सहायक बना दिए गए और कार्यभार में फिर कुछ परिवर्तन की आवश्यकता पड़ी। निश्चित हुआ कि बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीरसिंह आगे के शब्दों का अलग अलग संपादन करें और पंडित रामचंद्र शुक्ल तथा बाबू रामचंद्र वर्मा संपादित किए हुए शब्दों को अलग अलग दोहराकर एक मेल करें। इस क्रम में यह सुभीता हुआ कि आगे का संपादन भी अच्छी तरह होने लगा और संपादित शब्द भी ठीक तरह से दोहराए जाने लगे, और दोनों ही कार्यों की गति में भी यथेष्ट वृद्धि हो गई। इस प्रकार १९१७ तक बराबर काम चलता रहा और कोश की १५ सख्याएँ छपकर प्रकाशित हो गईं तथा ग्राहकसंख्या में बहुत कुछ वृद्धि हो गई। इस बीच में और कोई उल्लेख योग्य बात नहीं हुई।

सन् १९१८ के आरम्भ में तीन सहायक संपादकों ने 'ला' तक संपादन कर डाला और दो सहायक संपादकों ने 'वि' तक के शब्द दोहरा डाले। उस समय कई महीनों से कोश की बहुत कापी तैयार रहने पर

भी अनेक कारणों से उसका कोई अंक छपकर प्रकाशित नहीं हो सका जिसके कारण आग रही हुई थी। कोश विभाग का व्यय बहुत अधिक था और कोश के संपादन का कार्य प्रायः समाप्त पर था अतः कोश विभाग का व्यय कम करने की इच्छा से विचार हुआ कि अप्रैल, १९१८ से कोश का व्यय कुछ घटा दिया जाय। तदनुसार बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन और बाबू अमीरसिंह त्यागपत्र देकर अपने पद से अलग हो गए। कोश विभाग में केवल दो सहायक संपादक—पंडित रामचंद्र शुक्ल और बाबू रामचंद्र वर्मा—तथा स्लिपों का क्रम लगानेवाले और साफ कापी लिखनेवाले एक लेखक पंडित ब्रजभूषण ओझा रह गए। इस समय आगे के शब्दों का संपादन रोक दिया गया और केवल पुराने संपादित शब्द ही दोहराए जाने लगे। पर जब आगे चलकर दोहराने योग्य स्लिपें प्रायः समाप्त हो चली, और आगे नए शब्दों के संपादन की आवश्यकता प्रतीत हुई तब संपादनकार्य के लिये बाबू कालिकाप्रसाद नियुक्त किए गए जो कई वर्षों तक अच्छा काम करके और अंत में त्यागपत्र देकर अत्यंत चले गए। परंतु स्लिपों की दोहराने का कार्य पूर्ववत् प्रचलित रहा।

सन् १९२४ में कोश के सबंध में एक हानिकारक दुर्घटना हो गई थी। आरम्भ में शब्दसंग्रह की जो स्लिपें तैयार हुई थी, उनके २२ बडल कोश कार्यालय से चोरी चले गए। उनमें 'दिव्योक्त' से 'श' तक की और 'शय' से 'सही' तक की स्लिपें थी। इसमें कुछ दोहराई हुई पुरानी स्लिपें भी थी जो छप चुकी थी। इन स्लिपों के निकल जाने से तो कोई विशेष हानि नहीं हुई, क्योंकि सब छप चुकी थी। परंतु शब्द-संग्रहवाली स्लिपों के चोरी जाने से अवश्य ही बहुत बड़ी हानि हुई। इसके स्थान पर फिर कोशों आदि से शब्द एकत्र करने पड़े। यह शब्द-संग्रह अपेक्षाकृत थोड़ा और अधूरा हुआ और इसमें स्वभावतः ठेठ हिंदी या कविता आदि के उतने शब्द नहीं आ सके, जितने आने चाहिए थे, और न प्राचीन काव्यग्रंथों आदि के उदाहरण ही समिलित हुए। फिर भी जहाँ तक हो सका, इस त्रुटि की पूर्ति करने का उद्योग किया गया और परिशिष्ट में बहुत से छूटे हुए शब्द आ भी गए हैं।

सन् १९२५ में कार्य शीघ्र समाप्त करने के लिये कोश विभाग में दो नए सहायक अस्थायी रूप से नियुक्त किए गए—एक तो कोश के भूतपूर्व संपादक बाबू जगन्मोहन वर्मा के सुपुत्र बाबू सत्यजीवन वर्मा एम० ए० और दूसरे पंडित अयोध्यानाथ शर्मा, एम० ए०। यद्यपि ये सज्जन कोश विभाग में प्रायः एक ही वर्ष रहे थे, फिर भी इनसे कोश का कार्य शीघ्र समाप्त करने में और विशेषतः व, श, प तथा स के शब्दों के संपादन में अच्छी सहायता मिली। जब ये दोनों सज्जन सभा से सबंध त्यागकर चले गए तब संपादन कार्य के लिये श्रीयुक्त पंडित वासुदेव मिश्र, जो आरम्भ में भी कोशविभाग में शब्दसंग्रह का काम कर चुके थे और जो इधर बहुत दिनों तक कलकत्ते के दैनिक भारतमित्र तथा साप्ताहिक श्रीकृष्णसदेश के संपादक रह चुके थे, कोश विभाग में सहायक संपादक के पद पर नियुक्त कर लिए गए। इनकी नियुक्ति से संपादन कार्य बहुत ही सुगम हो गया और वह बहुत शीघ्रता से अग्रसर होने लगा। अंत में इस प्रकार सन् १९२७ में कोश का संपादन आदि समाप्त हुआ।



इतने बड़े शब्दकोश में बहुत से शब्दों का अनेक कारणों से छूट जाना बहुत ही स्वाभाविक था। एक तो यों ही सब शब्दों का संग्रह करना बड़ा कठिन काम है, जिस पर एक जीवत भाषा में नए शब्दों का आगम निरंतर होता रहता है। यदि किसी समय समस्त शब्दों का संग्रह किसी उपाय से कर भी लिया जाय और उनके अर्थ आदि भी लिख लिए जाय, तथापि जबतक यह संग्रह छपकर प्रकाशित हो सकेगा तबतक और नए शब्द भाषा में सम्मिलित हो जायेंगे। इस विचार से तो किसी जीवित भाषा का शब्दकोश कभी भी पूर्ण नहीं माना जा सकता। इन कठिनाइयों के अतिरिक्त यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि हिंदी भाषा के इतने बड़े कोश को तैयार करने का इतना बड़ा आयोजन यह पहला ही हुआ है। अतएव इसमें अनेक त्रुटियों का रह जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फिर भी इस कोश की समाप्ति में प्रायः २० वर्ष लगे। इस बीच में समय समय पर बहुत से ऐसे नए शब्दों का पता लगता था जो शब्दसागर में नहीं मिलते थे। इसके अतिरिक्त देश की राजनीतिक प्रगति आदि के कारण बहुत से नए शब्द भी प्रचलित हो गए थे जो पहले किसी प्रकार संगृहीत ही नहीं हो सकते थे। साथ ही कुछ शब्द ऐसे भी थे जो शब्दसागर में छप तो गए थे, परंतु उनके कुछ अर्थ पीछे से मालूम हुए थे। अतः यह आवश्यक समझा गया कि इन छूटे हुए या नवप्रचलित शब्दों और छूटे हुए अर्थों का अलग संग्रह करके परिशिष्ट रूप में दे दिया जाय। तदनुसार प्रायः एक वर्ष के परिश्रम में ये शब्द और अर्थ भी प्रस्तुत करके परिशिष्ट रूप में दे दिए गए हैं। आजकल समाचारपत्रों आदि या बोलचाल में जो बहुत से राजनीतिक शब्द प्रचलित हो गए हैं, वे भी इसमें दे दिए गए हैं। सारांश यह कि इसके संपादकों ने अपनी ओर से कोई बात इस कोश को सर्वांगपूर्ण बनाने में उठा नहीं रखी है। इसमें जो दोष, अभाव या त्रुटियाँ हैं उनका ज्ञान जितना इसके संपादकों को है उतना कदाचित् दूसरे किसी को होना कठिन है, पर ये बातें असावधानी से अथवा जान बूझकर नहीं होने पाई हैं। अनुभव भी मनुष्य को बहुत कुछ सिखाता है। इसके संपादकों ने भी इस कार्य को करके बहुत कुछ सीखा है और वे अपनी कृति के अभावों से पूर्णतया अभिन्न हैं।

कदाचित् यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि भारतवर्ष की किसी वर्तमान देशभाषा में उसके एक बृहत् कोश के तैयार कराने का इतना बड़ा और व्यवस्थित आयोजन दूसरा अबतक नहीं हुआ है। जिस ढंग पर यह कोश प्रस्तुत करने का विचार किया गया था, उसके लिये बहुत अधिक परिश्रम तथा विचारपूर्वक कार्य करने की आवश्यकता थी। साथ ही इस बात की भी बहुत बड़ी आवश्यकता थी कि जो सामग्री एकत्र की गई है उसका किस ढंग से उपयोग किया जाय और भिन्न भिन्न भावों के सूचक अर्थ आदि किस प्रकार दिए जायें क्योंकि अभी तक हिंदी, उर्दू, बंगला, मराठी या गुजराती आदि किसी देशीभाषा में आधुनिक वैज्ञानिक ढंग पर कोई शब्दकोश प्रस्तुत नहीं हुआ था। अबतक जितने कोश बने थे, उन सबमें वह पुराना ढंग काम में लाया गया था और एक शब्द के अनेक पर्याय ही एकत्र करके रख दिए गए थे। किसी शब्द का ठीक ठीक भाव बतलाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। परंतु विचारवान् पाठक समझ सकते हैं कि केवल पर्याय से ही किसी शब्द का ठीक ठीक भाव या अभिप्राय समझ में नहीं आ सकता, और कभी कभी तो कोई पर्याय अर्थ के संवध में जिज्ञासु को भी और भ्रम में डाल देता है। इसी लिये शब्दसागर

के संपादकों को एक ऐसे नए क्षेत्र में काम करना पड़ा था जिसमें अभी तक कोई काम हुआ ही नहीं था। वे प्रत्येक शब्द को लेते थे, उसकी व्युत्पत्ति ढूँढते थे, और तब एक या दो वाक्यों में उसका भाव स्पष्ट करते थे, और यदि यह शब्द वस्तुवाचक होता था, तो उम वस्तु का यथासाध्य पूरा पूरा विवरण देते थे, और तब उसके कुछ उपयुक्त पर्याय देते थे। इसके उपरांत उस शब्द से प्रकट होनेवाले अन्यान्य भाव या अर्थ, उत्तरोत्तर विकास के क्रम से, देते थे। उन्हें इस बात का बहुत ध्यान रखना पड़ता था कि एक अर्थ का सूचक पर्याय दूसरे अर्थ के अंतर्गत न चला जाय। जहाँ आवश्यकता होती थी, वहाँ एक ही तरह के अर्थ देनेवाले दो शब्दों का अंतर भी भली भाँति स्पष्ट कर दिया जाता था। उदाहरण के लिये 'टँगना' और 'लटकना' इन दोनों शब्दों को लीजिए। शब्दसागर में इन दोनों के अर्थों का अंतर इस प्रकार स्पष्ट किया गया है--'टँगना' और 'लटकना' इन दोनों के मूल भाव में अंतर है। 'टँगना' शब्द में ऊँचे आधार पर टिकने या अटने का भाव प्रधान है और 'लटकना' शब्द में ऊपर से नीचे तक फैले रहने या हिलने डोलने का।'

इसी प्रकार दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक, वास्तुविद्या आदि अनेक विषयों के पारिभाषिक शब्दों के भी पूरे पूरे विवरण दिए गए हैं। प्राचीन हिंदी काव्यों में मिलनेवाले ऐसे बहुत से शब्द इसमें आए हैं जो पहले कभी किसी कोश में नहीं आए थे। यही कारण है कि हिंदीप्रेमियों तथा पाठकों ने आरम्भ में ही इसे एक बहुमूल्य रत्न की भाँति अपनाया और इसका आदर किया। प्राचीन हिंदी काव्यों का पढ़ना और पढ़ाना, एक ऐसे कोश के प्रभाव में, प्रायः असंभव था। इस कोश ने इसकी पूर्ति करके वह अभाव विलकुल दूर कर दिया। पर यहाँ यह भी निवेदन कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि अब भी इसमें कुछ शब्द अवश्य इसलिये छूटे हुए होंगे कि हिंदी के अधिकांश छपे हुए काव्यों में न तो पाठ ही शुद्ध मिलता है और न शब्दों के रूप ही शुद्ध मिलते हैं।

इन सब बातों से पाठकों ने भली भाँति समझ लिया होगा कि इस कोश में जो कुछ प्रयत्न किया गया है, विलुक्त नए ढंग का है। इस प्रयत्न में इसके संपादकों को कहाँ तक सफलता हुई है। इसका निर्णय विद्वान् पाठक ही कर सकते हैं। परंतु संपादकों के लिये यही बात विशेष सतोष और आनंद की है कि आरम्भ से अनेक बड़े बड़े विद्वानों ने जैसे, सर जार्ज ग्रियर्सन, डाक्टर हार्नली, प्रो० सिल्वन् लेवी, डा० गगानाथ भा आदि ने इसकी बहुत अधिक प्रशंसा की है। इसकी उपयोगिता का यह एक बहुत बड़ा प्रमाण है। कदाचित् यहाँ पर यह कह देना भी अनुपयुक्त न होगा कि कुछ लोगों ने किसी किसी जाति अथवा व्यक्तिविषयक विवरण पर आपत्तियाँ की हैं। मुझे इस संवध में केवल इतना ही कहना है कि हमारा उद्देश्य किसी जाति को ऊँची या नीची बनाना न रहा है और न हो सकता। इस संवध में न हम शारत्तीय व्यवस्था देना चाहते थे और न उसके अधिकारी थे। जो सामग्री हमको मिल सकी उसके आधार पर हमने विवरण लिखे। उसमें भूल होना या कुछ छूट जाना कोई असंभव बात नहीं है। इसी प्रकार जीवनों के संवध में मतभेद या भूल हो सकती है। इसके कारण यदि किसी का हृदय दुखा हो या किसी प्रकार का क्षोभ हुआ हो तो उसके लिये हम दुःखी हैं और क्षमा के प्रार्थी हैं। सशोषित संस्करण में ये त्रुटियाँ दूर की जायेंगी।

इस प्रकार यह बृहत् आयोजन २० वर्ष के निरंतर उद्योग, परिश्रम और अध्यवसाय के अनंतर समाप्त हुआ है। इसमें सब मिलाकर ६३,११५ शब्दों के अर्थ तथा विवरण दिए गए हैं और आरम्भ में हिंदी भाषा और साहित्य के विकास का इतिहास भी दे दिया गया है। इस समस्त कार्य में सभा का अवतक (१०, २७, ३५।) बड़े व्यय हुआ है, जिसमें छपाई आदि का भी व्यय सम्मिलित है। इस कोश की सर्वप्रियता और उपयोगिता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण (यदि किसी प्रमाण की आवश्यकता है) हो सकता है कि कोश समाप्त भी नहीं हुआ और इसके पहले ही इसके खंडों को दो दो और तीन तीन बर छापना पड़ा है और इस समय इस कोश के समस्त खंड प्राप्य नहीं हैं। इसकी उपयोगिता का दूसरा बड़ा भारी प्रमाण यह है कि अभी यह ग्रंथ समाप्त भी नहीं हुआ था, वरन् यों कहना चाहिए कि अभी इसका थोड़ा ही अंश छपा था जब कि इससे चोरी करना आरम्भ हो गया था और यह काम अवतक चला जा रहा है, पर असल और नकल में जो भेद ससार में होता है वही यहाँ भी देख पड़ता है। यदि इस सब में कुछ कहा जा सकता है तो वह केवल इतना ही है कि इन महाशयों ने चोरी पकड़े जाने के भय से इस कोश के नाम का उल्लेख करना भी अनुचित समझा है।

जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है, उससे स्पष्ट है कि इस कोश के कार्य में आरम्भ से लेकर अंत तक पंडित रामचंद्र शुक्ल का संबंध रहा है, और उन्होंने इसके लिये जो कुछ किया है, वह विशेष रूप से उल्लिखित होने योग्य है। यदि यह कहा जाय कि शब्दसागर की उपयोगिता और सर्वांगपूर्णता का अधिकांश श्रेय पंडित रामचंद्र शुक्ल को प्राप्त है, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। एक प्रकार से यह उन्हीं के परिश्रम, विद्वत्ता और विचारशीलता का फल है। इतिहास, दर्शन, भाषाविज्ञान, व्याकरण, साहित्य आदि के सभी विषयों का समीचीन विवेचन प्रायः उन्हीं का किया हुआ है। यदि शुक्ल जी सरीखे विद्वान् की सहायता न प्राप्त होती तो केवल एक या दो सहायक संपादकों की सहायता से यह कोश प्रस्तुत करना असंभव ही होता। शब्दों को दोहराकर छपने के योग्य ठीक करने का भार पहले उन्हीं पर था। फिर आगे चलकर थोड़े दिनों बाद उनके सुयोग्य साथी बाबू रामचंद्र वर्मा ने भी इस काम में उनका पूरा पूरा हाथ बँटाया और इसलिये इस कोश को प्रस्तुत करनेवालों में दूसरा मुख्य स्थान बाबू रामचंद्र वर्मा को प्राप्त है। कोश के साथ उनका संबंध

भी प्रायः आदि से अंत तक रहा है और उनके सहयोग तथा सहायता से कार्य को समाप्त करने में बहुत अधिक सुगमता हुई है। आरम्भ में उन्होंने इसके लिये सामग्री आदि एकत्र करने में बहुत अधिक परिश्रम किया था, और तदुपरांत वे इसके निर्माण और संपादन की हुई स्लिप्स को दोहराने के काम में पूर्ण अध्यवसाय और शक्ति से सम्मिलित हुए। उनमें प्रत्येक बात को बहुत धीमे समझ लेने की अच्छी शक्ति है, भाषा पर उनका पूरा अधिकार है और वे ठीक तरह से काम करने का ढंग जानते हैं, और उनके इन गुणों से इस कोश को प्रस्तुत करने में बहुत अधिक सहायता मिली है। इसकी छपाई की व्यवस्था और प्रूफ आदि देखने का भार भी प्रायः उन्हीं पर था। इस प्रकार इस विशाल कार्य के संपादन का उन्हें भी पूरा पूरा श्रेय प्राप्त है और इसके लिये मैं उक्त दोनों सज्जनों को शुद्ध हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इनके अतिरिक्त स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण भट्ट, स्वर्गीय बाबू जगन्मोहन वर्मा, स्वर्गीय बाबू अमीर सिंह तथा लाला भगवानदीन जी को भी मैं विना धन्यवाद दिए नहीं रह सकता। उन्होंने इस कोश के संपादन में बहुत कुछ काम किया है और उनके उद्योग तथा परिश्रम से इस कोश के प्रस्तुत करने में बहुत सहायता मिली है। जिन लोगों ने आरम्भ में शब्दसंग्रह आदि या और कामों में किसी प्रकार से मेरी सहायता की है वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य विद्वानों, सहायकों तथा दानी महानुभावों के प्रति भी मैं अपनी तथा सभा की कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने किसी न किसी रूप में इस कार्य को अग्रसर तथा सुसंपन्न करने में सहायता की है, यहाँ तक कि जिन्होंने इसकी त्रुटियों को दिखाया है उनके भी हम कृतज्ञ हैं, क्योंकि उनकी कृपा से हमें अधिक सचेत और सावधान होकर काम करना पड़ा है। ईश्वर की परम कृपा है कि अनेक विघ्न बाधाओं के समय समय पर उपस्थित होते हुए भी यह कार्य आज समाप्त हो गया। कदाचित् यह कहना कुछ अत्युक्ति न समझा जायगा कि इसकी समाप्ति पर जितना आनंद और सतोष मुझको हुआ है उतना दूसरे किसी को होना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा अपने इस उद्योग की सफलता पर अपने को कृतकृत्य मानकर अभिमान कर सकती है।

काशी

३१-११-१९२६

श्यामसुंदरदास

प्रधान संपादक





## संपादकीय प्रस्तावना

**निघटुः आर्यभाषा का प्रथम शब्दकोश (समाप्ताय)**

वैदिक (विरल या क्लिष्ट) शब्दों के सग्रह को 'निघटु' कहते थे। 'यास्क' का निरुक्त वैदिक निघटु का भाष्य है। यास्क से पूर्ववर्ती निघटुओं में एकमात्र यही निघटु उपलब्ध है। पर निरुक्त से जान पड़ता है कि 'यास्क' के पूर्व अनेक निघटु बन चुके थे। इस विषय की सक्षिप्त चर्चा आगे होगी। यहाँ 'यास्क' द्वारा व्याख्यात 'निघटु' का परिचय दिया जा रहा है।

यह 'निघटु' पचाध्यायी कहा जाता है। इसके प्रथम तीन अध्यायों को 'निघटुक कांड' कहा गया है। इन कांडों के शब्दों की निरुक्त के द्वितीय और तृतीय अध्यायों में 'यास्क' ने व्याख्या की है। इनमें १३४१ शब्द हैं, यद्यपि व्याख्या २३० शब्दों की हुई है। निघटु के परिगणित शब्दों में सज्ञा अर्थात् नाम और आख्यात एवं अव्यय पदों का सकलन है। सबसे प्रथम पृथ्वी के बोधक २१ पर्यायवाची शब्दों का परिचय दिया गया है तदनंतर ज्वलनार्थक अग्नि के ११ पर्याय दिए गए हैं। इसी रीति से पूरे तीनों अध्यायों में पर्यायवाची अथवा समानार्थ-बोधक शब्दों का समूह है। इनमें भी अनेक शब्द ऐसे हैं जो अनेकार्थक हैं। 'निघटु' में तो उनका सग्रह पर्यायरूप में ही हुआ है, पर 'निरुक्त' के निर्वचन में उनके अनेक अर्थ सोदाहरण बताए गए हैं। 'गो' शब्द की निरुक्त व्याख्या में इस शब्द के अनेक अर्थों का निर्देश है। षतुर्थ अध्याय में २७८ स्वतंत्र पदों का 'जो किसी के पर्याय नहीं हैं) एकत्रीकरण दिया गया है। इनमें मुख्यतः दो प्रकार के शब्द हैं— (१) वे शब्द जिनके अनेक अर्थ हैं और (२) वे शब्द जिनका व्याकरणमूलक सस्कार (व्युत्पत्ति) अवगत नहीं है। अंतिम पंचम अध्याय को देवतकांड कहा गया है जिसमें वैदिक देवता-बोधक १५१ नाम मिलते हैं।

इस 'निघटु' के निर्माता का नामनिर्णय विवादास्पद है। इतना ही नहीं, इनमें कुछ विद्वान् अनेक पुरुषों की रचना मानते हैं। डा० लक्ष्मणस्वरूप इनमें प्रमुख हैं। डा० कोल्ड ने भी हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर निर्णय दिया है कि 'निरुक्त' के पूर्वषड्क और उत्तरषड्क—दोनों की शैलियाँ भिन्न हैं और दोनों के निर्माता भी सम्भवतः भिन्न रहे होंगे। परंतु राजवाडे ने डा० लक्ष्मणस्वरूप के मत का अनेक तर्कों के आधार पर खंडन किया है। ऐसे भी पंडित हैं जो 'यास्क' को ही निघटु और निरुक्त—दोनों का रचयिता मानते हैं। स्कंद दुर्ग तथा माहेश्वर आदि प्राचीन आचार्य 'निघटु' को किसी ऐसे वेदज्ञ ऋषि का ग्रंथ मानते हैं जिसका नाम अब तक ज्ञात नहीं है।

कोशविद्या के विचार से 'निघटु' ग्रंथ को विकासक्रम का प्रारंभिक और प्रथम उपलब्ध रूप कहा जा सकता है। इसमें विशिष्ट वैदिक ग्रंथ के शब्दों का सग्रह तो है पर वह समस्त शब्दों का न होकर कतिपय कठिन और दुर्बोध शब्दों का सकलन है। इस कोश में

नाम, आख्यात और अव्यय शब्दों का सकलन किया गया है। यह ग्रंथ माध्यम से हुआ है, छोड़बद्ध नहीं है। पर्यायसकलन या अन्यसग्रहण द्वारा इसका उद्देश्य वेद के शब्दों का अर्थ स्पष्ट करना था। इसमें तिङन् (आख्यात), सुवत (नामपद) और अव्यय हैं।

शब्द-सकलन-पद्धति की दृष्टि से इसमें पर्यायवाची, अनेकार्थक और विरल शब्दों का सग्रह मिलता है। उन्हें हम चार विभागों में बाँट सकते हैं—(१) समानार्थक धातुरूप, (२) एकार्थक अथवा पर्यायवाची भिन्न भिन्न शब्दों का सग्रह, (३) अनेकार्थक शब्दों का सग्रह और (४) देवताओं के प्रमुख और अप्रमुख नामों का सग्रह। अज्ञात-व्याकरण-सस्कारवाले शब्द भी संगृहीत हैं।

उपलब्ध 'निघटु' के अतिरिक्त अन्य अनेक 'निघटु' भी अवश्य ही रहे होंगे। 'यास्क' के 'निरुक्त' से भी इतना स्पष्ट है कि उनसे पूर्व जिस प्रकार अनेक व्याकरण एवं अनेक निरुक्तकार हुए चुके थे उसी प्रकार उपलब्ध 'निघटु' के अतिरिक्त अन्य निघटु भी वतमान थे। 'यास्क' के निर्देश (१।२० तथा ७।१५) से संकेत मिलता है कि 'निघटु' शब्द अनेक निघटुओं का बोधक है। आचार्य भगवद्दत्त के वक्तव्य से अनुमान किया जा सकता है कि निघटु अनेक थे। अथर्व परिशिष्ट का ४८वाँ अंश भी कौत्सव्य द्वारा सकलित 'निघटु' ही है। 'यास्क' ने 'शाकपूर्णि' का उल्लेख किया है। बृहद्देवता में भी 'यास्क' के साथ अनेक बार उनका नाम देखकर अनुमान किया जाता है कि दोनों ही ग्रंथ—'निघटु' और 'निरुक्त'—उन्हीं के रचित थे। इधर पूना से 'शाकपूर्णि' का एक निघटु भी प्रकाशित किया गया है। इन सबके आधार पर यह कहना कदाचित् असंगत न हो कि 'यास्क' के समय तक बहुत से निघटु ग्रंथ निर्मित हो चुके थे।

'यास्क' के कथनानुसार 'निघटु' का अर्थ है—वह शब्दसमूह जो वेदों से चुनकर एकत्र किए हुए शब्दों का अर्थद्योतन करे। इस अर्थद्योतन में अनेक शब्दों का अर्थद्योतन सभी एक साथ होता है और कभी पथक् पृथक्। इसमें सामान्यतः शब्द-सकलन-विधान की निम्नलिखित विधि की संयोजना मिलती है, चाहे वे सभी विधियाँ एक निघटु में हों अथवा न हों—(१) समानार्थक धातुओं का सग्रह, (२) किसी एक सत्व अथवा पदार्थ के नाना नामधेयों एवं अव्ययपदों का सग्रह, (३) एक शब्द के अनेक अर्थों का अभिधान और (४) देवताओं के नाम।

प्रोफेसर 'राजवाडे' का कथन है कि अनेक अर्थों का एक अभिधान द्वारा कथन—इस उपलब्ध 'निघटु' में नहीं है। फिर भी ऐकपदिक कांड में कुछ अनेकार्थक शब्द भी डूँड जा सकते हैं और व्याकरण की दृष्टि से अव्युत्पन्न शब्द भी। 'ऐकपदिक' कांड में तथा कथिन अव्युत्पन्न शब्द लक्षण सबधी उपर्युक्त अंगों में नहीं आते। अतः कह सकते हैं कि निरुक्तोक्त अंगों की अपेक्षा यहाँ कुछ अधिकता

है। इसका संकेत यह भी हो सकता है कि 'यास्क' के पूर्ववर्ती प्राचार्यों ने 'निघटु' के लिये उपर्युक्त चतुरंग लक्षण आवश्यक मान लिया था, और उस प्रकार के अनेक ग्रंथ उस समय वर्तमान थे।

निश्चय ही १००० ई० पू० के पहले से लेकर ई० पू० ८०० या ७०० तक अनेक वैदिक निघटु निमित्त हो चुके थे। विरल और कठिन शब्दों तथा पर्यायवाची नामों और आख्यातों एवं अव्ययों का बड़े श्रम के साथ प्राचार्यों ने अर्थनिर्देशपूर्वक संग्रह किया था। भारतीय कोशविद्या का यह प्राचीनतम उपलब्ध रूप यद्यपि गद्यबद्ध था, तथापि परवर्ती पद्यबद्ध कोशों के लिये—विशेषतः पर्यायवाची कोशों का—पथप्रदर्शक और प्रेरणादायक रहा। 'अमरकोश' जैसे ग्रंथ पर भी जहाँ एक ओर निघटुकार की पर्यायवाची शैली का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है वहाँ दूसरी ओर 'निरुक्त' के काष्ठमय का प्रभाव भी 'त्रिकाडकोश' या 'अमरकोश' पर कदाचित् पड़ा। विषय की दृष्टि से न मही, पर काष्ठ शब्द और 'तीन की सख्या' इन दोनों ग्रंथों में अमरसिंह ने प्रभाव ग्रहण किया ही तो आश्चर्य नहीं।

निरुक्त के आरम्भ में ही कहा गया है—'सामान्याय सामान्नात स व्याख्यातव्य। तदिम सामान्याय निघण्टव इत्याक्षते।' अर्थात् सामान्याय की ( जो गुरुपरंपरा से वैदिकों द्वारा प्राप्त किया गया है उसकी ) व्याख्या आवश्यक है। इसी को 'निघटव' (निघटु) कहते हैं। इस शब्द का विकास 'निगतव' में हुआ है। संभवतः अनेक 'निघटु' थे, इसी से बहुवचन में प्रयोग है। प्रथम तीन अध्यायों में 'नामपदों' और 'आख्यातपदों' की पर्यायबद्ध सूची है। चौथे अध्याय में क्लिष्ट वैदिक शब्द हैं अपने तत्सम रूप में और ५वें में देवतावाचक शब्दों का संग्रह है।

लगभग दो सहस्र वर्षों बाद १८वीं शती में 'भास्करराय' नामक एक महाविद्वान् ने 'वैदिक कोश' का निर्माण किया था। उक्त कोश में वैदिक 'निघटु' के शब्दों और उनके अर्थों का पद्यबद्ध संयोजन किया गया है।

वैदिक निघटुओं की परंपरा—कदाचित् आगे चलकर लुप्त हो गई। परंतु अथर्ववेद के उपवेद—आयुर्वेद—में इस नाम के ग्रंथों की परंपरा चलती रही। आयुर्वेद के परंपराकथित अवतारी प्राचार्य 'धन्वतरि' द्वारा विरचित एक 'धन्वतरि निघटु' है। किंवदन्ती-अनुसारी श्लोक में 'विक्रमादित्य' के नवरत्नों में इनका नाम सर्वप्रथम आता है। 'अमरकोश' की क्षीरस्वामीकृत टीका (वनोपधिवर्ग-श्लोक ५०) के अनुसार धन्वतरि को 'अमरसिंह' से प्राचीन माना जाता है। संभवतः चतुर्थ शतक से पूर्व इनका काल रहा होगा। नौ अध्याय के इस ग्रंथ में पारिभाषिक शब्दों के अर्थ के साथ साथ उनके गूण दोष का भी इसमें वर्णन है श्लोकबद्ध यह 'वैद्यकनिघटु'—संभवतः परवर्ती तद्वर्गीय ग्रंथों का प्रेरणाधार रहा। 'माधवनिदान' (प्रसिद्ध वैद्यक ग्रंथ) के निर्माता 'माधवकर' (लगभग आठवीं नवीं शती) द्वारा 'पर्यायरत्नमाला' नाम में एक वैद्यक कोश भी रचित माना जाता है। 'हेमचंद्र' ने भी 'निघटुशेष' नामक ग्रंथ का निर्माण किया था। १८वीं शती के उत्तरार्ध में अनेकशास्त्रविद्याविशारद काष्ठा नगरीराज 'मदनपाल' ने १७७४ ई० में 'मदनपाल निघटु' (या 'मदनपाल विनोद'

नामक विशाल ग्रंथ बनाया था। इसमें मराठी के भी अनेक पर्यायशब्द उपलब्ध हैं।)

### संस्कृत कोश प्राचीन (अमरकोश पूर्ववर्ती)

वैदिक निघटुकोशों और 'निरुक्त ग्रंथों' के अनंतर संस्कृत के प्राचीन और मध्यकालीन कोश हमें उपलब्ध होते हैं। इस संवध में 'भेददानतंड' ने माना है कि संस्कृत कोशों की परंपरा का उद्भव ( निघटु ग्रंथों के अनंतर ) घातुपाठों और गणपाठों में हुआ है। पाणिनीय अष्टाध्यायी के पूरक परिशिष्ट रूप में घातुश्री और गणशब्दों का व्याकरणोपयोगी संग्रह—इन उपर्युक्त पाठों में हुआ। पर उनमें अर्थनिर्देशन होने के कारण उन्हें केवल घातुसूची और गणसूची कहना अधिक समीचीन होगा।

आगे चलकर संस्कृत के अधिकांश कोशों में जिस प्रकार रचना-विधान और अर्थनिर्देश शैली का विकास हुआ है वह घातुपाठ या गणपाठ की शैली से पूर्णतः पृथक् है। निघटु ग्रंथों से इनका स्वरूप भी कुछ भिन्न है। निघटुओं में वैदिक शब्दों का संग्रह होता था। उनमें क्रियापदों, नामपदों और अव्ययों का भी संकलन किया जाता था। परंतु संस्कृत कोशों में मुख्यतः केवल नामपदों और अव्ययों का ही संग्रह हुआ।

'निरुक्त' के समान अथवा पाली के 'महाव्युत्पत्ति' कोश की तरह इसमें व्युत्पत्तिनिर्देश नहीं है। वैदिक निघटुओं में संगृहीत शब्दों का संवध प्रायः विशिष्ट ग्रंथों से (ऋग्वेदसंहिता या अथर्वसंहिता का अथर्वनिघटु) होता था। इनकी रचना गद्य में होती थी। परंतु संस्कृत कोश मुख्यतः पद्यात्मक हैं और प्रमुख रूप से उनमें अनुष्टुप् छंद का योग (अभिधानरत्नमाला आदि को छोड़कर) हुआ है। संस्कृत कोशों द्वारा शब्द और अर्थ का परिचय कराया गया है 'धनजय', 'धरणी' और 'महेश्वर' आदि कोशों के निर्माण का उद्देश्य था संभवतः महत्वपूर्ण विरलप्रयुक्त और कविजनोपयोगी शब्दों का संग्रह बनाना।

संस्कृत कोशों का ऐतिहासिक सिंहावलोकन करने से हमें इस विषय की सामान्य जानकारी प्राप्त हो सकती है। इस संवध में विद्वानों ने 'अमरसिंह' द्वारा रचित और सर्वाधिक लोकप्रिय—'नामलिगानुशासन' (अमरकोश) को केंद्र में रखकर उसी के आधार पर संस्कृत कोशों को तीन कालखंडों में विभाजित किया है—( १ ) अमरकोश-पूर्ववर्ती संस्कृत कोश, ( २ ) अमरकोशकाल तथा ( ३ ) अमरकोश-परवर्ती संस्कृत कोश।

'अमरसिंह' के पूर्ववर्ती कोशों का उनके नामलिगानुशासन में उल्लेख नहीं मिलता है। परंतु 'समाहृत्यान्यतन्त्राणि' के ध्वन्यार्थ का आधार लेकर 'अमरकोश' की रचना में पूर्ववर्ती कोशों के उपयोग का अनुमान किया जा सकता है। 'अमरकोश' की एक टीका में लब्ध 'कात्य' शब्द के आधार पर 'कात्य' या 'वात्स्यायन' नामक 'अमर'—पूर्ववर्ती कोशकार का और पाठांतर के आधार पर व्याधि नामक कोशकार का अनुमान होता है। 'अमरकोश' के टीकाकार 'क्षीरस्वामी' के आधार पर 'धन्वतरि' के 'धन्वतरिनिघटु' नामक वैद्यक निघटु (कोश) का संकेत मिलता है। 'महाराष्ट्र शब्दकोश' की भूमिका में 'भागुरि' के

कोशों की भी—जिसका नाम 'त्रिकाडकोश' था—'अमर'-पूर्ववर्ती बताया गया है। यह कोश दक्षिण भारत की एक ग्रन्थसूची में आज भी उल्लिखित है। 'रति' या 'रतिदेव' और 'रसम' या 'रसमपाल' को भी (महाराष्ट्र शब्दकोष की भूमिका के आधार पर) 'अमर'-पूर्ववर्ती कोशकार कहा गया है।

'सर्वानन्द' ने 'अमरकोश' की अपनी टीका में बताया है कि 'व्याडि' और 'वररुचि' आदि के कोशों में केवल लिंगों का संग्रह है और 'त्रिकाड' एवं 'उत्पलिन' में केवल शब्दों का। परन्तु 'अमरकोश' में दोनों की विशेषताएँ एकत्र समिलित हैं। इस प्रकार 'व्याडि', 'वररुचि' (या कात्य) 'भागुरि' और 'धन्वतरि' आदि अनेक कोशकारों का सौराष्ट्रवासी ने अमर-पूर्ववर्ती कोशकारों और 'त्रिकाड', 'उत्पलिन', 'रत्नकोश' और 'माला' आदि अमर-पूर्ववर्ती कोशग्रन्थों का परिचय दिया है।

### अमरकोशकाल (रचनाकाल—लगभग चौथी पाँचवीं शती)

अमरकोश की महत्ता के कुछ कारण हैं। यद्यपि तत्पूर्ववर्ती कोश ('धन्वतरिनिषट्' तथा पाटलिपुत्रसूची में उल्लिखित एकाध अन्य ग्रन्थ को छोड़कर) आज उपलब्ध नहीं हैं तथापि यह अनुमान किया जाता है कि प्राचीन कोशों में दो प्रकार की शैलियाँ (कदाचित्, प्रचलित थी— (१) कुछ कोश (संभवतः) नामों (संज्ञाओं) का ही और कुछ लिंगों का ही निर्देश करते थे। (कदाचित् दो एक कोश धातुसूची भी प्रस्तुत करते थे।) इन्हें नामसूत्र (नामपारायणात्मक) तथा लिंगसूत्र (लिंगपारायणात्मक) कहा जाता था। द्वितीय विधा के कोशों में लिंगों का विवेचनात्मक निर्देशन ही मुख्य विषय रहता था। पर 'अमर-सिंह' ने अपने कोश में दोनों का एक साथ अत्यन्त प्रौढ संयोजन और विवेचन किया है। आरम्भ में ही उन्होंने तीसरे से पाँचवें श्लोक तक अपने कोश में प्रयुक्त नियमों और पद्धति का स्पष्ट निर्देश किया है। इनके आधार पर शब्दार्थ के साथ-ही साथ लिंग का निर्णय भी होता है।

तीन काडों के इस ग्रन्थ में क्रमशः दस, दस और पाँच वर्ग हैं। उपक्रम भाग में निदिष्ट पद्धति के अनुसार नामपदों के लिंग का आद्यत निर्देश किया गया है। इसी कारण इसका अभिधान 'नामलिङ्गानुशासन' है। इसकी विशिष्टता का परिचय देते हुए स्वयं ग्रन्थकार ने बताया है कि अन्य तत्त्वों से विवेच्य विषय का समाहार करते हुए संक्षिप्त रूप में और प्रतिसंस्कार द्वारा उत्कृष्ट रूप से वर्गों में विभक्त—इस 'नाम-लिङ्गानुशासन' को पूर्ण बनाने का प्रयास हुआ है। यही इसकी विशेषता है।

सुव्यवस्थित पद्धति के अनुसार काडों और वर्गों का विभाजन किया गया है। वस्तुतः देखा जाय तो प्रथम दो काड इस कोश का पर्यायवाची स्वरूप प्रस्तुत करते हैं और तृतीय काड में नाना प्रकृति के इतर नामपदों का संग्रह है। विशेष्यनिघ्न वर्ग में विशेष्यानुसारी लिङ्गादि में प्रयुक्त होनेवाले नामपदों का संग्रह है। 'सकीर्ण' वर्ग में प्रकृति प्रत्यादि के अर्थ द्वारा लिंग की ऊँहा का विवेचन हुआ है। 'नानार्थ' वर्ग में नानार्थ नामों का 'कात', 'खात' आदि क्रम के अनुसार संग्रह किया गया है। चतुर्थ वर्ग अव्यय शब्दों को संकलित

करनेवाला है, और अन्तिम वर्ग लिङ्गादिसंग्रह कहा गया है एवं उसमें शास्त्रीय और व्याकरणनियमानुसारी आधार को लेकर लिंग का अनुशासन मुख्य रूप से तथा गौण रूप से अन्य अनुक्त-लिंग-निर्देश की क्रमबद्ध पद्धति बताई गई है।

यह कोशग्रन्थ मुख्यतः पर्यायवाची ही है। फिर भी तृतीय काड के द्वारा, जिसे हम आधुनिक पदावली में परिशिष्टांश कह सकते हैं, इस कोश को पूर्ण और व्यापक तथा उपयोगी बनाया गया है।

अमरकोशपरवर्ती अमरपरवर्ती काल में संस्कृत कोशों की अनेक विधाएँ लक्षित होती हैं—कुछ कोश मुख्यतः केवल नानार्थ कोश के रूप में हमारे सामने आते हैं, कुछ को समानार्थक शब्दकोश और कुछ का अशत पर्यायवाची कोश कह सकते हैं।

इन विधाओं के अतिरिक्त ऐसे कोश भी मिलते हैं जिनमें क्रमशः एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर और नानाक्षर शब्दों का योजनाबद्ध रूप से संकलन हुआ है। 'द्विरूप' कोश भी वने हैं।

इनके अतिरिक्त 'पुरुषोत्तमदेव' का ग्रन्थ 'वर्णदेशना' है, जिसमें लिखावट में स्वल्पाधिक भेदों के कारण होनेवाले वर्णविन्यास संबंधी वैरूप्य का परिचय मिलता है। इन्हीं का एक कोश 'त्रिकाडकोष' भी है जिसमें अमरसिंह के कोश में छूटे हुए, पर तद्व्युत्पन्न भाषा में प्रचलित, शब्दों का संग्रह है। 'पुरुषोत्तमदेव' की ही एक रचना 'हारावली' भी है, जिसमें विरल प्रयोगवाले 'एकार्थ' और 'अनेकार्थ' शब्दों के दो भाग हैं। स्वयं लेखक ने लिखा है कि इस ग्रन्थ में अत्यन्त विरल शब्दों का संग्रह हुआ है।

'अमरसिंह' के अनन्तर कोशकारों और कोशग्रन्थों पर अमरकोश का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। पर्यायवाची कोश बहुत कुछ अमरकोश से प्रभाव ग्रहण करें लिखे गए। 'नानार्थ' या 'अनेकार्थ' कोश भी अमरकोश के नानार्थ वर्ग के आधार पर प्रायः बहुमुखी विस्तारमान रहे हैं। 'विश्वप्रकाश' कोश में अवश्य कुछ अधिक वैशिष्ट्य दिखाई देता है। वह विलक्षण 'नानार्थकोश' है जो अनेक अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में एकाक्षर, द्व्यक्षर आदि क्रम से सप्ताक्षर शब्दों तक का संकलन है। 'कंकक', 'कद्विक', आदि भी अध्यायों के नाम हैं। 'अमरकोश' का तरह ही शब्द के अन्तिम वर्णानुसार कात, खात आदि रूप में शब्दों का अनुक्रम है। उनका 'शब्द-भेद-प्रकाशिका' नामक ग्रन्थ भी वस्तुतः इसी का अन्य परिशिष्ट है। इसके चार अध्यायों में क्रमशः 'शब्दभेद', 'वकारभेद', 'ऊष्मभेद' और 'लिंगभेद' नामक चार विशिष्ट भेद हैं। ऐतिहासिक क्रम से संस्कृत कोशों का निर्देश नीचे किया जा रहा है

शाक्यत का अनेकार्थसमुच्चय नामक नानार्थ कोश है। समय पूर्णतः निश्चित न होने पर भा. ६०० ई० के आसपास के काल में इसकी रचना मानी जाती है। इसी को शाक्यतकोश भी कहते हैं। 'अमरकोश' के संक्षिप्त नानार्थ वर्ग का यह विस्तार जान पड़ता है। ८०० अनुष्टुप् छंदों के इस काश का छह भागों में विभक्त किया गया है। आद्य तीन भागों में क्रमबद्ध रूप से शब्द के अर्थ क्रम से चार चरणों (पूरे श्लोक), दो चरणों (आधे श्लोक), और एक चरण में दिए गए हैं।



चौथे भाग में एक एक चरण में नानार्थबोधक शब्द हैं और पचम तथा षष्ठ विभागों में अव्यय हैं।

महृ हलायुध ( समयलगभग १० वीं शताब्दी ई० ) के कोश का नाम अभिधानरत्नमाला है, पर हलायुधकोश' नाम से यह अधिक प्रसिद्ध है। इसके पाँच कांड ( स्वर, भूमि, पाताल, सामान्य और अनेकार्थ ) हैं। प्रथम चार पर्यायवाची कांड हैं, पचम में अनेकार्थक तथा अव्ययशब्द संगृहीत हैं। इसमें पूर्वकोशकारों के रूप में अमरदत्त, वररुचि, भागुरि और वोपालित के नाम उद्धृत हैं। रूपभेद से लिग-बोधन की प्रक्रिया अपनाई गई है। ६०० श्लोकों के इस ग्रंथ पर अमरकोश का पर्याप्त प्रभाव जान पड़ता है। 'पिगलसूत्र' की टीका के अतिरिक्त 'कविरहस्य' भी इनका रचित है जिसमें 'हलायुध' ने धातुओं के लटलकार के भिन्न भिन्न रूपा का विशदीकरण भी किया है।

यादवप्रकाश ( समय १०५५ से १३३७ के मध्य ) का वैजयन्ती-कोश अत्यंत प्रसिद्ध भी है और महत्वपूर्ण भी। इसकी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। यह बृहदाकार भी है और प्रामाणिक भी माना गया है। इसकी सर्वप्रमुख विशेषता है। नानार्थ भाग की आदिवर्ण-क्रमानुसारी वर्णक्रमयोजना जिसमें आधुनिक कोशों की अकारादि-वर्णनक्रमपद्धति का बीज दृष्टिगोचर होता है। परंतु कठोरता और पूर्णता के साथ इस नियम का पालन नहीं है। केवल प्रथमाक्षर का आधार लिया गया है—द्वितीय, तृतीय आदि अक्षर या ध्वनि का नहीं। इसके दो भाग हैं—( १ ) पर्यायवाची और ( २ ) नानार्थक। दोनों ही भाग—अमरकोश की अपेक्षा अधिक संपन्न हैं। नानार्थभाग के तीन कांडों में द्व्यक्षर, व्यक्षर और शेष शब्दों को सकलित किया गया है। नानार्थभाग के कांडों का अध्यायविभाग—उपप्रकरणों में लिगानुसार ( पुल्लिगाध्याय, स्त्रीलिगाध्याय, नपुंसक-लिगाध्याय, अर्थवलिगाध्याय और नानालिगाध्याय ) हुआ है। अंतिम चार अध्यायों में और भी अनेक विशेषताएँ हैं। अमरकोश की परिभाषाएँ सक्षेपीकृत रूप से गृहीत हैं। इसमें कुछ वैदिक शब्द भी संगृहीत हैं।

हेमचन्द्र—संस्कृत के मध्यकालीन कोशकारों में हेमचन्द्र का नाम विशेष महत्व रखता है। वे महापंडित थे और 'कालिकालसर्वज्ञ' कहे जाते थे। वे कवि थे, काव्यशास्त्र के आचार्य थे, योगशास्त्रमर्मज्ञ थे, जैनधर्म और दर्शन के प्रकांड विद्वान् थे, टीकाकार थे और महान् कोशकार भी थे। वे जहाँ एक ओर नानाशास्त्रपारंगत आचार्य थे वहीं दूसरी ओर नाना भाषाओं के मर्मज्ञ, उनके व्याकरणकार एवं अनेकभाषाकोशकार भी थे ( समय १०८८ से ११७२ ई० )। संस्कृत में अनेक कोशों की रचना के साथ साथ प्राकृत-अपभ्रंश-कोश भी ( देशीनाममाला ) उन्होंने संपादित किया। अभिधानचिंतामणि ( या 'अभिधान-चिंतामणिनाममाला ) इनका प्रसिद्ध पर्यायवाची कोश है। छह कांडों के इस कोश का प्रथम कांड केवल जैन देवों और जैनमतीय या धार्मिक शब्दों से सज्ज है। देव, मर्त्य, भूमि या तिर्यक्, नारक और सामान्य—शेष पाँच कांड हैं। 'लिगानुशासन' पृथक् ग्रंथ ही है। 'अभिधानचिंतामणि' पर उनकी स्वविरचित 'यशोविजय' टीका

है—जिसके अतिरिक्त, व्युत्पत्तिरत्नाकर' ( देवसागरगणि ) और 'सारोद्धार' ( वल्लभगणि ) प्रसिद्ध टीकाएँ हैं। इसमें नाना छंदों में १५४२ श्लोक हैं। दूसरा कोश 'अनेकार्थसंग्रह' ( श्लो० सं० १८२६ ) है जो छह कांडों में है। एकाक्षर, द्व्यक्षर, व्यक्षर आदि के क्रम से कांडयोजना है। अंत में परिशिष्ट कांड अव्ययों से सज्ज है। प्रत्येक कांड में दो प्रकार की शब्दक्रमयोजनाएँ हैं—( १ ) प्रथमाक्षरानुसारी और ( २ ) 'अतिमाक्षरानुसारी'। 'देशीनाममाला' प्राकृत का ( और अंशतः अपभ्रंश का भी ) शब्दकोश है जिसका आधार 'पाड्यलच्छी नाममाला है।'

महेश्वर ( ११११ ई० ) के दो कोश ( १ ) विश्वप्रकाश और ( २ ) शब्दभेदप्रकाश हैं। प्रथम नानार्थकोश है। जिसकी शब्दक्रम-योजना अमरकोश के समान 'अत्याक्षरानुसारी' है। इसके अध्यायों में एकाक्षर से लेकर 'सप्ताक्षर' तक के शब्दों का क्रमिक संग्रह है। तदनसार 'कंकक' आदि अध्याय भी हैं। अंत में अव्यय भी संगृहीत हैं। 'स्त्री', 'पुं' आदि शब्दों के द्वारा नहीं अपितु शब्दों की पुनरुक्ति द्वारा लिगनिर्देश किया गया है। इसमें अनेक पूर्ववर्ती कोशकारों के नाम—भागीन्द्र, कात्यायन, साहसाक, वाचस्पति, व्याडि, विश्वरूप, अमर, मंगल, शृमांग, शुमाक गोपालित ( वोपालिन ) और भागुरि—निर्दिष्ट हैं। इस कोश की प्रसिद्धि, अत्यंत शोभ हो गई थी क्योंकि 'सर्वानंद' और 'हेमचन्द्र' ने इनका उल्लेख किया है। इसे 'विश्वकोश' भी अधिकत कहा जाता है। शब्दभेदप्रकाशिका घस्तुत विश्वप्रकाश का परिशिष्ट है जिसमें शब्दभेद, वकारभेद, लिगभेद आदि हैं।

मंख पंडित ( १२ वीं शती ई० ) का अनेकार्थ—१००७ श्लोकों का है और अमरकोश एवं विश्वरूपकोश के अनुकरण पर बना है। 'भागुरि', 'अमर', 'हलायुध', 'शाश्वत' और 'धन्वन्तरि' के आधारग्रहण का उसमें संकेत है। शब्दक्रमयोजना अत्याक्षरानुसारी है।

अजयपाल ( लगभग १२वीं-१३वीं शती के बीच ) के नानार्थसंग्रह नामक कोश में १७३० श्लोक हैं। इसे देखने से जान पड़ता है कि शाश्वतकोश या अनेकार्थसमुच्चय के आधार पर इसकी रचना की गई है। उन्हीं का अनुकरण भी इसमें आभासता है। प्रत्येक अध्याय के अंत में अव्यय शब्द हैं। धनंजय ( ई० १२ वीं शताब्दी उत्तरार्ध के आसपास अनुमानित ) की नाममात्रा नामक कोशकृति है। यह लघुकोश है। नाममाला नाम के अनेक कोशग्रंथ मिलते हैं। इसमें केवल २०० श्लोक हैं। कुछ पांडुलिपियों में नानार्थ शब्द नहीं हैं पर एक में तत्सवद्ध ५० श्लोक हैं।

पुरुषोत्तमदेव ( समय ११५६ ई० के पूर्व )—संस्कृत में पाँच कोशों के निर्माता माने गए हैं—( १ ) त्रिकांडकोश, ( २ ) हारावली, ( ३ ) वर्णदेशना, ( ४ ) एकाक्षरकोश और ( ५ ) द्विरूपकोश। 'अमरकोश' के टीकाकार 'सर्वानंद' ने अपनी टीका में इनके चार कोशों के वचन उद्धृत किए हैं जिससे इनका महत्वपूर्ण कोशकर्तृत्व प्रकट है। ये बौद्ध वैयाकरण थे। 'भाषावृत्ति' इनकी प्रसिद्ध रचना है। इन्होंने 'वाचस्पति' के 'शब्दार्णव', 'व्याडि' की 'उपलिनी' 'विक्रमादित्य' के 'ससारावर्त' को अपना आधार घोषित किया है। 'आफेक्त' ग्रंथसूची में नौ अन्य ( व्याकरण और कोश के ) ग्रंथों का

पुरुषोत्तमदेव के नाम से संकेत मिलता है। इनका 'त्रिकाडकोश'—नाम से ही 'अमरकोश' का परिशिष्ट प्रतीत होता है। फलतः वहाँ अप्राप्त शब्दों का इसमें सकलन है। ('अमरकोश' से पूर्व का भी एक 'त्रिकाडकोश' बताया जाता है। पर उससे इसका संबंध नहीं जान पड़ता।) इसमें अनेक छंद हैं और इसकी टीका भी हुई है। हारावली में पर्याय शब्दों और नानार्थ शब्दों के दो विभाग हैं। श्लोकसंख्या २७० है। पर्यायवाची विभाग का तीन अध्यायों—(१) एकश्लोकात्मक (२) अर्धश्लोकात्मक तथा (३) पादात्मक—में उपविभाजन हुआ है। नानार्थ विभाग में भी—(१) अर्धश्लोक, (२) पादश्लोक और एक शब्द में अर्थ दिए गए हैं। इसमें प्रायः विरलप्रयोग और अप्रसिद्ध शब्द हैं जबकि त्रिकाडकोश में प्रसिद्ध शब्द, ग्रंथकार की उक्ति के अनुसार १२ वर्षों में बड़े अमर के साथ इसकी रचना की गई है। (१२ मास भी एक पाठ के अनुसार)। वरुणदेशना अपने ढंग का एक विचित्र और गद्यात्मक कोश है। देशभेद, रूढिभेद और भाषाभेद से ख, झ या ह, ड अथवा ह, घ में होनेवाली भ्रांति का अनेक ग्रंथों के आधार पर निराकरण ही इसका उद्देश्य जान पड़ता है—'अत्र हि प्रयोगे बहुदशवाना श्रुतिसाधारण्यमात्रेण गृह्यता खुरक्षुरप्रादौ खकारक्षकारयो सिद्धिगिधानकादौ हकारषकारयो . . . तथ गौडालिलिपि साधारण्याद् हिण्डीरगुडाकेशादौ हकार-डकारयो भ्रातय उपजायन्ते। अतस्तद्विवेचनाय क्वचिद्धातुपरायणे धातुवृत्ति-पूजादिषु प्रव्यक्तलेखनेन प्रसिद्धादेशेन धातुप्रत्ययोणादिव्याख्यालेखनेन क्वचिदाप्तवस्त्रेण श्लेषादिदर्शनेन वरादेशनेयमारभ्यते। ( इडिया प्राफिस केटेलग, पृ० २६५ )। 'महाक्षपणक', 'महीधर' और 'वररुचि' के बनाए 'एकाक्षर' कोशों के समान 'पुरुषोत्तमदेव' ने भी एकाक्षर कोश बनाया जिसमें एक एक अक्षर के शब्दों के अर्थ वर्णित हैं। द्विरूपकोश भी ७५ श्लोकों का लघुकोश है। नैपथकार 'श्रीहृष' ने भी एक द्विरूपकोश लिखा था।

केशवस्वामी (समय १२ वी या १३वीं शताब्दी) एक का नानार्थसंक्षेप-संक्षेप को अपनी शैली के कारण बड़ा महत्व प्राप्त है। एक एक लिग के एकाक्षर से पक्षर तक के अनेकार्थक शब्दों का क्रमशः छह कांडों में संग्रह है और प्रत्येक कांड के भी क्रमशः स्त्रीलिग, पुल्लिग, नपुंसकलिग, वाच्यलिग तथा नानालिग पाँच पाँच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय की शब्दानुक्रमयोजना में अकारादिवर्णक्रम की सरणि अपनाई गई है। 'अमरकोश' में अनुपलब्ध शब्द ही प्रायः इसमें सकलित हैं। ५८०० श्लोकसंख्यक इस बहुज्ञानार्थकोश में कुछ नैदिक शब्दों का और ३० प्राचीन कोशकारों के नामों का निर्देश है।

मेदिनिकर का समय लगभग १४ वी शताब्दी के आसपास या उससे कुछ पूर्ववर्ती काल माना गया है। एक मत से ११७५ ई० के पूर्व भी इनका समय बताया जाता है। इनके कोश का नाम नानार्थशब्द-कोश है। पर मेदिनिकोष नाम से वह अधिक विख्यात है। इसकी पद्धति और शैली पर 'विश्वकोश' की रचना का पर्याप्त प्रभाव है। उसके अनेक श्लोक भी यहाँ उद्धृत हैं। ग्रंथारम्भ के परिभाषात्मक अंश पर 'अमरकोश' की इतनी गहरी छाप है कि इसमें 'अमरकोश' के श्लोक तक शब्दशः के लिए गए हैं। इसमें कोई खास विशेषता नहीं है।

मेदिनी के अनंतर के लघुकोश न तो बारंबार उद्धृत हुए हैं और न पूर्वकोशों के समान प्रमाणरूप में मान्य हैं। परंतु इनमें कुछ ऐसे प्राचीनतर और प्रामाणिक कोशों का उपयोग हुआ है जो आज उपलब्ध नहीं हैं अथवा और अशुद्ध रूप में अशत उपलब्ध हैं। (१) 'जिनमद्र सूरि' का कोश है अपवर्गनाममाला—जिसका नाम 'पंचवर्गपरिहारनाममाला' भी है। इनका काल संभवतः १२वीं शताब्दी के आस पास है। (२) 'शब्दरत्नप्रदीप'—संभवतः यह कल्याणमल्ल का शब्दरत्नप्रदीप नामक पाँच कांडोंवाला कोश है। (समय लगभग १२६५ ई०)। (३) महीप का शब्दरत्नाकर—कोश है जिसके नानार्थभाव का शीर्षक है—अनेकार्थ या नानार्थतिलक, समय है लगभग १३७४ ई०। (४) पद्मरागदत्त के कोश का नाम 'भूरिक-प्रयोग' है। इसका समय लगभग वही है। इस कोश का पर्यायवाची भाग छोटा है और नानार्थ भाग बड़ा। (५) रामेश्वर शर्मा की शब्दमाला भी ऐसी ही कृति है। (६) १४ वी शताब्दी के विजयनगर के राजा हरिहरगिरि की राजसभा में भास्कर अथवा दद्याधिनारायण थे। उन्होंने नानार्थरत्नमाला बनाया। (७) अभिधानतत्त्व का निर्माण जटाधर ने किया। (८) 'अनेकार्थ' या नानार्थक्रमजरी—'नामागर्वसिंह' का लघु नानार्थकोश है। (९) रूपचंद्र की रूपमजरी—नाममाला का समय १६वीं शती है। (१०) शारदीय नाममाला 'हर्षकीर्ति' कृत है (१६२४ ई०)। (११) शब्दरत्नाकर के कर्ता 'वामनभट्ट वारण' है। (१२) नामसंग्रहमाला की रचना अप्पय दीक्षित ने की है। इनके अतिरिक्त (१३) नामकोश (सहजकीर्ति का (१६२७) और (१४) पंचतत्व प्रकाश (१६४४) सामान्य कोश हैं।

कल्पद्रु कोश केशवकृत है। नानार्थसंक्षेपकार 'केशवस्वामी' से ये भिन्न हैं। यह ग्रंथ संस्कृत का बृहत्तम पर्यायवाची कोश है। इसमें नानार्थ का प्रकरण या विभाग नहीं है। इसमें पर्यायों की संख्या सर्वाधिक है, यथा—पृथ्वी के १६४ तथा अग्नि के ११४ पर्याय इत्यादि। 'मल्लिनाथी' टीका में उद्धृत वचन के आधार पर 'केशव नामक' तृतीय कोशकार भी अनुमानित हैं। तीन स्कंधों के इस कोश की श्लोकसंख्या लगभग चार हजार है। स्कंधों के अंतर्गत अनेक प्रकांड हैं। लिगबोध के लिये अनेक संक्षिप्त संकेत हैं। पर्यायों की स्पष्टता और पूर्णता के लिये अनेक प्रयोग तथा प्रतिक्रियाएँ दी हुई हैं। इसमें काव्य वाचस्पति, भागुरि, अमर, मंगल, साहसिक, महेश और जिनांतिम (संभवतः हेमचंद्र) के नाम उल्लिखित हैं। चतुर्थ श्लोक से नवम श्लोक तक—कोश में विनियुक्त पद्धति का निर्देश किया गया है। रचनाकाल १६६० ई० माना जाता है। केशवस्वामी के नानार्थसंक्षेप कोश से यह भिन्न है।

(१६) शब्दरत्नावली के निर्माता मयूरेश हैं (समय १७वीं शताब्दी)। इनके अतिरिक्त कुछ और भी साधारण परवर्ती कोश हैं। (१७) कोशकल्पतरु—विश्वनाथ; (१८) नानार्थपदीठिका तथा शब्दलिगार्थचक्रिका—सुजन (दोनों ही नानार्थकोश हैं)। इनमें प्रथम में—अत्यव्ययनानुसार क्रम है और द्वितीय में तान कांड हैं जिसमें क्रमशः एक, दो और तीन लिगों के शब्द हैं। (२०) पर्यायपदमजरी और शब्दार्थमजूवा—प्रसिद्ध कोश हैं। (२१) महेश्वर के काश का नाम 'पर्यायरत्नमाला' है—संभवतः पर्यायवाची कोश 'विश्वप्रकाश' के निर्माता



महेश्वर से ये भिन्न हैं। पर्यायशब्दरत्नाकर के कर्ता धनजय भट्टाचार्य हैं। (२३) विश्वमेदिनी—सारस्वत मिश्र का है। (२४) विश्वकवि का विश्वनिघट्ट है। (२५) १७८६ और १८३३ के बीच बनारस में संस्कृत-पर्यायवाची शब्दों की एक 'ग्लासरी' 'एथेनियन' ने अपने एक ब्राह्मण मित्र द्वारा अपने निर्देशन में बनवाई थी। इसमें मूल शब्द सप्तमी विभक्ति के ये और पर्याय—कर्ता कारक (प्रथमा) के। परंतु संभवतः इसमें बहुत सा अश्रु आधारहीनता अथवा दोषपूर्ण विनियोग के कारण सदिग्ध रहा। 'वैयलिक' का संक्षिप्त शब्दकोश भी 'ग्लानास' के अनेक उद्धरणों से युक्त है।

इनके अलावा सेमेद्र का लोकप्रकाश, महीप की अनेकार्थमाला का हरिचरणसेन की पर्यायमुक्तावली, वेणीप्रसाद का पंचतत्त्वप्रकाश, अनेकार्थतिलक, राघव छाडेकर का कोशावतस, 'महाक्षरण' की अनेकार्थ-ध्वनिमजरी आदि साधारण शब्दकोश उपलब्ध हैं। भट्टमल्ल की आख्यातचन्द्रिका ( क्रियाकोश ), हर्ष का लिगानुशासन, अनिरुद्ध का शब्दभेदप्रकाश और शिवदत्त वैद्य का शिवकोश (वैद्यक), गरिष्ठार्थ नाममाला, नक्षत्रकोश आदि विशिष्ट कोश हैं। लौकिक न्याय की सूक्तियों के भी अनेक संग्रह हैं। इनमें भुवनेश की लौकिकन्यायसाहसी के अलावा लौकिक न्यायसंग्रह, लौकिक न्याय मुक्तावली, लौकिकन्यायकोश आदि हैं। दार्शनिक विषयों के भी कोश—जिन्हें हम पारिभाषिक कहते हैं—पाटुलिपि की सूक्तियों में पाए जाते हैं।

### संस्कृत कोशों की टीकाओं का महत्व

संस्कृत में टीका, व्याख्या और भाष्य की प्रणाली विशेष महत्व रखती है। प्रायः सभी प्रकार के ग्रंथों में इन टीकाओं का विशेष महत्व है। इसका कारण यह है कि अनेक टीकाओं में मूल की अपेक्षा अधिक घातें, नूतन व्याख्या तथा खंडन मंडन द्वारा नव्य मतों की भी स्थापना की गई है। कोशग्रंथों के टीकाकारों का कृतित्व भी बड़े महत्व का है। उनमें जहाँ एक ओर नए शब्द, नवीन अर्थ और नई व्याख्याएँ हैं वहीं दूसरी ओर अनेक कोशकारों और कोशग्रंथों के नाम भी मिलते हैं। अनेक तो ऐसे टीकाकार हैं जो स्वयं ग्रंथकार हैं और स्वयंमपि जिन्होंने अपने ग्रंथ की टीकाएँ भी लिखी हैं। अधिकांश ने केवल टीकाएँ बनाई हैं। 'अमरकोश' की टीकाएँ सर्वाधिक और कदाचित् सर्वप्राचीन भी हैं। उनका अनुवादात्मक हिंदी आदि भाषाओं में कोशीकरण भी किया गया है। इन टीकाओं में अनेक पूर्ववर्ती कोशों या कोशकारों के नाम और कभी कभी उद्धरण भी मिलते हैं। अमरकोश के टीकाकार 'क्षीरस्वामी' तथा 'हेमचंद्र' ने 'काव्य' कोश के नानार्थ और पर्यायवाची कोशों का संकेत दिया है। इनसे यह भी लक्षित होता है कि कभी कभी शब्द की अर्थवोधक व्याख्याएँ भी वहाँ थी—यथा—'क्षुद्र-छिद्रसमोपेत चालन तित्त उ पुमान्।' अथवा 'स्कंधादूर्ध्वं तरो शाखा ऋटपो मत।' हेमचंद्र ने ३० कोशकारों या कोशों का उल्लेख किया है। टीका आदि के आधार पर—तारपाल, दुर्ग, धरणीधर धर्ममुनि, रतिदेव, रुद्र, विष्णुरूप, वीरदेव, शुभांग ( शुभाक ), वीरपालित ( गोपालित ), कृष्णकवि ( वैभाषिक शब्दकोश ) आदि नाना नाम मिलते हैं। 'राजस' या 'रभस' के पदर्थकोश का भी उल्लेख है।

इन कोशटीकाओं में शब्दों की व्युत्पत्तियाँ भी हैं। 'अमरकोश'

की 'रामाश्रयी' टीका में प्रत्येक शब्द की पारिभाषिक व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति दी गई है। कभी कभी किसी टीका में त्रुटियाँ और कभी कभी प्रयोग भी बताए गए हैं। सब मिलाकर इन टीकाओं को कोशवाङ्मय का महत्वपूर्ण अंग कहा जा सकता है। वस्तुतः ये कोशों के पूरक अंग हैं। इनमें 'उक्त अनुक्त और दुस्त' विषयों का विचार और विवेचन किया गया है। अतः संस्कृत कोशों के इतिहास में इनका महत्व और योगदान—हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।

### पाली, प्राकृत और अपभ्रंश का कोशवाङ्मय

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं का वाङ्मय भी कोशों से रहित नहीं था। पालि भाषा में अनेक कोश मिलते हैं। इन्हें बौद्धकोश भी कहा गया है। उनकी मुख्य उपयोगिता पालि भाषा के बौद्ध-साहित्य के समझने में थी। उनकी रचना पद्यबद्ध संस्कृतकोशों की अपेक्षा गद्यमय निघट्टों के अधिक समीप है। बहुधा इनका सबंध विशेष ग्रंथों से रहा है। पालि का महाव्युत्पत्ति कोश २८५ अध्यायों में लगभग नौ हजार श्लोकों का परिचय देनेवाला है। बौद्ध संप्रदाय के पारिभाषिक शब्दों का अर्थ देने के साथ साथ पशु पक्षियों, वनस्पतियों और रोगों आदि के पर्यायों का इसमें संग्रह है। इसमें लगभग ६००० शब्द, संकलित हैं। दूसरी ओर मुहावरों, नामघातु के रूपों और वाक्यों के भी संकलन हैं। पाली का दूसरा विशेष महत्व पूर्ण कोश अभिधान प्रदीपिका ( अभिधानपदीपिका ) है। यह संस्कृत के अमरकोश की रचनाशैली की पद्धति पर तथा उसके अनुकरण पर छदोवद्ध रूप में निर्मित है। 'अमरकोश' के अनेक श्लोकों का भी इसमें पालिरूपांतरण है। इसी प्रकार भिक्षु सद्धर्मकीर्ति के एकाक्षर कोश का भी नामोल्लेख मिलता है।

प्राकृत भाषा में उपलब्ध कोशों का संख्या कम है। जैन भांडागारों से कुछ प्राकृत और अपभ्रंश के कोशों की विद्यमानता का पता चला है। परंतु जब तक उन्हें देखने का अवसर नहीं मिलता, तब तक उनका विवरण देना ठाक नहीं है।

धनपाल ( समय ६७२ ई० से ६९७ ई० के बीच ) विरचित 'पाइअलच्छीनाममाला' कदाचित् प्राकृत का सर्वप्राचीन उपलब्ध कोश है। इनके गद्यकाव्य—'तिलकमजरी'—के उल्लेखानुसार 'मुजराज' ने इन्हें 'सरस्वती' उपाधि दी थी। गाथाछंद में रचित, अध्यायविरहित इस कोश में क्रम से श्लोक, श्लोकार्ध और पद ( चरण ) एवं शब्द में पर्यायवाची शब्द निदिष्ट हैं। 'हेमचंद्र' ने अपने 'देशीनाममाला' में इसकी सहायता लेने का टीका में उल्लेख किया है।

हेमचंद्र रचित देशीनाममाला नाम से प्रसिद्ध प्राकृत का महत्वपूर्ण और विख्यात कोश कहा जाता है। देशी शब्द वस्तुतः प्राकृत का पर्याय नहीं है, उसका सामा में प्राकृत और अपभ्रंश का—जो हेमचंद्र के समय तक उक्त भाषाओं के ग्रंथों में मिलते थे—उन्हीं का—संग्रह है। देशी से सामान्यतः आभास यह होता है कि जो शब्द संस्कृत तत्सम शब्दों से व्युत्पन्न न होकर तत्सत् देश की लौकिक भाषाओं के अव्युत्पन्न शब्द थे उन्हीं को देशी कहा गया है। देशज भी उन्हीं का परिचायक है। परंतु तथ्य यह नहीं है। देशी नाममाला के बहुत से शब्द देशज अवयव हैं। परंतु जिन तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत तत्सम शब्दों

हेमचन्द्र संबंध न कर सके उन्हें अव्युत्पन्न देशज शब्द मान लिया। प्राकृत के व्याकरण नियमों के अनुसार जिनकी तद्भवसिद्धि नहीं दिखाई जा सकी, उन्हीं को यहाँ देशी कहकर सकलित किया गया। परंतु 'देशीनाममाला' में ऐसे शब्दों की संख्या बहुत बड़ी है जो संस्कृत के तद्भव व्युत्पन्न शब्द हैं। चूंकि प्राकृत व्याकरणानुसार हेमचन्द्र उनका संवध, मूल संस्कृत शब्दों से जोड़ने में असमर्थ रहे, अतः उन्हें देशी कह दिया। फलतः हम कह सकते हैं कि देशी शब्द का यहाँ इतना ही अर्थ है कि उन शब्दों की व्युत्पत्ति का संवध जोड़ने में हेमचन्द्र का व्याकरणज्ञान असमर्थ रहा।

इनके अतिरिक्त दो देशी कोशों का भी—एक सूत्ररूप में और दूसरा गोपाल कृत छंदोवद्ध—उल्लेख मिलते हैं। द्रोणकृत एक देशी कोश का नाम भी मिलता है। इसी तरह शिलाग का भी कोई देशी कोश रहा होगा। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला में अपना मतभेद और विरोध—उक्त कोशकार के मत के साथ—प्रकट किया। हेमचन्द्र के प्राकृत शब्दसमूह में उपलब्ध अनेक तत्पूर्ववर्ती देशी शब्दकोशकारों का उल्लेख मिलता है। हेमचन्द्र ने ही जिन कोशकारों को सर्वाधिक महत्व दिया है उनमें राहुलक की रचना और पादलिप्ताचार्य का 'देशीकोश' बड़ा जाता है। 'जिनरत्नकोश' में भी अनेक मध्यकालीन कोशग्रंथों के नाम मिलते हैं। अभिधानचिंतामणिमाला संभवतः वही ग्रंथ है जिसे हेमचन्द्र विरचित अभिधानचिंतामणि कहा गया और यह संस्कृत कोश है।

विजयरज्जं सूरि ( १९१३-१९२५ ई० ) द्वारा संपादित, सकलित और निमित्त—अभिधानराजेंद्र—भी प्राकृत का एक बृहद् शब्दकोश है। परंतु तत्पश्चात् जैनों के मत, धर्म और साहित्य का आधुनिक प्रणाली में रचित—सात जिल्दों में ग्रथित—महाकोश है। पृष्ठ संख्या भी इसकी लगभग दस हजार है। यह वस्तुतः विश्वकोशात्मक ज्ञानकोश की मिश्रित शैली का आधुनिक कोश है।

## निष्कर्ष

( १ ) जहाँ तक संस्कृत कोशों का संवध है। शब्दप्रकृति के अनुसार उसके तीन प्रकार बड़े जा सकते हैं—( १ ) शब्दकोश, ( २ ) लौकिक शब्दकोश और ( १ ) उभयात्मक शब्दकोश।

( २ ) वैदिक निघंटुओं की शब्द-संग्रह-पद्धति क्या थी इसका ठीक ठीक निर्धारण नहीं होता, पर उपलब्ध निघंटु के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि उसमें नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चारों प्रकार के शब्दों का संग्रह रहा होगा। परंतु उनका संवध मुख्य और विरल शब्दों से रहता था और कदाचित् वेदविशेष या संहिताविशेष से भी प्रायः वे संवध थे। वे संभवतः गद्यात्मक थे।

( ३ ) लौकिक संस्कृत की कोशपरंपरा में 'अमरपूर्व' कोशकारों की दो पद्धतियाँ थी, एक 'नामतत्र' और दूसरा 'लिगतत्र'। इस द्वितीय विधा के कोशों में संस्कृत शब्दों के प्रयोगों में स्वीकार्य लिगों का निर्देश होता था। एकलिग, द्विलिग, त्रिलिग शब्दों के विभाग के अतिरिक्त अर्थवत्लिग और नानालिग के प्रकरण भी इनमें हुआ करते थे। ये कोश अनुमान के अनुसार गद्यात्मक थे।

( ४ ) नामतत्वात्मक कोशों की भी दो विधाएँ होती थीं—एक समानार्थक शब्दसूचीकोश ( जिसे आज पर्यायवाची कोश कहते हैं ) और दूसरा अनेकायायनार्थकोश।

( ५ ) 'अमरसिंह' के कोशग्रंथ में 'नामतत्र' और 'लिगतत्र' दोनों का समन्वय होने के बाद जहाँ एक ओर काश उभयनिर्देशक होने लगे वहाँ कुछ कोश 'अमरकोश' के अनुकरण पर ऐसे भी बने जिनमें समानार्थक पर्यायों और अनेकार्थक शब्दों—दोनों विधाओं की अवतारणा एकत्र की गई। फिर भी कुछ कोश ( अभिधानचिंतामणि और कल्पद्रुम आदि ) केवल पर्यायवाची भी बने, और कुछ कोश—विश्वप्रकाश, मेदिनी, नानार्थार्णवसंक्षेप—आदि नानार्थकोश ही हैं। 'वर्णदेशना' सट्टा कोशों को छोड़कर संस्कृत कोश प्रायः पद्यात्मक हैं। इनमें मुख्य छंद अनुष्टुप् है। कभी कभी बृहच्छंदवाले कोश भी बने।

( ६ ) 'अमरकोश' की पद्धति पर कुछ कोशों में शब्दों का वर्गीकरण स्वर्ग, द्यौ, दिक्, काल आदि विषयसंबद्ध पदार्थों के आधार पर कांडो, वर्गों, अध्यायों आदि में हुआ और आगे चलकर कुछ में वर्णानुक्रम शब्दयोजना का भी आधार लिया गया। इनमें कभी कभी सप्रमाण शब्दसंकलन भी हुआ।

( ७ ) अनेकार्थकोशों में विशेष रूप से वर्णक्रमानुसारी शब्द-संकलन पद्धति स्वीकृत हुई। उसमें भी अत्याक्षर ( अर्थात् अतिम स्वरात् व्यंजन ) के आधार पर शब्दसंकलन का क्रम अपनाया गया और थोड़े बृहत् कोशों में आदिवर्णानुसारी शब्द-क्रम-योजना भी अपनाई गई। अत्यवर्णानुसारी कोशों की उक्त योजना का आधार कही कही निदिष्ट वर्ण या उच्चारणस्थान होता था। इनमें कभी कभी अक्षर संख्यानुसार भी एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर आदि के क्रम से शब्दवर्गों का विभाजन भी किया गया है।

( ८ ) इन विशेषताओं के अतिरिक्त एकाक्षरकोशमाला और द्विरूपकोश नामक शब्दकोशों की दो विधाओं का उल्लेख मिला है। एकार्थनाममाला, 'द्व्यर्थनाममाला' आदि ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं तथापि कोशकार 'सौहरि' के नाम से निर्मित वे कोश कहे गए हैं। 'राक्षस' कवि का 'पठ्यनिर्णयकोश' भी उल्लिखित है। 'पद्ममुखकोश'-वृत्ति भी संभवतः ऐसा ही टीकाग्रंथ था। 'वर्णदेशना' गद्यात्मक कोश है। वैकल्पिक रूपों का भी एकाध कोशों में निर्देश किया गया है।

( ९ ) कुछ कोशटीकाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृतकोश के युग में बड़े कोशों के संक्षेपीकरण द्वारा व्यवहारोपयोगी लघु रूप के निर्माण की पद्धति भी प्रचलित थी। संस्कृत के व्याकरणों में भी 'वृहत्' और 'लघु' संस्करणों के संपादन की प्रवृत्ति मिलती है जैसे—'लघुशब्ददुशेखर' 'वृहच्छब्ददुशेखर' 'वालमनोरमा' 'प्रोढमनोरमा' तथा 'लघु-सिद्धांत-कौमुदी'। 'रायमुकुट' कृत अमरकोश टीका में 'वृहत्अमरकोश', सर्वदानंद द्वारा 'बृहानंद अमरकोश' और 'भानुदीक्षित' द्वारा 'वृहत् हारावली' के नाम उल्लिखित हैं। ऐसा मालूम होता है कि इन्हीं ग्रंथों के संक्षिप्त संस्करण के रूप में 'हारावली' और 'अमरकोश' आदि निर्मित हुए हैं।

( १० ) आनुपूर्वमूलक वैकल्पिक शब्दों के सकल भौत कही

कही मिल जाते हैं। 'शब्दार्णवसंक्षेप' में पर्यायों की प्रवृत्तिमूलक सूक्ष्म अर्थच्छाया की भेदपरक व्याख्या भी मिलती है। 'कल्पद्रुमकोश' में लिखित ८००० रामावतारशर्मा के कथन से यह भी पता लगता है कि अतिप्राचीन 'व्याडि' के कोश में कभी कभी अर्थनिर्देशन के लिये व्युत्पत्तिपरक सूचना भी दी जाती रही है।

( ११ ) पाली, प्राकृत और अपभ्रंश कोशों में कुछ नवीनता लक्षित नहीं होती। इतना अवश्य है कि पाली कोशों में बौद्धमत के पारिभाषिक शब्दों का काफी परिचय मिल जाता है और पाली के बहुत से शब्दों का अर्थज्ञान भी हो जाता है। 'पाली' का महाव्युत्पत्त्यात्मक कोश गद्यरमक है।

( १२ ) प्राकृत कोशों में अधिकतः देशी शब्दकोश, और देशी नाममालाएँ हैं। इनमें अव्युत्पन्न माने गए देशी शब्दों का सकलन है। कुछ में जैन प्राकृत ग्रंथों के सर्पक से जैन मत के पारिभाषिक शब्दों का आशिक परिचय मिल जाता है। 'पद्मलक्ष्मीनाममाला' नामक ग्रंथ में संभवतः सामान्य प्राकृत नामपदों का अत्यंत लघु शब्द संग्रह रखा होगा।

( १३ ) अपभ्रंश के कोश संभवतः पृथक् उपलब्ध नहीं हैं। प्राकृत के देशी शब्दकोशों अथवा देशी नाममालाओं में ही उनका अंतर्भाव सम्भूत चाहिए।

## मध्यकालीन हिंदी कोश

मध्यकाल में विरचित हिंदी कोशों का उल्लेख मिलता है और उनका स्वरूप सामने आता है। हिंदी ग्रंथों के खोजविवरणों में पचासो कोश ग्रंथों के नाम मिलते हैं। इनके अतिरिक्त पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ में श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी ने १४-१५ ऐसे कोशों के नाम दिए हैं जो खोजविवरणों में नहीं मिल पाए हैं। इससे ऐसा लगता है कि हिंदी साहित्य के मध्यकाल में और उसके बाद भी छोटे बड़े संकटों कोश बने थे। उनमें अनेक संभवतः लुप्त हो गए। जिनके नाम ज्ञात हैं उनमें भी अनेक लुप्त या नष्ट होते जा रहे हैं। हिंदी ग्रंथों की खोज करनेवालों को जो कोश उपलब्ध हुए हैं उनमें कतिपय प्रसिद्ध कोशों का संक्षिप्त परिचय दिया जा सकता है।

ऐसा जान पड़ता है, इनपर संस्कृत के कोशों से सकलित विषय और उनकी पद्धति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। अधिकांश कोशों ने मुख्य आधार के रूप में 'अमरकोश' का सहारा लिया। उसकी उपजीव्यता का उन्होंने उल्लेख भी किया है। कभी कभी ( जैसे उमराव कोश में ) अमरकोश का नाम भी उल्लिखित है। पर कुछ कोशकारों ने ( यथा कर्णाभरण के लेखक हरिचरण दास ) मेदिनी हेमकोश आदि से भी सहायता ली है।

मध्यकालीन कोश-रचना-पद्धति की भूलक अग्नेनिर्दिष्ट कुछ प्रसिद्ध कोशों के नाम देखने से मिल जाती है। 'नाममाला' और 'अनेकार्यमंजरी' 'नददास' के दो कोश मिलते हैं। पद्यनिर्मित इन कृतियों के नाममात्र से इनके स्वरूप का बोध हो जाता है। 'गरीबदास' का 'अनगप्रबोध' १६१५ ई० की रचना कही जाती है। 'रत्नजीत' ( १७१३ ई० ) के दो शब्द कोश (क) भाषाशब्दसिंधु और (ख) भाषाधातुमाला—बताए

गए हैं। इनके नाम भी स्वरूपपरिचायक हैं। 'मिर्जा खाँ' का 'तुहफतुल-हिन्द (तुहफतुल हिंद) 'खुसरो' की 'खालिक्वारी'—अत्यंत प्रसिद्ध कोश हैं। एक 'डिगल कोश' भी बहुत पहले बन चुका है। इनके अतिरिक्त भी अनेक कोश बने। 'नददास' के नाम से 'नामचिंतामणि' नामक भी एक कोश कहा गया है। 'अमरकोश' के भी संभवतः अनेक पद्यानुवाद हुए हैं।

इन ग्रंथों के परिदर्शन से ज्ञात होता है कि जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'अमरकोश' के तथा कभी कभी अन्य कोशों के आधार पर हिंदी के मध्यकालीन पद्यात्मक कोश बने जो पर्यायवाची, समानार्थी या अनेकार्थक कोश थे। धातुसंग्रह का भी एक कोश—उपर्युक्त धातुमाला—अंतिम वर्णक्रमानुसारी संकलन है। 'मिर्जा खाँ' का कौश अनेक दृष्टियों से नूतन पद्धतियों का निदर्शन उपस्थित करता है। अपने ढंग का यह प्रथम प्रयास कहा गया है। जियाउद्दीन और सुनीतबुमार चाटुर्ज्या ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है। मध्यकालीन हिंदी भाषा के कोशों में शब्दों के क्रमसंयोजन में नूतन और भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि का इसमें परिचय दिया गया है, साथ ही साथ शब्दों की विस्तृत व्याख्या भी दी गई है। इसके अतिरिक्त उच्चारण में—लिखित रूप की अपेक्षा धोलचाल के स्वरूप का अधिक ध्यान रखा गया है। 'गरीबदास' का कोश सत साहित्य के अनेक पारिभाषिक शब्दों का अधकोश है। हिंदी में 'खुसरो' का कोश भी यद्यपि विशाल नहीं है तथापि द्विभाषी कोश की प्राचीनरूपता के कारण महत्व रखता है। इसी तरह 'लल्लूखल' का परवर्ती ( १८६७ ई० ) अंग्रेजी हिंदी-फारसी कोश भी उल्लेखनीय है। 'एकाक्षरी कोश', 'ओपधिवरदानामाला' आदि अनेक प्रकार के शब्द संग्रहात्मक कोशों का भी निर्माण हुआ है।

हिंदी के मध्यकालीन कोशों में प्राचीन वर्णानुसारी विभाजन के अतिरिक्त केवल शीर्षकानुसारी विभाजन भी मिलता है, जैसे—'अथ गो शब्द', 'अथ सद्गुण शब्द' इत्यादि। 'मुरारिदान' के डिगल कोश के अंतर्गत वर्णपद्धति के साथ साथ अन्य शीर्षक भी दिए गए हैं। उक्त कोश में शीर्षकों के रूप हैं—( १ ) अथ वनस्पतिकायमाह, ( २ ) देहा, ( ३ ) वननाम इत्यादि। इसकी एक अन्य विशेषता भी है—इंद्रियों के अनुसार उपशीर्षक जैसे—'अथ द्वाद्वियानाह, त्रीद्वियानाह, चतुर्द्वियानाह पंचेद्वियानाह।' पुनश्च 'जलचरान् पंचेद्वियानाह'—इत्यादि। 'वायुकायमाह' कहकर वायु से संबद्ध नाना पदार्थों का संकलन है। कहीं कहीं पीडा, 'पाताल' आदि उपशीर्षक के अंतर्गत भी उन शब्दों का संग्रह है जो अन्यत्र समाविष्ट नहीं किए जा सके। कहीं कहीं ऐसा भी है कि पर्यायों और जातिभेदों के लिये दूसरी पद्धति अपनाई गई है, जैसे, 'बिख' के अंतर्गत तो वृक्षों के पर्याय दिए गए हैं और 'सुरबिख' नाम के अंतर्गत वृक्षों के प्रकार गिनाए गए हैं—'सुरतर गोरक, सिसया, देवदार, मदार' इत्यादि। इसी क्रम में वे नाम भी हैं जिनमें चौबीस अवतार, अष्टसिद्धि, नवनिधि, सत्ताईस नक्षत्र छत्तीस शस्त्रों आदि के नाम दिए गए हैं।

हिंदी के मध्यकालीन कोशग्रंथों में शब्दसंकलन का कार्य मुख्यतः संस्कृत के अन्य कुछ प्रसिद्ध कोशों के आधार पर हुआ है। इसके अतिरिक्त 'भखारीदास' आदि के साहित्यिक भाषाग्रंथों से भी शब्द संकलित हुए हैं। 'खुसरो' और उनसे प्रभावित कोशों के समय से ही

जनजीवन या बोलचाल के शब्दों को भी संगृहीत करने की चेष्टा मिलती है। संस्कृत कोशों की पद्धति भी—जिसके अनुसार 'घनसार-श्चन्द्रसव' कहकर चंद्र की सभी सजाओ को कपूर का पर्याय भी संकेतित कर दिया गया है—'उमराव' कोश आदि से मिलती है। परंतु 'अमरकोश' आदि के समान हिंदी कोशों में लिगनिर्देश की व्यवस्था नहीं हो पाई। शिवसिंह कायस्थ के भापा 'अमरकोश' (अमरकोश की टीका) में स्पष्ट ही उसे बिना प्रयोजन समझकर छोड़ देने का निर्देश किया गया है। कभी कभी अवश्य एकाध कोश में यह कह दिया गया है कि दीर्घ रूप स्त्रीलिंग है और ह्रस्व पुल्लिंग। अव्ययों का समावेश भी प्रायः नहीं के बराबर उपलब्ध है यद्यपि अनेक कोशों में संस्कृत के परिनिष्ठित पदरूपों को उत्तम भाव में भी कभी कभी निर्दिष्ट किया गया है तथापि संस्कृत अव्ययों के सकलन में यह प्रक्रिया छोड़ दी गई है। जहाँ तक ध्वनियों में विकसित परिवर्तन की निर्दिष्ट करने का प्रश्न है—'तुहफतुलहिद' आदि कोशों को छोड़कर अन्यत्र इसका अभाव है। 'भिखारीदास' ने अवश्य ही एक स्थल पर य, ज, री, रि, श, प, स, और ज आदि का समस्यात्मक उल्लेख मात्र कर दिया है। पर्याय शब्द और नानार्थ के विभिन्न अर्थों की गणना भी कुछ कोशकारों ने या तो अतः में पर्याय-सहाय-सूचना से अथवा प्रत्येक पर्याय के साथ अक देकर की है।

मक्षेप में कह सकते हैं कि (१)—मध्यकालीन हिंदीकोश अधिकतम पद्य में ही बने जो संस्कृत कोशों से—मुख्यतः 'अमरकोश' से—या तो प्रभावित अथवा अनुचित हैं। अधिकतम ये पर्यायवाची कोश हैं। कुछ अनेकार्थक कोश भी हैं तथा दो एक 'एकाक्षरीकोश' भी मिल जाते हैं। कुछ 'निघट्ट' ग्रंथ भी—जो वैद्यक से संबंधित थे,—संस्कृत से प्रभावित होकर बने। (२)—इन कोशों में नामसंग्रह अधिक है। कभी कभी धातुकोश भी मिल जाते हैं। (गुढ़ार्थ कोश भी बना था।) इसी कारण अधिकतम 'नाममाल', 'नाममजरी', 'नामप्रकाश', 'नामचिंतामणि', आदि कोशपरक नामों का अधिक प्रयोग हुआ है। (३)—'आतमबोध' या 'प्रत्यक्षप्रबोध' आदि में पारिभाषिक-शब्दकोश-पद्धति भी मिलती है। (४)—शब्दक्रम में अधिकतम अत्यंत वर्ण आधार बने हैं। शब्दविभाजन या तो वर्गानुसारी है या शीर्षकानुसारी। 'तुहफतुलहिद' में अवश्य ही वर्णवर्गों का विभाजनक्रम मिलता है। कुछ कोशों में उच्चारण और वर्णानुपूर्वी का सामान्य निर्देश भी दिखाई पड़ता है। (५)—डिगल के कुछ कोशों में नामपदों के साथ क्रियाओं का सकलन भी दिखाई देता है। (६)—कभी कभी पर्यायगणना भी है और परिभाषाएँ भी।

लिगव्यवस्था आदि अनावश्यक समझे जानेवाले तत्वों का त्याग करने के अतिरिक्त कोश-विद्या-संवर्धनी कोई ऐसी नवीन बात—जो कोश-विज्ञान के विकास में विशिष्ट महत्व रखती हो—इन कोशों में आविर्भूत नहीं हुई। उच्चारण आदि के संबंध में कभी कभी कोशकार की पनी दृष्टि अवश्य आकृष्ट हुई। दूसरी और भाषा में प्रयुक्त होनेवाले और महत्वपूर्ण साहित्यकारों के विशिष्ट साहित्यग्रंथों में प्रयोगागत तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों के सकलन का प्रयास उतना नहीं हुआ जितना होना आवश्यक था।

मध्यकालीन हिंदी कोशकार अपने सामने उपलब्ध संस्कृत कोशों के आधार पर हिंदी कोश का कदाचित् निर्माण कर देना चाहते थे। इसका एक ओर भी अत्यंत महत्वपूर्ण एवं सभावित कारण कहा जा सकता है। कोश का सर्वप्रमुख प्रयोजन होता है वाङ्मय के ग्रंथों का पाठको को अर्थबोध कराना। परंतु संस्कृत कोशों और तदाधारित हिंदी कोशों के निर्माताओं की मुख्य दृष्टि थी ऐसे कोशों के संपादन पर जो विशेषतः कवियों और सामान्यतः अन्य प्रणकारों के प्रयोगार्थ पर्यायवाची शब्दभांडार को सुलभ बना दें। निघंटुभाष्य अर्थात् निरुक्त में वेदार्थ-व्याख्या पर ही सर्वाधिक ध्यान दिया गया है।

संस्कृत साहित्य के रचनात्मक ग्रंथों के टीकाकारों ने अर्थ बोधन के लिये ही कोश वचनों के उद्धरण दिए हैं। फिर भी संस्कृत के अधिकांश कोशकारों की दृष्टि में कविता के निर्माण में सहायता पहुँचाना—पर्यायवाची कोशों का कदाचित् एक अति महत्वपूर्ण लक्ष्य था। इसी प्रकार श्लेष, रूपक आदि अलंकारों में उपयुक्त शब्दनियोजन के लिये शब्दों को सुलभ बनाना अनेक नानार्थ शब्द-संग्रहों का मुख्य कोशकर्म था। हिंदी के कोशकारों ने भी संभवतः इस प्रेरणा को अपना प्रियतर उद्देश्य समझा। इसी कारण गतानुगतिक और संस्कृतागत शब्द-कोश की निधि को असंस्कृत शब्दों के लिये सुलभ करने की इतिवर्तव्यता हिंदी कोशों में भी हुई। थोड़े से कोशकारों ने आरंभ में पर्याय या अनेकार्थ शब्दों में नए शब्द जोड़े। पर उससे बहुत आगे बढ़ने का स्वतंत्र प्रयास कम हुआ। फिर भी कुछ कोशकारों ने तद्भव आदि शब्दों की थोड़ी बहुत वृद्धि करने का प्रयास किया। कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि मध्यकालीन हिंदी शब्दकोशों में कोशविद्या के किसी भी तत्व की प्रगति नहीं हो पाई। संस्कृत कोशों की प्रामाणिक प्रौढता में उसी प्रकार कुछ ह्रास ही हुआ जैसे, रीतिवालीन साहित्यशास्त्र के हिंदी-लक्षण-ग्रंथों में संस्कृत के तद्विषयक विशिष्टग्रंथों की प्रौढता का। व्युत्पत्ति का पक्ष हिंदी के मध्यकालीन कोशों में पूर्णतः परित्यक्त था। संस्कृत कोशों में भी यह पक्ष उपेक्षित ही रहा पर कोश के अनेक टीकाकारों ने व्युत्पत्ति पर ध्यान दिया। 'अमरकोश' की 'व्याख्यासुधा' या 'रामाश्रमी' टीका (भानुजी दीक्षितकृत) में 'अमरकोश' के प्रत्येक नामपद की व्युत्पत्ति दी गई है। हिंदी के मध्यकालीन कोशों की न तो वैसी टीकाएँ लिखी गईं और न तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति का अनुशीलन ही हुआ। अतः कोशविद्या के वैकासिक कौशल की दृष्टि में कोई प्रगति नहीं मिलती।

## संस्कृत के आधुनिक महाकोश

भारत में आधुनिक पद्धति पर बने संस्कृत कोशों को दो वर्गों में रखा जा सकता है। इनमें एक विद्या वह थी जिसमें अंग्रेजी अथवा जर्मन आदि भाषाओं के माध्यम से संस्कृत के कोश बने। इस पद्धति के प्रवर्तक अथवा आदि निर्माता पाश्चात्य विद्वान् थे। कोशविद्या की नूतन दृष्टि से संपन्न नवकोश की रचनाशीली के अनुसार ये कोश बने। इनकी चर्चा आगे की जायगी। दूसरी और नवीन पद्धति के अनुसार नूतन प्रेरणाओं को लेकर संस्कृत में ऐसे कोश बने जिनका माध्यम भी

संस्कृत ही था। इस प्रकार के कोशों में विशेष रूप में दो उल्लेखनीय हैं (१) 'शब्दकल्पद्रुम' और (२) 'वाचस्पत्यम्'।

प्रथम कोश—स्यार राजा 'राधाकांतदेव बाहादुर' द्वारा निर्मित "शब्दकल्पद्रुम" है। इसका प्रकाशन १८२८—१८५८ ई० में हुआ। इसमें पाणिनिव्याकरण के अनुसार प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है, शब्दप्रयोग के उदाहरण उद्धृत हैं तथा शब्दार्थसूचक कोश या इतर प्रमाणों के समर्थन द्वारा अर्थनिर्देश किया गया है। पर्याय भी दिए गए हैं। धातुओं से व्युत्पन्न क्रियापदों के उदाहरण भी दिए गए हैं। पदोदाहरण आदि भी हैं। कुछ थोड़े अतिप्रचलित वैदिक शब्दों के अतिरिक्त शेष नहीं हैं। शब्दों की विस्तृत व्याख्या में दर्शन, पुराण, वैद्यक, धर्मशास्त्र आदि नाना प्रकारों के लंबे लंबे उद्धरण भी दिए गए हैं। तब मन्त्र, शास्त्र, स्तोत्र आदि से उद्धृत करते हुए अनेक संपूर्ण स्तंभ, तांत्रिक मन्त्र आदि के भी विस्तृत अर्थ उद्धरित हैं। ज्योतिषशास्त्र और भारतीय विद्याओं के पारिभाषिक शब्दों का भी अतिरिक्त शेष नहीं है। ज्योतिषशास्त्र और भारतीय विद्याओं के सहयोग से संप्रमाण विवरण दिया गया है। इस कोश की रचनापरिपाटी के विषय में भी विस्तृत वक्तव्य दिया गया है। उन कोशों की सूची भी दी गई है जो उपलब्ध थे और जिनसे शब्दमग्न किया गया है। साथ ही विभिन्न कोशों में उल्लिखित पर अनुपलब्ध कोशों अथवा कोशकारों के नाम भी भूमिका में दिए गए हैं। लेखक स्वयंमपि संस्कृत वंदुष्य के अतिरिक्त बंगला, हिंदी, अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं का अच्छा ज्ञानकार था।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस कोश में—जो सात खंडों में विभक्त है—यथासंभव समस्त उपलब्ध संस्कृत साहित्य के वाङ्मय का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अतः परिशिष्ट भी दिया गया है जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय-कोश रचना के विकासक्रम में इसे विशिष्ट कोश कहा जा सकता है। यह पूर्णतः संस्कृत का एकमात्र कोश है। परवर्ती संस्कृत कोशों पर ही नहीं, भारतीय भाषा के सभी कोशों पर इसका प्रभाव—व्यापक रूप से—पड़ता रहा है।

यह कोश विशुद्ध शब्दकोश नहीं है, वरन् अनेक प्रकार के कोशों का—शब्दार्थकोश, पर्यायकोश, ज्ञानकोश और विश्वकोश का—समिश्रित महाकोश है। इनमें बहुविध उद्धरण, उदाहरण, प्रमाण, व्याख्या और विधिविधानों एवं पद्धतियों का परिचय दिया गया है। इसमें गृहीत शब्द 'पद' हैं, सुव्रततिष्ठतः, प्रातिपदिक या धातु नहीं।

सुखानन्दनाथ ने भी चार जिल्दों में एक बृहदाकार संस्कृतकोश अंगरा और उदयपुर से ( ई० १८७३-८३ में ) प्रकाशित किया जिसपर 'शब्दकल्पद्रुम' का पर्याप्त प्रभाव है।

इस प्रकृति का दूसरा शब्दकोश 'वाचस्पत्यम्' है, जिसका निर्माण अनेक वर्षों में संपन्न हुआ। पूर्व कोश की अपेक्षा संस्कृत कोश का यह एक बृहत्तर संस्करण है। इसके सकलविषयों में तर्कवाचस्पति तारानाथ भट्टाचार्य, जो बंगाल के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में प्रोफेसर थे।

एच उडरो ने अपनी 'वाचनिका' में इस कोश की विशेषता बताते हुए कहा है कि "विल्सन" की 'संस्कृत डिक्शनरी' और 'शब्दकल्पद्रुम' की अपेक्षा इसका क्षेत्र विस्तृत और गंभीरतर है। साथ ही तब, दर्शन-शास्त्र, छंदशास्त्र और धर्मशास्त्र के ऐसे जाने कितने शब्द हैं जो 'गद्य बोधलिङ्ग' की संस्कृत-जर्मन डिक्शनरी में नहीं हैं। इसमें यह भी बताया गया है कि 'शब्दकल्पद्रुम' का प्रथम संस्करण बंगला लिपि में हुआ था। उस समय के उपलब्ध कोशों में अनुपलब्ध सैंकड़ों हजारों शब्द इसमें संकलित हैं। सामान्य वैदिक शब्द तो हैं ही साथ ही ऐसे भी अनेक वैदिक शब्द हैं जो तत्कालीन शब्दकोशों में प्राप्य हैं। पददर्शनों के अतिरिक्त चार्वाक, माध्यमिक, योगाचार, वैभाषिक, सौत्रात्रिक, अर्हत, रामानुज, माण्डूक्य, पाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञा, रसेश्वर आदि अल्पलोकप्रिय दर्शनों के पारिभाषिक शब्दों का भी इसमें समावेश मिलता है। पुराणों और उपपुराणों से संगृहीत पुरातन राज्यों का इतिहास तथा प्रत्ययुगीन भारतीय भूगोल का भी इसमें निर्देश हुआ है। चिकित्साशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों और अन्य विवरणों का भी विस्तृत निर्देश किया गया है। ज्योतिष—गणित, और फलित—के पारिभाषिक शब्द भी हैं। यद्यपि वैदिक शब्दों के सकलन संपादन को कांशकार ने अपने इस कोश की विशेष महत्ता बताई है तथापि बहुत से वैदिक शब्द छूट भी गए हैं और बहुमूल्य वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति और उनके अर्थ स्वकल्पित भी हैं। 'राधोबोधलिङ्ग' के बृहत्संस्कृत शब्दकोश के उपयोग का भी काफी प्रयत्न किया गया है।

मंजुषे में हम कह सकते हैं कि 'वाचस्पत्यम्' की रचना द्वारा पूर्वोक्त 'शब्दकल्पद्रुम' का एक ऐसा परिवर्धित और अपेक्षाकृत बृहत्तर संस्करण सामने आया जो कि रचनापद्धति की दृष्टि से अधिकांश बातों में 'शब्दकल्पद्रुम' के प्रायाम को व्यापक और पूर्ण बनाने की चेष्टा करता है। 'तर्कवाचस्पति' ने निश्चय ही जितना परिश्रम किया वह अमान्य है। उनके गंभीर ज्ञान, तलमपर्शी मनीषा और व्यापक वैदुष्य का इसमें अद्भुत उन्मेष दिखाई देता है। 'शब्दकल्पद्रुम' की आधारपीठिका पाकर भी प्रयत्न करने कोशकला को 'शब्दकल्पद्रुम' की शैली में काफी व्यापक बनाया।

'शब्दकल्पद्रुम' की अपेक्षा इसमें एक और विशेषता लक्षित होती है। 'शब्दकल्पद्रुम' में 'पद' सुव्रत तिष्ठतः दिए गए हैं। प्रथमा एकवचन के रूप को कोश में व्याख्येय शब्द का स्थान दिया गया है। परंतु 'वाचस्पत्यम्' में दिए गए शब्द 'पद' न होकर 'प्रातिपदिक' अथवा 'धातुरूप' में उपन्यस्त हैं। वैसे सामान्य दृष्टि से—रचनाविधान की पद्धति के विचार से—'वाचस्पत्यम्' को 'शब्दकल्पद्रुम' का विकसित रूप कहा जा सकता है। 'विल्सन' और 'मोनियर विलियम्स' के कोशों द्वारा अर्थबोध, शब्दार्थज्ञान एवं शब्दप्रयोग की सूचना तथा व्याख्या-परक परिचय संक्षिप्त है, पर उपयोगी रूप में कराया गया है। परंतु 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' द्वारा उद्धरणों की विस्तृत पृष्ठभूमि के सर्पक में उभरे हुए अर्थचित्र यद्यपि संक्षिप्तबोध देने में सहायक होते हैं तथापि उद्धरणों के माध्यम से सबदज्ञान का आकार विशदकीर्ण



ही गीया है। उपयोगितासंपन्न होकर भी सामान्य संस्कृतज्ञों के लिये—यह व्यावहारिक सौविध्य से रहित हो गया है।

संस्कृत के माध्यम से छोटे बड़े अनेक संस्कृतकोश बने। परंतु कोश-विकास के इतिहास में उनका कोई महत्व नहीं माना जा सकता। संस्कृत के अनेक कोश ऐसे भी बने जो भारतीय भाषाओं के माध्यम से संस्कृत शब्दों का अर्थपरिचय देते हैं। परंतु उनमें कोई अपनी स्वतंत्र विशेषता नहीं दिखाई देती। 'वित्सन' अथवा 'विलियम्स', 'मेकशानल्ड', 'आप्टे' के काशों का या तो इन्होंने आधार लिया अथवा थोड़ी बहुत सहायता 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' से ली। मराठी-संस्कृत-काश, संस्कृत-तमिल-कोश, संस्कृत-तेलगू-कोश, संस्कृत-बंगला कोश, संस्कृत-गुजराती-कोश, संस्कृत-हिंदी-कोश आदि भारतीय आधुनिक भाषाओं के तत्त्व नामवाले—सैकड़ों की संख्या में कोश बने हैं और आज ये कोश उपलब्ध भी हैं। यहाँ पर ध्यान रखने की एक और बात यह है कि संस्कृत के उक्त दोनों महाकोश बंगाल की भूमि में ही बने।

बंगला विश्वकोश भी सम्भवतः उसी परंपरा से प्रभावित—'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' का ही एक रूप है। इसमें यद्यपि आधुनिक विश्वकोश की रचनापद्धति को अपनाने की चेष्टा हुई है तथापि वह भी मिश्रित शैली का ही विश्वकोश है। उसका एक हिंदी संस्करण भी हिंदी विश्वकोश के नाम से प्रकाशित किया गया है। बंगला विश्वकोश का पूरा पूरा आधार लेकर चलने पर भी हिंदी का यह प्रथम विश्वकोश नए सिरे से तैयार किया गया।

शब्दकोश और विश्वकोश के मिश्रित रूप की यह पद्धति केवल संस्कृत और बंगला के कोशों में ही नहीं अपितु भारतीय भाषा के अन्य कोशों में भी लक्षित होती है। अंग्रेजी आदि भाषा के अनेक बड़े कोशों में यह सरणि है—विशेषतः प्राचीन संस्करणों में। पूणचंद्र का उडिया कोश भी इसी पद्धति का एक ग्रंथ है। 'हिंदी शब्दसागर' भी अपन प्रथम संस्करण में आधिकारिक रूप से इसी पद्धति पर चला। द्वितीय संशोधित और परिवर्धित संस्करण में भी उसके पूर्वरूप को सुरक्षित रखने की चेष्टा हुई है। परंतु लंबे लंबे पौराणिक, शास्त्रीय अथवा दार्शनिक उद्धरणों का भार इसमें न आने देने की चेष्टा हुई है। सबद वस्तु अथवा पदार्थज्ञान के लिये उपयोगी विवरण को यथासंभव देने की चेष्टा की गई है।

### आधुनिक कोशविद्या - पश्चिम में

#### आधुनिक कोशरूप का उद्भव और विकास

पश्चिमी विद्वानों के सर्वांग से भारत में जिस कोश-रचना-पद्धति का १८वीं शती में विकास हुआ, पश्चिम में पहले से ही वह प्रचलित हो चुकी थी। अतः योरोप की कोश-रचना-पद्धति के विकास का ऐतिहासिक सिद्धान्त यहाँ देना अनुचित न होगा।

ग्लॉस—रोमन धर्म और साम्राज्य की धार्मिक एवं राजनीतिक महत्ता के कारण समस्त पश्चिमी योरोप में लातिन (लैटिन) सर्वप्रमुख भाषा बन गई थी। उस भाषा के ग्रंथों का अध्ययन अत्यंत

महत्वपूर्ण माने लिये गये थे। वह भाषा समस्त विद्या और ज्ञान की प्राप्ति का एक प्रकार से प्रवेशद्वार समझी जाने लगी थी। पाश्चात्य कोशविद्या का अकुरुण भी इन्हीं लातिन-शब्द-सूचियों से हुआ था, जिन्हें ग्लॉसज कहते थे। 'ग्लॉसरी' शब्द भी इसी मूल से व्युत्पन्न है। ग्लॉसज का अर्थ होता था शब्दसूचियाँ। 'लातिन' ग्रंथों के पढ़ने-वाले—ग्रंथों के हाथिए पर उनके दुर्बोध और कठिन शब्दों को लिख दिया करते थे। अपनी स्मृति द्वारा अथवा अन्य विद्वानों की सहायता से—कभी सरल 'लातिन' में और कभी तद्विपरवर्तित स्वभाषा में—इन शब्दों का अर्थ भी हलके अक्षरों में लिख लेते थे। इसी शब्द को 'ग्लॉस' कहते हैं।

'रोमानिक' भूमिवासियों के लिये प्राचीन रोमन भाषा (लातिन) बहुत कठिन नहीं थी। पर दूरस्थों के लिये वह भाषा दुर्बोध थी। अतः 'केल्टिक' और 'ट्यूटानिक' प्रदेशों के दूरस्थों की दृष्टि में उपर्युक्त 'ग्लॉस पद्धति' अधिक उपयोगी हुई। व्यापक रूप से और अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत आयाम में इस प्रकार की शब्दसूचियाँ बनीं। इनके माध्यम से संस्कृत, इंग्लिश, 'फ्रायरीश', 'प्राचीन जर्मन (गायिक)' आदि भाषाओं के ऐसे प्राचीन शब्दरूप बहुत बड़ी मात्रा में सुरक्षित रह गए हैं जिनमें तत्तद्भाषाओं के बहुत से शब्द आज अन्यत्र दुर्लभ हैं।

कहा जाता है कि इंग्लैंड में उत्पन्न 'जोन्स दी ग्लॉसिया' ने लातिन के एक डिक्शनेरियस का निर्माण—१२२५ ई० में किया था। लातिन

क—शब्दकोशों के आरम्भिक अस्तित्व की चर्चा में अनेक देशों और जातियों के नाम जुड़े हुए हैं। भारत में पुरातनतम उपलब्ध शब्दकोश वेदिक 'निघटु' है। उसका रचनाकाल कम से कम ७०० या ८०० ई० पू० है। उसके पूर्व भी 'निघटु' का परंपरा थी। अतः कम से कम ई० पू० १००० से ही निघटु कोशों का संपादन होने लगा था। कहा जाता है कि 'चीन' में ईसा पूर्व के हजारों वर्ष पहले से ही कोश बनने लगे थे। पर इस श्रुतिपरंपरा का प्रमाण बहुत वाद—आगे चलकर उस प्रथम चीनी कोश में मिलता है, जिसका रचना 'शुओ वेन' (एस-एच-यू-मो-डव्यू-ई-एन) ने पहली दूसरी शती ई० के आसपास की थी (१२१ ई०)। इसका निर्माणकाल कहा गया है। चीन के 'हान' राजाओं के राज्यकाल में भाषाशास्त्री 'शुओ वेन' के कोश को उपलब्ध कहा गया है। यूरेशिया भूखंड में एक प्राचीनतम 'मन्कादी-सुमेरी' शब्दकोश का नाम लिया जाता है जिसके प्रथम रूप का निर्माण—अनुमान और कल्पना के अनुसार—ई० पू० ७वीं शती में बताया जाता है। कहा जाता है कि हेलैनिस्टिक युग के यूनानियों ने भी योरोप में सर्वप्रथम कोशरचना उसी प्रकार आरंभ की थी जिस प्रकार साहित्य, दर्शन, व्याकरण, राजनीति आदि के वाङ्मय की। यूनानियों का महत्व समाप्त होने के बाद और रोमन साम्राज्य के वैभवकाल में तथा मध्यकाल में भी बहुत से 'लातिन' के कोश बने। 'लातिन' का उत्कर्ष और विस्तार होने पर लातिन तथा लातिन + अन्यभाषा कोश, बनने लगे चलने लगे। 'लातिन' ग्लॉस-कोशों की चर्चा में इसका कुछ जगह किया गया है। सातवीं-आठवीं शती ई० में निमित्त एक विशाल 'अरबी शब्दकोश' का उल्लेख भी उपलब्ध है।

शब्दों का यह लघु सग्रहकोश था। विषयवर्गानुसार वाक्यों में प्रयोग-निदर्शन के रूप में भाषा के आरम्भिक सीखनेवालों की उपयोगिता के निमित्त इसका निर्माण किया गया था। 'डिक्शनरी' शब्द का भी कदाचित्त सर्वप्रथम प्रयोग इसी शब्दसूची में हुआ था। १४वीं शती के उत्तरार्ध में भी ऐसे कुछ कोश बने।

कालांतर में अलग पत्रों पर उक्त शब्दों-अर्थों की प्रतिलिपियाँ की जाने लगी। उन्हें एकत्र भी बिया जाने लगा। 'लातिन' भाषा के क्लिष्ट शब्दों का अर्थबोध कराने के लिये शब्दार्थसंग्रह का यह कार्य अत्यन्त उपयोगी हो गया है। तत्तत् सूचियों में समाविष्ट शब्दों को आगे चलकर ग्लोसेरियम कहने लगे, जिसका अर्थ है शब्दार्थसूची। १६वीं १७वीं—में इन्हीं 'ग्लोसेरियम' के आधार पर वर्णक्रमानुसार शब्दसारणियाँ (टेबुल्स अल्फाबेटिकल) और क्लिष्ट-शब्दार्थ-बोधक संग्रहों का निर्माण हुआ।

**अकारादिक्रम—**१५वीं शती से भी दो तीन सौ वर्ष पूर्व योरोप की विभिन्न भाषाओं में अनेक प्रकार के विभिन्न वर्गों के शब्दों की सूचियाँ सगृहीत होने लगी थीं।

इन शब्दसूचियों में शब्दसकलन वर्गीकृत होता था। जिस प्रकार संस्कृत के अमरकोश आदि ग्रंथों में अपनी दृष्टि से पर्यायवाची शब्दों का वर्गीकृत संग्रह मिलता है उसी प्रकार इन शब्दसूचियों में शरीर के अंगों पारिवारिक संबंधों, मनुष्य के पदों और श्रेणियों, घरेलू एवंपालित जानवरों, जंगली पशुओं, मछलियों, वृक्षों, व्यवसायों, वस्त्राभूषणों, अस्त्रशस्त्रों, चर्च की सामग्रियों, रोग आदि के नामों की अर्थ-सहित सूचियाँ सगृहीत होती थी।

इन्हें 'वोर्कव्युलेरियम' कहा जाता था। अंग्रेजी का 'वोर्कव्युलरी' शब्द भी इसी से निगल है। कागज के अतिरिक्त चमड़े पर भी इनका संग्रह होता था। मूलतः भिन्न दृष्टि से संचालित होने पर भी 'ग्लॉस' और 'वोर्कव्युलरी' दोनों का व्यावहारिक उपयोग भाषाज्ञान में सहायता देनेवाले उपकरण के रूप में होने लगा था। अतः इन दोनों प्रकार की शब्दार्थसूचियों का प्रायः एकत्र संयोजन कर दिया जाने लगा।

स्वज्ञान से अथवा दूसरों की 'ग्लॉसरी' और 'वोर्कव्युलरी' से नए शब्दों को लेकर शब्दसूचियों के स्वामी उनमें नए शब्द जोड़ते रहते थे। इनकी प्रतिलिपि करके अन्य व्यक्ति भी समय समय पर इनका संग्रह प्राप्त कर सकता था। प्रतिलिपि परंपरा द्वारा इनका प्रसार और विस्तार होता चल रहा था।

सर टामस ईलियट (१५३८ ई०) का निमित्त शब्दकोश डिक्शनरीयम) विशेष महत्व भी रखता है और नूतनपथ का भी प्रदर्शक है। जे० डब्ल्यू० विदात्स द्वारा अंग्रेजी के आरम्भिक लातिन पाठकों की सुविधा के लिये रचित 'अंग्रेजी-लातिन' का लघुशब्दकोश भी विषयानुसारी वर्गों में ही अर्थात् है। परंतु 'अंग्रेजी में लातिन' का कोश होने के कारण विशेष महत्व रखता है।

इससे भी अधिक महत्व का एक बहुभाषी लातिन शब्दकोश—१३३६ ई० में आर एस्टीम ने बनाया था जिसमें लातिन शब्दों के

समानार्थक अंग्रेजी शब्दों के अलावा यूरोप की अनेक नव्यभाषाओं के भी वर्ण दिए गए थे। १५४७ ई० के बाद अंग्रेजी और नव्ययूरोपीय भाषा के भी कोश बनने लगे।

प्रतिलिपिकरण के माध्यम से प्रसारित इन सूचियों में शब्दों और वाक्यांशों को उपयोगिता की दृष्टि से अकारादिक्रमानुसार व्यवस्थित करना अधिक लाभकर जान पड़ा। यही से इनमें अकारादिक्रमानुसारी संग्रहपद्धति का आरंभ होता है। शब्द या वाक्यांश के आरम्भिक प्रथमाक्षर को क्रमबद्ध सूची में लिपिक सगृहीत कर देता था। उसमें द्वितीयाक्षर अथवा आनुपूर्वी नहीं देखे जाती थी। अतः इस पद्धति को वर्णमालानुसारी प्रथमाक्षर क्रम कह सकते हैं। यह व्यवस्था सहस्रो शब्दोंवाली सूची में अनुभूत कठिनाई को दूर कर, सुविधाजनक पद्धति को दृढ़ निकालने के सायास व्यवस्था द्वारा प्रचलित हुई। फलतः धीरे-धीरे उसमें विकास होता गया और प्रथमाक्षर के साथ साथ द्वितीय, तृतीय अक्षरों पर भी ध्यान दिया जाने लगा। फिर धीरे-धीरे वर्णानुपूर्वी के अनुसार आधुनिक युग में प्रचलित पद्धति से शब्दार्थसंग्रह होने लगा।

### अंग्रेजी कोश का उद्भव

'लातिन' की इन शब्दसूचियों ने आधुनिक कोश-रचना-पद्धति का जिस प्रकार विकास किया, अंग्रेजी कोशों के विकास क्रम में उसे देखा जा सकता है। आरंभ में इन शब्दार्थसूचियों का प्रधान विधान था क्लिष्ट 'लातिन' शब्दों का सरल 'लातिन' भाषा में अर्थ सूचित करना। धीरे-धीरे सुविधा के लिये रोमन भूमि से दूरस्थ पाठक अपनी भाषा में भी उन शब्दों का अर्थ लिख देते थे। 'ग्लॉसरी', और 'वोर्कव्युलरी' के अंग्रेजी भाषी विद्वानों की प्रवृत्ति में भी यह नई भावना जगी। इस नवचेतना के परिणामस्वरूप 'लातिन' शब्दों का अंग्रेजी में अर्थनिर्देश करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। इस क्रम में 'लैटिन अंग्रेजी' कोश का आरम्भिक रूप सामने आया।

दसवीं शताब्दी में ही 'आक्सफोर्ड' के निकटवर्ती स्थान के एक विद्वान् धर्मपीठाधीश 'एफ्रिक' ने 'लैटिन' व्याकरण का एक ग्रंथ बनाया था। और उसी के साथ वर्गीकृत 'लातिन' शब्दों का एक 'लैटिन-इंग्लिश', लघुकोश भी जोड़ दिया था। संभवतः उक्त ढंग के कोशों में यह प्रथम था। १०६६ ई० में लेकर १४०० ई० के बीच की कोशात्मक शब्दसूचियों को एकत्र करते हुए 'राइट व्यूलर' ने ऐसी दो शब्द-सूचियाँ उपस्थित की हैं। इनमें भी एक १२ वीं शताब्दी की है। वह पूर्ववर्ती शब्दसूचियों की प्रतिलिपि मात्र है। दूसरी शब्दसूची में 'लातिन तथा अन्य भाषाओं के शब्द' हैं।

इंग्लैंड में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना के उद्बुद्ध होने पर अंग्रेजी राजभाषा हुई। शिक्षा-संस्थाओं में फ्रांसीसी के स्थान पर अंग्रेजी का पठन पाठन बढ़ा। अंग्रेजी में लेखकों की सख्या भी अधिक होने लगी। फलतः अंग्रेजी के शब्दकोश की आवश्यकता भी बढ़ गई। १५वीं शती में 'राइट व्यूलर' ने छह महत्वपूर्ण पुरानी शब्दार्थसूचियों को मुद्रित किया। अधिकतम विषयगत वर्गों के आधार पर वे बनाई गई थी। केवल एक शब्दसूची ऐसी थी जिसमें अकारादिक्रम से २५००० शब्दों का सकलन किया गया था।

एम० एम० मैथ्यू ने 'अंग्रेजी कोशों का सर्वेक्षण' नामक अपनी रचना में १५वीं शती के दो महत्वपूर्ण ग्रंथों का उल्लेख किया है। प्रथम 'ओरटस' का 'वोकाब्युलरियम्' था जो पूर्व 'मेड्डला' व्याकरण पर आधारित था। दूसरा था 'ग्लोसेरस' या 'ज्याफरी' व्याकरण पर आधारित इंग्लिश-लैटिन कोश। इसका पिसिन द्वारा १४४० ई० में प्रथम मुद्रित संस्करण प्रकाशित किया गया। उसका नाम था प्रोपेटोरियम परव्यूलोरम सिनवलेरिकोरम् (अर्थात् बच्चों का भांडार या संग्रहालय)। इसका महत्व—६-१० हजार शब्दों के संग्रह के कारण न होकर इसलिये था कि इसके द्वारा शब्दसूची के रचनाविधान में नए प्रयोग का सवेत दिखाई पड़ा। इसमें सज्ञा और ग्रिया के मूर्याश से व्यक्तित्व अन्य प्रकार के शब्द (अन्य पार्टस् ऑव ग्रीच) भी संवलित हैं। यह 'मेड्डला ग्रामाटिसिज' वदार्चित् प्रथम 'लातीन अंग्रेजी' शब्दकोश था। लोकप्रियता का प्रमाण मिलता है—उसकी बहुत सी उपलब्ध प्रतिलिपियों के कारण। १८८३ ई० में 'वेथोलिग्रम ऐंग्लिकन्' नामक शब्दकोश संकलित हुआ था। परंतु महत्वपूर्ण कोश होकर भी पूर्वोक्त कोश के समान वह लोकप्रिय न हो सका।

इसके पश्चात् १६वीं शताब्दी में 'लैटिन अंग्रेजी' और 'अंग्रेजी लैटिन' की अनेक शब्दसूचियाँ निर्मित एवं प्रकाशित हुईं। 'सर टामस ईलियट' की डिक्शनरी ऐसा सर्वप्रथम ग्रंथ है जिसमें 'डिक्शनरी' शब्दविधान का अंग्रेजी में प्रयोग मिलता है। मूल शब्द लातिन का 'डिक्शनरियम्' है जिसका अर्थ था कथन (सेइग)। पर व्याकरणों द्वारा 'कोश' शब्द के अर्थ में उसका प्रयोग होने लगा था। इससे पूर्व—आरम्भिक शब्दसूचियों और कोशों के लिये अनेक नाम प्रचलित थे, यथा—'नॉमिनल', 'नेमबुक', 'मेड्डला ग्रामेटिक्स', 'दी आर्ट्स वोकाब्युलरियम्', 'गार्डन ऑफ वड्स', 'दि प्रोपेटोरियम पोस्वोरम', 'कैथोलिकम् ऐंग्लिकन्', 'मैनुअलस् वोर्कबुलरम्', 'हैंडफुल ऑव वोर्कबुलरियस्', 'दि एक्सेडेरियम्', 'विब्लोयिका', 'एल्वोरिया', 'लाइब्रेरी', 'दी टेबुल ऑफावेटिक्ल', 'दी ट्रेजरी या ट्रेजर्स ऑफ वड्स', 'दि इंग्लिश एक्सपोजिटर', 'दि गाइड टू दि टर्म्स्', 'दि ग्लोसोग्राफिया', 'दि न्यू वर्ल्ड्स ऑव वड्स', 'दि इटिमालॉजिकम्', 'दि फाइलॉजॉजिकम्' आदि। इसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार १२२५ ई० में कठस्थ की जानेवाली 'लातिन' शब्दसूची के हस्तलेख के लिये जान गारलैंडिया ने इस (डिक्शनरी) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया था। परंतु लगभग तीन शताब्दी बाद सर टामस ईलियट द्वारा प्रयुक्त यह शब्द कबो और कैसे लोकप्रिय हो उठा यह कहना सरल नहीं है।

१६वीं शती में पूर्वाधिक के व्यतीत होते होते यह विचार स्वीकृत होने लगा कि शब्दकोश में शब्दार्थ देखने की पद्धति सुविधापूर्ण और सरल होनी चाहिए। इस दृष्टि से कोश के लिये वर्णमालाक्रम से शब्दानुक्रम की व्यवस्था उपयुक्ततर मानी गई। पश्चिम की इस पद्धति को महत्वपूर्ण उपलब्धि और कोशविद्या के नूतन विकास की नई मोड़ माना जा सकता है। एकाक्षर और विश्लेषणात्मक पदरचना वाली चीनी भाषा में एकाक्षर शब्द ही होते हैं। प्रत्येक 'सिलेबुल' स्वतंत्र, सार्थक और विशिष्ट होता है। वहाँ के पुराने कोश अर्थानुसार तथा उच्चारण-

मूलक पद्धति पर चने हैं। वैसी भाषा के कोशों में उच्चारणानुमारी शब्दों का ढूँढना श्रमयुक्त दुःकर होता था। परंतु योरोप की भाषाओं में अकाटि अनुमानसारी एक नई दिशा की ओर शब्दकोशरचना का संकेत हुआ। पूर्वोक्त प्रोपेटोरियम के अनंतर १५१६ में प्रकाशित विलियम हार्नर का शब्दकोश अंग्रेजी लैटिन कोशों में उल्लेख्य है। इसमें वहावती और सूक्तियों का प्राचीन पद्धति पर संग्रह था। मुद्रित कोशों में इसका अपना स्थान था। १५७३ ई० में रिचार्ड हाउलेट का 'एक्सेडेरियम' और 'जॉन वारेट' का 'लाइब्रेरिया'—दो कोश प्रकाशित हुए। प्रथम में लैटिन पर्याय के साथ साथ अंग्रेजी में अर्थ-व्यय होने से अंग्रेजी कोशों में—विशेषतः प्राचीन काल के—इसे उत्तम और अपने ढंग का महत्वशाली कोश माना गया है। इससे भी पूर्व—१५७० में 'पीटर लेविस' ने एक 'इंग्लिश राइमिंग डिक्शनरी' बनाई थी जिसमें अंग्रेजी शब्दों के साथ लैटिन शब्द भी हैं और सभी खास शब्द तुकात रूप में रखे गए थे।

हेनरी अष्टम की वहन, मेरी ट्यूडर, जब फ्रांस के १२वें लुई की पत्नी बनी तब उन्हें फ्रांसीसी भाषा पढ़ने के लिये जान पाल ग्रे ने एक ग्रंथ बनाया जिसमें फ्रांसीसी के साथ साथ अंग्रेजी शब्द भी थे। १५३० ई० में यह प्रकाशित हुआ। इस कोश को 'आधुनिक' फ्रांसीसी और आधुनिक अंग्रेजी भाषाओं का प्राचीनतम कोश कहा जा सकता है। गाइल्स दु गेज ने लेडी मेरी को फ्रांसीसी पढ़ाने के लिये १५२७ में व्याकरणरचना की जो पुस्तक प्रकाशित की थी उसमें भी चुने हुए अंग्रेजी और फ्रांसीसी शब्दों का संग्रह जोड़ दिया गया था।

रिचार्ड हाउलेट का एक्सेडेरियम १५५२ ई० में प्रकाशित हुआ, जिसे सर्वप्रथम अंग्रेजी (+ लैटिन) 'डिक्शनरी' कह सकते हैं। जान वारेट का कोश (एल्वोरिया) भी १५७३ ई० में प्रकाशित हुआ। रिचार्ड के कोश में अंग्रेजी भाषा द्वारा अर्थव्याख्या की गई है। अतः उसे प्रथम अंग्रेजी कोश—लैटिन अंग्रेजी डिक्शनरी—कह सकते हैं। १६वीं शताब्दी में ही (१५६६ ई० में) रिचार्डस परसिवाल ने स्पेनिश अंग्रेजी-कोश मुद्रित कराया था। प्लोरियो ने भी 'दि वर्ल्ड्स ऑव दि वड्स' नाम से एक इताली-अंग्रेजी कोश बनाकर मुद्रित किया। उसका परिवर्धित संस्करण १६११ ई० में प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष रैडल काटग्रेव का प्रसिद्ध फ्रेच-अंग्रेजी कोश भी प्रकाशित हुआ जिसके अति लोकप्रिय हो जाने के कारण बाद में अनेक संस्करण छपे। केवल अंग्रेजीकोश के अभाववश 'प्लोरियो' और 'काटग्रेव' के अंग्रेजी शब्दसंग्रहों का अत्यंत महत्व माना गया और 'शेक्सपियर' के युग की भाषा समझने समझाने में वह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

इसी के आस-पास 'बाइबिल' का अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाश में आया। १७वीं शताब्दी के प्रथम चरण (१६१० ई० में) में जॉन मिन्शु ने 'दि गाइड डट इट्स' नामक एक नानाभाषी कोश का निर्माण किया जिसमें अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य दस भाषाओं के (वेल्स, लो डच्, हाई डच्, फ्रांसीसी, इताली, पुर्तगाली, स्पेनी, लातिन, यूनानी और हिब्रू शब्द दिए गए थे।



इन कोशों में अंग्रेजी कोश के लिये आवश्यक और उपयोगी सामग्री के रहने पर भी केवल अंग्रेजी के एकभाषी कोश की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। प्राचीन अध्ययन के प्रति पुनर्जागृति के कारण अंग्रेजी में लातिन, यूनानी, हिब्रू, अरबी आदि के सहस्रो शब्दों और प्रयोग प्रचारित होने लगे थे। वे प्रयोग 'इक हाईस टम्स' कहे जाते थे। वे परंपर्या प्रागत नहीं थे। इन क्लिष्ट शब्दों की वर्तनी और कभी कभी अर्थ वतानेवाले ग्रंथों की तत्कालीन अनिवार्य आवश्यकता उठ खड़ी हुई थी। मुख्यतः इसी की पूर्ति के लिये—न कि अपनी भाषा के शब्दों और मुहावरों का परिचय कराने की भावना से—आरम्भिक अंग्रेजी-कोशों के निर्माण की कदाचित् मुख्य प्रेरणा मिली। सर्वप्रथम 'टेबुल अल्फाबेटिकल आव हाइ वर्ड्स' शीर्षक एक लघु पुस्तक राबर्ट काउड्रे ने प्रकाशित की जो १२० पृष्ठों में रचित थी। इसमें तीन हजार शब्दों की शुद्ध वर्तनी और अर्थों का निर्देश किया गया था। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि आठ वर्षों में इसके तान सस्करण प्रकाशित करने पड़े। १६१६ ई० में 'ऐन इंगलिश एक्सपोजिटर' नामक—जॉन बुलाकर का—कोश प्रकाशित हुआ जिनके न जाने कितने सस्करण मुद्रित किए गए। १६२३ ई० में 'एच० सी० जेट' द्वारा रचित 'इंगलिश डिक्शनरी' के नाम से एक कोशग्रंथ प्रकाशित हुआ जिसकी रचना से प्रसन्न होकर प्रशंसा में 'जॉन फोर्ड' ने प्रमाणपत्र भेजा था। तीन भागों में विभक्त इस कोश की निर्माणपद्धति कुछ विचित्र सी लगती है। इसकी विभाजनपद्धति को देखकर 'यास्क' के निरुक्त में निदिष्ट नंगमकाड, नैघटुककाड और दैन्तकाडो में लाक्षत वर्णानुसारी पद्धति की स्मृति हो आती है। प्रथम अक्ष से क्लिष्ट शब्द सामान्य भाषा में अर्थों के साथ दिए गए हैं। द्वितीय अक्ष में सामान्य शब्दों के अर्थों का क्लिष्ट पर्यायो द्वारा निर्देश हुआ है। देवी देवताओं, नरनारियों, लड़के लड़कियों, देवों-राक्षसों, पशु पक्षियों आदि की व्याख्या द्वारा तीसरे भाग के इस अक्ष में वर्णन किया गया। इसमें शास्त्रीय, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा अलौकिक शक्तिसंपन्न व्यक्तियों आदि से संबद्ध कल्पनाओं का भी अक्षर सफल है। २० साल परिश्रम करके 'ग्लोसोग्राफिया' नामक एक ऐसे कोश का 'टामस ब्लाउडर' ने सग्रह किया था जिसमें यूनानी, लातिन, हिब्रू आदि के उन शब्दों का व्याख्या मिलती है जिनका प्रयोग उस समय की परिनिष्ठित अंग्रेजी में होने लगा था। १६०० सी० काकरमेन का कोश भी बड़ा लोकप्रिय था और उसके जाने कितने सस्करण हुए। प्रसिद्ध कवि मिल्टन के भतीजे एडवर्ड फिलिप्स ने १५४५ ई० में 'दि न्यू वर्ल्ड आव इंगलिश वर्ड्स' या 'ए जेनरल डिक्शनरी' नामक लोकप्रिय कोश का निर्माण किया था।

१६६० तक के प्रकाशित कोशों की निर्माण सबंधी आवश्यकताओं में कदाचित् तात्कालिक प्रयोजन का सर्वाधिक महत्व था। क्लिष्ट महिलाओं या अध्ययनशील विदुषियों को सहायता देना आदि मंचलकर कार्यानिर्माण का इस प्रेरणा का निर्देश नहीं। १७०२ ई० से १७०७ तक 'ग्लोसोग्राफिया' के अनेक अक्षरों एडवर्ड फिलिप्स का काण भी वास्तव में ही गया। एशिसकोल्स भी

भी इसी समय के आसपास छपे जिनका पुनर्मुद्रण बीसवीं शती तक भी होता रहा। जॉन करेन्सी ने भी 'डिक्शनरियम एंग्लोब्रिटैनिकन' या 'जेनरल इंगलिश डिक्शनरी' निमित्त की जिसमें पुराने (प्रयोगलुप्त) शब्दों की पर्याप्त सख्या थी।

नैथन वेली—सौ वर्षों तक अंग्रेजी की कोशरचना का यही क्रम चलता रहा जिनके शब्दसंवलन में विशिष्ट शब्दों की ही मुख्यता बनी रही। भाषा में प्रयुक्त समस्त—सामान्य और विशिष्ट—शब्दों का कोश बनाने में विद्वान् प्रवृत्त नहीं हुए थे। 'नैथन वेली' ने सर्वप्रथम ऐसे कोश के निर्माण की योजना बनाई जिसमें अंग्रेजी के समस्त शब्दों के समावेश का प्रयास किया गया। इसका नाम था 'युनिवर्सल इटिमोलॉजिकल इंगलिश डिक्शनरी'। इसमें अनेक विशेषताएँ थीं। सकलित शब्दों के विकासक्रम का संकेत दिया गया था। साथ ही इसमें व्युत्पत्ति देने की भी चेष्टा की गई। १७२१ में इसका प्रथम सस्करण प्रकाशित हुआ। १७३१ में प्रकाशित दूसरे सस्करण में शब्दों के उच्चारणबोधक संकेत भी इसमें दिए गए। अंग्रेजी के कोशल विद्वानों द्वारा यह कोश अत्यंत महत्वपूर्ण अंग्रेजी डिक्शनरी माना जाता है। पहला कारण यह था कि डा० जानसन द्वारा निर्मित ऐतिहासिक महत्व के अंग्रेजी कोश की यह आधारशिला बनी। दूसरा कारण यह था कि इसमें समस्त अंग्रेजी शब्दों के व्यापक सफलन का लक्ष्य पहली बार रखा गया। तीसरा कारण व्युत्पत्ति निर्देश करने और उच्चारणसंकेत देने की पद्धति के प्रवर्तन का प्रयास था।

जॉनसन के अंग्रेजी कोश का महत्व (१७४७—१७५५ ई०)

इटली और फ्रांस एकेडमीशियनों द्वारा ऐसे प्रामाणिक कोशों की रचना का कार्यक्रम प्रवर्तित हो गया था जिनमें परिनिष्ठित भाषा के मान्यताप्राप्त प्रयोगरूपों का स्थिरीकरण और प्रमाणीकरण किया जा सके। जर्मन, स्पेनी, फ्रांसीसी और इटाली भाषाओं में ऐसे कोशों की रचना का प्रयास चल रहा था।

अंग्रेजी भाषा का साहित्यिक स्वरूप—पुष्ट, विकसित, मान्य एवं परिनिष्ठित होता चल रहा था। पद्य या छंदोबद्ध भाषा के अतिरिक्त बोलचाल की रचनाओं को साहित्यिक आदर प्राप्त होने लगा था। फलतः अंग्रेजी भाषा का तत्कालीन स्वरूप परिनिष्ठित भाषा के स्तर पर आछ और मान्य हो गया था। अतः साहित्यकार, पुस्तक प्रकाशक और प्रचारक यह महसूस करने लगे थे कि परिनिष्ठित अंग्रेजी कोश का निर्माण अत्यंत आवश्यक हो गया है। अनेक पुस्तक प्रकाशकों और विद्वानों के उत्साह और सहयोग से पर्याप्त धनराशि व्यय करके जॉनसन द्वारा अनेक वर्षों के अथक प्रयास से अंग्रेजी की डिक्शनरी १७४७ से १७५५ ई० के बीच तैयार कर प्रकाशित की गई। इसी 'जेनरल डिक्शनरी' भी १७५३ ई० में जान वेस्ली द्वारा सामने आई। आजतक जानसन का उक्त कोश अपने ऐतिहासिक महत्व का माना जाता है। इसमें के व्युत्पन्न शब्दों का विकासक्रम दिखाने के अर्थप्रयोगों की भी उदाहरणों द्वारा स्पष्ट

किया गया है। अंग्रेजी के उन्मूलक लेखकों से उदाहरणों के उद्धरण लिए गए हैं।

उनके इस कार्य का अंग्रेजी भाषी जनता ने बड़े हर्ष और उत्साह के साथ स्वागत किया। इसमें शब्दों का अर्थ परिभाषा के रूप में भी दिया गया है। नवकोशविद्या के इतिहास में यह उपलब्धि सर्वप्रथम और अत्यंत महत्वशाली कही गई। इसी समय चालीस विद्वान् व्यक्ति एक साथ मिलकर फ्रांस में फ्रांसीसी भाषा का कोश बना रहे थे। उसकी चर्चा करते हुए 'जेन्टिलमैनस मैगजीन' नामक पत्र ने कहा था कि फ्रांस के चालीस विद्वान् लगभग आधी शती में जो कार्य कर सके उसे अकेले जॉनसन ने सात वर्षों में कर दिखाया। अनेक जनता ने उस कोश को राष्ट्र और भाषा दोनों के उत्कर्ष की दृष्टि से अत्यंत महत्व का बताया। अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण, भाषाशुद्धता की रक्षा और प्रयोग का स्थिरीकरण करने में इस कोश की बहुत बड़ी देन मानी जाती है। परन्तु इसमें दिए गए साहित्यिक उद्धरण—अर्थों से सदर्भ निर्देशपूर्वक न लेकर—कोशकार ने अपनी स्मृति से दे दिए हैं। फलतः अनेक स्थलों में उद्धरणों की अशुद्धि इस कोश की एक वृत्ति बन गई। परन्तु त्वरित गति से स्वल्प समय में कार्य समाप्त करने की आकांक्षा के कारण वृत्ति रह गई। पुस्तक एकत्र करना, उद्धरण प्रतिलिपि करना और उनका संयोजन करना, आदि कार्य इतना श्रम-समय-साध्य था जो सात वर्षों में एक व्यक्ति के द्वारा सर्वथा अशभव था।

इसके बाद १८वीं शती के अंत तक अंग्रेजी में अनेक कोश बने। विलियम कनिंग, विलियम पैरी, टमस शेरिडन और जान वाकर ने उच्चारण आदि की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया। इन कोशों को 'जॉनसन' के कोश का सक्षिप्त या लघु संस्करण कहा गया है। उच्चारण का ठीक ठीक स्वरूप बताने का कार्य समस्यात्मक था। उसका पूर्णतः समाधान करने की चेष्टा 'जॉनसन' या बाद के कोशकारों ने की। जॉन वाकर ने उक्त दिशा में विशेष प्रयत्न किया। इन कारणों से 'जॉनसन' के कोश की कुछ आलोचना भी होती रही। पर १९वीं शती के पूर्वार्ध से उसका समान बढ़ गया, उसकी महत्ता स्वीकृत हो गई। उसमें नए शब्दों, अर्थों, उद्धरणों आदि के परिवर्धनकारी परिशिष्टों को, अनेक विद्वानों की सहायता से जोड़कर, उक्त कोश के सशोधित और सवर्धित संस्करण प्रकाशित होते रहे। १८१८-१९ ई० में ऐसा ही एक संस्करण प्रकाशित हुआ जो अब तक मान्य बना हुआ है।

इंग्लिस्तानियों के अंग्रेजी प्रयोगों से अमेरिकियों की अंग्रेजी को स्वतंत्र देखकर वेबस्टर ने अमेरिकी अंग्रेजी का एक महत्वपूर्ण कोश बनाया। परन्तु उनके कोश की बहुत सी व्युत्पत्तियाँ ऐतिहासिक प्रमाणों पर आधारित न होकर निज की स्वतंत्र कल्पना से आविष्कृत थी। बाद के संस्करणों में भाषाविज्ञों ने उनका सशोधन कर दिया। आज भी वेबस्टर के इस कोश का दो जिल्दों में 'इन्टरनेशनल' संस्करण प्रकाशित होता है और कुछ दृष्टियों से इसका आज भी महत्व बना हुआ है। इस युग का दूसरा कोशकार रिचर्डसन था। उसके कोश में उद्धरणों के द्वारा शब्दार्थबोध की युक्ति महत्वपूर्ण मानी गई और अर्थबोध परिभाषाओं को हटाकर केवल उद्धरणों से अर्थ-प्रत्यापन

की पद्धति अपनाई गई। जॉनसन से भी आगे बढ़कर—१३०० ईस्वी के पूर्ववर्ती चासर, गोवर आदि कलाकारों के लेखकों को उसने उद्धृत किया। परन्तु उद्धरणों की तिथि उन्होंने नहीं दी। व्यावहारिक दृष्टि से अमसाध्य, अधिक व्यय-समय-साध्य यह पद्धति—शब्दकोश से अर्थबोध की कामना करनेवाले पाठकों के लिये उपयोगी और सुविधाजनक न हुई। सामान्य पाठकों के लिये यह अति क्लिष्ट भी थी तथा अर्थ तक पहुँचने में समय भी बहुत लगता था। फिर भी कभी-कभी अनिवार्य रह ही जाता था। जनता में अधिक उपयोगी और लोकप्रिय न होने पर भी इस कोश से एक बड़ा भारी लाभ हुआ। प्राचीन और प्रसिद्ध लेखकों के अत्यधिक उद्धरणों का इसमें सकलन हो पया और वे स्थायी रूप में सुरक्षित भी हो गए।

### आक्सफोर्ड डिक्शनरी योजना और निर्माण

१९वीं शताब्दी के मध्य लंदन की फिलालाजिकल सोसाइटी में स्थापित निधियों द्वारा आर्थविशेष डा० आर० सी० ट्रेन्च ने अंग्रेजी के तत्कालीन कोशों की कुछ कमियों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने यह भी कहा कि नाथनवेली, जानसन तथा उनके उत्तराधिकारियों के कोश महत्वपूर्ण हैं। पर उन कोशों द्वारा शब्दों के पारिवारिक-ऐतिहासिक-विकास, अर्थ और तात्पर्य में परिवर्तन एवं विकास तथा रूपविचार के विषय में विशेष ध्यान नहीं दिया गया। शब्दों और अर्थों के प्रयोग एवं ऐतिहासिक विकास की दिशा का कोश द्वारा पूर्ण परिचय मिलना चाहिए। संक्षेप में भाषाविज्ञान और साहित्य के वैज्ञानिक प्रयोगक्रम के साथ अर्थविकास (सिमेटिक चेंज) और उत्पत्तिमूलक विकास की—कोश में वैज्ञानिक और साहित्यिक—उभयविध सगति और पूर्णता अत्यंत अपेक्षित है। इन दृष्टियों के साथ साथ पूर्वोक्त कोशों में विरल और अप्रचलित शब्दों का सकलन भी अपूर्ण था।

उन्होंने यह भी निर्देश किया कि कोशनिर्माण के वैज्ञानिक लक्ष्य की पूर्ति के लिये भाषा के प्राचीन साहित्य और वैज्ञानिक दृष्टिपद्धति का सम्यग्प्रयोजन और उपयोग किए बिना कोश की सर्वांगीण पूर्णता संभव नहीं होगी। यह भी संकेत किया कि इस कार्य की विशालता को देखते हुए जो अध्ययन, अनुशीलन और श्रम अपेक्षित है उसका संपादन एक दो व्यक्तियों द्वारा संभव भी नहीं है। अनेक भाषाविज्ञ, भाषावैज्ञानिक और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों के समिलित प्रयास से ही अभीप्सित कोश का निर्माण हो सकता है।

लंदन की फिलालाजिकल सोसाइटी के समूह उन्होंने अंग्रेजी का विशाल और पूर्ण कोश बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया। उन्होंने सुझाव दिया कि वेली, जानसन, रिचर्डसन, वेबस्टर आदि के कोशों को पूर्ण करने के लिये निर्धारित कोशपद्धति के आधार पर सामग्री का सकलन किया जाय, उनके परिशिष्ट बनाए जायें। शब्दप्रयोग, रूपविकास, अर्थविकास, प्रयोगमूलक नाना अर्थच्छायाओं का, शब्दार्थनिर्देश के सदर्भ में, सोदाहरण उपन्यास करना चाहिए। शब्द और उसके द्योतित अर्थ के विकास का कोश में पूर्ण इतिहास दिखाना चाहिए। उक्त सस्या द्वारा सकलित सामग्री के आधार पर और

डा० ट्रेच के निर्देशों का आधार लेकर अनेक विद्वानों द्वारा अनेक वर्षों में सकलित माग्री की सहायता से आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी का प्रथम रूप और संस्करण प्रकाशित हुआ।

आठ सौ वर्षों के अंग्रेजी साहित्य में प्रयुक्त लिखित रूपों, श्रुतियों आदि का यथासंभव विकास इस कोश में दिखया गया। प्रथम प्रयोग से लेकर उनके प्रमुख प्रयोगक्रम की जड़नी दिखाई गई। भाषा के प्रचलित अप्रचलित—प्रायः सभी शब्दरूपों और उनके अर्थों का वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक विवरण भी यथः संभव दिया गया है। अप्रचलित शब्दों के उपलब्ध अंतिम प्रयोग की सूचना देने का भी प्रयास हुआ। भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन और अनुशीलन के आधार पर शब्दों की व्युत्पत्तियों का भी संयोजन किया गया। इस ऐतिहासिक कोश का महत्व था इसकी यथासंभव संपूर्णता। इसी आधार पर उस युग के भाषाविदों ने इस कोश को समादर दिया और इसकी प्रशंसा हुई। इसकी सामग्री के संकलन में पचास लाख शब्द चिट्ठे एकत्र हुई थी और उनके संकलन का कार्य लगभग दो सहस्र उत्साही पाठकों ने किया था। इस सदर्भ में कुछ विस्तार से विवरण देने का तात्पर्य इतना ही है कि हम हिंदी के सबसे बड़े वर्तमान कोश—हिंदी-शब्द-सागर—के संपादन में भी समस्त आवश्यक एवं अपेक्षित साधनों और उपकरणों को एकत्र करने में सर्वथा समर्थ नहीं हो पाए हैं। इस विषय की चर्चा अन्यत्र की जा रही है।

इसी सवध में यह भी ध्यान रखने की बात है कि उक्त कोश के पुनः संशोधित और परिवर्धित संस्करण का संपादन कार्य निरंतर चला आ रहा है। सौ सवा सौ वर्षों से इंग्लैंड के काशविज्ञान-विशारद विद्वानों की मंडली सर्वदा कार्यरत रहती है। अपार धनराशि का निरंतर व्यय किया जाता है। इन समस्त साधनों के योग से और संस्थाविशेष के निर्देशन में विशेष विभाग द्वारा उक्त कोश के परिष्कार, विस्तार और पुनः संपादन का अखंड यत्न चल रहा है। ज्ञान विज्ञान की सभी शाखाओं के कोशप्रेमी विद्वानों की अवाध सहायता भी सदा प्राप्त होती रहती है। काशविज्ञान, भाषाविज्ञान, साहित्यविद्या और भाषा एवं साहित्य के धुरंधर और ऐतिहासिक सुधियों द्वारा उसके पुनः संपादन में सभी आवश्यक प्रयत्न होते चल रहे हैं। इतना ही नहीं, उक्त कार्य में देश के बहुसंख्यक जागरूक पाठकों का भी विना पारिश्रमिक के स्वत्पादिक सहयोग मिलता रहा है।

‘फिनलैंडिक सोसाइटी’ की योजना के साथ साथ अनेक अन्य छोटे बड़े कोश भी बनते रहे जो कोशविद्या की सर्वांगीणता के विचार से अपूर्ण भी थे तथा उनमें अन्य प्रकार की त्रुटियाँ या इसी ढंग से मिलते जुलते कोश बनते रहे।

उपर्युक्त अंग्रेजी कोश के आरंभिक विकास का त्वरित सिंहावलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि (१)—अंग्रेजी कोशों में सर्वप्रथम लिखित लैटिन शब्दसूचियों का सरल लैटिन और अंग्रेजी में अर्थ देने से कोशकला का प्रारंभ हुआ। यह प्रथम रूप था। (२)—दुमरे मोपान पर अंग्रेजी शब्दसूचियों का तथा लैटिन और अंग्रेजी शब्दसंग्रहों का विस्तार हुआ। (३)—तीसरे चरण में इंग्लिश-लैटिन के शब्दसंग्रह का कार्य हुआ। (४)—चतुर्थ अवस्था

में अंग्रेजी और इतर भाषाओं के कोश बने। (५)—पाँचवें चरण में अंग्रेजी के क्लिट शब्दों के शब्दसंग्रहवाले और कोश बने। वेब्ली द्वारा इनमें सामान्य शब्दों को जोड़ने के साथ साथ व्युत्पत्तिनिर्देश की भी चेष्टा का गई। अब शब्दप्रयोगों के उदाहरण भी संगृहीत होने लगे। (६)—छठी अवस्था में उच्च कोटि के कंशनिर्माण की चेष्टा और अर्थसंपाटीकरण के लिये साहित्य में प्रयुक्त उद्धरणों का उपयोग प्रारंभ हुआ। (७)—इसी के साथ साथ या कुछ पहले से ही अंग्रेजी कोशों में प्रयुज्यमान भाषा-शब्दों के उच्चारणसंकेत देने की भावना प्रारंभ हुई। (८)—अष्टम स्थिति वह है जब रिचर्डसन द्वारा शब्दव्याख्या छ डबर केवल उदाहरणमाध्यम से अर्थबोध का प्रयास हुआ। और आगे चलकर अंतिम रूप से इन सबकी परिणति डा० ट्रेच की प्रेरणा से निमित्त महाकोश में दिखाई देती है। शब्दोच्चारण, शब्द, अर्थ शब्द-प्रयोग और व्युत्पत्ति सब शब्दप्रयोग के इतिहासक्रम आदि की विस्तृत और ऐतिहासिक आयामों के साथ कोश में अनुस्यूत करने की चेष्टा हुई है।

कोशविज्ञान की आरंभिक स्थिति में पश्चिम के कोश भी पर्याप्त सूचित करते हैं। धीरे धीरे विभिन्न अर्थों का भी निर्देश होने लगा। पर व्याकरण, उच्चारणसंकेत, शब्दार्थप्रयोग का इतिहास, व्युत्पत्तिनिर्देश और उदाहरण द्वारा तात्पर्यविवरण का उनमें अभाव था। संस्कृत कोशों में भी यह नहीं था। क्योंकि वे ऐसे छदोर्वद्ध शब्दसंग्रह थे जो पर्यायों के माध्यम से एक या अनेक अर्थों का परिचय देते थे। परंतु संस्कृत के प्रसिद्ध वैवाकरण ‘भानुजी दीक्षित’ द्वारा निमित्त अमरकोश की ‘व्याख्यासुधा’ नामक टीका में सभी शब्दों की व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति देने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

पश्चिम में ऐतिहासिक और भाषावैज्ञानिक अनुशीलन की दृष्टि ने कोश के आधुनिक रूप को पूर्ण बनाने का प्रयास किया। प्रथमतः फिलिप्स के कोश में शब्दमूल का व्युत्पत्ति के प्रसंग में निर्देश-मात्र हुआ। शब्दसागर के तत्सम और अनेक तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति इसी रूप में संकेतित मात्र है। यही से अंग्रेजी कोशों में व्युत्पत्तिप्रदर्शन का अंतिम सामान्य आरंभ होता है। इससे कुछ पहले या इसी के आसपास शब्दार्थबोध के लिये पर्याय मात्र देने के स्थान पर अर्थसूचक व्याख्या लिखने की पद्धति आरंभ हो गई थी। जॉनसन से एकाध ही वर्ष पूर्व प्रकाशित मार्टिन के कोश में अर्थच्छायाओं को यद्यपि विस्तृत सदर्भ में देखने का प्रयास हुआ, तथापि व्युत्पत्तिसंकेत वहाँ लुप्त हो गया। जॉनसन के कोश में नाना अर्थच्छायाओं और उदाहरणों के साथ माय शब्दप्रयोग के स्मृतिमूलक उदाहरण भी दिए गए। संकेतरूप में मूल शब्द के निर्देश मात्र से व्युत्पत्तिसंकेत का सूचन किया जाता था। समाचारार्थक फ्रांसीसी पर्याय भी दिए गए। शेरिडन और वाकर के कोश, जॉनसन की अपेक्षा अल्प महत्व के होने पर भी उच्चारणसंकेत की दिशा में अधिक प्रयत्नशील रहे। वेब्सटर के कोश में छोटे पैमाने पर कोशकला की रचनाविधानसंबंधी पूर्वमान्यताओं के उपयोग का सर्वाधिक प्रयास हुआ। दूसरी ओर पूर्वोक्त विशेषताओं

के अतिरिक्त डा० रिचर्डसन के कोश में लातिन के साथ फ्रासीसी, इताली, स्पेनी भाषा के शब्दों का उपन्यास यह सूचित करता है कि उस युग के कोशकारों की चेतना उद्बुद्धतर हो रही थी और तुलनात्मक दृष्टि का विकास होने लगा था। एक अन्य कोश में तुलनात्मक रूपों की प्रवृत्ति तो लुप्त हो गई पर अर्थव्याख्या में कुछ कुछ विश्वकोशीय पद्धति का प्रभाव लक्षित होने लगा था। १८६० के 'वेब्सटर' के कोश में पुनः लातिन, इताली, स्पेनी और फ्रासीसी शब्दरूपों में भी तुलनात्मक बोध का आभास मिलता है पर अंग्रेजी कोशों की यह सीमा इन्हीं भाषाओं के घेरे में पड़ी रही।

धीरे धीरे कोणकला के आदर्श-रचना-विधान की उपादान साम-ग्रियों का प्रयोग—थोड़ी या बहुत मात्रा में—आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी की रचना के पहले से ही होने लगा था। पर उनमें वैज्ञानिक और ऐतिहासिक आधार सर्वथा पुष्ट और सुव्यवस्थित नहीं थे। वे उपादान किसी एक कोश में योजनाबद्ध क्रम से संयोजित न होकर भिन्न भिन्न कशों में विकीर्ण थे। फिर भी उनसे कोशनिर्माण के आवश्यक उपादानों की उपयोगिता सूचित और निर्दिष्ट हो चुकी थी। पूर्व कोशों की अपेक्षा परवर्ती कोशों में प्रायः अर्थप्रतिपादन की पूर्णता, यथार्थता और शुद्धता के साथ-साथ ऐतिहासिक और भाषा वैज्ञानिक प्रौढ़ता बढ़ती गई। डा० ट्रेच की मनीषा ने समस्त पूर्ववर्तिक उपादानों के समुचित विनियोग एवं समावेश का लीननिर्देश किया। उन्होंने सुव्यवस्थित ढंग से और योजनाबद्ध रूप में उनके उपयोग की महत्ता को ठीक ठीक समझा और उनके समुचित एवं व्यवस्थित विनियोग और प्रयोग से कोशरचना के कार्य को पूर्णता की दिशा में बढ़ाने का प्रयास किया।

आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के निर्माण में उपयोजित रचना-विधान ने कोशनिर्माण की एक ऐसी भूमिका प्रतिष्ठित की जो क्रमशः विकास की ओर बढ़ती चल रही है। साहित्य और भाषा के ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक अध्ययन, अनुशीलन और अर्थविचार अथवा शब्दार्थविचार का कुशल परिशीलन उसमें लक्षित होता है। उसकी पूर्णता की ओर अग्रसर करने के लिये शक्ति, सामर्थ्य, सहयोग और धन का व्यापक साधन जहाँ अपेक्षित है वहाँ विभिन्न शास्त्रज्ञों, विद्यावेत्ताओं, शब्दव्यवहार के मर्मज्ञ मनीषियों, भाषा तथा साहित्य के ऐतिहासिक परिशीलकों और शोधकर्ताओं की मेधा, मनीषा, सूक्ष्म बोध और प्रतिभा भी अपेक्षित है। यह कार्य स्वल्प समय में साध्य भी नहीं है। इसके निर्माण और विस्तार का कार्य व्यापक परिवेश और बड़े पैमाने पर अखंड रूप से चलते रहना चाहिए। आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी का कार्य निरंतर चलता रहता है। उसके संशोधन, परिष्करण, सर्वधन आदि की प्रक्रिया और नवीनतम संस्करण की प्रकाशनसामग्री का संचालन होता चलता है। संपादकों की अनेक पीढ़ियों ने वहाँ कार्य किया। इतना ही नहीं—उसके आधार पर अनेक उपयोगी 'सक्षिप्त', 'लघु', 'पाकेट', आदि संस्करण छपते और लाखों की संख्या में वितरित रहते हैं। अन्य सैकड़ों हजारों अंग्रेजी कोशों की—जिनमें बड़े छोटे सभी प्रकार के

कोश हैं—रचना में वहाँ से सामग्री और महायत्ना मिलती है। उसे प्रामाणिक और आप्त मान लिया गया है।

यह प्रसंग यही समाप्त किया जा रहा है। यहाँ इस चर्चा का उद्देश्य केवल इतना ही संकेत करना था कि भारत में जो आधुनिक कोश बने वे इन्हीं पाश्चात्य कोशों की पद्धति पर चले। उनके निर्माण में पूरी सफलता चाहे न भी मिल सकी हो पर उनकी पद्धति भी वही थी जिसे हम आधुनिक कोशविज्ञान की रचनाशैली कहते हैं।

## पाश्चात्य विद्वानों का योगदान

### संस्कृत तथा भारतीय भाषाओं के कोश

भारत में विदेशी विद्वानों, धर्मप्रचारकों और सरकारी शासकों द्वारा आधुनिक ढंग से कोशनिर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ—यह कहा जा चुका है। ये कोश मुख्यतः दो रूपों में बने—(१) विदेशी भाषाओं में (विशेषतः अंग्रेजी में) और (२) अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में। विदेशी भाषाओं के माध्यम से भारतीय भाषाओं के जो कोश बने उनमें संस्कृत के कोशों का स्थान महत्वपूर्ण है। इनके अलावा हमारे ये कोश हैं जो अंग्रेजी आदि के माध्यम से बने। वे या तो हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू के कोश हैं या अन्य भारतीय भाषाओं के।

१८१९ में डा० 'विलसन' का 'संस्कृत इंग्लिश कोश' प्रकाशित हुआ। अंग्रेजी के माध्यम से प्रकाशित होनेवाले इस संस्कृत कोश को प्रस्तुत दिशा में महत्वपूर्ण पर आरम्भिक कार्य कहा जा सकता है। इस कृति की भूमिका से पता चलता है कि उस समय पुरानी पद्धति के कुछ संस्कृत कोश वर्तमान थे। कोलब्रुक द्वारा अनूदित अमरकोश भी वर्तमान था। वस्तुतः 'विलसन' का यह ग्रंथ पर्यायवाची द्विभाषी कोश बहा जा सकता है। मोनियर विलियम्स की दो कृतियाँ—संस्कृत अंग्रेजी कोश और इंग्लिश संस्कृत कोश महत्वपूर्ण कोश हैं। उनका प्रकाशन १८५१ ई० में हुआ। इस कोश की प्रेरणा विलसन के ग्रंथ से मिली। विलसन ने अपने कोश के नवीन संस्करण की भूमिका में अपना मतव्य प्रकट किया है। वे यह चाहते थे कि संस्कृत के सभी शब्दों का वैज्ञानिक ढंग से ऐसा आकलन हो जिससे संस्कृत की लगभग दो हजार धातुओं के अतर्गत समस्त संस्कृत शब्दों का समावेश हो जाय। इस दिशा में उन्होंने थोड़ा प्रयत्न भी किया। इन दोनों के बाद महत्वपूर्ण ग्रंथ आप्टे का कोश आता है जो संस्कृत अंग्रेजी और अंग्रेजी संस्कृत दोनों रूपों में संपादित किया गया। विलियम्स के कोश में धातुमूलक व्युत्पत्ति के साथ साथ शब्दप्रयोग का सर्वमं-सकेत भी दिया गया। परन्तु आप्टे के कोश में संकेतमात्र ही नहीं उद्धरण भी दिए गए हैं। पूर्व कोश की अपेक्षा वह अधिक उपयोगी दिखाई पड़ा। कुछ वर्षों पूर्व तोन खंडों में उनके कोश का संशोधित संवर्धित और विस्तृत संस्करण प्रकाशित हुआ है जो कदाचित् तबतक के समस्त 'संस्कृत अंग्रेजी' कोशों में सर्वाधिक प्रामाणिक एवं उपयोगी

कहा जानकता है। इनके अतिरिक्त भी अल्प महत्व के अनेक सस्कृत-अंग्रेजी-काण वनते रहे जिनमें कुछ प्रसिद्ध कोशों के नाम आगे दिए जा रहे हैं—(१) सस्कृत अंग्रेजी कोश (संपादक—डब्ल्यू० यीट्स—१८४६) (२) सस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी (लक्ष्मण रामचन्द्र वैद्य—१८८६), (३) सस्कृत डिक्शनरी (थियोडोर वेन्फे—१८६६), (४) ग्रासमैन लेक्सिकन टु दि ऋग्वेद और (५) प्रैक्टिकल सस्कृत डिक्शनरी—विद ट्रान्स्मिटरेशन, एक्सेच्यूशन ऐंड एटिमालोजिकल एनालसिस थू आउट—मैकडानल्ड, १९२४ ई०।

पूना में केंद्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त आर्थिक अनुदान से डा० क्ले के निदेशन में सस्कृत का एक विशाल कोश बन रहा है। उसकी आधारभूत सामग्री का भी स्वतंत्र रीति से वैज्ञानिक और आलोचनात्मक पद्धति पर आलोचन और पाठनिर्धारण किया जा रहा है। उक्त कोश के लिये शब्दों का जो प्रामाणिक सकलन हो रहा है वह प्रायः सर्वांशतः यथासंभव आलोचनात्मक ढंग से संपादित या संकलित है। डा० 'क्ले' मन्त्रुत के साथ साथ आधुनिक भाषाविज्ञान के बड़े विद्वान् हैं। इन कोश के शब्दसंकलन और अर्थनिर्धारण में तत्तत् विषयों के सम्कृतज्ञ, प्रौढ पंडितों की पूरी सहायता लेने का प्रयत्न हो रहा है। संपादनविज्ञान की पद्धति पर संपादित प्रामाणिक और आलोचित आधारग्रन्थों से ही यथासंभव शब्दसंकलन की चेष्टा हो रही है। भारतीयविद्या (इंडोलॉजी) में अवतक जो भी महत्वपूर्ण अनुशीलन विश्व की किसी भाषा में हुआ है उसके सर्वांशतः उपयोग और विनियोग का प्रयास हो रहा है। १७-१८ वर्षों से यह प्रयास चल रहा है जिसमें काफी समय, श्रम और धनराशि व्यय हो रही है तथा विषयज्ञ विद्वज्जनों का अधिक में अधिक सहयोग पाने की चेष्टा की जा रही है। भाषाविज्ञान की न्यूनतम उपलब्धियों का सहारा लेकर व्युत्पत्तिनिर्धारणादि की व्यवस्था हो रही है। अतः आशा है, यह कोश निश्चय ही उच्चतर स्तर का होगा। अंग्रेजी, जर्मन, फ्रांसीसी, रूसी आदि भाषाओं के समस्त संपन्न सस्कृत कोशों की विशाल सामग्री का परीक्षापूर्वक ग्रहण हो रहा है। अतः निश्चय ही उक्त कोश, अवतक के समस्त सस्कृत-अंग्रेजी-कोशों में श्रेष्ठतम होगा। क्या ही अच्छा होता यदि उक्त सस्कृत कोश के हिंदी तथा अन्य सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी संस्करण छापे जाते।

मोनियर विलियम्स के वाद अनेक सस्कृत अंग्रेजी कोश बने। परंतु विलसन के नवीन संस्करण और विलियम्स के कोश के सामने उनका विशेष प्रचार नहीं हो पाया। विलसन के कोश का एक सक्षिप्त संस्करण भी १८७० ई० में रामजसन ने संपादित विद्या जिसका काफी प्रचार हुआ। मैकडानल की प्रैक्टिकल सस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी अवश्य ही अत्यंत महत्वपूर्ण कोश है। इसमें मन्त्रुत शब्दों के अर्थ का कालावधिक परिचय भी दिया गया है, शब्द के अधिक प्रचलित और स्वल्प प्रचलित अर्थों को सूचित करने का भी प्रयास हुआ है। 'वेन्फे' की भी 'सस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी' प्रकाशित हुई। और भी अनेक छोटे बड़े सस्कृत कोश निमित्त हुए। परंतु विलसन विलियम्स और आस्टे—इनकी सस्कृत इंग्लिश कोशत्रयी को सर्वाधिक मफनता एव प्रसिद्धि मिली।

यहाँ राय और वीथलिंग् द्वारा प्रकाशित सस्कृत-जर्मन-कोश

के उल्लेख के बिना समस्त विवरण अपूर्ण ही रह जायगा। ओटो वीथलिंग् तथा 'रुडोल्फ राय' के सयुक्त संपादकत्व में सस्कृत का जर्मनभाषी यह कोश—सस्कृत वॉर्तेरबुख—१८५८ ई० से प्रारम्भ होकर १८७५ ई० में पूर्ण हुआ। यह कोश भारतीयविद्या का महाज्ञान-कोश है। अत्यंत विशाल और मात जिल्दों के इस कोश में प्रभूत सामग्री भरी पड़ी है। इसका एक सक्षिप्त संस्करण भी १८७६ से लेकर १८८६ ई० तक प्रकाशित होता रहा। वह भी सात जिल्दों में है पर उसकी पृष्ठसंख्या—आधी से भी कम है। सेंट पीटरस्बर्ग से प्रकाशित यह सस्कृत-जर्मन-कोश व्यावहारिक उपयोगिता से पूर्ण होकर भी अत्यंत प्रामाणिक है। इसके पहले अनेक छोटे बड़े सस्कृत कोश जर्मन, फ्रांसीसी, इतालवी आदि भाषाओं में बन चुके थे। १८४६ ई० में 'थियोडोर वेन्फे' का कोश बना था जिसका अंग्रेजी रूपांतर १८५६ में मैक्सम्यूलर के संपादकत्व में प्रकाशित हुआ।

इनमें से अनेक कोश ऐसे थे जो भारत में और अनेक विदेशों में प्रकाशित हुए।

## हिंदुस्तानी, हिंदी, उर्दू के कोश

हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू के आधुनिक कोशों का निर्माणकार्य भी पाश्चात्य विद्वानों ने व्यापक पैमाने पर किया। इन भाषाओं एव अन्य भारतीय भाषाओं के कोशों का निर्माण जिन प्रेरणाओं से पाश्चात्य विद्वानों ने किया उनमें दो बातें कदाचित् सर्वप्रमुख थीं

(क) धर्म का प्रचार करनेवाले ख्रीष्ट मतावलंबी धर्मोपदेशक चाहते थे कि यहाँ की जनता में घुलमिलकर उनकी भाषा बोल और समझकर उनकी दुर्बलताओं को समझा जाय और तदनुरूप उन्हीं की बोली में इस ढंग से प्रचार किया जाय जिसमें सामाजिक रूढ़ियों और वधनों से पीड़ित वर्ग, इसाई धर्म के लाभों के लालच में पड़कर अपना धर्म-परिवर्तन करे। फलतः यह आवश्यक था कि हिंदी या हिंदुस्तानी, उर्दू तथा बंगला, तमिल, मराठी, मलयालम्, कन्नड, तेलगू, उडिया, असमिया आदि भाषाभाषियों के बीच ख्रीष्टीय मत के प्रचारक, उनकी भाषाएँ सीखें और उनमें घडल्ले से व्याख्यान दे सकें तथा प्रथरचना कर सकें। परिणामतः इन भाषाओं के अनेक छोटे मोटे व्याकरण और कोशों की विदेशी माध्यम से रचना हुई।

(ख) दूसरा प्रमुख वर्ग या शासकों का। शासनकार्य की सुविधा और प्रौढता के लिये, शासित की भावना, संस्कृति, धार्मिक विचार, भाषा और उनके धर्मशास्त्र तथा साहित्य की जानकारी भी अनिवार्य थी। एतदर्थ भी इन भाषाओं के कोश बने।

इन दोनों के अतिरिक्त भारतीयविद्या भारतीय दर्शन, वैदिक तथा वैदिकेतर सस्कृत साहित्य के विद्याप्रेमी और भाषावैज्ञानिक प्रायः निस्वार्थ भाव से सस्कृत एव अन्य भारतीय भाषाओं के अनुशीलन में प्रवृत्त हुए तथा तत्तत् विषयों के ग्रन्थों की रचना की। इसी सदर्म में महत्वपूर्ण कोशग्रन्थ भी बने। मन्त्रुतकोशों की चर्चा की जा चुकी है। 'ए डिक्शनरी ऑफ मोहमडन लॉ ऐंड बगल रेवेन्यू टर्म्स' (४ भाग—ई० १७६५), 'ए ग्लासरी ऑफ इंडियन टर्म्स' (८ भाग—१७६७ ई०), बंगाली सिविल सर्विस टर्म्स' (एच्. एम्. इलियट—



१८४५ ई०), 'ए ग्लासरी आब जुडिशल ऐंड रेवेन्यू टर्म्स' इत्यादि ग्रंथों का निर्माण किया गया। इनसे एक और तो शासनकार्य में सुविधा प्राप्त हुई और दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वानों को भी भारतीय भाषा या संस्कृत के ग्रंथों का अपनी अपनी भाषाओं में अनुवाद करने में सहायता मिली।

इन कोशों के अलावा पाश्चात्य विद्वानों अथवा उनकी प्रेरणा से भारतीय सुधियों द्वारा उसी पद्धति पर पाली, प्राकृत आदि के कोश भी बने और बन रहे हैं। राबर्ट सीजर ने पाली-संस्कृत-डिक्शनरी का १८७५ ई० में प्रकाशन कराया था। १९२१ ई० में पाली टेक्स्ट सोसाइटी के निर्देशन में पाली-अंग्रेजी-डिक्शनरी बनकर सामने आई। शतावधानी जैनमुनि श्रीरत्नचंद ने 'अर्धमागधी डिक्शनरी' का निर्माण किया। उसमें संस्कृत, गुजराती, हिंदी और अंग्रेजी का प्रयोग उपयोग होने से उसे बहुभाषी भावकाश कहना सगत है। 'पाइयसदमहण्णव' निश्चय ही प्राकृत का अत्यंत विशिष्ट कोश है जिसका पुनः प्रकाशन किया गया है 'प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी' की ओर से।

भारतीय आधुनिक भाषाओं में हिंदी के विशिष्ट स्थान और महत्व की घोषणा किए बिना भी पाश्चात्य विद्वानों ने उसे हिंदुस्तानी की राष्ट्रभाषा मान लिया तथा हिंदी या हिंदुस्तानी—दोनों ही नामों का उसके लिये—मेरी समझ में—प्रयोग किया। उर्दू को भी उसी की शैली समझा। अतः हिंदुस्तानी और हिंदी के कोशों की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। नीचे इसकी चर्चा हो रही है।

### हिंदी-हिंदुस्तानी के कोश

हिंदी या हिंदुस्तानी या उर्दू के कोशों का निर्माण भी इसी क्रम में हुआ। जानसन का लघुकोश 'ए लिस्ट आब वन थाउजंड इपॉर्टेंट-वर्ड्स' प्रारम्भिक प्रयास था। इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कार्य था विलियम हटर की 'हिंदुस्तानी-इंग्लिश-डिक्शनरी' (१८०८ ई०)। इसका मुख्य आधार था कैप्टन जोसफ टेलर की 'ए डिक्शनरी आब हिंदुस्तानी ऐंड इंग्लिश'। टेलर ने अपने उपयोग के लिये इसका निर्माण किया था। हटर का कोश निरंतर सशोधित और परिवर्धित संस्करणों में क्रमशः १८१६, १८२० और १८३४ ई० में प्रकाशित होता रहा। जान शेक्सपियर भी कोश का कार्य करते रहे। पर उनके कोश से पूर्व हटर का कोश तथा एम० टी० आदम की कृति 'दि डिक्शनरी आब हिंदी ऐंड इंग्लिश' प्रचलित था। डा० गिल-क्राइस्ट की डिक्शनरी 'इंग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी' १७८६-६६ में प्रकाशित हो चुकी थी। उसका संक्षिप्त रूप उन्होंने ही रोबुक के सहसपादकत्व में १८१० ई० में प्रकाशित किया था। डा० रोजेरी ने उसी की ए डिक्शनरी आब 'इंग्लिश बंगला ऐंड हिंदुस्तानी' नाम से संक्षिप्ततर रूप में कलकत्ता से १८३७ ई० में प्रकाशित कराया था। जे० बी० थामसन की उर्दू-अंग्रेजी डिक्शनरी १८३८ ई० में प्रकाशित हुई। १८१७ ई० में शेक्सपियर द्वारा लंदन से 'अंग्रेजी हिंदुस्तानी, और हिंदुस्तानी अंग्रेजी' कोश प्रकाशित हुआ परंतु इन सबमें रोमन या फारसी लिपि का प्रयोग मुख्यतः होता रहा। इसी बीच १८२६ ई० में पादरी एम० टी० आदम का महत्वशाली कोश भी सामने आया, जो—जैसा प्रथम संस्करण

की भूमिका के पृ० १ में बताया गया है—'हिंदी कोश के नाम से कलकत्ता में प्रकाशित हुआ। इसे नागरी का प्रथम कोश कह सकते हैं जिसमें हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का व्यवहार किया गया। डा० हरकोट्स ने भी 'ए डिक्शनरी इंग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी' बनाई थी। मद्रास के डा० हैरिस ने बड़े व्यापक पैमाने पर एक हिंदुस्तानी-अंग्रेजी कोश का संपादन-कार्य आरम्भ किया था। वे बहुत काफ़ी कार्य कर भी चुके थे। पर इसके पूर्ण होने से पहले ही वे दिवंगत हो गए। यह बहुत ही प्रामाणिक ग्रंथ था। सामान्य सदस्यों की भी इसमें सहयोजना थी। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें दक्खिनी हिंदी के शब्दों का उपयोग हुआ था।

जान शेक्सपियर ने अपने कोश के निर्माण में इसकी पाहुलियियों का पूर्ण उपयोग किया। उन्हें इसका हस्तलेख मिला था इंडिया हाउस के आफिस में। इसके शब्दों और अर्थों के सकलन में डा० हैरिस ने भारतीय विद्वानों की पूरी सहायता ली थी।

इसके आधार पर और सकलित भाग का पूर्ण उपयोग करते हुए अपने कोशों का शेक्सपियर ने परिवर्धित संस्करण १८४८ ई० में और दूसरा सशोधित संस्करण १८६१ ई० में प्रकाशित कराया। इस विशाल शब्दकोश के दोनों अंशों में बहुत परिवर्धन सशोधन हुआ। दोनों अंश 'हिंदुस्तानी ऐंड इंग्लिश डिक्शनरी' तथा 'इंग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी डिक्शनरी' एक साथ प्रकाशित किए गए। यह शब्दकोश विशेष महत्व का है। इसमें सबसे पहले रोमन वर्णों द्वारा शब्दनिर्देशन है, तदनंतर यथा, एस् = संस्कृत, एच् = हिंदी या हिंदुस्तानी, पी = फारसी संकेतों द्वारा कोश के शब्द से संबद्ध मूलभाषास्रोत का निर्देश हुआ है और हिंदी, हिंदुस्तानी, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, पुर्तगाली, तुर्की, ग्रीक, लातिन, तामिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड, बंगला, मराठी, गुजराती आदि के संकेत हैं। तदनंतर फारसी में कोशशब्द यथास्थान दिए हुए हैं। यदि आवश्यक हुआ तो नागरी रूप भी दिया गया है। रोमन में फिर वही शब्द है और अंत में अंग्रेजी पर्याय।

इसी युग में डकन फोर्ब्स का कोश—'डिक्शनरी हिंदुस्तानी' (१८४८ ई०) का भी प्रकाशन किया गया। इसमें कोशशब्दों को फारसी और रोमन में तथा अर्थपर्याय अंग्रेजी में दिया गया है।

'ए न्यू हिंदुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी' का फैलन ने बड़े अंश के साथ संपादन किया और उसे प्रकाशित कराया। उसका महत्व इस वर्ग के काशों में सर्वाधिक माना गया। आधुनिक कोशविद्या की पद्धति से निर्मित यह ऐसा कोश है जिसमें पर्यायवाची शैली का भी योग है। इसमें उदाहरण एक और तो हिंदुस्तानी साहित्य से गृहीत हैं दूसरी ओर लोकगीतों के उदाहरण भी दिए गए हैं। इतना ही नहीं, बोलचाल की भाषा और महिलाओं की शुद्ध बोलियों का पहली बार उदाहरण के रूप में यहाँ उपयोग किया गया है। हिंदुस्तानी शब्दों के अर्थों को बोलचाल की भाषा से ही सकलित करके देने का प्रयास हुआ है। व्युत्पत्तिमूलक अर्थों को पुराने रूपों के आधार पर दिया गया है और कुछ हिंदी शब्दों के धातुओं का भी निर्धारण हुआ है। यह कोश व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है तथा उदाहरणों और तदाधारित अर्थनिर्देश की दृष्टि से भी अत्यंत महत्व रखता है। इसका कारण यह

है कि इसमें बोलचाल की भाषा का मथन और निकट से सूक्ष्मदर्शन किया गया है। इन्होंने इंग्लिश हिंदुस्तानी का भी कोश तैयार किया। इन कोशों का विवरण संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है।

गिलफ्राइस्ट की हिंदुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी, जो अपनी प्राचीनता के कारण बड़े महत्व की है, १७८६ में बनी थी। इसमें भूमिका देने के अलावा भाषासंबन्धी कुछ आवश्यक बातें तथा युद्ध की कहानियाँ भी सङ्गृहीत हैं। सज्ञा, सर्वनाम, क्रियाविशेषण, अव्यय आदि के शब्द हैं। इसमें संस्कृत तत्सम शब्दों को छोड़ दिया गया है परन्तु तद्भव, देशज एवं भारत में प्रचलित अरबी फारसी के शब्दों को ले लिया गया है। रोमन वर्णमाला के अनुसार शब्दक्रम है। शब्दों की व्याख्या कम की गई है और अंग्रेजी पर्याय अधिक हैं।

जे० टी० थामसन ने दो शब्दकोश—(१) उर्दू और अंग्रेजी तथा (२) हिंदी और अंग्रेजी—बनाए। फ्रांसिस ग्लेडविड ने परशियन, हिंदुस्तानी और अंग्रेजी की डिक्शनरी निमित्त की। जे० डी० वेट्स ने ए डिक्शनरी ऑफ हिंदी लैंग्वेज (१८७५ ई० में) बनाई।

कैप्टन टेलर का शब्दकोश (हिंदुस्तानी अंग्रेजी) बना था अपने व्यक्तिगत उपयोग के निमित्त। हुटर ने उसी का आधार लेकर विस्तृत कोश बनाया था। कोशकार के कथनानुसार उसका शब्दसंकलन जनता से हुआ था। संस्कृत के तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों के साथ साथ अरबी, फारसी, ग्रीक, अंग्रेजी, पुर्तगाली के तद्भव शब्द भी और कभी कभी तत्सम और देशज शब्द भी उसमें लिए गए हैं। दक्खिनी हिंदी और बंगाली के शब्द भी नहीं छोड़े गए हैं। शब्दों की वंशवृक्ष और भूगोलमूलक भिन्नताओं का स्थान स्थान पर संकेत भी किया गया है। रीति रिवाजों का भी अनेक स्थानों पर काफी विवरण मिलता है। कुछ व्यक्तिवाचक सज्ञाओं के प्रयोग में पौराणिक और प्राचीन कथाओं का वर्णन भी मिल जाता है।

१८१७ में निमित्त शेक्सपियर की हिंदुस्तानी-अंग्रेजी डिक्शनरी में पर्याप्त शब्दों की व्युत्पत्ति देने का प्रयत्न लक्षित होता है। शब्दों के पूर्व ही संकेताक्षरों द्वारा भाषाओं का निर्देश हुआ है। शब्दक्रम की योजना में फारसी लिपिमाला का अनुसरण है परन्तु संस्कृत से व्युत्पन्न शब्द नागरी लिपि में हैं। इस कोश के अनेक संस्करण हुए। चतुर्थ संस्करण में दक्खिनी भाषा के अनेक कवियों से भी शब्द संकलित हुए हैं।

इन कोशों की रचना में धर्मप्रचार के अतिरिक्त मुख्य उद्देश्य था विदेशी शासन के अधिकारी वर्ग को भारतीय भाषा सिखाना। अतः शब्दसंकलन के क्रम में बोलचाल के शब्दों को इन कोशकारों ने प्रमुखता दी और अप्रचलित या अल्पप्रचलित तत्सम या तद्भव शब्दों के अनावश्यक संकलन से कोशकलेवर को विस्तार से बचाने का उन्होंने प्रयत्न किया। हिंदुस्तानी के इन कुछ कोशों में अधिकतम उर्दू शब्दों का प्राधान्य है और वेट्स तथा एकाध और कोशकारों के कोशों को छोड़कर प्रायः सबसे शब्द-क्रम-योजना का आधार फारसी वर्णमाला है। फोर्ब्स के कोश में चूँकि मुख्य रूप से बोलचाल की भाषा का आधार गृहीत हुआ था, अतः जॉन टी० फोर्ब्स ने उर्दू और हिंदी के सामान्य शब्दों में प्रयुक्त शब्दों के संकलन

ध्यान दिया। पादरियो और अंग्रेजी शासकों ने निश्चय हिंदी या हिंदुस्तानी के एकभाषी, द्विभाषी, कोशों और नवीन कोश रचना-पद्धति का प्रवर्तन किया। लल्लू जी लाल जैसे लोगों ने भी त्रिभाषी कोश बनाए। श्रीराधेलाल का शब्दकोश (१८७३ ई०), पादरी वेट्स का काश (१८७५ ई० में) प्रकाशित हिंदीकोश और मु० दुर्गाप्रसाद का अंग्रेजी उर्दू कोश (१८६० ई०) —इस दिशा के अनवरत चलते रहनेवाले प्रयास के उदाहरण हैं। १८७३ ई० से लेकर और उन्नीसवीं शती के अंत तक—भारत और बाहर (पेरिस आदि में) इस दिशा के कार्यों का सिंहावलोकन प्रथम संस्करण की भूमिका (पृ० १२) में दिया गया है। अतः यहाँ इतना ही कहना है कि हिंदी के नव-कोशों की आद्य रचना और प्रेरणा—पश्चिम के कोशकारों द्वारा ही प्राप्त हुई। फलतः हिंदी ही नहीं, उसकी बोलियों के भी अनेक कोश बने। ब्रजभाषा का कदाचित् सर्वप्रसिद्ध कोश है श्री द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी द्वारा निमित्त—शब्दार्थपारिजात। सूर-ब्रजभाषा-कोश भी डा० टडन ने बनाया है। अवधी का प्रसिद्ध नवकोश—श्री रामाज्ञा द्विवेदी द्वारा संपादित कराकर हिंदुस्तानी एकाडमी ने प्रकाशित किया है। उदयपुर से इधर एक विशाल राजस्थानी संवद कोश भी प्रकाश में आ रहा है। इसी प्रकार मैथिली कोश भी प्रकाशित हो चुका है।

## हिंदीतर भाषाओं में कोश

### (क) द्रविड भाषाएं

भारतीय हिंदीतर भाषा के कोशों का निर्माण भी प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक बराबर चल रहा है।

तमिल भाषा में कोशनिर्माण की परंपरा बहुत प्राचीन रही जाती है। उनका प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ 'तालकाप्पियम्' कहा जाता है। उसी व्याकरण ग्रंथ में ग्रंथकार ने सूत्र शैली में शब्दकोश तैयार किया था। ग्रंथ के लेखक ने तमिल भाषा के शब्दों को चार वर्गों में विभक्त किया है—(१) सामान्य देशी शब्द, (२) साहित्यिक शब्द, (३) विदेशी भाषाओं से व्युत्पन्न शब्द और (४) संस्कृत से व्युत्पन्न शब्द। इसमें शब्दसंग्रह वर्णानुक्रम से रखा गया है। इसका प्रकाशन यद्यपि अष्टादशवीं शताब्दी का है तथापि इसकी रचना ईसा की प्रथम द्वितीय शताब्दी में बताई जाती है। तमिल का दूसरा कोश 'तिवाकरम्' है। १२ खंडों का यह कोश अमरकोश के आधार पर बना है। इसमें दस खंडों में वगमूलक शब्दसंक्षेप हैं, ११वाँ खंड नानार्थ शब्दों का और १२वाँ समूहवाचक शब्दों का है।

१६७६ ई० में प्रथम तमिल-पुर्तगाली-कोश बना और १७१० ई० में फादर वेशली ने पूर्णतः अकारादि क्रम पर निमित्त 'कतुर अकाराति' नामक कोश तैयार किया। तमिल का प्रथम अंग्रेजी कोश लुथर के अनुयायी धर्मप्रचारकों द्वारा १७७६ ई० में 'मलाबार ऐंड इंग्लिश डिक्शनरी' नाम से प्रकाशित हुआ। उसी का दूसरा संस्करण संशोधित रूप से तमिल में 'इंग्लिश डिक्शनरी' के नाम से १८०६ ई० में मुद्रित हुआ। १८२१ ई० में एक त्रिभाषी कोश (अंग्रेजी, तेलुगु और तमिल) का प्रकाशित हुआ। इनकी रचना में अनेक तमिल कोश बनते हैं।

और कोशों की संपन्न परंपरा है। मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा तमिल का एक विशाल कोश तैयार हुआ है जो अनेक जिल्लों में प्रकाशित है। इसकी शब्दयोजना तमिल वर्णमाला के अनुसार है। इसकी भूमिका में तमिल-कोश-परंपरा के विकास का विस्तृत विवरण दिया गया है।

इनके अतिरिक्त प्राचीन और अर्वाचीन कालों में अनेक तमिल कोश निर्मित हुए। इनमें अनेक नवीन कोश ऐसे हैं जिनमें तमिल में अर्थ दिया गया है, कुछ में अंग्रेजी द्वारा शब्दार्थ बताया गया है—जैसे 'तमिल लेक्सिकन' और कुछ नए कोश ऐसे भी हैं जिनमें भारतीय भाषाओं का अर्थवोधन के लिये आश्रय लिया गया है। इन्हीं में एकाध तमिल हिंदी कोश भी है।

दक्षिण की अन्य द्रविड भाषाओं में भी १९वीं शती के पूर्वार्ध से ही कोशों की रचना चली आ रही है। इन भाषाओं में आज अनेक उत्तम और विशाल कोश प्रकाशित हैं या हो रहे हैं। तेलगू के त्रिभाषी कोश की ऊपर चर्चा हुई है। चार्ल्स फिलिप्स ब्राउन द्वारा १८५२ ई० में अंग्रेजी तेलगू कोश निर्मित होकर छपा गया। ए तेलगू-इंग्लिश डिक्शनरी का १९०० ई० में निर्माण पी० शकरनारायण ने किया। १९१५ ई० में आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस से भी एक तेलगू कोश प्रकाशित किया गया। विलियम ऐंडर्सन ने इससे भी बहुत पहले ही, अर्थात् १८१२ ई० में अंग्रेजी-मलयालम का कोश बनाया था। जान गैरेट का अंग्रेजी कर्नाटकी (कनारी) कोश १८६५ ई० में प्रकाशित हुआ। बाद में भी एफ० कितल द्वारा संपादित (१८६४ ई० में) कन्नड का भी एक कोश छपा।

### (ख) आर्यभाषाएँ

हिंदी के अतिरिक्त आधुनिक आर्यभाषाओं के कोशों में बँगला और मराठी का कोशसाहित्य कदाचित् प्रत्यत संपन्न कहा जा सकता है। इन भाषाओं के अलावा अन्य आर्यभाषाओं में भी आधुनिक कोशों की कमी नहीं है। पंजाबी में बहुत से पुराने कोश हैं। उडिया, गुजराती, नेपाली, काश्मीरी, असमिया आदि में भी कोश बने हैं। पर बँगला, मराठी और पंजाबी की चर्चा ही यहाँ उदाहरण रूप में की जा रही है।

### बँगला कोश

बँगला के कोशों की परंपरा—बँगला भाषा का विकास होने के बाद से—बराबर चल रही है। आधुनिक ढंग के कोशों में प्रकृति-वाद अभिधान नामक विशाल बँगला कोश उल्लेखनीय है जिसका संपादन राधाकमल विद्यालंकार ने किया। १८११ ई० में यह प्रकाशित हुआ। यह शब्दकोश वस्तुतः संस्कृत बँगला शब्दकोश है। इसका पूर्णतः परिशोधित और परिवर्धित संस्करण १९११ ई० में श्रीशरच्चंद्र शास्त्री द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हुआ। इसका पण्डित संस्करण तक देखने को मिला है। कदाचित् इससे भी पहले बँगला पुर्तगाली डिक्शनरी बन चुकी थी। पादरी मेनुअल ने बँगला व्याकरण के साथ बँगला-पुर्तगाली तथा पुर्तगाली-बँगला कोश (संभवतः) बनाए थे। कहा जाता है कि रामपुर के पादरी केरे साहब ने

१८२५ ई० बहुत विशाल बँगला-इंग्लिश कोश बनाया था। ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से १८३३ ई० में बँगला संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी तैयार करवाई गई थी। हाउटर और रामकमल सेन का 'बँगला-इंग्लिश कोश' भी अत्यंत प्रसिद्ध है। पादरी केरे के बँगला अंग्रेजी कोश में ८०००० शब्द थे। इनके अतिरिक्त भी अनेक छोटे बड़े बँगला अंग्रेजी कोश भी बने। केवल बँगला लिपि और भाषा में ही जार्ज-मोहन दास का बँगला भाषापर अभिधान (द्वितीय संस्करण १९२७) और पाँच जिल्लोंवाला हरिचरण बच्चोपाध्याय द्वारा निर्मित वगीय शब्दकोश दोनों उत्कृष्ट रचनाएँ मानी जाती हैं। बँगला में उन्नीसवीं शताब्दी से आज तक छोटे बड़े शब्दकोशों के निर्माण की परंपरा चली आ रही है। छठे कोशों में चलतिका अत्यंत लोकप्रिय है। सैकड़ों अन्य कोश भी आज तक रचे गए और प्रकाशित हो चुके हैं। श्री योगेशचंद्र राय का बँगला शब्दकोश भी प्रसिद्ध रचना है। इस ग्रंथ में अनेक आधुनिक और सहायक ग्रंथों की चर्चा है। उनमें बँगला से सबद्ध निम्नांकित कोशों के नाम उपलब्ध हैं—

- (१) डिक्शनरी ऑफ़ बंगाली लैंग्वेज (स० केरे-१८२५ ई०)
- (२) ए डिक्शनरी ऑफ़ बंगाली लैंग्वेज (स० जॉन सी० मार्श-मैन—१८२७ ई०)
- (३) बंगाली वोर्कबुकलरी (स० एच० पी० फास्टर-१७९६ ई०)
- (४) बंगाली वोर्कबुकलरी (मोहनप्रसाद ठाकुर—१८१० ई०)
- (५) डिक्शनरी ऑफ़ बंगाली लैंग्वेज (स० डब्ल्यू० मार्टन—१८२८ ई०)
- (६) ए डिक्शनरी ऑफ़ बंगाली ऐंड इंग्लिश (स० ताराचंद चक्रवर्ती—१८२७ ई०)

(७) शब्दसिंधु (अमरकोश के संस्कृत शब्दों की आकारादिवर्णा-नुक्रमानुसार योजना तथा बँगला व्याख्या—१८०८ ई०)

ग्लासरी ऑफ़ जुडिशल ऐंड रेवेन्यू टर्म्स नामक जानसन के अंग्रेजी बँगला कोश का टाइट संस्करण १८३४ ई० में प्रकाशित हुआ एच० एच० विलसन का जो कोश १८५५ ई० में प्रकाशित हुआ उसमें अरबी फारसी हिंदी, हिंदुस्तानी, उडिया, मराठी, गुजराती, तेलगू, कर्नाटकी (कनारी), मलयालम् आदि के साथ साथ बँगला के शब्द भी थे। श्रीतारानाथ का शब्दस्तोममहानिधि भी अच्छा कोश कहा जाता है।

### मराठी कोश

मराठी भाषा में कोशनिर्माण की परंपरा संभवतः उस यादवकाल से प्रारंभ होती है जब महाराष्ट्री प्राकृत के अनंतर आधुनिक मराठी का स्वतंत्र भाषा के रूप में विकास हुआ और वह प्रौढ़ हो गई। उस युग में कुछ कोश बनाए गए थे। हेमाद्रि पंडितों द्वारा रचित अनेक कोशों का उल्लेख मिलता है। सत ज्ञानेश्वर ने अपनी कृति ज्ञानेश्वरी के विलुप्त शब्दों की—अकारादि क्रम से अनुक्रमणिका बनाते हुए उसी के साथ सरल मराठी में पर्याय शब्द दिए हैं। उसी के द्वारा मराठी में सबद्ध १२वीं शती के उन कोशों का संकेत मिलता है जो आज अनुपलब्ध हैं। शिवाजी द्वारा भी उनके समय में 'राजः



व्यवहार-कोश' बना था जिसमें मराठी, फारसी और संस्कृत—तीनों भाषाओं की सहायता ली गई थी। रघुनाथ पंडितराव द्वारा ३८४ पृष्ठों का यह छंदोवद्ध कोश ऐसा विभाषी कोश है जो अपने ढंग का विशेष कोश कहा जा सकता है। संस्कृत और फारसी के भी अर्थवर्णायसूचक ऐसे कोश संस्कृत माध्यम से मुगल शासनकाल में बने थे।

आगे चलकर पाश्चात्यो के संपर्क और प्रभाव से 'मराठी इंगलिश' के अनेक कोश बने। चीफ कैप्टन गोल्सवर्थ ने अंग्रेजी-मराठी का एक विशाल कोश १८३१ ई० में बनाया था। थॉमस कैंडी के सहयोग से उस कोश के सशोधित और परिवर्धित अनेक संस्करण छपे। मराठी के इन कोशों की परंपरा १९वीं शताब्दी के आरंभ से अवतक चली आ रही है। कोशों की दृष्टि से मराठी भाषा अत्यंत संपन्न है। अंग्रेजी कोशों में केरी, बर्नल केनेडी और गोल्सवर्थ कैंडी के मराठी इंगलिश कोश महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त १९वीं शती के कुछ प्रमुख मराठी कोश हैं—(१) महाराष्ट्र भाषे चा कोश ( इसके प्रथम भाग का प्रकाशन १८२६ ई० से आरंभ हो गया था ), (२) रघुनाथ भास्कर गाडवोले का हसकोश ( १८६३ ई० ), ( ३ ) वोडकर का रत्नकोश ( १८६६ ई० ) और (४) मराठी भाषा का नवीन कोश ( १८६० ई० )। बीसवीं सदी के कोशों में—वा० गो० आष्टे का—मराठी शब्दरत्नाकर और विद्याधर का सरस्वती कोश अधिक प्रसिद्ध है। सामान्य शब्दार्थ कोशों के अतिरिक्त मराठी-व्युत्पत्तिकोश ( कृष्णाजी पाटुरंग कुलकर्णी—१९४६ ई० ) अत्यंत प्रसिद्ध व्युत्पत्तिकोश है। इसमें मराठी भाषा का पूर्ण प्रयोग हुआ है। मराठी में विश्वकोश, लोकोक्तिकोश, वाक्संप्रदायकोश, (अनेक) ज्ञानकोश और शब्दार्थकोश हैं। गोविंदराव काले का एक पारिभाषिक शब्दकोश भी है जिसमें अंग्रेजी सैनिक शब्दों का शब्दार्थ संग्रह मिलता है। मराठी हिंदी कोश भी अनेक बने हैं। इनमें कुछ उत्तम कोटि के भी कोश हैं।

### पंजाबी, काश्मीरी, नेपाली

लोदियन मिशन द्वारा १८५४ ई० में पंजाबी शब्दकोश बना था जिसमें गुरुमुखी और रोमन में मूल शब्द थे तथा अंग्रेजी में अर्थ था। इसके बाद पंजाबी कोशों का सिलसिला चलता है तथा पंजाबी के कोश बनने लगे।

इधर २०वीं शती में भाई विशनदास पुरी के संपादकत्व में प्रकाशित (१९२२ ई०) और पंजाब सरकार के भाषा विभाग, पटियाला से प्रकाश्यमान पंजाबी कोश अत्यंत महत्व के हैं। द्वितीय कोश कदाचित् पंजाबी का सर्वोत्तम कोश है।

काश्मीरी भाषा के अपने मैनुअल में डा० ग्रियर्सन ने व्याकरण बनाया और फ्रेजवुक के साथ साथ शब्दकोश भी संपादित (१९३२ ई०) किया था। इसके मूलवर्त ईश्वर कोल थे और सभवत १८६० ई० के पूर्व इसकी रचना हुई चुकी थी। इसका पूर्व भी १८८५ ई० में इस दिशा का कुछ कार्य हो चुका था। टर्नर की नेपाली दिक्शनरी यद्यपि बहुत बाद की है, तथापि उसमें कोशविज्ञान और भाषा-विज्ञान का विनियोग जिस महत्ता के साथ हुआ है वह अत्यंत प्रशंसनीय है।

### उर्दू कोश

उन उर्दू के कोशों की चर्चा ऊपर हुई है जिन्हें विदेशियों ने बनाया। हिंदी या हिंदुस्तानी कोशों के साथ या इनका मिश्रित रूप ही प्रायः रहा। कभी कभी वे अलग भी थे। इनके पूर्व और बाद में बहुत से ऐसे कोश भी बने जो फारसी लिपि में निमित्त थे। इनमें फरहगे अस-फिया, तख्मीस्सुल्गुनात, लुगात विसोरी अधिक महत्व के और प्रसिद्ध माने जाते हैं। नतवत इनमें हिंदी के शब्दों की संख्या बहुत ज्यादा है। पर लिपिभेद के कारण हिंदी मात्र जाननेवाले इनका उपयोग और प्रयोग नहीं कर पाते। 'फरहगे-ए-इस्तिलाहात—वस्तुतः मौ० अब्दुलहक की योजना और प्रेरणा से रचित उर्दू का विशाल कोश है। इनके अतिरिक्त भी अमीर मीनाई का अमीरुल् लुगात तथा फरीमुल् लुगात उर्दूकोशों में प्रसिद्ध हैं। श्रीरामचंद्र वर्मा, श्रीहरिश्चकर शर्मा आदि ने नागरी लिपि में भी कोश बनाए। उत्तर प्रदेश सरकार ने महाह द्वारा संपादित उर्दू हिंदी कोश प्रकाशित किया है जिसे अच्छा कोश कहा जाता है।

गुजराती, उडिया, और असमिया में भी अनेक आधुनिक कोश बन चुके हैं और निरंतर बनते जा रहे हैं। नवजीवन प्रकाशन मंदिर का सार्थ गुजराती मजराणी कोश, तथा शापुरजी दरालजी का गुजराती इंग्रेजी कोश प्रसिद्ध हैं। असमिया में १८३७ ई० में ब्राउन्सन (अमेरिकी मिशनरी) ने असमिया-इंग्लिश डिक्शनरी बनाई थी। हेमचंद्र बरुआ द्वारा निमित्त 'असमिया-अंग्रेजी कोश', विशेष प्रसिद्ध है। उडिया में भी ऐसे अनेक कोश बन चुके हैं। कहने का सारांश यह है कि भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में आधुनिक कोशों की प्रेरणा पाश्चात्यो से मिली और भारतीयों ने उस कार्य को निरंतर आगे बढ़ाने में योगदान किया।

### आधुनिक कोश की विधाएँ :

आधुनिक कोशरचना के विविध प्रकारों की संक्षिप्त चर्चा यहाँ अनावश्यक न होगी। वर्तमान युग में कोशविद्या को अत्यंत व्यापक परिवेश में विकसित किया। सामान्य रूप से उसकी दो मोटी मोटी विधाएँ कही जा सकती हैं—(१) शब्दकोश और (२) ज्ञानकोश। शब्दकोश के स्वरूप का बहुमुखी प्रवाह निरंतर प्रौढता की ओर बढ़ता लक्षित होता रहा है। आज की कोशविद्या का विकसित स्वरूप भाषा-विज्ञान, व्याकरणशास्त्र, साहित्य, अर्थविज्ञान, शब्दप्रयोगीय, ऐतिहासिक विकास, सदर्थसापेक्ष अर्थविकास और नाना शास्त्रों तथा विज्ञानों में प्रयुक्त विशिष्ट अर्थों के बौद्धिक और जागरूक शब्दार्थ सकलन का पुजीकृत परिणाम है।

### शब्दकोश

हमारी परिचित भाषाओं के कोशों में आक्सफोर्ड-इंग्लिश-डिक्शनरी के परिशीलन में उपर्युक्त समस्त प्रवृत्तियों का उत्कृष्ट निदर्शन देखा जा सकता है। उसमें शब्दों के सही उच्चारण का संकेत-चिह्नो से विशुद्ध और परिनिष्ठित बोध भी कराया है। योरप के उन्नत और समृद्ध देशों की प्रायः सभी भाषाओं में विकसित स्तर की कोशविद्या के आधार पर उत्कृष्ट, विशाल, प्रामाणिक और संपन्न कोशों का निर्माण हो चुका है और उन देशों में कोशनिर्माण के लिये ऐसे स्थायी संस्थान प्रतिष्ठापित किए जा चुके हैं जिनमें अबाध गति से सर्वदा कार्य चलता

रहता है। लघुप्रतिष्ठ और बड़े बड़े विद्वानों का सहयोग तो उन संस्थानों को मिलता ही है, जागरूक जनता भी सहयोग देती रहती है। अंग्रेजी डिक्शनरी तथा अन्य भाषाओं में निमित्त कोशकारों के रचना-विधान-मूलक वैशिष्ट्यों का अध्ययन करने से अद्यतन काल में निम्ननिर्दिष्ट बातों का अनुयोग आवश्यक लगता है—

(क) उच्चारणसूचक सकेतचिह्नों के माध्यम से शब्दों के स्वरों व्यंजनो का पूर्णतः शुद्ध और परिनिष्ठित उच्चारण स्वरूप बताना और स्वराघात बलाघात का निर्देश करते हुए यथासंभव उच्चार्य अक्षरों की वद्धता और शब्दवद्धता का परिचय देना, (ख) व्याकरण-संबद्ध उपयोगी और आवश्यक निर्देश देना, (ग) शब्दों की इतिहास-संबद्ध वैज्ञानिक व्युत्पत्ति प्रदर्शित करना, (घ) परिवार-संबद्ध अथवा परिवारमुक्त निकट या दूर के शब्दों के साथ शब्दरूप और अर्थरूप का तुलनात्मक पक्ष उपस्थित करना, (ङ) शब्दों के विभिन्न और पृथक्कृत नाना अर्थों को अधिक-न्यून-प्रयोग क्रमानुसार सूचित करना, (च) अप्रयुक्त शब्दों अथवा शब्दप्रयोगों की विलोपसूचना देना, (छ) शब्दों के पर्याय बताना, और (ज) सगत अर्थों के समर्थनार्थ उदाहरण देना, (झ) चित्रों, रेखाचित्रों, मानचित्रों आदि के द्वारा अर्थ को अधिक स्पष्ट करना। 'आधुनिक कोश की सीमा और स्वरूप' उपशीर्षक के अन्तर्गत इन बातों की कुछ विस्तृत चर्चा की गई है।

'आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' का नव्यतम और वृहत्तम संस्करण आधुनिक कोशविद्या की प्रायः सभी विशेषताओं से संपन्न है। पर भारतीय भाषाओं के कोशों में अभी उपर्युक्त समस्त सामग्री का पुष्ट एकत्रीकरण नहीं हो पाया है। नागरीप्रचारिणी सभा के हिंदी शब्दसागर के अतिरिक्त हिंदी साहित्य समेलन द्वारा प्रकाशमान मानक शब्दकोश (जिसके चार खंड प्रकाशित हो चुके हैं) एक विस्तृत आयाम है। हिंदी कोशकला के लघुप्रतिष्ठ संपादक श्रीरामचंद्र वर्मा के इस प्रशंसनीय कार्य का उपजीव्य भी मुख्यतः शब्दसागर ही है। उसका मूल कलेवर तात्त्विक रूप में शब्दसागर से ही अधिकांशतः परिकल्पित है। हिंदी के अन्य कोशों में भी अधिकांश सामग्री इसी कोश से ली गई है। थोड़े बहुत मुख्यतः संस्कृत कोशों से और यदा कदा अन्यत्र से शब्दों और अर्थों को आवश्यक रूप में ठूस दिया गया है। ज्ञानमंडल के बृहद् हिंदी शब्दकोश में पेटेवाली प्रणाली शुरू की गई है। परंतु वह पद्धति संस्कृत के कोशों में जिनका निर्माण पश्चिमी विद्वानों के प्रयास से आरम्भ हुआ था, सैकड़ों वर्ष पूर्व से प्रचलित हो गई थी। पर आज भी, नव्य या आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोश उस स्तर तक नहीं पहुँच पाए हैं जहाँ तक आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी अथवा रूसी, अमेरिकन, जर्मन, इतालवी, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के उत्कृष्ट और अत्यंत विकसित कोश पहुँच चुके हैं।

कोशरचना की ऊपर वर्णित विधा को हम साधारणतः सामान्य भाषा शब्दकोश कह सकते हैं। इस प्रकार शब्दकोश एकभाषी, द्विभाषी, त्रिभाषी और बहुभाषी भी होते हैं। बहुभाषी शब्दकोशों में तुलनात्मक शब्दकोश भी यूरोपीय भाषाओं में ऐतिहासिक और

तुलनात्मक भाषाविज्ञान की प्रौढ़ उपलब्धियों से प्रमाणीकृत रूप में निमित्त हो चुके हैं। इनमें मुख्य रूप से भाषावैज्ञानिक अनुशीलन और शोध के परिणामस्वरूप उपलब्ध सामग्री का नियोजन किया गया है। ऐसे तुलनात्मक कोश भी आज बन चुके हैं जिनमें प्राचीन भाषाओं की तुलना मिलती है। ऐसे भी कोश प्रकाशित हैं जिनमें एक से अधिक मूल परिवार की अनेक भाषाओं के शब्दों का तुलनात्मक परिशीलन किया गया है।

शब्दकोशों के और भी नाना रूप आज विकसित हो चुके हैं और हो रहे हैं। वैज्ञानिक और शास्त्रीय विषयों के सामूहिक और तत्तद-विषयानुसारी शब्दकोश भी आज सभी समृद्ध भाषाओं में बनते जा रहे हैं। शास्त्रों और विज्ञानशाखाओं के पारिभाषिक शब्दकोश भी निमित्त हो चुके हैं और हो रहे हैं। इन शब्दकोशों की रचना एक भाषा में भी होती है और दो या अनेक भाषाओं में भी। कुछ में केवल पर्याय शब्द रहते हैं और कुछ में व्याख्याएँ अथवा परिभाषाएँ भी दी जाती हैं। विज्ञान और तकनीकी या प्राविधिक विषयों से संबद्ध नाना पारिभाषिक शब्दकोशों में व्याख्यात्मक परिभाषाओं तथा कभी कभी अन्य साधनों की सहायता से भी विलकुल सही अर्थ का बोध कराया जाता है। दर्शन, भाषाविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान और समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि समस्त आधुनिक विद्याओं के कोश विश्व की विविध संपन्न भाषाओं में विशेषज्ञों की सहायता से बनाए जा रहे हैं और इस प्रकृति के सैकड़ों हजारों कोश भी बन चुके हैं। शब्दार्थकोश संबंधी प्रकृति के अतिरिक्त इनमें ज्ञानकोशात्मक तत्वों की विस्तृत या लघु व्याख्याएँ भी समिश्रित रहती हैं। प्राचीन शास्त्रों और दर्शनों आदि के विशिष्ट एवं पारिभाषिक शब्दों के कोश भी बने हैं और बनाए जा रहे हैं। इनके अतिरिक्त एक एक ग्रंथ के शब्दार्थ कोश (यथा मानस शब्दावली) और एक एक लेखक के साहित्य की शब्दावली भी योरप, अमेरिका और भारत आदि में सकलित हो रही है। इनमें उत्तम कोटि के कोशकारों ने ग्रंथसदृशों के संस्करणात्मक सकेत भी दिए हैं। अकारादि वर्णानुसारी अनुक्रमणिकात्मक उन शब्दसूचियों का—जिनके अर्थ नहीं दिए जाते हैं पर सदमंसकेत रहता है—यहाँ उल्लेख आवश्यक नहीं है। योरप और इंगलैंड में ऐसी शब्दसूचियाँ अनेक बनीं। शेक्सपियर द्वारा प्रयुक्त शब्दों की ऐसी अनुक्रमणिका परम प्रसिद्ध है। वैदिक शब्दों की और ऋक्संहिता में प्रयुक्त पदों की ऐसी शब्दसूचियों के अनेक सकलन पहले ही बन चुके हैं। व्याकरण महाभाष्य की भी एक एक ऐसी शब्दानुक्रमणिका प्रकाशित है। परंतु इनमें अर्थ न होने के कारण यहाँ उनका विवेचन नहीं किया जा रहा है।

### ज्ञानकोश

कोश की एक दूसरी विधा ज्ञानकोश भी विकसित हुई है। इसके बृहत्तम और उत्कृष्ट रूप को इन्साइक्लोपिडिया कहा गया है। हिंदी में इसके लिये विश्वकोश शब्द प्रयुक्त और गृहीत हो गया है। यह शब्द बँगला विश्वकोशकार ने कदाचित् सर्वप्रथम बँगला के ज्ञानकोश के लिये प्रयुक्त किया। उसका एक हिंदी संस्करण हिंदी विश्वकोश के नाम से नए सिरे से प्रकाशित हुआ। हिंदी में यह शब्द प्रयुक्त होने लगा है। यद्यपि हिंदी के प्रथम किशोरोपयोगी

ज्ञानकोश (अपूर्ण) को श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा प० कृष्ण वन्मन्निदेवी द्वारा विश्वभारती अभिधान दिया गया तो भी ज्ञान कोश, ज्ञानदीपिका, विश्वदर्शन, विश्वविद्यालयमंडार आदि सजाओ का प्रयोग भी ज्ञानकोश के लिये हुआ है। स्वयं सरकार भी बालशिक्षोपयोगी ज्ञानकोशात्मक ग्रंथ का प्रकाशन 'ज्ञाननरोवर' नाम से कर रही है। परंतु इन्माइक्लोपीडिया के अनुवाद रूप में विकास शब्द ही प्रचलित हो गया। उडिया के एक विश्वकोश का नाम शब्दार्थानुवाद के अनुसार ज्ञान मंडल रखा भी गया। ऐसा लगता है कि बृहद् परिवेश के व्यापक ज्ञान का पारिभाषिक और विशिष्ट शब्दों के माध्यम से ज्ञान देनेवाले ग्रंथ का इन्माइक्लोपीडिया या विश्वकोश अभिधान निर्धारित हुआ और अपेक्षा-कृत लघुनरकोशों को ज्ञानकोश आदि विभिन्न नाम दिए गए। अंग्रेजी आदि भाषाओं में बुक आफ नालेज, डिक्शनरी ऑफ जनरल नालेज आदि शीर्षकों के अंतर्गत नाना प्रकार के छोटे बड़े विश्वकोश अथवा ज्ञानकोश बने हैं और आज भी निरंतर प्रकाशित एवं विकसित होते जा रहे हैं। इतना ही नहीं इन्माइक्लोपीडिया आफ रिलीजन ऐंड एथिक्स आदि विषयविशेष से संबद्ध विश्वकोशों की मध्या भी बहुत ही बड़ी है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से निमित्त अनेक सामान्य विश्वकोश और विशेष विश्वकोश भी आज उपलब्ध हैं।

इन्माइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, इन्माइक्लोपीडिया अमेरिकाना अंग्रेजी के ऐसे विश्वकोश हैं। अंग्रेजी के सामान्य विश्वकोशों द्वारा इनकी प्रामाणिकता और समान्यता सर्वस्वीकृत है। निरंतर इनके मशुघित, सर्वाधित तथा परिष्कृत संस्करण निकलते रहते हैं। इन्माइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के दो परिशिष्ट ग्रंथ भी हैं जो प्रकाशित होते रहते हैं और जो नूतन संस्करणों की सामग्री के रूप में सातत्य भाव से मकलित होते रहते हैं। इंग्लैंड में इन्माइक्लोपीडिया के पहले से ही ज्ञानकोशात्मक कोशों के नाना रूप बनने लगे थे।

ज्ञानकोशों के भी इतने अधिक प्रकार और पद्धतियाँ हैं जिनकी चर्चा का यहाँ अवसर नहीं है। चरितकोश, कथाकोश इतिहासकोश, ऐतिहासिक कालकोश, जीवनचरितकोश पुराख्यानकोश, पौराणिक-रूपातपुरुषकोश आदि प्रकार के विविध नामरूपात्मक ज्ञानकोशों की बहुत सी विधाएँ विवर्धित और प्रचलित हो चुकी हैं। यहाँ प्रसंगत ज्ञानकोशों का मकेतात्मक नामनिर्देश मात्र कर दिया जा रहा है। हम इस प्रसंग को यहाँ समाप्त करते हैं और शब्दार्थकोश से संबद्ध प्रकृत विषय की चर्चा पर लौट आते हैं।

### हिंदी कोशों की सीमा और उनके रूप

अद्यतन शब्दकोशों की विवेचनाओं और उनकी विभिन्न विधाओं की चर्चा अत्यंत हुई है। आज के कोशों में भाषावैज्ञानिक, व्याकरणिक और भाषा के ऐतिहासिक स्वरूपों और अर्थरूपों से संबद्ध व्युत्पत्ति-निर्देश और अर्थ विकास-क्रम का कोश में समावेश उमका अत्यंत अनिवार्य अंग हो गया है, यह अत्यंत कहा गया है। भाषा के शब्दों का भाषावाच्य में प्राच्य प्रयोग और क्रमशः तत्परवर्ती प्रयोगों के उदाहरण भी आवश्यक होते हैं। व्युत्पत्ति-मय योगिक और मंड-नाना अर्थों के भी मोदाहरण निर्देश—कोश की प्रामाणिकता सूचित करने के लिये समाविष्ट किए जाते हैं। एक

शब्द के शब्दार्थबोध की प्रयोगनीमा में आनेवाले सूक्ष्म अर्थों की नाना अर्थच्छायाओं का पार्थक्य और विस्तार भी मोदाहरण उपस्थित किया जाता है। शब्द के नाना अर्थों और आवश्यक उदाहरणों द्वारा तत्तदर्थबोधकता का समर्थन भी कोश में रहता है। आवश्यक व्याख्याएँ दी जाती हैं। इन सबके अतिरिक्त आधुनिक प्रयोगों के नव्यतम अर्थों का निर्देश किए बिना कोश पूर्ण और अद्यतन नहीं होता।

शब्दार्थकोश का पूर्ण और नूतनतम रूप ऐसे कोश को ही कहा जा सकता है। परंतु ऐसे कोश संपन्न और विकसित देशों की साधना द्वारा ही बन पाते हैं। इनके अतिरिक्त छोटे बड़े अनेक ऐसे साधारण कोश भी हैं जो पूर्ण साधनों के अभाव में समस्त वैशिष्ट्यों से संपन्न न होकर भी व्यावहारिक उपयोग के लिये बनाए जाते हैं और यथासंभव और यथाशक्ति या आंशिक रूप में उत्कृष्ट कोशों की घटक सामग्रियों से महायता लेते हैं। संभवतः भारत के अधिकांश बड़े कोश भी शब्दार्थकोश की अद्यतनतम पूर्णता से अभी दूर ही हैं। हिंदी के शब्दार्थकोशों में शब्द और अर्थ के प्रयोग और विकाससंबंधी प्रामाणिक उदाहरणों द्वारा ऐतिहासिक क्रम का नियोजन अभी नहीं हो पाया है। इनके अतिरिक्त शब्दों के उच्चारण-संबंधी यथार्थ निर्देश की कमी प्रायः सभी छोटे बड़े हिंदी कोशों में वर्तमान है। प्राचीन राजस्थानी, पिंगल, डिंगल, प्राचीन और मध्यकालीन ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली और दखिनी हिंदी, खड़ी बोली तथा हिंदी प्रदेश के विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित आधुनिक परिनिष्ठित हिंदी के उच्चारणों का निर्देश अत्यंत आवश्यक है। हिंदी पढ़नेवाले हिंदीतर भाषाभाषियों के लिये उच्चारणनिर्देश बिना शुद्ध और सही उच्चारण करना नितान्त कठिन हो जाता है। पर अवतक के बृहत् हिंदी कोशों में, यहाँ तक कि इस हिंदी शब्द-सागर के नवीन संस्करण में उच्चारणनिर्देश की योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी।

इसके अतिरिक्त एक और बड़ी मारी कमी हिंदी कोशों में रह गई है। उसका सर्वेक्ष ऊपर निर्दिष्ट शब्दप्रयोगों के ऐतिहासिक क्रमनिर्देश से है। भाषा में अनेक शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनका पहले तो प्रयोग होता था पर कालपरंपरा में उनका प्रयोग लुप्त हो गया। आज के उत्कृष्ट कोशों में यह भी दिखाया जाता है कि कब उनका प्रयोग आरंभ हुआ और कब उनका लोप हुआ। पर हिंदी कोशों में इनका अभाव है। नागरीप्रचारिणी सभा का यह कोश इस दिशा में थोड़ा प्रयत्नशील है। व्यवहारलुप्त शब्दों के आरंभ और समाप्ति के प्रयोगसंपुक्त ऐतिहासिक क्रम को सूचित किए बिना भी पुरातन-प्रयोग संबंधी सनेत-बोधक चिह्नों के द्वारा लघुप्रयोग शब्दों का निर्देश कर दिया गया है।

इन सब कमियों को दूर करने की ओर कोशनिर्माण में प्रवृत्त संस्थाओं और व्यक्तियों के विचार काम कर रहे हैं। पर अभी साधनाभाव के कारण प्रगति संतोषजनक नहीं है।

व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से सामान्य पाठकों के लिये बने हुए सामान्य कोशों के अतिरिक्त हिंदी में कुछ कोश और हैं जिन्हें हम शब्दार्थकोश मान सकते हैं। इनमें व्याकरणसंबद्ध निर्देश और

प्रचलित अर्थमात्र दिए गए हैं। हिंदी में एकाग्र पर्यायवाची कोश भी बनाए गए हैं। विशिष्ट विषयों के पारिभाषिक शब्दों के अर्थकोश भारत की अनेक भाषाओं और हिंदी में भी बन रहे हैं। इनमें बहुत से ऐसे कोश हैं जो ज्ञानकोश की सीमा के अंतर्गत आ जाते हैं। इनमें विस्तृत व्याख्या और कभी कभी ऐतिहासिक परिचय भी रहता है। परंतु कुछ कोश शब्दार्थ मात्र का बोध कराते हैं कभी पर्यायों द्वारा और कभी सक्षिप्त व्याख्या द्वारा। इस विधा को हम विषय शब्द-कोश कह सकते हैं। इनके अतिरिक्त जैसा ऊपर संकेत किया गया है, विभिन्न कवियों लेखकों के ग्रंथों अथवा विशिष्ट ग्रंथों के भी कोश अर्थसहित बनाए जाते हैं। प्रथम प्रकार के कोशों में हिंदी के सूर अजभाषा कोश (डा० टंडन), प्रसाद वाक्यकोश (श्रीसुधाकर पाठेय) आदि को रखा जा सकता है और द्वितीय कोटि में मानस शब्द कोश आदि को। बड़े शब्दार्थ कोशों में कभी कभी विश्वकोश पद्धति का अनुसरण करते हुए ऐतिहासिक और विवरणत्मक, परिचय भी स्थान स्थान पर दे दिया जाता है। शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्य, हिंदी शब्दसागर आदि इसी प्रकार के शब्दकोश हैं। वेब्स्टर की न्यू इंगलिश डिक्शनरी भी इसी प्रकार का शब्दकोश है जिसमें विश्व कोशीय पद्धति की रचनाशैली बहुत दूर तक अंतर्नियोजित है। यहाँ यह संकेत भी कर देना अनुचित न होगा कि हिंदी के शब्दार्थ कोशों में योगिक, सामासिक शब्दों और लोकोक्तियों, मुहावरों आदि का भी उसी प्रकार अंतर्योग लक्षित होता है जिस प्रकार संस्कृत कोशों अथवा अंग्रेजी कोशों में। क्रियाप्रयोग भी हिंदी शब्दसागर में दिखाए गए हैं। यहाँ अथवा सामान्य कोशों में लोकोक्तियों और मुहावरों का अर्थबोध अथवा क्रियाप्रयोग शब्दविशेष के अंतर्गत दिखाया गया है। परंतु कुछ कोश ऐसे भी बने हैं जो केवल 'लोकोक्तिकोश' या 'मुहावराकोश' कहे जाते हैं।

सामान्य शब्दार्थकोश एकभाषी या अनेकभाषी होते हैं। एकभाषी कोशों में व्याख्यात्मक अर्थकोश होते हैं, पर्यायवाची कोश होते हैं और कभी कभी विपर्यायवाची कोश भी मिल जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि शब्दकोशों की अनेक विधाएँ विकसित हो रही हैं और उनके अनुसार अनेक प्रकार के छोटे बड़े कोश निर्मित होते जा रहे हैं। शब्दानुक्रमिकाओं को जो मात्रशब्दों की अर्थरहित सूचियाँ होती हैं, छोड़ देने पर भी अनेक ग्रंथ के साथ सार्थक शब्दानुक्रमिकाएँ भी मिलती हैं। इन्हें हम ग्रंथविशेष के क्लिष्ट या विरल पदों का शब्दकोश कह सकते हैं।

### आधुनिक कोशविद्या तुलनात्मक दृष्टि

मध्यकालीन हिंदी कोशों की मान्यता और रचनाप्रक्रिया से भिन्न उद्देश्यों को लेकर भारत में कोशविद्या के आधुनिक स्वरूप का उद्भव और विकास हुआ। पाश्चात्य कोशों के आदर्श, मान्यताएँ, उद्देश्य, रचनाप्रक्रिया और सीमा के नूतन और परिवर्तित आयातों का प्रवेश भारत की कोश रचनापद्धति में आरंभ हुआ। संस्कृत और इतर भारतीय भाषाओं में पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों के प्रयास से छोटे बड़े बहुत से कोश निर्मित हुए। इन कोशों का भारत और भारत के

बाहर भी निर्माण हुआ। आरंभ में भारतीय भाषाओं के मुख्यतः संस्कृत के, कोश अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओं के माध्यम से बनाए गए। इनमें संस्कृत आदि के शब्द भी रोमन लिपि में रखे गए। शब्दार्थ की व्याख्या और अर्थ आदि के निर्देश कोश की भाषा के अनुसार जर्मन, अंग्रेजी, फारसी पुर्तगाली आदि भाषाओं में दिए गए। बंगला, तमिल आदि भाषाओं के ऐसे अनेक कोशों की रचना ईसाई धर्मप्रचारकों द्वारा भारत और आसपास के लघु द्वीपों में हुई। हिंदी के भी ऐसे अनेक कोश बने। इनकी चर्चा की जा चुकी है। प्रथम संस्करण की भूमिका में पृष्ठ १-२ पर हिंदी के आधुनिक कोशों की आरंभिक रचना का निर्देश किया गया है। सबसे पहला शब्दकोश संभवतः फरग्युसन का 'हिंदुस्तानी अंग्रेजी' (अंग्रेजी हिंदुस्तानी) कोश था जो १७७३ ई० में लंदन में प्रकाशित हुआ। इन आरंभिक कोशों को हिंदुस्तानी कोश कहा गया। ये कोश मुख्यतः हिंदी के ही थे। पाश्चात्य विद्वानों के इन कोशों में हिंदी को हिंदुस्तानी कहने का कदाचित् यह कारण है कि हिंदुस्तान भारत का नाम माना गया, और वहाँ की भाषा हिंदुस्तानी वही गई। काशविद्या के इन पाश्चात्य पंडितों की दृष्टि में हिंदी का ही अपर पर्याय हिंदुस्तानी था और वहीं सामान्य रूप से हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा थी। पश्चिम में विकसित नूतन पद्धति पर बने हुए संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के कोशों और उनकी उपलब्धियों के वैशिष्ट्य का रूपरेखात्मक परिचय दिया जा चुका है।

भारत की आदिमध्यकालीन कोशविद्या के ऐतिहासिक विकास की रूपरेखा से स्पष्ट हो चुका है कि आरंभिक क्रम में कोशनिर्माण की प्रेरणात्मक चेतना का बहुत कुछ सामान्य रूप भारत और पश्चिम में मिलता जुलता था। भारत का वैदिक निघटु विरल और क्लिष्ट शब्दों के अर्थ और पर्यायों का सक्षिप्त संग्रह था। योरप में भी ग्लासेरिया से जिस कोशविद्या का आरंभिक वीजवपन हुआ था, उसके मूल में भी विरल और क्लिष्ट शब्दों का पर्याय द्वारा अर्थबोध कराना ही उद्देश्य था। लातिन की उक्त शब्दार्थसूची से शर्न शर्न। पश्चिम की आधुनिक कोशविद्या के वैकासिक सोपान आरंभित हुए। भारत और पश्चिम दोनों ही स्थानों में शब्दों के सकलन में वर्गपद्धति का कोई न कोई रूप मिल जाता है। पर आगे चलकर नव्य कोशों का पूर्वोक्त प्राचीन और मध्यकालीन कोशों से जो सर्वप्रथम और प्रमुखतम भेदक वैशिष्ट्य प्रकट हुआ वह था वर्णमालाक्रमानुसारी शब्दयोजना की पद्धति।

इसके अतिरिक्त आधुनिक और पाश्चात्य कोशों की अन्य भेदकताएँ मुख्यतः निम्ननिर्दिष्ट हो सकती हैं—

(१) योरप में विशेष रूप से और भारत में आशिक रूप से— आदिमध्यकालीन कोशकर्म में कठिन शब्दों का सरल शब्दों या पर्यायों द्वारा अर्थज्ञापन होता था। योरप में सामान्यतः एक पर्याय दे दिया जाता था और भारत में वैदिक निघटुकाल से ही पर्यायशब्दों का अर्थबोधकरक एकत्रीकरण होता था। इनमें दुर्बोध और कठिन शब्दों के संग्रह की मुख्य प्रेरणा थी। भारतीय कोशों में बहुपर्याय संग्रह के

कारण अनेक क्लिष्ट शब्दों के साथ पर्यायवाची कोशों में सरल शब्द भी समाविष्ट रहते थे। निघट्ट का शब्दसंकलन भी वैदिक ब्राह्मण के समग्र शब्दनिधि का संग्रह न होकर अधिकतम दुर्बोध्य और विवेच्य शब्दों की संकलन प्रेरणा से प्रभावित है।

(२) भारत के प्राचीन कोश पर्यायवाची या समानार्थक थे। आरम्भिक अवस्था में नानार्थक शब्दों का इनमें परिशिष्ट जुड़ा रहता था। आगे चलकर नानार्थक या अनेकार्थक शब्दलिपि का विस्तार में आकलन होने लगा। फलतः संस्कृत के अनेक नानार्थ कोशों में मुख्यतः नामसंग्रह होता था और आगे चलकर लिगनिर्देश भी होने लगा। पर्यायवाची कोशों की संग्रहयोजना वर्णपरक हो गई थी। नानार्थ शब्दों की क्रम-योजना में अत्यन्त व्यञ्जनाक्षर का क्रम (मूलतः) अपनाया गया। पर कभी कभी आदिवर्ण का आधार लेकर वर्णमालानुसार शब्द-क्रम-योजना का प्रयास भी किया गया। पर दूसरी ओर आधुनिक कोशों में लघु कोशों के अतिरिक्त पर्याय के साथ साथ अर्थप्रोक्षक व्याख्याएँ भी दी जाती हैं। संस्कृत में यह नहीं था। टीकाएँ अवश्य यह कार्य करती थीं। संस्कृत के समानार्थक कोशों की भाँति आधुनिक कोशों में पर्याय रखने पर अधिक ध्यान देने की चेष्टा नहीं होती। कभी कभी अवश्य ही संस्कृत कोशों के प्रभाव से हिन्दी आदि में भी पर्यायवाची कोश बन जाते हैं। पर वस्तुतः ये कोश संस्कृत कोशों के अवशेषमात्र हैं, आधुनिक कोश नहीं।

(३) संस्कृत के प्राचीन कोशों में मुख्यतः नामपदों, अव्ययशब्दों तथा कभी कभी धातुओं का भी संग्रह होता था। व्याकरण-प्रभावित संग्रहदृष्टि का मूल कदाचित् पाणिनि के धातुपाठ और गणपाठों में दिखाई पड़ता है। आरम्भ में, अमरकाल और उनके बाद, संस्कृत कोशों का मुख्य रूप नामलिगानुशासनात्मक हो गया। आधुनिक कोशों में रचनाविधान की भिन्नता के कारण इसे अनुपयोगी मानकर सर्वथा त्याग दिया गया। परन्तु व्याकरणमूलक ज्ञान और प्रयोग के लिये उपयोगी निर्देश प्रत्येक शब्द के साथ लघुसंकेतो द्वारा निदिष्ट होते हैं।

(४) आज के शब्दकोशों का निर्माण उन समस्त जनो के लिये होता है जो तत्तद्भाषाओं के सरल या कठिन किसी भी शब्द का अर्थ जानना चाहते हैं। संस्कृत कोशों का मुख्य रूप पद्यात्मक होता था। इस कारण उसका अधिकतम उपयोग वे ही कर पाते थे जो कोशपद्यों को कठस्थ कर रखते थे। प्रयोग और अर्थज्ञान के साथ साथ कोशों को कठस्थ करना भी एक उद्देश्य समझा जाता था पर आज के नवीन कोशों का यह प्रयोजन विलुप्त हो नहीं है।

(५) संस्कृत के प्राचीन कोशों का प्रयोजन होता था कवियों, नाट्यनिर्माताओं और काव्यशास्त्रादि के पाठकों के शब्दमहार की वृद्धि करना। परन्तु आधुनिक कोशों का मुख्य प्रयोजन है शब्दों के अर्थ का ज्ञान कराना और तत्संबन्धी अन्य बातों की जानकारी देते हुए उनके समीचीन प्रयोग की शक्ति बढ़ाना।

(६) इनके अतिरिक्त शब्दोच्चारण, व्युत्पत्तिसूचन, शब्दप्रयोग का प्रथम प्रयोग और यदि कोई शब्द लुप्तप्रयोग हो गया हो तो उसका सप्रमाण ऐतिहासिक वर्णन, नाना अर्थों का सामान्य एवं विशेष सदभ-

सम्पत्त विवृत्त, विवरण, योगिक एवं मुहावरों के सद्व्योक्त तथा धातुयोग आदि के अर्थवैशिष्ट्य का संग्रहण निरूपण भी आधुनिक कोशों में रहता है। यह सब प्राचीन कोशों में नहीं था। कोशरीश्रावों में अवश्य इनमें से अनेक बातें अज्ञत और प्रसंगत निदिष्ट कर दी जाती थीं।

## आधुनिक कोश सीमा और स्वरूप

योरप में आधुनिक कोशों का जो स्वरूप विकसित हुआ, उनकी रूपरेखा का गेहते किया जा चुका है। योरप, एशिया और अफ्रीका के उस तटभाग में जो अरब देशों के प्रभाव में आया था, उक्त पद्धति के अनुकरण पर कोशों का निर्माण होने लगा था। भारत में व्यापक पैमाने पर जिग रूप में पाया निमित्त होते चले, उनकी मक्षिप्त चर्चा की जा चुकी है। इन सबके आधार पर उत्तम कोटि के आधुनिक कोशों की विनिष्टताओं का आकलन करते हुए कहा जा सकता है

(क) आधुनिक कोशों में शब्दप्रयोग के ऐतिहासिक क्रम की परीक्षा दिखाने के प्रयास की वृद्ध महत्व दिया गया है। ऐसे कोशों को ऐतिहासिक विवरणात्मक कहा जा सकता है। उपलब्ध प्रथम प्रयोग और प्रयोगनदम का आधार लेकर अर्थ और उनके एवमुद्धी या बहुमुखी विकास के सप्रमाण उन्म्यापन की चेष्टा की जाती है। दूसरे शब्दों में इसे हम शब्दप्रयोग और तद्व्योख्या के रूप की आनुक्रमिक या इतिहासानुसारी विवेचना कह सकते हैं। इसमें उद्धरणों का उपयोग दोनों ही बातों (शब्दप्रयोग और अर्थविक्रम) की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं।

(ख) आधुनिक कोशकार के द्वारा नगृहीत शब्दों और अर्थों के आधार का प्रमाण्य भी अपेक्षित होता है। प्राचीन कोशकार इसके लिये वाध्य नहीं था। यह स्वतः प्रमाण्य समझा जाता था। पूर्व नवों या अर्थों का समाहार करते हुए यदाकदा इतना भी कह देना उसके लिये बहुधा पर्याप्त हो जाता था। पर आधुनिक कोशों में ऐसे शब्दों के सवध में जिनका साहित्य या व्यवहार में प्रयोग नहीं मिलता, यह बताना भी आवश्यक हो जाता है कि अमूक शब्द या अर्थ कोशीय मात्र हैं।

(ग) आधुनिक कोशों की एक दूसरी नई धारा ज्ञानकोशात्मक है जिनका उत्कृष्ट रूप विश्वकोश के नाम में सामने आता है। अन्य रूप पारिभाषिक शब्दकोश, विषयकोश, चरितकोश, ज्ञानकोश, शब्दकोश आदि नाना रूपों में अपने आभोग का विस्तार करते चल रहे हैं।

(घ) आधुनिक शब्दकोशों में अर्थ की स्पष्टता के लिये चित्र, रेखा-चित्र, मानचित्र आदि का उपयोग भी किया जाता है।

(ङ) विशुद्ध शान्तीय वाङ्मय (शास्त्र) के प्राचीन स्तर से हटकर आज के कोश वैज्ञानिक अथवा विज्ञानकल्प रचनाप्रक्रिया के स्तर पर पहुँच गए हैं। ये कोश रूपविकास और अर्थविकास की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के साथ साथ भाषावैज्ञानिक सिद्धान्त की संगति बँढने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं। आधुनिक भाषाओं के तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों के मूल और स्रोत बँटने की चेष्टा की जाती है। कभी कभी



मार्चीन भाषा या भाषाओं के मूलस्रोतों की गवेषणा के व्युत्पत्ति-दर्शन के सदर्भ में महत्वपूर्ण प्रयास होता है। बहुभाषी पर्यायकोशों में ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के सहयोग और सहायता द्वारा स्रोतभाषा के कल्पनानिर्दिष्ट रूप अंगीकृत होते हैं। उदाहरणार्थ प्राचीन भारत-यूरोपीय-आर्यभाषा के बहुभाषी तुलनात्मक कोशों में मूल आर्यभाषा (या आर्यों के 'कादरलैन्जे') के वर्णित मूलरूपों का अनुमान दिया जाता है। दूसरे शब्दों में इसका तात्पर्य यह है कि आधुनिक उत्कृष्ट कोशों में जहाँ एक ओर प्राचीन और पूर्ववर्ती वाङ्मय का शब्द-प्रयोग के अभिन्न ज्ञान के लिये ऐतिहासिक अध्ययन होता है वहाँ भाषाविज्ञान के ऐतिहासिक, तुलनात्मक और वर्णनात्मक दृष्टिकोणों का प्रौढ सहयोग और विनियोग अपेक्षित रहता है। कोशविज्ञान की नूतन रचनाप्रक्रिया आज के युग में भाषाविज्ञान के नाना अंगों से बहुत ही प्रभावित हो गई है। इस प्रभाव की दूरगामी व्याप्ति का नीचे की पंक्तियों में संक्षेपतः संकेत किया जा रहा है।

### कोशरचना की प्रक्रिया और भाषाविज्ञान

कोशनिर्माण का शब्दसंकलन सर्वप्रमुख आधार है। परन्तु शब्दों के संग्रह का कार्य अत्यंत बठिन है। मुख्य रूप में शब्दों का चयन दो स्रोतों से होता है—(१) लिखित साहित्य से और (२) लोकव्यवहार और लोकसाहित्य से। लिखित साहित्य से संग्रह्य शब्दों के लिये हस्तलिखित और मुद्रित ग्रंथों का सहारा लिया जाता है। परन्तु इसके अतिरिक्त प्राचीन हस्तलेखों और मुद्रित-ग्रंथों के आधार पर जब शब्द-संकलन होता है तब उभयविध आधारग्रंथों की प्रामाणिकता और पाठशुद्धि आवश्यक होती है। इनके बिना गृहीत शब्दों का महत्व कम हो जाता है और उनसे भ्रमसृष्टि की संभावना बढ़ती है।

### हिंदीकोश में शब्दसंकलन . शुद्धपाठ

मुद्रित या हस्तलिखित ग्रंथों से जो शब्दसंकलन होता है उसमें पाठ की शुद्धि नितांत अपेक्षित है। ऐतिहासिक दृष्टि से उनका महत्व तभी स्थापित हो सकता है जब पाठालोचन विज्ञान के अनुसार ग्रंथ के आलोचनात्मक (क्रिटिकल) संस्करण संपादित हों और उनके माध्यम से प्राचीनतम शुद्ध पाठ उपलब्ध हों। शुद्ध और मूल पाठ तभी निर्धारित हो सकता है जब यह ज्ञात हो कि भाषा में प्रयुक्त कौन से शब्द का कब क्या रूप था और उसके अर्थविकास का क्या भ्रम था ?

पूना से प्रकाशित्यमाण संस्कृत कोश के आधारित ग्रंथों के ऐसे समालोचित पाठ का निर्धारण किया जा रहा है जो पाठालोचन के वैज्ञानिक सिद्धांतों से विवेचित हों। प्रसंगवश यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि हिंदी में आदि और मध्य कालों के हिंदी ग्रंथों के ऐसे संस्करण अत्यंत दुर्लभ हैं जिनके पाठों का संपादन पाठालोचनविज्ञान के आधार पर हुआ हो। रामचरितमानस के पाठालोचन की चेष्टा कुछ अधिक हुई है, और उसके अपेक्षाकृत कुछ अच्छे संस्करण प्रकाशित हुए और हो रहे हैं। परन्तु अनेक महत्वपूर्ण साहित्यिक ग्रंथ अभी जिस रूप में उपलब्ध हैं, उनमें पाठालोचनविज्ञान की संपादनपद्धति का प्रायः अभाव है। पृथ्वीराज रासो, सूरसागर, कबीर साहित्य आदि के पूर्णतः सटीकदायक संस्करण आज भी अनुपलब्ध हैं। शुद्ध पाठ तो

अप्राप्य है ही। तत्तद् ग्रंथों में कितना अश्व क्षेपक है एवं कितना मूर्ख है, इसका असंदिग्ध प्रमाण भी अनुपलब्ध है। 'रासो' जैसे महाग्रंथ के प्रामाणिक और मूल रूप का प्रश्न अत्यंत विवादास्पद है। उसे जली ग्रंथ भी वह दिया जाता है और उसके निर्माणकाल का भी निर्धारण अभी नहीं हो पाया है। ऐसी स्थिति में प्रकाशित ग्रंथों के आधार पर संकलित शब्दसमूह और उनके प्रयोग का इतिहास विवादास्पद और प्रमाणहीन रह जाता है।

हस्तलेखों में शुद्ध पाठ की प्राप्ति स्वतः दुःसाध्य कार्य है। इसके अतिरिक्त उनसे हिंदी कोशकारों का शब्दसंग्रह करना और भी दुष्कर है। अपेक्षित आर्थिक साधन के अभाव में अप्रकाशित हस्तलेखों से शब्द संग्रह करना प्रायः अपेक्षित ही रहा है। बहुतेका तात्पर्य केवल यह कि हिंदी कोश के पूर्ण विकसित स्वरूप का निर्माण आज की परिस्थिति में भी असंभवप्रायः जान पड़ता है।

कोश के लिये संकलित शब्दसमूह के आधार ऐसे शब्द होते हैं जो आलोचनात्मक और वैज्ञानिक पद्धति से विवेचित एवं शुद्ध पाठवाले संस्करणों से संगृहीत हों। भाषाविज्ञान के ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टियों से पाठविज्ञान का घनिष्ठ संबंध है। शब्दरूप और तद्बोध्य अर्थ का निर्णयात्मक स्वरूप भी भाषाविज्ञान की दृष्टि की—वहुत दूर तक—अपेक्षा करता है।

### लोकभाषा से शब्दसंकलन

व्यावहारिक लोकभाषा से शब्दसंग्रह करना अमसाध्य कार्य अवश्य है परन्तु असंभव नहीं है। इनके रूप का स्रोत ढूँढ़ने और अर्थ-विकास की शृंखला निर्धारित करने में भाषाविज्ञान की अत्यधिक सहायता अपेक्षित होती है।

लोकसाहित्य का आज एक स्वतंत्र अध्ययनक्षेत्र लोक-साहित्य-विज्ञान के रूप में विकसित हुआ है। परंपरागत लोकगीतों में लोक-साहित्य का काफी पुराना अंश चला आ रहा है। लोककथाओं आदि के पद्यात्मक रूपों में शब्दरूपों की परंपरा सुरक्षित मिल जाती है। परन्तु प्राचीन बोलियों से गद्यरूप काफी दूर हो जाता है। लोकबोलियों से एक ओर तो तत्तद् बोलियों के शब्दकोशों का निर्माण करने में शब्दों का संकलन सहायक होता है, दूसरी ओर शब्द के रूपविकास और अर्थविकास की कड़ी के रूप में भी उनकी उपयोगिता होती है। हिंदी के कोशों में तो बोलियों के बहुत से शब्दों का संकलन और भी आवश्यक हो जाता है। मध्यकालीन हिंदी के अतर्गत राजस्थानी, ब्रजभाषा, दक्खिनी हिंदी, सघुबकड़ी, बुंदेली, अवधी, बिहारी, मैथिली, उर्दू आदि अनेक प्रांतीय या क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों के ग्रंथ समाविष्ट किए गए हैं। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से वाक्यगठन के आधार पर पूर्वी और पश्चिमी हिंदी की भाषाओं और बोलियों में स्पष्ट अंतर होने पर भी, साहित्यिक दृष्टि से, विशाल हिंदीक्षेत्र की भाषा, विभाषाओं और बोलियों के शब्दरूपों और बोधार्थों का आकलन और संकलन हिंदी कोशों में अनिवार्य हो जाता है। रूपविकास और अर्थविकास की ऐतिहासिक और तुलनात्मक प्रतिपत्ति के लिये बोलियों के शब्दों का संकलन भी हिंदी और इस श्रेणी की अन्य भाषाओं के कोशों में बहुत सहायक होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि बोलियों और लोकसाहित्य के

ग्रंथों के प्रकाशित वाङ्मय की अल्पता के कारण कोशकार की चेष्टा पूर्ण सफल नहीं हो पाती है। साहित्यिक भाषा के शुद्ध रूप और ज्ञान और अर्थवाचन में लोक-साहित्य-विज्ञान का सहयोग अत्यंत लाभकर होता है। लोक-साहित्य-विज्ञान का पूर्ण उत्कर्ष तभी हो पाता है जब उसकी अनुशीलना में समाजशास्त्र, संस्कृतिविज्ञान, पुराणविज्ञान और भाषाविज्ञान के साहाय्य से विवेचन हो।

### व्युत्पत्ति ( निरुक्ति )

यह अत्यंत कहा जा चुका है कि वर्तमान शब्दों अथवा कोश में सगृहीत शब्दरूपों का विकासक्रम और मूल शब्द से संबंध बताने में व्युत्पत्ति विज्ञान अत्यधिक सहायक होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसका घनिष्ठ संबंध भाषाविज्ञान से है। ध्वनिविज्ञान ध्वनि-विकास-विज्ञान, ध्वनि-तत्त्व-विज्ञान, पद-रचना-विज्ञान और अर्थविज्ञान आदि के द्वारा व्युत्पत्तिनिर्देश का वैज्ञानिक पक्ष पुष्ट होता है।

कोशकार शब्दों के जिन मानीकृत ( मानक अथवा स्टैंडर्ड ) रूपों का संग्रह करता है उसके निर्धारण का कार्य भाषाविज्ञान की सहायता से होता है। वैकल्पिक रूपों के परिचयन में भी भाषा-विज्ञान और तदंगभूत व्याकरणशास्त्र अत्यंत सहायक होते हैं। कोशरचना में वह प्रत्यक्ष सहायता देता है। एक ही शब्दरूप प्रयोगगत अर्थबोध की भिन्नता के कारण विभक्ति और संज्ञा आदि के व्याकरणिक भेद का परिचय देता है। अतः कोश के प्रयोग की अर्थकारिता के प्रभाव से शब्दभेद का निर्धारण व्याकरण से उपजीवित होता है।

### उच्चारणस्वरूप

मानीकृत कोश में सगृहीत शब्द के उच्चारणरूप की चर्चा हुई है। आधुनिक कोशों में शब्द के उच्चारणरूप की सही जानकारी कराना अत्यंत आवश्यक समझा जाता है। इसके अंतर्गत ध्वनियों के सही, सही उच्चारण में भाषाविज्ञान के एक अंग ध्वनिग्रामविज्ञान—द्वारा बड़ी सहायता मिलती है। नूतन उच्चारणसंकेतों के माध्यम से उच्चरित शब्द का परिशुद्ध रूप निदिष्ट होता है। ध्वनिलेखन के पूर्णतः शुद्ध रूप का परिचय देने के लिये ध्वनिग्रामों का विभिन्न परिवेशों और पूर्वापर ध्वनियों के सदृश में उच्चरित रूप का निर्धारण आज अनेक वैज्ञानिक यंत्रों के माध्यम से किया जाता है। ध्वनियों के सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतर वैशिष्ट्य का बोध कराने में इन यंत्रों का विशेष योगदान है। इनके द्वारा अक्षरों पर पड़नेवाले स्वराघात की बलात्मक न्यूनाधिकता और आरोहावरोहात्मक चढ़ाव उतार भी यंत्रों से पूर्ण रूप में परिज्ञात हो जाते हैं। तदनुसार निमित्त उच्चारण-वैशिष्ट्य-बोधक संकेतचिह्नों के द्वारा कोश के शब्द का विशुद्ध उच्चारणरूप अंकित होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भाषाविज्ञान की इस क्षेत्र में नई नई उपलब्धियों और आविष्कारितियों से कोशरचना का कार्य पुष्ट हो रहा है।

### अर्थविकास

कोशों का कदाचित् सर्वाधिक महत्वशाली प्रयोजन है शब्दार्थ का ज्ञान कराना। भाषाविज्ञान का इस अंश में अत्यधिक प्रभाव

पड़ता है। यद्यपि गिमाटियग अर्थात् अर्थविज्ञान को भाषाविज्ञान की अंगशाखा के रूप में महत्व अनेकांकृत अर्थात् ज्ञान है, और मात्र है। अनेक आधुनिक विचारक इन शाखा का भाषाविज्ञान से पृथक् भी बनाने लगे हैं, तथापि अभी अनेक लोगों द्वारा उसे भाषाविज्ञान का ही एक पक्ष माना जाता है। कोश के प्रांथ और सूक्ष्म अर्थवाचन में इस शाखा की उपजीव्यता बहुत अधिक है।

एवधुत्पत्ति के निर्देशक्रम में भी वेदन् ध्वनिनाम्न अथवा ध्वनि-विभाग-नगर्ध, नियमों की, प्रयोगयोग्यता ही पर्याप्त नहीं है। अर्थपक्ष को छोड़कर वेदन् ध्वनि या रूपपक्ष का आधार नैसर्ग चलने में कभी कभी व्युत्पत्तियाँ अत्यंत भ्रमण और अशुद्ध हो जाती हैं। अतः कोशनिर्माण में व्युत्पत्ति के द्वारा परंपरा या अर्थविज्ञान का विनियोग बड़ा ही महत्व रखता है।

उन कुछ मुख्य तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा-विज्ञान का आधुनिक कोशविज्ञान पर व्यापक प्रभाव है। कुछ बातों को छोड़कर प्रायः कोशविज्ञान के समस्त आधुनिक तत्वों पर भाषाविज्ञान या परंपरा आधुनिक भाषाविज्ञान का व्यापक प्रभाव है। निषेध के निरस्तार्थ भाषाविज्ञान से ही भारतवर्ष में कोशविद्या के क्षेत्र में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में व्याकरण, भाषाविज्ञान और व्युत्पत्ति शास्त्र की उपजीव्यता का स्रोत मिलने लगा था। आज वह प्रभाव अधिक स्पष्टतर और व्यापकतर बन गया है।

### निष्कर्ष

#### हिंदी शब्दसागर से पूर्व

भारत में पाश्चात्य कोशों और कोशकारों के मपर्व और प्रभाव से आधुनिक ढंग के कोशों का निर्माण प्रचलित और विभूति हुआ। हिंदी के आधुनिक कोशों की चर्चा की जा चुकी है। प्रथम मुद्रण की भूमिका में भी इसका सिंहावलोकन किया गया है। इन्हें देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले के हिंदी कोशों ने प्रथम 'पादरी-आदम' का हिंदी कोश जो १८२६ में 'कलकत्ता' में छपा। इसके पूर्व के कोश पाश्चात्यों द्वारा पाश्चात्य लिपि और भाषा के माध्यम से बने। गिलक्राइस्ट, जान जेम्सपियर, टेंजर, विलियम हटर आदि पाश्चात्यों द्वारा निर्मित कोश सामान्यतः हिंदुस्तानी कोश बने गए हैं। उनमें सगृहीत शब्दों को प्रायः फारसी, नागरी और रोमन लिपियों में रखा गया है। फलन का कोश विशेष महत्व रखता है। क्योंकि इसमें हिंदुस्तानी साहित्य, लोकगीतों और बोलचाल की भाषा से उदाहरण उपस्थित किए गए हैं। परंतु प्लाटम का कोश हिंदी और उर्दू के अर्थों को पृथक् कर देता है। पादरी आदम का कोश ही शब्दसागर के प्रथम सत्करण की भूमिका के अनुसार हिंदी का ऐसा सर्वप्रथम शब्दकोश बताया गया है जो देवनागरी लिपि और हिंदी भाषा में प्रकाशित हुआ। इसके अलावा शब्द-सागर की भूमिका में ही बाद के हिंदी कोशों की एक सूची दी गई है। १८७३ में श्री रामलाल हेडमास्टर का काशी से प्रकाशित हिंदी कोश पाया जाता है। इन सबको विस्तृत चर्चा ऊपर हो चुकी है।

इन कोशों में यद्यपि पाश्चात्य-कोश-विद्या के सिद्धांतों का प्रीकृता

से पालन नहीं हुआ है तथापि उसी पद्धति पर चलने का भारभक्त प्रथम शुरू हो गया था। अकारादिवरणानुक्रम इनकी सर्वप्रथम विशेषता है। परंतु वह क्रम भी पुराने कोशों में पूर्णतः व्यवस्थित नहीं था।

हिंदी शब्दसागर के पूर्व निमित्त हिंदी कोशों में शब्दसंग्रह का मुख्याधार संस्कृत शब्द ही थे। व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त शब्दों का भी सकलन हुआ, परंतु वह अपेक्षाकृत कम ही रहा। इन कोशों में व्याकरणपरक निर्देश और शब्दार्थबोध के लिये प्रायः पर्याय दिए जाते थे। व्याख्या कही कही दे दी जाती थी, परंतु बहुधा सक्षिप्त और अधूरी रहती थी। किसी, किसी कोश में व्युत्पत्ति देने की चेष्टा है पर वह प्रामाणिक और भाषावैज्ञानिक नहीं है, और न उस युग में इसकी आशा ही की जा सकती थी। उदाहरण उद्धृत करने की और सर्वथा अपेक्षाभाव लक्षित होता है।

इन सब कारणों से हिंदी शब्दसागर से पूर्व की कोशरचना का स्वरूप और स्तर दृष्टावस्था का ही कहा जा सकता है। प्रायः एक व्यक्ति के प्रयत्न में निमित्त इन कोशों में विशेष प्रौढ़ता तत्कालीन कोशचेतना के हिंदी विद्वानों में युगबोध के अनुरूप ही था। इनका प्रयोजन मुख्यतः शब्दार्थज्ञान कराना था, और वह भी पर्याय द्वारा। इनमें सकलित अधिकांश शब्द संस्कृत, हिंदी आदि के पूर्ववर्ती कोश से ही ले लिए जाते थे और एक जितने व्यवहारोपयोगी कोश तैयार करना ही इन कोशकारों और कोशों का मुख्य प्रयोजन था।

हिंदी शब्दसागर के द्वारा हिंदी में जिस प्रकार का महत्वपूर्ण और नूतन कोश विज्ञान की रचनादृष्टि से समन्वित भाषा के महाकोश बनाने की प्रेरणा मिली और तदनुकूल प्रयास किया गया, उसका सकेत प्रथम संस्करण की भूमिका में प्रधान संपादक दावू श्यामसुंदरदास द्वारा किया गया है। यहाँ उनकी उद्धरणों अनावश्यक हैं। इस सवध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि डा० श्यामसुंदरदास के नेतृत्व में और आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे मर्मज्ञ आलोचक और हिंदी साहित्यविज्ञ के सहायकत्व में तथा बालकृष्ण भट्ट, श्री अर्मीर सिंह, श्री जगन्मोहन वर्मा, श्री ( लाला ) भगवानदीन और श्री रामचंद्र वर्मा के संपादकत्व में तथा अनेक विद्वानों, कार्यकर्ताओं के सहयोग से संपादित और निमित्त यह कोश एक महान् प्रयत्न। साधन और परिस्थितियों के विचार से उक्त महाकोश के संपादन में सभा के कर्णधारों और कोश के कार्यकर्ताओं को महान् सफलता प्राप्त हुई। यह ठीक है कि पाश्चात्य भाषा के प्रौढ़ कोशों की तुलना में इसमें अनेक कमियाँ रह गई हैं। फिर भी इसकी कुछ उपलब्धियाँ हैं जो स्तुत्य और अभिनंदनीय हैं। यह भी कहा जा सकता है कि हिंदी शब्दसागर के अनंतर बने हिंदी के सभी छोटे बड़े कोशों का यही महाकोश उपजीव्य और आधार रहा। आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के प्रथम संस्करण की रचना का कार्यारंभ हो गया था। १८५७ ई० से १८७६ ई० तक उसकी तैयारी आदि होती रही, और १८८४, ( १८९१-१८८४ ) ई० में उसका प्रथम अग्रिम संपादित प्रारूपांश छपकर सामने आया। १८८५ ई० से लेकर १९२८ ई० तक संपादन और प्रकाशन के कार्य चलते रहे। लगभग ४४ वर्षों में उसका प्रकाशन हुआ।

उसके तैयार होने में ७३ वर्ष लगे। पर उसकी बहुत सी आधारीक सामग्री उसमें पूर्व ही डा० जानसन, रिचर्डसन और वेबस्टर के कोशों में संकलित हो चुकी थी। उनकी सहायता मिली, यद्यपि उसे भी व्यवस्थित और सुनियोजित करने में बहुत बड़ा श्रम करना पड़ा। हिंदी शब्दसागर का संपादन साधन और आधारीक सामग्री को देखते हुए अपने आपमें स्तुत्य और सफल प्रयास था। नव्यकोशविज्ञान की दृष्टि में आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के स्तर से नीचे होने पर भी वह उल्लेख्य बहुत बड़ी रही।

पूर्ववर्ती अधिकांश हिंदी कोशों की भांति यह कोश एक व्यक्ति द्वारा निमित्त न होकर भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ अनेक सुधियों द्वारा तैयार किया गया है। शब्दसंकलन के लिये केवल पुराने कोशों का ही आधार न लेकर ग्रंथों और व्यावहारिक भाषा और बोलियों के प्रायः समस्त उपलब्ध सामान्य और विशेष शब्दों के संग्रह का उसमें प्रयास हुआ है। प्रायः प्रत्येक शब्द का मूल स्रोत देखने के प्रयास के साथ साथ विभिन्न भाषामूलक स्रोतों का निर्देश करने की चेष्टा हुई है। व्युत्पत्तियाँ यद्यपि बहुत सी ऐसी हैं जो सदिग्ध और भ्रामक अथवा वही कही अशुद्ध भी हैं तथापि उसके लिये यथासाधन और यथाशक्ति जो प्रयास है वह भी अपने आपमें बड़ा महत्व रखता है। व्युत्पत्तिनिर्देश का स्वरूप भी विकासक्रम के विभिन्न स्तरों में उपस्थित नहीं किया जा सका है। फिर भी पूर्ववर्ती हिंदी कोशों की तुलना में शब्दसागर की व्युत्पत्ति विषयक अग्रगति पर्याप्त महत्व की है। हिंदी के कोशकार आज भी इस दिशा में बहुत आगे नहीं बढ़ पाए हैं।

हिंदी शब्दसागर में अनेक उदाहरणों का सहयोग लिया गया है; परंतु प्रथम शब्द के प्रयोग का ऐतिहासिक कालनिर्देश नवीन संस्करण में भी संभव नहीं हो सका। इस सवध की असमर्थता का निर्देश किया जा चुका है। पर दूसरी ओर व्याकरणमूलक व्यवस्था और तदनुसार शब्द एवं अर्थ के व्यवस्थित निर्देश का हिंदी शब्दसागर में अत्यंत प्रौढ़ विनियोजन दिखाई देता है। पर्यायनिर्देशन पर जहाँ एक ओर संस्कृत कोशों का व्यापक प्रभाव है और प्रायः अधिकाधिक योगिक पदों का उल्लेख भी संस्कृत व्याकरण पर अधिकतम आधारित है वहाँ दूसरी ओर हिंदी की प्रकृति और प्रयोग-परंपरा का आकलन और संकलन भी बड़े यत्न और मनोयोग के साथ किया गया है। हिंदी के मुहावरों और लोकोक्तिों या प्रयोगों अथवा क्रियाप्रयोगों की प्रत्यक्ष परंपरा से आगत अर्थों की व्याख्या भी—इसमें पर्याप्त प्रौढ़ है।

अर्थनिर्धारण में व्याख्यात्मक पद्धति अपनाई गई है। पर साथ ही मुख्य शब्दों के अतर्गत अधिकतम पर्याय भी रख दिए गए हैं। इस कारण कभी कभी ऐसा भी लगता है कि यह कोश आधुनिक ढंग का पर्यायवाची और नानार्थक कोश एक साथ बन गया है। व्याख्यात्मक पद्धति के अतर्गत व्यक्ति, विषय, वस्तु आदि का पौराणिक, ऐतिहासिक, शास्त्रीय और परंपरागत अनेक प्रकार के परिचय एवं विवरण यथास्थान दिए गए हैं। इस कारण यह कोश विश्वकोश, ज्ञानकोश चरितकोश और पारिभाषिक कोश के परिवेश का भी यत्न तत्तत् स्पर्श करता दिखाई देता है। कुछ कुछ यही दशा है आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के प्रथम संस्करण की।

शब्दों की प्रयोगसूक्त अर्थच्छाया ( शेडम आब मीनिंग ) की भिन्नता को भी अनेक स्थलों पर स्पष्ट करने का प्रयास लक्षित होता है। फिर भी इस दिशा का कार्य अभी और श्रम अपेक्षित करता है। शब्दों के समस्त अर्थों की प्रयोगशृष्टि और प्रामाणिकता के निमित्त सर्वत्र उदाहरण नहीं हैं। जहाँ हैं वहाँ भी बहुधा ग्रंथों के नाममात्र ही निदिष्ट हैं। उनके प्रसंगस्थल और संस्करण का उल्लेख नहीं है। अनेक स्थलों पर बोलचाल के स्वनिमित्त उदाहरण भी नियोजित किए गए हैं। सब मित्राकर इसमें शब्दसंग्रह और अर्थविवृति दोनों की परिधि को यथामात्र व्यापक और विस्तृत बनाया गया है। इस क्षेत्र में विभिन्न पक्षों और वर्गों के जनजीवन से संगृहीत शब्दमंडार की संयोजना से इस कोश का महत्व बहुत बढ़ गया है।

## हिंदी शब्दसागर के अनंतर

हिंदी शब्दसागर के प्रथम संस्करण का प्रकाशन जब हुआ तब हिंदी में अंग्रेजी आदि न जाननेवालों के सामने कोशविज्ञान के अपेक्षाकृत प्रौढ़ और विकसित रूप का प्रतिमान उगासित हुआ।

सक्षिप्त हिंदी शब्दसागर को हम हिंदी कोशों का प्रथम व्यावहारिक और प्रामाणिक संस्करण कह सकते हैं। इसमें मुख्यतः संक्षेपाकरण ही किया गया है। वाद के संस्करणों में थोड़ा बहुत शोधन-वर्धन होता रहा। पठ संस्करण में अवश्य ही व्युत्पत्ति का निर्देश में कुछ नई पद्धति अपनाई गई है। स्वल्प कुछ ही विशेष उपलब्धि है। अन्य अनेक कोश भी इस समय बने परंतु ज्ञानमंडल का वृहद् हिंदी शब्दकोश कुछ दृष्टि से नवीनता लेकर सामने आता है। इस कोश में संस्कृत कोशों से लेकर हजारों शब्द—मूल और योगक—बढ़ाए गए हैं। इनमें बहुधा ऐसे दिखाई पड़ते हैं जो हिंदी में अप्रयुक्त हैं। इस कोश का नवीनता है संस्कृत काशों के अनुकरण पर पेटेवाजी पद्धति का यथाशक्ति अपनाने की चेष्टा। इस पद्धति के अनुसार एक मूल शब्द के अंतर्गत उससे बनने वाले अनेक व्युत्पन्न रूपों और यागिक पदों का समावेश किया गया है। इसमें पूर्णता नहीं है पर भी इस संरचना का, जहाँ तक हमें ज्ञात है, कदाचित् व्यापक रूप से पहली बार हिंदी के कोश में प्रयोग हुआ है। अगरजा, संस्कृत आदि के कोशों का यह पद्धति हिंदी में लाकर इस कोश ने हिंदी काशों के निर्माण में नवीनता पैदा की। पर इसका अनुसरण में हिंदी काशों के लिये अनेक कठिनाइयाँ आ जाती हैं। व्युत्पन्न और समासयुक्त यागिक पदों के मूल शब्द के अंतर्गत समावेशन से आनुपूर्वकों के अनुसार शब्दक्रम के स्थापन में पूर्ण व्यवस्था काठन हो जाता है। व्याकरणात्मक ध्वनिविकारों और साधमूलक ध्वनिपरिवर्तना के कारण शब्दक्रम योजना अस्तव्यस्त होन लगता है। उदाहरण के लिये वचन शब्द के अंतर्गत यदि 'वाचन' भी रखा जाय और इतिहासिक अंतर्गत 'ऐतिहासिक', 'व्याकरण' के अंतर्गत 'वैयाकरण' शब्द समाविष्ट हों, 'सर्व' के अंतर्गत 'सावदाशिक', सावनाम आदि शब्द रख दिए जाय तो शब्दक्रम-स्थापना की जो पूर्वपर अस्तव्यस्तता उत्पन्न होती है वह एक समस्या बन जाता है। उसका समाधान निश्चय और स्वीकरण किए बिना हिंदी कोशों में उक्त पद्धति का अपनाना कुछ कठिन हो जाता है। फिर भी ज्ञानमंडल के काश में यह प्रयास नवीन हो कहा जायगा। ऐसी या अन्य कठिनाइयों का प्रश्न भी उक्त कोश

के संपादकों के सामने आया था, और उसके समाधान की एक पद्धति भी उन्होंने अपनाई है। पर जब तक वह स्वीकृत नहीं हो तब तक उसका ग्रहण संभव नहीं हो सकता। कोशों में गृहीत या नवसमाविष्ट शब्दों के अनिश्चित अधिकतम हिंदी शब्दसागर का ही व्यापक उपयोग किया गया है।

शब्दसागर के सहायक संपादकों में श्री रामचंद्र वर्मा जी भी थे। सक्षिप्त हिंदी शब्दसागर के बाद अतिरिक्त प्रामाणिक हिंदी कोश के नाम से उन्होंने एक ग्रंथ संपादित और प्रकाशित किया। सक्षिप्त-शब्दसागर के आरंभिक अनेक संस्करणों का उन्होंने संपादन भी किया था। हिंदी कोश में संवत् अनेक प्रश्न और सक्षिप्त शब्दसागर की अनेक कमियाँ की और उनका ध्यान जाता रहा। उनसे निराकरण की चेष्टा में भी वे यथामाध्य प्रामाणिककोश के संपादन के पूर्व तक लगे रहे। प्रामाणिक हिंदी कोश के वस्तुतः मर्मों के सक्षिप्त शब्दसागर का कुछ सुधरा हुआ रूप मात्र था। कोशकला की दृष्टि से उसमें नूतन विकास नहीं हो पाया। नालदाविशाल शब्दसागर नामक—दिल्ली से प्रकाशित एक हिंदी कोश—बड़े विज्ञापन और बड़े प्रचार के साथ सामने आया। हिंदी शब्दसागर को पुरांत लेकर और मनमाने ढंग से उसके अंगों, अर्थों को काट छटकर यत्नतः कुछ अनावश्यक नए शब्दों को जोड़कर इसका ढाँचा खड़ा किया गया। पर शब्दसंख्या की दिखावटी वृद्धि के अतिरिक्त इस एक जिवंद के 'विशाल' विशेषणवाले शब्दसागर में कोई भी ऐसी खास बात नहीं है, जो कोशरचना के स्तर को ऊपर उठा सके। ऐसी अव्यवस्थाएँ अवश्य हैं जिनके कारण हिंदी की कोश-रचना-विद्या उस स्तर से कुछ नीचे गिर गई जिसे शब्दसागर द्वारा निर्धारित और अधिगत किया गया था।

हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित और श्री रामचंद्र वर्मा के संपादकत्व एवं निर्देशन में निमित्त मानक हिंदी काश—इस दिशा में एक महत्वपूर्ण दूसरा और नवीन विशाल ग्रंथ है। इसके आरंभिक निवेदन में संपादक ने उक्त काश का अनेक विशेषताओं का निर्देश किया है जिन्हें उन्होंने (१) शब्दों के रूप और अक्षरी, (२) निरुक्ति या व्युत्पत्ति, (३) शब्दों के अर्थ और विवेचन, (४) अर्थों का क्रम, (५) अर्थों का वर्गीकरण, (६) अर्थों के सूक्ष्म अंतर, (७) मुहावरे, (८) उदाहरण, (९) अन्वय सहायन और (१०) अंगरेजी पर्याय, इन शीपकों के अंतर्गत निदिष्ट किया है। पर स्वयं उन्होंने कहा है कि मानक हिंदी काश भी सभी आधुनिक हिंदी कोशों की तरह हिंदी शब्दसागर की भित्ति पर ही आधारित है। फिर भी बहुत सी बातों और विवरणों में अनेक परिवर्तनों के कारण उक्त कृति में कोशरचना का ढाँचा बदल गया है। इसके कारण वे अपने संपादन पर गौरव का भी अनुभव करते हुए कहते हैं—'उसको विस्तृत नया, युक्तिसंगत वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप दिया गया है'। उनका कथन है कि शब्दार्थविवेचन में केवल अन्य कोशों का आधार न लेकर उनके प्रयोगों के प्रचलित पक्ष का भी सहारा लिया गया है।

## आधुनिक कोश नियोज्य उपादान और पद्धति

आधुनिक शब्दकोशों के बहुत से कार्य वैज्ञानिक पद्धति में होते हैं। भाषाविज्ञान के प्रयोगात्मक विज्ञान के रूप में इसमें श्रम करना पड़ता है। उत्तम कोश के लिये विषयगत वर्गों के पद्धतिसिद्धांत का सामान्यीकरण और निरंतर प्रतिमण धन अपेक्षित रहता है। भाषा-विज्ञान के वर्णनात्मक पक्ष की उपयोगिता यहाँ प्रत्यक्ष है। सकलित शब्द के विषय में निम्नलिखित बातों की सही जानकारी देना आवश्यक होता है। (१) वर्णानुपूर्वी, (२) उच्चारण रूप, (३) व्याकरणिक शब्दभेद की सूचना, (४) प्रकृति-प्रत्यय विवेक, (५) व्युत्पत्ति, (६) वर्तमान एक या अनेक अर्थ, (७) प्राचीन शब्दार्थ, (८) अपर-शब्द-सन्निधि-मूल शब्दयोग और उसका अर्थ, (९) अव्युत्पन्न शब्द, (१०) पर्याय और (११) अर्थों के भेद पर आधारित अर्थच्छायाएँ।

इनके अतिरिक्त शब्दार्थ की आवश्यक व्याख्या और, सदसंगपृक्त सूचनाओं का विवरण भी दिया जाता है। यहाँ शब्दकोश द्वारा ज्ञानकोशात्मक और विश्वकोशात्मक पद्धति की विशेषता का स्पर्श हो जाता है। कभी पर्याय से, कभी लंबे कथनों द्वारा शब्दबोध्य अर्थ का भावधारा या समुक्त भावना सूचित करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिये अन्य शब्दों, विवरणों या चित्रों और रेखाकृतियों द्वारा ज्ञान कराया जाता है। इसी प्रकार प्रसंगभित अर्थ भी व्यक्त करना पड़ता है, कभी कभी अर्थप्रकाशक उद्धरणों का उपयोग भी आवश्यक हो जाता है।

## हिंदी कोश में शब्दसकलन—कुछ समस्याएँ

निम्न कोश के अनुरूप शब्दसकलन भी बड़े सावधानी से और विवेकपूर्वक करना पड़ता है। साथ ही अर्थसकलन भी करना पड़ता है। इसका तात्पर्य यह है कि भाषा में नवीन अर्थचित्रों और अभिव्यक्ति-दृष्टियों का आयात होता रहता है। कभी पुराने ही शब्दों से और कभी नए शब्दों या शब्दयोगों द्वारा इनका अभिव्यजन होता है। अतः शब्दसकलन के साथ साथ भाषा में नवागत अर्थचित्रों, विचार-विधियों और अर्थबोध के रूपों का सकलन, शब्दसकलन के साथ साथ भी उत्तम कोशों में संयोजित करना आवश्यक होता है। इसलिये सकलयिता और संपादक के लिये प्रबुद्धता, जागरूकता और भाषाप्रयोग के विस्तृत क्षेत्र की गहरी जानकारी अत्यंत अपेक्षित होती है, उनके लिये तत्तद्विषयों का प्रौढ़ ज्ञान और ताटस्थ्यबोध भी आवश्यक है। कोशोपयोगी शब्द और अर्थ के संग्रह और त्याग की शक्ति और उस क्षेत्र में गहरी पैठनितात उपयोगी होती है। तत्तद्विषय के मर्मज्ञ और कोशकार्य की बोधचेतना से समन्वित पुरुष ही अच्छे कोश के उत्तम शब्दसकलन में सहायक हो सकते हैं। वे ही इस क्षेत्र के संग्रह और त्याग का मर्म ठीक ठीक पहचान सकते हैं। जो नए एवं विलक्षण—शब्द और अर्थ के प्रयोग भाषा में काफी चल पड़े हों, उनका संग्रह होना चाहिए। यदि वे मान्य हो गए हों तो उनका संग्रह अनिवार्य हो जाता है।

हिंदी कुछ विलक्षण भाषा है। यह राष्ट्रभाषा है और बड़े भारी भूभाग की व्यवहारभाषा भी है। किसी अक्षर की पूरणरूप भातृभाषा न होते हुए भी लगभग २० करोड़ जनता के व्यवहार में

इसका प्रयोग होता है। इसके अतर्गत अनेक आचलिक बोलियाँ हैं, विभाषाएँ हैं, मातृभाषाएँ हैं। ऐसी भाषा का जब व्यापक भूभाग में शिष्ट और साहित्यिक भाषा के रूप में व्यवहार होना है तब आचलिक और सीमावर्ती क्षेत्रों की बोलियों और भाषाओं के शब्दार्थों का संग्रह और त्याग दुःकर समस्या बन जाती है। इसका समाधान कठिनतर हो जाता है। फिर भी कोशसंपादकों के लिये अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर रास्ता निकालने की चेष्टा करना आवश्यक हो उठता है।

## संख्यावृद्धि

शब्दसंग्रह का ही हमारा पहलू है शब्दसंख्या की वृद्धि। इसमें वही तो वैकल्पिक विकसित तद्भव या अपभ्रष्ट रूपों के कारण संख्या-वृद्धि होती है, और कभी भाषा में नवोद्भूत, नवागत, नवोद्भावित और नवायातित शब्दों के सहयोग से शब्दवृद्धि होती है। किसी भी जीवित भाषा में सामाजिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक, शैक्षणिक तथा प्राविधिक आदि ज्ञान विज्ञान का विकास और विस्तार होने पर नित्य नए नए शब्द आते रहते हैं। विचार के नए कोण, नई शैली और बोधार्थ की अभिव्यक्ति की नूतन बोधचेतना के कारण कुछ प्रचलित या पुराने शब्दों से भी परंपरागत अर्थ के अतिरिक्त कथ्य और वाच्य का बोध कराया जाता है। कभी नए शब्द, नए यौगिक-समस्त पद अथवा नवकाशित (न्यूकाएड) शब्दों के अध्ययन से तद्भाषाभाषी समाज की अभिव्यक्तियुक्त विवक्षा की पूर्ति का प्रयास होता है।

## नवीन शब्दों-अर्थों का प्रश्न

हिंदी जीवित भाषा है। राष्ट्रभाषा हो जाने के बाद देश और काल की संपूर्ण परिस्थितियों के अनुरूप उसकी बोधसीमा और वाच्यशक्ति के आयामों का विस्तार अपेक्षित भी है, अवश्यभावी भी। उद्योग, व्यवसाय, ज्ञान विज्ञान आदि के क्षेत्र में वर्तमान युग के समस्त आवश्यक अर्थरूपों और अर्थविवृत्तियों की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिये—इसी कारण हिंदी प्रयत्नशील है। ज्ञान विज्ञान की संकड़ी शाखाओं से पारिभाषिक, प्राविधिक और नव्य अर्थबोध के अभिधेय अथवा प्रतीकबोध्य, अर्थरूपों की अभिव्यजना का वह प्रयास कर रही है। अतः हिंदी का कोशकार्य भविष्य में भी सर्वदैव तब तक निर्माण प्रक्रिया के क्रम में ही रहेगा जब तक वह जीवित भाषा बनी रहेगी। अतः यथाशक्ति शब्द-संख्या-वृद्धि भी सर्वदैव अत्यंत आवश्यक रहेगी।

पारिभाषिक, वैज्ञानिक, प्राविधिक एवं नानाशास्त्रीय शब्दकोशों के निर्माण में भारत सरकार की ओर से बड़े विशाल पैमाने पर कार्य हो रहा है। तत्तद्विषयों के विशेषज्ञों और हिंदीविदों के सहयोग से अंग्रेजी हिंदी के शब्दसंग्रहात्मक कोश बन रहे हैं। 'पारिभाषिक शब्दसंग्रह', 'विज्ञान शब्दावली' (माइम ग्लासरी) और 'पदनाम-शब्दावली' आदि बन चुके हैं। डा० रघुवीर ने भी ऐसे अनेक कोश बनए हैं।

शब्दसागर के अनंतर बननेवाले निदिष्ट कोशों में प्रायः सर्वत्र संख्यावृद्धि की चर्चा हुई है। परंतु यह कार्य इसलिये अत्यंत कठिन है कि पूर्वोक्त शब्दार्थों के संग्रह और त्याग का प्रश्न बड़ा ही वैदुष्य-



साध, साधनसाध्य और श्रमसाध्य है। शब्दसागर के नवीन संस्करण में संगृहीत नवीन शब्द अतीत के हिंदी साहित्य के स्रोत से ही अधिकांश लिए गए हैं। आधुनिक हिंदी वाङ्मय के अपेक्षाकृत नव्य ग्रंथों से कम शब्द ही जोड़े गए हैं। पाणिभाषिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रकृति के नवप्रयुक्त शब्दों का हमलिये संग्रह नहीं किया जा सका है कि उसका सर्वसमंत और प्रामाणिक रूप अभी निश्चित नहीं हो पाया है। वैज्ञानिक, प्राविधिक आदि सवर्गी हिंदी ग्रंथों के विभिन्न लेखकों द्वारा जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं या हो रहे हैं उनमें अत्यधिक अनेकरूपता है, सर्वमान्य एकरूपता का अभाव है। अंग्रेजी शब्दों के अर्थानुवाद की भावना से लेखकों द्वारा एक अर्थ के लिये अनेक शब्द चल रहे हैं। विभिन्न ज्ञान विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों की पाणिभाषिक और प्राविधिक शब्दावली भारत सरकार तैयार कर रही है। कुछ विषयों के शब्दों के रूप और अर्थ का निर्धारण होने के बाद कुछ शब्दावलियों का प्रकाशन भी किया जा चुका है।

यहाँ कथ्य इतना है कि जीवित भाषा के कोशों की शब्दसंख्या में वृद्धि और तदनुरूप अर्थविस्तार एक ऐसी प्रिया है जिसकी निरंतर गतिशीलता नितांत अपेक्षित है। पदार्थों के संग्रह और त्याग के मर्म को पहचान कर ही यह कार्य होना चाहिए। नवीन संस्करणों या नवीन परिशिष्टों द्वारा शब्दसंख्या की वृद्धि सदा होती रहनी चाहिए। पेटेवाली पद्धति के उपायों से यद्यपि अनावश्यक शब्द-संख्या वृद्धि से बचा जा सकता है तथापि हिंदी कोशों में उसका प्रयोग तभी समीचीन होगा जब हिंदी के प्रौढ क शकारों द्वारा कोई व्यवस्था सर्वमान्य हो जाय।

### मानक रूप

शब्दों के ग्राह्य, मानक या परिनिष्ठित रूप के स्थिरीकरण की भी एक विशिष्ट समस्या है। वैकल्पिक अथवा तद्भव शब्दों के नाना

रूप भी शब्दार्थनिर्दोजन में कठिनाई उपस्थित करते हैं। सज्ञा और क्रिया के नाना रूपों में विशेष रूप का मानकत्व और मानकीकरण विवाद का विषय है। आचलिक बोलियों के प्रभाव से और काल, वाच्य, वचन, भाव, विधि आदि के कारण क्रियापदों के नाना रूप सामने आ जाते हैं। अतः उनका ग्रहण समभव नहीं हो पाना। हिंदी में सामान्य अथवा क्रियाार्थक्रिया के नाकारात रूपों द्वारा क्रिया पदों की निर्माणक धातु का निर्देश किया जाता है। इन समस्याओं पर विचार करते हुए एक ओर तो सभा का कोशोपसमिति ने क्रियाार्थक्रिया के रूपों को मूल मानकर उनका ग्रहण किया है; दूसरी ओर ऐतिहासिक, भौगोलिक, भाषाशास्त्रीय अथवा तद्भवता से प्रभावित सज्ञारूपों को अपनाया है। परंतु व्याकरण के कारण सामान्य रूपावली को छुड़ देना पडा है। सज्ञाओं और विशेषणों के प्रसंग में स्त्र लिंग के विशिष्ट रूपों का निर्देश तत्सम या तत्समाभास रूपों के कारण भी कभी कभी शब्दवद्धि की समस्या सामने आती है। 'इतिहास', 'भूगोल' से व्युत्पन्न ऐतिहासिक, भूगोलिक शब्दों के बजाय कुछ लोग 'इतिहासिक', 'भौगोलिक' आदि शब्द प्रयोग करते हैं। यहाँ तत्सम रूपों की परिनिष्ठित मानने का पक्ष प्रबल है। इसी तरह से विदेशी शब्दों के उच्चारणमूलक विभिन्न रूप प्रचलित हैं जैसे, 'इटली, इतली, इताली' अथवा 'योरप, यूरोप' आदि। हिंदी कोशकारों के लिये इनमें भी मानकीकरण करना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार के अनेक प्रश्न कोशसंपादन उपसमिति के समक्ष समय समय पर आते हैं। उपसमिति के सदस्यों ने विचार विनिमय के अनंतर जो निश्चय किए हैं उसी पद्धति पर संपादन का कार्य चलता रहा। उसकी यथाशक्ति परिणति ही परिर्वर्धित सशोधित हो कर शब्दसागर के नवीन संस्करण के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।

१८।१२।६४

नागरी प्रचारिणीसभा, काशी।

करुणापति त्रिपाठी

[ सयोजक, संपादक मंडल ]

## प्रकाशिका

‘हिंदी शब्दसागर’ अपने प्रकाशन काल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशकों तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया। तबसे निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशप्रतभ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खड्ड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्त ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी स्थिति में अभाव की उपयोगिता द्वारा लाभ उठाने की दृष्टि में अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुनः अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही। किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहते हुए भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मतिक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तर-दायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० श्री संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदी जगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—‘हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है। हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका वृहत् संस्करण निबालने की आवश्यकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।’

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—‘वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोष सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपये व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा ससार में बहुत बातों

में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणन पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहाय्यार्थ एक लाख रुपये, जो पाँच वर्षों में बीस-बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप इस काम में प्रसन्न होंगे।’

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुनः संपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामन्त्रालय ने अपने पत्र सं० एफ। ४-३।५४ एच० दिनांक ११।५।५४ को एक लाख रुपये पाँच वर्षों में प्रति वर्ष २०-२० हजार रुपये करके देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया जिसमें सर्वश्री डा० संपूर्णानंद, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, आचार्य बदरीनाथ वर्मा, गृहल सांख्यिक, अमरनाथ भा, शिवपूजन सहाय, मो० सत्यनारायण, रामचंद्र वर्मा, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, मुनि जिनविजय, डा० तारापोरवाला, डा० सुब्रह्मण्य अय्यर, किशोरीदास वाजपेयी, वावूराव विष्णु पराडकर, आचार्य नरेंद्रदेव, नददुलारे वाजपेयी, डा० सैयद हफीज, डा० रामश्रवण द्विवेदी तथा डा० सिद्धेश्वर वर्मा थे। साथ ही, इस सवध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के प्रसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको गंभीरतापूर्वक मथकर निम्नांकित सिद्धांत शब्दसागर के संपादन हेतु स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामन्त्रालय भी सहमत हुआ।

(१) इस कोश में जहाँ आवश्यक हो, वहाँ परिभाषाओं और व्याख्याओं में मगत संशोधन किए जायें, जिससे यह वैज्ञानिक और वैयुत्पत्तिक कोश हो सके।

(२) वे शब्द, जो भाषा के अंग बन चुके हैं, चाहे जहाँ से भी आए हों, मूलस्थान का बिना विचार किए रखे जायें। पूर्वसंस्करण में

गृहीत शब्द निकाले न जायें, प्रत्युत नए शब्द अथवा यूरोपीय और भारतीय भाषाओं और बोलियों के प्रयोग, जो प्रथम सरकार के बाद प्रचलन में आगे हों, समाविष्ट किए जायें।

(३) विभिन्न व्यावसायिक धंधों के जनसाधारण में प्रचलित विशिष्ट शब्दों को ग्रहण किया जाय और यथासम्भव उनके उद्गम स्रोतों का निर्देश किया जाय।

(४) जहाँ कहीं आवश्यक और सम्भव हों, अर्थ को स्पष्ट करने के लिये विशेष विवरण दिए जायें।

(५) हिंदी के उन पुराने शब्दों को भी ग्रहण किया जाय जो कभी प्रचलन में थे।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विभिन्न पुस्तकालयों, कोशालाओं एवं सदर्भग्रंथों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया गया तथा अपने साधन एवं सामर्थ्य की सीमा को परखा गया और शब्दसागर के पुनः संपादन के लिये निम्नांकित तत्वों को आधार बनाकर कार्य आरम्भ किया गया

शब्द मुख्य शब्द, उप शब्द, समस्त पद तीन वर्गों में विभक्त किया गया। मुख्य शब्द के अतर्गत (क) सभी स्वतन्त्र शब्द, मूल या व्युत्पन्न, (ख) वे सभी समस्त पद, जो अर्थगत या इतिहासगत वैशिष्ट्य के कारण पृथक् स्थान के अधिकारी हैं (जैसे, अन्नपूर्णा, अग्निवर्ण आदि)। उपशब्द के अतर्गत (क) मुख्य शब्द के विविध और (आवसोलीट) रूप, विगड़े या विगाड़े हुए शब्द, सदिग्ध शब्द या कुप्रयुक्त शब्द, और समस्त पद के अतर्गत वे समस्त शब्द या पद जिनके अर्थों में कोई वैशिष्ट्य हो, और इनका स्थान मुख्य शब्द के अतर्गत रहे, अतर्भूत किए गए। मुख्य शब्द का अर्थ समाप्त होने पर समस्त पद देने की व्यवस्था की गई।

शब्दसंग्रह में निम्नांकित नियमों का पालन किया गया।

(क) व्यक्तीवाचक और स्थानवाचक सत्ताओं में से वे ही दिए गए हैं जिनका अर्थसंबन्धी ऐतिहासिक महत्व है।

(ख) क्रियाओं के विभिन्न रूप न देकर केवल धातु रूप दिए गए हैं।

(ग) ग्रंथों में व्यवहृत शब्दों का ही संग्रह किया गया है, सामान्यतया कोशों से शब्दसंग्रह बहुत कम विद्या गया है।

(घ) सत्ता के विकारी रूप दिए गए हैं।

(ङ) रासो, विद्यापति आदि के ग्रंथों में अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ पाठदोष के कारण अर्थनिर्धारण में बाधा पहुँचती है। ऐसे स्थलों में, जहाँ संभव हुआ है, सदिग्ध पाठ के साथ प्रश्नचिह्न देकर नवीन या उचित पाठ का निर्देश कर दिया गया है और यथास्थान अर्थ दे दिया गया है।

(च) दाढ़, दरिया आदि के ग्रंथों में फारसी अरबी के शब्दों की बहुतायत है। इनका प्रयोग दो प्रकार से हुआ है—

(१) हिंदी शब्दों के माथ मिश्रित रूप में।

(२) पूरी पंक्ति या पूरे छंद में अविकल रूप में।

शब्दसागर में इनमें से प्रथम प्रकार के शब्द ही व्यावहारिक दृष्टि से प्रगृहीत दिए गए हैं।

(छ) विदेशी भाषा के उन शब्दों का सकलन भी किया गया है जो हिंदी में प्रयुक्त प्रचलित हो गए हैं। वर्तनी के संबन्ध में परिनिष्ठित या मुख्य रूप प्रायः सर्वत्र शब्दसागर में प्रयुक्त किया गया है पर यथावश्यकता जहाँ एक से अधिक वर्तनी प्रचलित हैं, वहाँ अति आवश्यक होने पर उन्हें भी दे दिया गया है।

व्याकरणनिर्देश के प्रसंग में शब्दप्रकार या उसका उपभाग दिया गया है, जैसे, उप० (उपसर्ग), सर्व० (सर्वनाम)। शब्दों के अल्पप्रचलित या बहुप्रचलित विशिष्ट अर्थों में वैशिष्ट्यनिर्देशन के लिये भी व्यवस्था की गई है, जैसे संगीत शास्त्र के लिये (संगीत) और वनस्पतिशास्त्र के लिये (वन०)। प्राचीन शब्दरूपों, मुख्यतया अपभ्रंश में शब्द के पूर्वापर रूपक्रम का उल्लेख है तथा विकारी रूपों, बहुवचन आदि का निर्देश भी किया गया है।

रूपविज्ञान, जिसके अतर्गत निश्चित या व्युत्पत्ति है, वडे कोष्ठ [ ] में देने की व्यवस्था की गई है और जहाँ शब्द की व्युत्पत्ति निश्चित है वहाँ मूल रूप का निर्देश किया गया है। अन्य भाषाओं के रूपांतरित शब्दों के व्युत्पत्तिनिर्देश के संबन्ध में ध्वनिपरिवर्तन, वर्णलोप, विकार, विरुद्ध अर्थ या आतिमूलक योजना के आधार पर उसके मूल शब्द का उल्लेख किया गया है।

इसके साथ ही यह भी उल्लेख कर दिया गया है कि वह संस्कृत के किस शब्द का तत्सम या तद्भव रूप है। यदि वे शब्द फारसी, अरबी, अंगरेजी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, चीनी आदि भाषाओं के हैं तो उनका भी तत्सम या तद्भव रूप निर्दिष्ट कर दिया गया है। ऐसे शब्दों के संबन्ध में जो रच्ने या निमित्त किए हुए कोशों से लिए गए हैं, जैसे, ज्योतिर्विज्ञान आदि कोश (नागरीप्रचारिणी सभा), आगल हिंदी महाकोश (डा० रघुवीर), इस्लामाबाद पेशेवारी (डा० जफर रहमान) आदि का उल्लेख कर दिया गया है। देशज शब्दों के संबन्ध में उनके मूल और समस्त पदों का भी निर्देश है।

यह तो मुख्य शब्दों की बात हुई। उप शब्दों के संबन्ध में शब्द का विलुप्त या मुख्य रूप या उसके विविध रूप प्रस्तुत किए गए हैं। यदि उनके वर्तमान रूपों के कारण उनका प्राचीन रूप प्रज्ञात या अपरिचित है तो व्याकरणनिर्देश और व्युत्पत्ति देने के बाद 'दे०' लिखा गया है। प्रचलित मुख्य शब्द में ऐसे शब्दों का अर्थ देखना चाहिए। जहाँ उप शब्द मुख्य शब्द के अनियमित और विचित्र रूप में ग्रहण किया गया है और यदि अर्थ में परिवर्तन नहीं है तो ऐसे उप शब्दों के लिये भी 'दे०' का ही प्रयोग किया गया है। लेखकों या कोशों के सदिग्ध और अशुद्ध, आतिमूलक शब्द जिनका अवचित् प्रयोग ही हुआ हो, उनके अर्थ के लिये भी 'दे०' देकर मूल शब्द के साथ ही अर्थ देखने की व्यवस्था की गई है।

समस्त पदों के अतर्गत सामान्य शब्दों के समस्त रूप यथासम्भव गृहीत किए गए हैं। उनमें प्रत्येक शब्द की वर्तनी पृथक् दी गई है, चाहे वे रूप समासचिह्नों अथवा अर्थसंबन्धी से संयुक्त हों। अति सामान्य समस्त पद, विशेष आवश्यक न होने पर, नहीं लिए गए हैं।

ऐसे समस्त पदों का वर्गीकरण निम्नांकित तीन रूपों में किया जा सकता है

(क) वे समस्त पद जिनमें प्रत्येक शब्द का पूरा पूरा अर्थ निश्चित है।

(ख) वे जिनमें अर्थगत विशेषता संपूर्ण है, पर सयुक्त शब्दों द्वारा जिनकी व्याख्या की जा सकती है।

(ग) वे समस्त पद, जो अपना प्रशस्न इतिहास होने के कारण विशेष अर्थ के बोज़क हो गए हैं और विशेष व्याख्या की अपेक्षा करते हैं। ये सभी समस्त पद मूल शब्द के अनर्गत अकारादि क्रम से शब्दसागर में प्रस्तुत किए गए हैं।

मुहाविरों की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की गई है और उन्हें मूल या प्रधान शब्द के रूप में ग्रहण किया गया है।

व्युत्पत्तिनिर्देश के संबंध में सामान्यतया जिन सिद्धांतों का परिपालन किया गया है, वे निम्नांकित हैं

(क) जो शब्द संस्कृति में उपलब्ध हैं, उनकी व्युत्पत्ति संस्कृत तक ही रखी जाय। संस्कृतेतर शब्दों का मूल स्रोत निर्दिष्ट किया जाय।

(ख) हिंदी में कहाँ से शब्द आया, इसका उल्लेख हो। यदि वह फारसी आदि से आया हो और फारसी ने संस्कृत आदि से ग्रहण किया हो तो दोनों का उल्लेख हुआ करे। उनकी सीधी व्युत्पत्ति के साथ यह लिखा जाय कि हिंदी में यह शब्द इस अर्थ में सबसे पहले कब से प्रयुक्त हो रहा है।

(ग) भिन्न स्रोत (मूलधातु) से आए हुए एकार्थवाचक ऐसे शब्दों की व्युत्पत्ति में प्रायः सभी स्रोत दिए जायें।

(घ) एक शब्द के कई अर्थ हो तो उनकी विभिन्न व्युत्पत्तियों की खोज की जाय।

(ङ) व्युत्पत्ति स्पष्ट करने के लिये अपेक्षित उदाहरण संक्षेप में दिए जायें।

(च) शब्दों की व्युत्पत्ति मुख्यतः संस्कृत से दी जाय।

शब्दसागर का व्युत्पत्ति भी विचारणीय और परिवर्तनीय मानी गई है और निर्देश के पहले हिंदी या संस्कृत या अन्य का निर्देश किया गया है। उन शब्दों को, जिनकी व्युत्पत्ति अप्राप्य है और जो भिन्न उद्गम के हैं, भूखंडों के संबंधवशात् देशों निर्दिष्ट किया गया है।

अप्रचलित और प्राचीन शब्दों के अर्थलेखन में केवल निर्देश करके अर्थ आदि की व्यवस्था की गई है। अर्थों में अनावश्यक विस्तार को रोका गया है और उसकी पूर्ण साहित्य के प्रयोगों से की गई है। ऐसे तद्भव शब्दों का भी निर्देश किया गया है, जिनका अर्थ परिवर्तित हो गया है। संशोधन के संबंध में यथासाध्य उदाहरण दिया गया है। शब्दों के विविध, नवीन, अर्थ रखे गए हैं और विभिन्न ग्रंथों से पूरे सक्त के साथ उदाहरण दिए गए हैं।

जो अर्थ मूल में स्पष्ट हैं उन्हें अधिक स्पष्ट किया गया है तथा अर्थ की भाषा सरल रखी गई है। शब्दाय में व्याख्या के साथ अत्यंत आवश्यक होने पर अंगरेजी शब्द भी देवनागरी लिपि में रखे गए हैं।

उन शब्दों के उदाहरण यथाशक्ति दिए गए हैं जिनके प्रयोग में संघर्ष अथवा अर्थगत विशेषता है। मुहाविरों के उदाहरण भी, जहाँ आवश्यक है, दिए गए हैं। पुगनी हिंदी के ग्रंथों, यथा रासो आदि से, शब्द और अर्थ के साथ उदाहरण भी दिए गए हैं। सभा के स्वीकृत नियमों के अनुसार मूल विदेशी शब्दों की वर्तनी भी दी गई है और व्युत्पत्ति में शीघ्र उच्चारण सूचित करने के लिये अक्षरों के नीचे विंदी आदि भी लगाई गई है। जिन ग्रंथों से शब्दचयन किया गया है, उदाहरण भी उन्हीं से लिए गए हैं। शब्दसागर के अर्थों के उदाहरण संक्षिप्त किए गए हैं, परंतु ध्यान रखा गया है कि ऐसा करने में सदर्भ की पूर्णता खंडित न होने पाए। प्रसिद्ध एवं प्रचलित शब्दों के नए उदाहरण प्रायः नहीं रखे गए हैं, पर इस बात का ध्यान रखा गया है कि उदाहरण अर्थच्छाया के विशदीकरण के लिये ही हो।

समितियों और मंडलों द्वारा स्वीकृत इन तत्वों के आधार पर शब्दसागर की रचना हुई। इस कार्य में सभा को ११ वर्षों का समय लगा है तथा सैकड़ों व्यक्तियों ने सहयोग प्रदान किया है। इसकी अपनी एक कहानी है।

मूल संस्करण की प्रस्तावना भी इस नवीन संस्करण में दे दी गई है जिससे मूल संस्करण का संक्षिप्त इतिहास है। इस नवीन संस्करण का संपादन सरकारी अनुदान पर आधारित था। सरकार के अपने अलग विधि विधान होते हैं और सभा का अपना विधि विधान भी है। इसलिये दोनों के ताल मेल के माध्यम से कार्य का आरम्भ और संचालन हुआ। यद्यपि इस कोश के संपादन कार्य को पाँच वर्षों में ही पूरा करना था, तो भी यह कार्य लगभग ११ वर्षों में पूरा हुआ। सभा को इस बात का खेद है कि वह निश्चित समय में कार्य पूरा न कर सकी। किंतु उसे इस बात का सतोष है कि विलंब से ही सही, यह महत्वपूर्ण कार्य संपन्न हुआ। इस कार्य की प्रगति का कुछ विस्तृत विवरण यहाँ उपस्थित करना अप्रासंगिक न होगा।

१५ जून १९५४ को कोश कार्य आरम्भ हुआ और उसके कार्यालय का व्यवस्था की गई। यह कार्य १३ अप्रैल, १९५६ तक चलता रहा इस अवधि के प्रथम वर्ष मूल हिंदी शब्दसागर के ६००० शब्दों पर व्युत्पत्ति-संशोधन तथा अपभ्रंश, डिंगल, राजस्थानी, हिंदी आदि के नए पुराने ग्रंथों से ७२,६०० शब्दों का संकलन किया गया।

दूसरे वर्ष प्रथम वर्ष के संकलित शब्दों के अक्षरक्रम से संयोजित किया गया तथा ३३,३६८ नए सगृहीत शब्दों का अर्थलेखन किया गया। सगृहीत शब्दों में ५,०६८ शब्द अनावश्यक होने के कारण निकाल भा दिए गए और १०,००० शब्दों पर व्युत्पत्ति-संशोधन का कार्य हुआ। मूल हिंदी शब्दसागर के ६,५११ शब्दों पर व्युत्पत्ति तथा अर्थसंशोधन कार्य भी किया गया। इस वर्ष से विभागीय समस्याओं पर विचारार्थ साप्ताहिक बैठकों की व्यवस्था आरम्भ की गई।

तीसरे वर्ष, अर्थात् सन् २०१३ विक्रमी में, पुराने सगृहीत शब्दों पर अर्थलेखन कार्य चलला रहा। व्युत्पत्ति के क्षेत्र में १२,०३८ व्युत्पत्तियाँ पूरी की गई। इस अवधि तक ५० कक्षापति त्रिपाठी





२१-५-५७-१५-४-५८, १ वर्ष, १३ शालग्राम उपाध्याय सहायक सपादक, १५-१-५७-२-८ ५७, २१-५-५७-१५-४ ५८, १ वर्ष, १४ श्यामसुंदर शुक्ल, सहायक, सपादक, ८-१ ५७-२१-५-५७ ४३ मास, १५ हरिमोहन श्रीवास्तव, सहायक सपादक, १५-१-५७-२-८ ५७, २१-५-५७ १-१२-५७, ८ माह, १६ चंद्रीप्रसाद मिश्र, सहायक सपादक, २८-२-५७-२१-५-५७ ३ माह, १७ लक्ष्मणस्वरूप त्रिपाठी, सहायक सपादक, २८-२-५७-२१-५-५७, ३ मास, १८ रामकुमार राय, सहायक सपादक, २८-२-५७-२१-२-५७, ३ मास, १९ तिलकधारी पांडेय सहायक सपादक, ११-३-५७-२१-५ ५७, २३ मास २० किशोरीदास वाजपेयी, सहायक सपादक, २४-२-५७-१५-४-५८, १ वर्ष २ मास, २१ दयाशकर द्विवेदी, सहायक सपादक, ६ ३-५७-२१-५-५७ २३ मास, २३ छत्रराम गुप्त, टकक, २-८-५७-१६-१०-५७, २३ मास, २४ नागेंद्रनाथ उपाध्याय, सहायक सपादक, १-८-५७-१५-४-५८, ८३ मास, २५ विष्णुचंद्र शर्मा, सहायक सपादक, १-१०-५७-१५-४-५८, ६३ मास, २६ ब्रजेंद्रनाथ पांडेय, सहायक सपादक १५-११-५७-१५-४-५८, ५ मास, २७ हरिहरसिंह, लेखक, १५-३-५८-१३-४-५८, १ वर्ष, १ मास, २८ जयशंकर मिश्र, टकक, २-७-५४-१०-२-५५, ७३ मास।

ता० १३।४।१९५६ को विभाग समाप्त हो गया।

अपनी अपनी क्षमता और शक्ति के अनुसार इन सभी कार्यकर्ताओं ने कार्य किया, इसके लिये ये धन्यवाद के पात्र हैं।

कोश के कार्य का यह चरण यद्यपि स० २०१५ से समाप्त हो गया, तो भी धीरे धीरे सभा इस कार्य को अग्रसारित कर रही थी और, कार्य की शृंखला बनी रहे, इसलिये स्वयं अपने पास से व्यय कर रही थी। बाकी धन २० हजार के स्वीकृत अनुदान में से अनेक प्रयत्न करने पर भी १९ जून, १९५६ को केवल १० हजार रुपए केंद्रीय सरकार से प्राप्त हुए। स० २०१६ में सभा वेतन पर १६२६ रुपया ४३ पैसे और व्यय कर चुकी थी तथा कोश के लिये संदर्भ ग्रंथ क्रय करने पर १०१४ रुपया ५६ पैसे लगा चुकी थी। इस प्रकार सवत् २०१६ के अंत तक १२३३० रुपया ३९ पैसे व्यय कर चुकी थी। इसी बीच श्री डा० रामधन शर्मा, विशेष अधिकारी शिक्षा मंत्रालय द्वारा ३१ जनवरी सन् १९५६ से ४ फरवरी सन् १९५६ तक अवकाश मिलने के कारण कोश कार्य की जाँच की गई तथा उनका महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त हुआ। निश्चय ही इसमें वर्णित तथ्य विचारणीय थे, तथा अनेक सुंदर सुझावों से पूर्ण भी। सभा ने इस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया और इस संकल्प पर दृढ़ रही कि उसे शब्दसागर का संशोधन और परिवर्धन करना है और इस रूप में करना है कि भले ही वह ससार का सर्वोत्तम कोश न बन सके तो भी हिंदी के सर्वोत्तम कोश की उसकी मर्यादा सुरक्षित रहे और तब तक के कोश-रचना-शिल्प से आधार पर शेष कार्य को उसकी मूल सिद्धांतों के आधार पर अग्रसारित किया जाय। इसी प्रकार वह शब्दसागर की पुरानी मर्यादा का संरक्षण कर सकेगी।

सरकार ने सभा की इस चिन्ता में हाथ बटाया और सहानुभूतिपूर्वक सहायता के लिये वह पुनः आगे बढ़ी। वह १४ फरवरी सन् १९६२

तक का समय इसमें बीत गया, उसने १०००० रुपए सभा को अनुदानस्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार १४ फरवरी सन् १९६२ तक सरकार ने अपना पूर्वस्वीकृत एक लाख रुपया का अनुदान सभा को दे दिया।

सवत् २०१८ के अंत तक इतरेत जो कार्य इस अवधि में सभा कर रही थी उसमें एक लाख के अतिरिक्त ६५८३ रुपया ७३ पैसे सभा और व्यय कर चुकी थी। तब तक सरकार इस कार्य की गुरुता को पहचान चुकी थी और उसे अग्रगण्य छोड़ना उचित न समझ कर उसने ६५००० का नया अनुदान स्वीकार किया और ४ मार्च सन् १९६३ को उसने उसमें से ३२५०० रुपए सभा को एतदर्थ सहायता की। यही से सभा में कार्य की पुनर्नई चेतना उत्पन्न हुई।

फिर से पुराने कार्य का पुनर्वारावलोकन और पुनर्मूल्यांकन आरम्भ किया गया और पुराने काम को, जिसमें से बहुत अस्तव्यस्त और जीर्ण सा हो गया था, सुगमस्थित और सुनियोजित करने में लगभग दो वर्ष व्यतीत हो गए थे। सभा ने यह बड़ा मूल्यवान् समय केवल पुनर्मूल्यांकन में तथा योजनावद्ध रूप से कार्य करने की योजना बनाने में व्यय किया। फिर भी जिस उत्साह, निष्ठा और लगन से यह कार्य सवत् २०२१ से आरम्भ किया गया उसकी गति निश्चय ही सतोषप्रद रही है। निश्चित अवधि के भीतर अब संपादन का कार्य ३१ दिसंबर, सन् ६५ तक समाप्त होने जा रहा है। नई कार्यविधि में शब्दसागर के आरम्भ के अंश से ही सकलन, संशोधन, संपादन के साथ ही साथ निरीक्षण, व्युत्पत्तिनिर्देशन, अर्थचिंतन संशोधन तथा प्रेस कापी तैयार करने का कार्य वैतनिक अर्थात् वैतनिक, दोनों प्रकार के कार्यकर्ता अधिकारी और कर्मचारी का भेद भूलकर एकरस हो हिंदी हितचिंतन को आदर्श मान प्राणपण से सचेष्ट होकर इस अवधि में कार्य करते रहे। जिन वैतनिक कार्यकर्ताओं ने कार्य किया है या कर रहे हैं उनकी सूची, पद तथा कार्याविधि के साथ नीचे दी जा रही है।

१ श्रीतिलोचन शास्त्री, सहायक सपादक १-११-५६-३१-१२-६५, ६ वर्ष २ माह, २ श्रीविश्वनाथ त्रिपाठी, सहायक सपादक १-११-५६-१-१-६४, २-५-६०-३१-१२-६५ (स्यानांतरण) २ वर्ष ७ मास, ३ श्रीहरिहर सिंह शास्त्री, सहायक सपादक १४-२-६४-१५-४-६५, १ वर्ष ११ मास, ४ स्व० श्रीरघुनंदनप्रसाद शुक्ल 'मटल', सहायक सपादक, १-२-६४-३०-६-६५, १ वर्ष ८ मास, ५ श्री लालधर त्रिपाठी प्रवासी, सहायक सपादक, २३-६-६४-३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, ६ श्रीप्रसाद, सहायक सपादक, २३-६-६४-३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, ७ श्रीराधा-विनोद गोस्वामी, सहायक सपादक, १५-६-६४-३१-१२-६५ १ वर्ष ३१ मास, ८ श्रीशारदाशंकर द्विवेदी, सहायक सपादक, ६-३-६५-३१-१२-६५, ६ मास, ९ श्रीराजाराम त्रिपाठी, सहायक सपादक, २७-७ ६५-१६-११-६५, ३१ मास १० श्रीरामबला पांडेय, सहायक सपादक, ७ ७-६४-३०-१-६५, ६ मास, ११ श्रीविजयवर्ती मिश्र, लेखक, ४-२-६३-३१-१२-६५, २ वर्ष ११ मास, १२ श्रीरामेश्वरलाल लेखक, १५-६-६४-१२-८-६४, २ मास, १३ श्रीकेशरीनारायण त्रिपाठी, लेखक १०-१०-६४-

३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, १४ श्रीजितेंद्रनाथ मिश्र, लेखक, १०-१०-६४-३१-१२-६५ १ वर्ष ३ मास, २५ श्रीराम मेहरोत्रा, लेखक ११-१०-६४-३०-६-६५, १ वर्ष, १६ रामदयाल कश्यप, लेखक, ५-१-६५-३१-१२-६५, १ वर्ष, १७ लज्जाशंकर लाल, लेखक १६-३-६५-३१-१२-६५-६॥ मास, १८ श्रीमनोरजन ज्योतिषी, लेखक, २३-४-६५-२०-७-६५, ३ मास, १९ श्रीगुदावलाल श्रीवास्तव, लेखक, १०-५-६५-३१-१२-६५, ७॥ मास, २० श्रीवशिष्ठनारायण त्रिपाठी, लेखक, १-६-६५-३०-६-६५, १ मास, २३ श्रीउदयशंकर द्विवे, लेखक, २०-७-६५-३१-१२-६५, ५॥ मास, २४ श्रीकिशोरीरमण मिश्र, लेखक, १-६-६५-३१-१२-६५, ७ मास, २५ श्रीअशर्फीराम मिश्र लेखक, १८-६-६५ ३१-१२-६५, ३॥ मास २६ श्रीश्यामाकांत पाठक, लेखक, १८-६-६५-३१-१२-६५, ३॥ मास, २७ श्रीसदानंद शास्त्री, लेखक, १८-६-६५-३१-१२-६५, ३॥ मास, २८ श्रीवद्रीनारायण उपाध्याय, लेखक, ११-११-६५-३१-१२-६५, २ मास । चपरासी—स्व राम सुंदर १-११-५६ से, रघुनाथ ८-८-६४-३१-१२-६५, १॥ वर्ष । बुद्धू राम (लगभग २ मास ) । ३१-१२-१९६५ को विभागसमाप्ति ।

यद्यपि इन वैतनिक कार्यकर्ताओं की योग्यता और क्षमता के अनुसार उन्हें वृत्ति नहीं दी जा सकी है तो भी अपनी क्षमता भर उन्होंने अपने घर की तरह जिस भांति दत्तचित्त होकर कार्य किया है उसके प्रति कृतज्ञता न प्रकाश करना कृतघ्नता होगी । हमें इस बात का खेद है कि हम अपनी साधनहीनतावश हिंदी की सेवा सभा के माध्यम से उनसे आगे ले सकने की स्थिति में नहीं हैं । तो भी सभा के प्रत्येक पदाधिकारी की मंगलकामना उनके साथ है ।

संवत् २०१६ में ३२,५००) के प्राप्त अनुदान में से जो व्यय किया गया उसके उपरांत भी २०,६४३) ३३ और स० २०२० में उसी में से व्यय करने के उपरांत १६,१२६) ८६ पैसे सरकारी अनुदान का बचा रहा । संवत् २०२१ में हिंदी शब्दसागर पर समा ने जो व्यय किया वह अनुदान से प्राप्त रुपये के अतिरिक्त ५,६३१) ७७ था । १५ दिसंबर सन् १९६५ तक सभा अपने पास से ३०,६७१) ६१ व्यय कर चुकी थी और इसके अतिरिक्त ३१ दिसंबर तक १,८२८, रुपया और व्यय होने का अनुमान है । इधर सरकार ने स्वीकृत अनुदान शेष ३२,५००) में से १०,०००) भेजा है । इस प्रकार सरकार से स्वीकृत ६५,०००) के इस अनुदान से शब्दसागर का संपादन कार्य समाप्त हो जायगा । केवल 'स' और 'ह' अक्षरों की प्रतिलिपि मात्र शेष रह जायगी ।

इस अवसर पर सभा के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री डा० राजवली पांडेय और डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा को भी धन्यवाद देते हैं, क्योंकि उनका प्रयत्न भी स्मरणीय है । कोश कार्य का पर्यालोचन तथा निरीक्षण यथावश्यकता धरावर श्रीकृष्णदेवप्रसाद गोड, प० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र', डा० भोलाशंकर व्यास और मैं करता रहा हूँ, और पंडित कल्याणपति त्रिपाठी सयोजक के रूप में और गुवतापूर्वक

अपने इस उत्तरदायित्व का वहन । एक साथ बैठकर सभा के अतिथि-भवन के वक्ष में कोश के वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के साथ हम सबने एक एक शब्द पर चिंतन एवं मनन तो किया ही है, अनेक उलझनों को यथाशक्ति सुलझाते भी रहे हैं । इस कार्य के लिये हम सबने सभा की सेवा में अपने को अर्पित कर बल भर कार्य पूरा करने का यत्न किया है । इस प्रसंग में संपादकमंडल में सरकार के शिक्षा मंत्रालय के प्रतिनिधि डा० रामधन शर्मा का मार्मिक सहयोग एवं सुभाव बहुत अधिक सहायक हुआ है । इस अवसर पर सभा के भूतपूर्व सभापति स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्रदेव, डा० अमरनाथ भा एव प० गोविंद बल्लभ पंत की स्मृति भी जाग्रत हो उठती है । जिन्होंने शब्दसागर के नवीन संस्करण के प्रति उनकी चिंता देखी है वे ही अनुमान लगा सकते हैं कि वे आज इस कार्य से कितने तुष्ट होते । सभा के संरक्षक तथा राष्ट्रपति स्वर्गीय डा० राजेंद्रप्रसाद इस कार्य के लिये कितने व्यग्र थे, यह ऊपर दिए गए उसके भाषण के प्रशंसक से सहज ही जाना जा सकता है । उनका सभा पर ऋण है और वह ऋण हिंदी के हित में किए गए ऐसे कार्यों द्वारा ही चुकाया जा सकता है ।

सभा के संरक्षक डा० संपूर्णानंद जी उसके प्रत्येक सुंदर कार्य के मूल में आत्मा की भांति हैं, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का साहस नहीं है । हमारे वर्तमान सभापति प० कमलापति त्रिपाठी का स्नेह और उद्बोधन ही सभा की आज की गति के मूल में है । यद्यपि देश और समाज के कार्य में वे व्यस्त रहते हैं, तो भी सभा की चिंता उन्हें बनी रहती है, और राजनीतिक हानि उठाकर भी सभा के प्रत्येक कार्य में रुचि लेते हैं । इस कोश के कार्य में उन्होंने जो रुचि ली और जो योग दिया है उसकी प्रेरणा के परिणामस्वरूप ही इस कार्य का संपन्न होना संभव हुआ है ।

भारत के प्रधान मंत्री माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री का सभा से संबंध बड़ा पुराना है । वे सर्वदा अपनी व्यस्तता में भी सभा को, उन्नत करने में योगदान करते रहते हैं । इस सभा के वे संरक्षक हैं, और उन्होंने शब्दसागर के प्रथम खंड का उद्घाटन करने की स्वीकृति देकर हमें जो प्रोत्साहन दिया है, सभा निश्चय ही उसके प्रति हृदय से कृतज्ञ है और उसके कायकर्ता और अधिक उत्साह से हिंदी की सेवा करने के लिये कृतसंकल्प ।

भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षामंत्री श्री के० एल० श्रीमाली और वर्तमान उपशिक्षामंत्री श्री भक्तदर्शन जी ने समय समय पर इस कार्य में जो रुचि दिखाई है, और सभा की जैसी सहायता की है उसके प्रति सभा और उसके कायकर्ता हृदय से कृतज्ञ हैं ।

हो सकता है इस कार्य के संपन्न होने में कभी कभी कुछ अप्रिय भी हुआ हो । इस अप्रियता का कारण स्वप्न में भी किसी को कष्ट पहुँचाना नहीं रहा है, अपितु कार्य की त्वरित गति और निश्चित अवधि तक समाप्ति की भावना ही हमारे प्रत्येक कार्य के मूल में थी । फिर भी यदि इस सब में कहीं कुछ अप्रिय हुआ तो उसका उत्तरदायित्व सहज

ही मेरे मित्रों पर, विशेषकर मुझ पर, ही है। मैं उनके लिये उन सबसे हृदय से क्षमाप्रार्थी हूँ जिनको जरा भी मुझसे ठेस पहुँची हो।

इस कोश के नवीन संस्करण के लिये जिन सर्व ग्रंथों से सहायता ली गई है उनके लेखकों, संपादकों तथा प्रकाशकों के प्रति सभा कृतज्ञ है। इन ग्रंथों में से कुछ विशेष सहायक ग्रंथों के नाम यहाँ दिए जा रहे हैं -

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ( १३ खंड )। ग्रांटर ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ( २ खंड )। कन्साइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी। थार्नडाइक इंग्लिश डिक्शनरी। चेंबर्स ट्वेन्टिएथ सेंचुरी डिक्शनरी। संस्कृत वोटरबुख, आटो बोथलिंग रडोल्फ राय। संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी सर एम० मोनियर विलियम्स, प्रैक्टिकल संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी वी० एम० आस्टे। आस्टे कृत प्रैक्टिकल संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी ( ३ खंड ), संपादक—पी० के० गोडे तथा सी० जी० कर्वे। मैकडानेल प्रैक्टिकल संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी। पश्चिम इंग्लिश डिक्शनरी स्टाइनगास। ऐंग्लो हिंदुस्तानी डिक्शनरी फैलन। हिंदुस्तानी शब्दार्थ फैलन। नेपाली डिक्शनरी टर्नर। शब्दार्थ कल्पतरु मामिडि वैकटार्य। अल्फरायड उल्दुरियत उल-नुलाव ( अरबी अंग्रेजी डिक्शनरी ), फरहंग आमफिया ( ४ खंड )। नूर उल् लुगात ( ४ खंड )। करीम उल् लुगात। तखमीस उल् लुगात। लुगात किशोरी। अमरकोश। हलायुधकोश। मेदिनी कोश। शब्दकल्पद्रुम ( ५ खंड )। वाचस्पत्यम् ( ८ खंड )। पूर्णचंद्र ओडिया महाकोश ( ७ खंड )। वाङ्मला भाषार अभिधान ज्ञानेन्द्रमोहन दास ( २ भाग )। चलतिका राजशेखर वसु। विनीत जोड़णी कोश ( गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद ), मराठी व्युत्पत्ति कोश कृष्णाजी पाडुजी कुलकर्णी। इस्तेलहाते पेशेवारां ( आठ खंड )। राजस्थानी सबद कोश। सीताराम लालस। अवधी कोश रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'। बिहार पीजेंटस लाइफ, कृषिकोश बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्। कृषि जीवन सबधी ब्रजभाषा शब्दावली ( २ खंड ), अवाप्रसाद सुमन। ब्रजभाषा सूरकोश ( पाँच खंड )। तुलसी शब्दसागर। हरगोविंद तिवारी। मानस शब्दसागर वद्रीशस अग्रवाल। संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी। डॉ० विलसन। अंग्रेजी संस्कृत डिक्शनरी सर एम० मोनियर विलियम्स। संस्कृत थियोडोर वेन्के। पाली इंग्लिश डिक्शनरी सोसायटी। अर्धमागधी कोश मुनि श्री रत्नचंद्र। जॉन शेक्सपियर हिंदुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी ऐंड इंग्लिश हिंदुस्तानी डिक्शनरी। प्रसाद काव्यकोश श्री सुधाकर पांडेय। बृहत् अंग्रेजी हिंदी कोश ज्ञानमंडल। उर्दू हिंदी शब्दकोश मद्दाह। पांडेय सद् महंमदोवो हरगोविंद सेठ। अभिधान राजेंद्र ( ५ खंड )। पाली हाइन्ड्रिड डिक्शनरी। रूपनिष्ठ, नागरीप्रचारिणी सभा, बाराणसी। शालिग्राम निष्ठदुमूरणम्। अश्ववेद्यक। अश्वशास्त्र। रगिनामा। डिगल कोश। इन्साक्लोपीडिया ऑव् रिलीजन ऐंड एथिक्स—हेंटिंग्ज। विश्वकोश ( हिंदी तथा बंगला ) संपादक—नरेंद्रनाथ धनु। तेलुगु डिक्शनरी गैलेटी। पोर्चुगीज ऐंड इंग्लिश डिक्शनरी ( २ खंड )। इन्प्लुएम् ऑव पोर्चुगीज वोकेबुलस इन एशियाटिक लांग्वेज वी० भट्टाचार्य। पश्चिम वोकेबुलरी लेखर्दन। वर्ल्ड गेजेटियर ऐंड जियोग्राफिकल डिक्शनरी। डिक्शनरी

ऑव वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स. टी० शिप्ले। लटाइनशेज एटिमोलोगीज वोटरबुख रिलीज उट इन्सिक्लिप्ट ( २ खंड )। मुंडारी इंग्लिश डिक्शनरी। ऐटिमोलोगीज वोटरबुख डेस आल्टिडिशन. मानफ्रेड मायर होफर ( ६ खंड )। आल्टिडिगे ग्रामाटीक ( ५ खंड ), वाकरनागेल। गुरु-शब्दरत्नाकर ( ४ खंड )। हिंदी राष्ट्रभाषा कोश। वैद्यक शब्दसिंधु। आयुर्वेदीय विश्वकोश ( ३ खंड )। वनोपधि चंद्रोदय ( ८ खंड )। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका ( ३४-३५ )।

नागरीप्रचारिणी सभा के प्रकाशन तथा कोश विभाग में पूर्ण सहयोग के कारण ही यह कोश इतने शीघ्र प्रकाशित हो सका है और विश्वास है कि शेष खंड प्रत्येक छह छह महीने पर प्रकाशित होते रहेंगे। सभा के सहायकमंत्री श्री शम्भुनाथ वाजपेयी, श्री विश्वनाथ त्रिपाठी तथा श्री वल्लभाशरण पांडेय ने प्रूफ सशोधन के कार्य में जो सहयोग दिया है मैं तदर्थ आभारी हूँ। हमने इस बात का प्रयत्न किया है कि प्रूफ सबधी तथा अन्य त्रुटियाँ इसमें स्थान न पा सकें किंतु कहीं कहीं संभव है कुछ प्रूफ सबधी भूलें आ गई हों जिसका हमें आंतरिक व्लेश है। हम इसे अगले संस्करण में दूर करने का प्रयत्न करेंगे और ध्यान रखेंगे कि इस प्रकार की त्रुटियाँ भविष्य में न हों। फिर भी नागरंमुद्रण के व्यवस्थापक श्री विष्णुचंद्र शर्मा तथा उनके सहयोगियों ने जिस तत्परता के साथ काम किया है वह सराहनीय है।

इस ग्रंथ के संपादन का ही नहीं, उसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भारत सरकार ने वहन किया है। इसलिये ही यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उनके लिये शिक्षा मंत्रालय के अधिकारियों का प्रशस्नीय सहयोग हमें प्राप्त है और उसके लिये हम उनके आभारी भी हैं।

जिम रूप में यह ग्रंथ हिंदी जगत् के समूख प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और प्रयोग किया गया है किंतु हिंदी की और हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, परंतु साधन की कमी तथा हिंदी के ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव में वैसा कर सकना संभव न था। फिर भी यह कहने में हमें सकोच नहीं कि अद्यतन प्रकाशित कोशों में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले हमसे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हिंदी जगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थाई विभाग का संकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और सशोधन के लिये अद्यतन कोशशिल्प विधि से यत्नशील रहेगा।

मूल शब्दसागर से इसकी शब्दसंख्या में दुगुनी से अधिक की वृद्धि हुई है और नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, संत एव सूफी साहित्य ( पूर्व मध्यकाल ), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनदन एव पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित

उर्दू शैली आदि से सकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

शब्दचयन सामान्यतः सन् १९५६ तक प्रकाशित ग्रंथों से तथा सन् १९६० तक प्रकाशित महत्वपूर्ण ग्रंथों से किया गया है, उनके प्रयोग के उदाहरण भी प्रस्तुत किए गए हैं। शब्दसागर में दी गई व्युत्पत्तियों या अर्थों तथा दृष्टान्तों में व्यापक रूप से सशोधन भी किया गया है, तथा उसमें एतत्संबंधी लगे प्रश्नचिह्नों का यथासाध्य समाधानपूर्वक प्रामाणिक परिष्कार भी किया गया है।

अतः में शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के सस्यापक डा० श्यामसुंदरदास को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह सकल्प हम पुनः दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक मसा रहेगी और उनका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा, और इस क्षेत्र में वह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्य होता रहेगा।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

मार्च ३ पौष, स० २०२२ वि०।

सुधाकर पांडेय

प्रकाशन मन्त्री

## संकेतिका

[ उद्धरणों में प्रयुक्त सबंध ग्रंथों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं ]

अंधेरे	अंधेरे की भूख डा० रागेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण	अष्टांग ( शब्द० )	अष्टांग योगसंहिता
अकवरी०	अकवरी दरवार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, स० २००७	आंधी	आंधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार इलाहाबाद, पंचम सं०
अग्नि०	अग्निशय, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार इलाहाबाद, प० सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६ वां सं०	आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० सं०
अणिमा	अणिमा, प० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग-मंदिर, उन्नाव	आदि०	आदिभारत, जून चौथे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० सं० १९५३
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
अनामिका	अनामिका, प० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०	आनंदधन ( शब्द० )	कवि आनंदधन
अनुराग०	अनुरागसागर, सपा० स्वामी युगलानंद विहारी, वैकुण्ठेश्वर प्रेस, बदायूं, प्र० सं०	आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्य-कार संसद, इलाहाबाद, प्र० सं०
अनेक ( शब्द० )	अनेकार्थ नाममाला ( शब्दसागर )	आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भाँसी, प्र० सं०, १९८४ वि०
अनेकार्थ०	अनेकार्थमञ्जरी और नाममाला, सपा० धनमध-प्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०	आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
अपरा	अपरा, प० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग	आर्यों	आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारतीभंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० सं०
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०	इंद्र०	इंद्रजाल जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
अभिषिप्त	अभिषिप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०	इन्द्रा०	इंद्रावती, सपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३०	इशा०	इशा उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा० अजरतनदास, कमलमणि ग्रंथ-माला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
अमृतसागर ( शब्द० )	अमृतसागर	इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, प० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवां सं० ।
अयोध्या ( शब्द० )	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय', प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली,
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं० २०१४	इरा०	इरावती जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
अर्चना	अर्चना, प० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला-	उत्तर०	उत्तर रामचरित नाटक अनु० प० सत्यनारायण

कठ० उप० ( शब्द० )	कठवल्ली उपनिषद्	कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० यादूराम सक्सेना, ना० प्र०
कही०	कही मे कोयला, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, प्र० सं०	कुंजुर०	सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कवीर ग्रं०	कवीर ग्रथावली, सपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी	कुणाल	कुंजुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कवीर० वानी०	कवीर साहब की वानी	कृषि०	कुणाल, सोहननाल द्विवेदी
कवीर	कवीर बीजक, सपा० हंसदास, कवीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, वाराणसी, २००७ वि०	केशव ( शब्द० )	कृषिशान्त
कवीर म०	कवीर मसूर ( २ भाग ), वैकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस ववई, सन् १९०३	केशव प्र०	केशवदास
कवीर रे०	कवीर साहब की ज्ञानगूदडी व रेखते, वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद	केशव० श्री०	केशव ग्रथावली, सपा० २० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
कवीर श०	कवीर साहब की शब्दावली ( ४ भाग )	कौटिल्य ग्र०	केशवदाम की श्रीमधूत
कवीर ( शब्द० )	कवीरदास	कवासि	कौटिल्य का श्रयंशास्त्र
कवीर सा०	कवीरसागर ( ४ भा० ), सपा० स्वा० श्री युगलानंद बिहारी, वैकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, ववई	खानखाना ( शब्द० )	कवासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, ववई, १९५३ ई०
कवीर सा० सं०	कवीर साखी संग्रह, वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९१२ ई०	खालिक०	अबदुर्रहीम खानखाना
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०	खिलीना	खालिकदारी, सपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०	खुदारांम	खिलीना ( मासिक )
कविता कौ०	कविता कौमुदी [ १-४ भा० ], सपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०	गग ग्र०	खुदारांम और चंद हसीनो के खतूत, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, आठवां सं०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, सपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग	गदाधर०	गग कवित्त [ ग्रंथ वली ], सपा० वटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
कानन०	काननकुसुम, जयशंकरप्रसाद, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं०	गवन	श्रीगदाधर भट्ट जो की वानी
कामायनी	कामायनी, जयशंकरप्रसाद, नवम सं०	गि०दा०गि०दास(शब्द०)	गवन, प्रेमचंद, हम प्रकाशन, इलाहाबाद, २६ वां सं०
काया०	कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ६वां सं०	गिरिधर ( शब्द० )	गि०दा०गि०दास(शब्द०) गिरिधरदास ( दा० गोपालचंद्र )
काले०	काले कारनामे, 'निराला', कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग २००७ वि०	गीतिका	गिरिधर राय ( कुडलियावाले )
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडरप्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०	गुजन	गीतिका, 'निराला', भारतीभंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रागेय राघव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं०, २०१२ वि०	गुमान ( शब्द० )	गुजन, सुमित्रानंदन पंत, भारतीभंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, पं० श्रीधरपाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद	गुलाल०	गुमान मिश्र
किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०	गोदान	गुलाल वानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
		गोपाल० ( शब्द० )	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०
		गोरख०	गिरिधर दास ( गोपालचंद्र )
		ग्राम्या	गोरखवानी, डा० संपा० पीतावरदत्त बंडोवाल, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
		घट०	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
		घनानंद	घट रामायण [ २ भाग ], सतगुरु तुलसी साहिव, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
		घाघ०	घनानंद, सपा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
			घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद ।



चंद०	चंदे हसीनी के खतूत, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०	जिप्सी	जिप्सी, इलाहाबाद, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवां सं०	ज्ञानदान	ज्ञानदान यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४२ ई० ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह दिनकर, उदयावल, पटना प्र० सं०	भरना	भरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भट्टार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवां सं०
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका		
चरण० वानी	चरणदास की वानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	भांसी०	भांसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, द्वि० सं०
चांदनी०	चांदनी रात और अजगर, उपेन्द्रनाथ अशक, नीलाम प्रकाशन गृह, प्रयाग, प्र० सं०	टंगोर०	टंगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, १९५६ ई० प्र० सं०
चिता	चिता, अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, १९४० ई०	ठडा०	ठडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
चितामणि	चितामणि [ २ भाग ], रामचंद्र शुक्ल, इडियन प्रेस, लि० प्रयाग।	ठाकुर०	ठाकुर शतक, सपा० काशीप्रसाद, भारत-जीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, सवत् १९६१
चितामणि (शब्द०)	कवि चितामणि त्रिपाठी	ठेठ	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्या सिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चित्रा०	चित्रावली, श्री० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० समा, प्र० सं०।	ढोला० दू०	ढोला मारू रा दूहा, सपा० रामसिंह, ना० प्र० समा, काशी, द्वि० सं०
चुभने०	चुभते चौपदे, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरि-श्रीधर', खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०	तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवां सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, " " "	तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भट्टार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला', किदाबमतल, इलाहाबाद, प्र० सं०	तुलसी प्र०	तुलसी अथावली, सपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० समा, काशी तृतीय सं०
छंद०	छंद प्रभाकर, भानुकवि, भारतजीवन प्रेस काशी, प्र० सं०	तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरस वाले), बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, १९११
छत्र०	छत्रप्रकाश, सपा० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०	तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर
छिताई	छिताई वार्ता, सपा० साताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० समा, वाराणसी, द्वि० सं०	तेज०	तेजविदूषनिषद्
छीत०	छीत स्वामी, सपा० ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, कांकरोली, प्र० सं० २०१२ वि०	तोप (शब्द०)	कवि तोप
जग० धानी	जगजीवन साहब की धानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, १९०६, प्र० सं०	त्याग०	त्यागपत्र, जेनेड्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बवई, प्र० सं०
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली	द० सागर	दरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नददुलारे वाजपेयी, भारती भट्टार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९६५ वि०	दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, सपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार समा, हैदराबाद, प्र० सं०
जायसी श०	जायसी अथावली. सपा० रामचंद्र शुक्ल.	दरिया० धानी	दरिया साहब की वानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०

दाहू०	(श्री) दाहूदयाल की बानी, सपा० श्री सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी	नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद लीडर प्रेम, प्रयाग, सधम सं०
दाहूदयाल ग्रं०	दाहूदयाल ग्रथावली	नागरी (शब्द०)	नागरीदाम
दाहू० (शब्द०)	दाहूदयाल	नील०	नीलकुसुम, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना प्र० सं०	नेपाल०	नेपाल का इतिहास, प० व लदेवप्रसाद, वैकटेश्वर प्रेम, बवई, १९६१ वि०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०	पचवटी	पचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, भाँसी, प्र० सं०
दीन० ग्र०	दीनदयाल गिरि ग्रथावली, सपा० श्याम सुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	पजनेस०	पजनस प्रकाश, सपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यंत्रालय, काशी, प्र० सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि	पदमावत	पदमावत, सपा० वासुदेवशरण भगवान, साहित्य सदन, चिरगाँव, भाँसी, प्र० सं०
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०	पदु०, पदुमा०	पदुमावता, सपा० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्व-विद्यालय, लाहौर, १९६४ ई०
दी० ज०	दीप जलेगा, उपेंद्रनाथ अशक, नीलाम, प्रकाशन गृह प्रयाग	पद्माकर ग्र०	पद्माकर ग्रथावली, सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह	पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट
देव० ग्र०	देव ग्रथावली, ना० प्र० सभा, प्र० सं०	प० रा० ]	परमाल रासो, सं० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
देव (शब्द०)	देवकवि (मैनपुरीवाले)	प० रासो ]	
देशी०	देशी नाममाला	परमानंद०	परमानंद सागर
दैनिकी	सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, भाँसी, प्र० सं०, १९६६ वि०	परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन वैष्णवों की बातें [ दो भाग ], शुद्धादित एकेश्वरी, काँकरीली प्रथम सं०	पदों०	पदों की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेम, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९६६ वि०
द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारी सिंह दिनकर, पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०	पलटू०	पलटू साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेम, इलाहाबाद, १९०७ ई०
द्वि० अभि० ग्र०	द्विवेदी अभिनदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी	पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इटियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी	पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण भगवान, मोतीलाल बनारसी दास, प्र० सं०, २०१२
धरनी० वा०	धरनी साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेम, इलाहाबाद, १९११ ई०	पारिजात०	पारिजातहरण
धरम० शब्दा०	धरमदास की शब्दावली	पार्वती	पार्वती, रामानंद तिवारी आस्त्री, भारतीयनदन, मंगल भवन, नयापुरा, कोटा ( राजस्थान ), प्र० सं०, १९५५ ई०
धूप०	धूप और धूपों, रामधारीसिंह 'दिनकर', अजता प्रेस लि०, पटना ४	पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
नद० ग्र० ]	नददास ग्रथावली, सपा० ब्रजरत्न दास, ना० प्र० सभा, प्र० सं०	पिजरे०	पिजरे की उडान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
नई०	नई पौष्ट, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १८५३	पूर्व० म० मा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय-भारती भंडार, लीडर प्रेम, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००६ वि०
नट०	नटनागर विनोद, सपा० कृष्णविहारी मिश्र, इटियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	पू० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खंड], सपा० मोहनलाल विष्णुलाल पडप्पा, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय', प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०		
नया०	नया साहित्य नए प्रश्न, नददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११		

१० रा० ( ३० )	पृथ्वीराज रासो [ ४ खंड ], सपा० कविराज मोहनसिंह, साहित्य सस्थान, राजस्थान विश्व-विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०	विल्ले०	विल्लेसुर धकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
गोहार अभि० ग्र०	गोहार अभिनदन ग्रंथ, सपा० वासुदेवशरण श्रमवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०	विहारी २०	विहारी रत्नाकर, सपा० जगन्नाथदास रत्नाकर, गंगा ग्रंथालय, लखनऊ, प्र० सं०
प्रताप ग्र०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, सपा० विजय-शंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	विहारी ( शब्द० ) बीजक	कवि विहारी कबीर बीजक, कबीर ग्रंथप्रकाशन समिति, वाराणसी, २००७ वि०
प्रताप ( शब्द० )	प्रतापनारायण मिश्र	बी० रासो	बीसलदेव रासो, सपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
प्रबन्ध०	प्रबन्ध पथ, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०	बीसल० रास० बी० श० महा०	बीसलदेव रास, सपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०	बुद्ध च०	श्रीसखी शाब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपाल सिंह, ओरिएण्टल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसगली, सपा० सत संपूर्ण सिंह, वेल-वेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	बृहत्सहिता ( शब्द० ) वेनी ( शब्द० ) वेला	बृहत्सहिता कवि वेनी प्रवीन वेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रागेय राघव, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली प्र० सं०, १९५३ ई०	बेल्जि०	वेल फ्रिसन स्कमणी, सपा० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, पण्ड सं०	ब्रज०	ब्रजविलास, सपा० श्री कृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बवई, तृ० सं०
प्रिया ( शब्द० )	प्रियादास	ब्रज० ग्र०	ब्रजनिधि ग्रंथावली, सपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०	ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, सं० वियोगीहरि, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गीर्वा	प्रेमचंद और गीर्वा, सपा० शशीरानी गुर्दा, राजकमल प्रकाशन लि०, बवई, १९५५ ई०	भक्तमाल ( प्रि० )	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बवई, १९५३ वि०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९६६ वि०	भक्तमाल ( श्री० )	भक्तमाल, श्री भक्ति सुधाविदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं०, १९८३ वि०
प्रे० सा० ( शब्द० )	प्रेमसागर	भक्ति०	भक्ति सागरादि, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बवई, संवत्-१९६० वि०
प्रेमाञ्जलि	प्रेमाञ्जलि, डा० गोपालशरण सिंह, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०	भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बवई, संवत् १९६०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [ चार भाग ], पं० रतननाथ 'सरणार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०	भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०	भा० इ० रू०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ ई०
बगाल	बगाल का काल, हरिवंश राय बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०	भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद श्रोभा, इतिहास कार्यालय, राज मेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०
बकी० प्र० ] बीकीदास प्र० ] बदन०	बीकीदास ग्रंथावली [ चार भाग ], सपा० रामनारायण झाड, ना० प्र० सभा, प्र० सं० बदनवार, देवेन्द्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४६ ई०		
बद०	बदमाश दर्पण, तेगधली, भारत जीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०		
बागिदरा	बागिदरा		

भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, भाँसी, नवम् स० ।	मानस	रामचरितमानस, संपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
भारत० नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र	मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०, १९६६ वि०
भा० भू०,	विद्यालकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० स०, १९८० वि०	मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय वच्चन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी प्र० स०, १९५० ई०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान	मुशी अभि० ग्र०	मुशी अभिनंदन ग्र० संपा० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
भारतेंदु ग्र०	भारतेंदु ग्रंथावली [ ४ भाग ], संपा० ब्रजरत्न-दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	मृग०	मृगनयनी, वृंदाचन लाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, भाँसी
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम ऐंड सस, दिल्ली, १९५३ ई०	मैला०	मैला आंचल, फणीश्वर नाथ रेणु, ममता प्रकाशन, पटना - ४, प्र० स०
भाषा पि०	भाषा शिक्षण, सीताराम चतुर्वेदी	मोहन०	मोहनविनोद, स० कृष्णविहारी मिश्र, इलाहाबाद साँ जर्नेल प्रेस, प्र० स०
भिखारी ग्र०	भिखारीदास ग्रंथावली [ दो भाग ], स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	यथो०	यथोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, भाँसी, प्र० स०
भीखा श०	भीखा शब्दावली	यामा	यामा, महादेवीवर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० स०
भूषण ग्र०	भूषण ग्रंथावली, स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० स०	युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०
भूषण ( शब्द० )	कवि भूषण त्रिपाठी	युगपथ०	युगपथ " " " "
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदय-नारायण तिवारी, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० स०	मुगात	मुगात, सुमित्रानंदन पंत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० स०
मति० ग्र०	मतिराम ग्रंथावली, कृष्णविहारी मिश्र, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, द्वि० स०	रगभूमि	रगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथालय, लखनऊ, प्र० स०, १९८१ वि०
मतिराम ( शब्द० )	कवि मतिराम त्रिपाठी	रघु० रु०	रघुनाथ रूपक गीतारो, म० महादेवचंद्र खारंडे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
मधु०	मधुकलश, हरिवंश राय वच्चन, सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० स०, १९३६	रघु० डा० ( शब्द० )	रघुनाथदास
मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० स०, १९३६ ई०	रघुनाथ ( शब्द० )	रघुनाथ
मधु भा०	मधुमालती वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०	रघुराज ( शब्द० )	महाराज रघुराजसिंह, रीवाँनरेश
मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय वच्चन, सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० स०	रजत०	रजत शिखर, सुमित्रानंदनपंत, सीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
मन विरक्त०	मन विरक्त करन गुटका सार ( चरणदास ) चरणदास	रज्जव०	रज्जव जी की घानी, ज्ञान सागर प्रेस, बबई १९७५ वि०
मनु०	मनुस्मृति	रतन०	रतनहजारा, संपा० श्री जगन्नाथ प्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० स०, १८६२ ई०
मलूक० ( शब्द० )	मलूकदास	रति०	रतिमाध को चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० स०, १९५३ ई०
महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ स०	रत्न० ( शब्द० )	रत्नसार
महाभारत ( शब्द० )	महाभारत	रत्नाकर	रत्नाकर [ दो भाग ], ना० प्र० सभा काशी, चतुर्थ और द्वि० स०
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वैकटेश्वर प्रेस, बबई चतुर्थ स०	रस०	रसमीमासा, स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० स०
माधवानल०	माधवानल कामकदला, बोधा कवि, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० स०, १८६४ ई०		
मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद		
मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब मंदिर, इलाहाबाद, द्वि० स०		

रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०	विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, न० सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, स० बा० अमीरसिंह ना० प्र० सभा, द्वि० सं०	बिश्राम ( शब्द० )	बिश्राम सागर
रसखान ( शब्द० )	सैयद इब्राहिम	वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
रस र०	रसरतन, सभा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा वाराणसी, प्र० सं०	वेनिस (शब्द०)	वेनिस का वाँका
रसनिधि ( शब्द० )	राजा पृथ्वीसिंह	वंशाली० या वै० न०	वंशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली प्र० सं०
रहीम०	रहीम रत्नावली	बो दुनिया	बो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
रहीम ( शब्द० )	अब्दुरहीम खानखाना	व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गोरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर, १९६७ वि०, प्र० सं०	व्याम (शब्द०)	अविकादत्त व्यास
रा० रु०	राजसूय, सभा० प० रामकरण, ना० प्र० सभा, प्र० सं०	श० टि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
रा० वि०	राजविलास, स० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	शकर०	शकरमर्वस्व, सभा० हरिश्चंद्र शर्मा, गयाप्रसाद ऐंट सस, आगरा, प्र० सं०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद लीडर प्रेस, इलाहाबाद, मातवी सं०	शकु०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भाँसी
राम च०	सक्षिप्त रामचंद्रिका, स० लाला भगवानदीन ना० प्र० सभा, वाराणसी पण्ट सं०	शकुंतला	शकुंतला नाटक, अनू० राजालक्ष्मण सिंह, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, चतु० सं०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, सभा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी ( सिंहधल ) बहारामद्वारा, वीकानेर।	शाङ्गधर सं०	शाङ्गधर महिना, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, स० १९७१
राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्म संग्रह, स० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी ( सिंहधल ) बहारामद्वारा, वीकानेर।	शिखर०	शिखर वशीतति, स० पुरोहित हरिनारायण, ना० प्र० सभा, प्र० सं०, स० १९८५
रामरसिका०	रामरसिकावली [ भक्तमाल ]	शुक्ल० अभि० ग्रंथ	शुक्ल अभिनदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन,
रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, सभा० पीतावरदत्त बडधवाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०	श्रु० सत० (शब्द०)	श्रुतार सतमई
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३६ वि०	शेर०	शेर और सुखन
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तकभंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०	शैली	शैली, करुणापति त्रिपाठी
रै० चानी	रैदास चानी, वेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद	श्यामा०	श्यामास्वप्न, स० डा० श्रीकृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
लक्ष्मणसिंह ( शब्द० )	राजा लक्ष्मणसिंह	श्रीनिवास ग्रं०	श्री निवास ग्रंथावली, सभा० डा० श्रीकृष्णलाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
लल्लू ( शब्द० )	लल्लू लाल	सतति०	चंद्रकाता सतति, देवकी नंदन खत्री, वाराणसी
लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०	सत तुरसी०	सत तुरसीदास की शब्दावली, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
लाल ( शब्द० )	लालकवि ( छत्रप्रकाशवाले )	स० दरिया, सत दरिया ]	सत कवि दरिया स० धर्मेश ब्रह्मचारी, विहार राष्ट्रमापा परिवर्द्ध पटना, प्र० सं०
वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर	सत र०	सत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ, हरिद्वार प्र० सं०
विद्यापति	विद्यापति, स० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस लि०, पटना	सतवाणी० सत० सार० ]	सतवाणी-सार-संग्रह [ २ भाग ] वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
विनय०	विनयपत्रिका, टी० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०	संन्यामी	संन्यासी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
		संपूर्ण० अभि० ग्रं०	संपूर्णानंद अभिनदन ग्रंथ, संपा० आचार्य नरेंद्र देव, ना० प्र० सभा, वाराणसी



स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशाह' नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०
सवल (शब्द०)	सवल मह चौहान।	स्कद०	स्कदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास	स्वर्ण०	स्वर्ण किरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस प्रयाग, प्र० सं०
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, सीतागाम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०	हस०	हसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स० सप्तक सहजो०	सतसई सप्तक, सं० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं० सहजो वाई की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०	हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, सपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
साकेत	साकेत, मंथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगांव, झांसी, प्र० सं०	हनुमान (शब्द)	हनुमन्नाटक
सागरिका	सागरिका, डा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेम प्रयाग, प्र० सं०,	हम्मीर०	हम्मीरहठ, सपा० जगन्नाथदास रत्नाकर इडियन प्रेस लि० प्रयाग
साम०	सामवेनी, रामधारा सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना, द्वि० सं०	ह० रासो ] हम्मीर रा० ]	हम्मीर रासो, सपा० डा० श्यामसुंदर दास ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० सं०	हरिदाम (शब्द०) हरिश्चंद्र (शब्द०)	स्वामी हरिदास भारतेंदु हरिश्चंद्र
सा० लहरी,	साहित्यलहरी, सं० रामलोचन शरण विहारी, पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०	हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४६ ई०
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इडियन प्रेस, प्रयाग	हर्ष०	हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेव शरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्र० सं०, १९५३ ई०
सुंदर० प्र०	सुंदर दास श्यावली [ दो भाग ], सं० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, प्र० सं०	हालाहल	हालाहल, हरिवंश राय वच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १९४६ ई०
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०	हिंदी भा० हिंदी भा० प्र०	हिंदी आलोचना, हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्र सहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
सुधाकर (शब्द)	सुधाकर द्विवेदी	हि० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३६ ई०
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), सपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०, १९०२	हि० प्रेमा० ] हिंदी प्रेमा० ]	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यसंग्रह, सपा० डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी भानुसिंह प्रकाशन, कंचहरी रोड
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार मीताराम, दिल्ली, प्र० सं० ।	हि० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरण कुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
सूत०	सूत की माला, पत और वच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	हि० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं० १९४८
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)	हिंदु० सम्प्रदा	हिंदुस्तान की पुरानी सम्प्रदा, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तान एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सूर०	सूर सागर, [ दो भाग ], ना० प्र० सभा, द्वितीय सं०	हिम कि०	हिम किरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
सूर० (शब्द०)	सूरदास	हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, प्र० सं०
सूर (राधा०)	सूरसागर, सपा० राधाकृष्ण दास, वैकटेश्वर प्रेम, प्रथम सं०		
सेवासदन	सेवामदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं०		

हिम्मत०

हिम्मतवहादुर विरदावली, लाला भगवान-  
दीन, ना० प्र० काशी, समा, द्वि० सं०

हुमायूँ

हुमायूँनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० समा,  
वाराणसी, द्वि० सं०

हिल्लोल

हिल्लोल, शिवमगल सिंह 'सुमन', सरस्वती  
प्रेस, बनारस, द्वि० सं०

## [व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरो का विवरण]

अ०	अग्नेजी	दे०	देखिए
अ०	अरवी	देश०	देशज
अनु०	अनुकरण शब्द	देशी०	देशी
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक	धर्म०	धर्मशास्त्र
अप०	अपभ्रंश	नाम०	नामाधातु
अर्द्ध मा०	अर्द्धमागधी	ना० घा०	नामधातुज क्रिया
अल्पा०	अल्पार्थक	ने०	नेपाली
अव०	अवधी	न्याय	न्याय या तर्कशास्त्र
अव्य०	अव्यय	प०	पंजाबी
इव०	इवरानी	परि०	परिशिष्ट
उ०	उदाहरण	पा०	पाली
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ	पु०	पुलिंग
उडि०	उडिया	पुर्त०	पुर्तगाली
उप०	उपसर्ग	पु० हि०	पुरानी हिंदी
उभ०	उभयलिङ्ग	पू० हि०	पूर्वी हिंदी
एकव०	एक वचन	पृ०	पृष्ठ
कहावत	कहावत	प्रत्य०	प्रत्यय
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र	प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
[को०], (को०)	अन्य कोश	प्रा०	प्राकृत
कोक०	कोकणो	प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
क्रि०	क्रिया	फ०	फरासीमी भाषा
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक	फकीर०	फकीरों की बोली
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग	फा०	फारसी
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण	बग०	बंगाली भाषा
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक	बरमी०	बरमी भाषा
क्व०	क्वचित्	बहुव०	बहुवचन
गीत०	लोकगीत	बु० ख०	बु देल खड की बोली
गुज०	गुजराती	बोल०	बोलचाल
ची०	चीनी भाषा	भाव०	भाववाचक सद्भा
छ०	छंद	भू०	भूमिका
जापा०	जापानी	भू० कृ०	भूत कृत
जावा०	जावा द्वीप की भाषा	मरा०	मराठी
जी०, जीवन०	जीवन चरित	मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
ज्या०	ज्यामिति	मला०	मलयालम भाषा
ज्यो०	ज्योतिष	मि०	मिलाइए
डि०	डिगल	मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
त०	तमिल	मुहा०	मुहावरा
सक०	तर्कशास्त्र	गू०	गूनानी
तु०	तुर्की	यो०	योगिक
दू०	दूहा या दूहला	राज०	
		लश०	

ला०	लाक्षणिक	सर्व०	सर्वनाम
लै०	लैटिन	स्पे०	स्पेनी भाषा
व० कृ०	वर्तमान कृत	स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
वि०	विशेषण	की०	स्त्रीलिङ्ग
वि० द्वि० मू०	विषयमद्वि शक्तिमूलक	हि०	हिंदी
वै०	वैदिक	५	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
व्या०	व्याकरण	>	व्युत्पन्न
शब्द	शब्दसागर	†	प्राचीन प्रयोग
सं०	संस्कृत	‡	ग्राम्य प्रयोग
सयो०	संयोजक अव्यय	✓	धातुचिह्न
सयो क्रि०	संयोजक क्रिया	•	समाव्य व्युत्पत्ति
स०	सकर्मक		
सधु०	सधुक्कड़ी भाषा		

# हिंदी शब्दसागर

## अ

प्र- मस्कृत और हिंदी वर्णमाला का पहला अक्षर। इसका उच्चारण कठ से होता है इससे यह कथ्य वर्ण कहलाता है। व्यंजनो का उच्चारण इस अक्षर की सहायता के बिना अलग नहीं हो सकता इसी से वर्णमाला में क, ख, ग आदि वर्ण अक्षर-संयुक्त लिखे और बोले जाते हैं।

विशेष-अक्षरों में यह स्वमे श्रेष्ठ माना जाता है। उपनिषदों में इसकी बड़ी महिमा लिखी है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है-‘अक्षराणां मकारोऽस्मि’। वास्तव में कठ खुलते ही वर्णों के मुख से यह अक्षर निकलता है। इसी से प्रायः सब वर्ण-मालाओं में इसे पहला स्थान दिया गया है। वैयाकरणों ने मात्रामेद से इसे तीन प्रकार का माना है, ह्रस्व जैसे-अ, दीर्घ जैसे-आ, प्लव जैसे-अः। इन तीनों में से प्रत्येक के दो दो भेद माने गए हैं, सामानासिक और निरनुनासिक। सामानासिक का चिह्न चंद्रविंदु है। तत्त्वशास्त्र के अनुसार यह वर्ण-माला का पहला अक्षर इसलिए है कि यह सृष्टि उत्पन्न करने के पहले मृत्तिवर्तों की अशुल द्रवस्था को सूचित करता है।

अक-संज्ञा पुं० [ सं० अङ्क ] [ वि० अङ्कित, अङ्कनीय, अङ्क्य ]  
१ सख्या। अदद। २ सख्या का चिह्न, जैसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९। उ०-गणनाम को अक है सब साधन है सून।  
--तुलसी अ०, पृ० १०४। ३ चिह्न। निशान। छाप। आँक।  
उ०-सीय राम पर अक दराए। लपन चल्हि मगु दाहिन लाए।  
-मानस, २।२१३। ४ दाग। धब्बा। उ०-जहाँ यह प्रथमता को अक है मयक में।-फिखारी अ०, भा० १, पृ० ४९।  
५ बाजल की टिंदी जिसे नजर से घबाने के लिये बच्चों के माथे पर लगा देते हैं। टिठनी। अनखी। ६. अक्षर। उ०-अद्भुत रामनाम के प्रक।-सूर०, १।९०। ७ लेख। लिखावट।  
उ०-खटित करने को भाग्य अक। देखा भविष्य-के प्रति अशक।-अनामिका, पृ० १२३। ८ भाग्य। लिखन। विरमत।  
उ०-जो विधना ने लिखि दियो छठी रात को अक। राई घटे न तिल बढे गृहे रे जीव निसक।-विरसा०, पृ० ८०। ९ गोद। फाँड। केली। उ०-जिस पृथिवी से निखली सदीप वह सीता-अक में उसी के आज लीन।-तुलसी०, पृ० ४४। १०. बार। दफा। मर्तवा। उ०-एवहु अक न हरि भजेसि रे सठ सूर गेवार।-सूर (पृ०)। ११ नाटक वा एक अक्ष जिसकी समाप्ति पर जबकि गिरा दी जाती है। १२ दस प्रकार के रूपकों में से एक जिसकी इतिहासप्रसिद्ध कथा में नाटककार

प्लटकर कर सकता है। इसके संयुक्त आख्यान में प्रधान रस करण और एक ही अक होता है। इसकी भाषा सरल और पद छटा होना चाहिए। १३. किसी पत्र या पत्रिका की कोई मामयिक प्रति। १४. नौ की सख्या (क्योंकि अक नौ ही तक होते हैं)। १५. एक की सख्या (को०)। १६. एक सख्या। शून्य (को०)। १७. पाप। दुख। १८. शरीर। अंग। देह। जैसे-‘अवधानिणी’ में ‘अक’। १९. वगल। पार्श्व। जैसे-‘अवपरिवर्तन’ में ‘अक’। २०. कटि। कमर। उ०-सह सूर समत वर्धति अक।-पृ० २।०, ५१। १२०। २१. वज्र रेखा। उ०-भृकुटि अक वक्रुरिय।-पृ० २।०, ६१। २४५७। २२. हुक या हुब जैसा टेढ़ा आँजार (को०)। २३. मोड़। भुकाव (को०)। २४. कट। गला। गर्दन। उ०-अक्षरमाला इवक अक पहिराव व ह्यो इह।-पृ० २।०, ७। २६। २५. विभ्रपण (को०)। २६. स्थान (को०)। २७. चिह्नमुद्र। नक्सी लडाई (को०)। २८. प्रकरण (को०)। २९. पर्वत (को०)। ३०. रथ का एक अश या भाग (को०)। ३१. पशु को दागने का चिह्न (को०)। ३२. सहस्थिति (को०)।

मूहो-अक देना = रले लगाना। आलिन देना। अक भरना = हृदय से लगाना। लिपटाना। रले लगाना। दंतो हाथों से घेर-कर प्यार से दवाना। परिभरण करना। आलिनन करना। उ०-उठो परजक ते मयक वदनी को लखि, अक भरिबे को फेरि लाल मन ललकै।-फिखारी अ०, भा० १ पृ० २४५। अक भिलाना = दे० ‘अक भरना’। उ०-नारी नाम वहिन जो आही। तासो कैसे अक मिलाही।-वर्दार सा०, पृ० १०१०। अक लगना = दे० ‘अक देना’। अक लगाना = दे० ‘अक भरना’। उ०-बावरी जो पै बलक लख्यो तो निसक हूँ बयो नहि अक लगावली -इति०, पृ० २६३। अक में समाना = लीन होना। सायुष्य मूर्ति प्राप्त करना। उ०-जैसे वनिका वाटिके का है राई। ऐसे हरिजन अक समई।-प्राण०, पृ० १५८।

अकक-संज्ञा पुं० [ सं० अङ्क ] [ स्त्री० अङ्किका ] १. गिनती करने-वाला। २. हिसाब रखनेवाला। ३. चिह्न करनेवाला।

अककरण-संज्ञा पुं० [ सं० अङ्ककरण ] चिह्न या छाप लगाने का कार्य। अकन [ को० ]।

अककार-संज्ञा पुं० [ सं० अङ्ककार ] वह योद्धा जिसकी हार या जीत उसके पक्ष की हार जीत का निर्णय कराए।

अकगणित--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कगणित ] सङ्ख्याओं का हिसाब। सङ्ख्या की मोमासा। वह विद्या जिससे सङ्ख्याओं का जोड़, घटाव, गुणा, भाग आदि किया जाता है। हिसाब।

अकगता--वि० स्त्री० [ अङ्क + गता ] पार्श्व में स्थित। उ०--  
अकगता तुम करो विश्वमगल सदा।--पार्वती, पृ० १४३।

अकज--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कज ] पुत्र। सतान। उ०--विधि अकज  
उपदेस दिय रघुपति गुन जस गाव।--प० रा०, १।२।

अकतत्र--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कतत्र ] सङ्ख्याओं की विद्या। अकगणित  
और बीजगणित।

अकति--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कति ] १ ब्रह्मा। २ वायु। ३ अग्नि।  
४ अग्निहोत्री [को०]।

अकधारण--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कधारण ] तप्त मुद्रा के चिह्नों का दग्-  
वाना। शङ्ख, चक्र, त्रिशूल आदि के सांप्रदायिक चिह्न गरम धातु  
से छपवाना।

क्रि० प्र०--करना।

अकधारण--सङ्घ स्त्री० [ सं० अङ्कधारण ] शरीर या अक को धारण  
करने की स्थिति [को०]।

अकधारिणी--वि० स्त्री० [ सं० अङ्कधारिणी ] १ शरीर में धारण  
करनेवाली। उ०--असंख्य पत्रावलि अकधारिणी।--प्रिय प्र०,  
पृ० १०२। २ तप्त मुद्रा के चिह्न धारण करनेवाली। दे०  
'अकधारी'।

अकधारी--वि० [ सं० अङ्कधारिन् ] [ स्त्री० अङ्कधारिणी ] तप्त मुद्रा के  
चिह्न धारण करनेवाला। शङ्ख, चक्र, त्रिशूल आदि के सांप्रदायिक  
चिह्नों को गरम धातु से अपने शरीर पर छपवानेवाला।

अकन--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कन ] [ वि० अङ्कनीय, अङ्कित, अङ्कच ]  
१ चिह्न करना। निशान करना। २ लेखन। लिखना। जैसे--  
'चित्राकन', 'चित्राकन' में 'अकन'। ३ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म या  
त्रिशूल आदि के चिह्न गरम धातु से बाह्य पर छपवाना।

विशेष--वैष्णव लोग शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि विष्णु के चार  
आयुधों के चिह्न छपवाते हैं और दक्षिण के शैव लोग त्रिशूल या  
शिवलिंग के। रामानुज संप्रदाय के लोगों में इसका चलन बहुत  
है। द्वारिका इसके लिये प्रसिद्ध स्थान है।

४ गिनती करना। ५ श्रेणीनिर्धारण [को०]।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अकना(उ०)--क्रि० सं० [ सं० अङ्कन ] १ निश्चित करना। ठहराना।  
अंकना। उ०--इहै बात साँची सदा देव अकी।--पृ० रा०,  
२।२११। २ ढकना। मूद्रित करना। मूंदना। उ०--समझि  
वासि सिरवर तिन ढकयो। करपल्लव तिन द्रग वर अकयो।--पृ०  
रा०, ६१।७१६।

अकनीय--वि० [ सं० अङ्कनीय ] १ अकन के योग्य। चिह्न करने  
योग्य। २ छापने लायक। ३ चित्रण करने योग्य।

अकपट्टी--सङ्घ स्त्री० [ सं० अङ्क + पट्टी ] काठ की लवोतरी चिकनी  
पट्टिया जिसपर वालक आरम्भ में अक्षर लिखना सीखते हैं।  
पाटी। उ०--यही पर भगवान् कृष्ण अकपट्टी पर लिखना सीखे  
थे।--प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३४।

अकपरिवर्तन--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कपरिवर्तन ] १ एक ओर से दूसरी  
ओर पीठ करके सोना। करवट लेना। करवट बदलना। करवट  
फिरना। २ गोद के घुच्चे को एक वगल से दूसरी वगल  
करना। ३ एक अक की समाप्ति के बाद दूसरे अक का आरम्भ  
( नाटक )।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अकपलई--सङ्घ स्त्री० [ सं० अङ्कपल्लव ] वह विद्या जिसमें प्रको को  
अक्षरों के स्थान पर रखते हैं और उनके समूह से उम्मी प्रकार  
अभिप्राय निकालते हैं जैसे शब्दों और वाक्यों से। इसमें इकतीस  
अक्षर लेकर उनकी सख्याएँ नियत कर दी गई हैं। जैसे १ से 'प'  
अक्षर सम्भूत हैं।

अकपालिका--सङ्घ स्त्री० [ सं० ] दे० 'अकपाली'।

अकपाली--सङ्घ स्त्री० [ सं० अङ्कपाली ] १ दाईं। धाय। २ आलिंगन  
( को० ) ३ वेदिका नाम का गद्यद्रव्य ( को० )।

अकपाश--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कपाश ] गणित ज्योतिष में सङ्ख्याओं को  
विशिष्ट ढंग से रखने की एक क्रिया [को०]।

अकमाल--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्क + माला ] आलिंगन। भेंट। परि-  
रक्षण। गले लगना। उ०--भगति हैत भगता के चले, अकमाल  
ले बीठल मिले।--रं० वानी, पृ० ५७।

मुहा०--अकमाल देना = आलिंगन करना। भेंटना। गले लगाना।  
उ०--आजु आए जानि सव अकमाल देत हैं।--तुलसी प्र०,  
पृ० १७०।

अकमालिका--सङ्घ स्त्री० [ सं० अङ्कमालिका ] १ आलिंगन। भेंट।  
२ छोटा हार। छोटी माला।

अकमुख--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कमुख ] नाटक का आरम्भिक अंश जिसके  
द्वारा सभी अक तथा बीज रूप में कथानक सूचित किया जाता  
है, जैसे--भवभूति के मालतीमाधव नाटक का प्रथम अक ( सा०  
दर्पण )।

अकविद्या--सङ्घ स्त्री० [ सं० अङ्कविद्या ] दे० 'अकगणित'।

अकशायी--वि० पुं० [ सं० अङ्कशायिन् ] [ स्त्री० अङ्कशायिनी ] अक या  
गोद में सोनेवाला। उ०--अकशायी तुम बनोगे दूर होंगे नैश  
सशय।--कवासि, पृ० ११६।

अकसी--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कस ] १ शरीर। देह। जिस्म। तन। २ चिह्न।  
निशान [को०]।

अकस--वि० चिह्नयुक्त [को०]।

अकाक--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्काङ्क ] जल। पानी [को०]।

अकावतार--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कावतार ] नाटक के किसी अक के अंत  
में कथा को विच्छिन्न किए बिना आगामी अक के आरम्भिक  
दृश्य तथा पात्रों की सूचना या आभास देनेवाला अंश  
( सा० दर्पण )।

क्रि० प्र०--होना।

अकास्य--सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कास्य ] अक के अंत में प्रविष्ट किसी पात्र  
के द्वारा विच्छिन्न अतीत कथा का आगामी ससूचक अंश ( सा०  
दर्पण, दश० )।

अकिंका--सङ्घ स्त्री० [ सं० अङ्किंका ] १ चिह्न रखनेवाली। १ गिनती  
करनेवाली। ३ हिसाब रखनेवाली।



अकित—वि० [ सं० अङ्कित ] १ निशान किया हुआ। दागदार। चिह्नित। उ०—भूमि विलोकु राम पद अकित वन विलोकु रघुवर विहार यन् । तुलसी ग्र०, पृ० ४६६। २ लिखित। खचित। उ०—तव देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अकित अति मुदर।—मानस, ५।१३। ३ वर्णित। उ०—सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अकित जानी।—मानस, १।१०। ४ गिना हुआ ( को० )।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अकिनी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्किनी ] १ चिह्नो का समूह। चिह्न-शशि। २. चिह्नयुक्त स्त्री [का०]।

अकिनी<sup>२</sup>—वि० अवन करनेवाली। उ०—होकर भी वह चित्त अकिनी आप रकिनी आशा है।—साकेत, पृ०, ३६६।

अकिल<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्किल + हिं० इल (प्रत्य०) ] बट्टा जिसे हिंदू वृषोत्सर्ग में दागकर छोड़ देते हैं। दागा हुआ साँड़। साँड़।

अकी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्की ] एक प्रकार का मृदग [को०]।

अकुट<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्कुट ] कुजी। ताली [को०]।

अकुडक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्कुडक ] १ कुजी। ताली। २. नागदत। खूँटी [को०]।

अकुर<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्कुर ] [वि० अङ्कुरित, हिं० अंकुरना] १.

अँखुआ। गाय। अँगुआ। उ०—पाइ कपट जल अकुर जामा।

—मानस, २।२३। २. डाम। कल्ला। कनखा। कोपल। आँख।

३. यव का नया नया अँखुआ जो मागलिक होता है। उ०—

अच्छत अकुर रोचन लाजा। मजुल मजरि तुलसि विराजा।

—मानस, १।३४६।

क्रि० प्र०—आना। उगना।—जमना।—निकलना।—फूटना।

—फोडना।—फेंकना।—लेना।

४. कली। ५. सतति। सतान। उ०—(क) 'हमारे नष्ट कुल में

ये एक अकुर बचा है, इससे हमारा वंश चलेगा।'—श्रीनिवास

ग्र० पृ० १४६। (ख) ये अकुर हितकर कलश पयोधर पावन।

—साकेत, पृ० २०३। ६. नोक। ७. जल। पानी। ८. घघर।

रक्त। खून। ९. रोम। रोआँ।

अकुर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ फा० अगूर ] मांस के बहुत छोटे लाल लाल दाने जो घाव भरते समय उत्पन्न होते हैं। भराव। अगूर।

अकुरक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्कुरक ] घोंसला। खोता [को०]।

अकुरण<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्कुरण ] अकुर निकलना। बीज आदि का अकुरयुक्त होना [को०]।

अकुरना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [ सं० अङ्कुरण ] अकुर फटना। उगना। जमना। निकलना। पैदा होना। उत्पन्न होना। उ०—उर अकुरेउ गर्व तर भारी।—मानस, १।२१६।

अकुराना<sup>१</sup>—क्रि० अ० दे० 'अकुरना'।

अकुरित<sup>१</sup>—वि० [ सं० अङ्कुरित ] १ जिसमें अकुर हो गया हो। अँखुआ आया हुआ। उगा हुआ। जमा हुआ। उ०—सृष्टि बीज अकुरित प्रफुलित सफल हो रहा हरा भरा।—कामायनी, पृ० १८२।

२. उत्पन्न। निकला हुआ। उ०—अकुरित तर पात उकठि रहे

जे गात, वनवेली प्रफुलित कलिनी कहुर के।—सूर०, १।३०।

क्रि० प्र०—करना।

अकुरितयौवना<sup>१</sup>—वि० [ सं० अङ्कुरितयौवना ] वह बालिका जिसके यौवनावस्था के कुच आदि चिह्न प्रकट हो गए हो। किशोरी। अकुरी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [ हिं० अकुर + ई ] चने की भिंगोई हुई धुंधली।

अकुल<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्कुर ] दे० 'अकुर'—१। उ०—अकुल बीज नसाय के भए विदेही थान।—कवीर वी०, पृ० १३। (ख) बीज विन अकुल पेठ विनु तरिवर, विनु फूले फल फरिया।—कवीर वी०, पृ० ३५।

अकुश<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्कुश ] १. एक प्रकार का छोटा शस्त्र या टेढ़ा काँटा जिसे हाथी के मस्तक में गोदकर महावत उसे चलाता या हाँकता है। हाथी को हाँकने का दोमूँहाँ काँटा या भाला जिसका एक फल झुका होता है। आँकुस। गजवाग। शृणि।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

२. प्रतिवध। रोक। दबाव। नियन्त्रण। जैसे, अकुश में रखना = प्रतिवध में रखना। ३. अकुश के आकार की हाथ पर की रेखा। उ०—अकुश धरछी शक्ति पवि गदा धनुष असि तीर। आठ शस्त्र को चिह्न यह धारत पद बलवीर।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २१।

अकुशग्रह<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्कुश ग्रह ] महावत। हाथीवान। निपादी। फीलवान।

अकुशदत्ता<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्कुशदत्त ] एक प्रकार का हाथी जिसका एक दाँत सीधा और दूसरा पृथिवी की ओर झुका रहता है। यह अन्य हाथियों से चलवान् और क्रोधी होता है तथा झुड में नहीं रहता। इसे गूडा भी कहते हैं।

अकुशदुर्धर<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्कुशदुर्धर ] अकुश से भी जल्दी वंश में न आनेवाला मतवाला हाथी। मत्त हाथी।

अकुशधारी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्कुशधारी ] महावत। फीलवान [को०]।

अकुशमुद्रा<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्कुशमुद्रा ] तल शास्त्र में अगुलियों को अकुश के आकार की बनाई आकृति [को०]।

अकुशा<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्कुशा ] २४ जैन देवियों में एक। चौदहवें तीर्थंकर श्री अनन्तनाथ की शासनदेवी का नाम [को०]।

अकुशित<sup>१</sup>—वि० [ सं० अङ्कुशित ] अकुश के प्रयोग द्वारा आगे बढ़ाया हुआ [को०]।

अकुशी<sup>१</sup>—वि० [ सं० अङ्कुशी ] १. अकुशवाला। अकुश से युक्त। २. अकुश म वंश में करनेवाला [को०]।

अकुशी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अकुशा'।

अकुस<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अङ्कुश, प्रा० अकुस ] १ दे० 'अकुश'। उ०—महामत्त गजराज कहँ वस कर अकुस खर्व।—मानस, १।२५६।

मुहा०—अकुस देना = ठेलना। जबरदस्ती करना। उ०—क्रोध गजपाल क ठठकि हाथी रह्यो देत अकुस मसकि कह सकान्यो।—सूर०, १।३०५४।

२. दे० 'अकुश'—२। उ०—कुल अकुश आरज पथ तजि के लाज सकुच दई डेरै। सूर स्वाम के रूप लुभाने कैसेहँ फिरत न केरे।—सूर०, (पार०) २, पृ० ७४।

३. दे० 'अकुश'—३। उ०—याका सेवक चतुरतर गननायक सम होइ। या हित अकुस चिह्न हरि चरनन सोहत सोइ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८।

अकुसा—सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कुश ] एक प्रकार का अस्त्र । उ०—सूल अकुसा छुरी सुधारी तिप्प कुठारी ।—सुजान०, पृ० १५७ ।

अकूर—सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कूर ] दे० 'अकुर' । उ०—(क) तव भा पुनि अकूर, दीपक सिरजा निरमला ।—जायसी (शब्द०) । (ख) सौ सामत प्रमान, उगि अकूर वीर रस ।—पृ० रा०, ३१।६३ ।

अकूरी (उ०)—वि० [ सं० अङ्कूर + ई (प्रत्य०) ] अकुरवाला । ज्ञान के अंकुर-वाला (पूर्वजन्म के संस्कार से) । उ०—अकूरी जिव मेटे निज गेहा । नूवा नाम जो प्रथम सनेहा ।—कवीर सा०, पृ० ८१ ।

अकूलना (उ०)—क्रि० अ० [ सं० अङ्कुरण, हि० अंकुरना ] जनमना । पैदा होना । उ०—सालिग्राम गडक अकूला । पाहन पूजत पडित भूला ।—कवीर सा०, पृ० १८ ।

अकूप—सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कूप ] १ अकुश । २ नेवले की जाति का एक जानवर । घूस [को०] ।

अकोट—सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कोट ] दे० 'अकोल' ।

अकोटक—सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कोटक ] दे० 'अकोल' ।

अकोल—सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कोल ] एक पेड़ जो सारे भारतवर्ष में प्रायः पहाड़ी जमीन पर होता है ।

विशेष—यह शरीर के पेड़ से मिलता जुलता है । इसमें बेर के बराबर गोल फल लगते हैं जो पकने पर काले हो जाते हैं । छिलका हटाने पर इसके भीतर बीज पर लिपटा हुआ सफेद गूदा होता है जो खाने में कुछ मीठा होता है । इस पेड़ की लकड़ी कड़ी होती है और छड़ी आदि बनाने के काम में आती है । इसकी जड़ की छाल दस्त लाने, वमन कराने, कोढ़ और उपदश आदि चर्मरोगों को दूर करने तथा सर्प आदि विषैले जंतुओं के विष को हटाने में उपयोगी मानी जाती है ।

पर्या०—अकोटक । अकोट । डेरा । अकोला ।

अकोलसार—सङ्घ पुं० [ सं० अङ्कोलसार ] अकोल के वृक्ष से तैयार किया गया विष [को०] ।

अकोलिका—सङ्घ स्त्री० [ सं० अङ्कोलिका ] आलिंगन । अंकवार [को०] ।

अव्य<sup>१</sup>—वि० [ सं० अङ्कूय ] १ चिह्न करने योग्य । निशान लगाने लायक । अकनीय । २ गिनने योग्य । [को०] ।

अव्य<sup>२</sup>—सङ्घ पुं० १ दागने योग्य अपराधी ।

विशेष—प्राचीन काल में राजा लोग विशेष प्रकार के अपराधियों के मस्तक पर कई तरह के चिह्न गरम लोहे से दाग देते थे । इसी से आजकल भी किसी घोर अपराधी को, जो कई बेर सजा पा चुका हो, 'दागी' कहते हैं ।

२ मृदग, तबला, पखावज आदि वाजे जो अक में रखकर बजाए जायें ।

अख (उ०)—सङ्घ स्त्री० [ सं० अक्षि, प्रा० अख ] आँख । नेत्र । उ०—आज नीरालइ सीय पढ्यो । च्यारि पहुँर माँही नू मीली अख ।—वी० रासो, पृ० ४८ ।

अखि (उ०)—सङ्घ स्त्री० [ सं० अक्षि; प्रा० अखि ] दे० 'अख' । उ०—करि शोध अखि सुरत्त, हवि जानि लगिय लत्त ।—पृ० रा०, १।१०४ ।

अखिका (उ०)—सङ्घ स्त्री० [ सं० अक्षि ] आँख । नेत्र । उ०—लजें भजें मन गतीयपुव्वता कवी कहै । सु अखिका कुरग गति भान देपिता रहै ।—पृ० रा०, ११५४ ।

अखे—क्रि० वि० [ सं० अक्षि; ( लाक्ष० ) ] आगे । समक्ष । आँख में । उ०—न अखे है, न पछे है, न तले है, न ऊपर है ।—दक्खिनी, पृ० ४४८ ।

अग<sup>१</sup>—सङ्घ पुं० [ सं० अङ्ग ] १ शरीर । वदन । देह । गात्र । तन । जिस्म । उ०—अभिशाप ताप की ज्वाला से जल रहा अग मन और अग ।—कामायनी, पृ० १६२ । २ शरीर का भाग । अवयव । उ०—भूपन सिधिल अग भूपन सिधिल अग —भूपण ग्र०, पृ० १२६ ।

मुहा०—अग उभरना—युवावस्था आना । अग करना=स्वीकार करना । ग्रहण करना । उ०—(क) जाको मनमोहन अग करै ।—सूर (शब्द०) । (ख) जाको हरि दृढ करि अग कर्यो ।—तुलसी (शब्द०) । अग छूना=शपथ खाना । माथा छूना । कसम खाना । उ०—सूर हृदय से टरत न गोकुल अग छुवत ही तेरो ।—सूर (शब्द०) । अग टूटना=जम्हाई के साथ आलस्य से अंगों का फँलाया जाना । अंगड़ाई आना । अग तोड़ना—अंगड़ाई लेना । अग धरना=पहनना । धारण करना । व्यवहार करना । अग में मास न जमना=दुबला पतला रहना । क्षीण रहना । उ०—नैन न आवैं नौदडी, अग न ज मैं मासु ।—कवीर सा० सं०, भा० १, पृ० ४३ । अग मोड़ना=(१) शरीर के भागों को सिकोड़ना । लज्जा से देह छिपाना । (२) अंगड़ाई लेना । उ०—अगन मोरति भोर उठी छिति पूरति अग सुगध भूकोरन ।—व्यगार्थ (शब्द०) । (३) पीछे हटना । भागना । नटना । वचना । उ०—रे पतग निशक जल, जलत न मोड़ै अग । पहिले तो दीपक जलै पीछे जलै पतग (शब्द०) । अग लगना=(१) आलिंगन करना । छत्ती से लगाना । (२) शरीर पुष्ट होना । उ०—'वह खाता तो बहुत है पर उसके अग नहीं लगता' (शब्द०) । (३) काम में आना । उ०—'किसी के अग लग गया, पडा क्या होता' (शब्द०) । (४) हिलना । परचना । उ०—'यह बच्चा हमारे अग लगा है' (शब्द०) । अग लगाना या अग लाना (उ०)=(१) आलिंगन करना । छाती से लगाना । परिभरण करना । लिपटाना । उ०—पर नारी पनी छुरी कोउ नहि लाओ अग । (शब्द०) (२) हिलाना । परचना । (३) विवाह देना । विवाह में देना । उ०—'इस कन्या को किसी के अग लगा दे' (शब्द०) । (४) अपने शरीर के आराम में खर्च करना ।

३ भाग । अक्ष । टुकड़ा । ४ खड । अध्याय । जैसे—'गुरुदेव को अग', 'चितावनी को अग', 'सूषिम मारग को अग' ।—कवीर ग्र० । ५ और । तरफ । पक्ष । उ०—सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अग ।—तुलसी (शब्द०) । ६ भेद । प्रकार । भाँति । तरह । उ०—(क) को कृपालु स्वामी सारिखो, राखै सरनागत सब अग धल विहीन को ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६४ । (ख) अग अंगनी के भाव गूढ़ भाव के प्रभाव, जिन को सुभाव रूप पवि पहिचानी है ।—केशव (शब्द०) । ७ आधार । आलबन । उ०—राधा राधारमन को रस सिंगार

मे अंग ।—मिखारी० अ०, भा० १, पृ० ४ । = सहायक । सुहृद । पक्ष का । तरफरार । उ०—रौरे अंग जोग जग को है ।—मानम, २।२८४। ६ एक सवोधन । प्रिय । प्रियवर । उ०—यह निश्चय जानी को जाते कर्ता दीखै करै न अंग ।—निश्चल (शब्द०) । १० जन्मलग्न (ज्यो०) । ११ प्रत्यय-युक्त शब्द का प्रत्यय रहित भाग । प्रकृति । ( व्या० ) । १२ छह की संख्या । उ०—वरसि अचल गुण अंग ससी सवति, तवियो जस करि श्रीभरतार ।—वेलि, दू० ३०५ । १३ वेद के ६ अंग, यथा—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद । दे० 'वेदांग' । १४ नाटक में शृंगार और वीर रस को छोड़कर शेष रस जो अग्रधान रहते हैं । १५ नाटक में नायक या अंगी का कार्यसाधक पात्र, जैसे—'वीरचरित' में सुग्रीव, अंगद विभीषण आदि । १६ नाटक की ५ संधियों के अंतर्गत एक उपविभाग । १७ मन । उ०—सुनत राव इह कथ्य फुनि, उपजिय अचरज अंग । सिथिल अंग धीरज रहित, भयो दुमति मति पग ।—पृ० १०, ३।१८ । १८ साधन जिसके द्वारा कोई कार्य संपादित किया जाय । १९ सेना के चार अंग वा विभाग, यथा—हाथी, घोड़े रथ और पैदल । दे० 'चतुरगिरा' । २० राजनीति के सात अंग, यथा—स्वामी, अमात्य, सुहृद, कोष राष्ट्र, दुर्ग और सेना । २१ योग के आठ अंग, यथा—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि । दे० 'योग' । २१ वगल में भागलपुर के आसपास का प्राचीन जनपद जिसकी राजधानी चपापुरी थी । कहीं कहीं इसका विस्तार बंघनाथ से लेकर भुवनेश्वर ( उड़ीसा, उत्तर ) प्रदेश तक लिखा है । २३ ध्रुव के वंश का एक राजा । २४ एक भक्त का नाम । २५ उपाय । २६ लक्षण । चिह्न (को०) ।

अंग<sup>२</sup>—वि० १ अग्रधान । गौर । २ उलटा । प्रतीप । ३ प्रधान । ४ निकट । समीप (को०) । ५ अंगोवला (को०) ।

अंग<sup>३</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० अंग्ना ] आज्ञा । आदेश । उ०—तो निज स्वामिनि अंग सुनि प्रमिय सुपथह कव्व ।—पृ० १०, ६।१७६६ ।

अंगकर्म—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गकर्म ] शरीर को संवारना या मालिश करना ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

अंगक्रिया—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गक्रिया ] अंगकर्म (को०) ।

अंगग्रह—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गग्रह ] १ एक रोग जिससे देह में पीडा होती है । २ स्थापत्य में पत्थरों के एक दूसरे के ऊपर फिसल न जाने अथवा उनके जोड़ों को अलग होने से रोकने के लिये उनके बीच बँटाया जानेवाला कबूतर की पूँछ के आकार का लोहे या तंबे का एक टुकड़ा । पाहू ।

अंगचालन—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गचालन ] हाथ पैर हिलाना । अंग हलाना ।

अंगच्छवि—संज्ञा स्त्री० [ अङ्ग + छवि ] अंगों की शोभा । उ०—'अंग-च्छवि से होते थे स्वयं अलंकृत ।—पार्वती, पृ० २०० ।

अंगछेद—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्ग + छेद ] अंग कटना । अंगभग । उ०—शरीर छोटे से बड़ा हाता है, उसका कभी कभी अंगछेद हो जाता है ।—चिदं०, पृ० २०७ ।

अंगज<sup>१</sup>—वि० [ सं० अङ्गज ] शरीर से उत्पन्न । तन से पैदा । उ०—कु अंगजों की बहु कटदायिता बता रही थी जन नेत्रवान को ।—प्रिय० प्र०, पृ० १०३ ।

अंगज<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [ स्त्री० अंगजा ] १ पुत्र । बेटा । लटका । उ०—कृष्ण गेह कं काम, काम अंगज जनु अनुरध ।—पृ० १०, १।७२७ । २ पसीना । ३ बाल । केश । रोम । ४ काम, क्रोध आदि विकार । ५ साहित्य में श्लेषों के यौवन सवधी जो सात्विक विकार हैं उनमें हाव, भाव और हेला ये तीन 'अंगज' कहलाते हैं । काविक । ६ कामदेव । ७ मद । ८ रोग । ९ रक्त । खून (को०) ।

अंगजा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गजा ] कन्या । पुत्री । बेटी ।

अंगजाई—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्ग + हि० जाई ] पुत्री । बेटी । कन्या ।

अंगजात—संज्ञा पुं० दे० 'अंगज' ।

अंगजाता—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगजा' ।

अंगज्वर<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गज्वर ] राजयक्ष्मा । क्षय रोग (को०) ।

अंगज्वर<sup>२</sup>—वि० ज्वरोत्पादक (को०) ।

अंगड खगड<sup>१</sup>—वि० [ अनुध्व० ] १ बचा खूचा । गिरा पड़ा । इधर उधर का । २ टूटा फूटा । उ०—'अयोध्या की अंगड खगड वीहड़ और वेढगी बरती ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७४ ।

अंगड खगड<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० काठकवाड । टूटा फूटा सामान ।

अंगड़ा<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्ग + हि० डा (प्रत्य०) ] दे० 'अंग' १ । उ०—तेरा अंगड़ा पंखो री, तेरा मुखड़ा देखो रे ।—दादू०, पृ० ५०४ ।

अंगढग—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्ग + हि० ढग ] अंगों की बनावट या रचना । उ०—अंगढग श्री रंग भूरि भंवरी सुभ लच्छन ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११३ ।

अंगण—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गण ] १ घर के बीच का खुला हुआ भाग । आँगन । सहन । चौक । अजिर । उ०—(क) सदेसे ही घर भर्यउ कई अंगण कई वार ।—ढोला०, दू०, ८०० । (ख) आबी द्वार तजे ग्रह अंगण ।—राज०, पृ० १८ ।

विशेष—शुभाशुभ निश्चय के लिये इसके दो भेद माने गए हैं, एक 'सूर्यवेधी' जो पूर्व पश्चिम लवा हो, दूसरा 'चंद्रवेधी' जिसकी लवाई उत्तर दक्षिण हो । चंद्रवेधी आँगन अच्छा समझा जाता है ।

२ यान । सवारी (को०) । ३ सचरण । गमन (को०) ।

अंगति—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गति ] १ अग्निहोत्री । २ विष्णु । ३ ब्रह्मा । ४ अग्नि । ५ जिसके द्वारा गमन किया जाय । वाहन (को०) ।

अंगत्तारा—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गत्तारा ] १ शस्त्रास्त्रों से अंग की रक्षा के निमित्त पीतल या लोहे का पहिनावा । कवच । बहतर । बर्म । जिरह । २ अंगरखा । कुरता ।

अंगद—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गद ] १ बालि नामक वंदर का पुत्र जो रामचंद्र की सेना में था । २ बाढ़ पर पहनने का एक गहना । बिजायट । बाजूबद । उ०—उर पर पदिक कुसुम धनमाला अंगद खरे विराजै ।—सूर०, १०।४५१ । ३ लक्ष्मण के दो पुत्रों में से एक । ४ दुर्योधन के पक्ष का एक योद्धा ।

अगदा<sup>१</sup>—सद्वा स्त्री [ सं० अङ्गदा ] दक्षिण दिशा के दिग्गज की पत्नी ।  
अगदा<sup>२</sup>—वि० स्त्री अगदान करनेवाली ( स्त्री ) ।

अगदान—सद्वा पुं [ अङ्ग + दान ] १ पीठ दिखलाना । युद्ध से भागना । लड़ाई से पीछे फिरना । २ तनुदान । अगममर्पण । सुरति । रति । ( स्त्रियों के लिये प्रयुक्त ) ।

क्रि० प्र०—करना = ( १ ) पीठ दिखलाना, भागना, पीछे फिरना ।  
( २ ) रति करना, सम्भाग करना ।

अगदीया—सद्वा स्त्री [ सं० अङ्गदीया ] कारुपय नामक देश की नगरी जो लक्ष्मण के पुत्र अगद को मिली थी ।

अगद्वार—सद्वा पुं [ सं० अङ्गद्वार ] शरीर के मुख, नासिका आदि दस छेद ।

अगद्वीप—सद्वा पुं [ अङ्गद्वीप ] छह द्वीपों में से एक ।

अगधारी—सद्वा पुं [ सं० अङ्ग + धारिन् ] शरीर धारण करनेवाला । शरीरी । प्राणी ।

अगन—सद्वा पुं [ सं० अङ्गन ] १ अग्नि । सहन । चौक । उ०—घर अगन गायन पिरकि जमुना जल बन कुज ।—पृ० २।०, २।५५६ ।

अगना—सद्वा स्त्री [ सं० अङ्गना ] २ सुदर अगवाली स्त्री । २. स्त्री । कामिनी । उ०—वीच परी अगना अनेक अगननि के ।—वैशव प्र०, भा० १, पृ० १८३ । २ सार्वभौम नामक उत्तर के दिग्गज की स्त्री । ४ कन्या राशि ( को० ) । ५ वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशियाँ ( को० ) ।

अगनाप्रिय<sup>१</sup>—सद्वा पुं [ सं० अङ्गनाप्रिय ] १ अशोक का पेड़ । २. उत्तर दिशा का हस्ती ( को० ) ।

अगनाप्रिय<sup>२</sup>—वि० स्त्रियों का प्यारा ( को० ) ।

अगन्यास—सद्वा पुं [ सं० अङ्गन्यास ] तत्त्वशास्त्र के अनुसार मन्त्रों को पढ़ते हुए एक एक अंग छूना । सध्या, जप पाठ आदि के पूर्व की जानेवाली एक विधि ।

अगपाक—सद्वा पुं [ सं० अङ्गपाक ] अगो वा पक्ता या सूकर उनमें मवाद भरना । अग पकने का राग ।

अगपालिका—सद्वा स्त्री दे० 'अकमालिका' ( को० ) ।

अगपाली—सद्वा पुं [ सं० अङ्गपाली ] १. आलिंगन । अंगवार । २ वेदिका नामक गद्यद्रव्य ( को० ) ।

अगप्रायश्चित्त—सद्वा पुं [ सं० अङ्गप्रायश्चित्त ] स्मृतियों में कथित अशौच में दान के रूप में किया जानेवाला प्रायश्चित्त जो शरीर की शुद्धि के लिये किया जाता है ( को० ) ।

अगप्रोक्षण—सद्वा पुं [ सं० अङ्गप्रोक्षण ] अंग पोछना । देह पोछना शरीर को गीले कपड़े से मलकर साफ करना ।

अगफुरन—सद्वा पुं [ सं० अङ्ग + फुरण, प्रा० अफ + फुरण ] अंग का फड़कना । उ०—अगफुरन ते निज मतग मन रग पिछानत ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११७ ।

अगवी—सद्वा पुं [ फा० ] मधु । शहद । उ०—ताअत मे ता रहँ न मय ओ अगवी की लाग ।—शूर०, भा० १, पृ० ५२७ ।

अगभग<sup>१</sup>—सद्वा सं [ सं० अङ्गभङ्ग ] १ किसी अवयव का खडन या नाश । अंग का खडित होना । शरीर के किसी भाग की हानि ।

२ मोहित करने की म्त्रियों की चेष्टा । म्त्रियों की कटाक्ष आदि क्रिया । अगभगी ।

अगभग<sup>२</sup>—वि० जिसके शरीर का वा कोई भाग खडित हुआ या टूटा हो । जिसके हाथ पैर टूटे हों । अपाहज । लंगड़ा लूला । लुज ।

क्रि० प्र०—करना । उ०—अगभग करि पठवहु वदर ।—तुलसी ( शब्द० ) ।—होना । जैसे—उमका अगभग हो गया ।—( शब्द० ) ।

अगभगि—सद्वा स्त्री दे० 'अगभगी' । उ०—अगभगि में व्योम मरोर, भोहो मे तारों के भीर ।—पद्मलव, पृ० ३३ ।

अगभगिमा—सद्वा स्त्री दे० 'अगभगी' । उ०—ममोहन विभ्रम अगभगिमा में अर्पाठित ।—ग्राम्या, पृ० २० ।

अगभगी—सद्वा पुं [ सं० अङ्ग + भङ्गी ] म्त्रियों की मोहित करने की चेष्टा । म्त्रियों की चेष्टा । छदा । उ०—वह अगभगीडा अनुभव सा अगभगियों का नर्तन ।—वामाधर्मा, पृ० ११ ।

अगभाव—सद्वा पुं [ सं० अङ्गभाव ] मगीन में नेत्र, मृकटि आँखें हाथ आदि अंगों से मनोविकार का प्रकाशन । गाने में शरीर की विविध मुद्राओं द्वारा चित्त के उद्वेगों की अभिव्यक्ति ।

अगभू—सद्वा पुं [ सं० अङ्गभू ] १. पुत्र । २. कामदेव ( को० ) ।

अगभू—वि० शरीर या मन में उत्पन्न ( को० ) ।

अगभूत<sup>१</sup>—सद्वा पुं [ सं० अङ्गभूत ] पुत्र । बेटा ।

अगभूत<sup>२</sup>—वि० १ अंग में उत्पन्न । देह में पैदा । २ अंतर्गत । भीतर । अंतर्भूत । ३. गौण । अप्रधान ।

अगभग(उ)—सद्वा पुं [ सं० अङ्ग + भग या अङ्ग, प्रा० अंगभग ] अंग प्रत्यग । हर एक अवयव । उ०—कुदन ओपति अगभग जनु चद किनि सिर ।—पृ० २।०, १४.७४ ।

अगम(उ)—सद्वा पुं [ सं० अगम ] आगम । ग्रन्थ । अवाई । उ०—तिन रिपि पूछी ताहि वचन वारन उत अगम ।—पृ० २।०, १.२६४ ।

अगमना(उ)—वि० सं० दे० 'अगवना' । उ०—( क ) वायान राय जय-चद को विगरि पिय कुन अगम ।—पृ० २।०, ६१।१०६० । ( घ ) को अगम सु जम्म अम्म को करै संधारन ।—पृ० २।०, ६१।१०६० ।

अगमर्द—सद्वा पुं [ सं० अङ्गमर्द ] १ अंग मलनेवाला या हाथ पैर दवानेवाला नोकर । सवाहक । सेवक । २. एक प्रकार का वातरोग । हड्डियों का दर्द । हडफूटन रोग ।

अगमर्दक—सद्वा पुं [ सं० अङ्गमर्दक ] अगमर्द । सवाहक ( को० ) ।

अगमर्दन—सद्वा पुं [ सं० अङ्गमर्दन ] अगो की मालिश । देह । दवाना । हाथ पैर दवाना ।

अगमर्दी—सद्वा पुं [ सं० अङ्गमर्दी ] सवाहक । अगमर्दक ।

अगमर्ष—सद्वा पुं [ सं० अङ्गमर्ष ] अगो की पीड़ा । वातरोग ( को० ) ।

अगयज्ञ—सद्वा पुं [ सं० अङ्गयज्ञ ] प्रधान यज्ञ का अग्रीभूत यज्ञ ( को० ) ।

अगयष्टि—सद्वा स्त्री [ सं० अङ्गयष्टि ] शरीर की पतली आकृति ( को० ) ।

अंगरक्षक—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गरक्षक] [स्त्री० अङ्गरक्षिका] शासक या विशेष अधिकारी की रक्षा के लिये नियुक्त सैनिक। वाडीगार्ड। शरीर रक्षक [को०]।

अंगरक्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गरक्षणी] शरीर की रक्षा के लिये लोहे की बनी पोशाक। वर्म। कवच [को०]।

अंगरक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गरक्षा] शरीर की रक्षा। देह का वचाव। वदन की हिफाजत।

अंगरक्षणी—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगरक्षणी'।

अंगरस—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + रस] किमी पत्ती या फल का कूटकर निचोड़ा हुआ रस। स्वरस। राँग।

अंगराग—सं० पुं० [सं० अङ्गराग] १. चदन, केसर, कपूर, कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्यों का मिला हुआ लेप जो अंग में लगाया जाता है। उबटन। वटना। २. वस्त्र और आभूषण। ३. शरीर की गोमा के लिये महावर आदि रँगने की सामग्री। ४. स्त्रियों के शरीर के पाँच अंगों की सजावट—माँग में सिङ्हर, माथे पे रोजी, गाल पर तिल की रचना, कमर का लेप, और हाथ पैर में मेहँदी वा महावर। ५. एक प्रकार की सुगंधित देसी वुक्नी जिसे मुँह पर लगाते हैं। चैसठ कलाओं में से एक।—वर्ण०।

अंगराज—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गराज] १. अंग देश का राजा कर्ण। २. राजा सोमपाद जो दशरथ के परम मित्र थे। इनकी कन्या शाता ऋष्यशृंग को व्याही गई थी। इसी नाते ऋष्यशृंग ने दशरथ से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था।

अंगरुह—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गरुह] १. शरीर के रोएँ, केश आदि। २. ऊन [को०]।

अंगरेजी<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [फा० पुर्त० अंग्लेज, इंग्लेज] अंगरेज लोगो की भाषा। इंग्लैंड और अमेरिका के निवासियों की भाषा।

अंगरेजी<sup>२</sup>—वि० अंगरेजों की। विलायती।

अंगरेजीबाज—वि० [हिं० अंगरेजी + फा० बाज] कुछ कुछ अंगरेजी जाननेवाला। उ०—'बहुतेरे अंगरेजीबाज साँवले साहित्य लोग'।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५२।

अंगलिपि—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गलिपि] अंग देश में लिखी जानेवाली लिपि [को०]।

अंगलेप—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गलेप] दे० 'अंगराग'—१ [को०]।

अंगलोड्य—संज्ञा पुं० सं० [अङ्गलोड्य] १. एक प्रकार की घास। चिचिडा। २. अदरक या उसकी जड़ [को०]।

अंगवना<sup>(३)</sup>—क्रि० सं० दे० 'अंगवना'—३। उ०—एक कोटि अंगवना धरत हर उर सुध्यान वर।—पृ० २१०, ६१। १६०।

अंगवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + वस्त्र] पहनने का वस्त्र। पोशाक। उ०—जो जो अंग ऊपर अंगवस्त्र पहिरे हते सो तो रहे।—दो सौ वावन०, भा० १, पृ० ११३।

अंगवारा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग = भाग, सहायता + वारा] १. गाँव के एक छोटे भाग का मालिक। २. खेत की जोताई में एक दूसरे की सहायता।

अंगविकल—वि० [सं० अङ्गविकल] १. मूर्छायुक्त। मूर्छित। २. विकलांग [को०]।

अंगविकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गविकृति] अपस्मार। मृगी या मिरगी रोग। मूर्छा रोग।

अंगविक्षेप—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गविक्षेप] १. अंग हिलाना। चमकाना। मटकाना। बोलते, वक्तूना देते वा गाते समय हाथ पैर, सिर आदि का हिलाना। २. नृत्य। नाच। ३. नृत्यकालीन अंग-संचालन। कलावाजी।

अंगविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गविद्या] १. शरीर के लक्षणों और रेखाओं को देखकर जीवन की घटनाओं को बताने की विद्या। शरीर की रेखाओं से मनुष्य के शुभाशुभ फल कहने की कला। सामुद्रिक विद्या। २. छठ वेदांग।

अंगविभ्रम—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गविभ्रम] १. रोग जिसमें रोगी अंगों को और का और समझता है। अंगभ्राति। २. शृंगार रस में नायिका की विभ्रम नामक चेष्टा।

अंगवैकृत—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गवैकृत] हृदय या मन के भाव को अंगों की चेष्टा से व्यक्त करना। आकार [को०]।

अंगश—वि० [सं० अङ्गश] अंग या विभाग के अनुसार [को०]।

अंगशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गशुद्धि] स्नानादि द्वारा शरीर स्वच्छ करना [को०]।

अंगशैथिल्य—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गशैथिल्य] वदन की सुस्ती। अंग का ढीलापन। थकावट।

अंगशोष—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गशोष] एक रोग जिसमें शरीर क्षीण होता या सूखता है। सुखडो रोग।

अंगसंग—संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + सङ्ग] रति। सयोग। मैथुन। सभोग।

अंगसधि—संज्ञा स्त्री० दे० 'सध्यग'।

अंगसपेख<sup>(४)</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + सम्प्रेक्ष] अंग नामक देश (डि०)।

अंगसवाहन—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गसवाहन] अंगमर्दन। मालिश। देह दवाना। उ०—'चार सेवक आवनस के बेलन से उसका अंग-सवाहन करते थे'।—चद्र० (भू०), पृ० २२।

अंगसस्कार—संज्ञा पुं० [अङ्गसस्कार] अंगों का संवारना। देह का बनाव सजाव। उबटन, स्नान या सुगंधित द्रव्यों आदि से शरीर की सजावट।

अंगसस्त्रिया—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगसस्कार' [को०]।

अंगसहति—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसहति] अंगों का गठन। अंगों की रचना या बनावट। अंगों का सुधारपन [को०]।

अंगसहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसहिता] किसी शब्द में व्यंजन और स्वर के मध्य का ध्वनिसंवध [को०]।

अंगसख्य—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गसख्य] अभिन्न मैत्री। गाढी मित्रता। गहरी दोस्ती।

अंगसिहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग = शरीर + हर्ष = कप] १. ज्वर घाने के पहले देह की कँपकँपी। कप। कँपकँपी। २. जूड़ी।

अंगसुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसुप्ति] शरीर का सुप्त होना [को०]।

अंगसेवक—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गसेवक] शरीर की रक्षा करनेवाला निजी सेवक। अंगरक्षक [को०]।



अगस्कंध--संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गस्कंध ] हा, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार नामक शरीर के पाँच स्कंध (बौद्ध) ।

अगस्पर्श--संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गस्पर्श ] दाहकर्म करनेवाले का अशौच के चौथे दिन अस्थि सचयन के बाद दूसरे के द्वारा छुने के योग्य होना [को०] ।

अगहानि--संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गहानि ] देव, भ्रम या अतवधानता से मुख्य कार्य के उपकारक अवातर का कार्य में हुई असावधानी या त्रुटि [को०] ।

अगहार--संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गहार ] १ अगविक्षेप । चमकना । मटकना । हाथ पैर हिलाना । २ नृत्य । नाच ।

अंगहारि--संज्ञा पुं० १ दे० 'अगहार' । २ रगमच । रगस्थल [को०] ।

अगहीन<sup>१</sup>--संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गहीन ] अनग । कामदेव [को०] ।

अगहीन<sup>२</sup>--वि० जिसको कोई एक वा अनेक अंग न हो । जिसके शरीर का कोई भाग खंडित वा टूटा हो । लूला लँगड़ा । लूज आदि । अवयवरहित ।

अगागिता--संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गाङ्गिता ] दे० 'अगागिभाव' [को०] ।

अगागिभाव--संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गाङ्गिभाव ] १ अवयव और अवयवी का परस्पर संबंध । उपकारक उपकार्य-संबंध । अश का संपूर्ण के साथ आश्रय और आश्रयी रूप संबंध अर्थात् ऐसा संबंध कि उस अश का अवयव के बिना संपूर्ण वा अवयवी की सिद्धि न हो, जैसे त्रिभुज की एक भुजा का सारे त्रिभुज के साथ संबंध । २ गीण और मुग्ध का परस्पर संबंध । ३ अलंकार में सत्कर का एक भेद । जहाँ एक ही पद्य में कुछ अलंकार प्रधान रूप आएँ और उनके आश्रय या उपकार से दूसरे और भी आ जाएँ । उ०--अब ही तो दिन दस बीते नाहिं नाह चले अब उठि आई कहूँ कहाँ ली विसरिहँ । आओ खेलें चौपर विसारें मतिगम दुख खेलन को आई जानि विरह को चूरि है । खेलत ही काहूँ बह्यो जुग जिन फूटी प्यारी । न्यारी भई मारी को निवाह होनो दूर है । पारि दिए डारि मन साँसे ही में वूडि रह्यो विसरयो न दुख, दुख दूनो भरपूर है । यहाँ 'जुग जनि फूटी' वाक्य के कारण प्रिय का स्मरण हो आया इससे स्मरण अलंकार और इस स्मरण के कारण विरहनिवृत्ति के माधन से उलटा दुख हुआ अर्थात् 'विषम' अलंकार की मिट्टि हुई । अतः यहाँ स्मृति अलंकार विषम का अंग है ।

अगागीभाव--संज्ञा पुं० दे० 'अगागिभाव' ।

अगा<sup>१</sup>--संज्ञा पुं० [ सं० अङ्ग ] १ पहिनावा जो घटनो के नीचे तक लवा होता है और जिसमें वद लगे रहते हैं । अगखा । चपकन ।

अगा<sup>२</sup>--संज्ञा पुं० [ सं० अङ्ग ] दे० 'अग' । उ०--देवी गंगा लहर तुरगा । तुहरे लहर परमू, भाँजे आठो अगा ।--शुक्ल० अमि० अ०, पृ० १३८ ।

अगाकडी--संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गार + हि० कटी ] अगारों पर सँकी हुई मोटी रोटी । लिट्टी । वाटी ।

कि० प्र०--वरना ।--लगाना=वाटी तैयार करना या पकाना ।

अगाकर(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगाकडी' । उ०--कोस पयाएउ पाणियो जहि । सात अगाकर बैठो हो खाय ।--वी० रासो, पृ० ७८ ।

अगाकरी (पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगाकडी' । उ०--रवा केर आमोहन दे बनाए । घने घृत अगाकरी खोभि लाए ।--पृ० रा० ६३।८६ ।

अगार<sup>१</sup>--संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गार ] १ दहकता हुआ कोयला । आग का जलता हुआ टुकड़ा । बिना घुएँ की आग । निर्धूम अग्नि । उ०--धवनि धवती रहि गई वृष्णि गए अगार ।--कवीर ग्र०, पृ० ५७ । २ स्फूर्तिग । चिनगारी । उ०--अग्नि अग्नि झार भभार धुधार करि उचटि अगार भभार छाया ।--मुर०, पृ० ५१६६ ।

मुहा०--अगार उगलना=कडी कडी बातें मुँह से निकालना । ऐसी बात बोलना जिससे सुननेवाले को अत्यंत क्रोध उत्पन्न हो । अगार बनना=(१) खा पीकर लाल होना । मोटा ताजा होना । (२) क्रोध में भरना । अंगार बरसना=(१) अत्यंत अधिक गर्मी पडना । (२) दैवी आपत्ति आना । ३ कोयला (को०) । ४ मगल । उ०--चर आए हिल्लिय नगर, दसमि सुदिन अगार ।--पृ० रा०, ६६।१६१८ । ५. लाल रंग (को०) । ६ हितावली नाम का पौधा (को०) ।

अगार<sup>२</sup>--वि० लाल रंगवाना [को०] ।

अगारक--संज्ञा पुं० [ सं० अगारक ] १ दहकता हुआ कोयला । आग का जलता हुआ टुकड़ा । २ चिनगारी (को०) । ३ मगल ग्रह । ४ मृगराज । भोंगरैया । भोंगरा । ५ कटमरैया का पेड़, कुरटक । पियावासा । ६ एक प्रकार का तैल जो सभी ज्वरों का नाश करनेवाला होता है (को०) ।

अगारकमणि--सं० पुं० [ सं० अङ्गारकमणि ] मूंगा । प्रवाल ।

अगारकवार--संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गारकवार ] मगल का दिन । भौमवार [को०] ।

अगारकारी--संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गारकारी ] काठ को जलाकर बेचने के लिये कोयला तैयार करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

अगारकित--वि० [ सं० अङ्गारकित ] दग्ध । जला हुआ । भूना हुआ । [को०] ।

अगारकृत--संज्ञा पुं० दे० 'अगारकारी' [को०] ।

अगारधानी--संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गारधानी ] आग रखने का बरतन । अंगीठी । वोखी [को०] ।

अगारधानिका--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगारधानी' [को०] ।

अगारपरिपाचित--संज्ञा पुं० दे० 'अगारपरिपाचित' [को०] ।

अगारपर्ण<sup>१</sup>--संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गारपर्ण ] चित्ररथ गधर्व का एक नाम ।

अगारपर्ण<sup>२</sup>--वि० दे० 'चित्ररथ' ।

अगारपाचित--संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गारपाचित ] अगार या दहकती हुई आग पर ही रखकर पकाया हुआ खाना, जैसे कढ़ाव, नान-खताई इत्यादि ।

अगारपात्री--संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गारपात्री ] अंगीठी । अगारधानी [को०] ।

अगारपुष्प--संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गारपुष्प ] इगुदी वृक्ष जिसके फूल अगार के समान लाल होते हैं । हिमोट का पेड़ ।

अगारमजरी--संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गारमजरी ] वह करज जिसकी मजरी लाल होती है । लाल करज की बेन [को०] ।

अगारमजी--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगारमजरी' [को०] ।

अगारमणि--संज्ञा पुं० दे० 'अगारकमणि' ।

अगारमती--संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गारमती ] कर्ण की स्त्री ।

अंगारवल्लरी—सखा स्त्री० [सं० अङ्गारवल्लरी] दे० 'अंगारवल्ली' को० ।  
अंगारवल्ली—सखा स्त्री० [सं० अङ्गारवल्ली] गुजा की लता । धुँधवी  
की वेल । चिरमटी की वेल ।

अंगारवेणु—सखा पुं० [सं० अङ्गारवेणु] लाल रंग का बाँस । बाँस का  
एक भेद [को०] ।

अंगारकटी—सखा स्त्री० [सं० अङ्गारकटी] अंगीठी । अंगारपात्री ।  
गोरसी । बोरसी [को०] ।

अंगारा—सखा पुं० [सं० अङ्गारक, प्रा० अंगार] दे० 'अंगार' ।

मुहा०—अंगारा बनना = क्रोध के कारण मुँह लाल होना । गुस्से  
में होना । अंगारा हो जाना = दे० 'अंगारा बनना' । अंगारा  
होना = क्रोध से लाल होना । अंगारे जगलना = कटु वचन  
कहना । जली बटी सुनाना । अंगारे फाँकना = अनहू फन  
देनेवाला काम करना । अंगारे बरसना = (१) अत्यंत अधिक  
गर्मी पड़ना । आग बरसना । (२) दैवी कोप होना । अंगारो  
पर पैर रखना = (१) जान बूझकर हानिकारक कार्य करना  
या अपने को मकद में डालना । (२) जमीन पर पैर न रखना ।  
उतराकर चटना । अंगारो पर लोटना = (१) अत्यंत रोप प्रकट  
करना । आग बबूला होना । भरलाना । (२) डाढ़ से जलना ।  
रिप्या से व्याकुल होना । उ०—'वह मेरे बच्चे को देखकर  
अंगारो पर लोट गई' (शब्द०) । (३) तड़पना व्याकुल होना ।  
उ०—'शाम से ही लोटना है मुझको अंगारो पे आज ।  
—शे०, भा० १, पृ० ६५६ । अंगारो पर लोटाना =  
(१) जलाना । दाढ़ करना । (२) तड़पना । दुर्खा करना ।  
साल अंगारा = (१) बहुत लाल । खूब सूर्य । उ०—'काटने  
पर तरबूज जाल अंगारा निकला' (शब्द०) । (२) अत्यंत  
शुद्ध । उ०—'यह मुनते ही वह लाल अंगारा हो  
गई' (शब्द०) ।

अंगारावक्षपण—सखा पुं० [सं० अङ्गारावक्षेपण] अंगार या जलता  
हुआ कोयला निकालने और वृक्षाने का एक पात्र । चिमटा  
[को०] ।

अंगारि—सखा स्त्री० [सं० अङ्गारि] अंगीठी । बोरसी ।

अंगारिका—सखा स्त्री० [सं० अङ्गारिका] १ अंगीठी । २ इक्षु । ईंद्र ।  
३ ईंद्र का छोटा टुकड़ा । ४ कली । ५. पलाश की कली  
[को०] ।

अंगारिणी—सखा स्त्री० [सं० अङ्गारिणी] १ अंगीठी । बोरसी ।  
आदिशदान । २ वह दिशा जिसपर दूबे हुए सूर्य की लाली  
छाई हो । ३ एक लता [को०] ।

अंगारित—वि० [सं० अङ्गारित] १ मृना हुआ । २ दग्ध (एक प्रकार  
का भोजन जो जैन मंत्रियों के लिये त्याज्य है) । ३ जला  
हुआ [को०] ।

अंगारिते—सखा पुं० पलाश की ताजी कली [को०] ।

अंगारिता—सखा स्त्री० [सं० अङ्गारिता] १ अंगीठी । २ कली । ३  
पलाश की ताजी कली । ४ एक लता । ५ एक नदी का  
नाम [को०] ।

अंगारी—सखा स्त्री० [सं० अङ्गारी] १ दहकते हुए कोयले का छोटा  
टुकड़ा । २ चिनगाशी । ३. अंगार या दहकती हुई बिना लपट  
२

की आग पर पकाई हुई रोटी । लिट्टी । बाटी । ४ अंगीठी ।  
बोरसी ।

अंगारी—वि० [सं० अङ्गारिन्] सूर्य द्वारा प्रतप्त (दिशा) ।

अंगारीय—वि० [सं० अङ्गारीय] अंगार या कोयला बनाने के योग्य  
(काष्ठदि) [को०] ।

अंगार्या—सखा स्त्री० [सं० अङ्गार्या] कोयले की ढेरी [को०] ।

अंगिका—सखा स्त्री० [सं० अङ्गिका] १ स्त्रियों की कुरती । अंगिया ।  
चोली । कचुकी । छोटा कपड़ा । २ सर्प की कंचुल [को०] ।

अंगित—सखा पुं० दे० 'इंगित' । उ०—'को कौरित अंगित काजे ।  
—विद्यापति०, पृ० ५३३ ।

अंगिन्—वि० [सं० अङ्गिन्] दे० 'अंगी' ।

अंगिनी—वि० [सं० अङ्गिनी] अगवाली ।

विशेष—इसका प्रयोग प्रायः समस्तरूप में ही मिलता है, जैसे,  
अर्धांगिनी ।

अंगिया—सखा स्त्री० दे० 'अंगिका'—१ ।

अंगिर—सखा पुं० [सं० अङ्गिर] १ दे० 'अंगिरस' । २. तीतर पक्षी [को०] ।

अंगिरस्—सखा पुं० [सं० अङ्गिरस्] १ एक प्राचीन ऋषि का नाम  
जो दस प्रजापतियों में गिने जाते हैं ।

विशेष—ये ऋषयवेद के प्रादुर्भावकर्ता कहे जाते हैं । इसी से इनका  
नाम ऋष्या भी है । इनकी उत्पत्ति के विषय में कई कथाएँ  
हैं । वहाँ इनके पिता को उर और माता को आग्नेयी लिखा  
है और वहाँ इनको ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न बतलाया गया है ।  
रमूनि, स्वधा, सती और अरुद्धा इनकी स्त्रियाँ थीं जिनसे  
ऋचस् नाम की कन्या और मानस् नामक पुत्र हुए । इनकी  
बनाई एक स्मृति भी है ।

२ बृहस्पति का नाम । ३. ६० सवत्सरो में छोटे सवत्सर का  
नाम । ४. कटीला । कटीला गोद । कटीरा ।

अंगिरस—सखा पुं० [सं० अङ्गिरस्] १ परशुराम का एक शत्रु  
२ दे० 'अंगिरस'—२ [को०] ।

अंगिरसी—सखा पुं० [सं० अङ्गिरसी] शरीर विज्ञान का ज्ञाता [को०] ।

अंगिरा—सखा पुं० दे० 'अंगिरस' ।

अंगिर—सखा पुं० [सं० अंगिर] एक ऋषि जिन्होंने ऋषयंश ऋषि  
से ब्रह्मविद्या प्राप्त की थी । अंगिरस् के गुरु सत्यवाह इनके  
शिष्य थे [को०] ।

अंगी<sup>१</sup>—वि० [सं० अङ्गी] १ शरीरी । देहधारी । शरीरवाला । २.  
अवबधी । उपकार्य । अशी । समष्टि । ३ प्रधान । मुख्य ।

अंगी<sup>२</sup>—वि० स्त्री० अगवाली (केवल समास में प्रयुक्त, जैसे, तन्वगी,  
कोमलांगी आदि) ।

अंगी<sup>३</sup>—सखा पुं० १ नाटक का प्रधान नायक, जैसे सत्यहरिश्चंद्र  
में हरिश्चंद्र । २. प्रधान रस । नाटको में शृंगार और  
वीर ये दो रस अंगी ( प्रधान ) कहलाते हैं और शेष रस  
अग ( अग्रधान ) ।

अंगी<sup>४</sup>—सखा स्त्री० [दि०] चौदह विद्याएँ ।

अंगी<sup>५</sup>—सखा स्त्री० दे० 'अंगिया' ।

अंगीकति—सखा स्त्री० [सं० अंगीकृत, प्रा० अंगीकत, हिं० अंगीकति]  
दे० 'अंगीकृति' । उ०—'जो चाचा जी मे श्रीनाथ जी गुसाईं जी की  
अंगीकति को सवध दृढ़ है ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ६५ ।

अंगीकरण—सखा पुं० [सं० अङ्गीकरण] १ दे० 'अंगीकार' । उ०—

अस्वीकरण और अंगीकरण दोनों की क्षमता अपने प्राणों में जगानी होती है।—सुनीता, पृ० २३७।

अंगीकार—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गीकार ] स्वीकार। मजूर। कबूल। ग्रहण।

क्रि० प्र०—करना। उ०—जाकौ हरि अंगीकार कियो।—सूर०, १।३७।—होना।

अंगीकृत—वि० [ सं० अङ्गीकृत ] स्वीकार किया हुआ। ग्रहण किया हुआ। अपनाया हुआ। लिया हुआ। स्वीकृत। मंजूर। उ०—जौ न अंगीकृत करै वै होइ हो रिन दास।—सूर०, १०।३४३१।

अंगीकृति—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गीकृति ] स्वीकृति। मजूरी। अंगीकरण। अंगीय—वि० [ सं० अङ्गीय ] १ शरीर या अंग सवधी। २ अंग देश का [को०]।

अंगुरा—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुरा ] वेगन। भटा [को०]।

अंगुर(७)—संज्ञा पुं० दे० 'अंगुल'—१। उ०—अंगुर द्वै घटि होत सघनि सौं पुनि पुनि और मंगायो।—सूर०, १०।३४२।

अंगुरि(७)—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गुरि ] उँगली। उ०—मुंह अंगुरि दे दै मुसुकावति।—नद प्र०, पृ० २४३।

अंगुरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गुरी ] उँगली। उ०—(क) भरति नीर सुदरी। सु पानि पत्त अंगुरी। पृ० रा०, ६१।३३६। (ख) जो कोई अज के रखन के पत्तीया तथा डार तोरेगो ताके हाथ की अंगुरी हो तोहेंगो।—दो सौं धावन०, भा० १, पृ० ३००।

अंगुरीय—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुरीय ] अँगूठी। मुंदरी [को०]।

अंगुरीयक—संज्ञा पुं० दे० 'अंगुरीय' [को०]।

अंगुल—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुल ] १ लवाई की एक नाप। एक आयत परिमाण। आठ जो के पेट की लवाई। आठ यवोदर का परिमाण। उ०—साठि सु अंगुल लेह्य किल्लि।—पृ० रा०, ३।२२।

विशेष—१२ अंगुल का एक वित्त और दो वित्त का एक हाथ होता है।

२ आस या वारहवाँ भाग ( ज्यो० )। ३ उँगली। अंगुलि।

४. अँगूठा। ५ चाणक्य या वात्स्यायन का एक नाम [को०]।

अंगुलक—वि० [ सं० अङ्गुलक ] अंगुल सवधी। जो अंगुल के परिमाणवाला हो [को०]।

अंगुलप्रमाण<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुलप्रमाण ] अंगुलियों की लवाई या चौड़ाई [को०]।

अंगुलप्रमाण<sup>२</sup>—वि० अंगुली की लवाईवाला [को०]।

अंगुलमान—संज्ञा पुं०, वि० दे० 'अंगुलप्रमाण' [को०]।

अंगुलि—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गुलि ] १ दे० 'अंगुली'। उ०—तखित करिग अंगुलि घरम दान भरिग प्रथिराज।—पृ० रा०, ५७।८७।

मुहा०—अंगुलि करना = वदनामी करना। अंगुल्यानिर्देश करना।

उ०—जिहि प्रियजन अंगुलि करै तिहि प्रियजन किहि काज।—पृ० रा०, ६१।१२७३।

२. दस की संख्या (को०)।

अंगुलिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गुलिका ] १ उँगली। एक प्रकार की चीटी [को०]।

अंगुलिगण्य—[ सं० अङ्गुलिगण्य ] उँगलियों पर गिनने योग्य। बहुत कम। विरला। उ०—गोपाल का सच्चा भक्त अंगुलिगण्य ही हो सकता है।—संपू० अभि० प्र०, पृ० ३१२।

अंगुलितोरण—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुलितोरण ] लिपुट तिलक। तीन पतली अर्द्धचंद्राकार समानांतर रेखाओं का तिलक जिसे शैव लोग माथे पर लगाते हैं।

अंगुलित्त्र—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुलित्त्र ] १ वह तत या तारो वाला बाजा जो कमानी से नहीं बल्कि उँगली में मिजराव पहनकर बजाया जाता है, जैसे—सितार, वीन, एवतारा आदि। २ दे० 'अंगुलित्त्राण' (को०)।

अंगुलित्त्राण—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुलित्त्राण ] गोह के चमड़े का बना हुआ दस्ताना जिसे दायें चलाते समय उँगलियों को रगड़ से धराने के लिये पहनते हैं। उँगलियों की रक्षा के निमित्त गोह के चमड़े का एक आवरण। गोह के चमड़े का दस्ताना।

अंगुलित्त्रान(७)—संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलित्त्राण'। उ०—अंगुलित्त्रान बमान दान छवि सुरनि मुखट अचुरनि उर सालति।—तुलसी प्र०, पृ० ४१५।

अंगुलिनिर्देश—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुलिनिर्देश ] १ उँगली से संकेत करने का कार्य। २ वदनामी। निदा [को०]।

अंगुलिपञ्चक—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुलिपञ्चक ] हाथ की पाँच उँगलियाँ जिनके नाम ये हैं—अंगुष्ठ, प्रदंशनी या तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका।

अंगुलिपर्व—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुलिपर्व ] उँगलियों की पोर। उँगली की गाँठ या जोड़।

अंगुलिमुख—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुलिमुख ] उँगली का सिरा या नोक [को०]।

अंगुलिमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गुलिमुद्रा ] १ अँगूठी जिसपर नाम खुदा हो। नामांकित अँगूठी। २ मुहर लगाने के लिये नाम खुदी अँगूठी।

अंगुलिमुद्रिका—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगुलिमुद्रा' [को०]।

अंगुलिमोटन—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुलिमोटन ] अँगुली चटकाने या फोड़ने का काम। उँगली पुटकाना [को०]।

अंगुलिवेष्ट—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुलिवेष्ट ] दस्ताना [को०]।

अंगुलिवेष्टक—संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलिवेष्ट' [को०]।

अंगुलिवेष्टन—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुलिवेष्टन ] १. दस्ताना। हथेली और उँगलियों को ढाँकने का आवरण। २ अंगुलित्त्राण।

अंगुलिसगा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गुलिसगा ] उँगलियों में लिपट जाने वाली लपसी। यवागू [को०]।

अंगुलिसज्ञा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गुलिसज्ञा ] उँगली का इशारा [को०]।

अंगुलिसंदेश—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुलिसंदेश ] उँगली की मुद्रा से या उँगली चूटकाकर संकेत करना [को०]।

अंगुलिसंभूत—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गुलिसंभूत ] नख [को०]।

अंगुलिम्फोटन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिम्फोटन] उँगलियों की फोटन या पुटवाना [को०] ।

अंगुली--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुली] १. उँगली । उ०--अरुण चरन अंगुली मनोहर ।--तुलसी प्र०, पृ० ३२५ । २. हाथ का अंगूठा (को०) । ३. पाँव की उँगली (को०) । ४. पाँव का अंगूठा (को०) । ५. अंगुल का परिमाण (को०) । ६. हाथी के सगने मूँठ का उँगलीनुमा तिरा या भाग । ७. एक नदी का नाम ।

अंगुलीक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलीक] अंगूठी [को०] ।

अंगुलीपत्रक--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलिपत्रक' [को०] ।

अंगुलीपर्व--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलिपर्व' [को०] ।

अंगुलीमुख--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलीमुख] उँगली का गिरा या अंगना भाग [को०] ।

अंगुलीय--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलीय] अंगूठी । उ०--जैसे अंगुलीय में सरकत --बुद्धि, पृ० ६४ ।

अंगुलीयक--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलीय' [को०] ।

अंगुलीयभूत--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलित्सम्भूत] नय । नायन [को०] ।

अंगुल्यग्र--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल्यग्र] उँगली का गिरा या अंगना भाग [को०] ।

अंगुल्यादेश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलि + आदेश] उँगली का इशारा । उँगली से अभिप्राय प्रगट करना । इशारा । संकेत ।

क्रि० प्र०--करना ।--होना ।

अंगुल्यानिर्देश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल्यानिर्देश] घटनामी । बलक । लाछन । अंगुष्ठतनुमार्ग । वृत्तार्ग । दीपारोपण ।

क्रि० प्र०--करना ।--होना ।

अंगुष्ठ--संज्ञा पुं० [को०] उँगली । अंगुली । उ०--अपने के लई ण्डावत अंगुष्ठ बाह धर है ।--कविता को०, भा०, ४, पृ० १६ ।

अंगुष्ठतनुमा--वि० [को०] निर्दल्य । वदनाम । धृष्टात [को०] ।

क्रि० प्र०--करना--निदा करना ।--होना = निश्चित होना । बदन नाम होना ।

अंगुष्ठतनुमार्ग--संज्ञा स्त्री० [को०] वदनामी । बलक । लाछन । दीपारोपण ।

क्रि० प्र०--करना ।--होना ।

अंगुष्ठेरी--संज्ञा स्त्री० [को०] अंगूठी । मुँदरी । मुद्रिका । उ०--जब सुलेमाँ पाय को अंगुष्ठेरी ।--रघुनी०, पृ० १८४ ।

अंगुष्ठाना--संज्ञा पुं० [को०] १. उँगली पर पहनने की पीतल का लोहे की एक छोटी टापी जिसमें छोटे छोटे गड्ढे बने रहते हैं । इसे दरजी लोग कपड़ा सीते समय एक उँगली में पहन लेते हैं जिससे सूई न चुभ जाय । इसी से वे सूई को उसका पिछला हिस्सा दबाकर आगे बढ़ाते हैं । २. सोने या चाँदी की एक प्रकार की मुँदरी जो हाथ के अंगूठे में पहनी जाती है । ३. उँगली की रक्षा के लिये उगम पहने का धातु, चमड़े, रंग धादि का घास । अंगुलिचरा (को०) ।

अंगुष्ठेतर--संज्ञा पुं० [को०] अंगूठा [को०] ।

अंगुष्ठु--संज्ञा पुं० दे० 'अंगूठा' । उ०--अंगुष्ठ दस उगमे मुद्रा ।--हम्मीर रा०, पृ० ५ ।

अंगुष्ठ--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठ] १. हाथ या पैर की सबसे मोटी उँगली । अंगूठा । २. अंगूठे की पीठ की उँगली के लोरी की लकड़ी के बराबर माला जाती है [को०] ।

अंगुष्ठमात्र--वि० [सं० अङ्गुष्ठमात्र] अंगूठे की मलाईबाग या अंगूठे जैसा [को०] ।

अंगुष्ठमात्रक--वि० [सं० अङ्गुष्ठमात्रक] दे० 'अंगुष्ठमात्र' [को०] ।

अंगुष्ठु--संज्ञा पुं० दे० 'अंगूठा' । उ०--जय विजयीय अंगुष्ठु नामा अधिक अवार ।--वीर सा०, पृ० १६ ।

अंगुष्ठिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुष्ठिका] एक पीछे का नाम [को०] ।

अंगुष्ठय--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठय] अंगूठे का नायन [को०] ।

अंगूठा--संज्ञा पुं० दे० 'अंगूठा' । उ०--उदयान पर उगमे प्राय, अंगूठे के बल दूए गये ।--युगात, पृ० ४१ ।

अंगूर--संज्ञा पुं० [को०] एक लता और उसके फल का नाम । द्राक्षा । दाय ।

विशेष--यह भारत के उत्तरपश्चिम और पंजाब तथा बम्बीर आदि प्रदेशों में बहुत लगाया जाता है । हिमालय के पश्चिमी भागों में यह आपने आप भी होता है । उत्तर प्रदेश के बुधार्ग, बनारस और बेहलून तथा मध्य और महाराष्ट्र प्रदेश के अहमदनगर और नांदेड, पूना और नाशिक आदि स्थानों में भी इसकी उपज होती है । बंगाल में पानी घटित करने के कारण इसकी देल बनी नहीं बढ़ सकती । बिहार प्रदेश में तिरहुत और दानापुर में इसकी कुछ दृष्टियाँ तैयार की जाती हैं ।

अंगूर की देल होती है जो दृष्टियों पर फैलती है । इसकी पत्तियाँ गुच्छे वा तैनुए की पत्तियों में मिलती जुलती होती हैं । इसके फल हरे और बैंगनी रंग के तथा छोटे, बड़े, गोल और लंबे बड़े आकार के होते हैं । चर्द नम के फल की तरह लवाकर और चर्द मकाय का तरह पान होती है और गुच्छों में लगते हैं । अंगूर की मिठस तो प्रसिद्ध ही है । भारतवर्षी इसे 'द्राक्षा' और 'मूद्रापा' के नाम से जानते हैं । परन्तु और सुशुत में इसका उल्लेख है । पर भारतवर्ष में इसकी पत्तीयम होती थी । पत्र प्राय चार छे ही भेगाए जाते थे । गुम्फमान बादशाहों ने समय अंगूर का पार अधिक ध्यान दिया गया । आजकल हिन्दुस्तान में उदय अधिक अंगूर बालीर में होते हैं जहाँ ये बगैचे के गड्ढों में लगे हैं । यहाँ इनकी फलव होती है और मिरबा भी बढ़ता है । महाराष्ट्र देश में जो अंगूर लगाए जाते हैं उनके कई भेद हैं जैसे--आबी, फकीरी, हल्मी, मालवी आदि ही इसका । अंगूर-निस्तान, मिम्फिस्तान और मिस्र में अंगूर बहुत अधिक और बड़ी प्रकार के होते हैं--जैसे, हेटा, बिर्जिमगा, बगैर, हल्मी आदि । बिर्जिमगा में बड़ा नहीं होता । बगैरवाँ हटा अंगूर की एक और मशहूर के साथ मरुत लोने के लकड़ 'मादरान' और बिर्जिमगा का धुन में सुन्दर बिर्जिमगा बनाते हैं ।

मुम्बई, नादवा के काम में लगाए हैं, मुद्राका हटा अंगूर है । यह स्थान है और उदय की स्थान का बल बढ़ता है । खोली के सिंचे की अंगूर है । 'आलीसि' आदि कई अंगूर

वैदिक श्रौपयियाँ इससे तैयार होती हैं। हकीमों में इसका बहुत व्यवहार है।

अगूर का मडवा या अगूर की टट्टी = (१) अगूर की वेल के चटने और फैलने के लिये दाँस की खपचियों का बना हुआ मडप। (२) एक प्रकार की आतिशबाजी जिससे अगूर के गुच्छे के समान चिनगारियाँ निकलती हैं।

मुहा०—अगूर खट्टे होना = प्रयत्न करने पर भी प्राप्त न होनेवाली अच्छी चीज को बुरा बताना। उ०—अत मे यह कह चलती हुई अरे ये खट्टे हैं अगूर।—खिलौना १६२७।

अगूर—सझ पु० मांस के छोटे छोटे लाल दाँस जो घाव भरते समय दिखाई पड़ते हैं। दे० 'अकुर'<sup>२</sup>।

मुहा०—अगूर आना = घाव के ऊपर चमड़े की पतली भिल्ली पहना। घाव पुराना। घाव भरना। अगूर तडफना = भरते हुए घाव पर बघी हुई मांस की भिल्ली का फट जाना। अगूर फटना = दे० 'अगूर तडफना'। अगूर बँधना = घाव के ऊपर मांस की नई भिल्ली चढना। घाव भरना। अगूर-भरना = दे० 'अगूर बँधना'।

अगूर<sup>२</sup>—सझ पु० [ सं० अकुर ] अकुर। अँखुआ।

अगूरशेफा—सझ पु० [ फा० ] एक जड़ी जो हिमालय पर शिमले से लेकर काश्मीर तक होती है। इसे सग अगूर, सूची, जवराज तथा गिरवटी कहते हैं। इसकी जड़ और पत्तियाँ दमे और वायु के दर्द को दूर करती हैं।

अगूरी<sup>१</sup>—वि० [ फा० ] १. अगूर से बना हुआ। २. अगूरी रंग का। अगूरी<sup>२</sup>—सझ पु० कपड़ा रंगने का एक हरा रंग जो नील और टेसू के फूल को मिलाकर बनाया जाता है।

अगूरी<sup>३</sup>—सझ स्त्री० [ अगूर की शराब का सक्षिप्त रूप ] शराब।

अगूरी वेल—सझ स्त्री० [ फा० अगूरी + हि० वेल ] कपड़े आदि पर काढ़ी जानेवाली या छपी जानेवाली अगूर की लता की आकृति।

अगूप—सझ पु० [ सं० अङ्गूप ] १ धूस नाम का जतु। २ वाण। तीर (को०)।

अगोच—सझ पु० [ सं० अङ्गोच्च ] अगोछा (को०)।

अगोचन—सझ पु० [ सं० अङ्गोचन ] दे० 'अगोच' (को०)।

अगोछना(उ)—क्रि० सं० दे० 'अगोछना'। उ०—करि मजन अगोछि तन धूप दासि बहु अग।—पृ० रा०, १४। ५३।

अगोट—सझ स्त्री० [ सं० अङ्ग + चर्म, प्रा० घट्ट ] अग का गठन। शरीर की दनावट।

अगीटी—सझ स्त्री० दे० 'अगोट'।

अग्य—वि० [ सं० अङ्ग्य ] अग का। अग सवधी (को०)।

अग्रेज—सझ पु० दे० 'अंग्रेज'।

अग्रेजियत—सझ स्त्री० [ हि० अग्रेज + फा० इयत (प्रत्य०) ] अग्रेजों अथवा अग्रेजी का प्रभाव। अग्रेजीपन। उ०—अग्रेजियत ने हमारा दिमाग ऐसा बिगाड़ दिया है।—प्रेमघन०, भा० १, ( मू० )।

अग्रेजी—सझ स्त्री० दे० 'अंग्रेजी'। उ०—अग्रेजी पहिले जदपि सब गुन होत प्रवीन। पे निज भाषा ज्ञान विनु रहत हीन के हीन।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७३२।

अंग—सझ पु० [ सं० अङ्ग ] अंग। पाप (को०)।

अघस—सझ पु० [ सं० अङ्गस् ] पाप। पातक। अपराध।

अघारि—सझ पु० [ सं० अङ्गारि ] १ पाप का शत्रु। २. सोम के रक्षक का नाम। ३. दीप्तिशील ज्योति से युक्त (को०)।

अङ्घ्रि—सझ पु० [ सं० अङ्घ्रि ] १ पैर। चरण। पाँव। २ पेड़ की जड़। मूल (को०)। ३ छद का चतुर्थ चरण (को०)।

अङ्घ्रिकवच—सझ पु० [ अङ्घ्रि कवच ] जूता। उपानह (को०)।

अङ्घ्रिज—सझ पु० [ सं० अङ्घ्रिज ] क्षुद्र। निम्न (को०)।

अङ्घ्रिनाम—सझ पु० [ सं० अङ्घ्रिनाम ] १ वृक्ष की जड़। २ पैर। पाँव (को०)।

अङ्घ्रिनामक—सझ पु० दे० 'अङ्घ्रिनाम' (को०)।

अङ्घ्रिप—सझ पु० [ सं० अङ्घ्रिप ] पादप। वृक्ष। पेड़।

अङ्घ्रिपरिणिका—सझ स्त्री० [ सं० अङ्घ्रिपरिणिका ] सिंहपुच्छी नाम की लता (को०)।

अङ्घ्रिपरिणी—सझ स्त्री० [ सं० अङ्घ्रिपरिणी ] दे० 'अङ्घ्रिपरिणिका' (को०)।

अङ्घ्रिपान—सझ पु० [ सं० अङ्घ्रिपान ] पैर का झँगूठा चूसने का कार्य (को०)।

अङ्घ्रिवल्लिका—सझ स्त्री० [ सं० अङ्घ्रिवल्लिका ] सिंहपुच्छी लता। अङ्घ्रिपरिणी (को०)।

अङ्घ्रिवल्ली—सझ स्त्री० दे० 'अङ्घ्रिवल्लिका' (को०)।

अङ्घ्रिस्कन्ध—सझ पु० [ सं० अङ्घ्रिस्कन्ध ] टखना। गुल्फ (को०)।

अञ्च—वि० [ सं० अञ्च ] घुंघराला। धूमा हुआ। [ को० ]।

विशेष—केवल 'रोमाञ्च' में प्राप्न तथा समास का अंतिम शब्द।

अञ्च<sup>२</sup>—सझ स्त्री० [ सं० अञ्चि, प्रा० अञ्चि, अञ्च, अप० अञ्च ] १ स्फुलिंग। चिनगारी। उ०—तन सट्टं सटि मुकति बोल भारथी बोलै। लोह अञ्च उड्डत पत्त तरवर जिमि डोलै।—पृ० रा०, २७। २४।

२. दे० 'अञ्च'। उ०—जा ते अतर गुरुमति आई। तौ कौ अञ्च न लागै काई।—प्राण०, पृ० ३।

अञ्चति—सझ पु० [ सं० अञ्चति ] १ वायु। २. अग्नि। ३ वह व्यक्ति जो गतिशील हो [ को० ]।

अञ्चती—सझ पु० दे० 'अञ्चति' [ को० ]।

अञ्चन—सझ पु० [ सं० अञ्चन ] झुकाने या घुमाने की स्थिति अथवा कार्य।

अञ्चना(उ)—क्रि० सं० दे० 'अञ्चना'। उ०—(क) गहै इत उत्त सु गिद्धनि गिद्ध। मरालिय अञ्चि सिवाल अतिद्ध।—पृ० रा०, ६६। १४०३। (ख) चौतेगी सहवाज वान अरि प्राण सु अञ्च।—पृ० रा०, २७। ४३।

अञ्चर(उ)—सझ पु० दे० 'अञ्चल'। उ०—कौन निरासी दीठि लगाई लै लै अञ्चर भारै।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६३४। २. दुपट्टा। उपरना। उ०—राजन अञ्चर छोड़ करि जेत प्रसन्न काज। दिल्ली घर अगार इहै जुझक पर्यी घर आज।—पृ० रा०, ६६। १२४७।

अञ्चल—सझ पु० [ सं० ] साड़ी या ओढ़नी का वह भाग जो सिर अथवा कंधे पर से होता हुआ सामने छाती पर फैला हुआ हो। साड़ी का छोर। आंचल। पल्ला। छोर। अँचरा। उ०—बहुरि वदन विधु अञ्चल ढाँकी।—मानस, २। ११७। २. दुपट्टा। उपरना। उ०—लोचन सजल प्रेम पुलकित तन गर अञ्चल कर माल।—सूर०, १। १८६। ३ किसी प्रदेश या स्थान आदि का एक भाग। उ०—वन गुहा-कुज मरु अञ्चल

मे हूँ खोज रहा अपना विकास ।—कामायनी पृ० १५८ । ४ किनारा । तट । ५ छोर । किनारा । ६ कोर, जैसे 'नयना-चल' में अचल । ७ तलहटी । घाटी । उ०—उसकी वह जलन भयानक फैली गिरि अचल में फिर ।—कामायनी, पृ० २८१ । मुहा०—अचल जोरना = दीनता व्यक्त करना उ०—अचल जोरे करत दीनता मिलवे को सब दासी ।—सूर० (शब्द०) । अचल-देना = अंचल की ओट करना । लज्जा व्यक्त करना । परदा करना । उ०—पीतावर वह सिर से ओढ़त अचल दै मुसकत ।—सूर०, १०।३३८ । अचल पसारना = दे० 'अंचरा पसारना' । उ०—पुर नारि सकल पसारि अचल विधिह वचन सुनावही ।—मानस, १।३११ । अचल (मे) गाँठ देना = याद रखने के लिये अंचल में ग्रथि देना । बराबर स्मरण रखना । कभी न भूलना । उ०—अचल गाँठि दई दुख भाज्यो, सुख जु आनि उर पैठयो ।—सूर०, ६।१६४ । अचल रोपना = दीनता और विनय प्रदर्शन के साथ प्रार्थना करना । अंचरा पसारकर याचना करना । निहोरा करना । उ०—चरन नाइ सिर अचल रोपा ।—मानस, ६।६ । अचल लेना = दे० 'अचल देना' । उ०—रुद्र कौ देखि कै मोहिनी लाज करि लियो अचल रुद्र तब अधिक मोह्यो ।—सूर०, ८।१० । अचल भरना = (१) मंगला-शसा के साथ वधू या पुत्री के अंचल में अन्न, दूध, हल्दी आदि डालना । एक मंगल कृत्य । (२) कामना पूरी होने का आशीर्वाद । (३) गोद भरना ।

अचला (उ०)—सद्वा स्त्री दे० 'अंचरा' । उ०—मन वधे अचला मिसि ।—वेलि, दू० १५८ ।

अचित (उ०)—वि० [सं० अचित्य, प्रा० अचित] चित्तन में परे । अचित्य । उ०—अचित पुरुष को मंगल हसा गावै हो ।—धर्म० श०, पृ० ५४ ।

अचित—वि० [सं० अचित्त] १ पूजित । आराधित । समानित । २ विशिष्ट । प्रधान । ३ भूषा हुआ । घुमावदार । ४ धनुषाकार । ५ सुंदर । ६ गत । गया हुआ । ७ ग्रथित । गुंथा हुआ [को०] ।

अचितपत्र—सद्वा पुं० [सं० अचित्तपत्र] टेढ़े दल वाला कमल [को०] । अचितपत्राक्ष—वि० [सं० अचित्तपत्राक्ष] कमल की तरह नेत्र-वाला [को०] ।

अचितभू—वि० स्त्री [सं० अचित्तभू] वक्र भौंहोवाली या धनुषाकार भौंहोवाली [को०] ।

अचितलागूल—वि० [सं० अचित्तलागूल] टेढ़ी दुमवाला ( जैसे वंदर ) [को०] ।

अची (उ०)—सद्वा स्त्री दे० 'अच' । उ०—जिने लोहची लगि अची न कथ्य ।—पृ० रा०, २।४२६१ ।

अचुता (उ०)—वि० [सं० अच्युत] जो विचलित न हो । अचिंत । उ०—पारब्रह्म वारे एह लटका अचुता चुत में लूटा ।—सत दरिया, पृ० ११३ ।

अचुर (उ०)—सद्वा पुं० [सं० अनचुर] सेवक । दास । उ०—फुनवारी मो कीजे दासा । अचुर भेज देहि तेहि पासा ।—इंद्रा०, पृ० १२७ ।

अच्छा (उ०)—सद्वा स्त्री [सं० इच्छा] कामना । इच्छा । उ०—मन अच्छा पुरन भई सबको मिटचोरी मदन दुख दद ।—अज-निधि प्र०, पृ० १६६ ।

अछ (उ०)—सद्वा स्त्री [ सं० अक्ष ] आँख ।—उ० इच्छिनि अछ वखानि कै मोहि सुनावहु एह ।—पृ० रा०, १।११३७ ।

अछर—सद्वा पुं० [ सं० अक्षर ] १ मुँह के भीतर का एक रोग जिसमें काँटे से उभर आते हैं । २ अक्षर । ३. मत्त । टोना । जादू ।

मुहा०—अछर मारना = जादू करना । टोना करना । मत्तप्रयोग करना । उ०—मेरे अछर मारि परान लिए, सुघ लाग रही भइ दावरिया ।—गीत ( शब्द० ) ।

अछि (उ०)—सद्वा स्त्री [ सं० अक्षि, प्रा० अच्छि ] आँख । नेत्र । उ०—इच्छइ जु अछि वकै करन, सका लज्ज बसकरी ।—पृ० रा०, ५।११२३ ।

अछया—सद्वा पुं० [ सं० इच्छा, गु० इच्छा ] लोभ । लालच । इच्छा । कामना । लालसा ।—हिं० ।

अज<sup>१</sup>—सद्वा पुं० [ सं० अज, प्रा० अज्ज, > अ० अज ] कमल । कमल का फूल ।—अनेकार्थ० ।

अज<sup>२</sup>—सद्वा पुं० [ सं० अज्जस ] क्रोध । उ०—मजु काम सब रूप, अज गजवध महाबल ।—पृ० रा०, १।२३० ।

अजन<sup>१</sup>—सद्वा पुं० [सं० अज्जन] [क्रि० अज्जाना, अजाना] १ श्यामता लाने या रोग दूर करने के निमित्त आँख की पलकी के किनारे पर लगाने की वस्तु । काजल । अंजन । उ०—अजन रजन हूँ बिना खजन गजन नैन ।—विहारी० २०, ४६ । २. सुरमा । उ०—अजन आढ तिलक आभूषण सचि आयुधि बड छोट ।—सा० लहरी, (उ०, १६) ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—लगाना ।—सारना ।

३. सोलह शृंगारों में एक । ४. स्याही । रोगनाई । ५. रात । रात्रि । उ०—उदित अजन पै अनोखी देव अग्नि जराय ।—सा० लहरी, ३२ । ६. सिद्धाजन जिसके लगाने से कहा जाता है कि जमीन में गड़े खजाने आदि दीख पड़ते हैं ।

उ०—यथा सुअजन अजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।—मानस, १।१।७ लेप । उ०—निरजन बने नयन अजन ।—परिमल, पृ० १५८ । ८. माया । ९. अलंकारों में प्रयुक्त व्यंजना वृत्ति का एक भेद जिसमें वई अर्थोंवाले किसी शब्द का प्रयोग किसी विशेष अर्थ में हो और वह अर्थ दूसरे शब्द या पद के अर्थ से स्पष्ट हो । अभिधामूलक व्यंजना वृत्ति । १०. पश्चिम दिशा का दिग्गज । ११. एक पर्वत का नाम । कृष्णाजन्गिरि । सुलेमान पर्वत शृंखला । १२. कद्रु से उत्पन्न एक सर्प का नाम । १३. छिपकली । विस्तुइया । १४. अग्नि (को०) । १५. पश्चिम दिशा (को०) । १६. एक देश का नाम । १७. एक जाति का वृक्ष जिससे नटी भी कहते हैं । अंजन । १८. एक पेड़ जो मध्य प्रदेश, वुंदेलखंड, मद्रास, मेसूर आदि में बहुत होता है । इसकी लडकी श्यामता लिए हुए लाल रंग की और खड़ी मजबूत होती है । यह पुलों और मकानों में लगती है । इससे अन्य सामान भी बनते हैं । १९. एक पार्थिव खनिज द्रव्य जिसका सुरमा बनता है (को०) । २०. आँख में अजन लगाने का कार्य (को०) ।

अजन<sup>२</sup>—वि० काला । सुरमई । उ०—उडत फूल उडगन नभ अतर अजन घटा घनी ।—सूर० २।२८ ।

यौ०—अजनकेश । अजनकेशी । अजनशलाका । अजनसार । अजनहारी ।



अजन<sup>३</sup>—सद्वा पुं [ अ० एजिन दे० 'इजन' ] उ०—जो ज्ञान देना हो अजन से कट मरो एक दिन ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६३२ ।

अजन<sup>४</sup>—सद्वा पुं [ सं० अर्जन, प्रा० अञ्जण ] उपाजन । कमाना ।

अजनक—सद्वा पुं [ अञ्जनक ] सुरमा [ को० ] ।

अजनकेश—सद्वा पुं [ सं० अञ्जनकेश ] दीपक । दीया । चिराग ।

अजनकेशी<sup>१</sup>—सद्वा स्त्री [ सं० अञ्जनकेशी ] नख नामक सुगन्धद्रव्य जिसके जलाने से अच्छी महक उठती है । हट्टविलासिनी । नखी ।

अजनकेशी<sup>२</sup>—वि० स्त्री अजन सदृश काले बालवाली स्त्री [ को० ] ।

अजनगिरि—सद्वा पुं [ सं० अञ्जनगिरि ] नीलगिरि पर्वत ।

अजनता—सद्वा स्त्री [ सं० अञ्जनता ] पहचान [ को० ] ।

अजननामिका—सद्वा स्त्री [ सं० अञ्जननामिका ] पलकों पर होनेवाली फुसी । विलनी ।

अजनशलाका—सद्वा स्त्री [ सं० अञ्जनशलाका ] अंजन या सुरमा लगाने के लिये जस्ते वा रस से की सलाई । सुरमचू ।

अजनसार—वि० [ सं० अजन + हिं० सारना ] सुरमा लगा हुआ । अजन युक्त । अंजा हुआ । जिसमें अजन सारा या लगाया गया हो । उ०—एक तो नैन मंद भरे दूजे अजनसार । एवौरी कोउ देत है मतवारे हथियार ( शब्द० ) ।

अजनहारी—सद्वा स्त्री [ सं० अञ्जन + फारिन् ] १ आँख की पलक के किनारे की फुसी । विलनी । गुहाजनी । गुहाई । अजना । एक कीड़ा । भू गी । २ एक प्रकार का उठनेवाला कीड़ा । भू गी नामक एक कीड़ा ।

विशेष—इसे कुम्हारी या विलनी भी कहते हैं । यह प्रायः दीवार के कोनों पर गीली मिट्टी से अपना घर बनाता है । कहते हैं, इस मिट्टी को घिसकर लगाने से आँख की विलनी अच्छी हो जाती है । इसी कीड़े के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह दूसरे कीड़ों को पकड़कर अपने समान कर लेता है, जैसे, भइ गति कीट भू ग की नाई । जहाँ तहाँ मैं दखी रघुराई ।—तुलसी ( शब्द० ) ।

अजना<sup>१</sup>—सद्वा स्त्री [ सं० अञ्जना ] १ कुजर नामक वदर की पुत्री और केसरी नामक वदर की स्त्री जिसके गभ से हनुमान उत्पन्न हुए थे । हनुमान की माता । कहीं कहीं अजना को गोतम की पुत्री भी लिखा है । २ आँख की पलक के किनारे पर होनेवाली एक लाल छोटा फुसी जिसमें जलन और सूई चुभने के समान पीडा होती है । विलनी । गुहाजनी । ३. दाँरग की छिपकली । ४ उत्तर पूर्व के दिग्गज सुप्रतीक की स्त्री (को०) ।

अजना<sup>२</sup>—सद्वा पुं १. एक जाति का मोटा धान जा पहवाडी प्रदेशों में होता है । २. एक पहाड़ ।

अजना<sup>३</sup>(पु)—क्रि० सं० [ सं० अञ्जन ] दे० 'अंजना' । उ०—  
( क ) कालिंदी न्हावहि न नयन अजै न मृगमद ।—पृ० २१०, २१३४६ । ( ख ) जथा सुअजन अजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।—मानस, १११ ।

अजनागिरि—सद्वा पुं दे० 'अजनगिरि' [ को० ] ।

अजनाद्रि—सद्वा पुं [ सं० अञ्जनाद्रि ] अजन नामक पर्वत जिसका उल्लेख संस्कृत ग्रंथों में है । यह पश्चिम दिशा में माना जाता है ।

अजनाधिका—सद्वा स्त्री [ सं० अञ्जनाधिका ] एक प्रकार की छिपकली [ को० ] ।

अजनानदन—सद्वा पुं [ सं० अञ्जनानदन ] अजना के पुत्र । हनुमान ।

अजनावती—सद्वा स्त्री [ सं० अञ्जनावती ] १ उत्तरपूर्व के दिग्गज की स्त्री । २ बालाजन नामक एक वृक्ष [ को० ] ।

अजनिना—सद्वा स्त्री [ सं० अञ्जनिका ] १ एक प्रकार की छिपकली । २ छोट चूहिया । ३ दे० 'अजनावती' [ को० ] ।

अजनी—सद्वा स्त्री [ सं० अञ्जनी ] १ हनुमान की माता अजना । उ०—दूत राम राय को रपूत पूत पौन को तू, अजनी को नदन प्रताप भूरि भानु सो ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४८ । २ माया । ३ वह स्त्री जिसने चंदनादि का लेप लगाया हो । ४ एक काष्ठौषधि । कुटकी । ५ कालाजन नामक वृक्ष (को०) । ६ आँख की पलक की फुसी । विलनी ।

अजनीकुमार—सद्वा पुं [ सं० अञ्जनी + कुमार ] अजनी के पुत्र । हनुमान । उ०—विशरी सवार अजनीकुमार कीजै मोहि जैसे होत आए हनुमान के निवाजे हैं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४९ ।

अजवार—सद्वा पुं [ फा० ] मध्य एशिया की फरात नदी के किनारों पर होनेवाला एक पौधा जिसकी जड़ का काढ़ा और शर्वत हकीम लोग सर्दी और बर्फ के रोगों में एव रक्तस्राव बंद करने के लिये देते हैं । इद्राणी ।

अजर(पु)—वि० [ सं० अज्ज्वल ] । अज्ज्वल । अजला उ०—सित अजर रजनीय पुरनि गध्रव पग धारिय ।—पृ० २१०, ११३४८ ।

अजरपजर—सद्वा पुं [ अनुध्व० सं० अज्जर ] देह का वद । शरीर का जोड़ । ठठरी । पसली । हड्डी । पसली ।

मुहा०—अजर पजर ढीला होना = शरीर के जोड़ों का उखटना वा हिल जाना । देह का वद वद टूटना । शिथिल होना । लस्त होना । अजर पजर तोड़ देना = अंग भंग करके बेकाम कर देना ।

अजरपजर—क्रि० वि० अंगल बगल । पार्श्व में ।

अजरि—सद्वा स्त्री दे० 'अजलि' ।

अजल<sup>१</sup>—सद्वा पुं [ सं० अजलि ] दोनों हथेलियों को मिलाकर दनाया हुआ सपुट वा गद्दा जिसमें पानी वा और कोई वस्तु भर सकते हैं । उ०—अजल भर आटा साई का । बेटा जीवें माई का ।—(फकीरो की बोली) ।

अजल<sup>२</sup>—सद्वा स्त्री दे० 'अजली' ।

अजल(पु)—सद्वा पुं दे० 'अजल' । उ०—जब अजल मुँह सेवा समुद्र न सेवरा जागि । अब धरि काढ मच्छ जिमि पानी काढत आगि ।—जायसी (शब्द०)

अजला—सद्वा पुं दे० अजल ।

अजलि—सद्वा स्त्री दे० 'अजली' ।

अंजलिक—सद्वा पुं [ सं० अञ्जलिक ] अर्जुन के बाणों में से एक का नाम [ को० ]

अजलिकर्म—सद्वा पुं [ सं० अञ्जलिकर्म ] जुड़े हाथों से नमस्कार करने का कार्य [ को० ] ।

अजलिका—सद्वा स्त्री [ सं० अञ्जलिका ] १. एक प्रकार की छोटी चूहिया । २. लजाधुर । छुईमुई [ को० ] ।

अञ्जलिकारिका—सङ्घा स्त्री० [ सं० अञ्जलिकारिका ] १ नमस्कार करने की मृदावाली मिट्टी की छाटी मृत्ति (को०) । २ लजाधुर लता ।

अञ्जलिगत—वि० [ सं० अञ्जलि + गत ] १ अञ्जली में प्राया हुआ । हाथ में पड़ा हुआ । दोनों हथेलियों पर रखा हुआ । उ०—अञ्जलिगत मुम सुमन जिमि सम सुगध-कर दोउ । —मानस, १।३ ।

अञ्जलिपुट—सङ्घा पुं० [ सं० अञ्जलिपुट ] दोनों हथेलियों को मिलाने से बना हुआ खाली स्थान जिसमें पानी वा कोई और वस्तु भर सकते हैं । अञ्जली ।

अञ्जलिवधन—सङ्घा पुं० [ सं० अञ्जलिवधन ] माथे तक उठाई हुई अञ्जलि से प्रणमन (को०) ।

अञ्जलिवद्ध—वि० [ सं० अञ्जलिवद्ध ] हाथ जोड़े हुए ।

अञ्जली—सङ्घा स्त्री० [ सं० अञ्जली ] १ दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ सपुट । दोनों हथेलियों का मिलाने से बना हुआ खाली स्थान वा गड्ढा जिसमें पानी वा और कोई वस्तु भर सकते हैं । उ०—निज विस्तार समेटि अञ्जली आनि समानी । —रत्नाकर, भा० १, पृ० २१७ । २ उतनी वस्तु जितनी एक अञ्जलि में आए । प्रत्ये । कुटुक । दो प्रमृति । एक नाप जो बीस मागधी तोले या सोलह व्यावहारिक तोले अथवा एक पाव के बराबर होती है । दो पमर । ३ अन्न की राशि में से तौलते समय दोनों हथेलियों से दान के लिये निवाला हुआ अन्न ।

अजस्—सङ्घा पुं० [ सं० अजस् ] मलहम (को०) ।

अजस—वि० [ सं० अजस ] १. सीधा । सरल । २ निश्छल । ईमानदार (को०) ।

अजसा—वि० [ सं० अजसा ] १ क्षीयता से । तुरत । २ ठीक ठीक । दयावत् । ३ सीधे में । साक्षात् (को०) ।

अजसायन—वि० [ सं० अजसायन ] सीधी गतिवाला । ऋजु-गामी (को०) ।

अजहा—वि० [ हि० अनाज + हा ( प्रत्ये ) ] (स्त्री० अजही) अनाज का । अन्न के मेल में बना हुआ ।

अजही—सङ्घा स्त्री० [ देश० ] वह बाजार जहाँ अन्न विकता है । अनाज की मट्टी ।

अजही—वि० अनाज की । अनाज से बनी हुई ।

अजाम—सङ्घा पुं० [ फा० ] १ संपाप्ति । पूर्ति । अन्न । आखीर । उ०—अजाम की मजिल है बड़ी देखिए क्या हा । —विविदा को०, भा ४, पृ० ५७५ । २ परिणाम । फल । नतीजा ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—पर पहुँचना या पहुँचाना—पूरा करना । सम्पत्त करना । निषटाना । प्रवध करना । उ०—काम क्या अजाम देगा हमरा । जब नहीं सकते हमी अजाम दे । —चौखें, पृ० ६६ ।

अजारना—क्रि० प्र० [ सं० अर्जन ] कमाना । संचित करना ।

अजि—सङ्घा पुं० [ सं० अजि ] १ प्रेरक । भेजनेवाला । २ आदेश-दाता । ३ त्रिपुड (को०) ।

अजि—सङ्घा स्त्री० १ अग्रग । २ रग । ३ जननेन्द्रिय (को०) ।

अजिक—सङ्घा पुं० [ सं० अजिक ] सूर्य । रवि (को०) ।

अजित—वि० [ सं० अजित ] १ अजन लगाए हुए । अजनमार । अजि हुए । उ०—रज रजित अजित नयन घूटन डोलत भमि । —पृ० २।०, १।७१८ ।

अजित—वि० [ सं० अजित ] पूजित । आराधित (डि०) ।

अजिवार—सङ्घा पुं० दे० 'अजवार' ।

अजिव—वि० [ सं० अजिव ] पिच्छिल । चिकना । फिमलाहट (को०) ।

अजिष्ठ—सङ्घा पुं० [ सं० अजिष्ठ ] सूर्य (को०) ।

अजिष्णु—सङ्घा पुं० दे० 'अजिष्ठ' ।

अजिसना—क्रि० प्र० [ सं० अजिसना ] शीघ्रता करना । उ०—अजिसिय हंसिय अतर गसिय मसिय सट उद्धर धर्मिय । —पृ० २।०, ६७।३५७ ।

अजिहिपा—सङ्घा स्त्री० [ सं० अजिहिपा ] जाने की इच्छा (को०) ।

अजी—सङ्घा स्त्री० [ सं० अजी ] १ पीसने का एक यंत्र । २ आग्निप्राचीर्वाद (को०) ।

अजीर—सङ्घा पुं० [ सं० अजीर, फा० अजीर ] एक प्रकार का पेड़ तथा उसका फल ।

विशेष—यह गूलर के समान होता है और खाने में मीठा होता है । यह भारतवर्ष में बहुत जगह होता है । पर अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान और काश्मीर इसके मुख्य स्थान हैं । इसके लगाने के लिये कुछ चूना लगी हुई मिट्टी चाहिए । लकड़ी इसकी पीली होती है । इसके फलम फल्गुन में काटकर दूर दूर बहारियों में लगाए जाते हैं । बहारियाँ पानी से खूब तर रहनी चाहिए । लगने के दो ही तीन वर्ष बाद इसका पेड़ फलने लगता है और १४ या १५ वर्ष बराबर फल देता रहता है । यह वर्ष में दो बार फलता है । एक बार जेट-अमास में और फिर फाल्गुन में । माला में गूथे हुए इसके सुखाए हुए फल अफगानिस्तान आदि से हिंदुस्तान में बहुत आते हैं । सुखते समय रंग चढाने और छिलके को नरम करने के लिये या तो गधव की घनी देते हैं अथवा नमक और जोरा मिले हुए गरम पानी में फलों को डुबाते हैं । भारतवर्ष में पूना के पाम खेड-शिवापुर नामक गाँव के अजीर सबसे अच्छे होते हैं । पर अफगानिस्तान और फारस के अजीर हिंदुस्तानी अजीरो से उत्तम होते हैं । सुखाया हुआ अजीर का फल स्निग्ध, पुष्टिकर और रचक होता है । यह दो तरह का होता है, एक जो पकाने पर लाल होता है और दूसरा काला ।

अजीर—सङ्घा पुं० [ सं० अजीर ] अग्नि । उ०—ऐन अजीर एक कर मेला । —सत दरिया, पृ० ३ ।

अजु—वि० [ सं० ऋजु, प्र० अजु ] नल । स्पष्ट । उ०—पहुँपजलि अजु सुरग बन । —पृ० २।०, २।३४८ ।

अजुवार—सङ्घा पुं० दे० 'अजवार' (को०) ।

अजुमन—सङ्घा पुं० [ फा० ] सभा । नमाज । मजलिस । मढली ।

अजुल—सङ्घा पुं० दे० 'अजली' । उ०—नायक मध्य नुठाम करन त्रिभुवन तन अजुल । —पृ० २।०, २।६२ ।

अजुलि—सङ्घा स्त्री० दे० 'अजलि' । उ०—मजुन अजुलि मरि मरि पिय फों गिय जल मेलन । —नद० प्र०, पृ० २८ ।

मृदा—अजुलि करना = प्रणाम करना । उ०—दृष्ट अजुलि करिय मम आनंद संधार । —पृ० २।०, ६।३८ । अजुलि जोरना = हाथ

जाडना । उ०--अंजुली जोरि डरात डरात । कहन लगे विप्रनि  
मी बात ।--नद० अ०, पृ० ३०१ ।

अंजुली--सद्धा खी० दे० अंजुली । उ०--अंजुली जल घटत जैसे तैसे  
ही तन यह गयो ।--मूर०, १०।३=६५ ।

मुहा०--अंजुली करना=आचमन करना । उ०--हरि चरन अब  
अंजुली कीन ।--पृ० रा०, १।४३६ ।

अंजू--सद्धा पु० [ सं० अंजू ] आंजू । उ०--ममदर एक आंख के अंजू  
मे ।--दक्खिनी०, पृ० १६६ ।

अभा--सद्धा पु० [ सं० अनध्याय प्रा० अणज्झा, अणज्झाअ ] नागा ।  
तातील । छुट्टी । काम न करने का दिन । उ०--(क) मन को  
ममूनि मननवन सो रसि सखी दासिन को दूसि रही रण भुकि  
भभा सी । सोवै, सुख मोचै, सुक सारिका लचावै चोचै न  
रचिर दानि मानि रहै अभा सी ।--देव (शब्द०) । (ख)  
अभा नी दिन की भई सभा सी सकल दिसि गगन गगन रही  
गन्द छवाय है ।--भूपरा (शब्द०) । (ग) काम मे चार  
दिन का अभा हो गया (शब्द०) ।

अभू--सद्धा पु० दे० 'अजू' ।--दक्खिनी०, पृ० ७५ ।

अटमट--वि० दे० 'अट्ट' ।

अटा--सद्धा पु० [ सं० अण्ड, प्रा० अट्ट ] १ बड़ी गोली ।

विशेष--इसका प्रयोग अफीम और भग के सवध मे अधिक होता  
है । जैसे अफीम का अटा चढा दिया, अब बघा है ?

२ सूत वा रेशम का लच्छा । ३ बड़ी कौड़ी । ४ एक खेल  
जिसे अंगरेज लोग हाथीदाँत की गोलियों से मेज पर खेला  
करते हैं । विलियर्ड ।

यो०--अटागटगुड । अटाघर । अटाचित । अटावधू ।

अटागुडगुड--वि० [ हि० अटा + गुडगुड ] नशे मे चर । मजाशून्य ।  
बेहोश । बेसुध । अचेत ।

क्रि० प्र०--होना ।

अटाघर--सद्धा पु० [ हि० अटा + घर ] वह कमरा जिसमे गोली का  
खेल खेला जाय । डम खेल को अंगरेजी मे विलियर्ड कहते हैं ।

अटाचित--क्रि० वि० [ हि० अटा + चित ] पीठ के बल । सीधा ।  
पीठ जमीन पर लिए हुए । पट और आँधा का उलटा ।

क्रि० प्र०--गिरना । पडना ।--होना ।

मुहा०--अटाचित होना=(१) स्तमित होना । अवाक् होना ।

(२) पीठ के दन गिर पडना, जैसे, इस खवर को सुनते ही वह  
अटाचित हो गया (शब्द०) । (३) बेकाम होना । बरवाद  
होना । किमी काम का न रह जाना, जैसे, व्यापार मे उसे  
ऐसा घटा आया कि वह अटाचित हो गया (शब्द०) । ४ नशे  
मे बेसुध होना । बेखबर होना । अचेत होना । चूर होना ।  
उ०--वह भग पीते ही अटाचित हो गया (शब्द०) ।

अटाघार--सद्धा पु० दे० 'बटाघार' उ०--'फैशन ने तो बिल और टोटल  
के इतने गंले म रे कि अटाघार कर दिया और सिफ रिश ने  
भी बूब ही छकाया ।--भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४७६ ।

अटावधू--सद्धा पु० [ सं० अण्ड + वधू ] जुए मे फेंकनेवाली, कौड़ी  
जिमे जुआरी नच कुछ हारने पर दाँव पर रख देता है ।

अटी--सद्धा पु० [ सं० अण्ड ] [ क्रि० अट्टियाना ] १ उँगलियों के  
बीच का स्थान । अंतर । घाई । २ धोती की वह लपेट जो  
कमर पर हाँती है और जिसमे पैसा भी रखते हैं । गाँठ । मुरी ।

मुहा०--अटी करना--किमी का माल उड़ा लेना । धोखा देकर  
कोई वस्तु ले लेना । अटी चढाना=अपने मतलब पर लाना ।  
वश मे करना । अपने दाँव पर लाना । अटी पर चढाना=अपने  
दाँव मे लाना । अटी मारना=(१) जुवा खेलते समय कौड़ी  
को उँगलियों के बीच मे छिपा लेना (२) आँख बचाकर धीरे  
से दूसरे की वस्तु छिपा लेना । धोखा देकर कोई चीज उड़ा  
लेना । (३) तराजू की डाँडी को इस ढंग से पकडना कि  
तौल मे चीज कम चढ़े । कम तौलना । डाँडी मारना । अटी  
रखना=छिपा रखना । दबा रखना । प्रगट न होने देना ।

३ एक दूसरे पर चढी हुई एक ही हाथ की दो उँगलियाँ ।  
तर्जनी के ऊपर मध्यमा की चढाकर बनाई हुई मूद्रा । डंडिया ।  
डंडीइया ।

विशेष--इसका चलन लडको मे है । जब कोई लडका किसी  
अपवित्र वस्तु वा अत्यज से छू जाता है तब उसके साथ  
के और लडके उँगली पर उँगली चढा लेते हैं जिममे यदि  
वह उन्हे छ ले तो छूत न लगे और कहते हैं कि दाँ दाल की  
अटी काला वाला छू ले ।

क्रि० प्र०--चढाना ।--वाँधना । लगाना ।

४ लच्छा । अट्टी । सूत वा रेशम की लच्छी ।

क्रि० प्र०--करना=अट्टेरना । लट्टियाना । लपेटना । लच्छ वाँधना ।

५ अट्टेरन । वह लकड़ी की वस्तु जिसपर सूत लपेटते हैं ।

६ विरंघ । बिनाह । लडाई । शरारत । ७ बान मे पहुँचने  
की छटी बली जिसे घोड़ी, कछी, बँहारा आदि नीच  
जाति के मर्द पहुँचते हैं । मुरकी । छटी । दाली । ८ जेव ।  
खलीता (की०) ।

अटीवार्ज--वि० [ हि० अटी + फा० वाज ] धूर्त । चालाक [की०] ।

अठ--सद्धा खी० [ सं० अण्ड = गमन ] गति । चाल । उ०--धवै अठ  
भारी ।--पृ० रा०, ३१। ११२ ।

अठी--सद्धा खी० [ सं० अठि, प्र० अट्टि, अठि ] १ चीर्या । गुल्ली ।  
बीज । २ गाँठ । गिरह । ३ नबोढा के निबलते हुए स्तन ।  
अँठली । ४ गिलटी । कड़ापन ।

अठुल(ठु)--सद्धा खी० [ हि० अठी ] खुर । सुम । उ०--है अठुल दल  
पग वीर अवरत्त हलाइस ।--पृ० रा०, ६१।२१४५ ।

अड--सद्धा पु० [ सं० अण्ड ] १ अडा । उ०--अललपच्छ वा अड  
ज्यो उलटि चले अस्मान ।--रत्न०, पृ० ६१। २ 'अडकोश' ।  
फोता । २ ब्रह्माड । लोकपिड । लोकमडल । विश्व । उ०--  
जिअन मरन फल दसरथ पावा । अड अनेक अमल जस  
छाव ।--मनस, २।१५६ । ४ वीर्य । शक्र । ५ कर्दुरी वा  
नाफा । मृगनाभि । नाफा । ६ गच आवरण । दे० कोश' ।  
७. क मदव । उ०--कृति प्रचड यह अड महाभट ज हि सर्व  
जग जानत । सो मवहीन दीन ह्वै वपुरो कोपि धनूप शर  
तानत ।--सूर (शब्द०) । ८ मकानो की छजन के ऊपर के  
गोल बल्लण जो शं भा के तिये बनाए जाते हैं । उ०--(क)  
अड टूक जाके भस्मति सो ऐसा राजा त्रिभुवनपति ।--  
दक्खिनी, पृ० ३० । (ख) बटेवर पग वमद निसार । तुटै  
वर देवल अड अधार ।--पृ० रा०, २४।२३६ । १० शिव का  
एक नाम (नी०) ।

अडक--सद्धा पु० [ सं० अण्डक ] १. अडकोश । २. छोटा अडा [की०]

अडककडी—सच्चा स्त्री [ सं० अण्डककटी ] दे० 'अडककटी' [को०] ।  
 अडकटाह—पद्म पुं [ सं० अण्डकटाह ] ब्रह्माड । विश्व । लोक-  
 मंडल । उ०—एहि विधि देखत फिरजे मैं अडकटाह अनेक ।—  
 मानस, ७।८० ।  
 अडककटी—सच्चा स्त्री [ सं० अण्डककटी ] पपीता । अड खरवूज [को०] ।  
 अडकोटरपुष्पा—सच्चा स्त्री [ सं० अण्डकोटरपुष्पा ] दे० 'अडकोटर-  
 पुष्पा' [को०] ।  
 अडकोटरपुष्पी—सच्चा स्त्री [ सं० अण्डकोटरपुष्पी ] नील अपरा-  
 जिता । नीलवृक्षा । नीलपुष्पी । अजाती [को०] ।  
 अडकोश—सच्चा पुं [ सं० अण्डकोश ] १ लिगेंद्रिय के नीचे चमड़े  
 की वह दोहरी थैली जिसमें वीर्यवाहिनी नसें और दोनो गुठ-  
 लियां रहती हैं । दूध पीकर पलनेवाले उन समस्त जीवों को  
 यह कोश वा थैली होती है जिनके दोनो अड वा गुठलियां पेड़  
 से बाहर होती हैं । फोता । खुशिया । अंडि । वंजा । वृषण ।  
 २ ब्रह्माड । लोकमंडल । संपूर्ण विश्व । उ०—जा बल सीस  
 धरत सहमानन । अडकोश समेत गिरि कानन ।—तुलसी  
 ( शब्द० ) । ३ सीमा । हृद । ४ फल का छिलका । फल के  
 ऊपर का वोकरा । ५ फल [को०] ।  
 अडकोष—सच्चा पुं [ सं० अण्डकोष ] दे० 'अडकोश' [को०] ।  
 अडकोपक—सच्चा पुं [ सं० अण्डकोपक ] दे० 'अडकोश-१' [को०] ।  
 अडकोस—सच्चा पुं दे० 'अडकोश-२' । उ०—अडकोस प्रति प्रति  
 निज रूपा । देखेउ जिनस अनेक अनूपा ।—मानस, ७।८१ ।  
 अडज—सच्चा पुं [ सं० अण्डज ] अडे से उत्पन्न होनेवाले जीव, जैसे  
 सर्प, पक्षी, मछली, बछ्छा इत्यादि । ये चार प्रकार के जीवों  
 में से हैं ।  
 अडज—वि० [ सं० अण्डज ] अडे से उत्पन्न [को०] ।  
 अडजराय—सच्चा पुं [ सं० अण्डज + प्रा० राय ] पक्षियों के राजा ।  
 गरुड । उ०—उदर भक्ति सुनु अडजराया । देखेउ बहु ब्रह्माड  
 निकाया ।—मानस, ७।८० ।  
 अडजा—सच्चा स्त्री [ सं० अण्डजा ] वस्तूरी ।  
 अडजाते—सच्चा पुं [ सं० अण्डजात ] अडे से उत्पन्न जीव, जैसे सर्प,  
 मछली, छिपकली, पक्षी इत्यादि [को०] ।  
 अडजाते—वि० दे० 'अण्डज' [को०] ।  
 अडजेश्वर—सच्चा पुं [ सं० अण्डजेश्वर ] पक्षिराज । गरुड [को०] ।  
 अडदल—सच्चा पुं [ सं० अण्डदल ] अडे का छिलका या खोल [को०] ।  
 अडधर—सच्चा पुं [ सं० अण्डधर ] शिव [को०] ।  
 अडवड—सच्चा पुं [ सं० अण्डवडिकाण्ड, प्रा० अड विअड ] १.  
 असवड प्रलाप । बेसिर पैर की बात । ऊटपटांग । अनाप शनाप ।  
 अगडवगड । व्यर्थ की बात । २ गाली । बुरी बात । अपशब्द ।  
 क्रि० प्र०—कहना ।—वकना ।—बोलना ।  
 अडवड—वि० असवड । बेसिर पैर का । इधर उधर का । अस्त-  
 व्यस्त । व्यर्थ का । प्रयोजन रहित । उ०—'जब उसने उन प्रश्नों  
 के उत्तर अडवड दिए तो उसपर' ।—भारतदु प्र०, भा० १,  
 पृ० १६७ ।  
 अडर सेक्रेटरी—सच्चा पुं [ अ० ] वह मंत्री जो मुख्य मंत्री के अधीन  
 हो । सहाकारी सचिव । सहायक मंत्री । जैसे, अडर सेक्रेटरी  
 फार इंडिया ( सहाकारी भारत सचिव ) ।

अडवर्धन—सच्चा पुं [ सं० अण्डवर्धन ] दे० 'अडवृद्धि' [को०] ।  
 अडवृद्धि—सच्चा पुं [ सं० अण्डवृद्धि ] एक रोग जिसमें अडकोश वा  
 फोता फूलकर बहुत बढ़ जाता है । फोते का बढ़ना ।  
 विशेष—शरीर की दिगड़ी हुई वायु या जल नीचे की ओर चल-  
 कर पेड़ के एक ओर की सधियों से होता हुआ अडकोश में जा  
 पहुँचता है, और उसको बढ़ाता है । वैद्यक में इसके वातज,  
 पित्तज आदि कई भेद माने गए हैं ।  
 अडसा—सच्चा पुं [ सं० अन्तस् प्रा० अडस् = बीच में, दाब में ]  
 कठिनता । कठिनाई । मुश्किल । सकट । असुविधा ।  
 अडसू—वि० [ सं० अण्डसू ] अडे से पैदा होनेवाला । अडज [को०] ।  
 अडा—सच्चा पुं [ सं० अण्डक, प्रा० अडअ ] [ वि० अडल ] १ बच्चों  
 को दूध न पिलानेवाले जंतुओं के गर्भाशय से उत्पन्न गोल पिंड  
 जिसमें से पीछे से उस जीव के अनुरूप बच्चा बनकर निकलता  
 है । वह गोल वस्तु जिसमें से पक्षी, जलचर और सरीसृप  
 आदि अडज जीवों के बच्चे फूटकर निकलते हैं । वंजा ।  
 उ०—अडा पाले काछुई दिनु थन राखे पोका ।—कवीर सा०  
 सं०, भा० १, पृ० ८१ ।  
 मुहा०—अडा उडाना=(क) बहुत भूट बोलना । बे पर की उडाना ।  
 (ख) असंभव को संभव कर दिखाना । अडा खटकना = अडा  
 फूटने के करीब होना । जब अडे से बच्चा निकलने में एक आध  
 दिन रह जाता है तो उसके भीतर के बच्चे का अडे के छिलके  
 पर चोच मारना । अडा ढीला होना=(क) नस ढीली होना ।  
 थकावट आना । शिथिल होना । जैसे, यह काम सहज नहीं है,  
 अडा ढीला हो जायगा (शब्द०) । (ख) खुषख होना । निर्द्वय  
 होना । दिवालिया होना । जैसे, खर्च करते करते अडे ढीले हो  
 गए (शब्द०) । अडा सरकना=(क) दे० 'अडा ढीला  
 होना' । (ख) हाथ पैर हिलाना । अग डोलाना । उठना ।  
 जैसे, बैठे बैठे वताते हो, अडा नहीं सरकता (शब्द०) । अडा  
 सरकाना = हाथ पैर हिलाना । अग डोलाना । उठना । उठ-  
 कर जाना । जैसे, अब अडा सरकाओ तब काम चलेगा  
 (शब्द०) । प्राय मोटे या बड़े अडकोशवाले आदमी को लक्ष्य  
 कर यह मुहावरा बना है । अडे लडाना = जुवारियों का एक  
 खेल जिसमें दो आदमी अडे के सिरे लडाते हैं । जिसका अडा  
 फूट जाता है वह हारा समझा जाता है । अडे का मलूक = सीधा  
 सादा आदमी । अनुभवहीन व्यक्ति । अडे का शाहजादा = वह  
 व्यक्ति जो कभी घर से बाहर न निकला हो । वह जिसे कुछ  
 अनुभव न हो । अडे सेना = (क) पक्षियों का अपने अडे पर  
 गर्मी पहुँचाने के लिये बैठना । (ख) घर में बैठ रहना । बाहर  
 न निकलना । जैसे, क्या घर में पड़े पड़े अडे सेते हो (शब्द०) ।  
 अडा<sup>२</sup>—सच्चा पुं [ सं० अण्डक ] शरीर । देह । पिंड ।  
 उ०—आसन वासन मानुष अडा । भए चौखंड जो ऐस  
 पखडा ।—जायसी (शब्द०) ।  
 अडाकैर्पण—सच्चा पुं [ सं० अण्डाकर्षण ] नपुंसक बनाना [को०] ।  
 अडाकार—वि० [ सं० अण्डाकार ] अडे के आकार का । वंजावी । उस  
 परिधि के आकार का जो अडे की लवाई के चारों ओर रेखा  
 खींचने से बने । लवाई लिए हुए गोल ।

अडाकृति<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० अण्डाकृति ] अंडे का आकार। अंडे की शकल।

अडाकृति<sup>२</sup>—वि० अंडे के आकार का। अडाकार। अंड इव।

अडालु—संज्ञा पुं० [ सं० अण्डालु ] अंडे से भरी हुई मछली [ को० ]।

अडिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० अण्डिका ] चार यव के परिमाण की एक तौल [ को० ]।

अडिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अण्डिनी ] स्त्रियों का एक योनिरोग जिसमें कुछ मांस बढ़कर बाहर निकल आता है। इसे योनिकद रोग भी कहते हैं।

अडी<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० एण्ड ] १. रेंडी। रेंड के फल का बीज। २. रेंड या एण्ड का पेड़।

अडी<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० अण्डक या अण्डिका ] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो रेशम और छाल आदि से बनता है।

अंडीर<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अण्डोर ] १ वयस्क पुरुष। युवक। जवान व्यक्ति। २ दृढ़ व्यक्ति [ को० ]।

अंडीर<sup>२</sup>—वि० बली। समर्थ [ को० ]।

अंडल—वि० स्त्री० दे० 'अंडेल'।

अंडेल—वि० स्त्री० [ हिं० अडा + ऐल (प्रत्य०) ] जिसके पेट में अंडे हो। अंडेवाली।

अत—अव्य० [ सं० अन्तः ] 'अतर्' के अर्थ में समस्त पदों में कुछ स्थितियों में प्रयुक्त 'अतर्' शब्द का एक रूप जो पहले आता है, जैसे अत शल्य, अत सार आदि आदि [ को० ]।

अत कक्ष—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त कक्ष ] घर के भीतर का कमरा जहाँ प्रसाधन, शयन, आदि की व्यवस्था हो। उ०—'देवी अत-कक्ष में अभ्यागत के अकस्मात् प्रवेश से स्तब्ध हो गई'—'दिव्या', पृ० २१४।

अत करण—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त करण ] १ वह भीतरी इन्द्रिय जिसके विषय सकल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण आदि हैं तथा जो सुख दुःखादि का अनुभव करती है।

विशेष—कार्यभेद से इसके चार विभाग हैं—(क) मन, जिससे सकल्प विकल्प होता है। (ख) बुद्धि जिसका कार्य है विवेक वा निश्चय करना। (ग) चित्त, जिससे बातों का स्मरण होता है। (घ) अहंकार, जिससे सृष्टि के पदार्थों से अपना सबंध देख पड़ता है।

२ हृदय। मन। चित्त। बुद्धि। उ०—अत करण में तीव्र अभिमान के साथ विराग है।—स्कंद०, पृ० ५६। ३ नैतिक बुद्धि। विवेक, जैसे—हमारा अत करण इस बात को कबूल नहीं करता (शब्द०)।

अत करन<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'अत करण'। उ०—'जो आजहूँ तेरो अत-करण सुद्ध भयो नहीं है।—दो सौ वावन०, भा० २, पृ० १८।

अत कलह—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त-कलह ] दे० 'गृहकलह'।

अंत कुटिल<sup>१</sup>—वि० [ सं० अन्त कुटिल ] भीतर का कपटी। खोटा। धोखेबाज। छली।

अंत कुटिल<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० शख [ को० ]।

अंत कोण—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त कोण ] भीतरी कोना। भीतर की ओर का कोण।

विशेष—जब एक रेखा दो रेखाओं को स्पर्श करती या काटती है तब उन रेखाओं के मध्य में बने हुए कोण को अंत-कोण कहते हैं।

अंत कृमि<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त-कृमि ] शरीरस्थ कीटाणुओं के उत्पन्न होनेवाला एक रोग [ को० ]।

अंत कृति<sup>२</sup>—वि० जिसमें कीड़े हो (फलादि) किनड़ा [ को० ]।

अंत कोटरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्त कोटरपुष्पी ] दे० 'अण्डकोटर-पुष्पी' [ को० ]।

अंत कोप—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त कोप ] प्रकट न होनेवाला क्रोध। भीतरी गुस्सा [ को० ]।

अंतकोष—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त कोष ] कोशागार वा भंडार का भीतरी हिस्सा (को०)।

अंत क्रिया—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्त क्रिया ] १ भीतरी व्यापार। अप्र-गट कर्म। २ अंत करण को शुद्ध करनेवाला प्रातरिक कर्म।

अंत पट—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त-पट ] १. वह आवरण पट जो दो व्यक्तियों (वर वधू या गुरु शिष्य) को समुचित मूहूर्त के पूर्व समुक्त करने के पहले डाला जाता है। वह परदा जो विवाह के प्रवसर पर वर और वधू के बीच उनकी मिलाने के पहले डाला जाता है। अंतरपट। २ अंतर्वस्त्र। अंतरीटा (को०)।

अंत पटल—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त पटल ] १ आँखों के भीतर का अव्यक्त जालीदार परदा। २ भीतरी परदा [ को० ]।

अंत-पटी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्त पटी ] १ किसी चित्रपट द्वारा नदी, पर्वत, वन, नगर आदि का दिखलाया हुआ दृश्य। २ नाटक का परदा।

अंत पद—अव्य० [ सं० अन्त पदम् ] दिवारी शब्द के मध्य में [ को० ]।

अंत पदवी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्त पदवी ] सुपुण्या नाडी के मध्य की राह [ को० ]।

अंत पदे—अव्य० दे० 'अंत-पदम्' [ को० ]।

अंत परिधान—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त परिधान ] अंतर्वस्त्र। अंत-रोटा [ को० ]।

अंत परिधि—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्त परिधि ] १. किसी परिधि वा घेरे के भीतर का स्थान। २. यज्ञ की अग्नि को घेरने के लिये जो तीन हरी लकड़ियाँ रखी जाती हैं, उनके भीतर का स्थान।

अंत पवित्रा<sup>१</sup>—वि० स्त्री० [ सं० अन्त पवित्रा ] शुद्ध अंत-करणवाली। शुद्ध चित्त की।

अंत पवित्रा<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० सोमरस जब वह छानने के लिये छानने में रखा हो।

अंत पशु—सं० पुं० [ सं० अन्त पशु ] पशुओं की गोशाला या ध्यान पर रहने का सायकाल से प्रातः काल तक का समय [ को० ]।

अंत पात—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त पात ] १ यज्ञशाला का मध्यवर्ती स्तम्भ या खम्भा (को०)। २ व्याकरण में किसी अक्षर का मध्य में आना [ को० ]।

अंत पातित—वि० [ सं० अन्त पातित ] दे० 'अन्तःपाती' [ को० ]।

अंत पाती—वि० [ सं० अन्त पातिन् ] १ मध्यवर्ती। बीच में। २. समिलित [ को० ]।

अंत पाल—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त पाल ] १ अन्त पुर या रनिवास का रक्षक। २ कचुकी [ को० ]।

अंत पुर—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त पुर ] घर के मध्य या भीतर का भाग जिसमें गनियाँ या स्त्रियाँ रहती हैं। जनानखाना। जनाना या भीतरी महल। रनिवास। हरम। उ०—'दुर्ग का तो नहीं, अंत-पुर का भार तुम्हारे ऊपर है'।—रक्त०, पृ० ५६।



अतः पुरचर—संज्ञा पुं० [ सं० अंतःपुरचर ] अंतःपुर में आने जाने के अधिकारी, कचुकी आदि [को०] ।

अतः पुरचारिणी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तरचारिणी ] [ संज्ञा पुं० अन्तरपुरचारिन् ] अतः पुर या हरम में निवास करनेवाली स्त्री । उ०—‘एक समय कुलवध की संज्ञा थी अतः पुरचारिणी’ ।—टंगोर सा०, पृ० ३६ ।

अतः पुरजन—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःपुरजन ] अतः पुर में रहनेवाली स्त्रियाँ आदि [को०] ।

अतः पुरप्रचार—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःपुरप्रचार ] औरतों की गप्प-बाजी [को०] ।

अतः पुररक्षक—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःपुररक्षक ] दे० ‘अतः पाल’ [को०] ।

अतः पुरवर्ती—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःपुरवर्तिन् ] अतः पाल [को०] ।

अतः पुरसहाय—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःपुरसहाय ] अतः पुर में कार्य करनेवाले खेजा नपुंसक, माणवक, विदूषक आदि [को०] ।

अतः पुराध्यक्ष—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःपुराध्यक्ष ] अतः पुर का रक्षक । रनिवास का अध्यक्ष [को०] ।

अतः पुरिक—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःपुरिक ] अतः पुर का रक्षक । कचुकी [को०] ।

अतः पुरिका—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःपुरिका ] अतः पुर में रहनेवाली नारी [को०] ।

अतः पुष्प—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःपुष्प ] वह रज जो १२ वर्ष की रजसाव की निश्चित अवधि के बीच जाने पर भी प्रगट नहीं होता [को०] ।

अतः पूय—वि० [ सं० अन्तःपूय ] पीव या मवाद से भरा हुआ । जिसके भीतर मवाद हो [को०] ।

अतः प्रकृति—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तःप्रकृति ] १ आंतरिक प्रकृति । भीतरी या मन का स्वभाव । अतःवृत्ति । मूल स्वभाव । उ०—उसी प्रकार अन्तःप्रकृति में दया, दाक्षिण्य, श्रद्धा, भक्ति आदि वृत्तियों की स्तिग्ध, शीतल आभा में सौंदर्य लहराता हुआ पाते हैं ।—रस०, पृ० ३२ । २. आत्मा । ३. राज्याग । राजा के समीपवर्ती अमात्य, सुहृद् आदि । ४. राजधानी की प्रजा [को०] ।

अतः प्रज्ञ—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःप्रज्ञ ] जिसकी आंतरिक अथवा आत्म-विषयिणी प्रज्ञा प्रबुद्ध हो । आत्मज्ञ नी । तत्त्वदर्शी ।

अतः प्रतिष्ठित—वि० [ सं० अन्तःप्रतिष्ठित ] हृदय में बसा हुआ [को०] ।

अतः प्रवाह—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःप्रवाह ] वह धारा या प्रवाह जो भीतर ही भीतर बहना हो [को०] ।

अतः प्रविष्ट—वि० [ सं० अन्तःप्रविष्ट ] १. भीतर घुसा हुआ । २. हृदगत । मनोगत [को०] ।

अतः प्रातीय—वि० [ सं० अन्तःप्रातीय ] किसी भी देश के दो या उससे अधिक विभागों या प्रदेशों में सबध रखनेवाला अथवा उनसे अवस्थित ।

अतः प्राचीर—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःप्राचीर ] प्राचीर के भीतर की दीवाल । भीतरी दीवार [को०] ।

अतः प्रादेशिक—वि० [ सं० अन्तःप्रादेशिक ] दे० ‘अतः प्रातीय’ ।

अतः प्रेरणा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तःप्रेरणा ] भीतरी या स्वाभाविक प्रेरणा ।

अतः राष्ट्रीय—वि० [ सं० अन्तः + राष्ट्रीय ] जिसका दो या अधिक राष्ट्रों से सबध हो । भिन्न भिन्न राष्ट्रों से सबधित ।

अतः शर—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःशर ] १ वनभूमि का भीतरी भाग जहाँ शर ( बेट ) उगे हो । २. एक रोग [को०] ।

अतः शर—वि० दे० अतःशर [को०] ।

अतः शरीर—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःशरीर ] वेदात और योग के अनुसार स्थूल शरीर के भीतर का सूक्ष्म शरीर । लिङ्गशरीर ।

अतः शल्य—वि० [ सं० अन्तःशल्य ] भीतर चुभे काँटे की तरह सालनेवाला । गाँसी की तरह मन में चुभनेवाला । मर्मभेदी ।

अतः शल्य—संज्ञा पुं० शत्रु के वश में पड़ी हुई सेना ।

अतः शुद्ध—वि० पुं० [ सं० अन्तःशुद्ध ] [ स्त्री० अन्तःशुद्धा ] जिसका अतः करण, मन या चित्त शुद्ध हो ।

अतः शुद्धि—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तःशुद्धि ] अतःकरण की पवित्रता । चित्त की स्वच्छदता । दिल की सफाई । चित्तशुद्धि ।

अतः सज्ञ—वि० पुं० [ सं० अन्तःसज्ञ ] जो जीव अपने सुख दुःख का अनुभव करते हुए भी उन्हें स्पष्ट प्रगट न कर सके, जैसे वृक्ष, तृण आदि ।

अतः सत्त्व—वि० [ सं० अन्तःसत्त्व ] जिसके भीतर शक्ति या गुहता हो । अतः सार [को०] ।

अतः सत्त्वा—वि० स्त्री० [ सं० अन्तःसत्त्वा ] गर्भवती । गर्भिणी ।

अतः सत्त्वा—संज्ञा स्त्री० भिलावाँ । भल्लातक ।

अतः सलिला—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तःसलिला ] दे० ‘अतःसलिला’ । उ०—क्या हो सने मरु अचल में अतःसलिला की धारा सी । कामायनी, पृ० ६७ ।

अतः साक्षी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तः + साक्षिन् ] भीतरी प्रमाणा । आंतरिक गवाही । उ०—सूत्रों की अतःसाक्षी इसी पक्ष में है ।—पाणिनि०, पृ० ४ ।

अतः सार—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःसार ] भीतरी तत्व । गुहता । भीतरी सार । उ०—‘ऐसे मामलों का अतःसार हिंदुस्तानी ही लोग जानते हैं’ ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० १, पृ० ३६२ ।

अतः सार—वि० जिसके भीतर कुछ तत्व हो । जो भीतर से पोला न हो । जः सारयुक्त हो । जिसके भीतर कुछ प्रयोजनीय या महत्व की वस्तु हो ।

अतः सारवान—वि० पुं० [ सं० अन्तःसारवान् ] १ जिसके भीतर कुछ तत्व या सार हो । जो पोला न हो । जिसके भीतर प्रयोजनीय वस्तु हो । २. तत्वपूर्ण । सारगर्भित । प्रयोजनीय । काम का ।

अतः सुख—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तःसुख ] बाह्य सुख से रहित आत्मानु-संधान रूपी सुख । आंतरिक सुख [को०] ।

अतः सुख—वि० जिसे आंतरिक सुख प्राप्त हो [को०] ।

अतः सौंदर्य—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तः + सौन्दर्य ] भीतरी सौंदर्य । हृदय की अच्छाई । उ०—‘जहाँ कोई सौंदर्य नहीं वहाँ अतःसौंदर्य देखा जाता है’ ।—जय० प्र०, पृ० ३६ ।

अतः स्थ—संज्ञा पुं०, वि० [ सं० अन्तःस्थ ] दे० ‘अतःस्थ’ [को०] ।

अतः स्थित—वि० [ सं० अन्तःस्थित ] मध्य में स्थित या बैठा हुआ । भीतर बैठा हुआ [को०] ।

अतः स्वर—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तः + स्वर ] आंतरिक ध्वनि । भीतरी आवाज । हृदय का स्वर । दिल की आवाज । उ०—‘गूँजते से तत्त अंतःस्वर तुम्हारे तरल कूजन में’ ।—हरी आस०, पृ० ३२ ।



अतस्वेद—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तस्वेद ] वह जीव जिसके भीतर स्वेद या मदजल हो। मदसावी हाथी।

अत<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त ] [वि० अन्तिम, अन्त्य] १ वह स्थान जहाँ से किसी वस्तु का अन्त हो। समाप्ति। आखीर। अवसान। इति। उ०—वन कर अन्त कतहुँ नहिँ पावहिँ।—तुलसी (शब्द०)। २ वह समय जहाँ से किसी वस्तु की समाप्ति हो। उ०—दिन के अन्त फिरी दोउ अनी।—तुलसी (शब्द०)। विशेष—इस शब्द में 'मे' और 'को' विभक्ति लगने से 'आखिर-कार', 'निदान' अर्थ होता है।  
क्रि० प्र०—करना।—होना।

३ शेष भाग। अन्तिम भाग। पिछला अंश। उ०—'२जनी सु अन्त महुरत्त वध'।—पृ० रा०, ६६। १६६२।

मुहा०—अन्त वनना=अन्तिम भाग का अन्त होना। अन्त विगडना=अन्तिम वा पिछले भाग का बुरा होना।

४ पार। छोर। सीमा। हृद। अवधि। पराकाष्ठा। उ०—'अस अन्तराज सधन वन, वरनि न पारो अन्त'।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना=हृद करना। उ०—तुमने तो हँसी का अन्त कर दिया (शब्द०)।—पाना।—होना।

५ अन्तर्बाल। मरण। मृत्यु। उ०—(क) 'जान्यो सु अन्त प्रथि राज अप्प'। विन्नो जगति दुग्गा सु जप्प'।—पृ० रा०, ६७। ४५७। (ख) 'अन्त राम कहि आवत नाही'।—तुलसी (शब्द०)।

६ नाश। विनाश। उ०—'वहै पदमाकर निकूट ही को ढाहि डारो डारत करेई जातुधानन को अन्त हौ'।—पदमाकर (शब्द०)।  
क्रि० प्र०—करना।—होना।

७ परिराम। फल। नतीजा। उ०—(क) अन्त भले का भला।—बहावत (शब्द०)। (ख) 'बुरे वाम का अन्त वरा हाता है' (शब्द०)। ८ प्रलय (डि०) ९ सामीप्य। निकटता। (को०) १० प्रतिवेश। पड़ोस (को०)। ११ निवटारा। निवटाव (को०)। १२ किसी समस्या का समाधान या निराकरण (को०)। १३ निश्चय (को०)। १४ समास का अन्तिम शब्द (को०)। १५ शब्द का अन्तिम अक्षर (को०)। १६ प्रकृति। अवस्था (को०)। १७ स्वभाव (को०)। १८ पुराण योग या राशि (को०)। १९ वह सख्या जिसे लिखने में १२ अक्षर लिखने पड़ें। एक खंख या सौ अक्षर की सख्या।—भा० प्रा० लि०, पृ० १२। २० भीतरी भग (को०)।

अन्त<sup>२</sup>—वि० १ समीप। निकट। २ बाहर। दूर। ३ अन्तिम (को०)। ४ मुदर। प्यारा (को०)। ५ सबसे छोटा (को०)। ६ निम्न। अष्ट (को०)।

अन्त<sup>३</sup>—क्रि० वि० अन्त में। आन्तरिकार। निदान। उ०—(क) उधरे अन्त न होहि निवाह।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कोटि जतन कोऊ करो परे न प्रकृतिहिँ वीच। नल बल जल ऊँचो चढ़े अन्त नीच को नीच।—विहारी (शब्द०)।

अन्त<sup>४</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तस् ] १. अन्त करण। हृदय। जी। मन। जैसे 'तुम अपने अन्त की बात कहो', 'मैं तुम्हें अन्त से चाहता हूँ' (शब्द०)। २. भेद। रहस्य। छिपा हुआ भाव। मन की बात। उ०—'काहू को न देती इन बातन को अन्त लै इकत कत मानि कै अन्त सुख ठानती'।—भिखारी० प्र०, भा० १, पृ० १५६।

मुहा०—अन्त पाना=भेद पाना। पता पाना। अन्त लेना=भेद लेना। मन का भाव जानना। मन छूना। उ०—'हे द्विज मैं हौं धर्म लेन आयो तव अन्त'।—विश्व भ० (शब्द०)।

अन्त<sup>५</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त, प्र० अन्त ] अन्त, अन्तही। उ०—(क) जिमि जिमि अन्त खलत लप्प दल तिन गनि तिम तिम।—पृ० रा०, (६१। २२७३। (ख) भर शोन घारा परे पेट ते अन्त।—सुजान (शब्द०)।

अन्त<sup>६</sup>—क्रि० वि० [ सं० अन्त्यत्त, प्रा० अण्यत्त, अन्त, हि० अन्त-अन्त ] और जगह। और ठौर। दूसरी जगह। और वही। दूर। अलग। जुदा। उ०—(क) कुज कुज मे श्रीडा वरि वरि गोपिन को सुख देहो। गोप सखन संग खेलत डोलो ब्रज तजि अन्त न जेहो।—सूर (शब्द०)। (ख) एक ठाँव यहि धिर न रहाही। रस लै खेलि अन्त कहूँ जाही।—जायसी (शब्द०)। (ग) धनि रहोम गति भीन की जल बिछुरत जिय जाय। जियत कज तजि अन्त वसि वहा भीर का भाय।—रहीम (शब्द०)।

अन्त<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तक ] १ मृत्यु जो प्राणियों के जीवन का अन्त करती है मृत। २ यमराज। काल। उ०—गिरा रहित वृक असिन अजा लो अन्तक आनि गह्यो।—सूर०, १। २०१। ३ सन्निपात ज्वर का एक भेद जिसमें रोगी को खाँसी, दमा और हृचकी होती है और वह किसी वस्तु को नहीं पहचानता। उ०—'व्याकुल सखा गोप भए व्याकुल। अन्तक दसा भयो भय आकुल'।—सूर०, १। ३११। ४ ईश्वर जो प्रलय में सबका संहार करता है। ५ शिव। परमेश्वर। ६ सीमा। हद्द (को०)।

अन्तक<sup>१</sup>—वि० अन्त करनेवाला। नाश करनेवाला।

अन्तकर—वि० [ सं० अन्तकर ] अन्त या नाश करनेवाला। संहार करनेवाला।

अन्तकरण—वि० [ सं० अन्तकरण ] दे० 'अन्तकर' (को०)।

अन्तकर्ता—वि० [ सं० अन्तकर्ता ] दे० 'अन्तकर'।

अन्तकर्म—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तकर्म ] मरण। मृत्यु। (को०)।

अन्तकारी—वि० [ सं० अन्तकारिन् ] क्री० [ अन्तकारिणी ] अन्त या नाश करनेवाला। विनाश करनेवाला। संहार करनेवाला। मार डालनेवाला। उ०—'भवत भय हरन असुरज्जकारी'।—सूर०, १। ४१६४।

अन्तकाल—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तकाल ] १ अन्तिम समय। मरने का समय। आखिरी वक्त। उ०—'घर घर मत्त देत फिरत है महिमा के अभिमाना। गुरू सहित सीप सभ बूढ़े अन्तकाल पछिताना'।—कवीर बी०, पृ० ३०।

अन्तकृत<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तकृत ] यमराज। धर्मराज। काल। उ०—'भूमिजा दुख सजात रोषातकृत (रोष + अन्तकृत) यातनो जनु-कृत यातुधानी'।—तुलसी (शब्द०)।

अन्तकृत<sup>२</sup>—वि० अन्त या विनाश करनेवाला। अन्तकर।

अन्तकक—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तक, प्रा० अन्तक ] यमराज। काल। उ०—'प्रथिराज सब देण्यो सु आव'। अन्तकक रूप सब गुन सहाव।—पृ० रा०, ६७। ४६०।

अन्तक्रिया—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तक्रिया ] अन्तर्देष्टि कर्म। क्रिया कर्म। मरने के पीछे मृतक की आत्मा की भलाई या सद्गति के लिये किए जानेवाले दाह और पिण्डदान आदि कर्म। हिंदुओं के पोडश सस्कारों में अन्तिम।

अतग—वि० [ सं० अन्तग ] १ जानकारी में पूरा। पारगत। पारगामी निपुण। अतगामी। २ मृत। मरा हुआ (को०)।  
 अतगत—वि० [ सं० अन्तगत ] १ सीमा पर गया हुआ। २ समाप्ति को पहुँचा हुआ (को०)।  
 अतगति<sup>१</sup>—सङ्घा को० [ सं० अन्तगति ] अंतिम दशा। मृत्यु। मरण। मौत।  
 अतगति<sup>२</sup>—वि० अत को प्राप्त होनेवाला। नाश होनेवाला (को०)।  
 अतगमन—सङ्घा पुं० [ सं० अन्तगमन ] १ अत तक पहुँचने या पूर्ण करने का कार्य। २ जीवन के अत तक जाने की स्थिति। मौत। मृत्यु (को०)।  
 अतगामी—वि० [ सं० अन्तगामिन् ] [ स्त्री० अन्तगामिनी ] १ दे० 'अतग'। २ मरणशील (को०)।  
 अतगुरु—सङ्घा पुं० [ सं० अन्तगुरु ] वह शब्द जिसके अत में दो मात्राएँ या गुरु हों। उ०—गज प्रभरन प्रहरन असनि चकल अतगुरु नाम।—भिवारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६६।  
 अतघाई—वि० [ सं० अन्त + घाती, प्रा० अत + घाइ ] अत में धोखा देनेवाला। विश्वासघाती। दगाबाज। उ०—साँझ ही सम तेँ दूर वैठी परदानि देई सक मोहि एकै या कलानिधि वसाई की। कत की कहानी सुनि श्रवन सोहानी रैन रचक बिहानी या बसत अतघाई की।—कोई ववि (शब्द०)।  
 अतघाती—वि० [ सं० अत + घातिन् ] धोखा देनेवाला। वचक। दगाबाज।  
 अतचर—वि० [ सं० अन्तचर ] १ सीमा पर जाने या चलनेवाला। २ कोई भी कार्य पूरा करनेवाला (को०)।  
 अतच्छद—सङ्घा पुं० [ सं० अन्तच्छद ] भीतरी आच्छादन। अदरुनी परदा।  
 अतज—वि० [ सं० अन्तज, अन्त्यज ] जो अत में उत्पन्न हो। सबसे बाद में उत्पन्न होनेवाला (को०)।  
 अतजा—वि० स्त्री० [ सं० अन्तजा, अन्त्यजा ] अत में पैदा होनेवाली। सबसे पीछे की। उ०—अत मति सो रति अतजा मति अमत्ति।—पृ० २१०, ३११, १०१।  
 अतजाति<sup>१</sup>—वि० [ सं० अन्तजाति, अन्त्यजाति ] अंतिम जाति का। निम्न जाति का (को०)।  
 अतजाति<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० जातिविभाजन में अंतिम जाति (को०)।  
 अतत—अव्य० [ सं० अन्तत ] १ अत में। आखिरकार। निदान। सबसे पीछे। उ०—मिला परमार्थ मुझको अतत इस वृद्ध वय में।—पार्वती, पृ० ३८८। २ वम से वम। अशतः (को०)। ३. भीतर (को०)। ४. निचले या निम्न मार्ग में। मुख्य एवं मध्य के बाद में (को०)।  
 अतत(पु) —अव्य० [ सं० अन्तत ] अत में। आखिरकार। उ०—जाति स्वभाज मिटे नहिं सजनी अतत उवरी कुवरी।—सूर० (राधा०), पृ० ५३२।  
 अततर—वि० [ सं० अन्ततर ] अंतिम के बाद का। अत के बादवाला (को०)।  
 अततम—वि० [ सं० अन्ततम ] सबसे बाद का। सबसे बादवाला (को०)।

अतता—क्रि० वि० दे० 'अतन'। उ०—दूध भात घृत सकरपारे। हरते भूक नहि अतता रे।—दक्खिनी०, पृ० १०५।  
 अततोगतवा—क्रि० वि० [ सं० अन्ततस् + गत्वा ] अत में जाकर। आखिरकार। निदान। उ०—'शोकार्त हृदयवाले का अततो- गत्वा ईश्वर में अनन्य प्रीति प्रेमप्रदर्शन उत्तम है'।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० ४४२।  
 अंतदीपक—सङ्घा पुं० [ सं० अन्तदीपक ] काव्यों में प्रयुक्त दीपकालकार का एक भेद (को०)।  
 अंतपाल—सङ्घा पुं० [ सं० अन्तपाल ] १ द्वारपाल। ड्योढीदार। पोरिया। दरवान। २ सीमा की रक्षा करनेवाला अधिकारी। सरहद का पहरेदार। उ०—'सरहदों का प्रवध अंतपाल करते थे'।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३२६।  
 अतपुर(पु) —सङ्घा पुं० दे० 'अतपुर'। उ०—अतपुर पैठि भानु आतुर कहुँ न वेगि, चिर निसि अक भै निसापति डरे रहै।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १२८।  
 अतवर(पु) —सङ्घा पुं० [ सं० अन्त + अवलि ] आँतो का समूह। उ०—मस हड्ड रद गूद अतवर बाच गज्ज नर।—पृ० २१०, ७१५२।  
 अतभव—वि० [ सं० अन्तभव ] अत में उत्पन्न होनेवाला (को०)।  
 अतभाक्—वि० [ सं० अन्तभाज् ] किसी शब्द के अत का या अत में होनेवाला (को०)।  
 अतभूत—वि० [ सं० अन्तभूत ] दे० 'अतभूत'।  
 अतभेदी—सङ्घा पुं० [ सं० अन्तभेदी ] एक प्रकार का व्यूह। मध्यभेदी व्यूह का विपरीत या उलटा व्यूह।  
 अतम—वि० [ सं० अन्तम ] अति समीप का। घनिष्ठ (मित्र) (को०)।  
 अंतमन—सङ्घा पुं० [ सं० अन्तमन ] आश्रयतर मन। भीतरी मन। उ०—सुनि आनदर्थी कवि जिय धरिय अतमन ध्यान।—पृ० २१०, ६७२, ७४।  
 अतमान(पु) —सङ्घा पुं० दे० 'अतमन'। उ०—लोयन राखी धूँधट हेरी। अतमान की राखे फेरी।—चित्रा०, पृ० १५४।  
 अंतरग<sup>१</sup>—वि० [ सं० अन्तरङ्ग ] १ अत्यंत समीप। आत्मीय। निकटस्थ। दिली। जिगरी। उ०—'वह अपने अंतरग लोगों का परिचय भी नहीं बताती'।—स्कंद०, पृ० ११६। २ मानसिक। ('बहिरग' इसका उलटा है)।  
 अंतरग<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० १ मित्र। दिली दोस्त। आत्मीय। स्वजन। उ०—'अनवरी आज इतनी अंतरग बन गई है'।—तितली' पृ० १२४। २ हृदय। उ०—वरदान आज उस गत युग का कथित करता है अंतरग।—कामायनी, पृ० १६२। ३ राजाओं के अतपुर में जानेवाले अधिकारी।—वरा०, पृ० ६। ४. भीतरी अंग। प्रच्छन्न अंग। उ०—फुनि पुच्छति इच्छिनि सु वहि सौत रूप मनि साल। नो पुच्छा कैंसी कहै अंतरग सु विसाल।—पृ० २१०, ६२, १०४।  
 यौ०—अंतरग मंत्री = निर्णय सचिव। अंतरग सचिव = प्राइवेट सेक्रेटरी। अंतरग मित्र = दिली दोस्त। अंतरग सभा = सब कमेटी छोटी कमेटी या प्रवधकारिणी सभा जिसमें मुख्य सभा से चुने हुए लोग रहते हैं और जिनकी सध्या नियत रहती।  
 अंतरगिनी—वि० स्त्री० [ सं० अन्तरङ्गिणी ] अत्यंत समीप की। आत्मीया। उ०—'यह सुनत ही श्री गुसाई जी कहे, जो मेरी

अंतरंगिनी सेवविनी के घर सखड़ी महाप्रसाद क्यों नहीं लियो ?—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १० ।

अंतरंगी—वि० [ सं० अन्तरङ्गिन् ] विली । भीतरी । जिगरी । उ०—‘हे अंतरंगी जन आज तक जो पुस्तकें प्रकाशित हुईं, वह दूसरे को समर्पित हुई थी ।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० ६४६ ।

अंतरंगी—सखा पु० गहरा मित्र । दिली दोस्त । उ०—वही अंतरंगी सुरंगी निनार । वही राज राजीव लोचन सार ।—पृ० रा०, २।७७६ ।

अंतरस—सखा पु० [ सं० अन्तरस ] वक्षस्थल । सीना । छाती [को०] ।

अंतर<sup>१</sup>—सखा पु० [ सं० अन्तर ] १ फर्क । भेद । विभिन्नता । अलगाय । फेर । उ०—(क) सत भगवत अंतर निरंतर नहीं किमपि मति-मालिन कह दास तुलसी ।—तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० ४८८ । (ख) इसके और उसके स्वाद में कुछ अंतर नहीं है (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना=फर्क या भेद करना । उ०—मोहि चंद वरदाय सु अंतर मति करयो ।—पृ० रा० ५८।१२६ ।—देना ।—पढ़ना ।—रखना=भेदभाव रखना । उ०—अजवासी छोगन सो मैं ता अंतर कछु न राख्यो ।—सूर (शब्द०) ।—होना ।

२ बीच । मध्य । फासला । दूरी । अवकाश । उ०—‘यह विचारो कि मथुरा और वृंदावन का अंतर ही क्या है’ ।—प्रेमसागर (शब्द०) । ३ दो घटनाओं के बीच का समय । मध्यवर्ती काल । उ०—(क) इहि अंतर मधुकर इक आयो ।—सूर०, १० ३४८७ । (ख) ‘इस अंतर में रतन दूध से भर जाते हैं’ ।—वनिताविनोद (शब्द०) । ४ दो वस्तुओं के बीच में पड़ी हुई चीज । शोध । आड । परदा । उ०—काठन धवन सुनि सवन जानकी मकी न हिये सँभारि । तूत अंतर दँ दृष्टि तरौधी दई नयन जल ढारि ।—सूर०, ६।७६ ।

क्रि० प्र०—करना=आड करना । उ०—अपने कुल को बलह क्यों देखहि रवि भगवत । यह जानि अंतर कियो मानो मही अन्त ।—केशव (शब्द०) ।—ढालना ।—देना=ओट करना । उ०—पट अंतर दँ भोग लगायो आरति करी बनाइ ।—सूर०, १०।२६१ ।—पढ़ना ।

५ छिद्र । छेद । रंध्र । दरार । ६ भीतर का भाग । उ०—‘दास’ अंगिराति जमुहाति तकि भुकि जाति, दीने पट, अंतर अन्त आप भलके ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १४३ । ७ प्रवेश । पहुँच (को०) । ८ शेष । बाकी । गणित में शेषफल (को०) । ९ विशेषता । उ०—अंतरौ एक कैमास सुनि मरन तुच्छ मारन बहुल ।—पृ० रा०, १२।१६८ । १० निबलता (को०) । ११ दोष । वृष्टि (को०) । १२ अभाव (को०) । १३ प्रयोजन (को०) । १४ लिहाज (को०) । १५ छिपाव (को०) । १६ निश्चय (को०) । १७ प्रतिनिधि (को०) । १८ वस्त्र (को०) । १९ हृदय । अंतःकरण । जी । मन । चित्त । उ०—जिहि जिहि भाइ करत जन सेवा अंतर की गति जानत ।—सूर०, १।१३ । (ख) अंतर प्रेम तासु पहिचाना । मुनि दुरलभ गति दीह सुजाना ।—तुलसी (शब्द०) । २० आत्मा (को०) । २१ परमात्मा (को०) । २२ स्थान (को०) । २३ आशय (को०) ।

अंतर<sup>२</sup>—वि० १ अतर्धान । गायब । लुप्त । उ०—छपा करी हरि कुंवरि जिमाई । अंतर आप भए सुराई ।—महाभारत (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना=होना=अदृश्य होना । उ०—मोहि ते परी री चूक अंतर भए हूँ जातें तुमसो कहति बातें मैं ही कियो हृदन ।—सूर (शब्द०) ।

२ दूसरा । अन्य । और ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रयय यौगिक शब्दों में मिलता है, जैसे, अथांतर, रथ नांतर, बालांतर, देशांतर, पाठांतर, मतांतर, यज्ञांतर इत्यादि ।

३ समीप । आसन्न । निषट (को०) । ४ आरंभ । आरंभ (को०) । ५ समान (स्वर या शब्द), (को०) । ६ भीतरी । भीतर का (को०) ।

अंतर<sup>३</sup>—क्रि० वि० १ दूर । अलग । जुदा । पृथक् । विलग । उ०—कहाँ गए गिरिधर तजि मोको हूँ मैं कैसे आई । सूर श्याम अंतर भए मोते अपनी चूक मुनाइ ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना=दूर करना । पृथक् करना । उ०—सूरदास प्रभु को हियरे तें अंतर वरी नहीं छिनही ।—सूर (शब्द०) ।—होना ।

२ भीतर । अंतर । उ०—(क) मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ । घसत सुचित अंतर नऊ प्रतिविवित जग होइ ।—विहारी (शब्द०) । (ख) चिता ज्वाल शरीर बन दावा लागि लागि जाइ । प्रगट धुआँ नहि देखिए उर अंतर धुआइ ।—दीनदयाल (शब्द०) । (ग) बाहर गर लगाइ राखीगी अंतर करौगी समाधि ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना=भीतर करना । ढाँकना । छिपाना । उ०—फिर चमक चोप लगाइ चंचलतनहि तव अंतर कर (शब्द०) ।

अंतर<sup>४</sup>—सखा पु० दे० ‘अंतर’ । उ०—जवादि केसर सुर । पल सु सत्त अंतर ।—पृ० रा०, ६६।६० ।

अंतर<sup>५</sup>—सखा पु० [ सं० अन्त, प्रा० अन्त, अप० अन्त ] अंत । अंतर्ही । उ०—(क) करत हृत्क हृवनय । क्रमत धक्क धक्कय । चढत देत दतर । अरु अन्त अंतर ।—पृ० रा०, ६।१७५ । (ख) बृहत सार बार पार ता रत अंतर । अह्व दत दत एक बठ कठ मतर ।—पृ० रा०, ५८।२४३ ।

अंतर अग्रण—सखा पु० [ सं० अन्तर + अग्रण ] नीचे जाना । विलोपन [को०] ।

अंतर अग्रन—सखा पु० [ सं० अन्तर + अग्रन ] १ तीर्थों की एक परिक्रमा विशेष अतर्गही । २ एक दशका नाम । ३ वाणी का मध्य भाग । उ०—अंतर अग्रन अग्रन अल, यन फल, वच्छ वेद विस्वासी ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६४ ।

अंतरकालीन—वि० [ सं० अन्तर + कालीन ] दो कालविभागों के बीच का । किन्तु दो स्थितियों का मध्यवर्ती [को०] ।

अंतरख<sup>६</sup>—सखा पु० [ सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अन्तरिक्ष ] अंतरिक्ष । शून्य । अंतर । आकाश । उ०—रूप न होता तब अकुलान रहिता सबद । गगन न हाता तब अंतरख रहिता चद ।—गोरख०, पृ० १८६ ।

अंतरगत<sup>७</sup>—सखा पु० [ सं० अन्तर्गत ] मन । हृदय । अंतःकरण । उ०—(क) ज्यो गूँगे भीठे फल रस को अंतरगत की भाव ।—सूर०, १।२ । (ख) जानराय जानत सब अंतरगत की घात ।—घनानंद, पृ० ५६ ।

अंतरगत<sup>८</sup>—वि० अतर्गत । भीतर आया हुआ । उ०—जैसे जननि जठर । अंतरगत सुत अपराध करे ।—सूर०, १।११७ ।

अंतरगति॒—संज्ञा स्त्री [सं अन्तरगति] चित्तवृत्ति । भवना । उ०—  
अंतरगति रतिं नहिं दाह्य वरं उजाग । ते नर उमपुर जाहिं  
सत भापै रंदास —मत् २०, पृ० ६५ ।

अंतरगति—संज्ञा स्त्री [सं अन्तरगति, पेट की अग्नि। पेट की गरमी  
जिससे घाई हुई वस्तु पचती है। जठरगति ।

अंतरचक्र—संज्ञा पुं० [सं अन्तरचक्र] १ दिशाओं और विदिशाओं के  
बीच के अंतर की चार चार भागों में बाँटने में बने हुए ३२  
भाग । २. दिशाओं के ऊपर कहे हुए भिन्न भिन्न दिशाओं में  
चिह्नियों की बोली सुनकर शुभाशुभ फल बताने की विद्या ।  
जिस दिशा में पक्षी बैठकर बोले उसका विचार करके शकुन  
बहने की विद्या । ३. तत्त्व के अनुसार शरीर के भीतर माने  
हुए मूलाधार आदि कमल के आकार के छह चक्र । पट्चक्र ।  
४. आर्यीय वर्ग । रवजन वर्ग । भाई वधूओं की मटली ।

अंतरछाल—संज्ञा पुं० [सं अन्तर+छाल] छाल के नीचे की  
कोमल छाल या भिल्ली । बोकले के भीतर का कोमल भाग ।

अंतरजातीय—वि० दे० 'अंतर्जातीय' ।

अंतरजानी—वि० [सं अन्तर+जानी, प्रा० अन्तर+जाणि] भीतर  
की बात जाननेवाला । अन्तर्यामी । उ०—नैन स्रवन मुख  
नासिका तुम अंतरजानी हो ।—केशव ० अमी०, पृ० ७ ।

अंतरजामी<sup>१</sup>—वि० [सं अन्तर्यामी] १ भीतर की बात जानने-  
वाला । उ०—तुम सदा रर अन्तरजामी ।—मानस ७।८४।  
२ अन्तरकरण स्थित प्रेरक । उ०—अन्तरजामिहूँ ते बड बहर-  
जामी हूँ राम जो नाम लिए ते ।—तुलसी ग्रं०, भा० २ ।

अंतरजामी<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'अन्तर्यामी' । उ०—ददा वरौ गुह पूरन  
स्वामी । मैं नहिं जाना अन्तरजामी ।—बबीर सा०, पृ० १०५४ ।

अंतरजाल—संज्ञा पुं० [हिं०] वसरत बरने की एक लकड़ी ।

अंतरज्ञ—वि० [सं अन्तरज्ञ] १ भीतर की बात जाननेवाला । अन्त-  
करण का आशय जाननेवाला । हृदय की बात जाननेवाला ।  
अन्तर्यामी । २. भेद या फर्क जाननेवाला ।

अंतरण—संज्ञा पुं० [सं अन्तरण] व्यवधान डालना । अन्तरित  
करना । निगूहन [को०] ।

अंतरत—क्रि० वि० [सं अन्तरत] बीच में । मध्य में । बीचों बीच ।

अंतरत—वि० [सं अन्तरत] विनाश में आनंद से रहनेवाला । नाश  
में आनंद माननेवाला [को०] ।

अन्तरतम—संज्ञा पुं० [सं अन्तरतम] सबसे भीतर का भाग या  
हिस्सा । अन्तस्तल । उ०—छिपी रहेगी अन्तरतम में सबके तू  
निगूढ़ धन सी ।—कामायनी, पृ० ६ ।

अन्तरतर<sup>१</sup>—वि० [सं अन्तरतर] अति समीपी । अत्यन्त घनिष्ट [को०] ।

अन्तरतर<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ अन्तस्तल । उ०—अपनी मलय भलक  
भाभा से मम अन्तरतर नर दो ।—अपलव । २ ईश्वर [को०] ।  
पृ० १६ ।

अन्तरदं॒द—संज्ञा पुं० [सं अन्तरदं॒द] ३० अन्तरदं॒द । उ०—अन्तरदं॒द  
चद मनि मज्जिय —पृ० २।०, ६७।१८५ ।

अन्तरद—वि० [सं अन्तरद] हृदय की कण्ठ पहुँचानेवाला [को०] ।

अन्तरदाह—संज्ञा पुं० [सं अन्तरदाह] भीतर दहन या दृष्टि । मानसिक  
ताप । उ०—अन्तरदाह जू मिटर्षी चार बीरु चित्त हूँ भाग-  
वत बिहो ।—सूर०, १।८६ ।

अन्तरदिशा—संज्ञा स्त्री [सं अन्तरदिशा] दो दिशाओं के बीच की  
दिशा । कोण । विदिशा ।

अन्तरदीर्घ—संज्ञा स्त्री [सं अन्तरदीर्घ, प्रा० अन्तरदीर्घ] अन्तरदीर्घ ।  
विवेक ।

अन्तरद्वार—संज्ञा पुं० [सं अन्तरद्वार] छिपा हुआ या भीतरी दरवाजा ।  
अन्तपुर का दरवाजा । उ०—अन्तरद्वार घाट भए ठाढ़े गुनत  
तिया की बातें —सूर०, १।२६६६ ।

अन्तरदृष्टि—संज्ञा स्त्री [सं अन्तरदृष्टि] ज्ञानक्षु । हिण की प्राप्ति ।  
उ०—यह अन्तरदृष्टि से भली भाँति निगाह कर नेता है कि मैं  
अपने बर्मों का वर्ता नहीं ।—बबीर सा०, पृ० ६६७ ।

अन्तरदेशीय—वि० [सं अन्तर+देशीय] १ दो या अधिक देशों से  
संबद्ध । २ राष्ट्र या देश के सभी राज्यों या प्रदेशों में सर्वधिन,  
जैसे—'अन्तरदेशीय पत्र' ।

अन्तरधन—संज्ञा पुं० [सं अन्तरधन] छिपाया-बचाया हुआ धन ।  
उ०—विष्ट अन्तरधन हूँ जू साथ । सा दीनी माना के हाथ ।—  
अर्ध०, पृ० ७ ।

अन्तरधान—वि० दे० 'अन्तरधान' उ०—पुनि पुनि अम बहि कृपा-  
निधान । अन्तरधन भए भगवाना ।—मानस, १।१५२ ।

अन्तरध्यान<sup>१</sup>—वि० [सं अन्तरध्यान] अन्तरिक्ष मन या चित्तन ।  
उ०—अन्तरध्यान नाम त्रि वेरा त्रि न भजिया त्रि न फई ।—  
बबीर सा०, भा० १, पृ० ७८ ।

अन्तरध्यान<sup>२</sup>—वि० [सं 'अन्तरध्यान' का विकृत रूप] अहित ।  
लज्ज । उ०—(क) पटमाम निमानसि नृप्य विय । त्वगोविद  
अन्तरध्यान हय ।—पृ० २।०, २।३४५ । (ग) भए अन्तरध्यान  
भीते पाछिली निमिजाम ।—सा० २०, पृ० ११४ ।

अन्तरपट—संज्ञा पुं० [सं अन्तरपट] १ परदा । आट । घोट उ०—  
उधरेहूँ अन्तरपट राखत अगने गुनहि रहौ ।—घनानंद, पृ०  
५४७ । २ विवाहमण्डप में यम की आहुति के समय अग्नि और  
वर मन्था के बीच में एक परदा डाल देते हैं जिसमें वे दोनों  
उस आहुति को न देखें । इस परदे का अन्तरपट कहते हैं ।

अन्तरपट—करना ।—खालना ।—देना ।

मूहा०—अन्तरपट साजना=छिपा-बैठना । कामने नहना ।  
अट में रहना ।

३ परदा । छिपाव । दुगाव । भेद । ४ छातु या अंगुष्ठ की  
फुँवने के पहले उसकी लुगदी या मण्ट पर गीली मिट्टी के लेव  
के साथ बपडा सपेटने की प्रिया । बपटमिट्टी । बपटोरी ।  
कपटोरी ।

अन्तरपट—करना ।—होना ।

५. गीली मिट्टी का लेव देकर सपेटा हुआ कपटा ।

अन्तरपतित आय—संज्ञा पुं० [सं अन्तरपतित आय] मोटा पताने की  
दस्तूरी । दलाली ।

अन्तरपाट—संज्ञा पुं० [सं अन्तर+पाट] परदा । घोट । छोट ।  
उ०—गुप्त रसोई मानु रंछाहिंम । बूदिदि अन्तरपाट  
दिमायेमि ।—बबीर सा०, पृ० ४३२ ।

अंतरपुरुष--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तरपुरुष ] १ आत्मा । २ परमात्मा । अतर्कमी । परमेश्वर ।

अंतरपूरुष--सज्ञा सं० [ सं० अन्तरपूरुष ] दे० 'अंतरपुरुष' ।

अंतरप्रकाश--सज्ञा पुं० [ पुं० अन्तःप्रकाश ] भीतरी प्रकाश । आत्मज्ञान । उ०--'यह भी बिना अन्तरप्रकाश के जाना नहीं जा सकता कि भोगनेवाला कौन है और मैं कौन हूँ ।--बकीर सा०, पृ० ६७१ ।

अंतरप्रतीहार--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तरप्रतीहार ] राजप्रासाद के भीतर आने जानेवाले प्रतीहार । अभ्यन्तर परिजन [ हरेण ] ।

अंतरप्रभव--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तरप्रभव ] जो दो भिन्न भिन्न वर्णों के माता पिता से उत्पन्न हो । वर्णसंकर ।

अंतरप्रश्न--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तरप्रश्न ] वह प्रश्न जो पूर्ववर्णित प्रश्न में निहित हो [ को० ] ।

अंतरप्रातीय--वि० [ सं० अन्तर + प्रांतीय ] दे० 'अन्तरप्रादेशिक' ।

अंतरप्रादेशिक--वि० [ सं० अन्तरप्रादेशिक ] १. जिसका सबंध अपने प्रदेश या प्रांत से हो । अपने प्रांत में होनेवाला । जैसे, अंतरप्रादेशिक अफगाण । २ देश या राष्ट्र के सभी प्रदेशों या राज्यों में सबंध रखनेवाला ।

अंतरवरन--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तर + वर्ण ] बीच के अक्षर । उ०--या कवित्त अन्तरवरन लें तुकन द्वै छडि ।--भिखारी प्र०, भा० १, पृ० १६ ।

अंतरवल--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तर + वल ] भीतरी शक्ति । आंतरिक वल । उ०--रथ विभजि हति केतु पताका । गरजा अति अन्तर-वन थाका ।--मानस, ६ । ६१ ।

अंतरवाधा--सज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तर + वाधा ] मानसिक कष्ट । उ०--खेली जाइ स्याम मग राधा । यह सुनि कुँवरि हरप मन कीनो मिटि गई अन्तरवाधा ।--सूर०, १० । ७०५ ।

अंतरवानी--सज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तर्वानी ] अंतर की वाणी । आत्मा की आवाज । उ०--सुनु हिरदे यह अन्तरवानी ।--रत्न०, पृ० ७ ।

अंतरवास(०)--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तः + वास ] अंतपुर । रातवास । उ०--दुरग चीतोटा पहुँचो राइ । अन्तरवासइ गम कियो ।--वीरस० रा०, पृ० ११२ ।

अंतरवासी--वि० [ सं० अन्तः + वासी ] भीतर रहनेवाला । उ०--उर-गाना उर अन्तरवासी । जाका नाम कहे अविनासी ।--रत्न०, पृ० १६५ ।

अन्तरवेद--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्वेद ] दे० 'अन्तर्वेद' ।

अन्तरभाव(०)--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तर् + भाव ] भावांतर । भिन्न भाव । उ०--कछु पुनि अन्तरभाव ते कही नायिका जाहि ।--भिखारी० प्र०, भा० १, पृ० १६ ।

अन्तरभेद(०)--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तर् + भेद ] आंतरिक तत्व या रहस्य । भीतरी भेद । उ०--ए रस अन्तरभेद प्रीय जानै लिय जौ रस ।--पृ० रा०, ६२।१०३ ।

अन्तरमत्त--सज्ञा पुं० [ सं० यत्न मत्त ] जादू टोना । भाड फूँक । जतर मत्त ।

अन्तरमत--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तर + मत ] आंतरिक विचार । निगूढ़ या गुह्य मन । उ०--बचन पछिछाना मिट्या अन्तरमत खोला ।--पृ० रा०, पृ० २६ ।

अन्तरमुख(०)--वि० [ सं० अन्तर्मुख ] भीतर की ओर उन्मुख । आंतरिक ध्यानयुक्त । उ०--वरन दीनदयाल मिलै नहि वहर टेरे । अन्तरमुख हूँ बूढ़ सुगंध सब घट तेरे ।--दीन० प्र०, पृ० २३० ।

अन्तरय--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तरय ] दे० 'अन्तराय' [ को० ] ।

अन्तरयण--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तरयण ] अयनों [ मार्गों ] के सान्निध्य में सूर्य की स्थिति का काल । उ०--सूत्र 'अयनञ्च' में अन्तरयण का उल्लेख है ।--पाणिनि०, पृ० १७८ ।

अन्तरयन--सज्ञा पुं० दे० 'अन्तरयण' । उ०--अयनांशों के बीच के देशों के लिये पाणिनि ने 'अन्तरयन' शब्द का प्रयोग किया है ।--पाणिनि०, पृ० ४१ ।

अन्तररति--सज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तर् + रति ] सभोग के सात आसन, यथस्थिति, तिर्यक्, समुख, विमुख, अध, ऊर्ध्व और उत्तान ।

अन्तरराष्ट्रीय--वि० दे० 'सार्वराष्ट्रीय' । उ०--'हिंदुस्तानी उस अन्तर-राष्ट्रीय सेना से मिलकर लड़ रहे हैं जिसने मैट्रिड की रक्षा खूबी के साथ की है ।'--'आज', १६३६ ।

अन्तरवर्तिनि, अन्तरवर्तिनी--वि० [ सं० अन्तर्वर्तिन् ] मध्यस्थ । बीच की । उ०--तिय पिय की हितवारिनी अन्तरवर्तिनि हई ।--भिखारी० प्र०, भा० १, पृ० ३३ ।

अन्तरवासक--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्वसिक ] कपड़े के नीचे पहना जाने वाला कपड़ा । भीतरी वस्त्र । अंतरोटा । उ०--अंबपाली ने तीन हुवकियाँ लगाई, महीन अन्तरवासक उसके स्वरंगाक्ष से चिपक गया ।--बं० न०, पृ० ४ ।

अन्तरविश्वविद्यालय--वि० [ सं० अन्तर् + हिं० विश्वविद्यालय ] (अ० इंटर यूनिवर्सिटी) एकाधिक विश्वविद्यालयों से सबंध रखनेवाला । उ०--'इस साल अन्तरविश्वविद्यालय फुटबाल टूर्नामेंट काशी में हुआ ।'--'आज', १६५१ ।

अन्तरशायी--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्शायी ] अन्तरस्थ जीवा । जीवात्मा ।

अन्तरसंचारी--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्संचारी ] वे अस्थिर मनोविकार जो बीच बीच में आकर मनुष्य के हृदय के प्रधान और स्थिर (स्थायी) मनोविकारों में से किसी की सहायता वा पुष्टि करके रस की सिद्धि करते हैं । इसे केवल संचारी भी कहते हैं । [ अन्तर शब्द इस कारण भी लगाया गया कि किसी किसी ने अनुभाव के अंतर्गत सांत्विक भाव की तनसंचारी लिखा है । ] ये ३३ माने गए हैं । दे० 'संचारी' ।

अन्तरसाखी--सज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तःसाखी ] अंत साक्ष्य । गुप्त गवाही । साक्षी । उ०--सीता प्रथम अन्तल महु साखी । प्रगट कीन्हि चह अन्तरसाखी ।--मानस, ६।१०७ ।

अन्तरस्थ--वि० [ सं० अन्तःस्थ ] भीतर का । भीतरी । अंदर का । भीतर रहनेवाला (जीवात्मा) ।

अन्तरस्थायी--वि० [ सं० अन्तःस्थायी ] दे० 'अंतस्थ' ।

अन्तरस्थित--वि० [ सं० अन्तर्स्थित ] दे० 'अन्तरस्थ' ।

अन्तरवेध(०)--सज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्वेध ] गंगा और यमुना का मध्यवर्ती भूभाग । अन्तर्वेद । उ० अन्तरवेध कूरुष आइ । सब मेर जेर होइ लगे पाय ।--पृ० रा०, १।२११ ।

अन्तरहित(०)--वि० [ सं० अन्तर्हित ] दे० 'अंतर्हित' । उ०--अन्तर-हित सुर आसिष देही ।--मानस, १।३५१ ।



अंतरहीन—वि० सं० [ अन्तर + हीन ] जिसमें फासला न हो। व्यवधान रहित। उ०—उस अंतरहीन सामीप्य में किसी न्यूनता और अवसाद की अनुभूति के लिये स्थान नहीं रह गया।—दो दुनिया, पृ० १३।

अंतरहेतु—वि० दे० 'अतर्हित'। उ०—तुम तर्हे एता सिरजा आपकें अंतरहेतु।—जायसी ग्र०, पृ० ३५७।

अंतरास—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तरास ] स्कंध और वक्षस्थल के बीच का भाग [को०]।

अंतरा<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ सं० अन्तरा ] १. मध्य। बीच। २. इसी बीच (को०)। ३. समीप। निकट। ४. अतिशक्ति। सिवा। ५. पृथक्। ६. बिना। ७. मार्ग में (को०)। ८. लगभग। प्रायः (को०)। ९. यदातदा। जब तब (को०)। १०. कुछ काल के लिये (को०)।

अंतरा<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १. किसी गीत में स्थायी या टेक के बाद का दूसरा चरण। २. किसी गीत में स्थायी या टेक के अतिरिक्त बाकी और पद या चरण। †३. प्रातःकाल और संध्या के बीच का समय। दिन।

अंतरा<sup>३</sup>—[ सं० अन्तर ] मध्यवर्ती। बीच का। उ०—जब लगि हूरत निमेष अनरायण समान पल जात।—सूर० (राधा०), १३४७।

अंतरा<sup>४</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तर ] फर्क। भेद। अ० उ०—सन्द सन्द बहु अंतरा सार सन्द मन लीजै।—कबीर वी०, पृ० ६२।

अंतराड<sup>५</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तराय, प्रा० अन्तराड ] विघ्न। अन्तराय। बाधा। उ०—तब श्री चंद्रादली जी कह्यो, जो तने श्री ठकुर जी के मिलन में अन्तराड बियो।—दो सो वावन०, भा० १, पृ० १०६।

अन्तराकाश—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तराकाश ] १. मध्य भाग या स्थान। २. हृदय में स्थित ग्रह [को०]।

अन्तराकूत—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तराकूत ] गुप्त उद्देश्य। गुप्त आशय अभिप्राय [को०]।

अन्तरागार—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तरागार ] भीतरी गृह। घर का भीतरी हिस्सा [को०]।

अन्तरात्मा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तरात्मा ] १. जीवात्मा। जीव। २. आत्मा। प्राण। उ०—'वह मेरी स्त्री जिसके अभावो का कोप कभी खाली नहीं, उससे मेरी अन्तरात्मा काँप उठती है'।—स्कंद०, पृ० ३२। ३. अन्तराकरण। मन।

अन्तरादिक्—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तरादिक् ] दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा [को०]।

अन्तरापण—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तरापण ] नगर के मध्य भाग में स्थित बाजार। उ०—'श्रेणियों का माल अन्तरापण में विकता था'।—वै० न०, पृ० २।

अन्तरापत्या—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तरापत्या ] गर्भिणी। गर्भवती। हामिला।

अन्तराभवदेश—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तराभवदेश ] दे० 'अन्तराभवदेह' [को०]।

अन्तराभवदेह—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तराभवदेह ] मृत्यु और पुनर्जन्म के मध्य स्थित आत्मा [को०]।

अन्तराय—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तराय ] १. विघ्न। बाधा। अड़बट। २. ओट। आड़ [को०]। ३. ज्ञान का बाधक। ४. योग की

सिद्धि के विघ्न जो नौ प्रकार के हैं, यथा—(क) व्याधि। (ख) स्थान = सकोच। (ग) सणय। (घ) प्रमाद। (च) आनस्य (छ) अविरति = विषयो में प्रवृत्ति। (ज) भ्रातिदर्शन = उलटा ज्ञान, जैसे जब में चेतन और चेतन में जब बुद्धि। (झ) अलव्य भूमिकत्व = समाधि की अप्राप्ति। (ट) अनवस्थितत्व = समाधि होने पर भी चित्त का स्थिर न होना। ५. जैन दर्शन में दर्शनावरणीय नामक मूल कर्म के नौ भेदों में से एक, जिसका उदय होने पर दानादि करने में अन्तराय वा विघ्न होते हैं। ये अन्तराय कर्म पाँच प्रकार के माने गए हैं—दानातराय, लाभातराय, भागातराय, उपभोगातराय और वीर्यातराय।

अन्तरायाम—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तरायाम ] एक रोग जिसमें वायुकोप से मनुष्य की आँखें दृढ़ी और पसली स्तब्ध हो जाती है और मूँह से आप ही आप कफ गिरता है तथा दृष्टिभ्रम से तरह तरह के आकार दिखाई पड़ते हैं।

अन्तराराम—वि० [ सं० अन्तराराम ] हृदय में आनंद का अनुभव करने वाला [को०]।

अन्तराल—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तराल ] १. घिरा हुआ स्थान। आवृत स्थान। घेरा। मडल। उ०—तुम कनक किरण के अन्तराल में लुक छिपकर चलते हो क्यों।—चंद्र०, पृ० ६३। २. मध्य। बीच। उ०—वह देखो वन के अन्तराल से निकले, मानो दो तारे क्षितिज पटी से निकले।—साकेत, पृ० २२१। ३. भीतर। ओट। उ०—'कुलपुत्रों को चुप देखकर किसी ने साल के अन्तराल से सुकोमल कंठ से कहा'।—इंद्र०, पृ० १३२।

अन्तरालक—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तरालक ] दे० 'अन्तराल' [को०]।

अन्तरालदिक्—संज्ञा [ सं० अन्तरालदिक् ] दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा। कोण। कोना।

अन्तरालदिशा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तरालदिशा ] दे० 'अन्तरालदिक्'। अन्तरावेदी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तरावेदी ] खनो पर बनी हुई ओसारी या मंदिर [को०]।

अन्तरिद्रिय—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तरिन्द्रिय ] आंतरिक इन्द्रियाँ, मन बुद्धि आदि [को०]।

अन्तरिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तरिका ] दो घरों के मध्य की गली।

अन्तरिक्ष<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अन्तरिक्ष ] दे० 'अन्तरिक्ष'। उ०—'मुझे उड़ि अन्तरिक्ष मृतमडा। खड खड धरती बरम्हडा'।—जायसी ग्र०, पृ० २।

अन्तरिक्ष<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तरिक्ष ] १. पृथिवी और सूर्यादि लोकों के बीच का स्थान। कोई दो ग्रहों वा तारों के बीच का शून्य स्थान। आकाश। अघर। रोदसी। शून्य। उ०—सौरभ से दिगत पूरित था अन्तरिक्ष आलोक अधीर।—कामायनी, पृ० ११। २. स्वर्ग लोक। ३. प्राचीन सिद्धांत के अनुसार तीन प्रकार के केतुओं में से एक जिसके घोड़े, हाथी, ध्वज, वृक्ष आदि के समान रूप हों। ४. एक ऋषि का नाम। ५. पृथिवी की आकर्षण शक्ति की परिधि से बाहर का आकाश में स्थान।

यौ०—अन्तरिक्षयान = हवाई जहाज। वायुयान। एयरप्लेन (अ०)।

अन्तरिक्ष<sup>३</sup>—वि० अन्तर्धान। गुप्त। अग्रकट। उ०—(क) भये ते अन्तरिक्ष रिक्ष लक्ष लक्ष जात हैं।—केशव (शब्द०)। (ख) पल्लो



आडों अतरिक्ष अर्थात् लोप हो गया। ( ग ) अविलाइनो इतने समय में अतरिक्ष था।—अयोध्यासिंह ( शब्द० ) ।

अतरिक्षित—वि० [ सं० अन्तरिक्षित ] अन्तरिक्षवासी । अतरिक्ष में रहनेवाला [ को० ] ।

अतरिक्षग—वि० [ सं० अन्तरिक्षग ] अतरिक्ष या आकाश में गमन करनेवाला [ को० ] ।

अतरिक्षग—सञ्ज्ञा पुं० पक्षी । विहग । खग [ को० ] ।

अतरिक्षचर—वि० [ सं० अन्तरिक्षचर ] दे० अतरिक्षग [ को० ] ।

अतरिक्षचर—सञ्ज्ञा पुं० पक्षी [ को० ] ।

अतरिक्षचारी—वि० [ सं० अन्तरिक्षचारी ] दे० 'अतरिक्षग' [ को० ] ।

अन्तरिक्षचारी—सञ्ज्ञा पुं० पक्षी [ को० ] ।

अतरिक्षजल—सञ्ज्ञा पुं० [ पुं० अन्तरिक्षजल ] ओस । अवश्याय नीहार [ को० ] ।

अतरिक्षसत्—वि० [ सं० अन्तरिक्षसत् ] अतरिक्ष या शून्य आकाश में गमन करनेवाला । आकाशचारी ।

अतरिक्षसत्—सञ्ज्ञा पुं० १ आत्मा । २ पक्षी ।

अतरिक्षायतन—स्त्री० पुं० [ सं० अन्तरिक्षायतन ] अतरिक्ष में निवास करनेवाले देवता [ को० ] ।

अतरिक्षायतन—वि० आकाशवासी । अन्तरिक्षवासी ( को० ) ।

अन्तरिक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अन्तरिक्ष ] १ दे० 'अन्तरिक्ष' । २ ( ला० ) भूला । उ०—रसदायिनी सुदरी रमतां सेज अन्तरिक्ष भूमि सम ।—वेलि०, दू० २६७ ।

अन्तरिक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अन्तरिक्ष ] १ आकाश । उ०—जोजन विस्तार सिला पवनसुत उपाटी । किंकर करि धान, लच्छ अन्तरिक्ष काटी ।—सूर०, ६।६८ । २ अधर । ओठ । उ०—अन्तरिक्ष श्री वष्टु लेत हरि त्यों ही आप आपनी घाली ।—सा० लहरी, पृ० ५६ ।

विशेष—अन्तरिक्ष का पर्याय अधर है और अधर का अन्तरिक्ष है, अतः पर्यायसाम्य से अर्थपरिवर्तन हुआ ।

अन्तरित—[ वि० अन्तरित ] १ भीतर किया हुआ । भीतर रखा हुआ । भितराया हुआ । छिपाया हुआ ।

क्रि० प्र०—करना = भीतर करना । भीतर ले जाना । छिपाना ।—होना = भीतर होना । अंदर जाना । छिपना । २, अंतर्धान । गुप्त । गायब । तिरोहित ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

३ आच्छादित । ढका हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

४. बीच में आया हुआ ( को० ) । ५ अलग किया हुआ । पृथक्कृत ( को० ) । ६ तुच्छ समझा हुआ या तुच्छ समझा हुआ या तुच्छ किया हुआ ( को० ) । ७ नष्ट किया हुआ ।

अन्तरित—सञ्ज्ञा पुं० १ शेष । बाकी । २ स्थापत्य कला का एक पारिभाषिक शब्द [ को० ] ।

अन्तरिम—वि० [ अ० इन्टरिम ] १. मध्यवर्ती । दो समय के बीच का । २ अस्थायी ।

यो०—अन्तरिम सरकार = मध्यवर्ती वा अस्थायी सरकार [ अ० इन्टरिम गवर्नमेन्ट ] ।

अन्तरीक—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अन्तरीक, प्रा० अन्तरिक्ष, अन्तरिक्ष ] आकाश । अन्तरिक्ष ।—डि० ।

अन्तरीक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अन्तरीक्ष ] ३० 'अन्तरिक्ष' [ को० ] ।

अन्तरीछ—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अन्तरीछ ] आकाश । गगन । उ०—पारस, मनि नृप नखियाँ, करि कचन के ग्राम । अन्तरीछ उडिके गयो, नरवाहन के धाम ।—परमान रा०, पृ० ३४ ।

अन्तरीप—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अन्तरीप ] १ द्वीप । टापू । २ पृथिवी वा वह नौकीला घाग जो समुद्र में दूर तक चला गया हो । राम ।

अन्तरीय—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अन्तरीय ] वन में पड़ने का वस्त्र । अर्धावस्त्र । धोती ।

अन्तरीय—वि० भीतर का । अंदर का । भीतरी ।

अन्तरु—सञ्ज्ञा पुं० दे० अन्तर । उ०—अत अन्तरु के डवर ।—रघु० क० पृ० २४१ ।

अन्तरैक्य—सं० पुं० [ सं० अन्तरैक्य ] हादिक एकता । आन्तरिक एकत्व । उ०—लोकतन्त्र की सुदृढ़ नींव रख अन्तरैक्य पर ।—रजतशि०, पृ० ११३ ।

अन्तर—वि० [ सं० अन्तर ] भीतर । बीच में ।

विशेष—समस्त पदों में इस शब्द के अन्तः, अन्तः, अन्तः आदि अन्तः रूप यथानियम हो जाते हैं ।

अन्तर्कथा—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तर्कथा ] प्रसंग द्वारा या संबंध में संकेतित कथा ।

अन्तर्कथा—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तर्कथा ] गुप्त कथा । भीतरी बात । उ०—'साहित्यकार का जीवन, अन्तर्कथा आदि के प्रश्न कभी न पूछना चाहिए, नहीं तो रसधारा भग हो जाती है' ।—भा० शिक्षा, पृ० १२६ ।

अन्तर्गंगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तर्गङ्गा ] गुप्त गंगा । छिपी हुई या लुप्त गंगा [ को० ] ।

अन्तर्गङ्गु—वि० [ सं० अन्तर्गङ्गु ] व्यर्थ । निष्प्रयोजन । बेकार । निरर्थक । वृथा [ को० ] ।

अन्तर्गत—वि० [ सं० अन्तर्गत ] १. भीतर आया हुआ । समाया हुआ । शामिल । अंतर्भूत । अंतर्गृहीत । समिलित । उ०—(क) 'भौर यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बड़े-बड़े वृक्ष इन्हीं छोटे बीजों के अन्तर्गत हैं' ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० १२५ । (ख) 'इस समय इतना भूभाग मलावार के अन्तर्गत है' ।—सरस्वती (शब्द०) । २ भीतरी । छिपा हुआ । गुप्त । उ०—'यह फोडा कभी प्रत्यक्ष, कभी अन्तर्गत रहता है' ।—अमृतसागर (शब्द०) । ३ हृदय के भीतर का । अन्तःकरणस्थित । उ०—'उनके अन्तर्गत भावों को कौन जान सकता है' (शब्द०) ।

अन्तर्गत—सञ्ज्ञा पुं० मन । जी । हृदय । चित्त । उ०—(क) रुक्म रिसाह पिता सो कह्यो । सुनि ताको अन्तर्गत दह्यो ।—सूर०, (शब्द०) । (ख) तुलसिदास जद्यपि निसि वासर छिन छिन प्रभु मूर्तिहि निहारति । मिटति न दुसह ताप तउ तन की यह विचारि अन्तर्गत हारति ।—तुलसी (शब्द०) ।

अन्तर्गति—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तर्गति ] मन का भाव । चित्तवृत्ति । भावना । चित्त की अभिलाषा । हादिक इच्छा । मनकामना । उ०—(क) रही आन चहुँ विधि भगतन की जनु अनुराग भरो

अतर्गति ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) 'श्री पार्वती जी ने ऊप्रा की अतर्गति जानि उसे अति हित से निकट बुलाय प्यार कर ममभाय के कह' ।—प्रेमसागर (शब्द०) ।

अतर्गर्भ—वि० [ सं० अन्तर्गर्भ ] गर्भयुक्त [को०] ।

अतर्गाधार—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्गाधार ] संगीत में तीसरे स्वर के अगंत एक विकृत स्वर जो प्रमारिणी नामक श्रुति से आरम्भ होता है और जिसमें चार श्रुतियाँ होती हैं ।

अतर्गृह—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्गृह ] भीतर का घर । भीतर की कोठरी । घर का भीतरी खड ।

अतर्गृहगता—सङ्घा स्त्री० [ सं० अन्तर्गृह + गता ] भक्तिमार्ग में ठाकुर जी को कामवृद्धि से भजनेवाली मेविका । उ०—'और लीला के भाव में हूँ देखें तो प्रेम की ईच्छा होइ तब अतर्गृहगतान के साथ प्रभु रमन करत हैं ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ४४६ ।

अतर्गृही—सङ्घा स्त्री० [ सं० अन्तर्गृह + ई (प्र०) ] तीर्थस्थान के भीतर पढ़नेवाले प्रधान स्थलों की यात्रा ।

अतर्गह—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्गह ] घर या मकान का भीतरी खड [को०] ।

अतर्घट—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्घट ] शरीर के भीतर का भाग । अतःकरण । हृदय । मन ।

अतर्घन—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्घन ] मुख्य द्वार और घर के बीच का स्थान [को०] ।

अतर्घात—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्घात ] दे० 'अन्तर्घन' [को०] ।

अतर्ज—वि० [ सं० अन्तर्ज ] अंतर या भीतर उत्पन्न ( जैसे, शरीर में कीड़ा ) [को०] ।

अतर्जगत्—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्जगत् ] अतस्तल । भीतरी जगत् । मन का ससार । उ०—अधवार का आलोक से, असत् का सत् से, जड का चेतन से, और वाह्य जगत् का अतर्जगत् से सबध कौन कराती है ? कविता ही न ?—स्कंद०, पृ० २१ ।

अतर्जठर—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्जठर ] कोख । पेट [को०] ।

अतर्जलन—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर् + हि० जलन ] भीतरी जलन । अतर्दाह । उ०—जानती अतर्जलन क्या कर नहीं, दाह से आराध्य भी सुदूर नहीं ।—रेणुका, पृ० १०० ।

अतर्जात—वि० [ सं० अन्तर्जात ] भीतर उत्पन्न । उ०—'बला उच्चता की अतर्जात प्रवृत्ति की शोधिका है' ।—पा० सा० सि०, पृ० ६७ ।

अतर्जातीय—वि० [ सं० अन्तर् + हि० जातीय ] भिन्न वर्णों अथवा जातियों सबधी । दो या दो से अधिक जातियों के बीच का । उ०—'इन सब कथनों से सिद्ध होता है कि अतर्जातीय व्याह अवश्य होते थे' ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १५९ ।

अतर्जानी—वि० दे० 'अतरजानी' । उ०—आए तुम समर्थ हो अतर्जानी सत्य कहो हम निश्चय मानी ।—कवीर सा०, पृ० २२३ ।

अतर्जानु—वि० [ सं० अन्तर्जानु ] हाथों को घुटने के बीच किए हुए ।

अतर्जामी—वि० दे० 'अतरजामी' ।

अतर्जीवन—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्जीवन ] आंतरिक जीवन । बौद्धिक या वैचारिक जीवन । उ०—अतर्जीवन सत्य कर दिया तुमने ज्योतिष ।—स्वर्ण०, पृ० ६० ।

अतर्जीवी सं० [ सं० अन्तर्जीवी ] आंतरिक जीवनवाला । जिसकी वृत्ति आंतरिक हो । विचारप्रधान । उ०—आज मुझे है महत्प्रेरणा मिली 'मनुज अतर्जीवी है ।—रजत शि०, पृ० ७० ।

अतर्ज्ञान—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्ज्ञान ] १. अतःकरण की बात का जानना । दूसरे के दिल की बात जानना । परोक्षदर्शन । २. परिज्ञान । अतःकरण का अनुभव । अतर्वोध ।

अतर्ज्योति—सङ्घा स्त्री० [ सं० अन्तर्ज्योतिस् ] अतर्वाभी । परमेश्वर अतर्ज्योति—वि० जिसकी आत्मा प्रकाशित हो । [ का० ]

अतर्ज्वलन—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्ज्वलन ] भीतरी ताप । आभ्यंतर अग्नि [ को० ] ।

अतर्ज्वला—सङ्घा स्त्री० [ सं० अन्तर्ज्वला ] १ भीतरी आग । भीतर की अग्नि । २ चिता । सताप [ को० ] ।

अतर्दग्ध—वि० [ सं० अन्तर्दग्ध ] भीतर भीतर जला हुआ [ को० ] ।

अतर्दधन—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्दधन ] शराब चुआने का कार्य या स्थिति [ को० ] ।

अतर्दधान—वि० [ सं० अन्तर्दधान ] गुप्त । छिपा हुआ [ को० ] ।

अतर्दर्शक—वि० [ सं० अन्तर्दर्शक ] दे० 'अतर्दशी' । उ०—पहले प्रकार के मनुष्य को हम मननशील कहते हैं और दूसरे प्रकार के मनुष्य को अतर्दर्शक कहते हैं ।—पा० सा० सि०, पृ० १८९ ।

अतर्दशा—सङ्घा स्त्री० [ सं० अन्तर्दशा ] १. फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में जो ग्रहों के भोगकाल नियत हैं उन्हें दशा कहते हैं । मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष की मानी गई है । इस १२० वर्ष के पूरे समय में प्रत्येक ग्रह के भोग के लिये वर्षों की अलग अलग सख्या नियत है जिसे महादशा कहते हैं, जैसे सूर्य की महादशा ६ वर्ष, चंद्रमा की १० वर्ष इत्यादि । अब इस प्रत्येक ग्रह के नियत भोगकाल वा महादशा के अतर्गत भी नवग्रहों के भोगकाल नियत हैं जिन्हें अतर्दशा कहते हैं । जैसे सूर्य के ६ वर्ष में सूर्य का भोगकाल ३ महीने १८ दिन और चंद्रमा का ६ महीने इत्यादि । कोई कोई अष्टोत्तरी गणना के अनुसार अर्थात् १०८ वर्ष की आयु मानकर चलते हैं । २. मन स्थिति । चित्त की वृत्ति । उ०—अनेक भाव तथा अतर्दशाएँ उसके सचारी के रूप में आती हैं ।—रस०, पृ० ६५ ।

अतर्दशाह—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्दशाह ] मरने के पीछे दस दिन तक मृतक की आत्मा वायु रूप में रहती है और प्रेत कहलाती है । इन दस दिनों के भीतर हिंदू शास्त्र के अनुसार जो कर्मकांड किए जाते हैं उन्हें अतर्दशाह कहते हैं ।

अतर्दर्शी—वि० [ सं० अन्तर्दर्शी ] १. अतःकरण की वृत्ति समझनेवाला । मन के भाव जाननेवाला । दिल की बात जाननेवाला । २. आत्मनिरीक्षक । तत्त्ववेत्ता । ३. भीतर देखने या परखनेवाला [ को० ] ।

अतर्दाहि—सङ्घा पु० [ सं० अन्तर्दाहि ] १. आंतरिक दुःख । मानसिक वेदना । उ०—अतर्दाहि स्तह का तब भी होता था उस मन में ।—कामायनी, पृ० ११६ । २. एक प्रकार का सन्निपात ।—माधव, पृ० २० ।

अतर्दृष्टि—सङ्घा स्त्री० [ सं० अन्तर्दृष्टि ] १. ज्ञानचक्षु । प्रज्ञा । हिए की आँख । उ०—बिना नवीन ग्रन्थास और अतर्दृष्टि के साहित्यिक कृतियों का अनुशीलन करना, प्रति दिन कठिन होता

जा रहा है।—जय० प्र०, पृ० ८६। २ आत्मचिंतन। आत्मा का ध्यान।

अतर्देशीय—वि० [ सं० अन्तर्देशीय ] १ देश के भीतर का। जैसे अतर्देशीय पर्व। २ दो या दो से अधिक देशों के मध्य का। दो या अधिक देश सवर्धी।

अतर्दर्शन—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्दर्शन ] लोप। अदर्शन। छिपाव। तिरोधान।

अतर्दर्शन—वि० गुप्त। अलक्ष्य। गायब। अदृश्य। अतर्हित। अप्रकट। लुप्त। छिपा हुआ।

क्रि० प्र०—करना = छिपाना। दूर हटाना। = नजर से गायब करना। उ०—ताते महा भयानक भूप। अतर्दर्शन करो सुर मूप।—सूर ( शब्द० )।—होना = छिपना। लोप होना। उ०—भई मुनि की खोज पै सो भए अतर्दर्शन।—बृद्ध० च०, पृ० १६।

अतर्द्वंद्व—संज्ञा, पुं० [ सं० अन्तर्द्वंद्व ] १ चरित्रविकास की दृष्टि से नाटक के प्रधान पात्र का आंतरिक संघर्ष। मन में उठनेवाले भावों अथवा विचारों का संघर्ष। उ०—मानवीय प्रेम के उद्भव, उत्थान, विकास, अतर्द्वंद्व, ह्रास आदि की कहानी कहने का यत्न किया गया है।—हि० भा० प्र०, पृ० २४५। २ घर या देश का आपसी झगडा [को०]।

अतर्द्वार—संज्ञा, पुं० [ सं० अन्तर्द्वार ] घर के भीतर का गुप्त द्वार। घर में आने जाने के लिये प्रधान द्वार के अतिरिक्त एक और द्वार। पीछे का दरवाजा। छिडकी। चोर दरवाजा।

अतर्धर्मा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तर्धर्मा ] १ अपवारण। २ सगोपन। आच्छादन [को०]।

अतर्धर्मान—वि० [ सं० अन्तर्धर्मान ] गुप्त। अदृश्य। अतर्हित। उ०—कैं हरिजू भए अतर्धर्मान। मोर्सी कहि तू प्रगट घखान।—सूर०, १।२८६।

अतर्धर्पण—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्धर्पण ] सगोपन। छिपाने या तिरोहित करने का कार्य [को०]।

अतर्धर्पित—[ सं० अन्तर्धर्पित ] सगोपित। छिपाया हुआ [को०]।  
अतर्धर्परा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तर्धर्परा ] वह प्रवाह जो बाह्य लक्षणों से व्यक्त न हो। आंतरिक धारा। उ०—वन जीवन के विषम देश की निर्मल अतर्धर्परा। जीवन का मृदु मर्म सींचतो रही अमृत रस द्वारा।—पार्वती०, पृ० २१।

अतर्धर्षि—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्धर्षि ] १ दो संघर्षशील राज्यों के बीच में पड़नेवाला राज्य। २ दे० 'अतर्धर्षि' [को०]।

अतर्धर्षानि—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्धर्षानि ] आंतरिक एवं गंभीर समाधि [को०]।

अतर्नगर—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्नगर ] राजा का प्रासाद या रईस का महल [को०]।

अतर्नयन—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्नयन ] दे० 'अतर्दृष्टि'। उ०—खोल अतर्नयन करती नित्य शिव का ध्यान।—पार्वती०, पृ० ८३।

अतर्नाद—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्नाद ] अंतरात्मा की पुकार। हृदय की आवाज।

अतर्निर्भरता—संज्ञा पुं० [ सं० अतर् + निर्भरता ] पारस्परिक निर्भरता। एक दूसरे का भरोसा या महारा। उ०—स्वाधीनता ध्येय नहीं, साधन मात्र है, ध्येय है अतर्निर्भरता तथा एकता।—रजत शि०, पृ० १२१।

अतर्निविष्ट—वि० [ सं० अन्तर्निविष्ट ] १ भीतर बैठे हुआ। अंदर रखा हुआ। २ अतर्करण में स्थित। मन में जमा हुआ। हृदय में बैठे हुआ।

क्रि० प्र०—करना = (१) भीतर बैठना। अंदर ले जाना। भीतर रखना। (२) मन में रखना। जी में बैठना। हृदयगत करना। दिल में जमाना।—होना = (१) भीतर बैठना। भीतर जाना। भीतर पहुँचना। (२) मन में धँसना। वित्त में बैठना। दिल में जमाना। हृदयगत होना।

अतर्निष्ठ—वि० [ सं० अन्तर्निष्ठ ] आत्मीय या विषयीगत (मज्जेवित्तव)। उ०—प्रेमचंद के लिये सब कुछ अपना ही है, जैनेंद्र का जो कुछ है अपना है। एक वहिर्निष्ठ और दूसरा अतर्निष्ठ।—प्रेम० गीर्का, पृ० २१७। २ आंतरिक चिंतन में लगा हुआ [को०]।

अतर्निहित—वि० [ सं० अन्तर्निहित ] विलीन। नमाविष्ट। उ०—उधर पगजित कालरात्रि भी जल में अतर्निहित हुई।—कामायनी, पृ० २३।

अतर्वाष्प—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्वाष्प ] दवाए गए अश्रु। रोका हुआ आँसू। निरुद्ध वाष्प [को०]।

अतर्वाष्प—वि० अश्रुमय [को०]।

अतर्वाध—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्वाध ] १ आत्मज्ञान। आत्मा की पहचान। २ आंतरिक अनुभव।

अतर्भवन—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्भवन ] घर का भीतरी भाग। अतर्गृह। अतर्भवन। उ०—छोड़ समा विलास श्री अतर्भवन निज किस विजन में।—पार्वती०, पृ० १४१।

अतर्भाव—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तर्भाव ] [ वि० अन्तर्भावित, अन्तर्भूत, संज्ञा अन्तर्भावित ] १ मध्य में प्राप्ति। भीतर समावेश। अतर्गत होना। शामिल होना।—उ० अन्य अर्थालंकारों का उपमा, दीपक और रूपक में अतर्भाव है। (अर्थात् अन्य अलंकार उपमा दीपक आदि के अतर्गत हैं)।—(शब्द०)। २ तिरोभाव। विलीनता। छिपाव। ३ नाश। अभाव। ४ आहूँ या जैन दर्शन में आठ कर्मों का क्षय जिससे मोक्ष होता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५ भीतर का भाव। आंतरिक अभिप्राय। आशय। मशा।

अतर्भावना—संज्ञा स्त्री० [ अन्तर्भावना ] १ ध्यान। मोक्ष विचार। चिंतन। चितवन। २ गुणफल के अतर् से सद्व्याप्तों को ठीक करना।

अतर्भावित—वि० [ सं० अन्तर्भावित ] १ अतर्भूत। अतर्गत। शामिल। भीतर। २ भीतर किया हुआ। छिपाया हुआ। लुप्त।

अतर्भूत—वि० [ सं० अन्तर्भूत ] शामिल। समाविष्ट। उ०—इन जातियों और इनकी समस्त आचार परंपरा को धीरे धीरे इन टीकाओं तथा ऋषियों के नाम पर लिखे गए नए नए स्मृति और पुराणग्रंथों में अतर्भूत किया गया।—हि० सा० भू०, पृ० १३।

अतर्भूत—वि० [ सं० अन्तर्भूत ] अतर्गत। शामिल। उ०—जिनके अतर्भूत हैं मुद्रावध समस्त।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० ३२।

अंतर्भूत<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० जीवत्मा। प्राण। जीव।

अंतर्भूमि—संज्ञा स्त्री० [ अंतर्भूमि ] पृथ्वी का भीतरी भाग। भूगर्भ।

अंतर्भेद—संज्ञा पुं० [ अंतर्भेद ] भीतरी मनमूटाव [ को० ]।

अंतर्भेदिनी—वि० [ सं० अंतर्भेदिनी ] हृदय का भेदन करनेवाली। भीतर तक पहुँचनेवाली। उ०—उसकी सर्वदंशिनी अंतर्भेदिनी आँखों से छिपी न रह सकी।—प० रानी, पृ० ८।

अंतर्भूमि—वि० [ सं० अंतर्भूमि ] जमीन के अंदर का। भूगर्भ में स्थित [ को० ]।

अंतर्मन—संज्ञा पुं० [ सं० अंतर्मन ] भीतरी मन। मन की भीतरी चेतना अवचेतन। उ०—(क) उस भरे पूरे वातावरण में रहने पर भी मेरा अंतर्मन वास्तव में भयकर सूनेपन का अनुभव करता रहता था।—प० रानी, पृ० ३६। (ख) अंतर्मन के भूमिकप से ध्वस भ्रष्ट हो। शिखर सनातन शिखर रहे हे मर्त्य धूल पर—युगपथ, पृ० ११०।

अंतर्मना—वि० [ सं० अंतर्मनस्, अंतर्मना ] १ व्याकुलचित्त। दबड़ या हुआ। विवश। २ उदस। रजोदा। ३. अतर्मुखी।

अंतर्मल—संज्ञा पुं० [ सं० अंतर्मल ] १ भीतर का मल। पेट के भीतर का मल। पेट के अंदर की अलाइश। २ चित्त-विकार। मन का दोष। हृदय की बुरी वामना।

अंतर्मुख<sup>१</sup>—वि० [ सं० अंतर्मुख ] [ स्त्री० अंतर्मुखी ] १ जिसका मुख भीतर की ओर हो। भीतर मुँहवाला। जिसका छिद्र भीतर की ओर हो। उ०—यह फोड़ा अति कठोर और अतर्मुख होता है।—अमृतसागर (शब्द०)। २ जिसकी वृत्ति अतर्मुख न हो। अपने ही विचारों और कल्पनाओं में तल्लीन रहनेवाला। उ०—‘वह अतर्मुख और आस्मरत था’।—मन्मा० चि०, पृ० १०।

अतर्मुख<sup>२</sup>—क्रि० वि०, भीतर की ओर प्रवृत्त। जो बाहर से हटकर भीतर ही लीन हो।

क्रि० प्र०—करना=भीतर की ओर ले जाना या घेरना। भीतर नियुक्त करना। उ०—अकामी पुष्प इद्रियो को हटाप अतर्मुख कर उनके द्वारा अपनी महिमा का साक्ष्य अनुभव करता है—कठ० उप० (शब्द०)।

अतर्मुद्र<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अंतर्मुद्र ] भक्ति का एक प्रकार [ को० ]।

अतर्मुद्र<sup>२</sup>—वि० भीतर से मुहरबंद [ को० ]।

अतर्भूत—वि० [ सं० अतर्भूत ] गर्भ के भीतर मरा हुआ (शिशु) [ को० ]।

अतर्भूत—वि० [ सं० अतर्भूत ] भीतर का। बीच का [ को० ]।

अतर्भूत—संज्ञा पुं० दे० ‘अतर्भूत’ [ को० ]।

अतर्भूत—संज्ञा पुं० [ सं० अतर्भूत ] भीतर का आवरण [ को० ]।

अतर्भूत—संज्ञा पुं० [ सं० अतर्भूत ] मानस यज्ञ या मानसिक पूजा [ को० ]।

अतर्भूत<sup>१</sup>—वि० [ सं० अतर्भूतमिन्, अतर्भूतमी ] [ वि० स्त्री० अतर्भूतमिनि ] १. भीतर की बात जाननेवाला। हृदय की बात का ज्ञान रखने वाला। उ०—(क) जो अतर्भूतमी, वही इसे जानेगा।—साकेत, पृ० २३३। (ख) किये तुमको अतर्भूतमिनि ! बतलाया उसका आना ?—वीणा, पृ०, ५८। २ अतर्भूत में स्थित होकर प्रेरणा करनेवाला। चित्त पर दबाव या अधिकार रखनेवाला।

३ भीतर तक पेटनेवाला। भीतर पहुँच रखनेवाला। उ०—चाण के सामुद्रिक अध्ययन का अतर्भूतमी सूत्र कुछ गहराई तक उनसे शास्त्र में पठने पर हमारे हाथ आया—हृष० पृ० २।

अतर्भूतमी<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० ईश्वर। परमात्मा। चैतन्य। परमेश्वर। पुरुष।

अतर्भूतमी<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अतर्भूतमी ] ध्यान। अखंड ध्यान [ को० ]।

अतर्भूतमी<sup>४</sup>—वि० दे० ‘अतर्भूतमी’, ‘अतर्भूतमी’। उ०—उनके काम करने के घटे और काम करने के नियम, भारत की आर्थिक व्यवस्था पर ध्यान रखते हुए, अतर्भूतमीय ढंग पर हों।—भा० वि०, पृ० ३६।

अतर्भूतमी<sup>५</sup>—यह शब्द संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध नहीं है।

अतर्भूतमी<sup>६</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अतर्भूतमी ] वह त्रिकोण क्षेत्र जिसके भीतर लंब गिरा हो।

अतर्भूतमी<sup>७</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० अतर्भूतमी ] वह पहली जिसका उत्तर उसी पहेल के अक्षरों में हो। उ०—(य) कौन जाति सीता रती, दर्द वीरन वहें तात। कौन प्रथ वरप्यो हरी, रामायण अवदात।—केशव (शब्द०)। इस दोहे में पहले पूछा है कि सीता कौन जाति थी ? उत्तर—रामा = रती। फिर पूछा कि उनके पिता ने उन्हें किसको दिया ? उत्तर ‘रामाय = राम को। फिर पूछा किम ग्रथ में हरण लिखा गया है। उत्तर द्वारा ‘रामायण’। (ख) चार महीने बहुत चलें ओ आठ महीने थोड़ी। अमीर खसरो यों वहें तू वृष पहली मारी।—(शब्द०)। इसमें ‘मारी’ शब्द ही उत्तर है।

अतर्भूतमी<sup>८</sup>—वि० [ सं० अतर्भूतमी ] १ मग्न। भीतर छिपा हुआ। सूया हुआ। गंका। विलीन। २. तन्मय। ध्यान में मग्न (को०)।

अतर्भूतमी<sup>९</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अतर्भूतमी ] अतर्भूत [ को० ]।

अतर्भूतमी<sup>१०</sup>—वि० [ अतर्भूतमी ] अतर्भूत या अतर्भूत का निरीक्षक [ को० ]।

अतर्भूतमी<sup>११</sup>—वि० सं० [ अतर्भूतमी ] वन के भीतर बसा हुआ [ को० ]।

अतर्भूतमी<sup>१२</sup>—वि० [ सं० अतर्भूतमी ] १ गर्भवती। अतर्भूतमी। गर्भिणी। हामिला। २ भीतरी। भीतर की। अंदर रहनेवाली। अतर्भूतमी।

अतर्भूतमी<sup>१३</sup>—वि० स्त्री० [ सं० अतर्भूतमी ] गर्भवती। गर्भिणी। हामिला। उ०—निज प्रिय पति के दिव्य तेज से अतर्भूतमी रानी।—पावती, पृ० ५१।

अतर्भूतमी<sup>१४</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अतर्भूतमी ] अजीर्ण [ को० ]।

अतर्भूतमी<sup>१५</sup>—पुं० [ सं० अतर्भूतमी ] किसी वग या समूह के भीतर का वग [ को० ]।

अतर्भूतमी<sup>१६</sup>—वि० [ सं० अतर्भूतमी ] [ वि० स्त्री० अतर्भूतमी ] भीतरी। भीतर का। अंदर रहनेवाला [ को० ]।

अतर्भूतमी<sup>१७</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० अतर्भूतमी ] किसी पुस्तक, पाठ, पेटी आदि के भीतर की वस्तु [ को० ]।

अतर्भूतमी<sup>१८</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अतर्भूतमी ] ऊपरी वस्त्र के अंदर पहनने का कपड़ा [ को० ]।

अतर्भूतमी<sup>१९</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अतर्भूतमी ] शास्त्रज्ञ। पंडित। शास्त्रवेत्ता। शास्त्रों का जाननेवाला। विद्वान्।

अतर्वर्त्य—सखा श्री० [ सं० अन्तर्वर्त्य ] हृदयस्थ वस्तु । प्राणवायु ।  
उ०—अतर्वर्त्य निराध पूर्यंत कर रत अविरत तप,  
मे ।—पार्वती०, पृ० १२१ ।

अतर्वर्ण<sup>१</sup>—सखा पु० [ अतर्वर्ण ] दे० 'अतर्वर्ण' [को०] ।

अतर्वर्ण<sup>२</sup>—वि० आसू से भरा । अश्रुपूरित [को०] ।

अतर्वर्ण—सखा पु० [ सं० अन्तर्वर्ण ] दे० 'अतर्वर्ण' [को०] ।

अतर्वर्णक—सखा पु० [ सं० अन्तर्वर्णक ] भीतर पहना जानेवाला वस्त्र ।

अतर्वर्णक । उ०—(क) फिर चाहे आप विपिटक में ही प्रमाण  
क्यों न दें कि बिना अतर्वर्णक, चीवर इत्यादि के भारत का  
कोई भी भिक्षु नहीं रहता था, पर वे कब माननेवाले ।—

आधी, पृ० ८ । (ख) तरुणी का घुटने तक लटकनेवाला  
अतर्वर्णक हवा में फड़फड़ा रहा था ।—वे० न०, पृ० १३६ ।

अतर्विकार—श्री० पु० [ सं० अन्तर्विकार ] शरीर का धम । मन का  
शरीर सबधी अनुभव, जैसे भूख, प्यास, पीडा इत्यादि ।

अतर्विद्रोह—सखा पु० [ सं० अन्तर्विद्रोह ] विद्रोह । गृहयुद्ध । उ०—  
तात । विपत्तियों के वाशल फिर रहे हैं, अतर्विद्रोह की ज्वाला  
प्रज्वलित है, इस समय मैं केवल एक सैनिक बन सकूंगा, सभाट  
नहीं ।—स्कंद०, पृ०, ७६ ।

अतर्विरोध—सखा पु० [ सं० अन्तर्विरोध ] आंतरिक विरोध ।  
भीतरी झगडा । उ०—आर्य साम्राज्य के अतर्विरोध और  
दुर्बलता को आक्रमणकारी अली भाति जान गए हैं ।—स्कंद०,  
पृ० ७० ।

अतर्वृत्ति—सखा श्री० [ सं० अन्तर्वृत्ति ] मनोवृत्ति । आंतरिक  
प्रवृत्ति । उ०—जो वक्ता रमणी के रूपमाधुर्य में हमें तृप्त  
करती है वही उसकी अतर्वृत्ति की सुदरता का आभास देकर  
हमें मुग्ध करती है ।—रस०, पृ० ३१ ।

अतर्वेग—सखा पु० [ सं० अन्तर्वेग ] मनोवेग । मनोविकार । [ अ०  
इमोशन ] उ०—परंतु मनोविज्ञान में बलामीमांसा सबधी अत-  
र्वेग जैसे मानसिक ताव का कोई स्थान नहीं है ।—पा० सा०  
सि०, पृ० २०० । २ भीतरी ज्वर ( वेद्यक ) ।

अंतर्वेगी ज्वर—सखा पु० [ सं० अन्तर्वेगी ज्वर ] एक प्रकार का ज्वर  
जिसमें भीतर दाह, प्यास, चक्कर, सिर में दर्द और पेट में  
शूल होता है । इसमें रोगी को पसीना नहीं आता और न दस्त  
होता है । इसे कण्टज्वर भी कहते हैं ।

अतर्वेद—सखा पु० [ सं० अन्तर्वेदि ] [ वि० अतर्वेदी ] १ देश जिसके  
अतर्गत यज्ञों की वेदियाँ हो । २ गंगा और यमुना के बीच  
का देश । गंगा यमुना के बीच का दोआब । ग्रहावर्त देश ।  
उ०—तुम आज से अतर्वेद के विषयपति नियत किए गए ।—  
स्कंद०, पृ० ८१ । ३ दो नदियों के बीच का देश या भूखंड ।  
दोआब ।

अतर्वेदना—सखा श्री० [ सं० अन्तर्वेदना ] आंतरिक व्यथा । भीतरी दुःख  
या पीडा । उ०—कथा यह सारी अतर्वेदना इसी विलासप्रेम के  
कारण है ।—काया०, पृ० ५२० ।

अतर्वेदि—वि० [ सं० अन्तर्वेदि ] दे० 'अतर्वेदी' [को०] ।

अतर्वेदी<sup>१</sup>—वि० [ सं० अन्तर्वेदीय ] अतर्वेद का निवासी । गंगा यमुना  
के बीच के देश में रहनेवाला । गंगा यमुना के दोआब में बसने-  
वाला ।

अतर्वेदी<sup>२</sup>—सखा श्री० गंगा यमुना के बीच की भूमि या वन । ग्रहावर्त  
देश ।

अतर्वेध—सखा पु० [ सं० अन्तर्वेध ] भीतर की गंठ या जठ में होने  
वाला दद [को०] ।

अंतर्वेधिक—सखा पु० [ सं० अन्तर्वेधिक ] अश्रु वा रक्षक । जनक-  
पान की रगवाली कसने वाला । नाजाउर ।

अतर्वेधम—सखा पु० [ सं० अन्तर्वेधम ] भीतरी घबराहट । गृह का भीतरी  
हिंसा [को०] ।

अतर्वेधिमक—सखा पु० [ अन्तर्वेधिमक ] य । पुत्र का भीतरी अक । अन्त-  
र्वेधिक [को०] ।

अतर्व्याधि—श्री० [ सं० अन्तर्व्याधि ] भीतर की व्याधि । आन्तरिक  
रोग [को०] ।

अतर्व्रण—सखा पु० [ सं० अन्तर्व्रण ] भीतर के भीतर होनेवाला  
फोटा [को०] ।

अतर्हस्त—वि० वि० [ सं० अन्तर्हस्त ] गंगा में । राज्य की पहें के  
भीतर [को०] ।

अतर्हस्तीन—वि० [ सं० अन्तर्हस्तीन ] जो गंगा की पहें के भीतर हो  
या जो उत्तरगत हो [को०] ।

अतर्हास—सखा पु० [ सं० अन्तर्हास ] भीतरी हँसी । भीतर ही भीतर  
हँसना । मन ही मन की हँसी । अनाट हास । गूट हास ।

अतर्हित—वि० [ सं० अन्तर्हित ] विरहित । अनर्ह । गुप्त । गायर ।  
छिपा हुआ । अदृश्य । अलक्ष्य । गुप्त ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना = अगच्छानि होना । उ०—अग्नि विधि  
हित तुम्हारे में ठहरा । वहि अग्न अग्नित प्रभु भवतु ।—तुलसी  
( शब्द० ) ।—रहना = गायर या गुप्त रहना । छिपा हुआ  
रहना । उ०—'गुप्त प्रवृत्ति का अतर्हित रहती है' ।—रस०,  
पृ० १७५ ।

अतर्हृदय—सखा पु० [ सं० अन्तर्हृदय ] हृदय का भीतरी हिस्सा  
[को०] ।

अतर्लघु—सखा पु० [ सं० अन्तर्लघु ] १ छंद का वह चरण जिसके  
अतर् में लघुवर्ण या मात्रा हो । २ वह शब्द जिसका अन्तिमवर्ण  
लघु हो ।

अतर्लीन—वि० [ सं० अन्तर्लीन ] छिपा हुआ [को०] ।

अतर्लोप—वि० [ सं० अन्तर्लोप ] ( शब्द ) जिसका अन्तिम अक्षर लुप्त  
हो ( व्या० ) [को०] ।

अतर्लवत—वि० [ सं० अन्तर्लवत, अन्तर्लवत ] नष्ट या समाप्त होनेवाला ।  
मरणधर्मा । विनाशी । उ०—अतर्लवत तम की माया वह सतत  
क्यों ठहरे ।—अपलक, पृ० १०४ ।

अतर्लवर्ण<sup>१</sup>—सखा पु० [ सं० अन्तर्लवर्ण ] ? वर्ण का अन्तिम अक्षर । पचम  
वर्ण, जैसे, ट, ल, ए, न, म आदि [को०] । २. शूद्र ।

अतर्लवर्ण<sup>२</sup>—वि० अन्तिम वर्ण का । चतुर्थ वर्ण का ।

अतर्लवर्ण<sup>३</sup>—सखा पु० [ सं० अन्तर्लवर्ण ] प्रत्यय की अग्नि [को०] ।

अतर्वासी<sup>१</sup>—सखा पु० [ सं० अन्तर्वासी ] दे० 'अतर्वासी' [को०] ।

अतर्वासी<sup>२</sup>—वि० १. सीमात पर रहनेवाला । २. समीप रहनेवाला  
[को०] ।



अतविदारण—सद्वा पु० [सं अतविदारण] सूर्य और चन्द्रग्रहण के जो दस प्रकार के मोक्षमाने गए हैं उनमें से एक।

विशेष—इसमें चन्द्रमा के चारों ओर निर्मलता और मध्य में गहरी श्यामता होती है। इससे मध्य देश की हानि और शरद् ऋतु (वृश्चर) की खेती का विनाश बराहमिहिर ने माना है।

अतवेला—सद्वा स्त्री० [सं अतवेला] अतकाल। अत समय [को०]।

अतव्याप्ति—सद्वा स्त्री० [अतव्याप्ति] किसी शब्द के अंतिम अकार का परिवर्तन, जैसे—'मिह' का 'मघ' [को०]।

अतशय्या—सद्वा स्त्री० [सं अतशय्या] १ नमिशय्या। २ मृत्यु-शय्या। मरनमेज। मरनखाट। ३ धमशन। मसान। मरघट ४ मरण। मृत्यु। ५ चित्ता [को०]।

अतश्—'अतर्' वि० [सं] शब्द का कुछ स्थितियों में परिवर्तित रूप।

अतश्चेतन—सद्वा पु० [सं अतश् + चेतन] मन का वह भाग (मृत्युत दबी हुई इच्छाओं आदि से युक्त) जो बाह्य अनुभूति में न आ सके। उ०—ऊर्ध्व से चेतन मनोविज्ञान से आगे बढ़कर उपचेतन और अतश्चेतन मनोविज्ञान की ओर पहुँचें हैं, तब से नास्तिकों के लिये नई दृष्टियाँ प्रस्तुत करने का बहुत बड़ा क्षेत्र खुल गया है।—न० सा० न० प्र०, पृ०, १८।

अतश्चेतन—वि० आत्म चेतना या दिव्य प्रेरणा से युक्त। उ०—ऊर्ध्व मुक्त, अतश्चेतन बन जाना जन मन।—रजत शि०, पृ० ७०।

अतश्चेतना—सद्वा स्त्री० [सं अतश् + चेतना] अतश्चेतन की अनुभूति। आत्मचेतना। दिव्य प्रेरणा। उ०—रजत शिखर मनुष्य की अतश्चेतना का शुभ्र प्रतीक है।—रजत शि०, (भू०) पृ० ३।

अतश्छद—सद्वा पु० [सं अतश् + छद] १ भीतरी तल। २ भीतरी आच्छादन। ३ मिह्राव के नीचे का तल।

अतश्छिच्छद—सद्वा पु० [सं अतश्छिच्छद] भीतरी छेद या अदरुनी सुराख [को०]।

अतश्छिच्छन्न—वि० [सं अतश्छिच्छन्न] भीतर कटा हुआ [को०]।

अतस्—सद्वा पु० [सं अतस्] अनकरण। मन। हृदय। चित्त। मानस। उ०—(क) तुही मानव देव दान सिधान। तुही कोटि ब्रह्मादि अतस् समान।—पृ० २१०, २। २०५। (ख) काया की न छाया यह केवल तुम्हारी, द्रुम। अतस् के मर्म का प्रकाश यह छाया है।—रस०, पृ० १६।

अतस्—वि० 'अतर्' शब्दक। समासगत रूप, जैसे, अतस्तल, अतस्तप आदि में।

अतसश्लेष—सद्वा पु० [सं अतसश्लेष] सधि। जाड [को०]।

अतसत्क्रिया—सद्वा स्त्री० [सं अतसत्क्रिया] अंतिम सत्कार अंतिम सत्कार [को०]।

अतसद्—सद्वा पु० [सं अतसद्] शिष्य। चेला।

अतसमय—सद्वा पु० [सं अतसमय] मृत्युकाल। मरणकाल।

अतस्तप्त—वि० [सं अतस्तप्त] १ भीतर भीतर तपा हुआ। २ खिन्न। सतप्त [को०]।

अतस्तल—सद्वा पु० [सं अतस्तल] १ मन हृदय। चित्त। उ०—उठती अतस्तल से सदैव दुर्ललित लालसा जो कि कात।—

कामायनी, पृ० १४०। २. मन का भीतरी तल या भीतरी तह। उ०—परजो हृदय के अतस्तल पर मामिक प्रभाव चाहते हैं, किसी भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर अपना मन मग्न रखना चाहते हैं, उनका सतोप विहारी से नहीं हो सकता।—इतिहास, पृ० २५१।

अतस्ताप—सद्वा पु० [सं अतस्ताप] मानसिक व्यथा। आधि। चित्त का सताप। आंतरिक दुःख। भीतरी खेद। उ०—असुरों के घोता पद सागर निज मर्यादा छोड़। अतस्ताप दग्ध बड़बा सा करता करणम क्रोड।—पार्वती, पृ० १०१।

अतस्तुषार—सद्वा पु० [सं अतस्तुषार] ओस की बूंद से युक्त [को०]

अतस्तोय—वि० [सं अतस्तोय] जल से भरा हुआ (बादल) [को०]।

अतस्त्य—सद्वा पु० [सं अतस्त्य] आँत। अँतड़ी [को०]।

अंतस्थ—वि० [सं अतस्त्य] १ भीतर स्थित। भीतरी। २ बीच में स्थित। मध्य का मध्यवर्ती। बीचवाला। ३ 'य, र, ल, व' ये चारों वर्ण अतस्थ कहलाते हैं क्योंकि इनका स्थान स्पर्श और ऊष्म वर्णों के बीच में है।

'अतस्थ'—सद्वा पु० स्पर्श और ऊष्म वर्णों के बीच रहनेवाले 'य, र, ल, व' वर्ण।

अतस्थल—सद्वा पु०, [सं अतस्थल] अतकरण। उ०—आज उन्होंने विवेक के प्रकाश में अपने अतस्थल को देखा।—काया०, पृ० १६६।

अतस्था—सद्वा पु० [सं अतस्था] दे० अतस्थ<sup>२</sup>।

अतस्थित—वि० [सं अतश् + स्थित] १ भीतर स्थित। भीतरी। २ हृदयस्थित। हृदय का। चित्त के भीतर का। अनकरण का।

अतस्तान—सद्वा पु० [सं अतस्तान] अवभृथ स्नान। वह स्नान जो यज्ञ समाप्त होने पर किया जाता है।

अतस्सज्ञा—सद्वा स्त्री० [सं अतस् + सज्ञा] मन या बुद्धि की वह क्रिया जो अभी तक प्रत्यक्ष अनुभव में स्पष्ट न हुई हो। उ०—उदय से अस्त तक भावमंडल का कुछ भाग ता आश्रय की चेतना के प्रकाश (काशस) में रहता है और कुछ अतस्सज्ञा के क्षेत्र (सर्व काशस रोजन = अवचेतन) में छिपा रहता है।—रस०, पृ० ६५।

अतस्सत्ता—सद्वा स्त्री० [सं अतस् + सत्ता] आंतरिक सत्ता। अतकरण। चेतना। उ०—हमारी अतस्सत्ता की यही तदाकार परिणति सौंदर्य की अनुभूति है।—रस०, पृ० २६।

अतस्सलिल—वि० [सं अतस्सलिल] [स्त्री० अतसलिला] जिसके जल का प्रवाह बाहर न दिखाई पड़े, भीतर हो। उ०—अतस्सलिला सरस्वती (शब्द)।

अतस्सलिला—सद्वा स्त्री० [सं अतस्सलिला] १ सरस्वती नदी। २ फलू नदी।

अतस्साधना—सद्वा स्त्री० [सं अतस् + साधना] आंतरिक साधना। गुप्त साधना। उ०—हृदयपक्षानुसृत सामान्य अतस्साधना का मार्ग निकालने का प्रयत्न नाथपंथी कर चुके थे, यह हम कह चुके हैं।—इतिहास, पृ० ६४।

अतस्सार—सद्वा पु० [सं अतस्सार] १ आंतरिक मार। तत्व। २. ठोसपन। ३. मन, बुद्धि और अहंकार का योग। ४. अतरात्मा [को०]।



अतहर्कणं—संज्ञा पुं० दे० 'अतः हरण' । उ०—सुंदर हरि के भजन  
तैं निर्मल अतहर्कण ।—सुंदर प्र०, पृ० ६७६ ।

अतहपुर—संज्ञा पुं० दे० 'अतः पुर' । उ०—(क) पृष्ठत पृष्ठत ग्यो  
अतहपुरि । हुआ सुंदरसण तग्यो हरि ।—पेलि, दू० ५२ ।  
(ख) उठिब नृपति दीवान तैं, अतहपुर में जाय ।—प० रासो,  
पृ० ६८ ।

अतहार—संज्ञा पुं० [ सं० अन्त्र + हार ] आँतों की माला । आँत का  
हार । उ०—करि अगाराग चरवी वसा अतहार आभार दिय ।—  
सुजान च०, पृ० २३ ।

अताराष्ट्रिय—वि० [ सं० अन्तर + राष्ट्रिय ] दो या दो से अधिक राष्ट्रो  
से संबध रखनेवाला ।

अताराष्ट्रीय—वि० [ सं० अन्ताराष्ट्रीय ] दो या दो से अधिक राष्ट्रों से  
संबध रखनेवाला ।

अताल—संज्ञा पुं० [ सं० अन्ताल ] आँत । अँटोही ।—परि कूरु सु  
कूक, डक्कन दुक, गिद्ध गहूक अताल ।—पृ० रा०, २१६० ।

अतावरि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अतावरी' ।

अतावरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्त्र + अवली ] अंतडियाँ आँतों का  
समूह ।—अतावरी गहि उडन गीघ पिमाच कर गहि  
धावही ।—मानस, ३११ ।

अतावशायी—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तावशायी ] १ गाम की सीमा के बाहर  
वसनेवाला । २ प्राचीन काल में अस्पृश्य कहें जानेवाले वर्गों  
जैसे-चाटाल ।

अतावसायी—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तावसायी ] १ नाई । हज्जाम । २  
हिंसक । चाडाल ।

अतित—वि० [ सं० अत्यन्त ] दे० 'अत्यन्त' । उ०—पुच्छन मुवा  
बुल्यो बलिय । करि मु चित अतित चित । पृ० रा०, ११७७ ।

अति<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्ति ] बड़ी बहन [ को० ] ।

अति<sup>२</sup>—वि० [ सं० अन्तिक, प्रा० अन्ति ] १ समीप । निकट । उ०—  
खड़े अति चहुवान के बँत बोले ।—पृ० रा०, पृ० ८५ । २.  
अत मे । उ०—जु वछु तत को मत अति कहि कहि समभायो ।  
—पृ० रा०, ६७।४५५ ।

अति<sup>३</sup>—दे० 'अत्यत' । उ०—सहस मात हय पेत रहि परे पच से  
दति, लुथिय कोस पचह प्रचर परे सु पाइल अति ।—पृ० रा०,  
१६।२४४ ।

अतिक<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तिक ] १ पड़ोस । २ निकटता । सामीप्य  
[ को० ] ।

अतिक<sup>२</sup>—वि० १ पास । २ निकट । समीप [ को० ] ।

अतिकता—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तिकता ] सामीप्य । निकटता [ को० ] ।

अतिकस्थ—वि० [ सं० अन्तिकस्थ ] निकटस्थ । पास या समीप पहुँचा  
हुआ [ को० ] ।

अतिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तिका ] १ अति । बड़ी बहन । २ चूल्हा ।  
भट्ठी । ३ एक पीछा । आतला [ को० ] ।

अतिकाल—संज्ञा पुं० दे० 'अनकाल' । उ०—गुर परमादे भिण्या  
पाइवा, अतिकालि न होइगी भारी ।—गारख०, पृ० ३७ ।

अतिकाश्रय—संज्ञा पुं० [ अन्तिकाश्रय ] समीपस्थ का सहारा या अवल-  
वन [ को० ] ।

अतिज—संज्ञा पुं० दे० 'अत्यज' । उ०—वहि जा अह देह अन्तिमानो ।  
चारि वर्ण अतिज लो प्र नो ।—सुंदर प्र०, पृ० १, पृ० ३७४ ।

अतिम—वि० [ सं० अन्तिम ] १ जा अन्त में हो । अन्त का । आखिरी ।  
मयमे पिछला । मयके पीछे का । २ चरम । मयघ घट के ।  
हृद दर्जे का ।

अन्तिम यात्रा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्तिम यात्रा ] महायात्रा । महा  
प्रस्थान । आखिरी नगर । अन्तान । मृत्यु । मरण । मौत ।  
मृत्यु के पीछे उस स्थान तक जो यात्रा की यात्रा जहाँ अपने  
कर्मनुसार उगे रहकर वर्णों का कृत भोगना पड़ता है ।

अन्तिमाक—स्त्री० पुं० [ सं० अन्तिमाक ] नौ की नद्या [ को० ] ।

अन्तिमेत्यम्—[ अ० 'अन्तिमेत्यम्' का हिंदीकरण ] आखिरी चैतावनी ।

अन्ती—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्ती ] आँत । उ०—ठरे मूर अन्ती नदामावरी  
वहै भूमि छली नु भाँध्य बस्ती ।—पृ० रा०, ६६ । १०४७ ।

अन्ते—वि० [ सं० अन्ते ] दे० 'अन्त' । उ०—अधर मस्त पर  
बैठ्य पायो, अन्ते जाय बनाय ।—गुलशन, पृ० ३८ ।

अन्तेउर—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तपुर, प्रा० अन्तेउर; अन्तेउर ] घर के  
भीतर का भाग जिसमें स्त्रियाँ रहती हैं । अन्तपुर । अन्त-  
स्थान । अन्तिम । उ०—नीजइ फेरइ फेरिइ गय । गगनउ  
अन्तेउर नीजइ रे बुनाइ ।—वीरत० रा० पृ० ८५ ।

अन्तेवर—संज्ञा पुं० दे० 'अन्तेउर' । उ०—दूजइ फेरी जव फेरइ  
गय, नहु अन्तेवर तियो बालाइ ।—वी० रा०, पृ० २३ ।

अन्तेवासि—संज्ञा पुं० दे० 'अन्तेवामी' । उ०—गोपालानाथ भरो  
पुनि उन अन्तेवामि ।—अननद, पृ० ६०८ ।

अन्तेवासी—संज्ञा पुं० [ सं० अन्तेवासी ] १ घर के समीप रहनेवाला ।  
शिष्य । चेला । २ ग्राम के बाहर रहनेवाला । चाटान ।  
अत्यज । उ०—आचार्य और अन्तेवामी प्रयत्न पढ़ने और पढ़ने-  
वाले दोनों ही उस आदर्श से प्रेरित होते हैं ।—पारिणि०,  
पृ० २६८ ।

अत्य<sup>१</sup>—वि० [ सं० अत्य ] अतः । अन्तिम । आखिरी । मयमे पिछला ।  
यों—अत्यजन्मा, अत्यजानि, अत्यजातीय । अन्तिम वर्ण का ।

अत्य<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० वह जिसकी गणना अतः में हो, जैसे—१ लोगों में  
मीन । २ नक्षत्रों में रेवती । ३, वर्णों में शूद्र और ४  
अक्षरों में 'ह' । ५ एक सय । पक्ष की नद्या । दस मास  
की सख्या (१०००, ००० ०००, ०००, ०००) दस करोड़ करोड़ ।  
६ यम [ को० ] ।

अत्यक—संज्ञा पुं० [ सं० अत्यक ] अन्तिम वर्ण या मन्त्य । अत्यज  
[ को० ] ।

अत्यकर्म—संज्ञा पुं० [ सं० अत्यकर्मन् ] अत्येष्टि क्रिया ।

अत्यक्रिया—संज्ञा स्त्री० [ सं० अत्यक्रिया ] अत्यकर्म । अत्येष्टि [ को० ] ।

अत्यगमन—संज्ञा पुं० [ सं० अत्यगमन ] सर्वार्थ जाति की स्त्री या अस्-  
वर्ण जातिवाले पुरुष के साथ रहवास [ को० ] ।

अत्यज—संज्ञा पुं० [ सं० अत्यज ] [ वि० स्त्री० अत्यजा ] वह व्यक्ति जो  
अन्तिम वर्ण में उत्पन्न हुआ हो । वह शूद्र जो प्राचीन युग में छने  
के योग्य नहीं माना जाता था या जिसका छुआ हुआ जल छिड़  
उन दिनों ग्रहण नहीं करते थे, जैसे—घोड़ी, चमार नट बसठ,  
डोम, भेद, भिल्ल इत्यादि ।

यो०—अत्यजगमन = सवर्ण जाति की स्त्री का असवर्ण जातिवाले पुरुष के साथ यौन सवध ।

अत्यजन्मा—वि० [ स० अत्यजन्मा ] अत्य जाति का । निम्न जातीय [ को० ] ।

अत्यजा—संज्ञा स्त्री० [ स० अत्यजा ] शूद्रा । अतिम वर्ण में उत्पन्न स्त्री [ को० ] ।

यो०—अत्यजागमन = सवर्ण जाति के पुरुष का असवर्ण जाति की स्त्री के साथ यौन सवध ।

अत्यजाति—वि० [ स० अत्यजाति ] अतिम जाति का । निम्न जाति का [ को० ] ।

अत्यजातीय—वि० [ स० अत्यजातीय ] दे० 'अत्यजाति' [ को० ] ।

अत्यधन—संज्ञा पुं० [ स० अत्यधन ] गणना की अतिम राशि [ को० ] ।

अत्यपद—स्त्री० पुं० [ स० अत्यपद ] अतिम या सवर्ण बड़ा वर्गमूल । अत्यमूल (गणित) [ को० ] ।

अत्यभ—संज्ञा पुं० [ स० अत्यभ ] १ अतिम नक्षत्र अर्थात् रेवती । २ मीन राशि ।

अत्यमद—संज्ञा पुं० [ स० अत्यमद ] मदात्यय रोग का एक भेद ।

विशेष—इसमें रोगी बड़ों वातिरम्भ करता है, न खाने योग्य चीजों को खाता है और उसके मन में जो गुप्त बातें होती हैं उन्हें प्रकट करने लगता है । मदात्यय तीन प्रकार का होता है । पूर्वमद, मध्यमद और अत्यमद । —मा० नि०, पृ० ११५ ।

अत्यमूल—संज्ञा पुं० [ स० अत्यमूल ] दे० 'अत्यपद' ।

अत्ययुग—संज्ञा पुं० [ स० अत्ययुग ] गणनाक्रम से युगो अतः में आनेवाला युग । कलियुग ।

अत्ययोनि—संज्ञा स्त्री० [ स० अत्ययोनि ] अतिम या निम्न योनि [ को० ] ।

अत्ययोनि—निम्न योनि का [ को० ] ।

अत्यलोप—संज्ञा वि० [ स० अत्यलोप ] किसी शब्द के अतिम वर्ण या अक्षर का लोप ( भा० वि० ) ।

अत्यवर्ण—संज्ञा पुं० [ स० अत्यवर्ण ] १. अतिम वर्ण । शूद्र । २. अतः का वर्ण 'ह' । ३. पद के अतः में आनेवाला कोई भी वर्ण या अक्षर ।

अत्यविपुला—संज्ञा स्त्री० [ स० अत्यविपुला ] आर्या छंद का एक भेद ।

विशेष—इसके दूसरे छंद के प्रथम तीन गणों तक चरण पूर्ण नहीं होता और दोनों छंदों में दूसरा और चौथा गण जगण होता है । इसे अत्यविपुला महाचपला, अत्यविपुला जघनचपला या अत्यविपुला मुखचपला भी कहते हैं ।

अत्यविराम—संज्ञा पुं० [ स० अत्यविराम ] अतः का या अतिम विराम । उ०—गिरजाकुमार माधुर अत्यविराम रहित पत्तियों के मुक्त छंद को काव्य के लिये बहुत उपयुक्त मानते हैं । —हि० का० श्रि० प्र०, पृ० २६१ ।

अत्या—संज्ञा स्त्री० [ स० अत्या ] चाडाली । चाडाल की स्त्री । चाडालिनी ।

अत्याक्षर—संज्ञा पुं० [ स० अत्याक्षर ] १ किसी शब्द या पद के अतः का अक्षर । २ वर्णमाला का अतिम वर्ण 'ह' ।

अत्याक्षरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अत्यक्षर + हि० अक्षरी ] किसी कहे हुए श्लोक या पद्य के अंतिम अक्षर से आरंभ होनेवाला दूसरा श्लोक या पद्य पढ़ना । किसी श्लोक या पद्य के अतिम पद के अत्यक्षर से दूसरे श्लोक या पद्य का आरंभ ।

विशेष—विद्यार्थियों में इसकी चाल है । एक विद्यार्थी जब एक श्लोक या पद्य पढ़ चुकता है तब दूसरा उस श्लोक के अतिम अक्षर में आरंभ होनेवाला दूसरा श्लोक या पद्य पढ़ता है । फिर पहला उस दूसरे विद्यार्थी के कहे हुए पद्य का अंतिम अक्षर लेता है और उससे आरंभ होनेवाला एक तीसरा पद्य पढ़ता है । यह क्रम बहुत देर तक चलता है । अतः में जो विद्यार्थी श्लोक या पद्य न पाकर चुप हो जाता है, उसकी हार मानी जाती है ।

अत्यानुप्रास—संज्ञा पुं० [ स० अत्यानुप्रास ] पद्य के एक चरण के अतिम अक्षर और पूर्ववर्ती स्वर का किसी अन्य चरण के अंतिम अक्षर और पूर्ववर्ती स्वर से मेल । पद्य के चरणों के अतिम अक्षरों का मेल । तुक । तुकबंदी । तुकात । उ०—श्रुतिकटु मानकर, कुछ वर्षों का त्याग, वृत्तिविधान, लय, अत्यानुप्रास आदि नाद-सौंदर्य-साधन के लिये ही है । —रस०, पृ० ४६ ।

विशेष—जैसे, सिय सोभा किमि कहीं दखानी । गिरा अनयन नयन विन दनी । —तुलसी (शब्द०) । इस चौपाई के दोनों चरणों का अतिम अक्षर 'नी' है । हिंदी कविता में ५ प्रकार के अत्यानुप्रास मिलते हैं । ( १ ) सर्वात्य, जिसके चारों चरणों के अतिम वर्ण एक हो । उ०—न ललचहु । सब तजहु । हरि भजहु । यम करहु । (शब्द०) । ( २ ) समात्य विपमात्य, जिसके सम से सम और विपम से विपम के अत्याक्षर मिलते हैं । उ०—जिहि सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवर बदन । करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धिराशि श्म गुणसदन । —तुलसी (शब्द०) । ( ३ ) समात्य जिसके सम चरणों के अत्याक्षर मिलते हैं विपम के नहीं । उ०—सब तो । शरणा । गिरिजा । रमणा (शब्द०) । ( ४ ) विपमात्य, जिसके विपम चरणों के अत्याक्षर एक हो, सम के नहीं । उ०—लोमिहि प्रिय जिमि दाम, कामिहि नारि पियारि जिमि । तुलसी के मन राम, ऐसे हूँ बव लागि हौं । —तुलसी (शब्द०) । ( ५ ) समविपमात्य, जिसके प्रथम पद का अत्याक्षर द्वितीय पद के अत्याक्षर के समान हो । उ०—जगो गुपाल । सुभोर काल । बहूँ यसोदा । लहै प्रमोदा (शब्द०) ।

अत्यावसायी—संज्ञा पुं० [ स० अत्यावसायिन् ] [ स्त्री० अत्यावसायिनी ] १ हिंदुओं की प्राचीन जातिव्यवस्था के अनुसार अत्यंत नीच जाति का व्यक्ति । चाडाल । मनु के अनुसार निषाद स्त्री और चाडाल पुरुष से उत्पन्न व्यक्ति । २ अगिरा के अनुसार चाडाल, श्वपच, क्षत्ता, सूत, वैदेहक, मागध और अयोगव ये सात जातियाँ ।

अत्याश्रम—संज्ञा पुं० [ स० अत्याश्रम ] अतिम आश्रम । ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास—इन चारों आश्रमों में अतिम । सन्यासाश्रम [ को० ] ।

अत्याश्रमी—वि० [ सं० अत्याश्रमिन् ] अतिम आश्रम मे स्थित ।  
सन्यास आश्रमवाला [ को० ] ।

अत्याश्रमी—संज्ञा पुं० अतिम आश्रम का व्यक्ति । मन्यासी [ को० ] ।  
अत्याहुति—संज्ञा स्त्री० [ सं० अत्याहुति ] यज्ञ या चिता की अतिम  
आहुति [ को० ] ।

यौ०—अत्याहुति क्रिया = अत्येष्टि कर्म ।

अत्येष्टि—संज्ञा पुं० [ सं० अत्येष्टि ] मृतक का शवदाह से सर्पिडन तक  
कर्म । क्रिया कर्म । अत्यक्रिया । उ०—अतिम समय मे यमूना  
और घटी रूपी सौभाग्य देव्याँ विजय की अत्येष्टि का प्रवध  
करती हैं ।—काल, पृ० १०५ ।

यौ०—अत्येष्टि क्रिया = मृतक का शवदाह आदि कर्म । अत्येष्टि ।  
उ०—महादेवी की अत्येष्टि क्रिया राजसमान से होनी चाहिए ।  
—स्कंद०, पृ० ११५ ।

अन्नधमि—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्नधमि ] अजीर्ण । अपच । पेट का फूलना ।  
वायु के कारण पेट का फूलना [ को० ] ।

अन्न—संज्ञा पुं० [ सं० अन्न ] अंत, अंतर्ही । रोघा ।

अन्न<sup>७</sup>—संज्ञा पुं०, कही कहीं 'अतर' का अपभ्रंश । जैसे 'अन्नध्यान'  
मे 'अन्न' ।

अन्नकूज—संज्ञा पुं० [ सं० अन्नकूज ] दे० 'अन्नकूजन' [ को० ] ।

अन्नकूजन—संज्ञा पुं० [ सं० अन्नकूजन ] अंतो का शब्द । अंतर्द्वियों की  
गुड़गुडाहट अंतर्द्वियों की कुड़कुडाहट ।

अन्नध्यान<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'अतर्ध्यान' । उ०—इम कहिय ईस हुअ  
अन्नध्यान, जगयौ राज भौ वर विहान ।—पृ० रा० ६६।१६६६ ।

अन्नपाचक—संज्ञा पुं० [ सं० अन्नपाचक ] एक श्लेष्मणोपयोगी क्षुप जिसके  
छाल, सार और निर्याम का प्रयोग होता है [ को० ] ।

अन्नवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्नवल्लिका ] महिषवल्लिका [ को० ] ।

अन्नवल्ली—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्नवल्ली ] सोमवल्ली लता [ को० ] ।

अन्नविकूजन—संज्ञा पुं० [ सं० अन्नविकूजन ] दे० 'अन्नकूजन' [ को० ] ।

अन्नवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्नवृद्धि ] अंत उतरने का रोग । अंत का  
उतरकर अंडकोश मे चले जाना ।

अन्नस्रज—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्नस्रज ] अंतो की माला, जो नरसिंह ने  
धारण की थी [ को० ] ।

अन्नाडवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्नाडवृद्धि ] एक रोग जिसमे अंत  
उतरकर अंडकोश मे चली जाती है और फोटा फल जाता है ।

अन्नाद—संज्ञा पुं० [ सं० अन्नाद ] अंत का कीड़ा । अंतर्द्वियों मे रहकर  
उसे खानेवाला कृमि [ को० ] ।

अन्नालजी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्नालजी ] पीव से भरी एक प्रकार की  
ऊँची गोल फुसी जो वैद्यक के अनुसार कफ और वात के प्रकोप  
से होती है ।

अन्नि—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्न ] अंतर्ही । अंत ।

अन्ती<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्ती ] एक वनोपपिका नाम । उदरशूल या  
पेट की दाईं में दी जानेवाली औषधि का पौधा ।

अन्ती<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० दे० 'अन्ति' ।

अथवना<sup>७</sup>—क्रि० प्र० दे० 'अथवना' । उ०—जो पच्छिम दिसि उय  
पुत्र अथवै दिनकर ।—पृ० रा० ६१।१००५ ।

अदरसा<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'अदरसा' । उ०—लौंग कपूर खांडपूत  
घारे । अदरसे खटमिठे सिघारे ।—सूर० परि० १, पृ० ५० ।

अदरी—वि० [ फा०, अन्दर + हि० ई ] भीतरी अदरुनी ।

अदरुनी—वि० [ फा० अदरुनी ] भीतरी । भीतर का । आभ्यंतरिक ।

अदलीव—संज्ञा स्त्री० [ अ० ] बुलबुल । उ०—पूछे हैं फूलों फल की  
खबर अब तो अदलीव । टूटे भड़े खिजाँ हुए फूल फले गए ।—  
क० को०, भा० ४, पृ० १०८ ।

अदाज—संज्ञा पुं० [ फा० अदाज ] १ अटकल । अनुमान । उ०—गुप्त  
जो एक युग पहले का मध्यवर्गीय सतोप हमें सिखाते हैं, उन्हें  
आज की आग का अदाज नहीं है ।—जय० प्र०, पृ० ८ । २.  
वान । नापजोख । कूत । तखमीना । ३ ढव । ढग । तोर ।  
तर्ज । उ०—इस्ते यह बात नहीं निकलती कि विलकुल मेहनत  
न करो सब काम अदाज सिर करने चाहिए ।—श्रीनिवास  
प्र०, पृ० १८५ ।

क्रि० प्र०—करना । —लगाना । —होना ।

मुहा०—अदाज उड़ाना = दूसरे की चाल ढाल पकड़ना । पूरी पूरी  
नकल करना ।

४ मटक । भाव नाज । चेष्टा । ठसक । उ०—अदाज अपना  
देखते हैं आइने मे वोह । और ये भी देखते हैं कोई देखता न  
हो ।—शेर०, भा० १, पृ० ६०६ ।

अदाजन—क्रि० वि० [ फा० अदाज + अ० अन् (प्रत्य०) ] १ अदाज  
से । अटकल से । तखमीनन २ लगभग । करीब ।

अदाजपट्टी—संज्ञा पुं० [ फा० अदाज + हि० पट्टी (भूभाग) ] खेत मे  
लगी हुई फसल के मूल्य कृतना । कनकूत ।

अदाजपीटी—संज्ञा स्त्री० [ फा० अदाज + हि० पिटना (हैरान होना) ]  
वह स्त्री जो अपने बनाव सिंगार में लगी रहे । अपनी सुदरता  
और चालढाल पर इतरानेवाली स्त्री ।

अंदाजा—संज्ञा पुं० [ फा० अदाजह् ] १ अटकल । अनुमान । २ कूत ।  
नापजोख । परिमाण । तखमीना । उ०—उपनिषद मे तो  
ब्रह्मानंद के सुख के परिमाण का अदाजा कराने के लिये उसे  
सहवास सुख से सांगुना कहा था ।—इतिहास, पृ० ११ ।

अदिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्दिक् ] १ बड़ी बहन । अतिका । २  
अंगीठी । बोरसी [ को० ] ।

अदु—संज्ञा पुं० [ सं० अन्दु ] १ पैर मे पहनने का रस्त्रियों का एक  
गहना । पाजेव । पैरी । पैजना । २ सांकड़ा । हाथी की बांधने  
की सांकल । अलान । उ०—छूटे अदु हस्ती मदजा जरान ।  
—पृ० रा०, १२।३२१ । ३ बांधने की रस्सी या जजीर ।

अंदुक—संज्ञा पुं० [ सं० अन्दुक ] दे० 'अदु' ।

अदू—संज्ञा पुं० [ सं० अन्दू ] वेडी । निगड । उ०—( क० ) विशा-  
वलि विरदाई पाय अदू कर डीले । तामस बुभुक्षन काज बोलि  
मधु वचन रसीले ।—पृ० रा०, ६६।१६२८ । ( ख ) क्रीडा  
समदू गज्ज अदू ग्राह फदू रच्यए ।—राम० धर्म०, पृ० २६ ।

अदूक—संज्ञा पुं० [ सं० अन्दूक ] दे० 'अदू' [ को० ] ।

अदेश<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ फा० अदेशह् ] सोच । चिन्ता । फिक्र । उ०—सिय  
अदेश जानि प्रभु सूरज लियो करज की ओर । दूदत धनु नृप  
लुके जहाँ तहें ज्यो तारागन भोर ।—( शब्द० ) ।

अदेश<sup>२</sup>—प्रत्य० [ फा० अदेश ] सोचनेवाला। अभिलाषी। देखने-वाला। द्रष्टा। जैसे, वद अदेश। खैर अदेश। दूर अदेश आदि [ को० ]।

अदेशा—सङ्घ पु० [ फा० अदेशह् ] १. तोच। चिता। फिक्क। उ०—मोमिन ये असर सियाह् मस्ती का न हो। अदेशा कभी बलद व पस्ती का न हो।—कविता को०, भाग ४, पृ० ४८७। २. सशय। अनुमान। सदेह। शक। ३. खटका। आशका। भय। डर। ४. हर्ज। हानि। ५. दुविधा। असमजस। आगा-पीछा। पसीपेश।

अदेशा(उ)—सङ्घ पु० दे० 'अदेशा'। उ०—( क ) कितक रूप गुन आगरी सुनत मोहि अदेश।—पृ० रा०, १४१७। ( ख ) सो अदेश होत मन मारे वव धौ मालिवा आना रे।—जग० चानी, भा० २, पृ० ३।

अदेशडा(उ)—सङ्घ पु० [ हि० अदेशा > अवेस + डा (प्रत्य०) ] दे० 'अदेशा'। उ०—अदेमढा न भाजिसी सदेसी कहियाँ। कै हरि आयाँ भाजिसी, कै हरि ही पासि गयाँ।—कवीर प्र०, पृ० ८। अदेह(उ)—सङ्घ पु० दे० 'अदेस'। उ०—पुष्प प्रगट्ट न कीजिये। मो तिय इय अदेह।—पृ० रा०, ११५३।

अदोअन(उ)—सङ्घ पु० [ सं० आन्दोलन ] हलचल। अदोर। उ०—सुनि अदोअन राव दिठ। रिश्काए सब साइ।—पृ० रा०, ६११२१६।

अदोर—सङ्घ पु० [ सं० आन्दोलन=हलचल ] हलचल। शोर। हल्ला। कोलाहल। हुल्लह। हल्लागुल्ला। उ०—भहरात भहरात दवानल आया। घेरि चहु ओर वरिसार अवोर वन घरनि आकास चहुँ पास छायो।—सूर०, १०।५६६।

फि० प्र०—करना=शोर मचाना। उ०—चीन्ही रे नर प्रानी याका निस दिन करत अदोर।—कवीर प्र०, पृ० ११६।—मचना या होना=कोलाहल होना। उ०—बहु लीलीन होइ सख धुन करत है, घट घनघोर अदोर हावै।—कवीर०, २०, पृ० २५।

अदोरा(उ)—सङ्घ पु० दे० 'अदोर'।

अदोल—वि० [ सं० आन्दोलन ] कपित। हिलती डुलती। उ०—सुभ उच्च अदाल बीच विराज। मनो खुग आरोह सोपान साज।—पृ० रा०, ६।८३।

अदोलना(उ)—फि० सं० [ सं० आन्दोलन ] हिलाना। डुलाना। उ०—मुष पाय पानि अदोलि वारि। अच्चयौ अप्प आतम अघारि।—पृ० रा०, ६११६१७।

अदोलित—वि० [ सं० आन्दोलित ] आदोलित। हिली डुली। उ०—जल अदोलित सो भई उदै होत वर भान।—पृ० रा०, २।६०।

अदोह—सङ्घ पु० [ फा० ] १. शोक। दुःख। रज। खेद। उ०—सिध विनास्यो वनिक सुत बन्धा क्रिय अदोह।—पृ० रा०, १।३४८। २. तरदुद। खटका। असमजस। सदेह।

अद्रससत्र(उ)—सङ्घ पु० [ सं० इन्द्रशस्त्र ] वज्र [ डि० ]।

अद्रि(उ)—सङ्घ पु० [ सं० अद्रि ] अद्रि। पर्वत। उ०—अवर वरपै धरती निपजै, अद्रि वरषदाई।—रामानंद०, पृ० १३।

अध<sup>१</sup>—वि० [ सं० अन्ध ] १. नेत्रहीन। बिना आँख का। अधा। जिसकी आँखों में ज्योति न हो। जिसमें देखने की शक्ति न हो। उ०—गुर सिप अध बधिर कइ लेखा। एक न सुनै एक नहि देखा।—मानस, ७।६६। २. अज्ञानी। अज्ञानकार। अनजान। मूर्ख। बुद्धिहीन। अविवेकी। उ०—तत्त आक्षिप्त तव विषम माया, नाथ। अध मैं मद व्यालादगामी।—तुलसी प्र०, पृ० ४८१। ३. असावधान। अचेत। गाफिल। ४. उन्मत्त। मतवाला। मस्त। उ०—ठौर ठौर भौरत भँपत भौर भौर मधु अध।—विहारी २०, ४६६। ५. प्रखर। तीव्र (को०)।

विशेष—समस्त पदों में ही प्रायः प्रयुक्त, जैसे कामाध, मोहाध, क्रोधाध, जन्माध, दिवोध, राक्षध, मदाध आदि।

यौ०—अधकूप। अधखोपडी।

अध<sup>२</sup>—सङ्घ पु० १. वह व्यक्ति जिसे आँखें न हों। नेत्रहीन प्राणी। अधा। २. जल। पानी। ३. उल्लू। ४. चमगादड़। ५. अधकार। अधेरा। ६. कवियों के बोधे हुए पथ के विरुद्ध चलने का काव्य सवधी दोष। ७. ज्योतिष के अनुसार एक योग (को०)। ८. परिव्राजकों का एक भेद (को०)।

अधक—सङ्घ पु० [ सं० अन्धक ] १. नेत्रहीन मनुष्य। दृष्टिरहित व्यक्ति। अधा। २. कश्यप और दिति का पुत्र एक दैत्य।

विशेष—इसके सहस्र सिर थे। मद के मारे अधों की नाईं चलने के कारण यह अधक कहलाता था। स्वर्ग से पारिजात लाते समय यह शिव द्वारा मारा गया। इसी से शिव को अधकारि वा अधकरिपु कहते हैं।

३. ओप्टी नामक यादव के पीत और युधाजित् के पुत्र।

विशेष—अधक नाम की यादवों की शाखा इन्हीं से चली। इनके भाई वृष्णि थे जिनसे वृष्णिवशी यादव हुए जिनमें कृष्ण थे। ४. बृहस्पति के बड़े भाई उत्तथ ऋषि के पुत्र महातपा नामक ऋषि। इनकी माता का नाम ममता था।

अधकघाती—सङ्घ पु० [ सं० अन्धकघाती ] अधक नामक असुर को मारनेवाले शिव [ को० ]।

अधकरिपु—सङ्घ पु० [ सं० अन्धकरिपु ] १. अधक नामक दैत्य के शत्रु शिव। २. अधकार का नाश करनेवाले सूर्य। ३. चंद्रमा। ४. अग्नि। प्रकाश। रोशनी।

अधकशत्रु—सङ्घ पु० [ सं० अन्धकशत्रु ] शिव [ को० ]।

अधकार—सङ्घ पु० [ सं० अन्धकार ] १. अंधेरा।

विशेष—महा अधकार को अधतमस, सर्वव्यापी वा चारो ओर के अधकार को सतमस और थाड़े अधकार को अवतमस कहते हैं। २. अज्ञान। मोह। ३. उदासी। कातिहीनता। जैसे—उसके चेहरे पर अधकार छाया है (शब्द०)।

अधकारमय—वि० [ सं० अन्धकारमय ] अधकार से युक्त [ को० ]।

अधकारसचय—सङ्घ पु० [ सं० अन्धकारसञ्चय ] घना अधकार। महा अधकार [ को० ]।

अधकारि—सङ्घ पु० [ सं० अन्धकारि ] शिव। शकर [ को० ]।

अधकारी—सङ्घ स्त्री० [ सं० अन्धकारी ] भरव राग की पाँच स्त्रियों में से एक। एक रागिनी। दे० 'रागिनी'।

अधकाल<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'अधकाला' ।

अधकाला<sup>८</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार] अधकार । अधेरा । उ०—ऐसे वादर सजल, करत अति महाबल, चलत घहरात करि अधकाला ।—सूर०, १० ८५५ ।

अधकासुहृद्—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकासुहृद्] अधकारि शिव [को०] ।

अधकूप—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकूप] १ वह कूआ जिसका जल सूख गया हो और मुँह घासपात से ढका हो । अधा कूआ । सूखा कूआ । अधेरा कूआ । उ०—यह कूप कूप भव अधकूप, वह रक हुआ जो यहाँ भूप निश्चय रे ।—तुलसी०, पृ० २८ । २. अधेरा । अधकार । उ०—जैसे अधी अधकूप में गनत न खाल पनार । तैसेहि सूर बहुत उपदेसै सुनि सुनि गे कै बार ।—सूर०, ११८४ । ३. घनाधकार । निविड तम । अधागुण्य । उ०—अधकूप भा आवै, उडत आव तस छार । ताल तलावा पोखर, धूरि भरी जेवनार ।—जायसी ग्र०, पृ० २२७ । ४. एक नरक का नाम ।

अधकूपता—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकूपता] अधेरापन । मूर्खता । अज्ञान । उ०—उन्हें जगत् की अनेकरूपता और हृदय की अनेक भावात्मकता के सहारे अधकूपता से बाहर निकलने की फिक्र करनी चाहिए ।—चितामणि, भा० २, पृ० ५१ ।

अधकोठरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध + हि० कोठरी] अधेरा और तग कमरा (बोल०) ।

अधखोपडी—वि० [सं० अन्ध + हि० खोपडी] जिसके मस्तिष्क में बुद्धि न हो । मूर्ख । गाढवी । भोड़ । अज्ञानी । नासमझ ।

अधड़—संज्ञा पुं० [सं० अन्ध + हि० ड (प्रत्य०)] गर्द लिए हुए कड़े झोके की वायु । वेगयुक्त पवन । आधी । तूफान । उ०—प्रघड या घट रहा प्रजादल सा भुंभलाता ।—कामायनी, पृ० २०० ।

अधतम—संज्ञा पुं० [सं० अन्धतमस्] घना अधेरा । अधेरागुण्य । उ०—जग के निद्रित स्वप्न सजनि सब इसी अधतम में बहते ।—पल्लव, पृ० ५७ ।

अधतमस—संज्ञा पुं० [सं० अन्धतमस्] दे० 'अधतम' । उ०—अधतमस है किंतु प्रकृति का आकर्षण है खींच रहा ।—कामायनी, पृ० २२७ ।

अधता—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धता] अधापन । दृष्टिहीनता । उ०—चल न सकै चाल लागे दुख दैन वाल बैन, लटपटे भए नैन अधता छई ।—दीन० ग्र०, पृ० १३८ ।

अधतामस्—संज्ञा पुं० [सं० अन्धतामस्] दे० 'अधतमस' [को०] ।

अधतामिस्र—संज्ञा पुं० [सं० अन्धतामिस्र] १. घोर अधकारयुक्त नरक । बड़ा अधेरा नरक । २१ बड़े नरको में से दूसरा या १८ वाँ । २. जीने की इच्छा रहते हुए भी मरने का भय (साध्य) ।

विशेष—साध्य में इच्छा के विघात अर्थात् जो इच्छा में आए उसे करने की अशक्ति को विपर्यय कहते हैं । इस विपर्यय के पाँच भेद हैं जिनमें से अंतिम को अधतामिस्र या अभिनिवेश कहते हैं ।

३. योगशास्त्र के अनुसार पाँच क्लेशों में से एक । मृत्यु का भय । अभिनिवेश । ४. मृत्यु के बाद आमा का अनस्तित्व [को०] ।

अधत्व—संज्ञा पुं० [सं० अन्धत्व] अधापन [को०] ।

अधधी—वि० [सं० अन्धधी] मूर्ख । नासमझ । मदबुद्धि [को०] ।

अधधुध<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अन्ध = अन्धकार + धूम = धूआँ अथवा अन्ध + धूनन (कपन हलचल), सं० अन्ध + हि० धुध] १ अधरार । अधेरा । उ०—(क) अति विपरीत तृणावन आयो । वातचक्र मिस्रज के ऊपर नद पँवरि ने भीतर आयो । अधधुध भयो सब गोकुल जो जहाँ रह्यो मो तहाँ छपायो ।—सूर०, (शब्द०) । (ख) क'उलें मोट रहत वृधन की अधधुध दिगि विदिसि भुलाने ।—सूर०, १० । ८६० । २. अधधुध । अधेरा । अनरति । दुराचार । अनियमित व्यापार । उच्छृङ्खल कर्म । उ०—ममूक्ति न परै तिहारी मधुकर, हम भजनारि हूँ गेवार । सूरदास ऐसी क्यों निवड़े अधधुध सरकार ।—सूर०, १० । ३६०६ ।

अधधुध<sup>२</sup>—वि० विशाल । अपार । उ०—देखत मदध दसकध अधधुध दल बहु सो बलकि बोल्यो राजा राम बरिवट ।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ३२ ।

अधधुध<sup>३</sup>—क्रि० वि० बहुत । अत्यधिक । उ०—अधधुध माँ बाप, रुवै रे, बहुरि नहीं अम अधसर पाय ।—जग० श०, भा० २ पृ० ११० ।

अधधू—संज्ञा पुं० [देश०] कूप । कूआ [को०] ।

अधपरपरा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धपरपरा] बिना समझे वृत्ते पुरानी चाल का अनुकरण । एक को कोई काम करते देख दूसरे का बिना किसी विचार के उसे करना । लीक पिटीअल । भेडिया-घँसान ।

अधपूतना—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धपूतना] दे० 'अधपूतना ग्रह' ।

अधपूतनाग्रह—संज्ञा पुं० [सं० अन्धपूतनाग्रह] बालको का रोगविशेष । विशप—इसमें वमन, ज्वर, खाँसी, प्यास आदि की अधिकता होती है । बालक के शरीर से चरबी की सी गंध आती है और वह बहुत रोता है । दे० 'पूतना' ।

अधप्रभजन—संज्ञा पुं० [सं० अन्धप्रभजन] ऐसी तेज हवा जिसमें कुछ न सूख पड़े । आधी । तूफान । उ०—बहुता अधप्रभजन ज्यो, यह त्योही स्वरप्रवाह, मचल कर दे चचल आकाश ।—अनामिका, पृ० ६७ ।

अधवाई<sup>७</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धवायु] धूल लिए हुए वेगयुक्त पवन । ऐसी तेज हवा जिसमें गर्द के कारण कुछ सूख न पड़े । आधी । तूफान ।

अधमति—वि० [सं० अन्धमति] उलटी बुद्धिवाला । नासमझ । मूर्ख । उ०—रे दसकध अधमति तेरी आयु तुलानी आनि ।—सूर०, ११७६ ।

अधमूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धमूषिका] 'देवताड' नामक पीछा । विशेष—वैद्यक में माना गया है कि इसके सेवन से अधापन चला जाता है ।

अधर<sup>८</sup>—वि० [सं० अन्धकार, अधार] अधेरा । अधकारमय । प्रकाश रहित । उ०—नखत चहूँ दिसि रोवहि, अधर धरति अकास ।—जायसी (शब्द०) ।

अधराजा—पुं० [सं० अधराजा] शास्त्र और नीति आदि से अनभिज्ञ अविवेकी राजा ।



विशेष--चाणक्य ने अर्थशास्त्र में राजा के नौ भेद किए हैं--  
एक अंधराजा दूसरा चलितशास्त्र राजा। चलितशास्त्र वह है  
जो जान बूझकर शासन की मर्यादा का उल्लंघन करता हो।  
इन दोनों में चाणक्य ने अंधराजा को ही अच्छा कहा है, जो  
योग्य मंत्रियों के होने पर अच्छा शासन कर सकता है।

अंधरात्री--संज्ञा स्त्री० [ सं० अंधरात्री ] अंधेरी रात। अंधवारस वाली  
रात [ को० ]।

अंधरोप--संज्ञा पुं० [ सं० अंध + रोप ] अप्रण क्रोध। अतिक्रोध। उ०--  
भृकुटि के कुडल वक्र मरोर, फुट्टेकता अंधरोप फन खोल।--  
पल्लव, पृ० १२१।

अंधल<sup>१</sup>--वि० [ सं० अंध, प्रा० अंधल ] अंधा। नेत्रहीन।

अंधल<sup>२</sup>--संज्ञा पुं० अंधारा। अंधेरा।

अंधली--संज्ञा स्त्री० [ प्रा० अंधल ] [ पुं० अंधला ] अंधी स्त्री। अंधी।  
उ०--अंधली आखिन काजल कीया। मुडली मांग सँवारे।--  
सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ८७३।

अंधविदु--संज्ञा पुं० [ सं० अंधविदु ] आँख के भीतरी पटल पर का वह  
स्थान जो प्रकाश को ग्रहण नहीं करता और जिसके सामने  
पड़ी हुई वस्तु दिखाई नहीं देती।

विशेष--नेत्रपटल पर ज्ञानतनु पीछे से आवर गिराओ के रूप में  
फँले हुए हैं और मूढकर शकु आँख छड़ियों के आकार में हो  
गए हैं। मनुष्य की आँख में इन शकुओं की संख्या ३३,६०,०००  
मानी गई है। ये छड़ियाँ वा शंकु आकार और रंग का  
परिज्ञान कराने में काम देते हैं। यदि प्रकाश ऐसे स्थान पर  
पड़े जहाँ कोई शकु न हो तो कुछ देख नहीं पड़ता। यही स्थान  
अंधविदु कहलाता है।

अंधविश्वास--संज्ञा पुं० [ सं० अंधविश्वास ] विना विचार किए किसी  
बात का निश्चय। विना समझे वृत्ते किसी बात पर प्रतीति।  
संभव-असंभव विचाररहित धारणा। विवेकशून्य धारणा।

अंधश्रद्धा--संज्ञा पुं० [ सं० अंधश्रद्धा ] विना विचार की श्रद्धा।  
विवेकहीन आस्था। उ०--अंधश्रद्धा और अंधश्रद्धा आदि इसी के  
परिणाम हैं।--जय० प्र०, पृ० ५३।

अंधस--संज्ञा पुं० [ सं० अंधस ] १ पका हुआ चावल। भात। २.  
भोजन (को०)। ३ जड़ी वूटी (को०)। ४ सोम नामक लता  
(को०)। ५ संमरस (को०)। ६ रस (को०)। ७.  
धृत (को०)।

अंधसैन्य--संज्ञा पुं० [ सं० अंधसैन्य ] अशिक्षित सेना। दे०  
'मित्रकूट'।

अंधा<sup>१</sup>--संज्ञा पुं० [ सं० अंधक, प्रा० अंधअ ] [ स्त्री० अंधी ] विना  
आँख का जीव। वह जिसको कुछ सूझता न हो। वह जीव  
जिस्क, आँखों में ज्योति न हो। दृष्टिरहित जीव। उ०--  
जानता वृक्षा नहीं वृक्ष किया नहीं गोन। अंधे को अंधा मिला  
राह बतावे कौन।--वकीर सा० सं०, भा० १, पृ० १४।

अंधा<sup>२</sup>--वि० १ विना आँख का। दृष्टिरहित। उ०--अंधा बाँटे  
रेवड़ी फिर फिर अपने देय (कहावत) २. विचाररहित।  
अविवेकी। अज्ञानी। उ०--ज्ञानी से कहिए कहा  
कहत वकीर लजाय। अंधे आगे नाचते कला अकारण जाय।--  
कवीर सा० सं०, पृ० ८६।

क्रि० प्र०--करना।--बनना।--बनाना।--होना। अंधे वृक्ष का  
विचार खो बैठना। उ०--काध में मनुष्य अंध हो जाता है।  
( शब्द० )।

मु०--अंधा करना = (१) दे० 'अंधा बनाना' (२) शक और जोश  
या आवेश से विवेकहीन बना देना। अंधा बनना = जान बूझकर  
किसी बात पर ध्यान न देना। अंधा बनाना = आँख में धूल  
डालना। बेवकूफ बनाना धखा देना। अंधा मुल्ला टूटी  
मस्जिद = वृक्ष को वृक्ष की जड़ का मिलना। जैसे को तैसा  
मिलना। अंधा क्या चाहे दो आँखें = जल्दतम की अपनी  
जल्दत पूरी होने की काक्षा करना। अंधे की लकड़ी या लाठी =  
(१) एकमात्र आधारा सहारा। आसरा। (२) वह लडका  
जो बड़ी लडकी में बचा हो। इक्लीता लडका। अंधे के हाथ  
घटेर लगना = किसी वस्तु का अयोग्य व्यक्ति को अप्रत्याशित  
रूप से प्राप्त होना। उ०--समझ लो कि तुम अपनी मिहनत  
से नहीं पास हुए, अंधे के हाथ घटेर लग गई --मान०, भा० १,  
पृ० ८२। अंधो में काना राजा या सरदार = बाड़ी सी जान-  
कारी से भूखों या अनजान लोगों के वाच श्रेष्ठ बनना। अंधो  
का राज = विवेकहीन शासन। उ०--राव रक अंधा सब फिर  
अंधो ही का राज --दरिया, बानी, पृ० ६।

३ मतवाला। उ०-मत्त। जैसे--अंधावमी अपने मतलब में अंधा  
है। ४ जिसमें कुछ दिखाई न दे। अंधेरा। प्रकाशशून्य।

यौ०--अंधा आइना = वह दर्पण जिसमें चेहरा साफ दिखाई न दे।  
धुंधला शीशा। अंधा कूआँ = (१) दे० 'अंधकूप' १। (२) लडकी  
का एक खेल जो चार लकड़ियों से खेला जाता है। अंधा कूप  
= दे० 'अंधकूप'। उ०--तन में जो अंधा कूप है। वोही  
तुम्हारा रूप है।--सत तुंगसी, पृ० २५। अंधा घर = वह  
मकान जिसकी बाहरी दीवार खत्म हो चुकी हो। अंधा घोडा =  
उपानह। जूत। ( सधु फकीर )। अंधा चिराग = वह चिराग  
जिसकी ज्योति में प्रसार न हो। धुंधली ज्योति का दीपक।  
अंधा तारा = नेपचून नामक तारा। अंधा दरवार = दे० 'अंधा-  
राज'। अंधा दीया = दे० 'अंधा चिराग'। अंधा भैंसा = लडकी  
का एक खेल जिसमें एक लडका दूसरे लडके की पीठ पर बढ-  
कर उसकी आँखें बंद कर लेता है और दूसरे लडके उस भैंसा  
बने हुए लडके के बीच से एक एक करके निकलते हैं। सवार  
लडका ऊपर से प्रत्येक निकलनेवाले लडके का नाम पूछता  
जाता है। भैंसा बना हुआ लडका जिसका नाम ठीक बता  
देता है उसे फिर वह भैंसा बनाकर उसकी पीठ पर सवारी  
करता है। अंधा राज = वह राज्य जिसका प्रबंध बुरा हो।  
अन्यायी राज्य। अंधा शीशा = दे० 'आइना'।

कहा०--अंधा गाए बहारा बजाए = जब किसी काम के करने में  
अयोग्य व्यक्ति एक साथ लगे हो। अंधी पीसे कुत्ता खाय =  
निष्प्रयोजन काम की बड़े परिश्रम से करना। अंधे के आगे रोए,  
अपनी आँखें खोए = अरिपरीक्षण। अंधे को दूर की सूचना =  
असमर्थ होते हुए भी समर्थ से बढकर काम करना या अनजान  
होकर भी जानकारी से भी अधिक समझ की बात बताना।

अंधाई--संज्ञा स्त्री० [ हि० अंधा + ई ] अंधापन। विवेकहीनता।  
उ०--मेरे रता अंधा सब अंधाई का राज।--दरिया बानी,  
पृ० ३६।



अधाधुध<sup>१</sup>—सहा स्त्री० [ हि० अधा + धुध ] १ बड़ा अंधेरा। घोर अधकार। उ०—अधाधुध भयो सब गोकुल, जो जहँ रम्यो सो तहो छपायो।—सूर० १०।७७। २ अंधेरा। अविचार। अन्याय। गड़बड़। धीगाधीगी। कुप्रवध। भोसा। उ०—वहाँ कोई किसी को पूछनेवाला नहीं, अधाधुध मची है (शब्द०)।

अधाधुध<sup>२</sup>—वि० विना सोच विचार का। विचाररहित। बेघड़क। बेहिम्न। बेसदाज। बेठिकाने। उ०—वह किसी कोरे स्वप्न-द्रष्टा की कालनिक अधाधुध उड़ान नहीं है।—जय० प्र०, पृ० ४।

अधाधुध<sup>३</sup>—क्रि० वि० १ विना सोचे विचारे। बेरोकटका। बेतरास। मारामार। उ०—अधाधुध धर्म के मारग सत्र जग गोते खाता।—संत तुलसी०, पृ० २२३। २ अधिकता से। बहुतायत से, जसे—वह अधाधुध दौड़ा आता है। वह अधाधुध खाए चला जाता है। (शब्द०)।

अधानुकरण—सहा पुं० [ सं० अन्ध + अनुकरण ] विना विचारे अनुकरण करने का कार्य।

अधानुवृत्ति—सहा स्त्री० [ सं० अन्ध + अनुवृत्ति ] दे० 'अधानुकरण'। उ०—'भारतीय इतिहास की कुछ समस्याएँ नामक लेख में अपनी अधानुवृत्ति और अनगलता से 'न भूमि स्यात्-सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात्' का अनुवाद यो दिया है—'भूमि व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है'—काव्य य० प्र०, पृ० ४०।

अधानुसरण—सहा पुं० [ सं० अन्ध + अनुसरण ] दे० 'अधानुकरण'। उ०—उन्होंने भारतीय परंपरा को मानते हुए भी अधानुसरण'। कही नहीं किया है—रत्न०, पृ० ५।

अधार(७)—सहा पुं० [ सं० अन्धकार, प्रा० अधार, अधार ] दे० 'अधकार'। उ०—गिरद उठी भान अधार रैन।—पृ० रा०, २०। ६५।

अधारी<sup>१</sup>(७)—वि० [ प्रा० अधार + हि० ई (प्रत्य०) ] अधकारयुक्त। अंधेरी। अंधेरिया। उ०—अधारी दारुन निशा, भू सपनतर आइ।—पृ० रा०, १७।७१।

अधारी<sup>२</sup>—सहा स्त्री० घोड़े, हाथी अथवा बैलो की आँखों पर डालने का पर्दा। अंधेरी। उ०—इस कुभ अधारी कुच सुकचुकी, कवच समु काम क बलह।—बेलि, दू० ६०।

अधालजी—सहा स्त्री० [ सं० अधालजी ] अतमूर्ख फोड़ा। अधा फोड़ा। अतमूर्ख पिटक [ को० ]।

अधाहि<sup>१</sup>—सहा पुं० [ सं० अधाहि ] विपहीन सर्प [ को० ]।

अधाहि<sup>२</sup>—सहा स्त्री० एक प्रकार की मछली। कूचिका [ को० ]।

अधाहिक—सहा पुं० [ सं० अधाहिक ] एक विपरहित सर्प [ को० ]।

अधाहुली—सहा स्त्री० [ सं० अधपुष्पी ] चोरपुष्पी नामक क्षुप। दे० 'चोरपुष्पी'।

अधिका—सहा स्त्री० [ सं० अधिका ] १ रात। रात्रि। २ छूत। जूझा का खेल। ३ एक विशेष प्रकार का खेल या क्रीड़ा। ४ आँख का एक रोग। ५. सर्पपी जिसके अत्यंत सेवन से दृष्टिभ्रम होता है (को०)। ६. स्त्रियों का एक भेद (को०)।

अधियारी—सहा स्त्री० [ सं० अधकार प्रा० अन्धधार, अन्धधार + हि० ई (प्रत्य०) ] १ अधतार। अधेरा। २ वह पट्टी जो उपरकी घोड़ी, गिकारी पक्षियों और चीने घादि की आँखों पर इसतिये बँधी रहती है कि किसी का देखकर उपद्रव न करे।

अधी<sup>१</sup>—सहा स्त्री० [ हि० पुं० अधा, स्त्री० अधी ] विना सोच की स्त्री। जो स्त्री देख न सके।

अधी<sup>२</sup>—वि० स्त्री० १ दृष्टिरहित। विदेहमूय। विचाररहित।

यी०—अधी सरकार = १ राज्य जिसका प्रबंध हुआ हो। २ मानिक जो नौकरी की नग्नबाट ठीक समय पर न देता हो।

मुहा०—अधी बँटना = विना अदाज के पट्टी गत या ठीक होना। विना अदाज के पेंगी चीज या ठीक समय पर बँटना। उ०—एक बार उनकी अधी बैठ गई तो सब जगह उगे काँटे ही दिखाने लगे।—अधरे०, पृ० १४०।

२. प्रकाशहीन। अधकारपूर्ण। उ०—जहाँ गुप्तानयन की एक बड़ी अधी गुफा थी।—प्रेमसागर (प्रवर०)। ४ मरवाती। उन्मत्त।

अधु<sup>१</sup>—सहा पुं० [ सं० अन्ध ] १. कृषी। कृष। २. जिन। दुष्प की जननेद्रिय [ को० ]।

अधु<sup>२</sup>—वि० अंधेरा। प्रताप का मन्दार। प्रतापीहीन। उ०—मुघ-दाना मुनगति गृह वधु। तुम्हारी दृष्टा विनु सत्र जग अधु।—सूर०, १०।१८०।

अधुल—सहा पुं० [ सं० अधुल ] गिरीपक्ष। निरम का पेड़।

अधुला(७)—वि० दे० 'पधना'। उ०—पाँधे भिन्न भेधुले, नासी मुल्ला काक। तिनो पास न भिटीये, जो नवदे दे बोर।—सुन्दरानी०, पृ० ७०।

अधेर—सहा पुं० [ सं० अन्धकार (अन्ध इव यरोति-इति), प्रा० अधयार < अन्धइवार, प्रप०, पुं० हि० अधेर, अधियार ] १. अन्याय। अविचार। अत्वाचार। जुलम। २. उपद्रव। गड़बड़। कुप्रवध। भोसा। अधाधुध। धीगाधीगी। शनर्थ।

कि० प्र०—करना।—मचाना—होना = अविचार या गड़बड़ होना। धीगाधीगी होना। उ०—इनकी फिरगिमें बेठी है किसी की जवान तक न हिली और हम आपस में कटे मरते हैं, क्या अधेर है।—फिनाना०, भा० ३, पृ० ३।

अधेरखाता—सहा पुं० [ हि० अधेर + खाता ] १ हिसाब किताब और व्यवहार में गड़बड़ी। व्यतिश्रम। २ अन्याय। अन्याय। अविचार। कुप्रवध। ३. अविचारपूर्ण या अन्यायपूर्ण व्यवहार। अधेरगर्दी—सहा स्त्री० [ हि० अधेर + फा० गर्दी ] बेहद अंधेरा। अनाचार (बोल०)।

अधेरनगरी—सहा स्त्री० [ हि० अधेर + सं० नगरी ] १. वह स्थान, सस्थान या स्थिति जहाँ कोई नियम या कानून न हो। अन्याय-पूर्ण राज्य। २. अशांति या अव्यवस्थापूर्ण स्थान। उ०—अधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर राजा।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६७०।

अधरा—सहा पुं० [ हि० अधेर + आ (प्रत्य०) ] गड़बड़। अधेर। शनर्थ। अन्याय। उ०—महामत्त बुधिवल की हीनी देख कर अधेरा।—सूर० १।१८६।

अंधेरी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० दे० 'अंधेरी' ।

अंधेरी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [ ? ] दक्षिण भारत का एक स्थान ।

अध्यार<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० अन्धकार, प्रा० अध्यार ] अधियार । अधेरा ।

अध्यारी<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० दे० 'अध्यारी' ।

अध्र—सज्ञा पुं० [ सं० अन्ध्र ] १ वहलिया । व्याघ्र । शिकारी । २ वैदिक पिता और सारावर माता से उत्पन्न नीच जाति के मनुष्य जो गाँव के बाहर रहते और शिकार करके अपना निर्वाह करते थे । ३ दक्षिण का एक देश जिसे अब तिलग ना कहते हैं । इसके पश्चिम की ओर पश्चिम घाट पर्वत, उत्तर की ओर गोदावरी और दक्षिण में कृष्णा नदी हैं । आध्र देश । ४ अध्र देश के निवासीजन ५ मगध का एक राजवंश जिसे एक शूद्र ने अपने मालिक कन्न वंश के अंतिम राजा को मारकर स्थापित किया था । अध्र वंश का अंतिम राजा पुलोम था ।

अध्रभृत्य—सज्ञा पुं० [ सं० अन्ध्रभृत्य ] मगध देश का एक राजवंश । विशेष—अध्रवंश के अंतिम राजा पुलोम ने गंगा में डूब मरने के पीछे उसका सेनापति रामदेव फिर रामदेव का सेनापति प्रतापचंद्र और फिर प्रतापचंद्र के पीछे भी अनेक सेनापति राजा बन बैठे । इन सेनापतियों का वंश अध्रभृत्य कहलाया ।

अन<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० अन्न ] दे० 'अन्न' । उ०—(क) अन का मास अन्निल का हाड तत वा भपिवा बाई —गोरख० पृ० ४१ । (ख) पच दिवस च्यारौ वरन भुजत अन अपार ।—पृ० रा०, १४।१२० ।

यो०—अनदान = अन्न दान करने का कार्य । उ०—करि सनान गणोदकह दिय सु गाइ दस दान । दस तोला तुलि हेम दिय अनदान अ [ प्र ] मान ।—पृ० रा०, ६।१३१ ।

अननास<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० दे० 'अननास' । उ०—सु अननास जीरय । सतृतय जेभीरय ॥—पृ० रा०, ५६।६ ।

अनी<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० दे० 'अनी' । उ०—दिसा वाडय साद हुस्सेन अनी । —पृ० रा० ६१४० ।

अनेक<sup>७</sup>—वि० दे० 'अनेक' । उ०—अनेक भाव दिपहि सु दिव, दिव दिवान दुदुमि वजड ।—पृ० रा०, १४।७३ ।

अन्य<sup>७</sup>—वि० दे० 'अन्य' । उ०—और वधाई ऊमरा करी आइ सुरतान । अन्य सवन कीनी पयर पुजिय पीर ठटान ।—पृ० रा०, ६।२१० ।

अन्योअन्य<sup>७</sup>—सर्व दे० 'अन्योअन्य' । उ०—अन्योअन्य सहै नाम ।—पृ० रा०, ६।२६ ।

अव<sup>१</sup><sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बा ] अवा । माता । उ०—कवहुँक अव अवसर पाइ '—तुलसी ग०, पृ० ४७५ ।

अव<sup>२</sup><sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० आम्र, प्रा० अम्म, अल ] दे० 'आम्र' । आम का पेड़ या फल । उ०—अव सुफल छाडि कहाँ सेमर को घाऊँ । —सूर० १।१६६ ।

अव<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० अम्ब ] १ पिता । २ स्वर । ३ स्वर करनेवाला । ४, आँख । वेद । ५ ताना [को०] । ६ आकाश । उ०—ग्रीवम

भाजै गात अव वरसात उलटौ ।—रा० रु, पृ० ३४३ । ७ जल । उ०—हरिचरन अव अजुली कीन ।—पृ० रा०, १।३६६ ।

अव<sup>४</sup><sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० अम्बु ] रक्त । रक्त । रधिर । उ०—अरि अव अचन अगाथि करार ।—पृ० रा०, ६१।२२३ ।

अवक<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० अम्बक ] १ आँख । नेत्र । उ०—नव अवजु अवक छवि नीकी '—मानस १।१४७ ।

यो०—व्यवक = शिव ।

२ पिता । ३ ताना । ४ शिवनेत्र [को०] ।

अवखास<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० दे० 'आमखाम' । उ०—सावव नै माहि अवपास मे बुलाया । हाजिर उमराव मीर सोतमाम आया —शिखर०, पृ० ६२ ।

अवजा<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुजा ] कमलिनी । उ०—अलीन जुथ्य आवर । मनो बिहग सावर । भुवत पत्त रत्त जा । उवत जानि अवजा ।—पृ० रा० २५।३२४ ।

अवडि<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० अम्बर ] अवर । आकाश । उ०—तिस अवडि कोय न सकई उहु ऊँचा अपर अपार ।—प्राण०, पृ० २०८ ।

अवमौर<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० अम्ब + मूकुर, प्रा० अव + मउर ] आम्र की मजरी । वोर । उ०—दन उपवन फुलहि अति बठोर । रहे जोर मीर रस अकमौर ॥—ह० रा०, पृ० १८ ।

अवया<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बया ] १ माता (कीपी०) ।

अवर<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० अम्बर ] १ आकाश । आसमान । शून्य । उ०—अवर कुजा कुरलियाँ गरजि भरे सव ताल ।—बबीर प्र०, पृ० ७ ।

मुहा०—अवर के तारे डिगना = आकाश से तारे टूटना । असंभव बात का होना । उ०—अवर के तारे डिगैं, जूझा लाई वल । पानी मे दीपक वनै, चलै तुम्हारी गैल (शब्द०) ।

यो०—अवरचर = (१) पक्षी । (२) विद्याधर । अवरचारी = ग्रह ।

अवरद = कपास । अवरपुष्प = आकाशकुसुम । अवरशैल = ऊँचा पहाड़ । अवरस्यली = पृथ्वी ।

२ वादल । मेघ (शब्द०) । उ०—आपाड मे सोवै परी मव खाव देखै कामिनी । अवर नवै, विजली खवै, दुख देत दोनों दामिनी—(शब्द०) । ३ वस्त्र । कपड़ा । पट । उ०—नम गर जाइ विभी-पन तवही । वरधि दिए मनि अवर सबही ।—मानस, ७।११६ ।

४ स्त्रियों की पहनने की एक प्रकार की एकरंगी किनारेदार घेती । उ०—करपत सभा हुपद तनया की अवर अष्टय कियो ।

—सूर० १।१६१ । ५ कपास । ६ अन्नक घातु । अवरक ।

७ राजपूताने का एक पुराना नगर (समयत जयपुर की राजधानी आमेर) । ८ प्राचीन ग्रंथों के अनुसार उत्तरी भारत का एक देश । ९ शून्य (को०) । १० गद्य द्रव्य । कश्मीरी केसर ।

उ०—पचीस छाव अवर, असीम मुक्कली भर ।—पृ० रा०, ६६।१८ । ११ परिधि । मडल (को०) । १२ पड़ोस । सामीप्य । पास का देश (को०) । १३ ओष्ठ । ओठ (को०) ।

१४ दोष । दुराई (को०) १५ हाथियों का नाक करने वाला (को०) ।

अवर<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० १ एक सुगन्धित वस्तु ।

विशेष—यह ह्वेन मछरी की तथा कुछ और समुद्री मछलियों की अंतर्द्वियों में जमी हुई चीज है जो भारतवर्ष, अफ्रीका और ग्राजीन के समुद्री किनारों पर बहती हुई पाई जाती है। ह्वेन का जिकार भी इसके लिये होता है। अवर बहुत हल्का और शीघ्र जलनेवाला होता है तथा प्रांच दिखाने रहने से बिलकुल भाप होकर उड़ जाता है। इसका व्यवहार औषधियों में होने के कारण यह नीकीदार (कालामानी का एक द्वीप) तथा भारत समुद्र के और और टापुओं से आता है। प्राचीन काल में अरब, यूनानी और रोमन लोग इसे भारतवर्ष से ले जाते थे। जहाँगीर ने इससे राजसिंह मन का सुगन्धित किया जाना लिखा है। उ०—जिनन पाम अवर है इस शहर वीव। खरीद करनहार है मव वही च।—इकितने ०, पृ० ७६। २ एक इत्र। उ०—तेन फुलेल सुगन्ध उवटनो अवर अनर लगावै रे।—भक्ति०, पृ० ३६०।

अवर<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [ म० अमृत, प्रा० अमरित, अमरिअ, अप० [अवर] अमृत। सुधा।—अनेकार्य०, पृ० ११४।

अवर<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० [ अ० अमारी, हिं० अवारी ] हाथी की पीठ पर का होदा जिसपर छज्जेदार मडप होता है। अवारी। उ०—चढ़ी चौटोल अवर। मनोकि मेघ घुम्नर।—पृ० रा०, ६६। १७।

अवरग—वि० [ म० अम्बरग ] आकाशगामी [ को० ]।

अवरचर<sup>१</sup>—वि० [ म० अम्बरचर ] आकाशगामी [ को० ]।

अवरचर<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ पक्षी। खग। २ विद्यधर [ को० ]।

अवरचारी—वि० [ स० अम्बरचारी ] ग्रह [ को० ]।

अवरडवर—संज्ञा पुं० [ म० अम्बर + हिं० डवर ] वह लाली जो सूर्य के अग्न होने के समय पश्चिम दिशा में दिखाई देता है। उ०—विनमत वार न लागई अछे जन की प्रीति। अवर डवर सौंभ के लयी दाह की रंति।—स० सप्तक, पृ० ३१२।

अवरद—संज्ञा पुं० [ म० अम्बरद ] वपास [ को० ]।

अवरपुर—(पु संज्ञा पुं० [ म० अम्बरपुर ] आकाश। उ०—आरोपि प्रथिय अवरपुरहसन माइर ससै परिय। कहि चद दद करि दैत सों धरनिवार अहर धरिय।—पृ० रा०, २। १५३।

अवरपुष्प—संज्ञा पुं० [ स० अम्बरपुष्प ] आकाशकुसुम। असंभव बात। खपुष्प। अन्तित्वहीन पदार्थ। [ को० ]।

अवरवानी—संज्ञा पुं० [ स० अम्बर (= मेघ) + वानी ] मेघगर्जन। ब दलों का गर्जन। उ०—अवरवानी भई मजल वादर दल छ ए।—मृ० (राधा०), ४८०६।

अवरवारी—संज्ञा स्त्री० [ स० अमरवल्लरी, प्रा० अम्मर वाली ] एक भाड़ी।

विशेष—यह हिम लय और नीलगिरि पर होती है। इसकी जड़ और छान में बहुत ही अच्छा पीला रंग निकलता है जिससे सभी वर्ष चमड़ा भी रंगते हैं। इसके बीज में तेल निकलता है। इसकी लकड़ी, जिसे दाहलद वा दाहलदी कहते हैं, औषधियों में काम आती है तथा इसकी जड़ और लकड़ी से एक प्रकार का रस निकलते हैं जो रसवत या रसौत

कहा जाता है। पर्या०—चित्रा। दाहलद। आवाहरदी (अमाहरदी)।

अवरवेल—संज्ञा स्त्री० [ स० अम्बरवल्ली ] दे० अम्बरवेलि।

अवरवेलि—संज्ञा स्त्री० [ म० अम्बरवल्ली प्रा०, अमरवल्ली ] आकाश वेल। आकाश वार। अमग्नेय।

विशेष—हर्क भी नुसखों में इसे इपतीमून कहते हैं। सूत के समान पीली एक वेल जो प्रायः पेड़ों पर लिपटी मिलती है जिसकी जड़ पृथ्वी में नहीं होती और इसमें पत्ते और कण्डों भी नहीं निकलते। जिस पेड़ पर यह पड़ जाती है उसे लपेटकर सुखा डालती है। यह वाल बढ़ाने की एक औषधि है। हकीम लोग इसे वायुरोगों में देते हैं।

अवरमणि—संज्ञा पुं० [ स० अम्बरमणि ] आकाश के मणि अर्थात् सूर्य।

अवरमाला—संज्ञा स्त्री० [ स० अम्बरमाला ] मोतियों की विशेष प्रकार की माला। उ०—अवरमाला इक्क अक पहिराइ कसौ इह।—पृ० रा०, ७। २६।

अवरयुग—संज्ञा पुं० [ स० अम्बरयुग ] स्त्रियों का ऊपर और नीचे पहनने का वस्त्र [ को० ]।

अवरलेखी—वि० [ स० अम्बरलेखिन् ] आकाशस्पर्शी। गगन-चुवी [ को० ]।

अवरशैल—संज्ञा पुं० [ स० अम्बरशैल ] अति उच्च पर्वत। बहुत ऊँचा पहाड़ [ को० ]।

अवरसारी—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार का वर वा टैंकस जो पहले घरो के ऊपर लगता था।

अवरस्थली—संज्ञा स्त्री० [ स० अम्बरस्थली ] पृथ्वी [ को० ]।

अवरात—संज्ञा पुं० [ स० अम्बरान्त ] १ कपड़े का छोर। २ वह स्थान जहाँ आकाश पृथ्वी से मिला हुआ दिखाई देता है। क्षितिज।

अवराधिकारी—संज्ञा पुं० [ स० अम्बराधिकारी ] अवर या परिधान का अध्यक्ष [ को० ]।

अवरीक—संज्ञा पुं० [ म० अम्बरीक, देश० अवरीख > अवरीक ] दे० 'अवरीप'। उ०—माफ करे अवरीक वचोगे तब दुर्वास।—पलटू०, १। १६।

अवरीष—संज्ञा पुं० [ स० अम्बरीष ] १ भाड़। २ वह मिट्टी का बरतन जिसमें भड़भूजे लग गरम बालू डालकर दाना भूतते हैं। ३ विष्णु। ४ शिव। ५, सूर्य। ६ विशार अर्थात् ११ वर्ष से छोटा बालक। ७ एक नरक। ८ अयोध्या के एक सूर्यवंशी राजा।

विशेष—ये प्रशुश्रक के पुत्र थे और इक्ष्वाकु से २८वीं पीढ़ी में हुए थे। पुराणों में ये परम वैराग्य प्रसिद्ध हैं जिनके कारण दुर्वास ऋषि का विष्णु के चक्र में पीछा किया था। महाभारत, भागवत और हर्षिवंश में अवरीष को नाभाग का पुत्र लिखा है जो रामायण के मत के विरुद्ध है।

६ आमड़े का फल और पेड़। १० अनुताप। पश्चात्ताप।

११ समर। लड़ाई। १२ छोटा जानवर। बछड़ा [ को० ]।

अवरीसक—संज्ञा पुं० [ स० अम्बरीष ] भाड़। भरनाथ (डि०)।

अवरीक—संज्ञा पुं० [ स० अम्बरीक ] देवता।

अवरीकस्—सङ्घा पुं० [ सं० अम्बरीक ] दे० 'अवरीक' [ को० ] ।  
 अवल—सङ्घा पुं० [ सं० अम्बल, हिं० अवल ] १ मादक पदार्थ । अमल ।  
 २ खट्टा रस । अवल ।  
 अवला (उ)—सङ्घा स्त्री० दे० 'अवला' । उ०—सौम्य समय राइ वोलसी ।  
 हँसि हँसि वोल (ई) अवला मूँघ ।—वी० रासो०, पृ० १६ ।  
 अवली (उ)—सङ्घा स्त्री० दे० 'अमली'—२ । उ०—'आव अंवली रे  
 अवली, ववूर चढी नग बेली रे ।—कवीर ग्र०, पृ० ११२ ।  
 अवण्ठ—सङ्घा पुं० [ सं० अम्बण्ठ ] [ स्त्री० अम्बण्ठा ] १ एक देश का नाम  
 पजाब के मध्य भाग का पुराना नाम । २ अवण्ठ देश में बसने-  
 वाला मनुष्य । ३ ब्राह्मण पुरुष और वंश्य स्त्री से उत्पन्न एक  
 जाति । इस जाति के लोग चिकित्सक होते थे । ४. महावत ।  
 हाथीवान । फीलवान । हस्तिपक । ५ कायस्थों का एक भेद ।  
 अवण्ठकी—सङ्घा स्त्री० [ सं० अम्बण्ठकी ] दे० 'अवण्ठा' ।  
 अवण्ठा—सङ्घा स्त्री० [ सं० अम्बण्ठा ] १ अवण्ठ जाति की स्त्री । २. एक  
 लता का नाम । पाढा । ब्राह्मणी लता । ३ जूही (को०) ।  
 ४. अयाडा (को०) । ५ चूक (को०) ।  
 अवण्ठिका—सङ्घा स्त्री० [ सं० अम्बण्ठिका ] ब्राह्मणी लता [ को० ] ।  
 अवहर (उ)—सङ्घा पुं० [ सं० अम्बर, हिं० अवहर ] मेघ बादल ।  
 उ०—चातक रटै बलाहकि चचल । हरि सिणगारै अवहर ।  
 बेलि०, दू० १६४ ।  
 अवा<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री० [ सं० अम्बा ] १ माता । जननी । माँ । अम्मा ।  
 उ०—जौं सिय भवन रहइ वहू अवा । मोहि बहूँ होइ बहुत  
 अवलवा ।—मानस, १।६० । २. गोरी । पार्वती । देवी ।  
 दुर्गा । ३ अवण्ठा । पाढा । ४ काशी के राजा इन्द्रद्युम्न की तीन  
 कन्याओं में सबसे बड़ी कन्या ।  
 विशेष—काशिराज की तीन कन्याओं को भीष्म पितामह अपने  
 भाई विचित्रवीर्य के लिये हरण कर लाए थे । अवा राजा शाल्व  
 के साथ विवाह करना चाहत थी । इससे भीष्म ने उसे शाल्व के  
 पास भिजवा दिया । पर राजा शाल्व ने उसे ग्रहण न किया  
 और वह हताश होकर भीष्म से बदला लेने के लिये तप करने  
 लगी । शिव जी इसपर प्रसन्न हुए और उसे वर दिया कि तू  
 दूसरे जन्म में बदला लेगी । यही दूसरे जन्म में शिखंडी हुई  
 जिसके कारण भीष्म मारे गए ।  
 ५ समुद्र खदेरी नदी ।  
 विशेष—यह नदी फतेहपुर के पास निकलकर प्रयाग से थोड़ी दूर  
 पर यमुना में मिली है । ऐसी कथा है कि यह वही काशिराज  
 की बड़ी कन्या अवा है, जो गंगा के शाप से नदी होकर  
 भागी थी ।  
 अवा<sup>२</sup> (उ)—सङ्घा पुं० [ सं० आत्र, प्रा० अत्र ] आम । रसाल । उ०—  
 मारु अवा मउर जिम, कर लगइ कुँमलाइ ।—ढोला०,  
 दू० ४७१ ।  
 यौ०—अवाप्तेर=तीखे और लगातार चलनेवाली हवा जिससे  
 पेड़ों से आम के फल गिर जायें (बेल०) ।  
 अवाडा—सङ्घा स्त्री० [ सं० अम्बाडा ] माता । जननी [ को० ] ।  
 अवापोली—सङ्घा स्त्री० [ सं० यौ० आत्र + पौलि > प्रा० अवा + पोली=  
 रोटी, पोतला ] अमावस । अमरस ।  
 ६

अवावन—सङ्घा पुं० [ सं० अंवा + वन ] इलावृत खड का एक स्थान  
 जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाता था । उ०—पुनि सुद्युम्न  
 वसिष्ठ सौ कह्यौ । अवावन मैं तिय हूँ गयो ।—सूर०, ६।२ ।  
 अवायु—सङ्घा स्त्री० [ सं० अम्नायु ] १ माता । जननी । २ भद्र या शिष्ट  
 महिला [ को० ] ।  
 अवार—सङ्घा पुं० [ फा० ] ढेर । समूह । राशि । अटाला ।  
 उ०—रीढ़ बकिम किए निश्चल कितु लोलुप खडा वन्य विलार,  
 पीछे, गोयठों के गधमय अवार ।—इत्यलम् ।  
 अवारखाना—सङ्घा पुं० [ फा० ] गोदाम । भंडार । कबाडखाना  
 [ को० ] ।  
 अवारी<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री० [ अ० अमारी ] १. हाथी के पीठ पर रखने का  
 हौदा । २ ( ऊँट के पीठ का ) मोहमिल जिसके ऊपर एक  
 छज्जेदार मडप बना रहता है । उ०—कुदन नगन जटित  
 अवारिय ।—प० रा०, पृ० ११२ । ३ छज्जा । मडप ।  
 अवारी<sup>२</sup>—सङ्घा स्त्री० पटमन । ( दक्षिण ) ।  
 अवाल्य—सङ्घा पुं० [ सं० अम्बाल्य ] अवाला शहर । उ०—सो रूप-  
 मुरारीदास अवाल्य में एक खत्री के जन्मे ।—दो सौ वावन०,  
 भा० १, पृ० १४१ ।  
 अवाला—सङ्घा स्त्री० [ सं० अम्बाला ] माता [ को० ] ।  
 अवालिका—सङ्घा स्त्री० [ सं० अम्बालिका ] १ माता । माँ । जननी ।  
 २. अवण्ठा लता । पाढा । पाठा । ३ काशी के राजा इन्द्रद्युम्न  
 की तीन कन्याओं में सबसे छोटी ।  
 विशेष—इसे भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये हरण कर लाए  
 थे । विचित्रवीर्य के मरने पर जब व्यास जी ने इससे नियोग  
 किया तब पांडु उत्पन्न हुए ।  
 अवाली—सङ्घा स्त्री० [ सं० अम्बाली ] माता [ को० ] ।  
 अविका—सङ्घा स्त्री० [ सं० अम्बिका ] १ माता । माँ । उ०—अविका  
 माता को कहिये, धाकर नीच ब्राह्मण को कहिये ताते विरुद्ध  
 मतिकृत भयो ।—भिवारी ग्र०, भा० २ पृ० २२५ । २  
 दुर्गा । भगवती । देवी । पार्वती । उ०—वासी नरनारि इस  
 अविका सरूप हैं ।—तुलसी ग्र०, पृ० २४१ । ३ जैनों की एक  
 देवी । ४ कुटकी का पेड़ । ५ अवण्ठा लता । पाढा । ६.  
 काशी के राजा इन्द्रद्युम्न की तीन कन्याओं में मझली ।  
 विशेष—भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये इन कन्याओं को  
 हर लाए थे । विचित्रवीर्य के मरने पर जब व्यास जी ने इससे  
 नियोग किया तब धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए ।  
 अविकापति—सङ्घा पुं० [ सं० अम्बिकापति ] शिव [ को० ] ।  
 अविकापुत्र—सङ्घा पुं० [ सं० अम्बिकापुत्र ] काशिराज की मझली कन्या  
 अविका के पुत्र धृतराष्ट्र [ को० ] ।  
 अविकावन—सङ्घा पुं० [ सं० अम्बिकावन ] १ इलावृत खड में एक  
 पुराणप्रसिद्ध स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाते थे ।  
 उ०—एक दिवस सो अंबेटक गयो । जाइ अविकावन तिय  
 भयो ।—सूर०, १।२ । २ अज के अनर्गत एक वन ।  
 अविकालय—सङ्घा पुं० [ सं० अम्बिकालय ] देवी का मंदिर । उ०—  
 पूजा मिसि आनिसि पुरखोतम अविकालय नगर आरात ।—  
 बेलि०, दू० ६६ ।

अविकासुत

अविकासुत—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बिकासुत ] घृतराष्ट्र । अंवितापुत्र [ को० ]  
 अविकेय—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बिकेय ] अविका के पुत्र—१ गणेश । २.  
 कार्तिकेय । ३. घृतराष्ट्र ।  
 अविष्टा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बिष्ठा + 'जूही' ] राजवल्ली ।—नद० प्र०,  
 पृ० १०५ ।  
 अवु<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बु ] १ जल । पानी । उ०—अवु तू हौं  
 अवुचर, अवु तू हौं डिभ ।—तुलसी प्र०, पृ० २६६ । २.  
 आँसू । अश्रु । उ०—सारगमुख, ते परत अवु ठरि मनु सिव  
 पूजति तपति विनास ।—सा० लहरी, पृ० १७३ । ३ रक्त  
 का जलीय तत्व ( को० ) । ४ सुगंधवाला । ५ कुडली के  
 बारह स्थानी या घरो में चौथा । ६ चार की सख्या, क्योंकि  
 जल तत्वों की गणना में चौथा है । ७ एक छद ( को० ) ।  
 अवु<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० आम्बु ] आम । रसाल । उ०—जवू वृक्ष कहौ  
 क्यों लपट फलवर अवु फरे ।—सूर० ( राधा० ), ३३११ ।  
 अवुअ<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुक, प्रा० अवुअ ] जल । पानी । उ०—  
 उत्तपति प्रेम अग्नि उपजावा । बहिर पवन अवुअ उप-  
 जावा ।—हिं० प्रेमा०, पृ० २२६ ।  
 अवुकटक—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुकटक ] जलजतुविशेष । मगर ।  
 अवुक<sup>४</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुक ? ] मछली । माँस । उ०—सुरा  
 पान अवुक भखे, नित्त कर्म विभिचार ।—दया० घानी,  
 पृ० २८ ।  
 अवुक<sup>५</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुक ] आँख । नयन । उ०—पहिले धन के  
 अवुक माहीं । अजन स्याम रहा है नाहीं ।—इंद्रा०, पृ० ७१ ।  
 अवुकरा—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुकरा ] जलविटु । पानी का छोटा [ को० ] ।  
 अवुकिरात—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुकिरात ] एक जलजतु । मगर ।  
 अवुकीश—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुकीश ] एक जलजतु । सूस । शिशुमार ।  
 अवुकूर्म—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुकूर्म ] दे० 'अवुकीश' [ को० ] ।  
 अवुकेशर—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुकेशर ] नीवू का पेड़ [ को० ] ।  
 अवुकेशी—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुकेशी ] एक जलजतु । ऊद । ऊदबिलाव ।  
 अवुक्रिया—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुक्रिया ] पितृतर्पण [ को० ] ।  
 अवुग<sup>१</sup>—वि० [ सं० अम्बुग ] पानी में निवास करनेवाला । जल-  
 चर [ को० ] ।  
 अवुग<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० जलचर प्राणी [ को० ] ।  
 अवुघन—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुघन ] उपल । शोला । वनारी [ को० ] ।  
 अवुचत्वर—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बु + चत्वर ] भील [ को० ] ।  
 अवुचर—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुचर ] जलचर । उ०—अवु तू हौं अवुचर,  
 अव तू हौं डिभ ।—तुलसी प्र० भा० २, पृ० २५६ ।  
 अवुचामर—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुचामर ] शैवाल । सेवार ।  
 अवुचारी<sup>१</sup>—वि० [ सं० अम्बुचारिन् ] जलचर [ को० ] ।  
 अवुचारी<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० जलचर प्राणी [ को० ] ।  
 अवुज<sup>१</sup>—वि० [ सं० अम्बुज ] जल में उत्पन्न होनेवाला [ को० ] ।  
 अवुज<sup>२</sup>—संज्ञा पुं०, १ जल से उत्पन्न वस्तु या जतु । २. कमल ।  
 जलज । उ०—नव अवुज अवक छवि नीकी ।—मानस  
 १।१४७ । ३, पानी के किनारे होनेवाला एक पेड़ । द्विजल ।  
 ईजड । पतिहा । ४. वेत । ५ वज्र । ६ ब्रह्मा । ७. शख ।  
 ८. चंद्रमा ( को० ) । ९ सारस नाम का पक्षी ( को० ) ।

अवुजतात—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुजतात ] ब्रह्मा । उ०—सुनि के वोल्यो  
 अवुज तात । सुनहु अमरगन मो तैं वात ।—नद० प्र०,  
 पृ० २२० ।  
 अवुजन्मा—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुजन्मन् ] कमल [ को० ] ।  
 अवुजसुत—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुजसुत ] ब्रह्मा । अवुज तात । उ०—  
 अवुज सुत उमया विलाकि, वेद पढ़त खलि बोरज ।—पृ०  
 रा०, ६१।३१५ ।  
 अवुजा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुजा ] १ एक रागिनी जिसे संगीतशास्त्र  
 वाले मेव राग की पुत्रवधू कहते हैं । २ सरस्वती । उ०—तुही  
 अवुजा अवुकामिनि काम ।—पृ० रा० २४ । ३ कमलिनी ।  
 उ०—ढरत रत्त एडिय । उपम कव्वि टेरिय । मनौ कि रत्त  
 रत्तजा । चिकत पन्न अवुजा ।—पृ० रा०, २५।३३० ।  
 अवुजाक्ष<sup>१</sup>—वि० [ सं० अम्बुजाक्ष ] कमल के ममान नेत्रवाला ।  
 अवुजाक्ष<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० शिष्णु ।  
 अवुजाक्षी—वि० स्त्री [ सं० अम्बुजाक्षी ] कमल जैसी आँखवाली [ को० ] ।  
 अवुजात<sup>१</sup>—वि० [ सं० अम्बुजात ] जल में उत्पन्न ।  
 अवुजात<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० कमल । दे० अवज ।  
 अवुजासन—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुजासन ] वह जिमका आसन कमल पर  
 हो । ब्रह्मा ।  
 अवुजासना—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुजासना ] वह स्त्री जिमका आसन  
 कमल पर हो । लक्ष्मी । कमला । सरस्वती ।  
 अवुजिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुजिनी ] अम्बुजिनी [ को० ] ।  
 अवुतस्कर—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुतस्कर ] सूर्य [ को० ] ।  
 अवुताल—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुताल ] शैवाल । सेवार ।  
 अवुद<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुद ] १ जल देनेवाला—घाटल । मेघ ।  
 उ०—विधि महेस मुनि सुर मिहात मव देखन अवुद घाट  
 दिये ।—तुलसी प्र०, भा० २, पृ० २७२ । २ मोया । नागर-  
 मोया ।  
 अवुद<sup>२</sup>—वि० जल देनेवाला । जो जल दे ।  
 अवुदेव—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुदेव ] १ वे लोग जो जल को देवता मानते  
 हैं । २. ज्योतिष के अनुसार पूर्वाषाढ का एक विभाग [ को० ] ।  
 अवुदेव—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुदेव ] दे० 'अवुदेव' [ को० ] ।  
 अवुधर<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुधर ] जल को धारण करनेवाला—  
 मेघ । घाटल । उ०—नव अवुधर धर गात अवर पीत सुर मन  
 मोहई ।—मानस, ५।१२ ।  
 अवुधर<sup>२</sup>—वि० जल को धारण करनेवाला ।  
 अवुधार—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुधार ] जलधारा । उ०—कुतल चिहुर  
 चुवहि ज्यों घाला । अवुधार कैधो अलिमाला ।—माधवानल०,  
 पृ० १६० ।  
 अवुधि—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुधि ] १ समुद्र । सागर । २. चार की  
 सख्या ( को० ) । ३. जलपात्र ( को० ) ।  
 अवुधिकामिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुधिकामिनि ] समुद्र की स्त्री या  
 नदी [ को० ] ।  
 अवुधिस्रवा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुधिस्रवा ] घृतकुमारी । धीकुआर ।  
 श्वारपाठा ।  
 अवुनाथ—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुनाथ ] १. समुद्र । सागर । २. वरुण  
 देवता ।



अनुनिधि—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुनिधि ] समुद्र । सागर ।  
 अनुनिवह<sup>१</sup>—वि० [ सं० अम्बुनिवह ] जल ले जानेवाला [को०] ।  
 अनुनिवह<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० वादल [को०] ।  
 अनुनेत्रा—वि० स्त्री० [ सं० अम्बुनेत्रा ] आँसू भरी आँखोंवाली । अश्रुपुरित नेत्रोंवाली । उ०—आसीना थी निकट पति के अनुनेत्रा यशोदा ।—प्रिय प्र०, ( सर्ग १० ) ।  
 अनुप<sup>१</sup>—वि० [ सं० अम्बुप ] पानी पीनेवाला ।  
 अनुप<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १. समुद्र । सागर । २. वरुण । ३. शतभिषा नक्षत्र । ४. चक्रवर्त का पीछा । चक्रमर्द । चक्रौड ।  
 अनुपक्षी—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुपक्षिन् ] जल में रहनेवाले पक्षी [को०] ।  
 अनुपति—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुपति ] १. समुद्र । उ०—आनन अनल अनुपति जाँहा ।—मानस, ६।१५ । २. वरुण ।  
 अनुपत्ता—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुपत्ता ] नागरमाथा । मोथा । उच्चटा ।  
 अनुपद्धति—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुपद्धति ] जलमार्ग । धारा । जल प्रवाह । जलप्रपात [को०] ।  
 अनुपात—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुपात ] दे० 'अनुपद्धति' [को०] ।  
 अनुपालिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुपालिका ] पतिहारिन । पानी भरनेवाली लडकी उ०—भरे हुए पानी मृदु आती थी पय पर, अनुपालिका ।—अनामिका, पृ० १७७ ।  
 अनुप्रसाद—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुप्रसाद ] निर्मली । निर्मली का पीछा । गँदले पानी को साफ करनेवाली ओषधि । कतक ।  
 अनुप्रसादन—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुप्रसादन ] दे० 'अनुप्रसाद' [को०] ।  
 अनुवसा<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुवासा ] पाटल । पाडर ।—नन्ददास प्र०, पृ० १०२ ।  
 अनुभव—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुभव ] कमल [को०] ।  
 अनुभूत्—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुभूत् ] १. वादल । २. मोथा । ३. समुद्र । ४. अन्नक ।  
 अनुमत्—वि० [ सं० अम्बुमत् ] जलयुक्त [को०] ।  
 अनुमती—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुमती ] एक नदी का नाम [को०] ।  
 अनुमात्रज<sup>१</sup>—वि० सं० अम्बुमात्रज ] जल में ही उत्पन्न होनेवाला । जलीय [को०] ।  
 अनुमात्रज<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० घोघा । शख । शवूक [को०] ।  
 अनुमुर—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुमुर ] दरवाजे का काण्ड । चौखट [को०] ।  
 अनुमुरय—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुमुरय ] धारा । प्रवाह [को०] ।  
 अनुमुराज—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुमुराज ] दे० 'अनुपति' [को०] ।  
 अनुमुराशि—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुमुराशि ] जल की राशि अर्थात् समुद्र । सागर ।  
 अनुमुरह—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुमुरह ] कमल ।  
 अनुमुरहा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुमुरहा ] स्थल कमलिनी [को०] ।  
 अनुमुरहिणी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुमुरहिणी ] कमल । कमलिनी । कुई कोई [को०] ।  
 अनुमुरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुमुरोहिणी ] दे० 'अनुमुरहिणी' ।  
 अनुमल<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुमल > प्रा० अमल > अवल, ] १. अमल । अमल । खट्वा रस । उ०—पन दह अवल जबुअ मेल ।—पृ० रा०, ६३।१०६ । २. आम ।  
 अनुमल<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० आमलक, प्रा० आमलय ] आमला [को०] ।  
 अनुवाची—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुवाची ] आपाड़ में आर्द्रा नक्षत्र का प्रथम चरण अर्थात् आरभ के तीन दिन और २० घड़ी जितने पृथ्वी श्रुतपती समझी जाती है और वीज बोने का निषेध है ।  
 यी०—अनुवाची त्वाग = आपाड़ कृष्णपक्ष त्रयोदशी का दिन [को०] ।

अनुवाची पद = आपाड़ कृष्णपक्ष का दशम दिन [को०] ।  
 अनुवासिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुवासिनी ] पुष्पविशेष । पाडर का फूल । पाटला [को०] ।  
 अनुवासी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुवासी ] दे० 'अनुवासिनी' [को०] ।  
 अनुवाह—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुवाह ] १. वादल । मेघ । २. मोथा । नागरमोथा । ३. जलवाहक व्यक्ति [को०] । ४. अन्नक [को०] । ५. सत्तह की सव्या [को०] । ६. भील [को०] ।  
 अनुवाहक<sup>१</sup>—वि० [ सं० अम्बुवाहक ] जल ले जानेवाला [को०] ।  
 अनुवाहक<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० १. वादल । २. मोथा । नागरमोथा [को०] ।  
 अनुवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुवाहिनी ] १. नाव का जल उलीचने या फेंकने का वरतन जो प्रायः काठ या कछुए के खोपड़े का होता है । २. जल लानेवाली स्त्री [को०] ।  
 अनुवाही—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुवाहिन ] १. मेघ । वादल । २. मोथा । मुस्तक [को०] ।  
 अनुविस्त्रवा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुविस्त्रवा ] घृतकुमारी । त्वारपाठा । घो-कुआर [को०] ।  
 अनुविहार—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुविहार ] जलक्रीडा । जलविहार [को०] ।  
 अनुवेतस—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुवेतस ] एक प्रकार का वेत जो पानी में होता है । बड़ा वेत ।  
 विशप—यह वेत पतला पर बहुत दृढ़ होता है । इसकी छड़ियाँ बहुत उत्तम बनती हैं । दक्षिण बगाल, उड़ीसा, कर्नाटक, चटगांव, बर्मा आदि में यह पाया जाता है ।  
 अनुवायी—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुवायिन ] जल या समुद्र में शयन करने वाले, विष्णु । नारायण ।  
 अनुशिरीपिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुशिरीपिका ] एक विशेष पेड़ । जलशिरीष । डाटोन । टिटिनी । [को०] ।  
 अनुशिरीपी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुशिरीपी ] दे० 'अनुशिरीपिका' [को०] ।  
 अनुसर्पिणी—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुसर्पिणी ] जोक ।  
 अनुसेचनी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुसेचनी ] जल सीचने या उलीचने का पात्र [को०] ।  
 अनुक—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुक ] लकड़ । बड़हर [को०] ।  
 अनुकृत—वि० [ सं० अम्बुकृत ] निष्ठीवनयुक्त उच्चरित (भाषा या कथन) [को०] ।  
 अनुज<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुज ] कमल । अनुज । उ०—परे सीस भार चहुआन धार । मनो इम्भ भकोर अनुज भार ।—पृ० रा०, २५।७६१ ।  
 अनुजी<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्बुज + हि० ई ( प्रत्य० ) ] कमलिनी । कुमुदिनी । उ०—अनुदिन काम विलास विलासिनि, चँ अलि तू अनुजी ।—सूर०, १०।२८२६ ।  
 अनुजीप<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुजीप, प्रा० अनुजीप ] कवीर साहित्य में वर्णित एक द्वीप का नाम । उ०—अनुजीप हन को घाना ।—कवीर सा०, पृ० ५ ।  
 अनुवोह—संज्ञा पुं० [ का० ] भीड़गाड । जमघट । भुड । नमाज । समूह । उ०—इक दम की पंठ लगी है यह अनुवोह मजा चरचा कहिये ।—राम० धर्म०, पृ० ६३ ।  
 अनुवित<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अम्बुवित ] सुधा । अमृत । उ०—पुत्रप पक रस अन्नित साधे । फेड़ में सुरेग। यरीरा बाधे ।—जायसी प्र० ( गुप्त ), पृ० १६२ ।



श्रंभ—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भ ] श्रम्भस् का समासगत रूप, जैसे, श्रम्भ-पति, श्रम्भ-सार मे।

श्रम्भ पति—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भ पति ] जलपति। वरुण [को०]।

श्रम्भ सार—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भ सार ] मोती [को०]।

श्रम्भ सू—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भ सू ] दे० 'श्रम्भ' [को०]।

श्रम्भ स्थ—वि० [ सं० श्रम्भ स्थ ] जल मे स्थित [को०]।

श्रम्भ—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भ ] १ जल। पानी। उ०—नौ तत्त्वनि को लिंग पुनि माँहि भरयो है श्रम्भ।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ७८१। २ पितृलोक। ३ पितर। ४ लग्न से चौथी राशि। ५ चार की सङ्ख्या। ६ साध्य मे आध्यात्मिक तुष्टि के चार भेदों मे से एक। दे० 'श्रम्भस्तुष्टि'। ७ देव। ८ असुर। ९. एक राक्षस या असुर (को०)। १०. शक्ति (को०) ११ तैज (को०)। १२ मनुष्य। मानव (को०) १३ एक वैदिक छंद (को०)। १४ आकाश। उ०—करि मत साहू गोरी श्रचभ।

श्रम्भ चक्र भुजदंड श्रम्भ।—पृ० २०, १९८४।

श्रम्भनिधि—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भस् + निधि ] दे० 'श्रम्भोनिधि'।

श्रम्भस्—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भस् ] पानी [को०]।

श्रम्भसार—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भ सार ] मोती :

श्रम्भसू—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भस् + सु ] १ धूआँ। २. भाप।

श्रम्भस्तुष्टि—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भस् + तुष्टि ] साध्य मे चार आध्यात्मिक तुष्टियों मे से एक। जब कोई व्यक्ति माया के प्रपच मे फँसकर यह सतोष करता है कि उसे होते होते प्रकृति की गति के अनुसार विवेक आदि की अवस्था प्राप्त हो ही जाएगी तब उनकी इस तुष्टि को श्रम्भस्तुष्टि कहते हैं।

श्रम्भसार—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भस्सार ] मोती। मुक्ता [को०]।

श्रम्भु—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भु ] पानी। श्रोप। तेज। काति। उ०—सदा दान किरवान मैं, जाके आनन श्रम्भु।—भूपण ग्र०, पृ० ६।

श्रम्भो—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भस् ] श्रम्भस् का समासगत रूप।

श्रम्भोज—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोज ] १. कमल। पद्म। २ सारस पक्षी। ३ चंद्रमा। ४ कपूर। ५ शख।

श्रम्भोज—वि० जल मे उत्पन्न।

श्रम्भोजखंड—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोजखंड ] कमल समूह [को०]।

श्रम्भोजजनि—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोज + जनि ] श्रम्भोजजन्मा ब्रह्मा। चतुरानन [को०]।

श्रम्भोजजन्म—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोजजन्म ] ब्रह्मा [को०]।

श्रम्भोजजन्मा—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोजजन्म ] ब्रह्मा [को०]।

श्रम्भोजयोनि—सङ्घा स्त्री० [ सं० श्रम्भोजयोनि ] ब्रह्मा [को०]।

श्रम्भोजा—सङ्घा स्त्री० [ सं० श्रम्भोजा ] १. कमलिनी। २ जेठी मधु। मुलेठी [को०]।

श्रम्भोजिनी—सङ्घा स्त्री० [ सं० श्रम्भोजिनी ] १ कमल का पौधा। कमलिनी। पद्मिनी २ कमल का समूह। ३. वह स्थान जहाँ पर बहुत से कमल हों।

श्रम्भोद—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोद ] १ घादल। मेघ। २. मोया। नागरमोया।

यो०—श्रम्भोदनाद = मेघनाद। रावण का पुत्र। श्रम्भोदनादधन = श्रम्भोदनाद को मारनेवाले लक्ष्मण।

श्रम्भोधर—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोधर ] १. घादल। २ मोया।

श्रम्भोधि—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोधि ] श्रुधि। समुद्र। उ०—जयति अजनी गर्भ श्रम्भोधि सभूत विधु विवुध कुल कैरवानदकारी।—तुलसी ग्र०, या २, पृ० ३६०।

श्रम्भोधिपल्लव—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोधिपल्लव ] विद्रुम मृंगा। प्रवाल [को०]।

श्रम्भोधिवल्लभ—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोधिवल्लभ ] मृंगा। प्रवाल।

श्रम्भोनिधि—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोनिधि ] समुद्र। सागर।

श्रम्भोयोनि—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोयोनि ] ब्रह्मा [को०]।

श्रम्भोराशि—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोराशि ] समुद्र।

श्रम्भोरुह—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भोरुह ] १ कमल। उ०—वदन इदु, श्रम्भोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा सदन सरिर।—तुलसी ग्र०, पृ० १६६। २ सारस पक्षी।

श्रम्भु—सर्व० [ सं० श्रम्भस्, प्रा श्रम्भ ] हमारा। मेरा। उ०—जै जपि ताम पेरभ राव। वूफै न मत को श्रंमठाव।—पृ० २०, १२। १६८।

श्रम्भर—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भर ] आकाश। नभ। उ०—चालूक राह चालत दल श्रम्भर घुमर घुमर वर।—पृ० २०, १२। ७६।

श्रम्भर—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भर ] देवता। उ०—सम्भरि सौं लगे समर श्रम्भर कीतिग एव।—पृ० २०, १२। ३२६।

श्रम्भर—वि० दे० 'श्रम्भर'।

श्रम्भर—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भर, श्रम्भरश्च ] श्रम्भर।

श्रम्भर डम्भर—सङ्घा पुं० दे० 'श्रम्भर डम्भर' उ०—धन श्रम्भर डम्भर दिसि प्रमान। उठै जत्र तीनों निधान। पृ० २०, १४। ६१।

श्रम्भरी—सङ्घा स्त्री० [ सं० श्रम्भरी = देवागना ] देवागना। श्रम्भरी। उ०—श्रम्भरी रहसि दल दुष्ट विहसि। करसि वीर लगे सु वर।—पृ० २०, ३१। १५४।

श्रम्भह—सर्व० [ सं० श्रम्भस्; प्रा० श्रम्भह ] हमे। उ०—श्रम्भह एता दुष्ट सुनि।—कीर्ति०, पृ० ७२।

श्रम्भु—सङ्घा पुं० [ सं० श्रम्भु ] श्रम्भु। सुधा। उ०—गगन मंडल मे ऊँघा कृष्ण तहाँ श्रम्भु का दासा।—गौरख०, पृ० ६।

श्रम्भु—सङ्घा पुं० दे० 'श्रम्भु'। उ०—श्रम्भु आवहि जाहि, पपील रगहि चाहि।—पृ० २०, भा० २, पृ० ५६४।

श्रम्भोल—वि० [ हि० श्रम्भोल ] दे० 'श्रम्भोल'। उ०—इसे श्रम्भोल लिये पृथ्वीर चंद कहि।—पृ० २०, ६४। ४२०।

श्रम्भित—सङ्घा पुं० दे० श्रम्भु। उ०—मनहुँ कला ससि भान, कला सोलह सोवन्निय। बाल बेस ससिता समीप श्रम्भित रस पिन्निय।—पृ० २०, २०। ५।

श्रम्भटना—क्रि० सं० दे० 'श्रम्भटना'। उ०—श्रम्भट छोर श्रम्भल पर जाई। जोरन देतव दही जमाई।—सं० दरिया, पृ० ६।

श्रम्भ—सङ्घा पुं० [ सं० ] १. भाग। खंड। अवयव। अंग। २ दाय या उत्तराधिकार का भाग। हिस्सा। बखरा। बंट। ३. भाज्य अंक। ४ भिन्न की लकीर के ऊपर की सख्या। ५. चौथा भाग। ६ सोलहवाँ भाग। ७ वृत्त की परिधि का ३६० वाँ भाग जिसे इकाई मानकर कोण या चाप का प्रमाण बताया जाता है।

विशेष—पृथ्वी की विपुवत् रेखा को ३६० भागों में बाँटकर प्रत्येक विभजक बिंदु पर से एक एक लकीर उत्तर दक्षिण की ओर खींचते हैं। इसी प्रकार इन उत्तर दक्षिण लकीरों को ३६० भागों में बाँटकर विभाजक बिंदुओं पर से पूर्व पश्चिम लकीर खींचते हैं। इन उत्तर दक्षिण और पूर्व पश्चिम की लकीरों के परस्पर अंतर को अश कहते हैं। इसी रीति से राशिचक्र भी ३६० अशों में बाँटा गया है। राशियाँ १२ हैं, इसमें प्रत्येक राशि प्रायः ३० अश की होती है। अश के ६०वें भाग को कला और कल के ६०वें भाग को विकला कहते हैं।  
८ कथा। ९ सूर्य। १२ आदित्यों में से एक, जैसे—अश-सुता=अर्थात् सूर्य की पुत्री यमना। १० किसी क रवार का हिस्सा। ११ फायदे का हिस्सा। १२ राग वा मुख्य स्वर (संगीत)। १३ एक यदुवशी राजा (को०)। १४ दिन (को०)।

यौ०—अशवश=घन परिवार।

अशक—संज्ञा पुं० [ सं० ] [ अशक ] १. भाग। टुकड़ा। २. दिन। सौर दिवस। ३. हिस्सेदार। सांझीदार। पट्टीदार। उ०—दाय या उत्तराधिकार में बड़ी व्यक्ति हिस्सा बाँटनेवाले हो तो प्रत्येक का भाग अश और पानेवाला अशक कहलाता था।—पाणिनि०, पृ० ४१३।

अशक—वि० १. अश धारण करनेवाला। अश रखनेवाला। अश-धारी। २. बाँटनेवाला। विभाजक।

अशकरण—संज्ञा पुं० [ सं० ] विभजन। बँटवारा या विभाग करने का कार्य [ को० ]।

अशकल्पना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अश या विभजन प्रदान करने का कार्य [ को० ]।

अशत—वि० वि [ सं० अशतस् ] किसी अश तक। कुछ हद तक। आशिक रूप में। खडों में। टुकड़ों में। खडश। असंपूर्ण रूप से।

अशतीस—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक तीर्थ का नाम।

अशधारी—वि० [ सं० ] अश धारण करनेवाला। अशक। उ०—प्रगट्यो ववीद अशधारी नरहरि तहाँ दिर्लपति मान्यो तिन्हें गुरु की प्रभाते हैं।—अवधरी०, पृ० ७५।

अशन—संज्ञा पुं० [ सं० ] विभाजन। विभाग या बँटवारा करने का कार्य [ को० ]।

अशपत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह कागज जिसमें पट्टीदारों का अश या हिस्सा लिखा हो।

अशप्रकल्पना—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दे० 'अशकल्पना' [ को० ]।

अशप्रदान—संज्ञा पुं० [ सं० ] हिस्सा या अश देने का कार्य। अशकल्पना [ को० ]।

अशभागी—वि० [ सं० ] दे० 'अशभाग'।

अशभाग—वि० [ सं० ] अश। दायद। हिस्सेदार। [ को० ]।

अशभू—वि० [ सं० ] पट्टीदार। सांझीदार [ को० ]।

अशभूत—वि० [ सं० ] अशरूप। अशमय। अश [ को० ]।

अशयिता—वि० [ सं० ] अशयित, अशयिता [ हिस्सा बाँटनेवाला दायद। हिस्सेदार।

अशल—वि० [ सं० ] १. हिस्सेदार। दायद। २. पुष्ट कंधेवाला, बलवान्। शक्तिसंपन्न [ को० ]।

अशवत्—संज्ञा पुं० [ सं० ] अशुमत। सोम का एक भेद [ को० ]।

अशसुता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] यमुना नदी।

अशस्वर—संज्ञा पुं० [ सं० ] संगीत में मुख्य स्वर [ को० ]।

अशहर—वि० [ सं० ] हिस्सेदार। हिस्सा पानेवाला [ को० ]।

अशहारी—वि० [ अशहारिन् ] दे० 'अशधारी' [ को० ]।

अशाश—संज्ञा पुं० [ सं० ] १. अश का भाग (किसी देवता की)।

२. अमुख्य, अपूरण या गौण अवतार। अशावतार [ को० ]।

अशाशि—वि० [ सं० ] विभागश। विभागानुक्रम से [ को० ]।

अशावतरण—संज्ञा पुं० [ सं० ] १. दे० 'अशावतार'। २. महाभारत के आदि पर्व के ६४ से ६७ अध्यायों का अभिधान [ को० ]।

अशावतार—संज्ञा पुं० [ सं० ] वह अवतार जिसमें परमात्मा की शक्ति का कुछ भाग ही आया हो। पूर्यावतार से भिन्न।

अशी—वि० [ सं० अशिन् ] [ वि० स्त्री० अशिनी ] १. अशधारी। अश रखनेवाला। २. शक्ति या सामर्थ्य रखनेवाला। ३. अवतारी।

अशी—संज्ञा पुं० १. हिस्सेदार। सांझीदार। २. अवयवी।

अशु—संज्ञा पुं० [ सं० ] १. किरण। प्रकाश।

यौ०—अशुधर, अशुपति, अशुभर्ता, अशुभृत्, अशुस्वामी, अशुहस्त=सूर्य।

२. लता का कोई भाग। ३. सूत। सूत्र। तागा। धागा। पतली रस्सी। ४. तागे का छोर। छोर। ५. लेश। बहुत सूक्ष्म अश या भाग। ६. लता और विशेष रूप से सोमलता का सुतरा (को०)। ७. सूर्य। ८. एक ऋषि या राजा का नाम। ९. वेग (को०)। १०. वेश (को०)। ११. आभूषण वस्त्र (को०)।

अशुक—संज्ञा पुं० [ सं० ] १. कपड़ा। वस्त्र। २. पतला कपड़ा। महीन कपड़ा। ३. किरन। अल्प प्रकाश। किरणसमूह। ४. रेशमी कपड़ा। ५. उपरना। उत्तरीय। दुपट्टा। ६. धोती या अघावस्त्र। ७. ओढ़ना। ओढ़नी। ८. मुखवस्त्र, घूँघट (को०)। ९. तेजपात।

अशुकोष्णीपपट्टिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० अशुक + उष्णीपपट्टिका ] उष्णीप पर बाँधी जानेवाली अशक नामक महीन वस्त्र की पट्टी।—हर्ष०, पृ० १७।

अशुजाल—संज्ञा पुं० [ सं० ] १. किरणसमूह। प्रकाशपुंज। २. प्रकाश की दीप्ति या चमक [ को० ]।

अशुनाभि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह बिंदु जिस पर समानांतर प्रकाश की किरणें तिरछी और सकुचित होकर मिलें।

विशेष—सूर्यमुखी राशि को जब सूर्य के सामने करते हैं तब उसकी दूसरी ओर इन्हीं किरणों का समूह गोल वृत्त या बिंदु बन जाता है जिसमें पढ़ने से चीजे जलने लगती हैं।

अशुपट्ट—संज्ञा पुं० [ सं० ] वस्त्रविशेष। एक प्रकार का रेशमी कपड़ा [ को० ]।

अशुमत—संज्ञा पुं० [ सं० ] १. सूर्य। २. अशुमान राजा।

अशुमती—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] १. एक नदी। यमुना। कालिंदी २. सालपर्णी [ को० ]।

अशुमत्फला—सङ्घा स्त्री० [ सं० ] केले का वृक्ष और उसका फल [को०] ।  
अशुमर्दन—सङ्घा पुं० [ सं० ] ज्योतिष में ग्रहयुद्ध के चार भेदों में से एक । इस ग्रहयुद्ध में राजाओं से युद्ध, रोग और भूख की पीड़ा आदि होती है । दे० 'ग्रहयुद्ध' ।

अशुमान—वि० [ सं० ] १. रेशदार । २. सोम से सपन्न । सोमरस से भरा हुआ । ३. चमकीला । दीप्तिमान् । ४. नुकीला [को०] ।

अशुमान—सङ्घा पुं० [ सं० अशुमत् ] १. सूर्य । २. चन्द्रमा (व०) ।  
३. अयोध्या के सूर्यवंशी राजा सगर के पौत्र, असमजस के पुत्र और विलीप के पिता । सगर के अश्वमेध का घोड़ा ये ही ढूँढ़कर लाए थे और सगर के ६०,००० पुत्रों के शव को इन्हीं ने पाया था ।

अशुमाला—सङ्घा पुं० [ सं० ] ज्योतिर्वलय । प्रकाश का घेरा । तेजोवलय [को०] ।

अशुमाली—सङ्घा पुं० [ सं० अशुमालिन् ] १. सूर्य । २. बारह की सख्या [को०] ।

अशुल—सङ्घा पुं० [ सं० ] १. चाणक्य मुनि । २. मुनि [को०] ।

अशुल—वि० प्रकाशपूर्ण [को०] ।

अशुविमर्द—सङ्घा पुं० [ सं० ] किरणों के मद या धुँधली होने की स्थिति [को०] ।

अशूदक—सङ्घा पुं० [ सं० ] धूप या चाँदनी में रखा हुआ जल [को०] ।

अश्व—वि० [ सं० ] १. वाँटने योग्य । विभाजनीय । २. विभाग । प्राप्य [को०] ।

अस—सङ्घा पुं० [ सं० ] १. भाग । अश । खट । अवयव । उ०—ईश्वर अश, जीव अविनासी ।—मानस, ७।११७ । २. स्कध । कथा । उ०—अभयद भुजदह मूल, अस पीन सानूकल, कनक मेखला दुकूल दामिनि धरखी री ।—सूर०, १०।१३८४ । ३. चतुर्भुज का कोई कोण (को०) । ४. वेदी के कोई दो स्कध या कोण (को०) ।

अस<sup>१</sup>—सङ्घा पुं० [ सं० अश ] १. कला । उ०—तापर उरग असित तव सोभित पूरन अस ससी ।—सूर०, १०।११६६ । २. सूर्य । जैसे 'अससुता' में । ३. अपनत्व । सबध । अधिकार । उ०—अव इन कृपा करी ब्रज आए जानि आपनो अस ।—सूर०, १०।३५८७ ।

अस<sup>३</sup>—सङ्घा स्त्री० [ सं० अशु ] किरण । उ०—सित कमल वस सी सीतकर अस सी ।—भिखारी० ग्र०, भा०, १, पृ० २३४ ।

अस<sup>४</sup>—सङ्घा पुं० [ सं० अश या अशु ] आँसू । अश्रु । उ०—भुज फरकनि तरकनि कचुकि कच छुरि जु रहे डुरि अस ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ३८३ ।

असकूट—सङ्घा पुं० [ सं० ] साँड के कधों के बीच का ऊपर उठा हुआ भाग । कूट । कुव । ककुद ।

असटपाटी—सङ्घा स्त्री० [ सं० अनशन + हिं० पाटी ] दे० 'खटपाटी' ।  
कि० प्र०—लेना = खटपाटी लेना । क्रोध या हठ के कारण काम-काज न करना । काम धाम से विरक्त होना । उ०—तौ वाकी मा असटपाटी लै के परि गई ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १००६ ।

असत्त—सङ्घा पुं० [ सं० ] १. स्कधराज । कधों की रक्षा के लिये धारण किया जानेवाला लोहपट्ट । २. घनुष [को०] ।

असधन—सङ्घा पुं० [ सं० अशधन ] हिस्से का धन । उ०—जुकु अशधन हुती जो साथ । सो दीनो माता के हाथ ।—अर्थ० ।

असपुरसा—सङ्घा पुं० [ सं० अश+पुरुष ] अशपुरुष । बलवान् व्यक्ति । उ०—तदवार असपुरसा तरणी, आय बणी जग ऊपरा ।—रा० रू०, पृ० २३ ।

असफलक—सङ्घा पुं० [ सं० ] रीढ़ का ऊपरी भाग [को०] ।

असभार<sup>१</sup>—वि० कधों पर बोझ ढोनेवाला । बहंगीदार [को०] ।

असभार<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० [ सं० ] कधों का बोझ । बोझ जो कधे पर ढोया जाय [को०] ।

असभारिक—वि० [ सं० ] कधों पर बोझ ढोनेवाला [को०] ।

असभारी—वि० [ सं० ] दे० 'असभारिक' [को०] ।

असर<sup>१</sup>—सङ्घा पुं० [ अ० उन्सुर ] तत्व । उ०—के हैं पाँच असर सू फला योतन, के माटी होर पानी व वारा तू गिन ।—दक्खिनी०, पृ० २०८ ।

असल—वि० [ सं० ] पुष्ट कधोवाला । दृढस्कध । बलवान् [को०] ।

अससुता—सङ्घा स्त्री० [ सं० अशु (= सूर्य) + सुता ] कालिदी । जमुना । सूर्यतयना । उ०—सूरदास प्रभु अससुता तट श्रीवत राधा नदकुमार ।—सूर०, १०।१८०२ ।

असिक<sup>१</sup>—[सं० अशक] अश धारण करनेवाला । अशसमूत । उ०—सुर असिक सब कपि अश रीछा । जिए सकल रघुपति की ईछा ।—मानस, ६।११३ ।

असी<sup>१</sup>—वि० [ सं० अशी ] अशवाला । अशधारी । उ०—द्वारपाल इहँ कही, जोधा कोउ बचे नहीं, काँधे गजदत धरे सर ब्रह्म असी ।—सूर०, १०।३०७४ ।

असु<sup>१</sup>—सङ्घा पुं० [ सं० अशु, प्रा० असु ] किरण । उ०—सरद निसि को अशु अगनित इदु आभा हरनि ।—सूर०, १०।३५१ ।

यो०—असुपति, असुमान, असुमाल = सूर्य ।

असु<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० [ सं० अस ] भाग । अश । उ०—लोभा लई नीचे ज्ञान चलाचल ही को अस् अत है क्रिया पाताल निदा रस ही को खानि ।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० २१२ ।

असु<sup>३</sup>—सङ्घा पुं० [ सं० अत ] स्कध । कधा । उ०—सखा असु पर भुज दीन्हें लीन्हें मुरलि अघर मधुर विषव भरन ।—सूर०, १०।६२४ ।

असु<sup>४</sup>—सङ्घा पुं० [ सं० अशु, प्रा० अस्तु, असु ] आँसू । अश्रु । उ०—गहत बाल पिय पानि सु गुरु जन सभरे । लोचन मोचि सुरग सु असु बहे खरे ।—पृ० रा०, २५।२७५ ।

असु<sup>५</sup>—सङ्घा पुं० [ सं० अश्व, प्रा० अस्त ] अश्व । घोड़ा । उ०—पय मडिहि असु धरै उलटा । मनो विटय देवि चलै कुलटा ।—पृ० रा०, २७।३५ ।

असुक—सङ्घा पुं० [ सं० अशुक, प्रा० असुक, असुग ] वस्त्र । कपड़ा । उ०—आँ असुक जिमि फूल सलोना ।—इंद्रा०, पृ० १२८ ।

असुग<sup>१</sup>—सङ्घा पुं० दे० 'असुक' । उ०—कासमीर असुग दए सब जोधन पहिराय ।—पृ० रा०, पृ० १६४ ।

असुमाल<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री० [ सं० अशु, प्रा० असु + सं० प्रा० माल ] किरण समूह । उ०—जागिये गोपाललाल, प्रगट भई असुमाल मिटघो अधकाल, उठी जवनी सुखदाई ।—सूर०, १०।६१६ ।

अस्य<sup>१</sup>—वि० [ सं० अस्य ] विभाज्य ।

अस्य<sup>२</sup>—वि० [ सं० ] कथा मवधी [ को० ] ।

अह—सङ्घा पुं० [ सं० अहस् ] १ पाप । दुष्कर्म । अपराध । २ दुःख । चिन्ता । कष्ट । व्याकुलता । ३ विघ्न । बाधा ।

अहति—सङ्घा स्त्री० [ सं० ] १ दान । त्याग । परित्याग । २ रोग । ४ कष्ट । दुःख [ को० ] ।

अहती—सङ्घा स्त्री० [ सं० ] दे० 'अहति' [ को० ] ।

अहद<sup>३</sup>—वि० [ हि० अन् + अ० हृद ] जिसकी हृद न हो । असीम । अनन्त । अनहद । उ०—नाद अनाहद अहद, सुनि अनाहद कौन । —इद्रा०, पृ० १२१ ।

अहस्पति—सङ्घा पुं० [ सं० ] क्षय मास [ को० ] ।

अहिति—सङ्घा स्त्री० [ सं० ] दान [ को० ] ।

अहिती—सङ्घा स्त्री० [ सं० ] दे० 'अहिति' [ को० ] ।

अहि—सङ्घा पुं० [ सं० ] १ पाँव । पैर । २ वृक्ष की जड़ या मूल [ को० ] ।

अहिप—सङ्घा पुं० [ सं० ] पादप । पेड़ [ को० ] ।

अहिशिर—सङ्घा पुं० [ सं० ] 'अहिरकद' [ को० ] ।

अहिरकद—सङ्घा पुं० [ सं० ] गुल्फ । घुट्टी । टखना [ को० ] ।

अकखरी—सङ्घा स्त्री० [ हि० ] ककड़ या पत्थर का महीन टुकड़ा या चूरा । अकटी । अकरी । अकरोरी ।

अकटा—सङ्घा पुं० [ सं० कर्कर, प्रा० कक्कर या म० अंकुर, हि० अकुर > अकड अथवा सं० अक + काण्ड, > प्रा० अक + अड = अकड, या देश ] १ ककड़ का छोटा टुकड़ा । २ ककड़ पत्थर आदि का महीन टुकड़ा या चूरा जो अनाज में से चुनकर निकाल दिया जाता है ।

अकटी—सङ्घा स्त्री० [ अकटा शब्द का अल्पार्थक प्रयोग ] छोटा अकटा ।

अकड<sup>३</sup>—सङ्घा स्त्री० [ सं० अकडार > प्रा० अकड > अकड ] अकड । ऐठ । उ०—अकड जीवलव सुक सु किया था जुल्लाव । —दक्खिनी०, पृ० १४६ ।

अकडा—सङ्घा पुं० दे० 'अकटा' ( बोल० ) ।

अकडी—सङ्घा स्त्री० [ सं० अकडार = अकडार = टेढ़ी नोक; अथवा सं० अकड टुक, प्रा० अकडड, अकडड ] १ अकटी । २ हुक । कटिया । ३ तौर का मुड़ा हुआ फल । टेढ़ी गाँसी । ४ बेल । लता । ५ लग्नी । फल तोड़ने का दाँस का डटा जिसके सिरे पर फँसाने के लिए एक टेढ़ी छोटी लकड़ी बँधी रहती है ।

अकना<sup>१</sup>—क्रि० सं० [ सं० अकन ] दे० 'अकना' ।

अकना<sup>२</sup>—क्रि० अ० १ आँका जाना या कूता जाना । २ लिखा जाना या अकित होना ।

अकना<sup>३</sup>—क्रि० सं० [ सं० आकन ] सुनना । श्रवण करना । उ०—अवध सकल नर नारि विवल् अति अकनि वचन अन-भाए । —तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० ३६२ ।

अकमाल<sup>३</sup>—सङ्घा पुं० दे० 'अकमाल' । उ०—सूर स्याम वन तै ब्रज आए जननि लिए अकमाल । —सूर०, १०।१३६० ।

अकरवरी<sup>३</sup>—सङ्घा स्त्री० [ हि० अकर + वरी या औरी ( प्रत्य० ) ] अकडी । ककडी । उ०—काटि न चुभे न गडे अकरवरी । —जयसी ग्र० ( गुप्त ), छंद १३७ ।

अकरा—सङ्घा पुं० [ सं० अकर, र ] [ स्त्री० अकरी ] १ एक खरवा कुधान्य ।

विशेष—गह रबी की फसलो में गेहूँ के पीधों के बीच जमता है । इसे काटकर बैलो को खिलाते हैं और इसका साग भी खाते हैं । इसका दाना या बीज काला, चिपटा, छोटी मूँग के बराबर होता है और प्रायः गेहूँ के साथ मिल जाता है । इसे गरीब लोग खाते भी हैं । खेसारी इसी का एक रूपान्तर है । २ ककड़ ।

अकरासा—सङ्घा पुं० दे० 'अकरास' ।

अकरी—सङ्घा स्त्री० [ अकरा का अल्पार्थक प्रयोग ] छोटा अकरा या ककडी ।

यौ०—अकरी + पथरी = ककडी । अकटी ।

अकरोरी—सङ्घा स्त्री० [ देश० ] ककडी । सितकी । ककड़ या खपड़े का बहुत छोटा टुकड़ा । अकरवरी ।

अकरोरी<sup>३</sup>—सङ्घा स्त्री० दे० 'अकरोरी' । उ०—अकरोरी सम गनी पहारा, लेखो समुह हिये महे नारा । —चित्रा०, पृ० २१५ ।

अकवरी—सङ्घा स्त्री० दे० 'अकरोरी' ।

अकवाई—सङ्घा स्त्री० [ हि० + आँकना + वाई ( प्रत्य० ) ] १ अकवाने की क्रिया या स्थिति । २ आँकने का पाश्चिमिक या मजदूरी । अकई ( बोल० ) ।

अकवाना—क्रि० म० [ हि० आँकना का प्रेरणार्थक ] १ मूल्य निर्धारित करना । २ कुतवाना । अदाज कराना । ३ परीक्षा कराना । जेचवाना । परखवाना । ५ चिह्न, छाप आदि लगवाना ।

अकवार—सङ्घा स्त्री० [ सं० अकूपालि, अकूपाल, प्रा० अकपालि, अकपाल ] १ गोद । अक । २ छाती । वक्षस्थल ।

मुहा०—देना = गले लगना । छाती से लगना । आलिगन करना ।

भेंटना — भरना = आलिगन करना । भेंटना । गले मिलना ।

उ०—वनमाला पहिरावत स्थामहि वाग वार अकवार भरत धरि । —सूर०, १०।४०६ । —भरी होना = गेद में दबचा रहना । सतानयुक्त होना । उ०—वह तुम्हारी अकवार भरी रहे, ( आशीर्वाद ) ( शब्द० ) ।

३ आलिगन । भेंट । मिलना । जैसे—चिट्ठी में हमारी भेंट अकवार लिख देना । —( शब्द० ) ।

अकवारना—क्रि० सं० [ हि० अकवार + ना ] गले लगाना । भेंटना । आलिगन करना ।

अकवारि<sup>३</sup>—सङ्घा स्त्री० [ सं० अकूपालि, प्रा० अकपालि ] उ०—खेलत तै भोहि बोलि लियो इहि दोउ भुज भरि दीन्ही अकवारि । —सूर०, १०।३०४ ।

अकवारी<sup>३</sup>—सङ्घा स्त्री० १ दे० 'अकवार' । उ०—अव के गोना बहुरि नहि औना करि ले भेंट अकवारी । —सतवाणी, भा० २, पृ० ६ । २ हाथावांही । हाथापाई । मुठभेड़ । सघर्ष ( लाक्षणिक प्रयोग ) । उ०—वीर अगुमने भूजा पसारी । दुइ दल माँह भई अकवारी । —चित्रा०, पृ० १४३ ।

अकसा—सङ्घा पुं० दे० 'अकस' ।

अकसदीया—सङ्घा पुं० दे० 'अकसदीया' ।

अँकाई—सहा स्त्री० [ म० अङ्क, हि० अक (आंक, आंकना, अकना) + आई (प्रत्य०) ] १ कृत। मदाजा। अटकल। तखमीना। २ फमल में से जमींदार और काश्तकार के हिस्से का ठहराव। मूल्य लिखा जाता।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३ आंकने का पारिश्रमिक या मजदूरी।

अँकाना—क्रि० म० [ म० अकन ] [ सङ्—अँकाई अँकाव ] १ अदाज कराना। कुतवाना। २ परीक्षा कराना। परखाना। ३ मूल्य निर्धारित कराना। उ०—मन आप्रह करने लगा, लगा पूछने दाम। चला अँकाने के लिये वह लोभी बेकाम।—भरना, प० ७४। ४ चिह्न छापा आदि लगवाना।

अँकाव—सहा पुं० [ स० अङ्क + हि० आव (प्रत्य०) ] [ क्रि०—अँकाना ] कृतने वा आंकने का काम। कुताई। अदाज वा तखमीना करने का काम।

क्रि० प्र०—होना।

अँकावना(उ०)†—क्रि० स० दे० 'अँकवाना', अँकाना'। उ०—यह प्रेम बजार के अतर सो पर नैन दलाल अँकावने हैं।—ठकुर०, पृ० २५।

अँकिया(उ०)†—सहा स्त्री० [ हि० आँख, अँखिया ] आँख। नेत्र। उ०—अँकिया के नहर सूँ दीदे का पनी वर ऐसे लागे गम की दाग-वानी।—दक्खिन०, पृ० २३७।

अँकुडा—सहा पुं० [ स० अङ्कुर ] १ लोहे का भुका हुआ टेढ़ा काँटा। २ लोहे का भुना हुआ टेढ़ा छड़ जिससे चूड़िदार लग भट्ठी से गला हुआ काँच निकालते हैं। ३ टेढ़ी भुकी हुई कोल वा कँटिया जिसमें तागे अँटकाकर पटवा वा पटहार काम करते हैं। ४ लोहे का एक टेढ़ा काँटा जो लकड़ी आदि तोलनेवाली बर्तन, तराजू की डाली, के बीचोबीच लगा रहता है। ५ कुलावा। पायज। ६ लोहे का एक गोल पचवट जो किवाड की चूल में ठोका रहता है। ७ लोहे का एक छड़ जिसका एक सिरा चिपटा होता है और दूसरा टेढ़ा और भुका हुआ। चिपटे सिरे को कांटे में किवाड के पत्ते में जड़ देते हैं और भुके हिस्से को साह के कोठो में डाल देते हैं। इसी पर पल्ला घूमता है अर्थात् खुलता और बंद होता है। ८ रेशमी कपड़ा बुननेवालों का मछली के आकार का काठ वा एक अजोरा जिसके सिरे पर एक छेद होता है। इन छेद में एक खूँटी गड़ी रहती है जिसमें दलपमन से बँधी हुई रस्सी लपेटी रहती है। ९. गाय बैल के पेट का दर्द या मरोट जिसे ऐँचा भी कहते हैं। १० खूँटी। नागदत।—(को०)।

अँकुडी—सहा स्त्री० [ हि० अँकुडा का अल्पायक प्रयोग ] [ वि० अँकुडी-दार ] १ छोटा अँकुडा। टेढ़ा कँटिया। हुक। २ लोहे का एक छड़ जिसका सिरा कुछ भुका रहता है और जिससे लोहार लोग भट्ठी की आग रोक्ते हैं। ३ हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगाया जाता है। ४ एक के पहिए के जोड़ों पर लगी हुई लोहे की पील या जंजीर।

अँकुडीदार—वि० [ हि० अँकुडी + फा० दार ] १ जिसमें अँकुडी वा कँटिया लगी हो। जिसमें अँटवाने के लिये हुक लगा हो। हुक-दार। २, एक प्रकार का यंत्र जिससे गडारी भी कहते हैं।

अँकुर(उ०)†—सहा पुं० [ सं० अङ्कुर ] अकुर। अँखुआ। उ०—अदभुत राम नाम के अक। धर्म अँकुर के पावन द्वे दल मुक्ति-वधू ताटक॥—सूर०, १।६०।

अँकुरना(उ०)†—क्रि० अ० [ सं० अङ्कुरण ] अकुरित होना। अकुर का उत्पन्न होना या निकलना। किसी वस्तु की आरंभिक उत्पत्ति या उत्पन्न होना।

अँकुराना<sup>१</sup>(उ०)†—क्रि० स० [ सं० अङ्कुरण ] पानी में भिगोकर चने आदि को अँकुरयुक्त होने में प्रवृत्त करना। अकुर उत्पन्न कराना।

अँकुराना<sup>२</sup>(उ०)†—क्रि० अ० दे० 'अँकुरना'।

अँकुराना<sup>३</sup>(उ०)†—क्रि० अ० [ सं० आकुल ] आकुल होना। व्याकुल होना। उ०—माइ बापे दय हलु नेपुर गढइ। नेपुर भंगवडते जिव अँकुराई।—विद्यापति, पृ० २०३।

अँकुरी†—सहा स्त्री० [ सं० अङ्कुर + ई (हि०) ] १ भिगोकर अकुरित किए गए चने, मूँग, गेहूँ आदि की घुंघनी। २ वश में एकमात्र बची हुई सतान।

अँकुवार—सहा स्त्री० [ सं० अङ्कुर, हि० अँखुआ + आर (प्रत्य०) ] अकुर। अँखुआ। उ०—प्रेम बिना नहीं उपज हिय, प्रेम बीज अँकुवार—रसखान० पृ० १।

अँकुसा—सहा पुं० दे० 'अंकुश'।

अँकुसी—सहा स्त्री० [ सं० अङ्कुश, हि० अकुस + ई (प्रत्य०) ] १ टेढ़ी करके भुवाई हुई लोहे की कल जिसमें कोई चीज लटकाई या फँसाई जाय। हुक। बटिया। २ पीतल वा लोहे का एक लंबा छड़ जिसका एक सिरा घमावदार होता है। इससे ठेठे भट्टी की राख निकालते हैं। ३ लोहे का टेढ़ा छड़ जिसको विवाड के छेद में डालकर व हर से अगरी या सिटविनी खोलते हैं। यह कुंजी का काम देता है। ४ वह छोटी लकड़ी जो फल तोड़ने की लगी के सिरे पर बँधी रहती है। ५ लोहे का एक वित्ता लंबा सूजा जिसका सिरा भुका होता है। इसमें नारियल के अंतर की गरी निकालते हैं।

अँकूर—सहा पुं० [ सं० अङ्कुर ] १ अक। भाग्य। उ०—जथा जोग सब मिलत है जो विधि लिख्यो अँकूर। खल गुर भोग गवारनी रानी पान वपुर।—स० सप्तक, पृ० ३५१। २ अकुर। अँखुआ। उ०—जु बकिय भोह न तुच्छ गहर। उठे मन मच्छ धनक अँकूर।—पृ० २१०, २१।२२।

अँकोडा—सहा पुं० [ सं० अङ्कुर या प्रा० अकुडग ] १ एक प्रकार का लोहे का काँटा जो पाल की रस्सी खींचने में काम आता है। २ एक प्रकार का लगड़। बड़ी कँटिया। कोडा।

अँकोर<sup>१</sup>(उ०)†—सहा पुं० [ सं० अङ्कुरमाल या अङ्कुरपालि, हि० अँकवार ] १ अक। गोद। छती। उ०—खलत रहीं कटहू मैं बाहिर चितै रहति सब मोरी और। बोलि लेति भीतर घर अपने मुख चूमति भरि लेति अँकोर।—सूर० (शब्द)। २ दे० 'अँकवार'। ३ भेट। नजर। उपहार। उ०—सूरदास प्रभु के जो मिलन को, कुच श्रीफल मो करति अँकोर।—सूर (शब्द)। ३ घूस। रिशवत। उ०—(क) लीन्ह अँकोर हाथ जेहि जीउ दीन्ह तेहि हाथ —जायसी ग्र०, पृ० २८७। (ख) विधुरित सिरह वरुष, कुचित विच सुमन जुय मनि जुत सिसु फनि



अनीक, समि ममीप आई। जन् मभीत दे अंकोर, राखे जुग  
रुचिर मोर, कुटल छवि निरखि चोर सकुचत अधिकाई।—  
तुलसी ग०, पृ० ४०५।

अंकोर<sup>१</sup>—सछा पु० [ सं० कवल; हि० कौर अथवा फोर (देश०) ]  
छोराक या कलेवा जो खेत में काम करनेवालों के पाग भेजा  
जाता है। छाक। कोर। दुगहरिया। जलपान।

अंकोरी—सछा स्त्री० [ सं० अङ्कपालि प्रा० अकवालि, अथवा सं०  
अङ्कालिका ] १ गोद। अक। २ आलिंगन। अंकवार। कौली।  
उ०—गावत हंसत रिभावत हिलिमिलि पुनि पुनि भरत  
अंकोरी।—भा० तेंदु ग०, भा० २, पृ० ४६७।

अंकीर—सछा पु० [ सं० अङ्कपालि या अङ्कालिका, प्रा० अकवालि ]  
आलिंगन। अंकवार। उ०—मुख चूमत ललचाइ बबहु पुनि बबहु  
भरत अंकीर।—भारतेंदु ग०, भा० २, पृ० ५६६।

अंकील<sup>७</sup>—सछा पु० दे० 'अकील'।

अंखडी<sup>१</sup>—सछा स्त्री० [ सं० अक्षि, प्रा० अखि, अख, डि० और प०  
अख + डी (प्रत्य०), अथवा हि० अख + डी (प्रत्य०) ] १.  
आँख। नेत्र। उ०—मेरी इन दुखिया अंखडियों के सामने।—  
लहर, पृ० ७२। २ चित्त। उ०—तुझ अंखडियाँ के देखे  
आलम खराब होगा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ८।

अंखमीचनी<sup>७</sup>—सछा स्त्री० [ हि० अख + मीचनी ] दे० 'अख-  
मिचौली'।

अंखमूदन<sup>७</sup>—सछा पु० दे० 'अंखमूदनी'।

अंखमूदनी—सछा पु० [ हि० अख + मूदना ] अखमीचनी। अख-  
मिचौली।

अंखाना<sup>७</sup>—क्रि० प्र० दे० 'अनखाना'।

अंखि<sup>७</sup>—सछा स्त्री० दे० 'अखि'। उ०—जिम सुकिया दुति वचन, इत  
तरिय अंखि अग्गी।—पृ० रा०, ६१। १०११।

अंखिया<sup>१</sup>—सछा स्त्री० [ सं० अक्षि, प्रा० अखि, हि० अखि, अंखिया,  
प० अख ] १. आँख। नेत्र। उ०—अंखिया निरखि स्थाम  
मुख मूली।—सूर०, १०। २४०१।

विशेष—दुलार या म्हेयुक्त अभिव्यक्ति के प्रसंग में प्रायः इस रूप  
का प्रयोग होता है।

२ लोहे का एक ठप्पा या बमल जिससे वरतन पर हथौड़ी से  
ठोक ठोककर नक्काशी बनाते हैं।

अंखियारा<sup>१</sup>—वि० [ हि० अंखिया + रा (प्रत्य०) ] अंखवाला (अधा  
का विलोम)।

अंखुआ—सछा पु० [ सं० अङ्कुरक ] १. बीज से फूटकर निकली हुई टेढ़ी  
नोक जिसमें से पहली पत्तियाँ निकलती हैं। अकुर। उ०—  
खोल खेत में अंखु वही अंखुआ फहलाता मिट्टी मुह में डाल  
फूल अंगो न समाता।—बुद्ध० च०। २ बीज से पहले पहल  
निकली हुई मुलायम बँधी पत्ती। डाम। कल्ला। बनया।  
कोपल। फुनगी।

क्रि० प्र०—अना।—उगना।—जमना।—निकलना।—  
फटना।—फँसना।—फोटना।—ताना।—तेना।

अंखुआना—क्रि० प्र० [ हि० अंखुआ से नाम० ] १ अकुर फटना  
या फँसना। उगना। जमना। अकुरित होना। २. उभटना।  
उठाना।

अँग—सछा पु० [ ग० अङ्ग ] १. शरीर। देह। अवयव। अंग। उ०—  
फले अँग न समात, रावन को भाग उधरि रह्यो।—नद० प्र०,  
पृ० ३३३। २ पद। तरफ। उ०—प्रपने अँग के जानि को  
जोवन-नृपति प्रवीन।—विहारी र०, दो० २।

अँगऊँ<sup>१</sup>—सछा पु० दे० 'अँगौंगा'।

अँगऊँ<sup>१</sup>—सछा पु० [ ग० अग्रिम ] दे० 'अँगौंगा'।

अँगडाई—सछा स्त्री० [ हि० अँगडाना + ई (प्रत्य०) ] [ क्रि० अँग-  
डाना ] आलम से जम्हाई के साथ अंगों को फैलाना, मरोटना  
या तानना। देह के बदन या जोड़ के भारीपन को हटाने के  
लिये अवयवों को पसारना या तानना। शरीर के लगातार एक  
स्थिति में रहने के कारण जोड़ी या बंदों के भर जाने पर  
अवयवों को फैलाना। अँगडाने की दिया या भाव। देह  
टूटना। १। न टूटना। उ०—जलधि नहरियों की अँगडाई  
बारबार जाती सोने।—कामायनी, पृ० २३।

विशेष—सोतर उठने पर या ज्वर आने के कुछ पहले यह प्रायः  
आती है।

क्रि० प्र०—अना।—तेना। उ०—खुदा के वास्ते तगर न ले  
तू अँगडाई। क्रि० बदन बदन वृत्ते बेहिजाव चटोंगा (फं०)।

मुहा०—अँगडाई तोडना = ( १ ) आलम में बैठे रहना। कुछ  
काम न करना। ( २ ) किसी के कंधे पर हाथ रखकर अपने  
शरीर का भार उसपर देना।

अँगडाना—क्रि० प्र० [ ग० अङ्ग + अट् ] शरीर के बदन या जोड़ी  
के भारीपन को हटाने के लिये अंगों को पसारना या तानना।  
शरीर के लगातार एक स्थिति में रहने के कारण जोड़ी या  
बंदों के भर जाने पर अवयवों को फैलाना या तानना। देह  
तोडना। गुस्ती से या थकावट में ऐठना या ऐडाना।

अँगधातु<sup>७</sup>—सछा पु० [ सं० अङ्गधातु ] प्रस्वेद। पसीना। उ०—मूकूट  
उतारि घरची लै मंदिर पोछति है अँगधातु।—सूर० १०। १११।

अँगन<sup>७</sup>—सछा पु० [ ग० अङ्गण, अङ्गन ] आँगन। चौक। उ०—  
ढहडे बदन निरखि मिसु भूले। कचन जलज अँगन जन् फूले॥  
—नद० प्र०, पृ० ३०२।

अँगनई<sup>१</sup>—सछा स्त्री० दे० 'अँगनाई'। उ०—और अब तरफकी वरते  
करते सेक्रेटगियट की अँगनई में दाखिल हो बैठे थे।—नई  
पौ०, पृ० ८।

अँगनवाई<sup>७</sup>—सछा पु० [ हि० अँगन + वाँ (प्रत्य०) ] दे० 'अँगन'।  
उ०—पेलत रहलू अँगनवाई मर्छी मँग गाथी हो।—धरम०  
शब्दा०, पृ० ६४।

अँगना<sup>१</sup>—सछा पु० [ सं० अङ्गण, अङ्गन ] आँगन। चौक। उ०—पर  
अँगना करि दार्यों मो घर तब छिन जोरे हाथ।—भा० तेंदु  
ग०, भा० २, पृ० ३८४।

अँगना<sup>२</sup><sup>७</sup>—सछा स्त्री० [ ग० अङ्गना ] स्त्री। नारी। उ०—दहन  
गुटी लखि लजन की अँगना गँगना मारि।—विहारी र०,  
दो० ३७३।

अँगनाई<sup>१</sup>—सछा स्त्री० [ ग० अङ्गन, हि० अँगन, अँगना + ई  
(प्रत्य०) ] आँगन। मजिर। अँगना। उ०—अँगन न जाय  
रुचिर अँगनाई।—मानस ७। ७६।



अंगनैत—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गन, हि० अंगन, अंगना + ऐत (प्रत्य०) ]  
अंगन का स्वामी। घर का मालिक। गृहस्वामी। गृहपति।

अंगनैया—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गन, हि० अंगन-अंगन + ऐया (प्रत्य०) ] अंगन। अंगना। उ०—मनि खबनि प्रतिविब  
भलक, छवि छलविहँ भरि अंगनैया। —तुलसी ग्र०,  
पृ० २७३।

अंगवदन—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्ग + वदन, तु० फा० वद ] अंगवधन।  
शरीर का वधन। उ०—ज्यो अहिपति केंचुरि की लघु लघु  
छोरत है अंगवदन। —सूर०, १०।११५८।

अंगवलित—वि० [ सं० अङ्गवलित ] अंगों से लिपटा हुआ। उ०—अज  
अधिप अंगवलित सुगति समय सोहती वाला —भिखारी ग्र०,  
भा० १, पृ० १३१।

अंगरंग—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गरङ्ग ] शरीर की काति या दीप्ति। उ०—  
तेरेही नव जीवन के अंगरंग सुभ लागत परम सुहाए।—  
नद० ग्र०, पृ० ३४६।

अंगरखा—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्ग = वेह + रक्षक = वचानेवाला, प्रा०  
रखअ, हि० रखा ] एक पुराना मर्दाना पहिनावा जो घुटनों के  
नीचे तक लवा होता है और जिसमें बाँधने के लिये बंद टैके  
रहते हैं। बंददार आगा। चपकन।

विशेष—इसे हिंदू और मुसलमान दोनों बहुत दिनों से पहनते  
आते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) छहकलिया, जिसमें छह  
कलियाँ होती हैं और चार बंद लगे रहते हैं। इसके बगल के  
बंद भीतर बाँधी जाते हैं, ऊपर नहीं दिखाई  
पड़ते, अर्थात् इसका वह पल्ला जिसका बंद बगल में बाँधा जाता  
है भीतर बाँधी होता है, उसके ऊपर वह पल्ला होता है  
जिसका बंद सामने छाती पर बाँधा जाता है। (२) वाला  
वर, जिसमें चार कलियाँ होती हैं और छह बंद लगे रहते हैं।  
इसका बगल में बाँधनेवाला पल्ला नीचे रहता है और दूसरा  
उसके ऊपर छाती पर से होता हुआ दूसरी बगल में जाकर  
बाँधा जाता है। अतः उसके सामने के और एक बगल के बंद  
दिखाई पड़ते हैं।

अंगरखी—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगरखा'।

अंगरना—क्रि० अ० दे० 'अंगराना'।

अंगरा—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्गार ] १ अंगार। अंगारा। दहकता  
हुआ कोयला। २ कोयला।

मुहा०—अंगरा दरना = अनुचित कार्य की हद करना। अशोभन  
या अशुभ कार्य करना।

विशेष—स्त्रियाँ परस्पर कहें मे सोहागिनो के प्रति अशुभ भाव  
व्यक्त करती हुई 'माँग मे अंगरा दर दूँगी', प्रायः ऐसा  
कहती हैं।

३ बेल के पैर टपकने या रह रहकर दब करने का एक रोग।  
इस रोग में बेल बार बार पैर उठाया करता है।

अंगराई—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगराई'। उ०—है रात घूम आई मधुवन  
यह आलस की अंगराई है। —लहर, पृ० २०।

अंगराग—संज्ञा पुं० दे० 'अंगराग'—१। उ०—नृप द्वार कुमारि  
चली पुर की, अंगराग सुगंध उडै गहरी।—बुद्ध च०, पृ० २४।

अंगराना—क्रि० अ० दे० 'अंगराना'। उ०—(क) बारबधू पिय  
पथ लखि अंगरानी अंग मोरि।—मति० ग्र०, पृ० ३०६।  
(ख) पलक अधधुली दृगनि सो अंग अंगरात जम्हात।—अज०  
ग्र०, पृ० ६३।

अंगरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्ग + री ] कवच। भिलम। द्रवतर।  
वक्तर। उ०—अंगरी पहिरि कूँडी सिर धरही। फरसा बाँस  
सेल सम करही।—मानस, २।१६१।

अंगरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गरीय ] उंगलियों की धनुष की रंग से  
वचाने के लिये गोह के चमड़े का दस्ताना। अंगुलिद्वारा।

अंगरेज—संज्ञा पुं० [ फ्रे० आंगलेज, पुर्त० इंगलेज, अ० इंगलिस ]  
[ वि० अंगरेजी ] इंग्लैंड देश का निवासी। इंगलिस्तान का  
रहनेवाला आदमी। उ०—प्रमिस्वर अंगरेज घलि घलि तेज  
अरिगन भेजें सुगुण को।—हिम्मत०, पृ० ४२।

अंगरेजियत—संज्ञा स्त्री० [ हि० अंगरेज + फा० इयत (प्रत्य०) ] अंग-  
रेजीवन। अंगरेजी रगड़ग की। उ०—हममें तो भाई यह  
अंगरेजियत नहीं देखी जाती।—रदन, पृ० ११२।

विशेष—वही कभी शासक और शासित के बीच अंगरेज शासकों  
की अकड़ या अपने को श्रेष्ठ समझने का अभिमान भी इस अर्थ  
में मिला रहता है।

अंगरेजी—संज्ञा स्त्री० [ हि० अंगरेज + ई (प्रत्य०) ] अंगरेजों की  
भाषा। इंगलिश भाषा।

अंगरेजी—दे० अंगरेज सबधी। अंगरेजों का।

अंगलेट—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्ग, हि० अंग + लेट ? ] शरीर की गठन।  
काठी। उठान। देह का ढाँचा। अंगेट।

अंगवना—क्रि० सं० [ सं० अङ्ग से नाम० ] १ अंगीकार करना  
स्वीकार करना। उ०—दाप पतंग होइ अंगएउ प्राणी।—  
जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३२८। २ ओढ़ना। अपने सिर पर  
लेना। ३ सहना। बरदाश्त करना। उ०—अपना घर सुख  
छाड़ि के अंगवै दुख को भार।—कवीर श०, भा० ४, पृ० २७।  
४ उठाना। उ०—घरती भार न अंगवै पाँव धरत उठ हाल।  
कूर्म टूट मुँह फाटी तिन हस्तिन की चाल।—जायसी  
(शब्द०)।

अंगवनिहारा—वि० हि० अंगनवा + हारा (प्रत्य०) ] सहनेवाला।  
सहन करनेवाला। बरदाश्त करनेवाला। उ०—सूल कुलिस अस्ति  
अंगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे।—मानस, २।२५।

अंगवाना—क्रि० सं० [ हि० अंगवना। अंग में लगाना या मलना।  
उ०—चदन और अरगजा आन्यो अपन कर बल के अंगवान्यो।  
—सूर०, १०।१२१३।

अंगवारा—संज्ञा पुं० [ सं० अङ्ग = भाग, सहायता + कार या हि०  
वारा = वाला ] १ गाँव के एक छोटे भाग का मालिक या  
हिस्सेदार। २ खेत की जुलाई में एक दूसरे की सहायता।

अंगसंग—संज्ञा पुं० दे० 'अंगसंग'। उ०—यह जग अंगसंग में मत  
वारा, चावे विषय भोग अनुसारा।—रत्न०, पृ० ६०।

अंगाकरि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगाकरी'। उ०—अबही अंगाकरि  
तुरत बनाई। जे भजि भजि ग्वालनि संग खाई।—सूर०,  
१०।१२१३।

अंगाना ④—क्रि० सं० [ सं० अङ्ग ] अंगीकार करना । स्वीकार करना ।  
उ०—मनहूँ एक कौ रंग एक निज अंग अंगे।—रत्नाकर,  
भा० १, पृ० १८२ ।

अंगार ⑤—संज्ञा पु० दे० 'अंगार' । उ०—जनु अंगार गसिन्ह पर मृतक  
धूम रह्यो छाई।—मानस, ६।५२ ।

अंगारा ⑥—संज्ञा पु० [ सं० अङ्गारक, प्रा० अंगारय ] आग का जलता  
टुकड़ा । अंगार । उ०—नम चढ वरपे िपुल अंगारा।—  
मानस, ६।५१ ।

विशेष—'अंगारा' शब्द के मुहावरों का प्रायः 'अंगारा' शब्द के  
साथ भी प्रयोग होता है ।

अंगारी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गारिका प्रा० अंगालिय, इंगाली ] १  
ईख के सिर पर की हरी पत्ती जिसे काटकर पशुओं का खिलाते  
हैं । २ गढाँसे कटे हुए ईख के छोटे छोटे टुकड़े जो पत्थर के  
कोलूह में पेरने के लिये तैयार किए जाते हैं गेंडेरी । गेडी ।  
३ चिनगारी । अग्निफल । उ०—खुले धावप ताके मानो परी  
अंगारी ।—बुद्ध च०, पृ० १५१ । दे० 'अंगारी' ।

अंगाली ⑦—वि० [ सं० अग्रणी, प्रा० अग्रणी, हि० अगाड़ी, अगारी ]  
आगे । प्रथम । उ०—मुअज्जम इसम अंगाली हमेशा ।—  
दक्खिनो, पृ० ११६ ।

अंगिया—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गिका, प्रा० अंगिया ] स्त्रियों का एक  
पहिनावा जिससे केवल स्तन ढके रहते हैं, पेट और पीठ खुली  
रहती है । इसमें चार वद होते हैं जो पीछे बाँधे जाते हैं । छोटा  
कपड़ा । चोली । कचुकी । काँचली । उ०—अंगिया नील,  
माँडनी राती, निरखत नैन चुराई।—सूर०, १०।१०५३ ।

यौ०—अंगिया का कठा या अंगिया की कठी= दे० 'अंगिया का  
घाट' । अंगिया की कटोरी या मुलकट= अंगिया का वह भाग  
जो स्तनों के ऊपर पड़ता है । अंगिया की खवासी या खसी=  
वह सीवन जो कटोरियों का आस्तीन से मिलाती है । अंगिया  
का घाट= अंगिया का गलाया गरेवान्, गले के नीचे का  
खुला हिस्सा । अंगिया की चिडिया= दोनों कटोरियों के बीच  
की सीवन । अंगिया का ठर्रा= वह बटा हुआ घागा जो अंगिया  
के नीचे की गोट में लगाया जाता है । अंगिया की डोरी=  
कठे और पुट्टे में शोभा के लिये टाँकी जानेवाली डोरी ।  
अंगिया की दोवार= दे० 'अंगिया का पान' । अंगिया का  
पछुआ= अंगिया की पीठ की ओर के टुकड़े । अंगिया  
का पान= अंगिया की कटोरी का छोटा टुकड़ा । अंगिया  
का पुट्टा= अंगिया की आस्तीन की चौड़ी गोट । अंगिया  
के बंद= पीठ की ओर का ठर्रा जिससे अंगिया कसी  
जाती है । अंगिया का बँगला= कटोरी की क्ली या फाँक जो  
जोड़ों पर गोखरू टाँकने से बन जाना है । दो कलियाँ होने पर  
बँगला और दस बारह होने पर खरवूजा कहते हैं । अंगिया के  
बाजू= अंगिया का वह भाग जो दोनों बगल छिपाता है ।  
अंगिया की लहर= कटोरियों पर तिकानी कटी हुई सज्जा ।

अंगिया<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० [ हि० अङ्घिया ] स्त्रीने कपड़े से मड़ी हुई चलनी ।

अंगिराना ⑧—क्रि० सं० [ सं० अङ्गिरण ] स्वीकार करना ।  
उ०—जे अंगिरा तो न होइम उदास ।—विद्यापति,  
पृ० ५४ ।

अंगिराना—दे० 'अंगराना' । उ०—लागि गरें अंगिरात जैसात हैं,  
आरस गात भरे गिरि जात हैं ।—भिखारी प्र०, भा० १,  
पृ० ४२ ।

अंगीठ ⑨—संज्ञा पु० [ सं० अग्निष्ठ, पा०, प्रा० अग्निष्ठ ] दे०  
'अंगीठा' । उ०—या मन को विमलिल कहेँ दीठ कहेँ अदीठ ।  
जो सिर राखू आपना पर सिर जलो अंगीठ ।—कवीर  
( शब्द० ) ।

अंगीठा—संज्ञा पु० [ सं० अग्नि=आग+स्था=ठहरना > अग्निस्था,  
अग्निष्ठा, प्रा० अग्निष्ठा अथवा सं० अग्निष्ठिका, प्रा०  
अग्निष्ठिया ] बड़ी अंगीठी । बड़ा आतिशदान । बड़ी वोरसी ।  
आग रखने का वरतन ।

अंगीठि ⑩—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगीठी' । उ०—सुंदर एक अवभा हूवा  
पानी माँहैं जरें अंगीठि ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ५२१ ।

अंगीठी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अग्निष्ठिका, प्रा० अग्निष्ठिया ] आग रखने  
का छोटा वरतन । आतिशदान । उ०—धरी अंगीठी स्वच्छ  
धूम दिन गावत अपने रंग ।—भारतेंदु प्र०, भाग २, पृ०  
८३० ।

विशेष—यह मिट्टी और लोहे की गोल, चौखूँटी अठपहली आदि  
कई आकारों की बनती है ।

मुहा०—अंगीठी होना= अंगीठी के समान तप्त होना । उ०—  
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु जरि बरि भई अंगीठी ।—  
सूर०, १०।३६७२ ।

अंगु ⑪—संज्ञा पु० दे० 'अंग' । उ०—सैल सँभार्यो लला अंगुरी  
धरि पै अवना अंगुरीन सँभार्यो ।—देव प्र०, पृ० ११ ।

अंगुछा ⑫—संज्ञा पु० दे० 'अंगोछा' । उ०—'तब वा माली ने  
याकौ अंगुछा तो फेरि दियो' ।—दी सो बावन०, भा० १,  
पृ० २२६ ।

अंगुछाना—क्रि० सं० [ सं० अंगुछा से नाम० ] दे० 'अंगोछना' उ०—  
मनन सुनीर अन्हवाय अंगुछाय दया, नवनि बसन प्रन सोधी  
ले लगाइये —भक्तमाल (प्रि०), छ० ३ ।

अंगूठा—संज्ञा पु० दे० 'अंगूठा' । उ०—कर पग गहि अंगूठा मुख  
मेलत ।—सूर०, १०।६४ ।

मुहा०—अंगूठा चटाना= दे० 'अंगूठा चटाना' । उ०—अंगूठा  
चटाय दफादार के रे साँवलिया ।—प्रेमघन० भा० २,  
पृ० ३४० ।

अंगूठी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गुष्ठिका, प्रा० अंगुष्ठरी ] १ काँसे का ढाल-  
कर बनाया हुआ एक गहना जो पैर के अंगूठे में धनवट के  
स्थान पर पहना जाता है । इसका व्यवहार नीच जाति की  
स्त्रियों में है । २ दे० 'अंगूठी' ।

अंगुरि ⑬—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगुरी' । उ०—कानन कुडल चलत अंगुरि  
दल ललित कपोलन में कछु भलकै ।—नद० प्र०, पृ० ३५२ ।

अंगुरिया<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० अङ्गुरिका, प्रा० अंगुरिया ] छोटी  
उँगली । उ०—गहे अंगुरिया ललन की नैद चलन सिखावत ।  
—सूर०, १०।१२२ ।

अंगुरियाना—क्रि० सं० [ हि० अंगुरी से नाम० ] हिरान करना ।  
संग करना । परेशान करना ( बोल० ) ।

अंगुरिया वेल—सखा पुं० [ फा० अंगूर ] कालीन या गलीचे के किनारे पर की एक वेल या नक्काशी जो अंगूर की लता के ढग पर बनाई जाती है ।

अंगुरी†—सखा स्त्री० [ सं० अङ्गुरी ] १ उँगली । उ०—तीजे मास हस्त पग होहि चौथ मास कर अंगुरी सोहि ।—सूर०, ३।३ ।  
क्रि० प्र०—चटकाना = दे० 'उँगली चटकाना' । उ०—योवन के मद सग ढरे अंग अंग मुरं अंगुरी चटकाव ।—देव ग्र०, पृ० १२ ।

२ वरक पीटने की चाँदी । यौ०—अंगुरी की चाँदी = यह चाँदी सिल की चाँदी को खूब साफकरके बनाई जाती है । इसी को पीटकर चाँदी का वरक बनाते हैं ।

अंगुली—सखा स्त्री० [ सं० अङ्गुली, प्रा० अगुली ] † १. अँगुली । उँगली । २ हाथी की सूँड का अगला भाग । ३ एक नदी का नाम ।

अंगुष्ठ०—सखा पुं० दे० 'अंगुष्ठ' । उ०—सुभग अंगुष्ठ अम्ली अविरल, कछुक अरुन नखज्योति जगमगति ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४१५ ।

अंगुसा†—सखा पुं० [ सं० अङ्गुश = टेढी नोक, प्रा० अकुसय ] अकुर । अङ्गुश ।

अंगुसाना†—क्रि० प्र० [ हि० 'अंगुसा से नाम० ] बोए हुए अनाज का अङ्गुसा फोडना । जमना । अकुरित होना । अङ्गुशाना ।

अंगुसी—सखा स्त्री० [ हि० अंगुसा + ई (प्रत्य०) ] १ हल का फाल । २ सोनारों की बकनाल या टेढी नली जिससे दिए की लो को फूँककर टाँका जोड़ते हैं ।

अंगूठा—सखा पुं० [ सं० अङ्गुष्ठ, प्रा० अगुठ ] १ मनुष्य के हाथ की सबसे छोटी और मोटी उँगली । पहली उँगली जिससे दूसरा स्थान तर्जनी का है । तर्जनी की बगल में छोर पर की वह उँगली जिसका जोड़ हथेली में दूसरी उँगलियों के जोड़ों के नीचे होता है । उ०—हथफूल पीठ पर करके धर, उँगलियाँ मुदरियों से सब भर, आरसी अंगूठे में देकर ।—ग्राम्या, पृ० ४० ।

विशेष—मनुष्य के हाथ में दूसरे जीवों के हाथों से इस अंगूठे की बनावट में बड़ी भारी विशेषता है । यह बड़ी सुगमता से इधर उधर फिरता है और शेष चार उँगलियों में से प्रत्येक पर सटीक बैठ जाता है । इस प्रकार यह पकड़ने में चारों उँगलियों को एक साथ भी और अलग अलग भी सहायता देता है । बिना इसकी शक्ति और सहायता के उँगलियाँ कोई वस्तु अच्छी तरह नहीं पकड़ सकती ।

मुहा०—अंगूठा चमना = १ आदर करना । विनय प्रकट करना । २ अधीन होना । ३ खुशामद करना । सुश्रूषा करना ।  
अंगूठा चूटना = बड़ा होकर बच्चों की सी नासमझी करना ।  
अंगूठा बिछाना = १ किसी वस्तु को देने से अवज्ञापूर्वक नहीं करना । २ किसी कार्य को करने से हट जाना । किसी कार्य को करने से अस्वीकार करना । ३ अवज्ञा करना । ४ चिढ़ाना । उ०—ऐसी उपाय गई निमुकाय, चित्त मुमुकाय दिखाय अंगूठा ।—सुघानिधि, पृ० । अंगूठा नचाना = चिढ़ाना । अंगूठे पर मारना = कुछ समझना । परवाह न करना ।

२ मनुष्य के पैर की सबसे मोटी उँगली ।

अंगूठी—सजा स्त्री० [ हि० अंगूठा + ई (प्रत्य०) ] १ उँगली में पहनने का एक गहना । एक प्रकार का छलना । मुँदरी । मुद्रिका । अंगुष्ठतरी । उ०—श्री पहिरे नगजरी अंगूठी ।—पदु०, पृ० ५० ।

यौ०—अंगूठी का नगीना = महत्वपूर्ण व्यक्ति या वस्तु । उ०—देखो, जैसा ईश्वर ने यह सुंदर अंगूठी के नगीने मा नगर बनाया है ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २८० ।

२ उँगली में लपेटा छुआ राख में जाड़ने का तागा ।

विशेष—जुलाहे जब पाई को राख में जोड़ने लगते हैं तब पाई के थोड़े थोड़े तागों को ऐंठकर उँगली में लपेट लेते हैं और फिर उँगली में से एक एक तागा निकालकर राख में जोड़ते हैं । इस उँगली में लपेटे हुए तागों को अंगूठा या अंगूठी कहते हैं ।

अंगूर<sup>१</sup>०—सजा पुं० दे० 'अंगूर' । उ०—चूसे अधर अंगूर दोठ गानन पै प्रगट निसानी सी ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ८६३ ।

अंगूर<sup>२</sup>०—सजा पुं० [ सं० अङ्गूर ] अकुर । अंगुवा । उ०—सो पै जानै नैन रस, हिरदै प्रेम अंगूर ।—जायसी ( जवद० ) ।

अंगे०—क्रि० वि० [ सं० अंगे, प्रा० अग्ने ] आगे । भविष्य में । उ०—के जैसा अंगे हानेहान है वाम ।—दाक्षिणी०, पृ० ७६ ।

अंगेजना०—क्रि० सं० [ सं० अङ्ग = शरीर + एज = हिलना, कपना ] १ सहना । बरदाश्त करना । उठाना । उ०—रह सका काम का सुखी सुंदर, कौन सा अंग दुख अंगेजे पर ।—बोखे०, पृ० २१ ।

२ अंगीकार करना । स्वीकार करना । उ०—इक मरिखैं की छाडि कहा जाँ नाहि अंगेज्यौ ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ८० ।

अंगेट०—सजा स्त्री० [ सं० अङ्ग ] अंगों की दीप्ति या वाति । उ०—(क) एही तैं सिखा लो है अनूठिए अंगेट आछी ।—रमखान०, पृ० १२० । (ख) साँवरे छल की आछी अंगेट पै काम करोरिक वारियँ जोहि कै ।—घनानंद०, पृ० ४७ ।

अंगेठा†—सजा स्त्री० दे० 'अंगोठी' ।

अंगेठी†—सजा स्त्री० दे० 'अंगोठी' ।

अंगेरना०—क्रि० सं० [ सं० अङ्ग = देह + ईर = जाना, अथवा सं० अङ्ग = स्वीकार या सं० अङ्गीकरण, प्रा० अंगीकरण या अंगीरण ] १ अंगीकार करना । स्वीकार करना । मजूर करना । २ सहना बरदाश्त करना ।

अंगोछना—क्रि० सं० [ सं० अङ्गोच्छन ] गीले कपड़े से देह पोछना । शरीर पर गीला वा भीगा वस्त्र रखकर मलना । गीला कपड़ा फेरकर बदन साफ करना । उ०—पीत पट लै लै के अंगोछत शरीर करु कजन सी पोछत भुसुड गजराज की ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १०० ।

अंगोछा—सजा पुं० [ सं० अङ्गोच्छ ] [ स्त्री० अंगोछी ] [ पू० गमछा गमछी ] १ देह पोछने का कपड़ा । तोलिया । २ ऊपर रखने के लिये एक कपड़े का टुकड़ा । इसे प्रायः लाभ कष्ट पर रखते हैं । उपरना । उपवस्त्र । उ०—वासन टाँकि अंगोछा बारा ।, हँ से भाजन काढि निकारा ।—रत्न०, पृ० १६८ ।

क्रि० प्र०—लेना = पोछना । उ०—चरन पवारि अंगोछा लीन्ह ।—कवीर सा० ।

अंगोछी—सद्वा स्त्री [ सं० अङ्गोछा + हि० ई (प्रत्य०) ] १ देह पोछने के लिये छोटा कपड़ा २ बच्चों की छोटी धोती जिससे कमर से आधी जाँघ तक ढक जाय। यह प्रायः छोटे लड़के लड़कियों के लिये होती है।

अंगोजना—सद्वा स्त्री [ सं० अङ्ग + जना ]।

अंगोट—सद्वा स्त्री [ सं० अङ्ग + वस्त्र, प्रा० अङ्ग + वट् ] शरीर की गठन। देह की वनावट।

अंगोटना—सद्वा स्त्री [ सं० अङ्गोटन ]। उ०—देखि री देखि अंगोटि कँ नैननि कोटि मनोज मनोहर मुरति ।—भिखारी० प्र०, भा० १, पृ० १२७।

अंगोरा<sup>१</sup>—सद्वा पुं [ देश० ] मच्छर। भुनगा।

अंगोरा<sup>२</sup>—सद्वा पुं [ सं० अङ्गार ] अंगारा। अंगार। उ०—भयउ अदग सो लाल अंगोरा। कहे आगि मे अगिनि अंगोरा ।—सं० दरिया, पृ० २३।

अंगोरी—सद्वा स्त्री दे० 'अंगारी'।

अंगोरा—सद्वा पुं [ सं० अङ्ग = अङ्गला + अङ्ग = भाग ] अङ्ग या और किनी वस्तु का वह भाग जो धर्मार्थ पहले निकाल लिया जाय। धर्मार्थ वाटने या देवता को चढ़ाने के लिये अङ्गल निकाला हुआ अङ्ग। अङ्गल। पुजारा।

अंगोछना—सद्वा स्त्री [ सं० अङ्गोछना ]। उ०—उत्तम विधि सौ मुख पखरायो, ओदे वसन अंगोछि ।—सूर०, १०।६०६।

अंगोछा<sup>१</sup>—सद्वा पुं दे० 'अंगोछा'। उ०—अंगोछे मे माम और पोथी के चोंगे मे मद्य छिपाई जाती है ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ८२।

अंगोछी<sup>१</sup>—सद्वा स्त्री दे० 'अंगोछी'। उ०—एक अंगोछी अपने अपने गले मे डाले आकर सत्यगुरु के चरणों पर गिरे ।—कवीर म०, पृ० ५०६।

अंगोछी<sup>२</sup>—सद्वा स्त्री [ सं० अङ्गाकृति या अङ्गवस्त्र ? ] अङ्ग का गठन। आकृति। वनावट। अंगोट।

अंगोछा<sup>२</sup>—सद्वा पुं [ ? ] किसी देवता को अर्पण करने के लिये निकाला गया पदार्थ। देवाङ्ग।

अंगोरिया—सद्वा पुं [ सं० अङ्ग = भाग ] १ वह हलवाहा जिसे कुछ मजदूरी न देकर हल बेल देते हैं जिनसे वह अपने खेत भी जोत लेता है। २ मजदूरी के स्थान पर हल बेल मँगनी देना।

अंग्रेज—सद्वा पुं दे० अंगरेज।

अंगडा<sup>१</sup>—सद्वा पुं [ सं० अङ्गि ] काँसे का एक प्रकार का छल्ला जिसे एक वग की स्त्रियाँ पैर के अंगूठे में पहनती हैं।

अंगराई<sup>१</sup>—सद्वा स्त्री [ देश० ] एक कर जो पहले पशुओं पर लगाया जाता था।

अंगिया—सद्वा स्त्री [ देश० ] झीने कपड़े से मढ़ी हुई आटा या मैदा चालने की चलनी। अंगिया। आखा।

अंचना—सद्वा स्त्री [ सं० अंचना ]। उ०—पुट एक इत मद चत अमृत आपु अंच अंचवाँ ।—सूर०, १०।१२४६।

अंचर—सद्वा पुं दे० 'अंचरा'। उ०—गज गति चाल अंचर गति घुजा ।—जायसी प्र० ( गुप्त ), पृ० ३४७।

यौ०—अंचर धरैया = दे० 'अंचरा' पकड़ाई।

अंचरा<sup>१</sup>—[ सं० अञ्चल ] १ साड़ी का वह छोर जो छाती पर रहता है। साड़ी या ओढ़नी का वह भाग जो सिर पर होता हुआ सामने छाती पर फैला हो। पल्ला। २ दुग्ध या दुधाले के दोनों छोर। छोर। उ०—कव मेरी अंचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसी भगरे ।—सूर०, १०।७६।

यौ०—अंचरा पकड़ाई = विवाह की एक प्रथा जिसमें वर कन्या की माता तथा उसके कुटुंब की और स्त्रियों का अञ्चल पकड़ता है और कुछ लेने पर छोड़ता है। इस रीति को तथा उस वस्तु को जो वर को मिलती है, अंचरा पकड़ाई या अंचर धरैया कहते हैं।

मुहा०—अंचरा पसारना = ( १ ) किसी बड़े या देवता से कुछ माँगते समय ( स्त्रियों का ) अपने अञ्चल को आगे फैलाना जिससे दीनता और उद्वेग सूचित होता है। विनती करना। दीनता दिखाना। उ०—ए विधिना तो सो अंचरा पसारि माँगी जनम जनम दीजो या ही अञ्ज वसिबो—छोतस्वामी ( शब्द० )। ( २ ) शीख माँगने की एक मुद्रा। कोई वस्तु लेने के लिये देनेवाले के सामने अञ्चल रोपना। ( ३ ) दीनता और विनय के साथ माँगना।

अंचल—सद्वा पुं दे० 'अञ्चल'—१। उ०—अंचल ध्वज भवलाकि नाही धरत पिय मन धीर ।—सूर०, १०।२४४६।

अंचला—सद्वा पुं [ सं० अञ्चल ] १ दे० 'अंचरा'। २ कपड़े का एक टुकड़ा जिसे साधु लोग नाभि के ऊपर धोती के स्थान पर लपेटे रहते हैं।

अंचली—सद्वा स्त्री [ हि० अञ्चल + ई ( प्रत्य० ) ] दे० 'अंचरा', 'अंचला'। उ०—उलटन पलटत जग की अंचली। जैसे फेरे पान तमोली ।—मलूक०, पृ० १३।

अंचवन<sup>१</sup>—सद्वा पुं दे० 'अंचवन'। उ०—हसन को विश्राम, पुरुष दर्श अंचवन सुधा ।—कवीर सा०, पृ० १५।

अंचवना<sup>१</sup>—सद्वा पुं दे० 'अंचवना'। उ०—परिहरि चारिउ मास जो अंचव जल स्वाति को ।—तुलसी प्र०, पृ० १०७।

अंचवनी—सद्वा स्त्री [ सं० आचमनी ] आचमन करने का छोटा पात्र। आचमनी।

अंचवानी<sup>१</sup>—सद्वा पुं दे० 'अंचवानी'। उ०—अंचवाइ दीन्हे पान ।—गवने व स जहँ जाको रह्यो ।—मानस, १।६६।

अंचार<sup>१</sup>—सद्वा पुं दे० 'अंचार'। उ०—पापर, वरी, अंचार परम सुचि। अदरख अक्ष निवृत्ति ह्वै सचि ।—सूर०, १०।१२१३।

अंचुली<sup>१</sup>—सद्वा स्त्री दे० 'अञ्जली'। उ०—जनम यहि धोखे बीता जात, जस जल मैं अंचुली मे भल सीझै ।—कवीर सा०, भा० ३, पृ० ३७।

अंजना—सद्वा स्त्री [ सं० अञ्ज, प्रा० अञ्ज ] स्निग्ध होना। उ०—देखत रूप निरजन अंजेक ।—द० सागर, पृ० ६४।

अंजली<sup>१</sup>—सद्वा स्त्री दे० 'अञ्जली'।

अंजवाना—सद्वा पुं [ हि० अंजना का प्रेर० ] अञ्जन लगवाना। सुरमा लगवाना।

अंजना—सद्वा स्त्री दे० 'अञ्जवाना'। उ०—आँख अंजाइ पहिरि कर चूरी, हारि मोहन गिरधारी ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ३६१।

अंजोर<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अंजोर ] अंजोर । आंगन । उ०—अमृत  
बुद तहं भरं निकदा । नैन अंजोर मगन मन चंदा ।—  
—द० सागर, पृ० ६८ ।

अंजुरी<sup>७</sup>—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजली' । उ०—जोवन मंग जात है ज्यों  
अंजुरी का नीर ।—मुद्रर प्र०, भा० २, पृ० ६८५ ।

अंजुली<sup>७</sup>—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजली' । उ०—जैसे मोती आम की,  
पानी अंजुली माहि ।—सतवानी०, भा० २, पृ० १६३ ।

अंजोर<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अञ्जल ] अञ्जल । अञ्जलि । प्रकाश ।  
राशनी । चांदनी । उ०—मारग हुता अंजोर अमृता । भा  
अंजोर मव जाना वृक्षा ।—पदु०, १।१३६ ।

अंजोरना<sup>७</sup>—क्रि० सं० [ हि० अंजुरी से नाम० ] १ बटोरना । नले-  
टना । उ०—करी जो कटु वरी मचि पचि मुहृत सिला बटोरि ।  
पंठि उर वस्त्रस दयानिधि दम लेन अंजोरि ।—तुलसी  
( शब्द० ) । २ छीनना । हरण करना । ले लेना । मूचना ।  
उ०—ठाही भई दिवकि मारग मे मांकहाट मटकी सो फोनि ।  
नूरदास प्रभु रनिक गिरोमणि चित चित्तमणि लियो अंजोरि ।  
—नूर ( शब्द० ) ।

अंजोरना<sup>७</sup>—क्रि० सं० [ सं० अञ्जलन; हि० 'अंजोर' से नाम० ]  
जताना । प्रकाशित करना । वालना । जमे—'दीपक अंजोरना'  
( शब्द० ) ।

अंजोरवा<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [ हि० अंजोर + वा ( प्रत्य० ) ] अञ्जला ।  
प्रकाश । उ०—जब जगि तेल दिया मे वार्ती, येही अंजोरवा  
विधाय चलत ।—सतवानी०, भा० २, पृ० २३ ।

अंजोरा<sup>७</sup>—वि० [ सं० अञ्जल, हि० अंजोर ] अञ्जलि । प्रकाशमान ।  
या०—अंजोरा पाख = शुक्ल पक्ष ।

अंजोरा<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० प्रकाश । राशनी । उ०—दिया मंदिर निधि  
कर अंजोर । दिया नाहि घर मूसहि चोंग ।—जायसी  
( शब्द० ) ।

अंजोरिया<sup>७</sup>—संज्ञा स्त्री० [ हि० अंजोर + इया ( प्रत्य० ) ] चांदनी ।  
ज्योत्स्ना ।

अंजोरिया<sup>७</sup>—वि० अञ्जली । शुक्ल पक्ष की ।

या०—अंजोरिया रात = शुक्ल पक्ष की रात ।

अंजोरी<sup>७</sup>—संज्ञा स्त्री० [ हि० अंजोर + ई ( प्रत्य० ) ] १ प्रकाश ।  
राशनी । चमक । अञ्जला । उ०—महिमा अमित मोरि मति  
थोरी रवि मनमुख खयात अंजोरी ।—मानस, ३।५ ( क ) ।  
२ चांदनी । चंद्रिका । चंद्रमा का प्रकाश ।

अंजोरी<sup>७</sup>—वि० स्त्री० अञ्जाली । अञ्जली । प्रकाशमय । अञ्जल ।  
देदीप्यमान । उ०—( क ) अंजोरी रात आने दो ( शब्द० ) ।  
( ख ) पवित्र पदार्थ लिखी सो जोरी । चांद मुखज बस होइ  
अंजोरी ।—जायसी ( शब्द० ) ।

अंजोर्ना<sup>७</sup>—क्रि० सं० दे० 'अंजोरना' । उ०—नूर स्वाम की बुधि  
चतुर्दसी लोन्ही नवै अंजोरी ।—नूर०, १।१२४३ ।

अंठ<sup>७</sup>—संज्ञा स्त्री० [ हि० अंठ ] लागड़ोटा । हठ । जिद । उ०—  
निकसे स्वाम सदन नरे तैं इनि अंठ करि पहिबानी ।—नूर०,  
१।१२०४३ ।

अंठकना—क्रि० अ० [ दे० ] १ रकना । अठना । उ०—गोरख  
अंठके कालपुर कोन कहावै साहु ।—कवीर की०, पृ०  
६५ । २. फंसना । उलझना । उ०—नूर सनेह ग्वालिन मन  
अंठकयो अंतर प्रीति जाति नहि तौरी ।—नूर०, १।१३०५ ।  
दे० 'अठकना' ।

अंठकाना<sup>७</sup>—क्रि० सं० दे० 'अठकाना' ।

अंठना—क्रि० अ० [ दे० ] १ समाना । किसी वस्तु के भीतर  
आना । उ०—( क ) हृष इस वरतन मे न अंठेगा ( शब्द० ) ।  
( ख ) आनद हृदय मे अंठता नहीं था । —भक्तमाल  
( श्री० ) पृ० ५५० । २ किसी वस्तु के ऊपर सटीक बैठना ।  
ठीक चपकना । उ०—यह जूता मेरे पैर मे नहीं अंठता है ( शब्द० ) ।  
३ भर जाना । ढंक जाना । छा जाना । उ०—कूड़े से कूड़ा  
अंठ गया ( शब्द० ) । ४ पूरा पटना । काफी होना । बस  
होना । चलना । उ०—( क ) इतना बसाते हैं पर अंठना नहीं  
( शब्द० ) । ( ख ) अकेले हम इतने कानों को नहीं अंठ  
सकते ( शब्द० ) । ५ ( पु० ) पूरा होना । खपना । लग जाना ।

अंठिया—संज्ञा स्त्री० [ प्रा० अंठ, 'अंठ', हि० अंठी + इया ( प्रत्य० ) ]  
घास, खर या पतली लकड़ियों आदि का बंधा हुआ मुट्ठा ।  
छोटा गट्टा । गठिया । पूली ।

अंठियाना—क्रि० म० [ हि० 'अंठिया' से नाम० या अंठी ] १ अंगलियों  
के बीच में छिपाना । हथेली में छिपाना । २. चारों अंगलियों  
में लपेटकर डोरे की पिंडी बनाना । ३ घास, खर या पतली  
लकड़ियों का मुट्ठा बांधना । ४ अंठ में रखना । अंठी में रखना ।  
५. गायब करना । हजम करना ।

अंठीतल—संज्ञा पुं० [ देश० ] ढक्कन जिन्हें तेली लोग कोल्हू में जोतने  
के समय बेल की आंठों पर चढ़ा देते हैं ।

अंठीई—संज्ञा स्त्री० [ सं० अष्टपदी प्रा० अठ्ठई, अंठई ] छंटे छंटे कीड़े  
जो प्रायः कुत्तों के बदन में चिपटे रहते हैं । किलनी । चिचटी ।

अंठीली—संज्ञा स्त्री० [ सं० अंठि = गुठली, गांठ, अंठोलिका ] नवपुत्री के  
निकलते हुए स्तन ।

अंठियाना<sup>७</sup>—क्रि० सं० [ सं० अंठि प्रा० अंठि, 'अंठि' से नाम० ]  
१ गुठनी पड़ना । गिलटी पड़ना । गांठ पड़ना । २ दही का  
थक्का जमना ।

अंठ<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अंठ ] अठ्ठा । बैजा । उ०—जिन सव्द सोध  
सिंहार सोचे अलल अंठ उलटे सही ।—रत्न०, पृ० ६ ।

अंठखंड—संज्ञा पुं० दे० 'अठ खंड' । उ०—कन कुरम सेस अकार अंठ-  
खंड नो निरंजन बस रह्यो ।—रत्न०, पृ० १ ।

अंठदार—वि० [ हि० अंठना + दार ( प्रत्य० ) ] रकनेवाला । अंठने-  
वाला । उ०—ज्यों मतग अंठदार को लिये जात गंढदार ।—  
मति० प्र०, पृ० ३१२ ।

अंठरना<sup>७</sup>—क्रि० अ० [ देश० ] धान के पीघे का उस अवस्था में  
पहुंचना जब बाल निकलने पर हो । रेंडना । गरभाना ।

अंठलाना<sup>७</sup>—क्रि० अ० [ हि० अंठना ] डठलाना । मोखी दिखाना ।

अंठवाई<sup>७</sup>—संज्ञा स्त्री० [ हि० अंठ या अंठा + वाई ( प्रत्य० ) ] मुर्गी  
या कोई अन्य चिड़िया जो अंडा देनेवाली हो ।

अंठाना—क्रि० सं० दे० 'अठाना' । उ०—माया जाल में बांधि  
धंदाया क्या जाने तर अघा ।—मलूक०, पृ० २० ।



अडिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [ देश० ] १ वाजरे की पकी हुई थाल। २ परते पर लपेटा हुआ सूत। कुकडी।

अडुआ<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अण्ड, हिंदी अंड + उआ (प्रत्यय) ] वह पशु जो वधिया न किया गया हो। आंडू।

अडुआ<sup>२</sup>—वि० जो वधिया न किया गया हो। आंडू।

अडुआना—क्रि० सं० [ सं० अण्ड से नाम० ] बेल के अडकोश को कुचलना जिससे वह नटखटी न बरे और ठोक चले। वधियाना। वधिया करना।

अडुआ बेल—सञ्ज्ञा पुं० [ हि० अडुआ + बेल ] १ बिना वधिया किया हुआ बेल। सैंड। २ बहुत बड़े अडकोशवाला आदमी जो उसके वीर्य में चल न सके। ३ सुस्त आदमी।

अडुवा<sup>१</sup>—वि० दे० 'अंडा'।

अडुवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० अण्डज > अडअ > अडव > अंडव + वारी > एक प्रकार की बहुत छोटी मछली।

अंतडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [ प्रा० अण्ड अन्तडी ] अंत। नली। दे० 'अंत'।

मुहा०—अंतडी टटोलना = १ भूख को मसझना। उ०—जोरु टटोले गट्टी, माँ टटले अंतडी ( कहावत )। २ रोग की पहचान के लिये पेट को दबाकर देखना। अंतडी जलना = पेट जलना। बहुत भूख लगना। अंतडी गले में पडना = किसी आपत्ति में फँसना। सटपन्त होना। अंतडियो का बल खोलना = बहुत दिन के बाद भोजन मिलने पर खूब पेट भर खाना। अंतडियो को मसोसकर रह जाना = भूख की वजह से तबलीक सहना। अंतडियो में आग लगना = दे० 'अंतडी जलना'। अंतडियो में बल पडना = अंतडियो का ऐठना या दुखना। पेट में दर्द होना। उ०—हंसते हंसते अंतडियो में बल पड गए। ( शब्द० )।

अंतर<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ हि० अंतर ] दूरी। अंतर। उ०—आरोपित हार धरणी यियो अंतर उरस्थल कुमस्थल आज।—बेलि० दू०, ६४।

अंतर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'इन्'।

अंतरजामी—वि० दे० 'अंतरजामी'। उ०—कमल नैन कन्यामय सकल अंतरजामी। विनय कहा करे सूर कूर कुटिल कामी।—सूर०, १।१२४।

अंतरधान—वि० दे० 'अंतरधान'। उ०—हैं अंतरधान हरि मोहिनी रूप धरि जाइ वन माँहि दीन्हें दिखाई।—सूर०, ८।१०।

अंतरपट—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अन्तरपट ] १ ओट। आड। उ०—सीय भीख रावन कहें दीन्हें। तू असि निटुर अंतरपट कीन्हि।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३२६। २ छिपाव। दुराव। उ०—तासीं कोन अंतरपट जो अस पीतम पीउ।—जायसी ग्र०, पृ० १३८। ३ कपडमिट्टी। कपडोट्टी। उ०—का पूछो तुम धातु निछोही, जो गुह कीन्ह अंतरपट आही।—जायसी ( शब्द० )।

अंतरा<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अन्तरा ] १ अक्षा। नागा। अंतर। बीच। क्रि० प्र०—करना।—डालना।—पडना।

२ वह ज्वर जो एक दिन नागा देकर आता है। क्रि० प्र०—

उ०—आना उसे अंतरा आता है। ३ कोना।

अंतरा<sup>२</sup>—वि० एक बीच में छोड़कर दूसरा।

विशेष—विशेषण में इसका प्रयोग साधु भाषा में केवल 'ज्वर' शब्द के साथ और प्रातीय भाषाओं में कालसूचक शब्दों के साथ होता है; जैसे, अंतरा ज्वर। अंतरे दिन।

यौ०—अंतरे खोतरे = बीच में नागा करते हुए। दूसरे तीसरे।

उ०—अंतरे खोतरे डडं करे, तालु नहाय ओस माँ परे।

देव न मारे अपुव [ न ] इ मरे।—घाघ०, पृ० ४७।

अंतराना<sup>१</sup>—क्रि० सं० [ सं० अन्तर से नाम० ] १ अलग करना। जुदा करना। २ भीतर करना। भीतर ले जाना।

अंतराना<sup>२</sup>—क्रि० अ० अंतर या भेद डालना। फकं डालना। उ०—होही कहत धोख अंतराही। ज्यो भा सिद्ध वहाँ परिछाही।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २८४।

अंतरिख—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अंतरिख'। उ०—चंद सुहज आँ नखत तराई। तेहि उर अंतरिख फिरै सवाई।—जायसी ग्र०, पृ० २२६।

अंतरिछ—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अंतरिच्छ'। उ०—जाकी कुरिया अंतरिछ छाई। सो हरिचंद देखल नहि जाई।—कबीर वी०, पृ० १८।

अंतरी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अंतरी'।

मुहा०—अंतरी का बल खोलना = जो भर खाना। पेट भर खाना। कडी भूख मिटाना। अंतर्गियां जनना = जोरो की भूख लगना। अंतरियो में आग लगना = दे० 'अंतरियाँ जलना'।

अंतरीखा<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अंतरिख'—१। उ०—वहुतक फिरा बरहि अंतरीखा। अहे जो लाख भए ते लीखा।—पदु०, पृ० १२०।

अंतरीटा—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अन्तरपट ] महीन साडी के नीचे पहनने का वषडा। वह वषडे का टुकड़ा जिसे स्त्रियाँ इसलिये कमर में लपेट लेती हैं जिसमें महीन साडी के ऊपर से शरीर न दिखाई दे। अन्तर। छनना। उ०—चोली चतुरानन ठग्यो अमर उपरना राते। अंतरीटा अवलोकि कै असुर महा मद माते ( हो )।—सूर०, १।४४।

अंतहकरणा—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अंतहकरण'। उ०—वर नारि नेत्र निज वदन विलासा, जाणियो अंतहकरण जई।—बेलि० दू० १७२।

अंत्रिख<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अन्तरिक्ष ] आकाश। अंतरिक्ष। उ०—दूजी अमर बेलि जग आई। जहाँ तहाँ अंत्रिख लपटाई।—चित्रा०, पृ० १४२।

अथऊ<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अथऊ'।

अथवना<sup>१</sup>—क्रि० अ० दे० 'अथवना'। उ०—केहँ यह वसत वसत उजारा। गा सो चांद अथवा लै तारा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २५५।

अंदरसा—सञ्ज्ञा पुं० [ प्रा० अवर + सं० रस, अथवा सं० अन्न + रस ] एक प्रकार की मिठाई। उ०—सुंदर अति सरस अंदरसे। ते घृत दधि मधु मिलि सरसे।—सूर०, १०।१८३।

विशेष—यह मिठाई चोरेठे या पिसे हुए चावल की बनती है। चोरेठे को चीनी के कच्चे शीरे में डालकर थोड़ा घी देकर पकाते हैं। जब वह गाढ़ा हो जाता है तब उतारकर दो दिन तक रखकर उसका खमीर उठाते हैं। फिर उसी की छोटी छोटी टिकिया बनाकर उनपर पीस्ते का दाना लपेटकर उन्हें घी में निकालते हैं।



अदली—वि० [ प्रा० अदल ] अघा । उ०—यहाँ की अदली आखिर  
कुँ वी अदले ।—दक्खिनी० पृ० ४३३ ।

अँदाज(उ)०—सद्वा पु० दे 'अदाज' । उ०—एक जीव जीवत है उमर  
अँदाज भर एक जव होत हिंसु होत चटपट है ।—ठाकुर०  
पृ० १३ ।

अँदानी(उ)०—क्रि० म० [ स० अद या अदि = बाँधना, बधन करना ]  
बचाना । बरकाना । उ०—पगिया नवमी पुरुष न आए । दूहज  
दममी उतर अँदाए ।—जायसी ( शब्द० ) ।

अँदुआ—सद्वा पु० [ स० अन्डु, प्रा० अदुया ] हाथियों के पिछले पैरों  
में डालने के लिये लकड़ी का बना एक काँटेदार यन्त्र ।

विशेष—यह दो घनूषाकार लकड़ियों का बना होता है जिनके  
मुँह एक ओर कील से मिले रहते हैं । इसे हाथी के पैर में  
डालकर दूसरे छोरों को भी बाँध देते हैं ।

अँदेशा—सद्वा पु० [ फा० अदेशह् ] आशका । खटका । उ०—  
मोह कैसा ? छोह कैसा ? गुप्त पय का व । अँदेशा ।—व्यामि,  
पृ० १० ।

अँदेस(उ)०—सद्वा पु० दे० 'अँदेशा' । उ०—जिम बरमनि करि अधिक  
बलेम । फल अति तुच्छ मिटेन अँदेस ।—नद० ग्र०, पृ०  
३०१ ।

अँदेसवाँ—सद्वा पु० दे० 'अँदेशा' । उ०—तुम बिन प्रान रहै वा  
नाहीं यह जिय म हि अँदेसवा रे ।—मारतेंदु ग्र०, भा० २,  
पृ० ३७४ ।

अँदोरा(उ)०—सद्वा पु० दे० 'अँदोर' । उ०—घरी एक सुति भयउ  
अँदोरा । पुनि पाछे वीता हाइ रारा ।—जायसी ( शब्द० ) ।

अँदोल(उ)०—सद्वा पु० [ प्रा० अदोल = झूलना ] आनद । प्रसन्नता ।  
उ०—चहल पहल सी देखि कै मान्यो बहुत अँदोल ।—सुदर०  
ग्र०, भा० १, पृ० ३१६ ।

अँदोलना(उ)०—क्रि० स० [ स० अन्दोलन ] हिलाना । झुलाना ।  
उ०—लगि रिमस लम अग वारि पिन्नी अँदोलि कर ।—पृ०  
रा०, १।५५६ ।

अँधकाल(उ)०—सद्वा पु० [ स० अन्ध + काल ] अंधकार । अँधेरा । उ०—  
सूर कचन गिरि विचनि मनु रह्यो है अँधकाल ।—सूर० १० ।  
१०८३ ।

अँधवाई(उ)०—सद्वा स्त्री० दे० 'अँधवाई'

अँधवाई(उ)०—सद्वा स्त्री० [ स० अन्धवायु ] धूल लिए हुए वेगयुक्त पवन ।  
ऐसी तेज हवा जिसमें गर्द के कारण कुछ सूझ न पड़े । अँधी  
तूफान । उ०—श्याम अकेले अँगन छाँडे आपु गई बछु काज  
घर । यहि अतर अँधवाई उठी इक गरजन गगन सहित घहर ।  
—सूर ( शब्द० ) ।

अँधरा<sup>१</sup>(उ)०—सद्वा पु० [ स० अन्ध, प्रा० अघरअ ] अघा । नेत्रविहीन  
प्राणी । दृष्टिरहित जीव ।

अँधरा<sup>२</sup>(उ)०—वि० अघा । बिना आँख का । दृष्टिरहित ।

अँधरी<sup>१</sup>—सद्वा स्त्री० [ हि० अंधरा + ई ( प्रत्य० ) ] अंधी । अंधी  
स्त्री ।

अँधरी<sup>२</sup>—सद्वा स्त्री० [ स० आघारित, प्रा० आघारिअ > आघरी > अँधरी ]  
पहिए की पुट्टियों अर्थात् गोलाई को पूरा करनेवाली घनूषाकार

लकड़ियों की चूल् जो दूसरी पुट्टी के भीतर ऐसे घुसी रहती है  
कि ऊपर से मालूम नहीं देती ।

अँधला(उ)०—सद्वा पु० [ प्रा० अदल ] दे० 'अँधरा'—१ । उ० ( क )  
तिवँ उदर महि दुख महै अँधलउ गालि प्रसीतु ।—प्राण०, पृ०  
२१० । ( ख ) कौनै त्रम भूले अँधला ।—सुदर० ग्र०, भा०  
२, पृ० ६०६ ।

अँधवायु(उ)०—सद्वा पु० [ स० अन्धवायु ] अँधी । उ०—तेरा पुन  
अँधवायु उठायो ।—ब्रज०, पृ० ३८ ।

अँधवाह(उ)०—सद्वा पु० दे० 'अँधवाई' । उ०—घावहु नद गोहारि लगो  
किन तेरी सुन अँधवाह उठयो ।—मूर०, १।७७ ।

अँधार<sup>१</sup>(उ)०—सद्वा पु० [ स० अन्धकार, प्रा० अघार ] अंधकार । तम ।  
अँधेरा । अँधियारा । उ०—मृगनेनी कामिनि बिना लागन मरै  
अँधार ।—ब्रज० ग्र०, पृ० ६६ ।

अँधार<sup>२</sup>(उ)०—सद्वा पु० [ स० आघार = सहारा ] रस्सी का जान  
जिनमें घास भूसा पादि भरकर बेल की पीठ पर लारते हैं ।

अँधारी(उ)०—सद्वा स्त्री० अँधी । तेज हवा । तूफान ( हि० ) ।

अँधिर(उ)०—वि० [ स० अन्धकार, प्रा० अघवार ] अँधेरा । अंध-  
कारमय । उ०—हिँ की जोति दीप यह मूका । यह जो दी  
अँधिर भा बूझा ।—जायसी ग्र० ( गुप्त ), पृ० २०४ ।

अँधियारा(उ)०—सद्वा पु० [ न० अंधकार, प्रा० अघवार ] अंधकार ।  
अँधेरा । उ०—वरपि धूरि कीहेसि अँधियारा ।—नानम  
६।५१ ।

अँधियारी(उ)०—सद्वा स्त्री० [ म० अन्ध + कारी ] आँख बंद करने का  
आवृण या पट्टी । अँधेरी । उ०—छलि आँखिन्ह अँधियारी  
मेली । धक्कारहि गडदार नहेली ।—चित्रा०, पृ० २०२ ।

अँधियरवा(उ)०—सद्वा पु० [ हि० अँधियर + वा ( प्रत्य० ) ] दे० 'अँधि-  
यार' । उ०—अँधियरवा मे ठाढ़ि गोरी का करलू । जब लगि  
तेल दिया मे जाती, ये ही अँजोरवा बिछाय घलतू ।—सत  
वार्ता०, भा० २ पृ० २३ ।

अँधियरिया(उ)०—सद्वा स्त्री० [ हि० अँधियर + इया ( प्रत्य० ) ] १  
अँधेरी रात । २ अँधेरा । तम । उ०—चुनो किंवारीया मिटि  
अँधियरिया ।—घरम०, पृ० ३३ ।

अँधियार<sup>१</sup>—सद्वा पु० [ स० अन्धकार, प्रा० अघवार ] [ स्त्री० अँधियारी ]  
अँधेरा । अंधकार । तम । उ०—पसरि परघो अँधियार सकल  
ससार घुमडि घिरि ।—नद ग्र०, पृ० ४ ।

अँधियार<sup>२</sup>—वि० प्रकाश हित । अँधेरा । तमाच्छादित । दे० 'अँधेरा' ।  
उ०—भय उदधि जमलोक दरसै निगट ही अँधियार ।  
—सूर०, १।८८ ।

अँधियारक टोला—सद्वा पु० [ स० अँधियारक + हि० टोला ] अंधक  
नामक यदुवशियों की एक शाखा का निवासस्थान । अंधको  
का निवास ।

अँधियारा<sup>१</sup>(उ)०—सद्वा पु० [ म० अन्धकार, प्रा० अघवार ] १  
अँधेरा । अंधकार । तम । २ धुंधलापन धुंध ।

अँधियारा<sup>२</sup>(उ)०—वि० १ प्रकाशरहित । अँधेरा । तमाच्छादित ।  
उ०—पक्ष अँधियारा जगत का जब मनुज अघ मे निरत  
या ।—हंस०, पृ० ११ । २ धुंधला । ३. उदास । सुना ।

मनहस । उ०—वीर कीर, सिय राम लखन विनु लागत जंग  
अंधियारी ।—तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० ३५१ ।

अंधियारी १—संज्ञा स्त्री० [ हि० अंधियार ] १. अंधकार । उ०—  
जब करि यवधौ सरलौ नहि एकां नहि मिटी अंधियारी ।—  
जग० श०, भा० २, पृ० १०८ । २. अंधकार फैला देनेवाली  
आंधी । उ०—अंधियारो आई तहें भारी । दनुज सुता तिहि  
त न निहारी ।—सूर०, ६।१७४ । ३. दे० 'अंधियारी' । उ०—  
जोवन गज अपमर मद कीन्हें । अब न रहे अंधियारी दीन्हें ।  
चित्रा०, पृ० १६४ ।

अंधियारी २—वि० स्त्री० अंधकारपूर्ण । उ०—अंधियारी भावों की  
रात ।—सूर०, १०।१२ ।

अंधियारी कोठरी—संज्ञा स्त्री० [ हि० अंधियारी + कोठरी ] १.  
अंधेरा छोटा कमरा । २. पालकी का अगला कहार जब रास्ते में  
पानी देखता है तब पीछेवाले कहारों को सावधान करने के लिये  
'अंधियारी कोठरी' कहता है । ३. पेट । उदर । गमस्थान ।  
कोख । घरन ।

अंधियाली—वि० ३० 'अंधियारी' । उ०—आधी रात का समा, बड़ी  
अंधियाली रात, मव और सन्नाटा, डमपर बोदलों की घेरघार,  
पमारने पर हाथ भी न सूझता ।—ठेंठ, पृ० ३२ ।

अंधूला १—वि० दे० 'अंधेरा' । उ०—जैनी अंधूले अमृत खं कालु ।  
—प्राण०, पृ० १८० ।

अंधेर—संज्ञा पुं० दे० 'अंधेरा' । उ०—वहि देसवा में नित्त पूनिमा,  
बबहु न हउ अंधेर ।—बदीर० श०, भा० २, पृ० ६४ ।

अंधेरना १—क्रि० प्र० [ अंधेर + ना ] अंधेरा करना । अंधकार-  
मय करना । तमाच्छादित करना । उ०—अरी, खरी सटपट  
परी, विध आधे मग हेरि । मग लगे मधुपनु लई भागन गली  
अंधेरि ।—विहारी २०, दो० ४५६ ।

अंधेरा १—संज्ञा पुं० [ सं० अंधकार, प्रा० अंधियार ] १. अंधकार ।  
तम । प्रकाश का अभाव । उजाले का विलोम । उ०—मौन,  
नाश, विध्वंस अंधेरा शून्य बना जो प्रकट अभाव ।—कामायानी,  
पृ० १८ । २. धंधलापन । धुंध । उ०—उसकी आँखों में  
अंधेरा छाया रहता है ( शब्द० ) ।

क्रि० प्र०—करना ।—छाना ।—दोडना ।—पडना ।—फँलना ।  
—होना ।

मुहा०—अंधेरा छोटना = प्रकाश के सामने से हट जाना । उजाला  
छोडना ।

२. छाया परछाई । उ०—चिराग के सामने से हट जाओ,  
तुम्हारा अंधेरा पडता है ( शब्द० ) । ४. उदासी । शोक ।  
उ०—उसके मरते ही समाज में अंधेरा छा गया ( शब्द० ) ।

अंधेरा २—वि० अंधकारमय । प्रकाशरहित । तमाच्छादित ।

यौ०—अंधेरा कुप = कूर्प की तरह अंधेरा । बहुत गहरा अंधेरा ।  
अंधेरा पाख, अंधेरा पक्ष = कुण्ण पक्ष । बदी । अंधेरे उजाले,  
अंधेरे उजले = अंधेरे मवेरे । समय कुसमय । बबत बेवबत ।  
उ०—अच्छा जमादार अंधेरे उजाले समझ लूंगा ।—फिसाना०,  
पृ० ४८६ । अंधेरे मुह, मुह अंधेरे = सूर्योदय के पहले जब  
मनुष्य एक दूसरे का मुह अच्छी तरह न देख सकते हो । बडे  
तडके । बडे मवेरे ।

८

मुहा०—अंधेरे घर का उजाला = ( १ ) अत्यंत कातिमान ।  
अत्यंत सुंदर । ( २ ) शुभ लक्षणवाला । सुलक्षण । कुलदीपक ।  
वश की मर्यादा बढ़ानेवाला । ( ३ ) इकलौता वेदा । अंधेरे घर  
का चिराग या दिया = दे० 'अंधेरे घर का उजाला' ।

अंधेरा उजाला—संज्ञा पुं० [ हि० अंधेरा + उजाला ] एक खिलौना  
जो श्वेत और रंगीन कागजों से बनता है । रात दिन का  
खिलौना ।

विशेष—कागज को एक विशेष प्रकार से कई तहों में लपेटकर बनाया  
हुआ एक प्रकार का खिलौना जिसके भीतरी दो भाग सादे और  
दो भाग रंगीन होते हैं और जो हाथ की चारो उँगलियों की  
सहायत से खोला और मूँदा जाता है । इससे कभी तो उसका  
सादा अंश दिखाई पडता है और कभी रंगीन ।

अंधेरा गुप—संज्ञा पुं० [ हि० अंधेरा + गुप ] इतना अधिक अंधकार  
कि कुछ दिखाई न दे । घोर अंधकार, जैसे—इस कोठरी में  
तो बिलकुल अंधेरा गुप है ( शब्द० ) ।

अंधेरिया—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्धकार ] १. अंधकार । अंधेरा । उ०—  
भलकि चमकि तहें रूप विराजें मिटिगें सकल अंधेरियाँ री ।—  
जग० श०, भा० २, पृ० १०६ ।

अंधेरी १—संज्ञा स्त्री० [ हि० अंधेरा + ई ] [ पुं० अंधेरिया ] १. अंध-  
कार । तिमिर । प्रकाश का अभाव । तम । अंधियारी । उ०—  
माँती कुज में मिलती चंद्रिका अंधेरी जैसे ।—आँसू पृ० ४८ ।  
२. काली रात । अंधकार भरी राति ।

क्रि० प्र०—छाना ।—झुकना ।—दोडना ।—फँलना ।

३. आँधी । अंधड़ । ४. घोड़ों और बैलों की आँख पर डाला  
जानेवाला पर्दा । अंधारी ।

क्रि० प्र०—डालना ।—देना ।

मुहा०—अंधेरी डालना, अंधेरी देना = ( १ ) किसी की आँखों को  
मूँदकर उसकी दुर्गति करना । इसी को कवल ओढाना भी कहते  
हैं । ( २ ) आँख में धूल डालना । धोखा देना ।

अंधेरी २—वि० प्रकाशरहित । अंधकारयुक्त । बिना उजले की । उ०—  
रजनी अंधेरी है न सूभति हथेरी रच चोर करे पेरी लखि मुख  
ना लुकोवै तू ।—दीन० ग्र०, पृ० १३८ ।

यौ०—अंधेरी कोठरी = १. पेट । गर्म । कोख । घरन । २. गुप्त  
भेद । रहस्य ।

मुहा०—अंधेरी कोठरी का यार = गुप्त प्रेमी । जार ।

अंधोटी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अन्ध + टी, प्रा० अंधवटी, अंधोटी,  
अंधोटी ] बेल या घोड़े की आँख बंद करने का ढक्कन या  
पर्दा ।

अंधोटी—संज्ञा पुं० [ सं० अन्ध + पट्टक, प्रा० अंधवट्टक ] दे० 'अंधोटी' ।  
उ०—रहट विसह एह मूढ मन दिए अंधोटी बेल ।—चित्रा-  
वली, पृ० १७५ ।

अंधौरी—संज्ञा स्त्री० ३० 'अम्हौरी' ।

अंध्यार १—संज्ञा पुं० दे० 'अंधियार' । उ०—दीपक हजारन अंध्यार  
लुनियतु है ।—ब्रजमाधुरी० पृ० ३०८ ।

अंध्यारी—१. संज्ञा स्त्री० दे० 'अंधियारी' । उ०—भई एक बार  
अपार अंध्यारी ।—हम्मीर रा०, पृ० २० ।

अध्यायी—वि० अंधकारयुक्त। अंधेरी। उ०—भगवत की अध्यायिता अध्यायी।—सूर०, १०।११।

अव०—संज्ञा पुं० [ सं० आभ्र, प्रा० अव ] ग्राम। उ०—तहाँ सु अव तर रिप्य इक क्रम तम अंग सुरग।—पृ० २१०, ६।१७।

अवराई—संज्ञा स्त्री० [ सं० आभ्र = ग्राम + राजी = पक्ति, प्रा० अव + राई ] ग्राम का वर्गीकृत। ग्राम की वारी।

अवराउ—संज्ञा पुं० दे० 'अवराई'। उ०—घन अवराउ लाग चहुँ पासा।—जायसी ग्र० ( गुप्त ), पृ० २७।

अवराव—संज्ञा पुं० दे० 'अवराई'। उ०—अस अमरावे सघन वन, वरनि न पारौ अत।—जायसी ( शब्द० )।

अवली—संज्ञा पुं० [ देश० ] एक प्रकार की गुजराती कपास जो डोलरा नामक स्थान में होती है।

अवली—संज्ञा पुं० [ सं० आभ्र, प्रा० अव हि० अव + वा ( प्रत्य० ) ] ग्राम। आभ्र। उ०—यहाँ अवला तरे रुके एक पल विश्राम लेना।—उडा०, पृ० १६।

अवा—संज्ञा पुं० दे० 'अवा'। उ०—ब्रज करि अवा जांग ईधन भरि सुरति आगि सुलगाए।—सूर०, १०।३७८१।

अवाडा—संज्ञा पुं० दे० 'आमडा'।

अवारी—संज्ञा स्त्री० [ अ० अमारी ] दे० 'अवारी'—१। उ०—कलित करिवरहि परी अवारी।—मानस, १।३००।

अविया—संज्ञा स्त्री० [ सं० आभ्र, प्रा० अव + इया ( प्रत्य० ) ] ग्राम का छोटा कच्चा फल जिसमें जाली न पड़ी हो। टिक रा। केरी। अमिया।

विशेष—इसकी खटाई कुछ हल्की होती है। इससे लोग दाल में डालते तथा चटनी और अचार भी बनाते हैं।

अविरती—संज्ञा स्त्री० [ सं० अमृति, प्रा० अमिरिति ] तार का एक पुराना वाजा। अमृत कुहली। उ०—वीन पिनाक कुमाइच वही। वाज अविरती प्रति गहगही।—पदमावत, पृ० ५६२।

अविरथा—संज्ञा पुं० [ सं० वृथा + अ ( उच्चा० ) ] उ० विरथा वृथा। व्यर्थ। बेफायदा। फजूल। उ०—प्रेम कि आगि जरै जो कोई। ताकर दुख न अविरथा होई।—जायसी ( शब्द० )।

अविलि—संज्ञा स्त्री० [ सं० अम्लिका, प्रा० अविलिया ] इमली का वृक्ष। उ०—कोई अविलि कोई महुव खजूरी।—जायसी ग्र० ( गुप्त ), पृ० २४७।

अवुआ—संज्ञा पुं० [ हि० अव + उवा ( त्य० ) ] आभ्र। उ०—मौरे अवुआ अरु द्रुम वेली मधुकर परिमल भूले।—सूर० ( राधा० ), २३६१।

अमोरी—संज्ञा स्त्री० दे० 'अमोरी'।

अमर—संज्ञा पुं० दे० 'अवर'—६। उ०—दाहिने अतर और अमर तमोर लोन्हें। सामुहे लपेटे लाज भोजन के थार गहें।—भिवारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६८।

अवदा—संज्ञा पुं० [ सं० अवाध, उ० अवधा ] १ नीचे की ओर मुंह वाला। उ०—आकाशे अवदा कुआ पाताले पनिहार।—कवीर ( शब्द० )। २ अधा। उलटा।

अवधाना—संज्ञा पुं० [ उ० अवधा से नाम० ] अधा करना। उलटा करना। उ०—मृत मनोज देखि कै हारा। निज अवधाय सो रख्यो नगरा।—हि० प्रेमा०, पृ० २५५।

अवरा—संज्ञा पुं० दे० 'अवला'। उ०—कोई अवरा कोई वेर करौदा।—जायसी ग्र० ( गुप्त ), पृ० २४७।

अवराई—संज्ञा स्त्री० दे० 'अवराई'। उ०—सत सभा चहुँ दिस अवराई।—मानस, १।३७।

अवलउ—संज्ञा पुं० [ सं० प्रा० अवल ] अवस्थ। व्यथित। उ०—सज्जन चाल्या हे सखी पडहउ वाज्यउ द्रग। कांही रली वधामणा, कांही अवलउ अग।—डोला०, दू० ३५१।

अवला—संज्ञा पुं० दे० 'अवला'।

अवली—संज्ञा स्त्री० [ सं० आमलकी, प्रा० आमलई ] छटा अवला। उ०—पक गये सुनहले मधुर वेर, अवली से तर की डाल जडी।—ग्राम्या, पृ० ३६।

अवली—संज्ञा पुं० [ ? ] उलटा। उ०—चगन लगी जब और प्रीत छी, अब कुछ अवली रीति।—सत० सार०, भा० २, पृ० ७४।

अवहलदी—संज्ञा स्त्री० दे० 'आमा हल्दी'। उ०—आलूचा, अमिली अवहलदी, आल आंवरा राल अफलदी।—सुजा०, पृ० १६१।

अवा—संज्ञा पुं० दे० 'अवा'। उ०—अवा अगिनि जिमि अतर जरै।—नद० ग्र०, पृ० १३३।

अवारना—संज्ञा पुं० [ हि० वारना ] न्यायावर करना। वारना। उ०—अय रामियो शरण तुम्हारी। पल पल ऊपर प्राण अवारी।—राम० धर्म०, पृ० ३२२।

अविरथा—संज्ञा पुं० [ सं० अविरथा ] उ०—उधर न नैन तुमहि विनु देखे। सवहि अविरथा मोरे लेखे।—जायसी ग्र०, पृ० ३५७।

अस—संज्ञा पुं० [ सं० अस ] स्कंध। कथा। उ०—वाम भजहि सखा अस दीन्हें, दक्षिण कर द्रुम डरिया।—सूर०, १०।४७०।

असुआ—संज्ञा पुं० [ सं० अशु, प्रा० असु, असुय ] असू। अशु। उ०—तन काँप लोचन भरे असुआ भलके आये।—श्यामा०, पृ० १२८।

असुपात—संज्ञा पुं० [ सं० अशुपक्ति ] असुआ की वतार। असू की पक्ति या पात। उ०—इतनी सुनत सिमिटि सब आये, प्रेम सहित धारे असुपात।—सूर०, १।३८।

असुवा—संज्ञा पुं० दे० 'असुआ'। उ०—यह छवि निरखि गही नंदरानी असुवा दरि दरि परत करौटनि।—सूर०, १०।१८७।

असुवाना—संज्ञा पुं० [ हि० असू से नाम० ] अशुपूर्ण होना। डवडवा आना। असू से भर जाना। उ०—उनही विनु ज्यों जलहीन हूँ मीन सी आँखि मेरी, असुवानी रहै।—रसखान ( शब्द० )।

अहुडा—संज्ञा पुं० [ देश० ] तालने का बटखरा।

अहस—संज्ञा पुं० [ सं० अहस् ] दे० 'अह'।

अहुडी—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक लता जिसमें छोटी छोटी गोल पेटे की फलियाँ लगती हैं। इन फलियों की तरकारी बनती है और इनके बीज दवा में पड़ते हैं। दाकला।

अ<sup>१</sup>—उप० सज्ञा और विशेषण शब्दों के पहले लगकर यह उनके अर्थों में फेरफार करता है । जिस शब्द के पहले यह लगाया जाता है उस शब्द के अर्थ का प्रायः अभाव सूचित करता है, जैसे, अकर्म, अन्धाय, अचल । कहीं कहीं यह अक्षर शब्द के अर्थ को दूषित भी करता है, जैसे—अमागा, अकाल, अदिन । स्वर से आरम्भ होनेवाले शब्दों के पहले जब इस अक्षर को लगाना होता है तब उसे 'अन' कर देते हैं, जैसे, अनत, अनेक अनिश्चर । पर हिंदी में कभी कभी व्यंजन के पहले भी 'अन' के 'न' को सस्वर 'न' करके 'अन' लगा देते हैं, जैसे, अनवन, अनरीति, अनहोती आदि ।

संस्कृत वैयाकरणों ने इस निषेधसूचक उपसर्ग का प्रयोग इन छह अर्थों में माना है (१) सादृश्य, यथा—अब्राह्मण = ब्राह्मण के समान आचार रखनेवाला अन्य वर्ण का मनुष्य । (२) अभाव, यथा—अफल = फलरहित, अगुण = गुणरहित । (३) अन्यत्व, यथा—अघट = घट से भिन्न, पट आदि । (४) अल्पता, यथा—अनुदरी, कन्या = कुशोदरी कन्या । (५) अप्राप्त्यर्थ, यथा—अग्रा, यथा—अभाग । अधन = बुढ़ा घन । (६) विरोध, यथा—अधर्म = धर्म के विरुद्ध आचरण । अन्धाय, आदि । हिंदी में इसका प्रयोग कुछ लागू स्वाधिक रूप में भी मानते हैं, जैसे अलाप = लोप ।

अ<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. शिव (को०) । ३. ब्रह्मा । ४. विराट् । ५. इन्द्र । ६. वायु । ७. कुबेर । ८. अग्नि । ९. विश्व । १०. सरस्वती । ११. अमृत । १२. कीर्ति । १३. ललाट । १४. प्रणव (को०) । १५. यम (को०) । १६. प्राण (को०) ।

अ<sup>३</sup>—वि० १. रक्षक । २. उत्पन्न करनेवाला ।

अइ<sup>१</sup>—सर्व० [सं० एतत्, अप० एइ, एअ] ये । उ०—करि कइरां ही पारणउ अइ दिन यूँ ही ठेल ।—ढोला०, दहा०, ४३० ।

अइयपन<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ऐपन' । उ०—पउअनाल अइयपन भल भेल ।—विद्यापति, पृ० २२१ ।

अइया<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० दे० 'ऐया' ।

अइला<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अइला' ।

अइला<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [देश०] चल्हे का मुँह या छेद ।

अइस<sup>१</sup>—वि० [सं० ईदृश, अप० अइस] ऐसा । इस प्रकार का ।

अइसइ<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं० ईदृशो हि] ऐसे ही । इस प्रकार ही ।

अइसना<sup>१</sup>—वि० [सं० ईदृश, अप० अइस] ऐसा । इस प्रकार का ।

अइसना<sup>१</sup>—वि० [अप० अइस] दे० 'अइसन' । उ०—अइसना देह गेह ना सोहावये ।—विद्यापति, पृ० ११० ।

अइसा<sup>१</sup>—वि० दे० 'ऐसा' ।

अइसउ<sup>१</sup>—वि० [सं० ईदृशी अपि] ऐसी भी । इस प्रकार का भी

अइहइ<sup>१</sup>—वि० [अप०] [सं० ईदृश] ऐसा । इस प्रकार का ।

उ०—मृगरिपु कटि सुदर वरणी, मारु अइहइ घाट ।—ढोला०, दू० ४६६ ।

अईगई<sup>१</sup>—वि० [हि० अई + गई] दे० 'आई गई' ।

मुहा०—अई गई करना = 'आई गई करना' । उ०—चित्तमान की मान कहीं चहै न हित जान अई गई कीजतु है ।—ठाकुर०, पृ० ३ ।

वि० प्र०—करना ।

अउ<sup>१</sup>—वि० दे० 'औघा' । उ०—फिरहुँ का फूले फूले फूले । जब यम मास अउ<sup>१</sup> मुख होते सो दिन काहे भूले ।—कवीर वी०, पृ० ५४ ।

अउ<sup>१</sup>रा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'औरा' । उ०—कोइ अउ<sup>१</sup>रा कोइ राइ करलेदा ।—पदुमा०, पृ० ८५ ।

अउ<sup>१</sup>—सयो० अय० [सं० अपर या अवर] और । तथा । उ०—जस हृथ्य भुगुति अउ मुकुति दोउ कहि नरहरि नित सभरिय ।—अकवरी०, पृ० ७४ ।

अउ<sup>१</sup>—<sup>२</sup>पु०—सर्व १. वह । उ०—सारीखी जौडी आ जूटी नारी अउ नाह ।—ढोला०, दू० ६ । २. यह । उ०—राजा राणी सँ कहइ कीजइ अउ बीमाह ।—ढोला०, दू० ६ ।

अउखतु<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'औषध' । उ०—असा अउखतु खाह गवारा । जितु खाये तेरे जाहि विकारा ।—प्राण०, पृ० २७४ ।

अउगाह<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'अवगाह' । उ०—नयन हि जानउं नीअरे कर पहुँचत अउगाह ।—पदुमा०, पृ० ५४ ।

अउगुण<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'अवगुण' । उ०—मजण मिल्या मण कमण्ड, अउगुण सहि गलियाह ।—ढोला०, दू० ५६० ।

अउभक<sup>१</sup>—क्रि० वि० दे० 'औभक' । उ०—मारु दीठी अउभकइ जाणि खिची घणसअ ।—ढोला०, दू० ८६ ।

अउठा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [देश०] नापने की दो हाथ की एक लकड़ी जिसे जुलाहे लिए रहते हैं ।

अउत<sup>१</sup>—वि० दे० 'अकृत' । उ०—नानक लेखं मांगीअ अउत जणेंदी जाय ।—प्राण०, पृ० २१८ ।

अउत<sup>१</sup>—वि० [सं० अयुक्त] अनुचित । अयुक्त । उ०—अउत होइ घरि छोड है राय ।—वी० रा०, पृ० ४६ ।

अउधान<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अवधान] गमाधान । गमस्त्विति । अउधू<sup>१</sup>, अउधूत<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'अवधूत' ।

अउपन<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [प्रा० ओप्पा] सान पर घिसना । सान देना । अउर<sup>१</sup>—अ य० दे० 'और' । उ०—मकरध्वज बाहण चढ़ी अहिमकर उत्तर वाउ वाए अउर ।—बेलि०, दू० २२२ ।

अउरउ<sup>१</sup>, अउरो<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं० अपर + अपि] और भी । अउलग<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अपालग प्रा० अवलग, अप० अवलग] प्रवास । दूर गमन ।

अउलगना<sup>१</sup>—क्रि० सं० [अउलग से नाम०] प्रवास करना । यात्रा करना । उ०—ईदर की घर अउलगउं, जइतू कहइ तु जाँह ।—ढोला०, दू० २२४ ।

अउहेर<sup>१</sup>, अउहरी<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं० अवहेला] प्रवहेलना । अपमान । अउहेरना<sup>१</sup>—क्रि० प्र० [हि० अवहेर से नामधातु] अपमान करना । तिरस्कार करना ।

अउत<sup>१</sup>—वि० [सं० अपुत्र, प्रा० अपुत्त, अउत्त] निपूता । विना पुत्र का । नि सतान । उ०—(१) धन्य सो माता मंदी, जिन जाया बंधव पूत । राम सुमिरि निर्भय नया, और सब गया अउत ।—कवीर (शब्द०) । (२) गये हुये माँगन की पूत । यह फल दोनों सती अउत ।—अर्थ०, पृ० ६ ।

अउत<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० अपुत्रत्व । निपूतता । उ०—यह ताकी निस्तारि, जनते जाइ अउत ।—सुंदर म०, भा १, पृ० १८३ ।

अऊलना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [सं० उल् = जलना] १, जलना । गरम होना ।

२ गरमी पडना । दे० 'अलीना' ।

अऊलना<sup>२</sup>—क्रिया अ० [सं० आ = अच्छी तरह + शूल, प्रा० सूल, हिं० हूलना] छिलना । छिदना । चुभना । उ०—छत आजु की देखि कहंगी कहा, छतिया नित ऐसे अऊलति है ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

अऊरणा—वि० [ सं० ] विना कर्ज का । जिसपर कर्ज न हो । ऋणमुक्त ।

अऊरणी—वि० [ सं० ] जिसपर कर्ज न हो । ऋणमुक्त ।

अएरना(उ)—क्रि० सं० [सं० अङ्गीकरण; प्रा० अगीअरण, हिं० अंगेरना] अगीकार करना । अंगेरना । स्वीकार करना । धारण करना । उ०—दियाँ सुसीस चढाइ लै आछी भाँति अएरि । जापै सुखु चाहतु लियो ताके दुखहि न फेरि ।—विहारी०, पृ० ३८ ।

अओघ(उ)—वि० दे० 'अउघ' । उ०—अघर मगइते अओघ कर भाय । सहए न पार पयोधर हाथ ।—विद्यापति, पृ० २८३ ।

अओघा(उ)—वि० दे० 'अओघा' उ०—अओघा कमल काति नहि पूरण हेरहू त जुग बहि जाइ ।—विद्यापति, पृ० ३६ ।

अकटक—वि० [सं० अकण्टक] १ विना काँटे का । कटकरहित । २ बाधरहित निर्विघ्न । विना रोक टोक का । वेधडक । उ०—समुझि काम मुख सोचहि भोगी । भये अकटक साधक जोगी ।—मानस, १।८७ । ३ शत्रुरहित । उ०—जानहि सानूज रामहि मारी । करौ अकटक राज सुखारी ।—मानस, २।१८६ ।

अकठ—वि० [ सं० अकण्ठ ] १ कठरहित । जिसे कठ न हो । स्वरहीन । कर्कश [को०] ।

अकड—वि० [ हिं० अकड ] तेज । अकडदार । उ०—'इशा' घदल के काफिये रख खेडछाड के, चढ बैठ एक और वछेडे अकड पर ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २७८ ।

अकप—वि० [ सं० अकम्प ] न काँपनेवाला । स्थिर । उ०—मत्य भी शव-सा अकप कठोर ।—साकेत, पृ० १६१ ।

अकपत्व—सङ्ग पुं० [ सं० अकम्पत्व ] १ काँपने का अभाव । न काँपने की दशा । कपहीनता । २ वशी वजाने में उँगलियों का एक गुण । अकपत्व । न काँपना ।

अकपन<sup>१</sup>—वि० [ सं० अकम्पन ] [ वि० अकम्पित, अकम्प्य, सङ्ग अकम्पत्व ] न काँपनेवाला । स्थिर ।

अकपन<sup>२</sup>—सङ्ग पुं० रावण का अनुचर एक राक्षस जिसने खर के वध का वृत्तांत उससे कहा था ।

अकपित<sup>१</sup>—वि० [ सं० अकम्पित ] जो काँपा न हो । अटल । निश्चल ।

अकपित<sup>२</sup>—सङ्ग पुं० बौद्ध गणाधिपों का एक भेद ।

अकप्य—वि० [ सं० अकम्प्य ] न काँपनेवाला । हिलने या डिगनेवाला । अटल स्थिर । अचल ।

अक<sup>१</sup>—सङ्ग पुं० [ सं० ] १ पाप । पातक ।

यौ०—अकहीन = पापहीन । उ०—बरबस करत विरोध हठि हीन चहुत अकहीन ।—सं० सप्तक, पृ० ४७ । अकबस = पापवश ।

उ०—तुलसी मठ अवधम विहटि दिन दिन कद मलीन ।—

सं० सप्तक, पृ० ४७ ।

२. दुख । ३. नर्प (को०) । ४. चिह्न (को०) ।

अक<sup>२</sup>(उ)—वि० दे० 'एक' । उ०—तही फकीर अक मुदा गुसाई ।

—घट०, पृ० ८५ ।

अकच<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] विना चान का । गंजा । गल्फाट ।

अकच—सङ्ग पुं० नेतुग्रह ।

अकचकाना—क्रि० अ० [सं० (अ० अचरमात्) + चक् = चकितहोना]

विस्मित होना । हायादना होना । उ०—(क) युवर के रहन

पर वालक नी अचकाना दुआ बँट गी ।—छाया,

पृ० १०७ । (ख) वह अचकाना अचकाली की आर ताकना

रह गया ।—वै० न०, पृ० २५५ ।

अकच्छ—वि० [ सं० अ - रहित + कच्छ या पक्ष = घोतो, परिधान ]

१ नग्न । नंगा । २ व्यभिचारी । पदस्त्रीगामी ।

अकटुक—वि० [ सं० ] १ जा बट न हो । मधुर । २

अशान । अकलात [को०] ।

अकटोटा—सङ्ग पुं० [ सं० अकु = छाप, तिलक + देश० टोटा = कबड,

ढेला ] कबड, मिट्टी में तयाग दिया हुआ चदन । उ०—

अकटोटा को घमितिब, लकी विधे लगाया ।—प्रेमघन०,

भा० १, पृ० १५२ ।

अकठोर—वि० [ सं० ] जो कठोर न हो । सुतायम । कमल [को०] ।

अकडम—सङ्ग पुं० [ सं० ] एक प्रकार का तत्विक चित्र [को०] ।

अकडमचत्र—सङ्ग पुं० [ सं० ] दे० 'अकडम' [को०] ।

अकडोडा—सङ्ग पुं० [ सं० अक + तुट, प्रा० अक्क + ताँड ] मजार का

फल । मदार की ढोढ़ी । उ०—आवन की होउ कंमे अकडोडे

जात हं ।—सुदर०, ७, भा० २, पृ० ४५७ ।

अकडत—सङ्ग स्त्री० [ हिं० अकड + अंत (प्रत्यय) ] अकड, दप ।

घमड । उ०—तवने की तरह दन निवृत्त जावे । तेरे आगे

जो दो करे अकडत ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६४ ।

अकड<sup>१</sup>—सङ्ग स्त्री० [ सं० आ = अच्छी तरह + काण्ड = गाँठ, पोर, >

अकड = गाँठ की तरह फडा ] ऐठ । तनाव । मरोड़ । दन ।

अकड<sup>२</sup>—सङ्ग स्त्री० [ देश० ] १. घमड । अकार । गेछी ।

मुहा०—अकड दिखाना = घमड वा गेछी दिखाना । उ०—मार

खाव तो बदन भाडकर फिर भी अकड दिखाया ।—प्रेमघन०,

भा० २, ३०८ ।

२. घूँटता । ढिठाई । ३. हठ । अड । जिद ।

अकड तकड—सङ्ग स्त्री० [ हिं० अकड + तकड < तगडा ] १. ऐठन ।

२. तेजी । ताव । घमड । अभिमान । उ०—'अकड तकड' उसमें

बहुत सारी थी ।—इशा०, पृ० ६१ ।

अकडना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [ हिं० 'अकड से नाम० ] १ सूखकर

सिकुडना और बडा होना । खरा होना । ऐठना । जैसे, पट-

रियाँ धूप में रखने से अकड गई (शब्द०) । २. ठिठुरना ।

स्तब्ध होना । सुन्न होना, जैसे—सरदी से अकड जाओगे

(शब्द०) । ३. छाती को उभाडकर डील को थोडा पीछे की

ओर झुकाना । तनना, जैसे—वह अकडकर चलता है (शब्द०)

अकडना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [देश०] १ शैली करना । घमड़ दिखाना । अभिमान करना, जैसे—वह इतने ही में अकड़ा जाता है (शब्द०) । २ ठिठाई करना । ३ हठ करना । जिद करना । अडना । जैसे—सब जगह अकडना ठीक नहीं, हमारे की बात भी माननी चाहिए (शब्द०) । ४ फिर पडना । मिजाज बदलना । चिटकना जैसे—तुम तो जरा सी बात पर अकड़ जाते हो (शब्द०) ।

अकडफो<sup>१</sup>—वि० [हि० अकड + फो = फुफकारना] ऐंठरीर अभिमान से भरा हुआ [क्रि०] ।

अकडवाई<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अकड + वाई = वायु] शरीर की नसों का पीडा के सहित एकवारगी खिचना । ऐंठन । कुडल ।

अकडवाज<sup>१</sup>—वि० [हि० अकड + फा० वाज = वाला] अकड़ दिखाने वाला । अपने को लगाने वाला । नोक शोकवाला । ऐंठदार । शेखोवाज । अभिमानी ।

अकडवाजी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अकड + फा० वाजी] अकड़ने की प्रवृत्ति । ऐंठ । अभिमान । शेखी ।

अकडा<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अकण्डक या हि० अकड] चौपायों का एक छूतवाला रोग ।

विशेष—जब चौपाया तराई की धरती में बहुत दिनों तक चरकर सहसा किसी जोरदार धरती की घस पा जाते हैं तब यह बीमारी उन्हें हो जाती है ।

अकडा<sup>२</sup>—वि० [हि० अकड] अकड में भरा । ऐंठ भरा । उ०—हिंसा गर्वोन्नत हारों में ये अकड़े अणु टहल रहे ।—कामायनी, पृ० २६६ ।

अकड़ाव<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अकड़ + आव (प्रत्य०)] ऐंठन । खिचाव ।

अकड़ू<sup>१</sup>—वि० [हि० अकड + ऊ (प्रत्य०)] अकड़वाज । अकड़ दिखाने वाला ।

अकड़ैत<sup>१</sup>—वि० [हि० अकड + ऐत । (प्रत्य०)] अकड़वाज । अकड़ू ।

अकट<sup>१</sup>—वि० [सं० अक्षत, प्रा० अय० अक्षत ग्रथवा सं० अक्षत, प्र० अक्षत, हि० अक्षत] समग्र । समूचा । आखा । सारा ।

अकट<sup>२</sup>—क्रि० वि० दिलकुल । मगमग ।

अकती<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अखती' । उ०—अकती की तीज तजवीज के महेली जूरीं—ठाकुर (शब्द०) ।

अकत्य<sup>१</sup>—वि० सं० अकत्य, प्रा० अकत्य] जो कहा न जा सके । न कहने योग्य । अकथनीय । उ०—मसि नैना लिखनी वहनि रोई रोई लिखा अकत्य ।—जायसी (शब्द०) ।

अकत्यन<sup>१</sup>—वि० [सं०] जो डींग न हारें । अविगत्यन [को०] ।

अकथ<sup>१</sup>—वि० [सं० अकथ्य, प्रा० अकथ्य] जो कहा न जा सके । कहने की सामर्थ्य के बाहर । अकथनीय । अवर्णनीय । अनिर्वचनीय । उ०—नामरूप दुई ईस उपाधी । अकथ अनादि सुसामूकि साधी ।—मानस, १।२१ ।

यो०—अकथ कथा; अकथ कहानी = अनिर्वचनीय आख्या ।

अकथनीय<sup>१</sup>—वि० [सं०] न कहे जाते योग्य । जो कहे में न आ सके । अनिर्वचनीय । अवर्णनीय । वर्णन के बाहर । जिसका वर्णन न हो सके । उ०—एहि विधि दुखित प्रजेसकुमारी । अकथनीय दाहन दुखु भारी ।—मानस, २।६० ।

अकथह<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अकडम' [को०] ।

अकथह<sup>२</sup>—वि० दे० 'अकथ' । उ०—नानक गुरमिनि अकथह कथ ।—प्राण०, पृ० ५३ ।

अकथित<sup>१</sup>—वि० [सं०] जो न कहा गया हो ।

अकथ्य<sup>१</sup>—वि० दे० 'अकथ' । उ०—वाल वच पुन आह सी आनंद कियव अकथ्य ।—प० रा०, पृ० १३६ ।

अकथ्य<sup>२</sup>—वि० [सं०] न कहने योग्य । अवर्णनीय अनिर्वचनीय ।

अकद<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अकद] इतरार । प्रतिज्ञा । वादा ।

अकदन<sup>१</sup>—क्रि० वि० दे० 'कदन' ।

अकदन<sup>२</sup>—वि० [सं० अ + कदन] विन शरहित । उ०—कदन विदन अकदन तुदा गहन अन्न क्लेशाहि । दुख जनि दे अव जानि दे कत वैठी अन्खाहि ।—नददास (शब्द०) ।

अकदवदी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अकद + फा० वदी] करारनामा । प्रतिज्ञापत्र ।

अकधक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [देश० अनु०] आशका । आगा पीछा । सोच विचार । भय । डर । उ०—हूँ कै लोभी लाभ बस, छवि मुकुताहन लैन । कूदत रूप समुद्र में अकधक करत न नैन ।—रतन०, दो० ४५२ ।

अकनना<sup>१</sup>—क्रि० सं० [सं० आकर्णन प्रा० आकर्णण] १ सुनना । कर्णोपकरण करना । उ०—पुरजन आवत अकनि बराता । मुदित सबल पुलकावलि गाता ।—मानस १।३ ४४। २ आहट लेना । उ०—नगर सर अकनत सुनत अति रुच उपजावत ।—सूर० (राधा०), २५६१ । ३ बान लगाकर सुनना । घुपचाप सुना । उ०—आलस गात जानि मनमोहन वैठे छाहि करत सुख चैन । अकनि रहत बहु सुनत नही कछु नहि गौर मन वालक वैन ।—सूर० (शब्द०) ।

अकना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [सं० या देश०] उठना । उकताना । घबराना । उ०—दोड दौड आने से जुअरत के अकमत क्या करे । उस विचारे की तविपत तुम पे है आईहुइ ।—जुअरत (शब्द०) ।

अकना<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरण] ज्वार की वह वाग जिसके दाने निकाल लिये गए हो ।

अकनिष्ठ<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो कनिष्ठ न हो । कनिष्ठ भिन्न । २ जिससे कोई कनिष्ठ न हो । सबमे छाटा [को०] ।

अकनिष्ठ<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ गरिष्ठ बुद्ध का एक नाम । २ बौद्ध देवगणों का एक वर्ग [को०] ।

अकनिष्ठग<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध [को०] ।

अकन्या<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो कुमारी न हो [को०] ।

अकपट<sup>१</sup>—वि० [सं०] कपट से रहित । निष्कपट । उ०—हरी डाल के सुखद हिंडोल में परिवर्धित होकर, जो अकपट विकसित भाव दिखाती है किसी मानदमयी ।—प्रेम०, पृ० ७ ।



अकवक<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ हि० अकु० अक+वक=असंबद्ध वचना ]  
[ क्रि० अकवकाना ] १ निरर्थक वाक्य । असंगत प्रलाप ।  
अड वड । अनापशनाप । उ०—जैसे कुछ अकवक बकन  
हैं आज हरि, तैसेई जानि नावे मुग्न राहु को निवसी  
जाय ।—केशव (शब्द०) । २ बड़ोहट । चिता । घटक ।  
खटका । उ०—इंद्र जू के अववन, धाना ज के धकपक,  
शमु जू के सकपक, केसोदाग को कहै । जब जब मुगया  
लोक को राम के कुमार चढ़ै, तब तब कोलाहन होत  
लोक है ।—केशव (शब्द०) । ३ होश हवाश । छत्का  
पजा । अक्की बक्की । चतुराई । चुव । उ०—सकपक होत  
पयजासन परम दीन, अववक भूलि जात गयउनसीन के ।—  
चरणवद्रिका (शब्द०) ।

अकवक<sup>१</sup>—वि० [ सं० आवाक् ] भौवक्का । चकित । निश्चिन्त, जैसे—  
'यह वृत्तान्त मुन वह अकवक रह गया' (शब्द०) ।

अकवकाना—क्रि० प्र० [ हि० अकवक से नाम० ] चकित होना ।  
भौवक्का हुना । घबराना । उ०—(य) मयकात तन, धक-  
धकात उर, अववकात नव ठहे । सूर उषेग मुत बोलत नाही  
अति हिरदं त्व गाढे ।—सू- (शब्द०) । (प्र) 'गममरी अर-  
ववा गई, कौन सी ऐसा बात उसके मुह में निकली जिससे  
बीसो के जा को आघात पहुँचा है' ।—नई पौध, पृ० ६१ ।

अकवत—संज्ञा स्त्री० दे० 'आकवत' । उ०—अकवति असह सो जानि  
सुबुक सो बोलना ।—गुलाल०, पृ० ६२ ।

अकवर<sup>१</sup>—वि० [ प्र० ] श्रेष्ठतम [ को० ] ।

अकवर<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० मुगल सम्राट् अकबर जिनसे भारत में १५५५  
ई० से १६०५ ई० तक शासन किया ।

अकवरी<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [ प्र० अकवर+फ० ई० (प्रत्य०) ] १ एक  
फलाहारी मिठाई । तौयुर और उवाली अरई का बीके साथ  
फेंदवर उसकी टिकिया वनावर, घी में तलकर चाष्नी में  
पाग देते हैं । कहीं कहीं इसे चोरेटे से भी बनाया जाता है ।  
२ एक प्रकार की लकड़ी पर की नक्काशी जिसका व्यवहार  
पजब में बहुत है । स्हारनपुर के कारखानों में भी इसका  
चलन है ।

अकवरी<sup>१</sup>—वि० अकवर मन्धी ।

यौ०—अकवरी अशरफी = सोने का एक पुराना सिक्का जिसका  
मूल्य पहले १६ रुपए था, पर अब २५ रुपए हो गया है ।  
अकवरी मोहर = १ एकाक्ष व्यंजित । एक आंख का आदमी ।  
२ अकवरी अशरफी ।

अकवारी<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'अखवार' । उ०—वालदेव भी अकवार  
पढ़ता है ।—मं० श्रौ०, पृ० २५४ ।

अकवाल—संज्ञा पुं० दे० 'इकवाल' ।

अकर<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ हस्तरहित । बिना हाथ का । उ०—अकर  
कहावत धनुख धरे देखियत परम कृपाल पै कृपान कर पति  
है ।—केशव प्र०, भा० १, पृ० १५१ । २ बिना कर या  
महसूल का । जिसका महसूल न लगता हो । ३. दुष्कर । न  
करने योग्य । कठिन । विकट । उ०—भारथ अकर करतूतिन  
निहारि लही, यातें धनस्याम लाल सोते बाज भायेरी ।—

मियागी प्र०, भा० २, पृ० १६० । ४ क्रियाग्रहित ।  
निर्मिय ।

अकर<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० आकर ] १ गान । आकर । २ समूह ।  
राशि । उ०—हिमवत नीचे तेरे जग ते अकर म ।—भूपर  
प्र०, पृ० १० ।

अकरकरा—संज्ञा पुं० [ सं० आकर+कर ] एक बीया का  
प्रकार का उत्तर गन्धीय का न बहुत ताजा है । इसकी जड़  
मुट और तामाईयक शोधि है । इसमें मुट में एक छाना  
१ श्री-दान भी पीठा न खात जाती है ।

पर्या०—आकरलक ।

अकरखन(पु)—संज्ञा पुं० [ सं० आकरख ] १ 'आकरख' । उ०—  
किया अकरखत मन मा पनी धुति बररात । उडि उडि दोरी  
वाल सब तेज राज गृह्राज ।—निगारी० प्र०, भा० १,  
पृ० ७६ ।

अकरखना—क्रि० प्र० [ हि० अकरखन से नाम० ] १ रीचना  
आकरखण करना । तानना । २ चटाना ।

अकरखण<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० ] १. तम का न रित का केना होना ।  
तम का फल रहित होना । तम का अभाव ।

विशेष—ताम के अनुमान मन्त्रक का प्ररित हो जाने पर  
फिर तम पकण मर्मात बिना तिम हुए के मन्त्रक हा नते है  
और उनका कुछ फल नहीं होता ।

२ दृष्टि से रहित । दृश्य । परमात्मा ।

अकरखण<sup>२</sup>—वि० १. न करने योग्य । उडित । २. इच्छिगृह [ को० ]

अकरखण<sup>३</sup>(पु)—वि० [ सं० अपारख ] बिना कारण । अकारण  
वेगवद ।

अकरखण<sup>४</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ नंगत । अमकलता । अपूर्णता  
२ अक्रोश विशेष । प्राप [ को० ] ।

अकरखणीय<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] न करने योग्य । न करने लायक । करने  
के अयोग्य ।

अकरन<sup>१</sup>(पु)—वि० [ सं० अकारण ] बिना कारण । वेगवद । उ०—  
कर पुटार में अकन कोही । भागे अकगघा गुरुदाही ।—  
गुलसै ( शब्द० ) ।

अकरन<sup>२</sup>(पु)—वि० [ सं० अ+करण=कर्म ] न करने योग्य । जिसका  
करना कठिन या असंभव हो । उ०—दयानिधि तेरो गति लखि  
न परै । धर्म अघर्म अघर्म, धर्म करि अवरन करन करे ।—  
सूर०, १।१०८ ।

अकरना(पु)—क्रि० प्र० दे० 'अकटना' । उ०—मिथ्यावाद आपजस  
सुनि सुनि मूछहि पकारि अकरता ।—सूर०, १०।२०३ ।

अकरनीय(पु)—वि० दे० 'अकरणीय' ।

अकरव—संज्ञा पुं० [ सं० अकरव ] १ घाड़ा जिसके मुँह पर  
सफेद रोएँ होते हैं । और उन सफेद रोओं के बीच बीच में दूसरे  
रंग के भी रोएँ होते हैं । यह घोड़ा ऐसी समझा जाता है ।

२ विच्छू ( को० ) । ३ वृश्चिक राशि ( को० ) ।

अकरम(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अक्रम' । उ०—अकरम करम कर  
मन आपहि पीछे जिव दुख पावे ।—कवीर प्र०, भा० ४,  
पृ० २६ ।

अकरमी<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'अकर्म'। उ०—महा अकरमी जीव हूँ  
सबहि लेहु मुकुताय ।—कवीर मा०, पृ० ५५०।

अकरा<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी। आंवला [को०]।

अकरा<sup>२</sup>—वि० [सं०] अकथ्य प्रा० अकरथ्य, अकरथ्य [स्त्री० अकरथी] १ न  
मोल लेने योग्य। महंगा। अधिक दाम का। कीमती। उ०—लै  
आये हो नफा जानि कै मयै वस्तु अकरी ।—सूर०, १०।३१०४।  
२ खरा। श्रेष्ठ। उत्तम। अमूल्य। उ०—आरतपाल  
कृपालु जा राम, जेही मुमिरे, तेहि को तहँ ठाढ़े। नाम प्रताप  
महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छाटेउ बाढ़े।—तुलसी ग्रं०,  
भा० २, पृ० २२६।

अकराथ<sup>७</sup>—वि० [सं०] अकार्यार्थ, पा० अकारित्य [अकारथ]।  
व्यर्थ। निष्फल। उ०—आण राखि प्रवाधिऐ, जन सुनै  
अकराथ ।—कवीर (शब्द०)।

अकराम—संज्ञा पुं० [अ० अकरम का ब० व०] वखिश। कृपा। अनुग्रह  
[को०]।

अकरार<sup>७</sup>—वि० [हिं० अकराल] भयानक। उ०—कहाँ प्रिया  
एकत सुपन पायो अकरारिय ।—पृ० रा०, ६६।२१०५।

अकरार<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [अ० अकरार या करार] कोल। प्रतिज्ञा  
इकरार।

अकराल<sup>१</sup>—वि० [सं०] जो भयकर न हो। सौम्य। सुंदर। अच्छा।  
अकराल<sup>२</sup>(पु०)—वि० [सं०] कराल] भयकर। भयानक। डरावना।  
[हिं०]।

अकरास<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [हिं० अकरड + आस (प्रत्य०)] अँगुठाई। देह।  
टूटना।

अकरास<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अकर] आलस्य। सुस्ती। कार्यक्षमिता।  
अकरासा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'अकरास'। उ०—छट्टी में आपउ चली गई

रही। हमका बहुत अकरासा लागत रहा ।—भरमा० चि०,  
पृ० ६१।

अकरासा<sup>२</sup>—वि० स्त्री० [सं० अकर = आलस्य] गर्भवती। जो हर्मल  
से हो।

अकरी<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं० आ = अलीशान्ति + किरण (√कृ) बिखेरना]  
बीज गिराने के लिये हल में जो पोला वाँस लगा  
रहता है उसके ऊपर का लमड़ी का चोंगा जिसमें बीज छाला  
जाता है।

अकरी<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० [?] असगंध की जाति का एक पौधा या झाड़ी  
जो पंजाब सिंध और अफगानिस्तान आदि देशों में होती है।

अकरी<sup>३</sup>(पु०)—वि० [हिं० अकर + ई] न करनेवाला। अकर्ता। अक्रिय।  
उ०—अकरी अलख अरूप अनादी तिमिर नहीं उजियारा।  
—चरण०, भा० २, पृ० १४०।

अकरुण—वि० [सं०] करुणाशून्य। निर्दयी। निष्ठुर। कठोर। उ०—  
अकरुण वसुधा से एक भूलक। वह स्मित मिलने को रहा  
उ०—ललक ।—लहर, पृ० ३४।

अकरुर(पु०)—संज्ञा पुं० दे० 'अकरूर'। उ०—लै अकरुर चले मधुवन को,  
सब ब्रज अति भँ भात ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३७।

अकर्कश—वि० [सं०] जो कठोर न हो। मृदु। मुलायम। नरम  
[को०]।

अकर्ण<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ कान से रहित। कर्णहीन। उ०—जो अकर्ण  
अहि को भी सहसा कर दे मत्तमुग्र नत्पन ।—प्रबध०।  
२ छोटे कानोवाला। लघकर्ण [को०]। ३ सुनने की शक्ति  
से रहित। बधिर। बहुरा [को०]। ४ पतवार विहीन।  
बिना पतवार का।

अकर्ण<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० सर्प। साँप [को०]।

अकर्णक—वि० [सं०] कान से रहित। कर्णहीन [को०]।

अकर्णधार—वि० [सं०] पतवार चलानेवाले से रहित। चालकविहीन  
[को०]।

अकर्ण्य—वि० [सं०] वह जो कानों न सुना जाय। अश्राव्य [को०]।

अकर्तन—वि० [सं०] १ वीना। २ जो न काटे [को०]।

अकर्तव्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] न करने योग्य। करने के अयोग्य। जिसका  
करना उचित न हो।

अकर्तव्य—संज्ञा पुं० न करने योग्य कार्य। अनुचित कर्म। उ०—  
सिद्ध होत विनहू जतन मिथ्या मिश्रित वाज। अकर्तव्य से  
स्व नहू मन न धरो महगज ।—श्री निवाम ग्रं०, पृ० २६७।

अकर्ता<sup>१</sup>—वि० [सं०] कर्म का न करनेवाला। कर्म से अलग। उ०—  
चेतन ज्यो को त्यो सदा सदा अकर्ता हाय ।—भक्त०  
पृ० २००।

अकर्ता<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० साध्य के अनुसार पुरुष का नाम जो कर्मों से  
निर्लिप्त रहता है।

अकर्तृक—संज्ञा पुं० [सं०] बिना कर्ता का। जिसका कोई कर्ता या  
रचयिता न हो। जो किसी के द्वारा रचा न गया हो। कर्ता-  
विहीन।

अकर्तृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १ कर्तृत्व का अभाव। २ कर्तृत्व का  
अभिमान न होना [को०]।

अकर्तृभाव—संज्ञा पुं० [सं०] कुछ न करने का भाव। कर्म से पृथक्ता।  
अकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ न करने योग्य कार्य। दुष्कर्म।  
बुरा काम। उ०—यह अकर्म शास्त्र के विरुद्ध है।—कवीर  
सा०, पृ० ६६४। २ कर्म का अभाव।

अकर्मक<sup>१</sup>—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अकर्मिका] व्याकरण में क्रिया के  
दो मुख्य भेदों में से एक। यह उस क्रिया को कहते हैं जिसे  
किसी कर्म की आवश्यकता न हो कर्ता तब ही क्रिया का  
कार्य समाप्त हो जाय, जैसे—'लडका डाँडता है,' इस वाक्य  
में 'दाँडता है' अकर्मक क्रिया है।

अकर्मक<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० ५ मात्मा [को०]।

अकर्मण्य—वि० [सं०] कुछ काम न करनेवाला। बेवाम। निकम्मा।  
आसली। उ०—सब ऐसे अकर्मण्य युवक को आर्य  
साम्राज्य के सिंहासन पर नहीं देखना चाहता ।—रुद्र०  
पृ० १४०।

अकर्मण्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अकर्मण्य होने का भाव। निवृत्तापन।  
आलसीपन [को०]।

अकर्मभोग—संज्ञा पुं० [सं०] कर्मफल के भोगन में मुक्ति या स्वात्तव्य  
[को०]।

अकर्मशील—वि० [सं०] काम न करनेवाला। आनगी। मुस्त  
[को०]।



अकल्क—वि० [ सं० ] [ स्त्री० अकल्का ] १ विना तलछट का । शुद्ध ।  
२. पापरहित । निर्घात [ को० ] ।

अकल्कक—वि० [ सं० ] दे० 'अकल्क' [ को० ] ।

अकल्कन—वि० [ सं० ] दे० 'अकल्क' [ को० ] ।

अकल्कल—वि० [ सं० ] १ विनम्र । सरल । २ अहंकारशून्य । दम  
रहित । ३. ईमानदार [ को० ] ।

अकल्कता—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० ] ईमानदारी । शुद्धता [ को० ] ।

अकल्का—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० ] ज्योत्स्ना । चाँदनी । [ को० ] ।

अकल्प—वि० [ सं० ] १ जो नियम-और प्रतिवध का विषय न हो ।  
अनियंत्रित । निर्वध । २ दुर्बल । कमजोर । ३. जिसकी तुलना  
न की जा सके । अतुल्य । ४ अयोग्य । अक्षम [ को० ] ।

अकल्पनीय—वि० [ सं० ] जिसकी कल्पना न की जा सके । कल्पना से  
परे । उ०—विपुल श्रौतिक कलान ते कलित वनि, रेल तार  
काज क्यों अकल्पनीय करते ।—रसक०, पृ० ३१६ ।

अकल्पित—वि० [ सं० ] १ कल्पानाहित । अव्यवस्थित । उ०—वीर-  
कुल वाल ह्वि न सहिहीं निकाल माँहि, लोक प्रतिकूल की  
अकल्पित कुचाली को ।—रसक०, पृ० ३२३ । २ अकृत्रिम ।  
स्वाभाविक (को०) । ३ प्राकृतिक । नैसर्गिक (को०) ।

अकल्पप—वि० [ सं० ] पापरहित । निर्दोष । निर्विकार । बेऐव ।

अकल्प्य—वि० [ सं० ] १ अस्वभ्य । हरण । २ सत्य । सच [ को० ] ।

अकल्याण—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] अमंगल । अहित ।

अकल्याण—वि० १ कल्याणरहित । अशुभ । २ असुंदर [ को० ] ।

अकव—वि० [ सं० ] १ अवर्णनीय । २ अतुच्छ । ३ अष्टपण । जो  
कृपण न हो [ को० ] ।

अकवच—वि० [ सं० ] विना कवच का । कवचरहित [ को० ] ।

अकवन—वि० [ सं० ] सञ्ज्ञा पुं० [ हि० अक ] आक का पेड़ । मदार ।

अकवाम—सञ्ज्ञा पुं० [ अ० अकवाम कौम का बहुवचन ] जातियाँ ।  
उ०—'दोनों अकवाम मिस्ल शीर व शकर के मिल जायें ।—  
प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६० ।

अकवार—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अकवार' । उ०—धरमदास से छुटल भव-  
सागर, सब सों भेंटि अकवार हो ।—धरम० शब्दा०, पृ० ५१ ।

अकवारि—वि० [ सं० ] दे० 'अकवारी' [ को० ] ।

अकवारी—वि० [ सं० ] १ निस्त्वार्थ । स्वार्थहीन । २ अकृपण ।  
जो कजूस न हो । ३ जिसे शब्द तुच्छ न समझे । ४ प्रबल  
शत्रुवाला [ को० ] ।

अकवि—वि० [ सं० ] जो वृद्धिमान या सुवृद्ध न हो । मूर्ख [ को० ] ।

अकस—सञ्ज्ञा पुं० [ अ० अकस ] १ दूर । अदावत । विरोध । शत्रुता ।  
उ०—काम कोह लाई कै देखाइयत आँखि मोहि, एतै मान  
अकस कीवे को आशु माहि को ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२२ ।  
२ लँगडाँट । होड़ । स्पर्धा । उ०—ठानि लाहु अनखु उछाहु  
वाहुवन कहि वदी बोले विरद अकस उपजाइके ।—तुलसी  
ग्रं०, पृ० ३१२ । ३ ईर्ष्या । डाह । उ०—मोर मुकट की चद्रि-  
कनु यो राजत नंद नद । मनु मसि सेखर की अकस किय  
सेखर सतचद ।—विहारी रं०, दो० ४१६ ।

अकस<sup>०</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० आकाश ] नभ । आकाश । उ०—सकसे का  
जैतवार अकसे का वाई ।—रा० ह०, पृ० ६७ ।

अकस प्र०—ठानना ।—दिलाना ।—पडना ।—मानना ।—रखना ।

यौ०—अकसदीया । अकसदियता ।

अकसना—क्रि० सं० [ हि० अकस से नाम० ] १ अकस रखना ।  
बैर रखना । शत्रुता रखना । २ लँगडाँट रखना । बराबरी  
करना । आँट रखना । उ०—साहनि सों अकसिवो हाथिन को  
वकसिवो, राव भाव सिंह जू को सहज सुभाव है ।—मतिराम  
ग्रं०, पृ० ४३५ ।

अकसमात्—क्रि० वि० दे० 'अकस्मात्' । उ०—(क) असे मे इह  
भावई अकसमात् हुग्र आइ ।—पृ० २०, ६१२८ । (ख) जे  
हुम नभ सो बातें करे । ते तह अकसमात् भई पुरै ।—नद०  
ग्रं०, पृ० २७६ ।

अकसर—क्रि० वि० [ प्र० ] प्राय । बहुधा । अधिकतर । बहुत करके ।  
विशेष करके । उ०—वदन पर अकसर गाते, भी मिहरी से  
रंगते हैं ।—भारतेंद्रु ग्रं०, भा० १, पृ० २४६ ।

अकसर<sup>०</sup>—[ सं० एक + सर (प्रत्य०) ] अकेले । बिना किसी को  
साथ लिए । तनहा । उ०—धनि सो जीव दग्ध डमि सहा ।  
अकसर जरइ न दूसर कहा ।—जायसी (शब्द०) ।

अकसर<sup>०</sup>—वि० अ० ला । एकाकी । उ०—करि पूजा मारीच तब  
सादर पृछी दात । ववन हेतु मन व्यग्र अति अकसर आयहु  
तात ।—मानस, ३१८ ।

अकसरुआ—वि० [ हि० अकसर ] अकेला । बिना साथ का ।

अकसवां—सञ्ज्ञा पुं० [ हि० अकास ] दे० 'आकाश' । उ०—ना हुवाँ  
घरती न पीन अकसवा ।—कवीर शं०, भा० १, पृ० ४७ ।

अकसी—वि० [ हि० अकस ] अकस रखनेवाला । बैरी ।

अकसीर—सञ्ज्ञा स्त्री० [ अ० इक्सीर ] १ चहरस या भस्म जो धातु  
को सोना या चाँदी बना दे । रसायन । कीमिया । उ०—हमसे  
हो जरो सीम की तदवीर सों क्या खाक ? दुनियाँ मे वखी चीज  
है अकसीर सों क्या खाक ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४४ ।  
२ वह औषधि जो प्रत्येक रोग को नष्ट करे । वह औषधि  
जिसके खाने से मनुष्य कभी बीमार न हो । उ०—अगर अक-  
सीर दिन रोगी दई चढ़े न जावेगा ।—सत तुरसी०, पृ० ३३ ।

अकसीर—वि० अर्थार्थ । अत्यंत गुणकारी । अत्यंत लाभकारी ।

अकसीरगर—वि० [ हि० अकसीर + फा० गर ] कीमिया बनानेवाला ।  
रसायनी [ को० ] ।

अकस्मात्—क्रि० वि० [ म० ] १. अचानक । एकवारगी । यकायक ।  
उ०—सब उत्तरना चाहते हैं, कुभा मे अकस्मात् जल बढ़ जाता  
है, सब बहते हुए दिख ई देते हैं ।—स्कंद०, पृ० १०७ । २.  
सयोगवश । दैवयोग से । उ०—महादेवी । आज मैंने अपने  
हृदय के मार्मिक रहस्य का अकस्मात् उद्घाटन कर दिया है ।  
—स्कंद०, पृ० २८ ।

अकस्मात्—क्रि० वि० [ सं० अकस्मात् ] १ अचानक । अनायास ।  
एकवारगी । यकायक । सहसा । तत्क्षण । बैठे बिठाए ।  
आँचक । अनर्बित । अनचित्ते मे । २ दैवात् । दैवयोग से ।  
सयोगवश । हठात् । आपसे आप । अकारण ।

अकह<sup>१</sup>—वि० [ स० अकथ, प्रा० अकह ] न कहने योग्य। जो कही न जा सके। अकथनीय। अनिवचनीय। अवर्णनीय। उ०—नहीं ब्रह्म, नहीं जीव, न माया ज्यो का त्यो वह जाना। मन, बुद्धि, गुण, इन्द्रिय, नहीं जाना अलख अकह निर्वाणा।—कवीर (शब्द०)।

यो०—अकह कहानी=अनिवचनीय कथा। उ०—निज दल जागै ज्योति पर दल दूनी होति, अचला चलति यह अकह कहानी है। पूरण प्रताप दीप अजन की राज रेख राजत श्री रामचंद्र पानित कृपानी है।—वेशव (शब्द०)।

अकह<sup>२</sup>—वि० [ स० अकथ्य ] मुंह पर न लाने योग्य। बुरी। अनुचित। उ०—शील सुधा वसुधा लहिकै अकहै वहिकै यह जीभ विगारिए।—देव (शब्द०)।

अकहनी—वि० [ हि० ] कहना न माननेवाला। बेकहला।

अकहनी—वि० [ हि० अकह ] न कहने योग्य। उ०—जो सब कहने अकहनी थी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६४।

अकहुआ<sup>१</sup>—वि० दे० 'अकहुवा'।

अकहुवा<sup>१</sup>—वि० [ स० अकथ, प्रा० अकह + उवा (प्रत्य०) ] जो कहा न जा सके। अकथनीय। उ०—जाकर नाम अकहुवा भाई। ताकर कही रमैनी भाई।—कवीर (शब्द०)।

अकाड<sup>१</sup>—वि० [ स० अकाण्ड ] विना डाली या शाखा का।

अकाड<sup>२</sup>—क्रि० वि० अकस्मात्। सहसा। बिना कारण।

अकाडजात—वि० [ स० अकाण्डजात ] होते ही मर जानेवाला। जन्मते ही मर जानेवाला।

अकाडताडव—सङ्घ पुं० [ स० अकाण्ड + ताण्डव ] १ असामयिक उद्धत नृत्य। आकरिमक उद्धत नृत्य। उ०—हरिऔध हर के अकाड ताडवो के भये, भाड के समान सारो ब्रह्माड फूटंगो।—रसक०, पृ० ३५१ २ व्यर्थ की उछल कूद। व्यर्थ की बकवाद। वितडा।

अकाडपात—वि० [ स० अकाण्डपात ] होते ही मर जानेवाला। जन्मते ही मर जानेवाला।

अकाडपातजात—वि० [ स० अकाण्डपातजात ] जन्म लेते ही मरने वाला [को०]।

अकाडशूल—सङ्घ पुं० [ स० अकाण्डशूल ] आकस्मिक तीव्र पीडा या वेदना [को०]।

अकात—वि० [ स० अकांत ] जो बात न हो। जो सुदूर न हो। उ०—हरिऔध कात को अकात अवलोकै तो, मृदुल करे जो कुल-कामिनी को छिलिहै।—रसक०, पृ० २६५।

अकाउट—सङ्घ पुं० [ अ० ] हिसाब। लेखा। हिसाब किताब।

अकाउटवुक—सङ्घ पुं० [ अ० ] हिसाब की किताब। वही खाता। लेखा।

अकाउटेट—सङ्घ पुं० [ अ० ] हिसाब जांचनेवाला। निरीक्षक। मुनीम। लेखा लिखनेवाला।

अकाज<sup>१</sup>—सङ्घ पुं० [ स० अकार्य; प्रा० अकज ] १ कार्य की हानि। नुकसान। हर्ज। विघ्न। विगाड। उ०—हरि हरजस रावेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।—तुलसी (शब्द०)। २, बुरा कार्य। दुष्कर्म। खोटा काम (क०)।

अकाज<sup>२</sup>—क्रि० वि० [ हि० अ + काज ] व्यर्थ। बिना काम। निष्प्रयोजन। उ०—वीति जेहे वीति जेहे जनम अकज। रे।—तेगबहादुर (शब्द०)।

अकाजना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [ हि० अकाज से नामधातु ] १ हानि होना। खो जाना। २ गत होना। जाता रहना। मरना। उ०—मोक विकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू।—तुलसी (शब्द०)।

अकाजना<sup>२</sup>—क्रि० स० अकाज करना। हर्ज करना। हानि करना। विघ्न करना। नुकसान करना।

अकाजी<sup>१</sup>—वि० [ हि० अकाज + ई (प्रत्य०) ] [ क्री० अकाजिन अकाजिनी ] अकाज करनेवाला। हर्ज करनेवाला। कार्य की हानि करनेवाला। नुकसान करनेवाला। बाधक। विघ्नकारी। उ०—लाज न लागति लाज अहै तुहि जानी मैं आज अकाजिनि एरी।—देव (शब्द०)।

अकाट<sup>१</sup>—वि० [ हि० अ + काटच ] जिमकी काट न हो। जिसका खटन न हो। अखंडनीय (युक्ति तर्क इत्यादि)।

अकाटच<sup>१</sup>—वि० [ म० अ + काटच ] न काटने योग्य। जिमका खटन न हो मके। दृढ़। मजबूत। अटल। उ०—भाई बहने को तक अकाटच तुम्हागा। पर मेरा ही विश्वास मत्य है सागा।—साकेत पृ० २१६।

यो०—अकाटच युक्ति।

अकातर<sup>१</sup>—वि० [ म० ] जो वायव्य न हो। जो भयभीत न हो। उ०—गति अनाहत नू सखा मत सहज सयत रे अकातर।—अर्चना, पृ० ८८।

अकाथ<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ म० अकृतार्थ प्रा० अकथारथ ] अकार्य। व्यर्थ। निष्फल। निरर्थक। बूथा। फजूल। उ०—रहो न पर प्रेम आतर अति जानी रजनी जात अकाथ।—सूर (शब्द०)। अकाथ<sup>२</sup>—वि० [ स० अकथ्य ] न बहने योग्य। अकथनीय। अनिवचनीय। उ०—आपनो रयी हीरा सो पर ये हाथ इज्जनाइ। दै कै तो अकाथ हाथ मैने ऐसी मन लेहु।—वेशव प्र०, भा० १, पृ० ७४।

अकादर<sup>१</sup>—क्रि० [ स० अकातर ] ज. कादर न हो। शूरवीर। साहसी। हिम्मतवर।

अकाम<sup>१</sup>—वि० [ स० ] बिना कामना का। कामनाविहीन। इच्छा-रहित। निस्पृह। उ०—हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवछ अकाम अमोगी।—मानस, १।८६।

अकाम<sup>२</sup>—क्रि० वि० [ स० अ + हि० काम ] बिना काम के। निष्प्रयोजन। व्यर्थ। उ०—दिना मान नर उरत में धावत फिरे अकाम।—(शब्द०)।

अकाम<sup>३</sup>—सङ्घ पुं० दुष्कर्म। बुरा काम (क०)। उ०—रज परधौ धरनि साहन सिंगार। धिनी अकाम परताप पार—पृ० २०, ५।२४।

अकामत<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ स० ] अनिच्छापूर्वक। अनचाहे [क०]।

अकामत<sup>२</sup>—सङ्घ पुं० [ अ० अकामत ] ठहरने का स्थान। निवास। आवास। उ०—अ अपनी रवाँ हैं तो अकामत से सरकाय। समझे अगर इसान तो दिन रात सफर है।—बहिता क०, भा० ४, पृ० ५७४।

अकामता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] काम या इच्छा का अभाव [को०] ।

अकामनिर्जरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मत के अनुसार तपस्या से जो निर्जरा या कर्म का नाश होता है उसके दो भेदों में से एक । यह निर्जरा सब प्राणियों को होती है क्योंकि उन्हें बहुत से क्लेशों को विवश होकर महता पड़ता है ।

अकामहृत्—वि० [सं०] जो काम से प्रभावित न हो । अक्षुब्ध । शांत [को०] । जो काम से आहत न हो । [को०] ।

अकामा<sup>१</sup>—वि० स्त्री० [सं०] (स्त्री) जिसमें काम का प्रादुर्भाव न हुआ हो । यौवनावस्था के पूर्व की ।

अकामा<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० कामचेष्टा से रहित स्त्री ।

अकामी—वि० [सं० अकामिन्] [स्त्री० अकामिनी] १. कामना-रहित । इच्छाविहीन । निस्पृह । जिसे किसी बात की आकांक्षा न हो । निस्वार्थ । उ०—भजामि ते पदावुजम् । अकामिना स्वधामदम् । —तुलसी (शब्द०) । २. जो कामी न हो । जिवेंद्रिय ।

अकाय—वि० [सं०] १. विना शरीरवाला । देहरहित । उ०—सत्त पुरुष एक रहै अकाया । अस तास सोइ निरगुन आया ।—घट०, पृ० २७४ । २. अशरीर । शरीर न धारण करनेवाला । जन्म न लेनेवाला । ३. रूपरहित । निराकार । उ०—मौगत वामन रूप धरि परधत भयो अकाय । सत्त धर्म सब छाँड़ि के घरचौ पीठ पै पाय ।—नद० अ०, पृ० १८१ ।

अकायिक—वि० [सं० अ + कायिक] शरीर से संबंध न रखनेवाला । उ०—आज अव्यभिचारिणी निज भक्ति का वरदान दो तो, निज अपाधिव श्रुति अकायिक स्नेह का स्मरदान दो तो ।—अपलक, पृ० ४६ ।

अकार<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अक्षर 'अ' ।

अकार<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आकार] आकार । स्वरूप । आकृति । उ०—विना अकार रूप नहि रेखा कौन मिलेगी आय ।—कवीर श०, भा० १, पृ० ७४ ।

अकार<sup>३</sup>—वि० [सं० अ + हि० कार = कार्य] क्रियारहित [को०] । अकारक मिलाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अकारक + हि० मिलाव] ऐसा रासायनिक मिश्रण या मिलावट जिसमें मिली हुई वस्तुओं के पृथक् गुण बने रहे और ये अलग की जा सकें ।

अकारज<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अकार्य] कार्य की हानि । हानि । नुकसान । हर्ज । उ०—(क) आप अकारज आपनो करत कुसगत साथ । पार्यं कृत्वाही देत है मूरख अपने हाथ ।—सभाविलास (शब्द०) । (ख) ताते न मान, समान, अकारज जाको अयानु । दहो अधिकारी, देव कहै कहीं हित की हरि जू सो हित न । कहैं हितकारी ।—देव (शब्द०) ।

अकारण<sup>१</sup>—वि० [सं०] १. विना कारण का । हेतुरहित । विना वजह का, जैसे, 'ससार में अकारण प्रीति दुर्लभ होती है' ।—(शब्द०) । उ०—'तात ! कहाँ ये ? इस बालक पर अकारण क्रोध करके कहाँ छिपे थे ?'—स्कंद०, पृ० ७८ । २. जिसकी उत्पत्ति का कोई कारण न हो । जो किसी से उत्पन्न न हो । स्वयंभू ।

अकारण<sup>२</sup>—क्रि० वि० विना कारण के । बेसवब । व्यर्थ । अनायास । निष्प्रयोजन, जैसे—'क्यों अकारण हँसते हो ?' (शब्द०) ।

अकारता—वि० दे० 'अकार्य' ।

अकार्य<sup>१</sup>—वि० [सं० अकार्यार्थ प्रा० अकार्यथ्य, अप्रकार्य] बेकाम । निष्फल । व्यर्थ । निष्प्रयोजन । फजूल । उ०—विना व्याह यह तपस्या अकार्य होती है ।—सदल मिश्र (शब्द०) ।

क्रि० प्र० करना ।—होना ।

अकार्य<sup>२</sup>—क्रि० वि० व्यर्थ । बेकार । निष्प्रयोजन । फजूल । बेफायदा । उ०—स्वारथ हूँ न कियो परमारथ यो ही अकार्य बैस बिताई ।—पदमाकर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—खोना ।—गारना = व्यर्थ ही गलाना या नष्ट करना । उ०—आछो गात अकार्य गारयो । करी न प्रीति कमललोचन सो जन्म जुआ ज्यों हारयो ।—सूर (शब्द०) ।—जाना उ०—ते दिन गये अकार्य सगति भई न सत ।—कवीर (शब्द०) ।

अकारन<sup>१</sup>—वि० दे० 'अकारण' । उ०—जिमि चह कुशल अकारन कोही ।—मानस, १।२६७ ।

अकारना<sup>१</sup>—क्रि० सं० दे० 'करना' । उ०—करि साधन इह साध, व्याधि नासत फल धारिय । गुरु उपदेसह पाइ, सकल आधीन अकारिय ।—पृ० रा०, ६।२६ ।

अकारात्—वि० [सं० अकारान्त] जिसके अंत में 'अ' अक्षर हो [को०] । अकारादि—वि० [सं०] 'अ' वर्ण से आरंभ होनेवाला [को०] ।

अकारी<sup>१</sup>—वि० [सं० अ + कारिन्] १. अनर्थ करनेवाला । अनर्थकारी । उ०—गीरं मुप्यं वपुः स्वाम गिरन सम नख्य अकारिय ।—पृ० रा०, २।२८७ । २. तीक्ष्ण (दि०) । उ०—आरंभ भति फौज अकारी दिल्लीपति प्रभो रहवारी ।—राज २०, पृ० ५६ । अकारपण्य<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कृपणा का अभाव । २. दीनता का अभाव [को०] ।

अकारपण्य<sup>२</sup>—वि० जो निम्नता या दीनता दिखाए विना प्राप्त हो [को०] ।

अकाय<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कार्य का अभाव । अकाज । हर्ज । हानि । २. बुरा कार्य । कुकर्म । दुष्कर्म ।

अकार्य<sup>२</sup>—वि० १. जिसका कोई परिणाम न हो । फलरहित । २. अकरणीय । न करने लायक ।

अकार्यचिन्ता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अकार्यचिन्ता] अनुचित कार्य करने का सोचविचार । अपराध करने की मनोवृत्ति [का०] ।

अकाल<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अकालिक] १. अनुपयुक्त समय । अनवसर । अनियमित समय । ठीक समय से पहले या पीछे का समय । उ०—तू रहि, ही हा सखि ! लखी, चढ़ि न भटा, बलि बाल । सवहिनु विनु ही ममि उदय, दीजतु अरधु अकाल ।—विहारी २०, दो० २६८ । २. दुष्काल । दुर्भिक्ष । महंगी । बहुत । जैसे—'भारतवर्ष में कई बार अकाल पड़ चुका है' ।—(शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

३. घाटा । अत्यधिक कमी । न्यूनता । जैसे—'यहाँ कपड़ों का अकाल नहीं है' ।—(शब्द०) । ४. अशुभ समय (ज्यो०) ।



अकाल<sup>२</sup>—वि० १ जो काल न हो। श्वेत। २ अनवसर का।  
असामयिक [को०]।

अकालकुसुम—[सं०] १ बिना समय या ऋतु में फूला हुआ फूल।  
उ०—भयदायक खल के प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम  
भवानी।—मानस, ३।१८।

विशेष—यह दुःख या उपद्रवसूचक समझा जाता है।  
२ असमय में किसी वस्तु की प्राप्ति या दिखाई पटना  
(लाभ०)। ३ वेसमय की चीज।

अकाल कुम्भाड—संज्ञा पुं० [सं० अकाल कुम्भाड] १ असमय या बेमौ-  
सम का कुम्हाड़ा। २ वह कुम्हाड़ा जो बलिदान के काम न  
आए। ३ बेकार वस्तु। ४ व्यर्थ या निरर्थक जन्म [को०]।

अकाल कुम्भाड—संज्ञा पुं० [सं० अकाल कुम्भाड] दे० 'अकाल कुम्भाड'  
[को०]।

अकालज—वि० [सं०] दे० 'अकालजात' [को०]।

अकालजलद—संज्ञा पुं० [सं०] असामयिक मेघ। असमय के बादल।  
उ०—सुखदेव चौधे ने अकालजलद की तरह उसके समय के  
दिन को मलिन कर दिया था।—तितली, पृ० १५३।

अकालजलदोदय—संज्ञा पुं० [सं०] १ असमय में बरसने का छाजना।  
२ कुहरा [को०]।

अकालजात—वि० [सं०] जो नियत समय पर उत्पन्न न हो [को०]।  
अकालज्ञ—वि० [सं०] काल या समय के ज्ञान से रहित। कालज्ञान-  
विहीन [को०]।

अकालपक्व—वि० [सं०] समय से पूर्व पका हुआ [को०]।

अकालपुरुष—संज्ञा पुं० [सं० अकाल + पुरुष] परमात्मा। ईश्वर  
(सिख)।

अकालभूत—संज्ञा पुं० [सं०] स्मृति के अनुसार १५ दासों में से एक।  
दास बनाने के लिये जिसकी रक्षा दुःख में की गई हो। अकाल  
में मिला हुआ दास।

अकालमूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुरुष जिसकी स्थापना बाल या समय  
में न हो सके। नित्य। अविनाशी।

अकालमृत्यु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेसमय की मृत्यु। ठीक समय से  
'हले की मृत्यु' या ठीकी अवस्था का मरना। अनायास मृत्यु।  
असामयिक मृत्यु। उ०—अकालमृत्यु तो मरे। अनेक नरक में  
परें।—रामच०, पृ० १६६।

अकालमेघोदय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अकालजलदोदय' [को०]।

अकालवृद्ध—वि० [सं०] समय से पूर्व वृद्ध होनेवाला [को०]।

अकालवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १, उचित या नियत समय का अभाव।  
२ बुरा समय [को०]।

अकालसह—वि० [सं०] १ जो देर या बिलंब न सह सके। अधीर।  
२ जो अधिक समय तक आक्रमण न सह सके [को०]।

अकालिक—वि० [सं०] असामयिक। बिना समय का। बेमौके का।  
अकाली—संज्ञा पुं० [सं० अकाल + ई (प्रत्य०)] नानकपंथी साधु  
जो सिर में चक्र के साथ काले रंग की पगड़ी बाँधे रहते हैं।

अकालोत्पन्न—वि० [सं०] जो समय से पूर्व उत्पन्न हुआ हो [को०]।

अकाल्य—वि० [सं०] असामयिक। असमय का [को०]।

अकाली—संज्ञा पुं० [सं० अर्क, प्रा० अर्क] आकाश। सदा।

अकाश<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'आकाश'। उ०—हरि कर तू गमने महि  
माही। मैं आकाश हूँ चलो तहाँही।—रामरामिका०, पृ० ८५६।

अकास—संज्ञा पुं० दे० 'आकाश'। उ०—रामचरन अवलवन विनु  
परमारथ की आस। चाहत वारिद बुद गहि तुलसी चदन  
आकास।—स० सप्तक, पृ० ४।

मुहा०—अकाश गहना = अनहोनी या ग्रमभव बात करना। उ०—  
बातनि गहो अकास, सुनिह न आवै माँग। बोना तो कहूँ न  
आवे ताते मोन गहिय।—सूर (राधा०), १२७३। अकास  
बाँधना = असमय काम करने की काशिश करना।

अकासकृत—संज्ञा पुं० [सं० आकाश + कृत] विजली (अनेका०)।

अकासदीया—संज्ञा पुं० [सं० आकाशदीपक] वह दीपक या लालटेन जो  
दाँस के ऊपर आकाश में लटकाया जाता है। आकाशदीप।

अकासनदी<sup>३</sup>—संज्ञा स्त्री० दे० 'आकाशनदी'। उ०—उछलै जल उच्च  
अकास चढ़ै जल जाग दिसा दिदिमान मढ़ै। जनु मिधु अकास-  
नदी अरि कै, वह भौंति मनावत पाँ परिकै।—रामच०,  
पृ० १०६।

अकासनीम—संज्ञा पुं० [सं० आकाशनिम्ब] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ  
बहुत सुंदर होती हैं। उ०—कुहरा भीना और महीन, भर भर  
पड़े अकासनीम।—हरी घास०, पृ० १।

अकासवानी<sup>३</sup>—संज्ञा स्त्री० दे० 'आकाशवाणी'। उ०—परसन  
जवाहि लाग महिपाला। मैं अकामवानी तेहि काला।  
—मानस, १।१७३।

अकासवेल—संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश + वेत्ति] अवरदेलि। अमर-  
वेल। अकासवीर।

अकासवादी<sup>३</sup>—संज्ञा स्त्री० दे० 'अकासवानी'। उ०—दस हथी  
सुविहान साहि गोरी मुख विघ्नो। वर अकासवादी ततार  
चवकोद सदियो।—पृ० रा०, २७।१२५।

अकासी—संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश] १. चील नामक पक्षी।

यौ०—धीरी अकासी या सफेद अकासी = एक प्रकार की चील जिसे  
क्षेमकरी भी कहते हैं। इसका सिर सफेद और शेष सारे अंग  
लाल होते हैं इसका दर्शन शुभ माना गया है। उ०—बाँए  
अकासी धीरी आई।—जायसी (शब्द०)।  
२ ताड़ के वृक्ष या फलों का रस। ताड़ी।

अकाह<sup>३</sup>—वि० दे० 'अकाश'। उ०—कवहुँ यो वियोग दिया को  
सहै जेउ जोगिन हूँ को अकाह सी है।—ठाकुर०, पृ० १०।

अकिंचन<sup>१</sup>—वि० [सं० अकिञ्चन] १ जिसके पास कुछ न हो। निर्धन।  
धनहीन। दीन। कगाल। दरिद्र। गरीब। मुहंताज। उ०—देख  
अकिंचन जगत लूटता तेरी छवि भोली भाली।—कोमायनी, पृ०  
४०। २ आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह न करनेवाला।  
परिग्रहत्यागी। ३. जिसे भोगने के लिये कुछ कर्म न रह  
गए हों। कर्मशून्य।

अकिंचन<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ निर्धन। मनुष्य। गरीब। आदमी। दरिद्र  
मनुष्य। २. जैन मत के अनुसार परिग्रह का त्याग या ममता  
से निवृत्ति जो दस प्रकार के साधुधर्मों में से एक है। ३. वह  
वस्तु जिसका कुछ मूल्य न हो (को०)।

अकिचनता—सच्चा स्त्री० [सं अकिञ्चनता] १ दरिद्रता। गरीबी। निर्धनता। उ०—हरिप्रोष कंसे अकिचनता तृणावली-में लसति हरीतिमा विभूतिवती महती।—रस क० पृ० ३३१। २ परिग्रह का त्याग जा योग का एक धर्म है।

अकिचनत्व—सच्चा पुं० [सं अकिञ्चनत्व] १ निर्धनता। गरीबी २ अपरिग्रह (जैन) [को०]।

अकिचिज्ज—वि० [सं अकिञ्चिज्ज] जा कुछ न जानता हो। ज्ञान शून्य [को०]।

अकिचितकर—वि० [सं अकिञ्चितकर] १ जिसका किया कुछ न हो। असमर्थ। २ तुच्छ। अगत्त। उ०—जो अकिचितकर था वह भी अपरूप हो गया।—टैगोर, पृ० २४।

अकि०—अव्य [हिं कि] या। अथवा। कि। उ०—(क) पानक शब्द विनाशकरी अकि राघव की उधरी तरवार है।—श्री भक्त०, पृ० ५७६। (ख) आगि जरी अकि पानी परी अब कैसी करी हिय का विधि धीरों।—घनानन्द, पृ० १२७।

अकितव—वि० [सं] १ जा जुगारी न हो (को०)। २ निश्चल। सरल [को०]।

अकि०—सच्चा स्त्री० [४० अकीति] अपयश। अकीति। उ०—क्रम बढ़त बढ़ते अकि०। अकि० बढ़हि लक दिजे।—पृ० २०, ६१। १५६२।

अकिन०—सच्चा दे० 'यकीन'। उ०—आरति बुद अकिन जब वारा। सुरति विसुरति गयो सब भारा।—गुलाल०, पृ० १०६।

अकिल०—सच्चा स्त्री० दे० 'अकल'। उ०—(क) अकिल आरसी लं के सजनी पिया को रूप निहार हा।—कवीर श०, पृ० १३५। (ख) 'मियां साहब ने उत्तर दिया, भाई बात तो सच है, खुदा ने हमें भी अकिल दी है'।—मार्तेंदु श०, भा० २, पृ० ६७७।

यौ०—अकिल अजीरन = बुद्धि का अजीर्ण। बुद्धिहीनता। उ०—चूरन खाते लाला लोग, जिनको अकिल अजारन रोग।—मार्तेंदु श०, भा० २, पृ० ६६३।

अकिलदाढ—सच्चा स्त्री० [हिं अकिल + दाढ] वह दाँत जो मनुष्यों के वयस्क होने पर ३२ दाँतों के अतिरिक्त निकलता है।

विशेष—कहते हैं इस दाँत के निकलने पर मनुष्य का लक्ष्य बन जाता रहता है और वह ममभक्षर हो जाता है।

अकिलवहार—सच्चा पुं० [अ० अकीलकुल वह] वैजयंती का पोधा या दाना

अकिलवान०—वि० [हिं अकिल + वान] बुद्धिमान्। अक्लवाला। अक्लमद। उ०—सखा दरद को री हरी, हरी को दरद खास। मदा अकिलवानं गनं गनं वाल किअ दास।—झिजारी श्र०, भा० २, पृ० २०७।

अकिला०—वि० [स्त्री अकिली] दे० 'अकेला'। उ०—(को०) अकिले घूमत तर अस अघे।—नद० श्र० पृ० १४०। (ख) अकिली वन घन दसि न डेराई।—नद० श्र० पृ० १४०।

अकिल्वप—वि० [सं] १ पापशून्य। निष्पाप। पवित्र। २ निर्मल। शुद्ध।

अकिल्वप—सच्चा पुं० पापशून्य मनुष्य। शुद्ध प्राणी।

अकीक—सच्चा पुं० [अ० अकीक] एक प्रकार का प्रायः लाल बहुमूल्य पत्थर या नगीना।

विशेष—इसपर मुहर भी खोदी जाती है। यह ववई, बाँदा और खभात से आता है। इसकी कई विस्में यमन और वगदाद से भी प्राणी है।

अकीदत—सच्चा स्त्री० [अ० अकीदत] श्रद्धा। आस्था। उ०—'मौनाना ने कृष्ण से अपनी अकीदत का झुझार किया था।'—गादान, पृ० २५।

अकीदतमद—वि० [अ० अकीदत + फा० मद] श्रद्धावान्। श्रद्धायुक्त। श्रद्धालु [को०]।

अकीदा—सच्चा पुं० [अ० अकीदह] श्रद्धा। विश्वास। उ०—दर्द दिवाने बावरे अलमस फकीरा। एक अक दा लै रहे ऐसे मन धीरा।—मलूक० पृ० ७।

अकीधा०—वि० [सं अकृत्] विना किया हुआ। न किया हुआ। उ०—जिम सिणागार अकीध मोहति प्र अगमि जाणिये प्रिया।—वैल० दू० २२८।

अकीन०—सच्चा पुं० [अ० यकीन] विश्वास। श्रद्धा। उ०—अकीन इमान जोहर जाहीर दोजक सवाल ना डारिये रे।—सं दरिया, पृ० ६८।

अकीरति०—सच्चा स्त्री० दे० 'अकीति'।

अकीर्ति—सच्चा स्त्री० [सं] अयश। अपयश। बदनामी।

अकीर्तिकर—वि० [सं] अकीर्ति करनेवाला। अपयश देनेवाला। बदनाम करनेवाला। अपयश का भागी बनानेवाला। जिससे बदनामी हो।

अकीर्ति—सच्चा स्त्री० [सं] दे० 'अकीर्ति'।

अकुठ—वि० [सं अकुष्ठ] १ जा कुठिन या गुठलान हो। तेज। चोखा। २ तीव्र। तीक्ष्ण। खरा। उ०—गएउ गरुड जहें बसइ भुसुडी। मति अकुठ हरि भंगति अखडी।—तुलसी (शब्द०)। ३. उत्तम। श्रेष्ठ। उ०—जीवत ही विप्रलोक जीवत हो शिवलाक जीवत वंकुठ लोक जो अकुठ गायो है।—सुंदर० श्र०, भा० २, पृ० ६२३। ४. कार्यक्षम। शक्तिशाली (को०)। ५. नवीन। शाश्वत। नित्य (को०)।

अकुठधिष्य—सच्चा पुं० [सं अकुष्ठधिष्य] नित्य निवास। स्वर्ग [को०]।

अकुठि—वि० [सं अकुष्ठ] दे० 'अकुठ'।

अकुठित—वि० [सं अकुष्ठित] १ जो कुठित न हो। तेज। उ०—परम अकुठित विरोधिनी सकठता की, कुलिस सी कठिन कठोरता में ढाली है।—रसक०, पृ० ३१३। २. जिसे टाला न जा सके। अटल। उ०—हैं दानव दल दहन खल खडन ए। अरि-कुल कठ-कुठार अकुठित अत घरे।—पारिजात, पृ० ७।

अकुचना०—क्रि० प्र० [सं अकुञ्चन] आकुचित होना। सकुचित होना। उ०—काहे को पीय सकुचित हो। अब ऐस जिनि काम करो कहें-जो अति ही जिय अकुचत हो।—सूर०, १०। २७३२।

अकुटिल—वि० [सं] १. जो कुटिल या टेढ़ा न हो। सीधा। सरल। २. साफ दिल का। निष्कपट। निश्चल। भोला भाला। सीधा साधा।

अकुटिलता—सच्चा स्त्री० [सं] १ कुटिलता का अभाव। सिधई। २. साक्षात्पन। निष्कपटता।

अकुठाना(५)---[सं कुठन] शिथिल होना। सुस्त होना। उ०---का  
सी कहो कहे को माने अग अग अकुठाई।--घरनी० वा०,  
पृ० ५।

अकुठाना(५)---क्रि० प्र० दे० 'उकठाना'। उ०---पलटू कौनो कछु कहें  
तनिको ना अकुठाहि।--पलटू०, भा० १, पृ० १२।

अकुतोभय--वि० [सं] जिसे किसी से अथवा कही भय न हो।  
निर्भय। निडर [को०]।

अकुत्सित--वि० [सं] जो निन्दित वा निम्न न हो [को०]।

अकुप्य--सद्वा पु० [सं] १ जा धातु निम्न श्रेणी की न हो, सोना या  
चाँदी। २ कोई भी सघारण धातु, ताँवा, पीतल आदि  
[को०]।

अकुप्यक--सद्वा पु० [सं] दे० 'अकुप्य' [का०]।

अकुमार<sup>१</sup>--वि० [सं] जो कुमार या बालक न हो। वयस्क।  
प्राप्तवय [को०]।

अकुमार<sup>२</sup>--सद्वा पु० इद्र [को०]।

अकुल<sup>१</sup>--वि० [सं] १ जिसको कुल में कोई न हो। कुलरहित।  
परिवारविहीन। उ०---निर्गुन निलज कुवेष कालो। अकुल  
अगेह दिगवह व्यानो।--मानस, १।७।६ २ बुरे कुल का।  
नीच कुल का। अकुलीन। उ०---अमुल कुलीन होत, पाँवर  
प्रवीन होत, दिन होत चक्करवै चलत छत्रछाया के।--देव,  
(शब्द०)।

अकुल<sup>२</sup>--सद्वा पु० १ बरा कुल। नीच कुल। बुरा खानदान। २.  
परम तत्व। शिव। उ०---अकुल शरनि पूरी मति होय।--  
प्राण०, पृ० १८१।

अकुलता--सद्वा स्त्री [सं] कुल की निम्नता [को०]।

अकुला--सद्वा स्त्री [सं] गिरिजा। पावती [को०]।

अकुलात(५)---वि० [सं] अकुल अकुलता से युक्त। व्याकुल। उ०---  
गजिज भग्न प्रथिराज चित्त करयो अकुलात।--पृ० २।०,  
२७।१२७।

अकुलाना--क्रि० प्र० [सं] अकुलन १. उठना। जल्दी करना।  
उठावला होना। उ०---(क) 'चलते हैं, क्यों अकुलाते हो'  
(शब्द०), (ख) पुनि पुनि मुनि उवसहि अकुलाहीं।--मानस,  
१।१३५। २ घबड़ाना। व्याकुल होना। द्यभ या वेचन  
होना। दुखी होना। उ०---(क) अतिसं देखि दम कै ग्लानी।  
परमसमीत घरा अकुलानी।--मानस, १।१८३। (ख) इन  
दुखिया अखियानुकों सुख सिरजोई नाहि। देखें वन न देखत  
अनदेखे अकुलाहि।--विहारी २०, दो ६६३। ३. विह्वल  
होना। मग्न होना। लीन होना। 'आवेग में आना। उ०---  
बोलि गुरु भसुर समाज सो मिलन चले, जानि बड़े भाग  
अनुराग अकुलाने हैं।--तुलसी ग्र०, पृ०, २६६।

अकुलीनी(५)---वि० स्त्री [सं] अकुलीना जो कुलवती न हो। कुलटा।  
व्यभिचारिणी।

अकुलीन--वि० [सं] १ बुरे कुल का। नीच कुल का। तुच्छ वश में  
उत्पन्न। कमीना। क्षुद्र। उ०---कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकु-  
लीन कहौ कोऊ कहौ रकनि कलकिनी कुनारो ही।--प्रजमा-  
धुरी०, पृ० ३१४। २. घरती से असबब। अपायिक (को०)।

अकुशल<sup>१</sup>--सद्वा पु० [सं] १ अमग्न। अशुभ। बुराई। ग्रहित।  
२ बुरा शब्द। अपशब्द (को०)।

अकुशल<sup>२</sup>--वि० १. जा दक्ष न हो। अनिपुण। अनाड़ी। २. भाग्य-  
हीन। अभाग्य (को०)। ३. अप्रिय (को०)।

अकुशलधर्म--सद्वा पु० [सं] बौद्ध धर्मानुसार प्राणिया का पाप  
करन का सभाव।

अकुसेल(५)---वि० दे० 'अकुशल-१' उ०---क व या भांति, चित्तरनि  
लों लिखिये मैं अकुशल।--रत्नाकर, भा० १, पृ० ३१।

अकुसोद--वि० [मं] सूद न लेनेवाला। लाभ न लेनेवाला [को०]।

अकुसुम--वि० [सं] पुष्पहीन। बिना फूल का [को०]।

अकुह--सद्वा पु० [सं] वह व्यक्ति जो धोखा नहीं देता। ईमानदार  
व्यक्ति [को०]।

अकुहक--वि० [सं] दे० 'अकुह' [को०]।

अकुज--वि० [सं] चूष। कृजन रहित। शात [को०]।

अकूट--वि० [सं] स्त्री अकूटा १ जो प्राकृतिक हो। अद्विज।  
दिव्य। अलौकिक। उ०---उतर को देख देव मणि गए।  
सद अकूट में डप महुँ भएऊ।--जायसी ग्र० (गुप्त), पृ०  
२५०। २ जो व्यर्थ न हो अमोघ (शस्त्र) (को०)। ३ जो  
खोटा या नकली न हो (सिधका) (का०)।

अकूत--वि० [सं] अ + हिं० फूटना जो कूता न जा सके। जिसकी  
गिनती या परिमाण न बताया जा सके। वेप्रमाण। अपरि-  
मित। अगणित। उ०---धन्य भूमि, अजवासी धनि धनि,  
आनंद करत अकूत।--सूर०, १०।३६।

अकूपार<sup>१</sup>--सद्वा पु० [सं] १ समृद्ध। २ वह वृक्ष जो पृथ्वी के  
नीचे माना जाता है। बड़ा वृक्ष। ३. पत्थर या चट्टान।  
४ सूर्य (को०)।

अकूपार<sup>२</sup>--वि० १. अच्छे परिणाम या फल से युक्त। शुभ परिणाम  
वाला (को०)। २. असीम। अपरिमित (को०)।

अकूफ--(५) सद्वा पुं० [अ०] वृक्ष का ज्ञान। वृद्धि। समर्थ। उ०---तिल  
मे दास केहु नहि जना। कोइ अकूफ ही सो पहचान।--  
सत० दगिया, पृ० ४१।

अकूर(५)---सद्वा पु० दे० 'अकुर'। उ०---पुनि यह अकूर नाही ऊ  
प्रेम हिलूर वरपाशी।--सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० २४१।

अकूर्च<sup>१</sup>--वि० [सं] १ कपट या धोखा न करनेवाला। अरपटी।  
२ गजा। खलवाट। ३. जिसे दाढ़ी न हो [को०]।

अकूर्च<sup>२</sup>--सद्वा पु० वृद्ध [को०]।

अकूल--वि० [सं] अ + कूल १ जिसका किनारा या ओर छोर न  
हो। उ०---आकुल अकूल बन्ने आती, इव तक तो है वह  
आती।--लहर, पृ० १३। २ अनंत। असीम। उ०---स धी मैं  
हो गया अकूल का, भूल गया निज सीमा।--अनामिका,  
पृ० ६६।

अकूवार--सद्वा पु०, वि० [सं] दे० 'अकूपार' [को०]।

अकूहल(५)---वि० [देश०] बहुत अधिक। असह्य। उ०---खेलत  
हैं सत करत कोतूहल। जुरे लोग जहें तहाँ अकूहल --  
(शब्द)।

अकृच्छी—सखा पुं० [म०] १ क्लेश का अभाव । २ आनानी । सुगमता । अमकोच ।

अकृच्छी—वि० १ क्लेशशून्य । जिसे किसी प्रकार का सकोच या कष्ट न हो । २ आसान । सुगम ।

अकृच्छी—वि० [म०] कठिनाई और भय या घबराहट से मुक्त । क्लेश-विहीन । को० ।

अकृत<sup>१</sup>—वि० [स०] १ बिना किया हुआ । असंपादित । २ अन्यथा किया हुआ । अडबड़ किया हुआ । बिगाड़ा हुआ । ३ जो किसी का बनाया न हो । नित्य । स्वयम् । ४ प्राकृतिक । ५ जिसकी कुछ करनी या करतूत न हो । निकम्मा । बेकाम । कर्महीन । बरा । मद । उ०—नाहीं मेरे और कोउ बलि, चरन बसल विन्ठाउँ । हौं अर्वाच, अकृत, अपराधी सम्ब होत लजाउँ ।—सूर (शब्द०) । ६ कच्चा । अपक्व ( भोजन ) ( को० ) । ७ अविकसित । जो विकसित न हो ( को० ) ।

अकृत<sup>२</sup>—सखा पुं० १ कारण । २ मोक्ष । ३ स्वभाव । प्रकृति । ४ जो पूर्ण न किया गया हो । अधूरा या अर्ण कार्य ( को० ) ।

अकृतकार—क्रि० वि० ऐसे ढंग से जो पहले न किया गया हो । को० ।

अकृतकार्य—वि० [स० अ + कृतकार्य = सफल] असफल । विफल । उ०—चावी मुझे कहीं मिली नहीं । अकृतकार्य होकर मैं बेचैन हो आई ।—सुखदा, पृ० १६६ ।

अकृतकाल—वि० [स०] आधि या गिरवी के दो भेदों में से एक । जिसके लिये काल नियत न हो । जिसके लिये कोई समय या मिथाद न बाँधी गई हो । बेमिथाद ।

विशेष—धर्मशास्त्र में आधि या गिरवी के दो भेद किए गए गए हैं जिनमें एक अकृतकाल है अर्थात् जिसका रखनेवाला वस्तु के छुड़ान के लिये कोई अवधि नहीं बाँधता । गैरमिथादी ( रेहन ) ।

अकृतचिकीर्षा ( सधि )—सखा स्त्री [स०] साम आदि उपायो से नई सधि करना तथा उसमें छोटे, बड़े और समान राजाओं के अधिकारों का उचित ध्यान रखना ।

अकृतज्ञ—वि० [म०] १ जो कृतज्ञ न हो । किए हुए उपकारों को जो न माने । कृतघ्न । नाशुकरा । २ अधम । नीच । क्रि० प्र०—होना ।

अकृतज्ञता—सखा स्त्री [स०] उपकार न मानने का भाव । कृतघ्न-ता । नाशुकगपन ।

क्रि० प्र०—करना—होना ।

अकृतधी—वि० [म०] अपरिपक्व बुद्धिवाला । को० ।

अकृतबुद्धि—वि० [स०] अनजान । अज्ञ । अपरिपक्व बुद्धि । उ०—असहाय ( महायको—मत्तियों—से रहित ), मूढ़, लुब्ध, अकृतबुद्धि और विषयासक्त ( राजा ) उम ( दंड ) का न्याय मे संचालन नहीं कर सकता ।—भा० ६० सू०, पृ० ६६५ ।

अकृतबुद्धित्व—सखा पुं० [म०] अज्ञान । अज्ञता । को० ।

अकृतव्रण—वि० [स०] जिसे घाव या व्रण न हो । को० ।

अकृतशल्क—वि० [स०] १ जिसने महसूल या चुगी न दी हो । २. जिसपर महसूल न लगा हो ( माल ) ।

अकृता—संज्ञा स्त्री [स०] वह लड़की जो पुत्र के अधिकारवाली मान ली गई हो ।

अकृतात्मा—वि० [म०] अपरिपक्व मतिवाला । अज्ञ । अमयत । उ०—‘दंड का बड़ा तेज है, अकृतात्मा उसे धारण नहीं कर पाते’ ।—भा० ६० सू०, पृ० ६६५ । २ ब्रह्म को न जानने वाला । जो ब्रह्मज्ञ न हो ( को० ) ।

अकृताभ्यागम—संज्ञा पुं० [स०] बिना किए हुए कर्मफल की प्राप्ति ।

विशेष—न्याय या तर्कशास्त्र में यह दोष माना गया है ।

अकृतार्थ—वि० [म०] १. जिसका वायं न हुआ हो । जिसका कार्य पूरा न हुआ हो । अकृतकार्य । २ जिसको कुछ फल न मिल हो । फल से वंचित । फलरहित । ३ काय से अवक्ष । अपटु । अकुशल ।

अकृतार्थता—संज्ञा स्त्री [म०] अमफलता । विफलता । उ०—‘अमृत-कंठा कलालक्ष्मी का अपमान करती है और कलालक्ष्मी उसका बदला अकृतार्थता देकर लेती है ।’—टंगोर० पृ० ४१ ।

अकृतास्त्र—वि० [स०] जो अस्त्र का प्रयोग करने में कुशल न हो । को० ।

अकृतित्व—संज्ञा पुं० [स०] अर्मण्यता । को० ।

अकृती<sup>१</sup>—वि० [स० अकृतिन्] [ स्त्री अकृतिनी ] काम न करने योग्य । निकम्मा । उ०—कहाँ जायँ, क्या करेँ, अम मे अकृती श्व ये ?—साकेत, पृ० ४०५ ।

अकृती<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० वह प्रादमी जो किसी काम लायक न हो । निकम्मा मनप्य ।

अकृतैनस्—वि० [म०] निगाप । निरपराध । को० ।

अकृतोद्वाह—वि० [स०] अविवाहित । को० ।

अकृत—वि० [स०] जो गटा न हो । जिसमें कोई काट छाँट न की गई हो । को० ।

अकृत्य<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [स०] बुरा काम । अपराध ।

अकृत्य<sup>२</sup>—वि० जो करने योग्य न हो । अकरणीय । को० ।

अकृत्यकारी—वि० [म०] अकृत्य करनेवाला । दुष्कर्मी । को० ।

अकृतिम—वि० [स०] १ अपने आप उत्पन्न । प्रकृतिसिद्ध । बेवना-वटी । प्राकृतिक । नैसर्गिक । स्वाभाविक । २. असली । सच्चा । यथार्थ । वास्तविक । ३. हार्दिक । आंतरिक । जैसे—‘हमारा उसके ऊपर अकृतिम प्रेम है ।’ ( शब्द० ) ।

अकृत्स्न—वि० [स०] जो पूरा या समग्र न हो । अपूर्ण । को० ।

अकृप—वि० [स०] क्रवारहिन । निर्दय । निष्ठुर । को० ।

अकृपण—वि० [म०] जो कृपण या कजस न हो । उदार । को० ।

अकृपणता—संज्ञा स्त्री [स०] कृपणता का अभाव । उदारता । को० ।

अकृपा—संज्ञा स्त्री [म०] कृपा का अभाव । कोप । क्रोध । नाराजी । उ०—‘पश्चिमोत्तर प्रदेश पर अधिकतर परमेश्वर की अकृपा प्रतीत होती है ।’—प्रेमघन, भा० २, पृ० ५१ ।

अकृपालु—संज्ञा पुं० [स० अ + कृपालु] जो कृपानु न हो । कृपाहित । निर्दय । उ०—दीनबन्धु दूसरे वहाँ पावों ? प्रभु अकृपालु,

कृपाल, प्रलापक जहँ जहँ चितहि जोलावो ।—तुलसी ग्र०,  
पृ० ५४७ ।

अकृश—वि० [स०] कृशारहित । स्वस्थ । भराभूरा । उ०—  
जवन मे पुलकित प्रणय सदृश, यौवन की पहली काति अकृश ।  
—भरना, पृ० १० ।

अकृशलक्ष्मी<sup>१</sup>—वि० [स०] प्रभूत लक्ष्मीवाल । समृद्ध । संपन्न ।  
वैभवशाली [को०] ।

अकृशलक्ष्मी<sup>२</sup>—सद्वा स्त्री० अत्यधिक समृद्धि या ऐश्वर्य [को०] ।

अकृषीवल—वि० [स०] जो खेतहरन हो । गैर किसान । कृषकेतर  
[का०] ।

अकृष्ट<sup>१</sup>—वि० [स०] १ जो जुता न हो । जो खींचा न गया हो । जो  
जोता न गया हो [को०] ।

अकृष्ट<sup>२</sup>—सद्वा पुं० वह भूमि जा जोती न जाती हो । परती भूमि  
[को०] ।

अकृष्टपच्य—वि० [स०] [स्त्री० अकृष्टपच्य] विना जोती हुई भूमि मे  
पैदा होने और एक जानेवाला । जा विना जते पैदा हा ।  
उ०—‘सल्ले दो प्रकार की थी, वृष्टपच्य जो खेत से उत्पन्न  
हो, अकृष्टपच्य जैसे नीवार आदि जगली धान्य ।—अणिम, पृ० २०५ ।

अकृष्टपच्य—वि० [स०] १ ( विशेषतः भूमि ) जा विना जते हुए  
धान्य, फल आदि पैदा करे । २ अत्यधिक उपजवाली, बहुत  
उपजाऊ [को०] ।

अकृष्टरोही—वि० [स०] अकृष्ट या परती, भूमि मे खेत उगने या  
अकृष्ट होनेवाला [को०] ।

अकृष्ण<sup>१</sup>—वि० [स०] १ जा कृष्ण या काला न हो । श्वेत । सफेद  
२ शुद्ध । निर्मल [को०] ।

अकृष्ण<sup>२</sup>—सद्वा पुं० निष्कलक चाँद [को०] ।

अकृष्णकर्मा—वि० [स०] काला ( पाप ) कर्म न करनेवाला ।  
निर्दोष । निरपराध । निष्पाप । पुण्यात्मा [को०] ।

अक्रेतन—वि० [स०] दिना घरवार का । खान बर्दाश । बैठकना ।

अक्रेतु—वि० [स०] १ जिसका कोई चिह्न न हो । अकारण्य । २.  
अपरिचय । जिसकी पहचान न हो सके [को०] ।

अकेल<sup>१</sup>—वि० दे० ‘अकेला’ । उ०—‘रिपु तेजसी अकेल अपि लघु  
करि गनिम न ताहु ।—मानस, १।१७० ।

अकेला<sup>१</sup>—वि० [स० एकल, प्रा० अकेल्लय, एकल्लय] [स्त्री० अकेली]  
जिसके साथ कोई नहीं बिना साथी का । दुकेले का उलटा ।  
एकाकी । तनहा, जैसे—‘वह अकेला आदमी इतनी चीजें  
कैसे ले जायेगा’ (शब्द०) । उ०—‘मैं अकेला, देखता हूँ आ रही  
मेरे दिवस की साधवें वेला ।—अणिमा, पृ० २० ।

मुहा०—अकेला चना फाड़ नहीं फोड़ता = एकाकी या अकेले व्यक्ति  
द्वारा बड़ा काम न होना । अकेला हँसता हँसा न रोता =  
एकाकी या तनहा किसी प्रकार बात न बन पड़ना ।

२ अद्वितीय । यवता । निराला, जैसे—‘वह इस दुनर मे  
अकेला है ।’—( शब्द० ) ।

यौ०—अकेला दम = एक ही प्रणी । बिलकुल एकाकी । जैसे—  
‘हमारा तो अकेला दम है, जब तक जते हैं खचें कते हैं ।’—  
(शब्द०) । अकेला दुकेला = (१) एक या दो । इक्का दुक्का ।  
(२) एकाकी ।

अकेला<sup>२</sup>—सद्वा पुं० निराला । एकान । शून्य स्थान । निर्जन स्थान;  
जैसे—‘वह तुम्हें अकेले मे पड़ेगा तो जरूर मारेगा’ (शब्द०) ।

अकेली—वि० स्त्री० १ दे० ‘अकेला-१’ । उ०—अकेली भूलि परी  
वन माहि ।—सूर०, १०।११०४ । २ केवल । सिर्फ । मात्र ।  
उ०—इतिन सहित चित्त हलै गइ रही अकेली हमरी ।—  
सूर०, १०।२०६६ ।

मुहा०—अकेली लकड़ी भी नहीं जलती = अकेले कोई भी काम नहीं  
हो सकता ।

यौ०—अकेली कहानी = एक पक्ष की आर मे किसी ऐसे समय बही  
गई वान जब उसको काटनेवाला दूसरे पक्ष का कोई न हो ।  
एकतरफा बात । एकपक्षीय बात, जैसे—‘अकेली कहानी  
गूढ से माँठी’ (शब्द०) । अकेली दुकेली = दे० ‘अकेला दुकेला’,  
जैसे—‘कोई अकेली दुकेली मवारी मिले तो बैठ लेना’ (शब्द०)  
अकेली जान = दे० ‘अकेला दम’ ।

अकेले—क्रि० वि० [हि० अकेला] १ निमी साथी के बिना ।  
एकाकी । आप ही आप । तनहा । उ०—अदेखे अकेले बिते  
दिन हूँ मैं, चाह गई चित सो कधि मौजू ।—आकुर० पं० ७ ।  
२ मात्र । सिर्फ । केवल, जैसे—‘अकेले चिटठा लिखने मे काम  
न चलेगा’ (शब्द०) ।

यौ०—अकेले अकेले = अलग अलग । उ०—दिना समाजबद्ध हुए  
देण की दशा सुधारने वा इयत्त अकेले अकेले द्य होगा’ —  
प्रेमघन० भा० २, पं० २७१ । अकेले दम = दे० ‘अकेला दम’,  
जैसे—‘हम तो अकेले दम हैं, चाहे जहाँ रहे’ (शब्द०) । अकेले  
दुकेले = दे० ‘अकेला दुकेला’ । उ०—‘कितु जहाँ अकेले दुकेले  
या थोड़े आदमी क ई नया घघा अखियार करते’ —  
भा० इ० रु०, पृ० १०२१ ।

अकेश—वि० [स०] १ दिना केशवा । केशरहित । २ अल्पकेश ।  
थोड़े केशवाला । ३ बुरे या अमुदर वाला वाला [को०] ।

अकेहरा<sup>१</sup>—वि० दे० ‘एकहरा’ ।

अकैतव<sup>१</sup>—सद्वा पुं० [स०] कपट वा अभाव । निष्कपटता । सिधाई ।

अकैतव<sup>२</sup>—वि० कपटारहा । सीधा । छलहीन [को०] ।

अकैया<sup>१</sup>—सद्वा पुं० [स०] अक्ष = प्रा० अख, अक्क, हि० अक् + ऐया  
(प्रत्य०) ] वस्तु लाने के लिये पैला या टोकरा । खुरजी ।  
गान । कजावा ।

अकोट<sup>१</sup>—वि० [स० कोटि] कर डो । अमध्य । उ०—वाजे तबल  
अकोट जुभाऊ । चढा कोप सब राजा राऊ ।—जायसी  
(शब्द०) ।

अकोट<sup>२</sup>—सद्वा पुं० [स०] पुर्णफल का वक्ष या सुपारी [को०] ।

अकोटई<sup>१</sup>—सद्वा स्त्री० [स०] अकोट + ई (हि० प्रत्य०) ] वह  
भूमि जो सींचने से बहुत जल्दी भर जाती है । वह भूमि जिसमे  
पानी ठहरा रहता है ।

अकोतरसी<sup>१</sup>—वि० [स०] एकोतरशत) नी के ऊपर । एक सी  
एक । उ०—खंडरा खांड जो खड़े खड़े । बरी अकोतर सी कह  
हड़े ।—जायसी (शब्द०) ।

अकोतरसी<sup>२</sup>—सद्वा पुं० एक सी एक की सदया—१०१ ।

अकोप—सद्वा पुं० [स०] १ कोप का अभाव । प्रसन्नता । खशी ।

२ राजा दशरथ के आठ मन्त्रियों मे से एक ।

अकोपन—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० अकोपना] क्रोध से रहित ।  
अक्रोधी [को०] ।

अकोप्यापण्यात्मा—संज्ञा स्त्री० [म०] सिक्के का चलन । सिक्के के चलने में किसी प्रकार की रुकावट न होना ।

अकोविद(पु०)—वि० दे० 'अकोविद' । उ०—अज्ञ अकोविद अध अभागी ।  
काई विषय मुकुर मन लागी ।—मानस, १।१५५ ।

अकोर(पु०)—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड, प्रा० क्रोड > हि० अकोर अथवा  
सं० अङ्कक्रोड, प्रा० अङ्कक्रोड, अक्कोर > हि० अकोर, अकोर]  
१ आलिंगन । अङ्कवार । उ०—पान करत कहूँ तपित न मानत  
पलकनि देत अकोर ।—सूर०, १० । १७६१ । २ भेंट ।  
नजर । उपहार । उ०—माया प्रान अकोर देकर सतगुरु पूरा ।  
—कवीर श०, भा० ३, पृ० ३७ । ३ स्थित । घूस ।  
उ०—फूले फिरत दिखावत औरन निडर भये दे हँसनि अकोर ।  
—सूर० (राधा०), २१३१ ।

अकोरना(पु०)—क्रि० म० [हि० अकोर से नाम०] आलिंगन करना ।  
उ०—मौन भलो कहि कौन सकै धन प्रानद जान सु नाक  
मकोर । रीझ विलोडण डारति है हिय, मोहति दोहति थारी  
अकोर ।—घनानंद, पृ० ५७ ।

अकोरी(पु०)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अकवारी' । उ०—यहि ते जो नेक लवु-  
धियाँ री । गहत सोई जो ममात अकोरी ।—सूर० (राधा०),  
३३४५ ।

अकोल(पु०)—संज्ञा पुं० [हि० अकोर] भेंट । नजर । उपहार । उ०—  
अछै रग मे रगेया दीन्हो प्रान अकोल ।—सतवाणी०, भा० १,  
पृ० १४० ।

अकोला<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोल] अकोल का पेड़ ।

अकोला<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, प्रा० अक्षर, अक्षर > हि० अकोर अथवा  
सं० कोटि प्रा० कोर > हि० अकोर, अकोला] छत्र के सिरे पर  
की पत्ती । अंगारी । अकोला । अगला । गेंडा ।

अकोविद—वि० [सं०] जा जानकार न हो । मूर्ख । अज्ञानी ।  
अनाडी ।

अकोसना(पु०)—क्रि० सं० [सं० आक्रोशन, प्रा० अवकंस] बुरा  
भना कहना । गानियाँ देना । कोसना ।

अकोआ<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, प्रा० अवक + ओआ (वा)  
(प्रत्य०)] १ मदार । आक । २ ललरी । घटी । कौआ ।

अकोटा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, प्रा० अवख, अवक, अक्ष = घुरा +  
अटन = घूमेना] डहा जिस पर गड़ री घूमती है । घुरा ।

अकोटिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुटिलता का अभाव । निष्कपटता ।  
सिधार्थ । सरलता ।

अकोटा<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [हि० उक्वत] दे० 'उक्वत' ।

अकोवा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [हि० अकोवा] दे० 'अकोआ' ।

अकोशल—संज्ञा पुं० [सं०] कुशलता या दक्षता का अभाव । अद-  
क्षता [को०] ।

अक्क<sup>१</sup>(पु०)—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष प्रा० अक्ष] १. सूर्य । रवि । उ०—  
गतिधीर धीर वह चली सेन, रजरजित अवर अक्ष ऐन ।—

मुजान०, पृ० १८ । २. आक । मदार । उ०—दहिसी गात  
कुवारियाँ, थल जाली बलि अक्ष ।—ढोला०, दू० २८६ ।

अक्क<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [म०] घर का कोना [को०] ।

अक्क<sup>३</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्का (माँ) का संबोधन रूप, जैसे—  
'हे अक्क ।'

अक्का<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता । माँ ।

अक्का<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० [देश०] वहन [को०] ।

अक्कास—संज्ञा पुं० [अ०] चित्रकार । फोटोग्राफर [को०] ।

अक्कासी<sup>१</sup>—वि० [अ०] चित्रकारी । चित्र उतारना [को०] ।

अक्कासी<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० [हि० अक्कास] बह डाल जो नीचे झुकी हुई  
हो । उ०—अक्कामी आती हुई देखकर, रामलाल बोले एक  
डंडे से टेककर ।—कुंज०, पृ० ५५ ।

अक्कित(पु०)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्कीति] अक्कीति । अपयश । उ०—  
अक्कित राह पच्छे फिरग । चक्र तेग सद्धिय सुवुधि ।—  
पृ० रा०, २५। ३३५ ।

अक्किल<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [अ० अक्कल, हि० अक्किल] दे० 'अक्कल' ।  
उ०—मेरी विटिया के कुछ अक्किल नहीं है । बड़ी सीधी है ।  
—दहकते०, पृ० ७६ ।

अक्के दुक्के<sup>१</sup>—क्रि० वि० दे० 'इक्के दुक्के' ।

अक्ख(पु०)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्ष; प्रा० अवख] आँख । नेत्र । उ०—  
जो कोई मेरे बच्चे की तकके । उसकी फुटें दोनों अक्के  
(शब्द०) ।

अक्खड—वि० [सं० अक्षर = न टलनेवाला । हटा रहनेवाला, प्रा०  
अक्खड] १ न मुड़नेवाला । अडनेवाला किसी का कहना  
न माननेवाला । उग्र । उद्धत । उच्छृंखल । २. विगड़ल । भग-  
डालू । ३. निश्चक । निर्भय । बेडर । उ०—'वही बनारसी  
गुडे और अक्खडो की बोली ठोलियाँ उडती' ।—प्रेमधन०,  
भा० २, पृ० ११४ । ४. असम्य । अशिष्ट । दुशील । ५.  
उजड्ड । अनगढ़ । जड मूर्ख । ६. जिसे कुछ कहने या करने  
में सकोच न हो । स्पष्टवक्ता । खरा ।

अक्खडपन—संज्ञा पुं० [हि० अक्खड + पन(प्रत्य०)] १ अक्खड  
होने का भाव । अशिष्टता । असम्यता । दुशीलता । उच्छृं-  
खलता । २. जडता । उजड्डपन । अनगढ़पन । ३. उग्रता ।  
बडाई । उद्धतपन । कलहप्रियता । ४. निश्चकता । निर्भयता ।  
स्पष्टवादिता । खरापन ।

अक्खना(पु०)—क्रि० सं० [सं० आख्यान, प्रा० अक्खान, पं० आखना]  
वहना । बोलना । उ०—जो उपजै यहि बार मोई प्रभु आपनु  
अक्खिय—हम्मीर रा०, पृ० ६४ ।

अक्खर(पु०)—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर; प्रा० अक्खर] अक्षर । ह्रस्व ।  
वर्ण । उ०—अक्खर आवै जाय अक्खर को ताहि ठिकाना ।—  
पलटू०, पृ० ११० ।

अक्खरिका(पु०)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरिका] एक प्रकार की क्रीडा या  
खेल । उ०—'बोद्धो के 'शील' ग्रंथ में बोद्ध साधुओं के लिये  
जिन जिन बातों का निषेध किया गया है, उनमें अक्खरिका  
नामक खेल भी शामिल है' ।—भा० प्रा० लि०, पृ० ४ ।





अवन काम न देना । ( २ ) घबरा जाना । अवल उठाना = ( १ ) हिरान करना । ( २ ) लुप्त करना । अवल उलटी होना = ( १ ) मूर्ख या नासमझ होना । ( २ ) कुछ का कुछ सम्पन्ना । अवल आधी होना = दे० 'अवन उलटी होना' । अवल का अर्था = अत्यंत मूर्ख । अवल का काम न करना = समझ में न आना । कर्तव्य-ज्ञान शून्य होना । उ०— 'महरी, हुजूर अवल नहीं काम करती' ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १ । अवल का चक्कर में आना = ( १ ) घबराना । ( २ ) विस्मित होना । अवल का चरने जाना = ( १ ) समझ जाती रहना । ( २ ) बहवास होना । अवल का चिराग गुल होना = सम्पन्न में फर्क आना । अवल का दुश्मन = अत्यंत मूर्ख । बुद्धिविरोधी काम करनेवाला । अवल का पुतला = बहुत बुद्धिमान या ज्ञानी । उ०— 'बन, सारी बात यह है कि यह ल.ग अवल के पुतले हैं । कोई शै दुनियाँ के पदों पर ऐसी, नहीं जिससे यह वाकिफ न हों ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १७ । अवल का पूरा = बुद्धू । मूर्ख । ( व्यंग्य ) । अवल का मारा = बहुत ही मूर्ख । अवल की कोताही = बुद्धिहीनता । मूर्खता । अवल की मार = बेवकूफी । अवल के घोड़े दौडाना = ( १ ) बहुत सोचना या विचार करना । ( २ ) खयाली पुलाव पकाना । अवल के तोते उड़ना = होश ठिकाने न रहना । घबरा जाना । अवल के पीछे लट्ट लिए फिरना = बुद्धिविरोधी काम करना । अवल के दखिए उधेडना = अवल गंवा देना । अवल के होश उड़ना = दे० 'अवल के तोते उड़ना' । उ०— 'श्रीर मुकाम बुलद इस बदर कि अवल व होश उड़ते हैं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१३ । अवल को रोना = नासमझी पर अफसोस करना । उ०— 'अवल को तो हुस्नआरा रो चुकी' ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२० । अवल खर्च करना = सोचने समझने की कोशिश करना । अवल गुम होना = ह.शहवाश जाते रहना । अवल गुही में होना = बेवकूफ या बमअवल होना । अवल छू जाना = थाड़ी सी समझ होना । अवल जाती रहना = दे० 'अवल जाना' । अवल जाना = ( १ ) समझ न रहना । ( २ ) घबरा जाना । अवल ठिकाने रहना = होशहवास दुरुस्त होना । उ०— 'अव में, उसका समझाऊँ कि वहन अवल ठिकाने बिरुकी है' ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२० । अवल ठिकाने न रहना = होश दुरुस्त न रहना । अवल ठीक करना = शक्ति या नीति द्वारा बिसी का गव तं डना । अवल दग होना = दे० 'अवल हैरान होना' । उ०— 'दंगम' अवल दग है' ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५ । अवल देना = सीख देना समझाना बुझाना । अवल दौडाना = सोच विचार करना । जुगत बैठना । अवल पर झाडू फेरना = नासमझी का व्यवहार करना । अवल पर पत्थर पडना = निहायत बेअवल होना । अवल पर पर्दा पडना = समझ जाती रहना । उ०— 'पूछा जो उनसे आपका पर्दा, वो क्या हुआ, कहने लगी कि अवल पे पर्दा पड़ गया ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६४१ । अवल भिडाना = दे० 'अवल दौडाना' । अवल मारी जाना = बुद्धि का बेकार होना । अवल रफूदपड़र होना = अवल का काम न करना । अवल रुडाना = दे० 'अवल दौडाना' । अवल सठियाना = बुद्धि भ्रष्ट हो जाना, जैसे— 'इस बुद्धे की

अवल तो सठिया गई है' ।—( शब्द० ) ।

विशेष—ऐसा कहते हैं कि साठ वर्ष बाद मनुष्य की बुद्धि जीर्ण या बेकाम हो जाती है ।

अवल से दूर होना = समझ या बुद्धि से बाहर होना । 'अवल से बाहर होना = दे० 'अवल ने दूर होना' ।

यी०—अवले इसानी = मनुष्य की बुद्धि । अवले कुल = ( १ ) देवदूत । फरिश्ता । ( २ ) मूर्ख । घामठ ( व्यंग्य ) । अवले सलीम = सतुलित बुद्धि । सद्बुद्धि । अवले हैवानी = पशुतुल्य बुद्धि । पशुबुद्धि ।

अवलमद—वि० [ अ० अवल + फा० मद ] बुद्धिमान् । चतुर । सयाना । विज्ञ । समझदार । होशियार ।

मुहा०—अवलमद की दुम = मूर्ख ( व्यंग्य ) ।

अवलमदी—संज्ञा स्त्री० [ अ० अवल + फा० मदी ] बुद्धिमान् । समझदारी । चतुराई । सयानापन । विज्ञता ।

अवलम<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] जो थका न हो । अक्लात । उ०—लाज का आज भूपण, अवलम नारी का ।—तुलसी०, पृ० ५० ।

अवलम<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० क्लम या थकावट का अभाव [ को० ] ।

अक्लात—वि० [ सं० ] १ जो थका न हो । बलातिरहित । उ०— 'भाभी की अक्लात परिचर्या से प्राय एक सप्ताह बाद मैं ज्वर-मुक्त हो गया' ।—जिप्सी, पृ० ५५३ । २ । अक्लान । जो मुर-झाया न हो ( को० ) ।

अविलका—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] नील का पाँघा [ को० ] ।

अविलग्न—वि० [ सं० ] जो गीला या नम न हो [ को० ] ।

अविलग्नवर्त्म—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक नेत्ररंग जिसमें पलकों चिपक जाती है ।

अविलपट—वि० [ सं० ] १ बिना क्लेश का । कष्टरहित । २ सुगम । सहज । आसान । सरल । सीधा । ३ । विवादरहित । निविवाद ( को० ) । ४ बलातिरहित । जिसे थकान न हों ( को० ) ।

अविलपटकर्म—वि० [ सं० ] जो कार्य करते हुए न थके [ को० ] ।

अविलपटकारी—वि० [ सं० ] [ स्त्री० अविलपटवारिणी ] दे० 'अविलपट-कर्म' [ को० ] ।

अविलपटवर्ग—वि० [ सं० ] जो सदेहास्पद न हो । प्रामाणिक [ को० ] ।

अविलपटव्रत—[ सं० ] जो व्रत करने में न थके [ को० ] ।

अवली—वि० [ अ० ] १ अवल की । बुद्धिमग्न । २ । बुद्धिसवधी [ को० ] ।

मुहा०—अली गहा या रूदा रगाना = अटवल से बात करना ।

अवलीव<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ जो नपूस्क या नामदंन हो । २ जो वायर या बम हिमत्वाला न हो । ३ सच्चा । जो भूठा न हो [ को० ] ।

अवलीव<sup>२</sup>—क्रि० वि० निर्भयतापूर्वक [ को० ] ।

अवलेद<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] जो आर्द्र या गीला न हो । २ । अविलपट ( ला० ) । उ०—'अरूप अश, वर्णानुभेद के रखने पर भी पूर्ववत् अवलेद रहा ।—प्रवच०, पृ० १६४ ।

अवलेद<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० गल्लिपन या आर्द्रता का अणु [ को० ] ।

अवलेद्य—वि० [ सं० ] जो भिगोया न जा सके [ को० ] ।

अक्लेश<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्लेश का अभाव। क्लेशहीनता [को०]।  
अक्लेश<sup>२</sup>—वि० क्लेशरहित [को०]।

अक्षतव्य—वि० [सं० अक्षन्तव्य] क्षमा न हो सकने योग्य। जिसे क्षमा न किया जा सके। क्षमान करने योग्य। अक्षम्य।  
उ०—यह सुंदर गथावली टीका टिप्पणी, जीवनचरित्र, भूमिका, चित्रादि सहित अक्षतव्य बिलव और दीर्घसूत्रता के साथ सामने आई है।—सुंदर० ग्र०, भा० १, (भू०), पृ० २०२।

अक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अक्षा] १ खेलने का पासा। २ पासो का खेल। चौसर। ३ छकड़ा। गाड़ी। ४ किसी गोल वस्त्र के बीचोबीच परोया हुआ वह छड़ या दंड जिसपर वह वस्तु घूमती है। घुरी। ५ पहिए की घुरी। ६ वह कल्पित स्थिर रेखा जो पृथिवी के भीतरी केंद्र से होती हुई, उसके आर पार दोनों ध्रुवों पर निकलती है और जिसपर पृथिवी घूमती हुई, मानी गई है। ७ तराजू की डांडी। ८. व्यवहार। मामला। मुकदमा। ९ इन्द्रिय। १०. तृतीया। ११ सोहगा। १२ आख। नेत्र। उ० एक कह्या अनुमान करि एक देखिए अक्ष। सुंदर अनुभव होइ जब तब देखिए प्रत्यक्ष।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ८१४। १३ बहेड़ा। १४ रुद्राक्ष। १५ साँप। १६ गरुड। १७ आत्मा। १८. कर्प नाम की १६ माशे की एक ताल। १९ जन्माघ। २० रावण का पुत्र अक्षयकुमार। उ०—रुख निपातत खात फल रक्षक अक्ष निपाति।—तुलसीदास, पृ० २८। २१ साँवर्चल या सोचर नमक (को०)। २२ कानून (को०)। २३. द्यूत (को०)। २४ ज्ञान (को०)। २५ नाप का एक मान (को०)। २६ किसी मंदिर का निचला हिस्सा (को०)। २७ शिव (को०)।

अक्षक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तिनिका का वृक्ष [को०]।

अक्षकर्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समकोण त्रिभुज में समकोण के सामने की भुजा, विशेषतया धूपघड़ी के लिये बनी त्रिभुजाकृत कर्ण रेखा, जिसकी छाया से समय का पता लगता है (ज्यो०)।

अक्षकाम—वि० [सं०] जिसे द्यूतक्रीडा प्रिय हो। द्यूतप्रिय [को०]।

अक्षकितव—वि० [सं०] द्यूत कुशल [को०]।

अक्षकुमार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रावण का एक पुत्र जिसे हनुमान ने लका का प्रमोदवन उजाड़ते समय मारा था।

अक्षकुशल—वि० [सं०] जुआ खेलने में प्रवीण। द्यूतकुशल [को०]।

अक्षकूट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आँख की पुलली। अक्षितारा [को०]।

अक्षकोविद—वि० [सं०] दे० 'अक्षकुशल' [को०]।

अक्षक्रीडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ पासे का खेल। चौसर। चौपड़। २. द्यूतक्रीडा (को०)।

अक्षचक्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इन्द्रियो का समूह [को०]।

अक्षज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हीरा। २. वज्र। ३. प्रत्यक्ष ज्ञान। ४. विष्णु [को०]।

अक्षण—वि० [सं०] असमय। अनवसर [को०]।

अक्षणा—क्रि० वि० [सं०] अक्षणा (अक्षि का तृतीया एट व०) ] आँख द्वारा। उ०—सुने न कान और की दृष्टि न और अक्षणा।—सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० २५।

अक्षणिक—वि० [सं०] १ दृढ़। स्थिर। स्थायी। २ जो क्षणिक न हो [को०]।

अक्षत<sup>१</sup>—वि० [सं०] क्षत या घाव से रहित। व्रणशून्य। उ०—'ब्राह्मण को कर्म नहीं मारना पर सब धन को बचाकर अक्षत केवल राज से बाहर कर देना चाहिये'।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १०। २ बिना टूटा हुआ। अखटित। सर्वांगपूर्ण। समूचा।

अक्षत<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ बिना टूटा हुआ चावल जो देवताओं की पूजा में चढ़ाया जाता है। २ धान का लावा। ३ जी। ४ कोई भी धान्य (को०)। ५ हाति या अश्व का अभाव। कल्याण (को०)। ६ शिव (को०)। ७ हिजड़ा (को०)।

अक्षतत्त्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अक्षतत्त्व। द्यूत। द्यूत विद्या। जुआ [को०]।

अक्षतयोनि<sup>१</sup>—वि० स्त्री० [सं०] जिसका पुरुष में ससर्ग न हुआ हो।

अक्षतयोनि<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० १ वह कन्या जिसका पुरुष से ससर्ग न हुआ हो। २ वह कन्या जिसका विवाह हो गया हो किंतु पति से समागम न हुआ हो।

अक्षतवीर्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] जिसका वीर्यपात न हुआ हो। जिसने स्त्री-ससर्ग न किया हो।

अक्षतवीर्य<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ शिव। २ क्षयाभाव। ३ नपुंसक। पुंस्त्व-विहीन (व्यग्य) [को०]।

अक्षता<sup>१</sup>—वि० [सं०] जिसका पुरुष से संयोग न हुआ हो।

अक्षता<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० १ वह स्त्री जिसका पुरुष से संयोग न हुआ हो। २ धर्मशास्त्र के अनुसार वह पुनर्भू स्त्री जिसने पुनर्विवाह तक पुरुषसंयोग न किया हो। ३ काकडामर्गा।

अक्षत—वि० [सं०] १ क्षत्रियरहित। २ राजाहीन [को०]।

अक्षदंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अक्षदण्ड] घुरी [को०]।

अक्षदर्शक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ धर्माध्यक्ष। न्यायाधीश। न्यायकर्ता। २ द्यूत क्रीडा का निरीक्षक (को०)।

अक्षदाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पासे को दूसरे के हाथ में देना [को०]।

अक्षदूक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षदर्शक' [को०]।

अक्षदेवी—वि० [सं०] जुआ खेलनेवाला। जुआरी।

अक्षद्यू—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] द्यूत। जुआ [को०]।

अक्षद्यूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षद्यू' [को०]।

अक्षद्यूतिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] द्यूतक्रीडा में होनेवाला भगडा [को०]।

अक्षद्रुग्ध—वि० [सं०] १ जुए के कारण तिरस्कृत। २ जुए में असफल रहनेवाला। ३ जुए द्वारा ठगनेवाला [को०]।

अक्षद्वार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घुरी का सूराख [को०]।

अक्षधर<sup>१</sup>—वि० [सं०] चक्र या घुरा को धारण करनेवाला [को०]।

अक्षधर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १. पहिया। २. एक वृक्ष। ग्राबोट। सिहोर। ३. विष्णु। ४. चक्र या पासे को धारण करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अक्षधुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पहिए की घुरी।

अक्षधूर्त—वि० [सं०] दे० 'अक्षकुशल' [को०]।

अक्षधूर्तिल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वृष। बिल [को०]।

अक्षनंपुरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षनंपुण्य' [को०]।

अक्षनैपुण्य—सज्ञा पुं० [सं०] अक्षकुशलता। अक्षकौशल [को०]।  
अक्षपटल—सज्ञा पुं० [सं०] १ न्यायालय। २ न्यायसवधी कगज पत्र रखने का स्थान। ३ न्यायकर्ता। न्यायाधीश। ४ अभिलेखी (रेकार्ड्स) को सुरक्षित रखने का स्थान। ५ वह कार्यालय या स्थान जहाँ आय व्यय आदि का विवरण रखा जाय [को०]।

अक्षपटलाधिकृत—सज्ञा पुं० [सं०] राजकीय अभिलेख पत्रादि का तथा आय व्यय आदि का निरीक्षण करनेवाला प्रधान अधिकारी [को०]।

अक्षपटलिक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षपटलाधिकृत' [को०]।

अक्षपराजय—सज्ञा पुं० [सं०] जुए की हार। जुए में हार [को०]।

अक्षपरि—सज्ञा पुं० [सं०] हार का पासा। पासे की वह स्थिति जिससे हार सूचित हो।

अक्षपाट—सज्ञा पुं० [सं०] १ जुआखाना। छूतगृह। २ अखाड़ा। मल-शाला [को०]।

अक्षपाटक—सज्ञा पुं० [सं०] न्यायाधीश। धर्माध्यक्ष [को०]।

अक्षपात—सज्ञा पुं० [सं०] पासा फेंकने या डालने का कार्य [को०]।

अक्षपातन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षपात' [को०]।

अक्षपाद—सज्ञा पुं० [सं०] १ सोलह पदार्थवादी। न्यायशास्त्र के प्रवर्तक गौतम ऋषि।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि गौतम ने अपने मत का खंडन करनेवाले व्यास का मुख न देखने की प्रतिज्ञा की थी। पीछे से जब व्यास ने इन्हें प्रसन्न किया तब इन्होंने अपने चरणों में नेत्र करके उन्हें देखा अर्थात् अपने चरण उन्हें दिखलाया। इसी से गौतम का नाम अक्षपाद हुआ।

२. तात्त्विक। नैयायिक।

अक्षपीडा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. इन्द्रियो की वा शरीर की पीडा। २. एक लता। यवतित्त लता [को०]।

अक्षप्रिय—वि० [सं०] जुआरी। जुआवाज [को०]।

अक्षवद—सज्ञा पुं० [सं०] वह विद्या जिससे आसपास के लोग कुछ देख नहीं सकते। नजरबंदी।

अक्षभा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षांश की छाया [को०]।

अक्षभाग—सज्ञा पुं० [सं०] अक्षांश का विभाग [को०]।

अक्षभार—सज्ञा पुं० [सं०] गाड़ी का बोझ [को०]।

अक्षभूमि—सज्ञा स्त्री० [सं०] जुआ खेलने का स्थान [को०]।

अक्षम—वि० [सं०] १ क्षमरहित। असहिष्णु। २ असमर्थ। अशक्त। लाचार। ३ ईर्ष्यालु [को०]।

अक्षमता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्षमा का अभाव। असहिष्णुता। २ ईर्ष्या। डाह। ३ असमर्थता।

अक्षमद—सज्ञा पुं० [सं०] जुआ खेलने का व्यसन या उत्साह [को०]।

अक्षमा<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. अर्घ्य। अर्घीरता। २. क्रोध। रोष। ३. ईर्ष्या। डाह। ४. असमर्थता। लाचारी [को०]।

अक्षमा<sup>२</sup>—वि० क्षमरहित [को०]।

अक्षमात्र—सज्ञा पुं० [सं०] निमेष। निमिष [को०]।

अक्षमापक—सज्ञा पुं० [सं०] ग्रह नक्षत्रों के निरीक्षण का यंत्र [को०]।

अक्षमाला—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ रुद्राक्ष की माला। २ 'अ' से 'क्ष' अक्ष अक्षरों की वर्णमाला। ३. वशिष्ठ की पत्नी अरुघती।

अक्षमाली<sup>१</sup>—वि० [सं०] जो रुद्राक्ष की माला धारण करे।

अक्षमाली<sup>२</sup>—सज्ञा पुं०-शिव [को०]।

अक्षम्य—वि० [सं०] जिसे क्षमा न किया जाय। क्षमा के अयोग्य। उ०—'यह दुष्टद्वारा अक्षम्य अपराध है'।—स्कंद०, पृ० ८२।

अक्षय<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जिसका क्षय न हो। अनश्वर। सदा बना रहनेवाला। वशी न चुकनेवाला। २ कल्प/तस्थायी। कल्प के अंत तक रहनेवाला। उ०—'दिवा रात्रि या भित्त वरुण की' वाला का अक्षय शृंगार।—कामायनी पृ० ३६।

अक्षय—सज्ञा पुं० १ परमात्मा। २ सन्यासी। ३ दरिद्र। ४ एक योग जिसमें किया हुआ पाप या पुण्य का नाश नहीं होता [को०]।

अक्षयकुमार<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० दे० 'अक्षकुमार'।

अक्षयगुण<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अक्षयगुण<sup>२</sup>—वि० क्षय न होनेवाले गुणों से युक्त [को०]।

अक्षयता—सज्ञा स्त्री० [सं०] नाश या क्षय का अभाव [को०]।

अक्षयतृणीर—सज्ञा पुं० [सं०] ऐसा तरकस जिसके बाण कभी समाप्त नहीं होते। उ०—'अक्षय तृणीर, अक्षय कवच सब लोगों ने सुना होगा, परंतु इस अक्षय मज्जूपा का हाल मेरे सिवा कोई नहीं जानता'।—स्कंद०, पृ० १७।

अक्षयतृतीया—सज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ल तृतीया। आषा तीज। सतयुग के प्रारंभ की तिथि।

विशेष—इस तिथि को लोग स्नान, दान आदि करते हैं। सतयुग का आरंभ इसी तिथि से माना जाता है। यदि इस तिथि को कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र पड़े तो वह बहुत ही उत्तम समझी जाती है।

अक्षयत्व—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षयता' [को०]।

अक्षयधाम—सज्ञा पुं० [सं०] १. वैकुण्ठ। २. मोक्ष [को०]।

अक्षयनवमी—सज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक शुक्ल पक्षा की नवमी।

विशेष—इस तिथि को लोग स्नान, दान आदि करते हैं। त्रेता युग की उत्पत्ति इसी तिथि से मानी गई है।

अक्षयनीवी—सज्ञा स्त्री० [सं०] स्थायी दान वा निधि। वह मूल संपत्ति जिसका व्यय मात्र व्यय किया जाय। उ०—साय. ही श्रीमती ने यह अच्छा प्रकट किया कि इस सवध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अक्षय नीवी की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय।—मुं० द०, परिचय, पृ० २।

अक्षयपद—सज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष [को०]।

अक्षयपुरुष—सज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

अक्षयलीक—सज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग। वैकुण्ठ [को०]।

अक्षयवट—सज्ञा पुं० [सं०] प्रयाग और गया में एक वरंग का पेड़।

विशेष—यह अक्षय इस लिये कहलाता है कि पौराणिक लोग इसका नाश प्रलय में भी नहीं मानते।

अक्षयवृक्ष—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अक्षयवट' ।

अक्षया—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पुष्प तिथि [को०] ।

अक्षायिणी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [स०] उमा । पार्वती [को०] ।

अक्षायिणी<sup>२</sup>—वि० स्त्री० क्षय न होनेवाली [को०] ।

अक्षयी—वि० [स०] जिसमें नाश न हो । अनश्वर [को०] ।

अक्षय्य—वि० [स०] १ अक्षय, अविनाशी । २ सदा बना रहनेवाला । समाप्त न होनेवाला ।

अक्षय्यनवमी—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अक्षयनवमी' [को०] ।

अक्षय्योदक—सज्ञा पु० [स०] आद्व मे पिबदान के अनंतर ब्राह्मण के हाथ पर 'अक्षय्य हो' कहकर छोड़ा जानेवाला मधु-तिल-युक्त जल ।

अक्षर<sup>१</sup>—वि० [म०] १ अव्युत्त । स्थिर । अविनाशी । नित्य । २. क्रियाशून्य [को०] ।

अक्षर<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ अकारादि वर्ण । हेरफ । मनुष्य के मुख से निकली हुई ध्वनि को सूचित करने का संकेत या चिह्न ।

क्रि० प्र०—जाना ।—जोड़ना ।—टटोलना ।—पढ़ना ।—लिखना ।

मुहा०—अक्षर घटना = अक्षर लिखने का अभ्यास करना । अक्षर से भेंट न होना = अपढ़ रहना । मूर्ख रहना । विधना के अक्षर = कर्मरेख । भाग । लिखन ।

२ ओकार । ३। उ०—वि० अक्षर कोई न छूटे, अक्षर अगम अगध ।—कवीर सा०, पृ० ६६० । ३. आत्मा । ४. ब्रह्म । चैतन्य पुरुष । ५ आकाश । ६ जल । ७ धर्म । ८ तपस्या । ९ मोक्ष । १० अपामार्ग । चिचडा । ११ शिव (को०) । १२ विष्णु (को०) । १३ जीव (को०) । १४ परमात्मा (को०) । १५ खड्ग (को०) । १६ स्वर (को०) । १७ शब्द (को०) । १८ समय का एक परिमाण । काष्ठ का पाँचवाँ हिस्सा (को०) ।

अक्षरक—सज्ञा पु० [स०] अक्षर । स्वर [को०] ।

अक्षरकर—सज्ञा पु० [स०] एक प्रकार का धार्मिक ध्यान [को०] ।

अक्षरक्रम—सज्ञा पु० [स०] अक्षरों का अनुक्रम । वर्णानुक्रम [को०] ।

अक्षरगणित—सज्ञा पु० [स०] बीजगणित [को०] ।

अक्षरचक्षु—सज्ञा पु० [स०] अक्षरचक्षु साफ और स्पष्ट लिखनेवाला व्यक्ति । सुलेखक [को०] ।

अक्षरचट्टा(उ)—वि० [स०] अक्षर + देश० चट्ट = चाटना अक्षर चाटने वाला । कोरा पढा लिखा । पठित मूर्ख । उ०—'तब रूपचंद नदा ने अपने मन में विचारी, जो यह बात परमानंद सेनी कहा जाने ? यह तो अक्षरचट्टा है ।—दो सौ दावन०, भा० १, पृ० १६० ।

अक्षरचण—सज्ञा पु० [स०] सुलेखक [को०] ।

अक्षरचन—सज्ञा पु० दे० 'अक्षरचण' [को०] ।

अक्षरचक्षु—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अक्षरचक्षु' [को०] ।

अक्षरच्युतक—सज्ञा पु० [स०] किसी अक्षर को हटा देने से निम्न अर्थ देनेवाला अक्षरों का एक प्रकार का खेल [को०] ।

अक्षरछंद—सज्ञा पु० [स०] अक्षरछन्द वर्णिक छंद । वर्णवृत्त (को०) ।

अक्षरजननी—सज्ञा स्त्री० [स०] लेखनी । कलम (को०) ।

अक्षरजीवक—सज्ञा पु० [स०] लिखकर जीविका कमानेवाला व्यक्ति । लेखक । लिपिकार [को०] ।

अक्षरजीविक—सज्ञा पु० [म०] अक्षरजीवक । लेखक [को०] ।

अक्षरजीवी—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अक्षरजीवक' [को०] ।

अक्षरज्ञान—सज्ञा पु० [स०] लिखने और पढ़ने की योग्यता । अक्षरवीथ [को०] ।

अक्षरतूलिका—सज्ञा स्त्री० [स०] अक्षर जननी । लेखनी [को०] ।

अक्षरधाम—सज्ञा पु० [स०] १. मोक्ष । निर्वाण । २. ब्रह्मलोक [को०] ।

अक्षरन्यास—सज्ञा पु० [स०] १ लेख । लिखावट । २. सत्त्व की एक क्रिया जिसमें किसी मन्त्र के एक एक अक्षर को पढ़कर हृदय, नाक, कान, आँख आदि छूते हैं । ३. वर्ण । अक्षर (को०) ।

अक्षरपवित—सज्ञा स्त्री० [स०] अक्षरपडिवत् पक्ति नामक वदिक छंद का एक भेद जिसके चार पादों के वर्णों का योग २० होता है ।

अक्षरपूजक—वि० स० [स०] पुराण अदि प्राचीन धर्मग्रंथों में लिखी बातों को पूरी तौर से माननेवाला [को०] ।

अक्षरवध—सज्ञा पु० [स०] एक प्रकार का वर्णवृत्त [को०] ।

अक्षरभूमिका—सज्ञा स्त्री० [स०] लिखने की वस्तु । पटिया । पाटी [को०] ।

अक्षरमाला—सज्ञा स्त्री० [स०] वर्णमाला [को०] ।

अक्षरमुख<sup>१</sup>—वि० [स०] जो अक्षरों का अभ्यास करता हो । अक्षर सीखनेवाला ।

अक्षरमुख<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ शिष्य । छात्र । २. अक्षरों का आरम्भ अर्थात् 'अ' (को०) ।

अक्षरमुष्टिका—सज्ञा स्त्री० [स०] चौसठ कलाओं में से एक कला । मुष्टिका के विशेष आकार से अक्षरों को जमाने की कला । उँगलियों के संकेत द्वारा भावव्यंजना की पद्धति । उ०—'अक्षर मुष्टिका देशभाषा ज्ञान दोहदकरण'—वर्ण०, पृ० २० ।

अक्षरयोजना—सज्ञा स्त्री० [स०] वर्णों की योजना । अक्षरविन्यास [को०] ।

अक्षरवजित—वि० [स०] १. अपढ़ । निरक्षर । २. परमात्मा का एक विशेषण [को०] ।

अक्षरविन्यास—सज्ञा पु० [स०] १ लिपि । लिखावट । २. हिज्जे । वर्णविन्यास । वर्ण क्रम [को०] ।

अक्षरवृत्त—सज्ञा पु० [स०] दे० 'वर्णवृत्त' [को०] ।

अक्षरव्यक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] अक्षर का स्पष्ट उच्चारण [को०] ।

अक्षरश—क्रि० वि० [स०] अक्षर अक्षर । एक एक अक्षर । लंपज व लपज । संपूर्णतया । विलकुल । सब । उ०—'उसका कहना अक्षरश सत्य है (शब्द०) ।

अक्षरशत्रु<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [स०] निरक्षर या मूर्ख व्यक्ति । अनपढ़ और जाहिल आदमी ।

अक्षरशत्रु<sup>२</sup>—वि० जिन्हें अक्षर का ज्ञान न हो । निरक्षर । अक्षरशून्य । उ०—हमारा संगीत अक्षरशून्य अपढ़ व्यक्तियों के हाथ में चला गया ।—संपूर्ण० अभि० ग्रं० पृ० २३२ ।

अक्षरसंस्थान—सज्ञा पु० [स०] लिखावट । लिखन । लि [को०] ।

अक्षरसमाम्नाय—संज्ञा पुं० [सं०] 'अ' से 'ह' तक के वर्णों का समूह। वर्णमाला [को०]।

अक्षराग—संज्ञा पुं० [सं० अक्षराङ्ग] १ लिखावट। लिपि। २ लिखने का माधन। [को०]।

अक्षरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भाषा। २ शब्द [को०]।

अक्षराक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान का एक प्रकार या प्रक्रिया [को०]।

अक्षराज—संज्ञा पुं० [सं०] द्यूत क्रीडा में आसक्त व्यक्ति [को०]।

अक्षरारम्भ—संज्ञा पुं० [सं० अक्षरारम्भ] एक सस्कार जिसमें पहले पहल बालको को अक्षर लिखना सिखाया जाता है [को०]।

अक्षरार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वर्णों का अभिप्राय। शब्दों का प्रर्थ। वाच्यार्थ वा र्थांगिक अर्थ [को०]।

अक्षरी<sup>१</sup>—वि० [सं० अक्षर + ई] अक्षरयुक्त। वर्णवाली उ०—  
द्वै प्रक्षरी दूजी नाडी। दोय पप पान अमान।—गोरख०, पृ० २५१।

अक्षरी<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वरसात। वर्षा ऋतु (को०)। २ किसी शब्द के लिखने या उच्चारण करने में अक्षरों का क्रम। हिज्जे।

अक्षरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मीठी रेखा जो किसी गोले पदार्थ के भीतर केंद्र से होती हुई दोनों पृष्ठों पर लवण में गिरे। धुरी की रेखा।

अक्षरीटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरावर्तन, प्रा० अक्षरावटन] १ वर्णमाला। २ लेख लिपि का ढग। अछरीटी। ३ सितार पर गीत निकालने या बोल बजाने की क्रिया।

अक्षर्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] वर्ण या अक्षर से सवद्ध [को०]।

अक्षर्य<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० नाम का एक भेद [को०]।

अक्षवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्यूत क्रीडा। पामो का खेल [को०]।

अक्षवाट—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुआ खेलने का स्थान। पासे का फलक। द्यूतगृह। जुआखाना। २ वह वस्तु जिसपर पासा खेला जाय (को०)। ३ कुष्टी लडने की जगह। अखाडा।

अक्षवाम—संज्ञा पुं० [सं०] वेईमान जुआडी। वह जो द्यूतकर्म में कपट करे [को०]।

अक्षविक्षेप—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष + विक्षेप] कटाक्ष। अपाग दृष्टि [को०]।

अक्षविद्—वि० [सं०] [स्त्री० अक्षवेत्ता] १ जुआ खेलने के ढग को जाननेवाला। द्यूतकुशल। २ व्यवहारकुशल [को०]।

अक्षविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्यूतकला। २ जुआ [को०]।

अक्षवृत्त<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] राशिचक्र रूपी कोणविहीन क्षेत्र [को०]।

अक्षवृत्त<sup>२</sup>—वि० १ जुआ खेलने का शब्द। द्यूतसक्त। २ जुए के समय घटित [को०]।

अक्षशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्यूतक्रीडागृह। जआखाना [को०]।

अक्षशालिक—संज्ञा पुं० [सं०] जुआघर का प्रधान अधिकारी [को०]।

अक्षशाली—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षशालिक' [को०]।

अक्षशीड—संज्ञा पुं० [सं० अक्षशीण्ड] दे० 'अक्षकुशल' [को०]।

अक्षमूवत—संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद के अतर्गत अक्ष या द्यूत-सर्वधी सूक्त [को०]।

विशेष—यह अक्षसूक्त ऋग्वेद मठल १०, अध्याय ३ का ३४ वां सूक्त है जिसमें १४ ऋचाएँ हैं। इनमें १, ७, ९ और १२ वां ऋचा पासे की स्तुतिपरक हैं और १३ वीं कृषि की स्तुति में हैं। शेष ऋचाओं में जुए का खेल और जुआडियों की स्थिति का अंकन किया गया है।

अक्षसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ रुद्राक्ष की माला। २ जपमाला जिसमें गूँथी जाय वह सूत (को०)।

अक्षसेन—संज्ञा पुं० [सं०] भारत वर्ष का एक प्राचीन राजा जिसका नाम मंथुपनिपद् में आया है।

अक्षस्तुप—संज्ञा पुं० [सं०] बहेडा [को०]।

अक्षहीन—वि० [सं०] नेत्ररहित। अंधा।

अक्षहृदय—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुए के खेल की दक्षता। २ जुए की भीतरी बातें या चालें [को०]।

अक्षहृदयज्ञ—वि० [सं०] जुए में पूरी तीर से दक्ष [को०]।

अक्षान्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षान्ति] १ ईर्ष्या। डाह। जलन। हृदय। २ दे० 'अक्षमा' (को०)।

अक्षांश—संज्ञा पुं० [सं०] १ भूगोल पर उत्तरी, और दक्षिणी ध्रुव से होती हुई एक रेखा मान कर उसके ३६० भाग किए गए हैं। इन ३६० अंशों पर से होती हुई ३६० रेखाएँ पूर्व पश्चिम भूमध्यरेखा के समानांतर मानी गई हैं जिनको अक्षांश कहते हैं। अक्षांश की गिनती विपुवत् या भूमध्यरेखा से की जाती है। २ वह कोण जहाँ पर क्षितिज का तल पृथ्वी के अक्ष से कटता है। ३ भूमध्यरेखा और किसी नियत स्थान के बीच में याम्यंतर का पूर्ण भुकाव या अंतर। ४ किसी नक्षत्र का आवृत्त के उत्तर या दक्षिण की ओर का कोणांतर। ५ कोई स्थान जो अक्षांशों के समानांतर पर स्थित हो।

अक्षाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] धुरा या धुरे का सिरा [को०]।

अक्षाग्रकील—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जुए और लड्डे को जोड़नेवाली खूँटी। २ पहिए को रोकने के लिये लगाई हुई खूँटी या कील [को०]।

अक्षाग्रकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षाग्रकील' [को०]।

अक्षार<sup>१</sup>—वि० [सं०] क्षारशून्य। जिसमें क्षार न हो।

अक्षार<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० प्राकृतिक लवण या नमक [को०]।

अक्षारलवण—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह लवण जिसमें क्षार न हो। वह लवण जो मिट्टी से न निकलता हो।

विशेष—कोई कोई सेंधा और समुद्री लवण को अक्षार लवण मानते हैं और अतादि में उसको ग्राह्य समझते हैं।

२ वह हविष्य मोजन जिसमें नमक न हो और जो अशोच और यज्ञ में काम आता हो, जैसे—दूध, घी, चावल, तिल, मूँग जो आदि।

अक्षारवपन—संज्ञा पुं० [सं०] वह फलक जिसपर पासा फेंका जाय [को०]।

अक्षारवली—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्राक्ष की जपमाला [को०]।

अक्षारवाप—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुआरी। जुआ खेलनेवाला। २ द्यूतगृह का स्वामी या निरीक्षण। ३ द्यूत वा निरीक्षण करनेवाला सरकारी कर्मचारी [को०]। ४ आय व्यय का गणनाध्यक्ष।—हिंदु० सं०, पृ० १०५।



अक्षावापन—सङ्घ पुं [ म० ] दे० 'अक्षपटल' [ को० ] ।  
 अक्षि—सङ्घ स्त्री [ सं० ] १ आँख । नेत्र । २ दो की सख्या ।—  
 भा० प्रा० नि०, पृ० १२० ।  
 अक्षिकप—सङ्घ पुं [ म० अक्षिकम्प ] पलकों के काँपने की स्थिति ।  
 आँख की फड़कन । आँख चमकाना [ को० ] ।  
 अक्षिक—सङ्घ पुं [ सं० ] १ एक वृक्ष । आल का पेड़ । २ दे०  
 'अक्षक' [ को० ] ।  
 अक्षिकूट—सङ्घ पुं [ सं० ] १ आँख के ऊपर का ललाट का  
 मुख्य भाग । २ आँख की पुतली । ३ नेत्रगोलक [ को० ] ।  
 अक्षिकूटक—सङ्घ पुं [ सं० ] दे० 'अक्षिकूट' [ को० ] ।  
 अक्षिगत—वि० [ सं० ] १ देख हुआ । दृष्ट । २ विद्यमान । उपस्थित ।  
 ३ द्वेप का पात्र । द्वेप्य [ को० ] ।  
 अक्षिगोल—सङ्घ पुं [ सं० ] दे० 'अक्षिगोलक' [ को० ] ।  
 अक्षिगोलक—सङ्घ पुं [ म० ] आँख का डेला । आँख की पुतली ।  
 अक्षिणी—सङ्घ स्त्री [ मं० ] गैरमनकूला जायदाद या अचल संपत्ति से  
 सवद्ध आठ प्रकार की शर्तों या सुविधाओं में से एक [ को० ] ।  
 अक्षित<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ क्षय न होनेवाला । जिसका क्षय न  
 हुआ हो । २ अघट । न घटनेवाला । ३ जिसे चोट आदि न  
 लगी हो [ को० ] ।  
 अक्षित<sup>२</sup>—सङ्घ पुं १ जल । २ दस लाख की सख्या [ को० ] ।  
 अक्षितर—सङ्घ पुं [ सं० ] पानी । जल [ को० ] ।  
 अक्षितवसू—सङ्घ पुं [ सं० ] इद्र का एक नाम [ को० ] ।  
 अक्षितारक—सङ्घ पुं [ सं० ] दे० 'अक्षितारा' [ को० ] ।  
 अक्षितारा—सङ्घ स्त्री [ सं० ] आँख की पुतली ।  
 अक्षितावसू—सङ्घ पुं [ सं० ] दे० 'अक्षितवसू' [ को० ] ।  
 अक्षिति—सङ्घ स्त्री [ सं० ] दे० अनश्वरता [ को० ] ।  
 अक्षिति<sup>२</sup>—वि० अनश्वर । नाश न होनेवाला [ को० ] ।  
 अक्षिनिमेष—सङ्घ पुं [ सं० ] १ आँख की चमक । २ क्षण । पल  
 [ को० ] ।  
 अक्षिपथ—सङ्घ पुं [ सं० ] आँख की पलकों के मध्यभाग के वाल  
 वरानी [ को० ] ।  
 अक्षिपटल—सङ्घ पुं [ सं० ] १ आँख के कोण पर की झिल्ली । आँख  
 का परदा । २ आँख का एक रोग । माँहा [ को० ] ।  
 अक्षिपाक—सङ्घ पुं [ सं० ] आँख की सूजन [ को० ] ।  
 अक्षिव—सङ्घ पुं वि० [ सं० ] दे० 'अक्षीव' [ को० ] ।  
 अक्षिभू—वि० [ सं० ] १ प्रत्यक्ष । दृश्य । प्रगट । २ सत्य । वास्त-  
 विक [ को० ] ।  
 अक्षिभेपज—सङ्घ पुं [ सं० ] १ आँख की दवा । २ पट्टिकालोघ्र  
 नामक वृक्ष [ को० ] ।  
 अक्षिमत्—वि० [ सं० ] आँखवाला [ को० ] ।  
 अक्षिलोम—सङ्घ पुं [ सं० ] दे० 'अक्षिपथ' [ को० ] ।  
 अक्षिव—सङ्घ पुं वि० [ सं० ] दे० 'अक्षीव' [ को० ] ।  
 अक्षिविकृणित—सङ्घ पुं [ सं० ] कटाक्ष [ को० ] ।  
 अक्षिविकृणित—सङ्घ पुं [ सं० ] दे० 'अक्षिविकृणित' [ को० ] ।

अक्षिविक्षेप—सङ्घ पुं [ सं० ] कटाक्ष [ को० ] ।  
 अक्षिश्रवा—सङ्घ पुं [ सं० अक्षिश्रवस् ] सर्प । चक्षुश्रवा [ को० ] ।  
 अक्षिस्पन्दन—सङ्घ पुं [ सं० अक्षिस्पन्दन ] आँख फड़कना ।  
 अक्षीक—सङ्घ पुं [ सं० ] दे० 'अक्षक' या 'अक्षिक' [ को० ] ।  
 अक्षीण—वि० [ सं० ] १ जो न घटे । क्षीण न होनेवाला । जो कम न  
 हो । २ अविनाश । नाशरहित ।  
 अक्षीव<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] जो मतवाला न हो । चैतन्य । धीर । शांत ।  
 अक्षीव<sup>२</sup>—सङ्घ पुं १ सहिजन का पेड़ । २ समुद्री नमक ।  
 अक्षीव—सङ्घ पुं, वि० [ सं० ] दे० 'अक्षीव' [ को० ] ।  
 अक्षु<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] शीघ्र । तुरत । [ को० ] ।  
 अक्षु<sup>२</sup>—सङ्घ पुं एक प्रकार का जाल [ को० ] ।  
 अक्षुण्ण—वि० [ सं० ] दे० 'अक्षुण्ण' [ को० ] ।  
 अक्षुण्णता—सङ्घ स्त्री [ सं० ] १ अक्षयता । २ अनुभवहीनता [ को० ] ।  
 अक्षुण्ण—वि० [ सं० ] १ विना टूटा हुआ । अभग्न । उ०—अक्षुण्ण  
 अतुलता रहे सदैव अतुल की ।—माकेन, पृ० २१६ । २  
 अकुशल । अनुभवशून्य । अनादी । ३. अपराजित । सफल  
 ( को० ) । ४. समूचा । अन्यून ( को० ) । ५. लगातार ।  
 व्यवधान रहित ( को० ) ।  
 अक्षुद्र<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ जो क्षुद्र या छटा न हो । २ जो नीच या  
 तुच्छ न हो [ को० ] ।  
 अक्षुद्र<sup>२</sup>—सङ्घ पुं शिव का एक नाम [ को० ] ।  
 अक्षुध्य—वि० [ सं० ] १ जिससे क्षुधा न लगे । भूख मिटानेवाला, भूख  
 नष्ट करनेवाला । २ जिसको भूख न लगती हो । क्षुधारहित  
 [ को० ] ।  
 अक्षुध्य—वि० [ सं० ] क्षोभरहित । जिसे क्षोभ न हो [ को० ] ।  
 अक्षेत्र<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ क्षेत्रशून्य । विना क्षेत्र का । २ परती ।  
 अकृष्ट [ को० ] ।  
 अक्षेत्र<sup>२</sup>—सङ्घ पुं १ निकृष्ट या बुरी भूमि । २ ज्यामिति की विकृत  
 आकृति । मद वृद्धि का छात्र । उपदेश के अयोग्य शिष्य  
 [ को० ] ।  
 अक्षेत्रज्ञ—वि० [ सं० ] १ पथभ्रत । भटका हुआ । २ आध्यात्मिक  
 ज्ञान से शून्य । ३ क्षेत्र या शरीर के तत्त्व को न जाननेवाला ।  
 देहाभिधानी [ को० ] ।  
 अक्षेत्रविद्—वि० [ सं० ] दे० 'अक्षेत्रज्ञ' [ को० ] ।  
 अक्षेत्री—वि० [ सं० ] विना क्षेत्र का । विना खेतवाला [ को० ] ।  
 अक्षेम—सङ्घ पुं [ सं० ] अमगल । अशुभ । अकुशल । बुराई ।  
 अक्षे<sup>१</sup>—वि० [ सं० अक्षय ] दे० 'अक्षय' । उ०—अक्षे वृक्ष एक राशि  
 बनाई । अग्रवास तहाँ रही समाई ।—कवीर मा०, पृ० १५३४ ।  
 अक्षोट—सङ्घ पुं [ सं० ] अखरोट का वृक्ष या फल ।  
 पर्या०—वर्पराल । कदराल । अक्षोड । अक्षोट । अक्षोड ।  
 अक्षोड—सङ्घ पुं [ सं० ] दे० 'अक्षोट' [ को० ] ।  
 अक्षोडक—सङ्घ पुं [ सं० ] दे० 'अक्षोट' [ को० ] ।  
 अक्षोघुक—वि० [ सं० ] जो भूखा न हो । क्षुधारहित । क्षुधाहीन  
 [ को० ] ।  
 अक्षोनि<sup>१</sup>—सङ्घ स्त्री [ सं० अक्षोहिणी ] दे० 'अक्षोहिणी' । उ०—जुरे  
 नृपति, अक्षोनि अठारह, भयो युद्ध अति भारी ।—सूर (शब्द०) ।

अक्षोभ<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्षोभ का अभाव। अनुदेग। शांति।  
दृढता। धीरता। स्थिरता। २ हाथी घाँघने का खूँटा।  
अक्षोभ<sup>२</sup>—वि० १ क्षोभरहित। चचलता से रहित। उद्वेगशून्य। २.  
शांत। स्थिर। गम्भीर।  
अक्षोभ्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] धीर। शांत। गम्भीर [को०]।  
अक्षोभ्य<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ तत्रोक्त एक ऋषि। २ बुद्ध का एक नाम।  
३ बौद्धों के मत से एक बहुत बड़ी सत्त्वा [को०]।  
अक्षोभ्यकवच—संज्ञा पुं० [सं०] तत्रशास्त्रोक्त एक प्रकार का  
कवच [को०]।  
अक्षौरिम—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्रोक्त वे नक्षत्र जिनमें क्षौर-  
कर्म वर्जित है [को०]।  
अक्षीहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूरी चतुरगिनी सेना। सेना  
का एक परिमाण। सेना की एक नियमित सख्या। इसमें  
१०६३५० पैदल, ६५६१० घोड़े, २१८७० रथ और २१८७०  
हाथी होते थे। २ ग्यारह की सख्या।—भा० प्रा० लि०,  
पृ० १२०।  
अक्षर<sup>१</sup>—वि० [सं०] अखंड। व्यापक [को०]।  
अक्षर<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० काल। समय [को०]।  
अक्स—संज्ञा पुं० [अ०] १ प्रतिबिम्ब। छाया। परछाई। उ०—  
नाजूक है, न बिचवाऊँगा तस्वीर में उसकी। चेहरा न वही  
अक्स के बदले उतर आए।—कविता को०, भा० ४,  
पृ० ६६२।  
कि० प्र०—आना।—डालना।—पढ़ना।—लेना।  
२ तसवीर। चित्र। उ०—आईनए दिल में है तेरा अक्स।  
दिन रात मैं तुझको देखता हूँ।—शेर०, भा० १, पृ० ३०६।  
कि० प्र०—उतारना।—छींचना।  
३. फोटो [को०]।  
अक्सर—कि० [अ०] वि० दे० 'अक्सर'। उ०—आँखों में अक्सर उनकी  
आँसू निकल गए हैं। क्या क्या भरे गुलिस्ताँ सावन में जल गए  
हैं।—शेर०, भा० ४, पृ० १८२।  
अक्सी—वि० [फा०] १ प्रतिबिम्ब या छाया सबधी। २. अक्स  
सबधी। अक्स से दना [को०]।  
अक्सी तसवीर—संज्ञा पुं० [फा०] फोटो। आलोक चित्र।  
अक्सीर<sup>१</sup>—वि० [अ०] अव्यर्थ। अकसीर। उ०—जाहिद शरावे  
नाव की तासीर कुछ न पूछ। अक्सीर है जो हल्क के नीचे  
उतर गई।—कविता को०, भा० ४, पृ० ५५५।  
अक्सीर<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० कामिया। अक्सीर। एक दवा [को०]।  
अखग(गु)—वि० [सं०] अखण्ड। न खंगनेवाला। न चुकनेवाला। कम  
न होनेवाला। अविनाशी।  
अखंड—वि० [सं०] अखण्ड। १ जिसके खंड या टुकड़े न हों। अटूट।  
अविच्छिन्न। संपूर्ण। समूचा। पूरा। उ०—ज्ञान अखंड एक  
सीतावर। मायावस्य जीव सचराचर।—मानस, ७।७८। २  
जिसका क्रम या सिलसिला न टूटे। जो बीच में न रुके।  
लगातार। अनवरत। उ०—जहाँ अखंड शांति रहती है वहाँ  
११

सदा स्वच्छ रहें।—प्रेम०, पृ० ३२। ३ निर्विघ्न। बेरोक।  
उ०—रावन क्रोध अनल निज स्वांस समीर प्रचंड। जरत  
विभीषन राखेउ दीन्हैउ राज अखंड।—मानस, ५।४६।  
यौ०—अखंड ऐश्वर्य। अखंड कीर्ति। अखंड पुण्य। अखंड  
प्रताप। अखंड यश। अखंड राज्य। अखंड वृष्टि।  
अखंड द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अखण्डद्वादशी। अग्रहन सुदी द्वादशी।  
मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की बारहवीं तिथि [को०]।  
अखंडधार—संज्ञा पुं० [सं०] अखण्डधार। न टूटनेवाली धार। झड़ी।  
लगातार वृष्टि। उ०—सलिल अखंडधार धर टूटत किए इद्र  
मन सागर।—सूर०, १०।८५८।  
अखंडन<sup>१</sup>—वि० [सं०] अखण्डन। १ खंडित न होनेवाला। अखंडनीय।  
२ समग्र। पूर्ण। ३ अखंडित। अविच्छिन्न [को०]।  
अखंडन<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ विरोध का अभाव। अविरोध। २ काल।  
समय। ३ परमात्मा। ४ खंडन न करना [को०]।  
अखंडनीय—वि० [सं०] अखण्डनीय। १ जिसके टुकड़े न हों सकें।  
जिसका खंड न हो सके। जो काटा न जा सके। २ जिसके  
विरुद्ध न कहा जा सके। पुष्ट। अकाट्य।  
अखंडपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] अखण्ड+पाठ। वह पाठ जो बिना क्रम  
टूटे लगातार चले।  
अखंडर(गु)—संज्ञा पुं० [सं०] अखण्डल। इद्र। सुरपति। उ०—नहिं  
सुमत वंमास राय गोयद अखंडर।—पृ० २०, ६६। २३८।  
अखंडल<sup>१</sup>(गु)—वि० [सं०] अखण्ड+हिं ल (प्रत्य०)। १ अखंड।  
अटूट। अविच्छिन्न। उ०—मनु नखत मडल में अखंडल पूर्ण  
चंद्र सुहाय।—रघुनाथ (शब्द०) २ समूचा। संपूर्ण।  
पूरा। उ०—तवा सो तपत घरा मडल अखंडल श्री मारतड  
मडल हवा सो होत भोर तैं।—वेनी (शब्द०)।  
अखंडल<sup>२</sup>(गु)—संज्ञा पुं० [सं०] अखण्डल; प्रा० अखंडल। इद्र।  
सुरपति। उ०—जाय वृजमडल के बीच में अखंडल हूँ मरजी  
तिहारी मानि रह्यो बहु भाँति हैं।—दीन० ग्र०, पृ० ६०।  
अखंड सौभाग्य—संज्ञा पुं० [सं०] अखंड+सौभाग्य। जीवन पर्यंत  
स्त्रियों के अविधवा होने का सौभाग्य। जीवन पर्यंत अविधवा  
रहने की स्थिति [को०]।  
अखंड सौभाग्यवती—वि० [सं०] अखण्ड+सौभाग्यवती। जीवन पर्यंत  
सुहागिनी रहनेवाली [को०]।  
अखंडा द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अखण्डा द्वादशी। अग्रहन सुदी द्वादशी  
दे० 'अखंडद्वादशी' [को०]।  
अखंडानंद—वि० [सं०] अखंड+आनंद। पूर्ण आनंदस्वरूप। उ०—  
जदपि अखंडानंद नदनदन ईश्वर हरि।—नंद० प्र०, पृ० ४६।  
अखंडित—वि० [सं०] अखण्डित। जिसके टुकड़े न हों। विभाग-  
रहित। अविच्छिन्न। उ०—सोई सर्वज्ञ तज्ञ सोई पंडित।  
सोई गूढ विज्ञान अखंडित।—मानस, ७।४६। २ संपूर्ण।  
समूचा। पूरा। परिपूर्ण। उ०—वे हरि सकल टीर के वासी।  
पूरन ब्रह्म अखंडित मंडित पंडित मुनिन विलासी।  
—सूर०, १०।३०६६। जिसमें कोई रुकावट न हो। बाधा-  
रहित। निविघ्न, जैसे—उसका व्रत अखंडित रहा (शब्द०)।

उ०—मुआ अमीस दीन्ह वड साजू । वड परताप अखडित राजू ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३२। ४ लगातार । अनवरत । सिलसिलेवार । उ०—(क) धार अखडित वरमत भर झर । कहत मेघ घावहु ब्रज गिरिवर ।—सूर०, १०।६३६ । (ख) उमडी अखियान अखडित धार ।—कोई कवि (शब्द०) ।

अख—सज्ञा पु० [ देश० ] बाग । दगीचा ( डि० ) ।

अखगर—सज्ञा पु० [ फा० अखगर ] चिनगारी । अग्निकण । स्फुलिंग । उ०—अखगर को छिपा राख मे मैं देख के समझा । 'तावाँ' तो तहे खाक भी जलता ही रहेगा ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २१८ ।

अखगरिया—सज्ञा पु० [ फा० अखगर + हि० इया (प्रत्य०) ] वह घोडा जिसके बदन से मलते वक्त चिनगारी निकलती है ।

विशेष—अस्वशास्त्र या शालिहोत्र के अनुसार ऐसी घोडा ऐसी समझा जाता है ।

अखज<sup>१</sup>—वि० [ सं० अखाद्य; प्रा० अखज्ज ] १ न खाने योग्य । अभक्ष्य । उ०—भूख मारत ततकाल ध्यान मुनिवर सो धारत । बिहरत पख फुलाय नहीं खज अखज विचारत ।—दीन० ग्रं०, पृ० २०६ । २ निष्कट । बुरा । खराब । उ०—वैरागी अस चारु बतार्के । तजे अखज तब हस कहाँ ।—कबीर सा०, पृ० २२१ ।

अखट्ट<sup>२</sup>—सज्ञा पु० [ सं० ] प्रिशाल का पेड [ को० ] ।

अखट्टि—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ अशिष्ट व्यवहार । २ बचपन की बात [ को० ] ।

अखडा<sup>३</sup>—सज्ञा पु० [ सं० अखात ] ताल के बीच का गडहा जिसमें मछलियाँ पकड़ी जाती हैं । चँदवा ।

अखडैत<sup>४</sup>—सज्ञा पु० [ हि० अखाड़ा + ऐत (प्रत्य०) ] मल्ल । पहलवान । घलवान पुरुष । उ०—जंगा जीत तपोबल जालम ओप वडे अखडैत ।—रघु० ६०, ६२ ।

अखडैत<sup>५</sup>—वि० अखाडा में कुश्ती लड़नेवाला जोर करनेवाला । अखाडिया ।

अखत—वि० [ सं० अक्षत ] बिना टूटा हुआ । अक्षत । सपूर्ण । समग्र । उ०—गिराजे सद ज्यागी जिंदगाणी, उमै विरद धरियाँ अखत ।—रघु० ६०, पृ० २४ ।

अखतियार<sup>६</sup>—सज्ञा पु० [ अ० इक्षतयार ] दे० 'इक्षितयार' उ०—अब नाटक करनेवालों को अखतियार है कि सब नाटक हिंदी भाषा में करें चाहे हिंदी, उर्दू, मारवाडी और ब्रजभाषा में करें ।—श्रीनिवास ग्रं० (नि०), पृ० १० ।

अखती<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० अक्षय तृतीया, प्रा० अखय—तइया, तं य ] अक्षय तृतीया । उ०—अखती की तीज तजवीज के सहेली जूरी, वर के निकट ठाढी भावते को घेर के । ठाकुर०, पृ० १७ ।

अखतीज—सज्ञा स्त्री० [ सं० अक्षय तृतीया, प्रा० अखय—तइया, तीय ] अक्षय तृतीया, । आखातीज ।

अखत्यार<sup>८</sup>—सज्ञा पु० [ हि० ] दे० 'इक्षितयार' । उ०—'हम तो आज्ञा-कारिणी दासी ठहरी, हमारो का अखत्यार है' ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४४७ ।

अखनकुमारी<sup>९</sup>—वि० स्त्री० [ सं० अक्षत, अक्षय + कुमारीका ] अक्षत कुमारी । जिसका कौमार्य भग्न न हुआ हो । उ०—सुंदर सवही सौ मिली कन्या अखनकुमारि । वेश्या फिर पतिव्रत लियो भई सुहागनि नारि ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७५५ ।

अखना<sup>१०</sup>—क्रि० सं० [ हि० ] दे० 'आखना' । उ०—आद चरण की कला अठारह अरट गीत कवि मूढ अखे ।—रघु० ६०, पृ० ६२ ।

अखनी—सज्ञा स्त्री० [ अ० यखनी ] मास का रसा । शोरवा । उ०—अपनी बटि कामति मास परे । हठिवास सुवासिनी प्राप्त भरे ।—पृ० रा०, ६३।१०० ।

अखवार—सज्ञा पु० [ अ० खवर का बहु० ] १ समाचारपत्र । सवाब पत्र । उ०—खीचो न कमानी का न तलवार निकालो । जब तोप मुकानिल है तो अखवार निकालो ।—कविता को० भा० ४, पृ० ६२० । २ 'दे० 'खवर' । उ०—होगे हम तोब में बहुत अखवार । कुछ मैं लिखता हूँ उनसेत यार ।—दखिनी०, पृ० २१८ ।

अखवारनवीस—सज्ञा पु० [ अ० अखवार, फा० नवीस ] वह जो समाचार लिखता हो । समाचारलेखक । समाचारपत्र संपादक । पत्रकार ।

अखवारनवीसी—सज्ञा स्त्री० [ अ० अखवार + फा० नवीसी ] अखवारनवीस का काम । पत्रकारिता [ को० ] ।

अखवारी—वि० [ अ० अखवार + हि० ई (प्रत्य०) ] अखवार सवधी । अखवार का [ को० ] ।

अखय<sup>११</sup>—वि० [ सं० अक्षय, प्रा० अखय ] जिसका क्षय न हो । न छीजनेवाला । अविनाशी । नित्य । चिरस्थायी । उ०—खसमहि छोडि छेम हूँ रहई । होय अखीन अखय पद गहई ।—बदौर (शब्द०) ।

अखयकुमारी<sup>१२</sup>—वि० स्त्री० [ सं० अक्षयकुमारी ] दे० 'अखनकुमारी' । उ०—माह मास सीय पडे अति सार । समजती धन अखय कुमारि ।—वी० रासो० पृ० २१ ।

अखयवट<sup>१३</sup>—सज्ञा पु० [ सं० अक्षयवट ] दे० 'अक्षयवट' । उ०—सगम सिधासन सुठि सोहा । छव अखयवट मुनि मन मोहा ।—मानस, २।१०५ ।

अखर<sup>१४</sup>—सज्ञा पु० [ सं० अक्षर; पा०, प्रा० अखर ] अक्षर । वर्ण । हर्फ । उ०—मद प अखर ए मध्य तज भट क अत मत आण ।—रघु० ६०, पृ० ८ ।

अखर<sup>१५</sup>—वि० दे० 'अक्षर' ।

अखर<sup>१६</sup>—सज्ञा स्त्री० [ हि० अखरना ] अखरने का भाव या स्थिति । उ०—'हाँ, सड़क खोलकर लाना कोई कठिन काम नहीं । अखर तो उसे होती है जिसे कुआँ खोदना पड़ता है ।—काया०, पृ० ३० ।

अखरताली<sup>१७</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० अक्षर + तल ] हस्ताक्षर । हस्तलेख । अखरना—क्रि० अ० [ सं० खर = तीव्र, कट ] १ दुखदाई होना । काटकर होना । उ०—चहवह चिरी धुनि कहकह केकिन की घहघह घनसोर मुनते अखरिहै ।—अखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २२६ । २ बुरा लगना । खलना । उ०—'चिट्ठी लगाना सत्तीदीन की स्त्री को अखरता ।—बिखे०, पृ० १६ ।

अखरा<sup>१</sup> (७) — वि० [ सं० अ = नहीं + खरा = सच्चा ] जो खरा या सच्चा न हो। भूठा। कानून। वनावटी। उ० — खरा विलासिनी ती के जपे अखरा अखरा नखरा अखरा के। — पद्याकर ( शब्द० ) ।

अखरा<sup>२</sup> (७) — सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अक्षर ] वर्ण। अक्षर। हरफ। उ० (क) — नीते कौन, कौन अखरा की रेफ, कंकै, कहै कहै कर मीत राखै कहा कहि छाप दम। — भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १६६। (ख) रसर्वत कवितन का रस ज्यो अखरान के ऊपर ह्वै चलके। — काई कवि ( शब्द० ) ।

अखरा<sup>३</sup> (७) — सञ्ज्ञा पुं० [ देश० ] बिना कुटे हुए जी का भूसी मिला आटा जिसे गरीब लोग खाते हैं।

अखरावट — सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अक्षरावलि, अक्षरावर्त ] १. वर्णमाला। अक्षरसमूह। २. वर्णानुक्रम के आधार पर निर्मित पद्यसमूह, जैसे जायसी का अखरावट।

अखरावटी (७) — सञ्ज्ञा स्त्री० [ हि० अखरावट + ई ( प्रत्य० ) ] दे० 'अक्षरोटी'—१। उ० — पठित पढ अखरावटी टूटा जोरेहु देखि। — जायसी ग्र०, ३०३।

अखरावलि (७) — सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० अक्षरावलि ] अक्षरपक्ति। उ० — प्रकटित पृथिवी पृथु मुख पवज अखरावलि मिथि थाड एकत्र। — वेनि०, दू० २६३।

अखरोट<sup>१</sup> (७) — सञ्ज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'अखरावट'—१। उ० — पुणज, सुध अखराट पिण अँ दस दाप अगाध। — रघु० ६०, पृ० १३।

अखरोट<sup>२</sup> — सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अक्षोट, प्रा० 'अखोड' ] एक वृक्ष के ऊँचा पेड़ जो हिमालय पर भूटान से लेकर कश्मीर और अफगानिस्तान तक होता है।

विशेष — खासिया की पहाडियों तथा अन्य स्थानों पर भी यह लगाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत ही अच्छी, मजबूत और भूरे रंग की होती है और उसपर बहुत सुंदर धारिया पड़ी होती है। इसकी मेज, कुर्सी, बंदूक के कुदे, सड़क आदि बनते हैं। इसकी छाल रंगने और दवा के काम में भी आती है। इसका फल श्रंखकार, बड़े-बड़े के समान होता है। सूखने पर इसका छिलका बहुत बड़ा हो जाता है जिसके भीतर से टेढ़ा भेड़ा गूदा निकलती गरी निकलती है। गूदे में से तेल भी बहुत निकलता है। ठठल और पत्तियों को गाय बैल खाते हैं। अखरोट बहुत गर्म होता है।

अखरोट जगली — सञ्ज्ञा पुं० [ हि० ] जायफल।

अखरोटी — सञ्ज्ञा स्त्री० [ हि० ] दे० 'अखरावटी'।

अखर्व — वि० [ सं० ] १. जो छंटा न हो। बड़ा। लंबा। २. जो क्षुद्र या बीना न हो [को०]।

अखर्वा — सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० ] एक प्रकार का पीछा [को०]।

अखल — सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] गुणी एवं अच्छा वैद्य या डाक्टर [को०]।

अखलाक — सञ्ज्ञा पुं० [ अ० अखलाक ] १. सदाचार। उत्तम आचार। २. सुजनता। शिष्टता [को०]।

अखलि — वि० [ देश० अखलिय ] अकुल व्याकुल। उ० — दुतिया है कुल उधरन धीर, उनमन मनवाई अखलि सरीर। — गोरख०, पृ० १८१।

अखसत — सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अखसत ] चाबल ( हि० ) ।

अखांगना<sup>१</sup> (७) — कि० सं० [ हि० खांगना ] मारना। उ० — कहै पदमाकर अखांग्यो तुम लकपति। — पदमाकर ग्र०, पृ० २४८।

अखांगना<sup>२</sup> (७) — कि० सं० [ सं० अ = नहीं + हि० खांग = कमी, दुष्टि ] दुष्टि न करना। कोताही या कमी न करना। उ० — हमहूँ कलकपति हूँ वोई अखांग्यो है। — पदमाकर ग्र०, पृ० २४८।

अखा<sup>३</sup> — सञ्ज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'आखा'।

अखाज (७) — वि० [ हि० ] दे० 'अखाद्य'। उ० — गम्य अगम्य विचार न करही, खाज अखाज नही चित धरही। — कवीर सा०, पृ० ४६४।

अखाड (७) — सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अखाडा'। उ० — छुद्र घटि मोहहि नर राजा। इद्र अखाड आइ जनु साजा। — जायसी ग्र०, पृ० ४७।

अखाड़ा — सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अक्षवाट; प्रा० अक्षवाड्य ] १. वह स्थान जो मल्लयुद्ध के लिये बना हो। कुश्ती लड़ने या बसुरत करने के लिये बनाई हुई चौखंडी जगह जहाँ की भिट्टी खोदकर मुलायम कर दी जाती है। मल्लशाला। उ० — 'चौदह पंद्रह साल के लड़के अखाड़ा गोड चुके थे छप्पर की धूनियाँ पकड़े हुए बंठकर रह रहे थे'। — काले०, पृ० ३। २. साधुओं की सांप्रदायिक मठली। जमायत, जैसे — निरजनी अखाड़ा, निर्वाणी अखाड़ा, पचायती, अखाड़ा। ३. साधुओं के रहने का स्थान। सतों का अड्डा। ४. तमाशा दिखानेवालों और गाने-बजाने वालों की मठली। जमायत। जमावड़ा। दल, जैसे — 'आज पटेवाजों के दो अखाड़े निकले' ( शब्द० )। ५. सभा दरबार। मजलिस। ६. रंगभूमि। रंगशाला। परियों का अखाड़ा। नृत्यशाला। उ० — लड़ते हैं परियों से कुश्ती पहलवाने इश्क हैं, हमको नासिख राजा इंदर का अखाड़ा चाहिए। — बकिता को०, भा० ४, पृ० ३५४। ७. आंगन। मैदान।

मुहा० — अखाड़ा उखाड़ना = अखाड़े के काम में लोगों द्वारा रुचि न लेना। अखाड़ा न जमना। अखाड़ा गरम होना = अखाड़े में काफी लड़कों का आना या भीड़भाड़ होना। अखाड़ा जमना = १. अखाड़े का काम ठीक ढंग से होना। २. अखाड़े में शामिल होनेवाले आँग दर्शकों की चहल पहल होना। ३. किसी जगह बहुत से आदमियों का इकट्ठा होना। ४. किसी मजलिस, सभा या गोष्ठी में चहल पहल रहना। अखाड़ा न लगना = अखाड़े का काम न होना। अखाड़ा बंद रहना। उ० — 'और लड़कों को समझा दिया कि कोई आवे तो वह दे कि अखाड़ा न लगेगा'। — काले०, पृ० २७। अखाड़ा निकलना = अखाड़े से सबद्ध लोगों का सामूहिक रूप में निकलना। अखाड़ा बटना = चुनौती देना। ललकारना। अखाड़ा लगना = दे० 'अखाड़ा जमना'। अखाड़े का जवान = कुश्ती या बसुरत से पुष्ट शरीर का व्यक्ति। अखाड़े में आना = लड़ने के लिये सामने आना। अखाड़े में उतरना = दे० 'अखाड़े में आना'।

अखाडिया<sup>१</sup> — वि० [ हि० अखाड़ा + इया ( प्रत्य० ) ] १. अखाड़े के कामों में सधा हुआ। दगरी पहलवान। २. केवल खाड अखाड़े में ही लड़नेवाला। दंगल में न लड़नेवाला। ३. किसी विषय के ज्ञान में बेजाड़।

अखाडिया<sup>२</sup> — सञ्ज्ञा पुं० कुश्ती लड़नेवाला पहलवान।

अखाट<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपाठ' । उ०—मास अखाट उत्पन्न नवमेघ —विद्यापति, पृ० १३१ ।

अखात<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [पुं०] १ बिना खोदा हुआ स्वाभाविक जलाशय । ताल । झील । २ खाड़ी । ३ मनुष्य द्वारा निर्मित जलाशय [को०] ।

अखात<sup>३</sup>—वि० बिना खोदा हुआ [को०] ।

अखाद<sup>४</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अखाद्य' । उ०—खाद अखाद न छाँडे अब लौं सब मैं साधु कहाँ ।—सूर०, १।१८६ ।

अखाद्य—वि० [सं०] १ न खाने योग्य । अभक्ष्य, जैसे, गामास आदि । २ खाने की वस्तु से भिन्न (को०) ।

अखाधि<sup>५</sup>—वि० [अखाद्य, प्रा० अखादिम] दे० 'अखाद्य' । उ०—की ब्रह्म ज्ञान होये मेधुन मथन करे खाधि अखाधि सनचारा ।—सं० दरिया, पृ० १२१ ।

अखानी—संज्ञा स्त्री० [सं० अखान + हिं० ई (प्रत्य०)] एक टेढ़ी छड़ी या लकड़ी जिससे दौरी या गल्ला पीटने के समय खेत से कटकर आए हुए ढल्लो को बीच में करते जाते हैं ।

अखार<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, प्रा०, प्रा० अखर = घुरो + हिं० आर (प्रत्य०)] मिट्टी का छोटा सा लोदा जिसे कुम्हार लाग चाक के बीच में रख देते हैं और जिसपर थोड़ा रखकर नरिया उतारते हैं ।

अखार<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [हिं० अखाडा] दे० 'अखाडा' उ०—नट नाटक पतुरिन ओ बाजा । आनि अखार सब तहँ साजा ।—पदमावत, पृ० ६०१ ।

अखारना<sup>३</sup>—क्रि० सं० [सं० अक्षालन] चारों ओर से अच्छी तरह घेरना; जैसे अखारना, पखारना ।

अखारा<sup>४</sup>—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अखाडा' । उ०—तहाँ देखि आसरा अखारा । नृपति कछू नहिं वचन उचारा ।—सूर०, ६।४ ।

अखित<sup>५</sup>—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षत' । उ०—दिय अखित संस केदार साज ।—पृ० रा०, ५८६१ ।

अखिद्र—वि० [सं०] जो थका न हो । खेदरहित [को०] ।

अखिन्न—वि० [सं०] १ खिन्नतरहित । खेदविहीन । उ०—सकेत किया मैंने अखिन्न जिस ओर कुडली छिन्न भिन्न ।—अनामिका, पृ० १२५ । २ श्लेशरहित । दुःखरहित । ३ प्रसन्न । विमल । उ०—तेहिं प्रौढोक्ति कहै सदा जिन्ह की बुद्धि अखिन्न ।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ४६।४ अश्रात । अक्लान (को०) ।

अखियात<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० आख्यात] आश्चर्य । अचभा । उ०—ए अखियात जु आउधि आउध, सजै रकम हरि छेद सोजि ।—वेलि०, दू० १३३ ।

अखियात<sup>२</sup>—वि० १ प्रसिद्ध । आख्यात । उ०—अखियातों बातों वचै जरा काल डर छड्ड ।—बाँकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ४६ । २ समग्र । सब । संपूर्ण । उ०—रिया पहियाँ ध्रम राख अर्भंग अखियात उचारै ।—रा०, पृ० ३८ । ३ दे० 'अक्षय' उ०—पात सुजस अखियात पयप दातव असमर वात दुवै ।—रघु०, पृ० १६ ।

अखिर<sup>३</sup>—वि० [सं० अक्षर, प्रा० अखर, पु० अखिर + हिं० ई (प्रत्य०)] अक्षरवाला । आखर । उ०—प्यड ब्रह्मांड सम तुलि ग्यापीले, एक अखिरी हम गुरुमुनि जाँसी ।—गोरख०, पृ० १०१ ।

अखिल—वि० [सं०] १. संपूर्ण । समग्र । विलकुल । पूरा । सब । उ०—अखिल विश्व यह मार उपाया ।—मानस, ७।८७ । २ सर्वांगपूर्ण । अखंड । उ०—तुमही ब्रह्म अखिल अविनाशी भक्तन सदा सहाय ।—सूर (शब्द०) । ३ जो अकृष्ट या बिना जोता हुआ न हो । खेती के योग्य (को०) ।

यी०—अखिल विग्रह = समग्र विश्व जिसका शरीर हो, ईश्वर । अखिलात्मा—संज्ञा पुं० [सं०] समग्र विश्व जिसकी आत्मा हो । विश्वात्मा । ब्रह्म [को०] ।

अखिलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वनसरति । करंली [को०] ।

अखिलेश—संज्ञा पुं० [सं०] समग्र सृष्टि का स्वामी । ईश्वर [को०] ।

अखिलेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अखिलेश' । उ०—मग सती जग जननी भवानी । पूजे गिपि अखिलेश्वर जानी ।—मानस, १।४८ ।

अखीन<sup>१</sup>—वि० [सं० अक्षीण, अखीण] न छँजनेवाला । न घटनेवाला । चिरस्थायी । अविनाश । नित्य । स्थिर । उ०—खसमहि छोडि छेम हूँ रहई । हाय अखीन परमपद गहई ।—कवीर (शब्द०) ।

अखीर<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [अ० अखीर] १. अंत । छोर । २ समाप्ति । अखीर—वि० खत्म । समाप्त । उ०—अखीर हाँ गए गफलत मे दिन जवानों के, दहारे उअरुइ बच धिजाँ नहीं मालूम ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ३८० ।

अखीरी<sup>३</sup>—वि० [अ० अखीर + ई (प्रत्य०)] दे० 'अखिरी' । अखीरी<sup>४</sup>—वि० [हिं०] १. 'अखिरी' । उ०—एक अखीरी एककार जपीला, सुनि अस्थूल दोइ बाँगी ।—गोरख०, १०१ ।

अखुटना<sup>५</sup>—क्रि० प्र० [सं० अ + √क्षोट (क्षेप), प्रा० अ + क्षोट खट (ला०) अथवा देश०] लडखडाना । उ०—अखुटत परत सु विहवल भयो, डरत डरत सूती गृह गयो ।—नद०, प्र०, पृ० २३१ ।

अखुटित<sup>६</sup>—वि० [सं० अ + कुण्ड, प्रा० अ + कुण्ड, अथवा सं० अ = नहीं + √क्षोट = क्षय, प्रा० अ + अखोट > अखुट + इत (प्रत्य०)] लगातार । अनवरत । निरंतर । उ०—अखुटित रटत सभीत ससकित, सुकृत शब्द नहिं पावै ।—सूर०, १।४८ ।

अखूट—वि० [सं० अ + √खुट = तोड़ना अथवा सं० अ + अखोट, प्रा० अ + अखुट, अखुट > अखूट] १ जो तोड़ा या खंडित न किया जा सके । अटूट । उ०—सात दीप सात सधु थरक थरक करै जाकै डर टूटत अखूट गढ राना के ।—अकबरी०, पृ० १४३ । २ जो न घटे या न चुके । अखंड । अक्षय । बहुत । अधिक । उ०—(क) नेना प्रतिही लोभ भरे । सगहिं सग रहत वं जहँ तहँ बैठत चलत खरे । काहू की परतीति न मानत जानत सबहिनि चोर । लूटत रूप अखूट दाम को स्याम वस्य यों भोर ।—सूर०, १०।२८८४ । (ख) झूठ न कहिए साँच को साँच न कहिए झूठ । साहब तो मानै नहीं लागे पाप अखूट ।—दादू (शब्द०) ।

अखेट<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [सं० आखेट] दे० 'आखेट' । उ०—मक्की कहै अखेट सो करे, विषय भोग जीवन सहरे ।—सूर०, ४।१२ ।

अखेटक<sup>८</sup>—संज्ञा पुं० [सं० आखेटक] दे० 'आखेटक' । उ०—(क) एक दिवस को अखेटक गयो, जाइ अक्का बन तिय भयो ।—सूर०, ६।२ । (ख) एक दिन राव अखेटक चढ़यो, बिरही भूग भारत रिस भरयो ।—नद०, प्र०, पृ० १४० ।

अष्टोत्तरी (७) -- वि० [ द्वि० अष्टोत्तरी + टि (प्रत्यय) ] निराश्रितः । घट्टी ।  
 अष्टोत्तरी । २० -- पेट को पदत, गून गहन, घटा गिरि, अष्ट गहन  
 वन घटन अष्टोत्तरी । -- तुलसी प्र०, पृ० २८० ।

ग्रन्थोपलब्धि—संख्या पु० [ म० ग्रन्थोपलब्धि ] १ शिक्षा विभाग, वृत्ता ।  
२. गोरख भी वृत्त [फो०] ।

अतः--सुखा पु० [ सं० ] दुःख का अभाव । प्रसन्नता । निर्विद्वता ।

अग्नेवेद—विं दुधरहितः । प्रमत्तः । क्षपितः । उ०—११ हस्ता  
 वरतार प्रभु वारणा करन अग्ने । यह द्विवात्रि नष्टेपान के मन  
 उपज्यो निरवेदः—हृत्भीर०, पृ० ६८ ।

अग्नेदिक्त्व--सप्ता प्र० [ २० ] जैन मत में अग्नितात्त्विक आध्यात्मिक होने का  
वाणी का एक मूल सिद्धांत है।

अग्नेदी—वि० । म० ] वनातिग्रहित । प्रयुक्त [ लो० ] ।

प्रखेलत(प्र)-वि० [ सं० प्र + खेल = खेलना = घिना खेलते हुए ] १  
 प्रखल । प्रखोल । भारी । २ प्रालम्ब्य भरा वर्तिता ।  
 उ०--भारी रम नीचे भाग भागित भूजन भरे, भावते सुम उ  
 उपभोग रम मोहने । खेलत ही खेलत प्रखेलत ही प्रखित मो  
 विनविन घिन हूँ खरे ही विन छोड़ने ।-देव ( प्रव० ) ।

अलं०—वि० [ सं० अक्षय, पा०, प्रा० अक्षय ] अक्षय । अविनाशी ।  
उ०—मन मग्न हृत्तीं म्लिष्ट हृदय लूटि नें अपै भटार ।  
—गोरख०, प० २७ ।

यो०--अखण्ड = निर्वाण । अखण्डपुर = ईश्वर । अखण्ड, अखि-  
पर = प्रदीपवत् ।

अग्नि तीज ॐ—सप्त स्त्री० [ स० अक्षय तृतीया । अग्नी की तीज ।  
अक्षय तृतीया । उ०—अग्ने तीज त्विषि के दिना गुरु हवै  
सज्जत । तर्ग भाग्ये यो अह्नी निपजै नाज बहूत ।—प प०,  
पृ० १४५ ।

अखंती—एक स्त्री [ सं. अखान ] चार पाँच पाय लंबी चाँगी लम्बी जिसके एक छोर पर एक टेढ़ी छेटी लकड़ी बोध गी तरह बंधी होती है । यहिान में जब अनाज बटमर आता है तब इसी से उलट फेरकर उसे मुरते हैं । अखंती ।

अखैवट(५)--सहा पु. [हि०] दे० 'अक्षायवट' उ०--सु अखैवट बीज  
नो फल पत्थो बनगाली वहाँ धो रमये कले --पमाने,  
प० ११४।

अथर्वरतः--सह पुं० [ न० अक्षयवट, प्रा० अणयवट ] अक्षयवट ।

प्रखंड (५) - सभा पुं [ हि० ] दे० प्रखंड । उ० - नयन प्रखंड  
विग्रह, प्रखंड नागर विग्रह सोम । - ग० १०, पृ० ५३ ।

अष्टौ--विं। मं। मं। १५/१००, प्रां. १००] ५. १००। १००।  
 निम्न। १००--१००। १००। १००। १००। १००। १००। १००। १००।  
 तन्नि विरल से दुर्गम को' कर करोज की मं १०० -- १००। १००।  
 १०० २००।

प्रयोरं (७) -- वि [ हिं स = नृ + कां प्रयोर ] १. प्रयोर । सत् ।  
गजजन । २. सुदर । गहरपवान । ३. दुरार्द्र से वषा द्रुमा ।  
निदोष । योग्य ।

अधोरः—वि० [ पा० अधोर ] निवन्ना • कुण्ड । युग । सद्यः सा ।  
अधोर ।

अथोदरः—संज्ञा पुं० १. जडा कण्ठस्थः । निरन्तरां खल्ल, अर्धे—यस्य  
 का पश्चात् वाङ्मय से उदात्तः ।—(संज्ञा०) । २. अन्तर-  
 याम । मृगमांसं याम । पुनः पश्चात् । निरन्तरां । अन्तर-  
 यामोदरं पुनः निरन्तरं, यामं यामं ३ । अर्धे निरन्तरं ।—  
 यामं (संज्ञा०) ।

अखिल (७) — [ १० घ = गरी + पोतस ] जिसे गरीय तला  
 मये । यसा दुषा । ६३ । ७० — यसा जगत यतिभि  
 बोन् । यसा येति तमान यतिभि । सुमुद्रयत् ॥ १०० — दुषा  
 - १०१२१३३ ।

अत्रोला—म पु० [ हि० ] दे० 'अत्रोला'

अग्रोह—सप्त पु० [ ग० शोभ = प्रमत्तता ] ऊँ नमो भूमि ।  
ऊँ नमो भूमि ।

अंगुली—मं० पृ० [ मं० प्र०, पा० प्र० ] अक्षर = घृष्ट + हि० श्रोत्र  
(प्रथम) ] १. मीना या चक्री के बीच की छोटें जिनपर डगर  
का पाट घुसता है अति की बिस्तरा । २. कपली या चक्री का  
टहरा जिनपर गहरा, घुसती है ।

पञ्चम्या--सप्तम्या गुरु [ हि० ] दे० 'पञ्चम' ।

असुगना(पु) -प्रि० स० [ हि० ] ३० 'असुगना' ।

मदखर--सभा० पृ० [ म० प्रकाश; प्रा० प्रकाश ] प्रकाश. हयक।  
यहाँ। उ०--एक प्रकाश पीव का म० म० कनि जाति।  
राम नाम सतगुरु बख्श दाद म० परमात्मा।--दाद०,  
भा० १, प० २२।

अथवाह--अथ० । अ० अथवाह--अथवाह । उरुं वा अथवाह  
 अथ० । उ०--अथवाह । अथ० अथवाह । अथ० अथ  
 अथ० अथ० । --(अथ०) ।

विशेष—जब एक रंगिता किसी से नरकता मिलता है, तब उससे स्वभावविरुद्ध काम करते-भगता है। तब हम मन्द का प्रयोग करता है। जंगल में दूध पागम पाता या बिना दूध 'महा' मन्द का स्फार है।

अष्टिखण्ड—समाप्तं [दि०] द० अष्टारं । ८०—३ तेषु मृ  
 ष्टिखरा त्रिणि सप्त सृष्टि सृष्टि मय ।—अर्चन य०,  
 ५० ३२ ।

अदखी ७—महा २० [ ति० ] दे० अमर । उ०—दक्षिण सुदिग्ग  
तु प्रायः । महा मना प्रायः दक्षिण ।—३० गो. ५६ ।

अथ—महापु० [ ४० अथ ] ॥ १॥ ॥ १॥

क्रि० प्र०--वरना=५. तिना । पक्ष वरना । ६. तिथि  
निर्वाण । मध्यम तिथि ।

मदतपार-—महा पू० [ म० इतिपार ] दे० 'मदितपार' । उ०—  
मिन्न को तुलमे नि पा मेम देकरात । तुलमे मिन्न न  
मिन्न मे लेग मरणात ।—गी०, म० ५, पृ० ३६३ ।

[illegible]

मुह०--आप रक्षयः = अमृतमयः । अक्षयः सुखः । अक्षयः  
वि. मयः ।



अख्तरशुमार—संज्ञा पुं० [ फा० अख्तरशुमार ] नक्षत्रों की विद्या का जानकार। ज्यातिपी [ को० ]।

अख्तरशुमारी—संज्ञा स्त्री० [ फा० अख्तरशुमारी ] १ नक्षत्रगणना की विद्या। २ ग्य जानने की विद्या २ आसमान से तारों को गिन गिनकर रात काटना। वेचनी से रात काटना। उ०—शव उसने तोड़कर मोती के सुमरन मुकुंसे गिनवाए। दिखाया स्तल मे आलम नया अख्तरशुमारी का।—शेर०, भा० १, पृ० २१७।

अख्तावर—संज्ञा पुं० [ फा० अख्ता + वर (प्रत्य०) ] वह घोड़ा जिसे जन्म से ही अडकोश की कोड़ी न हाया कृत्रिम उपाय से नष्ट कर दी गई हो।

विशेष—जन्म से नपुंसक घोड़ा ऐवी समझा जाता है।

अख्तियार—संज्ञा पुं० [ हिं० ] दे० 'इक्षित्यार'। उ०—बुछ हाथ उठा के मँगन कुछ हाथ उठा के देख। फिर अख्तियार खातिरे वेपुद्ग्रा के देख।—शेर० भा० ४, पृ० ५८।

अख्तियार—संज्ञा पुं० [ हिं० ] दे० 'इक्षित्यार'। उ०—कीजे क्या हाली न कीजे सादगी गर अख्तियार। वालना आए न जव रगीं दयानो की तरह।—कविता को०, भा० ४, पृ० ५६६।

अख्यात—वि० [ सं० ] १ अप्रसिद्ध। अज्ञात। २ जिसे कोई जानता न हो। अविदित। ३ अख्यातियुक्त। अप्रतिष्ठित [ को० ]।

अख्याति—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अप्रसिद्धि। प्रसिद्धि का अभाव [को०]।

अख्यातिकर—वि० [ सं० ] १ अपमानकर। अप्रसिद्धि करनेवाला। अक्रातिकर। बदनामी फैलानेवाला।

अख्यान—संज्ञा पुं० [ सं० अख्यान; प्रा० अख्यान ] दे० 'आख्यान'। उ०—अव अख्यान बखानहूँ भुवन सिंह चौहान।—रामरसिक०, पृ० ६६६।

अख्यायिका—संज्ञा स्त्री० [ सं० अख्यायिका ] दे० 'आख्यायिका'।

अगज—वि० [ सं० अ = नहीं + गज ] न जीवा जानेवाला। अपराजेय। उ०—पत्रह सहस पसवान साहि। अगज अगज को सकी गाहि।—पृ० रा०, १३।१६।

अगड—संज्ञा पुं० [ सं० अगण्ड ] बिना हाथ पैर का कवच। घट जिसके हाथ पैर कट गए हो।

अगत—क्रि० वि० [ सं० अगत प्रा० अगत > अगत ] सामने। आगे। उ०—मेल्हन उजोर पहुँच्यो छुरत रनथभ कोट देख्यो अगत।—हस्मीर०, पृ० १७।

अगता—वि० [ सं० अगन्ता ] चलने या गमन न करनेवाला [को०]।

अगता—वि० [ सं० अग + गता ] १. आगे बढ़ा हुआ। अगाडी। २. पेशगी। अगता। अग्रिम।

अगध—वि० [ सं० अगन्ध ] गंधरहित। गंधहीन [ को० ]।

अग—वि० [ सं० ] १. न चलनेवाला। अचर। स्थावर। उ०—तब विपम माया वस सुरासुर नाग नर अगजग हरे।—मानस, ७।१३। २. टेढ़ा चलनेवाला। ३. पहुँच के बाहर। [ को० ]।

अग—संज्ञा पुं० १. पेड़। वृक्ष। २. पर्वत। पहाड़। उ०—गए पूरि सर घूरि भूरि भय अग यल जलधि समान।—तुलसी प्र०, पृ० ३८१। ३. पत्थर (को०)। ४. वृक्ष। पादप (को०)। ५. सूर्य

(को०)। ६. जलपात्र (को०)। ७. मात की सख्या का वाचक शब्द (को०)।

अग—वि० [ सं० अग ] अनजान। अनाडी। मूढ़।

अग—संज्ञा पुं० [ सं० अग ] शरीर। अग (हिं०)।

अग—संज्ञा पुं० [ सं० अग, प्रा० अग ] उख के मित्र पर का पतला भाग जिसमें गाँठ बहुत पास पास होती है और जिसका रस फीका होता है। अगोरा।

अग—क्रि० वि० [ हिं० ] दे० 'आगे'। उ०—मवन नव मत अग वरप दस तीय मत अग। पुत्र प्रविष्ट वीसल नरिंद राजत सयल जग।—पृ० रा०, १।४७२।

अगई—वि० [ सं० अग्रिम ] अगला। आगे का। अग्रिम। उ०—राजा पादुयो लाया हो व लार्दे। अगज दात वहाँ समकाय।—वी० रासा, पृ० ८६।

अगई—संज्ञा पुं० [ देश० ] चलता जाति का एक पेड़।

विशेष—यह अवध, बंगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास में बहुतायत से होता है। इसकी लकड़ी भीतर मर्फदा लिए हुए लाल रंग की होती है और जहाँजहाँ मकानों में लगती है। इसका कोयला भी बहुत अच्छा होता है। इसके पत्ते दो दो पुट लंबे होते हैं और पत्तन का भी काम देते हैं। इसकी कच्ची और कच्चे फलों की तरकारी भी बनती है।

अगच्छ—वि० [ सं० ] जा न चले। अगमनशील [को०]।

अगच्छ—संज्ञा पुं० वृक्ष। पेड़ [ को० ]।

अगज—वि० [ सं० ] पर्वत में उत्पन्न होनेवाला। २. वृक्ष से उत्पन्न (को०)। ३. पर्वतों पर घूमनेवाला। गिरिचर (को०)।

अगज—संज्ञा पुं० १. शिलाजीत। २. हार्य।

अगज—संज्ञा पुं० [ अ० अगज ] श्वेत रंग के सिरवाला अश्व। उ०—अवलक अदमर अगज सिराजी। चौधर चाल समुंद सब ताजी।—पदमावत, पृ० ५१६।

अगजग—संज्ञा पुं० [ सं० अग + जग ] चराचर। जड़ चेतन। उ०—अगजन उनका कण कण उनका पल भर वे निमम हो। भरते नित लोचन मेरे हो।—यामा, पृ० १८१।

अगजा—संज्ञा स्त्री० [ सं० अग = पर्वत + जा = पुत्री ] हिमालय की पुत्री, पार्वती [ को० ]।

अगट—संज्ञा पुं० [ देश० ] चिक या मांस बेचनेवाले की दूकान।

अगट—क्रि० अ० [ सं० एकत्र, एकस्य, प्रा० एकट्ट ] इकट्ठा होना। एकत्र होना। जमा होना।

अगड—संज्ञा पुं० [ सं० अगल, प्रा० अगल ] सिक्कड़ जिसमें हाथी बांधे जाते हैं। उ०—चिहूँ और हुरपी छुटे, परे अगड सुमार। गोला लग गिलोल गुरु छुटे तो इमरार।—पृ० रा०, ६।३२५।

अगड—संज्ञा पुं० [ हिं० अकड़ या अ० मा० अगड ] अकड़। ऐंठ। दर्प। उ०—सोभमान जग पर किए सरजा सिवा खुमान। साहिन सो विनु उर अगड विनु गुमान को दान।—भूषण (शब्द०)।

अगडघत्ता—वि० [ हिं० ] दे० 'अगडघत्ता'।

अगडघत्ता—वि० [ देशी ] १. लंबा तडगा। ऊँचा। २. अष्ट। बढ़ा। उ०—एक पेड़ अगडघत्ता। जिसमें जड़ न पसा।—पहेली [ उत्तर—अमरबेल ]।

अगडवगड<sup>१</sup>—वि० [ सं० अकृत + विकृत, प्रा० अकड + विकड, अगड विकड ] अड वड । वे सिर पैर का । ऊलजलूल । क्रमविहीन ।  
अगडवगड<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ अडवड वात । वे सिर पैर की वात । प्रलाप । २ अडवड काम । व्यर्थ का कार्य । अनुपयोगी कार्य ।  
उ०—‘वह दूकान पर नहीं बैठता, दिन रात अगडवगड किया करता है ( शब्द० ) ।

अगडम वगडम<sup>१</sup>—वि० [ हि० ] दे० ‘अगडवगड’ ।  
अगडम वगडम<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अकृतम् + विकृतम् अथवा अनु० ]  
१ दे० ‘अगडवगड’ । २ टूटे फूटे सामान और काठकवाड का ढेर ।

अगड़ा<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अकण अथवा देश० ] ज्वार वाजरा आदि अनाजों की दान जिसमें से दाना भाट लिया गया हो ।  
खुखडी । अखरा ।

अगड़ा<sup>२</sup>—वि० [ सं० अग्र, प्रा० अग्रता ] दे० ‘अगरा’, ‘अगला’ ।

अगड़ी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [ हि० ] दे० ‘अगरी २’ ।

अगण—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] अणुम गण । ब्रा गण ।

विशेष—पिंगल या छदशाम्बर में तीन तीन अक्षरों के जो आठ गण माने गए हैं, उनमें से चार अर्थात्—अगण, रगण, सगण और तगण अशुभ माने गए हैं और अगण कहलाते हैं । इनको कवितों के आदि में रखना बुरा समझा जाता । पर यह गणागण का दोष मात्रिक छंदों में ही माना जाता है, वर्ण वृत्तों में नहीं । उ०—इहाँ प्रयोजन गण, अगण और द्विगण को काहि ।—छंद०, पृ० ११० ।

अगणत<sup>१</sup>—वि० [ हि० ] दे० अगणित । उ०—हेक विदर पैदा हुवे अगणत मिलिया अम ।—वांकी० ग्र०, भा० २, पृ० ८५ ।

अगणन—वि० [ सं० ] असंख्य । अनगिनत । उ०—प्रलय के समय में जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता-लय होता है अगणन ब्रह्मांड आस करके ।  
—अनामिका, पृ० १०१ ।

अगणनीय—वि० [ सं० ] १ गिनने योग्य । सामान्य । २ अनगिनती । असंख्य । वेशुमार ।

अगणित—वि० [ सं० ] १ जिसकी गणना न हो । अनगिनत । असंख्य । वेशुमार । बहुत । बेहिसाब । अनेक । उ०—ऐसे ही अगणित दर्तों से तुम्हें जगत ने पाया है ।—साकेत, पृ० ३७० । २ जो गिना न गया हो । जो गिनती में न आया हो (को०) । ३ अपेक्षित । तुच्छ (को०) ।

अगणित प्रतियात—वि० [ सं० ] सूचना न प्राप्त होने के कारण या ध्यान आकृष्ट न होने के कारण वापस [ को० ] ।

अगणितलज्ज—वि० [ सं० ] लज्जा का ध्यान न रखनेवाला । निर्लज्ज (को०) ।

अगण्य—वि० [ सं० ] १ न गिनने योग्य । सामान्य । तुच्छ । २ असंख्य । वेशुमार । उ०—गूँजे गगनागण में ये अगण्य गान ।  
—गीतिका, पृ० ८७ ।

अगत<sup>१</sup>—वि० [ सं० अगति ] जहाँ गति न हो । अगम्य । उ०—(क) उनकी मेहर से वे मिले सब जो अगत गाईं जिनन ।—संत तुरसी०, पृ० ४३ ।

अगत<sup>२</sup>—अव्य० [ सं० अगत, प्रा० अगत ] आगे चलो । हाथियों को आगे वाढाने के लिये महावनों द्वारा प्रयुक्त शब्द । महावत लोग हाथी को आगे बढ़ाने के लिये ‘अगत’, ‘अगत’ कहते हैं ।

अगत<sup>३</sup>—वि० [ सं० अगति ] बुरी गति । दुर्दशा । दुर्गति ।  
उ०—मन प्रकार सुख शक्र लख जन रामा हरि दिन अगत ।—राम० धर्म, पृ० २४५ ।

अगता<sup>१</sup>—वि० [ सं० अगत ] १ आगे स्थित । अगाडी । उ०—बाएँ सो रहिने पीछे सोड अगता । अर्ध उर्ध सम घटत न बढ़ता ।—भीखा ण०, भा० ३, पृ० ४२ । २ अग्रिम । पेशगी ।

अगता<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ का० अगत् ] बधिया किया हुआ घोड़ा (को०) ।

अगति<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ बुरी गति । दुर्गति । दुर्दशा । दुरवस्था ।  
उ०—अधि-सिद्धि विधि चारि सुगति जा विनु गति अगति ।  
—तुलसी ग्र० पृ० ३६० ।

क्रि० प्र०—वरना ।—होना ।

२ गति का उलटा । मरने के पीछे शव की दाह आदि क्रिया का यथाविधि न होना । मृत्यु के पीछे की बुरी दशा । मोक्ष की अप्राप्ति । बधन । नरक । उ०—काल कर्म गति अगति जीव की मव हरि हाथ तुम्हारे ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—वरना उ०—कहो तो मारि सहारि निशाचर रावण कगे अगति को ।—सूर० (शब्द०) ।

३ स्थिर या अचल पदार्थ । केशव के अनुसार २८ वर्ण्य विषय हैं । इनमें से जो स्थिर या अचल हों उनकी अगति सञ्ज्ञा दी है, यथा—अगति िधु गिरि ताल तरु बापी कूप वखानि ।—केशव (शब्द०) । उ०—कौलों राखी थिर वपु, बापी कूप सर सम, हरि विनु कीन्हें बहु बसिर छतीत मैं ।—केशव (शब्द०) । ४ गति का अभाव । स्थिरता । उ०—न तो अगति ही है न गति आज किसी भी ओर, इस जीवन के शाड में रही एक भ्रमभोर ।—सकेत, पृ० २८६ । ५ पहुँच या सहायता की कमी (को०) । ६ पूर्णता का अभाव या कमी (को०) ।

अगतिक<sup>१</sup>—वि० १ जिसकी गति न हो । निरुपाय । अगतिक । उ०—इस पिता ही की चिंता के पाम, मुझ अगति को भी मिले चिरवास ।—साकेत, पृ० २०० । २ बिना सहायता का । असहाय (को०) ।

अगतिक—वि० [ सं० ] १ जिसकी कहीं गति या पैठ न हो । जिसे कहीं ठिकाना न हो । बेठिकाना । अशरण । अनाथ । निराश्रय । उ०—अगतिक की गति दीनदयाल ।—कोई कवि (शब्द०) । २ मरने पर जिसकी अत्येष्टि क्रिया आदि न हुई हो ।

अगतिकगति—वि० [ सं० ] गतिहीन या निरुपाय का अश्रय । अशरण शरण (भगवान्) [ को० ] ।

अगतिमय—[ वि० सं० अगति + मय ] गतिहीन । जड़ । उ०—अरे पुरातन अमृत अगतिमय मोह मुग्ध जर्जर अवसाद ।—कामायनी, पृ० १८ ।

अगती<sup>१</sup>—वि० [ सं० अगति ] १ जो गति या मोक्ष का अधिकारी न हो । बुरी गतिवाला । २ पापी । कुमार्गी । दुराचारी । कुकर्मों । ३ दे० ‘अगति’ ।

अगती<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० पापी मनुष्य। कुकर्मी या कुमार्गी व्यक्ति। पातकी मनुष्य। उ० (क) जय जय जय जय माधव वेनी। जगहित प्रगट करो कल्याण अगतिन को गति देनी।—सूर०, ६।११। (ख) देखि गति गोपिका की भूलि जाति निज गति अगतिन कैसे धौं परम गति देत है।—केशव (शब्द०)।

अगती<sup>४</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० चक्रवर्त। दादमर्दन। दद्रुघ्न। चक्रमर्द।

अगती<sup>५</sup>—वि० स्त्री० [सं० अग्रत] अगाऊ। पेशगी।

अगती<sup>६</sup>—क्रि० वि० आगे से। पड़ने से।

अगतीक—वि० [सं०] १ जिसपर चलना अनुचित हो। कुपथ। कुमार्ग। २ दे० 'अगतिक' [को०]।

अगतीर—वि० [सं० अग्रतर] आनेवाला।

अगतीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अगतीक] शरारती। नटखट।

अगत्या—क्रि० वि० [सं०] १ आगे से। भविष्य में। २ आगे चलकर। पीछे से। अत्र मे। अकस्मात्। सहसा।

अगदकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अगदङ्कार] वंछ। चिकित्सक [को०]।

अगद—वि० [सं०] १ नारोग। चंगा। स्वस्थ। २ न बोलने या कहनेवाला (को०)। ३ व्याय द्वारा मुक्त। अभियोगमुक्त। (को०)। ४ व्याधिरहित। निष्कटक। निर्दोष। उ०—रीति दियी गुरु जाहि अगद वृद्धवन पद को।—अजमाधुरी०, पृ० २५२।

अगद—सञ्ज्ञा पुं० १ औषधि। दवा। २ स्वास्थ्य। रोग का अभाव (को०)। ३ अष्टांग आयुर्वेद वा एक अंग। अगद तत्त (को०)।

अगदतत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अगदतत्त] आयुर्वेद के आठ अंगों में से एक जिसमें सर्प, विच्छृ आदि के विष से पीड़ित मनुष्यों की चिकित्सा का विधान है।

अगदराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ औषधियों का राजा। चंद्रमा। उ०—एकादश अध्याय यह अगदराज की धार। पान करहु नर चित्त दै मिटै रोग ससार।—नद० ग्रं०, पृ० २५६। २ उत्तम या अव्यर्थ औषधि (को०)।

अगदवेद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद [को०]।

अगदित—वि० [सं०] न कहा हुआ। अकथित [को०]।

अगनी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] १ दे० 'अग्नि'। उ०—इस लगन ऊपर आविया मझ अगन लागो मेह।—रघु०, पृ० ३७। २ अग्नि नाम की एक चिड़िया। उ०—अगन से मेरे पुलकित प्रण, सहस्रो सप्त स्वरो मे कूक तुम्हारा करते हैं आह्वान।—पल्लव, पृ० १६।

अगनी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अगण] दे० 'अगण'। उ०—मन यम शम चारि हैं र स ज त अगनी चारि।—भिखारी० ग्रं०, भा० १ पृ० १७०।

अगनी<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गण] दे० 'अङ्गण'।

अगन<sup>१</sup>—वि० [सं० अगण्य, प्रा० अगन्न] असह्य। बेशुमार। उ०—(क) सवि की लक्ष्मणा सहित ल्याए बहुरि दियो दाइज अगन गति न जाई।—सूर०, १०।४२०६। (ख) ससि अखंड मंडल जु गगन में। राजत भयी नक्षत्र अगन में।—नद० ग्रं०, पृ० २६२।

अगन<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अगनेत'।

अगनत<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अगणित'।

अगनि<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] दे० 'अग्नि'। उ०—अगनि ते दीपक अगन वरै। बहुरि आनि सव तिन मै ररै।—नद० ग्रं०, पृ० १४४।

अगनिउ<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] आग्नेय कोण। दक्षिण पूर्व का कोण। उ०—तीज एकादसि अगनिउ मोर। चौथ दुआदसि नैऋत वोर।—जायसी (शब्द०)।

अगनित<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अगणित'। उ०—उमा महेस विवाह कराती। ते जलचर अगनित बहु भांती।—मानस, पृ० २६।

अगनिया<sup>१</sup>—वि० [अगणित, प्रा० अगणिय] दे० 'अगणित'। उ०—वरी, वरा, वसन बहु भांतिनि, व्यजन विविध अगनिया।—सूर०, १०।२३८।

अगनी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] दे० 'अग्नि'। उ०—स्रवननि वचन सुनत भइ उनकें ज्यो घृत नाए अगनी।—सूर०, १०।४१२५।

अगनी<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अग्र] घाटे के माथे पर की भाँती या घुमे हुए बाल।

अगनी<sup>४</sup>—वि० [सं० अगणित] अनगिनत। असह्य।

अगनू<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आग्नेय] अग्नि कोण। उ०—तीज एकादसि अगनू मारी। चौथ दुआदसि नैऋत वारी।—जायसी (शब्द०)।

अगनेउ<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आग्नेय, अप० अगनेउ] आग्नेय दिशा। अग्नि कोण। उ०—छः नैऋत दक्षिण सतें। वसे जाय अगनेउ सो अठें।—जायसी (शब्द०)।

अगनेत<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] आग्नेय दिशा। अग्नि कोण। उ०—भौम काल पच्छिम वृद्ध नैऋत। दक्षिण गुरु शुक्र अगनेत।—जायसी (शब्द०)।

अगनेव<sup>१</sup>—वि० [सं० आग्नेय] अग्नि सवधी। उ०—सीत सीत आदीत वास अगनेव कोण किय।—पृ० रा०, ६३। १६६०।

अगवान<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अग्निवाण'। उ०—वज्जि गहर नीसान अग्नि अगवान विछुटिय।—पृ० रा०, १।६२६।

अगम<sup>१</sup>—वि० [सं० अगम्य] १ जहाँ कोई जा न सके। न जाने योग्य। पहुँच के बहर। दुर्गम। अवघट। गहन। उ०—(क) भव अपने यदुकुल समेत लै दूर सिवारे जीति जवन। अगम सपथ दूर दक्षिण दिमि तहँ सुनियत सखि सिधु लवन।—सूर (शब्द०)। (ख) है आनं परवत की पाटी। विषम पहार अगम सुठि घाटी।—जायसी (शब्द०)। २ विकट। कठिन। मुश्किल। उ०—एक लालसा बडि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। ३ न मिलने योग्य। दुर्लभ। अलभ्य। उ०—सुनु मुनी तवर दरसन तोरे। अगम न कछु प्रतीति मन मोरे।—तुलसी (शब्द०)। ४ अपार। अत्यंत। बहुत। उ०—समुझि अब निरखि जानकी मोहि। बडो भाग गुनि अगम दसानन सिव वर दीनी तोहि।—सूर०, ६।७७। न जानने योग्य। बुद्धि के परे। दुर्बोध। उ०—अविगत गति कछु कहत न आवै। सब विधि अगम विचारि ततें सूर सगुन लीला पद गावै।—सूर०, १।६। ६ बहुत गहरा। अथाह। उ०—यहाँ पर नदी मे अगम जल है। (शब्द०)। उ०—तिन कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ।—

मानस, १।३८। ७ विशाल। बडा। उ०—कैसे वचे अग्रम तद्वत्  
तर मुख चूमनि यह कहि पठिनावति ।—सूर०, १०।३६०।  
८. जिसे वज्र में न किया जा सके। सुदृढ। उ०—लका वमत  
दैत्य अरु दानव उनके अग्रम मरीर।—सूर०, ६।८६।

अग्रम<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० आग्रम ] १ शास्त्र । 'आग्रम । उ०—  
तुलसी महेश को प्रभाव भाव ही सुगम, निगम अग्रम हूँ को  
जानिबो गहन है ।—तुलसी ग्र०, पृ० २३७।

यौ०—अग्रम निगम = आग्रम निगम । उ०—चित्तयो चित्त दुज-  
राज तव अग्रम निगम करि कहुँयो ।—पृ० रा०, ३।२०।

२ आग्रम । अवाइ । उ०—रेखौ माई स्याम सुरनि अरु अवाइ ।  
दादुर मोर कोकिला बोल पावस अग्रम जनावै ।—सूर०,  
१०।३३१२।

अग्रम<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] १ वृक्ष । २. पर्वत [ को० ] ।

अग्रम<sup>३</sup>—वि० १, न चलनेवाला । चलने के अयोग्य । अग्रता । २.  
अजगम । स्थावर ( को० ) ।

अग्रमति<sup>१</sup>—वि० [ सं० अग्रम + अति ] बहुत विशाल । अत्यंत  
अग्रम । उ०—मोहन, मुछन, वनीकरन पटि अग्रमति देह  
वढावै ।—सूर०, १०।४६।

अग्रमन<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] गति या गमन का अभाव । न चलना [ को० ] ।

अग्रमन<sup>२</sup>—क्रि० वि० [ सं० अग्रवान् ] १ आगे । पहले । प्रथम ।  
उ०—(क) नाम न जानै गाँव का भूला मारग जाय । काल्ह  
गडैगा काँटवा अग्रमन कस न कराय ।—कवीर सा०, पृ०  
७३। (ख) तव अग्रमन हूँ गौरा मिला । तुझ राजा लँ चल  
बादला ।—जायसी (शब्द०) । (ग) पग पग मग अग्रमन  
परत चरन अरुनदुनि भलि । ठौर ठौर लखियत उठे दुपह्निया  
से फूलि ।—विहारी र०, दो० ४६०। २ आगे से । पहले से ।  
उ०—पिय आग्रम ते अग्रमनहि करि बैठी तिय मान ।—पद्मा-  
कर (शब्द०) ।

अग्रमना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [ हि० ] दे० 'आग्रमना' ।

अग्रमनीया<sup>१</sup>—वि० स्त्री० [ सं० ] न गमन करने योग्य (स्त्री) । जिस  
स्त्री के साथ सम्भोग करने का निषेध हो । अग्रम्या ।

अग्रमने<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ हि० ] दे० 'अग्रमन' । उ०—पोंछे हुत पर्यक  
परम रुचि हकिमणि चमर हुलावति तीर । उठि अकुलाइ अग्र-  
मने लीनि मिलत नैन भरि आए नीर ।—सूर० (शब्द०) ।  
अग्रमनो<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ हि० ] दे० 'अग्रमन' । उ०—निसिचर सनभ  
कुसान राम-मर उडि उडि परत जरत खल जैहैं । रावन करि  
परिवार अग्रमनो जमपुर जात बहुत मकुचैहैं ।—तुलसी  
ग्र०, पृ० ३६३।

अग्रमानी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अग्र + मानी ] प्रमुखा । नायक । सरदार ।  
उ०—(क) है यह तेरे पुत्र का रन अग्रमानी भूप । नाम जासु  
दुष्यत है कीरति जासु अनूप ।—शकुंतला, पृ० १४८। (ख)  
जीत्यो गयो न इद्र पे बल सो जो रिपु बस । रन अग्रमानी  
तुम किए करन ताहि विधवस ।—शकुंतला, पृ० १२६।

अग्रमानी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [ हि० ] दे० 'अग्रवानी' । उ०—जवती  
करने आइया हम भी यह जानी, बीबी साहब सगलै हूवे  
अग्रमानी ।—सुजात०, पृ० ६६।

अग्रमासी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [ हि० ] दे० 'अग्रवांसी' ।

अग्रमी<sup>१</sup>—वि० [ हि० ] दे० 'आग्रमी' । उ०—ना मैं पडित पडि गुणि  
जानी ना कुछ ज्ञान विचारा । ना मैं अग्रमी जोतिग जानी ना  
मुझ रूप सिगारा ।—दादू, पृ० ५६६।

अग्रमैया<sup>१</sup>—वि० [ सं० अग्रम्य ] बुद्धि से परे । न जानने योग्य ।  
अज्ञेय । दुर्बोध । उ०—ब्रज में को उवज्यो यह भैया । सग  
सखा सब कहत परसपर इनके गुन अग्रमैया ।—सूर०,  
१०।८२८।

अग्रम्य<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ न जाने योग्य । २ जहाँ कोई जा न सके ।  
पहुँच के बाहर । अवघट । गहन । ३ विकट । कठिन । मुश-  
किल । ४ अपार । बहुत । अत्यंत । ५ जिसमें बुद्धि न  
पहुँचे । बुद्धि के बाहर । अज्ञेय । दुर्बोध । उ०—गम्य अग्रम्य  
अग दो रहई । तीन देव वहाँ लगि कहई ।—कवीर सा०,  
पृ० ६०६। ६ अथाह । बहुत गहरा । ७ जिससे विषय भोग  
अनुचित हो [ को० ] ।

अग्रम्यगा<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० ] वह स्त्री जिसने वर्जित या अपात पुरुष  
से सप्रयोग किया हो [ को० ] ।

अग्रम्यरूप<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] जिसकी स्थिति या रूप बोध से परे  
हो [ को० ] ।

अग्रम्या<sup>१</sup>—वि० स्त्री० [ सं० ] न गमन करने योग्य । मैथुन के अयोग्य ।  
अग्रम्या<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० १ न गमन करने योग्य स्त्री । वह स्त्री जिसके साथ  
सम्भोग करना निषिद्ध है, जैसे—गुरुपत्नी, राजपत्नी, साँतेली  
माँ, माँ, कन्या, पतोहू, साम, गर्भवती स्त्री, बहिन, सती, सगे  
भाई की स्त्री, भाजी, भतीजी, चेली, शिष्य की स्त्री, भाजे  
की स्त्री, भतीजे की स्त्री, इत्यादि । २. अत्यज स्त्री । अत्यजा  
(को०) ।

अग्रम्यागमन<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] अग्रम्या स्त्री से सहवास । उस स्त्री  
के साथ मैथुन जिसके साथ सम्भोग का निषेध है ।

अग्रम्यागमनीय<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] अग्रम्यागमन से सवधित [ को० ] ।

अग्रम्यागामी<sup>१</sup>—वि० अग्रम्या स्त्री के साथ सहवास करनेवाला [ को० ] ।

अग्रयार<sup>१</sup>—वि० [ अ० गैर का बहु० व० ] पराया । गैर । उ०—हो यार  
वही उसका जो इस जग में सबसे अग्रयार बने ।—भारतेंदु  
ग्र०, भा० २, पृ० ५६५।

अग्रर<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अग्रर ] एक पेड़ जिमकी लकड़ी सुगंधित होती  
है । ऊँद । उ०—चवन अग्रर सुगंध और घृत विधि करि चिता  
बनायो ।—सूर०, ६।५०।

विशेष—यह पेड़ भूटान, आसाम, पूर्वी बंगाल, चासिया और  
मत्तवान की पहाड़ियों में होता है । इसकी ऊँचाई ६० से १००  
फुट और घेरा ५ से ८ फुट तक होता है । जब यह २० वर्ष  
का होता है तब इसकी लकड़ी अग्रर के लिये काटी जाती है ।  
पर कोई कोई कहते हैं कि इसकी लकड़ी ५०-६० वर्ष के  
पहले नहीं पकती । पहले तो इसकी लकड़ी बहुत साधारण  
पीले रंग की और गंधरहित होती है, पर कुछ दिनों में घट  
और शाखाओं में जगह जगह एक प्रकार का रस आ जाता है  
जिससे कारण उन स्थानों की लकड़ियाँ भारी हो जाती हैं ।  
इन स्थानों से लकड़ियाँ काट ली जाती हैं और अग्रर के नाम

से विकती हैं। यह रस जितना अधिक होता है उतनी ही लकड़ी उत्तम और भारी होती है। पर ऊपर से देखने से यह नहीं जाना जा सकता कि किम पेड़ में लकड़ी अच्छी निकलेगी। बिना मांग पेड़ काटे इसका पता नहीं लग सकता। एक अच्छे पेड़ में ३००) तक का अगर निकल सकता है। पेड़ का हल्का भाग जिसमें यह रस या गोद कम होता है, 'दूम' कहलाता है और मस्ता अर्थात् १) २) सेर विकती है, पर असली काली काली लकड़ी, जो गोद अधिक होने के कारण भारी होती है, 'गरकी' कहलाती है और १६) या २०) सेर विकती है। यह पानों में डूब जातो है। लकड़ी का दुरादा घूप, दसाग आदि में पड़ना है। ववई में जलाने के लिये इसकी अगररसी बहुत बनती है। सिलहट में अगरर का डूब बहुत बनता है। चोवा नाम वा सुगंधित लेप इसी से बनता है। अगरर<sup>२</sup>—सखा पुं [ सं० अक्षर ] अक्षर। वर्ण। हर्फ (डि)। उ०—उठारे सहज जोधार असुमरा लडे हरि चापडे मार लीधा उचार दध अगरर रो।—रवु० ६०, पृ० १३१।

अगरर<sup>३</sup>—सखा पुं [ सं० आगार टि० अगरर ] आगार। गृह। उ०—जे सँसार अधियार अगरर में भए मगनवर।—का० कीमुदी १,। अगरर<sup>४</sup>—अव्य [ फा० ] यदि। जो। उ०—उसे हमने बहुत ढूँढा न पाया। अगररपाया तो खोज अपना न पाया।—शेर०, भा० १, पृ० ४१२।

मुहा०—अगरर मगर करना = (१) हुज्जत करना। तर्क करना। (२) आगा पीछा करना।

अगरर<sup>५</sup>—क्रि० वि० [ म० अग्र, प्रा० अगरर ] आगे। जैसे 'अगररज' में 'अगरर'।

अगररई—वि० [ हि० अगरर + ई (प्रत्य०) ] श्यामता लिए हुए सुनहले सदली रंग का। अगरर के रंग का।

अगररचे—अव्य० [ फा० ] गो कि। यद्यपि। हरचंद। वावजूद कि। उ०—कावा अगररचे टूटा क्या जाय गम है शेख।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६८।

अगररज<sup>६</sup>—सखा पुं [ सं० अग्रज ] दे० 'अग्रज'। उ०—ताही ते अगररज भयउ सब विधि तेहि परचार।—स० सप्तक, पृ० ४३।

अगररजानी<sup>७</sup>—वि० [ सं० अग्र + जानी ] पहले से ही किसी बात को समझने या जाननेवाला। आगमजानी। उ०—ऐमे अगररजानी आदमी की बात काटने का नतीजा सारा गाँव भोग रहा है।—मैला० पृ० ३७४।

अगररना<sup>८</sup>—क्रि० अ० [ सं० अग्र ] आगे होना। आगे जाना। अगाडी बढ़ना। आगे आगे भागना। उ०—प्यारी अगररि चली हरि धाए। पकरि न पावत पैर थकाए।—गिरधरदास (शब्द०)।

अगररपार<sup>९</sup>—सखा पुं [ सं० अग्र ? ] क्षत्रियो की एक जाति। उ०—क्षत्री ओ वज्रवान बबेली। अगररपार चौहान चंदेली।—जायसी (शब्द०)।

अगररवगर<sup>१०</sup>—क्रि० वि० [ हि० ] दे० 'अगल वगल'।

अगररवत्ती—सखा ली० [ सं० अगररवत्तिका ] सुगंध के निमित्त जलाने की पतली सीक या वत्ती।

विशेष—इसमें अगरर तथा कुछ और सुगंधित वस्तु पीसकर लपेटे हैं। इसका व्यापार मद्रास और ववई में बहुत होता है।

अगररवाला—सखा पुं [ हि० अगररोहावाला, अगररेवाला ] [ ली० अगररवालिन ] वैश्यो की एक जाति जिसका आदि निवास दिल्ली से पश्चिम अगररोहा नाम का स्थान कहा जाता है। अगरवाल।

अगररसार—सखा पुं [ सं० अगरर + सार ] अगरर। ऊद।

अगरर<sup>११</sup>—क्रि० वि० [ सं० अग्र ] [ ली० अगररी ] १ अगरर। प्रथम। अग्रुआ। उ०—सूर स्याम तेरी अति गूँननि माहि अगररी।—सूर० १०।३३६। २ बढ़ा चढ़ा। बढ़कर। श्रेष्ठ। उत्तम। उ०—हम तुम सब एक वैस काते कौन अगररी। लियो दियो सोई कछु डारि देहु अगररी।—सूर०, १० ३३६। ३ अधिक। ज्यादा। बढ़ा। भारी। ४. उग्र। ५ अग्रिम। पेशगी। अग्राह। उ०—बैल लीजे कजरा, दोम दीजे अगरर।—घाघ०, पृ० १०७।

अगरर<sup>१२</sup>—सखा पुं [ सं० आकर ] खान। आकर। उ०—सूरदास प्रभु सब गूँननि अगररी।—सूर० (गधा०), १ ५६।

अगरर<sup>१३</sup>—सखा पुं [ हि० अगररा ] रगरा। अडबड बात। अनुचित व्यवहार। उ०—दल्ल कहा अगरर कह कीजे। साहब वचन मानि के लीजे।—सत दरिया, पृ० ५।

अगररई—सखा ली० [ हि० अगररना ] आगे होने का भाव। अग्रता। श्रेष्ठत्व। उ०—गोविंद गुमाई यों ही माँगत हीं गोद गेह गिरा अगररई गुन गरिमा गगन को।—घनानंद पृ० १६४।

अगररान—सखा पुं [ हि० ] पीला लिए हुए लाल रंग का घोड़ा जिसमें सफेदी विशेष न भलकती हो। उ०—खुरमुज नोकिरा जरवा भले। ओ अगररान बालसिर चले।—पदमावत, पृ० ५१६।

अगरराना<sup>१४</sup>—क्रि० सं० [ देशी ] १ अधिक स्नेह या दुलार के कारण किसी को धृष्ट बनाना।

अगरराना<sup>१५</sup>—क्रि० अ० स्नेहाधिक्य में ढिंढाई करना।

अगरराना<sup>१६</sup>—क्रि० अ० [ हि० ] दे० 'अगडाना'।

अगररसन<sup>१७</sup>—सखा पुं [ सं० अग्र + अशन ] दे० 'अग्रशन'। उ०—'सासको दिखाने के लिये बिल्लेसुर रोज अगररसन निकालते थे।—बिल्ले० पृ० ८४।

अगररी<sup>१८</sup>—सखा ली० [ सं० ] १ एक प्रकार की घाम या पीठा जो चूहे आदि के विष को दूर करता है। देवताड। २ विष हटनेवाला कोई भी द्रव्य [ ली० ]।

अगररी<sup>१९</sup>—सखा ली० [ सं० अगला, अगलिका ] लकड़ी या लोहे का छोटा छडा जो किवाड के पल्ले में कोड़ा लगाकर डाला रहता है। इसके इधर उधर खींचने से किवाड खुलते और बंद होते हैं। किल्ली। व्योडा।

अगररी<sup>२०</sup>—सखा ली० [ सं० अग्र ] फूम की छाजन का एक ढग जिसमें जड़ डाल या उतार की ओर रखते हैं।

अगररी<sup>२१</sup>—सखा ली० [ सं० अगररीय = अवाच्य ] १ अड बड बात। बुरी बात। अनुचित बात। २ ढिंढाई। धृष्टता।

अगररी<sup>२२</sup>—सखा ली० [ हि० अगररना ] अगररई हुई बात। स्नेह के कारण धृष्टता से की हुई क्रिया उ०—जो हुरि दह फटकारि के हरि करत है लेंगरी। नित प्रति ऐसई ढग करे हमसो कहे अगररी।—सूर० (शब्द०)।



अगर—संज्ञा पुं० [ सं० अग्र ] पगर लकड़ी। ऊद। उ०—अगर चदन की चिता थी मेज।—साकेत, पृ० १६८।

अगर—संज्ञा पुं० [ सं० ] दे० 'अगर' [को०]।

अगरे—क्रि० वि० [ सं० अग्रे ] नामने। आगे। उ०—चैला पूछे गुरु कहें तेहि कस अगरे होइ।—जायसी ( शब्द० )।

अगरेल—वि० [ हि० अग्र + ऐल (प्रत्य०) ] अग्र संवर्ध। अग्र की। उ०—रवि मरुत जावणी, धरि आणद चहकी। मग वेन सूरमा, वाम अगरेल महकी।—रा० रू०, पृ० १७३।

अगरो—वि० [ सं० अग्र ] १. अगला। प्रथम। २. बढ़कर। श्रेष्ठ। उत्तम। उ०—सूर सनेह ग्वारि मन अटक्यो छोटि दिये परत नहि पगरो। परम मगन ह्व रही चित मुख सब तें नाग यही को अगरो।—सूर (शब्द०)। ३. चतुर। दक्ष। निपुण। ४. अधिक। ज्यादा। उ०—योजन बीस एक अग्र अगरो डेरा इहि अनुसान। ब्रजवासी नर नारि अत नहि मानो सिधु समान।—मूर (शब्द०)।

अगर्व—प्रव्य० [ फा० अग्रर्वे ] दे० 'अग्रर्वे'। उ०—अगर्वे उग्र की दस दिन से लव रहे खामोश। सुखन रहेगा सदा मेरी कम जवानी का।—कविता को०, भा० ४, पृ० १७२।

अगर्दभ—संज्ञा पुं० [ सं० ] खच्चर [को०]।

अगर्व—वि० [ सं० ] गर्व या अभिमान से रहित। निरभिमान। सीधा सादा।

अग्रहित—वि० [ सं० ] १. जो ग्रहित या निदित न हो। २. शुद्ध [को०]।

अग्रल—क्रि० वि० [ सं० अग्रत, प्रा० अग्रल ] १ आगे। उ०—यकायक कहे काफिराँ साय चला अग्रु जहल आया नवी के अग्रल।—द्विजनी०, पृ० ३४८।

अग्रल—वि० [ प्रा० अग्रल ] अधिक। ज्यादा। उ०—सब तीन चरप्प अमी अग्रल।—पृ० रा०, ४६। ५५।

अग्रल वगल—क्रि० वि० [ फा० ] १ दोनों पार्श्व में। दोनों ओर। दोनों किनारे। २. हथर उधर। आमपाम।

अग्रलहिया—संज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक चिडिया।

अग्रला—वि० [ सं० अग्र, प्रा० अग्रल ] [ स्त्री० अग्रली ] १ आगे का। सामने का। अगली का। पिछला का उलटा। जै—घोडे का अग्रला पर नफेद है (शब्द०)। उ०—वह अग्रला समतल जिमर है देवदास का कानन।—कामायनी, पृ० ७६। २ पहले का। पूर्ववर्ती। प्रथम। उ०—आवे आरंगमाह नूँ अग्रली मुहराँ याद।—रा० रू०, पृ० ३५०। ३ विगत समय का। प्राचीन। पुराना। उ०—रेखते व तुम्ही उम्ताद नहीं हो गालिद। कहते हैं अग्रले जमाने में कोई भीर भी था।—कविता को०, भा० ४, पृ० १२२।

यो०—अग्रले समय। अग्रले लोग।

४. आगामी। अग्रिवाला। भविष्य। जैमे—मैं अग्रले माल वहाँ जाऊँगा (शब्द०)। ५ अग्र। दूसरा। एक के बाद का। जैमे—'उससे अग्रला हमारा घर है' (शब्द०)।

अग्रला—संज्ञा पुं० १ अग्रुआ। अग्रगण्य। प्रधान। जैमे—'वे सब बातों में अग्रले बनते हैं। (शब्द०)। २ चतुर आदमी। चालाक। कुतूहल आदमी। जैसे—'अग्रला अपना काम कर गया, हम लोग

देखने हो रह गए (शब्द०)। ३ पूर्वज।—पुरखा ( बहु० व० में ही प्रयुक्त )। जैसे—जो अग्रले करते हैं उसे करना चाहिए (शब्द०)।

मुहा०—अग्रले पिछलो को रोना=पूर्वजों और आलाद के नाम र रोना या मानम करना। उ०—'खाक अच्छा गाती है। गाती है या रोती है अपने अग्रले पिछलो को डायन'।—सैर कु०, पृ० २०। ४ अपने पति को सूचित करने के लिये स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त शब्द। ५. करनफूल के आगे लगी हुई जंजीर। ६ गाँव और उसकी हद के बीच में पड़नेवाले खेतों का समूह।

अग्रलूणी—वि० [ सं० अग्र, प्रा० अग्र, ( राज० आग्रलो + ऊणी (प्रत्य०) = वाली ) ] आगेवाली। पूर्व की। उ०—जिण दिन ढोल उ आविउ तिए अग्रलूणी रात। मारु सुहिण उ लेहि कसुउ, सखियाँ सुँ परमात।—ढाला०, ५०१।

अग्रवडाँ—संज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'अग्रोड'।

अग्रवडाँ—संज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'अग्रोड'।

अग्रवत—संज्ञा पुं० [ सं० आग्रमन ] दे० 'आग्रमन'।

अग्रवना—क्रि० अ० [ हि० आगे + ना ] कोई काम करने के लिये उद्यत होना। आगे बढ़ना।

अग्रवनिहरवा—वि० [ हि० अग्रवना ] किसी को बुलाने के लिये आया हुआ। उ०—सतगुरु पठवा अग्रवनि हरवा।—कवीर श०, भा० ३, पृ० ४६।

अग्रवाई—संज्ञा पुं० [ हि० अग्रुआ ] उ०—इसमाइल राजेंद्र गुसाई। सफदरजग भये अग्रवाई।—सुजान०, पृ० १४१।

अग्रवाई—संज्ञा स्त्री० [ हि० अग्रवानी ] दे० 'अग्रवाई'।

अग्रवाईसी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अग्रवाईसी ] १ हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है। २ हलवाहे को पैदावार में से अश्वरूप में मिलनेवाली भजदूरी।

अग्रवा—क्रि० वि० [ सं० अग्र ] आगे। अगली। उ०—हरि जू की गैल यह मेरी पीर अग्रवा सी, ह्याँ ह्वै कड़े चाही मोहि काम धनो घर को।—ठाकुर०, पृ० २।

अग्रवाई—संज्ञा स्त्री० [ सं० अग्र = आगे + हि० अवाई ] अग्रवानी। अभ्यर्थना। आगे से जाकर लेना। उ०—अग्रवाई के हेतु कुँवर के सब नर नारी।—बुद्ध च०, पृ० १८०।

अग्रवाई—संज्ञा पुं० [ सं० अग्रवाई ] आगे चलनेवाला व्यक्ति। अग्रुवा। अग्रसर।

अग्रवाई—संज्ञा पुं० [ सं० अग्रवाई अथवा अग्रवर्त्त (प्रत्य०) ] घर के आगे का भाग। द्वार के सामने की भूमि। पिछवाड़ा शब्द का उलटा।

अग्रवान—वि० [ सं० अग्र + हि० वान ( आचना आदि के मूल में स्थित द्विधातु का अश ) ] १ अग्रवानी या अभ्यर्थना करनेवाला व्यक्ति। आगे से जाकर लेनेवाला व्यक्ति। २ विवाह में कन्यापक्ष के वे लोग जो वरात का आगे बढ़कर स्वागत करते हैं। उ०—(क) अग्रवानन्ह जब दीखि वराता। उर आनद पुलक भर गाता।—मानस, १। ३०५। (ख) सहित वरात राउ सनमाना। आयेसु मणि फिरे अग्रवान।—मानस, १। ३०६।



अगवान<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र + हि० वान] १. आगे से जाकर लेना । अगवानी । अभ्यर्चना । उ०—महाराज जयसिंह जय में सिंह के समान, निरयान समय जासु गग लीनी अगवान ।—रघुराज (शब्द०) । २. विवाह में कन्यापक्ष के लोगो का वरात की अभ्यर्चना के लिये जाना । उ०—लं अगवान वरातहि आए । दिए सवहि जनवास सुहाए ।—मानस, १।६६ ।  
क्रि० प्र०—करना ।—लेना ।—होना ।

अगवानी<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र + हि० वान] १. अपने यहाँ आते हुए किसी अतिथि से निकट पहुँचने पर सादर मिलना । आगे बढ़कर लेना । अभ्यर्चना । पेशवाई । २. विवाह में जब वारात लड़की-वाले के घर के पास आती है, तब कन्यापक्ष के लोग सज धज-कर बाजे गाजे के साथ आगे जाकर उससे मिलते हैं । इसी को अगवानी कहते हैं । उ०—निघरानि नगर वरात हरषी लेन अगवानी गए ।—तुलसी ग्र०, पृ० १३५ ।

अगवानी<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अग्रगामी] आगे पहुँचनेवाला व्यक्ति । दूत । उ०—(क) सखी री पूरनता हम जानी । याही तै अनुमान करति है पटपट से अगवानी ।—सूर०, १०।४०३६ । (ख) अगवानी तो आइया ज्ञान विचार विवेक । पीछे हरि भो आयेगे भारी सौज सभेक ।—कवीर (शब्द०) ।

अगवानी<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० आगे रहनेवाला । अगवा । पेशवा । उ०—विरह अथाह होत निसि हम को विनु हरि समुद समानी । क्यों करि पावहि विरहिनि पारहि विनु केवट अगवानी ।—सूर०, १०।३२७१ ।

अगवार<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हि० वार (प्रत्य०)] १. खलिहान में अन्न का वह भाग जो राशि से निकालकर हलवाहे आदि के लिये अलग कर दिया जाता है । २. वह हल्का अन्न जो ओसाने में भूसे के साथ चला जाता है । ३. गाँव का चमार ।  
अगवार<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'अगवाडा' । उ०—वेऊ आये द्वारे हो हूँ हुती अगवारे और, द्वारे अगवारे कोऊ तौ न तिहि काल में ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २०० ।

यौ०—अनवार पछवार ।

अगवाह—वि० [सं० अग्र + वाह] आगे पहुँचानेवाला । पहले पहुँचने-वाला । उ०—'कपित स्वर लहरी आत्मनिवेदन की सहज स्निग्ध कमनीयता के अगवाह रास्ते को अनायास ही पकड़ लेती' ।—नई पीढ़, पृ० १११ ।

अगवैया—वि० [सं० अग्र + हि० वैया (प्रत्य०)] आगे आगे चलने-वाला । किसी के आगमन की पूर्वसूचना देनेवाला । उ०—अभी माघ भी चुका नहीं पर मधु का गरवीला अगवैया कर उन्नत शिर ।—इत्थलम्, पृ० २०६ ।

अगव्यूति—वि० [सं०] जहाँ पशुओं का चरागाह न हो । वजर [की०] ।

अगसत<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अगस्त्य' । उ०—आकिल गुरु अगसत है, सिख समुद मन लीन ।—रज्जव०, पृ० ६ ।

अगसर<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं० अग्रसर] आगे । पहले । उ०—अगसर खेती अगसर मार । कहै बाघ ते कवहुँ न हार ।—घाघ०, पृ० ४१ ।

अगसरना<sup>१</sup>—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'अगुसरना' ।

अगसार<sup>१</sup>—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अगसारी' ।

अगसारी<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं० अग्रसर] आगे । सामने । उ०—हस्ति क जूह आय अगसारी । हनुवंत तवै लँगूर पसारी ।—जायसी ग्र०, पृ० ११६ ।

अगस्त<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [अ० अगुस्ट,] रोम के सम्राट् अगुस्टस् के नाम पर चलाया गया अग्रेजी का आठवाँ महीना जो भादो में पड़ता है ।

अगस्त<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अगस्त्य] १. अगस्त्य ऋषि । उ०—मधवानल वहि अग्निन सम्मानी । अग्निन अगस्त साखावत पानी ।—हिंदी प्रेम०, पृ० २७५ । २. अगस्त्य तारा । उ०—उदित अगस्त पथ जल सोपा । जिमि लोभहिं सोखै सतीपा ।—तुलसी (शब्द०) । ३. अगस्त्य वृक्ष । उ०—फूल करील कली पाकर नम । फरी अगस्त करी अमृत सम ।—सूर०, १०।१२१३ ।

अगस्ति<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] १. अगस्त्य तारा । उ०—उए अगस्ति हस्ति धन गाजा । तुरै पलानि चढे रन राजा ।—जायसी ग्र०, पृ० ३५६ । २. अगस्त्य ऋषि । उ०—हुत जो अपार विरह दुख दोखा । जनहुँ अगस्ति उदधि जल सोखा ।—जायसी ग्र०, पृ० ३४० । ३. अगस्त्य या वक वृक्ष [की०] ।

अगस्तिद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्ति या वक वृक्ष [की०] ।

अगस्तिर्या—संज्ञा पुं० [सं० अगस्ति] दे० 'अगस्त्य ३' । उ०—द्वंज सुधा दीधिति कला वह लखि दीधि लखाई । मनो अकास अगस्तिर्या एक कली लखाई ।—विहारी २०, दी० ६२ ।

अगस्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जिनके पिता मित्रावरुण थे ।

विशेष—ऋग्वेद में लिखा है कि मित्रावरुण ने उर्वशी को देखकर कामपीडित हो वीर्यपात किया जिससे अगस्त्य उत्पन्न हुए । सायणाचार्य ने अपने भाष्य में लिखा है कि इनकी उत्पत्ति एक घटे में हुई । इसी से इन्हें मंत्रावरुण, आर्वंशेय, कृभज, घटोद्भव और कृभसभव कहते हैं । पुराणों में इनके अगस्त्य नाम पढ़ने की कथा यह लिखी है कि इन्होंने बढते हुए विष्णु पर्वत को लिटा दिया । अतः इनका एक नाम विध्यकूट भी है । पुराणों के अनुसार इन्होंने समुद्र को चुल्लू में भरकर पी लिया था जिससे ये समुद्रचुलुक और पीताम्ब भी कहलते हैं । कहीं कहीं पुराणों में इन्हें पुलस्त्य का पुत्र भी लिखा है । ऋग्वेद में इनकी अनेक ऋचाएँ हैं ।

२. एक तारे या नक्षत्र का नाम ।

विशेष—यह भादो में सिंह के सूर्य के १७ अश पर उदय होता है । इसका रंग कुछ पीलापन लिए हुए सफेद होता है । इसका उदय दक्षिण की ओर होता है इससे बहुत उत्तर के निवासियों को यह नहीं दिखाई देता । आकाश के स्थिर तारों में लुब्धक को छोड़कर दूसरा कोई तारा इसकी तरह नहीं चमचमाता । यह लुब्धक से ३५° दक्षिण है ।

३. एक प्रसिद्ध पेड़ ।

विशेष—यह पेड़ कैचा और घेरदार होता है । इसकी पत्तियाँ सिरिस के समान होती हैं । इसके टेढ़े टेढ़े फूल अर्धचंद्राकार, लाल और सफेद होते हैं । इसके छिलके का काढ़ा शीतला और

ज्वर में दिया जाता है। पत्तियाँ डमकी रेचक हैं। पत्ती और फूल के रस की नास लेने से बिनाम फूटना, सिर दर्द और ज्वर अच्छा होता है। आँखों में फूल का रस डालने से ज्योति बढती है। इसके फूलों की तरकारी और अचार भी बनता है।

४ शिव का एक नाम [को०]।

अगस्त्यकूट—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण मद्रास प्रांत में एक पर्वत जिससे ताम्रपर्णी नदी निकली है।

अगस्त्यगीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के शांति पर्व में अगस्त्य ऋषि द्वारा कथित विद्या [को०]।

अगस्त्यचार—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य तारे का मार्ग [को०]।

अगस्त्यतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान [को०]।

अगस्त्यमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अगस्त्यचार' [को०]।

अगस्त्यवट—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर स्थित एक पवित्र स्थान का नाम [को०]।

अगस्त्यसहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगस्त्य द्वारा प्रणीत धर्म विषयक एक ग्रंथ [को०]।

अगस्त्यहर्—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य हरीतकी [को०] कई द्रव्यों के संयोग से जिनमें हर् मुख्य है, बनी हुई एक आयुर्वेदिक औषधि जो खाँसी, हिचकी, सप्रहणी आदि रोगों में दी जाती है।

अगस्त्योदय—संज्ञा पुं० [सं०] १ भाद्रपद के शुक्ल पक्ष में अगस्त्य नामक तारे का उदय। २ भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी [को०]।

अगस्थ(५)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगस्त्य' १। उ०—मुगता तठै कर सनमान, आया अगस्थ रे असथान।—रघु० ६०, पृ० १२४।

अगह(५)—वि० [सं०] अग्राह्य १ न पकड़ने योग्य। हाथ में न आने लायक। उ०—अलह को लहना, अगह को गहना।—दरिया० बानी, पृ० ६७। २ चंचल। उ०—माधव जू नेकु हटको गाय। निसि वासर यह भरमति इत उत अगह गही नहि जाय।—सूर (शब्द०)। ३ जो वर्णन और चित्रन के बाहर हो। उ०—कहि गाधिनदन मुदित रघुनदन सो नृपगति अगह गिरा न जाति गही है।—तुलसी (शब्द०)। ४ न धारण करने योग्य। कठिन। मुश्किल। उ०—ऊधो जो तुम हमहि बतयो। सो हम निपट कठिनई करि करि या मन को समुझायो। योग याचना जवहि अगह गहि तवही सो है ल्यायो। सूर (शब्द०)।

अगहन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्रहायण [प्राचीन वैदिक क्रम के अनुसार वर्ष का अगला वा पहला महीना। मार्गशीर्ष। मगसिर। उ०—अगहन अम्बर देखेउ जुग जुग जीव सोई।—जग० श०, भा० २, पृ० ६५।

विशेष—गुजरात आदि में यह क्रम अभी तक है, पर उत्तरी भारत में गणना चैत्र मास से आरम्भ होती है। इस कारण यहाँ नव मास पडता है।

अगहनिया—वि० [सं०] अग्रहायणीय [अगहन में होनेवाला]।

अगहनी—वि० [सं०] अग्रहायणीय [अगहन में तैयार होनेवाला]।

अगहनी—संज्ञा स्त्री० वह फसल जो अगहन में काटी जाती है। जैसे जड़हन घान, उरद इत्यादि। उ०—जब लों पृथिवी है तब लो बोना और बोना, शादी और गमी, अगहनी और वैशाखी, दिन और रात बदन होंगे।—कवीर म०, पृ० १६५।

अगहर(५)†—वि० [सं०] अग्र, प्रा० अग्र + हिं० हर (प्रत्य०) १ आगे। २ पहले। प्रथम। उ०—राजन दोवा रायमनि, वाई तरफ अडोल। उमगत अगहर जूझ को, ताकत प्रति भट गोल।—लाल (शब्द०)।

अगहाट—संज्ञा पुं० [सं०] अग्राह्य अथवा सं० अग्रहार [वह भूमि जो किसी के अधिकार में विचकाल के लिये हो और जिन वह अलग न कर सके]।

अगहार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्रहार'।

अगहुँड—वि० [सं०] अग्र पा० अग्र + हिं० हुँड (प्रत्य०) [अगुआ]। आगे चलनेवाला। उ०—दिलोके दूरि तें दोड वीर। मन अगहुँड तन पुलकि सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर।—तुलसी ग्र०, पृ० ३४६।

अगहुँड—वि० [सं०] आगे। आगे की ओर। 'पिछहुँड' का उलटा। उ०—कोप भवन सुनि मकुचेक राऊ। भय वम अगहुँड परे न पाऊ।—तुलसी (शब्द०)।

अगा—वि० [सं०] ने चलनेवाला [को०]।

अगा—वि० [सं०] अग्र [आगे]। पहले। उ०—पोवत कहा चेत रे रावन अग्र क्यों खात दगा। कहत मँदोदरि सुनु विय रावन मेरी बात अगा।—सूर०, ६। १४४।

अगाई—वि० [सं०] अग्र, हिं० आई (प्रत्य०) [आगे]। पहले। उ०—अगाई सो सवाई।—घाघ० पृ० ७४।

अगाउनी(५)†—वि० [हिं०] दे० 'अगौनी-१'। उ०—मुरली मृदगन अगाउनी भरत स्वर भावती सुजागरे भरी है गून आगरे।—देव (शब्द०)।

अगाउनी—संज्ञा स्त्री० दे० 'अगौनी-२'।

अगाऊ—वि० [हिं०] दे० 'अगाऊ'। उ०—न्यान समै जब मेरो लखे तब साज लै बैठत आनि अगाऊ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १२३।

अगाऊ—वि० [सं०] अग्र, प्रा० अग्र + हिं० आऊ (प्रत्य०) १। अग्रिम। पेशगी। जैसे, 'उमे कुछ अगाऊ दाम दे दो' (शब्द०)। २ (५) अग्रला। आगे का। उ०—धरि वाराह रूप रिपु मान्यो लै छिति दत्त अगाउ।—सूर० (शब्द०)।

अगाऊ(५)†—वि० [सं०] आगे। प्रथम। उ०—(क) कविरा करनी आपनी, कवहुँ न निष्कल जाय। सात समुद्र आढा परे मिले अगाऊ आय।—कवीर (शब्द०)। (ख) 'उपसेन भी सब यदुवर्णियों समेत गाजे बाजे से अगाऊ जाय मिले'।—लल्लू० (शब्द०)। २. अगाड़ी में। आगे से। उ०—(क) साखि सखा सब मुवन सुदामा देखि घों बूझि बोलि बलदाऊ। यह तो मोहि खिभाइ कोटि विधि उलटि विदादन आइ अगाऊ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३४। (ख) कौन कौन को उत्तर दीज ताते भयो अगाऊ।—सूर० (शब्द०)।

अगाड़—संज्ञा पुं० [सं०] अग्र, प्रा० अग्र + हिं० आड़ (प्रत्य०) १. हुँके की टोंटी या कुहनी में लगाने की, सीधी नली जिसे मुँह में

रखकर धुआँ खींचते हैं। निगाली। २ खेन सींचने की ढँकली की छोर पर लगी हुई पतली लकड़ी। ३ किसी वस्त्र के आगे का भाग। अंगाडी।

अंगाडा<sup>१</sup>—सच्चा पुं० [ हिं० अगाड, तुल० कुमा० गाडा=खेन ] का अर। तरी।

अंगाडा<sup>२</sup>—सच्चा पुं० [ अग्र+हिं० आडा (प्रत्य०) ] १ यात्री का वह सामान जो पहले से आगे के पड़ाव पर भेज दिया जाता है। पेशखेमा। २ आगे का भाग या हिस्सा।

अंगाडा<sup>३</sup>—वि० आगे का। आगेवाला।

अंगाडी<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ सं० अग्र प्रा० अग + हिं० आडी (प्रत्य०) ] १ आगे, जैसे—इस घर के अंगाडी एक चौराहा मिलेगा (शब्द०)। २ भविष्य में, जैसे—अभा से इसका ध्यान रखो नहीं तो अंगाडी मुश्किल पड़ेगी (शब्द०)। ३ पूर्व। पहले, जैसे—अंगाडी के लोग वड़े सीधे सादे होते थे (शब्द०)। ४ सामने। समक्ष, जैसे—उनके अंगाडी यह बात न कहना (शब्द०)।

अंगाडी<sup>२</sup>—सच्चा पुं० १ किसी वस्तु के आगे का भाग। २ अंगरेजों या कुरते के सामने का भाग। ३ घोड़े के गंराव में बंधी हुई दो रस्सियाँ जो इधर उधर दो खूंटों से बँधी रहती हैं। ४ सेना का पहला धावा। हल्ला; जैसे—फौज की अंगाडी आधी की पिछाडी (शब्द०)।

यों—अंगाडी पिछाडी आगे और पीछे का भाग।

अंगाडू—क्रि० वि० [ सं० अग्र प्रा० अग अग + हिं० आडू (प्रत्य०) ] दे० 'अंगाडी'।

अंगाता—वि० [ सं० ] अच्छा न गानेवाला [को०]।

अंगात्मजा—सच्चा स्त्री० [ सं० ] शैलपुत्री। पार्वती [को०]।

अंगाद(पु)—वि० दे० 'अंगाध'। उ०—प्रावसनि वत अंगाद भयत निव्रलह द्विग छिनक कर।—पृ० रा० ६१। १२६५।

अंगाध<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ अथाह। बहुत गहरा। अतल स्पर्श। उ०—जलधि अंगाध मौलि वह फेनू। सतत धरनि धरत सिर रेनु।—मानस, १। १६७। २. अपार। असीम। अत्यंत। बहुत। अधिक उ०—देखि विटे अपराध अंगाध निमज्जत सधु समाज भलो रे।—तुलसी (शब्द०)। ३ जिसका कोई पार न पा सके। समझ में न आने योग्य। दुर्बोध। उ०—अगुन सगुन दुई अह्म सरूपा। अकथ अंगाध अनादि अरूपा।—मानस, १। २३।

अंगाध<sup>२</sup>—सच्चा पुं० १ छेद। २ गड्ढा। ३. स्वाहाकार की पाँच अग्नियों में से एक का नाम [को०]।

अंगाधजल—सच्चा पुं० [ सं० ] गहरा तालाव या झील। ह्रद [को०]।

अंगाधरुधिर—सच्चा पुं० [ सं० ] रुधिर का आधिक्य। अत्यधिक। रक्त [को०]।

अंगाधसत्त्व—वि० [ सं० ] अत्यधिक शक्तिसंपन्न [को०]।

अंगाधा—वि० स्त्री० [ सं० ] अत्यंत। बहुत। अधिक। उ०—लाल गुलाल घलाघल मैं दृग ठाकर दै गई रूप अंगाधा।—पद्माकर (शब्द०)।

अंगाधित्व—सच्चा पुं० [ पुं० ] गाम्भीर्य। गहराई [को०]।

अंगान<sup>१</sup>(पु)—वि० [ सं० ] अज्ञान। अज्ञान। नाममग्न। उ०—बालक अंगाने हठी और की न माने बात, बिना दिए मातु हाथ भोजन न पाइए।—हनुमत्पाठक (शब्द०)।

अंगान<sup>२</sup>(पु)—सच्चा पुं० ज्ञान का अभाव। अज्ञान।

अंगामे<sup>१</sup>(पु)—क्रि० वि० [ सं० अग्रिम, प्रा० अग्रमि ] आगे।

अंगार<sup>१</sup>—सच्चा पुं० [ सं० आगार ] १ निवासस्थान। घाम। गृह।

उ०—दुख आवत कछु अटकन मानन, मूनों देखि अंगार।

—सूर०, १०। ३३८६। २ ढेर। राशि। समूह। अटाला।

उ०—मोजि मोजि हाथ धुनै माय दसमाय तिय, तुलसी तिलो न मयो बाहिर अंगार का।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७३।

अंगार<sup>२</sup>—सच्चा पुं० [ सं० अग्र ] आगे का स्थान। अंगला हिस्सा। अग्रभाग। उ०—अग्र जो तुमरे मन में यह बात ता कहै को मोहि अंगार दयी।—सुजान०, पृ० ७१।

अंगार<sup>३</sup>—क्रि० वि० आगे। अंगाडी। पहले। प्रथम। उ०—प्रीतम को अरु प्रानन को हउ देखनो हे अब होत मरानो। कंधी चलैगो अंगार सखी यहि देह ते प्रान कि गेह ते प्यारो।—कोई कवि (शब्द०)।

अंगार<sup>४</sup>—वि० [ सं० अग्रच? ] अगुआ। नेता। मुखिया। उ०—नव सि-सिनवार दे अवारिया अंगार और खुटेवा जुझार वीर चाहर अपार।—सुजान०, पृ० ६७।

अंगारवाही—सच्चा पुं० [ सं० अंगारवाहिन् ] मकान को जालानेवाला व्यक्ति [को०]।

अंगारि—वि० [ सं० अ = नहीं + अ० गार = गड्ढा ] अगभीर। कम गहरा। उ०—दिन दिन सरोवर होइ अंगारि, अबहु नई वरिपड मही भरि वारि।—विद्यापति, पृ० ५२६।

अंगारी<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ हिं० ] दे० 'अंगाडी'। उ०—देखो दीठि, उठाय कुँवर पुनि भार अंगारी। रावति पीटति जाति नदी की ओर सिधाग।—बुद्ध चं०, पृ० ७०।

अंगारी<sup>२</sup>—वि० [ सं० अंगारिन् ] मकान मालिक। मकानवाला [को०]।

अंगारु—क्रि० वि० [ हिं० अंगार ] आगे। पहले प्रथम। उ०—जौ लीं चक्रधारी चक्र चाहत चलाइवो को, ती, लो ग्राह ग्रीवा पंगारु चक्र चलि गो।—गगन, पृ० १।

अंगाव<sup>१</sup>—सच्चा पुं० [ सं० अग्र ] ऊख के उपर का पतला और नीरस भाग जिसमें गांठें बहुत पास पास हाती हैं। अंगौरा। अघोरी। अंगोरी।

अंगास<sup>१</sup>(पु)—सच्चा पुं० [ सं० अग्र; प्रा० अग्न + आस (प्रत्य०) ] द्वार के आगे का चबूतरा।

अंगास<sup>२</sup>(पु)—सच्चा पुं० [ सं० आकाश ] आकाश। उ०—हीं सँग साँवरे के जहाँ। का यह सूर अजिर अग्नी तनु तजि अंगास पिय भवन समैहो। का यह ब्रज बापी क्रीड़ा जल भजि नंदनद सबै सुख लैहीं।—सूर० (शब्द०)।

अंगासी<sup>१</sup>—सच्चा स्त्री० [ हिं० ] दे० 'अकासी'। उ०—दीडे वदर बने मुखदर कूदे चढ़े अंगासी।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३३।

अंगाह<sup>१</sup>(पु)—वि० [ सं० अंगाध, प्रा० अंगाह ] १. अथाह। बहुत गहरा। उ०—अब लइ गए देइ ओहि सूरि। तेहि सी अंगाह बिया तुम्ह पूरी।—पद्मावत, पृ० २६२। २ अत्यंत। बहुत। उ०—जो जो सुनै धुनै सिर राजहि प्रीति अंगाह।—जायसी (शब्द०)। ३ गभीर। विवृत। उदास। उ०—जबहि सुरुज कह लागा राहू। तबहि कमल मन मयो अंगाह।—जायसी (शब्द०)।



अग्नियाना—कि० घ० [हि० अग्निया से नाम०] जल उठना । गरमाना । जलन या दाह से युक्त होना, जैसे—बलते चरते ठमका पर अग्निया गया (शब्द०) ।

अग्निया वैताल—सङ्घा पु० [स० अग्नि हि० अग्निया + सं० वैताल] १ विश्वमादित्य के दो वैतालो में से एक । २ एक कल्पित वैताल जिसके सवध में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं । कहते हैं यह बड़ा दुष्ट था और बड़े आश्चर्यजनक कृत्य करता था । ३ भूतों से लुक या लपट निकालनेवाला भूत । उत्कामुख प्रेत । ४ दन्तदन या तराई में इधर उधर घूमते हुए फामफारस व अग्न जो दूर से जनते हुए लुक के समान जान पड़ते हैं । ये कभी कभी कविरिस्तानों में भी श्रेष्ठी रात में दिखाई देते हैं । ५ वह त्रिमका स्वभाव बहुत क्रोधी और चिड़चिड़ा हो । क्रोधी व्यक्ति ।

अग्नियार<sup>१</sup>—वि० [हि० आग + इयार (प्रत्य०)] (लकड़ी, कोयला, कड़ा आदि) जिसकी आग बहुत देर तक ठहरे या तेज हो ।

अग्नियार<sup>२</sup>—सङ्घा पु० दे० 'अग्नियारी' ।

अग्नियारी<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री० [हि० आग + इयारी (प्रत्य०)] वह पदार्थ या वस्तु जो अग्नि में वायु को सुगन्धित करने के लिये डाली जाय । धूप देने की वस्तु ।

अग्नियासर्त—सङ्घा पु० [हि० अग्निया + सत्त] १. एक प्रकार का नन की जाति का पोषा । २. एक कीटा जिसके छू जाने से शरीर में जलन होती है । ३. एक चर्म रोग जिसमें झलकते हुए फफोले निकलते हैं ।

अग्निर—सङ्घा पु० [म०] १ सूर्य । २ अग्नि । ३ स्वर्ग । ४ एक राक्षस [को०] ।

अग्निरि—सङ्घा स्त्री० [स० अग्र = आगे] मकान के आगे का भाग । द्वार । उ०—तुलसी सेव जाति चवि छाए । वरसाने मनमोहन आए । चारि दुआरे उन्नत भारे । करिवर बहु भूमत मतवारे । इमि देखन अग्निरि छवि छाए । अत पुर मह माधव आए — गोपाल० (शब्द०) ।

अग्निरौवस्—वि० [म०] १ स्वर्ग में निवास करनेवाला (देवतादि) । २ शीर गुल करने पर भी न रुकनेवाला [को०] ।

अग्निला<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अग्नला' ।

अग्निलाई<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री० [स० अग्नि + हि० लाय = लपट] अग्नि की ज्वाला । आग की लपट । उ०—जगरति अग्न अग्न की आंचनि जोन्ह नहीं सु नई अग्निलाई ।—घनानन्द पृ० ६४ ।

अग्निरा<sup>१</sup>—वि० [म० अग्र + वान्] प्रधान । मुख्य । अग्निरा उ०—तेहि लवोदर वीनभूँ । चउसठि जोगिनि का अनिराण ।—वी० रासो, पृ० ३ ।

अग्निरान<sup>१</sup>—सङ्घा पु० [हि०] दे० 'अग्नवान'—२ । उ०—आदर सयुत बोल मुक्ति मली अग्निरान ।—पृ० २१०, १२१६७ ।

अग्निरा<sup>२</sup>—सङ्घा स्त्री० [स० अग्नि + गृह, प्रा० अग्नि + हर] अग्नि का निवास । चिता । उ०—वितति क० जो महिलालिनिरे मोहि देहे अग्निरा साजि ।—ब्रिद्यापति, पृ० १५८ ।

अग्निराना<sup>१</sup>—सङ्घा पु० [स० अग्निधान, अग्न्याधान] वह स्थान जहाँ आग जलाई जाती हो । आग रखने का स्थान ।

अग्नोठा<sup>१</sup>—सङ्घा पु० [दिश०] एक प्रकार का पोषा ।

विशेष—उमते पत्ते पान के आकार के पर उमड़े कृच्छ्र बड़े होते हैं । उनमें तैय की तरह तापक प्रसार का कुछ निपटा फन लगता है जिससे मगह १२ छोटे छोटे दान रहते हैं ।

अग्नोठा<sup>२</sup>—सङ्घा पु० [म० अग्र + उष्ट] आगे का भाग ।

अग्नोठि—सङ्घा पु० [हि० अग्नोठ = आगे पदार्थ म० अग्र, प्रा० अग्र + हि० उष्ट] आगे का भाग । अग्रवाटा । आगे । उ०—मगल भूति वान पत्र है मंगल वरदा मन आग्रन मोठि है । काटि मिथी करनी दन गोठ को पीठो बसाय निहारि अग्नोठि है ।—निगरी० अ० भा० १ पृ० ६८ ।

अग्नोठी<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री० दे० 'अग्नोठा' । उ०—तामिनि जने, अग्नोठी तापे त्रिने देगदर चहूँ तापे ।—गारुड०, पृ० १४९ ।

अग्नोति<sup>१</sup>—वि० [म० अग्र + ति] आगे का आगामी । उ०—आग्र अग्नोति पछात गति नि गटा गोठि जनेर के भूछन ।—अगु०, पृ० १ ।

अग्नोति<sup>२</sup>—वि० [म० अ० + गीत] गीतार्थित । न गाया हुआ । उ०—एक अग्नोति पदार्थ अग्नोति । सुनि की दे नवनिन मुगुन ।—पल्लव पृ० २ ।

अग्नोतिपछीत<sup>१</sup>—वि० वि० [स० अग्र + पछात्] आगे और पीछे की आर । आगे पाछे । उ०—रोह को मित्रिया तो रह्यो मित्रियो रह्यो पानेन माने नरेन । और इनां बिननी तुम मोहरि आग्र अग्नोति ।—अगु०, पृ० ७ ।

अग्नोतिपछीत<sup>२</sup>—सङ्घा पु० आगे का भाग और पीछे का भाग । अग्रवाटा पिछवाडा ।

अग्नोह<sup>१</sup>—वि० [म० अग्नोह] गृहीत । अग्नोह । उ०—जन प्रथम लोपत नीह । घर निरि रहत अग्नोह ।—२० रा०, ६११०७१ ।

अग्नोठित<sup>१</sup>—वि०—[म० अ + गुठित = आवृत्त] आवृत्त । चुना हुआ । उ०—भावन की नारी उवा सी आज अग्नोठित, भारत की मानवता नव आभा में मटिन ।—गुणप, पृ० ८६ ।

अग्नो<sup>१</sup>—सङ्घा पु० [म०] १ राहु ग्रह । २. प्रजापति का अवतार । अवतार (को०) ।

अग्नो<sup>२</sup>—वि० १ जिसके पाम गायन हो । मोहीन । २ गरीब । ३. दुष्ट । बदमाश [को०] ।

अग्नोआ<sup>१</sup>—सङ्घा पु० [म० अग्र + हि० उआ (प्रत्य०)] [कि० अग्नोआना । सङ्घा अग्नोआई, अग्नोआनी] १. अग्रम । आगे चलनेवाला व्यक्ति । अग्रणी । २. सुधिया । प्रधान । नायक । सरदार । नेता । ३. पदपदांक । मार्ग चतानेवाला । रहनुमा । उ०—नतखन बोला सुआ नयेया । अग्नोआ मोह पय जे देया ।—जायसी ग्र०, पृ० ५७ । ४. विवाह की वातचीत चलानेवाला । विवाह टीका करनेवाला । घटक । कीतुकी । ५. आगा । आगे का भाग ।

अग्नोआई<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री० [स० अग्र, प्रा० अग्र + आई (प्रत्य०)] १. अग्रणी होने की क्रिया । अग्रसरता । २. प्रधानता । सरदारी । ३. मार्ग प्रदर्शन । रहनुमाई । उ०—विषय निपादनाय अग्नोआई । मातु पालकी सत्तल चलाई ।—मानस, २११२ ।

अग्नोआना<sup>१</sup>—कि० सं० [हि० 'अग्नोआ' से नाम०] [सङ्घा अग्नोआनी] आगे करना । अग्नोआ बनाना । सरदार नियत करना ।

अगुआना<sup>२</sup>—क्रि० अ० आगे होना या बढ़ना ।

अगुआनी<sup>७</sup>—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवानी' । उ०—यह महीष मेरी अगुआनी के लिये महासागर तक आया ।—श्यामा०, पृ० ७६ ।

अगुण<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १. सत्व, रज, तम आदि गुणों से रहित । धर्म या ध्यापारक्ष्य । गुणरहित । निर्गुण । २. निर्गुणी । अनाडी । मूर्ख । वेदुनर ।

अगुण<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० अगुण । बुरा गुण । दोष ।

अगुणज—वि० [ म० ] जो गुणज न हो । जिस गुण की परख न हो । अनाडी । गंवार । नाकदरदान ।

अगुणता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] गुणहीनता । गुणों का अभाव । उ०—संद्रिपा में, अगुणता से नित्य उकता ही रही थी, सजन में आ ही रही थी ।—क्यासि, पृ० ८५ ।

अगुणत्व—संज्ञा पुं० [ सं० ] अगुणता । गुणरहित्य [को०] ।

अगुणवादी—वि० [ सं० ] अगुण कहनेवाला । दोष निकालने या कहनेवाला । छिद्रान्वेपी [को०] ।

अगुणवान्—वि० [ सं० ] गुणरहित [ को० ] ।

अगुणशील—वि० [ म० ] विशेषतारहित । अयोग्य । अगुणी [को०] ।

अगुणी—वि० [ सं० ] १. निर्गुणी । गुणरहित । २. अनाडी । मूर्ख ।

अगुताना<sup>७</sup>—क्रि० अ० [ हिं० ] दे० 'उकताना' । उ०—तू जानि मोहि अगुतानहु रंक जनि नावहु हो ।—पलटू० बानी, भा० ३, पृ० ७४ ।

अगुन<sup>१</sup><sup>७</sup>—वि० [ म० अगुण ] १. सत्व रज तम आदि गुणों से रहित । निर्गुण । उ०—अगुन सगन दुइ ब्रह्म सखपा ।—मानस, १।२३ । २. अनाडी । वेदुनर । निर्गुणी । उ०—अगुन अमान जानि तेहिं शीन्ह भिता वनवास ।—मानस, ६।३० ।

अगुन<sup>२</sup><sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [ म० अगुण ] दे० 'अगुण' २ । उ०—खल अव अगुन माधु गुनगाहा ।—मानस, १।६ ।

अगुनी<sup>७</sup>—वि० [ सं० अ + हिं० गुनना ] जिसे गुना या विचारा न जा सके । जिसका वर्णन न किया जा सके । उ०—ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन गाई । आरत दीन अनाथन को रघुनाय करैं निज हाथ की छाई ।—तुलसी ग्र०, पृ० २०० ।

अगुमन<sup>७</sup>—क्रि० वि० [ हिं० ] दे० 'अगमन' । उ०—मन हित अगुमन विहल चलई ।—धरती०, पृ० २ ।

अगुरु<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १. जो भारी न हो । हलका । सुबुका । २. जिसने गुरु से उपदेश न पाया हो । बिना गुरु का । निगुरा । ३. लघु या हल्का (वर्ण) ।

अगुरु<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १. अगर वृक्ष । ऊद । २. शीशम का पेड़ ।

अगुवा<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [ हिं० ] दे० 'अगुआ' । उ०—अगुवा भयउ सेख । बुरहानू । पय लाइ मोहि दीन गियानू ।—जायसी ग्र०, पृ० ८ ।

अगुवानी<sup>७</sup>—संज्ञा स्त्री० [ हिं० ] दे० 'अगवानी' ।

अगुसरना<sup>७</sup>—क्रि० अ० [ सं० अग्रसरण ] अग्रसर होना । आगे बढ़ना । उ०—एकौ परग न सो अगुसरई ।—जायसी (शब्द०) ।

अगुसारना<sup>७</sup>—[ सं० अग्रसारण ] आगे बढ़ना । आगे रखना । उ०—रंग के राजे दुख अगुसारा । जियत जीव नहिं करो निनाग ।—पदमावत, पृ० ७०३ ।

अगुठना<sup>७</sup>—क्रि० सं० [ सं० अवगुठन ] चारों ओर से घेर लेना ।

अगूठा<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अवगुठक ] घेरा । मुहासिरा ।

अगूठी<sup>७</sup>—वि० [ सं० अवगुठित अथवा हिं० अगूठ ] घेरायुक्त । उ०—जेहि कारन गढ कीन्ह अगूठी ।—जायसी (शब्द०) ।

अगूठी<sup>२</sup><sup>७</sup>—संज्ञा स्त्री० [ हिं० अगूठा ] कारागार । बधन ।

अगूढ<sup>१</sup>—वि० [ सं० अगूढ ] जो छिपा न हो । स्पष्ट । प्रकट । सहज । आसान ।

अगूढ<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० अलंकार में गुंथीभूत व्यंग्य के आठ भेदों में से एक । विशेष—यह वाच्य के समान ही स्पष्ट होता है । जैसे—'उदया-चल चुवत रवी, अस्ताचल को चद ।' यहाँ प्रभात का होना व्यंग्य होने पर भी स्पष्ट है ।

अगूढगद्य—संज्ञा पुं० [ सं० अगूढगन्ध ] हींग [को०] ।

अगूढगंधा—संज्ञा स्त्री० [ म० अगूढगंधा ] हींग । गाँधी ।

अगूढभाव—वि० [ म० अगूढभाव ] जिमका भाव या विचार छिपा हुआ न रह सके ।

अगूता<sup>७</sup>—क्रि० वि० [ सं० अग्र + हिं० ऊता (प्रत्य०) ] आगे । सामने । उ०—वाजन वाजहिं होइ अगूता । दुवौ कंत लेइ चाहिं सूता ।—जायसी ग्र०, पृ० २९६ ।

अगूभीत—वि० [ सं० ] १. अगूहीत । जो पकड़ा या गिरफ्तार न किया गया हो । २. अपराजित । अपराभूत [को०] ।

अगूह<sup>१</sup>—वि० [ म० ] गृहविहीन । बिना घर का । उ०—क्या पूछो हो पता हमारा ? हम हैं अगूह, अकाम ।—अपलक, पृ० ७३ ।

अगूह<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० गृहस्थाश्रम के बाद का आश्रम । वानप्रस्थ [को०] ।

अगूहता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] बिना घर का होने की स्थिति या दशा । बेघरदारपन [को०] ।

अगैय—संज्ञा पुं० [ सं० अग्निमन्य ] अरुनी का पेड़ । गनियारी ।

अगद्व—संज्ञा पुं० [ म० अगेन्द्र ] पर्वतों का राजा । हिमालय ।

अगेज<sup>१</sup>—वि० [ फा० अगेज ] मिला हुआ ।

अगेज<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० सहज । अगेज ।

अगय—वि० [ सं० ] जो गेय न हो या जिसका गान न किया जा सके [को०] ।

अगेयान<sup>७</sup>—वि० [ सं० अज्ञान ] अज्ञ । अज्ञान । अनजान । उ०—ए सखि पिआ मोर बडा अगेयान, बोलयि बदन तोर चाँद समान ।—विद्यापति, पृ० २८ ।

अगेला—संज्ञा पुं० [ म० अग्र + हिं० एला (प्रत्य०) ] १. आगेवाली मथिया जिन्हें नीच जाति की स्त्रियाँ कलाई में पहनती हैं । इसका उलटा 'पछेला' है । २. हलका अन्न जो ओमाते समय भूसे के साथ आगे जा पड़ता है और जिसे हलवाहें प्रादि ले जाते हैं ।

अगेह—वि० [ सं० ] जिसे घर द्वार न हो । गृहरहित । बैठकाने का । उ०—अकुल अगेह दिगवर ध्याली ।—मानस, १।७२ ।



अगौरा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अग्र + हि० औरा (प्रत्य०) ] नई फसल की पहली आंटी जो प्रायः जमींदार को भेंट की जाती है।

अगोई<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अग्रवर्ती ] अगुआ। सरदार। नायक।  
उ०—उदंकरन रन भयो अगोई ।—छत्र०, पृ० २१७।

अगोई<sup>२</sup>—वि० स्त्री० [ सं० अगोपित, प्रा० अगोइअ, हि० अगोइ ] जो छिपी न हो। प्रकट। जाहिर। व्यक्त। उ०—सतन की गति अगत अगोई ।—घट०, पृ० ७२।

क्रि० प्र०—करना ।—होना।

अगोच<sup>१</sup>—वि० [ सं० अगोचर ] दे० 'अगोचर'। उ०—देहुरे मक्के देव पायो, वस्त अगोच लखायो ।—दादू० पृ० ५३०।

अगोचर<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ जिसका अनुभव इंद्रियों को न हो। जिसका बोध न हो सके। इन्द्रियातीत। उ०—मन बुद्धि वर वाली अगोचर प्रगत कवि कैसे करे ।—मानस, १।३२। २ अप्रगट। अप्रत्यक्ष। अव्यक्त। उ०—'अगोचर वातो या भावनाओं को भी, जहाँ तक हो सकता है, वित्ता स्थूल गाचर रूप में रखने का प्रयत्न करती है।—रस०, पृ० ४१।

अगोचर<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ ब्रह्म। २ वह वस्तु जो इंद्रियों का विषय न हो। ३ वह वस्तु जिसे देखा, समझा या जाना न जा सके [को०]।

अगोचरी<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० गोचर ] दृढयोगियों की पाँच मद्राओं में से 'गोचरी' नाम की एक मुद्रा। उ०—चाचरी, भूचरी, पेचरी, अगोचरी, उन्मुनी पाँच मुद्रा साधते सिद्ध राजा ।—रामानंद०, पृ० ५।

अगोट<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अग्र = आगे + हि० ओट = आड़ ] [ क्रि० अगोटना ] १ रोक। ओट। आड़। उ०—रही दै घूघट पट की ओट। नहसुत कील, कपाट सुलच्छन, दै दृग द्वार अगोट ।—सूर०, १०।२७६६।

अगोट<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० अग्र + हि० ओट = सहारा ] आश्रय। आधार। उ०—रहिहैं चचल प्राण ए, कहि कौन की अगोट। विहारी र०, पृ० ३६५।

अगोट<sup>३</sup>—वि० [ सं० अ = नहीं + हि० गोट = जोड़, साथी ] एकाकी। अकेला।

अगोटना<sup>१</sup>—क्रि० सं० [ हि० अगोट से नाम० अग्रवा सं० अग्र, प्रा० अग्र + हि० ओट + ना (प्रत्य०) ] १. रोकना। छेकना। उ०—सबु कोट जो पाय अगोटी। मीठी खांडु जे वाए रोटी।—जायसी (शब्द०)। २. बंद कर रखना। रोक रखना। पहरें में रखना। कंद रखना। उ०—जौ गुनही, तौ रखिये आखिनु माँझ अगोटी।—विहारी र०, दो० २५०। ३. छिपाना। ढाँकना। उ०—कीजै किन व्योत अगोटन को। है चोर यही मनमोहन को।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २४२।

अगोटना<sup>२</sup>—क्रि० सं० [ सं० आक्रोड, प्रा० अक्कोड, हि० 'अगोट' से नाम० ] १ अगीकार करना। स्वीकार करना। २ पसंद करना। चुनना। उ०—लयत कल्प शतकोटि एक एक के गुन गनत। मन में लेहि अगोटी जो सुंदर नीकी लगै।—गुमान (शब्द०)।

अगोटना<sup>३</sup>—क्रि० अ० [ हि० अगोट (= रोक) से नाम० ] रकना ठहरना। अडना। फँसना। उलझना। उ०—सुनत भावती बात सुतनि की भूठहिं घाम के काम अगोटी।—सूर०, १०।१६५।

अगोली<sup>१</sup>—वि० [ हि० अगोली ] आगेवाली। आगे की। उ०—एता कमाम लै अगोली भूमि प्राया।—भिखर० पृ० ६।

अगोता<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ सं० अग्रत ] दे० 'अग्रता'।

अगोता<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० [ हि० ] अग्रवानी। पेशवाई।

अगोत्र—वि० [ सं० ] कारणरहित। अकारण [को०]।

अगोपा—वि० [ सं० ] जिसके पास गाय न हो। गोधन से रहित [को०]।

अगोपि<sup>१</sup>—वि० [ सं० अगोप्य ] प्रकट। जाहिर। व्यक्त। उ०—गोपि कहैं तो अग पि पहा यह गोपि अग पि न ठभौ न दँसा।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ९७।

अगोरई<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [ हि० अगोरना ] १ खेत आदि की देखभाल करने को मजदूरी। २ अगोरन की क्रिया या स्थिति।

अगोरदार—संज्ञा पुं० [ हि० अगोरना + फा० दार ] रखवाली करनेवाला। पहरा देनेवाला चौकसी करनेवाला। रखवाला।

अगोरना<sup>१</sup>—क्रि० सं० [ सं० आघूर्णन = देखना या म० अग्र + रक्ष या देशी ] १ रह देखना। वाट जोहना। इतजार करना। प्रतीक्षा करना। उ०—तैरी वाट अग रतें आँखें हुई चकोर की।—हर घास०, १। २ रखवाली करना। पहरा देना। चौकमी करना। उ०—कुँवर लाख दुइ वार अगोरे। दुहु दिसि पँवर ठाढ़ कर जारे।—जायसी (शब्द०)।

अगोरना<sup>२</sup>—क्रि० सं० [ हि० ] रोचना। अगोरना। छेकना। उ०—जउ मैं कोटि जतन करि राखति, घूघट अोट अगोरि। तउ उडि मिले बधिक के खग ज्यो, पलक पीअरा तोरि।—सूर०, १०।२३५७।

अगोरा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ हि० अगोर + आ (प्रत्य०) ] १ अगोरने या रखवाली करने की क्रिया। चौकसी। निगरानी। २ खेत की कटाई या फसल का देवाई के समय की वह निगरानी जो जमींदार लोग काश्तकार से उपज का भाग लेने के लिये अपनी अर से कराते हैं।

अगोराई<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [ हि० अगोर + आई (प्रत्य०) ] दे० 'अगोरई'।

अगोरिया<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ हि० अगोर + इया (प्रत्य०) ] खेत की रखवाली करनेवाला फसल रखनेवाला। रखवाला।

अगोही<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अग्रवर्ती या अग्रवाही ] वह बैल जिसके सींग आगे की ओर निकले हो।

अगोह्य—वि० [ सं० ] जो गोपनीय या ढंका न हो। प्रकट [को०]।

अगोड़ी<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [ हि० अग्र + ओड़ी (प्रत्य०) ] ईख के ऊपर का पतला भाग। अघोरी। अगोव। अगौरा।

अगौका<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] पर्वत पर रहनेवाला [को०]।

अगौका<sup>२</sup>—१ शरभ। २. सिंह। ३. पक्षी [को०]।

अगौठा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अगु, प्रा० अग्र + थठ (प्रत्य०) ] रुपया जो असामी जमींदार को नजर या पेशगी की तरह देता है। पेशगी। अगाऊ।

अगोनी<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ हि० ] दे० 'अगाउनी'। उ०—देव दिखावत कचन सो तन ओरन को मन लावै अगोनी—देव (शब्द०)।  
अगोनी<sup>२</sup>—सङ्घा स्त्री० [ हि० अगवानो ] १ अगवानी। पेशवाई।  
२ वह आतिशवाजी जो वरात आने पर द्वारपूजा के समय छोड़ी जाती है।

अगोरा<sup>१</sup>—सङ्घा पुं० [ अ० अग्र + हि० ओरा (प्रत्य०) ] ऊख के ऊपर का पतला न—स भाग जिसमें गाँठें नजदीक होती हैं। अगाव। अगोड़ी कोचा।

अगोरी<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री० [ हि० ] दे० 'अगोरा'। २ दे० 'अगोनी'।  
अगोली—सङ्घा स्त्री० [ देश० ] १ ईख की एक छटी और कड़ी जाति।  
अगोवा<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ हि० अग + ओवा (प्रत्य०) ] आगे।  
उ०—विरच्यो विकट रायमनि दोवा। घाई खाइ अरि हनै अगोवा।—छत्र०, पृ० २१५।

अगोहै<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ सं० अग्रमुख ] आगे की ओर। आगे। अगाड़ी।  
उ०—(क) भीतर भीन तें प्रान प्रिया सो मितो चहै पैग पडै न अगोहै।—वेनी प्रवीन (शब्द०)।

अगो<sup>१</sup>—क्रि० वि०। सं० अग्र; प्रा० अग्र ] अगोड़ी। आगे। उ०—अग्न गयी गिरि निकट विकट उद्यान भयकर—पृ० रा०, ६।६४।

अगोई—सङ्घा स्त्री० [ देश० ] अवध में अधिकता से होनेवाला एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष।

विशेष—इसकी पत्तियाँ प्रायः हाथ भर लंबी होती हैं। यह नेपाल भूटान, वरमा और जावा में भी पाया जाता है। इसमें पीले रंग के २-३ इंच चौड़े फूल और छोटे अमरुद के आकार के फल लगते हैं।

अगोम<sup>१</sup>—[ सं० अग्रम्भा ] दे० 'अग्रम'। उ०—अग्रम बदरिया आई रसिया, पच्छम घरस गये मँडू।—शुक्ल, अमि० अ०, पृ० १५६।

अगोय<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ सं० अग्र्य ] दे० 'अग्र' या 'अग्रे'। उ०—तहाँ अग्र्य अगोय घर तत रख्य।—पृ० रा०, ६४।१००।

अगोरी<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ देश० अगल ] [ वि० स्त्री० अगरी ] अगुआ। अग्रणी। उ०—गय सलपानी राव वीर अगरी गढ रख्ये।—पृ० रा०, १२।५८।

अगोरी<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० [ सं० आगार ] निवास। धाम। प्रासाद। उ०—अगरी जेहा झूपड़ा तउ आसगे मोइ।—ढोला० दू० ३१४।

अगोरी<sup>३</sup>—सङ्घा पुं० [ सं० अकाल ] असमय। अनवसर। उ०—कंइ तू सींची सज्जणे, कंइ वृठउ अगोरी।—ढोला० दू०, ३८१।

अगोरी<sup>४</sup>—सङ्घा पुं० [ सं० अग्नि, प्रा० अग्नि ] दे० 'अग्नि'। उ०—पवन अग्नि जलधर अकाश। सरिता समुद्र तिथि गिरि निवास।—पृ० रा०, १।१९।

अगोरीया<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री० [ सं० आशा ] दे० 'आशा'। उ०—अगोरीया दीन जहूँ जाम।—पृ० रा०, ६१।१६०७।

अगो<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ हि० ] दे० 'अग्रे'। उ०—बहुराई देव कवियन प्रवल मिलन पिथ्य अगो चलय।—पृ० रा०, ६।६३।

अगोनी<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री० [ सं० ] १ अग्नि की स्त्री स्वाहा। २. जेतायुग (को०)।

अग्नि—सङ्घा स्त्री० [ सं० ] १. आग। तेज का गोचर रूप। उष्णता। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि पंचभूतों या पंचतत्वों में से एक। २. वैद्यक के मत से तीन प्रकार की अग्नि।

विशेष—आयुर्वेद में अग्नि के तीन प्रकार माने गए हैं। यथा—(क) भोज्य, जो तृण, काष्ठ आदि के जलने से उत्पन्न होती है। (ख) दिव्य, जो आकाश में विजली से उत्पन्न होती है। (ग) उदर या जठर, जो पित्त रूप से नाभि के ऊपर और हृदय के नीचे रहकर भोजन भस्म करती है। इसी प्रकार कर्मकांड में भी अग्नि तीन प्रकार की मानी गई है। यथा—गार्हपत्य, ग्राहवनीय, दक्षिणाग्नि। सभ्याग्नि, आवसथ्य और आँपासनाग्नि—इन तीन को मिलाकर उनके छह भेद हैं जिनमें प्रथम तीन प्रधान हैं।

३ वेद के प्रधान देवताओं में से एक।

विशेष—ऋग्वेद का प्रादुर्भाव इसी से माना जाता है। वेद में अग्नि के मत बहुत अधिक हैं। अग्नि की सात जिह्वाएँ मानी गई हैं जिनके अलग अलग नाम हैं, जैसे—काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, उग्रा और प्रदीप्ता। भिन्न भिन्न ग्रंथों में ये नाम भिन्न भिन्न दिए हैं। यह देवता दक्षिण पूर्व कोण का स्वामी है और आठ लोकपालों में से एक है। पुराणों में इसे वसु से उत्पन्न धर्म का पुत्र कहा है। इसकी स्त्री स्वाहा थी जिससे पावक, पवमान और शुचि ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इन तीनों पुत्रों के भी पैंतालीस पुत्र हुए। इस प्रकार सब मिलाकर ४६ अग्नि माने गए हैं जिनका विवरण वायुपुराण में विस्तार के साथ दिया है।

क्रि० प्र०—जलना। जलाना।—डालना।—फूँकना।—वालना।—वृक्षना।—वृक्षाना।—भटकना।—भडकाना।—लगना।—लगाना।—मुलगाना।

४ जठराग्नि। पाचन शक्ति। जैसे—'अग्नि तो मद हो गई है। भूख कहाँ से लगे (शब्द०)। ५ पित्त। ६, तीन की संख्या क्योंकि कर्मकांड के अनुसार तीन अग्नि मुख्य है। ७. सोना। ८ चित्रक। चीता। ९ भिलावा। १० नीवू। ११. अग्नि-कर्म (को०)। १२ 'र' का गूढ़ प्रतीक (को०)। १३ प्रकाश (को०)।

अग्नि-क—सङ्घा पुं० [ सं० ] १ वीरवहूटी नाम का कीड़ा। २. एक प्रकार का पौधा (को०)। सर्पा की एक किस्म (को०)।

अग्नि-करा—सङ्घा पुं० [ सं० ] चिनगारी। स्फुलिंग (को०)।

अग्नि-कर्म—सङ्घा पुं० [ सं० ] १. अग्निहोत्र। हवन। २. अग्नि-संस्कार। शवदाह। ३. गरम लोहे से दागने का कार्य (को०)।

अग्नि-कला—सङ्घा स्त्री० [ सं० ] अग्नि की दस कलाओं में कोई एक (को०)।

अग्नि-कल्प—वि० [ म० ] अग्नि की प्रकृति या स्वभाववाला (को०)।

अग्नि-कांड—सङ्घा पुं० [ सं० अग्नि + कांड ] आग लगाना।

अग्नि-कारिका—सङ्घा स्त्री० [ सं० ] १ ऋग्वेदोक्त अग्निसूक्त जो 'अग्नि हूत पुरोदवे' से प्रारंभ होता है। २. अग्नि-कार्य (को०)।

अग्नि-कार्य—सङ्घा पुं० [ सं० ] दे० 'प्रतिसारण' २।

अग्नि-काष्ठ—सङ्घा पुं० [ सं० ] अगरी का पेड़।

अग्निकीट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समदर नाम का कीड़ा जिसका निवास अग्नि में माना जाता है।

अग्निकुड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्निकुण्ड] अग्निहोत्र के लिये निर्मित कुड [को०]।

अग्निकुक्कुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जलता हुआ तृण या प्याल का पुला। लुकारी। लुक।

अग्निकुमार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कार्तिकेय। पञ्चानन। २ आयुर्वेद के अनुसार एक रस जो विभिन्न अनुपातों के साथ देने से अरुचि, मदाग्नि, श्वास, कास, कफ, प्रमेह आदि रोगों को दूर करता है।

अग्निकुल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों का एक कुल या वंशविशेष। विशेष—ऐसी कथा है कि ऋषियों के तप में जब दैत्य विघ्न डालने लगे तब उन्होंने वशिष्ठ की अध्यक्षता में आवृ पर्वत पर एक यज्ञ किया। उस यज्ञकुंड से एक एक करके चार पुरुष उत्पन्न हुए जिनसे चार वंश चले अर्थात् प्रमार, परिहार, चानुक्ष्य या सोलकी और चौहान। इन चार क्षत्रियों का कुल अग्निकुल कहलाता है।

अग्निकेतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का एक नाम। २ रावण की सेना का एक राक्षस। ३ धूम्र। धुआँ [को०]।

अग्निकोण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पूर्व और दक्षिण का कोना।

अग्निक्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ शव का अग्नि में दाह। मुर्दा जलाना। २ अग्निहोत्र या अग्निर्कर्म [को०]।

अग्निक्तीडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आतशवाजी।

अग्निगर्भ<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्यकांत मणि। २. सूर्यमुखी शीशा। आतशी शीशा। ३. शमी वृक्ष। ४. अग्निजार या गजपिप्पली का पीछा [को०]।

अग्निगर्भ<sup>२</sup>—वि० जिसके भीतर अग्नि हो। जो अग्नि उत्पन्न करे, जैसे अग्निगर्भ पर्वत।

अग्निगर्भ पर्वत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ज्वालामुखी पहाड़।

अग्निगर्भा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ शमी वृक्ष। २. पृथिवी। धरा। ३ महाज्योतिष्मती नाम की लता [को०]।

अग्निगृह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह गृह जहाँ हवन की अग्नि रखी रहती हो [को०]।

अग्निघृत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि उद्दीपन करने के लिये निर्मित एक प्रकार का घृत [को०]।

अग्निचक्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ योग में शरीर के भीतर माने हुए छ चक्रों में से एक।

विशेष—इसका स्थान सौहों का मध्य, रंग विजली का सा और देवता परमात्मा माने गए हैं। इस चक्र में जिस कमल की भावना की गई है उसके दलों (पखुडियों) की संख्या दो और उनके अक्षर 'ह' और 'क्ष' हैं।

२. अग्नि का चक्र या गोला। उ०—विमल व्योम में देव दिवाकर अग्निचक्र से फिरते हैं।—कानन०, पृ० २४।

अग्निचय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निचयन' [को०]।

अग्निचयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञार्थ अग्नि को रखना। अग्न्याध्यान। २. अग्न्याध्यात कार्य में प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र [को०]।

अग्निचित्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्री।

अग्निचूड—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि के समान लाल शिखावाला पक्षी। कुम्कुट। अरुणचूड [को०]।

अग्निज<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ अग्नि से उत्पन्न। २. अग्नि को उत्पन्न करनेवाला। ३. अग्निसदीपक। पाचक।

अग्निज<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ अग्निजार वृक्ष। समुद्रफल का पेड़। २ कार्तिकेय का नाम (को०)। ४. साना। स्वर्ण (को०)।

अग्निजन्मा—सञ्ज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अग्निज' [को०]।

अग्निजात—सञ्ज्ञा पुं०, वि० [मं०] दे० 'अग्निज' [को०]।

अग्निजार—सञ्ज्ञा पुं०, वि० [मं०] समुद्र फल का पेड़।

अग्निजाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ 'अग्निज्वाला' [को०]।

अग्निजित्—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] ईश्वर [को०]।

अग्निजिह्व<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। अमर। २ विष्णु [को०]।

अग्निजिह्व<sup>२</sup>—वि० अग्नि के समान जीमवाला [को०]।

अग्निजिह्वा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ आग की लपट। २. अग्नि देवता की सूत जिह्वा।

विशेष—मुडकोपनिषद् में इनके नाम ये दिए हैं—कानी, कराली, मनोजवा, लोहिता, घमवर्णा, स्फलिगिनी और विश्वरूपी। बृहत्संहिता में अंतिम दो नामों के स्थान में उग्रा और प्रदीप्ता ३ कलियारी विष। लागली। नाम दिए हैं।

अग्निजीवी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आग के सहारे काम करनेवाले जैसे—नुहार, सुनार आदि।

अग्निज्वाला—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव। शकर [को०]।

अग्निज्वाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ आग की लपट। उ०—इहा अग्निज्वाला सी आगे जलती है उल्लास भरी।—कामायनी, पृ० १८१। २ धव का पेड़ जिसमें लाल फूल लगते हैं। ३. जलपिप्पली का पेड़।

अग्निभाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्नि + ज्वाला प्रा० भाल] जलपिप्पली का पेड़।

अग्निनु डावटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अग्निनुण्डावटी] दंबक के अनुसार अजीर्ण दूर करनेवाली गोली।

अग्नितेजा—वि० [सं०] अग्निपुल्य तेजवाला [को०]।

अग्नित्रय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक स्थापित गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण नामक अग्नि [को०]।

अग्नित्रेता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अग्नित्रय' [को०]।

अग्निदंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्निदण्ड] आग में जलाने का दंड।

अग्निद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आग लगानेवाला।

अग्निदग्ध<sup>१</sup>—वि० [सं०] चित्ताग्नि में सविधि जलाया हुआ [को०]।

अग्निदग्ध<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० पितृशरण का एक वर्ग [को०]।

अग्निदमनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] गनियारी क्षुप। एक प्रकार का क्षुप जिसे दमनी कहते हैं।

अग्निदाता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चित्ता पर शव को अग्नि देनेवाला या दाहकृत्य करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अग्निदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चित्ता में अग्नि लगाने का कार्य [को०]।

अग्निदाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ आग में जलाने का कार्य। भस्म करने का कार्य। जलाना। भस्मीकरण। २ शवदाह। मुर्दा जलाना।

अग्निदिव्य—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि के प्रयोग द्वारा सत्यासत्य का निर्णय। अग्निपरीक्षा [को०]।

अग्निदीपक—वि० [सं०] जठराग्नि को उत्तेजित करनेवाला। पाचन शक्ति बढ़ानेवाला।

अग्निदीपन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्निवर्धन। जठराग्नि की वृद्धि। पाचनशक्ति को बढ़ती। २ अग्निवर्धक औषध। पाचनशक्ति को बढ़ानेवाली दवा। वह दवा जिसके खाने से भूख लगे।

अग्निदीप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाज्योतिष्मती। अग्निगर्भा [को०]।

अग्निदूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ में आवाहित देवगण। २ यज्ञकार्य। यजन [को०]।

अग्निदूषित—वि० [सं०] दूषित। जला हुआ [को०]।

अग्निदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवरूप में अग्नि को प्रधान माननेवाले अग्निपूजक। २ अग्नि [को०]।

अग्निदेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृत्तिका नक्षत्र [को०]।

अग्निद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वदक्षिण कोण में स्थित मकान का दरवाजा [को०]।

अग्निधान—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि रखने का पवित्र स्थान [को०]।

अग्निनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका नाम का तृतीय नक्षत्र [को०]।

अग्निनयन—संज्ञा पुं० [सं०] हवन की अग्नि का विधिपूर्वक सम्कार करना [को०]।

अग्निनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निजारवृक्ष [को०]।

अग्निनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] देवगण [को०]।

अग्निपक्व—वि० [सं०] अग्नि पर पकाया हुआ [को०]।

अग्निपरिक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि में हवन और उसकी सुरक्षा करना [को०]।

अग्निपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्र लेना [को०]।

अग्निपरिधान—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की अग्नि को पन्दे से आवृत करना या घेरना [को०]।

अग्निपरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जलती हुई आग द्वारा परीक्षा या जाँच। जलती हुई आग पर चलाकर शयवा जलता हुआ पानी, तेल या लोहा छुलाकर किसी व्यक्ति के दोषी या निर्दोष होने की जाँच।

विशेष—प्राचीन काल में जब किसी व्यक्ति पर किसी अपराध का संदेह होता था तब यह देखने के लिये कि वह यथार्थ में दोषी है या नहीं, लोग उसे आग पर चलने को कहते थे, शयवा उसके ऊपर जलता हुआ तेल या जल डालते थे। उनका विश्वास था कि यदि वह निरपराध होगा तो उसे कुछ आँच न आयेगी।

२ भयप्रदायक एवं कठिन परीक्षा। ३ सोने, चाँदी आदि धातुओं की आग में तपा कर परख।

अग्निपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वालामुखी पर्वत [को०]।

अग्निपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] १८ पुराणों में से एक।

विशेष—इसका नाम अग्निपुराण इस कारण है कि इसे अग्नि ने

वशिष्ठ जी को पहले पहल सुनाया था। इसके श्लोकों की मख्या कोई १४,०००, कोई १५,००० और कोई १६,००० मानते हैं। इसमें यद्यपि शिव का महात्म्यवर्णन प्रधान है पर कर्मकांड, राजनीति, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, अन्तकार, छंद शास्त्र, व्याकरण, तत्त्व आदि अनेक फुटकर विषय भी इसमें नमिलित हैं।

अग्निपूजक—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि की पूजा करनेवाला व्यक्ति, जाति या धर्म।

अग्निप्रणयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निनयन' [को०]।

अग्निप्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ, विवाहादि धार्मिक अवसरों पर कुंड या वेदी पर अग्नि को रखने की क्रिया [को०]।

अग्निप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर त्याग की इच्छा से अग्नि में प्रवेश करना। २ किसी स्त्री का पति के शव पादि के साथ चिता में प्रवेश करना [को०]।

अग्निप्रस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि उत्पन्न करनेवाला पत्थर। वह पत्थर जिससे आग निकले। चकमक पत्थर।

अग्निवाण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र। वह वाण जिसमें से अग्नि की ज्वाला प्रकट हो। वह तीर जिसमें आग की लपट निकले। भस्म करनेवाला वाण।

विशेष—ऐसा कहा कहा जाता है यह वाण मंत्र द्वारा चलाया जाना था और इससे अग्नि की वर्षा होने लगती थी।

अग्निवाव—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि + वायु, प्रा० वाव) १ घोंडा और चौपायों का एक रोग जिसमें उनके शरीर पर छोटे आँवले निकलते हैं और फूट फूटकर फैलते हैं। यह रोग अधिकतर घोड़ों की ही होता है। २ मनुष्यों का एक चर्मरोग जिसमें शरीर पर बड़े बड़े लाल चकत्ते या ददोरे निकल आते हैं। पित्ती। जूड़पित्ती। ददरा। ३ अग्नि की ज्वाला या लपट। उ०—पुंडीर चंद जनु अग्निवाव।—पृ० रा०, ८११६।

अग्निवाहु—संज्ञा पुं० [सं०] १ धूम्र। धुँध। २ प्रथम मनु के पुत्र [को०]।

अग्निवीज—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना।

विशेष—मनु आदि प्राचीन ग्रंथों में सोने की उत्पत्ति अग्नि के संयोग से लिखी है।

२. अग्नि का बीजाक्षर 'र' [को०]।

अग्निभा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निसदृशी नक्षत्र। कृत्तिका। २. सोना। स्वर्ण [को०]।

अग्निभा<sup>२</sup>—वि० अग्नि की तरह दीप्त [को०]।

अग्निभू—संज्ञा पुं० [सं०] कर्त्तिकेय।

अग्निभूति—संज्ञा पुं० [सं०] अंतिम जैन तीर्थंकर के शिष्य [को०]।

अग्निमय—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमय) १ अरणी वृक्ष जिसकी लकड़ी को परस्पर घिसने से आग बहुत जल्द निकलती है। २ अरणी नामक मंत्र जिसमें यज्ञ के लिये आग निकाली जाती है।

अग्निमयन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमयन] दे० 'अग्निमय' [को०]।

अग्निमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्यकांत मणि। एक बहुमूल्य पत्थर।

२ सूर्यमुखी शीशा। आतशी शीशा।

अग्निमय—सज्ञा पु० [स०] १. यज्ञ में अरणि का मयन करनेवाला याज्ञिक ब्राह्मण । २. अरणिमयन के अवसर पर प्रयुक्त होने वाले मंत्र । ३. अरणि का काट [को०] ।

अग्निमाद्य—सज्ञा पु० [स० अग्निमान्द्य] मदाग्नि, जठराग्नि की कमी । पाचनशक्ति की कमी । सुख न लगने का रोग ।

अग्निमान्<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [स०] विधिपूर्वक अग्नि रखनेवाला द्विज । अग्निहोत्री [को०] ।

अग्निमान्<sup>२</sup>—वि० अच्छी पाचनशक्तिवाला [को०] ।

अग्निमारुति—सज्ञा पु० [स०] अगस्त्यमुनि का नाम ।

अग्निमित्र—सज्ञा पु० [स०] शुग वशीय पुष्यमित्र का पुत्र । मालवि-  
काग्निमित्र न टक में इसकी क्या है [को०] ।

अग्निमुख—सज्ञा पु० [स०] १. देवता । २. अग्निहोत्री [को०] ।  
३. प्रेत । ४. ब्राह्मण । ५. चीति का पेड़ । ६. मिलावे का पेड़ । ७. वैद्यक में अजीर्ण नाशक चूर्ण का नाम जो जवाखार, सज्जी, चित्रक, लवण आदि कई द्रव्यों के मेल से बनता है । ८. एक रस श्रोवधि का नाम जिससे वातशूल दूर होता है । ९. खटमल [को०] ।

अग्निमुखी—सज्ञा स्त्री [स०] १. भल्लानक । भिलावा । २. गायत्री का मंत्र । ३. ब्राह्मण । ४. अग्नि आदि देवगण । ५. पाक-  
शाला [को०] ।

अग्नियन्त्र—सज्ञा पु० [स० अग्नियन्त्र] आग उगलनेवाला यन्त्र ।  
वदूक [को०] ।

अग्नियान—सज्ञा पु० [स०] विमान । व्योमयान । वायुयान [को०] ।

अग्नियुग—सज्ञा पु० [स०] ज्योतिष में पाँच पाँच वर्ष के जो बारह युग माने गए हैं । उनमें से एक । इस युग के वर्षों के नाम क्रम से चित्रमानु, सुमानु, तारण, पार्थिव और व्यय हैं ।

अग्नियोजन—सज्ञा पु० [स०] यज्ञार्थ अग्नि प्रकट करने का कार्य [को०] ।

अग्निरक्षण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अग्न्याधान' [को०] ।

अग्निरजा—सज्ञा पु० [स०] १. वीरखहूटी कीड़ा । २. स्वर्ण [को०]

अग्निरहस्य—सज्ञा पु० [स०] १. अकल्प की उपासना को बतानेवाला शास्त्र या ग्रन्थ । २. शतपथ ब्राह्मण का दशम कांड [को०] ।

अग्निरुहा—सज्ञा स्त्री [स०] मासरोहिणी नामक लता [को०] ।

अग्निरूप—वि० [पुं०] अग्निमुख्य तेजोमय स्वरूपवाला [को०] ।

अग्निरेता—सज्ञा पु० [स० अग्निरेतस्] अग्नि का रेतस् या तेज ।  
सोना [को०] ।

अग्निरोहिणी—सज्ञा स्त्री [स०] वैद्यक मतानुसार एक रोग जिसमें अग्नि के समान झलकते हुए फफोले पड़ते हैं और रोगी को दाह और ज्वर होता है ।

अग्निर्लिङ्ग—सज्ञा पु० [स० अग्निर्लिङ्ग] आग की लपट की रंगत और झुकाव देखकर शुभाशुभ फल बतलाने की विद्या ।

अग्निलोक—सज्ञा पु० [स०] अग्नि द्वारा अधिष्ठित मेरु पर्वत के नीचे का लोक [को०] ।

अग्निवश—सज्ञा पु० [स०] अग्निकुल ।

अग्निवधू—सज्ञा स्त्री [स०] अग्नि की स्त्री रुद्रा [को०] ।

अग्निवर्च<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [अग्निवर्चस्] अग्नि का तेज [को०] ।

अग्निवर्च<sup>२</sup>—वि० अग्नि की तरह दीप्त [को०] ।

अग्निवर्ण<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [स०] इक्ष्वाकुवशीय एक राजा जो रघु के प्रपञ्च तथा सुदर्शन के पुत्र थे ।

अग्निवर्ण<sup>२</sup>—वि० आग के रंग का । आगरे के समान । रक्तवर्ण । लाल ।

अग्निवर्णा—सज्ञा स्त्री [स०] तीखी मटिरा । तेज शराव [को०] ।

अग्निवर्तक—सज्ञा पु० [स०] पुराणों के अनुसार एक प्रकार का भेय [को०] ।

अग्निवर्धक—वि० [स०] जठराग्नि को बढ़ानेवाला । पाचन शक्ति को बढ़ानेवाला [को०] ।

अग्निवर्षा—सज्ञा स्त्री [स०] १. युद्ध में आग्नेयस्तोत्रों की वर्षा या प्रयोग । २. भयकर धूप पड़ना ।

अग्निवल्लभ—सज्ञा पु० [स०] १. साल का वृक्ष । साव का पेड़ ।  
२. साल से निकली हुई गोद । राल । धूप ।

अग्निवासा—वि० [स० अग्निवासस्] अग्नि की तरह शुद्ध या लाल वस्त्रवाला [को०] ।

अग्निवाह<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [स०] १. वकरा । छाग । २. धूम्र [को०] ।

अग्निवाह<sup>२</sup>—वि० ज्वलनशील (पदार्थ) [को०] ।

अग्निवाहन—सज्ञा पु० [स०] वकरा । छाग [को०] ।

अग्निविदु—सज्ञा पु० [स०] चिनगारी । स्फुलिंग [को०] ।

अग्निविद—सज्ञा पु० [स० अग्निवित्] अग्निहोत्री ।

अग्निविद्—वि० अग्निहोत्र आदि की क्रियाओं का ज्ञाता [को०] ।

अग्निविद्या—सज्ञा स्त्री [स०] प्रातःकाल और सायंकाल मंत्रों द्वारा अग्नि की उपासना की विधि । अग्निहोत्र ।

यी०—पंचाग्निविद्या = छादोग्य उपनिषद् में सूर्य, वादल, पृथ्वी पुरुष और स्त्री सबधी विज्ञान को 'पंचाग्निविद्या' कहा है ।

अग्निविश्वरूप—सज्ञा पु० [स०] बृहत्संहिता के अनुसार केतु तार्गभों का एक भेद । ये ज्वाला की माला से युक्त और सध्या में १२० कहे गए हैं ।

अग्निविसर्प—सज्ञा पु० [स०] शोथ या फोड़े के कारण होनेवाली जलन या दर्द [को०] ।

अग्निवीर्य<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [स०] १. अग्निमुख्य पराक्रम । २. स्वर्ण [को०] ।

अग्निवीर्य<sup>२</sup>—वि० अग्नि के सदृश तेजस्वी [को०] ।

अग्निवेश—सज्ञा पु० [स०] आयुर्वेद के आचार्य एक प्राचीन ऋषि का नाम जो अग्नि के पुत्र कहे जाते हैं ।

अग्निव्रत—सज्ञा पु० [स०] वेद की एक ऋचा का नाम ।

अग्निशरण—सज्ञा पु० [स०] अग्निशाला [को०] ।

अग्निशर्मा<sup>१</sup>—वि० [स०] बहुते शीघ्र उत्तेजित होनेवाला [को०] ।

अग्निशर्मा<sup>२</sup>—सज्ञा पु० एक ऋषि [को०] ।

अग्निशाल—सज्ञा पु० [स०] अग्निशाला [को०] ।

अग्निशाला—सज्ञा स्त्री [स०] वह घर जिसमें अग्निहोत्र या हवन करने की अग्नि स्थापित हो । उ०—देखते थे अग्निशाला में कुतूहलपुक्त ।—कामायनी, पृ० ८३ ।



अग्निशिख--सज्ञा पुं० [ सं० ] १ कुसुम या वरें का पेड़ । २. कुकुम । केमर । ३ सोना । ४ दीपक । ५ वाण । तीर । ६. अग्नि-वाण [को०] ।

अग्निशिखा--सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ अग्नि की ज्वाला । आग की लपट । उ०--अग्निशिखा वृक्ष गई जागने पर जैसे सुख सपने ।--कामायनी पृ० १३८. २ कलियारी या करियारी नामक पौधा जिसकी जड़ में विष होता है ।

अग्निशुद्धि--सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ अग्नि से पवित्र करने की क्रिया । आग छुलाकर किसी वस्तु को शुद्ध करना । २ अग्निपरीक्षा ।

अग्निशेखर--सज्ञा पुं० [ सं० ] १ कुसुम या वरें का पेड़ । २ केसर । ३ जागली वृक्ष । ४ सोना । स्वर्ण [को०] ।

अग्निश्री--वि० [ सं० ] अग्नि की तरह दीप्त या शोभ वाना [को०] ।

अग्निष्टुत्--सज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का यज्ञ जो एक दिन में पूरा होता है । यह अग्निष्टोम का ही संक्षेप है ।

अग्निष्टोम--सज्ञा पुं० [ सं० ] एक यज्ञ जो ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का रूपांतर है ।

विशेष--इसका काल वसंत है । इसके करने का अधिकार अग्नि-होत्री ब्राह्मण को है । द्रव्य इसका सोम है । देवता इसके इंद्र और वायु आदि हैं और इसमें ऋत्विजों की सख्या १६ है । यह यज्ञ पाँच दिन में समाप्त होता है ।

अग्निष्ठ--सज्ञा पुं० [ सं० ] १ रमोद्देश । २ अंगीठी [को०] ।

अग्निष्वात्ता--सज्ञा पुं० [ सं० ] १ पितरों का एक भेद । २ अग्नि, विद्युत् आदि विद्याओं का जानने वाला ।

अग्निस्काश--वि० [ सं० ] अग्निबुल्य वर्ण या दीप्तिवाला [को०] ।

अग्निस्दीपन--वि० [ सं० ] ३० 'अग्निर्दीपक' [को०] ।

अग्निर्भव--वि० [ सं० ] अग्नि द्वारा उत्पन्न [को०] ।

अग्निर्भव<sup>२</sup>--सज्ञा पुं० १ स्वर्ण । २ अरण्य कुसुम । ३ वातिकेय । ४ भोज्यपदार्थ या भोजन का रस [को०] ।

अग्निस्कार--सज्ञा पुं० [ सं० ] १ आग का व्यवहार । आग जलाना । २ तपना । तप्त करना । ३ शुद्धि के लिये अग्नि स्पर्श कराने का विधान । ४ मृतक के शव को भस्म करने के लिये उसपर अग्नि रखने की क्रिया । दाहकर्म । ५ आढ़ में पिंड रखने की वेदी पर आग की चिनगारी घुमाने की रीति या क्रिया ।

अग्निर्हिता--सज्ञा स्त्री० [ सं० ] अग्निवेश ऋषि द्वारा प्रणीत चिकित्सा संवधि एक ग्रन्थ [को०] ।

अग्निस्खा--सज्ञा पुं० [ सं० ] दे० 'अग्निम्हाय' ।

अग्निस्हाय--सज्ञा पुं० [ सं० ] १ जगली कवतर ( क्योंकि उसके मांस से जठराग्नि तीव्र होती है ) । २ वायु । हवा । ३ धुआँ [को०] ।

अग्निर्साक्षिक--वि० [ सं० ] १ जिसका साक्षी अग्नि हो । २ जिसकी प्रतिज्ञा अग्नि को साक्षी देकर की गई हो । जो अग्नि देवता के सामने सपादित हो ।

विशेष--जो बात अग्नि के सामने उसको साक्षी मानकर कही जाती है वह बहुत पक्की समझी जाती है और उसका पालन धर्म-विचार से अत्यंत आवश्यक होता है । विवाह में वर कन्या की जो प्रतिज्ञा होती है वे अग्नि को साक्षी देकर की जाती है ।

अग्निर्सात्--वि० [ सं० ] आग में जलाया हुआ । भस्म किया हुआ । क्रि० प्र०--करना ।--होना ।

अग्निर्सार--सज्ञा पुं० [ सं० ] नेत्रों के लिये आयुर्वेदकथित एक औषध । रसाजन [को०] ।

अग्निर्सूत--सज्ञा पुं० [ सं० ] कार्तिकेय [को०] ।

अग्निर्सूनु--सज्ञा पुं० [ सं० ] कार्तिकेय [को०] ।

अग्निर्मेवन--सज्ञा पुं० [ सं० ] आग तापना ।

अग्निर्स्तम्भ--सज्ञा पुं० [ सं० अग्निस्तम्भ ] १. अग्नि के प्रभाव को रोकने का कार्य । २ अग्निप्रभाव रोकनेवाले मन्त्र । ३ अग्नि-प्रभाव-निरोधक चूर्ण या लेप [को०] ।

अग्निस्तम्भन--सज्ञा पुं० [ सं० अग्निस्तम्भ ] दे० 'अग्निस्तम्भ' [को०] ।

अग्निस्तोक--सज्ञा पुं० [ सं० ] स्फुल्लिग । चिनगारी [को०] ।

अग्निहोत्र--सज्ञा पुं० [ सं० ] वेदोक्त मंत्रों से अग्नि में आहुति देने की क्रिया । एक यज्ञ । उ०--जलने लगा निरंतर उनका अग्निहोत्र सागर के तीर ।--कामायनी, पृ० ३१ ।

अग्निहोत्री--वि० सज्ञा पुं० [ सं० अग्निहोत्रिन् ] अग्निहोत्र करने-वाला । सवेरे सध्या अग्नि में वेदोक्त विधि में हवन करने-वाला । आहि-अग्नि ।

अग्निहोत्री<sup>२</sup>--सज्ञा स्त्री० यज्ञप्रयुक्ता गाय [को०] ।

अग्नीध्र--सज्ञा पुं० [ सं० ] १ यज्ञ में ऋत्विक्विशेष जिसका काम अग्नि की रक्षा करना है । २ स्वायम्भुव मनु के पुत्र एक राजा का नाम । ३ मनु के पुत्र राजा प्रियव्रत का बेटा । उ०--प्रियव्रत के अग्नीध्र सू भयो ।--सू० ५।२।४ । दे० 'अग्नीध्र' । अग्नीय--वि० [ सं० ] १. अग्नि का समीपवर्ती । २ अग्निस्वधी । अग्नि का [को०] ।

अग्न्यगार--सज्ञा पुं० [ सं० ] यज्ञाग्नि को रखने का स्थान । अग्निहोत्र का गृह [को०] ।

अग्न्यस्त्र--सज्ञा पुं० [ सं० अग्नि + अस्त्र ] १ मन्त्र द्वारा फेंका जानेवाला अस्त्र जिससे आग निकले । अग्निघटित अस्त्र । आग्नेयास्त्र । २ वह अस्त्र जो अग्नि से चलाया जाय, जैसे वदक ।

अग्न्यागार--सज्ञा पुं० [ सं० ] दे० 'अग्न्यगार' [को०] ।

अग्न्याधान--सज्ञा पुं० [ सं० ] १ अग्नि की विधानपूर्वक स्थापना । २ अग्निहोत्र ।

अग्न्यालय--सज्ञा पुं० [ सं० ] दे० 'अग्न्यागार' [को०] ।

अग्न्याशय--सज्ञा पुं० [ सं० ] जठराग्नि का स्थान । पक्वाशय ।

अग्न्याहित--सज्ञा पुं० [ सं० ] अहिताग्नि । अग्निहोत्री [को०] ।

अग्न्युत्पात--सज्ञा पुं० [ सं० ] १ आकाशीय अग्नि द्वारा उपद्रव ।

विशेष--नक्षत्र, उल्का, वज्र या पत्थर, बिजली और तारा के रूप में यह पाँच प्रकार का होता है ।

२ अग्निकांड । आग लगना [को०] ।

अग्न्युत्सादी--वि० [ सं० ] जो अग्निहोत्र या यज्ञ की अग्नि को बुझ जाने देता है [को०] ।

अग्न्युद्धार--सज्ञा पुं० [ सं० ] घरणिमंथन द्वारा आग उत्पन्न करने का कार्य [को०] ।

अग्न्युपस्थान--सज्ञा पुं० [ सं० ] १. अग्नि की पूजा या प्रार्थना । २ अग्निपूजा में प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र [को०] ।



अग्र्य<sup>१</sup>—वि० [स० अज्ञ, पु० हि० अग्र्य] राम विरोधा विजय चह  
सठ हठ वस अति अग्र्य ।—मानम, ६।८३ ।  
अग्र्या<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अज्ञा, पु० अग्र्या] दे० 'अज्ञा' । उ०—  
अग्र्यां भई रिमान नरेसू ।—पदमावन, पृ० ४६३ ।  
अग्र्यान्<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० अज्ञान, पु० अग्र्यान्, अग्रेयान्] दे० 'अज्ञान' ।  
उ०—जोवन गूढ गवित सुनि सजनी तज्यो नाहि अग्र्यान् ।—  
पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १४८ ।  
अग्र्या<sup>४</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अग्र्या' । उ०—जो अग्र्या सामत  
स्वामि दीनी सु मानि लिप ।—मृ० रा०, ३।१।४८ ।  
अग्र्याकारिनि<sup>५</sup>—वि० स्त्री० [स० अज्ञाकारिणी] आदेश माननेवाली ।  
सेविका । उ०—हूँ तो तिहारी अग्र्याकारिनि साँचि बात मोसँ  
वहा करी महराज ।—नद० ग्र०, पृ० ३६८ ।  
अग्र्यात<sup>६</sup>—क्रि० वि० [स० अज्ञात, पु० अग्र्यात] दे० 'अज्ञात' ।  
अग्र्यान्<sup>७</sup>—वि० दे० [हि०] 'अग्र्यान्' । उ०—मैं अग्र्यान् अकुलाइ,  
अधिक लै, जरत माँभ दून नाथी ।—सूर०, १।१५४ ।  
अग्र्यारी<sup>८</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अग्नि + कारिका, प्रा० अग्निआरिया =  
होमकर्म] १ अग्नि में धूप, गुड आदि सुगंध द्रव्य देने की  
क्रिया । धूपदान । २ अग्निकुंड ।  
अग्र्यान्<sup>९</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अग्रवान' २ । उ०—सुनि आवत  
चहुअन, वरिय अग्र्यान् सलप वर ।—पृ० रा०, १।४।२२ ।  
अग्र<sup>१०</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ आगे का भाग । अगला हिस्सा । आगा ।  
उ०—बहुरि वरि कोष हल अग्र पर दक्ष धरि कटक को सकल  
चाहत दुवायो ।—सूर० (शब्द०) । २. सिरा । नोक उ०—  
जैमे जब के अग्र ओस कन प्राण रहत ऐसे अवधिहि के तट ।—  
सूर (शब्द०) । ३ स्मृति के अनुसार अन्न की भिक्षा का एक  
परिमाण जो मोर के ४८ अटो के बराबर होता है । ४ शृंग ।  
गिखर (को०) । ५ श्रेष्ठता । उत्कर्ष (को०) । ६ आलवन ।  
अवलवन (को०) । ७ प्रारम्भ । शुरुआत (को०) । ८.  
समूह । मंड (को०) । ९ पल नाम की एक तौल (को०) ।  
१० अपने वग या जानि का सर्वोत्तम पदार्थ (को०) । ११.  
सूर्य का घेरा या मंडल (को०) ।  
अग्र<sup>११</sup>—क्रि० वि० आगे । उ०—चली अग्र करि प्रिय सखि सोई ।  
प्रीत पुरातन लखड न कोई ।—तुलसी० (शब्द०) ।  
अग्र<sup>१२</sup>—वि० १ अगला । प्रथम । २ श्रेष्ठ । उत्तम । ३ प्रधान ।  
मुख्य । ४ अधिक । ज्यादा । [को०] ।  
अग्रकर<sup>१३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ हाथ का अगला भाग । २ हाथ की  
उँगलियाँ । ३ मूर्य की प्रथम किरण । प्रकाश [को०] ।  
अग्रकाय<sup>१४</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] शरीर का अगला भाग [को०] ।  
अग्रग<sup>१५</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [न०] अग्रग्रा । नेता [को०] ।  
अग्रगण्य<sup>१६</sup>—वि० [म०] जिसकी गिनती पहले हो । प्रधान । मुखिया ।  
श्रेष्ठ । बड़ा ।  
अग्रगामी<sup>१७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० अग्रगामिन्] वह जो आगे चले । प्रधान  
व्यक्ति । अग्रसर । अग्रग्रा । नेता ।  
अग्रगामी<sup>१८</sup>—वि० [स्त्री० अग्रगामिनी] आगे चलनेवाला । अग्रग्रा ।  
उ०—रहे नदा तुम तो अनुगामी, आज अग्रगामी न बनो ।—  
नाकेत, पृ० ३६६ ।

अग्रगामी दल—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [अ० फारवर्ड ब्लाक] वह सत्ता  
वा सघटन जिसकी स्थापना सुभाषचंद्र बसु ने कांग्रेस से सवध-  
विच्छेद करने के बाद की ।  
अग्रजघा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अग्रजङ्घा] जाँघ का अगला भाग [को०] ।  
अग्रज<sup>१९</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ जो भाई पहले जन्मा हो । बड़ा भाई ।  
उयेष्ठ भ्राता । अनुज का उलटा । उ०—अग्रज परतिग्या  
करी तुव उरु तोडन हेत ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ११४ ।  
२ पु० नायक । नेता । अग्रग्रा । उ०—सेना अग्रज हत्यो  
पच भट अक्ष कुमारहि घाता ।—रामस्वयंवर (शब्द०) ।  
३ ब्राह्मण ।  
अग्रज<sup>२०</sup>—वि० १ श्रेष्ठ । उत्तम । उ०—बैठे विशुद्ध गृह अग्रज अग्र  
जाई । देखी वसत ऋतु सुंदर मोददाई ।—केशव (शब्द०) ।  
२ आगे पैदा होनेवाला । उ०—रोवत तै बरजे सर्व मोहन  
अग्रज भाई ।—सूर०, १।५८६ ।  
अग्रजन्मा—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ बड़ा भाई । २ ब्राह्मण । ३ ब्रह्मा ।  
अग्रजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] बड़ी बहन । उ०—प्रभु कहाँ, कहाँ किनु  
अग्रजा, कि जिनके लिये था मुझे तजा ।—साकेत, पृ० ३१२ ।  
अग्रजात—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ ब्रह्मण । २ बड़ा भाई [को०] ।  
अग्रजातक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] ब्राह्मण [को०] ।  
अग्रजाति—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अग्रजातक । ब्राह्मण [को०] ।  
अग्रजिह्वा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] जीभ का अगला भाग [को०] ।  
अग्रणी—वि० [म०] अग्रग्रा । श्रेष्ठ । प्रधान । मुखिया ।  
अग्रणी<sup>२१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ प्रधान पुरुष । मुखिया । अग्रग्रा । २. बह्नि ।  
अग्नि [को०] ।  
अग्रत—क्रि० वि० [म०] आगे से । पहले से ।  
अग्रदानी—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह पतिव्रता ब्राह्मण जो प्रेत या मृतक के  
निमित्त दिए हुए तिल आदि के दान को ग्रहण करे ।  
अग्रदूत—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह दूत जो किसी के आने की सूचना आने-  
वाले व्यक्ति के पूर्व ही पहुँचकर दे । उ०—मैं ही वसत का  
अग्रदूत ।—अपरा, पृ० २६ ।  
अग्रनख—सञ्ज्ञा पुं० [स०] नख का अगला भाग [को०] ।  
अग्रनिरूपण—सञ्ज्ञा पुं० [म०] भविष्य या भावी का कथन [को०] ।  
अग्रनी<sup>२२</sup>—वि० [हि०] दे० 'अग्रणी' । उ०—वीटन को नायक  
सहायक बह्निनी को अग्रनी चिराग वर अग्रनी बनायो है ।—  
दीन० ग्र०, पृ० १३४ ।  
अग्रपर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] अग्रलोमा । केवाँच [को०] ।  
अग्रपा—वि० [म०] सवमे प्रथम पानेवाला [को०] ।  
अग्रपाद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] पैर का अगला हिस्सा । अग्रग्रा [को०] ।  
अग्रपूजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ सबसे पहले पूजा । सर्वप्रथम अर्चना ।  
२. सबसे अधिक पूज्यता या मान्यता [को०] ।  
अग्रवीज<sup>२३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ वह वृक्ष जिसकी डाल काटकर लगाने  
से लग जाय । पेड़ जिसकी कलम लगे । २. कलम ।  
अग्रवीज<sup>२४</sup>—वि० कलम से होनेवाला [को०] ।  
अग्रभाग—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ आगे का भाग । अगला हिस्सा । २.  
सिरा । नोक । छोर । ३ आदि आदि से पहले दिया जानेवाला  
द्रव्य [को०] । ४. शेष अश या भाग [को०] ।

अग्रभागी—वि० [सं०] सर्वप्रथम हिस्सा या भाग पानेवाला [को०]।  
अग्रभुक्—वि० [सं०] १. देवपितर को अग्रण किए बिना पहले स्वयम् खानेवाला। २. पैटू। औ०रिक। ३. सबसे पहले भोजन करने वाला [को०]।

अग्रभू—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अग्रभूमि' [को०]।

अग्रभूमि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. घरकी छत। पाटन। २. लक्ष्य या प्राप्य स्थान [को०]।

अग्रमहिषी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्रधान रानी। पटरानी [को०]।

अग्रमास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. उदर के भीतर मामवृद्धि का एक रोग। २. हृदय [को०]।

अग्रमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मुख का अग्रभाग। मुखग्र [को०]।

अग्रयान<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सेना का आगे बढ़ना। सेना का पहला घावा। २. आगे बढ़ती हुई सेना। घावा करती हुई फौज।

अग्रयान<sup>२</sup>—वि० अग्रगामी। अग्रग्रा [को०]।

अग्रयायी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्रयायिन्] १. अग्रग्रा। अग्रसर। २. प्रधान। श्रेष्ठ [को०]।

अग्रयोधी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आगे बढ़कर युद्ध करनेवाला वीर। २. प्रधान योद्धा। प्रमुख वीर [को०]।

अग्रलेख—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्र + लेख] दैनिक और साप्ताहिक समाचार पत्रों में सर्वाधिक स्तम्भ के अतर्गत मपादक द्वारा लिखित प्रमुख लेख। उ०—'जीवन चित्र लिख अग्रलेख अथवा छापते विशाल चित्र'।—अपरा, पृ० ६२।

विशेष—यह शब्द अंग्रेजी के 'लीडिंग आर्टिकल' का अनुवाद है।

अग्रलोहिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चिल्ली या वधुआ नामक शाक [को०]।

अग्रवक्त्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत में वर्णित त्रीरफाड का एक वक्त्र।

अग्रवर(पुं०)—क्रि० वि० [सं० अग्र + पर, प्रा० वर] आगे। पहले।  
उ०—उमडि अग्रवर पैर दिन्ह्यउ, जिय हठि प्रथम जुद्ध अत लिन्ह्यउ।—हिम्मत०, पृ० ६५७।

अग्रवर्ती—वि० [सं० अग्रवर्तिन्] आगे रहनेवाला। अग्रग्रा।

अग्रवात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्वच्छ एव ताजा वायु [को०]।

अग्रवान्—वि० [सं०] सबसे आगे या श्रेष्ठ [को०]।

अग्रवाल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] अग्रवाला।

अग्रश—क्रि० वि० [सं०] आगे से ही। पहले से ही। शुरू से ही [को०]।

अग्रशाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निवास का अग्रला भाग। ओसारी [को०]।

अग्रशोची—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आगे से विचार करनेवाला। दूरदर्शी।  
दूरदेश, जैसे—'अग्रशोची सदा सुखी' (शब्द०)।

अग्रशोभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कृष्ट मूर्दर्य। अपूर्व शोभा [को०]।

अग्रसख्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्रथम स्थान या श्रेणी [को०]।

अग्रसंधानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] यमराज की एक पुस्तिका या पञ्जिका जिसमें प्राणिवर्ग का शुभाशुभ लिखा रहता है [को०]।

अग्रसंध्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रातःकाल। प्रभात। ऊषाकाल।  
२. सायंकाल का पूर्ववर्ती समय [को०]।

अग्रसर<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आगे जानेवाला व्यक्ति। अग्रगामी। अग्रग्रा। २. आरम्भ करनेवाला। पहले पहले करनेवाला व्यक्ति। ३. मुखिया। प्रधान व्यक्ति।

क्रि० प्र०—होना = आगे बढ़ना। उ०—हुए अग्रसर उसी मार्ग से छुटे तीर से फिर वे।—कामायनी, पृ० १०६।

अग्रसर<sup>२</sup>—वि० १. जो आगे जाय। अग्रग्रा। २. जो आरम्भ करे। ३. प्रधान। मुख्य। उ०—अग्रसर हो रही यहाँ फूट, बाधाएँ कृत्रिम रही टूट।—कामायनी, पृ० २३६।

अग्रसारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्रसर] १. आगे बढ़ाना। किसी का आवेदनपत्र आदि आगेवाले अधिकारी के पास भेजने का कार्य।

अग्रसारा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिना फल या पत्ते की टहनी। २. अनत सत्याग्रो की गिनती करने का एक सरल तरीका [को०]।

अग्रसारित—वि० [सं० अग्रसर] आगे बढ़ाया हुआ।

अग्रसूची—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सूई का अग्रला भाग या हिस्सा। सूच्यग्र [को०]।

अग्रसोची—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० सोचना] आगे से विचार करनेवाली प्राणी। दूरदेश। दूरदर्शी। उ०—पहले कुछ आटे की कमी मालूम हुई किंतु अग्रसोची सदा सुखी।—किन्नर०, पृ० ७७।

अग्रस्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शीर्षस्थान। प्रथम स्थान या मूर्धन्य स्थान [को०]।

अग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. गार्हस्थ्य को न धारण करनेवाला पुरुष। २. वानप्रस्थ। ३. ज्ञानशून्य (को०)। ४. गृहशून्य या गृहहीन व्यक्ति (को०)।

अग्रहर—वि० [सं०] (वस्तु या पदार्थ) जो पहले दिया जाय। सर्वप्रथम दी जाने योग्य [को०]।

अग्रहस्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'अग्रकर'। २. हाथी के सूंड का अग्रला सिरा या नोक [को०]।

अग्रहायण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वर्ष का अग्रला या पहला महीना। अग्रहन। मार्गशीर्ष।

विशेष—प्राचीन वैदिक क्रम के अनुसार वर्ष का आरम्भ अग्रहन से माना जाता था। यह प्रथा अब तक भी गुजरात आदि देशों में है। पर उत्तरीय भारत में वर्ष का आरम्भ चैत्र मास से लेने के कारण यह नर्वा पड़ता है।

अग्रहार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. राजा की ओर से ब्राह्मण को योगक्षेम के लिये किया हुआ भूमि का दान। २. वह गाँव या भूमि जो किसी ब्राह्मण को माफी दी जाय। ३. ब्राह्मण को देने के लिये कृषि की पैदावार से, निकाला या अलग किया हुआ अन्न (को०)।

अग्रहारिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्रहार का निरीक्षक अधिकारी [को०]।

अग्रश—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्र + अश] १. आगे का भाग। २. चंद्रमा का वह भाग जो पृथ्वी पर से सदैव नहीं दिखाई पड़ता वरन् कभी कभी चंद्रमा की अनियमित गति या कप से दिखाई पड़ जाता है।



गति अटपटी, चटपट लखी न जाय। जो मन की खटपट मिटे, अघट भए ठहराय।—कवीर (शब्द०)। (ख) जहँ तहँ मुनि-वर निज मर्यादा थापी अघट अपार।—सूर० (शब्द०)। ३ पूरा। पूर्ण। उ०—सूर स्याम सुजान सुकिया अघट उपमा दाव।—सा० लहरी, पृ० १।

अघटन(५)—सज्ञा पुं० [ सं० अ + हि० घटना ] कम न होगा। न घटना, कम न होने का भाव।

अघटित<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १. जो घटित न हुआ हो। जो हुआ न हो। उ०—पाकर पुत्रों में प्रेम अटल अघटित सा।—संकेत, पृ० २२६। २ जिसके होने की सम्भावना न हो। न होने योग्य। असम्भव। कठिन। उ०—हरि माया वस जगत अमाही। तिन्हहि कहत वछु अघटित नाही।—तुलसी (शब्द०)। ३ (५) अयोग्य। अनुचित। अनुपयुक्त। ना मुनासिब। उ०—रखना स्वाद सिधिल लपट ह्वै अघटित भोजन करती।—सूर०, १।२०३।

अघटित<sup>२</sup>(५)—वि० [ सं० अ + घटित ] अवश्य होनेवाला। अमिट। अनिवार्य। उ०—जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी।—तुलसी (शब्द०)।

अघटित<sup>३</sup>(५)—वि० [ हि० अघट ] न घटने योग्य। बहुत अधिक। उ०—अघटित सोभा यदपि तदपि मनि घटित विराजत।—गि० दा० (शब्द०)।

अघटितघटनापटीयसी—वि० [ सं० ] जो कभी न हुआ हो उसे भी करने में पटु या चतुर। माया का विशेषण [को०]।

अघट्ट(५)—वि० [ सं० अघट्ट ] जो न घटे या न चुके। असय। उ०—दीपक दीन्हा तेन भरि वाती दई अघट्ट। कवीर सा० सं०, भा० १, पृ० ६।

अघड(५)—वि० [ सं० अ = नहीं + घट, प्रा० घड, हि० घड़ ] जो गढा न जा सके। निर्माण के अयोग्य। उ०—अघड घडावै उलटे चाकि।—प्राण०, पृ० १७०।

अघन—वि० [ सं० ] १ जो घना या ठोस न हो। तरल। २ जो अशियल और अविरल न हो [को०]।

अघनाशक—सज्ञा पुं० वि० [ सं० ] दे० 'अघघ्न' [को०]।

अघनाशन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो अघ का नाश करे। विष्णु [को०]।

अघनाशन<sup>२</sup>—वि० पापों का नाश करनेवाला [को०]।

अघनासी(५)—वि० स्त्री० [ सं० अघ + नाशिन् ] पाप का नाश करनेवाली। पापनाशिनी। उ०—वासी, अघिनासी अघनासी ऐसी कामी है।—भारतेंदु ग्र० भा० १, पृ० २८२।

अघभोजी—वि० [ सं० अघभोजिन् ] १ देवपितर आदि के लिये न बनाकर अपने ही लिये बनाने और खानेवाला। २. पाप की कमाई खानेवाला [को०]।

अघमरपण(५)—सज्ञा पुं० [ सं० अघमर्षण ] दे० 'अघमर्षण'। उ०—वाढ़े पुन्य आघ अघमरपण आखरनि, मतिराम करत जगत जप नाम को।—मतिराम ग्र०, पृ० ४१२।

अघमर्षण<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] पापनाशक।

अघमर्षण<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १. ऋग्वेद का एक सूक्त जिसका उच्चारण सञ्भावदन के समय द्विज पाप की निवृत्ति के लिये करते

हैं। २. मन्त्र द्वारा हाथ में जल लेकर नासिका से छुलाकर विसर्जन करने की पापनाशिनी क्रिया।

अघमर्षणकुच्छु—सज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का कठिन व्रत जो प्रायश्चित्त रूप में किया जाता था।

विशेष—इसमें तीन दिन तक कुछ न खाने, त्रिकाल स्नान-करने और पानी में डूबकर अघमर्षण, मन्त्र जपने का विधान है — (स्मृति)।

अघमार—वि० [ सं० ] पापों का नाश करनेवाला [को०]।

अघरूप—सज्ञा पुं० [ सं० अघ + रूप ] पापरूप। महापातकी। उ०—तदपि महीसुर स्नाप वस भए सकल अघरूप।—मानस, १।१७६।

अघर्म—वि० [ सं० ] उष्णता रहित। शीतल [को०]।

अघर्मा शु—सज्ञा पुं० [ सं० ] हिमाशु। चद्रमा [को०]।

अघल—वि० [ सं० ] पाप का नाश करनेवाला [को०]।

अघवान्—वि० [ सं० ] पापी। अघी।

अघवाना—क्रि० सं० [ हि० अघाना का प्रे० ] १ भरपेट खिलाना। भोजन से तृप्त करना। छकाना। २ सतुष्ट करना। मन भरना। उ०—कीर्ती घमसान समसान फर मडल में छाडनु अघाइ अघवाए वीर वास में।—सुजान०, पृ० १३।

अघविष—सज्ञा पुं० [ सं० ] बहुत तीव्र विषवाला साँप [को०]।

अघशस—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ दुष्कर्म या पाप कहनेवाला व्यक्ति। २ दुष्कर्म की इच्छा करनेवाला व्यक्ति, जैसे चोर। ३. बुरा व्यक्ति [को०]।

अघशशी—वि० [ सं० ] बुराई या पाप की वार्ता करनेवाला [को०]।

अघहर—वि० [ सं० अघ + हर ] पापों को हरण करनेवाला। पाप को नष्ट करनेवाला। उ०—सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघहर सुखकद।—भारतेंदु ग्र०, पृ० २५०।

अघहरन(५)—वि० [ सं० ] अघहरण दे० 'अघहर'। उ०—अति प्रताप महिमा समाज जस, सोक, ताप, अघहरन।—नद० ग्र०, पृ० ३२६।

अघहार—सज्ञा पुं० सं० १ कुख्यात डाकू या लुटेरा। २. अपराध विषयक अपवाद या अफवाह [को०]।

अघाँवरी(५)—सज्ञा स्त्री० [ हि० अघाना ] तृप्त होना। सतुष्ट होना। उ०—कवि ठाकुर नैन सो नैन लगे अब प्रेम सो क्यों न अघाँवरी री।—ठाकुर ग्र०, पृ० १८।

अघा(५)—सज्ञा पुं० हि० दे० 'अघासुर'। उ०—वीते वर्ष कहत सब ग्वाला। आज अघ्रा मारयो नैदाला।—ब्रज०, पृ० १३३।

अघा<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० सं० पाप की देवी। पाप की अधिष्ठात्री देवी को०।

अघाउ(५)—सज्ञा पुं० [ प्रा० अघव = पूरा करना ] सतुष्ट या तृप्त होने का भाव। सतोष। तृप्ति। उ०—भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६।

अघाट—सज्ञा पुं० [ देश० ] वह भूमि जिसे वेचने या अलग करने का अधिकार उसके स्वामी को न हो। अगहाट।

अघात<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० ] क्षति या घात का अभाव को०।

अध्यात०—वि० [सं० अध्यात] नोट । मात । प्रहार । उ०—बूँद  
मात—मृत्तुति निर्दिष्टे ।—मानस, ४।१४ ।

अध्यात०—वि० [सं० अध्यात] पेट भर । गूद । व्यादा । अधिक ।  
उ०—उ०—नर उत मीनी इन नहि दीन्ही आठपो वर  
परा ।—मृ० (मृ०) ।

अध्यात०—वि० [सं०] पात या अति न करने वाला [को०] ।

अध्यात०—वि० [सं० अध्यात] १ भोजन या पान से तृप्त होना ।  
उ०—माताना या पीना । उतना । भरना । उ०—पुरुष को  
भोजन नमाना गया मिति पाष्ट । जुग जुग छुषा बुभाइ ता पाइ  
प्याता ।—नवी (मृ०) ।

विशेष—म० आ + धा का अर्थ अन्धी तरह मूँघना है । वहाँ  
'मुग्ध मुग्ध तृप्त होता' लाक्षणिक अर्थ धीरे धीरे अन्ध-  
विषय प्रविष्टि से 'अध्यात' का अर्थ देने लगा ।

२ संतुष्ट होना । तृप्त होना । मन का भरना । इच्छा का पूर्ण  
होना । उ०—नयमिदं यच्चिरं विदु माधव छवि निरन्तरि नयन  
अर्पण ।—तुलसी प्र०, पृ० ४६१ । ३ प्रमत्त होना । र्थ से  
दृष्टिपात होना । उ०—व्यास दक्षी साहूका देखि श्रुति देत  
अमीन अर्पण ।—तुलसी प्र०, पृ० २६६ । ४ घु घटना ।  
उठना । उ०—अम वचनामृत सुनि न अधाऊँ । मानस,  
७।८८ । ५ घृष्टाता को पर्वचना । उ०—सो पछिताइ अधाउ  
उर अर्पण होइ हित हानि ।—मानस २।६३ ।

अध्यात०—वि० म० संतुष्ट करना । तृप्त करना । उ०—परं भूराइ  
भभरा विपु पाद सो करि वदन यधिर भैरो अधाऊ ।—सूर०,  
१।१२६ ।

अध्यात०—वि० म० १ हिमानिरत । २ दूसरे की ग्रहणकामना करने  
वाला । पापमय जीवन व्यतीत करनेवाला । ३ सभी अवस्थाओं  
में पापमय करनेवाला [को०] ।

अध्यात०—वि० [सं० अध्यात] व्यसन या दुष्ट से युक्त [को०] ।

अध्यात०—वि० [सं० अध्यात] १. पाप का शत्रु । पापनाशक ।  
पाप दूर करनेवाला । उ०—मुहरेइ भजन प्रभाव अध्यात ।—  
मानस, ३।७ । २ अप नामक दैत्य को मारनेवाले श्रीकृष्ण  
का शिष्य ।

अध्यात०—वि० [सं० अध्यात] पापी । दुष्कर्मी । उ०—साखी कथ  
हनाइ अध्यात मतप हुनिय भारी । गरीबशम शाहसो कहे  
दयना सदाही दार ।—कवीर म० पृ० १२७ ।

अध्यात०—वि० [सं० अध्यात] अध्यात की स्थिति या भाव ।

अध्यात०—वि० [सं० अध्यात] १. अध्यात या पूर्ण  
तृप्त होने की स्थिति या भाव । २. उ० ।

अध्यात०—वि० [सं० अध्यात] अध्यात नामक दैत्य जिते  
श्रीकृष्ण ने माना था ।

अध्यात०—वि० [सं० अध्यात] पापी । दुष्कर्मी । उ०—कूर, पुजाति,  
भूत, सभी मन्त्री मुद्रि जो करे उर पूजो ।—तुलसी (मृ०) ।

अध्यात०—वि० [सं० अध्यात] जी का मोटा छाटा ।

अध्यात०—वि० [सं० अध्यात] १ जो पाप या भयकर न हो (वि०) । २.  
मीन । अन्धत्वेन । मृगयना ।—उ०—'मय श्रीकृष्ण ने अध्यात  
वर्ण दशाई ।—प्रेमदास मृ० प्र०, पृ० ४८३ ।

अध्यात०—वि० [सं० अध्यात] १. पार । नडा । बटार । उ०—अध्यात  
राम धनुष बहा नदी । महा अध्यात नाम अध्यात स्वामी ।—

कवीर म०, पृ० ३७ । २ भयकर । भयानक । उ०—दर  
हृदि पर सोक न हरही । सो गुरु नर्क अध्यातहि परही ।—  
म० दण्डिया, पृ० ७ ।

अध्यात०—वि० [सं०] १ शिव का नाम या एक रूप । २. एक पय  
या संप्रदाय ।

विशेष—उन्के अनुयायी न केवल मद्य मांस का व्यवहार अत्यधिक  
करते हैं, वरन् वे नरमान, मल मूत्र आदि तक से पित  
नहीं करते । कीनाराम इस संप्रदाय के बड़े प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं ।  
३ अध्यात पय का उपासक । अध्याती । उ०—मति के  
कठोर मानि धर्म को तोर करे, करम अध्यात डर परम अध्यात  
को ।—भिखारी प्र०, भा० २, पृ० ३४ ।

अध्यातध्यात०—वि० [सं०] शिव का एक नाम [को०] ।

अध्यातनाथ—वि० [सं०] भतनाथ । शिव ।

अध्यातपथ—वि० [सं० अध्यात + पथ] अध्यातियों का पथ या संप्रदाय  
वि० दे० 'अध्यातमार्ग' ।

अध्यातपथी—वि० [सं० अध्यातपथी] अध्यात मत का अनुयायी ।  
अध्याती । अध्यात ।

अध्यातपथ—वि० [सं०] शिव का उपासक एक संप्रदाय [को०] ।

अध्यातप्रमाण—वि० [सं०] भयकर परीक्षा या शपथ [को०] ।

अध्यातमार्ग—वि० [सं०] अध्यात मतवलवियों की साधना का ढंग ।  
अध्यातियों का साधन मार्ग । उ०—साहस्य मुक्ति सो तब पावे,  
अध्यातमार्ग को जो कोई ध्यावे ।—कवीर सा०, पृ० ६०५ ।

विशेष—अध्यातमार्ग में शिव की अध्यातीश्वर रूप में उपासना होती  
है । श्मशानसाधन, शवसाधन, मत्तसाधन, पञ्चमकार सेवन,  
चित्तभ्रम और कद्राक्षधारण आदि इस मार्ग में विहित है ।  
तात्त्विक वीरचारियों से इनके आचार विचार मिलते हैं ।

अध्यात०—वि० [सं०] आद्र कृष्ण चतुर्दशी । भादो वदी चौदस ।

विशेष—इस तिथि का शिवपूजन का विशेष महत्व है ।

अध्याती०—वि० [सं०] [को० अध्यात] १, अध्यात मत का अनु-  
यायी । अध्यात पथ पर चलनेवाला साधक जो मद्य मांस के  
सिवाय मल, मूत्र, शव आदि चिनीनी वस्तुओं को भी खा जाता  
है और अध्यात वेण भी भयकर और चिनीना धनाए रहता है ।  
आपठ । कीनारामो । २ चिनीनी वस्तुओं का व्यवहार करने-  
वाला व्यक्ति । भयानक या विचारन करनेवाला । सर्वभक्षी ।  
पूणित व्यक्ति ।

अध्याती०—वि० जो चिनीनी वस्तुओं का व्यवहार करे । पूणित ।  
चिनीना । उ०—अध्यात धर्म आपहिं तुम हित बडाल अध्याती ।—  
रत्नाकर, भा० १, पृ० ६२ ।

अध्यात०—वि० [सं०] १ शब्दरहित । नीरव । २ अत्यध्वनि युक्त ।  
३ स्थान या अर्थों से रहित ।

अध्यात०—वि० [सं०] १ व्याकरण में एक वर्णसमूह का नाम ।

विशेष—उत्तम प्रत्येक वर्ण वा पहला और दूसरा अक्षर तथा पा,  
प, न भी है, यथा—क, घ, च, छ, ट, ठ, त, थ, फ, ब,  
भ, म, न ।

२. तेरह की गणना का सूचक शब्द क्योंकि अध्यात वर्ण १३ होते हैं  
[का०] ।

अध्यातित—वि० [सं०] बिना मद्य या पोषण बिना हुआ ।

अधोपितयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] दो राज्यों का वह सशस्त्र सघर्ष या युद्ध जिसमें कोई भी राज्य सघर्ष की पूर्वसूचना अथवा नियमित घोषणा नहीं करते ।

अधोघ—संज्ञा पुं० [सं०] पापों का समूह । पाप का ढेर । उ०—पावस समय कछु अघ घ वरनत मुनि अधोघ नसावहीं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४९६ ।

अघ्न्य<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] १ अह्ना । २ वलीवद । सांड [को०] ।

अघ्न्य<sup>२</sup>—वि० न हनने या मारने के योग्य ।

अघ्न्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गौ । गाय [को०] ।

अघ्नान<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० [सं० आघ्राण] १. गध लेने की क्रिया या भाव । सूँघने का कार्य । गधग्रहण । २ गध । महक । अघ्नान । उ०—नर अघ्नान तहाँ तिन्ह लागी । सत सुकृत बोले अनुरागी ।—कवीर मा०, पृ० ६७ ।

अघ्नानना<sup>४</sup>—क्रि० सं० [सं० आघ्राण] आघ्राण करना । महक लेना । सूँघना । उ०—असख रवि जहाँ, कोटि दामिनि, पुहुप सेज अघ्नानियाँ ।—कवीर (शब्द०) ।

अघ्न्येय<sup>१</sup>—वि० [सं०] न सूँघने योग्य ।

अघ्न्येय<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० मद्य । शराव [को०] ।

अचचल—वि० [सं० अचञ्चल] [स्त्री० अचचला, मण्ड अचचलता] १ जो चचल न हो । चचलतारहित । स्थिर । ठहरा हुआ । उ०—भए विनोचन चारु अचचल ।—तुलसी (शब्द०) । २ धीर । गम्भीर ।

अचचलता—संज्ञा स्त्री० [सं० अचञ्चलता] १ स्थिरता । ठहराव । २ धीरता । गम्भीरता ।

अचण्ड—वि० [सं० अचण्ड] [स्त्री० अचण्डी] जो चण्ड न हो । उग्रता रहित । शांत । सुशील । सीम्य ।

अचण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० अचण्डी] १ सीधी गाय । शांत गौ । २. अकोपना स्त्री [को०] ।

अचती<sup>१</sup>—वि० [सं० अचिन्तिता, प्रा० अचित्ति, अचित्ति] अतकित । आकस्मिक । उ०—का, प्री, रांगा, प्रांण वरि, काँइ अचती हाँण ।—ढोला दू० ६२७ ।

अचन्द्र—वि० [सं० अचन्द्र] चन्द्रमा से रहित । बिना चाँद का [को०] ।

अचभम<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचभव' । उ०—हुअ घरा नरा नर हेमरा, उरघ अचभम अम्मगा ।—रा० रू०, पृ० २५ ।

अचभव<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अत्यद्भुत, प्रा० अचचम्भुअ, अचभव] अचभा । आश्चर्य । विस्मय । तत्रज्जुव । उ०—अगम अगोचर समुक्ति परं नहिं भयो अचभव भारी ।—कवीर (शब्द०) ।

अचभा—संज्ञा पुं० [सं० अत्यद्भुत, प्रा० अचचम्भुअ] १ आश्चर्य । अचरज । विस्मय । तत्रज्जुव । २ विस्मय उत्पन्न करनेवाली बात । उ०—एक अचभा देखा रे भाई, ठाढा सिध चरावै गाई ।—कवीर ग्रं०, पृ० ६१ ।

अचभित<sup>३</sup>—वि० [हिं० अचभा] आश्चर्यित । चकित । विस्मित ।

अचभो—संज्ञा पुं० [सं० असमय अथवा हिं० अचभव] दे० 'अचभा' । उ०—(क) देखत रहे अचभो, योगी हस्ति न आयै । योगिहि कर अस जूझव भूमि न लागत पाय ।—जायसी (शब्द०) । (ख) अचभो हन लोगनि को आवै । छडि खान प्रमीरस फलको भाया विष फल भावै ।—सूर (शब्द०) ।

अचभी<sup>४</sup>—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचभव' । उ०—नर्म धर्म मन वचन काय करि सिधु प्रचभी करई ।—सूर०, ६।७८ ।

अच्—संज्ञा पुं० [सं०] मस्कृत व्याकरण में स्वरों के लिये प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द जिसे प्रत्याहार भी कहते हैं [को०] ।

अचक<sup>१</sup>—वि० [सं० चक, प्रा० चक्क = समूह, ढेर] भरपूर । पूर्ण । ज्यादा । जैसे—'जिनके घर अचक माया धरी है' ।—हिं० प्र० (शब्द०) ।

अचक<sup>२</sup>—क्रि० वि० [मं० अ = नहीं चक् + आत होना] बिना आत हुए । बिना हिंसे डूले । उ०—घोड़ी लें चनु अचक बैठारि, सजन के खेत में ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६३५ ।

अचक<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० [मं० चक् = आत होना] घबराहट । भौचकापन । विस्मय । उ०—नोम तन छाए, सुलतान दल आए, सो तो समर भजाए उन्हे छाई है प्रचक सी ।—सूदन (शब्द०) ।

अचकचाना—क्रि० अ० [हिं० अचक<sup>३</sup> से नाम०] घबराना । विस्मित होना ।

अचकचाहट—क्रि० [हिं० अचक] घबराहट । भौचकापन । उ०—'अपनी अचकचाहट का मुमकराहट से ढकने का प्रयत्न कर ही रहा था' ।—दहकते० पृ० २७ ।

अचकन—संज्ञा पुं० [प्र० 'चिकन' का 'परिधान' से] एक प्रकार का लवा अग्रा ।

विशेष—इसमें पाँच कलियाँ और एक बालावर होता है । जहाँ बालावर मिलता है वहाँ दो वद चाँधे जाते हैं । अच वदो के स्थान पर वदन भी लगाने लगे हैं ।

अचकना पचकना—क्रि० वि० [हिं० अचक + अन्त० पचक] हिच-किचाना । घबराना । उ०—अचक पचक यो घर धीरे पग सुधि भी लगी उतरने ।—मिट्टी०, पृ० ३५ ।

अचकाँ<sup>४</sup>—क्रि० वि० [हिं० अचानक, अचक्का] अचानक । अचक्के में । एकाएक । सहसा । उ०—जानत ही तुम हो बल पूरे । पं अचकाँ आए नहिं सूरै ।—सूदन (शब्द०) ।

अचकित<sup>१</sup>—वि० [सं०] जो चकित या विस्मित न हो [को०] ।

अचक्का—संज्ञा पुं० [सं० आ = भले प्रकार + चक् = आति] ऐसी दशा जिसमें चित्त दूसरी ओर हो । असावधानी की अवस्था । अनजान ।

यौ०—अचक्के में = अचानक । सहसा । एकाएक ।

अचक्र—वि० [सं०] १. बिना चक्का या पहिए का । चक्रहीन । २ स्थिर । अचल । निष्कप [को०] ।

अचक्षु<sup>१</sup>—वि० [सं०] १. बिना आँख का । नेत्ररहित । अघा । २ अतींद्रिय । इन्द्रियरहित ।

अचक्षु<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० असौम्य नेत्र [को०] ।

अचक्षुदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] आँख को छोड़ अन्य आभ्यंतरिक इंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान ।

अचक्षुदर्शनावरणीय—संज्ञा पुं० [मं०] वह कर्म जिससे अचक्षुदर्शन नामक ज्ञान न प्राप्त हो । अचक्षुदर्शन का निरोधकारक कर्म ।

अचक्षुदर्शनावरणीय—वि० [सं०] जैन शास्त्रकारों ने जीव के जो आठ मूल कर्म माने हैं उनमें से दर्शनावरणीय कर्म के नौ भेदों में से एक । अचक्षुदर्शन नामक ज्ञान का आशय ।



अचक्षुर्विषय—वि० [सं०] जो नेत्र का विषय न हो । दृष्टि से परे [को०] ।

अचक्षुष्क—वि० [सं०] चक्षुर्विहीन । नेत्रहीन [को०] ।

अचख(उ)—वि० [सं० अचक्षु, प्रा० अचख] नेत्रहीन । दृष्टिरहित ।  
उ०—भय युत बालक प्रिय अचख मुनत अनाय सरीव ।—राम०  
धर्म० पृ० ५६ ।

अचगरा—वि [सं० अस्थगल, प्रा० अचगल, देश०] छेड़खानी करनेवाला । नटखट । शाख । चचल । उ०—ऐसी नाहिं अचगरों भेरी कहा बनावनि वात ।—सूर०, १०।२६० ।

अचगरी—संज्ञा स्त्री० [ हि० अचगरा ] ज्यादाती । नटखटी । शरारत । छेड़छाड़ । उ०—(क) जी लरिका कछु अचगरि करही ।—मानस, १।२७७। (ख) भाखन दधि भेरी मव खाया बहुत अचगरी कीन्ही ।—सूर० १०।२६७ ।

अचतुर—वि० [सं०] १. जो चतुर न हो । २. अनाडी । अकुशल । ३. चार से रहित [को०] ।

अचना(उ)—क्रि० सं० [सं० आचमन अथवा हि० अचवना ] १. आचमन करना । पीना । उ०—(क) पैठि विवर मिलि ताप-सिहि अचई पानि, फलु खाई —तुलसी ग्र०, पृ० ८० । २. छाड़ देना । खो बैठना । वाकी न रखना, जैसे—‘तुम तो लाज शर्म अचै गए (शब्द०) उ०—लाज काँ अचै कै कुलधरम पचै कै विद्या वृद्धि सचै कै भई मगन गुपाल मैं ।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ६ ।

अचपल<sup>१</sup>—वि० [सं०] अचबल । धीर । गभीर । उ०—मेरे शर्म-सिंचित देखोगे अचपल, पलकहीन नयनों से तुमको प्रतिपल हेरेंगे अज्ञात ।—गीतिका ।

अचपल<sup>२</sup>—वि० [सं० आ + चपल ] [स्त्री० अचपली ] चचल । शोख । उ०—क्या काम उन्हें जो हँस बोले या शोखी में अचपल निकले ।—नजीर (शब्द०) ।

अचलपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अचचलता । स्थिरता । धीरता । गभीरता ।

अचपलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. चपलता का अभाव । अचापल्य । २. शोखपन । चुलबुलाहट ।

अचपली<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [हि० अचपल] अठखेली । किलौल । क्रीडा । उ०—गुलाल अवीर से-गुलजार हैं सभी गलियाँ । कोई किसी के साथ कर रहा है अचपलियाँ ।—नजीर (शब्द०) ।

अचपली<sup>२</sup>—वि० स्त्री० [ हि० ] दे० ‘अचपल’ । उ०—जाकी छोटी नैनद बड़ी अचपली ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६२१ ।

अचभौन(उ)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० ‘अचभा’ । उ०—कहा कहत तू नद दुठोना । सखी सुनहु रो वातें जैसी करत अतिहि अचभौना ।—सूर (शब्द०) ।

अचमन(उ)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० ‘आचमन’ । उ०—भोजन करि नैद अचमन लीन्हौ मँगत सूर जुठनिया ।—सूर०, १०।३४१ ।

अचर<sup>१</sup>—वि० [सं०] न चलनेवाला । स्थावर । जड़ ।

अचर<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १. न चलनेवाला पदार्थ । जड़ पदार्थ । स्थावर द्रव्य । उ०—जो सजीव जग चर अजर, नारि पुरुष अस नाम ।—

मानस १।८४। २. ज्योतिष के अनुसार वृष, सिंह वृश्चिक मीर कुम्भ राशियाँ जो स्थिर हैं (को०) ।

अचरचे<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं० अ + चर + च + हि० चरचना ] विना पूजा के । अपूजित । उ०—अर ती अचरचे पाई धरो मां तो कहौ कौन के पड़ भरि ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २६० ।

अचरज<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य, प्रा० अचचरित्र] आश्चर्य । अचभा । विस्मय । उ०—अचरज कहा पाय जो येँ तीनि लोकइत वान ।—सूर०, १।२६८ ।

अचरज<sup>२</sup>—वि० आश्चर्ययुक्त अनोखा ।

क्रि० प्र०—करना । उ०—अचरज कहहु कहनायतन कीन्ह जो अचरज राम ।—मानस १।११० ।—मानता ।—मे आना ।—मे पडना ।—होना । उ०—वह अगाध यह कथी कहै नारी अचरज होय ।—कवीर (शब्द०) ।

अचरम—वि० [सं०] जो चरम या अंतिम न हो [को०] ।

अचरा(उ)—वि० [सं० अचला ] दे० ‘अचला’ । उ०—प्रचरान चरै धेन कटरा न पाई ।—गारुड०, पृ० १४८ ।

अचरा<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [हि०] दे० ‘अचरा’ । उ०—अचरा डारयो बदन पं मधुर मधुर मुमिकाई ।—नद० ग०, पृ० १६६ ।

अचरिज(उ)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० ‘अचरज’ । उ०—मित्र कहत अचरिज मो हिए ।—नद० ग०, पृ० ३०८ ।

अचरित<sup>१</sup>(उ)—वि० [सं०] १. जिसपर कोई चिन्ता न हो । २. जो खाया न गूँथया हो । ३. अछूता । नया ।

अचरित<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० कामकाज छाड़ अड़कर बैठना । धरना देना । गतिनिरोध ।

अचर्ज(उ)—संज्ञा पुं० [ हि० ] दे० ‘अचरज’ । उ०—वेनु केवस भई वंसुरी जो अर्थ करै तो अचर्ज कहा है ।—भारतेन्दु ग्र०, भा० २, पृ० ८२१ ।

अचल<sup>१</sup>—वि० [सं०] १. जो न चले । स्थिर । जो न हिले । ठहरा हुआ । निश्चल । उ०—जिहिं गोविंद अचल ध्रुव राख्यो, रवि-ससि किए प्रदन्धि नकारी ।—सूर०, १।३४। २. सब दिन रहनेवाला । विरथायी । उ०—लका अचल राज तुम्ह करहु ।—मानस ६।२३ ।

यौ०—अचल कीर्ति । अचल राज्य । अचल समाधि ।

३. न डिगनेवाला । न बदलनेवाला । अटल । ध्रुव । दृढ़ । पक्का । उ०—(क) रघुपति पद परम प्रेम तुलसी चह अचल नेम ।—तुलसी ग्र० पृ० ४६२ । (ख) ‘उसकी यह अचल प्रतिमा है’ (शब्द०) । ४. जो नष्ट न हो । मजबूत । पुख्ता । अटूट । अजेय । उ०—(क) गरम भाजि गढ़वै मई तिय कुच अवल मवास ।—बिहारी २०, दो० ३४४ । (ख) ‘अब इसकी नींव अचल हो गई’ (शब्द०) ।

अचल<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १. पर्वत । पहाड़ । उ०—जितना चह्यो उरजनि अचल कटि कटि केहर वेस ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ६ । २. शिव । स्थाणु (को०) । ३. ब्रह्मा (को०) । ४. आत्मा (को०) । ५. शकु । छूटी । कील (को०) । ६. सात की सख्या का वाचक शब्द (को०) ।

अचलकन्यका—पद्मा स्त्री [सं] हिमवान् की पुत्री। पार्वती [को०]।

अचल कन्या—सद्मा स्त्री [सं] दे० 'अचलकन्यका' [को०]।

अचलकीला—सद्मा स्त्री [सं] पृथिवी। धरित्री।

विशेष—पृथिवी का यह नाम पार्श्वीन विद्वानों के इस विचार पर आधारित है कि पृथिवी को स्थिर रखने के लिये उसमें जहाँ तहाँ पहाड़ कीलों के समान जड़े हुए हैं।

अचलज—वि० [सं] पर्वतात्पन्न [को०]।

अचलजा—सद्मा स्त्री [सं] पार्वती [को०]।

अचलजात—वि० [सं] दे० 'अचलज' [को०]।

अचलतनया—सद्मा स्त्री [सं] उमा [को०]।

अचलत्विट्<sup>१</sup>—पद्मा पुं [सं] कोकिल [को०]।

अचलत्विट्<sup>२</sup>—वि० नदा ममान श'भावाला। स्थिर कानिवाला [को०]।

अचलदुहिता—सद्मा स्त्री [सं] पार्वती [को०]।

अचलद्विट्—सद्मा पुं [सं] पर्वतों के शत्रु द्रु [को०]।

अचलधृति—सद्मा स्त्री [सं] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ५ नगण और १ लघु इस प्रकार १६ लघु मात्राएँ रहती हैं, यथा—पट दस लघु 'अचलधृति मन गुनि'।—मिख री० ग्र०, भा० १ पृ० १६०। उ०—लखि भव भयद छवि पुर वटु बहन। सुधनि वर लेखि जिन वपु जिउ रहत (शब्द०)।

अचलन—सद्मा स्त्री [सं] अ = बुरा + हि० चलन [कुचाल, बुरा आचरण]। उ०—तिन्ह की नारि रमहि पचीस भग अचलनि बहुत करहि री।—जग० बानी, पृ० ८२।

अचलपति—सद्मा पुं [सं] पर्वतो का स्वामी हिमालय [को०]।

अचलराज—सद्मा पुं [सं] दे० 'अचलपति' [को०]।

अचलव्यूह—सद्मा पुं [सं] अमहत व्यूह का एक भेद जिनमें हाथी, घोड़े और रथ एक दूसरे के आगे पीछे रखे जाते थे।

अचलसपत्ति—सद्मा स्त्री [सं] वह सपत्ति जो चल न हो। स्थिर सपत्ति। जिसे हटाया न जा सके वह सपत्ति। गैरमनकूला जायदाद, जैसे—मकान, खेत, वृक्षादि।

अचलसुता—सद्मा स्त्री [सं] पार्वती [को०]।

अचला<sup>१</sup>—वि० स्त्री [सं] जो न चले। स्थिर। ठहरी हुई।

अचला<sup>२</sup>—सद्मा स्त्री पृथिवी। धरती।

विशेष—प्राचीन लोग पृथिवी को स्थिर मानते थे। आर्यभट्ट ने पृथिवी को चल कहा पर उनकी बात को उस समय लोगों ने दवा दिया। अचला नाम का कारण आर्यभट्ट ने पृथिवी पर अचल अर्थात् पर्वतो का होना अथवा उसका अपनी कसा के बाहर न जाना बतलाया है।

अचलाधिप—सद्मा पुं [सं] पर्वतों के राजा हिमालय [को०]।

अचलासप्तमी—सद्मा स्त्री [सं] माघ शुक्ला सप्तमी। इस तिथि को स्नान दान आदि करते हैं।

अचवन<sup>१</sup>—सद्मा पुं [सं] आचमन, अप० अचवन [क्रि० अचवना] १ आचमन। पानी। पीने की क्रिया। उ०—अचवन करि पुनि

जल अचवायो तव नृप वीरा लीन्हो।—सूर (शब्द०)। २ भोजन के पीछे हाथ मुँह धोकर कुल्ली करने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अचवना<sup>१</sup>—क्रि० सं [सं] आचमन १ आचमन करना। पान करना। पीना। उ०—सुनु रे तुलसीदास, प्यास पपीयहि प्रेम की। परिहरि चारिउ मास जो अचवै जल स्वाति को।—तुनसी (शब्द०)। २ भोजन के पीछे हाथ मुँह धोकर कुल्ली करना। ३ छोट देना। खो बैठना। बाकी न रखना।

अचवाई<sup>१</sup>—वि० [हि० अचवना] धोई हुई। साफ। स्वच्छ। उ०—रूप सख्य भिगार सवाई। अप्सर कैसी रहि अचवाई।—जायसी (शब्द०)।

अचवाना<sup>१</sup>—क्रि० सं [हि० अचवना का प्रेर०] १ आचमन कराना। पान कराना। पिलाना। २ भोजन पर से उठे हुए मनुष्य के हाथ पर मुँह हाथ धोने और कुल्ली कराने के लिये पानी डालना। भोजन करके उठे हुए मनुष्य का हाथ मुँह धुलाना और कुल्ली कराना। उ०—अचवन करि पुनि जल अचवायो तव नृप वीरा लीनो।—सूर (शब्द०)।

अचाक<sup>१</sup>—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अचानक'। उ०—जी अचाक मग भेटती विहँसति करि बहुरग।—अध्यामा पृ० १६७।

अचाचक<sup>१</sup>—क्रि० वि० [हि० अचान + सं० चक = आति] विना पूर्वसूचना के। अचानक। एकवारगी। महमा। एकाएक। अकस्मात्। हठात्। उ०—कई गनीमन का मौका हाथ आया देख अचाचक अपने यार वफाशर को पाकर।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० ११४।

अचानचक<sup>१</sup>—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अचाचक'। उ०—परिहै वज्राणि ताके ऊपर अचानचक घुरि उडि जाइ कहुँ ठोहरन पाइहै।—मुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ५००।

अचाक<sup>२</sup>—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अचाका'।

अचाका<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं] आ + चक = आति] अचानक। अकस्मात्। सहसा। दैवात्। उ०—(क) दिनडि राति अस परी अचाका। भा रवि अस्तु, चद्र रथ हाँका।—जायसी (शब्द०)। (ख) कहे पद्माकर नहीं तो भकोरै लगँ ओरै लौ अचाका दिन घोरै घुरि जायगी।—पद्माकर (शब्द०)।

अचाक्षुप—वि० [सं] चक्षु के विषय से परे। अदृश्य [को०]।

अचाख<sup>१</sup>—वि० [सं] अ = नहीं + हि० चाखना] न चखा जा सकने वाला। खाने के अयोग्य। उ०—तीखा तेज महा अचाख।—प्राण० पृ० ४०।

अचातुर्य—सद्मा पुं [सं] चतुराई का अभाव। मूर्खपन। अनाडीपन [को०]।

अचान<sup>१</sup>—क्रि० वि० [हि० अचागक] अचानक। सहसा। अकस्मात्। उ०—देव अचान भई पहिचान चितों ही इयाम सुजान के सौहैं।—देव (शब्द०)।

अचानक—क्रि० वि० [सं] आ = अचछी तरह + चक = आति अथवा सं० अज्ञानात्] विना पूर्वसूचना के। एकवारगी। सहसा। अकस्मात्। दैवात्। हठात्। ओचट मे। अनचित्ते मे। उ०—(क)

२५-१ तले तिन तरां लगाए। तसहिं प्रवधि में कहन न समुझी  
गान प्रजापत आग ।--३२०, १०।४२८८ । (ख) नाचि  
प्रजापत हो लडे बिनु पावम वन मोर ।--विहारी २०,  
२।० ४६६ ।

अचानक (अचानक) -- [हिं] दे० 'अचानक' । उ० -- आइ अचानक नित नद पार लगी मनि प्रतपति । -- पृ० रा० १।३८६ ।  
अचानक -- [गं] चरननारहित । अचल (को०) ।  
अचानक -- नष्ट पृ० चपनना का अभाव । स्थिरता । अचपलता [हिं] ।

अच्चापय--वि०, मण पु० [ २० ] दे० 'अच्चापन' [को०] ।  
 अच्चार'-मण पु० [ पात० अच्चार ] मित्रं, राई, लहसुन आदि मसालों  
 के साथ तेन नमक, मिर्चा या अर्चनाना ने कुछ दिन रख  
 कर पीट्टा किया हुआ फल या नरकारी । ज्वभूर । अयाता ।  
 अचरं (पु०)--मण पु० [ न० अच्चार ] अचरण । अच्चार । उ०--  
 दमन्ति गति प्रम मय, छल समेत व्यवहार । न्वाख्य  
 गति मनेह मय हचे अनुश्रुत अच्चार ।--तुलसी ग्र०,  
 पृ० १४० ।

अचारजः—महा पुं० [ म० चार ] विरीची का पेड़। पिपल इम।  
 अचारज(पुं०—महा पुं० [ म० प्राचार्य प्रा० आचारज ] दे० 'आचार्य'।  
 अ०—देशमुनि प्रथम भट्ट रघुनाथ अचारज। विपुर गग  
 श्री जय प्रसादादयः सु आरजः।—भारतेन्दु अ० भा० २,  
 पृ० २३०।

अन्वय विचार(७)।—सद्यः पुं [ हि० ] द्वे 'अन्वय विचार' । उ०—  
ये मरुता गच्छन्ति भरेते अन्वय विचार समीप न जाही ।—  
सुवर्ण प्र०, १० २२० ।

अचारी<sup>१७</sup>—वि० [ न० आचारो ] अचार करनेवाला ।  
 अचारी<sup>१८</sup>—प्रा ५० आचार विचार में रहनेवाले आदमी । वह  
 यज्ञि जा अरना नित्यकर्म विधि और शुद्धिपूर्वक करता है ।  
 अचारी<sup>१९</sup>—समा ६० [ न० आचार्य ] १ यज्ञ के समय कर्मोपदेणक ।  
 वेत्त । उ०—यत्तज्ज मुफल ना होई बोदिन जुरे अचारी ।  
 —अचारी, पृ ५, २ रामानुज सप्रदाय का वैष्णव जिमका  
 नाम हरिद्वन्द्व में विशेष विद्याओं वा संपादन करता है ।

अनादि—सहस्रों दि० अक्षर का अल्पा० ] डिले हुए रक्खे ग्राम  
 की पीर का समझो—मंगला के नाथ घर में सिद्धाकर  
 लौटा पी जाया, वर न ठी भी बनने जाती है।

अन्वयः—[म०] कम्पन । प्रहोषन [म०] ।  
अन्वयः—म० [म०] प्रहोषन । अन्वयः जहाज । कम  
नवभवा भाग जहाज ।

मन्त्रादि—१० अथवा वन। प्रयत्नरहित।  
 मन्त्रादि—१०—मन्त्र श्रीं [ गं अ = नदी + प्रा० चाह ] अनिच्छा।  
 मन्त्रादि। मन्त्रि। १०—नदी अवाह नदि वाहेना चरनन  
 वा वाहे — १०—१०, भा० १, पृ० ६८।

मन्नाह — 'तु' सिद्धा, कुछ प्रतिष्ठाया न हो। बिना चाह का। इच्छा  
 'त' सिद्धाह।

धनानि—[१०] [११] [१२] [१३] [१४] [१५] [१६] [१७] [१८] [१९] [२०] [२१] [२२] [२३] [२४] [२५] [२६] [२७] [२८] [२९] [३०] [३१] [३२] [३३] [३४] [३५] [३६] [३७] [३८] [३९] [४०] [४१] [४२] [४३] [४४] [४५] [४६] [४७] [४८] [४९] [५०] [५१] [५२] [५३] [५४] [५५] [५६] [५७] [५८] [५९] [६०] [६१] [६२] [६३] [६४] [६५] [६६] [६७] [६८] [६९] [७०] [७१] [७२] [७३] [७४] [७५] [७६] [७७] [७८] [७९] [८०] [८१] [८२] [८३] [८४] [८५] [८६] [८७] [८८] [८९] [९०] [९१] [९२] [९३] [९४] [९५] [९६] [९७] [९८] [९९] [१००]

अचाहा<sup>२</sup>—सम्पा ५० १ वह व्यक्ति जिसकी चाह न हो। वह व्यक्ति जो प्रेमपात्र न हो। २ न चाहने या प्रीति न करनेवाला व्यक्ति। निर्मोही। ७०—रावलि कहाँ हो किन, कहत हो काते अरी रोप तज, रोप कै कियो मैं का अचाहे को।—पद्माकर (शब्द०)।

अचाही<sup>१</sup> (७) — वि० [ हि० अचाह ] किसी बात की चाह न रखने-  
वाला । निरीह । निष्प्रह । निष्काम ।

अचाही<sup>२</sup>—सख्ख स्त्री० न चाही गई या अव्यथित बात । उ०—कवि  
ठाकुर लाल अचाहि करी तिहि तैं सहिए जसही नहिपां ।—  
ठाकुर०, पृ० २५ ।

अचित्त--वि० [स० अचिन्त] चित्तारहित। निष्चित। वेफिक।  
उ०--चित्ता न कर अचित रहू, देनहार ममरथ ।--कवीर  
(शब्द०) ।

अचित्तनशील -वि० [ स० अचिन्तन + शील ] चितारहित । विचार-  
शक्तिहीन । उ०—वह भी अन्य प्राणियों की भाँति जड़ या  
अचित्तनशील ही रह जाता ।—शैली, पृ० ५ ।

अचिन्तनीय—वि० [स० अचिन्तनीय] १ जिसका चिंतन न हो सके।  
जो ध्यान में न आ सके। अज्ञेय। दुर्बोध। २. आकस्मिक।  
अतर्किक (को०)।

अचिता—सब स्त्री० [ स० अचिन्ता ] चिन्ता का अभाव। तापर-  
वाही [को०] ।

अर्चितित--वि०। सं० अर्चितित ] १ जिसका चितन न किया गया हो। जिसका विचार न हुआ हो। बिना सोचा विचार। २ अनभावित। आकस्मिक। ३ निश्चित। वैफिद। ४ उपेक्षित (को०)।

अचित्य<sup>१</sup>—वि० [य०, अचित्य] १ जिसका चितन न हो सके। जो ध्यान में न आ सके। बोधागम्य। अज्ञेय। कल्पनातीत। २ जिसका अंशान्ता न हो सके। अकृत। अतुल। ३. आशा से अधिक। ४ बिना सोचा विचार। आकस्मिक।

अचित्य'--सञ्ज्ञा पुं० १ एक श्रनकार ।

विशेष--इसमें अविलक्षण वा माधाराण कारण से विलक्षण कार्य की उत्पत्ति कह' जाता है, जैसे--'कोंकित को वाचावता विरहिनि मान अनन । देनहार यह देखिए आशो समय वसन ( शब्द० ) । इस दोहे में माधाराण वसत के आगमन रूप कारण ने मौ+ प्रांग वाचावता रूप विलक्षण कार्यों की उत्पत्ति है ।

२. वह जो चित्तन मे परे हो। इष्टवर। उ०—छठा कमल श्रवित्य  
को दामा ।—इष्टार ना०, पृ० ११। ३ शिव ( का० ) ।  
४. पारद । पारा (को०) ।

अचित्यकर्म—सद्वा पु० [ म० अचित्यकर्म ] वह कर्म या कार्य जो चित्तन म परे हो (को०) ।

अचिन्त्यकर्म—वि० [ म० अचिन्त्यकर्म ] अचित् कार्य वगन्ते-  
वार [को०] ।

अचित्यरूप—वि० [ न० अचित्यरूप ] जिमका चिन्तन वा ध्यान न हो  
 नवे ऐसे रूप तथा याकारवाना (को०) ।

अचित्यात्मा—सद्मा पुं० [ म० अचित्य + आत्मा ] वह जिसका स्वरूप ठीक ठीक ध्यान में न आ सके। परमात्मा। ईश्वर।

अचिकित्स्य—वि० [म०] चिकित्सा के अयोग्य । जिमकी दवा न हो सके । असाध्य ।

अचिकीर्षु—वि० [स०] न करने की इच्छावाला । काम न करने की इच्छावाला । कार्य में अनिच्छुक [को०] ।

अचिज्ज<sup>७</sup>—सङ्घा पु० [स०] अशचर्य । अचरज । अचभा । उ०—सतपन्न पुत्र अचिज्ज सुहृत् नित्य तप्य लग्न हरे वच्छ भृग । —पृ० रा०, २।६१ ।

अचित्<sup>१</sup>—सङ्घा पु० [स०] १ जडप्रकृति । अचेतन । 'चित्' का उलटा । २. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक । विशेष—यह भोग्य, दृश्य, अचेतन स्वरूप, जडात्मक और भोग्यत्व विचार से युक्त माना जाता है । इसके भोग्य, भोगोपकरण और भोगावन ये तीन प्रकार माने गए हैं ।

अचित्<sup>२</sup>—वि० अचेतन । चेतनारहित । जड [को०] ।

अचित्त—वि० [म०] १ गया हुआ । २. जो सोचा न गया हो । ३. जो एकत्र न किया गया हो [को०] ।

अचित्तवन—वि० [स०] अ = नहीं + हि० चित्तवन ] चित्तवन रहित । निनिमेष । अपलक ।

अचित्त—वि० [स०] १ विचार या ध्यान में न आने योग्य । २. बुद्धिरहित । अज्ञ । ३. अविचारित । जिसपर विचार न किया गया हो । ४. चेतनारहित । अचेत [को०] ।

अचित्ति—सङ्घा स्त्री [स०] ज्ञान का अभाव [को०] ।

अचित्त—वि० [स०] १ जिसमें अलगाव या भेद न किया जा सके । २. जो चित्त न हो । जो बहुरंगा न हो [को०] ।

अचिर<sup>१</sup>—क्रि० वि० [स०] १ शीघ्र । जल्दी । २. थोड़ा ही समय पूर्व । कुछ काल पहले (को०) ।

अचिर<sup>२</sup>—वि० १. थोड़े समय का । क्षणम्यायी । २. हाल का । ताजा । ३. नया [को०] ।

अचिरज<sup>७</sup>—सङ्घा पु० [हि०] ३० 'अचरज' । उ०—ऐ परि याकी नेम मुनहि जो । लाडिलि अचिरज लाड रहै तो । —नद० ग्र०, पृ० १३३ ।

अचिरता—सङ्घा स्त्री [स०] अचिर का भाव । क्षणिकता ।

अचिरद्युति—सङ्घा स्त्री [म०] क्षणप्रभा । विजली ।

अचिरप्रभा—सङ्घा स्त्री [स०] विजली ।

अचिरप्रमूता—सङ्घा स्त्री [स०] सद्य प्रमूता गी । हाल की व्याई गाय [को०] ।

अचिरभा—सङ्घा स्त्री [म०] विद्युत् [को०] ।

अचिरम्—क्रि० वि० [म०] ३० 'अचिरात्' [को०] ।

अचिरमूत—वि० [म०] कुछ समय पूर्व मूत [को०] ।

अचिररोचि—सङ्घा स्त्री [म०] सौदामिनी । विजली [को०] ।

अचिराश—सङ्घा पु० [म०] विद्युत् । विजली [को०] ।

अचिरात्—क्रि० वि० [म०] शीघ्र । जल्दी । तुरत । २. कुछ समय पूर्व । कुछ पहले (को०) ।

अचिराभा—सङ्घा स्त्री [म०] क्षणप्रभा । विजनी [को०] ।

अचिरेण—क्रि० वि० [स०] ३० 'अचिरात्' [को०] ।

अचीतिया<sup>७</sup>—वि० [स०] अचितित; प्रा० अचितिय ] आकस्मिक । असमावित । उ०—आवी खवर अचीतिया विसमै जैसी वत । —रा० रु०, पृ० ६२ ।

अचीता<sup>१</sup>—वि० [स०] अचितित ] [ स्त्री० अचीती ] १ बिना सोचा विचारा । असमावित । आकस्मिक । जिसको पहले से अनुमान न हो । २. अचित्य । जिसका अदाजा न हो । बढ़त । अधिक । उ०—लिखी खवर जैसी इत वीती । परी मुलक पर धार अचीती । —लाल (शब्द०) ।

अचीता<sup>२</sup><sup>७</sup>—वि० [स०] अचित्त ] निश्चित । वेफिक्र । उ०—सुनो मेरे भीता सुख सोइए अचीता कहौ सीता सोधि लाउ कहौ सी मिलाऊँ राम को । —हृदयराम (शब्द०) ।

अचीर—वि० [स०] चीरबिहीन । वस्त्ररहित [को०] ।

अचुवाना<sup>७</sup>—क्रि० स० [हि०] ३० 'अचवाना' । उ०—पुनि जल शीतल अचुवावै । ता माहि सुगध मिलावै । —सुदर० ग्र० भा० १, पृ० १३५ ।

अचूक<sup>१</sup>—वि० [म०] अच्युत अथवा स० अ = नहीं + प्रा० चूक = चुकना ] १. जो न चुके । जो खाली न जाय । जो ठीक बैठे । जो अवश्य फल दिखावे । जो अपना निर्दिष्ट कार्य अवश्य करे । उ०—वांकी तेग कवीर की, अनी परे द्वै दूक । मारे धीर महाबली, ऐसी मूठि अचूक । —कवीर (शब्द०) । २. निश्चात । जिसमें भूल न हो । ठीक । अमरहित । निश्चित पक्का । उ०—'वह समझता है कि जिस बात को सब लोग निश्चात कहते हैं वह अवश्य ही अचूक होगी ।'—(शब्द०) ।

अचूक<sup>२</sup>—क्रि० वि० १ सफाई से । पटुता से । कौशल से । उ०—मुँदे तहाँ एक अलवेली के अनोखे दृग सुदृग मिचावनी के ख्यालन हितै हितै । नैमुक नवाइ ग्रीवा धन्य धनि दूसरी कोँ आँवका अचूक मुख चूमत चितै चितै । —पद्माकर ग्र०, पृ० ६५ । २. निश्चय । अवश्य । जरूर । उ०—जहाँ मुख मुक, राम राम ही की कूक जहाँ सर्व सुखघूप तहाँ है अचूक जानकी । —हृदयराम (शब्द०) ।

अचेत<sup>१</sup>—वि० [स०] १ चेतनारहित । सज्ञाशून्य । वेसुध । बेहोश । मूर्च्छित । २. व्याकुल । विह्वल । विकल । उ०—भौ यह ऐसोई समो, जहाँ सुखद दुखु देत । चैत चाँद की चाँदनी डारत किए अचेत । —विहारी र०, दो० ५१६ । ३. असावधान । बेपरवाह । उ०—यह तन हरियर खेत, तरुनी हरिनी चर गई । अजहूँ चैत अचेत, यह अधचरा वचाइ ले । —सम्मान (शब्द०) । ४. अनजान । बेखबर । उ०—वृंदावन की वीथिन तकि तकि रहत गुमान समेत । इन वातन पति पावत मोहन जानत होहु अचेत । —सूर (शब्द०) । ५. नासमझ । मूढ़ । उ०—मैं पुनि निज गुप्त मन सुनी, कथा सु सुकरखेत । समुझी नहि तसु वालपन तव अति रहेउँ अचेत । —तुलसी (शब्द०) । ७. ६ जड । उ०—(क) असम अचेत पखान प्रगत लै वनचर जल मई डारत । —सूर (शब्द०) । (ख) कामातुर होत है सदा 'ही' मतिहीन तिन्है चेत ओ अचेत माँह भेद कहाँ पावैगो । —लक्ष्मणसिंह (शब्द०) ।

अचेत<sup>२</sup><sup>७</sup>—सङ्घा पु० [स०] अचित् ] १. जड प्रकृति । जडत्व । २. माया । अज्ञान । उ०—कह लो कहीं अचेतै गयऊ । चैत अचेत भगर थक भयऊ । —कवीर (शब्द०) ।

अच्छयतृतीया ७—मद्य स्त्री० [ हि० ] दे० 'अच्छय तृतीया' । उ०—  
अच्छय तृतीया, अच्छय सुगतिनिधि मिय को प्यारी चढ़ावै चदन ।  
—नद० प्र०, पृ० ३७१ ।

अच्छर<sup>१</sup>(७)।—मघा पु० । सं० अक्षर, पा० अक्षर, प्रा० अच्छर ] अक्षर । वर्ण । ह०फ। उ०—द्विदस अच्छर महामन्त्र के अक्षिकन जायी ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २१६ ।

अच्छर<sup>२</sup>(७)।—वि० दे० 'अक्षर' । उ०—अच्छर ब्रह्म मुन्यद-वारा ।—कवीर श०, पृ० ५८ ।

अच्छर<sup>३</sup>(७)।—मघा स्त्री० । म० अक्षर ] अक्षर । उ०—आसुरा मिमार सवाई । अच्छर जैसी रहि अछवाई ।—जायमी (शब्द०) ।

अच्छरा<sup>४</sup>(७)।—सघा स्त्री० । स० अक्षरस्, पा० प्रा० अच्छरा ] अक्षरा । उ०—तारि कै छरा सो अच्छरा मी यो निचारिकई 'तमने कहे ते कन मुकता मे पानी है' ।—भूपण श्र०, पृ० २२४ ।

अच्छरि<sup>५</sup>(७)।—मघा स्त्री० । हि० दे० 'अच्छरी' । उ०—घन अच्छरि अच्छ कुलच्छ करे ।—पृ० २१०, २४११ ६४ ।

अच्छरी<sup>६</sup>(७)।—सघा स्त्री० । म० अक्षरस्, पा० प्रा० अच्छरा ] अक्षरा । स्वर्ग की वारवनिता । उ०—वनि नाचती सुर अच्छरी जिन भाव मोह । सिद्ध है ।—गुमान (शब्द०) ।

अच्छा<sup>७</sup>।—वि० । म० अच्छक, प्रा० अच्छअ = स्वच्छ, निर्मल ] १

उत्तम । भला । बढ़िया । उमदा । खरा । चखा ।

मुहा०—अच्छा आना = (१) ठीक या उपयुक्त अवसर पर आना ।

जैसे—तुम अच्छे आए, अब सब ठीक हो जायगा (शब्द०) ।

(२) ठीक उतरना । सुदर बनना, जैसे—इस कागज पर चित्र अच्छा नहीं आता (शब्द०) । अच्छा करना = अच्छा काम

करना । जैसे—तुमने अच्छा नहीं किया जो चले आए (शब्द०) ।

अच्छा कहना प्रशंसा करना, जैसे—कोई तुम्हें अच्छा नहीं

कहता (शब्द०) । अच्छा घर = सपत्न घर । प्रतिष्ठित कुल ।

अच्छा-दिन = सुख संपत्ति का दिन जैसे—उसने अच्छे दिन

देखे हैं (शब्द०) । अच्छी काटना, गुजरना या बीतना = अच्छी

तरह बीतना । आनंद स दिन कटना, जैसे—यहाँ से वहाँ

अच्छी बीतेगी (शब्द०) । अच्छा रहना = अच्छी दशा में रहना ।

लाभ वा आगम में रहना, जैसे—तुम से तो हमी अच्छे रहे

जो कही नहीं गए (शब्द०) । अच्छा लगना = (१) भला जान

पडना । सजना । सोहना, जैसे—तुम्हारे मिर पर यह टापी

नहीं अच्छी लगती (शब्द०) । (२) रुचिर होना । पसंद

आना, जैसे—हमें यह फल नहीं अच्छा लगता । हम तुम्हारी

यह चाल नहीं अच्छी लगती (शब्द०) । अच्छे वक्त = ठीक

समय से । आवश्यकता के समय । जरूरत के वक्त । अच्छे से

पाला पड़ना = वेढगे व्यक्त से काम पडना । अच्छे हालो

गुजरना = साधारणतः सुख से दिन बीतना ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग व्यय रूप से बहुत होता है । जैसे—

'आप भी अच्छे कहनेवाले आए वा मिले' । जब क ई बात

किमी को नहीं जेचता तब वह उसके कहने वा करनेवाले के

प्रति प्राय कहता है कि 'अच्छे आए' वा 'अच्छे मिले' ।

२ स्वस्थ । चंगा । तदुत्त । नारोग । आरोग्य, जैसे—'तुम

किसकी दवा अच्छे हुए' (शब्द०) ?

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

अच्छा<sup>८</sup>।—मघा पु० १ बड़ा आदमी श्रेष्ठ पुरुष । जैसे—मैंने अच्छे

अच्छो को निकाले जाते देखा है, तुम क्या हो (शब्द०) ।

२ गुनवान । वापदादा । बड़ा बूढ़ा, जैसे—दोगे क्यों नहीं ?  
मे तो तुम्हारे अच्छे अच्छो से लूंगा ( शब्द० ) ।

अच्छा<sup>९</sup>।—क्रि० वि० अच्छा तरह । पूरा । बहुत । जैसे—तुमने यहाँ  
बुलाकर हम अच्छा तग किया (शब्द०) ।

अच्छा ।—अथ० १ प्रायना या प्रादश के उत्तर में (प्रश्न के नहीं )

स्वीकृतिसूचक शब्द । जैसे—( आदेश )—तुम बल आना

( उत्तर )—अच्छा ( शब्द० ) । उ०—फिर बोलें—अच्छा

वाही कै कर बेचन तन ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ७३ ।

२. अच्छा के विरुद्ध कोई बात हो जाने पर अथवा उस होनी

हुई या होनेवाली सुन या देखकर भी यह शब्द कहा जाता

है । जैसे—(क) अच्छा जो हुआ तो हुआ अब आगे से

सावधान रहना चाहिए । (ख) अच्छा हम देख लेंगे (शब्द०) ।

अच्छाई—सघा स्त्री० । हि० अच्छा + ई ( प्रत्य० ) ] अच्छापन ।

उत्तमता । श्रेष्ठता । सुदरता । सुवराई ।

अच्छाखासा— वि० [ हि० अच्छा + खासा ] पूर्णतः स्वस्थ । तदुत्तम ।

काफी अच्छा । पूरा । बड़ा चढ़ा ।

अच्छापन—सघा पु० [ हि० अच्छा + पन ] ( प्रत्य० ) ] अच्छे होने का

भाव । उत्तमता । सुवराई ।

अच्छावरा—वि० [ हि० ] सुदर वा खराब । गला घुरा ।

अच्छावाक—सघा पु० [ न० अच्छावाक् ] १ आह्वान करनेवाला ।

यज्ञ करानेवाले होता, अध्वर्यु आदि सोलह ऋत्विजों में से

एक । २ दे० ऋत्विज ।

अच्छाविच्छा—वि० [ हि० अच्छा + विच्छा = चुनना ] १ दुस्त ।

खासा । चुना हुआ । २ भला चंगा । नारोग ।

अच्छि<sup>१०</sup>(७)।—सघा स्त्री० । सं० अक्षि, प्रा० अच्छि ] नेत्र । आँख । उ०—

जपिगज की अच्छि पिग डक भई सरे खत ।—पृ० २०,

६३ । १४६ ।

अच्छित<sup>११</sup>(७)।—सघा पु० [ हि० ] दे० 'अच्छित' । उ०—कचन बार मे

कुकुम अच्छि तिलकु करति नंदलाल के ।—छीउ, पृ० ३० ।

अच्छिद्र<sup>१२</sup>।—[ सं० ] १. छिद्ररहित । रश्मिहीन । २ अघटित ।

अक्षत । ३ फूट प्रवाद आदि से रहित । ४ सच्चा । ५.

तुटिरहित (को०) ।

अच्छिद्र<sup>१३</sup>।—सघा पु० १ अलुण्ण स्थिति या अवस्था । २ दीपगहन

कार्य (को०) ।

अच्छिल्ल<sup>१४</sup>।—वि० [ म० ] १ छिद्ररहित । २ जो कटा नहा । अघटित ।

सावित । ३ जा टूटा या बिभक्त न हो । अविभक्त (को०) ।

४ लगातार गतिशील (को०) ।

अच्छिल्लपत्र<sup>१५</sup>।—सघा पु० [ सं० ] १ पाषाणक वृक्ष जिन्मे पत्तियाँ चराचर

रहती हैं । २. बिना कटे दूटे पत्रमाना पक्षी (को०) ।

अच्छिल्लपर्य<sup>१६</sup>।—सघा पु० [ न० ] दे० 'अच्छिल्लपत्र' (को०) ।

अच्छिप<sup>१७</sup>(७)।—वि० [ हि० ] दे० 'अक्षि' । उ०—देख द्रव्य कै अच्छी

अच्छिप ।—पृ० २१०, १४०० ।

अच्छिर<sup>१८</sup>(७)।—सघा पु० [ हि० ] दे० 'अक्षर' । उ०—बधि विचारिय

वाहिमा निमित्त आच्छर नृत ।—पृ० २० (३०), भा० १,

पृ० २१२ ।

अच्छुप्ता—सघा स्त्री० [ सं० ] जैनों की १६ देवियों में से एक ।



अच्छिका—महा स्त्री [सं०] १ मंल या घेरा । २. चक्र या खोग [सं०] ।

अच्छेदिक—वि० [न०] काटने या छेदने के अयोग्य [को०] ।

अच्छेप—वि० [न०] प्रविभाज्य । विभाग न करने लायक [को०] ।

अच्छेदिक—वि० [सं०] २० 'अच्छेदिक' [को०] ।

अच्छे चिच्छि—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'अक्षय वृक्ष' । उ०—नक्षत्र पुरुष  
अच्छे चिच्छि निरजन द्वारा ।—मनवाणी०, भा० २, पृ० १८ ।

अच्छोटन—संज्ञा पुं० [सं०] आघात । मृगया । शिकार [को०] ।

अच्छोट—वि० [न०] अक्षत, प्रा० अक्षत ? ] १ पूरा । २  
पधिव । बहुत । उ०—वृषभ घर्म पृथ्वी सो गाइ । वृषभ  
गह्यो तामो या भाइ । मेरे हेतु दुखी तू होत । कै अघर्म तुम  
पर अच्छोट ।—सूर ( शब्द० ) ।

अच्छोद—संज्ञा पुं० [सं०] वाणमट्ट द्वारा काटवरी में उत्पन्न खित  
हिमाचलस्य एक मरोवर ।

अच्छोद—वि० स्वच्छ या निर्मल जलवाला [को०] ।

अच्छोदा—संज्ञा स्त्री [सं०] पुराणों में वर्णित एक नदी [को०] ।

अच्छोहिन—संज्ञा स्त्री [हि०] ३० 'अक्षीहिणी' ।

अच्छोहिनी—संज्ञा स्त्री [हि०] अक्षीहिणी सेना ।

अच्यत—वि० [हि०] ३० 'अचित्य' । उ०—अच्यत च्यत ए  
माथो सो मय माहि समाना ।—कवीर ग्रं०, पृ० १०० ।

अच्यता—क्रि० वि० [सं०] अचिन्तित ] अकस्मात् । आकस्मिक  
रूप में । उ०—कान अच्यता भटपसी ज्युंतीतर को बाज ।—  
कवीर ग्रं०, पृ० ७२ ।

अच्युत—वि० [सं०] १. जो गिरा न हो । २. दृढ़ । अटल । स्थिर ।  
३. नित्य । अमर । अविनाशी । ४. जो न चूके । जो क्षुटि न  
करे । जो विचलित न हो । ५. न चूने या टपकने वाला [को०] ।

अच्युत—संज्ञा पुं० १ विष्णु और उनके अवतारों का नाम । २ वासु  
देव । दृष्टा [को०] । ३. जैनियों के चार श्रेणी के देवताओं  
में चौथी अर्थात् वैमानिक श्रेणी के कल्पभवन नामक देवताओं का  
एक भेद । ४. एक पंथ का नाम । ५. एक प्रकार की पद्य  
रचना जिसमें १२ वध होते हैं [को०] ।

अच्युतकुल—संज्ञा पुं० [सं०] अच्युत + कुल ] वैष्णवों का समाज और  
उनकी निष्पत्तिका । विशेषकर रामानन्दी संप्रदाय के वैष्णव  
सोम अपने को अच्युतकुल या अच्युतगोत्र कहते हैं ।

अच्युतगोत्र—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'अच्युतकुल' ।

अच्युतज—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का एक देवगण जो विष्णु से  
उत्पन्न कहा गया है [को०] ।

अच्युतपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ कामदेव । अलग । २ दृष्टा और  
रक्षिणी के पुत्र अच्युत [को०] ।

अच्युतमध्यग—संज्ञा पुं० [सं०] सर्गात में एक विष्णु स्वरजो मार्जनी  
नामक श्रुति में प्रारम्भ होता है और जिसमें दो श्रुतियाँ होती हैं ।

अच्युतमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०] ।

अच्युतमान—संज्ञा पुं० [सं०] यह वृक्ष जिसमें अच्युत अर्थात् विष्णु  
का निवास हो । पीपल का वृक्ष [को०] ।

अच्युतपद—संज्ञा पुं० [सं०] सर्गात में एक विष्णु स्वरजो छन्दस्य  
नामक श्रुति में प्रारम्भ होता है और जिसमें दो श्रुतियाँ  
होती हैं ।

अच्युतागज—संज्ञा पुं० [सं०] अच्युताङ्गज ] १ कामदेव । २ कृष्णपुत्र  
अच्युत [को०] ।

अच्युतागज—संज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु के बड़े भाई इन्द्र । २ श्रीकृष्ण  
के बड़े भाई वनराम ।

अच्युतात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] २० 'अच्युतपुत्र' [को०] ।

अच्युतानन्द—वि० [सं०] अच्युतानन्द ] जिसका आनन्द नित्य हो ।

अच्युतानन्द—संज्ञा पुं० आनन्दस्वरूप परमात्मा । ईश्वर ।

अच्युतावास—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल वृक्ष [को०] ।

अछभो—संज्ञा पुं० [सं०] अक्षमभव या अत्यद्भुत, प्रा० अच्यभुअ  
अचनव ] ३० 'अचभो' (डि०) ।

अछक—वि० [सं०] अ = नहीं + चक, प्रा० चख, चक, छक, ] विना  
छका हुआ । अतृप्त । भूखा । उ०—तेग या तिहारी मतवारी है  
अछक तोली जाँ लीं गजराजन की गजक करे नहीं ।—भूषण  
( शब्द० ) ।

अछकना—क्रि० वि० [हि०] अछक से नाम० ] अतृप्त होना । तृप्त  
न होना । न अचाना । उ०—चपक बेल चमेलिन में मधु  
छाक छकयो अछकयो अनुकूल । मालती मज् गुलाब समीर  
धरयो नहिं धीर मनोज की हूल ।—(शब्द०) ।

अछग—वि० [हि०] ३० 'अछक' । उ०—परै के अछगे । न  
दरीन सगे ।—पृ० २१०, पृ० ५२२ ।

अछत—क्रि० वि० [सं०] अक्षि, प्रा० अक्ष [क्रि० अ०  
'अछना' का कृत् रूप जिसका प्रयोग क्रि० वि० की तरह  
होता है । ] १. रहते हुए । उपस्थिति में । विद्यमानता में ।  
समूह । सामने । उ०—( क ) खसम अछन बहु पीपर जाय ।  
—कवीर (शब्द०) । ( ख ) आपु अछत जुवराज पद रामहिं  
देउ नरेसु ।—मानस, २।१। ( ग ) तिनहि अछत तुम अपने  
आलम काहिं कत रहन इस गात ।—सूर०, १।४२१५ ।  
२. सिवाय । अतिरिक्त ।—लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा ।  
तुम्हहि अछ को वरने पारा ।—मानस १।२७४ ।

अछत—क्रि० वि० [सं०] अ = नहीं + अस्ति, प्रा० अच्छइ = है ]  
न रहते हुए । अनुपस्थित । उ०—गनती गनिवे तै रहे छतई  
अछन समान ।—विहारी २०, दो० २७५ ।

अछताना पछताना—क्रि० अ० [सं०] पश्चात्ताप, प्रा० पछाताव से  
विषम द्विगुण नाम० ] बार बार किसी भूल या किसी बीबी  
हुई बात पर खेद करना । पछताना । उ०—ऐसे सोच समझ  
अछताय पछताय भेवों सहित इद्र अपने स्वान को गया ।—  
ललूलाल (शब्द०) ।

अछन—संज्ञा पुं० [सं०] अ + क्षण ] क्षण मात्र नहीं । बहुत दिन ।  
दीर्घकाल । विरकाल । उ०—देन कहहि फिर देत न जो है ।  
भजन अछन को भजन सो है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

अछन—क्रि० वि० [अ०] (उच्चा०) + सं० क्षण, प्रा०, घप० छन ]  
धीरे धीरे । ठहर ठहरकर । उ०—प्यारे इन घन गलियन आव ।  
नैनन जल सो घाह सँवारी अछन अछन धरि पाव ।—रघु-  
विहारी (शब्द०) ।

अछना(७)---कि० अ० [सं० अम् का समानार्थक/सं० आक्षे, प्रा० अछ, अप० अछ = होना] होना रहना। विद्यमान रहना। उ०---(क) आत्म तुभ पासङ् अछि अल्लेग रुडा रवउ।---ढोला०, ११४। (ख) अछि वेहम तवूल मो राती। जनु गुलाल देखे विहोताती।---जायसी (शब्द०)।

अछप(७)---वि० [सं० अ + अछ = छिपना] न छिपने योग्य। प्रकट। प्रकाशमान। जाहिर। उ०---खोइ हवाल ममरत्य कर, रहे सो अछप छपाइ। मोड सधि लै आयउ मोवत जगहि जगाइ।---कवीर (शब्द०)।

अछय(७)---वि० [सं० अक्षय] दे० 'अक्षय'। उ०---करवत ममा द्रुपद तनया को अवर अक्षय कियो।---मूर०, १।१३१।

अछयकुमार(७)---सद्भा पु० [हि०] दे० 'अक्षकुमार'।

अछयवृच्छ(७)---सद्भा पु० [हि०] दे० 'अक्षयवृक्ष'। उ०---तिरवेनी से नीर मंगवो अछय वृच्छ के डार हो।---धरम०, पृ० ५७।

अछर<sup>१</sup>(७)---वि० [सं० अक्षर] दे० 'अक्षर'। उ०---अछर अच्युत अविहार है निराकार है जोइ।---मूर०, १०।११७५।

अछर<sup>२</sup>(७)---सद्भा स्त्री० [हि०] दे० 'अप्सर'। उ०---मधुकर माधवि मदन मत्त मन मैन अछर से डोले।---श्यामा०, पृ० ११८।

अछरना(७)---कि० अ० [सं० उच्छलन, पु० हि० उछरना] उपटना। स्पष्ट होना। प्रकट होना। अकित देख पटना। उ०---वैठि भंवर कुच नारंग लारी। लागी मुख अछरै रंगराती।---जायसी (शब्द०)।

अछरा(७)---सद्भा स्त्री० [सं० अप्सरा, प्रा० अछरा] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०---ओहि भउहहि सरि कोउ न जीता। अछरई छपी, छपी गोपीना।---जायसी (शब्द०)।

अछरी(७)---सद्भा स्त्री० [सं० अप्सर, प्रा० अछर + ई (प्रत्य०)] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०---(क) मानउँ मयन मूरती, अछरी वरन अनूप।---जायसी (शब्द०)। (ख) सुता एक अछरी के नाई।---हिंदी० प्रेमा०, पृ० २५१।

अछरीटी(७)---सद्भा स्त्री० [सं० अक्षर, प्रा० अछर + हि० श्रीटी (प्रत्य०)] वर्णमाला। उ०---रमिक पपीहा साछी आछी अछरीटी के।---घनानंद, पृ० २०५।

मुहा०---अछरीटी बर्तनी = किसी शब्द के प्रत्येक वर्ण को अलग अलग कहना। हिज्जे करना।

अछल---वि० [सं०] छलरहित। निष्कपट। सीधासादा। भोलाभाला।

अछवाई---सद्भा स्त्री० [हि० अछा < अछ + वाई (प्रत्य०)] अछाई। सुदरता। उ०---रति साँचे ढरी अछवाई भरी पिटुरीन गुराइये पेखि पगै।---घनानंद, पृ० १५।

अछवाना(७)---कि० सं० [हि० अछ मे नाम०] साफ करना। संवारना। उ०---रूप सरूप सिंगार सवाई। अछर जैसी रहि अछवाई।---जायसी (शब्द०)।

अछवानी---सद्भा स्त्री० [सं० यवानिका वा यमानी हि० अजवाइन] अजवाइन, सोंठ तथा मेवों को पीसकर घृत में पकाया हुआ मसाला जो प्रसूता स्त्रियों को पिलाया जाता है।

अछाम(७)---वि० [सं० अक्षाम] १ जो पतला न हो। मोटा। बड़ा। भारी। २ जो क्षीण या दुबला न हो। हृष्ट पुष्ट। मोटा ताजा वनवान्

अछित(७)---वि० वि० [हि० अछित] दे० 'अछत'। उ०---जीव अछित जौवन गया, कछु किया न नीका।---कवीर ग्र०, पृ० १४८।

अछिद्र---वि० [सं०] १ छिद्र या रक्षित। २ वेष्ट। निर्दोष [की०]।

अछियार---सद्भा पु० [हि० छोर = किनारा?] एक प्रकार की गजी की साड़ी जिसमें लाल किनारे होते हैं।

अछी---सद्भा स्त्री० [देश०] आन का पेड़।

अछूत<sup>१</sup>---वि० [सं० अ = नहीं + छुप्त छुआ हुआ, प्रा० छुत्त] १. बिना छुआ हुआ। जो छुआ न गया हो। अस्पृष्ट। उ०---भीजे हार चोर हिय चोली। रही अछूत कत नहि खाली।---जायसी (शब्द०)। २ जो काम में न लाया गया हो। जा बर्तान गया हो। नया। ताजा। कोरा। पवित्र। उ०---अस के अघर अमी भरि राखे। अवहि अछूत, न काहू चाखे।---जायसी ग्र०, पृ० ४४। ३ न छूने योग्य। नीच जाति का। अत्यज जाति का। अस्पृश्य। जैसे--'मेहनर, डोम, चमार, आदि अछूत जातियां भी अपना सगठन कर रही हैं।'---(शब्द०)।

अछूत<sup>२</sup>---सद्भा पु० वह जो छूने योग्य न हो। अछूत या अस्पृश्य जाति का मनुष्य। जैसे--'आर्य समाज ने तब से अछूतों को शुद्ध कर अपने में मिला लिया।'---(शब्द०)।

अछूतपन---सद्भा पु० [हि० अछूत + पन] अछूत या अस्पृश्य होने का भाव। जैसे--'समाज उनके साथ अछूतपन का व्यवहार करता है।'---आ० अ०, रा०, पृ० ८७।

अछूता---वि० [हि० अछूत] [स्त्री० अछूती] १ बिना छुआ हुआ। जो छुआ न गया हो। अस्पृष्ट। २ जो काम में न लाया गया हो। जो बर्तान गया हो। नया। कोरा। ताजा। पवित्र उ०---दधि माखन द्वै, माट अछूते तोहि सौंपति ही सहियो।---सूर०, १०।३१३।

अछूतोद्धार---सद्भा पु० [हि० अछूत + उद्धार] १ अस्पृश्य जातियों के सुधार का कार्य। अछूतों से अन्य जातिवत् व्यवहार कार्य। २. अछूतों के उद्धार का आंदोलन।

अछेद<sup>१</sup>(७)---वि० [सं० अछेद्य] जिसका छेदन न हो सके। जो कट न सके। अमोद। अखड्य। उ०---अमिन अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान।---सूर०, ३।१३।

अछेद<sup>२</sup>---सद्भा पु० अमोद। अभिन्नता। छल छिद्र का अभाव। उ०---चेला सिद्धि सो पावै, गुह सो करै अछेद।---जायसी ग्र०, पृ० १०६।

अछेदन(७)---सद्भा पु० [हि०] दे० 'अच्छादन'। उ०---पाँच वासन श्वेत वस्त्र कदलिपत्र अछेदना।---कवीर सा०, पृ० ५६।

अछेद्य---वि० [सं०] १ जिसका छेदन न हो सके। जो कट न सके। अमोद। अखड्य। २ अविनाशी। अविनश्वर।

अछेरा(७)---सद्भा पु० [सं० आश्चर्य, प्रा० अछेरा] विस्मयजनक। अपूर्व। उ०---जावै पिए जावै नहीं, एह अछेरा गहन।---बाकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ६।

अछेय—वि० [सं० अ + छे + वा अछि] छिड़ या दूषणरहित, निरुद्ध। विशेष। उ०—द्वान् नृपद स्वच्छ गन्धे आभूषण तव हीन। तो मन्त्रिन् को नमि अछेय को।—रघुपथ (शब्द०)।  
अछेय—वि० [सं० अछेय] १ अछुछ। निरुद्ध। लगातार। उ०—ग। शिरी मन्त्र, आनि दश विहा घे। आठौं जाम छेय रग जु वान वनत रहन।—विहारी २०, दो० ४५।  
२ अन्न। बहुत अधिक अत्यत। ज्यादा। उ०—(क) घरे तव पुन ही नु फिरे अछेय छछ।—विहारी २०, दो० ६००। (ग) दान दीनि पिय पम परनि, आदर रियो अछेय।—नयनार २०, पृ० ६३।

अछेय—वि० [हि०] दे० 'अक्षय'। उ०—ठ। मेटे तव विषम कोल का, अछेय अमर पद रहिए।—कवीर ज०, पृ० २६।

अछेय—वि० [सं० अ + छुप] आच्छादनरहित। नगा। नीच। अछुट। दीन। उ०—मेवा मजम कर जप पूजा, सबद न निनको गुनाने। मे अछेय हीन मति मेरी, दाहू को दिखलावे।—दाहू (शब्द०)।

अछेय—वि० [सं० अक्षोभ] १ क्षोभरहित। चलतारहित। उद्वेगवन्त। उ०—वीर शर्मा तुम धीर अछेय। गारी देत न पागड़ नामा।—तुलसी (शब्द०)। २ स्थिर। गंभीर। शांत। ३ माहुरहित। मायाग्रहित। खेदरहित। उ०—जवते धातम जतमिया, तव ते परधन लोभ। दे अक्षर कवहू नही उरह ते नीन अछेय। कवीर—(शब्द०)। ४ निष्ठर। निर्णय। ५ जिने बुरा कर्म बरते हुए क्षोभ या ग्लानि न हो। नीन।

अछोर—वि० [सं० अ + नहीं + हि० छोर = किनारा] अपार। अतल। बिना आर छोर का।

अछोह—वि० [सं० अक्षोभ, प्रा० अछोह] १ क्षोभ का अभाव। २ क्षीर स्मरता। ३ मोह का अभाव। दयाहीनता। तणापुनता। निर्दयता।

अछोह—वि० १ क्षोभरहित। २ स्थिर। शांत। ३ मोहवन्त। ४ कष्टग्रहित। निर्दय।

अछोही—वि० [हि०] दे० 'अछोह'।

अजगम—महा पुं० [सं० अजगम] छप्पय नामक मात्रिक छंद के ७१ भेदों में से एक।

विशेष—इस छंद में ११४ वर्ण होते हैं जिनमें ३८ गुरु और ७६ लघु होते हैं। मात्राओं की गणना १५२ है।

अजट—सहा पुं० [सं० अजट] १ प्रतिनिधि। किसी दूसरे की ओर से कार्य करनेवाला। २ किसी राजा या सरकार की ओर से किसी दूसरे राजा या सरकार के प्रति नियुक्त किया हुआ व्यक्ति, जिसका कार्य आनगराजानुसार अपना राजा या सरकार की इच्छामानों प्रकट करना और उनके अनुरोध कार्य करना है। ३ किसी मोहक की ओर से बर्माण या कुछ श्रव्य लेकर उत्तरा सीर, वे संवाता। गुमास्ता। प्रतिवा।

अजट—महा स्त्री० [हि० अजट + ई (प्रत्यय)] १ अजट का कर्मात्मक। अजट का दार या उसकी कवहरी। २ अजट का पद या काम।

अजत—वि० पुं० [सं० अज + अस्त = अजत] वह शब्द जिसके अंत में अच् प्रत्यय है। वह शब्द जिसके अंत में स्वर हो। च्चरात (व्या०)।

अजता—सहा पुं० [देश०] दक्षिण भारत में सह्याद्रि पर्वत की गोद में बहनेवाला वागुरा नदी की घाटी में स्थित एक स्थान जो अपने १६ कलात्मक गुफागदियों के लिये जगद्दृष्ट्या है।

विशेष—मध्य रेलवे की इटारसी बवई शाखा पर स्थित जनगांव स्टेशन में उत्तर-दक्षिण फरवापुर होते हुए अजता जाने का मार्ग है। गुफाएँ प्राकृतिक नहीं हैं, बल्कि पत्थर के ठोस 'हाडों' को काट-काटकर भारतीय कारीगरों द्वारा निर्मित हैं। वास्तु, शिल्प और चित्र इन तीनों कलाओं का चरमोत्कर्ष इन गुफाओं में दृष्टिगोचर होता है जिनका निर्माण ई० पू० दूसरी शती (गुहा सद्य १०, १२, १३) से लेकर ७वीं शती तक (विहार गुहा १, २) हैं। आरम्भिक गुहाओं में बौद्धों की हीनयान शाखा के प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। शिल्प और चित्रों में भगवान् बुद्ध की प्रधानता है। १६वीं गुहा सर्वोत्कृष्ट है। इसके भित्तिचित्रों में भगवान् बुद्ध और उनके जीवन की विविध घटनाएँ एवं विभिन्न जातक कथाओं के चित्र अत्यंत सघे हाथों से अंकित हैं। रंग जैसे पक्के और चटकीले हैं, मानों कारीगर ने उन्हें अभी अभी समाप्त किया है। ५० फुट से अधिक प्रशस्त मंडप के ऊपर की छत तक अलंकृत है। अन्त्या गुफाओं की चित्रसमृद्धि भी अत्यंत उच्च कोटि की है। ये गुफाएँ भारतीय स्वर्णयुग के सांस्कृतिक, कलात्मक और आध्यात्मिक उपलब्धियों की प्रत्यक्ष साक्षी हैं।

अजतुक—वि० [सं० अजन्तुक] जलविहीन। प्राणीरहित। उ०—अजतुक, जब पृथ्वी पर किसी प्रकार का जीवन न था।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८।

अजभ—वि० [सं० अजम्भ] बिना दाँत का। दतरहित।

अजभ—महा पुं० १ मेढक। २ सूर्य (को०)। ३ बालक की वह अवस्था, जब उसके दाँत न निकले हों (को०)।

अजमत्त—वि० [हि०] दे० 'अजमत'। उ०—अजमत भारी हमीर सु जानी।—ह० रासो, पृ० ८५।

अजसी—सहा स्त्री० [अ० एजसी] १ अजट के रहने का स्थान। अजट का दपत्तर या उसकी कवहरी। २ आदत। आदत की दूकान। वह दूकान जिसमें किसी दूसरे सोदागर या कारखाने की चीज बेचने के लिये रखा जाय।

अज—वि० [सं०] जिसका जन्म न हो। जन्म के बधन से रहित। अजन्मा। स्वयम्भू। उ०—ग्रहा जो व्यापज विरज अज अकल अनीह अमेद।—मानस, १।५०।

अज—सहा पुं० १ ग्रहा। उ०—लगन वाचि अज सवहि सुताई।—मानस, १।६१। २ विष्णु। ३ शिव। ४ ईश्वर (को०)। ५ कामदेव। ६ चंद्रमा (को०)। ७. एक सूर्यवंशी राजा जो दशरथ के पिता थे।

विशेष—वाल्मीकि रामायण में इन्हें नाभाग का पुत्र लिखा है पर रघुवंश आदि के अनुसार ये रघु के पुत्र थे।

८. बकरा। उ०—तदपि न तजत स्वान, अज, खर ज्यो फिगत विषय शत्रुतागे।—तुलसी २०, पृ० ५१६। ९. भैंसा। १०.

माया शक्ति । ११ जीव (को०) । १२. ज्योतिष मे शुक्र की गति के अनुसार तीन तीन नक्षत्रों की जो एक एक वीथी मानी गई हैं, उनमें मे एक, जो हस्त, विशाखा और चित्रा नक्षत्र में होती है । १३. एक ऋषि (को०) । १४ मेघराशि (को०) । १५ अग्नि (को०) । १६ एक प्रकार का घान्य (को०) । १७ मार्क्षिक घातु (को०) । १८ सूर्य का रथ (को०) ।

अज<sup>३</sup>(७) —क्रि० वि० [ सं० अज, प्रा० अजज ] भव । असी तक ।

विशेष—इस शब्द को 'हैं' के साथ देखा जाता है, स्वतन्त्र रूप में नहीं, जैसे—(क) उठी कवीरा विगहिनी अजहूँ ढँके खेह ।—कवीर (शब्द०) । (ख) अजहूँ जागु अजाना होत आउ निमि भोर ।—जायमी (शब्द०) । (ग) रे मन, अजहूँ क्यों न संहार ।—सूर० १।६३ । (घ) अजहूँ मानहूँ कहा हमाग ।—मानस, १।८० ।

अज<sup>४</sup>—प्रत्य० [ फा० अज ] मे । उ०—लिये खाँटे ऊपर अज जान होर दिल ।—दक्खिनी०, पृ० ११४ ।

अजक<sup>१</sup>—वि० वि० [ सं० अ = नहीं + फा० जक = पराजय ] अपराजय । उद्धन । उ०—अजक अप्रीधा अनल ज्यूँ विए कीधा रणताल ।—राज०, पृ० ७४ ।

अजक<sup>२</sup>—मज्ञा स्त्री० रोग । पीडा । उ०—एक जड़ी तोइ ऐसी री दुगौ, मिटि जाइ अजक निहारी ।—पद्मार अभि० ग्र०, पृ० ६६५ ।

अजक<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [ म० ] पुनरुत्थान के वृत्त का एक राजा [को०] ।

अजकजा—सज्ञा पुं० [ फा० अज + अ० कजा ] सयोगवण । उ०—अजकजा जव शोउ गए वस्ती भीतर ।—दक्खिनी०, पृ० २८१ ।

अजकर्ण—सज्ञा पुं० [ सं० ] दे० 'अजकर्णक' [को०] ।

अजकर्णक—सज्ञा पुं० [ सं० ] १. साल का पेड़ । सालवृक्ष । अमन का वृक्ष [को०] ।

अजकव—सज्ञा पुं० [ म० ] दे० 'अजगव' ।

अजका—सज्ञा स्त्री० [ म० ] १ कम उम्रवाली बकरी । २ बकरी के गले से लटकनेवाली माँस की ग्रन्थि । अजागलस्तन । ३ नेत्रों का एक रोग । अजकाजात [को०] ।

अजकाजात—सज्ञा पुं० [ सं० ] आँख में होनेवाली लाल फूली जो पुतली को ढँक लेती है । टेड्ड वा डेंडड । नाखुना ।

अजकाव—सज्ञा पुं० [ म० ] १ शिव का धनुष । अजगव । २ बकल का वृक्ष । ३ काष्ठनिर्मित एक यज्ञ पात्र जो मित्र और वरुण से मयूद्ध है [को०] । ४ एक नेत्ररोग । अजकाजात [को०] । ५ अजका रोग का विष [को०] ।

अजखुद—क्रि० वि० [ फा० ] स्वयं । आप से आप । उ०—'गुया अजखुद गाली न देकर ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०१ ।

अजगधा—सज्ञा स्त्री० [ म० अजगन्धा ] अजमोदा ।

अजगधिका—सज्ञा स्त्री० [ सं० अजगन्धिका ] १ वनतुलसी का पौधा । वंशरी ।

अजगधिनी—सज्ञा स्त्री० [ सं० अजगन्धिनी ] १ काकडासीगी । २ वनतुलसी का पौधा [को०] ।

अजग—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ शिव का धनुष । २ विष्णु का नाम । ३ अग्नि [को०] ।

अजगर—सज्ञा पुं० [ म० ] १ बकरी निगलने वाला साँप । बहुत मोटी जाति का एक सर्प । उ०—(क) बैठि रहेसि अजगर इव पायी ।—मानस, ७।१०७ । (ख) दिन आशा दिन उद्यम कीने अजगर उदर भरें ।—सूर०, १।१०५ । अजगर करै न चाकरी पछी करै न काम । दास मलूका कहि गए सब के दाता राम ।—मलूक (शब्द०) ।

विशेष—यह अपने शरीर के भारीपन के कारण फुर्ती से इधर उधर टाल नहीं सकता और बकरी, हिरन ऐसे बड़े पशुओं को निगल जाता है । और सर्पों के समान इसके दाँतों में विष नहीं होता । यह जंतु अपनी स्थूलता और निश्चयता के लिये प्रसिद्ध है । २, एक दानव [को०] ।

अजगरी—सज्ञा स्त्री० [ सं० अजगरीय ] अजगर की सी निश्चयमवृत्ति । विना परिश्रम की जीविका । उ०—उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज वन । कहे कवीर ताके गहे महा परम सुख चैन ।—कवीर (शब्द०) ।

अजगरी<sup>२</sup>—वि० १ अजगर की सी । २ विना परिश्रम की ।

अजगरी<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० [ म० ] एक पौधे का नाम [को०] ।

अजगरीवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] विना श्रम की जीविका । अजगरी ।

अजगलिका—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] मूँग के दान के बराबर छोटी पीडा-रहित फुसी जो कफ और वात के प्रकोप से शरीर पर निकलती है ।

अजगलिका—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] दे० 'अजगलिका' [को०] ।

अजगव—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ शिव जी का धनुष । पिनाक । उ०—नही इसी से चढ़ी शिजिनी अजगव पर प्रतिशोध भरी ।—कामायनी पृ० १०५ । २ अजवीथी [को०] ।

अजगाव—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ शिव का धनुष । २ नागों के एक गुरु । ३ एक प्रकार यज्ञपात्र । ४ अजवीथी [को०] ।

अजगुत—सज्ञा पुं० [ सं० अयुक्त हिं० अजगुति ] १ युक्ति विरुद्ध वात । अचभे की वात । आश्चर्यजनक भेद । असाधारण वात । अस्वाभाविक व्यापार । अप्राकृतिक घटना उ०—आई करंगी भो अजगुता । जनम जनम जम पहिरे वृना ।—कवीर (शब्द०) । २ अयुक्त वात । अनुचित वात । बेजोड़ वात । उ०—सरबस लूटि हमारी लीनो राज कूबरी पावै । तापर एक मुनी री अजगुत लिख लिख जोग पठावै ।—सूर (शब्द०) ।

अजगुत<sup>२</sup>(७) —वि० १, आश्चर्यजनक । अदभुत । अलक्षण । २ अनुचित । अयुक्त । बेजोड़ । उ०—पापी नाउ जीभ गलि तेरी अजगुत दात विचारी । सिंह को भक्ष्य गृगाल न पावै हौं मम-रथ की नारी ।—सूर (शब्द०) ।

अजगुत्था(७) —वि० [ हिं० ] दे० 'अजगुत' । उ०—विभीषण भेद कहौ अजगुत्था ।—कवीर सा०, पृ० ४१ ।

अजगैव—क्रि० वि० [ फा० ] अलक्षित स्थान से । गैव से । अदृष्ट से [को०] ।

अजगैव<sup>२</sup>(७) —सज्ञा पुं० [ फा० अज + अ० गैव ] अलक्षित स्थान । अदृष्ट स्थान । उ०—दादू टरिऐ लोक तें, कैसी धरहि उठाइ । अनदेखी अजगैव, कैसी कहइ घनाइ ।—दादू (शब्द०) ।

अजगंवी<sup>७</sup>—वि० [ फा० प्रज + अ० गंवी + ई (प्रत्य०) ] रहस्य-पूर्णता । अलौकिकता । उ०—कहें पदमाकर त्यो तारन विचारन की दिगर गुनाह अजगंवी गैर आव की ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३२४।

यी०—अजगंवी गोला, अजगंवी तमाचा = देवी विपत्ति आकस्मिक कष्ट । अजगंवी तमाशा = आश्चर्य करनेवाला खेल । अजगंवी मार = दे० 'अजगंवी गोला' ।

अजघन्य—वि० [ स० ] जो जघन्य अर्थात् जो निम्नतम, तुच्छ और अनिम या उद्देश्य न हो [को०] ।

अजघोष—सज्ञा पुं० [ स० ] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रागी के शरीर में वक्रे की गंध आती है ।—(माधव०) ।

अजजीव—सज्ञा पुं० [ स० ] दे० 'अजजीविक' [ को० ] ।

अजजीविक—सज्ञा पुं० [ म० ] वक्रे पालकर उनके विक्रयादि के द्वारा अपनी जीविका चलावे वाला व्यक्ति [को०] ।

अजटा—सज्ञा स्त्री० [ म० ] भूम्यामलकी । कपिकच्छू [को०] ।

अजड<sup>१</sup>—वि० [ स० ] जो जड न हो । चेतन ।

अजड<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० चेतन पदार्थ ।

अजड<sup>३</sup>—वि०, सज्ञा पुं० [ स० अजड ] दे० 'अजड' ।

अजरा—सज्ञा पुं० [ सं० अजुन ] राजा सहस्रार्जुन ।—(हिं०) ।

अजथ्या—सज्ञा स्त्री० [ म० ] १ पीले रंग की जूही का पेड़ और फूल । २ पीची चमेली । जर्द चमेली । ३ वक्रे का समूह [को०] ।

अजदडी—सज्ञा स्त्री० [ सं० अजदण्डी ] एक प्रकार का पीछा । ब्रह्मदडी [को०] ।

अजदर—सज्ञा पुं० [ फा० अजदर ] दे० 'अजदहा' । उ०—अजदर है भभुका है जहन्नुम है बना है —भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५२२ ।

अजदहा—सज्ञा पुं० [ फा० ] बड़ा मोटा और भारी साँप । अजगर ।

अजदाह—सज्ञा पुं० [ हिं० ] दे० 'अजदहा' । उ०—सत की प्रीति अजदाह की चाहिए, चले बिन फिरे आहार आवै ।—पलटू०, पृ० २६ ।

अजदेवता—सज्ञा पुं० [ स० ] १ अग्नि । २. पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र का एक नाम [को०] ।

अजधाम—सज्ञा पुं० [ म० अज + धाम ] ब्रह्मलोक । उ०—(क) पद पाताल सीस अजधामा ।—मानस ६।१५। (ख) पद है पताल दिग श्रुति अजधाम भाल वाल घन माल काल भूकुटी विलास है ।—दीन० ग्र०, पृ० १५५ ।

अजनदन—सज्ञा पुं० [ स० अज + नन्दन ] रघुवंश के राजा अज के पुत्र दशरथ । उ०—त्याग दिया आज अजनदन ने एक साथ पुत्र हेतु प्रण सर्व कारण अपत् है ।—माकेत, पं० २०१ ।

अजन<sup>१</sup>—वि० [ स० ] १ जन्म के वधन से मुक्त । जन्मरहित । अजन्मा । अनादि । स्वयम्भू । उ०—सकललोक नायक, सुख-दायक, अजन, जन्म धरि आया ।—सूर०, १०।४। २ निर्जन । मुनसान । उ०—मो उर अजन पजिर मैं निज नोतिहि जमाय जागो ।—घनानन्द, पृ० १६२ ।

अजन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [ म० ] १ अयोग्य व्यक्ति । अप्रिय व्यक्ति । तुच्छ जन । उ०—हैंसे खुलकर हाल बाहर अजन जन के वने मगल ।—अर्चना, पृ० २७। २ पितामह । ब्रह्मा (को०) । ३ गति गमन (को०) ।

अजनक—वि० [ स० ] उत्पादन न करनेवाला । अनुत्पादक [को०] ।

अजननि—सज्ञा स्त्री० [ म० ] उत्पन्न या पैदा न होने की स्थिति । उत्पन्न न होना [को०] ।

अजननीय—वि० [ स० ] जनन के अयोग्य । जो उत्पादनीय न हो ।

अजननी—वि० [ अ० ] १. अज्ञात । अपरिचित । जिसे कोई जानता न हो । बिना जान पहिचान का । नया । परदेशी । २ अन-जन । नावाकफ ।

अजनवीपन—सज्ञा पुं० [ अ० अजवी + हिं० पन (प्रत्य०) ] अजनवी होने का भाव । उ०—उमपर दो भाषाओं के अजनवीपन की छाप दिखाई पड़ी ।—त्रिनामणि, भा० २, पृ० १४२ ।

अजनयोनिज—सज्ञा पुं० [ स० ] दक्ष प्रजापति [को०] ।

अजनाभ—सज्ञा पुं० [ स० ] भारतवर्ष का एक प्राचीन नाम [को०] ।

अजनामक—सज्ञा पुं० [ स० ] एक प्रकार का खनिज द्रव्य [को०] ।

अजनाशक—सज्ञा पुं० [ स० ] भेडिया [को०] ।

अजन्म<sup>१</sup>—वि० [ स० अजन्मा ] दे० 'अजन्मा' । उ०—आत्म अजन्म सदा अविनासी । ताकी देह मोह बड फाँसी —सूर० ५।४।

अजन्म<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [ स० ] जन्म का अभाव । जन्म न होना [को०] ।

अजन्मा—वि० [ स० ] जन्मरहित । जिसका जन्म न हुआ हो । जो जन्म के वधन में न आवे । अनादि । नित्य । अविनाशी ।

अजन्य<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ स० ] शुभाशुभ सूचक सृष्टिव्यापार जैसे—भूकप आदि ।

अजन्य<sup>२</sup>—वि० १ जन्य या मनुष्य के लिये अनुपयुक्त । २ उत्पादन के अयोग्य । अजननीय [को०] ।

अजप—सज्ञा पुं० [ स० ] १ कुपाठक । बुरा पढ़नेवाला ब्राह्मण । २ वकरी, भेड़ पालनेवाला । गडेरिया ।

अजपति—सज्ञा पुं० [ स० ] १ उत्तम एवं श्रेष्ठ वकरी । २ भौम । मगल [को०] ।

अजपथ—सज्ञा पुं० [ स० ] १ छयापथ । अजवीथी (को०) २ वह पथ जिसपर केवल वकरी ही चल सके । अत्यंत सँकरा मार्ग ।

विशेष—अजपथ के विषय में बृहत्कथा श्लोमसग्रह में लिखा है कि यह रास्ता इतना कम चौड़ा होता था कि ग्रामने सामने से-आनेवाले दो व्यक्ति एक साथ उसपर से निकल नहीं सकते थे ।

अजपथ्य—सज्ञा पुं० [ स० ] दे० 'अजपथ' [को०] ।

अजपद—सज्ञा पुं० [ स० ] अजैकपाद नामक रुद्र [को०] ।

अजपा<sup>१</sup>—वि० [ म० ] १ जिसका उच्चारण न किया जाय । उ०—जपते मन्त्रित अजपा विभक्त हो राम नाम ।—अपारा, पृ० ४१। २ जो न जपे या भजे ।

अजपा<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ उच्चारण न किया जानेवाला तांत्रिको का मन्त्र । वह जप जिसके मूल मन्त्र 'ह्रस्व' का उच्चारण श्वास-प्रश्वास के गमनागमन मात्र से होता जाय । हम मन्त्र । उ०—अजपा जपत मुनि अभिप्रति, यह तत जानै सोई ।—बद्रीर ग्र०, पृ० १५६ ।





अजरक--सङ्घा पुं० [सं०] अग्निमाद्य । मदाग्नि [को०] ।

अजरद्रुम--सङ्घा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष [को०] ।

अजरा--सङ्घा स्त्री० [सं०] १ घृतकुमारी । धीकुआर । २ विधारा ।  
३ गृहगोधा । छिपकली [को०] ।

अजरायल<sup>१</sup>--वि० [सं० अजर + हि० आयल (प्रत्य०)] जो जीर्ण न  
हो । जो पुराना न हो । जो सदा एक सा रहे । अमिट ।  
पक्का । चिरस्थायी । उ०--दिना चारि भेँ सव मिटि जैहैं ।  
श्याम रंग अजरायल रहै ।--सूर० (शब्द०) ।

अजरायल<sup>२</sup>--वि० [सं० अ = नहीं + दर = भय] १ निर्भय । वेडर ।  
निश्चक । उ०--तस कुठार द्रग तायल राह वरात ईख अज-  
रायल ।--रघु० ६० पृ० ८६ । २ बलवान् । शक्तिशाली ।  
उ०--रीठ वागो उभय ओड अजरायला ।--रघु० ६०,  
पृ० १८३ ।

अजराल--वि० [सं० अ = नहीं + जृ पुराना पड़ना] बलवान् ।  
जोरावर ।--डि० ।

अजरावन--वि० [सं० अजर + आवन (प्रत्य०)] दे० 'अजर' । उ०--  
भलै सु दिन भयो पुत अमर अजरावन रे ।--सूर०, १०।२८ ।

अजरावर<sup>३</sup>--वि० [सं० अजरामर] जरा मरण से रहित । उ०--  
आत्मा माहि दीदार दरसता रहै यूँ अजरावर होय आपु  
जीया ।--रामानन्द०, पृ० ५ ।

अजर्य<sup>१</sup>--वि० [सं०] १ जराविहीन । २ पचाने के अयोग्य । अपाच्य ।  
३ चिरकाल तक रहनेवाला । चिरस्थायी [को०] ।

अजर्य<sup>२</sup>--सङ्घा पुं० मैत्री । दोस्ती [को०] ।

अजलवन--सङ्घा पुं० [सं० अजलम्वन] सुरमा [को०] ।

अजल--सङ्घा स्त्री० [अ० अजल] मृत्यु । मीत । उ०--ऐ सनम तू ही  
मेरी शक्ल से रहता है रसा, है अजल भी तो खफा ।--  
श्यामा०, पृ० १०२ ।

अजलचर--वि० [सं० अ = नहीं + जलचर] जो जलचर न हो । जो जल  
में न रहना हो । स्थलचर । थलचर उ०--अरु तहँ बहूत जुगनि  
की कछ्छी । सर्प अजलचर क्यो जल रह्यो ।--नद० ग्र०,  
पृ० २७६ ।

अजलोमा--सङ्घा स्त्री० [सं०] केवाँच का पेड़ ।

अजलोमी--सङ्घा स्त्री० [सं०] दे० 'अजलोमा' [को०] ।

अजव--वि० [सं०] वेगरहित । गतिहीन [को०] ।

अजवल्ली--सङ्घा स्त्री० [सं०] दे० 'अजशृंगी' [को०] ।

अजवाइन--सङ्घा स्त्री० [हि०] दे० 'अजवायन' । उ०--रोटी रुचिर  
कनक वसन करि । अजवाइन सँघो मिलाइ धरि ।--  
सूर०, १०।१२१३ ।

अजवायन--सङ्घा स्त्री० [सं० यवानिका] यवानी । एक पौधा ।  
जवाइन ।

विशेष--यह पौधा सारे भारत में, विशेषकर बंगाल में लगाया  
जाता है । यह पौधा अफगानिस्तान, फारस और मिस्र आदि  
देशों में भी होता है । भारतवर्ष में इसकी बोआई कार्तिक,  
अग्रहन में होती है । इसके बीज जिनमें एक विशेष प्रकार की  
महक होती है और जो स्वाद में तीक्ष्ण होते हैं, मसाले और  
दवा के काम आते हैं । भ्रूके पर उतारने से बीज में से अर्क

( भ्रूम का पानी ) और तेल निकलता है । भ्रूके से उतारते  
समय तेल के ऊपर एक सफेद चमकीली चीज अलग होकर जमें  
जाती है जा बाजार में 'अजवायन के फूल' के नाम से विक्रती  
है । अजवायन का प्रयोग हैजा, पेट का दर्द, वात की पीड़ा  
आदि में किया जाता है ।

अजवाह<sup>१</sup>--सङ्घा पुं० [सं०] कच्छ, कठियावाड़ का एक प्राचीन नाम  
[को०] ।

अजवाह<sup>२</sup>--वि० अजवाह देश का [को०] ।

अजवीथि--सङ्घा स्त्री० [सं०] दे० 'अजवीथी' [को०] ।

अजवीथी--सङ्घा स्त्री० [सं०] १ सूर्यादि के गमन के तीन दक्षिणी  
मार्गों में से एक । छायापथ । गगनसेतु । २. वक्रे के चलने  
की राह या मार्ग [को०] ।

अजशृंगी--सङ्घा स्त्री० [सं० अजशृङ्गी] एक वृक्ष । मेढासिंगी ।

विशेष--यह भागवतवर्ष में प्रायः समुद्र के किनारे होता है । इसकी  
छाल 'सकोचक' है और ग्रहणी आदि रोगों में दी जाती है ।  
इसका लेप घाव और नासूर को भी भरता है ।

अजस<sup>३</sup>--सङ्घा पुं० [सं० अयश प्रा० अजस] अयश । अपयश ।  
अपकीर्ति । बुरी ख्याति । बदनामी । उ०--सिय वरनिय तेइ  
उपमा देखि । कुंवि कहाइ अजस को लेई ।--मानस, १।२४७।  
यौ०--अजम पेटारी = अयश की भागिनी । उ०--अजस पेटारी  
ताहि करि गई गिरा मन फेरि ।--मानस २ १२ ।

अज सरे नौ--क्रि० वि० [फा० अज सरे नौ] नए सिरे से । नए  
ढंग से [को०] ।

अजसी<sup>४</sup>--वि० [सं० अयशिन] जिम्की बुरी कीर्ति हो बदनाम ।  
निन्द्य । अपयशी । उ०--कौल कामवस कृपन विमूढ़ । प्रति  
दरिद्र अजसी अति बूढ़ ।--मानस, ६।३१ ।

अजस्र--क्रि० वि० [सं०] सदा । निरतर । हृत्पेशा । लगातार । उ०--  
'आहुतिर्या विश्व की अजस्र लुटाता रहा ।'--नहर, पृ० ५६ ।

अजस्रता--सङ्घा स्त्री० [सं० अजस्र + ता (प्रत्य०)] अजस्र होने का  
भाव या क्रिया । निरतर्य । उ०--'तुममें या मुझमें या हमारे  
प्रेम में ही अजस्रता नहीं है' ।--चिन्ता०, पृ० ६४ ।

अजहत्--वि० [सं०] त्याग न करनेवाला । न छोड़नेवाला [को०] ।

अजहति--सङ्घा स्त्री० [सं०] दे० 'अजहत्स्वार्था' ।

अजहल्लक्षणा--सङ्घा स्त्री० [सं०] दे० 'अजहत्स्वार्था' [को०] ।

अजहल्लिग--सङ्घा पुं० [सं० अजहल्लिङ्ग] संस्कृत व्याकरण में वह  
शब्द या संज्ञा जो अन्य लिग के शब्द के विशेषण के रूप में  
प्रयुक्त होने पर भी अपने लिग का त्याग न करे [को०] ।

अजहत्स्वार्था--सङ्घा स्त्री० [सं०] अलकार शास्त्र में लक्षणा के दो  
भेदों में से एक ।

विशेष--इसमें लक्षक शब्द अपने वाच्यार्थ को न छोड़कर उससे  
संपृक्त या कुछ भिन्न या अतिरिक्त अर्थ प्रकट करे । जैसे--  
'भालो के आते ही शत्रु भाग गए' । यहाँ भालो से तात्पर्य भाला  
लिए सिपाहियों से है । इसे उपादान लक्षणा भी कहते हैं ।

अजहद--क्रि० वि० [फा० अज + अ० हद] हद से ज्यादा । बहुत  
अधिक । उ०--सब पखियों में मैं हूँ अजहद पाक तन ।--  
दक्खिनी०, पृ० १७६ ।

अजहूँ<sup>④</sup>—क्रि० वि० [हि०] ३० 'अजहूँ'। उ०—तुलसी अजहूँ सुमिरि रघुनाराहि तारा गयद जाके अर्धनार्ये।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०२।

अजहूँ<sup>⑤</sup>—क्रि० वि० [स० अथ, प्रा० अज्ज + हि० हूँ (प्रत्य०)] अव भी अद्यपि। अज भी। उ०—किती वार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूँ है छ टी।—भूर०, १०।१७५।

अजात्री—सङ्घा स्त्री०। सं० अजान्त्री। नीलपुष्पी नामक पौधा [क०]। अजाविका—सङ्घा स्त्री० [सं० अजाम्बिका] भाद्र कृष्ण एकादशी का नाम जो एक व्रत का दिन है।

अजा<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री० [अ० अजा] ३० 'अजान'। उ०—तुम्हे ही शेख ने प्यारे अजा देकर पुकारा है।—भारतेंदु ग्र०, भाग २, पृ० ८५१।

अजा<sup>२</sup>—वि० स्त्री० [सं०] जिसका जन्म न हुआ हो। जो उत्पन्न न की गई हो। जन्मरहित। उ०—अजा अनादि सक्ति अविनासिनि।—मानस, १।६७।

अज<sup>३</sup>—सङ्घा स्त्री० १ वकरी। २ सांख्य मतानुसार प्रकृति या माया जो किसी के द्वारा उत्पन्न नहीं की गई और अनादि है। ३ शक्ति। दुर्गा। ४ भादो वदी एकादशी जो एक व्रत का दिन है।

अजा<sup>३</sup>—सङ्घा पुं० [अ० अजा] १ मृत्युशोक। मातम। २ मातम-पुर्सी [को०]।

अजाइव<sup>④</sup>—सङ्घा पुं० [अ० अजायव] ३० 'अजायव'। उ०—अजव अजाइव नूर दीदम दाद है हैरान।—दादू, पृ० ५७७।

अजाखाना—सङ्घा पुं० [अ० अजाखानह] वह स्थान विशेष जहाँ मातम किया जाय, ताजिया खाया जाय या मसिंया पढा जाय [को०]।

अजागर<sup>१</sup>—वि० [सं०] न जागनेवाला [को०]।

अजागर<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० भृगुराज। भृगुरैया [को०]।

अजागलस्तन—सङ्घा पुं० [सं०] १ वकरी के गले में लटकने वाली मांस की स्तनकार छीमी। २ देखने में उपयोगी किंतु निरर्थक वस्तु (लाक्ष०) [को०]।

अजाच<sup>⑤</sup>—वि० [हि०] ३० 'अयाच्य'। उ०—जाचक भए अजाच प्रजा पगिजन मुद छए।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २५४।

अजाचक<sup>⑥</sup>—सङ्घा पुं० [सं० अयाचक] न मांगनेवाला। वह जिसे कुछ मांगने की आवश्यकता न हो। संपन्न व्यक्ति।

अजाचक<sup>⑦</sup>—वि० जो न मांगे। जिसे मांगने की आवश्यकता न हो। संपन्न। भरापूरा। उ०—विग्रह दान विविध विधि दीन्हें। जाचक सकल अजाचक कीन्हें।—मानस, ७।१३।

अजाची<sup>⑧</sup>—सङ्घा पुं० [सं० अयाचिन्] न मांगनेवाला। संपन्न पुरुष।

अजाची<sup>⑨</sup>—वि० जो न मांगे। जिसे मांगने का आवश्यकता न हो। धन धान्य से पूर्ण। संपन्न। भरापूरा। उ०—(क) कपि सवरी सुग्रीव विष्णुपन को जो कियो अजाची।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गुरुसुत आनि दिए जन्मपुर तैं विप्र सुदामा कियो अजाची।—सूर०, १।१८।

अजाजि—सङ्घा स्त्री० [सं०] ३० 'अजाजी' [को०]।

अजाजी—सङ्घा स्त्री० [सं०] सफेद और काला जीरा। जीरा।

अजाजील—सङ्घा पुं० [अ० अजाजील] शैतान [को०]।

अजाजीव—सङ्घा पुं० [सं०] ३० 'अजजीवक' [को०]।

अजात—वि० [सं०] १. जो पैदा न हुआ हो। अनुत्पन्न। २. जन्मरहित। अजन्मा।

अजातकुत्—सङ्घा पुं० [सं०] वह बछड़ा जिसकी पीठ पर डिल न निकला हो। छोटा बछड़ा। बछवा। उ०—जब तक बछड़ा बड़ा नहीं हो जाता था अर्थात् उसकी पीठ पर डिल नहीं निकल आता था तब तक वह अजातकुत् और युवा होने पर पूर्णकुत् कहलाता था।—सप्त० अभि० ग्र०, पृ० २४८।

अजातदत्त—वि० [सं० अजातदन्त] जिसे दाँत पैदा न हुए हो। बिना दाँत का। दन्तविहीन [को०]।

अजातपक्ष—वि० [सं०] बिना पखवाला। जिसे पख उत्पन्न न हुए हो [को०]।

अजातरिपु—वि० [सं०] ३० 'अजातशत्रु' [को०]।

अजातव्यजन—वि० [सं० अजातव्यञ्जन] अस्पष्ट आकृति या बिल्व-वाला। जिसकी आकृति सुस्पष्ट न हो, (पक्षी) [को०]।

अजातव्यवहार—वि० [सं०] जिसको व्यवहारिक ज्ञान न हो या जो बालिग न हो [को०]।

अजातशत्रु<sup>१</sup>—वि० [सं०] जिसका कोई शत्रु उत्पन्न न हुआ हो। बिना वैरी का। शत्रुविहीन।

अजातशत्रु<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० १. राजा युधिष्ठिर। २. शिव। ३. बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित काशी का एक क्षत्रिय राजा जो बड़ा ज्ञानी था और जिसने गार्ग्य वालाकि ऋषि को ब्रह्म से उपदेश दिए थे। ४. 'राजगृह' (मगध) के राजा विविसार का पुत्र जो गीतमबुद्ध का समकालीन था।

अजातशत्रु<sup>३</sup>—वि० [सं०] जिसे दाढ़ी मूछ न निकली हो। छोटी उम्रवाला। अल्पवय [को०]।

अजातारि—सङ्घा पुं०, वि० [सं०] ३० 'अजातशत्रु' [को०]।

अजाति<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जाति से निकला हुआ। जाति से बाहर। जातिरहित। पतित। पक्तिच्युत। उ०—कहहु काह सुनि रीकहु बर अकुलीनहि। अगुन अमान अजाति मातृपितु हीनहि—तुलसी ग्र०, पृ० ३३। २. जो जात या उत्पन्न न हो [को०]।

अजाति<sup>२</sup>—सङ्घा स्त्री० उत्पत्ति का अभाव। अनुत्पत्ति [को०]।

अजाती<sup>१</sup>—वि० [सं० अजाति] ३० 'अजाति'। उ०—चंद न सूर दिवस नहि राती। वरन भेद नहि जाति, अजाती।—कवीर सा०, पृ० २।

क्रि० प्र०—करना। जैसे—'उसको विरादरी ने अजाती कर दिया है।'—(शब्द०)।—होना।

अजाती<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० जाति से अलग किया हुआ आदमी। जातिच्युत व्यक्ति।

अजाद<sup>④</sup>—वि० [फा० अजाद] ३० 'अजाद'। उ०—हम नैनदन मोल लिए। जम के फद काटि मुकराए, अभय अजाद किए।—सूर०, १।७१।

अजादनी—सङ्घा स्त्री० [सं०] जवास या जवासा का एक भेद [को०]।

अजादार—वि० [ अ० अजा + फा० दार ] मृत्पुशोक करनेवाला । मातम मनानेवाला [को०] ।

अजादारी—संज्ञा स्त्री० [ अ० अजा + फा० दार + ई (प्रत्य०) ] शोक । मातम [को०] ।

अजान<sup>१</sup>—वि० [ सं० अज्ञान, प्रा० अजाण [ स्त्री० अजानी ] १ जो न जाने । अनजान । अवोध । अनभिज्ञ । अवृक्ष । नासमर्थ । उ०—(क) तुम प्रभु अजित, अनादि लोकपति, ही अजान मतिहीन ।—सूर०, १।१८१ । (ख) भक्त अरु भगवत एक है वृक्षत नही अजान ।—कवीर (शब्द०) । २ न जाना हुआ । अपरिचित । अज्ञात । उ०—उसे दिखाती जगती का सुख, हंसी और उल्लास अजान ।—कामायनी पृ० ३० ।

अजान<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ अज्ञानता । अनभिज्ञता । उ०—(क) 'मृक्षसे यह काम अजान मे हो गया ।'—(शब्द०) । (ख) धीरे धीरे आती है जैसे मादकता आँखों के अजान मे ललाई मे ही छिपती ।—लहर, पृ० ७४ ।

विशेष—इसका प्रयोग इस अर्थ मे 'मे' के साथ ही होता है और दोनों मिलकर क्रियाविशेषणवत् हो जाते हैं । कहीं कहीं इसका स्वतन्त्र प्रयोग भी प्राप्त होता है, जैसे—'जान अजान नाम जो लेइ । हरि बैकुण्ठवास निहिं देइ ।—सूर०, ६।४ ।

२. एक पेड़ जिसके नीचे जाने से लोग समझते हैं कि बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । उ०—कोई चदन फूलहि जगु फूली । कोई अजान वीरउ तर भूली ।—जायसी (शब्द०) ।

विशेष—यह पीपल के घरावर ऊँचा होता है और इसके पत्ते महुए के से होते हैं । इसमे लवे लवे मोर लगते हैं ।

अजान<sup>३</sup>—संज्ञा स्त्री० [ अ० अजान ] वह पुकार जो प्रायः मसजिद की मीनारों पर मुसलमानों को नमाज के समय की सूचना देने और उन्हें मसजिद में बुलाने के लिये की जाती है । वाँग ।

मुहा०—अजान देना = (१) किसी ऊँचे स्थान या मसजिद का मीनार से उच्चस्वर में नमाज करने के समय की सूचना देना ।

(२) प्रातःकाल मुर्गे का बोलना । मुर्गे का वाँग देना ।

अजानता—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] अज्ञता । अज्ञानपन । नासमझी । उ०—मोहि मेरे जिय की जनायबो अजानता है, जानराय जानत ही सकल कला प्रवीन ।—घनानन्द, पृ० ३६ ।

अजानपन—संज्ञा पुं० [ हिं० अजान + पन ] (प्रत्य०) ] अनजानपन । अज्ञानता । नासमझी । उ०—जो लोग औरों की निंदा सुनकर काँपते हैं वह आप भी अपने अजानपने में औरों की निंदा करते हैं ।—श्रीनिवास श्र०, पृ० ३२६ ।

अजानि—संज्ञा पुं० [ सं० ] १ विना पत्नी का व्यक्ति । वह व्यक्ति जिसे पत्नी न हो । २ विधुर [को०] ।

अजानिक—संज्ञा पुं० [ म० ] १. गडेरिया । छागपालक । २. दे० 'अजानि' । [को०] ।

अजानी—वि० [ हिं० ] दे० 'अजानी' । उ०—रानी में जानी अजानी महा पवि पाहन हूँ ते कठोर हियो है ।—तुलसी श्र०, पृ० १६६ ।

अजानीय—वि० [ सं० ] दे० 'अजानेय' । उ०—गाधार के दश नागरिकों का क्षिप्टदल दश अजानीय असाधारण अश्व और बहुत सी उपायन सामग्री देकर भेजा था ।—वैशाली०, पृ० १२३ ।

अजानेय<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० ] अच्छी नस्ल का घोड़ा [को०] ।

अजानेय<sup>२</sup>—वि० अच्छी जाति का । ताकतवर । निर्भय (घोड़ा) ।

अजापवव—संज्ञा पुं० [ सं० ] ओपधि के लिये निर्मित एक प्रकार का घी [को०] ।

अजापालक—संज्ञा पुं० [ सं० ] गडेरिया । भेयपालक [को०] ।

अजापुत्र—संज्ञा पुं० [ सं० ] वकरो का वच्चा । वकरा । उ०—नित्य एक अजापुत्र के भक्षण को सामर्थ्य आप मे बढ़ती जाय ।—भारतेंदु श्र०, भा० १, पृ० ७३ ।

अजाव—संज्ञा पुं० [ अ० अजाव ] १ सजा । पीडा । यातना । उ०—कर अव तो रहम अजाव के बदले ।—भारतेंदु श्र०, भा० २, पृ० २०३ । २ पाप । कष्ट । प्रायश्चित्त । उ०—पलटू खुदा हक राह यही । और खाना अजाव है जी ।—पलटू०, पृ० १० ।

मुहा०—मोल लेना = व्यर्थ झगड़ मे पड़ना ।

यौ०—अजाव के फरिश्ते = पापियों को दंड देने के लिये नियुक्त यमदूत ।

अजामिल—संज्ञा पुं० [ सं० ] पुराण के अनुसार एक पापी ब्राह्मण का नाम जो मरते समय अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लेकर तर गया ।

अजाय<sup>१</sup>—वि० [ सं० अ = कुत्सित + फा० जाय = जगह ] वेजा । अनुचित । बुरा । उ०—द्वै सुत निर्धन देखि कै मातु कही अनखाय । भए पुत्र द्वै रक मम, कीन्हो कत अजाय ।—रघुराज (शब्द०) ।

अजाय<sup>२</sup>—वि० [ सं० ] जायारहित । पत्नीविहीन [को०] ।

अजायव<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ अ० 'अजव' का बहुवचन ] अद्भुत वस्तु । विलक्षण पदार्थ या व्यापार । विचित्र वस्तु या कार्य ।

अजायव<sup>२</sup>—वि० अजीव । विचित्र । विलक्षण । उ०—अविगत रूप अजायव बानी । ता छविका कहि जाई ।—भीखा श्र०, पृ० ३७ ।

अजायवखाना—संज्ञा पुं० [ अ० अजायव + फा० खाना ] वह भवन या घेरा जिसमे अनेक प्रकार के अद्भुत पदार्थ रखे जाते हैं । अद्भुत-वस्तु-संग्रहालय । म्यूजियम ।

अजायवघर—संज्ञा पुं० [ अ० अजायव + हिं० घर ] दे० 'अजायव-खाना' ।

अजायवी<sup>१</sup>—वि० [ हिं० ] दे० 'अजायव<sup>२</sup>' । उ०—अग सुखमूल, रग रुचिर गुलाब फूल कोमल दुकुल तूलपूरित अजायवी ।—घनानन्द, पृ० २०६ ।

अजाया<sup>१</sup>—वि० [ सं० अजातक ] गतप्राण । मृत । मरा हुआ ।

अजार<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ फा० अजार ] १ रोग । बीमारी । उ०—कबकी अजव अजार मे, परी वाम तन छाम । तित कोऊ मति लीजियो चद्रोदय को नाम ।—पद्माकर (शब्द०) । २. कष्ट । दुःख (को०) । ३. दुर्व्यसन । लत (को०) ।

अजारा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ अ० इजारा ] दे० 'इजारा' । उ०—कृपण सतोप करै नहीं लालच अक । सुपण वभीषण सूँ मिलै लिए अजारे लक ।—बिकीदास श्र०, भा० २, पृ० ३१ ।

अजावन<sup>१</sup>—वि० [ सं० अजायमान ] न जनमनेवाला । उत्पन्न न होनेवाला । अजन्मा । उ०—(क) निरमल अभी क्रांति अद्भुत छवि अकह अजावन सोई ।—कवीर श्र०, भा० ४, पृ० २६ । (ख) पुष्प अजावन रहा जो देहा ।—कवीर सा०, पृ० १५३३ ।

अजि<sup>१</sup>—वि० [सं०] चलनेवाला । गमन करनेवाला, जैसे—पदाजि = पैर से चलनेवाला [को०] ।  
 अजि<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० १. चलना की क्रिया या स्थिति । गति । २. फेंकने की क्रिया । फेंकना [को०] ।  
 अजिआउर<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजिआग' ।  
 अजिआरा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] अजिआरा + पुर, प्रा० अजिआरा + शीरा (प्रत्यय) ] अजी या दादी के पिता का घर ।  
 अजित<sup>१</sup>—वि० [सं०] १. अरराजित । जो जीता न गया हो । उ०—इद्री अजित वृद्धि विषयार्थ मन की दिन दिन उलटी चाल । —मूर०, १।१२७ । २. जो जीता न जा सके । अजेय [को०] ।  
 अजित<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १. विष्णु । २. जिव । ३. वृद्ध । ४. विषय श्रोपधि [को०] । ५. जहरीला मूसा [को०] । ६. प्रथम मन्वतर के देवों की एक श्रेणी या वर्ग [को०] ।  
 अजितनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के दूसरे तीर्थंकर का नाम ।  
 अजितबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन संप्रदाय की एक देवी [को०] ।  
 अजितविक्रम<sup>१</sup>—वि० [सं०] अरराजित विक्रमवाला [को०] ।  
 अजितविक्रम<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० चंद्रगुप्त द्वितीय का एक नाम या विरद [को०] ।  
 अजिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादो वदी एकादशी का नाम जो व्रत का दिन है ।  
 अजितात्मा—वि० [सं०] दे० 'अजितेंद्रिय' [को०] ।  
 अजितापीड—वि० [सं०] अजितापीड ] अजेय मुकुटवाला । बेजोड़ मुकुट का [को०] ।  
 अजितेंद्रि<sup>१</sup>—वि० [सं०] अजितेंद्रिय ] दे० 'अजितेंद्रिय' । उ०—असुर अजितेंद्रि जिहि देखि मोहित भए, रूप सो मोहि दीज दिखाई । सूर०, १।४३७ ।  
 अजितेंद्रिय—वि० [सं०] अजितेंद्रिय ] जिसने इंद्रियों को जीता न हो । जो इंद्रियों के वश में हो । इंद्रियलोलुप । विषयामक्त । उ०—कृपण दरिद्र कुटुंबी जसैं । अजितेंद्रिय दुख भरत हैं तैं । —नद० प्र०, पृ० २६१ ।  
 अजिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चर्म । चमड़ा । खाल । उ०—गज अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै । —तुलसी ग्रं०, पृ० ३४ । २. ब्रह्मचारी आदि के धारण करने के लिये कृष्णमृग और व्याघ्र आदि का चर्म । उ०—अजिन वसन फल असन महि सयन टासि कुम पात । —मानस, २।२११ । ३. चमड़े का एक प्रकार का थैला [को०] । ४. भायी । घोंकनी [को०] । ५. छाल ।  
 अजिनपत्नी—संज्ञा स्त्री० [मं०] जिसके पक्ष अजिन की तरह सुश्लिष्ट हो । चमगादड़ [को०] ।  
 अजिनपत्नीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजिनपत्नी' [को०] ।  
 अजिनपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़ । गायु [को०] ।  
 अजिनफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] भायी की तरह फलवाला एक प्रकार का वृक्ष [को०] ।  
 अजिनयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] मृग । हिरन ।  
 अजिनवासी—वि० [सं०] कृष्ण मृग का चर्म धारण करनेवाला [को०] ।  
 अजिनसंघ—संज्ञा पुं० [प्र०] अजिनसंघ ] मृगचर्म का व्यापारी । अजिन का व्यवसायी [को०] ।

अजिर<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] १. आंगन । नहन । उ०—घट्टरुनि चकत, अजिर महें विहरत, मुख मंडित नवनीत । —मूर०, १।०६७ । २. वायु । हवा । ३. शरीर । ४. मेढक । ५. इंद्रियों का विषय । ६. छछूंदर [को०] ।  
 अजिर<sup>२</sup>—वि० शीघ्रगामी [को०] ।  
 अजिरा—संज्ञा वि० [सं०] १. दुर्गा का एक नाम । २. वेगवती नदी [को०] ।  
 अजिरीय—वि० [सं०] आंगन से सवधित । सदन या आंगन वा [को०] ।  
 अजिह्वा<sup>१</sup>—वि० [सं०] १. जो जिह्वा या टेढ़ा न हो । सीधा । सरल । २. ईमानदार । सच्चा । खरा [को०] ।  
 अजिह्वा<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १. एक मछली । २. मेढक । दादुर [को०] ।  
 अजिह्वा<sup>३</sup>—वि० [सं०] सीधा चलनेवाला । टेढ़े मेढ़े न चलनेवाला [को०] ।  
 अजिह्वा<sup>४</sup>—संज्ञा पुं० वाण । इपु [को०] ।  
 अजिह्वा<sup>५</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] मेढक । दादुर [को०] ।  
 अजिह्वा<sup>६</sup>—वि० जीमरहित । जिह्वाविहीन [को०] ।  
 अजी—अव्य० [सं०] अयि ! ] सवाधन शब्द । जो 'जैसे'—'प्रजी, जाने दो' (शब्द०) ।  
 अजीकव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का धनुष [को०] ।  
 अजीगर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि जो णुन शेष के पिता थे । २. वह जो छिद्र में प्रविष्ट होता हो । सों । सों [को०] ।  
 अजीज<sup>१</sup>—वि० [अ०] अजीज ] प्यारा । प्रिय ।  
 अजीज<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १. सवधी । २. मित्र । सुहृद् ।  
 अजीज<sup>३</sup>—क्रि० प्र०—करना = प्रिय समझना । —जानना या रखना = समान करना । प्रिय समझना । —होना = (१) प्रिय होना (२) कोई वस्तु देने में सकोच होना ।  
 अजीजदार—संज्ञा पुं० [अ०] अजीज + फा० दार ] दे० 'अजीज' [को०] ।  
 अजीजदारी—संज्ञा स्त्री० [अ०] अजीज + फा० दारी ] १. मित्रता । दोस्ती । २. सवध । रिश्तेदारी [को०] ।  
 अजीटन—संज्ञा पुं० [अ०] अजिउटेंट ] सेना का एक सहायक कर्मचारी जो कर्नल या सेनापति का सहायता देता है ।  
 अजीत<sup>१</sup>—वि० [मं०] जो कुम्हलाया हुआ या मद न हो [को०] ।  
 अजीत<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजित' । उ०—जीन उठि जायगी अजीत पाइपूतनि की, भूप दुरजोधन की भीति उठि जायगी । —रत्नाकर, भा० १, पृ० १४२ ।  
 अजीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समृद्धि । अभ्युदय । २. क्षय का अभाव [को०] ।  
 अजीव—वि० [अ०] विनक्षण । विचित्र । अनोखा । अनूठा । आश्चर्यजनक । विस्मयकारक ।  
 अजीव वी गरीव—वि० [अ०] अजीव + फा० ओ + अ० गरीव ] १. अनूठा । आश्चर्यजनक । २. दुष्प्राप्य [को०] ।  
 अजीमुश्शान—वि० [अ०] अमीम + उत् + शान ] बहुत ही शानदार । उ०—'एक बड़ी अजीमुश्शान सुखें पत्थर की मस्जिद थी' । —प्रेमचन्द, भा० २, पृ० १५८ ।  
 अजीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] कष्ट । पीडा । उ०—जो मुझे देवेगा अजीयत गम । —दक्खिनी, पृ० २१८ ।

अजीरन<sup>१</sup>—वि० [ म० अजीर्ण प्रा० अजीरण ] दे० अजीर्ण । उ०—  
होइ न कहूँ अनद अजीरन । तासो धर धीरज चचल मन ।  
—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६०७ ।

अजीरन<sup>२</sup>—सच्चा पुं० दे० 'अजीर्ण' ।

मुहा०—अजीरन होना = दुबंहा होना । कठिन होना ।

अजीर्ण<sup>१</sup>—सच्चा पुं० [ म० ] १ अरिच । अश्वत्थ । वदहजमी ।

विशेष—प्रायः पेट में पित्त के बिगड़ने से यह रोग होता है जिससे भोजन नहीं पचता और वमन, दस्त शूल आदि उपद्रव होते हैं । आयुर्वेद में इसके छह भेद बतलाए हैं — ( १ ) आम-जीर्ण = जिसमें खाया हुआ अन्न कच्चा गिरे । ( २ ) विदग्धा-जीर्ण = जिसमें अन्न जल जाता है । ( ३ ) विष्टब्धाजीर्ण = जिसमें अन्न के गोटे या कड़े बँधकर पेट में पीड़ा उत्पन्न करते हैं । ( ४ ) रसशेषाजीर्ण = जिसमें अन्न पानी की तरह पतला होकर गिरता है । ( ५ ) दिनपाकी अजीर्ण = जिसमें खाया हुआ अन्न दिन भर पेट में बना रहता है और भूख नहीं लगती । ( ६ ) प्रकृत्याजीर्ण या सामान्य अजीर्ण ।

२ अत्यंत अधिकता । घट्टनायत ( व्यग्र ) । जैसे—'उमें बुद्धि का अजीर्ण हो गया है ।'—( शब्द० ) । ३ श्विन । ताकत ( की० ) । ४, जीर्ण न होने का भाव । क्षयाभाव ( की० ) ।

अजीर्ण<sup>२</sup>—वि० जो पुराना न हो । नया ।

अजीर्णि—सच्चा स्त्री० [ सं० ] वदहजमी ( की० ) ।

अजीर्णि—वि० [ सं० ] अपच या अजीर्ण रोगवाला ( की० ) ।

अजीर्ति—सच्चा स्त्री० [ सं० ] दे० 'अजीर्ण' ( की० ) ।

अजीव<sup>१</sup>—सच्चा पुं० [ सं० ] १. अचेतन । जीव तत्त्व से भिन्न जड़ पदार्थ । २ मृत्यु । मौत ( की० ) । ३ जैन मतानुसार जड़ जगत् ( की० ) । ४ अस्तित्वविहीनता ( की० ) ।

अजीव<sup>२</sup>—वि० १ विना प्राण का । मृत । २ जड़ ( की० ) ।

अजीवकल्प—सच्चा पुं० [ म० अजीव + कल्प ] वह युग या काल जिस समय पृथिवी पर जीव नहीं रहते थे । उ०—वहूत समय तक वह इतनी गर्म थी कि उसपर कोई जीव पैदा न हो सकता था, उस काल को अजीव कल्प ( एजोइक एज ) कहते हैं ।—भारत० नि०, पृ० १८ ।

अजीवन<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] जीविकाहीन । योगभ्रम की व्यवस्था से रहित ( की० ) ।

अजीवन<sup>२</sup>—सच्चा पुं० जीवन का अभाव । मृत्यु ( की० ) ।

अजीवनि—सच्चा स्त्री० [ सं० ] अस्तित्व का अभाव । मृत्यु ( की० ) ।

अजीवित<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] मृत । जीवनहीन ( की० ) ।

अजीवित<sup>२</sup>—सच्चा पुं० मृत्यु । अजीवन ( की० ) ।

अजु<sup>१</sup>—अव्य० [ हि० ] दे० 'और' । उ०—अति अब मौर तोरण अजु अबुज । कली सुमगल कलस करि ।—बेलि०, दू० २३३ ।

अजुगत—सच्चा पुं० [ हि० ] दे० 'अजगुत' ।

अजुगति—सच्चा स्त्री० [ हि० ] दे० 'अजगुत' ।

अजुगुत<sup>१</sup>—सच्चा पुं० [ हि० ] दे० 'अजगुत' । उ०—देखि देखि लोग हीय सब कूटा । भा अजुगुत दलगजन छूटा ।—चित्रा०, पृ० १८६ ।

अजुगुत<sup>२</sup>—वि० [ सं० ] अयुक्त । उ०—तोर नयन एं ० यहू न सचर अजुगुत कह न जाइ ।—विद्यापति०, पृ० ३८७ ।  
अजुगुप्सित—वि० [ सं० ] जो निन्दित, घृणित या बुरा न हो । जो नापसंद न हो ( की० ) ।

अजुष्टि—सच्चा स्त्री० [ सं० ] १ आनंद या प्रसन्नता का अभाव । २. अमत्तुष्टि । निराशा ( की० ) ।

अजू<sup>१</sup>—वि० [ हि० ] दे० 'अर्ज', 'अर्जुन' । उ०—नमूने क्यों न अजूं समझाऊँ मूल मतीं द्वि भाया ।—रघु०, पृ० १६ ।

अजू<sup>२</sup>—अव्य० [ म० अयि ] मवोचन शब्द । 'अजी !' का अज रूपान्तर । उ०—जीतो जी चहै अजू तो रीतो घरों लें चलु नहीं तो सही तो मिर अजम वै परे मरे ।—भिवारी० प्र०, भा० १, पृ० ११० ।

अजूजा<sup>१</sup>—सच्चा पुं० [ देश० ] विजू की तरह का एक जानवर जो मुर्दा खाना है । उ०—कहं कवि दूतह समुद्र बढे सोनित के जुगिनि परेन फिरें जवुक अजूवा मे ।—दूतह ( शब्द० ) ।

अजूनी<sup>१</sup>—वि० [ म० अयोनि ] उत्पन्न न होनेवाला । अजन्मा । उ०—अमर अजूनी यिध धनी काल कर्म सिरि नाहि ।—प्राण०, पृ० १०६ ।

अजूव<sup>१</sup>—वि० [ अ० अजूवह् ] दे० 'अजूवा' । उ०—चाकिफ हो सो गमि लहै वाजिव मखुन अजूव ।—रवीर श०, पृ० ३० ।

अजूवा<sup>१</sup>—वि० [ अ० अजूवह् ] अद्भुत । अनोखा । अनूठा ।

अजूवा<sup>२</sup>—सच्चा पुं० अनूठी वस्तु । अद्भुत चीज ( की० ) ।

अजूरा<sup>१</sup>—वि० [ म० अ + जुट = जोड़ना ] १ बिना जुटा हुआ । पृथक् । अलग । जुदा । उ०—रहा जो राजा रतन अजूरा । केह क मिहासन केह क पटूरा ।—जायसी ( शब्द० ) । २ अप्राप्त । अनुपस्थित ।

अजूरा<sup>२</sup>—सच्चा पुं० [ अ० अजूरह् = पारिश्रमिक ] मजदूरी । भाड़ा । उ०—आठ पहर रहें ढाढ मोई है चाकर पूरा । का जानी केहि घरी हरी दे देइ अजूरा ।—पलटू० बानी, भा० १, पृ० ४५ ।  
यी०—अजूरादार = भाड़े या मजदूरी पर काम करनेवाला ।

अजूह<sup>१</sup>—सच्चा पुं० [ सं० युद्ध, प्रा० जुष्क, जूष्क, जूह ] युद्ध । लड़ाई । उ०—ताको जु हिमाज साहि हूऊ । तासो पठान सो भयो अजूह ।—सूदन ( शब्द० ) ।

अजे<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] अद्यापि, प्रा० अज्जवि ] आज भी । अभी भी । उ०—तेणै न राखी सासरइ अजे स मारु बाल ।—ढाला०, दू० ११ ।

अजे<sup>२</sup>—सच्चा पुं० [ हि० ] दे० 'अजय' ।

अजे<sup>३</sup>—वि० [ हि० ] दे० 'अजेय' । उ०—मुनि मानस पकज भूग भजे, रघुवीर महा रन धीर अजे ।—मानस, ७।१४ ।

अजेइ<sup>१</sup>—वि० [ हि० ] दे० 'अजेय' । उ०—कियो सब जगु कामवस जीते जिते अजेइ । कुसुमसरहि सर धनुष कर अगहन गहन न देइ ।—विहारी र०, दो० ४६५ ।

अजेतव्य—वि० [ सं० ] अजेय । जो जीता न जा सके ( की० ) ।

अजेय<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] न जीते जाने योग्य । जिसे कोई जीत न सके । उ०—द्विस्वभाव अश्लेष मे ब्राह्मण जाति अजेय ।—राम च०, पृ० २६० ।



अजय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं सुश्रुत मे कथित एक विषय घृत [को०] ।

अज<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [हिं०] दे० 'अजय' ।

अज<sup>२</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अजेय' । उ०—हैं हार्यो करि जतन विविध विधि अनिस प्रवल अजे ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०४ ।

अजकपाद—सज्ञा पुं [म०] १ एकादश रुद्र मे मे एक । २ उक्त रुद्र द्वारा अधिष्ठित पूर्वाषाढपदा नाम का नक्षत्र । ३ त्रिण [को०] ।

अजव—वि० [म०] जीव से अमश्वित । जो जीव सबधी न हो [को०] ।

अजोख—वि० [म०] अ = नहीं + हि० जोखना ] जो जोखा न जा सके । अभाष । उ०—लीही जिन मोल भाय चोखै । दीन्ही तुमको विषा अजोखे ।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २१५ ।

अजोग—वि० [म०] अयोग्य, प्रा० अजोग ] १ जो योग्य न हो । अनुचित । नामुनासिव । वे ठीक । उ०—सुनि यह बात अजोग जोग की हैं हैं समुद्र नदी वै ।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २१० । २ अयुक्त । बेजोड । बेमेल । उ०—जोगहि जोग मिलाइए हम या जाग अजाग ।—सूर०, १०।३५२२ । ३ नालायक । निकम्मा । उ०—पनी नारी का देवता है, वह कैसा ही क्यों न हो, पर तिरिया उसको अजोग और बुरा नही कह सकती ।—ठठ०, पृ० ४३ ।

अजोगी—वि० [म०] अयोग्य ] जोग को न जाननेवाला । जोग मे रहित । उ०—मूरख कायर और अजोगी सो ये नेक न पावै । चरण० बानी, भा० २, पृ० १२६ ।

अजोड—वि० [म०] अ = नहीं + जोडना ] जिमे जोडा न जा सके उ०—नि मर भरं अजोड को जोडे ।—प्राण०, पृ० ६४ ।

अजोत<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री [म०] अ = नहीं + हि० जोत ] वह भूमि जो जेतने के उपयुक्त न हो । परती भूमि ।

अजोतर—वि० [हिं०] अजोत ] स्वच्छद । निर्गल । उ०—आनंद धन पिय नई घमंड सो देन दरवारयो डालत अजो अजातर ।—घनानंद, पृ० २६० ।

अजोता<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [म०] अयुक्त, प्रा० अजुत ] चैत की पूर्णिमा का दिन । इस दिन वैल नहीं नाधे जाते ।

अजोता<sup>२</sup>—वि० विना जोता या नाधा हुआ ] स्वच्छद ।

अजोनि—वि० [म०] अजोनि ] जो योनि से उत्पन्न न हो । स्वयम् । उ०—जम जस पुष्प प्रगटे अजोनि । कर खग धनुष कटि लसै तोनि ।—हम्मोर रा०, पृ० १११ ।

अजोन्य—वि० [म०] अजोनि ] अजोनिज । स्वतः सभत । उ०—अजोन्य अनायाम पाए अनादू । नमो देव दादू नमो देव दादू ।—मुदर ग्र०, भा० १, पृ० २५६ ।

अजोरना—वि० [म०] [हिं०] अजोर से नाम० ] दे० 'अजोरना' ।

अजोष—वि० [म०] अपरिताप । अतृप्ति [को०] ।

अजौ—वि० [हिं०] अजहुँ ] अज भी । अद्यापि । अज तक । उ०—सघन कुज छाया सुखद, सीतल सुरभि सपीर । मन है जातु अजौ वहे उहि जमुना के तीर ।—विहारी २०, दो० ६०१ ।

अज्ज<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [म०] अज या अज ] ब्रह्म । उ०—हैं वदो जाकू सदा सबकी सुणै पुकार । अज्ज कीट पर्यंत लो भय भजन भरतार ।—राम० धर्म०, पृ० २५६ ।

अज्ज<sup>२</sup>—वि० [म०] अज, प्रा० अज्ज ] अज । उ०—जेहा सज्जण काहू या तेहा नाही अज्ज ।—ढोला०, दू० २१६ ।

अज्ज<sup>३</sup>—सज्ञा पुं [म०] दे० 'अज्जल' [को०] ।

अज्जारा—वि० [म०] अज्ञान ] दे० 'अज्ञान' । उ०—गाफिल समझ रे अज्जारा । मार्य राख पति कूँ जाण ।—राम० धर्म०, पृ० १६६ ।

अज्जान—वि० [म०] अज्ञान ] घुटने तक लया । जानु पर्यंत लया उ०—राजीव नयन विशाल । अज्जानवाहु रसाल ।—प० रा०, पृ० ७६ ।

अज्जुका—सज्ञा स्त्री [म०] 'आयिका' का प्राकृत रूप संस्कृत मे गृहीत ] वेश्या । वारवधू [को०] ।

विशेष—इस अर्थ मे डम शब्द का प्रयोग केवल रूपको मे प्राप्त होता है

अज्जूका—सज्ञा स्त्री [म०] दे० 'अज्जुका' [को०] ।

अज्जटा—सज्ञा स्त्री [म०] भूम्यामल की [को०] ।

अज्जल—सज्ञा पुं [म०] १ जलता हुआ कोयला । अगारा । २ ढाल [को०] ।

अज्ञ<sup>१</sup>—वि० [म०] १ अज्ञानी । ज्ञान रहित । २ जड । अचेतन । मूर्ख । ३ अनजान । नासमझ । नादान । उ०—तैमइ आपु तैसेड लरिका, अज्ञ सवनि मति थोरी ।—सूर०, १।८७१ ।

अज्ञ<sup>२</sup>—सज्ञा पुं मूर्ख मनुष्य । जड व्यक्ति । अनजान मनुष्य । नादान आदमी । उ० अज्ञ जानि रिम उर जनि धरू । जेहि विधि मोह भिटं सोइ करू ।—(शब्द०) ।

अज्ञका—सज्ञा स्त्री [म०] मूर्ख औरत । नादान या अनजान स्त्री [को०] । अज्ञता—सज्ञा स्त्री [म०] १ मूर्खता । नादानी । नासमझी । अज्ञान पन । अनाडीपन । २ जडता । अचेतनता ।

अज्ञताई—वि० [म०] अज्ञता + हि० आई (प्रत्य०) ] दे० 'अज्ञता' । उ०—अज्ञता । अज्ञताई नीति मन में न आइए ।—भक्तमाल (श्री०) पृ० ६६ ।

अज्ञत्व—सज्ञा पुं [म०] दे० 'अज्ञता' [को०] ।

अज्ञा<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'अज्ञा' । उ० (क) होइ अज्ञा वनवाम तो जाऊँ ।—जायसी (शब्द०) । (ख) गुरु को सिर पर राखिए चलिए अज्ञा मांही ।—कवीर सा० स०, भा० १, पृ० २ ।

अज्ञाकारी—वि० [हिं०] दे० 'अज्ञाकारी' । उ०—तेऊ चाहत कृपा तुम्हरी । जिनके वस अनिमित्त अनेक गन अनुचर अज्ञाकारी ।—सूर०, १।१६३ ।

अज्ञात<sup>१</sup>—वि० [म०] १ विना जाना हुआ । अविदित । अप्रकट । नामालूम । अपरिचित । उ०—किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती सी तुम कौन ।—भरना, पृ० २८ । २ जिने ज्ञान न हो । उ०—सो अज्ञात जोवन वर वाला ।—नंद० ग्र०, पृ० १२० । ३ अप्रत्याशित । आकस्मिक (को०) ।

अज्ञात<sup>२</sup>—वि० विना जाने । अनजान मे । उ०—अनुचित बहुत कहेक अज्ञाता । छमहु छमा मंदिर दोउ आना ॥—मानस, १।२८५ ।



अज्ञातक—वि० [स०] अविदिन । अप्रमिद । अज्ञात [को०] ।  
 अज्ञातकुल—वि० [म०] जिसके वंश कुल आदि का पता न हो [को०] ।  
 अज्ञातचर्या—संज्ञा स्त्री० [स०] अज्ञातवास [को०] ।  
 अज्ञातजीवना—संज्ञा स्त्री० [स०] अज्ञातजीवना । दे० 'अज्ञात-  
 जीवना' । उ०—इहि परकार तिया जो लहिए । सो अज्ञात-  
 जीवना कहिए ॥—नद ग्र०, पृ० १४६ ।  
 अज्ञातनामा—वि० [म०] जिसके नाम का पता न हो । जिसका  
 नाम विदित न हो । २. जिसे कोई न जानता हो । अवि-  
 द्यमान । तुच्छ ।  
 अज्ञातपितृक—वि० [स०] जिसके पिता का पता न हो । नामालूम  
 बापवाला [को०] ।  
 अज्ञातपूर्व—वि० [स०] जो पहले ने जानकारी में न हो । जिसका  
 पहले से ज्ञान न हो [को०] ।  
 अज्ञातजीवना—संज्ञा स्त्री० [म०] मुग्धा नायिका के दो भेदों में से एक ।  
 जिसे अपने जीवन के आगमन का ज्ञान न हो ।  
 अज्ञातवास—पञ्च पुं० [स०] छिपकर रहना । ऐसे स्थान का निवास  
 जहाँ कोई पता न पा सके, जैसे—'विराट के यहाँ पांडवों ने  
 एक वर्ष अज्ञानव्रत किया था' (शब्द०) ।  
 अज्ञातस्वामिक (धन)—संज्ञा पुं० [स०] वह धन जिसके मालिक का  
 पता न हो । जैसे, मार्ग में पड़ा हुआ या जमीन में गड़ा धन ।  
 अज्ञाता—वि० स्त्री० [म०] अज्ञात जिसे ज्ञात न हो । मुग्धा । उ०—  
 अज्ञाता—की केशराशि में इन्हे न कस कम वैधवाओं ।  
 वीणा, पृ० १ ।  
 अज्ञाति—संज्ञा पुं० [स०] वह व्यक्ति जो अपनी जाति या सवध का  
 न हो । अन्य जातीय व्यक्ति । परजात [को०] ।  
 अज्ञान<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [म०] १ बोध का अभाव । जड़ता । मूर्खता ।  
 अविद्या । मोह । अज्ञानपन । उ०—अज्ञान भला जिसमें सोह  
 तो क्या, स्वयं अहं भी कब है ।—साकेत, पृ० ३१६ । २.  
 जीवात्मा का गुण और उनके कार्यों से पृथक् न समझने का  
 अविकार । ३. न्याय में एक निग्रहस्थान । यह उस समय होता  
 है जब प्रतिवादी के तीन बार कहने पर भी वादी किसी ऐसे  
 विषय को समझने में असमर्थ हो जिसे सब लोग जानते हो ।  
 अज्ञान<sup>२</sup>—वि० ज्ञानशून्य । मूर्ख । जड़ । नासमझ । अनजान । उ०—  
 मैं अज्ञान कछ नहिं समझ्यो, परि दुख पुज सह्यो ।—  
 सूर० १।६ ।  
 अज्ञानकृत—वि० [म०] १ अज्ञान में किया हुआ । अनजाने में किया  
 हुआ । २. अज्ञान या मूर्खतावश किया हुआ [को०] ।  
 अज्ञानत—क्रि० वि० [स०] अज्ञान या मूर्खता के कारण । मोहवश ।  
 २. अनजान में । नासमझी के कारण [को०] ।  
 अज्ञानता—संज्ञा स्त्री० [म०] निर्वोधता । जड़ता । मूर्खता । अविद्या ।  
 नासमझी । नादानी । उ०—'इन सब बातों में बहुत सी  
 स्वयंपरता और बहुत सी अज्ञानता मिली हुई है' ।—  
 श्रीनिवास० ग्र०, पृ० २०० ।  
 अज्ञानतिमिर—संज्ञा पुं० [स०] अज्ञानरूपी अधकार । मोहरूपी  
 अंधेरा [को०] ।  
 अज्ञानपन—संज्ञा पुं० [स०] अज्ञान + हि० पन (प्रत्य०) । मूर्खता ।  
 जड़ता । नादानी । नासमझी । अज्ञानपन ।

अज्ञानी—वि० [स०] ज्ञानशून्य । मूर्ख । जड़ । अविद्याग्रस्त । अनादी ।  
 नादान । नासमझ । अविद्य ।  
 अज्ञेय—वि० [स०] न जानने योग्य । जो मन में न आ सके । बुद्धि  
 की पहुँच के बाहर का । जानातीत । बोधागम्य ।  
 अज्ञेयवाद—संज्ञा पुं० [स०] परमत्व की ज्ञानातीत स्थिति या अज्ञे-  
 यता का प्रतिपादक मत [को०] ।  
 अज्ञेयवादी—वि० [स०] अज्ञेयवाद का माननेवाला । अज्ञेयवाद का  
 अनुयायी [को०] ।  
 अजम्—संज्ञा पुं० [प्र०] सत्त्व । दृढ़ निश्चय । उ०—यो अजम् किया था  
 वह शैतान ता कर देवे कावा श्रीराम ।—रघुपनी०, पृ० २२० ।  
 अज्यास—संज्ञा पुं० [म०] अज्यास = मिथ्याज्ञान, भ्रांति । अविश्वास ।  
 धूर्तपन । ठगहारी । उ०—जग आनवाम अज्याम दिन विदिन  
 प्राण उदास ।—ग० ८०, पृ० ६८ ।  
 अज्यासुत—संज्ञा पुं० [म०] अज्यासुत दकान । उ०—बड़े ब्रह्म श्री  
 काध जनेऊ अज्यासुत कह मारी ।—स० दरिया पृ० ११६ ।  
 अज्येष्ठ—वि० [स०] १ जा मद्ये जेठा न हो । २. जिसे बड़ा भाई न  
 हो [को०] । ३. जो सवधेष्ठ न हो [को०] ।  
 अज्येष्ठवृत्ति—वि० [म०] १ बड़े भाई का कार्य या व्यवहार न करने-  
 वाला । २. उस व्यक्ति की तरह कार्य या व्यवहार करनेवाला ।  
 जिसे बड़ा भाई न हो [को०] ।  
 अज्यो—क्रि० वि० [हि०] ३० 'अज्यो' ।  
 अज्ज—संज्ञा पुं० [म०] भगवाँ का बदला । प्रत्युपकार [को०] ।  
 अज्जाल—वि० [अ + ज्जाल] ज्जालविहीन । लपटविहीन ।  
 ज्जालरहित । लपटविहीन । उ०—ज्जाल उपजावन अज्जाल  
 दरसावन मुभाल यह पावक न जावक दिहाए हो ।—निबारी०  
 ग्र०, भा० १, पृ० १२८ ।  
 अझर—वि० [स०] अ = नहीं + झरना = गिरना ] जो न झरे ।  
 जो न गिरे । जो न बरसे । उ०—चलि सुकोन घर घन अझर  
 कारी निमी सुखदानि । कामिनि सोभायानि तूँ, कामिनि दीपति  
 वानि ।—स० नरक, पृ० २४३ ।  
 अझरना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'अझरना' । उ०—कामिनि  
 कनक तला लपटाना । अझरत सभरत संन सुजान ।—न०  
 दग्गिया पृ० १२ ।  
 अज्ञना—संज्ञा पुं० [म०] अधम = तलतों हुई अग्नि ] आग ।  
 अग्नि । उ०—बिलखत छाडी छाँस चारिक चिन्हारी करि,  
 बारि दियी हिम में उग्ये को अज्ञना है ।—घनानंद पृ० १३८ ।  
 अझूना—क्रि० प्र० [म०] अजीर्ण, प्रा० अज्जणु = अजुन ] जो  
 जीर्ण न हो । जो सदा एक सा बना रहे । हमेशा एक सा  
 रहनेवाला । उ०—तुम्हें दिन साँवरे ये नैन सूनै, हिये मैं लै  
 दिए विरहा अझूने ।—घनानंद, पृ० १६७ ।  
 अझोरी—संज्ञा स्त्री० [स०] दोल = झूलना ] झोली । कपड़े की लची  
 धोली जो कंधे पर लटकाई जाती है । उ०—झोझरी अझोरी  
 काँधे आतिरह की मेली बाँवे, मूँड के कमल खपर किए कोरि  
 कै ।—तुलसी (शब्द०) ।  
 अटवर—संज्ञा पुं० [म०] अट्ट = अधिन, फा० अटवार = डेर ] अटाला ।  
 डेर । राशि । उ०—लागि गए अवर लौं अखिल शटवर पै, दूषद-  
 सुता की अजो न अखूट्यो हैं ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १११ ।

अट—सच्चा श्री० [ हि० अटक ] शर्त । कैद । प्रतिवध । रुकावट ।  
 उ०—तुम तो हर बात में एक अट लगा देते हो ।—(शब्द०) ।  
 अटक<sup>१</sup>—सच्चा पु० [ सं० अ = नहीं + टिक = चलना अथवा सं० आ + टक = बधन, अथवा सं० हठ + क (प्रत्य०), प्रा० अटक ]  
 [ क्रि० अटकना, वि० अटकाऊ ] १ रोक । रुकावट । अड-  
 चन । विघ्न । बाधा । उलझन । उ०—करि हियाव, यह  
 सौंज लादि कै, हरि कै, पुर लै जाहि । घाट वाट कहूँ  
 अटक होइ नहि सव कोउ देहि निवाहि ।—सूर० (शब्द०) ।  
 २ संकोच । हिचक । उ०—तुमको जो मुझसे कहने में कोई  
 अटक न हो तो मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ ।—उठ०  
 (शब्द०) । ३. सिध नदी । ४ सिध नदी पर एक छोटा नगर  
 जहाँ प्राचीन तक्षशिला का होना अनुमान किया जाता है ।  
 ५ अकाज । हज । बड़ी आवश्यकता ।

क्रि० प्र०—पडना । उ०—ह्याँ ऊधो काहे को आए कौन सी अटक  
 परी ।—सूर (शब्द०) ।

अटक<sup>२</sup>—वि० [ सं० अट ] घूमनेवाला । चक्रमणशील [को०] ।

अटकन (पु०)—सच्चा पु० [ हि० ] दे० 'अटक' ।

अटकन बटकन—सच्चा पु० [ देश० ] छोटे लडकों का एक खेल ।  
 विशेष—इसमें कई लडके अपने दोन हाथों की उँगलियों को जमीन  
 पर टेककर बैठ जाते हैं । एक लडका सबके पजों पर एक एक  
 करके उँगली रखता हुआ यह कहता जाता है—अटकन बटकन  
 दही चटरन, प्रगला भूले वाता भूले, सावन मास तरेला  
 फूले, फल फूल की बगियाँ बाढ़ा गए गगा, लाए सान पिय-  
 लियाँ, एक पियाली फूट गई, नेत्रुले की गंग टूट गई, खडा  
 माले वा छुरी ।' पुराने में इसको इस प्रकार कहते हैं—उष्का  
 बुक्का तीन तलुक्का, लोवा लाठी चदन काठी, चदन लावै दूली  
 दूला, भादो मास करेला फूना, इजडल विजडल पान फूल  
 पञ्चका जा ।' जिस लडके पर अंतिम शब्द पडता है वह छूटना  
 जाता है । जो नवमें पीछे रह जाता है उसे चोर समझकर  
 खेल खेला जाता है ।

अटकना—क्रि० अ० [ म० अ = नहीं + टिक = चलना ] १ रुकना ।  
 ठहरना । अडना । उ०—(क) तुम चलते चलते अटक क्यों  
 जाते हो ?—(शब्द०) । २ फँसना । उलझना लगा  
 रहना । उ०—इही आम अटभयो रहनु अलि गुलाव कै मूल ।—  
 विहारी २०, दो० ४३७ । प्रेम में फँसना । प्रीति करना ।  
 उ०—फिरत जू अटकत बटनि विनु, रसिक सुरस न  
 खियाल । अनत अनत नित नित हितनु, वित सकुचत कत  
 लल ।—विहारी २०, दो० ५२८ । ४ विवाद करना ।  
 झगटना । उलझना । उ०—जब गजराज ग्राह सौ अटवर्षों,  
 बनी बहुत दुख पायो । नाम लेन ताही छिन हरि जू गहडहि  
 छाडि छुडायो ।—सूर०, १।२२ ।

अटकर<sup>१</sup>—सच्चा श्री० [ हि० ] दे० 'अटकल' । उ०—(क) जैसे तैसे अज  
 पहिचानत । अटकरही अटकर करि पानत ।—सूर०, १०५०  
 (राधा०) । (ख) अपनी अपनी सब कहै अटकर परै न कोई ।  
 —मुदर० प्र०, भा० २, पृ० ७६० ।

अटकरना (पु०)—क्रि० सं० [ हि० 'अटकर' से नाम० ] दे० 'अटकलना' ।

उ०—बार बार राधा पछितानी । निकसे श्याम सदन तैं मेरे  
 इनि अटकर पहिचानी ।—सूर (शब्द०) ।

अटकल—सच्चा श्री० [ सं० अट = घूमना + कल् = गिनना ] १. अनुमान ।  
 कल्पना । २ अदाज । तखमीना । कूत । उ०—बह करोड़ों रूपए  
 के अटकल अकेले दान विषय में व्यय करता है ।—प्रेमघन०  
 भा० २, पृ० २२८ ।

क्रि० प्र०—करना ।—बैठना ।—लगाना ।

अटकलना<sup>१</sup>—क्रि० सं० [ हि० 'अटकल' से नाम० ] अटकल लगाना ।  
 अदाज करना । अनुमान करना ।

अटकलपच्चू<sup>१</sup>—सच्चा पु० [ हि० अटकल + देश० पच्चू = पकाना ] मोटा  
 अदाज । कपोल कल्पना । अनुमान । जैसे—इस अटकलपच्चू  
 से काम न चलेगा ।—(शब्द०) ।

अटकलपच्चू<sup>२</sup>—वि० अदाजी । खयाली । उटपटांग, जैसे—ये  
 अटकलपच्चू बातें रहने दीजिए ।—(शब्द०) ।

अटकलपच्चू<sup>३</sup>—क्रि० वि० अदाज से । अनुमान से । जैसे,—रास्ता  
 नहीं देखा है, अटकलपच्चू चल रहे हैं ।—(शब्द०) ।

अटकलवाज—वि० [ हि० अटकल + फा० वाज (प्रत्य०) ] अदाज  
 लगानेवाला । निराधार बात करने में निपुण ।

अटकलवाजी—सच्चा श्री० [ हि० अटकल + वाजी ] अदाज लगाना ।  
 कल्पना करना ।

अटका<sup>१</sup>—सच्चा पु० [ म० अट = खाना, उडि० आटिका ] जगन्नाथ जी  
 को चढाया हुआ भान जो दूर देशों में भी सुखाकर प्रसाद की  
 भाँति भेजा जाता है । जगन्नाथ जी के भोग के निमित्त दिया  
 हुआ घन । उ०—अटका द्विशन रूपैया केरो । तुमहि चढेहों  
 अस प्राण मेरो ।—रामरसिक०, पृ० ८५४ ।

अटका<sup>२</sup>—सच्चा श्री० [ हि० अटक ] दे० 'अटक' ।

अटकाना—क्रि० सं० [ हि० 'अटकना' का प्रे० रूप ] [ सच्चा अटकाव ]  
 १ रोकना । ठहराना । अडाना । लगाना । उ०—गए तबहिं  
 तैं फेरि न आए । सूर स्थाम वै गहि अटकाए ।—सूर०,  
 १०।२२७८ । २ फँसाना । उलझाना । उ०—तबहिं श्याम इक  
 बुद्धि उपाई । जुवती गई घरनि सब अपने गृह कारज जननी  
 अटकाई ।—सूर०, १०।३८३ । ३. डाल रखना । पूरा करने में  
 विनय करना । जैसे,—उस काम को अटका मत रखना ।—  
 (शब्द०) ।

अटक व—सच्चा पु० [ हि० अटक + आव ] (प्रत्य०) ] १ रोक ।  
 रुकावट । प्रतिवध । अडचन । बाधा । विघ्न । उ०—या  
 समर्पण में प्रदण का एक सुनिहित भाव, थी प्रगति, पर अडा  
 रहता था सतत अटकाव ।—कामायनी, प० ८१ । २ मासिक  
 धर्म । उ०—ता पाछे कछूक दिन में सास को अटकाव भयो ।—  
 दो सी वाचन०, पृ० २६८ ।

अटखट (पु०)—वि० [ अनुध्व० ] अट्टसट्ट । अडबड । टूटा फूटा । उ०—  
 बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे ।—  
 तुलसी प्र०, पृ० ५५३ ।

अटखेली—सच्चा श्री० [ हि० ] दे० 'अठखेली' ।

अटट (पु०)—वि० [ हि० अट्ट ] निपट । नितात ।

अटन—सखा पुं० [सं०] घूमना । चरना । फिरना । डोलना । यात्रा ।  
 भ्रमण । उ०—चले राग वन अटन पयादे ।—मानस, २।३१०।  
 अटना<sup>(१)</sup>—क्रि० प्र० [ सं० अट् = चरना अथवा अटन ] १ घूमना ।  
 चलना । फिरना । उ०—जय जलजल जिते वेप धनि धरि  
 तिते अटत दुरगम अचल भारे ।—सूर०, १।१२०। २ यात्रा  
 करना । सफर करना । उ०—नौ जाग जप विगण तप  
 सुतीरथ अटन ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२० । ३ पूरा पटना ।  
 काफी होना । अटना ।

अटना<sup>२</sup>—क्रि० प्र० [ सं० उट = घास फूस अथवा हिं अट ] पटना ।  
 आड करना । ओट करना । छेकना । उ०—(क) फटी जो  
 बूँघट आट अट, सोई दीठि फुरी अथिही जु घेमाई — केशव  
 (शब्द०) । (ख) नेकु अटे पट फूटन आथि गु देखन हैं कदको  
 ब्रज सोनो ।—केशव (शब्द०) ।

अटन—सखा स्त्री० [सं०] १ दे० 'अटनी' । २ दे० 'अटनी' ।  
 अटनी<sup>१</sup>—सखा स्त्री० [सं०] १ धनुष के मिर का वह भाग या खंभा  
 जहाँ प्रत्यवा या डोरी बाँधी जाती है [को०] ।

अटनी<sup>(२)</sup>—सखा स्त्री० [ सं० अटन = घूमना ] अटन की क्रिया ।  
 कलावाजी । उ०—जैसे वस्तु वस्तु चढ़ि नटनी । वारदात कहे  
 तहाँ अटनी ।—सुंदर० प्र०, भा० १ पृ० ६८ ।

अटपट—वि० [ सं० अट = चलना + पट् = निरगम अथवा अनुत्थ ]  
 [ स्त्री० अटपटी । क्रि० अटपटाना ] १ टेडा । विकृत कटि ।  
 मुचिकल । दुस्त । २ गूढ । जटिल । गहरी अज्ञानता । उ०—  
 सुनि केवट के वैन प्रेम लपेटे अटपटे ।— तुलसी (शब्द०) । ३  
 ऊटपटांग । अडबड । उलटा सीधा । वैठिकाने । उ०—अटपट  
 आसन वैठि कै, गोयन कर लोन्ही । धार अत ही के देखि कै  
 ब्रजपति हैंसि दीन्हों ।—सूर० १।४०६ । ४ गिरता पडना ।  
 लडखडाता । उ०—ब्राह्मी की चित्त चटपटी धरन अटपटे  
 पाइ ।—विहारी र०, दो० ३३ ।

अटपटा<sup>१</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अटपट' ।

अटपटाना—क्रि० प्र० [ हिं० अटपट से नाम० ] १ अटकना ।  
 अटवड होना । लडखडाना । घबड़ाना । उ०—आलस है भरे  
 नैन, वैन अटपटात जात, ऐडात जम्हात गात अग मोरि  
 बहियाँ भेलि ।—सूर (शब्द०) । २ हिलना । सकोच  
 करना । आगा पीछा करना । जैसे—आप कहन में अटपटाते  
 क्यों हैं ?—(शब्द०) ।

अटपटी<sup>(१)</sup>—सखा स्त्री० [ हिं० अटपट + ई (प्रत्य०) ] नटपटी ।  
 अनरीति । उ०—सूधै दान न काहे लेत । और अटपटी छाँडि  
 नदसुत रहहु कैपावन वेत ।—सूर०, १।१४६८ ।

अटपटी<sup>२</sup>—वि० [ हिं० अटपट ] वेढगी । उलटी सीधी । उ०—मश्रुकर  
 छाँडि अटपटी वाते ।—सूर०, १।३५४७ ।

अटव्वर<sup>(१)</sup>—सखा पुं० [ सं० आडव्वर ] आडवर । दपे । उ०—गोधत  
 पाग अटव्वर को ।—श्रीपति (शब्द०) ।

अटव्वर<sup>(२)</sup>—सखा पुं० [ पं० टव्वर = परिवार ] खानदान । परिवार ।  
 कुटुंब । उ०—वव्वर के वश के अटव्वर के रच्छक हैं तच्छक  
 अलच्छन सुलच्छन के स्वच्छ घर ।—भूदन (शब्द०) ।

अटम—सखा पुं० [ सं० अट्ट ] ढेर । अवार ।

अटरनी—संज्ञा पुं० [ अ० एटनी ] १ एक प्रकार का मुहाना जो  
 कलकत्ता और बर्मा हाइकोटों में मुअधिकली से मुकदमे लेकर  
 उन्हें ठीक करता है और उनकी पैरवी के लिये वैरिस्टर नियुक्त  
 करना है । २ उच्च न्यायालय में सरकारी मुकदमों की पैरवी  
 करनेवाला वकील ।

अटरिया<sup>(१)</sup>—संज्ञा स्त्री० [ हिं० अटारी + इया (प्रत्य०) ] दे०  
 'अटारी' । उ०—विभा ऊनी रे अटरिया तीरी देखन चली ।  
 —कबीर ग०, पृ० ५५ ।

अटरूप—संज्ञा पुं० [ १० ] अटू माता का क्षप चामक [को०] ।

अटरूप—संज्ञा पुं० [ सं० ] दे० 'अट्टरूप' [को०] ।

अटरूपक—संज्ञा पुं० [ सं० ] दे० 'अट्टरूप' [को०] ।

अटल—वि० [ सं० ] १ जो न टूटे । जो न डिगे । स्थिर । निश्चल ।  
 उ०—तुलसी पवन नदन अटल कुट्ट पुट्ट कोनुक करे —  
 तुलसी (शब्द०) । २ जो न मिटे । जामदा बना रहे ।  
 स्थिर । विरथायी । उ०—करि फिरपा दीन्ह बहनामधि  
 अटल भक्ति, फिर राज ।—सूर (शब्द०) । ३ जो अवश्य  
 है । जिसका होना निश्चित है । अवश्यभाव । जैसे—यह  
 बात अटल है, अशक्य होगी ।—(शब्द०) । ४ धृव । पक्का ।  
 जैसे—उनका इस बात में अटल विश्वास है ।—(शब्द०) ।

अटलस—संज्ञा पुं० [ अ० ऐटलस ] वह पुस्तक जिसमें पृथ्वी के भिन्न  
 भिन्न भागों के मानचित्र हैं ।

अटवाटी खटवाटी—संज्ञा [ अनु० + हिं० खाट + पाटी ] खट  
 खाटोता । परिश्रम बंधन । नाज सामान ।

मुहा०—अटवाटी खटवाटी लेकर पडना या लेना = विघ्न और  
 उदासीन होकर अलग पड रहना । रुठकर अलग बैठना ।

अटवि—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] दे० 'अटवी' [को०] ।

अटविक—संज्ञा पुं० [ सं० ] जगली । आटविक [को०] ।

अटवी—पञ्चा स्त्री० [ सं० ] १ जगल । वन । उ०—अटवी हिनडोने  
 लगी, मरसी गोरम घोलने लगी ।—भाकेन, पृ० ३४८ । २  
 लवा चौडा साफ मैदान ।

अटवीवल—संज्ञा पुं० [ सं० ] वनव सिंघों की सेना ।

अटसट<sup>(१)</sup>—वि० [ अनु० ] दे० 'अट्टसट' ।

अटहर<sup>(१)</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अट्ट = ऊचा ढेर, अटाला ] १ अटाला ।  
 ढेर । २ फेंटा । लपेट । पगड़ी । उ०—आप चढ़ी शीश मोहिं  
 दीन्ही बकसीस श्री हजार शीश वारे की लगाई अटहर है ।—  
 (शब्द०) ।

अटहर<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [ हिं० अटक ] कठिनाई । अडचन अटकाव ।  
 दिक्कत ।

अटा<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० अट्टा ] घर के ऊपर की कोठरी या छत ।  
 अटारी । कोठा । उ०—छिन्कु चलति, ठठुकी छिन्कु, भुज  
 प्रीतम गल डारि । चढ़ी अटा देखति घटा भिज्जु छटा सी  
 नारि ।—विहारी र०, दो० ३८४ ।

अटा<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अट्ट = प्रतिशय ] अटाला । ढेर । राशि ।  
 समूह । उ०—एरी ! वनवीर के अट्टीरन के भीरन में सिमिटि  
 मसीरन अवीर को अटा भयो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

अटा<sup>३</sup>—संज्ञा स्त्री० [ सं० ] भ्रमणशीलता ( सन्वासियों की भाँति ) ।  
 भ्रमण की क्रिया । घूमना [को०] ।

अटाउ पुं—सञ्ज्ञा पुं [म० अट्ट = प्रतिफलण करना + हि० आउ (प्रत्य०)] १ विगाड। बुराई। २ नटखटी। शरारत।  
उ०—आप ही अटाउ के ये लेन नाम मेरो, वे ती वापुरे मिलाप के सँताप कर दोने हैं (शब्द०)।

अटागर—सञ्ज्ञा पुं [म० अट्ट + आगर] समूह। अटाला। डेर। उ०—  
हुआँ सँभेनी जहार जुहार। पान अटागर काय श्री कार।  
—वीसन०, पृ० १८।

अटाटूट—वि० [म० अट्ट = डेर + हि० अट्ट अथवा स० अट्ट + हि० अट्ट] नितात। बिल्कुल।

अटाना<sup>१</sup>—क्रि० स० [हि० अटक = रोक, बाधा] रोक या बाधा आ पडना। उ०—आगे आई सिधु नियराना। पार जाई कह गाड अटाना।—इन्द्रा०, २६।

अटाना<sup>२</sup>—क्रि० स० [हि० अटना का प्र० रूप] किसी वस्तु को किसी वस्तु में समा देना। रखना अट्टा देना।

अटारी—सञ्ज्ञा स्त्री [स० अट्टालिका] कोठा। दीवारों पर छत पाटकर बनाई हुई कोठरी। सबके ऊपर की कोठरी या छत। चीबारा। उ०—निमुकि चढेउ कपि कनक अटारी। भई समी निसाचर नारी।—मानस ५।२५।

अटाल—सञ्ज्ञा पुं [स० अट्टाल] बुर्ज, घरहरा (डि०)।

अटाला—सञ्ज्ञा पुं [स० अट्टाल] १. डेर। कूरा। राशि। अवार। २. समान। असबाब। सामग्री। ३. कस इयो की दस्ती या मुहल्ला।

अटाव—सञ्ज्ञा पुं [म० अट्ट + हि० आव (प्रत्य०)] १. बैर। वैम-  
नस्य। द्वेष। २. शरारत। पाजीवन। दुष्टता। ३. अट्टना।  
समान। पूरा पडने का भाव।

अटित<sup>१</sup>—वि० [सं० अट्टा] जिसमें अट्टा या अटारी हो। अटारीवाला।  
अटित<sup>२</sup>—वि० [सं० अट्टन] घुमावदार। घूमा हुआ।

अटिहार(उ)—वि० [हि० अट्टना + हार (प्रत्य०)] अट्टनेवाला। पूरा पडनेवाला। उ०—अटिहार कोई पूजै नहीं बल अमृत आतम करयो।—पृ० रा०, २४।१६७।

अट्टी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अट्टी] एक चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है। चहा।

अटूट—वि० [सं० अ = नहीं + टूट = टूटना] १. न टूटने योग्य। अखंडनीय। अछेद्य। दृढ़। पुष्ट। मजबूत। २. जिसका पतन न हो। अजेय। ३. अखंड। लगानार। उ०—छटै जटाटूट सँ अटूट गगधार धोल मील सुधाभार कौ अधार दरसत है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० २१०।

अट्टेरन—सञ्ज्ञा पुं [सं० अट्टिण्डन, प्रा० अट्टिण्डन अ अट्टेरन \* अट्टेरन अट्टेरन, अथवा स० अट्ट = घूमना एकत्र करना] [क्रि० अट्टेरना] १. सूत की आँटी बनाने का लकड़ी का यन्त्र। ओयना।

विशेष—६ इंच की एक लकड़ी के दोनों सिरी पर सूत लपेटने के लिये दो आड़ी लकड़ियाँ लगाई जाती हैं जो दोनों ओर प्रायः तीन तीन इंच बढ़ी रहती हैं। इन लकड़ियों में से नीचे की लकड़ी कुछ घड़ी ओर ऊपर की लकड़ी पृष्ठ के बल रखे हुए धनुष के आकार की होती है।

मुहा०—अट्टेरन होना = हड्डी हड्डी निकलना। अत्यंत दुर्बल होना।

२. चौड़े को काया या चक्कर देने का एक ढंग या तरीका।  
क्रि० प्र०—फेरना।

३. कुश्ती का एक पेंच।

मुहा०—अट्टेरन फेर देना = दौंव में डालकर चकरा देना। दम न लेने देना।

अट्टेरना—क्रि० स० [हि० अट्टेरन से नाम०] १. अट्टेरन से सूत की आँटी बनाना। २. मात्रा से अधिक मद्य या नशा पीना। जैसे,—वया कहना है लाला जी खूब अट्टेरे हैं।—(शब्द०)।

अट्टोक(उ)—वि० [सं० अ + तर्क, पा० तक्क = टोकना] बिना रोक टोक का। उ०—(क) अट्टोक डबाड़ी करी, पैठत बखत तमाम।—मतिराम (शब्द०)। (ख) मोद भरी ननदी अट्टोक टोना टार लगी।—कविता को०, २।१०२।

अट्टोट(उ)—वि० [हि०] दे० 'अटूट'। उ०—चोली चार छीट की छाजति उपमा देत अटूट।—सूर०, परि० १, पृ० ८५।

अट्टोप(उ)—सञ्ज्ञा पुं [सं० अट्टोप] दे० 'अट्टोप'। उ०—अलोप टोप के अट्टोप चाई चाप सो धरें—पद्माकर प्र०, पृ० २८४।

अट्ट(उ)—सञ्ज्ञा पुं [सं० अट्ट = बाजार] १. हाट। बाजार। उ०—देव दपति अट्ट देख सराहते।—साकेत, पृ० ३।

अट्ट<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १. बुर्ज। उ०—अट्टो पर चढ चढकर सब ओर पथो में बढकर बढकर—सावेत, पृ० १५२। अटारी। कोठा। ३. एक यक्ष का नाम। ४. प्राधान्य। अधिकता। अतिशयता। ५. पका हुआ चावल। भात। ६. भोज्य पदार्थ। ७. पहरा देने का उँचा स्थान या मीनार। ८. महल। प्रासाद। ९. रेशमी वस्त्र। १०. दुर्ग में सेना के रहने का स्थान या भाग (को०)।  
अट्ट<sup>२</sup>—वि० १. ऊँचा। २. शुष्क। सूखा। सुखाया हुआ। ३. उच्च स्वर से युक्त [को०]।

अट्टक—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १. छत के ऊपरवाला कमरा। बंगला। २. प्रासाद। महल [को०]।

अट्टट्ट—वि० [सं०] १. बहुत ऊँचा। २. बहुत जोर का [को०]।

अट्टट्ट हास—सञ्ज्ञा पुं [सं०] बड़े जोर की हँसी। ठठाकर हँसना।  
क्रि० प्र०—करना।—होना।

अट्टन—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १. एक प्रकार का चक्र की आकृति का अस्त्र। २. अपमान। अवमानना। उपेक्षा। तिरस्कार [को०]।

अट्टसट्ट—वि० [अनुध्व०] १. ऊटपटांग। अडबड। जैसे—तुम तो सदा यो ही अट्टसट्ट वका करते हो।—(शब्द०)। २. बहुत ही साधारण या निम्न कोटि का। इधर उधर का। जैसे,—उस कठरी में बहुत सा अट्टसट्ट सामान पडा है।—(शब्द०)।

अट्टहासित—सञ्ज्ञा पुं [सं०] 'अट्टहास' [को०]।

अट्टहास—सञ्ज्ञा पुं [सं०] ठहाका। जोर की हँसी। खिलखिलाना उ०—अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा।—मानस, ६। ३६।  
क्रि० प्र०—करना—होना।

अट्टहासक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १. खिलखिलाकर हँसना। ठहाका। २. कुद का फूल और पेड़।

अट्टहासक<sup>२</sup>—वि० जोर से हँसनेवाला। ठहाका मारकर हँसनेवाला।

अट्टहासी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं [सं० अट्टहासिन्] शिव [को०]।

अट्टहासी—वि० अट्टहास करनेवाला [को०] ।  
 अट्टहास्य—सङ्घा पु० [सं०] दे० 'अट्टहास' [को०] ।  
 अट्टा—सङ्घा पु० [सं० अट्ट = वुर्ज] मवान ।  
 अट्टाट्ट हास—सङ्घा पु० [सं०] दे० 'अट्टहास'  
 अट्टाल—सङ्घा पु० [सं०] १ ऊपरी मजिल का कोठा । २ वुर्ज ।  
 उच्च स्थान । ३ प्रासाद । महल [को०] ।  
 अट्टालक—सङ्घा पु० [सं०] किले का वुर्ज ।  
 अट्टालिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] अटारी । कोठा ।  
 अट्टी—सङ्घा स्त्री० [सं० अट्ट = घूमना, बढाना] १ अट्टेन पर लपेटा  
 हुषा सूत या ऊन । लच्छा । पोला । किरची । २ आटा ।  
 उ०—जमददढ दट्टी । मनी नोन अट्टी ।—पृ० २०, १०१२१ ।  
 अट्ठ—वि० [सं० अट्ट] आठ की सख्या । ८ । उ०—घन मिकार  
 राजन करिय हनि वराहु अनि अट्ठ ।—पृ० २०, २४१३५१ ।  
 अट्ठा—सङ्घा पु० [सं० अट्टक, प्रा० अट्ठक] तास का एक पत्ता जिसपर  
 किसी भी रंग की आठ वृत्तियाँ होती हैं ।  
 अट्ठाइस—वि० [अप०] दे० 'अट्ठाईस' ।  
 अट्ठाइसवाँ—वि० [सं० अष्टाविंशतिम्, हि० अट्ठाइस] जिसका स्थान  
 सत्ताइसवें के उपरांत हो । क्रम या गिनती में जिसका स्थान  
 अट्ठाइसवाँ हो ।  
 अट्ठाईस—वि० [सं० अष्टाविंशति, पा० अट्ठावीस; प्रा० अट्ठाईस,  
 अप० अट्ठाइस] एक सख्या । बीस और आठ । २८ ।  
 अट्ठानवे—वि० [सं० अष्टानवति, पा० अट्ठानवति, प्रा० अट्ठाणवड]  
 एक सख्या । नव्वे और आठ । ६८ ।  
 अट्ठानवेवाँ—वि० [सं० अष्टानवतितम; देश० अट्ठानवे] जिसका स्थान  
 सत्तानवे के उपरांत हो । क्रम या सख्या में जिसका स्थान  
 अट्ठानवेवाँ हो ।  
 अट्ठारह—वि० [सं० अष्टादश, प्रा० अट्ठारस, अट्ठारह] दे० 'अठारह' ।  
 अट्ठावन—वि० [सं० अष्टपञ्चाशत्, प्रा० अट्ठावण, अट्ठावन्न] एक  
 सख्या । पचास और आठ । ५८ ।  
 अट्ठावनवाँ—वि० [सं० अष्टपञ्चाशतम्, देश० अट्ठावन] जिसका स्थान  
 सत्तावन के उपरांत हो । क्रम या सख्या में जिसका स्थान  
 अट्ठावनवाँ हो ।  
 अट्ठासिवाँ—वि० [सं० अष्टाशीति, अप० अट्ठासि > हि० अट्ठासी +  
 वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सत्तासिवें के उपरांत हो । क्रम या  
 सख्या में जिसका स्थान अट्ठासिवाँ हो ।  
 अट्ठासी—वि० [सं० अष्टाशीति, अप० अट्ठासि, अट्ठासीइ] दे० 'अठासी' ।  
 अट्ठे—वि० [हि० आठसे] आठगुना । जैसे, पाँच अट्ठे चालीस, सात  
 अट्ठे छप्पन ।  
 अठग—सङ्घा पु० [सं० अष्टांग] अष्टांग योगी । उ०—उठत उरोजन  
 उठाए उर ऐँठ भुज ओठन अमेठे अग आठ हू अठग सी ।—  
 देव (शब्द०) ।  
 अठ—वि० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ] आठ । (हिंदी समास ये प्रयुक्त)  
 जैसे—अठपत्तियाँ, अठपहला, अठकोना आदि ।  
 अठएँ—वि० [हि०] दे० 'आठवाँ' । उ०—अठएँ आठ अष्ट कँवल मे,  
 उरध निरखे सोई ।—घरम०, पृ० ७७ ।  
 अठइसी—सङ्घा स्त्री० [हि० अट्ठाइस] २८ गाहियो अर्थात् १४० फलो  
 की सख्या जिसे फलों के लेनदेन में सैकड़ा मानते हैं ।

अठई—सङ्घा स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी तिथि । उ०—सतमी  
 पूनिउँ वा सब आछी । अठई अमावस ईनन लाछी ।—  
 जायसी (शब्द०) ।  
 अठकठ—वि० [हि०] दे० 'अट्टकट' । उ०—अठकठ नाज वरनि  
 नहि जाई । सर्गि मो डक एक मोहाटी ।—भीखा श०,  
 पृ० ७४ ।  
 अठकपाली—वि० [सं० अष्ट + कपाल] अठगुनी वृद्धिवाता । चतुर,  
 धूर्त । चालाक । उ०—बड़े बड़े अठापाली हमारे सामने अपना  
 अठकपालीपन मून गए ।—चुनते चौ० (भृ०), पृ० २ ।  
 अठकरी—सङ्घा स्त्री० [हि०] दे० 'अठकाली' ।  
 अठकोन—वि० [हि०] दे० 'अष्टकोण' । उ०—अबुम अरघ रघ प्रज  
 अठकोन अमलतर ।—नारदेदु श०, भा० ३, पृ० ६६० ।  
 अठकौशल—सङ्घा पु० [हि०] दे० 'अठकौशल' ।  
 अठकौशल—सङ्घा पु० । हि० आठ + अ० कौशल । १ गाँठी ।  
 पचायत । २ सलाह । मन्त्रणा । उ०—हेरत फिरत बारि वृच्छ  
 कहलाने सबे होनि अठकौशल बुगगी श्री अनाका मै ।—रत्ना-  
 कर, भा० २ पृ० ११८ ।  
 कि० प्र०—करना ।—होना ।  
 अठखेलपन—सङ्घा पु० [सं० अष्टक्रीडा, या अष्टखेल, प्रा० अठखेल,  
 अठखेल्ल] चंचलता । चपलता । चुलदुलापन ।  
 अठखेली—सङ्घा स्त्री० [सं० अष्टक्रीडा या अष्टखेल, प्रा० अठखेल,  
 अठखेल्ल] १ विनोद । क्रीडा । चपलता । कल्लोल । चंचलता ।  
 चुलदुलापन । २ मनवाली चाल । मस्तानी चाल ।  
 कि० प्र०—करना ।  
 मुहा०—अठखेलियाँ सूझना = चुलदुलापन करना । उ०—बुके  
 अठखेलियाँ सूझी हैं हम वेजार वेंते हैं ।—कविता को०, भा० ४,  
 पृ० २६३ ।  
 अठताल—सङ्घा पु० [सं० अष्टताल] १ एक प्रकार का गीत ।  
 उ०—यो अठतालो गीत उचारै, कहं मछ प्रभु गुण इक धारै ।  
 —रघु० स्त०, पृ० २०६ ।  
 विशेष—इसमें आठ चरण होते हैं । प्रथम तीन चरण चौदह  
 चौदह मात्राओं के होते हैं और चौथा चरण दस मात्राओं का  
 रहता है जिसके तुल्य में लघु गुरु रहता है । इसी प्रकार चार  
 चरणों का दूसरा द्वाला बनाया जाता है । इसमें चौथे और  
 आठवें चरण का तुल्य प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पंचम और सप्तम  
 के साथ मिलता है । प्रथम द्वाले के प्रथम पद में अठारह  
 मात्राएँ होती हैं ।  
 २ दे० 'अष्टताल' । वाद्य । उ०—ब्राजत वेंनु विषान बाँसुरी  
 डफ मृदग अठताल ।—नंद० श०, पृ० २६६ ।  
 अठत्तर—वि० [हि०] दे० 'अठहत्तर' ।  
 अठन्नी—सङ्घा स्त्री० [हि० अठ + अन्नी = आनावाली] १ सन् १९५६  
 तक भारत में प्रचलित आठ आने के मूल्य का सिक्का । २.  
 पचास पैसे का सिक्का ।  
 अठपत्तिया—सङ्घा स्त्री० [सं० अष्टपत्तिका, पा० अट्ठपत्तिका, प्रा०  
 अट्ठपत्तिया, अठपत्तिया] एक प्रकार की पत्थर की नक्काशी  
 जिसमें आठ दलों के फूल बनाए जाते हैं ।



अठपहरा<sup>७</sup>—वि० [ सं० अष्टप्रहर ] रात दिन का । आठो पहर का । लगातार । उ०—सवर तखत पर बैठ तूर अठपहरा वाज पलटू, पृ० ७५ ।

अठपहला—वि० [ सं० अष्टपटल, पा० अष्टपहल अथवा सं० अष्ट + फा० पहल ] आठ कोनेवाला । जिसमें आठ पाश्वर्ग हो

अठपाव<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अष्टपाद, पा० अष्टपाद; प्रा० अष्टपाव ] उपद्रव । ऊधम । शरारत । उ०—भूपन कयो अफजल्ल वचै अठपाव कै सिंह को पाव उमैठो ।—भूपण ग्र०, पृ० २५३ ।

अठवन्ना—संज्ञा पुं० [ सं० अठ = घूमना + वन्धन ] वह वांस जिसपर जुलाहे करघे की लवाई से बड़ा हुआ ताने का सूत लपेट रखते हैं और ज्यो ज्यो बुनते जाते हैं उसपर से सूत खींचते जाते हैं ।

अठमासा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अष्टमासिक, पा० अष्ट + मासअ ] १ वह खेत जो आपाठ से माघ तक समय समय पर जोता जाता रहे और जिसमें ईख बोई जाय । अठवांसा । २ गर्भ के आठवें मास में होनेवाला सीमत संस्कार । ३ आठ मास पर होनेवाला प्रसव ।

अठमासा<sup>२</sup>—वि० दे० 'अठवांसा' ।

अठमासी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अष्टमास ] आठ मासों का सोने का सिक्का । सावरेन । गिनी ।

अठयी<sup>७</sup>—वि० [ हि० ] ३० 'आठवां' । उ०—अठयी गर्भ सु तेरो हता । --नन्द० ग्र०, पृ० २२१ ।

अठलाना<sup>७</sup>—क्रि० प्र० [ हि० ऐठ + लाना ] १. ऐठ दिखाना । इतराना । गर्व जताना । ठसक दिखाना । उ०—काहे को अठि-लात कान्हू, छाँडी लरिकई ।—सूर (शब्द०) । २. चोचला करना । नखरा करना । उ०—जैसे चले अठिलैये उतै इत कान्हू । खरी वृषभानुकुमारि है ।—सम्भू (शब्द०) । ३. मदे-न्मत्त होना । मस्ती दिखाना । उ०—देखौ जाय और काहू को हरि पै सब हरित मंडरानी । सूरदास प्रभु मेरो नान्हो तुम तरणी डोलत अठिलानी ।—सूर (शब्द०) । ४. छेड़ने के लिये जान बूझकर अनजान बनना ।

अठवना<sup>७</sup>—क्रि० प्र० [ सं० आस्थापन, पा० ठान = ठहराव अथवा सं० आस्थान ] जमाना । ठानना । उ०—मैं आवत या थान दुग को होय तयारी । करो मोरचाँ सबै तोखानो सब जारी । सब जारी करि देहु सत्तु आवत है अठयो । सिंह वशदुर पास साँढिया को लिख पठयो ।—सूदन (शब्द०) ।

अठवाँस<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अष्टपाश्वर्ग ] अठपहली वस्तु । अठपहले पत्थर का टुकड़ा ।

अठवाँस<sup>२</sup>—वि० अठपहला । अठकोना ।

अठवाँसा<sup>१</sup>—वि० [ सं० अष्टमास, पा० अष्टमास ] वह गर्भ जो आठ ही महीने में उत्पन्न हो जाय ।

अठवाँसा<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १. सीमत संस्कार । २. वह खेत जो आपाठ से माघ तक समय समय पर जोता जाता रहे और जिसमें ईख बोई जाय । अठमासा ।

अठवारा—संज्ञा पुं० [ सं० अष्ट, प्रा० अष्ट > अठ + सं० वार ] १. आठ दिन का समय । पक्ष का आधा भाग । सप्ताह । हफ्ता । २. अनिश्चित दिनो तक । उ०—नहिं घन अठवारन ली वैसी भरी लगावै ।—प्रेमघन०, पृ० ५५१ ।

अठवारी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अष्ट, प्रा० अष्ट अठ + सं० वार + हि० ई (प्रत्य०) ] वह रीति जिसके अनुसार असामी जोताई के समय प्रति आठव दिन अपना हल बेल जमींदार का खेत जोतने के लिये देता है ।

अठवाली—संज्ञा स्त्री० [ हि० अठ + वाली ] १ वह लकड़ी का टुकड़ा जो किसी भारी चाज में बाँधा जाता है और जिसमें सेंगरे लगाकर पेशराज लोग उस भारी चीज को उठाते हैं । २ वह पालकी जिसे आठ कहाँ उठाते हैं । अठकरी ।

अठसठ—वि० [ हि० ] ३० 'अठसठ' । उ०—अठसठ तीर्थ मध के वरनन कोट गया और कासी ।—कवीर श०, पृ० ७८ ।

अठसिल्या<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अष्टशिला, पा० अष्टसिला ] सिंहासन । उ०—देखि सखिन हंसि पाँव पखारे । मणिमय अठसिल्या बंदारे ।—विश्राम (शब्द०) ।

अठहत्तर—वि० [ सं० अष्टसप्तति, प्रा० अठहत्तरि ] एक सख्या । सत्तर और आठ । ७८ ।

अठहत्तरवाँ—वि० [ हि० अठहत्तर + वाँ (प्रत्य०) ] जिसका स्थान सठहत्तरवें के उपरांत हो । क्रम या सख्या में जिसका स्थान अठहत्तरवाँ हो ।

अठाई<sup>७</sup>—वि० [ सं० अस्थायी अथवा सं० अ + स्थानिक ] उपद्रवी । उत्पाती । शरीर । उ०—है हरि आठहु गाँठ अठाई ।—केशव (शब्द०) ।

अठान<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० अ = नहीं + हि० ठानना ] १ न ठानने योग्य कार्य । अकरणीय कर्म । अयोग्य या अनुचित कर्म । उ०—(क) तजतु अठान न, हठ परघो सठमति, आठौ जाम ।—विहारी २०, पृ० १७० । (ख) हनुमान परीसिन हू हित की कहूँ तो अठान न ठानतों मैं ।—हनुमान (शब्द०) । २ बैर । शत्रुता । विरोध । झगडा । उ०—खाँ सगै करत उमगै ठानि अठान पठान चहै ।—सूदन (शब्द०) ।

अठाना<sup>७</sup>—क्रि० प्र० [ सं० अति = पीडा, प्रा० अट्टि + अट्ट से नाम० ] १ सताना । पीडित करना । उ०—प्राजु सुन्यो अपने पिय प्यारे को काम महा रघुनाथ अठार ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

अठाना<sup>७</sup>—क्रि० प्र० [ सं० स्थान = स्थिति, ठहराव, ठानना, प्रा० ठान ] मचाना । ठानना । जमाना । छेड़ना । उ०—(क) जानि जुद्ध अमनैक अठायो । तहवर खाँ इहि देस पठायो ।—लाल (शब्द०) । (ख) घासहरै या कुँवर जी रन रग अठायो । तिस कागज के बाँचते मूरज मुसकायो ।—सूदन (शब्द०) ।

अठानी<sup>७</sup>—वि० [ हि० अठान + ई (प्रत्य०) ] अयोग्य या अनुचित कार्य करनेवाला । उ०—द्रोन के प्रबोध दुरवोध दुरजोधन के आयु मोघि दिवस जयद्रथ अठानी के ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १४५ ।

अठार<sup>७</sup>—वि० [ सं० अष्टादश, हि० अठारह, अट्टार ] अठारह की सख्या । दस और आठ । १८ । उ०—प्रव्व अठार मवालय लप्ये, तो भारथ गुर तत्त विसप्ये ।—पृ० रा०, १८७ ।

अठारह<sup>१</sup>—वि० [ सं० अष्टादश, पा० अष्टादस, प्रा० अट्टारन, अट्टारह ] एक सख्या । दस और आठ । १८ । उ०—पदुम अठारह जूयप वदर ।—मानस, ५१५५ ।

अठारह<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ काव्य में पुराणनूतक संकेत या शब्द । २. चौसर का एक दौड़ । पासे की एक सख्या । उ०—बारि



पासा माधु मगति केरि रसना सारि । दीव भवके पररचो पूरो  
कुमति पिछली हारि । राखि सवह सुनि अठारह चोर पाँचों  
मान ।—सूर० (शब्द०) ।

अठारहवाँ—वि० [ सं० अष्टादशम, प्रा० अष्टारसर्वे, अप० अष्टारहवे,  
अष्टारहवाँ ] जिसका स्थान सत्रहवें के उपरांत हो । अथवा  
गिनती में जिसका स्थान अठारह पर हो ।

अठासिवाँ—वि० [ सं० अष्टाशीति + हि० वाँ (प्रत्य०) ] जिसका स्थान  
मत्तसिखे के उपरांत हो । क्रम या संख्या में जिसका स्थान  
अठासिवाँ हो ।

अठासी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अष्टाशीति, प्रा० अष्टासीह, अप० अष्टासि ]  
एक संख्या । अस्सी और आठ । ८८ ।

अठिलाना—क्रि० प्र० [ हि० ] दे० अठलाना । उ०—रहिमन निज  
मन की व्यथा मनहीं राखी गोद । सुनि अठिनैहै लोग सब बाँटि  
न लैहैं कोय ।—कविता को०, भा० १, पृ० १६५ ।

अठिल्ला—संज्ञा पुं० [ सं० ] प्राकृत का एक छंद । दे० 'अरिल्ल' [ गी० ] ।

अठेल—वि० [ सं० अ = नहीं + हि० ठेलना ] बलवान् । मजबूत ।  
जोरावर (हि०) ।

अठेसा—वि० [ हि० ] दे० 'अठ्ठाइस' । उ०—विनसत सबे मया विस  
चारि अठसा । सो सब पलट देखिया हम जैसे कसैमा ।—पलटू०,  
भा० ३, पृ० ६६ ।

अठोठ—संज्ञा पुं० [ देश० ] ठाट । आटवर । पाखंड । उ०—  
लाज के अठोठ के कं, बैठती न ओट दै दै, घूँघट के काहे को  
कपट पट तानती । डारि देती डरकर ऐँचनी न कोय करि  
डीठे चोरि पीठि मोरि ही न हठ ठानती ।—देव (शब्द०) ।

अठोतरसी—वि० [ सं० अष्टोत्तरशत प्रा० अष्टुत्तरसत ] आठ के ऊपर  
सी । एक सौ आठ ।

अठोतरी—संज्ञा स्त्री० [ सं० अष्टोत्तरी ] एक सौ आठ दानों की जपमाला ।

अठोर—वि० [ सं० अ = नहीं + हि० ठोर ] जिसमें धार न हो । कुद ।  
भीतर । उ०—अठोर धार बनसाति । मालनी छिन में बरोडा  
भेषमाला पानी हरिया ।—दक्षिणी०, पृ० ३० ।

अठौडी—संज्ञा पुं० [ सं० अष्टपदी ] एक प्रकारका आठ पैरोवाला  
काँडा जो पशुओं के शरीर में लगता है ।

अठौरा—संज्ञा पुं० [ सं० अष्ट, प्रा० अष्ट, अठ + हि० औरा (प्रत्य०) ]  
लगे हुए पाँच के आठ बीड़ों की खोली ।

अडग—वि० [ हि० ] दे० 'अडिग' । उ०—तपसीरो रूप धरो अतताई  
अडग कुटी गई सीत उठाई ।—रघु०, पृ० १३५ ।

अडग—संज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'अडगा' । उ०—धक्को की घडाघड  
अडग की अडाअड में हूँ रहै कडाकड सुदतो की कडाकडी ।—  
पद्माकर प्र०, पृ० ३०७ ।

अडगवडग—वि० [ हि० अडग + वेडग ] टेढ़ा मेढ़ा । अडबड ।  
अव्यवस्थित । उ०—अडग वडग कर आत्मा मेटे माँची सूध ।  
—दरिया० बानी, पृ० ३४ ।

अडगा—संज्ञा पुं० [ हि० अड + अग = ( अगवाला ) रुकावट डालने  
वाला ] टाँग अडाना । अटकाव । रुकावट । अडचन ।  
हस्तक्षेप । उ०—कुद हूँ मलेच्छनि की सुद्धि के विरुद्ध बने  
जाल जे कुबुद्धि तन उद्धत अडगा की ।—रत्नाकर, भा० २,  
पृ० १६५ ।

अडड—वि० [ सं० अड्य + ड न बढ बेने योग्य ] १. अडर्भाया ।  
जिसका दण्ड न द गये । २. निर्भय । निर्दोष ।

अडवर—संज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'आवर' । उ०—(५) मुठन की  
माल दीया गाल पर ज्वाल तीवा छीन लीया अरर अवर  
जहाँ जंगो ।—पद्माकर प्र०, पृ० २०१ । (४) धारि कै हिमन  
कै सजीने रखल अवरकी, स्वप्न प्रभाव को अवर बड़ाए  
लेति ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १८८ ।

अटमर—संज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'आटमर' । उ०—धृष्ट अटमर  
धुधरि भानमल जल रुनटार ।—पृ० १०, पृ० १४५ ।

अड—संज्ञा पुं० स्त्री० [ सं० अड = जिद अथवा अडट = ममाधान = अग्नि-  
योग ] [ हि० अडना, अडाना, हि० अडदार, अडियन ] दृढ़ ।  
टंक । जिद । अडन । अडन की शक्ति ।

अडकाना—क्रि० प्र० [ हि० ] दे० 'अडाना' ।

अडग—वि० [ हि० अडिग + अग ] अडिग । न टिगनावाला ।  
अटल । अचल ।—( हि० ) । उ०—अडगठानाथ दगमाथ  
रावण अडग मड़ावे अर भाग्य मानो ।—रघु०, पृ० २० ।

अडगडा—संज्ञा पुं० [ अनु० ] १. बँ-गाड़ियों और मगनों आदि के  
ठहरनेवाला स्थान । २. वह जहाँ बिनी के चिये घाटे, बेल  
आदि रूते हैं ।

अडगरिध—वि० [ हि० ] दे० 'अडगरिध' ।

अडगरिधू—वि० [ हि० अडिग + पु० रिधू ] मित्र (हि०) ।

अडगोटा—संज्ञा पुं० [ हि० अड = रोक + हि० गोटा = पाव ] एक  
लकड़ी का टुकड़ा जिसे एक निरे पर छेदार नटवट चीकाओं  
के गले में बांधने हैं जो दोहते समय उनके अगले पैरो में लगता  
है जिससे वे बहुत तेज भाग नहीं सकते । ठगुर । ठेगुर ।  
हेगना ।

अडचन—संज्ञा पुं० [ देश० ] १. रुकावट । अडट । बाधा । अपत्ति ।  
बठिनाई । दिक्कत । उ०—प्रागे चनकर इनकाम में बड़ी  
बड़ी अडचने पड़ेगी ।—(शब्द०) ।

अडचन—संज्ञा स्त्री० [ हि० ] दे० 'अडचन' । उ०—प्रोध, भय,  
जुगुप्सा और कम्पना के सवध में नाहि-क्रेमियों को शायद  
कुछ अडचन दियाई पड ।—रघु०, पृ० २०३ ।

अडट—वि० [ हि० अ = नहीं + टाट ] टाट में न रून्वाला । न  
दबनेवाला । उ०—अडटनि टटन सुदड बधि बिर बरत  
अपवर ।—पृ० १०, पृ० ३१५ ।

अडडडा—संज्ञा पुं० [ हि० अड = टिकाव + डडा ] वह लकड़ी या  
बाँस का डडा जिसके दोनों छारों पर लट्ट बंध रहे हैं । यह  
डडा मन्तूल पर चिड़ियों के घड़टे की तरह बँधा रहता है और  
इसी पर पाल चढ़ाई जाती है ।

अडडपोपो—संज्ञा पुं० [ देश० ] १. सामुद्रिक विद्या जाननेवाला । हाथ  
देखकर जीवन की घटनाओं का बतलानेवाला । २. पाण्डो ।  
धर्मध्वजी । झूठमूठ अडवर करनेवाला । ३. बूयालापी ।  
बाबादी । गप्पी ।

अडतल—संज्ञा पुं० [ हि० अड + सं० तल ] १. ओट । ओकल । प्रा०  
२. छाया । शरण । ३. बढ़ाना । हीला । उच्च ।

मुहा०--अडतल पकड़ना या अडतल लेना = (१) पनाह लेना ।  
जरूर में जाना । (२) बहाना करना ।

अडतालिस--वि० [हि०] दे० अडतालीस ।

अडतालिसवाँ--वि० [सं० अष्टचत्वारिंशत्, प्रा० अष्ट = अतालिस < हि०  
अडतालिस + वाँ (प्रत्य०) ] जिसका स्थान सैतालीस के उपरांत  
हो । क्रम या मध्या में जिसका स्थान अडतालिसवाँ हो ।

अडतालीस--वि० [ सं० अष्टचत्वारिंशत्, प्रा० अष्टचत्तालीस, अष्ट-  
तालीम ] एक संख्या । चालीस और आठ । ४८ ।

अडतीस--वि० [ अष्टत्रिंशत् प्रा० अष्टतीम, अडतीस ] एक संख्या ।  
तीस और आठ । ३८ ।

अडतीसवाँ--वि० [ हि० अडतीस + वाँ (प्रत्य०) ] जिसका स्थान  
में तीसवें के उपरांत हो । क्रम या मध्या में जिसका स्थान  
अडतीसवाँ हो ।

अडदार--वि० [ हि० अड + फा० दार (प्रत्य०) ] १ अडियल ।  
रुनवाला । उ०--अली चली नवलाहि लं पिय पै सजि  
मिगार । ज्या मनग अडदार को लिए जात गडदार --मति-  
राम (शब्द०) । २ ऐडार । मस्त । मतवाला । उ०--  
दायदार निगवि रिसानों दीह दलराय, जेमे गडदार अडदार  
गजराज को ।--भूपण श्र०, पृ० ६ ।

अडन--संज्ञा स्त्री० [ हि० अडना ] अडने का भाव या क्रिया । अडने  
की स्थिति । उ०--माधु को ऐसा चाहिए ज्यो सिमु अडन  
अई ।--वल्लभ, पृ० ५४ ।

अडना--क्रि० प्र० [ दश० अथवा म० हठ, प्रा० अठ > हि० अड से  
नाम० ] १ रुकना । अडना । ठहरना । उ०--इहि उर  
माखन चोर गडे । अथ कैसे निमत सुनि ऊर्धो तिरछे ह्वे जु  
अटे ।--मूर०, पृ० ३७३१ । २ हठ करना । टेक बाधना ।  
ठानना । उ०--विगहा सेती मति अडे, रे मन मोर सुजान ।  
--कवीर (शब्द०) ।

अडपायल--वि० [ हि० अड + पाँव × ल (प्रत्य०) ] जोरावर ।  
वलवान् (दि०) ।

अडवग<sup>①</sup>--वि० पुं० [ हि० अडना + सं० वक्र, प्रा० वक = टेढ़ा ]  
१ टेढ़ा मेढ़ा । ऊँचा नीचा । अडवड । अटपट । उ०--वेद को  
न माने ना पुरान भेद जानै कछू ठानै ठान आपने लवेद अडवग  
की ।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १६६ । २ विकट । कठिन ।  
दुर्गम । जैसे रास्ता अडवग है ।--(शब्द०) । ३ विलक्षण ।  
अनोखा । अद्भुत । उ०--नहि जागत उपाय कछु लागत कुभ-  
करण अडवग ।--रघुराज (शब्द०) ।

अडवद--संज्ञा पुं० [ हि० ] दे० अडवद । उ०--दया प्रेम का अडवद  
बाँधो आतम खोल लगाई ।--कवीर श्र०, भा० ३, पृ० ४६१ ।  
अडवड<sup>१</sup>--वि० [ हि० अटपट अथवा अडवड ] टेढ़ा । विकट । कठिन ।  
मुश्किल । दुस्तर । उ०--आगमपुरी की है सँकरी गलियाँ  
अडवड ह चढ़ना ।--कवीर श्र०, भा० १, पृ० ६७ ।

अडवल--वि० [ हि० ] अडनेवाला । अडियल । हठी ।

अडभग--वि० [ हि० ] दे० 'अडवग' । उ०--मुल्काँ पो चडके दुश्मन  
घाँतल मेँचाया देखो अडभगे पन से पडको मुर्दार आया देखो ।  
--द्विखर्नां पृ० २६६ ।

अडभगी--वि० [ हि० ] १. टेढ़ा मेढ़ा । अडवड । २ विकट । कठिन ।  
दुर्गम । ३. विलक्षण ।

अडर<sup>①</sup>--वि० [ सं० अ = नहीं + दर = भय ] निडर । निर्भय । बेडर ।  
वेडोफ । उ०--अडर भेप धरि चढत जो अगा ।--कवीर सा०,  
पृ० ३०६ ।

अडर<sup>२</sup>--संज्ञा पुं० [ अं० आर्डर ] राजकीय आदेश । राजाज्ञा ।  
सरकारी आदेश ।

अडव--संज्ञा पुं० [ मं० ओडव, ओडव ] वह राग जिसमें पडज, गाधार  
मध्यम, धैवत और निषाद ये पाँचो स्वर आवें ।

अडवा--संज्ञा पुं० [ सं० अडु = रोग, बाधा ] मनुष्य का आकार जो  
जानवरो को डराने के लिये खेत में खड़ा किया जाता है ।  
उ०--दरिया ऐसा भेप है जैसा अडवा खेत । बाहर चेतन की  
रहन, भीतर जड प्रचेत ।--दरिया० वानी, पृ० ३६ ।

अडवोकेट--संज्ञा पुं० [ अं० ऐडवोकेट ] वह वकल जिसे वकालत-  
नामा दाखिल करने की जरूरत नहीं होती । निचले न्यायालयों  
से उच्च न्यायालय तक वादी या प्रतिवादी के पक्ष में बहस  
करने का कानूनी अधिकार रखनेवाला व्यक्ति । वकील । अब  
सब वकील ऐडवोकेट होते हैं ।

अडसठ--वि० [ सं० अष्टषष्टि, प्रा० अठसठि ] एक संख्या । साठ  
और आठ की संख्या । ६८ ।

अडसठवाँ--वि० [ हि० अडसठ + वाँ (प्रत्य०) ] जिसका स्थान सडसठवें  
के उपरांत हो । क्रम या संख्या में जिसका स्थान अडसठवाँ हो ।

अडहुल--संज्ञा पुं० [ मं० ओरुल + फुल्ल, हि० ओरुहुल्ल ] जपा वा जवा  
पुष्प । देवी फल । गुल्हर ।

विशेष--इसका पेड़ ६-७ फुट तक ऊँचा होता है और पत्तियाँ  
हरसिंगार से मिलती जुलती होती हैं । फूल इसका बहुत बड़ा  
और खूब लाल होता है । इसके फूल में महक (गंध)  
नहीं होती ।

अडाअड--संज्ञा पुं० [ हि० ] अडने का क्रिया या भाव । उ०--घक्को  
की घडाघड अडग की अडाअड में ह्वे रहे कडाकड सु दतो  
की कडाकडी ।--पद्माकर श्र०, पृ० ३०७ ।

अडाक--वि० [ हि० ] अडनेवाला । अडियल । उ०--साहव सुम,  
अडाक तुरग, किसान कठोर, दिवान नकारो ।--इतिहास,  
पृ० २०३ ।

अडाकी<sup>①</sup>--वि० [ हि० अडाक ] अडनेवाला । उ०--ग्राबेटा मजबूत  
अडाकी जात किया खल जेर ।--रघु०, पृ० ६३ ।

अडाड<sup>१</sup>--संज्ञा पुं० [ हि० आड ] चौपायो के रहने का हाता जो प्रायः  
वस्ती के बाहर होता है । लकड़ियों का घेरा जिसमें रात को  
चौपाए हाँक दिए जाते हैं । खरिफ ।

अडाड<sup>२</sup>--संज्ञा पुं० [ हि० दे० 'अडार' ] ।

अडाड<sup>३</sup>--संज्ञा पुं० [ अनु० ] टूटने या गिरने की आवाज । उ०--  
एक ऊँचा टोले का टीला अडाड करके फट पडा ।--सैर  
कु०, पृ० ३८ ।

अडान--संज्ञा पुं० [ हि० अड + आन (प्रत्य०) ] १ रुकने की जगह ।  
२ पड़ाव । वह स्थान जहाँ पथिक लोग विश्राम लें ।

अडाना<sup>१</sup>--संज्ञा पुं० [ हि० अडान ] खड़ी या तिरछी लकड़ी जो गिरती  
हुई छल, दीवार या पेड़ आदि की गिरने से बचाने के लिये  
लगाई जाती है । डाट । चाँड़ । धूनी । ठेवा टेका ।

अडाना<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० एक रांग जो कान्हडा का भेद है।

अडाना<sup>३</sup>—क्रि० सं० [हि० अडाना] १ टिकाना। ठहराना। फँसाना। उलझाना। २ टेकना। डाट लगाना। ३ कोई वस्तु बीच में देकर गति रोकना। जैसे,—पहिए में रोड़ा अडा दे।—(शब्द०)। ४ ठूसना। भरना। जैसे,—इस विल में रोड़ा अडा दे—(शब्द०)। ५ गिरना। ढरकाना।

अडानी<sup>१</sup>—सङ्घा पुं० [देश०] १ घडा पखा। उ०—बहु छत्र अडानी कलम धुज, रानत राजत कनक के।—गिरिधरदास (शब्द०)।

अडानी<sup>२</sup>—सङ्घा स्त्री० [हि० अडाना] १ कुश्ती का एक पेंच। अडगा। दूसरे की टाँग में अपनी टाँग अडाकर पटकने का दाँव। २ लकड़ी की रोक जो खिड़की या दरवाजे के पल्लो को रोकने के लिये लगाई जाती है।

अडायती—वि० [हि० अड या अड + आयती (प्रत्य०)] [स्त्री० अडायती (व्यंज०)] जो अड करे। अड करनेवाला। अडैतो। उ०—बघो न गडि जाहु गाड गहिरी गडति जिन्हें गोरी गुरुजन लज निगड गडायनी। अडो न परति री निर्गडिन की अडो दीठि लागे उठि आगे उठि होत है अडायती।—देव (शब्द०)।

अडार<sup>१</sup>—वि० [सं० अडार] १ अडारवाला। स्थिर रहनेवाला। उ०—जग डोलै डोला नानाहाँ। उनटि अडार जाहि पल साहाँ।—जायसी ग्रं० पृ० ४२। २ टेढ़ा। तिरछा।

अडार<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० [सं० अडार = दुर्ज, ऊँचा स्थान] १ समूह। राशि। ढेर। उ०—उम पितु अन्न अडार जूहायो। क्रम क्रम ते सब जनन बटायो।—विद्याम (शब्द०)। २ ई धन का ढेर जो बचने के लिये रखा हो। ३ लकड़ी या ई धन की दुकान। ४ गायो भैंसों के रहने का घेरा या बाड़ा।

अडारना<sup>३</sup>—क्रि० म० [हि० डालना] डालना। देना। उ०—पीउ सुनन धनि प्रापु बिसारे। चित्त लखै तनु खाइ अडारे।—जायसी (शब्द०)।

अडाल—सङ्घा पुं० [सं०] नृत्य का एक भेद। चिड़ियों के पख की तरह हाथ फटफटाकर एक ही स्थान पर चक्कर काटना। मयूरनृत्य।

अडाव—सङ्घा पुं० [हि० अड] १ स्तम्भ। आधार। २ ऊँचाई। उ०—राजमहल के अडाव अस सेती अडे।—रघु० सू०, पृ० २३८।

अडिग<sup>३</sup>—वि० [म० अ = नहीं + हि० डिगना] जो हिले डूले नहीं। निश्चल। स्थिर।

अडिग—वि० [हि०] दे० 'अडिग'। उ०—धीरजवत अडिग जिनेंद्रिय निर्मल ज्ञान गहो दृढ आदू।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ३८४।

अडियल—वि० [हि० अडना + इयल (प्रत्य०)] १ रुकनेवाला। अड अडकर चलनेवाला। चलते चलते रुक जानेवाला। उ०—मधुवन अडियल टट्टू की तरह रुक गया।—तितली, पृ० २२६। २ सुस्त। काम में देर लगानेवाला। मटुर। ३ जिद्दी। हठी।

अडिया—सङ्घा स्त्री० [हि० अडना] अडडे के आकार की एक लकड़ी जिसे टेककर साधु लोग बैठते हैं। साधुओं की कुबड़ी या तकिया।

मुहा०—अडिया करना = जहाज के लगर की रस्सी खींचना।

अडिल—सङ्घा पुं० [हि०] दे० 'अरिल'।

अडी<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री० [हि० अडना] १ अडान। ज़िद। हठ। प्राग्रह। २ रोक।

क्रि० प्र०—करना = हिरन की तरह छलांग मारना।

३ ऐसा अवसर जहाँ कोई काम रुका हो। जरूरत का वक्त। मौका। ४. पासा या चौपड के खेल में एक ही घर में दो गोठिया के पहुँचने पर अन्य खिलाड़ियों की चालों का रुकना। उ०—चौरासी घर फिर अडी पौ बारह नावी।—पलटू०, पृ० ३४।

अडी<sup>२</sup>—वि० अडनेवाला। टेकी। जिद्दी।

अडीखभ<sup>३</sup>—वि० [हि० अडो + खभ] जोरावर। बली।—डि०।

अडिठ—वि० [सं० अडूट, पा० अडूट, प्रा० अडिठ] १ जो दिखाई न पड़े। लुप्त। २ छिपा हुआ। अतर्हित। गुपचुप।

अडुक—सङ्घा पुं० [म०] हिरन। मृग [को०]।

अडुचल—सङ्घा पुं० [म०] हलचल का एक भाग [को०]।

अडूलना<sup>३</sup>—क्रि० सं० [देश० अथवा हि० उडेलना] डालना। उडेलना। डालना। गिराना। उ०—जहाँ आठ हूँ भाँति के कज फूल। मनो नीर आकास तारे अडूलै।—सूदन (शब्द०)।

अडूसा—सङ्घा पुं० [सं० अडूरूप, प्रा० अडूस] एक अपेक्षित विशेष। विशेष—इसका पेड़ ३-४ फुट तक ऊँचा होता है। इसका पत्ता हलके हरे रंग का आम के पत्ते से मिलता जुलता होता है। इसकी प्रत्येक गाँठ पर दो दो पत्ते होते हैं। इसके सफेद रंग के फूल जटा में गुथे हुए निकलते हैं जिनमें थोड़ा सा मीठा रस होता है जो कास, श्वास, क्षय आदि रोगों में दिया जाता है।

अडैच<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री० [देश०] शत्रुता। द्वेष। मनमुटाव।

अडैता<sup>३</sup>—वि० [हि०] दे० 'अडायती'।

अडैल<sup>३</sup>—वि० [हि०] दे० 'अडियल'। उ०—ऐल परी गैल मैं मतग मतवारनि की, भीड अडैल अडैलनि तुरगा तरगत हैं।—हमीर० पृ० २४।

अडोर—सङ्घा पुं० [सं० आन्दोल = हलचल] तेजुल शब्द। शोर। गुल। ३० 'अदोर'। उ०—वाजन वाजे होय अडोरा। आबहि बहल हस्ति आँ घोरा।—जायसी (शब्द०)।

अडोल—वि० [सं० अ = नहीं + हि० डोलना] १ अटल। जो हिले नहीं। निश्चल। उ०—प्रेम अडोल डूलें नहीं, मुँह बोल अनखाई। चित्त उनकी मूरति बसी, चितवन मोहि लखाई।—विहारी २० दो० ६३१। २ स्तब्ध। ठकमारा। उ०—त्यो पदमाकर खालि रही दूग बोलै न बोल अडोल दशा है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १५१। ३ स्थिर। ध्रुव। उ०—मुख बोल कहत अडोल है गज वाजि देत अमोल है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६।

अडोस पडोस—सङ्घा पुं० [सं० प्रतिवेस (= पडोस) से वि० हि० मू०] आसपास। करीब।

अडोसी पडोसी—सङ्घा पुं० [हि० अडोस पडोस] आसपास का रहनेवाला। हमसाया।

अड्ड<sup>३</sup>—वि० [देश० अड्ड = आडे आनेवाला] बाधा। रोक। आड। उ०—काल पहुँच्यो सीस पर नाहिन कोऊ अड्ड।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २३३।

अड्डन—संज्ञा पुं० [ सं० अड्डनम् ] ढाल। एक प्रकार का शस्त्र।  
अट्टन [को०]।

अड्डा—संज्ञा पुं० [ सं० अड्डाल = ऊँची जगह ] १ टिकने की जगह।  
ठहरने का स्थान। २ मिलने या इकट्ठा होने की जगह। ३  
वदमाशों के मिलने या बैठने की जगह। ४ वह स्थान जहाँ  
मवारी या पालकी उठानेवाले कहार भाड़े पर मिलें। ५. रडियो  
के इकट्ठा होने का स्थान या कुर्तनियों का टेरा जहाँ व्यभि-  
चारिणी स्त्रियाँ इकट्ठी होती हैं। ६ केंद्र। प्रधान स्थान।  
जैसे—वही ता इन सब वृत्तियों का अड्डा है ( शब्द० )।  
७ लकड़ी या लहे की छड़ जो चिट्टियों के बैठने के लिये पिण्ड  
के भीतर आड़ी लगाई जाती है। ८. वृन्तुल, तोता आदि  
चिट्टियों के बैठने के लिये लोहे की एक छड़ जिसका एक सिरा  
जमीन में गाड़ने के लिये नुकीला होता है और दूसरे सिरे पर  
एक छोटी आड़ी छड़ लगी रहती है। ९ पचास आठ तह के  
कगड़े का गद्दा जिसको छीपी चीकी पर बिछाकर उसी के ऊपर  
कपड़ा रखकर छापते हैं। १० चौखटा लकड़ी का टाँचा जिस-  
पर इजाजत वगैरह बुने जाते हैं और वारचोवी का काम भी  
होता है। चौकटा। ११ चार हाथ लंबी, चार अंगुल  
चौड़ी और चार अंगुल मोटी लकड़ी जिसके किनारे पर बहुत  
सी चिट्टियाँ, जिनपर चालों का ताना ताना जाता है लगी  
रहती हैं। १२ ऊँचे बाँस पर बँधी हुई एक टट्टी जो कबूतरों के  
बैठने के लिये होती है। बबूतरा की छतरी। १३ एक लंबा  
बाँस जो दो बाँसों को गाड़कर उनके गिरे पर आधा बाँध दिया  
जाता है। १४ लाहे या कठ की एक पट्टी जो बीचोबीच  
लगी हुई एक लकड़ी के सहारे पर खड़ी की जाती है। इसी पर  
रुपाना आदि टिकाकर खगदनेवाले खरादते हैं। १५ खंडसाल में  
काम प्रानेवाला बाँस की टट्टी। १६ एक लकड़ी जो रूँह में  
इसी अभिप्राय से लगाई जाती है कि वह उलटाने में सके।  
१७. जुलाहे का करघा। उन लकड़ियों का समूह जिनपर  
जुताहे सून चढ़ाकर कपड़ा बुनते हैं। १८ एक लकड़ी जिसपर  
नवार बुनकर लपेटी जाती है।

अड्डा—संज्ञा स्त्री० [ हि० अड्डा ] १ एक वरमा जिससे गडगडा आदि  
लंबी चीजों में छेद करते हैं। २ जूतों का किनारा।

अड्डेम—संज्ञा पुं० [ अ० एड्डेम ] १ अभिनयनपत्र। वह लेख या प्रार्थना-  
पत्र जो किसी महापुरुष के आगमन के समय उसे सवोधन करके  
सुनाया जाय। २ पता। ठिकाना। ३ भाषण। वक्तृता।

अड्डल—संज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'अड्डल'।

अड्डतिया—संज्ञा पुं० [ हि० आडत + इया (प्रत्य०) ] १ वह दुकानदार  
जो ग्राहकों या दूरे महाजनों को माल खरीदकर भेजता है  
और उनका मान मँगाकर वेचता है। इसके बदले में वह कुछ  
कमीशन या आडत पाता है। आडत करनेवाला। आडत का  
व्यवसाय करनेवाला। २ दलाल। एजेंट।

अड्डन (७)—संज्ञा पुं० [ देश० ] धाक। मर्यादा। उ०—चारिउ वरन  
चारि आश्रम हैं मानत श्रुति की अड्डन —देवस्वामी (शब्द०)।

अड्डर (७)—वि० [ सं० अ = नहीं + हि० डरना ] न डलनेवाला। उ०—  
अड्डर दूरहि गह रहहि मेर परभर सुपरहि भर।—पृ०  
रा०, ५५।

अड्डवना (७)—क्रि० सं० [ सं० आ + √ज्ञा = बोध कराना, आज्ञापन,  
प्रा० आणपन ] आज्ञा देना। कार्य में नियुक्त करना। काम  
में लगाना। उ०—कैसे वरजो करन को समरतीति की बात।  
अति साहम के काम को अड्डवना हियो सकात।—उत्तर-  
चरित (शब्द०)।

अड्डवायक (७)—संज्ञा पुं० [ हि० अड्डवना ] वह जो दूसरों को काम में  
लगाता हो। दूसरों से काम लेनेवाला। उ०—महिलेइ रचे  
चारि अड्डवायक। भए सब अड्डवैन के नायक।—जायसी  
ग्र०, पृ० ३०६।

अड्डवैया (७)—संज्ञा पुं० [ हि० अड्ड + वा + ऐया (प्रत्य०) ] दे० 'अड्डवायक'।  
उ०—मे मय अड्डवैन के नायक।—जायसी ग्र०, पृ० ३०६।

अड्डाई—वि० [ सं० अर्धतृतीय, प्रा० अड्डाईया ] दो और आधा। ढाई।  
उ०—मुनि कह उचित कहत रघुगई। गएउ वीति दिन पहर  
अड्डाई।—मानस, २।२७७।

अड्डार (७) —वि० [ सं० अ० = नहीं + हि० डरना = डलना ] १. किसी  
की ओर न डलने या अनुरक्त होनेवाला। २ कठोर। निर्मोही  
निर्दय।

अड्डारटकी (७)—संज्ञा पुं० [ ? ] घनुप (डि०)।

अड्डिया—संज्ञा स्त्री० [ सं० आधानिका, प्रा० आडाइया > अड्डिया ] १.  
काठ, पत्थर आदि का बना हुआ छोटा बरतन। २ काठ या  
लाहे का पाल जिसमें मजदूरों के लटके गार या कपड़ा उठाकर  
ले जाते हैं।

अड्डी (७)—वि० [ प्रा० अड्डाई ] ढाई। दो और आधे की संख्या।  
उ०—तिन भूभक्त निरभं गयो अड्डा कोस चहुआन।—पृ०  
रा०, ६१।२२१६।

अड्डूक—संज्ञा पुं० [ देश० ] ठोकर। चोट। उ०—फोरहि सिल लोडा  
सदन लागे अड्डूक पहर। कायर कूर कपूत कलि घर घर  
सहम डहार।—तुलसी ग्र०, पृ० १५१।

अड्डुकना—क्रि० अ० [ सं० आ = अच्छी तरह + टक = बंधन या रोक  
अथवा हि० अड्डूक से नाम० ] १ ठोकर खाना। उ०—अड्डूक  
परहि फिरि हेरहि पीछे। राम बियोग विकल दुख तीछे।  
—मानस, २।१४३। २ सहारा लेना। टेकना।

अड्डैया—संज्ञा पुं० [ हि० अड्डाई, ढाई ] १ एक तौल जो ढाई सेर की  
होती है। पमेरी का आधा। २ ढाई गुने का पहड़ा।

अड्डैया—संज्ञा पुं० [ हि० अड्डवना ] काम करानेवाला। अड्डैया।

अड्डाईना—संज्ञा पुं० [ हि० अड्डवना ] करने के लिये कहा गया या दिया  
हुआ काम। उ०—छोटा सा अड्डाईना भी करेगी तो भुनभुना  
कर।—गोदान, पृ० ३०।

अणकी (७)—वि० [ सं० ] कुत्सित। निंदित। अधम। नीच (डि०)।

अणकी<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

अणकरता<sup>१</sup>—वि० [ सं० अण्, प्रा० अण + हि० करता ] अकर्ता।  
निष्क्रिय। न करनेवाला। उ०—करता है सो करेगा दादू  
साखी भूत। कौतिगहारा है रह्या अणकरता ओधून।—दादू,  
पृ० ४५७।

अणकीय—वि० [ सं० ] कुत्सित, निंदित, नगण्य, अधम आदि से  
संबंधित [को०]।

अणद④ सखा पुं [सं आनन्द] आनद । उल्लास । चित्त की प्रसन्नता (डि०) ।

अणमरा④--वि० [अन्यमनस्, प्रा० अण+मरा] १. अप्रसन्न । दुःखित । नाराज । २. बीमार । रोगी (डि०) ।

अणरता④--वि० [प्रा० अण+रत्त] जो अनुक्त न हो । अनासक्त । उ०--अणरता सुख सोवणा रातै नोदन आड ।--कवीर ग्र०, पृ० ५१ ।

अणरस④--वि० [प्रा० अण+रस] दे० 'अनरस' । उ०--रस को अणरस अणरस कौरस मीठा खारा हाइ ।--दादू, पृ० ५५४ ।

अणव्य--सखा पुं [सं] चीना, साँवा आदि धान्य उगाने का क्षेत्र [को०] ।

अणसक④--वि० [सं अन्=नहीं+शका=डर, प्रा० अण+सक] जो डरे नहीं । निर्भय । निश्चक । निडर (डि०) ।

अणास④--सखा पुं [हि० अडस] अडस । कठिनाई (डि०) ।

अणि--सखा स्त्री [सं] १. कोर । नोक । मुनई । २. धार । दाढ़ । ३. वह कील जिसे धुरे के दोनों छोरों पर चक्के की नाभि में इसलिये ठोकते हैं जिसमें चक्का घुरी के छोरों पर से बाहर न निकल जाय । धुरकीली । धुरी की कील । ४. सीमा । हद्द । सिमान । मेड । ५. किनारा । ६. अत्यंत छोटा । ७. गाड़ी के वम के अगले सिरे पर लगी कीली या वाल्टू ।

अणिमाडव्य--सखा पुं [सं अणिमाडव्य] एक ऋषि का नाम जो एक कील या नोकीला डंडा चुभाए रहते थे जिनके कारण उनका यह नाम लोक में प्रसिद्ध हुआ [को०] ।

अणिमा--सखा स्त्री [सं] अष्ट सिद्धियों में पहली सिद्धि ।

विशेष--इस सिद्धि के द्वारा योगी अणुवत् सूक्ष्म रूप धारण कर लेते हैं और किसी को दिखाई नहीं पड़ते । इसी सिद्धि के द्वारा योगी तथा देवता लोग अगोचर रहते हैं और समीप होने पर भी दिखाई नहीं देते तथा कठिन में कठिन अभेद्य पदार्थ में भी प्रवेश कर जाते हैं ।

२. सूक्ष्मता । ३. अणुता या अणु का भाव ।

अणिमादिक--सखा स्त्री [सं] अष्टसिद्धियाँ--अर्थात् १. अणिमा, २. महिमा, ३. लघिमा, ४. गरिमा, ५. प्राप्ति, ६. प्राकाम्य ७. ईशित्व और ८. वशित्व ।

अणियाली④--सखा स्त्री [सं अणि=धार+हि० याली=वाली (प्रत्य०)] कटारी (डि०) ।

अणी④--सत्री [देश०] अरी । अनी । एरी । हेरी । उ०--डोलती डरानी खतरानी बतरानी वेवे, कुडियन पेखी अणी माँ गरन पावा हूँ ।--सूदन (शब्द०) ।

अणी<sup>२</sup>--सखा स्त्री [सं] दे० 'अणि' ।

अणीय--वि० [सं अणु+ईयस्=अणीयस्] अतिसूक्ष्म । वारीक । भीना ।

अणु<sup>१</sup>--१. सखा पुं [सं] द्व्यणुक से सूक्ष्म, परमाणु से दृढ़ कण जिसका बिना किसी विशेष यंत्र के खंड नहीं किया जा सकता । २. ६० परमाणुओं का सघात या घना हुआ कण । ३. छोटा टुकड़ा । कण । ४. परमाणु । ५. सूक्ष्म कण । ६. रज । रजकण । ७. संगीत में तीन ताल के काल का चतुर्थांश

काल । ८. अत्यंत सूक्ष्म मात्रा । ९. एक मुहूर्त का ५,४६,७५,००० वाँ भाग ।

अणु<sup>२</sup>--वि० १. अतिसूक्ष्म । क्षुद्र । २. अत्यंत छोटा । ३. जो दिखाई न दे या कठिनाई से दिखाई पड़े ।

अणुक--वि० [सं] अणुसवधी । अतिसूक्ष्म । उ०--अणुक द्व्यणुक जड़ जीव आदि जितने हैं, देखा ।--अनामिका, पृ० ३८ । २. एक प्रकार का छोटे दानोंवाला अन्न (को०) । ३. चतुर (को०) ।

अणुतर--वि० [सं] बहुत वारीक या सूक्ष्म । कोमल [को०] ।

अणुता--वि० [सं] दे० 'अणुक' [को०] ।

अणुतैल--सखा पुं [सं] एक औषध का तेल [को०] ।

अणुत्व--वि० [सं] अतिसूक्ष्मता । अणु जैसी सूक्ष्मता [को०] ।

अणुवम--सखा पुं [सं अणु+अं वांस्व] एक विनाशक अस्त्र । दे० 'परमाणु वम' ।

अणुभा--सखा स्त्री [सं] विजली । विद्युत् ।

अणुभाष्य--सखा पुं [मं] ब्रह्मसूत्र पर वल्लभाचार्य द्वारा कृत पुष्टिमार्गीय भाष्य [को०] ।

अणुमध्यवीज--सखा पुं [सं] एक मंत्र का नाम [को०] ।

अणुमात्र--वि० [सं] अणु के समान छोटे आकारवाला [को०] ।

अणुमात्रिक--वि० [सं] १. दे० 'अणुमात्र' । २. अणु के अग या मात्रा से युक्त [को०] ।

अणुरेणु--सखा पुं [सं] आणविक या अणुसवधी धूल जैसी सूय की किरणों में दिखाई पड़ती है [को०] ।

अणुरेणु जाल--सखा पुं [सं] आणविक धूलिकणों समूह [को०] ।

अणुरेवती--सखा स्त्री [सं] दंती नामक क्षुप । करोटन का वृक्ष [को०] ।

विशेष--इसकी अनेक जातियाँ होती हैं और उनके पत्ते भी भिन्न भिन्न आकार तथा रंग के होते हैं ।

अणुवत--सखा पुं [सं अणुवन्त] बाल की भी खाल निकालनेवाला प्रश्न [को०] ।

अणुवाद--सखा पुं [सं] १. वह दर्शन या सिद्धांत जिसमें जीव या आत्मा अणु माना गया हो । वल्लभाचार्य का मत । २. वह शास्त्र जिसमें पदार्थों के अणु नित्य माने गए हों । वैशेषिक दर्शन ।

अणुवादी--सखा पुं [सं अणुवादिन्] १. नैयायिक । वैशेषिक शास्त्र का माननेवाला । २. वल्लभाचार्य का अनुयायी वारण ।

अणुवीक्षण--सखा पुं [सं] जिसके द्वारा सूक्ष्म पदार्थ देखे जाते हैं । सूक्ष्मदर्शक यंत्र । खुरद्रीन । माइक्रोस्कोप । उ०--विखर गया मानव का मन अणुवीक्षण पथ से ।--युगपथ, पृ० १२० ।

२. बाल की खाल निकालना । छिटानेपण ।

अणुवेदात--सखा पुं [सं] एक ग्रन्थ का नाम [को०] ।

अणुव्रत--सखा पुं [सं] जैन शास्त्रानुसार गृहस्थ धर्म का एक अंग ।

विशेष--इसके ५ भेद हैं--(१) प्राणतिपात विरमण, (२) मूषावाद विरमण, (३) अदत्तदान विरमण, (४) मंथन विरमण और (५) परिग्रह विरमण । पातजलि योगशास्त्र में इनको 'यम' कहते हैं ।



अण्वीहि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान जिसका चावल बहुत बारीक होता है और पकाने से बढ जाता है। यह खाने में स्वादिष्ट होता है और महंगा विक्रता है मोतीबूर।

अण्वीह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विभ्राज के एक पुत्र का नाम [को०]।

अण्वीरणीयान्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् के उम मन्त्र का नाम जिसके प्रादि में ये शब्द आते हैं। वह मन्त्र यह है—अण्वीरणीयान्महती महीयानात्मास्य जन्तोर्निहित गृह्याम्। तमक्रतु पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मन।

अण्वीरणीयान्—वि० १ सूक्ष्म से सूक्ष्म। अत्यंत सूक्ष्म २. छोटे। से छोटा।

अतक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतक'। उ०—सक सां सिमिति चित्र अक से मए हैं सर्व वक अरि उर पै अनक इमि छायो है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १४१।

अतका<sup>२</sup>—वि० [आतद्धित, प्रा० आतकिय] आतकित। भयभीत। उ०—बाढी सीत सका कोपै कर ह्वै अतका।—गग ग्र०, पृ० २३६।

अतका<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतक'। उ०—सोहे अज ओडे जे न छोड़े सीम सगर की लगर लँगूर उच्च ओज के अतका मे।—पद्माकर ग्र०, पृ० २२४।

अतत<sup>१</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अत्यत'। उ०—मन पछी सो एक है पार-ब्रह्म को अतत।—केशव० अमी०, पृ० १३।

अतन्न—वि० [सं० अ + तन्न] १ अनियन्त्रित। २ सिद्धांतरहित। ३ तन्न या तनु से रहित [को०]।

अतन्नत्व—सञ्ज्ञा भा [सं० अतन्नत्व] अर्थरहितत्व। अर्थशून्यता।

अतद्र—वि० [सं० अतन्द्र] १ तद्रारहित। सजग। २ सतर्क [को०]।

अतद्रमा—वि० [सं० अतन्द्रिम] तद्रारहित। निरालस्य। सजग। उ०—देत छवि को है कोकनद मे नदी मे कहौ नखत विराजै कोन निसि मे अतद्रमा।—पद्माकर ग्र०, पृ० ८०।

अतद्रिक—वि० [सं० अतन्द्रिक] १ आलस्यरहित। निरालस्य। चुस्न। चचल। उ०—विखरि जात पखुरी गरुर जनि करि अतद्रिका। मुकवि दसा सब ह्वै है हरि सिर मोरचद्रिका।—व्यास (शब्द०)। २ व्याकुल। विकल। बेचैन।

अतद्रित—वि० [सं० अतन्द्रित] आलस्यरहित। चपल। निद्रारहित चचल। उ०—पहुँच नहीं पाया जनमन का नीरव रोदन, हृदय संगीत रहा उच्छ्वसित अतद्रित।—रजत शि०, पृ० ११४।

अतद्रिल—वि० [सं० अतन्द्रिल] तद्राविहीन। अतद्र [को०]।

अत<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं०] इस कारण से। इस वजह से। इसलिये। इस वास्ते। इस हेतु। उ०—शुचिते, पहनाकर चीनाशुक, कर सका न तुझे अत दधिमुख।—अनामिका, पृ० ११०।

अत<sup>२</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अति'। 'सहचरि सरै' मयक वदन को मदनमोहिनी अत है।—मोहार अभि० ग्रं०, पृ० ३६४।

अतऊर्ध्वम्—अव्य० [सं०] इसके आगे या बाद में [को०]।

अतएव—क्रि० वि० [सं०] इसलिये। इस हेतु से। इस वजह से। इसी कारण।

अतक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] यात्रा करनेवाला यात्री [को०]।

अतट<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत का शिखर। चोटी। टीला। २. जमीन का निचला भाग। पठल [को०]।

अतट<sup>२</sup>—वि० तटहीन। खड़ी ढालवाला [को०]।

अटतप्रपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सीधा गिरनेवाला झरना [को०]।

अतत<sup>१</sup>—वि० [सं० अतय्य, अयवा अतत्त्व, प्रा० अतत्त] दे० 'अतय्य'। उ०—चित्तग राव रावर कहै अतत मत मत्री कहे।—पृ० रा०, ५६।५०।

अतत<sup>२</sup>—वि० [सं० अतत्त्व, प्रा० अतत्त] दे० 'अतत्त्व'। उ०—अतत निरसन कीजिए तौ द्वैत नहि ठहराई।—सुदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८४०।

अतताई—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आततायी'। उ०—तपसी रो रूप धरे अतताई अडग कुटी गइ सीत उठाई।—रघु० क०, पृ० १३५।

अतत्व<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ + तत्त्व] असार वस्तु [को०]।

अतत्व<sup>२</sup>—वि० सारहीन। तत्त्वरहित [को०]।

अतय्य—वि० [सं०] १ अन्यथा। भूठ। असत्य। अययार्थ। २. अनद्वत्। अममान।

अतद्गुण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक अलंकार जिसमें एक वस्तु का किसी ऐसी दूसरी वस्तु के विशिष्ट गुण को न ग्रहण करना दिखलाया जाय जिसके कि वह अत्यंत निकट हो। जैसे—गगाजल सित अह असित जमुना जलहु अन्हात। हस रहत तब शुभ्रता तैसिय बढि न घटात (शब्द०)।

अतद्वत्—वि० [सं०] जो उसके समान न हो [को०]।

अतद्वान्—वि० [सं०] अतद्वत्। असमान। जो (उसके) सदृश न हो।

अतन<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अतनु] कामदेव। अनग। उ०—धूम धमारिन की मची अगन अतन उमग। अरी आज वरसत धनो ब्रजवीधिन रसरग।—सं० सप्तक, पृ० ३६१।

अतनु<sup>२</sup>—वि० [सं०] १ शरीररहित। बिना देह का। बिना अस्मा का। उ०—रति अति दुखित अतनु पति जानी।—मानस १।२४६। २ मोटा। स्थूल।

अतनु<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० अनग। कामदेव।

अतप—वि० [सं०] १. जो तप्त न हो। ठंडा। शीत। २. दिखावा न करनेवाला। आडंबररहित। बेकार। निठल्ला [को०]।

अतप्त—वि० [सं०] १. जो तपा न हो। ठंडा। २. जो पका न हो।

अतप्ततनु<sup>१</sup>—वि० [सं०] रामानुज संप्रदाय के अनुसार जिसने तप्तमुद्रा न धारण का हो। जिसने विष्णु के चार आयुधों के चिह्न अपने शरीर पर गरम धातु से न छपवाए हो। बिना छाप या चिह्न का।

अतप्ततनु<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० बिना छाप का मनुष्य।

अतमा—वि० [सं० अतमस्] अधकार रहित [को०]।

अतमाविष्ट—वि० [सं० अ + तम + प्राविष्ट (असाधु प्रयोग)] जो अधकाराच्छन्न न हो या अधकार से ढका न हो [को०]।

अतमिस्त्र—वि० [सं०] जो अधकार से आच्छन्न न हो [को०]।

अतरग—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] लगर को जमीन से उखाड़कर उठाए रखने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।



अतर<sup>१</sup>—सद्वा पुं [अ० इत्] निर्यास। पुष्पसार। भमके द्वारा बिचा हुआ फूलों की सुगंध का सार। उ०—करि फुलैल को आचमन मीठी कहत सराहि। रे गंधी, मतिअध तूं अनर दिखावत काहि।—विहारी २० दो० ८२।

विशेष—ताजे फूलों को पानी के साथ एक बंद देग में आग पर रखते हैं जो नल के द्वारा उस भमके से मिला रहता है जिसमें पहले से चदन का तेल, जिसे जमीन या मावा कहते हैं, रखा रहता है। फूलों से सुगंधित भाप उठकर उस चदन के तेल पर टपककर इकट्ठा होती जाती है और तेल (जमीन) ऊपर आ जाता है। इसी तेल को काछकर रख लेते हैं और अतर या इतर कहने हैं। जिस फूल के भाप से यह बनता है उसी का अतर कहलाता है। जैसे—गुलाब का अतर, मोतिया का अतर इत्यादि।

अतर<sup>२</sup>—सद्वा पुं [स० अल, प्रा० अल] दे० 'अस्त्र'। उ०—कनक पाट जनु बइठेउ राजा। सबइ सिंगार अतर लेइ साजा।—पद्मा०, पृ० ४६।

अतरक—वि० [हि०] दे० 'अतक्य'। उ०—प्रगम अगोवर अच्छर अतरक निरगुन अत अनदा।—रै० वा०, पृ० ४५।

अतरज—सद्वा पुं [सं० आश्चर्य] दे० 'अचरज'। उ०—आजु की बात कहा कहूँ राजा, अतरज मेरे गात, परसराम की वानु कुंमरि ने धरौ एकई हात।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६७१।

अतरदान—सद्वा पुं [अ० इत् + फा० दान (तुल० दै० 'धान') ] सोने, चाँदी या गिल्ट का फूलदान के आकार का एक पात्र जिसमें इतर से तर किया हुआ रुई का फाहा रखा होता है और महफिलो में सत्कारार्थ सबके सामने उपस्थित किया जाता है। उ०—सब राजा बराबर बराबर कुंसियो पर बैठे हैं, सरोजनी नाचती है, मंत्री ने अतरदान ले रक्खा है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६२।

अतरल—वि० [स०] जो तरल या पतला न हो। गाढ़ा।

अतरवन—सद्वा पुं [स० अन्तर] १ पत्थरकी पटिया जिसे थोड़ीए के ऊपर बैठाकर छज्जा पाटते हैं। २ वह खर या मूँज जिसे ठाट पर फैलाकर ऊपर से खपड़ा या फूस छाते हैं।

अतरसी—वि० [स० इतर + श्व] १ परसा के आगे का दिन। वर्तमान दिन से आनेवाला तीसरा दिन। उ०—खेत में होरी रावरे के कर परसों जो भीजी है अतर सो सो आइ है अतरसो।—रघुनाथ (शब्द०)। २ गत परसों से पहिले का दिन। वर्तमान से तीसरा व्यतीत दिन।

अतराफ—सद्वा स्त्री [अ०] तरफ का बहुवचन। उ०—उस अतराफ में था जिसे तख्तों ताज इताअत करे मलिक देवे खिराज।—दक्खिनी०, पृ० १५६।

अतरिख—सद्वा पुं [स० अतरिख, प्रा० अतरिख] दे० 'अतरिख'। अतरौटा—सद्वा पुं [हि०] दे० 'अंतरौटा'। उ०—'दास' उलटीयें बेनी उलटीयें आँगी उलटोई अतरौटा पहिरे हों उतलाई मे।—भिखारो ग्रं०, पृ० २७२।

अतर्क<sup>१</sup>—वि० [स०] तर्कहीन। असंगत [को०]।

अतर्क<sup>२</sup>—सद्वा पुं तर्कहीन बात करनेवाला [को०]।

अतर्कित—वि० [स०] १. जिसका पहले में अनमान न हो। २. आकस्मिक। ३. वे सोचा समझा। जो विचार में न आया हो। जिसपर विचार न किया गया हो।

अतर्क्य—वि० [स०] जिसपर तर्क विचार न हो सके। जिसके विषय में किसी प्रकार की विवेचना न हो सके। अनिर्वचनीय। अचिंत्य। उ०—राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी।—मानस, १।१२०।

अतर्म्—वि० [स० अ + त्रास, अथवा हि० अ + फा० तर्म्] निर्भय। निष्ठुर। उ०—यह जम तीन लोक का राजा बधि अतर्म् होई।—कवीर श०, पृ० १४।

अतल<sup>१</sup>—सद्वा पुं [स०] १. मात पातालो में दूसरा पाताल। २. शिव [को०]।

अतल<sup>२</sup>—वि० तलविहीन। प्रयाह [को०]।

अतलता<sup>१</sup>—वि० तलरहित। अयाह। उ०—अतल सिधु में लगा लगा कर जीवन की बेड़ी बाजी।—भरना, पृ० ५१।

अतलता<sup>२</sup>—सद्वा स्त्री [स०] गहराई। उ०—ये किन स्वच्छ अतलताओं की मौन नीलिमाओं में बहते।—अतिमा, पृ० १२।

अतलस—सद्वा स्त्री [अ०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो बहुत नरम होता है। उ०—अनलम लहंगा जरद रंग सारी। चोलिग्रन्हि बंद सवारो री।—स० दरिया, पृ० १७०।

अतलस्पर्शी—वि० [स०] अतल को छूनेवाला अत्यंत गहरा। अयाह। अतलस्पृक्।

अतलस्पृक्—वि० [स०] अत्यंत गहरा।

अतलात—वि० [स० अतल + अत] जिसके तल का अत न हो। अत्यंत गहरा। उ०—अनलान मह गर्मर जलधि तजकर अपनी वह नियत अवधि।—लहर, पृ० १२।

अतवान—वि० [स० अतिवान्] अधिक। अत्यंत। उ०—सावन वरम मेह अतवानी। भरन परी हों बिरह भुरानी।—जायसी (शब्द०)।

अतवार—सद्वा पुं [हि०] दे० 'अतवार'। उ०—दरवार के दिन जो अतवार और मंगल को था, वे नदी के उस पार जाते थे।—हुँमयूँ, पृ० ५७।

अतस<sup>१</sup>—सद्वा पुं [स०] १ वायु। पवन। २ आत्मा। ३ अतसी के रेशों से बना हुआ वस्त्र। ४ एक प्रकार का अस्त्र। ५ एक क्षुप [को०]।

अतस<sup>२</sup>—वि० [स० 'अतिशय' का सक्षिप्त रूप] बहुत अधिक। अतिशय। उ०—तो पण प्रताप मेछा तणो अतस दाप बाधे अकस।—राज० रू०, पृ० २१।

अतसवाजी—सद्वा स्त्री [हि०] दे० 'आतिसवाजी'। उ०—छुटत अतसवाजी रंगरंगी।—भारतेंदु ग्रं०, भाग २, पृ० ७०५।

अतसी—सद्वा स्त्री [स०] अतसी। तीसी।

अतहार<sup>१</sup> सद्वा पुं [अ० तुह का बहुव०] पवित्रता। उ०—मुज कूँ, दर बावे इज्जत अतहार।—दक्खिनी०, पृ० २१८।

अतहार<sup>२</sup>—वि० [अ० ताहिर का बहुव०] पवित्र [को०]।

अता—स्त्री [अ० अत = अनुग्रह] अनुग्रह। दान। क्रि० प्र०—करना, फरमाना = देना।—होना = दिया जाना। मिलना।

अतावक्षी—वि० [ अ० अता + फा० वक्ष ] दान देनेवाले । दाता । उदार [को०] ।

अताई<sup>१</sup>—वि० [ अ० ] १ दक्ष । कुशल । प्रवीण । २ धूर्त । चालाक । ३. अवशिक्षित । अशिक्षित । जो किसी काम को बिना सीखे हुए करे । पंडितमन्य ।

अताई<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० वह गवैया जो बिना नियमपूर्वक सीखे हुए गावे बजावे । उ०—श्रीर स्वतन्त्र व्यसनशील वा अताई उनसे भी बढ जाते हैं ।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ३५३ ।

अताई<sup>३</sup>—वि० [ हि० ] दे० 'आततायी' ।

अतान<sup>४</sup>—सज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'अथान' । उ०—बुज गई न विथा गई कुमुमित ताकि अतान । वहुरि दई दूनी भई लगे अतन के दान ।—स० सप्तक, पृ० २६४ ।

अताना—सज्ञा पुं० [ ? ] मालकोम राग की एक रागिनी ।

अतानामा—सज्ञा पुं० [ अ० अता + फा० नामह ] दानपत्र [को०] ।

अतापता—सज्ञा पुं० [ हि० पता का अनु० वि० द्वि० ] हालचाल । ठीर ठिकाना । उ०—दूसरे दिन खोज करते करते एक स्थान पर अतापता मिला ।—सुनीता पृ० ४४ ।

अतापी<sup>५</sup>—वि० [ सं० ] तापरहित । दुःखरहित । शांत ।

अताव—सज्ञा पुं० [ अ० इताव ] गुस्सा । क्रोध । उ०—लाखो लगाव एक चुराना निगाह का । लाखो बनाव एक विगडना अताव का ।—शेर०, भा० १, पृ० १२ ।

अतार—सज्ञा पुं० [ अ० अतार ] दे० 'अत्तार' ।

अतालीक—सज्ञा पुं० [ अ० ] शिक्षक । गुरु । उस्ताद । अध्यापक ।

अतित<sup>६</sup>—वि० [ सं० अत्यत ] दे० 'अत्यत' । उ०—ज्यों कोउ रूप की रामि अतित कुरुष कहै भ्रम भँचक आन्यो—सुदर० प्र०, भा० २, पृ० ५८१ ।

अति<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] बहुत । अधिक । ज्यादा । उ०—अति डर तें अति लाज तें जो न चहै रति वाम ।—पद्माकर प्र०, पृ० ८६ ।

अति<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० अधिकता । ज्यादाती । सीमा का उल्लंघन या अतिक्रमण । उ०—(क) गंगा जू तिहारो गुनगान करै अजगैव आनि होति बरखा सु आनंद की अति है ।—पद्माकर प्र०, पृ० २५८ । (ख) उनके प्रथ मे कल्पना की अति है ।—अ्यास (शब्द०) ।

अतिग्रत<sup>३</sup>—वि० [ हि० ] दे० 'अत्यत' । उ०—लाभ होत अतिग्रत किसीरी कृष्ण चरन को ।—ब्रजनिधि प्र०, पृ० ११ ।

अतिउक्ति<sup>४</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० अति + उक्ति, हि० उक्ति ] दे० 'अत्युक्ति' । उ०—सुनि अतिउक्ति पवनसुत केरी ।—मानस, ६।१ ।

अतिउवित—सज्ञा स्त्री० [ सं० अति + उवित ] अत्युवित ।

अतिकदक—सज्ञा पुं० [ सं० हस्तिकद नाम का पौधा ] [को०] ।

अतिकथ—वि० [ सं० ] १ अविश्वनीय । अतिरजित । २. अश्रद्धेय । ३. सामाजिक नियमों का उल्लंघन करनेवाला । ४. मृत । नष्ट [को०] ।

अतिकथा—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] अतिरजित कथा । निरर्थक बात [को०] ।

अतिकर्षण—सज्ञा वि० [ सं० ] अत्यधिक परिश्रम [को०] ।

अतिकल्प—सज्ञा पुं० [ सं० ] पुराणानुसार उतना काल जितने में एक ब्रह्मा की आयु पूरी होती है, अर्थात् ३१ नीत्र, १० खरब, ४० अरब वर्ष । अह्यकल्प । उ०—सत्य मकल्प, अतिकल्प, कल्पातकृत ।—तुलसी प्र०, पृ० ४८५ ।

अतिकात—वि० [ सं० अतिकान्त ] अत्यधिक प्रिय [को०] ।

अतिकाय<sup>१</sup>—[ सं० ] वि० दीर्घकाय । बहुत लंबा चौड़ा । बड़े ढीलढोल का । स्थूल । मोटा ।

अतिकाय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० रावण वा एक पुत्र जिसे लक्ष्मण ने मारा था । उ०—भट अतिकाय अकण भारी ।—मानस, ६।६१ ।

अतिकाल—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ विलंब । देर । २. कुसमय । ३ काल का अनिक्रमण करनेवाला महाकाल । काल के भी काल । शिव । उ०—काल अतिकाल, कलिमान, व्यालाद खग, त्रिपुर-मर्दन भीम कर्म भारी ।—तुलसी प्र०, पृ० ४६० ।

अतिकिरिट—वि० [ सं० ] बहुत छोटे दाँतोंवाला [को०] ।

अतिकिरीट—वि० [ म० ] दे० 'अतिकिरिट' [को०] ।

अतिकृच्छ—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ बहुत काट । २ छह दिन का एक व्रत । विशेष—इस व्रत में पहले दिन एक ग्रास प्रातःकाल, दूसरे दिन एक ग्रास सायंकाल और तीसरे दिन यदि बिना माँगे मिल जाय तो एक ग्रास किसी समय खाकर शेष तीन दिन निराहार रहते हैं ।

अतिकृति<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ पच्चीस वर्ष के वृत्तों की मज्ञा । जैसे—सुदरी मर्वया और श्रौच । २ मर्यादा का अतिक्रम [को०] ।

अतिकृति<sup>२</sup>—वि० जिसे करने में अति या मर्यादा का अतिक्रमण किया गया हो [को०] ।

अतिकेशर—सज्ञा पुं० [ सं० ] कुब्जक नाम का पौधा [को०] ।

अतिकोप—वि० [ सं० ] क्रोधरहित । शांत [को०] ।

अतिक्रम—सज्ञा पुं० [ सं० ] नियम या मर्यादा का उल्लंघन । विपरीत व्यवहार । उ०—देवपाल वा क्रोध सीमा वा अतिग्रम कर चुका था, उसने खड्ग चला दिया ।—आकाश०, पृ० ३६ ।

अतिक्रमण—सज्ञा पुं० [ सं० ] १. उल्लंघन । पार करना । हृद के बाहर जाना । उ०—वाघाओ का अतिक्रमण कर जो अवाध हो दौड चले ।—कामायनी, पृ० २०८ । २ प्रवल आक्रमण [को०] । ३ जीतना । अधिकार करना [को०] ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

अतिक्रात<sup>१</sup>—वि० [ सं० अतिक्रात ] १ सीमा का उल्लंघन किए हुए । हृद के बाहर गया हुआ । बढ़ा हुआ । २ वीता हुआ । व्यतीत । गया हुआ ।

अतिक्रात<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० बीती हुई बातों या कथन [को०] ।

अतिक्रांतनिषेध—वि० [ सं० अतिक्रान्तनिषेध ] निषेधाज्ञा का उल्लंघन करनेवाला [को०] ।

अतिक्रातभावनीय—सज्ञा पुं० [ सं० अतिक्रान्तभावनीय ] योग दर्शन के अनुसार चार प्रकार के योगियों में से एक । वैराग्य-संपन्न योगी ।

अतिक्रामक—सज्ञा पुं० [ म० ] क्रम या नियम का उल्लंघन करनेवाला । उ०—कृतियों में इस कमी के रहते हुए भी अनेक अतिक्रामक गुण हैं ।—सुनल० प्रमि० प्र०, पृ० १० ।

अतिक्रुद्ध<sup>१</sup>—वि० [मं०] अत्यन्त रुष्ट । अधिक नाराज [को०] ।  
 अतिक्रुद्ध<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० तलौकन एक मत्त [को०] ।  
 अतिक्रूर<sup>१</sup>—वि० [सं०] अत्यधिक निष्ठुर [को०] ।  
 अतिक्रूर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ एक तत्रोक्त मत्त । २ शनि आदि शूर  
 ग्रह [को०] ।  
 अतिक्षिप्त<sup>१</sup>—वि० [सं०] सीमा के पार या बहुत दूर फँका हुआ [को०] ।  
 अतिक्षिप्त<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० भोव । मुरकन [को०] ।  
 अतिखट्व—वि० [सं०] चारपाई से रहित । बिना खाट के काम  
 चलानेवाला ।  
 अतिगड<sup>१</sup>—वि० [सं० अतिगण्ड] बड़े या फूले गालोवाला [को०] ।  
 अतिगड<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ बड़ा कपोल या गाल । २ बड़े कपोलवाला  
 व्यक्ति । ३ एक नक्षत्र या तारा । ४ एक योग [को०] ।  
 अतिगन्ध<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अतिगन्ध] १ चषा का पेड़ या फूल । २  
 भूततृण । मुद्गर, वटगोरा आदि [को०] ।  
 अतिगन्ध<sup>२</sup>—वि० तीक्ष्ण गन्धवाला [को०] ।  
 अतिगन्धालु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अतिगन्धालु] एक लता का नाम ।  
 पुत्रदारि [को०] ।  
 अतिगन्धिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० अतिगन्धिका] १ 'अतिगन्धालु' [को०] ।  
 अतिगत<sup>१</sup>—वि० [सं०] बहुतायत को पहुँचा हुआ । बहुत । अधिक ।  
 ज्यादा । अत्यत । उ०—अतिगत आतुर मिलन को जैसे जल  
 बिन्दु मीन ।—दादू (शब्द०) ।  
 अतिगति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम गति । मोक्ष । मुक्ति । उ०—  
 जनक कहत सुनि प्रतिगति पाई । तृणावत को ही मुक्तिराई ।  
 —गि० दा० (शब्द०) ।  
 अतिगव—वि० [सं०] १ अत्यत मूढ़ । २ वर्णन के परे । वर्णना-  
 तीत [को०] ।  
 अतिगहन—वि० [सं०] अधिक गहरा । प्रवेश करने में दुष्कर [को०] ।  
 अतिगह्वर—वि० दे० 'अतिगहन' [को०] ।  
 अतिगुण<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ सद्गुणी । बहुत अच्छे गुणवाला । २,  
 आयोग्य । निकम्मा [को०] ।  
 अतिगुण<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० सद्गुण । बहुत अच्छा गुण [को०] ।  
 अतिगुरु<sup>१</sup>—वि० [सं०] अत्यत भारी । बहुत बजनी [को०] ।  
 अतिगुरु<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० अत्यत आदरणीय व्यक्ति । पिता माता  
 आदि [को०] ।  
 अतिगुहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी नाम की लता [को०] ।  
 अतिग्रह<sup>१</sup>—वि० [सं०] बोधागम्य । दुर्बोध [को०] ।  
 अतिग्रह<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ ज्ञानेन्द्रियों का विषय । २. उपयुक्त या सही  
 ज्ञान । ३ आगे बढ़ जाना । ४ अधिक ग्रहण करनेवाला  
 व्यक्ति [को०] ।  
 अतिग्राह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिग्रह' [को०] ।  
 अतिग्राह्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] नियन्त्रण में रखने योग्य [को०] ।  
 अतिग्राह्य<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० ज्योतिषमें यज्ञ में लगातार तीन बार किया-  
 जानेवाला तपण [को०] ।  
 अतिघ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का प्रायुध । २. क्रोध [को०] ।

अतिघ्न—वि० [मं०] अधिक विनाश करनेवाला [को०] ।  
 अतिघ्नी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी सुखद निद्रा या विन्मृति जिसमें अतीत  
 की अप्रिय बातें भूल जाएँ [को०] ।  
 अतिचमू—वि० [सं०] सेनाओं का विजेता [को०] ।  
 अतिचर—वि० [मं०] अधिक परिवर्तनशील [को०] ।  
 अतिचरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अधिक करने का अभ्यास । जितना  
 करना हो उससे अधिक करना [को०] ।  
 अतिचरणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ स्त्रियों का एक रोग जिसमें कई  
 बार मैथुन करने पर तृप्ति होती है । २ वैद्यक मतानुसार वह  
 योनि जो अत्यन्त मैथुन में तृप्त न हो ।  
 अतिचरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्थूलपद्मिनी नाम की लता [को०] ।  
 अतिचार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भीमा से आगे बढ़ जाना । अतिक्रमण  
 करना । उ०—मेरा अतिचार न बढ़े हूँ उन्मत्त रहा सबको  
 घेरे ।—कामायनी, पृ० ७१ । २ ग्रहों की शीघ्र चाल ।  
 विशेष—जब कोई ग्रह किसी राशि के भोगवान को समाप्त किए  
 बिना ही दूसरी राशि में चला जाता है तब उसकी मति को  
 अतिचार कहते हैं ।  
 ३ जैनमतानुसार एक विधात । व्यतिक्रम । ४ तपाशवीनी और  
 मर्यादा भंग करने का जुर्म । नाचरंग के समार्यों में अधिक  
 सम्मिलित होने का अपराध ।  
 विशेष—चद्रागुप्त के समय में जो रसिक और रँगिले बार बार निषेध  
 करने पर भी नाचरंग के समार्यों में सम्मिलित होते थे, उनपर  
 तीन पण जुर्माना होता था । ब्राह्मण को जूठी या अपवित्र वस्तु  
 खिला देने या दूसरे के घर में घुसने पर भी अतिचार दंड  
 होता था ।  
 अतिचारी—वि० [सं० अतिचारिन्] [स्त्री० अतिचारिणी] अति-  
 क्रमण करनेवाला । अतिचार करनेवाला । उ०—अतिचारी  
 मिथ्यामान इसे परलोक वचना से भर जा ।—कामायनी,  
 पृ० १६६ ।  
 अतिच्छन्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अतिच्छन्ना] भूतृण ।  
 छन्नक [को०] ।  
 अतिच्छन्नक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अतिच्छन्निका] दे० 'अतिच्छन्न'  
 [को०] ।  
 अतिच्छादन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सीमा से इस पार आगे बढ़ा हुआ  
 होना कि आसपास की मिलती जुलती चीजें भी उसके क्षेत्र में  
 आ जायें [को०] ।  
 अतिजगती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तेरह वर्ण के वृत्तों की सञ्ज्ञा । जैसे—  
 तारक, मजुभाषणी, माया आदि ।  
 अतिजन—वि० [सं०] जो आवाद न हो । जनावाररहित [को०] ।  
 अतिजव<sup>१</sup>—वि० [सं०] बहुत तेज चलनेवाला । अत्यत वेगवान् ।  
 अतिजव<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० असाधारण गति । अतिशय वेग [को०] ।  
 अतिजागर<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वगला । नील बक ।  
 अतिजागर<sup>२</sup>—वि० १ निरन्तर जागते रहनेवाला । २. जागरूक [को०] ।  
 अतिजात—वि० [सं०] पिता से आगे बढ़ा हुआ [को०] ।  
 अतिहीन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] (पक्षियों की) असाधारण उड़ान [को०] ।

अतितत—वि० १ [म०] १ अत्यत दूर फेंकनेवाला । २ अपने को अधिक बड़ा दिखानेवाला । ३ आठवरी [को०] ।  
 अतितरण—सज्ञा पुं० [म०] १ पार करना । २ पराभूत या पराजित करना [को०] ।  
 अतितारी—वि० [म० अतितारिन्] पार कर जानेवाला । विजयी [को०] ।  
 अतितीक्ष्ण<sup>१</sup>—वि० [सं०] अत्यत तेज [को०] ।  
 अतितीक्ष्ण<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० शोभाजन नाम का वृक्ष [को०] ।  
 अतितीव्र<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] संगीत में वह स्वर जो तीव्र से भी कुछ अधिक ऊँचा हो ।  
 अतितीव्र<sup>२</sup>—वि० अत्यत तेज [को०] ।  
 अतितीव्रा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दूध [को०] ।  
 अतितृष्ण—वि० [सं०] अत्यधिक चोटवाला । जिसे अत्यधिक चोट पहुँची हो [को०] ।  
 अतितृष्ण<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ अधिक प्यासा । २ अत्यत लोभी [को०] ।  
 अतितृष्ण<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० १ तेज प्यास । अत्यधिक लोभ [को०] ।  
 अतित्रस्तु—वि० [सं०] अत्यधिक डरनेवाला [को०] ।  
 अतिथि—सज्ञा पुं० [सं०] १ घर में आया हुआ अज्ञातपूर्व व्यक्ति । वह जिसके आने का समय निश्चित न हो । अग्न्यागत । मेहमान । पाहुन । उ०—उस अनोखे अतिथि को आतिथ्य में चुपचाप ।—शकुं०, पृ० ८ । २ वह सन्यासी जा किमी म्यान पर एक रात से अधिक न ठहरे । ब्रह्म । ३ मूनि (जैनमाधु) । ४ अग्नि का एक नाम । ५ अयोध्या के राजा सुहोत्र जो कुश के पुत्र और रामचन्द्र के पौत्र थे । ६ यज्ञ में सोमलता को लानेवाला व्यक्ति ।  
 अतिथिक्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] आतिथ्य । अतिथि की आव-भगत [को०] ।  
 अतिथिगृह—सज्ञा पुं० [सं०] वह भवन जो केवल अतिथियों के ठहरने के लिये बना हो । अतिथिशाला [को०] ।  
 अतिथिग्व—सज्ञा पुं० [म०] १ आतिथ्य । २ राजा दिवोदास की उपाधि । उ०—राजा दिवोदाम अतिथियों का ऐसा स्वागत करता था कि उसे अतिथिग्व की उपाधि दी गई थी ।—हिंदु० मध्यता, पृ० ५६ ।  
 अतिथिदेव—वि० [म०] अतिथि को देवता के समान जानने और माननेवाला [को०] ।  
 अतिथिद्वेष—सज्ञा पुं० [सं०] अतिथि के प्रति घृणा का भाव [को०] ।  
 अतिथिधर्म—सज्ञा पुं० [सं०] आतिथ्य प्राप्त करने का अधिकार [को०] ।  
 अतिथिधर्मी—वि० [म० अतिथिधर्मिन्] आतिथ्य का अधिकारी [को०] ।  
 अतिथिपति—सज्ञा पुं० [सं०] आतिथ्य । मेजवान [को०] ।  
 अतिथिपूजन—सज्ञा पुं० [म०] १ 'अतिथिपूजा' । उ०—अतिथि-पूजन भली भाँति हुई (आ) और चलते समय मधुकर के हाथ गरम कर दिए ।—श्यामा०, पृ० ७६  
 अतिथिपूजा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अतिथि का आदर सत्कार । मेहमान-दारी । अतिथिसत्कार ।

विशेष—यह पंचमहायज्ञों में से एक है और गृहस्थ के किये नित्य कर्तव्य कहा गया है ।  
 अतिथिभवन—सज्ञा पुं० [सं० अतिथि + भवन] दे० 'अतिथिगृह' ।  
 अतिथियज्ञ—सज्ञा पुं० [सं०] अतिथि का आदर सत्कार जो पंच-महायज्ञों में पाँचवाँ है । नृयज्ञ । अतिथिपूजा । मेहमानदारी ।  
 अतिथिशाला—सज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'अतिथिगृह' [को०] ।  
 अतिथिसविभाग—सज्ञा पुं० [म०] जैन शास्त्र के अनुसार चार शिक्षाव्रतों में से एक जिसमें बिना अतिथि को दिए भोजन नहीं करते ।  
 विशेष—इसमें पाँच अतिचार हैं—(१) सचित निक्षेप (२) सचित पीहण (३) कालातिचार (४) परव्यपदेश मत्सर और (५) ग्रन्थोपदेश ।  
 अतिथिसत्कार—सज्ञा पुं० [म०] अभ्यागत अतिथि की आवभगत । मेहमान की खातिरदारी [को०] ।  
 अतिथिसत्क्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिसत्कार' ।  
 अतिथिसेवा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिसत्कार' ।  
 अतिदतुर—वि० [सं०] जिसके दाँत अधिक बड़े हो या मुँह में बाहर निकले हो [को०] ।  
 अतिदर्प<sup>१</sup>—वि० [सं०] अतिशय अभिमानी [को०] ।  
 अतिदर्प<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ अत्यधिक गर्व या अभिमान । २ एक रूप [को०] ।  
 अतिदर्शी—वि० [सं० अतिदर्शिन्] अधिक दूरदेश । अत्यत दूरदर्शी [को०] ।  
 अतिदाता—सज्ञा पुं० [सं० अतिदात्] अत्यधिक दान देनेवाला व्यक्ति [को०] ।  
 अतिदान—सज्ञा पुं० [सं०] १ अत्यधिक दान । २ अति उदारता [को०] ।  
 अतिदाह—सज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक ताप या जलन [को०] ।  
 अतिदिष्ट—वि० [सं०] १ जिसमें या जिसका अतिदेशन हुआ हो । २ जा अवधि, क्षेत्र, सीमा आदि से आगे बढ़ा हुआ हो । ३ प्रभावयुक्त । प्रभावित । ४ आश्रुष्ट । बिचा हुआ । ५ किसी अन्य की जगह पर रखा हुआ [को०] ।  
 अतिदीप्य<sup>१</sup>—वि० अतिशय प्रकाशमान [को०] ।  
 अतिदीप्य<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० लाल चित्रक का वृक्ष [को०] ।  
 अतिदुसह—वि० [सं०] जिसका सहना अत्यत कठिन हो । असह्य [को०] ।  
 अतिदुर्गत—वि० [सं०] जिसकी बहुत बुरी गति हो । अत्यत दुर्दशा ग्रस्त [को०] ।  
 अतिदुर्धर्ष—वि० [म०] १ जिसका दमन करना बहुत कठिन हो । २ अतिप्रबल । प्रचंड । बहुत उग्र । अत्यधिक उद्द [को०] ।  
 अतिदूर—वि० [सं०] दूर, काल या मवध आदि के विचार से बहुत दूरी या अंतर पर [को०] ।  
 अतिदेव—सज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ या देवता शर्वात् विष्णु, शिव ।  
 अतिदेश—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक स्थान के धर्म या नियम का दूसरे स्थान पर आरोपण । २ वह नियम जो साधारण नियम से

कुछ विशेष स्थानों में काम आवे। वह नियम जो अपने निदिष्ट विषय के अतिरिक्त दूसरे विषयों में भी काम आए। ३ विस्तारण (को०)। ४ भिन्न तथा विरोधी विषयों या वस्तुओं में कुछ विशेष तत्वों की होनेवाली समानता या सादृश्य। (को०)

विशेष—यह अतिदेश शास्त्र, कार्य, निमित्त, व्यपदेश और रूपभेद से पाँच प्रकार का कहा गया है। जैमिनि भीमासासून के सातवें और आठवें अध्याय में इसका विस्तृत विवेचन है।

अतिदेशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अतिदेश करने की क्रिया या भाव [को०]।

अतिदोष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा अवगुण या अपराध [को०]।

अतिद्वय—वि० [सं०] १ दोनो से आगे बढ़ा हुआ। २. अद्वितीय। अतुलनीय [को०]।

अतिधन्वा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अतिधन्वन्] १. अद्वितीय धनुर्धर या योद्धा। २. वह व्यक्ति जो मरुस्थल का अतिक्रमण कर गया हो। ३. एक वैदिक गादाय का नाम [को०]।

अतिधर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उत्कृष्ट धर्म [को०]।

अतिधृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ उन्नीस वर्ण के वृत्तों की सज्ञा। जैसे—शार्ङ्गलविक्रीडित। २ उन्नीस की संख्या [को०]।

अतिधेनु—वि० [सं०] अपनी गायों के कारण अत्यंत प्रसिद्ध [को०]।

अतिनाठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सकीर्ण नामक मिश्रित राग का एक भेद।

अतिनाभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हिरण्यक्ष दैत्य के नाँव पुत्रों में से एक।

अतिनाट्ट—वि० [सं०] भय से परे खनरे बाहर से बाहर [को०]।

अतिनिद्रा—वि० [सं०] १ अत्यंत निद्रालु। २ विना निद्रा का निद्राहीन [को०]।

अतिनिर्हारी—वि० [सं०] बहुत ही आकर्षक (गद्य) [को०]।

अतिनु—वि० [सं०] नाँका से पृथ्वी पर उतरा हुआ [को०]।

अतिनौ—वि० [सं०] दे० 'अतिन' [को०]।

अतिपचा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अति + पञ्चा पाँच] वर्ष की वय पूरी करनेवाली लड़की [को०]।

अतिपथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अतिपथ्य] सन्मार्ग। अच्छी राह। सुपथ।

अतिपटीक्षेप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाटक के अन्तर्गत पदों के उठाने या न उठाने का परित्याग [को०]।

अतिपतन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अतिपात'। २. भीमा से बाहर उड़ना [को०]। ३ गिरना [को०]। ३ अतिक्रमण [को०]। ४ भूल [को०]।

अतिपतित—वि० [सं०] १ अनिष्ठात। २ मर्यादा से च्युत। ३ भूला हुआ [को०]।

अतिपत्ति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अतिशयमण। २ समय का वीत जाना। ३ कार्य को पूर्ण न करना [को०]।

अतिपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकद वृक्ष [को०]।

अतिपथी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अति + पथिन्] सामान्य मार्ग से उत्तम मार्ग। सन्मार्ग [को०]।

अतिपद—वि० [सं०] १ पदरहित। जिसके पैर न हों। २. वर्ण-वृत्त के अनुसार अधिक पदवाली। जैसे, अतिपदा गायत्री या जगती [को०]।

अतिपल्ल—वि० [सं०] १ अतिष्ठात। २ विस्मृत। ३ वीता हुआ [को०]।

अतिपर—वि० [सं०] शत्रुओं को जीतनेवाला। जिन्होंने अपने शत्रुओं को परास्त किया हो। शत्रुजित।

अतिपर—सञ्ज्ञा पुं० भारी शत्रु। बड़ा चढा प्रतिद्वंद्वी।

अतिपरोक्ष—वि० [सं०] १ दृष्टि से बहुत दूर। अदृश्य। २ जो गुप्त न हो प्रकट [को०]।

अतिपाङ्कजवला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अतिपाण्डुकम्बला] जैन मतानुसार सिद्धशिला के दक्षिण के सिंहासन का नाम जिसपर तीर्थंकर बैठते हैं।

अतिपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अतिक्रम। अव्यवस्था। गड़बड़ी। २. बाधा। विघ्न। हानि। ३ वीतना। व्यतीत होना (काल या समय)। उ०—विद्याजर्जन के लिये प्राणपण से अतिपात-अर्घ्य आयु का किया।—प्रनामिका, पृ० १६६। ४ उपेक्षा। दुर्व्यवहार। (को०)। ५ विरोध (को०)। ६ लगातार होना या गिरना (को०)। ७. विध्वंस। नाश (को०)।

अतिपातक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र में कहे हुए नाँव पातकों में सबसे बड़ा पातक।

विशेष—पुरुष के लिये माता, बेटी और पत्नी के साथ गमन और स्त्री के लिये पुत्र, पिता और दामाद के साथ गमन अतिपातक है।

अतिपातित—वि० [सं०] १ स्वगिन। रोका हुआ। २ पूरी तरह से तोड़ा हुआ [को०]।

अतिपातित—सञ्ज्ञा पुं० हड्डी का पूरी तरह टूट जाना [को०]।

अतिपाती—वि० [सं० + अतिपातिन्] १. अतिपात करनेवाला। २ गति में आगे बढ़ जानेवाला [को०]।

अतिपात्य—वि० [सं०] कुछ विलंब से करने योग्य। स्थगित कर देने योग्य [को०]।

अतिपाप—वि० [सं० अति + पाप] महापापी। उ०—कोन है मुक्त सा पतित अतिपाप।—साकेत, पृ० १८१।

अतिपुरुष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] महापुरुष। वीर पुरुष [को०]।

अतिपूरुष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिपुरुष' [को०]।

अतिप्रकाश—वि० [सं०] १. प्रसिद्ध प्राप्त। अत्यंत प्रसिद्ध। २. बुरे कार्यों के लिये मण्डूर। कुख्यात [को०]।

अतिप्रकृत—वि० [सं०] प्रकृत या सामान्य रूप से अधिक बढ़ा हुआ [को०]।

अतिप्रवध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अतिप्रवन्ध] अविच्छिन्नता। निरंतरता [को०]।

अतिप्रभञ्जनवात—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अतिप्रमञ्जनवात] अत्यंत प्रचंड और तीव्र वायु जिसकी गति एक घंटे में ४० या ५० कोस है।

अतिप्रमाण—वि० [सं०] १. प्रमाण से परे। जो प्रमाण का अतिक्रमण कर गया हो। २. बहुत अधिक प्रमाणयुक्त [को०]।

अतिप्रवृद्ध—वि० [सं०] अत्यधिक अहंकारी। २. बहुत अधिक बढ़ा हुआ [को०]।

अतिप्रश्न--[पुं० सं०] अमर्यादित प्रश्न । उपर्युक्त उत्तर प्राप्त होने पर भी किया गया प्रश्न । अनावश्यक प्रश्न [को०] ।

अतिप्रसङ्ग--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अतिप्रसङ्ग] १ अत्यधिक आसक्ति २ बहुत ही घनिष्ठ सवध । ३ धृष्टता । ढिठाई । अशिष्टता । ४ किसी नियम की अतिव्याप्ति । ५ प्रचुरता । आविष्य । विस्तार [को०] ।

अतिप्रसक्ति--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिप्रसङ्ग' [को०] ।

अतिप्राण--सञ्ज्ञा पुं० [मं०] अमामान्य जीवन । प्रसाधारण व्यक्तित्व [को०] ।

अतिप्रौढा--सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] विवाह करने योग्य लड़की । युवावस्था प्राप्त कन्या [को०] ।

अतिवरवै--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अति + हिं० वरवै] वरवै छंद का एक भेद । विशेष--इसके पहले और तीसरे चरणों में वारह तथा दूसरे और चौथे चरणों में नौ मात्राएँ होती हैं । इसके विषम पदों के आदि में जगण न आना चाहिए और सम पदों के अंत का वर्ण लघु होना चाहिए ।

अतिवरसण्ण<sup>७</sup>--सञ्ज्ञा पुं० [मं० अतिवर्षण] मेघमाला । घटा (डि०) ।

अतिवल<sup>१</sup>--वि० [नं०] प्रवल । प्रचंड । वली । उ०--नारी अतिवल होत है, अपने कुल को नाम ।--गिरधर (शब्द०) ।

अतिवल<sup>२</sup>--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अत्यधिक शक्ति । २ शक्तिसंपन्न सेना [को०] ।

अतिवला--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्राचीन युद्धविद्या ।

विशेष--इस विद्या के सीखने से श्रम और ज्वर की बाधा का भय नहीं रहता था और पराक्रम बढ़ता था । विश्वामित्र ने इसे रामचंद्र को सिखाया था ।

२ एक ओपधि ! कौंहो या ककही नामक पौधा ।

अतिवात--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अतिवात] तेज हवा । तूफान । उ०--प्रतिमा रुद्धि पविपात नभ अतिवात वह डोलति मही ।--मानस ६।१००।

अतिवालक<sup>१</sup>--वि० [सं०] बालको जैसा । बच्चों जैसा । बाल्य [को०] ।

अतिवालक<sup>२</sup>--सञ्ज्ञा पुं० छोटी वय का बालक । शिशु [को०] ।

अतिवाला--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दो वर्ष की गाय (को०) ।

अतिवाहु<sup>१</sup>--वि० [मं०] १. असाधारण बाहोवाला । आजानुबाहु [को०] ।

अतिवाहु<sup>२</sup>--सञ्ज्ञा पुं० १ चौदहवें मन्वन्तर के एक ऋषि का नाम । २ एक गधर्व का नाम [को०] ।

अतिब्रह्मचर्य<sup>१</sup>--वि० [नं०] ब्रह्मचर्य व्रत का अतिक्रमण करनेवाला । ब्रह्मचर्य व्रत को तोड़नेवाला [को०] ।

अतिब्रह्मचर्य<sup>२</sup>--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मचर्य व्रत का अत्यधिक पालन [को०] ।

अतिभर--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत अधिक बोझ । उ०--मति डिंग पर दैव सब ब्रज जन भयो है हाथ पै अतिभर ।--नंद० प्र०, पृ० ३६२ । २ दे० 'अतिभार' [को०] ।

अतिभव--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आगे बढ़ जाना । पराजित करना । विजय करना [को०] ।

अतिभार--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अत्यधिक बोझ । २ गति । चाल । ३ वाक्य की अस्पष्टता [को०] ।

अतिभारग<sup>१</sup>--वि० [सं०] अधिक मात्रा में बोझ ढोनेवाला [को०] ।

अतिभारग<sup>२</sup>--[मं०] खच्चर [को०] ।

अतिभारोपण--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार पशुओं पर अधिक बोझ लादने का अत्याचार ।

अतिभारिक--वि० [सं०] बहुत भारी [को०] ।

अतिभी--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] इद्र के वज्र की ज्वाला । विद्युत की चमक [को०] ।

अतिभू<sup>१</sup>--वि० [सं०] सबको पार कर जानेवाला [को०] ।

अतिभू<sup>२</sup>--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु का एक नाम । २ दे० 'अतिभव' [को०] ।

अतिभूमि--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधिकता । २ श्रेष्ठता । ३ मर्यादा का अतिक्रमण । ४ अधिक विस्तृत भूमि [को०] ।

अतिभोग--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपयुक्त या नियत समय के अतिरिक्त भी किसी वस्तु अथवा विषय का उपभोग । २ स्वत्व की भाँति किसी संपत्ति का बहुत दिनों तक उपयोग [को०] ।

अतिभोजन--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आवश्यकता से अधिक खाना । पेटूपन [को०] ।

अतिमगल्य<sup>१</sup>--वि० [सं० अतिमङ्गल्य] अत्यधिक शुभ [को०] ।

अतिमगल्य<sup>२</sup>--सञ्ज्ञा पुं० विल्व वृक्ष [को०] ।

अतिमत--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सर्वमान्य समझा जानेवाला विचार या सिद्धांत [को०] ।

अतिमति<sup>१</sup>--वि० [सं०] अत्यधिक घमडी । अहंकारी । उ०--जो अतिमति चाहसि सुगति तो तुलसी कर प्रेम ।--सं० सप्तक, पृ० २० ।

अतिमति<sup>२</sup>--सञ्ज्ञा स्त्री० १ अहंकार । अत्यधिक गर्व । २ हठ [को०] ।

अनिमध्यदिन--सञ्ज्ञा पुं० [मं० अतिमध्यन्दिन] प्रखर मध्याह्न । खड़ी दुपहरी [को०] ।

अतिमर्त्य--वि० [सं०] १ इस लोक से परे । अलौकिक । २ मानवीय शक्ति से परे । अमानुषिक [को०] ।

अतिमर्श--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अत्यधिक संपर्क । अत्यंत निकट का सवध [को०] ।

अतिमास--वि० [सं०] अत्यधिक मासवाला । [को०] ।

अतिमा--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अभिमान] अपरिमेय वह मन स्थिति जो आज के भौतिक, मानसिक, सांस्कृतिक परिवेश को अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो । उ०--यह अतिमा, तन से जा बाहर, जगजीवन की रज लिपटाकर ।--अतिमा, पृ० ४४ ।

अतिमात्र--वि० [मं०] अतिशय । बहुत । ज्यादा । मात्रा से अधिक ।

अतिमान<sup>१</sup>--वि० [मं०] अपरिमेय । अति विस्तृत [को०] ।

अतिमान<sup>२</sup>--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिमति' [को०] ।



अतिमानव—सज्ञा पुं० [सं०] अलौकिक शक्ति तथा गुणों में सन्न मनोप्य [को०] ।

अतिमानवी—वि० [सं०] अतिमानव + ई (प्रत्य०) ] मानव से संवध न रखनेवाली । अलौकिक । देवी । उ०—उनकी अत्यन्त हार्दिक नम्रता अतिमानवी थी ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २५६ ।

अतिमानुष<sup>१</sup>—वि० [सं०] मनुष्य की शक्ति से बाहर । अमानुषी । देवी अतिमानुष<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १० 'अतिमानव' [को०] ।

अतिमाय—वि० [सं०] जो मायावी न हो । माया से रहित । वीतराग मायातिक्रान्त [को०] ।

अतिमित<sup>१</sup>—वि० [सं०] आरिभिन । अतुल्य । वेप्रदाज । बहुत अधिक । वेहिमात्र । वेठिकाना ।

अतिमित<sup>२</sup>—वि० [सं०] जो तिमित या गीना न हो [को०] ।

अतिमित्र—सज्ञा पुं० [सं०] अत्यन्त घनिष्ठ मित्र । २ अत्यधिक श्रम ग्रह [को०] ।

अतिमिर्मिर—वि० [सं०] तेजी से पलकें गिरानेवाला [को०] ।

अतिमुक्त<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जिसकी मुक्ति हो गई हो । निर्वाण प्राप्त । २ नि पग । विप्रयामनारहित । वीतराग ।

अतिमुक्त<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ माधवी नता । २ तिगुना । निरिच्छ । ३ मर्यादा का पौत्र ।

अतिमुक्तक—सज्ञा पुं० [सं०] १० 'अतिमुक्त<sup>२</sup>' [को०] ।

अतिमुक्ति—सज्ञा पुं० [सं०] परम निर्वाण । मोक्ष [को०] ।

अतिमुशल—सज्ञा पुं० [सं०] किसी नक्षत्र में मंगल अस्त हो और उसके सत्रहवें या अठारहवें नक्षत्र से अनुवक्र हो तो उस वक्र को अतिमुशल कहते हैं ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इससे चोर और शस्त्र का मय तथा अनावृष्टि होती है ।

अतिमूत्र—सज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में आत्रेय मत के अनुसार छह प्रकार के प्रमेहों में से एक । बहुमूत्र ।

विशेष—इसमें अधिक मूत्र उतरता है और रोगी क्षीण होता जाता है । इसे वतुमूत्र भी कहते हैं ।

अतिमैथुन—सज्ञा पुं० [सं०] अत्यधिक सभोग [को०] ।

अतिमृत्यु—सज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष । मुक्ति ।

अतिमोदा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ सुगन्ध की बहुत अधिक मात्रा । २ नवमलिनका । नेवारी । मोगरी ।

अतियव—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जो [को०] ।

अतियात—वि० [सं०] बहुत तेज चलनेवाला । तीव्र गतिवाला [को०] ।

अतियोग—सज्ञा पुं० [सं०] १ अधिकता । अतिशयता । २. किसी मिश्रित औषधि में किसी द्रव्य की नियत मात्रा से अधिक मिलावट ।

अतिरंजन—सज्ञा पुं० [सं०] अनिरंजन १० 'अतिरंजना' ।

अतिरंजना—सज्ञा स्त्री० [सं०] अनिरंजना अत्युक्ति । बड़ा चढाकर कहने की रीति ।

अतिरंजित—वि० [सं०] अतिरंजित १ अतिरंजना से युक्त । अत्युक्तिपूर्ण । उ०—वह अतिरंजित सी तूतिका चिनेगी सी फिर भी कुछ कम थी ।—नहर, पृ० ७१ । २ अत्यन्त रागमय । उ०—देखा मनु ने वह अतिरंजित विजय विश्व का नव एकात ।—कामायनी, पृ० १४ ।

अतिरक्त—वि० [सं०] १ बहुत अधिक लाल । २ अत्यधिक अनुरक्त [को०] ।

अतिरक्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की एक जीभ का नाम । अग्नि की मात जीभों में से एक । [को०] ।

अतिरथ—सज्ञा पुं० [सं०] १० 'अतिरथी' [को०] ।

अतिरथि(पु)—सज्ञा पुं० [सं०] अतिरथी १० 'अतिरथी' । उ०—अमरन करि जु न जीते जाही । भीषमादि अतिरथि जिति माही ।—नद ग्र०, पृ० २१६ ।

अतिरथी—सज्ञा पुं० [सं०] अतिरथिन् रथ पर चढ़कर लड़नेवाला योद्धा । वह जो अकेले रथियों में लड़ मरे । उ०—अतिरथी महारथी सरव कालानल चागा ।—राम० धर्म० पृ० १४७ ।

अतिरभन—सज्ञा पुं० [सं०] अमामान्य गति । अत्यधिक शीघ्रता [को०] ।

अतिरसा—सज्ञा स्त्री० [सं०] विभिन्न प्रकार के पौधों के नाम जैसे, मूक, रासना और क्लीतनक [को०] ।

अतिराग—सज्ञा पुं० [सं०] प्रबल उत्सुकता [को०] ।

अतिरात्र—सज्ञा पुं० [पुं०] १ ज्योतिषोम नामक यज्ञ का एक गौण अंग । २ वह मन्त्र जो अतिरात्र यज्ञ के अन्त में गाया जाय ३ चाक्षुष मनु के एक पुत्र का नाम । ४ मध्य रात्रि ।

अतिराष्ट्र—सज्ञा पुं० [सं०] पुण्य के अनुसार एक नाग या मर्ग ।

अतिरिक्त<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं०] सिवाय । अनाया । जैसे—इसे हमारे अतिरिक्त कोई नहीं जानता (शब्द०) ।

अतिरिक्त<sup>२</sup>—वि० १ अधिक । ज्यादा । बढ़ती । शेष । वचा हुआ । जैसे खाने पहनने से अतिरिक्त धन को अच्छे काम में लगाओ (शब्द०) । २ न्याया । अलग । जुदा । भिन्न । जैसे,—जो सब में पूर्णपुरुष और जीव में अतिरिक्त है वही जगत् का बनानेवाला है (शब्द०) ।

अतिरिक्तकवला—सज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मत के अनुसार मिद्धशिला के उत्तर का मिहासन जिसपर तीर्थंकर बैठते हैं ।

अतिरिक्तपत्र—सज्ञा पुं० [सं०] वह विज्ञापन समाचार या सूचना आदि जो अलग से छापकर किसी समाचार पत्र के साथ बाँटा जाय । विशेष पत्र । कोडपत्र ।

अतिरिक्तलाभ—सज्ञा पुं० [सं०] अतिरिक्त + लाभ वह लाभ जो नियत या उचित मात्रा में अधिक हो ।

अतिरुचिर—वि० [सं०] अत्यधिक प्रिय [को०] ।

अतिरुचिरा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अनिजगती और चूडिनिका नामक दो वृत्त [को०] ।

अतिरुक्ष<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ बहुय रूखा । २ क्रूर । ३ प्रेमहीन । ४ अत्यधिक स्नेही [को०] ।

अतिरुक्ष<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० एक प्रकार का अन्न [को०] ।

अतिरूप<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ आकृतिहीन, जैसे वायु । २ परम रूपवान । अत्यंत सुंदर । ३. रूप में परे, जैसे ईश्वर [को०] ।

अतिरूप<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० अद्वितीय सौंदर्य [को०] ।

अतिरेक—सज्ञा पुं० [मं०] १ आवश्यकता से अधिक होने का भाव, गुण या स्थिति । २ आधिक्य । अतिजयता । उ०—प्राणो मे विस्मृति है उर मे सुख श्री का अतिरेक । ३ भेद । अंतर [को०] ।

अतिरोग—सज्ञा पुं० [मं०] राजयक्ष्मा । क्षयी राग ।

अतिरोमश<sup>१</sup>—वि० [मं०] बहुत अधिक बालोवा । [को०] ।

अतिरोमश<sup>२</sup>—वि० १ एक प्रकार का जंगली बकरा । २ एक तरह का बड़ा बदर [को०] ।

अतिरोहण—सज्ञा पुं० [मं०] जीवन । जिंदगी ।

अतिलघन—सज्ञा पुं० [मं० अतिलघन] १ दीर्घ काननक का उपवास । २ अतिक्रमण । उल्लघन [को०] ।

अतिलघी—वि० [मं० अतिलघन] भूल करनेवाला [को०] ।

अतिलोमश—वि०, सज्ञा पुं० [सज्ञा] २० 'अतिरोमश' [को०] ।

अतिलोमशा—सज्ञा स्त्री० [मं०] नीलबुट्टना, शखवेल नाम का पौधा [को०] ।

अतिलौल्य—सज्ञा पुं० [मं०] १ उत्कट इच्छा । अतिलोभ । अनि-चावल्य । २ जैन सिद्धांत के अनुसार भोग के समय अधिक ग्रामवित । उ०—मोगोपभोग व्रत के भी पांच अतिचार हैं—अनुप्रेक्षा, अनुस्मृति, अतिलौल्य, अतितृष्णा और अनुभव । --हिंदू सभ्यता, पृ० २३१ ।

अतिवत(उ)—वि० [सं० अत्यंत, प्रा० अतिवत, अतिवत] २० 'अत्यंत' । उ०—फिरि बेपिय रवन्न मुप । अतिवत दुपी दुप मानी मुप ।—पृ० १०, ६१।२०६५ ।

अतिवक्ता—वि० [मं० अतिवक्तृ] बहुत अधिक बोलनेवाला । वक्ता-वादी [को०] ।

अतिवक्त्रा—सज्ञा स्त्री० [मं०] देवल के मत से बुध ग्रह की चार गतियों में से एक ।

विशेष—इसका एक राशि परवर्तमान काल २४ दिन का होता है और यह धन का नाश करनेवाली मानी जाती है ।

अतिवय—वि० [मं० अतिवयस्] १ अतिशय वृद्ध । पुरानी वय का । ३ कई वर्षों आगे का [को०] ।

अतिवर्तन—सज्ञा पुं० [मं०] १ क्षमा करने योग्य अपराध । २ दंड से छुटकारा । ३ अधिक आगे बढ़ जाने की क्रिया या भाव । ४ किसी वस्तु का बहुत अधिक मात्रा में होनेवाला उपयोग या व्यवहार [को०] ।

अतिवर्ती—वि० [मं० अतिवर्तिन्] १ अतिक्रमण करनेवाला । २ सबसे आगे बढ़ जानेवाला । ३ क्षम्य अपराध के दोष-वाला [को०] ।

अतिवर्तुल<sup>१</sup>—वि० [सं०] अत्यधिक गोल [को०] ।

अतिवर्तुल<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० एक प्रकार का अन्य । कलाय [को०] ।

अतिवात—सज्ञा पुं० [सं०] अधिक वेगपूर्ण वायु । प्रचंड आंधी [को०] ।

अतिवाद—सज्ञा पुं० [सं०] १ खरी बात । सच्ची बात । २. परुष वचन । ३. बड़ी चढ़ी बात । झींग । ४. झोझिय या मर्दा

का अतिक्रमण करे जाने का सिद्धांत । उ०—छोड़कर जीवन्त के अतिवाद मध्य पथ से जो मुक्ति सुधार ।—लहर, पृ० १३ ।

अतिवादिक—वि० [मं०] अतिवाद सन्तुष्टि-[को०] ।

अतिवादी—वि० [सं० अतिवादिन्] १ सत्यवक्ता । खरी बात कहने-वाला । २ कटुवादी । ३ बड़ बड़कर बात करनेवाला । ४ मारनेवाला । ४ परपक्ष का खंडन कर अपने मत को स्थापित करनेवाला [को०] ।

अतिवास—सज्ञा पुं० [सं०] आद के एक दिन पूर्व किया जानेवाला उपवास [को०] ।

अतिवाह—सज्ञा पुं० [सं०] १ सूक्ष्म शरीर का अन्य शरीर में प्रवेश करना । २ परलोकवास । ३. आवश्यकता में अधिक पानी को बाहर निकालनेवाली नाली [को०] ।

अतिवाहक—सज्ञा पुं० [सं०] सूक्ष्म शरीर को अन्य देह के अंतर्गत प्रवेश कराने में सहायक देवता । [को०] ।

अतिवाहन—सज्ञा पुं० [सं०] १ विताना । गुजारना । २. बहुत अधिक बोझ ढोना । ३. भोजना । [को०] ।

अतिवाहिक—सज्ञा पुं० [सं०] १ लिंग शरीर । २ पाताल निवासी ।

अतिवाहित<sup>१</sup>—वि० वित्तया हुआ [को०] ।

अतिवाहित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० दे० 'अतिवाहिक' [को०] ।

अतिविकट<sup>१</sup>—वि० [सं०] अतिशय भीषण [को०] ।

अतिविकट<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० दुष्ट, हाथी [को०] ।

अतिविपिन—वि० [सं०] १ घने जंगलोवाला । २ प्रवेश में कठिन या दुर्गम [को०] ।

अतिविश्रब्ध नवोद्वा—सज्ञा स्त्री० [सं०] रसमंजरी के अनुसार वह मध्या नायिका जिसे प्रति पर अतिशय प्रेम हो ।

विशेष—यह नायिका धैर्ययुक्त, अपराधी नायक के प्रति व्यंग्य और अधीर अपराधी नायक के प्रति कटु वचन का व्यवहार करती है ।

अतिविष<sup>१</sup>—वि० [सं०] अत्यधिक विषवाला । बहुत अधिक जहरीला । विषला ( साँप ) [को०] ।

अतिविष<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० दे० 'अतिविषा' ।

अतिविषा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक जहरीली औषधि । अतीम ।

अतिविस्तार—सज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक विस्तार । व्याप्ति [को०] ।

अतिहिवृत—वि० [सं०] दृढ़ । पुष्ट । मजबूत ।

अतिवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आगे बढ़ जाना । २ अतिक्रमण । ३ अतिरजना । ४ वेग से निकलना ( रक्त )

अतिवृद्ध<sup>१</sup>—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अतिवृद्धा] १ बहुत अधिक बूढ़ा । २ अधिक वय का [को०] ।

अतिवृद्ध<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० तत्र में प्रयुक्त एक मंत्र [को०] ।

अतिवृद्धा—सज्ञा स्त्री० [सं०] घास चवाने तक में असमर्थ अत्यधिक बूढ़ी गाय [को०] ।

अतिवृष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] ६ ईतियों में से एक । पानी का बहुत बरसना, जिससे खेती को हानि पहुँचे । अत्यंत वर्षा । उ०—अनावृष्टि, अतिवृष्टि होती नहीं यह जानत सब कोई ।—सू०, १०।४१६१ ।

अतिवेगित—वि० [सं०] १ तेजी से चनाया हुआ। २ तीव्र गति से चलनेवाला [को०]।

अतिवेध—सज्ञा पुं० [सं०] १ अधिक निरुद्ध का सबध। २ दशमी और एकादशी का योग [को०]।

अतिवेल—वि० [सं०] १. अत्यंत। असीम। वेहद। २ मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला (को०)। ३ उद्वेलित (को०)।

अतिवेला—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विलव। देर। २ अनुपयुक्त समय [को०]।

अतिव्यथन—सज्ञा पुं० [सं०] तीव्र यातना अत्यधिक पीड़ा [को०]।

अतिव्यथा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिव्यथन'।

अतिव्यय कर्म—सज्ञा पुं० [सं०] फजूलखर्ची का काम।

अतिव्याप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय में एक लक्षण का एक दोष। किसी लक्षण या कथन के अतर्गत लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तु के आ जाने का दोष।

विशेष—जहाँ लक्षण या लिंग लक्ष्य या लिंगी के सिवाय अन्य पदार्थों पर भी घट सके वहाँ 'अतिव्याप्ति' दोष होता है। जैसे—'चोपाए सब पिडज है', इस कथन में मगर और घड़ियाल आदि चार पैरवाले अडज भी आ जाते हैं। अतः इसमें अतिव्याप्ति दोष है।

अतिशक्करी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १५ वर्ण के वृत्तों की सज्ञा। इसके संपूर्ण भेद ३२७६८ हो सकते हैं। उ०—पद्रह अतिशक्करी सहस्र वत्तीस सात सैं अठसठि कीय।—भिखारी० ग्रं० भा० १, पृ० २३६।

अतिशय<sup>१</sup>—वि० [सं०] बहुत। ज्यादा। अत्यंत।

अतिशय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० प्राचीन शास्त्रकारों के अनुसार। एक अलंकार।

विशेष—इसमें किसी वस्तु की उत्तरोत्तर संभावना या असंभावना दिखाई जाती है जैसे—'हूँ न, होय तो फिर नहीं, फिर तो विन फलवान। सत्पुरुषन को कोप है, खल की प्रीति समान, (शब्द०)। कोई कोई इस अलंकार को अधिक अलंकार के अंतर्भूत मानते हैं।

अतिशयता—सज्ञा स्त्री० [सं० अतिशयता] आधिक्य। प्राचुर्य। बहुतायत। उ०—स्वर्गिक सुख की सी आभास अतिशयता में अचिर महान्।—पल्लव, पृ० ३२।

अतिशयन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिशयता'।

अतिशयनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रलेखा नामक एक छंद [को०]।

अतिशय्युक्तु—वि० [सं०] अति की ओर वा आगे बढ़ जाने की चेष्टा करनेवाला [को०]।

अतिशयित—वि० [सं०] १ अत्यधिक। २ आगे बढ़ा हुआ [को०]।

अतिशय—वि० [सं० अतिशयिन्] १ प्रधान। श्रेष्ठ। २ बहुत अधिक [को०]।

अतिशयोक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहना। २, एक अलंकार।

विशेष—इसमें उपमान से उपमेय का निगूरण लोकमीमा का उल्लंघन प्रधान रूप दिखाया जाता है। जैसे—'गोपिन के भंसुवान के नीर पनारे भए पुनि ह्वै गए नारे। नारे भए नदियाँ

वडिकै, नदियाँ नद ह्वै गडँ काटि किनारे। वेगि चलो तो चलो ब्रज में कवि तोख कहैं ब्रजराज हमारे। वे नद चाहत सिंधु भए अरु सिंधु ते ह्वै हैं हलाहल मारे' (शब्द०)। उनके पाँच मुख्य भेद माने गए हैं, यथा—(१) स्वकानिश्चयोक्ति (२) भेदकानिश्चयोक्ति, (३) मवधानिश्चयोक्ति (४) अमवधानिश्चयोक्ति और (५) पंचम भेद के अतर्गत अरुमानिश्चयोक्ति, चालानिश्चयोक्ति तथा अत्यंतानिश्चयोक्ति हैं।

अतिशयोपमा—सज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का भेद।

विशेष—इसमें यह दिखाया जाता है कि कोई वस्तु मदा अपने विषय में एक है, दूसरी वस्तु में उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। जैसे—'केसोदाम प्रगट प्रकास सो अकास पुनि, ईम हूँ के भीम रजनीस अवरेखिए। थल थल जल जल अचल अमल अति, कोमल कमल बहु वरन विनेखिए। मुकुर कठोर बहु नाहिने अचल जम वमुधा सुधा हूँ निय अघरन लेखिए। एकरस एकरूप जाकी गीता सीता चुनि, तेरो सो वदन तैनी तोही विषे देखिए।—केशव ग्रं०, अ० १, पृ० १६२।

अतिशस्त्र—वि० [सं०] शस्त्र में भी तेज या बड़ा हुआ [को०]।

अतिशायन—सज्ञा पुं० [सं०] १ प्रधानता। श्रेष्ठता। २ आधिक्य। ३ आगे बढ़ जाना [को०]।

अतिशायी—वि० [सं० अतिशायिन्] १ प्रधान। श्रेष्ठ। २ अत्यधिक। आगे बढ़ जानेवाला [को०]।

अतिशायनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृत्त [को०]।

अतिशीत—सज्ञा पुं० [सं०] ठंड का अतिक्रमण। मयकर जाड़ा [को०]।

अतिशीलन—सज्ञा पुं० [सं०] अभ्यास। मशक। बारबार मनन या संपादन।

अतिशूद्र—सज्ञा पुं० [सं०] वह शूद्र जिसके हाथ का जल उच्चवर्ण के लोग न ग्रहण करें। अत्यज्ञ।

अतिशेष—सज्ञा पुं० [सं०] बहुत थोड़ा बचा हुआ अण [को०]।

अतिश्रुत—वि० [सं० अति + श्रुत] अतिप्रसिद्ध। विख्यात। उ०—माधव ब्रह्मचारी ने ज्योंही वह अतिश्रुत नाम सुना वह अचक-चाकर अवपाली की ओर ताकता रह गया।—वै० न०, पृ० २५५।

अतिश्रेष्ठ—वि० [सं०] सर्वोत्कृष्ट। सबसे उत्तम [को०]।

अतिश्रव—वि० [सं० अतिश्रवन्] कुत्तों से तेज दौड़नेवाला सूअर। उ०—जो सूकर अपनी द्रुतगति से कुत्तों को बहुत पीछे छोड़ देते वे अतिश्रव पदवी के अधिकारी होते थे।—संपूर्ण अभि० ग्रं०, पृ० २४८।

अतिसव—सज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा या आज्ञा का भंग करना। विधि या आदेशविरुद्ध आचरण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अतिसवान—सज्ञा पुं० [सं० अतिसवान] १ अतिक्रमण। २ विश्वासघात। धोखा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अतिसंधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अतिसन्धि] १ सामर्थ्य से अधिक सहायता देने की शक्ति। २ एक मित्र की सहायता से दूसरे मित्र या सहायक की प्राप्ति [को०]।

अतिसंधित—वि० [सं० अतिसन्धित] १ अतिश्रुत। २ धोखा खाया हुआ। जिसके साथ विश्वामयान किया गया हो [को०]।

अतिसंध्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अतिमन्ध्या] सूर्योदय के कुछ पूर्व और सूर्यास्त के कुछ बाद का समय [को०]।

अतिसं०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अतसी'। उ०—पाँवरी स्थाम मूरति सुवर अतिसं पुहुप समान वर।—पृ० रा०, २।३४७।

अतिसक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यधिक अनुरक्ति। विशेष आशक्ति [को०]।

अतिसय०—वि० [म० अतिशय] दे० 'अतिशय'। उ०—रहे मोनवी साहव जहाँ के अतिशय सज्जन।—प्रेमघन, पृ० २०३।

अतिसर<sup>१</sup>—वि० [म०] अतिक्रमण करनेवाला। सबसे आगे बढ़ जानेवाला। नेना [को०]।

अतिसर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० प्रयास। चेष्टा। प्रयत्न [को०]।

अतिसर्ग<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अभिलाषा पूर्ण करना। देना। २ इच्छा अनुसार काम करने की आज्ञा देना। ३ पृथक् करना [को०]।

अतिसर्ग<sup>२</sup>—वि० १ स्थायी। नित्य। २ मुक्त [को०]।

अतिसर्जन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अधिक दान। दान। २ उदारता। त्याग [को०]। ३. धोखा। वचना [को०]। ४ पार्थक्य। विलगाव [को०]। ५ वध [को०]।

अतिसर्पण—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ तीव्र गति। बहुत तेज चलना। २ गर्भाशय में बच्चे का धवर उधर हिलना डुलना [को०]।

अतिसर्व<sup>१</sup>—वि० [सं०] दे० 'अतिश्रेष्ठ' [को०]।

अतिसर्व<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० ईश्वर [को०]।

अतिसावत्सर—वि० [सं०] एक वर्ष से अधिक का [को०]।

अतिसामान्य<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] जो बात वस्तु के अभिप्रेत अर्थ का अतिक्रमण या उल्लंघन करे।

विशेष—इसमें दो दिन गोमूत्र, दो दिन गोबर, दो दिन दूध, दो दिन दही, दो दिन घी और दो दिन कुशा का जल पीकर तीन दिन तक उपवास करने का विधान है।

अतिसावत्सर—वि० [सं०] एक वर्ष से अधिक का [को०]।

अतिसामान्य<sup>२</sup>—वि० अत्यंत साधारण। मामूली। सहज।

अतिसाम्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] मधुपिष्ट नामक पीछा [को०]।

अतिसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अधिक दस्त होने का एक रोग।

विशेष—इसमें मल बढ़कर उदरान्न को मद करके शरीर के रसों को लेता हुआ बार-बार निकलता है। इसमें आमाशय की भीतरी झिल्लियों में शोथ हो जाने के कारण लाया हुआ पदार्थ नहीं ठहरता और अंतर्द्वियों में से पतले दस्त के रूप में निकल जाता है। यह भारी, चिकनी, रूखी, गर्म पतली चीजों के खाने से, एक भोजन के पचे बिना फिर भोजन करने से, बिप से, भय और शोक से, अत्यंत मद्यपान से तथा कृमिदोष

से उत्पन्न होता है। वैद्यक के अनुसार इसके छह भेद हैं—(१) वायुजन्य, (२) पित्तजन्य (३) कफजन्य (४) सनिपातजन्य, (५) शोकजन्य और (६) आमजन्य।

मुहा०—अतिसार होकर निकलना = दस्त के रास्ते निकलना।

किसी न किसी प्रकार नष्ट होना। जैसे—'हमारा जो कुछ तुमने खाया है वह अतिसार होकर निकलेगा' (शब्द०)।

अतिसारकी—वि० [म० अतिसारकिन्] अतिसार से पीड़ित। अतिसार का रोगी [को०]।

अतिसारी—वि० [सं० अतिसारिन्] दे० 'अतिसारकी' [को०]।

अतिसी०—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अतसी] तीसी। अलसी। उ०—अतिसी कुसुम तन, दीर्घ चचल नैन, मानौ रिस भरि के लरति जुग भखियाँ।—सूर०, १०।१३८५।

अतिसृष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कृष्ट रचना [को०]।

अतिसं०—वि० [हिं०] दे० 'अतिशय'। उ०—कह्यो हरि कै मय रवि ससि फिरै। वायु वेग अनिस नहि करै।—सूर० ३।१३।

अतिसौरभ<sup>१</sup>—वि० [सं०] अत्यधिक सुगंधित [को०]।

अतिसौरभ<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ अत्यधिक सुगंध। २ आम [को०]।

अतिसीहित्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अधिक मात्रा में भोजन करना [को०]।

अतिस्थूल<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ बहुत मोटा। २ मोटीबुद्धिवाला। मूर्ख।

अतिस्थूल<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० भेद रोग का एक भेद जिसमें चरबी के बढ़ने से शरीर अत्यंत मोटा हो जाता है।

अतिस्पर्श<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ कजूस। २ नीच प्रवृत्ति का अनुदार [को०]।

अतिस्पर्श<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] व्याकरण में उच्चारण करते समय जीभ और तालु का अत्यल्प स्पर्श [को०]।

अतिस्वप्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत अधिक स्वप्न देखना। २ अत्यधिक निद्रा [को०]।

अतिहत—वि० [सं०] १ पूर्णतया नष्ट किया हुआ। २ अचल। स्थिर [को०]।

अतिहसित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हास के छह भेदों में से एक जिसमें हँसने वाला ताली पीटे, बीच-बीच में अल्पवचन बोले, उसका शरीर कपि और उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े।

अतीन्द्रिय<sup>१</sup>—वि० [सं० अतीन्द्रिय] जो इन्द्रियज्ञान के बाहर हो। जिसका अनुभव इन्द्रियों द्वारा न हो। अगोचर। अप्रत्यक्ष। अव्यक्त। उ०—एक अतीन्द्रिय स्वप्नलोक का मधुर रहस्य उलभता था।—कामायनी, पृ० ३५।

अतीन्द्रिय<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ आत्मा। २ प्रकृति। ३ मन [को०]।

अती—वि० [सं०] दे० 'अति'। [को०]।

अतीचार—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'अतिचार' [को०]।

अतीत<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ गत। व्यतीत। बीता हुआ। गुजरा हुआ। भूत। उ०—चिन्ता करत हूँ मैं जितनी उस अतीत की, उस सुख की।—कामायनी, पृ० ६। २ निर्लेप। असंग। विरक्त। पृथक्। गुदा। अलग। न्यारा। उ०—अनि धनि साँई तू बड़ा, तेरी अनुपम रीत। सकल भुवनपति साइयाँ हूँ केर है अतीत।—कवीर (शब्द०)। ३ मृत। मरा हुआ।

अतीत<sup>२</sup>—क्रि० वि० परे । बाहर । उ०—गुन अतीत अतीत प्रवि-  
नासी सो ब्रज मे खेलत सुखरामी ।—सूर (शब्द०) ।

अतीत<sup>३</sup>—सज्ञा पु० वीतराग सन्यासी । यति । विरक्त साधु । उ०—  
(क) अजर धान्य अतीत का, गृही करै जु अहार । निश्चय होय  
दरिद्री, कहै कवीर विचार । कवीर (शब्द०) । (ख अति  
सीतल अति ही अमल, सकल कामना हीन, तुलसी ताहि  
अतीत गनि, वृत्ति साति लयलीन ।—तुलसी ग्र० पृ० १४ ।

अतीत<sup>४</sup>—सज्ञा पु० [सं अतिथि] १ अम्बागत । अतिथि  
पाहुन । मेहमान । उ०—आरत दुखी सीत भयभीता । आयो  
ऐसो गेह अतीता ।—सवल (शब्द०) । २ संगीत मे वह  
स्थान जो सम से दो मात्राओं के उपरात आता है । यह  
स्थान कभी कभी सम का काम देता है । उ०—मुर स्रुति  
तान बंधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत ।—  
सूर०, १।१२६६ । ३ तबले के किसी बोल या टुकड़े की सम से  
आधी या एक मात्रा के पहले समाप्ति ।

अतीतना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [सं अतीत] वीतना । गुजरना । गत  
होना । उ०—रोग-वियोग-सोक-सम-सकुल बडि वय वृथहि  
अतीति ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५७४ ।

अतीतना<sup>२</sup>—क्रि० सं० विताना । व्यतीत करना । विगत करना ।  
छोड़ना । त्यागना । उ०—कृच्छ्र उपवास सब इद्रियन जीतही ।  
पुत्र सिख लीन, तन जो लगि अतीतही ।—केशव (शब्द०) ।

अतीति—सज्ञा स्त्री [सं अतीत] आधिवय । प्राचुर्य । उ०—राजन  
की नीति गई पच प्रतीति गई, अब तो अतीति सो अनीत होन  
लागी है ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४३२ ।

अतीथ<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [हि०] १० 'अतिथि' । उ०—बधु कुबुद्धि पुरो  
हित लपट चाकर चोर अतीथ धुतारो ।—इतिहास, पृ० २०१ ।

अतीथ<sup>२</sup>—सज्ञा पु० [हि०] १० 'अतीत' । उ०—कहै गुलाल अतीथ  
राम गुन गाइया ।—गुलाल०, पृ० ६० ।

अतीम<sup>१</sup>—वि० [हि०] १० 'यतीम' । उ०—रहै गरीब अतीम होई  
तिनका कही फकीर । सत वाणी०, पृ० १३५७ ।

अतीव—वि० [सं] अधिक । ज्यादा । बहुत । अतिशय । अत्यंत ।  
उ०—हो के रुष्ट अत अतीव मन मे पाके वृथा ताप वे ।—  
शकु० पृ० २१ ।

अतीस—सज्ञा पु० [सं] एक पौधा ।

विशेष—यह हिमालय के किनारे सिंध नदी से लेकर कुमाऊँ तक  
पाया जाता है । इसकी जड़ कई प्रकार की दवाओं मे काम  
आती है और खाने मे कुछ कड़वी तथा चरपरी होती है । यह  
पाचक, अग्निसदीपक और विषघ्न है तथा कफ, पित्त, आम,  
अतिसार, खाँसी, ज्वर, यकृत और कृमि आदि रोगों को दूर  
करती है । बालरोगों के लिये यह बहुत उपकारी है । यह  
तीन प्रकार की होती है—(१) सफेद, (२) काली और (३)  
लाल । इनमें सफेद अधिक गुणकारी समझी जाती है ।

पर्याय—विषा, अतिविषा, काश्मीरा, श्वेता, अरुणा, प्रविषा,  
उपविषा, घुणवल्लभा, शृंगी महोषध, भृंगी, श्वेतकदा, भगुरा,  
मृद्धी, शिशुर्भेषज्य, शोकापहा, श्यामकदा, विश्वा ।

अतीसार—सज्ञा पु० [सं] १० 'अतिसार' ।

अतुग—वि० [सं] जो ऊँचा न हो । टिगना [क्रि०] ।

अतुद—वि० [सं] जो हृष्ट पुष्ट न हो, क्षीणकाय [क्रि०] ।

अतुकात<sup>१</sup>—[हि० अ + तुक + अत] तुकगृहिन । जिसके अतिम  
चरणों का तुक या अनुप्रास न मिलता हो । उ०—प्रमाद जो  
हिंदी मे छायावाद के विधाता तो हैं ही, अतुकात कवित्त के  
आरम्भकर्ता भी वे ही हैं ।—करुणा० (प्रका०) ।

अतुकात<sup>२</sup>—सज्ञा पु० [हि० अ + तुक + अत] छंदोबद्ध कवित्त जिसमे  
तुक या अनुप्रास न हो ।

अतुर<sup>१</sup>—वि० [सं] १ जो धनगर न हो । २ अनुदान [क्रि०] ।

अतुर<sup>२</sup>—वि० [हि०] १० 'आतुर' । उ०—पाण जोड़े हुकुम पावै  
अतुर । वारें भरथ आवै ।—रू०, पृ० ११६ ।

अतुर<sup>३</sup>—वि० [हि०] १० 'अतुर' ।—उ०—नव मुनि मान नरिंद  
सबद उम्मार अतुर वर ।—पृ० २।०, ३५।१०४५ ।

अतुराई<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री [सं आतुर + हि० पाई (प्रत्यय)] १ आतुर  
रता । जल्दी । शीघ्रता । उ०—कीरति महारि निवावन  
आई । जाहु न स्वाम, करहु अतुराई ।—सूर० । १।१३७५। २  
घबराहट । हड़बडी । ३ चंचलता । चपलता । उ०—नैन  
की अतुराई, नैन की चतुराई गान की मोरआई ना दुरति  
दुति चाल की ।—केशव (शब्द०) ।

अतुराना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [सं आतुर, हि० अतुर मे नाम०] आतुर  
होना । घबड़ाना । हड़बड़ाना । जल्दी मचाना । अकुलाना ।  
उ०—(क) तुरत जाड लै आउ, उहाँ ते, बिलव न करि मो  
भाई । सूरदास प्रभु वचन सुननही हनुमत चल्थो अतुराई ।—  
सूर०, ६।१४६ । (ख) आएँ अतुराने, बाँधे वाने, जे मरदाने  
समुहाने ।—सूदन (शब्द०) ।

अतुरी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री [हि०] १० 'आतुरता' ।

अतुल<sup>१</sup>—वि० [सं] १ जो तोना या कूता न जा सके । जिसकी  
तौल या अंदाज न हो सके । २ अमित । असीम । अपार ।  
बहुत अधिक । वेअंदाज । उ०—आवत देखि अतुल बलसीवा ।  
—तुलसी (शब्द०) । ३ जिसकी तुलना या समता न हो  
सके । अनुपम । बेजोड । अद्वितीय । उ०—मुनि रघुपति छवि  
अतुल बिलोकी । भए मगन मन सके न रोकी ।—मानस  
७।३२ ।

अतुल<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ केशव के अनुसार अनुकूल नायक का दूसरा  
नाम । उ०—ये गुण केशव जाहि मे, सोई नायक जान ।  
अतुल, दक्ष, शठ, धृष्ट, पुनि, चौविध ताहि बखान ।—केशव  
(शब्द०) । २ तिल का पेड़ । ३ तिलक । तिलपुष्पी । ४  
कफ । श्लेष्मा । वलगम ।

अतुलनीय—वि० [सं] १ जिसका अंदाज न हो सके । अपरि-  
मित । अपार । वेअंदाज । बहुत अधिक । २ अनुपम बेजोड ।  
बेजोड । अद्वितीय ।

अतुलित—वि० [सं] १ बिना तौला हुआ । २ बेअंदाज । अपरि-  
मित । अपार । बहुत अधिक । उ०—वनचर देह घरी छिति  
माही । अतुलित बल प्रताप तिन पाही ।—मानस, १।१८७। ३  
—असंख्य । उ०—जो पै अलि अत इहै कनिबे हो । तो  
अतुलित अहीर अवलनि को हटि न हिये हरिबे हो ।—तुलसी  
ग्र०, पृ० ४४४ ।

४ अनुपम । वेजोड । अद्वितीय । उ०—कहहि परस्पर सिधि ममुदाई । अनुनित अनिय राम लघुमाई ।—मानस २।२।३ ।  
अनुन्य—वि० [ सं० ] १ असमान । असदृश । २ अनुपम । वेजोड । अद्वितीय । निराना ।

अनुत्ययोगिता—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] जहाँ कई वस्तुओं का समान धर्म कथन होने के कारण अनुत्ययोगिता की समावना दिखाई पड़ने पर भी किसी एक अभीष्ट वस्तु का विरुद्ध गुण वतलाकर उसकी विलक्षणता दिखाई जाय वहाँ इस अनकार की कल्पना कविराजा मुरारिदान ने की है । उ०—हय चले हाथी चले सग छोड़ि साथी चले, ऐसी चलाचली में अचल हाडा हूँ रह्यो ।—मूपण ग्र०, पृ० १३३ ।

अनुप—वि० [ सं० ] भूमी रहित । विना भूमी का [को०] ।  
अनुपार—वि० [ सं० ] जो ठडा न हो । गर्म [को०] ।  
अनुपारकर—सज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य [को०] ।  
अनुष्टि—सज्ञा स्त्री० [को०] अनुष्टि । असतोप [को०] ।  
अनुष्टिकर—वि० [ सं० ] असतोपजनक [को०] ।  
अनुहिन—वि० [ सं० ] जो ठडा न हो । तृप्त [को०] ।  
अनुहिनकर—सज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्य [को०] ।

अनुहिनधाम—सज्ञा पुं० [ सं० अनुहिनधामन ] दे० 'अनुहिनकर' [को०] ।  
अनुहिनरश्मि—सज्ञा पुं० [ सं० ] दे० 'अनुहिनकर' ।

अनुहिनरुचि—सज्ञा पुं० [ सं० ] दे० 'अनुहिनरश्मि' [को०] ।

अनुत्थ<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] अति = अविक + उत्थ = उठा हुआ । अपूर्व ।  
उ०—देखो सखि अकथ रूप अनुत्थ । एक अनुज मध्य देखियत वीम दधिमुत जूय ।—सूर० परि०, १।६ ।

अनुत्तल<sup>१</sup>—वि० [ हिं० ] दे० 'अनुत्तल' । उ०—नेह उपजावन अनुत्तल तिल फूल कैंची, पानिय सगेवरी की उरमि उत्तम है ।—भिखारी ग्र० भा० १, पृ० १०१ ।

अनुत्तल<sup>२</sup>—वि० [ हिं० ] दे० 'अनुत्तल' । उ०—हित हसपत करपन वसन परपत उरज अनुत्तल ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १६५ ।

अनुत्तादे—सज्ञा पुं० [ सं० ] तुरत का जन्मा बछडा [को०] ।

अनुत्पत<sup>१</sup>—वि० [ हिं० ] दे० 'अनुत्पत' । उ०—अनुत्पत सुत जु छुमिन तव भयो । भाजत भांजि भवन दुरि गयो ।—नट० ग्र०, पृ० २४६ ।

अनुत्पत<sup>२</sup>—वि० [ सं० ] १ जो तृप्त या मतुष्ट न हो । असंतुष्ट । जिसका मन न मरा हो । उ०—होकर अनुत्पत तुम्हे देखने को नित्य नया रूप दिए देता हूँ पुराना छोड़ने के लिये ।—भरना, पृ० ६४। २ भूखा । बुभुक्षित ।

अनुत्पत्ति—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] असतोप । मन न मरने की अवस्था ।  
उ०—यह अनुत्पत्ति अधीर मन की क्षोभयुत उन्माद ।—कामायनी पृ० ६१ ।

अनुत्पण—वि० [ सं० ] तृप्णा-हित । निस्पृह । कामनाहीन । निर्लोभ ।

अत्ते<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] अत्यत । परम । अत्यधिक । उ०—अत्तेरूपमृति परगटी पुनिजें ममि नो खीन होइ घटी ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ११ ।

अत्तेज—वि० [ सं० ] अत्तेजस । तेजरहित । अधकारयुक्त । मद । धुँधला । २. हतथी । प्रतापरहित ।

अत्तेव—वि० [ हिं० ] दे० 'अत्तेव' । उ०—या विथा फिरै निजु ज कुज पुज भामरो । कामरेनु पाय रो रहै अत्तेव चामरो ।—भिखारी ग्र०, भाग १, पृ० १३६ ।

अत्तोरे—वि० [ सं० ] अ = नहीं + हिं तोड = टूटना ] जो न टूटे । अमग दृढ । उ०—जनु माया के वधन अनोर ।—गुमान (शब्द०) ।

अत्तोल—वि० [ हिं० ] अ + तोल ] [ स्त्री० अत्तोल ] १ विना तोला हुआ । विना अंदाज किया हुआ । जो कूता न हो । उ०—साज सहित एक घुडिला लैयो गैया दूध अत्तोलो जू ।—नद ग्र०, पृ० ३३७ । २ जिसकी तीन या अंदाज न हो सके । वे अंदाज । बहुत अधिक । उ०—चलै गोल गोती अत्तोलो सनकै, मनो और भीरे उडाती मनकै ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १० । ३ अनुन्य । अनुपम । वेजोड । उ०—पगनि धरत मग धरनि धुजावै धरि, नावै निज ऊपर अनोल वन धारे ते ।—हम्मीर०, पृ० २३ ।

अत्तोपणीय—वि० [ सं० ] जो तोपणीय न हो [को०] ।

अत्तोल—वि० [ हिं० ] दे० 'अत्तोल' ।

अत्क—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ पथिक । २ अचरव । अग । ३ जल । ४ विजली । ५ परिवान । पहनावा । ६ कवच । ७ घर का कोना [को०] ।

अत्त<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] आत्त ] प्राप्त । उपपन्न ।

अत्त<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] अति । अधिकता । ज्यादाती ।  
उ०—यह कन्या फी नही, मुद्राराक्षस की विपकन्या हो गई । अत्त भी तो बड़ी भई ।—भारनेंदु ग्रंथ, भाग १, पृ० ३६७ ।

अत्तवार<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० ] आदित्यवार प्रा० आइच्चवार, \* आइत्तवार < इत्तवार < अत्तवार ] रविवार । सप्ताह का पहला दिन ।

अत्तव्य—वि० [ सं० ] खाने योग्य [को०] ।

अत्ता<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० ] चराचर का ग्रहण करनेवाला । ईश्वर का एक नाम ।

अत्ता<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ जेठी बहिन । २ नाम । माता । ३ मौसी । मातृप्वमा ।

अत्तार—सज्ञा पुं० [ अ० ] १ गधी । सुगंध या डग बेचनेवाला । २ यूनानी दवा बनाने और बेचनेवाला । उ०—परम पिता हमही बँधन के अत्तारन के प्राण ।—भारनेंदु ग्र०, भाग १ पृ० ४७६ ।

अत्ति<sup>१</sup>—वि० [ हिं० ] दे० 'अत्ति' । उ०—टिले अत्ति हैं मद मातग माते । उमगत तैवार तूरग ताने ।—पद्माकर ग्र० पृ० २८० ।

अत्ति<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [ हिं० ] दे० 'अत्ति' ।

अत्ति<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] बड़ी बहन [को०] ।

अत्तिका—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] दे० 'अत्ति' ।

अत्तिवारे<sup>१</sup>—वि० [ हिं० ] अत्ति + दाते ] अत्यन्त नाहन का काम करनेवाले । उ०—चटै हैं लिन्हो पै महा बध्य भारे नर्स यो किलाएँ मनी अत्तिवारे । पद्माकर ग्र०, पृ० २८० ।

अत्य<sup>१</sup>—सज्ञा [ सं० ] अत्यं प्रा० अत्यं ] प्रयोगान । हेतु । उ०—एकै रिपुन के जुत्य जुत्य करे उलपि विन अत्य के ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २० ।



अत्यडी(७)—सज्ञा स्त्री० [ सं० अर्थ, प्रा० अत्य + डी० (प्रत्य०) ] धन । संपत्ति । उ०—उद्यम हृत्या अत्यडी काणा सुण निण क्रीत ।—वांकी० ग्र० भाग १, पृ० ५१ ।

अत्यवना(७)—क्रि० प्र० [ हि० ] डे० 'अथवना' । उ०—जो ऊगे सो अत्यवै फूलै सो कुम्हिलाय ।—कवीर सा० म०, पृ० ७८ ।

अत्यि(७)—सज्ञा स्त्री० [ सं० अति ] अस्तित्व मे आने की स्थिति सत्ता [को०] ।

अत्यन्त—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ वायु । २ सूर्य । ३ पथिक [को०] ।

अत्यन्तु—सज्ञा पुं० [ सं० ] २० 'अत्यन्त'

अत्यकुश—वि० [ सं० अत्यङ्कुश ] अकुश कोन माननेवाला । निश्चय मे न रहनेवाला [को०] ।

अत्यत—वि० [ सं० अत्यन्त ] बहुत अधिक । वेहद । अतिशय । हृद से ज्यादा ।

अत्यतग—वि० [ सं० अत्यन्तग ] बहुत तेज चलनेवाला । तीव्रगामी [को०] ।  
अत्यतगत—वि० [ सं० अत्यन्तगत ] जो मदा के लिये चला गया हो या पृथक् हो गया हो [को०] ।

अत्यतगति—सज्ञा स्त्री० [ सं० अत्यन्तगति ] पूर्णता [को०] ।

अत्यतगामी—वि० [ सं० अत्यन्तगामिन् ] १ अत्यधिक तेज चलने वाला । २ बहुत अधिक [को०] ।

अत्यन्तता—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ आधिक्य । २ उग्रता । ३ प्रचंडता [को०] ।

अत्यन्ततिरस्कृत अर्थ—सज्ञा पुं० [ सं० अत्यन्ततिरस्कृत अर्थ ] २० 'अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि' । उ०—अत्यन्त तिरस्कृत अर्थ सदृश ध्वनि कपित करना बार बार ।—लहर, पृ० ३४ ।

अत्यन्ततिरस्कृत वाच्यध्वनि—सज्ञा स्त्री० [ सं० अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य ध्वनि ] एक ध्वनि जिसमे वाच्यार्थ का पूर्णतया त्याग होता है । [को०] ।

अत्यन्तनिवृत्ति—सज्ञा स्त्री० सं० [ अत्यन्तनिवृत्ति ] पूर्णतया मुक्त हो जाना । पूर्ण रूप मे पृथक् हो जाना [को०] ।

अत्यन्तनिवृत्ति—सज्ञा पुं० [ सं० अत्यन्तभाव ] किसी अवस्था मे अभाव को न प्राप्त होनेवाला भाव । सदा बनी रहनेवाली सत्ता । अपरिमित अस्मिन्त्व ।

अत्यन्तवासी—सज्ञा पुं० [ सं० अत्यन्तवासिन् ] आचार्य के समीप हमेशा रहनेवाला छात्र [को०] ।

अत्यन्तसपर्क—सज्ञा पुं० [ सं० अत्यन्त सम्पर्क ] अत्यधिक सम्पर्क [को०] ।

अत्यन्तसुकुमार<sup>१</sup>—वि० [ सं० अत्यन्तसुकुमार ] अतिशय कोमल [को०] ।

अत्यन्तसुकुमार<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० एक प्रकार का धान्य [को०] ।

अत्यन्तानिगयोक्ति—सज्ञा स्त्री० [ सं० अत्यन्तानिगयोक्ति ] २० अति-शयोक्ति । उ०—अत्यन्तानिगयोक्ति चीती । जहै पूरव पर क्रम विपरीती ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ४० ।

अत्यन्तभाव—सज्ञा पुं० [ सं० अत्यन्तभाव ] १ किसी वस्तु का विल्कुल न होना । सत्ता की नितात शून्यता । प्रत्येक दशा मे अस्तित्व २ वैज्ञानिक के अनुसार पाँच प्रकार के अभावों मे से चौथा जो प्राग्भाव, प्रवृत्ताभाव और अन्योन्याभाव से भिन्न अर्थात् जो तीनों कागो मे समब न हो । जैसे—आकाशकुसुम, वध्यापुत्र, शशविपाण मे आदि । ३ विल्कुल कमी ।

अत्यन्तिक—वि० [ सं० अत्यन्तिक ] १ समीपी । नजदीकी । २ जो बहुत घुमे । घुमकड । ३ बहुत चलनेवाला [को०] ।

अत्यन्तिन—वि० [ सं० अत्यन्तिक ] १ बहुत अधिक चलनेवाला । २ अत्यधिक तीव्र गति से चलनेवाला । ३ चिरकानव्यापी । चिर-स्थायी [को०] ।

अत्य(७)—सज्ञा स्त्री० [ सं० अति ] २० 'अति' । उ०—कमलपत्रद्वय मत्त हैं रैन रति के अत्य । प्रीतम लखि अकि नित रहै यह कहति हों सत्य ।—ग्रज ग्र०, पृ० ६३ ।

अत्यग्नि<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] अग्नि से भी अधिक तापवाना [को०] ।

अत्यग्नि<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] अत्यधिक तेज पाचन शक्ति [को०] ।

अत्यधिक—वि० [ सं० अति + अधिक ] बहुत ज्यादा । सीमा से आगे [को०] ।

अत्यम्ल<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० अति + अम्ल ] १ इमली का पेड़ । २ विपायिन । ३ विजोरा नीवू ।

अत्यम्ल<sup>२</sup>—वि० बहुत खट्टा [को०] ।

अत्यम्लपर्णी—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] रामचना या खट्टा नाम की वेल ।

अत्यम्ला—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] जगती विजोरा नीवू ।

अत्यय—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ मृत्यु । ध्वम । नाश । २ अतिक्रमण । हृद मे बाहर जाना । ३ दंड । सजा । ४ कृच्छ्र । कष्ट । ५ दोष । ६ प्राचीन काल का एक प्रकार का अर्थदंड या जुर्माना ।

अत्यधिक—वि० [ सं० ] २० 'आत्यधिक' ।

अत्ययी—वि० [ सं० अत्ययिन् ] १ अतिक्रमण करनेवाला । २ सबसे आगे बढ़ जानेवाला [को०] ।

अत्यर्थ—वि० [ सं० ] उचित परिणाम से अधिक । अत्यधिक [को०] ।

अत्यष्टि—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १७ वर्ण के वृत्तो की सज्ञा । शिखरिणी, पृथ्वी, हरिणी, मदाक्राता माराक्राता और मालाधार, आदि छंद इसके अंतर्गत हैं ।

अत्यद्ग—वि० [ सं० अति + अद्ग ] एक दिन से अधिक समय का [को०] ।

अत्याकार<sup>१</sup>—वि० [ सं० अति + बड़ा + आकार ] विशाल आकार का । भारी डीलडौलवाना [को०] ।

अत्याकार<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ अवज्ञा । २ घृणा । ३ निंदा । ४ विज्ञान डीलडौल [को०] ।

अत्याग—सज्ञा पुं० [ सं० ] ग्रहण । स्वीकार । उ०—त्रवन-मुखद भव-भय-हरन त्यागिन को अत्याग ।—पारसोद्दु ग्र०, भाग १, पृ० ४१४ ।

अत्यागी—वि० [ सं० अत्यागिन् ] दुर्गुणों को न छोड़नेवाला । विषयामक्त । दुर्व्यसनी ।

अत्याचार—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ आचार का अतिक्रमण । विरुद्धाचरण । अन्याय । निदुराई । ज्यादती । जुल्म । २ बुराचार । पापाई आचार की अधिकता । पाखंड । ढोंग । ढकोसला । आडवर ।

अत्याचारी<sup>१</sup>—वि० [ सं० अत्याचारिन् ] १ अत्याचार करनेवाला । दुराचारी । अन्यायी । निदुर । जालिम । २ पाखंडी । ढोंगी । ढकोसलेवाज । धर्मध्वजी ।

अत्याचारी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० वह जो अत्याचार करे । अन्यायी व्यक्ति ।

अत्याज्य—वि० [सं०] १ न छोड़ने योग्य । जिसका त्याग उचित न हो । २ जो कभी छोड़ा न जा सके ।

अत्यादित्य—वि० [सं०] सूर्य के पार जानेवाला [को०] ।

अत्याधान—सज्ञा पुं० [सं०] १ रखने की क्रिया । २ अतिक्रमण । ३ होम की अग्नि को रक्षित न रखना [को०] ।

अत्यानन्द—सज्ञा पुं० [अत्यानन्द] आनन्द का परम उत्कृष्ट आध्यात्मिक रूप । परमानन्द [को०] ।

अत्यानन्दा—सज्ञा स्त्री० [सं० अत्यानन्दा] वैद्यक के अनुसार योनिषो का एक भेद ।

विशेष—वह योनि जो अत्यंत मंथन से भी सतुष्ट न हो । यह एक रोग है जिसमें स्त्रियाँ बध्वा हो जाती हैं । इसका दूसरा नाम 'रतिप्रीता' भी है ।

अत्याय—सज्ञा पुं० [सं०] १ सीमा का उत्खनन । मर्यादा का अतिक्रमण । अधिक आमदनी या लाभ [को०] ।

अत्यायु—सज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का पात्रविशेष [को०] ।

अत्यारुढ—वि० [सं०] बहुत ऊँचे पद पर पहुँचा हुआ । अत्यंत प्रसिद्ध [को०] ।

अत्यारुढि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अत्यंत ऊँचा पद । २ अतिप्रसिद्धि [को०] ।

अत्याल—सज्ञा पुं० [सं०] रवतचित्रक नामक वृक्ष [को०] ।

अत्यावाय—सज्ञा पुं० [सं०] राजद्रोहियों की अधिकता [को०] ।

अत्याहित<sup>१</sup>—वि० [सं०] असहमति के योग्य । अस्वीकार्य [को०] ।

अत्याहित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ अरुचि । अप्रियता । २ सकट । ३ भय । ४ दुःसाहस [को०] ।

अत्याहितकर्मा—वि० [सं० अत्याहित + कर्मन्] दुष्ट । नीच । दुराचारी [को०] ।

अत्युक्त—वि० [सं०] बहुत बढ़ा चढ़ाकर कहा हुआ । अत्युक्तिपूर्ण ।

अत्युक्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ 'अत्युक्ता' [को०] ।

अत्युक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करने की शैली । मुवातिगा । बढ़ावा । २ एक अलंकार जिसमें शूरता, उदारता आदि गुणों का अद्भुत और अतथ्य वर्णन होता है । जैसे—जावक तेरे दान में मए कल्पतरु भूप (शब्द०) ।

अत्युक्था—सज्ञा स्त्री० [सं०] दो वर्णों के वृत्तों की सज्ञा ।

विशेष—इसके चार भेद कहे गए हैं । कामा, मही, मार और मधु ।

अत्युग्र<sup>१</sup>—वि० [सं०] अति प्रचंड । अनिश्चय भयानक [को०] ।

अत्युग्र<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० हींग [को०] ।

अत्युग्रवा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा ।

अत्युत्तम—वि० [सं०] सबसे श्रेष्ठ । अधिक उत्कृष्ट [को०] ।

अत्युपध—वि० [सं०] १ परीक्षित । अदाजा हुआ । २ विश्वस्त [को०] ।

अत्यूर्मि—वि० [सं०] सीमा का अतिक्रमण कर बहनेवाला [को०] ।

अत्यूह—सज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत अधिक ऊहापोह । तर्क वितर्क । २ अधिक जोर से बोलनेवाला पक्षी । मोर [को०] ।

अत्यूहा—सज्ञा स्त्री० [सं०] नीलिका या निर्गुंडी नामक पौधा [को०] ।

अत्र<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं०] यहाँ । इस स्थान पर ।

अत्र<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अत्र, अप० अत्र] १ 'अत्र' । उ०—सोहँ अत्र जोड़े जे न छोड़े मीम सगर की लगर लँगूर उच्च ओज की अतका मे ।—पद्माकर ग्र० पृ० २२४ ।

अत्र<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] १ 'अतर' ।

अत्र<sup>४</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० अत्र] अँठडी ।

अत्र<sup>५</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ राक्षस । २ भोजन [को०] ।

अत्रक—वि० [सं०] १ यहाँ का । २ इस लोक का । लौकिक । ऐहिक ।

अत्रत्य—वि० [सं०] यहाँ का । यहाँवाला ।

अत्रप—वि० [सं० अ = नहीं + त्रप] निर्लज्ज । उदड [को०] ।

अत्रभवान्—वि० [सं०] [स्त्री० अत्रभवती] माननीय । पूज्य । श्रेष्ठ ।

अत्रय—सज्ञा पुं० [हिं०] १ 'अत्रि' । उ०—पिरभू किता वासर पाय । अत्रय तणो आश्रम आय ।—रघु० क०, पृ० १२२ ।

अत्रस्त—वि० [सं०] निर्भीक । भयरहित । निडर [को०] ।

अत्रस्थ—वि० [सं०] यहाँ रहनेवाला । इस स्थान का । यहाँवाला । यहाँ उपस्थित रहनेवाला । यहाँ का ।

अत्रस्तु—वि० [सं०] १ 'अवस्त' [को०] ।

अत्रास—वि० [सं०] १ 'अवस्तु' [को०] ।

अत्रि—सज्ञा पुं० [सं०] १ सप्तपितृओं में से एक ।

विशेष—ये ब्रह्मा के पुत्र माने जाते हैं । इनकी स्त्री अनुसूया थी । दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम इनके पुत्र थे । इनका नाम देस प्रजापतियों में भी है ।

२ एक तारा जो सप्तपिंडल में है । ३ सात की संख्या [को०] ।

अत्रिगुण—वि० [सं० अ + त्रिगुण] त्रिगुणातीत । सत्य, रज, तम नामक तीनो गुणों से पृथक् ।

अत्रिज—सज्ञा पुं० [सं०] अत्रि के पुत्र—१ चंद्रमा २. दत्तात्रेय । ३ दुर्वासा ।

अत्रिजात—सज्ञा पुं० [सं०] १ 'अत्रिज' । २ प्रथम तीन वर्णों में से किसी एक में मन्वृषित मनुष्य । द्वित्र [को०] ।

अत्रिदृज—सज्ञा पुं० [सं०] १ अत्रि के नेत्र में उत्पन्न चंद्रमा ऋषि । २ गणित में एक की संख्या [को०] ।

अत्रिनेत्रज—सज्ञा पुं० [सं०] १ 'अत्रिदृज' ।

अत्रिनेत्रप्रभव—सज्ञा पुं० [सं०] १ 'अत्रिनेत्रज' [को०] ।

अत्रिनेत्रभू—सज्ञा पुं० [सं०] १ 'अत्रिनेत्रप्रभाव' को ।

अत्रिनेत्रसूत—सज्ञा पुं० [सं०] १ 'अत्रिनेत्रभू' [को०] ।

अत्रिप्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] कर्दम मुनि की कन्या अनसूया जो अत्रि ऋषि की व्याही थी । उ०—अत्रिप्रिया निज तपवन आनी ।—मानस, २।१३२ ।

अत्रिसहिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] अत्रि ऋषि द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र [को०] ।

अत्रिस्मृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ 'अत्रिसहिता' [को०] ।

अत्रो<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ 'अत्रिप्रिया' [को०] ।

अत्रो<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अत्रिन्] राक्षस [को०] ।

अत्रेय(७)---सज्ञा पुं० [सं० अत्रेय] २० 'अत्रेय' ।

अत्रेयगुण्य—सज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों का अभाव ।

विशेष—साख्य मतानुसार इस अवस्था का परिणाम मोक्ष या कैवल्य है ।

अत्रवक्क—वि० [सं०] चर्मरहित [को०] ।

अत्रवरा—सज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्रता की कमी । मदता [को०] ।

अथ—अव्य० [सं०] १ एक मगलसूचक शब्द जिसमें प्राचीन काल में लोग किसी ग्रन्थ या लेख का आरम्भ करते थे । जैसे—(क) 'अथातो धर्मं व्याख्यास्याम' ।—वैशेषिक । [ख] 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' ।—ब्रह्मसूत्र । पीछे से यह ग्रन्थ के आरम्भ में उसके नाम के पहले लिखा जाने लगा । जैसे—'अथ विनयपत्रिका लिख्यते' । २ अथ । ३ अनन्तर । तदनन्तर ।

अथऊँ—सज्ञा पुं० [सं० अस्त, प्रा० अत्य] वह भोजन जो जैन लोग सूर्यास्त के पहले करते हैं ।

अथक—वि० [सं० अ=नहीं + हि० यकना] जो न थके । अश्रान् । उ०—शासन कुमायिका से हिमालय शृंग तक अथक अबाध और तीव्र मेघ ज्योति सा चला था ।—नहर, पृ० ७६ ।

अथकिम्—अव्य० [सं०] और क्या । हाँ [को०] ।

अथग—वि० [सं० अत्यग प्रा० अत्यग] अगाध । गभीर । अथाह । उ०—अखड मरोवर अथग जल हसा सरवर न्हाहि ।—दादू पृ० ६७ ।

अथच—अव्य० [सं०] और । और भी । इसके अतिरिक्त ।

अथना(७)—क्रि० अ० [सं० अस्त प्रा० अत्य से नाम०] १. अस्त होना । डूबना । उ०—सूरज-उबै विहानहि आई । पुनि सो अथ कहा कह जाई ।—जायसी [शब्द०] । २. कम होना । घट जाना । समाप्त हो जाना [को०] ।

अथमना—सज्ञा पुं० [सं० अस्तमन, प्रा० अस्तमण] पश्चिम दिशा । उगमना का उलटा ।

अथरवन(७)—सज्ञा पुं० [सं० अथर्वन्] चौथा वेद । अथर्ववेद । उ०—[क] यह परमारथ कही हो पडित, रुग जुग स्याम अथर-वन पठिया ।—गोरख०, पृ० १०६ । [ख] रिग, जजु, साम, अथरवन माहाँ ।—जायसी ग्र०, पृ० ४४ ।

अथरा—सज्ञा पुं० [सं० आस्तर] मिट्टी का एक वरतन या नाँद । विशेष—इसमें रंगरेज कपड़ा रंगते हैं, सोनार मानिक रेत रखते और जुनाहे सूत मिंगोते और तौने में लेई लगाते ।

अथरी—सज्ञा स्त्री० [हि० 'अथरा का अल्पा०] १ छोटा अथरा । २ मिट्टी का वह वरतन जिसमें कुम्हार हाँडी या घड़े को रखकर थापी से पीटते हैं । ३. मिट्टी का वह वरतन जिसमें दही जमाते हैं ।

अथर्व—सज्ञा पुं० [सं० अथर्वन्] चौथा वेद ।

विशेष—इसके मन्त्रद्रष्टा या ऋषि भृगु या अगिरा गोश्रवाले थे जिस कारण इसको 'भृग्वर्गिरस' और 'अथर्वगिरस' भी कहते हैं । इसमें ब्रह्मा के कार्य का प्रधान प्रतिपादन होने से इसे 'ब्रह्मवेद' भी कहते हैं । इस वेद में यज्ञकर्मों का विधान बहुत कम है । शांति, पीठिक अमिचार आदि प्रतिपादन विशेष है । प्रायश्चित्त, तैत्तिरीय, मन्त्र आदि इसमें मिलते हैं ।

इसकी नौ शाखाएँ थी—रैवता, दाता, प्रदाता, स्तोता, ब्रह्मदावला, गोनकी, देविदर्शनी और चरण विद्या । कहीं कहीं इन नौ शाखाओं के नाम डम प्रकार हैं—पिप्पलादा, गोनकीया, दामोदा, तोनायना, जाजना, ब्रह्मनाशा, गोनखिना, देवदर्शना और चारण विद्या । इन शाखाओं में म आजाकनकेयन गोनकीय मिलती है जिसमें २० काण्ड, १११ अनुवाक, ७३१ सूक्त और ४७६३ मन्त्र हैं । पिप्पलाद शाखा की संहिता भोकेमर वृत्त की काश्मीर म गोजपत्र पर लिखी मिलती थी पर वह छरी नहीं । इसका उा-वेद धनुर्वेद है । उनके प्रधान उपनिषद् प्रश्न, मुंडक और माण्डूक्य हैं । इसका गोपय ब्राह्मण आज्ञाफल प्राप्त है । कर्मकाण्डियों को इस वेद का जानना आवश्यक है ।

२ अथर्ववेद का मन्त्र ।

अथर्वण—सज्ञा पुं० [सं०] १ शिव । २ 'अथर्व' [को०] ।

अथर्वणि—सज्ञा पुं० [सं०] १ अथर्ववेद के अनुसार कर्मकाण्ड करनेवाला ब्राह्मण । २ यज्ञ करनेवाला पुरोहित । यज्ञ का ब्रह्मा [को०] ।

अथर्वन्—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक मुनि जो ब्रह्मा के पुत्र १० अग्नि को स्वर्ग में उानेवाले नमस्ते जाते हैं । २ 'अथर्व' [को०] ।

अथर्वन्(७)—सज्ञा पुं० [हि०] 'अथर्व' । उ०—नात्त वेद अथर्वन् दारु ।—कवीर गा०, पृ० ७७

अथर्वन्निधि—सज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद का मर्मज्ञ [को०] ।

अथर्वनी(७)—सज्ञा पुं० [सं० अथर्वणि] २० 'अथर्वणि' । उ०—प्रापु वनिष्ठ अथर्वनी महिमा जग जानी ।—तुलसी ग०, पृ० २७० ।

अथर्वविद्—सज्ञा पुं० [सं०] 'अथर्वन्निधि' [को०] ।

अथर्वगिरा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् [को०] ।

अथर्वगिर—सज्ञा पुं० [सं० अथर्वगिरस] १ एक प्रकार की ईंट जो तैत्तिरीय शाखा के समय में यज्ञ की वेदी बनाने के काम आती थी । २ एक उपनिषद् [को०] ।

अथर्वगिरा—सज्ञा स्त्री० [सं० अथर्वगिरस] १ वेद की एक ऋचा का नाम । २ एक उपनिषद् [को०] ।

अथर्वगिरस—सज्ञा पुं० [सं० अथर्वगिरस] २० 'अथर्व' ।

अथर्वणि—सज्ञा पुं० [सं०] 'अथर्वणि' [को०] ।

अथर्ला—सज्ञा पुं० [अ (उच्चा०) + सं० स्यल, प्रा० यल] वह भूमि जो लगान पर जोतने के लिये दी जाय ।

अथर्वना(७)—क्रि० अ० [सं० अस्तमन=डूबना प्रा० अत्यनण अत्यनण] १ अस्त होना । डूबना । उ०—[क]—जो आगे सो अथर्व फूलें सो कुम्ह गाय । जो चनि ए सो ढहि परे जामें सो मरि जाय ।—कवीर [शब्द] । [ख] केइ यह वमत वमत उजारा । गा सो चाँद अथर्व लेइ तारा ।—जायसी [शब्द०] । २ लुप्त होना । तिरोहित होना । नष्ट होना । गायब होना । चला जाना । उ०—कहत ससोक विरोकि बहु मुख वचन प्रीति गयए हैं । मेवक सब भगति, भायप गुन चाहत अथ अथए हैं—तुलसी [शब्द०] ।

अथर्वा—अव्य० [सं०] एक विद्योजक अव्यय जिसका प्रयोग उस स्थान पर होता है जहाँ दो या कई शब्दों या पदों में से किसी एक का ग्रहण आती हो । या । वा । किंवा । उ०—निज कवित्त केहि लाग न नीका । सरस होइ अथर्वा अति फीका ।—मानस, १।८ ।

अथाई—सज्ञा स्त्री० [ सं० \*आरयायिका अथवा \*आत्यायो, प्रा० अत्याई ] बैठने की जगह । घर का वह बाहरी चौपान जहाँ लोग झुट्ट मित्रों से मिलते वा उनके साथ बातचीत करते हैं । बैठक । चौबारा । उ०—हाट बाट घर गयी अथाई । कहहि परसपर लोग लुगाई ।—मानस, २।१० । २ वह स्थान जहाँ किसी गाँव या वस्ती के लोग, डकट्टे होकर बातचीत और पंचायत करते हैं । उ०—कहे पदमाकर अथाइन को तजि तजि, गोपगन निज निज गेह को पथँ गयो ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २३७ । ३ घर के सामने का चबूतरा जिसपर लोग उठते बैठते हैं । ४ गोष्ठी । मंडी । सभा । जमावड़ा । दरबार । उ०—गजमनि माल बीच आजत कहि जात न पदिक निकई । जनु उडुगण मंडन वारिद पर नव ग्रह रची अथाई ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६२१ ।

अथाग(७)—वि० [ सं० अस्ताय, प्रा० अत्थाय ] दे० 'अथाह' । उ०—हृकल दल गज हेवरी अमरख नरा अथाग ।—रा० रू०, पृ० ५५३ ।

अथान—सज्ञा पुं० [ सं० अस्थानु = स्थिर ] अचार । कचूमर । उ०—विधि पाच अथान बनाइ कियो । पुनि द्वै विधि क्षीर सो मांगि लियो ।—केशव ( शब्द ) ।

अथाना<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'अथात' । उ०—निबुझा, सूरन आम अथानो और करौदनि की रचि न्यारी ।—सूर० १०।२४१ ।  
अथाना<sup>२</sup>(७)—किं० अ० [ सं० अस्ताय, प्रा० अत्या, अत्थाय ] डूबना । अस्त होना । दे० 'अथवना' ।

अथाना<sup>३</sup>—किं० सं० [ सं० आ + स्थापन ] १ यथाना । याह लेना । गहराई नापना । २ डूबना । छानना । उ०—फिरत फिरत वन सकल अथायो । कोऊ जीव हाथ नहि आयो ।—सबल ( शब्द ) ।

अथाय(७)—वि० [ हि० ] दे० 'अथाह' । उ०—प्रह्वे अचल अखड है, अगम अपार अथाय । ब्रज माधुरी०, पृ० २८६ ।

अथार(७)—वि० [ सं० आ ( उप० ) + स्तार < यस्तु ] फैला वा बिखरा हुआ ।

अथावत(७)—वि० [ सं० अस्तमित = डूबा हुआ ] अस्त । डूबा हुआ । उ०—वेर लगी रघुनाथ रहे कित हे मन याको मैं भेद न पायो । चढ़हु आयो अथावतो होत अजहुँ मनभावतो क्यों नहि आयो ।—रघुनाथ ( शब्द ) ।

अथाह<sup>१</sup>—वि० [ सं० अस्ताय, प्रा० अत्याह अथवा सं० अ = नहीं + स्था = ठहरना ] १ जिसकी थाह न हो । जिसकी गहराई का अत न हो । बहुत गहरा । अगाध जैसे—यहाँ अथाह जल है ( शब्द ) । २ जिसका कोई पार, या अत न पा सके । जिसका अंदाज न हो सके । अपरिमित । अपार । बहुत अधिक । ३ गमीर । गूढ । समझ में न आने योग्य । कठिन । उ०—( क ) करे नित्य जप होम औ जानत वेद अथाह ( शब्द ) । ( ख ) रमणी हृदय अथाह जो न दिखलाई पड़ता ।—कानन०, पृ० ७१ ।

अथाह<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ गहराई । गड्ढा । जलाशय । २ समुद्र । उ०—वाँ मुख के फिर मिलन को, आस रही कछु नाहि । परे मनोरथ जाय मम अव अथाह के माहि ।—शकुन्तला, पृ० ११४ ।

मुहा०—अथाह मे पडना = मुश्किल मे पडना । जैसे—हम अथाह मे पड़े हैं, कूछ नही सुझता [ शब्द ] ।

अथिर(७)—वि० [ सं० अस्थिर, प्रा० अस्थिर, अथिर ] १ जो स्थिर न हो चलायमान । चंचल । उ०—काची काया मन अस्थिर थिर थिर काम करत ।—कवीर ग्रं०, पृ० ७६ । २ क्षणस्थायी । टिकनेवाला ।

अथीर(७)—वि० [ हि० ] दे० 'अथिर' । उ०—नहि तर्क वितर्क अथीर धीर । नहि शून्य अशून्य अथीर धीर ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ७८ ।

अथैव(७)—सज्ञा स्त्री० [ हि० ] दे० 'अथाई' । उ०—माझी हमारे बुलबुल की अथैवा इन देखिबे आइए ।—गोदार् अग्रि० ग्रं०, पृ० ६२७ ।

अथोर(७)—वि० [ सं० अ + स्तोर = थोड़ा प्रा० थोर, अप० थोर + उ [ प्रत्य० ] [ स्त्री० अथोरी ] कम नहीं । अधिक । ज्यादा । बहुत । पूरा । उ०—भरति नेह नव नीर नित वरसत सुगम अथोर ।—मातंगु ग्रं० २।५७७ ।

अदक(७)—सज्ञा पुं० [ सं० आतङ्क, हि० अतरु ] डर । भय । त्रास । उ०—जसुमति वृक्षति फिरति गोपालहि । जब ते तृणावर्त्ति ब्रज आयो तब ते मोहि जिय सक । नैननि प्रोठ होत पल एकी मैं मन भरति अदक ।—सूर [ शब्द ] ।

अदड<sup>१</sup>—वि० [ सं० अदड्य ] १ जो दड के योग्य न हो । जिसे दड देने की व्यवस्था न हो । सजा से बरी । २ जिसपर कर या महसूल न लगे । कररहित । ३ निर्द्वंद्व । निर्भय । स्वेच्छाचारी । उ०—उदधि अपार उतरत हूँ न लागी वार, केसरीकुमार सो अदड ऐसो डाँडिगो ।—तुलसी [ शब्द० ] ।

अदड<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० वह भूमि जिसकी मालगुजारी न लगे । मुआफी ।

अदडनीय—वि० [ सं० अदडनीय ] जो दड पाने के योग्य न हो । जिसके दड का विधान न हो । अदड्य ।

अदडमान—वि० [ सं० अदडमान ] दड के अयोग्य । दड से मुक्त । सजा से बरी । उ०—अदडमान दीन गर्व दडमान भेद वै । अपठमान पाप ग्रथ, पठमान वेद वै ।—केशव [ शब्द ] ।  
अदड्य—वि० [ सं० अदड्य ] दड न पाने योग्य । जिसे दड न दिया जा सके । दडमुक्त । सजा से बरी ।

अदत<sup>१</sup>—वि० [ सं० अदन्त ] १ वेदांत का । जिसे दांत न हो । २ जिसे दांत न निकला हो । बहुत थोड़ी अवस्था का । दुधमुहं । ३ जिसने दांत न तोड़ा हो ( चौपाया ) ।

अदत<sup>२</sup>—वि० १ बारह आदित्यो मे एक । २ जोक [ जोक ] ।

अदत्य—वि० [ सं० अदत्य ] जो दांत सवधी न हो । २ जो दांतों के अनुकूल न हो । ३ दांतों के लिये अहितकर [ जोक ] ।

अदव(७)—वि० [ सं० अदव्य ] पवित्र । शुद्ध । उ०—यौं पचाकर मत्र मनोहर जै जगदव अदव आए रो ।—पद्माकर ग्रं० पृ० ३२५ ।

अदभ<sup>१</sup>—वि० [ सं० अदभ ] १ दमरहित । पात्रद्विहीन । सच्चा । विना । आडवर का । २ निषष्ठल । निष्पट । ३ प्राकृतिक । स्वाभाविक । अकृत्रिम । स्वच्छ । शुद्ध । उ०—भीति नग हीर, नग हीरन की कानि नो रतन जंभ पातिन अदभ छवि छाई सी ।—देव [ शब्द ] ।

अदभ<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ शिव । २ दंभ का अभाव (की०) । ३. शुद्धता (की०) ।

अदभित्व—सज्ञा पुं० [ सं० अदम्भित्व ] दम्भशून्यता । दम्भ का अभाव । पांडव या आडवर का न होना । सार्विक जनो का एक गुण ।

अदष्ट<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] दन्हीन । विना दांत का [ की० ] ।

अदष्ट<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ विना विपैले दांत का सर्प । विषदन्हीन सर्प [ की० ] ।

अदक्ष—वि० [ सं० ] १ अकुशल । जो निपुण न हो । २ भद्दा । कुरूप [ की० ] ।

अदक्षिण—वि० [ सं० ] १ बायाँ । जो दाहिना न हो । २ प्रतिकूल । विरुद्ध । ३ विना दक्षिणा का । दक्षिणारहित [ यज्ञ इत्यादि ] । ४. अकुशल अनाडी । अनुदार ।

अदक्षिणीय—वि० [ सं० ] जो दक्षिणा देने का पात्र या अधिकारी न हो [ की० ] ।

अदक्षिण्य—वि० [ सं० ] ३० 'अदक्षिणीय' [ की० ] ।

अदग—वि० [ सं० अदग्ध प्रा० अदग्ध ] १ वेदाग । निष्कलक । शुद्ध । २ निरपराध । निर्दोष । जिसे पाप न छू गया हो । ३ अछूता । अस्पृष्ट । साफ । वचा हुआ । उ०—जेते थे तेते लियो, घूँघट मोहूँ समोय । कज्जल वाके रेख है, अदग गया नहि कोय ।—कवीर [ शब्द ] ।

अदग्ध—वि० [ सं० ] - १, न जला हुआ । २. जिसका दाह संस्कार न किया गया हो [ की० ] ।

अदत्त<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० ] वह वस्तु जिसके दिए जाने पर भी लेनेवाले को उसके रखने का अधिकार न हो ।

विशेष—नारद ने अदत्त के सोलह भेद किए हैं—[ १ ]

भय जो वस्तु डर के मारे दी गई हो । [ २ ] क्रोध—

लडके आदि पर क्रोध निकालने के लिये । [ ३ ]

शोकावेग में । [ ४ ] रुक्—असाध्य रोग से घबराकर

[ ५ ] उत्कोच—धूस के रूप में । [ ६ ] परिहास—हँसी

हँसी में । [ ७ ] व्यन्यास—बढ़ावे में आकर अथवा

देखादेखी । [ ८ ] छल—जो धोखे में उचित से अधिक

दे दिया गया हो । [ ९ ] बाल—देनेवाला यदि बालक

या नाबालिग हो । [ १० ] मूढ़—जो धोखे में आकर

वेवकूफी से दिया गया हो । [ ११ ] अस्वतंत्र—जो

दास के द्वारा या ऐसे व्यक्ति के द्वारा दिया गया हो

जिसे देने का अधिकार न हो । [ १२ ] अर्त—जो

वेचनी या दुख से घबड़ाकर दिया गया हो । [ १३ ]

भत—जो नशे की भोक में दिया गया हो । [ १४ ]

उन्मत्त—जो पागल होने पर दिया गया हो । [ १५ ]

कार्य—जो लाभ की झूठी आशा दिखाकर प्राप्त

किया गया हो और [ १६ ] अधर्म काम्य—धर्म के नाम

पर जो अधर्म के लिये लिया गया हो ।

अदत्त<sup>२</sup>—वि० [ सं० अवाता अथवा सं० अदत्त ] जिसने दिया न हो ।

न देनेवाला । कृपण । उ०—कहूँ चोर कहूँ साहूँ कहावत,

कहूँ अदत्त, कहूँ दानी ।—जगन्नाथानी, पृ० ५३ ।

अदत्तदान—सज्ञा पुं० [ सं० ] जैन शास्त्र के अनुसार विना दी हुई

वस्तु का ग्रहण । अपहरण । चोरी । उकती ।

विशेष—कोई कोई आचार्य इसके तीन भेद—[ १ ] द्रव्यादत्त-

दान [ २ ] भावादत्तदान, [ ३ ] द्रव्य भावादत्तदान और कोई

चार भेद—(१) स्वामी अदत्तदान, (२) जीव अदत्तदान, [ ३ ]

तीर्थंकर अदत्तदान और [ ४ ] गुरु अदत्तदान मानते हैं । इससे

वचने का नाम अदत्तदान विरमणव्रत है ।

अदत्तपूर्वा—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] कुंवारी कन्या । वह लड़की जिसकी मंगनी न हुई हो [ की० ] ।

अदत्ता<sup>१</sup>—वि० स्त्री० [ सं० ] न दी हुई ।

अदत्ता<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० अविवाहिता कन्या ।

अदद—सज्ञा पुं० [ अ० ] १. सख्या । अक । गिनती । २ सख्या का चिह्न या संकेत ।

अदत्त<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ अ० ] १ यहूदी, ईसाई और मुसलमान मत के अनुसार स्वर्ग का वह उावन जहाँ ईश्वर ने आदम को बनाकर रखा था । उ०—अजन की रेखा राजें कुच विच विच साजें, एहँ वेली, रेनी, ही, उचित, अदत्त मैं—छीत०, पृ० ३६ । २ अरब सागर का एक वदरगाह ।

अदत्त<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० ] खाना । भक्षण । उ०—[ क ] भारती वदन विष अदत्त-सिव, ससि पतग पावक नयन ।—तुलसी ग्र० पृ० २३६ । [ ख ] बहुरि वीरा सुखद सौरभ अदत्त रदन रसाल ।—घनानंद, पृ० ३०१ ।

अदना—वि० [ अ० ] [ स्त्री० अदनी ] १ तुच्छ । छोटा । क्षुद्र । नीच । उ०—हलकू चगेजी तैमूर, हमारे अदना, अदना, सूर ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४७४ । २ सामान्य । मामूली । उ०—करना किसी पै, रहम, इक अदना सी बात पर ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०६ ।

अदनीय—वि० [ सं० ] खाने योग्य । भक्ष्य ।

अदफर(उ)—सज्ञा पुं० [ हि० ] ३० 'अधफर' । उ०—नाउ जाजुरी धार मैं अदफर भीर भुलान ।—सं० सप्तक, पृ० ३४४ ।

अदव—सज्ञा पुं० [ अ० ] १ शिष्टाचार । कायदा । बडो का आदर, समान । उ०—दौलते दीवार जाए पर अदव जाने न पाए ।—शेर०, पृ० ३०६ ।

मु०—अवब की जगह—वह व्यक्ति, स्थान या वस्तु जिसका लिहाज करना जरूरी होता है ।

कि० प्र०—करना ।

अदवकायदा—सज्ञा पुं० [ अ० ] शिष्ट व्यवहार [ की० ] ।

अदव लिहाज—सज्ञा पुं० [ अ० ] आदर समान [ की० ] ।

अदवदकर—कि० वि० [ हि० ] ३० 'अदवदाकर' । उ०—मैं यो तो ये काच लेता या न लेता पर अव उनकी जिद से अदवदाकर लूँगा ।—श्रीनिवास०, ग्र०, पृ० १६३ ।

अदवदाकर—कि० वि० [ सं० अधि + वद = वदन् वना, कहना अथवा अनुवचन ] १. हठ करके । टेक बाँधकर अवश्य । जरूर । जैसे—यो तो हम न जाते, अब अदवदाकर जाएंगे (शब्द०) ।

विशेष—यह शब्द केवल इसी रूप में, कि० वि० के समान आता है परंतु वास्तव में यह कि० प्र० है ।

अद्वैत<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अद्वैत' । उ०—अद्वैत रूप जाति की बानी । कवीर वी०, पृ० २५ ।

अद्वैत<sup>२</sup>—वि० [हि०] दे० 'अद्वैत' । उ०—वाके वदन करु सब कोई । बुद अद्वैत अचरज बड होई ।—कवीर वी०, पृ० २५८ ।

अद्वैत<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [अ० अद्वैत] दे० 'अद्वैत' ।—आदर अद्वैत सन्धीन देत ।—पृ० रा०, १।७२१ ।

अद्वैत<sup>४</sup>—वि० [सं० अ०=नहीं+हि० दबता] न दबनेवाला ।—अद्वैत गवियान के सरव गव को हरे ।—पद्माकर ग्र० पृ० २२३ ।

अद्वैत<sup>५</sup>—वि० [हि०] दे० 'अद्वैत' । उ०—अद्वैत सलिन सुनत गुनकारी । आस विप्रास मनोमल हारी ।—मानस १।४३ ।

अद्वैत<sup>६</sup>—[सं० अद्वैत] दे० 'अद्वैत' । उ०—रज्जव निरजहि इदर गुरु अद्वैत आदर ऐन । पृथुप पत्र फन पूजिये मुर नर पावहि चैन ।—रज्जव वानी०, पृ० ८ ।

अद्वैत<sup>७</sup>—वि० [सं०] १. बहुत । अधिक । ज्यादा । उ०—सुनु अद्वैत करदा, वारिज लोचन मोचन भय भारी ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५१५ । २. अपार । अनंत । उ०—अगुन अद्वैत गिरा गोनीता । सबदरमी अनवद्य अजीता ।—मानस ७।१२ ।

अद्वैत<sup>८</sup>—सज्ञा पुं० [अ०] १. अनस्तित्व । अभाव । लोप । २. अनुपस्थिति । ३. देवलोक । परलोक । जन्त । उ०—अद्वैत की राह सीधी है, बुलदी है, न पेस्ती है ।—शेर० भा १, पृ० २८६ ।  
मुहा०—अद्वैत की राह लेना, अद्वैत को पधारना या अद्वैत की सिधारना=मर जाना ।

अद्वैतआवाद—सज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान, जहाँ, लोग मरने के बाद जाते हैं । परलोक [को०] ।

अद्वैतखाना—सज्ञा पुं० [अ० अद्वैत+फा० खाना] दे० 'अद्वैतआवाद' [को०] ।

अद्वैतगाह—सज्ञा पुं० [अ० अद्वैत+फा० गाह] दे० 'अद्वैतआवाद' [को०] ।

अद्वैतमामील—सज्ञा स्त्री० [अ०] समन आदि का अमल में न आना [को०] ।

अद्वैतपैरवी—सज्ञा स्त्री० [फा०] किसी मुकदमे में जरूरी कार्रवाई न करना । अभियोग में पक्षप्रतिपादन का अभाव । जैसे—वह मुकदमा तो अद्वैतपैरवी में खारिज हो गया ।

अद्वैतफुरसत—सज्ञा स्त्री० [फा०] अवकाश न होना । अनवकाश [को०] ।

अद्वैतमोजूदगी—सज्ञा स्त्री० [अ०] अनुपस्थिति । गैरहाजिरी [को०] ।

अद्वैतवसूली—सज्ञा स्त्री० [अ०] मालगुजारी आदि का वसूल न होना ।

अद्वैतवाकफीयत—सज्ञा स्त्री० [अ०] अनुमवहीनता [को०] ।

अद्वैतसबूत—सज्ञा पुं० [फा०] किसी मुकदमे में सबूत का न होना । प्रमाण का अभाव ।

अद्वैतहाजिरी—सज्ञा स्त्री० [अ०] गैरहाजिरी । अनुपस्थिति ।

अद्वैत—वि० [सं०] जिसका दमन न हो सके । न दबने योग्य प्रचंड । प्रबल । अजेय ।

अद्वैत—वि० [सं०] १. दयारहित । करुणाशून्य ( व्यापार ) । २. निर्दयी । निष्ठुर । कठोरहृदय ( व्यक्ति ) उ०—अनजानी

भूलो पर भी वह अद्वैत दड तो देती है ।—पंचवटी, पृ० ७ ।

अद्वैत—सज्ञा स्त्री० [सं० अ०+दया] कोप । नाराजी दया का अभाव । उ०—अद्वैत अलह राम की, कुरलै ऊँगी कूब ।—कवीर ग्र०, पृ० २५ ।

अद्वैत—सज्ञा पुं० [सं० आदरक, फा० अदरक] तीन फुट ऊँचा एक पौधा जिसकी पत्तियाँ लंबी और जड़ या गाँठ तीक्ष्ण और चरपरी होती ।

विशेष—यह भारतवर्ष के उत्तरेक गर्म भाग में तथा हिमालय पर ४००० से ५००० फुट तक की ऊँचाई पर होता है । इसकी गाँठ मसाला, चटनी, अचार और दवाओं में काम आती है । यह गर्म और कटु होता है तथा कफ, वात, पित्त और शूल का नाश करती है । अग्निदीपक इसका प्रधान गुण है । गाँठ को जब उबालकर सुखा लेते हैं तब उसे सोठ कहते हैं ।

पर्याय—शृ गवेर, कटुमद्र, कटुकट, गुल्ममूल, मूलज, कदर, चर, महीज, सँकतेष्ट, अनूपज, प्रपाकशाक, चद्राख्य, राडूच्छय, सुशाकक, शाङ्ग, प्राद्रशाक, सच्छाक ।

अद्वैतकी—सज्ञा स्त्री० [सं० आदर की] मोठ और गुड मिनाकर बनाई हुई टिकिया । सोठोरा ।

अद्वैत<sup>१</sup>—सं० पुं० [हि०] दे० 'अद्वैत' । उ०—हीग हरद अत्रिछ छौंके तेले । अद्वैत और आवले मेले ।—मूर०, १।१०१४ ।

अद्वैत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अदर्शन' । उ०—भरत हरत दरसत सबहि, पुनि अद्वैतस काहु । तुलसी सुगुरु प्रसाद बल होत परमपद लाहु ।—सं० सप्तक, पृ० ३४ ।

अद्वैत<sup>३</sup>—वि० [हि०] दे० 'अदृश्य' ।

अद्वैत<sup>४</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आदर' । उ०—(क) वरसँ अद्वैत के बुदवा, ठाढि भीज गुजरी ।—प्रेमघन०, भाग २ पृ० ३४० । (ख) अद्वैत माहि जो बोवउ साठी । दुख के मार निकालउ लाठी ।—घाघ०, पृ० १२२ ।

अद्वैत<sup>५</sup>—क्रि० अ० [सं० आदर] बहुत आदर पाने से शेखी पर चढ़ना । फूलना । इतराना । आदर या मान चाहना । जैसे—वे आजकल अद्वैत हुए हैं, कहने से कोई काम जल्दी नहीं करते (शब्द) ।

अद्वैत<sup>६</sup>—क्रि० सं० आदर देकर शेखी पर चढ़ाना । फुलाना । घमडी बनाना ।

अद्वैत—सज्ञा पुं० [सं० आदर] दे० 'आदर' । उ०—राजे विना बुलाई गति जाके, अद्वैत नहि होई ।—पोद्दार अभि० ग्र० पृ० ६१७ ।

अद्वैत<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १. वह दिन जिसकी मध्याह्न चंद्रमा दिखाई न पड़े । २. आदर्श । दर्पण [को०] ।

अदर्शन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १. अविद्यमानता । असाक्षात् । २. लोप । ३. विनाश । ३. उपेक्षा [को०] ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

अदर्शन<sup>२</sup>—वि० अदृश्य । लुप्त [को०] ।

अदर्शनोप—वि० [सं०] दर्शन के अयोग्य । जो देखने लायक न हो । बुरा । कुलूप । भद्दा ।



अदल<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [अ० अदल] न्याय। ईसाफ। उ०—अदल कहौं  
पुहुमी जस होई। चाटा चलत न दुखवै कोई।—जायसी  
(शब्द)।

अदल<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] हिज्जल नाम का एक पौधा [को०]।

अदल<sup>३</sup>—वि० १ विना दल या पत्ते का। पत्रविहीन। २. विना  
फौज का। सेनारहित। ३. भागरहित (को०)।

अदल<sup>४</sup>—वि० [हि० अ + दल] जो किसी दल में न हो। तटस्थ।

अदल<sup>५</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० अदल = अपर्या] पार्वती। उ०—अदल-  
पति-रिपु पिता-पतिनी अब न जैहें फेर।—सा० लहरी,  
पृ० ११६।

अदलखाना—सज्ञा पुं० [अ० अदल + फा० खानह] न्यायालय।  
कचहरी। उ०—मेरे ही अकेले गुन, औगुन विचारे विना बदल  
न जैहें वडे अदलखाने मे।—मिखारी ग्र०, भाग १, पृ० ७६।

अदलतिहा + —वि० [अ० अदलत + हि० हा (प्रत्य०)] मुकदमेवाज।  
मुकदमा लड़नेवाला।

अदल बदल—सज्ञा पुं० [अ० बदल का अनुव्य० अदल] उलट पुलट।  
हेर फेर। परिवर्तन। उ०—अदल बदल भूषण प्रिया यातें  
परत लखाइ नूपुर कटि ढीलो भयो सकसि किकिनी पाइ।—  
मिखारी ग्र०, भाग १, पृ० ४५।

अदला—सज्ञा स्त्री० [सं०] घृतकुमारी नामक पौधा [को०]।

अदलावदली—सज्ञा स्त्री० [हि० अदल बदल] १ एक वस्तु लेने के  
लिये उसके बदले दूसरी वस्तु देना। २ एक चीज के स्थान  
पर दूसरी चीज रखना।

क्रि प्र०—करना।—होना।

अदली<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [अ० अदल + हि० ई (प्रत्य०)] न्यायी।  
ईसाफवर। उ०—कप कदली मे वारि वृद बदली, सिवराज  
अदली के राज मे यो राजनीति है।—मूपण (शब्द)।

अदली<sup>२</sup>—वि० [सं० अदल] विना पत्ते का।

अदलीय—वि० [सं० अ + दल + ईय (प्रत्य०)] जो किसी दल  
का सदस्य न हो। किसी दल से मवध न रखनेवाला।

अदवान—सज्ञा स्त्री० [सं० अघ. = नीवे + बाम = रस्सी अथवा देशी]  
चारपाई के पैताने की वह रस्सी, जिसे बिनावट को कसी रखने  
के लिये करधनी के छेदों में से ले जाकर सीरों में तानकर  
लपेटते हैं। ओनचन।

अदस—सज्ञा पुं० [अ०] मसूर [को०]।

अदह<sup>१</sup>—वि० [अदाय] न जलनेवाला।

अदहन—सज्ञा पुं० [सं० अदहन], खोलता, हुआ पानी। आग पर  
चढ़ा हुआ वह पानी जिसमें दाल, चावल, आदि पकाते हैं।

अदह्य—वि० [सं०] न जलने योग्य। जो जल न सके।

अदात—वि० [सं० अदान्त] १ जो इन्द्रियों का दमन न कर सके।  
अजितेंद्रिय। विषयासक्त। २ जो वश में न किया जा सके।  
हुदात (को०)।

अदात<sup>१</sup>—वि० [सं० अदान्त] विना दांत का। जिसे दांत न आए  
हो (आय पशुओं के लिये)। उ०—अदात बरद, दो दांत  
न्याय। आप जाय खसमै खाय।—रुद्रावत (शब्द)।

अदा<sup>१</sup>—वि [अ०] चुकता। वेवाक। दिया हुआ। उ०—जान  
दी, दी हुई उसी की थी। हक तो यह है कि हक अदा  
न हुआ।—शेर०, भा०-१, ४६३।

क्रि० प्र०—करना। जैसे—उसने तुम्हारा सब रुपया अदा कर  
दिया (शब्द)।—होना। जैसे—तुम्हारा कर्ज अदा हो गया  
(शब्द)।

मुहा०—अदा करना = पानन करना या पूरा करना। जैसे—  
सबको अपना कर्ज अदा करना चाहिए। (शब्द)।

यी०—अदाए जर डिंगरी = डिंगरी के देने या रुपए को देना।

अदाबदी = किसी रुपए के वेवाक करने या देने के लिये  
किस्त या समय का नियत करना। किस्तबदी। अदा या  
वेवाक करना = सब चुकता कर देना। कौड़ी कांडी दे  
डालना। अदा मालगुजारी = मालगुजारी का देना। अदाए  
शहाबत = गवाही देना।

अदा<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० १ भाव। हाव भाव। नखरा। मोहित करने  
की चेष्टा। उ०—सगरव गरब खिचे सदा चतुर चिरे  
आय। पर बाकी बांकी अदा नेकु न खोची जाय।—  
सं० सप्तक०, पृ० २६५। २ ढग। तर्ज। आन। अदाज।  
उ०—इस अदा से मुझे सलाम किया। एक ही आन में  
गुलाम किया।—शेर०, भाग १, पृ० ३६२।

अदाइगी—सज्ञा स्त्री० [को०] दे० 'अदायगी' [को०]।

अदाई<sup>१</sup>—वि० [अ० अदा + हि० ई (प्रत्य०)] १ ढगी। चालबाज।  
चतुर। उ०—ऊधो नेंकु निहारो। हम सालोक्य, सलूप,  
सायुज्यो रहति समीप सदाई। सो तज कहत और की और,  
तुम अलि वडे अदाई।—सूर० १०।३६००।

अदाई<sup>२</sup>—वि० [हि० अ + दाया] वाम। प्रतिकूल। प्रेमवर्चित।  
उ०—कहहु मोहि अब वाल सुहाई। केहि अबगुन मोहि  
कीहन अदाई।—चित्रा०, पृ० ३०६।

अदाकार—सज्ञा पुं० [हि० अद + फा० कार] अभिनेता। कुनाकार  
[को०]।

अदाग<sup>१</sup>—वि० [हि० अ = नहीं + अ० दाग = घट्टा] १. वेदाग।  
निर्मल। स्वच्छ। साफ। उ०—ज्ञान को भूपन ध्यान है,  
ध्यान को भूपन त्याग। त्याग को भूपन शातिपद तुलसी  
अमल अदाग।—तुलसी (शब्द)। २ निष्कणक। निर्दोष।  
३ पवित्र। शुद्ध।

अदागी<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अदान'।

अदाता<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ न देनेवाला व्यक्ति। कृपण। कजूस।  
२ विवाह में (कन्या) न देनेवाला व्यक्ति को (को०)। ३ वह  
व्यक्ति जिसे किसी का कुछ देय न हो (को०)।

अदाता<sup>२</sup>—वि० न देनेवाला। कजूस।

अदान<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अ + दान] १ अदाता। न देनेवाला व्यक्ति।  
कजूस। कृपण। उ०—हरि को मिलन सुदामा आयो। पूरव  
जन्म अदान जानिक ताते कछू मंगायो। मूठिक तडुल बाधि  
कृष्ण को वनिता विनय पठायो।—सूर (शब्द)। २ वह  
हाथी जिसका दान अर्थात् मद सवित न होता हो (को०)।

अदान<sup>२</sup>—वि० [सं० अ = नहीं + फा० दान = जाना] अजान।  
नादान। नासमझ। उ०—ये अदान जानती नहीं, कछू पालेहु  
भूल बिसारी।—रघुराज (शब्द०)।

अदानियाँ(७) वि० [हि०] दे० 'अदानी'। उ०—(क) ठाकुर कहते थे अदानियाँ अबूक भोदू भाजन अजस के वृथा ही उपजाए तैं।—ठाकुर श०, पृ० २७। (ख) ठाकुर कहत हम वैंरी वेवकूफन के जालिम दमाद हैं, अदानियाँ मसुर के।—इतिहास, पृ० ३८२।  
 अदानी(७) वि०, [म० अ+दानिन्] जो दान न दे। कजूस। सूम। कृपण। उ०—अवरा नैन कोनही रौँ आसु को, निवास होत जैसे सोन भौन कोन राखत अदानी है।—रघुराज (शब्द०)।  
 अदाव(७) सज्ञा पुं० [अ० आदाव] दे० आदाव'। उ०—अदव आदाव सलाम जो करई।—दरिया-वाणी, पृ० ४०।  
 अदाय—वि०, [म०] दाय या हिस्सा पाने का अनधिकारी [को०]।  
 अदायगी—सज्ञा स्त्री० [फा० अदाइगी] १ चुकता करना। भुगतान करना। २ पद्धति। तर्ज। प्रणाली। उ०—सिर्फ अदायगी अंगरेजी है।—गीतिका (भू०) पृ० ५।  
 अदायाँ(७) वि० [हि० अ+दायाँ=दक्षिण, दाहिना] वाम। प्रतिकूल। बुरा। उ०—परिया नवमी पूर्व न आए। दूइज दसमी उत्तर अदाएँ।—जायसी (शब्द०)।  
 अदाया(७) सज्ञा स्त्री० [स० अ+दया] दया का अभाव। निष्ठुरता। अकृपा। उ०—साहम, अनूत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया।—मानस, ६।१२।  
 अदायाद—वि० [म०] १ जो सपिड न हो। २ उत्तराधिकार रहित [को०]।  
 अदायिक—वि० [म०] १ दाय या उत्तराधिकार से सबध न रखने-वाला। २ जिसका कोई उत्तराधिकारी न हो। लावारिस [को०]।  
 अदार—वि० [स०] पत्नीरहित। विधुर। रूढ़्या [को०]।  
 अदारिका—सज्ञा स्त्री० [म०] एक प्रकार का पीछा [को०]।  
 अदालत—सज्ञा स्त्री० [अ०] न्यायालय। वह स्थान जहाँ बैठकर न्यायाधीश स्वत्व सबधी भगडो पर विचार करता है।  
 विशेष—आजकल इसके दो प्रधान विभाग हैं—(१) फौजदारी और (२) दीवानी। माल विभाग को दीवानी के अंतर्गत ही समझना चाहिए।  
 यौ०—अदालत अपील = वह अदालत जहाँ किसी मातहत अदालत के फैसले की अपील हो। अदालत खफीफा = एक प्रकार की दीवानी अदालत जिसमें छोटे छोटे मुकदमे लिए जाते हैं। अदालत दीवानी = वह अदालत जिसमें सपत्ति या स्वत्व संबंधी बातों का निर्णय होता है। अदालत मराफाऊला = वह अदालत जिसमें पहले पहल दीवानी मुकदमों दायर किया जाय। अदालत मराफासानी = वह अदालत जिसमें अदालत मराफाऊल की अपील हो। अदालत मातहत = जिसके फैसले की अपील उसके ऊपर की अदालत में हुई हो। अदालत माल = वह अदालत, जिसमें मालगुजारी वा लगान सबधी मुकदमे दायर किए जाते हैं।  
 मुहां०—अदालत करना = मुकदमा लड़ना। अदालत होना = अभियोग चलना।  
 अदालती—वि० [अ० अदालत + हि० ई० (प्रत्य०)] १ अदालत विषयक। न्यायालय सबधी। २ जो अदालत करे। मुकदमा लड़नेवाला।

अदावें(७) सज्ञा पुं०—[म० अ० बुरा + हि० दावें] बुरा दावपेंच। असमजस। कठिनाई। उ०—यह ऐसा अदावें परघो या घरी घेरहाईन के परि पुजेन मे। मिस कोउ न आनि चढे चितवैं इनकी वतियाँ की गुजन में।—राम (शब्द०)।  
 अदावत—सज्ञा स्त्री० [अ०] शत्रुता। दुश्मनी। लाग। वैर। विरोध। उ०—कीजे हमारे साथ अदावत ही क्यों न हो।—शेर० भाग १, पृ० ५२१।  
 कि० प्र०—करना।—रखना।—निकालना।—होना।  
 अदावती—वि० [अ० अदावत + हि० ई० (प्रत्य०)] जो अदालत रखे। कसरी। जो लाग रखे। २ विरोधजन्य। द्वेषमूलक।  
 अदास—वि० [स०] जो दास या परतत्र न हो। स्वाधीन [को०]।  
 अदाह(७) सज्ञा स्त्री० [अ० अदा] हाव भाव। नखरा। आन। मोहित करने की चेष्टा। उ०—एतो सत्प दियो तो दियो पर एती अदाह तें आनि घरी क्यों। एती अदाह घरी तो घरी पर ये अखियाँ रिझवारि करी क्यों।—(शब्द०)।  
 अदाह(७) वि० [स० अदाह] दाहरहित। जिसमें ताप या जलन न हो। उ०—कहा होइ जो त्री दुख तापा। मूखे जी अदाह औ भापा।—इंद्रा०, पृ० १५१।  
 अदाहक—वि० [स०] न जलानेवाला। जिसमें जलाने या भस्म करने का गुण न हो जैसे—जल।  
 अदाह्य—[स०] १ जो जलने योग्य न हो। २ जो चिता पर जलाने योग्य न हो। ३ आत्मा और परमात्मा का विशेषण [को०]।  
 अदिक्—वि० [स०] दिशाओं से परे। दिशाहरित। उ०—तुम ही घर आए हो यह जग जजाल रूप। पर तुम हो चिर अकाल नित्य अदिक्, हे अनूप।—कवासि, पृ० ६१।  
 अदिढ(७) वि० दे० 'अदृढ'। उ०—कछु मन दिढ कछु अदिढ लहीये, प्रौढा धीराधीरा कहिये।—नद० अ०, पृ० १४८।  
 अदित(७) सज्ञा पुं० [स० आदित्य] दे० 'आदित्य'।  
 अदिति<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रकृति। २ पृथ्वी। ३ दक्ष प्रजापति की कन्या और कश्यप ऋषि की पत्नी।  
 विशेष—इनसे सूर्य आदि तैत्तीस देवता उत्पन्न हुए थे। ये देवताओं की माता कहलाती हैं।  
 ४ असीमता। ५ निर्धनता। ६ स्वतंत्रता। ७ सुरक्षा। ८ पूर्णता। ९ पुनर्वसु नक्षत्र। १० गाय। ११ वाणी। १२ उत्पन्न करने की शक्ति। १३ दूध। १४ माता। १५ खुलोक। १६ अतरिक्ष।  
 अदिति<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ ईश्वर का एक विशेषण। २ प्रजापति। ३ देवताओं का विश्वदेवा नामक गण। ४ काल। ५ मृत्यु [को०]।  
 अदितिज—सज्ञा पुं० [स०] १ देवता। २ आदित्य। सूर्य [को०]।  
 अदितिनदन—सज्ञा पुं० [स० अदिनिन्दन] दे० 'अदिनिज' [को०]।  
 अदितिमुत—सज्ञा पुं० [स०] १ देवता। २ सूर्य।  
 अदिन—सज्ञा पुं० [स०] बुरा दिन। कुदिन। कुसमय। सकट या दुःख का समय। अभाग्य। उ०—यो कही बार बार पायनि परि पावरि पुलकि लई है। अपनी अदिन देखि हो डरपत जेहि विप बेलि बई है।—तुलसी, अ०, पृ० ३५६।

अदिव्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ लौकिक । साधारण । सामान्य । २ स्थूल जिसका ज्ञान इन्द्रियो द्वारा हो ।

अदिव्य<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० तीन प्रकार के नायको में से एक । वह नायक जो लौकिक हो । मनुष्य नायक । जैसे—मालती माधव नाटक में माधव ।

अदिब्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक । वह नायिका जो लौकिक हो । जैसे—मालती माधव में मालती ।

अदिष्ट<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अ + विष्ट = भाग्य] अभाग्य । उ०—कन्या एक जु पाछे । ई । तु पुनि अदिष्ट लई उडि गई ।—नद० प्र०, २३६ ।

अदिष्ट<sup>२</sup>—वि० [सं० अदिष्ट] 'अदृष्ट' ।

अदिष्टी<sup>१</sup>—वि० [सं० अ + विष्ट = भाग्य] १ अभाग्य । वदकिम्मत । २ अदृष्टशी । मूर्ख । प्रविचारी । दुष्ट ।

अदिष्ट<sup>२</sup>—वि० दे० 'अदृष्ट' । उ०—येम अदिष्ट गगन तें ऊँठा । ज्ञान दिष्टि सौं जाइ पहुँचा ।—जायसी प्र०, पृ० १२२ ।

अदिस्स<sup>१</sup>—वि० [सं० अदृश्य, प्रा० अदिस्स] लुप्त । गायब । शोभन । उ०—भूतनामिप्रनाम रिपु रन अदिस्स ।—पञ्चाकर प्र०, पृ० २७८ ।

अदीक्षित—वि० [सं०] जिसने दीक्षा न ली हो । जो दीक्षित न हो [को०] ।

अदीठ<sup>१</sup>—वि० [सं० अदृष्ट प्रा० अदिठ्ठ] बिना देखा हुआ । अप्रत्यक्ष । अनदेख । गुप्त । छिपा हुआ । उ०—उम मने कौं विममल करौं दीठा करौं अदीठ ।—कवीर प्र०, पृ०, २८ ।

अदीत<sup>१</sup>—पुं० [सं० आदित्य] दे० 'आदित्य' । उ०—मोह महातम रहनु है, जो सौं ज्ञान न होत । कहा महातम रहि सकै भए अदीत उदीत ।—सं० सप्तक, पृ० ३५६ ।

अदीदा<sup>१</sup>—वि० [सं० अ + दा० दीदह] बिना आग्रह का । नेत्र-रहित । उ०—दाहू देखा अदीदा । सब कोई कहत मुनीदा ।—घट०, पृ० १६८ ।

अदीठा—वि० [सं० अदृष्ट] जिसे देखा न गया हो । उ०—मारवणी कह कारणइ देम अदीठा दिट्ठ ।—ढोला०, पृ० १२५ ।

अदीन—वि [सं०] [स्त्री० अदीना] १ दीनदारहित । अनम्र । उग्र । अविनीत प्रचंड । निडर । २ उच्चाशय । ऊँची तबीयत का । उदार । उ०—निठुर, ठुकराओ न मेरी इम अदीना याचना को ।—कवासि, पृ० ५० ।

यौ०—अदीनात्मा = जो प्रकृत्या अदीन हो ।

अदीनवृत्ति—वि० [सं०] जो प्रकृत्या दीन न हो । तेजस्वी [को०] ।

अदीनसत्त्व—वि० [सं० अदीनसत्त्व] दे० 'अदीनवृत्ति' [को०] ।

अदीनात्मा—वि० [सं०] दे० 'अदीनवृत्ति' [को०] ।

अदीपित—वि० [सं०] अप्रकाशित [को०] ।

अदीव<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ अदक सिखानेवाला । २ सुशील [को०] ।

अदीव<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० साहित्य और विद्या का ज्ञाता [को०] ।

अदीयमान—वि० [सं०] जो न दिया जाय । उ०—अदीयमान दुख

सुख दीयमान जानिए ।—केशव (शब्द०) ।

अदीर्घ—वि० [सं०] जो उदा न हो । छोटा । मूढ [को०] ।

अदीर्घसूत्री—वि० [सं०] १ काम करने में विनय न करनेवाला । २ आलस्य न करनेवाला ३ गफूनीयाना [को०] ।

अदीर्घमूत्री—वि० [सं०] दे० 'अदीर्घसूत्री' [को०] ।

अदीह<sup>१</sup>—वि० [सं० अ + दीह = दीर्घ, प्रा० दीर्घ, प्रा० दीह] दे० 'अदीर्घ' । उ०—राधिका रूप विधान के पानिन आनि तव छिति की छवि छाई । रीह अदीह मूढम बल गहे दृग गारी की दीरि गोरई ।—केशव [को०] ।

अदुद<sup>१</sup>—वि० [सं० अदृष्ट, प्रा० अदुद] १ अदृष्ट । निन्दे । विना दण्ड का । बाधरहित । २ मान । निमित्त । ३ पेजोड । अहिनीय । उ०—गौरन वनक पं कनक वसुधाधर गुधाधर वन मपुराण मरु री । (शब्द०) ।

अदुख—वि० [सं०] जो दुःखी न हो । दुःख में रहित [को०] ।

अदुखनवमी—सज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि [को०] ।

विजय—इन दिन दुःख निवारण के लिये मित्रों देवी की पूजा करती है ।

अदुद्धत<sup>१</sup>—वि० [सं० अदृष्ट] दे० 'अदृष्ट' । उ०—प्रदुद्धत रहन विगम मत ब्रह्मज्ञान मिले ।—सं० दरिया, पृ० ४० ।

अदुख—वि० [सं०] १ दूष-रहित । २ न दुःखी हई [को०] ।

अदुर्ग—वि० [सं०] १ दुर्ग-रहित । २ दुर्गम न हो [को०] ।

अदुर्गविषय—सज्ञा पुं० [सं०] वह देश जिसमें जाने का अभाव हो [को०] ।

अदुष्ट<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ दूषणरहित । निर्दोष । शुद्ध । ठीक । बराबर । वास्तविक । उ०—सो स्तेष मुद्रानकार करिके बागह, सर-जन को नाम आन्यो चाहो ताते सब अदुष्ट हैं ।—भिखारी प्र० भा० २, पृ० २६० । २ गज्जन । भत्ता ।

अदू—सज्ञा पुं० [सं०] शत्रु । वीर । दुश्मन । उ०—दोस्तों के लिये जादी हो अदू के लिये गम हो ।—भारतेंदु न०, भा० २ पृ० ७४७ ।

अदूजा—वि० दे० 'अद्वितीय' [को०] ।

अदूर<sup>१</sup>—वि० [सं०] समीप । निकट । पास ।

अदूर<sup>२</sup>—वि० पास का । समीपी [को०] ।

अदूर<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० नामीप्य [को०] ।

अदूरदर्शी—वि० [सं०] जो दूर तक न नोचे । अनग्रसीवी । जो दूर के परिणाम का विचार न करे । अविचारी । स्थूलबुद्धि । नासमझ ।

अदूरदरसी<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अदूरदर्शी' । उ०—हेन हिरायेसे परमपर मचित्य चूर पारय यो मारयो अदूरदरसीनि लो ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १४३ ।

अदूषण—वि० [सं०] दूषणरहित । निर्दोष । बेधेव । शुद्ध । त्वच्छ ।

अदूषन<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अदूषण' । उ०—मनहु मारि मनसिज पुरारि दिप समिहि चापसर मकर अदूषन ।—तुलसी प्र०, पृ० ४१४ ।

अदृषित—वि० [म०] जिसपर दोष न लगा हो। निर्दोष। शुद्ध। उ० वह पूर्णतया अदृषित और निर्विकार है।—कवीर ग्र० पृ० ३।

अदृषितवी—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट न हुई हो। शुद्ध बुद्धिवाला पवित्रात्मा। [को०]।

अदृढ—वि० [सं० अ + दृढ] १ जो दृढ न हो। कमजोर। अस्थिर। चंचल।

यौ०—अदृढचित्त।

अदृष्ट—वि० [सं०] दर्प या अभिमानशून्य। निरभिमान। सीधा सादा। सोम्य।

अदृश्य—वि० [सं०] १ जो दिखाई न दे। अलख। २ जिसका ज्ञान पाँच इन्द्रियों को न हो। अगोचर। परोक्ष। लुप्त। गायब। अतद्यत्नि।

क्रि० प्र०—करना।—होना। उ०—लक्ष्मण तुरत अदृश्य उमी मे हो गए।—कानन०, पृ० १०१।

अदृष्ट<sup>१</sup>—वि० [म०] १—न देखा हुआ। अनक्षित। अनदेखा। २—लुप्त। अतर्धान। निरोहित। गायब। ओझस। उ०—यह कहिके मागीरथी केशव भई अदृष्ट।—रामच०, पृ० ६३।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अदृष्ट<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ भाग्य। प्रारब्ध। क्रिसमत। भावी। जन्मांतर का संस्कार। उ०—(क) केशव अदृष्ट माथ जीव जोति जैसी, तैसी लरुनाथ हाथ परी छाया जाया राम की।—रामच०, पृ० ७५। (ख) लिखता अदृष्ट था विघाता वाम कर से।—लहर पृ० ५३। २ अग्नि और जल आदि से उत्पन्न आपत्ति। जैसे—आग लगना, बाढ़ आना, तूफान आना।

अदृष्टकर्मा—वि० [सं० अदृष्टकर्मन्] जिसे काम करने का अभ्यास न हो। कार्य सबधी अनुभव से रहित [को०]।

अदृष्टगति—वि० [सं०] १ जिनकी चाल लखी न जाय। जो चुपचाप कार्य करे। उ०—सहज सुवास मरीर की आकरपन विधि जानु। अति अदृष्टगति दूनि का, इष्ट देवता मानु।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २६२। २ चालवाज। कूटनीतिपरायण।

अदृष्टनर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह मधि जिसे मध्यस्थ के बिना ही दोनों पक्ष स्वीकार कर लें [को०]।

अदृष्टनरसवि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अदृष्टनरपन्वि] वह सधि जो दूसरे के साथ इस आशय से किया जाय कि वह किसी तीसरे से कोई काम निव्व करा देगा।

अदृष्टपुरुष—सञ्ज्ञा पुं० [म०] २० 'अदृष्टनर' [को०]।

अदृष्टपूर्व—वि० [म०] १ जो पहले न देखा गया हो। २ अद्भुत। विनक्षण।

अदृष्टफल<sup>१</sup>—वि० [म०] अज्ञान फलवाला। जिसका फल न ज्ञात हो [को०]।

अदृष्टफल<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० पुण्य अथवा पाप का भविष्य मे उपलब्ध होने-वाला फल [को०]।

अदृष्टरूप<sup>१</sup>—वि० [म०] अदृश्य आकारवाला। [को०]।

अदृष्टरूप<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० वह रूप जो दृष्टिगोचर न हो [को०]।

अदृष्टलिपि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अदृष्ट + लिपि] भाग्यलिपि। भाग्य की रेखा। उ०—लोगो की अदृष्ट लिपि लिखी-पढ़ी जाती थी।—लहर, पृ० ७६।

अदृष्टवाद—वह सिद्धांत जिसके अनुसार परलोक आदि परोक्ष बातों पर किसी प्रकार का तर्क वितर्क कि बिना केवल शास्त्रलेख के आधार पर विश्वास किया जाय। प्रारब्धवाद। नियतिवाद।

अदृष्टवादी—वि० [सं०] अदृष्टवाद को माननेवाला। भाग्यवादी। उ०—आप बड़े अदृष्टवादी हैं।—प्रांथी, पृ० १८।

अदृष्टाकाश—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अदृष्ट + आकाश] भाग्यरूपी आकाश। उ०—मुगल अदृष्टाकाश मध्य अति तेज से धूमकेतु से सूर्य-मलन समुदित हुए।—कानन०, पृ० १०८।

अदृष्टाक्षर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ऐसी युक्ति से लिखे अक्षर जो बिना किसी विशिष्ट क्रिया के न पढ़े जायें।

विशेष—ऐसे अक्षर प्रायः प्याज, नीबू आदि के रस से लिखे जाते हैं और सूखने पर दिखाई नहीं पड़ते। विशेषतः आँच पर रखने से उमड़ आते और पढ़े जाते हैं।

अदृष्टार्थ<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] न्यायदर्शन के अनुसार वह शब्दप्रमाण जिसके वाच्य या अर्थ का साक्षात् इम संसार में न हो। जैसे—स्वर्ग, मोक्ष, परमात्मा, आदि।

अदृष्टार्थ<sup>२</sup>—वि० आध्यात्मिक या गूढ़ अर्थ का द्योतक। जिसका विषय इन्द्रियों के ज्ञान से परे हो [को०]।

अदृष्टि<sup>१</sup>—वि० [सं०] दृष्टिहीन। अघा [को०]।

अदृष्टि<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० १ दिखाई न पड़ने की स्थिति। २ क्रोध दुर्भाव आदि से युक्त दृष्टि। कुदृष्टि [को०]।

अदृष्टि<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० शिष्यों के तीन भेदों में से एक। मध्यम अधिकारी शिष्य।

अदृष्टिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] २० 'अदृष्ट' [को०]।

अदेख(उ)—वि० [सं० अ = नहीं + देख] १ जो न देखा जाय। अदृश्य। गुप्त। २ न देखा हुआ। अदृष्ट। उ०—(क) ऊँह अदेख केह नहि देखा, कवन फन दहुँ पाय।—जग० वानी, पृ० १०६। (ख) देखेउ करइ अदेख इव अनदेखेउ विसुआस।—सं० सप्तक, पृ० २८।

अदेखी<sup>१</sup>—वि० [अ = नहीं + देखी] जो न देख सके। डाही। द्वेषी। ईर्षालु। उ०—ए दई, ऐसो कछू कह गौत जु देखें अदेखिन के दृग दागै। जामे निसक ह्वै मोहन को भरिए निज अक कलक न लागै।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६७।

अदेखी<sup>२</sup>—वि० स्त्री० बिना देखी हुई।

अदेखे—क्रि० वि० [हि०] बिना देखे। अनदेखे। उ०—अदेखे अकेले किते दिन ह्वै गए चाह गई बित सो कड़ि सोऊ।—ठाकुर०, पृ० ७।

अदेय—वि० [सं०] १ न देने योग्य। जिसे न दे सकें। उ०—मकुच विहाइ माँगु नृप मोही। मोरे नहि अदेय कछु तोही।—मानस, १।१४६। २ (वह पदार्थ) जिसे देने को कोई बाध्य न किया जा सके।



जिमके धान की लवाई माधारण नजेय या नैनमुख के धान की आधी होती है।

अद्भुत<sup>१</sup>—वि० [म०] [सज्ञा अद्भुतना अद्भुतत्वं] आश्चर्यजनक। विस्मयकारक। विलक्षण। विचित्र। अनोखा। अजीब। अपूर्व। अलौकिक।

अद्भुत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ आश्चर्य। विस्मय (को०)। २ विस्मयपूर्ण घटना, पदार्थ या वस्तु (को०)। ३ किसी ऊँचाई की माप के ५ समभागों में से एक, जिनमें ऊँचाई चौड़ाई की अपेक्षा दूनी होती है (को०)। ४ काव्य के नौ रसों में से एक।

विशेष—इसमें अनिवार्यतः विस्मय की परिपुष्टा दिखलाई जाती है। इसका वर्ण पीत, देवता ब्रह्मा, आलवन प्रसमावित वस्तु, उद्दीपन उसके गुणों की महिमा तथा अनुमान सभ्रमादिक हैं। ५ केशव के अनुसार हारु के तीन भेदों में एक।

विशेष—इसमें किसी वस्तु का अलौकिक रूप में एक रस होना दिखनाया जाता है। जैसे—सोमा सुरवर माहि फल्योई सखि, राजे राजहमिरी ममीन मुखदानिए। केमोदास आस पास सौरन के जो घने, प्रानति के देव और अनन बजानिए। होति गोन दिन दूनी निरी मे सहन गुनी, सूरज सुहृद चारु चंद मन मानिए। रति को सदन छूई सके न मदन ऐनो कोमलददन जग जानकी की जानिए।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १८४।

अद्भुतकर्म—वि० [सं० अद्भुतकर्मन्] आश्चर्यजनक काम करने वाला उ०—और सब लोग इनको अद्भुतकर्म कहते हैं।—रमक०, पृ० ४२।

अद्भुतता—सज्ञा स्त्री० [म०] विचित्रता। विलक्षणता। अनोखापन।

अद्भुतत्व—सज्ञा पुं० [म०] विविधता। अनोखापन। उ०—त्रमकार मे हमारा अभिप्राय यहाँ प्रस्तुत वस्तु के अद्भुतत्व, या वैचक्षण्य में नहीं।—रम० पृ० ३३।

अद्भुतदर्शन—वि० [म०] जो देखने में अद्भुत या विचित्र लगे। विलक्षण।

अद्भुतवर्म—सज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के नव अंगों में से एक (को०)।

अद्भुतब्राह्मण—सज्ञा पुं० [म०] सामवेद के एक ब्राह्मण का अंग (को०)।

अद्भुतरस—सज्ञा पुं० [म०] १० 'अद्भुत'। उ०—जाको थार्ड आचरज मो प्रदुतरस गाव।—पद्माकर ग्र० पृ० २३०।

अद्भुतरामायण—सज्ञा पुं० [म०] एक रामायण जिसकी रचना का श्रेय वाल्मीकि को दिया जाता है (को०)।

अद्भुतसार—सं० पुं० [म०] खरिद वृक्ष का फल (को०)।

अद्भुतस्वन<sup>१</sup>—वि० [सं०] विविध स्वरवाला (को०)।

अद्भुतस्वन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० शिव का एक नाम (को०)।

अद्भुतालय—सज्ञा पुं० [म०] वह स्थान जहाँ मणार के अद्भुत पदार्थ दिखलाने के लिये रखे जाते हैं। अजायबघर।

अद्भुतोपमा—सज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का एक भेद।

विशेष—इसमें उपमा के ऐसे गुणों का उल्लेख किया जाता है, जिनका होना उपमेय में शिकान में भी सम्भव हो। जैसे—प्रीतम को अपमाननि गान सयाननि रीकि रिक्ताव। प्रक विलोकान बोलि अमोचनि बोलि के केशव मोदवदाव।

हावइ भाव विभाव प्रभाव नुभाव के भाउनि चित्र चुराव।

ऐसे विभाव जु होहि सरोज में नो उनमा मुख तेरे की पारव।

—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १८६।

अद्भुति<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि (को०)।

अद्भुत<sup>२</sup>—वि० [म०] अत्यधिक खानेवाला। पेटू (को०)।

अद्य<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं०] अब। अभी। आज।

अद्य<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० खाद्य पदार्थ। आहार (को०)।

अद्य<sup>३</sup>—वि० खाने योग्य। भोज्य (को०)।

अद्यतन—वि [सं०] [वि० अद्यतनीय] आज के दिन का। वर्तमान।

अद्यतन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० बीती हुई आधी रात से लेकर आनेवाली आधी रात तक का समय। कोई कोई बीती हुई रात के शेष प्रहर से लेकर आनेवाली रात के पहले प्रहर तक के समय को अद्यतन कहते हैं।

अद्यतनीय—वि० [सं०] आज का। आधुनिक युग का (को०)।

अद्यदिन—अव्य० [सं०] आज का दिन (को०)।

अद्यदिवस—अव्य० [पुं०] १० 'अद्यदिन' (को०)।

अद्यपूर्व—अव्य० [सं० अद्यपूर्वम्] अब अथवा आज में पहले (को०)।

अद्यप्रभृति—क्रि० वि० [सं०] आज से। अब से।

अद्यश्वीन—वि० [म०] आज या कल के अतर्गत घटित होनेवाला (को०)।

अद्यश्वीना—सज्ञा स्त्री० [सं०] जिसका प्रसवकाल निकट हो। आसन्नप्रसवा (को०)।

अद्यापि—क्रि० वि० [सं०] आज भी। अब भी। इस समय भी। अब तक। आज तक। उ०—देवपानी और ययानि के पावन चरित अद्यापि भूमडल को पवित्र करने हैं।—श्यामा०, पृ० ६१।

अद्यावधि—क्रि० वि० [सं०] आज तक। अब तक। इस समय पर्यंत। उ०—वह मय जो इनने निद्र किया था, अद्यावधि इसी भीत पर गहरा खुश है।—श्यामा०, पृ० १४।

अद्यावधिक—वि० [सं०] आजकल का। आधुनिक (को०)।

अद्याश्च—सज्ञा पुं० [सं०] आज और कल का दिन (को०)।

अद्यूत्य—वि० [सं०] जो जुए से प्राप्त न किया गया हो। ईमानदारी से उपाजित (को०)।

अद्यैव—क्रि० वि० [सं०] आज ही। इसी समय (को०)।

अद्रव<sup>१</sup>—वि० [सं०] जो द्रव या पतला न हो। गाढ़। घना। ठोस।

अद्रव<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० ठोस पदार्थ (को०)।

अद्रव्य<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] सत्ताहीन पदार्थ। प्रवस्तु। अनन्त। शून्य। अभाव।

अद्रव्य<sup>२</sup>—वि० द्रव्य या घनरहित। दरिद्र।

अद्रा<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० अद्रा, हि अद्रा] १० 'अद्रा'। उ०—(क) तपनि मृगमिरा जे महे वे मद्रा पनुहा।—जायसी ग्र०, पृ० १५६। (ख) मद्रा धान पुनर्वंतु पैया, गरा किसान जो बोवै चिरैया।—घाघ०, पृ० ७३।



अत्रापि—वि० [ स० ] १ सत्य । २. द्रव्यविज्ञान । द्रव्यरहित [वि०] ।

[illegible]

आदि भी । ३. शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित वेदात दर्शन । इस मत में 'ब्रह्म' के अतिरिक्त सभी पदार्थ असत्य हैं अर्थात् 'ब्रह्म' सत्य जगन्मिथ्या के अनुसार 'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म' अर्थात् 'ब्रह्म' ही एक और केवल अद्वैत तत्त्व सत्य माना गया है और 'ब्रह्म' सत्-चित्-प्रानदस्वरूप । मायावाद, अध्यासवाद, विवर्तवाद, उत्तरमीमांसा, शंकरवेदात आदि पदों से प्रायः इसी दर्शन का बोध होता है ।

विशेष—इस सिद्धांत के अनुयायी कहते हैं कि जैसे रस्सी के स्वरूप को न जानने से सर्प का बोध होता है, वैसे ही ब्रह्म के रूप को न जानने के कारण अध्यासवश ब्रह्म ही ससार रूप में वस्तुतः दिखाई देता है । अतः अज्ञान दूर हो जाने पर सब पदार्थ ब्रह्ममय प्रतीत होता है ।

अद्वैतवादी<sup>१</sup>—वि० [म०] अद्वैत मत को माननेवाला । ब्रह्म और जीव को एक माननेवाला । शंकरवेदात का अनुयायी ।

अद्वैतवादी<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० अद्वैतवाद का सिद्धांत माननेवाला व्यक्ति । अद्वैतसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ब्रह्म और जीव के अभेद की सिद्धि । २ शंकर वेदात का प्रकरणविशेष [को०] ।

अद्वैती—संज्ञा पुं० [मं० अद्वैतिन्] १ 'अद्वैतवादी' [को०] ।

अद्वैत—वि० [सं०] १ जो दो भागों में विभक्त न हो । अविभक्त । २ असद् भावना से रहित । ३ खरा । उत्तम [को०] ।

अद्वैतमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति, मित्र या राष्ट्र जिसकी मित्रता में किसी प्रकार का सदेह न हो ।

विशेष—वह जिनकी मैत्री स्वार्थपूर्ण न हो, जो स्थिरचित्त, सुशील, और उपकारी हो तथा विपत्ति में जिसके साथ छोड़ने की आशंका न हो, वह अद्वैतमित्र है ।

अधग<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [हिं०] १ 'अधग' । उ०—सीस गग गिरिजा अधग भूषण भुजगवर ।—तुलसी ग्र०, पृ० २३५ ।

अधतरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अध + अतरी] मालखम की एक कसरत ।

अध<sup>१</sup>—प्रत्यय [सं०] नीचे । तले ।

अध<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० दश दिशाओं में से एक । पैर के ठीक नीचे की दिशा ।

अध काय—संज्ञा पुं० [सं० अध = नीचे + काय = शरीर] कमर के चे के अंग । नाभि के नीचे के अवयव ।

अध क्रिया—संज्ञा स्त्री० [मं०] अपमानित करना । नीचा दिखाना [को०] ।

अध पतन—संज्ञा पुं० [मं०] १ नीचे गिरना । २ अवनति । अध पात तनज्जुली । ३ दुर्दशा । दुर्गति । ४ विनाश । क्षय ।

अध पतित—वि० [सं०] १ जिसका पतन हो गया हो । २ दुर्दशाग्रस्त [को०] ।

अध पात—संज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे गिरना । पतन । २ अवनति । तनज्जुली । ३ दुर्गति । दुर्दशा ।

अध पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनतमून नामक औषधि । २ नीले, फूल की एक वृद्धि जिसे अधाहनी भी कहते हैं ।

अध प्रस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] अधोचवालों के बैठने के लिये तृणों का बना हुआ आसन । कुशासन ।

अधोवेद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रथम पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करना [को०] ।

अध शयन—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी पर सोना । ब्रह्मचर्य का एक नियम अध शय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ 'अध शयन' [को०] ।

अध शिरा<sup>१</sup>—वि० [सं० अध शिरस्] सिर नीचे रखनेवाला [को०] ।

अध शिरा<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० एक नरक का नाम [को०] ।

अध स्वस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] अधोविट्ठु । देखनेवालों के पैरों के नीचे माना जानेवाला एक कल्पित विट्ठु [को०] ।

अध<sup>१</sup>—अव्य० [हिं०] १ 'अध' । उ०—अध अर्द्ध वानर विदिस दिसि वानर है ।—तुलसी ग्र०, पृ० १७४ ।

अध<sup>२</sup>—वि० [सं० अध; प्रा० अर्द्ध, अध] 'आधा' शब्द का सकुचित रूप । आधा । उ०—हैं जानत जो नाह तुम बोलत अध अधखरान ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १६६ ।

विशेष—प्रायः योगिक शब्द बनाने में इस शब्द का प्रयोग होता है । जैसे—अधकचरा, अधजल, अधवावरा, अधमरा ।

अधकचरा<sup>१</sup>—वि० [हिं० अध + कच्चा] १ अपरिपक्व । अधूरा । अपूर्ण । २ अकुशल । अक्ष । जिसे पूरी तरह कोई चीज न सीखी हो । जैसे—उसने अच्छी तरह पढ़ा नहीं अधकचरा रह गया (शब्द०) ।

अधकचरा<sup>२</sup>—वि० [हिं० अध + कचरना] आधा कूटा या पीसा हुआ । दरदरा । अधपिसा । अधकूटा । अरदावा किया हुआ ।

अधकच्चा—वि० [हिं०] १ 'अधकचरा' । उ०—वहुवा इस तरह की वनावट और चालाकी सुखवासी लाल सरोखे अधकच्चे मनुष्यों से होती है ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ६४ ।

अधकच्छा—संज्ञा पुं० [सं० अधकच्छा] नदी के किनारे की वह ऊँची भूमि जो ढालुई होते होते नदी की सतह में मिल गई हो ।

अधकछार—संज्ञा पुं० [सं० अध + कच्छ] पहाड़ के अचल की वह ढालुई भूमि जो प्रायः बहुत उपजाऊ और हरी भरी होती है ।

अधकट—वि० [हिं० अध + कटना] १ आधा कटा हुआ । २ नियत दूरी या परिणाम का आधा ।

अधकपारी—संज्ञा स्त्री० [सं० अध + कपाल हिं० अध + कपारी] आधे सिर का दर्द जो सूर्योदय से प्रारंभ होकर दोपहर तक बढ़ता जाता है । फिर दोपहर के बाद से घटने लगता है और सूर्यास्त होते ही बंद हो जाता है । आधासीसी । सूर्यावर्त ।

अधकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अध + कर] १ अठन्नियाँ । किस्त । माल-गुजारी या महसूल या किराए की आधी रकम जो किसी नियत समय पर दी जाय ।

अधकहा—वि० [हिं० अध + कहना] आधा कहा हुआ । अस्पष्ट रूप से या आधा उच्चारण किया हुआ । उ०—गहक गाँव और गहे रहे अधकहे वैन । देखि खिसीहैं पिय नयन किए रिसीहैं नैन ।—विहारी र०, दो० ६५ ।

अधकी<sup>१</sup>—वि० [सं० अधक] १ 'अधिक' । उ०—ज्यो ज्यो चूल्हे भोकिया, त्यो त्यो अधकी वास ।—कवीर सा० सं०, पृ० ६२ ।

अधखिला—वि० [हिं० अध + खिलना] [स्त्री० अधखिली] आधा खिला हुआ । अधविकसित ।

अधखुला—वि० पुं० [ हि० अध + खलना ] [ स्त्री० अधखुली ] आधा खुला हुआ। उ०—सुभग मिंगार साजे सबै, दै सखीन को पीठि। चली अधखिले द्वार लीं, खुली अधखुली दीठि।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२४।

अधगति०—सज्ञा स्त्री० [ हि० ] ३० 'अधोगति'। उ०—महा विपट कोटर महु जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई।—मानस, ७।१०७।

अधगो—सज्ञा पुं० [ स० अध = नीचे + गो = इन्द्रिय ] नीचे की इन्द्रियाँ। शिशन या गुदा। उ०—उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु की बहु कल्पना।—मानस, ६।१५।

अधगोरा—सज्ञा पुं० [ हि० अध + गोरा ] [ स्त्री० अधगोरी ] यूरोपीय और एशियाई माता पिता से उत्पन्न सन्तान। यूरोशियन।

अधगोहुआँ—सज्ञा पुं० [ स० अध + गोघूग + क ] जो मिला हुआ गेहूँ। गोर्जई।

अधघट०—वि० [ हि० अध + घट ] जो ठीक या पूरा न उतरे। जिससे ठीक अर्थ न निकले। अटपट। कठिन। उ०—महै कवीर अधघट बोलै। पूरा होइ विचार लै बोलै।—कवीर (शब्द०)। अधचन्ना—सज्ञा पुं० [ हि० अध + चना ] गेहूँ और चने का मिश्रण जिसमें आधा चना और आधा गेहूँ हो।

अधचरा—वि० [ हि० अध + चरना ] आधा चरा हुआ। अधभक्षित। आधा खाया हुआ। उ०—यह तन हरियर खेत, तरुनी हरिनी चर गई। अजहूँ चेत अचेत यह अधचरा बचाइ ले।—सम्पन्न (शब्द०)।

अधजर०—वि० [ हि० अध + जरना ] २० 'अधजला'। उ०—कोई परा भीर होइ बास लीन्ह जनु चोप। कोई पतग मा दीपक कोइ अधजर तन काँप।—जायसी ग्र०, पृ० २४६।

अधजला—वि० [ स० अध + जल ] पानी से आधा ही भरा हुआ। जैसे—अधजल गगरी छनकत जाय [को०]।

अधजला—वि० [ हि० अध + जलना ] आधा जला हुआ। जो पूर्ण रूप से भस्म न हुआ हो।

अधडी०—वि० स्त्री० [ म० अधर ] १ न ऊपर न नीचे। अधर का। आधाररहित। निराधार। २ ऊपटींग। बेसिर पैर का। असबद्ध। जिसका कोई मिलमिला न हो। न अधर की न उधर की। उ०—अधडी चाल कवीर की असा धरी नहि जाइ। दादू डाकहि मिरिग ज्यो उलटि पडै भू आइ—दादू (शब्द०)।

अधधर—सज्ञा पुं० [ स० अध + धार ] मध्यधार। बीचोबीच। उ०—पडे गुने उपजै अहंकारा। अधधर डूबे वार न पारा।—कवीर ग्र०, पृ० १३०।

अधन०—वि० [ स० ] १ धनरहित। निर्धन। कगाल। गरीब। अकिंचन। धनहीन। उ०—तुम सम अधन मिखारि अगेहा। होत विरचि तिवहि सदेहा।—मानस, १।१६१। २ स्वतंत्र संपत्ति रखने का अनधिकारी [को०]।

विशेष—मनु के अनुसार भार्या, पुत्र और दास स्वतंत्र संपत्ति रखने के अनधिकारी हैं।

अधनियाँ—वि० [ हि० अध + आना + इया (प्रत्य०) ] आध आने का। आध आनेवाला। जैसे—अधनियाँ टिकट।

अधन्ना—सज्ञा पुं० [ स० अध + आणक = आना ] [ स्त्री० अधन्नी ] एक आने का आधा। आध आने का सिक्का। डबल पैसा।

अधन्नी—सज्ञा स्त्री० [ हि० ] २० 'अधन्ना'।

अधन्य—वि० [ सं० ] [ स्त्री० अधन्या ] १ जो धन्य न हो। भाग्यहीन। अभाग। २ गहित। निच। बुरा।

अधप—सज्ञा पुं० [ स० ] भूखा सिंह। अधवृत्त केहरी।

अधपई—सज्ञा स्त्री० [ स० अध + पाद = चौपाई ] तौलने का एक वाट। एक सेर के आठवें हिस्से की तौल। आधा पाव तौलने का वाट या मान। दो छटकी। दसभरी। अधपाँवा। अधपाँवा।

अधपका—वि० [ स० अध + पक्व ] आधा पका हुआ। जो पूरी तरह पका न हो। अपरिपक्व।

अधपति०—सज्ञा पुं० [ हि० ] २० 'अधिपति'। उ०—खैची कमर सौं बाँध्या पटका। अधिपति हुवा बैठि करि पटका।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ३५१।

अधफड०—सज्ञा पुं० [ हि० ] २० 'अधफर'। उ०—टूटे पखवाज मेंडराने अधफड प्रान-गँवहों।—कवीर ग्र०, पृ० २२।

अधफर०—सज्ञा पुं० [ स० अध + फलक = तहता ] अतिरिक्त। न नीचे न ऊपर का स्थान। बीच का भाग। अधर। उ०—अव अधफर ऊपर अकाश। चलत दीप देखियत प्रकाश। चौकी दै मनु अपने भेव। बहुरे देवलोको को देव।—केशव (शब्द०)।

अधवर०—सज्ञा पुं० [ हि० अध + देश = वर (प्रत्य०) ] अथवा हि० अध + वाट = मार्ग १ आधा मार्ग। आधा रास्ता। उ०—जे अनिरुध पर परे हथ्यार। अधवर कटें शिखा की धार।—लल्लू (शब्द०)। २ बीच। मध्य। अधर। उ०—उन कुल की करनी तजी इत न भजे भगवान। तुनसी अधवर के भए ज्यो वधूर के पान।—स० सप्तक, पृ० ३१।

अधवाँच—सज्ञा पुं० [ हि० अध + स० \*√वञ्च् ] १ चमरावत। चमारो का जोरा। २ वह उजरत जो चमारो को चमड़े का मोट बनाने के लिये वर्ष भर मे या फसल के समय दी जाती है।

अधविच—सज्ञा पुं० [ हि० अध + वीच ] मध्य। बीच। उ०—तस नमाल अधवीच जनु त्रिविध कीर पाति सज्जिर, हेमजाल अतर परि तातें न उडाई।—गुलसी ग्र०, पृ० ४०५।

अधबुव०—वि० [ स० अध + बुव = बुद्धिमान ] अर्धशिक्षित। अधचरा। जिसकी शिक्षा पूरी न हुई हो। उ०—दिना सात लौं वाकी सही। बुव अधबुव अचरज एक कह्यो।—कवीर (शब्द०)।

अधवैसू०—वि० [ स० अध + वयस् + हि० ऊ (प्रत्य०) ] [ स्त्री० अधवैसी ] अधेड़। मध्यम अवस्था का। ढलती उम्र का। उतरती जवानी का।

अधम—वि० [ स० ] [ स्त्री० अधमा ] [ सज्ञा अधमाई, अधमता ] १ नीच। निकृष्ट। बुरा। खोटा। २ पापी। दुष्ट। उ०—कहहि सुनहि अस अधम नर प्रसे जे मोह पिसाच।—मानस १।११४।

अधम<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ एक पेड़ का नाम । २ कवि के तीन भेदों में से एक । वह कवि जो दूसरों की निंदा करे । ३ ग्रहों का एक अनिष्ट योग (को०) । ४ कर्तव्याकर्तव्य के विचार में रहित कामी (को०) ।

अधमई<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० अधम + हि० ई (प्रत्य०)] नीचता । अधमता । खोटापन ।—मुनि मेरी अपराध अधमई कोई निकट न आवें ।—सूर०, १।१६७ ।

अधमता—सज्ञा स्त्री० [म०] अधमपना । नीचता । खोटाई ।

अधमभूत—सज्ञा पुं० [सं०] निम्न श्रेणी का मेवर । तीन प्रकार के सेवकों में एक [को०] ।

अधमभूतक—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अधमभूत' [को०] ।

अधमरति—सज्ञा स्त्री० [सं०] कार्यवश प्रीति को अधमरति कहते हैं । जैसे, वेश्या की प्रीति ।

अधमरा—वि० पुं० [तं० अध, हि० अध + मरा] [स्त्री० अधमरी] आधा मरा हुआ । अधमृत । मृतप्राय । अधमुग्रा ।

अधमर्ण—सज्ञा पुं० [सं० अधम + ऋण] ऋण लेनेवाला आदमी । कर्जदार । धरता । ऋणी ।

अधमाग—सज्ञा पुं० [सं० अधमाङ्ग] शरीर का निचला भाग । चरण । पाँव । पैर ।

अधमा—सज्ञा स्त्री० [म०] १ दे० 'अधमा नायिका' । २ नीच प्रकृति की स्त्री [को०] ।

अधमाई<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [म० अधम + हि० आई (प्रत्य०)] अधमता । नीचता । खोटाई । उ०—परहिन सरिम धमं नहि भाई । पर पीडा सम नहि अधमाई ।—मानस ७।४१ ।

अधमादूती—सज्ञा स्त्री० [सं०] अधम दूती । वह दूती जो उत्तम रूप से अपना कार्य न करे वरन् कटु बातें कहकर नायक या नायिका का सदेश एक दूसरे को पहुँचाए ।

अधमाधम—वि० [सं० अधम + अधम] नीच में नीच । महानीच । उ०—महा विटप कोटर महु जाई । रहु अधमाधम अधगति पाई । मानस ७।१०७ ।

अधमानायिका—सज्ञा स्त्री० [म०] प्रकृति के अनुसार नायिका के भेदों में से एक । वह स्त्री जो प्रिय या नायक के हितकारी होने पर भी उसके प्रति अहित या कुव्यवहार करे ।

अधमार<sup>७</sup>—वि० [हि०] आधे मारे हुए । अधमरा । उ०—गए पुकारत कछु अधमारे ।—मानस १।२ ।

अधमार्ध—सज्ञा पुं० [म०] नाभि के नीचे का भाग [को०] ।

अधमुआ—वि० [हि०] दे० 'अधमरा' ।

अधमुख<sup>७</sup>—वि० [म० अधमुख] मुँह के वल । सिर के वल । अधो । उलटा । उ०—(क) स्थाम भुजनि की सुदरताई । बड़े विमल जानु लो परमत इक उपमा मन आई । मनो भुजग गगन तें उतरत अधमुख रहयो सुनाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) म्याम बिंदु नहि बिबुध मैं, मो मन यों ठहराई । अधमुख ठोड़ी गाड की, अधिपारी दरसाई ।—न० सप्तक, पृ० २५५ ।

अधमोद्धारक—वि० [सं०] पापियों का उद्धार करनेवाला [को०] ।

अधरगा—सज्ञा पुं० [हि० आधा + रग] एक प्रकार का फूल ।

अधर<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] १ नीचे का ओठ । २ ओठ ।

यो०—प्रिवाधर । दयिताधर ।

मुहा०—अधर चवाना—क्रोध के कारण दाँतों में ओठ बार बार दवाना । उ०—तदपि क्रोध नहि रोख्यो जाई । भए असन चख अधर चवाई ।—मनमाला (शब्द०) ।

३ भग या योनि के दोनों पार्श्व । ४ शरीर का निचला हिस्सा (को०) । ५ दक्षिण दिशा (को०) ।

अधर<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अध = नहीं + धृ = धरना] १ बिना आधार का स्थान । अतिरिक्त । आकाश । सुस्थान । जैसे—वह अधर में लटका रहा । (शब्द०) ।

मुहा०—अधर में झूलना, अधर में पटना, अधर में लटकना = (१) अधूरा रहना । पूरा न होना । जैसे—यह काम अधर में पड़ा हुआ है (शब्द०) । (२) पणोपेग में पटना । दुविधा में पटना ।

अधर<sup>३</sup>—वि० १ जो पकड़ में न आए । चबन । २ नीच । बुरा । तुच्छ । उ०—गूठ कपट प्रिय बचन मुनि नीच अधरबुद्धि रानि । सुरमाया बस वैरिनिहि सुहृद जानि पतिग्रानि ।—मानस २।१६ । ३ विवाद या मुकदमे में जो हार गया हो । ४ नीचा । नीचे का ।

अधरकाय—सज्ञा पुं० [म०] शरीर का निचला भाग [को०] ।

अधरछत<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [म० अधरक्षत] ओठ का अण । उ०—तु है अपन्हति अधरछन करत न पिय हिय बाढ ।—मिथारी प्र०, भा० २, पृ० १६ ।

अधरज—सज्ञा पुं० [सं० अधर + रज] ओठों की ललाई । ओठों की सुखी । ओठों की घड़ी । पान या मिस्री के रंग की लकीर जो ओठों पर दिखाई देती है ।

अधरपान—सज्ञा पुं० [सं० अधर = ओठ + पान = पीना, चूसना] मान प्रकार की बाह्यर तियों में से एक रति । ओठों का चुबन । अधरविबं—सज्ञा पुं० [म०] कुंदरु के पके फल जैसे ताल ओठ ।

अधरबुद्धि—वि० [म०] क्षुद्र बुद्धिवाला [को०] ।

अधरम<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अधम' । उ०—जब जब होई धर्म के हानी । वडहि अगुर प्रधर्म अभिमानी ।—मानस १।१२१ ।

अधरमकाय<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अधर्मस्तिकाय' ।

अधरमधु—सज्ञा पुं० [म०] अधरों का रस । अधरामृत [को०] ।

अधररस—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अधरमधु' [को०] ।

अधरस्वस्तिक—सज्ञा पुं० [म०] अशोविंदु [को०] ।

अधरागा—सज्ञा पुं० [म०] शरीर के नीचे के अंग या भाग [को०] ।

अधरा<sup>७</sup>—स्त्री० पुं० [म० अधर] दे० 'अधर' । उ०—मूज प्रिय मे इंगुर बोरे बंधूक से हैं अधरा अरुतारे ।—मिथारी प्र०, भा० १, पृ० ११ ।

अधरात<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [म० अधराति] आधीरात । उ०—प्रधगन उठन करि हाय हाय ।—मिथारी प्र०, भा० १, पृ० २२२ ।

अधराधर—सज्ञा पुं० [म० अधर + अधर] नीचे का ओठ । उ०—बन दन की पगति कुद की अधराधर पत्तन खोन्ति गी ।—तुलसी, प्र० पृ० १५५ ।

अधरामृत—सज्ञा पु० [मं०] ओठों का रस जो अमृत के समान मीठा माना जाता है [को०] ।

अधरावलीप—सज्ञा पु० [तं०] ओष्ठचर्वण । ओठ चवाना [को०] ।

अधरासव—सज्ञा पु० [अधर + आसव] ओठ का मादक रस ।—उ०—  
अधरासव अधरन चह्यो उरहु चह्यो उर लागि ।—श्यामा०,  
पृ० १७६ ।

अधरीण—वि० [सं०] १ नीचे । तिरस्कृत । २ निन्दित [को०] ।

अधरेद्यु—सज्ञा पु० [तं०] गत दिन के पहले का दिन । परसो ।

अधरोत्था—वि० [सं० अर्थ + रोमन्थ = जुगाली] [स्त्री० अधरोत्थी]  
आधा जुगाली किया हुआ । आधा पागुर किया हुआ । आधा चवाया हुआ । उ०—अधरोत्थी कग दाम गिरावन । थकित खुले मुख ते विखरावन । शकुन्तला०, पृ० ८ ।

अधरोत्तर—वि० [सं० अधर + उत्तर] ऊँचा नीचा । खटवीहड । ऊबड़ खावड़ । २ अच्छा बुरा । ३ न्यूनाधिक । कमोवेश ।

अधरोत्तर—क्रि० वि० ऊँचे नीचे ।

अधरोष्ठ—सज्ञा पु० [सं०] १ नीचे का होठ । २ नीचे और ऊपर के दोनों ओठ [को०] ।

अधरोष्ठ—सज्ञा पु० [तं०] \*० 'अधरोष्ठ' [को०] ।

अधर्म—सज्ञा पु० [तं०] [ वि० अधर्मा, अधर्मिष्ठ, अधर्मी ] पाप । पातक । असद्व्यवहार । अकर्तव्य कर्म । अन्याय । धर्म के विरुद्ध कार्य । कुकर्म । दुराचार । बुरा काम ।

विशेष—शरीर द्वारा हिमा चोरी आदि कर्म वचन द्वारा अनृत भाषण आदि और मन द्वारा परद्रोहादि । यह गौतम का मत है । कणाद के अनुसार वह कर्म जो अभ्युदय (लौकिक सुख) और नश्येयम (पारलौकिक सुख) की सिद्धि का विरोधी हो । जैमिनी के मतानुसार वेदविरुद्ध कर्म । बौद्धशास्त्रानुसार वह दुष्ट स्वभाव जो निर्वाण का विरोधी हो ।

२ एक प्रजापति अथवा सूर्य का अनुचर [को०] ।

अधर्ममन्त्रयुद्ध—सज्ञा पु० [मं०] वह युद्ध जो दोनों ओर के लोगों को नष्ट करने के लिये छेड़ा गया हो ।

अधर्मात्मा—वि० [तं०] अधर्मी पापी । दुराचारी । कुकर्मी । बुरा ।

अधर्मास्तिकाय—सज्ञा पु० [सं०] अधर्म पाप । जैनशास्त्रानुसार द्रव्य के छह भेदों में से एक ।

विशेष—यह एक नित्य और अरुची पदार्थ है जो जीव और पुद्गल की स्थिति का सहायक है । इसके तीन भेद हैं—स्कन्ध, देश और प्रदेश ।

अधर्मी—सज्ञा पु० [तं० अधर्मान्] [स्त्री० अधर्मिणी] पापी । दुराचारी । अधर्म्य—वि० [सं०] १ धर्मविरुद्ध । जो धर्म की दृष्टि में उपयुक्त न हो । २ अवैध । अन्यायपूर्ण [को०] ।

अधर्पणी—वि० पु० [सं०] जिसको कोई दवा या डरा न सके । जिसको कोई पराजित न कर सके । प्रचंड । प्रबल । निर्भय ।

अधवा—सज्ञा स्त्री० [सं० अ + धव = पति] जिसका पति जीवित न हो । विधवा । पतिहीन । विना पति की स्त्री । सधवा का उलटा ।

अधवाना—सज्ञा पु० [हि० हिदवाना] तरबूज ।

अधवारी—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ का नाम जिसकी लकड़ी मकान और असवाव बनाने के काम आती है ।

अधश्चर<sup>१</sup>—वि० [सं०] जो नीचे नीचे चले ।

अधश्चर<sup>२</sup>—सज्ञा पु० सेंध लगाकर चोरी करनेवाला पुरुष । सेंधिया चोर ।

अधसेरा—सज्ञा पु० [ सं० अर्ध + सेर = सेर ] एक वाट या तौल जो एक सेर की आधी होती है । दो पाव का मान ।

अधस्तन—वि० [सं०] १ नीचा । नीचे अवस्थित । २ पूर्ववर्ती । पहले का [को०] ।

अधस्तल—सज्ञा पु० [सं०] १ नीचे का कमरा । नीचे की कोठरी । २ नीचे की तह । तहखाना ।

अधस्वस्तिक—सज्ञा पु० [ सं० ] नीचे की ओर का वह स्थान या बिंदु जो पृथ्वी पर के किसी स्थान या बिंदु के ठीक नीचे हो । शीर्षबिंदु से ठीक विपरीत दिशा का बिंदु जो क्षितिज का दक्षिणी ध्रुव है ।

अर्धांगा—सज्ञा पु० [सं० अर्धाङ्ग] एक छाकी रंग की चिड़िया जिसकी गरदन से ऊपर का मारा भाग नाल होता है और डंठे तथा पैर सुनहले होते हैं ।

अर्धाधुध—क्रि० वि० [ हि० ] \*० 'अर्धाधुध' ।

अधाना—सज्ञा पु० [सं० अर्ध] ध्यान (अस्थायी) का एक भेद । यह तिलवाड़ा नाल पर बजाया जाता है ।

अधान्याय—सज्ञा पु० [मं०] वह स्थान या उपनिवेश जिसमें धान न पैदा होता हो ।

विशेष—वाणिक्य के अनुसार जलयुक्त उपनिवेश में भी वही उपनिवेश या प्रदेश उत्तम है जिसमें धान पैदा होता हो । परंतु यदि धान पैदा करनेवाला उपनिवेश छोटा हो और धान न पैदा करनेवाला उपनिवेश बहुत बड़ा हो, तो दूसरा ही ठीक है ।

अधामार्गव—सज्ञा पु० [मं०] अपामार्ग [को०] ।

अधार—सज्ञा पु० [सं० आधार] दे० 'आधार' । उ०—उप आधार सब सृष्टि भवानी ।—मानस, १।७३ ।

अधारणक—वि० [मं०] जो लाभप्रद न हो । [को०]

अधारिया—सज्ञा पु० [मं० आधार] बैनगाड़ी में गाड़ीवान के बैठने का वह स्थान जिसे मोढा भी कहते हैं ।

अधारी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० आधार या आधारिका ] १ आश्रय । सहारा । आधार की चीज । २ काठ के डबे में लगा काठ का पीढा जिसे साधु लोग सहारे के लिये रखते हैं । उ०—ऊद्योगों मिखावन आए । शृंगी मस्म अधारी मुद्रा दै यदुनाथ पठाए ।—सूर (शब्द०) । ३ यात्रा का सामान रखने का भोता या बैठा जिसे मुसाफिर लोग कंधे पर रखकर चलते हैं । उ०—मेखल, सिंधी, चक्र धधारा । जोगवाँट, रुद्राक्ष अधारी ।—जायसी ग्र०, पृ० ५३ ।

अधारी<sup>२</sup>—वि० स्त्री० सहारा देनेवाली । प्रिय । सुख देनेवाली । पत्नी । उ०—की मोहि लै पिय कठ लगावै । परम अधारी बात सुनावै ।—जायसी (शब्द०) ।

अधारी<sup>३</sup>—सज्ञा पु० [हि० आधा + आरियसम्भ] वेनिकाला हुआ बेल ।  
अधार्मिक—वि० [सं०] १ अधर्मी। धर्मशून्य । २ पापी । दुराचारी ।  
अधावट<sup>७</sup>—वि० पु० [सं०अर्थ = आधा + आवृत्त, प्रा० अध + आपट, आउट] आधा ओटा हुआ । जो ओटाते या गरम करते करने गाढ़ा होकर नाप में आधा हो गया हो । उ०—कछु वनदाऊ को दीजें, अरु दूध अधावट पीजें ।—सूर० १०।१८३ ।

अधि—उप० [सं०] एक मस्कृत उपसर्ग ।

विशेष—यह शब्दों के पहले लगाया जाता है और उसके ये अर्थ होते हैं—(१) ऊपर । ऊँचा । पर । जैसे—अधिराज । अधिकरण । अधिवान । (२) प्रधान । मुख्य । जैसे, अधिपति । (६) अधिक । ज्यादा । जैसे, अधिमाम । (४) सवध में । जैसे, आध्यात्मिक । अधिदैविक । आधिशैतिक ।

अधिक<sup>१</sup>—वि० [सं०] [सज्ञा अधिकता, अधिकाई, कि० अधिकाना] १ बहुत । ज्यादा । विशेष । २ अनिश्चित । निवा । फालतू । बचा हुआ । शेष । जैसे—जो खाने पीने से अधिक हो उसे अच्छे काम में लगाओ (शब्द०) ।

अधिक<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ वह अलंकार जिसमें आशय को आधार् से अधिक वर्णन करते हैं । जैसे—तुम पूछन कहि मुद्रिके मीन होनि यह नाम । कन की पदवी दई तुम विनु या कहूँ राम ।—राम च०, पृ० १०० । २ न्याय के अनुसार एक प्रकार का निग्रह स्थान जहाँ आवश्यकता से अधिक हेतु और उदाहरण का प्रयोग होता है ।

अधिकई<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० अधिक + हि० ई (प्रत्य०)] १ 'अधिकाई' । उ०—हितनी के लाह की, उछाहू की, विनोद मोद मोमा की अवधि नहि । अब अधिकई है ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३२० ।

अधिककोण—सज्ञा पु० [सं० अधिक + कोण] वह कोण जो समकोण से बड़ा हो (ज्यामिति) ।

अधिकत—कि० वि० [सं०] अधिकतर । विशेषकर । उ०—अधिकत वेंचना यह ध्यान था, ब्रजविमर्षण है शतधा बने । प्रिय०, पृ० १६३ ।

अधिकतम—वि० [सं०] परिमाण, माप, संख्या आदि में सबसे अधिक [को०] ।

अधिकतर<sup>१</sup>—वि० [सं०] किसी की तुलना में आगे बढ़ा हुआ । और ज्यादा [को०] ।

अधिकतर<sup>२</sup>—कि० वि० ज्यादातर । बहुत करके [को०] ।

अधिकता—सज्ञा स्त्री० [सं०] अधिकाना । ज्यादाती । बढ़ती । वृद्धि ।

अधिक तिथि—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो अपने समय के पश्चात् दूसरे दिन भी मानी जाय [को०] ।

अधिक दिन—सज्ञा पु० [सं०] १ 'अधिक तिथि' [को०] ।

अधिक दिवस—सज्ञा पु० [सं०] १ 'अधिक तिथि' ।

अधिक मास—सज्ञा पु० [सं०] अधिक महीना । मन्माम । लौद का महीना । पुरुषोत्तम मास । असक्रान्तमास । शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावस्या पर्यंत काल जिसमें सक्रांति न पड़े ।

विशेष—यह प्रति तीसरे वर्ष आता है तथा चाद्र वर्ष और सौर वर्ष को बराबर करने के लिये चाद्र वर्ष में जोड़ लिया जाता है ।

अधिकरण—सज्ञा पु० [सं०] १ आधार । आसरा । सहारा । २ व्याकरण में कर्ता और कर्म द्वारा क्रिया का आधार । मातृवां कारक । इसकी विभक्तियाँ 'भे' और 'पर' हैं । ३ प्रकरण । शीर्षक । ४ दर्शन में आधार विषय । अधिष्ठान । जैसे—ज्ञान का अधिकरण आत्मा है (शब्द०) । ५. भीमासा और वेदात के अनुसार वह प्रकरण जिसमें किसी मिद्वत् पर विवेचना की जाय और जिसमें ये पाँच अवश्य हो—विषय सशय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष और निर्णय । ६ सामान । पदार्थ । ७ न्यायालय । ८ प्रधानता । प्राधान्य । ९ अधिकारप्रदान ।

अधिकरणभोजक—सज्ञा पु० [सं०] न्यायाधीश [को०] ।

अधिकरणमण्डप—सज्ञा पु० [सं० अधिकरण मण्डप] न्यायालय । अदावात [को०] ।

अधिकरणविचाल—सज्ञा पु० [सं०] व्यतिक्रम करते जाना । किसी वस्तु के गुण में ह्रास अथवा वृद्धि करते जाना [को०] ।

अधिकरण सिद्धांत—सज्ञा पु० [सं० अधिकरणसिद्धान्त] न्याय दर्शन में वह सिद्धांत जिसके सिद्ध होने से कुछ अन्य सिद्धांत या अर्थ भी स्वयं सिद्ध हो जायें ।

विशेष—जैसे, आत्मा देह और इन्द्रियों से भिन्न है, इस सिद्धान्त के सिद्ध होने से इन्द्रियों का अनेक होना, उनके विषयों का नियत होना, उनका ज्ञाता के ज्ञान का साधक होना, इत्यादि विषयों की सिद्धि स्वयं हो जाती है ।

अधिकरणिक—सज्ञा पु० [सं० अधिकरणिक या अधिकारणिक] मुसिफ । जज । फैसला करनेवाला । न्यायकर्ता ।

अधिकरणी—वि० [सं० अधिकरणिन्] १ अध्यक्ष । २ निरीक्षण करनेवाला [को०] ।

अधिकरण्य—सज्ञा पु० [सं०] अधिकार [को०] ।

अधिकर्द्धि—वि० [सं० अधिक + कर्द्धि] ऐश्वर्यशाली [को०] ।

अधिकर्म—सज्ञा पु० [सं०] १ देखरेख । निरीक्षण । २ श्रेष्ठ कर्म । ३ निरीक्षक [को०] ।

अधिकर्मकर—सज्ञा पु० [सं०] १ 'अधिकर्मकृत्' [को०] ।

अधिकर्मकृत—सज्ञा पु० [सं० अधिकर्मकृत] काम करनेवाला का जमादार ।

अधिकर्मिक—सज्ञा पु० [सं०] प्राचीन काल में व्यापारियों से चुगी उगाहनेवाला अधिकारी [को०] ।

अधिकर्मी—सज्ञा पु० [सं० अधिकर्मिन्] मजदूरी आदि के कार्यों का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी [को०] ।

अधिकवाक्योक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा बड़ाकर कहना । अतिरजना [को०] ।

अधिकसवत्सर—सज्ञा पु० [सं०] अधिक मास । मनमाम [को०] ।

अधिकाग<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [सं० अधिकाङ्ग] अधिक अंग । नियत संख्या से विशेष अवयव ।

अधिकाग<sup>२</sup>—वि० जिसे कोई अवयव अधिक हो । जैसे—ठागुर ।

अधिकांश<sup>३</sup>—सज्ञा पु० [सं०] अधिक भाग । ज्यादा हिस्सा । जैसे—लूट का अधिकांश नरदार ने लिया [को०] ।



अधिकांश<sup>२</sup>—वि० बहुत ।

अधिकांश<sup>३</sup>—क्रि० वि० १ ज्यादातर । विशेषकर । बहुधा । २ अकसर । प्राय । जैसे—अधिकांश ऐसा ही होता है (शब्द०) ।

अधिकाई<sup>④</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० अधिक + हि० आई (प्रत्य०) ]  
१ ज्यादाती । अधिकता । विपुलता । विशेषता । बहुतायत । बटती । उ०—लहहि सकल सोभा अधिकाई ।—मानस, १ ।  
११ । २ बड़ाई । महिमा महत्व । उ०—उमा न कछु कपिके अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ।—मानस, ५।३ ।

अधिकाधिक—वि० [ सं० ] ज्यादा से ज्यादा । अधिक से अधिक ।

अधिकाना<sup>⑤</sup>—क्रि० प्र० [ सं० अधिक से नाम० ] अधिक होना । ज्यादा होना । बढ़ना । विशेष होना । वृद्धि पाना । उ०—सुक से मुनि सारद से वकता चिरजीवन लोमस ते अधिकाने ।—तुलसी ग्र०, पृ० २०७ ।

अधिकाभेदरूपक—सज्ञा पुं० [ सं० ] 'चंद्रालोक' के अनुसार रूक अलंकार के तीन भेदों में से एक ।

विशेष—इसमें उपमान और उपमेय के बीच बहुत सी बातों में अभेद या समानता दिखलाकर पीछे से उपमेय में कुछ विशेषता या अधिकता बतलाई जाती है । जैसे—'रहै सदा विकसित विमल, धरै वास मृदु मजु । उपज्यो नहि पुनि पक ते प्यारी को मुख कज ।' यहाँ मुख उपमेय और कमल उपमान के बीच मुवास आदि गुणों में समानता दिखाकर मुख के सर्वदा विकसित रहने और पक से न उत्पन्न होने की विशेषता दिखाई गई है ।

अधिकार<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ कार्यभार प्रभुत्व । आधिपत्य । प्रधानता । जैसे—'इस कार्य का अधिकार उन्हीं के हाथ में सौंपा गया है' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—जाना ।—देना ।—सौंपना ।

२ स्वत्व । हक । अधिकार । जैसे—'यह पूछने का अधिकार तुम्हें नहीं है' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।—रखना ।

३ दावा कब्जा । प्राप्ति । जैसे—'सेना ने नगर पर अधिकार कर लिया' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—जमाना ।

४ क्षमता । सामर्थ्य । शक्ति । ५ योग्यता । परिचय । ज्ञान । ज्ञानी । ज्ञान । लियाकत । जैसे—(क) 'इस विषय में उसे कुछ ज्ञान नहीं है' (शब्द०) । ६ प्रकरण । शीर्षक । जैसे—वातरोगाधिकार । ७ नाट्यशास्त्र के अनुसार रूपक के प्रधान फल का स्वामित्व या उसकी प्राप्ति की योग्यता । ८ कर्तव्य (को०) । ९ निरीक्षण (को०) । १० म्यान (को०) । ११ व्याकरण में एक मुख्य या प्रधान नियम जिससे उसके क्षेत्र में आनेवाले अन्य नियम भी शासित होते हैं ।

विशेष—यह अधिकार तीन प्रकार का होता है—(१) सिंहावलोकित, (२) मङ्गलपुत्र और (३) गंगाप्रवाह के सद्दृश ।

अधिकार<sup>२</sup>—वि० पुं० [ सं० अधिक ] अधिक । बहुत ।

अधिकारपात्र—वि० [ सं० ] अधिकार की पात्रता या योग्यता रखनेवाला [को०] ।

अधिकारविधि—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] मीमांसा में वह विधि या आज्ञा जिससे यह बोध हो कि किम फल की कामनावाले को कौन सा यज्ञ या कर्म करना चाहिए अर्थात् कौन किम कर्म का अधिकारी है । जैसे—स्वर्ग की कामना करनेवाला अग्निहोत्र यज्ञ करे, राजा राजसूय यज्ञ करे, इत्यादि ।

अधिकारस्थ—वि० [ सं० ] अधिकार संपन्न जिसमें अधिकार निहित हो [को०] ।

अधिकारा<sup>④</sup>—वि० [ सं० अधिक + आरा (प्रत्य०) ] अत्यधिक । उ०—चढ़े त्रिपुर मारन कूँ सारे, हरिहर सहित देव अधिकारे ।—निघंचल (शब्द०) ।

अधिकारी<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० अधिकारिन् ] [ स्त्री० अधिकारिणी ]  
१ प्रभु । स्वामी । मालिक । २ स्वत्वधारी । हकदार । ३ योग्यता या क्षमता रखनेवाला । उपयुक्तपात्र । जैसे—'सब मनुष्य वेदान्त के अधिकारी नहीं हैं' (शब्द०) । ४ नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक का वह पात्र जिससे रूक का प्रधान फल प्राप्त होता है । ५ एक जानीय उपाधि (को०) ।

अधिकारी<sup>२</sup>—वि०—स्वत्व या क्षमता रखनेवाला [को०] ।

अधिकारी<sup>३</sup>—वि० स्त्री० [ हि० अधिकारिणी ] अधिकारी । वाहुल्य । उ०—(क) जेहि काँ आपन हितकर जान्यो दीन्ह्यो मुख अधिकारी ।—जग० वानी, भा० १, पृ० ३४ । (ख) तरकारी, यामे पानी की अधिकारी ।—घाघ० पृ० ८५ ।

अधिकारी<sup>४</sup>—सज्ञा स्त्री० [ हि० ] जवर्दस्ती । उ०—त्यो पदमाकर मेलि मुठी इत पाइ अकेली करी अधिकारी ।—तत्त्वाकर ग्र०, पृ० ३१६ ।

अधिकार्य—सज्ञा पुं० [ सं० ] कोई वाक्य या शब्द जिससे किसी पद के अर्थ में विशेषता आ जाय ।

अधिकार्यवचन—सज्ञा पुं० [ सं० ] अत्युक्ति । अतिरजना [को०] ।

अधिकी<sup>④</sup>—वि० [ सं० अधिक + हि० ई (प्रत्य०) ] ३० 'अधिक' । उ०—अधिकी हमको नाही चाहियत है ।—दो सौ बावन, भाग २, पृ० १०५ ।

अधिकृत<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ अधिकार में आया हुआ । हाथ में आया हुआ । उपलब्ध । २ जिस पर अधिकार किया गया हो । उ०—हृदय हुआ अधिकृत तुमसे, तुम जीते हम हारे ।—भरना, पृ० ६३ ।

अधिकृत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० अधिकारी । अधक्ष । जैसे—महाबलाधिकृत में 'अधिकृत' ।

अधिकृति—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] अधिकार । स्वत्व [को०] ।

अधिकौर्हा<sup>④</sup>—वि० [ सं० अधिक + हि० और्हा (प्रत्य०) ] अधिकृत । अत्यधिक । उ०—जनु कलिंदनदिनि मनि-इंद्रनी न सिखर परनि धँसति लसति हससेनि सकुल अधिकौर्हा ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४०६ ।

अधिक्रम—सज्ञा पुं० [ सं० ] आरोहण । चढ़ाव । चढ़ाई ।

अधिक्रमण—सज्ञा पुं० [ सं० ] दे० 'अधिक्रम' [को०] ।

अधिकृष्ट—वि० [ पुं० ] १ फेंका हुआ । २ निंदित । तिरस्कृत । अपमानित । बुरा ठहराया हुआ ।

अधिक्षेप—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ फेंकना । २ तिरस्कार । निंदा । अपमान । ३ तानाजनी । व्यंग्य ।

अधिगतव्य—वि० [ म० अधिगन्तव्य ] १ प्रापणीय । प्राप्तव्य । २ समझने योग्य । ज्ञेय [को०] ।

अधिगता—वि० [ स० अधिगन्तु ] १ प्रापक । पानेवाला । २ समझने-वाला । अध्ययन करनेवाला [को०] ।

अधिगणन—सज्ञा पुं० [ स० ] १ अधिक गिनना । २ किसी चीज का अधिक दाम लगाना ।

अधिगत—वि० [ स० ] १ प्राप्त । पाया हुआ । २ जाना हुआ । ज्ञात । अवगत । समझा हुआ । पढ़ा हुआ ।

अधिगम—सज्ञा पुं० [ म० ] १ प्राप्ति । पहुँच । ज्ञान । गति । २ जैन दर्शन के अनुसार व्याख्यान आदि परोपकार द्वारा प्राप्त ज्ञान । ३. ऐश्वर्य । वडप्पन ।

अधिगमनीय—वि० [ म० ] दे० 'अधिगतव्य' [को०] ।

अधिगम्य—वि० [ म० ] दे० 'अधिगमनीय' [को०] ।

अधिगव—वि० [ स० ] गाय में अथवा गाय से प्राप्त [को०] ।

अधिगुण<sup>१</sup>—वि० [ स० ] विशिष्ट गुण में भूषित । सुयोग्य [को०] ।

अधिगुण<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [ स० ] विशिष्ट गुण [को०] ।

अधिगुप्त—वि० [ म० ] रक्षित । रखा हुआ । छिपाया हुआ । दबा हुआ ।

अधिचरण—सज्ञा पुं० [ स० ] किसी के ऊपर चढ़ना । अतिक्रमण करना [को०] ।

अधिच्छ(पु)—वि० [ स० अदृक्ष ] दे० 'अदृश्य' । उ०—अच्छन के आगे ही अधिच्छ गाड़यतु है ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २६६ ।

अधिज—वि० [ स० ] १ जनमा हुआ । २ उच्च कुल में उत्पन्न [को०] ।

अधिजनन—सज्ञा पुं० [ स० ] जन्म [को०] ।

अधिजिह्वा—सज्ञा पुं० [ स० ] १ एक से अधिक जीमवाला जीव । साँप आदि । २ जीम में होनेवाली एक प्रकार की बीमारी [को०] ।

अधिजिह्वा—सज्ञा स्त्री० [ स० ] १ एक बीमारी जिसमें रक्त मिले हुए कफ के कारण जीम के ऊपर सूजन हो जाती है । यह सूजन पक जाने पर असाध्य हो जाती है । २ गले का कौआ ।

अधिजिह्विका—सज्ञा स्त्री० [ स० ] दे० 'अधिजिह्वा' [को०] ।

अधिज्य—वि० [ स० ] जिमकी डोरी खिंची हो । धनुष, जिसकी प्रत्यचा या जिमका चितला चढ़ा हो ।

अधिज्यकार्मुक—वि० [ स० ] जिसके धनुष की प्रत्यचा चढ़ी हुई हो [को०] ।

अधिज्यघन्वा—वि० [ स० ] दे० 'अधिज्यकार्मुक' [को०] ।

अधित्यका—सज्ञा स्त्री० [ स० ] पहाड़ के ऊपर की समतल भूमि । ऊँचा पथरीला मैदान । टेबुल लैंड । 'उपत्यका' का उलटा । उ०—  
(क) हरी मरी घासन सो अधित्यका छवि छाई ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३ । (ख) इसकी कैसी रम्य विशाल अधित्यका है जिसके समीप आश्रम ऋषिवर्य का ।—कानन०, पृ० १०५ ।

अधिदंडनेता—सज्ञा पुं० [ स० अधिवडनेतु ] यमराज [को०] ।

अधिदंत—सज्ञा पुं० [ स० अधिदन्त ] एक दाँत के ऊपर निकलनेवाला दाँत [को०] ।

अधिदार्ढ्य—वि० [ म० ] काठ का । काठ में बना [को०] ।

अधिदिन—सज्ञा पुं० [ स० ] दे० 'अधिक तिथि' [को०] ।

अधिदोधित—वि० [ स० ] अत्यधिक प्रभा या कालिबाना [को०] ।

अधिदेव<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ स० ] [ स्त्री० अधिदेवी ] इष्टदेव । कुलदेव ।

अधिदेव<sup>२</sup>—वि० देव सवधी [को०] ।

अधिदैव—वि० [ स० ] दैविक । दैवयोग से होनेवाला । आकस्मिक ।

अधिदैवत<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ म० ] वह प्रकरण या मंत्र जिसमें अग्नि, वायु, सूर्य, इत्यादि देवताओं के नामकीर्तन में इष्टदेव का अर्थप्रतिपादन होकर ब्रह्मविभूति अर्थात् सृष्टि के पदार्थों के गुण आदि की शिक्षा मिले । पदार्थविज्ञान सवधी विषय या प्रकरण ।

अधिदैवत<sup>२</sup>—वि० देवता सवधी ।

अधिदैविक—वि० [ स० ] १ अधिदेव सवद्ध । अधिदैविक । २ आध्यात्मिक [को०] ।

अधिनाथ—सज्ञा पुं० [ स० ] १ सवका मानिक । सवका स्वामी । २. सरदार । अफमर । प्रधान अधिकारी ।

अधिनायक—सज्ञा पुं० [ म० ] [ स्त्री० अधिनायिका ] १ अफमर । सरदार मुखिया । २ मानिक । स्वामी । ३ किसी प्रदेश, देश, जानि या राष्ट्र का सर्वाधिकार सपन्न शासक । तानाशाह । डिक्टेटर ।

अधिनायकतन्त्र—सज्ञा पुं० [ स० अधिनायक + तन्त्र ] वह शासन व्यवस्था जिसके अनुसार किसी एक शासक को सारी शक्ति प्रदान कर दी जाय । तानाशाही । डिक्टेटरशिप ।

अधिनायकी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [ म० अधिनायक + हिं० ई (प्रत्य०) ] अधिनायक का पद या कार्य [को०] ।

अधिनायकी<sup>२</sup>—वि० अधिनायक सवधी [को०] ।

अधिनियम—सज्ञा पुं० [ स० अधि + नियम ] लोकसभा या सन्नोच्च शासक द्वारा पारित अथवा स्वीकृत विधि, नियम, कानून । ऐवट । जैसे, भारतीय शासक सवधी सन् १९३५ ई० का अधिनियम ।—भारतीय०, पृ० ११ ।

अधिनियमन—सज्ञा पुं० [ स० अधि + नियमन ] अधिनियम या विधान बनाने का कार्य [को०] ।

अधिप—सज्ञा पुं० [ म० ] मानिक । २ अकसर । सरदार । मुखिया । नायक । ३ राजा ।

अधिपति<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ स० ] [ स्त्री० अधिपत्नी ] १ सरदार । मानिक । अधीश । नायक । अफमर । स्वामी । मुखिया । हाकिम । २ राजा । ३. मस्तक का वह भाग जहाँ की चोट प्राणघातक होती है ।

अधिपति<sup>२</sup>—वि० बौद्ध दर्शन के अनुसार अधिपति चार प्रकार के होते हैं—(१) यज्ञाधिपति, (२) वित्ताधिपति, (३) वीर्याधिपति और (४) न्यायाधिपति ।

अधिपतिप्रत्यय—सज्ञा पुं० [ म० ] जैन दर्शन के अनुसार वह प्रत्यय या सयम जिसके अनुसार विषय को ग्रहण करने का नियम होता है ।

अधिपत्नी—सज्ञा स्त्री० [ स० ] १ स्वामिनी । २ शामिका [को०] ।

अधिपाशुल—वि० [ स० ] धूलधूसरित । धूल में भरा [को०] ।

अधिपुरुष—सज्ञा पुं० [ म० ] परमपुरुष । परमात्मा । ईश्वर [को०] ।

अधिप्रज—वि० [ स० ] बहुत अधिक मतान उत्पन्न करनेवाला [को०] ।

अधिवल—सज्ञा पुं० [ म० ] गर्मसंधि के तेरह अंगों में से एक । वह धोखा जो किसी को वेश बदने हुए देखकर होता है (नाट्यशास्त्र) ।

अधिविन्ता—सज्ञा स्त्री० [सं अधिविन्ता] १ अध्यूडा। पहली पत्नी।  
प्रथम विवाह की स्त्री। वह स्त्री जिसके रहते उसका पति  
दूसरा विवाह कर ले।

अधिभू—सज्ञा पुं० [मं] स्वामी। प्रधान व्यक्ति [को०]।

अधिभूत<sup>१</sup>—वि० [मं] भूत मयवी [को०]।

अधिभूत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं] १ ब्रह्म। २ सृष्टि के समस्त पदार्थ [को०]।

अधिभोजन—सज्ञा पुं० [मं] अति भोजन। बहुत अधिक खाना [को०]।

अधिभौतिक<sup>१</sup>—वि० हिं० दे० 'आधिभौतिक'। उ०—अधिभौतिक  
बाधा मई ते किकर तोरे, वेगि बोलि बलि बरजिए करतूति  
कटोरे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४५७।

अधिमथ—सज्ञा पुं० [मं अधिमन्य] अधिमथ्य रोग का एक अण।

अधिमथन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं अधिमन्यत] अग्नि उत्पन्न करने के लिये  
अरणी की लकड़ियों को परस्पर रगड़ना [को०]।

अधिमथन<sup>२</sup>—वि० रगड़ में अग्नि उत्पन्न करने योग्य (लकड़ी) [को०]

अधिमथित—वि० [सं अधिमन्यत] अधिमथ रोग से पीड़ित [को०]।

अधिमाम—सज्ञा पुं० [मं] आँख के सकेद भाग में या मसूँओं के पिठने  
भाग में होने वाला रोग विशेष [को०]।

अधिमासक—सज्ञा पुं० [सं] एक रोग।

विशेष—रुफ के विकार से नीचे की दाढ़ में विशेष पीड़ा और  
सूजन होकर मुँह से लार गिरती है।

अधिमात्र—वि० [सं] परिणाम से अधिक। बहुत ज्यादा [को०]।

अधिमास—सज्ञा पुं० [मं] दे 'अधिक मास'।

अधिमित्र—सज्ञा पुं० [सं] १ परस्पर मित्र। २ ज्योतिष में परस्पर  
मित्र ग्रहों के योग का नाम।

अधिमुक्त—वि० [मं] विश्वासयुक्त [को०]।

अधिमुक्तक—सज्ञा पुं० [सं] मनुमाधवी नाम का पौधा [को०]।

अधिमुक्ति—सज्ञा स्त्री० [मं] विश्वास [को०]।

अधिमुक्ति—सज्ञा पुं० [मं] बौद्धों के अनुसार महाकाल [को०]।

अधिमुक्तिका—सज्ञा स्त्री० [सं] मुक्ता। सीप। मोती का सीप [को०]।

अधिमुह्य—सज्ञा [सं] चौंतीम पूर्वजन्मों में बुद्ध का एक नाम  
[को०]।

अधियज्ञ<sup>१</sup>—वि० [मं] यज्ञ मयवी। यज्ञ से मय्य रखनेवाला।

अधियज्ञ<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० प्रधान यज्ञ [को०]।

अधिया<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [मं अधिका] १ आधा हिस्सा। गांव में आधो  
पट्टी की हिस्सेदारी। २ एक रीति जिसके अनुसार उपज  
का आधा मालिक को और आधा उसके सबंध में परिश्रम  
करने वाले को मिलता है। उ०—खेती करै अधिया, न बैन  
न दधिवा।—घाघ, पृ० ८६।

अधिया<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं अधिक] आधा हिस्सेदार। गांव में आधो  
पट्टी का मालिक। अधियार।

अधियान<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं] जपनी। गोमुखी। एक यैनी  
जिसमें हाथ डालकर माना जपते हैं २ छोटी माला।  
मुमिरनी।

अधियाना—क्रि० सं० [हिं आधा से नाम०] आधा करना। दो  
बराबर हिस्से में बांटना।

अधियारी<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हिं अधिया + आर] (प्रत्य०) १ किसी  
जायदाद में आधा हिस्सा। २ आधे का मालिक। वह  
जमींदार या ग्रामामी जो किसी गांव के हिस्से या जात में  
आधे का हिस्सेदार हो। ३ वह जमींदार या ग्रामामी  
जिसका आधा सबज एक गांव में और आधा दूसरे गांव में हो  
और जो अपना समय दोनों गांवों के काम में लगावे।

अधियारिन<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हिं अधियार + इन (प्र०)] १  
सौत। सपत्नी। २ बराबर का दावा रखने और आधे  
हिस्से की हिस्सेदार स्त्री।

अधियारी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [हिं अधियार + ई (प्र०)] किसी  
जायदाद में आधो हिस्सेदारी। २ किसी जमींदार या ग्रामामी  
की जमींदारी या जोत का दो भिन्न भिन्न गांवों में होना।

अधियोग—सज्ञा पुं० [मं] यात्रा के लिये शुभ माना जानेवाला  
ग्रहों का एक योग [को०]।

अधिरथ<sup>१</sup>—सज्ञा सं० [सं] मार्गधी। जो रथ को हांकनेवाला  
हो। गाठोवान।

अधिरथ<sup>२</sup>—वि० १ रथारूढ़। रथ पर चढ़ा हुआ। २ कर्ण को  
पालनेवाले सूत का नाम ३ बड़ा रथ। उत्तम रथ।

अधिराज—सज्ञा पुं० [मं] राजा। बादशाह। महाराज। प्रधान  
राजा। चक्रवर्ती। सम्राट्।

अधिराज्य—सज्ञा पुं० [सं] साम्राज्य। चक्रवर्ती राज्य।

अधिरात<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हिं] आधीरात। उ०—पिउ पिउ  
अधिरात पुकारत।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १७०।

अधिरूढ़—वि० [मं] १ आरूढ़। चढ़ा हुआ। २ बढ़ा हुआ [को०]।

अधिरोपण—सज्ञा पुं० [सं] ऊपर उठाने या चढ़ाने का कार्य [को०]।

अधिरोह—सज्ञा पुं० [मं] १ हाथी पर चढ़ना। २ ऊपर चढ़ना।  
३ सीढ़ी [को०]।

अधिरोहण—सज्ञा पुं० [मं] चढ़ना। सवार होना। ऊपर उठना।

अधिरोहिणी—सज्ञा स्त्री० [सं] मीठी। निसैनी। जीना।

अधिरोही—वि० [सं] अधिरोहण करनेवाला। ऊपर चढ़ने-  
वाला [को०]।

अधिलोक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं] ससार। ब्रह्मांड।

अधिलोक<sup>२</sup>—वि० ब्रह्मांड सबवो।

अधिवक्ता—सज्ञा पुं० [सं अधिवक्तृ] १ न्यायालय में किसी पक्ष का  
समर्थन करनेवाला। वकील। २ वक्ता [को०]।

अधिवचन—सज्ञा पुं० [मं] १ बड़ाकर कही हुई बात २ नाम।  
सज्ञा ३ पक्ष का समर्थन।

अधिवसित—वि० [सं अधिवस + इत (प्रत्य०)] बसा हुआ।  
आबाद [को०]।

अधिवाचन—सज्ञा पुं० [सं] नामजदगी। निर्वाचन। चुनाव।

अधिवास—सज्ञा पुं० [सं] १ निवासस्थल। म्यान। रहने की  
जगह। २ महासुगंध। खुशबू। ३ विवाह से पहले तेल  
हलदी चढ़ाने की रीति। ४ उवटन। ५ अधिक ठहरना।  
अधिक देर तक रहना। ६ दूसरे के घर जाकर रहना।

विशेष—मनु के अनुसार स्त्रियों के ६ दोषों में से एक।

अधीनस्थ—वि [प० अधीन + स्थ] रिधां न् अधीन रहनेवाला [ले०]

अधीमथ—सज्ञा पुं० [ सं० अधीमथ ] दे० 'अधिमथ' [को०] ।

अधीयान<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ विद्यार्थी । अध्ययन करनेवाला व्यक्ति । २ विद्यार्थी या अध्यापक रूप में वेदों का अध्ययन पूरा करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

अधीयान<sup>२</sup>—वि० पढ़नेवाला [को०] ।

अधीर—वि० पुं० [ सं० ] १ धैर्यरहित । धवराया हुआ । उद्विग्न । व्यग्र । वेचन । व्याकुल । विह्वल । २ चंचल । अस्थिर । वेसत्र । उतावला । तेज । आतुर । ३ असतोषी ।

धी०—अधीराक्षी । अधीर विप्रक्षित ।

अधीरा<sup>१</sup>—वि० स्त्री० [ सं० ] जो धीर न रहे ।

अधीरा<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० १ मध्या और प्रौढा नायिकाओं के तीन भेदों में से एक । वह नायिका जो नायक में नारीविनाससूचक चिह्न देखने से अधीर होकर प्रत्यक्ष कोप करे । २ विद्युत् । विजयी ।

अधीवाम—सज्ञा पुं० [ सं० ] एक प्रकार का पहनावा जिससे सारा शरीर ढक जाय । लवादा [को०] ।

अधीश—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ स्वामी । मालिक । सरदार । २ राजा ।

अधीश्वर—सज्ञा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० अधीश्वरी ] १ मालिक । स्वामी । पति । अध्यक्ष । २ अधिपति । भूपति । राजा ।

अधीष्ट<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ किसी को सत्कारपूर्वक किसी कार्य में लगाना । नियोग ।

अधीष्ट<sup>२</sup>—वि० सत्कारपूर्वक नियोजित । आदर के साथ बुलाकर किसी काम में लगाया हुआ ।

अधीसु<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ हिं० ] दे० 'अधीश' । उ०—परम अधीस वस भूमि यन देखिये—मिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १६६ ।

अधीसारक—सज्ञा पुं० [ सं० ] वेश्याओं के पास बार बार जानेवाला व्यक्ति । चद्रगुप्त के समय में इन्हें कठोर दंड दिया जाता था ।

अधुना—क्रि० वि० [ सं० ] इस समय । सप्रति । आजकल । अब । इन दिनों ।

अधुनातन—वि० [ सं० ] सांस्कृतिक । वर्तमान समय का । अब का । हाल का । 'सनातन' का उलटा ।

अधुर—वि० [ सं० ] भाररहित । २ चिन्तामुक्त [को०] ।

अधूत—वि० [ सं० ] १ अकपित । २ निर्मय । निडर । डीठ । उचकता । उ०—शखचूड़ धनपति का दूता । लै भागा एक सखी अधूता (शब्द०) ।

अधूमक<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] धूमरहित [को०] ।

अधूमक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० ] जलती हुई आग जिसमें धुआँ न हो [को०] ।

अधूरा—वि० पुं० [ सं० अध्र, हिं० अध्र + पूरा या करा (प्रत्य०) ] [ स्त्री० अधूरी ] अपूर्ण । जो पूरा न हो । अधा । असमाप्त अधकचरा ।

मुहा०—अधूरा जाना = असमय गर्भपात होना । कच्चा बच्चा होना । जैसे—उस स्त्री को अधूरा गया (शब्द०) ।

अधूत<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ धारण न किया हुआ । २ अनियंत्रित [को०] ।

अधूत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [ पुं० ] विष्णु के सहस्र नामों में से एक [को०] ।

अधृति<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ धृति की विपरीतता । अधीरता । उद्वेग । दृढ़ता का अभाव । धवराहट । २ आतुरता । समयम । ४ दुःख ।

अधृति<sup>२</sup>—वि० [ सं० ] अस्थिर [को०] ।

अधृष्ट—वि० [ सं० ] १ जो ढीठ न हो । २ विनम्र । लज्जाशील । ३ अजेय । ४ क्षतिरहित [को०] ।

अधृष्ट—वि० [ सं० ] १ अजेय । २ सलज्ज । गर्वयुक्त [को०] ।

अधर्गा—सज्ञा पुं० [ हिं० ] दे० 'अधर्ग' ।

अधेड—वि० [ सं० अध्र, हिं० अध्र + ऐड (प्रत्य०) ] वि० आधी उम्र का । उतरती अवस्था का । ढलती जवानी का । बुढ़ापे और जवानी के बीच का ।

अधेनु—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] दूध न देनेवाली गाय । ठाँठ गाय [को०] ।

अधेला—सज्ञा पुं० [ हिं० आधा + एला (प्रत्य०) ] आधा पैसा । एक छोटा तंबाका सिक्का जो सन् १९५६ तक चलता था । जो पैसे का आधा होता है ।

अधेलिका—सज्ञा स्त्री० [ हिं० ] दे० 'अधियार' ।

अधेली—सज्ञा स्त्री० [ हिं० आधा + एली (प्र०) ] आधा रुमा । आठ आने का सिक्का । अठ्ठी ।

विशेष—चाँदी या निकल का सिक्का जो आधे रुपए के बराबर था और सन् १९५६ तक चलता था ।

अधैर्य<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ धैर्य का अभाव । धवड़ाहट । व्याकुलता । उद्विग्नता । चंचलता । उतावलापन ।

अधैर्य<sup>२</sup>—वि० १ धैर्यरहित । व्याकुल । उद्विग्न । चंचल । २ उतावला । आतुर ।

अधैर्यवान्—वि० [ सं० अधैर्यवान् ] १ धैर्यरहित । व्यग्र । उद्विग्न । धवड़ानेवाला । २ आतुर । उतावला ।

अधोशुक—सज्ञा पुं० [ सं० अधस् = अंशुक ] १ नीचे पहनने का वस्त्र । जैसे पायजामा, धोती इत्यादि । २ अस्तर ।

अधो—अव्य० [ सं० अधस् = समामरूप ] दे० 'अध' । जैसे, अधोमुख अधोगति आदि में 'अधो' ।

अधोक्षज—सज्ञा पुं० [ सं० ] विष्णु का एक नाम । कृष्ण का एक नाम ।

अधोगति—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ पतन । गिराव । उतार । उ०—मून ही की जहाँ अधोगति गाढ़ा ।—रामच०, पृ० ८ । २ अवनति । दुर्गति । दुर्दशा ।

अधोगमन—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ नीचे जाना । २ अवनति । पतन । दुर्दशा ।

अधोगामी—वि० [ सं० अधोगामिन् ] [ स्त्री० अधोगामिनी ] १ नीचे जानेवाला । २ अवनति की ओर जानेवाला । बुरी दशा को पहुँचनेवाला ।

अधोघटा—सज्ञा स्त्री० [ सं० अधोघटा ] विवडा । आमारग ।

अधोछज<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० अधोक्षज ] दे० 'अधोक्षज' । उ०—द्विष्ट विकार तें रहित अधोछज जोति ।—नद० ग्र० पृ० १७८ ।

अधोजिह्वा—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] गले का कौआ [को०] ।

अधोटी—सज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक प्रकार का बाजा । उ०—बाजंत ताल दग अधोटी विच मुरली धुनि थोरी ।—छी०, पृ० २६ ।

अधोतर—सज्ञा पुं० [ देश० ] एक देशी कपड़ा जो गज्जी गाढ़े से भी मोटा होता है । उ०—सिरीसाफ बाफना अधोतर मेख कहिये ।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ७५ ।

अधोदिशि—संज्ञा स्त्री० [मं०] १ दक्षिण दिशा । २ अधोविंदु [को०] ।  
अधोदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [मं०] नीची दृष्टि । केवल नीचे की ओर देखना ।

उ०—सर्व अंग लै अंग ही में दुरायो । अधोदृष्टि कै अश्रुगंगा  
बहायो ।—रामच०, पृ० ६६ ।

अधोदेश—संज्ञा पुं० [मं०] १ नीचे का स्थान । नीचे की जगह । २  
शरीर के नीचे का भाग या हिस्सा ।

अधोद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा [को०] ।

अधोनिलय—संज्ञा पुं० [मं०] नरक [को०] ।

अधोभुवन—संज्ञा पुं० [मं०] पाताल । नीचे का लोक ।

अधोभूमि—संज्ञा स्त्री० [मं०] पर्वत के नीचे की जमीन । नीची भूमि ।  
[को०] ।

अधोमंडल—संज्ञा पुं० [मं० अधोमण्डल] भूमि ने माड़े मात मील तक  
का ऊँचा वायुमंडल [को०] ।

अधोमर्म—संज्ञा पुं० [सं०] गुह्यद्वार [को०] ।

अधोमार्ग—संज्ञा पुं० [मं०] १ नीचे का रास्ता । मुरग का मार्ग ।  
२ गुदा ।

अधोमुख<sup>१</sup>—वि० [मं०] नीचे मुख किए हुए । मुँह लटकाए हुए ।  
२ अधोमुख । उल्टा ।

अधोमुख<sup>२</sup>—क्रि० वि० अधोमुख । उल्टा । मुँह के वल । जैसे—वह  
अधोमुख गिरा (शब्द०) । उ०—गरभ वाम दम माम अधो-  
मुख, तहँ न मयो विनाम ।—सूर०, १।४७।

अधोमुखा—संज्ञा स्त्री० [मं०] गोजिह्वा [को०] ।

अधोमूत्र—वि० [मं०] जिसकी जड़ नीचे हो [को०] ।

अधोयत्र—संज्ञा पुं० [मं० अधोयत्र] भमका [को०] ।

अधोरघ(उ)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अधोर्घ' । उ०—दिशि पूरव पच्छिम  
दाहिने बाएँ अधोरघ सकन में ही फिरै ।—मेवक (शब्द०) ।  
अधोर्घ—क्रि० वि० [सं० अध + ऊर्ध्व] नीचे ऊपर । तने ऊपर ।

अधोलव—संज्ञा पुं० [सं० अधोलम्ब] १ वह खड़ी रेखा जो किसी  
दूसरी सीधी आड़ी रेखा पर इस प्रकार आकर गिरे कि पार्श्व  
के दोनों कोण समकोण हो । लव । २ माहुन । सूत में बैधा  
हुआ लोहे या पत्थर का वह गोना या घटे के आकार का  
लट्टू जिसे मकान बनानेवाले कारीगर पर्दे की सीध लेने के  
लिये काम में लाते हैं ।

विशेष—इस लट्टू को दीवार के सिरे में नीचे की ओर लटकाते  
हैं और इस सूत और दीवार के अंतर का मिलान करते हैं ।  
यह यत्र जल की गहराई नापने के भी काम आता है ।

अधोलिखित—वि० [मं० अधस् + लिखित] नीचे लिखा हुआ । उ०—  
अधोलिखित काव्य महाकाव्य की कोटि में पूर्ण नहीं ठहरने ।—  
वीरन० राम०, पृ० ४५ ।

अधोलोक—संज्ञा पुं० [मं०] नीचे का लोक । पाताल ।

अधोवदन—वि० [मं०] दे० 'अधोमुख' [को०] ।

अधोवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के नीचेवाले भाग में पहना जाने-  
वाला वस्त्र [को०] ।

अधोवस्था—संज्ञा स्त्री० [मं०] दे० 'अधोगति' । उ०—यह दो सूत्र  
हमारी सम्प्रति के मूल तत्त्व हैं और इस अधोवस्था में भी हम  
उन्हे अपनाए हुए हैं ।—प्रेम० और गोर्की पृ० १५१ ।

अधोवातावरोधोदावर्त—संज्ञा पुं० [मं०] रोगविशेष । अधोवायु के  
वेग को रोकने में उत्पन्न उदावर्त रोग ।

विशेष—इस रोग के ये लक्षण हैं—मल मूत्र का रुक जाना,  
अफरा चढ़ना, गुदा, मूत्राशय, लिङ्गद्रिय में पीड़ा तथा बाँदी  
से पेट में अन्य रोगों का होना ।

अधोवायु—संज्ञा पुं० [मं०] अपना वायु । गुदा की वायु । पाद । गोज ।  
नीचे की हवा ।

अधोविंदु—संज्ञा पुं० [सं० अधोविन्दु] पैर के ठीक नीचे माना जाने  
वाला बिंदु [को०] ।

अधोही—संज्ञा स्त्री० [हिं० आधा + ओही (प्रत्य०)] जानवरों की  
खाल का वह आधा भाग जो जानवर की लाश डोनेवालों को  
मिलना है [को०] ।

अधोडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अध + ओडी (प्र०)] १ आधा चरमा ।  
चरसे या पूरे चमड़े का निभाया हुआ आधा टुकड़ा ।

विशेष—भिन्नाने के लिये चमड़े के दो टुकड़े करने की आशयपूर्ण  
होती है इसी से एक एक टुकड़ा अधोडी कहलाता है ।

२ मोटा चमड़ा । 'नरी' का उल्टा जो प्रायः बकरी आदि के  
पतले चमड़े का होता है ।

यो०—अधोडी अस्तर = (१) जूने के तले के ऊपर का मोटा चमड़ा  
जिसपर नरी न हो । (२) वह जूना जिसपर केवल अधोडी  
का मोटा स्तर हो । ऊपर में नगी का चमड़ा न हो ।  
३ आमामण । पक्वान्न । उ०—नगी अधोडी भावरी, बैशा  
पेट फुटाइ । दाइ मूरर स्वान जोजो आरै रंगो बाइ ।—  
दादू०, पृ० २६ ।

मुहा०—अधोडी तनना = अघाना । खूब पेट भर जाना । जैसे—  
आज तो निमनण या खूब अधोडी तनी होती ।

अधोडी तानना = खूब पेट भरकर खाना ।

अधीन(उ)—वि० [हिं० आधा + ऊर्ध्व] आधा भाग या अंग [को०] ।  
अधीरी<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष । बकरी ।  
धोरा । शेत ।

विशेष—हिमालय की तराई में जम्बू में आसाम तक और दक्षिण  
भारत तथा बर्मा के जंगलों में पाया जाता है । इसकी छाल  
चिकनी तथा खाकी रंग की होती है । छाल और पत्तियाँ चमड़ा  
भिन्नाने के काम आती हैं । लकड़ी में हल तथा नावें बनती हैं ।  
इसकी लकड़ी का कोयला भी अच्छा होता है । यह वन में जेठ  
तक फुलता और वर्षा ऋतु में फलता है । फल बहुत समय तक  
वृक्ष पर रहते हैं । इसकी छाल से एक प्रकार का मीठा और  
खाने योग्य गोद निकलता है ।

अधीरी<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० दे० 'अधीरी' । उ०—राजन तान मृदंग अधीरी,  
कूजत वेनु रमाल ।—नद० ग्र०, पृ० १६६ ।

अधमान—संज्ञा पुं० [मं०] रोगविशेष । पेट का अफरा ।

विशेष—इस रोग में पेट अधिक फल जाता है दर्द होना है,  
अधोवायु का छटना बढ़ हो जाता है ।

अध्याडा—संज्ञा स्त्री० [मं० अध्याडा] अजशृंगी और भूमि आसानी  
नामक पीप्रे (को०) ।

अध्याडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्याडा] दे० 'अध्याडा' [को०] ।



अध्यक्ष<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] १ स्वामी । मानिक । २ अफपर । नायक । सरदार । प्रधान । मुखिया । ३ मुख्य अधिकारी । अविष्टाता । ४ मफेद मदार । श्वेतार्क । ५ क्षीरिका । पिरनी ।

अध्यक्ष<sup>२</sup>—वि० १ गोचर । दृश्य । २ निरीक्षण करनेवाला [को०] । अध्यक्ष<sup>३</sup>—क्रि० वि० [मं०] अक्षरशः । अक्षर अक्षर । जैसे—यह बात अध्यक्षर मत्व है (शब्द०) ।

अध्यक्षर<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] ओम् मन्त्र या शब्द [को०] ।

अध्यक्षीय—वि० [मं०] अध्यक्ष से सम्बन्धित । अध्यक्ष का [को०] ।

अध्यग्नि—सज्ञा पुं० [मं०] एक प्रकार का स्वीयन । यौतुक या दाघज ।

विशेष—यह अग्नि को मा नी कर कन्या को विवाह के समय मायकेवालों की ओर में दिया जाता है ।

अध्यच्छु—सज्ञा पुं० [मं० अध्यक्ष] ३० 'अध्यक्ष' ।

अध्ययन—सज्ञा पुं० [मं०] १ पठन पाठन । पढ़ाई । २ ब्राह्मणों के पट्कर्मों में से एक कर्म ।

अध्ययनीय—वि० [मं०] अध्ययन के योग्य । पठनीय [को०] ।

अध्यर्च<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] वायु जो मन्त्रों द्वारा करनेवाली और बढ़ानेवाली है और नारे समार में व्याप्त है ।

अध्यर्च<sup>२</sup>—वि० [मं०] एक गौर उमका आघा । डेड ।

अध्यर्चुद—सज्ञा पुं० [मं०] रोगविशेष ।

विशेष—द्विग स्नान पर एक बार अर्चुद रोग हुआ हो उमी म्यान पर यदि फिर अर्चुद हो तो उसे अध्यर्चुद कहते हैं ।

अध्यवसान—सज्ञा पुं० [मं०] १ प्रयत्न । २ दृढता । ३ अध्यवसाय । ४ प्रकृति अप्रकृति की ऐसी अभिन्नता जिसमें एक दूसरे में पूर्णतया समाहित हो [को०] ।

अध्यवसाय—सज्ञा पुं० [मं०] १ लगातार उद्योग । अविश्रान परिश्रम । नि सीम उग्रम । दृढता पूर्वक किसी काम में लगा रहना । २ उत्साह । ३ निश्चय । प्रतीति ।

अध्यवसायित—वि० [मं०] जिसके निर प्रयास किया गया हो [को०] ।

अध्यवसायी—वि० [मं० अध्यवसायिन्] १ लगातार उद्योग करने वाला । परिश्रमी । उद्योगी । उद्यमी । २ उत्साही ।

अध्यवसायित—जिसने सकल्पपूर्वक किसी कार्य के निर प्रयत्न किया हो [को०] ।

अध्यवसिति—सज्ञा स्त्री० [मं०] ३० 'अध्यवसाय' [को०] ।

अध्ययन—सज्ञा पुं० [मं०] अधिक मात्रा में भोजन करना । अजीर्ण । अनपच ।

अध्यस्त—वि० [मं०] जिसका भ्रम किसी अधिष्ठान में हो ।

विशेष—जैसे—रज्जु में सर्प, शक्ति में रजन और स्थाणु में पुरुष का भ्रम । यहाँ सर्प, रजन और पुरुष अध्यस्त हैं और रज्जु आदि अधिष्ठानों में इनका भ्रम होता है ।

अध्यस्य—सज्ञा पुं० [मं०] अस्थि के ऊपर का भाग [को०] ।

अध्यस्थि—सज्ञा स्त्री० [मं०] एक अस्थि के ऊपर निकलनेवाली दूसरी अस्थि । हड्डी के ऊपर की हड्डी [को०] ।

अध्याइ<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] ३० 'अध्याय' । उ०—यस सुनि लं द्वितीय अध्याइ । जर्म ब्रह्मादिक सब आइ।—नद० ग्र०, पृ० २२३ ।

अध्यातम<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० १० 'अध्यातम' । उ०—अह अध्यातम दीप जु कोई । बुध्यादिक परकासक मोई ।—नद० ग्र०, २२६ ।

अध्यातम<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] १ ब्रह्मविचार । ज्ञान तत्त्व । आत्मज्ञान । २ परमात्मा । ३ आत्मा ।

अध्यातम<sup>३</sup>—वि० आत्मा से सम्बद्ध [को०] ।

अध्यातमज्ञान—सज्ञा पुं० [मं०] आत्मा तथा परमात्मा से सम्बद्ध रखनेवाला ज्ञान [को०] ।

अध्यातमदर्शी—वि० [मं० अध्यातमदर्शिन्] आत्मा और परमात्मा का ज्ञान रखनेवाला [को०] ।

अध्यातमयोग—सज्ञा पुं० [मं०] मन को अन्य विषयों की ओर से हटाकर परमात्मा की ओर केंद्रित करना [को०] ।

अध्यातमरति—वि० [मं०] परमात्मा के प्रति अनुरक्त रहनेवाला [को०] ।

अध्यातमा—सज्ञा पुं० [मं० अध्यातमन्] परमात्मा । ईश्वर ।

अध्यात्मिक<sup>१</sup>—वि० [हिं०] ३० 'आध्यात्मिक' ।

अध्यापक—सज्ञा पुं० [मं०] [स्त्री० अध्यापिका] शिक्षक । गुन । पढ़ानेवाला । उस्ताद ।

अध्यापकी—सज्ञा स्त्री० [मं० अध्यापक + हिं० ई (प्रत्य०)] पढ़ाई पढ़ाने का काम । मुद्दरसी ।

अध्यापन—सज्ञा पुं० [मं०] शिक्षण । पढ़ाने का कार्य ।

अध्यापयिता—सज्ञा पुं० [मं० अध्यापयितृ] शिक्षक । अध्यापक [को०] ।

अध्यापिका—सज्ञा स्त्री० [मं०] पढ़ानेवाली । शिक्षिका [को०] ।

अध्याय—सज्ञा पुं० [मं०] १ ग्रन्थविभाग । २ पाठ । सर्ग । परिच्छेद ।

अध्यायी<sup>१</sup>—वि० [मं० अध्यायिन्] अध्ययन में लगा हुआ [को०] ।

अध्यायी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० विद्यार्थी [को०] ।

अध्यारूढ—वि० [मं० अध्यारूढ] १ आरूढ । चढ़ा हुआ । सवार । २ आक्रांत । ३ अत्यधिक । ४ किसी की तुलना में उससे श्रेष्ठ । ५ नीचे या निम्नतर [को०] ।

अध्यारोप—सज्ञा पुं० [मं०] १ एक के व्यापार का दूसरे में लगाना । अपवाद । दोष । अध्यास । २ झूठी कल्पना । वेदात के अनुसार अन्य में अन्य वस्तु का अभाव या भ्रम, जैसे ब्रह्म में जो सच्चिदानन्द अनन्त अद्वितीय है, अजानादि सकल जड़ समूह का आरोपण । ३ माध्य के अनुसार एक के व्यापार को अन्य में लगाना । जैसे, प्रकृति के व्यापार को ब्रह्म में आरोपित कर उसको जगत् का कर्ता मानना, या इन्द्रियों की क्रियाओं को आत्मा में लगाना और उनको उनका कर्ता मानना ।

अध्यारोपण—सज्ञा पुं० [मं०] ३० 'अध्यारोप' [को०] ।

अध्यारोपित—वि० [मं०] अध्यारोपण किया हुआ । भ्रमवश आरोपित [को०] ।

अध्यावाहनिक—सज्ञा पुं० [मं०] वह द्रव्य जो कन्या को पिता के घर से पति के घर जाते समय मिलता है । यह स्त्रीधन सम्भार जाता है ।

अध्याम—सज्ञा पुं० [मं०] १ अध्यारोप । आत ज्ञान । मिथ्या ज्ञान । कल्पना । और वस्तु में और वस्तु की धारणा ।

अध्यासन—सज्ञा पुं [मं] १ उद्देशन। बैठना। २ आरोपण।  
३ स्थान।

अध्याहरण—सज्ञा पुं [मं] ३० 'अध्याहार' [को०]।

अध्याहार—सज्ञा पुं [मं] १ तर्क विवरण। उद्धारोह। विचित्रता।  
विचार। वहन। २ वाक्य का पूरा करने के लिये उसमें और  
कुछ शब्द ऊपर से जोड़ना। उ०—प्रमगानुकूल आक्षेप अथवा  
अध्याहार करके ही अर्थबोध होता है।—शैली०, पृ० ७३।

३ अस्पष्ट वाक्य को हमारे शब्दों में स्पष्ट करने की क्रिया।

अध्याहृत—वि० [मं] अध्याहार किया हुआ [को०]।

अध्युपित—वि० [मं] वसा हुआ। आवाद [को०]।

अध्युष्ट—वि० पुं [सं] १ वसा हुआ। आवाद। २ साढे तीन।  
तीन और आधा (को०)। ३ साढे तीन बलय की मर्ष की  
कुटली [को०]।

अध्युष्ट—सज्ञा पुं [मं] ऊँटगाड़ी [को०]।

अध्युद्ध<sup>१</sup>—वि० [मं] अध्युद्ध १ उच्च। उन्नत। २ समृद्ध। ३ अत्य-  
धिक [को०]।

अध्युद्ध<sup>२</sup>—सज्ञा पुं १ शिव। २ किसी स्त्री का वह पुत्र जो विवाह  
के पूर्व उत्पन्न हुआ हो। [को०]।

अध्युद्धा—सज्ञा स्त्री [मं] अध्युद्धा [प्रथम विवाहि स्त्री। वह स्त्री  
जिसके पहले पति दूसरा विवाह कर ले। ज्येष्ठा पत्नी।

अध्युहन—सज्ञा पुं [मं] परत डानना (राख आदि की) [को०]।

अध्येतृ(७)—सज्ञा पुं [मं] अध्ययन] ३० 'अध्ययन'। उ०—दस पंच  
दित अध्येतृ कीन्ह। दन चारि मार मय मीछ लीन।—पृ०  
रा०, १।७३१।

अध्येतव्य—वि० पुं [सं] पढ़ने योग्य। अध्ययन करने योग्य।

अध्येता—सज्ञा पुं [मं] अध्युष्ट] पढ़नेवाला। विद्यार्थी।

अध्येय—वि० [सं] पढ़ने योग्य। अध्ययन करने योग्य।

अध्येपण—सज्ञा पुं [मं] आदर के साथ किसी कार्य में प्रवृत्त  
करना [को०]।

अध्येपण—सज्ञा स्त्री [मं] याचना। मांगना। मगनपन। निवेदन।  
अधि—वि० [मं] किसी का नियंत्रण न माननेवाला। जिसे वश में  
न किया जा सके [को०]।

अधियमारा—वि० [मं] १ जो पकड़ा न जा सके। २ मृत [को०]।

अधिगमगी(७)—सज्ञा स्त्री [सं] १ ऊँट। २ ऊँटनी।

अध्रुव<sup>१</sup>—वि० पुं [मं] १ चत। चचत। चलायमान। डाँढ़ी।  
अन्धिर। २ अन्धिर। अधिशित। वेष्टन ठिकाने का।

अध्रुव<sup>२</sup>—सज्ञा पुं अन्धिर [को०]।

अध्रुव<sup>३</sup>—सज्ञा पुं [मं] गले का रोगविशेष [को०]।

अध्व—सज्ञा पुं [मं] अध्वन्] रास्ता। मार्ग। पथ। २ यात्रा।  
३ दूरी। ४ कान। ५ साधन। ६ वेद की शाखा।  
७ आक्रमण। ८ स्थान। ९ आकाश। १० वायु। [को०]।

अध्वग—सज्ञा पुं [मं] १ बटोही। पथिक। यात्री। मुसाफिर।  
२ ऊँट। ३ खचर। ४ सूर्य। [को०]।

अध्वगा—सज्ञा स्त्री [मं] गगा [को०]।

अध्वगामी—वि० [मं] अध्वगामिन] यात्रा करनेवाला [को०]।

अध्वनिवेश—सज्ञा पुं [मं] पटाव।

अध्वनीन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [मं] यात्री। मुसाफिर [को०]।

अध्वनीन<sup>२</sup>—वि० यात्रा करने योग्य। २ यात्रा में तेज चलने-  
वाला [को०]।

अध्वन्य—सज्ञा पुं वि० [मं] ३० 'अध्वनीन'।

अध्वपति—सज्ञा पुं [मं] १ सूर्य। २ मार्ग का निरीक्षण करने-  
वाला अधिकारी [को०]।

अध्वर<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [मं] १ यज्ञ। सोमयज्ञ। २ आकाश।  
३ वायु [को०]।

अध्वर<sup>२</sup>—वि० १ मरला। २ गावधान। ३ अवाध। ४ पुष्ट [को०]।

अध्वरकल्पा—सज्ञा स्त्री [मं] काम्येष्टि यज्ञ [को०]।

अध्वरकाड—सज्ञा पुं [मं] अध्वरकाण्ड] जनपथ आत्मण का एक  
भाग [को०]।

अध्वरग—वि० [मं] यज्ञ के उपयोग में आनेवाला [को०]।

अध्वरय—सज्ञा पुं [मं] १ यात्रा के उपयुक्त गाड़ी। २ यात्रा में  
कुशल दूत [को०]।

अध्वर्यु—सज्ञा पुं [मं] चार हस्तिजो या यज्ञ करानेवाला में से  
एक। यज्ञ में यजुर्वेद का मंत्र पढ़नेवाला आत्मण। उ०—  
कगोडो बलोन्मन नृणमो के मरण यज्ञ में वे हँसनेवाले अध्वर्यु  
थे।—ककाल, पृ० १५६।

अध्वर्युवेद—सज्ञा पुं [मं] यजुर्वेद [को०]।

अध्वशतय—सज्ञा पुं [मं] अपामार्ग। बिचटा।

अध्वशोपि—सज्ञा पुं [मं] रोगविशेष। रास्ता चलने से उत्पन्न  
यक्ष्मा रोग।

अध्वात<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [सं] अध्वान्त] १ हलका अंग्रेज। २.  
छाया [को०]।

अध्वात<sup>२</sup>—सज्ञा पुं [मं] अध्व + अन्त] यात्रा या मार्ग का  
अन्त [को०]।

अध्वाति—सज्ञा पुं [मं] १ पथिक। यात्री। २ कुशल  
व्यक्ति [को०]।

अध्वाधिप—सज्ञा पुं [मं] मार्ग का निरीक्षक [को०]।

अध्वायन—सज्ञा पुं [मं] यात्रा। नका [को०]।

अध्वेश—सज्ञा पुं [मं] ३० 'अध्वेश' [को०]।

अन्—प्रवा० [मं] सम्पन्न वाक्य में यज्ञ विचारित 'नन्' अन्त  
का स्थानादेश है और अन्त या निपेक्ष सूचित करने के लिये  
स्वर में प्रारम्भ होनेवाले शब्दों के पहले लगाया जाता है।  
जैसे—अनन्त, अनन्त, अनन्तर, अनन्तर आदि। द्विती में  
यह अन्त या उपसर्ग सम्पन्न होता है और अन्त तथा स्वर  
से प्रारम्भ होनेवाले शब्दों के पहले भी लगाया जाता है। जैसे,  
अनन्त, अनन्ति, अनन्ती, अन्तर्हिता, अन्तर्हिता आदि।

अनंकुश—वि० [सं] अन्कुश] १ अकुश या निपेक्ष में नाश।  
आतित। जो पक्ष में न हो। २ अकुश या निपेक्ष में नाश।  
छूट लेनेवाला (जैसे, कवि) [को०]।

अनङ्ग<sup>१</sup>—वि० [म० अनङ्ग] १. विना शरीर का । देहरहित । उ०—  
(क) अंगी अनङ्ग कि मूढ अमूढ उदाम अमीन कि मीत सही  
को । सो अयवै कवह जनि केशव जाके उदोत उदै सबही  
को ।—केशव (शब्द०) । (घ) मुक्तको प्यारी के पाम पहुँचने  
के लिये अनङ्ग, अर्थात् शरीरविहीन क्यों नहीं बना देते ।—  
प्रेमघन०, भाग २, पृ० ४३२ ।

अनङ्ग<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ कामदेव । उ०—आगे सोहै साँवरो कुँवर गोरो  
पाछे पाछे, आछे मुनिवेष धरे लाजत अनङ्ग है ।—तुलसी  
ग्र०, पृ० १६५ । २, आकाश (को०) । ३ मन (को०) । ४ वह  
जो अङ्ग न हो (को०) ।

अनङ्ग अराति<sup>३</sup>—सज्ञा पु० [म० अनङ्ग + अराति] अनङ्ग का  
शत्रु । महादेव । शिव । उ०—तुम्ह पुनि राम राम दिन राती ।  
सादर जपहु अनङ्ग अराती । मानस—१।१०८ ।

अनङ्गक—सज्ञा पु० [स० अनङ्गक] मन (को०) ।

अनङ्गक्रीडा—सज्ञा स्त्री० [स० अनङ्गक्रीडा] १ रति । २ छद शास्त्र  
मे मुक्तक नामक विपम वृत्त के दो भेदों में से एक जिसके  
पूर्व दल में १६ गुहवर्ण और उत्तर दल में ३२ लघु वर्ण हो ।  
जैसे—आठौं जामा शम्भू गाओ । भौ फदा ते मुक्ति पाओ ।  
सिख मम धरि हिय भ्रम सब तजि कर । भज नर हर हर हर  
हर हर हर हर (को०) ।

अनङ्गद—वि० [स० अनङ्गद] काम या प्रणय का जनक (को०) ।

अनङ्गना<sup>४</sup>—क्रि० अ० [म० अनङ्ग] विदेह होना । शरीर की सुधि  
छोटना । बेसुध होना । सुध बुझ भुलाना । उ०—गागरि नागरि  
जल भरि घर लीन्हें आवैं । मृकुटी धनुष कटाक्ष वाण मनो  
पुनि पुनि हरिहि लगावैं । जाको निरखि अनङ्ग अनङ्ग ताहि  
अनङ्ग बढ़ावैं ।—सूर (शब्द०) ।

अनङ्गरग—सज्ञा पु० [म० अनङ्गरग] कामशास्त्र सबधी ग्रन्थ जिसमें  
मैथुन मगधी आसनो का विवरण है (को०) ।

अनङ्गलेख—सज्ञा पु० [म० अनङ्गलेख] मदनलेख या प्रेमपत्र (को०) ।

अनङ्गलेखा—सज्ञा स्त्री० [म० अनङ्गलेखा] प्रेमपत्र (को०) ।

अनङ्गवती—वि० स्त्री० [म० अनङ्गवती] कामिनी (को०) ।

अनङ्गवत्—सज्ञा पु० [म० अनङ्गवत्] शिव (को०) ।

अनङ्गशेखर—सज्ञा पु० [म० अनङ्गशेखर] दडक नामक वर्णवृत्त का  
एक ंद जिसमें ३२ वर्ण होते हैं और लघु गुहका कोई क्रम  
नहीं गेना । जैसे—गरजि मिहनाद नो निनाद मेघनाद वीर  
कुटान मान सो कसानु वाण छडिय (शब्द०) ।

अनङ्गारि—सज्ञा पु० [म० अनङ्गारि] कामदेव के अरि या शिव ।

अनङ्गिनी—सज्ञा स्त्री० [स० अनङ्गिनी] अनङ्ग की स्त्री । रति ।  
उ०—लीला रसरगिनि श्रोताया, अनुराग अनङ्गिनी श्रीराया ।  
—घनानन्द,—पृ० २४५ ।

अनङ्गी<sup>१</sup>—वि० [म० अनङ्गिनी] [स्त्री० अनङ्गिनी] १ अङ्गरहित ।  
विना देह का । अशरीर । २ अङ्गविहीन । लूना लँगडा ।  
अपाङ्ग । उ०—कहा कहौ हरि केनिक तारे पावन पद पर-  
तगी, सूरदान यह विरद नवन मुनि गरजन अवध अनङ्गी —  
सूर०, १।२१ ।

अनङ्गी<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ परमेश्वर । २ कामदेव ।

अनं गुरि—वि० [स० अनङ्गुरि] विना उँगलियों का । उँगलियों से  
हीन या रहित (को०) ।

अनङ्गुलि—वि० [स० अनङ्गुलि] अङ्गुलिहीन (को०) ।

अनङ्गन—वि० [स० अनङ्गन] अङ्गनरहित । अङ्गनशून्य (को०) ।

अनङ्ग<sup>३</sup>—वि० [स० अनङ्ग] अङ्गहीन । जो अङ्ग न हो । निर्वाण ।  
उ०—बहुआन जोग छत्री अनङ्ग, अन्यन कोस सितए मङ्ग ।  
—पृ० २।०, ५५।४२ ।

अनङ्गित<sup>४</sup>—वि० [म० अनङ्ग + चित्ता] जो छेदा हुआ या कटा हुआ  
न हो । अचिच्छिन्न । उ०—अनङ्गित अङ्ग वर अतताई, भई  
जीत चहुआन प्रथिराज राई ।—पृ० २।०, २५।७३ ।

अनङ्ग<sup>५</sup>—वि० [म० अनङ्ग] १ जिसका अङ्ग न हो । जिसका पार न  
हो । असीम । बेहद । अपार । २ बहुत अधिक । अमन्य ।  
अनेक । ३ अविनाशी । नित्य ।

अनङ्ग<sup>६</sup>—सज्ञा पु० १ विष्णु । २ शेषनाग । ३ लक्ष्मण । ४ बल-  
राम । ५ आकाश । ६ जैनों के एक तीर्थंकर का नाम । ७  
अश्रक । ८ एक गहना जो बाहु में पहना जाता है । ९ एक  
सूत का गडा जो चौदह सूत एकत्र कर उसमें चौदह गांठ देकर  
बनाया जाता है । इसे भादो मुदी चतुर्दशी या अनंतव्रत के दिन  
पूजित कर बाहु में पहनते हैं । १० अननचतुर्दशी का व्रत ।  
११ रामानुजाचार्य के एक शिष्य का नाम । १२ विष्णु का  
शख (को०) । १३ कृष्ण (को०) । १४ शिव (को०) । १५ रुद्र  
(को०) । १६ सीमाहीनता । अतहीनता (को०) । १७ नियत  
(को०) । १८ मोक्ष (को०) । १९ वासुकि (को०) । २० बादल  
(को०) । २१ सिंदुवार (को०) । २२ अश्रक । अवरक (को०) ।  
२३ श्रवण नक्षत्र (को०) । २४ ब्रह्मा (को०) ।

अनङ्गकर—वि० [स० अनङ्गकर] बढ़ाकर सीमाहीन कर देनेवाला ।  
अधिक कटनेवाला (को०) ।

अनङ्गकाय—सज्ञा पु० [म० अनङ्गकाय] जैनियों के अनुसार उन  
वनस्पतियों का समुदाय विशेष जिनके खाने का निषेध है ।

विशेष—इसके अंतर्गत वे पेड़ या पौधे माने जाते हैं जिनके पत्तों,  
औ फूलों की नसों इतनी मृक्ष हो कि देख न पड़ें, जिनकी  
सधिया गुप्त हो, जो नोड़ने से एकवारगी टूट जायें, जो जड़ से  
काटने पर फिर हरे हो जायें, जिनके पत्ते मोटे, दलदार और  
चिकने हो अथवा जिनके पत्ते फूल और फल कोमल हो । ये  
सख्या में वृत्तीय हैं ।

अनङ्ग—वि० [स० अनङ्ग] नित्य या अङ्गहीन जानेवाला । नित्य  
गतिशील रहनेवाला (को०) ।

अनङ्गगुण—वि० [स० अनङ्गगुण] बहुत अधिक गुणों से युक्त (को०) ।

अनंतचतुर्दशी—सज्ञा स्त्री० [म० अनङ्गचतुर्दशी] भाद्र शुक्ल  
चतुर्दशी ।

विशेष—इस दिन हिंदू अलोना व्रत करते हैं और चौदह तागों  
के अनंतवृत्त को, जिसमें चौदह गांठें दी होती हैं, पूजन  
कर बांधते हैं और तत्पश्चात् भोजन करते हैं । यह व्रत  
मध्याह्न पर्यंत का है ।

अनंतचरित्र—सज्ञा पु० [म० अनङ्गचरित्र] एक बोधिसत्व (को०) ।

अनंतजित—सज्ञा पु० [म० अनङ्गजित] १ वासुदेव । २ वर्तमान  
अवसर्पिणी के १४ वें तीर्थंकर (को०) ।

अनंततटक—सज्ञा पुं० [सं० अन्ततटका] एक रागविशेष जो भैरव राग का पुत्र माना जाता है।

अनतता—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तता] असीमत्व। अमितत्व। अत्यंत अधिकता।

अनततान—वि० [सं० अन्ततान] असीम। अपार [को०]।

अनततीर्थकृत—सज्ञा पुं० [सं० अन्ततीर्थकृत] १० 'अननजित्' [को०]।

अनतनृतीया—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तनृतीया] भाद्र मास का तीसरा दिन [को०]।

अनततत्व—सज्ञा पुं० [सं० अन्ततत्व] अनतता [को०]।

अनतदर्शन—सज्ञा पुं० [सं० अन्तदर्शन] जैन मन के अनुसार केवल दर्शन या सम्यक् दर्शन। सब बातों का पूरा ज्ञान। ऐसा ज्ञान जो दिशा, काल आदि से बद्ध न हो।

अनतदृष्टि—सज्ञा पुं० [सं० अन्तदृष्टि] इन्द्र का एक नाम।

अनतदेव—सज्ञा पुं० [सं० अन्तदेव] १ शेषनाग। २ शेषनागा पर रहनेवाले नारायण [को०]।

अनतनाथ—सज्ञा पुं० [सं० अन्तनाथ] जैन लोगो के चौदहवें तीर्थंकर।

अनतपार—वि० [सं० अन्तपार] जिसका पार या सीमा न हो। असीम विस्तारवाला [को०]।

अनतमति—सज्ञा पुं० [सं० अन्तमति] एक बोधिमत्त्व [को०]।

अनतमाथी—वि० [सं० अन्तमाथिन्] अनत या अपार छल या माया से युक्त [को०]।

अनतमूल—सज्ञा पुं० [सं० अन्तमूल] एक पीड़ा या वेद जो मारे भारतवर्ष में होती है और ओषधि के काम आती है।

विशेष—इसके पत्ते गोबर और निरे परनुकीले होते हैं। यह दो प्रकार की होती है—काली और सफेद। यह स्वादिष्ट, सिग्ध, शुक्रजनक तथा मदाग्नि, अरुचि, श्वाप, खाँसी, त्रिप, त्रिदोष आदि को हरनेवाली होती है। रक्त शुद्ध करने का भी गुण इसमें बहुत है। इसी से इसे हिंदी में सालमा या उशवा भी कहते हैं।

पर्याय—सारिवा। अनता। गोपी। भद्रवल्ली। नागजिह्वा। कराला। गोखली। सुगंधा। भद्रा। श्यामा। शारदा। प्रहानिका। आस्कोता।

अनतर<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं० अन्तर] १ पीछे। ठीक बाद। उपरांत। बाद। २ निरंतर। लगातार।

अनतर<sup>२</sup>—वि० १ अंतररहित। निकटस्थ। पट्टीशर। २ अखंडित। ३ अपने वर्ण में ठीक बादवाले वर्ण का [को०]।

यौ०—अनतरज। अनतरजात।

अनतर<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० १ समीपता। निकटता। अंतर का अभाव। २ ब्रह्म। परमात्मा [को०]।

अनतरज—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरज] वह व्यक्ति जिसके पिता का वर्ण माता से एक वर्ण ऊँचा हो।

विशेष—जैसे,—माता शूद्रा हो और पिता वैश्य अथवा माता वैश्य हो और पिता क्षत्रिय अथवा माता क्षत्राणी और पिता ब्राह्मण हो।

अनतरजात—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरजात] १० 'अनतरज'।

अनंतरय—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरय] अंतर का अभाव [को०]।

अनतराय—सज्ञा पुं० [सं० अन्तराय] निर्विघ्न [को०]।

अनतरित—वि० [सं० अन्तरित] १ जिसमें बीच न पड़ा हो। निकटस्थ। २ अखंडित। अटूट।

अनतरिति—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरिति] न त्यागना या अनगाना [को०]।

अनतरीय—वि० [सं० अन्तरीय] वगानुक्रम में ठीक बादवाला [को०]।

अनतहित—वि० [सं० अन्तहित] १ जो प्रयोग न किया गया हो। भिना हुआ। निकटस्थ। पाम का। २ शृङ्खनावद्ध। अखंडित।

३ जो छिपा न हो। प्रकट [को०]।

अनतवान्<sup>१</sup>—वि० [सं० अन्तवान्] नित्य। जिसकी सीमा न हो [को०]।

अनतवान्<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० ब्रह्मा के चार चरणों में से एक [को०]।

विशेष—गृध्री अतरिक्ष, अनत और समुद्र नामक ब्रह्मा के चार चरण हैं।

अनतविजय—सज्ञा पुं० [सं० अन्तविजय] युधिष्ठिर के शत्रु का नाम।

अनतवीर्य<sup>१</sup>—वि० [सं० अन्तवीर्य] अपार पौरुषवाता।

अनतवीर्य<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० जैनो के तेइसवें तीर्थंकर का नाम।

अनता<sup>१</sup>—वि० स्त्री० [सं० अन्ता] जिसका अंत या पारावार न हो।

अनता<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री १ पृथ्वी। २ पार्वती। ३ करियारी का पीड़ा। ४ अनतमूल। ५ दूध। ६ पीपर। ७ जवामा। ८ अरणीवृक्ष। ९ अनतमूत्र।

अनतानुवधी—सज्ञा पुं० [सं० अन्तानुवन्धिन्] जैन मतानुसार वह दोष या दुस्वभाव जो कभी न जाय, जैसे अनतानुवधी क्रोध, लोभ, माया, मान।

अनताभिषेय—सज्ञा पुं० [सं० अन्ताभिषेय] वह जिसके नामों का अंत न हो। ईश्वर।

अनती—सज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों का गडा जिसे वे बाएँ बाजू पर बाँधती हैं [को०]।

अनत्य<sup>१</sup>—वि० [सं० अन्त्य] जिसका अंत या सीमा न हो [को०]।

अनत्य<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १. नित्यत्व। नित्यता। २ हिंसात्मक चरण [को०]।

अनद<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अन्तद] १४ वर्णों का एक वृत्त जिसका क्रम इस प्रकार है—जगण, रगण, जगण, रगण, लवु, गुग।

अनद<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] १० 'आनद'। उ०—मुनि पुर भवउ अनद वधाव वजावहि।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६।

अनदना<sup>३</sup>—क्रि० प्र० [सं० आनन्द] आनंदित होना। उ०—मुनि मुनिगन दुहँ भाइन्ह वदे। अभिमत आसिष पाइ अनदे।—तुलसी (शब्द०)।

अनदी<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अन्दिन्] एक प्रकार का धान।

अनदी<sup>२</sup>—वि० [हिं०] १० 'आनदी'।

अनवर<sup>१</sup>—वि० [सं० अन्वर] वस्त्रहीन। नग्न। नंगा [को०]।

अनवर<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० एक जैन साधु संप्रदाय। दिगंबर [को०]।

अनभ<sup>१</sup>—वि० [सं० अन्त=नहीं + सम्भस्=जत] बिना पानी का।

अनभ° (अ) —वि० [ म० अन् = नहीं + अंह = पाप, विघ्न, बाधा ]  
विघ्न । बाधार्थिन । वे आँच । उ०—मोहन बाण हमार  
है, देखन मोहन समु । मोहन बाण तुम्हार जो हमको करत  
रुनमु ।—सवन (शब्द०) ।

अनश—वि० [म०] १ जो पौष्टिक संपत्ति पाने का अधिकारी न हो ।  
२ जिसका अंगभाग या खंड न हो (आकाश या ब्रह्म का  
विशेषण) [को०] ।

अनशुमत्फला—सज्ञा स्त्री० [म०] केला । कदनी [को०] ।

अन° (उ) —क्रि० वि० [म० अन्] विना । वगैर । उ०—हँमि हँमि  
मिले दोऊ, अन ही मनाए मान छटि गयो एही छोर राविका  
रमन को ।—केशव (शब्द०) ।

अन° (उ) —वि० [म० अन्य = दूसरा] अन्य । शीर । दूसरा । उ०—  
अनजन सीचे खूब की छाया तें वर घाम । तुनसी चातक  
बहुन है यह प्रवीन को काम ।—तुलसी ग्र० पृ० १२८ ।

अन° (उ) —सज्ञा पुं० [म० अन्न] अनाज । अन्न । उ०—जैसे हैं गिरिराज  
जुँतैमो अन्न को कोट । मगन मये पूजा करै, नर नारी बड  
छोट ।—सूर०, १०।५४१ ।

यौ०—अनधन = अन्न और संपत्ति । उ०—कहन कवीर मुनहु रे  
सतहु अनधन कछु औने न गयो ।—कवीर ग्र०, पृ० ३१० ।

अनग्रहिवात (उ) —सज्ञा पुं० [स० अन्न = नहीं + हि० ग्रहिवात] अहिवात  
का अभाव । वैधव्य । विधवापन । रंडापा । उ०—कुमतिहि  
कमि कुवेपता फावी । अनग्रहिवात सूच जनु मावी ।—  
मानस, २।२५ ।

अनइच्छित (उ) —वि० [हि०] दे० 'अनिच्छित' । उ०—राम मजत मोड  
मुकुति गुमाई । अनइच्छित आवै वरिआई ।—मानस, ७।११६ ।

अनइस (उ) —सज्ञा पुं० [हि०] अनिष्ट । अनैस । उ०—ग्राह दइअ सैं  
काह नपावा । करत नीक फन अनइस पावा ।—  
मानस, २।१६३ ।

अनइसा (उ) अनइसी (उ) —वि० स्त्री० [हि०] दे० 'अनैसा' ।

अनऋतु—सज्ञा पुं० [स० अन् + ऋतु] १ विरुद्ध ऋतु । अनुपयुक्त  
ऋतु । बेमौसिम । अकाल । असमय । उ०—(क) चातक  
की रट नेह सदा, वह ऋतु अनऋतु नहि हारत ।—सूर (शब्द०) ।  
(ख) सब तरु फरे राम हिन लागी । ऋतु अनऋतुहि  
काल गति त्यागी ।—तुलसी० (शब्द०) । २ ऋतु विपर्यय ।  
ऋतु के विरुद्ध कार्य ।

अनकप (उ) —सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अकप' ।

अनक° —वि० [म०] 'अणक' [को०] ।

अनक° —सज्ञा पुं० दे० 'अणक' ।

अनक° (उ) —सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आनक' ।

अनकदुदुभ—सज्ञा पुं० [म० अनकदुदुभ] कृष्ण के पितामह और  
वसुदेव के पिता का नाम [को०] ।

अनकदुदुभि (उ) —सज्ञा पुं० [स० अनकदुदुभि] अनकदुदुभ के पुत्र  
वसुदेव ।

अनकना—क्रि० स० [म० आकर्णन, प्रा० आकर्णण, हि० अ कनना  
> (दर्शय) अनकना] १ सुनना । २ चुपचाप सुनना ।  
छिपकर सुनना ।

अनकरीव—क्रि० वि० [अ० अनकरीव] कभीव नगीव । लगन ।  
प्राय ।

अनकस्मात्—क्रि० वि० [म०] जा आकस्मिक, अनातक या अकारण  
न हो [को०] ।

अनकहनी—वि०, स्त्री० [हि० अन्न + कहनी] न कहने योग्य । उ०—  
(क) सबके चरित्र निखने मे कुछ प्रनकहनी कहनी भी कह  
गए ।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० १०३ । (ख) यही बैठ कहती  
थी तुमने सब कहनी अनकहनी ।—उटा०, पृ० २० ।

अनकहा—वि० [हि० अन्न + कहा] [स्त्री० अन्नकही] विना कहा हुआ ।  
अकथित । अनुवत । उ०—मिर्क अनकहा रहने मे नो असत्य  
हो नही जाता ।—सुयदा, पृ० १०७ ।

मुहा०—अन्नकही देना = अवाक् रहना । चुपचाप होना । उ०—  
समुझि परी पटमाम बीतीने कहाँ हुनी हो आयो । मूर  
अन्नकही दै गोपिनि माँ सवन मूँदि उडि धायो ।—मूर०,  
१०।६१६६ ।

अनका—सज्ञा पुं० [अ० अन्का] दे० 'उनका' [को०] ।

अनकाढा—[हि० अन्न + काढना] विना निकाला हुआ । उ०—  
साकहि मरै चहै अनकाढे ।—जायसी (शब्द०) ।

अनकायमार—वि० [म०] जो 'वना इच्छा के न मरता हो । विना  
इच्छा के न मरनेवाला [को०] ।

अनकीय—वि० [म०] अगनीय [को०] ।

अनकुस—सज्ञा पुं० [म० अङ्कुश अथवा हि० अन्न + का० खुज] बुरा ।  
खराब । उ०—बंगले मे शीशे लगी बिडकियो के बाहर घनी जाली  
लगी देखकर कुछ अङ्कुस मान्म होता था ।—किन्नर०, पृ० ७ ।

अनक्ष—वि० [स०] १ विना आँख का । अन्ना । २ जहाँ बहेडा या  
न्द्रक्ष का वृक्ष न हो [को०] ।

अनक्षर°—वि० [म०] १ अक्षरज्ञान मे रहित । निरक्षर । २ न  
जाननेवाला । अज्ञ । ३ मूक । गूँगा । ४ न कहने योग्य [को०] ।

अनक्षर°—सज्ञा पुं० दुर्वचन या गाली [को०] ।

अनक्षर°—क्रि० वि० विना शब्दप्रयोग किए । विना शब्द उच्चारण  
किए । विना बोले [को०] ।

अनक्षि—वि० [म०] बुरी आँख [को०] ।

अनक्षिक—वि० [न०] विना आँख का । अन्ना [को०] ।

अनल°—सज्ञा पुं० [स० अन् = बुरा + अन्न = आँख, प्रा० अन्नक्ष प्रथमा  
म० अनाकाडक्ष प्रा० अनाकल अन्नक्षल, अन्नल हि० आँख]

१ झुंफनाहट । रिस । क्रोध । नाराजगी । अनिच्छा । असह्य ।  
उ०—(क) धनि धनि अन्नल उरहनो धनि धनि धनि मावन  
धनि मोहन खाए ।—सूर (शब्द०) । (ख) भायें कुभायें गाव  
आलसहूँ । नाम जपत मगल, दिसि दमहूँ ।—मानस १।१६।२

दुख । ग्लानि । बिस्मता । उ०—जो पै हिरदय माँक हरी । कर  
ककन दरपन लै देखी इहि अति अन्नल परी । कयो अन्न जिअहि

जोग सुनि सूरज, विरहिन विरहमरी ।—सूर०, १०।३७६० ।  
३ ईर्ष्या । द्वेष । डाह । उ०—किमि सहि जात अन्नल तोहि

पाही । प्रिया वेगि प्रगटसि कस नाही ।—मानस ३।२४ ।  
४ भट । क्षमनरीति । उ०—बावू ऐसो है सतार तिहारो ये

कलि है व्यवहारा । को अब अन्नल सहै प्रति दिन को नाद्विग

रहनि हमारा।—कवीर (शब्द०)। ५ डिठौना। काजल की विंदी जिसे टीठ (नजर) में बचाने के लिये बच्चों के माथे में लगाते हैं। उ०—प्रनयन देखि लिलरवा, अनख न धार। ममलहु दिय दुति मनविज, भन करतार।—खानखाना (शब्द०)।

अनख<sup>२</sup>—वि० [म० अ=नहीं+नख=नाखूर]। १ बिना नाखून का। उ०—मिहिर नजर मो भावते, राख याद भरि मोद। अनखन खनि अनखन अरे, मन मो मनहि करोद।—रसनधि (शब्द०)।

अनखाना<sup>३</sup>—क्रि० अ० [हि० अनख से नाम०] क्रोध करना। रिमाना। रुठ होना। उ०—हम अनखी या बात सो लेत दान को नावे। सहज भाव रहो लाडिले बसत एक ही गांव।—सूर (शब्द०)।

अनखाना<sup>४</sup>—क्रि० अ० [हि० अनख] क्रोध करना। रुठ होना। रिमाना। उ०—(क) कापर नैन चढाए डोलनि, ब्रज में निनुका तोर। सूरदास यशुदा अनखानी यह जीवन धन मोर।—सूर०, १०।३१०। (ख) गई कछुआ भी इक दिन ऊव। कहा अनखाकर उमने खूब।—भरना, पृ० ५६।

अनखाना<sup>५</sup>—क्रि० म० अप्रमत्त करना। नराज करना। खिझाना। उ०—ठठन ममा दिन मधि सैनापति मोर देखि फिरि आऊँ। न्हात खात मुख करन माहिनी कैसे करि अनखाऊँ।—सूर० ६। १७२।

अनखावना<sup>६</sup>—क्रि० म० [हि०] 'अनखाना'। उ०—वा देखत हमकी तुम मिलिहीं, राहें की ताकी अनखावत।—सूर०, १०।२१९६।

अनखाहट<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि० अनख+आहट (प्रत्य०)] अनखने या क्रोध दिखलाने की क्रिया या भाव। उ०—मारणी मनुहारिनु भरी गारखी खरी मिठाहि। बाकी अति अनखाहटी मुसुकाहट विनु नाहि।—विहारी २०, दो० ४६६।

अनखी<sup>८</sup>—वि० [हि० अनख+ई (प्रत्य०)] क्रोधी। गुस्सावर। जो जल्दी नाराज हो।

अनखीली<sup>९</sup>—वि० स्त्री० [हि० अनख+ईली (प्रत्य०)] अनखवाली। गुम माननेवाली। अनखी। उ०—कहै पदमाकर अगार अनखीदिन की भीरी भीर भारन को भाँज दे री भाँज दे।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३२२।

अनखुला<sup>१०</sup>—वि० [हि० अन+खुलना] [अनखुली] १ जो खुला न हो। बंद। २ जिसका कारण प्रगट न हो। गुप्त। उ०—केसर केसरि कुमुम के रहे अग नपटाइ। लगे जानि नख अनखुली कन बोलति अनखाइ।—विहारी २०, दो० १६६।

अनखोहा<sup>११</sup>—वि० [हि० अनख+ओहा (प्रत्य०)] [स्त्री० अनखोही] १ क्रोध में भरा हुआ। कुपित। रुठ। उ०—रवि वरीं कर जोरि, मुनत स्याम के वैन। भए हँसीह मवतु के, अति अनखोहैं नैन।—विहारी २०, दो० २२४। २ चिड़चिड़ा। जल्दी क्रोध करनेवाला। छोटी सी बात पर चिड़ जानेवाला। ३ क्रोधजनक। क्रोध दिलानेवाला। उ०—निपट निदरि बोले बचन कुठारिपानि, मानि आस अनिपन मानो मोनता गद्दी।

रोखे माखे लखन अकनि अनखोही बातें तुलसी विनीत बानी विहंसि ऐसी कही।—तुलसी ग्र०, पृ० १६०। ४ अनुचित। खोटा। बुरा। उ०—(क) कबहुँ मो को कछू लगावति कबहुँ कहति जनु जाहु कही। मूरदाम बातें अनखोही नाहिन मो पै जाति सही।—सूर (शब्द०)। (ख) राम सदा मरनागत की अनखोही अनैसी मुमाय सही है।—तुलसी ग्र०, पृ० १६६।

अनगढ<sup>१२</sup>—वि० [हि० अन+गढना] १ बिना गढा हुआ। उ०—ये चमक रहे दो खुने नयन ज्यो शिवाग्नि अनगढे रतन।—कामायनी, पृ० २४७। २ जिसे किसी ने न बना या हो। स्वयम्। उ०—ऊँची राखिए यह बात। कहत हो अनगढ व अनहद सुनत ही चपि जात।—सूर (शब्द०)। ३ वेडील। भद्दा। वेडगा। ४ असकृत। अपरिष्कृत। ५ उजड़। अक्वड। पोगा। अनाडी। जैसे, अनगढ मूख। ६ वेतुका। अडवड। वे सिर पैर का। जैसे, अनगढ बात।

अनगन<sup>१३</sup>—वि० म० [अन्+गगन] [स्त्री० अनगनी] अगणित। बहुत। उ०—निज काज सजत सवारि पुर नर नारी रचना अनगनी।—तुलसी (शब्द०)।

अनगना<sup>१४</sup>—क्रि० स० [म० अनगन=ढका हुआ] खपडा फेरना। छाजन में टूटे हुए खपडों के स्थान पर नए लगाना। टाकते हुए खपडों की मरमत करना।

अनगना<sup>१५</sup>—वि० [हि० अन्+गनना] १ जो गिना न गया हो। न गिना हुआ। २ अगणित। बहुत।

अनगना<sup>१६</sup>—सज्ञा पु० गर्भ का आठवाँ महीना। जैसे—इस स्त्री का अब अनगना लगा है (शब्द०)।

अनगवना<sup>१७</sup>—क्रि० अ० [स० अन्+हि० अगवना अथवा हि० अन+गगन=गगन] जान बूझकर देर करना। विलव करना। उ०—मुहुँ धोवति, एडी धपति, हसति, अनगवति तीर। घसति न डडीवर नयनि कालिंदी के नीर।—विहारी २०, दो० ६६७।

अनगाना<sup>१८</sup>—क्रि० अ० [स० अन्+हि० अगगाना] १ विलव करना। देर करना। २ टालमटोल करना।

अनगाना<sup>१९</sup>—क्रि० स० [हि०] सँभरना। सुनभाना (केस आदि)

अनगाना<sup>२०</sup>—क्रि० म० [हि० अनगस] प्रनगने या खाडा फेरने का काम कराना।

अनगार<sup>२१</sup>—वि० [स०] बिना अगार या घर का। गृहहीन [को०]।

अनगार<sup>२२</sup>—सज्ञा पु० घूमने फिरनेवाला। सन्यासी [को०]।

अनगारिका—सज्ञा स्त्री० [स०] परिव्राजक या सन्यासी का जीवन या स्थिति [को०]।

अनगिन<sup>२३</sup>—वि० [हि०] दे० 'अनगिनत'। उ०—फूनि रहे तारे मानो मोती अनगिन हैं।—कवित्त०, पृ० ६६।

अनगिनत—वि० [म० अन्=नहीं+गगिन=गिना हुआ] जिसकी गिनती न हो। अगणित। असंख्य। वेणुमार। वेहिसाव। बहुत। उ०—शून्यता मम डगर में अनगिनत कदम बो गई है।—अपलक, पृ० ८६।

अनगिना—वि० पु० [हि० अन+गिनना] [स्त्री० अनगिनी] १. बिना गिना हुआ। जो गिना न गया हो। २ अगणित। असंख्य। बहुत। उ०—मुक्ति मुक्ता अनगिने फन तहाँ चूनि नूनि खाहि।—सूर १।३३६।



अनगैरी०—वि० [हि० अन् + अ० गैर + हि० ई (प्रत्य०)] गैर । पराया । अपरिचित । बेजान । उ०—कह गिरिधर कविराय घरे आवै अनगैरी । हित की कहै बनाय चित्त मे पूरे बैरी ।—गिरिधर (शब्द०) । (ख) मूरख करै सब न ते वैर । मूरख घर राखै अनगैर ।—विश्राम (शब्द०) ।

अनग्नि—वि० [म०] १ अग्निहोत्ररहित । श्रोत श्रौर स्मार्त कर्म से विमुख या हीन । २ जिसे अग्नि की आवश्यकता न हो (को०) । ३ मदाग्नि का रोगी (को०) । ४ अविवाहिता (को०) ।

अनग्नित्र—वि० पु० [स०] [स्त्री० अग्नित्रा] जो पवित्र अग्नि का संरक्षण न करता हो (को०) ।

अनग्निदग्ध—वि० [स०] १ जो आग से न जला हो । २ चिता पर न जलाया जलाया हुआ । ३ गाड़ा हुआ (को०) ।

अनग्निष्वात्त—वि० [म०] १ जो अग्निदग्ध न हो । २ गाड़ा हुआ । दफनाया हुआ (को०) ।

अनघ<sup>१</sup>—वि० [म०] १ निष्पाप । पातकरहित । निर्दोष । बेगुनाह । २ पवित्र । शुद्ध ।

अनघ<sup>२</sup>—संज्ञा पु० वह जो पाप न हो । पुण्य । उ०—तुलसीदास जगदघ जबाम ज्यो अनघ आनि लागे डाढन ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनघरी०—संज्ञा स्त्री० [म० अन् = विरुद्ध + घरी = घडी] असमय । कुसमय । अनवसर । बेवक्त । बेमौका ।

अनघरी०—वि० [म० अन् + हि० घेर अथवा म० अनागौरित] बिना बुनाया हुआ । अनिमज्जित । अनाहूत ।

अनघोर०—संज्ञा पु० [स० घोर] अघोर । अत्याचार । ज्यादती । उ०—यह अनित्य तनु हेतु तुम, करहु जगत अनघोर ।—रघुराज० (शब्द०) ।

अनघोरी०—क्रि० वि० [हि० अघरी] प्रचानक । चुके मे । उ०—जीति पाइ अनघोरी आए ।—छत्र० ।

अनचहा०—वि० [म० अन् + हि० चाह] नहीं चाहा हुआ । अनिच्छित । अप्रिय । उ०—अनत चह्यो न मलो सुख सुचाल चह्यो, नीके जिय जानि इहाँ भरी अनचह्यो हो ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८८ ।

अनचाखा०—वि० [हि० अन् + चाखना] बिना चखाया खाया हुआ । अनास्वादिन । उ०—दारिउं दाख फरे अनचाखे ।—जायसी ग्र०, पृ० ४६ ।

अनचाहत<sup>१</sup>०—वि० [हि० अन् + चाह] जो न चाहे ।

अनचाहत<sup>२</sup>—संज्ञा पु० न चाहनेवाला आदमी । प्रेम न करनेवाला पुरुष । उ०—हाय दई कैसी मई अनचाहत को मग । दीपक को भावै नहीं, जल जल मरत पतग (शब्द०) ।

अनचाहा—वि० [हि० अन् + चाहना] जिसकी चाह या इच्छान की गई हो । अचाहा । अवच्छित । अप्रिय ।

अनचिन्हा०—वि० [हि० अन् + चीन्ह = परिचित] अपरिचित । अजनबी । अजनाना ।

अनचीत—वि० [हि० अन् + चीन] मन या चित्त के विरुद्ध । बेमन । उ०—गैरा चरै अनचीन, मुरली मन मोहि रे रहे ।—रैयन० भा० २, पृ० ३५० ।

अनचीता<sup>१</sup>—वि० [हि० अन् + चीतना = सोचना] १ न सोचा हुआ । अपरिचित । अनचाहा । अचाहा ।

अनचीता<sup>२</sup>—क्रि० वि० [हि० अन् + चीनना] प्रचानक या प्रकृष्टात् होनेवाला ।

अनचीन्हा०—[हि० अन् + चिन्ह] १ अपरिचित । बे पहिचान का । २ चीन्हा या लक्षण से रहित ।

अनचीन्हा०—वि० [हि० अन् + चीन्हा] बिना पहचाना हुआ । अपरिचित । अज्ञात ।

अनचेता—वि० [हि० अन् + चेतना] न सोचा हुआ । अविवेकित । अनचेती—वि० स्त्री० [हि० अन् + चेतना] न सोची हुई (व्रात विषय आदि) ।

अनचैन०—संज्ञा स्त्री० [हि० अन् + चैन] बेचैनी । व्याकुलता । विकलता ।

अनचैनी—[हि० अन् + चैन + ई] (प्रत्य०) चैन रहित । व्याकुलता से मगी । विकलतायुक्त ।

अनच्छ—वि० [म०] जो स्पृच्छ, निर्मन या माफ न हो (को०) ।

अनजका—संज्ञा स्त्री० [म०] छोटी बकरी (को०) ।

अनजाद—संज्ञा पु० [फा० अंदाजह] अनुमान । अटकल ।

अनजिका—संज्ञा स्त्री० [म०] छोटी बकरी (को०) ।

अनजान<sup>१</sup>—वि० [हि० अन् + जानना] १ अज्ञानी । अनभिज्ञ । अज्ञानमय । नादान । सीधा । मोला माला । २ बिना ज्ञान हुआ । अपरिचित । अज्ञात ।

अनजान<sup>२</sup>—संज्ञा पु० १ एक प्रकार की लकी घास जिसे प्रायः भैंसे ही खाती है और जिसमें उनके दूध में कुछ नशा आ जाता है । २ यजना नाम का पेड़ ।

अनजानत०—क्रि० वि० [हि० अन् + जानना] न जानते य, समझने हुए । उ०—(क) श्रीमद नृपग्रभिमान मोहवम जानत अनजानत हरि लायो ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६५ । (ख) व्याकुल भयो डरघो जिय भारी । अनजानत कीन्ही प्रधिकारी ।—सूर० १०।६४७ ।

अनजाया०—वि० [हि० अन् + जाया = उत्पन्न] जन्म से परे । अजन्मा । उ०—बाबुन मेरा व्याह करा दो अनजाया बर लाय ।—कबीर श०, पृ० १०१ ।

अनजोखा—वि० बिना जोखा हुआ । बिना तोना हुआ ।

अनट०—संज्ञा पु० [म० अन् = अत्याचार अथवा म० अन् + ट = अन्त, प्रा० अण्ट = उपद्रव] उपद्रव । अनीति । अत्याचार । उ०—(क) खेत सग अनुज वानक निग जागवत अनट उपाय ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६ । (ख) सहि कुबोला सांसति सकल, अंगइ अनट अपमान । तुलसी घरम न परिहरिय, कहि करि गए मुजान ।—तुलसी ग्र०, पृ० १४२ ।

अनडीठ०—वि० [स० अन् + दृष्ट प्रा० डिठ्ठ, दिठ्ठ, हि० डीठ] बिना देखा ।

अनडुज्जिह्वा—संज्ञा स्त्री० [म०] १ गोजिह्वा । २ अन्तर्मूत्र (को०) ।

अनडुह—संज्ञा पु० [स०] १ बी । २ वृषमराशि (को०) । ३ गोत्र प्रवर्तक एक ऋषि का नाम (को०) ।

अनडुही—सज्ञा स्त्री० [म०] नाय ।

अनडवान्—सज्ञा पुं० [म०] १ वैन । गाँव । २ सूर्य (उपनि०) । ३

वृष राशि [को०] ।

अनडुवाही—सज्ञा स्त्री० [म०] गो । गाय [को०] ।

अनणु<sup>१</sup>—वि० [म०] जो गूधम न हो [को०] ।

अनणु<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० मोटा अन्न [को०] ।

अनत<sup>१</sup>—वि० [म०] न जुका हुआ । गीघा ।

अनत<sup>२</sup>—क्रि० वि० [म०] अव्यय, प्रा० अणुएत, अव्यय और कही । दूसरी जगह में । पराए स्थान । उ०—राम तपन मिय सूर सुनी मम नाके । उठि जाति अनत जाहि तजि ठाके ।—मानस, २।२३२ ।

अनति<sup>१</sup>—वि० [म०] बहुत नहीं, थोड़ा ।

अनति<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० नम्रता का अभाव । विनीत भाव का न होना । अहकार ।

अनदेखा—वि० [हि० अन् + देखना] [स्त्री० अन् देखी] बिना देखा हुआ । उ०—देखो अनदेखी किये श्रेणु श्रेणु सरी दिखाड । पैठति सी तन में मकुचि बैठी वितै नजाड ।—विहारी २०, दो० ६१८ ।

अनदोष—वि० [हि० अन् + स० दोष] दोषरहित । प्रदोष । निर्दोष । उ०—अनदोषे को दोष लगावति, दई देउगी टारि ।—सूर०, १०।२६२ ।

अनद्धा—क्रि० वि० [म०] अमृत्युत, अव्यस्तुत या अवीकृत [को०] । अनद्धामिश्रित वचन—सज्ञा पुं० [म०] जैन मन के अनुसार समय के मन्त्र में झूठ बोलना । जैसे कुछ रात रहते ही कह देना कि सूर्योदय हो गया ।

अनद्य<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] मफेद मरनो [को०] ।

अनद्य<sup>२</sup>—वि० जो खाने योग्य न हो । अखाद्य [को०] ।

अनद्यतन<sup>१</sup>—वि० [म०] [स्त्री० अनद्यतनी] आज या अद्यतन के पहले या पीछे का ।

अनद्यतन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० पिछली रात के पिछले दो पहर और आनेवाली रात के अगले दो पहर और इनके बीच के सारे दिन को छोड़कर बाकी रात या अविष्य का समय । पिछली १२ वजे रात से आनेवाली १२ वजे रात तक का समय जो बीत रहा हो ।

विशेष—पिछली आधी रात के पहले के समय को भूत अनद्यतन और आनेवाली रात के बाद के समय को अविष्य अनद्यतन कहते हैं ।

अनद्यतन भविष्य—सज्ञा पुं० [म०] १ आनेवाली आधी रात के बाद का समय । २ नष्टकृत व्याकरण में अविष्य काल का एक भेद जिसका अन्त प्रायः प्रयोग नहीं होता ।

अनद्यतन भूत—सज्ञा पुं० [म०] १ बीती हुई आधी रात के पहले का समय । मस्कृत व्याकरण में भूतकाल का एक भेद जिसका अन्त प्रायः प्रयोग नहीं होता ।

अनधिक—वि० [म०] १ जो अधिक न हो । २ गीमातीन । असीम । ३ पूर्ण । पूरा । ४ जिसमें कोई बड़ाई न हो । ५ जिस बढ़ाया न जा सके [को०] ।

अनधिकार<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] १ अधिकार का अभाव । अधिकार का न होना । प्रभुत्व का अभाव । २ बेपत्ती । नानागी । ३ अयोग्यता । अक्षमता ।

अनधिकार<sup>२</sup>—वि० १ अधिकाररहित । बिना अधिकार का । २ अयोग्य । योग्यता के बाहर ।

अनधिकारचर्चा—सज्ञा स्त्री० [म०] योग्यता के बाहर वानचीन । जिस विषय में गति न हो उसमें टाँग अडाना ।

अनधिकार चेष्टा—सज्ञा स्त्री० [म०] बिना अधिकार के कोई कार्य या प्रयत्न करना [को०] ।

अनधिकारिता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ अधिकारशून्यता । अधिकार का न होना । २ अक्षमता ।

अनधिकारी—वि० [म० अनधिकारिन्] [स्त्री० अनधिकारिणी] १ जिसमें अधिकार न हो । जिसके हाथ में अधिकार न हो । २ आयोग्य । अपात्र । कुपात्र । जैसे—नडिन लोग अधिकारी को वेद नहीं पढ़ाते ( शब्द० ) ।

अनधिकृत—वि० [म०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न किया गया हो । २ अधिकार से बाहर । जिसपर अधिकार न हो [को०] ।

अनधिगत—वि० [म०] बिना समझा हुआ । अनभिगत । अज्ञान । बेजाना । बूझा ।

अनधिगत मनोरथ—वि० [म०] जिसकी इच्छा पूर्ण न हुई हो । हताश [को०] ।

अनधिगत शास्त्र—वि० [म०] जिसका शास्त्र पर अधिकार न हो [को०] ।

अनधिगम्य—वि० [म०] जो पहुँच के बाहर हो । अप्राप्य । दुर्गम ।

अनधिष्ठान—सज्ञा पुं० [म०] निरीक्षण का न होना [को०] ।

अनधिष्ठित—वि० [म०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ । २ जो उपस्थित न हो [को०] ।

अनधिष्ठित—वि० [म०] १ अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ हो । २ उपस्थित न हो [को०] ।

अनधीन<sup>१</sup>—वि० [म०] जो अधीन न हो । स्वतन्त्र [को०] ।

अनधीन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० रवेच्छा पूर्वक स्वतन्त्र रूप में काम करनेवाला बहई [को०] ।

अनधीनक—सज्ञा पुं० [म०] २० 'अनधीन' [को०] ।

अनध्यक्ष—वि० [म०] १ जो देख न पड़े । अव्यक्त । नजर के बाहर । २ अध्यक्षरहित । बिना माध्याय ।

अनध्ययन—सज्ञा पुं० [म०] १ अध्ययन न होना । अध्ययन का अभाव । २ अध्ययनकाल में गीत में पढ़नेवाला विनाम [को०] ।

अनध्यवसाय—सज्ञा पुं० [म०] १ अध्ययन का अभाव । पतन । टिल्लाई । २ एक वाक्यान्तर ।

विशेष—इसमें कई समान गुणवाली वस्तुओं के गीत नहीं किए जाते । इन वस्तु के मन्त्र में न्यायार्थ अनिश्चय का भाव दिया जाता है । जैसे—'स्वेदगात्रि' का अर्थ 'मम तन २७ । २ आली उनमाली को यह' । यह उक्तार्थ नाम्ना में 'नद' के अन्तर्गत ही आता है और इनके कुछ अन्तरों का भी नहीं प्रतीत होती है ।

अनध्याय—सज्ञा पुं० [म०] १ वह दिन जिसमें गान्ध्यानुमान पड़ने पड़ने का नियम हो ।

अनघैरी(७)---वि० [हि० अन+घैर+हि० ई (प्रत्यय)] गैर । पराया । अपरिचित । बेजाना । उ०—कह गिरिधर कविराय घरे आवै अनघैरी । हित की कहै बनाय चित्त मे पूरे बैरी ।—गिरिधर (शब्द०) । (ख) मूरख करै सब ते वैरु । मूरख घर राखै अनघैर ।—विश्राम (शब्द०) ।

अनग्नि—वि० [म०] १ अग्निहोत्ररहित । शीत । और स्मार्त कर्म से विमुख या हीन । २ जिसे अग्नि की आवश्यकता न हो (को०) । ३ मदाग्नि का रोगी (को०) । ४ अविवाहिता (को०) ।

अनग्नित्र—वि० पु० [म०] [स्त्री० अग्नित्रा] जो पवित्र अग्नि का संरक्षण न करता हो [को०] ।

अनग्निदग्ध—वि० [स०] १ जो आग से न जला हो । २ चिता पर न जला या जलाया हुआ । ३ गाड़ा हुआ [को०] ।

अनग्निष्वात्त—वि० [म०] १ जो अग्निदग्ध न हो । २ गाड़ा हुआ । दफनाया हुआ [को०] ।

अनघ<sup>१</sup>—वि० [म०] १ निष्पाप । पातकरहित । निर्दोष । बेगुनाह । २ पवित्र । शुद्ध ।

अनघ<sup>२</sup>—संज्ञा पु० वह जो पाप न हो । पुण्य । उ०—तुलनिदास जगदघ जवाम ज्यो अनघ आगि लागे डाढन ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनघरी(७)---संज्ञा स्त्री० [म० अन्=विषद्व+घरी=घड़ी] अममय । कुममय । अनवमर । बेवक्त । बेमोका ।

अनघैरी(७)---वि० [म० अन्+हि० घेर अथवा सं० अनागौरित] बिना बुनाया हुआ । अनिमज्जित । अनाहूत ।

अनघोर(७)---संज्ञा पु० [स० घोर] अधेर । अत्याचार । ज्यादती । उ०—यह अनित्य तनु हेतु तुम, करहु जगत अनघोर ।—रघुराज० (शब्द०) ।

अनघोरी(७)---क्रि० वि० [हि० अघरी] प्रचानक । चुपके से । उ०—जीति पाइ अनघोरी आए ।—छत्र० ।

अनचहा(७)---वि० [म० अन+हि० चाह] नही चाहा हुआ । अनिच्छित । अप्रिय । उ०—अनत चह्यो न मनो मुख सुचान चह्यो, नीके जिय जानि उहाँ मनी अनचह्यो ही ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८८ ।

अनचाखा(७)---वि० [हि० अन+चाखना] बिना खाया या खाया हुआ । अनास्वादिन । उ०—दारिद्र्य दाख फरे अनचाखे ।—जायसी ग्र०, पृ० ४६ ।

अनचाहत<sup>१</sup>(७)---वि० [हि० अन+चाहन] जो न चाहे ।

अनचाहत<sup>२</sup>—संज्ञा पु० न चाहनेवाला आदमी । प्रेम न करनेवाला पुरुष । उ०—हाय दई कैसी भई अनचाहत को मग । दीपक को भावै नही, जल जल मरत पतग (शब्द०) ।

अनचाहा—वि० [हि० अन+चाहना] जिसकी चाह या इच्छा न की गई हो । अचाहा । अवाञ्छित । अप्रिय ।

अनचिन्हा(७)---वि० [हि० अन+चिन्ह=परिचित] अपरिचित । अजनबी । अजनाना ।

अनचीत—वि० [हि० अन+चीन] मन या चित्त के विरुद्ध । बेमन । उ०—गैरा चरै अनचीन, मुरारी मन मोहि रे रहे ।—प्रेमन० भा० २, पृ० ३५० ।

अनचीता<sup>१</sup>---वि० [हि० अन+चीतना=मोचना] १ न मोचा हुआ । अपरिचित । अनचाहा । अचाहा ।

अनचीता<sup>२</sup>---क्रि० वि० [हि० अन+चीनना] प्रचानक या प्रख्यात होनेवाला ।

अनचीन्हा(७)---[हि० अन+चिन्ह] १ अपरिचित । बे पहिचान का । २ चीन्हा या चिह्न के रहित ।

अनचीन्हा(७)---वि० [हि० अन+चीन्हा] बिना पहचाना हुआ । अपरिचित । अज्ञात ।

अनचेता---वि० [हि० अन+चेतना] न मोचा हुआ । अपरिचित ।

अनचेती---वि० स्त्री० [हि० अन+चेतना] न मोची हुई (वान, विषय आदि) ।

अनचैन(७)---संज्ञा स्त्री० [हि० अन+चैन] चैनी । व्याकुलता । विकलता ।

अनचैनी---[हि० अनचैन+ई] (प्रत्यय) चैन रहित । व्याकुलता में भरी । विकलतायुक्त ।

अनच्छ---वि० [म०] जो स्वच्छ, निर्मल या माफ न हो [को०] ।

अनजका---संज्ञा स्त्री० [म०] छोटी बकरी [को०] ।

अनजादा---संज्ञा पु० [फा० अंदाजह] अनुमान । अटकल ।

अनजिका---संज्ञा स्त्री० [म०] छोटी बकरी [को०] ।

अनजान<sup>१</sup>---वि० [हि० अन+जानना] १ अज्ञानी । अनभिज्ञ । अनानमज्ञ । नादान । सीधा । मोला भावा । २ बिना जाना हुआ । अपरिचित । अज्ञात ।

अनजान<sup>२</sup>---संज्ञा पु० १ एक प्रकार की लची घान जिसे प्राय भैंसे ही खाती हैं और जिसमें उनके दूध में कुछ नशा आ जाता है । २ यजना नाम का पेड़ ।

अनजानत(७)---क्रि० वि० [हि० अन+जानना] न जानते या, नमस्ते हुए । उ०—(क) श्रीमद नृपप्रभिमान मोहनम जानत अनजानत हरि नायो ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६५ । (ख) व्याकुल भयो डरघो जिय मारी । अनजानत कीन्ही प्रधिकारी ।—सूर० १०।६४७ ।

अनजाया(७)---वि० [हि० अन+जाया=उत्पन्न] जन्म से परे । अजन्मा । उ०—बाबुन मेरा व्याह करा दो अनजाया वर लाय ।—कवीर ग्र०, पृ० १०१ ।

अनजोखा---वि० बिना जोखा हुआ । बिना तोना हुआ ।

अनट(७)---संज्ञा पु० [स० अन्=अपचाय अथवा सं० अन्+अट=अनुत्, प्रा० अण्ट=उपद्रव] उपद्रव । अनिति । अपचाय । अत्याचार । उ०—(क) तेनत सग अनुज वानक निन योगवत अनट उपाय ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६ । (ख) सहि कुबोल, सांसति सकल अंगइ अनट अपमान । तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान ।—तुलसी ग्र०, पृ० १४२ ।

अनडीठ(७)---वि० [स० अन्+दृष्ट प्रा० डिड्ड, डिट्ट, हि० डीठ] बिना देखा ।

अनडुज्जिह्वा---संज्ञा स्त्री० [स०] १. गोजिह्वा । २. अननमून [को०] ।

अनडुह---संज्ञा पु० [म०] १ चैना । २. वृषमराशि (जि०) । ३. गोन प्रवर्तक एक ऋषि का नाम (को०) ।

अनङ्गुही—सज्ञा स्त्री० [म०] गाय ।

अनङ्गवान्—सज्ञा पुं० [म०] १ ब्रह्म । गौड । २ सूर्य (उपनि०) । ३ वृष राशि [को०] ।

अनङ्गवाही—सज्ञा स्त्री० [म०] गौ । गाय [को०] ।

अनङ्गु<sup>१</sup>—वि० [म०] जो मूलम न हो [को०] ।

अनङ्गु<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० मोटा अन्न [को०] ।

अनत<sup>१</sup>—वि० [म०] न जुका हुआ । सीधा ।

अनत<sup>२</sup>—क्रि० वि० [म०] अन्यत्र, प्रा० अगस्त, अन्नत्त] और कही । दूसरी जगह में । पराग स्थान । उ०—राम लपन मियरु मुनी मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ ।—मानस, २।२३२ ।

अनति<sup>१</sup>—वि० [म०] बहुत नही, थोड़ा ।

अनति<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० नम्रता का अभाव । विनीत भाव का न होना । अहंकार ।

अनदेखा—वि० [हि० अन् + देखना] [स्त्री० अन्देखी] बिना देखा हुआ । उ०—देखी अनदेखी किये अंगु अंगु मरि दिखाइ । पैठति सी तन में मकुचि बैठी बितै लजाइ ।—विहारी २०, दो० ६१८ ।

अनदोष—वि० [हि० अन् + म० दोष] दोषरहित । प्रदोष । निर्दोष । उ०—अनदोषे को दोष लगावनि, दई देहो टारि ।—मूर०, १०।२६२ ।

अनद्धा—क्रि० वि० [म०] अमृत्युन, अवस्तुन या अनीकन [को०] । अनद्धामिश्रित वचन—सज्ञा पुं० [म०] जैन मत के अनुसार समय के मन्त्र में झूठ बोलना । जैसे कुछ रान रहते ही कह देना कि सूर्योदय हो गया ।

अनद्य<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] मफेद मरनो [को०] ।

अनद्य<sup>२</sup>—वि० जो खाने योग्य न हो । अखाद्य [को०] ।

अनद्यतन<sup>१</sup>—वि० [म०] [स्त्री० अनद्यतनी] आज या अद्यतन के पहले या पीछे का ।

अनद्यतन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० पिछली रात के पिछले दो पहर और आनेवाली रात के अगले दो पहर और इनके बीच के सारे दिन को छोड़कर बाकी रात या भविष्य का समय । पिछली १२ वजे रात से आनेवाली १२ वजे रात तक का समय जो बीत रहा हो ।

विशेष—पिछली आधी रात के पहले के समय को भूत अनद्यतन और आनेवाली रात के बाद के समय को भविष्य अनद्यतन कहते हैं ।

अनद्यतन भविष्य—सज्ञा पुं० [म०] १ आनेवाली आधी रात के बाद का समय । २ मस्कृत व्याकरण में भविष्यकाल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता ।

अनद्यतन भूत—सज्ञा पुं० [म०] १ बीती हुई आधी रात के पहले का समय । मस्कृत व्याकरण में भूतकाल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता ।

अनधिक—वि० [स०] १ जो अधिक न हो । २ सीमाहीन । प्रगीम । ३ पूर्ण । पूरा । ४ जिसमें कोई बड़का न हो । ५ जिसे बढ़ाया न जा सके [को०] ।

अनधिकार<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] १. अधिकार का अभाव । उन्निवार का न होना । प्रभुत्व का अभाव । २. वेद्योपात्तागी । ३. अयोग्यता । अक्षमता ।

अनधिकार<sup>२</sup>—वि० १ अधिकाररहित । बिना अधिकार का । २. अयोग्य । योग्यता के बाहर ।

अनधिकारचर्चा—सज्ञा स्त्री० [म०] योग्यता के बाहर बानचीन । जिन विषय में गति न हो उसमें टांग अटाना ।

अनधिकारचेष्टा—सज्ञा स्त्री० [म०] बिना अधिकार के कोई कार्य या प्रयत्न करना [को०] ।

अनधिकारिता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ अधिकारशून्यता । अधिकार का न होना । २. अक्षमता ।

अनधिकारी—वि० [म० अनधिकारिन्] [स्त्री० अनधिकारिणी] १. जिसे अधिकार न हो । जिसके हाथ में उन्निवार न हो । २. आयोग्य । अपात्र । कुप्राप्त । जैसे—वहिन योग प्राधिकारी को वेद नहीं पढ़ाते ( गृ० ८० ) ।

अनधिकृत—वि० [म०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न किया गया हो । २. अधिकार से बाहर । जिसपर अधिकार न हो [को०] ।

अनधिगत—वि० [म०] बिना गमभा हुआ । अनगमन । अजात । वे जाना बूझा ।

अनधिगत मनोरथ—वि० [म०] जिसकी इच्छा पूर्ण न हुई हो । हताश [को०] ।

अनधिगत शास्त्र—वि० [म०] जिसका शास्त्र पर अधिकार न हो [को०] ।

अनधिगम्य—वि० [म०] जो पहुँच के बाहर हो । अप्राप्य । दुर्गम्य ।

अनधिष्ठान—सज्ञा पुं० [स०] निरीक्षण का न होना [को०] ।

अनधिष्ठित—वि० [म०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ । २. जो उपस्थित न हो [को०] ।

अनधिष्ठित—वि० [म०] १ अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ हो । २. उपस्थित न हो [को०] ।

अनधीन<sup>१</sup>—वि० [म०] जो अधीन न हो । स्वतन्त्र [को०] ।

अनधीन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० स्वेच्छा पूर्वक स्वतन्त्र रूप में काम करनेवाला बहई [को०] ।

अनधीनक—सज्ञा पुं० [म०] १ 'अनधीन' [को०] ।

अनध्यक्ष—वि० [म०] १ जो देख न पड़े । अप्रत्यक्ष । नजर के बाहर । २. अध्यक्षरहित । बिना मानिक का ।

अनध्ययन—सज्ञा पुं० [म०] १ अध्ययन न होना । अध्ययन का अभाव । २. अध्ययनकाल में बीच में पड़नेवाला विराम [को०] ।

अनध्यवसाय—सज्ञा पुं० [म०] १ अध्ययन का अभाव । पण्डितता । डिलारी । २. एक तान्यान्तर ।

विशेष—उसमें कई समान गुणवाली वस्तुओं के बीच नहीं कति किसी एक वस्तु के सबन में तात्प्राण अनिश्चय का वर्णन किया जाता है । जैसे—'स्वेच्छा' जो तन्मय मन न कर । २. आली बनमाती को यह । यह अनन्तर तन्मय में 'मंदिर' के अनन्तर ही जाता है श्री उन्मये कृष्ण तन्मयता की तन्मय प्रतीति होती है ।

अनव्याय—सज्ञा पुं० [म०] १ वह दिन जिसमें तान्यानुसार पढ़ने पढ़ाने का नियम हो ।

विशेष—मनु के अनुसार अमावस्या, अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा ये चार दिन 'अनध्याय' के हैं। इनके अतिरिक्त प्रतिपदा को भी अनध्याय माना जाता है।

२ छट्टी का दिन।

अनध्यास—वि० [म०] भूला हुआ। विस्मृत।

अनन<sup>१</sup>—मज्ञा पु० [म०] श्वासग्रहण की क्रिया। जीना [को०]।

अनन<sup>२</sup>—सज्ञा पु० [हि०] दे 'अन्न'। उ०—पिय बिन तन पन अनन घन, भूपन वनन नरत्त।—पृ० रा०, ६६।२७६।

अनन<sup>३</sup>—वि० [हि०] 'अनन्य'। उ०—वाजय अनहद ताल पखावज उमग्यो प्रेम अनन खोरी।—भीख० श०, पृ० ५१।

अननि<sup>४</sup>—वि० [हि०] 'अनन्य'। उ०—राह भगिनी की अननि है विरला पार्व को।—रामानंद, पृ० ५४।

अननुकूल—वि० [स०] १ जो अनुकूल न हो। २ प्रतिकूल। विपरीत। उ० जहाँ सामाजिक अनुभूति के विपरीत या अनुकूल वैयक्तिक अनुभूति काव्य में आ जाती है वहाँ रसामात्र हो जाता है। साहित्य०, पृ० २१६।

अननरुधाति—सज्ञा स्त्री [म०] ख्याति, ज्ञान या बोध का अभाव [को०]।

अननुज्ञात—वि० [म०] १ जो स्वीकृत न हो। अस्वीकृत। २ जिसको अनुज्ञा या अनुमति न दी गई हो [को०]।

अननुभावक—सज्ञा [म०] जो समझने में असमर्थ हो [को०]।

अननुभावकता—सज्ञा स्त्री [म०] १ बोध या ज्ञान का अभाव। २ अग्रोध। अज्ञान। अज्ञात [को०]।

अननुभाषण—सज्ञा पु० [म०] न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थान। विशेष—जब वादी किसी विषय को तीन बार कह चुके और सब लोग समझ जायें, और फिर प्रतिवादी उसका कुछ उत्तर न दे तब वहाँ अननुभाषण होता है और प्रतिवादी की हार मानी जाती है।

अननुभूत—वि० [न०] जिसका अनुभव न हो। अनुभव से परे। उ०—अननुभूति पदार्थों का साहित्यकार सर्जन करता रहता है।—शैली, पृ० २१।

अननुमत—वि० [म०] १ जिसकी अनुमति या आज्ञा न हो। २ नापसंद। अप्रिय। ३ अमग्न। अयुक्त [को०]।

अननुपगी—वि० [म०] अननुपङ्गिन् जो अनुपगी न हो [को०]।

अननुष्ठान—सज्ञा पु० [म०] अनुष्ठान का अभाव [को०]।

अननुक्त—वि० [म०] १ जिसका पाठ न किया गया हो। २ अनुत्तरित। जिसका उत्तर न दिया गया हो [को०]।

अननुत—वि० [स०] जो अनुत या असत्य न हो। मत्स्य [को०]।

अनन्न—वि० [न०] चात्रन या खाद्य जो हीन कोटि का हो [को०]।

अनन्तास—सज्ञा पु० [ब्र०] (अमे०) नानस, पुर्त० अनाजा] रामनाम की तरह का एक पीछा और उमका फल।

विशेष—यह पीछा दो फुट तन ऊँचा होता है। जड़ से दो तीन इंच ऊपर उठन में अकुंगी की एक गाँठ बँधने लगती है जो क्रमशः मोटी और लंबी होती जाती है और रस से भरी होती है। इस मोटे अकुंगिण्ड का स्वाद खटमीठा होता है।

अनन्य<sup>१</sup>—वि० [म०] [स्त्री० अनन्या] अन्य से सबध न रखनेवाला। एकनिष्ठ। एक ही में लीन। जैसे—(क) 'वह ईश्वर का अनन्य उपासक है।' 'इसपर हमारा अनन्य अधिकार है, (शब्द०)। (ख) सो अनन्य जाके अग्नि मति न टरड हनुमत।—मानस ४।३।

यौ०—अनन्यभक्त = जो किसी एक की ही भक्ति करे। एकनिष्ठ भक्त। २ अद्वितीय। जिसके समान दूसरा न हो। जैसे—अगरेजी के अनन्य महाकवि शेक्सपीयर की कविता।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

अनन्य<sup>२</sup>—सज्ञा पु० विष्णु का एक नाम।

अनन्यगति—वि० [म०] जिसको दूसरा सहारा या उपाय न हो। जिसको और ठिकाना न हो। उ०—भेवहि भगति मन वचन करम अनन्य गति हर चरन की।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१।

अनन्यगतिक—वि० [म०] जिसे दूसरा सहारा या उपाय न हो [को०]। अनन्यगामी—वि० [स०] अनन्यगामिन् किसी अन्य के पास न जानेवाला [को०]।

अनन्यगुरु—सज्ञा पु० [स०] कृष्ण [को०]।

अनन्यचित्त—वि० [स०] जिसका चित्त और जगह न हो। एकाग्रचित्त।

अनन्यचेता—वि० [म०] अनन्यचेतस् अनन्यचित्त। एकाग्रचित्त [को०]।

अनन्यचोदित—वि० [म०] जो अन्य किसी में प्रेरित न हो। स्वतः प्रेरित [को०]।

अनन्यज—सज्ञा पु० [स०] कामदेव।

अनन्यजन्मा—सज्ञा पु० [म०] अनन्यजन्मन् अनन्य। कामदेव [को०]।

अनन्यता—सज्ञा स्त्री [म०] १ अन्य के सबध का अभाव। २ एकनिष्ठता। एकाग्रता। एक ही में लीन रहना। उ०—इस अनन्यता सहित धन्य अपने प्यारे को आराधा।—एकांत०, पृ० १३।

अनन्यत्व—सज्ञा पु० [स०] अनन्यता [को०]।

अनन्यदृष्टि<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री [म०] एकाग्र दृष्टि। एकटक देखते रहना [को०]।

अनन्यदृष्टि<sup>२</sup>—वि० एकटक देखनेवाला [को०]।

अनन्यदेव<sup>१</sup>—वि० [स०] जिसका अन्य कोई देव न हो [को०]।

अनन्यदेव<sup>२</sup>—सज्ञा पु० परमात्मा [को०]।

अनन्यनिष्पाद्य—वि० [म०] किसी अन्य से निष्पन्न या संपादित न होने योग्य [को०]।

अनन्यपरता—सज्ञा स्त्री [म०] अन्यपरता का अभाव। एकनिष्ठता [को०]।

अनन्यपरायण—वि० [म०] जो अन्य (स्त्री०) में लीन या आनत न हो [को०]।

अनन्यपूर्व—वि० [म०] वह पुरुष जिसके अन्य स्त्री न हो [को०]।

अनन्यपूर्वा—वि० स्त्री [म०] १ जो पहले किसी की न रही हो। २ कुमारी। बचारी। विनव्याही।

अनन्यभव—वि० [म०] जिसके अन्य सत्तान उत्पन्न न हो [को०]।

अनन्यभाव<sup>१</sup>—वि० [म०] अन्य के प्रति भाव या आस्था न रखनेवाला [को०]।

अनन्यभाव<sup>२</sup>—सज्ञा पु० [म०] १ एकनिष्ठ भक्ति या भाव। २ परमात्मा के प्रति भक्ति या निष्ठा [को०]।

अनन्यमनस्क—वि० [सं०] जो अनन्यमनस्क या अन्यनिष्ठ न हो [को०] ।  
अनन्यमना—वि० [सं० अनन्यमनस्] १ एकाग्रचित्त । २ एकनिष्ठ [को०] ।

अनन्यमानस—वि० [सं०] १ एकाग्रचित्त । २ एकनिष्ठ [को०] ।  
अनन्ययोग<sup>१</sup>—वि० [सं०] जिसका किसी अन्य का योग या साथ न हो [को०] ।

अनन्ययोग<sup>२</sup>—क्रि० वि० किसी अन्य के साथ या बाद में न आने-  
वाना [को०] ।

अनन्यविषय—वि० [सं०] एकमात्र विषय या सदर्थ से सवध  
रगनेवाला [को०] ।

अनन्यविषयात्मा—वि० [सं० अनन्यविषयात्मन्] एक विषय पर स्थिर  
रहनेवाला [को०] ।

अनन्यवृत्ति—वि० [सं०] १ अन्यवृत्ति न रगनेवाला । एकाग्र ।  
दत्तचित्त । २ जिसकी दूसरी वृत्ति या जीविका न हो । ३  
समान वृत्ति या स्वाभाववाला [को०] ।

अनन्यसाधारण—वि० [सं०] अन्य में न मिलनेवाला । असा-  
धारण [को०] ।

अनन्यसामान्य—वि० [सं०] जो अन्य सामान्य या साधारण जनों से  
अलग हो । असाधारण [को०] ।

अनन्यहृत—वि० [सं०] जो अन्य द्वारा हरण न किया गया हो ।  
मुक्षित [को०] ।

अनन्याधिकार—सज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिसके देखने या बनानेका  
किसी एक व्यक्ति या कंपनी को ही अधिकार हो । पेटेंट ।  
इजागा ।

अनन्यार्थ—वि० [सं०] जो अन्य अर्थ या विषय के अतर्गत न हो ।  
जो गौण न हो । मुख्य या आधिकारिक [को०] ।

अनन्याश्रित<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो अन्य का आश्रित या अधीन न हो ।  
२ स्वाधीन । स्वतन्त्र [को०] ।

अनन्याश्रित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० वह सपत्ति जिसपर ऋण न हो [को०] ।

अनन्वय—सज्ञा पुं० [सं०] १ अन्वय या रावध का अभाव । २ काव्य  
में वह अलंकार जिसमें एक ही वस्तु उपमान और उपमेय रूप  
में कही जाय । जैसे—तेरे मुख की जोड़ को तेरो ही मुख  
आहि (शब्द०) ।

विशेष—केशवदास ने इसी को अतिशयोपमा लिया है ।

अनन्वित—वि० [सं०] १ अमवद्ध । पृथक् । विलग । २ अद्वय ।  
अयुक्त ।

अनन्वै<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अनन्वय] १ 'अनन्वय' । उ०—कहाँ  
करत उपमेय को उपमेय उपमान, तहाँ अनन्वै कहत है भूपन  
सकल मुजान ।—भूपन ग्रं०, पृ० १३ ।

अनप—वि० [सं०] जलहीन । बिना जल का [को०] ।

अनपकरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ हानि करना । २ रुपया न  
लोटना [को०] ।

अनपकर्म—सज्ञा पुं० [सं० अनपकर्मन्] १ 'अनपकरण' [को०] ।

अनपकार—सज्ञा पुं० [सं०] अपकार या हानि का अभाव [को०] ।

अनपकारक—वि० [सं०] १ जो हानिकारक न हो । २ निर्दोष [को०] ।  
अनपकारी—वि० [सं० अनपकारिन्] [स्त्री० अनपकारिणी] अपकार  
या हानि न करनेवाला [को०] ।

अनपकृत<sup>१</sup>—वि० [सं०] जिसका अहित न हुआ हो [को०] ।

अनपकृत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० दोष का अभाव [को०] ।

अनपक्रम—सज्ञा पुं० [सं०] न जाना या न हटना [को०] ।

अनपक्राम—सज्ञा पुं० [सं०] १. पीछे न हटना । २ पराङ्मुख न  
होना [को०] ।

अनपक्रामक—वि० [सं०] पीछे न हटनेवाला [को०] ।

अनपक्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ 'अनपकरण' [को०] ।

अनपच—सज्ञा पुं० [हिं० अन (प्रत्य०) + पच] अजीर्ण । बदहजमी ।

अनपच्युत—वि० [सं०] १ विचलित न होनेवाला । डावाडोल न  
होनेवाला । २ विषयमपात्र । विश्वमनीय [को०] ।

अनपढ—वि० [हिं० अन = नहीं + √पढ] बेपढ़ा । अपठित । मूर्ख ।  
निरक्षर ।

अनपत्य—वि० [सं०] [स्त्री० अनपत्या] निमतान । नाश्वर ।

अनपत्यक—वि० [सं०] १ 'अनपत्य' ।

अनपत्यता—सज्ञा स्त्री० [सं०] निम्मतान होना [को०] ।

अनपत्रप—वि० [सं०] निर्लज्ज । वेशर्म [को०] ।

अनपदेश—सज्ञा पुं० [सं०] वह तर्क जो ग्राह्य न हो । अग्राह्य  
तर्क [को०] ।

अनपधृष्ट—वि० [सं०] पराजित या विजित न करने योग्य [को०] ।

अनपभ्रंश—सज्ञा पुं० [सं०] १ जो अपभ्रंश न हो । २ शुद्ध  
शब्द [को०] ।

अनपर<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ अपर या अन्य से रहित । २. जिसका कोई  
अनुयायी न हो । ३ अकेला । एकमात्र [को०] ।

अनपर<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० ग्रहम [को०] ।

अनपराद्ध—वि० [सं०] अपराधगुन्य [को०] ।

अनपराध—वि० [सं०] अपराधरहित । निर्दोष । बेकमूर ।

अनपराधी—वि० [सं० अनपराधिन] [स्त्री० अनपराधिनी] निष्पराध ।  
निर्दोष । बेकमूर ।

अनपसर—वि० [सं०] १ जिसमें निकलने का मार्ग न हो । २ जो  
न्याय न हो [को०] ।

अनपसरण—सज्ञा पुं० [सं०] निकलने के मार्ग का अभाव [को०] ।

अनपाकरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ वचन या उक्तार पूरा न करना । २  
ऋण या मजदूरी न चुकता करना [को०] ।

अनपाकरणविवाद—सज्ञा पुं० [सं०] १ उक्तार पूरा न करने का  
मुकदमा या अभियोग । २ शृण या मजदूरी न देने का  
अभियोग [को०] ।

अनपाकर्म—सज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा के काम न करना । उक्तार के  
मुताबिक तनखाह या मजदूरी न देना । जैसे—मजदूरी न देना,  
दी हुई वस्तु लौटा लेना ।

विशेष—स्मृतियों तथा औचित्यीय अर्थजाम्ब में इनका प्रयोग उन्नी  
अर्थ में है । अनपाकर्म नवमी भगना दो प्रकार का है । एक



तो वेतन सबधी और दूसरा दान सबधी पराशर ने लिखा है कि श्रमी या भृत्य को उसके काम के बदले वेतन न देना या वेतन देकर लौटा लेने का काम 'वेतनस्थानपाकर्म' है। इसी प्रकार दिए हुए माल को लौटाना और ग्रहण किए हुए माल को देना 'दत्तस्थानपाकर्म' है।

अनपाकर्मविवाद—सज्ञा पुं० [सं०] मजदूरो और काम करानेवाले पूँजीपतियों के बीच वेतन सबधी झगडा।

विशेष—नारद ने लिखा है कि कर्मस्वामी अर्थान् पूँजीपति भृत्यो को निश्चित की हुई मृत्ति दे ( ना० स्मृ० ६०२ )।

अनपाय<sup>१</sup>—वि० [सं०] अपाय का क्षय से रहित [को०]।

अनपाय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० अनश्वरता। २ नित्यता। ३ शिव [को०]।

अनपायनी—वि० स्त्री० [म० अनपायिनी] विश्वेपरहित। स्थिर। दृढ।

उ०—प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम।—मानस, ७।३४।

अनपायिपद—सज्ञा पुं० [सं०] स्थिर पद। अनश्वर पद। परम पद। मोक्ष।

अनपायी—वि० [सं० अनपायिन्] [स्त्री० अनपायिनी] निश्चल। स्थिर। अचल। दृढ। अनश्वर।

अनपाश्रय—वि० [म०] १ जो किसी का आश्रित न हो। २ स्वतंत्र [को०]।

अनपेक्ष—वि० [म०] १ अपेक्षा या चाह न रखनेवाला। २ तटस्थ। ३ निष्पक्ष। ४ सबधहीन। ५ स्वतंत्र [को०]।

अनपेक्षा<sup>१</sup>—वि० [सं०] अपेक्षारहित। निरपेक्ष। वेपरवाह।

अनपेक्षा<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० अपेक्षा या चाह का अभाव [को०]।

अनपेक्षित—वि० [सं०] जो अपेक्षित न हो। जिसकी परवाह न हो। जिसकी चाह न हो।

अनपेक्षी—वि० [सं० अनपेक्षिन] १ 'अनपेक्ष' [को०]।

अनपेक्ष्य—वि० [सं०] जो अन्य की अपेक्षा न रखे। जिसे किसी के सहारे की आवश्यकता न हो। जिसे किसी की परवा न हो। उ०—साक्षी हो अनपेक्ष्य मेरे अर्थ, मत्य कर दे सर्व-सहन-समर्थ।—साकेत, पृ० १७८।

अनपेत—वि० [म०] १ जो गत न हो। २ अव्यतीत। जो बीता न हो। ३ जो पृथक् या अलग न हो। ४ विश्वासपात्र। विश्व-सनीय। ५ निकट। समीप [को०]।

अनपत्त—वि० [सं०] जो जलयुक्त न हो [को०]।

अनप्राप्त<sup>१</sup>—वि० [हि० अन + सं० प्राप्त, हि० प्राप्त, पराप्त] अप्राप्त। उ०—अनप्राप्त को कहा तजे, प्राप्त तजे सो त्यागी है।—कवीर २०, पृ० ४६।

अनप्रासन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] १ 'अन्नप्राशन'। उ०—ग्राजु कान्हु करिहँ अनप्रासन।—सूर० १।७०७।

अनपास<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ हि० अन + पास = पाश ] मोक्ष। मुक्ति। उ०—जेकर पास अनपास, कहु जिय फिकिर सँभारि कै।—जायसी (शब्द०)।

अनपा—सज्ञा पुं० [ मूलानी, श्री० अनफे ] ज्योतिष के सोलह योगों में से एक।

विशेष—कुडली में जिस स्थान पर चंद्रमा बैठा हो उसमें वारहवें स्थान में यदि कोई ग्रह हो तो इस योग को अनपा कहते हैं।

अनवछी<sup>१</sup>—वि० [हि० अन + चाछिन, प्रा० वक्षिष] अवाछित। अनचाही। उ०—प्रौर सकन यह वरतनि कहिए अनवछी ही आवै जू।—सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३११।

अनवन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि० अन = नहीं + √वन = वनना] विगाड। विरोध। फूट। चटपट।

अनवन<sup>२</sup>—वि० भिन्न भिन्न। नाना (प्रकार)। विविध। अनेक। उ०—(क) अनवन बानी तेहि के माहि। विन जाने नर भटका खाहि।—कवीर (शब्द०)। (ख) पुनि अभरन बहु काडा अनवन भाँति जगन।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४४।

अनवनता<sup>१</sup>—वि० [हि० अन + √वन] जिसमें वनत या वनाव या मेल न हो। उ०—कवीर कहते क्यों वनँ अनवनता के सग, दीपक को भार्य नहिं जगि जगि मरें पतग।—कवीर ना० सं०, पृ० ५८।

अनवना<sup>१</sup>—वि० [हि० अनवन] [वि० स्त्री० अनवनी] बुरा। खराब। विगडा। उ०—बन्धो अनवन्यो समुक्ति कै, मोघि लेहिने साधु।—मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ४।

अनवनियत<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि० अनवना] वह जो वननेवाली न हो। उ०—गुरु विन मिटइ न दुगदुगी अनवनियत न नमाइ।—कवीर (शब्द०)।

अनवलई<sup>१</sup>—वि० [हि० अन + √वल] बिना जनावा। जो प्रश्रित न किया गया हो। उ०—अनवलई दव परजलई।—वीसन० रास०, पृ० ६६।

अनवाद<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] १ 'अनवाद'। उ०—अनदवन मुजान सुनो विनती जिन अनवाद कगी निहारी।—बनानद, पृ० ५५५।

अनविच्छा<sup>१</sup>—वि० [हि० अन + √विच्छ] बिना बिछाया हुआ। नंगा। उ०—अपनी कोठरी में एक अनविच्छे तखन पर लेटी थी।—त्याग, पृ० २१।

अनविधा<sup>१</sup>—वि० [हि० अन + सं० विधा] १ 'अनविधा'।

अनविधा—वि० [म० अन् + विद्ध] बिना वेधा हुआ। बिना छेद किया हुआ।

अनवीह<sup>१</sup>—वि० [हि० अन + सं० भीत, प्रा० भीअ + वीह] निर्भय। निडर। उ०—लोहाना अनवीह लीय वारत्त ममर्थ।—पृ० रा० ४।२०।

अनवृक्ष—वि० [हि० अन + √वृक्ष] अनजान। नासमझ। मूर्ख। उ०—प्रधेर नगरी अनवृक्ष राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा।—भारतेन्दु ग्र०, भा० १, पृ० ६७०।

अनवृक्षा<sup>१</sup>—वि० [हि०] वेसमभावभा। अवृक्षा।

अनवृडा<sup>१</sup>—वि० [हि० अन + √वृड] न डूबा हुआ। जो गहरे न पैठा हो। उ०—अनवृडे वृडे, तरै जे वृडे सब अग।—विहारी २०, दो० ६४।

अनवेधा—वि० [हि०] १ 'अनविधा'।

अनवोल—वि० [हि० अन = नहीं + √जोल] १ अनबोला। न बोलनेवाला। २ चुप्पा। मौन। ३ गूंगा। बेजबान। ४ जो अपने सुख दुख को न कह सके।

विशेष—पशुओं के लिये इस विशेषण का बहुत प्रयोग प्राप्त होता है।

अनवोलता—वि० [हि०] [स्त्री० अनवोलनी] २० 'अनवोल'।

अनवोला—वि० [हि०] २० 'अनवोलता'।

अनवोला—महा पुं० [हि० अन+वोल] वोलचाल या बातचीत का अभाव। अनवन। अनमेल।

अनवोले—वि० [हि०] विना बोले हुए। उ०—मैं तो तुम्हें हेमज खेलतहि छाँड़ि गई, आई अन्धारे अनवोले रहे दोऊ।—मूर०, १०।२७६१।

अनव्वर—वि० [सं० अन्+अव्वर=अवल] वली। वनवान। उ०—चढ़यो चहुआन अनव्वर।—पृ० रा, ५८।७।

अनव्याहा—वि० [हि० अन+व्याहा] [स्त्री० अनव्याही] अविवाहित। विन व्याहा। क्वारा। उ०—अनव्याही कह पुरप मो अनुरागी जो होइ। ताहि अनूहा कहत हैं कवि कोविद सब कोइ।—रमराज, पृ० १५।

अनभग—वि० [हि० अन+भग=दूटना] अघटित। अमग। परिपूर्ण। उ०—हरहरात उर कर कौपत फरकत अव्वर सुरग। परवि पीउ पलकनि प्रगट पीर लीक अनमग। पद्माकर ग्र०, पृ० १६६।

अनभजता—वि० [हि० अन+भजना] न भजनेवाला। न चाहनेवाला। उ०—इक भजते की भजै एक अनभजतन भजही।—नद० ग्र०, पृ० २०।

अनभया—वि० [हि० अन+भया] विना हुए। विना मत्ता या स्थिति हुए। उ०—जागेउ नृप अनभएँ विहाना।—मानस, १।१७२।

अनभल—महा पुं० [हि० अन=नहीं+भल] बुराई। हानि। अहित। उ०—जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।—मानस, २।१६।

मु०—अनभल ताकना=बुराई चाहना। उ०—जेहि राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि येहु फल परिपाका।—मानस, २।२१।

अनभला—वि० पुं० [हि० अन+भला] [स्त्री० अनभली] बुरा। निन्दित। हेय। घराब। उ०—कटु कहिए गाढे परे सुनि समुझि सुसाई। करहि अनभले को भलो आपनी भलाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७२।

अनभाउता—वि० [हि०] २० 'अनभानता'। उ०—त्यो पदमाकर सोति सँजोगनि रोग भयो अनभाउतो जी को।—पद्माकर ग्र०, पृ० १७०।

अनभाया—वि० [ [हि० अन+भावना=अच्छा लगना] [स्त्री० अनभाई] जो न भावे। जिनकी चाह न हो। अप्रिय। अरुचिकर। नापसद। उ०—अवध सकल नर नारि विकल अति, अँकनि वचन अनभाये। तुलसी रामवियोग सीग वस समुभत नहि समुभाए।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६२।

अनभायो—वि० [हि०] अप्रिय। अनिष्ट। उ०—गरड को कहा किमो अनभावो। जात यह इहि दह में आयो।—नद० ग्र०, पृ० २६२।

अनभावा—महा पुं० [ [हि० अन+भाव] नाश या प्रेम का अभाव। अनभावत—वि० [हि०] २० 'अनभावता'।

अनभावता—वि० [हि०] २० 'अनभावता'। उ०—तेरे लान मागन छाथो। ऊखन चढि, लीके की लीन्ही अनभावत भूँ में डर-कायो।—मूर० १०।३३१।

अभावरी—महा स्त्री० [हि० अन+भावरी] नापसद होने का भाव या स्थिति। उ०—भावरी अनभावरी नरे करो कोरि वकवाडु। अपनी अपनी माँति को छुटै न सहजु सवाडु।—विहारी २०, दो० ६३७।

अनभिगम्य—वि० [सं०] जो अभिगम्य या नमझने योग्य न हो। अवोध। उ०—सदैव के लिये यह उन्हें अनभिगम्य हुआ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७५।

अनभिग्रह—वि० [मं०] भेदशून्य। समभावविशिष्ट।

अनभिग्रह—महा पुं० १ भेदशून्यता। एकरूपता। नगकक्षता। २ जैन मतानुसार सत्र मनों को अच्छा और सत्र में मोक्ष मानने का मिथ्यात्व।

अनभिज्ञ—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनभिज्ञा, महा अनभिज्ञता] अज्ञ। जनजान। अनाडी। मूर्ख। उ०—(क) मैं तब कितनी अनभिज्ञा थी प्रतिविधित शशि को पाकर। वीणा, पृ० ३६। २ अपरिचित। नावाकफि। उ०—(ख) निपट अनभिज्ञा अभी तुम हो वहिन, प्रेमिका का गवं रखती हो वृथा।—प्रथि, पृ० ७८।

अनभिज्ञता—महा स्त्री० [सं०] १ अज्ञता। अनाडीपन। अनज्ञानपन। मूर्खता। २ परिचय का अभाव। नावाकफियत।

अनभिप्रेत—वि० [मं०] १ अभिप्रायविरुद्ध। अनभिमत। तात्पर्य में भिन्न। और का और। जैसे—आपने इस बात का अनभिप्रेत अर्थ लगाया है (शब्द०)। २ अनिष्ट। इच्छा के पतिकूल। नापसद। जैसे—ऐसी ऐसी कारंवाइयाँ हमें अनभिप्रेत है—(शब्द०)।

अनभिभूत—वि० [सं०] १ जो पराजित न हो। २ अवाधित [को०]।

अनभिमत—वि० [सं०] १. मत के विरुद्ध। राय के खिलाफ। २. तात्पर्यविरुद्ध। और का और। ३ अनिष्ट। नापसद।

अनभिमान—महा पुं० [सं० अन्+अभिमान] अभिमान का अभाव। उ०—सपत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिनकी स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है।—भारवेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २६४।

अनभिमानुक—वि० [सं०] किसी के प्रति दुर्भाव न रखनेवाला [को०]।

अनभिम्लान—वि० [मं०] जो मुरझाया या कुम्हनाया न हो [को०]।

अनभिम्लानवर्ण—वि० [सं०] जिनका वर्ण या रंग फीका या मंद न हुआ हो [को०]।

अनभिरूप—वि० [सं०] जो मद्ध या समान न हो। १ जो सुंदर न हो [को०]।

अनभिलाष—वि० [मं०] इच्छाशून्य [को०]।

अनभिलाष—महा पुं० १. भूष या इच्छा का अभाव। २. रस या स्वाद का अभाव [को०]।



अनमनीय—वि० [न० अ + नमनीय] जो नमनीय न हो। दृढ। कठोर।

अनमन्न(७)—वि० [हि०] ३० 'अनमना'। उ०—अढर ढरहि अनमन्न महि ढरहि अठार प्रकार।—पृ० रा०, ५५।१२८।

अनमस्यु—वि० [म०] नमस्कार न करनेवाला [को०]।

अनमांगा—वि० [हि० अ + मांगना] जो मांगा हुआ न हो। अयाचित।

अनमाप(७)—वि० [हि० अ + माप] जिसकी माप न की जा सके। अमेय। अपरिमाण। उ०—तमो निरजन देव किन पार न पायो, अमित अथाह अतोल नमो अनमाप अजायो।—राम० धर्म०, पृ० २२२।

अनमापा(७)—वि० [हि० अ + मापना] [स्त्री० अनमापी] जिसकी माप न हो सके। जो मापा न जा सके। उ०—वह दर्द कि जिसकी अनमापी गहराई मे।—ठंडा लोहा, पृ० ६६।

अनमाया—वि० [हि० अ + मायना] जो अंत न सके। जो समा न सके। उ०—मेंटी मालु भरत भरतानुज क्यो कहीं प्रेम अमित अनमायो।—तुलसी (शब्द०)।

अनमारग(७)—सज्ञा पुं० [हि० अ + मुरा + मारग] १. कुमार्ग। बुरी राह। २. दुर्गाचार। अन्वयाय। अर्थम। पाप। उ०—अकरम, अविधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति। जाकी नाम लेत अथ उपजै मोई करत अनीति।—सूर०, १।१२६।

अनमिख<sup>१</sup>(७)—वि० [हि०] ३० 'अनिमिप'। उ०—अनमिख लोचन वाल के यातें नदकुमार।—मतिराम ग्र०, पृ० ८५२।

अनमिख<sup>२</sup>(७)—क्रि० वि० ३० 'अनिमिप'। उ०—मद मृदु मुसकानि अनमिख पेखिहों।—मतिराम ग्र०, पृ० ३३०।

अनमिख<sup>३</sup>(७)—सज्ञा पुं० ३० 'अनिमिप'।

अनमितपच—वि० [स० अनमितस्पच] १ विना नार जोड़ किए न पकानेवाला। २ कृपण। रुजूम [को०]।

अनमित(७)—वि० [हि० अ + मित] अमित। अपार। उ०—आरम कान गज आरुहं अनमित गेन उलटिहो।—रा० ८० पृ० १५४।

अनमित्त(७)—वि० [हि०] ३० 'अनमित'। उ०—अनमित्त मति बल अग्रमाइ।—पृ० रा०, ६।१३५।

अनमिन्ती(७)—वि० [हि० अ + मिति] ३० 'अनमित'। उ०—आजी फोज लखां अनमिन्ती, जोवतो मारग जगपत्नी।—रा० ८०, पृ० २२५।

अनमित्र<sup>१</sup>—वि० [म०] १ जो अमित्र या शत्रु न हो। २ जिसका कोई अमित्र या शत्रु न हो [को०]।

अनमित्र<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [म०] १ अमित्र या शत्रु का अभाव। २ अयोध्या का एक राजा [को०]।

अनमिर्या(७)—वि० [म० अ + नमित] न झुकनेवाला। अनम्र। उ०—पिच्छम घर सोहै वर पांमे, नर बस किया अनमिर्या नमि।—रा० ८०, पृ० १२।

अनमिल(७)—वि० [हि० अ + मिल] १ वेमेल। वेजोड। असवद्ध। वेतुका। वे निर पैर का। उ०—(क) अनमिल आखर अरथ न जापू।—मानस, १।१५। (ख) मित्यो यवन मदमत्त वकत कछु अनमिल बातें।—मतिराम (शब्द०)। २.

पृथक्। मित्र। अनग। निनिप्त। उ०—रहे अदड दड नहि जुग जुग पार न पावै काला। अनमिल रहे मिले नहि जग मे तिरछी उनकी चान। कवीर (शब्द०)।

अनमिलत(७)—वि० [हि०] [स्त्री० अनमिलती] ३० 'अनमिन'। अनमिलता—वि० [हि० अनमिल + ता (प्रत्य०)] [स्त्री० अनमिलती] अप्राप्य। अलभ्य। अदृश्य। उ०—कहै पदमाकर मु जादा कहीं कौन अब जाती मगजादा है मही की अनमिलती।—पद्याकर ग्र०, पृ० २५६।

अनमिला—वि० [हि० अ + मिलना] जो मिला न हो। वेमेल। उ०—इसी से इन अनमेल परदेशियों मे विशेष मेल उत्पन्न करते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७१।

अनमिप<sup>१</sup>(७)—सज्ञा पुं० [स० अनिमिप] मछली। अनेकार्थ०, पृ० ८०। अनमिप<sup>२</sup>(७)—वि० [हि०] ३० 'अनमिप'। उ०—अनमिप नैन सुनै न ये निरखत अनिमिप नैन।—मतिराम ग्र० पृ० ४४७।

अनमिषनैतता(७)—सज्ञा स्त्री० [म० अनमिष + नयन + ता (प्र०)] पलको के न गिरने की स्थिति या दशा। विना पलक गिराए नेत्रों से लगातार देखने की स्थिति। उ०—तो मैं अनमिषनैतता, मोहन मूरति नैन। अनमिष नैन सुनै न ये निरपत अनमिप नैन।—मतिराम ग्र०, पृ० ३४३।

अनमी(७)—वि० [स० अ + नमित प्रा० अ + णमित्र] जो अधीन या झुका हुआ न हो। अपराजित। उ०—बारमै सूर सो करन रग, अनमी नमाइ तिन करै भग।—पृ० रा०, १।७०६।

अनमीच(७)—क्रि० वि० [हि० अ + मिच] मृदु के बिना। विना मोत के उ०—है धनआनद सोच महा मरिचो अनमीच बिना जिय जीवो।—घनानंद, पृ० ५८।

अनमीलना(७)—क्रि० म० [हि० अ + मीलना = मीचता] (आँख) खोलना। उ०—नयनन मिलि कछु अनमीलनि नैमुक नीद को भाव मुभयो।—(शब्द०)।

अनमुख(७)—क्रि० वि० [अन्य + मुख] अन्य मुख से। दूसरे के मुँह से। उ०—जीकारो अनमुख जुई आ जगत् अमिलाव।—वांकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ७८।

अनमूरति(७)—वि० [हि० अ + मूरति] अमूर्त। निराकार। मूर्तिहीन। उ०—अछय अभय अनुभव अनमूरति मन सजीवन नाथ।—गुलाव बानी, पृ० ५२।

अनमेप(७)—वि० [हि०] ३० 'अनिमेप'। उ०—अनमेप जपत इच्छा मघन, आनद ढर भूपन तजै।—पृ० रा०, २५। १०८।

अनमेल—वि० [हि० अ + मेल] १ वेमेल। वेजोड। असवद्ध। २ विना मिलावट का। विशुद्ध। खालिस।

अनमोल—वि० [हि० अ + मोल] १ अमूल्य। मोतरहित। वेमोन। जिसका कोई मूल्य न हो। बहुमूल्य। २ मुदर। उत्तम। उ०—विकटी भुकुटी बहरी अँखिया, अनमोल करो-लन की छवि है।—तुलसी ग्र०, पृ० १६४।

अनम्र—वि० [म०] अविनीत। न प्रतारहित। उद्धत। उद्दड। अकड-वाला। ऐँठवाला।

अनय—सज्ञा पुं० [स०] १ अमगल। दुर्भाग्य। विपद। उ०—सय कुरंगन को अनय बीज अनुचित अमिमानी।—भारतेंदु प्र०,



अनर्गल—वि० [म०] १ प्रनिवधशून्य । वेगेक । वेरुकावट । वेरुडक ।  
२ विचारशून्य । व्यर्थ । अडवड । ३ लगानार । उ०—वह  
अनर्गल अश्रुधार यह ज्यो पावम का मेह ।—एकात, पृ० ४ ।

अनर्गलप्रलाप—सज्ञा पुं० [म० अनर्गल + प्रलाप] अडवट बोलना या  
बकना [को०] ।

अनर्थ—वि० [म०] १ अमूल्य । कीमती । बहुमूल्य । २ अल्प मूल्य  
का । कम कीमत । मम्ता ।

यौ०—अनर्थराघव ।

अनर्थक्रय—सज्ञा पुं० [म०] बाजार की कीमत में अधिक या कम  
कीमत पर खरीदना ।

अनर्थराघव—सज्ञा पुं० [म०] मुरारि कृत का संस्कृत नाटक [को०] ।

अनर्थविक्रय—सज्ञा पुं० [म०] बाजार भाव में अधिक या कम दाम  
पर बेचना ।

विशेष—चाराव्य ने इस अपराध में १००० पण दंड लिखा है ।

अनर्थ—वि० [म०] १ अपूज्य । पूजा के अयोग्य । २ जिसका मूल्य  
न लगा सके । बहुमूल्य । अमूल्य । ३ कम मूल्य का [को०] ।

अनर्जित—वि० [म०] १ अर्जित या प्राप्त न किया हुआ । न कमाया  
हुआ । २ अप्राप्त [को०] ।

अनर्जित आय—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह आय या लाभ जो वस्तु के  
एकाएक मंहेंगे हो जाने पर उसको उत्पन्न करनेवाले या बेचने  
वाले को हो जाय अर्थात् जिसकी सभाबना पहले न रही हो ।

अनर्थ<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [न०] १ विरुद्ध प्रर्थ । अयुक्त अर्थ । उलटा मतलब  
उ०—उमने अर्थ का अनर्थ किया है (शब्द०) । २ कार्य की  
हानि । बिगाड । नुकसान । उपद्रव । उत्पात । खराबी ।  
बुराई । आपद् । विपद् । अनिष्ट । गजब । उ०—(क) अनर्थ  
शब्द अरभेउ जब ते ।—तुनसी (शब्द०) । (ख) मैं मठ सब  
अनर्थ कर हेतु—तुनसी (शब्द०) । ३ वह धन जो अधर्म से  
प्राप्त किया जाय । ४ भय की प्राप्ति ।

अनर्थ<sup>२</sup>—वि० १ व्यर्थ । निकम्मा । २ अभागा । भाग्यविहीन । ३  
खराब । त्रुटिपूर्ण । ४ तुच्छ । गरीब । ५ भिन्न या विपरीत  
अर्थवाला । अर्थविहीन । निरर्थक [को०] ।

अनर्थअर्थानुवध—सज्ञा पुं० [सं० अनर्थअर्थानुवध] किसी शक्तिशाली  
राजा को लडने के लिये उभाडकर आप अलग हो जाना । यह  
अर्थ के भेदों में से है ।

अनर्थअर्थानुवध—सज्ञा पुं० [म० अनर्थअर्थानुवध] अपने लाभ के लिये  
शत्रु या पड़ोसी को धन तथा सैन्य (कोशदंड) द्वारा सहायता  
पहुँचाना ।

अनर्थक—वि० [म०] १ निरर्थक । अर्थरहित । जिसका कुछ  
अभिप्राय या अर्थ न हो । २ व्यर्थ । बेमतलब । बेकार ।  
निष्प्रयोजन ।

अनर्थकर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनर्थकारी] १ बेकार काम करने  
वाला । २ अर्थकर या लाभदायक न हो [को०] ।

अनर्थकारी—वि० [म० अनर्थकारिन्] [स्त्री० अनर्थकारिणी] १  
विरुद्ध अर्थ करनेवाला । उलटा मतलब निकालनेवाला । २  
अनिष्टकारी । हानिकारी । उपद्रवी । उत्पाती । नुकसान  
पहुँचानेवाला । ३ व्यर्थ काम करनेवाला ।

अनर्थत्व—सज्ञा पुं० [सं०] १ व्यर्थता । २ अर्थशून्यता [को०] ।

अनर्थदर्शी—वि० [म० अनर्थदर्शिन] [स्त्री० अनर्थदर्शिनी] अनर्थ  
की ओर दृष्टि रखनेवाला । बुराई मोचने या चाहनेवाला ।  
हित पर ध्यान न रखनेवाला ।

अनर्थनाशी—सज्ञा पुं० [सं० अनर्थनाशिन] शिव [को०] ।

अनर्थनिरनुवध—सज्ञा पुं० [म० अनर्थनिरनुवध] अर्थ के भेदों में से  
एक । किसी हीन शक्तिवाले राजा को उभाडकर तथा लडने के  
लिये प्रोत्साहित कर स्वयं पृथक् हो जाना ।

अनर्थबुद्धि—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि व्यर्थ या गई बीती हो [को०] ।

अनर्थभाव—वि० [सं०] दुष्ट प्रकृति । बुरे स्वभाववाला [को०] ।

अनर्थलुप्त—वि० [म०] निस्सार विषयो से मुग्धित या मुक्त  
[को०] ।

अनर्थसंशय—सज्ञा पुं० [म०] १ ऐसा कार्य जिसमें भारी अनिष्ट की  
शंका हो । २ संपत्ति जो सकट या संदेह में मुक्त हो [को०] ।

अनर्थसंशयापद—सज्ञा पुं० [सं०] शत्रुओं के साथ मित्रों की लड़ाई  
का अवसर ।

अनर्थसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] चल मित्र या आकर ( वह मित्र जो  
शत्रु या विजिगीषु के आश्रय में हो ) का मेल या संधि ।

अनर्थानर्थानुवध—सज्ञा पुं० [म० अनर्थानर्थानुवध] किसी बल-  
शाली राजा को युद्ध के लिये उभाडकर स्वयं अलग हो जाना  
[को०] ।

अनर्थानुवध—सज्ञा पुं० [सं० अनर्थानुवध] शत्रु का इस प्रकार  
नाश न होना कि अनर्थ की आशंका मिट जाय ।

अनर्थपद—सज्ञा पुं० [सं०] चारों ओर से शत्रुओं का भय ।

अनर्थसंशय—सज्ञा पुं० [सं०] ऐसी स्थिति जिसमें एक ओर तो अर्थ  
प्राप्ति की सभावना हो और दूसरी ओर अनर्थ की आशंका ।

अनर्थानुवध—सज्ञा पुं० [म० अनर्थानुवध] अपने लाभ के  
लिये शत्रु या पड़ोसी राजा को धन और सेना द्वारा सहायता  
पहुँचाना [को०] ।

अनर्थ—वि० [म०] अनर्थक [को०] ।

अनर्थ—वि० [सं०] अयोग्य । अनधिकारी । अपात्र ।

अनलकृत—वि० [म० अन् + अलङ्कृत] अलङ्कारविहीन । उ०—  
आकर्षित कर रहा विश्व को अनलकृत भी अमल कमल है,  
मदरता का रूप सरल है ।—नागरिका, पृ० ७६ ।

अनलकरिणु—वि० [म० अन् + अलङ्करिणु] १ जो अनलकृत न  
हो । २ अलङ्कार की इच्छा न रखनेवाला [को०] ।

अनल—सज्ञा पुं० [म०] १ अग्नि । आग । २ अग्नि के अविष्ठाता ।  
देव [को०] । ३ पाचनशक्ति [को०] । ४ पित्र [को०] । ५  
वायु [को०] । ६ अष्टमसुप्तो में से पंचम वसु [को०] । ७ एक  
पितृदेव [को०] । ८ परमेश्वर [को०] । ९ जीव [को०] । १०  
विष्णु [को०] । ११ वामदेव [को०] । १२ एक वानर [को०] ।  
१३ एक मुनि [को०] । १४ वृत्तिका नक्षत्र [को०] । १५  
पञ्चमर्षा मन्त्र [को०] । १६ र वर्ष या अक्षर [को०] ।  
१७ तीन की सज्ञा । १८ माली नामक राक्षस का पुत्र और  
विभीषण का मंत्री । १९ चीता । चित्रक । २० मिनावा ।





अनवट<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं० मयन, हिं० अयन + भोट या सं० अघ + पट या देशी] कोल्हू के बेल की आँखों की पट्टी या ढक्कन। ढोका।  
अनवद्य—वि० [सं०] अनिद्य। निर्दोष। वेऐव। उ०—हमरें जान सदासिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।—मानस, १।६०।

अनवद्यता—सज्ञा स्त्री० [सं०] निर्दोषिता। दोष का अभाव। उ०—सत्य की अनवद्यता से आ गए विस्तार मे।—वेला, पृ० ७४।  
अनवद्यत्व—सज्ञा पुं० [सं०] अनवद्यता [को०]।

अनवद्यरूप<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] दोषरहित रूप। वह रूप जिसमे कोई दोष न हो [को०]।

अनवद्यरूप<sup>२</sup>—वि० [सं०] निर्दोष रूपवाला [को०]।

अनवद्याग—वि० [सं० अनवद्याङ्ग] [स्त्री० अनवद्याङ्गी] सुदर अगो-वाली। सुडोल। धूर्वसूरत।

अनवद्वारा—वि० [सं०] न सोनेवाला। अनिद्रित [को०]।

अनवधर्ष्य—वि० [सं०] जिसको धर्षित न किया जासके [को०]।

अनवधान—सज्ञा पुं० [सं०] असावधानी। अमनोयोग। चित्तविक्षेप। प्रमाद। गफलत। बेपरवाही।

अनवधानता—सज्ञा स्त्री० [सं०] ध्यानहीनता। लापरवाही। असावधानी। गफलत। उ०—उमने अनवधानता से उस प्रश्न को टाल दिया।—ककाल, पृ० १४३।

अनवधि<sup>१</sup>—वि० [सं०] असीम। वेहद। बहुत ज्यादा।

अनवधि<sup>२</sup>—क्रि० वि० निरतर। सदैव। हमेशा।

अनवन<sup>१</sup>—वि० [सं०] अरक्षाकर। विपत्तिकारक [को०]।

अनवन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० अरक्षा [को०]।

अनवनामितवैजयन्त—सज्ञा पुं० [सं० अनवनामितवैजयन्त] भावी विश्व जिसमे विजयध्वजा बराबर ऊँची रहेगी (बौद्ध)।

अनवपूरण—वि० [सं०] असंयुक्त पर चारों ओर फैलनेवाला [को०]।

अनववुध्यमान—वि० [सं०] जो बुद्धिहीन या विकृत बुद्धिवाला न हो [को०]।

अनवभ्र—वि० [सं०] १ जो अक्षुण्ण हो। २ जो नश्वर न हो। ३ स्थायी [को०]।

अनवभ्रम—वि० [सं०] १ जो तुच्छ या क्षुद्र न हो। २ उदात्त। श्रेष्ठ [को०]।

अनवय<sup>(७)</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अन्वय] वश। कुल। खानदान।

अनवर—वि० [सं०] १ जो कनिष्ठ न हो। २ श्रेष्ठ। बड़ा। ३ जो न्यून न हो [को०]।

अनवरत—क्रि० वि० [सं०] निरतर। सतत। अजस्र। अहर्निश। सदैव। लगातार। हमेशा। उ०—अनवरत उठे कितनी उमग।—कामायनी, पृ० १६४।

अनवरोध्य—वि० [सं०] १ मुख्य। प्रधान। २ सर्वोत्तम [को०]।

अनवरोध<sup>१</sup>—वि० [सं०] बिना रोक या बाधा का। निरतर। अबाध। उ०—सरस ज्ञान अनवरोध करता नर रुधिरपान।—गीतिका, पृ० ७०।

अनवरोध<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० अवरोध का अभाव [को०]।

अनवलव<sup>१</sup>—वि० [सं० अनवलम्ब] बिना अवलव का। बेमहारा [को०]।

अनवलव<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० स्वतंत्रता। अवलव का अभाव [को०]।

अनवलवन<sup>१</sup>—वि० [सं० अनवलम्बन] जिसे अवलव या सहारा न हो [को०]।

अनवलवन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० स्वतंत्रता [को०]।

अनवलवित—वि० [सं० अनवलम्बित] आश्रयहीन। निराधार। बेसहारा।

अनवलाप—वि० [सं०] वचनशून्य। मौन। उ०—हुए शीर्ष जो खोकर, अनवलाप रो रोकर।—अर्चना, पृ० १४।

अनवलेप—वि० [सं०] १ अभिमानशून्य। २ अवलेप या लेप से रहित [को०]।

अनवलभन—सज्ञा पुं० [सं०] एक मन्त्रकार जो गर्भ के तृतीय मास में किया जाता है [को०]।

अनवसर—सज्ञा पुं० [सं०] १ निरवकाश। कुरसत का न होना। २ कुसमय। बेमौका। उ०—सोड लका लखि अतिथि अनवसर

राम तृनासर (सन) ज्यो दई।—तुलसी ५०, पृ० ३८८।

३ जसवत जसोभूषण के अनुसार वह काव्यालंकार जिसमें किसी कार्य का अनवसर होना या करना वर्णन किया जाय।

अनवसादन—वि० [सं०] अवसाद या विपाद न करनेवाला। उ०—सहज रिमक्तिम वाद रिन रिन अनवसादन।—गीतगुज, पृ० ५८।

अनवसान—वि० [सं०] १ अत से रहित। २ मृत्युहीन [को०]।

अनवसित—वि० [सं०] १ असमाप्त। उ०—यह चली सलिला अनवसित, ऊर्मिजा जैसे उतारी।—अर्चना, पृ० १०४। २ जो अस्त न हुआ हो [को०]।

अनवसितसधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अनवसित सन्धि] जगत् या ऊसर जमीन बसाने के सवध में दो पुरुषों या राष्ट्रों की सधि। औपनिवेशिक सधि।

विशेष—औपनिवेशिक सधि के विषय में चाणक्य ने लिखा है कि यह प्रायः विवादग्रस्त विषय है कि स्थलीय या जलप्राय भूमि में उपनिवेश की दृष्टि से कौन सी भूमि उत्तम है। साधारणतः जलप्राय भूमि ही उत्तम मानी जाती है।

अनवसिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक छद या वृत्त [को०]।

अनवस्थ—वि० [सं०] १ अस्थिर। चंचल। उतावला। अधीर। २ अव्यवस्थित। डावाँडोल।

अनवस्था—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्थितिहीनता। अव्यवस्था। अनियमितता। उ०—यह अनवस्था युगल मिले में विकल व्यवस्था सदा विखरती।—कामायनी, पृ० २७१। २ व्याकुलता। आतुरता। अधीरता। ३ न्याय में एक प्रकार का दोष।

विशेष—इस प्रकार का तर्क और अन्वेषण जिसका कुछ जोर छोर न हो। यह उस समय होता है जब तर्क करते करते कुछ परिणाम न निकले और तर्क भी समाप्त न हो। जैसे कारण का कारण, उसका भी कारण, फिर उसका कारण।

अनवस्थान—सज्ञा पुं० [सं०] १ अस्थिरता। २ अनिश्चितता। ३. आचरणभ्रष्टता। ४ वायु [को०]

अनवस्थायी—वि० [ न० अनवस्थायिन् ] क्षणस्थायी [को०] ।  
 अनवस्थित—वि० [ न० ] १ अस्थिर । अधीर । चंचल । अशात ।  
 क्षुब्ध । २ वेठिकाना । बेसहारा । निराधार । निरवलंब ।  
 अनवस्थितचित्त—सज्ञा पुं० [ न० ] अस्थिर चित्त या बुद्धिवाला [को०] ।  
 अनवस्थिति—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ अस्थिरता । चंचलता । अधीरता ।  
 अनिश्चितता । २ अवलंबशून्यता । आधारहीनता । ३ योग-  
 शास्त्र के अनुसार समाधि प्राप्त हो जाने पर भी चिन्ता का  
 स्थिर न होना ।  
 अनवहित—वि० [ सं० ] अमावधान । देखबर । वेपरवाह ।  
 अनवह्वर—वि० [ न० ] जो टेढ़ा न हो । सीधा । ऋजु [को०] ।  
 अनवाँसना—क्रि० सं० [ सं० नव + हि० वासन ] नए वस्त्रन को  
 पहले पहल काम में लाना ।  
 अनवाँसा—सज्ञा पुं० [ सं० \* अन्नकांडाश > प्रा० \* अन्न आ अश >  
 अन्ना अश अथवा सं० अण्वश ] १ कटी हुई फसन का एक बड़ा  
 मुट्ठा या पूना । अँमा । २ एक अनवाँसी भूमि में उत्पन्न अन्न ।  
 अनवाँसी—सज्ञा स्त्री० [ सं० अणु = छोटा + वश > बाँसा = नाप ] एक  
 बिस्वे का १००वाँ भाग । त्रिस्वासी का बीसवाँ हिस्सा ।  
 अनवाद—क्रि० सं० [ सं० अन् = बुरा + वाद = वचन ] बुरा  
 वचन । कटु भाषण । कुबोल । उ०—कूँजरी ऊँजरी वाल  
 वहेवा सो मेवा के मोल बढ़ावति झूठे । रूप की साठि के  
 तीव्रति घाटि वदै अनवाद ददै फन जूठे ।—देव (शब्द०) ।  
 अनवाप्त—वि० [ न० ] न पाया हुआ । अप्राप्त । अलब्ध ।  
 अनवाप्ति—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] अप्राप्ति । अनुपलब्धि । न पाना ।  
 अनवाय—वि० [ सं० ] अवाध । निर्विघ्न [को०] ।  
 अनवेक्ष—वि० [ सं० ] १ लापरवाह । २ उदासीन [को०] ।  
 अनवेक्षक—वि० [ सं० ] १ 'अनवेक्ष' [को०] ।  
 अनवेक्षण—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ अमावधानता । २ निरखने या  
 निरीक्षण का अभाव । ३ उदासीनता [को०] ।  
 अनवेक्षा—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ 'अनवेक्षण' [को०] ।  
 अनगन—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ उपवास । अन्नत्याग । निराहार व्रत ।  
 २ जैन शास्त्रानुसार मोक्षप्राप्ति के लिये मरने के कुछ दिन  
 पहले ही अन्न जल का सर्वथा त्याग । ३ राजनौतिक दवाव  
 डालने के लिये अन्न जल का त्याग करना ।  
 अनवर—वि० [ सं० ] नष्ट न होनेवाला । अमिट । अटल । स्थिर ।  
 कायम रहनेवाला ।  
 अनमखड़ी—सज्ञा स्त्री० [ हि० ] १ 'अनमखरी' । उ०—बालभोग  
 को महाप्रवाद अनमखड़ी तथा दूध की (सामग्री) आगे  
 धरी ।—दो सौ वावन०, भा० १ पृ० ८ ।  
 अनमखरी—सज्ञा स्त्री० [ हि० अन = अन्न + खरी = संस्कृत ] निखरी ।  
 पक्की रमोई । घी में पका हुआ भोजन ।  
 अनसत्त—वि० [ हि० अन + सत्त ] असत्य । झूठ । उ०—घर जाऊँ  
 तु मोवत हैं, फिर जाऊँ तो नद पै खात बरा दधि प्यारे ।  
 मयने अनसत्त किवाँ सजनी घर बाहिर होत बड़े घरबारे ।  
 केणय शब्द० ) ।  
 अनमन—सज्ञा पुं० [ हि० ] १ 'अनमन' । उ०—उसके लिये हमको  
 अनमन करना होगा ।—मैला०, पृ० १६ ।

अनसंनमाना—वि० [ हि० अन + संनमान ] असमानित । उ०—  
 कैइक रहे ताहि अरमाने, अक्रूरदिक अनसंनमाने ।—नद०,  
 ग्र०, पृ० २२४ ।  
 अनसमझ—वि० [ हि० अन + समझ ] नासमझ । उ०—तू इतना अन-  
 समझ क्यों है प्रमोद ।—त्याग०, पृ० २० ।  
 अनसमझा—वि० [ हि० अन + समझ ] १ जिसे न समझा हो ।  
 नाममझ । उ०—समुझे का घर और है अनसमझे का  
 और ।—कवीर (शब्द०) । २ अज्ञात । बिना समझा हुआ ।  
 अनसमुझा—वि० [ हि० ] १ 'अनसमझा' । उ०—अनसमुझे  
 अनुसोचनो अवसि समुझिये आपु ।—सं० सप्तक, पृ० ५२ ।  
 अनसहत—वि० [ हि० अन + सहना ] असह्य । अमहनीय । जो  
 सह न जाय । उ०—गाज सो परति अनसहत विपच्छिन पै  
 मत्त गजराजन के घटा गरजत ही ।—चरण (शब्द०) ।  
 अनसाना—क्रि० अ० [ हि० ] १ 'अनखाना' ।  
 अनसुनी—वि० [ हि० अन + सुनना ] अश्रुत । वेसुनी । बिना ।  
 सुनी हुई ।  
 मु०—अनसुनी करना = जानबूझ कर सुनी हुई बात को वेसुनी  
 करना या टालना । आनाकानी करना । वहटियाना ।  
 अनसूय—वि० [ सं० ] असूया रहित । पराए गुण में दोष न देखने-  
 वाला । अछिद्रान्वेषी ।  
 अनसूयक—वि० [ सं० ] १ 'अनसूय' [को०] ।  
 अनसूया—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ पराए गुण में दोष न देखना । मुक्ता-  
 चीनी न करना । २ अत्रि मुनि की स्त्री ।  
 अनसूयु—वि० [ सं० ] १ 'अनसूय' [को०] ।  
 अनसूरि—सज्ञा पुं० [ सं० ] बुद्धिमान् व्यक्ति । विद्वान् व्यक्ति [को०] ।  
 अनसोची—वि० [ हि० अन + सोची ] बिना सोची हुई । उ०—  
 प्रियतम अनसोची ध्यान में भी न आई ।—प्रिय प्र०, पृ० ७७ ।  
 अनस्त—वि० [ सं० ] जो अस्त न हो । अस्त न होनेवाला । उ०—अनस्त  
 अस्त ह्वै गम दुस्त रस्त छोडही ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २०९ ।  
 अनस्तमित—वि० [ सं० ] १ जो अस्त न हुआ हो । २ जिसका पतन  
 न हो [को०] ।  
 अनस्तित्व—वि० पुं० [ सं० ] अविद्यमानता । सत्ता का अभाव । उ०—  
 धू धू करता नाच रहा था अनस्तित्व का ताडव नृत्य ।—कामा-  
 यनी, पृ० २० ।  
 अनस्थ—वि० [ सं० ] १ 'अनस्थि' [को०] ।  
 अनस्थक—वि० [ सं० ] १ 'अनस्थि' [को०] ।  
 अनस्थि—वि० [ सं० ] अस्थिहीन । बिना हड्डी का [को०] ।  
 अनस्थिक—वि० [ सं० ] १ 'अनस्थि' [को०] ।  
 अनह—सज्ञा पुं० [ सं० अनहन् ] १ दिन का अभाव । २ अदिन ।  
 बुरा दिन [को०] ।  
 अनहक्के—वि० [ हि० अन + अ० हक् ] बिना हक् या मत्ब या  
 ईश्वर का । उ०—हरिया एक हक्क विन सत्र दिन जाहि अन-  
 हक्क ।—राम० धर्म०, पृ० ६६ ।  
 अनहड—वि० [ हि० अन + सं० घट ] १ विचित्र । २ विकट ।  
 कठिन । उ०—भीखा ब्रह्मरूप प्रगट पर अनहड बड़ा तामु  
 मिलना ।—भीखा० वानी, पृ० ७० ।

अनहद<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनहदनाद'। उ०—द्वार न धैरू पवन  
न गोकं नहि अनहद उरभावे।—कवीर श०, पृ० ४६।

अनहद<sup>२</sup>—वि० [हिं० अन = अभाव + अ० हद = सीमा] सीमाग्रहित।  
असीम। उ०—ऊँचो राखियै वह वात। कहन ही अनगदी  
अनहद, मुनत ही चपि जात।—सूर०, १०।३८०२।

अनहद नाद—सज्ञा पुं० [सं० अनाहत + नाद] योग का एक माधन।  
वह नाद या शब्द जो दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों कानों की  
लवें वद करके ध्यान करने से अपने ही भीतर सुनाई देता है।  
उ०—हृदय कलम तें जोति विराजै। अनहदनाद निरतर  
वाजै।—सूर०, १०।४०६४।

अनहद<sup>३</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अनहद'। उ०—(क) कृत व्यक्त रक्त  
स्योतस्विनी जत्र तत्र अनहद भूय।—भिखारी ग्र०, भा० २,  
पृ० १८२।

अनहद<sup>४</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनहदनाद'। उ०—सहस और  
द्वादहो रुह हे मग मे करत किलोल अनहद वजाई।—कवीर  
म०, पृ० ५७६।

अनहार<sup>१</sup>—वि० [ हिं० √ आन + हार ( प्रत्य० ) ] आननेवाला।  
ले आनेवाला। उ०—खेलत रहनो वावा चौवरिया आइ गए  
अनहार हो—घरम०, ३४।

अनहित<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ हिं० अन + हित ] १ अहित। अपकार।  
बुराई। हानि। अमंगल। उ०—अनहित तोर प्रिया केहि  
कीन्हा। केहि दुइ भिर केहि जम चह लीन्हा।—तुलसी  
(शब्द०)। २ अहितचित्तक। अपकारी। शत्रु। उ०—वदउ  
मत ममान चित, हिन अनहित नहि कोउ।—तुलसी (शब्द०)।

अनहित<sup>२</sup>—वि० [ हिं० अन + हित 'मित्र' ] अहितचित्तक। अमित्र।  
अवधु। शत्रु। अपकारी। बुराई सोचने या करनेवाला।

अनहुआ—वि० [ हिं० + हुआ ] अघटित। जो न हुआ हो। उ०—  
अनहुआ उस नही किया जा सकता।—मुखदा, पृ० ११३।

अनहुवा<sup>१</sup>—वि० [हिं० अन + भूत प्रा० हूव, हूँ] अनहोनी।  
अलौकिक। उ०—अनहुवे की बात कुछ प्रकट भई सी जान।—  
भूपण ग्र०, पृ० ५८।

अनहोता—वि० हिं० अन + होना [ स्त्री० अनहोती ] १ जिसे कुछ  
न हो। दरिद्र। गरीब। निर्धन। उ०—'हे सखी तेरे इस अंग  
न को अच्छे गहने कपड़े चाहिए थे, ये आश्रम के फूल पत्ते  
तो अनहोती को हैं।—शकुंतला, पृ० ६६। २. अनहोना।  
अलौकिक। अचभे का। उ०—पलुही में होती अनहोती करतु  
है।—मुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ४४३।

अनहोनी<sup>१</sup>—वि० स्त्री० [ हिं० अन + होना, ] न होनेवाली। अलौकिक।  
असंभव। अनहोती। अचभे की।

अनहोनी<sup>२</sup>—सज्ञा-स्त्री० असंभव वात। अलौकिक घटना। उ०—  
अनहोनी कहुँ भई कहैया देखी सुनी न वात। या तो आहि  
खिलोना सब को खान कहत तिहि तात।—सूर०, १०।१८६।

अनाई पठाई—सज्ञा-स्त्री० [ सं० √ आनय + हिं० ई ( प्रत्य० ) + सं०  
√ प्रस्था > पठाई ] विवाह हो-जाने पर कुल-  
हिन के तीन बार ससुराल से वाप के घर आने-जाने के पीछे  
बराबर आने जाने को अनाई पठाई कहते हैं।

अनाकनी<sup>१</sup>—सज्ञा-स्त्री० [ हिं० दे० 'अनाकानी' ]। उ०—(क) नीकी  
दई अनाकनी, फीकी परी गुहार। तज्यो मनो तारन विरद,  
वारक वारनु तारि।—विहारी र०, दो० ११। (ख) कीनी  
अनाकनी श्री मुख मोरि सुजोरि भुजा, गदू भेटत ही बन्धी।—  
देव ( शब्द० )।

अनाकानी—सज्ञा-स्त्री० [ सं० अनाकर्ण ] सुनी अनुसुनी करना।  
जान बूझकर बहलाना। टालमटोल। बहटियाना। उ०—  
केती अनाकानी कै जैमानी अँगिरानी पै न अतर की पीर  
वहराए वहरानी है।—भिखारी ग्र०, भा० १ पृ०, १४६।

अनाकार—वि० [ सं० ] १ निराकार। आकाररहित। २ परमात्मा  
का एक विशेषण (को०)।

अनाकाल—सज्ञा पुं० [ सं० ] अकाल। दुर्मिष्ट [को०]।

अनाकालभूत सज्ञा पुं० [ सं० ] अकाल पडने पर दास कर्म करनेवाला  
व्यक्ति [को०]।

अनाक्रात—वि० [ सं० अनाक्रान्त [ स्त्री० अनाक्रान्तता ] जो अक्रात  
न हो। अपीडित। अरक्षित।

अनाक्रातता—सज्ञा पुं० [ सं० अनाक्रान्तता ] रक्षा। अपीडा। आक्रातता  
का अभाव।

अनाखर—वि० [ सं० अनखर ] जो छील छालकर दुरुस्त न किया  
गयो हो। वेडील। वेडगा।

अनागत<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ न आया हुआ। अनुपस्थित। अविद्यमान।  
अप्राप्त। २ आगे आनेवाला। आवी। होनहार। ३ अपरिचित।  
अज्ञात। बेजाना हुआ। ४ अकस्मात्। अचानक। सहमा।  
एकाएक। उ०—(क) सुने हैं श्याम मधुपुरी जात। सकुचनि  
कहि न सकति काहू सो गुप्त हृदय की वात। सकित वचन  
अनागत कोऊ कहि जो गई अघरात।—सूर० ( शब्द० )। ५  
अनादि। अजन्मा। उ०—नित्य अखंड अनूप अनागत अविगत  
अनघ अनत। जाको आदि कोऊ नाहि जात कोउ न पावत  
अत।—सूर० ( शब्द० )।

यो०—अनागत विधाता।

६ अपूर्व। अद्भुत। उ०—इत रुचि दृष्टि मनोज महासुख, उत  
सोमागुन अमित अनागत।—सूर०, १०।२१२३।

अनागत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० संगीत के अतर्गत ताल का एक भेद। उ०—  
सूर सति तान वधान अमित अति सप्त अतीत अनागत  
आवत।—सूर०, १०।६४८।

अनागतविधाता—सज्ञा पुं० [ सं० ] आनेवाली आपत्ति के लक्षण को  
जानकर उसके निवारण का पहले ही से उपाय करनेवाला  
व्यक्ति। अग्रसोचि या दूरदेश आदमी।

अनागतार्तवा—सज्ञा-स्त्री० [ सं० ] कुमारी। गोरी। बालिका। जो  
कन्या रजोर्धमणी न हुई हो। अजातरजस्का।

अनागम—सज्ञा पुं० [ सं० ] आगमन का अभाव। न आना। उ०—  
सोचै अनागम क्लान्त को मोचै उसासनि आसहू मोचै।—  
पद्माकर ग्र०, पृ० १२१।

अनागम—वि० [ सं० आगम ] पापरहित। निर्दोष। निर्मल। उ०—  
सुराभक्त वह मुक्त अनागम।—सद्गुजाल, पृ० १२।

अनाघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सगीत के अंतर्गत तालविशेष। वह विराम जो गायन में चार मात्राओं के बाद आता है और कभी कभी सम का काम देता है।

अनाचार<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कदाचार। भ्रष्टता। दुराचार। निन्दित आचरण। कुव्यवहार। २ कुरीति। कुचाल। कुप्रथा। अनाचार<sup>२</sup>—वि० १ जो विशिष्ट न हो। २ जो भद्र न हो। अमद्र। ३ विचित्र [को०]।

अनाचारिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुष्टता। दुराचारिता। निन्दित आचरण। २ कुरीति। कुचाल।

अनाचारी—वि० [सं० अनाचारिन्] [स्त्री० अनाचारिणी] आचारहीन। भ्रष्ट। पतित। कुचाली। दुराचारी। बुरे आचरणवाला।

अनाज—सञ्ज्ञा पुं० [म० अन्नाद्य, प्रा० अन्नञ्जु > अनाज] अन्न। धान्य। नाज। दाना। गल्ला।

अनाज्ञप्त—वि० [सं०] जिसकी आज्ञा न दी गई हो [को०]।

अनाज्ञप्तकारी—वि० [म० अनाज्ञप्तकारिन्] जिस कार्य की आज्ञा न हो उसे करनेवाला [को०]।

अनाज्ञाकारिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आज्ञा न मानना। आदेश पर न चलना।

अनाज्ञाकारी—वि० [सं० अनाज्ञाकारिन्] [अनाज्ञाकारिणी] जो आज्ञा न माने। जो आदेश पर न चले। वेकहा।

अनाज्ञात—वि० [सं०] १ अज्ञात। २। पूर्वज्ञात से बड़ा हुआ [को०]।

अनाडी—वि० पुं० [सं० अनार्य = अपठित, अशिक्षित प्रा० अनार्य अथवा सं० अज्ञानी प्रा० अण्णाणो] १ नासमझ। नादान। गँवार। अनजान। उ०—अनाडी के हाथ पड़ा मोती की सी कपूरमजरी की दशा है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३६८। २ जो निपुण न हो। अकुशल। अदक्ष। जैसे—यह किसी अनाडी कारीगर को मत देना (शब्द०)।

अनाढ्य—वि० [वि० स्त्री० अनाढ्या] असपन्न। द्रव्यहीन। दरिद्र। कगाल। गरीब।

अनातत—वि० [सं०] १ जो फैला हुआ न हो। २ जो खींचा या ताना हुआ न हो [को०]।

अनातप<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० धूप का अभाव। छाया।

अनातप<sup>२</sup>—वि० १ आतपरहित। जहाँ धूप न हो। २ ठंडा। शीतल।

अनातम<sup>३</sup>—वि० [सं० अनात्म] दे० 'अनात्म'। उ०—सुनि शिष्य यह मत साबहि को जु अनातम आतम मिल करै।—सुंदर० ग्रं०, भा० १। पृ० ५०।

अनातुर—वि० [सं०] [स्त्री० अनातुरा] १ जो आतुर या उत्कृष्ट न हो। २ उदासीन। ३ अक्लात। ४ अविचलित। धीर। ५ स्वस्थ। रोगरहित। निरोग।

अनात्म<sup>१</sup>—वि० [सं० अनात्मन्] आत्मारहित। जड़।

अनात्म—सञ्ज्ञा पुं० आत्मा को विरोधी पदार्थ। अचित। पचभूत।

अनात्मक—वि० [सं०] १ जो यथार्थ न हो २ क्षणिक। ३. बौद्ध मत से जगत् या ससार का विशेषण [को०]।

अनात्मकदुःख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अज्ञानजनित दुःख। सासारिक आधिव्याधि। भय। वाधा। २ जैन शास्त्रानुसार इस लोक और परलोक दोनों के दुःख।

अनात्मज्ञ—वि० [सं०] आत्मज्ञान से रहित। अज्ञ [को०]।

अनात्मधर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शारीरिक धर्म। देह का धर्म।

अनात्मनीन—वि० [सं०] १ जो अपना न हो। २ जो काम या लाभ के लिये न हो। ३ निरन्तरार्थ। स्वार्थरहित [को०]।

अनात्मप्रत्यवेक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार यह विचार कि आत्मा नहीं है [को०]।

अनात्मवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आत्मा की स्थिति को न माननेवाला सिद्धांत। जड़वाद। उ०—मैंने भी तीर्थंकरों के मुख से आत्मवाद-अनात्मवाद के व्याख्यान सुने हैं।—इंद्र०, पृ० १२५।

अनात्मवाद—वि० [सं०] अमयमी [को०]।

अनात्मवेदी—वि० [सं० अनात्मवेदिन्] जो आत्मविद् न हो। आत्मज्ञान से रहित [को०]।

अनात्मसंपन्न—वि० [सं० अनात्मसम्पन्न] मूर्ख। गुरुशून्य [को०]।

अनात्म्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] अशरीरी। अशारीरिक [को०]।

अनात्म्य<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ अपना या परिवारवालों के लिये स्नेहरहित व्यक्ति। २ शरीर सबधी गर्व या मद [को०]।

अनात्यक्तिक—वि० [सं०] जो नित्य न हो। २ जो अतिम न हो। ३ पुन आवर्तनशील [को०]।

अनाथ—वि० [सं०] [स्त्री० अनाया] १ नाथहीन। प्रभुहीन। विना मालिक का। उ०—नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मो सो।—तुलसी, ग्रं० पृ० ५००। २ जिसका कोई पालन पोषण करनेवाला न हो। विना माँ बाप का। लावारिस। जैसे—अनाथ बालकों की रक्षा के लिये उन्होंने दान दिया (शब्द)। ३ असहाय। अशरण। जिसे कोई सहारा न हो। ४ दीन। दुखी। मुह्तान।

यौ०—अनाथानय।

अनाथसभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निर्धनगृह [को०]।

अनाथानुसारी—वि० [सं० अनाथानुसारिन्] [स्त्री० अनाथानुसारिणी] सहायतार्थ अनाथों का अनुसरण या पीछा करनेवाला। दीनपालक। गरीब को पालनेवाला। उ०—अनाथ सुन्यो मैं अनाथानुसारी। वसं चित्त दडी जटी मूढधारी।—केशव (शब्द०)।

अनाथालय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ दीन दुःखियों और असहायों का पालन हो। मुहताजखाना। लगरखाना। २ लावारिस वक्चों की रक्षा का स्थान। यतीमखाना। अनाथाश्रम। अनाथाश्रम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अनाथ + आश्रम] वह स्थान जहाँ अनाथ रखे जायें।

अनाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ध्वनियों में नाद अक्ष का अभाव। २ वे अधोप ध्वनियाँ जिनमें नादाक्ष नहीं पाया जाता [को०]।

अनाददान—वि० [सं०] न लेनेवाला [को०]।

अनादर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आदर का अभाव। निरादर। अवज्ञा। २ तिरस्कार। अपमान। अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। ३. एक काव्यालंकार।

विशेष—इसमें प्राप्त वस्तु के तुल्य दूसरी अप्राप्त वस्तु की इच्छा के द्वारा प्राप्त वस्तु का अनादर सूचित किया जाय। जैसे—सर

के तट लखि कामिनी अलि पंकजहि विहाय । ताके अघरन दिमि चल्थो, रममय गूँज सुनाय (शब्द०) ।

अनादरणा—सज्ञा पु० [स०] अपमानपूर्ण व्यवहार [को०] ।

अनादरणीय—वि० [म०] [वि० स्त्री० अनादरणीया] १ आदर के अयोग्य । अपमाननीय । २ तिरस्कार योग्य । निन्द्य । बुरा ।

अनादरित—वि० [म०] वह जिसका अपमान हुआ हो । अपमानित ।

अनादरी—वि० [म० अनादरिन्] जो आदर युक्त न हो [को०] ।

अनादि—वि० [म०] जिसका आदि न हो । जो सब दिन से हो ।

जिसके आरम्भ का कोई काल या स्थान न हो । स्थान और काल में अव्यक्त ।

विशेष—शास्त्रकारों ने 'ईश्वर' जीव और प्रकृति इन तीन वस्तुओं को अनादि माना है ।

अनादित्व—सज्ञा पु० [म०] अनादि होने का भाव । नित्यता ।

अनादिनिधन—वि० [म०] जिसका आदि और अंत न हो [को०] ।

अनादिमान्—वि० [म० अनादिमन्] जिसका आदि न हो [को०] ।

अनादिमध्यात—वि० [म० अनादिमध्यान्त] जिसका आदि, मध्य और अंत न हो [को०] ।

अनादिष्ट—वि० [म०] बिना आदेश का ।

अनादृत—वि० पु० [म०] जिसका अनादर हुआ हो । अपमानित ।

अनादेय—वि० [स०] जो आदेय या ग्राह्य न हो [को०] ।

अनादेश—सज्ञा पु० [म०] आदेश का अभाव । आदेश न होना [को०] ।

अनादेशकर—वि० [स०] जिसकी अनुमति या आदेश न हो वह करने-वाला [को०] ।

अनाद्यत<sup>१</sup>—वि० [स० अनाद्यन्त] जिसका आदि तथा अंत न हो । उ०—

अमरों के उम अनाद्यत आनन्दलोक में ।—युगपथ, पृ० ११५ ।

अनाद्यत<sup>२</sup>—सज्ञा पु० शिव [को०] ।

अनाद्य<sup>३</sup>—वि० [स० अनादि] १ 'अनादि' [को०] ।

अनाद्य<sup>४</sup>—वि० [म० अन् + √ अद् > आद्य] जो खाने योग्य न हो । अखाद्य [को०] ।

अनाद्यन्त<sup>१</sup>—वि० [स० अनाद्यन्त] जिसका आदि और अंत न हो [को०] ।

अनाद्यन्त<sup>२</sup>—सज्ञा पु० [म०] शिव [को०] ।

अनाधार—वि० पु० [म०] आधाररहित । निरवलंब । बेमहारा ।

अनाधि—वि० [स०] चिन्ता से रहित [को०] ।

अनावृष्ट—वि० [म०] १ जो जीतने योग्य न हो । अजेय । २ जो नियंत्रित या अधीन न हो । अनियंत्रित । ३ अक्षुण्ण [को०] ।

अनावृष्ट्य—वि० [म०] १ 'अनावृष्ट' [को०] ।

अनाना—क्रि० सं० [म० आनयन्] १ लाना । बुलाना । उ०—(क) जो कबहूँ हठि नीद अनैये, सविरे पिय सपने में पैये ।—नद० ग्र०, पृ० १७१ । (ख) केनि रमम मे मियुन को सुखनीद अनारुँ ।—घनानन्द, पृ० ३१४ । २ मँगाना । उ०—लक दीप के सिला अनारुँ । बाँधा सरवर घाट बनाई ।—जायसी ग्र०, पृ० १२१ ।

अनानुपूर्व्य—सज्ञा पु० [म०] १ अनुक्रम में न आना । अनुक्रम का अभाव । किन्ती समस्त पद के विभिन्न अवयवों को विग्रहपूर्वक मलग करना [को०] ।

अनापद—सज्ञा स्त्री० [म०] विपत्ति या विपद का अभाव [को०] ।

अनापशनाप—सज्ञा पु० [देश०] १ उटपटांग । अटसट । आयेवाये । अडवड । २ अनवद्ध प्रलाप । निरर्थक वक्ताव ।

अनापा(तु)—वि० [म० अ=नहीं + हि० √ आप] १ बिना नापा हुआ । २ अमीम । अतुल ।

अनापि<sup>१</sup>—वि० [म०] बिना मित्र का [को०] ।

अभापि<sup>२</sup>—सज्ञा पु० डद्र [को०] ।

अनाप्त—वि० [स०] १ अप्राप्त । अलब्ध । २ अतिश्वस्त । ३ असत्य ।

४ अकुशल । ५ अनिपुण । अनाडी । ६ अनात्मिय । अवधु ।

अनाप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] आप्ति अर्थात् प्राप्ति न होना [को०] ।

अनाप्त्य—वि० [म०] अप्राप्य [को०] ।

अनाप्नुत—वि० [स०] जो स्नात वा धुला न हो [को०] ।

अनाप्नुताग—वि० [स० अनाप्नुताङ्ग] जिसका शरीर स्नानसे शुद्ध न हो [को०] ।

अनावाध—वि० [स०] बाधा या विघ्न से मुक्त [को०] ।

अनाविद्ध—वि० [स० अनाविद्ध] १ अन्विधा । अनछेदा । बिना छेद का । २ चोट न खाया हुआ ।

अनाभ्युदयिक—वि० [स०] दुर्भाग्यपूर्ण । जो मगलमय न हो [को०] ।

अनाम—वि० [म० अनामन्] [वि० स्त्री० अनामा] १ बिना नाम का ।

उ०—आदि अनाम ब्रह्म है च्यारा ।—कबीर सा०, पृ० ८१२ ।

अप्रसिद्ध । २ अप्रख्यात ।

अनामय—वि० [स०] निरामय । रोगरहित । नीरोग । चगा ।

स्वस्थ । तदुस्त । २ दोपरहित । निर्दोष । बेऐव । उ०—

जय भगवत अनत अनामय ।—मानस ७।३८ ।

अनामय<sup>२</sup>—सज्ञा पु० नीरोगता । तदुस्ती । २ कुशल क्षेम । उ०—

गुरु जी ने आपका अनामय पूछकर यह कहा है ।—गकुत ना, पृ० ८६ ।

अनामा<sup>१</sup>—वि० स्त्री० [म०] १ बिना नाम की । २ अप्रसिद्ध ।

अनामा<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की उँगली । अनामिका ।

अनामिका<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [म०] कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की

उँगली । सबसे छोटी उँगली की बगल की उँगली । अनामा ।

अनामिका<sup>२</sup>—वि० स्त्री० [म०] बिना नाम की । अप्रसिद्ध । उ०—जो

प्रिया, प्रिया वह रही सदा ही अनामिका ।—अनामिका,

पृ० २१ ।

अनामिल—वि० [स० अनाविल] स्वच्छ । निर्मल उ०—श्रीम के धोए अनामिल पुष्प उगो खिन किरण चूमे ।—गीतिका, पृ० ६४ ।

अनामिष—वि० [स०] निरामिष । मासरहित ।

अनामी<sup>१</sup>—वि० [स० अनाम + हि० ई (प्रत्य०)] अनाम मन्त्री ।

उ०—शुद्ध ब्रह्म पद तहें ठहराई, तो नाम अनामी धारा है ।—कबीर सा०, पृ० ६० ।

अनामी<sup>२</sup>—सज्ञा पु० परमात्मा । परब्रह्म । उ०—परे ताके रहत

अनामी, स्वामी निरताई के ।—घट०, पृ० ३७४ ।

अनामृत—वि० [स०] जो मृत्युवश न हो [को०] ।

अनामल—सज्ञा पु० [हि०] १० 'एनामेल' ।



अनायक—वि० [म०] १ नायकरहित । २ जो व्यवस्थित न हो [को०] ।

अनायत—सज्ञा वि० [स०] १. जो नियंत्रित न हो । २ अनिवारित । ३ अनाश्रित । बेसहारा । ४ जो विच्छिन्न न हो । अविच्छिन्न । ५ सङ्ग । ६ विना लवाई का [को०] ।

अनायतन<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [स०] वह स्थान जो विश्रामस्थान या वेदी न हो [को०] ।

अनायतन<sup>२</sup>—वि० विश्रामस्थान या वेदी से रहित [को०] ।

अनायत्त—वि० [म०] [स्त्री० अनायत्ता] १ अनधीन । अवशीभूत । २ स्वतंत्र । खुद मुख्तार ।

अनायास—क्रि० वि० [न०] १. विना प्रयास । विना परिश्रम । विना उद्योग । बैठे बिठाए । उ०—जोई तनु धरी तजौ पुनि अनायास हरि जान ।—मानस ७।१०६ । २ अकस्मात् । अचानक । सहसा । एकाएक । उ०—भरत विवेक बराह विसाला । अनायास उधरी तेहि काला ।—मानस, २।२६६ ।

अनायुष्य—वि० [म०] आयुष्य या दीर्घजीवन के लिये हानिकर [को०] ।

अनारभ—वि० [स० अन् + आरम्भ] आरम्भरहित । उ०—अनारभ अनिकेत अमानी ।—मानस, ७।४६ ।

अनार<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [फा०] १ एक पेड़ और उसके फल का नाम । दाडिम ।

विशेष—यह पेड़ १५-२० फुट ऊँचा और कुछ छतनार होता है । इसकी पतली पतली टहनियों में कुछ कुछ काँटे रहते हैं । इसके फूल लाल होते हैं । फल के ऊपर के कड़े छिलके को तोड़ने से रस से भरे लाल सफ़ेद दाने निकलते हैं जो खाए जाते हैं । फल खट्टा मीठा दो प्रकार का होता है । गर्मी के दिनों में पीने के लिये इसका शरबत भी बनाते हैं । फूल रंग बनाने और दवा के काम में आता है । फल का छिलका अतिसार, सप्रहणी आदि रोगों में दिया जाता है । पेड़ की छाल में चमड़ा सिंभाते हैं । पश्चिम हिमालय और मुलेमान की पहाड़ियों पर यह वृक्ष आप से आप उगता है । इसका कलम भी लगता है । प्रति वर्ष खाद देने से फल भी अच्छे आते हैं । काबुल और कंधार के अनार प्रसिद्ध हैं ।

२ एक आतशवाजी ।

विशेष—अनार फल के समान मिट्टी का एक गोल पात्र जिसमें लोहचून और वाखद भरा रहता है और जिसके मुँह पर आग लगाने से चिनगारियों का एक पेड़ सा बन जाता है ।

यौ०—अनारदाना ।

विशेष—दाँतो की उपमा कवि लोग अनार से देते आए हैं ।

३ वह रस्सी जिसमें दो छप्पर एक साथ मिलाकर बाँधे जाते हैं ।

अनार<sup>७</sup>—सज्ञा पु० [स० अन्याय] अनीति । अन्याय ।

अनारकिस्ट—सज्ञा पु० [अ० एनाकिस्ट] वह जो राज्य में विद्रोह को उत्तेजन दे या अशांति उत्पन्न करे । वह जो राज्य या राज्य व्यवस्था अथवा सामाजिक व्यवस्था को उलट देना चाहता हो । भराजक । विप्लवपथी ।

अनारज<sup>७</sup>—वि० [हि०] १० 'अनार्य' । उ०—भावं देह छूटी देश आरज अनारज मैं भावं देह छूटि जाहु अन मैं नगर मैं ।—सूदर १०, भा० २, पृ० ६४२ ।

अनारत<sup>१</sup>—वि० [म०] १ निरत । प्रनत । २ नित्य । म्यायी [को०] ।

अनारत<sup>२</sup>—सज्ञा पु० अविच्छिन्नता । निरतरता [को०] ।

अनारदाना—सज्ञा पु० [फा० अनारदानह] १ खट्टे अनार का मुख्या हुआ दाना । २ गामदाना ।

अनारपन<sup>७</sup>—सज्ञा पु० [हि० अनारी + पन (प्रत्यय)] गैरपन । नासमभी । अनाडीपन । उ०—तो कय भी मिथ देय जूँन नारगी बान । नवन कुरहि दवि जान हो यह अनारपन लान ।—म० मस्तक, पृ० २३० ।

अनारभ्य—वि० [म०] जो आरम्भ करने योग्य न हो [को०] ।

अनारी<sup>७</sup>—वि० [हि०] १० 'अनारी' । उ०—म्यागी म्यारी दिति चारी चपता चमतकारी, यरन अनारी ये कटारी तग्वारी है ।—मिथ्यागी० ग्र०, भा० २, पृ० १०२ ।

अनारी<sup>७</sup>—वि० [हि० अनार + ई (प्र०)] अनार के रंग का । लाल ।

अनारी<sup>३</sup>—सज्ञा पु० १ लाल रंग की प्रांखवाला कटूना । २ एक प्रकार का पकवान । भीतर मीठा या नमकीन पूर से भरा एक प्रकार का समोसा ।

अनारोग्य—वि० [म०] १ जो स्वस्थ न हो । २ म्याम्य के लिये हानिकर [को०] ।

अनारोग्यकर—वि० [म०] जो स्वास्थ्यकर न हो [को०] ।

अनार्की—सज्ञा स्त्री० [अ० एनार्की] १ राज्य या राजा न रहने की अवस्था । शासन या राज्यव्यवस्था का अभाव । राजनीतिक उथल पुथल । अराजकता । विप्लव । २ एक मतवाद जिसमें अनुसार समाज तभी पूर्णता को प्राप्त होगा जब राज्य या शासनव्यवस्था न रहेगी और पूर्ण व्यक्तिस्वातन्त्र्य हो जायगा । अराजकवाद ।

अनार्जव—सज्ञा पु० [म०] १ मिथ्याई का अभाव । ढेढ़ापन । २ सरलता का अभाव । अक्रजुता । कुटिलता । कपट ।

अनार्तव<sup>१</sup>—वि० [म०] विना ऋतु का । बेमौसम । अनवनर ।

अनार्तव<sup>२</sup>—सज्ञा पु० स्त्रियों के ऋतुधर्म का अवरोध । रजोधर्म की रुकावट ।

अनार्तवा—वि० स्त्री० [म०] जो ऋतुमती न हो ।

अनार्य—वि० [म०] १ आर्य जाति से रहित । २ अश्रेष्ठ [को०] ।

अनार्य—सज्ञा पु० [स्त्री० अनार्या] १ वह जो आर्य न हो । २ म्लेच्छ ।

अनार्यक—सज्ञा पु० [म०] अगुरु की लकड़ी [को०] ।

अनार्यकमी—वि० [सं० अनार्यकमिन्] आर्षोचित कर्म न करने वाला [को०] ।

धनार्यज<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [सं०] अगुरु का पेड़ [को०] ।

अनार्यज<sup>२</sup>—वि० [वि० स्त्री० अनार्यजा] १ जो आर्य से उत्पन्न न हो । २ अनार्य देश में उत्पन्न [को०] ।

अनार्यजुष्ट—वि० [मं०] जो अनार्य द्वारा आवरित या व्यवहृत हो [को०] ।

अनार्यता—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ आर्य धर्म का अभाव । २ अश्रेष्ठता । ३. लघुता । नीचता । ४ म्लेच्छता ।

अनार्यतित्त—सज्ञा पु० [सं०] चिरायता [को०] ।

अनार्थत्व—नञ्ज्ञा पुं० [मं०] 'अनार्थता' ।

अनार्प—वि० [मं०] जो ऋषिप्रणीत न हो । जो ऋषिकान का बना हुआ न हो ।

अनार्पय—वि० [मं०] जो आर्प या वैदिक न हो [को०] ।

अनालव<sup>३</sup>—[मं० अनालम्ब] अवलम्बहीन [को०] ।

अनालव<sup>३</sup>—नञ्ज्ञा पुं० अवलम्ब का अभाव [को०] ।

अनालवन—वि० [मं० अनालम्बन] १ निर्वन्त २ निराश [को०] ।

अनालव्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० अनालम्बिन] जिव का एक वाद्य [को०] ।

अनालमुका—नञ्ज्ञा स्त्री० [मं० अनालम्बुका] 'अनालमुका' [को०] ।

अनालभुका—नञ्ज्ञा स्त्री० [मं० अनालम्बुका] रजस्वला स्त्री० [को०] ।

अनालस्य—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] आलस्य का अभाव ।

अनालाप<sup>३</sup>—वि० [मं०] १ मितभाषी । कम बोलनेवाला [को०] ।

अनालाप<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ मितभाषण । २ अलाप या वातचीत का अभाव [को०] ।

अनालोचित—वि० [मं०] १ न देखा हुआ । २ जो विचारित या विवेचित न हो । ३ जिसकी आलोचना न की गई हो [को०] ।

अनालोच्य—वि० [मं०] जो आलोचना के योग्य न हो [को०] ।

अनावरण—नञ्ज्ञा पुं० [मं०] प्रावरण का अभाव ।

अनावर्ती—नञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ न लौटना । २ पुनर्जन्म का अभाव । ३ मोक्ष [को०] ।

अनावर्पण—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] अनावृष्टि । अवर्षा । मेघ के जल का अभाव । सूखा ।

अनावश्यक—वि० [मं०] जिसकी आवश्यकता न हो । अप्रयोजनीय । गैरजरूरी ।

अनावश्यकता—नञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] आवश्यकता का न होना । अप्रयोजनीय । गैरजरूरत ।

अनाविद्ध—वि० [मं०] १ जो विद्वया विद्या न हो [को०] ।

अनाविल—वि० [मं०] १ स्वच्छ । निर्मल । साफ । २ स्वास्थ्यकर (देश) । ३ निष्पक्व । पक्करहित । [को०] ।

अनावृत—वि० [मं०] [स्त्री० अनावृत्] १ जो ढँका न हो । आवरण रहित । खुला । २ जो घिरा न हो ।

अनावृत्त—वि० [मं०] १ न लौटा हुआ । २ पीछे न हटा हुआ । ३ जिसकी आवृत्ति न की गई हो । ४ न चुना हुआ [को०] ।

अनावृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] शरीर धारण न करना । मोक्ष [को०] ।

अनावृष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] वर्षा का अभाव । अनावर्षण । अवर्षा । सूखा । उ०—मव जादो मिनि हरि मों यह कह्यो मुफक्क मुत जहँ होई । अनावृष्टि अतिवृष्टि होति नही यह जानत सब कोई ।—सूर०, १०।४१६१ ।

अनावेदित—वि० [मं०] जो ज्ञापित न हो । जिसकी विज्ञप्ति न की गई हो [को०] ।

अनाश—वि० [मं०] १ निराश । २ जिसका नाश न हो । ३ जो नष्ट न किया गया हो । ४ जीवित [को०] ।

अनाशक<sup>३</sup>—वि० [सं०] १ अनश्वर । २ नशा या हानि न करनेवाला । २ उपवास करनेवाला । २ भोजन का त्याग करनेवाला (आमरण भी) [को०] ।

अनाशक<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० उपवास [को०] ।

अनाशकायन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उपवास का व्रत [को०] ।

अनाशस्त—वि० [मं०] जो प्रशसित न हो [को०] ।

अनाशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आशा का अभाव । निराश [को०] ।

अनाशी—वि० [सं० अनाशिन] १ जो नष्ट न हो । २ न खानेवाला [को०] ।

अनाशु—वि० [मं०] मद । मुस्त । जो तेज न हो । २ अनश्वर [को०] ।

अनाश्य—वि० [सं०] अनश्वर [को०] ।

अनाश्रमी—वि० [सं० अनाश्रमिन्] १ आश्रमभ्रष्ट । आश्रम धर्म से च्युत । गार्हस्थ्य आदि चारों आश्रमों से रहित । २ पणित । भ्रष्ट ।

अनाश्रय—वि० [सं०] निराश्रय । बेसहारा । निरवलम्ब । अनाश्रय । दीन ।

अनाश्रित—वि० [सं०] १ आश्रयरहित । निरवलम्ब । बेसहारा । उ०—नमालेगा हमें अब कौन ? यो अनाश्रित रह सका कब कौन ।—साकेत, पृ० १७७ । २ जो अधिकार रहते भी ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों को ग्रहण न करे ।

अनास—वि० [सं०] बिना नाक का । चपटी नाकवाला ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३५ ।

अनासक्त—वि० [मं०] जो किसी विषय में आसक्त न हो । उ०—त्यागी भी हैं शरण जिनके, जो अनामक्त गेह, राजा योगी जय जनक वे पुण्यदेही, विदेह ।—साकेत, पृ० २५० ।

अनासक्ति—नञ्ज्ञा पुं० [सं०] मोहराहित्य । आसक्ति या अनुरक्ति का अभाव । उ०—मैं कोमल वर्ण की मोहिनी शक्ति में निरिप्त हूँ, और अनासक्ति का पद प्राप्त कर चुका हूँ ।—मान०, भा० १, पृ० २८१ ।

अनासती<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] कुसमय । कुशवसर (दि०) ।

अनासादित—वि० [सं०] १ अप्राप्त । २ जो आक्रान्त न हो । ३ जो घटित न हो । ४ अस्तित्वरहित [को०] ।

अनासादितविग्रह—वि० [सं०] जिसे विग्रह या युद्ध का अनुभव न हो [को०] ।

अनासाद्य—वि० [सं०] अप्राप्य [को०] ।

अनासिक—वि० [सं०] बिना नाक का । नकटा ।

अनास्थ—वि० [सं०] १ आस्थारहित । २ उदामीन [को०] ।

अनास्था—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अश्रद्धा । आरथा का अभाव । २ अनादर । अप्रतिष्ठा । ३ अवज्ञा । ४ उदासीनता ।

अनास्त्राव—वि० [सं०] बिना वेश का । क्लेशरहित [को०] ।

अनास्वाद<sup>३</sup>—वि० [मं०] स्वादहीन । विरस [को०] ।

अनास्वाद<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० स्वाद का अभाव । विरसता । नीरसता । [को०]

अनास्वादित—वि० [सं०] जिसका स्वाद न लिया गया हो [को०] ।

अनास्वाद्य—वि० [मं०] जो स्वाद या आस्वाद के योग्य न हो [को०] ।

अनाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष । अक्रा । पेट फूटना ।

अनाहक<sup>३</sup>—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नाहक' । उ०—चद्रमुखी मुनि मद महातम राहु भयो यह आनि अनाहक ।—मानन्द, पृ० १०५ ।

अनाहक<sup>७</sup>—क्रि० वि० [हि०] ३० 'अनाहक' । उ०—अनाहक चंदेल नृप, क्यो मडित महि रार ।—पृ० २१०, पृ० ४० ।

अनाहत<sup>१</sup>—वि० [म०] १ जिमपर आघात न हुआ हो । अक्षुब्ध । २ अग्रणीत । जिसका गुणन न किया गया हो ।

अनाहत<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ शब्दयोग में वह शब्द या नाद जो दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों कानों की लवें बंद करके ध्यान करने से सुनाई देता है । २ हठयोग के अनुसार शरीर के भीतर के छह चक्रों में से एक । इसका स्थान हृदय, रंग लाल पीला मिश्रित और देवता रुद्र माने गए हैं । इसके दलों की मध्या १२ और अक्षर 'क' से 'ठ' तक हैं । ३ नया वस्त्र । ४ द्वितीय बार किसी वस्तु को उपनिधि या धरोहर में देना । दोबारा किसी चीज का अमानन में दिया जाना ।

अनाहतनाद—सज्ञा पु० [म०] २० 'अनाहत' । उ०—गूँजा तुम्हारा अनाहत नाद जो वहाँ, मुनता है दाम यह मनिपूर्वक नत-मस्तक ।—अनामिका, पृ० १०० ।

अनाहदवाणी—सज्ञा स्त्री० [म० अनाहत + वाणी] आकाशवाणी । देववाणी ।

अनाहत शब्द—सज्ञा पु० [म०] १ एक भीतरी शब्द जिसे योगी मुनते हैं । २ ओ३म की ध्वनि [को०] ।

अनाहार<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [म०] भोजन का अभाव या त्याग ।

अनाहार<sup>२</sup>—वि० १ निराहार । जिम्मे कुछ न खाया हो । जैसे—प्राज हम अनाहार रह गए (जवद०) । २ जिन्में कुछ खाया न जाय । जैसे, अनाहार व्रत ।

अनाहारमार्गणा—सज्ञा स्त्री० [म०] जैनशास्त्रानुसार एक व्रत ।

अनाहारी—वि० [म० अनाहारिन्] १ आहार न लेनेवाला । २ उपवास या अनशन करनेवाला [को०] ।

अनाहार्य—वि० [म०] १ जो लेने या ग्रहण करने योग्य न हो । २ जो खाने योग्य न हो [को०] ।

अनाहिताग्नि—वि० [म०] जिम्मे विप्रपूर्वक अन्याधान न किया हो । जो अग्निहोत्री न हो । निरग्नि ।

अनाहुति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ यज्ञ का अभाव । २ अवहित यज्ञ [को०] ।

अनाहूत—वि० [म०] विना बुलाया हुआ । अनामयित । अनिमयित उ०—धिक । आए तुम यो अनाहूत ।—प्रपरा, पृ० २०२ ।

अनाह्लाद<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [म०] आह्लाद या आनंद का अभाव [को०] ।

अनाह्लाद<sup>२</sup>—वि० आह्लादरहित । मजीदा [को०] ।

अनाह्लादित—वि० [म०] जो हर्षित या आनंदित न हो [को०] ।

अनिगित—वि० [म० अन् + इङ्गित = हिलाना, काँपना ] १ अकपित । निश्चल । उ०—काँप रही है ज्योति, अब तो तुम इसे कर दो अनिगित, तब निवासस्थान में अब लौ लगे इसकी अशक्ति ।—कवामि, पृ० २ । २ अनिदिष्ट । इगित न किया हुआ । जिसकी ओर इशारा न हो [को०] ।

अनिद<sup>७</sup>—वि० [हि०] ३० 'अनिद' । उ०—बैठी फिर पूतनी अनू-तरी फिरंग कौसी पीठी दै प्रशीनी दृग दृगनि मिलै अनिद ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०१ ।

अनिदित—वि० पु० [म० अनिन्दित] [स्त्री० अनिन्दिता] १ अमनसि बदनामी में बचा हुआ । २ निर्दोष । उन्मत्त ।

अनिदनीय—वि० पु० [म० अनिन्दनीय] [स्त्री० अनिन्दनीया] ना निंदा के योग्य न हो । निर्दोष । निष्कल ।

अनिद्य—वि० पु० [म० अनिन्द्य] [स्त्री० अनिन्दिता] १ जो निंदा के योग्य न हो । निर्दोष । २ उन्मत्त । प्रशमनीय । अन्ध ।

अनिद्र—वि० [स० अनिन्द्र] उदर की भूखा या उतापना न करनेवाला [को०] ।

अनि<sup>७</sup>—वि० [हि०] ३० 'अन्य' । उ०—ई प्रव्य तट्यो माता मिधाय । इह शहर छडि अनि नहर जाय ।—पृ० २१०, १३३६ ।

अनि अनी<sup>७</sup>—वि० [स० अन्य + अन्य] अन्यान्य । और और । उ०—अनि अनी मुष्ट बँटे मु आर ।—पृ० २१०, ६१३५ ।

अनिआई<sup>७</sup>—वि० [हि०] ३० 'अन्यायो' ।

अनिक<sup>७</sup>—वि० [म० अनेक, प्रा० अणिक] ३० 'अनेक' । अन्वय । उ०—निर्मल बूँद अकाश की लीनी 'तूमि मिताए' अनिक सियाने पच गए ना निगारी जाय ।—करीर न०, पृ० २१५ ।

अनिकेत—वि० [म०] १ स्वानरहित । विना घर का । उ०—अनारम अनिकेत अमानी ।—मानन, ७४६ । २ मन्त्रामी । परिव्राजक । ३ खानाबदोश । ४ मन्त्रिपर अनियत स्वामी में गुजारा करनेवाला ।

अनिकेतन—वि० [म० अ + निकेतन] ३० 'अनिकेत' । उ०—गृही लोग हम अनिकेतन की क्या जानें मुग पीर ।—आयक, पृ० ७२ ।

अनिक्षिप्तधूर—सज्ञा पु० [म०] १ एक योधिमतत्व का नाम । २ निरुता हुआ बौद्ध भिक्षु [को०] ।

अनिक्षिप्त सैन्य—सज्ञा पु० [म०] तोडी या नेत्रा ने अन्त की हुई मेना । अपमृत सैन्य ।

अनिक्षु—सज्ञा पु० [स०] जो ईख न हो । ईख जैसी लची घास या नर-कुल [को०] ।

अनिगीर्ण—वि० [म०] १ जो निगना न गया हो । २ जो छिपा न हो । प्रकट । व्यक्त [को०] ।

अनिग्रह<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [म०] १ अनवरोध । बधन का अभाव । २ दड या पीडा का न होना । ३ बाद या तक में हार का अस्वीकरण [को०] ।

अनिग्रह<sup>२</sup>—वि० १ बधनरहित । बेरोक । २ अनीम । बेहद । ३ पीडारहित । नीरोग । ४ जिम्मे दड न पाया हो । अदण्ड । ५ जो दड के योग्य न हो । अदण्ड ।

अनिच्छ—वि० [म०] आकांक्षारहित । अनिच्छु [को०] ।

अनिच्छक—वि० [म०] ३० 'अनिच्छक' [को०] ।

अनिच्छा—सज्ञा स्त्री० [म०] वि० अनिच्छित, अनिच्छु १ इच्छा का अभाव । चाह का न होना । अरुचि । २ आपत्ति ।

अनिच्छित—वि० [स०] जिसकी इच्छा न हो । अनिप्पिन । अनचाहा उ०—प्रमिलपिन वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिने अनिच्छित दु खद खेद ।—कामायनी, पृ० १६४ । २ अरुचिकर ।

अनिच्छु—वि० [स०] ३० 'अनिच्छुक' [को०] ।

अनिच्छुक—वि० [म०] इच्छा न रखनेवाला। जिसे चाह न हो।  
अनमिलापो। निराकाक्षी।

अनिजक—वि० [म०] जो अपना न हो। पराया। दूसरे का [को०]।

अनित<sup>१</sup>—वि० [हि०] १ 'अनित्य'। उ०—दारा सुत विरत  
अहे सबहि अनित तामो। पोद्दार० अमि० ग्र०, पृ० ४६३।

२ अनत। जिसका अन न हो। उ०—महिमा अनित साधु

गुरु ममुझ मन मुजान।—कवीर मा०, भा० ४, पृ० ४२०।

अनित<sup>२</sup>—वि० [म०] बिना किसी के साथ। अकेला। वचित [को०]।

अनितभा<sup>१</sup>—वि० [स०] कातिहीन। तेजहीन [को०]।

अनितभा<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [म०] एक नदी का नाम [को०]।

अनित्र<sup>१</sup>—वि० [हि०] ३० 'अन्यत्र'। उ०—काहे कौं अमत है तू  
बावरे अनित्र जाइ।—मुद्गर० ग्र०, भा० २, पृ० ६६४।

अनित्य—वि० [म०] [स्त्री० अनित्या] [सज्ञा अनित्यत्व, अनित्यता]  
१ जो सब दिन न रहे। अध्रुव। अस्थायी। चंदरोजा।

क्षणभंगुर। २ नश्वर। नाशवान्। ३ जो स्वयं कार्यरूप हो

और जिसका कोई कारण हो, अत जो एक सा न रहे।

जैसे, 'समार अनित्य है' (शब्द०)। ४ अमत्य। झठा। ५

अनिश्चित। सदेहाम्पद [को०]। ६ व्याकरण में एक नियम

जो परीक्षण, प्रयोग के योग्य या अनिवार्य नहीं होता।

वैकल्पित [को०]।

अनित्यकर्म—सज्ञा पुं० [म०] यदा कदा समय समय पर किया जाने-  
वाला कार्य, जैसे—विशेष उद्देश्य से किए जानेवाले यज्ञ  
आदि [को०]।

अनित्यक्रिया—सज्ञा स्त्री० [म०] ३० 'अनित्यकर्म' [को०]।

अनित्यता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ अनित्य अवस्था। नापायदारी।  
अस्थिरता। अध्रुवता। २ क्षणभंगुरता। नश्वरता।

अनित्यत्व—सज्ञा पुं० [स०] ६० 'अनित्यता'।

अनित्यदत्त—सज्ञा पुं० [म०] गोद लेने के पहले माता पिता के द्वारा  
दूसरे को कुछ काल के लिये दिया हुआ पुत्र। वह लड़का जो  
गाद लिए जाने के पहले कुछ काल के लिये अपने माता पिता  
द्वारा गोद लेनेवालों को दिया जाय [को०]।

अनित्यदत्तक—सज्ञा पुं० [स०] १० 'अनित्यदत्त' [को०]।

अनित्यदत्तम—सज्ञा पुं० [म०] १० 'अनित्यदत्त' [को०]।

अनित्यभाव—सज्ञा पुं० [म०] परिवर्तनशीलता। क्षणभंगुरता।

अनित्यसम—सज्ञा पुं० [म०] न्याय में जाति या अमत् उत्तर के २४  
भेदों में से एक।

विशेष—यदि कोई कहे कि घट का मादृश्य शब्द में है, इसमें घट  
की भांति शब्द भी अनित्य हो गया, तो इसपर यह कहना कि  
किसी न किसी बात में घट का 'मादृश्य' सभी वस्तुओं में होगा,  
तो क्या फिर सभी वस्तुएँ अनित्य होंगी? इसी प्रकार का  
उत्तर अनित्यसम कहलाता है।

अनिद—वि० [म०] जो देखा न जा सके [को०]।

अनिदान—वि० [म०] जिसका कारण ज्ञान न हो। कारण-  
रहित [को०]।

२६

अनिद्र<sup>१</sup>—वि० [म०] निद्रारहित। बिना नींद का। जिसे नींद न  
आए। २ जागरूक। जागा हुआ।

अनिद्र<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ नींद न आने का रोग। प्रजागर। २. निद्रा-रहित।  
जाग्रत। जागा हुआ [को०]। ३ जागरूक। तत्पर [को०]।

अनिद्रा—सज्ञा पुं० [म०] १ जागरूकता। तत्परता। २ दे०  
'अनिद्र' [को०]।

अनिद्रित—वि० [स०] जो सोया हुआ न हो। जागा हुआ [को०]।

अनिद्रष्ट—वि० [म०] जो रोका न जा सके। प्रतिघरहित। अवाध।  
अपराभूत [को०]।

अनिद्र<sup>३</sup>—वि० [हि०] ३० 'अनन्य'। उ०—(क) अनिन कथा तनि  
आचरी हिरदै विमुचन राइ।—कवीर ग्र०, पृ० २६। (ख)  
सतो अनिन सगति यह नाही।—दे० बानी०, पृ० १४।

अनिन्नता<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि० अनिन्न + ता (प्रत्यय)] ३० अन-  
न्यता'। उ०—सेवहि इक्क अनिन्नता, कन मुक्त कब दानि।—  
पृ० २०, पृ० ६३।

अनिप<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म० अनिक] [हि० अनि = सेना + प = स्वामी]  
मेनापति। मेनाध्यक्ष। फौजी अफसर। उ०—मनो मधुमाधव  
दोड अनिप धीर। बर विपुल विटप वानैं वीर।—तुलसी  
ग्र० पृ० ३४६।

अनिपात—सज्ञा पुं० [स०] पतन का न होना। अपतन। जीवन। का  
लगातार बने रहना [को०]।

अनिपुण—वि० [स०] अकुशल। अपट। जो प्रवीण न हो।

अनिवद्ध—वि० [म०] १ जो बांधा न हो। अवद्ध। २ अमवद्ध।  
अनगल। वेमिलमिला [को०]।

अनिवद्धप्रलाप—सज्ञा पुं० [म०] अमवद्ध वा वेमिर पैर की बात  
[को०]।

अनिवद्धप्रलापी—वि० [म० अनिवद्धप्रलापिन्] वेमिर पैर की बात  
करनेवाला। ऊलजलूल बात करनेवाला [को०]।

अनिवाध<sup>१</sup>—वि० [म०] बाधरहित। जिसे कोई बाधा न हो।  
स्वच्छद [को०]।

अनिवाध<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० स्वच्छदता। मुक्तता [को०]।

अनिभूत—वि० [म०] १ जो छिपा न हो। जो एकांत में न हो।  
२ अगुप्त। प्रकट। जाहिर। ३ धूँट। असकोबी। वेतकल्लुक।

४ हुनमुल। अस्थिर। [को०]।

अनिभूत मधि—सज्ञा स्त्री० [म० अनिभूत सन्धि] यदि कोई राजा  
किसी दूसरे राजा की बहुत ही अधिक उराजाऊ भूमि को  
खरीदना चाहता हो और दूसरा राजा उस भूमि को  
देकर उसने मधि कर ले तो ऐसी मधि को अनिभूत मधि  
कहते हैं।

अनिभूट—वि० [स०] अवाधिन। बेरोक। जिसमें कोई प्रतिघ  
न हो [को०]।

अनिम्य—वि० [म०] धनहीन। निर्धन। कृपात।

अनिमंत्रित—वि० [म० अनिमन्त्रित] बिना न्योता हुआ। बिना  
बुलाया हुआ। अनामंत्रित। अनाहूत।

अनिमक—सज्ञा पुं० [मं०] १ मेढक। २ कोयल। ३ मधुमक्खी।  
४ भौंरा। ५ कमल की केशर। पद्मकेशर। ६ महुए का  
वृक्ष। [को०]।

अनिमा<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अणिमा'।

अनिमा<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [अ० एनिमा] दे० 'एनिमा'।

अनिमान—वि [मं०] असीम। अथाह। अत्यधिक। अपरिच्छिन्न  
[को०]।

अनिमित्त<sup>१</sup>—वि० [मं०] निमित्तरहित। बिना हेतु का। आकस्मिक<sup>२</sup>।  
अनिमित्त<sup>२</sup>—किं० वि० १ बिना कारण। २ बिना गरज। बिना  
किन्नी प्रयोजन के।

अनिमित्त<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] अपशकुन। अनिष्ट [को०]।

अनिमित्तक—वि० [मं०] १ बिना कारण का। बिना हेतु का।  
२ व्यर्थ। प्रयोजनरहित। वेमतलव।

अनिमित्तनिगक्रिया—सज्ञा स्त्री० [मं०] अपशकुन या अनिष्ट का  
निवारण [को०]।

अनिमित्तलिङ्गनाश—सज्ञा पुं० [सं० अनिमित्तलिङ्गनाश] एक प्रकार  
का नेत्ररोग जिसमें मनुष्य अंधा हो जाता है [को०]।

अनिमिप<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ निमेषरहित। स्थिरदृष्टि। टकटकी बाँधकर  
देखनेवाला। २ जागरूक [को०]। ३ विकसित। खुला हुआ।  
जैसे आँख या पुष्प [को०]।

अनिमिप<sup>२</sup>—किं० वि० १ बिना पलक गिराए। एकटक। उ०—  
सुंदरता से अनिमिप चितवन छू कोमल मर्मस्थल—युगवाणी,  
पृ० ६२। १ निरतर।

अनिमिप<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० १ देवता। २ मछली। ३ विष्णु [को०]। ४.  
महाकाल का नाम [को०]। ५ एक रत्निवध [को०]।

अनिमिपदृष्टि—वि० [मं०] टकटकी बाँधकर देखना। आँख गड़ाकर  
देखना। जानबूझ कर या सामिप्राय धूरना [को०]।

अनिमिपनयन—वि० [मं०] दे० 'अनिमिपदृष्टि' [को०]।

अनिमिपलोचन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिपदृष्टि' [को०]।

अनिमिपाचार्य—सज्ञा पुं० [सं०] देवगुरु। बृहस्पति।

अनिमिपीय—वि० [मं०] देवमवधी [को०]।

अनिमेष<sup>१</sup>—वि० [सं०] दे० 'अनिमिप'।

अनिमेष<sup>२</sup>—किं० वि० १ बिना पलक गिराए। एकटक। २ निरतर।

अनिमेष<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० दे० 'अनिमिप'।

अनिमेषदृष्टि—वि० [सं०] दे० 'अनिमिपदृष्टि' [को०]।

अनिमेषनयन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिपदृष्टि' [को०]।

अनिमेषलोचन—वि० [सं०] दे० 'अनिमेषदृष्टि' [को०]।

अनियन्त्रित—वि० [मं० अनियन्त्रित] १ जो जकड़ा या बाँधा न हो।

अवद्ध। प्रतिवधरहित। बिना रोक टोक का। २ मनमाना।  
स्वच्छद। निरकुश।

अनियन्त्रित शासन—सज्ञा पुं० [सं० अनियन्त्रित शासन] निरकुश राज्य।  
स्वेच्छाचारी राज्य। एकतन्त्र [को०]।

अनियत—वि० [सं०] १ जो नियत न हो। अनिश्चित। अनिर्दिष्ट।  
अनिर्धारित। २ अस्थिर। अदृढ़। जगका ठीक ठिकाना न हो।  
३ अपरिमित। असीम। ४. असाधारण। गैर मामूली। ५.

अवाधिन। जो रोक न जा सके [को०]। ६ अनियमित [को०]।

अनियतपुस्का—सज्ञा स्त्री० [मं०] अग्रनी। पुष्कली। शिथिल प्राचरण  
वाली स्त्री। व्यभिचारिणी [को०]।

अनियतवृत्ति—वि० [मं०] १ अनियमित काम न करनेवाला। जो किसी  
बड़े काम पर न लगा हो। २ अनिश्चित आयवाला। जिसकी  
कोई बँधी आमदनी न हो [को०]।

अनियताक—सज्ञा पुं० [मं० अनियताक] गणित में आनेवाला अनि-  
श्चित या अज्ञात अंक। वह मध्यम जिसका मूल्य निश्चित  
न हो [को०]।

अनियतात्मा—वि० [मं० अनियतात्मन्] १ चंचल बुद्धि का। डाढ़ा-  
डोल चित्त का। २ जिसका मन वश में न हो। अविर्देव।  
अनियम<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] १ नियम का अभाव। नियम का न  
होना। व्यवस्थित। २ अव्यवस्था। बेकायदगी। ३ अनिय-  
मितता। अनिश्चिन्ता। अस्पष्टता [को०]। ४ अविहित  
कर्म या अनुचित आचरण [को०]।

अनियम<sup>२</sup>—वि० नियमरहित। व्यवस्थारहित। अव्यवस्थित [को०]।  
अनियमित—वि० [मं०] १ नियमरहित। विधिहीन। अव्यवस्थित  
बेकायदा। २ अनिश्चित। अनियत। अनिर्दिष्ट।

अनियाउ<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—मर्य कहतु तुम  
मोसी दहू काकर अनियाउ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३८।

अनियारा<sup>१</sup>—वि० [मं० अनियारा = लोक + हिं० आरा (प्रत्य०)] [स्त्री०  
अनियारी] नुकीला। कटीना। पैना। धारदार। कोरदार।  
तीक्ष्ण। तीखा। उ०—अनियारे दीरव दृगन, किन्ती न तरुनि  
ममान। वह चितवनि ओरे कछू, जिहि वन होत नुजान।—  
विहारी र०, दो० ५८८।

अनियारी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [हिं० अनियारी] अनोदार कटांगी। उ०—  
गहि रोम नखि नर गूमि पर। हनि अनियारिय उमय कसि।  
—पृ० रा० ७। १५८।

अनियुक्त—वि० [सं०] जो नियुक्त न किया गया हो। अनधिकारी।  
२ न्यायाधीश के साथ बैठनेवाला व्यक्ति (प्रसेनर) जिसकी  
नियुक्ति अनौपचारिक होती है और जिसे मन देने का अधिकार  
नहीं होना [को०]।

अनियोग—सज्ञा पुं० [मं०] १ नवध का अभाव। २ अनुपयुक्त पद  
या आयोग [को०]।

अनिर<sup>१</sup>—वि० [मं०] जो प्रेरित न किया जा सके। जो ठेना न जा  
सके। अशक्त। शक्ति की कमी [को०]।

अनिर<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनिरवा'।

अनिरवसित—वि० [मं०] ऐसे शूद्र जो इतने नीचे नहीं माने जाते कि  
उनके भोजन कर लेने पर पात्र सदा के लिये त्याग दिया  
जाय, अर्थात् जिस पात्र में उन्होंने भोजन किया हो उसे स्वच्छ  
करके फिर ग्रहण किया जा सकता है [को०]।

अनिरवा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं० अ = नहीं + कटि, प्रा० शिखर, निषट्,  
निषट्] [स्त्री० अनिरिया] वहका हुआ पशु। आवारा चौपाया  
जो खूँटे पर न रहे। बहेतू।

अनिरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ भोजन का अभाव । अनि दरिद्रता ।  
अन्नरहित दरिद्रता । २ दैवी विपत्ति, जैसे, अतिवृष्टि,  
अनावृष्टि [को०] ।

अनिराकरण—सञ्ज्ञा पुं० [म०] निराकरण न करना । दूर न  
करना [को०] ।

अनिराकृत—वि० [म०] जिसका निराकरण न किया गया हो । जो दूर  
न किया गया हो [को०] ।

अनिरुक्त—वि० [म०] १ जो स्पष्ट रूप में कहा न गया हो । अस्पष्ट  
(कथन) । २ जिसका निर्वचन (व्याख्या) स्पष्ट रूप में न  
हुआ हो [को०] ।

अनिरुक्तगान—स्त्री० पुं० [म०] १ अस्पष्ट गाना या गुनगुनाना । २  
सामगान का एक प्रकार [को०] ।

अनिरुद्ध<sup>१</sup>—वि० [सं०] जो रोका हुआ न हो । अबाध । बेरोक ।  
अनिरुद्ध<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० श्रीकृष्ण के पीय, प्रद्युम्न के पुत्र जिनको ऊषा  
व्याही थी ।

अनिरुध्(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अनिरुद्ध] १ 'अनिरुद्ध' । उ०—अनि-  
रुध् कः जो निखी जैमारा ।—जायमी ग्र० (गुप्त), पृ० ३०६ ।  
अनिर्णय—सञ्ज्ञा पुं० [म०] निर्णय का न होना । अनिश्चय [को०] ।  
अनिर्देश—वि० [म०] जनन या मरण के अगोच के दस दिन बीतने  
के पूर्व का (समय) [को०] ।

अनिर्देशा—वि० स्त्री० [म०] जिसको बच्चा दिए दस दिन न बीते हो ।  
विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः गाय के सवध में देखा जाता  
है । ऐसी गाय का दूध पीना निषिद्ध है ।

अनिर्देशाह—वि० [म०] १ 'अनिर्देश' [को०] ।

अनिर्दिश्य—वि० [म०] २ 'अनिर्देश्य' [को०] ।

अनिर्दिष्ट—वि० [सं०] १ जो बताया न गया हो । अनिश्चित ।  
अनिर्धारित । अनिर्वाचित । उ०—क्या उनकी कल्पना में किसी  
अनिर्दिष्ट अत्याचारी या क्रूरकर्मा का सामान्य रूप ही था ?—  
रम० क०, पृ० २६८ । २ अनियत । अनिश्चित । ३ असीम ।  
अपरिमित । ४ निश्चित लक्ष्य से रहित [को०] ।

अनिर्दिष्टभोग—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दूसरे के पशु, भूमि या और पदार्थों  
को मालिक की आज्ञा के बिना काम में लाना ।

विशेष—इस प्रकार दूसरे की वस्तु का व्यवहार करनेवाला चोर  
के तुल्य ही कहा गया है । स्मृतियों में इस दोष के करनेवाले  
के लिये भिन्न भिन्न अर्थदंड हैं ।

अनिर्देश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निश्चित नियम या निर्देश का अभाव  
[को०] ।

अनिर्देश्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] जिसके गुण, स्वभाव, जाति आदि का निर्धारण  
न हो सके । जिसके विषय में कुछ ठीक बतलाया न जा  
सके । अनिर्वचनीय । अनिर्धार्य । २ जिसकी परिभाषा न हो  
सके । जिसकी तुलना न हो सके [को०] ।

अनिर्देश्य<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० परब्रह्म की एक उपाधि [को०] ।

अनिर्धारित—वि० [सं०] अनिश्चित । अनिश्चित [को०] ।

अनिर्धार्य—वि० [सं०] जिसका निरूपण न हो सके । जिसका लक्ष्य  
स्थिर न किया जा सके । जिसके विषय में कोई बात ठहराई न  
जा सके । अनिर्देश्य ।

अनिर्वच—वि० [सं० अनिर्वच्य] १ बिना बंदन का । अबाध । अनि-  
यमित । बेरोकटोक । २ स्वतंत्र । स्वच्छंद । स्वाधीन ।  
खुदमुस्तार ।

अनिर्वच—वि० [म०] भाररहित । कम वजन का । हलका । कम [को०] ।

अनिर्वच—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भेद न खोजना ।

अनिर्वच—वि० [म०] गदा । मैला । अशुद्ध । गंदला [को०] ।

अनिर्वच—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक पीधा जो औषध के काम आता  
है । पिडिका [को०] ।

अनिर्वच—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] जिसपर सावधानी से विचार न हुआ हो ।  
अविचारित [को०] ।

अनिर्वच—वि० [सं०] जिसकी पूर्णतः परीक्षा न हुई हो । अपरी-  
क्षित [को०] ।

अनिर्वच—वि० [सं० अनिर्वचनीय] १ 'अनिर्वचनीय' । उ०—वह है,  
वह नहीं, अनिर्वच जग उसमें वह जग में नय ।—गुनन,  
पृ० ८३ ।

अनिर्वच—सञ्ज्ञा पुं० [म०] मोन । खामोशी । जोर में न बोलना ।  
[को०] ।

अनिर्वचनीय<sup>१</sup>—[सं०] १ जिसका वर्णन न हो सके । अकथनीय ।  
अवर्णनीय । उ०—अहो अनिर्वचनीय भावसागर । मुनो मेरी  
भी स्वरलहरी क्या है कह रही ।—कानन०, पृ० ८१ ।  
२. जो कहने योग्य न हो । अकथ्य ।

अनिर्वचनीय<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ माया । भ्रम । अज्ञान । २ जगत् ।  
समार [को०] ।

अनिर्वचमान—वि० [सं०] जो पास न आ रहा हो । न लोटनेवाला  
[को०] ।

अनिर्वच्य—वि० [सं०] १ निर्वचन के अयोग्य । जिसका निरूपण न  
हो सके । जो बतलाया न जा सके । जिसके विषय में कुछ  
स्थिर न हो सके । उ०—पावा अनिर्वच्य विश्राम ।—मानस,  
१५८ । २ जो चुनाव के योग्य न हो । निर्वाचन के अयोग्य ।

अनिर्वच—वि० [सं०] बाधुरहित । शात । उ०—वह शुनि धारता,  
ज्ञान की शिखा वह अनिर्वच निष्कप ।—प्रणिमा, पृ० ३६ ।

अनिर्वच—वि० [सं०] १ न बुझा हुआ । २. न नहाया हुआ ।  
अस्नात । अप्रक्षालित [को०] ।

अनिर्वच—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पूरा न होना । अपूर्णता । २  
अनिष्पत्ति । असंगति । ३. आय की कमी या टोटा । साधन की  
अल्पता [को०] ।

अनिर्वच—वि० [म०] जो निर्वाह के योग्य न हो । जिसकी व्यवस्था  
कठिन हो [को०] ।

अनिर्वच पण्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ या माल जिसका राज्य  
या नगर के भीतर लाया जाना बंद किया गया हो ।

अनिर्वच—वि० [सं०] अलज्जित । जिसने लज्जित होने योग्य कुछ  
न किया हो [को०] ।

अनिर्वच—वि० [सं०] १ जो यका न हो । निर्वचरहित । दुःख—  
रहित । २ विष्णु की एक उपाधि ।—[को०] ।

अनिर्वच—वि० [म०] अथात । अक्लान । तरोताजा [को०] ।

अनिर्वच—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १. २० 'अनिर्वच' । २. दरिद्रता ।  
सारणहीन [को०] ।



अनिर्वृत्त<sup>१</sup>—वि० [स०] [सञ्ज्ञा अनिर्वृत्ति] बुरी स्थिति का । दुखी ।

अनिर्वृत्त<sup>२</sup>—वि० [स०] दे० 'अनिर्वृत्ति' [को०] ।

अनिर्वृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] बुरी स्थिति । दुख ।

अनिर्वेद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ क्लान्ति का अभाव । निराशा का अभाव ।

२ स्वावलम्बन । साहस [को०] ।

अनिर्वेश—वि० [स०] वैरोजगार । दुःखी [को०] ।

अनिल—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ हवा । पवन । वायु । २ पवन देवता ।

३ वायु के ४६ भेदों में से एक । ४ अष्ट वसुओं में एक । पञ्चम

वसु । ५ शरीर का एक तत्त्व । ६ पक्षाघात । लकवा ।

वातरोग । ७ अक्षर य् । ४६ की सख्या का द्योतक शब्द ।

८ स्वाति नक्षत्र । ९ विष्णु का नाम । १० नागों का वृक्ष ।

११ वायु रोग [को०] ।

अनिलकुमार—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ पवन के पुत्र हनुमान । २ जैन

शास्त्रों के अनुसार भुवनपति देवताओं का एक भेद ।

अनिलघ्न—वि० [स०] वातविकारों को दूर करनेवाला [को०] ।

अनिलघ्नक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] विभीतक वृक्ष । बहेडा [को०] ।

अनिलपर्याय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० 'अनिलपर्याय' [को०] ।

अनिलपर्याय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] आँख की पलकों तथा बाहरी भाग की

सृजन [को०] ।

अनिलप्रकृति<sup>१</sup>—वि० [स०] वातप्रकृतिवाला [को०] ।

अनिलप्रकृति<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० शनि का नाम [को०] ।

अनिलभद्रक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का रत्न ।

विशेष—मानव के वनावट या आकार के अनुसार रत्न का सात

भेद माने गए हैं—(१) नभस्वभद्रक, (२) प्रमज्जनभद्रक,

(३) निवातभद्रक, (४) पवनभद्रक, (५) परिपद्भद्रक, (६)

इद्रभद्रक और (७) अनिलभद्रक ।

अनिलय—वि० [स०] निवासरहित । आश्रयरहित [को०] ।

अनिलवाह—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अनिल + वाह = प्रवाह । वायु का प्रवाह ।

वायुमण्डल । उ०—इस अनिलवाह के पार प्रखर किरणों का

वह ज्योतिर्मय घर ।—तुलसी०, पृ० १६ ।

अनिलव्याधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] वायु कुपित होने में उत्पन्न

रोग [को०] ।

अनिलसख—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अग्नि । वायु का सहायक [को०] ।

अनिलसारथि—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अग्नि [को०] ।

अनिलात्मज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वायु का पुत्र—१ हनुमान् । २

भीम [को०] ।

अनिलातक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अनिलान्तक ] इगुदी का पौधा । अगार-

पुष्प [को०] ।

अनिलापह—वि० [स०] दे० 'अनिलघ्न' [को०] ।

अनिलामय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वातरोग । लकवा । गठिया [को०] ।

अनिलायन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वायु का मार्ग । हवा की दिशा [को०] ।

अनिलहा—वि० [स०] अनिलहन् ] वातरोग नष्ट करनेवाला [को०] ।

अनिलाशन—वि० [स०] 'अनिलाशी' [को०] ।

अनिलाशी<sup>१</sup>—वि० [अनिलाशिन ] वि० [स०] अनिलाशिन ] हवा

पीकर रहनेवाला ।

अनिलाशी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० मार । नप ।

अनिलोडित<sup>१</sup>—वि० [स०] अनुसूचित [को०] ।

अनिलोडित<sup>२</sup>—वि० [स०] जिनपर अन्यायपूर्ण विचार न हुआ हो ।

अपूर्णत परीक्षित [को०] ।

अनिवर्तन—वि० [स०] १ दृढ़ । निश्चल । २ उचित । अन्वय

[को०] ।

अनिवर्ती—वि० [स०] अनिवर्तन ] [स०] अनिवर्तनी ] १ वापस न

न लौटनेवाला । २ तत्पर । प्रयत्नशील । मुन्दी । ३ बोर । पीठ

न दिखानेवाला । ४ विष्णु श्रेष्ठ उष्ट्र का विशेषण [को०] ।

अनिवार(उ)—वि० [स०] अनिवार्य ] २० 'अनिवार्य' । उ०—प्रति मूर्खों

टेढ़ों बहुरि, प्रेमपथ अनिवार ।—रत्नप्रान०, पृ० ६ ।

अनिवारित—वि० [स०] जिसे रोकना नहीं गया । अव्यभिच । निष्का

प्रियोग न हो । निश्चिन्त [को०] ।

अनिवार्य—वि० [स०] १ जो निवारण के योग्य न हो । जो हटे

नहीं । यत्न । २ अक्षय । ३ जो होकर रहे । जो अवश्य

हो । ४ जिसके विना काम न चले । परम आवश्यक । जैसे—

उन्नति के लिये शिक्षा का होना अनिवार्य है (शब्द०) ।

अनिविजमान—वि० [स०] न प्रयत्न करनेवाला । विश्राम न करनेवाला ।

गतिशील [को०] ।

अनिवेशन—वि० [स०] जिसके पान विश्राम का स्थान न हो [को०] ।

अनिवृत्तिवाद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] जैन शास्त्रानुसार वह धर्म जिनका

परिणाम निवृत्त या दृढ़ हो जाय परन्तु पाप या वासना रहे

जाय ।

अनिविष्ट—वि० [स०] अविवाहित [को०] ।

अनिश—क्रि० वि० [स०] निरन्तर । प्रनवरत । लगातार । अविश्रात ।

अनिश्चय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] नदेह । निश्चय का अभाव [को०] ।

अनिश्चित—वि० [स०] जिसका निश्चय न हुआ हो । अनियत । अनि-

दिष्ट । जिसका कुछ ठीक ठाक न हो । जिसके विषय में कुछ

स्थिर न हुआ हो ।

अनिषिद्ध—वि० [स०] जो अवैध या वर्जित न हो । प्रशस्त [को०] ।

अनिष्कासिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] पर्दानशील औरत ।

विशेष—चन्द्रगुप्त के समय यह नियम था कि पर्दानशील औरतों से

घरों के भीतर ही काम लिया जाता था और उनको बाहर पर

वेतन पहुँचा दिया जाता था ।

अनिष्ट<sup>१</sup>—[स०] १ जो इष्ट न हो । इच्छा के प्रतिकूल ।

अनमिलपित । अवाञ्छित । २ बुरा । निषिद्ध [को०] । ३

यज्ञ के लिये वर्जित । जो यज्ञ के लिये प्रशस्त न हो [को०] ।

अनिष्ट<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० अमंगल । अहित । बुराई । इच्छाविरुद्ध कार्य ।

खराबी । हानि ।

अनिष्टकर—वि० [स०] अनिष्ट करनेवाला । अहितकारी । हानिकारक ।

अशुभकारक ।

अनिष्टकारी—वि० [म० अनिष्टकारिन्] [स्त्री० अनिष्टकारिणी] दे० 'अनिष्टकर' ।

अनिष्टग्रह—सज्ञा पु० [म०] हानि करनेवाला ग्रह । अशुभ ग्रह [को०] ।  
अनिष्टप्रवृत्तिक—वि० [म०] राष्ट्र या राज्य के अनिष्टमात्रन में तत्पर ।  
वागी । राष्ट्रद्रोही ।

विशेष—चाणक्य के समय में ऐसे लोगों को अग्नि में जर्जने का दण्ड दिया जाता था ।

अनिष्टप्रसङ्ग—सज्ञा पु० [म० अनिष्टप्रसङ्ग] १ अवाञ्छित या अनिच्छित घटना । २ गन्त वस्तु, तर्क, अथवा नियम का संबन्ध [को०] ।

अनिष्टफल—सज्ञा पु० [म०] अवाञ्छित परिणाम । बुरा नतीजा [को०] ।  
अनिष्टशक्ता—सज्ञा स्त्री० [म० अनिष्टशक्ता] दुर्भाग्य या अवाञ्छित की आशंका । अहित होने का डर [को०] ।

अनिष्टसूचक—वि० [म०] अनिष्ट या अहित की सूचना देनेवाला [को०] ।

अनिष्ट हेतु—सज्ञा पु० [म०] बुरा लक्षण । अपशकुन ।

अनिष्टानुवर्धी—वि० [म० अनिष्टानुवर्धिन्] एक के बाद एक विपत्ति का आना । लगानार । विपत्तियों का आगमन [को०] ।

अनिष्टापत्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] अनिष्ट या अशुभ की प्राप्ति । अवाञ्छित घटना [को०] ।

अनिष्टापादन—सज्ञा पु० [म०] दे० 'अनिष्टापत्ति' [को०] ।

अनिष्टापत्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] अनिष्ट की आपत्ति अर्थात् प्राप्ति । अनिष्टापत्ति [को०] ।

अनिष्टाशमी—वि० [म० अनिष्टाशमिन्] अनिष्ट की सूचना देने वाला । अनिष्टसूचक ।

अनिष्टी—वि० [म० अनिष्टिन्] जिसने यज्ञ आदि न किया हो [को०] ।  
२ अमागा । नाग्यहीन ।

अनिष्टोत्प्रेक्षण—सज्ञा पु० [म०] अनिष्ट की कल्पना । अनिष्ट होने की संभावना [को०] ।

अनिष्टा—सज्ञा पु० [म०] अदृढता । निष्ठा का अभाव [को०] ।

अनिष्टुर—वि० [म०] जो कठोर न हो । जो निर्दय न हो । दयावान ।  
कोमलचित्त [को०] ।

अनिष्ण—वि० [म०] जो प्रवीण न हो । अदक्ष । अकुशल [को०] ।

अनिष्पत्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] अपूर्णता । अधूरापन । असिद्धि ।

अनिष्पन्न—वि० [म०] १ अधूरा । अपूर्ण । २ अमपन्न । अमिद्व ।

अनिसृ—क्रि० वि० [हि०] '२०' 'अनिश' ।

अनिसर्ग—वि० [म०] अस्वाभाविक । अप्राकृतिक [को०] ।

अनिसृष्ट—वि० [म०] १ जिसने अधिकार या आज्ञा न प्राप्त की हो ।  
२ जिसके व्यवहार या उपयोग की आज्ञा न ले ली गई हो ।

अनिसृष्टोपभोक्ता—सज्ञा पु० [म० अनिसृष्टोपभोक्ता] वह जो मानिक की आज्ञा के बिना धरोहर रखी हुई वस्तु काम में लाए ।

अनिस्तीर्ण—वि० [म०] १ जो पार न किया गया हो । जो अस्वीकृत न किया गया हो । जिसमें छुटकारा न मिला हो । २ अभियोग जिसका उत्तर न दिया गया हो । जिसका खडन न किया गया हो [को०] ।

अनिस्तीर्णभिप्रोग—सज्ञा पु० [म०] वह अभियुक्त जिसने अभियोग का खडन कर उसे मुक्ति न पा ली हो [को०] ।

अनी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [म० अणि = अग्रभाग, नोक] १ नोक । निरा । कोर । उ०—मनगुन मारी प्रेम की गही कठारी टूटि । बंसी अनी न सा गई जैसी सालै मूठि ।—कवीर (शब्द०) । २ नाव या जहाज का अगला निरा । मांगा । माया । गलही । ३ जूते की नोक । ४ पानी में निकनी हुई जमीन की नोक ।

अनी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [म० अनीक = समूह, मेला] १ समूह । झुड । दल । उ०—नारदादि मनकादि प्रजापति, मुर नर असुर अनी ।—

दूर०, १।३७१ । २ सेना । फौज । उ०—त्रेपु न नो मखि मीय न मगा । आगे अनी चली चतुरगा ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनी<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि० आन = मर्यादा] १ नानि । वेद । लाग । जैसे—उमने अनी के बम कनी खा ली (शब्द०) ।

अनी<sup>४</sup>—सबो स्त्री० [म० अयि प० अनी] री । अरी । श्री ।

अनीक<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [म०] १ सेना । फौज । २ समूह । झुड । ३. युद्ध । संग्राम । लड़ाई ।

अनीक<sup>२</sup>—वि० [म० अ = नहीं + फा० नेक, हि० नीक] जो अच्छा न हो । बुरा । खराब ।

अनीकिनी—सज्ञा स्त्री० [म०] १ अक्षीहिणी या पूरी सेना का दमवां भाग जिसमें २१८७ हाथी ५६६१ घोड़े और १०६३५ पैदल होते हैं । २ कमनिनी । पक्षिनी । नलिनी ।

अनीक्षण—सज्ञा पु० [म०] न देखना । दृष्टिनिक्षेप न करना [को०] ।

अनीच—वि० [म०] १ जो नीचा न हो । उत्तम । आदर के योग्य । २ जिसका उच्चारण अनुदात्त स्वर में न हुआ हो । उदात्त स्वर में उच्चारित [को०] ।

अनीचदर्शी—सज्ञा पु० [म० अनीचदर्शिन्] एक युद्ध का नाम [को०] ।

अनीचानुवर्ती—वि० [म० अनीचानुवर्तिन्] १ नीच अथवा अशिष्ट जनो से सम्पर्क न रखनेवाला । २ निष्ठावान् या विश्वमनीय पति या प्रणयी [को०] ।

अनीठ—वि० [म० अनिष्ट, प्रा० अणिठ] १ जो झट न हो । अनिश्चित । अप्रिय । २ बुरा । खराब । उ०—(क) जाउजू जैर अनीठ बडे अर ईठ बडे पर दीठ बडे हौ ।—देव (शब्द०) । (ख) हा हा बगड तपो पीठ दै बंठुरी काहू अनीठ की दीठि परैगी ।—देव (शब्द०) ।

अनीठि—सज्ञा स्त्री० [म० अन + इष्टि] १ अनिच्छा । २ बुराई । ३ क्रोध ।

अनीड<sup>१</sup>—वि० [म०] बिना घोमने का । २ आश्रयहीन । जिसका निश्चित आवास न हो । ३. अशरीरी ।

अनीड<sup>२</sup>—सज्ञा पु० अग्नि का एक नाम [को०] ।

अनीत—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अनीति' । उ०—ऐनी और न जानिवी जग अनीत करनार । जामै उपज्यो सरन मो नाको वेधत मार ।—स० मत्तक, पृ० ३६५ ।

अनीति—सज्ञा स्त्री० [म०] १. नीति का विरोध । अन्वय । वेदमाफी । २. शरारत । ३. अधेर । अत्याचार । ४. ईति अर्थात् विनिति या फट का अनाद [को०] ।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

अनीनित्त—वि० [०] अनुनि न प्रवीण। अनुनि का मे पटु।

जैसे, अनुक्षण, अनुदिन, ५ बारवार। जैसे, अनुक्षण अनु-  
जीलन। गणरत्न महोदधि मे इसके निम्नांकित ग्रंथ निदिष्ट  
किए गए हैं—वेदाध्ययन, अनुष्ठान, सामीप्य, पञ्चाद्भाव,  
अनुवधन, साम्य, अभिमुख, हीन, विसर्ग और लक्षण।

अनु<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ राजा ययाति का एक पुत्र। २ प्राचीन भारत  
की एक जाति (को०)।

अनु<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अनु] दे० 'अणु'। उ०—मित्यो चद्र वनि  
चरि कनि अनु अनु ह्वै मनु जाइ।—भिखारी ग०, भा० २,  
पृ० १४१।

अनु<sup>४</sup>—प्र० [हि०] हाँ। ठीक है। उ०—प्रनु तुम कही नीक यह  
सोभा। पै कुल मोड़ भँवर जेहि लोभा।—जायसी (शब्द०)।

अनुकपन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अनुकम्पन] १ अनुग्रह। दया। २  
सहानुभूति (को०)।

अनुकपन<sup>२</sup>—वि० दया करनेवाला। कोपलहृदय। सहृदय (को०)।

अनुकपनीय—वि० [सं० अनुकम्पनीय] दे० 'अनुकम्प्य' (को०)।

अनुकपा—सज्ञा स्त्री० [सं० अनुकम्पा] [वि० अनुकम्पित] १. दया।  
कृपा। अनुग्रह। २ सहानुभूति। हमदर्दी।

अनुकपित—वि० [सं० अनुकम्पित] जिस पर कृपा की गई हो।  
अनुगृहीत।

अनुकम्प्य<sup>१</sup>—वि० [सं० अनुकम्प्य] दया के योग्य। सहानुभूति का  
पात्र (को०)।

अनुकम्प्य<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ शीघ्रगामी दूत या समाचारवाहक। २  
तपस्वी (को०)।

अनुक<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] कामी। कामुक। विपयी। कामी पुंश्व।

अनुक<sup>४</sup>—वि० गालची। इच्छुक। २ कामवासनायुक्त। ३ दानुग्री।  
४ अधीन। आश्रित (को०)।

अनुकथन—सज्ञा पुं० [सं०] क्रमवद्ध वचन। कथोरकथन। तार्ताग  
वातचीन। उ०—मुनि अनुकथन परमपर होइ।—  
मानस, १।४१।

अनुकनीय—वि० [सं० अनुकनीयस्] सबसे छोटे में बड़ा। कनिष्ठतम  
से प्रथम (को०)।

अनुकर—सज्ञा पुं० [सं०] सहायक (को०)।

अनुकरण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुकरणीय, अनुकृत] १ देखा  
देखी काम। नकल। समान आचरण। उ०—आज सोचतो हूँ  
जैसे पद्मिनी थी कहती—'अनुकरण कर मेरा'।—लहर  
पृ० ६७। २ पीछे आनेवाला। वह जो पीछे उत्पन्न हो।

उ०—प्रातः उद्दीपन के अनुकरण बखाना ते कहिए अनुभाव।  
सब, दपति प्रीति विधान।—केशव (शब्द०)।

अनुकरणीय—वि० [सं०] [स्त्री० अनुकरणीया] अनुकरण करने  
लायक। नकल करने योग्य।

अनुकर्ता—सज्ञा पुं० [सं०] १ अनुकरण करनेवाला। आदर्श पर चलने  
वाला। २ नकल करनेवाला। ३ आज्ञाकारी। हुक्म  
माननेवाला।

अनुकर्म—सज्ञा पुं० [सं०] अनुकरण। नकल (को०)।

अनुकर्म—सज्ञा पुं० [सं०] १. एक गाड़ी या रथ का तला। २.  
शिला। आरक्षण। ३. दया का आवाहन। ४. विचार से  
विती कर्तव्य का पातन।

अनुकर्मण—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुकर्म' ।

अनुकूलन—सज्ञा पुं० [मं०] अकन । लेखन । सज्जा करना । उ०—  
हिंदी लिखसे के लिये फारसी लिपि का इस प्रकार अनुकूलन  
करने के कारण ।—मपु० अ० ग्रं०, पृ० १३१ ।

अनुकल्प—सज्ञा पुं० [सं०] आवश्यकतानुसार निदिष्ट के अभाव में अन्य  
विकल्प का व्यवहार । जैसे यव के अभाव में गेहूँ या चावल के  
व्यवहार का विकल्प । २ कल्प (छह वेदांगों में से एक)  
में से सवधित ग्रन्थ [को०] ।

अनुकाक्षा—सज्ञा स्त्री० [मं० अनुकाङ्क्षा] [वि० अनुकाक्षित, अनुकाक्षी]  
इच्छा । अभिलाषा । आकांक्षा ।

अनुकाक्षित—वि० [मं० अनुकाङ्क्षित] इच्छित । अभिलषित ।  
अकाक्षित ।

अनुकाक्षी—वि० [मं० अनुकाङ्क्षिन्] [वि० स्त्री० अनुकाक्षिणी] इच्छा  
रखनेवाला । चाहनेवाला । आकांक्षी ।

अनकाम—वि० [सं०] १ प्रिय । इच्छानुकूल । २ इच्छुक । विलासी  
[को०] ।

अनुकामी—वि० [मं० अनुकामिन्] इच्छानुसार कार्य करनेवाला ।  
स्वेच्छाचारी [को०] ।

अनुकामीन—वि० [मं०] दे० 'अनुकामी' [को०] ।

अनुकार—सज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अनुकरण' ।

अनुकारी—वि० [मं० अनुकारिन्] [स्त्री० अनुकारिणी] १ अनुकर्ता ।  
अनुकरण करनेवाला । देखादेखी करनेवाला । नकल करनेवाला ।  
२ आज्ञाकारी । हुक्म पर चलनेवाला ।

अनुकार्य—वि० [मं०] जिसकी नकल की जा सके । नकल किए  
जाने योग्य ।

अनुकार्य—सज्ञा पुं० अभिनेता द्वारा अनुकृत व्यक्ति । वह जिसकी  
नकल की जाय । उ०—उन अभिनेताओं को ही दर्शक लोग  
अनुकार्य समझ लेते हैं ।—सं० शास्त्र, पृ० ४७ ।

अनुकाल—वि० [सं०] सामयिक । समयानुकूल [को०] ।

अनुकीरतन—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुकीर्तन' । उ०—जहाँ  
प्रसिद्ध निषेध को अनुकीरतन प्रकाश ।—मतिराम ग्रं०, पृ०  
४३६ ।

अनुकीर्तन—सज्ञा पुं० [सं०] १ वर्णन । कथन । २ घोषणा । उद्-  
घोष । प्रचार [को०] ।

अनुकुचित—वि० [मं० अनुकुचित] १ झुका हुआ । २ झुकाया  
हुआ । टेढ़ा किया हुआ [को०] ।

अनुकूल—वि० [मं०] [स्त्री० अनुकूला] १ मुआफिक । २ पक्ष में  
रहनेवाला । सहायक । हितकर । ३ प्रसन्न । उ०—होउ  
महेश मोहि पर अनुकूल ।—मानस, १।१५ ।

अनुकूल—सज्ञा पुं० १ वह नायक जो एक ही विवाहित स्त्री में  
अनुरक्त हो । २ एक काव्यालंकार जिसमें प्रतिकूल से अनुकूल  
वस्तु की सिद्धि दिखाई जाय । जैसे—आगि लागि घर जरिगा,  
वड मुख कीन्ह । पिय के हाथ धयिलवा भरि भरि दीन्ह ।  
(शब्द०) । ३ राम के दल का एक बंदर । ४ सबके प्रिय  
विष्णु ।

अनुकूल<sup>१</sup>—वि० [हिं०] ओर । तरफ । उ०—ढाहति भूप रूप  
तर मूला । चली विपति वारिध अनुकूल ।—मानस २।३४ ।

अनुकूलता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अप्रतिकूलता । अविरुद्धता । २  
पक्षपात । हितकारिता । सहायता । ३ प्रसन्नता ।

अनुकूलन—सज्ञा पुं० [सं०] अनुकूल होने का प्रभाव । उ०—अर्वाचीन  
काल में भी हिंदू सम्प्रदाय ने बड़ी स्थिरता दिखाई है और  
अनुकूलन की शक्ति का भी परिचय दिया है ।—हिंदू सम्प्रदाय,  
पृ० ५८४ ।

अनुकूलना—वि० [मं० अनुकूलन से नाम०] १ अप्रतिकूल  
होना । मुआफिक होना । २ पक्ष में होना । हितकर होना ।  
३ प्रसन्न होना । उ०—फगुआ देन कह्यो मन भायो सर्व  
गोपिका फूरी । कठ लगाय चली प्रियतम कौ अपने गृह अनु-  
कूनी ।—सूर (शब्द०) ।

अनुकूला—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में  
भगण, तगण, नगण और दो गुरु (SS + SS + SS + SS)  
होते हैं । मौक्तिक माला । जैसे—पावक पूज्यो समिध  
मुधारी । आहूति दीन्ही सब सुखकारी ।—केशव (शब्द०) ।  
२ दत्ती वृक्ष ।

अनुकूलित—वि० [मं०] समानित । जिसका भव्य स्वागत हुआ हो  
[को०] ।

अनुकृत—वि० [मं०] अनुकरण किया हुआ । नकल किया हुआ ।  
अनुकृति—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ समान आचरण । देखा देखी कार्य ।

नकल । अनुकरण । उ०—हृदय की अनुकृति वाह्य उदार ।—  
कामायनी पृ० ४६ । २ वह काव्यालंकार जिसमें एक वस्तु का  
कारणांतर से दूसरी वस्तु के अनुसार हो जाना वर्णन किया  
जाय । यह वास्तव में सम अलंकार के अंतर्गत ही आता है ।

अनुकृष्ट—वि० [मं०] १ आकृष्ट । खिचा हुआ । २ समाहृत । समि-  
लित । ३ आरोपित । गर्भित [को०] ।

अनुक्त—वि० [सं०] अकाथित । बिना कहा हुआ । अनभिहित ।

अनुक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ न बोलना । न कहना । अकथना । २  
वह बात जो उचित न हो । अनुचित बात [को०] ।

अनुकृदन्—सज्ञा पुं० [मं० अनुकृदन्] उत्तर में चित्ताना । प्रतिक्रदन  
[को०] ।

अनुकृकच—वि० [मं०] जिसमें नकली चीरने की आरंभ जैसे दाँत बने  
हो । दत्तिदार [को०] ।

अनुक्रम<sup>१</sup>—वि० [सं०] क्रमवद्ध । मिलसिलेवार । तरतीबवार । उ०—  
प्रकृति पुरुष, श्रोतृनि मीतापति, अनुक्रम कथा मुनाई ।—सूर,  
१०।२८१६ ।

अनुक्रम<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ क्रम । मिलसिला । तरतीब । २ एक के बाद  
एक होने की स्थिति या क्रिया [को०] । ३ दे० 'अनुक्रमणिका'  
[को०] ।

अनुक्रमण—सज्ञा पुं० [मं०] १ क्रमवद्ध रूप में आगे बढ़ना । २ पीछे  
पीछे चलना । अनुगमन [को०] ।

अनुक्रमणिका—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ क्रम । तरतीब । सिलसिला । २  
रुची । तालिका । फिहरित । ३ काव्यायन का एक ग्रन्थ  
जिसमें मन्त्रों के ऋषि, छंद, देवता और विनियोग बताए गए

हैं। ४ अक्षरो और मात्राओ के क्रमानुसार तैयार की हुई शब्द, अथ, नाम या विषय आदि की सूची।

अनुक्रमणी—सज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'अनुक्रमणिका' [को०]।

अनुक्रात—वि० [म० अनुक्रात] १ पारायण किया हुआ। पढा हुआ। २ विधिपूर्वक सपन्न। ३ अनुक्रमणी आदि में समाविष्ट। परिगणित [को०]।

अनुक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ २० 'अनुक्रम'। २ 'अनुक्रम' (को०)। अनुक्रोश—सज्ञा पुं० [स०] अनुकृपा। दया। उ०—दयित, क्या मुझे आर्त जान के, अधिप ने अनुक्रोश मान के, घर दिया तुम्हे भेज थापही।—साकेत, पृ० ३१२।

अनुक्षण—कि० वि० [स०] १ प्रतिक्षण। २ लगातार। निरंतर। अनुक्षत्ता—सज्ञा पुं० [स० अनुक्षत्त] द्वाररक्षक अथवा सारथी का अनुचर [को०]।

अनुक्षपा—सज्ञा सज्ञा [स० अनुक्षपम्] एक रात के बाद दूसरी रात का अनंतर क्रम [को०]।

अनुक्षेत्र—सज्ञा पुं० [म०] उड़ीसा के मदिरो से पुजारियों को देवोत्तर सपत्ति में से दी जानेवाली वृत्ति [को०]।

अनुख्याता—सज्ञा पुं० [म० अनुख्यातृ] अनुसंधान करनेवाला। पता लगानेवाला [को०]।

अनुख्याति—सज्ञा स्त्री० [म०] अनुसंधान। पता लगाना [को०]।

अनुगतव्य—सज्ञा पुं० [स० अनुगन्तव्य] १ अनुगमन किए जाने के योग्य। जैसे—मृत पति के साथ पत्नी का सहमरण। २ अनुकरण किए जाने योग्य। ३ अनुसंधान करने योग्य। जिसे खोजा जाय [को०]।

अनुग<sup>१</sup>—वि० [स०] पीछे चलनेवाला। अनुगामी। अनुयायी। पैंरोकार उ०—वन में अगज अनुग, अनुज ही अग्रणी।—साकेत, पृ० १३४।

अनुग<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० सेवक। नौकर। चाकर। अनुचर। उ०—उत्तरि अनुज अनुगनि समेत प्रभु गुरु द्विजगन चरननि सिर नायो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४०२।

अनुगत<sup>१</sup>—वि० [म०] १ पीछे पीछे चलनेवाला। अनुगामी। अनुयायी उ०—चिर अनुगत मौदर्य के समादर में।—लहर, पृ० ६५। २ अनुकूल। मुआफिक। जैसे,—नियमानुगत कार्य होना उत्तम है (शब्द०)।

अनुगत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ सेवक। अनुचर। नौकर। २ संगीत में मध्यम लय या समय (को०)।

अनुगतार्थ—वि० [म०] प्रायः समान अर्थवाला। करीब करीब मिलते जुलते अर्थ का।

अनुगत—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अनुगमन। अनुसरण। पीछे पीछे चलना। २ अनुकरण। नकल। ३ अंतिम दशा। मरण।

अनुगतिक—वि० [स०] अनुसरण करनेवाला। नकल करनेवाला [को०]।

अनुगम—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अनुगमन' [को०]।

अनुगमन—सज्ञा पुं० [स०] १ पीछे चलना। अनुसरण। २ समान आचरण। ३ विधवा का मृत पति के शव के साथ जल मरना। ४ सहवास। मभोग। ५ स्वीकरण। स्वीकार। मानना [को०]।

अनुगम्य—सज्ञा पुं० [म०] वह व्यक्ति जिसका अनुसरण अथवा अनुकरण किया जाय [को०]।

अनुगर्जित<sup>१</sup>—वि० [म०] गर्जन किया हुआ [को०]।

अनुगर्जित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० गरजने जैसी प्रतिध्वनि [को०]।

अनुगवीन—सज्ञा पुं० [स०] ग्वाला। गोपालक [को०]।

अनुगाग—वि० [म० अनुगाङ्ग] गंगा के किनारे का (देश०)।

अनुगादी—वि० [म० अनुगादिन्] पुनरावृत्ति करनेवाला। दूसरे के शब्दों को दोहरानेवाला। प्रतिध्वनि करनेवाला [को०]।

अनुगामी—वि० [म० अनुगामिन्] [वि० स्त्री० अनुगामिनी] १ पश्चाद्वर्ती पीछे चलनेवाला। उ०—तही आप होते अनुगामी निरय को—कल्याण, पृ० २२। २ समान आचरण करनेवाला। ३ आज्ञाकारी। हुक्म माननेवाला। उ०—मोहि जानिय आपन अनुगामी।—मानस, १। २८१। ४ सहवास या मभोग करनेवाला। ५ जैन सिद्धांत के अनुसार क्षयोपणमनिमित्त अवधिज्ञान के छह भेदों में प्रथम। यहाँ अनुगामी उमे कहा गया है जो दूसरे क्षेत्र या जन्म में भी जीव के साथ जाता है। उ०—'अनुगामी जो दूसरे क्षेत्र या जन्म में भी जीव के साथ जाता है'। हिंदू० सं०, पृ० २४१।

अनुगामुक—वि० [म०] पीछे चलने का अभ्यासी। सदा पीछे चलने वाला [को०]।

अनुगीत—सज्ञा पुं० [म०] एक छंद का नाम। ३० 'गीता'। २ गीत के बाद गाया हुआ गीत। उत्तरगीत [को०]।

अनुगीता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ महाभारत के अश्वमेध पर्व के १६ में ६२ अध्याय तक का नाम [को०]।

अनुगीति—सज्ञा स्त्री० [स०] आर्या छंद का एक भेद [को०]।

विशेष—इसके प्रथम चरण में २७ और द्वितीय चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं।

अनुगुण<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] एक काव्यालंकार जिसमें किसी वस्तु के पूर्वगुण का दूसरी वस्तु के समर्पण में बढना दिखाया जाय। जैसे—मुक्तमाल तिय हाम ते अधिक स्वेत ह्वं जाय।—(शब्द०)। २ स्वाभाविक विशेषता [को०]।

अनुगुण<sup>२</sup>—वि० १ समान गुणोवाला। समान प्रकृतिवाला। २ अनुकूल। मनपसंद। ३ आज्ञाकारी [को०]।

अनुगुप्त—वि० [स०] ढका हुआ। रक्षित। आवरण किया हुआ [को०]।

अनुगृह—सज्ञा पुं० [म० अनुगृहम्] मकान के ऊपर की छत [को०]।

अनुगृहीत—वि० [म०] १ जिसपर अनुग्रह किया गया हो। उपहृत। उ०—मैं अनुगृहीत हूँ और वहाँ क्या देवी।—साकेत, पृ० २४३। २ कृतज्ञ।

अनुगौन<sup>(७)</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अनुगमन'। उ०—देखा देखी प्रजह सब कीनो ता अनुगौन।—भातेंदु ग्रं० भा० १, पृ० २२०।

अनुग्रह—सज्ञा पुं० [म०] १ हमारे का दुःख दूर करने की इच्छा। उ०—कृपा अनुग्रह अगु अवाई।—मानस, २। २६६। २ कृपा। दया। अनुकृपा। उ०—करो अनुग्रह सोड बुद्धिरासि सुभ गुन मदन।—मानस, १। १। ३ अनिष्ट निवारण। उ०—मकर दीन दयान अद, येहि पर होहु कृपान। नाप अनुग्रह होइ जेहि, नाथ थोरेही काल। मानस—७। १०८। ४. राज्य या

राजा की कृपा से प्राप्त महायना । सरकारी रिवाजत । ५ पृष्ठ  
भाग का रक्षक [को०] ।  
अनुग्रही—वि० [म० अनुग्रहिन्] जादूगरी में पट्ट । वाजीगरी में  
निपुण [को०] ।  
अनुग्रासक—सज्ञा पु० [म०] ग्रास । कीर । नेवाला [को०] ।  
अनुग्राहक—वि० [म०] [वि० स्त्री० अनुग्राहिण] अनुग्रह करनेवाला ।  
कृपालु । महायक । उपकारी ।  
अनुग्राही—वि० [म० अनुग्रहिन्] दे० 'अनुग्राहक' ।  
अनुग्राह्य—वि० [स०] कृपा का पात्र । अनुग्रह के योग्य [को०] ।  
अनुघटन—सज्ञा पु० [म०] आपम में जोड़ना । मिनाना । सवध  
स्थापित करना [को०] ।  
अनुघात—सज्ञा पु० [म०] नाश । महार ।  
अनुघातन—वि० [स०] मार डालने या नाश करनेवाला । उ०—  
अथ अरिष्ट धेनुक अनुघातन ।—सूर, १०।६८१ ।  
अनुच(७)—वि० [म० अनुच्च] जो ऊँचा या थोड़ा न हो । अप्रैष्ट ।  
निम्न । नीच । उ०—इहि विधि उच्च अनुच तन धरि धरि  
देस विदेस विचरतौ ।—सूर, १।२०३ ।  
अनुचर—सज्ञा पु० [म०] [वि० स्त्री० अनुचरा, अनुचरी] पीछे चलने-  
वाला दाम । नीकर । उ०—अपनी आशयकता का अनुचर बन  
गया ।—कृष्ण, पृ० २६ । २ सहचर । साथी । उ०—  
सामने था गैंग में अनुचर मानिक युवक अथ ।—नहर, पृ० ७२ ।  
अनुचारक—सज्ञा पु० [स०] सेवक । परिचारक । अनुगामी [को०] ।  
अनुचारिका—सज्ञा स्त्री० [म०] सेविका । दासी [को०] ।  
अनुचारी—वि० [म०] दे० 'अनुचर' । उ०—तात, भरत, अनुघन,  
माडवी हम सब उनके अनुचारी ।—माकेत, पृ० ३८१ ।  
अनुचितन—सज्ञा पु० [म० अनुचितन] १ विचार । गौर । २ मूली हुई  
वान को मन में लाना । ३ लगातार चितन । चिन्ता [को०] ।  
अनुचित—वि० [म०] १ अयोग्य । अयुक्त । अकर्तव्य । नामुनासिब ।  
बुरा । खराब । उ०—जेहि वस जन अनुचिन करहि चरहि  
विषय प्रतिकूल ।—मानस, १।२७७ । २. पक्षिबद्ध किया  
हुआ [को०] ।  
अनुच्छिष्ट(७)—वि० [म० अनुच्छिष्ट] दे० 'अनुच्छिष्ट' । उ०—कुरुणमृत  
मुकवित्त युक्ति अनुच्छिष्ट उवारी ।—भक्तमाल (श्री०),  
पृ० ५३।७ ।  
अनुच्छिन्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ पूर्णतः पृथक् न होना । २ पूर्णतः  
नष्ट न होना । ३ अनश्वरता [को०] ।  
अनुच्छिष्ट—वि० [स०] जो जूठा या व्यग्रह न हो । शुद्ध । निर्दोष ।  
ग्रहण करने योग्य [को०] ।  
अनुच्छेद—सज्ञा पु० [म०] १ दे० 'अनुच्छिन्ति' । २ नियम, अधि-  
नियम आदि का वह अणु जिनमें एक वान का विशद विवरण  
हो । जैसे राष्ट्रमय के घोषणापन की ७ वी धारा का दूसरा  
अनुच्छेद । ३ किसी रचना या ग्रंथ के एक प्रकरण के वे छोटे  
छोटे अंग जिनमें मरद विषय के एक एक अंग का विवेचन  
होता है । पैराग्राफ ।

अनुच्छिन्न(७)—वि० [म० अनुच्छिन्न] क्षण क्षण । प्रत्येक क्षण । लगा-  
तार । उ०—'हरीचंद' ते महामूढ जे उनहि न अनुच्छिन्न  
व्याव ।—भारतेन्दु, भा० २, पृ० ८० ।  
अनुज<sup>१</sup>—वि० [म०] जो पीछे उत्तम हुआ हो । उ०—वन में अग्रज  
अनुज, अनुज ही अग्रणी ।—साकेत, पृ० १३४ ।  
अनुज<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ छोटा भाई । उ०—राम देवावहि अनुजहि  
रचना ।—मानस, १।२२५ । २ एक पीछा । म्यानपद्म ।  
अनुजन्मा—सज्ञा पु० [म० अनुजन्मन] दे० 'अनुज' [को०] ।  
अनुजा—सज्ञा स्त्री० [म०] छोटी बहन । उ०—कलिकान विहान किए  
मनुजा । नहि मानत बबो, अनुजा तनुजा ॥—मानस, ७।१०२ ।  
अनुजात—सज्ञा पु० [म०] [स्त्री० अनुजाना] दे० 'अनुज' [को०] ।  
अनुजीवी<sup>१</sup>—वि० [म० अनुजीविन्] [वि० स्त्री० अनुजीविनी] महारे पर  
जीनेवाला । आश्रित ।  
अनुजीवी<sup>२</sup>—सज्ञा पु० सेवक । दाम ।  
अनुजीव्य—वि० [म०] सेवा का पात्र । मेध्य । जैसे,—गुरु, स्वामी,  
माता पिता आदि । २ रहन रहन या आचार व्यवहार में  
अनुकरणीय । जैसे,—गुरुजन, आचार्य, वयोवृद्ध प्रादि [को०] ।  
अनुज्ञप्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'अनुज्ञापन' [को०] ।  
अनुज्ञा—सज्ञा स्त्री० [म०] १ आज्ञा । हुक्म । अनुमति । उजाजन ।  
उ०—गाँव अनुज्ञा उनसे धिने उस उपवन के फल खाए ।—  
माकेत, पृ० ३८६ । २ एक काव्यान्तकार जिसमें दूषित वस्तु  
में कोई गुण देखकर उसके पीने की इच्छा का वर्णन किया  
जाय । जैसे,—चाहति है हम और कहा सखि, क्यों हूँ कहँ रिय  
देखन पावै । चेरिय गो जु गुपान रवे तौ चनी री सनै मिलि  
चेरि कहावै ।—रमयान (अ० ३०) । ३ विवाह के प्रसंग में  
वाग्दान [को०] । ४ अनुताप । पश्चात्ताप [को०] । ५  
अनुरोध [को०] । ६ सद्ब्यवहार । अनुग्रह [को०] ।  
अनुज्ञात—वि० [म०] जिसे अनुमति प्राप्त हो । आदेशग्रस्त । २  
स्वीकृत । समानित । अनुगहीन । ३ अधिकृत । जिसे कोई  
अधिकार मिला हो । ४ पृथक् किया हुआ । ५ पड़ाया हुआ ।  
निष्णात [को०] ।  
अनुज्ञानक्रम—सज्ञा पु० [म०] सरकार की ओर से दिया हुआ कुछ  
वस्तुओं को बेचने का ठेका [को०] ।  
अनुज्ञान—सज्ञा पु० [स०] १ दे० 'अनुज्ञा' । २ प्रस्थान के लिये  
स्वीकृति । ३ क्षमा । क्षुति के लिये अनुग्रह [को०] ।  
अनुज्ञापक—वि० [स०] आज्ञा या आदेश देनेवाला [को०] ।  
अनुज्ञापन—सज्ञा पु० [म०] १ आज्ञा देना । हुक्म देना । २ जवाना ।  
वतलाना ।  
अनुज्येष्ठ—वि० [म०] १ ज्येष्ठतम में कनिष्ठ । मरने बड़े में छोटा ।  
द्वितीय । २ वरीयता के क्रम में दूसरा [को०] ।  
अनुतप्त—वि० [म०] १ तपा हुआ । गरम । २ दुखी । मेदयुक्त ।  
रजोदा ।  
अनुतर—सज्ञा पु० [म०] १ पार जाना । दूसरे छोर पर जाना । २  
नगरों में तानना । ३ नदी पार करने का किराया [को०] ।



अनुतर्प—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ प्यास । पीने की इच्छा । २ अभिलाषा । आकांक्षा । ३ मदिरापान । ४ पीने का पात्र । चपक । ५ मदिरा [को०] ।  
 अनुतर्षण—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ मदिरापान । २ मदिरा पीने का पात्र [को०] ।  
 अनुताप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुतप्त] १ तपन । दाह । जलन । २. दुःख । सेद । रज । ३ पछतावा । अफसोस ।  
 अनुतापन—वि० [सं०] दुःख देनेवाला । पश्चात्ताप उत्पन्न करनेवाला । शोकप्रद [को०] ।  
 अनुतापी—वि० [सं० अनुतापिन्] पश्चात्ताप करनेवाला । खेदयुक्त [को०] ।  
 अनुत्क—वि० [सं०] [स्त्री० अनुत्का] उत्कटारहित । अनुत्सुक । अभिलाषारहित । विना लालसा का ।  
 अनुत्कट—वि० [सं०] छोटा । सूक्ष्म [को०] ।  
 अनुत्त—वि० [सं०] १ जो तर या भीगा न हो । सूखा २ अप्रेरित [को०] ।  
 अनुत्तम<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जिससे उत्तम दूसरा न हो । सर्वोत्तम । २ जो सबसे अच्छा न हो । सर्वोत्तम नहीं । घटिया [को०] ।  
 अनुत्तम<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ शिव । २ विष्णु [को०] ।  
 अनुत्तमता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घटियापन । बुराई । उ०—सुख से मन को है जो ममता, है उसमे छिपी अनुत्तमता ।—सागरिका, पृ० ७२ ।  
 अनुत्तर<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ निरुत्तर । लाजवादा । कायल । उ०—यहाँ से एक जिज्ञासा अनुत्तर जगेगी अनिमेष ।—हरी घास०, पृ० ५० । २ प्रधान । मुख्य [को०] । ३ सर्वोत्तम [को०] । ४ बृह । सलग्न [को०] । ५ जो उत्तरदर्शनी में न हो । दक्षिणी [को०] । ६ क्षुद्र । नीच [को०] ।  
 अनुत्तर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ जैन देवताओं का एक वर्ग । २ उत्तर का अभाव [को०] ।  
 अनुत्तरदायी—वि० [सं० अनुत्तरदायिन्] कर्तव्य और जिम्मेदारी न रखनेवाला । अपना उत्तरदायित्व न समझनेवाला ।  
 अनुत्तरित—वि० [सं०] उत्तरविहीन । उत्तररहित । उ०—पूछा तुम क्यों छिपे ? प्रश्न रहा अनुत्तरित ।—अपलक, पृ० ४८ ।  
 अनुत्तान—वि० [मं०] जो उत्तान न हो । पीठ के बल नहीं । छाती के बल में टा हुआ । चित्त नहीं । पट [को०] ।  
 अनुत्ताप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बीह्वो के अनुसार दस क्लेशों में से एक ।  
 अनुत्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुत्थित] उत्थान का अभाव । चेष्टा या श्रम का न होना [को०] ।  
 अनुत्पत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ उत्पत्ति का अभाव । २. विफलता । असफलता [को०] ।  
 अनुत्पत्तिक—वि० [सं०] जो अब तक उत्पन्न न हुआ हो [को०] ।  
 अनुत्पत्तिमम—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक ।  
 विगेष—यदि किसी वस्तु के प्रसंग में कोई हेतु कहा जाय और उत्तर में उसी के प्रसंग में यह कहा जाय कि जब तक उस

वस्तु की उत्पत्ति ही नहीं हुई, तब तक वह कहा हुआ हेतु कहाँ रहेगा ? तो ऐसे उत्तर को अनुत्पत्तिमम कहेंगे । जैसे, यदि वादी कहे—‘शब्द अनित्य है क्योंकि प्रयत्न से उत्पन्न होता है ।’ इसपर प्रतिवादी कहे—‘यदि शब्द प्रयत्न से उत्पन्न होता है तो प्रयत्न से पहले इसकी उत्पत्ति नहीं होगी । और जब शब्द उत्पन्न ही नहीं हुआ, तब प्रयत्न से उत्पन्न होने का गुण कहाँ पर रहेगा ? जब इस गुण का आधार ही नहीं रहा, तब वह अनित्यत्व का साधन कैसे कर सकता है ?’

अनुत्पन्न—वि० [सं०] जो उत्पन्न न हुआ हो । जो जन्मा न हो । जो उत्पन्न न किया गया हो [को०] ।

अनुत्पाद—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] उत्पत्ति का न होना । अस्तित्व में न आना [को०] ।

अनुत्पादक—वि० [सं०] उत्पन्न करने में असमर्थ । जिससे उत्पन्न न हो [को०] ।

अनुत्पादन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० ‘अनुत्पाद’ [को०] ।

अनुत्साह<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] मकल्प और प्रयत्न का अभाव । उ०—है शीतलता भी और दाह, उत्साह तथा है अनुत्साह ।—सागरिका, पृ० ७७ ।

अनुत्साह<sup>२</sup>—वि० १ दृढता या क्षमता में रहित । २ उदासीन । उत्साहहीन [को०] ।

अनुत्सुक—वि० [मं०] जो उत्सुक न हो । सामान्य । शांत । उत्कट न दिखानेवाला [को०] ।

अनुत्सूत्र—वि० [सं०] १ सूत्रों का अनुगामी । २ नियमों या नीतियों के अनुसार चलनेवाला [को०] ।

अनुत्सेक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गर्व का न होना । घमंड न होना । २. शीलिनता [को०] ।

अनुत्सेकी—वि० [सं० अनुत्सेकिन्] जो उत्तेजित न हो । घमंडरहित [को०] ।

अनुदक—वि० [मं०] १ जलशून्य । जल के अभाववाला (जैसे, मरुस्थल) । २ थोड़े जलवाला । नल्प जलवाला । ३ जिसे कोई पानी देनेवाला न हो [को०] ।

अनुदग्ग—वि० [नं०] १ जो ऊँचा न हो । नीचा । २ मुलायम । ३ कोमल । दुर्बल । ४ जिसमें तेजी या धार न हो [को०] ।

अनुदत्त—वि० [सं०] १ लौटाया हुआ । वापस किया हुआ । २ स्वीकार किया हुआ । ३ क्षमा किया हुआ [को०] ।

अनुदर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनुदरा] कुशोदर । पुत्रला । पत्नला ।

अनुदर्शन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निरीक्षण । पर्यवेक्षण । २ स्वीकार आदर [को०] ।

अनुदात्त—वि० [सं०] १ छोटा । तुच्छ । जो उच्चाशय न हो । २ नीचा (स्वर) । लघु (उच्चारण) । स्वर के तीन भेदों में से एक । वह स्वर जिसपर बलाघात न हो ।

अनुदान—सञ्ज्ञा पुं० [नं० अनुदान] १ किसी कार्य के लिये कुछ प्रतिबद्धों के साथ दी जानेवाली सरकारी सहायता । सरकारी विभागों द्वारा व्यय होने के लिये स्वीकृत धनराशि । २ लौटाना । प्रत्यावर्तन [को०] ।

अनुदार—वि० [न०] १ सूत। कनूत। २ संकुचित हृदयवाला। सकीर्ण विचारवाला। ३ अत्यंत उदार। महान्। ४ जिसकी दारा या पत्नी भली और अनगंमन करनेवाली हो [को०]।  
 अनुदित—वि० [स०] अकथित। जो कहा न गया हो। २ जो उदित न हुआ हो। जो सामने न आया हो। ३ न कहने योग्य। निदनीय [को०]।  
 अनुदिन—कि० वि० [म०] नित्यप्रति। प्रतिदिन। रोजमर्रा। उ०—  
 तुलसी मकल कल्याण ते नर नारि अनुदिन पावही।—  
 तुलसी ग्र०, पृ० ६३।  
 अनुदिवस—कि० वि० [म०] दे० 'अनुदिन' [को०]।  
 अनुदृष्टि<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] कृपादृष्टि। अनुकूल दृष्टि। [को०]।  
 अनुदृष्टि<sup>२</sup>—वि० कृपादृष्टि रखनेवाला। अनुकूल दृष्टि रखनेवाला [को०]।  
 अनुद्धत—वि० [म०] १ जो उद्धत न हो। अनुग्र। २ सीम्य। शात। ३ विनीत।  
 अनुद्धरण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ न हटाना। २ स्थापना न करना। प्रमाणित न करना [को०]।  
 अनुद्धर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [म०] उद्वेग का अभाव। शान्ति।  
 अनुद्धार—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ बँटवारा न करना या अपना भाग न लेना। २ दे० 'अनुद्धरण' [को०]।  
 अनुद्धृत—वि० [स०] १ बिना बँटा। अविभक्त। २ न हटाया हुआ। ३ अनष्ट। अक्षत। दुस्त। ४ अप्रमाणित। जिसकी स्थापना न की गई हो [को०]।  
 अनुद्भट—वि० [स०] मृदु स्वभाववाला। अघृष्ट। २ भीम्य। अहंकार-  
 शून्य। निरभिमानी [को०]।  
 अनुद्यत—वि० [स०] अतत्पर। सुस्त। काहिल। अकर्मण्य [को०]।  
 अनुद्यम<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] उद्योग या उद्यम का अभाव [को०]।  
 अनुद्यम<sup>२</sup>—वि० उद्योग या अम न करनेवाला। अनुद्यमी [को०]।  
 अनुद्यमी—वि० [म०] अनुद्यमिन् उद्यमरहित। आलसी। सुस्त। अलहदी।  
 अनुद्युत—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ लगातार जुग्रा खेदना। २ महाभारत के समापर्व के अध्याय ७० से ७९ तक का नाम [को०]।  
 अनुद्योग<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] आनस्य। सुस्ती। अकर्मण्यता [को०]।  
 अनुद्योग<sup>२</sup>—वि० अनुद्योगी। अकर्मण्य [को०]।  
 अनुद्योगी—वि० [स०] अनुद्योगिन् आलसी। निष्क्रिय। अकर्मण्य। सुस्त [को०]।  
 अनुद्रुत<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] सगीत में ताल का एक भेद। द्रुत का आधा और मात्रा का एक चौथाई समय।  
 अनुद्रुत<sup>२</sup>—वि० जिसका पीछा किया गया हो। अनुगमित। अनुधावित [को०]।  
 अनुद्राह—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अविवाह ब्रह्मचर्य। अविवाहित रहना [को०]।  
 अनुद्विग्न—वि० [स०] निश्चित। शात। चिंतामुक्त। आशंकारहित [को०]।  
 अनुद्वेग<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] आशंका का अभाव। भय से मुक्ति या सुरक्षा [को०]।  
 अनुद्वेग<sup>२</sup>—वि० उद्वेगरहित। अनुद्विग्न [को०]।

अनुधावन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] [वि० अनुवाधक, अनुधावित, अनुधावी]  
 १. पीछे चलना। अनुसरण। २ अनुकरण। नकल। ३ अनुसंधान। खोज। ४ बार बार बुद्धि दीडाना। विचार। चिंतन। ५. शुद्ध करना। सफाई [को०]।  
 अनुधुपित—वि० [स०] फूना हुआ। गर्बित। अभिमानी [को०]।  
 अनुध्यान—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ किसी विषय का चिंतन। ध्यान। २. स्मरण। विचारणा। ३ शुभचिंतन [को०]।  
 अनुध्यायो—वि० [स०] अनुध्यायिन् १ चिंतन करनेवाला। ध्यान में स्थित होनेवाला। २ खोया हुआ। अन्धमनस्क [को०]।  
 अनुध्येय—वि० [म०] जिसका शुभ चिंतन किया जाय। जिसके प्रति अनुराग हो [को०]।  
 अनुध्वनि—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] प्रतिध्वनि। गूँज। उ०—अवर से टकरा-  
 कर अनुध्वनि आ गई त्वरित।—अपलक, पृ० ८७।  
 अनुनत—वि० [स०] अनु + नत विनीत। अनुशासित। शीलयुक्त। उ०—चिर अनुनत सौंदर्य के समादर में गुर्जरेश मेरी उन इगितो में नाच उठे।—लहर, पृ० ७१।  
 अनुनय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ विनय। विनती। प्रार्थना। उ०—  
 अनुनय भरी वाणी गूँज उठी कान में।—लहर, पृ० ७१।  
 २ मानना।  
 अनुनयमान—वि० [स०] विनयशील। शिष्ट। सराधन करने वाला। [को०]।  
 अनुनयी—वि० [अनुनयिन्] विनीत। नम्र। विनयी [को०]।  
 अनुनाद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० अनुनादित] प्रतिध्वनि। गूँज। गुजार।  
 अनुनादित—वि० [स०] प्रतिध्वनित। जिसका अनुनाद या गूँज हुई हो।  
 अनुनादी—वि० [स०] अनुनादिन् प्रतिध्वनि करनेवाला। आवाज करनेवाला। गुजायमान [को०]।  
 अनुनायक—वि० [स०] सकोची। विनम्र [को०]।  
 अनुनायिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] मुख्य नायिका की सहचरी। जैसे,—  
 सखी, दासी, परिचारिका आदि।  
 अनुनासिक<sup>१</sup>—वि० [स०] जो (अक्षर) मुँह और नाक से बोला जाय।  
 अनुनासिक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ मुख और नासिका के योग से उच्चरित वर्ण जैसे,—ङ, ञ, अ, ए, न, म और अनुस्वार। २ नाक से बोली जानेवाली ध्वनि।  
 अनुनीत—वि० [स०] १. मर्यादित। अनुशासित। [को०]। २. गृहीत [को०]। ३. प्रतिष्ठित। पूजित [को०]। ४. सनुष्ट। संरा-  
 धित [को०]। ५. विनयपूर्वक सत्कृत। उ०—किंचित् अनुनीत स्वर मे हरिप्रसन्न ने कहा।—मुनीता, पृ० ३२४।  
 अनुनीति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अनुनय' [को०]।  
 अनुनीय—वि० [स०] १. अनुनययोग्य। सराधन के योग्य [को०]।  
 अनुनीय—वि० [स०] दे० 'अनुनीय' [को०]।  
 अनुन्नत—वि० [स०] जो ऊँचा न हो। जो उमरा न हो (नीचा)। जो ऊपर उठा न गया हो। जिनकी उन्नति न हुई हो [को०]।  
 अनुन्नतगात्र—वि० [स०] अधिकसित या अल्प विकसित अंगोवाला। अप्लष्ट अंगोवाला [को०]।

अनुपत्तानत—वि० [स०] समतल [को०] ।

अनुपत्त—वि० [स०] जो मतवाला या पागल न हो [को०] ।

अनुपत्तित—वि० [स०] दे० 'अनुपत्त' [को०] ।

अनुपत्ता<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] पागलपन का न होना । उन्माद का अभाव [को०] ।

अनुपत्ता<sup>२</sup>—वि० दे० 'अनुपत्त' [को०] ।

अनुप<sup>३</sup>—वि० [स० अनुपम] बेजोड़ । उपमारहित । उ०—सकल सत्त दासी अनुप । नृप इद्रावति अपि ।—पृ० रा०, ३३।७२।

अनुपकार—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अनुपकारक, अनुपकारी] १ उपकार का अभाव । २ अपकार । हानि ।

अनुपकारी—वि० [स०] १ उपकार न करनेवाला । अकृतज्ञ । अपकार करनेवाला । हानि पहुँचानेवाला । २ फजूल । निकम्मा ।

अनुपकारीमित्र—सज्ञा पुं० [स०] शत्रु राजा का मित्र ।

अनुपक्षित—वि० [स०] न छीजनेवाला । क्षीण न होनेवाला [को०] ।

अनुपगत—वि० [म०] दूर का ।

अनुपगीत—वि० [स०] जिसकी प्रशंसा न की गई हो । अप्रशंसित [को०] ।

अनुपजीवनीय—वि० [म०] जिसे जीवननिर्वाह के लिये पर्याप्त प्राप्ति न हो सके । २ जिसके पास जीवननिर्वाह का साधन न हो । साधनहीन [को०] ।

अनुपतन—सज्ञा पुं० [स०] १. गिरना । क्रमशः गिरना । एक के बाद दूसरे का पतन । २ पीछा करना । अनुसरण । ३. निश्चित क्रम में आगे बढ़ना । ४ अनुपात । ५ गणित का त्रैशिक नियम [को०] ।

अनुपद<sup>१</sup>—क्रि० वि० [स०] १ पीछे पीछे । कदम व कदम । उ०—वधू उर्मिला अनुपद थी, देख गिरा भी गद्गद थी ।—माकेत, पृ० ८४ । २ अनन्तर । बाद ही ।

अनुपद<sup>२</sup>—वि० पीछे पीछे चलनेवाला । कदम व कदम पीछे चलनेवाला । पदानुसरण करनेवाला [को०] ।

अनुपद<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० १. गीत में बार बार दोहराया जानेवाला पद । टेक । २ शब्दशः व्याख्या [को०] ।

अनुपदवी—सज्ञा स्त्री० [स०] पथ । मार्ग । सड़क [को०] ।

अनुपदिक—वि० [म०] १ पीछे चलनेवाला । पदानुसरण करनेवाला पीछे गया हुआ [को०] ।

अनुपदी—वि० [पुं० अनुपदिन्] पीछा करनेवाला । खोज करनेवाला । अन्वेषक । पता लगानेवाला [को०] ।

अनुपदीना—सज्ञा स्त्री० [स०] जूता । मोजरी । पूरे पैर की लवाई का जूता ।

अनुपधा—सज्ञा स्त्री० [स०] वचकता ।

अनुपधि—वि० [स०] निश्छल । निष्कपट । धोखे, धडो से रहित [को०] ।

अनुपनीत—वि० [स०] १ अप्राप्त । न लाया हुआ । २ जिसका उपनयन संस्कार न हुआ हो ।

अनुपन्यस्त—वि० [स०] यज्ञ जिसका न्यास या स्थापन विधिपूर्वक न हुआ हो [को०] ।

अनुपन्यास—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अनुपन्यस्त] १ प्रमाण या निश्चय का अभाव । असमाधान । २ सदेह । अनिश्चय [को०] ।

अनुपपत्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ उपपत्ति का अभाव । २ असमाधान । असंगति । ३ असिद्धि । ४ अप्राप्ति । ५ असंपन्नता । असमर्थता ।

अनुपपन्न—वि० [म०] १ अप्रतिपादित । २ जो साबित न हुआ हो । ३ अयुक्त । ४ असमय [को०] । ५ जो सही ढंग में समर्थ न हो [को०] ।

अनुपम—वि० [म०] उपमारहित । बेजोड़ । जिसकी टक्कर का दूसरा न हो । बेमिसाल । बेनज़ीर । उ०—अनुपम शोभाग्राम आभूषण ये तारका ।—कानन०, पृ० ६७ ।

अनुपमता—सज्ञा स्त्री० [म०] अनुपम होना । उमाता का अभाव । बेजोड़पन ।

अनुपमर्दन—सज्ञा पुं० [म०] अभियोग या आरोप का खडन न किया जाना [को०] ।

अनुपमा—सज्ञा स्त्री० [स०] दक्षिण-पश्चिम दिशा के तज । कुमुद की पत्नी [को०] ।

अनुपमित—वि० [म०] १ 'अनुपम' [को०] ।

अनुपमेय—वि० [स०] दे० 'अनुपमा' ।

अनुपयुक्त—वि० [म०] अयोग्य । बेठीक । बेढव ।

अनुपयुक्तता—सज्ञा स्त्री० [म०] अयोग्यता । बेढवपन ।

अनुपयोग—सज्ञा पुं० [स०] १ व्यवहार का अभाव । काम में न लाना । २ दुर्व्यवहार ।

अनुपयोगिता—सज्ञा स्त्री० [स०] उपयोगिता का अभाव । निरर्थकता ।

अनुपयोगी—वि० [स० अनुपयोगिन्] [सज्ञा अनुपयोगिता] बेकाम । व्यर्थ का । बेमतलब का । बेमसरफ ।

अनुपूरत—वि० [स०] १ जो मृत न हो । २ बेरोक । अबाधित [को०] ।

अनुपलभ—सज्ञा पुं० [अनुपलम्भ] ज्ञान का अभाव । जानकारी न होना [को०] ।

अनुपल—वि० [स०] प्रतिक्षण । हर समय । हर घड़ी । उ०—वह प्रजा से अनुपल मिलने को सन्नद्ध रहता था ।—प्रादि० भारत, पृ० २५७ ।

अनुपलब्ध—वि० [स०] १ अप्राप्त । न मिला हुआ । २ अनदेखा । अकल्पित । अज्ञात [को०] ।

अनुपलब्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० अनुपलब्ध] १ अप्राप्ति । न मिलना । २ कल्पना या ज्ञान का अभाव [को०] ।

अनुपलब्धिसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक ।

विशेष—यदि वादी किसी बात के न पाए जाने के आधार पर कोई बात सिद्ध करना चाहता है, और उसके उत्तर में प्रतिवादी किसी और बात के न पाए जाने के आधार पर उसके विपरीत बात सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, तो ऐसे उत्तर को अनुपलब्धिसम कहते हैं ।

अनुपवीती—वि० [स० अनुपवीतिन्] यज्ञोपवीत धारण न करने वाला [को०] ।

अनुपशय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रोगज्ञान के पाँच विधानों में से एक ।  
 विशेष—इसमें आहार विहार के बुरे फल को देखकर यह निश्चय  
 किया जाता है कि रोगी को अमुक रोग है । वि० ३० 'उपशय' ।  
 अनुपस्कृत—वि० [सं०] १ अपरिष्कृत । जिसपर पालिम न की गई  
 हो । २ शुद्ध । निष्कलुष । ३ जो पकाया न गया हो ।  
 ४ जिसके मवध में मन में कोई भ्रम न हो [को०] ।  
 अनुपस्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अनुपस्थिति [को०] ।  
 अनुपस्थित—वि० [सं०] जो सामने न हो । जो मौजूद न हो ।  
 अविद्यमान । गैरहाजिर ।  
 अनुपस्थिति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अविद्यमानता । गैरमौजूदगी । गैर-  
 हाजिरी । उ०—प्रत्युत्तर की अनुपस्थिति में हम भी पाद-  
 पूर्ति सा होना है दुष्काव्य में ।—महाराणा, पृ० १४ ।  
 अनुपहत—वि० [सं०] १ अव्यवहृत । कोरा । नया (वस्त्र) । २ जो  
 टूटा न हो । अलन [को०] ।  
 अनुपाख्य—वि० [सं०] जो साफ देखा या जाना न जाय । जिसका  
 केवल अनुमान किया जाय । अनुमेय [को०] ।  
 अनुपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गणित की त्रैराशिक क्रिया । २ दो  
 हुई तीन सख्याओं में चौथी को जानना । ३ अनुसरण ।  
 पीछा करना [को०] । ३ एक के बाद दूसरे का पतन । लगा-  
 तार गिरना [को०] ।  
 अनुपातक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्महत्या के समान पाप जैसे, चोरी,  
 झूठ बोलना, परम्परागमन इत्यादि ।  
 अनुपादक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तत्र के अनुसार आकाश में भी सूक्ष्म  
 एक तत्त्व ।  
 अनुपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जो औपधि के नाथ या उसके  
 ऊपर से छाई जाय ।  
 अनुपातक—वि० [सं०] पदनाथ में रहित । नगै पैर [को०] ।  
 अनुपातीय<sup>१</sup>—वि० [सं०] औपधि के माथ दिया जानेवाला पेष  
 [को०] ।  
 अनुपातीय<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० बाद में पी जानेवाली वातु [को०] ।  
 अनुपाय—वि० [सं०] निहाय । उ०—राज्य सग तुम्हें कहाँ से हाथ ।  
 दे नकूँगा आर्य को अनुपाय ।—पाक्रेत, पृ० १६६ ।  
 अनुपायी—वि० [सं० अनुपायिन्] साधन का उपयोग न करनेवाला ।  
 उपाय न करनेवाला [को०] ।  
 अनुपार्श्व—वि० [सं०] पार्श्ववर्ती । बगलगीर [को०] ।  
 अनुपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अश्वदि पशुओं का रक्षक ।  
 रखवाला [को०] ।  
 अनुपालक—वि० [सं०] १ रक्षा करनेवाला । २ माननेवाला [को०] ।  
 अनुपालन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ रक्षण । २ पालन [को०] ।  
 अनुपाश्रयाभूमि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो बसनेवालों के अति-  
 रिक्त और दूसरों को आश्रय देने में असमर्थ हो अर्थात् जिसमें  
 और लोगों के बसने की गुजाइश न हो ।  
 अनुपासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ध्यान का अभाव । उपेक्षा [को०] ।  
 अनुपासित—वि० [सं०] उपेक्षित । जिसपर ध्यान न दिया जाय [को०] ।

अनुपुष्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वकथित व्यक्ति । २ अनुगामी ।  
 अनुयायी [को०] ।  
 अनुपुष्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की नरकुल [को०] ।  
 अनुपूर्व—वि० [सं०] यथाक्रम । अनुक्रमिक । मित्रमिलेवार ।  
 अनुपूर्वकेश—वि० [सं०] सुव्यवस्थित केशोंवाला [को०] ।  
 अनुपूर्वगात्र—वि० [सं०] सुडोल अंगोंवाला [को०] ।  
 अनुपूर्वदष्ट—वि० [सं०] सुदूर दृष्ट पक्षितियोंवाला [को०] ।  
 अनुपूर्वनाभि—वि० [सं०] सुदूर नाभिवाला [को०] ।  
 अनुपूर्वपाणिलेत—वि० [सं०] जिसके हाथ की रेखाएँ मुस्पष्ट तथा  
 व्यवस्थित हो [को०] ।  
 अनुपूर्ववत्सा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नियमित समय पर वच्चा देनेवाली  
 गाय [को०] ।  
 अनुपूर्व्य—वि० [सं०] व्यवस्थित । क्रमवद्ध [को०] ।  
 अनुपेत—वि० [सं०] १ जो शिक्षा या दीक्षा के लिये गुरु के यहाँ  
 भरती न हुआ हो । अदीक्षित । २ जिसका यज्ञोपवीत न हुआ  
 हो । अनुपनीत [को०] ।  
 अनुप्त—वि० [सं०] जो बोया न गया हो । बिना बोया हुआ ।  
 अनुप्रशस्य—वि० [सं०] बिना बोया । परती [को०] ।  
 अनुप्रज्ञान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अन्वेषण करना । पता लगाना । खोज  
 करना [को०] ।  
 अनुप्रदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट । उपहार । दान । २ वृद्धि ।  
 बढोत्तरी [को०] ।  
 अनुप्रवण—वि० [सं०] अनुकूल । जानेवाला । मनपसद [को०] ।  
 अनुप्रवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किंवदन्ती । अफवाह [को०] ।  
 अनुप्रवेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्रवेश करना । भीतर जाना । २ अपने  
 अवसर के अनुकूल बनाना । ३ अनुकरण [को०] ।  
 अनुप्रश्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सञ्चित प्रश्न । प्रसंगानुकूल जिज्ञासा [को०] ।  
 अनुप्रसक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्रगाढ़ प्रेम । गहरी आसक्ति । २ तर्क  
 शास्त्र के अनुसार शब्दों का निकट मवध [को०] ।  
 अनुप्रस्थ—वि० [सं०] चौड़ाई के अनुसार [को०] ।  
 अनुप्राणन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्राण संचारण । २ प्रेरणा । स्फुरण  
 [को०] ।  
 अनुप्राणित—वि० [सं०] प्राणवान् । मजीब । प्रेरित । उ०—  
 “भगवद्गीता भी जायसवाल जो के कयनानुसार मनुस्मृतिवाले  
 आदर्शों से ही अनुप्राणित है” ।—भा० इ० ६०, पृ० ७२६ ।  
 अनुप्राशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खाना । भक्षण । उ०—कछु दिन पवन  
 कियो अनुप्राशन रोक्यो शवाम यह जानी ।—सूर (शब्द०) ।  
 क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—होना ।  
 अनुप्रास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह शब्दानकार जिनमें किसी पद में एक ही  
 अक्षर बार बार आकर उस पद की अधिक शोभा का कारण  
 होता है । वर्णवृत्ति । वर्णसाम्य । वर्णमैत्री । जैसे—काक कहहि  
 कनकठ कठोरा ।—तुलसी (शब्द०) ।  
 विशेष—इसके पाँच भेद हैं—छेकानुप्रास, वृत्तानुप्रास, व्युत्पन्नानुप्रास,  
 अत्यनुप्रास और लाटानुप्रास ।

अनुप्रेक्षा—सज्ञा स्त्री० [न०] १ नेत्र नडाकर देवता। ध्यान में देखना। २ अथ के अर्थ का मनन अर्थात् मन से अभ्यास। पठित विषय का एकाग्र चित्त से चिन्तन।

अनुवच—सज्ञा पुं० [सं० अनुवचन्] १ वचन। लगाव। २ अविच्छिन्न क्रम। आगापीठा। निमिना। जैसे—किमी कार्य को करने के पहले उसका आगापीठा तोच लेना चाहिए (शब्द०)। ३ वशज। अनुवश (को०)। ४ होनेवाला शुभ या अशुभ परिणाम। फल। ५ उद्देश्य। इरादा। कारण (को०)। ६ गोण वस्तु। पूरक। अप्रधान वस्तु (को०)। ७ वात पित्त और कफ में से जो अप्रधान हो। ८ वादविवाद या विषयवस्तु को जीतनेवाली कड़ी। वेदात का एक अनिवार्य तत्व या अधिकरण। ९ अपराध। त्रुटि (को०)। १० पारिवारिक वाधा, भार या स्नेह (को०)। ११ पिता या गुण के पथ का अनुसरण करनेवाला बालक (को०)। १२ आरम। शीगणेश। १३ मार्ग। उपाय (को०)। १४ तुच्छ या नगण्य वस्तु (को०)। १५ मुख्य रोग के साथ उत्पन्न अन्य विकार (को०)। प्यास। तृषा (को०)। १६ अनुसरण। १७ करार। इकरारनामा। १८ पाणिनीय व्याकरण में धातु, प्रत्यय आदि का लोप होनेवाला वह उत्सर्जन नाकेतिक वर्ण जो गुण, वृद्धि प्रवाहाहार आदि के लिये उपयोगी हो।

अनुबन्धक—वि० [सं० अनुबन्धक] सबद्ध। सबधित। २ अनुबद्ध करनेवाला (को०)।

अनुवधन—सज्ञा पुं० [सं० अनुवधन्] सबध। अनुक्रम। सिनमिना। उ०—पूर्वार्ध प्रसंगों के अनुवधन में ब्रजविनायक की कला द्रुतविलंबित गति से प्रवाहित होती है।—गोद्वार० अभि०, प्र०, पृ० ३४६।

अनुवधिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अनुवन्धिका] जोड़ का दर्द (को०)।

अनुवधो<sup>१</sup>—वि० [सं० अनुवन्धिन्] [वि० स्त्री० अनुवन्धिता] १ मबधी।

लगाव रखनेवाला। २ फलस्वरूप। परिणामस्वरूप।

अनुवधो<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० १ हिचकी। २ प्यास।

अनुवद्ध—वि० [सं०] १ सबद्ध। लगाव रखनेवाला (को०)।

अनुवर्तन—सज्ञा पुं० [हि०] १ 'अनुवर्त्तन'। उ०—प्रगटित पूर्व विनिहि को जहाँ अनुवर्त्तन होत।—मतिराम ग्र०, पृ० ४२८।

अनुवल—सज्ञा पुं० [सं०] पीछे रहकर रक्षा करनेवाली सेना (को०)।

अनुवाद—सज्ञा पुं० [हि०] १ 'अनुवाद'। उ०—मुनन किरी हरि गुन अनुवादा।—मानम, ७।११०। २ जनश्रुति। अफवाह। उ०—ताहि तू बनाई जोई बांह दै उमीमें सोई ऐसे अनुवादन के अनुवा घनेरे है।—गग०, पृ० २६४।

अनुबोध—सज्ञा पुं० [सं०] १ स्मरण या बोध जो पीछे हो। २ किसी वस्तु की हल्की हो गई सुगंध को पुन तीव्र करना। गंधोद्दीपन।

क्रि० प०—करना—होना।

अनुबोधन—सज्ञा पुं० [सं०] स्मरण करना या कराना (को०)।

अनुब्राह्मण—सज्ञा पुं० [सं०] १ ब्राह्मण के समान अथ। जैसे, ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता जुलता अथ। २ ब्राह्मण जैसा कार्य (को०)।

अनुभव—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुभवी] १ प्रत्यक्ष ज्ञान। वह ज्ञान जो साक्षात् करने से प्राप्त हो। स्मृतिभिन्न ज्ञान। जैसे—सब

जीव पीछा का अनुभव करने है (शब्द०)। २ परीक्षा द्वारा पाया हुआ ज्ञान। उपाधिजित ज्ञान। तजरवा। जैसे,—जैसे इस कार्य का अनुभव नहीं है (शब्द०)। ३ समझ। मन में प्राप्त ज्ञान (को०)। ४ परिणाम। फल (को०)।

अनुभवना—क्रि० ग० [सं० अनुभव मे नाप्] अनुभव करना। बोध करना। उ०—गुण्य फल अनुभवन मुनिहि विनोक्ति नंद घरनि।—सूर०, १०।१०६।

अनुभवी—वि० [सं० अनुभविन्] अनुभव रखनेवाला। जिमने देख सुनकर जानकारी प्राप्त की हो। तजरबेकार। ज्ञानकार।

अनुभाऊ—सज्ञा पुं० [हि०] १ 'अनुभाव'। उ०—व्रगनि नप्रेम मरत अनुभाऊ।—मानम, २।२८८।

अनुभाव—सज्ञा पुं० [सं०] १ प्रभाव। महिमा। वडाई। २ काव्य म रम के चार अंगों में से एक। वे गुण और क्रियाएँ जिनसे रस का बोध हो। चित्त का भावप्रकाश करनेवाला कटाक्ष, रोमांच आदि चेष्टाएँ।

विशेष—अनुभाव के चार भेद हैं—साहित्यिक, काव्यिक, मानसिक और आहार्य। भाव भी इसी के अन्तर्गत माना जाता है।

अनुभावक—वि० [सं०] प्रतीति या अनुभूति करानेवाला (को०)।

अनुभावन—सज्ञा पुं० [सं०] चेष्टा या अभिना द्वारा मन के भावों को प्रकट करना (को०)।

अनुभावित—वि० [सं०] १ अत्यधिक शक्तिमत्त। २ रक्षित। ३ अनुभवमपन्न। अनुभवी (को०)।

अनुभावी—वि० [सं० अनुभाविन्] [वि० स्त्री० अनुभाविता] १ जिसे अनुभव या संवेदना हो। साक्षात्कार कारक। २ वह साक्ष्य जिसने सब बातें खुद देखी सुनी हो। चक्षुमदोष गवाह। ३ सूक्त के वे मन्त्रधो जिन्हें उनके मरने का अज्ञात लगे या जा आयु आदि में उनके छोटे हो। ४ बाद में आनेवाला। बाद में होनेवाला (को०)। ५ भाव दिखा देनेवाला (को०)।

अनुभापक—वि० [सं०] उत्तर में बोलनेवाला (को०)।

अनुभाषण—सज्ञा पुं० [सं०] १ खडन करने के लिये किसी स्थापना का पुन कथन। २ कथित वस्तु का पुन कथन। पुरातनान। आवृत्ति। ३ वार्तालाप। कथोपकथन (को०)।

अनुभास—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोप्रा (को०)।

अनुभूत—वि० [सं०] १ जिसका अनुभव हुआ हो। जिसका साक्षात् ज्ञान हुआ हो। २ परीक्षित। तजरवा किया हुआ। आजमूदा। यौ०—अनुभूतार्थ।

अनुभूति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अनुभव। परिज्ञान। आधुनिक न्याय के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमिति उपमिति और शब्दबोध द्वारा प्राप्त ज्ञान। २ इन्द्रिय ज्ञान या बोध। प्रत्यक्ष ज्ञान (को०)।

अनुभेद—सज्ञा पुं० [सं०] उपभेद। उ०—कौन बडो को छोट भेद अनुभेद न जानै।—सूर०, १०।१८६।

अनुभोग—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह जमीन जो किसी काम के बदले में माफी दी जाय। माफी। खिदमतरी। २ उाभोग।

अनुभी—सज्ञा पुं० [हि०] १ 'अनुभव'। उ०—अनुभी चर रैन दिन भरिया।—केशव० क्षमी०, पृ० ५०।

अनुभ्राता—सज्ञा पु० [म० अनुभ्रातृ] कनिष्ठ भ्राता । छोटा भाई ।  
अनुज [को०] ।

अनुमता—वि० [स० अनुमत्] अनुमति देनेवाला । स्वीकृति देने-  
वाला । चलते कार्य को होने देनेवाला [को०] ।

अनुमत—वि० [स०] १ अनुज्ञप्त । ममत । स्वीकृत । २ प्रिय ।  
मनपसंद । ३ एकमत । एकराय । ४ प्रेमी [को०] ।

अनुमति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ आज्ञा । अनुज्ञा । हुक्म । २ समति ।  
इजाजत । ३ वह पूर्णिमा जिसमें चंद्रमा की कला पूरी न हो ।  
चतुर्दशी से युक्त पूर्णिमा ।

अनुमतिपत्र—सज्ञा पु० [म० अनुमति + पत्र] किसी प्रतिवधित कार्य  
के करने के लिये सरकारी आज्ञापत्र । जैसे, एक देश से दूसरे  
देश में जाने के लिये सरकारी आज्ञापत्र, पासपोर्ट या  
विमा [को०] ।

अनुमत्त—वि० [म०] आनंद के अतिरेक से उन्मत्त । खुशी के मारे  
पागल [को०] ।

अनुमनन—सज्ञा पु० [म०] १ स्वीकृति देना । २ स्वतंत्रता [को०] ।

अनुमरण—सज्ञा पु० [स०] पश्चात् मरण । पति के साथ विधवा स्त्री  
का चितारोहण । मर्ती होना [को०] ।

अनुमरु—सज्ञा पु० [स०] मरुभूमि के वाद का देश [को०] ।

अनुमा—सज्ञा स्त्री० [स०] अनुमान । अनुमिति [को०] ।

अनुमाता—वि० [म० अनुमातृ] अनुमान लगानेवाला । निष्कर्ष  
निकालनेवाला [को०] ।

अनुमात्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] दृढ़ निश्चय । सकल्प [को०] ।

अनुमान—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० अनुमानित, अनुमित] १ अटकल  
अंदाजा २ विचार । भावना । कयास । ३. न्याय के अनुसार  
प्रमाण के चार भेदों में से एक ।

विशेष—इससे प्रत्यक्ष साधन के द्वारा अप्रत्यक्ष साध्य की भावना  
होती है। इसके तीन भेद हैं—(क) पूर्ववत् या केवलान्वयी  
जिसमें कारण द्वारा कार्य का ज्ञान हो । जैसे, बादल देखकर यह  
भावना करना कि पानी बरमेगा । (ख) शेषवत् या व्यतिरेकी,  
जिसमें कार्य को प्रत्यक्ष देखकर कारण का अनुमान किया  
जाय । जैसे, नदी की बाढ़ देखकर अनुमान करना कि उसके  
चढ़ाव की ओर पानी बरमा है । और (ग) सामान्यनोदृष्ट या  
अन्वयव्यतिरेकी, जिसमें नित्यप्रति के सामान्य व्यापार को  
देखकर विशेष व्यापार का अनुमान किया जाता है । जैसे, किसी  
वस्तु को स्थानान्तर में देखकर उसके वहाँ लाए जाने का  
अनुमान ।

अनुमानत—किं० वि० [म०] अटकल या अनुमान से [को०] ।

अनुमानना—किं० स० [स० अनुमान से नाम०] अनुमान करना ।  
सोचना । अंदाजा करना । उ०—ममय प्रतापमानु कर जानी ।  
आपन अति अममय अनुमानी ।—मानस १।१५८ ।

अनुमानाश्रित—वि० [म० अनुमान + आश्रित] जो अनुमान पर  
आधारित हो । जिसका कोई ठोस आधार न हो ।

अनुमानोक्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ तर्क । तर्कना । २ तर्कानु-  
मोदित निष्कर्ष [को०] ।

अनुमापक—वि० [म०] [स्त्री० अनुमापिका] अनुमान में नहायक [को०] ।

अनुमास—सज्ञा पु० [म०] १ आनेवाला महीना । २ मास प्रति  
मास [को०] ।

अनुमित—वि० [म०] अनुमान किया हुआ । अंदाजा हुआ ।

अनुमिति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ अनुमान । २ नव्य न्याय के अनुसार  
अनुमति के चार भेदों में से एक जिसमें किसी वस्तु के  
व्याप्त गुणों के कारण अन्य वस्तु का अनुमान किया जाय ।

अनुमितसा—सज्ञा स्त्री० [म०] निष्कर्ष या अनुमान निकालने की  
आकांक्षा [को०] ।

अनुमृता—सज्ञा स्त्री० [म०] वह स्त्री जो पति के साथ सती हो  
गई हो [को०] ।

अनुमेय—वि० [स०] अनुमान के योग्य ।

अनुमोद—सज्ञा पु० [म०] दे० 'अनुमोदन' [को०] ।

अनुमोदक—वि० [स०] अनुमोदन करनेवाला । समर्थन करनेवाला ।  
उ०—अनुमोदक तो नहीं किंतु निज अग्रज का अनुगत हूँ मैं ।  
—साकेत, पृ० ३६५ ।

अनुमोदन—सज्ञा पु० [म०] १ प्रसन्नता का प्रकाशन । खुश होना ।  
२ समर्थन । तारीफ़ । उ०—कटहि सुनिहि अनुमोदन करही ।  
ते गोपद डव भवनिवि तरही ।—मानस, ७।१०६ ।

अनुयाता—सज्ञा पु० [स० अनुयातृ] अनुगामी । साथी [को०] ।

अनुयात्र—सज्ञा पु० [म०] अनुचरो का दल । २ अर्द्धी में रहना ।  
३ अनुगमन [को०] ।

अनुयात्रा—सज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'अनुयात्र' [को०] ।

अनुयात्रिक—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अनुयात्रा' [को०] ।

अनुयात्रा—सज्ञा पु० [स०] अनुगमन । पीछे चलना [को०] ।

अनुयायी<sup>१</sup>—वि० [म० अनुयायिन्] [वि० स्त्री० अनुयायिनी] १ अनु-  
गामी । पीछे चलनेवाला । २ अनुकरण करनेवाला । शिक्षा या  
आदर्श पर चलनेवाला । ३ समान । तुल्य [को०] ।

अनुयायी<sup>२</sup>—सज्ञा पु० अनुचर । सेवक । दास । पैरोकार ।

अनुयुक्त—वि० [म०] १ जिसके संबंध में अनुयोग किया गया हो ।  
जिसके विषय में कुछ प्रश्न किया गया हो । जिज्ञासित ।  
२ निहित ।

अनुयोक्ता<sup>१</sup>—वि० [म० अनुयोक्त] [वि० स्त्री० अनुयोक्त्री] जिज्ञासा  
करनेवाला । पूछताछ करनेवाला ।

अनुयोक्ता<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ परीक्षक । २ मृतकाध्यापक । शुल्क  
लेकर पढ़ानेवाला अध्यापक [को०] ।

अनुयोग—सज्ञा पु० [म०] १ प्रश्न । जिज्ञासा । पूछताछ । चेष्टा ।  
वाधा [को०] । ३ उद्यम । श्रम । चेष्टा [को०] । ४ आलोचना ।  
टीका [को०] ५ आध्यात्मिक या यौगिक मनन चिंतन [को०] ।

अनुयोजन—सज्ञा पु० [म०] [वि० अनुयोजित, अनुयोज्य] पूछने की  
क्रिया । प्रश्न करना । पूछना ।

अनुयोजित—वि० [स०] जिसके विषय में पूछताछ की गई हो ।

अनुयोज्य<sup>१</sup>—वि० [म०] १ प्रष्टव्य । जिसके विषय में पूछताछ की  
आवश्यकता हो । २ निदनीय । बुरा ।

अनुयोज्य<sup>२</sup>—सज्ञा पु० विश्वस्त मेवक । भूत [को०] ।



अनुरजक—वि० [स० अनुरजक] मन बहलानेवाला । प्रसन्न करनेवाला [को०] ।  
 अनुरजन—सञ्ज्ञा पुं० [स० अनुरज्जन] १ अनुराग । आसक्ति । प्रीति । २ दिलबहलाव ।  
 अनुरजित—वि० [स० अनुरजित] आनन्दित । अनुरागयुक्त । उ०—मन को अनुरजित करना ही यदि कविता का अन्तिम लक्ष्य माना जाय तो ।—रस०, पृ० २८ ।  
 अनुरक्त—वि० [स०] अनुरागयुक्त । प्रेमयुक्त ।—सरिता बनी माया उसे कहती कि तुम अनुरक्त हो ।—कानन, पृ० २६ । २ आसक्त । लीन । उ०—रहै सदा हरि पद अनुरक्त ।—सूर०, ६।५ । ३ प्रसन्न । खुश । सतुष्ट (को०) । ४ लालिमायुक्त । रंगीन (को०) । ५ हर प्रकार से अनुकूल । भक्त । निष्ठावान् (को०) ।  
 अनुरक्तप्रकृति—वि० [स०] (राजा) जिसकी प्रजा उसमें अनुरक्त हो । प्रजाप्रिय ।  
 अनुरक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] आसक्ति । अनुराग । प्रीति । भक्ति । उ०—उर मे जाने पर भी वन की स्मृति अनुरक्ति रहेगी यह ।—पंचवटी पृ० ११ ।  
 अनुरक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ नूपुर, घटा आदि की ध्वनि । २ प्रतिध्वनि । गुँज । ३ शब्दव्यञ्जना [को०] ।  
 अनुरणित—वि० [स०] झकृत । ध्वनित [को०] ।  
 अनुरत—वि० [स०] १ लीन । आसक्त । उ०—चरननि वित्त निरतर अनुरत रमना चरित रसाल ।—सूर०, १।१८६ । २ अनुरागी । प्रिय ।  
 अनुरति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] लीनता । आसक्ति । अनुराग । प्रीति ।  
 अनुरत्न—वि० [स० अनुरत्न, प्रा० अनुरत्न] १ 'अनुरक्त' उ०—मजे सूर सावत मव, सुमुख समर अनुरत्न ।—हम्मीर, पृ० २३ ।  
 अनुरथ—सञ्ज्ञा स्त्री० [ग०] सड़क के दोनों ओर पैदल चलने का मार्ग । सड़क का किनारा । पटरी । [को०] ।  
 अनुरध—वि० [स० अनुरध] १ 'अनिरुद्ध' । उ०—कृष्ण गेह कै काम । काम अगज जनु अनुरध ।—पृ० रा०, १।७२७ ।  
 अनुरस—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ गौण रस । अप्रधान रस । २ वह स्वाद जो किसी वस्तु में पूर्ण रूप से न हो । ३ 'अनुरसित' [को०] ।  
 अनुरसित<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] प्रतिध्वनि । गुँज [को०] ।  
 अनुरसित<sup>२</sup>—वि० प्रतिध्वनियुक्त [को०] ।  
 अनुरहस<sup>१</sup>—वि० [स०] एकांत । गुप्त । गोपनीय [को०] ।  
 अनुरहस<sup>२</sup>—क्रि० वि० गुप्त रूप में । ऐकानिक [को०] ।  
 अनुराग<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० अनुरागी] प्रीति । प्रेम । आसक्ति । प्यार । मुहब्बत । २ भक्ति भाव (को०) । ३ लाल रंग (को०) ।  
 अनुराग<sup>२</sup>—वि० लालिमायुक्त । लाल किया हुआ [को०] ।  
 अनुरागना<sup>१</sup>—क्रि० म० [स० अनुराग से हिं० नाम०] प्रीति करना । प्रेम करना । आसक्त होना । उ०—प्रम कहि भले नूप अनुरागे । रूप अल्प विचोकन लागे ।—मानस, १।२८२ ।  
 अनुरागना<sup>२</sup>—क्रि० म० प्रेमयुक्त होना । आसक्तियुक्त होना । उ०—सुनि प्रभुवचन अधिक अनुरागेउ ।—मानस, ७।८४ ।

अनुरागी—वि० [स० अनुरागिन्] [वि० स्त्री० अनुरागिनी] अनुराग रखनेवाला । प्रेमी । उ०—या अनुरागी वित्त की गति समझै नहि कोय ।—विहारी २०, दो० १२१ ।  
 अनुरात्र—क्रि० वि० [स०] प्रतिरात्रि । रात्रि में । एक के बाद दूसरी रात [को०] ।  
 अनुराध<sup>१</sup>—वि० [स०] १ कृत्याग्न करनेवाला । हितकारक । २ अनुराधा नक्षत्र में उत्पन्न [को०] ।  
 अनुराध<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] विनती । विनय । आराधन । प्रार्थना । याचना । उ०—पूर म्याम मन देहि न मेरी पुनि कहिहो अनुराध ।—सूर०, १०।१८८६ ।  
 अनुराधना—क्रि० म० [म०] अनुराध से हिं० नाम०] विनय करना । विनती करना । मनाना । प्रार्थना करना । उ०—मैं आजु तुम्हें गहि बाँधी, हा हा करि करि अनुराधी ।—सूर, १०।१८३ ।  
 अनुराधग्राम—सञ्ज्ञा पुं० [म०] अनुराध द्वारा स्थापित नका की प्राचीन राजधानी जिसका एक नाम अनुराधपुर भी है [को०] ।  
 अनुराधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] २७ नक्षत्रों में १७ वाँ नक्षत्र । उ०—मादो मुकना छट्ट को, जो अनुराधा होय । ताता मवन यो झुड़े, भूखा रहै न कोय (शब्द०) ।  
 विशेष—यह मान तारों के मिलने से सर्पाकर दिखाई देता है । यह नक्षत्र बड़ा शुभ और मांगलिक माना जाता है ।  
 अनुरद्ध—वि० [स०] १. रोकता हुआ । बाधित । निषेध प्रतीति । वाद किया गया हो । २ तोषित । सराधित [को०] ।  
 अनुरुहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार की घाम [को०] ।  
 अनुरूप—वि० [स०] [सञ्ज्ञा अनुरूपता] १ तुल्य रूप का । सदृश । समान । सरीखा । २ योग्य । अनुकूल । उपयुक्त । उ०—निज अनुरूप मुग वर माँगा ।—मानस, १।२८८ ।  
 अनुरूपक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अनु+रूपक] प्रतिमा । प्रतिमूर्ति । उ०—गोनियन दत्त कवि मुअर उर आनिए । सत्य जनरूप अनुरूपक बखानिए ।—केशव (शब्द०) ।  
 अनुरूपता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ समानता । सादृश्य । २ अनुकूलता । उपयुक्तता ।  
 अनुरूपना—क्रि० म० [स० अनुरूप से हिं० नाम०] समान या सदृश बनाना ।  
 अनुरूपासिद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] पुत्रो, माँ, वधुप्रो आदि को साम, दाम आदि द्वारा अपने पक्ष में करना ।  
 अनुरेवती—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] एक पीथा [को०] ।  
 अनुरोदन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] गोक की अभिव्यक्ति । महानुभूति [को०] ।  
 अनुरोध—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ क्लेश । बाधा । उ०—मोयु विनु अनुरोध कहु के बोध विहि न उपाउ । करन हैं मोड समय साधन फलति बात बनाउ ।—तुलसी अ०, पृ०, ३७३ । २ प्रेरणा । उत्तेजना । जैसे,—सत्य के अनुरोध से मुझे यह कहना ही पड़ता है (शब्द०) । ३ आग्रह । दवाव । विनयपूर्वक किसी बात के लिये हट । जैसे,—उसका अनुरोध है कि मैं औरेंजी भी पढ़ूँ (शब्द०) । ४ इच्छापूर्ति करना (को०) । ५. समान [को०] । ६. विचार [को०] ।

अनुरोधक—वि० [म०] अनुरोध करनेवाला (को०)।  
 अनुरोधन—सज्ञा पुं० [म०] १ अनुसरण। परिपालन। आजाका-  
 रणा। आदर। उच्छाप्ति। २ किसी का प्रेम प्राप्त करने का  
 माधन (को०)।  
 अनुरोधो—वि० [म० अनुरोधिन्] दे० 'अनुरोधक' (को०)।  
 अनुर्वर—वि० [म०] [वि० स्त्री० अनुर्वरा] १ जिसमें उपज न हो।  
 जो जरंगज न हो। उ०—इम विकराल, अनुर्वर, ऊसर अरध  
 काल प्रातर मे।—स्वामि, पृ० १४। २ निष्फल। उ०—  
 अपने मे मिमटी हुई मतिन विद्या अनुर्वरा की भाँकी।—  
 मागधेनी, पृ० १७।  
 अनुर्वन—वि० [म०] गहन। पीछे लगा हुआ। जान वृक्षकर चिपका  
 हुआ (को०)।  
 अनुवाप—सज्ञा पुं० [म०] १ वातचीत। वातलाप। उ०—प्राप्तियों  
 के बीच मे होने लगा अनुवाप।—शकुं०, पृ० ६। २ पुन-  
 र्गति। किसी बात को प्रकारांतर से बार बार कहना (को०)।  
 अनुलानित—वि० [म०] अनुरजित। जिसका मनोरजन किया गया  
 हो (को०)।  
 अनुलाम—सज्ञा पुं० [म०] मयूर। मोर (को०)।  
 अनुलास्य—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अनुनाम' (को०)।  
 अनुलिपि—सज्ञा पुं० [स० अनु + लिपि] प्रतिलिपि। नकल। उ०—  
 अनुलिपि आदि का कुछ कुछ अध्यास करना प्रारंभ कर देने से  
 नाम ही होता है। भाषा वि०, पृ० ६८।  
 अनुलेख—सज्ञा पुं० [म० अनु + लेख] अनुलिपि। प्रतिलिपि।  
 अनुलेख—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अनुलेपन'। उ०—समृति के विक्षत  
 पग रे, यह चलती है डगमग रे, अनुलेप नदृश तू लग रे।—  
 लहर, पृ० ५०।  
 अनुलेपक—वि० [म०] [स्त्री० अनुलेपिका] जो शरीर पर लेप, उवटन  
 आदि लगाता है (को०)।  
 अनुलेपन—सज्ञा पुं० [स०] १ किसी तरल वस्तु की तह चढाना।  
 लेपन। उ०—अनुलेपन या मधुर स्पर्श धो।—कामायनी, पृ०  
 २१५। २ मुगसि द्रव्य या औषधों का मर्दन। उवटन  
 करना। उटना लगाना। ३ लीना। पोतना।  
 अनुलेपी—वि० [म० अनुलेपिन्] दे० 'अनुलेपक' (को०)।  
 अनुलोम—सज्ञा पुं० [म०] १ ऊँचे से नीचे की ओर आने का क्रम।  
 उतार का विनियोग। २ उनमें से अधम की ओर आता हुआ  
 श्रेणीक्रम। ३ नीचे से मुँह का उतार। अवरोही। ४  
 प्रविशोम का उल्टा या विचोम (को०)।  
 यो०—अनुलोम विवाह।  
 अनुलोमज—वि० [म०] [वि० स्त्री० अनुलोमजा] वह (संतान) जो  
 अनुलोम विवाह से उत्पन्न हो। अनुलोम मकर।  
 अनुलोमजन्मा—वि० [म० अनुलोमजन्म] दे० 'अनुलोमज' (को०)।  
 अनुलोमन—सज्ञा पुं० [म०] १ वह औषध जो पेट में पड़े हुए गोठो  
 को दौड़ा करके निरा दे। पोछखडता को दूर करनेवाली  
 रेचक या भेदक औषध। २ स्थानांतरण। अनुलोम (को०)।

अनुलोम विवाह—सज्ञा पुं० [म०] उच्च वर्ण के पुरुष का अधरवर्ण  
 किसी नीच वर्ण की स्त्री के साथ विवाह।  
 जैसे—ब्राह्मण का क्षत्रिया, वैश्य या क्षत्र ने क्षत्रिय का वैश्य  
 या क्षत्र ने श्रौत वैश्य का क्षत्र में विवाह। इस प्रकार के मध्य  
 में जो मतन होती है वह अनुलोम मकर कहलाती है।  
 अनुलोमा—सज्ञा स्त्री० [म०] पति से नीचे वर्ण की स्त्री (को०)।  
 अनुलोमा सिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] पौर, जानपद तथा मेनापदियों  
 को दान तथा भेद से अपने अनुकूल करना।  
 अनुत्वग्ग, अनुत्वग्ग—वि० [स०] १ जो अधिक न हो। २ अधिक  
 न रूप। २ अस्पष्ट (को०)।  
 अनुवश—सज्ञा पुं० [म०] १ वशवृक्ष। वशावली। कुरमीनामा। २  
 अधुनिक या नई पीढ़ी (को०)।  
 अनुवश्य—वि० [म०] वशवृक्ष या वशावली में मरघित। जो कुरमी  
 नामे में हो (को०)।  
 अनुवक्ता—सज्ञा पुं० [म० अनुवक्त्] उत्तर देनेवाला। प्रतिकता। वाद  
 में बोलनेवाला। पुन पाठ करनेवाला। दोहराने वाला (को०)।  
 अनुवक्त्र—वि० [म०] १ अत्यंत कुटिल या टेढ़ा। २ कुटुंझ या  
 तिरछा (को०)।  
 अनुवचन—सज्ञा पुं० [म०] १ आवृत्ति। दोहराना। पठन। २.  
 अध्यापन। शिक्षण। व्याख्यान। भाषण। ३ अध्याय। पाठ।  
 प्रकरण। ४ भिन्न श्रुतियों द्वारा निर्दिष्ट विषयों के अनुसार  
 मन्त्रपाठ (को०)।  
 अनुवत्सर—सज्ञा पुं० [म०] ज्योतिष के अनुसार जो पाँच वर्ष का  
 युग होता है उसका चौथा वर्ष।  
 अनुवत्सर—कि० वि० प्रतिवर्ष। सालाना।  
 अनुवदना—वि० [म०] [स० अनु + वद्] बात दुहराना। जग  
 प्रत्युत्तर करना। कठहुंजनी करना। उ०—नय नहि अनुवद  
 मुपहु समाज।—विद्यापति, पृ० ३१८।  
 अनुवर्तन—सज्ञा पुं० [म०] १ अनुसरण। अनुगमन। २ अनुकरण।  
 समान आचरण। ३ किसी नियम का कई स्थानों पर बार बार  
 लगना। ४ परिणाम। फल (को०)। ५ स्वजायमाप (को०)।  
 अनुवर्तिनी—वि० [स०] अनुगमिनी। अनुसरण करनेवाली।  
 अनुवर्तिनी—सज्ञा स्त्री० भार्या। पत्नी (को०)।  
 अनुवर्ती—वि० [म० अनुवर्तिन] [स्त्री० अनुवर्तिनी अनुवर्तिनी] कर्म-  
 वाता। अनुसार परनाम करनेवाला। अनुवासी। अनुगामी।  
 वैसी करनेवाला।  
 अनुवश—वि० [म०] अनुगत। दूसरे के जग पर चलाया।  
 रगतनी। आजारागी (को०)।  
 अनुवश—सज्ञा पुं० आजागरिता। गजसिपा (को०)।  
 अनुवसित—वि० [म०] १ कपड़े में डीरा हुआ। पन्ना डाला या छि-  
 दित। २ बीछा हुआ। संवत्। मन्त्र (को०)।  
 अनुवह—सज्ञा पुं० [म०] अग्नि की मार सिद्धांतों में से एक का  
 नाम (को०)।

अनुवा<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पु० [म० अनूप = जलयुक्त, प्रा० अणूव] १ कुएं के जगत का वह भाग जहाँ खड़े होकर पानी खींचते हैं।  
२ पानी निकालने के लिये खोदा हुआ गड्ढा। चौड़ा। चोथा।  
३ ताल के पास का वह स्थान जहाँ से टोकरी या दौरी के द्वारा खेत सींचने के लिये पानी ऊपर फेंकते हैं। चौना।

अनुवा<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० [देश०] व्यभिचार दोष।

अनुवा<sup>३</sup>—[हि० आनना] आननेवाला। लानेवाला। उ०—ताहि तू वताड जोई बांह दै उसीसे सोई ऐसे अनुवादन के अनुवा घनेरे हैं।—गग०, अ० पृ० ७६।

अनुवाक—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ अथविभाग। अथावयव। अथखंड।  
अध्याय या प्रकरण का एक भाग। २ वेद के अध्याय का एक अंश। ३ दुहराना। पुन पढ़ना (को०)।

अनुवाचन—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ यज्ञो में विधि के अनुसार मन्त्रों का पाठ। २ पढ़ाना। अध्ययन कराना (को०)। ३ स्वयं पढ़ना (को०)।

अनुवाद—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ पुनरुक्ति। पुन कथन। दोहराना।  
२ भाषांतर। उल्था। तर्जुमा। ३ न्याय के अनुसार वाक्य का वह भेद जिसमें कही हुई बात का फिर फिर स्मरण और कथन हो। जैसे—‘अन्न पकाग्रो, पकाग्रो, पकाग्रो, शीघ्र पकाग्रो, हे प्रिय। पकाग्रो’।

विशेष—इसके दो भेद हैं—जहाँ विधि का अनुवाद हो वहाँ शब्दानुवाद और जहाँ विहित का हो वहाँ अर्थानुवाद होता है।

४ मीमांसा के अनुसार वाक्य के विधिप्राप्त आशय का दूसरे शब्दों में समर्थन के लिये कथन।

विशेष—यह तीन प्रकार का है—(क) भूतार्थानुवाद, जिसमें आशय की पुष्टि के लिये भूतकाल का उल्लेख किया जाय। जैसे, पहले सत् ही था। (ख) स्तुत्यर्थानुवाद, जैसे वायु ही सबसे बड़कर फेंकनेवाला देवता है। (ग) गुणानुवाद, जैसे, वही से हवन करे।

५ खबर। जनश्रुति (को०)। ६ व्याख्यान का आरम्भ (को०)। ७ विज्ञापन। सूचना (को०)।

अनुवादक—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ अनुवाद करनेवाला। भाषांतर करनेवाला। उल्था करनेवाला। २ सदृश। समान (को०)। ३ समर्थन करनेवाला (को०)।

अनुवादित—वि० [म०] अनुवाद किया हुआ। अनूदित।

अनुवादी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पु० [स० अनुवादिन्] संगीत में स्वर का एक भेद जिसे किसी राग में आवश्यकता न हो और जिसके लगाने से राग अशुद्ध हो जाय।

अनुवादी<sup>२</sup>—वि० दे० ‘अनुवादक’ (को०)।

अनुवाद्य—वि० [म०] अनुवाद के योग्य। व्याख्या के योग्य (को०)।

अनुवास—सञ्ज्ञा पु० [म०] दे० ‘अनुवामन’ (को०)।

अनुवासन—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ वस्त्रादि को सुगन्धित करना।

महकाना। २ सुश्रुत के अनुसार पिचकारी के द्वारा तरल औषध शरीर के भीतर पहुँचाना। वस्ति क्रिया। एनिमा।

अनुवासनवस्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ सुगन्धित करने का यंत्र। पिचकारी। २ शरीर के भीतर तरल औषध पहुँचाने की पिचकारी।

अनुवासित—वि० [म०] १ गंध से वसाया हुआ। गन्धद्रव्य में मुवासित। २ वस्ति क्रिया द्वारा चिकित्सा किया हुआ। एनिमा दिया हुआ (को०)।

अनुवासी—वि० [म० अनुवासिन्] पड़ोस में रहनेवाला। साथ रहनेवाला (को०)।

अनुवित्त—वि० [स०] प्राप्त। उपलब्ध (को०)।

अनुवित्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] प्राप्ति। उपलब्धि (को०)।

अनुविद्ध—वि० [स०] १ छेदा हुआ। जिसमें आर पार छेद किया हो। २ खचित। सलग्न। ३ भरा हुआ। परिपूर्ण। ४ मिला हुआ। युक्त। संयुक्त (को०)।

अनुविधान—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ आज्ञापालन। आज्ञाकारिता। २ आदेश या नियम के अनुसार कार्य करना।

अनुविधायी—वि० [म० अनुविधायिन्] [वि० स्त्री० अनुविधायिनी] १ आज्ञाकारी। विनीत। आदेशानुसारी। २ मिलता जुलता। तद्रूप (को०)।

अनुविनाश—सञ्ज्ञा पु० [स०] किसी के साथ लुप्त या नष्ट हो जाना (को०)।

अनुविहित—वि० [स०] आज्ञाकारी (को०)।

अनुवृत्त<sup>१</sup>—वि० [स०] १ अनुसरण करनेवाला। २ आज्ञापालन करनेवाला। ३ लगातार। अविच्छिन्न। ४ उत्तार चढ़ाव के साथ वर्तुलाकार। सुराहीदार। ५ शीनानुगत। ६ जिसकी आवृत्ति की गई हो (को०)।

अनुवृत्त<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० [स०] वृत्तांत। वर्णन। विवरण।

अनुवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ किसी पद के पहले अंश से कुछ वाक्य उसके पिछले अंश में अर्थ को स्पष्ट करने के लिये लाना जैसे—‘राम घर गए हैं और गोविंद भी (घर गए हैं)’।

२ स्वीकृति। संपुष्टि (को०)। ३ आज्ञाकारिता (को०)। ४ आवृत्ति (को०)। ५ अनुसरण। अनुकरण (को०)।

अनुवेध—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ छेदन करना। वेधना। २ संपर्क। मिलन। ३ मिश्रण। ४ बाधा (को०)।

अनुवेल्लित<sup>१</sup>—वि० [म०] नीचे झुका हुआ (को०)।

अनुवेल्लित<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० १ धाव पर पट्टी बाँधना। २ सुश्रुत के अनुसार धाव बाँधने के लिये १४ प्रकार की पट्टियों में से एक (को०)।

अनुवेश—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ अनुसरण। वाद में प्रवेश करना। पीछे पीछे प्रविष्ट होना। २ बड़े भाई से पहले छोटे का विवाह (को०)।

अनुवेशन—सञ्ज्ञा पु० [स०] दे० ‘अनुवेश’ (को०)।

अनुवेश्य<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ वह ब्राह्मण जो मग्न या शांति कर्म करनेवाले से एक घर के अंतर पर रहता हो।

विशेष—मनु ने किसी मग्न या शांति कर्म में ऐसे ब्राह्मण को भोजन कराने का निषेध किया है।

अनुवेश्य<sup>२</sup>—वि० प्रतिवेशी। पड़ोसी। सटे हुए मकान में रहनेवाला।

अनुव्याख्यान—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ मन्त्रों तथा सूत्रों की व्याख्या। मन्त्रविवरण। २ ब्राह्मण ग्रंथों का वह भाग जिसमें कठिन सूत्रों तथा मन्त्रों की व्याख्या हो। मन्त्रों आदि का अनुरूप अर्थ-प्रकाशक व्याख्यान (को०)।

अनुव्याध—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अनुवेध' [को०]

अनुव्याहरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बार बार दोहराना । पुनरुक्ति । २ किसी प्रसंग का प्रमगातर सहित उल्लेख । ३ श्राप । अनिष्ट-चिन्तन [को०] ।

अनुव्याहार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुव्याहरण' [को०] ।

अनुव्रजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विदा होते हुए विशिष्ट अतिथि के साथ कुछ दूर पहुँचाने जाना [को०] ।

अनुव्रज्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुव्रजन' [को०] ।

अनुव्रत<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ विश्वासपात्र । कर्तव्यारायण २ निर्दिष्ट कार्यों को दत्तचित होकर उचित रूप में करनेवाला [को०] ।

अनुव्रत<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० जैन मुनियों का एक वर्ग [को०] ।

अनुव्रता—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] सदा पति में अनुरक्त रहनेवाली स्त्री । पतिव्रता [को०] ।

अनुशक्तिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सौ में अधिक सैनिकों का नायक या अफसर ।

विशेष—इसका स्थान शतानीकों के ऊपर होता था जिन्हें यह नैतिक शिक्षा देता था ।

अनुशप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काम से ली हुई छुट्टी । रुखस ।

विशेष—चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में इसके मन्वध में वृद्धन में नियम दिए हैं ।

अनुशय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वद्वेष । पुराना वैर । अदावन । २ पश्चात्ताप । अनुताप । उ०—लघुता मत देखो वक्ष चीर, जिसमें अनुशय वन घुसा तीर ।—कामायनी, पृ० २५० । ३ भगडा । वादविवाद । कहासुनी । गर्मागर्मी । ४ दान मन्वधी भगडों का निर्णय, फल या फैसला ( अर्थ० ) । ५, घृणा (को०) । ६ लगाव । आसक्ति (को०) । ७ बुरे कर्मों का फल या परिणाम । कर्मविपाक (को०) ।

यो०—क्रोतानुशय = वे नियम जो क्रय विक्रय के भगडे में सवध रखें । नारद स्मृति में ये बड़े विस्तार के साथ कहे गए हैं ।

अनुशयान—वि० [सं०] पश्चात्ताप करनेवाला । पछतानेवाला [को०] ।

अनुशयाना—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ परकीया नायिका का एक भेद । वह नायिका जो अपने प्रिय का मिलने स्थान नष्ट हो जाने में दुखी हो ।

विशेष—यह तीन प्रकार की होती है । (क) मकेतविघट्टना = वर्तमान सकेत नष्ट होने से दुखी । (ख) नात्रिमकेतनष्टा = भावी सकेत के नष्ट होने की समावना से सतापित और (ग) रमणगमना = मिलने के स्थान पर प्रिय गया होगा और मैं नहीं पहुँच सकी, यह सोचकर जो दुखी हो ।

अनुशयी<sup>१</sup>—वि० [सं० अनुशयिन्] १. वैरी । द्वेषी । २. भगडालू । ३. पश्चात्तापयुक्त । पछतानेवाला । ४. चरणों पर पड़कर प्रणाम करनेवाला । ५. अनुरक्त । लीन । आसक्त । ६. कर्मफल का भोक्ता (को०) ।

अनुशयी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० वह राजकर्मचारी जो दान सौवरी भगडों का निर्णय करता था (अर्थ०) ।

अनुशयी<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० अनुशय + ई] रोगविशेष । एक प्रकार की फूँसी जो पैर में होती है ।

अनुशर—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दुष्टात्मा राक्षस ।

अनुशासक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ आज्ञा देनेवाला । आदेश देनेवाला । हुक्म देनेवाला । २ उपदेष्टा । शिक्षक । ३ देश या राज्य का प्रवध करनेवाला । हुक्मत करनेवाला ।

अनुशासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुशासक, अनुशासनीय, अनुशासित] १ आदेश । आज्ञा । हुक्म । उ०—अनुशासन ही था मुझे अभी तक आता ।—साकेत, पृ० २३५ । २ उपदेश । शिक्षा । ३ व्याख्यान । विवरण । ४. महाभारत का एक पर्व । ५. नियम । व्यवस्था ।

अनुशासनपर—वि० [सं०] आज्ञाकारी [को०] ।

अनुशासनपर्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] महाभारत का १३वाँ पर्व ।

अनुशासनोय—वि० [सं०] १ आज्ञा देने के योग्य । आदेश देने के योग्य । हुक्म देने के लायक । २ उपदेश देने के योग्य । शिक्षा देने के योग्य । ३ प्रवध करने के योग्य । हुक्मत करने के लायक ।

अनुशासित—वि० [सं०] १ जिसको आज्ञा दी गई हो । जिसे आदेश दिया गया हो । २ उपदिष्ट । शिक्षित । ३ जिसका प्रवध किया गया हो । जिसपर हुक्मत की गई हो ।

अनुशासी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अनुशासिन्] दे० 'अनुशासक' [को०] ।

अनुशास्ता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अनुशास्त्र] दे० 'अनुशासक' [को०] ।

अनुशिष्ट—वि० [सं०] १ शिक्षित । २ आदिष्ट । निदेशित । ३. पूछा हुआ ।

अनुशिष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] आदेश । शिक्षा । शासन [को०] ।

अनुशीलन—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] [वि० अनुशीलनीय, अनुशीलित] १ चिन्तन । मनन । आलोचन । उ०—देवों की मृष्टि विलीन हुई अनुशीलन में अनुदिन मेरे ।—कामायनी, पृ० ७१ । २ पुनः पुनः अभ्यास या अध्ययन । आवृत्ति ।

अनुशीलनीय—वि० [मं०] १ चिन्तन करने के योग्य । मनन करने के योग्य । विचार या आलोचना करने के योग्य । २ अभ्यास करने के योग्य ।

अनुशीलित—वि० [सं०] बार बार अभ्यस्त । सावधानी में अथवा ध्यानपूर्वक पठित [को०] ।

अनुशोक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] शोक । पश्चात्ताप । खेद [को०] ।

अनुशोचक—वि० [मं०] १. पश्चात्तापकर । खेदजनक । पछतानेवाला [को०] ।

अनुशोचन—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अनुशोक' [को०] ।

अनुशोचना—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० अनुशोचन] दुःख । शोक । खेद । चिन्ता । उ०—(क) 'क्यों हृदय को दुर्वल बनाकर अनुशोचना बढ़ा रहे हो' ।—राज्यश्री, पृ० ६ ।

अनुशोची—वि० [सं० अनुशोचिन्] दे० 'अनुशोचक' [को०] ।

अनुश्रव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वैदिक या धार्मिक परंपरा [को०] ।

अनुश्रविक—वि० [सं०] परंपरा से श्रुति द्वारा परीक्षित विषय (ज्ञान), जैसे, स्वर्ग, देवता, अमृत इत्यादि का ।

अनुश्रुत—वि० [सं०] परंपरा से सुनी गयी अथवा प्राप्त (ज्ञान आदि) [को०] ।

अनुश्रुति—सज्ञा स्त्री० [सं०] परंपरया मुनी या प्राप्त कथा, ज्ञान अथवा वात । उ०—अनुश्रुति है कि उनका निर्वाण विक्रम के जन्म से ४७० वर्ष पूर्व हुआ ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २२३ ।

अनुषण—सज्ञा पुं० [सं० अनुषङ्ग] [वि० अनुषणो, अनुषणिक] १ कहरण । दया । २ सवध । लगाव । साथ । ३ प्रसंग से एक वाक्य के आगे और वाक्य लगा देना । जैसे—‘राम वन को गए और लक्ष्मण भी’ । इस पद में ‘भी’ के आगे ‘वन को गए’ वाक्य अनुषण से समझ लिया जाता है । ४ न्याय में उपनय के अर्थ को निगमन में ले जाकर घटाना । किसी वस्तु में किसी और के तुल्य धर्म का स्थापन करके उसके विषय में कुछ निश्चय करना । जैसे,—घट आदि उत्पत्ति धर्मवाले हैं (उदाहरण), वैसे ही शब्द उत्पत्ति धर्मवाला है (उपनय), इसलिये शब्द अनित्य है (निगमन) । ५ उत्कट लालसा । तीव्र इच्छा । ६ अर्थपूर्ति के लिये एक या अनेक शब्दों की आवृत्ति (को०) । ७ घालमेल । मिश्रण (को०) । ८ अवश्य होनेवाला फल (को०) । ९ एक शब्द का दूसरे से सवध (को०) ।

अनुषणिक—वि० [सं० अनुषङ्गिक] १ अनिवार्य फलरूप । २ सवध या प्रसंगवश प्राप्त । सबद्ध (को०) ।

अनुषणो—वि० [सं० अनुषङ्गिन्] १ सवधी । २ २० ‘अनुषणिक’ (को०) । अनुषक्त—वि० [सं०] १ घनिष्ठ सवध या लगाववाला । २ सलग्न । संपृक्त (को०) ।

अनुपत्ति—वि० [सं०] १ सवद्धता । सलग्नता । २ आसक्ति (को०) ।

अनुषिक्त—वि० [सं०] वार वार सिंचित । (को०) ।

अनुषेक—सज्ञा पुं० [सं०] वार वार सीचना । फिर फिर पानी डालना या छिड़कना (को०) ।

अनुषेचन—सज्ञा पुं० [सं०] २० ‘अनुषेक’ (को०) ।

अनुष्टुप्—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अष्टाक्षरपदी छंद । बत्तीस अक्षरों का एक वर्णवृत्त ।

विशेष—इसमें आठ आठ वर्ण के चार पद या चरण होते हैं, प्रत्येक चरण का पाँचवाँ अक्षर सदा लघु और छठा सदा गुरु होता है तथा दूसरे और चौथे चरणों का सातवाँ अक्षर भी लघु ही होता है । शेष वर्णों के लिये कोई नियम नहीं है । “छंद प्रभाकर” के अनुसार माणवक्रीडा, प्रमाणिका, लक्ष्मी, विपुला, गजगति, विद्युन्माला, मल्लिका, तुंग, पद्म, वितान, रामा, नराचिका, चित्रपदा और श्लोक अनुष्टुप् छंद हैं । इनके लक्षण और भेद अलग अलग हैं ।

२ सरस्वती (को०) । ३ वाणी । वाक् (को०) । ४ आठ की सज्ञा ।

अनुष्ठातव्य—वि० [सं०] अनुष्ठान किए जाने योग्य । अनुष्ठेय ।

अनुष्ठाता—वि० [सं० अनुष्ठातृ] कार्य करने या कार्यात्म करनेवाला । अनुष्ठानकर्ता (को०) ।

अनुष्ठान—सज्ञा पुं० [सं०] १. कार्य का आरम्भ । किसी काम का शुरू । २ नियमपूर्वक कोई काम करना । ३ शास्त्रनिहित कर्म करना । ४ किसी फल के निमित्त किसी देवता की आराधना । प्रयोग । पुरश्चरण ।

अनुष्ठानक्रम—सज्ञा पुं० [सं०] धर्मकृत्यों का क्रम (को०) ।

अनुष्ठानशरीर—सज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य के शरीर में स्थित मूत्र और रक्त शरीर के मध्य की स्थिति जिस अधिष्ठानशरीर भी कहते हैं (को०) ।

अनुष्ठापन—सज्ञा पुं० [सं०] कार्य में प्रवृत्त करना अथवा कार्य कराना (को०) ।

अनुष्ठायी—वि० [सं० अनुष्ठायिन्] अनुष्ठान या कार्य करनेवाला (को०) ।

अनुष्ठित—वि० [सं०] सविधि पूरा किया हुआ । नष्ट । पूर्ण । उ०—मुप्रमान किया अनुष्ठित राजपूत गुरीनि से ।—कानन०, पृ० ११३ ।

अनुष्ठेय—वि० [सं०] कर्तव्य । करने योग्य अनुष्ठान योग्य (को०) ।

अनुष्ण<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो गर्म न हो । ठंडा । २ आनमी । मुद्ग (को०) ।

अनुष्ण<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० नील कमल (को०) ।

अनुष्णाक—वि० [सं०] ‘अनुष्ण’ (को०) ।

अनुष्णागु—सज्ञा पुं० [सं०] नील किरणोंवाला । वरुण (को०) ।

अनुष्णावलिन्का—सज्ञा स्त्री० [सं०] नीली दूध । नील दूध (को०) ।

अनुष्णपद—सज्ञा पुं० [सं०] गाड़ी का पिछला चक्का (को०) ।

अनुसधान—सज्ञा पुं० [सं० अनुसंधान] [वि० अनुसधाना] पश्चाद्गमन । पीछे लगना । २ अनुवर्ण । खोज । दूढ़ । जाँच पड़ताल । तलाश । तहकीकात । ३ चेष्टा । प्रयत्न । कोशिश । ४ योजना । पूर्वहृत् या प्रारम्भ । याका (को०) ।

अनुसधानकर्ता—वि० [सं० अनुसन्धानकर्त्ता] शोध या खोज का कार्य करनेवाला । उ०—यह मक्षिण वर्णन अनुसधानकर्त्ताओं के मामले एक नए क्षेत्र का जन्मदाता होगा ।—प्रा० भा० प०, पृ० १२१ ।

अनुसधानना<sup>७</sup>—वि० [सं० अनुसन्धान] से हि० नाम०] १ खोजना । दूढ़ना । २ मोचना । विचारना । उ०—हृदय न कछु फल अनुसधाना । रूप विवेकी परम मुजाना ।—मानस, १।१५६ ।

अनुसधानो—वि० [सं० अनुसन्धानिन्] १ शोध करनेवाला । तलाश में रहनेवाला । २ योजनापटु । किसी योजना के कार्यान्वयन में दक्ष (को०) ।

अनुसधायक—वि० [सं० अनु + सन्धायक] २० ‘अनुसधायी’ । उ०—यहाँ तक कि कुछ अनुसधायक परवर्ती प्रयत्न उत्तरार्ध शृंगार काल को इसी कारण पचाकर युग तक कहना चाहते हैं ।—पचाकर ग्र० (भू०), पृ० ८ ।

अनुसंधायी—वि० [सं० अनुसन्धायिन्] २० ‘अनुसंधानी’ (को०) ।

अनुसन्धि—सज्ञा स्त्री० [सं० अनुसन्धि] १ परामर्श । २ अनुसंधान । ३. गुप्त परामर्श । अतरंग मन्त्रणा । भीनरी बातचीत । पटुचक्र । उ०—जिनको कि यह सब गुप्त अनुसन्धि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० १३४ ।

अनुसन्धेय—वि० [सं० अनुसन्धेय] शोध योग्य । खोज के योग्य ।

अनुसंधान—सज्ञा पुं० [सं० अनु + संधान] १ साथ चलना । साथ साथ यात्रा करना । २. गमन । यात्रा । दौरा । ३ बदली या परिवर्तन । उ०—अनुसंधान का अर्थ विवादप्रस्त है ।—भा० ६० रु०, पृ० ४७८ ।





अनुस्मरण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] बार बार स्मरण करना । स्मृति मे लाना ।

उ०—इतिहास मे भूतकाल की घटनाओं का उल्लेख और अनुस्मरण रहता है ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १ । सोचना [को०] ।

अनुस्मारक—सञ्ज्ञा पु० [सं० अनु + स्मारक] स्मृति या याद दिलाने वाली वस्तु ।

अनुस्मृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ सजोई हुई स्मृति । प्रिय स्मृति । २ अन्य का त्याग करके किसी एक के प्रति किया हुआ चिंतन या स्मरण । एकांत चिंतन [को०] ।

अनुस्यूत—वि० [सं०] १ सीया हुआ । २ पिरोया हुआ । ३ ग्रथित । गुँथा हुआ । उ०—तीनि अवस्था माहि है मुदर साक्षीभूत । सदा एकरस आतमा व्यापक है अनुस्यूत ।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ७८२ । ४ सवद्ध । श्रेणीबद्ध । सिसिलेवार ।

अनुस्वान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्रतिध्वनि । गुँज । २ समध्वनि । समर्थक स्वर । अनुरणन [को०] ।

अनुस्वार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर के बाद उच्चरित होनेवाला एक अनुनासिक वर्ण जिसका चिह्न ( ङ ) है । निःसीहीन इसे आश्रय स्थानभागी भी कहते हैं क्योंकि जिम स्वर के बाद यह लगेगा उसी का सा उच्चारण इसका होगा । २ स्वर के ऊपर की बिंदी । अनुहरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नकल । अनुकरण । २ मादृश । समता [को०] ।

अनुहरत—वि० हि०/अनुहार का कृदन्त रूप] १ अनुमार । अनुरूप । समान । उ०—दम सहित कलि धरम सब छन समेत व्यवहार । स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरन प्रचार ।—तुलसी ग्र० पृ० १५० । २ उपयुक्त । योग्य । अनुहूँ । उ०—प्रव तुम्ह तिनय मोरि मुन नेह । मोहि अनुहरत सिखावन देह ।—मानस, २।१७७ ।

अनुहरना—क्रि० सं० [म० अनुहरण] अनुकरण करना । आदर्श पर चलना । नकल करना । समानता करना । उ०—सहज टेढ़ अनुहरै न तोही । नीबु मीचु सम देख न मोही ।—मानस १।२७ ।

अनुहरिया<sup>१</sup>—क्रि० सं० [सं० अनुहार + हि० इया (प्रत्य०)] समान । तुल्य ।

अनुहरिया<sup>२</sup>—क्रि० सं० [सं० अनुहार] अनुकरण करना । आदर्श पर चलना । नकल करना । समानता करना । उ०—ना न तिनक सर मोहत मोह कमान । मुख अनुहरिया केवन चद समान ।—तुलसी ग्र० पृ० १६ ।

अनुहार<sup>३</sup>—वि० [सं०] मदृश । तुल्य । समान । एकरूप । उ०—खजन नैन बीच नासा पुट राजत यह अनुहार । खजन युग मनो नरत लराई कीर बुझावत रार ।—सूर (शब्द०) ।

अनुहार<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० १ रूप भेद । प्रकार । उ०—मुग्धा मध्या प्रौढ गनि, तिनके तीनि विचार । एक एक की जानिए चार चार अनुहार ।—केशव (शब्द०) । २ मुखानी । आकृति ।

अनुहार<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अनुहरण' ।

अनुहारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अनुहारिका] अनुकरण करनेवाला । नकल करनेवाला । सदृश कर्म करनेवाला ।

अनुहारना—क्रि० सं० [म० अनुहार से नाम०] तुल्य करना । सदृश करना । समान करना । उ०—देखि री हरि के चचज तारे ।

कमल मीन कौ कहाँ इती छवि, खजन हूँ न जान अनुहारे ।—सूर (शब्द०) ।

अनुहारि<sup>१</sup>—वि० स्त्री० [म० अनुहारिन्] १ समान । मदृश । तुल्य । बराबर । उ०—(क) गिरि समान तन अगम प्रति, पन्नग की अनुहारि ।—सूर० १।४३१ । (ख) चुनरी म्याम मतार नभ, मुख ससि की अनुहारि । नेह दवावत नीद नों, निरवि निमा मी नारि ।—विहारी (शब्द०) । २ योग्य । उपयुक्त । उ०—वर अनुहारि वरात न मारि । हँसी करैतहु पर पुर जाई ।—मानस, १।६२ । ३ अनुमार । अनुकूल । मुनाविक । उ०—कहि मृदु वचन विनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि । उत्तम मध्यम नीच नधु, निज निज थन अनुहारि ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इय विशेषण का निगम 'नाई' के समान है प्रयत्न यह शब्द सञ्ज्ञा पुं० और सञ्ज्ञा स्त्री० दोनों का विशेषण होता है ।

अनुहारि<sup>२</sup>—क्रि० सं० [सं० अनुहारिन्] अनुकरण करने वाला । नकल करनेवाला । उ०—सञ्ज्ञा स्त्री० आकृति । चेहरा । उ०—ज्यो मुख मुकुर विनोकि, चित न रहै अनुहारि । तरो सेवनहु निरापने मातु पिता सुन नारि ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनुहारी<sup>१</sup>—वि० [सं० अनुहारिन्] [स्त्री० अनुहारिणी] अनुकरण करने वाला । नकल करनेवाला ।

अनुहारी<sup>२</sup>—क्रि० सं० [हि०] दे० 'अनुहारि' । उ०—(क) देखी सामु आन अनुहारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) भरथु रामहीं की अनुहारी ।—मानस, १।३११ ।

अनुहार्य—वि० [सं०] अनुकरण या नकल करने योग्य [को०] ।

अनुहोड—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बेलगाडी [को०] ।

अनुप्रर—क्रि० वि० [म० अनुवरत] सतत । निरंतर । लगातार ।

अनूक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गत जन्म । पूर्व जन्म । २ कुल वंश । खानदान । ३ शीत । स्वभाव । ४ पीठ की हड्डी । रीढ़ । ५ मेहराव के बीच की ईंट । कीती । ६ यज्ञ की वेदी बनाने के लिये ईंट उठाने की खैंचिया या पात्र । ७ जानि या वंशगत विशिष्टता [को०] । ८ यज्ञ की वेदी का पृष्ठभाग [को०] ।

अनूकाश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्रकाश की कौट्य या भनक । २ उदाहरण । सदर्भ । हवाला [को०] ।

अनूक्त—वि० [म०] १ वाद मे कथित । दोहराया गया । २ जिसने वेदाध्ययन किया हो । श्रुत [को०] ।

अनूक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ विवरणपूर्वक कही या दोहराई हुई बात । २ वेदाध्ययन [को०] ।

अनूचान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो वेद वेदांग मे पारंगत होकर गुरुकुल से आया हो । स्नातक । २ विद्यार्थिक व्यक्ति । ३ चरित्रवान् पुरुष ।

अनूजरा—क्रि० सं० [हि० अनु + ऊजरा] [स्त्री० अनूजरी] जो उजला या माफ न हो । मैना । उ०—साछ्य माठी पूतरी अनूजरीसह ऊजरी द्वै देखि रागी त्यागी ललचात जनजात है ।—निश्चल (शब्द०) ।

अनूठा—वि० [सं० अनुत्थ, पा० अनुत्थ प्रा० अनुत्थ = स्थित यथार्थ देश०] [स्त्री० अनूठी] १ अपूर्व । अनोखा । विचित्र । वि. क्षण । अद्भुत । २. सुंदर । अच्छा । बढ़िया ।

अनूठापन—सज्ञा पुं [ हि० अनूठा + पन (प्रत्य०) ] १ विविधता । विनक्षणाता । विशेषता । २ सुंदरता । अच्छापन ।

अनूढ—वि० [ म० अनूढ ] १ प्रजात । अनुत्पन्न । २ जो ले जाया न गया हो । ३ अविवाहित [को०] ।

अनूढा—सज्ञा स्त्री [ म० अनूढा ] १ अविवाहिता कन्या । २ विना व्याही स्त्री जो किसी पुरुष से प्रेम रखती हो । उ०—ताहि अनूढा कहन है कवि पंडित परवीन ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६७ ।

अनूढागमन—सज्ञा पुं [ म० अनूढागमन ] अविवाहिता स्त्री से प्रेम या ससर्ग [को०] ।

अनूढाभ्राता—सज्ञा पुं [ सं० अनूढाभ्रातृ ] १ अविवाहिता स्त्री का भाई । २ राजा की रखेनी या उपपत्नी का भाई [को०] ।

अनूतर(उ)—वि० [ म० अनुत्तर ] [ वि० स्त्री० अनूतरी ] १ निरुत्तर । कायल २ चुपचाप बैठनेवाला । मौन धारण करनेवाला । उ०—बैठी फिरि पूतगी अनतरी फिरग कैसी, पीठि दै प्रवीनी दृग दृगनि मिलै अनिद ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०१ ।

अनूदक—सज्ञा पुं [ म० ] १ जाहीन स्थान । २ सूखा [को०] ।

अनूदवी—सज्ञा पुं [ सं० ] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव । विशेष—यह ४८ हाथ लंबी, २४ हाथ चौड़ी और २४ ही हाथ ऊँची होनी थी ।

अनूदित—वि० [ म० ] १ कहा हुआ । वर्णन किया हुआ । २ अनुवादित । तर्जुमा किया हुआ । भाषांतरित ।

अनूद्य—वि० [ सं० ] १ पीछे चर्चा करने योग्य । १ अनुवाद योग्य [को०] ।

अनून—वि० [ म० ] १ अखंड । पूर्ण । पूरा । समग्र । २ जिसमें कोई कमी न हो । ३ अनूत । अधिक । ज्यादा । बहुत । ३ पूर्ण अधिकारयुक्त [को०] ।

अनूप<sup>१</sup>—वि० [ म० ] १ जलप्राय । जहाँ जल अधिक हो । २ दलदली [को०] ।

अनूप<sup>२</sup>—सज्ञा पुं १ जलप्राय देश । वह स्थान जहाँ जल अधिक हो । २ भैंस । ३ ताल या तालाव । ४ दलदल । ५ कछार । ६ मेढर । ७ हाथी । ७ तीतर या चकोर [को०] । उ०—अनूप (जलमयी) के रहनेवाले जीव हम चकवा आदि ।—माधव, पृ० १८१ ।

अनूप<sup>३</sup>—[ म० अनूपन ] १ जिसकी उमर न हो । अद्वितीय । बेजोड़ । उ०—(क) कबीर रामानंद को सतगुरु भए सहाय । जग मे जुगुत अनूप है सो सब दई बताय । कबीर (शब्द०) । (ख) जिन्ह वह पाई छाँह अनूपा । फिर नहि आइ मई यह धूपा ।—जायसी (शब्द०) । (ग) अरथ अनूप सुभाव सुभासा । सोइ पराग मकरद सुवासा ।—मानस, १।३७ । २ सुंदर । अच्छा । उ०—जौ घर वर कुलु होइ प्रन्सा । करिअ विवाह सुता अनूपसा ।—मानस, १।७१ ।

अनूपग्राम—सज्ञा पुं [ म० ] नदी के किनारे का गाँव ।

विशेष—चंद्रगुप्त कालीन एक राजनिधम के अनुसार वरसात के दिनों में ऐसे गाँव के लोगों को नदी का किनारा छोड़कर कितनी दूरी दूरवर्ती स्थान पर बसना पड़ता था ।

अनूपनाराच—सज्ञा पुं [ म० अनूप + नाराच ] छंद का एक गेद जो पंचचामर के अंतर्गत है और जिसके प्रत्येक चरण में ज, र, ज, र, ज और गुरु होता है ।

अनूपम(उ)—वि० दे० 'अनुपम' । उ०—(क) अदभुत एक अनूपम वाग ।—सूर०, १।२११० । (ब) ध्रुव सगनानि जपेउ हरि नाऊँ । थापेउ अचल अनूपम ठाऊँ ।—मानस, १।२६ ।

अनूपान(उ)—सज्ञा पुं दे० 'अनुपान' । उ०—रघुपति भगति सजीवनि मूरी । अनूपान अद्वा मति रूरी ।—मानस, १।२२३ ।

अनूपी(उ)—वि० स्त्री० दे० 'अनुप' । उ०—धन्य अनुराग धनि भाग धनि सौभाग्य धन्य जीवन रूप अति अनूपी ।—सूर०, १।१७८८ ।

अनूपान(उ)—सज्ञा पुं दे० 'अनुपान' । उ०—अनूपान साछी रहित होत नही परमान ।—सं० सप्तक, पृ० ४० ।

अनूरत्त(उ)—वि० दे० 'अनुरक्त' । उ०—दिपती सुहाग । अनूरत्त राग ।—पृ० रा०, ६२।४१ ।

अनूर<sup>१</sup>—वि० [ सं० अनूर ] उरुहान । विना जाँघवाला ।

अनूर<sup>२</sup>—सज्ञा पुं १ सूर्य का सारथी । अरुण । २ अरुणोदय [को०] ।

अनूरसारथी—सज्ञा पुं [ म० ] सूर्य [को०] ।

अनूजित—वि० [ सं० ] १ शक्तिहीन । अशक्त । कमजोर । २ अभिमानशून्य [को०] ।

अनूध्वं—वि० [ सं० ] ऊँचा नहीं । नीचा [को०] ।

अनूर्मि—वि० [ सं० ] १ तरंगशून्य । अचंचल । २ अनतिक्रम्य [को०] ।

अनूपर—वि० [ सं० ] १ क्षारीय । रेहवाला । २ क्षारहीन । रेहशून्य [को०] ।

अनूह—वि० [ सं० ] १ जिसपर विचार न हो सके । अतर्क्य । २ विचारहीन । लापरवाह [को०] ।

अनृजु—वि० [ म० ] जो ऋजु अर्थात् सीधा न हो । कुटिल । बक्र । २ दुष्ट । अविवशस्त । वेईमान [को०] ।

अनृण—वि० [ सं० ] जो ऋणी न हो । जिसे कर्ज न हो । ऋणमुक्त ।

अनृणता—सज्ञा पुं [ सं० ] कर्ज से छुटकारा । ऋणमुक्ति [को०] ।

अनृणी—वि० [ म० अनृणिन् ] १ 'अनृण' [को०] ।

अनृत<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ मिथ्या । झूठा । २ अन्यथा । विपरीत । उ०—तोहि स्याम हम कहा दिखावै । अमृत कहा अनृत गुण प्रगटै मो हम कहा बतावै ।—सूर०, १।२०६६ ।

अनृत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं [ म० ] १ मिथ्या । असत्य । झूठ । २ कृपि । नेती [को०] ।

अनृतक—वि० [ सं० ] मिथ्यावादी । झूठ बोलनेवाला [को०] ।

अनृतभाषण—सज्ञा पुं [ सं० ] झूठ बोलना । मिथ्या कथन [को०] ।

अनृतवादन—सज्ञा पुं [ सं० ] दे० 'अनृतभाषण' [को०] ।

अनृतवादी—वि० [ म० अनृतवादिन् ] [ वि० स्त्री० अनृतवादिनी ] झूठा । मिथ्यावादी [को०] ।

अनृतव्रत—वि० [ सं० ] अपने वचन या प्रतिज्ञा का पालन कभी न करनेवाला [को०] ।

अनृनी—वि० [ म० अनृनिन् ] दे० 'अनृतक' [को०] ।

अनृतु—सज्ञा स्त्री [ सं० ] १ बेमौसम । अममय । २ रजोदर्शन ने पूर्व की अवस्था या स्थिति [को०] ।

अनुकन्या—नग स्त्री [न०] कन्या जिसे रजोधर्म न हुआ हो [को०] ।  
अनुकृपान्त मैत्र्य—नग पुं० [न०] वह नेना जिसके अनुकूल ऋतु न पड़ती हो ।

विशेष—तोष्ठिन्त्र के अनुसार ऐसी नेना ऋतु के अनुकूल वस्त्र, अन्न, स्वच आदि का प्रबंध हो जाने पर युद्ध कर सकती है, पर अमीप्रान्त (अनुपयुक्त भूमि में फँसी) नेना कुछ करने में असमर्थ हो जाती है ।

अनुद्यम—वि० [न०] कृतारहित । अकटोर । मृदुन [को०] ।  
अनुद्यमता—मज्ञ स्त्री [न०] अग्न्या का अभाव । दयानुता [को०] ।  
अनेऊ<sup>१</sup>—वि० [न०] अग्राय, प्रा० > अक्षाय > अग्राय > अनाव > अनेय > अनेऊ] वृण । खगव ।

अनेक—वि० [न०] एक से अधिक । बहुत । ज्यादा । अमध्य । अनगिनत ।

यौ०—अनेकानेक ।

अनेककाम—वि० [न०] एक से अधिक इच्छाओंवाला [को०] ।  
अनेककालावधि—वि० वि० [न०] बहुत काल में या चिरकाल तक [को०] ।

अनेककृत—नग पुं० [न०] जिव [को०] ।  
अनेकचर—वि० [न०] समूह या झुंड में रहनेवाला [को०] ।  
अनेकचित्त—वि० [न०] १ अनेक वस्तुओं की कामना या ध्यान रखने वाला । २ चञ्चल मनवाला । चपलचित्त [को०] ।

अनेकज<sup>१</sup>—वि० [न०] जिसका जन्म एक बार से अधिक हो [को०] ।  
अनेकज<sup>२</sup>—मज्ञ पुं० पत्नी [को०] ।  
अनेकजन्मा—वि० [न०] १० 'अनेकज' [को०] ।  
अनेकता—नग स्त्री [न०] १० 'अनेकत्व' ।  
अनेकत्व—मज्ञ पुं० [न०] एक से अधिक होने की स्थिति या भाव । बहुत्व । अनेकता [को०] ।

अनेकन—वि० वि० [न०] कई जगह । कई स्थान [को०] ।  
अनेकधा—वि० वि० [न०] कई प्रकार से । कई तरह से [को०] ।  
अनेका—नग पुं० [न०] द्वि० । हाथी [को०] ।  
अनेयभार्य—वि० [न०] कई पत्नियोंवाला [को०] ।  
अनेयगुण—वि० [न०] [स्त्री० अनेकगुण] १ अनेक चेहरेवाला । अनेक गुणवाला । २ कई दिशाओं में जानेवाला [को०] ।  
अनेकमूर्ति—मज्ञ पुं० [न०] विष्णु का एक नाम [को०] ।  
अनेकमूर्ति—वि० [न०] [स्त्री० अनेकमूर्ति] १ कई रूपवाला । २ परिवर्तनशील [को०] ।

अनेकमूर्ति—नग पुं० १ मेश्वर [को०] ।  
अनेकमोचन—नग पुं० [न०] १ उड़ । २ गिर । ३ विराट्पुरुष । अक्षय [को०] ।

अनेकमन्त्र—मज्ञ पुं० [न०] १ बहुमन्त्र । २ द्विमन्त्र ।  
अनेकवर्ण—वि० [न०] कई रंगोंवाला [को०] ।  
अनेकवर्ण<sup>२</sup>—मज्ञ पुं० १ अनेकवर्णित में प्रयुक्त प्रजापति राजियाँ [को०] ।  
अनेकविध—वि० [न०] अनेक प्रकार का । विभिन्न कोटि का ।

अनेकश—वि० वि० [न०] अनेकवार । बार बार । उ०—मेरी कामना है कि इस दिवस की अनेकश पुनरावृत्ति हो ।—शुक्ल० अग्नि० ग०, पृ० १५ ।

अनेकशफ—वि० [न०] फटे खुरोवाला [को०] ।  
अनेकशब्द—वि० [न०] पर्यायवाची [को०] ।  
अनेकसाधारण—वि० [न०] अनेक में पाया जानेवाला । बहुतों में पाया जानेवाला [को०] ।

अनेकागी<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [न०] अनेकाङ्गिन् वह जिसे कई अंग हो । जिसके बहुत हिस्से या भाग हो ।

अनेकागी<sup>२</sup>—वि० अनेक अंग, भाग या हिस्सोंवाला [को०] ।  
अनेकात—वि० [सं० अनेकान्त] १ जो एकात न हो । २ जो स्थिर न हो । चंचल ।

अनेकातवाद—सज्ञा पुं० [सं० अनेकान्तवाद] [वि० अनेकातवादी] जैन दर्शन । आर्हन्त दर्शन । स्याद्वाद ।

अनेकातवादी—वि० [सं० अनेकान्तवादिन्] अनेकातवाद को मानने वाला [को०] ।

अनेकाकार—वि० [सं० अनेक + आकार] अनेक आकारवाला । अनेक आकृतियोंवाला [को०] ।

अनेकाकी—वि० [सं० अनेकाकिन्] [वि० स्त्री० अनेकाकिनी] अकेला नहीं । कई लोगों के साथ [को०] ।

अनेकाक्षर—वि० [सं०] अनेक अक्षरों से युक्त [को०] ।  
अनेकाग्र—वि० [सं०] १ जो किसी एक विषय पर ध्यानस्थ न हो । कई कामों में लगा हुआ । २ उन्मत्ता हुआ । अव्यवस्थित [को०] ।

अनेकाच्—वि० [सं०] जिसमें बहुत से 'अच्' या स्वर हो । बहुत से स्वरों से युक्त । (शब्द या वाक्य) जिसमें बहुत से स्वर हो ।

अनेकार्थ—वि० [सं०] जिसके बहुत से अर्थ हो । बहुत अर्थवाला ।  
अनेकार्थक—वि० [सं०] १० 'अनेकार्थ' [को०] ।

अनेकाल—वि० [सं०] जिसमें एक से अधिक 'अल्' (स्वर और व्यंजन) वाला ।

अनेकाश्रय—वि० [सं०] अनेक या कई पर निर्भर रहनेवाला [को०] ।  
अनेकाश्रित—वि० [सं०] १० 'अनेकाश्रय' [को०] ।

अनेग<sup>१</sup>—वि० [सं० अनेक] बहुत अधिक । ज्यादा । उ०—रोकि रहे द्वार नेग भाँगन अनेग नेगी, घोंनन न खाल व्यान खोलत खहिन के ।—देव शब्द० ।

अनेड<sup>१</sup>—वि० [नं०] १ मूर्ख । २ बुरा । खराब [को०] ।

अनेड<sup>२</sup>—वि० [सं० अनुड] १० 'अनेरा' ।

अनेडमूक—वि० [सं०] १ गँगा मूढ़ । २ अरा । ३ बेईमान । कपटी । दुःख । बदमाश [को०] ।

अनेडा<sup>१</sup>—वि० [नं० अ + निड, प्रा० निडर, निडड] दूर । अमसीध । उ०—जागु मयेरा बाट अनडा कि नहि लागै जोर, बटोही का रे मोचै ।—मनवार्ण० भा० २ पृ० ३० ।

अनेता<sup>१</sup>—मज्ञ पुं० [देश०] मान ही लता (देहगहन) ।

अनेम<sup>१</sup>—मज्ञ पुं० [हि०] १० 'अनियम' । उ०—अनियम थल नेमहि गहै नियम डोर जु अनेम ।—मिथारी० प्र०, भा० २, पृ० २३८ ।

अनेय<sup>१</sup>—वि० [सं० अनीति, प्रा० अ + नीति] अन्याय से होनेवाला । अनैतिक । उ०—तुम सुधरम राजन अनेय लग्ना अधिकारिय ।—पृ० रा० ६६।४६६ ।

अनेरा<sup>१</sup>—वि० [म० अन्त, प्रा० \* अनिर] [वि० मी० अनेरी] १  
 झूठ। अर्थ। निप्रयोजन। उ०—अनेरा खारि में मत। उचन  
 बोचन जो अनेरो। कब हरि वालक भए, गर्भ कब लियो  
 वरोरो।—मूर० (शब्द०)। २ मूठा। अन्धारी। दुष्ट। निष्क्रमा।  
 उ०—तोहि स्वाम की मपद जमोदा आइ देखु गृह मेरो। जैमी  
 हात करी यहि होठो छोटी निपट अनेरो।—तुलसी (शब्द०)।  
 ३ स्वच्छद। निरकुण।

अनेरा<sup>२</sup>—क्रि० वि० स्वयं। झूठमूठ। निप्रयोजन। उ०—मुनहु स्वाम  
 मधुनीर भोगाई मन अनोति रत मेरो। चरनसरोज धिमारि  
 तुम्हारी निसदिन फिरन अनेरो।—तुलसी (शब्द०)।

अनेला—वि० [म० अ + निकट, प्रा० निपट, हि० नेर] अपरिचित।  
 अनपहचाना। उ०—आपके भूमि मे कोई अनेला आए तो  
 आए हमपर चरमा न बलेगा।—फियाना०, भा० १, पृ० ५।

अनेलापन—सज्ञा पुं० [हि० अनेला + पन अथवा हि० अनेरा] १  
 न पहचानने की स्थिति। अपरिचित होने का भाव। अज्ञानपना।  
 २. गच्छता। स्वनयना। उ०—अनेलापन उसका मुझे भा  
 गया। कम् क्या दिल उसपर मेरा आ गया।—शोरू  
 (फौज)।

अनेवा<sup>१</sup>—क्रि० वि० [म०] अन्वया। नहीं तो कि०।

अनेवा<sup>२</sup>—वि० [हि०] \* 'अनेर'। उ०—राजिब वज्जि मगल  
 अनेव। माननि उचारि मागुन मेव।—पृ० रा०, ६१। २५२८।

अनेम<sup>१</sup>—वि० [म० प्रतिष्ठ] कुण। खरा। प्रसन्न।

अनेम<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० प्रायः। डर। चिन्ता।

अनेह<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म० अनेह] प्रेम। प्रीति। विरक्ति।

अनेहा—सज्ञा पुं० [म० अनेहस्] समय। काल। वक्त।

अने<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] १० 'अनय'। उ०—नाम प्रताप पतित  
 पावा किए जे न प्रवाते अने।—तुलसी रा०, पृ० ३८६।

अनेकात—वि० [म० अनेकान्] १० 'अनेकात' कि०।

अनेकातिक—वि० [म० अनेकान्ति] १० 'अनेकात' कि०।

अनेकातिक हेतु—सज्ञा पुं० [म० अनेकान्तिकहेतु] न्याय के पांच  
 हेतुओं में से एक। वह हेतु जो साध्य का एकमात्र साधन-  
 भूत न हो। वह ज्ञान जगमे किसी वस्तु की एकात्मिक मिद्धि  
 न हो। मध्यस्थान हेतु रास। जैसे,—कोई कहे कि शब्द नित्य  
 है क्योंकि वह स्वर्णवाला नहीं है। यहाँ घर आदि स्पर्शवाले  
 पदार्थों को गतिहय देखकर अनुभवना की नित्यता का एक हेतु  
 मान लिया गया है। पर परमाणु, जो स्पर्शवाले हैं, नित्य हैं।  
 अतः उन हेतु में वाचिवार आ गया।

अनेक्य—सज्ञा पुं० [म०] १ दोन या एकता का अभाव। एका न  
 होना। २ मनभेद। नास्तिकता। फूट।

अनेच्छक—वि० [म०] १ अज्ञात। न चहाहुपा। २ दृष्टा के  
 बिना होनेवाला। स्वन उत्पन्न। शरीर की चेष्टाएँ,  
 दिकार आदि।

अनेउ<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म० अन् = यहाँ + पण्यस्व, प्रा० पञ्जद, हि० पंठ  
 अथवा देग] यह दिन जिसमें राजा न रह रहे। 'पंठ' का उलटा।

अनेतिक—वि० [म०] जो नीति के विरही हो। अतिवि [मि०]।  
 अनेतिहासिक—वि० [म०] १ जो इतिहासकता न हो। २ जैसा मू  
 में न हुआ हो। अमृतपूर्व कि०।

अनेपुण—सज्ञा पुं० [म०] अनिपुणता। अवज्ञा। अनुज्ञाता [मि०]।

अनेश्वर्य—सज्ञा पुं० [म०] १ ऐश्वर्य का प्रभाव। चर पुन। बडाई या  
 सपदा का न होना। २ अनीश्वरता। निद्रियों की प्राप्ति।

अनेम<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म० अन् + एप = एपण] [क्रि० अनेमना]  
 बुराई। अहित।

अनेम<sup>२</sup>—वि० बुरा। उ०—मोड़ को यह गर्म सागर नरी आउ  
 अनेम।—मा० लहरी, पृ० १६।

क्रि० प्र०—मानना = बुरा मानना। रुठना।

अनेमना—क्रि० अ० [हि० अनेम से नाम०] बुरा मानना।

रुठना। उ०—श्यामल वन भीक ममाने मोरे रडे अनेमे।—  
 मूर० (शब्द०)।

अनेसंगिक—वि० [म०] १ जो प्रकृति के विरुद्ध हो। अप्राकृतिक। २.  
 जो स्वभाव के प्रातिकूल हो। अस्वाभाविक कि०।

अनेमा<sup>१</sup>—वि० [हि० अनेम] [वि० मी० अनेमी] जा इष्ट न हो।  
 अप्रिय। बुरा। खरा। उ०—(क) नाम लिए प्रताइ नियो  
 तुलसी भो कहीं जग कौन अनेमी।—तुलसी रा०, पृ० १६८।  
 (ख) पाणिन परम नाउका ऐमी। मायाविनि प्रति अदय  
 अनेमी।—पद्माकर (शब्द०)।

अनेसे—क्रि० वि० [हि० अनेम] अनिच्छापूर्वक। बुरे भाव से। बुरी  
 तरह से। उ०—(क) कह मुनि राम जाइ रिम कैसे। अनेह  
 अनुज तब चित्त अनेमे ॥—तुलसी (शब्द०)। (ख) छोड़ि  
 छोरि बांधी पाग आरन सो चारमी लै अनत ही आन मानि  
 देखत अनेमे हो।—केजव० प्र०, भा० १, पृ० १२५।

अनेहा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि० अनेम] उत्पन्न। उत्पन्न। उ०—जा  
 कारण मुन मुन मुदर बर कीन्हो इतो अनेहो। मोड़ मुधाकर  
 देवि दमोदर या गाजन मे है, हो।—मूर० (शब्द०)।

अनोअन<sup>१</sup>—वि० [हि०] \* 'अनोन'। उ०—छाह उर्वो बिछई  
 मुजे सेन छूई। जगे जग तूई अनोअन रहई।—रा० म०  
 पृ० ४६०।

अनोकशायी—सज्ञा पुं० [म० अनोकशायिन्] जो पर पैन सोना  
 हो कि०।

अनोकह—सज्ञा पुं० [म०] १ जो अपना न्यान न छोड़े। २  
 पेड़। वृक्ष।

अनोउ<sup>१</sup>—वि० [हि०] \* 'अनोवा'। उ०—प्री उक्त मुक्त  
 उनही कति रोप प्रतीत धरी नकुगई।—उज्ज्वल, पृ० २८२।

अनोवा—वि० [अ० (उच्चा०) म० नरक, अ० लय] [वि० मी०  
 अनोवी], [सज्ञा अनोवार] १ मूठा। निपाता। विचल।  
 विविध। अस्मृत। २ नरक। ३ नदर। मूरुरा।  
 उ०—उप अनोवे अनिदि तो प्राप्ति मे नृपरा। दे दिया  
 उमने हृदय भी शीतल करने आ।—तुलसी, पृ० ८।

अनोवापन—सज्ञा पुं० [हि० अनोवा + पन (शब्द०)] १ मूठापन।  
 निरावापन विचक्षणता। २ नरकत्व। ३ नदर। ४  
 मूरुरा।

अनोट(५)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनवट' । उ०—देखि करोट सु  
ऐचि अनोट जगाइ लै ओट गए गिरिवारी ।—मिथ्या० प्र०,  
भा० १, पृ० १०५ ।

अनोदन—वि० [सं०] बिना भोजन के । निराहार [को०] ।

अनोदयनाम—सज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार वह पाप कर्म  
जिसके उदय से मनुष्य की वात कोई नहीं मानता ।

अनोपम(५)—वि० [हिं०] दे० 'अनुपम' । उ०—सुंदर भाल बिसाल  
अलक सम माल अनोपम । हित प्रकाश रुद्रहान अरण  
वारिज मुख ओपम ।—रा० ह०, पृ० २ ।

अनोसर(५)—सज्ञा पुं० [हिं० अन् + स० अस्वर] १ वह समय जब  
वैष्णव धर्मावलंबी मूर्तियों का शयन कराते हैं । २ एकांत  
स्थान । सूना स्थान । उ०—अनोसर करि आम कछुक  
आरोगे ।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० २१ ।

अनौचित्य—सज्ञा पुं० [सं०] उचित बात का अभाव । अनुपयुक्तता ।

अनौजस्य—सज्ञा पुं० [सं०] पराक्रम या शक्ति का अभाव [को०] ।

अनोट(५)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनवट' । उ०—त्रिछिन्ना अनोट  
बाँक धूवरी जराइ जरी, जेहरी छत्री छुद्रघटिका की  
जानिका ।—केशव० प्र०, ।

अनीद्वय—सज्ञा पुं० [सं०] १ उच्छृंखलना या दर्प का न होना ।  
२ नम्रता । ३ शांति । (नदी के जन का) ऊँचा न होना ।  
ऊपर न उठना [को०] ।

अनीधि(५)—अव्य० [सं० अन्वधि] शीघ्र । जल्दी । तुरत ।

अनीपम्य—वि० [सं०] जिसकी उपमा न दी जा सके । बेजोड [को०] ।

अनीरस—वि० [सं०] १ जो विवाहिता पत्नी से उत्पन्न न हो । जो  
औरम मतान न हो, अवैध । २ गोद लिया हुआ (पुत्र) [को०] ।

अन्न भट्ट—सज्ञा पुं० [सं०] तर्कसंग्रह के रचयिता ।

अन्न<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ खाद्यपदार्थ । २ अनाज । नाज । धान्य ।  
दाना । गलना । ३ पकाया हुआ अन्न । भान ।

यो०—अन्नकूट । अन्नजन । पक्वान्न । अन्नराशि ।

४ वह जो भवका भक्षण या ग्रहण करे । ५ सूर्य । ६ विष्णु ।  
७ पृथ्वी । ८ प्राण । ९ जल ।

मु०—अन्न मिट्टी होता—खाना पीना हराम होना । उ०—जेहि  
दिन तह छेकै गढ घाटी । होइ अन्न ओही दिन माटी ।—जायसी  
(शब्द) ।

अन्न<sup>२</sup>(५)—वि० [सं० अन्न्य प्रा०—अण्] दूसरा । विरुद्ध । पर । उ०—  
जो विवि लिखा अन्न नहि होई । कित धावै कित रोवै कोई ।  
—जायसी (शब्द०) ।

अन्नकाल—सज्ञा पुं० [सं०] भोजन करने का समय । अन्न ग्रहण करने  
का समय [को०] ।

अन्नकिट्ट—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्नमल' [को०] ।

अन्नकूट—सज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न का पहाड़ या ढेर । उ०—  
गोवर्धन सिर तिलक चढायो, मेदि इद्र ठकुराइ । अन्नकूट ऐसो  
रवि रावयो, गिरि की उमा पाइ ।—सूर०, १०।८३२ ।  
२ एक उत्सव जो कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से पूणिमा पर्यंत  
यथारुचि किसी दिन (विशेषतः प्रतिपदा को वैष्णवों के यहाँ)

होता है । उस दिन नाना प्रकार के भोजनों की ढेरी लगाकर  
भगवान को भोग लगाने हैं ।

अन्नकोष्ठ—सज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न रखने का स्थान या कोठरी ।  
२ गज । गोता । बजार ।

अन्नकोष्ठक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्नकोष्ठ' [को०] ।

अन्नगधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्नगधि] अतिमार की व्याधि [को०] ।

अन्नगति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की प्रणाली या गति [को०] ।

अन्नछेदा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नसत्र' ।

अन्नजल—सज्ञा पुं० [सं०] १ दाना पानी । खाना पीना । गानपान ।  
जैसे,—तुम्हारे यहाँ हम अन्नजल नहीं ग्रहण करेंगे (ग्रन्थ) ।

क्रि० प्र०—त्यागना या छोड़ना = उपवास करना ।

२ आवदाना । जीविका ।

क्रि० प्र०—उठना = जीविका छूटना । जैसे,—प्रब यहाँ ने हमारा  
अन्न जन उठ गया (शब्द०) ।

३ रायोग । रसताक । जैसे,—जहाँ का अन्न जन होगा वहाँ चले  
ही जायेंगे (शब्द०) ।

अन्नजा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की हिचकी ।

विशेष—'माघवनिदान' के अनुसार अन्न और पानी का बहुत अधिक  
सेवन करने से वायु अकम्पात् भुषित होकर उर्ध्वगामी हो  
जाती है जिनसे यह हिचकी होती है ।

अन्नजीवी—सज्ञा पुं० [सं० अन्नजीविन्] वह जो केवल अन्न खाकर  
जीवनयापन करता है । केवल अन्न पर पननेवाला  
जीव [को०] ।

अन्नया(५)—वि० [सं० अन्नया] दे० 'अन्नया' । उ०—कृत करण  
अन्नया करण । सगले ही धोके समस्त्य ।—बेलि०, दू०,  
पृ० १३७ ।

अन्नद—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्नदा] अन्नदाता । प्रतिपात्रक ।  
रक्षक । पोषक ।

अन्नदा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा । २ अन्नदाता [को०] ।

अन्नदाता—सज्ञा पुं० [सं० अन्नदातृ] [स्त्री० अन्नदात्री] १. अन्न दान  
करनेवाला । २ पोषक । प्रतिपात्रक ।

अन्नदास—सज्ञा पुं० [सं०] वह नौकर जो केवल भोजन पर कार्य  
करता है [को०] ।

अन्नदोष—सज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न से उत्पन्न विकार । जैसे, दूषित  
अन्न खाने से रोग इत्यादि का होना । २ निषिद्ध म्यान या  
व्यक्ति का अन्न खाने से उत्पन्न दोष या पाप ।

अन्नद्रवशूल—सज्ञा पुं० [सं०] पेट का वह दर्द जो सदा बना रहे, चाहे  
अन्न पचे या न पचे और जो पथ्य करने पर भी शांत न हो ।  
लगातार बनी रहनेवाली पेट की पीड़ा ।

अन्नद्वेष—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अन्नद्वेषी] अन्न में रुचि न होना ।  
भोजन में अरुचि । भूख न लगना ।

अन्नपति—सज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न का स्वामी । २ शिव । ३ अग्नि ।  
४ सूर्य [को०] ।

अन्नपाक—सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि पर या पेट में अन्न का  
पाचन [को०] ।

अन्नपाकस्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पाकस्थान' ।

अन्नपूरना—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अन्नपूर्णा' । उ०—जौलो देवी  
द्रव न भवानी अन्नपूरना ।—तुलसी ग्र०, पृ० २३५ ।

अन्नपूर्णा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की अधिष्ठात्री देवी । दुर्गा का एक  
रूप । ये काशी की प्रधान देवी हैं ।

अन्नपूर्णेश्वरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अन्नपूर्णा । २ तनोक्त एक मैरवी  
का एक नाम [को०] ।

अन्नप्रलय—वि० [सं०] मरणोपरान्त शरीर का अन्न रूप में परिवर्तित  
होना [को०] ।

अन्नप्राशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वच्चो को पहले पहल अन्न चटाने का  
सम्कार । चटावन । पेहनी । पसनी ।

विशेष—स्मृति के अनुसार छठे या आठवें महीने बालक को श्रीर  
पाँचवें सातवें महीने बालिका को पहले पहल अन्न चटाना  
चाहिए ।

अन्नप्राशन—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नप्राशन' । उ०—नामकरण  
सु अन्नप्राशन वेद वांछी नीति ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४२६ ।

अन्नमयकोश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वेदात के अनुसार, पचकोशों में से  
प्रथम । अन्न से बना हुआ त्वचा से लेकर वीर्य तक का  
ममुशय । मूल शरीर । बौद्धशास्त्रानुसार रूपरूपद । उ०—  
अन्नमयकोश मुनी पिंड है प्रकट यह प्राणमय कोश पचवायु  
हूँ वपानिये ।—सुंदर ग्र०, पृ० ५६८ ।

अन्नमल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ यव आदि अन्नो से बनी शराव । २.  
मल । विष्टा ।

अन्नराशि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की ढेरी । गज ।

अन्नविकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अन्न का परिवर्तित रूप । अन्न पचने  
से क्रमशः बने हुए रस, रक्त, मांस, मज्जा, चरमी, हड्डी और  
शुक्र आदि ।

अन्नव्यवहार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पारम्परिक भोजन या खानपान का  
व्यवहार [को०] ।

अन्नशेष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बचा हुआ भोजन । उच्छिष्ट [को०] ।

अन्नसंस्कार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवतादि के कार्यों में अन्न का प्रयोग ।  
देवकार्य में अन्नोत्तम [को०] ।

अन्नसत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ भूखों को भोजन दिया  
जाता है । अन्नक्षेत्र । लगर ।

अन्ना<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० \* अन्निक, प्रा० \* अन्निक > अन्ना] १ वह  
छोटी अमीठी या बोरसी जिसमें सुनार सोना आदि रखकर  
माथी के द्वारा तपाते या गलाते हैं ।

अन्ना<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अम्बा या अल्ला—माँ अथवा देश० दाई  
घात्री । दूध पिलानेवाली स्त्री ।

अन्नाकाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अन्नाकाल । दुग्ध [को०] ।

अन्नाद<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो सब को ग्रहण करे । ईश्वर । २  
त्रिपुण के सहस्र नामों में से एक ।

अन्नाद<sup>२</sup>—वि० अन्न खानेवाला । अन्नाहारी ।

अन्नाम—वि० [हिं०] दे० 'अन्नाम' । उ०—इह पु नाम अन्नाम ।  
जेन नामह घर जाइय ।—पु० रा०, ३३।१६ ।

अन्नित्—वि० [हिं०] दे० 'अन्न' । उ०—ग्रहंत अन्नित् एक पति, उर्द्ध  
जात, तप्यय ।—पु० रा०, ५५।२४१ ।

अन्नित्—वि० [हिं०] दे० 'अन्नित्' । उ०—हूँ नीति जानि अन्नित  
न करि ।—पु० रा०, ३५।३ ।

अन्न्य—वि० [सं०] दूसरा । और कोई । भिन्न । गैर । पराया ।  
उ०—असुर मुर नाग नर यक्ष गुहर्व खग रजनिचर सिद्ध ये  
चापि अन्न्ये ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४८७ ।

यौ०—अन्न्यजात । अन्न्यमनस्क । अन्न्यान्य । अन्न्योन्य ।

अन्न्यक—वि० [सं०] दे० 'अन्न्य' [को०] ।

अन्न्यकास्का—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मल का कीड़ा [को०] ।

अन्न्यकीत—वि० [सं०] दूसरे का खरीदा हुआ ।

अन्न्यग—वि० [सं०] दूसरे की स्त्री के साथ गमन करनेवाला ।

व्यभिचारी [को०] ।

अन्न्यगामी—वि० [सं०] अन्न्यागामिन् दे० 'अन्न्यग' [को०] ।

अन्न्यचित्त—वि० [सं०] जिसका मन अन्न्यत्र लगा हो । अन्न्य-  
मनस्क [को०] ।

अन्न्यच्च—क्रि० वि० [सं०] और भी ।

अन्न्यजात—वि० [सं०] खोई हुई या नष्ट (वस्तु) ।

अन्न्यत्—वि० [सं०] दे० 'अन्न्य' ।

अन्न्यत—क्रि० वि० [सं०] अन्न्यतस् १ किसी और से । २ किसी और  
स्थान से । कहीं और से ।

अन्न्यतम—वि० [सं०] जिसकी तुलना में और कोई न हो । सर्वश्रेष्ठ ।  
सबसे बड़ा [को०] ।

अन्न्यतर—वि० [सं०] दूसरा । भिन्न । दो में से एक ।

अन्नातस्त्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शत्रु । दुश्मन । प्रतिपक्षी [को०] ।

अन्न्यतोपाका—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दाढ़ी, कान, नाँ इत्यादि में वायु का  
प्रवेश होने के कारण आँखों की पीड़ा ।

अन्न्यत्र—वि० [सं०] और जगह । दूसरी जगह । उ०—ना नृप को  
परमात्मामित्र । इक छिन रहत न सो अन्न्यत्र ।—सुर० ४।१२ ।

अन्न्यत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] परायापन । भिन्नता ।

अन्न्यत्वभावना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार जीवात्मा को  
शरीर से भिन्न समझना ।

अन्न्यथा<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ विपरीत । उलटा । विरुद्ध । और का और ।  
२ असत्य । झूठा । उ०—किहँ अन्न्यथा होइ नहि विप्र आप  
अति घोर ।—मानस, १।१७४ ।

अन्न्यथा<sup>२</sup>—अव्य० नहीं तो । जैसे,—आप समय पर आइए अन्न्यथा  
हमसे भेंट न होगी (शब्द०) ।

अन्न्यथाकारिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] विपरीत या विरुद्ध करने की  
प्रवृत्ति । उ०—हा । होती है प्रकृति सचि में अन्न्यथाकारिता  
भी ।—प्रिय० प्र०, पृ० २१६ ।

अन्न्यथाचार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अनुचित या विपरीत कार्य । विरुद्ध  
आचरण । उ०—तब उसका परिणाम अन्न्यथाचार के  
अतिरिक्त क्या होना है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३१६ ।

अन्न्यथानुपपत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वस्तु के अभाव में किसी  
दूसरी वस्तु की उपपत्ति या अस्तित्व की अस्मावना ।

विशेष—जै न, मोक्ष देवदत्त दिन को नही जाना, इन कथन से इम  
वात का अनुमान होता है या प्रमाण मिलता है कि वेदवत्त



रात को खाता है क्योंकि बिना खाए मोटा होना असंभव है।  
 न्याय में यह अनुमान के अतर्गत और भीमासा में अर्थापत्ति  
 प्रमाण के अतर्गत है।  
 अन्यथाभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विरोधात्मक भाव या विचार। गिन्न  
 रूप में होना [को०]।  
 अन्यथावाही—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्यथावाहिन्] अर्थशान्त्रानुसार बिना  
 चुगी या महसूज दिए ही माज ले जानेवाला।  
 अन्यथासिद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय में एक दोष जिसे यथार्थ  
 नहीं किन्तु और कोई कारण दिखाकर किसी तान की सिद्धि  
 की जाय। असबद्ध कारण से सिद्धि। जैसे,—कही कुम्हार, दड  
 या गधे को देखकर यह सिद्ध करना कि वहाँ घट है।  
 अन्यदा—अव्य० [मं०] १ दूसरे समय। दूसरे अवसर पर। २ एक  
 दिन। एकवार। एक समय। ३ किसी समय। कभी [को०]।  
 अन्यदीय—वि० [मं०] अन्य का। दूसरे से सवधित। उ०—अन्यदीय  
 इच्छा के द्वारा उसका सञ्चानन नहीं होता।—मपूर्णा० अमि०  
 ग्र०, पृ० ११८।  
 अन्यदुर्वह—वि० [सं०] जो दूसरे के वहन करने योग्य न हो। दूसरे के  
 लिये कठिन [को०]।  
 अन्यदेशीय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अन्यदेशीया] विदेशी। दूसरे देश  
 का परदेशी।  
 अन्यधी—वि० [मं०] जिसका विचार ईश्वर के पक्ष में न हो। ईश्वर  
 को न माननेवाला [को०]।  
 अन्यन्ताभि—वि० [सं०] दूसरे वशवाला [को०]।  
 अन्यपर—वि० [सं०] अन्य विषयक। दूसरे के बारे में [को०]।  
 अन्यपुरुष—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ दूसरा आदमी। गैर। २ व्याकरण  
 में पुरुषवाची सर्वनाम का तीसरा भेद। वह पुरुष जिसके सवध  
 में कुछ कहा जाय। यह दो प्रकार का है—निश्चयात्मक जैसे  
 'यह', 'वह' और अनिश्चयात्मक जैसे 'कोई'।  
 अन्यपुष्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्यपुष्टा] वह जिसका पोषण अन्य  
 के द्वारा हो। कोकिल। कोयल। काकपाली।  
 विशेष—ऐसा कहा जाता है कि कोयल अपने बच्चे को सेने के  
 लिये कौनों के घोंसलों में रख आती है।  
 अन्यपूर्वा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो एक को व्याही जाकर या  
 वाग्दत्ता होकर फिर दूसरे से व्याही जाय। इसके दो भेद हैं—  
 पुनर्भू और स्वरिणी।  
 अन्यवीजज—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दत्तक पुत्र [को०]।  
 अन्यवीजसमुद्भव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्यवीजज' [को०]।  
 अन्यवीजोत्पन्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्यवीजज' [को०]।  
 अन्यभृत्<sup>१</sup>—वि० [सं०] दूसरे का पालन करनेवाला [को०]।  
 अन्यभृत्<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० काक। कौआ [को०]।  
 अन्यभृता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल [को०]।  
 अन्यमन—वि० [सं० अन्यमनस्] अनमना। उदास। चिंतित।  
 अन्यमनस्क—वि० [सं०] जिसका जी कहीं न लगता हो। उदास।  
 चिंतित। अनमना। उ०—किन्तु अन्यमनस्क होकर वह टहलने  
 ही लगी।—कानन०, पृ० १८।

अन्यमानस—वि० [मं०] दे० 'अन्यमनस्क' [को०]।  
 अन्यमातृज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दूसरी या माँनेली माता से उत्पन्न।  
 सोतेला भाई [को०]।  
 अन्यमार्गी—वि० [मं०] अन्यमार्गिन्। दूसरा मत या धर्म माननेवाला।  
 उ०—अन्यमार्गी को ग्रहज्ञान मोन लियो।—दो मो वावन०,  
 भा० १, पृ० ३१८।  
 अन्यहि—अव्य० [मं०] किसी अन्य समय [को०]।  
 अन्यवादी—वि० [मं०] अन्यवादिन्। १ झूठी गवाही देनेवाला।  
 २ प्रतिवादी [को०]।  
 अन्यवाप—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] कोयल [को०]।  
 अन्यविवर्धित—वि० [मं०] जिसका पालन दूसरे द्वारा किया गया  
 हो [को०]।  
 अन्यव्रत—वि० [मं०] अन्यधर्मानुगामी। अनाय।  
 विशेष—पनार्यों की अपनी मापाएँ थी जो आर्यों को अर्जाव सी  
 मालूम होती थी। आर्यों ने उनको अन्यव्रत इत्यादि कहा है  
 जिससे जाहिर होता है कि उनके धर्म, देवता, निरप इत्यादि  
 पृथक् थे।  
 अन्यशाख—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] वह ब्राह्मण जिसने प्राणा धम त्याग  
 दिया हो [को०]।  
 अन्यशाखक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्यशाख' [को०]।  
 अन्यसक्रात—वि० [सं०] अन्यसक्रान्त। दूसरी स्त्री ने सवध करने  
 वाला [को०]।  
 अन्यसगम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अन्यसङ्गम। अवैध यौनसंघ [को०]।  
 अन्यसम्भूयक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अन्यसम्भूयक। योक्त का दूसरा दाम  
 जो पहले दाम पर न रिफने पर लगाया जाय।  
 विशेष—चन्द्रगुप्त के समय बहुत से पदार्थ ऐसे थे जिन्हें राज्य ही  
 बेचता था।  
 अन्यसभोगदुखिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] अन्यसभोगदुखिता। वह  
 नायिका जो अन्य मन्त्री में मनो के बिहिन देखकर और यह जान-  
 कर कि इसने हमारे पति के साथ रमण किया है, दुखित हो।  
 अन्यसाधारण—वि० [मं०] बहुते में पाया जानेवाला [को०]।  
 अन्यसुरतिदुखिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] दे० 'अन्यसभोगदुखिता'।  
 उ०—अन्यसुरतिदुखिता कहो, करे पेच-रिम-नेह।—निराम  
 ग्र०, पृ० २६२।  
 अन्याइ<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अन्याय'। उ०—मुनि पावै नीवन  
 को राइ। तो यह होइ बडो अन्याइ।—नद० ग्र०, पृ० २४४।  
 अन्याइ<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अन्याय'। उ०—सेए नाहि चरन  
 गिरिधर के बहुत करी अन्याइ।—सूर० १।१४७।  
 अन्याइ<sup>३</sup>—वि० [हि०] दे० 'अन्यायी'। उ०—या ब्रज में लरिका  
 घने हौंही अन्याइ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३०।  
 अन्याउ<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अन्याय'। उ०—जे अन्याउ करहि  
 काह को ते सिमु मोहि न भावहि।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३२।  
 अन्यादृश—वि० [सं०] १ दूसरे प्रकार का। २ परिवर्तित [को०]।  
 अन्यापदेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह कथन जिसका अर्थ साधर्म्य के विचार  
 से कथित वस्तुओं के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओं पर घटाया जाय।

अन्योक्ति । जैसे,— हे पिक पचम नाद को नहि भीलन को ज्ञान । यहै रीझिबो मान तू जो न हनै हिय वान । यहाँ कोकिल और भील की बात कहकर मूर्ख दुर्जनो और गुणियो का स्वभाव दिखाया गया है ।

अन्यापेक्षी—वि० [म० अन्यापेक्षिन्] दूसरे का आभारा रखनेवाला । दूसरे का अवलंब लेनेवाला । उ०—वह मूलन एक उन्मुख भाव है, अन्यापेक्षी भाव जो दूसरे की उपस्थिति से ही रसात्मकता तक पहुँचता है ।—नदी०, पृ० २५६ ।

अन्याय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अन्यायी] १ न्याय के विरुद्ध आचरण । अनीति । बझाफी । २ अधेर । अवयवाचार । ३ जुल्म ।

अन्यायी<sup>१</sup>—वि० [म० अन्यायिन्] अन्यथाचारी । अनुचित कार्य करनेवाला दुराचारी । जालिम ।

अन्यायी<sup>२</sup>—वि० [म०] न्याय के प्रतिकूल । अनुचित ।

अन्यारा<sup>३</sup>—वि० [म० अ=नहीं+हि० न्यारा] १ जो पृथक् या जुदा न हो । २ अनोखा । निराला । ३ खूब । बहुत । बड़े बस जग माह अन्यारा । छत्र धर्म धुर को रखवारा ।—लाल० (शब्द०) ।

अन्यारी<sup>४</sup>—वि० स्त्री० [हि०] १ 'अनियारा' । उ०—काम झूलै उर मे उरोजन मे दाम झूलै, रयाम झूलै प्यारी की अन्यारी अँखियान मे ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३२१ ।

अन्यार्थ—वि० [सं०] प्रस्तुत अर्थ से भिन्न अर्थ प्रकट करनेवाला [को०] अन्यार्थ<sup>५</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] १ 'अन्याय' । उ०—देवनि हूँ देव परिहरचो अन्याय न तिनको, हौ अपराधी सब केरो ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६३ ।

अन्याश्रित—वि० [म०] दूसरे पर निर्भर या अवलंबित [को०] ।

अन्यास<sup>६</sup>—क्रि० वि० [हि०] १ 'अनायाम' । उ०—दाम मनि काहे को अन्यास दरसावनी मयावनी भुअगिनी सी वेनी लौटि लौटि है ।—मिशारी० ग्र०, पृ० १७४ ।

अन्यासाधारण—वि० [म०] असाधारण । असामान्य । विचित्र [को०]

अन्यून—वि० [सं०] जो न्यून न हो । जो कम न हो । काफी । बहुत ।

अन्येद्यु—क्रि० वि० [म०] [वि० अन्येद्युः] दूसरे दिन ।

अन्येद्यु ज्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो बीच में एक एक दिन का अंतर देकर चढ़े । एकतरा ज्वर । अंतरिया बुखार ।

अन्येद्युष्क<sup>१</sup>—वि० [म०] दूसरे दिन होनेवाला ।

अन्येद्युष्क<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अन्येद्युज्वर' ।

अन्योका—वि० [सं० अन्योक्त] अपने घर में न रहनेवाला [को०] ।

अन्योक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] वह कथन जिसका अर्थ साधर्म्य के विचार से कथित वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तु पर घटाया जाय ।

अन्यापदेश । जैसे,—केती मोम कला करो, करो सुधा को दाना नही चंद्रमणि जो द्रव्य, यह तेलिया पखान । यहाँ चंद्रमा और तेलिया पत्थर के बहाने गुणी और अगुणग्राही अथवा मज्जन और दुर्जन की बात कही गई है । रुद्रट आदि दो एक आचार्यों ने इसको अलंकार माना है ।

अन्योदर्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अन्योदर्या] दूसरे के पेट से पैदा । सहोदर का उलटा ।

अन्योन्य<sup>१</sup>—सर्व० [सं०] परस्पर । आपस में ।

अन्योन्य<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० वह काव्यालंकार जिसमें दो वस्तुओं की किमी क्रिया या गुण का एक दूसरे के कारण उत्पन्न होना वर्णन किया जाय । जैसे—सर की शोभा हम है, राजहम की ताल । करत परस्पर हैं मदा गुहता प्रकट विशाल ।

अन्योन्यभेद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आपसी वैर । शत्रुता [को०] ।

अन्योन्यविभाग—सञ्ज्ञा पुं० [म०] पतृक मपत्ति का पारस्परिक बँटवारा [को०] ।

अन्योन्यवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] पारस्परिक या आपसी प्रभाव [को०] ।

अन्योन्यव्यतिकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कार्य और कारण का पारस्परिक सवध [को०] ।

अन्योन्यसश्रय—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ 'अन्योन्यव्यतिकर' [को०] ।

अन्योन्याभाव—सञ्ज्ञा पुं० [म०] किसी एक वस्तु का दूसरी वस्तु न होना । जैसे—घट पट नहीं हो सकता और पट घट नहीं हो सकता ।

अन्योन्याश्रय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ परस्पर का महारा । एक दूसरे की अपेक्षा । २ न्याय में एक वस्तु के ज्ञान के लिये दूसरी वस्तु के ज्ञान की अपेक्षा । सापेक्ष ज्ञान । जैसे—सर्दी के ज्ञान के लिये गर्मी के ज्ञान की, और गर्मी के ज्ञान के लिये सर्दी के ज्ञान की आवश्यकता है ।

अन्वक्—क्रि० वि० [सं०] १ वाद में । पीछे से । २ मैत्री से । अनुकूलता से [को०] ।

अन्वक्ष<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ प्रत्यक्ष । साक्षात् । २ पीछे या वाद का [को०] ।

अन्वक्ष<sup>२</sup>—क्रि० वि० १ मामने । २ पीछे । वाद । उपरात ।

अन्वय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अन्वयी] १ परस्पर । तारतम्य ।

२ मयोग । मेल । ३ पद के शब्दों को वाक्यरचना के नियमा-

नुसार यथास्थान रखने का कार्य । जैसे—पहले कर्ता फिर

कर्म और फिर क्रिया । ४ अवकाश । खाली स्थान ।

५ वश । कुल । घराना । खानदान । ६ भिन्न भिन्न वस्तुओं

को साधर्म्य के अनुसार एक कोटि में लाना । जैसे,—चलने

फिरनेवाले मनुष्य, बैल, कुत्ता आदि को जगम के अन्तर्गत

मानना । ७. कार्य कारण का सवध । ८ अनुगमन [को०] ।

९ आशय [को०] ।

अन्वयज्ञ—वि० [सं०] वशपरपरा का ज्ञाता [को०] ।

अन्वयव्यतिरेक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ सहमति और असहमति ।

सगति और असगति । २ नियम और अपवाद [को०] ।

अन्वयव्यतिरेकसवध—सञ्ज्ञा पुं० [म० अन्वयव्यतिरेकसम्बन्ध] दो

वस्तुओं का वह सवध जिसमें एक के होने पर दूसरी का होना

तथा दूसरी के न होनेपर पहली का न होना निर्भर करता है।

जैसे, दड और चक्र तथा घड़े का सवध । 'दड और चक्र के रहने

पर ही घड़े का बनना', यहाँ दड और चक्र का घड़े के बनने से

अन्वय सवध है । साथ ही दड और चक्र के अभाव में घड़े का न

बनना यहाँ दड और चक्र के अभाव का घड़े के न बनने से

व्यतिरेक सवध है ।

अन्वयव्याप्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चय या स्वीकारात्मक तर्क [को०] ।

अन्वयागत—वि० [सं०] जो वशपरपरा से चला आ रहा हो ।

वशानुगत [को०] ।

अन्त्येष्ट्य--वि० [सं०] दे० 'अन्त्येष्ट्य' । [स्ते०] ।

अन्वेष्टा—वि० [ सं० अन्वेष्ट ] [ स्त्री० अन्वेष्टी ] खोजनेवाला । तलाश करनेवाला ।  
 अन्वेष्ट्य—वि० [ म० ] अन्वेष्ट के योग्य [को०] ।  
 अन्हरा(५) —वि० [ म० अघ, प्रा० अघल ] अवा । नेत्रहीन । सूर ।  
 उ०—जो कुछ रहा से अन्हरे भाखा, कठवै कहेसि अन्हरी ।  
 वचा रहा सो जोलहा कहिगा, अब जो कहै सो झूठी ।—  
 प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६६ ।  
 अन्हवाना(५) —क्रि० म० [ हि० अन्हाना का प्रेरु० ] स्नान कराना ।  
 नहलाना । उ०—(क) वद करत पूजा हरि देखत । घट  
 वजाइ देव अन्हवायो, दल चदन लै भेटत ।—मूर०, १०।२६१।  
 (ख) रामचरित सर वितन अन्हवाएँ ।—मानस, १।११ ।  
 अन्हवैया(५) —वि० [ हि० अन्हाना + वैया (प्रत्य०) ] स्नान कराने-  
 वाला । नहानेवाला । उ०—भरत, राम, रिपुदवन, लखन के  
 चरित सरित अन्हवैया ।—तुलसी ग्र०, पृ० २७६ ।  
 अन्हान(५) —सज्ञा पु० [ म० स्नान, प्रा० ण्हाण, अण्हान, नहान ] दे०  
 'स्नान' । उ०—कै मज्जन तव किएउ अन्हानू । पहिरे चीर  
 गएउ छपि मानू ।—जायसी ग्र० ।  
 अन्हाना(५) —क्रि० अ० [ हि० अन्हान से नाम० ] स्नान करना ।  
 नहाना । उ०—हम लकेन दूत प्रतिहारी समुद नीर कौ जात  
 अन्हाने ।—मूर०, ६।१२० ।  
 अपकिल—वि० [ सं० अपक्विल ] १ पकरहित । सूखा । विना कीचड  
 का । २ शुद्ध । निर्मल ।  
 अपग—वि० [ म० अपाङ्ग = हीनाङ्ग ] १ अगहीन । न्यूनाग । २  
 लेंगटा । लूना । ३ काम करने में अशक्त । वेवम । असमर्थ ।  
 उ०—आपुन लोभ अस्त्र लै धावत, पलक कवच नहि अग-  
 हाव भाव मर लरत कटाच्छनि, मृकुटी धनुष अपग ।—  
 मूर०, १०।२८८ ।  
 अपचीकृत—वि० [ म० अपचोक्त ] पच महाभूतो का अमित्र सूक्ष्म  
 रूप जिसका पचीकरण न हुआ हो ।  
 अपजीकृत—वि० [ म० अ= नहीं + पञ्जीकृत ] जो सूची, वही, रजिस्टर  
 या खाते में दर्ज न हो ।  
 अपंडित—वि० [ म० अपण्डित ] मूर्ख । निरक्षर । ज'नहीन ।  
 अपडी—वि० [ म० अ + पिण्डन् ] पिंड या शरीर में रहित (ईश्वर) ।  
 उ०—वसै अपडी पड मे ता गति लपै न कोई ।—कवीर  
 ग्र०, पृ० १८ ।  
 अपथ—सज्ञा पु० [ सं० अ= बुरा + हि० पथ ] दे० 'अपथ' । उ०—  
 कहै कवीर गृह अचरज वाता । उलटी रीति अपथ जग जाता ।  
 —कवीर सा०, पृ० ४३१ ।  
 अपपर(५) —वि० [ हि० ] दे० 'अपरपार' । उ०—(क) प्रथम सुमर  
 इण विध परमेश्वर । पूरण ब्रह्म प्रताप अपपर ।—रा० ह०,  
 पृ० ३ । (ख) नमो अविगत नमो आपू नमो पार अपपरम् ।—  
 राम० धर्म०, पृ० ५१ ।  
 अप प्रवेशन—सज्ञा पु० [ सं० ] कौटिल्य के अनुसार पानी में डुबाकर  
 मारने का दंड जो राजविद्रोही ग्राहमणों को दिया जाता था ।  
 अप—सज्ञा पु० [ म० ] १ जल । पानी । २ वातु । हवा (को०) । ३  
 चित्रा नक्षत्र (को०) ।

अप<sup>१</sup>—उपे० [ म० ] उलटा । विरुद्ध । बुरा । हीन । अधिक ।  
 विशेष—यह उपसर्ग जिस शब्द के पहले आता है, उसके अर्थ में  
 निम्नलिखित विशेषता उत्पन्न करता है ।—१ निषेध । जैसे—  
 अपकार । अपमान । २ अपकृष्ट (दूषण) । जैसे—अपकर्म ।  
 अपकीर्ति । ३ विकृति । जैसे—अपकुक्षि । अपाग ४ विषे-  
 पता । जैसे—अपकलक । अपहरण ।  
 अप<sup>२</sup>—सर्व० [ हि० ] 'आप' का सक्षिप्त रूप जो यौगिक शब्दों में आता  
 है । जैसे—अपस्वार्थी । अपकाजी । उ०—दृगति के मग लै  
 मोहन कहियाँ । घरि के अप अपने हिय महियाँ ।—नद० ग्र०,  
 पृ० २६५ ।  
 यौ०—अपआप = अपने आप । खुद व खुर । उ०—नाला अपआप  
 सागर हुआ । काहे के कारण रोता है कुवा ।—दक्खिनी,  
 पृ० २१ ।  
 अप<sup>३</sup>(५) —सज्ञा पु० [ म० अप् ] जल । पानी । उ०—रज अप अनल  
 अग्नि नम जड जानत मव कोई ।—स० सप्तक, पृ० १६ ।  
 अपक—सज्ञा पु० [ सं० अप् + क ] पानी । जल । (डि०) ।  
 अपकरण—सज्ञा पु० [ सं० ] १ अनिष्ट कार्य । २ दुष्टाचार । दुराचार ।  
 ३ बुरा वर्तव ।  
 अपकरुण—वि० [ सं० ] निटुर । निर्दयी । बेरहम । कठोरहृदय ।  
 अपकर्ता—सज्ञा पु० [ सं० ] [ स्त्री० अपकर्त्री ] १ हानि पहुँचानेवाला ।  
 हानिकारी । २ बुरा काम करनेवाला । पापी । ३ शत्रु (को०) ।  
 अपकर्म—सज्ञा पु० [ म० ] बुरा काम । खोटा काम । कुर्म । पाप ।  
 उ०—पति को धर्म इहै प्रतिपालै, युवती सेवा ही को धर्म ।  
 युवती सेवा तरुन त्यागै जो पति कोटि करै अपकर्म ।—  
 सूर (शब्द०) ।  
 अपकर्मा—वि० [ सं० अपकर्मान् ] दुष्कर्मी भ्रष्टाचारी ।  
 अपकर्ष—सज्ञा पु० [ सं० ]—१ उत्कर्ष का विरोध । नीचे की ओर  
 खिंचाव । गिराव । २ घटाव । उतार । कमी । ३ किसी वस्तु  
 या व्यक्ति के मूल्य वा गुण को कम समझना या बतलाना ।  
 बेकदरी । निरादर । अपमान ।  
 अपकर्षक—वि० [ म० ] अपकर्ष करनेवाला । निरादर करनेवाला ।  
 जिससे अपमान होता हो ।  
 अपकर्षण—सज्ञा पु० [ सं० ] १ अमान । तिरस्कार । बेकदरी । उ०—  
 धन्य वन्य जन भी न सह सके यह अपकर्षण ।—साकेत,  
 पृ० ४१६ । दे० 'अपकर्ष' ।  
 अपकर्षसम—सज्ञा पु० [ सं० ] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से  
 एक । दृष्टांत में जो न्यूनताएँ हो उनका साध्य में आरोप करना ।  
 जैसे यह कहना—'यदि घट का सादृश्य शब्द में है तो जिस  
 प्रकार घट का प्रत्यक्ष श्रवणेंद्रिय से नहीं होता, उसी प्रकार  
 शब्द का भी श्रवणेंद्रिय से प्रत्यक्ष नहीं होता ।'  
 अपरूपित—वि० [ म० ] अपमानित । अपकृष्ट । हटाया गया (को०) ।  
 अपकलक—सज्ञा पु० [ म० अपकलङ्क ] अमिट कलक । न मिटनेवाला  
 कलक (को०) ।  
 अपकल्मष—वि [ सं० ] १ निष्पाप । २ निष्कलक (को०) ।  
 अपकपाय—वि० [ सं० ] दे० 'अपकल्मष' (को०) ।

अपकाजी०—वि० [हि० अप + काज] अपस्वार्थी। मतलबी। उ०—  
यधाम विरह वन भाँक हेरानी। अहकारि लपट अरकाजी सग  
न रह्यो निदानी।—सूर (शब्द०)।

अपकार—सज्ञा पुं० [म०] [वि० अपकारक अपकारी] १ अनिच्छाघन।  
द्वेष। द्रोह। बुराई। अनुपकार। हानि। नुकसान। अनमन।  
अहिन। उपकार का विलोम। उ०—मम अपकार कीन्ह तुम  
भारी। नारि विरह तुम होव दुखारी।—नुतसी (शब्द०)। २  
अनादर। अपमान। ३ अत्याचार। असद्व्यवहार।

अपकारक—वि० [म०] १ अपकार करनेवाला। क्षति पहुँचानेवाला।  
हानिकारी। २ विरोधी। द्वेषी।

अपकारी—वि० [म० अपकारिन्] [स्त्री० अपकारिणी] १ हानिकारका  
बुराई करनेवाला। अनिष्टमायक। उ०—खल त्रिनु स्वारथ  
पर अपकारी।—मानस, ७।२१। २ विरोधी। द्वेषी।

अपकारीचार०—वि० [म० अपकार + आचार] हानि पहुँचानेवाला।  
हानिकारी। विघ्नकारी। उ०—जे अपकारीचार, तिन्ह कहें  
गौरव मान्य बहु। मन क्रम यवन लवार, ते वरुना कलिकाल  
मेंह।—तुलसी (शब्द०)।

अपकिरण—सज्ञा पुं० [म०] बिखराना। छितराना [को०]।

अपकीरति०—सज्ञा स्त्री० [हि०] १ 'अपकीर्ति'। उ०—में अपनी  
अपकीरति को डरवान महीं सबदैव महावी—हम्मीर०, पृ० २०।

अपकीर्ण—वि० [म०] बिखेरा या छितराया हुआ।

अपकीर्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] अपयश। अयश। बदनामी। निंदा।

अपकृत<sup>१</sup>—वि० [म०] १ जिनका अपकार किया गया हो। जिसे  
हानि पहुँची हो। जिसकी बुराई की गई हो। २ अपमानित।  
बदनाम। ३ जिनका विरोध किया गया हो। उपकृत का  
उलटा।

अपकृत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० बुराई। हानि। क्षति [को०]।

अपकृति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ अकार। हानि। बुराई। २ अपमान।  
निंदा। बदनामी।

अपकृष्ट—वि० [म०] १ गिरा हुआ। पतित। अष्ट। २ अधम।  
नीच। निन्द्य। ३ वृणित। बुरा। खराब।

यो०—अपकृष्टचेतन = बुरे विचारोंवाला।

अपकृष्टता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ अधमता। नीचता। २ बुराई।  
खराबी।

अपकीशली—सज्ञा स्त्री० [म०] नमाचार। सवाद। सूचना [को०]।

अपक्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ कच्चापन। अपरिपक्व। २ अजीर्ण [को०]।

अपक्रम<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] १ व्यक्तिगत। क्रमसग। अनियम। गडबडा।  
उलट पलट। २ दाँडना। पीछे हटना [को०]। ३ पीछे हटने  
का स्थान या सीमा [को०]। ४ (समय) बीतना। व्यतीत  
होना [को०]।

अपक्रम<sup>२</sup>—वि० अव्यवस्थित। क्रमविहीन [को०]।

अपक्रमण—सज्ञा पुं० [म०] १ 'अपक्रम' [को०]।

अपक्रमी—वि० [म० अपक्रमिन्] १ जानेवाला। हटनेवाला। २.  
तीव्रता से न जानेवाला [को०]।

अपक्रम—सज्ञा पुं० [म०] १ 'अपक्रम' [को०]।

अपक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ क्षति। दुष्कर्म। अहित। २ ऋण-  
परिशोध [को०]।

अपक्रोश—सज्ञा पुं० [म०] गाली देना। निंदा करना। कुवाच्य  
कहना [को०]।

अपक्व—वि० [स०] १ बिना पका हुआ। कच्चा। उ०—फल अपक्व  
जो वृक्ष ते तीर लेत नर कोय। फल को रस पावै नही, नास  
बीज को होय।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २०१। २ अनम्यस्त।  
असिद्ध। अनुभवहीन।

यो०—अपक्वबुद्धि।

अपक्वकलुष—सज्ञा पुं० [स०] शैव दर्शन के अनुसार सकल के दो  
भेदों में से एक। बद्धजीव, जो समार में बार बार जन्म  
ग्रहण करता है।

अपक्वज्वर—सज्ञा पुं० [स०] वैद्यक में ज्वर की वह दशा जिसमें लार  
गिरना, उबकाई आना, अरुचि, आनास्य, देह का जकड़ना आदि  
उपद्रव होते हैं।

अपक्वता—सज्ञा स्त्री० [स०] पका हुआ न होना। कच्चापन। २  
अनम्यस्तता। अमिद्धता।

अपक्ष<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ वह जो राज्य के पक्ष में न हो। २  
जिससे राज्य को कोई लाभ न हो। ३ वह, जिसका किसी से  
हेलमेल न हो। वह, जो किसी के साथ मिल जुलकर न रह  
सकता हो। निष्पक्ष। उ०—लक्ष अपक्ष प्रदक्ष न दक्ष, न पक्ष  
अपक्ष, न तूल न भारी।—सुंदर ग्र०, पृ० ६४४।

विशेष—चाणक्य ने ऐसे मनुष्यों के लिये लिखा है कि उन्हें कहीं  
अलग अपना उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए।

अपक्ष<sup>२</sup>—वि० [स०] १ पक्षहीन। पक्षरहित। २ निष्पक्ष [को०]।

अपक्षपात<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] पक्षपात का अभाव। न्याय। खरापन।

अपक्षपात<sup>२</sup>—पक्षपातविहीन। निष्पक्ष। खरा। उ०—परतु नौशेरवाँ  
खजाची के इस अपक्षपात नाम से ऐसा प्रसन्न हुआ कि उसे  
निहान कर दिया।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २२८।

अपक्षपाती—वि० [स० अपक्षपातिन्] [स्त्री० अपक्षपातिनी] पक्षपात-  
रहित। न्यायी। खरा।

अपक्षय—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अपक्षीण] १ छीजना। ह्राम। नाश।  
२ कृष्णपक्ष [को०]।

अपक्षिप्त—वि० [म०] १ अपक्षेय की क्रिया द्वारा पलटाया वा फेंका  
हुआ। २ फेंका हुआ। गिराया हुआ। पतित।

अपक्षीण—वि० [स०] नष्ट। छीजा हुआ। विनष्ट [को०]।

अपक्षेय—सज्ञा पुं० [स०] १ 'अपक्षेयण' [को०]।

अपक्षेयण—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अपक्षिप्त] १ फेंकना। पलटाना।  
२ गिराना। च्युत करना। ३ पदार्थविज्ञान के अनुसार  
प्रकाश, तेज और शब्द की गति में किसी पदार्थ से टकरा-  
खाने से व्यावर्तन होना। प्रताशादि का किसी पदार्थ से टकरा-  
कर पलटना। ४ वैशेषिक शास्त्रानुसार आकुचन, प्रसारण  
आदि पाँच प्रकार के क्रमों में से एक।

अपखोरा—सज्ञा पुं० [फा० अपखोरा, हि० अपखोरा] जल पीने का  
पात्र या वस्तु।

अपगड—वि० [स० अपगण्ड] १ 'अपगण्ड' [को०]।

अपग<sup>१</sup>—वि० [म०] १ जानेवाला । दूर हटनेवाला [को०] ।  
अपग<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [म० अपगा] सरिता । नदी ।—अनेकार्थं०  
पृ० ४४ ।

अपगत—वि० [म०] १ पनायित । नागा हुआ । पलटा हुआ । २  
दूरीभूत । हटा हुआ । गत । उ०—अपगत ये कोई अवनि मो  
पुनि प्रगट पताये ।—स० सप्तक, पृ० १५ । ३ मरा हुआ ।  
मृत [को०] ।

यौ०—अपगनव्याधि = रोगमुक्त ।

अपगति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दुर्गति । अधोगति । दुर्भाग्य [को०] ।  
अपगम—सज्ञा पुं० [स०] १ वियोग । अलग होना । २ दूर होना ।  
भागना । ३ मृत्यु । मरण [को०] ।

अपगमन—सज्ञा पुं० [स०] ३ 'अपगम' [को०] ।  
अपगम—सज्ञा [स०] पुं० १ निदा । २ वह जो निदा करे ।  
निन्दक [को०] ।

अपगर्जित—वि० [म०] गर्जनशून्य (वादन) । गर्जनारहित [को०] ।  
अपगल्भ—वि० [म०] १ भीन । गीन । घमडाया हुआ [को०] । २  
पार्श्वीय । बगल का [को०] ।

अपगा<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० [स० अपगा] नदी ।  
अपगीत—वि० [म० अप + गीत] बुरा कहा जानेवाला । निन्दनीय  
(को०) । उ०—मैं ही हूँ वह महानिन्द्य, अविनीत हा । होगा मुझ  
सा और कौन अपगीत हा ।—शकुं०, पृ० ५२ ।

अपगुण—सज्ञा पुं० [म०] १ दोष । ऐत्र [को०] । २ निर्गुण । गुण  
अवगुण से रहित [को०] ।

अपगोपुर—वि० [म०] द्वारविहीन । द्वाररहित (नगर) [को०] ।

अपघन<sup>१</sup>—वि० [म०] १ मेघरहित । निरभ्र [को०] ।

अपघन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [म०] शरीर का अंग (हाथ पैर आदि) [को०] ।

अपघात<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] १ हत्या । हिंसा । २ वचना । त्रिष्वाम-  
घात । धोखा । उ०—जीएँ तुमको जान सहमा तात । कर  
गया क्या काल यह अपघात ।—साकेत, पृ० १७७ ।

अपघात<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [हि० अप + म० घात] आत्महत्या । आत्मघात ।  
उ०—(क) कहुरे कुँआर मोंमे मत वाता । काहे लागि करनि  
अपघाता ।—जायसी (शब्द०) । (ख)—नाजन को मारो  
राज । चाहै अपघात कियो जियो नहि जान भक्ति लेशहूँ न  
आयो है ।—प्रिया (शब्द०) ।

अपघातक—वि० [म०] १ विनाश करनेवाला । घातक । २ विश्वास-  
घाती । वचक । धोखा देनेवाला ।

अपघाती—वि० [म० अपघातिन्] [वि० स्त्री० अपघातिनी] १ घातक ।  
विनाशक । २ विश्वासघाती । वचक ।

अपच<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि० अप + पच] न पचने का रोग । अजीर्ण ।  
वदहजमी ।

अपच<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ पाककार्य में अममय व्यक्तित्व । वह जिसे  
अपने निये पकाना न आता हो । २ बुरा पाचक [को०] ।

अपचय—सज्ञा पुं० [म०] [वि० अपचयी] १ क्षति । हानि । २ व्यय ।  
कमी । नाश । ४ पूजा । समान ।

अपचरित<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ दोषयुक्त आचरण । बुराचार ।  
बुरा कर्म ।

अपचरित<sup>२</sup>—वि० १ गदा हुआ । प्रस्थित । २ मृत [को०] ।

अपचरितप्रकृति—सज्ञा पुं० [स०] वह राजा जिसकी प्रजा अत्याचार  
से पीड़ित हो [को०] ।

अपचायित—सज्ञा पुं० [स०] १ रोबीना । जिससे लोग डरें । २.  
पूजित । समानित । आदृत [को०] ।

अपचायी—वि० [स० अपचायिन्] बड़ो का आदर समान न करने  
वाला [को०] ।

अपचार—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अपचारी] १ अनुचित वतव । बुरा  
आचरण । कुव्यवहार । उ०—विबुध त्रिमल बानी गगन हेतु  
प्रजा अपचार । रामराज परिनाम मल कीजिय वेगि विचार ।  
—तुलसी ग्र०, पृ० ६२।२ अनिष्ट । अहित । बुराई । ३ अना-  
दर । निदा । अपयश । ४ कुश्रय । स्वास्थ्यनाशक व्यवहार ।  
५ अभाव । ६ भूत । भ्रम । दोष । ७ मृत्यु । विनाश [को०] ।

अपचारक—वि० [म०] अपचार करनेवाला [को०] ।

अपचारी—वि० [स० अपचारिन्] [वि० स्त्री० अपचारिणी] विगद  
आचरण करनेवाला । बुराचारी । दुष्ट ।

अपचाल<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० [स० अप + हि० चाल] कुचाल । खोटाई । नट-  
खटी । उ०—चारि कै दान सँवार करो अपने अपचाल कुचाल  
ललू पर ।—रसखान (शब्द०) ।

अपचित—वि० [म०] १ पूजित । समानित । आदृत । २ क्षीण ।  
दुर्बल । कमजोर [को०] ।

अपचिति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ हानि । क्षय । ह्रास । नाश । २.  
व्यय । ३. दंड देना । ४ पृथक्करण । ५ मरीचि की कन्या का  
नाम । ६ समान करना ७ पूजा [को०] ।

अपची—सज्ञा स्त्री० [स०] गडमाला रोग का एक भेद । गडमाला की  
वह अवस्था जब गाँठें पुरानी होकर पक जाती हैं और जगह  
जगह पर फोड़े निकलते और बहने लगते हैं ।

अपचेता—वि० [स० अपचेतस्] कजूस । मूढ । जो धन न स्वयं खर्च  
करे न करने दे [को०] ।

अपच्छत्र—वि० [म०] छत्रविहीन । छत्ररहित [को०] ।

अपच्छाया<sup>१</sup>—वि० [म०] १ छायाविहीन । २ दूषित या बुरी छाया-  
वाला । जो चमकदार न हो । धुँधला । काँतिहीन [को०] ।

अपच्छाया<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० देवता ।

अपच्छाया—सज्ञा स्त्री० [स०] बुरी छाया । भूत प्रेन की छाया [को०] ।

अपच्छी<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [म० अप + च० पक्षी = पक्षी] विपक्षी ।  
विरोधी । शत्रु । गैर ।

अपच्छी<sup>२</sup>—विना पक्ष का । पक्षरहित ।

अपच्छेद—सज्ञा पुं० [स०] १ काट देना । प्रलग विलग कर देना ।  
२ हानि । ३ बाधा । ४ वह जो टूट गया हो । भग [को०] ।

अपच्छेदन—सज्ञा पुं० [स०] ३ 'अपच्छेद' [को०] ।

अपच्युत—वि० [म०] निपतित । गिरा हुआ । २ उठा हुआ ।  
द्रवित । ३ विनष्ट [को०] ।



अपछरा (उ) —सज्ञा पुं० [स० अप्सरा, प्रा० अप्छरा] १ अप्सरा । उ०—  
कल हस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहि अपछरा ।—  
तुलसी (शब्द०) । २ हिंदुस्तान में रहियों की एक जाति ।

अपजय—सज्ञा स्त्री० [स०] पराजय । हार ।

अपजस (उ) —सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपयश' । उ०—चिता यह मोहि  
अपारा । अपजस नहि होय तुम्हारा ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१६ ।

अपजात—सज्ञा पुं० [स०] माता पिता की अपेक्षा हीनगुण पुत्र ।  
कपूत [को०] ।

अपजोग (उ) —सज्ञा पुं० [स० अप + योग] बुरा योग । बुरा सवध ।  
बुराई । उ०—सब छोटे मधुवन के लोग । जिनके संग स्यामसुंदर  
सखि सीखे हैं अपजोग ।—सूर०, स० १०।३५६० ।

अपज्ञान—सज्ञा पुं० [स०] १ अस्वीकार । इनकार । नटना । नही  
करना । २ सगोपन । छिपाव । दुराव ।

अपज्य—वि० [स० अप + ज्या] शिजिनीहीन । प्रत्यचारहित [को०] ।

अपट (उ) —वि० [स० अपट्ट] जो चतुर न हो । अपट्ट । उ०—मेरे हेरन  
वेस कपट कौ । रहिहै नहि पूतना अपट कौ ।—नद०  
ग्र०, पृ० २३८ ।

अपटन (उ) —सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उपटन' ।

अपटातर—वि० [स० अपटान्तर] १ जो पाट या पर्दे द्वारा विभक्त न  
हो । २ अलग बिलग नहीं । संयुक्त । मिलाजुला [को०] ।

अपटी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ परदा । काडपट । २ कपडे की दीवार ।  
कतना ३ आवरण । आच्छादन ।

अपटीक—वि० [स०] १. व्याख्या करने के ज्ञान से रहित ।  
वस्त्ररहित [को०] ।

अपटीक्षेप—सज्ञा पुं० [स०] नाटक में परदा हटाकर पात्रों का रंग-  
भूमि में सहसा प्रवेश ।

अपट्ट—वि० [स०] १ जो पट्ट न हो । कार्य करने में असमर्थ । २  
गावदी । सुस्त । आलसी । ३ रोगी । ४ ज्योतिष के अनुसार  
(ग्रह) जिसका प्रकाश मद हो जाय ।

अपट्टता—सज्ञा स्त्री० [स०] पट्टता का अभाव । अकुशलता । अनाडीपन ।

अपट्टमान (उ) —वि० [स० अपट्टमान] १ जो पडा न जाय । न पढने  
योग्य । उ०—अपट्टमान पापग्रथ, पट्टमान वेद हैं ।—केशव  
(शब्द०) ।

अपट्टेड—वि० [अ० अप-ट्टेड] रहन सहन या विचार में समय के  
अत्यन्त अनुकूल । उ०—केशन के सवध में अपट्टेड खबर रखते  
थे ।—सन्ध्यासी, पृ० ६२ ।

अपठ—वि० [म०] १ अपठ । जो पडा न हो २ मूर्ख । ३ बुरा ।  
पढनेवाला । कुपाठक [को०] ।

अपठित—वि० [म०] १ अपठ [को०] । २ जो पडा नहीं गया [को०] ।

अपठ्यमान—वि० [स०] १ जो पडा न जाय [को०] २ न पढने  
योग्य [को०] ।

अपडर (उ) —सज्ञा पुं० [म० अप + हिं० डर] भय । शका । उ०—  
नमुकि सहम मोहि अपडर अपने । सो मुधि कीन्ह राम नहि  
सपने ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपडरना (उ) —क्रि० अप० [हिं० अपडर से नाम] भयभीत होना ।  
डरना । शकित होना । उ०—(क) भागे मदमाद चोर भोर  
जानि जातुधान काम क्रोध लोम छोम निकर अपडरे ।—तुलसी  
(शब्द०) । (ख) बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति  
अपडरे ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपडना (उ) —क्रि० अप० [स० अप + पत्] पट्ट चना । उ०—छोछी वीख  
न आपडाँ, लाँवी लाज मरेहि । सयण बटाळ बालरे, लवठ  
साद करेहि ।—ढोला०, दू० ३८४ ।

अपडाना (उ) —क्रि० अप० [स० अपर से नाम०] खीचातानी करना ।  
उ०—मन जो कहो करै री माई । निलज भई तन मुधि  
विसराई गुरुजन करत लराई । इत कुनकानि उतै हरि को रस  
मन जो अति अपडाई ।—सूर (शब्द०) ।

अपडाव (उ) —सज्ञा पुं० [स० अपर, हिं० पराधा = पराया] [क्रि०  
अपडाना] झगडा । रार । तकरार । उ०—(क) हंसत कहत  
की धी सतिभाव । यह कहनी औरे जो कोऊ तासो में करती  
अपडाव । सूरदाम यह मोहि लगावत सपनेहुँ जासो नहि  
दरसाव ।—सूर (शब्द०) । (ख) गोपी इहै करत चवाउ ।  
सूर काहिहि प्रगट कैहै करन दे अपडाउ ।—सूर (शब्द०) ।

अपडार—वि० [म० अप + हिं० डार = डलना] १ वेढगे तौर से  
ढननेवाला । उ०—ग्रह जो अपडार डरै न डरै, गुन त्यों नकि  
लागत दोष महा ।—घनानन्द, पृ० १२६ । २ सरलता से  
ढननेवाला । उ०—ग्रह रावरीयै रसरीति अजू अपडार डरो  
इत यामो कहौ ।—घनानन्द, पृ० १४० । ३ आपसे आप  
ढननेवाला । उ०—जमुना जस जैसे मन आयो । जमुना ही  
अपडार कहायो ।—घनानन्द, पृ० १८५ ।

अपड—वि० [स० अपठ] बिना पडा । मूर्ख । अनपढ़ ।

अपण्य—वि० [स०] न वेचने योग्य । जिसके वेचने का धर्मशास्त्र में  
निषेध है ।

अपतत्र—सज्ञा पुं० [स० अपतन्त्र] वायु के प्रकोप से होनेवाला एक रोग ।  
विशेष—इस रोग में शरीर टेढा हो जाता है, सिर और कनपटी में  
पीडा होती है, साँस कठिनाई से ली जाती है, गले में घरघराहट  
का शब्द होता है और अस्ति फटी पडती है ।

अपतत्रक—सज्ञा पुं० [स० अपतन्त्रक] द० 'अपतत्र' [को०] ।

अपत<sup>१</sup> (उ) —वि० [स० अप + पत्र प्रा० पत्त, हिं पत्ता] १. पत्रहीन ।  
बिना पत्तों का । उ०—जिन दिन देखे वे कुसुम गई सो वीति  
वहार । अब अलि रही गुलाब की अपत कंटीली डार ।—  
विहारी (शब्द०) । २ आच्छादनरहित । नग्न ।

अपत<sup>२</sup> (उ) —वि० [अ स० = नहीं + हिं० पत = लज्जा] लज्जारहित ।  
निर्लज्ज । उ०—लूटे सीखिन अपत करि सिसिर सुसेज वसन ।  
दै दल सुमन मुफल किए सो भल सुजस लसत ।—दीनदयाल  
(शब्द०) ।

अपत<sup>३</sup> (उ) —वि० [स० अपात्र, प्रा० अनत] अधम । पातनी । नीच ।  
उ०—(क) राम राम राम राम राम जपत । पावन किये  
। रावन रिपु तुलसी हू से अपत ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) प्रभु  
जू हौं तो महा अधर्मी । अपत, उतार, अभागौ, कामी, विपयी,  
निपट, कुकर्म ।—सूर०, १।१८६ ।

अपत<sup>५</sup>—सज्ञा स्त्री० [मं० अ=नहीं + पति=प्रतिष्ठा, हिं० पत] अप्रतिष्ठा। वेङ्गजती। दुर्दशा। उ०—जो मेरे दीनदयाल न होते। तो मेरी अपत करत कौरवमुन होत पडवनि ओते।—सूर० १।१५६।

अपत<sup>५</sup>—सज्ञा पुं० [सं० आपत्] विपत्ति। आपत्ति।

अपतई<sup>५</sup>—सज्ञा स्त्री० [मं० अपात्र, पा० अपत्त + हिं० ई (प्रत्यय)] १. निर्लज्जता। वेहयाई। ढिठाई। उत्पात। उ०—नयना लुब्धे रूप के अपने सुख माई। अतिहि करी उन अपतई हरि सो ममताई।—सूर (शब्द०)। २. चञ्चलता। उ०—कान्हू तुम्हारी माय महावन मव जग अपजस कीन्हो (हो)। सुनि ताकी सब अपतई सुक मनकादिक मोहे (हो)। नेक दृष्टि पथ पडि गए शकर सिर टोना लागे (हो)।—सूर (शब्द०)।

अपतर्पण—सज्ञा पुं० [सं०] १. बीमारी के समय का उपवास। लघन। २. तृप्ति का अभाव [को०]।

अपतह<sup>५</sup>—सर्व० [मं० आप्तत, प्रा० अप्ततह] अपने आप। खुद व खुद। स्वयं। अपने तई [को०]। उ०—हम अपतह अपनी पति खोई, हमरें खोज परहु मति कोई।—कवीर ग्र०, पृ० २८७।

अपतानक—सज्ञा पुं० [मं०] एक रोग जो स्त्रियों को गर्भपात तथा पुरुषों को विशेष रुधिर निकलने अथवा भारी चोट लगने से होता है। इसमें बार बार मूर्छा आती है, नेत्र फटते हैं तथा कठ मे कफ एकत्रित होकर घरघराहट का शब्द करता है।

अपताना<sup>५</sup>—सज्ञा पुं० [हिं० अप=अपना + ताना] जजाल। प्रपच। उ०—दारागार पुत्र अपताना। तनघन मोह मानि कल्याना।—विश्राम (शब्द०)।

अपति<sup>५</sup>—वि० स्त्री० [सं० अ=नहीं + पति] १. बिना पति या स्वामी की। विधवा। २. अविवाहित। कुमारी [को०]।

अपति<sup>२</sup>—वि० [सं० अ=बुरा + पति=गति] पापी। दुष्ट। दुराचारी। उ०—कहा करौं सखि काम को हिय निर्दयपन आज। तनु जारत पारत निपत अपति उजारत लाज।—पद्माकर (शब्द०)।

अपति<sup>५</sup>—सज्ञा स्त्री० [हिं० अ=नहीं + पत=प्रतिष्ठा] अप्रतिष्ठा। दुर्गति। दुर्दशा। उ०—(क) पति विनु पतिनी पतित न मग मे। पति विनु अपति नारि की जग मे।—सवन (शब्द०)।

(ख) पये निसि वासर कलकित न अक सम, वरनै मयक कवितार्ई की अपति होइ।—भिखारी ग्र०, पृ० ६६।

अपतिक—वि० [सं०] १. पतिहीन। २. अविवाहित। कुमारी। ३. मालिक या स्वामीहीन [को०]।

अपती—सज्ञा स्त्री० [देश०] प्रायः एक बालिश्व चौड़ा एक तल्ला जो नाव की लवाई मे मरिया के दोनों सिरों पर लगाया जाता है। (मल्लाह)।

अपतोस<sup>५</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] ३० 'अफसोस'।

अपत्त<sup>५</sup>—सज्ञा स्त्री० [हिं०] 'दे०' 'अपत ४'।

अपत्नी—वि० [सं०] अविवाहिता। कुमारी। जो पत्नी न हो। जिसका पति न हो [को०]।

अपत्नीक—वि० [सं०] जिसकी पत्नी न हो। पत्नीविहीन। स्त्रीरहित [को०]।

अपत्य—सज्ञा पुं० [मं०] सतान (पुत्र या कन्या)। उ०—मार्ग है शत्रुघ्न दुर्गम सत्य, तुम रहो उनके यथार्थ अपत्य।—नाकेन, पृ० १७५।

यौ०—अपत्यकाम। अपत्यजीव। अपत्यदा। अपत्यपथ। अपत्यविक्रयो।

अपत्यकाम—वि० [मं०] [वि० स्त्री० अपत्यकामा] मतानेच्छुक। पुत्र की इच्छा रखनेवाला [को०]।

अपत्यजीव—सज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जिसे पुत्रजीवी भी कहने हैं [को०]।

अपत्यता—सज्ञा स्त्री० [सं०] बाल्यावस्था। शैशव [को०]।

अपत्यद—वि० [सं०] पुत्र देनेवाला (मत्त) [को०]।

अपत्यदा—सज्ञा स्त्री० [मं०] गर्भदात्री नाम का पौधा [को०]।

अपत्यपथ—सज्ञा पुं० [मं०] योनि [को०]।

अपत्यविक्रयो—वि० [सं० अपत्यविक्रयिन्] १. सतान बेचनेवाला। २. रुपए लेकर कन्या को विवाह के लिये बेचनेवाला। बेटी-बेचवा [को०]।

अपत्यशत्रु—सज्ञा पुं० [सं०] १. अपत्य वा मतान जिसका शत्रु हो। केकडा।

विशेष—अडा, देने के उपरांत केकडी का पेट फट जाता है और वह मर जाती है।

३. अपत्य का शत्रु। वह जो अपने अडे वच्चे को खा जाय। साँप।

अपत्र<sup>१</sup>—वि० [सं०] पत्रविहीन। पत्तो मे रहित। उ०—वारि बेनि सी फल अमूल, छा अपत्र सरिता के कून, विकसा औ सकुचा नवजात बिना नाल के फेनिल फन।—पल्लव, पृ० ३२। २. पत्ररहित। पक्षहीन [को०]।

अपत्र<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १. बाँस का कल्ला या पूती। २. वृक्ष जिसके पत्ते गिर गए हो। ३. बिडिया जिसे पख न हो [को०]।

अपत्रप—वि० [सं०] निर्लज्ज। ढीठ। धृष्ट [को०]।

अपत्रपण—सज्ञा पुं० [सं०] १. लज्जा। संकोच। २. व्याकुलता। आकुलता [को०]।

अपत्रपा—सज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'अपत्रपण' [को०]।

अपत्रस्त—वि० [सं०] अत्यंत भयग्रस्त। भय से घबराया हुआ [को०]।

अपत्रिका—वि० [सं०] पत्तो से हीन। पत्ररहित [को०]। उ०—हे विमुख, सदा मैं मुखर पीन। आओ अपत्रिका के मर्मर।—गातिका (भू०), पृ० १३।

अपथ<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १. वह मार्ग जो चने योग्य न हो। बौद्ध राह। बिकट मार्ग। उ०—माघी नँकु हटकी गाइ। भ्रमत निसि वासर अपथ पथ अगह, गहि नहि जाइ।—सूर १।८४। २. कुपथ। कुमार्ग। उ०—(क) हरि हैं राजनीति पढ़ि आए। ते नयो नीति करे, आपुन जिन और न अपथ छुडाए।—सूर (शब्द०)। (ख) गनत न मन पथ अपथ लखि विद्युरे सुधरे बार।—विहारी (शब्द०)। ३. मार्ग या पथ का अभाव [को०]। ४. योनि। अपत्यपथ [को०]। ५. किनी प्रचलित मत वा सिद्धांत का दृढ़तापूर्वक विरोध [को०]।

अपथ<sup>२</sup>—वि० मार्गहीन। पथविहीन [को०]।

अपथगामी—वि० [स० अपथगामिन्] १ कुमार्गगामी । बुरे रास्ते पर जानेवाला । २ चरित्रहीन [को०] ।

अपथप्रपन्न—वि० [स०] १ अनुचित मार्ग पर जानेवाला (व्यक्ति) ।

२ दुरुपयोग या दुष्कार्य में लगा हुआ (धन) [को०] ।

अपथ्य<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] व्यवहार जो स्वास्थ्य का हानिकारक हो । रोग बढ़ानेवाला आहार विहार ।

अपथ्य<sup>२</sup>—वि० १ जो पथ्य न हो । स्वास्थ्यनाशक । २ अहितकर । ३ बुरा । खराब । अयुक्त (को०) ।

अपथ्यनिमित्त—वि० [स०] अनुचित खानपान से उत्पन्न [को०] ।

अपद<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ बिना पैर के रंगनेवाले जंतु । जैसे—माँप, केंचुआ, जोक आदि । उ०—राजा इक पड़ित पीरि तुम्हारी ।

अपद दुपद पसु भापा वृक्षत अविगत अल्प अहारी ।—सूर०

८।१४ । २ गलत या बुरा स्थान (को०) । ३ आकाश ।

नभोमण्डल (को०) । ४ व्याकरण में शब्द जो पदसंज्ञक नहीं है (को०) ।

अपद<sup>२</sup>—वि० १ बिना पैर का । पादविहीन । बिना किसी पद या ओहदे का ।

अपद<sup>३</sup>—वि० १ बिना पद या अधिकार के ।

अपदम—वि० [स०] १ आत्मनियंत्रणहीन । २ जिसकी स्थिति अस्थिर या परिवर्तनशील हो [को०] ।

अपदरुहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] अन्य वृक्ष के आश्रय में पनपनेवाला पौधा [को०] ।

अपदरोहिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अपदरुहा' [को०] ।

अपदव—वि० [स०] जंगल की आग मुक्त । दावाग्निमुक्त [को०] ।

अपदस्थ—वि० [स०] स्थान वा पद से हटाया हुआ । पदच्युत । उ०—  
इधर मौर्य कारागार में, वररुचि अपदस्थ, नागरिक लोग नद की उच्छ्रुतताओं से असंतुष्ट हैं ।—चंद्र०, पृ० १५७ ।

अपदातर<sup>१</sup>—वि० [स० अपदातर] १, मिलाजुना । समुक्त । अव्यवहिन । २ नमीप । सनिकट । ३, समान । बराबर ।

अपदातर<sup>२</sup>—वि० शीघ्र । जल्द । तत्क्षण ।

अपदांव<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० अप=बुरा+हिं० 'दांव'] बुरा दांव । चालवाजी । कुचात (को०) । उ०—दूसरे आइ कै इद्रियनि लै गयो, ऐसी अपदांव सब डनहि कीन्हे । मैं कह्यो नैन मोकों संग देहिगे, इनहु लै जाइ हरि हाथ दीन्हे ।—सूर०, १०।२२४० ।

अपदान—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ परिशुद्ध आचरण । सदाचारी जीवन । २ उत्कृष्ट कार्य । ३ पूर्णतः संपन्न कार्य [को०] ।

अपदार्थ<sup>१</sup>—वि० [स०] तुच्छ । नाचीज । उ०—अवकाश शून्य फौज है, है शक्ति न और महारा । अपदार्थ तिरुंगा में क्या, हो भी कुछ ।—कूल किनारा ।—आँसू, पृ० ४१ ।

अपदार्थ<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ अस्तित्व का अभाव । २ तुच्छता । ३ वाक्य में प्रयुक्त शब्द के ठीक अर्थ का अभाव या न होना [को०] ।

अपदिष्ट—वि० [स०] तर्कना या वहाने से कथित या प्रयुक्त [को०] ।

अपदेखा<sup>१</sup>—वि० [हिं० अप=अपने फो+देखा=देखनेवाला] १ अपने को बड़ा माननेवाला । आत्मश्लाघी । घमडी । २ स्वार्थी उ०—अपदेखा जे अहहि तिनहि हित गुनि मुँह जोहहि (शब्द०) ।

अपदेवता—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ दुष्ट देव । २ दैत्य । राक्षस । अमुर । उ०—अरे कोई अपदेवता न हो ।—चंद्र०, पृ० १७४ ।

अपदेश—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ व्याज । मिस । वहाना । २ लक्ष्य । उद्देश्य । ३ अपने स्वरूप को छिपाना । भेष बदलना । ४ छल । धोखा (को०) । ५ अस्वीकार । इनकार (को०) । ६ प्रमिद्धि । छ्याति (को०) । ७ खतरा [को०] । ८ बुरा स्थान । पराव जगह (को०) । ९ निर्देश (को०) । १० वैशेषिक न्याय के अनुसार पाँच अनुमान वाक्यों में दूसरा । हेतु [को०] ।

अपद्रव्य—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ निकृष्ट वस्तु । बुरी चीज । कुद्रव्य । कुवस्तु । २. बुरा धन ।

अपद्रवार—सञ्ज्ञा पुं० [स०] छिपा हुआ दरवाजा । चोर दरवाजा । बगली छिडकी ।

अपधावन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वाक्छन । सत्य का अपनाप [को०] ।

अपधूम—वि० [स०] धुआँ रहित । धूमविहीन [को०] ।

अपध्यान—सञ्ज्ञा पुं० [स०] निकृष्ट चिंतन । बुरा विचार । अनिष्ट चिंतन । जैन शास्त्रानुसार बुरा ध्यान । यह दो प्रकार का होता है, आर्त और रोद्र ।

अपध्वस—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० अपध्वसी, अपध्वस्त] १ अधपतन । गिराव । २ वेइज्जती । निरादर । अवज्ञा । अपमान । हार । नाश । क्षय ।

अपध्वसज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह जिसकी माता का वर्ण या जाति पिता ने कैची हो । वर्णमकर [को०] ।

अपध्वसी—वि० [स० अपध्वसिन्] [वि० अपध्वसिनी] १ गिरानेवाला । अपमान करनेवाला । निरादरकारी । अपमानकारी । २ नाश करनेवाला । क्षयकारी । ३ पराजित करनेवाला । विजयी ।

अपध्वस्त—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ पराजित । हारा हुआ । परास्त । २ निवृत्त । अपमानित । वेइज्जन किया हुआ । ३ नष्ट । अपध्वता<sup>१</sup>—वि० [स० अपध्वान्त] सदोष स्वर छोड़नेवाला । कर्कश स्वरवाला [को०] ।

अपध्वता<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० कर्कश स्वर । गलत स्वर [को०] ।

अपन<sup>१</sup>—सर्व० [स० आत्मन. प्रा० अपणो=अपना] १ दे० 'अपना' । उ०—मद मद हँसि नद महर तव । अपन तात सौं बात कही सब ।—नद ग्र०, पृ० १६० । २ हम । (मध्यप्रदेश) ।

अपनपो<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपो' । उ०—हितहि पगयो आपनो अहित अपनपो जाय । वन की ओपधि प्रिय लगत तन को दुख न सुहाय ।—श्रीनिवास ग्र० पृ० २०७ ।

अपनपो<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अपना+पो वा पा (प्रत्यय)] १. अपनायत । आत्मीयता । संबंध । उ०—भरतहि विसरेउ पितु मरन, सुनत राम वन गोन । हेतु अपनपो जानि जिय थकित भए धरि मोन ।—तुलसी (शब्द०) । २. आत्मभाव । आत्म-स्वरूप । निज स्वरूप । उ०—(क) अपनपो आपुही विसरी—कवीर (शब्द०) । (ख) सब हित तजै अपनपो चेतै ।—तुलसी (शब्द०) । ३. सञ्ज्ञा । सुघ । ज्ञान । उ०—(क) अद्भुत इक चितयो रे सजनी नद महरि के आँगन री । सो में निरखि अपनपो खोयो गई सैनियाँ साँगन री ।—सूर (शब्द०) ।

(घ) हरि के ललित उक्त निहाय। मुनय उर दधि बुद मुदर  
नलि अपनवी बाध। तुनमी (ग०)। ४ अहकार। गर्व।  
ममता। अभिगाय। उ०—मदा अपनवी रङ्गि दुगाए। मय  
विधि तुनय तुनेय उनाए।—तुनमी (ग०)। ५ आत्म-  
गोत्र। मयादा। मान। उ०—नितके हाय दाम तुनमी प्रगु  
कहा अपनवी हारे।—तुनमी (ग०)।

अपनय—संज्ञा पु० [म०] १ दूर करना या हटाना। २ अपकार। ३  
अनीति। अन्धाय। ४ अर्थशास्त्र के अनुसार मधि आदि उचित  
रीति पर न करने का व्यवहार जिसमें विपत्ति की समाप्ति हो  
जाती है [मि०]।

अपनयन—संज्ञा पु० [म०] १ दूर करना। हटाना। २. स्वानांतरित  
करना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। ३ पश्चात्तर  
करना। गणित के समीकरण में किसी राशि के एक पक्ष  
से दूसरे पक्ष में ले जाना।

विशेष—जैन— $क + ५ = क + २५$

$= २क - क = २५ - ५$

$= क = २०$

इस क्रिया में पहले पक्ष के पाँच को दूसरे पक्ष में ले गए और  
दूसरे पक्ष के क को पहले पक्ष में ले आए।

४ घटन। ५ (रोग आदि) अच्छा करना या दूर करना  
(को०)। ६. कर्ज अदायगी। श्रृणुपरिमोक्षण(को०)। ७ अन्धाय।

अपनर्मक—संज्ञा पु० [म०] एक प्रकार का हार।

अपनी—पर्व० [म० आत्मनः, प्रा० अप्पणी] [स्त्री० अपनी] [क्रि०  
अपनाता] १ निज का। उ०—गन्धर्वों वीर पुताएनि मना।  
नीतहि मेड कर्गे हित अपना।—मानस, ५।१०।

विशेष—इसका प्रयोग तीनों पुरुषों में होता है। जैसे—तुम अपना  
काम करो। मैं अपना काम करूँ। वह अपना काम करे।

मुहा०—अपना उल्टू मीवा करना = किसी को मूर्ख बनाकर अपना  
कार्य निकालना। स्वार्थ मिट्ट करना। अपना फरके छोटाना =  
अपना बना लेना। उ०—हरीचंद अपनी करि छाँटूँ तब घर  
जाऊँ रे।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ३६८। अपना करना =  
अपना बनाना। अपने अनुकूल कर लेना। जैसे,—मनुष्य आने  
व्यवहार से हर एक को अपना कर सकता है (ग०)।  
अपना कहा करना = (१) अपनी बात पर दृढ़ रहना। बचन के  
अनुसार आचरण करना। (२) अपनी जिद पूरी करना। अपना  
फान देते बिना कौम्रा के पीछे खीटना] = (१) मूल को नुनकर  
भटकना। (२) गप पर विश्वास करके बैठना। अपना काम  
करना = प्रयोजन निकालना। अपना किया पाना = किए को  
भुगनना। कर्म का फल पाना। अपनापन स्थापित करना =  
नाईचाना उत्पन्न करना। आत्मोपना चढाना। अपना पराया =  
प्रभु मित्र। जैसे—तुम्हें अपने पराए की परछ नहीं (ग०)।  
अपना पाँच आग में डालना = अपने पैरो प्राप कुहाड़ो मारना।  
अपना पूत पराया धतिगड = एव ही मत्तो पर अपने पुत्र को  
प्यार करना और दूसरे के बच्चे को छोटना। अपना बना  
लेना = (१) दोस्त बनाना। मित्र बनाना। (२) घर में कर  
लेना। (३) प्रेमी बनाना। (४) छान लेना। अपना  
बेगाना = ३० 'अपना पराया'। अपना रोना रोना = अपना ही

दुखड़ा उवान करना, दूसरे ही न मनना। अपना सा करना =  
अपने सामर्थ्य या शक्ति के अनुसार करना। अनन्य प्रयत्न  
करना। उ०—(क) दो बर फरा देनि नीहि मचती नु की  
बडी मुजान। अपनी नी में बहाहि गीन्दी रङ्गि न मेरी  
आन।—मूर० (ग०)। (ग) तुमिदात मरग मरतो तो  
करि गयो मरं गैवाँ।—तुनमी (ग०)। अपना सा पचना =  
अपनी मी कर चुकना। उ०—छट्टि न निमु रपती मी पनी।  
कनक मो जनु कि नीनमनि मनी।—नद० प्र०, पृ० २३८।  
अपना सा मुँह लेकर रह जाना = किसी बात में प्रकृतार्थ  
होने पर उज्जित होना। उ०—और अपना सा मुँह लेकर  
अपनी कुर्मी पर आनकर टट गए।—किमाना०, भा० ३, पृ०  
२२। अपनी श्रुत अपने पास रखना = दूसरों की शक्ति की  
अनावश्यकता। अपनी अपनी कहना = अपना अपना निज निजान  
प्रकट करना। उ०—अपनी अपनी रहन है, ता का धर्मि  
ध्यान।—कवीर सा० म०, पृ० ८६। अपनी श्रम गिचटो  
पकाना = नवम पृथक् कार्य या विचार रचना अपनी अपनी  
सा पडनी = अपनी अपनी चिन्ता में व्यस्त होना। अपना अपना  
स्थान होना। उ०—पचाकर कछु निज कया, कामो पडो  
बघान। जाहि लयो, ता है परी अपनी अपनी आन।—पचा-  
कर (ग०)। अपनी आग में आप जलना = किसी के प्रति  
ईर्ष्या, द्वेष वा क्रोध से प्रभावित होना। अपनी उँगलियों में  
अपनी आँखें कुचाना = अपने पाँच आप कुहाड़ो मारना। अपने  
हाथों अपनी हानि कर देना।—अपनी उँगलियों में अपनी  
आँखों को कान कुचालेगा।—चुभने, पृ० ८। अपनी गाना =  
अपनी ही बात कहना और किसी की न मनना। अपनी गुटिया  
संसार देना = अपने सामर्थ्य के अनुसार बडी का व्यापार कर  
देना। अपनी नौद रोना = अपने दुखानुसार काय करना।  
अपनी बात का एक = वादे का पक्का। दृढ़ प्रमाण। अपनी  
बात पर आना = दृढ़ पकटना। जिद्द परटना। जैसे—मर २२  
अपनी बात पर आ गया है, नहीं मानता (ग०)। अपनी  
जाँप का सहारा होना = स्वावलंबी होना। अपने बल या  
पीरप बा भरोना होना। उ०—वह कमाई बन कनी हास नहीं।  
जाँप का अपनी सहारा है जिने।—चुभने०, पृ० ८८। अपनी  
जान हरदन सूली पर होना = नरुद की मदा घातना होना।  
हरदम छतरा होना। अपनी सीतो मा पर सीतो कहना =  
अपने या दूसरे पर पडित बात करना। उ०—अपनी सीतो  
कहूँ कि पर सीतो, यह वही मन न दूँ।—मौर कु०, पृ० ३३।  
अपनी मुट्टी में करना = अपने पक्के या बल में करना।  
उ०—उमके मन तो अपनी मुट्टी में कर, मनमानी करा  
लेना।—रस० क० मू०, पृ० ६। अपनी मी करना =  
मनमानी करना। उ०—शह अपनी मी करता ही चरा  
जा रहा है।—प्रेमपन० भा० २, पृ० ३१८। अपने घर  
का रास्ता लेना = चलते चलना। अपने घर जाना। घात होना।  
अपने तक रखना = किसी में न रहना। किसी का पक्ष न लेना।  
भेद छिपाना। जैसे,—ककीर लोग दया करने पर रूझा है।  
(ग०)। अपने घड़े से लगना = अपने काम में लगना।  
उ०—दिन को अपने अपने घड़े से लोग मारते हैं मरु माई  
पाँच बजे से फिर किसी ईसान की मुरत न देखने में मारती।—

सिर कुं, पृ० ३४। अपनेपन पर आना = अपने दुःस्वभाव के अनुसार कार्य करना। अपने पाँव पर खड़ा होना = स्वावलंबी होना। उ०—क्यों न हो पाँव पर खड़े अपने। और का पाँव कमलिये पकड़े।—चुम्ते०, पृ० १०। अपने भावें = अपने अनुसार। अपनी जान में। जैसे,—अपने भावें तो मैंने कोई बात उठा नहीं रखी (शब्द०)। अपने मन की करना = दूसरे की सलाह न मानकर अपनी सोची बात करना। अपने मुँह मियाँ मिट्टू बनना = अपनी प्रशंसा आप करना। अपने लिये बला बनना = अपनी विपत्ति का स्वयं कारण बनना। जान बूझकर सकट बुलाना। उ०—आप अपने लिये बला न बनें। जो न सिर पर पड़ी बला टाले।—चुम्ते०, पृ० ५५। अपने रंग में मस्त रहना = दूसरे की चिंता न कर अपने ही कामकाज या आनंद में पड़े रहना। अपने सिर बला मोल लेना = अपने लिये झगड़, बाधा या बखेड़ा खड़ा करना। स्वयं को झगड़े में डालना। अपने सिर पड़ना = अपने पर वीतना। उ०—जो पहिले अपने सिर परई। सो का काहु कै घरिहरि करई।—जायसी ग्र० (गुप्त) पृ० २५७। अपने से बाहर होना = रुष्ट या क्रोधित होना। बेकाबू होना। अपने हलुए माँड़े से काम होना—अपने मतलब से मरोकार रखना। अपने हाँथ पाए सँवारना = अपने हाथों अपना काम पूरा करना। अपने हिताब से = अपने विचार से। अपने विवेक से।

यो०—अपने आप = (१) स्वतः। खुद। उ०—अब कुछ दिन धक्के खाने से उसकी अकन अपने आप ठिकाने हो जाएगी।—श्रीनिवास ग्र० पृ० २४६। (२) आप। निज। जैसे—अपने को। अपने में। अपने पर।

अपना<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० आत्मीय। स्वजन। जैसे—आपलो। तो अपने ही हैं, आपसे ठिपाव क्या?—(शब्द०)। उ०—जब लो न सुनो अपने जन को। अति आरत शब्द हते तन को।—रामच०, पृ० १७।

अपनाइत<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपनायत'। उ०—अपनाइत हूँ सो नहीं अब परतीत विचारि। मो नैननि मनु मेरेई राख्यो हरि मे डारि।—मिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १७।

अपनाइयता—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपनायत'।

अपनाना—क्रि० म० [अपना से नाम०] १ अपने अनुकूल करना। अपने वश में करना। अपनी ओर करना। उ०—(क) रवि प्रपंच भूषहि अपनाई। राम तिनक हित लगन धराई।—मानस, २।१८। (ख) सूर स्याम विन देखे सजनी कैसे मन अपनाऊँ।—सूर० (शब्द०)। २ अपना बनाना। अमी-कार करना। ग्रहण करना। अपनी शरण में लेना। उ०—(क) सब विधि नाथ मोहि अपनाइय। पुनि मोहि सहित भवधपुर जाइय।—मानस, ६।११६। (ख) ना हमको कुछ सुदरताई। भक्त जानि के सब अपनाई।—सूर० (शब्द०)।

अपनापन—सज्ञा पुं० [हिं० अपना + पन (प्रत्य०)] १ अपनायत। आत्मीयता। उ०—अपनापन चेतन का सुखमय, खो गया नहीं आनोक उदय।—कामायनी, पृ० २४१। २ आत्माभिमान। उ०—भूल न जावे कभी न अपनापन, जान दे, पर न मान को पे छो।—चोखे०, पृ० १५।

अपनापा—सज्ञा पुं० [हिं० अपना + पा (प्रत्य०)] अपनापन। अपनापन।

अपनाम—सज्ञा पुं० [सं०] वदनामी। निंदा। शिकायत।

अपनामा—वि० [सं० अपनामन] निंदित। वदनाम [को०]।

अपनायत—सज्ञा स्त्री० [हिं० अपना + यत (प्रत्य०)] १ अपना होने का भाव। अपनापन। आत्मीयता। उ०—(क) देखी सुनी न आनु लौं अपनायत ऐसी। करहि सबै, सिर मेरे ही गिरि पर अनैसी।—तुलसी ग्र०, पृ० ५३३। (ख) जो लोग अपनायत की रीति से कहते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६६। २ आपसदारी का संबंध। बहुत पास या नजदीकी रिश्ता।

अपनाव—सज्ञा पुं० [हिं० अपना + आव (प्रत्य०)] अपना बना लेने की क्रिया। ऐक्य का भाव।

अपनाश<sup>४</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनास'।

अपनास<sup>५</sup>—सज्ञा पुं० [हिं० अप + नास] अपना नाश। उ०—हाथ चढ़ों मैं तेहि के प्रथम करै अपनास।—जायसी ग्र० पृ० १००।

अपनाहट—सज्ञा स्त्री० [हिं० अपना + आहट (प्रत्य०)] अपनापन निवृत्त। उ०—खादी की वह मोटी चादर नहीं चित को भाती थी। अनमिल जन की अपनाहट सी रुचि में मेल न खाती थी।—प्राद्वी, पृ० ६६।

अपनि<sup>६</sup>—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—अपनि प्रतिज्ञा तन किन चहौ। वेद पुराननि मैं जो कहौ।—नद० ग्र०, पृ० ३०३।

अपनिधि—वि० [सं०] गरीब।

अपनीत<sup>७</sup>—वि० [सं०] १ दूर किया हुआ। हटाया हुआ। २ निकाला हुआ। ३ खंडित (को०)। ४ जिसका अपनयन किया गया हो।

अपनीत<sup>८</sup>—सज्ञा पुं० १ घोखा। फरेव। २ बुरा आचरण [को०]।

अपनुक्त<sup>९</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—ए सबि कहव अपनुक दद, सपनहु जनु हो कुटुम्ह सग।—विद्यापति, पृ० ४२३।

अपनुत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपनोदन' [को०]।

अपनोद—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपनोदन' [को०]।

अपनोदन—सज्ञा पुं० [सं०] १ दूर करना। हटाना। २ खनन। प्रतिवाद। ३ प्रायश्चित्त (को०)। ४ नष्ट करना। खराब करना [को०]।

अपह्नव<sup>१०</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपह्नव'।

अपह्नति<sup>११</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपह्नति'। उ०—मिसु करि और कथन छविधि, होत अपह्नति भाइ।—मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ६०।

अपपाठ—सज्ञा पुं० [सं०] अष्ट या गत पाठ। अशुद्ध पाठ [को०]।

अपपात्र—वि० [सं०] १ जिसे सब लोगो के व्यवहार का सामान, बतन या पात्र न दिया जाय। किसी दोष के कारण जातिव्युत्त। २ हीन जाति का [को०]।

अपपात्रित—वि० [सं०] दे० 'अपपात्र' [को०]।

अपवाद—वि० [सं०] खराब या बुरे पैरोवाला। जिसके पैर विकृत हो [को०]।

अपपादत्र—वि० [सं०] उपानहविहीन। पादत्राणरहित। नगे पैरोवाला [को०]।



अपवृत—वि० [स०] १ जिसके नित्यो की रचना विकृत हो [को०]।  
अपप्रजाता—सज्ञा पुं० [स०] ऐसी स्त्री जिसका गर्भपात हो गया हो [को०]।

अपप्रदान—सज्ञा पुं० [स०] १ धूम। रिश्वत। उत्कोच। २ अनुचित रूप से दिया धन [को०]।

अपवरग—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अपवर्ग'। उ०—सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपवरग सकल तनु धारी।—मानस०, १३१५।

अपवर्ग—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अपवर्ग'। उ०—सान स्वर्ग अपवर्ग ऊपर ताहि चित्त लगावन—पलटू०, पृ० ६३।

अपवल—सज्ञा पुं० [हि० अप + वल] आत्मवल। अपनी शक्ति। उ०—इद्र कहा रिसाइ कीन्हो गयो अपवल माहि। आइ तिनहूँ पाँइ पकरे समुझि कै मन माहि।—सूर०, (पं० १।४७)।

अपवस—वि० [हि० अप + वस] अपने वश में। स्ववश। उ०—(क) जो विधना अपवस करि पाऊँ तो सखि कह्यो, होइ कछु तेरी अपनी साध पुराऊँ।—सूर०, १०।१०४७।

अपवाहुक—सज्ञा पुं० [स०] वाहु सवधी एक वातरोग जिसमें कंधे में वायु के प्रविष्ट हो जाने से नसें तन जाती हैं। २ सदोष वायु [को०]।

अपभय<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ भय का नाश। निर्भयता। २ व्यर्थ भय। अकारण भय। ३ डर। भय। उ०—(क) कबहुँ कृपा करि रघुनाथ मोहूँ चितैहो। विय करौ अपभय हुते तुम परम हितैहो। तुलसी (शब्द०)। (ख) अपभय कुटिल महीप डराने।—तुलसी (शब्द०)।

अपभय<sup>२</sup>—वि० [स०] निर्भय। निडर। जो न डरे।

अपभायो—वि० [हि० अप + भाता = अच्छा लगना] अपने को माने या अच्छा लगनेवाला। आत्ममावित। अपने भाव का। स्वानुकूल। उ०—काम क्रोध मोह लोभ गर्व ने मन वीर/य कियो अपभायो।—चरण० वानी, पृ० ६५।

अपभाषण—सज्ञा पुं० [स०] १ अशिष्ट भाषण। २ अपमानकर कथन। ३ गाली देना। दुर्वचन कहना [को०]।

अपभुक्त—वि० [स० अप + भुक्त] अनुचित रूप से व्यवहार में लाया हुआ (धन या पदार्थ) [को०]।

अपभ्रश<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ पतन। गिराव। २ विगड। विकृति। ३ विगडा हुआ शब्द। ४ प्राकृत वोलियो (भाषा) का विकृत। स्वरूप [को०]। ५ प्राकृत भाषा के बाद की भाषा [को०]।

अपभ्रश<sup>२</sup>—वि० [स०] विकृत। विगडा हुआ।

अपभ्रशित—वि० १ गिरा हुआ। २ विगडा हुआ।

अपभ्रष्ट—वि० [स०] १ विकृत। विगडा हुआ। २ गिरा हुआ [को०]।

अपमगल—सज्ञा पुं० [स० अप + मङ्गल] अशुभ अकल्याण। अनिष्ट। उ०—अपमगल जिय जानि सु नेन मुख वही।—पृ० रा० २५।३७५।

अपमर्द—सज्ञा पुं० [स०] धूल। गर्द [को०]।

अपमर्दन—सज्ञा पुं० [स० अप + मर्दन] बुरी तरह रौदना या कुचलना।

अपमर्श—सज्ञा पुं० [स०] १ स्पर्श। २ चरना। ३ स्पर्ण [को०]।

अपमान—सज्ञा पुं० [सं०] १ अनादर। अवहेलना। विडवना। अवज्ञा। २ तिरस्कार। दुत्कार। वेड्जजती।

क्रि० प्र०—करना। होना।

अपमानता—सज्ञा पुं० [स० अप + मान्यता] अपमान या तिरस्कार की स्थिति या क्रिया। उ०—प्रतिग्रह गृह अपमानता सहि नहिं सके महेम।—मानस, ७।२०६।

अपमानना—क्रि० सं० [स० अपमान से नाम०] अपमान करना। विडवना करना। निंदा करना। तिरस्कार करना। उ०—(क) सुनि मुनि वचन लपन मुसुकाने। दोले परसु घरहि अपमाने।—तुलसी (शब्द०)। (ख) हारि जीत नैना नहिं मानत। घाए जात तही को फिरि फिरि वं कितनो अपमानत।—मूर (शब्द०)।

अपमानित—वि० [स०] १ निदिन। अवमानित। २ वेड्जजत।

अपमानो—वि० [स० अपमानित्] [वि० स्त्री० अपमानिनी] निरादर करनेवाला। तिरस्कार करनेवाला। उ०—सोचिय मूढ़ विप्र अपमानो।—तुलसी (शब्द०)।

अपमान्य—वि० [स०] अपमान के योग्य। निच।

अपमारग—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'प्रपमार्ग'। उ०—महामोहिनी मोहि आतमा अपमारगहिं लगावै।—सूर० १।४२।

अपमारगी—वि० [हि०] दे० 'अपमार्गी'। उ०—नैना लोनहरामी ये। जोग, ढुढ बटपार कहावत अपमारगी, अन्यायी वे।—सूर०, १०।२२२५।

अपमार्ग—सज्ञा पुं० [स०] १ कुमार्ग। असन्मार्ग। कुपथ। २ देह मलना या धोना। अग का परिमार्जन [को०]।

अपमार्गी—वि० [स० अपमार्गित्] १ कुमार्गी। कुपथी। अन्यथाचारी। २ दुष्ट। नीच। पापी।

अपमार्जन—सज्ञा पुं० [स०] १ शुद्धि। सफाई। संस्कार। सशोधन। २ हजामत। क्षीर (को०)। ३ खड। टकड़ा [को०]।

अपमुख—[स०] [स्त्री० अपमुखी] जिमका मुँह टेढ़ा हो। विकृतानन टेढ़ा मुँहा [को०]।

अपमृत्यु—सज्ञा पुं० [स०] १ कुमृत्यु। कुसमय मृत्यु जैसे, विजली के गिरने, विष खाने, साँप आदि के काटने से मरना। २ बहुत बड़ा रोग या खतरा जिससे व्यक्ति बच गया हो [को०]।

अपमृपित—वि० [स०] १ समझ में न आने योग्य। अस्पष्ट। २ असह्य [को०]।

अपयश—सज्ञा पुं० [स० अपयस्] १ अपकीर्ति। बदनामी। बुराई। उ०—मैं जगत के अपयश को मौत से बढकर मानता हूँ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १११। २ कलक। लाठन।

अपयशस्क—वि० [स०] अपकीर्तिकारी। अपयशकारी [को०]।

अपयशस्कर—वि० [स०] दे० 'अपयशस्क'।

अपयशी—वि० [स० अप + यश + हि० ई (प्रत्य०)] कलकित। निदिन [को०]।

अपयसी—वि० [हि०] दे० 'अपयशी'। उ०—सूय सर्वमच्छी दव-वादी जो कुवादी जड, अपयसी ऐसी भूमि भूपति न मोहिए—रामच० पृ० १२५।

अपयान—सज्ञा पुं० [स०] १ उपेक्षा। उदासीनता। २ पनावन। भागना। हट जाना। निकल जाना [को०]।



अपयोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कुयोग । बुरा योग । २. कुसमय । कुवेला । ३ कुशकुन । असमय । ४ नियमित मात्रा से अधिक वा न्यून ओषध पदार्थों का योग ।

अपरच—अव्य० [सं० अपरञ्च] १ और भी । २ फिर भी । पुनरपि । पुन । ३ दूसरा भी [को०] ।

अपरपार<sup>७</sup>—वि० [सं० अपर = दूसरा + हि० पार = छोर] जिसका पारावार या ओर छोर न हो । असीम । वेहद । अनत । उ०—खग खोज पाछे नहीं तू तत अपरपार । दिन परचै का जानिऐं सब झूठे अहकार ।—कवीर ग्र०, पृ० २३० ।

अपर<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो पर न हो । पहला । पूर्व का । २. पिछला । जिससे कोई पर न हो ३ अन्य । दूसरा । भिन्न । और । उ०—अपर नाम उडुगण विमल, वरै मस्त उर व्योम ।—भक्तमाल (श्री०) पृ० ४६८ । ४ जिससे बढ़कर या बराबर का अन्य न हो (को०) । ५ जो दूसरा या पराया न हो । स्व-पक्षीय । अपना । उ०—को गिनें अपर पर को गिनें । लोह छोह छक्के वरन ।—पृ० रा०, ३३।२६ । ६ अश्रेष्ठ । जो पर अर्थात् श्रेष्ठ न हो । निकृष्ट । साधारण (को०) । ७ पश्चिमी । पश्चिम दिशा का (को०) । ८ दूर का । दूरवर्ती । जो पास न हो (को०) ।

अपर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ हाथी का पिछला भाग, जघा, पैर आदि । २ रिपु । शत्रु । ३ न्यायशास्त्र में सामान्य के दो भेदों में से एक । ४ भविष्यत् काल या उम काल में किया जानेवाला कार्य [को०] ।

अपरकाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शरीर का पिछला भाग ।

अपरकाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बाद का समय [को०] ।

अपरक्त—वि० [सं०] १ बदले हुए रंग का । रंगहीन । ३ रक्तहीन । पीला । ४ असंतुष्ट [को०] ।

अपरक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अपरक्त या असंतुष्ट होना ।

अपरचै<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अपरिचय' । उ०—देखा देखी पाकई जाइ अपरचै छूटि । बिरला कोई ठाहरै मतगुर सामी मूठि—कवीर ग्र०, पृ० ५१ ।

अपरछन्न<sup>१</sup><sup>७</sup>—वि० [सं० अपरच्छन्न वा अपरिच्छन्न] आवरणरहित । जो ढका न हो । बिना वस्त्र का ।

अपरछन्न<sup>२</sup><sup>७</sup>—[सं० अपरच्छन्न] आवृत । छिपा । गुप्त । उ०—ब्राजी बिहर रचाइ के रहा अपरछन्न होइ । मायापट परदा दिया ताते लखइ न कोइ ।—दादू (शब्द०) ।

अपरज<sup>१</sup>—वि० [सं०] बाद में उत्पन्न [को०] ।

अपरज<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० विध्वंसक अग्नि । प्रलयाग्नि [को०] ।

अपरतत्र—वि० [सं० अपरतन्त्र] जो परतत्र या परवश न हो । स्वतन्त्र । स्वाधीन । आजाद ।

अपरत—वि० [सं०] विरक्त । उदासीन । (को०) ।

अपरता<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] परायापन ।

अपरता<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अपर = नहीं + परता = परायापन] भेदभाव की शून्यता । अपनापन ।

अपरता<sup>३</sup>—वि० [हि० अपर = आप + रत = लगा हुआ] स्वार्थी । मतलबी ।

अपरता<sup>४</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूरी । २ पृथक्ता । ३ निकटता । समीपता । ४ न्याय में २४ गुणों में एक [को०] ।

अपरति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ त्रिनाग । विच्छेद । २ त्रस्तोप [को०] ।

अपरती<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अपर = आप + सं० रति = लीनता] स्वार्थ । वेईमानी ।

अपरतीत<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अपरतीति] त्रिनाग का अभाव । अवि-शवास । उ०—ज्यों अपरतीत के पने जादन । चाँद परतीत को घुमड घेरें ।—चोखे०, पृ० १६७ ।

अपरत्र—क्रि० वि० [सं०] १ दूसरे नमय में । और कभी । २ अन्यत्र [को०] ।

अपरत्वं—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पिछलापन । अर्वाचीनता । २ परायापन । वेगानगी । ३ न्यायशास्त्रानुसार चौबीस गुणों में से एक । यह दो प्रकार का है—एक तात्त्विक भेद में दूसरा देशभेद में । दे० 'अपरता' ।

अपरदक्षिण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण और पश्चिम का कोना । नैऋत्य कोण ।

अपरदिशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिम ।

अपरना<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अपरणा] पार्वती का नाम । वि० दे० 'अपरणा' । उ०—पुनि परिहरेउ मुत्रानेउ परना । उमा नाम तब भयउ अपरना ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपरनाल—संज्ञा पुं० [सं०] बृहन्नमहिना के अनुसार एक देश का नाम ।

अपरपक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कृष्ण पक्ष । २ प्रतिवादी । मुद्दानेह । फरीकसानी ।

अपरपर—वि० [सं०] एक एक अन्य अनेक । विभिन्न [को०] ।

अपरपुरुष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वंशज । वंशगत लोग [को०] ।

अपरप्रणय—वि० [सं०] अन्य से जल्दी प्रभावित होनेवाला [को०] ।

अपरवली—वि० [सं० अपरवल] वनवान् । बली । उद्धत । बेकहा । उ०—चली अपरवल वान अयात । उडे जात कहि वनत न वात ।—नंद० १०, पृ० ३०५ ।

अपरभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अन्य या भिन्न होने का भाव । अंतर । भेद । २ अविरल [को०] ।

अपरमित—वि० [सं० अपरिमित] इयत्ताशून्य । असीम । उ०—ऐसी ऐसी बातों से उसकी अपरमित शक्ति का पूरा प्रमाण मिलता है ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १६८ ।

अपररात्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रात्रि का अनिष्ट भाग या प्रहर [को०] ।

अपरलोक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दूसरा लोक । परलोक । स्वर्ग ।

अपरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ (संगीत मवली) झण्डा या विवाद । २ कुपप्रति [को०] ।

अपरवक्त्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] यह वृत्त जिसके विषम चरण में दो नगण, एक रगण और लघु गुरु हो तथा समचरण में एक नगण, दो जगण और रगण हो । यथा—सब तज रसना गहो हरी । दुख सब भागहि पापहूँ जरी । हरि विमुख मग ना करी । जप दिन रैन हरी हरी (शब्द०) ।

अपरवक्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपरवक्त्र' [को०] ।

अपरवश—वि० [सं०] पराए वश का । परतत्र ।



अपरावृत—वि० [म०] अनिवर्तित । न लौटा हुआ । अपनी जगह न आया हुआ । उ०—जब तक मनस् अपरावृत है तब तक मनस् का आलस्य विज्ञान ही एकमात्र आलवन होता है ।—सपूर्णा० अमि० २०, पृ० ३६६ ।

अपराह्न—सञ्ज्ञा पु० [न०] १ दिन का पिछला भाग । दो पहर के पीछे का काल । तीसरा पहर ।

अपराह्णतन—वि० [म०] १ दिन के पिछले भाग से सवद्ध । २ दिन के अंतिम काल में उत्पन्न [को०] ।

अपराह्णेतन—वि० [न०] दे० 'अपराह्णतन' ।

अपराह्ण—सञ्ज्ञा पु० दे० 'अपराह्ण' ।

अपरिकलित—वि० [म०] अज्ञात । अदृष्ट । अश्रुत । वे देखा सुना ।

अपरिक्रम—वि० [स०] १ चक्र फिर पाने में असमर्थ । २ परिश्रम करने के अयोग्य [को०] ।

अपरिक्लिप्त—वि० [सं०] सूखा । शुष्क ।

अपरिगप्य—वि० [म०] अनगिनत । वेशुमार [को०] ।

अपरिगत—वि० [म०] १ अज्ञात । अपरिचित । न पहिचाना हुआ । २ अप्राप्त ।

अपरिगृहीत—वि० [म०] अस्वीकृत । त्यक्त । छोड़ा हुआ ।

अपरिगृहीतागमन—सञ्ज्ञा पु० [न०] जैनशास्त्रानुसार एक प्रकार का अतिचार । कुमारी या विधवा के साथ गमन करना पुरुष के नित्य और कुमार या रेंडुआ के साथ गमन करना स्त्री के लिये अपरिगृहीतागमन है ।

अपरिग्रह—सञ्ज्ञा पु० [न०] १ अस्वीकार । दान का न लेना । दान-त्याग । २ देहयात्रा के लिये आवश्यक धन से अधिक का त्याग । विराग । ३ योगशास्त्र में पाँचवाँ यम । सगत्याग । ४ जैन शास्त्रानुसार मोह का त्याग ।

अपरिग्राह्य—वि० [म०] जो ग्रहण करने या अंगीकार करने योग्य न हो [को०] ।

अपरिचय—सञ्ज्ञा पु० [म० वि० अपरिचित] परिचय का अभाव । जान-पहिचान का न होना ।

अपरिचयिता—सञ्ज्ञा स्त्री [म०] परिचयशून्यता की स्थिति या भाव । [को०] ।

अपरिचयी—वि० [म० अपरिचयिन्] १ जिसका परिचय न हो । २ जो मिलनमार न हो । अमामाजिक [को०] ।

अपरिचित—वि० [सं०] १ जिसे परिचय न हो । जो जानता न हो । अनान । जैसे—वह इस बात से बिलकुल अपरिचित है (गद०) । २ जो जानाबूझा न हो । अज्ञात । जैसे—किसी अपरिचित व्यक्ति का नहमा विश्वास न करना चाहिए (गद०) ।

अपरिच्छेद—वि० [म०] १ आच्छादनरहित । आवरणशून्य । जो ढका न हो । नगा । खुला हुआ । २ दरिद्र ।

अपरिच्छन्न—वि० [म०] १ जो ढका न हो । खुला । नगा । २ आवरणरहित । ३ सर्वथा व्यापक ।

अपरिच्छादित—वि० [म०] दे० 'अपरिच्छन्न' [को०] ।

अपरिच्छिन्न—वि० [म०] १ जिसका विभाग न हो सके । अभेद्य । २ जो अलग न हुआ हो । मित्रा हुआ । ३, इयत्तारहित ।

अपीम । पीमारहित ।

अपरिच्छेद—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ विभाग, विभाजन या विलगाव का अभाव । २ न्याय या निर्णय का अभाव । ३. अविच्छिन्नता । नैरतर्य [को०] ।

अपरिच्छिन्न—वि० [हि०] दे० 'अपरिच्छिन्न' । उ०—जो कहूँ कि हम यों करि पाए । अपरिच्छिन्न नित निगमन गाए ।—नद० अ०, पृ० २७१ ।

अपरिणत—वि० [सं०] १ अपरिपक्व । जो पका न हो । कच्चा । २ जिसमें विकार या परिवर्तन न हुआ हो । ज्यों का त्यों । विकारशून्य ।

अपरिणय—सञ्ज्ञा पु० [म०] विवाहशून्य अवस्था । अपरिणीत स्थिति । कोमार्य । ब्रह्मचर्य ।

अपरिणयन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दे० 'अपरिणय' [को०] ।

अपरिणाम—सञ्ज्ञा पु० [सं०] परिणाम या परिवर्तन का अभाव । अपरिवर्तनशीलता [को०] ।

अपरिणामदर्शी—वि० [म० अपरिणामदर्शिन्] अदूरदर्शी [को०] ।

अपरिणामी—वि० [म० अपरिणामिन्] [वि० स्त्री अपरिणामिनी] १ जिमकी दशा में परिवर्तन न हो । परिणामरहित । विकार-शून्य । २ जिमका कुछ परिणाम न हो । निष्फल ।

अपरिणीत—वि० [सं०] [वि० स्त्री अपरिणीता] अविवाहित । बर्बारा ।

अपरिपक्व—वि० [सं०] १ जो परिपक्व न हो । कच्चा । २ जो भली भाँति पका न हो । अधकच्चा । अधकचरा । अप्रौढ़ । अधूरा । अव्युत्पन्न । ४ जिसने तपश्चर्यादि द्वारा द्वन्द्व अर्थात् सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि सहन न की हो ।

यी०—अपरिपक्व कषाय । अपरिपक्वघी । अपरिपक्वशुद्धि ।

अपरिपणितसंधि—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अपरिपणित सन्धि] एक प्रकार की कपट संधि जो केवल धोखे में रखने के लिये की जाय ।

विशेष—कोटिल्य के अनुसार इसका ढग यह है कि किसी अभिमानी मूर्ख आलसी या दुर्व्यसनी राजा को नीचा दिखाना हो तो उससे यो ही कहता रहे कि हम तुम तो एक हैं, पर किसी प्रयोजन की बात न करे । इस प्रकार उसे संधि के विश्वास में रखकर उसकी कमजोरियों का पता लगाता रहे और मौका पड़ते ही उसपर आक्रमण कर दे । इस कपटसंधि का उपयोग दो सामंत राजाओं को लडाकर उनके राज्य को हरण करने के लिये भी हो सकता है ।

अपरिवाधा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अपरिवाधा] कपट, वाधा या आशय का निवारण ।

अपरिम—वि० [सं० अपरिमा = परिमाण] जिसका परिमाण न हो । अमित । उ०—इस रहस्य अपरिम के आगे आदर से नतमस्तक है कवि ।—इत्यम्, पृ० ६७ ।

अपरिमाण—वि० [सं०] १ परिमाणरहित । बेअदाज । अकूत ।

अपरिमित—वि० [म०] १ इयत्ताशून्य । असीम । वेहद । उ०—मानव या साथ उसी के मुख पर था तेज अपरिमित ।—कामायनी, पृ० २७७ । २. अमध्य । अनत । अग्रणीत । उ०—अपने जान में बहुत करी । कृपासिंधु, अपराध अपरिमित छोड़ो सूर तैं सब विगरी ।—सूर०, १।११५ ।

अपरिमय—वि० [सं०] १ जिसका परिमाण न पाया जाय । जिसकी नाप न हो सके । वेअदाज । अकूत । अमय । अनगिनत । अपरिम्लान<sup>१</sup>—वि० [मं०] न मुरझानेवाला । जिसका अपक्षय न हो [को०] ।

अपरिम्लान<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] महासहा नाम का एक वृक्ष [को०] । अपरिवर्तनीय—वि० [मं०] १ जो परिवर्तन के योग्य न हो । जो बदल न सके । २ जिसमें फेरफार न हो सके । ३ जो बदले में न दिया जा सके । ४ सदा एकरस रहने वाला । नित्य । अपरिवर्त्य—वि० [मं०] ३० 'अपरिवर्तनीय' । उ०—जो इस परिवर्तनशील विश्व में अपरिवर्त्य है ।—सपूर्णा० अभि० अ०, पृ० २२४ ।

अपरिवर्तित—वि० [सं०] जिसमें कोई हेरफेर या तबदीली न हुई हो । अविकल । ज्यो का त्यो ।

अपरिवाद्य—वि० [मं०] जो निदायोग्य न हो । अनिद्य [को०] ।

अपरिवृत—वि० [सं०] जो ढका या विरा न हो । अपरिच्छन्न ।

अपरिशेष<sup>१</sup>—वि० [सं०] जिसका परिशेष या नाश न हो । पूर्ण । अनत । अविनाशी । नित्य ।

अपरिशेष<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० सीमा का अभाव [को०] ।

अपरिष्कार—सज्ञा पुं० [सं०] १ सम्कार का अभाव । असंशोधन । सफाई या काट छांट का न होना । २ मैलापन । ३ मद्दापन । अपरिष्कृत—वि० [सं०] १ जिसका परिष्कार न हुआ हो । जो साफ न किया गया हो । जो काट छांटकर दुष्ट न किया गया हो । २ मैलाकुचैना । ३ भद्दा । वेडील । ४ असंस्कृत ।

अपरिसर—वि० [मं०] १ नमीप का नही । दूर का । २ अविस्तीर्ण । अप्रशस्त [को०] ।

अपरिसर<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० विस्तार का अभाव [को०] ।

अपरिसीम—वि० [सं० अ + परितोम] १ असीम । २ विस्तीर्ण । उ०—भगवान् वादरायण हर हर करती गंगा की अपरिसीम धारा को देखते रहे—वै० न०, पृ० २४८ ।

अपरिस्कन्द—वि० [मं० अपरिस्कन्द] गतिशून्य । जो कूद काँद न सके [को०] ।

अपरिहरणीय—वि० [सं०] १ अनिवार्य । अवश्यमावी । २ अपरित्याज्य । जिसका परिहार न हो सके । ३ अनादर के अयोग्य [को०] ।

अपरिहार—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपरिहारित, अपरिहार्य] १ अवर्जन । अनिवारण । २ दूर करने के उपाय का अभाव । अपरिहारित—वि० [सं०] अपरिवर्जित । अनिवारित । जो दूर न किया गया हो ।

अपरिहार्य—वि० [सं०] १ जिसका परिहार न हो सके । अवर्जनीय । अवाध्य । अनिवार्य । जो किसी उपाय से दूर न किया जा सके । २ अत्याज्य । न छोड़ने योग्य । ३ अनादर के अयोग्य । आदरणीय । ४ न छीनने योग्य ।

अपरीक्षणीय—वि० [सं० अ + परीक्षण] १. जाँच या परीक्षा के अयोग्य ।

अपरीक्षित—वि० [सं०][वि० अपरीक्षित] जिसकी परीक्षा न हुई हो । जो परखा न गया हो । जिसकी जाँच न हुई हो । जिसके

रुग्, गुग्, परिमाण और वर्ग आदि का अनुमान न किया गया हो ।

अपरूप—सज्ञा पुं० [मं०][वि० अपरूपा] क्रोत्रविहीन । रोपरहित । कठोरताशून्य [को०] ।

अपरूप<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ कुरूप । बदशकल । भद्दा । वेडील । २ अद्भुत । अपूर्व । उ०—परकैसी अपरूप छटा लेकर आए तुम प्यारे ।—भरना, पृ० ६३ ।

अपरूप<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० वेडीलपन । मद्दापन । कुत्सता [को०] ।

अपरेटस—सज्ञा पुं० [अ० एपरेटस] वह यंत्र जो किसी विशेष कार्य या परीक्षा कार्य के लिये बना हो । यंत्र । औजार । परीक्षायंत्र ।

अपरेशन—सज्ञा पुं० [अ० अपरेशन] शल्यचिकित्सा । चीरफाड़ । शल्यक्रिया ।

अपरोक्ष—वि० [सं०] १ जो परोक्ष में न हो । प्रत्यक्ष । जो देखासुना जा सके । इन्द्रिय गोचर । २ जो दूर हो [को०] ।

अपरोक्षानुभूति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ 'प्रत्यक्ष ज्ञान' । २ वेदात् में निरूपित एक प्रकरण [को०] ।

अपरोध—सज्ञा पुं० [मं०] रुकावट । निषेध । वर्जन । मनाही [को०] ।

अपरोप—सज्ञा पुं० [मं०] १ निष्कासन । २ राज्यच्युति [को०] ।

अपर्ण—वि० [मं०] पत्तो में रहित [को०] ।

अपर्णा—सज्ञा स्त्री [मं०] १ पार्वती का एक नाम । ( , )

विशेष—पुराणों के अनुसार पार्वती ने शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिये तपस्या में पत्तो तक को खाना छोड़ दिया था । अतः पार्वती का एक नाम अपर्णा प्रसिद्ध हुआ । २ दुर्गा ।

अपर्तु—वि० [सं०] १ वेमोसमी । अमामयिक । २ जिसका मासिक धर्म का समय गुजर गया हो । निवृत्तरजस्का [को०] ।

अपर्वल(पुं०)—वि० [हिं०] ३० 'अपरवल' । उ०—माया बहुत अपर्वल अलख तुम्हार बनाव ।—जग० शं०, पृ० ६६ ।

अपर्यंत—वि० [सं० अपर्यन्त] असीम । अपरिमित [को०] ।

अपर्याप्त—वि० [सं०] १ अपूर्ण । २ अयथेष्ट । जो काफी न हो । ३ सीमारहित । असीम (को०) । ४ अमर्त्य (को०) ।

यौ०—अपर्याप्तकर्म = जैनशास्त्रानुसार वह पाप कर्म जिसके उदय से जीव की पर्याप्ति न हो ।

अपर्याप्ति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ अपूर्णता । कमी । श्रुति । २ असामर्थ्य । अयोग्यता । अक्षमता ।

अपर्याय<sup>१</sup>—वि० [सं०] क्रमविहीन । अव्यवस्थित [को०] ।

अपर्याय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] क्रमहीनता [को०] ।

अपर्व<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अपर्वन्] वह दिन जो पूर्वकाल न हो । अविशिष्ट दिन अर्थात् अमावस्या, पूर्णिमा, अष्टमी और चतुर्दशी से व्यतिरिक्त कोई दिन । २. संधिराहित्य । जोड़ का अभाव [को०] ।

अपर्व<sup>२</sup>—वि० पर्व या संधि से रहित [को०] ।

अपर्वक—वि० [मं०] जिसमें जोड़ न हो । संधिविहीन [को०] ।

अपर्वदंड—सज्ञा पुं० [सं० अपर्वदंड] द्विज की एक हिस्म [को०] ।

अपर्व—वि० [सं०] ३० 'अपर्व' [को०] ।

अपल<sup>१</sup>—वि० [सं०] पतञ्जल्य । मासहीन ।

अपल<sup>२</sup>—वि० [हि० अपलक] निनेषहीन । अपलक । एकटक ।

यौ०—अपलनयन=दिना पतक गिराण या अनिमित्त दृष्टि ।

उ०—अपल नयन नुवान यौवन नव, देख रही तन्त्री कोमल-  
तन ।—गीतिका, पृ० ३५ ।

अपल<sup>३</sup>—संज्ञा पु० १. पिन । २. अंगना या कुडी [हि०] ।

अपलक<sup>१</sup>—वि० [सं० अ+हि० पलक] जिसकी पलकें न गिरे ।  
निनिमेष । उ०—द्विद्वारहित अपलक नयनों को सुखमयी शर्मा  
की प्यास ।—कामायनी, पृ० १० ।

अपलक<sup>२</sup>—वि० वि० विना पलक गिराये । एकटक । उ०—मैं अपलक  
इन नयनों से निरन्तर करता उस ठविको ।—ग्राम, पृ० १५ ।

अपलक्षण—संज्ञा पु० [सं०] १. कुतखण । घुरा चिह्न । दोष । २.  
दुष्ट लक्षण । वह लक्षण जिसमें अविद्यापि और अध्यापि  
दोष हों ।

अपलट<sup>१</sup>—वि० [सं० अ+हि० पलट] १ न मुड़नेवाला । न बदलने-  
वाला । एकरस रहनेवाला । उ०—अविह्वल या विह्वल नहीं,  
अपलट पलटि न जाइ ।—दादू, पृ० ४६४ ।

अपलाप—संज्ञा पु० [सं०] [वि० अपलापित] १ विद्यावाद । वक्तावाद ।  
वात का वनकड़ । वाग्जान । २. वात बनाना । प्रसंग जानने  
के लिये उधर उधर की बातें कहना । ३. मत्स्य को छिपाना  
(को०) । ४. प्यार । आदर (को०) । ५. कंठ और पञ्चनियों का  
मध्य भाग (को०) ।

अपलापी—वि० [सं० अपलापित] अपलाप करनेवाला (को०) ।

अपलाम—संज्ञा पु० [सं० अप+लाम] अनुचित टग से किया गया  
लाम । बेसा मुनाफा ।

अपलापिका—संज्ञा स्त्री [सं०] १. अतिशय जानसा । २. प्रवत नृपणा  
या गिरासा (को०) ।

अपलापी—वि० [सं० अपलापित] १. तृपित । प्यासा । २. जिसे  
प्यास या जानसा न हो (को०) ।

अपलापुक—वि० [सं०] दे० 'अपलापी' (को०) ।

अपलोक<sup>१</sup>—संज्ञा पु० [सं० अप+लोक=कोति] १. अपवज ।  
अपकीर्ति । बदनामी । उ०—हाय अपलोक शोक पंचहि गह्यो  
मैं विरहागिनि दह्यो मैं सोक विधुनि बह्योई मैं ।—मिथारी  
ग्रं०, भा० २, पृ० ३२ । २. अपवाद । मिथ्या दोष । उ०—  
(क) अब अपलोक सोक मुत तोरा । सहहि निदुर कठोर उर  
मोरा ।—तुलसी (जब०) । (ख) मन अनन्य निज निज  
क नूनी । नहत मुजस अपलोक विमूर्ती ।—तुलसी (जब०) ।

अपलोक<sup>२</sup>—संज्ञा पु० [हि० अप=अपना+लोक] अपना लोक । उ०—  
मयो लग्य पूरत जब देख गए अपलोक । चद ब्रह्म राजा भय,  
देवत बसी अमोक ।—१० रा० सो०, पृ० २२८ ।

अपलन<sup>१</sup>—वि० [सं० अ+पल=पलक] विना रोक । निर्वीर ।  
उ०—नारीणी बाबाँ मरे, आया दिए अपलन ।—बाँकी ग्रं०,  
भा० ३, पृ० २ ।

अपवचन—संज्ञा पु० [सं०] १. दुर्वचन । अपगवद । गाली । २.  
निंदा (को०) ।

अपवर्ग<sup>१</sup>—संज्ञा पु० [सं०] कृषिज वन । उपवन । वाग ।

अपवर्ग<sup>२</sup>—वि० वायुरहित वा वायु से मुरझित (को०) ।

अपवर्ग—संज्ञा पु० [सं०] ग्री० अपवर्गका १. अपवर्ग । अनु ।  
२. गवाक्ष । ऋगोक्ता (को०) ।

अपवर्ग<sup>३</sup>—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'अपवर्ग' । उ०—अपवर्ग जग  
अपवर्ग दिवस जग आर पदार्थ ।—रा० क०, पृ० ३ ।

अपवर्ग—संज्ञा पु० [सं०] १. आच्छादन । आवरण । २. पहनावा ।  
पोशाक (को०) ।

अपवर्ग—संज्ञा पु० [सं०] १. मोक्ष । निर्वाण । मुक्ति । जन्म मरण के  
चक्र ने छूटकारा पाना । उ०—तात स्वर्ग अपवर्ग मुख अंग  
मुला एक अंग ।—मानस, ५-८ । २. त्याग । ३. दान । ४.  
क्षेपण । (बाण) छोड़नी (को०) । ५. विशेष नियम । अपवाद  
(को०) । ६. क्रियाशान्ति या समानि (को०) ।

अपवर्ग<sup>३</sup>—वि० [सं० अपवर्ग] अपवर्ग सबको । मोक्ष संबंधी ।

अपवर्जन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० अपवर्जित] १. त्याग । छोड़ना । २.  
दान । ३. मोक्ष । मुक्ति । निर्वाण । ४. (अंग आदि) वेदाक  
करना । चूकना करना । ५. वादा पूरा करना । वचन  
पानन (को०) ।

अपवर्जित—संज्ञा पु० [सं०] १. छोड़ा हुआ । त्यागा हुआ । खल ।  
२. छुटकारा पाया हुआ । मुक्त ।

अपवर्त—संज्ञा पु० [सं०] १. हटाना । पृथक् करना । २. सामान्य  
विभाजक (को०) ।

अपवर्तक—संज्ञा पु० [सं०] १. सामान्य नाप । २. हार जिसमें दण-  
कम मोती और सोने की गुनिया पिरोई हो (को०) ।

अपवर्तन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० अपवर्तित] १. परिवर्तन । पलटव ।  
उलटपेर । २. स्वाभाविकता (को०) । ३. विभाजक । ४. त्रि-  
भाग जो विभक्त न हो (को०) ।

अपवर्तित—वि० [सं०] १. बदला हुआ । पलटाया हुआ । लौटाया  
हुआ । २. स्वाभाविकता (को०) । ३. निक्षेप । विभक्त (को०) ।  
अपवर्त्य—वि० [सं०] जिसका अपवर्तन हो सके । सामान्य विभाजन से  
जो पूर्ण विभक्त हो जाय (को०) ।

अपवर्ग<sup>३</sup>—वि० [हि० अप=अपना+सं० वर्ग] अपने अर्थात् । अपने  
वज का । परवर्ग का उलटा । उ०—अपनी करी उन स्याम  
वैधाए । मुर गए हरि ह्व चुरावन उन अपवर्ग नरि पाए ।  
—सूर (जब०) ।

अपवर्हित—वि० [सं० अपवर्हित] दे० 'अपवर्हित' ।

अपवाड<sup>१</sup>—संज्ञा पु० [सं० अप+वाड, प्रा० वाड] पीछे का द्वार या  
रास्ता । उ०—दे प्रदक्षणा बडे अपवाड । रस मरै तजि बडी  
नाडि ।—प्राण०, पृ० २२९ ।

अपवाद—संज्ञा पु० [सं०] १. विरोध । प्रतिवाद । खडन । उ०—  
करके जय जयकार राम का धर्म का, करती थी अपवाद  
केलवी कर्म का ।—साकेत, पृ० ११० । २. निंदा । अपकीर्ति ।  
कुगर्ह । प्रवाद । उ०—केलवी चिन्ता उठी सोन्याद, सब नरे  
मेरा महा अपवाद ।—साकेत, पृ० ७६ । ३. दोष । पाप ।  
कलक । उ०—राजपद के अपवाद नद । आज तुम्हारा विचार  
होगा ।—चंद्र०, पृ० १३१ । ४. वाचक जाम्यविशेष । सत्य  
का विरोधी । वह नियमविशेष जो व्यापक नियम से विरुद्ध

हो। मुस्तसना। जैसे, यह नियम है कि सकर्मक सामान्य भूत क्रिया के कर्ता के साथ 'ने' लगना है पर यह नियम 'लाना' क्रिया में नहीं लगता। ५ अनुमति। समति। राय। विवार। ६ आदेश। आज्ञा। ७ वेदात शास्त्र के अनुसार अध्यारोप का निराकरण। जैसे—रज्जु में नर्प का ज्ञान, यह अध्यारोप है और रज्जु के वास्तविक ज्ञान से उसका जो निराकरण हुआ यह अपवाद है। ८ विष्वान (को०)। ९ प्रीति। प्रेम (को०)। १० पारिवारिकता। परिवार जैसा सवध (को०)। ११ मृग को घोखा देकर फँसाने या शिकार करने के लिये शिकारियों द्वारा प्रयुक्त वाद्य (को०)।

अपवादक—वि० [न०] १ निदक। अपवाद करनेवाला। २ विरोधी। वाधक।

अपवादित—वि० [स०] १ निदिन। २ जिसका विरोध किया गया हो।

अपवादी—वि० [न० अपवादिन्] [वि० स्त्री० अपवादिनी] १ निंदा करनेवाला। बुराई करनेवाला। २ वाधक। विरोधी।

अपवारक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ पर्दा। आड या ओट का साधन। २ व्यवधान। घिरा स्थान (को०)।

अपवारण—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ व्यवधान। रोक। बीच में प कर आघात में बचानेवाली वस्तु। २ हटाने वा दूर करने का कार्य। ३ आच्छादन। ओट। छिपाव। ४ अतर्द्धन।

अपवारित—वि० [म०] १ अतर्द्धित। निरोहित। २ दूर किया हुआ। हटाया हुआ। ३ ढका हुआ। छिपा हुआ।

अपवाह—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ 'अपवाहन' (को०)।

अपवाहक<sup>१</sup>—वि० [म०] स्थानांतरित करनेवाला। एक स्थान से किसी पदार्थ को दूसरे स्थान में ले जानेवाला।

अपवाहक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० एक यंत्र जो मारी चीजों को उठाकर दूसरे स्थान पर रख देता है। मृष्ट यंत्र।

अपवाहन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] [वि० अपवाहिन्, अपवाह्य] १ स्थानांतरित करना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। २ मित्र में घटाना। वाकी (को०)। ३ एक छंद (को०)।

अपवाहित—वि० [स०] एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया हुआ। स्थानांतरित।

अपवाहक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] एक रोग जिसमें वाहू की नसें मारी जाती हैं और वाहू बेकाम हो जाता है। यह रोग वायु के प्रकोप से होता है। भुजस्तम्भ रोग।

अपविघ्न—वि० [स०] १ निर्वाध। निर्विघ्न। अबाधित। (को०)।

अपवित्र—वि० [म०] जो पवित्र न हो। अशुद्ध। नापाक। दूषित। मैला। मलिन।

अपवित्रता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] अशुद्धि। अशौच। मैलापन। नापकी।

अपविद्ध—वि० [म०] १ त्याग हुआ। त्यक्त। छोड़ा हुआ। २ वेधा हुआ। विद्ध। ३ निकृष्ट। निम्न (को०)।

अपविद्ध पुत्र—सञ्ज्ञा पुं० [स०] धर्मशास्त्रानुसार वारह प्रकार के पुत्रों में वह पुत्र जिसको उसके माता पिता ने त्याग दिया हो और किसी अन्य ने पुत्रवत् पाला हो।

अपविद्धलोक—वि० [स०] जो इस लोक को छोड़ चुका हो। परलोकगत (को०)।

अपविद्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ निकृष्ट विद्या। निपिद्ध विद्या। २ अविद्या (को०)।

अपविप—वि० [स०] निविप। विपहीन। जिसमें विप न हो (को०)।

अपविषा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ विपमुक्त। २ निविप नामक पीघा (को०)।

अपवीणा—वि० [म०] १ वीणारहित। २ निकृष्ट या खराब वीणावाला (को०)।

अपवृत्त—वि० [स०] १ समाप्त हुआ। २ पूर्ण हुआ (को०)।

अपवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] छेद। सुराख। रघ्न (को०)।

अपवृत्त—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ व्यक्तिकमिन। २ उलटा पलटा। ३ औघा। ४ क्षोभित। ५ समाप्त हुआ (को०)।

अपवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ दूषित वृत्ति। २ अत। समाप्ति।

अपवेद्य—सञ्ज्ञा पुं० [स०] रत्न या मोती का अष्टिपूर्ण छेदन (को०)।

अपवोढा—वि० [स० अपवोढ] ढोने या हटानेवाला (को०)।

अपव्यय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ अधिक व्यय। अधिक खर्च। निरर्थक व्यय। फजूलखर्ची। २ बुरे काम में खर्च। उ०—राजन्, सत्ता का अपव्यय मत करो।—विशाख०, पृ० ४०।

अपव्ययी—वि० [स० अपव्ययिन्] १ अधिक खर्च करनेवाला। फजूलखर्च। २ बुरे कामों में व्यय करनेवाला।

अपव्रत<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ अविहित व्रत। हीन व्रत।

अपव्रत<sup>२</sup>—वि० [स०] १ विहित व्रत या कर्म न करनेवाला। अधार्मिक। अपवित्र। २ अविश्वस्त। आज्ञापालन न करनेवाला। ३ पतित। विकृत आचरणवाला।

अपशक—वि० [स० अपशङ्क] भय, शका या हिचक में रहित। निर्भय। निडर (को०)।

अपशकुन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] कुसगुन। असगुन।

अपशद—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ 'अपसद' (को०)।

अपशब्द—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ अशुद्ध शब्द। दूषित शब्द। २ असबद्ध प्रलाप। विना अर्थ का शब्द। ३ गाली। कुवाच्य। ४ पाद। अपान वायु का छूटना। गोज। ५ विगडा हुआ शब्द। संस्कृत भाषा में मित्र भाषा। ग्राम्य भाषा (को०)।

अपशम—सञ्ज्ञा पुं० [स०] विराम। अंत। समाप्ति (को०)।

अपशु<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ जो पशु न हो। अर्थात् वलिप्रदान के अयोग्य पशु। २ दुष्ट पशु। कुत्सित पशु। ३ गाय और घोड़े से भिन्न पशु (को०)।

अपशु<sup>२</sup>—वि० १ पशुविहीन। २ गरीब (को०)।

अपशुक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० अपशुक्] आत्मा (को०)।

अपशुक<sup>२</sup>—वि० शोकविहीन (को०)।

अपशोक<sup>१</sup>—वि० [स०] शोक या विपादविहीन (को०)।

अपशोक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० अपशोक का वृक्ष (को०)।

अपरिचम—वि० [स०] १ जिसके पीछे कोई न हो। अतिन। २ प्रथम। अतिम नहीं। ३ चरम या पराकाष्ठा (को०)।



अपश्य—सज्ञा पुं [सं] तकिया [को०] ।

अपश्री—वि० [सं] शोभाविहीन । श्रीरहित [को०] ।

अपश्रुति—सज्ञा स्त्री [सं अप + श्रुति] एक ही धातु या शब्द में अथवा एक ही प्रत्यय या विभक्ति के योग में निष्पन्न धातु, शब्द, प्रत्यय या विभक्ति में निर्दिष्ट क्रमानुसार स्वरध्वनि में हुए परिवर्तन को अपश्रुति कहते हैं ।—जैसे—गान, गीत, गेय आदि ।

अपश्वास—सज्ञा पुं [सं] अपानवायु [को०] ।

अपष्ठ—सज्ञा पुं [सं] अकुण का अग्रभाग या नोक [को०] ।

अपष्ठु<sup>१</sup>—वि० [सं] १ विपरीत । उलटा । २ प्रतिकूल । वाम [को०] ।

अपष्ठु<sup>२</sup>—क्रि० वि० १ विपरीत रूप में । २ गलत ढंग से । निर्दोषिता पूर्वक [को०] ।

अपष्ठु<sup>३</sup>—सज्ञा पुं [सं] समय [को०] ।

अपष्ठुर—वि० [सं] विपरीत । उलटा [को०] ।

अपष्ठुल—वि० [सं] १ 'अपष्ठुर' [को०] ।

अपसचय—सज्ञा पुं [सं अपसचय] अनियमित रूप से वस्तु का संग्रह या छिपाकर रखना ।

अपस<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [हिं] १ 'अपशु' । उ०—ऊरुडी डोका चुगइ अपस डँमायड आँण ।—डोला०, दू०, ३३६ ।

अपस<sup>२</sup>—सज्ञा पुं [सं अपस्मार] १ मृगी रोग । २ राजस्यानी कविता में मान्य एक प्रकार का दोष जिसमें शब्दयोजना निरर्थक हो और अर्थ साफ न हो । उ०—अपस अमूख्यो अरथ सबद पिए विण हित साजै ।—रघु० सू०, पृ० १४ ।

अपसगुन—सज्ञा पुं [सं अपसगुन] असगुन । बुरा सगुन । उ०—अर्जुन दुखित बहुत तब भए । इहाँ अपसगुन होत नित नए । सूर० १।२८६ ।

अपसद—सज्ञा पुं [सं] वह पुत्र जो अनुगोम विवाह द्वारा द्विजों से उत्पन्न हो । ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिया, वैश्या वा शूद्रा स्त्री, अथवा वैश्य पुरुष और शूद्रा स्त्री से उत्पन्न सतान ।

अपसमार—सज्ञा पुं [सं अपस्मार] तृतीय व्यभिचारी या सचारी भावों में से एक । उ०—अपसमार मो कवि उर धरई ।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ७२ ।

अपसना—क्रि० अ० [सं अपसरण = खिन्नकना] १ खिसकना । सरकना । भागना । उ०—राते कवैन करहि अनि भवाँ । धूमहि माति चहहि अपसवाँ ।—जायसी ग्र०, पृ० ४२ । २ चल देना । चपत होना । उ०—(क) जीव काढि लै तुम अपसई । (ख) लै अपसवा जलधर जोगी ।—जायसी (शब्द०) ।

अपसवना—क्रि० अ० [हिं] १ 'अपसना' ।

अपसर—वि० [हिं अप = अपना + सर (प्रत्यय)] १ आप ही आप । मनमाना । अपने मन का । उ०—लोटत पीत पराग कीच महँ नीच न अग सम्हारे । वारवार सरक मदिरा की अपसर रहत उधारे ।—सूर (शब्द०) ।

अपसर<sup>२</sup>—सज्ञा पुं [सं] १ अपसरण । पीछे हटना । २ भागना । ३ दूरी [को०] । ४. उचित कारण । सगत तर्क [को०] ।

अपसर<sup>३</sup>—वि० [फा० अपसर] मुखिया । प्रधान । उ०—अपसर गज दलगजन गाऊ । छी । मकु गइ देहि तेहि ठाऊ ।—विद्या०, पृ० १८८ ।

अपसरण—सज्ञा पुं [सं] १ गम जाना । खिसक जाना । निकल जाना । २ निर्गम । निकाम [को०] ।

अपसर्जक—वि० [सं] अपमर्जन करनेवाला [को०] ।

अपसर्जन—सज्ञा पुं [सं] १ विमर्जन । त्याग । २ दान । ३. मोक्ष [को०] ।

अपसर्प—सज्ञा पुं [सं] गुप्तचर । जासूस । छुफिया । भेदिया ।—अनेकार्थ० ।

अपसर्पक—सज्ञा पुं [सं] १ 'अपमर्ग' [को०] ।

अपसर्पण—सज्ञा पुं [सं] वि० १ पीछे सरकना । पीछे हटना । २ जासूसी करना [को०] ।

अपसर्पित—वि० [सं] पीछे हटा हुआ । पीछे खिसका हुआ । पीछे सरका हुआ ।

अपसवना—क्रि० अ० [हिं] १ 'अपमर्ग' ।

अपसव्य—वि० [सं] १ मव्य का उलटा । दाहिना । दक्षिण । २ उलटा । विरुद्ध । ३ जनेऊ दाहिने कंधे पर रहे हुए ।

यौ०—अपसव्य ग्रहण = जन्म गृह सूर्य वा चंद्र के दाहिने होकर चलता है । अर्थात् ग्रहण दाहिनी ओर में लगता है तब उसे अपसव्य ग्रहण कहते हैं । अपसव्य ग्रहयुद्ध = बृहत्संहिता के अनुसार ग्रहयुद्ध के चार भेदों में से एक । अपसव्यतीय = तृतीय ।

क्रि० प्र०—होना = वाएँ कांधे से जनेऊ और ओंछा दाहिने कांधे पर रखना वा बदलना ।—करना = किसी के किनारे चारों ओर ऐसी परिक्रमा करना कि वह दाहिनी ओर पड़े । दक्षिणवर्त परिक्रमा करना ।

अपसाधारण—वि० [सं अप + साधारण] साधारण में भिन्न (अच्छे या बुरे भाव में) ।—यदि जयती एक साधारण स्त्री थी तो मैं भी एक अप साधारण पुरुष था ।—मन्यामी पृ० ३३८ ।

अपसार<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [सं अप = जल + सार] १ अशुक्ल । पानी का छीटा । उ०—लेत अवन रवि अमु कहँ, देत अनिध अपसार । तुलसी सूछम को सदा रवि रजनीम अधार ।—म० सप्तक, पृ० ३६ । २ पानी की आप ।

अपसार<sup>२</sup>—सज्ञा पुं [सं] १ 'अपमर्ग' [को०] ।

अपसारक—वि० [सं] दूर करनेवाला । हटानेवाला ।

अपसारण—सज्ञा पुं [सं] [ली० अपसारण] निकाल बाहर करना । हटा देना । दूरी करना । निवारण [को०] ।

अपसारित—वि० [सं] निष्कासित । निकाला हुआ । दूरीकृत । उ०—वाधाएँ अपसारित कर, कहता वर यो वरना ।—गीतिका, पृ० १०५ ।

अपसिद्धात—सज्ञा पुं [सं अपसिद्धात] १ अयुक्त सिद्धात । वह विचार जो सिद्धात के विरुद्ध हो । २ न्याय में एक प्रकार का विग्रह स्थान । जहाँ किसी सिद्धात को मानकर उसी के विरुद्ध बात कही जाय वहाँ यह विग्रह स्थान होता है । ३. जैन शास्त्रानुसार उनके विरुद्ध सिद्धात ।

अपसूक्त—सज्ञा पुं [हिं] १ 'अपशकुन' । उ०—महा अपसूक्त होज्यो ए भूवाल ।—बी० रासो, पृ० ५६ ।

अपसृत—वि० [म०] १ युद्ध में भागा हुआ । गगोडा । २ हटाया गया (को०) । ३ नीचे फेंका हुआ या च्युत (को०) ।

विशेष—कोटिल्य के अनुसार अपमृत और अनिश्चित (मेवा में अलग किए हुए या देश में निकाले हुए) मैतिकों में अपमृत अच्छे हैं । उनमें युद्ध में फिर काम लिया जा सकता है ।

अपसृति—सज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'अपमरण' (को०) ।

अपसोचा—सज्ञा पुं० [म० अप + शोच] चुरी चिता । दुश्चिता । उ०—मुचिता मर गया तो सह्याइन रोई तो काफी मगर भीतर भीतर उसे उनना अपसोच नहीं हुआ ।—नई०, पृ० ८० ।

अपसोस<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [फा० अफसोस] चिता । सोच । दुःख । उ०—(क) ताते अब मरियत अपसोमनि । मथुरा हूँ ते गए मखी री । अब हरि कारे कोमनि ।—सूर (शब्द०) । (ख) काहूँ अपसोम मरति ही नैन तुम्हारें नाहीं ।—सूर०, १०।२२३५ ।

अपसोमना<sup>२</sup>—क्रि० प्र० [हि० अपसोम से नाम०] सोच करना । चिन्ता करना । अफसोम करना । उ०—कहा कहूँ सुंदर घन सोमो । गवा कान्ह एक सँग विनमत मन ही मन अपसोमो ।—सूर (शब्द०) ।

अपसौन<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [म० अपसकुन] अमगुन । बुना मगुन ।

अपसौना<sup>४</sup>—क्रि० प्र० दे० 'अपमवना' ।

अपस्कर—सज्ञा पुं० [सं०] १ पहिए के अलावा गाड़ी का कोई भी हिस्सा । ढाँचा । २ विष्टा । मल । ३ योनि । ४ गुदा (को०) ।

अपस्कार—सज्ञा पुं० [मं०] घुटने के नीचे का भाग (को०) ।

अपस्खल—सज्ञा पुं० [मं०] कूदना । फाँदना (को०) ।

अपस्तव—सज्ञा पुं० [मं० अपस्तम्भ] छाती के भीतर एक और स्थित कोण जिसमें प्राणवायु रहता है (को०) ।

अपस्तम्भ—सज्ञा पुं० [मं० अपस्तम्भ] दे० 'अपस्तव' (को०) ।

अपस्तुति—सज्ञा स्त्री० [मं० अप + स्तुति] दोषवर्णन । निंदा ।

अपस्नात—वि० [सं०] प्राणी के मरने पर उदक क्रिया के समय का स्नान किया हुआ ।

अपस्नान—सज्ञा पुं० [मं०] [वि० अपस्नात] १, मृतकस्नान । वह स्नान जो प्राणी के मृत्यु के उसके मरने पर उदक क्रिया के समय करते हैं । २ किसी के नहाने के बाद बचे हुए जल में नहाना (को०) ।

अपस्पर्श—वि० [मं०] सजाहीन । चेतनाशून्य (को०) ।

अपस्मार—सज्ञा पुं० [मं०] एक रोगविशेष । मृगी ।

विशेष—इसमें हृदय कांपने लगता है और आँखों के सामने अंधेरा छा जाता है । रोगी कांपकर पृथ्वी पर मूर्च्छित हो गिर पड़ता है । वैद्यक शास्त्रानुसार इसकी उत्पत्ति चिन्ता, शोक और भय के कारण कुपित विदोष से मानी गई है । यह चार प्रकार का होता है—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज और (४) सन्निपातज । यह रोग नैमित्तिक है । वातज का दौरा बारहवें दिन, पित्तज का पंद्रहवें दिन और कफज का तीसवें दिन होता है ।

पर्या०—अगविकृति । लालाघ । भूतविक्रिया । मृगी रोग ।

२. अपस्मृति । भुलकटपन । स्मृतिभ्रंश (को०) ।

अपस्मारी—वि० [मं० अपस्मारिन्] जिसे अपस्मार रोग हो । उ०—नेत्र टेढ़े चाँके करनेवाला ऐसा अपस्मारी रोगी जीवे नहीं ।—माधव०, पृ० १३१ ।

अपस्मृत—वि० [मं०] भुलकट । खलुनहयान (को०) ।

अपस्मृति<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ भुलकट । भूल जानेवाला । २. विभ्रमित । घमड़ाया हुआ (को०) ।

अपरमृति—सज्ञा स्त्री० दे० 'अपस्मारी' (को०) ।

अपस्वर—सज्ञा पुं० [सं०] कटु स्वर या ध्वनि (को०) ।

अपस्वारथ<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [हि० अप + म० स्वार्थ] स्वार्थ । अपना मतलब । उ०—(क) ये नैना अपस्वारथ के । और इन्हें पटतर क्यों दीजें जे हैं वम परमारथ के ।—सूर०, १०।२२८३ । (ख) अपस्वारथ सो बहु विप्रि लीन्हा । परमारथ काहूँ नहि चीन्हा ।—कबीर सा०, पृ० ७८१ ।

अपस्वारथी—वि० [हि०] दे० 'अपस्वार्थी' । उ०—नैना लुट्यो रूप की अपने मुख माई । अपराधी अपस्वारथी मोहो विमर्ग ।—सूर०, १०।२२५३ ।

अपस्वार्थी—वि० [हि० अप = अपत्ता + म० स्वार्थ] स्वार्थ माधनेवाला । मतलबी । काम निकालनेवाला । खूशगज ।

अपह—वि० [मं०] नाश करनेवाला । विनाशक । उ०—मनोज, वैरि वदित, अजादि देव सेवित । विशुद्ध बोध विग्रह, ममस्त दूषणापह ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—यह शब्द समानान्त पद के अंत में प्रायः आता है । जैसे—बलेणापह । तमोपह । दूषणापह ।

अपहृड<sup>३</sup>—वि० [मं० अप + प्रहृत या म० अपहन] दे० 'अप्रतिहन' । उ०—वड दाता पाता पडा, अपहृड पूरै आस ।—वांकीदास प्र०, भा० १, पृ० ४८ ।

अपहृत—वि० [मं०] १ नष्ट किया हुआ । मारा हुआ । २ दूर किया हुआ । हटाया हुआ ।

अपहनपाण्टमा—वि० [मं०] सब पापों में विमुक्त । जिसके सब पाप नष्ट हो गए हों । पापशून्य । विद्यतपाप ।

अपहरण—सज्ञा पुं० [मं०] [वि० अपहरणीय, अपहरित, अपहृत, अपहर्ता] १ छीनना । ले लेना । हर लेना । उ०—उमका सर्वस्व अपहरण करके हमें केवल राज्य में बाहर कर दो ।—विद्याप० पृ० ८३ । २ चोरी । लूट । ३ छिपावा । मगोपन । ४ महसून वाले माल को दूसरी वस्तुओं में छिपाकर महसून में बचाना (को०) ।

अपहरणीय—वि० [मं०] १ न छीनने योग्य । हर देने योग्य । २ चुराने योग्य । चूटने योग्य । ३ छिपाने योग्य । मगोपन करने योग्य ।

अपहरना<sup>४</sup>—क्रि० प्र० [मं० अपहरण से नाम०] १ छीनना । ले लेना । २ लूटना । चुराना । उ०—जो जानित कर चित भ्रम हरई । बरिघाटी विमोह वम करई ।—तुलसी (शब्द०) । ३ कम करना । घटाना । धुप करना । नाज करना । उ०—जगदानप निशि शशि अपहरई । सत रत्न जिति पानन टरई ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपहर्ता—सज्ञा पु० [सं० अपहर्तृ] १ छीननेवाला । हर लेनेवाला ।  
ने लेनेवाला । २ चोर । लूटनेवाला । ३ छिपानेवाला ।

अपहर्मित—सज्ञा पु० [सं०] वेमत्तलव की हँसी । निरर्थक हँसी ।  
२ हान का एक भेद या प्रकार (को०) ।

अपहर्स्त—सज्ञा पु० [सं०] १ गर्दनिया देकर बाहर निकालना । गर्दन  
पकड़कर बाहर करना । गलहर्स्त । गलहस्त देकर निकाला  
हुआ व्यक्ति । २ फेंकना । ले जाना । ३ चोरी करना ।  
लूटना [को०] ।

अपहर्स्तित—वि० [सं०] १ अपहर्स्त देकर निष्कासित । २ परित्यक्त ।  
फेंका हुआ [को०] ।

अपहान—सज्ञा पु० [सं०] छोड़ना । त्यागना [को०] ।

अपहानि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'अपहान' । २ गायब होना । ३.  
रुम होना [को०] ।

अपहार—सज्ञा पु० [सं०] [वि० अपहारक, अपहारी, अपहारित, अप-  
हार्य] १ चोरी । लूट । २ छिपाव । सगोपन । ३ ले जाना  
(को०) । ४ दूसरे की संपत्ति खर्च करना । पराया माल उड़ाना  
(को०) । ५ हानि । क्षति (को०) । ६ प्राप्त करना । लाना  
[को०] प्राप्ति [को०] ।

अपहारक<sup>१</sup>—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपहारिका] छीननेवाला । वलात्  
हरनेवाला ।

अपहारक<sup>२</sup>—सज्ञा पु० डाकू । चोर । लुटेरा ।

अपहारित—वि० [सं०] १ छीना हुआ । अपहृत । २ लूटा हुआ ।  
चोरी द्वारा प्राप्त । ३ छिपाया हुआ । सगोपित ।

अपहारी<sup>१</sup>—वि० [सं० अपहारिन्] [वि० स्त्री० अपहारिणी] १ हरण  
करनेवाला । २ नाश करनेवाला ।

अपहारी<sup>२</sup>—सज्ञा पु० चोर । लुटेरा । डाकू ।

अपहार्य—वि० [सं०] छीनने योग्य । चोरी करने योग्य ।

अपहाम—सज्ञा पु० [सं०] १ उपहाम । उ०—अव कायर अपहासरी,  
रचना रचूँ अमद ।—वांकीदास ग्र०, भा० १ पृ० १६ ।  
२ अकारण हँसी ।

अपहत—वि० [सं०] छीना हुआ । चुराया हुआ । लूटा हुआ । उ०—  
हृदय का राजस्व अपहत, कर अधम अपराध, दस्तु मुझसे चाहते  
हैं गुण मदा निर्माध ।—कामायनी, पृ० ८४ ।

यौ०—अपहतज्ञान = सुधबुद्ध हीन । बेखबर ।

अपहृतश्री—नानिहीन । छविहीन । उ०—अपहृतश्री मुख स्नेह का  
मय ।—तुलसी०, पृ० ३८ ।

अपहेरा—सज्ञा स्त्री० [सं०] निरस्कार । फटकार । झिड़की ।

अपहृत—सज्ञा पु० [सं०] [वि० अपहृत] १ छिपाव । दुराव । २.  
मिथ । प्रहान । डालनटन । हीना । वाग्जाल से असली बात  
को छिपाना । ३ प्रेम । प्यार (को०) । ४ तोपण [को०] ।

अपहृत—वि० [सं०] छिपा हुआ । उ०—विविध द्रव्य हैं छिपे गर्भ में  
रहने विद्युत, जो वायव के अनकार हैं मजु अपहृत ।—  
प्रेमज्ञानि, पृ० ८३ ।

अपहर्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुःख । छिपाव । २ वहाना । डाल-  
नटन । हीना हवा । ३ एक काव्यालंकार जिसमें उपमेय का

निषेध करके उपमान का स्थापन किया जाय । जैसे,—बुरा  
होइ न अलि यहै धुवाँ धरनि चहुँ कोइ । जारत आवत जगत  
को पावस प्रथम पयोद ।

विशेष—इसके दो प्रधान भेद हैं—शब्दापहनुति और अर्थापहनुति  
इसके अतिरिक्त हेत्वपहनुति, पर्यस्तापहनुति, भ्रातापहनुति,  
छेकापहनुति, व्यग्रापहनुति भी इसके भेद हैं ।

अपह्लवान—वि० [सं०] १ छिपाता हुआ । छिपानेवाला । २. नटने-  
वाला । इनकार करनेवाला ।

अपह्लोता—वि० [सं० अपह्लोतृ] १ अस्वीकार करनेवाला । १  
सगोप्ता । छिपानेवाला [को०] ।

अपाक्त—वि० [अपाङ्क्त] भोजनकाल में साथ पकित में बैठने के  
अयोग्य । पकित या जाति से बहिष्कृत । जातिच्युत [को०] ।

अपाक्तेय—वि० [सं० अपाङ्क्तेय] दे० 'अपाक्त' [को०] ।

अपाक्य—वि० [सं० अपाङ्क्य] दे० 'अपाक्त' [को०] ।

अपाग<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [सं० अपाङ्ग] आँख का कोना । आँख की कोर ।  
कटाक्ष । उ०—(क) नेत्रों को अपाग से शृंगारित किया ।  
—वे० न०, पृ० ४४२ । (ख) और फिर अरुण अपागों से देखा  
कुछ हँस पड़ी ।—भरना, पृ० २५ ।

यौ० अपाग दर्शन = तिरछी बितवन । अपाग दृष्टि = कनखियों से  
देखना । अपागधारा = कटाक्षगति । कटाक्षप्रवाह । उ०—  
(क) किंतु हलाहल भरी उसकी अपागधारा । आज मीन  
जाने क्यों भूलने में असमर्थ हूँ ।—इन्द्र०, पृ० ११ । कामदेव  
(१) सप्रदायमूचक तिलक । (२) अतः समाप्ति । (३)  
अपामार्ग ।

अपाग<sup>२</sup>—वि० अगहीन । अगम्य । पगु ।

अपागक—सज्ञा पु०, वि० [सं० अपाङ्गक] दे० 'अपाग' [को०] ।

अपानाथ—सज्ञा पु० [सं०] १ सागर । समुद्र । २ वरुण [को०] ।

अपानिधि—सज्ञा पु० [सं० अपाम्निधि] १ समुद्र । २ विष्णु [को०] ।

अपापति—सज्ञा पु० [सं० अपाम्पति] दे० 'अपानाथ' [को०] ।

अपापित्त—सज्ञा पु० [सं० अपाम्पित्त] १ अग्नि । २ चित्रक  
वृक्ष [को०] ।

अपावत्स—सज्ञा पु० [सं०] एक बड़ा तारा जो चित्रा नक्षत्र से पाँच  
अश ऊँतर विक्षेप में दिखाई पड़ता है ।

अपाशुला—वि० स्त्री० [सं०] पतिव्रता ।

अपा<sup>१</sup>पु—सज्ञा स्त्री० [हि० आपा] आत्मभाव । अहंकार । गर्व ।  
घमड । उ०—आधो छोडि ऊरघ को जावे । अपा मेदि कै प्रेम  
बढावे ।—कवीर (शब्द०) । दे० 'आपा' ।

अपा<sup>२</sup>पु—मर्व [हि०] दे० 'अपना' ।

यौ०—अपापर = अपना पराया । उ०—अपापर नहीं चिन्हीला ।  
—दक्खिनी, पृ० ३४ ।

अपाङ्गपु—सज्ञा स्त्री० [सं० अपाङ्ग] दे० 'अपाङ्ग' ।

अपाङ्गपु—सज्ञा पु० [सं० अपाङ्ग, प्रा० अपाङ्ग] अनमीति । अन्यथाकार ।  
उपद्रव । उ०—खेलत मा अनुज बालक नित जोगवत अनट  
अपाङ्ग । जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ ।—  
तुलसी ०, पृ० ५०६ ।

अपाक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] १ अजीर्ण। अपच। २ कच्चापन।  
 अपाक<sup>२</sup>—वि० [मं०] अपक्व। अनपका [को०]।  
 अपाक<sup>३</sup>—वि० [मं० अ + पा० पाक] अपवित्र। नापाक।  
 अपाकज—वि० [सं०] १ जो पका या पकाया न हो। २ जो प्रकृत या मूल रूप में हो। प्राकृतिक।  
 अपाकरण—सज्ञा पुं० [मं०] [वि० अपाकृत] १ पृथक्करण। अलग करना। २ हटाना। दूर करना। निराकरण। निरसन। ३ चुकता करना। अदा या देवाक करना।  
 अपाकर्म—सज्ञा पुं० [मं० अपाकर्मन्] मृगतान। अदायगी [को०]।  
 अपाकशाक—सज्ञा पुं० [सं०] अदरक। आदी।  
 अपाकृति—सज्ञा स्त्री० [मं०] दे० 'अपाकरण' [को०]।  
 अपाक्ष—वि० [मं०] १ आँखों के सामने। प्रत्यक्ष। उपस्थित। २. दूषित नेत्रवाता। ३ नेत्रहीन [को०]।  
 अपाची—सज्ञा स्त्री० [मं०] [वि० अपाचीन, अपाच्य] दक्षिण या पश्चिम [को०]।  
 अपाचीन—वि० [मं०] १ पिछवाड़े। पीछे की ओर। २. जो दिखाई न दे। ३ दक्षिणी। ४ पश्चिमी। विरुद्ध। विपरीत [को०]।  
 अपाच्य—वि० [मं०] १ जो पक न सके। २ जिसका पाचन न हो सके। ३. दक्षिणी या पश्चिमी [को०]।  
 अपाटव<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ पटुता का अभाव। अकुशलता। अनाडीपन। २ अचंचलता। मुस्ती। मदता। ३. कुरूपता। वदमूरती। ४ रोग। बीमारी। ५ मद्य। शराव।  
 अपाटव<sup>२</sup>—वि० १ अपटु। अनाडी। २ अचंचल। मुस्त। ३ कुरूप। वदमूरत। ४ रोगी। बीमार।  
 अपाठ—सज्ञा पुं० [मं० अ + पाठ] अपठ। मूर्ख। उ०—पंडित पूत अपाठ अमृत हूँ जग में आदर। इय गति होय हठील मोल के मर्म रेआदर।—राम० धर्म०, पृ० ११५।  
 अपाठ्य—वि० [मं०] जो पढ़ा न जा सके। जो पढ़ने के योग्य न हो।  
 अपाठा—वि० [मं० अपार या अपात्राह] मुश्किल। कठिन। अपार। उ०—उमकी बिना मरजी चला जाऊँ तो घर में रहना अपाठ कर दे।—गोदान, पृ० २३८।  
 अपाण<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं० आतन्, प्रा० अप्पण, अप्पाण] गर्व। घमट। उ०—विदेही तरुणदिवारा, ईम चाप धरे आण। तोडवा अनेक ताण, ऊठिया करे अपाण।—रघु० ६०, पृ० ७६।  
 अपाणि—वि० [सं०] पाणिहरित। हस्तविहीन। बिना हाथ का।  
 अपाणिनीय—वि० [मं०] १ पाणिनी व्याकरण के नियमानुसार असाधु प्रयोग या उसमें अनुल्लिखित। २ पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन न करनेवाला [को०]।  
 अपात<sup>१</sup>—वि० [सं० अ + पात] जो च्युत न हो। अच्युत। उ०—सूखमना मुर की सरिता अज ओवहि दीन दयाल हरे। ता तट साखी अपात है ब्रह्म मुचैन में दज सुद्ध सरै।—दीन० ग्र०, पृ० ७४।  
 अपात्र<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] १. वेकार या अनुपयुक्त वर्तन। २ अयोग्य व्यक्ति। ३ दान, भोज आदि के अयोग्य ब्राह्मण [को०]।

अपात्र<sup>२</sup>—वि० [सं०] १ अयोग्य। कुपात्र। उ०—नियम पालती एक मात्र तू, सब अपात्र है और पात्र तू।—साकेत, पृ० ३१४।  
 २ मूर्ख। ३. आदि निमंत्रण के अयोग्य (ब्राह्मण)।  
 अपात्रकृत्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] व्यक्ति या ब्राह्मण को पतित बना देनेवाला कार्य [को०]।  
 अपात्रदायी—वि० [सं० अपात्रदायिन्] [वि० स्त्री० अपात्रदायिनी] कुपात्र को दान देनेवाला।  
 अपात्रभृत्—वि० [सं०] अयोग्य वा छोटे व्यक्तियों का समर्थक [को०]।  
 अपात्रीकरण—सज्ञा पुं० [मं०] वह कर्म जिसके करने से ब्राह्मण अपात्र हो जाता है, जैसे—सूँठ बोलना, निंदित का दान लेना, व्यापार करना, शूद्रों का सपर्क करना आदि।  
 अपाद—वि० [सं०] पादरहित। बिना। पैरोवाला। पगु [को०]।  
 अपादक—वि० [सं०] दे० 'अपाद' [को०]।  
 अपादान—सज्ञा पुं० [सं०] १. हटाना। अलगाव। विभाग। २. व्याकरण में पाँचवाँ कारक जिससे एक वस्तु का दूसरी वस्तु से विश्लेषण वा अलगाव सूचित हो। इसका चिह्न 'से' है। जैसे—वह घर से आता है। वृक्ष से फल गिरता है।  
 अपादान कारक—सज्ञा पुं० [सं० अपादान + कारक] व्याकरण के छह कारकों में से पाँचवाँ कारक।  
 अपान<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १. दस वा पाँच प्राणों में से एक। विशेष—निम्नलिखित तीनों वायुओं में से कोई किसी को और कोई किसी को अपान कहते हैं—१ वह वायु जो नाभिका द्वारा बाहर से भीतर की ओर खींची जाती है। २ गुदास्थ वायु जो मल मूत्र को बाहर निकालती है। ३ वह वायु जो तालु से पीठ तक और गुदा से उपस्थ तक व्याप्त है।  
 २ वायु जो गुदा से निकले। अधोवायु। गुदस्थ वायु। ३ गुदा।  
 अपान<sup>२</sup>—वि० १ सब दुखों को दूर करनेवाला। २ ईश्वर का एक विशेषण।  
 अपान<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [प्रा० अप्पाण हिं अपना] १ आत्मभाव। आत्मतत्त्व। आत्मज्ञान। उ०—(क) तुलसी भेटो की प्रेसनि जड जनता सनमान। उपजत हिय अपमान मा, खोवन मूढ अपान।—तुलसी ग्र०, पृ० १४५। (ख) ऋषिराज राजा आज जनक समान को। गौंठि विनु गुन की कठिन जड चेतन की, छोरी अनायाम साधु सोधक अपान को।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१५।  
 २ आपा। आत्मगौरव। अम। उ०—काहे को अनेक देव सेवत, जागै मसान खोवन अपान, सठ होन हठि प्रेत रे।—तुलसी ग्र०, पृ० २३८। ३ मुष्ट। होश हवाम। उ०—(क) भए मगन सब देखनहारे। जनक समान अपान विमारे।—मानस, १।३२५। (ख) बरवम लिए उड़ाइ उर, नाए-कृपानिधान। भरत राम की मिलन लखि, बिसरा सबहि अपान।—मानस, पृ० २८५। ४ अह। अभिमान।  
 अपान<sup>४</sup>—सर्व० [हिं० अपना] निज का। अपना। उ०—पहि-चान को केहि जान, सबहि अपान मुवि भोरी भई।—मानस, पृ० १।३२१।

अपान<sup>१</sup>—वि० [म० अ + पान] जो पीने के योग्य न हो। अपेय।  
उ०—माघो जू मोते और न पापी। भच्छि अभच्छ अपान पान  
करि कवहु न मनसा घापी।—सूर० १।१४०।

अपानद्वार—सञ्ज्ञा पु० [सं०] गुदा [को०]।

अपानन—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ श्वसनक्रिया। साँस लेना। २ मल-  
मूत्र का निकलना या वहिर्गमन [को०]।

अपानपवन—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ शरीरस्थ अपान नामक वायु। २.  
गुदा से निकलनेवाली वायु। पाद [को०]।

अपानवायु—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दे० 'अपानपवन'।

अपाना<sup>१</sup>—सर्व० [हिं०] [स्त्री० अपानी] दे० 'अपना'। उ०—(क)  
साहव लेई चलो देस अपाना।—घरम०, पृ० २८। (ख)  
लोग सब गेह के, प्रवीन है अपानी घाई देह जुवताई नयो  
नयो नेह जोरिहै।—दीन ग्र०, पृ० १४०।

अपानृत—वि० [म०] झूठ से रहित। सत्य [को०]।

अपाप<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जो पाप न हो। पुण्य। सुकृत। उ०—  
सग नसै जिहि भाँति ज्यो उपजै पाप अपाप। तिनसो लिप्त न  
होहि ते ज्यो उपलनि को आप।—केशव (शब्द०)।

अपाप<sup>२</sup>—वि० [स्त्री० अपापा] निष्पाप। पापरहित। उ०—वह पुण्यकृती  
अपाप थे, पहले ही अवतीर्ण आप थे।—माकेत, पृ० ३३६।

अपामार्ग—सञ्ज्ञा पु० [म०] विचडा। विचडी। ऊँगा। ऊँगी। अक्का-  
भारा। लटजीरा।

अपापी—वि० [म० अपापिन्] [वि० स्त्री० अपापिनी] निष्पाप।  
अपाप [को०]।

अपामार्जन—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ शब्दि। सफाई। २ (व्याधि या दोष  
का) निरोध या निवारण [को०]।

अपामृत्यु—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'अपमृत्यु' [को०]।

अपाय<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पु० [म०] [स्त्री० अपायी] १ विश्लेष। अलगाव। २  
अपगमन। पीछे हटना। ३ नाश। उ०—सब अपाय भय  
खोय सदा सुभ करत जाय है।—बुद्ध च०, पृ० २१६। ४ (उ)  
अन्यथाचार। अनरीति। उपद्रव। उ०—करिय समार कोसन  
राय। अकनि जाके कठिन करतव अमित अनय अपाय।—  
तुलसी [को०]। ५ खतरा। विघ्न [को०]। ६ हानि।  
क्षति [को०]। ७ शब्दात्। शब्द की समाप्ति। ८ गायत्र होना।  
लुप्त होना [को०]।

अपाय<sup>२</sup>—वि० [म० अ = नहीं + पाद प्रा० पाय = पैर] १ बिना  
पैर का। लँगडा। अपाहिज। २ निरुपाय। असमर्थ। उ०—  
राम नाम के जपे पै जाय जिय की जरनि। कलिकाल अपर  
उपाय ते अपाय भए जैसे तम जारिवे को चित्र को तरनि।—  
तुलसी (शब्द०)।

अपायी—वि० [सं० अपायिन्] [वि० स्त्री० अपायिनी] १ नष्ट होनेवाला।  
नश्वर। अस्थिर। अनित्य। २ अलग होनेवाला। ३ गायत्र  
या लुप्त होनेवाला [को०]।

अपार<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जिसका पार न हो। सीमारहित। असीम।  
अनन्त। वेहद। उ०—एक दिन सहसा सिधु अपार। लगा  
टकराने नगल सुव्य।—कामायनी, पृ० ५२। २, असंख्य।  
अधिक। अतिशय। अगणित। बहुत। ३, तटहीन।

अपार<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ सांख्य में वह तुष्टि जो धनोपाजन के  
परिश्रम और अपमान से छुटकारा पाने पर होती है। २.

समुद्र। सागर। [को०]। ३ नदी का दूसरा किनारा [को०]।

अपारक—वि० [म०] असमर्थ। अशक्त। अयोग्य। अदक्ष [को०]।

अपारदर्शक—वि० [म० अ + पारदर्शक] जो पारदर्शक न हो। जिसके  
पार प्रकाश न जा सके।

विशेष—लोहा, ताँबा, सोना, लकड़ी, ईंट, पत्थर आदि प्रकाश को  
रोक लेते हैं। इनमें होकर प्रकाश नहीं निकल सकता अतः  
इन्हें अपारदर्शक कहते हैं।

अपारदर्शिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अ + पारदर्शिता] वह स्थिति जिसमें-  
प्रकाश पार न जा सके।

अपारदर्शी—वि० [म० अ + पारदर्शिन] दे० 'अपारदर्शक'।

अपारा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] धरित्री। पृथ्वी [को०]।

अपार्ण—वि० [म०] १ दूरस्थ। २ निकटस्थ [को०]।

अपार्थ<sup>१</sup>—वि० [म०] १ अर्थहीन। निरर्थक। २ निष्प्रयोजन।  
व्यर्थ। ३ नष्ट। प्रभावशून्य।

अपार्थ<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० १ कविता में वाक्यार्थ स्पष्ट न होने का दोष।  
२ दे० 'अपार्थक' [को०]।

अपार्थक—सञ्ज्ञा पु० [म०] न्याय में एक निग्रह स्थान जो ऐसे वाक्यों के  
प्रयोग से होता है जो पूर्वापर असंबद्ध हो।

अपार्थकरणा—सञ्ज्ञा पु० [सं०] मुकदमे में झूठा वयान, दलील या तर्क  
उपस्थित करना [को०]।

अपार्थिव—वि० [सं०] अमौलिक। जो पृथ्वी या मिट्टी से संबद्ध अथवा  
उत्पन्न न हो [को०]।

अपालक—सञ्ज्ञा पु० [म० अपालक] आरग्वध। अमलतास [को०]।

अपाल—वि० [म०] रक्षाहीन। रक्षकविहीन [को०]।

अपाव—सञ्ज्ञा पु० [म० अपाय = नाश] अन्यथाचार। अन्याय। उदाहरण  
अपावन—वि० पु० [सं०] [वि० स्त्री० अपावनी] अपवित्र। अशुद्ध।  
मलिन। उ०—तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन  
गति धरे।—मानस, पृ० ५२।

अपावरण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अपावृत्ति] १ उच्चारण। खोलना।  
२ ढाकना। छिपाना। ३ आवृत करना [को०]।

अपावर्त्तन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ पलटाना। वापसी। २ भागना। पीछे  
हटना। ३ लौटना।

अपावृत—वि० [सं०] १ जो ढका या बंद न हो। २ जो ढका, बंद  
या आवृत हो। ३ स्वतंत्र। अनियंत्रित [को०]।

अपावृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'अपावरण' [को०]।

अपावृत्त<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ लौटना (घोड़े का)। २ (युद्ध में)  
बगली काटना [को०]।

अपावृत्त<sup>२</sup>—वि० [सं०] १ पछाड़ा हुआ। भागा या भगाया हुआ।  
हराया हुआ। २ तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार करनेवाला [को०]

अपाश्रय<sup>१</sup>—वि० [सं०] वेमहारा। निराधार। आश्रयहीन। निरवलंब  
असहाय। दीन [को०]।

अपाश्रय<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ तिरहाना। मिस्तर का वह भाग जहाँ  
तिर को आश्रय दिया जाय। २ चँदोवा या शानियाना। ३  
आश्रयस्थल [को०]।

अपाश्रित—वि० [सं०] १. एकाग्रमेव । क्षेत्रमन्वस्त । २. जिसने मसार के सब कामों से छुटकारा पा लिया हो । विरक्त । त्यागी । ३. अविवशित [को०] । ४. आवद्ध [को०] । ५. अवलंबित [को०] ।

अपासग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अपासङ्ग] तरकश । तूणीर [को०] ।

अपासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपासित, अपास्त] १. क्षेत्र । फेंकना । - छोड़ना । त्यागना । ३. मारना । वध करना [को०] ।

अपासरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपासृत] प्रत्यान । निर्गमन । अपसरण [को०] ।

अपासु—वि० [सं०] प्राणहीन । मृत [को०] ।

अपासृत—वि० [सं०] प्रस्थित । निर्गमित । [को०] ।

अपाहज—वि० [हिं०] दे० 'अपाहिज' । उ०—और दरिद्री, दुखिया, अपाहजों की सहायता करने में अभिरुचि रखना था । —श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३०८ ।

अपाहिज—वि० [सं० अपभञ्ज, प्रा० अपहज] १. अगम । खज । लूना लेंगडा । २. काम करने के अयोग्य । जो काम न कर सके । ३. आलसी ।

अपिंडी—वि० [सं० अपिण्डिन्] पिंडरहित । बिना शरीर का, । अशरीरी ।

अपि<sup>१</sup>—अव्य० [सं०] १. भी । ही । २. निश्चय । ठीक । उ०—रामचंद्र के मजन बिनु जो चह पद निर्वाण । ज्ञानवत अपि मोड़ नर, पमु बिनु पूछ, विखान ।—तुलसी ग्र०, पृ० ११४ ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समीप, सबंध आदि अर्थों में भी मिलता है, जैसे, अपिकल, अपिकदम, अपिकर्ण, आदि । मभावना, प्रश्न, गहरी, शका, समुच्चय, अयुक्त पदार्थ, कामचार क्रिया, विरोध, वितर्क अर्थ में भी इसका प्रयोग विहित है ।

अपिगीर्ण—वि० [सं०] १. स्तुत । प्रशंसित । २. कथित । वर्णित [को०] ।

अपिच—अव्य० [सं०] १. और भी । पुनश्च । २. वलिक ।

अपिच्छल—वि० [सं०] १. निर्मल । पकहीन । स्वच्छ । २. गरीर । गहरा [को०] ।

अपिज<sup>१</sup>—वि० [सं०] पुनर्जन्मा । फिर से उत्पन्न [को०] ।

अपिज<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ मास [को०] ।

अपितु—अव्य० [सं०] १. किंतु । २. वलिक । ३. और [को०] । उ०—त्रिविध मांति को सबद बर विघट न लट परमान । कारन अविरल अल अपितु तुलसी अविद भुलान ।—सं० पञ्चक, पृ० २६ ।

अपितृक—वि० [सं०] १. पिताविहीन । २. अपैतृक ।

अपित्र्य—वि० [सं०] अपैतृक [को०] ।

अपित्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विभाग । अंश । हिस्सा [को०] ।

अपित्वी—वि० [सं० अपित्विन्] हिस्सेवा ना । अंश या भाग रखनेवाला [को०] ।

अपिधान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन । आवरण । ढक्कन । पिहान । २. ढकना । आच्छादन करना [को०] । ३. आच्छादन वस्त्र [को०] ।

अपी—अमृतापिधान = भोजन के पीछे का आचमन । भोजन के उपरांत 'अमृतापिधानमसि' कहकर आचमन करते हैं ।

अपिनद्ध—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपिनद्धा] बँधा हुआ । जकड़ा हुआ । ढँका हुआ ।

अपिन्नत—वि० [सं०] १. अविभक्त धार्मिक कृत्योवाला । जिनके धार्मिक व्रत, कर्म और कृत्य समान हो । २. रक्त द्वारा नवधित । एक रक्त का [को०] ।

अपिहित—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपिहिता] १. आच्छादित । ढँका हुआ । आवृत । २. जो आवृत न हो । खुला हुआ । स्पष्ट [को०] ।

अपी<sup>१</sup>—वि० [हिं० अपि] स्वयं । खुद । उ०—अपी बँठी मुदर परदे के अदर, बुना मुल्ला कूँ, अपने घर के भीतर ।—दक्खिनी०, पृ० २४६ ।

अपी<sup>२</sup>—अव्य० [हिं०] [४० 'अपि'] । उ०—धनवत कुशीन मशीन अपी । द्विज चीन्ह जनेउ उधार तरी ।—मानस, ७।१०१ ।

अपीच—वि० [सं० अपीच्य] मुदर । अच्छा । उ०—(क) विमल विछाड़त गिलम गलीचा । तबत सिंहासन फरस अपीचा । बाँधत ध्वज थल थलन अपीची । नृप मारग चदन जल सीवी ।—गद्याकर (शब्द०) । (ख) फहर गई धों कर्न रंग के फुहारन में, केधों तराबोर भई अतर अपीच में ।—पद्याकर ग्र०, पृ० ३१६ ।

अपीच्य—वि० [सं०] १. प्रति मुदर । अच्छा । खूबसूरत ।

यौ०—अपीच्य वेश । अपीच्य दर्शन ।

२. गोप्य । छिपा हुआ । अतहित ।

अपीत<sup>१</sup>—वि० [सं०] १. जिसने मद्य न पी हो । २. जिने पिया न गया हो । ६. जो पीला न हो [को०] ।

अपीत<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० पीत से पूर्व वर्ण । पीनेतर वर्ण [को०] ।

अपीति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रवेश । २. विनय । मृत्यु । ३. प्रलय । ४. विनाश [को०] ।

अपीध—वि० [हिं०] दे० 'अपीत' । उ०—मात्र कमरा मुगला या जुद्धा खग आल । अजक अरीया अमल जू विण कीधा रणताल ।—रा० रू० पृ० ७४ ।

अपीन<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नामाश्रय । नाक की शुष्कता । सर्दी जुकाम [को०] ।

अपील<sup>१</sup>—वि० [हिं० अपेल] अटन । अडिग । उ०—गुरु धाम कजा, मनी मेल मजा । धनू तोड भजा, सो लीन अपील ।—घट०, पृ० ३८५ ।

अपील<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० एपील] १. निवेदन । विचारार्थ प्रार्थना । २. पुनर्विचारार्थ । प्रार्थना । मातहत अदालत के फैसले के विरुद्ध ऊँची अदालत में फिर विचार करने के लिये अभियोग उतारित करना । ३. वह प्रार्थनापत्र जो किसी अदालत के फैसले को बदलवाने वा रद्द कराने के लिये उमने ऊँची अदालत में दिया जाय ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

यौ०—अपीलप्रदान = जहाँ मुकदमों की निगरानी या पुनर्विचार हो ।

अपीनाट—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एपीनैट] अरीन करनेवाला वस्तु ।

अपीली—वि० [अ० एपील + हिं० ई (प्रत्यय)] अरीन संबंधी ।



अपीव<sup>७</sup>—वि० [स० अपेय] १. पेय जो दुर्लभ हो। अमृत। उ०—  
उ। टट पवन अनटत वाणी अपीव पीवत जे ब्रह्मज्ञानी।  
—गोरख०, पृ० ३२। २. न पीने योग्य। अपेय। उ०—हैं  
अधिक अपीव जीव, कोउ नीर न छवै हैं।—दीन० ग्र०,  
पृ० २०२।

अपु<sup>७</sup>—सर्व० [हि० आप] १. आप। स्वयं। २. आपस में।  
उ०—रवि महाभारत कहूँ लरावत अपु मे मैया भैया।—ब्रज-  
माधुरी०, पृ० ३६६।

अपुच्छ<sup>७</sup>—वि० [स०] पुच्छरहित। विना पूँछ का [को०]।  
अपुच्छा<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री [स०] शिशपा वृक्ष। शीशम का पेठ [को०]।  
अपुट्टना<sup>७</sup>—कि० अ० [हि०] दे० 'अपूठना'।

अपुण्य<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] पुण्य का अभाव। पाप [को०]।

अपुण्य<sup>७</sup>—वि० जो पुण्य या पावन न हो। कलुषित [को०]।

अपुत्र<sup>७</sup>—वि० [स०] जिसके पुत्र न हो। नि सतान। पुत्रहीन। निपूत।

अपुत्रक<sup>७</sup>—वि० [स०] दे० 'अपुत्र' [को०]।

अपुत्रिक<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] ऐसी पुत्रहीन कन्या का पिता जो स्वयं  
पुत्रहीन होते हुए भी कन्या को उत्तराधिकारी नहीं बना  
सकता [को०]।

अपुत्रिका<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री [स०] पुत्रहीन पिता की वह कन्या जो स्वयं भी  
पुत्रहीन हो [को०]।

अपुत्रीय<sup>७</sup>—वि० [स०] दे० 'अपुत्रक' [को०]।

अपुन<sup>७</sup>—सर्व० [हि०] दे० 'अपना'। उ०—जो हरि ब्रत निज  
उर न धरैगो। तो को अस आता जो अपुन करि, कर कुठाँव  
पकरैगो।—सूर०, १।७५।

अपुनपो<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अपनपी'।

अपुनपो<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अपनपी'। उ०—बाकी मारि अपु-  
नपी खावै, सूर ब्रजहिँ सों जाइ। सूर०, १।६०।

अपुनरादान<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह जो पुन ग्रहण न किया जाय [को०]।

अपुनरावर्तन<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] पुनरावर्तन का अभाव। मुक्ति। मोक्ष।

अपुनरावृत्ति<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री [स०] १. पुनरावृत्ति का अभाव। मोक्ष।  
निर्वाण। २. सृष्टि [को०]।

अपुनर्भव<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. फिर जन्म न ग्रहण करना। मोक्ष।  
निर्वाण। उ०—अच्छा होता, यदि यो होता। पर, वह गत तो  
है अपुनर्भव।—अपलक, पृ० ८। २. (रोगादि का) फिर  
न होना।

अपुनीत<sup>७</sup>—वि० [स०] १. जो पुनीत न हो। अपवित्र। अशुद्ध।  
उ०—सुरमरि कोउ अपुनीत न कहई।—मानस, १।६६। २.  
दूषित। दोषयुक्त।

अपुव्व<sup>७</sup>—वि० [स० अपूर्व] अदम्य। बेजोड़। उ०—सुनि सुदरवर  
वज्जने अई अपुव्व कोइ दिट्ठ।—पृ० रा०, ६।११४७।

अपुराण<sup>७</sup>—वि० [स०] १. पुराणा नहीं। आधुनिक। नया [को०]।

अपुस्व<sup>७</sup>—वि० [हि०] दे० 'अपूर्व' उ०—वहुरि कँवर जो पाछे  
देखा, अपुस्व रूप चित्र एक पेखा।—चित्रा०, पृ० ३३।

अपुस्व<sup>७</sup>—वि० [स०] अमानवीय। अमानुषिक [को०]।

अपुस्व<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० नपुंसक। हिजड़ा [को०]।

अपुष्कल<sup>७</sup>—वि० [स०] १. बहुत नहीं। थोड़ा। २. तुच्छ। निम्न।  
क्षुद्र [को०]।

अपुष्ट<sup>७</sup>—वि० [स०] १. जिसका ठीक ढग से पोषण न हुआ हो। जो  
हटा कट्टा न हो। दुबला पतला। २. दुर्बल। मंद। क्षीण।  
३. असमर्थ। कमजोर। ४. एक अर्थदोष जिनमे वाग्य या अर्थ  
स्पष्ट न हो [को०]।

अपुष्टान्न<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० अपुष्ट + अन्न] १. वह अन्न या खाद्य जो वल-  
वर्धक न हो।

अपुष्प<sup>७</sup>—वि० [स०] पुष्पहीन। न फूलनेवाला [को०]।

अपुष्प<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० गूलर का वृक्ष [को०]।

अपुष्पफल<sup>७</sup>—वि० [स०] विना पुष्पित हुए फल देनेवाला। विना फूल  
फल का [को०]।

अपुष्पफल<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १. कटहल। २. गूलर [को०]।

अपुष्पफलद<sup>७</sup>—वि० सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० 'अपुष्पकन' [को०]।

अपूजक<sup>७</sup>—वि० [स०] पूजन न करनेवाला। भक्तिहीन। अधार्मिक [को०]।

अपूजा<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री [स०] १. अधार्मिकता। २. अमान। अन्याय।

अपूजित<sup>७</sup>—वि० [स०] जिसकी पूजा अर्चना न की जाती हो [को०]।

अपूज्य<sup>७</sup>—वि० [स०] पूजा या समान के अयोग्य। उ०—ब्रह्महि आप  
दियो तब जानी। होहि अपूज्य कहि आदि भवानी।—कवीर  
सा० पृ० २२।

अपूठना<sup>७</sup>—कि० स० [स० अ = नहीं + पूठ, पा० पुठ = पीठ] अथवा  
देश०] १. विदारण करना। विध्वन करना। नाश करना।  
२. उलटना पलटना।—जननी हों रघुनाथ पठायो।  
रामचंद्र आए की तुमको देन बघाई आयी। रावन हतिसँ  
चलों साथ ही लका धरौ अपूठी। यातें जिय मकुचात नाव की  
होइ प्रतिज्ञा भूठी।—सूर०, ६।८७।

अपूठा<sup>७</sup>—वि० [स० अपुष्ट प्रा० अपुष्ट] [स्त्री अपूठी] अपरिपक्व।  
अज्ञानकार। अनभिज्ञ। उ०—तुम तो अपने ही मुँह भूठे।  
निगुंण छवि हरि विनु को पावै ज्यों आंगुरी अंगूठे। निकट  
रहत पुनि दूर बतावत हो रस माहि अपूठे।—सूर (शब्द०)।

अपूठा<sup>७</sup>—[स० अस्फुट, प्रा० अफुट] अविकसित। बेखिला। बंधा।  
उ०—परमारथ पाको रतन, कबहुँ न दीजै पीठ। स्वारथ  
सेमल फूल है, कली अपूठी पीठ।—कवीर (शब्द०)।

अपूठा<sup>७</sup>—कि० वि० [स० आ + पूठ, प्रा० आपुठ, आपिठ] १.  
पीछे। पीठ की ओर। उलटे। उ०—गग अपूठी क्यु बहई।—  
वी० रासो, पृ० ६०। २. वापस राजि अपूठा बाहुड, माल-  
वणी मूई।—ढोला०, दू० ४०४।

अपूठी<sup>७</sup>—वि० [स० अपुष्ट प्रा० अपुष्टि] विना पूछे। विना बात  
के। विना सवाल किए। उ०—जेठी धी कै गुलै छुरी है, वह  
अपूठी चाली।—सुंदर ग्र०, पृ० ८२६।

अपूत<sup>७</sup>—वि० [स०] अपवित्र। अशुद्ध।

अपूत<sup>७</sup>—वि० [स० अ = नहीं + पुत्र, प्रा० पुत्त] पुत्रहीन। निपूत।

अपूत<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० अ = बुरा + पुत्र, प्रा० पुत्त] कुपूत। बुरा  
लडका। उ०—तोसैं सपूतहि जाइकै बालि अपूतन की पदवी  
पगु धारे।—राम च०, पृ० ११४।

अपूर्ता—वि० [हि०] निपूता । पुत्रहीन ।  
 अपूर्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ के आटे की लिट्टी जिसे मिट्टी के कपाल या कमोरे में पका कर यज्ञ में देवताओं के निमित्त हवन करते थे ।  
 २ लिट्टी [को०] । ३ अनरसा [को०] । ४ मानपुष्पा [को०] ।  
 ५ गेहूँ [को०] । ६ शहद का छत्ता [को०] ।  
 अपूर्प्य—वि० [म०] अपूर्ण सवधी या उनके कामों की [को०] ।  
 अपूर्प्य—सञ्ज्ञा पुं० आटा । पिमान [को०] ।  
 अपूर्<sup>१</sup>—वि० [म०] अपूर्ण, हि० पूरा, पूरा । अपूर्ण । उ०—  
 (क) लवग मुफारी जायफर, मंत्र फर फरे अपूर्ण । (ख) जनयल भरे अपूर्ण मंत्र, धरति गगन मिल एक ।—जायसी (शब्द०) ।  
 अपूर्<sup>२</sup>—वि० [हि०] १ दे० 'अपूर्ण' । २ पूररहित । प्रवाहरहित बिना वाढ का ।  
 अपूर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] शालमली या मेमर का वृक्ष [को०] ।  
 अपूर्णा—क्रि० सं० [म०] अपूर्णत्वं । १ भरना । २ फूँकना । बजाना । उ०—मुना नख जो विष्णु, अपूर्णा । आगे हनुमत करै लंगूरा ।—जायसी (शब्द०) ।  
 अपूर्व—वि० [हि०] ३० 'अपूर्व' । उ०—भरित, नेह, तब नीर नित वरमत मुर अथोर । जयति अपूर्व धन कोऊ लखि नाचत मन मोर ।—नारदेंदु ग्र०, पृ० ५७७ ।  
 अपूर्वता—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अपूर्वता' ।  
 अपूर्वताई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अपूर्वता' । उ०—देई यह कैसी अपूर्वताई ।—प्रेमघन ग्र०, पृ० २१२ ।  
 अपूर्<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] अपूर्णत्वं । अपूर्ण । भरा हुआ । फँसा हुआ । व्याप्त । उ०—चना कटक अस चढा अपूर्ण । अगलहि पानी पिछनहि धूरी ।—जायसी (शब्द०) ।  
 अपूर्<sup>४</sup>—[सं०] अपूर्णत्वं जो पूरा न हो ।  
 अपूर्ण—वि० [म०] १ जो पूर्ण न हो । जो भरा न हो । २ अधूरा । असमाप्त । ३ कम । अल्प ।  
 अपूर्णता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ अधूरापन । उ०—प्राणहीन वह कन्या नहीं जिसमें अपूर्णता भोमन ।—गुगवाणी, पृ० ३० । २ न्यूनता । कमी । उ०—तुम अति अवोध अपनी अपूर्णता को न स्वयं तुम समझ सके ।—कामायनी पृ० १६३ ।  
 अपूर्णभूत—सञ्ज्ञा पुं० [म०] व्याकरण में वह क्रिया का भूतकाल जिसमें क्रिया की समाप्ति न पाई जाय । जैसे—वह खाता था । (शब्द०) ।  
 अपूर्व<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो पहिले न रहा हो । उ०—प्रौर शुचिता का अपूर्व गुहाग ।—साकेत, पृ० १६३ । २ अद्भुत । अनोखा । अनौकिक । विचित्र । ३ अनुपम । उत्तम । श्रेष्ठ ।  
 अपूर्व<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ परमात्मा । परब्रह्म । २. मोमासा के अनुसार अदृष्ट फल । ३ पाप पुण्य [को०] ।  
 अपूर्वता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] विनक्षयता । अनोखापन । श्रेष्ठता ।  
 अपूर्वत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपूर्वता' [को०] ।  
 अपूर्वपति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] कुमारी । कन्या जिसका विवाह न हुआ हो [को०] ।  
 अपूर्वरूप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिससे पूर्वगुण की प्राप्ति का निषेध हो । यह पूर्वरूप का विपरीत अलंकार है ।

जैसे—'क्षय हो हो करह शर्मा, बढत जु वारहि वार । त्यों पुनि यौवन प्राप्ति नहि, न कर मान निति नार ।' यहाँ पर दिखाया गया है कि जिस प्रकार चंद्रमा क्षय के पश्चात् पुनः पूर्णता प्राप्त करता है, उस प्रकार यौवन एक बार जाकर फिर नहीं आता ।  
 अपूर्ववाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म सवधी वादविवाद या परिचर्चा [को०] ।  
 अपूर्वविधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] उस वस्तु को प्राप्त करने की विधि जिसका बोध प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों द्वारा न हो सके । जैसे, स्वर्ग की कामना हो तो यज्ञ करे । यहाँ पर स्वर्ग, जिसकी प्राप्ति की विधि बताई गई है प्रत्यक्ष और अनुमान आदि द्वारा सिद्ध नहीं होता ।  
 विशेष—यह विधि चार प्रकार की है—(क) कर्मविधि—जैसे, अग्निहोत्र करे तो स्वर्ग होगा । (ख) गुणविधि—जिसमें यज्ञ या कर्म के अनुष्ठान की सामग्री और देवता आदि का निर्देश हो । (ग) विनियोग विधि—जैसे, गार्हपत्य में इद्र की ऋचा का विनियोग करे । (घ) प्रयोग विधि—अर्थात् अमुक कर्म के हो जाने पर अमुक कर्म करने का आदेश, जैसे—गुरुकुल से विद्या पढकर समावर्तन करे ।  
 अपूर्व<sup>३</sup>—वि० [सं०] १ वेमेन । वेजोड । बिना मितावट का । २ बिना लगाव का । असंबद्ध । ३ खागिम अकेला ।  
 अपूर्व<sup>४</sup>—सञ्ज्ञा पुं० पाणिनी के मतानुसार एक अक्षर का प्रत्यय ।  
 अपेक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'अपेक्षा' [को०] ।  
 अपेक्षणीय—वि० [सं०] अपेक्षा करने योग्य । वाछनीय ।  
 अपेक्षया—क्रि० वि० [म०] अपेक्षया किसी की तुलना में अपेक्षाकृत ।  
 अपेक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ आकांक्षा । इच्छा । अभिलाषा । चाह । जैसे,—कौन पुरुष है, जिसे धन की अपेक्षा न हो । आवश्यकता । जरूरत । जैसे—सन्ध्यासिंधो को धन की अपेक्षा नहीं है । ३. आश्रय । भरोना । आशा । जैसे—पुरुषार्थी पुरुष किसी की अपेक्षा नहीं करते । ४ कार्य कारण का अन्योन्य सवध । ५ निस्वत । तुलना । मुकाबिला । जैसे—बंगला की अपेक्षा हिंदी सरल है । उ०—वात बनाने में पुरुषों की अपेक्षा स्त्री स्वभाव से चतुर होती है ।—श्रीनिवाम ग्र०, पृ० ६३ ।  
 विशेष—इस अर्थ में यह मात्राभेद दिखाने के लिये व्यवहृत होता है और इसके आगे में लुप्त रहता है ।  
 ६ प्रतीक्षा । इंतजार ।  
 अपेक्षाकृत—अव्य० [सं०] मुकाबले में । तुलना में । निस्वतन् ।  
 अपेक्षाबुद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ऊहापोह की क्षमता या बुद्धि । कार्य-कारण सवध थाहने की प्रतिभा । भेद बुद्धि [को०] ।  
 अपेक्षित—वि० [सं०] १ जिसकी अपेक्षा हो । जिसकी आवश्यकता हो । आवश्यक । उ०—प्रेम के लिये व्यक्ति की कोई विशेषता अपेक्षित होती है ।—रस०, पृ० ७८ । इच्छित । वांछित । उ०—वास्तव में कन्या की दृष्टि दोनों ही प्रकार के कवियों में अपेक्षित है ।—रस०, पृ० ५७ ।  
 अपेक्षी—वि० [सं०] अपेक्षित्वा १ आशा लगा रखनेवाला । २ प्रतीक्षा करनेवाला । ३ आकांक्षी ।  
 विशेष—इसका प्रयोग समासात् में मुख्यतः प्राप्त होना है, जैसे,—परबलापेक्षी, विधिवलापेक्षी, परमुखापेक्षी आदि ।



अप्रकाश<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ प्रकाश का प्रभाव। प्रप्रकार। २. गुण वात। रहस्य [को०]।

अप्रकाश<sup>२</sup>—वि० १ प्रकाशहीन। अधकारपूर्ण। २ अप्रकट। गुह्य। ३ स्वतः प्रकाशित [को०]।

अप्रकाशित—वि० [सं०] १ जिसमें उजाला न किया गया हो। अंधेरा। २ जो प्रकट न हुआ हो। गुप्त। छिपा। ३ जो सर्वसाधारण के सामने न रखा गया हो। जो छापकर प्रवर्जित न किया गया हो।

अप्रकाश्य—वि [सं०] जो प्रकाश या प्रकट करने योग्य न हो। गोप्य। अप्रकृत<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ अस्वाभाविक। २ वनावटी। कृत्रिम। गढ़ा हुआ। ३ भूटा। ४ गौण। अप्रामाणिक [को०]। ५ आकस्मिक [को०]।

अप्रकृत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ उपमान। २ पागल व्यक्ति [को०]।

अप्रकृताश्रितश्लेष—सज्ञा पुं० [सं०] श्लेष नामक शब्दालंकार का एक भेद जिसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत का श्लेष हो। जैसे—तिय तो ऐसी चंचलता, जीवन सुखद समच्छ। वसति हृदय घनश्याम के वर मारग सुप्रच्छ।

विशेष—यह दोश शब्दों की भग्न अर्थात् अक्षरों को कुछ इधर उधर कर देने से, स्त्री और विजली दोनों पर घटता है। स्त्रीपक्ष में अर्थ करने में सबी नायिका में कहती है कि तेरे समान दूसरी स्त्री जीवनमुखदायिनी और कमलनयनी घनश्याम के हृदय में वसती है। विजली पक्ष लेने से यह अर्थ होता है कि हे, स्त्री। तेरे समान विजली है जो जीवन अर्थात् जन देनेवाली है, इत्यादि। इन दोनों पक्षों में दूसरी स्त्री और विजली दोनों अप्रस्तुत हैं।

अप्रकृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्राकृतिक या स्वाभाविक स्थिति का अभाव। विकृति। २ साध्य के अनुसार कार्यकारण से भिन्न आत्मा। पुरुष [को०]।

अप्रकृतिस्थ—वि० [सं०] १ अस्वस्थ। बीमार। रोगादि या अन्य भय से ग्रस्त [को०]।

अप्रकृष्ट<sup>१</sup>—वि० [सं०] लुप्त। नीच। बुरा [को०]।

अप्रकृष्ट<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] कौश्या। वायस [को०]।

अप्रकेत—वि० [सं०] जिसे जाना न जा सके। अविज्ञेय। अप्रत्यक्ष। उ०—आदि में तम से घिरा हुआ तम था, वह अप्रकेत (अप्रजायमान) था, और सतिल (जल) था।—आर्यो०, पृ० १८३।

अप्रखर—वि० [सं०] १ मृदु। कोमल। २ जो तेज न हो। अतीक्ष्ण [को०]। ३ मुस्त [को०]।

अप्रगल्भ—वि० [सं०] १ अप्रीड। अपरिपक्व। अपरिपुष्ट। २ निरुत्साह। निरुद्यम। ढीला। मुस्त [को०]।

अप्रगुण—वि० [सं०] परेशान। घमड़ाया हुआ [को०]।

अप्रग्राह—वि० [सं०] अनियंत्रित। बेलगाम [को०]।

अप्रचरित—वि० [सं०] जिसका प्रचार न हो। अप्रवर्जित।

अप्रचलित—वि० [सं०] जो प्रचलित न हो। जिसका चलन न हो। अव्यवहृत। अप्रयुक्त।

अप्रचारित—वि० [सं०] अप्रचारित जिसका प्रचार या प्रसार न किया गया हो।

अप्रचोदित—वि० [सं०] अनिर्दिष्ट। अवाञ्छित। अप्रेरित [को०]।

अप्रच्छन्न—वि० [सं०] १ जो प्रच्छन्न न हो। खुला हुआ। अनावृत। २ स्पष्ट। प्रकट।

अप्रच्छिन्न—वि० [सं०] जो पृथक् न हुआ हो। अविभक्त [को०]।

अप्रच्छन्न<sup>२</sup>—वि० [हि०] १ 'अप्रच्छन्न'। उ०—इम कहत देवि अप्रच्छन्न हो।—पृ० रा०, ६४। २।

अप्रज—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अप्रजा] १ सततिहीन। निस्सतान। २. अजन्मा। ३ जनहीन [को०]।

अप्रज<sup>२</sup>—वि० [हि०] १ 'अपराजेय'। उ०—माण माण भुज ऊठियो अप्रज।—रा० ह०, पृ० २७०।

अप्रज्ञ<sup>१</sup>—वि० [सं०] मदबुद्धि। बुद्धिहीन मतिहीन। प्रज्ञाशून्य [को०]।

अप्रज्ञ<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० मूर्ख या पुरुष [को०]।

अप्रतर्क्य—वि० [सं०] जिसके विषय में तर्क वितर्क न हो सके। जो तर्क द्वारा निश्चित न हो सके।

अप्रति—वि० [सं०] १. अप्रतिम। बेजोड़। अद्वितीय। २ जिसका कोई विरोधी, शत्रु या प्रतिद्वंद्वी न हो [को०]।

अप्रतिकर—वि० [सं०] विषयमनीष। विषयामपात्र। विषयमन [को०]।

अप्रतिकार<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अप्रतिकारी] १ उपाय का अभाव। तदवीर का न होना। २ बदले का न होना।

अप्रतिकार<sup>२</sup>—वि० १ जिसका उपाय या तदवीर न हो सके। लाइ-लाज। २ जिसका बदला न दिया जा सके।

अप्रतिकारी—वि० [सं०] अप्रतिकारिन् [वि० स्त्री० अप्रतिकारिणी] १ —उपाय या तदवीर न करनेवाला। २ बदला न लेनेवाला।

वदला न देनेवाला।

अप्रतिगृह्य—वि० [सं०] जिसका दान या उपहार ग्रहण न किया जा सके [को०]।

अप्रतिगृहीत—वि० [सं०] जिसका ग्रन्थग्रहण न किया गया हो। जो लिया न गया हो।

अप्रतिग्रहण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अप्रतिग्राह्य, अप्रतिगृहीत] १ दान न लेना। किसी वस्तु का ग्रहण न करना। २ विवाह न करना। कन्यादान का ग्रहण न करना।

अप्रतिग्राह्य—वि० [सं०] जो प्रतिग्रहण करने योग्य न हो। जो लेने योग्य न हो।

अप्रतिघ—वि० [सं०] १ अदम्य। अजेय। २ जिसे रोकना न जा सके। अनिवार्य। ३ क्रोधविहीन। अक्रुद्ध [को०]।

अप्रतिघात—वि० [सं०] १ बिना प्रतिघात का। जिसका कोई प्रतिघात या विरोधी न हो। बेरोक। २ बेठोरकर। बेचोट। घबरे मे बचा हुआ।

अप्रतिद्वन्द्व—वि० [सं०] अप्रतिद्वन्द्व जिसके मुकाबले का कोई न हो। बेजोड़ [को०]।

अप्रतिपक्ष—वि० [सं०] १ जिसका कोई विरोधी या स्पर्धी न हो। विरोधीविहीन। २. बेजोड़। असमान [को०]।

अप्रतिपण्य—वि० [सं०] जिसका विक्रयण या विनिमय न हो सके [को०]।

अप्रतिपत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अप्रतिपन्न] १ प्रकृत अर्थ समझने की अयोग्यता। २, कर्तव्यनिश्चय का अभाव। ब्या

करना चाहिए, इसका बोध न होना । ३ निश्चय का अभाव ।  
 ४ स्फूर्ति का अभाव [को०] । ५ असफलता [को०] । ६ जडता [को०] ।  
 अप्रतिपन्न—वि० [स०] १ कर्णव्यज्ञानशून्य । २ अनिश्चित । अज्ञात ।  
 ३ जो सपन्न न हुआ हो । असपन्न [को०] ।  
 अप्रतिवध<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पु० [स० अप्रतिवन्ध] [वि० अप्रतिबद्ध] रुकावट का न होना । स्वच्छदता ।  
 अप्रतिवध<sup>२</sup>—वि० १ प्रतिवधरहित । निर्वाध । २ निर्विवाद प्राप्त । बिना किसी विवाद के सीधे प्राप्त, उत्तराधिकार [को०] ।  
 अप्रतिवद्ध—वि० [स०] १ बेरोक । स्वतन्त्र । स्वच्छद । २ मनमाना ।  
 अप्रतिवल—वि० [स०] बल या शक्ति में जिसके जोड़ का दूसरा न हो । बेजोड़ ताकतवाला [को०] ।  
 अप्रतिभ—वि० [स०] १ प्रतिशून्य । चेष्टाहीन । उदास अप्रगल्भ । २ स्फूर्तिशून्य । सुस्त । मंद । उ०—हैंसे सुनतान, और अप्रतिम होती मैं जकडी हुई थी अपनी ही लाजशृंखला में ।—लहर, पृ० ८० । ३ मतिहीन । निबुद्धि । ४ लजालू । लजीला ।  
 अप्रतिभट<sup>१</sup>—वि० [स०] वीरता में जिसका जोड़ न हो । अप्रतिम । उ०—अप्रतिभट वही एक अर्बुद सम महावीर ।—अपरा, पृ० ४५ ।  
 अप्रतिभट<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० [स०] बेजोड़ वीर या योद्धा [को०] ।  
 अप्रतिभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रतिभा का अभाव । २ न्याय में वह निग्रह स्थान जहाँ उत्तर पक्षवाला परपक्ष का खडन न कर सके । ३ दबूपन ।  
 अप्रतिम—वि० [स०] जिसके समान कोई दूसरा न हो । असदृश । अद्वितीय । अनुपम । बेजोड़ । उ०—यह प्रथरत्न वस्तुन अपने रंग ढंग का अप्रतिम ठहरता है ।—रस क०, पृ० १३ ।  
 अप्रतिमान—वि० [स०] यद्वितीय । बेजोड़ ।  
 अप्रतियोगी—वि० [स० अप्रतियोगिन्] १ जिसका कोई सामना करनेवाला न हो । जिसका कोई प्रतिस्पर्धी या विरोधी न हो । २ जिसके समान दूसरा हिंसा या भाग न हो [को०] ।  
 अप्रतिरथ<sup>१</sup>—वि० [स०] जिसका मुकाबला करनेवाला कोई वीर योद्धा न हो [को०] ।  
 अप्रतिरथ<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० अप्रतिम योद्धा या वीर [को०] ।  
 अप्रतिरव—वि० [स०] निर्विरोध । निर्विवाद [को०] ।  
 अप्रतिरूप—वि० [स०] १ जिसका कोई प्रतिरूप न हो । अद्वितीय अनुपम । २ जो अनुकूल रूप का या ठीक न हो [को०] ।  
 अप्रतिरोध—सञ्ज्ञा पु० [स०] प्रतिरोधरहित । बेरोक । निर्वाध ।  
 अप्रतिरोध्य—वि० [स०] जिसे रोक न जा सके । जिसका प्रतिरोध संभव न हो । उ०—वह अप्रतिरोध्य है, पर अधी है, यहाँ तो मैं नहीं मानूँगा ।—त्याग०, पृ० ४८ ।  
 अप्रतिवार्य—वि० [स०] अनिवार्य । निश्चित । उ०—अतः मे कौलास की प्राप्ति अप्रतिवार्य है ।—मृग०, पृ० ४४२ ।  
 अप्रतिवीर्य—वि० [स०] अप्रतिम या बेजोड़ शक्तिवाला [को०] ।  
 अप्रतिशासन—वि० [स०] १ एकतन्त्र शासन । २ जिसका कोई विरोधी या प्रतिद्वंद्वी शासक न हो [को०] ।

अप्रतिषिद्ध<sup>१</sup>—वि० [स०] अनिषिद्ध । समत ।  
 अप्रतिषिद्ध<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० [स०] वास्तु विद्या में ६ भागों में विभक्त स्तम्भपरिमाण के उस भाग का नाम जो ऊपर से गिनने पर दूसरा पड़े ।  
 अप्रतिष्ठ<sup>१</sup>—वि० [स०] १ प्रतिष्ठाहीन । वेइज्जत । २ बेसहारा । तिरस्कृत । फेंका हुआ । ३ अस्थिर । दुर्लभ । ४ अप्रसिद्ध [को०] ।  
 अप्रतिष्ठ<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० एक नरक का नाम [को०] ।  
 अप्रतिष्ठ<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रतिष्ठा का उलटा । अनोदर । अपमान । २ अयश । अपकीर्ति । ३ अस्थिरता [को०] ।  
 अप्रतिष्ठित—वि० [स०] १ जो प्रतिष्ठित न हो । तिरस्कृत । उ०—लाला ब्रजकिशोर कुछ ऐसे अप्रतिष्ठित नहीं है ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३४२ । २ जो स्थिर या सुव्यवस्थित न हो [को०] ।  
 अप्रतिसख्य—वि० [स० अप्रतिसङ्ख्य] जो ध्यान, दृष्टि या गणना में न आया हो [को०] ।  
 अप्रतिसवद्धाभूमि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अप्रतिसम्बद्धाभूमि] कौटिल्य के अनुसार वह भूमि जो एक दूसरी से पृथक् हो ।  
 अप्रतिहत<sup>१</sup>—वि० [स०] १ जो प्रतिहत न हो । जिसका विधात न हुआ हो । अटूट । उ०—आज भी यह विचारपरपरा अप्रतिहत है ।—रस क०, पृ० ४५ । २ अपराजित । ३ बिना रोकटोक का । ४ सपूर्ण । समग्र । अनुमरण [को०] ।  
 अप्रतिहत<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० अकुश ।  
 अप्रतिहतगति—वि० [स०] जिसकी गति रोकी न जा सके । निर्वाध गतिवाला । उ०—अप्रतिहतगति सस्थानों से रहता था जो सदा बढ़ा ।—कामायनी, पृ० २०६ ।  
 अप्रतिहतनेत्र<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पु० [स०] एक बौद्ध देवता [को०] ।  
 अप्रतिहतनेत्र<sup>२</sup>—वि० निर्वाध दृष्टिवाला [को०] ।  
 अप्रतिहतव्यूह—सञ्ज्ञा पु० [स०] कौटिल्य के अनुसार वह अटूट ब्यूह जिसमें हाथी, घोड़े, रथ तथा प्यादे एक दूसरे के पीछे हों ।  
 अप्रतिहार्य—वि० [स०] जिसे रोक न जा सके [को०] ।  
 अप्रतीक—वि० [स०] १ प्रग या शरीर से रहित । २ व्रण का विशेषण [को०] ।  
 अप्रतीकार—सञ्ज्ञा पु० [स०] दे० 'अप्रतिकार' ।  
 अप्रतीकारी—वि० [स० अप्रतीकारिन्] दे० 'अप्रतीकारी' ।  
 अप्रतीघात—वि० [स०] दे० 'अप्रतिघात' ।  
 अप्रतीत—वि० [स०] १ अप्रमत्त । २ अगम्य । ३ निर्विरोध । ४ दुर्बोध्य । एक शब्ददोष [को०] ।  
 अप्रतीतत्व—सञ्ज्ञा पु० [स०] दुर्लभ पारिभाषिक शब्दों का काव्यगत प्रयोग । एक काव्यदोष । उ०—त्राचायों ने पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग को अप्रतीतत्व दोष माना है ।—रस०, पृ० ४४ ।  
 अप्रतीति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] अर्थ या रूप आदि का समझ में न आना या स्पष्ट न होना । १ विश्वास का अभाव । अविश्वास । अनिश्चय । उ०—होई कि नहीं सोव मति जानहि अप्रतीति हृदये तें टारि । करिनिस्वाम प्रतीति आनि उर। यह तासिनिय बुद्धि निरधारि ।—सुंदर ग्र० पृ० ३८ ।

अप्रतीयमान—वि० [मं०] जो प्रतीयमान वा निश्चित न हो। अनिश्चित।  
 अप्रतुल<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ जिसकी तुलना वा मान न हो सके। बेहद।  
 २ अनुपम। बेजोड़।  
 अप्रतुल<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] १. वजन वा भार का अभाव। २. अभाव।  
 आवश्यकता [को०]।  
 अप्रसक्त—वि० [मं०] जो प्रदान न किया गया हो। न लौटाया  
 हुआ [को०]।  
 अप्रसक्ता—सज्ञा स्त्री० [मं०] कुमांगी। कन्या जिसका विवाह न हुआ  
 हो [को०]।  
 अप्रत्यक्ष—वि० [मं०] १ जो प्रत्यक्ष न हो। परोक्ष। २. छिपा।  
 गुप्त। ३. अज्ञान [को०]। ४. अनुपस्थित [को०]।  
 अप्रत्यक्षनीक—सज्ञा पुं० [मं०] वह काव्यान्वित जिसमें शत्रु के जीतने  
 के सामर्थ्य के कारण उसमें सन्तुष्ट रहनेवाली वस्तुओं का तिर-  
 स्कार न किया जाय। जैसे—नृप यह पीठत है परहि, नहि पर  
 प्रजा मुरार। राहु जनी को गमन है, नहि तारन जु निहार  
 (जबद०)।  
 अप्रत्यय<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] १ अविश्वस्त। भरोसे का अभाव। २.  
 (व्याकरण में) वह जो प्रत्यय न हो [को०]।  
 अप्रत्यय<sup>२</sup>—वि० १ विश्वामरहित। अविश्वाम। २. ज्ञानहीन। बोध-  
 रहित। ३. (व्याकरण में) प्रत्ययशून्य [को०]।  
 अप्रत्याशित—वि० [मं०] जिसकी आशा न रही हो। असमाधित।  
 अचानक। आकस्मिक। उ०—उसमें क्षिप्रगति के साथ अप्र-  
 त्याशित विकास होना चाहिए।—म० शास्त्र, पृ० १८२।  
 अप्रदुग्ध—वि० पूरी तरह दुही हुई। दुग्धरहित [को०]।  
 अप्रधान<sup>१</sup>—वि० [मं०] जो प्रधान वा मुख्य न हो। गौण। माधारण।  
 मामान्य।  
 अप्रधान<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० गौण कार्य [को०]।  
 अप्रवृत्त—वि० [मं०] जिने दवाया या हटाया न जा सके। अजेय [को०]।  
 अप्रवच—सज्ञा पुं० [मं०] अप्रवच। प्रवच का अभाव। अव्यवस्था।  
 कुप्रवच। उ०—ऐसे अप्रवच, कूट और स्वेच्छाचार की हवा  
 चली कि लोग आपन में कट मरे।—श्रीनिवास श्र०, पृ० ३३३  
 अप्रवल<sup>१</sup>—वि० [मं०] 'अप्रवच'। उ०—पाणी माहें प्रजनी भई  
 अप्रवल आगि। बहति मलिता रहि गई मछ रहै जल त्वागी।  
 ध्वोर श्र० पृ० १२।  
 अप्रवल<sup>२</sup>—वि० [मं०] अप्रवच। जो प्रवच न हो। दुर्बल। कमजोर।  
 अप्रभ—वि० [मं०] १ कानि सा तेजस्विताहीन। हतप्रभ। २. तुच्छ।  
 नीच [को०]।  
 अप्रभु—वि० [मं०] १ अधिपति वा पनावहीन। २. अनुभव।  
 अवधार [को०]।  
 अप्रभूति—सज्ञा स्त्री० [मं०] स्वल्प प्रमाण [को०]।  
 अप्रमत्त—वि० [मं०] प्रमाद वा लापरवाही से रहित। गवधान।  
 नतके [को०]। उ०—आप नमभी जानी है अट्ट, प्रमत्त और  
 अनिमत।—मुद्रारा, पृ० ४१।  
 अप्रमत्त<sup>२</sup>—वि० [मं०] प्रवर्तहीन। अवाह्य। विन। उत्तम [को०]

अप्रमय—वि० [मं०] १. अनिश्चर। प्रतीत। अप्रमेय [को०]।  
 अप्रमा—सज्ञा स्त्री० [मं०] प्रमा का न होना। अज्ञान [को०]।  
 अप्रमाणा<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ जो प्रमाणात् न हो। अप्रमाणात्। २.  
 विना सव्य का। नाधीरहित। ३. अनधिकृत। अस्विकृत।  
 ४. अनीम। अपरिमित [को०]।  
 अप्रमाणा<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ जो प्रमाण न बन सके। २. अप्रमाणिकता।  
 अप्रमाद<sup>१</sup>—वि० [मं०] प्रमादरहित। अनवरत। उ०—बहनी नी स्या-  
 मल घाटी में निरिप्त गाव में अप्रमाद।—कामायनी,  
 पृ० १६७।  
 अप्रमाद<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० सावधानता। सतर्कता। जागरूकता [को०]।  
 अप्रमित—वि० [मं०] १ बेनाप। अमीमित। २. अप्रिकारी द्वारा जो  
 प्रमाणित न हो [को०]।  
 अप्रमेय—वि० [मं०] जो नापा न जा सके। अपरिमित। अपार।  
 अनत। उ०—तू न अच्छे वाण मच्छ अमेर लें ननशान ने।  
 आइयो रणभूमि में कहि अप्रमेय प्रमान का।—रामच०,  
 पृ० १३३।  
 अप्रमोद—सज्ञा पुं० [मं०] १ प्रमदना का अभाव। २. अप्रमोदरस  
 की अक्षमता [को०]।  
 अप्रयत्न<sup>१</sup>—वि० [मं०] प्रयत्नहीन। उन्मादहीन। उदासीन। [को०]।  
 अप्रयत्न<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] प्रयत्न का अभाव। काहिनपन। श्रोग-  
 सीन्य [को०]।  
 अप्रयुक्त—वि० [मं०] जिसका प्रयोग न हुआ हो। जो काम में न लाया  
 गया हो। अव्यवहृत। उ०—हिंदी में अप्रयुक्त नमूने शब्दों का  
 प्रयोग भी उनकी मापा की कलाई को उड़ाने में ही मदद करता  
 है।—रामच० (पू०), पृ० ३६। २. अप्रयुक्त। ३. शब्दादि  
 का अन्यथा वा गलत प्रयोग। ४. दुर्लभ या विरल प्रयोग [को०]।  
 अप्रयुक्तत्व—सज्ञा पुं० [मं०] वह शब्द जो कोजगत और शुद्ध होने हुए  
 भी व्यवहृत न हो।  
 विशेष—उस प्रकार के शब्दों का प्रयोग नाहित्यशास्त्र में लेया  
 माना गया है।  
 अप्रयोग—सज्ञा पुं० [मं०] १ प्रयोग का अभाव। २. दुष्प्रयोग। ३.  
 अव्यवहार [को०]।  
 अप्रलय—वि० [मं०] अप्रलय। कुर्तित। मनस। तनय [को०]।  
 अप्रवर्तक—वि० [मं०] १ कार्य के निवे प्रेरणा न देनेवाला। निष्क्रिय।  
 २. अट्ट। अविच्छिन्न [को०]।  
 अप्रवर्ती—वि० [मं०] अप्रवर्तित। उ० 'अप्रवर्तित'।  
 अप्रवानी<sup>①</sup>—वि० [मं०] अप्रमाणा, प्रा० प्रमाणा, अप० पमाणा + ई  
 (प्रत्य०) अप्रमेय। अजेय। उ०—अट्ट केतन द्रष्टा है, पेट  
 समुधानी। जट लपट दिनमें नरा चजन प्रवर्तनी।—मुद्रारा  
 श्र०, पृ० २००।  
 अप्रवीन<sup>②</sup>—वि० [मं०] अप्रवीण। जो प्रवीण न हो। पदर। उ०—  
 कथा। प्रीति यदि निर्मोहियत को तो न भयो मुद्रित।  
 मुनत नमुनत तदन दम मय नो यदि प्रतीत।—मुद्रारा श्र०  
 पृ० ४८२।



अप्रवृत्त—वि० [स०] १ जो क्रियारत न हो। निष्क्रिय। २ असनद्ध [को०]।  
 अप्रवृत्तवध—वि० [स०] कौटिल्य के अनुसार जिसकी ओर से आक्रमण न हुआ हो।  
 अप्रवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रवृत्ति का अभाव। चित्त का भुकाव न होना। २ किसी सिद्धांत वा सूत्र का न लगना। किसी विचार का प्रयुक्त स्थान पर न खपना। ३ अप्रचार। ४ कोष्ठवद्धता [को०]।  
 अप्रवेश्य—वि० [स०] प्रवेश न करने योग्य। जिसमें प्रवेश न हो सके। उ०—विदा हाय। मेरे सुंदर, अप्रवेश्य सा अधकारमय हुआ आज यह मेरा घर।—कुणाल, पृ० १४।  
 अप्रशसनीय—वि० [स०] निंदनीय। निंदा के योग्य।  
 अप्रशस्त—वि० [स०] १ जो प्रशस्त न हो। नीच। कुत्सित। बुरा। २ क्षीण [को०]। ३ अविहित। निषिद्ध [को०]।  
 अप्रशिक्षित—वि० [स०] जिसे किसी कार्य की विशेष शिक्षा न मिली हो। जो प्रशिक्षित न हो।  
 अप्रसंग<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अप्रसङ्ग १ आसक्ति, प्रयोजन या संबंध का अभाव। २ वेमौका [को०]।  
 अप्रसंग<sup>२</sup>—वि० १ संबन्धरहित। २ प्रसंगहीन। वेमौका।  
 अप्रसक्त—वि० [स०] १ जो आशक्त न हो। वेलगाव। २ असंबद्ध। ३ निर्वाध। बिना रोक टोक [को०]।  
 अप्रसक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] अनुराग या प्रवृत्ति का अभाव। आसक्ति-हीनता [को०]।  
 अप्रसन्न<sup>१</sup>—वि० [स०] जो प्रसन्न न हो। असन्तुष्ट। नाराज। २ खिन्न। दुःखी। उदास। विरक्त। ३ पकिल। कीचड़ से युक्त।  
 अप्रसन्न<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० व्याई हुई गाय का सात दिन के बाद दूध।  
 अप्रसन्नता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ नाराजगी। असंतोष। २ रोष। कोप। ३ खिन्नता। उदासी।  
 अप्रसाद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] प्रसन्नता, कृपा या अनुकूलता का अभाव। [को०]।  
 अप्रसिद्ध—वि० [स०] १ जो प्रसिद्ध न हो। अविख्यात। जिसको लोग न जानते हो। २ गुप्त। छिपा हुआ। तिरोहित।  
 अप्रसिद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] ख्याति वा प्रसिद्धि का अभाव। उ०—अप्रसिद्धि मात्र उममा का कोई दोष नहीं।—रस०, पृ० ३४६।  
 अप्रसूत—वि० सततिविहीन। सतानरहित [को०]।  
 अप्रसूता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] स्त्री, जिसे वच्चा न हुआ हो। ब्रध्या नारी। बौक।  
 अप्रस्ताविक—वि० [म०] [वि० स्त्री० अप्रस्ताविकी] जो मूल विषय का या उससे संबद्ध न हो। अप्रस्ताविक [को०]।  
 अप्रस्तुत—वि० [स०] १ जो प्रस्तुत वा मौजूद न हो। अनुपस्थित। २ जो प्रसंगप्राप्त न हो। अप्रासंगिक। जिसकी चर्चा न आई हो। ३ जो तैयार न हो। जो उद्यत न हो। ४ गौण। अप्रधान। उ०—इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अप्रस्तुत (उपमान) भी उन्मी प्रकार के भाव का उत्तेजक हो।—रस०, पृ० ३४६।

अप्रस्तुतप्रशंसा—सञ्ज्ञा [स०] वह अर्थालंकार जिसमें अप्रस्तुत के कथन द्वारा प्रस्तुत का बोध कराया जाय।

विशेष—इसके पाँच भेद हैं—(क) कारणनिवधना—जहाँ प्रस्तुत वा इष्ट कार्य का बोध कराने के लिये अप्रस्तुत कारण का कथन किया जाय। जैसे—लीनो राधा मुख रचन, विधि ने सारतमाम। तिहि मग होय अकाश यह शशि में दीखत श्याम।—मतिराम (शब्द०)। (ख) कार्यनिवधना—जहाँ कारण इष्ट हो और कार्य का कथन किया जाय। जैसे—तू पद नख की दुति कछुक, गइ धोवन जन माथ। तिहि कन मिनि दधि मयन मे चद्र मयो है नाथ।—मतिराम (शब्द०)। (ग) विशेषनिवधना—जहाँ सामान्य इष्ट हो और विशेष का कथन किया जाय। जैसे—लालन मुरतरु धनद हू, अनहितकारी होय। तिनहूँ को आदर न ह्वै, यो मानत बुध लोय।—मतिराम (शब्द०)। (घ) सामान्यनिवधना—जहाँ विशेष कहना इष्ट हो पर सामान्य का कथन किया जाय। जैसे—सीख न मानै गुरन की, अहितहि हिन मन मानि। सो पछतवै तामु फल, ललन भए हित हानि।—मतिराम (शब्द०)। (च) सारूप्यनिवधना—जहाँ असीष्ट वस्तु का बोध उसके तुल्य वस्तु के कथन द्वारा कराया जाय। जैसे—वक धरि धीरज कपट तजि, जो बनि रहै मराल। उधरै अत गुलाव कवि, अपनी बोचनि चाल।—गुलाव (शब्द०)।

अप्रहृत—वि० [म०] १ कोरा (कपड़ा)। जो (वस्त्र) पहनाना गया हो। २ जो (भूमि) जोड़ी न गई हो। बजर। ३ अक्षत। अछूता [को०]। ४ जो मारा या नष्ट न किया गया हो। यथावत्।

अप्राकरणाक—वि० [म०] [वि० स्त्री० अप्राकरणाका, अप्राकरणाकी] विषय या प्रकरण जिसका लगाव न हो। असंगत [को०]।

अप्राकृत—वि० [म०] १ जो प्राकृत न हो। संस्कृत। २ अस्वाभाविक। ३ अमामान्य। अमाधारण। ४. जो प्राकृत भाषा का या उससे संबद्ध न हो [को०]।

अप्राकृतिक—वि० [म०] स्वभाव वा रूढ़ि के विरुद्ध। अस्वाभाविक। अलौकिक [को०]।

अप्राख्य—वि० [स०] मुख्य नहीं। गौण। साधारण [को०]।

अप्राचीन—वि० [म०] १ जो प्राचीन न हो। आधुनिक। २ पारंपरिक नहीं। पाश्चात्य [को०]।

अप्राज्ञ—वि० [म०] अज्ञानी। अशिक्षित। प्रज्ञाहीन [को०]।

अप्राण<sup>१</sup>—वि० [स०] १. बिना प्राण का। निर्जीव। मृत। २ ईश्वर का एक विशेषण।

अप्राण<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० ईश्वर।

अप्राप्त—वि० [म०] १ जो प्राप्त न हो। जो मिला न हो। अनुप्राप्त। दुर्लभ। अलभ्य। २ जिसे प्राप्त न हुआ हो। जैसे—अप्राप्त-वयस्क, अप्राप्तधोवना, अप्राप्तव्यवहार। ३ अप्रत्यक्ष। परोक्ष। अप्रस्तुत। ४ अनागत जो आया न हो। ५ जिसकी उन्न विवाह के योग्य न हो [को०]।

अप्राप्तकाल—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ जानेबाने समय। भविष्य। २ अनवसर। उपयुक्त समय के पहले का समय। ३. न्याय में

तक के समय क्षीम के कारण प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण आदि को यथाक्रम न कहकर अडबड कह जाने का दोष ।  
४ कमसिन [को०] ।

अप्राप्तयौवन—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्राप्तयौवना] जिसकी युवास्था अभी न आई हो । जो जवान न हो । किशोर [को०] ।

अप्राप्तवय—वि० [स० अप्राप्तवयस्] १ नाबालिग । १ कानून की दृष्टि ने सामाजिक जिम्मेदारी के आयोग । १६ वर्ष के पूर्व का । विशेष—अब उम्र की यह अवधि पुरुषों के लिए १८ और स्त्रियों के लिए १६ वर्ष मानी जाती है केवल मतदान के लिये २१ वर्ष है ।

अप्राप्तव्यहार—वि० [म०] १६ वर्ष के भीतर का बालक जिसे धर्मशास्त्र के अनुसार जायदाद पर स्वत्व न प्राप्त हुआ हो । नाबालिग ।

अप्राप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उपलब्धि या लाभ का अभाव । २ नियम कानून से असिद्ध । ३ अनहोनी । ४ जो लागू न हो । अनुपपत्ति [को०] ।

अप्राप्तिसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक ।

विशेष—यदि किसी के उत्तर में कहा जाय—‘तुम्हारा हेतु और साध्य दोनों एक आधार में वर्तमान हैं या नहीं ? यदि वर्तमान हैं तो दोनों बराबर हैं । फिर तुम किसे हेतु कहोगे और किसे साध्य ?’ तो इसे प्राप्ति सम कहेंगे । और यदि साथ ही इतना और कहा जाय—‘यदि दोनों एक आधार में नहीं रहते तो तुम्हारा हेतु साध्य का साधन कैसे कर सकता है ?’ तो इसे अप्राप्तिसम कहेंगे ।

अप्राप्य—वि० [स०] जो प्राप्त न हो सके । जो मिले न । अलभ्य । उ०—जो यों निज प्राप्य छोड़ देंगे । अप्राप्य अनुग उनके लेंगे ।—साकेत, पृ० १४७ ।

अप्रामाणिक—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्रामाणिकी] १ जो प्रमाणसिद्ध न हो । ऊटपटांग । २ जिसपर विश्वास न किया जा सके ।

अप्रामाण्य—सज्ञा पुं० [स०] प्रमाण या सबूत का अभाव [को०] ।

अप्रावृत्त—वि० [म०] जो ढँका या परिच्छिन्न न हो । अनावृत्त । खुला हुआ [को०] ।

अप्राशन—सज्ञा पुं० [स०] आहार ग्रहण न करना । अनशन [को०] ।

अप्रासगिक—वि० [म० अप्रासङ्गिक] जो प्रसंगप्राप्त न हो । प्रसंग-विषय । जिसकी कोई चर्चा न हो ।

अप्रास्तविक—वि० [स०] दे० ‘अप्रस्ताविक’ [को०] ।

अप्रियवद—वि० [स०] कटुभाषी । कठोर शब्द कहनेवाला [को०] ।

अप्रिय<sup>१</sup>—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्रिय] १ जो प्रिय न हो । अरुचि-कर । जो न रुचे । जो पसन्द न हो । उ०—सत्य कहहु अरु प्रिय कहहु अप्रिय सत्य न भाखा ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १८७ । २ जो प्यारा न हो । जिसकी चाह न हो । उ०—मुनि राजा अति अप्रिय बानी ।—मानस १।२०८ । ३ शत्रुतापूर्ण । अमित्र या शत्रुवत् [को०] ।

अप्रिय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ वैरी । शत्रु । २. वंत् । वेतस । निचुल । मो०—अमित्रवद । अप्रियवद । अप्रियकारी । अप्रियवादी ।

अप्रियकर—वि० [म०] जो रुचि कर न हो । अहितकर । अमैत्रीपूर्ण [को०] । अप्रियकारक—वि० [स०] दे० ‘अप्रियकर’ ।

अप्रियकारी—वि० [स० अप्रियकारिन्] [वि० स्त्री० अप्रियकारिणी] दे० ‘अप्रियकर’ [को०] ।

अप्रियता—सज्ञा स्त्री० [स० अप्रिय + ता (प्रत्य०)] बुराई । उ०—हां आर्ये प्रिय की अप्रियता करने को कहती हो तुम ।—साकेत, पृ० ३८४ ।

अप्रियभागी—वि० [स० अप्रियभागिन्] [वि० स्त्री० अप्रियभागिनी] दुर्भाग्यवसित । अभाग ।

अप्रियवादी—वि० [स० अप्रियवादिन्] [वि० स्त्री० अप्रियवादिनी] कडवी बात कहनेवाला । कटुवादी । कठोरवक्ता [को०] ।

अप्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ गी मत्स्य [को०] ।

अप्रीति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ स्नेह वा प्रेम का अभाव । चाह का न होना । २ अरुचि । ३ विरोध । वैर ।

अप्रीतिकर—वि० [स०] वि० स्त्री० अप्रीतिकारी] १ अप्रिय । नाप-सद । २. कटु । कठोर अननुकूल [को०] ।

अप्रैटिस—सज्ञा पुं० [अ० ऐप्रैटिस] वह पुरुष जो किसी कार्य में कुशलता प्राप्त करने के लिये किसी कार्यालय में बिना वेतन लिये वा अल्प वेतन पर काम करे । उम्मेदवार ।

अप्रत—वि० [स०] न गया हुआ । अगत । मृत नहीं [को०] ।

अप्रतराक्षसी—सज्ञा स्त्री० [स०] तुलसी का पौधा [को०] ।

अप्रैल—सज्ञा पुं० [अ० एप्रिल] एक अंगरेजी महीना जो प्रायः चैत में पड़ता है । यह महीना ३० दिन का होता है ।

अप्रैलफूल—सज्ञा पुं० [अ० एप्रिलफूल] जो अप्रैल महीने के पहले दिन हँसी में देवकूट बनाया जाय ।

विशेष—इस दिन योरपवाले हँसी दिल्लगी करना उचित मानते हैं ।

अप्रोक्ष(पुं०)—वि० [स० अपरोक्ष] जो परोक्ष न हो । प्रत्यक्ष । दूर न हो । उ०—देहई काँ बव मोक्ष देहई अप्रोक्ष प्रोक्ष ।—सुदर्श ०, भा० २, पृ० ५६२ ।

अप्रोषित—वि० [स०] जो चला न गया हो । जो अनुपस्थित न हो । जो उपस्थित हो [को०] ।

अप्रौढ—वि० [स० अप्रौढ़] १ जो पुष्ट न हो । कमजोर २. कच्ची उम्र का । नाबालिग । ३. अप्रगल्भ । अनुद्धत [को०] ।

अप्रौढा—सज्ञा स्त्री० [स० अप्रौढ़ा] १ कन्या । कुमारी । २. विवाहिता किंतु अरजस्वला कन्या ।

अप्लव—वि० [स०] १. जलयानहीन । २. जो तैरता न हो । न तैरनेवाला [को०] ।

अप्सर पति—सज्ञा पुं० [स०] अप्सराओं के नाय । इन्द्र [को०] ।

अप्सर<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० ‘अप्सरा’ ।

अप्सर<sup>२</sup>—स्त्री० पुं० [स०] जलजंतु । जलचर [को०] ।

अप्सरा—सज्ञा स्त्री० [म० अप्सरस्] १. जंबुकण । वाष्पकण । २. वेश्याओं की एक जाति । ३. स्वर्ग की वेश्या । इन्द्र की समाधि तोचनेवाली देवता । पत्नी ।

विशेष—इसलिये अप्सरा कहलाती हैं कि समुद्र मथन के समय उसमें से निकली थी।  
 अप्सरातीर्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अप्सराओं के स्नान का पवित्र तालाब या स्थल [को०]।  
 अप्सरि—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'। उ०—कभी स्वर्ग की थी तुम अप्सरि, अब वसुधा की बाल।—गुजन, पृ० ८७।  
 अप्सरी(उ०)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'।  
 अप्सु—वि० [सं०] १ आकार या विग्रहहीन। अरुण। २ कुरूप। असुंदर [को०]।  
 अप्सुक्षित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग एवं पृथ्वी के बीच अंतरिक्षनिवासी देवता [को०]।  
 अप्सुचर—वि० [सं०] पानी का जंतु। जलचर।  
 अप्सुप्रवेशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार एक प्रकार का दंड जिमें अपराधी जल में डुबाकर मारा जाता था।  
 अप्सुयोनि<sup>१</sup>—वि० [मं०] जल से उत्पन्न [को०]।  
 अप्सुयोनि<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अश्व। घोड़ा। २ बें या नरकुल [को०]।  
 अफंड—सञ्ज्ञा पुं० [मं० अ + स्पन्द, अफ० फंड] १ बखेड़ा। फरफड़। अडगा। उ०—(क) महाजनो ने चैनमुखदास को मिलाकर यह मारी अफंड खड़ा कर दिया।—सुंदर ग्र०, पृ० १८६।  
 अफगन—वि० [फा० अफगन] गिरनेवाला। जैसे शेर अफगन।  
 अफगान—सञ्ज्ञा पुं० [फा० अफगान] अफगानिस्तान का रहनेवाला व्यक्ति। काबुली। पठान।  
 अफगानिस्तान—सं० [फा० अफगानिस्तान] भारत के पश्चिमोत्तर-स्थित एक प्रदेश जिसकी राजधानी काबुल है।  
 अफगानी—वि० [फा० अफगान + ई (प्रत्य०)] अफगानिस्तान का। अफगानिस्तान से संबंध।  
 अफगार—वि० [फा० अफगार] घायल। जखमी। उ०—दिल किसके हाथ दीजे, दिल अफगार कहाँ है?—कबीर ग्र०, पृ० ३२३।  
 अफजल—वि० [अ० अफजल] १ बहुत बढ़िया। उत्तमतर। २ बहुत अधिक। बहुत ज्यादा [को०]।  
 अफजू<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [फा० अफजू] वृद्धि। अधिकता।  
 अफजू<sup>२</sup>—वि० अवशेष। फाजिल। जो आवश्यकता से अधिक हो। उबरा हुआ। धर्च से बचा हुआ।  
 अफतावा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आफताव'। उ०—(क) भरत जहाँ नूर जहूर अममान लौं रूह अफताव गुरु कीन्ह दया।—भीखा ग्र०, पृ० ६३।  
 अफतावा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आफताव'।  
 अफतावी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आफतावी'।  
 अफतार—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इस्तार, फा० अफतार] रोजा खोलना। रोजा खोलने के लिये कुछ खाना पीना [को०]।  
 अफतालो(उ०)—सञ्ज्ञा पुं० [फा० अफताल] अगले पड़ाव पर पहुँचकर ठहरने की व्यवस्था करनेवाले कर्मचारी या सेवक।  
 अफताना—क्रि० अ० [मं० उत् + स्फार, स्फाल, हिं० उफताना] उबाना खाना। उत्तेजित होना। धवराना। उ०—द्रौपदी कहति

अफनाइ रजपूती मर्वा, उतरी हमारी सारी माहि कफनाइगी।—रत्नाकर, मा० २, पृ० ८।

अफयू(उ०)—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अफयून] अफीम। अफयून। उ०—अफयू मदक चरम के व चडू के वदीनन। प्यागे के सदा रहते हैं रुखसार वसती।—भारतेंदु ग्र०, मा० २, पृ० ७६२।  
 अफयून—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अफयून] दे० 'अफीम'।  
 अफयूनी—वि० [अ० अफयून] दे० 'अफीमची'।  
 अफरना—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] अफरना। पेट का फूलना।  
 अफरना—क्रि० अ० [मं० अ + स्फार = प्रचुर] १ पेट भरकर खाना। भोजन से तृप्त होना। अथाना। उ०—प्रगट मिले विनु भावते कैसे नैन अघात। मूखे अफरत रुहु मुने, मुरति मिठाई खात।—रसनिधि (शब्द०)। २ पेट का फूलना। उ० (क) लेइ विचार लागा रहे दादू जरता जाय। कवहू पेट न अफरई बावइतेता खाय।—दादू (शब्द०)। (ख) अफगी वीवी दै मारी (रोटी)। ३ ऊबना। उ०—हम उनकी यह नीला देखते देखते अफर गए (शब्द०)।  
 अफरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ + स्फार = प्रचुर] १ फूलना। पेट फूलना। २ अजीर्ण या वायु से पेट फूलने का रोग।  
 अफरा तफरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अफरा तफरी] १ उतफेर। गड़बड़। लुटपोट। २ जल्दी। हड़बड़ी। बड़बड़ाहट।  
 अफराना(उ०)—क्रि० अ० [हिं० अफरना या मं० स्फार] पेट भरने से सतुष्ट होना। अथाना। उ०—गदहा थोरे दिन में चूँद खाई इतरात। अफरान्यो मारन करयो एराकी को लात।—गिरिधर (शब्द०)।  
 अफरावा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अफरना] पेट फूलने की स्थिति, क्रिया या भाव।  
 अफरीदी—सञ्ज्ञा पुं० [फा० अफरीद] पठानों की एक जाति जो पेशावर के उत्तर की पहाड़ियों में रहती है।  
 अफन<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ जिसमें फल न हो। विनाफल का। फलहीन। निष्फल। २ व्यर्थ। निष्प्रयोजन। अ०—परमार्थ स्वारथ साधन भय अफल सकल, नाहि निदि सई है।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२८। ३ बाध। बध्या।  
 अफल<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ भाऊ का वृक्ष। २ बकरा।  
 अफला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ भूम्यामलकी। भुँह आँवला। २ घृतकुमारी। धीक्कार।  
 अफलातून—सञ्ज्ञा पुं० [फा० अफलातून] १ यूनान का एक प्रसिद्ध विद्वान् और दार्शनिक जो अरस्तू का गुरु और सुकरात का शिष्य था। २ बड़प्पन की शोखी करनेवाला व्यक्ति।  
 मु०—अफलातून के नाती=दोखी करनेवाला। तीसमार बने बाना। डींग मारनेवाला।  
 अफलित—वि० [सं०] १ जिसमें फल न लगे। फलहीन। २ निष्फल। परिणामरहित।  
 अफल्यु—वि० [सं०] उत्पादक। लाभदायक। जो फल्यु या सारहीन न हो [को०]।  
 अफवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अफवाह'। उ०—इनी तरह यह सब बातें अफवा की जहरी हवा में मिलकर चारों ओर उड़ने लगी।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६१।

अफवाज—सज्ञा स्त्री० [अ० फौज का तहुँव० अफवाज] मेना। फौज।  
उ०—तू जूनो परगो नवी, अमुरारी अफवाज।—वांकीदास  
ग्र०, भा २, पृ० १००।

अफवाह—सज्ञा पुं० [अ० अफवाह] १ उडती खबर। वाजारु खबर।  
किंवदन्ती। २ मिथ्या समाचार। गप्प।

मु०—अफवाह उडना = निराधार समाचार फैलाना, अफवाह  
उडाना या फैलाना = १ झूठी बात प्रचारित करना। २, वद-  
नाम करना।

अफशाँ—सज्ञा स्त्री० [फा० अफशाँ] १, बादले के छोटे छोटे टुकड़े अथवा  
मुनहला या रूपहला चूर्ण जो स्त्रियों के मुख पर शोभा के लिये  
छिड़के जाते हैं। उ०—कलानिधि के अमर ललाट पर  
अफशाँ।—प्रेमधन, भा० २, पृ० १७।

अफशा—सज्ञा पुं० [फा० अफशा] प्रकाश। प्रकट। जाहिर।

यी०—अफशायराज = गुप्त मन्त्रणा का प्रकाश। छिपी बात को  
खोल देना।

अफसतीन—सज्ञा पुं० [यू०] औपघ के कार्य में प्रयुक्त एक कडग्रा और  
नशीला पौधा।

विशेष—यह पौधा काश्मीर में ५००० से ७००० फुट की ऊँचाई  
पर होता है। इससे हरे या पीले रंग का तेल निकाला जाता  
है जो भारदार तथा कडग्रा होता है। विशेष मात्रा में प्रयोग  
करने से यह तेल विपरीत हो जाता है। इसकी पत्ती विशेषकर  
यूनानी दवाओं के काम आती है।

अफसर—सज्ञा पुं० [अ० आफसर] [सज्ञा अफसरी] १. प्रधान।  
मुखिया। अधिकारी। २, हाकिम। प्रधान कर्मचारी।

यी०—अफसरे आला = प्रधान अधिकारी। सर्वोच्च अधिकारी।

अफसरी—सज्ञा स्त्री० [हि० अफसर + ई (प्रत्य०)] १ अधिकार।  
प्रधानता। २ हुकूमत। शासन।

क्रि० प०—करना।—जताना।

अफसाना—सज्ञा पुं० [फा० अफसानह] किस्सा। कहानी। कथा।  
आख्यायिका।

क्रि० प्र०—छिड़ना।—छेड़ना।—रह जाना।—सुनना।—सुनाना।

यी०—अफसानागो = कहानी कहनेवाला।

अफसानानवीस, अफसानानिगार—१ कहानीकार। कथालेखक।  
२. उपन्यासलेखक।

अफसूँ—सज्ञा पुं० [फा० + अफसूँ] जादू टोना। अमिचार। माया-  
कर्म। इद्रजाल [को०]।

अफसोस—सज्ञा स्त्री० [फा० अफसोस] १ शोक। रज। २. पश्चा-  
त्ताप। क्षेद। पछतावा। दुःख।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अफीडेविट—सज्ञा स्त्री० [अ० ऐफीडेविट] १ हलफ। शपथ। २  
हलफनामा।

अफीम—सज्ञा स्त्री० [यू० ओपियम, अ० अफयून, फा० अफयून] औषध  
और नशे के रूप में प्रयुक्त होनेवाली पोम्बे की डेंड की गोद।

विशेष—यह काष्ठर इकट्टी की जाती है। यह कडवी, मादक  
और स्तम्भ होती है। इसके खाने से कोष्ठवृद्ध होता है और

नींद आती है। विशेष मात्रा में यह विपरीत और प्राणघातक  
हो जाती है। इसके लेप से पीड़ा दूर होती है और सूजन उतर  
जाती है। इसका प्रयोग सग्रहणी, अतिसारादि में होता है।  
वीर्यस्तम्भन की औषधियों में भी इसका प्रयोग होता है। इसके  
खानेवाले भपकी लेते हैं और दूध, मिठाई आदि पर बड़ी रुचि  
रखते हैं। यह नजले को दूर करती है। और बढ़ावस्था में फुर्ती  
लाती है।

अफीमची—सज्ञा पुं० [हि० अफीम + पु० ची (प्रत्य०)] अफीम  
खानेवाला। वह पुरुष जिसे अफीम खाने की लत हो।

अफीमी—सज्ञा पुं० [हि० अफीम + ई (प्रत्य०)] अफीम खानेवाला।  
अफीमची।

अफीर—सज्ञा पुं० [अ० अफीर] प्रतिवेशी। पड़ोसी। उ०—चले साथ  
ले मर्दुमाने अफीर।—कवीर ग्र०, पृ० १३१।

अफुल्ल—क्रि० [म०] अविकसित। जो खिला न हो। बेखिला।

अफू—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अफीम'।

अफेन<sup>१</sup>—वि० [सं०] जिसमें फेन न हो। फेनरहित। बिना भाग का।

अफेन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अहिफेन] अफीम।

अफोट—वि० [म० आ + स्कोट] विदारित। खंडित। उ०—रम्य  
अरम्य करी सु धरन्तिय। रहे मठ कोट अफोट करन्तिय।—  
पृ० २१०, ११३६०।

अपफना<sup>१</sup>—क्रि० सं० [म० अर्पण पा० अप्पण] दे देना, सौंपना।  
अर्पित करना। उ०—पुन्नीम पुत्र अपफअं पदुमि, इमि च्यतनु  
मन मह करिय।—पृ० २०० (उद०), पृ० २११।

अपशा—वि० [फा० अपशा] दे० 'अफशा'। उ०—अवजिद करने में राज  
अपशा होता है। मगर क्या करें।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६।

अवछी<sup>१</sup>—वि० [सं० अवाछित] अनचाहा। अनिच्छित। उ०—  
सुंदर वृष्णा कारन जाइ समुद्रही बीच। फटै जहाज अचानक  
होइ अवछी मीच।—सुंदर ग्र०, पृ० ७१३।

अवड—वि० [सं० अवण्ड] जो अगहीन या पगु न हो।

अवध—वि० [सं०] १ जो किसी वधन में न हो। अवद्ध वधनहीन।  
निरकुश। उ०—विधानों में अवध विधान विचरते हो मुर  
माया कर।—गीतिका, पृ० ६०।

अवधन—वि० [सं० अवधन] अवध। मुक्त [को०]।

अवधु<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अवधु] अमित्र। शत्रु। उ०—वधु प्रवधु  
हिये मंह जानै। ताकर लोग विचार बखानै।—रामच०,  
पृ० १५१।

अवधु<sup>२</sup>—वि० १ मित्रविहीन। एकाकी। अकेला। २ अनाथ। जिसके  
कोई न हो [को०]। २ वध या सीमाहीन। असीम। अपार।  
उ०—जिन युवकों के मणिवधो में अवध बल इतना भरा था  
जो उलटता शतघ्नियों को।—लहर, पृ० ६७।

अवध्य—वि० [सं० अत्रव्य] [स्त्री अवध्या] १ दे० 'अवध'। २  
सफल। अव्यर्थ।

अवध्या—सज्ञा स्त्री० [सं० अवध्या] वह जो बाँध न हो। सतान-  
वाली स्त्री।

अव<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं० अथ, प्रा० अह, अपवा सं० अथ] इस समय।  
इस क्षण। इस घड़ी।

मुहा०—अव का = इस समय का । आधुनिक । अवकी = इस वार अव की बात अव के हाथ = समय के अनुसार कार्य करना । जो बात बिगड़ी नहीं है उसे सपन्न करना । अव के लोग = आधुनिक जन । अव जाकर = इतनी देर पीछे । उ०—महीनो से इस काम में लगे हैं, अव जाकर खतम हुआ है । अव तब करना = हीला हवाली करना । अव तब लगना या होना = मरने का समय निकट होना । उ०—जब वैद्य आया तब उसका अव तब लगा था । अव न तब = न इस समय न फिर कभी । अव भी = (क) इस समय भी । (ख) इतने पर भी । उ०—इतनी हानि उठाई अव भी नहीं चेतते । अव से = इस समय से । आगे । भविष्य में । उ०—अव से मैं ऐसा कार्य भूलकर भी न करूँगा ।

अव<sup>२</sup>—सञ्ज्ञ पु० [अ०] वाप । पिता [को०] ।

अवक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञ पु० [अ + हि० वक] अनुचित बात । अकथ्य । उ०—राखो आगे रसखर, राधव नाम रसाल । मुख माँझल आँखो मती, गिरेंग अवक ज्यूँ गाल ।—वांकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ७६ ।

अवका—सञ्ज्ञ पु० [फिलि० अवुका, स० अवका = सेवार] एक पोधा जिमकी डठल की छाल रेखेदार होती है ।

विशेष—यह पोधा फिलिपाइन देश का है । अव इसकी खेती अडमान टापू और आराकान की पहाड़ियों में भी होती है । खेती इस प्रकार की जाती है—इसकी जड़ से पेड़ के चारो ओर पोधे भूफोड निकलते हैं । जब वे तीन तीन फुट के हो जाते हैं तब उन्हें उखाड़कर खेतों में ८-९ फुट की दूरी पर लगाते हैं । इसकी फसल तैयार होती है तब इसे एक एक फुट ऊपर से काट लेते हैं । डठलो से इसकी छाल निकाल ली जाती है और साँफ करके रस्सी आदि बनाने के काम आती है । इसकी खूँद का मैन्डिला पेपर बनता है ।

अवक्र—वि० [म० अ + वक्र] टेढ़ा नहीं । सीधा । उ०—पुनि स्वाधिष्ठान मु द्वितीय चक्र । नहीं पटदल पट अक्षर अवक्र ।—सुंदर ग्र०, पृ० ४६ ।

अवखरा—सञ्ज्ञ पु० [अ० अवखर (बुखार का बहुव०)] भाप । वाष्प ।

क्रि० प०—उठना । चढ़ना ।

अवखोरा—सञ्ज्ञ पु० [हि०] दे० 'आवखोरा' ।

अवगत<sup>१</sup>—वि० [म० अवगत] १ जो जाना न जाय । अज्ञात । २ अनिर्वचनीय । ३ नित्य (ईश्वरबोधक) । उ०—नही वाप ना माता भाए । अवगत से ही हम चल आए—कवीर सा०, पृ० ८२५ ।

अवगति<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अवगत' ।

अवचन<sup>१</sup>—वि० [स० अ + वचन] दुर्वचन । अपशब्द । उ०—वचन अवचन रहित सोई जानिये ।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ६२५ ।

अवजरवेदरी—सञ्ज्ञ स्त्री० [अ० आवजरवेदरी] वह स्थान जहाँ ग्रहों की गति, ग्रहण, ग्रहयुद्ध, आदि खगोल संबंधी घटनाओं का निरीक्षण किया जाता है । वेधायल । वेधशाला । वेधमंदिर । मानमंदिर ।

अवट<sup>१</sup>—सञ्ज्ञ पु० [स० अ + वाट] दुर्गम रास्ता । हीन मार्ग । विपथ । उ०—नर तेथ निमाणा, निलजी नारी, अकवर गाहक वट अवट । वेलि० (मू०), पृ० ३१ ।

अवटनी—सञ्ज्ञ पु० [हि०] दे० 'उवटन' ।

अवड धवड—वि० [अनु०] वेतरतीव । असगत । जलदवाजी ।

अवतर—वि० [अ० अवतर] [सञ्ज्ञ अवतरी] १ बुरा । रद । खराब । २ गिरा हुआ । बिगड़ा हुआ । उ०—अफसोम ऐ सनम तुम ऐसे हुए हो अवतर । मिनते हो गैर में जा हमसे खाइयाँ हैं ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६६ ।

अवतरी—सञ्ज्ञ स्त्री० [अ० अवतरी] १ घटाव । बिगाड । क्षय । अवनति । २ बुराई । खराबी ।

अवदार<sup>१</sup>—वि० [फा० आवदार] दे० 'आवदार' उ०—पति की प्रीत धारिया पूरी, हेमराज अवदार हजुरी ।—रा० सू०, पृ० ३१६ ।

अवद्ध<sup>१</sup>—वि० [स०] १ जो बँधा न हो । मुक्त । २ स्वच्छ । निरकुश । ३ असवद्ध । निरर्थक ।

यौ०—अवद्धवाक्य = वह असवद्ध वाक्य जिसमें अन्वयबोध की योग्यता न हो अर्थात् जिससे कोई अभिप्राय न निकले । जैसे—कोई कहे कि मैं आजन्म मौन हूँ, मेरा वाप बह्मचारी, माता बध्या और पितामह अप्रुथ था । अवद्धमुख = जिसके मुख में लगाम न हो । अडवड बोलनेवाला । अवद्धमूल = जिमकी जड़ पुष्ट न हो ।

अवद्ध<sup>२</sup>—सञ्ज्ञ पु० असंभव या असामान्य वस्तु [को०] ।

अवद्धक—वि० [स०] दे० 'अवद्ध' [को०] ।

अवध<sup>१</sup>—वि० [स० अवध्य] जो रोक न जा सके । अवध्य । निर्वाध । उ०—परे भाग अनुराग लोग कहें राम अवध चितवन चितई है ।—तुलसी (शब्द०) ।

अवध<sup>२</sup>—वि० [स० अवध्य] जिसे मारना उचित न हो । उ०—तौकों अवध कहत सब कोऊ ताते सहित वान । विना प्रयास मारिहों ताकों, आजु रैन कै प्रात ।—मूर (शब्द०) ।

अवधू<sup>१</sup>—वि० [स० अवोध, पु० हि० अवोध] अज्ञानी । अवोध । मूर्ख । उ०—(क) अवधू छोड़ो मन विस्तार ।—कवीर (शब्द०) । (ख) अवधू कुदरत की गति न्यारी —कवीर (शब्द०) ।

अवधू<sup>२</sup>—सञ्ज्ञ पु० [स० अवधूत] त्यागी । सन्यासी । विरागी । अवधूत । सत । साधु । उ०—जिन अवधू गुरु ज्ञान लखाया । ताकर मन तहई लै धाया ।—कवीर (शब्द०) ।

अवधूत<sup>१</sup>—सञ्ज्ञ पु० [हि०] दे० 'अवधूत' ।

अवध्य—वि० [स०] [वि० स्त्री० अवध्या] १. न मारने योग्य । जिसे मारना उचित न हो । २ जिसे मारने का विधान न हो । जिसे शास्त्रानुसार प्राणदंड न दिया जा सके । जैसे—स्त्री, ब्राह्मण बालक आदि । ३ जो किसी से न मरे । जिसे कोई मार न सके ।

अवनी—सञ्ज्ञ स्त्री० [हि०] दे० 'अवनि' । उ०—इहाँ आनि अवनी की भोजन करायो ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४८३ ।

अवर<sup>१</sup>—वि० [स० अ + बल] अचल । निचल । उ०—ये अवर की पीर जवर सवर दिन मरु ।—तुलसी श०, पृ० ५१ ।

अवर्<sup>७</sup>—वि० [म० अवर, ५१० अवर] अन्य । और । दूसरा । उ०—  
मरिता सिंधु अनेक अवर सखी विलमत पति महज सनेह ।—  
सूर० (राधा०) २०६७ ।

अवर्<sup>८</sup>—वि० [म० अवर] अश्रेष्ठ । अव्यय । अधम । उ०—  
इहाँ उछाह वाक्य तँ अवर काव्य होता है ।—मिखारी ग्र०  
भा० भा० २, पृ० २४४ ।

अवर्<sup>९</sup>—सज्ञा पुं० [फा० अवर, मं० अवर] बादल । उ०—अगर यो  
जान जिदगानी । अवर ओला धुले पानी ।—तुलसी० श०,  
पृ० ३१ ।

अवरक—सज्ञा पुं० [म० अवरक] १ एक धातु । अवरक । मोडल ।  
मोडर । मुखल ।

विशेष—यह खानो में निकलती है और बड़े बड़े ढोको में तह पर  
तह जमी हुई पहाड़ों पर मिलती है । साफ करके निका-  
लने पर इसकी तह काँच की तरह निकलती है । अवरक  
के पत्तर कदीन आदि में लगते हैं तथा विलायत में भी  
भेजे जाते हैं । वहाँ ये काँच की टट्टी की जगह किवाड़ के  
पल्लो में लगाने के काम आते हैं । यह धातु आग से नहीं  
जलती और लचीली होती है । वैज्ञानिक यंत्रों में भी इसका  
प्रयोग होता है । यह दो रंग की होती है—सफेद और  
काली । भारतवर्ष में बगाल, राजस्थान, मद्रास आदि की  
पहाड़ियों में मिलती है । वैद्य लोग इसके भस्म को वृष्य मानते  
हैं और औषधियों में इसका प्रयोग करते हैं । भस्म बनाने में  
काले रंग का अवरक अच्छा समझा जाता है । निश्चय अर्थात्  
अभारहित हो जाने पर भस्म बनता है ।

२ एक प्रकार का पत्थर जो खान से निकलता है ।

विशेष—यह पत्थर वर्तन बनाने के काम आता है । यह बहुत  
चिकना होता है । इसकी चुकनी चीजों को चमकाने के लिये  
पालिश या रौगन बनाने के काम में आती है ।

अवरख—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अवरक' ।

अवरखी<sup>१</sup>—वि० [हि० अवरक] १ अवरक के रंग का । २ अवरक का ।

अवरखी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० अवरक की चुकनी ।

अवरन<sup>१</sup>—[म० अवरण] जिसका वर्णन न हो सके । अकथनीय ।  
उ०—(क) अवरन को का वरनिए माँपे लखान जाइ ।  
अपना वाना बाहिया कहि कहि थाके माइ । कवीर० ग्र०,  
पृ० ६१ । (ख) भजि मन नद नदन चरन । सनक सकर  
ध्यान ध्यावत निगम अवरन वरन ।—सूर० (शब्द०) ।

अवरन<sup>२</sup>—वि० [सं० अवरण] १ बिना रंग का । वर्णशून्य । उ०—  
अलख अरूप अवरन सो करता । वह सब सो, सब वहि सो  
वरता ।—जायसी (शब्द०) । २ एक रंग का नहीं । भिन्न ।  
उ०—हृद छोड़ वेहृद मया अवरन किया मितान । दाम  
कवीरा मिल रहा सो कहिए रहमान ।—कवीर (शब्द०) ।

अवरन<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [मं० अवरण] दे० 'अवरण' ।

अवरन्य—सज्ञा पुं० [सं० अवरण्य] दे० 'अवरण्य' । उ०—कहूँ अवर-  
न्यन को कहत भूपन वर्गन विवेक ।—भूपण ग्र०, पृ० ६१ ।

अवरस<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ग्र० अवरस] १ घोड़े का एक रंग जो सव्जे से  
कुछ खुलता हुआ सफेद होता है । २ घोड़ा जिसका सव्जे से कुछ

खुलता हुआ सफेद रंग हो । उ०—अवनक अवरस लखी  
सिराजी । चौधर चाल समुद सब ताजी ।—जायसी (शब्द०) ।

अवरस<sup>२</sup>—वि० सव्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद रंग का ।

अवरा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [फा० अवरह] १. अस्तर का उलटा । दोहरे  
वस्त्र के ऊपर का पल्ला । उपल्ला । उपल्ली ।

क्रि०—प० ।—घडाना ।—देना ।—लगाना ।

२ खुलनेवाली गाँठ । उलभन ।

अवरा<sup>२</sup>—वि० [सं० अवल] बलहीन । कमजोर । निर्बल ।

यो०—अवरा दुवरा=शक्तिहीन । कमजोर । दुबला पतला ।

अवरी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [फा० अवर+ई (प्रत्यय)] १ एक प्रकार का  
चिकना कागज जिसपर वादल की सी धारियाँ होती हैं । यह  
पुस्तकों की दफती पर लगाया जाता है और कई रंग का होता  
है । २ पीले रंग का एक पत्थर, जो पच्चीकारी के काम  
आता है । यह जैसनमेर में निकलता है । इसलिये इसको  
जैमलमेरी भी कहते हैं । ३ एक प्रकार की नाहू की रगई  
जो रगविरने वादलों के छोटों की तरह होती है ।

अवरी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० अवार] गड्ढे या नदी के पानी से मिला  
हुआ कितारा ।

अवरू—सज्ञा पुं० [फा०] मौंह । झू । उ०—आगे बढ़ी चढ़े थे  
अवरू खमदार ।—कुरुर०, पृ० ३६ ।

मु०—अवरू में बल पडना=नाराज होना । अवरू पर मेल न  
आना=विकार न आना ।

अवर्ज<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म० अवर+ज] अनुज । छोटा भाई ।—  
अनेकार्य०, पृ० ८७ ।

अवर्ती—सज्ञा पुं० [सं० आवर्त] पानी का भँवर । चक्कर ।

अवर्न<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अवरण' । उ०—सुंदर ब्रह्म अवर्न है  
व्यापक अग्नि अवर्न ।—सुंदर ग्र०, पृ० ७८१ ।

अवर्न्य<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं० अवरण्य] दे० 'अवरण्य' । उ०—आदर  
घटत अवर्न्य को, जहाँ वन्य के जोर ।—भूपण ग्र०, पृ० २६ ।

अवल<sup>१</sup>—वि० [मं०] निर्बल । कमजोर । उ०—कैसे निवहै अवल  
जन करि सवनन सो वर ।—समावि० (शब्द०) ।

अवल<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ बाहीनता । २ वरुण नामक वृक्ष ।

अवल<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० [मं० अवलि] १ पत्रित । समूह । कतार ।  
उ०—अतर नीलवर अवल आमरण अग्नि अग्नि, नग नग उदित ।  
—वेलि०, दू० १५६ ।

अवलक<sup>१</sup>—वि० [ग्र० अवलक] दे० 'अवलख' । उ०—जो अवलक  
घोड़ा अमुके रंग की होंड तो तो घोड़ा उपर चढ़ि कै श्रीनाथजी  
द्वार जाइए ।—दो सो बावन पृ० १६३ ।

अवलक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० एक प्रकार के वर्ण का अश्व । अवलख ।

अवलख<sup>१</sup>—वि० [ग्र० अवलक] १ कवरा । दो रंग । सफेद और  
काला अथवा सफेद और लाल रंग का ।

अवलख<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ वह घोड़ा जिसका रंग सफेद और काला हो ।  
उ०—अवनख अवरस लखी सिराजी । चौनर लान समुद सब  
ताजी ।—जायसी (शब्द०) । २ वह बैल जिसका रंग सफेद  
और काला हो । कवरा बैल ।



अवलख<sup>२</sup>—वि० [सं० अवलख] सफेद। श्वेत।

अवलखा—सज्ञा स्त्री० [अ० अवलख] एक पक्षी।

विशेष—इसका शरीर काला होता है, केवल पेट सफेद होता है। इसके पैर सफेदी लिए हुए होते हैं और चोंच का रंग नारंगी होता है। यह उत्तर प्रदेश बगल तथा बिहार में होता है और पक्षियों तथा पशुओं का घोंसला बनाता है। यह एक बार में चार पाँच अंडे देता है। इसकी लवाई लगभग नौ इंच होती है।

अवला—सज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। नारी। उ०—पावस कठिन जु पीर अवला क्यों करि सहि सकै। तेऊ घरत न धीर रक्तबीज सम ऊपजै।—विहारी (शब्द०)।

यो—अवलासेन = कामदेव।

अवलावल—सज्ञा पुं० [सं०] महादेव शिव। [को०]।

अवल(उ)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवली'। उ०—नीति प्रीति छवि अवलि ए सब सरि की भाँति।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३३।

अवली(उ)—सज्ञा स्त्री० [सं० अवली] १ पक्ति। २ समूह। उ०—वर विहग अवली जहँ भाँति भाँति की आवति।—प्रेमधन०, भा० १, पृ० २।

अवल्य<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] १ दुर्बलता। कमजोरी। २ बीमारी। रुग्णावस्था [को०]।

अवल्य<sup>२</sup>—वि० जो बलकारक न हो।

अववाव—सज्ञा पुं० [अ०] १ वह अधिक कर जो सरकार मालगुजारी पर लगती है। २ वह अधिक कर जो लगान पर जमींदार को असामी से मिलता है। भेंजा। अधिक कर। लगता। ३ वह कर जो गाँव के व्यापारियों तथा लोहार सोनार आदि पेशेवालों से जमींदार को मिलता है। घरद्वारी। बसौरी। मिटोरी।

अवस<sup>१</sup>—वि० [मं० अवश] दे० 'अवश'। उ०—चदन में नाग मद भरयो इन्द्रनाग, विष भरो शेषनाग, कहै उपमा अवस को।—भूपण ग्रं०, पृ० ३०।

अवस<sup>२</sup>—वि० [अ०] व्यर्थ। निरर्थक। फजूल। बेकार [को०]।

अवहि(उ)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अभी'। उ०—अवहि उगत ससि तिमिरे तेजव निसि उसरत मदन पासरे।—विद्यापति०, ६८।

अवाँह(उ)—वि० [हिं० अ + वाँह] १ बिना वाँह का। जिसे वाँह न हो। अवाहू। असहाय। अनाथ। बेसहारा।

अवा—सज्ञा पुं० [अ०] अगे से मिलता जुलता एक प्रकार का पहिनावा।

विशेष—यह अगे के बराबर या उसमें कुछ अधिक लंबा होता है। यह ढीलाढाला होता है और सामने खुला होता है इसमें छह कलियाँ होती हैं और सामने केवल दो घुड़ियाँ या तुमके लगने हैं। कोई कोई इसमें गेरुआ भी लगाते हैं। यह पहनावा मुसलमानों के समय से चला आता है।

अवाक(उ)—वि० [हिं०] दे० 'अवाक'। उ०—रतन अमो कपरखर रहा जाहरी बाक। दरिया तहाँ कीमत नहीं, उनमन भया अवाक।—दरिया वानी, पृ० २०।

अवाट—सज्ञा पुं० [हिं०] खराब रास्ता। कुपथ। उ०—मन कर्म मन अवाट परिहरि वाट घर को देत है—कवीर ना०, पृ० ४०१।

यो०—अवाट सवाट = अडबड। गलत सजत।

अवात(उ)—वि०—[सं० अवात] [स्त्री० अवाती] १ बिना वायु का। २ जिसे वायु न हिताती हो। ३ भीतर भीतर मुलमलवाला। उ०—आई तजि ही तो ताहि तरनितनूजा तीर, ताकि ताकि तारापति तरफति ताती सी। कहै पद्माकर घरीक ही मेघन श्याम काम तो कतलवाज कुज ह्वै हे काती सी। याही छिन बाही सो न मोहन मिलागे जो पै लगनि लगाई एती अग्नि अवाती सी। राउरी दुहाई तो बुझाई न बुझी फँरि, नेह भरी नागरी की देह दिया बाती सी।—पद्माकर (शब्द०)।

अवाद(उ)—वि० [सं० अवाद] वादग्रन्थ। निर्विवाद। उ०—ब्रह्म विचारे ब्रह्म को पारख गुरु परमाद। रहित रहै पद राखिजे जिव से होय अवाद।—कवीर (शब्द०)।

अवादान—वि० [फा० अवादान] बसा हुआ। पूर्ण। भरा पूरा। उ०—यह गाँव अवादान रहे।—(फकीरी की बोली)।

अवादानी—सज्ञा स्त्री० [फा० अवादानी] १ पूर्णता। बस्ती। उ०—भूखे को अन्न पियामे को पानी। जगजग अवादानी (शब्द०)। २ शुभचिन्तकता। उ०—जिसका खाए अन्न पानी, उसकी करै अवादानी (शब्द०)। ३ चहल पहल। मनोरंजकता। उ०—जहाँ रहै मियाँ रमजानी, वही होय अवादानी (शब्द०)।

अवाध—वि [सं०] १ बाधरहित। बेरोक। उ०—हँसी का मदविह्वल प्रतिविम्ब मधुरिमा खैला सदृश अवाध।—कामायनी पृ० ४८। २ निर्विघ्न। उ०—राम भगति निरुपम निरुपायी बस जासु उर सदा अवाधी।—तुलसी (शब्द०)। ३ असीम। अपरिमित। अपार। बेहद। उ०—अकल अनीह अवाध अनेद नेति नेति कहि गावहि वेद।—सूर० (शब्द०)।

अवाधगति—वि० [मं० अवाध + गति] जिसकी गति अवाध या बेरोक हो।

अवाधा(उ)—वि० [हिं०] दे० 'अवाध'। उ०—रघुपति महिमो अगुन अवाधा।—तुलसी (शब्द०)।

अवाधित—वि० [सं०] १ बाधा रहित। बेरोक। २ स्वच्छ। स्वतंत्र। ३ अनिपिद्ध।

अवाधप्र—वि० [मं०] १ बेरोक। जो रोक न जा सके। २ अनिवार्य। ३ जो बश में न किया जा सके।

अवान(उ)—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० वान = चिह्न] शम्भरहित। हथियार छोड़े हुए। निहत्था। उ०—चढे पिठ दस कोम लो सब अजवीर अवान। फने पाय सूरज बली ठाढी ता मँदान।—सूदन (शब्द०)।

अवावील—सज्ञा स्त्री० [अ०] एक काले रंग की चिटिया। कृष्ण। कन्दैया। देवचिलाई।

विशेष—इसकी छाती का रंग खुन्ता होता है। इसके पैर बहुत छोटे छोटे होते हैं, जिसके कारण यह बैठ नहीं सकती और दिन भर बहुत ऊपर आकाश में झुड़ के साथ उड़ती रहती है। यह पृथ्वी के सभी देशों में होती है। इसके घोंसले पुरानी दीवारों पर मिलते हैं।

अवार—सज्ञा स्त्री० [ सं० अ + वार, प्रा० वार = समय ] असमय । अधिक देर । विलम्ब । देर । कुयेना । उ०—परसुराम जमदग्नि के गेह नी नअवतार । माता ताकी जमुनजल लेन गई एक वार । लागी तहाँ अवार सिद्धि ऋषि करि क्रोध अपार । परसुराम को यो कही माँ को वेगि सहार ।—सूर (शब्द०) ।

फि० प्र०—सगना ।—होना । उ०—बहुत अवार कतहुँ खेलत भई कहाँ रहे मेरे सारगपानी ।—सूर (शब्द०) ।

अवारजा—सज्ञा पुं० [ फा० अवारिजह = बही, अवारिजह (फा०) ] १ रोजनामचा । २ जमाखर्च की बही । उ०—करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतिपावै । दूजे करज दूरि करि दैयत, नैकु न तापै आवै ।—सूर०, १।१४२ ।

अवाल<sup>१</sup>—वि० [ म० ] १ जो वालक न हो । जवान । २ अवालकोचित । ३ पूर्ण । पूरा । जैसे, अवालेंदु = पूर्ण चंद्रमा ।

अवाल<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [ देश० ] वह रस्सी जो चरखे की पँडुडियों को बांध कर तानी जाती है और जिस पर से होकर माला चलती है ।

अवाली—सज्ञा स्त्री० [ देश० ] एक पक्षी जो उत्तरी भारत और बर्मा प्रांत तथा आसाम, चीन और स्याम में मिलती है । इसका रंग भूरा और गर्दन कुछ पीली होती है । यह झुंड में रहता है और अपना घोंमला घाम और पर का बनाता है । बेंगलकुटी ।

अवास<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० आवास ] रहने का स्थान । घर । मकान । उ०—(क) ऊँचे अवास बहु छवज प्रकार । सोभा विलास, सोभै प्रकार ।—केशव (शब्द०) । (ख) कविरा गर्व न कीजिए, ऊँचा देखि अवास ।—कवीर ग्र०, पृ० ६४ ।

अवाह्य—वि० [ म० ] १ बाहरी नहीं । भीतरी । २ पूर्णतः परिचित । ३ जिसमें बाहरी स्थिति न हो [ की० ] ।

अविगि<sup>१</sup>—वि० [ सं० अव्यङ्ग्य ] व्यंग्यरहित । उ०—वचन अविगि कहै रस भोग ।—नंद० ग्र०, पृ० १४७ ।

अविघन—सज्ञा पुं० [ सं० अविघ्न ] १ समुद्र । २ बड़वानल ।

अविध्य—सज्ञा पुं० [ म० अविध्य ] रावण का एक मंत्री । यह बड़ा विद्वान् शीलवान् और वृद्ध मंत्री था । इमने रावण से सीता को लौटाने के लिये कहा था ।

अविकारी—वि० [ म० अविकारी ] दे० 'अविकारी' । उ०—अस प्रभु हृदय अछत अविकारी ।—मानस, १।२३ ।

अविगत<sup>१</sup>—वि० [ म० अविगत ] १ जो विगत न हो । जो जाना न जाय । उ०—अविगत गति कछु कहत न आवै । ज्यों गूँगे मीठे फन को रस अतरगत ही भावै ।—सूर० १।२ ।

अविगति<sup>२</sup>—वि० [ हि० ] दे० 'अविगत' । उ०—निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई, अविगति की गति लखी न जाई ।—कवीर ग्र०, पृ० १०४ ।

अविगति<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० अविगन अवस्था या दशा । उ०—तुनमी राम प्रमाद विन, अविगति जानि न जात ।—सं० सप्तक, पृ० ४५ ।

अविचन<sup>१</sup>—वि० [ म० अविचल ] दे० 'अविचल' । उ०—रघुवीर चरि पदान प्रस्थिति जानि परम मुहावनी । जनु कमठ खरर सर्पराज सो निखत अविचन पावनी ।—मानस, ५।३५ ।

अविच्छीन<sup>१</sup>—वि० [ सं० अविच्छिन्न ] जो विच्छिन्न या टूटा न हो । उ०—श्रीरौ ज्ञान भगति कर, भेद मुनहु मुप्रवीन । जो सुनि होइ राम पद, प्रीति सदा अविच्छीन ।—मानस, ७।११६ ।

अविताली<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ फा० अफताल, हि० अफताली ] सेना का वह दल जो आगे जाकर पड़ाव आदि की व्यवस्था करता है । उ०—काको अयात निकारन को उर आए है जोवन के अविताली ।—केशव ग्र०, पृ० १० ।

अविद<sup>१</sup>—वि० [ म० अवित् = अज्ञ ] ज्ञानशून्य । अविद्वान् । मूर्ख । उ०—त्रिविध भाँति को सबद वर, विघट न नट परमान । कारन अविरल अल अपितु, तुनसी अविद भुलान ।—सं० सप्तक, पृ० २६ ।

अविद्ध—वि० [ सं० अविद्ध ] अनवेधा । विना छिदा हुआ । दे० 'अविद्ध' ।

अविद्धकर्णी—सज्ञा स्त्री० [ हि० ] दे० 'अविद्धकर्णी' ।

अविद्या<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [ हि० ] दे० 'अविद्या' ।

अविधि<sup>१</sup>—वि० [ म० अविधि ] जो विधि या नियम के अनुकूल न हो । अव्यवस्थित ।

अविनय<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'अविनय' । उ०—स्वामिनि अविनय छमिवि हमारी ।—मानस, २।११६ ।

अविनासो<sup>१</sup>—वि० [ हि० ] 'अविनाशी' । उ०—अविनासो मोहि ते चल्या, पुरई-मेरी आस ।—कवीर ग्र०, पृ० ७० ।

अविवेक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'अविवेक' । उ०—प्रभु अपने अविवेक तें, बूझो स्वामी तोहि ।—मानस, ७।६३ ।

अविवेकी<sup>१</sup>—वि० [ हि० ] दे० 'अविवेकी' । उ०—जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि ।—मानस, २।१४२ ।

अविरल<sup>१</sup>—वि० [ हि० ] दे० 'अविरल' ।

अविरुद्ध<sup>१</sup>—वि० [ हि० ] दे० 'अविरुद्ध' । उ०—नाम सुद्ध, अविरुद्ध, अमर, अनवद्य, अद्वपन ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३५ ।

अविरोध—सज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'अविरोध' । उ०—ममय समाज धरम अविरोधा । बोले तव रघुवस पुरोधा ।—मानस, २।२६५ ।

अविरोधी<sup>१</sup>—वि० [ हि० ] दे० 'अविरोधी' । उ०—धर्म विचारे प्रथम पुनि, अर्थ धर्म अविरोधि । धर्म अर्थ बाधा रहित सेवै काम सुसोधि ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १६१ ।

अविर्या<sup>१</sup>—वि० [ म० आ = पूरी तरह + व्यर्थ विरथा, विर्या ] विरथा, दे० 'वृथा' । उ०—माया कारन विद्या वेचहु जन्म अविर्या जाई ।—कवीर ग्र०, पृ० ३०३ ।

अविलव—क्रि० वि० [ म० अविलम्ब ] दे० 'अविलव' । उ०—जय, जय, जय बलभद्र वीर धीर गभीर अविलव अलवहारी ।—घनानंद, पृ० ५५० ।

अविसेक<sup>१</sup>—वि० [ हि० ] दे० 'अभिषेक' । उ०—प्रेमहित करि छीरसागर भई मनसा एक । न्याम मति से अग चदन अभी के अविसेक ।—सा० लहरी, पृ० १४५ ।

अविहङ<sup>१</sup>—वि० [ हि० ] दे० 'अविहङ' । उ०—यादि मध्य ग्रह अत्र लौ अविहङ सदा अभग । कवीर उम करनार की सेवग तजै न सग ।—कवीर ग्र०, पृ० ८६ ।

अविहित—(५) वि० [सं० अविहित] दे० 'अविहित' । उ०—राम सो परमात्मा भवानी । तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी ।—मानस, १।११६ ।

अवी०—(५) वि० [हि०] दे० 'अभी' । उ०—जो तू कहा हमारा मान नही अवी करो तुम छाई ।—प्राण, पृ० १२२ ।

अवीज<sup>१</sup>—वि [सं०] १ बीजविहीन । २ उत्पादन-अमनारहित । नपुंसक । ३ कारगरहित [को०] ।

अवीज<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० वह बीज जिसकी उत्पादनशक्ति नष्ट हो चुकी हो [को०] ।

यौ०—अवीजविक्रयी ।

अवीजा—सज्ञा स्त्री० [सं०] प्रगूर की एक किस्म । वेदाना प्रगूर । किशमिश ।

अवीर—सज्ञा पुं० [अ० अवीर] १ एक रगीन बुकनी जिसे लोग होली के दिनों में अपने इष्ट मित्रों पर डालते हैं । यह प्रायः लाल रंग की होती है और सिंघाड़े के आटे में हलदी, और चूना मिला कर बनती है । अब अरारोट और अगरेजी बुकनियों ने अधिक तैयार की जाती है । गुलाल । उ०—अगर धूप बहु जनु अंधियारी उडै अवीर मनहुँ अरुनारी ।—मानस । २ अश्रक का चूर्ण जिसे होली में लोग अपने इष्ट मित्रों के मुख पर मलते हैं, कही कही इसे भी अवीर कहते हैं । बुक्का । ३ श्वेत रंग की सुगंध मिली बुकनी जो वल्गव कुल के मदिरों में होली में उड़ाई जाती है ।

अवीरी<sup>१</sup>—वि० [अ० अवीरी] अवीर के समान या अवीर से बनी । अवीर के रंग का । कुछ कुछ स्याही लिए लाल रंग का ।

अवीरी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० अवीरी रंग ।

अवीह<sup>५</sup>—वि० [सं०] = नहीं + मोति या भी, प्रा० वीह ] भय-रहित । निर्भय । निडर । उ०—सांसा सोग सैताप तज, आपा होय अवीह । शून्य सेज में पाइया हरिया अविनाशीह ।—राम० धर्म०, पृ० ७५ ।

अवृक्ष<sup>५</sup>—वि० [हि०] १ दे० 'अवृक्ष' । २ न वृक्षनेवाला ।

अवुध—वि० [मं०] १ अवोध । नासमझ । अज्ञानी । मूर्ख । उ०—भानु वस राकेस कलकू । निपट निरकुस अवुध असकू ।—तुलसी (शब्द०) २ अनजान । उ०—रह जाता नर लोक अवुध ही ऐसे उन्नत भावों से ।—साकेत, पृ० ३७१ । ३ वे । १ । मूर्च्छित । वेमुध । उ०—एक पहर यो अवुध हूँ रही ।—नद ग्रं०, पृ० १३८ ।

अवृद्ध—वि० [सं०] दे० 'अवुध' [को०] ।

अवुद्धि<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ विचार या ज्ञान का अभाव । अज्ञान । अविद्या । २ मूर्खता । वदमाशी [को०] ।

अवुद्धि<sup>२</sup>—वि० बुद्धिविहीन । मूर्ख । नादान ।

अवुहाना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अमुग्राना' ।

अवू—सज्ञा पुं० [अ०] वानिद । पिता । बाप [को०] ।

अवृक्ष—वि० [मं० अवृद्ध, प्रा० अवृक्ष] अवोध । नासमझ । नादान । उ०—(क) कोने परा न छूटिहै मुन रे जीव अवृक्ष । कभीर मांड मैदान में करि इद्रिन सोजूक्ष ।—कवीर (शब्द०) । (ख)

अजगव खडेउ ऊख जिमि अजहुँ न वूक्ष अवूक्ष ।—सुनसी (शब्द०) ।

अवे—अव्य० [मं० अयि, पु० हि अवे] अरे । हे । इस संबोधन का प्रयोग घटे लोग अपने बहुत छोटे वा नीच के लिये करते हैं । जैसे—अवे, सुनता नहीं है, इतनी देर से पुकार रहे हैं । (शब्द०)

मुहा०—अवे तवे करना = निरादर करना । निरादरमूचक वाक्य बोलना । कच्ची पक्की बोलना ।

अवेध<sup>५</sup>—वि० [सं० अविध] जो छिदा न हो । बिना बेधा । अनविद्या । उ०—लोक रतन अवेध अलौकिक नहि गाहक नहि साई । चिमिकि चिमिकि चमकै दूग दुहुँ दिमि अरव रहा छरि आई ।—कवीर (शब्द०) ।

अवेर<sup>५</sup>—सज्ञा स्त्री० [मं० अवेला] विनय । देर । अतिकान । उ०—प्रावत पिय नहि दीखती भइनी बहुत अवेर ।—सत वाणी, भा० १ पृ० ११३ ।

अवेव<sup>५</sup>—वि० [मं० अवेद, प्रा०, अवेव] भेदरहित । समभाव युक्त । उ०—दोऊ मिने अवेव साहिब सेवक एक में ।—शब्द०, पृ० २२ ।

अवेश<sup>५</sup>—वि० [मं० अ = अति + फा० वेश = अचिक] अधिक । बहुत । उ०—कीर कदव मजुका पूरण सौरम उडत अवेश (अगर पूर मोरम नासा मुख वरपत परम मुदेश ।—सूर (शब्द०) ।

अवे<sup>५</sup>—क्रि० वि० [हि० अव ही] अनी । तत्काल । इसी समय ।

अवेन<sup>५</sup>—वि० [हि० अ + वन] १ वाणीविहीन । मौन । चुप । २ दूषित वचन । अवाच्य । कुवचन ।

अवेर—सज्ञा पुं० [मं० अवेर] अविरोध । अद्वेष । वैर का अभाव । उ०—वैर से नहीं अवैर से हृदय जीतने की विचारपरंपरा के माननेवाले । किन्नर० । पृ० १० ।

अवोध<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] अज्ञान । मूर्खता ।

अवोध<sup>२</sup>—वि० अनजान । नादान । अज्ञानी । मूर्ख । उ०—तुम अति अवोध, अपनी अपूर्णता को स्वयं तुम समझ सके ।—कामायानी, पृ० १६३ ।

यौ०—अवोधगम्य = जो समझ में न आ सके ।

अवोध्य—वि० [मं०] जो समझ में न आ सके । समझ में न आने योग्य [को०] ।

अवोल<sup>१</sup><sup>५</sup>—वि० [सं० अ + हि० वोल] १ मौन । अवाक् । उ०—(क) वोलहि सुअन ढँक वक लेदी । रही अवोल मीन जलभेदी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पीरी पाती पावते पीरी बढी कपोल । कोरे वदन विलोकि के मुदिता भई अवोल (शब्द०) । २ जिसके विषय में वोल न सके । उ०—जहाँ वोल अजर नहि आया । जहाँ अक्षर तहँ मनहि दूढाया । वोन अवोल एक है सोई । जिन या लखा सो विरला कोई ।—कवीर (शब्द०) ।

अवोल<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० कुबोल । बुरी बोली ।

अवोलना—सज्ञा पुं० [सं० अ + हि० बोलना] न बोलने की स्थिति । असंभाषण । उ०—पाट न खोल्या मुखौ न बोल्या साँज लग परमात । अवोलना में अवध बीती, काहे की कुसलात ।—सत वाणी०, भा० २, पृ० ७० ।

अव्वोना—सञ्ज्ञा पुं० [मं० अ + हि धोलना] रंज से धोलवाल-का न होना । उ०—मिलि खेनिय जा सँग बालक तें कहू तासो अव्वोनी क्यो जान कियो ।—केगव (शब्द०) ।

अव्वज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जल में उत्पन्न वस्तु । २ कमल । पद्म । उ०—अकुम ऊरध रेख अव्वज अठकोन अभनतर ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७ । ३ शख ४ निचुल । इज्जल । हिज्जन । ईजड का पेड़ । ५ चद्रमा । ६ धन्वतरि । ७ कपूर । ८ एक सख्या । सी करोड । अरव । ९ प्ररव के स्थान पर आनेवाली सख्या १,००,००,००,००० ।

यो०—अव्वज्जणिका—कमल का छाता । अव्वज्ज = (१) ब्रह्मा । (२) यात्रा में एक योग ।

विशेष—यह तब होता है जब बुध अपनी राशि और अपने अश का हो और लग्न में शुक्र या बृहस्पति हो ।

अव्वज्जक, अव्वजनयन, अव्वज्जेन = कमलनयन । कमल जैसे नेत्रो-वाला । अव्वज्जावध = सूर्य । अव्वजभव = ब्रह्मा । अव्वजभू = ब्रह्मा । अव्वजभोग = (१) कमल की जड़ । मँसीड । (२) कीडी । बराटक । अव्वज्योनि = ब्रह्मा । अव्वज्वाहन = शिव । अव्वज्वाहना = लक्ष्मी । अव्वजस्थित = ब्रह्मा । अव्वजहस्त = सूर्य । अव्वजासन = ब्रह्मा ।

अव्वजद—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ अरबी फारसी वर्णमाला के अक्षर । २ अरबी अक्षरों का वह क्रम जिसमें प्रति अक्षर का मूल्य सख्या में निर्धारित है ।

विशेष—इससे लोगों के मरने या पैदा होने का साल निकाला जाता है । कुछ लोग बच्चों के नाम उसी आधार पर रखते हैं जिससे जन्मवर्ष ज्ञात हो ।

अव्वजदख्वा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अव्वजद + फा० ख्वा] अरबी फारसी वर्णमाला पढ़नेवाला विद्यार्थी । नवसिखिया ।

अव्वजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी ।

अव्वजाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हम [को०] ।

अव्विनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कमलवन । पद्मसमूह । २ पद्मलता । पीनार । ३ कमलिनी (को०) । ४ कमल से आपूर्ण स्थान या जलाशय (को०) ।

यो०—अव्विनीपति = सूर्य ।

अव्वद<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दास । सेवक । गुलाम । अनुचर । भक्त [को०] ।

अव्वद<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वर्ष । साल । २ मेघ । बादल । उ०—मकंठ जुद्धविषद क्रुद्ध अरि ठट्ट दपट्टहि । अव्वद शब्द करि गजि तजि झुकि भवि भपट्टहि ।—मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १८२ । ३ एक पर्वत । ४. नागरमोया । ५ कपूर । ६ आकाश । उ०—जय जय शब्द अव्वद अति होई । वर्षत कुसुम पुरंदर सोई ।—गोपाल (शब्द०) ।

यो०—अव्वदप = वर्षाधिप । इद्र । अव्वज्ज = ज्योतिषी । अव्वज्वाहन इद्र । अव्वदसार = कपूर ।

अव्वदकोश—सञ्ज्ञा पुं० [मं० अव्व + कोश, अ० इयरकुह] १ वह वार्षिक संग्रहग्रंथ जिसमें वर्ष के मुख्य व्यक्तियों, घटनाओं, जानकारियों आदि का विवरण मिले । २. वर्ष वर्ष का विवरणसंग्रह ।

अव्वदाली—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [फा०] अव्वदाल का निवासी (व्यक्ति) ।

विशेष—अव्वदाल बासी होने से अहमदगंज के नाम के आगे यह शब्द जुड़ता है इसने नादिरशाह के बाद भारत पर १७६१ ई० में आक्रमण किया था । इसका युद्ध मराठों में हुआ था जिसमें मराठों की हार हुई थी । इसकी उपाधि दुर्रंगे दुर्रानी भी थी ।

अव्विद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वादल । मेघ [को०] ।

अव्वदुर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] वह दुर्ग या किला जो चारों ओर से जल से घिरा हो । वह किला जिसके चारों ओर खाई हो ।

अव्विद्वि—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ समुद्र । सागर । २ मरोवर । ताल । ३ सात की सख्या । ४ चार की सख्या का द्योतक (को०) ।

अव्विद्विकफ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन ।

अव्विद्विज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अव्विद्विजा] १ समुद्र से पैदा हुई वस्तु । २ शख । ३ चद्रमा । ४ अव्विद्विनीकुमार । ५ नमक (को०) ।

अव्विद्विजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ लक्ष्मी । २ वारुणी । मदिरा [को०] ।

अव्विद्विदीपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी । २ समुद्र से घिरा मूखड । टापू [को०] ।

अव्विद्विनगरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारकापुरी ।

अव्विद्विनवनीतक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] चद्रमा [को०] ।

अव्विद्विफेन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समुद्री भाग । समुद्रफेन [को०] ।

अव्विद्विमडूकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अव्विद्विमडूकी] वह सीप जिसमें मोती रहता है ।

अव्विद्विशय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

अव्विद्विशयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अव्विद्विशय' [को०] ।

अव्विद्विसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रत्न [को०] ।

अव्विद्विग्नि—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] समुद्र की अग्नि । वडवानल ।

अव्वर(७१)—वि० [हिं०] दे० 'अवल' । उ०—वव्वर की घाक औ अकव्वर की साक मव्वे, अव्वर की छाक लौ सनैही मिसि जायगी ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १६८ ।

अव्ववा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अव्व = पिता का संबोधन आवा] पिता । बाप । अव्ववाजान—सञ्ज्ञा पुं० [अ० आवा + फा० जान] पिता के लिये आदरसूचक संबोधन ।

अव्ववास—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] [वि० अव्ववासी] १ एक पीछा जो दो तीन फुट तक ऊँचा होता है । गुल अव्ववास ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ कुत्ते के कान की तरह नोकीली और लची होती हैं । कुछ लोग भूल से इसकी मोटी जड़ को चोबूनी कहते हैं । इसके फूल प्रायः लाल होते हैं, पर पीले और सफेद भी मिलते हैं । फूलों के झड़ जाने पर उनके स्थान पर काले काले मिर्च के ऐसे बीज पड़ते हैं ।

२ हजरत मुहम्मद साहब के चाचा जो अव्ववासी खलीफाओं के पूर्वज थे ।

अव्ववासी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] मिस्र देश की एक प्रकार की कपास ।

अव्ववासी<sup>२</sup>—वि० [अ०] १ गुनवासी के फूल के रंग का । २ हजरत अव्ववास के वंशज या संबंधी ।

अव्विद्विदु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अव्विद्विदु] १. जगविदु । २. आत्मा । अश्वविदु [को०] ।

अव्वीह(७२)—वि० [सं० अव्व, आ० अव्व + जीह] निर्मल । निडर ।

उ०—दिन सोह अव्वीह मापेट खिल्लै ।—पृ० २१०, १११२ ।

अव्वू<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [सं० अव्वू] आव्व । अरवली पर्वतशृङ्खला में स्थित एक स्थान । उ०—अव्वू वै द्रुग भाग, अव्वु वधर्षो जिहि पायन ।—पृ० २०, १२।३० ।

अव्वभ<sup>२</sup>—सज्ञा पुं [सं० अव्वभ, प्रा० अव्वभ] दे० 'अव्व' । उ०—वज्रत सार गज्जत अव्वम ।—हम्मीर०, पृ० ८२ ।

अव्वभक्ष<sup>३</sup>—वि० [सं०] केवल जल पीकर जीनेवाला [को०] ।

अव्वभक्ष<sup>३</sup>—सज्ञा पुं [सं०] पानी में रहनेवाला साँप । डेडहा साँप ।

अव्वभक्षण<sup>४</sup>—सज्ञा पुं [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें केवल जल पीते हैं । जल पीकर रहना [को०] ।

अव्वभ्र<sup>५</sup>—सज्ञा पुं [मं०] दे० 'अव्व' [को०] ।

अव्वयगि<sup>६</sup>—वि० दे० 'अव्वयग्य' । उ०—प्रीतम कीं जब सागस लहै । व्यगि अव्वयगि ववन कछु कहै ।—नद० ग्र०, पृ० १४७ ।

अव्ववाई<sup>७</sup>—वि० [सं० अ + हिं० व्याई] जिसने वच्चा न जना हो । जिसे प्रसव न हुआ हो । उ०—जगन में चरैछी सो अव्ववाई भोटी आई ।—शिखर०, पृ० ३ ।

अव्वयाहत<sup>८</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अव्वयाहन' । उ०—अव्वयाहत गति समु प्रसादा ।—मानस, ७।११० ।

अव्वन्न<sup>९</sup>—सज्ञा पुं [फा० तुल्य सं० अव्वन्न] वादल । उ०—विना आव्व जहें बहु गुल फूले, अव्व विना जहें वरसै ।—मलूक०, पृ० ४ ।

अव्वन्न<sup>९</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अव्वन्न' । उ०—अव्वन्न वरण सो भेद निनारा । घट घट वसे लिप्त तन धारा ।—कवीर सा०, पृ० ८७३ ।

अव्वान्नाय<sup>१०</sup>—सज्ञा पुं [सं०] १ वह कर्म जो ब्राह्मणोचित न हो । २ हिंसादि कर्म । ३ नाटकादि में दिखाए जानेवाले अनुचित कर्म के बोध या ज्ञान के लिये नेपथ्य में उद्घोषित शब्द । कही कही ब्राह्मण रक्षा या सहायता की दृष्टि से भी अव्वान्नायम् शब्द का उच्चारण करता है ।

अव्वान्नाय<sup>१०</sup>—वि० [सं०] १ ब्राह्मण के अयोग्य । २ जिसकी श्रद्धा ब्राह्मण में न हो । जो ब्राह्मणनिष्ठ न हो । ब्राह्मणविरोधी ।

अव्वान्नाय<sup>१०</sup>—सज्ञा पुं [सं०] वह व्यक्ति जो ब्राह्मण न हो । ब्राह्मणोत्तर व्यक्ति । उ०—एक अव्वान्नाय इतना विवेकवान नही हो सकता ।—सं० दरिया, पृ० ६० ।

अव्वान्नाय<sup>१०</sup>—वि० [सं०] ब्राह्मणविरहित । ब्राह्मणविहीन ।

अव्वान्नाय<sup>१०</sup>—सज्ञा पुं [सं०] १ ब्राह्मणोचित कर्तव्यों की अवज्ञा या उल्लंघन । २ दे० 'अव्वान्नाय' ।

अव्व<sup>११</sup>—सज्ञा स्त्री [फा०] भौह । अ० दे० 'अव्वर' ।

अव्वे अव्वर<sup>१२</sup>—सज्ञा पुं [फा०] दे० 'अव्वर' ।

अव्वग<sup>१३</sup>—वि० [सं० अव्वग] १ अखंड । अटूट । पूर्ण । उ०—जनता की सेवा का व्रत मैं लेता अव्वग ।—अपरा, पृ० ६४ । २ अनाशवान् । न मिटनेवाला । उ०—प्रादि, मध्य अरु अत लो, अविहड सदा अव्वग । कवीर उस करता की सेवग तजै न सग ।—कवीर ग्र०, पृ० ८६ । ३ जिसका क्रम न टूटे । लगातार । उ०—प्रिये, प्रिये उत्तर दो मैं ही करता नही पुकार अव्वग ।—साकेत, पृ० ३८५ । ४, जो भग या नष्ट न किया जा सके । सुदृढ़ । मजबूत । उ०—निपट अव्वग गड कोट सब हारे तै ।—भूषण ग्र० पृ० ८२ ।

अव्वग<sup>१३</sup>—सज्ञा पुं १ सगीत में एक प्रकार का ताल जिसमें एक नधु, एक गुरु और दो प्लुत मात्राएँ होती हैं । २. एक प्रकार का पद या भजन जिनका व्यवहार मराठी में होता है । जैसे—तुकाराम के अव्वग । ३ एक श्लेष जिसमें शब्द को विभक्त किए बिना ही दूसरा अर्थ प्रकट हो । अर्थश्लेष (को०) । ४ भग या पराजय का अभाव (को०) ।

अव्वगपद<sup>१४</sup>—सज्ञा पुं [सं० अव्वगपद] श्लेष अलंकार का एक भेद । वह श्लेष जिसमें अक्षरों को इधर उधर न करना पड़े और शब्दों से भिन्न भिन्न अर्थ निकल आवें । उ०—(क) अति अकुलाय शिलीमुखन, वन में रहत सदाय । तिन कमलन की हरत छवि तेरे नैन सुभाय (शब्द०) । यहाँ 'शिलीमुख', 'वन' और 'कमल' शब्द के दो दो अर्थ बिना शब्दों को तोड़े हुए हो जाते हैं । (ख) रावन सिर सरोज वनचारी । चलि रघुवीर सिली मुख धारी ।—मानस, ६।६१ ।

अव्वगिनी<sup>१५</sup>—वि० स्त्री [सं० अव्वग + इनी (प्रत्यय०)] जो विच्छिन्न न हो । उ०—तन से न सही, अव्वगिनी, मन से है हम किनु सगिनी ।—साकेत, पृ० ३६४ ।

अव्वगी<sup>१६</sup>—वि० [सं० अव्वगिनी] १ अव्वग । पूर्ण । अखंड । २. जिसके किसी अश का हरण न हो सके । जिसका कोई कुछ न ले सके । उ०—आए माई दुरंग स्याम के सगी । सूधी कहि सबहिनि समुझावत, ते सचि सरवगी । औरनि कौ सरवस लै मारत आपुन भए अव्वगी ।—सूर०, १०।३५११ ।

अव्वगुर<sup>१७</sup>—वि० [सं० अव्वगुर] १ जो टूटनेवाला न हो । दृढ़ । मजबूत । २ अनाशवान् । न मिटनेवाला ।

अव्वजन<sup>१८</sup>—वि० [सं० अव्वजन] जिसका भजन न हो सके । अटूट । अखंड । अव्वजन<sup>१८</sup>—सज्ञा पुं द्रव वा तरल पदार्थ जिनके टुकड़े नहीं हो सकते, जैसे—जल, तेल आदि ।

अव्व<sup>१९</sup>—सज्ञा पुं [हिं०] दे० 'अव्व' । उ०—जिण दिन स्वामी भग न गम । ये तो जुग सूना गया ।—वी० रासो, पृ० ८२ ।

अव्वक्त<sup>२०</sup>—वि० [सं०] १ जो भक्त न हो । भक्तिशून्य । श्रद्धाहीन । २ भगवद्धिमुख । उ०—भक्त अव्वक्त सब पुनि खाई । मबको भक्त निरजन राई ।—कवीर सा०, पृ० ५७ । जो वाँटा न गया हो । जो अलग न किया गया हो । जिसके टुकड़े न हुए हों । समूचा ।

अव्वक्ष<sup>२१</sup>—सज्ञा पुं [सं०] भोजन न करना । उपवास [को०] ।

अव्वक्ष<sup>२१</sup>—वि० दे० 'अव्वक्ष्य' ।

अव्वक्षण<sup>२२</sup>—सज्ञा पुं दे० 'अव्वक्ष' ।

अव्वक्ष्य<sup>२३</sup>—वि० [सं०] १ अखाद्य । अमोज्य । जो खाने के योग्य न हो । २ जिसके खाने का धर्मशास्त्र में निषेध हो ।

अव्वक्ष्य<sup>२३</sup>—सज्ञा पुं भोजन के लिये निषिद्ध खद्य पदार्थ [को०] ।

अव्वख<sup>२४</sup>—सज्ञा पुं [हिं०] दे० 'अव्वक्ष्य' । उ०—केचित्त अव्वख भखत न सकाही । मदिरा पान मास पुनि खाही ।—सुंदर ग्र०, पृ० ८२ ।

अव्वग<sup>२५</sup>—वि० [सं०] अव्वगा । भाग्यहीन [को०] ।

अव्वगत<sup>२६</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अव्वक्त' । उ०—तदपि कहि सम विपन बिहारा । भगत, अव्वगत हृदय अनुसार ।—मानस, २।२१८ ।

अभयगु—वि० [सं० अभयगु] जो विभक्त या अलग विलग न हो। जो टूटा या भग्न न हो। उ०—तहँ मु विजय सुरराजपति, जादू कुलह अभयगु।—पृ०, रा०, २०। १।

अभयगु—वि० [सं०] अखड। जो खडित न हुआ हो। समूचा। उ०—जगत्तत्व की खोज मे लग्न जहाँ ऋषियो ने अभयगु किया अम था।—इतिहास, पृ० ६०६।

अभयगु<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ अमागनिक। अशुभ। अकल्याणकारी। २ अश्रेष्ठ। अमायु। अशुष्ट। वेहूदा। कमीना।

अभयगु<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ बुराई। पाप। दुष्टता। २ शोक [को०]।

अभयगुता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अमागनिकता। अशुभ। २ अशुष्टता। असायुता। बुराई। खोटाई। वेहूदगी।

अभयपद—सज्ञा पुं० [हिं०] २० 'अभयपद'। उ०—अभयपद भुजदह मूल, पीन अस मानुकून, कनक मेखला दुकून दामिनी घरखी री।—सूर०, १०। १३५४।

अभयकर—वि० [सं० अभयकर] १ जो भयकर न हो। सौम्य। २ अभय करनेवाला [को०]।

अभय<sup>१</sup>—वि० [सं०] [स्त्री० अभय] निर्भय। निडर। वेखोफ। उ०—जिन्ह कर भुजवल पाइ दसानन। अभय भए विचरत मुनि कानन।—मानस, ३। १६।

मुहा०—अभय देना वा अभय वाँह देना = भय से बचाने का वचन देना। शरण देना। निर्भय करना। उ०—(क) ब्रह्मा रुद्रलोकहूँ गयो। उनहूँ ताहि अभय नहि दयो।—सूर० (शब्द०)। (ख) लछिमन अभयवाँह तेहि दीन्ही।—मानस ४। २०।

यो०—अभयदान। अभयवचन। अभयवाँह।

अभय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ उशीर। खस। वीरणमूल। २ निर्भयता। ३ परमात्मा। ४ परमात्मविषयक ज्ञान। ५ भौतिक संपत्ति अभाव। सासारिक संपदाविहीनता। ६ अभयसूचक एक मुद्रा। ७ शिव। ८ भय मे प्राप्त वाराण। ९ यात्रा सवधी एक योग [को०]।

अभयचारी—सज्ञा पुं० [सं० अभयचारिन्] वे जगली पशु जिनके मारने की आज्ञा न हो।

अभयडिंडिम—सज्ञा पुं० [सं० अभयडिण्डिम] १ 'मुरक्षात्मक भरोसे की घोषणा। एक युद्ध वाद्य [को०]।

अभयद<sup>१</sup>—वि० [सं०] २० 'अभयदाता' [को०]।

अभयद<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ विष्णु का एक नाम। २ जैनों के एक अर्हन् [को०]।

अभयदक्षिणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] मुरक्षा का वचन, आश्वासन या भरोसा देना। भयभीत को शरण देना। [को०]।

अभयदाता—वि० [सं० अभय + दातृ] अभय देनेवाला। उ०—माडवी चित्ता चातक नवाबुदवरण सरन तुलसीदास अभय-दाता।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४७४।

अभयदान—सज्ञा पुं० [सं०] भय से बचाने का वचन देना। निर्भय करना। शरण देना। रक्षा करना। उ०—नरहरि देखि हर्ष मन कीन्ही। अभयदान प्रह्लादहि दीन्ही।—सूर० ७। २।

क्रि० प्र०—देना।

अभयदानी—वि० [सं० अभयदानिन्] अभय देनेवाला। उ०—गाइ द्विजराज तियकाज न पुकार लाजै, भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि।—राम चं०, पृ० ६२।

अभयपत्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ मुग्धा के आश्वासन का लिखित पत्र या अभिलेख [को०]।

अभयपद—सज्ञा पुं० [सं० अभयपद] निर्भय पद। मोक्ष। मुक्ति। उ०—पिता वचन खडै सो पापी, मोइ प्रह्लादहि कीन्ही। निकसे खभ बीच तै नरहरि, ताहि अभयपद दीन्ही।—सूर० १। १०४।

अभयप्रद—वि० [सं०] भय से विमुक्ति का आश्वासन देनेवाला। अभय देनेवाला [को०]।

अभयमुद्रा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक तांत्रिक मुद्रा। २ भय से विमुक्ति का भाव व्यक्त करनेवाला हाथ का एक संकेत [को०]।

अभययाचना—सज्ञा स्त्री० [सं०] भय से रक्षा करने की प्रार्थना। अभय की भीख [को०]।

अभयवचन—सज्ञा पुं० [सं०] भय से बचाने की प्रतिज्ञा। रक्षा का वचन।

क्रि० प्र०—देना।

अभयवन—सज्ञा पुं० [सं०] वह वन जिसे काटने की आज्ञा न हो। रक्षित वन।

अभयवनपरिग्रह—सज्ञा पुं० [सं०] रक्षित वन सवधी राजनियम का भग या विघात। जैसे, उसमे घुसना, पेड़ काटना, लकड़ी तोड़ना आदि।

अभया<sup>१</sup>—वि० [सं०] निर्भया। वेडर की। निडर।

अभया<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की हरीतकी या हड जिसमे पाँच रेखाएँ होती हैं। उ०—अभया सोठ चिरायत कना। सोचर मिर्चहि चूरन बना।—इन्द्रा०, पृ० १५१। २ दुर्गा का एक स्वरूप [को०]।

अभर<sup>१</sup>—वि० [सं० अ + अति + भर = भार] दुर्वह। न ढोने योग्य। उ०—भाई रे गैया एक विरचि दियो है भार अभर मो भाई। नौ नारी को पानि पियति है तृपा तऊ न बुताई।—कवीर (शब्द०)।

अभरन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० आभरण] २० 'आभरण'। उ०—इतनी सुनत मगन हूँ रानी बोलि लए नैदराई। सूरदाम कचन के अभरन लै भगरिनि पहिराई।—सूर० १०। १६।

अभरन<sup>२</sup>—वि० [सं० अ + हिं० भरम = मान प्रतिष्ठा] अपमानित। दुर्दशाग्रस्त। उ०—उस बात की कसक हमारे मन से नहीं जाती जो बलराम ने तुम्हें अभरन किया था।—लल्लू (शब्द०)।

अभरम<sup>१</sup>—वि० [सं० अ + भ्रम, हिं० भरम] १ भ्रमन करनेवाला। अत्रात। अचूक। २ निश्चय। निडर। उ०—कृतवर्मा भट चल्थो अभरमा कचन वरमा।—गोपाल० (शब्द०)।

अभरम<sup>२</sup>—क्रि० वि० नि सदेह। विना शंका। निश्चय।

अभरी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० अ + हिं० भरी] परिपूर्णता। उ०—अभरी थावै आय सु चित सरसावै चाव।—वांसीदास ग्रं०, भा० १, पृ० ५०।



अभर्तुका—वि० स्त्री० [सं०] १ अविवाहिता कुमारी । २ पति-  
विहीन । विधवा [को०] ।

अभर्म<sup>१</sup>—क्रि० वि० [हिं०] ३० 'अभरम' । उ०—राम कहो जो  
तुम चह्यो यह दुर्लभ वर परम । पै मेरे सतसग ते होइहि सत्य  
अभर्म ।—गोपाल० (शब्द०) ।

अभल<sup>१</sup>—वि० [सं० अ + हिं० भल = भला] अश्रेष्ठ । बुरा । खराब ।  
अभव<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ न होना अनस्तित्व । २ नाश । प्रलय ।  
३ निर्वाण । मोक्ष (को०) ।

अभव<sup>२</sup>—वि० जो उत्पन्न न हो । अजन्मा [को०] ।

अभव्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ न होने योग्य । २ विलक्षण । अदभुत ।  
अनहोना । ३ अमागलिक । अशुभ । बुरा । अभागा । ४  
अशिष्ट । बेहूदा । भद्दा । भोडा ।

अभव्य<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० जैन शास्त्रानुसार जीव, जो कभी मोक्ष नहीं प्राप्त  
कर सकते ।

अभाऊ<sup>१</sup>—वि० [सं० अ + भाव] १ जो न भावे । जो अच्छा न लगे ।  
उ०—भइ अज्ञा को माँट अभाऊ । बाएँ हाथ देइ वरम्हाऊ—  
जायसी ग्र०, पृ० ११४ । २ जो न सोहे । अशोभित । उ०—  
काढहु मुद्रा फटिक अभाऊ । पहिरहु कुडन कनक जडाऊ ।—  
जायसी (शब्द०) ।

अभाग<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ बिना भाग का । बिना हिस्से का । २  
अविभक्त ।

अभाग<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] ३० 'अभाग्य' । उ०—सपनेहु दोम कलेसु  
न काहू । मोर अभाग उदधि अवगाहू ।—मानस, २।२६० ।

अभागा—वि० [सं० अभाग्य] [स्त्री० अभागिनी, अभागिनी] मदभाग्य ।  
भाग्यहीन । प्रारब्धहीन । वदकिस्मत । उ०—(क) अति खल  
जे विपई वक कागा । एहि सर निकट न जाइ अभागा ।—  
मानस, १।३६ । (ख) कैमे तू अभागा यहाँ पहुँचा है मरने ?—  
लहर, पृ० ७२ ।

अभागी—वि० [सं० अभागिन्] [स्त्री० अभागिनी] १ जिसे कुछ भाग  
न मिले । जिसे हिस्सा न मिले । २ भाग्यहीन । वदकिस्मत ।  
उ०—करनु राजु लका सठ त्यागो । होइहि जव कर कीट  
अभागी ।—मानस, ५।५३ ।

अभाग्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] अभागवाला । भाग्यहीन । अभागा [को०] ।  
अभाग्य<sup>२</sup>—सं० पुं० [सं०] प्रारब्धहीनता । दुर्दैव । बुरा दिन । वद-  
किस्मती । उ०—मोर अभाग्य जिआवत ओही । जेहि हौं हरि  
पद कमल विछोही ।—मानस, ६।६८ ।

अभाजन—सज्ञा पुं० [सं०] अपात्र । कुपात्र । बुरा, आदमी ।

अभाजै<sup>१</sup>—वि० [सं० अविभाजित] जो विभक्त न हो । अखण्डित ।  
समूचा पूर्ण । उ०—अभाजै सी रोटली कागा ले जाइला ।  
पूछो म्हारा गुरु नै कहाँ वंसि खाइला ।—गोरख०, पृ० १२२ ।  
अभाय<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अभाय] भावशून्यता । अनस्तित्व ।  
असत्ता । उ०—त्यो ही कछु धूमि भूमि वेसुध गए कै हाय,  
पाय परे उखरि अभाय मुख छायो है ।—रत्नाकर, भा०  
१, पृ० ११६ ।

अभार<sup>१</sup>—वि० [हिं०] ३० 'अभर' । उ०—दैव दीन्ह सब मोहि अभार ।  
मोरे नीति न धरम विचार ।—मानस, २।२६८ ।

अभाव<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ अमता । अनस्तित्व । नेस्ती । अविद्य-  
मानता । न होना । २ आधुनिक नैयायिकों के मत के अनुसार  
वैशेषिक शास्त्र में सातवाँ पदार्थ ।

विशेष—कणादकृत सूत्रग्रंथ में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष  
और समवयव, ये छ पदार्थ ही अभाव माने गए हैं । अभाव  
पाँच प्रकार का है, यथा (क) प्रागभाव = जो किसी क्रिया और  
गुण के पहले न हो, जैसे, घड़ा बनने के पहले न था । (ख)  
प्रध्वसाभाव = जो एक बार होकर फिर न रहे, जैसे 'घड़ा बन  
कर टूट गया' । (ग) अन्योन्याभाव = एक पदार्थ का दूसरा  
पदार्थ न होना, जैसे, घोड़ा बैन नहीं है और बैल घोड़ा नहीं है ।  
(घ) अत्यताभाव = जो न कभी था, न है और न होगा, जैसे,  
आकाशकुसुम, वध्या का पुत्र । और (च) सत्प्रागभाव = एक  
वस्तु के सवध में दूसरे का अभाव, जैसे, घर में घोड़ा नहीं है ।  
२ ब्रुटि । टोटा । कमी । घाटा । जैसे, राजा के घर में द्रव्य का  
कौन अभाव है । उ०—अपने अभाव की जड़ता में वह रह न  
सकेगा कभी मग्न ।—कामायनी, पृ० १५१ । ३. नाश ।  
मृत्यु [को०] । लोप । अतरिक्ष । अतर्धान [को०] ।

अभाव<sup>२</sup>—वि० भावरहित । स्नेहरहित । लोप । अतरिक्ष ।  
अतर्धान (को०) ।

अभाव<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अ = बुरा + भाव] कुमाव । दुर्भाव ।  
विरोध । उ०—हम तिनको बहु भाँति खिभावा । उनके कवहुँ  
अभाव न आवा ।—विश्राम (शब्द०) ।

अभावन<sup>१</sup>—वि० [सं० अ + भावन] सुदूर । रुचिर । रुचिकर ।  
अभावन<sup>२</sup>—वि० [सं० अ = नहीं + भावन] असुदूर । अरुचिकर ।  
अप्रिय ।

अभावना—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विवेक या निर्णय का अभाव । २  
धार्मिक धारणाओं का अभाव (को०) ।

अभावनीय—वि० [सं०] १ जो भावना में न आ सके । अचिन्तनीय ।  
२ अशोभनीय । उ०—इसी असामंजस्य के कारण वह ऐसे ऐसे  
अभावनीय कार्य कर बैठता है ।—मृग० पृ० ५५ ।

अभावपदार्थ—सज्ञा पुं० [सं०] भावशून्य पदार्थ । सत्ताहीन पदार्थ ।  
असत् पदार्थ ।

अभावप्रमाण—सज्ञा पुं० [सं०] न्याय में किसी किसी आचार्य के मत  
से एक प्रमाण जिसमें कारण के न होने से कार्य के न होने का  
ज्ञान हो । गौतम ने इसको प्रमाण में नहीं लिया है ।

अभावित—वि० [सं०] जिसकी भावना न की गई हो ।  
क्रि० प्र०—रहना ।

अभावी—वि० [सं० अभाविन्] [स्त्री० अभाविनी] १. जिसकी स्थिति  
की भावना न हो सके । २ न होनेवाला ।

अभाव्य—वि० [सं०] ३० 'अभावी' [को०] ।

अभाषण—सज्ञा पुं० [सं०] भाषण का अभाव । न बोलना । मौन ।  
उ०—मैं नहीं हूँ जो अभाषण योग्य ।—संकेत, पृ० १८६ ।

अभाषित—वि० [सं०] न कहा हुआ । अकथित [को०] ।

अभाष्य—वि० [सं०] न बोलने योग्य बात या व्यक्ति । उ०—जोग  
उन्हें अस्पृश्य और अभाष्य मान उनसे उपेक्षा ही करते रहे ।  
—प्रेमघन०, भा० ३, पृ० २४२ ।

यो०—अभाष्यभाषण = न कहने योग्य बातें कहना या अभाष्य व्यक्ति से बातें करना ।

अभास०—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आभास' । उ०—कहू हनुमत सुनहु प्रभु, समि तुम्हार प्रिय दास । तव मूरति विधु उर वसति, सोइ स्यामता अभाम ।—मानस, ६।१२ ।

अभासना०—क्रि० अ० [ सं० आभास, हिं० अभाम से नाम० ] भासना । दिखाई देना । जान पड़ना । उ०—ककन, किंकिनि भूपन जिते । मोहि श्रीकृष्ण अभासत तिते ।—नद ग्र० पृ० २६६ ।

अभितर०—क्रि० वि० [ सं० अभ्यन्तर, प्रा० श्रविभतर ] दे० 'अभ्यतर' । उ०—उत्तम पुरुष की दशा जौ किममिस दाख । वाहिज अभितर विरागी महु अग्र है ।—सु दर ग्र०, पृ० १०० ।

अभि—उप० [ सं० ] एक उपसर्ग जो शब्दों में लगकर उनमें इन अर्थों की विशेषता उत्पन्न करता है—१ सामने । जैसे, अभ्युत्थान । अभ्यागत । २ बुरा । जैसे, अभियुक्त । ३ अधिक । जैसे, अभिनाय । ४ समीप । जैसे, अभिपारिका । ५ बारबार, अच्छी तरह । जैसे, अभ्यास । ६ दूर । जैसे, अभिहरण । ७ ऊपर । जैसे, अभ्युदय ।

अभिग्र तर०—सञ्ज्ञा पुं० [ हिं० ] दे० 'अभ्यतर' । उ०—प्रेम भगति जल विनु रघुराई । अभिग्रतर मल कवहु न जाई ।—मानस, ७।४६ ।

अभिकपन—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अभिकम्पन ] तीव्र कपन । बुरी तरह काँपना [को०] ।

अभिक<sup>१</sup>—वि० [ म० ] कामुक । कामी । विपयी ।

अभिक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० कामुक व्यक्ति वा प्रेमी जन [को०] ।

अभिकरण—सञ्ज्ञा पुं० [ म० ] १ प्रभाव । २ आकर्षण । खिाव [को०]

अभिकर्षण—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] कृषि का एक उपकरण । खेती का एक योजार [को०] ।

अभिकाक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री० [ म० अभिकाङ्क्षा ] चाह । इच्छा । अभिलाषा [को०] ।

अभिकाक्षी—वि० [ सं० अभिकाङ्क्षिन् ] इच्छुक । अभिलाषी । मनोरथवाला [को०] ।

अभिकाम<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ इच्छुक । अभिलाषी । २ प्रेमी । ३ कामुक [को०] ।

अभिकाम<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ प्रेम । प्यार । २ इच्छा । अभिलाषा [को०] ।

अभिकृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [ म० ] एक प्रकार का छन्द जिसमें १०० वर्य या मात्राएँ होती हैं [को०] ।

अभिक्रद—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अभिक्रन्द ] चित्लाहट । गर्जन । शोर [को०] ।  
अभिक्रम—सञ्ज्ञा पुं० [ म० ] १ मुविचारित आक्रमण । घावा । उ०—देखि देखि विक्रम अभिक्रम अकालिनि के कालिनि के बाद साधुवाद बहु दीन्हें हैं ।—रत्नाकर, भा० २ पृ० १६२ । २ आरोहण [को०] । ३ प्रारम्भ । शुरुआत [को०] । प्रयत्न । चेष्टा [को०] ।

अभिक्रमण—सञ्ज्ञा पुं० [ म० ] १ सेना का शत्रु के समुख जाना । चढ़ाई । घावा । २. दे० 'अभिक्रम' ।

अभिक्राति—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० अभिक्रान्ति ] दे० 'अभिक्रमण' [को०] ।

अभिक्राती—वि० [ सं० अभिक्रान्तिन् ] १ जो पहुँच गया हो । २. जिसने आरम्भ कर दिया हो । आरम्भक [को०] ।

अभिक्रोश—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] १ निंदा करना । कुवाच्य बोलना । २ चिल्लाना ।

अभिक्रोशक—सञ्ज्ञा पुं० [ म० ] १ जोर से चिल्लाने या अपशब्द कहनेवाला व्यक्ति । २ आगे आगे जोर से घोषणा करनेवाला

अभिक्षिप्त—वि० [ सं० ] फेंका हुआ । तिरस्कृत [को०] ।

अभिरूपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [ म० ] १ नाम । यश । कीर्ति । २ शोभा । ३ कुख्याति [को०] । ४ महात्म्य । महिमा [को०] । बुद्धि । धी [को०] । ५ नाम [को०] । ६ पुकारना । संबोधन । ७. वताना । कहना [को०] । ८ शब्द । पर्याय [को०] । व्यक्ति [को०] ।

अभिरूपात—वि० [ सं० ] १ कीर्तिशाली । २ विख्यात । मशहूर [को०] ।

अभिरूपान—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] नाम । प्रसिद्धि । यश । कीर्ति [को०] ।

अभिगम—सञ्ज्ञा पुं० [ म० ] दे० 'अभिगमन' [को०] ।

अभिगमन—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] १ पाम जाना । पहुँचना । २ महावास । ३-समोग ३ देवताओं के स्थान को भाड़ू देकर और लीप पोत कर साफ करना । ४ समझना ।

अभिगम्य—वि० [ म० ] १ अभिगमन के योग्य । २ बोधगम्य [को०] ।

अभिगामी—वि० [ सं० अभिगामिन् ] [ स्त्री० अभिगामिनी ] १ पास जानेवाला । २ हहवास या समोग करनेवाला । जैसे—ऋतुकालाभिगामी ।

अभिगुजन—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० अभि + गुञ्जन् ] मधुर ध्वनि । रसीला स्वर ।

अभिगुजी०—वि० [ हिं० ] अभिगुजन करनेवाली । उ०—मधुर अघर अभिगुजी धरै । कान्ह मुरलिया मुर सग ररै ।—घनानन्द० पृ० १२६ ।

अभिगुप्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [ म० ] १ छिपाकर रखना । सँभालकर रखना । २ आत्मसंयमन [को०] ।

अभिगूँज—सञ्ज्ञा स्त्री० [ हिं० ] दे० 'अभिगुजन' ।

अभिगोपना—वि० [ सं० अभिगोपन् ] छिपा रखनेवाला । बचा रखनेवाला । संरक्षणकर्ता [को०] ।

अभिग्रस्त—वि० [ म० ] शत्रु द्वारा दवाया हुआ । आक्रांत [को०] ।

अभिग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [ म० ] १ लेना । प्रादान । ग्रहण । स्वीकार । २. भगडा । प्रहार । कलह । ३ लूट । डाका । ४ चढ़ाई । घावा । ५ चुनौती [को०] । ६ शिकायत [को०] । ७ अधिहार । शक्ति [को०] ।

अभिग्रहण—सञ्ज्ञा पुं० [ म० ] स्वामी की उपस्थिति में उसकी वस्तु का अपहरण । राहजनी । लूट [को०] ।

अभिघट—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] प्राचीन काल का एक वाजा जो घड़े के आकार का होता था और जिसके मुँह पर चमड़ा मढ़ा रहता था ।

अभिघात—सञ्ज्ञा पुं० [ म० ] [ वि० अभिघातक, अभिघाती ] १ चोट पहुँचना । प्रहार । मार । ताड़ना । पुरुष की बाईं ओर और स्त्री की दाईं ओर का मसा ।

अभिधातक—वि० [स०] चोट पहुँचानेवाला [को०] ।  
 अभिधातकी—वि० [म० अभिधातकिन्] दे० 'अभिधातक' ।  
 अभिधाती—वि० [म० अभिधातिन्] [वि० स्त्री० अभिधातिनी] दे० 'अभिधातक' ।  
 अभिधार—सज्ञा पु० [स०] १ सीवना । छिडकाव । २ घी की आहुति । ३ घी से छीकना या बघारना । ४ घी ।  
 अभिचर—सज्ञा पु० [म०] [स्त्री० अभिचारो] दास । नौकर । सेवक ।  
 अभिचरण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अभिचार' ।  
 अभिचरणीय—वि० [म०] 'अभिचरण या अभिचार के योग्य [को०] ।  
 अभिचार—सज्ञा पु० [म०] अथर्ववेदोक्त मन्त्र यज्ञ द्वारा मारण और उच्चाटन आदि हिंसा कर्म । पुरश्चरण । २ तन्त्र के प्रयोग, जो छ प्रकार के होते हैं—मारण, मोहन, स्तमन विद्वेषण, उच्चाटन और वशीकरण । स्मृति में इन कर्मों का उपातको में माना गया है । उ०—उमकी आँखों में अभिचार का सकेत है, मुक्कुराहट में विनाश की सूचना है ।—स्कंद०, पृ० २६ ।  
 अभिचारक<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [म०] यन्त्र मन्त्र आदि द्वारा मारण, उच्चाटन आदि कर्म ।  
 अभिचारक<sup>२</sup>—वि० यन्त्र मन्त्र द्वारा उच्चाटन आदि करनेवाला ।  
 अभिचारो—वि० [म० अभिचारिन्] [वि० स्त्री० अभिचारिणी] दे० 'अभिचारक' ।  
 अभिज—वि० [म०] चारों ओर होनेवाला [को०] ।  
 अभिजन—सज्ञा पु० [म०] १ कुन । वंश । २ परिवार । ३. जन्मभूमि । वह स्थान जहाँ अपना तथा पिता, पितामह आदि का जन्म हुआ हो । ४ वह जो घर में सबसे बड़ा हो । घर का अग्रग्राह्य । कुन में श्रेष्ठ व्यक्ति । ५ ख्याति । कीर्ति । ६ परिजन ।  
 अभिजनन—सज्ञा पु० [म० अभि + जनन] प्रादुर्भाव । उत्पत्ति ।  
 उ०—विश्व के अधिपति ने अविच्छेद्य समन्वय का अभिजनन किया ।—संपूर्ण ० अभि अ०, पृ० १११ ।  
 अभिजय—सज्ञा स्त्री० [स०] पूर्ण रूप से विजय । पूरी जीत [को०] ।  
 अभिजात<sup>१</sup>—वि० [म०] १ अच्छे कुन में उत्पन्न । कुलीन । उ०—अत्याचारियों की नृशमता में यदुकुल के अभिजात वर्ग ने ब्रज को सूना कर दिया ।—काल, पृ० १४८ । २ बुद्धिमान् । पंडित । ३ योग्य । उपयुक्त । ४ मान्य । पूज्य । ५ सुंदर । मनोहर ।  
 अभिजात<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ उच्चदश । कुलीनता । २ जातकर्म [को०] ।  
 अभिजाति—सज्ञा स्त्री० [स०] ऊँचे कुन में जन्म । कुलीनता [को०] ।  
 अभिजित<sup>१</sup>—वि० [म० अभिजित्] १ विजयी । २ अभिजित् नक्षत्र में उत्पन्न [को०] ।  
 अभिजि<sup>२</sup>—सज्ञा पु० [म०] १ दिन का आठवाँ मुहूर्त । दोपहर के पौने बारह बजे से लेकर साढ़े बारह बजे तक का आध के लिये उपयुक्त समय । २. एक नक्षत्र जिसमें तीन तारे मिलकर मिवाड़े के आकार के होते हैं । ३ उत्तराषाढ नक्षत्र के अंतिम १५ दंड तथा श्रवण नक्षत्र के प्रथम चार दंड । उ०—नीमी लिपि मधुमाम पुनीता । मुकुल पच्छ प्रतिजित हरि प्रीता ।—मानस, ११११ । ४ विष्णु [को०] । ५ एक यज्ञ [को०] । ६ एक लग्न का नाम [को०] ।

अभिज्ञ—वि० [म०] जानकार । परिचित । विज्ञ । २. निपुण कुशल ।  
 अभिज्ञता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ जानकारी । विज्ञता । २ निपुणता । कुशलता ।  
 अभिज्ञा—सज्ञा स्त्री० [म०] १ पहचानना । जानना । २ याद करना । स्मरण आना । ३ अलौकिक क्षमता या शक्ति । इसके पाँच भेद हैं—कोई भी रूप धारण करना, दूर की बात सुनना, दूर-दर्शन, अन्य के विचार और स्थिति को जान लेना [को०] ।  
 अभिज्ञात—सज्ञा पु० [म०] १ पुराण के अनुसार शालमली द्वीप के सात वर्षों वा खडों में से एक । २ जाना समझा ।  
 अभिज्ञातार्थ—सज्ञा पु० [स०] न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थाना विवाद या तर्क में वह अवस्था जब वादी अप्रसिद्ध या शिष्ट अर्थों के शब्दों द्वारा कोई बात प्रकट करने लगे अथवा इतनी जल्दी जल्दी बोलने लगे कि कोई समझ न सके और इस कारण तर्क रुक जाय ।  
 अभिज्ञान—सज्ञा पु० [स०] [वि० अभिज्ञान] १ स्मृति । ध्यान । २ वह चिह्न जिससे कोई वस्तु पहचानी जाय । लक्षण । पहिचान । ३ वह वस्तु जो किसी बात का स्मरण या विश्वास दिलाने के लिये उपस्थित की जाय । निशानी । सहिदानी । परिचायक चिह्न । उ०—संता को अभिज्ञान रूप से देने के लिये राम ने हनुमान को अपनी अँगूठी दी (शब्द०) । ४ मुद्रा की छाप मुहर ।  
 अभिज्ञानपत्र—सज्ञा पु० स० परिचयपत्र । सिफारिशी चिट्ठी [को०] ।  
 अभिज्ञान शाकुतल—सज्ञा पु० [स० अभिज्ञानशाकुन्तल] महाकवि कालिदास कृत सात अंकों का प्रसिद्ध नाटक ।  
 अभिज्ञापक—वि० [स०] जानकारी या सूचना देनेवाला [को०] ।  
 अभित—अ० [स०] १ सनिकट । २ चारों ओर से । सर्वत । ३ पूर्णत । ४ शीघ्रता से । ५ दोनों ओर से । ६ पहले और बाद में । ७ आने सामने से [को०] ।  
 अभितप्त—वि० [स०] १ गर्म । जला हुआ । प्रज्वलित । २ पश्चात्तापयुक्त । ३ अनुतप्त [को०] ।  
 अभिताप—सज्ञा पु० [म०] १ मानसिक या शारीरिक उग्र ताप या दाह । २ प्रवृत्त व्यग्रता, शोभ या वेदना [को०] ।  
 अभिद(उ)—वि० [हि०] दे० 'अभेद्य' । उ०—अभिद अछेद रूप मम जान । जो सब घट है एक समान ।—सूर० ३।१३ ।  
 अभिदर्शन—सज्ञा पु० [म०] १ देखना । २ दिखाई देना । ३ व्यक्त या प्रकट होना [को०] ।  
 अभिद्रव—सज्ञा पु० [म०] आक्राण । हमला । चढ़ाई [को०] ।  
 अभिद्रवण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अभिद्रव' [को०] ।  
 अभिद्रुत—वि० [स०] आक्रांत । पददलित [को०] ।  
 अभिद्रोह—सज्ञा पु० [म०] १ हानिकारक विरोध । २ उत्पीड़न । ३ निंदा । कुत्सा । ४ क्रूरता । ५ दुःख [को०] ।  
 अभिवर्म—सज्ञा पु० [म०] बौद्धों के अनुसार परम सत्य । सर्वोच्च धर्म ।  
 अभिवर्मपिटक—सज्ञा पु० [म०] 'त्रिपिटक' ।  
 अभिधर्षण—सज्ञा पु० [स०] १ मृत प्रेतों का आवेश । २ उत्पीड़न । ३. किसी के विरुद्ध आघात करना [को०] ।

अभिधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] शब्द की तीन शक्तियों में से एक। शब्द के वाच्यार्थ को व्यक्त करने की शक्ति। शब्दों के, उस अभिप्राय को प्रकट करने की शक्ति जिससे, योगिक या व्युत्पत्ति न्त्ये अर्थ सीधे निकलता हो। मुख्यार्थ। २ शब्द या ध्वनि। ३ नाम (की०)।

अभिधान—सञ्ज्ञा पुं० [म०] [वि० अभिधायक, अभिधेय] १ नाम। लकव १, २. कथन। ३ शब्दकोश। ४ गीत। गान (की०)।

अभिधानक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] आवाज। शब्द। ध्वनि (की०)।

अभिधानमाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] शब्दकोश (की०)।

अभिधायक—वि० [स्त्री० अभिधायिका] १ अभिधेय अर्थ का वाचक (शब्द)। २ नाम रखनेवाला। ३ कहनेवाला। ४ सूचक। परिचायक।

अभिधावक—वि० [म०] हमला करनेवाला। आक्रमणकारी। आक्रमक (की०)।

अभिधावन—सञ्ज्ञा पुं० [न०] चडाई। आक्रमण (की०)।

अभिधेय—वि० [सं०] १ अविद्या शक्ति में बोध्य (अर्थ)। प्रतीपाद्य। वाच्य। २ जिसका बोध नाम लेने से ही हो जाय। ३ नाम देने योग्य।

अभिधेय—सञ्ज्ञा पुं० १ नाम। अभिधा। १ विषयवस्तु (की०)। ३ भावार्थ (की०)।

अभिध्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ दूसरे की वस्तु या संपत्ति की इच्छा। पराई वस्तु की चाह। २ अभिनामा। इच्छा। लोभ।

अभिध्यान—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ अभिलाषा। इच्छा। २ प्राप्ति-कामना। लोभ। ३ निंदा। ४ ध्यानमग्नता।

अभिनतु—वि० [सं० अभिनत] अभिनन्दन योग्य। उ०—को अभिनतु रहै रन पग।—पृ० रा०।

अभिनद—वि० [सं० अभिनन्द] प्रमत्त या आनंदित करने वाला (की०)।

अभिनद—सञ्ज्ञा पुं० १ आनंद। २ स्तुति। प्रशंसा। ३ बड़ाई। ४ अभिलाषा। ५ स्वल्प मुख। ६ प्रोत्साहन। बड़ावा। ७ परमात्मा का नाम (की०)।

अभिनन्दन—सञ्ज्ञा पुं० [म० अभिनन्दन] [वि० अभिनन्दनीय, अभिनन्दन] १ आनंद। २ सतोप ३ उत्तेजना। प्रोत्साहन। ४ आकांक्षा। इच्छा। ५ विनीत प्रार्थना। उ०—गुरु के वचन सचिव अभिदान। सुने भरत हिय हित जनु चदन।—मानस, २। १७६। ६ प्रशंसा। प्रतिष्ठा। आदर। उ०—यह अवनर हमने उनके अभिनन्दन के लिये उपयुक्त समझा।—सङ्गणिका अभि० प्र०, पृ० (ग)।

यौ०—अभिनन्दन ग्रंथ—वह ग्रंथ जो किसी व्यक्ति के महत्वपूर्ण कार्यों के प्रति आदर प्रकट करने के लिये उनके जीवन की पचासवीं या साठवीं या किसी भी जन्मतिथि पर दिया जाता है। अभिनन्दनपत्र—वह आदर या प्रतिष्ठासूचक पत्र जो किसी महान् पुरुष के आगमन पर हर्ष और सतोप प्रकट करने के लिये बनाया और अर्पण किया जाता है। (ग्र०) ऐड्रेस। ७ जैन लोगो के चौथे तीर्थंकर का नाम। ८ ग्राम।

अभिनन्दना—वि० [म० अभिनन्दन से हि० नाम०] सत्कृत करना। मान देना। नमानित करना।

अभिनन्दनीय—वि० [सं० अभिनन्दनीय] वंदनीय। प्रशंसा के योग्य।

उ०—मेरे हित है हित यही स्पृश्य, अभिनन्दनीय।—अपरा, पृ० १८१।

अभिनन्दित—वि० [म० अभिनन्दित] वंदित। प्रशंसित। उ०—चोगो ने साधु साधु कहकर उसे अभिनन्दित किया।—इंद्र०, पृ० १२८।

अभिनन्दो—वि० [सं० अभिनन्दन्] समान करनेवाला। अभिनन्दन-कर्ता (की०)।

अभिनन्द्य—वि० [सं० अभिनन्द्य] अभिनन्दन के योग्य। अभिनन्दनीय (की०)।

अभिनतु—वि० [हि०] दे० 'अभिनत'। उ०—भिन भिन अभिन वाणि मुख भावि।—वेत्ति०, दू० १६८।

अभिनय—सञ्ज्ञा पुं० [म० वि० अभिनीति, अभिनेय] दूसरे व्यक्तियों के भावपूर्ण तथा चेष्टा को कुछ काल के लिये धारण करना। नाट्य-मुद्रा। कालकृत अवस्थाविशेष का अनुकरण। स्वांग। नकल। नाटक का खेल।

विशेष—इसके चार विभाग हैं—(क) आंगिक, जिनमें केवल अंगों वा शरीर की चेष्टा दिखाई जाय। (घ) वाचिक, जिसमें केवल वाक्यों द्वारा कार्य किया जाय। (ग) आहार्य, जिसमें केवल वेश या भूषण आदि के धारण की ही आवश्यकता हो, बोलने चालने का प्रयोजन न हो। जैसे, राजा के आस पास पगड़ी आदि बांध कर चौबदार और मुसाहिवों का चुपचाप खड़ा रहना। (ग) सात्विक, जिसमें, स्त्री, स्वेद, रोमांच और कप आदि अवस्थाओं का अनुकरण हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—अभिनय करना = नाचना कूदना।

यौ०—अभिनयाचार्य = नृत्यकला का शिक्षक। नृत्यकलाविद्।

अभिनयविद्या = नृत्यकला। नाट्य कला।

अभिनव—वि० [म०] १ नया। नवीन। उ०—केहरि किशोर में अभिनव अवयव प्रस्फुटित हुए थे।—कामायनी, पृ० २७७।

२ ताजा। ३ अनुभवहीन। अतिनूतन (की०)।

अभिनवगुप्त—सञ्ज्ञा पुं० [म०] छविनाशक के एक प्रथित व्याख्याकार। ध्यान्यालोक की टीका लेखक।

अभिनहन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] एक पट्टी जो आँखों पर बाँधी जाती है। २ अँधोटी। अनवट। ३ अज्ञा। दृष्टिहीन व्यक्ति (की०)।

अभिनामी—वि० [हि०] दे० 'अविनाशी'। उ०—हस तो अभिनासी, काल तो हवाहन, सुन्य तो परम सुन्य।—रामानंद०, पृ० २६।

अभिनियन्त—वि० [सं०] मरणासन्न। जिसका अंत निकट हो (की०)। अभिनियन्त—सञ्ज्ञा पुं० सामवेद की वे ऋचाएँ जिनका मरणान्त के निकट गान होता है।

अभिनियोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कार्य में मनोयोगपूर्वक लग्नता। दत्तचित्ता (की०)।

अभिनियोग—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ प्रस्वान। कूच। २ आक्रमण। शत्रु के विरुद्ध बड़ाव या चडाई (की०)।

अभिनिवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] कार्यपुति। कार्यसंप्रप्ति।

अभिनिविष्ट—वि० [सं०] १ धँसा हुआ। पैठा हुआ। गडा हुआ।  
२ बँठा हुआ। उपविष्ट। ३ एक ही ओर लगा हुआ। अनन्य  
मन से अनुरक्त। लिप्त। मग्न।

अभिनिवेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिनिविष्ट, अभिनिवेशित] १.  
प्रवेश। पैठ। गति। २ मनोयोग। किसी विषय में गति।  
लीनता। अनुरक्ति। एकाग्रचित्तन। ३ दृढ़ सकल्प। तत्परता।  
४ योगशास्त्र के पाँच क्लेशों में से अतिम। मरणमय से।  
उत्पन्न क्लेश। मृत्युशका। ५ दर्प। घमंड। शान। नाक।  
[को०]। ६ उत्कट लालसा। तीव्र प्राकाशा[को०]।

अभिनिवेशित—वि० [सं०] प्रविष्ट।

अभिनिष्क्रमण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बाहर जाना। बहिर्गमन। २  
बौद्धों के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहणार्थ गृह का परित्याग।

अभिनिष्पत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णता। समाप्ति। अंत। परिपूर्णता  
निष्पन्नता [को०]।

अभिनिष्पन्न—वि० [सं०] पूर्ण। समाप्त। सिद्ध [को०]।

अभिनीत—वि० [सं०] १ निकट लाया हुआ। २ पूर्णता को पहुँचाया  
हुआ। सुमज्जित। अलंकृत। ३ युक्त। उचित। न्याय्य। ४  
अभिनय किया हुआ। खेला हुआ (नाटक)। नकल करके  
दिखलाया हुआ। ५ विज्ञ। धीर। ६ क्रुद्ध [को०]। ७ दयालु  
[को०]। ८ स्वीकृत [को०]।

अभिनेतव्य—वि० [सं०] नाटक द्वारा प्रस्तुत करने योग्य। अभिनय  
के योग्य [को०]।

अभिनेता—वि० [सं०] अभिनेता अभिनय करनेवाला। स्वाग दिखाने-  
वाला। नाटक का पात्र। (अ०) ऐक्टर।

अभिनेत्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक में अभिनय करनेवाली स्त्री।  
नटी। (अ०) ऐक्ट्रेस।

अभिनेय—वि० [सं०] अभिनय करने योग्य। खेलने योग्य (नाटक)।

अभिनेतु—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] १ 'अभिनय'। उ०—तटवा निपट,  
निपुन रासमडल में अभिने भेद वतावै, गीत रीति परवान सो।  
—घनानंद, पृ० ३६८।

अभिन्न—वि० [सं०] [सञ्ज्ञा अभिन्नता] १ जो भिन्न न हो। अपृथक्।  
एकमय। २ अप्रभावित [को०]। ३ जो बदला न हो। अपरि-  
वर्तित [को०]। ४ अविभक्त। पूर्ण, जैसे, सद्यः [को०]। ५  
मि० हुआ। सटा हुआ। लगा हुआ। सवद्ध।

यौ०—अभिन्नपुट=नया पत्ता। अभिन्नहृदय=घनिष्ठ।

अभिन्नता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ भिन्नता का अभाव। अपृथक्त्व।  
२ लगावट। सवद्ध। ३ मेल।

अभिन्नपद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] श्लेष-अलंकार का एक भेद। अभिन्नपद  
श्लेष।

अभिन्न्यास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सनिपात का एक भेद जिसमें नींद नहीं  
आती, देह कांपती है, चेष्टा विगड जाती है और इंद्रियाँ  
शिथिल हो जाती हैं और सिर के बाल बीच से अलग अलग  
हो जाते हैं।

अभिपतन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ समीप आना। २ आक्रमण। प्रहार।  
३ प्रस्थान [को०]।

अभिप्रति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ समीप आना। २ पूर्ति। ३ रक्षण  
करना। ४ उपपत्ति [को०]।

अभिपन्न—वि० [सं०] १ निकट गया या पहुँचा हुआ। २ भगोड़ा।  
३ पराभूत या प्राप्त। ४ विपत्तिग्रस्त। श्रमाग्रा। ५ दोषी।  
६ स्वीकृत। ७ मृत। ८ रक्षित। ९ दूर किया हुआ [को०]।

अभिपुष्प—वि० [सं०] पुष्प में आवृत। फूलों में ढका, जैसे, वृक्ष।

अभिपुष्प—सञ्ज्ञा पुं० मुंदर पुष्प। नायाव फूल [को०]।

अभिप्राय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रेम। कृपा। अनुग्रह [को०]।

अभिप्रायन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सम्कार। वेदविधि में आग्न आदि का  
संस्कार।

अभिप्रपन्न—वि० [सं०] संप्राप्त। उपनव [को०]।

अभिप्राणन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मांस बाहर छोटना। फूँक मारना [को०]।

अभिप्राय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिप्रेत] १ आग्रह। मतनव।  
अर्थ। तात्पर्य। गरज। प्रयोजन। उ०—उमने नजक हँकर  
कुछ अभिप्राय में पूछा।—उ० ३३०, पृ० १००। २ अर्थ। माने।  
मतनव। जैसे, शब्द या वाक्य का [को०]। ३ राय। विचार।  
मलाह [को०]। ४ मन्त्र। लगाव [को०]। ५ विष्णु का एक  
नाम [को०]।

अभिप्रेत—वि० [सं०] १ इष्ट। अभिलषित। चाहा हुआ। २ प्रिय।  
३ स्वीकृत।

अभिप्रोक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] यज्ञादि में प्रयुक्त विभिन्न पात्रों और  
नामानों का जलादि द्वारा मिचन [को०]।

अभिप्लव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ उपद्रव। उत्पात। फवाद। २ गवा-  
मयन यज्ञ में प्रति मास का पंचमाश जो छ छ दिनों का होता  
था और जिनमें से प्रत्येक का अलग अलग नाम होता था।  
स्तोम आदि का पाठ जो एक अभिप्लव में होता था। ४  
उमडकर बहना। बाढ़। ५ प्राजापत्य आदित्य।

अभिप्लुत—वि० [सं०] १ आवृत। आच्छादित। २ युक्त [को०]।

अभिभव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिभावक, अभिभावो, अभिभूत]  
१ पराजय। २ तिरस्कार। अनारद। ३ अनहोनी बात।  
विनक्षण घटना। ४ प्रावलय। अधिकता [को०]।

अभिभाव—वि० [सं०] १ 'अभिभावक'।

अभिभावक—वि० [सं०] १ अभिभूत वा पराजित करनेवाला।  
तिरस्कार करनेवाला। २ जड़ अर्थान् स्तम्भित कर देनेवाला। ३

वशीभूत करनेवाला। दबाव में लानेवाला। ४ रक्षक। मर-  
परस्त। उ०—अभिभावक अब वही हमारे रखते स्नेह सहित  
मुझको।—प्रेम०, पृ० १६। ५ आक्रमण करनेवाला [को०]।

अभिभावन—वि० [सं०] वशीभूत करनेवाला। मानेना। हविक।  
उ०—चले चतुर्दिक् हन अभिभावन।—आराधना, पृ० २६।

अभिभावी—वि० [सं०] अभिभावन् १ 'अभिभावक'।

अभिभावुक—वि० [सं०] १ 'अभिभावक'।

अभिभाषण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्रवचन। भाषण। २ वीनता।  
भाषण देना। ३ आयोजन आदि में सर्वमुह्य भाषण। ४

लिखित भाषण [को०]।

अभिभूत—वि० [सं०] १ पराजित। हराया हुआ। २ पीडित।  
उ०—जब चले थे तुम यहाँ से दूत। तब पिता क्या थे अधिक



अभिमूत—साकेत, पृ० १७१। ३. जिस पर प्रभाव डाला गया हो। जो वश में किया गया हो। वशीभूत। ४. विचलित। व्याकुल। किकर्तव्यविमूढ।

अभिमूति—सङ्घा खी० [सं०] अभिमव। पराजय। हार।

अभिमडन—सङ्घा पुं० [सं० अभिमण्डन] [वि० अभिमडित] १ भूपित करना। मजाना। सवारना। २ पक्ष का प्रतिपादन या समर्थन।

अभिमता—वि० [मं० अभिमन्त्र] १ डींग हाँकनेवाला आत्मतत्त्वकर्ता। २ अहमन्य। सर्वज्ञता का दशी (की०)।

अभिमन्त्रण—सङ्घा पुं० [मं० अभिमन्त्रण] [खी० अभिमन्त्रण] १ मन्त्र द्वारा सत्कार। २ आवाहन।

अभिमन्त्रित—वि० [नं० अभिमन्त्रित] १ मन्त्र द्वारा शुद्ध किया हुआ। २ जिसका आवाहन हुआ हो।

अभिमन्त्र्य—सङ्घा पुं० [मं० अभिमन्त्र्य] एक नेत्ररोग। अभिमन्त्र्य (की०)।

अभिमत्—वि० [मं०] १ इष्ट। मनोनीत। वांछित। पसंद का। उ०—जो न होहि मगलमग मुरविधि बाधक। तो अभिमत् फल पावहि करि समु माधक।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३२। २ नमन। गय के मुताविक।

अभिमत्—सङ्घा पुं० १, मत। सम्मति। राय। २. विचार। ३ अभिनयित वस्तु। मनचाही बात। उ०—अभिमत् दानि देव-तरवर मे। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से—तुलसी (शब्द०)। ४ इच्छा। आकांक्षा (की०)।

अभिमति—सङ्घा खी० [सं०] १ अभिमान। गर्व। अहकार। २ वेदात के अनुसार इस प्रकार की मिथ्या अहकार भावना कि अमुक वस्तु मेरी है। ३ अभिलाषा। इच्छा। चाहि। ४ मति। राय। विचार। ५ आदर। समान (की०)।

अभिमन्यु—सङ्घा पुं० [सं०] अर्जुन के पुत्र का नाम।

विशेष—कृष्ण और बलराम की वहन मुमद्रा इसकी माता श्री महाभारत युद्ध में द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में निमित्त चक्रव्यूह का भेदन करते समय मात महारथियो ने इसे मारा था। छोटी अवस्था से ही अत्यंत बली और क्रोधी होने से इसका नाम अभिमन्यु पड़ा। महाभारत के द्रोण पर्व में इसके जन्म और निधन का सविस्तार वर्णन है।

अभिमर—सङ्घा पुं० [सं०] १ सहार। विनाश। हनन। २ युद्ध। ३ स्वपक्ष के व्यक्ति द्वारा कृत विश्वासघात। ४ कैद। ५ शेर हाथी आदि से भी मिड़ने के लिये सन्नद्ध व्यक्ति।

अभिमर्दन—सङ्घा पुं० [सं०] १ पीसना। चूर चूर करना। २ घस्सा। रगड़। ३. युद्ध।

अभिमर्श—सङ्घा पुं० [सं०] १ स्पर्श। सपर्क। २. प्रहार। ३. आक्रमण। ४ संभोग। ५. बलात्कार (की०)।

अभिमर्शक—वि० [सं०] अभिमर्शन करनेवाला (की०)।

अभिमर्शन—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्श'।

अभिमर्शी—वि० [सं० अभिमर्शिन] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमर्ष—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्श'।

अभिमर्षक—[सं०] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमर्षण—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्शन'।

अभिमर्षी—वि० [सं० अभिमर्शिन] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमाद—सङ्घा पुं० [सं०] नशा। मद (की०)।

यी०—अभिमान।

अभिमान—सङ्घा पुं० [सं०] [वि० अभिमानो] १. अहकार। गर्व। दर्प। घमंड। २ स्वामिमान ३ बुद्धि। ज्ञान (की०)। ४ प्रेम। ५ स्नेह (की०)। ६ कामना। इच्छा (की०)। ६ प्रमाण (की०)।

अभिमानित—सङ्घा पुं० [सं०] १ वह जिसमें अभिमान हो। २. प्रेम। स्नेह। ३ संभोग। मयुन (की०)।

अभिमानित—वि० [सं०] गवित। अभिमानयुक्त।

अभिमानो—वि० [सं० अभिमानिन्] [खी० अभिमानिनो] १. अहकार। घमंडी। दर्पी। अपने को कुछ लगानेवाला। २. स्वात्मामिमानो।

अभिमुख—वि० [सं०] सामने। समुख। समक्ष।

अभिमुख—वि० [सं०] १ प्रवृत्त। तत्पर। उद्यत। सनद्ध। २. ओर। तरफ। ३ निकट होना। पहुँचने के करीब होना। ४ अनुकूल (की०)।

अभिमृष्ट—वि० [सं०] १ स्पष्ट। छुआ हुआ। थपकाया गया। २ मर्दित। ३. मिश्रित। ४. स्नात। ५ ससृष्ट। आक्रांत (की०)।

अभिस्लात—वि० [सं०] मुरझाया या कुम्हलाया हुआ (की०)।

यी०—अभिस्लातवर्ण—फीके रंगवाला।

अभियाचा—सङ्घा खी० [सं० अभियाचन] दे० 'अभियाचन'।

अभियाचन—सङ्घा पुं० [सं०] १ माँगना। याचना। २ प्रार्थना करना (की०)।

अभियाचित—वि० [सं०] जिसकी याचना की गई हो।

अभियाता—वि० [सं० अभियातृ] १ निकट जाने या पहुँचनेवाला। २ आक्रमक। अभियान करनेवाला (की०)।

अभियान—सङ्घा पुं० [सं०] १ सामने जाना। २ आक्रमण। चढ़ाई (की०)।

अभियायी—वि० [सं० अभियायिन्] दे० 'अभियाता' (की०)।

अभियुक्त—वि० [सं०] [खी० अभियुक्ता] १ जिसपर अभियोग चलाया गया हो। जो किसी मुकदमे में फँसा हो। प्रतिवादी। मुल-जिम। अभियोक्ता का उलटा। २ लिप्त। संलग्न। उ०—कहाँ आज वह चितवन चेतन, श्याम मोह कज्जले अभियुक्त।—अपरा, पृ० १२०। ३ विद्वान्। विशेषज्ञ। दक्ष (की०)। ४ नियुक्त (की०)। ५ कथित (की०)। ६ उपयुक्त। ठीक (की०)। ७. अध्यवसायी (की०)। ८. आक्रांत (की०)।

अभियुक्ति—सङ्घा खी० [सं०] अभियोग (की०)।

अभियोक्ता—वि० [सं० अभियोक्तृ] [खी० अभियोक्ता] १. अभियोग उपस्थित करनेवाला। वादी। मुद्दे। करियादी। अभियुक्त का उलटा। आरोपी। २. आक्रमक। आक्रमणकारी (की०)।

अभियोक्ता—सङ्घा पुं० शत्रु। आक्रमक व्यवृत्त (की०)।

अभियोग—सङ्घा पुं० [सं०] [वि० अभियोगी, अभियुक्त, अभियोक्ता] १. अपराध की योजना। दोषारोप। उ०—काश्यप मुक्षपर अभियोग लगाते हैं कि मैंने जान बूझकर यह ब्रह्महत्या की।—



अनमेजय०, पृ० ५५ । २ किसी के द्वारा किए गए दोष या हानि के विरुद्ध न्यायानय में निवेदन । नालिश । मुकदमा । ३ चर्चा । आक्रमण । ४ उद्योग । ५ मनोनिवेश । लगन ।

अभियोगी<sup>१</sup>—वि० [सं० अभियोगिन्] १ अभियोग चलानेवाला । नालिश करनेवाला । फरियादी । २ आक्रमणकारी (को०) । ३. लगनवाला ।

अभियोगी<sup>२</sup>—मज्ञा पुं० वादी । मुकदमा खड़ा करनेवाला । व्यक्ति (को०) ।  
अभियोज्य—वि० [सं०] जिसपर दोष या आरोप लग सके (को०) ।  
द्यो०—अभियोज्यदोष=अभियोग चलने योग्य दोष या आरोप ।

अभिरञ्जन—सज्ञा पुं० [सं० अभिरञ्जन्] रँगना (को०) ।  
अभिरञ्जित—वि० [सं० अभिरञ्जित] रंगा हुआ ।  
अभिरक्त—वि० [सं०] १ लगा हुआ । सवद्ध । अनुरक्त । २. मधुर । प्रिय (को०) ।

अभिरक्षण—मज्ञा पुं० [सं०] पूरी तरह से रक्षा या वचाव (को०) ।  
अभिरक्षा—सज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'अभिरक्षण' ।  
अभिरक्षित—वि० [सं०] पूरी तरह से रक्षित या शासित (को०) ।  
अभिरदय—वि० [सं०] पूर्णतः रक्षा या वचाव के योग्य (को०) ।  
अभिरत—वि० [सं०] १ लीन । अनुरक्त । २ लगा हुआ । ३ युक्त । महित । उ०—किधौ यह राजपुत्री, वरही वरघो है, किधौ उपदि वरघो है यहि सोभा अभिरत हौं ।—राम च०, पृ० ५१ । ३ प्रसन्न । प्रमुदित (को०) ।

अभिरति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ अनुराग । प्रीति । २. लगन । लगाव । लीनता । ३ सतोष । हर्ष । आनन्द । ४ कार्य का अभ्यास या पेशा (को०) ।

अभिरना<sup>(१)</sup>—कि० म० [ सं० अभि=समुख + रण अथवा प्रा० अभिडइ=भिडना, मिलना ] १ भिडना । रड़ना । उलझना । उ०—चटपट चटकी डाँड कहुँ कोउ मरत पैतरे । नरत लराई थोक एक एकन सो अभिरे ।—प्रेमघन०, भा० १ पृ० १ । २. टेकना । सहारा लेना । उ०—मुसकाति खरी खँमिमा अभिरी, विरी खाति लजाति महा मन मे ।—वेनी (शब्द०) ।

अभिरमण—मज्ञा पुं० [ सं० ] सम्यक् आनन्द, लेना या रमण करना (को०) ।

अभिराज<sup>(१)</sup>—वि० [सं० अभिराज] अत्यंत शोभित । उ०—चौका बना चोगान, जगमग अभिराज हो ।—घरम०, पृ० ६ ।

अभिराद्ध—वि० [सं०] मनी भौति समाराधित, प्रसन्न या पुष्ट किया हुआ (को०) ।

अभिराम<sup>१</sup>—वि० [सं०] [स्त्री अभिरामा] आनन्ददायक । मनोहर । सुन्दर । सुन्दर । प्रिय । रम्य । उ०—और देखा वह सुन्दर दृश्य । नयन का ड्रजान अभिराम ।—कामायनी, पृ० ४६ ।

अभिराम<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० आनन्द । सुख । उ०—(क) तुनसी अद्भुत देवता आना देवी नाम । मेए मौक ममपई, विमुख भए अभिराम ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२४ । (ख) तुनमिदान चांचरि मिमहि, गहे राम गुन राम । गावहि सुनहि नारि नर, पावहि सब अभिराम ।—तुलसी (शब्द०) । २. शिव का एक नाम (को०) ।

अभिरामिनी—वि० स्त्री [सं०] मनोहारिणी । सुन्दर । उ०—हरित गभीर वानीर दुहूँ तीर वर, मध्य द्वारा विजद, विश्व अभिरामिनी ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६३ ।

अभिरामी—वि० [सं० अभिरामिन्] [वि० स्त्री अभिरामिनी] रमण करनेवाला । मचरण करनेवाला । व्याप्त होनेवाला । उ०—अखिल भुवनभर्ता, ब्रह्मरुद्रादि कर्ता, यिरचर अभिरामी, कीय जामातु नामी ।—केशव (शब्द०) ।

अभिरुचि—सज्ञा स्त्री [सं०] अत्यंत रुचि । चाह । पसंद । प्रवृत्ति । उ०—सतान स्नेह और आत्मसुख की अभिरुचि समति देतो है कि इस काम से हमको भी सहायता मिलेगी ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६३ । २ प्रसिद्धि की चाह । महत्वाकांक्षा (को०) ।

अभिरुत—वि० [सं०] १ ध्वनित । शब्दाद्यमान । २ कूजित । गुजित (को०) ।

अभिरुता—सज्ञा स्त्री [सं०] सगीर्ण में मूर्च्छनाविशेष । इसका सरगम यो है—रे, ग, म, प, ध, नि, म । म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स ।

अभिरूप<sup>१</sup>—वि० [सं०] [स्त्री अभिरूपा] १ प्रिय । रमणीय । मनोहर । सुन्दर । सुगठित । २ मिलता जुलता । अनुरूप (को०) । ३ चतुर । विद्वान् । प्रबुद्ध (को०) ।

अभिरूप<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ शिव । २ विष्णु । ३ कामदेव । ४ ब्रह्मा । ५ पंडित ।

अभिरोग—सज्ञा पुं० [सं०] चौपायो का एक रोग जिसमें जीम में कीड़े पड़ जाते हैं ।

अभिलघन—सज्ञा पुं० [सं० अभिलङ्घन्] १ उछलकर अथवा कूदकर पार करना । २. सीमा, अधिकार या क्षेत्र का अतिक्रमण (को०) ।

अभिलक्षित—वि० [सं०] १ चिह्नांकित । चिह्नित । २ चुना हुआ । संकेतित (को०) ।

अभिलक्ष्य—वि० [सं०] विशेष लक्ष्य योग्य । ध्यान में लेने योग्य (को०) ।

अभिलपण—सज्ञा पुं० [सं०] अभिलापा करना । बाहना । लाना पित होना (को०) ।

अभिलपिक रोग—सज्ञा पुं० [सं०] वात व्याधि के चौरामी भेदों में से एक ।

अभिलपित<sup>१</sup>—वि० [सं०] बाधित । ईर्ष्यित । ईर्ष । चाहा हुआ । उ०—अभिलपित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित द्रव्य खेद ।—कामायनी, पृ० १६४ ।

अभिलपित<sup>२</sup>—मज्ञा पुं० इच्छा । आकांक्षा । मनोरथ । उ०—अभिलपित अधूरी रह न जाय ।—गीतिका ।

अभिलाख<sup>(१)</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अभिलापा' । उ०—अभिलाख यह जिय पूर्ववत्, धन धन्य मोहि सबही कहै ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५१४ ।

अभिलाखना<sup>(१)</sup>—कि० सं० [सं० अभिलपण] इच्छा करना । बाहना । उ०—तब सिय देखि भूप अभिलाखे । कूर कपूत सुद मन भाखे ।—तुलसी (शब्द०) ।

अभिलाखा<sup>(१)</sup>—सज्ञा स्त्री [सं० अभिलापा का प्रा० द्वि० रूप] दे० 'अभिलापा' । उ०—सबके हृदय, मदन अभिलाखा । सदा निहारि नवहि तस्साखा ।—मानस, १।८५ ।

अभिलाखी—वि० [हि०] दे० 'अभिलाषी' ।

अभिलाष—सञ्ज्ञा पुं० [न०] १ शब्द । कथन । वाक्य । २ मन के सकल्प का कथन वा उच्चारण । ३ वर्णन । भाषण (को०) ।

अभिलाष—सञ्ज्ञा पुं० [स०] सफल काटना । लवना (को०) ।

अभिलाष—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० अभिलाषक, अभिलाषी, अभिलाषुक, अभिलपित] १ इच्छा । मनोरथ । कामना । चाह । उ०—  
भाग छोट अभिलाष घड करौं एक विषवास । पैहैं सुख सुनि  
मुजन जन खा करिहैं उपहास ।—मानस १।८ । २ लोभ ।  
३ वियोग । शृ गार के अतर्गत दस दशाओं में से एक । प्रिय से  
मिलने की इच्छा ।

अभिलाषक—वि० [स०] इच्छा करनेवाला । आकांक्षा करनेवाला ।

अभिलाषना—क्रि० म० [स० अभिलक्षण] इच्छा करना । चाहना ।  
उ०—जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाषी, मन में अति गरवाऊ ।  
—सूर० १।२२१ ।

अभिलाषा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] इच्छा । कामना । आकांक्षा । दे०  
'अभिलाष' । उ०—मूलता ही जाता दिन रात संजल अभिलाषा  
कलित अतीत ।—कामायनी, पृ० ४६ ।

अभिलाषी—वि० [स० अभिलाषिन्] [स्त्री० अभिलाषिनी] इच्छा  
करनेवाला । आकांक्षी । इच्छुक ।

अभिलाषुक—वि० [म०] दे० 'अभिलाषक' ।

अभिलास—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अभिलाष' ।

अभिलासा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अभिलाषा' ।

अभिलासी—वि० [स० अभिलाषिन्] दे० 'अभिलाषी' । उ०—को  
है जनक, कोन है जननी, कोन नारि, को दामी ? कैसे बरन,  
भेष है कैमो, कि हि रम में अभिलामी ।—सूर०, १।४२४६ ।

अभिलिखित—वि० [स०] लिखा हुआ । खोदा हुआ (को०) ।

अभिलिखित—सञ्ज्ञा पुं० १ लिखना । लेखन । २ हस्ताक्षर । ३.  
लिखित मसविदा (को०) ।

अभिलीन—वि० [स०] १ भरी भाँति लीन । २ अनुरक्त । आसक्त ।  
३ आवेष्टित (को०) ।

अभिलुलित—वि० [स०] १ क्षोभित । चंचल । अस्थिर । २, विक्री-  
डित । क्रीडायुक्त (को०) ।

अभिलुता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] मकड़ी का एक भेद (को०) ।

अभिलेख—सञ्ज्ञा पुं० [म०] लेख । प्रामाणिक लेख । शिला या धातु-  
पट्टन पर खोदा लेख ।

अभिलेखन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ लिखना । खोदना या उत्कीर्ण करना  
(को०) ।

अभिलेखित—सञ्ज्ञा पुं० [स०] प्रामाणिक रूप से लिखित पट्टन या पत्र  
आदि (को०) ।

अभिलेखित—वि० लिखित । निपिबद्ध (को०) ।

अभिवचन—सञ्ज्ञा [म० अभिव्यञ्चन] उगना ।

अभिवचित—वि० [म० अभिव्यञ्चित] उगा गया । छड़ा गया । धोखा  
छाया हुआ (को०) ।

अभिवदन—सञ्ज्ञा पुं० [स० अभिवन्दन] [वि० अभिवदनीय, अभिवदित,  
अभिवद्य १ प्रणाम । नमस्कार । सलाम । वदगी । २ स्तुति ।

अभिवदना—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अभिवन्दना] १ नमस्कार । प्रणाम ।  
२ स्तुति । प्रशंसा ।

अभिवदनीय—वि० [स० अभिवन्दनीय] १ प्रणाम करने योग्य ।  
नमस्कार करने योग्य । २ प्रशंसा करने योग्य । स्तुति  
करने योग्य ।

अभिवदित—वि० [स० अभिवन्दित] प्रणाम किया हुआ । नमस्कार  
किया हुआ । २ प्रशंसित । स्तुत्य ।

अभिवद्य—वि० [स० अभिवन्द्य] दे० 'अभिवदनीय' ।

अभिवचन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वादा । इकरार । प्रतिज्ञा ।

अभिवदन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ भाषण । कथन । २ नमन । प्रणाम ।  
नमस्कार (को०) ।

अभिवद्य—वि० [स०] कथन या निर्वचन योग्य (को०) ।

अभिवर्तन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ वदना ( किसी ओर ) । २ हमला  
करना । आक्रमण । (को०) ।

अभिवाद्ध्य—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अभिवाद्ध्य] अभिलाषा । लालसा ।  
इच्छा (को०) ।

अभिवाद्ध्यित—वि० [स० अभिवाद्ध्यित] अभिलपित । चाहा हुआ ।

अभिवाद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० 'अभिवादन' (को०) ।

अभिवादक—वि० [स०] [स्त्री० अभिवादिका] १ नमस्कार करने-  
वाला । २ विनीत । आदरान्वित । विनम्र (को०) ।

अभिवादन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ प्रणाम नमस्कार । वदना । २  
स्तुति । ३ अतिरजना । अतिवाद । डींग (को०) ।

अभिवादयिता—वि० [स० अभिवादयितृ] दे० 'अभिवादन' ।

अभिवादित—वि० [स०] वदित । नमस्कृत ।

अभिवादी—वि० [स० अभिवादिन्] [वि० स्त्री० अभिवादिनी] दे०  
'अभिवादक' ।

अभिवाद्य—वि० [स०] नमस्कार योग्य । अभिवादनिय (को०) ।

अभिवास—सञ्ज्ञा पुं० [स०] चादर । आवरण । वस्त्राच्छादन (को०) ।  
अभिवासन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० 'अभिवास' ।

अभिविनीत—वि० [स०] १ सुशिक्षित । २ व्यवहारकुशल । शिष्ट ।  
सुशील । ३ शुद्ध । पवित्र (को०) ।

अभिविमान—वि० [स०] दिक्कालातीत । निस्सीम आकार का  
(परमात्मा की एक उपाधि) ।

अभिविश्रुत—वि० [स०] बड़ी ख्याति या प्रसिद्धिवाला (को०) ।

अभिवृद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] सफलता, उन्नति या समृद्धि (को०) ।  
उ०—ज्ञान विज्ञान से मनुष्य की अभिवृद्धि हो सकती है,  
विकास नहीं हो सकता ।—हि० अर्थ प्र०, पृ० २०६ ।

अभिव्यजक—वि० [स० अभिव्यञ्जक] प्रकट करनेवाला । प्रकाशक ।  
सूचक । बोधक ।

अभिव्यर्जन—सञ्ज्ञा पुं० [स० अभिव्यञ्जन] [स्त्री० अभिव्यजना]  
प्राकट्य । अभिव्यक्ति । प्रकाश । विकास ।

अभिव्यजना—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अभिव्यञ्जना] मन के भावों का वाक्यों  
में चित्रण या रूपविधान । दे० 'अभिव्यजन' ।

अभिव्यञ्जनावाद—सञ्ज्ञा पु० [सं० अभिव्यञ्जना + वाद, (अ० एकप-  
प्रेशनिष्पत्तिः)] धोरप मे प्रचलित चित्रकला, साहित्य आदि का वह  
सिद्धांत जिसमें बाह्य वस्तु या विषय को कला का गौरव और  
अपनी या पात्रों की आंतरिक अनुभूतियों के प्रतीकात्मक चित्रण  
को प्रधान अंग माना जाता है।

विशेष—इसमें अभिव्यञ्जना ही सब कुछ है, जिसकी अभि-  
व्यञ्जना की जाती है वह कुछ नहीं। इस मत का प्रधान  
प्रवर्तक इटली का क्रोचे है। अभिव्यञ्जनावादियों के  
अनुसार जिस रूप में अभिव्यञ्जना होती है उससे भिन्न अर्थ  
आदि का विचार कला में अनावश्यक है। जैसे—वाल्मीकि  
रामायण की इस उक्ति में 'न स सकुचिन पथा येन वाली  
हतो गत', कवि का कथन यही वाक्य है, न कि यह कि जिस  
प्रकार वाली मारा गया उसी प्रकार, तुम भी मारे जा सकते  
हो। इसी तरह 'भारत के फूटे भाग्य के टुकड़ों' जुड़ते क्यों  
नहीं?' में इतना ही कहना है कि 'हे फूट से अलग हुए भारत-  
वासियों! एकता क्यों नहीं रखते? यदि तुम एक हो जाओ  
तो भारत का भाग्योदय ही जाय। साराण यह कि इस मत में  
ध्वनि या व्यञ्जना की गुंजाइश नहीं है।—चिन्तामणि,  
भाग २, पृ० ६६।

अभिव्यञ्जनावदी—वि० [सं० अभिव्यञ्जना + वादिन् (अ० एक-  
प्रेशनिष्पत्तिः)] अभिव्यञ्जनावाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिव्यजित—वि० [सं० अभिव्यञ्जित] सुस्पष्ट, प्रकटित। व्यक्त।  
अभिव्यक्त।

अभिव्यक्त—वि० [सं०] प्रकट किया हुआ। स्पष्ट किया हुआ। जाहिर  
किया हुआ।

अभिव्यक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रकाशन। स्पष्टीकरण। साक्षात्कार।  
प्रकट होना। २. उम वस्तु का प्रत्यक्ष होना जो पहले किसी  
कारण से अप्रत्यक्ष हो, जैसे—अंधेरे में रखी चीज का उजाले में  
साफ साफ दीख पड़ना। ३. व्याय के अनुसार सूक्ष्म और अप्र-  
त्यक्ष कारण का प्रत्यक्ष कार्य में आविर्भाव, जैसे, बीज से अकुर  
का निकलना।

अभिव्यक्तिवाद—सञ्ज्ञा पु० [सं० अभिव्यक्ति + वाद] जगत् को ब्रह्म  
की अभिव्यक्ति मानने का सिद्धांत।

अभिव्यक्तिवादी—वि० [सं० अभिव्यक्तिवादिन्] अभिव्यक्तिवाद का  
अनुयायी या समर्थक।

अभिव्यक्तीकरण—सञ्ज्ञा पु० [सं० अभि + व्यक्तीकरण] प्राकट्य।  
सामने आ जाना। अभिव्यञ्जना।

अभिव्यापक<sup>१</sup>—वि० [सं०] [स्त्री० अभिव्यापिका] पूर्ण रूप से फैलने-  
वाला। अच्छी तरह प्रचलित होनेवाला। पूर्ण रूप से व्याप्त  
रहनेवाला।

अभिव्यापक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० [सं०] ईश्वर।

यौ०—अभिव्यापक आधार = व्याकरण में वह आधार जिसके हर  
एक अक्षर में आवेय हो, जैसे 'तिल' में 'तेल'।

अभिव्यापी—वि०, सञ्ज्ञा पु० [सं० अभिव्यापिन्] दे० 'अभिव्यापक'।  
अभिव्याप्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. सन्निवेश। समावेश। २. सर्व-  
व्यापकता [को०]।

अभिशाका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अभिशक्ता] [वि० अभिशक्ति] १.  
भाषका। सदेह। चिन्ता। २. भय। व्यग्रता [को०]।

अभिशासन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [वि० अभिशस्त] सत्य या ऋतु आरोप  
अथवा दोष लगाना। २. व्यभिचार का मिथ्या दोष लगाना।

३. गानी देना। अपमान करना।

अभिशासा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिशासन'।

अभिशापन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. शाप। २. गंभीर आरोप। ३.  
मिथ्यारोप [को०]।

यौ०—अभिशापन ज्वर = शापजन्य ज्वर।

अभिशाप्त—वि० [सं०] १. शापित। जिसे शाप दिया गया हो। उ०—  
जो जनपद परस तिरस्कृत अभिशप्त कही जाती है।—श्रीमू,  
पृ० ७८। २. जिसपर मिथ्या दोष लगा हो।

अभिशास्त—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अभिशस्ता] १. जिसपर व्यभिचार  
का मिथ्या दोष लगा हो। २. व्यर्थ कलंकित। लाजित।

अभिशास्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. अभिशाप। २. निंदा। ३. हिंसा।  
४. विपत्ति। ५. प्रार्थना [को०]।

अभिशाप—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [वि० अभिशापित, अभिशप्त] १. शाप।  
वद दुःखा। उ०—अभिशाप ताप की ज्वाला में जन रहा आज  
मन और अंग।—कामायनी, पृ० १६२। २. मिथ्या दोषा-  
रोपण। झूठमूठ का अपवाद। ३. बुराई। अहित [को०]।

अभिशापन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] शाप देना। वद दुःखा देना। कोपना  
[को०]।

अभिशापित—वि० [सं०] दे० 'अभिशाप्त'।

अभिस्लेपण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] पट्टी [को०]।

अभिषग—सञ्ज्ञा पु० [सं० अभिषङ्ग] १. पूर्ण सवध या मिलन [को०]।  
२. दुःख मिलाप। आलिंगन। ३. समोग। ४. पराजय। हार।  
५. निंदा। आक्रोश। कोसना। ६. शपथ। कर्म। ७. मिथ्या-  
पवाद। झूठा दोषारोपण। ८. भूत प्रेत का आवेश। ९. शक्ति।  
दुःख।

यौ०—अभिषगज्वर = भूत प्रेत आदि के आवेश या प्रभाव से  
उत्पन्न ज्वर।

अभिषगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अभिषङ्ग] वेद की एक ऋचा।

अभिषगरी—वि० [सं० अभिषङ्गिन्] अभिषग से युक्त। अभिषगवाला।

अभिषजन्—सञ्ज्ञा पु० [सं० अभिषङ्ग] दे० 'अभिषग' [को०]।

अभिषव—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. यज्ञ में स्नान। २. मद्य स्वीचना। शराव  
चुवाना। ३. सोमलता को कुचलकर गारना या निचोड़ना।  
४. सोमरस पान। ५. यज्ञ। ६. काजी। ७. स्नान। नहाना  
[को०]। ८. राज्यारोहण। ९. अधिकारप्राप्ति [को०]।

अभिषवण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. स्नान। २. सोमरस निकालने या  
निचोड़ने का साधन [को०]।

अभिषवणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सोमरस निकालने का साधन या  
यंत्र [को०]।

अभिषावक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सोमरस निचोड़नेवाला पुरोहित [को०]।

अभिषिचन—सञ्ज्ञा पु० [सं० अभिषिञ्चन] जल छिड़कना। उ०—  
अभिषिचन ब्राह्मण (अध्वयु), क्षत्रिय और वैश्य मिलकर  
करते थे जो कि राष्ट्र की तीन इकाइयाँ थीं।—हिंदु० सभ्यता,  
पृ० १०३।

अभिविक्त—वि० [म०][वि० स्त्री० अभिविक्ता] १ जिसका अभिप्रेत हुआ हो। जिसके ऊपर जल आदि छिड़का गया हो। जो जल आदि से नहलाया गया हो। २ बाधाशान्ति के लिये जिसपर मंत्र पढ़कर दूर्वा और कुश से पानी छिड़का गया हो। ३. जिसपर विधिपूर्वक जल छिड़ककर किसी अधिकार का भार दिया गया हो। राजपद पर निर्वाचित।

अभिपुत—वि० [स०] १ निचोड़ा हुआ। उ०—यह अतीव मधुर सोम, तुम्हारे लिये अभिपुत हुआ है।—प्रा० भा० पृ० १३३। २ स्नात। जो स्नान कर चुका हो। (को०)।

अभिपेक—सज्ञा पुं० [स०] १ जल से सिंचन। छिड़काव। २ ऊपर से जल डालकर स्नान। ३ बाधाशान्ति या मंगल के लिये मंत्र पढ़कर कुश और दूर्वा से जल छिड़कना। मार्जन। ४. विधिपूर्वक मंत्र से जल छिड़ककर अधिकारप्रदान। राजपद पर निर्वाचन। ५ यज्ञादि के पीछे शान्ति के लिये स्नान। ६ शिवलिंग के ऊपर तिपाई के सहारे जल से भरकर एक ऐसा घड़ा रखना जिसके पेदे में बारीक छेद, धीरे धीरे पानी टपकने के लिये हो। रुद्राभिपेक।

यौ०—अभिपेकपात्र = अभिपेक का पात्र। अभिपेकाह = अभिपेक का दिन। राज्यारोहण का दिन।

अभिपेकना ④—कि० सं० [सं० अभिपेक] अभिपेक करना। उ०—आजु अभिपेकत पिय को प्यारी। धरि दृग ध्यान नवल आसुन के भरि भरि उमने बारी।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६१८।

अभिपेकशाला—सज्ञा स्त्री० [स०] वह स्थान या मंडप जहाँ अभिपेक हो। राज्याभिपेक मंडप [को०]।

अभिपेक्ता—सज्ञा पुं० [स०] वह व्यक्ति जो अभिपेक करे। अभिपेक करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अभिपेक्य—वि० [सं०] दे० 'अभिपेक्षणीय' [को०]।

अभिपेचन—सज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक मंत्र से जल छिड़ककर अधिकारप्रदान। राजपद पर निर्वाचन। उ०—इसके बाद शक्ति, प्रभुता और प्रार्थना के मंत्र पढ़ते पढ़ते पुरोहित जलो से अभिपेचन करते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ११४।

अभिपेक्षणीय—वि० [सं०] १ अभिपेक योग्य। २ राज्यारोहण योग्य। ३ अभिपेक सवधी [को०]।

अभिपेक्ष्य—वि० [म०] दे० 'अभिपेक्षणीय' [को०]।

अभिपेक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] शत्रु के विरुद्ध वडाव या चढाई [को०]।

अभिपोता—सज्ञा पुं० [सं० अभिपोतृ] दे० 'अभिपावक' [को०]।

अभिप्यद—सज्ञा पुं० [सं० अभिप्यन्द] १ बहाव। स्राव। २ आँख का एक रोग जिसमें मुई के छेदने के समान पीड़ा और किरकिराहट होती है, आँखें लाल हो जाती हैं और उनसे पानी और कीचड़ निकलता है। आँख आना।

अभिप्यदिरमण—सज्ञा पुं० [सं० अभिप्यन्दिरमण] उपनगर। बड़े नगर से लगा हुआ छोटा नगर। शाखा, नगर [को०]।

अभिप्यदी—वि० [सं० अभिप्यदिन्] १ रसने, बहने या चूनेवाला। २ रेचक। दस्तावर। ३ जलापसारक [को०]।

अभिप्यग—सज्ञा पुं० [सं० अभिप्यङ्ग] घनिष्ठ मवध। प्रेम। अनुराग। उ०—आत्मस्नेह यह आत्मप्रेम है जो आत्मा में अभिप्यग उत्पन्न करता है।—संपूर्णा अभि० ग्र०, पृ० ३६६।

अभिसग—सज्ञा पुं० [सं० अभिसङ्ग] दे० 'अभिसग' [को०]।

अभिसताप—सज्ञा पुं० [सं० अभिसत्ताप] १ युद्ध। मवर्ष। स्पर्धा। २ पीडा [को०]।

अभिसदेह—सज्ञा पुं० [सं० अभिसदेह] १ अदना वदनी। विनिमय। २ जननेंद्रिय [को०]।

अभिसदोह—सज्ञा पुं० [सं० अभिसदोह] दे० 'अभिसदेह' [को०]।

अभिसव—सज्ञा पुं० [सं० अभिसव] १ ठग। धोखा देनेवाला। वचक। २ निदक [को०]।

अभिसंधक—सज्ञा पुं० [सं० अभिसन्धक] दे० 'अभिसंध' [को०]।

अभिसंधा—सज्ञा स्त्री० [सं० अभिसन्धा] १ कहना। वतलाना। २ वादा। वचन। ३ वात का पक्का व्यक्ति। ४ धोखा। छल [को०]।

अभिसंधान—सज्ञा पुं० [सं० अभिसन्धान] १ वचना। प्रतारणा। धोखा। जाल। २ फलोद्देश्य। लक्ष्य। उ०—इस कार्य को करने में उसका अभिसंधान क्या है यह देखना चाहिए (शब्द०)। ३ इच्छा या रुचि [को०]। ४ स्वार्थ [को०]।

अभिसंधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अभिसन्धि] १ प्रतारणा। वचना। धोखा। उ०—मरत में अभिसंधि का हो गध, तो मुझे निज राम की सौगध।—साकेत, पृ० १८७। २ चुपचाप कोई काम करने की कई आदमियों की सलाह। कुचक्र। पड्यत्र। उ०—तक्षशिलाधीश की भी उसमें अभिसंधि है।—चंद्र०, पृ० ७५। ३ विशेष समझौता या संधि। ४ लक्ष्य। उद्देश्य। ५ अतर्कित या सन्निहित अर्थ। अभिप्राय। राय। ६ जोड़। योग। ७ घोषणा। वादा।

अभिसन्धिकृत—कि० वि० [सं० अभिसन्धिकृत] जानबूझ कर किया हुआ [को०]।

अभिसंधिता—सज्ञा स्त्री० [सं० अभिसन्धिता] कलहातरिता नायिका। स्वयंप्रिय का अपमान कर पश्चात्ताप करनेवाली स्त्री।

अभिसपात—सज्ञा पुं० [सं० अभिसम्पात] १ सम्मिलन। मगम। २ युद्ध। सघर्ष। ३ बददुआ। शाप। ४ पतन [को०]।

अभिसवध—सज्ञा पुं० [सं० अभिसम्बन्ध] १ घनिष्ठ मवध। २ समागम। सम्मेलन [को०]।

अभिसयोग—सज्ञा पुं० [सं०] घनिष्ठ सवध। बहुत नजदीक का सवध [को०]।

अभिसश्रय—सज्ञा पुं० [सं०] शरण। आश्रय। आण। पनाह [को०]।

अभिसस्कार—सज्ञा पुं० [सं०] १ सूझ। विचार। कल्पना। २ व्यर्थ या निष्फल कार्य। ३ विकास। परिष्कार। उ०—चेतना का स्वभाव चित्त का अभिसस्कार करना है।—संपूर्णा अभि० ग्र०, पृ० ३४६।

अभिसमत—वि० [सं० अभिसम्मत] माननीय। आदरणीय। नमान्य [को०]।

अभिसर—सज्ञा पुं० [सं०] १ सगी। माथी। २ नहायक। मददगार। ३ सेवक। अनुचर [को०]।

अभिसरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ आगे जाना। २ नमीन गमन। ३ प्रिय से मिलने के लिये जाना।

अभिसरन(७)—सज्ञा पुं० [ सं० अभिसरण ] १ शरण । सहाय । सहारा । उ०—सतन को लै अभिसरन, समुक्ति सुगति प्रवीन । करम विपरजय बवहु नहि, सदा राम रस लीन ।—तुलसी (शब्द०) । २ दे० 'अभिसरण' ।

अभिसरना(७)—क्रि० अ० [ सं० अभिसरण ] १ सचरण करना । जाना । २ किसी वांछित स्थान को जाना । ३ नायक या नायिका का अपने प्रिय से मिलने के लिये सकेतस्थल को जाना । उ०—चकित चित्त साहस सहित, नील बसन-युत गात । कुन्टा सध्या अभिसरै, उत्सव तम अधिरात ।—केशव शब्द० ।

अभिसार—सज्ञा पुं० [ सं० ] [ वि० अभिसारिका, अभिसारी ] १ साधन । सहाय । सहारा । वा । २ युद्ध । ३ प्रिय से मिलने के लिये नायिका या नायक का सकेतस्थल में जाना । ४. सकेतस्थल । सहेत (को०) । ५ आक्रमण (को०) । ६ शक्ति । ताकत (को०) । ७ सहयोगी । साथी । अनुगत (को०) । ८ आजार । उपकरण । साधन (को०) । ९ शुद्ध करने का एक मन्त्र (को०) ।

अभिसारना(७)—क्रि० अ० [ सं० अभिसार से नाम० ] १ गमन करना । जाना । घूमना । २ प्रिय से मिलने के लिये नायिका या नायक का सकेत स्थान में जाना । उ०—समय जोग पट भूपन धारै । प्रिय अभिसारि गाप अभिसारै ।—नद० ग्र०, पृ० १५६ ।

अभिसारक(७)—वि० [ सं० ] अभिसार करनेवाला ।

अभिसारिका—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदों में एक । वह स्त्री जो सकेत स्थल में प्रिय से मिलने के लिये स्वयं जाय या प्रिय को बुलाए ।

विशेष—यह दो प्रकार की है, शुक्लाभिसारिका ( जो चाँदनी रात में गमन करे ) और कृष्णाभिसारिका ( जो अँधेरी रात में मिलने जाय ) कोई कोई एक तीसरा भेद दिवाभिसारिका (दिन में जानेवाली) भी मानते हैं । साहित्य शास्त्र में अभिसार के आठ स्थान कहे गए हैं—(१) खेत, (२) उपवन या बगीचा, (३) मन्दिर, (४) दूती या सहेली का निवासस्थान, (५) जंगल, (६) तीर्थस्थान, (७) शमशान । (८) नदीतट या परिसर ।

अभिसारिणी—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ अभिसारिका । २ त्रिष्टुप् छन्द का भेद जो ११ की जगह १२ वर्णों की स्थिति में जगती छन्द के सन्निकट जान पड़ता है (को०) ।

अभिसारी—वि० [ सं० अभिसारिन् ] [ सज्ञा स्त्री० अभिसारिका ] १ साधक । सहायक । २ प्रिया से मिलने के लिये सकेतस्थल में जानेवाला । उ०—धनि गोपी धनि ग्वाल ग्रन्थ सुरभी वनचारी । धनि यह पावन भूमि जहाँ गोविंद अभिसारी ।—सूर (शब्द०) । ३ आक्रमक । हमला करनेवाला (को०) । ४ आगे जानेवाला । सामने जानेवाला (को०) ।

अभिसेख(प)(७)—सज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'अभिवेक' । उ०—मुनिदेव मिले अभिसेख कीन्ह ।—हम्मरी रा०, पृ० १२ ।

अभिसेचना(७)—क्रि० सं० [ सं० अभिषेचन ] सीचना । अभिषिक्त करना । उ०—आजु कछु मगल धन उतए । वरनत बूढ़न मनु अभिसेचत मगल कलस लए । चमकि मगलामुखी ब्रामिनी मगल करत नए ।—भारवेदु ग्र०, भा २, पृ० ११४ ।

अभिस्कंद—सज्ञा पुं० [ सं० अभिस्कन्द ] १ आक्रमण । घावा । २ शत्रु (को०) ।

अभिस्नेह—वि० [ सं० ] घनिष्ठ स्नेह । चाह (को०) ।

अभिस्मरण—सज्ञा पुं० [ सं० अभि + स्मरण ] विशेष रूप से की गई याद । ध्यान । स्मृति । उ०—'स्मृति' मस्मृत वस्तु का प्रदि-स्मरण है ।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ३४७ ।

अभिस्पंद—सज्ञा पुं० [ सं० अभिस्पन्द ] १ 'अभिष्वद' (को०) ।

अभिहृत—वि० [ सं० ] १ पीटा हुआ । ताड़ित । आहत । आक्रांत । २ गुणा किया हुआ । गुणित । ३ पराजित । पराभूत । ४ बाधित । निग्रह (को०) ।

अभिहृति—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ निगाना लगाना । चोट करना । पीटना । २ गुणन क्रिया (को०) ।

अभिहर—सज्ञा पुं० [ सं० ] उठा ले जाना । ने भागना । हटा देना (को०) ।

अभिहर—वि० [ सं० ] उठाईगीर । ने भागनेवाला (को०) ।

अभिहरण—सज्ञा पुं० [ सं० ] छीन ले जाना । लूटना (को०) ।

अभिहर्ता—सज्ञा पुं० [ सं० अभिहर्तृ ] १ डाकू । २ अपहरणकर्ता । ने भागनेवाला (को०) ।

अभिहार—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ आक्रमण । हमला । उ०—क्यों पादपूतनि को कछुक पखड यारों, कोऊ अभिहार कै ममा को जान लूट्यो है ।—रत्नाकर, भा-२, पृ० १११ । २ मिश्रण । मिश्रण (को०) । ३ लूटपाट । चोरी । डाका (को०) । ४ प्रयत्न । चेष्टा (को०) । ५ शस्त्रसज्ज होना (को०) । ६ समीप लाना (को०) । ७ मध्य शराबी (को०) ।

अभिहारिनि(७)—वि० स्त्री० [ सं० अभिहारिणी ] सामने में हरण करने वाली । उ०—देखी सुनी ग्यारिनि कितेक ब्रजवारिनि पै राधा सी न और अभिहारिनि लखाई है । हेरन हीं हेरन हरयो तो है हमारी कछु काहूँ हीरानो पै न परन जनाई है ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० २२१ ।

अभिहास—सज्ञा पुं० [ सं० ] विनोद । हँसी । मजाक । दितली (को०) ।

अभिहित—वि० [ सं० ] १ उक्त । कथित । कहा हुआ । २ सबद्ध । युक्त । बट (को०) ।

अभिहितमवि—सज्ञा स्त्री० [ सं० अभिहितमन्वि ] कान्ठिय के अनुसार वह मधि जिमकी निचाडी न हुई हो ।

अभिहितान्वयवाद—सज्ञा पुं० [ सं० ] कुमारिल सद् प्रवृत्ति पुराने नैयायिकों, नीमासकों और आलंकारियों या साहित्यिकों का मत कि वाक्य का प्रत्येक पद अलग अलग और अनन्वित अर्थ रखता है । वाद में मन्त्र अर्थों का समन्वय करने पर समूचे वाक्य का अर्थ निकलता है । अन्विताभिधानवाद का उलटा ।

अभिहितान्वयवादी—सज्ञा पुं० [ सं० अभिहितान्वयवादिन् ] अभिहितान्वयवाद का अनुयायी या समर्थक ।

अभिहृति—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १ आवाहन । २ समाराधन । पूजन (को०) ।

अभिहोम—सज्ञा पुं० [ सं० ] घृत्न की आहुति देना । घी से होम करना (को०) ।

अभी—क्रि० वि० [ हि० अभि + ही ] १ इसी धरण । इसी समय । इसी वक्त । तुरत । तत्काल । २ अब तक । ३ अभी भी । ४ आजकल । इन दिनों । इस समय ।





अभूत—वि० [सं०] १ जो हुआ न हो। २ वर्तमान। ३ असत्य। मिथ्या (को०)। ४ अपूर्व। विलक्षण। अनोखा। उ०—आँगन खेलत घुटुर्छन धाए। उपमा एक अभूत भई तव जव जननी पट पीत उठाए। नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनु तडित छपाए।—सूर (शब्द०)।

अभूतदोष—वि० [मं०] दोषरहित। निर्दोष (को०)।

अभूतपूर्व—वि० [मं०] १ जो पहले न हुआ हो। २ अपूर्व। अनोखा। विलक्षण।

अभूतशत्रु—वि० [सं०] जिसका कोई शत्रु न हो। अजातशत्रु (को०)।

अभूताहरण—सज्ञा पुं० [मं०] १ नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का कपटयुक्त या व्यंग्यपूर्ण वचन कहना। गर्भसंधि के तेरह अंगों में से एक। २ अर्थार्थ वात कहना। छलपूर्ण वात कहना। (को०)।

अभूति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अस्तित्वहीनता। अविद्यमानता। २ अशक्तता। ३ निर्धनता। ४ विपत्ति। वर्षादि। विनाश (को०)।

अभूतोपमा—सज्ञा स्त्री० [मं०] उपमा के दस भेदों में से एक जिसमें उत्कर्ष के कारण उपमान का कथन न हो सके। उ०—जो पटतरि श्रि तीर्थ सम सीया। जग असि जुवति कहाँ कमनीया।—मानस, १।२४७।

अभूमि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह जो भूमि न हो। भूमि के अतिरिक्त अन्य पदार्थ। २ अनुपयुक्त स्थान। ३ स्थानाभाव। ४ पहुँच से परे का स्थान (को०)।

अभूमिज—वि० [मं०] १ निकटतम अथवा अनुपयुक्त स्थान में उत्पन्न। २ जो भूमि में उत्पन्न न हो (को०)।

अभूमिप्राप्तसैन्य—सज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह सेना जो अनुपयुक्त भूमि में पड़ गई हो। ऐसी जगह पड़ी हुई फौज जहाँ से लड़ना अशभव हो।

अभूरि—वि० [सं०] स्वल्प। कुछ। थोड़ा। कतिपय (को०)।

अभूष—वि० [सं०] अभूषित (को०)।

अभूषण—सज्ञा पुं० [सं०] अभूषण दे० 'आभूषण'। उ०—हीरन के अभूषण पै वारो जग ऐत।—नद० ग्र०, पृ० ३६५।

अभूषित—वि० [सं०] विना आभूषण के। अनलंकृत। विना सजाया हुआ (को०)।

अभूत—वि० [सं०] जिसे पारिश्रमिक न दिया जाता हो (को०)।

अभूतक—वि० [सं०] दे० 'अभूत' (को०)।

अभूतसैन्य—सज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसे वेतन या भत्ता न मिला हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार यह व्याधजि (बीमार) सैन्य से उपयोगी है, क्योंकि वेतन पा जाने पर जी लगाकर लड़ सकती है।

अभूश—वि० [मं०] थोड़ा। कुछ। चंद (को०)।

अभेडा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभेरा'।

अभेद<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभेदनीय, अभेद्य] १ भेद का अभाव। अभिन्नता। एकत्व। २ एकरूपता। समानता। ३ रूपक अलंकार के दो भेदों में से एक जिसमें उपमेय और उपमान

का अभेद विना निषेध के कथन किया जाय, जैसे—मुखचंद, चरणकमल। उ०—रमन मजरि पृच्छ फिगवत मुच्छ उसीरनि की फहरी है। चंदन, कुंद, गुलाबन, आमन मीत सुगधन की लहरी है। ताल वटे फण चक्र प्रवीन जू मित वियोगिनि की कहरी है। आनन ज्वाल गुलाल उठावत बाल वसन बडो जहरी है।—वेनी (शब्द०)। इसको कोई कोई पृथक् अलंकार भी मानते हैं।

अभेद<sup>२</sup>—वि० १ भेदशून्य। एकरूप। समान। उ०—ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनिह अभेद।—मानस, १।१०।

अभेद<sup>३</sup>—वि० [मं०] अभेद्य जिसका भेदन या छेदन न हो सके। जिसके भीतर कोई चमत् न घुस सके। जिसका विभाग न हो सके। उ०—कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि नम विषय उपाय न दूजा।—मानस, ६।७६।

अभेदनीय—वि० [मं०] दे० 'अभेद्य'।

अभेदबुद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] भेदरहित बुद्धि। एकतापरक बुद्धि। बुद्धि या विचार की वह स्थिति जिसमें भेदभाव नहीं होता।

अभेदवादी—वि० [मं०] अभेदवादिन् [वि० स्त्री० अभेदवादिनी] जीवात्मा और परमात्मा में भेद न माननेवाला। अद्वैतवादी। उ०—तेइ अभेदवादी जानी नर। देखा मैं चरिय कनिबुग कर।—मानस, ७।१००।

अभेदाभेद—वि० [सं०] एक। एकाकार। उ०—कही नरायण नामि है कही ब्रह्म कहि वेद। कहि शकर गिरजा कहीं, कहीं अभेदाभेद।—भक्ति०, पृ० २८५।

अभेद्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जिसका भेदन वा छेदन न हो सके। जिसके भीतर कोई चीज घुस न सके। जिसका विभाग न हो सके। २ जो टूट न सके। अखंडनीय। अविभाज्य।

अभेद्य<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] हीरा। हीरक। वज्र (को०)।

अभेय—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभेव'।

अभेरना—क्रि० सं० [सं०] अभिद, प्रा० अभिभड मिलाना। मिश्रित करना। एक में करना। उ०—जपहु बुद्धि कै दुई सन फेहु। दही चूर अम हिया अभेरहु।—जायसी (शब्द०)।

अभेरा—सज्ञा पुं० [मं०] अभि = सामने + रण = लड़ाई अथवा प्रा० अभिभड रगडा। झगडा। मुठभेड। टक्कर। मुकाबला। उ०—(क) उठै आगि दोउ डार अभेरा। कौन साथ तोहि बैरी केरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) विषम कहा मार मदमाते चलहि न पाउँ बटोरा रे। मद विनद अभेरा दहलन पाइय दुख भक्तभोरा रे।—तुलसी ग्र०, पृ० ५५३।

अभेव<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] अभेद। अभिन्नता। एकता।

अभेव<sup>२</sup>—वि० भेदरहित। अभिन्न। एक। उ०—सिप सुमिरन माँचा करै हो जाय अलख अभेव।—दरियावाना, पृ० ५।

अभे<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभेव'। उ०—मदा सुभाव सुनम सुमिरन वन, भक्तन अभे दियो।—सूर० १।४०।

अभेदिता—वि० [सं०] दे० 'अभेद्य' (को०)।

अभेन—वि० [मं०] दे० 'अभेय'। उ०—गर भे अभेन मुय सन्न रण्ये।—पृ० १।१०, १।३१२।

अभैपद④—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ग'ायपद' । उ०—ध्रुवहि अभैपद  
दियो मुरारी ।—सूर० ११।६० ।

अभैमंत्र④—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभयमन्त्र] अभयना प्रदान करने-  
वाला मन्त्र ।

अभैर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ?] घरन या लकड़ी जिसमें डोरी बाँधकर करघे  
की कपियाँ लटकाई जाती हैं । कलवाँसा । दढेरी ।

अभोक्तव्य—वि० [सं०] जो भोगने योग्य न हो । जिसका उपयोग न  
किया जाय । अनुपयुक्त [को०] ।

अभोक्ता—वि० [सं० अभोक्तृ] [वि० स्त्री० अभोक्त्री] १ भोग न  
करनेवाला । व्यवहार न करनेवाला । २ विरक्त [को०] ।

अभोक्षण④—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आभूषण' । उ०—अग्नि अभो-  
क्षण अचिछिद्य, तन सोत्रन सगताइ । मारु अवा-मउर जिन,  
कर लगइ कुमनाइ ।—ढोता०, दू० ४७१ ।

अभोग④—वि० [सं०] जिसका भोग न किया गया हो । अछूत ।  
उ०—वरनि भिंगार न जानेउं नख सिख जैम अभोग । तस  
जग किछू न पायउं उपम देउं ओहि जोग ।—जायसी (शब्द०) ।

अभोग<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० भोग का अभाव [को०] ।

अभोगी—वि० [सं० अभोगिन्] [स्त्री० अभोगिनी] भोग न करने-  
वाला । इन्द्रियो के सुख से उदासीन । विरक्त । उ०—हमरें  
जान सदाशिव जोगी । अज अनवद्य अकाम अभोगी ।—  
मानस, १।६० ।

अभोग्य—वि० [सं०] जो भोग योग्य न हो [को०] ।

अभोज④—वि० [सं० अभोज्य] न खाने योग्य । अभक्ष्य । उ०—  
भोज अभोज न रति विरति, नीरस सरस समान । भोग होइ  
अमिलाप विनु, महाभोग ता मान । राम च०, पृ० १५२ ।

अभोजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भोजन न करना । २ भोजन से परहेज ।  
३ उपवास । व्रत [को०] ।

अभोज्य—वि० [सं०] १ न खाने योग्य । अभक्ष्य । अभोज । २  
जिसका खाना वर्जित हो [को०] ।

अभोटी④—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] शूद्र श्रेणी के नौकर । उ०—मंदिर मे  
शूद्र श्रेणी के नौकर अभोटी कहलाते रहे ।—भू० म० भा०,  
पृ० ३२३ ।

अभोल④—वि० [हि० भूलना] जो भूलाने हो । जो भूलनेवाला  
न हो । उ०—अभोल अभोल अतोल अभग । अकज अगज  
अलुज अभग ।—पृ० रा०, ६४ । ३१७ ।

अभी④—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अभय' । उ०—नृपति बहुत जाचिय  
अभी ।—पृ० रा०, ५७ । २६७ ।

अभौतिक—वि० [सं०] १ जो पंचभूत का न बना हो । जो पृथ्वी,  
जल, अग्नि आदि से उत्पन्न न हो । अपार्थिव । २ अगोचर ।

अभौम—वि० [सं०] १ जो भूमि से उत्पन्न न हो । अभूमिज । २  
जो खराब या गलत जगह में पैदा हो [को०] ।

अभिभू④—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अभ्र' । उ०—उडै सार सार असी  
वक भार । मनो अभिभ सम वाल वज्जयो सवार ।—पृ० रा०,  
६१।२०२० ।

अभ्यंग—सञ्ज्ञा पुं० [संज्ञा अभ्यङ्ग] [वि० अभ्यक्त, अभ्यञ्जनीय] १ लेपन ।  
चारो ओर पोतना । मन मलकर लगाना । २ नवनीत ।  
नैनू [को०] । ३ तैलमर्दन । स्नेहन ।

यी०—तैलाभ्यंग ।

अभ्यजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभ्यञ्जन] १ तैल आदि की मानिष । २  
आँखों में सुरमा या अजन लगाना । ३ अगाराग । तैल आदि ।  
४ मक्खन । नवनीत [को०] ।

अभ्यञ्जनीय—वि० [सं० अभ्यञ्जनीय] १ पोतने योग्य । लगाने योग्य ।  
२ तेल या उवटन लगाने योग्य ।

अभ्यत④—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अभ्यतर' । उ०—अगम अगोचर  
रह्या अभ्यत ।—कवीर ग्र०, पृ० २६६ ।

अभ्यतज—वि० [सं० अभ्यन्तज] भीतरी । अत तक । अभ्यतर । उ०—  
रहै कौन अभ्यतज बल प्रकार ।—पृ० रा०, ५५।६६ ।

अभ्यतर<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभ्यन्तर] १ मध्य । बीच । उ०—निसि  
लों रमत कोप अभ्यतर, जो हित कहौ सो थोरी ।—सूर०,  
१०।३८४८ । २ हृदय । अत करण ।

अभ्यतर<sup>२</sup>—कि० वि० भीतर । अदर ।

अभ्यतर<sup>३</sup>—वि० १ सुपरिचित । अतरंग । निकटतम । २ घनिष्ठता के  
साथ सवद्ध । ३ कुशल । ४ भीतर का । अदर का । भीतरी ।  
उ०—बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यतर अथि न छूटै ।—  
तुलसी ग्र०, पृ० ५१५ ।

अभ्यतरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभ्यन्तरक] अतरंग मित्र । घनिष्ठ  
मित्र [को०] ।

अभ्यक्त—वि० [सं०] १ पोते हुए । लगाए हुए । २ तेल या उवटन  
लगाए हुए । ३ सुसज्ज । सजा हुआ [को०] ।

अभ्यग्र—वि० [सं०] १ नजदीक । समीप । नवीन । ताजा [को०] ।

अभ्यघीन—वि० [सं०] १ अघीन । जो किसी के अधिकार या  
नियंत्रण में हो । २ जो किसी नियम से बँधा हुआ हो [को०] ।

अभ्यनुज्ञा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्वीकृति । अनुमति । समति । २  
आदेश । ३ पदच्युति या अनुपस्थिति की माफी [को०] ।

अभ्यनुज्ञात—वि० १ स्वीकृत । २ समर्थन [को०] ।

अभ्यमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आक्रमण । घावा । २ घावात । ३  
रोग [को०] ।

अभ्यमित—वि० [सं०] १ रोगी । २ आहत । चोट खाए हुए [को०] ।

अभ्यर्चन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्यर्चना' ।

अभ्यर्चना—संज्ञा स्त्री० [सं०] समान । पूजा । आराधना [को०] ।

अभ्यर्ण<sup>१</sup>—वि० १ समीप । नजदीक । पास । २ समीप पहुँचा हुआ  
या आनेवाला [को०] ।

अभ्यर्ण<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० सामीप्य । निकटता [को०] ।

अभ्यर्थन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्यर्थना' ।

अभ्यर्थना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ समुख प्रार्थना । विनय । दम्बवास्त ।  
२ समान के लिये आगे बढ़कर लेना । अग्रवानी । उ०—लोग  
स्टेशन पर उनकी अभ्यर्थना के लिये खड़े थे (शब्द०) ।

अभ्यर्थनीय—वि० [सं०] १ प्रार्थना करने योग्य । विनय करने योग्य ।  
२ आगे बढ़कर लेने योग्य ।

अभ्यर्थित—वि० [सं०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढ़कर लिया गया हो [को०]।  
 अभ्यर्थी—वि० [सं० अभ्यर्थिन् [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।  
 अभ्यर्थ्य—वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।  
 अभ्यर्दन—सज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीड़न। [को०]।  
 अभ्यर्दित—वि० [सं०] जिसे पीड़ा पहुँचाई गई हो। पीड़ित [को०]।  
 अभ्यलकार—सज्ञा पुं० [सं० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मडन [को०]।  
 अभ्यलकृत—वि० [सं० अभ्यलङ्कृत] आभूषित। मण्डित। सज्जित [को०]।  
 अभ्यर्हणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ आदर। ३ समान। श्रद्धा [को०]।  
 अभ्यवकर्षण—सज्ञा पुं० [सं०] वहि निष्कामन। बाहर निकालना या गीचना [को०]।  
 अभ्यवस्कन्द—सज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड़ लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये नीवृत्ता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।  
 अभ्यवस्कन्दन—सज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कन्द'।  
 अभ्यवहरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।  
 अभ्यवहार<sup>१</sup>—वि० [सं०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।  
 अभ्यवहार<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।  
 यौ०—अभ्यवहार मद्यपि=भोजन का स्थान। खाने का मद्यपि।  
 अभ्यसन—सज्ञा पुं० [सं०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।  
 अभ्यसनीय—वि० [सं०] अभ्यास करने योग्य। जिमपर अभ्यास किया जाय [को०]।  
 अभ्यसित—वि० [सं०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।  
 अभ्यसूय—वि० [सं०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।  
 अभ्यसूया—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रोध। गुस्मा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।  
 अभ्यस्त—वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मशक किया हुआ। जैसे—वह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य में अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।  
 अभ्यस्त—वि० [सं०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।  
 अभ्यात—वि० [सं० अभ्यान्त] १ रोगी। आतुर। २ घायल। आहत [को०]।  
 अभ्याकर्ष—सज्ञा पुं० [सं०] पहलवानों का एक दूसरे को लटकाने के लिये सीता लोकना [को०]।  
 अभ्याकाक्षित<sup>१</sup>—वि० [सं० अभ्याकाक्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकाक्षित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नाला दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।  
 अभ्याख्यान—सज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा नालिण।  
 अभ्यागत<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ रूप में घट आया हुआ।  
 अभ्यागत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुँचा, जैसे—अभ्यागत सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।  
 अभ्यागम—सज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। पना। पडोस। ३ सामना। ४ मुकाबला। मुठभे ५ विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवाणी। ७ किर्मी न पहुँचना। ८ आघात। ९ बध [को०]। १०—शत्रु अभ्यागारिक—वि० [सं०] १ कुटुंब के पालने में तत्पर। न में फँसा हुआ। घरगारी। २ कुटुंब पालने में व्यग्र की भ्रमट में हैरान।  
 अभ्याघात—सज्ञा पुं० [सं०] १ आघात। आक्रमण। २ वा वट। [को०]।  
 अभ्यात्त—वि० [सं०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ वृद्ध का परिव्याप्त [को०]।  
 अभ्याधान—सज्ञा पुं० [सं०] प्रारण। स्वापन [को०]।  
 अभ्यापात—सज्ञा पुं० [सं०] विपत्ति। दुर्गति [को०]।  
 अभ्यामर्द—सज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। मर्ष [को०]।  
 अभ्याश<sup>१</sup>—वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।  
 अभ्याश<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ समीप्य। निकटता। पडोस २ नतीजा। ३ प्राप्ताज्ञा। अभ्युदय [को०]।  
 अभ्यास<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ बार बार किसी काम को कर प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अच शीलन। साधन। आवृत्ति। मशक। उ०—(क) अभ्यास के जडमति होत सुजान। रमरी आवत पर परत निसान। समा वि० (शब्द०)।  
 क्रि० प्र०—करना। होना। २. आवत। रवत। वा जैसे—उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है क्रि० प्र०—पडना।  
 ३ प्राचीनों के अनुसार एक काव्यालकार जिममें किसी को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि सुनि किय, जरचो न अग्नि मँझार। गयो गिरायो गि न वांको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन में मान उसे अलकार नहीं मानते। ४ अनुशामन पडोस [को०]। ५ गुणन [को०]। ७ संगीत में की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।  
 अभ्यास<sup>२</sup>—वि० [सं० अभ्यास] समीप। निकट।  
 अभ्यासकला—सज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कला जो विविध योगों के मिलन से बनती हैं। आर्मा याम का मेल।  
 अभ्यासयोग—सज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार पुनः

क्रिया । २. गंगातार एक ही विषय का बार बार चिन्तन करने में मन या मस्तिष्क की एकाग्रता ।  
 अभ्यासादन—सज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [को०] ।  
 अभ्यासित—वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित' । उ०—रात दिना के मुने किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सो कैसे वचो कहो मन कोटिक करौ उपाव ।—मारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३६ ।  
 अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [को० अभ्यासिनी] अभ्यास करने वाला । माधक ।  
 अभ्याहन—वि० [सं०] १ पीडित । ताडित । २ चावित । ३ दोषयुक्त [को०] ।  
 अभ्याहार—सज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना । २. अपहरण । चौर्य [को०] ।  
 अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी सदर्थ में कहा हुआ [को०] ।  
 अभ्युक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] १ सिचन । छिडकाव । सिचन । २. मार्जन [को०] ।  
 अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिडका हुआ । सिंचित । २ जिसपर छिडका गया हो । जिसका सिचन हुआ हो ।  
 अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिडकने योग्य ।  
 अभ्युचित—वि० [सं०] परवरित । प्रवृत्त । नियमित [को०] ।  
 अभ्युच्चय—सज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि । उत्थान । मपन्नता । उत्कर्ष । २ एकत्रीकरण [को०] ।  
 अभ्युच्छय—सज्ञा पुं० [सं०] १ चढ़ाव । उठान । २ मगीत में स्वर-मावन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध मा । अवरोही—सा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग स ।  
 अभ्युच्छित—वि० [सं०] उन्नत । उठा हुआ । उच्च [को०] ।  
 अभ्युत्थान—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना । २ किसी वडे के आने पर उनके आदर के लिये उठकर खड़ा हो जाना । प्रत्युद्गमन । ३ बढती । समृद्धि । उन्नति । गौरव । ४ उठान । आरम्भ । उदय । उत्पत्ति ।  
 अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [को० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खड़ा होनेवाला । २ आदर के लिये उठकर खड़ा होने वाला । ३ उन्नति करनेवाला । ४ बढनेवाला ।  
 अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ । २ आदर के लिये उठकर खड़ा हुआ । ३ उन्नत । बढा हुआ ।  
 अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य । २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो । जिसे उठकर आदर देना उचित हो । ३ उन्नति के योग्य ।  
 अभ्युदय—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, अभ्युदयिन्] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय । २ प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । ३ इष्टनाम । मनोरथ की मिद्वि । ४ विवाह आदि शुभ अवसर । ५. वृद्धि । वढती । उन्नति । तरक्की । ६ अस्तित्व में आना । आविर्भूत होना [को०] । ७ घर में सतान के जन्म लेने पर किया जाने वाला नादीमुख आदि । [को०] ।  
 अभ्युदाहरण—सज्ञा पुं० [सं०] नोटिन् के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण ।

अभ्युदित—वि० [सं०] १ उगा हुआ । निकला हुआ । उ प्रादुर्भूत । २ दिन चढ़े तरु सोनेवाला । ३ सूर्योदय के उठकर नित्यकर्म न करनेवाला । ४. समृद्ध । उन्नत उत्सव रूप में मनाया हुआ [को०] ।  
 अभ्युपगत—वि० [सं०] १ पास गया हुआ । सामने आया प्राप्त । २ स्वीकृत । अंगीकृत । मजूर किया हुआ । ३ स तुल्य [को०] ।  
 अभ्युपगम—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पान जाना । आना या जाना । प्राप्ति । २ स्वीकार । अंगीकार । ४ वादा करना [को०] । ४ न्याय के अनुसार सिद्धात के च में से एक ।  
 विशेष—बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर खडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अ सिद्धात कहते हैं । जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि है । इसपर उसका विनक्षी कहे कि अच्छा हम थोड़ी लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो व कि वह नित्य है या अनित्य । इस प्रकार मानना अ सिद्धात हुआ ।  
 अभ्युपपत्ति—सज्ञा को० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना दया । अनुग्रह । ३ अनुमोदन । स्वीकृति । मजूर सीखना । डाढस । ५ रक्षा । वचाव । ६ वादा [को०]  
 अभ्युपाय—सज्ञा को० [सं०] १ वादा । २ स्वीकृत । ३ माधन [को०] ।  
 अभ्युपायन—सज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट । उपहार । २ रि । त  
 अभ्युपेत—वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ । आया हुआ । २ वा हुआ । स्वीकृत [को०] ।  
 अभ्युषित—वि० [सं०] साधया निकट रहनेवाला ।  
 अभ्युषित—सज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०] ।  
 अभ्युद्ध—वि० [सं०] ममीप लाया हुआ [को०] ।  
 अभ्युष—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी । २ अ हुआ भोजन [को०] ।  
 अभ्यूह—सज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क । बहम । २ निष्कर्ष । ३ ४ विचार [को०] ।  
 अभ्र कष—वि० [सं० अभ्रक्षय] गगनचुम्बी । बहुत ऊँच  
 अभ्र कष—सज्ञा पुं० १ वायु । हवा । २ पर्वत [को०] ।  
 अभ्र लिह—वि० [सं०] गगनचुम्बी [को०] ।  
 अभ्र लिह—सज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०] ।  
 अभ्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ । बादल । २ आकाश । ३ धातु । ४ स्वर्ण । सोना । ५ नागरमोदा । ६ शून्य । ७ कपूर [को०] । ८ वेत वेश [को०] ।  
 अभ्रक—सज्ञा पुं० [सं०] अवरेक । मोडर । दे० 'अवरक' ।  
 अभ्रकसत्त्व—सज्ञा पुं० [सं०] इसरात [को०] ।  
 अभ्रकूट—सज्ञा पुं० [सं०] पर्वतारार वादा की चोटी [को०]  
 अभ्रगा—सज्ञा को० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [को०]  
 अभ्रनाग—सज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०] ।

अभ्यर्थित—वि० [स०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढ़कर लिया गया हो [को०]।  
 अभ्यर्थी—वि० [स० अभ्यर्थित] [वि० की० अभ्यर्थित] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करने वाला [को०]।  
 अभ्यर्थ्य—वि० [स०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।  
 अभ्यर्दन—सज्ञा पुं० [स०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीड़न। [को०]।  
 अभ्यर्दित—वि० [स०] जिसे पीड़ा पहुँचाई गई हो। पीड़ित [को०]।  
 अभ्यलकार—सज्ञा पुं० [स० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मडन [को०]।  
 अभ्यलकृत—वि० [स० अभ्यलङ्कृत] आभूषित। मडित। सज्जित [को०]।  
 अभ्यर्हणा—सज्ञा की० [स०] १ पूजा। २ आदर। समान। श्रद्धा [को०]।  
 अभ्यवकर्षण—सज्ञा पुं० [स०] बहिर्निष्कामन। बाहर निकालना या वीचन [को०]।  
 अभ्यवस्कन्द—सज्ञा पुं० [स० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड़ लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये नीयता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।  
 अभ्यवस्कन्दन—सज्ञा पुं० [स० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कन्द'।  
 अभ्यवहरण—सज्ञा पुं० [स०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।  
 अभ्यवहार<sup>१</sup>—वि० [स०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।  
 अभ्यवहार<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।  
 यौ०—अभ्यवहार मद्य = भोजन का स्थान। खाने का मद्य।  
 अभ्यसन—सज्ञा पुं० [न०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।  
 अभ्यसनीय—वि० [स०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [को०]।  
 अभ्यसित—वि० [स०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।  
 अभ्यसूय—वि० [स०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।  
 अभ्यसूया—सज्ञा की० [स०] १ क्रोध। गुस्मा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।  
 अभ्यस्त—वि० [स०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मशक किया हुआ। जैसे—वह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य में अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।  
 अभ्यस्त—वि० [स०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।  
 अभ्यात—वि० [स० अभ्यान्त] १ रोगी। आतुर। २ घायल। आहत [को०]।  
 अभ्याकर्ष—सज्ञा पुं० [स०] पहलवानों का एक दूसरे को लटकाने के लिये नीलाँ ठोकना [को०]।  
 अभ्याकाक्षित<sup>१</sup>—वि० [स० अभ्याकाक्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकाक्षित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूठा दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।  
 अभ्याख्यान—सज्ञा पुं० [न०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। नालिश।  
 अभ्यागत<sup>१</sup>—वि० [स०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ अति रूप में घर आया हुआ।  
 अभ्यागत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुँचा, जैसे—अभ्यागत सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।  
 अभ्यागम—सज्ञा पुं० [स०] १ सामने आना। उपस्थिति। २ सम। पता। पड़ोस। ३ सामना। ४ मुकाबला। मुठभेड़। युद्ध। ५ विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवाणी। ७ किसी निर्णय पर पहुँचना। ८ आघात। ९ वध (को०)। १०—शत्रुता (को०)।  
 अभ्यागारिक—वि० [स०] १ कुटुंब के पालने में तत्पर। लड़के वा मे फँसा हुआ। घरवारी। २ कुटुंब पालने में व्यग्र। गृहस्थ की झगड़ से हैरान।  
 अभ्याघात—सज्ञा पुं० [स०] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा। रुक। (को०)।  
 अभ्यात्त—वि० [स०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का विवेक। परिव्याप्त [को०]।  
 अभ्याधान—सज्ञा पुं० [स०] प्रारम्भ। स्थापन [को०]।  
 अभ्यापात—सज्ञा पुं० [स०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।  
 अभ्यामर्द—सज्ञा पुं० [स०] युद्ध। सघर्ष [को०]।  
 अभ्याश<sup>१</sup>—वि० [स०] समीपवर्ती। निकट [को०]।  
 अभ्याश<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ समीप्य। निकटता। पड़ोस २ परिणाम। नतीजा। ३ प्राप्तांश। अभ्युदय [को०]।  
 अभ्यास<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ बार बार किसी काम को करना। पूर्ण प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलम्बन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मशक। उ०—(क) करत क अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते पर परत निसान। समा वि० (शब्द०)।  
 क्रि० प्र०—करना। होना। २ आदत। रवत। बान। ३ जैसे—उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड़ गया है (शब्द०)।  
 क्रि० प्र०—पड़ना।  
 ३ प्राचीनों के अनुसार एक काव्यालंकार जिसमें किसी दुष्कर व को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि सुमिरन प्रह। किय, जरयो न अगिन भँभार। गयो गिरायो गिरिहु ते, न न वाँको वार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन में चमत्कार मान उसे अलंकार नहीं मानते। ४ अनुशासन (को०)। पड़ोस (को०)। ५ गुणन (को०)। ६ संगीत में एक ही की बार बार आवृत्ति। टंक [को०]।  
 अभ्यास<sup>७</sup>—वि० [स० अभ्यास] समीप। निकट।  
 अभ्यासकला—सज्ञा पुं० [स०] योग की उन चार कलाओं में से जो विविध योगों के भेद से बनती है। आसना और प्राणायाम का मेल।  
 अभ्यासयोग—सज्ञा पुं० [स०] १ बार बार अनुशीलन करने

क्रिया । २ अगातार एक ही विषय का बार बार चिन्तन करने से मन या-मस्तिष्क की एकाग्रता ।

अभ्यासादन—सज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [को०] ।

अभ्यासित(पुं०)—वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यासित' । उ०—रात दिना के सुनै किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन मो कैसे वचो कहो मन कोटिक करी उपाव ।—मारनेदुं अ०, भा० २, पृ० ५३६ ।

अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [को० अभ्यासिनी] अभ्यास करने वाला । माधक ।

अभ्याहत—वि० [सं०] १ पीडित । ताडित । २ बाधित । ३ दोषयुक्त [को०] ।

अभ्याहार—सज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना । २ अपहरण । चौर्य [को०] ।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी मर्म में कहा हुआ [को०] ।

अभ्युक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन । छिड़काव । सिंचन । २ मार्जन [को०] ।

अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिड़का हुआ । सिंचित । २ जिसपर छिड़का गया हो । जिसका सिंचन हुआ हो ।

अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिड़कने योग्य ।

अभ्युचित—वि० [सं०] पराजित । प्रवृत्त । नियमित [को०] ।

अभ्युच्चय—सज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि । उत्थान । संपन्नता । उत्कर्ष । २ एकत्रीकरण [को०] ।

अभ्युच्छय—सज्ञा पुं० [सं०] १ उठाव । उठान । २ संगीत में स्वर-साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा । अवरोही—मा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग म ।

अभ्युच्छित—वि० [सं०] उन्नत । उठा हुआ । उच्च [को०] ।

अभ्युत्थान—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना । २ किसी वृद्धि के आने पर उसके आवरण के लिये उठकर खड़ा हो जाना । प्रत्युद्गमन । ३ बढ़ती । समृद्धि । उन्नति । गौरव । ४ उठान । आरम्भ । उदय । उत्पत्ति ।

अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [को० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खड़ा होनेवाला । २ आदर के लिये उठकर खड़ा होने वाला । ३ उन्नति करनेवाला । ४ बढ़नेवाला ।

अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ । २ आदर के लिये उठकर खड़ा हुआ । ३ उन्नत । बढ़ा हुआ ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य । २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो । जिसे उठकर आदर देना उचित हो । ३ उन्नति के योग्य ।

अभ्युदय—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, अभ्युदयिन्] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय । २ प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । ३ इष्टनाम । मनोरथ की निधि । ४ विवाह । आदि शुभ अवसर । ५ वृद्धि । वृत्ति । उन्नति । तरक्की । ६ अस्तित्व में आना । आविर्भूत होना [को०] । ७ घर में सतान के जन्म लेने पर किया जाने वाला नादीमुख आदि । [को०] ।

अभ्युदाहरण—सज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण ।

अभ्युदित—वि० [सं०] १ उगा हुआ । निकला हुआ । उत्पन्न । प्रादुर्भूत । २ दिन चढ़े तरु मोनेवाला । ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला । ४ समृद्ध । उन्नत । ५ उत्सव रूप में मनाया हुआ [को०] ।

अभ्युपगत—वि० [सं०] १ पास गया हुआ । सामने आया हुआ । प्राप्त । २ स्वीकृत । अंगीकृत । मजूर किया हुआ । ३ समान । तुल्य [को०] ।

अभ्युपगम—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना । सामने आना या जाना । प्राप्ति । २ स्वीकार । अंगीकार । मजूरी । ३ वादा करना [को०] । ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदों में से एक ।

विशेष—विना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं । जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है । इसपर उसको विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोड़ी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य । इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ ।

अभ्युपपत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना । २ दया । अनुग्रह । ३ अनुमोदन । स्वीकृति । मजूरी । ४ सीखना । ढाँढस । ५ रक्षा । बचाव । ६ वादा [को०] ।

अभ्युपाय—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा । २ स्वीकृत । ३ उ । ४ साधन [को०] ।

अभ्युपायन—सज्ञा पुं० [सं०] १ मँट । उधार । २ रिस्वत [को०]

अभ्युपेत—वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ । आया हुआ । २ वादा कि हुआ । स्वीकृत [को०] ।

अभ्युषित<sup>१</sup>—वि० [सं०] माथ या ठिठ रङ्गनेवाला ।

अभ्युषित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० माथ रहनेवाला [को०] ।

अभ्युष—वि० [सं०] समीप लाया हुआ [को०] ।

अभ्युष—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी । २ आधा एक हुआ भोजन [को०] ।

अभ्युह—सज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क । बहस । २ निष्कर्ष । ३ अनुमान । ४ विचार [को०] ।

अभ्र कष<sup>१</sup>—वि० [सं० अभ्रक्ष्व] गगनबुद्धी । बहुत ऊँचा [को०]

अभ्र कष<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ वायु । हवा । २ पर्वत [को०] ।

अभ्र लिह<sup>१</sup>—वि० [सं०] गगनबुद्धी [को०] ।

अभ्र लिह<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०] ।

अभ्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ । बादल । २ आकाश । ३ अभ्रघातु । ४ स्वर्ण । सोना । ५ नागरमोवा । ६ गणित शून्य । ७ कपूर [को०] । ८ वेत वेश [को०] ।

अभ्रक—सज्ञा पुं० [सं०] अवरोक । मोडर । दे० 'अवरक' ।

अभ्रकसत्त्व—सज्ञा पुं० [सं०] इस्पात [को०] ।

अभ्रकूट—सज्ञा पुं० [सं०] पर्वतारोह वा रा की चोटी [को०] ।

अभ्रगगा—सज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [को०] ।

अभ्रनाग—सज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०] ।



अभ्यसिन—वि० [म०] १ जिसने प्रार्थना की गई हो। जिसने विनय की गई हो। २. जो आगे बटकर गया गया हो [को०]।  
 अभ्यर्च्य—वि० [म०] अभ्यर्च्य [वि०] स्त्री अभ्यर्चनी अभ्यर्चना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।  
 अभ्यर्च्य—वि० [म०] १० 'अभ्यर्चनीय'।  
 अभ्यर्दन—नञ् प्र० [म०] कष्ट पहुँचाना नाव। उत्पीड़न। [को०]।  
 अभ्यर्दिन—वि० [म०] जिसे पीड़ा पहुँचाई गई हो। पीड़ित [को०]।  
 अभ्यर्त्तार—नञ् प्र० [म०] अभ्यर्त्तार [वि०] आनुपण। मडन [को०]।  
 अभ्यर्त्तन—वि० [म०] अभ्यर्त्तन [वि०] आधुपित। मडन। मज्जित [को०]।  
 अभ्यर्त्तना—नञ् प्र० [म०] १ पूजा। २ आदर। नमान। भद्रा [को०]।  
 अभ्यवर्कषण—नञ् प्र० [म०] वहि निष्कामन। बाहर निकालना या गीनना [को०]।  
 अभ्यवस्कन्द—नञ् प्र० [म०] अभ्यवस्कन्द १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के विनाश चतुर्वर्क आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड़ लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के निचे नीचता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।  
 अभ्यवस्कन्दन—नञ् प्र० [म०] अभ्यवस्कन्दन १० 'अभ्यवस्कन्द'।  
 अभ्यवहरण—नञ् प्र० [म०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गने के नीचे उतारना [को०]।  
 अभ्यवहार<sup>१</sup>—वि० [म०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।  
 अभ्यवहार<sup>२</sup>—नञ् प्र० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।  
 यो०—अभ्यवहार मडप= भोजन का स्थान। खाने का मडप।  
 अभ्यसन—नञ् प्र० [म०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।  
 अभ्यसनीय—वि० [म०] अभ्यास करने योग्य। जिनपर अभ्यास किया जाय [को०]।  
 अभ्यसित—वि० [म०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।  
 अभ्यसूय—वि० [म०] १ क्रोधी। गुस्सैन। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।  
 अभ्यसूया—नञ् प्र० [म०] १ क्रोधी। गुस्सा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।  
 अभ्यस्त—वि० [म०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मशक किया हुआ। जैसे—यह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य में अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीन [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ परका। आदी [को०]।  
 अभ्यस्त—वि० [म०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।  
 अभ्यास—वि० [म०] अभ्यास १. रोगी। आतुर। २. धारण। धारण [को०]।  
 अभ्यास्य—नञ् प्र० [म०] पहलवानों का एक दूसरे को लतकारने के लिए लीला खेलना [को०]।  
 अभ्यासाक्षित<sup>१</sup>—वि० [म०] अभ्यासाक्षित चाहा हुआ। अभि-  
 मति [को०]।

अभ्यासाक्षित<sup>२</sup>—नञ् प्र० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूठ दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।  
 अभ्याख्यान—नञ् प्र० [म०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। झूठी नालिश।  
 अभ्यागत<sup>१</sup>—वि० [म०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ अतिथि रूप में घर आया हुआ।  
 अभ्यागत<sup>२</sup>—नञ् प्र० अतिथि। मेहमान। पहुँचा, जैसे—अभ्यागत की सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।  
 अभ्यागम—नञ् प्र० [म०] १ सामने आना। उपस्थिति। २ समी-  
 पता। पड़ोस। ३ सामना। ४. मुकाबिला। मुठभेड़। युद्ध।  
 ५ विरोध। ६. अभ्युत्थान। अगवाणी। ७ किसी निरुत्तर पर  
 पहुँचना। ८ आघात। ९ वध [को०]। १०—अनुता [को०]।  
 अभ्यागारिक—वि० [म०] १ कुटुंब के पालने में तत्पर। लड़के वा तो  
 में फँसा हुआ। घरवारी। २ कुटुंब पालने में व्यग्र। गृहस्थी  
 की झझट से हैरान।  
 अभ्याघात—नञ् प्र० [म०] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा। रुका-  
 वट। [को०]।  
 अभ्यात्त—वि० [म०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का विवेक्षण।  
 परिव्याप्त [को०]।  
 अभ्याधान—नञ् प्र० [म०] प्रारम्भ। स्थापन [को०]।  
 अभ्यापात—नञ् प्र० [म०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।  
 अभ्यामर्द—नञ् प्र० [म०] युद्ध। मर्दप [को०]।  
 अभ्याश<sup>१</sup>—वि० [म०] समीपवर्ती। निकट [को०]।  
 अभ्याश<sup>२</sup>—नञ् प्र० १ समीप्य। निकटता। पड़ोस २ परिणाम।  
 नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [को०]।  
 अभ्यास<sup>१</sup>—नञ् प्र० [म०] १ बार बार किसी काम को करना। पूर्णता,  
 प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलम्बन। अनु-  
 शीलन। माधन। आवृत्ति। मशक। उ०—(क) करत करत  
 अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते मिन  
 पर परत निसान। समा वि० (शब्द०)।  
 क्रि० प्र०—करना। होना। २ आदत। रवत। वान। टेव।  
 जैसे—उन्हें तो गाली देने का अभ्यास पड़ गया है (शब्द०)।  
 क्रि० प्र०—पड़ना।  
 ३ प्राचीनों के अनुसार एक काव्यालंकार जिसमें किसी दुष्कर वात  
 को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि सुमिरन प्रह्लाद  
 किय, जरखो न अगिन मँभार। गयो गिरायो गिरिहु ते, गयो  
 न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन में चमत्कार न  
 मान उसे अलंकार नहीं मानते। ४ अनुशामन [को०]। ५  
 पड़ोस [को०]। ६ गुणन [को०]। ७ मगीत में एक ही पद  
 की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।  
 अभ्यास<sup>२</sup>—वि० [म०] अभ्यास समीप। निकट।—अनेकार्थ०।  
 अभ्यामकला—नञ् प्र० [म०] योग की उन चार कलाओं में से एक  
 जो विविध योगों के मेल में बनती है। आभा और प्राण-  
 याम का मेल।  
 अभ्यासयोग—नञ् प्र० [म०] १. बार बार अनुशीलन करने की

क्रिया । २। गतार एक ही विषय का बार बार बितन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता ।

अभ्यासादन-सञ्ज्ञा पुं० [न०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [को०] ।

अभ्यासित(उ)-वि० [न० अभ्यास] दे० 'अभ्यासित' । उ०-रात दिना के मुनं किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सो कैमे वचो कहो मन कोटिक करो उपाय ।-मारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५३६ ।

अभ्यासी-वि० [म० अभ्यासिन्] [स्त्री अभ्यासिनी] अभ्यास करने वाला । नाथक ।

अभ्याहत-वि० [न०] १ पीडित । ताडित । २ बाधित । ३ दोषयुक्त [को०] ।

अभ्याहार-सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ निकट लाना । २ अपहरण । चोरी [को०] ।

अभ्युक्त-वि० [म०] किसी मद में कहा हुआ [को०] ।

अभ्युक्षण-सञ्ज्ञा पुं० [न०] १ सेवन । छिडकाव । मिचन । २ मार्जन [को०] ।

अभ्युक्षित-वि० [स०] १ छिडका हुआ । सिंचित । २ जिसपर छिडका गया हो । जिसका सिंचन हुआ हो ।

अभ्युक्ष्य-वि० [म०] छिडकने योग्य ।

अभ्युचित-वि० [म०] पराजित । प्रवर्जित । नियमित [को०] ।

अभ्युच्चय-सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ वृद्धि । उत्थान । मपन्नता । उत्कर्ष । २ एकत्रीकरण [को०] ।

अभ्युच्छय-सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ चढाव । उठान । २ सगीत में स्वर-माधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है-सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा । अवरोही-सा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग म ।

अभ्युच्छिन-वि० [म०] उन्नत । उठा हुआ । उच्च [को०] ।

अभ्युत्थान-सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थिन, अभ्युत्थेय] १ उठना । २ किसी वृद्ध के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खड़ा हो जाना । प्रत्युद्गमन । ३ बढ़ती । समृद्धि । उन्नति । गौरव । ४ उठान । आरम । उदय । उत्पत्ति ।

अभ्युत्थायी-वि० [म० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खड़ा होनेवाला । २ आदर के लिये उठकर खड़ा होने वाला । ३ उन्नति करनेवाला । ४ बढ़नेवाला ।

अभ्युत्थित-वि० [म०] १ उठा हुआ । २ आदर के लिये उठकर खड़ा हुआ । ३ उन्नत । बढ़ा हुआ ।

अभ्युत्थेय-वि० [म०] १ उठने योग्य । २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो । जिसे उठकर आदर देना उचित हो । ३ उन्नति के योग्य ।

अभ्युदय-सञ्ज्ञा पुं० [म०] [वि० अभ्युदित, अभ्युदयिन्] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय । २ प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । ३ इष्टनाम । मनोरथ की निधि । ४ विवाह आदि शुभ अवसर । ५ वृद्धि । बढ़ती । उन्नति । तरक्की । ६ अस्तित्व में आना । आविर्भूत होना [को०] । ७ घर में सतान के जन्म लेने पर किया जाने वाला नादीमुख धाढ़ । [को०] ।

अभ्युदाहरण-सञ्ज्ञा पुं० [म०] क्रौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण ।

अभ्युदित-वि० [न०] १ उगा हुआ । निकला हुआ । उत्पन्न । प्रादुर्भूत । २ दिन चढ़े तक सोनेवाला । ३ सूर्योदय के समय उठकर निर्यकर्म न करनेवाला । ४ समृद्ध । उन्नत । ५ उत्तम रूप में मनाया हुआ [को०] ।

अभ्युपगत-वि० [न०] १ पाम गया हुआ । सामने आया हुआ । प्राप्त । २ स्वीकृत । अंगीकृत । मजूर किया हुआ । ३ ममान । तुल्य [को०] ।

अभ्युपगम-सञ्ज्ञा पुं० [न०] [वि० अभ्युपगत] १ पाम जाना । सामने आना या जाना । प्राप्ति । २ स्वीकार । अंगीकार । मजूरी । ३ वादा करना [को०] । ४ न्याय के अनुसार मित्रता के चार भेदों में से एक ।

विशेष-विना पगीला किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खडन करना है, फिर उसकी विणेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं । जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है । इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोड़ी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य । इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ ।

अभ्युपपत्ति-सञ्ज्ञा स्त्री [म०] १ सहायता के लिये पहुँचना । २ दया । अनुग्रह । ३ अनुमोदन । स्वीकृति । मजूरी । ४ सीखना । डाढस । ५ रक्षा । बचाव । ६ वादा [को०] ।

अभ्युपाय-सञ्ज्ञा स्त्री [स०] १ वादा । २ स्वीकृत । ३ उपाय माधन [को०] ।

अभ्युपायन-सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ भेंट । उभार । २ रिस्वत [को०] ।

अभ्युपेत-वि० [स०] १ पहुँचा हुआ । आया हुआ । २ वादा किया हुआ । स्वीकृत [को०] ।

अभ्युषित<sup>१</sup>-वि० [म०] साधना निकट रहनेवाला ।

अभ्युषित<sup>२</sup>-सञ्ज्ञा पुं० साध रहनेवाला [को०] ।

अभ्युष-वि० [स०] ममीप लाया हुआ [को०] ।

अभ्यूप-सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ एक प्रकार की रोटी । २ आघा पका हुआ भोजन [को०] ।

अभ्यूह-सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ तर्क । वहन । २ निष्कर्ष । ३ अनुमान । ४ विचार [को०] ।

अभ्रकप<sup>१</sup>-वि० [स० अभ्रक्ष्व] गगनचुंबी । बहुत ऊँचा [को०] ।

अभ्रकप<sup>२</sup>-सञ्ज्ञा पुं० १ वायु । हवा । २ पर्वत [को०] ।

अभ्रलिह<sup>१</sup>-वि० [म०] गगनचुंबी [को०] ।

अभ्रलिह<sup>२</sup>-सञ्ज्ञा पुं० [स०] हवा [को०] ।

अभ्र-सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ मेघ । बादल । २ आकाश । ३ अभ्रक धातु । ४ स्वर्ण । मोना । ५ नागरमोवा । ६ गणित में शून्य । ७ कपूर [को०] । ८ वेत वेश [को०] ।

अभ्रक-सञ्ज्ञा पुं० [स०] अवसर । मोडर । दे० 'अवरक' ।

अभ्रकेसत्व-सञ्ज्ञा पुं० [म०] इस्मात [को०] ।

अभ्रकूट-सञ्ज्ञा पुं० [म०] पर्वतानार बादल की चोटी [को०] ।

अभ्रगगा-सञ्ज्ञा स्त्री [स० अभ्रगङ्गा] आकाशगगा [को०] ।

अभ्रनाग-सञ्ज्ञा पुं० [स०] ऐरावत [को०] ।

अभ्यर्थित—वि० [सं०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढ़कर लिया गया हो [को०]।

अभ्यर्थी—वि० [सं० अभ्यर्थिन् [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।

अभ्यर्थ्य—वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।

अभ्यर्दन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कण्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [को०]।

अभ्यर्दित—वि० [सं०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [को०]।

अभ्यलकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मडन [को०]।

अभ्यलकृत—वि० [सं० अभ्यलङ्कृत] आभूषित। मडित। सज्जित [को०]।

अभ्यर्हणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ आदर। समान। श्रद्धा [को०]।

अभ्यवकर्षण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वहि निष्कामन। बाहर निकालना या खींचना [को०]।

अभ्यवस्कद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड़ लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये नीयता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।

अभ्यवस्कदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कद'।

अभ्यवहरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।

अभ्यवहार<sup>१</sup>—वि० [सं०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।

अभ्यवहार<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।

यो०—अभ्यवहार मद्य = भोजन का स्थान। खाने का मद्य।

अभ्यसन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।

अभ्यसनीय—वि० [सं०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [को०]।

अभ्यसित—वि० [सं०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

अभ्यसूय—वि० [सं०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।

अभ्यसूया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रोध। गुस्मा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।

अभ्यस्त—वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मशक किया हुआ। जैसे—उह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य में अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।

अभ्यस्त—वि० [सं०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।

अभ्यात—वि० [सं० अभ्यात] १ रोगी। आतुर। २ घायल। आहत [को०]।

अभ्याकर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पहलवानों का एक दूसरे को लतकारने के लिये सीनों ठोकना [को०]।

अभ्याकाक्षित<sup>१</sup>—वि० [सं० अभ्याकाक्षित] चाहा हुआ। अभि-लपित [को०]।

अभ्याकाक्षित<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी तालिश। झूठ दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभ्याख्यान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। झूठी तालिश।

अभ्यागत<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ सामने या नमीप आया हुआ। २ प्रतिवि रूप में घर आया हुआ।

अभ्यागत<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुँचा, जैसे—अभ्यागत की सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यागम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सामने घाना। उपस्थिति। २ समीपना। पड़ोस। ३ सामना। ४ मुकाबिला। मुठभेड़। युद्ध। ५ विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवान्। ७ किमी. निर्गुण पर पहुँचना। ८ आघात। ९ वध (को०)। १०—अनुता (को०)।

अभ्यागारिक—वि० [सं०] १ कुटुंब के पालने में तत्पर। लड़के वा तो में फँसा हुआ। घरवारी। २ कुटुंब पालने में व्यग्र। गृहस्थों की झूझ से हैरान।

अभ्याघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आघात। आक्रमण। २ वाधा। रुकावट। (को०)।

अभ्यात्त—वि० [सं०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का विगेषण। परिव्याप्त [को०]।

अभ्याधान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रारम्भ। स्थापन [को०]।

अभ्यापात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विरक्ति। दुःख। [को०]।

अभ्यामर्द—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। मर्षण [को०]।

अभ्याज<sup>१</sup>—वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।

अभ्याश<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ मामीप्य। निकटता। पड़ोस २ परिणाम। नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युद्य [को०]।

अभ्यास<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बार बार किसी काम को करना। पूर्णता प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलम्बन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मरक। उ०—(क) करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान। समा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। होना। २ आदत। रव। बान। टेव। जैसे—उन्हें तो गाली देने का अभ्यास पड़ गया है (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

३ प्राचीनों के अनुसार एक काव्यालंकार जिसमें किसी दुष्कर वाक्य को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि मुमिरन प्रह्लाद किय, जरघो न अग्नि मँझार। गयो गिरायो गिरिहु ते, शयो न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन में चमत्कार न मान उसे अलंकार नहीं मानते। ४ अनुशासन (को०)। ५ पड़ोस (को०)। ६ गुणन (को०)। ७ संगीत में एक ही पद की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।

अभ्यास<sup>२</sup>—वि० [सं० अभ्यास] समीप। निकट।—अनेकार्थ०।

अभ्यासकला—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कलाओं में से एक जो विविध योगों के मेल से बनती है। आसा और प्राणायाम का मेल।

अभ्यासयोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बार बार अनुशीलन करने की

क्रिया । २ गतांतर एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता ।

अभ्यासादन—सज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [को०] ।

अभ्यासित—वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यासित' । उ०—रात दिना

के मुनै किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन मो कैसे वचो कहो

मन कोटिक करो उपाव ।—मारनेहु ग्र०, भा० २, पृ० ५३६ ।

अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [को० अभ्यासिनी] अभ्यास करने वाला । नाथक ।

अभ्याहन—वि० [सं०] १ पीडित । ताडित । २ बाधित । ३ दोषयुक्त [को०] ।

अभ्याहार—सज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना । २ अपहरण । चौर्य [को०] ।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी मदर्भ में कहा हुआ [को०] ।

अभ्युक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन । छिड़काव । सिंचन । २ मार्जन [को०] ।

अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिड़का हुआ । सिंचित । २ जिसपर छिड़का गया हो । जिसका सिंचन हुआ हो ।

अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिड़कने योग्य ।

अभ्युचित—वि० [सं०] परामर्शित । प्रवर्तित । नियमित [को०] ।

अभ्युच्चय—सज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि । उत्थान । संपन्नता । उत्कर्ष । २ एकत्रीकरण [को०] ।

अभ्युच्छय—सज्ञा पुं० [सं०] १ चढ़ाव । उठान । २ मगीत में स्वर-मावन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध मा । अवरोही—मा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग न ।

अभ्युच्छिन—वि० [सं०] उन्नत । उठा हुआ । उच्च [को०] ।

अभ्युत्थान—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थिन, अभ्युत्थेय] १ उठना । २ किसी वडे के आने पर उनके आदर के लिये उठकर खड़ा हो जाना । प्रत्युद्गमन । ३ बढ़ती । समृद्धि । उन्नति । गौरव । ४ उठान । आरम्भ । उदय । उत्पत्ति ।

अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [को० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खड़ा होनेवाला । २ आदर के लिये उठकर खड़ा होने वाला । ३ उन्नति करनेवाला । ४ बढ़नेवाला ।

अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ । २ आदर के लिये उठकर खड़ा हुआ । ३ उन्नत । बढ़ा हुआ ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य । २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो । जिसे उठकर आदर देना उचित हो । ३ उन्नति के योग्य ।

अभ्युदय—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, अभ्युदयिन्] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय । २ प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । ३ इष्टलाभ । मनोरथ की सिद्धि । ४ विवाह आदि शुभ अवसर । ५ वृद्धि । बढ़ती । उन्नति । तरक्की । ६ अस्तित्व में आना । आविर्भूत होना [को०] । ७ घर में सतान के जन्म लेने पर किया जाने वाला नादीमुखे आद । [को०] ।

अभ्युदाहरण—सज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण ।

अभ्युदित—वि० [सं०] १ उगा हुआ । निकला हुआ । उत्पन्न । प्रादुर्भूत । २ दिन चढ़े तक सोनेवाला । ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला । ४ समृद्ध । उन्नत । ५ उत्सव रूप में मनाया हुआ [को०] ।

अभ्युपगत—वि० [सं०] १ पास गया हुआ । सामने आया हुआ । प्राप्त । २ स्वीकृत । अंगीकृत । मजूर किया हुआ । ३ समान । तुल्य [को०] ।

अभ्युपगम—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना । सामने आना या जाना । प्राप्ति । २ स्वीकार । अंगीकार । मजूरी । ३ वादा करना [को०] । ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदों में से एक ।

विशेष—विना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खंडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं । जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है । इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोड़ी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य । इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ ।

अभ्युपपत्ति—सज्ञा को० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना । २ दया । अनुग्रह । ३ अनुमोदन । स्वीकृति । मजूरी । ४ सीखना । ठाढस । ५ रक्षा । वचाव । ६ वादा [को०] ।

अभ्युपाय—सज्ञा को० [सं०] १ वादा । २ स्वीकृति । ३ उपाय साधन [को०] ।

अभ्युपायन—सज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट । उपहार । २ रिस्वत [को०] ।

अभ्युपेत—वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ । आया हुआ । २ वादा किया हुआ । स्वीकृत [को०] ।

अभ्युषित<sup>१</sup>—वि० [सं०] सावधानी से रहनेवाला ।

अभ्युषित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० सावधान रहनेवाला [को०] ।

अभ्युषूढ—वि० [सं०] ममीप लाया हुआ [को०] ।

अभ्युषूष—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी । २ आधा पका हुआ भोजन [को०] ।

अभ्युह—सज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क । वहन । २ निष्कर्ष । ३ अनुमान । ४ विचार [को०] ।

अभ्र कष<sup>१</sup>—वि० [सं० अभ्रक्षूष] गगनचुबी । बहुत ऊँचा [को०] ।

अभ्र कष<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ वायु । हवा । २ पर्वत [को०] ।

अभ्र लिह<sup>१</sup>—वि० [सं०] गगनचुबी [को०] ।

अभ्र लिह<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०] ।

अभ्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ । बादल । २ आकाश । ३ अभ्रक धातु । ४ स्वर्ण । सोना । ५ नागरमोया । ६ गरुड में शून्य । ७ कपूर [को०] । ८ वेत वेश [को०] ।

अभ्रक—सज्ञा पुं० [सं०] अवरेक । मोडर । दे० 'अवरक' ।

अभ्रकसत्त्व—सज्ञा पुं० [सं०] इस्नात [को०] ।

अभ्रकूट—सज्ञा पुं० [सं०] पर्वतार वाद की चोटी [को०] ।

अभ्रगगा—सज्ञा को० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [को०] ।

अभ्रनाग—सज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०] ।

अभ्रपथ—मज्ञा पुं० [सं०] १ वायुमंडल । २ गुब्बारा [को०] ।  
 अभ्रपिशाच—सज्ञा पुं० [मं०] राहु [को०] ।  
 अभ्रपुष्प—सज्ञा पुं० [सं०] १ वेंत । २ आकाशकुसुम । अममव वात । पानी [को०] ।  
 अभ्रभेदी—वि० [सं० अभ्रभेदिन्] आकाश को भेदनेवाला । गगन-चुवी [को०] ।  
 अभ्रम<sup>१</sup>—वि० [सं०] जिसे भ्रम न हो । भ्रमरहित [को०] ।  
 अभ्रम<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० भ्रम का अभाव । स्थिरता । दृढ़ता [को०] ।  
 अभ्रमासी—सज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी [को०] ।  
 अभ्रमातग—सज्ञा पुं० [सं० अभ्रमातङ्ग] ऐरावत [को०] ।  
 अभ्रमु—सज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्व के दिग्गज की पत्नी । ऐरावत की पत्नी [को०] ।  
 अभ्रमुप्रिय—मज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०] ।  
 अभ्ररोह—सज्ञा पुं० [सं०] वैद्य मणि । लाजवर्त [को०] ।  
 अभ्रमुवल्लभ—सज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०] ।  
 अभ्रवाटिक—सज्ञा पुं० [सं०] आभ्रानक वृक्ष [को०] ।  
 अभ्रवाटिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] आमड़े का वृक्ष [को०] ।  
 अभ्रात—वि० [सं० अभ्रान्त] १ आतिशून्य । भ्रमरहित । २ भ्रम-शून्य । स्थिर । व्यवस्थित ।  
 यौ०—अभ्रातबुद्धि = जिसकी बुद्धि धिर हो ।  
 अभ्राति—सज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रान्ति] १ माति का न होना । स्थिरता । अचंचलता । २ भ्रम का अभाव । भूल चूक का न होना ।  
 अभ्रित<sup>१</sup>—वि० [सं० अभ्र + भूत] जो भरा न जा सके । अपूरणीय उ०—दुजवर वक्ष पैंठ जेहा घर । बिल अभ्रित तिह धान पडि थिर ।—पृ० रा०, १।१४७ ।  
 अभ्रित<sup>२</sup>—वि० [सं०] वादो से ढँका हुआ [को०] ।  
 अभ्रिय<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ वादो से सवधित या वादो से उत्पन्न [को०] ।  
 अभ्रिय—मज्ञा पुं० विजनी [को०] ।  
 अभ्रो—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ फावडा । कुदाल । २ नाव साफ करने के लिये लकड़ी का एक नुकीला औजार [को०] ।  
 अभ्रोष—सज्ञा पुं० [सं०] उपयुक्तता । औचित्य [को०] ।  
 अभ्रोत्य—सज्ञा पुं० [सं०] वज्र [को०] ।  
 अभ्रम्य—सज्ञा पुं० [सं०] नगा रहनेवाला साधु । दिग्बर साधु [को०] ।  
 अभ्रव<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ महत् । विशाल । २ शक्तिशाली । ३. भयकर [को०] ।  
 अभ्रव<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ विशालता । २ भयकरता । ३. अत्यधिक शक्ति [को०] ।  
 अभ्रख<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अभ्रिख] दे० 'अभिष' । उ०—वहरी अभ्रख हित पखवल, गहै कुलक असक गत । रा० रू०, १५३ ।  
 अभ्रग—वि० [हिं० भ्रम] १ न मागनेवाला । अवाचक ।  
 अभ्रगल<sup>१</sup>—वि० [सं० अभ्रगल] १ भ्रमलशून्य । अशुभ । २ भाग्यहीन । अमागा [को०] ।  
 अभ्रगल<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ अकल्याण । अहि । अशुभ । दुख । २. दुर्भाग्य (को०) । ३. रेंड का पेड़ । रेंड । एरंड ।

अभ्रगलचार<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अभ्र + हिं० भ्रमलचार] रदन । विलाप उ०—करहि अभ्रगलचार, कहाँ गए राजा हो—पनटू, भा० ३, पृ० ७४ ।  
 अभ्रगल्य—वि० सज्ञा पुं० [सं० अभ्रगल्य] दे० 'अभ्रग' [को०] ।  
 अभ्रड<sup>१</sup>—वि० [सं० अभ्रण्ड] १ मडनरहित । मज्जाविहीन । अनलकृत । २ मांड रहित (चावल) ।  
 अभ्रड<sup>२</sup>—स्त्री० पुं० रेंड का वृक्ष । एरंड द्रुम [को०] ।  
 अभ्रडित—वि० [सं० अभ्रण्डित] अनलकृत । दे० 'अभ्रड' [को०] ।  
 अभ्रत<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अभ्रत प्रा० अभ्रत] अभ्रान्त मन । कुमत् । अनुचित विचार । उ०—इन आकर्षे कज्ज विन, किनी अभ्रत—पृ० रा०, ६।१४३ ।  
 अभ्रत<sup>२</sup>—वि० [सं० अभ्रित] अत्यधिक । उ०—राजन रक्खिय सव्व इह, वाडिय प्रीत अभ्रत ।—पृ० रा० (उ०), पृ० २५० ।  
 अभ्रत्र—वि० [सं० अभ्रत्र] १ जो वेदमथो का अधिकारी न हो । जैसे, स्त्री, शूद्र आदि । २ जिसमें वैदिक मथो की आवश्यकता न हो (कर्म) । ३. वेदमथो को न जाननेवाला । अवेदज्ञ । ४. मथविहीन [को०] ।  
 अभ्रत्रक—वि० [सं० अभ्रत्रक] पुं० 'अभ्रत्र' [को०] ।  
 अभ्रत्रज्ञ—वि० [सं० अभ्रत्रज्ञ] वैदिक मथो को न जाननेवाला [को०] ।  
 अभ्रद<sup>१</sup>—वि० [सं० अभ्रन्द] १ जो धीमा न हो । तेज । २. उत्तम । श्रेष्ठ । स्वच्छ । सुंदर । भला । उ०—पूर० १० । २०३ । ३. उद्योगी । कार्यकुशल । चलता पुरजा । चतुर । ४. कम नहीं । बहुत । अधिक [को०] ।  
 अभ्रद<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० एक प्रकार का वृक्ष [को०] ।  
 अभ्र<sup>१</sup>—वि० [सं०] अपक्व । कच्चा [को०] ।  
 अभ्र<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ बीमारी का कारण । २ बीमारी । रोग । ३. दाव । भार (को०) । ४. जक्ति । वन (को०) । ५. भय । डर (को०) । ६. मेवक । नौकर । ७. प्राणवायु (को०) । ८. वह स्थिति या अवस्था जो अभ्रित हो (को०) ।  
 अभ्र<sup>३</sup>—(उ०) नर्व [मं० अस्तत्, प्रा० अन्ह] दे० 'हम' । उ०—महाराणी जसराज री या बोली तिरवार । प्रथम अभ्रा पडाहिए खग धाराजल धार । रा० रू०, पृ० ३३ ।  
 अभ्र<sup>४</sup>—सज्ञा पुं० [मं० अभ्र, प्रा० अभ्र, अ, (उ०) अभ्र] अभ्र । विशेष—ममस्त पदो मे यह पाय पहने आता है, जैसे, अभ्रचूर, अभ्ररस, अभ्ररसी ।  
 अभ्रका<sup>१</sup>—सर्व [मं० अभ्रक] ऐसा ऐसा । अभ्रक । फनाना ।  
 अभ्रग<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अभ्रग प्रा० अभ्रग] कुपय । कुराह । कुमार्ग ।  
 अभ्रचूर—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्रचूर' ।  
 अभ्रचूर—सज्ञा पुं० [हिं० अभ्र = 'अभ्र' + चूर] सुबाए हुए कच्चे अभ्र का चूर्ण । पिसी हुई अभ्रहर ।  
 मुहा०—सूखकर अभ्रचूर होना = बहुत दुबला होना । शरीर मे हाड चाम भर रह जाना ।  
 अभ्रज्जक—वि० [सं०] जिसमे मज्जा न हो । मज्जाविहीन [को०] ।  
 अभ्रडा—सज्ञा पुं० [सं० अभ्रातक, प्रा० अवाडय] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ शरीर के की पत्तियों से छोटी और सीकी मे लगी हैं । इसमे भी अभ्र की तरह मोर माता है और छोटे छोटे खट्टे फल

लगते हैं जो अचाङ्ग, चटनी आदि के काम में आते हैं। उक्त पेड का फल। अमारी।

अमरिख—वि० [सं०] रत्नविहीन [को०]।

अमर<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मन का अभाव। असमति। २ रोग। ३ मृत्यु। ४ काल। समय (को०)। रेणु। धूलि (को०)।

अमर<sup>२</sup>—वि० १ जिसका अनुभव न हुआ हो या न हो सके। २ अज्ञात। ३ अस्वीकृत [को०]।

अमरि<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ समय। २ चद्रमा। ३ आकार। ढाँचा। ४ अभाव। ५ बुरा या निकृष्ट व्यक्ति [को०]।

अमरि<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० १ अज्ञान। अचेतना। २ ज्ञान, लक्ष्य या दूर-दर्शिता का अभाव [को०]।

अमरि<sup>३</sup>—वि० १ गरीब। दरिद्र। २ दुष्ट। वदमाश [को०]।

अमरतपदार्थता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में एक प्रकार का शब्ददोष जहाँ दूसरा अर्थ प्रकृत के विरुद्ध हो।

अमरत—वि० [सं०] १ मदरहित। २ विना घमड का। ३ शात। जिसका मस्तिष्क ठीक हो।

अमरि<sup>४</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अ + मरि] अमरि। दुर्मति। कुमति। हीनमति। उ०—अत मरि सो गति। अनजा मरि अमरि।—पृ० रा०, ३१। १०१।

अमरसर<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मरसर का न होना। मात्सर्य का अभाव [को०]।

अमरसर—वि० शत्रुता न रखनेवाला। मात्सर्यहीन [को०]।

अमर<sup>२</sup>—वि० [सं०] १ जिसे मद न हो। मदरहित। अभिमान रहित। २ दुखी। ३ गम्भीर [को०]।

अमर<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] विचार। सकल्प [को०]।

अमरदन्—कि० वि० [अ०] जानबूझकर। इच्छापूर्वक।

अमरदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०]

अमरधुर<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो मधुर न हो कटु। अरुचिकर।

अमरधुर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० सगीतशास्त्र के अनुसार वाँसुरी के सुर के छह दोषों में से एक।

अमर<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अमर] १ शांति। चैन। आराम। इतमीनान। २ रक्षा। बचाव।

यो०—अमनअमान = शांति। सुरक्षा। सुव्यवस्था। अमन चैन = सुख। आराम। शांति। अमनपसद = आरामपसद। शांतिप्रिया।

अमर<sup>४</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अमरस] १ अनुभूति का न होना। अनुभूति का अभाव। २ ज्ञानाभाव [को०]।

अमरस्क—वि० [सं०] १ मन या इच्छा से रहित। उदासीन। २ उदास। अनमना। अन्यमनस्क। दे० 'अमना'।

अमना—वि० [सं० अमरस] १ मन या इच्छारहित। उदासीन। अन्यमनस्क। २ उदास। ३ स्नेहरहित। ४ बेफिक्र। ५ अनमना। ६ मन पर नियंत्रण न रखनेवाला। ७ नाममग्न मूर्ख। (को०)।

अमना<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० परब्रह्म [को०]।

अमनाक्—अव्य० थोड़ा नहीं। बहुत। अधिक [को०]।

अमनिया<sup>१</sup>—वि० [सं० अ + मन् अथवा कमनीय?] शुद्ध। पवित्र। अछूता। उ०—कवहि अमनिया हलुवा खावै।—पलटू०, पृ० ११०।

अमनिया<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] भोजन बनाने की क्रिया। रसोई पकाना। (साधु की परि०)।

अमनुष्य<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जो मनुष्य न हो। अमानव। २ राक्षस। दैत्य [को०]।

अमनुष्य<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ अमानवीय। २ जहाँ मनुष्य अधिक आता जाता न हो [को०]।

अमनेत<sup>१</sup>—वि० [अ० अमन + हि० ऐत (प्रत्य०)] अमन करनेवाला। शामन करनेवाला। उ०—अपैमिह अमनेत डक खल खडन वगवड। सुजान०, पृ० ५।

अमने<sup>२</sup>—सर्व० [पु० अस्म, प्रा० हस्म, पु० अस्म, गुज० मन्ने = मुझे] १. हमको। मुझको। २ हमने। मैंने। उ०—प्राप्त अमने अमने देखे, आपणपो न दिखाडे रे।—दादू०, पृ० ५३४।

अमनैक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आम्नायिक = वंश का अथवा स० आत्मन्, प्रा० अप्रेण, गुज० अमे, अमे, असो, हि० अपना, अपनैक] १ अवध में एक प्रकार के काष्ठकार जिन्हें कुलरपर के कारण लगान के संबंध में कुछ विशेष अधिकार प्राप्त रहते हैं। २. सरदार। हकदार। दावेदार। अधिकारी व्यक्ति। उ०—जेठे पुत्र सुमट छवि छाए। नाम सार वाहन जे गाए। जानि जुद्ध अमनैक अढाए। खेलहार ता समय पठाए।—लाल० (शब्द०)।

अमनैक<sup>२</sup>—वि० अधिकार जतानेवाला। ढीठ। साहसी। उ०—(क) वीरि दधिदान काज ऐसो अमनैक तहाँ आती वनमाली आड बहियाँ गहत है।—पद्माकर, (शब्द०)। (ख) जाति हीं गोरस बेचन को ब्रज वीथिन धूम मची चहुँ धा तैं। बाल गोपाल सबै अमनैक हैं फागुन में बचिहीं री कहाँ ते।—वेनी (शब्द०)।

अमनैकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अमनैक] मनमाना आचरण। ढीठ व्यवहार। अमनैकपन। उ०—चंचल चोखे चाल अति नही देत पल चैन। कमनैती सीखी नई अमनैकी इन नैन।—स० सप्तक, पृ० ३५८।

अमनोज्ञ—वि० [सं०] १ असुदृग्। जो सुंदर नहीं। २ अप्रिय। अमनविकर [को०]।

अमनोनिवेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ + मनस् + निवेश] 'मनोनिवेश' का न होना। असावधानी। उ०—कितु ऐसा उनके अमनोनिवेश से हुआ है।—ठेठ० उपो) पृ० ६।

अमनोरथ—वि० [सं०] मनोरथशून्य। इच्छारहित। उ०—अब तक मैं उक्त कार्य की पूर्ति से अमनोरथ रहा हूँ।—ठेठ० (उपो), पृ० १।

अमम<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ ममतारहित। अहंकारशून्य। २ स्वार्थ-विहीन। अलिप्त। मोहरहित [को०]।

अमम<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० बारहवें भावी जैन तीर्थंकर [को०]।

अमर<sup>३</sup>—वि० [सं०] १ जो मरे नहीं। चिरजीवी। २ शाश्वत। अविनाशी।

अमर<sup>४</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अमरा, अमरी] १ देवता। २ पारा। ३ हडजोड का पेड। ४ अमरकोश। ५ निगानुशासन नामक प्रसिद्ध कोश के कर्ता अमरसिंह जो विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। ६ मरुद्गणों में से एक। उनका पवनो में से



एक। ७ विवाह के पहले वर कन्या के राशिचक्र के मिलान के लिये नक्षत्रों का एक गण जिसमें ये नक्षत्र होते हैं—अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा और श्रवण। ८ सोन (को०)। ९ तैत्तिरीय (३३) की सख्या (को०)। १० एक प्रकार का देवदार वृक्ष (को०)। ११ अस्थिसमूह (को०)। १२ एक पर्वत (को०)। १३ स्नुही वृक्ष। सँड्ड (को०)।  
अमर<sup>३</sup>७—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अंबर'। उ०—उड्डि रेन डवर अमर दिप्यो सेन चहुआन।—गृ० रा० ६। १३१।

अमरकटक—सज्ञा पुं० [सं० अमरकटक] विष्णुचल पर्वत पर एक ऊँचा स्थान जहाँ से नोन और नर्मदा नदियाँ निकलती हैं। यह हिंदुओं के तीर्थों में से है। यहाँ प्रतिवर्ष शिवदर्शन के निमित्त धूमधाम से मेला होता है।

अमरकोट—सज्ञा पुं० [सं०] राजपूताने का एक प्रसिद्ध स्थान [को०]।  
अमरकोश—सज्ञा पुं० [म०] अमरसिंह द्वारा निर्मित संस्कृत का प्रसिद्ध कोश।

अमरख<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अमर्ष] १ क्रोध। कोप। गुस्सा। रिस। उ०—वरवम खोज पिता के गयऊ। खोज न पाय अमरख तब भयऊ।—कवीर मा०, पृ० ५६०। २ रस के अतर्गत ३३ मचारी भावों में से एक। दूसरे का अहंकार न सहकर उसके नष्ट करने की इच्छा।

अमरखी<sup>७</sup>—वि० [म० अमर्षिन्] क्रोधी। बुरा माननेवाला। दुखी होनेवाला।

अमरगुरु—सज्ञा पुं० [म०] देवताओं के गुरु। बृहस्पति [को०]।  
अमरज—सज्ञा पुं० [म०] एक प्रकार का खैर का पेड़ [को०]।  
अमरण<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] अमरता। मृत्यु का अभाव।  
अमरण<sup>३</sup>—वि० मरणरहित। अमर। चिरजीवी।  
अमरतटिनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। देवनादी [को०]।  
अमरतरु—सज्ञा पुं० [सं०] देवतरु। कल्पवृक्ष [को०]।  
अमरता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ मृत्यु का अभाव। चिरजीवन। उ०—सुधा सराहिअ अमरता गरन सराहिअ मीचु।—मानस, १। १५। २ देवता। उ०—प्रभे अमरता के चमकीने पुन तो तेरे वे जयनाद।—कामावानी, पृ० ७।

अमरत्व—सज्ञा पुं० [सं०] १ अमरता। २ देवत्व।  
अमरदारु—सज्ञा पुं० [सं०] देवदारु का पेड़।  
अमरद्विज—सज्ञा पुं० [सं०] मंदिर का प्रवक्ता या पुजारी ब्राह्मण [को०]।  
अमरधाम—सज्ञा पुं० [म० अमरधामन्] स्वर्ग। देव लोक। [को०]।  
अमरनाथ—सज्ञा पुं० [सं०] १ इद्र। २ काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से सात दिन के मार्ग पर हिंदुओं का एक तीर्थ। यहाँ श्रावण की पूर्णिमा को वर्ष के बने हुए शिवलिंग का दर्शन होता है। ३ जैन लोगों के १८वें तीर्थंकर।

अमरपख<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अमरपक्ष] पितृपक्ष। उ०—समय पाड के लगन है, नीचहु करन गुमान। पाय अमरपख द्विजन लों कोग चहै सनमान।—रामनिधि (शब्द०)।

अमरपति—सज्ञा पुं० [म०] इद्र। उ०—खेन हरयो अमरपति मोन।—घनानंद, पृ० २४६।

अमरपद—सज्ञा पुं० [सं०] देवपद। मोक्ष। मुक्ति। उ०—अछे अमरपद लहिए।—कवीर मा०, पृ० २६।

अमरपन<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अमर + हि० पन] १ अमरता। चिरजीवन। २ देवत्व।

अमरपुर—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अमरपुरी] अमरावती। देवताओं का नगर।

अमरपुष्प—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अमरपुष्पक' [को०]।

अमरपुष्पक—सज्ञा पुं० [म०] १ कलावृक्ष। २ वृक्षविशेष। काम। ३ तालमखाना। ४. गोखरू। ५ केतन (को०)। ६ चूत (को०)।

अमरपुष्पिका—सज्ञा स्त्री० [म०] अथ पुष्पी का धुन [को०]।

अमरवेल—सज्ञा पुं० [म० अवर + वेल्लि, अम्बरवल्ली] एक पीपी लता। 'या वीर जिनमे जड़ और पत्तियाँ नहीं होतीं। आकाशवेल। आकाशवल्ली।

विशेष—यह लता जिस पेड़ पर चढ़ती है उसके रस से अपना परिपोषण करती है और उस वृक्ष को निर्बल कर देती है। इसमें सफेद फूल लगते हैं। चंद्र इमे मधुर, शिखर शक और वीर्यवर्धक मानते हैं।

अमरवीर—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अमरवेल'। उ०—अमरवीर अर्थात् आकाशवीर ने तो ऐसे बहूनेरे वृक्षों को जड़ लिया—प्रेमघन०, पृ० १६।

अमरभनित<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [म० अमर + भनिति] अमरवाणी। संस्कृत। उ०—चित चकार मापा मनी अमरभनित अवगाहि।—घनानंद, पृ० ६०७।

अमरमूरि—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अमियमूरि'।

अमररत्न—सज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक। विल्लीर।

अमरराज—सज्ञा पुं० [सं०] इद्र। उ०—घनन घनन घटागन वज्रै। अमरराज गज की छवि लजै।—नद० ग्र०, पृ० २८७।

अमरलोक—संज्ञा पुं० [म०] इद्रपुरी। देवलोक। स्वर्ग।

अमरवर—सज्ञा पुं० [म०] देवताओं में श्रेष्ठ। इद्र। उ०—खिलति मिलति तिनको नरपति मो। जिमि वर देत अमरवर रति नो।—गोपाल (शब्द०)।

अमरवल्लरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशवीर। अमरवेल [को०]।

अमरवल्ली—सज्ञा स्त्री० [म०] अमरवेल।

अमरस<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि० अम = आम + रस] निचोड़कर और जमाकर सुखाया हुआ आम का रस। आवेट।

अमरस<sup>३</sup>७—सज्ञा पुं० [म० अमर्ष] दे० 'अमर्ष'। उ०—अमरस वे डतवार, निरशयता मन नामनिक। नर सम सार अमार, पैलौ घर बाछे पिसण।—ब्रौह्मीदास ग्र०, भा० १, पृ० ६२।

अमरसर<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] अमृतसर। पंजाब का एक नगर जो सिक्खों का तीर्थस्थान है। उ०—जो राजा अमरसर गाया। सो बावे ने नहीं बनाया।—घट०, पृ० ३२८।

अमरसरी—वि० [हि० अमरसर] अमृतसर में सज्ज। अमरसर का। अमरसहरी—वि० [हि०] दे० 'अमरसरी'।

अमरसी—वि० [हि० आमर + ई (प्रत्यय)] आम के रस की तरह पीला। गुनहगा। यह रंग एक छाटाँक हलदी और आठ मासे चूना मिलाकर बनता है।

अमरा<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूध । २ गुर्च । गिनोय । ३ सेंहुड ।  
यूहर । ४ नीली कोयल । बडा नील का पेड । ५ चमडे की  
मिली जिसमे गर्म का वच्चा लिपटा रहता है । आवर ।  
जटायु । ६ नामि का नाल जो नवजात वच्चे को लगा रहता  
है । ७ इद्रायण । ८ बरियारा । वरगद की एक छोटी जगली  
जाति । ९ धीकुआर । १० इद्रपुरी ।

अमरा<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमडा' ।

अमराई<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आन्नराजि ग्राम का वाग । आम की वारी ।  
२ उपवन । उद्यान । उ०—वह हरी लताओ की सुंदर अम-  
राई ।—कानन०, पृ० ३६ ।

अमराऊ<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमराव' । उ०—देखा सब राउन  
अमराऊ ।—जायमी ग्रं०, पृ० ११ ।

अमराचार्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवताओ के आचार्य या गुरु । बृह-  
स्पति [को०] ।

अमराद्रि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवताओ का पर्वत । मुषह [को०] ।

अमराधिप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इद्र [को०] ।

अमरापगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] देवतरी । गगा [को०] ।

अमरापति<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अमरपति । इद्र । उ०—अमरापति  
चरननि तर नोटन ।—मूर०, १०६५ ।

अमराय<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] अमराई । उद्यान । उ०—आस पाम  
अमराय वरारी । जहें लग फूल निती फुलवारी ।—नद० ग्रं०  
पृ० ११६ ।

अमरारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवताओ के, शत्रु । राक्षस [को०] ।

यौ०—अमरारिगुरु, अमरारिपूज्य = देवगुरु । शुक्र ।

अमरालय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवताओ का स्थान । स्वर्ग । इद्रलोक ।

अमराव<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आन्नराजि दे० 'अमराई' ।

अमरावती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओ की पुरी । इद्रपुरी । सुरपुरी ।

अमरित<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमृत' । उ०—अमरित पय नित  
स्रवहि वच्छ महि श्रमन जावहि ।—अकशरी०, पृ० ७२ ।

अमरी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ देवता की स्त्री । देवकन्या । देवपत्नी ।  
२ एक पेड जिससे एक प्रकार का लमकीला गोंद निकलता  
है । मज । मग । आमन । त्रियामाल ।

विशेष—इम गोद को मुग्र के निते जलाते हैं । मथाल लोग  
इसे खाते भी हैं । इसकी छाल से रंग बनता है चमडा  
सिझाया जाता है । लकडी मकान, छकडे और नाव बनाने तथा  
जताने के काम मे आती है । इसकी डालियो ने लाही भी  
निकलती है और पत्तियो पर मिहूम आदि स्थानो मे टसर  
रेशम का कीडा भी पाला जाता है ।

अमरी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० इन्द्रायणी की एक क्रिया । उ०—वजरी । करता  
अमरी रापे अमरी करता बाई । भोग करता जे व्यंद रापे ते  
गोरप को गुरमाई ।—गोरख०, पृ० ४६ ।

अमरीकन—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन' ।

अमरीका—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमेरिका' ।

अमरीकी—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन' ।

अमरीप<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवरीप' । उ०—दुरवामा अमरीप  
सतायो ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २४० ।

अमरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक राजा जिसने 'अमरुशतक' नामक शृंगार  
का ग्रंथ बनाया था ।

अमरु—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] अहमर = लाल ? एक प्रकार का रेशमी  
कपडा जो काशी मे बुना जाता है ।

अमरुत—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] अमरुद, तु० मुरुद एक पेड जिसका घड  
और टहनियां पतली और पत्तियां पांच या छ अंगुल लंबी  
होती है ।

विशेष—इमका फल कच्चा रहने पर कसैला और पकने पर मीठा  
होता है और उसके भीतर छोटे छोटे बीज होते हैं । यह फल  
रेचक होता है । पत्ती और छाल रंगने तथा चमडा मिझाने के  
काम आती है । मदक पीनेवाले इसकी पत्ती को अफीम मे  
मिलाकर मदक बनाते हैं । किसी किसी का मत है कि यह पेड  
अमरीका से आया है । पर भारतवर्ष मे कई स्थानो पर यह  
जगली होता है । इनाहावाद और काशी का यह फल  
प्रसिद्ध है ।

पर्या०—(मध्यभारत, मध्यप्रदेश तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश)  
जान । विही । सपडो । (राजस्थान) जायफन । (बंगाल)  
प्यारा । (दक्षिण) पेहफन । पेहक । (नेपाल तराई) रुन्नी ।  
(प्रवच) मकरी । अमरुद । (तिरहुत) लताम ।

अमरुद—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरुत' ।

अमरेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवताओ का राजा । इद्र ।

अमरेश्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अमरेश । इद्र ।

अमरैया<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमराई' ।

अमरीती<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] अमरती । अमरत्व । उ०—जनम हुआ  
है कापर घर तो घर बैठे अमरीती खाप ।—काले०, पृ० २४ ।

अमर्त्य—वि० [सं०] जो मर्त्य न हो । अविनश्वर । अमर [को०] ।

यौ०—अमर्त्यभुवन = देवलोक । अमर्त्यापगा = गगा ।

अमर्दित—वि० [सं०] १ जिसका मर्दन न हुआ हो । जो मला न  
गया हो । बिना मला दला । जो गिजा मिजा न हो । २ जो  
दवाया या हराया न गया हो । अपरामृत । अपराजित ।

अमर्याद—वि० [सं०] १ मर्यादाविरुद्ध । अव्यवस्थित । बेहायदा ।  
२ बिना मर्यादा का । अप्रतिष्ठित । ३ सीमारहित । असंगत  
आचरण करनेवाला [को०] ।

अमर्यादा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अप्रतिष्ठा । बेइज्जती । मर्यादा या सीमा  
का न होना । असंगत आचरण ।

अमर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि०] अमर्षित, अमर्षी १ क्रोध । रिस । २.  
वह द्वेष या दुख जो ऐसे मनुष्य का कोई अपकार न कर सकने  
के कारण उत्पन्न होता है जिसने अपने गुणो का तिरस्कार  
किया हो । ३ अमहिष्णुता । अक्षमा । ४ तृतीय सचारी भावो  
मे मे एक [को०] ।

अमर्षण<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रोध । रिस । अमहिष्णुता ।

अमर्षण<sup>२</sup>—वि० क्रोधी । अमहिष्णु [को०] ।

अमर्षित—वि० [म०] अमर्षी । क्रोधी [को०] ।

अमर्षी—वि० [म० अमर्षिन्] [वि० स्त्री० अमर्षिणी] क्रोधी । असहन-  
शील । जल्दी बुरा माननेवाला ।

अमल<sup>१</sup>—वि० [म०] १ निर्मल । स्वच्छ । २ निर्दोष । पापशून्य ।  
३ उज्ज्वल । प्रकाशित । चमकीला (को०) ।

अमल<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ अवरक । अश्रक । २ स्वच्छता । निर्मलता  
(को०) । ३ परब्रह्म (को०) ।

अमल<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ व्यवहार । कार्य । आचरण । साधन ।  
क्रि० प्र० करना ।—होना ।

यौ०—अमलदरामद = कार्यवाई ।

२ अधिकार । शासन । हुक्मत । उ०—हम चौधरी डोम  
सरदार । अमल हमारा दोनो पार ।—भारतेंदु ग्र०, प्र० भा०,  
पृ० २६२ ।

यौ०—अमलदखल । अमलदरामद = जावले की कारगरवाई ।  
अमलदारी = राज्य । हुक्मत । अधिकार । अमलप = अधि-  
कारपत्र ।

३ नशा । उ०—किई ठाकुर अलगा बहउ, आवउ अमल  
कराह ।—ढोला०, दू०, ६२८ ।

यौ०—अमलपानी = नशा बगैरह ।

४ आदत । बान । टेव । व्यसन । नत । उ०—आनद कद  
चद मुख निसि दिन अवलोकत यह अमल परचो ।—सूर०  
(शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पडना । उ०—हरिदरसन अमल परचो लाजन  
लजानी ।—सूर० (शब्द०) ।

५ प्रभाव । असर । उ०—अभी दवा का अमल नहीं हुआ है  
(शब्द०) । ६ भोगकाल । समय । वक्त । उ०—अब चार का  
अमल है (शब्द०) ।

अमलकोची—सञ्ज्ञा स्त्री० [दे०] कजे की जाति का एक प्रकार का  
वृक्ष जिसकी फणियों से चमड़ा सिंभाया जाता है । वि० दे०  
'कुत्ती' ।

अमलगुच्छ—सञ्ज्ञा पुं० [म०] पद्मकाष्ठ या पद्म नामक वृक्ष । वि० दे०  
'पदम' ।

अमलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ निर्मलता । स्वच्छता । २ निर्दोषता ।

अमलतास—सञ्ज्ञा पुं० [म० अमल] एक पेड़ जिसमें डेढ़ दो फुट लंबी  
गोल गोल फणियाँ लगती हैं ।

पर्या०—आरग्वध । घनवहेडा । किरधरा ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ सिरिम के समान और फूल सन के समान  
पीले रंग के होते हैं । फणियों के ऊपर का छिलका कड़ा और  
भीतर का गुदा अफीम की तरह चिपचिपा, खाने में कुछ  
मिठास लिए हुए खट्टा और कड़ुआ और बहुत दस्तावर होता  
है । इसके फूलों का गुलकद बनता है जो गुनाव के गुलकद से  
अधिक रेचक होता है । इसके बीजों से कैं कराई जाती है ।

अमलतासिया—वि० [हिं० अमलतास + इया (प्रत्य०)] अमलताम के  
फूल के समान हल्के पीले रंग का । हल्का पीला । गंधकी ।

अमलदार—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अमल + फा० दार] अधिकारी । शासक ।  
हुक्मत करनेवाला ।

अमलदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अमल + फा० दारी] १ अधिकार ।  
दखल । शासन । २ रुहेलखंड में एक प्रकार की कायतकारी  
जिसमें असामी को पैदावार के अनुसार लगान देना पड़ता है ।  
कनकूत ।

अमलपट्टा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अमल + हिं० पट्टा] वह दस्तावेज या  
अधिकारपत्र जो किसी प्रतिनिधि या कारिंदे को किसी कार्य  
में नियुक्त करने के लिये दिया जाय ।

अमलपतत्री—सञ्ज्ञा पुं० [स० अमलपतत्रिन्] जंगली हंस (को०) ।

अमलवेत—सञ्ज्ञा पुं० [स० अमलवेतस्] १ एक प्रकार की लता जो  
पश्चिम के पहाड़ों में होती है और जिसकी सूखी हुई टहनियाँ  
बाजार में विकती हैं और दवा में पड़ती हैं । २ एक मध्यम  
आकार का पेड़ जो बागों लगाया जाता है ।

विशेष—इसके फूल सफेद और फल गोल, खरबूज के समान, पकने  
पर पीले और चिकने होते हैं । इस फल की खटाई बड़ी तीक्ष्ण  
होती है । इसमें सूई गन जाती है । यह अनिमदीपक और  
पाचक होता है, इस कारण चूरण में पड़ता है । यह एक प्रकार  
का नीबू है ।

अमलवेद—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमलवेत' । उ०—चूरन अमलवेद  
का भारी । जिसको खाते कृष्णमुरारी ।—भारतेंदु ग्र०,  
भा० १, पृ० ६६२ ।

अमलवेल—सञ्ज्ञा स्त्री० [अमल? + हिं० वेल] एक प्रकार की लता ।

विशेष—यह भारत के प्रायः सभी गरम प्रदेशों में पाई जाती है ।  
वर्षा ऋतु में इसमें नीलापन लिए हुए सफेद रंग के सुंदर फूल  
लगते हैं । इसकी पत्तियाँ फोड़ों पर उन्हें पकाने के लिये  
बाँधी जाती हैं ।

अमलमणि—सञ्ज्ञा पुं० [स०] स्फटिक । बिल्वोर ।

अमलरत्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक (को०) ।

अमला<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ लक्ष्मी । २ सातवा वृक्ष । ३ पतला  
आँवला ।

अमला<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आमलक] आँवला ।

अमला<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अमलह] कर्मचारी । कचहरी या दफ्तर में  
काम करनेवाला । कार्याधिकारी । उ०—फूल न जो तू हूँ  
गयो राजा बाबू अमला जज्ज ।—भारतेंदु ग्र०, १।५५१ ।

यौ०—अमलाफेला (अमला फेलह) = कचहरी का कर्मचारी ।  
अमलामाजी = कर्मचारियों को घृण देकर बर्णनीय करने  
की क्रिया ।

अमला<sup>४</sup>(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमल' । उ०—राठ पहर अमला  
रा माँता हेली देता डोली ।—बनानंद, पृ० ४४४ ।

अमलातक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अमलवेत (को०) ।

अमलानक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] अमलवेत (को०) ।

अमलिन—वि० [सं०] १ स्वच्छ । निर्मल । निर्दोष ।

अमली<sup>१</sup>—वि० [अ० अमल + फा० ई (प्रत्य०)] १ अमन में आने-  
वाला व्यावहारिक । २ अमन करनेवाला । कर्मण्य । ३  
नशेवाज ।

अमली<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अमलीका] १ अमली । २ एक झाड़ीदार

पेड़ जो हिमालय के दक्षिण गढ़वाल से आसाम तक होता है। करमई। गौखटी।

अमलीमली (७) — वि० [हि०] उ० टी सीधी। उ० — अमली समी आरती। जई वधेरइ दियो मिलाए। — श्री० रामो०, पृ० १२।  
अमलुनिर्याँ — सञ्ज्ञा पुं० [देश०] खर पतवार। एक तरह की घाम जो खेतों में अपने आप उग जाती है।

अमलूक — सञ्ज्ञा पुं० [मं० अम्ल] एक प्रकार का मेवा और उनका पेड़।  
विशेष — यह अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान, हजारा, कश्मीर और पंजाब के उत्तर हिमालय की पहाड़ियों पर होता है। इसमें से बहुत सा रस बहता है जो जमकर गोद की तरह हो जाता है। इसका फल ताजा और सूखा दोनों खाया जाता है। सूखा फल काबुली लोग लाते हैं। इसे मलूक भी कहते हैं।

अमलोनी — सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अम्लोणी] नोनियाँ घास। नोनी।  
विशेष — इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी, मोटे दन की और पाने में खट्टी होती हैं। लोग इसका साग बनाकर खाते हैं जो अग्नि वर्धक होता है। कहते हैं कि इसके रस में धतूरे का विष उतर जाता है। यह बड़ी पत्तियों का भी होता है जिसे 'कुनफा' कहते हैं।

अमल्लकी — वि० [अ० सुतलक] बिलकुल। पूरा पूरा। समूचा। ज्यों का त्यों।

अमवा (७) — सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अम'। उ० — चडि अमवा की डारि, अकेली घन का रं खडो। — धरम० पृ० ४३।

अमस<sup>१</sup> — सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. काल। समय। २. रोग। ३. मुखना [को०]।

अमस<sup>२</sup> — वि० निर्वोध। अज्ञानी।

अमसूल — सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक पतला पेड़ जो नीलगिरि पर बहुतायत से होता है।

विशेष — इस वृक्ष को डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं। दक्षिण में कोकण, कनारा और कुर्ग के जंगलों में भी यह होता है। इसका फल खाया जाता है और गोवा में बिदाव के नाम से विकता है। पर यह, वृक्ष उस तेल के कारण अधिक प्रसिद्ध है जो उसके बीज से निकाला जाता है और तेल कोकम का मक्खन कहलाता है। बाजारों में यह तेल जमी हुई सफेद लकी वस्तियों या टिकियों के रूप में मिलता है जो माधारण गर्मी से पिघल जाती हैं। यह वर्धक और सकोचक समझा जाता है तथा सूजन आदि में इसकी मालिश होती है। इससे मरहम भी बनाया जाता है।

अमसूण — वि० [सं०] जो मसूण न हो। कठोर। कडा [को०]।

अमहर — सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अम = अम + हर (प्रत्यय)] छिले हुए कच्चे आम की सुखाई हुई फाँक। यह दाल और तरकारी में पड़ती है। इसे कूटकर अमचूर भी बनाते हैं।

अमहल (७) — सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + अ० महल] १. बिना घर का। अनिकेत। २. जिसके रहने का कोई एक स्थान न हो। व्यापक। उ० — अमहरीब और बाग जनक जह शेष सहम मुद्र पाना। कहुँ नौ गनों अमहल कोटि लै अमहुन महन दिवान। — फकीर (शब्द०)।

अमोश<sup>१</sup> — वि० [सं०] १. मासहीन। २. दुर्जन। निर्वन।

अमास<sup>१</sup> — सञ्ज्ञा पुं० वह जो मास न हो। मास से इतर पदार्थ [को०]।  
अमासक — वि० [सं०] अमास [को०]।

अमाँ — प्रत्यय [हि० ए + फा० नियाँ] मुननमानों में बातचीत में प्रचलित एक संबोधन। ऐ मियाँ। अरे यार।

अमा<sup>१</sup> — सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. अमावस्या। २. अमावस्या की कला। स्कंदपुराण के अनुसार चंद्रमा की मोलही कला जिसका क्षय और उदय नहीं होता। ३. पर। ४. मर्त्य लोक। दहन लोक। ५. चौपायों की आँख पर की बत्ती जो प्रशुभ समझी जाती है।

अमा<sup>२</sup> — वि० मापरहित। अमाप [को०]।

अमघोनी — सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अंगहन में तैयार होता है।

अमाजुर — सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] अपने पिता के घर पर ही बड़ी और बूढ़ी हो जानेवाली अविवाहिता स्त्री [को०]।

अमातना (७) — क्रि० सं० [मं० आमन्त्रण, प्रा० आमत्रण] आमंत्रित करना। निमंत्रण देना। न्योना देना। आह्वान करना। बुलाना। उ० — कह्यो महारि नो करी चैंडाई हम अपने घर जात। तुमहूँ करी भोग मामग्री कुनदेवता अमाति। — सूर० (शब्द०)।

अमातृ — वि० [सं०] माताविहीन। बिना माँ का [को०]।

अमात्य — सञ्ज्ञा पुं० [मं०] मंत्री। वजीर।

अमात्र<sup>१</sup> — वि० [सं०] १. मापारहित। वेहद। अपरिमित। २. अपूर्ण। अनमय [को०]। ३. आरमिक [को०]।

अमात्र<sup>२</sup> — सञ्ज्ञा पुं० १. माप या इयत्ता का अभाव। वह जो माप नहीं है। २. परब्रह्म [को०]।

अमान<sup>१</sup> — वि० [मं०] १. जिसका मान या अदाज न हो। अपरिमित। परिमाणरहित। इयत्ताशून्य। उ० — गाथागुन जानानीत अमाना वेद पुरान अनता। — मानस, १।१६२। २. वेहद। बहुत। उ० — आकाश विमान अमान छये। हा हा मव ही यह शब्द रये। — केशव (शब्द०)। ३. गर्वरहित। निरभिमान। मीधासादा। उ० — सदा रामप्रिय होव तुम्ह मुम गुन नवन अमान। कामरूप इच्छामरन जान विराग निधान। — मानस, ७।११३। ४. मानशून्य। अप्रतिष्ठित। अनादन। आत्मा-भिमानरहित। उ० — (क) अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता वनवास। — मानस, ६।३० (क)। (ख) अगुन अमान मातु पितु होना। उदासीन सब ससय छोना। — मानस, १।६७।

अमान<sup>२</sup> — सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. रक्षा। बचाव। २. शरण। पनाह। ३. शांति। उ० — माँगने से अगार मिले हमको बयो न जी की अमान तो माँगूँ। — चुभते०, पृ० ५४।

अमानत — सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १. अपनी वस्तु को किसी दूसरे के पास एक नियत काल तक के लिये रखना २. वह वस्तु जो दूसरे के पास किसी निश्चित या अनिश्चित काल तक के लिये रख दी जाय। धारी। धरोहर। उरनिधि। ३. तृतीया का काम या पद [को०]। ४. शांति। अमन।

यो० — अमानतलाता = कोठी, बैंक आदि का वह खाता जिसमें अमानत की रकम जमा की जाती है। अमानतलाता = वह

स्थान जहाँ अमानत में वस्तुएँ रखी जाती हैं। अमानतनामा = अमानत रखते समय प्रमाणस्वरूप लिखा जानेवाला पत्र। अमानत में खयानत करना या होना = अमानत में रखी हुई रकम को खा जाना।

अमानतदार—सज्ञा पुं० [अ० अमानत + फा० दार] १ जिसके पास कोई चीज अमानत रखी जाय। धरोहर रखनेवाला। २ अमीन (को०)।

अमानत—सज्ञा पुं० [सं०] 'अमानत' (को०)।

अमानना—सज्ञा स्त्री० [सं०] अनादर। अवज्ञा। तिरस्कार। अपमान (को०)।

अमानव—वि० [सं०] मानवेतर (को०)।

अमानस्य<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] पीडा। दुःख (को०)।

अमानस्य<sup>२</sup>—वि० पीडित। व्यथित। दुःखित (को०)।

अमाना<sup>१</sup>—कि० अ० [सं० आ = पूरा पूरा + मान = माप] १ पूरा पूरा भरना। समाना। श्रुतना। जैसे—इस वरतन में इतना पानी नहीं अमा सकता (शब्द०)। उ०—मुनि मुनि मन हनु-मान के प्रेम उमंग न अमाइ—तुलसी ग्र०, पृ० ८३। २ फूलना। उमडना। इतराना। उ०—करि कछु जान अमिमान जान दै है कौसी मति ठानी। तन, धन जानि जाम जुग छाया भूति कहा अमानी।—मूर (शब्द०)।

अमाना<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अयन] वखार का मुँह। अन्न की कोठरी का द्वार। आना।

अमानित—वि० [सं०] १ जिसे माना न गया हो। २ जिसका मान न हुआ हो। असमानित।

अमानितसेना—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जिसकी वीरता के उपलक्ष्य में उचित आदर मान न किया गया हो और जो उस कारण असंतुष्ट हो।

विशेष—कोटिल्य ने ऐसी सेना को विमानित (जिसकी वैज्जनी की गई हो) सेना से उपयोगी कहा है, क्योंकि उचित मान पाकर यह जी लगाकर लड़ सकती है।

अमानिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] नम्रता। मान का न होना (को०)।

अमानित्व—सज्ञा पुं० [सं०] गर्वरहित्व। अमानिता। (को०)।

अमानिया—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पटमन।

अमानिशा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अमावस्या की रात्रि। अधकारयुक्त रात (को०)।

अमानी<sup>१</sup>—वि० [सं०] निरभिमान। घमंडरहित। अहंकारशून्य। उ०—मोरे प्रौढ तनय सम ग्यानी। बालक मुत सम दास अमानी।—मानस, ३।३७।

अमानी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० आत्मन्] १ वह भूमि जिसकी जमींदार सरकार हो और जिसका प्रवध उसकी ओर से जिते का कल-कटर करे। खास। २ जमीन या कोई कार्य जिसका प्रवध अपने ही हाथ में हो, ठीके पर न दिया गया हो। ३ लगान की वसूली जिसमें विगडो हुई फसल का विचार करके कुछ कमी की जाय।

अमानी<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० अ + हि० मानना] मनमानी अयस्था। अपने मन की कार्यवाही। अघेरे।

अमानुष<sup>१</sup>—वि० [म०] १ मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर। अतीतिक। उ०—मकल अमानुष करमु नुम्हारे। केवल कौमिल तृपा नुधारे।—मानस, १।३५०। २ मनुष्यस्वभाव के विरुद्ध। पाणव। पैशाचिक।

अमानुष<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ मनुष्य ने मित्र प्राणी। २ दय दयता। ३ राधन।

अमानुषिक—वि० [म०] १ अतीतिक। अमानुषी। पैशाचिक (को०)।

अमानुषी—वि० [म०] १ मनुष्य स्वभाव के विरुद्ध। पाणव। पैशाचिक। २ मानवी जक्ति के बाहर। अतीतिक।

अमानुषीय—वि० [म०] 'अमानुषी'।

अमान्य—वि० [म०] अमाननीय। अनीति (को०)।

अमान्यता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ मानना। गन्भीरता।

अमाप—वि० [म०] १ जिसके परिमाण का अंदाजा न हो सके। अपरिमित। उ०—प्रगर के धूप पुन उठता जहाँ ई तहो, उठन बगूरे अब अति ही अमाप है।—भूपाल ग्र०, पृ० २/८। २ वेहद। बहुत। उ०—मारवा नहीं अप दई उधाई भवनि ही। या मूरना अमाप दूनि देगि वाली हूँगी।—अम्मा-०, पृ० १५।

अमापनीय—वि० [म०] जिसकी मात्रा न का जा सके। अपरिमित (को०)।

अमापित—वि० [म०] जो मापा न गया हो जिसकी मात्रा न हूँ हो (को०)।

अमाप्य—वि० [म०] अमापनीय (को०)।

अमाम<sup>१</sup>—वि० [हि० अमाप] बढ़ा। उ०—तंग करै प्रणाम उमंगे मना अमाम।—रा० ८०, पृ० ७६।

अमामसी—सज्ञा स्त्री० [म०] 'अमावस्या' (को०)।

अमामा—सज्ञा पुं० [म० इमामन] पगड़ी। वह पगड़ी जिसमें अंदर टोपी रहती है। उ०—कोरै टोपी टोप पनावा है पीठ बाँधे फिरै अमामा है।—राम० वर्म०, पृ० ६२।

अमामसी—सज्ञा स्त्री० [म०] 'अमावस्या' (को०)।

अमाय<sup>१</sup>—वि० [म०] १ 'अमाया'। २ अपरिणीत (को०)।

अमाय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० परप्रसू (को०)।

अमाया<sup>१</sup>—वि० [म०] १ मायावृत्ति। निर्निष्ठ। २ निश्चय। निष्कपट। निश्छल। उ०—जो मोरे मन उच मरवाया। प्रीति राम पद कमल अमाया।—मानस, ६।८।

अमाया<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं०] निष्कपटता। निश्छलता। निमानदागी (को०)।

अमायिक—वि० [सं०] १ दोगरहित। २ मायावृत्ति। ३ निश्छल। निष्कपट। ४ सच्चा।

अमायी—[म० अमायिन्] 'अमायिक' (को०)।

अमार<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [फा० अंवार] १ अन्न रखने का घेरा। अरहर के सूये डठलो या सरकडो की टट्टी गाड़कर बनाया हुआ घेरा जिसके ऊपर में छा देते हैं, और जिसमें ऊपर, नीचे मुस देवर बीच में अनाज रखते हैं। २ राशि। बहुतायत। ढेर। उ०—जर जेवर का अमार लगा रहता होगा उसके यहाँ।—नई०, पृ० ३६।

अमार<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [अ०] अमरण (को०)।

अमार<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] 'अमरी'।

अमार<sup>१</sup>—पुं० [हि०; तुच० वे० आमार, ने० हात्रा, हात्रो, ]  
हमारा । मेरा । उ०—कइवा देवल पुतली । ईभीय छइ  
प्रभु जी अमारडी नार ।—वी० रामो, पृ० ६० ।

अमारग<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अमार्ग' ।

अमारो<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० [अ०] हाथी का छायादार या मडायुक्त हीदा ।

अमारो<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि०] आमडा या अनडा । अमडा नामक वृक्ष या  
उसका फल ।

अमार्ग<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [म०] १ कुमार्ग । कुराह । २ बदबननी । बुरी  
चाल । दुराचरण ।

अमार्ग<sup>३</sup>—मार्गरहित । मार्गविहीन । [को०] ।

अमार्जित—वि० [सं०] १. जो धोकर शुद्ध न किया गया हो ।  
अशुद्ध । २. जिसका मस्कार न हुआ हो । बिना  
शोधा हुआ ।

अमार्ज्य—वि० [म०] १ जिसको स्वच्छ न किया जा सके । २  
जिसका मस्कार या शोधन करना सम्व न हो ।

अमाल<sup>४</sup>—सज्ञा पुं० [अ० अमल] अमल रखनेवाला । हाकिम ।  
शासक । उ०—पैज प्रतिपान, भूमिभार को हमाल, चहुँ चक्क  
को अमाल, भयो दडक जहान को ।—भूपण (शब्द०) ।

अमालनामा—सज्ञा पुं० [अ० अमाल + फा० नामह] १ वह पुस्तक या  
रजिस्टर जिसमें कर्मचारियों की भली या बुरी कार्यवाहियाँ  
दर्ज की जाती हैं । २ कर्मपुस्तक । कर्मपत्र । मुसलमानी मत के  
अनुसार वह पुस्तक जिसमें प्राणियों के शुभ और अशुभ  
कर्म कथामत में पेश करने के लिये नित्य दर्ज किए जाते हैं ।

अमाली<sup>५</sup>—सज्ञा स्त्री० [अ० अमल] १ जाँच । २. लेखाजोखा ।  
उ०—घरनी साल बमाल अमाली, जमा खरच यहि पाई ।—  
घरनी०, पृ० ३ ।

अमावृत्<sup>६</sup>—सज्ञा पुं० [मं० आम्न हि० आन + सं० आवर्त, प्रा० आवट्ट]  
ग्राम के मुखाए हुए रम के पर्व या तह ।

विशेष—इसे बनाने के लिये पके ग्राम को निचोड़कर उसका रम  
कपड़े या किसी और चीज पर फैलाकर मुखाते है । जब रस  
की तह सूख जाती है तब उसे लपेटकर रख लेते है ।

अमावृत्<sup>६</sup>—सज्ञा स्त्री० [देश०] पहिना जानि की एक मछली ।

अमावड<sup>७</sup>—वि० [सं० अ + प्रा० माव (माप्) + डि० ड (प्रत्य०) ]  
शक्तिशाली । जोरावर ।

अमावना<sup>८</sup>—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अमाना' ।

अमावस—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अमावस्या' । उ०—मौन अमावस  
मूल विन रोहिनि विन अखतीज ।—वाघ०, १८१ ।

अमावसी—सज्ञा स्त्री० [सं०] अमावस्या [को०] ।

अमावस्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कृष्णपक्ष की अंतिम तिथि । वह  
तिथि जिसमें सूर्य और चंद्रमा एक ही राशि के हो । २ हठयोग  
की एक क्रिया ।

अमावास्या—वि० [सं०] १ जो अमावस्या के दिन हुआ हो ।

अमावास्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमावस्या' ।

अमाह—सज्ञा पुं० [सं० अमास] [वि० अमाही] नेत्ररोग विशेष । आँख  
के डेले में निकल हुआ लाल मांस । नाखून ।

अमाही—वि० [हि० अमाह] अमाह रोग संबंधी । अमाह रोगवाला ।

अमित्र<sup>९</sup>—सज्ञा पुं० [मं० अमृत, प्रा० अमित्र, अप० अमित्रं, सं०,  
पुं० अमित्र] दे० 'अमिय' । उ०—अमित्र मूरि मय चूरन  
चारु । समन सकल भव रज परिवार ।—मानस १।१ ।

अमित्र<sup>९</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अमृत' । उ०—कण सम्राड्  
अमित्र रस वुझ कहने कन ।—कीर्ति०, पृ० ५६ ।

अमित्र<sup>९</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अमिय' ।

अमिट—वि० [मं० अ + हि० मिटना, अथवा अ = नहीं + मर्त्य = मरने-  
वाला] १ जो न मिटे । जो नष्ट न हो । नाशहीन । स्थायी ।  
२ जो न टले । अटल । जो निश्चय हो । अवश्यभावी ।

अमित—वि० [म०] १ जिसका परिमाण न हो । अपरिमित । वेहद ।  
असीम । २ बहुत । अधिक । ३. तिरस्कृत । उपेक्षित (को०) ।  
४ अज्ञान । अनजाना (को०) । ५ अमस्कृत । मस्कारहीन  
(को०) । ६ केशव के अनुसार वह अर्थालंकार जिसमें साधन ही  
साधक की सिद्धि का फल भोगे । जैसे—'दूती नायक के पास  
नायिका का सँदेश लेकर जाय, परंतु स्वयं उससे प्रीति कर  
ले ।' उ०—आनन सीकर सीक कहा ? हिय तो हित ते अति  
आतुर आई । फीको मयो मुख ही मुख राग क्यों ? तेरे विया  
बहु वार बेकाई । प्रीतम को पट क्यों पलट्यो ? अनि केवल  
तेरी प्रतीति को तयाई । केशव नीके ही नायक सो रमि नायिका  
वातन ही वहराई ।—केशव (शब्द०) ।

यौ०—अमितक्रतु । अमिताशन । अमिततेजा । अमितीजा ।  
अमितद्युति । अमितविक्रम ।

अमितक्रतु—वि० [सं०] असीम बुद्धि या साहसवाला [को०] ।

अमितता—सज्ञा स्त्री० [म०] अमित होना । आधिक्य ।

अमिततेजा—वि० [सं० अमिततेजस्] असीम कानिमान् [को०] ।

अमितद्युति—वि० [म०] अत्यधिक प्रकाशवाता [को०] ।

अमितविक्रम—वि० [सं०] १ अत्यंत वनवा । २ विष्णु का विशेषण  
[को०] ।

अमितवीर्य—वि० [म०] अत्यंत शक्तिशाली [को०] ।

अमिताई<sup>१०</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि०] अधिकता । असीमता [को०] ।

अमिताभ<sup>११</sup>—वि० [सं०] अत्यंत तेजस्वी [को०] ।

अमिताभ<sup>११</sup>—सज्ञा पुं० महात्मा बुद्ध का एक नाम ।

अमिताशन<sup>१२</sup>—वि० [सं०] १ जो सब कुछ खाय । सर्वभक्षी । २  
जिसके खाने का ठिकाना न हो ।

अमिताशन<sup>१२</sup>—सज्ञा पुं० १. अग्नि । आग । २ परमेश्वर विष्णु (को०) ।

अमिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अनन्तता । असीमता [को०] ।

अमितीजा—वि० [सं० अमितीजस्] अत्यधिक शक्तिशाली । सर्व-  
शक्तिमान [को०] ।

अमित्र—वि० [म०] १ जो मित्र न हो । शत्रु । वैरी । २. बिना मित्र  
का जिसका कोई दोस्त न हो । अमित्रक । ३. अवकात  
[वग०] । उ०—अपनी अमित्र कविता की तरह अपने गीतो के  
लिये भी मैं इधर उधर सुन चुका था ।—गीतिका (भू०),  
पृ० १२ ।

अमित्रक—वि० [सं०] दे० 'अमित्र' ।

अमित्रखाद—सज्ञा पुं० [सं०] इद्र [को०] ।



अमित्रघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शत्रुओं का नाश करना । शत्रुओं का हनन ।  
अमित्रघाती—वि० [सं० अमित्रघातिन्] शत्रुओं का नाश करनेवाला ।  
अमित्रता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रुता । विरोध ।  
अमित्रविपयातिगानीका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह जहाज जो शत्रु के राष्ट्र में जानेवाला हो ।

अमित्रसह—वि० [सं०] शत्रुओं को वशीभूत करनेवाला इद्र ।  
अमित्राक्षर—वि० [सं० अमित्राक्षर] जिसमें अक्षरों की कोई निश्चित सख्या न हो । जिसमें तुक न हो । गद्यमय । उ०—बहुत पहिले भी अमित्राक्षर कविता लिखी गई है ।—कल्याण, (प्र०) ।

अमित्रि—वि० [सं० अमित्रिन्] वैरी । शत्रु [को०] ।  
अमिथ्या—वि० [अ = उच्चा + मिथ्या] व्यर्थ । बेकार । उ०—सतगुरु मक्तिभेद नहिं पाए, जीव अमिथ्या दीन्हा ।—घट०, पृ० २६४ ।

अमिय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अमृत, प्रा० अमिश्र, अमिय] अमृत । उ०—देखि अमिय रम अन्हधरह मएउ नामिका कीर । पौन वास पहुँचावै, अस रम छांड न तीर ।—जायसी ग्र०, पृ० ४३ ।  
अमियमूरि—सञ्ज्ञा स्त्री० [अमृत + मूरि] अमरमूर । अमृतवृद्धी । सजीवनी जड़ी । जिलानेवाली वृद्धी । उ०—प्रमिय मूरि मय चूरन चारु । शमन सकन भवहज परिवारु ।—तुलसी (शब्द०) ।  
अमिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अम्रिका, प्रा० अमिश्रा] कच्चे आम । उ०—बैठी होगी, जामुन अमिया लदी रीस के पेडो पर ।—मिट्टी०, पृ० ६५ ।

अमिरती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इमरती' ।  
अमिरथा—वि० [हिं०] दे० 'अविरथा' । उ०—गया मव जनम अमिरथा मोरा ।—चित्रा०, पृ० १३० ।  
अमिरस—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] १ अमृतस । २ हठयोग के अनुसार चंद्रमा से द्रवित होनेवाला रस । उ०—गठिम दिमा धुन अनहद गरज अमिरस करै उपजै ब्रह्मग्यान ।—रामानंद०, पृ० १२ ।  
अमिरित—वि० [हिं०] दे० 'अमृत' । उ०—औ जो यह अमिरित सो पागे । सोऊअ मर जग भए सभागे ।—चित्रा०, पृ० १२ ।

अमिल—वि० [सं० अ + हिं० मिलना] १ न मिलने योग्य । अप्राप्य । उ०—निपट अमिल वह, तुम्हें मित्रि के की जरू, कैसे कै मित्राऊँ गति मो पै न बिहग की ।—केशव (शब्द०) । २ वेमेल । वेजोड । अनमिल । असंबद्ध । ३ मिश्रवर्णीय । जो हिला मिला न हो । जो हिले मिले नहीं । जिससे मेल जोन न हो । उ०—हरपिन बोली लखि लनन, निरपि अमिल संग साथ । आखिन ही मे हँसि घरचो, सीस हिए पर हाय ।—विहारी (शब्द०) । ४ ऊबड़ खाबड़ । ऊँचा नीचा । उ०—अमिल सुमिन सीडी मदन मदन की कि जगमग पग जुग जेहरि जराय की ।—केशव (शब्द०) ।

अमिलताई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० अमिल + ताई (प्रत्य०)] न मिलने का भाव । कपट । दूर दूर रहना । उ०—मिनत न कहूँ भरे रावरे अमिलताई हिए मे किए विमान जे विनोड छन है ।—रसखान०, पृ० ६३ ।

अमिलतासा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमलतास' ।

अमिलपट्टी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० अमिल + पट्टी = जोड] सिनाई या तुर-पन का एक भेद । चौड़ी तुरान ।

अमिलातक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अमलानक । अमनप्रेत [को०] ।

अमिलित—वि० [सं०] न मिला हुआ । पृथक् । जुदा ।

अमिलियापाट—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अमिली = इमली + पाट = रेशम] एक प्रकार का मन या पटसन ।

अमिली—वि० [सं० अमिली] दे० 'इमली' । उ०—आलूचा अमिली अँवहलदी । आल आँवला माल अफनदी ।—मुजान०, पृ० १६१ ।

अमीली—वि० [सं० अ = नहीं + मिलना] मेल या अनुकूलता का अभाव । खटाई । कपट । विरोध । मनमुटाव । उ०—जहँ अमीली पाकै हिय माँहाँ । तहँ न भाव मोरँग कै छाहाँ ।—जायसी (शब्द०) ।

अमिश्र—वि० [सं०] जो मिश्रित न हो । मिलावटरहित । शुद्ध । खालिस [को०] ।

अमिश्रण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मिलावट का अभाव ।

अमिश्रराशि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] गणित में वह राशि जो एक ही इकाई द्वारा प्रकट की जाती है । उ०—१९ में ६ तक की सवरा ।

अमिश्रित—वि० [सं०] १ न मिला हुआ । जो मिनाया न गया हो । २ जिसमें कोई वस्तु मिनाई न गई हो । वे मिलावट । खालिस । शुद्ध । पृथग्भूत ।

अमिष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ छल का अभाव । वहाने के न होने का भाव या स्थिति । २ दे० 'अमिष' । ३ नामांरिक मुख । ऐश आराम [को०] ।

अमिष—वि० निश्छन । जो हीनेवाज न हो ।

अमी—वि० [सं० अमिष] दे० 'अमिष' । उ०—'दास' मननावनी न भावती चलन तेरी अधर अमी के अवलोके मोहि रहिए ।—निखारी ग्र०, भा० १, पृ० १३८ ।

यौ०—अमीकर । अमीरस ।

अमो—वि० [सं० अमिष] रोगी [को०] ।

अमोक—वि० [अ०] गहरा । उ०—ग पानी का बाँझ चरना अमोक ।—इतिहास, पृ० ३४५ ।

अमोकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अमृतकर, अमिय + कर] प्रमृताशु । चंद्रमा ।

अमोकला—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० अमी + कला] चंद्रमा । उ०—यद्मत अमोकला आनंदधन मुजन—जान्ह रनवृष्टि सुझई ।—घनानंद, पृ० ५५८ ।

अमोच—वि० [सं० अ + मृत्तु प्रा० मिवु] मृत्तुविहीन । बिना मृत्तु के ।

अमोढ—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'प्रधोरी' ।

अमीत—वि० [सं० अमित्र, प्रा० अमित्र] १ जो मित्र न हो । शत्रु । वैरी । उ०—पावक तुल्य अमीत न को भयो, मीतन को भयो धाम मुधा को ।—मूकण (शब्द०) । २. अनग । विच्छिन्न । उ०—आन देव की पूजा कीन्ही, गुह मे रई अमीता रे ।—कवीर श०, पृ० ८ ।

अमीत—वि० [सं०] जिसे क्षति न पहुँची हो । अक्षत [को०] ।

अमीन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [अ०] १ वह व्यक्ति जो अमानत रखता है। २ विश्वमनीय। ३ वह अदाकारी कर्मचारी जिसके मुपुर्द बाहर का काम हो, जैसे मीके की तहकीकान करना, जमीन नापना, बेंट-बारा करना, डिगरी का अमलदरामद कराना इत्यादि।

अमीन<sup>२</sup>(उ)—सज्ञा पुं० [प०] दे० अमी<sup>१</sup>। उ०—आनेंदवन हित पोखि कै पाले प्रान अमीन।—घनानंद पृ० १८०।

अमीपत्र<sup>३</sup>(उ)—सज्ञा पुं० [हि० अमी + पत्र = पात्र] अमृतपात्र। अमृतवट। अमीवा—सज्ञा पुं० [अ०] एक अति सूक्ष्म जीव जिसे सूक्ष्मनिरीक्षक यंत्र से देखा जा सकता है।

अमीमासा—सज्ञा स्त्री० [स०] अमीमासा या विवेचना का अभाव [को०]। अमीर—सज्ञा पुं० [अ०] १ कार्याधिकार रखनेवाला। सरदार। २ धनाढ्य। संपन्न। दौलतमंद। ३ उदार। ४ अफगानिस्तान के राजा की उपाधि।

अमीरजादा—सज्ञा पुं० [अ० अमीर + फा० जादह] [सज्ञा स्त्री० अमीर-जादी] अमीर या धनवान का पुत्र। शाहजादा। राजकुमार। अमीरस<sup>४</sup>(उ)—सज्ञा पुं० [हि०] अमृत। उ०—आदि नाम जो अमीरम चाहे।—कवीर सा०, पृ० ८७०।

अमीराना—वि० [अ० अमीर + फा० आनह (प्रत्यय)] अमीरो के दग का। जिसमें अमीरी प्रकट हो। धनिकोचित।

अमीरी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [अ० अमीर + ई (प्रत्यय)] १ धनाढ्यता। दौलतमंदी। उ०—जो मुख पावा नाम मजन में सो मुख नाहि अमीरी में।—कवीर सा०, पृ० ७०। २ उदारता।

अमीरी<sup>२</sup>—वि० अमीर का सा। अमीरो के योग्य। जैसे, अमीरी ठाठा अमीरलवहर—वि० [अ०] नौबलाध्यक्ष। नौसेनापति [को०]।

अमीव—सज्ञा पुं० [स०] १ पाप। २ दुःख। ३ रोग। ४ दुश्मन [को०]। ५ हानि। क्षति [को०]।

अमुद्ध<sup>६</sup>(उ)—वि० [स० अ + मुग्ध] मुग्ध। मूर्ख। मूढ़। उ०—कोन मुजावल जुध करै। सुनि कमधज्ज अमुद्ध।—पृ० २। २। ७७४ अमुक—वि० [स०] फना। ऐसा ऐसा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग किसी नाम के स्थान पर करते हैं। जब किसी वर्ग के किसी एक भी व्यक्ति या वस्तु को निर्दिष्ट किए बिना काम नहीं चल सकता, तब किसी का नाम न लेकर इस शब्द को लाते हैं। जैसे, 'यह नहीं कहना चाहिए कि अमुक व्यक्ति ने ऐसा किया तो हम भी ऐसा करें'।

अमुक्त—वि० [स०] १ जो मुक्त या बंधनरहित न हो। बद्ध। २ जिसे छुटकारा न मिला हो। जो फँसा हो। ३ जिसका मोक्ष न हुआ हो। ४ अस्थ (छुरा, कटारी आदि) जो हाथ में पकड़कर चनाया जाय [को०]।

अमुक्तहस्त—वि० [स०] १ देने में जिसके हाथ दवे हो। कजूर। कृपण। २ कमबख्त। अलग व्यय करनेवाला [को०]।

अमुख—वि० [स०] मुखविहीन। बबनहीन [को०]।

अमुख्य—वि० [स०] जो मुख्य न हो। अप्रधान। गौण। निम्न।

अमुख्य—वि० [स०] १ जो मुख्य या मोहित न हो। २ जितेंद्रिय। विरक्त। अनासक्त। ३ चतुर।

अमुत्र—सज्ञा पुं० [स०] वह लोक। परलोक। जन्मांतर।

यौ०—इहामुत्रलोक परलोक।

अमुत्रत्य—वि० [स०] भविष्य जीवन या परलोक संबंधी [को०]।

अमुद्र—वि० [स०] १ जिसके पास कही जाने का परधान या मुहर न हो। जिसके पास मुद्रा या निशानी न हो [को०]।

अमुना—कि० वि० [स०] ऐसे। इस प्रकार। उ०—अमुना विधि जमुनातट आवति।—नंद० ग्र०, पृ० २६८।

अमुला<sup>७</sup>(उ)—वि० [हि०] दे० 'अमूल्य'। उ०—नाम तेरो अमुला नाम तेरो चदन घनि जयै नाम उचारै।—सत २०, पृ० १२६।

अमुष्य—वि० [स०] प्रसिद्ध। विद्वान। मशहूर।

यौ०—अमुष्यपुत्र = प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न। कुलीन।

अमूक<sup>८</sup>(उ)—वि० [स०] १ जो गुँगा न हो। २ बोलनेवाला। वक्ता। ३. चतुर। प्रवीण।

अमकी<sup>९</sup>(अमूके<sup>९</sup>) अमूकी<sup>९</sup>(अमूकी<sup>९</sup>)—वि० [स० अमूक] दे० 'अमूक'। जैसे, अमूकी ठौर, अमूके बैणव, अमूकी कुम्हार आदि।

अमूक्षना<sup>१०</sup>(अमूक्ष<sup>१०</sup>)—वि० [स० अमूक्ष, प्रा० अमूक्ष, \*अमूक्ष, \*अमूक्ष] १ उनभूना। फँसना। उ०—कठिन करम की परत मापसी मनहि अमूक्षन है रे।—सुंदर० ग्र०, पृ० ८४२।

अमूक्ष<sup>११</sup>(अमूक्ष<sup>११</sup>)—वि० [हि० अमूक्षना वा उल्लेखना] अस्पष्ट। जो खुनासा न हो। उ०—प्रथम अमूक्षो अरय मवदपिण विण हित सार्ज।—रघु० स०, पृ० १४। २ गर्मी से सतप्त होना।

अमूढ<sup>१२</sup>(अमूढ<sup>१२</sup>)—वि० [स० अमूढ] १ जो मूर्ख न हो। चतुर। २ विद्वान्। पंडित।

अमूढ<sup>१३</sup>(अमूढ<sup>१३</sup>)—सज्ञा पुं० पंचतन्मात्र में से एक। इनके नाम ये हैं—अविशेष, महाभूत, अशांत, अधीर और अमूढ।

अमूमत्—प्रत्यय [स०] अनुमानत। सामान्यतया। प्रायः।

अमूर—सज्ञा पुं० [अ०] वात। चर्वा। उ०—मेरे खत के दीगर अमूर का जवाब आपने कुछ न दिया।—प्रेम० और गोरी, पृ० ६१।

अमूरत<sup>१४</sup>(अमूरत<sup>१४</sup>)—वि० [हि०] दे० 'अमूर्त'। उ०—अलख अमूरत सिर्जन हागा।—ड्डा०, पृ० १६७।

अमूरति<sup>१५</sup>(अमूरति<sup>१५</sup>)—वि० [हि०] दे० 'अमूर्ति'। उ०—चमकत मो निरवान अमूरति छकित भयो मन वेधि उमग।—जग० शा०, भा० २, पृ० ८१।

अमूर्त<sup>१६</sup>(अमूर्त<sup>१६</sup>)—वि० [स०] मूर्तिरहित। निराकार। अवयवशून्य। निरवयव। उ०—कुछ भावों के विषय तो 'अमूर्त' तक होने लगे, जैसे कीर्ति की नालसा।—रम०, पृ० १६५।

अमूर्त<sup>१७</sup>(अमूर्त<sup>१७</sup>)—सज्ञा पुं० १ परमेश्वर। २ आत्मा। ३ जीव। ४ काल। ५ दिशा। ६ आकाश। ७ वायु। ८ शिव [को०]।

यौ०—अमूर्तगुण—धर्म अर्थम आदि गुण जो अमूर्त माने जाते हैं।

अमूर्ति<sup>१८</sup>(अमूर्ति<sup>१८</sup>)—वि० [स०] मूर्तिरहित। निराकार।

अमूर्ति<sup>१९</sup>(अमूर्ति<sup>१९</sup>)—सज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

अमूर्ति<sup>२०</sup>(अमूर्ति<sup>२०</sup>)—सज्ञा स्त्री० आकारहीनता। निराकारता [को०]।

अमूर्तिमान<sup>२१</sup>(अमूर्तिमान<sup>२१</sup>)—वि० [स० अमूर्तिमान] १ निराकार। मूर्तिरहित। २ अप्रत्यक्ष। अगोचर।

अमूर्तिमान<sup>२२</sup>(अमूर्तिमान<sup>२२</sup>)—सज्ञा पुं० विष्णु [को०]।



अमृतमथन—सज्ञा पुं० [म० अमृतमथन] अमृत के लिये समुद्र का मथन । समुद्रमथन [को०] ।

अमृतमती—सज्ञा स्त्री० [स०] अमृतगति छद्म [को०] ।

अमृतमालिनी—सज्ञा स्त्री० [म०] दुर्गा [को०] ।

अमृतमूरि—सज्ञा स्त्री० [स० अमृत + हि० मूरि] सजीवनी जड़ी । अमरमूर ।

अमृतमूर्ति—सज्ञा पुं० [स०] चंद्रमा [को०] ।

अमृतयोग—सज्ञा पुं० [म०] फलित ज्योतिष में एक शुभफलदायक योग । विशेष—राविवार को हस्त, गुरुवार को पुष्य, बुध को अनुराधा, शनि को रोहिणी, सोमवार को श्रवण, मंगल को रेवती, शुक्र को अश्विनी—ये सब नक्षत्र अमृतयोग में कहे जाते हैं । रवि और मंगलवार को नद्रा तिथि अर्थात् परिवा, पण्ड और एकादशी हो, शुक्र और सोमवार को मद्रा अर्थात् द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी हो, बुधवार को जया अर्थात् तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी, गुरुवार को रिक्ता अर्थात् चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी हो, शनिवार को पूर्णा अर्थात् पंचमी, दशमी और पूर्णिमा हो तो भी अमृतयोग होता है । इस योग के होने से मद्रा और व्यतीपात आदि का अशुभ प्रभाव मिट जाता है ।

अमृतरश्मि—सज्ञा पुं० [न०] चंद्रमा ।

अमृतरस—सज्ञा पुं० [म०] १ गुग्गुलु । अमृत । २ परब्रह्म [को०] ।

अमृतरसा—सज्ञा स्त्री० [म०] १ काले रंग का अमूर । २ एक मिठाई । अनरसा [को०] ।

अमृतलता—सज्ञा स्त्री० [म०] गुर्च । गिलोय ।

अमृतलतिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अमृतलता' ।

अमृतलोक—सज्ञा पुं० [स०] स्वर्ग । अमरलोक ।

अमृतवपु—सज्ञा पुं० [म०] १ चंद्रमा । २ विष्णु [को०] । शिव [को०] ।

अमृतवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] यज्ञोप सामग्री का उपयोग करना ।

उ०—वे तपस्वी ऋत और अमृतवृत्ति से जीवननिर्वाह करते हुए प्रार्थना करते थे ।—स्कंद०, पृ० १३२ ।

अमृतसजीवनी—वि० [स० अमृतसजीवनी] दे० 'मृतसजीवनी' ।

अमृतसम्भवा—सज्ञा स्त्री० [म० अमृतसम्भवा] गुर्च । गिलोय ।

अमृतसहोदर—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अमृतमोदर' ।

अमृतसार—सज्ञा पुं० [म०] १ नवनीत । मक्खन । २ घी ।

अमृतसारज—सज्ञा पुं० [म०] गुड [को०] ।

अमृतसू—सज्ञा पुं० [म०] चंद्रमा [को०] ।

अमृतसोदर—सज्ञा पुं० [म०] १ उच्चैः श्रवा नाम का अश्व । २ अश्व । तुंग [को०] ।

अमृतमवा—सज्ञा स्त्री० [म०] रुद्रती या रुद्रवती नाम का पीछा [को०] ।

अमृताधस्—सज्ञा पुं० [स० अमृतान्वस्] देवता ।

अमृताशु—सज्ञा पुं० [स०] वह जिसकी किरणों में अमृत हो । चंद्रमा ।

अमृता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ गुर्च । उ०—धरा बीच यह समय न जाह । नैवा साथ अमृता खाह ।—डूढा०, पृ० १५४ । २ द्वादशरात्र । ३ मातृकैवली । ४ अतीव ५ हड़ । ६ लाल ३८

निसोथ । ७ आँवला । ८ दूब । ९ तुलसी । १० पीपल । पिप्पली । ११ मदिरा । १२ फिटकरी [को०] । खरबूजा [को०] । १४ शरीर की एक नाडी [को०] । १५ सूर्य की एक किरण का नाम [को०] ।

अमृताक्षर—वि० [स०] १ अजर । अमर । अविनश्वर [को०] । उ०—  
फूटी तर अमृताक्षर निर्भर ।—अपरा, पृ० २३० ।

अमृताफल—सज्ञा पुं० [स०] परवर । परोरा । पटोल [को०] ।

अमृतासग—सज्ञा पुं० [स० अमृतासङ्ग] तृतीया [को०] ।

अमृताशी—सज्ञा पुं० [स०] १ विष्णु । २ देवता [को०] ।

अमृताशन—सज्ञा पुं० [स०] देवता [को०] ।

अमृताशो—सज्ञा पुं० [स० अमृताशिन] देवता [को०] ।

अमृताहरण—सज्ञा पुं० [म०] गृह ।

अमृताह्व—सज्ञा पुं० [म०] एक फल । नाशपाती [को०] ।

अमृतेश—सज्ञा पुं० [म०] १ देवता २ शिव [को०] ।

अमृतेशय—सज्ञा पुं० [स०] जलशायी विष्णु [को०] ।

अमृतेश्वर—सज्ञा पुं० [म०] अमृतेश [को०] ।

अमृतेष्टका—सज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार की ईंट [को०] ।

अमृतोत्पन्न—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अमृतोद्भव' ।

अमृतोत्पन्ना—सज्ञा स्त्री० [म०] मक्षिका । मक्खी [को०] ।

अमृतोद्भव—सज्ञा पुं० [स०] खर्परी तुल्य । खपरिया तृतीया [को०] ।

अमृत्यु<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] विष्णु का एक नाम [को०] ।

अमृत्यु<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० मृत्यु का अभाव । अमरता [को०] ।

अमृत्यु<sup>३</sup>—वि० १ अमर । अमृत बनानेवाला [को०] ।

अमृष्ट—वि० [स०] अमार्जित । जो साफ न हो । गदा । जो शुद्ध न किया गया हो ।

यौ०—अमृष्टभोजी = अपवित्र वा अशुद्ध भोजन करनेवाला । अमृष्ट-  
मृज = जिसकी शुद्धता अक्षुण्ण हो ।

अमेट<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अमित' । उ०—काह कहीं मैं ओहि कहँ जेइ दुख कीन्ह अमेट ।—जायसी ग्र०, पृ० २४२ ।

अमेजना<sup>(१)</sup>—वि० अ० [फा० अमेज] मिलावट होना । मिश्रण ।

उ०—(क) कहै पदमाकर पगी यो रस रंग जामे, खुलिये सुअग सब रगति अमेजे ते ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ४८ । (ख) मोतिन की माल ममलवारी सारी मजे, भनमल जोति होति चांदनी अमेजे मैं—वेनी (जवद०) ।

अमेजना<sup>(२)</sup>—वि० स० मिलाना । मिलावट करना ।

अमेठ<sup>(१)</sup>—सज्ञा स्त्री० [स० अ + मृष्ट, प्रा० पिठ्ठ, उ० पेठ उ० अमेठ] पिय । निपट निनज डह जेठ, धाय धाय बधुवनि गहै ।—  
दे० 'ऐँठ' । उ०—रही न ननक अमेठ तुम विन नदकुमार नद० ग्र०, पृ० १६६ ।

अमेठना<sup>(१)</sup>—वि० म० [हि० अमेठ से नाम०] दे० 'उमेठना' । उ०—  
पुनि जब भौह अमेठन लागै । तब ये खान वाल डरि भागै ।—  
नद० ग्र०, पृ० ३०१ ।

अमेठी—सज्ञा स्त्री० [हि० अमेठ + ई] ऐठ। अकड। अमिमान। गर्व।  
उ०—एक आँख शिक्षा की हेडी से देखने लगी उसे अमेठी से।—वेला, पृ० ५३।

अमेत०—वि० [स० अमित] अगणित। अनेक। अमित। उ०—सुक समीप मन कुँवरि की, लखी वचन कै हेत। अति विवित्र पडित मुआ, कथत जु कथा अमेत।—पृ० रा० २०। १३।

अमेदस्क—वि० [स०] मेदा रहित। दुवना पतना [को०]।

अमेघा—वि० [स० अमेघस्] जिसमे मेघा न हो। मूर्ख। बुद्धिहीन [को०]।

अमेघ्य<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ अपवित्र वस्तु। विष्ठा, मूत्र आदि।  
विशेष—स्मृति के अनुसार ये चीजें अमेघ्य हैं—मनुष्य की हड्डी, शव, विष्ठा, मूत्र, चरबी, पसीना, आँसू, पीव, कफ, मध, वीर्य और रज।

२ एक प्रकार का प्रेत। ३ अपशकुन [को०]।

अमेध्य<sup>२</sup>—वि० १ जो वस्तु यज्ञ में काम न आ सके। जैसे, पशुओं में कुत्ता और अन्नो में मसूर, उद आदि। २ जो यज्ञ कराने योग्य न हो। ३ अपवित्र।

अमेय—वि० [स०] १ अपरिमाण। असीम। इयत्ताशून्य। बेहद।  
२ जो जाना न जा सके। अज्ञेय। उ०—कथ सुदर सुदर नामधेय। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमेय।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० २७६।

अमेयात्मा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स० अमेयात्मन्] विष्णु [को०]।

अमेयात्मा<sup>२</sup>—वि० महान् आत्मावाला। उदारमना। [को०]।

अमेरिकन—वि० [अ०] १ अमेरिका का। २ मयुक्त राष्ट्र अमेरिका का निवासी। ३ अमेरिका स्वघी।

अमेरिका—सज्ञा पुं० [अ०] पश्चिमी गोलार्ध का एक महादेश। यह दो भागों में बँटा हुआ है—उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका। उ०—तुम नहीं मिले तुमसे हैं मिले हुए नव योरप अमेरिका।—अनामिका, पृ० २१।

अमेरिकी—वि० [हि०] दे० 'अमेरिकन'।

अमेल—वि० [स० अ + मेल] जिसका किसी से मेल न बैठता हो। जो किसी से मेल न खाए। अनमेल। असवद्ध।

अमेली०—वि० [हि० अमेल] अनमिल। असवद्ध। अड वड। उ०—खेल काग अति अनुराग मों उमग तें, वे गावें मन भावें, तहाँ वचन अमेली के (शब्द०)।

अमेव०—वि० [हि०] दे० 'अमेय'।

अमेह—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का रोग जिसमें पेशाब नहीं उतरती या रुक रुककर उतरती है।

अमेड०—वि० दे० 'अमडे'।

अमेडा०—वि० [हि० अ + मेड = सीमा] सर्यादा या सीमा न मानने वाला। उ०—कोऊ न देखें न काहू दिखावन आपनो आनन जान अमेडे।—घनानन्द, पृ० ४६।

अमेठना०—क्रि० सं० [हि०] दे० 'अमेठना'।

अमोक्ष<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ मोक्ष न मिलना। २ वधन [को०]।

अमोक्ष<sup>२</sup>—वि० १ जिसका मोक्ष न हुआ हो। अमुक्त। २ जिसका मोक्ष न हो सके। ३ बँधा हुआ [को०]।

अमोगी<sup>१</sup>—वि० [स० अमोघ] अत्यधिक। बहुत (बोल०)।

अमोघ<sup>१</sup>—वि० [स०] १ निष्फल न होनेवाला। वृथा या अन्यथा न होनेवाला। अव्यर्थ। अचूक। लक्ष्य पर पहुँचनेवाला। खाली न जानेवाला। २ अनिष्ट। अद्वितीय। उ०—सब सामत ममघ चडि। विच सुदरी अमोघ।—पृ० रा०, २५। ७२०।

अमोघ<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ व्यर्थ न होने का भाव। अव्यर्थ। २. शिव। ३, विष्णु [को०]।

अमोघकिरण—सज्ञा स्त्री० [स०] सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की किरण [को०]।

अमोघदंड—सज्ञा पुं० [स० अमोघदण्ड] वह जो दंड देने में न चूके। शिव [को०]।

अमोदशी—वि० [स० अमोघदशीन्] अचूक दृष्टिवाला [को०]।

अमोघदृष्टि—वि० [स०] दे० 'अमोदशी'।

अमोघवाक्—वि० [स०] जिसकी वाणी की व्यर्थ न होनी हो [को०]।

अमोघविक्रम<sup>१</sup>—वि० [स०] जिसका पराक्रम कभी विफल न होता हो [को०]।

अमोघविक्रम<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० शिप्र [को०]

अमोघा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कश्यप की एक स्त्री जिनमें पक्षी उत्पन्न हुए थे। २ हड। ३ वायविडग। ४ पादर का पेड़ और फूल। ५ शिव की पत्नी [को०]। ६ एक जन्म। जक्ति [को०]।

अमोचन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] छुटकारा न होना। न छूटना।

अमोचन<sup>२</sup>०—वि० न छूटनेवाला। दृढ़। उ०—पूँदि रहे निप प्यारी लोचन। अति हित वेनी उर परनाए वेष्टित भुजा अमोचन।—सूर०—(शब्द०)।

अमोचनीय—वि० [स०] न छूटने योग्य [को०]।

अमोद<sup>१</sup>—वि० [स०] मोद रहित। आनन्दशून्य [को०]।

अमोद<sup>२</sup>०—सज्ञा पुं० [स० अमोद] मुग्ध। आमोद। उ०—नैसे कमल अमोदहि पाइ। ठाँ ठाँ उठत मधुप अकुलाइ।—नद० ग्र०, पृ० २५६।

अमोनिया—सज्ञा पुं० [अ० एमोनिया] नीमादर।

अमोर<sup>१</sup>०—वि० [हि०] न मुड़नेवाला। अडिग। स्थिर। उ०—रज पुन पचास भूपभे अमोर। वनै जीत के नह नीसान घोर।—पृ० रा०, २०। ६६।

अमोर<sup>२</sup>—वि० [हि०] दे० 'अमो'। उ०—अत्यन्त नामो कहैं, भूपन बुद्धि अमोर।—भूपण २, पृ० २७८।

अमोरी०—सज्ञा स्त्री० [हि० अम + औरी (प्रत्यय)] १ आम का बहुत छोटा कच्चा फल। अँविया। २ आमहा। प्रमाणी। उ०—फन को नाम बुझावन लागे हरि कहि दिगो अमोरी।—सूर (शब्द०)।

अमोल०—वि० [स० अमूल्य] [वि० स्त्री० अमोली] १ असूना। अत्यधिक मूल्य का। मूल्यवान्। उ०—रम त्रिगार पार के पाओत अमोल मनोभव मिश्रा।—विद्यापति, पृ० ३५। २ जिसका मूल्य न लगाया जा सके। तुव नाम अमोल ममरय करहु दाया निर्धन।—कबीर सा०, पृ० ५२२।

अमोलक०—वि० [हि० अमोल + क (प्रत्यय)] दे० 'अमूल्य'। उ०—ठाँडि काक मनि रतन अमोलक काँव की फिरव गही।—सूर० (शब्द०)।

प्रमोना—सज्ञा पुं० [सं० आम्न] ग्राम का नया निरुत्पन्न इया गोत्र।  
प्रमोलि०—वि० [हिं०] दे० अनुल०। उ०—गाटवर पहिराय  
कं प्रथित प्रमोलि०। नदराय देव फूने नदरास वोतिके।—  
नद० ग्र० पृ० ३३६।

प्रमोही०—वि० [सं० प्रमोह + ई (प्रत्य०)] १ विरक्त। २. निर्मोही।  
निष्ठुर। उ०—मीत सुजान अनीति करी जिन हा हा न  
हृदिए मोहि प्रमोही।—घनानन्द०, पृ०।

प्रमोघा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० ग्राम + प्रोघा (प्रत्य०)] १ ग्राम के फन  
का रंग। यह कई प्रकार का होता है, जैसे, पीला, मुनहरा, माजी,  
फिनाली, रंगीला इत्यादि। २. प्रमोघा रंग का कण्डा।

प्रमोघा<sup>२</sup>—वि० ग्राम के रस के रंग का।

प्रमोन—सज्ञा पुं० [सं०] १ मोन का अभाव। वीरना। २. आत्म-  
ज्ञान। ३. मुनि के कर्तव्यों का आगमन। मुनि न होना [को०]।

प्रमोलिक—वि० [सं०] १ बिना जड़ का। निर्मूल। २. वे सिर पर  
का। बिना आधार का। जिनका मत मूल से न हो। ३.  
अवधार्य। मिथ्या। ४. अन्य रचना के आधार पर या अनुवाद  
के रूप में रचित [को०]।

ग्रम्म—सज्ञा पुं० [सं०] चाचा। उ०—कहे रे ग्रम्मे बुजुर्गार व मेरे  
हुनिया होर दीन के आधार मेरे।—दक्खिनी, पृ० २३७।

ग्रम्मय—वि० [सं०] जनमय। जलपुक्त या जननिमित्त [को०]।

ग्रम्मर०—वि० [हिं०] दे० 'ग्रमर'। उ०—मना है अस्थान ग्रम्मर  
जोति है परगाम।—जग० बानी, भा० १, पृ० ४।

ग्रम्मरमरा—सज्ञा पुं० [हिं० ग्रम्मर + रा (प्रत्य०)] ग्रमृतसर का  
कवूनर। एक कवूनर जिनका सारा शरीर सफेद और कठकाला  
होता है।

ग्रम्मल—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रमल'। उ०—बाजीगिरी रंग दिखावे  
ऐसा ग्रम्मल मुझे नहि भावे।—दक्खिनी, पृ० १२५।

ग्रम्मा—सज्ञा स्त्री० [सं० ग्रम्मा] माता। माँ।

ग्रम्मामा—सज्ञा पुं० [सं० ग्रम्मानह] एक प्रकार का माका जिसे मुमल-  
मान बाँधने हैं।

ग्रौ—ग्रम्मामेवाज—(१) साफ बाँध हुए। (२) साफा  
बाँधनेवाला।

ग्रम्मारी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ग्रवारी'।

ग्रम्पा—ग्रव्य० [हिं०] दे० 'ग्रमा'। जैसे, ग्रम्पा क्या कहते हो।

ग्रम्र<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] आम्न [को०]।

ग्रम्र<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ वात। विषय। कार्य। मुग्रामिला। उ०—  
ग्रम्र खुदा का लिखा वजा तू नही ते मुनकिर होना।—दक्खिनी  
पृ० ५५। २. हुक्म। आदेश।

ग्रम्रत०—पुं० [हिं०] दे० 'ग्रमृत'। उ०—चउरास्या सह  
वसुंध्या। ग्रम्रत रसायण नरतति व्यास—श्री० रासो, पृ० १००

ग्रम्रात—सज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रमडा का पेड़। २. ग्रमडा फल [को०]।

ग्रम्रातक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रम्रात'।

ग्रम्रत्या०—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रम्रत्या'। (प्रत्येकार्य०)।

ग्रम्रित०—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ग्रमृत'। उ०—सत्त ताम रय अम्रित  
पीवहु, चरन तें ली लाइ।—जग० बानी, भा० ६, पृ० २५।

ग्रम्रियमाण—वि० [सं०] जो मरणशील न हो। अमर। उ०—मैं  
गाता था गाने भूले ग्रम्रियमाण।—प्रनामिका, पृ० ४५।

ग्रम्र<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ जिह्वा से अनुबून होनेवाला छ रसों में से  
एक। भटाई। २. तेजाव। ३. सिरका [को०]। ४. मट्ठा जिसमें  
एक चतुर्थांश जल हो [को०]। ४ वमन [को०]।

ग्रम्र<sup>२</sup>—वि० खट्टा। तुर्ण।

ग्रौ—ग्रम्लपचरु—पाँच प्रकार के प्रमुख खट्टे फल—जवीरी नीबू,  
खट्टा अनार, इमली, नारंगी और अमलवेत।

ग्रम्रक—सज्ञा पुं० [सं०] लज्जु वृक्ष। बड़हार।

ग्रम्रकाड—सज्ञा पुं० [सं०] अम्लकाड] एक पौधा। लवणवृक्ष [को०]।

ग्रम्लकेशर—सज्ञा पुं० [सं०] त्रिजोरा नीबू [को०]।

ग्रम्लगोरस—सज्ञा पुं० [सं०] खट्टा दूध [को०]।

ग्रम्लजन—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आक्षिपजन'।

ग्रम्लतरु—सज्ञा पुं० [सं०] इमली का वृक्ष [को०]।

ग्रम्रता—सज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टापन। खटाई।

ग्रम्रनिशा—सज्ञा पुं० [सं०] शशी नाम का पौधा [को०]।

ग्रम्रजत्र—सज्ञा पुं० [सं०] ग्रममनक नाम का पौधा [को०]।

ग्रम्रपत्री—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पत्राशी लता। २ क्षुद्राम्बिका [को०]।

ग्रम्रपनस—सज्ञा पुं० [सं०] बड़हार [को०]।

ग्रम्रपाद—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रम्लतरु'।

ग्रम्रपित्त—सज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष जिसमें जो कुछ भोजन किया  
जाता है सब पित्त के दोष में खट्टा हो जाता है।

विशेष—यह रोग लूखी, खटी, कड़वी और गर्म वस्तुओं के खाने  
में उत्पन्न होता है। इसके लक्षण ये हैं—रगविरग का मत  
उतरना, दाह, वमन, मूछा, हृदय में पीडा, ज्वर, भोजन में  
अरुचि, खट्टे डकार आना इत्यादि।

ग्रम्रफल—सज्ञा पुं० [सं०] इमली [को०]।

ग्रम्रवीजक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रम्रफन'।

ग्रम्रभेदन—सज्ञा पुं० [सं०] ग्रम्रवेत [को०]।

ग्रम्रमेह—सज्ञा पुं० [सं०] मूत्रविषयक रोग। एक प्रकार का  
प्रमेह [को०]।

ग्रम्ररुहा—सज्ञा पुं० [सं०] मालवा में पाया जानेवाला एक प्रकार  
का पान [को०]।

ग्रम्रलोणिका—सज्ञा पुं० [सं०] ग्रमलोनी। नोनियाँ साग।

ग्रम्रलोणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ग्रम्रलोणिका' [को०]।

ग्रम्रलोलिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ग्रमलोनी' [को०]।

ग्रम्रवर्ग—सज्ञा पुं० [सं०] खट्टे फलों या पत्तों का वर्ग जिसमें नीबू,  
नारंगी अनार, इमली आदि आते हैं [को०]।

ग्रम्रवल्ली—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक कद। त्रिपर्णिका [को०]।

ग्रम्रवाकट—सज्ञा पुं० [सं०] आमडा फल और वृक्ष [को०]।

ग्रम्रवाटिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पान [को०]।

ग्रम्रवास्तूक—सज्ञा पुं० [सं०] चुक्रक [को०]।

ग्रम्रवृक्ष—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रम्रतरु' [को०]।

ग्रम्रवेत—सज्ञा पुं० [सं०] अमलवेत] दे० 'अमलवेत'।



अम्लसार—सज्ञा पुं० [सं०] १ काँजी। २ चूक। ३ अमलवेत। ४ हितान। ५ अमलसार गधक। ६ नीबू का फल और वृक्ष [को०]।

अम्लहरिद्रा—सज्ञा स्त्री० [सं०] आँवहा। दी। कपूर कचगी।

अम्लाकुश—सज्ञा पुं० [सं० अम्लाकुश] एक खट्टा साग [को०]।

अम्लाव्युषित (रोग)—सज्ञा पुं० [सं०] आँख का रोग जो अधिक खटाई खाने से होता है।

विशेष—इस रोग में आँखें लाल हो जाती हैं कभी कभी पक भी जाती हैं, उनमें पीड़ा होती है, और पानी बहा करना है।

अम्लान<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ जो उदासन हो। मलिन न हो। विना मुरझाया हुआ। २ जो प्रफुल्लित हो। हृष्ट। प्रसन्न। ३ निर्मल। स्वच्छ। साफ।

अम्लान<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ वाणपुष्प नामक वृक्ष। २ दुग्हरिया। कसरैया।

अम्लानि<sup>१</sup>—वि० [सं०] जो मुरझाए नहीं [को०]।

अम्लानि<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० १ शक्ति। २ ताजगी। नवता [को०]।

अम्लानी—वि० [सं० अम्लानिन्] साफ। स्वच्छ [को०]।

अम्लिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ इमली। २ खट्टी उवार। ३ पनाण आदि पौधे [को०]।

अम्लिकावटक—सज्ञा पुं० [सं०] खटाई से युक्त एक प्रकार का वडा [को०]।

अम्लिमा—सज्ञा स्त्री० [मं०] खट्टापन [को०]।

अम्लोकरण—सज्ञा पुं० [सं०] वह क्रिया जिसमें कोई वस्तु खट्टी की जाय।

अम्लोका—सज्ञा स्त्री० [सं०] अम्लिका। इमली [को०]।

अम्लीय—वि० [मं०] अम्ल विषयक। अम्ल से संबंधित [को०]।

अम्लोटक—सज्ञा पुं० [सं०] अम्लमय पौधा [को०]।

अम्लोद्गार—सज्ञा पुं० [सं०] खट्टी ढकार।

अम्लह(पु)—सर्व० [सं० अम्लह्, प्रा० अम्लह्] दे० 'हम'। उ०—अम्लहमन अचरिज भएउ, सखियाँ आखड एम।—ढोना० दू०, ६।

अम्लहारी—सज्ञा स्त्री० [मं० अम्ल-जल+हि० और (प्रत्य०) अयवा सं० ऊप्सा, प्रा० उम्हा, उम्ह, प्रा० अम्लह+औरी प्रत्य०] बहुत छोटी छोटी फुसियाँ जो गरमी के दिनों में पसीने के कारण लोगों के शरीर में निकल आती हैं। अघोरी।

अय—सर्व० [सं० अयम्] यह। उ०—दुइ दड भरि ब्रह्माड भीतर काम कृत कौतुक अय।—मानस। १।८५।

अयत्र<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अयन्त्र] १ वह जो वश या नियंत्रण में न हो। १ यत्र का अभाव। ३ अनियंत्रण। नियंत्रण का अभाव [को०]।

अयत्र<sup>२</sup>—वि० अनियंत्रित। अवशीकृत [को०]।

अयत्रित—वि० [सं० अयन्त्रित] १ जो यत्रित या वशीकृत न हो। स्वच्छाचारी।

अय—सज्ञा पुं० [सं०] अयस् (लोहा) का समासगत रूप।

अय पान—सज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार एक नरक का नाम।

अय पिंड—सज्ञा पुं० [सं० अय पिण्ड] लोहे का गोता। लौहपिंड [को०]।

अय शकु—सज्ञा पुं० [सं० अयशकु] १ नेजा। भला। २ लोहे की कील। अँटी [को०]।

अय शय—वि० [मं०] लोहे में रहनेवाला (अग्नि) [को०]।

अय शूल—सज्ञा पुं० [मं०] १ एक अस्त्र। तीव्र उपपात। तीक्ष्ण उपाय।

अय शोभो—वि० [अय शोभिन्] सौभाग्य में दीप्त [को०]।

अय<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] १ गमन। जाना। गति। २ अच्छा भाग्य। शुभविवाह विधि। अम्युदय। ३ पासा। अक्ष। ४ शुभ कार्य। मंगल कृत्य [को०]।

यौ०—अयवान् अयान्वित = भागवान्।

अय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अयस्] १ लोहा। उ०—उमग सकल मुठि चचल करनी। अय डव जरन धरत पग धरनी।—मानन, १।२६८। २ डस्पात। शुद्ध लोहा [को०]। ३ अम्र शस्त्र। हथियार। ४ अग्नि। ५, कोई धातु [को०]। ६ स्वर्ण [को०]।

अय<sup>३</sup>—प्रव्य [सं० अयि] सर्वोद्यन का शब्द। हे।

विशेष—ग्रह अधिकतर 'ऐ' लिखा जाता है।

अयक्ष्म—वि० [मं० अयक्ष्मन्] १ नीरोग। रोगरहित। २, निगदव। बाधाशून्य।

अयजनीय—वि० [मं०] जो यज्ञ में पूजा या आदर के अयोग्य हो। अपूज्य। २ निंदित।

अयज्ञ—वि० [वि०] १ यज्ञ न करनेवाला। २ यज्ञ न हो [को०]।

अयज्ञक—वि० [मं०] जो यज्ञ के लिये अनुपयुक्त हो [को०]।

अयज्ञिय—वि० [मं०] १ जो यज्ञ के काम में न लाया जाता हो। २ जो यज्ञ में न दिया जाता हो। ३ अपवित्र। अशुद्ध। ४ यज्ञ करने के अयोग्य। जो शास्त्र के अनुसार यज्ञ करने का अधिकारी न हो।

अयज्ञीय—वि० [मं०] दे० 'अयज्ञिय' [को०]।

अयत—वि० [मं०] उच्छृंखल। स्वेच्छाचारी। जो सयत न हो [को०]।

अयति—वि० [सं०] उद्योगहीन। यत्न न करनेवाला [को०]।

अयती—वि० [सं० अ+यतिन्] जो यती या जिज्ञेय न हो। इन्द्रियों के वश में रहनेवाला [को०]।

अयतेन्द्रिय—वि० [सं० अयतेन्द्रिय] १ जो इन्द्रियों का सयम न कर सके। इन्द्रियनिग्रह न करनेवाला। २ ब्रह्मवर्चस्पृष्ट। ३ चर्चलेन्द्रिय। इन्द्रिय लोप।

अयतन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] यत्न का अभाव। उद्योगशून्यता।

अयतन<sup>२</sup>—वि० यत्नशून्य। उद्योगहीन।

यौ०—अयतनित = अयतनमात्र। जो बिना प्रयास हो जाय।

अयतनकृत्—वि० [सं०] बिना प्रयास के होनेवाला। सरलता से पूर्ण होनेवाला [को०]।

अयतनज—वि० [सं०] स्वतः हो जानेवाला। प्रामाणी से होने वाला [को०]।

अयतनलभ्य—वि० [सं०] बिना प्रयास के प्राप्त होने योग्य [को०]।

अथथा<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ मिथ्याभूत। भूड। अतथ्य। २ अयोग्य।

अथथा<sup>२</sup>—प्रव्य० गलत ढंग से। अनुचित रूप से [को०]।

अथथा<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० १- किसी काम की विधि के अनुसार न करना। विधिविरुद्ध कर्म। अनुचित काम।

अथथातथ<sup>१</sup>—वि० [स०] अथथार्थ । विरुद्ध । विपरीत । यथायोग्य नही ।

अथथातथ<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० विपरीत या अयोग्य कार्य [को०] ।

अथथातथ्य—सञ्ज्ञा पु० [स०] अयोग्यता । अनुपयुक्तता । व्यर्थता अथार्थता [को०] ।

अथथाद्योतन—सञ्ज्ञा पु० [स०] अप्रत्याशित घटना घटित होना [को०] ।

अथथापूर्व—वि० [स०] जो पूर्ववत् न हो । जो पहले जैसा न हो ।

अथथामुखीन—वि० [स०] जिसका व्यवहार पहले जैसा न हो । जिसने मुँह फेर लिया हो [को०] ।

अथथावृत्त—वि० [स०] अनुचित या गलत ढंग में काम करनेवाला ।

अथथास्थित—वि० [स०] जो वेदभेषज से रखा गया । अव्ययस्थित [को०] ।

अथथार्थ—वि० [स०] १ जो यथार्थ न हो । मिथ्या । अमत्य । २ जो ठीक न हो । अनुचित । अनुपयुक्त ।

यो०—अथथार्थज्ञान = मिथ्या ज्ञान । भूठा ज्ञान । अथ ।

अथथावृत्त—वि० [स०] अनुचित ढंग या गलत तरीके से [को०] ।

अथथेष्ट—वि० [स०] १ जो यथेष्ट या मतोपजनक न हो । २ इच्छा के विपरीत हो [को०] ।

अथथोचित—वि० [स०] १ जो समुचित या मुनासिब न हो । २ अयोग्य [को०] ।

अथथन—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ गति । चाल । २ सूर्य या चंद्रमा की दक्षिण से उत्तर या उत्तर से दक्षिण की गति या प्रवृत्ति जिसको उत्तरायण और दक्षिणायन कहते हैं । वाग्वह राशिचक्र का आघात ।

विशेष—मकर में मिथुन तक छह राशियों को उत्तरायण कहते हैं । क्योंकि इसमें स्थित सूर्य या चंद्र पूर्व से पश्चिम को जाते हुए भी क्रम से कुछ कुछ उत्तर को झुकते जाते हैं । ऐसे ही कर्क से धनु की सक्रांति तक जब सूर्य या चंद्र की गति दक्षिण की ओर झुकी हुई दिखाई देती है तब दक्षिणायन होता है । ३ राशिचक्र की गति ।

विशेष—ज्योतिषशास्त्र के अनुसार यह राशिचक्र प्रतिवर्ष ५४ विकला, प्रतिमास ४ विकला, ३० अनुकला और प्रतिदिन ६ अनुकला खिमकता है । ६३ वर्ष ८ महीने में राशिचक्र विपुवत् रेखा पर पूरा एक फेरा लगाता है । यह दो भागों में विभक्त है—प्रागयन और पश्चादयन ।

४. ग्रह तारादि की गति का ज्ञान जिम शास्त्र में हो । ज्योतिष शास्त्र । ५. सेना की गति । एक प्रकार का सेनानिवेश (कवायद) जिसके अनुसार व्यूह में प्रवेश करते हैं । ६. मार्ग । राह । ७. आश्रम । ८. स्थान । ९. घर । १०. काल । समय । ११. अश । १२. एक प्रकार का यज्ञ जो अथन के प्रारंभ में होता था । १३. गाय या भैंस के यन के ऊपर का वह भाग जिसमें दूध मरा रहता है । उ०—अंतर अथन अथन मल, यन फल, वच्छ वेद विस्वासी ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६४ ।

अथनकाल—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ वह काल जो एक अथन में लगे । २ छह महीने का काल ।

अथनभाग—सञ्ज्ञा पु० [स०] अथन अश वा हिस्सा ।

अथनवृत्त—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ सूर्य के गमन में व्रतनेवाला वृत्त । २. ग्रहण की रेखा [को०] ।

अथनसक्रम—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अथनमङ्कम] १ मकर और कर्क की सक्रांति । अथन सक्रांति । २. प्रत्येक सक्रांति से २० दिन पहले का काल ।

अथनसक्रांति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अथनसङ्क्रांति] मकर और कर्क की सक्रांति । अथनसक्रम ।

अथनसपात—सञ्ज्ञा पु० [स० अथनसम्पात] अथनाशों का योग ।

अथनसमात—सञ्ज्ञा पु० [स० अथनसमात] १ रात और दिन दोनों का बराबर होना । विपुवत् रेखा पर उन दो बिंदुओं में से एक, जिनपर से हाकर सूर्य का क्रांतिवृत्त (सूर्य का मार्ग) विपुवत् रेखा को वर्ष में दो बार (छह छह महीने पर) काटता है । जब किसी एक बिंदु पर सूर्य आता है, तब रात और दिन दोनों बराबर होते हैं । इसी को अथनसमात कहते हैं । २. उक्त दोनों बिंदु ।

अथनात—सञ्ज्ञा पु० [स० अथनात] अथन की समाप्ति । वह मंत्रिकान जहाँ एक अथन समाप्त हो और दूसरा अथन आरंभ ।

अथनाश—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ सूर्य की गतिविशेष के काल का भाग । २. विपुवत् रेखा पर के दो बिंदु जिनपर से होकर सूर्य का क्रांतिवृत्त (गमन का मार्ग) वर्ष में दो बार (छह छह महीने पर) काटता है और जिनपर सूर्य के आने पर रात और दिन दोनों बराबर होते हैं ।

अथमदिन—सञ्ज्ञा पु० [स०] ६० घड़ी का वह एक ही रात दिन जिममें दो तिथियों का अवसान हो जाय ।

विशेष—कहा गया है कि ऐसे दिन में स्नान और दानादि के अतिरिक्त और कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिए ।

अथमिन—वि० [स०] १ जिमें नियमित न किया जाय । २. जो काट छाँटकर दुस्त न किया गया हो । अमज्जित [को०] ।

अथम्—सर्व० [स०] यह ।

अथव<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ पुष्पी का एक कोड़ा जो यव में छोटा होता है । कद्दूदाना । २. पितृकर्म, क्योंकि इस कृत् में यव नहीं काम आता । ३. शत्रु । ४. कृष्ण पक्ष ।

अथव<sup>२</sup>—वि० १ जिममें यव का प्रयोग न हो । २. अभावयुक्त । अपूर्ण [को०] ।

अथश—सञ्ज्ञा पु० [स० अथशस्] १ अपयण । अपकीर्ति । २. निंदा ।

अथशस्कर—वि० [स०] अपयण का कारण । जिसके करने से बदनामी हो ।

अथशस्य—वि० [स०] जिसे बदनामी हो । बदनाम करानेवाला ।

अथशस्वी—वि० [स० अथशस्विन्] १ जिमें यश न मिले । अकीर्तिमान् । बदनाम ।

अथशी—वि० [स० अथशस्वी, हि० अथशी, अजसी] बदनाम ।

अथश्चूर्ण—सञ्ज्ञा पु० [स०] लोहे का चूरा [को०] ।

अथस—सञ्ज्ञा पु० [स० अथस्] लोहा ।

विशेष—समासात् में प्रयुक्त, जैसे कृष्णायस, कालायस आदि ।

अथस्कंस—सञ्ज्ञा पु० [स०] लोहे का प्यालानुमा पात्र [को०] ।

अयस्काड—सज्ञा पुं [मं० अय-ताड] १ लोहे का तीर। २ लोहे की अधिकता। ३ उत्तम लोहा [को०]।

अग्रयस्कात—सज्ञा पुं [मं० अग्रयस्कान्त] चुरक।

अग्रयस्कातमणि—सज्ञा पुं [मं० अग्रयस्कान्त मणि] चुरक [को०]।

अग्रयस्कार—सज्ञा पुं [सं०] १ लोहार। २ जाँत का ऊपरी भाग [को०]।

अग्रयस्कीट—सज्ञा पुं [मं०] मोरचा। जग [को०]।

अग्रयस्कुम्भ—सज्ञा पुं [मं० अग्रयस्कुम्भ] [स्त्री० अग्रयस्कुम्भी] लोहे का गगरा [को०]।

अग्रयस्कृशा—सज्ञा स्त्री [मं०] लोहे की बनी रस्मी। लोहे के मेन में बनी रस्मी [को०]।

अग्रयस्ताप—वि० [मं०] लोहे को तपाना [को०]।

अग्रयस्थूरा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [मं०] एक वैदिक ऋषि [को०]।

अग्रयस्थूरा<sup>२</sup>—वि० [सं०] लोहे के स्तम्भ में युक्त। जिसमें लोहे के खंभे लगे हों [को०]।

अग्रयौ—वि० [अ०] १ प्राण्ड। जाहिर। २ स्पष्ट।

अग्राचक—वि० [मं०] १ नहीं माँगे वाला। जो माँगे नहीं। २ मनुष्य। पूर्णकाम।

अग्राचिन—वि० [मं०] बिना माँगा हुआ। उ०—तदा अग्राचिन देते हैं फल प्रेम में।—कानन०, पृ० १०५।

यौ०—अग्राचिनोपस्थित=बिना माँगे प्राप्त। अग्राचिनवृत्ति, अग्राचिन वन=बिना माँगे प्राप्त वस्तु से जीविका निर्वाह करने का नियम।

अग्राची—वि० [मं० अग्राचिन्] १ अग्रवक्त्र। न माँगे वाला। २ अग्राचक। पूर्णकाम। सपन्न। ३ समृद्ध। बनी।

अग्राच्य—वि० [सं०] १ जिसे माँगने की आवश्यकता न हो। पूर्ण काम। भरापूरा। उ०—कुछ को अग्राच्य करने न देग की दशा मुझर नहीं सकती।—प्रेमचन०, पृ० २७६। २ मनुष्य। तृप्त। ३ जो माँगे जाने योग्य न हो।

अग्राज्य<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ जो यज्ञ करान योग्य न हो। जिसको यज्ञ कराने का अधिकार न हो। २ पतिन। ३ यज्ञ के अयोग्य [को०]।

अग्राज्य<sup>२</sup>—सज्ञा पुं [मं०] चाटान। अग्रज [को०]।

अग्राज्ययाजक—सज्ञा पुं [मं०] वह याजक जो ऐसे पुरुष को यज्ञ करावे जिसको यज्ञ कराना शास्त्रों में वर्जित है।

अग्राज्ययाजन—सज्ञा पुं [सं०] अनधिकारी व्यक्ति से यज्ञ कराना [को०]।

विशेष—यह उपपातको मे है। इसे अग्राज्यमयाज्य भी कहते हैं।

अग्रात—वि० [सं०] जो न गया हो [को०]।

अग्रातपूर्व—वि० [सं०] १ अनुगत। अनुयायी। २ उत्तराधिकारी। ३ स्थानापन्न [को०]।

अग्रातयाम—वि० [सं०] १. जिसको एक पहर न बीता हो। २ जो बासी न हो। ताजा। ३ विगतदोष। शुद्ध। ४ जो अतिक्रान्त काल का न हो। ठीक समय का ५. जो व्यवहृत होने से नष्ट न हुआ हो [को०]।

अग्राथायिक—वि० [मं० स्त्री० अग्राथायिकी] १ जो नष्ट न हो। गता। भग्न। २ अवाप्तविक। ३ अनुचित। अग्राम [को०]। अग्रान<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [मं०] १ स्वभाव। निर्मग। २ प्रवृत्तता। स्थिरता।

अग्रान<sup>२</sup>—वि० [मं०] बिना सवारी का। पैदा।

अग्रान<sup>३</sup>—वि० [मं० अज्ञान, प्रा० अग्रान] १ प्रज्ञ। मूर्ख। उ०—कहइ सो अधनु अग्रान अग्राम्।—मानन, २।२०६। २ ज्ञान-रहित। नादान। उ०—तुनि हैं कुमल मे म नेरे। जे प्रयान अग्र वृद्ध घनेरे।—हम्मीर०, पृ० १३।

अग्रानत—सज्ञा स्त्री [अ० इग्रानत] महायना। मदद।

अग्रानता—वि० [हिं० अग्रान + ता (प्रत्यय)] ज्ञानीता। अज्ञता। मूर्खता।

अग्रानप—सज्ञा पुं [हिं० अग्रान + प (प्रत्यय)] १ अज्ञानता। अनज्ञानापन। उ०—यहाँ को मथानप अग्रानप सहन सम, सूखी मन नाय कहे मिटति म नीनता।—तुलसी ग्र०, पृ०, ५२६। २ मोलापन। नीचापन।

अग्रानपन—सज्ञा पुं [हिं० अग्रान + पन] १ अज्ञानता। २ मोलापन। नीचापन। उ०—तुव अग्रानपन नहि मटू नटू नए नंदना, जय मथानपन नेहिई नव धा कहा हुआ।—पद्मकर ग्र०, पृ० १२८।

अग्रानय—वि० [मं०] १ अच्छी या बुरी तकदीर। नीमाय या दुर्भाग्य २ अंतरज की एक ऐसी जगह जिसे विगोधी छिनाडी के मुहरे नहीं अपना सकते [को०]।

अग्राना—वि० पुं [मं० अग्रान, प्रा० अग्रान] [वि० स्त्री० अग्रानि] अज्ञान। बुद्धिहीन। अज्ञानी। उ०—(क) जो पै प्रभु प्रमाड बछु जाना। तो कि बराबरि करे अग्राना।—मानन, १।२०६।

अग्राम—सज्ञा पुं [मं०] १ समग्र गाव। समय की कमी। २ दिन का कोई भाग। ३ जो मार्ग या पथ न हो [को०]।

अग्रान<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [तु० बाल का० अग्राल] मोटे घोंघे यादि की गदन के बाल। केसर।

अग्रान<sup>२</sup>—सज्ञा पुं [अ० इग्राल] लडके वाले। बाल बच्चे।

अग्रालदार—सज्ञा पुं [फा०] १ कपड़े पर आँवना पशु, जैसे घोड़ा, शेर। २ बालवच्छावाला गृहस्थ [को०]।

अग्रावक—वि० [मं०] स्वाभाविक या प्रकृत यात [को०]।

अग्रावन—सज्ञा पुं [मं०] समिति न होने देना [को०]।

अग्रास—वि० [मं०] अ= नहीं + आस=यत्न। बिना प्रयत्न। बिना उद्योग के। सहज ही। उ०—वृक्षों से ही बड़ो अग्रास।—युग०, पृ० ७३।

अग्रास्य<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [मं०] १ शत्रु। विरोधी। २ प्राणवायु। ३. अगिरा ऋषि।

अग्रास्य<sup>२</sup>—वि० निश्चल। अटन।

अग्रि—प्रव्य [मं०] है। अरे। अरी। यह मवोधन के लिये प्रयुक्त होता है।

अग्रुक—वि० [सं० अग्रुज] अग्रुक [को०]।

अग्रुकृच्छद—सज्ञा पुं [मं०] १. सप्तपर्ण वृक्ष। छतिवन। मतान।

२. वह वृक्ष या पीघा जिसकी अग्रुन पत्तियाँ हल, जैसे वेत, अरहर आदि।

अयुक्तेत्र—सज्ञा पुं० [मं०] शिव [को०] ।

अयुक्पलाय—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अयुक्छद' ।

अयुक्शक्ति—सज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

अयुक्शर—सज्ञा पुं० [मं०] पंचशर । कामदेव [को०] ।

अयुक्त—वि० [मं०] १ अयोग्य । अनुचित । वेटीक । २ अभिहित । असयुक्त । अलग । ३ आपद्ग्रस्त । ४ जो दूसरे विषय पर आसक्त हो । अनमना । ५ असवर् । युक्तिशून्य । ७ अविवाहित [को०] ।

यौ०—अयुक्तकृत् = बुरा या गलत काम करनेवाला । अयुक्तवार = जितने दूसरे या जामूनो की नियुक्ति न की हो ।

अयुक्ति—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ युक्ति का अभाव । असबद्धता ।

गडबडी । २ अयुक्तता [को०] । योग न देना । अप्रवृत्ति ३ बशी वज्राने मे ङगी मे उसके छेद को बंद करने की क्रिया ।

अयुग—वि० [मं०] १ विपम । ताक । २ अकेला । ३ जो शिष्ट या मित्र न हो ।

अयुगक्ष—सज्ञा पुं० [मं०] शिव । त्रिनयन [को०] ।

अयुगपद—संज्ञा पुं० [मं०] एक नाथ नहीं । क्रमश [को०] ।

अयुगल—वि० [मं०] दे० 'अयुग' [को०] ।

अयुगिपु—सज्ञा पुं० [मं०] कामदेव । अयुगवाण [को०] ।

अयुगु—वि० [मं०] १ जिसका कोई मित्र या सगी न हो । २ बाह लटकी जिसकी कोई वहन न हो [को०] ।

अयुगु—सज्ञा स्त्री० वह स्त्री जिने जीवन मे एक ही सतान उत्पन्न होकर फिर कोई मतान न हो । काकवध्या [को०] ।

अयुगवाण—सज्ञा पुं० [सं०] विपमवाण । कामदेव [को०] ।

अयुग्म—वि० [सं०] १ विपम । ताक । २ अकेला । एकाकी । यौ०—अयुग्मच्छद । अयुग्मनेत्र । अयुग्मवाह । अयुग्मवार ।

अयुग्मच्छद—सज्ञा पुं० [मं०] १ मत्तारण वृक्ष । छतिवन । सतवन । २ वह वृक्ष या पौधा जिसकी अयुग्म पत्तियां हो, जैसे वेन अरहर इत्यादि ।

अयुग्मनयन—सज्ञा पुं० [पुं०] दे० 'अयुग्मनेत्र' [को०] ।

अयुग्मनेत्र—सज्ञा पुं० [मं०] [स्त्री० अयुग्मनेत्री] शिव । महादेव । विशेष—शिव की शक्तियों को भी अयुग्मनेत्रा कहने हैं ।

अयुग्मवाण—सज्ञा पुं० [मं०] कामदेव ।

अयुग्मवाद—सज्ञा पुं० [मं०] मूर्ख ।

अयुग्मशर—सज्ञा पुं० [मं०] कामदेव । अयुग्मवाण [को०] ।

अयुग्मसप्ति—सज्ञा पुं० [मं०] वह जिसके रथ मे सात घोड़े जुने हो । मूर्ख [को०] ।

अयुज—वि० [मं०] १ जो जोड़ा न हो । तरु । २ अकेला । सगी-विहीन । ३ अश्लिष्ट [को०] ।

अयुत<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] १ दस हजार सय का स्थान । २ उम स्थान की सख्या ।

अयुत<sup>२</sup>—वि० १ असबद्ध । युक्त न हो । २ अधुन्ध [को०] ।

अयुतमिद्ध—वि० [सं०] जो पृथक् करने योग्य न हो । परारा से युक्त । अविच्छेद्य [को०] ।

अयुव<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] वह व्यक्ति जो युद्ध न करता हो ।

अयुव<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयुव' ।

अयुव्य—वि० [सं०] जिसमे युद्ध न किया जा सके । दुर्घर्ष [को०] ।

अयुव—वि० [मं०] १ असबद्ध । २ शांत [को०] ।

अयुप—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आयुप' ।

अये<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [अनु०] स्लोथ की जाति का एक जनु । यह जनु अये, अये शब्द करता है । इमीलिये इसको 'अये' कहते हैं ।

अये<sup>२</sup>—प्रव्य [मं०] १ क्रोध, विवाद, भयादि दोनक अव्यय । २ सवोधन ।

अयोग<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] १ योग का अभाव । २ अपशमन योगयुक्त काल । वह काल जिसमे फलित ज्योतिष के अनुसार दुष्ट ग्रह नक्षत्रादिका मेल हो । ३ कुमय । कुकाल । ४. कठिनाई । मकट । ५ वह वाक्य जिसका अर्थ सुगमता से न लगे । कूट । ६ अप्राप्ति । ७. असगव । ८ अलगाव [को०] । ९ अनुपयुक्तता [को०] । १० नीत्र प्रपन्न । जोरदार कोशिश [को०] । ११. विधुर । १२ हर्षाडा [को०] । १३ किसी वस्तु को न चाहना । नापसदगी [को०] ।

अयोग<sup>२</sup>—वि० [मं०] १ अप्रगस्त । बुरा । २ असबद्ध [को०] । ३ जोरदार कोशिश करनेवाला [को०] ।

अयोग<sup>३</sup>—वि० [मं०] अयोग्य । अयोग्य । अनुचित ।

अयोगव—सज्ञा पुं० [मं०] वंश जाति की स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न एक वर्णनकर जाति ।

अयोगवाह—सज्ञा पुं० [मं०] वह वर्ण जिनका पाठ अक्षरसमाम्नाय सूत्र मे नहीं है ।

विशेष—ये किसी किसी के मत से अनुस्वार, विसर्ग, (क और (प चार हैं और किसी किसी के मत से अनुस्वार, विसर्ग (क) (प और (फ छह हैं । अनुस्वार विसर्ग के अतिरिक्त जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय भी अयोगवाह है ।

आयोगी<sup>१</sup>—वि० [सं०] अयोगिन् ] योगशास्त्रानुसार जिसने योगागो का अनुष्ठान न किया हो । योगागो के अनुष्ठान मे असमर्थ । जो योगी न हो ।

आयोगी<sup>२</sup>(पुं०)—वि० [सं०] अयोग्य । अयोग्य ।

आयोगुड—सज्ञा पुं० [मं०] १ लोहे की गोरी । लोहे की बनी गेंद । लौह कटुक । २ एक प्रकार का अस्थ जिसमे लोहे के गेंद लगे रहते हैं [को०] ।

अयोग्य—वि० [मं०] १ जो योग्य न हो । अनुपयुक्त २ अकुशल । नातायक । बेकाम । निरुत्तम । अपात्र । ३ अनुचित । नामुनामित्र । बेजा ।

अथोधन—सज्ञा पुं० [मं०] लोहे का धन या हथोडा [को०] ।

अयोच्छिष्ट—सज्ञा पुं० [सं०] मोरचा । जग [को०] ।

अयोजाल—सज्ञा पुं० [मं०] लोहे का बना हुआ जाल [को०] ।

अयोद्धा—सज्ञा पुं० [मं०] १ निम्न कोटि का सैनिक । २ वह व्यक्ति जो घोड़ा या सैनिक नहीं है [को०] ।

अयोध्य—वि० [मं०] १ जिससे युद्ध न किया जा सके । अजेय । २ जो युद्ध के लिये असमर्थ हो [को०] ।

अयोध्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्यवंशी राजाश्री की राजधानी ।

विशेष—बालमीकीय रामायण के अनुसार इसे सरयू नदी के किनारे वैवस्वत मनु ने बसाया था जो ४८ मील लंबा और १२ मील चौड़ा बड़ा नगर था। इसका एक नाम साकेत भी है। रामचंद्र जी का जन्म यहीं हुआ था। पुराणानुसार यह हिंदुओं की सप्तपुरियों में से है।

अयोध्याकांड—संज्ञा पुं० [मं० अयोध्याकाण्ड] रामायण का द्वितीय कांड।

अयोनि<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो उत्पन्न न हुआ हो। अजन्मा। २ नित्य।

३ अवैध रूप से पैदा [को०]। ४ अज्ञात कुलमाला [को०]।

अयोनि<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ योनि से भिन्न। २ ब्रह्मा। ३ शिव। ४ भूमल या लोढा [को०]।

अयोनिज<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो योनि से उत्पन्न न हो। जो प्रजनन की साधारण प्रक्रिया से उत्पन्न न हो। २ स्वयम्भू। ३ अदेह।

अयोनिज<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ शिव। २ ब्रह्मा। ३ शिव। ४ अगस्त्य या कुमज ऋषि।

अयोनिजा—संज्ञा स्त्री० [मं०] मीठा [को०]।

अयोनिसम्भवा—संज्ञा स्त्री० [मं० अयोनिस्तम्भवा] १ 'अयोनिजा' [को०]।

अयोमय—वि० [सं०] लोहे से रचित। लोहे का [को०]।

अयोमल—संज्ञा पुं० [मं०] मोरचा। जग [को०]।

अयोमुख—वि० [मं०] जिपका मुख लोहे का हो।

अयोहृदय—वि० [नं०] लोहे जैसा कठोर हृदयवाला। सगदिन। निष्ठुर [को०]।

अयोक्तिक—वि० [सं०] युक्तिहीन। असंगत [को०]।

अयोगिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अयोगिनी] १ रूढ़। जो (शब्द) व्याकरणविरुद्ध हो। २ जिसका योग या जोड़ से संबन्ध न हो [को०]।

अरग—संज्ञा पुं० [मं० अर्घ्य = पूजाद्रव्य अथवा स० आध्याय, पुन० 'अरघान'] मुगड़ा। महक। उ०—रूप के तरंगन के अगन ते सोये के अरग लै लै तरल तरंग उठै पीन की।—देव (गव्द०)

अरगम—संज्ञा पुं० [मं० अरङ्गम] १ ममीष आगमन या दिवाई पटना। २ महाप्रताप उत्थित होना [को०]।

अरगर—वि० [मं०] १ तुरन्त स्मृति करनेवाला। २ जहर का बना हुआ [को०]।

अरगी—वि० [सं० अरङ्गिन्] रागरहित। रागविहीन [को०]।

अरड<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [हिं०] १ 'एरड, रेंड'।

अरधन—संज्ञा पुं० [मं० अरन्धन] एक प्रकार का वन जो निहसक्रांति और कन्यासक्रांति के दिन पड़ता है। इस दिन 'आचारमार्ग' के अनुसार भोजन नहीं कराया जाता।

अरव्यंद<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० १ 'अरविंद'। उ०—रवी पग दरम अरव्यंद मान।—पृ० रा० ६१।६३६।

अरभ<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० १ 'आरम्भ'। उ०—कथा अरभ करड मोड चाहा। तेही समय गरुड खगताहा।—नानक, ७।६३।

अरभना<sup>१</sup>—क्रि० म [मं० आ + रभ = शब्द करना] बोलना। नाद करना। उ०—रोवत पखि विमोहे जस कोकिला अरभ।

जाकरि कनक लता सो पिछुरा पीतम खम।—जायसी प्र०, पृ० १७८।

अरभना<sup>२</sup>—क्रि० मं० [मं० आरम्भण] आरम्भ करना। शुरू करना। उ०—सकुर्वाहि प्रमन विभूषन परमन जा वपु। तेहि सरीर हर हेतु अरभेउ वड तपु।—तुलसी (शब्द०)।

अरभना<sup>३</sup>—क्रि० अ० आरम्भ होना। शुरू होना। उ०—प्रनय अरभेउ अरभेउ जव ते। कुसगुन होहि भरत कहुँ तव तैं।—मानस २।१७७।

अर<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [मं०] १ पहिए की नाभि और नेमि के बीच की आठो लकड़ी। आरागज। २ आरी। ३ कोण। कोना। ४ मेवार। ५ पित्तपाण्ड। पपेट [को०]।

अर<sup>२</sup>—वि० १ जीघ्र। जटरी। २ छोटा [को०]।

अर<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० [हिं० अर] १ हठ। अड। जिद। उ०—(क) परि पाकरि बिनती धनी नीमरजा ही कीन। अवन नारि अर करि सकै जटुय परम प्रीन।—विद्यागी (शब्द०)।

अरइल<sup>१</sup>—वि० [हिं० अरना, अडना] जो चलने चलने रुक जाय और आगे न बढ़े। अडियल।

अरइल<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [देज०] १ एक वृक्ष का नाम। २ प्रयाग में वह स्थान जहाँ गंगा में यमुना मिलती है। अरैन। उ०—की कालिंदी विरह मताई। चनि पयाग अरइन बिन आई।—जायसी प्र०, पृ० ४६।

अरई<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [मं० अर = जाना] बँल हाँकने की छडा या पँने के मिरे पर की लोह की नुकीली कील जिनसे बँल को गोदकर हाँकते हैं। प्रतोद।

मुहा०—अरई लगाना = ताकीद करना। प्रेरणा करना।

अरई<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० दे० 'अरपी'।

अरक<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [मं०] १ मेवार। २ पहिए का आरा। आरागज [को०]। ३ पित्तपाण्ड [को०]।

अरक<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [अरक] १ किसी पदार्थ का रस जो भस्मके में खींचने में निकले। आमव। अर्क।

क्रि० प्र०—उत्तरना। खींचना। निहालना।

२ रस।

क्रि० प्र०—निचोड़ना।

३ पसीना।

क्रि० प्र०—आना—निकलना।

मुहा०—अरक अरक होता = पसीने में डींग जाना।

अरक<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० [मं० अर्क] १ मशर। आक। उ०—अहि अपि अरकन मे खाति अरकन मे अमि अरकन मे जाड छवै।—तथा-कर प्र०, पृ० २२६। २ गुय।

अरकगीर—संज्ञा पुं० [फा०] नमड़े का वन। हुआ वह टुकड़ा जिनको घोड़े की पीठ पर रखकर जीन या चारजामा खींचते हैं।

अरकटी—संज्ञा पुं० [हिं० आठ + काटना] वह माँकी जो नाव की पतवार पर रटना और उसे घुमाता है।

अरकना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [अनु०] अग्राकर गिरना। टकराना। उ०—कहै दा गिनु अने नुश्चि पर लुश्चि अरकिय।—सूदन (शब्द०)।

अरकना<sup>२</sup>—कि० अ० [हि० दरकना] फटना । दरकना ।

यौ०—अरकना दरकना ।

अरकनाना—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] एक अरक जो पुदीना और सिरका मिलाकर खींचने में निकाला जाता है ।

अरकना बकरना<sup>(७)</sup>—कि० अ० [अनु०] डघर डघर करना । ऐंजातानी करना । उ०—प्रर कै डरि कै अरकैवरकै फरकै न रुकै मजिबोई चहै ।—केशव (शब्द०) ।

अरक वादियान<sup>(७)</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] मोफ का अरक ।

अरकला<sup>(७)</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म० अरगला=अगरी या बडा] रोक । मरदा । उ०—भाँट अहै ईश्वर की कला । राजा सब राखहि अरकला ।—जायमी (शब्द०) ।

अरकसी<sup>(१)</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अरकसी] । मुस्ती । प्रमाद ।

अरकाट—सञ्ज्ञा पुं० दक्षिण भारत का एक स्थान ।

अरकाटी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अरकाट] वह व्यक्ति जो कुलियो आदि को चाय के बगीचे में या मारिशस, गिआना आदि टापुओं में काम करने के लिये मरती करके भेजता हो ।

अरकान—सञ्ज्ञा पुं० [अ० 'रुका' का बहुव०] राज्य के प्रधान मन्त्रालय । प्रधान राजकर्मचारी । मन्त्रिबर्ग । उ०—जावन अहहि मकन । अरकाना । मन्त्रि लेहु दूर है जाना ।—जायमी (शब्द०) ।

अरकामर—सञ्ज्ञा पुं० [म० कासार] तालाब । बावली ।—डि० ।

अरकोल—सञ्ज्ञा पुं० [म० कोलीरा] एक वृक्ष जो हिमालय पर्वत पर होता है । इसका पेड़ भेजम से आसाम तक २००० से ८००० फुट की ऊँचाई पर मिलता है । इसकी गोद ककरासिगी या काकडसिगी कहवानी है । लाखर ।

अरक्षित—वि० [म०] १ जिसकी रक्षा न की गई हो । रक्षाहीन । २ जिसका रक्षक न हो ।

अरखट<sup>(७)</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [७अखराण्ड, ७अखरोटी, ७अखरोट] १. अक्षर २ लिखावट । उ०—निख लिलाट पट्ट विवि अरखट मिटही न कोटि जतन धीरे धीरे ।—अकबरी०, पृ० ३२४ ।

अरग<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म० अरग=एक चदन] अरगजा । पीले रंग का एक मिश्रित द्रव्य जो मुगधित होता है । इसे देवताओं को चढ़ाने है और माये में लगाते हैं ।

अरग<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] ३० 'अरक' । उ०—अरुन वरुन उड्ठायो । अरग उड्ठिग उड्ठिग जुज ।—पृ० रा०, ६१।१६६५ ।

अरगजा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] एक मुगधित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाता है । यह केशर, चदन, कपूर, आदि को मिटाने में बलता है । उ०—मैं ल दयी, लयी मुकर छुवत छिनकि गो नीर । लाल तिहारो अरगजा, उर ह्वै लयी अवीर ।—विहारी २०, दो० ५३५ ।

अरगजी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अरगजा] एक रंग जो अरगजे का मा होता है ।

अरगजी<sup>२</sup>—वि० १ अरगजी रंग का । २ अरगजा की सुगंध का । उ०—उरधारी लट छूटी आनन पर मीजी फुलेनन सो आली हरि ना केति । नाँवें अरगजी अर मरगजी गारी केसरि

खोरि विराजित कहूँ कहूँ कुचनि पर दरकी अँगिया धन वेलि ।—(शब्द०) ।

अरगट<sup>(७)</sup>—वि० [हि० अलगट] पृथक् । अलग । निराला । भिन्न । उ०—बाल छवीली तियनु मे बैठी आपु छिपाई । अरगट ही फानूस सी परगट होति लखाइ ।—विहारी २०, दो० ६०३ ।

अरगडा<sup>(१)</sup>—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अरगला' ।

अरगन—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अरगन] एक अंगरेजी बाजा ।

विशेष—यह धौंकनी से बजता है । इसमें स्वर निकलने के लिये नलियाँ लगी रहती है । यह बाजा प्रायः गिरजाघरों में रहता है और एक आदमी के बजाने से बजता है ।

अरगनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अलगनी] बाँस, लकड़ी या रस्सी जो किसी घर में कपड़े आदि रखने के लिये बाँधी या लटकाई जाय । अलगनी ।

अरगल—सञ्ज्ञा पुं० [म० अरगल] १ वह लकड़ी जो किवाड़ बंद करने पर इसलिये आड़ी लगाई जाती है कि किवाड़ बाहर से खुले नहीं । व्योडा । गज । उ०—अरि दुगं लूटि अरगन अखड । जनु धरी बडाई बाहु दड । गोपुर कगाट विस्तार भारि । गहि धर्यो वच्छ थल मे सँवारि ।—गुमान (शब्द०) ।

अरगवान—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] गहरे लाल रंग का एक फूल तथा उक्त फूल का वृक्ष [फि०] ।

अरगवानो<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] रक्तवर्ण । लाल रंग ।

अरगवानो<sup>२</sup>—वि० १ गहरे लाल रंग का । लाल । बैंगनी ।

अरगा<sup>(१)</sup>—सञ्ज्ञा [फा० इर्कास] घोड़े की एक प्रकार की चाल ।

कदम चाल जिसमें चारों पैर अलग अलग पडते हैं ।

विशेष—इस चाल को चलते समय घोड़ा देह को साधकर चलता है । चारों टाँग अलग अलग पडती हैं । इस चाल में सवार घोड़े की लगाम खिंची हुई रखता है और घोड़े का कल्ला (गर्दन) उठा हुआ और स्थिर रहता है ।

अरगाना<sup>(७)</sup>—कि० अ० [हि० अलगाना] १ अलग होना ।

पृथक् होना । उ०—(क) लोग भरोसे कौन के जग बैठे

अरगाय ।—कवीर (शब्द०) । २ सन्नाटा खीचना । चुप्पी

माधना । मौन होना । (ख) मुनि लिह्यो उनही की कह्यो ।

अपनी चाल समुझि मन ही मन गुनि अरगाई रह्यो ।—

सूर०, १०।४१२३ ।

मुहा०—प्राण अरगाना=प्राण सूखना । अरुचका जाना ।

विस्मृत होना । उ०—जासों जैसी भाँति चाहिये ताहि मिले

त्यौँ धाड । देम देस के नृपति देखि यह प्रीति रहे अरगाइ ।—

सूर०, १०।४२२२ ।

अरगाना<sup>(२)</sup><sup>(७)</sup>—कि० स० अलग करना । छाँटना । उ०—वरनि न जाइ भक्त की महिमा बारवार बखानों । अरु गजपूत विदुर दामी मुत कौन कौन अरगानो ।—पूर०, १।११ ।

अरघ<sup>(७)</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० अरघ] १. सोनह उपचारों में से एक । वह जल जिसे फून, अक्षत, दूध आदि के साथ किसी देवता के मामले गिराते हैं । उ०—करि आरती अरघ तिनह दीन्हा । राम गमनु मडप तब कीन्हा ।—मानस, १।३१६ । २ वह जल



जो हाथ धोने के लिये किसी महापुरुष को उसके आने पर दिया जाय। उ०—आदर अरघ देह घर आने। सोरह भाति पूजि सनमाने।—तुलसी (शब्द०)। ३ वह जल जो वरात के आने पर वहाँ भेजा जाता है। उ०—गिरिवर पठए बोलि लगन वेरा भई। मगल अरघ पावडे देत चले लई।—तुलसी ग्र० पृ० ३६। ४ वह जल जो किसी के आने पर दरवाजे पर उसके सामने आनदप्रकाशनार्थ डरकाया जाता है। डरकावन। उ०—गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो। देह सु अरघ राम कहू लेइ वैठाइय हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ३। ५ जल का छिड़काव। उ०—नाइ सीस पगनि असीस पाइ प्रमुदित पावडे अरघ देत आदर से आने हैं।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। उ०—हरि को मिलन सुदामा आयो। विधि करि अरघ पावडे दीदे अतर प्रेम बढ़ायो।—सूर (शब्द०)। दना। उ०—हृदय ते नहि टरत उनके श्याम नाम सुहेत। अश्रु सलिल प्रवाह उर मनो अरघ नैनन देत।—सूर (शब्द०)।

अरघटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह वाल्टी जो रहट में लगी रहती है। २ गहरा कूप [को०]।

अरघट्ट—सज्ञा पुं० [सं०] रहट। अरहट।

अरघट्टक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरघट्ट'।

अरघनी—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्घणिक] आम का वह पत्ता जिसका प्रयोग देवविशेष को जल देने में किया जाता है।

विशेष—कभी कभी पंडित अपने यजमान के हाथ में एक आम का पत्ता देते हैं और देवविशेष के लिये जल छुड़वाते हैं, तब वह पत्ता अरघनी कहलाता है।

अरघा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अर्घ] १ एक पात्र जिसमें अरघ का जल रखकर दिया जाता है। यह ताँबे का ब्रह्म के पत्ते के आकार का गावदुम होता है। २ एक पात्र जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है। जलधारी। ३ वह पात्र जिसमें अर्घ रखकर दिया जाता है।

अरघा<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अरघट्ट] कुँ की जगत पर पानी निकलने के लिये बनाया गया रास्ता। चँवना।

अरघान<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० आघ्राण] गघ। महक। घ्राणाण। उ०—(क) और केस वह मानति रानी। विसहर लुरे लेहि अरघानी।—जायसी ग्र०, पृ० ४१। (ख) अरघान की फँव, मँली हुई मालिनी की मृदुल शैल।—आराधना पृ० ७।

अरघानि<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरघान'।

अरचन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अर्चन] पूजा। नव प्रकार की भक्ति में से एक। उ०—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादरत, अरचन, वदन दास। सख्य और आत्मनिवेदन, प्रेम लक्षणा जास।—सूर (शब्द०)।

अरचना<sup>१</sup>—क्रि० स० [सं० अर्चन] पूजा करना। उ०—(क) दुख में आरत अघम जन पाप करे डर डारि। बलि दै भूतन मारि पशु अरचन नही मुरारि।—दीनदयाल (शब्द०)।

अरचल<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हिं० अरचन] अडस। रुकावट। अडचन। उ०—मैं कैसे चनों मजनी चली न जाय। उरभी है मारी रे वेरिया की भारी रे अरचन और परी।—प्रताप (शब्द०)।

अरचा<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अर्चा'। उ०—त्यो पदमाकर सालिगंगम को कै अरचा चरनोदक चाखै।—पद्माकर ग्र०, पृ० २४४।

अरचि<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि] ज्योति। दीप्ति। आभा। प्रकाश। तेज। उ०—भे चलत अर्चि करि समरपन रचि मुखमडन अरचिकर।—गोपाल (शब्द०)।

अरचित<sup>१</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अर्चित'।

अरज<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [प्र० अर्ज] विनय। निवेदन। विनती। उ०—होत रग संगीत गृह प्रतिध्वनि उडन अपार। अरज करत निकरत हुकुम मनो काम दरवार।—गुमान (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।

यौ०—अरज गरज।

अरज<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [प्र० अर्ज] चौड़ाई।

अरज<sup>३</sup>—वि० [सं०] १ जिसमें धून न लगी हो। स्वच्छ। २ राग आदि में रहित। ३ जिसे मामिक धर्म न हो [को०]।

अरजन<sup>१</sup>—क्रि० म० [हिं०] दे० 'अर्जन'। उ०—करन लगे जब सो अन्याय सहित धन अरजन।—प्रेमधन०, भा० १, पृ० ५३।

अरजना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [हिं० अरज से नाम०] निवेदन या प्रार्थना करना।

अरजम—सज्ञा पुं० [देश०] कुंदी नाम का एक बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी से खेती के औजार और गाड़ी के घुरे आदि बनाए जाते हैं। वि० दे० 'कुंदी'।

अरजल<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [प्र० अर्जल] १ वह घोड़ा जिसके दोनों पिछले पैर और अगला दाहिना पैर सफेद या एक रंग का हो। (ऐसा घोड़ा ऐवी माना जाता है)। उ०—तीन पाँव एक रंग हो एक पाँव एक रंग। ताको अरजल कहत हैं कारत राज में भग। २ नीच जाति का पुरुष। ३. वर्णमकर।

अरजल<sup>२</sup>—वि० नीच, जैसे अरजल कौम।

अरजस्क—वि० [सं०] दे० 'अरज'।

अरजा<sup>१</sup>—वि० [फा०] समता। कमकीमन [को०]।

अरजा<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [म०] १ मागव हृषि की पुत्री। २ घोकुमार। घृतकुमारी। ३ वह कन्या जिसे रजोवर्म न हुआ हो [को०]।

अरजा<sup>३</sup>—दि० [सं०] अरजम्बला [को०]।

अरजो<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [प्र० अर्जो] १ आवेदनपत्र। निवेदनपत्र। प्रार्थनापत्र। उ०—गरजी हूँ दियो उन पान हमें पडि ताँवरे रावरे की अरजो।—तोष (शब्द०)। २ दे० 'अर्जो'।

अरजो<sup>२</sup>—क्रि० अ० [प्र० अर्ज + हिं० ई (प्रत्या०)] प्रार्थी। उ०—अरजो पिव पिव रटन परखि तब प्रगटत मरजी।—मुघाकर (शब्द०)।

अरजुन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्जुन'।

अरज्जु<sup>१</sup>—वि० [सं०] विना रस्सीवाला [को०]।

अरज्जु<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० कारागृह। जेल [को०]।

अरझना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरझना'।

अरझा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [दे०] छोटी जानि का सन। सनई।

अरझा<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [हिं० अरझा] १ उनकन। ऋषेय। २. बखेडा। टटा। भगडा।

अरु—सज्ञा पुं० [सं०] अरु नाम का वृक्ष [को०] ।  
अरुडीगा—वि० [देश०] बलिष्ठ । जोरावर ।—डि० ।  
अरुणा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुण्य' । उ०—अरुण आजाकारी  
मूक नायक अवध अवध वितान वेग आवाँ ।—रघु० २०,  
पृ० १०४ ।

अरुणवृत्त—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुण' । उ०—अरुण साते उदर  
विरछ रोमाच विचाले ।—रघु० २०, पृ० ४४ ।

अरुणि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रकार का वृक्ष । गनियार । अंग्रेयू ।  
२ सूर्य । ३ काठ का बना हुआ एक यन्त्र जो यज्ञो में आग  
निकालने के काम आता है । अग्निमय ।

विशेष—इसके दो भाग होते हैं—अरुणि या अधरारुणि और  
उत्तरारुणि । यह शमीगर्भ अश्वत्थ से बनाया जाता है । अध-  
रारुणि नीचे होती है और इसमें एक छेद होता है । इस छेद  
पर उत्तरारुणि खड़ी करके रस्सी से मयानी के समान मथी  
जानी है । छेद के नीचे कुग या कणाम रख देते हैं जिसमें आग  
लग जाती है । इसके मथने के समय वैदिक मन्त्र पढ़ते हैं और  
ऋत्विक् लोग ही इनके मथने आदि का काम करते हैं । यज्ञ में  
प्रायः अरुणि से निकली हुई आग ही काम में लाई जाती है ।  
४ चीता नामक वृक्ष या उमकी लकड़ो । ५ श्योनाक । सोना  
पाढा । ६ अग्नि । ७ चकमक पत्थर ।

अरुणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अरुणि' ।

अरुणिकेतु—सज्ञा पुं० [सं०] अग्निमय नामक वृक्ष (को०) ।

अरुणीमुत्त—सज्ञा पुं० [सं०] शुकदेव ।

विशेष—लिखा है कि व्यास जी का वीर्यपात अरुणी पर होने से  
शुकदेव की उत्पत्ति हुई थी ।

अरुण्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ वन । जगल । २ कटफल । कायफन ।  
३ सन्यासियों के दस भेदों में से एक । ४. रामायण का  
एक काण्ड ।

यौ०—अरुण्यगान अरुण्यरोदन ।

अरुण्यक—सज्ञा पुं० [सं०] १ जगल । २ जगली समा । ३ एक  
पीछा [को०] ।

अरुण्यकणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] जगली जीरा [को०] ।

अरुण्यगान—सज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के अतर्गत एक गान जो जगल  
में गाया जाता था ।

अरुण्यचन्द्रिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अरुण्यचन्द्रिका] जगल की चाँदनी  
(ला०) । वह शृंगार जिसका देखनेवाला या प्रशंसा करने-  
वाला न हो [को०] ।

अरुण्यदमन—सज्ञा पुं० [सं०] दोन नामक एक पीछा । दोना [को०] ।

अरुण्यनृपति—सज्ञा पुं० [सं०] शेर । सिंह [को०] ।

अरुण्यपण्डित—सज्ञा पुं० [सं० अरुण्यपण्डित] मूर्ख व्यक्ति । बुद्धिहीन  
मनुष्य [को०] ।

अरुण्यमक्षिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] शैल । जगली मक्खी [को०] ।

अरुण्ययान—सज्ञा स्त्री० [सं०] वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना [को०] ।

अरुण्यरोदन—सज्ञा पुं० [सं०] १ निष्कन रोना । ऐसी पुकार  
जिसका सुननेवाला कोई न हो । २. ऐसी बात जिसपर कोई

ध्यान न दे । वह बात जिसका कोई ग्राहक न हो ।  
जैसे—इम भीडभाड में कोई बात कहना अरुण्यरोदन है ।—  
(शब्द०) ।

अरुण्यवास्तुक—सज्ञा पुं० [सं०] जंगली वन [को०] ।

अरुण्यवास्तुक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुण्यवास्तुक' [को०] ।

अरुण्यविलाप—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुण्यरोदन' [को०] ।

अरुण्यव्रत—सज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो मृगशिरा नक्षत्र के वारहवें  
दिन पड़ता है [को०] ।

अरुण्यश्वान—सज्ञा पुं० [सं०] १ भेड़िया । २ गीदड़ [को०] ।

अरुण्यपण्टी—सज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो जेठ महीने के शुक्ल पक्ष में  
पड़ता है ।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ फलाहार करती हैं और देवी की पूजा  
करती हैं यह व्रत सप्तानवर्षक माना जाता है । शास्त्रानुसार  
स्त्रियों को वेना लेकर जगल में घूमना चाहिए ।

अरुण्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक ओषधि ।

अरुण्यानी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वीहड़ जगन या वीरान जगन । २.  
वन की देवी [को०] ।

अरुण्यायन—सज्ञा पुं० [सं०] वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना [को०] ।

अरुण्यीय—वि० [सं०] १ जगल का । २ जगल के ममीप [को०] ।

अरत—वि० [सं०] १ जो अनुरक्त न हो । जो किसी पदार्थ में आसक्त  
न हो । २ विरत । विरक्त । उ०—मन गोरख गोविंद मन,  
मन ही ओषधि सोय । जो मन राखै यत्न करि, आपै अरता  
होय ।—कवीर (शब्द०) । ३ सुस्त । आलसी । ४ असंतुष्ट ।

अरति<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. विराग । चित्त का न लगना । उ०—  
सुर स्वारथी-मलीन मन कीन्ह कुमन कुठाटु । रचि प्रपच माया  
प्रवल मय भ्रम अरति उचाटु ।—मानस, २।२६४ । २ जैन  
शास्त्रानुसार एक प्रकार का क्रम जिसके उदय में चित्त किसी  
काम में नहीं लगता । यह एक प्रकार का मोहनीय कर्म है ।  
अनिष्ट में खेद उत्पन्न होने को भी अरति कहते हैं ३ अमतोष  
[को०] । ४. क्रोध [को०] । ५ चिंता [को०] । ६ उच्चाटन  
[को०] । ७ उद्वेग [को०] । ८ सुस्ती । प्रमाद [को०] । ९.  
व्यथा । पीडा [को०] । १०. एक प्रकार का पित्त रोग [को०] ।

अरति<sup>२</sup>—वि० १ असंतुष्ट । २ शातिरहित । अशात । ३. सुस्त ।  
प्रमादी [को०] ।

अरत्त<sup>३</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अरत' । उ०—आतिथ्य दे हृष्य धरि,  
अर पुच्छिय इह वत्त । जा जीवन रत्तो जगत, तू क्यों राज  
अरत ।—पृ० २०, १।५४८ ।

अरत्ति—सज्ञा पुं० [सं०] १ बाहु । हाथ । २ कुहनी । ३. मुट्ठी बंधा  
हाथ । ४ मीमांसा शास्त्र के अनुसार एक माप ।

विशेष—इससे प्राचीन काल में यज्ञ की वेदी आदि मापी जाती  
थी । यह माप कुहनी से कनिष्ठा के सिरे तक होती है ।

अरथ<sup>४</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्थ' । उ०—तनइ विद्यापति,  
कह्यो बुझाए अरथ अर्थभव के पतिप्राए ।—विद्यापति,  
पृ० २२६ ।

अर्थाना<sup>५</sup>—क्रि० सं० [न० अर्थ + हिं० आना (प्रत्य०)] १  
समझाना । विवरण करना । उ०—पठवो दूत भरत की

ल्यावन वचन कह्यो बिलखाई। दशरथ वचन राम वन गवने यह कहियो अरथाइ।—सूर०, १।४७। २ व्याख्या करना। वताना। उ०—भा विहाय पड़ित सब आए। काढि पुरान जनम अरथाए। जायसी ग्र०, पृ० १६।

अरथी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [स० रथ] १ लकड़ी की वर्ना हुई सीढ़ी के आकर का एक ढाँचा जिसपर मुँह को रखकर श्मशान ले जाते हैं। टिखटी। विमान।

अरथी<sup>२</sup>—वि० [स० अ + रथी] १ जो रथी न हो। पैदल। २ जो रथ पर से युद्ध न करे [को०]।

अरथी<sup>३</sup>—वि० [हि०] दे० 'अर्थी'। उ०—उत्तम मनुहारिन करे मानै माननि मक। मध्यम समथी अधम निजु अरथी निलजु निसक।—मिखारी ग्र० भा० १, पृ० २७।

अरदडी—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का करील जो गंगा के किनारे होता है।

अरद<sup>१</sup>—वि० [म०] १ बिना दाँतवाला। २ जिसके सभी दाँत गिर गए हो [को०]।

अरद<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १. दुख पहुँचाना। २ बिनाश [को०]।

अरदन<sup>१</sup>—वि० [स० अ + रदन] १ वे दाँत का। वे दाँतवाना।

अरदन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अर्दन'।

अरदना<sup>१</sup>—कि० स० [म० अर्दन] १ रौंदना। कुचलना। उ०—जदपि अरदगि वधत तदपि रद काति प्रकामत।—गोपाल (शब्द०)। २ वध करना। मार डालना। उ०—जिमि नकुल नाग को मद हरत तिमि अरि अरदत प्रण किए।—गोपाल (शब्द०)।

अरदल—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो पश्चिमी घाट और लक द्वीप में होता है।

विशेष—इससे पीले रंग की गोद निकलती है जो पानी में नहीं घुलती, शराब में घुलती है। इससे अच्छा पीले रंग का वारनिश बनता है। इसका फल खट्टा होता है और खटाई के काम आता है। इसके बीज से तेल निकलता है जो ओषधि के काम आता है। इसकी लकड़ी भूरे रंग की होती है जिसमें नीली धारियाँ होती हैं। गोरका। ओट। भव्य।

अरदली—सज्ञा पुं० [अ० अर्डरली] वह चपरासी या भूतज जो किसी कर्मचारी या राजपुरुष के साथ कार्यालय में उसके आज्ञापालन के लिये नियुक्त रहता है और लोगों के आने इत्यादि की इत्तला करता है।

अरदावा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स० अर्दद्, फा० अरद] १ दला हुआ अन्न। कुचला हुआ अन्न। २. भरता। उ०—धीव टाँक महि सौँध मिरावा। पख वचार कीन्ह अरदावा।—जायसी (शब्द०)।

अरदास<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [फा० अर्जदास्त] १ निवेदन के साथ भेंट। नजर। उ० एहि विधि डील दीन्ह तव ताई। देहली की अरदास आई।—जायसी (शब्द०)। २ शुभ कार्य या यात्रारथ में किसी देवता की प्रार्थना करके उसके निमित्त कुछ भेंट निकाल रखना। ३ वह ईश्वरप्रार्थना जो नानकपंथी प्रत्येक शुभ कार्य, चढ़ावे आदि के प्रारम्भ में करते हैं। ४ प्रार्थना। विनती।

अरधग<sup>१</sup>—सज्ञा [म० अर्द्धाङ्ग] १ आधा अंग। उ०—सिव साहेव अचरज भरो मकल गावने अंग। कयो कामहि जारयो, कियो कयो कामनि अरधग।—मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १२५। २ शिव। उ०—तजै गौरि अरधग अचल त्रुव आमन चलै।—हम्मीर०, पृ० १३।

अरधग<sup>२</sup>—वि० दे० 'अर्धग'।

अरधगी<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अर्धगी'।

अरधगी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [अरधग + ई (प्र०)] स्त्री। पत्नी। उ०—ग्रापु भए पति वह अरधगी। गोपनि नाँउ धरयो नवरगी। मूर०, १०।३१४४।

अरधगी<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अर्धगी'।

अरध<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अर्ध'। उ०—कूट्यो पहार सतबड ह्वै अरध बड गड भरहरयो।—हम्मीर०, पृ० ४३।

अरध<sup>२</sup>—कि० वि० [म० अर्ध०] अर्ध। भीतर। उ०—अरध उरध अस है दुड हीया। परगट गुपुन वरै जम दीया।—जायसी (शब्द०)।

अरधभापरी<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] अर्ध भापरी। एक प्रकार का राजस्थानी गीत जो भापरी का आधा होना है।

अरधमावझड<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] एक प्रकार का राजस्थानी गीत। अरधई<sup>१</sup>—वि० [हि० अरध + आई प्रत्य०] आधा। उ०—तीनि हाथ एक अरधई।—कवीर ग्र०, पृ० १३३।

अरध<sup>२</sup>—वि० [न०] १ जो पराजित न हो। अपराजेय। २ नमृद्व [को०]।

अरन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि० अरन] एक प्रकार की निहाइ जिसके एक गा दोनो ओर नोक निकली होती है।

अरन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [स० अरन्ध्र, प्रा० अरन्ध्र] दे० 'अरन्ध्र'।

अरना<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स० अरन्ध्रक] जगती मेंमा।

विशेष—जगती में डूँके झुंड के झुंड मिलते हैं। यह साधारण मेंमें में बड़ा और मजबूत होता है। इसके सुडौन और दृढ़ अंगों पर बड़े बड़े बाल होते हैं। इसका सीम नवा, मोटा और पैना होता है और शेर तक का सामना करता है।

अरना<sup>२</sup>—कि० अ० [हि०] शीघ्रता करना। उ०—करी दया मी सीम दया कर आयी सार चार गुण अरकर।—रा० ह०, पृ० ६। २ दे० 'अटना'।

अरनि<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अरन'। उ०—वरपि निकरे मेघ पाइक बहुत कीनी अरनि। सूर मुरपति हारि मानी तव परयो दुहँ चरनि।—सूर०, १०।६५६।

अरनी—सज्ञा स्त्री० [स० अरणी] १ एक छोटा वृक्ष जो हिमालय पर होता है।

विशेष—उमका फल लोग खाते हैं। इसकी गुठली भी काम प्राणी है। काश्मीरी और काबुली अरनी बहुत अच्छी होती है। इसकी लकड़ी से चरखे की चरख और डोई आदि बनती है। यह माघ, फाल्गुन में फूलता है और वरमात में पकता है।

२—पत्र का अग्निमयन काण्ड जो शमी के पेड़ में लगे हुए पीपल से लिया जाता है। वि० दे० 'अरणि'। उ०—बारवा

विवार तें उज्जै ज्ञान प्रकाश । जौ अरनी मवरन नें प्राटै गुगु  
हुताम ।—दीन० ग्र०, पृ० १९६ । ३ जनन । दाह ।

अरन्थ०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरन्थ' । उ०—'दान' कहै मृगहूँ को  
उदास कै वाम दियो है अरन्थ गौरीरनि ।—निखारी० ग्र०,  
भा० १, पृ० १०१ ।

अरपन०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरपण' । उ०—वरन दीनदाता न  
देखत रूप कुरुपहि । जो घट अरपन करै ताहि ते ममता  
कुरहि ।—दीन० ग्र०, पृ० २५६ ।

अरपना०—क्रि० म० [सं० अरपण] अरपण करना । मेट करना ।  
उ०—(क) पहिले दाता निख मया तन मन अरग नीन ।—  
कवीर (शब्द०) । (ख) तोहि आम की मजरी अरपित हो  
मिर माय । महाराज कदप के धनुष दियो जिन हाय ।—  
शकुतला, पृ० १०६ ।

अरपा—सज्ञा पुं० [देश०] एक मनाला ।

अरपित०—वि० [हि०] दे० 'अपित' ।

अरव<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म० अरवुद] १ मो कगोड । सख्या मे दमर्ग स्थान ।  
२ इस स्थान की सख्या ।

अरव<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [म० अरवन्] १ घोडा । २ इद्र । उ०—मरव  
गरवन अरव अरव ऐमे अरव के अरव चरव जहराय के ।—  
गोपाल (शब्द०) ।

अरव<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [अ०] १ एक मरु देश जो एशिया खंड के पश्चिम-  
दक्षिण भाग में और भारतवर्ष से पश्चिम है । यहाँ इस्लाम  
धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब उत्पन्न हुए थे । यहाँ घोड़े, ऊँट  
और छुहारे बहुत होते हैं । २ अरव देश का उत्पन्न घोडा ।  
३ अरव का निवासी ।

अरवर०—वि० [अनुव्व०] [स्त्री० अरवरी] १ ऊटपटांग । असबद्ध ।  
२—मत्तनि की मुधि करी खरी अरवरी मति, भावन करत भोग  
सुखद लगाए हैं —प्रिया (शब्द०) । २ कठिन । मुश्किल ।  
अरवराना०—क्रि० अ० [हि० अरवर मे नान०] १ धराना ।  
व्याकुल होना । विचलित होना । (क) व्याही ही विमुब घर  
आयो लेन कहै पर खरी अरवरी कोई चित्त चित्त लागी है ।—  
प्रिया (शब्द०) । (ख) मुनि मोच परेउ हियो खरी अरवरेउ  
मन गाढो लै कै करेउ बोल्यो हौं जू सरसाई है ।—प्रिया  
(शब्द०) । २ लटपटाना । अडवडाना । उ०—निखवति  
चनन जमोदा मया । अरवराइ कर पानि गहावत डगमगाइ  
वरनी वरे पैया ।—मूर०, १०।११५ ।

अरवरी०—सज्ञा स्त्री० [हि० अरवर] धवराहट । हडबडी । उ०—  
(क) मभा की चाह अवगाह हनुमान की गरे डारि दई सुधि भई  
अति अरवरी है ।—प्रिया (शब्द०) ।

अरविद०—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्द] दे० 'अरविद' । उ०—देखत क्यों  
न अपूरव डडु मे द्वै अरविद रहे, गहि लाली ।—पद्माकर  
ग्र०, पृ० २०६ ।

अरविस्तान—सज्ञा पुं० [अ० अरव + फा० स्तान] अरव देश ।

अरवी<sup>१</sup>—वि० [अ० अरव + फा० ई (प्रत्य०)] अरव देश का ।

अरवी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ अरवी घोडा । अरव देश का उत्पन्न या अरवी  
तस्ल का घोडा । ताजी । ऐराकी ।

विशेष—यह सब घोडों मे अधिक बलवान, मेहनती, महिष्ण और  
आजानुवर्ती होता है । इसके नथुने चौड़े, गाल और जबड़े मोटे,  
माथा चौडा, आँखें बड़ी बड़ी, थुथुने छोटे, पुट्टा ऊँचा और दुम  
जरा ऊपर चढ़कर शुरू होती है । इसके कान छोटे, तथा दुम  
और अयाल के बाल चमकीले होते हैं ।

२ अरवी ऊँट । अरव देश का ऊँट ।

विशेष—यह बहुत दृढ़ और महिष्ण होता है और बिना दाने  
पानी के मरभूमि मे चलता रहता है ।

३ अरवी बाजा । ताशा ।

अरवी<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० अरव देश की भाषा ।

अरवीला०—वि० [हि० अरवर] १ मोलागाला । अडवड । उ०—  
देखति आरमी में मुसुक्पाति है छाँडि दई बतियाँ अरवीली ।—  
लाल (शब्द०) । २ लडाका । युद्ध से न भागनेवाला ।  
अडनेवाला ।

अरवुद०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरुद' । उ०—बुरे ऋषि वृद्ध  
सुखवृद्ध आय । जहाँ ऋषि चाय वस सत भाय ।—  
हम्मीर रा०, पृ० ८ ।

अरव्वी<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अरवी' ।

अरव्वी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [फा० अरवी] १ अरवी बाजा । ताशा । बाजै  
अरव्वी उमडिकै गज्जै मनो घन घुनडि कै—पद्माकर ग्र०, पृ० ८ ।  
२ अरवी घोडा । उ०—अरव्वी फिरै बेस उव्वीन पं जे । नटो  
की कला सीकला जान लै जे ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८० ।

अरभक०—वि० [हि०] दे० 'अर्मक' ।

अरम—वि० [सं०] क्षुद्र । नीच [को०] ।

अरमण—वि० [सं०] १ अरविकर । २ खराब । ३ असमोपदायक ।  
४ विरामरहित । निरंतर ।

अरममाण—वि० [म०] दे० 'अरमण' [को०] ।

अरमनी—सज्ञा पुं० [फा०] आरमेनिया देश का निवासी ।

विशेष—आरमेनिया काकेशस पहाड से दक्षिण मे है यहाँ के लोग  
विशेष सुंदर होते हैं ।

अरमाँ—सज्ञा पुं० [तु० अरमान] दे० 'अरमान' । उ०—ऐ फनक क्या  
क्या हमारे दिल मे अरमाँ रह गया ।—मारतेंडु ग्र०, भा० २,  
पृ० ८४६ ।

अरमान—सज्ञा पुं० [तु० अरमान] इच्छा । लात्मा । चाह ।

मुहा०—अरमान निकालना=इच्छा पूरी करना । उ०—बहुत  
निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले ।—कविता  
को०, भा० ४, पृ० ४७६ । अरमान भरा=उत्सुक । अरमान  
रहना या रह जाना=इच्छा का पूरा न होना । मन की बात  
मन ही मे रहना ।

अरर<sup>१</sup>—अव्य० [सं० अररे] एक शब्द जो अत्यंत व्यग्रता तथा अचभे  
की दशा मे मुँह से निकलता है, जैसे—अरर । यह क्या  
हुआ (शब्द०) ।

अरर<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अरर] १ किवाड कपाट । २ पिघान ।  
ढक्कन । ३ उलूक [को०] । ४ युद्ध [को०] ।

अरर<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अरर, अरल] मैनफन [को०] ।

अररनादररना०—क्रि० सं० [अमु०] दाना । पीसना । उ०—  
चित फर गोह्वारा प्रेम की दरिया समुक्ति समुक्ति भिक्का

नावहु रे का अररिदररि जो पीम लींगी सजनी हूँ वह पिया की सोहामिनि रे की ।—कवीर (शब्द०) ।

अरररराना०—कि० अ० [अनुध्व०] अरर शब्द करना । अररराना । उ०—अररररात दोउ वृच्छ गिरे घर । अति आघात भयो ब्रज भीतर ।—सूर०, १०।३८१ ।

अररराना—कि० म० [अनुध्व०] अररर शब्द करना । टूटने वा गिरने का शब्द करना । उ०—तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ । जर सहित अरराई के आघात शब्द मुनाइ ।—सूर०, १०।३८१ । २ अरररर शब्द करके गिरना । तुमुन शब्द करके गिरना । उ०—ब्रत वनपान बहुरात बहुरात अररात तरु महा धरनी गिरायो ।—सूर० १०।५६६ । ३ भहरा पडना । सहसा गिरना । उ०—(क) खाय दरार परी छतियाँ अब पानी परे अरराय परेगी (शब्द०) । (ख) सिंहद्वार अरराया जनता भीतर आई ।—कामायनी, पृ० १६८ ।

अरराहट—सज्ञा सज्ञा [हि० अरर + आहट (प्रत्य०) ] अररराने की ध्वनि या आवाज । उ०—यो हो अरराहट अरावन को छायो है ।—ययाकर ग्र०, पृ० ३२० ।

अररि—सज्ञा पुं० [मं०] १ द्वार । २. किवाड [को०] ।

अररी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्वार । २. किवाड [को०] ।

अररु—सज्ञा पुं० [सं०] १ दुश्मन । २ एक हथियार । ३. एक असुर का नाम [को०] ।

अरलु—सज्ञा पुं० [सं०] १ श्योनाक । टेंदु । सोनापाडा । सोनागाढ । २ अलावु । अलावू । कडुई लोकी ।

अरव—वि० [मं०] शोरगुल रहित । रवरहित । शांत [को०] ।

अरवन—सज्ञा पुं० [मं० अ = नहीं + हि० लवना = खेन की कटाई] १ फसल जो कच्ची काटी जाय । २ वह फसल जो पहले पहल काटी जाय और खतिहान में ले जाकर घर पर लाई जाय । इसके अन्न से प्रायः देवताओं की पूजा होती है और ब्रह्मण आदि खिलाए जाते हैं । अवई । अवनी । अवरी । अवांभी । कवल । कवारी ।

अरवन—सज्ञा पुं० [देश०] वह भौरी जो घोड़े के कान की जड़ में गर्दन की ओर होती है । यह यदि दोनों ओर हो तो शुभ और एक ओर ही तो अशुभ समझी जाती है ।

अरवा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + हि० लावना = जलाना, भूना] वह चावल जो कच्चे अर्थात् बिना उबाले या भूने धान से निकाला जाय ।

अरवा<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं० आलय = स्थान] आला । ताखा ।

अरवाती०—सज्ञा स्त्री० [हि० ओरवती] छाजन का वह किनारा जहाँ से पानी बरसने पर नीचे गिरता है । ओरती । ओरीती । उ०—सजनी नैना गए भगाइ । अरवाती को नीर बडेरी कैम फिरेहै घाइ ।—सूर० (शब्द०) ।

अरवाह०—सज्ञा पुं० [अ० रुह का बहुव० अवहि] जीवात्मा । उ०—दाहू इक्ष अल्लाह का, जो कवहू प्रगटे आइ । तीं तन मन अरवाह का सत्र पडदा जलि जाइ ।—दाहू वी०, पृ० ६७ ।

अरविद—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्द] १. कमन

यो०—अरविदनयन । अरविदनाम । अरविदवधु । अरविदलोचन अरविदाक्ष ।

२ सारम । ३ नील या रक्तकमल [को०] । ४ कामदेव के पाँच वाणों में से एक [को०] । ५ तावा [को०] ।

अरविददलप्रभ—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्ददलप्रभ] तावा [को०] ।

अरविदनयन—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दनयन] कमलनयन । विष्णु ।

अरविदनाम—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दनाम] कमलनाम । विष्णु ।

अरविदनाभि—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दनाभि] त्रिष्णु [को०] ।

अरविदवधु—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दवधु] कमलवधु । सूर्य ।

अरविदयोनि—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दयोनि] कमलयोनि । ब्रह्मा ।

अरविदलोचन—सज्ञा पुं० [मं० अरविन्दलोचन] कमलनयन । विष्णु ।

अरविदसद्—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दसद्] ब्रह्मा [को०] ।

अरविदाक्ष—सज्ञा पुं० [मं० अरविन्दक्ष] विष्णु ।

अरविदिनी—सज्ञा स्त्री० [सं० अरविन्दिनी] १. कमलिनी । २. कमल लता । ३. कमलसमूह । ४. कमल से भरा स्थान [को०] ।

अरवी—सज्ञा पुं० [सं० आलू] एक प्रकार का कद ।

विशेष—इसके पत्ते पान के पत्तों के आकार के बड़े बड़े होते हैं ।

यह दो प्रकार की होती है, एक नफेद डठी की, दूसरी कानी डठी की । जड़ या कद से बराबर पत्तों के लगे लगे डठन निकलते रहते हैं । नीचे नई पत्तियाँ बँधनी जाती हैं । यह छूने में लमदार और खाने में कुछ कनकनाहट लिए हुए स्वादिष्ट होती है । लोग इसके पत्ते का माग इत्यादि बनाकर भी खाते हैं । यह अधिकतर बैसाख जेठ में बोई जाती है और सावन में तैयार हो जाती है । उ०—चूक लाय कै रीधे माँटा । अरवी कहीं भल अरहन वाँटा ।—जायसी (शब्द०) ।

अरग्र<sup>१</sup>—वि० [सं०] नीरस । फीका । २ गँवार । अनाडी । ३ कमजोर । निर्बल [को०] ।

अरस<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [मं० अ० अर्श] आनस्य । उ०—नहिन दुरत हरि प्रिय को परम । उपजत है मन को अति आनंद, अधरनि रँग, नैननि को अरस ।—सूर०, १०।२६५६ ।

अरस०—सज्ञा पुं० [अ० अर्श] १ छत । पाटन । २ धरहरा । महल । उ०—(क) माख माख कहि गारि दे, धिक गाड चरैया । कम पास हूँ आइए कामरी ओढ़ैया । बहुरि अरस ते आइ कै, तब अवर लीजो ।—सूर०, १०।३०३८ । (ख) अरस नाम है महल को, जहाँ राजा बैठे । गारी दै दै सत्र उठे, भुज निज कर ऐठे ।—सूर० (शब्द०) । ३ आकाश । उ०—चलकर महल निकट गिर पडु चिय चढ रज अरस फरक धूज चाहि ।—रघु० रू०, पृ० ११६ । ४ मुसलमानों के मतानुसार सबसे ऊपरवाला स्वर्ग जहाँ खुदा रहता है ।

अरसठ०—वि० [हि०] दे० 'अडसठ' ।

अरसथ—सज्ञा पुं० [देश०] मासिक आयव्यय का लेखा । वही जिसमें प्रति मास के आयव्यय की खतियौनी जाती है ।

अरसनपरसन०—सज्ञा [हि०] दे० 'अरसपरस' ।

अरसन।०—कि० अ० [सं० अरस] शिथिल पडना । ढीला पडना । मद होना । उ०—आवती हो उत ही सो, उनकी विजाकि दसा, बिरह तिहारे अग अग अरसे ।—रघुनाथ (शब्द०) ।



अरसनापरसना—कि० सं० [सं० स्पर्श] १ छूना। उ०—अरस परस चुटिया गहँ, वरजति है माई।—मूर०, १०।१६२। २ आलिंगन करना। मिलना। भेटना। उ०—काहू के मन कछु दुख नाही। अरमि परनि हँसि हँसि लपटाही।—मूर०, १०।६२०।

अरसपरस<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श] लडकों का एक खेल। आँखमिचौनी। छुआछुई। आँखमुनाल। उ०—गुरु बतावै साध को साधु कहँ गुरु पूज। अरम परस के खेल मे भई अगम की मूक—कवीर (शब्द०)।

विशेष—इस खेल मे एक लडके को अलग कर देने हैं। वह लडका आँख मूँदता है और सब लडके दूर भाग जाते हैं। जब उसमे आँख खोलने को कहते हैं तो वह आँखों को छूने के लिये झुट्टा है। जिसे वह छू लेता है वह भी अलग किया जाता है और फिर उसे भी आँख मूँदनी पड़ती है।

अरसपरम<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन स्पर्शन] देखना। उ०—विनु देखे विनु अरम परम विनु नाम दिए का होई। धन के कहे धनिक जो हो तो निर्धन रहन न कोई।—कवीर (शब्द०)।

अरना—संज्ञा पुं० [प्र० अरसह] १ समय। काल। २ देर। अनिकान ३ अंतर। दूरी। फासना [को०]। ४ क्षेत्र। मैदान [को०]।

अरसना<sup>३</sup>—क्रिया प्र० [सं० अरस] अरमाना। निद्राग्रस्त होना। उ०—ऐवनि मी चितवन चितन, भई ओट अरमाय। फिर उभरन को मृगनरनि, दृगनि लगनिवाँ लाय।—विहारी (शब्द०)।

अरसात—संज्ञा पुं० [सं० अरस आलस्य] २४ अक्षरों का एक वृत्त जिसमे सात 'मगण' और एक 'रगण' होता है। यह एक प्रकार का मन्त्र है। यथा—मासत रुद्र जु घ्यानिन मे पुनि सारमुनी जस वानिन मानिए। नारद ज्ञानिन पानिन गग मु रानिन मे विकटोरिया मानिए। दानिन मे जम कर्ण बडे तम भारत अब खरी उर आनिए। वेदन के दुख छूटन मे कहह अरसात नहीं फुर जानिए। (शब्द०)।

अरसाव<sup>४</sup>—वि० [सं० आश्रव] बाधा। पाप। उ०—बोली गगा माँचही महादेव कर भाव। जोगिन्ह आनि जेवावहू, जाड कौल अरसाव।—चित्रा०, पृ० १२५।

अरसाश—संज्ञा पुं० [सं०] रुखा सूखा भोजन। विना स्वाद का। स्वादरहित [को०]।

अरमिक—वि० [सं०] १ जो रमिक न हो। अरमज। ह्वा। २ कविता के मर्म को न समझनेवाला। ३ बेस्वाद या विना जायका का [को०]।

अरमी<sup>५</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अरमी, प्रा० अरमी] अरमी। सीमी। उ०—जनहु मान निमयानी वरसी। अनि विनभर फूने जनु अरमी।—जायसी (शब्द०)।

अरमी<sup>६</sup>—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अरमी'। उ०—तन भुग्मी तरसी हिय परमी विन्ह जहर। दृगनि वारि भ्रम सी गी दरमी अरमी नूर।—न० सप्तक, पृ० ३२६।

अरमीला<sup>७</sup>—वि० [सं० अरम] [स्त्री अरमीली] आनन्दपूर्ण। आनन्द मे मग। उ०—राजु कहाँ तजु बँटी है मृगण मेमे ही अग कछु अरमीलो।—मतिराम (शब्द०)।

अरमीहाँ<sup>८</sup>—वि० [सं० आलस्य, हि० अरम + अमी (प्रत्य०)] आनन्दपूर्ण। आनन्दमग। उ०—(क) नखरेखा मोहै नई, अरसीहै सब गान, मोहै होत न नैन ये तुम मोहै कत खान—विहारी (शब्द०)। (ख) मोहै चितन अरसीहै तिया निरछोहै हमोहैं सरावति मानहि।—देव (शब्द०)।

अरहंत<sup>९</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अरहन्, प्रा० अरहन] दे० 'अरहंत'। उ०—पियारे दूजो को अरहन पूजा जोग मानि कै जग मे जाको पूजै सत।—भारवेंदु ग्र०, भा० २, पृ० १३३।

अरहट—संज्ञा पुं० [सं० अरघट्ट, प्रा० अरहट्ट] एक यंत्र जिसमे तीन चक्कर या पहिए होते हैं। इन पहियों पर घड़ों की माला लगी होती है जिनमे कुएँ मे पानी निकाला जाता है। रहैट। उ०—कवीर माना मन की और समागी भेष। माला पहरेवाँ हरि मिलै, तो अरहट कै गलि देप।—कवीर ग्र०, पृ० ४५।

अरहन—संज्ञा पुं० [सं० रन्धन] वह आटा या वेनन जो नरकारी, माग आदि पकाते समय उसमे मिला दिया जाता है। रेहन। उ०—बूक लाइके रीते माँटा। प्ररयी कहै मन अरहन बाटा।—जायसी (शब्द०)।

अरहना<sup>१०</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं० अरहण, प्रा० अरहणा] पूजा आराधना। अरहना<sup>११</sup>—क्रि० सं० पूजा करना। आराधना करना।

अरहर—संज्ञा स्त्री० [सं० आढकी प्रा० अरहरी] १, एक अनाज जो दो दल के दाने का होता है। गहर। उ०—सन मूकपो वील्यो वनी, ऊँची लई उखागि। हरी हरी अरहर अजो, धर धरहर हिय नारि।—विहारी (शब्द०)। २ अरहर का बीज। तुवरी। तूअर। पर्या०—तुवरी। बीर्या०। करवीरमूजा। वृत्तबीजा। पीतपुष्पा। काशीमृत्सना। मृतालका। सुराष्ट्रजमा।

विशेष—इसका पीछा चार पाँच हाथ ऊँचा होता है। इसकी एक एक सीके मे तीन तीन पत्तिया होती हैं जो एक ओर हरी ओर दूसरी ओर भूरी होती है। इसका स्वाद कसैला होता है। मुँह आने पर लोग इसे चबाते हैं और फोड़े फुमियो पर भी पीसकर लगाते हैं। अरहर की लकड़िया जलाने और छप्पर छाने के काम आती हैं। इसकी टहनियो और पनले डठनो मे खाँचि और दोरिया बनाई जाती है। अरहर वगमानमे बोई जाती है और अगहन पूनमे फलती है। इसका फूल पीले रंगका होता है और फूल भड जाने पर इसमे डेढ़ दो इंच की कनियाँ लगती हैं जिनमे चार पाँच दाने होते हैं। दानों मे दो दालें होती हैं। इसके दो भेद हैं। एक छोटी दूतरी बडो। बडो को 'अरहरा' कहते हैं और छोटी को 'रघुमिया' कहते हैं। छोटी दान अच्छी होती है। अरहर फागुन मे पकती है और चैत मे काटी जाती है। पानी पाने मे इसका पेट कई वर्ष तक हरा रह सकता है। भिन्न भिन्न देशो मे इसकी कई जानिया होती हैं, जैसे रायपुर मे 'हरीना' और 'भिही', उगाल मे 'मयग' और 'चैती' तथा आमान मे 'गलगा', 'देव' या 'नवी'।

अरहेड<sup>१२</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं० हेड] बीवायो का भुट। नेहरी।—हि०।

अरा<sup>१३</sup>—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आरा'। बीजे अरा लै अरेगि है उरकोर कटाभन और अराए।—दे० (शब्द०)। २ नर्तक। भगडा।



अरा<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [स० आर] पहिए की गडारी और उसके मध्य भाग को मिलाने वाली पतली सलाई। तीली।

अराअरी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि० अरना] अडाअडी। होड़ स्पर्धा। उ०—प्यारी तेरी पूतरी काजर हू ते कारी। मानो हूँ मैंवर उड़े बरावरी। चपे की डारि बैठे कुद अलि लागी है जेव अराअरी—हरिदाम (शब्द०)।

अराक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [अ०] १ एक देश जो अरब में है। एराक। इराक। २ वहाँ का घोड़ा। उ०—हरती हरीफ मान तरती समुद्र युद्ध श्रुद्ध ज्वाल जरती अराकनि सो अरती।—भूपण (शब्द०)।

अराक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० दे० 'अडाक'।

अराकन—सज्ञा पुं० [स० अरि = राक्षस + ग्राम, वरमी, कान = देश] वरमा देश के एक प्रांत का नाम। यह वगाल की खाड़ी के किनारे पर है।

अराकी<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'इराकी'।

अराग<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] रागमात्र। राग का अभाव। रति का अभाव [को०]।

अराग<sup>२</sup>—वि० वासनाविहीन। रागविहीन। रतिविहीन [को०]।

अरागी—वि० [म० अरागिन्] [स्त्री० अरागिनी] रागरहित। वासनाविहीन [को०]।

अराचना<sup>१</sup>—क्रि० स० [म० अर्चन] अर्चन करना। आदर देना। उ०—तिय तजि लाज कहत रति जाचन। को नहि धर्म जो पुरुष अराचन्।—हम्मीर रा०, पृ० ८०।

अराज<sup>१</sup>—वि० [स० अ + राजन्] विना राजा का। उ०—जग अराज हूँ गयो रिपिन तव अति दुख पायो। लै पृथ्वी को दान ताहि फिरि वनहि पठायो।—सूर०, ६।१४।

अराज<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० अराजकता। शासन विप्लव। हनचल।

अराजक—वि० [म०] १ जहाँ राजा न हो। राजहीन। विना राजा का। २ अराजकता फैलानेवाला। विद्रोह या विप्लव करनेवाला।

अराजकता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ राजा का न होना। २ शासन का अभाव। ३ अशांति। हनचल। अँधेरा।

यो०—अराजकतावाद = व्यक्तिस्वातंत्र्य का समर्थन करनेवाला तथा शासन की अनावश्यकता माननेवाला सिद्धांत या वाद।

अराजन्य—वि० [स०] अश्रियविहीन [को०]।

अराजवोजी—वि० [म० अराजवोजिन्] अराजकता फैलानेवाला। राजविद्रोह का प्रचार करनेवाला।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसे मनुष्यों को वहाँ भेजने का विधान बताया है जहाँ उपनिवेश बनाने में बहुत कठिनाई या खर्च हो।

अराजव्यसन—सज्ञा पुं० [म०] अराजकता संबंधी मकड़।

अराजो—सज्ञा स्त्री० [अ० अर्ज का बहुव०] १ भूमि। धरती। जमीन। २ वह जमीन जो खेती बारी के काम आती है [को०]।

अराड—सज्ञा पुं० [म० अराल] १ राशि। डेर। अमार। २ टूटी फूटी तथा रूढ़ी बस्तुओं का अवार। ३ जनावन की इकान।

अराडना—क्रि० प्र० [१] गर्भान्त में जाना। गर्भ का गिर जाना। बच्चा फेंकना।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः पशुओं ही के लिये होता है।

अरात<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अराति' [को०]।

अराति—सज्ञा पुं० [स०] १ शत्रु। उ०—कर लिया निश्चित अरिदम ने निपात अराति का।—कानन०, पृ० ११२। २ फलित ज्योतिष में कुडली का छठा स्थान। ३ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य जो मनुष्य के आंतरिक शत्रु हैं। ४ छह की संख्या।

अराद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वैमनस्य। २ दुर्भाग्य। ३ दोष। पातक [को०]।

अराधन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अराधन'।

अराधना<sup>१</sup>—क्रि० स० [म० आराधन] १ आराधना करना। उपासना करना। उ०—हम अलि गोकुलनाथ अराध्यो। सूर० १०।३५३०। २ पूजा करना। अर्चना करना। ३. जपना। ४ ध्यान करना।

अराधी<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आराधी'।

अराना<sup>१</sup>—क्रि० म० [हि०] दे० 'अडाना'। उ०—मौहँ अरा नै अरेरति है उर कोर कटाधन और अरारे।—देव (शब्द०)।

अरावा—सज्ञा पुं० [अ०] १ गाड़ी। रथ। उ०—(क) चामिल पार भए मव आछे। तवै अडोन अरावे पाछे।—नाल (शब्द०)। (ख) जितो अरावो नार है सो मव लीनो मग। उतरि पार डेरा दए ठठि पठान मौ जग।—मुजान०, पृ० ५१। २ वह गाड़ी जिमपर तोप लादी जाय। चरख। उ०—लावदार रक्खो किए मवै अरावी एहु। ज्यो हरीफ आवै नजरि तवै घडाघड देहु।—मुजान०, पृ० १५। (ख) दाराघाट धीरपुग बौध्यो। रोपि अरावै कलहै काँध्यो। लाल (शब्द०)। ३ जहाज पर तोपों को एक बार एक ओर दागना। सलख।

अराम<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म० आराम] वाग। उपवन।—ये नहि फूल गुलाब के दाहन हिय जु हमार। विन घनश्याम अराम में लागी दुसह दवार।

अराम<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [फा० आराम] दे० 'आराम'।

अरारुट—सज्ञा पुं० [अ० एरारुट] एक पौधा जो अमेरिका से हिंदुस्तान में आया है।

विशेष—गरमो के दिनों में दो दो फुट की दूरी पर इसके कंद गाड़े जाते हैं। इसके लिये अच्छी दोमट और बरुई जमीन चाहिए। यह अगमन से फूटने लगता है और जनवरी फरवरी में तैयार हो जाता है। जब इसके पत्ते झड़ने लगते हैं तब यह पक्का नमका जाता है और इसकी जड़ खोद ली जाती है। खोदने पर भी इसकी जड़ रह ही जाती है। इसमें, जहाँ यह एक बार लगाया गया वहाँ उसका उच्छिन्न करना कठिन होता है। इसकी जड़ को पानी में खूब धोकर कूटते हैं और फिर उसका मत निकालते हैं जो स्वच्छ मँदे की तरह होता है। यह अमेरिका की तीखुर है। इसका रंग देसी तीखुर के रंग से सफेद होता है तथा इसमें गर और स्वाद नहीं होता।

२ अरारुट का आटा।

अरारोट—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरारुट'।

भराल<sup>१</sup>—वि० [स०] कुटिल। टेढ़ा। उ०—भाल पर माग, लाल वेंदी पं मुहाग, देव मृकुटी भराल अनुराग हुलस्यो परै।—देव (शब्द०)।

यो०—भरालवेशी=कुटिल केश या अलकवाली। घुँघराले वालीवाली।

भराल<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ सर्ज रम। राल। २ मत्त हाथी। ३. टेढ़ा या टूटा हाथ (को०)। ४. एक समुद्र [को०]।

अभराला—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अपवित्र नारी। मतीत्वहीन नारी २ अवृष्टा स्त्री० [को०]।

भरावल<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [हिं] १० 'हरावल'।

भरावली—सज्ञा पुं० राजस्थान का एक पहाड़।

भराष्ट्र—सज्ञा पुं० [म०] राज्यसत्ता का नाश या अभाव [को०]।

भरिज—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का ववूल। सफेद ववूल।

विशेष—यह पंजाब, राजपूताना, मध्य और दक्षिण भारत तथा ब्रह्मा में पाया जाता है। इसका छिलका रेशेदार होता है और इसमें मछली पकड़ने का जाल बनाया जाता है। इसमें एक प्रकार की गोद भी निकलती है जो पानी में धोली जाने पर पीला रंग पैदा करती है। यह अमृतमयी गोद कहवाती है। इसे ववूल की गोद के साथ भी मिलाकर बेचते हैं। पेड़ की छाल को पीसकर गरीब लोग अकाल में बाजरे के आटे के साथ खाने के लिये मिलाते हैं। इसमें एक प्रकार का नशा भी होता है और यह मद्य में भी मिलाई जाती है। इसीलिये भरिज को 'भराव का कीवर' भी कहते हैं।

भरिद<sup>४</sup>—सज्ञा पुं० [म० अरि + इन्द्र] शत्रु। उ०—तहँ मारि मारि भरिद बरछी सो गिराए गयन तैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०।

भरिदम—वि० [म० अरिदम] १. शत्रुनाशक। वैरी का दमन करनेवाला। उ०—कर लिया निश्चित भरिदम ने निपात अराति का।—कानन०, पृ० ११२। २. विजयी।

भरि—सज्ञा पुं० [म०] १ शत्रु। वैरी। २. चक्र। ३. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। ४. छह की संख्या। ५. ज्योतिष में लग्न से छठा स्थान। ६. विट् खदिर। दुर्गंध खैर। भरिमेद। ७. स्वामी [को०]। ८. रथ का कोई हिस्सा [को०]। ९. वायु [को०]। १०. धार्मिक व्यक्ति [को०]।

भरिकर्षक—सज्ञा पुं० [म०] शत्रुओं का कर्षण या पराभव करनेवाला [को०]।

भरिकुल—सज्ञा पुं० [स०] १ शत्रुसमूह। २. शत्रु [को०]।

भरिकेलि—सज्ञा स्त्री० [म०] १ शत्रुक्रीडा। २. वासनात्मक आनंद [को०]।

भरिकेशी—सज्ञा पुं० [स० अरी + केशी] केशी के शत्रु, कृष्ण।

अरिक्थभाग—वि० [म०] जिसे पिता के धन का भाग न मिल सके। पिता का हिस्सा पाने के अयोग्य। अनश।

अरिघ्न—वि० [म०] शत्रुहता [को०]।

अरिचिता—सज्ञा स्त्री० [म० अरिचिन्ता] शत्रु के विघटन या विनाश के लिए सोचना [को०]।

अरित्र<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] १ बल्ला जिसमें नाव खेते हैं। डाँड। २. क्षेपणी। निपातक। ३. जत्र की थाह। लेने की डोगी। ४. लगर।

अरित्र<sup>२</sup>—वि० [म०] १ शत्रु में रपा करनेवाला। २. आगे बढ़ानेवाला [को०]।

यो०—अरित्रगाध=छिछला।

अरिदमन<sup>१</sup>—वि० [स० अरि + दमन=नाश] शत्रु का नाश करनेवाला।

अरिदमन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० शत्रुघ्न। लक्ष्मण के छोटे भाई का नाम। रिपुदमन।

अरिनिपात—सज्ञा पुं० [स०] दुश्मन का हमला [को०]।

अरिनुत—वि० [म०] शत्रु भी जिसकी प्रशंसा करें [को०]।

अरिप्रकृति—सज्ञा स्त्री० [स०] युद्ध में प्रवृत्त राजा के चारों ओर के शत्रुओं की स्थिति।

अरिभद्र—सज्ञा पुं० [म०] अति शक्तिशाली शत्रु [को०]।

अरिमर्द—सज्ञा पुं० [म०] काममर्द नाम का पौधा [को०]।

अरिमर्दन<sup>१</sup>—वि० [म०] शत्रुओं का नाश करनेवाला। शत्रुसूदन।

अरिमर्दन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ केकयनरेश राजा भानुप्रनाप का भाई जो शापवश कुम्कर्ण हुआ था। २. अक्रूर का भाई।

अरिमेद—सज्ञा पुं० [म०] १ विट् खदिर। २. एक बंदबूदार कीड़ा। गधिया। ३. एक वृक्ष।

अरिमेदक—सज्ञा पुं० [म०] मल में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा [को०]।

अरिप्रा—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी बिड़िया जो प्रायः पानी के किनारे रहती है। इसे ताक या लेदी भी कहते हैं।

अरियाणा<sup>४</sup>—कि० स० [स० अरे] अरे कहकर बुलाना। तिरस्कार करना। उ०—बलकली धरें तजें, वरत अनेक भरें, जनपद गहत लहत मथ मत हैं। ऐसे बल तप परलोकन तैं अरियाते कोमनि अचल तैं केवरो लगत है।—गुमान (शब्द०)।

अरिल्ल—सज्ञा पुं० [स० अरिला] सोलह माथाओं का एक छद जिसके अंत में दो लघु अथवा एक यगण होता है, परंतु इसमें जगण का निषेध है। भिखारीदास ने इसके अंत में भगण माना है। जैसे,—ले हरिनाम मुकुद मुरारी। नारायण भगवत खरागी (शब्द०)।

अरिवन—सज्ञा पुं० [देश०] रस्सी का फंदा जिसमें फँसाकर घड़ा या गगरा कुँ में डीलते हैं। उवका। उवक। छोर। फँसरी।

अरिष—सज्ञा पुं० [स०] १ लगातार वरसत। २. गुदा का एक रोग [को०]।

अरिष्ट<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ क्लेश। पीडा। २. आपत्ति।

विपत्ति। ३. दुर्भाग्य। अमंगल। ४. अपशकुन। अशुभ लक्षण

५. दुष्ट ग्रहों का योग जिसका फल ज्योतिष शास्त्र के अनुसार अनिष्ट होता है। मरणकारी योग। ६. लहसुन। ७. नीम।

निव। ८. लका के पास एक पर्वत। ९. कौवा। काक। १०.

कक। गिद्ध। ११. गीठे का पेड़। फेनिल। निर्मनी। १२. वह

अरक जो बहुत सी दवाओं को मीठे में मड़ाकर बनाया जाय।

एक प्रकार का मद्य जो धूप में ओपधियों का खमीर उठाकर

बनता है। १३. काढा। १४. एक ऋषि। १५. एक राक्षस

का नाम जिसे श्रीकृष्णचन्द्र ने मारा था। वृषभासुर। १६  
अरिष्टसूचक उत्पात, जैसे भूकंप आदि। १७ बनि का पुत्र,  
एक दैत्य। १८ मट्ठा। तक। १९ सोरी। सूतिकागृह।  
२० कौटिल्य के अनुसार एक प्रकार का अमहन व्यूह जिममें  
रथ बीच में, हाथी कक्ष में और छोटे पृष्ठ भाग में रहते थे।

अरिष्ट<sup>२</sup>—वि० १ दृढ़। अविनाशी। २ शुभ। ३. बुरा। अशुभ।

अरिष्टक—सज्ञा पुं० [सं०] १ रीठा। निर्मली। २ रीठे का वृक्ष।

अरिष्टगृह—सज्ञा पुं० [सं०] सोरगृह [को०]।

अरिष्टनेमि—सज्ञा पुं० [सं०] १. कश्यप प्रजापति का एक नाम।

२ हरिवंश के अनुसार कश्यप का एक पुत्र जो विनता से उत्पन्न  
हुआ था। ३ राजा नगर के श्वशुर का नाम। ४ सोनहवें  
प्रजापति। ५ जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर। ६ हरिवंश के  
अनुसार वृष्णि का एक प्रपौत्र जो चित्रक का पुत्र था।

अरिष्टमथन—सज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ गिन [को०]।

अरिष्टसूदन—सज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

अरिष्टा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कश्यप ऋषि की स्त्री और दक्ष  
प्रजापति की पुत्री जिमसे गंधर्व उत्पन्न हुए थे। २ कुटकी।  
३ पट्टी [को०]।

अरिष्टिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ रीठी। २ कुटकी।

अरिहत<sup>५</sup>—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्हत'। उ०—कै पूजै श्रीकृत नू,  
कै पूजै अरिहत।—वांकीदाम ग्र०, भा० २, पृ० ६०।

अरिहन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अरिहन्] शत्रुघ्न।

अरिहन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अर्हत] वीतराग। जिन।

अरिहन<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [सं० रन्धन] रेहन। अरहन।

अरिहा<sup>१</sup>—वि० [सं० अरिहन्] शत्रुघ्न। शत्रु का नाश करनेवाला।

अरिहा<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न। उ०—(क) बोरों  
सबै रघुवंश कुठार की धार में वारन बाजि सरस्वहि। बान  
की वायु उडाय कै लच्छन लच्छ करौ अरिहा समरस्वहि।—  
राम च०, पृ० ३५। (ख) जूझि गिरे जबही अरिहा रन।  
बाजि गए तबही मट के गन।—राम च०, पृ० १७५।

अरी—अव्य० [सं० अरि] सर्वोपनायक अव्यय जिनका प्रयोग म्रियों  
के ही लिये होता है। उ०—अरी, खरी मटपट परी, विनु धावें  
मग हेरि। मग लगें मधुपनु लई भागनु गली अंधेरि।—विहारी  
र०, दो० ४५६।

अरीक्ष्णा<sup>५</sup>—क्रि० प्र० [हिं०] बर्ष जाना। रीझना। दे० 'अरुक्ष्णा'।

अरीठा—सज्ञा पुं० [सं० अरिष्टक, प्रा० अरिद्धा] रीठा।

अरुतुद<sup>१</sup>—वि० [सं० अरुन्तुद] १ मर्मस्थान को तोड़नेवाला। मर्म-  
स्पृक्। उ०—अरुतुद वादय कहतेहो अहो तुम।—नाकेत,  
पृ० ६२। २ दुःखदायी। ३ कठोर बात कहकर चित्त को  
टुटानेवाले पक्षपापी।

यौ०—अरुतुदवचन।

अरुतुद<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० शत्रु। बंदी।

अरुघती—सज्ञा स्त्री० [सं० अरुघ्यती] १. वणिष्ठ मुनि की स्त्री। २  
दक्ष की एक कन्या जो धर्म से व्याही गई थी। ३ एक बहुत  
छोटा तारा जो सप्तर्षि मंडलस्थ वणिष्ठ के पास उगता है।

विवाह में इसे वधू की दिव्याने का विधान है। मृत्यु के  
अनुसार जिनकी मृत्यु समीप होती है उस समय इसे देखा  
नहीं गया। ४. नक्षत्र के अनुसार जितना।

यौ०—अरुघतीजानि, अरुघतीनाय, अरुघतीपति = वणिष्ठ मुनि।

अरुघती दर्शन व्याप = मृत्यु के मंदम की ओर गमन। वि०  
दे० 'व्याप'।

अरुपिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक क्षुद्र रोग जिसमें कफ और रक्त के  
मिश्रण या कृमि के प्रकोप से मांस पर घनक भूँटाने को  
हो जाते हैं।

अरु<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अरुस] १ मृग। २ रक्त गदिर। ३. मक्षर  
वृक्ष। ४ मर्मस्थान। ५ घाव। जन्म। ६ नेत्र।  
आँख [को०]।

अरु<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरु'। उ०—मनमुग्न आँखें अधि अरु  
मीना। गर पुस्तक दुःख मित्र प्रसीता।—मानस, १।२०३।

अरुआ—सज्ञा पुं० [सं० आरु] एक प्रकार का वृक्ष जो जंगली वृक्ष।

विशेष—यह वृक्ष, मध्यभारत तथा दक्षिण भारत में प्रायः  
जंगली दशा में पाया जाता है। तथा उत्तरप्रदेश में लगाया  
जाता है। इसमें चैन वंगार में पीने का उपयोग है। इसकी  
छान और पत्तियाँ घोषधि के रूप में काम में आती हैं तथा  
इसकी लकड़ी में दोष और गंधार की लकड़ी या ली प्रकार  
की घम्य हल्की चीजें बनाई जाती हैं।

अरुई<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुई'। उ०—अरुई रमयी दई  
खटाई जंगत पदमन जान खटाई।—सूर०, १।१२१३।

अरुकटि—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक नगर जो वर्तमान की राजधानी है।  
आर्कटि। आरकाट।

अरुग्ण—वि० [सं०] नीरोग। रोगरहित।

अरुचि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ रुचि का अभाव। अनिच्छा। २  
अग्निमाद्य रोग जिनमें भोजन की इच्छा नहीं होती।  
३ घृणा। नफरत। ४ सतोष देनेवाली व्याख्या का  
अभाव [को०]।

अरुचिकर—वि० [सं०] जिनमें अरुचि हो जाय। जो रुचिकर न है।  
जो भला न लगे।

अरुचिर—वि० [सं०] १ अनुर। जो अच्छा न लगे। २  
अरुचिकर [को०]।

अरुज्—वि० [सं०] रोग में मुक्त। निरोग [को०]।

अरुज<sup>१</sup>—वि० [सं०] नीरोग। रोगरहित। स्वस्थ।

अरुज<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ अमनमान। २ केसर। ३ निहुर।

अरुक्ष्णा<sup>५</sup>—क्रि० प्र० [सं० अरुक्ष्यन्, प्रा० अरुक्ष्णा] १ उन्नमन।

फँसना। उ०—(क) पाखन फिर फिर परा गो फाँदू। उडि  
न सकइ अरुक्ष्ण भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ मट-  
कना। ठहरना। अडना। उ०—दुख न रहै रवपतिहि  
मिलोकत तनु न रहै मिनु देखे। करत न प्रान पयान मुनहु  
सखिअरुक्ष्ण परी यहि लेखे।—तुलसी ग्र०, पृ० ३५१। ३ लडना।  
मिडना। सघर्षरत होना।

अरुक्ष्णा<sup>५</sup>—वि० न० [हिं० अरुक्ष्णा वा अरुक्ष्ण] उन्नमन।  
फँसना। उ०—नागवि मन गई अरुक्ष्णा। अति विरह तनु  
रुई व्याकुल घरन नैकु सहाए।—सूर०, १।१६७८।

अरुणा<sup>१</sup>—वि० अ० लिखटना । उन्नतना । उ०—विद्य विमान  
ता अरुणा<sup>१</sup>—तुलसी (शब्द०) । (ख) मेरो मन हरि  
चितवनि अरुणा<sup>१</sup>—सूर० १०।१६६७ ।

अरुण<sup>२</sup>—वि० [म० रुष्ट] । नाराज ।

अरुण<sup>३</sup>—क्रि० अ० [म० रुष्ट] रुष्ट होना । क्रुद्ध होना । उ०—तिन  
पर तुट्टी बीज जाँ, जिन पर राज अरुष्ट । राजकाज समुह  
मिरन, दई न कवहू पुट्ट ।—पृ० १०, ५।५ ।

अरुण<sup>४</sup>—वि० पु० [म०] [वि० स्त्री० अरुणा] लाल । रक्त ।

अरुण<sup>५</sup>—सञ्ज्ञा पु० १ सूर्य । २ सूर्य का सारथी । ३ गुड । ४ ललाई  
जो संध्या के समय पश्चिम में दिखलाई पड़ती है । ५ एक  
दानव का नाम । ६ एक प्रकार का कुष्ठ रोग । ७ पुत्रावृक्ष ।  
८ गहरा लाल रंग । ९ कुमकुम । १० सिंदूर । ११ एक  
देश । १२ बारह सूर्य में से एक सूर्य । माघ महीने का सूर्य ।  
१३ एक आचार्य का नाम जो उद्दालक ऋषि के पिता थे  
१४ एक जहरीला क्षुद्र जन्तु [को०] । १५ एक भीम जो हिमा-  
लय के इस पार है । १६ मोना । स्वर्ण [को०] । १७. एक  
प्रकार का पुच्छल तारा ।

विशेष—इनकी चोटियाँ चँवर की भी होती हैं । ये कृष्ण अरुण  
वर्ण के होते हैं । इनका फल अनिष्ट है । ये मध्या में ७७ हैं  
और वायुपुत्र भी कहलाते हैं ।

यो०—अरुणलोचन । अरुणात्मज । अरुणोदय । अरुणोपल ।

अरुणकर—सञ्ज्ञा पु० [म०] सूर्य [को०] ।

अरुणकिरणा—सञ्ज्ञा पु० [म०] सूर्य [को०] ।

अरुणचूड—सञ्ज्ञा पु० [म०] कुक्कुट । मुर्गा । अरुणशिखा ।

अरुणज्योति—सञ्ज्ञा पु० [म०] शिव [को०] ।

अरुणनेत्र—सञ्ज्ञा पु० [म०] २० 'अरुणलोचन' [को०] ।

अरुणप्रिय—सञ्ज्ञा पु० [म०] सूर्य [को०] ।

अरुणप्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ अप्सरा । २ छाया और सजा, सूर्य  
की स्त्रियाँ ।

अरुणमल्लार—सञ्ज्ञा पु० [म०] मल्लार राग का एक भेद । इसमें सब  
शुद्ध स्वर लगते हैं ।

अरुणलोचन—सञ्ज्ञा पु० [म०] जिसकी आँखें लाल हों । कवूतर [को०] ।

अरुणशिखा—सञ्ज्ञा पु० [म०] कुक्कुट । मुर्गा ।

अरुणसारथि—सञ्ज्ञा पु० [म०] सूर्य [को०] ।

अरुणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १. मजीठ । २. कोदो । ३. अतिविष ।

४. एक नदी का नाम । ५. मुंडी । ६. निसोय । त्रिवृता ।

७. इंद्रायन । ८. घुँघची । ९. लाल रंग की गाय । १०. उषा ।

११. काला अन्तर्मूल ।

अरुणार्द्र—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] अरुणा + हि० आर्द्र (प्रत्य०) ] ललाई ।  
रक्तता । लालिमा ।

अरुणाग्रज—सञ्ज्ञा पु० [म०] गरुड [को०] ।

अरुणाचल—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] पूर्व दिशा ।

अरुणात्मज—सञ्ज्ञा पु० [म०] १. जटायु । २. यम । ३. शनि । ४.  
सुरीव । ५. कर्ण [को०] ।

अरुणात्मजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १. यमुना । २. ताप्ती [को०] ।

अरुणानुज—सञ्ज्ञा पु० [म०] अरुण के लघु भ्राता । गरुड [को०] ।

अरुणाभ—वि० [म०] लालिमायुक्त । रक्ताभ [को०] ।

अरुणारु—वि० [हि०] दे० 'अरुनार' ।

अरुणाचि—सञ्ज्ञा पु० [म०] अरुणचित्त ] सूर्य [को०] ।

अरुणावरज—सञ्ज्ञा पु० [म०] दे० 'अरुणानुज' ।

अरुणाश्व—सञ्ज्ञा पु० [म०] मरुत [को०] ।

अरुणित—वि० [म०] लाल किया हुआ ।

अरुणिमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] ललाई । लालिमा । सुर्खी ।

अरुणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ अरुण वर्ण की गाय । २ उषा [को०] ।

अरुणोद<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ जैन मनानुमार एक समुद्र जो पृथ्वी को  
आवेष्टित किए हैं । २ लाल समुद्र । अरुणोदधि । ३ एक  
भील [को०] ।

अरुणोद<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'अरुणोदय' । उ०—पहिली मुख-  
राग प्रगट भयो प्राची, अरुण कि अरुणोद अवर ।—वेलि०,  
पृ० १६ ।

अरुणोदधि—सञ्ज्ञा पु० [म०] एक सागर जो मिश्र और अरब के मध्य  
में है । पहले यह स्वेज नहर के द्वारा रुम के समुद्र से  
पृथक् था पर अब डनरु भगकर देने से यह रुम के समुद्र से  
मिल गया है । इंगलिस्तान को भारत में जहाज इसी मार्ग  
से होकर जाते हैं । लाल सागर ।

अरुणोदय—सञ्ज्ञा पु० [म०] वह काल जब पूर्व दिशा में निकलते हुए  
सूर्य की लाली दिखाई पड़ती है । यह काल सूर्योदय से दो  
मुहूर्त या चार दण्ड पहले होता है । उषाकाल । ब्राह्ममुहूर्त ।  
तडका । भोर । उ०—देखा तो मुंदर प्राची में अरुणोदय का  
रसरग हुआ ।—कामायनी, पृ० ७७ ।

अरुणोदयसप्तमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] माघ शुक्ल सप्तमी । इस दिन  
अरुणोदय में स्नान करना पुण्य माना गया है ।

अरुणोपल—सञ्ज्ञा पु० [म०] पक्षराग मणि । लाल । उ०—जिमि  
अरुणोपल निकर निहारी ।—मानस ।

अरुन<sup>३</sup>—वि०, सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'अरुण' । उ०—अरुन अधरनि  
दसन भाई कहौ उपमा थोरि ।—सूर० १०।२२५ ।

अरुनई<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अरुणार्द्र' ।

अरुनचूड<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'अरुणचूड' । उ०—प्रात पुनीत  
काल प्रभु जागे । अरुनचूड वर बोलन लागे ।—मानस,  
१।११७ ।

अरुनता<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अरुणार्द्र' । उ०—वमी मानहु  
चरनकमलनि अरुनता तजि तरनि ।—तुलसी ग्र०, पृ० २८२ ।

अरुनशिखा<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'अरुणशिखा' । उ०—उठे  
लखन निसि बिगत सुनि अरुनशिखा धुनि कान ।—मानस,  
१।११५ ।

अरुनार्द्र<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अरुणार्द्र' । उ०—अरुन चरन  
अंगुनी मनोहर, न ब्र दुतिवत कछु न सराई ।—तुलसी ग्र०,  
पृ० ३३५ ।

अरुनार्द्र<sup>४</sup>—क्रि० अ० [म०] अरुण हि० 'अरुन' से नाम०]  
लाल होना । उ०—अंग अंग भूपन और मे मणि कहु पाए ।

देखि थकित रहि रूप कौ लोचन अरुनाए ।—सूर०, १० ।  
२५२२ ।

अरुना<sup>१</sup>—क्रि० सं० लाल करना । उ०—उल लेन चाहे प्राण  
अति रिसाई दृग अरुनाइ कौ ।—गोपाल (शब्द०) ।

अरुना<sup>२</sup>—वि० [हि० अरुन + आरा (प्रत्य०)] [वि०, स्त्री० अरुनारी]  
लाल रंग का । लाल । उ०—दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे ।  
नासा तिरु को वरनं पारे ।—मानस, १।१६६ ।

अरुनोदय<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरुणोदय' । उ०—अरुनोदय  
सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन ।—मानस, १।२३८ ।

अरुनोपल<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरुणोपल' ।

अरुना<sup>३</sup>—क्रि० अ० [सं० अरुन् = घाव] दु खित होना । पीड़ित  
होना । उ०—लै भुजवलरी पल्लव हाथन चलन मल्लव मोद  
विहारै । प्यारी के अगनि रन चढै त्यो अनग कला करगी  
नहि हारै । ओठन दत उगेज नखत हू महि जोतै तिया पिय  
हारै । उरु मरोरनि ज्यो मरै उरही अरु अरुनै निहारे ।—  
देव (शब्द०) ।

अरुना<sup>४</sup>—क्रि० अ० [सं० मरोड] मुडना । सिकुडना । नकुचित  
होना । उ०—नीकौ दीड तूख मी पतूख सी अरुन अग ऊप  
मी मसरि मुख लागति महूख सी ।—देव (शब्द०) ।

अरुना<sup>५</sup>—क्रि० सं० [हि० अरुना का सं० रं०] १ मरोडना ।  
२ सिकुडना ।

अरुलित<sup>१</sup>—वि० [सं० अरुलित सं० अरुलित] उलाई गुन । अरु-  
णिमा लिए हुए । उ०—पूर्व दीण अरुलित भेन ।—रस०,  
पृ० १५ ।

अरुवा<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अरु] १ एक लता जिसके पत्ते पान के पत्ते  
के सदृश होते हैं ।

विशेष—इसकी जड़ में कद पड़ता है और लता की गाँठों में भी  
एक सूत निकलता है जो चार पाँच अंगुल बढ़कर मोटा होने  
लगता है और कद बन जाता है । इसके कद की तरकारी  
बनती है । यह खाने पर कनकनाहट पैदा करता है । बरई लोग  
इसे पान के बीट पर बोते हैं ।

अरुवा<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अरुवा] उल्लू पक्षी ।

अरुप<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ अक्रोधी । २ चमकदार । ३ बिना हानि का ।  
अक्षत । ४ चक्कर काटनेवाला, जैसे घोड़ा ।

अरुप<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ अग्नि का लाल रंग का घोड़ा । २ सूर्य । ३  
ज्वाला । ४ रक्त वर्ण के तूफानी वादल [को०] ।

अरुपी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपा । २ ज्वाला । ३. शीर्ष की माता,  
जो मृग की पत्नी थी [को०] ।

अरुणक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भिलावा । २ अड़सा ।

अरुणकर<sup>१</sup>—वि० [सं०] घाव या चोट करनेवाला । क्षतकारक  
[को०] ।

अरुणकर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुणक' [को०] ।

अरुहा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भृशश्री । भुई आँवला ।

अरु<sup>१</sup>—संयो० [हि०] दे० 'अरु' । उ०—और अब दोनों गई तपस्या  
तो खडित भई, अरु, उर्वसी हू जात रही ।—हम्मीर रा०,  
पृ० २६ ।

अरुक्ष—वि० [सं०] मृदायम । मुकुमार । नायक [को०] ।

अरुक्षना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अरुक्षना' । उ०—(क) कृ-  
नरत गजराज प्राय हरना कहे जूकत । मन्त्रपुत्र कहे होन मंग,  
वृष, महिष अरुक्षन ।—गुमान (शब्द०) ।

अरुष्ट<sup>१</sup>—वि० [सं० अ + रुष्ट, प्रा० अरुष्ट हि० अरुष्ट] प्रसन्न कृष्ट ।  
उ०—ए कटकान करान अरुष्ट । नगं जनु श्रीप्र मुनज्जन  
रूट । पृ० रा०, ६।१७७ ।

अरुष्ट<sup>२</sup>—वि० [सं० अरुष्ट] दे० 'अरुष्ट' ।

अरुष्ट<sup>३</sup>—वि० [सं० अरुष्ट] जो रुष्ट वा प्रवर्धित न हो । प्रवर्धित [को०] ।

अरुप्<sup>१</sup>—वि० [सं०] स्मरित । निराकार । उ०—तोड अरुप् उगार  
मन दीन ।—तरीर (शब्द०) । (ग) अगुन अरुप् अरुप्  
अज जोइ ।—तुन्मी (शब्द०) । चदगात । गडा [को०] ।  
अमदग । वेमेन [को०] ।

अरुप्<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ बदगूरन वस्तु । २ साधन में प्रज्ञान और देश  
में अज्ञान [को०] ।

अरुप्क<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार योगियों की एक  
भूमि या अवस्था । निर्बोध नमाधि ।

विशेष—यह चार प्रकार की होती है—(१) आमायायन  
(२) विज्ञानायन, (३) अविज्ञानायन, और (४) नैरायन  
समायन ।

अरुप्क<sup>२</sup>—वि० १ अनकारविहीन । अनिप्राप्त । २ प्राप्ति वा  
आकार में विहीन [को०] ।

अरुप्कार्य—वि० [सं०] जो मोक्षदायक प्राप्तिवा या परामर्श न हो  
सके ।

अरुपावचर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार चित्त की वृत्ति  
का वह भेद जिसमें अज्ञान लोक का ज्ञान प्राप्त होता है ।

विशेष—यह चार प्रकार की होती है—यान प्रकार की दुःख  
वृत्ति चार प्रकार की विपाक वृत्ति और चार प्रकार की  
क्रिया वृत्ति ।

अरुपी—वि० [सं० अरुपिन्] बिना आशाना । आ या आकार विहीन  
[को०] ।

अरुना<sup>३</sup>—क्रि० अ० [सं० अरुन् = घाव] दु खित होना । पीड़ित  
होना ।

अरुलना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [अरुन् = क्षत, घाव] छिना । छिड़ना ।  
चुमना । उ०—छत प्राजुको देखि कहोगी कहा छतिवा नित  
ऐसे अरुलति है ।—देव (शब्द०) ।

अरुप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २. एक प्रकार का नाव [को०] ।

अरुप्ता<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अडूमा' ।

अरे—अव्य० [सं०] १ एक सर्वोपनायक अव्यय । ए। ओ। जेमे—  
अरे मिठाईयाले । इधर मा । २ एक आश्चर्यमूलक अव्यय ।  
जैसे—अरे । देखते ही देखते इसे क्या हो गया ।

अरेणु<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ धूलविहीन । धनरहित । २ अशुभ [को०] ।

अरेणु<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ जो धूल न हो । अधूनी । २ देवी देवा  
[को०] ।

अरेप—वि० [सं० अरेप] १. पाप या कनकरहित । २ शुद्ध । स्वच्छ ।  
कातिमान् [को०] ।

अरेरना०—कि० अ० [म० अ०=जाना] रगडना। उ०—मीहें अरालें अरेरति है। उरकोर कटाक्षन ओर अराए।—देव (शब्द०)।

अरेरे—अव्य० [सं०] क्रो मोद्गार तथा निम्नता सूचक सन्निधन। २. या दुःखमूचक उद्गार। जैसे—अरेरे। उनका निधन हो गया।

अरेस०—[हि०] दे० 'अरेह'। उ०—पिड जुडवा भड पांव मो, गहिया अडिग अरेस।—रा० रु०, पृ० ३१।

अरेह०—वि [म० अरेख=दान रहित] हार न माननेवाला। उ०—गद नाय लख धीर अरेह। अ० मछरीक डाल दन एहा।—रा० रु०, पृ० ३१४।

अरैल—वि० [हि० अरल] हठी। जिद्दी। उ०—कोऊ नाहिने जो वरजै निडर छैन अररानो हा परत डरत नहि रोकत रहन मग वनि अरैल।—भारतेंदु ग्र०, भा० २ पृ० ३६५।

अरैली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भाडो जिसके डठो आदि से नेपाली कागज बनता है। वि० दे० 'कचुती'।

अरोक<sup>१</sup>—वि० [म० अ०+हि० रोक] न रुकनेवाला। अवाध्य। उ०—तीन लोक माहि देव मुनि योक माहि जाय विकम अरोक मोक ओक करि दियो है।—गोपाल (शब्द०)।

अरोक<sup>२</sup>—वि० [म०] १ प्रमाहीन। विना कातिवाला। २ जिसमें छिद्र न हो। अच्छिद्र।

यो०—अरोकदत्त, अरोकदत्त=(१) जिसके दांत काले या वद-रग हो। २) घने या निविड दांतोवाला।

अरोग—वि० [म०] रोगरहित। नीरोग।

अरोगना०—कि० अ० [हि०] दे० 'अरोगना'। उ०—नद ममन में कान्ह अरोगे। जमुदा ल्यावें पटरण भोगे।—सुर०, १०। ३६६।

अरोगी—वि० [सं०] जो रोगी न हो। नीरोग। चंगा।

अरोच०—संज्ञा पुं० [सं० अरुचि] रुचि का अभाव। अनिच्छा। त्याग। उ०—मोचु पच वान को अरोचु अभिमान को ये सोचु पति प्राण को सकोच सखियान को।—देव (शब्द०)।

अरोचक<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें अन्न आदि का स्वाद मुंह में नहीं मिलता।

विशेष—यह दुर्गंधयुक्त और घिनीनी चीजें खाने और घिनौना रूप देखने तथा त्रिदोष के प्रकोप से उत्पन्न होता है। इसके प्रधान पाँच भेद हैं—(१) वानज, (२) पित्तज, (३) कफज (४) सनिपातज और (५) शोकादि से उत्पन्न। २ अरुचि।

अरोचक<sup>२</sup>—वि० जो रुचे नहीं। अरुचिकर। उ०—मुनि अघाई वत-लाइ उत सुधासने तिय वैन। हठि कत लाल वोनाइअत मोहि अरोचक ऐन—मिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ५४।

अरोचकी—वि० [सं० अरोचकिन्] १ मदाग्नि से पीडित। २ मुहचिसपन्न। परिमार्जित रुचिवाला [को०]।

अरोड—वि० [अरुड] शूर वीर। वीर।—डि०।

अरोडा—संज्ञा पुं० [म० अरुड] [स्त्री अरोडी अरोडिन] पजाव की एक जाति जो अपने को खत्रियों के अतर्गत मानती है।

अरोध्य—वि० [सं०] जिसकी चाल रोकती न जा सके। अवाध गति वाला [को०]।

अरोप—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आरोप'। उ०—नदस वाक्ययुग अरय को करिए एक अरोप।—भूषण ग्र०, पृ० ३०।

अरोर०—वि० [हि०] रोर रहित। शांत [को०]।

अरोव—वि [म०] रोपरहित। क्रोधविहीन। उ०—अरु मरे आइर करै घरै अरोव विधान।—मिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १०।

अरोहण—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आरोहण'।—रिपि कस्यप आरोहण कमठ शृंगार रस।—रघु० रु०, पृ० ५३।

अरोहन०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आरोहण'।

अरोहना०—कि० अ० [म० आरोहण] चढना। सवार होना।

अरोही<sup>१</sup>०—वि० [म० आरोही] सवार होनेवाला।

अरोही<sup>२</sup>०—संज्ञा पुं० आरोही। सवार।

अरौसपरौस०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अडोम पडोस'। उ०—गगनहावन को नर नारि, चने है प्ररौस परौस के मोऊ।—पोद्दार० ग्रंथि०, ग्र० पृ० ५७४।

अर्क<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [म०] १ सूर्य। २. इंद्र। ३. नाग। ४. म्हादेव। ५. विष्णु। ६. पंडित। ७. भ्रातृ। मदार। उ०—त्रकं जगस पात विनु अरुउ।—मानस, ४१५। ८. ज्येष्ठ भाई। ९. आदित्यवारा। १०. उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। ११. बारह की संख्या। १२. प्रकाशकिरण [को०]। १३. अग्नि [को०]। १४. एक धार्मिक कृत्य [को०]। १५. स्तुति। स्तोत्र [को०]। १६. भोजन। खाद्य पदार्थ [को०]। १७. सूर्यकांतमणि [को०]।

अर्क<sup>२</sup>—वि० पूजनीय। अर्चनीय।

अर्क<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० [अ० अरक] किमी बीज का निबोडा हुआ रस। राग। वि० दे० 'अरक'।

यो०—अर्क वादियान=सौर का अर्क।

अर्ककांत—संज्ञा पुं० [सं० अर्ककांत] ११ मजिगी का भवन [को०]।

अर्ककाता—संज्ञा स्त्री० [म० अर्ककाता] दूरदूर का क्षुद्र [को०]।

अर्कक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ मिह राशि। २ उडीसा स्थित एक पवित्र स्थान [को०]।

अर्कगीर—संज्ञा पुं० [अ० अरक+कां गीर] वह जो इस चुत्राते का काम करता है।

अर्कग्रह—संज्ञा पुं० [म०] सूर्यग्रहण [को०]।

अर्कचदन—संज्ञा पुं० [सं० अर्कचदन] रक्त चदन। लाल चदन।

अर्कज—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र—१. यम। १. जनि। ३। अश्विनीकुमार। ४. सुग्रीव। ५. कर्ण।

अर्कजा—संज्ञा स्त्री० [म०] सूर्य की कन्या—१. यमुना। ताप्ती।

अर्कतनय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का पुत्र। कर्ण, यम, शनि, वैवस्वत और सावर्णि मनु आदि [को०]।

अर्कदिन—संज्ञा पुं० [सं०] रविवार [को०]।

अर्कनदन—संज्ञा पुं० [सं० अर्कनदन] दे० 'अर्कतनय' [को०]।

अर्कनयन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य चंद्रमा जिसके नेत्र हैं वह—विराट् पुरुष।

अर्कनना—संज्ञा पुं० [अ० अरकना] सिरके के साथ भस्म के में उत। हुआ पुदीने का अर्क।



अर्कपत्रा—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ मुनंदा। २ एक लता जो विष की ओषधि है। अर्कमूल।

अर्कपर्ण—सज्ञा पुं० [मं०] १ मदार का वृक्ष। २ मदार का पत्ता।

अर्कपुष्पी—सज्ञा पुं० [मं०] सूर्यमुखी।

अर्कप्रिया—सज्ञा स्त्री० [मं०] जवा। जपा। अडहुन। गुडहर।

अर्कवधु—सज्ञा पुं० [मं०] १ गौतम बुद्ध। २ पक्ष।

अर्कभ—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह नक्षत्र जो सूर्य द्वारा आक्रान्त हो। जिस नक्षत्र में सूर्य हो वह नक्षत्र। २ सिंह राशि। ३ उत्तरा फाल्गुनी।

अर्कभक्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर का पौधा। डडहुड।

अर्कमूल—सज्ञा पुं० [सं०] इमरमूल लता। रहिमूल। ग्रहिगध।

विशेष—इसकी जड़ साँप के काटने में दी जाती है। रिच्छ के डक मारने में भी उपयोगी होती है। यह पिलाई और ऊपर लगाई जाती है। स्थियों के मामिक धर्म को खोलने के लिये भी यह दी जाती है। कालीमिच के साथ हैजा अतीसार आदि पेट के रोगों में पिलाई जाती है। पत्ते का रस कुछ मादक होता है। छिनका पेट की बीमारियों में दिया जाता है। रस की मात्रा ३० से १०० बूंद तक है।

अर्कवर्ष—सज्ञा पुं० [सं०] सीर वर्ष [को०]।

अर्कवल्लभ—सज्ञा पुं० [सं०] १ वधुजीव। दुग्हरिया। २ कमल [को०]।

अर्कवल्लभा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वधुजीव। दुग्हरिया। २ कमल [को०]।

अर्कविवाह—सज्ञा पुं० [मं०] मदार के वृक्ष में किया जानेवाला विवाह।

विशेष—तीसरे विवाह के पूर्व मदार के साथ विवाह करने का विधान है। तीसरी पत्नी या तीसरा विवाह शुभ नहीं माना गया है। अतः मदार के साथ विवाह कर के उस विवाह को चौथा मान लिया जाता है।

अर्कवेध—सज्ञा पुं० [मं०] तालीगपत्र।

अर्कव्रत—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक व्रत जो माघ शुक्ला सप्तमी को पड़ता है। २ राजा का प्रजा की वृद्धि के लिये उनमें कर लेना। जैसे सूर्य बारह महीने अपनी किरणों में जन खींचता है और चार महीने उसे प्रजा की वृद्धि के लिये वरमाता है, उसी प्रकार राजा का प्रजा से कर लेकर उनकी वृद्धि में उसे लगाना।

अर्कसुत—सज्ञा पुं० [सं०] यम। उ०—अर्कसुत की आस माही कृष्ण रामहि काम।—अजनिधि ग्र०, पृ० १६०।

अर्कसोदर—सज्ञा पुं० सूर्य का भाई। ऐरावत [को०]।

अर्कशिमा—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का छोट नगीना। अरुणोपल। चुन्नी। २ सूर्यकांतमणि।

अर्कपल—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांतमणि। लाल पथराग।

अर्गजा—सज्ञा पुं० [हिं०] ३० 'अरगजा'।

अर्गल—सज्ञा पुं० [सं०] वह लकड़ी जिसे किवाड़ बंद करके पीछे से आड़ी लगा देते हैं जिससे किवाड़ बाहर से न खुले। अरगल। अगरी। व्योडा। २ किवाड़। ३ अवरोध। ४ कलोल। लहर। ५, वे रगविरगे बादल जो सूर्योदय या सूर्यास्त के

समय पूर्व या पश्चिम दिशा में दिखाई पड़ते हैं और जिनमें होकर सूर्य का उदय या अस्त होता है। ६ माम। ७ एक नरा [को०]।

अर्गता—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ अरगत। अरगी। २, तीहा। ३, विल्ली। किल्ली। मिट्टिना। ४ अर्गी जिनमें राखी बोया जाता है। मिट्टी। ५ एक रंगीन त्रिकोण दुर्गापूजनमें आदि में पाठ करने हैं। मत्स्य मत्त। ६ अरगाध। ७ वाघर। अवरोगव। गदापट डामनवाना।

अर्गलिका—सज्ञा स्त्री० [मं०] अर्गता या छंटा का। छाडी अरगी [को०]।

अर्गलित—वि० [मं०] निटकिनी या अर्गल। ने वर। कया दुष्टा [को०]।

अर्गली—सज्ञा स्त्री० [मं०] '०' 'अर्गता' [को०]।

अर्गली—सज्ञा स्त्री० [मं०] अर्गली की पत्र जानि जो निय, आम आदि देणों में होती है।

अर्गवनी—वि० [हिं०] '०' 'अर्गवान'। उ०—उम गहरे अर्गवनी रंग के पदों पर ऊँची कानि चोटियाँ निशान, जान और गर्मी गयी थी।—विजये०, पृ० ६।

अर्गवानी—वि० [फा०] अर्गवान नामक फल के रंग का। सुवं [को०]।

अर्घ—सज्ञा पुं० [मं०] १ तोड़जोखान नमन। जन दुष्ट गुनाय, दली, गरंगो, गदुन और जम का मिश्रण देखा तो अर्घ्य करना। २ अर्घ देने का पदार्थ। ३ अर्घदान। मानने जल गिराना। ४ हाथ धोने के लिये जल जो दिया जाय। ५ हाथ धोने के लिये जल देना। ६ मृत्यु। दाम। ७ वह मोती जो एक धरण तीव्र में २५ चट्टे। ८ मेट। ९ तल में नमानार्थ नीचना। १० मधु। शहद। ११ पाटा। अन्न।

त्रि० प्र०—देना। करना।

यो०—अर्घपाय—हाथ पर जाने के लिये दिया जानेवाला जल।

अर्घट—सज्ञा पुं० [सज्ञा] भस्म। रात्र।

अर्घपतन—सज्ञा पुं० [मं०] नाव का गिरना। मान की कीमत बाजार में कम होना।

अर्घपात्र—सज्ञा पुं० [मं०] नाव का एक वर्तन जो जल के घाटार का होता है और जिनमें सूर्य आदि देवताओं को अर्घ दिया जाता है या पितरों का तर्पण किया जाता है। अर्घा।

अर्घवलावल—सज्ञा पुं० [मं०] १ उचित मूल्य। २ नस्न या महंगा दाम। कीमती का चढ़ाव उतार [को०]।

अर्घवर्णांतर—सज्ञा पुं० [सं० अर्घवर्णांतर] अच्छे माल में घटिया माल मिलाकर अच्छे लाल के दाम पर बेचना।

विशेष—ऐसा करनेवाले को चद्रगुप्त के समय में २०० पण तक जुर्माना होता था।

अर्घवर्धन—सज्ञा पुं० [सं०] कीमत बढ़ाना।

विशेष—कोटिल्य ने इसे अपराध माना है और इस प्रकार दाम बढ़ानेवाले व्यापारी पर २०० पण तक जुर्माना लिखा है।

अर्घवृद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] माल की दर बढ़ना। बाजार में किसी माल की कीमत बढ़ना।

अर्घसंस्थापन—सज्ञा पुं० [सं०] वस्तुओं का मूल्य निश्चित करना। मूल्यनियन्त्रण [को०]।

अर्घा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म० अर्घ] १ ताँवे या अन्य धातु का बना हुआ थूहर के पत्ते या शत्रु के आकार का एक पात्र जिसमें अर्घ्य देते हैं। पितरो का तर्पण भी इससे किया जाता है। २ जलधरी।  
अर्घा<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [म०] २० मोतियों का लच्छा जिसकी तीन ३२ रत्ती हो।

विशेष—वाराहमिहिर के समय में एक अर्घा १७० कार्पाण में विक्रता था।

अर्घापचय—सज्ञा पुं० [म०] मूल्य गिरना [को०]।

अर्घाश—सज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्घेश्वर—सज्ञा पुं० [म०] शिव। महादेव [को०]।

अर्घ्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ पूजनीय। २ बहुमूल्य। ३ पूजा में देने योग्य (जल, फूल, मूल आदि)। ४ भेंट देने योग्य।

अर्घ्य<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [म०] जिम वन में जरत्कार मुनि व्रत करते थे वहाँ का मधु।

अर्चक—वि० [सं०] पूजा करनेवाला। पूजक।

अर्चन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] १ पूजा। पूजन। २ आदर। सहकार।

अर्चन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [देश०] घुड़ी जिसपर दूर दूर कलावत् लपेटा हो।

अर्चना<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [म०] पूजा। पूजन।

अर्चना<sup>२</sup>—क्रि० न० [हि०] दे० 'अरचना'।

अर्चनीय—वि० [म०] १ पूजनीय। पूजा करने योग्य। २ आदरणीय।

अर्चमान—वि० [म०] पूजनीय। अर्चनीय। उ०—विचारमान ब्रह्मा, देव अर्चमान मानिए।—राम च०, पृ० ३।

अर्चा—सज्ञा स्त्री० [म०] १ पूजा। २ प्रतिमा।

अर्चि—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्चिस्] १ अग्नि आदि की शिखा। उ०—शुष्क डालियों से वृक्षों की अग्नि अर्चियाँ हुई समिद्ध—कामायनी, पृ० १२ दीप्ति। तेज। ३ किरण।

अर्चित<sup>१</sup>—वि० [म०] १ पूजित। २ आदृत। आदरप्राप्त।

अर्चित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [म०] विष्णु।

अर्चिती—वि० [सं० अर्चितिन्] आराधना करनेवाला [को०]।

अर्चिमान—वि० [म०] प्रकाशमान। चमकता हुआ।

अर्चिमाल्य—सज्ञा पुं० [म०] वामीकि के अनुसार एक वदर जो महर्षि मरीचि का पुत्र था।

अर्चिरादिमार्ग—सज्ञा पुं० [सं०] देवयान। उत्तर मार्ग।

अर्चिष्मती—सज्ञा स्त्री० [म०] अग्निपुरी। अग्नि तोक।

अर्चिष्मान<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अर्चिष्मत्] [स्त्री० अर्चिष्मती] १ सूर्य। २ अग्नि। ३ देवताओं का एक भेद ४ वाल्मीकि के अनुसार एक वदर जो महर्षि मरीचि का पुत्र था।

अर्चिष्मान<sup>२</sup>—वि० दीप्त। प्रकाशमान।

अर्ज—सज्ञा पुं० [अ० अर्ज] १ विनती। प्रिनय।

क्रि० प्र०—करना = प्रार्थना करना। कहना। निवेदन करना। २ चौटार। आघत।

अर्जङ्गसाल—सज्ञा पुं० [फा०] वह पत्र जिसके द्वारा अपना पत्राचार में दाखिल किया जाता है। चतान।

अर्जक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ग०] वनतुलसी। बवई।

अर्जक<sup>२</sup>—वि० उपार्जन करनेवाला। पैदा करनेवाला [को०]।

अर्जदास्त—सज्ञा स्त्री० [फा०] निवेदनपत्र। प्रार्थनापत्र।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—भेजना।

अर्जन—सज्ञा पुं० [सं०] १ उपार्जन। पैदा करना। कमाना। २ संग्रह करना। संग्रह।

क्रि० प्र०—करना।

अर्जनीय—वि० [सं०] १ संग्रह करने योग्य। २ ग्रहण करने योग्य। प्राप्त करने योग्य।

अर्जमा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अर्जमा] दे० 'अर्जमा'।

अर्जस्त<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [फा० अर्जदास्त] दे० 'अर्जदास्त'। उ०—पग काज अर्जस्त चलावहु।—प० रासो, पृ० ६७।

अर्जित—वि० [म०] १ संग्रह किया हुआ। संग्रहीत। २ प्राप्त किया हुआ। कमाया हुआ। प्राप्त।

अर्जी—सज्ञा स्त्री० [फा० अर्जी] प्रार्थनापत्र। निवेदनपत्र।

अर्जीदावा—सज्ञा स्त्री० [फा० अर्जीदावा] वह निवेदनपत्र को अदालत दीवानी या माल में किसी दादगसी के लिए दिया जाय।

अर्जीनवीस—वि० [फा० अर्जीनवीस] प्रार्थनापत्र या निवेदनपत्र लिखनेवाला [को०]।

अर्जीनालिश—सज्ञा पुं० [फा० अर्जीनालिश] दे० 'अर्जीदावा' [को०]।

अर्जीमरमत—सज्ञा स्त्री० [फा० अर्जीमरमत] वह निवेदनपत्र जो किसी पूर्व निवेदनपत्र में छूटी हुई बातों को बढ़ाने या अशुद्धि को शोधने आदि के लिये दिया जाय।

अर्जुन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह वृक्ष जो दक्षिण से अवध तक नदियों के किनारे होता है।

विशेष—यह वरमा और लका में भी होता है। इसके पत्ते टसर के कीड़े को खिनाए जाते हैं। छाल, चमड़ा सिम्हाने, रंग बनाने तथा दवा के काम में आती है। इससे एक स्वच्छ गोद निकलती है जो दवा के काम में आती है। लकड़ी से खेती के औजार तथा नाव और गाड़ी आदि बनती है। इसको जलाने से राख में चूने का भाग अधिक निकलता है।

पर्या०—शिवभल्ल। शबर। ककुभ। काहू।

२ पाँच पाडवों में से मंभले का नाम। ये बड़े वीर और धनुर्विद्या में निपुण थे।

पर्या०—फाल्गुन। जिष्णु। किरीटी। श्वेतवाहन। बृहन्नल। घनजय। पार्थ। कपिवज्र। मय्यमाची। गाडीवधना। गाडीवी। वीभत्सु। पाडुनदन। गुडाकेश। मध्यम पाडव। विजय। रावाभेदी ऐन्द्रि।

२ हैहयवर्णी एक राजा। सहस्रार्जुन। ४ सफेद कर्नन। ५ मोर। ६ आँख का एक रोग जिसमें आँख में सफेद छीटे पड़ जाते हैं। फूनी। ७ एकलौता बेटा। ८ अर्जुन (वैदिक)। ९ उद्र [को०]। १० चाँदी [को०]। ११ मोना [को०]। १२ दूब [को०]। १३ सफेद रंग [को०]।

अर्जुन<sup>२</sup>—वि० १ उज्ज्वल। सफेद। २ शुभ्र। स्वच्छ।

अर्जुनक—वि० [सं०] १ अर्जुन सबही। १. अर्जुन की पूजा करनेवाला [को०]।

अर्जुनच्छवि—वि० [मं०] सफेद। सफेद रंगवाला [को०]।  
 अर्जुनध्वज—सज्ञा पुं० [मं०] सफेद ध्वजवाला। हनुमान [को०]।  
 अर्जुनपाकी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक पीड़ा तथा उसका फल [को०]।  
 अर्जुन वदर—सज्ञा पुं० [मं०] अर्जुन नामक पीधे का रेशा [को०]।  
 अर्जुनसखा—सज्ञा पुं० [मं०] अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण [को०]।  
 अर्जुनायन—सज्ञा पुं० [मं०] वराहमिहिर के अनुसार उत्तर का एक देश।

अर्जुनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ बाहुदा या करतोवा नदी जो हिमालय में निकलकर गंगा में मिलती है। २ सफेद रंग की गाय। ३. कुटनी। ४ अनिरुद्ध की पत्नी। उपा का नाम। ५ एक गर्प जाति [को०]।

अर्जुनीपत्र—सज्ञा पुं० [मं०] मागीन या टीरु नामक वृक्ष [को०]।  
 अर्ण—सज्ञा पुं० [मं०] १ वण। प्रक्षर। जैसे, पवाण=पचाक्षर। २ जल। पानी।

यौ०—दशाणं=एक देग। दसाणं=मालवा की एक नदी।  
 ३ एक दड़क वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और आठ रगण होते हैं। यह प्रवित का एक भेद है। ४. सागीन। ज्ञान वृक्ष। ५ रग [को०]। ६ शोरगुन। युद्धघोष [को०]। ७. जलप्रवाह [को०]।

अर्णव—सज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। २ सूर्य। ३ इंद्र। ४ अन्विष्ट। ५ दड़क वृत्त का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में २. नगण और ६ रगण होते हैं। यह प्रवित का एक भेद है। ६ चार की मक्या। ७. रत्न। मणि। जवाहिर। ८. प्रवाह। धारा [को०]।

अर्णवज—सज्ञा पुं० [मं०] समुद्रफेन [को०]।  
 अर्णवनेमि—सज्ञा स्त्री० [मं०] पृथ्वी [को०]।  
 अर्णवपति—सज्ञा पुं० [मं०] सागर। समुद्र [को०]।  
 अर्णवपोत—सज्ञा पुं० [मं०] जलयान। पानी का जहाज [को०]।  
 अर्णवमन्दिर—सज्ञा पुं० [सं०] अर्णवमन्दिर १ वरुण। २ विष्णु [को०]।  
 अर्णवमल—सज्ञा पुं० [मं०] ३० 'अर्णवज' [को०]।  
 अर्णवयान—सज्ञा पुं० [सं०] ३० 'अर्णवपोत' [को०]।  
 अर्णवोद्भव—सज्ञा पुं० [सं०] १ अग्निजार नाम का पीछा। चद्रमा। ३ अमृत [को०]।

अर्णवोद्भवा—सज्ञा स्त्री० [मं०] अर्णव से उत्पन्न—लक्ष्मी [को०]।  
 अर्णस—वि० [सं०] १ तरंगपूर्ण। २ फेनिल [को०]।  
 अर्णस्वान्<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] अर्णस्वत मागर [को०]।  
 अर्णस्वान्<sup>२</sup>—वि० अतिशय जलवाला [को०]।  
 अर्णा—सज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।  
 अर्णाद—सज्ञा पुं० [सं०] १ वादन। मुस्तक नाम का पीछा। मोवा [को०]।

अर्णादि—सज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।  
 अर्णारुह—सज्ञा पुं० [सं०] कमल [को०]।  
 अर्तगल—सज्ञा पुं० [मं०] नीलकण्ठी। नीली कड़मरंग [को०]।  
 अर्तन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] निदा [को०]।

अर्तन<sup>२</sup>—वि० १ निदा करनेवाला। २ दुःखी। श्रित [को०]।  
 अर्ति—सज्ञा स्त्री० [मं०] [वि० अर्तिन] १ पीड़ा। व्यथा। २ धनुष की कोटि। धनुष के दोनों छोर।

अर्तिका—सज्ञा स्त्री० [मं०] (नाटक में) उड़ी प्रहल [को०]।  
 अर्थ—सज्ञा पुं० [मं०] १. शब्द का अभिप्राय। मनुष्य के हृदय का भाग्य जो शब्द में प्रकट होता है। शब्द की शक्ति।

विशेष—साहित्यशास्त्र में अर्थ तीन प्रकार का माना गया है—  
 (क) अभिप्राय में वाच्यार्थ, (ख) उदाहरण में लक्ष्यार्थ और (ग) वचनार्थ में व्यंग्यार्थ।

वि० प्र०—रचना।—संगाना।—बंटाना।

२. अभिप्राय। प्रयोजन। मतवत्। जैसे—यह किन्तु अर्थ में यहाँ आया है' (अन्व०)। ३. नाम। द्रष्ट। उ०—'यहाँ जैने ने तुम्हारा कुछ अर्थ न निकाला।' (अन्व०)।

क्रि० प्र०—लिखलता।—लिखलता।—सपना। मापना।

४. हेतु। निमित्त। जैसे—'विद्या के अर्थ प्रयत्न करना चाहिये' (अन्व०)। ५. इन्द्रियों के मिश्र। ये पाँच हैं—अन्तः, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। ६ चतुर्वर्ग में एक। धन। मयति। ७. अर्थशास्त्र के अनुसार मिश्र, पणु, भूमि, धन, आन्तर आदि को प्राप्ति और वृद्धि। ८. कठिनी में मयन में दुर्गा पर। ९. नगण [को०]। १०. वस्तु। पदार्थ [को०]। ११. नाम। प्राप्ति [को०]। १२. वाचना। प्रायना [को०]। १३. वास्तविक स्थिति [को०]। १४. तीर तगी। हण [को०]। १५. गीत। वृत्तवट [को०]। १६. मृत्यु [को०]। १७. परिणाम। नतीजा [को०]। १८. धर्म का एक पुत्र [को०]। १९. विष्णु २० [को०] पूर्वसोमाना का अनुसार एक श्रेणी अपूर्व [को०]। २१. शक्ति [को०]। २२. दासा [को०]।

यौ०—अर्थयं। अर्थयना। समर्थ। समर्थन। नाथक। निरर्थक। अर्थपति। अर्थगौरव। अर्थवृच्छ। अर्थवन्ती। अर्थपति। अर्थानर। अर्थवान।

अर्थकर—वि० पुं० [मं०] [स्त्री० अर्थकरी] १ जिससे धन उपार्जन किया जाय। लानकारी, जैसे—अर्थकरी विद्या।

अर्थकर्म—सज्ञा पुं० [मं०] १ मुख्य या प्रधान काम। २ फलदायक कार्य [को०]।

अर्थकाम—वि० [मं०] धन की इच्छा रखनेवाला [को०]।

अर्थकित्विपी—वि० [मं०] अर्थकित्विपिन् का भेदने में शुद्धभावहार न रखे। बेईमान।

अर्थकृच्छ्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ धन की कमी। दरिद्रता। २ राजा की आर्थिक तंगी। राज्यभार में व्यय का बढ़ना।

विशेष—कीटिन्य के अनुसार ऐसी तंगी में चद्रगुप्त के समय में राज्य जनता में नपूरण राज्यकार एक दम से माँग लेता था।

अर्थकोविद—वि० [मं०] अनुभवी। विशेषज्ञ [को०]।

अर्थगत—वि० [सं०] शब्द के अर्थ पर आधारित [को०]।

अर्थगर्भ—वि० [मं०] जिसमें अर्थ भरा हो। अर्थयुक्त [को०]।

अर्थगृह—सज्ञा पुं० [मं०] गोप। छजाना। जहाँ काया पैदा रखा जाता हो [को०]।

अर्थगौरव—सज्ञा पुं० [ म० ] किसी शब्द या वाक्य में अर्थ की गंभीरता ।

अर्थघ्न—वि० [ सं० ] अपव्ययी । फजूलखर्च [को०] ।

अर्थचर—सज्ञा पुं० [ म० ] सरकारी नौकर ।

अर्थचिंतक—सज्ञा पुं० [ म० अर्थचिन्तक ] वह मंत्री जो राज्य के भावव्यय पर ध्यान रखे । अर्थमन्त्रि । मशीरमाल ।

अर्थचिंतन—सज्ञा पुं० [ म० अर्थचिन्तन ] १. अर्थ ( माने ) के लिये चिंतन । २. धन के लिये सोचना [को०] ।

अर्थचिन्ता—सज्ञा स्त्री० [ सं० अर्थचिन्ता ] अर्थ या धन सबधी चिन्ता [को०] ।

अर्थज्ञात—वि० [ म० ] १. अर्थ में भरा हुआ । २. धनी [को०] ।

अर्थज्ञ—वि० [ सं० ] उद्देश्य या मतलब समझनेवाला [को०] ।

अर्थत—अव्य० [ म० ] १. वास्तव में । सचमुच । वस्तुतः । २. अर्थ की दृष्टि में [को०] ।

अर्थदंड—सज्ञा पुं० [ म० अर्थदण्ड ] वह धन जो किसी अपराध के दंड में अपराधी से लिया जाय । जुर्माना ।

अर्थद—वि० [ म० ] [ स्त्री० अर्थदा ] धन देनेवाला ।

अर्थद<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १. कुत्तर । २. दस प्रकार के शिष्टों में से एक । वह जो धन देकर विद्या पढ़े ।

अर्थदर्शक—सज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो अर्थसबधी मुकदमों पर विचार करता है [को०] ।

अर्थदूषण—सज्ञा पुं० [ सं० ] १. किन्नर खर्च । अपव्यय । २. अन्याय या धोखे से दूसरे की संपत्ति लेना । ३. अर्थ (माने) में गंती पाना । ४. दूसरे की संपत्ति को नष्ट भ्रष्ट करना [को०] ।

अर्थदोष—सज्ञा पुं० [ सं० ] १. अर्थसबधी दोष । २. साहित्य में चार दोषों में एक [को०] ।

अर्थना<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] [ म० अर्थ ] माँगना । याचना करना ।

अर्थना<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [ म० ] याचना । निवेदन । प्रार्थना । २. अर्जी-दावा [को०] ।

अर्थन्यायालय—सज्ञा पुं० [ म० ] वह न्यायालय जहाँ अर्थसबधी मुकदमों का निर्णय होता है ।

अर्थपति—सज्ञा पुं० [ म० ] १. कुत्तर । २. राजा ।

अर्थपिशाच<sup>१</sup>—वि० [ म० ] जो द्रव्य का संग्रह करने में कर्तव्याकर्तव्य पर विचार न करे । धनलोलुप ।

अर्थपिशाच<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० ] वह जो धन का अत्यन्त लोभ करता है ।

अर्थप्रकृति—सज्ञा स्त्री० [ म० ] नाटको में आनेवाली पाँच महत्वपूर्ण स्थितियाँ—१. वीज, २. विदु, ३. पताका, ४. प्रकरी और ५. कार्य ।

अर्थवध—सज्ञा पुं० [ सं० अर्थवन्ध ] छंद में शब्द आदि का उचित प्रयोग । पद्यरचना ।

अर्थवृद्धि—वि० [ सं० ] स्वायंपरायण [को०] ।

अर्थवोध—सज्ञा पुं० [ सं० ] वास्तविक अर्थ का ज्ञान [को०] ।

अर्थभाक्—सज्ञा पुं० [ म० अर्थभाज् ] जायदाद में हिस्सा पानेवाला । हकदार [को०] ।

अर्थभूत—सज्ञा पुं० [ सं० ] अधिक तनखाह में तकद रुपया लेकर काम करनेवाला व्यक्ति ।

अर्थभ्रंश—सज्ञा पुं० [ सं० ] १. धन संपत्ति का विनाश । २. उद्देश्य पूर्ण न होना [को०] ।

अर्थमन्त्री—सज्ञा पुं० [ सं० अर्थमन्त्रिण ] अर्थ के मामलों से सबद्ध मंत्री ।

अर्थयुक्त—वि० [ सं० ] अर्थगमित । अर्थपूर्ण [को०] ।

अर्थयुक्ति—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] प्राप्ति । लाभ [को०] ।

अर्थराशि—सज्ञा पुं० [ सं० ] प्रचुर धन [को०] ।

अर्थलाभ—सज्ञा पुं० [ सं० ] धन या द्रव्य की प्राप्ति [को०] ।

अर्थलोभ—सज्ञा पुं० [ सं० ] धन की तृष्णा या लोभ [को०] ।

अर्थवाद—सज्ञा पुं० [ सं० ] न्याय के अनुसार तीन प्रकार के वाक्यों में से एक । वह वाक्य जिससे किसी विधि के करने की उत्तेजना पाई जाय । यह चार प्रकार का है—स्तुति, निंदा, परकृति और पुराकल्प ।

अर्थवादी—वि० [ सं० अर्थवादिन् ] अर्थवाद को माननेवाला [को०] ।

अर्थवान्—वि० [ सं० ] १. अर्थ (मतलब) वाला । एक विशेष अर्थरखनेवाला । २. धनवान । पैसेवाला [को०] ।

अर्थविकरण—सज्ञा पुं० [ सं० ] नात्पर्य परिवर्तन [को०] ।

अर्थविज्ञान—सज्ञा पुं० [ सं० ] १. दे० 'अर्थशास्त्र' । २. अर्थ को समझने की ६ प्रक्रियाओं में से एक । धी गुण । [को०] ।

अर्थविद्—वि० [ म० ] अर्थ का ज्ञाता । समझदार [को०] ।

अर्थविद्या—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] व्यावहारिक जीवन का ज्ञान या विद्या [को०] ।

अर्थवेद—सज्ञा पुं० [ सं० ] शिल्पशास्त्र ।

अर्थव्यवस्था—सज्ञा स्त्री० [ म० ] सार्वजनिक राजस्व और उसके आय-व्यय की पद्धति । फाइनांस ।

अर्थशास्त्र—सज्ञा पुं० [ सं० ] वह शास्त्र जिसमें अर्थ की प्राप्ति, रक्षा और वृद्धि का विधान हो । प्राचीन काल में इस विषय पर बहुत से आचार्यों के रचे ग्रंथ थे, पर अब केवल कौटिल्य (चाणक्य) का रचा हुआ ग्रंथ मिलता है । अर्थविज्ञान ।

अर्थशीघ्र—सज्ञा पुं० [ सं० ] लेन देन में शुद्ध व्यवहार । अर्थव्यवहार की पवित्रता रखना [को०] ।

अर्थसंगयापद—सज्ञा पुं० [ सं० ] कौटिल्य के अनुसार ऐसे समानतोऽपद की प्राप्ति जिसमें पारिणिग्राह वाधक हो ।

अर्थसचिव—सज्ञा पुं० [ सं० ] दे० 'अर्थमन्त्री' ।

अर्थसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] १. कौटिल्य के अनुसार पारिणिग्राह को मित्र तथा शत्रु (शत्रु के शत्रु) का सहारा मिलना । २. अभिलषित की प्राप्ति । सफलता [को०] ।

अर्थहर—वि० [ सं० ] उत्तराधिकार में धन पानेवाला [को०] ।

अर्थहीन—वि० [ सं० ] १. निर्धन । २. जिसमें अर्थ न हो । निरर्थक । ३. असफल [को०] ।

अर्थांतर—सज्ञा पुं० [ सं० अर्थान्तर ] १. भिन्न अर्थ । २. भिन्न कारण । ३. नई परिस्थिति । ४. अर्थ का अंतर [को०] ।

अर्थतरन्यास—सज्ञा पुं० [अर्थतरन्यास] १. वह काव्यालंकार जिसमें सामान्य से विशेष का या विशेष से सामान्य का, साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा, समर्थन किया जाय, जैसे—(क) 'लागत निज मति दोष ते सुदरह विपरीत। पितारोगवश लखहि नर शशि सित शङ्खु पीत।' यहाँ पूर्वार्ध के सामान्य कथन का समर्थन उत्तरार्ध के विशेष कथन से साधर्म्य द्वारा किया गया है। (ख) 'हरि प्रताप गोकुल वच्चो का नहि करहि महान। यही 'हरि प्रताप गोकुल वच्चो' इस विशेष वाक्य का समर्थन 'का नहि करहि महान' इस सामान्य वाक्य से साधर्म्य द्वारा किया गया है। इसी प्रकार वैधर्म्य का भी उदाहरण समझना चाहिए २. न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थान। जब वादी ऐसी बात कहे जो प्रकृत (असल) विषय या अर्थ में कुछ संवधन रखती हो, तब वहाँ यह होता है।

अर्थगम—सज्ञा पुं० [म०] धनलभ। आमदनी।

अर्थार्ति—अव्य० [म०] यानी। तात्पर्य यह कि।

विशेष—इसका प्रयोग विवरण करने में आता है, जैसे—ऐसा कौन होगा जो भले की प्रशंसा नहीं करता अर्थान् मन्त्र करने है।

अर्थार्तिक्रम—सज्ञा पुं० [स०] कौटिल्य के अनुसार हाथ में आई या मिली हुई अच्छी वस्तु को छोड़ देना।

अर्थनिर्णय—सज्ञा पुं० [स०] एक ओर से अर्थ तथा दूसरी ओर से अर्थ की समावृत्ति।

अर्थनिर्णयपद—सज्ञा पुं० [स०] एक ओर से प्राप्ति और दूसरी ओर से राज्य जाने का भय।

अर्थनिर्वच—सज्ञा पुं० [म० अर्थनिर्वच] शत्रु को नष्ट कर पाणिग्रह को अपने वश में करना।

अर्थधिकारी—सज्ञा पुं० [स० अर्थधिकारिन्] कोषाधिकारी। खजाची [को०]।

अर्थाना०—क्रि० स० [म० अर्थ+हि० आना (प्रत्य०)] अर्थ लगाना। व्योरे के साथ समझाकर कहना। अर्थाना।

अर्थानुवाद—सज्ञा पुं० [म०] न्यायशास्त्रानुसार अनुवाद का एक भेद। विधि से जिसका विधान किया गया हो, उसका अनुवचन या फिर फिर कहना।

अर्थान्वित—वि० [स०] १ अर्थयुक्त। अर्थगर्भ। २ महत्वपूर्ण। ३ धनवान् [को०]।

अर्थपत्ति—सज्ञा पुं० [म०] १. मीमांसा के अनुसार एक प्रकार का प्रमाण जिसमें एक बात कहने में दूसरी बात की सिद्धि आप-से आप हो जाय। नतीजा। निगमन, जैसे—'वाद दो के होने से वृष्टि होती है।' इसमें यह सिद्ध हुआ कि बिना वादल के वृष्टि नहीं होती। न्यायशास्त्र में इसे पृथक् प्रमाण न मानकर अनुमान के अंतर्गत माना है। २. एक अर्थालंकार जिसमें एक बात के कथन से दूसरी बात की सिद्धि दिखलाई जाय। इसालंकार में वास्तव में यह दिखाया जाता है कि जब इतनी बड़ी बात हो गई, तब यह छोटी बात होने में क्या संदेह है, जैसे—(क) मुख जीत्यो वा चंद को कहा कमल की बात। (ख) जिसने शालिग्राम को भूना, उसे बैंगन भूतते क्या लगता है। अर्थपत्तिसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय में जाती के चौबीस भेदों में से एक। वादी के उत्तर में यह कहना कि यदि तुम मेरा प्रति-

पादित अमुक सिद्धांत न मानोगे तो बड़ा दोष पड़ेगा, अर्थपत्ति सम कहलाता है।

अर्थप्रतिकार—सज्ञा पुं० [म०] यह प्रवचनार्थ जो कारणाने नोकरों तथा अन्य मनुष्यों को, जिन्होंने कच्चा मान आदि दिया हो, उन देता है।

अर्थार्थी—वि० [म० अर्थार्थिन्] १. उन की कामनावाला। २. धन-प्राप्ति के लिये प्रयास करनेवाला। ३. अपना मत रख चाहने-वाला [को०]।

अर्थालंकार—सज्ञा पुं० [म० अर्थालंकार] यह अर्थालंकार जिसमें अर्थवाचक दिया गया जाय। अर्थालंकार के विभिन्न अर्थालंकार।

अर्थिक—सज्ञा पुं० [म०] वेददीर्घ जो राजा को शत्रु ने जाते हैं। वैवाचिक। मृत्तिगात्र। २. पदप्रा। प्रहरी [को०]।

अर्थित<sup>१</sup>—वि० [म०] माँगा हुआ। उच्छिन्न [को०]।

अर्थित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० कामना। उच्छा [को०]।

अर्थी<sup>१</sup>—वि० [म० अर्थिन्] [वि० अर्थिन्] १ उच्छा रथोवाला चाह रखनेवाला। २ कार्यार्थी। प्रयोजनवाला। गर्वी। वाचक ३. वादी। मुहूर्त। ४ संवत्। ५ धनी। ६ 'प्रथी'। अर्थी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० वह जिसने धिनी पर रुपये का दावा किया हो (मगनि)।

अर्थी<sup>३</sup>—वि० [म०] १. माँगने योग्य। २. उचित। उचित। अच्छा। ३. धनी। ४. युक्तिमान्। ५. सत्य। ६ अर्थोपार्जन करने में कुशल [को०]।

अर्थी<sup>४</sup>—सज्ञा पुं० जाल उडिया या चाक [को०]।

अर्थन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] [स्त्री० अर्थना] १. पीठन। दहन। हिना। २. जाना। गमन। ३. याचना। माँगना। ४. शिव का एक नाम [को०]।

अर्थन<sup>२</sup>—वि० १ पीठक। हिसक। २. बेचन या ख़र्च होकर घूमने वाला [को०]।

अर्थना०—क्रि० म० [म० अर्थन=पीठन] पीठित करना। उ०—गहि वैष्णव को दंड कर भेष नमान ननदि। यदि नुरन रन अदि प्रति जैसे कुपित कपदि।—गोपाल (शब्द०)।

अर्थनि—सज्ञा पुं० [म०] १. प्राचीन। २. माँगना। निधा। ३. बीमारी रोग। ४. आग [को०]।

अर्थनी—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अर्थनी'।

अर्थित<sup>१</sup>—वि० [म०] १ पीठित। दलित। २. गत। ३. याचन।

अर्थित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [म०] एक वातरोग।

विशेष—इसमें वायु के प्रकोप में मुँह और नदंन टेढ़ी हो-जानी है, सिर हिलता है, नेत्र आदि विकृत हो जाते हैं बोला नहीं जाता और नदंन तथा दाढ़ी में दर्द होता है।

अर्थग<sup>०</sup>—सज्ञा पुं० [म० अर्थग] १. शिव। उ०—मग होत अर्थग धनु जानि लखन तिहि काल। कह्यो लोकपालन मनहि सजग होहु यहि काल।—रघुराज (शब्द०)। २. एक रोग। दे० 'अर्थग'।

अर्थ<sup>१</sup>—वि० [म०] किसी वस्तु के दो सम भागों में से एक। आधा

अर्थ<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ स्थान। क्षेत्र। २. भाग। हिस्सा। ३. आधा हिस्सा। ४. वायु। हवा। ५. वृद्धि। ६. समीप। लगभग [को०]।

विशेष—यह शब्द अर्द्ध और अर्ध इन दोनों रूपों में संस्कृत है।  
इसमें वननेवाले शब्द भी दोनों रूपों में प्राप्त होते हैं। उनमें  
और कोई अंतर नहीं होता।

प्रदक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चटानक। घुटने तक का लहंगा या पेट-  
कोट [को०]।

प्रदक<sup>२</sup>—वि० आधा [को०]।

प्रदकण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अर्धग्राम विजया [को०]।

प्रदकाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

प्रदकूट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

प्रदकेतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रुद्र [को०]।

प्रदगगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धगङ्गा] कावेरी।

प्रदगुच्छ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्धगुच्छ] वह माती की माला जिसमें  
चाँदी लड़ियाँ हो। बाराहमाँहर के अनुसार इसमें बीस  
लड़ियाँ होनी चाहिए।

प्रदगोल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गोमार्ध [को०]।

प्रदचद्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्द्धचन्द्र] १. आधा-चाँद। ग्रन्थों का  
चद्रा। २. चद्रिका। मोरपंख पर की आँख। ३. नखचत  
का एक भेद। ४. एक प्रकार का वाण जिसके अग्रभाग पर  
अधवद्राकार नोक होती है। ५. मानुनासिक का एक चिह्न।  
चद्रविदु—१. एक प्रकार का विपुल। ७. निकान बाहर  
करने के लिये गले में हाथ लगाने की मुद्रा। गरदनिया।

प्रदचद्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धचन्द्रा] त्रिशरा या कर्णस्कोट नाम  
का पोशा।

प्रदचद्रिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धचद्रिका] कनकोडा नाम की लता।

प्रदजल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रमथान में शव को स्नान करा के आधा  
जल में और आधा बाहर डाल देने की क्रिया।

प्रदज्योतिका—सञ्ज्ञा सञ्ज्ञा [सं०] ताल का एक भेद।

प्रदतित्त—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की नीम जो नेपाल में  
होती है।

प्रदतूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य [को०]।

प्रदधार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक ओर धारवाला चाकू। सुश्रुत में  
वर्णित २० शल्योपकरणों में से एक [को०]।

प्रदनेट्यवर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक रूप [को०]।

प्रदनयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की तीसरी आँख जो ललाट में  
होती है।

प्रदनाराच—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. जैन शास्त्रानुसार वह हड्डी जो  
मर्कटवध और कीलक पाशों में बँधी होती है। २. एक प्रकार  
का वाण।

प्रदनारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अर्धनारीयन्त्र। शिव [को०]।

प्रदनारीश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

प्रदनारीश्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तत्र में शिव और पार्वती का  
संमिलित रूप। २. आयुर्वेद में रसांजन जिसे आँख में लगाने  
से ऊपर उतर जाता है।

प्रदपारावन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नीतर।

प्रदपोहल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक पोधा जिसकी पत्तियाँ मोटी होती हैं।

अर्द्धप्रादेज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वायुगाम्य में प्रचंडित मेतु के मध्य में  
आलवन बिंदु तक का अंतर जहाँ छत्र बँधे रहते हैं। मेतु के  
मध्य में उसके उम म्यान तक का अंतर जहाँ वह पक्षेया  
दीवार पर टिका रहता है।

अर्द्धभागिक—वि० [सं०] आधे का हिस्सेदार [को०]।

अर्द्धभास्कर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्धभास्कर] दुपहरी। दुपहरिया।  
मध्याह्न [को०]।

अर्द्धमागधो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्राकृत का एक भेद। पटना और  
मथुरा के बीच के देश की पुरानी भाषा।

अर्द्धमाणव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कौटिल्य के अनुसार वह शीर्षकहार  
जिसके बीच में मणि हो। २. दस मोतियों की माला। ३.  
बारह लड़ियोंवाला एक हार [को०]।

अर्द्धमाणवक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १० 'अर्द्धमाणव'।

अर्द्धमात्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. आधी मात्रा। २. व्यंजन। ३.  
संगीत शास्त्रानुसार चतुर्दश मात्राओं का एक भेद।

अर्द्धमामभूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह मजदूर या नौकर जिसे अर्धमामिक  
(१५ दिन पर) वेतन मिलता हो।

अर्द्धरथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्धरथ] वह रथी जो दूसरे में साथ होकर  
लड़े [को०]।

अर्द्धविसर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क, ख, प, फ, के पहले होनेवाले आधे  
विसर्ग का उच्चारण। विसर्ग का आधा उच्चारण [को०]।

अर्द्धविसर्जनीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १० 'अर्द्धविसर्ग' [को०]।

अर्द्धवीक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कनखों से देखना। तिरछी चितवन।

अर्द्धवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वृत्त का आधा भाग। वृत्त का वह भाग  
जो व्यास और परिधि के आधे भाग में विरा हो। २. पूरे वृत्त  
की परिधि का आधा भाग।

अर्द्धवृद्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रौढ़। मध्य आयु का व्यक्ति [को०]।

अर्द्धवृद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] किराए या मूद का आधा [को०]।

अर्द्धवैनाशिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार अन्ननाश के पक्ष-  
पाती कणाद के अनुयायी जन [को०]।

अर्द्धव्यास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] केंद्र से परिधि तक का अंतर। विजया।  
रेडियस [को०]।

अर्द्धशफर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

अर्द्धशब्द—वि० [सं०] धीमी आवाजवाला [को०]।

अर्द्धसम—वि० [सं०] आधे के बराबरवाला। आधा [को०]।

अर्द्धसमवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसका पहला चरण तीसरे  
चरण के बराबर हो; जैसे, दोहा और सोरठा।

अर्द्धसीरी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्धसीरिन्] अपने पारिश्रमिक के बदले में  
आधी फसल लेनेवाला। अधिया पर खेत जोतनेवाला  
कृषक [को०]।

अर्द्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ६४ मोतियों की माला अथवा ४०  
लड़ियोंवाला हार [को०]।

अर्द्धह्रस्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ह्रस्व स्वर का आधा [को०]।

अर्द्धांग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्धाङ्ग] १. आधा अंग। उ०—अमर्षं नवीनं  
प्रदीपं पौतारनजा, ध्यान नृपपाल माता विराजते।—नृनसी



ग्र० पृ० ४५८ । २ एक रोग जिसमें आधा अंग चेन्टाहीन और बेकाम हो जाता है । लकवा । फालिज । पक्षाघात । ३ शिव ।

अर्धांगिनी—सज्ञा स्त्री [स० अर्धाङ्गिनी] पत्नी । भार्या ।

अर्धांगी<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स० अर्धाङ्गिन्] शिव ।

अर्धांगी<sup>२</sup>—वि० अर्धांगरोगग्रस्त ।

अर्धांशो—वि० [स० अर्धांशिन्] अर्द्धभाग का अधिपारी [को०] ।

अर्द्धा—सज्ञा स्त्री [स०] ऐसे २५ मोतियों का गुच्छा जिसकी तीन ३२ रत्ती हो ।

विशेष—बाराहमिहिर के समय एक अर्धा का दाम १३० कर्पाण था । उस समय कर्पाण में दस मासे चाँदी होती थी और वह सोलह मोटे (गोरखपुरी) पैसों के बराबर होता था ।

अर्द्धाली—सज्ञा स्त्री [स० अर्धालि] वह चौपाई जिसमें दो ही चरण हो । आधी चौपाई, जैसे—राम भजन विनु सुनहु खगेसा । मिटै न जीवन करे कलेसा ।

अर्द्धाविभेदक—सज्ञा पुं० [स०] १ अर्धकपारी । आधासीसी । २. अर्धांग [को०] ।

अर्द्धाशन—सज्ञा [स०] १ आधा भोजन [को०] ।

अर्द्धासन—सज्ञा पुं० [स०] १ आधा आसन । २ प्रतिशयसमान का स्थान । ३ बराबरी की जगह [को०] ।

अर्द्धिका—सज्ञा पुं० [स०] १ अर्धवीथी । २. वैश्य स्त्री और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न मतान जिसका सस्कार हुआ हो ।

अर्धिका<sup>३</sup>—वि० अधिया पर काम करनेवाला [को०] ।

अर्द्धाकरण—सज्ञा पुं० [स०] १ आधा करना । २ मजूपा काटना वँटाना । जब एक कटो दूसरी कटो पर (होकर) रखी जाती है तब धरातल समान करके ठीक ठीक वँटाने के लिये प्रत्येक सधिस्यल को आधा आधा छील देते हैं । वास्तुशास्त्र में यह अर्धकरण कहलाता है ।

अर्द्धुक—वि० [स०] उत्कर्षशील । उन्नतिशील [को०] ।

अर्द्ध दु—सज्ञा पुं० [स० अर्द्धन्दु] १ अर्धचन्द्र । २ अर्धचन्द्राका नखसत । दे० 'अर्द्धचन्द्र' [को०] ।

अर्द्ध दुमौलि—सज्ञा पुं० [स० अर्द्धन्दुमौलि] शिव ।

अर्द्धोदक—स० पुं० [स०] आधे शरीर तक भिगोता हुआ पानी । २ मृत शरीर को नहलाकर आधा जल में और आधा बाहर रखने की क्रिया [को०] ।

अर्द्धोदय—सज्ञा पुं० [स०] एक पर्व जो उस दिन होता है जिस दिन माघ की अमावस्या रविवार को होती है तथा उसी दिन श्रवण नक्षत्र और व्यतीगात योग पड़ता है । इस दिन स्नान करने से सूर्यग्रहण में स्नान करने का फल होता है ।

अर्ध ग—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अर्धग' ।

अर्ध गी<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अर्धगी' ।

अर्ध गी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री [हि०] आधे, अगवाली स्त्री । अर्धांगिनी उ० - अर्धगी पूछति मोहन सौ, कैसे हित तुम्हारे ।—सूर०, १०।४२३० ।

अर्ध—वि० [स०] दे० 'अर्ध' ।

अर्ण<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स० अर्ण] जल । पानी । उ०—यम स्नेह रोमाच स्वरभग कप वैद्यन । सवही के अनुभाव ये मात्त्रिक औरो अर्ण । मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० २७ ।

अर्पण—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अर्पित] किसी वस्तु पर मे अर्पना स्वत्व हटाकर दूसरे का स्थापित करना । देना । दान । २. नजर । भेंट ।

यी०—कृष्णार्पण । ब्रह्मार्पण ।

३ स्थापन । रखना जैसे, पदार्पण करना । ४ वापस करना । लौटाना [को०] । ५ छेदन [को०] ।

अर्पणप्रतिभू—सज्ञा पुं० [स०] वह प्रतिभू (जामिन) जो किसी की इस प्रकार जमानत करे कि यदि यह ऋण का धन देगा, तो मैं दूँगा ।

अर्पतर्प<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'उरत तरप' । उ०—गाइन अति भाइत भरति अर्प तर्प की तान । अर्प दर्प कदर्प जनु कीनी सर सधान ।—स० सप्तक, पृ० ३८३ ।

अर्पना<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स० अर्पण] दे० 'अर्पण' । उ०—सिब सर हमको फन दीन्ही । पुहुप, पान, नाना फन, मेवा, पटरस अर्पन कीन्ही ।—सूर०, १०।७६८ ।

अर्पना<sup>२</sup>—क्रि० स० [हि०] दे० 'अरपाना' । उ०—पांडे नहि भोग लगावन पावै । करि करि पाक जवै अर्पन हैं, तबही तर छवै आवै ।—सूर०, १०।२४६ ।

अर्पित—वि० [म०] अर्पण किया हुआ । उ०—देवो को अर्पित मधु-तमिथित सोम अर्धर से छनो ।—कामायनी, पृ० १२८ । २ उकीर्ण [को०] । ३ चित्रित [को०] ।

अर्पिस—सज्ञा पुं० [म०] हृदय । हृदय का मास [को०] ।

अर्धदर्व<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स० अर्धुद + दर्व] धन । सन्ति । धनदीलत । उ०—अर्धदर्व सब देई वहाई । कै सब जाव न जाय पियाई ।—जायसी (शब्द०) ।

अर्धुद—सज्ञा पुं० [स०] १ गणित में नवें स्थान की संख्या । दस कोटि । दस करोड । २ एक पर्वत जो राजपूताने की मरभूमि में है । अरावली । आवू जो जैनों पवित्र स्थान है । ३ एक असुर का नाम । ४ कद्रू का पुत्र एक सर्प विशेष एक नरक का नाम [को०] । ५ मेघ । बादल । ६ दो मास का गर्भ । एक रोग जिसमें शरीर में एक प्रकार की गाँठ पड़ जाती है । बतौरी ।

विशेष—इसमें पीडा तो नहीं होती पर कभी कभी यह पक भी जाती है । इसके कई भेद हैं जिनमें से मुख्य रक्तार्धुद और मासाधुद हैं ।

अर्धुदी—वि० [स० अर्धुदिन्] अर्धुद नामक रोग से ग्रस्त [को०] ।

अर्भ<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ बालक । २ शिशु । ३ शिष्य । छात्र । ४ सागपात । ५ नेत्रवाला । ६ कुशा ।

अर्भ<sup>२</sup>—वि० १ मलिन । धुंधला । २ लघु । छोटा [को०] ।

अर्भक<sup>१</sup>—वि० पुं० [स०] १. छोटा । अल्प । २. मूर्ख । ३. दुबला । पतना । ४. तुल्य । समान [को०] ।

अर्भक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ बालक । लडका । उ०—गर्भह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर ।—मानस, १।२७२ । २. किसी भी

जानवर का वच्चा [को०]। मूर्ख या जड़ व्यक्ति [को०]। ३ नेत्र-  
वाला। कुश।  
अर्म—सज्ञा पुं० १ आँख का एक रोग। टेंटर। डेंडर। २ पुराना  
आधा सज्जा नगर या गाँव। ३ गतव्य देश वा स्थान [को०]।  
अर्मनी—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरमानी'।  
अर्य—सज्ञा पुं० [सं०] [खी० अर्या, अर्याणी, अर्या,] १ स्वामी।  
२ ईश्वर। ३ वैश्य।  
अर्य—वि० १ श्रेष्ठ। उत्तम। २ दयालु। अनुकूल [को०]।  
अर्यमा—सज्ञा पुं० [सं० अर्यमन] १ सूर्य। २ वारह अदित्यों में से  
एक। ३ पितर के गणों में से एक जो सबसे श्रेष्ठ कहे जाते  
हैं। ४. उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। ५ मदार। ६. अतरंग मित्र  
लंगोटिया यार [को०]।  
अरर्वरी—सज्ञा पुं० [हि०] अरववड वात। बेकार वात। फिजूल चर्चा।  
अररि—सज्ञा पुं० [देश०] १ जगली पेड़ जो अर्जुन वृक्ष से मिलता जुलता  
होता है। इसकी लकड़ी बड़ी मजबूत होती है और छत पाटने  
के काम आती है। २. अरहर।  
अर्ल—सज्ञा पुं० [अं०] [खी० कौटेस] इंग्लैंड के सामंतों और बड़े  
भूम्यधिकारियों को वशपरपरा के लिये दी जानेवाली एक  
प्रतिष्ठासूचक उपाधि इसका दर्जा मार्क्विस् के नीचे और  
वाइकॉन्ट के ऊपर है। वि० दे० 'ड्यूक'।  
अर्वट—सज्ञा पुं० [सं०] भस्म। राख [को०]।  
अर्वती—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ घोड़ी। २. दूती। कुटनी। ३ परी।  
विद्याधरी [को०]।  
अर्वा—सज्ञा पुं० [सं० अर्वन्] १ घोड़ा। २ घोड़े का सवार। असवार  
सवार। ३ चद्रमा के दस घोड़ों में से एक। ४ इद्र। ५ एक  
प्रकार की दूरी। ६ जाना। दौड़ना। घूमना [को०]।  
अर्वाक—अव्य० [सं० अर्वाक्] १ पीछे। इधर। २ निकट। समीप।  
३ नीचे।  
यो०—अर्वाक् कालिक = आधुनिक। अर्वाकस्रोता = जिसका  
वीर्यपात हुआ हो। उदर्रेता का उलटा।  
अर्वाग्विल—वि० [सं०] १ अधोमुख। नीचे की तरफ मुँह या छिद्र  
वाला [को०]।  
अर्वाग्विसु—वि० [सं०] धनदाता [को०]।  
अर्वाग्विसु—सज्ञा पुं० १ वर्षा। २ वादल [को०]।  
अर्वाचोन—वि० [सं०] १ पीछे का। आधुनिक। २ नवीन। नया।  
३ उलटा। विपरीत [को०]। ४ नम्र। कृपालु [को०]।  
अर्वाविसु—सज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का होता [को०]।  
अर्वुक—सज्ञा पुं० [सं०] १ महाभारत में कथित दक्षिण की एक  
जगली जाति जिसे सहदेव ने विजित किया था।  
अर्श—वि० [सं०] १ पापयुक्त। दुर्मय्य लानेवाला।  
अर्श—सज्ञा पुं० [सं० अर्शस] १ ववासीर। २ क्षति। हानि [को०]।  
अर्श—सज्ञा पुं० [अं०] १ आकाश। उ०—प्रशं तक जाती थी अब  
लव तक भी आ सकती नहीं। रहम आता है 'वय' अब मुझसे  
अपनी माँ पर—शेर०, भा० १. पृ० १७५। २. स्वर्ग। ३.

चरखी; जिमपर केन काँता जाता है। ४ छत। पाटन [को०]।  
५ सिंहासन। तछन [को०]। ६ लड़ाई। भगडा [को०]।  
अर्शवर्त्म—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ववासीर जिसमें गुदा के  
किनारे ककड़ी के बाँज के समान चिकनी और किंचित् पीड़ा-  
युक्त फुसियाँ होती हैं।  
अर्शस—वि० [सं०] ववासीर का रोगी [को०]।  
अर्शसान—सज्ञा पुं० [सं०] १ आग। २ एक राक्षस [को०]।  
अर्शहर—सज्ञा पुं० [सं०] सूरन। शोल। जमीकद।  
अर्शी—वि० [सं० अर्शन्] अर्शरोगी [को०]।  
अर्शघोर—वि० [सं०] अर्श नामक रोग का नाशक [को०]।  
अर्शघ्न—सज्ञा पुं० [सं०] १ सूरन। शोल। जमीकद। २ मिलावा।  
३ सज्जीखार। ४ तेजवल। ५ सफेद सरमो।  
अर्शघनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ तालमूली। २ भल्लातक [को०]।  
अर्शहर—सज्ञा पुं० दे० 'अर्शघ्न' [को०]।  
अर्शहित—सज्ञा पुं० [सं०] भल्लातक [को०]।  
अर्शहित—वि० अर्शरोग को ठीक करनेवाला [को०]।  
अर्हत—सज्ञा पुं० [मं० अर्हन्त] १ जैनियों के पूज्यदेव। जिन।  
२ बुद्ध।  
अर्ह—वि० [सं०] १ पूज्य। २ योग्य। उपयुक्त। ३ मूल्य के योग्य  
मूल्यवान् [को०]।  
विशेष—इस शब्द का प्रयोग, अधिकतर योगिक शब्द बताने में  
होता है, जैसे—पूजार्ह। मानार्ह। दडार्ह।  
अर्ह—सज्ञा पुं० १ ईश्वर। २ इद्र। विष्णु [को०]। ४ मूल्य। दाम  
[को०]। ५ गति [को०]। ६ उपयुक्तता [को०]।  
अर्हण—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्हण'।  
अर्हणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अर्हणीय] पूजा। समान।  
अर्हणीय—वि० [सं०] पूजनीय। समाननीय [को०]।  
अर्हत—वि० [मं०] पूजा।  
अर्हत—सज्ञा पुं० जिनदेव।  
अर्हता—सज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता। उपयुक्तता [को०]।  
अर्हन—वि०, सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्हत'।  
अर्हित—वि० [सं०] पूजित। समानित। आदृत।  
अर्ह—वि० [सं०] १ पूज्य। मान्य। २ पूजनीय। माननीय। आदर  
णीय। ३ योग्य। उपयुक्त। अधिकारी [को०]।  
अल—अव्य० [सं० अलम्] दे० 'अलम्'।  
अलकटकटा—सज्ञा स्त्री० [मं० अलकटकुटा] विद्युत्केस नामक राक्षस  
की पत्नी। सुकेश की माता।  
विशेष—वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में इस राक्षसवज्र का  
सृष्टि के आदिकाल में उत्पन्न होना लिखा है।  
अलकरण—सज्ञा पुं० [सं० अलकरण] १ सजावट। २ शृंगार ३.  
आभूषण [को०]।  
अलकर्ता—वि० [सं० अलकर्तु] सजावट करनेवाला। अलकृत  
करनेवाला [को०]।

अलंकार—सज्ञा पुं० [सं० अलङ्कार] [वि० अलङ्कृत] १ आभूषण । गहना । जेवर । २ अर्थ और शब्द की वह युक्ति जिससे काव्य की शोभा हो । वर्णन करने की वह रीति उसमें प्रभाव और रोचकता आ जाय ।

विशेष—इसके तीन भेद हैं—(क) शब्दालंकार, अर्थात् वह अलंकार जिसमें शब्दों का सौंदर्य हो, जैसे अनुप्रास; (ख) अर्थालंकार, जिसमें अर्थ में चमत्कार हो, जैसे उपमा और रूपक और किसी किसी आचार्य के मत से (ग) उभयालंकार जिसमें शब्द और अर्थ दोनों का चमत्कार हो । आदि में भरत मुनि ने चार ही अलंकार माने हैं—उपमा, दीपक, रूपक और यमक । उन्होंने अलंकारों के धर्म को, इन्हीं के अंतर्गत माना है । अलंकार यथार्थ में वर्णन करने की शक्ती है, वर्णन का विषय नहीं । पर पीछे वर्णनीय विषयों को भी अलंकार मान लेने से अलंकारों की संख्या और भी बढ़ गई । स्वभावोक्ति और उदात्त आदि अलंकार इसी प्रकार के हैं ।

३ वह हाव, भाव या क्रिया आदि जिससे स्त्रियों का सौंदर्य बढ़े । ४ सजावट । मंडप [को०] । ५ अलंकार सवधी शास्त्र [को०] ।

अलंकारक—सज्ञा पुं० [सं० अलङ्कारक] आभूषण । अलंकार [को०] । अलंकारमंडप—सज्ञा पुं० [सं० अलङ्कारमण्डप] सजावट का स्थान । प्रसाधनकक्ष । झुसिंग रूम ।

अलंकारशास्त्र—सज्ञा पुं० [सं० अलङ्कारशास्त्र] वह शास्त्र जिसमें अलंकारों का वर्णन और विवेचन हो ।

अलंकित—वि० [हि०] दे० 'अलंकृत' ।

अलंकिय—वि० [सं० अलङ्कृत, प्रा० अलंकिय] दे० 'अलंकृत' । उ०—नील वरन वमुमतिथ । पहिर आभन अलंकिय ।—पृ० रा०, २५। ३५ ।

अलंकृत—वि० [सं० अलङ्कृत] १ विभूषित । गहना पहनाया हुआ ।

२ सजाया हुआ । सँवरा हुआ । ३ काव्यालंकारयुक्त ।

अलंकृति—सज्ञा स्त्री० [सं० अलङ्कृति] १ अलंकार । आभूषण । २ सजावट । ३ उपमा, रूपक आदि अलंकार । उ०—प्राखर अर्थ अलंकृति नाना । छंद प्रबध प्रनेक विधान ।—मानस, पृ० ३५ ।

अलग—सज्ञा पुं० [सं० अल = पूर्ण, बड़ा + अग = प्रदेश] [हि० अलग] और । तरफ । दिशा । उ०—(क) उमर अमीर रहे जहाँ ताई, सब ही बाँट अलग पाई ।—जायसी (शब्द०) । (ख) लेन आयो कान्हू कोऊ मथुरा अलग ते ।—मिथारी ग्र०, भा० २ पृ० १०७ ।

मुहा०—अलग पर आना या होना = चोड़ी का मस्ताना ।

अलघनीय—वि० [सं० अलङ्घनीय] १ जो लाँघने योग्य न हो । जिसे फाँद न सके । जिसे पारान कर सके । अलघ्य । १ अटल ।

अलघ्य—वि० [सं० अलङ्घ्य] १ जो लाँघने योग्य न हो । जिसे फाँद न सके । २. जिसे टाल न सके । जिसे मानना ही पड़े; जैसे—राजा की आज्ञा अलघ्य होती है ।

यो०—अलघ्य शासन ।

अलजर—सज्ञा पुं० [सं० अलजर] मिट्टी का घड़ा । भस्कर [को०] ।

अलपट—वि० [सं० अलम्पट] जो लपट या विषयी न हो । सञ्चरित्र ।

अलपट—सज्ञा पुं० स्त्रियों का कक्ष । अर्त पुर [को०] ।

अलव—सज्ञा पुं० [सं० अलव] दे० 'अलव' ।

अलवुष—सज्ञा पुं० [सं० अलम्बुष] १ वमन । उल्टी । कं । २ कोरवों का सहायक एक राक्षस जिसे भीम के पुत्र घटोत्कचने मारा था । ३ प्रहस्त नाम का रावण का एक मंत्री [को०] ।

हथेली जिसकी ऊँगलियाँ फैलाई गई हो [को०] ।

अलवुषा—सज्ञा स्त्री० [सं० अलम्बुषा] १ मुंडी । गोरखमुंडी । २ स्वर्ण की एक अप्सरा । ३ दूमेरे का प्रवेश रोकने के लिये खींची हुई रेखा । गडारी । मडल ।

विशेष—इसका व्यवहार अधिकतर भोजन को छुवाछूत से बचाने के लिये होता है ।

४ लज्जावती । छुई मुई । लजालू पीछा । उ०—नव अलवुषा की शीड़ा सी खुल जाती फिर जा मुदती ।—कामायनी, पृ० २६३ ।

अलभ—वि० [सं० अलभ्य] दे० 'अलभ्य' । उ०—सरग का देवता अलभ चितोड ।—वी० रासो, पृ० २४ ।

अल—सज्ञा पुं० [सं०] १ बिच्छू का डक । २ हरतान । ३ विप । जहर । उ०—अति त्रल करि करि काली हान्यो । लपटि गयो सब अग अग प्रति निविप । कियो सकल अल भाव्यो ।—सूर (शब्द०) ।

अल—वि० [सं०] समर्थ । शक्त । उ०—कारन अविरल अल अपितु तुलसी अविद भुलान ।—सं० सप्तक, पृ० २६ ।

अलई—सज्ञा स्त्री० [देश०] ऐल नाम की कंटीली लता जिसकी बाँध प्रायः खेतों में लगाई जाती है । ऊँछ ।

अलक—सज्ञा पुं० [सं०] १. मस्तक के इधर उधर लटकते हुए मरोड़दार वाल । २ वाल । केश । लट । ३ छल्लेदार बाल । उ०—मुकुट कुडन तिलके, अलक अलिन्रात इव, मुकुटि द्विज अघर वर चारु नासा ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६१ । २ हरतान । ३ सफेद आक । श्वेत मदार । ४ शरीर पर लगाया हुआ केसर । अग पर लिप्त केसर [को०] । ५ पागल कुत्ता । अलक [को०] ।

अलक—सज्ञा पुं० [मं० अलक] महावीर । अलिता ।

अलक—सज्ञा पुं० [सं० अलका] अलकापुरी । उ०—अलक लोक बज्जत विषम ।—पृ० रा० २१०१ ।

अलकत—सज्ञा पुं० [अ०] १ अवहेलना । २ नष्ट करना । रद्द करना । ३. काट देना [को०] ।

अलकतरा—सज्ञा पुं० [अ०] पत्थर के कोयले को आग पर गलाकर निकाला हुआ एक गाढ़ा पदार्थ । उ०—छत छतरी वर बद खम गेरु रंग रोखे । अलकतरे रंग कल किवार सित सोहते पखे ।—रत्नाकर १।१०२ ।

विशेष—कोयले को बिना पानी दिए भस्मके पर चढ़ाकर जब आँस निकाल लेते हैं, तब उसमें दो प्रकार के पदार्थ रह जाते हैं—एक पानी की तरह पतला, दूसरा गाढ़ा । यही गाढ़ा काला पदार्थ अलकतरा है जो रंगने के काम में आता है । यह कृमिनाशक है अतः इसमें रंगी हुई लकड़ी धुन और दीमक से बहुत दिनों तक बची रहती है । इससे कृमिनाशक औषधियाँ जैसे—नेप्पलीन कारबोलिक एसिड, फिनाइल आदि—तैयार होती हैं । इससे कई प्रकार के रंग भी बनते हैं ।

अलकनन्दा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अलकनन्दा] १ हिमालय (गङ्गवाल) की एक नदी जो गङ्गोत्री के आगे भागीरथी (गंगा) की धारा से मिल जाती है। २ आठ से दस वर्ष उम्र तक की कन्या [को०]।

अलकप्रभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अलकापुरी। कुवेरपुरी।

अलकप्रिय—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] पीतमाल नाम का एक पेड़ [को०]।

अलकलङ्कितः—वि० [मं० प्रचक=वाल+लाङ=दुलार या अ० अलक=प्यार+हिं० लाङ+ऐत (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० अलकलङ्कित] दुलारा। लाडला। उ०—सूर पयिक मुनि मोहि रैन दिन, बह्यो रहत उर सोच। मेरी अलकलङ्कितो मोहन हूँ है करत सँकोच।—हर०, १०।३७६३।

अलकसहति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घुंघराले वालों की कतार [को०]।

अलकसलोरा—वि० [सं०=अलक=वाल या अ० अलक=प्यार+हिं० सलोरा=अच्छा] [स्त्री० अलकसलोरी] लाडला। दुलारा।

उ०—हम तुम्हारे नित ही प्रति आवति सुनहु राधिका गोरी। ऐसी आदर कबहुँ न कीन्ही मेरी अलकसलोरी।—सूर०, १०२८०८।

अलका—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ कुवेर की पुरी। यक्षी की पुरी। उ०—हल्का छुटत मोर अलका पग है।—गग०, पृ० १०५। २ आठ से दस वर्ष उम्र तक की लड़की [को०]।

अलकाउरि—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलकावनि'। उ०—प्रधर अलकाउरि मोज तवोरी। अलकाउरि मुरि मुरि गा मोरी।—जायसी अ० (गुप्त), पृ० ३४२।

अलकाविप—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] अलकापुरी के स्वामी। कुवेर [को०]।

अलकापति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०]—कुवेर।

अलकाव—सञ्ज्ञा पुं० [अ० लक=का वहुव०] १ प्रशस्ति। २ उपाधि या खिताब [को०]।

अलकावती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलका'।

अलकावलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] केशों का समूह। बालों की लटें। उ०—कोमल नील कुटिल अलकावलि, रेखा राजति भाल।—सूर०, १०।२६५६।

अलकेश—सञ्ज्ञा पुं० [मं०=अलकेश] कुवेर। उ०—अकवकात अलकेश।—पद्माकर अ०, पृ० १०।

अलक्त—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अलक्तक'।

अलक्तक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ लाही जो पेड़ों में लगती है। लाख। लपड़ा। २ लाह का बना हुआ रंग जिसे स्त्रियाँ पैर में लगाती हैं। महावर।

यो०—अलक्तकरत=महावर। अलक्तक रंग=महावर की लाठी।

अलक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ बिहिन या सकेत का न होना। २ ठीक ठीक गुण धर्म का अतिविवन। ३ बुरा लक्षण। कुलक्षण। अशुभ चिह्न।

अलक्षण—वि० जो लक्षणहीन हो। बुरे लक्षणवाला [को०]।

अलक्षित—वि० [मं०] १ अप्रकट। अज्ञात। २ अदृश्य। गायब। ३ अचिह्नित।

अलक्ष्मी—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ घनाभाव। विघ्नता। दरिद्रता। २ बुरा भाग्य। विरहीन भाग्य। ३ अशुभ लक्षणवाली स्त्री। ४ भाग्य की देवी। दरिद्रता देवी [को०]।

अलक्ष्य—वि० [तं०] १ अदृश्य। जो न देख पड़े। गायब। २ जिसका लक्षण न कहा जा सके। ३ छलविहीन। छलरहित [को०]। ४ अचिह्नित [को०]।

अलक्ष्यगति—वि० अदृश्य रूप से गमन करनेवाला [को०]।

अलक्ष्यजन्मता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञात जन्म या उत्पत्ति [को०]।

अलक्ष्यलिंग—वि० [सं० अलक्ष्यलिंग] अपने को छिपाए रखनेवाला [को०]।

अलख—वि० [सं० अलख] १ जो दिखाई न पड़े। जो नजर न आए। अदृश्य। अप्रत्यक्ष। उ०—बुद्धि, अनुमान, प्रमान श्रुति किऐं नीठि ठहराय। सूछम कटि परब्रह्म की, अलख, लखी नहि जाय।—विहारी २०, दो० ६४८। २ अगोचर। इद्रियातीत। उ०—जे उपमा पटतर लै दीजै ते सब उनहि न लायक। जो पैं अलख रही चाहत तौ वादि भए ब्रजनायक।—सूर०, २।४६४५। ३ ईश्वर का एक विशेषण। उ०—अलख अरूप अवरन सो करता। वह सबसो सब वहि सो वरता।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—अलख जगना=(१) पुकारकर परमात्मा का स्मरण करना या कराना। (२) परमात्मा के नाम पर भिक्षा माँगना।

यो०—अलखधारी। अलखनामी। अलखनिरजन। अलखपुरुष=ईश्वर। अलखमंत्र=निर्गुण सत संप्रदाय में ईश्वरमंत्र।

अलख—सञ्ज्ञा पुं० ब्रह्म। ईश्वर [को०]।

अलखधारी—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अलखनामी'।

अलखनामी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अलक्ष्यसं० नाम+हिं० ई (प्रत्य०)] एक प्रकार के साधु जो गोरखनाथ के अनुयायियों में से हैं। विशेष—अलखिया। ये लोग सिर पर जटा रखते हैं, नेत्रावस्त्र धारण करते हैं, भस्म लगाते हैं और कमर में ऊन की सेली बाँधते हैं जिसमें कभी कभी घुघरू या घटी भी बाँध लेते हैं। ये लोग भिक्षा के लिये प्रायः दरियाई नारियल का खप्पर लेकर जोर जोर में 'अलख अलख' पुकारते हैं जिससे उनका अभिप्राय अलक्ष्य परमात्मा का स्मरण करना वा कराना होता है। इन लोगों में एक विशेषता यह है कि ये कहीं भिक्षा के लिये अधिक अडते नहीं।

अलखित—वि० [हिं०] दे० 'अलखित'। उ०—रवि अलखित गति वेपु विरागी।—मानम २। ११०। अलखिया—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अलखनामी'। अलग—वि० [सं० अलग्न प्रा० अलग्न] १. जुदा। पृथक्। न्यारा। भिन्न। अलहदा। उ०—सपति सकल जगत् की स्वासा सम नहि होइ। सो स्वासा तजि राम पद तुलसी अलग न खोइ।—सं० सप्तक, पृ० ४।

क्रि० प्र०—करना। रखना।—होना। मुहा०—अलग करना=(१) जुदा करना। दूर करना। हटाना। खसकाना। जैसे—इसे हमारे सामने से अलग करो। (२) छुड़ाना। बरखास्त करना, जैसे—मैंने उस नौकर को अलग कर दिया। (३) चुनना। छांटना। (४) वेच डालना, जैसे—उमने उस घोड़े को अलग कर दिया। (५) निपटाना।

समाप्त करना, जैसे—थोड़ा सा बचा है। खा पीकर अलग करो।

२. बेलाग । वचा हुआ । रक्षित, जैसे—घबराओ मत, तुम्हारा वच्चा अलग है ।

यौ०—अलग अलग = दूर दूर । जुदा जुदा ।

अलगगीर—सज्ञा पुं० [अ० अरक फा० गीर] कबल या नमदा जिसे घोड़े की पीठ पर रखकर ऊपर से जीन या चारजामा कसते हैं ।

अलगनी—सज्ञा स्त्री० [स० आलग्न] आड़ी रस्सी या वाँस जो कपड़े लटकाने या फैलाने के लिये घर में बाँधा जाता है । डारा ।

अलगरजी—वि० [अ० अल् + गर्ज] दे० 'अलगरजी' ।

अलगरजी†—वि० [अ०] वेगरज । वेपरवाह ।

अलगरजी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० वेपरवाही । वेगरजी । उ०—आसिक अरु महबूब विच आप तमामा कीन । ह्याँ ह्वै अलगरजी करै ह्वै होइ अधीन ।—स० सप्तक, पृ० १७६ ।

अलगर्द—सज्ञा पुं० [स०] एक तरह का जल में रहनेवाला साँप [को०] ।

अलगर्दा—सज्ञा पुं० [स०] एक तरह की लरी जहरीली जोक [को०] ।

अलगार्जा—वि० [हि० अलगाना] अलग करनेवाला । अलग रखनेवाला ।

अलगाना<sup>१</sup>—कि० सं० [हि० अलग + आना (प्रत्य०)] १—अलग करना । छाँटना । विनगाना । पृथक् करना । जुदा करना । २ दूर करना । पठाना ।

अलगाना<sup>२</sup>—कि० अ० अलग होना । पृथक् होना । उ०—वदरिका-सरम दोउ मिलि आई । तीरथ करत दोउ अलग आई ।—सूर०, ३१४ ।

यौ०—अलगागुजारी = अलगाव ।

अलगार<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अलग' । उ०—चामडराय, दिल्ली, घरह गढ़पति करि गढ़भार दिय । अलगार राज प्रथिराज तव पूरव दिसि तव गमन किय ।—पृ० रा०, २०३६ ।

अलगाव—सज्ञा पुं० [हि० अलग + आव (प्रत्य०)] पृथक्करण । अलग रहने का भाव । विलगाव । उ०—होली, सावन, भूने वा भेलुए की गीत आदि का अलगाव या ठहराव हुआ होगा ।—प्रेमचन्द०, भा०, २, पृ० ३५१ ।

अलगोजा—सज्ञा पुं० [अ० अलगोजह] एक प्रकार की वाँसुरी । उ०—अलगोजे वज्जत छिति पर छज्जत सुनि-धुनि लज्जत कोइ रहै—पद्माकर ग्र०, पृ० २८५ ।

विशेष—इसका मुँह कलम की तरह कटा होता है और जिसकी दूसरी छोर पर स्वर निकालने के लिये सात समानांतर छेद होते हैं । इसको मुँह में सीधा रखकर-डँगलियों को छेदों पर रखते और उठाते हुए बजाते हैं ।

अलगोजा†—सज्ञा पुं० [हि० अलग + ओझा (प्रत्य०)] [स्त्री० अलगोजी] पृथक्करण । अलगाव । विलगाव ।

अलग्ग<sup>१</sup>—वि० [स० अलग्न] समीप नहीं । दूर । उ०—डो नइ चित्त विमासियउ, मारु देस अलग्ग ।—डोला०, दू० ३०७ ।

अलग्गु—वि० [म०] [वि० स्त्री० अलवत्ती] १ जो लघु न हो । बड़ा । बजनी । २ गभीर । ३ जो छोटा न हो । लवा । ४ उग्र । भयकर [को०] ।

अलच्छ<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अलक्ष' । उ०—नग मग धरन अलच्छ जात अवरहि जनु पच्छी ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११२ ।

अलच्छि<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [स० अलक्ष्मी] दरिद्रता । गरीबी । उ०—माया ब्रह्मा जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रक भवनीसा ।—मानस, ११६ ।

अलज<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का पक्षी [को०] ।

अलज<sup>१</sup><sup>२</sup>—वि० [हि०] दे० 'अलज्ज' ।

अलजी—सज्ञा स्त्री० [म०] आँखों में होनेवाली एक प्रकार की लाल या काली फूसी जो बहुत पीड़ा देती है ।

अलज्ज—वि० [स०] निलज्ज । वेहया । उ०—तुम अलज्ज से क्यों यहाँ अडे ।—साकेत, पृ० ३१३ ।

अलटविलट—सज्ञा पुं० [दिश०] उलट पुलट । हेर फेर । गड़बड़ी । उ०—वात व्योहार में कही कुछ अलटविलट हो तो अपने नोगछिया की जगहें साईं होगी ।—नई०, पृ० ३११ ।

अलटा—सज्ञा पुं० [स० अलत्तक, प्रा० अलत्तय, राज० अलत्ता] १. वह लाल रंग जो स्त्रियाँ पँरों में लगाती हैं । २ खमी की मूत्रेन्द्रिय, जैसे—अलते की बोटी ।

अलत्ता<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म० अलत्तक, प्रा० अलत्तय] दे० 'अलता' । उ०—सुदरि, सोवन वर्ण तसु अहर अलत्ता रगि । केसरिलकी खीण कटि, कोमल नेत्र कुरंगि ।—डोला०, दू० ८७ ।

अलप<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अल्प' । उ०—ताते अनुमानों अव जीवन अलप है ।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १५८ ।

अलपाका—सज्ञा पुं० [स्पे० एलपका] १ ऊँट की तरह का एक जानवर जो दक्षिण अमेरिका के पेरू नामक प्रांत में होता है । इसके बाल लंबे और ऊन की तरह मुलायम होते हैं । २ अलपाका का ऊन । ३ एक पतला कपड़ा जो रेशम या सूत के साथ अलपाका जंतु के ऊनी बालों को मिलाकर बनाया जाता है । यह कई रंगों का बनता है, पर विशेषकर काला होता है ।

अलफ—सज्ञा पुं० [अ० अलिफ] १ घोड़े का आगे के दोनों पाँव उठाकर पिछी टाँगों के बल खड़ा होना ।

विशेष—अरबी वर्णमाला का पहला अक्षर अलिफ खड़ा होता है । इसी से यह शब्द इस अर्थ में व्यवहृत होने लगा ।

२ हरा चारा । हरी घास [को०] ।

अलफा—सज्ञा पुं० [अ० अलफा] [स्त्री० अलफी] एक प्रकार का डोला ढाला बिना बाँह का बहुत लवा कुत्ता जिसे अधिकतर मुसलमान फकीर गले में डाले रहते हैं । उ०—अड़ी की टोपी लगाए सुकेशधारी अलफी पहने लँगड़ाता हुआ चिल्लाने लगा ।—श्यामा०, पृ० १५० ।

अलफाज—सज्ञा पुं० [अ० लफज का बहुव० अलफाज] शब्दसमूह । उ०—बिना अरबी के अलफाज मिलाए ।—प्राण०, २१५६ ।

अलवत्त—अव्य० [हि०] दे० 'अलवत्ता' । उ०—तथ्यों का आरोप या सभावना अलवत्त वे कभी कभी किया करते हैं ।—रस० क०, पृ० १४ ।

अलवत्ता—अव्य० [अ० अलवत्तह] १ निस्संदेह । निःसंशय । वेशक, जैसे—'अव अलवत्ता यह काम होगा' । २ हाँ । बहुत ठीक । दुरुस्त । जैसे—अलवत्ता, बहादुरी इसका नाम है (शब्द०) । ३ लेकिन । परन्तु, जैसे—हम रोज नहीं आ सकते, अलवत्ता कहो तो कभी कभी आ जाया करें (शब्द०) ।



अलवम—सञ्ज्ञा पुं० [अ०, एलवम] तम्बीरें रखने की किताब ।

अलवल—वि० [अनु०] अटपट । जल्दी जल्दी । उ०—अपने अपराधन कवहूँ बैठि विचारै हुव मिलन मनोरथ अल वल वैन उचारै ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २६३ ।

अलवीतलवी—[अ०] अरवी, फारसी आदि विदेशी भाषाएँ अथवा बहुत कठिन उर्दू, जैसे—‘आप अपनी अलवी तलवी छोड़कर सीधी तरह से हिंदी में बातें कीजिए’ ।

अलवेला<sup>१</sup>—वि० [सं० अलम्य + हिं० ला (प्रत्य०)] [स्त्री० अलवेली] १ बाँका । बनावट । छेला । २ अनोखा । अनूठा । मुदर, जैसे—‘तुमने तो यह बड़ी अलवेली चीज निकाली’ ३ अलहड । वेपरवाह । मनमौजी । जैसे—यह बड़ा अलवेला है ।

अलवेला<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अलम्य] नागियल का बना हुआ हुक्का । उ०—खाद्यक पान विदोरत होठ हैं बैठि समा मे पिएँ अलवेला ।—वृगगोपाल (शब्द०) ।

अलवेलापन—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अलवेला + पन (प्रत्य०)] १ बाँकापन । सजधज । छेलापन । २ अनोखापन । अनूठापन । मुदरता । ३ अलहडान वेपरवाही ।

अलव्व—वि० [सं०] जिसकी प्राप्ति न हो सकी हो । जो हस्तगत न हुआ हो [को०] ।

यौ०—अलव्वनाय = बिना सक्षक । स्वामीविहीन । अलव्वनिद्र = जिसे नींद न आई हो ।

अलव्वभूमिकत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समाधि का न जुड़ना । समाधि की अप्राप्ति ।

अलव्वव्यायामाभूमि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसी भूमि जिसमें सैन्यसंग्रह न हो सके ।

अलम<sup>७</sup>—वि० [हिं०] दे० ‘अलम्य’ ।

अलम्य—वि० [सं०] १ न मिलने योग्य । अप्राप्त । उ०—रम पिया सखि नित्य जहाँ नया अब अलम्य वहाँ विप हो गया ।—साकेत, पृ० ३०७ । २ जो कठिनता में मिल सके । दुर्लभ । उ०—मुनिहूँ मनोरथ को अगम अलम्य लाम मुगम सो राम लघु भोगनि को करिगे ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३३६ । ३ अमूल्य अनमोल । उ०—जीवन मोभाग्य है जीवन अलम्य है ।—नहर, पृ० ७० ।

अलम्—अव्य० [सं०] यथेष्ट । पर्याप्त । पूर्ण । काफी । उ०—कृपा कटाक्ष अलम् है केवल, कोरदार या कोमल हो ।—भरना, पृ० ८१ ।

अलम—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ रज । दुख । उ०—अलम है ददें हसरत है फना है आहोजारी है ।—शेर०, पृ० ३७७ । २ भडा ।

अलमनक—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] अंगरेजी ढग की जड़ी या पत्ता ।

अलमनाक—वि० [अ०] १ दुःखपूर्ण । २ अतिदुःखदाई [को०] ।

अलमवरदार—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ वह जो भडा उठाता है । २ वह जो आरोलन आदि में आगे रहता है [को०] ।

अलमर—सञ्ज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का पौधा ।

अलमस्त—वि० [फा०] १ मतवाला । बहोश । बेहोश । २ बेगम । बेफिक्र । निर्द्वंद्व ।

अलमारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [पुर्त० अलमारियो] वह खड़ा सूदक जिममें चीजें रखने के लिये खाने या दर बने रहते हैं और बंद करने के लिये पल्ले होते हैं । कभी कभी दीवार खोदकर और नीचे ऊपर तख्ते जोड़कर भी अलमारी बना दी जाती है । बड़ी भंडरिया ।

अलमास—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] हीरा ।

अलय<sup>१</sup>—वि० [सं०] बिना घरवाला । चलता फिरता । जिसका नाश न हो [को०] ।

अलय<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ लय न होने का भाव । अनित्यता । २ जन्म । उत्पत्ति [को०] ।

अलर्क—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. पागल कुत्ता । २ सफेद आक या मदार । ३ एक प्राचीन राजा जिसने एक अर्धे ब्राह्मण के माँगने पर अपनी दोनों आँखें निकालकर दे दी थी । ४ शूकर जैसा एक आठ पैरोंवाला जंतु [को०] । ५ एक तरह का कीड़ा [को०] ।

अलल<sup>७</sup>—वि० [अ० आलाला] इधर उधर । उ०—सँभलत बल्लभर साहुल समनि । आलूदा ठाकुर अलल ।—बेलि०, दू० ११३ ।

अललटप्पू—वि० [देश०] अटकनपचू । बैठकाने का । अडबड । अललवछेडा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अलहड + वछेडा] १ घोड़े का जवान वच्चा । २ अलहड आदमी । वह व्यक्ति जिसे कुछ प्रभुत्व न हो ।

अललहिसाव—वि० [अ०] बिना हिसाब किए हुए [को०] ।

कि० प्र०—देना ।

अललाना—वि० [अ०] [सं० अर् = बोलना] तेज चिल्लाना । गला फाड़कर बोलना ।

अलल<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० ‘अलल’ ।

अलल<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० ‘अलल’ ।

अलल<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] घोड़ा (हिं०) ।

अलवांत—वि० स्त्री० [हिं०] दे० ‘अलवांती’ ।

अलवांती—वि० स्त्री० [म० बालवती] (स्त्री) जिसके वच्चा हुआ हो । प्रभूता । जच्चा ।

अलवाई—वि० स्त्री० [सं० बालवती, हिं० अलवांती] (गाय या भैंस) जिमको वच्चा जने एक दो महीने हुए हो । ‘वाखरी’ का उलटा ।

अलवान—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] पश्मीने की चादर । ऊनी चादर ।

अलवाल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० ‘आनवाल’ ।

अलविदा<sup>१</sup>—अव्य० [अ० अल + विदाय] विदा होने समय कहा जानेवाला शब्द ।

अलविदा<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० रमजान के महीने का अंतिम शुक्रवार ।

अलम<sup>१</sup><sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० ‘आलम्य’ । उ०—बारि जाम जु निधि उनीदे, अलस वसहि जम्हात ।—मूर०, १०।२६७६ ।

अलस<sup>२</sup>—वि० [म०] आलस्ययुक्त । आलसी । मुस्त । मद । निश्चयी । उ०—चदन मिटाए तन अनिही अनम मन नागरी की पीक लीक लागी है कपोली ।—मूर०, १०।२५०७ ।



अलस<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ पाँव का एक रोग जिसमें पानी से भीगे रहने या गंदे कीचड़ में पड़े रहने के कारण उँगलियों के बीच का चमड़ा सड़कर सफेद हो जाता है और उसमें खाज और पीड़ा होती है। खरवात। कदरी। २ एक जहरीला छोटा जंतु [को०]। ३ एक तरह का पौधा [को०]।

अलसई<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अलस्य] अलसता। उ०—कुम्भकरन को रन हूयो गह्यो अलसई आइ। सिर चढि श्रुति नामा हसत जु न रोख्यो हरिराइ।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ७५।

अलसक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अजीर्ण रोग का एक भेद।

अलसा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] हसपदी लता। लज्जालू। लाल फूल की लज्जावती।

अलसाई<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अलस] अलमता। मुस्ती। उ०—लटपटी पाग, अलक जो विथुरी, बात कहत आवत अलसाई।—मूर०, १०।२६४०।

अलसान<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अलसानि'।

अलसाना—कि० अ० [म० अलस] अलस्य में पड़ना। क्लान्त होना। शिथिलता अनुभव करना। उ०—(क) वन मोहन दोऊ अलसाने।—मूर०, १०।२३०। (ख) कवहुँ नैन अलमात जानि कै, जल लै पुनि पुनि धोवति।—मूर०, १०।२४६८।

अलसानि<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अलस्य] अलम। मुस्ती। उ०—(क) आँखिन में अलसानि, चितौन में मजु विलासन की सरसाई।—मतिराम (शब्द०)। उ०—(ख) चित्ता जू भ उनीदता विह्वलता अलसानि। लह्यो अमागिनि हौं अली, तहूँ गहै सु वानि।—मिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १४।

अलसि<sup>३</sup>—वि० [हि०] दे० 'अलस्य'। उ०—बड़ अलसि जिय माँहि बर में कहा जु पावो।—हम्मीर रा०, पृ० ५६।

अलसी<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अलसी] एक पौधा और उसका फल या बीज। तीसी।

विशेष—यह पौधा प्रायः दो ढाई फुट ऊँचा होता है। इसमें डालियाँ बहुत कम होती हैं, केवल दो या तीन लंबी, कोमल और सीधी टहनियाँ छोटी छोटी पत्तियों से गुंथी हुई निकलती हैं। इसमें नीले और बहुत सुंदर फूल निकलते हैं जिनके भुज्जने पर छोटी घुडियाँ बँधती हैं। इन्हीं घुडियों में बीज रहते हैं जिनमें तेल निकलता है। यह तेल प्रायः जलाने और रंगमाजी तथा दीयों के छावे की म्याही बनाने के काम में आता है। वृद्धन से स्नानों पर माग, मन्त्री आदि में भी इसका प्रयोग होता है। छापने की म्याही भी इसकी मिलावट से बनती है। इसको पकाकर गाढ़ा करके एक प्रकार का वारनिश भी बनता है। तेल निकालने के बाद अलसी की जो सीधी वचती है उसे खरी, खली कहते हैं। यह खली गाय को बहुत प्रिय है। अलसी या अलसी की खली को पीमकर उसकी पुलटिम बाँधने में सूजन बँध जाती है, कच्चा फोड़ा भी घी पककर वह जाता है तथा उसकी पीड़ा शान्त हो जाती है।

अलसी<sup>३</sup>—वि० [हि०] दे० 'अलसी'। उ०—राम मुभाव मुने तुलसी हुलसे अलसी हम में गलगाजे।—तुलसी ग्र०, पृ० १६८।

अलसेट<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म० अलस + हि० एट (प्रत्य०)] [वि० अलसेटिया] १. ढिलाई। व्यर्थ की देर। २. टालमटूल। भुलावा। चकमा। उ०—महरि गोद लँवे लगी करि वातन अलसेट।—व्यास (शब्द०)। ३. बाधा। अड़चन।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

अलसेटिया<sup>३</sup>—वि० [हि० अलसेट + इया (प्रत्य०)] १. ढिलाई करनेवाला। व्यर्थ की देर करनेवाला। २. अड़चन डालनेवाला। बाधा उपस्थित करनेवाला। टालमटूल करनेवाला। अलसाँहा<sup>३</sup>—वि० [म० अलस + हि० ओहां (प्रत्य०)] [स्त्री० अलसाँही] आलस्ययुक्त। क्लान्त। शिथिल। उ०—सही रंगीले रति जगै, जगी पगी सुख चैन। अलसाँहैं सौँहि किए, कहैं हँसाँहैं नैन।—विहारी रा०, दो० ५११।

अलह<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अल्लाह] अल्लाह। ईश्वर। खुदा। उ०—मुलतान जलाल मिकदर जाया। मुलतान। नाह्वदीन अलह उपाया। पृ० रा०, ६६।१४०।

अलह<sup>३</sup>—वि० [म० अ + लभ्] व्यर्थ। व्यथा। अनर्थ। उ०—गाँव जलहर गयण में जाय अनह तै जोह।—वाँकीशम ग्र०, भा० १, पृ० ३०।

अलहदगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अलाहदह + फा० गी (प्रत्य०)] अलग होने का भाव। अलगवा। विलगाय।

अलहदा—वि० [अ० अलाहदह] जुदा। अलग। पृथक।

अलहदी<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अहदी'। उ०—'कनव्यग्रन्य स्वभाव अलहदी बन गया'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१।

अलहन<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अलभन] अभाग्य का उदय। विपत्ति। उ०—एकहि रितु सौं अत दुहुनि की अलहन आई।—रत्नाकर भा० २, पृ० ४८।

अलहना<sup>३</sup>—वि० [स० अ + लभन] न पानेवाला। उ०—जे गुणमना अलहना गौरव नहइ भूजन।—कीर्ति०, पृ० ३४।

अलहनियाँ—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अलहन] जो कोई काम क कर सकता हो। अकर्मण्य। अहदी।

मु०—अपने अलहनियाँ आन के गड़ा पूरे = अपना काम न सँभाल कर दूसरे का काम करनेवाला।

अलहा—वि० [म० अलभ्य] अलभ्य। जो प्राप्त न हो। उ०—अगहा गहणा, अकहा कहणा, अलहा लहणा तहैं मिलि रहणा।—दादू०, पृ० ५१६।

अलहिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० आलहा] एक रागिनी जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं। हिंडोन राग की स्त्री और दाक की पुत्रवत्। इसका व्यवहार करण राम-प्रकट करने में अधिक होता है।

अलहैरी—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] एक जाति का अरबी ऊँट जिसके एक ही कूबड़ होता है और जो चलने में बहुत तेज होता है।

अलाई<sup>३</sup>—वि० [सं० अलम] [वि० स्त्री० अलाइन] आलसी। काहिला

अलाई<sup>३</sup>—वि० [हि०] अलाउद्दीन मन्त्री। अलाउद्दीन का, जैसे—अलाई दरवाजा, अलाई मोहर (शब्द०)।

अलाई<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [देश० अलन्न] घोड़े की एक जाति।

अलागलाग—सञ्ज्ञा पुं० [हि० लाग = लगाव] नृत्य या नाचने का एक ढंग।

अलात—सज्ञा पुं० [सं०] १ अगार । २ जनती हुई लकड़ी । लुप्राठी ।  
अलातचक्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ जनती हुई लकड़ी या लुक को जल्दी  
जल्दी घुमाने में बना हुआ मडल । उ०—मनु फिर रहे अलात-  
चक्र से उम घन तम में ।—कामायनी, पृ० २०० । २ वनेंठी ।  
३ गतिभेदानुसार एक प्रकार का नृत्य या नाच ।

अलान—सज्ञा पुं० [सं० अलान] [ली० अलानी] १ हाथी बांधने  
का खूँटा । २ हाथी बांधने का मिक्कड़ । उ०—नवगण्डु रघु-  
वीर मनु राजु अलान समान ।—मानस, २।५१ । ३. वधन ।  
वेडी । ४. लता या वेल चढ़ाने के लिये गाड़ी हुई लकड़ी ।

अलाना—कि० अ० [सं०/अ०=बोलना] बिल्लाना । गंगा फाटकर  
बोलना । अललाना ।

अलानाहकी—अव्य [फा० नाहक] बिना मतनव । वेमवव ।

अलानिया—कि० वि० [अ० अलानियह] उन्मुक्त रूप में । प्रकट रूप  
से । खुल्लम खुल्ला । सबके सामने [को०] ।

अलाप—सज्ञा पुं० [हि०] २० 'आलाप' । उ०—प्रादर-अलाप  
छाँड़ आगे तें अनखि उठी, मेरे मुँह एक बोल आकरो सो  
आइगो । गग ग्र०, पृ० ७८ ।

अलापना—कि० अ० [सं० आलापन] १ बोलना । बातचीत करना ।  
२ मुर खींचना । तान लगाना । उ०—प्रघर अनूप मुरलि  
मुर पूरत गोरी राग अलापि वजावत ।—सूर०, १०।१३६८ ।  
३. गाना ।

अलापी—वि० [सं० आलापिन्] बोलनेवाला । शब्द निकालनेवाला ।  
उ०—नृत्यत कनापी भिल्ली पिक हैं अलापी बिरहीजन विलापी  
हैं मिलापी रसरास में ।—मिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० २८ ।

अलाव—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ लोकी । कद्दू । २. तूँबा ।

अलाम—सज्ञा पुं० [सं०] लाम का अभाव । नुकसान । उ०—दुख सुख,  
लाम अलाम ममुकि तुम, कतहि मरत हो रोइ ।—सूर०,  
१।२६२ ।

अलाम—वि० [अ० अलामह=चतुर] जिसकी बात का कोई  
ठिकाना न हो । बात बनानेवाला । मिथ्यावादी ।

अलामत—सज्ञा पुं० [अ०] १ लक्षण । निशान । चिह्न । उ०—  
बहुत रोने रुसवा कर दिखाया । न चाहत की छुपी हमसे  
अलामत ।—घेर०, भा० १, पृ० ११६ । २. पहचान ।

अलामत मलामत—सज्ञा स्त्री० [अ० मलामत] डाँट हपट । मत्संज्ञा ।  
कि० प्र०—करना ।

अलायक—सज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+अ० लायक] नालायक ।  
अयोग्य । उ०—(क) अगुन अलायकु आलसी जन अधन अनेरो ।—  
तुलसी (शब्द०) । (ख) सुर स्वारथी अतीस अलायक निहुरे  
ध्या चित नाही ।—तुलसी ग्र० पृ० ५२२ ।

अलार—सज्ञा पुं० [सं०] कपाट । किवाड़ ।

अलार—[सं० अलात] अलाव । आग का ढेर । अँव । अदूठी ।  
उ०—तान आनि परी कान वृषमानु नदिनी के तचपो उर प्रान  
पचपो विरह अलार है ।—रघुनाथ० (शब्द०) ।

अलार्म—सज्ञा पुं० [अं० एलार्म] खतरे की सूचना । खतरे का  
बिगुल [को०] ।

अलार्म—अलार्म बजना=खतरे की घंटी या बिगुल बजना ।

अलार्म घड़ी—सज्ञा स्त्री० [अं० एलार्म+सं० घड़ी] जागरन घड़ी ।  
जगानेवाली घड़ी ।

अलाल—वि० [सं० अलस] १ आलसी । सुस्त । काहिल । २ अक-  
र्मण्य । निकम्मा । उ०—ऐसे अधम अलाल को कीन्हो आप  
निहाल ।—रघुराज (शब्द०) ।

अलाव—सज्ञा पुं० [सं० अलात=अगार] आग का ढेर । जाड़े के  
दिनों में घास, फूस, सूखी पत्तियों और कड़ों से जलाई हुई आग  
जिमके चारों ओर बैठकर गाँव के लोग तापने हैं । कीड़ा ।  
अलावज—सज्ञा पुं० [सं० आलाप+वाद्य] १. एक प्रकार का पुराना  
वाजा जो चमड़ा मढ़कर बनाया जाता था ।

अलावनी—सज्ञा स्त्री० [सं० आलापिनी] एक पुराना वाजा जो नार से  
बनाया जाता था ।

अलावलसाही—वि० [हि० अलावल=अलाउद्दीन+साही] अनाद्दीन  
शाह सबधी ।

अलावा—कि० वि० [अ० अलावह] मित्राद्य । अनिरिक्त ।

अलाम—सज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें जीम के नीचे का भाग मूज  
कर पक जाता है और दाढ़ तन जाती है ।

अलास्य—वि० [सं०] नृत्य न करनेवाला । मुस्त [को०] ।

अलाहरी—वि० स्त्री० [हि०] २० 'अलहदा' । उ०—कवि ठाकुर देखो  
विचार हिये, कुछ ऐसी अलाहरी राह सी है ।—ठाकुर०, पृ० १० ।

अलिग—वि० [सं० अलिङ्ग] १ लिंगरहित । बिना चिह्न का ।  
जिसका कोई लक्षण न हो । २ जिसका ठीक ठीक लक्षण  
निर्धारित न हो सके । जिसकी कोई पहचान बतलाई न जा  
सके । ३. बुरे लक्षण या चिह्नवाला [को०] ।

अलिग—सज्ञा पुं० १. व्याकरण में वह शब्द जो दोनों लिंगों में व्यव-  
हृत हो, जैसे हम, तुम, मैं, वह, मित्र । २ वेदाङ्ग । ईश्वर ।  
ब्रह्म । ३ चिह्न या लक्षण का अभाव [को०] ।

अलिगन—सज्ञा पुं० [सं० अलिङ्गन] २० 'अलिगन' । उ०—कठ  
लगाइ लेत पुनि ताही । देत अलिगन रीझन जाही ।—  
सूर०, १०।११६४ ।

अलिगी—सज्ञा पुं० [अलिङ्गिन्] लिंग या परिचायक चिह्नों में रहित  
साधु [को०] ।

अलिगी—वि० बिना लिंग या पहचान का ।

अलिजर—सज्ञा पुं० [सं० अलिञ्जर] पानी रखने के लिये मिट्टी का  
घरतन । झरर । घड़ा ।

अलिद—सज्ञा पुं० [सं० अलिन्द] १. मकान के बाहरी द्वार के आगे  
का चवूतरा या छज्जा । २. एक पुराना जनपद [को०] ।

अलिद—सज्ञा पुं० [सं० अलिन्द] भौरा । उ०—कोन जान कहा  
भयो सुवर सबल स्याम दूँई गुन धनुष तुनीर तीर भरिगो ।  
...नीलकंज मुद्रित निहारि विद्यमान भानु सिंधु मकरदहि  
अलिद पान करिगो (शब्द०) ।

अलिपक—सज्ञा पुं० [सं० अलिम्पक] १. मेढक । २. कौकिल । ३.  
भौरा । ४. मधुमक्खी । ५. महुवे का पेड़ [को०] ।

अलि—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अलिनी] १. भौरा । अमर । उ०—३  
अलि चान, मोद रस लपट कतहि बकत वेराज ।—सूर०

१०।३७४२। २ कोयल। ३. कौवा। ४ विच्छू। ५ वृश्चिक राशि। ६ कुत्ता। ७ मदिरा।

अलि<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री [ सं० अलि, अली ] दे० 'अली'। उ०—कुँवर सो कुसल छेम अलि तेहि पल कुलगुरु कहँ पहुँवाई।—तुनमी ग्र०, पृ० ३६२।

अलिक—सज्ञा पुं [ सं० ] १ ललाट। कपान। २ दे० 'अलि'। उ०—सुनि लोन लोचनी नवल निधि नेही की अलका की अलिक अलक लटकति है।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २१०। अलिखित—वि० [ सं० ] १ जो लिखा न हो। २ मौखिक रूप से परंपराप्राप्त।

अलिगर्द—सज्ञा पुं [ सं० ] दे० 'अलिगर्द' [को०]।

अलिगर्द—सज्ञा पुं [ सं० ] पानी में रहनेवाला एक प्रकार का साँप [को०]।

अलिजिह्वा—सज्ञा स्त्री [ सं० ] गले की घाँटी। गले के भीतर का कौवा अलित्त<sup>७</sup>—वि० [ हिं० ] दे० 'अलिप्त'। उ०—मराव वाल आसन। अलित्त साय सासन। पृ० २०, ५७। ११६।

अलिदूर्वा—सज्ञा स्त्री [ सं० ] एक पौधा। मालादूर्वा [को०]।

अलिनी—सज्ञा स्त्री [ सं० ] भ्रमरी। उ०—गिरा अलिनि मुखपकज रोकी। प्रगट न लाज निमा अवलोकी।—मानस १। २५६।

अलिपक—सज्ञा पुं [ सं० ] १ भौरा। २ कोयल। ३ कुत्ता।

अलिपत्रिका—सज्ञा स्त्री [ सं० ] विछुआ घास।

अलिपर्णी—सज्ञा स्त्री [ सं० ] अलिपत्रिका। विछुआ घास [को०]।

अलिप्त—वि० [ सं० ] जो लिप्त न हो। निर्लिप्त। उ०—रहकर भी जल जाल में तू अलिप्त अरविद।—साकेत, पृ० २६४।

अलिप्रिय—सज्ञा पुं [ सं० ] अरुणकमल। लाल कमल [को०]।

अलिमक—सज्ञा पुं [ सं० ] १ कोयल। २ मेढक। ३ कमल का केसर [को०]।

अलिमोदा—सज्ञा स्त्री [ सं० ] गनियारी नामक पौधा [को०]।

अलियल<sup>७</sup>—सज्ञा पुं [ सं० ] अलिकुम, प्रा० अलिउल ] (अलिसमूह) भ्रमरगण। उ०—अलियल आज करत नह, गयँद कपोलौ गान।—बाँकीदास ग्र०, भा० १, पृ० ३१।

अलियाँ—सज्ञा स्त्री [ सं० ] १ एक प्रकार की खारी। २ वह गड्ढा जिसमें कोई वस्तु रखकर ढँक दी जाय।

अलिबल्लभ—सज्ञा पुं [ सं० ] लाल कमल [को०]।

अलिविरुत—सज्ञा पुं [ सं० ] भौरों की गूँज [को०]।

अली<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री [ सं० ] १ मखी। महचरी। महली। उ०—येहि भाँति गौरि असोस सुनि मिय सहिन हिय हरपी अली।—मानस, १। २३६। २ थेली। पक्ति। कतार।

अली<sup>२</sup>—सज्ञा पुं [ सं० ] अलिन [ स्त्री अलिनी ] १. भौरा। उ०—अली कली ही सौँ बँधयो, आगे कौन हवान।—विहारी र०, दो० ३८। २ विच्छू [को०]।

अलीक<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १ बेसिर पैर का। मिथ्या। झूठा। उ०—(क) सोई रावनु जग विदित प्रतापी। सुनेहि न सवनअलीक प्रतापी।—मानस ६। २५। (ख) ग्रनख मरी धुनि अतिन की वचन अलीक अमान।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ४८। २ अमान्य। अप्रिय [को०]। ३. अल्प। थोड़ा [को०]।

अलीक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं १ नापसद या अमत्य चीज। २ ललाट। ३ स्वर्ग। आकाश। ४. दुःख [को०]।

अलीक<sup>३</sup>—सज्ञा पुं [ सं० ] अ=नहीं + हिं० लीग ] अप्रतिष्ठा।

अलीक<sup>४</sup>—वि० मर्यादा रहित। अप्रतिष्ठित।

अलीनी—वि० [ सं० ] अलीकिन १ नापसद। अप्रिय। २ अमत्य [को०]।

अलीगर्द—सज्ञा पुं [ सं० ] दे० 'अलिगर्द' [को०]।

अलीगर्द—सज्ञा पुं दे० 'अलिगर्द' [को०]।

अलीजा<sup>७</sup>—वि० [ अ० ] अलीजाह ] बहुत मा। अधिक। बुनद। उ०—मोम महावर मूनी बीजा। अकरकरा अजमोद अलीजा।—सूदन ( शब्द० )। २ दे० 'अलीजाह'।

अलीन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [ सं० ] अलीन=मिला हुआ १ द्वार के चौखट की खड़ी लकी लकड़ी जिसमें पलना या फिवाट जड़ा जाता है। साह। बाजू। २ दालान या बरामदे के किनारे का ब्रामा जो दीवार से सटा होता है। इसका घेरा प्रायः आधा होता है।

अलीन<sup>२</sup>—वि० [ सं० ] अ=नहीं + लीन=रत १ अग्राह्य। अनुपयुक्त। उ०—'हे नखा! पुत्रवशियो का मन अलीन वस्तु कभी नहीं जाता'।—शकुंतला०, पृ० ३४। २ अनुचिन। बेजा। उ०—प्रति दल युक्त आप दनहीना। करि बैठे कछु कर्म अलीना।—सबल (शब्द०)।

अलीपित<sup>७</sup>—वि० [ हिं० ] दे० 'अलिप्त'।

अलीवद—सज्ञा पुं [ अ० ] अली+फा० वद ] एक प्रकार का आभूषण। एक प्रकार का बाजूबद।

अलील—वि० [ अ० ] बीमार। रोग।

अलीह<sup>७</sup>—वि० [ सं० ] अलीह ] मिथ्या। असत्य। उ०—कान मूढ़ कर रद गहि जीहा। एक कहहि अहे वात अलीहा।—मानस २। ४८।

अलु—सज्ञा पुं [ सं० ] एक छोटा जनपात्र [को०]।

अलुक्—सज्ञा पुं [ सं० ] व्याकरण में नमास का एक भेद जिसमें बीच की विभक्ति का लोप नहीं होता। जैसे—मरमिज, मनसिज, युधिष्ठिर, कर्णोजय, अगदकर, अमूर्धपंश्या, विरम-भर।

अलुक्क<sup>७</sup>—वि० [ सं० ] अ=नहीं + प्रा० लुक्क=छिपना ] न छिपनेवाला। उ०—अलुक्क लुक्क मान की कला अलुक्क धारही।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८३।

अलुज्जना<sup>७</sup>—क्रि० अ० [ हिं० ] दे० 'अलुभना'। उ०—खपरिन्ह खग अलुज्जि जुज्जहि सुभट भटन दहावही।—मानस, ६। ७८।

अलुज्जना<sup>७</sup>—क्रि० अ० [ हिं० ] दे० 'अलुभना' और 'उलभना'।

अलुटना<sup>७</sup>—क्रि० अ० [ सं० ] लुट=लोटना, लडखडाना ] लडखडाना। गिरना पडना। उ०—चले जात अलह मग, लागे बाग दीठि पर्यो, करि अनुराग हरि सेवा विस्तारिये। पकि रहे ग्राम माँगे माली पास भोग लिए, कहो लोर्ज, कही भुकि आई सब डारिये। चलयो दौरि राजा जहाँ, जाइके सुनाई बात, गात भई प्रीति, अलुटत पाँव धारिये।—प्रिया (शब्द०)।

अलुमीनम—सज्ञा पुं [ अ० ] एलुमीनियम ] एक धातु जो कुछ कुछ नीलापन लिए सफेद होती है और अपने हल्केपन के लिये

प्रसिद्ध है। इसके वरतन वनते हैं। इसमें रखने से खट्टी चीजें नहीं बिगड़ती।

अलूक<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उलूक'। उ०—सारस्म चिल्ह चात्रिग अलूक।—पृ० १०, ६१। १६७।

अलूप<sup>७</sup>—वि० [सं० लुप = अभाव] लुप्त। गायव। उ०—ससि औ सूर जो नर्मल तेहि लवाट की रूप। निसि दिन चलहि न सरवरि पावे तपि तपि होहि अलूप।—जायमी (शब्द०)।

अलूफा<sup>७</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अलो'। उ०—मुखमन के घर तारी लाओ अमी अलूफा पाओगा।—गुगल०, पृ० ५५।

अलूला<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० बुलबुला बलूता?] बुलबुला। भभूका। लपट। उद्गार। उ०—वानर वदन रधिर लपटाने छवि के उठत अलूले। रघुपति रन प्रताप रन सरवर, मनहुँ कमलकुल फूले।—हनुमान (शब्द०)।

अलेख<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जिसके विषय में कोई भावना न हो सके। दुर्बोध। अज्ञेय। उ०—अगुन अलेख अमान एक रम। राम सगुन भए भक्त प्रेम बस।—तुलसी (शब्द०)। २ जिसका लेख न हो सके। बेहिसाव। बेअदाज। अनगिनत। बहुत अधिक। उ०—योग यज्ञ जब ध्यान अलेख। तीरथ किये धरे बहु भेख।—कवीर (शब्द०)।

अलेख<sup>२</sup><sup>७</sup>—वि० [सं० अलक्ष्य] अदृश्य। उ०—सितासिन अरुनारे पानिप के राखि के को, तीरथ के पति हैं अलेख लखि हारे हैं।—मिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ३६।

अलेख<sup>३</sup><sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० लेख = देवता] देवता। देव। उ०—सजि निय नरभेषनि सहित अलेखनि करहि असेपनि गानन को।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २२६।

अलेखा<sup>७</sup>—वि० [सं० अलेख] १ जो गिना न जा सके। बेहिसाव। २ व्यर्थ। निष्फल। उ०—मूरदाम यह मति आए विन मव दिन गए अलेखे। का जानै दिनकर की महिमा अद्य नैन विन देवे।—सूर०, २। २५।

अलेखी<sup>१</sup><sup>७</sup>—वि० [सं० अलेख] गडबड मचानेवाला। अघेर करनेवाला। अन्यायी। उ०—वडे अलेखी लखि परे परिहरे न जाहीं। असमजम मो मगन हौं लीज गहि वाही।—तुलसी (शब्द०)।

अलेखी<sup>२</sup><sup>७</sup>—वि० [सं० अ + लेख्य] जो लिखी न गई हो या जिसका लेख न हो। उ०—लेखी मैं अलेखी मैं नहीं है छवि ऐसी औ, असमसरी समसरी दीवे कौं पर लियै।—मिखारी० ग्र० भा० २, पृ० १८६।

अलेपक<sup>१</sup>—वि० [सं०] किसी भी चीज में लीप्त न होनेवाला। निर्लिप्त निष्कलुप। वेदांग [को०]।

अलेपक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० परमात्मा। ब्रह्म।

अलेपा<sup>७</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अलेपक'। उ०—सर्व निवासी सदा अलेपा तोही मग समाई।—सतवाणी०, भा० २, पृ० ४६।

अलेल<sup>७</sup>—वि० [प्रा० अलि + लह = अप्रयोज्य अर्थात् प्रयोजन से अधिक] बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—घनमानद खेन अलेल दर्न बिलसै, सुलसै लट भूमि भुलि।—घनमानद, पृ० १५६।

अलेलहा—वि० [हिं०] दे० 'अलेल'।

अलेव<sup>७</sup>—वि० [हिं०] अलेख। अलिप्त। उ०—मुने अच मो सो गग सहजो ब्रह्म अलेव।—सहजो०, पृ० ४६।

अलैया<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० अलहिया] एक रागिनी। वि० दे० 'अलहिया'।

अलोइ<sup>७</sup>—वि० [सं० अलौकिक] अलौकिक। इस लोक में मिश्र। उ०—जपि राज दुजराज सम। तुम मति रू अचोड।—पृ० १०, २५। १५३।

अलोकी<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो देखने में न आए। अदृश्य। २ लोक शून्य। निर्जन। एकांत। ३ पुण्यहीन।

अलोकी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ पातालादि लोक। परलोक। २ जैन शास्त्रा नुसार वह स्थान जहाँ आकाश के अतिरिक्त धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय आदि कोई द्रव्य न हो और जिसमें मोक्षगामी के सिवा और किसी की गति न हो। ७ ३ बिना देखी बात। मिथ्यादोष। कलक। निंदा। उ०—(क) लक्ष्मण सीय तजी जब ते वन। लोक अलोकन पूरि रहे तन।—रामच०, पृ० १८१। (ख) पुत्र होइ कि पुत्रिका यह बात जानि न जाइ। लोक लोकन मैं अलोक न लीजिये रघुराइ।—रामच०, पृ० १६४। ४ मसार का विनाश [को०]।

यी०—अलोक सामान्य = अद्वितीय। अमामान्य।

अलोकी<sup>३</sup><sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अलोक] दे० 'अलोक'।

अलोकन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अदृश्यता। न दिखाई पड़ना [को०]।

अलोकना<sup>७</sup>—क्रि० सं० [सं० अलोकन] देखना। ताकना। उ०—रचक दीठि को मार लहे बहु वार विनोक्ति ईठि अनैसी। टूटिहै लागिहै लोक प्रतीकत वै हठ छूटिहै जूटिहै कैसी।—केशव (शब्द०)।

अलोकनीय—वि० [सं०] जो दीख न पड़े। अदृश्य [को०]।

अलोकित—वि० [सं०] अदेखा। बिना देखा हुआ [को०]।

अलोकी<sup>७</sup>—वि० [हिं० अलोक = निंदा + ई (प्रत्य०)] निन्दित। कलकी। वदनाम। उ०—अर्म सअमी, यज्ञ शोके मशोकी अधर्म अधर्मी अलोकी अलोकी।—रामच०, पृ० १५८।

अलोक्य—वि० [सं०] १ जो स्वर्ग दिलानेवाला न हो। अस्वर्ग। २ बुरे स्वभाववाला। क्रूर प्रकृति का [को०]।

अलोचन—वि० [सं०] १ जिसे आँख न हो। २ बिना खिडकी या झरोखावाला [को०]।

अलोना—वि० [सं० अलवण] [वि० स्त्री० अलोनी] १ बिना नमक का।

जिसमें नमक न पड़ा हो। उ०—कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सख सलोने। तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन माग अलने।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४६। २ जिसमें नमक न खाया जाय, जैसे—'रविवार को बहुत लोग अलोना व्रत रखते हैं'। ३ फीका। स्वादरहित। बेमजा। उ०—केसोदास बोले विन, बोल के सुने बिना हू हिलन मिलन बिना मोह क्यों सरतु है। कौ लग अलोनी रू प्याय प्याय राखौ नैन, नीर बिना मीन कैसे धीरज धरतु है।—केशव (शब्द०)।

अलोप<sup>७</sup>—वि० [सं० लोप] दे० 'लोप'। उ०—प्रलोप टोम के प्रयोग चाइ चोप सो धरै।—पद्माकर ग्र०, पृ० २५४।



अवकृपा—सज्ञा स्त्री [सं] कृपा का अभाव । नाखुशी । उदासीनता ।  
 अवकृष्ट<sup>१</sup>—वि० [सं] १ दूर किया हुआ । निकाला हुआ । २ निग-  
 लित । नीचे उतारा हुआ । ३. नीच । नीच जाति का ।  
 अवकृष्ट<sup>२</sup>—सज्ञा पुं घर में भाड़ू लगानेवाला । दास ।  
 अवकेज—वि० [सं] लटकते हुए वालोवाला [को०] ।  
 अवकेशी<sup>१</sup>—वि० [सं] अवकेशिन् १. फल न देनेवाला । २ लघ या  
 अल्प वालोवाला [को०] ।  
 अवकेशी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं फलहीन वृक्ष [को०] ।  
 अवकोकिल—वि० [सं] कोयल की आवाज में आकर्षित [को०] ।  
 अवकवत्त<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [सं] अवकवत्त देखना ।  
 अवकवत्त<sup>२</sup>—वि० [सं] १ न कहने योग्य । २ निषिद्ध । ३ अश्लील ।  
 ४ मिथ्या । झूठ ।  
 अवकवत्त<sup>३</sup>—वि० [सं] जो खुला न हो । बिना मुँह का—जैसे, बरतन  
 या फोडा [को०] ।  
 अवकद—वि० [सं] अवकद [दे० 'अवकद' ] ।  
 अवकदन—सज्ञा पुं [सं] अवकदन ऊँचे स्वर में रोना [को०] ।  
 अवकम—सज्ञा पुं [सं] १ उतराव । नीचे की ओर उतरना ।  
 अवकमण—सज्ञा पुं [सं] नीचे की तरफ उतरना । २ बौद्ध और  
 जैन धर्म के मतानुसार नर्ग में आना [को०] ।  
 अवकथ—सज्ञा पुं [सं] १. बदला । २ मूल्य । दाम । ३. भाड़ा ।  
 किगारा । ४ कर ।  
 अवकति—सज्ञा स्त्री [सं] अवकति १. अधोगमन । उतार ।  
 गिराव । २ झुकाव ।  
 अवक्रीतक<sup>१</sup>—वि० [सं] माँगकर लिया हुआ । माँगी लिया हुआ ।  
 विक्षेप—प्रवक्रीतक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचितक के  
 समान ही दंडविधान था ।  
 अवक्रीतक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं किराए या भाड़े पर लिया हुआ माल ।  
 अवक्रीतक<sup>३</sup>—सज्ञा पुं [सं] १ कर्कश स्वर । असह्य बड़ी बोनी । २  
 कोमला । गाली । ३. निंदा ।  
 अवक्लिन्न—वि० [सं] आर्द्र । गीला । तर । भीगा हुआ ।  
 अवक्लेद—सज्ञा पुं [सं] जनसाव [को०] ।  
 अवक्षय—सज्ञा पुं [सं] क्षय । नाश । हानि [को०] ।  
 अवक्षिप्त—वि० [सं] १ गिरा हुआ । २ जिसकी निंदा की गई हो ।  
 जिसपर लाठन लगाया गया हो ।  
 अवक्षुत्त—वि० [सं] जिसपर छीक पड़ गई हो ।  
 अवक्षेप—सज्ञा पुं [सं] १ आपत्ति । २. आरोप [को०] ।  
 अवक्षेपण—सज्ञा पुं [सं] [वि० अवक्षिप्त] १ गिराना । अधःपात  
 करना । नीचे फेंकना ।  
 विशेष—वैशेषिक शास्त्र में यह अवक्षेपण, आकुचन आदि पाँच  
 कर्मों या क्रियाओं में से एक है ।  
 २ आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज या शब्द की गति में  
 उनके किसी पदार्थ में होकर जाने में वक्रता का होना । ३  
 निंदा करना (शब्द०) । ४ पराभूत । करना या पछाड़ना [को०] ।  
 अवक्षेपणी—सज्ञा स्त्री (न०) दाग । नगाव [को०] ।

अवखडन—सज्ञा पुं [सं] अवखण्डन १. नष्ट करना । तोड़ फोड़  
 करना । २. खड खड या अलग अलग तोड़ना [को०] ।  
 अवखात—सज्ञा पुं [सं] गहरा गड्ढा ।  
 अवखाद—सज्ञा पुं [सं] अपवित्र या खराब भोजन । २ अनुपयुक्त  
 नैवेद्य [को०] ।  
 अवगड—सज्ञा पुं [सं] अवगण्ड ] चेहरे या गालों पर होनेवाली  
 फुडिया या फुसी । मुँहासा [को०] ।  
 अवगण—वि० [सं] १ स्वजनो से अलग रहनेवाला । एकांतवासी [को०]  
 अवगणन—सज्ञा पुं [सं] [वि० अवगणित] १ निंदा । तिरस्कार ।  
 अपमान । २ नीचा देखना । परामव । पराजय । हार ।  
 ३ गिनती ।  
 अवगणना—सज्ञा स्त्री [सं] दे० 'अवगणन' ।  
 अवगणित—वि० [सं] १ निन्दित । निरम्कृत । अपमानित । २.  
 नीचा देखा हुआ । पराजित । ३ गिना हुआ ।  
 अवगत—वि० [सं] १ विदित । ज्ञात । जाना हुआ । उ०—“वह  
 मुझे मनी मीनि अवगत है” ।—चन्द्र०, पृ० २१५ ।  
 कि० प्र०—होना = मानूँ होना । जान पड़ना ।  
 २ नीचे गया हुआ । गिरा हुआ । ३ वादा किया हुआ [को०] ।  
 अवगतता<sup>१</sup>—वि० [सं] अवगत + हिं० ना (प्रत्य०) [प्र० रूप,  
 अवगतता] सोचना । नमझना । विचारना । उ०—माम  
 मास नहि करि सकै छै मास अलवति ।—यामे डील न  
 कीजिये कवीर अवगति ।—कवीर (शब्द०) ।  
 अवगति—सज्ञा स्त्री [सं] १ बुद्धि । धारणा । समझा २ कुगति ।  
 नीच गति । ३ निश्चयात्मक ज्ञान ।  
 अवगय—वि० [सं] प्रातःस्नात । तडके नहाया हुआ [को०] ।  
 अवगनना<sup>१</sup>—वि० [सं] अवगणन १ निंदा करना । तिर-  
 स्कार करना । २ तुच्छ समझना । कम या घटिया समझना ।  
 ३ कम मूल्य या महत्व आदिना या नगाना ।  
 अवगम—सज्ञा पुं [सं] दे० 'अवगमन' [को०] ।  
 अवगमन—सज्ञा पुं [सं] देख सुनकर किसी बात का अभिप्राय  
 जान लेना । जानना समझना । २ दे० 'अवगति' ।  
 अवगर्<sup>१</sup>—वि० [सं] अवग्रह = ज्ञान [वि० स्त्री अवगरी] ज्ञान या  
 समझबूझना ।  
 अवगलित—वि० [सं] नीचे गिरा हुआ [को०] ।  
 अवगहना—वि० [सं] अवगाहन ] यथाना । याह लेना ।  
 अवगाह—वि० [सं] अवगाह १ निविड । छिपा हुआ । २ प्रविष्ट ।  
 बसा हुआ । निमग्न । ३ नीचा । गहरा [को०] । ४ जमता या  
 गाढा होता हुआ—जैसे, चून [को०] ।  
 अवगाद—सज्ञा पुं [सं] नाव से पानी उलीचने के लिये काठ का  
 एक छोटा पात्र [को०] ।  
 अवगाधना<sup>१</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अवगाहना' ।  
 अवगारना<sup>१</sup>—वि० [सं] अव + गृ ] समझाना । बुझाना ।  
 जताना । उ०—कहा कहत रे मधु मतवारे । हम जान्यो यह  
 प्राम नखा है वह तो प्रीरे न्यारे । दूर कहा बाके मुख  
 नागन कीन याहि अवगारे ।—तूर० (जन्द०) ।





अवकृपा—सज्ञा स्त्री० [म०] कृपा का अभाव। नाखुशी। उदासीनता।  
 अवकृष्ट<sup>१</sup>—वि० [म०] १ दूर किया हुआ। निकाला हुआ। २ निग-  
 लित। नीचे उतारा हुआ। ३ नीच। नीच जाति का।  
 अवकृष्ट<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० घर में भाड़ू लगानेवाला। दास।  
 अवकेश—वि० [म०] लटकते हुए बालोंवाला [को०]।  
 अवकेशी<sup>१</sup>—वि० [म० अवकेशिन्] १ फल न देनेवाला। २ लघु या  
 अल्प बालोंवाला [को०]।  
 अवकेशी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० फलहीन वृक्ष [को०]।  
 अवकोकिल—वि० [म०] कोयल की आवाज में आकर्षित [को०]।  
 अवकलन<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [म० अवकलण] देखना।  
 अवकल्य—वि० [म०] १ न कहने योग्य। २ निषिद्ध। ३ अश्लील।  
 ४ मिथ्या। झूठ।  
 अवकल्य—वि० [म०] जो खुला न हो। बिना मुँह का—जैसे, बरतन  
 या फोडा [को०]।  
 अवकन्द—वि० [म० अवकन्द] दे० 'अवकन्द'।  
 अवकन्दन—सज्ञा पुं० [म० अवकन्दन] ऊँचे स्वर में रोना [को०]।  
 अवकम्प—सज्ञा पुं० [म०] १ उतराव। नीचे की ओर उतरना।  
 अवकम्पण—सज्ञा पुं० [म०] नीचे की तरफ उतरना। २ बौद्ध और  
 जैन धर्म के मतानुसार नर्म में आना [को०]।  
 अवकम्प्य—सज्ञा पुं० [म०] १ वदला। २ मूल्य। दाम। ३ भाड़ा।  
 किराया। ४ कर।  
 अवकान्ति—सज्ञा स्त्री० [म० अवकान्ति] १ अवधोगमन। उतार।  
 गिराव। २ झुकाव।  
 अवकीलक<sup>१</sup>—वि० [स०] माँगकर लिया हुआ। मँगनी लिया हुआ।  
 विशेष—अवकीलक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचितक के  
 समान ही दंडविधान था।  
 अवकीलक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० किराए या भाड़े पर लिया हुआ माल।  
 अवकील्य—सज्ञा पुं० [म०] १ कर्कश स्वर। असह्य ङड़ी बोली। २  
 कोमला। गाली। ३ निंदा।  
 अवकिलान्न—वि० [म०] आर्द्र। गीला। तर। भीगा हुआ।  
 अवकलेद—सज्ञा पुं० [म०] जलसाव [को०]।  
 अवकल्य—सज्ञा पुं० [स०] क्षय। नाश। हानि [को०]।  
 अवक्षिप्त—वि० [म०] १ गिरा हुआ। २ जिसकी निंदा की गई हो।  
 जिमपर लाठन लगाया गया हो।  
 अवक्षुत्त—वि० [म०] जिमपर ठोक पड़ गई हो।  
 अवक्षेप—सज्ञा पुं० [स०] १ आपत्ति। २ आरोप [को०]।  
 अवक्षेपण—सज्ञा पुं० [म०] [वि० अवक्षिप्त] १ गिराना। अथ पात  
 करना। नीचे फेंकना।  
 विशेष—वैशेषिक शास्त्र में यह अवक्षेपण, आकुचन आदि पाँच  
 कर्मों या क्रियाओं में से एक है।  
 २ आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज या शब्द की गति में  
 उठके किसी पदार्थ में होकर जाने में वक्रता का होना। ३  
 निंदा उरना (शब्द०)। ४ पराभूत। कर्त्ता या पछाड़ना [को०]।  
 अवक्षेपणी—सज्ञा स्त्री० (म०) दाग। लगाम [को०]।

अवखडन—सज्ञा पुं० [म० अवखण्डन] १ नष्ट करना। तोड़ फोड़  
 करना। २. खड खड या अलग अलग तोड़ना [को०]।  
 अवखात—सज्ञा पुं० [म०] गहरा गड्ढा।  
 अवखाद—सज्ञा पुं० [स०] अपवित्र या खराब भोजन। २ अनुपयुक्त  
 नैवेद्य [को०]।  
 अवगड—सज्ञा पुं० [स० अवगण्ड] चेहरे या गालों पर होनेवाली  
 फुडिया या फुँसी। मुँहासा [को०]।  
 अवगण—वि० [स०] १ स्वजनो से अलग रहनेवाला। एकांतवासी [को०]  
 अवगणन—सज्ञा पुं० [म०] [वि० अवगणित] १ निंदा। तिरस्कार।  
 अपमान। २ नीचा देखना। पराभव। पराजय। हार।  
 ३ गिनती।  
 अवगणना—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अवगणन'।  
 अवगणित—वि० [स०] १ निन्दित। तिरस्कृत। अपमानित। २.  
 नीचा देखा हुआ। पराजित। ३ गिना हुआ।  
 अवगत—वि० [म०] १ विदित। जात। जाना हुआ। उ०—“वह  
 मुझे मन्त्री मालि अवगत है”।—चन्द्र०, पृ० २१५।  
 कि० प्र०—होना=मान्य होना। जान पड़ना।  
 २ नीचे गया हुआ। गिरा हुआ। ३. बाधा किया हुआ [को०]।  
 अवगतता<sup>७</sup>—कि० म० [म० अवगत + हि० ता (प्रत्य०)] [प्र० रूप,  
 अवगतता] सोचना। समझना। विचारना। उ०—मास  
 मास नहीं करि सकै छै मान अवगति।—यामेँ ढील न  
 कीजिये कवीर अवगति।—कवीर (शब्द०)।  
 अवगति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ बुद्धि। धारणा। समझ। २ कुगति।  
 नीच गति। ३ निश्चयात्मक ज्ञान।  
 अवगथ—वि० [स०] प्रातः स्नात। तडके नहाया हुआ [को०]।  
 अवगनना<sup>७</sup>—कि० अ० [स० अवगणन] १ निंदा करना। तिर-  
 स्कार करना। २ तुच्छ समझना। कम या घटिया समझना।  
 ३ कम मूल्य या महत्व आँकना या नगाना।  
 अवगम—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अवगमन' [को०]।  
 अवगमन—सज्ञा पुं० [म०] देख सुनकर किसी बात का अभिप्राय  
 जान लेना। जानना समझना। २ दे० 'अवगति'।  
 अवगर्<sup>७</sup>—वि० [स० अवग्रह=ज्ञान] [वि० स्त्री० अवगरी] ज्ञान या  
 समझबुझावा।  
 अवगलित—वि० [म०] नीचे गिरा हुआ [को०]।  
 अवगहना—कि० म० [म० अवगाहन] यहाना। याह लेना।  
 अवगाढ—वि० [स० अवगाढ] १ निविड। छिपा हुआ। २ प्रविष्ट।  
 घसा हुआ। निमग्न। ३ नीचा। गहरा [को०]। ४. जमता या  
 गाढा होता हुआ—जैसे, खून [को०]।  
 अवगाद—सज्ञा पुं० [स०] नाव में पानी उलीचने के लिये काठ का  
 एक छोटा पात्र [को०]।  
 अवगाधना<sup>७</sup>—कि० [हि०] दे० 'अवगाहना'।  
 अवगारना<sup>७</sup>—कि० स० [म० अव + गृ] समझाना। बुझाना।  
 जताना। उ०—कहा कहत रे मधु मतवारे। हम जान्यो यह  
 श्वाभ नखा है यह तो ओरे न्यारे। गूर कहा बाके मुख  
 नागत होन याहि अवगारे।—तूर० (ज० २०)।

अवगास<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [स० अवकाश, प्रा० ओगास] जगह। स्थान।  
मैदान। उ०—भए अवगाम कांस वन फूले। कत न फिरे  
विदेसहि भूले।—जायसी ग्र०, पृ० ३५६।  
अवगाह<sup>१</sup>—वि० [स० अवगाध] १ अथाह। गहगा। अत्यंत गभीर।  
उ०—(क) पेम समुद्र जो अति अवगाहा। जहाँ न वार न  
पार न थाहा।—जायसी ग्र०, पृ० ६०। २ अनहोनी। कठिन।  
उ०—तोरेहु धनुष व्याहुअ वगाहा। विनु तोरे को कुँअरि  
विआहा।—मानस, १।२४५।  
अवगाह<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ गहरा स्थान। २ सकट का स्थान। ३  
कठिनाई। उ०—दस्तगीर गाढ़े कई साथी। जँह अवगाह दीन्ह  
तहँ हाथी।—जायसी (शब्द०)।  
अवगाह<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ मीनर प्रवेश। हलना। २ जल में  
हलकर स्नान करना। ३ स्नान करने की जगह [को०]।  
४ डोम या बालटी [को०]। ५. भलीभाँति अध्ययन या  
छानबीन [को०]।  
अवगाहक—वि० [सं०] अवगाहन करनेवाला। उ०—अवगाहक सा  
उत्तर अचेतन के निस्तल में।—रजत०, पृ० १८।  
अवगाहन—सज्ञा पुं० [म०] १. पानी में हलकर स्नान करना।  
निमज्जन। उ०—शीतल जल में अवगाहन कर शौन शिला पर  
बैठ गया।—प्रेम०, पृ० ३१। प्रवेश। पैठ। ३ मथन।  
विलोडन। ४ अथाना। खोज। छानबीन। जैसे—नगर भर  
अवगाहन कर डाला, कही लडके का पता न लगा। ५ चित्त  
धँसाना। जीन होकर विचार करना। जैसे—खूब अवगाहन  
करो, तब इस श्लोक का अर्थ खुलेगा। वि० दे० 'अवगाह'।  
अवगाहना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [सं० अवगाहन] १ हलकर नहाना।  
निमज्जन करना। उ०—जे सर सरित राम अवगाहहि।  
तिन्हहि देव सर सरित सराहहि।—तुलसी (शब्द०)। २.  
डूबना। पैठना। धँसना। मग्न होना। उ०—भूप रूप गुन  
सील सराही। रोवहि सोक सिधु अवगाही।—तुलसी  
(शब्द०)।  
अवगाहना<sup>२</sup>—क्रि० सं० १ यथाना। छानना। छानबीन करना।  
उ०—अवगाहन, सीतहि चाहन, यूषप यूष सबै पठाए।—राम  
च०, पृ० ६०। (ख) सहज सुगधि शरीर की, दिसि विदिसन  
अवगाहि। द्वती ज्यो आई लिये, केशव शूर्पनखाहि।—केशव  
(शब्द०)। २ विचलित करना। हलचल डालना। मथना।  
उ०—सुनहु सूत तेहि काल, भरत तनय रिपु मृतक लखि।  
करि उर कोप कराल, अवगाही सेना सकल।—केशव  
(शब्द०)। ३ चलाना। हिलाना। डुलाना। उ०—नद सोक  
विषाद कुसाग्र ग्रसे करि धीरहि तें अवगाहनो है। हित  
दीनदयाल महा मृदु है कठिनो अति अत निबाहनो है।—दीन  
ग्र० पृ० २५८। ४ सोचना। विचारना। ममभना। उ०—  
(क) अगसिगार स्वाम हित कीन्हे, वृथा होन ये चाहत। सूर  
स्याम आपे की नाहि, मन मन यह अवगाहत।—सूर०, १०।  
२०२८। (ख) पच्छिम में याही में बडो है राजहंस एक सदा  
नीर छीर के विवेक अवगाहेते।—दूबह (शब्द०)। ५  
धारण करना। गहरण करना। उ०—जाही समय जौन ऋतु  
आवै। तवही ताको गुन अवगाहै।—लाल (शब्द०)।

अवगाहित—वि० [म०] १ नहाया हुआ। २ जिसमें नहाया गया  
हो। ३ अच्छी तरह मनन किया गया।  
अवगाही—वि० [सं० अवगाहिन] १ खोजनेवाला। अनुसंधान करने-  
वाला। २ चित्तन करनेवाला। ३ थाह लगानेवाला। गहरे  
तक पैठनेवाला। ४ स्नान करनेवाला [को०]।  
अवगाह्य—वि० [म०] स्नान करने योग्य (प्राणी)। २ स्नान के  
निमित्त उचित (स्थान)। ३ अध्ययन, मनन करने योग्य  
[को०]।  
अवगीत<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जिमकी निद्रा की गई हो। निद्रित। २  
वदमाश। दुष्ट। फिर फिर देखा हुआ। सुपरिचित [को०]।  
अवगीत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ निद्रा। २ निद्र या अमद्र गीत। वेमुरा गीत  
[को०]।  
अवगुठन—सज्ञा पुं० [म० अवगुठन] [वि० अवगुठित] १  
ढँकना। छिपाना। २ रेखा से घेरना। ३ पर्दा। ४ घूँघट।  
दुर्का। ५ भाङू [को०]। ६ धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयुक्त  
अंगुलियों की एक मुद्रा [को०]।  
अवगुठनपत्ती—वि० स्त्री० [म० अवगुठनवती] घूँघटवाली। उ०—  
किनु वह अर्ध अवगुठनवती कोन?—इरावती, पृ० १०१।  
अवगुठिका—सज्ञा पुं० [म० अवगुठक] १ घूँघट। २ जवनिता।  
पर्दा। ३ चिक।  
अवगुठित—वि० [सं० अवगुठित] ढँका हुआ। छिपा हुआ। २ चूर  
किया हुआ। चूर्णित [को०]।  
अवगुडित—वि० [सं० अवगुडित] चूर्ण किया हुआ [को०]।  
अवगुफन—सज्ञा पुं० [सं० अवगुम्फन] १ गूथना। गुहना। २  
ग्रथन। बुनना।  
अवगुफित—वि० [म० अवगुम्फित] १ गूथा हुआ। गुहा हुआ। २  
बुना हुआ। गथित।  
अवगुण—सज्ञा पुं० [सं०] १ दोष। दूषण। ऐव। २ अपराध। बुराई।  
खोटाई।  
अवगुण<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अवगुण'। उ०—गुन अवगुन  
जानत सब कोई, जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।—मानस,  
१।५।  
अवगुरण—सज्ञा पुं० [सं०] धमकाना। क्षति पहुँचाने की धमकी  
देना [को०]।  
अवगूहन—सज्ञा पुं० [म०] १ छिपाना। २ आलिंगन करना [को०]।  
अवगोरण—सज्ञा पुं० [सं०] २० अवगुरण [को०]।  
अवग्गी—वि० [सं०] नियंत्रण में न रहनेवाला [को०]।  
अवग्या<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अवज्ञा'। उ०—तौ कहि इती  
अवग्या उन्ह पै, कैसे सही परी।—रोहार् अमि० ग्र०,  
पृ० ३३६।  
अग्रह—सज्ञा पुं० [सं०] १ रुकावट। अटकाव। अडचन। बाधा।  
२ वर्षा का अभाव। अनावृष्टि। ३ बाध। वद। ४ व्याकरण  
में सधिविच्छेद। ५ अनुग्रह का उलटा। ६ गजनमूह। ७  
हाथी का ललाट। हाथी का माथा। ८ स्वभाव। प्रकृति।  
९ शाप। कोपना। १० लुप्ताकार का चिह्न। खंडाकार (S)  
[को०]। अकुश [को०]।

अवग्रहण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अनादर। अवमान। अपमान। २ रोक। बाधा [को०]। ३ ज्ञान [को०]।

अवग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सवधनिच्छेद। अनगाव। २. बाधा [को०]। ३ कोसना [को०]। ३० 'अवग्रह'।

अवघट(७)—वि० [सं० अव + घट = घाट] कुघाट। अटपट। अडपट। विकट। दुर्गम। कठिन। दुर्घट। उ०—(क) सरिता वन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहि वर वाटा।—मानस, ३७ (१क)। (ख) घाट वाट अवघट यमुना तट वार्ते कहत बनाय। कोऊ ऐसी दान लेन है कौने सिखै पठाय।—सूर (शब्द०)।

अवघट्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ विल। गुफा। २. पीसने की चक्की। ३ हिजाना [को०]।

अवघट्टन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पीमना। मर्दन। २ दो वस्तुओं का परस्पर संपर्क। मिलन [को०]।

अवघर्षण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घसना। मांजना। रगड़ना [को०]।

अवघाटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हार [को०]।

अवघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चोट। ताडन। घन। प्रहार। २. कूटना [को०]। ३. अकाल मृत्यु। अस्वाभाविक मृत्यु [को०]।

अवघाती—वि० [सं० अवघातिन्] अवघात करनेवाला [को०]।

अवघूर्ण<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ववडर [को०]।

अवघूर्ण<sup>२</sup>—वि० क्षुब्ध [को०]।

अवघूर्णन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चक्कर काटना। ववडर [को०]।

अवघोरित—वि० [सं०] चारों ओर से ढँका या मढा हुआ [को०]।

अवघोषक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भूड़ी खबरें उढानेवाला व्यक्ति।

विशेष—चद्रगुप्त मौर्य के समय में ऐसे लोगो को फाँसी पर चढाने का दंड दिया जाता था।

अवघोषणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घोषणा [को०]।

अवच—क्रि० वि० [सं०] नीचे [को०]।

अवचट<sup>१</sup>(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अव = नहीं + हिं घट = जल्दी अथवा स० अव = थोडा + हिं चित] अनजान। अवचका उ०—पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुगाला।—मानस, १।२४८।

अवचट<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] कठिनाई। अवघट। अडस। चपकुलिस। जैसे—अवचट में पड़कर मनुष्य क्या नहीं करता।

अवचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वचन का अभाव। मौन। २ बुरा वचन। निंदा। दुर्वचन।

अवचनीय—वि० [सं०] १. जो कहने योग्य नहीं। २. अश्लील। फूहड।

अवचय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चुनकर इकट्ठा करना। फूल या फल तोड़कर बटोरना। उ०—नया नया उल्लास कुसुम अवचय का मन में उठता था।—प्रेम०, पृ० १७।

अवचल(७)—वि० [सं० अवचल] अवचल।—उ०—पुहमी जोड़ अवचल प्रेम।—रघु० ह० पृ० १२४।

अवचस्कर—वि० [सं०] मौन। चुप [को०]।

अवचाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] फूल फल आदि झूलना [को०]।

अवचार<sup>१</sup>—वि० [सं०] नीचे या ऊपर की ओर जाना जाता हुआ [को०]।

अवचार<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १. रास्ता। सडक। २. कार्यक्षेत्र [को०]।

अवचित—वि० [सं०] १ चुगा हुआ। बटोरा हुआ। २ आवाद [को०]।

अवचूड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अवचूड] घनना के प्रगते भाग में नीचे झूलता हुआ वस्त्र [को०]।

अवचूडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अवचूडा] माता [को०]।

अवचूटिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] टिप्पणी। तथु व्याख्या [को०]।

अवचूरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अवचूरि] टीका। टिप्पणी।

अवचूर्णित—वि० [सं०] १ विचूर्ण किया हुआ। भलीभाँति पीसा हुआ। २ मिश्रित किया हुआ। मिनाया हुआ [को०]।

अवचूल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अवचूड [को०]।

अवचूलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चँवर गाय की पूँछ के बाल या मोरपख का बना हुआ चँवर [को०]।

अवचेतन<sup>१</sup>—वि० [सं०] अवचेतना सवधी। आशिक चेतनावाला।

अवचेतन<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मनोविज्ञान के अनुसार मन का वह भाग जो चेतन मन में न होने पर भी थोडा प्रयास करने में चेतना में लाया जा सके। इसका स्थान अह तथा अचेतन के बीच माना गया है।

अवचेतना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'अवचेतन'।

अवच्छेद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ढकना। मरपोश।

अवच्छाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ढकना। अवच्छद [को०]।

अवच्छिन्न—वि० [सं०] १ जिसका किसी अवच्छेदक पदार्थ में अवच्छेद किया गया हो। अग्न किया हुआ। पृथक। २ विशेषणयुक्त। ३ सीमित।

अवच्छुरित<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कठोर या कर्कश हास्य [को०]।

अवच्छुरित<sup>२</sup>—वि० मित्र जुना। मिश्रित [को०]।

अवच्छेद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवच्छेद्य, अवच्छिन्न] १ अलगव। भेद। २ इयत्ता। हृद। सीमा। ३ अग्रधारण। निश्चय। छानबीन। ४ संगीत में मृदंग के बारह त्रयों में से एक। ५ परिच्छेद। विभाग। ६ किसी वस्तु का वह गुण या धर्म जिसमें अन्य पदार्थ पृथक् प्रतीत हो [को०]। ७ व्याप्ति [को०]।

अवच्छेदक<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ छेदक। भेदकारी। अलग करनेवाला। २. इयत्ताकार। हृद बाँधनेवाला। ३ अवधारक। निश्चय करनेवाला।

अवच्छेदक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ विशेषण। २ नीमा। इयत्ता [को०]।

अवच्छेदकता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. अवच्छेद करने का भाव। पृथक् करने का धर्म। अलग करने का धर्म। २ हृद या सीमा बाँधने का भाव परिमिति।

अवच्छेदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. काटना। विभाजन। खंड करना। २. सीमा निर्धारण करना [को०]।

अवच्छेद्य—वि० (सं०) अलगव के योग्य।

अवच्छेपणी—सञ्ज्ञा पुं० (सं० अवक्षेपणी) दहाना। दाँती। लंगाम।

अवच्छग(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्सङ्ग] २० उछा।

अवजय—सञ्ज्ञा स्त्री० (सं०) द्वार। पराजय [को०]।

अवजित—वि० [सं०] हारा हुआ । विजित । तिरस्कृत [को०] ।  
अवज्जि(उ)—सज्ञा पुं० [फा० आवाज] १ पुकार । आवाज । २ शोर-  
गुल । उ०—पुनी धाह जसवत नृप, आयो सेन मुमज्जि ।  
ढलकि ढाल वहल मिलिय, पुव्व भडाउ अवज्जि ।  
पृ० रा०, ४।२५ ।

अवज्ञा—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवज्ञात, अवज्ञेय] १ अपमान । आना-  
दर । २ आज्ञा का उल्लंघन । आज्ञा न मानना । अवहेता । ३  
पराजय । हार । ४ वह काव्यालंकार जिसमें एक वस्तु के गुण  
या दोष से दूसरी वस्तु का गुण या दोष न प्राप्त करना दिख-  
लाया जाय, जैसे,—करि वेदात विचार हू शठहि विराग न  
होय । रच न मृदु मेनाक भो निशि दिन जल मे सोय ।—  
(शब्द०) ।

अवज्ञात—वि० [सं०] अपमानित । तिरस्कृत ।

अवज्ञान—सज्ञा पुं० [सं०] अनादर । अप्रतिष्ठा [को०] ।

अवज्ञेय—वि० [म०] अपमान के योग्य । तिरस्कार के योग्य ।

अवझरि(उ)—सज्ञा स्त्री० [प्रा० श्रोज्झरी] दे० 'श्रोझरी' । उ०—भ्रा-  
भोरी तोरि अवझरि उजरि । गहि हमेन हम्मीर निय ।—  
पृ० रा०, ६।३३५ ।

अवझोरा(उ)—सज्ञा स्त्री० [प्रा० श्रोज्झा] उलझन । भ्रम । गाँठ ।  
उ०—चित्र वचित्र इहै अवझोरा । तजि चित्रै चितु राखि  
चितेरा ।—कवीर ग्र०, पृ० ३१० ।

अवट—सज्ञा पुं० [सं०] १ गड्ढा । कुड । २ हाथियों के फँसाने के  
लिये गड्ढा जिसे तृणादि से आच्छादित कर देते हैं । खाँडा ।  
माला । ३ गले के नीचे कंधे और कंधे आदि का गड्ढा । ४  
एक नरक का नाम । ५ दाँत का गड्ढा । दंतकोटर [को०] ।  
६ बाजीगर । ऐंद्रजानिक [को०] ।

यौ०—अवटनिरोधन, अवटविरोधन = नरकविशेष का नाम ।

अवटकच्छप—सज्ञा पुं० [सं०] १ गड्ढे के भीतर रहनेवाला कच्छप  
अर्थात् अज्ञानी मनुष्य [को०] ।

अवटना<sup>१</sup>(उ)—क्रि० सं० [सं० आवर्तन, प्रा० आवट्ठन, आवट्टन] १  
मथना । आलोचन करना । २ किसी द्रव पदार्थ को आग पर  
रखकर चलाकर गाढ़ा करना । उ०—(क) परम धर्ममय पय  
दुहि भाई । अवट अनल अकाम बनाई ।—मानस, ७।११७ ।  
(ख) कान्ह माखन खाहु हम सु देखै । सद्य दधि दूध  
ल्याई अवटि हम, खाहु तुम सफल करि जनम लेखै ।—सूर०,  
१।१५६६ ।

मुहा०—अवटि मरना = भ्रमना । मारे मारे फिरना । चक्कर  
खाना । दुख उठाना । उ०—जो आचरन विचारहु मेरो कलप  
कोटि लगि अवटि मरौ । तुलसिदास प्रभु-कृपा-विलोकनि गोपद  
ज्यो भवमिधु तरी ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२६ ।

अवटना<sup>२</sup>(उ)—क्रि० अ० [सं० अटन] घूमना फिरना ।

अवटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ गड्ढा । २ कुआँ । ३ छेद [को०] ।

अवटीट—वि० [सं०] चपटी नाकवाला । नकचिपटा ।

अवटु—सज्ञा पुं० १ बिल । २ कुआँ । ३ गले का पिठना  
हिस्सा । ४ शरीर का दवा हुआ भाग । ५ एक प्रकार  
का वृक्ष ।

अवटुज—सज्ञा पुं० [सं०] मिर के पिछने भाग का बाग [को०] ।

अवडग—सज्ञा पुं० [म० अवटङ्ग] हाट । वाजार [को०] ।

अवडीन—सज्ञा पुं० [म०] पक्षी की उड़ान । पक्षियों का ऊपर से नीचे  
की तरफ आना [को०] ।

अवडेरौ—सज्ञा पुं० [सं० अव + हि० रार या राट] भ्रमेता । भ्रमट ।  
वखड़ा ।

अवडेरना(उ)<sup>१</sup>—क्रि० सं० [म० उदात्तन या हि० अवडेर] १ न बनने  
देना । न रहने देना । उ०—मोगनाय मोरे ही सरोप होत  
थोरे दोष, पोपि तोपि यापि आपने न अवडेरिये ।—तुलसी  
ग्र०, पृ० २५६ । २ चक्कर में डालना । फेर में डालना ।  
उ०—(क) पच कहे मिय मती विग्राही । पुनि अवडेरि मर-  
एन्हि ताही ।—मानस, १।२८ ।

अवडेरना(उ)<sup>२</sup>—वि० [हि० अवडेर] १ घुमाव फिरोनाला । चक्कर-  
दार । २ वेढव । कुढव । उ०—जननी जनक तज्यो जनमि  
करम विनु विप्रिहु सृज्यो अवडेर ।—तुलसी ग्र०, पृ० १७२ ।

अवडर(उ)—वि० [सं० अव + हि० डरना] दे० 'वोडर' । उ०—(क)  
आसुतोप तुम्ह अवडर दानी । आगनि हरहु दीन जनु जानी ।—  
मानस, २।४४ । (ख) लच्छनी वह लच्छ दीन्ही दान अवडर  
डरन ।—सूर०, १।२०२ ।

अवतक्षण—सज्ञा पुं० [म०] टुकड़े में काटी गई कोई वस्तु [को०] ।

अवतत—वि० [म०] १ ढँका हुआ । आवृत । २ फैला हुआ । विस्तृत  
[को०] ।

अवतमस—सज्ञा पुं० [सं०] १ साधारण अवकार । दीर्घ अवकार ।  
२ अधकार । ३ अस्पष्टता । गुह्यता [को०] ।

अवतरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ उतारना । पार होना । २ उतार । २  
शरीर धारण करना । जन्म ग्रहण करना । ३ नकन । प्रति-  
कृति । ४ किसी पुस्तक या लेख का ज्यों का त्यों उतारा या  
नकन किया हुआ अंश । उद्धरण । उ०—ऊपर दिए अवतरणों  
में हम स्पष्ट देखते हैं कि किमी उक्ति की तह में काव्य की  
सरमता बराबर पाई जायगी ।—रस०, पृ० ३६ । ५  
प्रादुर्भाव । ६ सीढ़ी जिनमें उतरे । घाट की सीढ़ी । ७ घाट ।  
८ तीर्थ [को०] । ९ परिचय । उपोद्धान । [को०] ।

यौ०—अवतरणचिह्न । अवतरणमगल ।

अवतरणचिह्न—सज्ञा पुं० [सं०] उल्टे नगे हुए विराम चिह्न  
जिनके बीच किमी का कथन उद्धृत किया गया हो, जैसे—' ।

अवतरणमगल—सज्ञा पुं० [सं० अवतरणवद्गल] अद्धापूरवक किया  
गया स्वागत [को०] ।

अवतरणिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ ग्रंथ की प्रस्तावना । उपोद्घाता  
अवतरणी । २ परिपाटी । रीति ।

अवतरना(उ)—क्रि० अ० (सं० अवतरण) प्रवृत्त होना । उपजना ।  
जन्मना । उ०—(क) इच्छा रूप नारि अवतरि । तामु नाम  
गायत्री धरी ।—कवीर (शब्द०) । (ख) बहुरि हिमाचल के  
अवतरि । समय पाइ सिव बहुरी वरी ।—सूर०, ४।५ ।

अवतरणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ ग्रंथ की प्रस्तावना के लिये भूमिका  
जो इस अभिप्राय से लिखी जाती है कि विषय की संगति भिन्न  
जाय । उपोद्घात । २. रीति । परिपाटी ।

अवतारित—वि० [हि० अवतरना] १. नीचे आया हुआ। उतरा हुआ।  
उ०—अवतारित हुआ मैं, आप उच्चफल जैसा।—साकेत, पृ०  
२१६। २. जन्मा हुआ। शरीर ग्रहण किया हुआ। ३. किसी  
दूसरे स्थल से लिया हुआ। ४. अवतीर्ण।

अवतर्पण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शांति प्रदान करनेवाला साधन। अनुकूल  
उपचार [को०]।

अवताडन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अवताडन] १. रौंद देना। कुचल देना। २.  
आघात करना या चोट देना [को०]।

अवतान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन। आवरण। २. लटका हुआ  
चेहरा। ३. धनुष की प्रत्यक्षा ढीली करना। ४. तानना।  
कैलाना। ५. लनाश्रो का फौनाव। ६. आतपत्र। चंदवा [को०]।

अवतापी—वि० [सं० अवतापिन्] १. ताप देनेवाला। तपानेवाला।  
२. (स्थान) जो अधिक तप्त हो [को०]।

अवतार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. उतरना। नीचे आना। २. जन्म।  
शरीरग्रहण। उ०—(क) नव अवतार दीन्ह विधि आजू।  
रही छार भइ मानुष माजू।—जायसी (शब्द०)। (ख) प्रथम  
दच्छगृह तव अवतारा। मती नाम तव रहा तुम्हारा।—  
तुलसी (शब्द०)। ३. पुराणों के अनुसार किसी देवता का  
मनुष्यादि समारी प्राणियों का शरीर धारण करना। ४. विष्णु  
का मसार में शरीर धारण करना।

विशेष—पुराणानुसार विष्णु भगवान् के २४ अवतार हैं—ब्रह्मा,  
वाराह, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ,  
पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वतरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम,  
वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, हम और हयग्रीव,  
इनमें से १० अर्थात् मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशु-  
राम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि प्रधान माने जाते हैं।  
५. मृष्टि। शरीररचना। उ०—कीन्हेसि घरी सग  
पतारु। कीन्हेसि वरन वरन अवतारु।—जायसी (शब्द०)।  
६. अवतरण भूमि। उतरने का स्थान [को०]। ७. तानाव [को०]।  
८. अनुवाद [को०]। ९. विषयप्रवेश। आमुख। भूमिका [को०]।  
१०. तीर्थ [को०]। ११. विशिष्ट व्यक्ति [को०]। १२. उत्पत्ति।  
विकास [को०]।

मुहा०—अवतार लेना = शरीर ग्रहण करना। जन्म लेना। उ०—  
अमन्त सहित मनुज अवतारा। लेइहउं दिनकर वम-उदारा।—  
तुलसी (शब्द०)। अवतार घटना = जन्म ग्रहण करना। उ०—  
भुव की रक्षा करन जु कारण धरि वराह अवतार। पीछे कपिन  
रूप हरि धारयो कीन्हो साख विचार।—सूर (शब्द०)।  
अवतार करना (उ०) = शरीर धारण करना। उ०—ग्रहन असित  
सित वपु उनहार। करत जगन में तुम अवतार।—सूर (शब्द०)।  
यो०—अवतारकथा। अवतारमन्त्र = भगवान् से अवतार ग्रहण  
करने के लिये की गई प्रार्थना। अवतारवाद।

अवतारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवतारणा] १. उतारना। नीचे  
लाना। उ०—कूर कर्म की अवतारणा से भी एक बार सद्धर्म  
के उठाने की आकांक्षा थी।—स्कंद०, पृ० ८४। २. उतारना।  
[को०]। ६. पूजा। अर्चा [को०]। ७. पोशाक का छोर या  
किनारा [को०]।

अवतारना (उ०)—क्रि० सं० [सं० अवतारण] १. उत्पन्न करना।  
रचना। उ०—चाँद जैस सग विधि अवतारा। दीन्ह कलक  
कीन्ह उजियारा।—जायसी (शब्द०)। २. उतारना। जन्म  
देना। उ०—(क) सिधनदीप राजधरवारी। महा स्वरूप दई  
अवतारी।—जायसी (शब्द०)। (ख) धन्य कोख जिहि तोकौ  
राख्यौ धनि घरि जिहि अवतारी। धन्य पिता माता तेरे छवि  
निरखति हरि महतारी।—सूर०, पृ० १०। ७०३।

अवतारवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अवतार + वाद] भगवान् का मनुष्य आदि  
का शरीर धारण करने का सिद्धांत।

अवतारी<sup>१</sup>—वि० [सं० अवतारिन्] १. उतरनेवाला। अवतार ग्रहण  
करनेवाला। उ०—धनि यशुमति जिन वस किये अविनाशी  
अवतारि। धनि गोपी जिनके सदन माखन खात मुरारि।—  
सूर (शब्द०)। २. देवाशधारी। अलौकिक। उ०—कहत  
बाल जसुमति धनि मैया। बडो पूत ते जायो। यह कोउ आहि  
पुरुष अवतारी भाग हमारे अयो।—सूर०, पृ० १०। २००६।

अवतारी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० २४ मात्राश्रो का एक छंद जिसके  
७५५२५ प्रस्नार हैं। रोलो, दिक्पाल, शोभा और लीला आदि इसके  
मेद हैं।

अवतीर्ण—वि० [सं०] १. उतरा हुआ। अवतरित। २. अर्पित [को०]।  
३. व्यतीत, जैसे रात्रि [को०]। ४. पार किया हुआ [को०]।  
५. स्नात [को०]। ६. अवतार ग्रहण किया हुआ [को०]।  
७. उदाहृत। उद्धृत।

अवतोका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री या गाय जिसका गर्भपात किसी  
दुर्घटनावश हो गया हो [को०]।

अवध्य (उ०)—वि० [सं० अवस्तु] निरर्थक। व्यर्थ। अवस्तु। उ०—  
तुम चित छड़ि हम घर चलहि। इह अवध्य पत्रग।—पृ०  
रा०, पृ० ६६। ३५६।

अवदश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मद्यमान के समय जो कवाव, बड़े आदि खाए  
जाते हैं। गजक। चाट।

अवदस (उ०)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अवदश'।

अवदग्ध—वि० [सं०] जला हुआ [को०]।

अवदमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अवदमन] अच्छी तरह ढवाना। दमन  
करना।

अवदरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तोड़ना फोड़ना। अच्छी तरह दरना या  
पीसना [को०]।

अवदाघ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तपन। जलन। २. ग्रीष्म ऋतु [को०]।

अवदात—वि० [सं०] १. शुभ्र। उज्ज्वल। श्वेत। उ०—हूँसी रानी  
मुनकर वह बात, उठी अनुमाम आमा अवदात।—साकेत, पृ०  
२७। २. शुद्ध। स्वच्छ। विमल। निर्मल। उ०—शोच अस्ति  
पोच उर मोच दुखदानिए मानु यह बान अवदात मम मानिए।  
—रामच०, पृ० ७४। ३. शुक्ल वर्ण का। गौर। ४. पीत  
वर्ण का। पीला। ५. खूबसूरत। सुंदर [को०]। ६. उत्तम।  
पुण्यशील [को०]।

अवदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. प्रशस्त कर्म। २. शुद्ध आवरण। अच्छा  
काम। ३. खडन। तोड़ना। ३. पराक्रम। शक्ति बल। ४.  
अतिक्रम। उल्लंघन। ५. शुद्ध करना। पवित्र करना। माफ  
करना। ६. वीरगमूल। पस। उशीर। गाँबरे की जड़।



अवदान्य—वि० [सं०] १. पराक्रमी । बली । २. अतिक्रमणकारी ।  
सीमा का अतिक्रमण करनेवाला । ३. व्यय न करके वनसवय  
करनेवाला । कज्जम ।

अवदारक<sup>१</sup>—वि० [सं०] विदारण करनेवाला । विभाग करनेवाला ।  
अवदारक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० मिट्टी खोदने के लिये लोहे का एक मोटा डडा ।  
खता । रभा ।

अवदारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. विदारण करना । विभाग करना ।  
२. ताडना । फोडना । ३. मिट्टी खोदने का औजार ।  
रभा । खता ।

अवदारित—वि [सं०] विदारण किया हुआ । विदीर्ण । टूटा फूटा ।  
अवदाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अत्यधिक गर्मी । भीषण ताप । २. आग  
लगाना । जलना । ३. कुश की जड़ । खम [को०] ।

अवदीर्ण—वि० [सं०] १. विभक्त । टूटा हुआ । २. घबराया हुआ ।  
उदास । ३. पिघला या घुना हुआ [को०] ।

अवदोह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दूध । दुग्ध । २. दूध दुहना । दोहन ।  
अवद्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] १. अधम । पापी । २. गहित । निच । ३.  
त्याज्य । ४. कुत्सित । निकृष्ट ।

अवद्य<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १. दोष । २. पाप । ३. निदा ४. लज्जा [को०] ।  
अवद्य<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अयोध्या] १. कोशल । साकेत एक देश जिसकी  
प्रधान नगरी अयोध्या थी । २. अयोध्या नगरी ।

अवद्यु<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अवधि] दे० 'अवधि' ।

अवद्य<sup>३</sup>—वि० [सं०] अवध्य । न मारने योग्य [को०] ।

अवधान<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मन का योग । चित्त का लगाव ।  
मनोयोग । २. चित्त की वृत्ति का निरोध करके उसे एक ओर  
लगाना । समाधि । ३. ध्यान । सावधानी । चौकसी ।

अवधान<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आधान] गर्भ । गर्भाधान । पेट । उ०—  
जैसे अवधान पूर होइ मासू । दिन दिन हिये होइ परगासू ।—  
जायसी ग्र०, पृ० १६ ।

अवधानी—वि० पुं० [सं० अवधानिन्] ध्यान रखनेवाला । ध्यानी [को०] ।

अवधार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निश्चय । सोमा [को०] ।

अवधारक—वि० [सं०] अवधारण करनेवाला । किसी एक विषय  
पर अपने को केंद्रित करनेवाला [को०] ।

अवधारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवधारित, अवधारणीय] १.  
विचारपूर्वक निर्धारण करना । निश्चय । २. शब्दार्थ की  
इयत्ता स्थिर करना [को०] । ३. शब्द आदि पर वग देना [को०] ।  
४. केवल विषय पर ध्यानस्थ होना [को०] ।

अवधारणीय—वि० [सं०] विचार करने योग्य । निश्चय योग्य ।

अवधारणा—वि० [सं०] अवधारण । १. धारण करना । ग्रहण  
करना । उ०—विप्र असीम विनित अवधारा । सुवा जीव  
नहि करी निरारा । जायसी (शब्द०) । २. निश्चय करना ।  
समझना ।

अवधारित—वि० [सं०] निश्चित । निर्धारित ।

अवधार्य—वि० [सं०] निश्चय करने योग्य । अवधारण करने योग्य ।

अवधावन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पीछा करना । २. साफ करना । धोना  
[को०] ।

अवधावित—वि० [सं०] १. पीछा किया हुआ । जिसका पीछा किया  
गया हो । २. साफ किया हुआ [को०] ।

अवधि<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीमा । हृद । पराकाष्ठा । उ०—  
जिन्हहि विरचि बड भयेउ विधाता । महिमा अवधि राम  
पितृ नाता ।—तुलसी (शब्द०) । २. निर्धारित समय ।  
मीमाद । उ०—रह्यो ऐचि, अनु न लहे अवधि दुमासनि  
वीर । प्रानी बाढनु विरह ज्यों पचानी को वीर ।—विहारी  
र०, दो० ४०० । ३. गड्ढा । गर्न [को०] । ४. प्रमाण [को०] ।  
५. उपजनपद । पडोस [को०] । ६. अन्न समय । अतिम  
काल । उ०—(क) आजु अवधिभंग पहुँचे गए जाउँ मुखरात ।  
वेगि रोहु मोहि मागहु जनि चावहु मह वात ।—जायसी ।  
(शब्द०) । (ख) तेरी अवधि कहत मम कोऊ नाते कहियत  
वात । विनु विश्वास गारिहै तो को आगु रैन कै प्रात ।—  
सूर (शब्द०) ।

मुहा०—अवधि देना=समय निर्धारित करना । अवधि बदना=  
समय नियन करना । उ०—आज विनु आनंद के मुख तेरो ।  
निनि वनिने की अवधि बरी मोहि साँझ गए कहि आवन ।  
सूरश्याम अनतहि कहूँ लुबधे नैन गए दोउ सावन ।—सूर  
(शब्द०) ।

अवधि<sup>२</sup>—अव्य० [सं०] तक । पर्यंत । उ०—तोमो हों फिर फिर हित  
प्रिय पुनीन सत्य वचन कहत । विवि ललि लघु कोटि अवधि  
सुख मुखी दुख दहत ।—तुलसी (शब्द०) ।

यो०—अध्यावधि=तब तक । समुद्रावधि=समुद्र तक ।

अवधिज्ञान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह ज्ञान जिसके द्वारा  
पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, अवकार और छाया आदि से व्यवहित  
द्रव्यों का भी प्रत्यक्ष हो और आत्मा का भी ज्ञान हो ।  
अवधिदर्शन ।

अवधिदर्शन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार पृथ्वी, जल, पवनादि  
से व्यवहित पदार्थों को यथावत् देखना । अवधिज्ञान ।

अवधिमान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नमुद्र । उ०—प्राची जाय अवध  
प्रतीची कै उदित भातु नानुमान सीस चूम लेवै भूमि मित को ।  
लाँचि कै अवधि जो पै उमगै अवधिमान चाँचै यह चाल जो पै  
कालहू के गत को ।—चरण (शब्द०) ।

अवधी<sup>१</sup>—वि० [हि० अवध+ई (प्रत्य०)] अवध नवधी । अवध का ।  
जैसे—'अवधी बोली' २ । १. अवध की भाषा ।

अवधी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अवधि' ।

अवधीरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अवमान या तिरस्कार करना [को०] ।

अवधीरणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तिरस्कार । अवज्ञा ।

अवधीरित—वि० [सं०] अपमानित । तिरस्कृत ।

अवधू<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अवधूत' । उ०—अवधू ऐसा ज्ञान  
विचारो, ज्यूँ वहुरि न ह्वै ससारी ।—कवीर ग्र०, पृ० १५६ ।

अवधूक—वि० [सं०] विना पत्नी का [को०] ।

अवधूत<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवधूतिन्] १. सन्यासी । साधु ।  
योगी । उ०—(क) धूत कही, अवधूत कही, रजपूत कही,  
जोलहा कही कोऊ ।—तुलसी ग्र०, पृ० २२३ । (ख) यह  
सूरति यह मूढा हम न देख अवधूत । जानै होहि न योगी कोइ

राजा कर पून १--जायसी (गव०) । २. माधुर्यो का एक भेद । उ०--सेवरा सेवरा वान पर, सिध माधुर्य अवधूत ।  
 आसन मारे बैठ सब जारि आनमा भूत १--जायसी (गव०) ।  
 अवधूत<sup>२</sup>--वि० [न०] १ कंथित । हिला हुआ । २ विनष्ट । नाश लिया हुआ । ३ अपमानित । तिरस्कृत [को०] । ४ अम्बीकृत [को०] । ५ बड़ा हुआ [को०] । ६ प्राकृत [को०] । ७ विरक्त [को०] ।  
 अवधूतवेश--वि० [म०] विना वस्त्र का । नग्न । विवस्त्र ।  
 अवधूषित--वि० [स०] गुग्ध्रिण किया हुआ । सुवासित [को०] ।  
 अवधूलन--सज्ञा पुं० [म०] धाव के ऊपर चूर्ण छिड़कना [को०] ।  
 अवधूत--वि० [म०] दे० 'अवधारित' ।  
 अवधय<sup>१</sup>--वि० [म०] १ ध्यान देने योग्य । विचारणीय । २ अध्येय । ३ जानने योग्य । ४ ज्ञान योग्य । रखने योग्य [को०] ।  
 अवधेय<sup>२</sup>--सज्ञा पुं० १ नाम । २ ध्यान [को०] ।  
 अवध्य--वि० [म०] वध के अयोग्य । न मारने योग्य । अवध्य । उ०--यह समझार बी ब्राह्मण अवध्य है, तू मुझे मय दिखनाता है ।--चद्र०, पृ० ७७ ।  
 अवध्वंस--सज्ञा पुं० [न०] [वि० अवध्वस्त] १ परित्याग । छोड़ना । निदा । कलक । ३ चूर चूर करना । चूर्णन । नाश । ४ धूल । चूर्ण [को०] । ५ छिड़काव । छिड़कना । [को०] । ६ गिर कर दूर जा पड़ना [को०] ।  
 अवध्वस्त--वि० [स०] १ नष्ट । विनष्ट । २ त्यक्त । ३ निवृत्त । ४ विवेरा हुआ । ५ चूर चूर किया हुआ । ६ छिड़का हुआ [को०] ।  
 अवन्त<sup>१</sup>--सज्ञा पुं० [स०] १ प्रीणन । प्रसन्न करना । २ रक्षण । वचाव । उ०--दूत राम राय को, सपूत पूत पौन को तू अजनी को नदन प्रताप मूरि भानु सो । सीध सीध समन दुरित दीप दमन, मरन आए अवन्त लखन त्रिष प्राण सो ।--तुलसी ग्र०, पृ० २४८ । ३ प्रीति । ४ इच्छा । कामना [को०] । ५ सतोष [को०] । ६ त्वरा । जल्दवाजी । [को०] ।  
 अवन्त<sup>२</sup> (उ०)--सज्ञा पुं० [म० अवन्ति] १ जमीन । भूमि । २ रास्ता । राह । सड़क । उ०--गुरुजन वाहक जदपि पुनि घालक चावुक सैन । कटै बटे न कहे तल रूप अवन्त हूँ नैन ।--(गव०) ।  
 अवन्तक्षत्र--सज्ञा पुं० [म०] सारो का न दीव पड़ना [को०] ।  
 अवन्त--वि० [म०] १ नीचा । झुका हुआ । उ०--बह बो नी नीन गगन अपार जिममे अवन्त पन सजन मार ।--कामायनी, पृ० २३४ । २ गिरा हुआ । पतित । अधोगत । ३ कम । ४ अस्त होता हुआ [को०] । ५ विनीत । नम्र [को०] ।  
 अवन्ति--सज्ञा स्त्री [स०] १ घटनी । कमी । घाटा । न्यूनता । हानि । २ अधोगति । हीन दशा । तनजुतनी । उ०--पूर्ण प्रकृति की पूर्ण नीति है क्या अनी, अवन्ति को जो सहन करे गभीर हो ।--महा०, पृ० २ । ३ झुकाव । झुकना । ४ नम्रता । ५ अस्त होना । डबना [को०] ।  
 अवन्त<sup>३</sup>--वि० [स०] वना हुआ । निर्मित । २ निश्चित कथा हुआ । बँठा हुआ । ३ आवेष्टित । बँधा हुआ [को०] ।  
 अवन्त<sup>४</sup>--सज्ञा पुं० एक प्रकार का ढोव [को०] ।

अवनमन--सज्ञा पुं० [स०] १. झुकने की क्रिया । २ पर पड़ना । उ०--ज्ञान की खोज में ओज कुल खो दिया, सत्य की नित्य आराधना, अवनमन ।--आराधना, पृ०, ७१ ।  
 अवनम्र--वि० [स०] झुका हुआ । नमित [को०] ।  
 अवनयन--सज्ञा पुं० [स०] नीचे की तरफ ले जाना [को०] ।  
 अवना (उ०)--क्रि० अ० [म० आगमन] आना । उ०--(क) तेहि रे हम चाहहि गवना । होहु सँजत बहुरि नहि अवना ।--जायसी ग्र०, पृ० ६२ । (ख) अब की के गवना बहुरि नहि अवना करिले भेट अँकवारी ।--कबीर ग्र०, पृ० ।  
 अवनाट<sup>१</sup>--वि० [स०] १. चपटी नाकवाला । नकचिपटा [को०] ।  
 अवनाट<sup>२</sup>--सज्ञा पुं० चपटी नाकवाला व्यक्ति [को०] ।  
 अवनाम--सज्ञा पुं० दे० 'अवनमन' [को०] ।  
 अवनामक--वि० [स०] पतित करनेवाला । नीचे गिरानेवाला [को०] ।  
 अवनाय--सज्ञा पुं० [स०] नीचे फेंकना [को०] ।  
 अवनासिक--वि० [म०] दे० 'अवनाट' [को०] ।  
 अवनाह--सज्ञा पुं० [स०] १ बाँधना । कसकर बाँधन । २ आवेष्टित करना [को०] ।  
 अवनि--सज्ञा स्त्री [म०] १ पृथ्वी । जमीन । उ०--मुचि अवनि सुहावनि आलवाल, कानन विविध वारी विमान ।--तुलसी ग्र०, पृ० ४६५ ।  
 यौ०--अवनिघ्न=पर्वत । पहाड़ । अवनिप=राजा । उ०--अवनिघ्न अकनि राम पगुधारे ।--तुलसी (गव०) । अवनिपति=राजा । अवनीन्द्र=राजा । अवनिसुता=जानकी । अवनितल पृथ्वी । अवनीध=राजा ।  
 २. एक प्रकार की लता । ३ उँगली । ४ नदी का पाट [को०] । ५. नदी [को०] । ६ जगह । स्थान [को०] ।  
 अवनिक्त--वि० [स०] १ धोया हुआ । धोकर साफ किया हुआ । २. ढूँढा हुआ [को०] ।  
 अवनिज--सज्ञा पुं० [स०] मंगल ग्रह [को०] ।  
 अवनिरुह--सज्ञा पुं० [स०] वृक्ष [को०] ।  
 अवनी--सज्ञा स्त्री [म०] दे० 'अवनि' । उ०--(क) कुटिअ अलक वदन की छवि, अवनि परि लोल ।--सूर०, १०।१०१ ।  
 अवनीच--वि० [म०] इधर उधर घूमनेवाला । घुमक्कड़ [को०] ।  
 अवनीतल--सज्ञा पुं० [म०] धरती की सतह । धरातल [को०] ।  
 अवनीध--सज्ञा पुं० [म०] पर्वत । पहाड़ [को०] ।  
 अवनीप--सज्ञा पुं० [म०] राजा । उ०--दीप दीप हूँ के अवनीपन के अवनीप, पृथु सम केशोदास द्विज गाय के ।--राम च०, पृ० २१ ।  
 अवनीपति--सज्ञा पुं० [स०] राजा । उ०--सातह दीपन के अवनीपति हागि रहे जिय में जव जाने ।--राम च०, पृ० १६ ।  
 अवनीरुह--सज्ञा पुं० [म०] पेड़ । वृक्ष [को०] ।  
 अवनीश्वर--सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अवनीश' [को०] ।  
 अवनीस (उ०)--सज्ञा पुं० [स० अवनीश] उ०--विचरहि अवनि अवनीस चरनमरोज मन मधुकर किए ।--तुलसी ग्र० पृ० १२३ ।  
 अवनीमुत--सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अवनिज' [को०] ।  
 अवनीसुता--सज्ञा स्त्री [स०] सीता । पृथ्वीपुत्री जानकी [को०] ।

अवनेजन—सज्ञा पुं [मं०] १ धोना । प्रक्षालन । २. श्राद्ध में पिंडदान की वेदी पर बिछाए हुए कुशों पर जन सींचने का संस्कार । ३ भोजन के बाद का आचमन ।

अवपाक<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ अच्छी तरह न पकाया हुआ । २ विना जाल का [को०] ।

अवपाक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं अच्छी तरह भोजन न बनानेवाला रसोईदार । वह व्यक्ति जिसे अच्छी तरह भोजन बनाने न आता हो [को०] ।

अवपाटिका—सज्ञा स्त्री [सं०] एक रोग जो लघुछिद्र योनिवाली और रजस्वलाधर्म रहित स्त्री से मैथुन करने से, हस्तक्रिया से, लिङ्गेन्द्रिय के वद मुह को बलात् खोलने से अथवा निकलते हुए वीर्य को रोकने से हो जाता है । इस रोग में निग को आच्छादित करनेवाला चमड़ा प्रायः फट जाता है ।

अवपात—सज्ञा पुं [सं०] १ गिराव । पतन । अधःपतन । २ गड्ढा कुड । ३ हाथियों को फँसाने के लिये एक गद्दा जिसे तृणादि से अच्छादित कर देते हैं । ३ छाँडा । माला । ४ नाटक में भयादि में भागना, व्याकुल होना आदि दिखानेकर अक या गर्भांक की समाप्ति । ५ पक्षियों आदि का ऊपर से नीचे की ओर झपटना [को०] ।

अवपातन—सज्ञा पुं [मं०] नीचे उतारना । गिराना ।

अवपात्र—वि० [सं०] (म्लेच्छ) जिसके खाने से पात्र किसी के उपयोग योग्य न हो [को०] ।

अवपाद—सज्ञा पुं [मं०] नीचे गिराना [को०] ।

अवबाहुक—सज्ञा पुं [मं०] एक रोग जिससे हाथ की गति रुक जाती है । भुजस्तम्भ ।

अवबुद्ध—वि० [सं०] १ जाना हुआ । २ जाननेवाला [को०] ।

अवबोध—सज्ञा पुं [सं०] १ जगना । जगना । २ ज्ञान । बोध । ३ शिक्षण । सिखाना । [को०] ४ न्याय करना । फैसला [को०] ।

अवबोधक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [सं०] [स्त्री० अवबोधिका] १ वदी । चारण । २ रात को पहरा देनेवाला पुरुष । चौकीदार । पाहरू । ३ सूर्य । ४ शिक्षक । सिखानेवाला व्यक्ति [को०] । ५ विचार । समझ बूझ [को०] ।

अवबोधक<sup>२</sup>—वि० चेतानेवाला । जाननेवाला ।

अवबोधन—सज्ञा पुं [मं०] १ चेताना । ज्ञापन । २ ज्ञान । इन्द्रिय-ज्ञान [को०] ।

अवभग—सज्ञा पुं [सं० अवभङ्ग] १ नीचा दिखाना । पराजित करना । २ नथुना फूलना पचकना [को०] ।

अवभास—सज्ञा पुं [सं०] [वि० अवभासक, अवभासित] ज्ञान । प्रकाश । २ धिमाज्ञान । ३ चमक [को०] । ४ झलक । आभास [को०] । ५ अवकाश । स्थान [को०] ।

अवभासक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [सं०] परब्रह्म [को०] ।

अवभासक<sup>२</sup>—वि० [सं०] बोध करानेवाला । प्रतीत करानेवाला ।

अवभासित—वि० [सं०] लक्षित । प्रतीत ।

अवभासिनी—सज्ञा स्त्री [सं०] ऊपर के चमड़े का काम । चमड़े की पहली पर्त ।

अवभृथ—सज्ञा पुं [सं०] वह शेष कर्म जिसके करने का विधान मुख्य यज्ञ के समाप्त होने पर है । २. वह स्नान जो यज्ञ के

अंत में किया जाय । यज्ञातस्नान । उ०—पावक सरोवर में अवभृथ स्नान था, आत्मगम्मान यज्ञ की वह पूर्णवृत्ति ।— लहर, पृ० ६३ ।

अवभ्रट—वि०, पुं सज्ञा [मं०] दे० 'अवनाट' [को०] ।

अवमत्ता—वि० [सं० अवमत्त] अनादर करनेवाला । अपमान करनेवाला [को०] ।

अवमथ<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [मं० अवमथ्य] एक रोग जिसमें लिंग में बड़ी बड़ी और घनी फुमियाँ हो जाती हैं । यह रोग रक्तविकार में होता है और इसमें पीडा तथा रोमांच होता है ।

अवमथ<sup>२</sup>—वि० मृजन पैदा करनेवाला [को०] ।

अवम<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ अवम । अनिम । २ रक्षक । रक्षवाला ।

३ नीच । निदित । ४ घनिष्ठ [को०] । ५ कनिष्ठ [को०] ।

अवम<sup>२</sup>—सज्ञा पुं [मं०] १ पितरो का एक गण । २ मलमाम ।

अधिमास । ३ पाप [को०] । ४ रक्षक व्यक्ति । नाता [को०] ।

अवमत—वि० [मं०] अवजात । अवगानित । तिरस्कृत । निदित ।

अवमति<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री [न०] अवजा । उपमान । तिरस्कार । निदा ।

अवमति<sup>२</sup>—सज्ञा पुं स्वामी । मानिक [को०] ।

अवमतिथि—सज्ञा स्त्री [न०] वह तिथि जिसका क्षय हो गया हो ।

अवमर्द—सज्ञा पुं [सं०] १ ग्रहण का एक भेद । वह ग्रहण जिसमें राहु सूर्यमंडल या चंद्रमंडल को पूर्णतः में ढँककर अधिक काल तक ग्रसे रहे । २ रौंदना । कुचलना । ३ शत्रु को क्षत विक्षत करना । ४ एक प्रकार का उल्लू [को०] ।

अवमर्दन—सज्ञा पुं [सं०] १ पीडा देना । दुःख देना । दलन । २. मालिश । रगड़ना [को०] ।

अवमर्दित—वि० [सं०] १ पीडित । दनित । मालिश किया हुआ [को०] ।

अवमर्श—सज्ञा पुं [मं०] स्पर्श । संपर्क [को०] ।

अवमर्शसंधि—सज्ञा स्त्री [मं० अवमर्शसन्धि] नाट्यशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियों में से एक ।

विशेष—जहाँ क्रोध, वरसन अथवा विरोध आदि से फलप्राप्ति के सवध में विचार या आशंका की जाय और जहाँ गर्भसंधि से वीजार्थ अधिक स्पष्ट हो वहाँ अवमर्शसंधि होता है । वि० दे० 'विमर्ष' ।

अवमर्शित—वि० [मं०] नष्ट भ्रष्ट [को०] ।

अवमर्ष—सज्ञा पुं [सं०] १ विचार । खोज वीन । २. दे० 'अवमर्शसंधि' । ३ आक्रमण [को०] ।

अवमर्षण—सज्ञा पुं [सं०] १ मिटाना । २ हटाना । ३. बरबाद करना । ४ असहनशीलता [को०] ।

अवमान—सज्ञा पुं [न०] [वि० अवमानित] तिरस्कार । अपमान । अनादर । उ०—पूरन राम सुपेय पियूष । गुर अवमान दोष नहि दूषा । मानस, २।२०८ ।

अवमानन—सज्ञा पुं [सं०] [स्त्री० अवमानना] दे० 'अवमान' ।

अवमानित—वि० [मं०] तिरस्कृत । उपेक्षित । अपमानित [को०] ।

अवमानी—वि० [मं० अवमानित] [वि० स्त्री० अवमानिनी] तिरस्कार करनेवाला । अपमान करनेवाला । उ०—नोविष सूद्र पित्र अवमानी । मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी ।—मानस, ३।१७२ ।

अवमूर्धशय—वि०, सज्ञा पु० [म०] मिर नीचे करके लेटनेवाला [को०] ।  
अवमून्यन—सज्ञा पु० [म०] [अ० दिव्यलुपशर्त] किसी देश की सरकार द्वारा दूसरे देशों की अपेक्षा अपने देश की मुद्रा का विनिमय मूल्य गिरा देना ।

अवमोचन—सज्ञा पु० [स०] निर्वध करना । बधनविहीन करना । मुक्त करना [को०] ।

अवमोदरिका—सज्ञा स्त्री० [म० अवम+उदरिका] एक वृत्ति जिसमें क्रमशः भोजन में निवृत्ति प्राप्त करते हैं ।—हिं० सभ्यता पु० २३३ ।

अवय०—सज्ञा पु० [स० अवयव] दे० 'अवयव' । उ०—देवि कुँवरि अद्भुत अवय । रजित है अति लाज ।—पृ० रा०, २५।१७७ ।

अवयव—सज्ञा पु० [स०] १. अश । भाग । हिस्सा । २. शरीर का एक देश । अंग । ३. न्यायशास्त्रानुसार वाक्य का एक अश या भेद ।

विशेष—ये पाँच हैं—(१) प्रतिज्ञा, (२) हेतु, (३) उदाहरण, (४) उपनय, और (५) निगमन । किसी किसी के मत से यह दस प्रकार का है—(१) प्रतिज्ञा, (२) हेतु, (३) उदाहरण, (४) उपनय, (५) निगमन, (६) जिज्ञासा, (७) सशय (८) शक्यप्राप्ति, (९) प्रयोजन और (१०) मशयव्युदास ।

४ उपकरण । माधन [को०] । ५. शरीर [को०] ।

यौ०—अवयवभूत = अंगभूत । अशभूत । अवयववर्म । अवयवरूपक = रूपक का एक भेद ।

अवयवार्थ—सज्ञा पु०, [म०] शब्द की प्रकृति और प्रत्यय में निकलने-वाला अर्थ [को०] ।

अवयवी<sup>१</sup>—वि० [स० अवयविन्] १. जिसके और वहुत से अवयव हो । अंगी । २. कुन । सपूर्ण । समष्टि । सम्पूना ।

अवयवी<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १. वह वस्तु जिसके वहुत से अवयव हो । २. देह । शरीर । ३. न्याय में एक तर्क [को०] ।

अवयस्क—वि० [स०] जो वयस्क न हो [को०] ।

अवयान—सज्ञा पु० [स०] १. विपथगामी होना । पीछे की ओर आना । २. किसी को मत्तु करना । ३. प्रायश्चित्त करना [को०] ।

अवर<sup>१</sup>—वि० [स०] १. अन्य । दूसरा । और । उ०—गम दुर्गम गढ देहु छुटाई । अवरो बात मुनो कछु माई ।—कवीर (शब्द०) । २. अथेष्ट । अधम । नीच । ३. पिछला (भाग) । ४. अतिम (को०) । ५. पश्चिमी (को०) । ६. निकटतम । दूसरा [को०] । ७. अत्यंत अथेष्ट [को०] ।

अवर<sup>२</sup>—वि० [म० अ+वल] निर्वल । बलहीन ।

अवर<sup>३</sup>—सज्ञा पु० १. अतीत काल । २. हाथी का पिछला भाग ।

अवरक्षक—वि० [म०] पात्रक । रक्षक ।

अवरज—सज्ञा पु० [स०] [स्त्री अवरजा] १. छोटा भाई । २. नीच कुलोत्पन्न । नीच ।

अवरण०—सज्ञा पु० [हिं०] १. दे० 'अवरण' । २. दे० 'आवरण' ।

अवरत<sup>१</sup>—वि० [म०] १. जो रत न हो । विरत । निवृत्त । २. ठहरा हुआ । स्थिर । ३. अलग । पृथक् ।

अवरत<sup>२</sup>०—सज्ञा पु० [म० अवरत] दे० 'आवत' ।

४६

अवरति—सज्ञा स्त्री० [म०] १. विराम । २. निवृत्ति । छुटकारा ।  
अवरवर्णाभिनिवेश—सज्ञा पु० [म०] छोटी जातियों में वमाया हुआ । उपनिवेश ।

अवरव्रत<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [म०] १. सूर्य । २. आक । मदार ।

अवरव्रत<sup>२</sup>—वि० हीनव्रत । अधम ।

अवरशैल—सज्ञा पु० [म०] पश्चिम का पहाड़ जिसके पीछे सूर्य अस्त होता है [को०] ।

अवरहस—वि० [स०] जनशून्य । निर्जन [को०] ।

अवरा—सज्ञा स्त्री० [म०] १. दुर्गा । २. दिशा । ३. हाथी का पिछला भाग [को०] ।

अवराधक०—वि० [स० आराधन] आराधना करनेवाला । पूजने-वाला । सेवक । उ०—ए सब रामभगति के वाधक । कहहि मत तब पद अवराधक ।—मानस, ४।७ ।

अवराधन०—सज्ञा पु० [म० आराधन] आराधना । उपासना । पूजा । सेवा । उ०—प्रबलि होइ मित्रि, साहम फनै मुमाधन । कोटि कल्पतरु सरिम समु अवराधन ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३० ।

अवराधना०—क्रि० स० [स० आराधना] उपासना करना । पूजना । सेवा करना । उ०—(क) केहि अवराधक का तुम चहहु । हम सन सत्य मरमु, सब कहहु ।—मानस, १।७८ । (ख) हरि हरि हरि हरि सुमिरन करो । हरि चरणारविंद उर धरो । लै चरणोदक निज व्रत माधो । ऐसी विधि हरि को अवराधो ।—सूर (शब्द०) ।

अवराधी०—वि० [हिं० अवराधना] आराधना करनेवाला । उपासक । पूजक । उ०—कहाँ बैठि प्रभु माधि समाधी । प्राजु होव हम हरि अवराधी ।—रघुराज (शब्द०) ।

अवरार्थ—सज्ञा पु० [म०] १. लघुतम भाग । कम से कम । २. उत्तरार्ध । ३. नीचे या पीछे का आधा भाग [को०] ।

अवरापतन—सज्ञा पु० [स०] गर्भपतन [को०] ।

अवरावर—वि० [म०] निम्नतम । सबसे निकृष्ट । सबसे बुरा [को०] ।

अवरु०—अव्य० [हिं०] दे० 'और' ।

अवरुद्ध—वि० [म०] १. रुँधा हुआ । २. आच्छादित । गुप्त । छिपा ।

अवरुद्धा—सज्ञा स्त्री० [म०] १. अपने वर्ण की वह दासी या स्त्री जिसे कोई अपने घर में डाल ले । रखती । मुरैनिन । २. वह स्त्री जिसे कोई रख ले । उढरी । रखुई ।

अवरुद्ध—वि० [म० अवरुद्ध] १. ऊपर में नीचे आया हुआ । उतरा हुआ । आरुद्ध का उलटा । २. टूटा हुआ । छिन्नमूर्त [को०] ।

अवरूप—वि० [स०] १. मही आकृतिवाला । बिह्व । २. पतित । जिसका पतन हो गया हो [को०] ।

अवरेखना०—क्रि० म० [म० अवलेखन, अवरेखन या आलेखन] १. उरेहना । लिखना । चित्रित करना । उ०—(क) म्याम तन देखि गी आपु तन देखिगे । भीति जौ होइ तौ चित्र अवरेखिगे ।—सूर०, १०।३०७ । (ख) सबि रघुवीर मुख छत्रि देखु । चित्त भीति गुप्ति रग मुखता अवरेखु ।—तुलसी (शब्द०) । २. देखना । उ०—(क) ऐसे कहत गए अपने पुर नवहि बिलक्षण देखो ।

मणिमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भूमि अवरेखो ।—  
सूर (शब्द०) । (ख) फिरत प्रभु पृष्ठत वन द्रुम वेली । अहो  
वधु काहू अवरेखी एहि मग वधू अकेली ।—सूर (शब्द०) ।  
३ अनुमान करना । कल्पना करना । सोचना । उ०—एक कहै  
सुखमा लहरै, मन के चढ़िबे की सिढी एक पेखै । कान्ह को टोवो  
कह्यो कछु काम कवीश्वर एक यहै अवरेखै ।—केशव  
(शब्द०) । ४ मानना । जानना । उ०—पियवा आय दुअरवा  
उठ किन देखु । दुरलभ पाय विदेसिया मुद अवरेखु ।—रहीम  
(शब्द०) ।

अनुरेव(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं अव = विरुद्ध + रेव = गति, फा० उरेव =  
देढ़ा] १ वक्र गति । तिरछी चाल । २ कपड़े की  
तिरछी काट ।

यौ०—अवरेवदार = तिरछी काट का ।

३ पेच । उलझन । उ०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि  
आयसु देव । मो सिर धरि धरि करिहि सवु मिटिहि अनट  
अवरेव ।—मानस, २।२६८ । ४ विगाड । खराबी । उ०—  
रामकृपा अवरेव सुधारी । विबुध धारि भइ गुनद गोहारी ।—  
मानस, २।३१६ । ५ झगडा । विवाद । खिचातानी ।  
उ०—राक्षस मुत तो यह कहौ कन्या को हम लेव । विप्र कहै  
दे मित्र मोहि परी दुहुन अवरेव ।—(शब्द०) । ६ वक्रोक्ति ।  
काकूति । उ०—युनि अवरेव कवित गुन जाती । मीन मनोहर  
ते बहु झँती ।—मानस, १।३७ ।

अनुरोक्त—वि० [सं०] वाद मे कहा गया । जिसका उल्लेख वाद  
मे हुआ हो [को०] ।

अनुरोचक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमे भूख बहुत  
कम लगती है या लगनी ही नहीं [को०] ।

अनुरोध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. रुकावट । अटकाव । अडचन । रोक ।  
२ छेकना । घेर लेना । मुहासिरा । ३ निरोध । बंद करना ।  
४ अनुरोध । दवाव । ५ अत पुर ।—उ० राजकीय अनुरोध  
की ये स्त्रियाँ हैं ।—इरा०, पृ० ६६ । ६ नेखनी । कलम [को०] ।  
७ प्रहरी [को०] । ८ खाई । गड्ढा [को०] । ९ पतं ।  
तह [को०] ।

अनुरोधक<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ रोकनेवाला । २ घेरनेवाला [को०] ।

अनुरोधक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ पहरेदार । २ रोक । बाड [को०] ।

अनुरोधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवरोधक, अवरोधित, अवरोधी,  
अवरोध, अवरोध] १ रोकना । छेकना । २ अत पुर । जनान—  
खाना । ३ किसी वस्तु का भीतरी भाग [को०] । ४ निजी या  
व्यक्तिगत स्थान [को०] । ५ अत पुरिका । हरम मे रहनेवाली  
स्त्री [को०] ।

अनुरोधना(५)—कि० सं० [सं० अवरोधन] रोकना । निषेध करना ।  
उ०—यह विधि विषय भेद अवरोधा । नहि कछु श्रुति प्रत्यक्ष  
विरोधा ।—श० दि० (शब्द०) ।

अनुरोधिक<sup>१</sup>—वि० [सं०] रोकनेवाला । अवरोध उपस्थित करने-  
वाला [को०] ।

अनुरोधिक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० अत पुर का प्रहरी [को०] ।

अनुरोधिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अत पुर की दासी । अत पुर की रख-  
वाली करनेवाली स्त्री या दासी [को०] ।

अनुरोधित—वि० [सं०] रोक हुआ । रुका । घेरा हुआ ।

अनुरोधी—वि० [सं० अवरोधिन्] [वि० स्त्री० अवरोधिनी] अवरोध  
करनेवाला । रोकनेवाला । दे० 'अवरोधक' ।

अनुरोपण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवरोपित, अवरोपणीय] १ उखा-  
डना । उत्पादन । २ पेड लगाना [को०] ।

अनुरोपणीय—वि० [सं०] १ उखाटने योग्य ।

अवरोपित—वि० [सं०] उखाडा हुआ । उन्मूलित ।

अनुरोह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ उतार । गिराव । अध पतन । २ अव-  
नति । अवमर्पण । विवर्त । ३ एक अलंकार जो वर्धमान  
अलंकार का उलटा है । इसमे किसी वस्तु के रूप तथा गुण  
का क्रमशः अध पतन दिखाया जाता है, जैसे—मिथू मर पल्लव  
पुष्करणिय । कुड वापिका कूज वरुणिय । चुलुक रूप मो  
जिन्ह कर भीतर । पान करन जय जय वह मुनिवर । ४  
वररोह । ५ संगीत मे स्वरों का उतार [को०] । ६ आरोहण ।  
चढ़ाव [को०] । ७ वृक्ष मे जना का चढ़ने हुए चढ़ना या  
घेर लेना [को०] । ८ स्वर्ग [को०] ।

यौ०—अवरोहशाख, अवरोहशाखी अवरोहशायी वट = वृक्ष ।

अनुरोहक<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ गिरनेवाला । २. अवनति करनेवाला ।  
अनुरोहक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स्त्री० अवरोहिका] अश्वगध ।

अनुरोहण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवरोहक, अवरोहित, अवरोही]  
१ नीचे की ओर जाना । पतन । गिराव । २ चढ़ना [को०] ।

अनुरोहना<sup>१</sup>(५)—कि० अ० [सं० अवरोहण] १ उतरना । नीचे  
आना । २ चढ़ना । ऊपर जाना । उ०—(क) कहै सिव चाप  
लकरवनि ब्रूभत विहँस चितै तिरछीह । तुलसी गगिन भीर  
दरसन लागि लोग अटनि अवरोहै ।—तुलसी (शब्द०) ।  
(ख) जीवन व्याध नहीं अरु वैननि मोहिनी मव नहीं अव-  
रोह्यो ।—देव (शब्द०) ।

अनुरोहना<sup>२</sup>(५)—कि० म० [हि० उरेहना] खीचना । अकित  
करना । चित्रित करना । उ०—गोरे गात, पानरी, न लोचन  
समात मुख उर उरजातन की बात अवरोहिये ।—केशव  
(शब्द०) ।

अनुरोहना<sup>३</sup>(५)—कि० म० [सं० अवरोधन, प्रा० अवरोहन] रोकना ।  
रूँधना । छेकना । उ०—मत भईन राजपय मोहा । जहाँ भेद  
कटक अवरोहा ।—ज० दि० (शब्द०) ।

अनुरोहिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगधा [को०] ।

अनुरोहिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक बुरी दशा,  
जो नक्षत्रों के खास स्थानों मे पहुँचने से उत्पन्न होती है [को०] ।

अनुरोहित—वि० [सं०] १ गिरनेवाला । २ अवनत । हीन । ३  
हल्के लाल रंग का ।

अनुरोही<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अवरोहिन्] १ वह स्वर जिसमे पहले पड़ज  
का उच्चारण हो, फिर निपाद से पड़ज तक क्रमानुसार उतरते  
हुए स्वर निकलते जायें । सा, नि, ध, प, म, न, रि, सा का  
क्रम । विलोम । आरोही स्वर का उलटा । २ वटवृक्ष ।

अनुरोही<sup>२</sup>—वि० ऊपर से नीचे की तरफ आनेवाला [को०] ।

अनुरा<sup>१</sup>—वि० [सं०] जिसका कोई वर्ग या श्रेणी न हो [को०] ।



प्रवर्ग<sup>१</sup>—सङ्घा पुं० स्वरवर्ण [को०] ।

प्रवर्ण<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ वर्णरहित । बिना रग का । २. बदरग । बुरे रग का । ३ जो ब्राह्मण आदि के धर्म से शून्य हो । वर्ण-धर्म-रहित ।

प्रवर्ण<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० [सं०] १ अकार अक्षर । २ निदा । ३ अपशब्द ।

प्रवर्ण<sup>३</sup>—वि० [सं०] जो वर्णन के योग्य न हो ।

प्रवर्ण<sup>४</sup>—सङ्घा पुं० [सं० अ + वर्ण] जो वर्ण या उपमेय न हो । उपमान । उ०—हे उपमेय विषय अहं वर्ण । उपमानतु विषयीक प्रवर्ण ।—मतिराम (शब्द०) ।

प्रवर्त्त<sup>१</sup>—सङ्घा पुं० [मं०] स्फूर्तिशून्य पदार्थ । वह पदार्थ जिसके आरपार प्रकाश या दृष्टि न जा सके ।

प्रवर्त्त<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० [सं० आवर्त्त] १ भँवर । नाँद । उ०—कादर भयकर रहिर सरिता चली परम अपावनी । दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त्त वहति भयावनी ।—मानस, ६।८६ । २. ७ घुमाव । चक्कर । उ०—विषम विपाद तोरावति धारा । भय भ्रम भँवर अवर्त्त अपारा ।—मानस, २।२७५ ।

प्रवर्त्तन<sup>१</sup>—सङ्घा पुं० [सं०] जीविका का प्रभाव । जीविका की अनुपलब्धि ।

प्रवर्त्तन<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० [हिं०] दे० 'आवर्त्तन' ।

प्रवर्त्तमान—वि० [मं०] १ जो वर्त्तमान न हो । अनुपस्थित । अप्रस्तुत ।

२ असत् । प्रभाव । ३ भूत या भविष्य ।

प्रवर्धमान—वि० [सं०] वर्धमान का विपरीत । न बढ़नेवाला [को०] ।

प्रवर्ण—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'अवर्ण' [को०] ।

प्रवर्ण—सङ्घा पुं० [सं०] वृष्टि का अभाव । वर्षा का न होना । अवग्रहण । अनावृष्टि ।

प्रवर्णक—वि० [मं०] न बरसनेवाला [को०] ।

प्रवलघन—सङ्घा पुं० [सं० अव + लघ्न] दे० 'उल्लघन' ।

प्रवलघना—सङ्घा पुं० [सं० अव + लघ्न] लघना । फाँदना । उ०—राम प्रताप, सत्य सीता को, यहै नाव-कनधार । तिहि अघार छन मैं अवलघ्यो आवत भई न बार ।—सूर०, ६।८६ ।

प्रवलव—सङ्घा पुं० [सं० अवलम्ब] आश्रय । आधार । सहारा । उ०—सो अवलव देउ मोहि देई । अवधि पाव पावउँ जेहि सेई ।—मानस, २।३०६ ।

प्रवलवक—सङ्घा पुं० [सं० अवलम्बक] एक प्रकार का वृत्त या छंद [को०] ।

प्रवलवन—सङ्घा पुं० [सं० अवलम्बन] [वि० अवलम्बित, अवलम्बी] १ आश्रम । आधार । सहारा । उ०—नहि कलि करम न भगति विवेकू । राम नाम अवलवन एकू ।—तुलसी (शब्द०) । २. धारण । ग्रहण ।

क्रि० प्र०—करना = धारण करना । ग्रहण करना । अनुसरण करना, जैसे,—'यह सुन उसने मीनावलवन किया' (शब्द०) । ३. छड़ी ।

प्रवलवना—सङ्घा पुं० [सं० अवलम्बन] अवलवन करना । आश्रय लेना । टिकना । उ०—जिन्हें अतन अवलवई सो आलवन जानि । निज तैं दीपित होति है । ते उद्दीप वखानि ।—केशव प्र०, भा० १, पृ० ३५ ।

प्रवलवित—वि० [सं० अवलम्बित] १. माश्रित । सहारे पर स्थित । टिका हुआ । उ०—वरणकमल अवलवित राजिन अनमान ।

प्रफुलित ह्वै ह्वै लता मनो चढ़ी तह तमाल—सूर (शब्द०) । २. मुनहमर । निर्भर, जैसे—इमका पूरा होना द्वय पर अवलवित है । (शब्द०) । उ०—ऐम और पतित अवलवित ते छिन माहि तरे । सूर पतित तुम पतित उधारन विरद कि लाज धरे ।—सूर० १।१६८ । ३ लटकाया हुआ [को०] । ४ शीघ्र । सत्वर [को०] ।

अवलवी—वि० पुं० [सं० अवलम्बित] [वि० औ० अवलविनी] १ अवलवन करनेवाला । सहारा लेनेवाला । उ०—प्रौर भगवान् जी कहणा का अवलवी बन गया था ।—इंद्र०, पृ० ८१ । २ सहारा देनेवाला । पालनेवाला ।

अवन<sup>१</sup>—वि० [हिं०] दे० 'अवल' । उ०—अवन उकीननू जी आदर कुरव दे अवधेस—रघु० छं०, पृ० ८१ ।

अवलक्ष<sup>१</sup>—वि० [सं०] सफेद वर्ण का [को०] ।

अवलक्ष<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० सफेद वर्ण [को०] ।

अवलग्न<sup>१</sup>—वि० [मं०] लगा हुआ । मिला हुआ । सव्य रखनेवाला ।

अवलग्न<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० शरीर का मध्य भाग । धनु । माभा ।

अवलच्छना—सङ्घा पुं० [सं० अव + लक्ष्य] लक्ष्य बनाना । देखना । उ०—पच्छ-रहित जीतत उडि पच्छिप । अनरिच्छ गति जिन अवलच्छिप ।—पद्माकर, अ०, पृ० ६ ।

अवलि<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री [मं० आवलि] दे० 'अवली' । उ०—माल विसाल । तिलक भलकाही । कच विलोकि अलि अवलि नजाही ।—मानस, १।२४३ ।

अवलिप्त—वि० [सं०] । लगा हुआ । पोता हुआ । २ सना हुआ । आसक्त । ३ घमडी । गवित ।

अवलिया—सङ्घा पुं० [हिं० ओलिया] दे० 'ओलिया' । उ०—जहाँ वसे तीरथ देव अवलिया होना ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४६ ।

अवली<sup>१</sup>—सङ्घा स्त्री [मं० आवलि] १ पत्ति । पाँति । उ०—मानो प्रगट कज पर मजुन अलि अगनी फिरि आई ।—सूर०, १०।१०८ । २ समूह । झुंड । उ०—मन रंजन खजन की अवली तित आगिन आया न डोलती है ।—केशव (शब्द०) । ३ वह अन्न की ढाँठ जो नवान्न करने के लिये खेत से पहले पहल काटी जाती है । ४ रोआँ या ऊन जो गडरिया एक बार भेड़ पर से काटता है ।

अवलीक—वि० [सं० अवलीक] अपराधशून्य । पापशून्य । निष्पाप । निष्कलक । शुद्ध । उ०—जावो बालमीकि घर बडो अवलीक साधु कियो अपराध दियो जो वताइये ।—प्रिया (शब्द०) ।

अवलीढ—वि० [सं०] १. भक्षित । खाया हुआ । २ चाटा हुआ । ३ स्पृष्ट । संपर्कप्राप्त [को०] ।

अवलीन—वि० [सं०] युक्त । भीतर युक्त अंदर की ओर स्थित [को०] ।

अवलीला—सङ्घा स्त्री [सं०] १ क्रीडा । खेल । २. अनादर । अवहेलना [को०] ।

अवलुचन—सङ्घा पुं० [सं० अवलुचन] १ छेदना । काटना । २. उखाड़ना । नोचना । ३ दूर करना । हटाना । घपनयन । ४. खोलना ।

अवलुचित—वि० [सं० अवलुचित] १. कटा हुआ । छेदित । २. उखाड़ा हुआ । नोचा हुआ । ३ दूरीकृत । हटाया हुआ । आगे । ४. खोला या खोला हुआ । मुक्त ।



अवलुठन—सज्ञा पुं० [सं० अवलुठन] १ लोटना। लुढ़कना। २ लूटना (को०)।  
 अवलुठित—वि० [सं० अवलुठित] १. जो लुढ़क गया हो। लोटा हुआ। २ लूट लिया गया हो (को०)।  
 अवलुपन—सज्ञा पुं० [सं० अवलुपन] अचानक लपक पडना। दूट पडना। झपट्टा मारना (को०)।  
 अवलेख—सज्ञा पुं० [सं०] १ कोई खरोची हुई या चिह्नित वस्तु। २ खुरचना, चिह्नित करना वा तोडना (को०)।  
 अवलेखन—सज्ञा पुं० [सं०] १ वुरुष या कधी करना। २ चिह्न करना या लकीर खीचना।  
 अवलेखना—क्रि० सं० [सं० अवलेखन] १ खोदना। खरचना। २. चिह्न डालना। लकीर खीचना। उ०—गहरी विरद की लाज दीन हित करि सुदृष्टि ब्रज देखी। मोपीं वात कहस किन सन्मुख कहा अवनि अवलेखी।—सूर०, १०। ४१५४।  
 अवलेखनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ लेखनी। २ वाल भाडने की कधी या ब्रश (को०)।  
 अवलेखा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ रगडना। २ चित्राकन करना। ३ श्रृ गार करना। सजावट करना (को०)।  
 अवलेप—सज्ञा पुं० [सं०] १ उवटन। लेप उ०—कुच कुकुम अवलेप तरुनि किये सोभित स्यामल गात। गत पतग, राका ससि विय सँग, घटा सघन सोभात।—सूर०, १०। २७३४। २ घमड। गर्व। ३ आभूषण (को०)। ४ मलहम (को०)। ५ संग। मिलन (को०)। ६ आक्रमण। हिंसा (को०)। ७ अपमान (को०)।  
 यौ०—वलावलेप = बल का गर्व।  
 अवलेपन—सज्ञा पुं० [सं०] १ लगाना। पोतना। छोपना। २ वह वस्तु जो लगाई या छोपी जाय। लेप। उवटन। ३ घमड। अभिमान। अहकार। ४ दूषण। ५ चदन का वृक्ष (को०)।  
 अवलेह—सज्ञा पुं० [सं०] १ लेई जो न अधिक गाढी और न अधिक पतली हो और चाटी जाय। चटनी। माजून (बैद्यक)। २ औषध जो चाटा जाय। ३ नियास। सत्त। अरक—जैसे, सोम (को०)।  
 अवलेहन—सज्ञा पुं० [सं०] १ जीभ की नोक लगाकर खाना। चाटना। २ चटनी।  
 अवलेह्य—वि० [सं०] चाटने योग्य।  
 अवलोक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवलोकन' (को०)।  
 अवलोकक—सज्ञा पुं० [सं०] १ देखनेवाला। अवलोकन करनेवाला। १ सोद्देश्य किसी वस्तु को देखनेवाला, जैसे—जासूस (को०)।  
 अवलोकन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवलोकित, अवलोकनीय] १ देखना। उ०—देव कहैं अपनी अपनी अवलोकन तीरथराज चलो रे।—तुलसीदास, पृ० २३४। २ देखना। जांच पडताल। निरीक्षण। ३ नेत्र। आँख (को०)।  
 अवलोकना—क्रि० सं० [सं० अवलोकन] १ देखना। उ०—गिरा अग्नि मुख पकज रोकी। प्रगट न लाज निशा अवलोकी।—मानस, १। २५६। २ जांचना। अनुसंधान करना।

उ—फिरत वृथा भाजन अवलोकत मूर्ख मदन अजान।—सूर०, १। १०३।

अवलोकनि(पु)—सज्ञा स्त्री० [म० अवलोकन] आँख। दृष्टि। चितवन।  
 उ०—अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। भायप भलि चहुँ बधु की जलमादुरी मुवास।—मानस, १। ४२।  
 अवलोकनीय—वि० [सं०] देखने योग्य। दर्शनीय।  
 अवलोकित—वि० [म०] देखा हुआ। दृष्ट।  
 अवलोकितेश्वर—सज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिमत्त्व का नाम।  
 अवलोक्य—वि० [म०] देखने योग्य। अवलोकनीय (को०)।  
 अवलोचना—क्रि० म० [म० अवलोचन, आलोचन] दूर करना। उ०—मोचें अनागम कारण कत को मोचें उसासनि आँसूँ मोचें। मोची न हेरि हरा हिय को पदमाकर मोचि मर्क न सँकोचें। कोत की इह चाँदनी चैते अलि, याहि निवाहि विया अवलोचें। लोचें पगी सी परी परजक पं वीती घरी न घरी घरी मोचें।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२१।  
 अवलोप—सज्ञा पुं० [सं०] १ काटना। काटकर दूर करना। विगाडना। २ अधर को दाँत से क्षत करना। अधर चूमना (को०)।  
 अवलोभन—सज्ञा पुं० [सं०] विषयवामना (को०)।  
 अवलोम—वि० [म०] १ अपनी तरफदारी करनेवाला। अपने पक्ष लेनेवाला। २ उपयुक्त (को०)।  
 अवलुगुज<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] मोमराजी नामक पौधा (को०)।  
 अवलुगुज<sup>२</sup>—वि० जिसका मूल अच्छा न हो (को०)।  
 अवगद—सज्ञा पुं० [सं०] निदा। अपवाद (को०)।  
 अवगदन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अववद' (को०)।  
 अवगदित—वि० [सं०] सिखलाया हुआ। समझाया हुआ (को०)।  
 अवगदिता—वि० [सं० अववदितृ] निष्पायक ढग से बोझनेवाला (को०)।  
 अवगरक—सज्ञा पुं० [सं०] १ छेद। २ खिडकी (को०)।  
 अवगाद—सज्ञा पुं० [म०] १ निदा। बुराई। २ विश्वास। ३. अनादर। अवज्ञा। ४. सहारा। भरोसा। ५. आदेश। ६ सूचना (को०)।  
 अवश—वि० [म०] १ विवश। परवश। लाचार। २ स्वतंत्र। मुक्त (को०)। ३ अनियंत्रित (को०) ४ जरूरी। आवश्यक (को०)।  
 यौ०—अवशग = स्वतंत्र। अवशीभूत = अनियंत्रित। अवशोद्विग-चित्त = जिसका मन और मस्तिष्क वश में न किया जा सके।  
 अवशप्त—वि० [म०] अभिशप्त (को०)।  
 अवशा—सज्ञा स्त्री० [सं०] मरकही या बुरी गाय (को०)।  
 अवशिष्ट—वि० [सं०] बचा हुआ। शेष। बाकी। बचा हुआ। बचा बचाया।  
 अवशीन—सज्ञा पुं० [सं०] विच्छू (को०)।  
 अवशीर्ण—वि० [सं०] टूटा फूटा। नष्ट (को०)।  
 अवशीर्षक्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] विरक्त मित्र या राज्यापराध के कारण बहिष्कृत व्यक्ति के साथ फिर सधि करना।  
 अवशीर्ष—वि० [सं०] जिसका सिर झुका हो।





में फैसना ।-मे फैसना = दुख में पड़ना । अवसेरन मरना =  
दुख से तंग आना ।

अवसेरना (७) — कि० न० [ हि० अवसेर ] तंग करना । दुख देना ।  
उ०—पिय पागे परोसिन के रम मे वम मे न कहूँ वम मेरे  
रहे । पदमाकर पाहनी मी ननदी निस नीद तजे अवसेरे  
रहे ।-पदाकर (शब्द०) ।

अवसेप (७) — वि० [ हि० ] दे० 'अवशेष' ।

अवसेपित (७) — वि० [ हि० ] दे० 'अवशेषित' ।

अवसेम (७) — वि० [ हि० ] दे० 'अवशेष' । उ०—करि मौजन  
अवसेम जज्ञ की त्रिभुवन भूख हरी ।-सू०, १। १६ ।

अवस्कद—संज्ञा पु० [ म० अवस्कन्द ] १. मेना के ठहरने की जगह ।  
शिविर ।-डेरा । २. जनवासा । ३. आक्रमण । हमला (को०) ।

अवस्कदक—संज्ञा पु० [ म० अवस्कन्दक ] जो रास्ते चलते लोगो को  
मारे पीटे ।

अवस्कदित—वि० [ म० अवस्कन्दित ] १. जिनपर आक्रमण किया  
गया हो । २. नीचे गया हुआ । ३. अशुद्ध गलत । ४. नहाया  
हुआ । स्नात (को०) ।

अवस्कदिनश्रमी—संज्ञा पु० [ म० अवस्कन्दितश्रमी ] मजदूरी या  
ननखाह लेकर भाग जानेवाला मजदूर ।

अवस्कर—संज्ञा पु० [ सं० ] १. मनमूत्र । २. मनमूत्रोद्विग्न । ३. कूड़ा  
ककड़ा । ४. कतवारखाना । जहाँ कूड़ा ककड़ा एकत्र रहता  
है । घूर ।

अवस्करक<sup>१</sup>—वि० [ म० ] गदगी में उत्पन्न होनेवाला (को०) ।

अवस्करक<sup>२</sup>—संज्ञा पु० १. मेहतर । २. गोबरैला । ३. भाड़ (को०) ।

अवस्करभ्रम—संज्ञा पु० [ सं० ] वह नल जिसे पाखाना वह कर  
बाहर जाता हो ।

अवस्कार—संज्ञा पु० [ म० ] हाथी के मुख का वह भाग जो दोनों आँखों  
के ठीक बीच में है (को०) ।

अवस्तार—संज्ञा पु० [ म० ] १. पदी । २. खेमे के चारों ओर लगाया  
गया कपड़ा । कनात । ३. चटाई (को०) ।

अवस्तु—वि० [ सं० ] १. जो कोई वस्तु न हो । शून्य । २. तुच्छ । हीन ।

अवस्था—संज्ञा स्त्री [ म० ] १. दशा । हालत । उ०—सुनता हूँ परम  
भट्टारक की अवस्था अत्यंत शांतिपूर्ण है ।-स्कंद०, पृ० ३२ ।

२. समय । काल । उ०—मरन अवस्था की नृप जानै । तो हूँ  
घरे न मन में जानै ।-मूर०, ४। १० । ३. आयु । उम्र । ४.  
स्थिति । उ०—'मात्र के इस प्रकार प्रकृतिस्थ हो जाने की  
अवस्था को हम शील दशा कहेंगे' ।-रम०, पृ० १८३ । ५.  
वेदात दर्शन के अनुसार मनुष्य की चार अवस्थाएँ—जाग्रत,  
स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय । ६. स्मृति के अनुसार मनुष्य जीवन  
की आठ अवस्थाएँ—कोमार, पीगड, केशोर, यौवन, बाल,  
तरुण, वृद्ध और वर्षियान् । ७. सांख्य के अनुसार पदार्थों की  
तीन अवस्थाएँ—प्रनागनावस्था, व्यक्तामिव्यक्तावस्था और  
तिरोभाव । ८. निरुक्त के अनुसार छह प्रकार की अवस्थाएँ—  
जन्म, स्थिति, वर्धन, विपरिणामन, अपक्षय और नाश । ९.  
कामशास्त्रानुसार दस अवस्थाएँ—अभिलाष, चिंता, स्मृति, गुण-  
कथन, उद्वेग, सलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण । १०.

जैनशास्त्रानुसार लाम की प्राप्ति के पूर्व की स्थिति । यह  
पाँच प्रकार की है—व्यक्त, अव्यक्त, जप, आदान और निष्ठा ।  
११. योगि । भग (को०) । १२. आकृति । रूप (को०) ।

यौ०—अवस्थातर = एक अवस्था में दूसरी अवस्था को पहुँचना ।  
हानत का बदलना । दशापरिवर्तन । अवस्थाद्वय = मुख और  
दुख जीवन की दो अवस्थाएँ ।

अवस्थान—संज्ञा पु० [ सं० ] १. स्थिति । मत्ता । २. स्थान । जगह ।  
वास । ३. निवासस्थान (को०) । ४. रहना । ठहरना (को०) ।

५. रुकने या ठहरने का काल (को०) ।

अवस्थापन—संज्ञा पु० [ सं० ] १. निवेशन । रखना । स्थापन करना ।  
२. निवास (को०) ।

अवस्थापरिणाम—संज्ञा पु० [ सं० ] दे० 'परिणाम' (योग) ।

अवस्थित—वि० [ म० ] १. उपस्थित । विद्यमान । मौजूद । २. निश्चेष्ट  
(को०) । ३. तैयार । तत्पर (को०) । ४. अच्छी तरह मयोजित  
या लरन (को०) । ५. टिका हुआ । निर्भर (को०) ।

अवस्थिति—संज्ञा स्त्री [ म० ] वर्तमानता । स्थिति । मत्ता । अव-  
स्थान ।

अवस्नात—वि० [ सं० ] (जल) जिसमें स्नान किया गया हो (को०) ।  
अवस्फूर्ज—संज्ञा पु० [ म० ] वादनों की ध्वनि । गर्जन । गडगडाहट  
(को०) ।

अवस्यदन—संज्ञा पु० [ म० अवस्यन्दन ] टपकना । चूना । गिरना ।

अवस्य (७) — कि० वि० [ म० अवस्य ] दे० 'अवस्य' । उ०—श्रीर श्रीरन-  
छोर जी तो श्रीप्राचाय जी के माने हैं, ताँते वहाँ अवस्य  
जानो ।-दो मो बावन०, पृ० १८ ।

अवस्यक (७) — वि० [ सं० अवस्यक ] दे० 'आवश्यक' । उ०—बनुर  
मेनपहि नित न अवस्यक बल दिखगवन ।-रत्नाकर, भा०  
१, पृ० २६ ।

अवह<sup>१</sup>—संज्ञा पु० [ म० ] १. वह दिशा जिसमें नदी नाले न हो । २.  
वह वायु जो आकाश के तृतीय स्तर पर है । ईश्वर ।

अवह<sup>२</sup>—वि० १. जो वहन न किया जा सके । जो ढोया न जा सके ।  
२. विना नदी या सोनेवाला (को०) ।

अवाहनन—संज्ञा पु० [ सं० ] १. कूटना (जैसे धान) । २. पछोरना ।  
फटकना । ३. धान कूटकर चावल अलग करना । ४. फुफ्फुस ।  
फेफड़ा (को०) ।

अवाहरण—संज्ञा पु० [ म० ] १. चुरा लेना । जबरदस्ती ले लेना । २.  
अन्यत्र जाना या ले जाना । ३. युद्धक्षेत्र में शिविर को वापस  
होना (को०) ।

अवाहस्त—संज्ञा पु० [ म० ] हाथ या गदेली का पृष्ठभाग ।  
उलटा हाथ ।

अवाहार—संज्ञा पु० [ सं० ] १. जलहस्ति । सूँघ । २. चोर । तस्कर  
(को०) । ३. आभरण । ४. युद्धक्षेत्र में वापस होना (को०) ।  
५. मधि । शस्त्रविराम । (को०) ६. धर्मत्वान । ७. समीर  
लाने के योग्य या अनुकूल (को०) । ८. अपहरण (को०) । ९.  
वापस करना (को०) ।

अवाहारक<sup>१</sup>—संज्ञा पु० [ सं० ] सूँघ नामक जलजंतु (को०) ।

अवहारक<sup>२</sup>—वि० १ युद्ध रोकनेवाला । २ वधाव करनेवाला । ३ एक स्थान से दूसरी जगह ले जानेवाला [को०] ।

अवहार्य—वि० [स०] १ ले जाने योग्य । २ दह योग्य या अर्थदंड योग्य । ३ जिसे लौटाने के लिये बाध्य हो । ४. पूर्ण होनेवाला [को०] ।

अवहालिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दीवार । प्राचीर । घेरा [को०] ।

अवहाम—सज्ञा पुं० [सं०] १. मुस्कान । मुस्काहट । २ उपहास । हँसी । मजाक उड़ाना [को०] ।

अवहित—वि० [स०] मावधान । एकाग्रचित्त ।

अवहित्य—सज्ञा पुं० [स०] अवहित्या [को०] ।

अवहित्या—सज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार का माव जब कोई मय, गौरव, लज्जादि के कारण हर्षादि को चतुराई से छिगवे । यह सचारी या व्यभिचारी में गिना जाता है । आकारगुप्ति जैसे,—ज्यो ज्यो चबाव चलै चहुँ ओर, धरै चित चाव ये त्योही त्यो चोखे । कोऊ मिखावनहार नही विनु लाज भए विगरेल अनोखे । गोकुल गाँव को एती अनीति कहीं ते दई धौं दई अनजोखे । देखती हो मोहि माँक गली में गही इन आइ धौं कीन के धोखे ।—(शब्द०) ।

अवही—सज्ञा पुं० [स० अवह=विना पानी का देश] एक प्रकार का वयल जो काँगडा में होता है ।

विशेष—इसकी लपेट आठ फुट की होती है । यह मैदानों में पैदा होना और इसकी लकड़ी खेती के औजार बनाने तथा छत्तो के तख्तों में काम आती है ।

अवहत—वि० [स०] १ आगे या पीछे हटाया हुआ । २ चुराया हुआ । ३ दडित किया गया [को०] ।

अवहेलन—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री अवहेलना] [वि० अवहेलित] १. अवज्ञा । अपमान । २. आज्ञा न मानना ।

अवहेलना<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [स०] १. अवज्ञा । अपमान । तिरस्कार । उ०—वे ईप नियमों की कनी अवहेलना करते न थे ।—भारत०, पृ० ६ । २ ध्यान न देना । वेपरवाही ।

अवहेलना<sup>२</sup>—क्रि० म० [स० अवहेलन] तिरस्कार करना । अवज्ञा करना । उ०—इन उत्पातन गनिय सुजात न, सब अवहेलिय रन मद भेलिय ।—सुजान०, पृ० २२५ ।

अवहेला—सज्ञा स्त्री० [स०] अवज्ञा । तिरस्कार । अवहेलना । उ०—तब मेरी अवहेला की गई, यह उसी का परिणाम है ।—स्कंद०, पृ० १४७ ।

अवहेलित—वि० [स०] जिसकी अवहेला हुई हो । तिरस्कृत ।

अवाछनीय—वि० [स० अवाञ्छनीय] १. जिसे न चाहा जाय । अप्रिय । २. उपेक्षणीय [को०] ।

अवातर<sup>१</sup>—वि० [स० अवातर] १. अतर्गत । २. मध्यवर्ती । बीच का । ३. दूसरा । गौण । अन्य [को०] ।

अवातर<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० मध्य । भीतर । बीच ।

यौ०—अवातर दिशा=बीच की दिशा । विदिशा । अपातर । देश=दो देशों का मध्यवर्ती स्थान । अवातर भेद=आर्ग्य भेद । भाग का भाग । अवातर वाक्य=महावाक्य के मध्य में आनेवाला वाक्य या सार्थक शब्दसमूह ।

अवाँ<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अवाँ' । उ०—चदन की चोली और कपूर चबाएँ अग अग विरह की आँच त्यों अवाँ ज्यो सिलगा-इगो ।—गंग०, पृ० २८३ ।

अवाँग—वि० [सं० अवाङ्] १ झुका हुआ । नत । २ टेढ़े अगवाला ।

अवाँगना<sup>१</sup>—क्रि० स० [हि० अवाँग+ना] नीचे की ओर झुकाना । अवनत करना ।

अवाच<sup>१</sup>—वि० [सं० अवाञ्च] १ झुका हुआ । दबा हुआ । २ अधोमुख । ३ नीचे की ओर स्थित [को०] ।

अवाच<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ दक्षिण । २. ब्राह्मण [को०] ।

अवाँसना<sup>१</sup>—क्रि० स० [हि०] अनवासना । नए वर्तन को पहले पहल काम में लाना ।

अवाँसी—सज्ञा स्त्री० [सं० अवाप्त] वह वीर जो फसल में से पहले पहले काटा जाय । यह नवान्न के लिये काम में आता है । अखान । ददरी । कवन । अन्ननी ।

अवाई—सज्ञा स्त्री० [सं० आयन=आगमन] १ आगमन । उ०—(क) इहाँ राज अस सेन बनाई । उहाँ साह कै भई अवाई ।—जायसी ग्र०, पृ० २३० । (ख) लखि यो अवाई वीर की रिपु भीर में खलवल भई ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १७ । २ गहरा जोतना । गहरी जोताई ।—'मेव' का उलटा ।

अवाक्—वि० [स०] १ चुप । मौन । चुपचाप । २ नीचे मुख किए हुए । अधोमुख । ३ स्तब्ध । जड । म्तमित । चकित । विस्मित । ३ दक्षिण का । दक्षिणी [को०] ।

क्रि० प्र०—रहना ।—होना ।

यौ०—अवाङ् मनसगोचर=जिसका न वर्णन हो सके और न चिंतन । वाणी और मन के परे, जैसे ईश्वर ।

अवाक्पुष्पी—सज्ञा स्त्री० [स०] वह पौधा जिसके फूल अधोमुख हो । २. सौँफ । ३. मोया ।

अवाक्शाख—सज्ञा पुं० [स०] पीपल [को०] ।

अवाक्श्रुति—वि० [स०] बोल न सुन सकनेवाला । गूँगा बहरा [को०] ।

अवाक् सदेश—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बैंगला मिठाई ।

अवाक्ष—वि० [स०] रक्षक । अभिनायक । देखभाल करनेवाला [को०] ।

अवागी<sup>१</sup>—वि० [स० अवागमन्=अपटु] मौन । चुप ।

अवाङ्—वि० [स०] नीचे की तरफ झुका हुआ [को०] ।

अवाङनरक—सज्ञा पुं० [स०] जिह्वा छेदन का दुःख । जिह्वा काटने का दड । जवान काटने की सजा ।

अवाङनिरय—सज्ञा पुं० [स०] सबसे नीचे का नरक अर्थात् पृथ्वी [को०] ।

अवाङमुख<sup>१</sup>—वि० [स०] १ अधोमुख । उलटा । नीचे मुँह का २. लज्जित ।

अवाङमुख<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० एक शस्त्र [को०] ।

अवाची—सज्ञा स्त्री० [स०] दक्षिण दिशा । उ०—प्राची प्रतीची अवाची विलोकि दसो दिसि होत ही कूच कुकनी—गंग०, पृ० ३४० ।

अवाचीन—वि० [स०] १ अधोमुख । मुँह लटकाए हुए । २ लज्जित । ३. दक्षिण सवरी । दक्षिणी । दक्षिण का [को०] । ४. नीचे गया हुआ [को०] ।

अवाच्य

अवाच्य<sup>१</sup>—वि० [म०] १ जो कहने योग्य न हो। अनिदिता। विशुद्ध।

२ जिसमें बात करना उचित न हो। नीच। निदिता। ३ स्पष्टतारहित। प्रस्पष्ट [को०]। ४ दक्षिण सवधी। दक्षिणी [को०]।

अवाच्य<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० कुवाच्य। बुरी बात। गाली।

यौ०—अवाच्यदेश = वह स्थान जिसकी बात कुछ कहना ठीक न हो—भोनि।

अवाज<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० आवाज] ध्वनि। शब्द। आवाज। उ०—कहियत पतित बहुत तुम तारे खवननि मुनी आवाज—दई न जात खार उतराई चाहत चढ्यो जहाज—सूर०, १। १०८।अवाजी<sup>१</sup>—वि० [फा० आवाज] शब्द करनेवाला। चिल्लाते-वाला। उ०—यदपि आवाजी परम तदपि बाजी सो छाजत—मोपाल (शब्द०)।अवाडू<sup>१</sup>—वि० [सं० अपवृत अथवा देशी] विपरीत। उलटा। उ०—पाँखडियाई किऊँ नहीं, दैव अवाडू ज्याँह। चकवीकड इह पखडी, रमणि न मेनउ त्याँह—ढोला० दू० ७१।

अवात—वि० [म०] वातशून्य। जहाँ वायु न लगे। निर्वात। २ अवाकत [को०]।

अवादादे०—वि० पुं० [हिं० वादा] दे० 'वादा'।

अवादी—वि० [मं० अवादिन्] १. न बोलनेवाला। अवक्ता। २. जो कोई वाद-उपस्थित नहीं करता। शांतिप्रिय [को०]।

अवान—वि० [सं०] सूखा हुआ। शुष्क [को०]।

अवापित—वि० [मं०] १ जो बोया न गया हो। रोपा हुआ। २. (केश) जो काटा हुआ न हो [को०]।

अवाप्त—वि० [म०] प्राप्त। लब्ध।

अवाप्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति। २. (गणित में) उद्धरण [को०]।

अवाप्य—वि० [सं०] १ प्राप्त करने योग्य। २ (केश) न काटने योग्य [को०]।

अवाम—सञ्ज्ञा पुं० [अ० 'आम' का बहुव०] साधारणजन। सर्वसाधारण। आम लोग। उ०—करै तृप्त किमि तुमहि अवाम—प्रेमघ०, पृ० १४१।

अवाय<sup>१</sup>—वि० [सं० अवय] अनिवार्य। उच्छखल। उद्धत। उ०—दीनदयाल पतित पावन प्रभु विरद मुलावत कैसे। कहा भयो गज गनिका तारी जो जन तारी ऐसे। अकरम अबुध अज्ञान अवाया अनमारग अनरीति। जाको नाम लेत अघ उपजै मो में करी अनरीति—सूर (शब्द०)।अवाय<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] हाथ में पहनने का-भूषण। कड़ा। डिं०। अवार—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] नदी के इस पार का किनारा। सामने का किनारा। 'पार' का उलटा। उ०—उठ अवार न पार जाकर भी गई। उमिहूँ मैं इस भवाणव की नई—साकेत, पृ० ३०३।

अवारजा—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १. वह वही जिसमें प्रत्येक अमासी की जोत आदि लिखी जाती है। २. जमाखर्च की वही। ३. वह

वही जिसमें याददाश्न के लिये नोट किया जाय। ४. सकृप वृत्तांत। गोशवारा। खतियौनी। सक्षिप लेखा। उ०—सौची नो लिखवार कहावै। काया ग्राम ममाहत करिकै जमावधि ठहरावै। करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै। दूजी करे दूरि करि दाई तनक न तामे आवै—सूर (शब्द०)।

अवारण—वि० [मं०] १ जिसका निषेध न हो सके। सुनिश्चिता। २. जिसकी रोक न हो सके। बेरोक। अनिवार्य।

अवारणीय<sup>१</sup>—वि० [मं०] १. जो रोक न जा सके। बेरोक। अनिवार्य। २. जिसका अवरोध न हो सके। दूर न हो सके। ३. जो आराम न हो। असाध्य।अवारणीय<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० सुश्रुत के अनुसार रोग का वह भेद जो अच्छा न हो। असाध्य रोग।

विशेष—यह आठ प्रकार का है—वात, प्रमेह, कुष्ठ, अर्श, मगदर, अश्मरी, मूढगर्म और उदररोग।

अवारना<sup>१</sup>—क्रि० सं० [सं० अ + वारण] १ रोकना। मना करना। २ वारना। न्योछावर करना।

अवारपार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ममुद्र।

अवारा<sup>१</sup>—वि० [हिं०] दे० 'आवारा'।अवारा<sup>२</sup>—वि० [हिं० आना + वार (प्रत्या०)] अनेकाले। आगनुक। परदेशी। उ०—मिसिर मिरान्यो आम आबनि अवारे की—प्रेमघन०, पृ० २२६।

अवारिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] धनिया।

अवारिजा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवारजा'।

अवारित—वि० [मं०] जिसपर रोक न हो। रोक या प्रतिवध-मुक्त [को०]।

यौ०—अवारित द्वार = जिसका द्वार बंद न हो खुला हो।

अवारी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० वारण] वाग। लगाम।अवारी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० अवार] १. किनारा। मोड़।

क्रि० प्र०—देना = नाव फेरना।

२ मुखविवर। मुँह का छेद।

अवारीण—वि० [मं०] नदी पार गया हुआ [को०]।

अवारो<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ = दूषित + प्रा० वार = वे] अवर। देर। विलंब। अतिकान। उ०—तब अवारी सो ये मेवा सो पहोचता—दो मो वावन०, पृ० २१०।

अवर्स—वि० [मं०] 'अवाग्राय'। उ०—उस पहले के ही मलवे में जिसका जलना गिरना अवार्थ—दैनिकी, पृ० २१।

अवावट—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दूसरे सवर्ण पति से उत्पन्न पुत्र, जैसे कुड़ और गोलक।

अवास<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [लामावान] नीवामस्थान। घर। उ०—कविरा कहा गग्गिया ऊँचा देखि अवाम। कानि परे भूई लोटना जार जमिहै घास।—कथीर (शब्द०)। ख) वाजति नद अवाम बघाई। बैठे खेलत द्वार आपन, मात बग्ग के कुँवर कन्हाई—सूर०, १०। ८१८।



अविद्वकर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] पाढी नाम की लता ।

अविद्य<sup>१</sup>—वि० [मं० अविद्यमान्] नष्ट । नेस्त नाबूद । उ०—  
विद्या धरति अविद्य करौं विन सिद्ध सिद्धि सब ।—रामच०,  
पृ० १२७ ।

अविद्य<sup>२</sup>—वि० [मं०] १ अशिक्षित । विद्याविहीन । अपढ । वेवक  
२ जो शिक्षा सबधी न हो [को०] ।

अविद्यमान—वि० [मं०] १ जो विद्यमान या उपस्थित न हो । अनुप  
स्थिति । २. जो न हो । असत् । उ०—अर्थ अविद्यमान जानिय  
सृष्टि नहि जाइ गोमाई । विनु बाँवे निज हठ मठ परबम परयो  
कीर की नाई ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५१७।३ मिथ्या । अमत्य ।  
भूटा ।

अविद्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ विरुद्ध ज्ञान । मिथ्या ज्ञान । अज्ञान ।  
मोह । उ०—(क) जिन्हहिं सोक ते कहीं वखानी । प्रथम  
अविद्या निसा नसानी ।—मानस, ७ । ३१ (ख) विपम भई  
सकल्प जब तदाकार सो रूप । महीं अवेरो काल सो परे  
अविद्या कूप ।—कवीर (शब्द०) । २ माया । उ०—हरि  
सेवकहि न व्याप अविद्या । प्रभु प्रेरित व्याप तेहि विद्या ।—  
तुलसी (शब्द०) । ३ माया का भेद । उ०—तेहि कर भेद  
मुनहु तुम सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।  
४ कर्मकांड । ५ साध्यशास्त्रानुसार प्रकृति । अव्यक्त । अचित् ।  
जड । ६ योगशास्त्रानुसार पाँच क्लेशो में पहला । विपरीत  
ज्ञान । अनित्य में नित्य, अशुचि में शुचि, दुःख में सुख और  
अनात्मा (जड) में आत्मा (चेतन) का भाव करना । ७  
वैशेषिकशास्त्रानुसार इन्द्रियो के दोष तथा सस्कार के दोष से  
उत्पन्न दुष्ट ज्ञान । ८ वेदातशास्त्रानुसार माया ।

यी०—अविद्याकृत = अविद्या से उत्पन्न । अविद्याजन्य = अविद्या  
से उत्पन्न । अविद्याच्छन्न = अविद्या या अज्ञान से आवृत ।  
अविद्यामार्ग = प्रेम । वह मार्ग जो ससार में मनुष्यों को अनुरक्त  
करता है । अविद्याश्रय = अज्ञान (बीढ़) ।

अविद्वत्ता—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] मूर्खता । अज्ञानता ।

अविद्वान्—वि० [मं०] [वि० स्त्री० अविद्वयी] जो विद्वान् न हो ।  
शास्त्रानभिज्ञ । मूर्ख ।

अविद्वेष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विद्वेष का अभाव । अनुराग । प्रेम ।

अविधवा—वि० [मं०] मधवा । सोमाग्यवती । सुहागिन ।

अविधान<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभिधान] दे० 'अभिधान' । उ०—  
व्याकृत कथा नाटक छद् । अभिधान दास अलकार वध ।—  
पृ० २००, १ । ७३६ ।

अविधान<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ विधि के विरुद्ध कार्य करना । २  
विधान का अभाव ।

अविधान<sup>३</sup>—वि० विधिविरुद्ध । २ उलटा ।

अविधि<sup>१</sup>—वि० [मं०] विधिविरुद्ध । नियम के विरुद्ध ।

अविधि<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ विधान के विरुद्ध कार्य । अविधान । अनिय-  
मितता । उ०—वे हैं अविद्या के पुरोहित अविधि के माचार्य  
हैं ।—भारत०, पृ० १२७ । २ अपरिभाष्य । जिसकी परिभाषा  
न की जा सके [को०] ।

अविनय<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. विनय का अभाव । ढिठाई । उद्दता ।  
उ०—अविनय विनय जयारुचि दानी । छमहि देव अति  
आरति जानी ।—तुलसी (शब्द०) । २ घमंड । अमिमान  
[को०] । ३, अपराध । दोष [को०] ।

अविनय<sup>२</sup>—वि० उद्द । घृष्ट । अणिष्ट । घमंडी [को०] ।

अविनयी—वि० [सं० अविनयिन्] विनय रहित । उद्द [को०] ।

अविनश्वर—वि० [सं०] जो नष्ट न हो । जो विगडे नहीं । विरथायी ।  
शाश्वत । उ०—दर्शन से जीवन पर वरमे अविनश्वर स्वर ।—  
अपरा, पृ० १८६ ।

अविनाभाव—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ मय । २ वायुवात साय  
जैसे अग्नि और धूम का ।

अविनाश—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] विनाश का अभाव । अक्षय ।

अविनाशी—वि० पुं० [सं० अविनाशिन्] [वि० स्त्री० अविनाशिनी] १

जिसका विनाश न हो । प्रक्षय । अक्षर । २ नित्य । शाश्वत ।

अविनासी<sup>१</sup>—वि० [सं० अविनाशी] दे० 'अविनाशी' । उ०—दादू  
अविहड आप हैं अमर उपजावनहार । अविनामी आपइ रहइ  
विनसइ सब ससार ।—दादू (शब्द०) ।

अविनासी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अविनाशिन्] ईश्वर । ब्रह्म । उ०—(क)  
राम नाम छाँड़ों नही सनगुरु सीख दई । अविनासी सो परसि  
के आत्मा अमर भई ।—कवीर (शब्द०) । (ख) दादू—आनंद  
आतमा अविनासी के साथ । आननाय हिरदै वसइ सकल  
पदारथ हाथ ।—दादू (शब्द०) ।

अविनीत—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अविनीता] १ जो विनीत न हो ।  
उद्धत । उ०—जो मेरी है सृष्टि उसी में भीतर रहूँ मैं, क्या  
अधिकार नहीं कि कभी अविनीत रहूँ मैं ।—कामायनी,  
पृ० १६० ।

अविनीता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा नारी । अमती स्त्री । दुराचारिणी  
या वदचलन स्त्री ।

अविनेय—वि० [सं०] अनियन्त्रणशील । अवाध्य । वेकहा [को०] ।

अविपक्व—वि० [मं०] १ न पका हुआ । अपक्व । २ जिसका ज्ञान  
प्रौढ न हो [को०] ।

अविपट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मेढके ऊन का वस्त्र । ऊनी वस्त्र [को०] ।

अविपद्—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कष्ट, दुःख आदि का अभाव । सुख ।  
समृद्धि [को०] ।

अविपन्न—वि० [सं०] १ स्वस्थ । नीरोग । २ जो क्षत न हुआ हो ।  
जिसे आघात या चोट न लगी हो । ३ शुद्ध । पवित्र ।

अविपर्यय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विपर्यय या विकार का न होना । क्रम के  
विरुद्ध न होना ।

अविपाक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अजीर्ण रोग [को०] ।

अविपाक<sup>२</sup>—वि० अजीर्ण रोग से ग्रस्त । अजीर्ण [को०] ।

अविपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गडेरिया । उ०—पशुओं को रक्षा करने के  
कारण उसे गोपालक, अजापाल वा अविपाल कहते थे ।—  
हिंदू सभ्यता, पृ० २६२ ।

अविपित्तक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक चूर्ण, जो अम्लपित्त रोग में दिया  
जाता है ।

अविबुध<sup>१</sup> वि० [सं०] १. अज्ञानी । नादान । २. बुद्धिहीन । बेमकल ।

अविबुध<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं अमुर । दैत्य । राक्षस ।  
 अविभक्त-वि० [सं०] १ जो अलग न किया गया हो । मिला हुआ ।  
 २ जो बाँटा न गया हो । विभागरहित । शामिलाली । ३  
 अमित्र । एक । उ०—सुत तुम्हारे भाव ये अविभक्त, मैं स्वयं  
 उन पर कहूँगी व्यक्त ।—साकेत, पृ० १८६ ।  
 अविभाग-वि० [सं०] जिसके टुकड़े न हो । जो अलग अलग न हो ।  
 जो एक ही को० ।  
 अविभाज्य<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं [सं०] गणित में वह राशि जिसका किसी  
 गुणक के द्वारा भाग न किया जा सके । निश्छेद ।  
 अविभाज्य<sup>४</sup>—वि० जिसका बँटवारा न किया जा सके । जिसके भाग  
 या खंड न हो सकें ।  
 अविभावन—सञ्ज्ञा पुं [सं०] [स्त्री अविभावना] [वि० अविभाजनीय,  
 अविभाव्य] १ पहचान का अभाव । २ अदर्शन । लोप [को०] ।  
 अविमान—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ आदर । समान । २ अपमान का  
 अभाव [को०] ।  
 अविमुक्त<sup>१</sup>—वि० [सं०] जो विमुक्त न हो । बद्ध ।  
 अविमुक्त<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं १ कनपटी । जावाल उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म  
 का स्थान । २ काशी ।  
 अविमुक्तेश्वर—सञ्ज्ञा पुं [सं०] काशी में स्थापित एक शिवलिंग [को०] ।  
 अविमुक्त-वि० जो विमुक्त न हो । जो अलग अलग न हो । मिला हुआ  
 [को०] ।  
 अवियोग<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ वियोग का अभाव । उपस्थित । २  
 संयोग । मिलाप ।  
 अवियोग<sup>२</sup>—वि० १ वियोगशून्य । जिसका वियोग न हो । २ संयुक्त  
 समिलित । एकीभूत ।  
 यो०—अवियोगव्रत = कल्कि पुराण के अनुसार एक व्रत जो अग्रहन  
 शुक्ल तृतीया को पड़ता है । इस दिन स्त्रियाँ स्नान कर  
 चंद्र दर्शन करके रात को दूध पीनी हैं । यह व्रत सौभाग्यप्रद  
 माना जाता है ।  
 अविरत<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ विरामशून्य । निरंतर । २ अनिवृत्त ।  
 लगा हुआ ।  
 अविरत<sup>२</sup>—क्रि० वि० १ निरंतर । लगातार । २ सतत । नित्य ।  
 हमेशा ।  
 अविरत<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं विराम का अभाव । निरंतर्य ।  
 अविरति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १ निवृत्ति का अभाव । लीनता । २  
 विषयादि में तृप्णा का होना । विषयाशक्ति । ३ विराम का  
 अभाव । अशक्ति । ४ जैनशास्त्रानुसार धर्मशास्त्र की मर्यादा  
 से रहित वर्तव्य करना ।  
 विशेष—यह वधन के चार हेतुओं में से है और बारह प्रकार का  
 है । पाँच प्रकार की इन्द्रियाविरत, एक मनोविरत और छह  
 प्रकार की कार्याविरत ।  
 अविरथा<sup>५</sup>—क्रि० वि० [सं० वृथा, हि० विरथा] दे० 'वृथा' ।  
 अविरल—वि० [सं०] १ जो विरल या भिन्न न हो । मिला हुआ ।  
 २ घना । अव्यवच्छिन्न । सघन । उ०—अचल अनिकेत अविरल  
 अनामय अनारम अवोदनावधन वयो ।—तुलसी ग्रं० पृ० ४८३ ।  
 यो०—अविरतभारासार = मनवरत होनेवाली सुसज्जामय वृद्धि ।

अविरहित-वि० [सं०] वियोग न होना । अवियुक्त । अलग न होना  
 [को०] ।  
 अविराम<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ विना विश्राम लिए हुए । अविश्रान्त ।  
 उ०—चलना है अविराम तुम्हें उद्वेग ।—कानन०, पृ० १३ ।  
 अविराम<sup>२</sup>—क्रि० वि० लगातार । निरंतर ।  
 अविराम<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं विरामाभाव । निरंतरता । निरंतर्य [को०] ।  
 अविरुद्ध—वि० [सं०] १ जो विरुद्ध न हो । अप्रतिकूल । उ०—  
 स्थायी दशा को विरुद्ध या अविरुद्ध कोई भाव सचारी रूप में  
 आकर तिरोहित नहीं कर सकता ।—रस०, पृ० १८२ । २.  
 अनुकूल । मुवाफिक । उ०—प्रजा आज कुछ और सोचती जो  
 अब तब अविरुद्ध रही ।—कामायानी, पृ० १७५ ।  
 अविरिचन—सञ्ज्ञा पुं [सं०] [वि० अविरिचनीय, अविरिच्य] विरिचन  
 क्रिया में बाधा उत्पन्न करनेवाली वस्तु । कंज करनेवाली  
 वस्तु । [को०] ।  
 अविरोध—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ साधर्म्य । समानता । २ विरोध का  
 अभाव । अनुकूलता । ३ मेल । संगति । मुवाफिकता । उ०—  
 समय समाज धर्म अविरोधा । दोले तब रघुवधुपरोधा ।—  
 तुलसी (शब्द०) ।  
 अविरोधी—वि० [सं० अविरोधिन्] [वि० स्त्री अविरोधिनी] १ जो  
 विरोधी न हो । अनुकूल । २ मित्र । हित ।  
 अविलघन—सञ्ज्ञा पुं [सं० अविलङ्घन] [वि० अविलघनीय] ने  
 लाँघना । मर्यादा को न पार करना [को०] ।  
 अविलव<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं० अविलम्ब] विना विलव । तुरत ।  
 उ०—रथ रुका, उतरे उभय अविलव ।—साकेत, पृ० १७४ ।  
 अविलव<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं विलव का अभाव । शीघ्रता [को०] ।  
 अविलक्ष्य—वि० [सं०] १ विना लक्षवाला । २, ईमानदार ।  
 निर्भीक । ३ असाध्य (रोग या रोगी) जिसकी चिकित्सा  
 कठिन हो । ४ जिसका विरोध कठिन हो [को०] ।  
 अविला—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] भेड [को०] ।  
 अविलास<sup>१</sup>—वि० [सं०] विलास से मुक्त रहनेवाला । विश्रसनीय ।  
 स्थिर [को०] ।  
 अविलास<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं विलास का अभाव [को०] ।  
 अविलिख—वि० [सं०] १ न लिखनेवाला अथवा लिखना न जानने  
 वाला । २ बुरा लिखनेवाला । ३ लिखनेवाले से भिन्न या  
 व्यतिरिक्त [को०] ।  
 अविलोकन<sup>५</sup>—सञ्ज्ञा पुं [सं० अवलोकन] दे० 'अवलोकन' ।  
 अविलोकना<sup>५</sup>—क्रि० सं० [हि०] दे० 'अवलोकना' ।  
 अविलोडित—वि० [सं० अ = नहीं + विलोडित = मथा हुआ] न  
 मथा हुआ । अमथित । उ०—अविलोडित था जमा दही ।—  
 साकेत, पृ० ३४८ ।  
 अविवक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] विवक्षा अर्थात् कहने, बोलने आदि की  
 अनिच्छा ।  
 अविवक्षित—वि० [सं०] १ विना उद्देश्य या अनिष्टा का । २.  
 जिसके विषय में कहना या बोलना न हो [को०] ।  
 अविवाद<sup>१</sup>—वि० [सं०] विश्रुत । निर्विवाद । उ०—मातृहृत्  
 जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद ।—युग०, पृ० ११

अविवाद<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० सहमति । विवाद को न होना [को०] ।

अविवादी—वि० [सं० अविवादिन्] विवाद न करनेवाला । शात [को०] ।

अविवाहित—वि० [सं०] [ वि० स्त्री० अविवाहिता ] जिसका व्याह न हुआ हो । विना व्याहा । क्वारा । उ०—तब मैं इस कुटुंब की कमनीय कल्पना को दूर ही से नमस्कार करता और प्राजीवन अविवाहित रहता ।—स्कंद०, पृ० ७० ।

अविविक्त—वि० [सं०] १ जिसकी विवेचना न हो । अविवेचन । २ विवेकरहित । अविवेकी । ३ कोई भेद न रखनेवाला । भेदरहित । ४ सर्वसाधारण से सवध रखनेवाला । सार्वजनिक [को०] ।

अविवेक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ विवेक का अभाव । अविचार । २ अज्ञान । नादानी । ३ अन्याय । ४ न्यायदर्शन के अनुसार विशेष ज्ञान का अभाव । ५ साध्यशास्त्रानुसार मिथ्याज्ञान ।

अविवेकता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ विचार का अभाव । अज्ञानता । २ विवेक का न होना ।

अविवेकी—वि० [सं० अविवेकिन्] १ अज्ञानी । विवेकरहित । जिसे तत्त्वज्ञान न हो । २ अविचारी । ३ मूढ़ । मूर्ख । ४ अन्यायी ।

अविवेचक—वि० [सं०] विवेचना वा स्पष्टीकरण न करनेवाला [को०] ।

अविवेचना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] विवेचना वा व्याख्यान करने की शक्ति का न होना [को०] ।

अविशक—वि० [सं० अविशङ्क] १ शका या सदेह न करनेवाला । अशक । २ न डरनेवाला । निर्भय [को०] ।

अविशका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अविशङ्का] सदेह या भय का अभाव [को०] ।

अविशुद्ध—वि० [सं०] १ जो विशुद्ध न हो । मेलमाल का । २ अशुद्ध । मलिन । ३ अपवित्र । नापाक ।

अविशुद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अशुद्धि । मेलमान । २ मलिनता । अपवित्रता । नापाकी । ३ विकार ।

अविशेष<sup>१</sup>—[सं०] भेदक धर्मरहित । जिसमें किसी दूसरी वस्तु में कोई विशेषता न हो । तुल्य । समान ।

अविशेष<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ भेदक धर्म का अभाव । तुल्यत्व । २ एकता [को०] । ३ साध्य में सातत्व, धीरत्व और मूढत्व आदि विशेषताओं से रहित सूक्ष्म भूत ।

यौ० अविशेषज्ञ ।

अविशेषसम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक । यदि वादी किसी वस्तु के सादृश्य के आधार पर कोई बात सिद्ध करे—उदाहरणार्थ घट के सादृश्य से शब्द को अनित्य सिद्ध करे और उसके उत्तर में प्रतिवादी कहे कि यदि प्रयत्न के उत्पन्न होने के कारण ही घट के समान शब्द भी अनित्य हो, तो इतना अल्पसादृश्य तो सभी वस्तुओं में होता है, और ऐसे सादृश्य के कारण सभी चीजों के धर्म एक मानने पड़ेंगे, तो ऐसा उत्तर अविशेषसम कहा जायगा ।

अविश्रम्भ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अविश्रम्भ] विश्वास का अभाव । अविश्वास [को०] ।

अविश्रान्त<sup>१</sup>—वि० [सं० अविश्रान्त] १ विरामरहित । जो रुके नहीं ।

२ जो थके नहीं । ३ जो क्षतिग्रस्त न हो । अशन [को०] ।

अविश्रान्त<sup>२</sup>—कि० वि० अनवरत । लगातार [को०] ।

अविश्वसनीय—वि० [सं०] जो विश्वासयोग्य न हो । जिस पर विश्वास न किया जा सके ।

अविश्वस्त—वि० [सं०] सदेहास्पद । अविश्वगनीय ।

अविश्वास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ विश्वास का अभाव । वै एतवारी । उ०—परन्तु उस पर प्रकट ढाँने अविश्वास का भी नमय नहीं रहा ।—स्कंद०, पृ० १०८ । २ अप्रत्यय । अनिश्चय ।

यौ०—अविश्वासपात्र = जिस पर विश्वास न किया जाय । वै एतवारी । झूठा ।

अविश्वासी—वि० [सं० अविश्वास्तिन्] १ जो किसी पर विश्वास न करे । विश्वासीहीन । श्रद्धान्तरित । उ०—तो कैसे होगा अविश्वासी धर्मिय । तभी तो म्लेच्छ लोग साम्राज्य बना रहे हैं ।—चंद्र०, पृ० १६० । २ जिस पर विश्वास न किया जाय । अविश्वासपात्र ।

अविप<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो विपला न हो । विपहीन । २ विप के अभाव को समाप्त करनेवाला [को०] ।

अविप<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ समुद्र । २ आकाश । ३ राजा [को०] ।

अविपय<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो विषय न हो । अगोचर । २ अप्रतिपाद्य । अनिर्वचनीय । ३ जिसमें कोई विषय न हो । विषयशून्य ।

अविपय<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अभाव । २ लोप । अदर्शन । ३ इन्द्रियों के विषय की उपेक्षा [को०] ।

अविपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विषी तृण । एक जड़ी । जड़वार । विशेष—यह मोये के समान होती है और पाय हिमालय के पहाड़ों पर मिलती है । इसका कंद प्रतीक के नामान होता है और साँप, विच्छ आदि के विप को दूर करता है ।

अविपी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ सरिता । नदी । २ पृथ्वी । धरती । ३ स्वर्ग [को०] ।

अविस्मर्गि—वि० [सं० अविस्मर्गिन्] न हटनेवाला । हमेशा बना रहनेवाला [को०] ।

यौ०—अविस्मर्गी ज्वर = लगातार बना रहनेवाला ज्वर ।

अविसह्य—वि० [सं०] रोग उत्पन्न करनेवाला या गुणरहित (पदार्थ) । विशेष—कोटिल्यके अनुसार ऐसे पदार्थ बनेवाला दंड का भागी होता था ।

अविसह्यदुर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोटिल्य के मातानुसार वह दुर्ग जिसमें शत्रु प्रवेश न कर सकता हो ।

अविस्तर—वि० [सं०] कम विस्तार या लवाईवाला । सक्षिप्त [को०] ।

अविस्तार—वि० [सं०] विस्तार का अभाव । सक्षिप्तता [को०] ।

अविस्तीर्ण—वि० [सं०] जो विस्तीर्ण न हो । कम फैलाववाला [को०] ।

अविस्तृत—वि० [सं०] ठसा हुआ । कम स्थान में फैला हुआ । अविस्तर । घना [को०] ।

अविस्पष्ट—वि० [सं०] जो साफ या स्पष्ट न हो । स्पष्ट रहित । अस्पष्ट [को०] ।

अविहट<sup>७</sup>—वि० [स० अ + विघटय] १. जो विहट्टे नहीं। जो खडिन न हो। अखड। अतश्चर। उ०—(क) अविहट्ट अखडित पीन है ताको निर्मय दास। तीनों गुण के पेलि के चौथे कियो निवाम।—कवीर (शब्द०)। (ख) अविहट्ट अंग विहट्टे नहीं अपलट पलट न जाय। दादू अतवट एक रम मव मे रहा ममाय।—दादू (शब्द०)। २. दे० 'वीहट'।

अविहर<sup>७</sup>—वि० [हि० अ + विहर = विखरनेवाला] दे० अविहट्ट। उ०—ढढोरजहिं ढाल मुरे गौरीदल अविहर।—प्रि० रा० १३।६५।

अविहित<sup>७</sup>—वि० [म०] १ जो विहित न हो। विरुद्ध। २ अनुचित। अयोग्य। ३ निकृष्ट। नीच।

अवी—सज्ञा स्त्री [म०] १ ऋतुमती स्त्री। वनकुलथी।

अवीचि—सज्ञा पुं [स०] पुराणानुसार एक नरक।

अवीचि—वि० लहृविहीन। जिसमे लहर न हो [को०]।

अवीज<sup>१</sup>—वि० [स०] १ बीजरहित। २ नपु मक। ३ मुख्य हेतु का अभाव [को०]।

अवीज<sup>२</sup>—सज्ञा पुं १ मानसिक उत्तेजना पर नियन्त्रण। २ बीज का अभाव या न होना। ३ बुरा बीज।

अवीजक—वि०, सज्ञा पुं [म०] दे० 'अवीज' [को०]।

अवीजा—सज्ञा स्त्री [म०] किशमिष।

अवीरा—वि० स्त्री [स०] १ जिस स्त्री के पुत्र और पति न हो। पुत्र और पतिरहित (स्त्री)। २ स्वतंत्र (स्त्री)।

अवीह<sup>७</sup>—वि० [स० अवीड?] जो डरे नहीं। अमय। निडर।—(हि०)।

अवृक्ष—वि० [स०] वृक्षविहीन। पेड़ पौधों से रहित [को०]।

अवृत्त—वि० [स०] १ जो रोका न गया हो। २ अनिर्वाचित। ३ आवरणरहित। रक्षाविहीन। ४ जो किसी के वश में या पराभूत न हो।

अवृत्ति<sup>१</sup>—सज्ञा सज्ञा [म०] १ जीविका का अभाव। २ स्थिति का अभाव। बैठकानापन।

अवृत्ति<sup>२</sup>—वि० १ अस्तित्व या स्थितिरहित। २ जीविकाहीन [को०]।

अवृथा—अव्य० [म०] सफलतामहित। अव्यर्थ [को०]।

अवृद्धिक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [स०] विना वृद्धि या व्याज का रूप। मूल धन। अमल।

अवृद्धिक<sup>२</sup>—वि० जिसपर व्याज न लगता हो। जो बढ़ता न हो।

अवृष्टि—सज्ञा स्त्री [स०] वर्षा का अभाव। अवर्षण। सूखा [को०]।

अवेक्षक—वि० [म०] १ देखनेवाला। अवलोकन करनेवाला। २. जाँच पड़ताल करनेवाला। निरीक्षक [को०]।

अवेक्षण—सज्ञा पुं [म०] [वि० अवेक्षित अवेक्षणीय] १ अवलोकन। देखना। २ जाँच पड़ताल। देखभाल। निरीक्षण।

अवेक्षणीय—वि० [स०] १ देखने योग्य। निरीक्षण योग्य। २ जाँच के लायक। परीक्षा के योग्य।

अवेक्षा—सज्ञा स्त्री [स०] १ अवेक्षण। देखना। २ परवाह। ध्यान। उपाय।

अवेज<sup>७</sup>—सज्ञा पुं [अ० एवज] बदला। प्रतीकार। उ०—मारग मे गज मे चढो जात चलो अंगेरेज। कालीदह वीरघो मगज लिय कपि चना अवेज।—रघुराज (शब्द०)।

अवेणि—वि० [स०] १ वेणी न किया हुआ। २. जिनके बालों की वेणी न बनी हो। ३. जो एक साथ मिलकर न प्रवाहित हो, —जैसे नदी का जल [को०]।

अवेत—वि० [मं०] १ बीता हुआ। २ पाया हुआ। प्राप्त किया हुआ। ३ संयुक्त [को०]।

अवेद—सज्ञा पुं [म०] वेद से भिन्न। जो वेद न हो [को०]।

यौ०—अवेदविद अवेदविहित।

अवेदि—सज्ञा स्त्री [स०] मूर्खता। अज्ञान [को०]।

अवेद्य<sup>१</sup>—वि० पुं [स०] १ जो जाना न जा सके। अक्षय। २. अलभ्य।

अवेद्य<sup>२</sup>—सज्ञा पुं १ बछड़ा। २ नादान बच्चा।

अवेद्या—वि० स्त्री [म०] वह स्त्री जिससे विवाह नहीं कर सकते। अविवाह्य स्त्री।

अवेल्<sup>१</sup>—वि० [स०] १ जिसकी सीमा न हो। अभीमित। २ असामयिक [को०]।

अवेल्<sup>२</sup>—सज्ञा पुं गोपन छिपाव। दुगाव [को०]।

अवेला—सज्ञा स्त्री [स०] १ बुरा समय। कुसमय। अनुचित समय। प्रतिकूल समय। २ चत्राया हुआ पान [को०]।

अवेव<sup>७</sup>—वि० [स० अ = नहीं + वेग] निर्वन्। उ०—सब नी भूने सीह ज्यू असुरा लखे अवेव।—रा० ६०, पृ० २०८।

अवेश<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [स० आवेश] १ किसी विचार में इस प्रकार तन्मय हो जाना कि अपनी स्थिति भूल जाय। आवेग। जोश। मनोवेग। उ०—मारि मारि करि, कर चढग निकामि लियो दिधो घोर सागर मे सो अवेश आयो है।—नामा (शब्द०)। २ आमग। चेतनता अनुप्रवेश। उ०—शिष्यन सो कह्यो कमू देह मे अवेश जानो तव ही ब्रह्मानो आनि मुनि कीज न्यारी है।—प्रिया (शब्द०)। ३ भूतावेश। भूत चढ़ना। किसी भूत का सिर अना। भूत लगना। उ०—कोऊ कहै दोष, कोऊ कहत अवेश तापे करी दण्डय कियो भाव पूरी परघो है।—नामा (शब्द०)।

अवेश<sup>२</sup>—वि० [स०] विना वेशवाला। वेशरहित [को०]।

अवेस्ता—सज्ञा स्त्री [पहल०] १ ईरान के पूर्वी जनगमूह की एक पुरानी भाषा जो संस्कृत के अनि निकट है। २. पारसियों की एक धर्मपुस्तक।

अवैज्ञानिक—वि० [स०] १ जिसका विज्ञान में कोई संप्र न हो। २ जो तर्कसमत् न हो [को०]।

अवैतनिक—वि० [स०] जो वैतनिक न हो। जो किसी काम को करने के लिये वेतन न पाए। विना वेतन के काम करनेवाला। आनरेरी।

अवैदिक—वि० [म०] वेदविरुद्ध।

अवैद्य—वि० [म०] १ जो वैद्य न हो। जो वैद्यकशास्त्र को न जानता हो। २ अज्ञ। अनजान।

अवैध—वि० [स०] [वि० ली० अवैधी] १ नियम के विपरीत। गैर कानूनी। अविहित। उ०—यदि वे हमी से अवैध सेवा लेना चाहें ।—स्कंद०, पृ० १२१। २ जो शास्त्रानुमोदित न हो।

अवैधानिक—वि० [स०] जो विधान या नियम के विपरीत हो।

अवैमत्य<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] मतभेद का अभाव। ऐकमत्य।

अवैमत्य<sup>२</sup>—वि० जिसमें मतभेद न हो। सर्वमत।

अवोक्षण—सज्ञा पुं० [स०] तिरछा हाथ करके जन गिराना। तिरछा हाथ करके जल छिड़कना।

अवोद<sup>१</sup>—वि० [स०] गीता। आर्द्र। नम [को०]।

अवोद<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० आर्द्र करना। गीना करना [को०]।

अवोष—सज्ञा पुं० [स०] ताजा या गरमागरम भोजन [को०]।

अव्यग—वि० [स० अव्यङ्ग] जो व्यग या टेढ़ा न हो। सीधा।

अव्यंगांग—वि० [वि० अव्यङ्गाङ्ग] [ली० अव्यंगांगी] जिसका कोई अंग टेढ़ा न हो। मुड़ील।

अव्यगा—सज्ञा स्त्री० [स० अव्यङ्गा] केवाँच। करँच। कौँच।

अव्यग्य—वि० [स० अव्यङ्ग्य] १ निर्दोष। २ व्यग्ररहित। व्यजन-विहीन [को०]।

विशेष—साहित्य में अव्यग्य काव्य को अवर अर्थात् अधम कोटि में माना गया है।

अव्यजन<sup>१</sup>—वि० [स० अव्यञ्जन] [वि० ली० अव्यजना] १ बिना सींग का (पशु)। डूँडा। २ जो सुनक्षण न हो। कुनक्षण। ३ जिसमें (जवानी का) कोई चिह्न न हो। चिह्नशून्य। ४ जो पृथक् या व्यक्त न हो [को०]।

अव्यजन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ शृ गहीन पशु। डूँडा पशु। २ जो व्यजन न हो अर्थात् स्वर [को०]।

अव्यङा—सज्ञा स्त्री० [स० अव्यङ्गा] १ केवाँच। करँच। कौँच।

अव्यक्त—वि० [स०] १ जो स्पष्ट न हो। अप्रत्यक्ष। अगोचर। उ०—(क) अटल शक्ति अविनाश अधिक वन एक अनादि अनूप। आदि अव्यक्त अविकापूरण अखिल लोक तत्र ह्य।—सूर (शब्द०)। (ख) सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा 'चुप, चुप, चुप'।—अपरा, पृ० १३। २ अज्ञात। अनिर्वचनीय। उ०—प्रथम शब्द है शून्याकार। परा अव्यक्त सो कहै विचार।—कवीर (शब्द०)।

अव्यक्त<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ विष्णु। २ कामदेव। ३ शिव। ४ प्रधान। प्रकृति (साध्य)। उ०—अव्यक्त मूलमनादि तत्त्वच चारि, निगमागम भने।—मानस, ७।१३। ५ वेदात शास्त्रानुसार अज्ञान। सूक्ष्म शरीर और सुषुप्ति अवस्था। ६ ब्रह्म। ईश्वर। ७ वीजगणित के अनुसार वह राशि जिसका मान अनिश्चित हो। अनवगत राशि। ८ मायोशक्ति ब्रह्म (शकर)। ९ जीव।

कि० प्र०—होना (१) प्रकृति दशा को प्राप्त होना। कारण में लय होना। (२) अप्रकट होना। लुप्त होना। निर्वचनीय से अनिवर्चनीय अवस्था को प्राप्त होना।

अव्यक्तक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] वीजगणित की एक क्रिया।

अव्यक्तिगणित—सज्ञा पुं० [स०] वीजगणित।

अव्यक्तगति—वि० [स०] जिसकी गति प्रकट न हो। अप्रत्यक्ष गमन करनेवाला [को०]।

अव्यक्तपद—सज्ञा पुं० [स०] वह पद जिसका तात्पर्य आदि म्यानों द्वारा स्पष्ट उच्चारण न हो सके, जैसे बिड़िंगी की बोरी।

अव्यक्तमलप्रभव—सज्ञा पुं० [स०] समार। जगत्।

अव्यक्तराग—सज्ञा पुं० [स०] १ हल्का लाल। अण्ण। २ गौर। श्वेत।

अव्यक्तराशि—सज्ञा स्त्री० [स०] (वीजगणित में) वह राशि जिसका मान अनिश्चित हो [को०]।

अव्यक्तलक्षण—सज्ञा पुं० [स०] शिव [को०]।

अव्यक्तलिङ्ग—सज्ञा पुं० [स० अव्यक्तलिङ्ग] १ माधवशास्त्रानुसार महत्त्वत्वादि। २ मन्थामी। ३ वह रोग जो पहचाना न जाय।

अव्यक्तमास्य—सज्ञा पुं० [स०] गीतगणित के प्रनुसार अव्यक्त राशि या वर्ण का समीकरण।

अव्यक्तानुकरण—सज्ञा पुं० [स०] प्रसुप्त गवश का प्रतुकरण। जैसे, मनुष्य मुँगे की बोरी पर उसको नकन करके 'कुङ्कू' बोलता है।

अव्यक्तिक—वि० [स०] १ 'अव्यक्त' [को०]।

अव्यग्र—वि० [स०] १ जो व्यग्र न हो। धीर। २ ध्यानवाता। मतक [को०]।

अव्यथ<sup>१</sup>—वि० [स०] १ किसी को दुःख न देनेवाला। दयालु। २ वेदना से रहित। दुःख से दूर [को०]।

अव्यथ<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० साँप [को०]।

अव्यथय—सज्ञा पुं० [स०] अथव। घोड़ा [को०]।

अव्यथा—सज्ञा पुं० [स०] १ हरीतकी। हड। २ सोडा। ३ म्यन-कमल। स्यनास। ४ गोरबमुडी। ५ ग्रावता। ६ स्थिरतह। दृढता [को०]।

अव्यथिष—सज्ञा पुं० [स०] १ सूर्य। २ समुद्र [को०]।

अव्यथिपी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पृथ्वी। २ राशि। अप्रराति। निशीथ [को०]।

अव्यथी—वि० [स० अव्यथिन्] १ दुःख में मुग्ध। २ गर में मुग्ध। निर्भय। ३ दुःख न देनेवाला [को०]।

अव्यथ्य—वि० [स०] १ जो किसी प्रकार मुग्ध न होता जा सके। २ ३ 'अव्यथी' [को०]।

अव्यपदेश्य<sup>१</sup>—वि० [स०] १ जो कहा न जा सके। अनिर्वचनीय। २ न्यायानुसार निश्चल। जिसमें विकल्प या उलट फेर न हो। निश्चित। ३ अनिर्देश्य।

अव्यपदेश्य<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ निश्चल ज्ञान। २ ब्रह्म।

अव्यभिचार—सज्ञा पुं० [स०] १ अविच्छिन्नता। सान्तर। २ वफादारी। ३ नित्यमग्न या साहचर्य [को०]।

अव्यभिचारी—वि० [स० अव्यभिचारिन्] जो किसी प्रतिकूल कारण से हटे नहीं। अनुकूल। २ जो किसी प्रकार व्यभिचारित न हो। ३ धर्मशील। सचरित। नैतिक [को०]। ४ नित्य। जो हमेशा बना रहे। एकरस [को०]।

अभिव्यक्ति<sup>१</sup>—सज्ञा पुं न्याय के मत में माध्य-माधक-व्याप्ति-विशिष्ट हेतु ।

अभिव्यक्ति<sup>२</sup>—वि० [सं०] १ जो विकार को प्राप्त न हो । मदा एकरम रहनेवाला । अक्षय । २ नित्य । आदि-अत-रहित । ३. परिणाम-रहित । विकार-रहित । ४. प्रवाहरूप से सदा रहनेवाला ।

अभिव्यक्ति<sup>३</sup>—सज्ञा पुं १ व्याकरण में वह शब्द जिसका सब लिंगो, सब विभक्तियों और सब वचनों में समान रूप से प्रयोग हो । २ परब्रह्म । ३ शिव । ४ विष्णु । ५ कुशल क्षेम [को०] । ६. ममृद्धि [को०] ।

अभिव्यक्तिभाव—सज्ञा पुं [सं०] ममास का एक भेद जिसमें अभिव्यक्ति के साथ उत्तरपद समस्त होता है । जैसे, अतिकाल, अनुरूप, प्रति-रूप । यह समास प्रायः पूर्वपदप्रधान होता है और या तो विशेषण या क्रियाविशेषण होता है ।

अभिव्यक्ति—सज्ञा पुं [सं०] यमकानुप्रास के दो भेदों में से एक जिसमें यमकात्मक अक्षरों के बीच कोई और अक्षर या पद न पड़े, जैसे—अलिनी अलि नीरज वसे प्रति तरुवरनि वहग । तयो मनमथ मन मथन हरि वसे राधिका सग ।' यहाँ 'अलिनी, अलि नी' और 'मनमथ मन मथ' के बीच कोई और पद नहीं है ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं०] १ जो व्यर्थ न हो । सफल । २ सार्थक । ३ अमोघ ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं०] १ झूठ नहीं । सत्य । २ सहमत होने योग्य । प्रिय [को०] ।

अभिव्यक्ति—सज्ञा पुं [सं०] १ व्यवधान या अंतर का अभाव । २. निकटता । लगाव । रोक का न होना । रुकावट का अभाव । ३ लापरवाही [को०] ।

अभिव्यक्ति—वि० १ विना व्यवधान या रुकावट का । २ प्रकट । खुला हुआ । ३ नग्न । आवरणहीन, जैसे भूमि । ४. लापरवाह [को०] ।

अभिव्यक्ति—सज्ञा पुं [सं०] १. व्यवसाय का अभाव । उद्यम का अभाव । २ निश्चयामाव । निश्चय का न होना ।

अभिव्यक्ति—वि० उद्यमशून्य । व्यवसायशून्य । आनमी । निकम्मा ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं० अभिव्यक्तियन्] १ उद्यमहीन । निरुद्यमी । २ आलसी । पुरुषार्थहीन ।

अभिव्यक्ति—सज्ञा स्त्री [सं०] [वि० अभिव्यक्त] १ नियम का न होना । नियमाभाव । बेकायदगी । २ स्थिति का अभाव । मर्यादा का न होना । ३. शास्त्रादिविरुद्ध व्यवस्था । अवधि । ४ वेदितजाभी । गडबड ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं०] १ शास्त्रादि-मर्यादा-रहित । बेमर्याद । ३—'गुप्तकुल का अभिव्यक्त उत्तराधिकार नियम' ।—स्कंद०, पृ० १२ । २ अनियत रूप । बेठिकाने का । ३—'सम्राट् की मति एक सी नहीं रहती, वे अभिव्यक्त और चंचल हैं ।'—स्कंद०, पृ० २८ । ३ चंचल । अस्थिर । ४—'मैं इन बातों को नहीं सुनना चाहती, क्योंकि समय ने मुझे अभिव्यक्त बना दिया है ।'—चंद्र०, पृ० १३३ ।

यो०—अभिव्यक्तचित्त = जिसका चित्त ठिकाने न हो । चंचल-चित्त । ५—'यह अभिव्यक्तचित्त का मनुष्य है ।'—(शब्द०) ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं०] १ जो व्यवहार या काम में लाने योग्य न हो । जो व्यवहार में न लाया जा सके । २ पतित । पक्षिच्युत ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं०] विना व्यवधान या रुकावट का [को०] ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं०] जो व्यवहार में न आया हो [को०] ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं०] व्यसन में मुक्त । व्यसन से हीन । दुर्गुण से दूर [को०] ।

अभिव्यक्ति—सज्ञा पुं व्यसन या दुर्गुण का अभाव [को०] ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं०] १ जो व्याकृत न हो । अवशिष्ट जो विकार प्राप्त न हो । २ अप्रकट । गुप्त । ३. कारण ह्य । कारणस्व ।

अभिव्यक्ति—सज्ञा पुं १ वेदादशांशानुसार अप्रकट बीजरूप जगत्कारण अज्ञान । २ सांख्यशास्त्रानुसार प्रधान प्रकृति ।

यो०—अभिव्यक्तिधर्म ।

अभिव्यक्तिधर्म—सज्ञा पुं [सं०] बौद्धशास्त्रानुसार वह स्वभाव जिससे शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्म किए जा सकें ।

अभिव्यक्ति—सज्ञा पुं [सं०] स्रष्टीकरण या व्याख्या का अभाव [को०] ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं०] १ व्याख्या के अयोग्य । २ जिसे व्याख्या की जरूरत न हो । सरल [को०] ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं०] १ व्याघातशून्य । जो रोक न जा सके । बेरोक । २ अटूट । लगातार ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं०] १ छलछद्म से रहित । निष्कपट । २. अकृत्रिम । स्वाभाविक । नैसर्गिक ( विशेषतः सामान्य में, जैसे अभिव्यक्तिमनोहर, अभिव्यक्तिमणीय [को०] ।

अभिव्यक्ति—सज्ञा पुं छलछद्म का अभाव । निष्कपटता । ईमानदारी [को०] ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं०] जो मरा न हो । जीवित । जिंदा ।

अभिव्यक्ति—सं० [सं०] व्यापारशून्य । बेकाम ।

अभिव्यक्ति—सज्ञा पुं १ उद्यम का अभाव । निष्ठाता । २ वह काम जो अपने में सन्निहित न हो । विना काम का काम [को०] ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं० अभिव्यक्ति] १ व्यापारशून्य । निरुद्यमी । निरुत्तु । २ सांख्यशास्त्रानुसार क्रियाशून्य, जिसमें व्यापार अर्थात् क्रिया करने की शक्ति न हो । जो स्वभाव ने अकर्ता हो ।

अभिव्यक्ति—सज्ञा पुं [सं० अभिव्यक्ति] [स्त्री० अभिव्यक्ति] १ जो व्यापारी न हो । जो सब जगह न पाया जाय । २ एक प्रकार का उत्तरात्मान जिसमें कहे हुए देव, स्थान का पता न चले, जैसे—'कोई कहे कि काशी के पूर्व मध्य देश में मेरा पैतृ यमुना में लिया । यहाँ काशी के पूर्व मध्य देश नहीं, किन्तु मध्य देश है, अतः यह अभिव्यक्ति है ।

अभिव्यक्ति—वि० [सं०] जो व्यापार न हो । जो हर जगह न हो । निमित्त [को०] ।



अव्याप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०][वि० अव्याप्ति] १ व्याप्ति का अभाव । २ नव्य न्यायशास्त्रानुसार लक्ष्य पर लक्षण के न घटने का दोष, जैसे—'सब फटे खुरवाले पशुओं के सींग होती है। इस कथन में अव्याप्ति दोष है, क्योंकि सूअर के खुर फटे होते हैं, पर उसके सींग नहीं होती।

अव्याप्य—वि० [सं०] व्याप्तिरहित । जो समग्र पर न लागू हो [को०] ।

यौ०—अव्याप्यवृत्ति—सुख दुःख आदि की क्षणिक वृत्ति ।

अव्यावृत्त—वि० [सं०] १ निरन्तर । सतत । लगातार । २ अटूट । ३ विना लोट पोटा का । ज्यो का त्यो ।

अव्याहृत<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ अप्रतिरुद्ध । बेरोक । उ०—सुनत फिर उँ हुरि गुन अनुवादा । अव्याहृत गति शम्भु प्रसादा ।—तुलसी (शब्द०) । २ सत्य ।

अव्याहृत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० सत्य या अखडनीय वक्तव्य ।

अव्युच्छिन्न—वि० [सं०] बेरोक । अव्याहृत ।

अव्युत्पन्न—वि० [सं०] १ अनमिज्ञ । अनुभवशून्य । अनाड़ी । अकुशल । २ व्याकरणशास्त्रानुसार वह शब्द जिसकी व्युत्पत्ति या सिद्धि न हो सके । ३ व्याकरणज्ञानशून्य ।

अव्युष्ट—वि० [सं०] न चमकता हुआ । प्रकाशहीन । उ०—उपा के अव्युष्ट होने का अर्थ है कि अभी अँधेरा है ।—आर्यो०, पृ० ११८ ।

अन्न—सज्ञा पुं० [अ० अन्न, तुल० सं० अन्न] वादल । भेष ।

अन्नरा<sup>१</sup>—वि० [सं०] जो क्षत न हो । विना घाव का । जो घाव से खराब न हुआ हो [को०] ।

अन्नरा<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० दे० 'अन्नराशुक्र' [को०] ।

अन्नराशुक्र—सज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें आँख की पुतली पर सफेद रंग की एक फूली सी पड़ जाती है और उसमें सूई चुभने के समान पीड़ा होती है ।

अन्नत<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ व्रतहीन । जिसका व्रत नष्ट हो गया हो । २ जिसने व्रतधारण न किया हो । व्रतरहित । ३ नियमरहित । नियमशून्य ।

अन्नत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ जैनशास्त्रानुसार व्रत का त्याग ।

विशेष—यह पाँच प्रकार का है—प्राणवध, मृषावाद, अदत्तदान, मथुन या अन्नह्न और परिग्रह ।

२ व्रत का अभाव । ३ नियम का न होना ।

अन्नत्य—सज्ञा पुं० [सं०] धर्मानुष्ठान का अभाव [को०] ।

अन्नल<sup>१</sup>—वि० [अ०] १ पहला । आदि का । प्रथम । २ उत्तम । श्रेष्ठ ।

अन्नल<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० आदि । प्रारम्भ, जैसे—'अन्नल से आखिर तक' ।—(शब्द०) ।

मुहा०—अन्नल आना या रहना—प्रथम स्थान प्राप्त करना ।

अन्नलन्—कि० वि० [अ०] प्रथमतः । पहले ।

अन्वास<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आवास' । उ०—ऊँचा महल ही अन्वास । करता नारि नर विलास ।—राम० धर्म०, पृ० १६८ ।

अशक—वि० [सं० अशङ्क] १ निश्चय । वेडर । निर्भय । उ०—देखा भविष्य के प्रति अशक ।—प्रपरा, पृ० १७४ । २ सदेहरहित । निश्चित [को०] ।

अशकित—वि० [सं० अशङ्कित] दे० 'अशक' [को०] ।

अशम्भु<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं + शम्भु=कल्याण] अकल्याण । अमंगल । अशुभ । अहित । उ०—मुनो क्यों न कनकपुरी के राइ । डोलै गगन सहित मुरपति अरु पुहुमि पलट जग जाइ । नसै धर्म मन वचन काय करि नम्र अशम्भु कराइ । अन्नला चरै, चतत पुनि थाकै, चिरजीव सो मरई । श्री रघुनाथ प्रताप पतिव्रत सीता सत नहि टरई ।—सूर (शब्द०) ।

अशकुंभी—सज्ञा स्त्री० [सं० अशकुम्भी] जन में होनेवाला एक पौधा । आकाशमूली [को०] ।

अशकुन—सज्ञा पुं० [सं०] कोई वस्तु या व्यापार जिससे अमंगल की सूचना समझी जाय । बुरा शकुन । बुरा लक्षण ।

विशेष—इस देश में लोग दिन को गीदड़ का वोतना, कार्यारम्भ में छीक होना आदि अशकुन समझते हैं ।

अशक्त—वि० [सं०][सज्ञा अशक्ति] १ निर्बल । कमजोर । २. अक्षम । असमर्थ । नाकाविन । उ०—होकर अशक्त अकाल में ही काल-कवलित हो रहे ।—भारत०, पृ० १०१ ।

अशक्तता—सज्ञा स्त्री० [सं०] शक्तिहीनता । अयोग्यता [को०] ।

अशक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ निर्बलता । कमजोरी । २ माद्य में बुद्धि और इन्द्रियों का वध या विपर्यय । हाथ पैर आदि इन्द्रियों और बुद्धि का बेकाम होना ।

विशेष—ये अशक्तियाँ अट्ठाईस हैं । इन्द्रियाँ ग्यारह हैं, अतः ग्यारह अशक्तियाँ तो उनकी हुईं । इसी प्रकार बुद्धि की दो शक्तियाँ हैं तुष्टि और मिद्धि । तुष्टि नहीं है और मिद्धि आठ । इन सबके विपर्यय को अशक्ति कहते हैं ।

अशक्य—वि० [सं०] १ असाध्य । शक्ति के बाहर । न होने योग्य । २ एक काव्यालंकार जिसमें किसी रूपावट या अङ्कन के कारण किसी कार्य के होने की असाध्यता का वर्णन हो, जैसे—'काक कला कहुँ कहुँ कपि कलकल । कहुँ भिन्नी रव कक कहुँ थल । वसी भाग्य वस सो वन ऐसे । करहिं तहाँ ध्वनि कोकिल कैसे ।

अशत्रु<sup>१</sup>—वि० [सं०] विना शत्रुवाला । २ जिसमें शत्रु शत्रुता का व्यवहार नहीं रखते [को०] ।

अशत्रु<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ चद्रमा । २ शत्रु का अभाव [को०] ।

अशन—सज्ञा पुं० [सं०][वि० अशिन, अशनीय] १ भोजन । आहार । अन्न । २ भोजन की क्रिया । भक्षण । खाना । ३ चीता । चित्रक लकड़ी । ४ मिलावा । ५ अशन वृक्ष ।

अशनपति—सज्ञा पुं० [सं०] अन्न के रक्षामी या देवता [को०] ।

अशनपर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं०] पटमन [को०] ।

अशना—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अशनायित] भोजन की इच्छा । भूख [को०] ।

अशनाया—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ भोजन की इच्छा । भूख । उ०—इस प्रवृत्ति का हेतु जो वन होता है उसे श्रुति में अशनाया बल कहा गया है ।—गोदार प्रणि०, पृ० ६१७ ।

अशनि—सङ्घ पु० [सं०] १. वज्र । विजनी । २. विजनी की चमक [को०] । ३. महास्त्र [को०] । ४. स्वामी । मालिक [को०] । ५. इन्द्र [को०] । ६. अग्नि [को०] ।

यी०—अशनिदंड = वज्र । विजनी । अशनिपात = वज्रपात ।

अशनीय—वि० [सं०] खाने योग्य ।

अशब्द<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो शब्दों में प्रकट न किया जाय । २ अव्यक्त । ३ शब्दविहीन । ४ जो वैदिक न हो । अवैदिक [को०] ।

अशब्द<sup>२</sup>—सङ्घ पु० १ शब्द का अभाव । २ ब्रह्म [को०] ।

अशरण—वि० [सं०] जिसे कहीं शरण न हो । अनाथ । निराश्रय । वेपनाह ।

अशरणशरण<sup>१</sup>—वि० [सं०] अनाथ या निराश्रय को आश्रय देने वाला [को०] ।

अशरणशरण<sup>२</sup>—सङ्घ पु० ईश्वर । भगवान् [को०] ।

अशरफ—वि० [अ० अशरफ] बहुत अधिक शरीफ [को०] ।

अशरफी—सङ्घ स्त्री० [फा०] १ मोने का एक पुराना मिक्का जो सोलह रुपए से लेकर पचीस रुपए तक का होता था । मोहर । २ एक प्रकार का पीले रंग का फूल । गुल अशरफी ।

अशरा—सङ्घ पु० [अ० अशरह] १ महीने का दसवाँ दिन । २ मुहर्रम का दसवाँ दिन [को०] ।

अशराफ—वि० [अ० शरीफ का बहु०] भद्र । शरीफ । भलामानुष । उ०—फिरते हैं अशराफ गली में मारे मारे ।—कविता कौ०, भा० २, पृ० २५५ ।

अशराफत—सङ्घ स्त्री० [अ० अशराफ + त (प्रत्य०)] सज्जनता । शराफत । भद्रता । उ०—‘सादगी’ और सीधेपन से रहने में मनुष्य की सच्ची अशराफत मालूम होती है’ ।—श्रीनिवास अ०, पृ० २७७ ।

अशरीर<sup>१</sup>—वि० [सं०] शरीररहित । आकारविहीन [को०] ।

अशरीर<sup>२</sup>—सङ्घ पु० [सं०] १ परमात्मा । ब्रह्म । २ मीमांसा के अनुसार कोई भी देवता । ३ काम के देवता । कामदेव । ४. विरक्त । सन्यासी [को०] ।

अशरीरी<sup>१</sup>—वि० [सं० अशरीरिन्] शरीररहित । देहविहीन । उ०—ये अशरीरी रूप, सुमन से केवल वर्ण गंध में फूले ।—कामायनी, पृ० २६४ ।

अशरीरी<sup>२</sup>—सङ्घ पु० १ ब्रह्म । २. देवता [को०] ।

अशरफी—सङ्घ पु० [हि०] दे० ‘अशरफी’ ।

अशर्म<sup>१</sup>—सङ्घ पु० [सं०] कष्ट । दुःख । अकल्याण ।

अशर्म<sup>२</sup>—वि० १ दुःखी । बेचैन । २ जिसे घरबार न हो । गृहरहित ।

अशस्त—वि० [सं०] १. अनिर्वचनीय । अकथनीय । २ अप्रतिष्ठित । भाग्यहीन [को०] ।

अशस्त्र<sup>१</sup>—वि० [सं०] बिना शस्त्र का । शस्त्रहीन [को०] ।

अशस्त्र<sup>२</sup>—सङ्घ पु० जो शस्त्र न हो [को०] ।

अशत—वि० [सं० अशस्त] जो शान्त न हो । अस्थिर । चंचल । बाँबोल । उ०—यही तो, मैं ज्वलित चाडव वहिन निरश

अशत ।—कामायनी, पृ० ८५ । २ अपवित्र । अधार्मिक [को०] । ३ पाँचो तन्मात्राओं में से एक ।

अशति—सङ्घ स्त्री० [अशानि] [वि० अशत] १. अस्थिरता । चंचलता । हलचल । खलबली । उ०—जाकर कहाँ हमने जलाई आग युद्ध अशति की ।—भारत०, पृ० ५१ । २. क्षोभ । अमतोष । उ०—जीवन अशति अपूर्ण नवके दीन हो अथवा धनी ।—भारत०, पृ० १४६ ।

अशाखा—सङ्घ स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे शूरीवृण भी कहते हैं [को०] ।

अशाम्य—वि० [सं०] जिसको शात न किया जा सके । जिसका शमन असंभव हो [को०] ।

अशालीन—वि० [सं०] धृष्ट । ढीठ । शालीनतारहित ।

अशालीनता—सङ्घ स्त्री० [सं०] धृष्टता । ढिठाई ।

अशासन<sup>१</sup>—सङ्घ पु० [सं०] शासनाभाव । अव्यवस्थित शासन । अराजकता [को०] ।

अशासन<sup>२</sup>—वि० शासन में न रहनेवाला । शासनहीन [को०] ।

अशासावेदनीय—सङ्घ पु० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वह कर्म जिसके उदय से दुःख का अनुभव होता है ।

अशास्त्रीय—वि० [सं०] जो शास्त्रसमत न हो । जो ग्रहित न हो [को०] ।

अशिक्षा—सङ्घ स्त्री० [सं०] शिक्षा का अभाव । ज्ञानभाव । उ०—ये सब अशिक्षा के कुफल हैं वाम है जिनका यहाँ ।—भारत०, पृ० ११५ ।

अशिक्षित—वि० [सं०] जिसने शिक्षा न पाई हो । वेपद्मा लिखा । अनपढ़ । उजड़ । अनाड़ी । गेंवार । उ०—यदि हम अशिक्षित थे, कहे तो, सम्भव कैसे हुए ।—भारत०, पृ० ६६ ।

अशित—वि० [सं०] खाया हुआ । भुक्त ।

अशित्र—सङ्घ पु० [सं०] चोर ।

अशिथिल—वि० [सं०] १ जो ढीला न हो । कपा हुआ । गाढ़ । २ प्रभावकर । विश्वस्त [को०] ।

अशिर—सङ्घ पु० [सं०] १. हीरा । २ अग्नि । ३ राक्षस । ४ सूर्य । ५ वायु [को०] ।

अशिव<sup>१</sup>—सङ्घ पु० [सं०] अमग्न । अकल्याण । अशुभ ।

अशिव<sup>२</sup>—वि० १ दुष्ट । बदमाश । २ भाग्यहीन । ३ जो कृपानु न हो । अमित्र । ४ खतरनाक [को०] ।

अशिशु<sup>१</sup>—वि० [सं०] नि सतान । बिना वा बच्चेवाला [को०] ।

अशिशु<sup>२</sup>—सङ्घ पु० १ तरुण । युवा । २ शिशुना का अभाव [को०] ।

अशिश्विका—सङ्घ स्त्री० [सं०] १ बिना बच्चे की स्त्री । सतानहीन स्त्री । २ बिना बछड़े की गाय [को०] ।

अशिश्वी—सङ्घ स्त्री० [सं०] दे० ‘अशिश्विका’ ।

अशिष्ट—वि० [सं०] प्रसाधु । दु शीत । अविनीत । उजड़ । बेहूदा । अमद्र । अनैतिक अगाध ।

अशिष्टता—सङ्घ स्त्री० [सं०] १. अनाधुता । दु शीतता । बेहूदगी । उजड़पन । अमद्रता । २ ढिठाई ।

अशीत—वि० [सं०] जो ठंडा न हो । गरम [को०] ।

अशीतकर—सङ्घ पु० [सं०] सूर्य [को०] ।

अशीतल—वि० [म०] गरम [को०] ।

अशीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ८० की संख्या [को०] ।

अशीतिक—वि० [म०] १ अस्मी मालवाला । २ अस्मी का मापक ।

३ अस्मी का जिनमे सकेत मिले [को०] ।

अशील<sup>१</sup>—वि० [म०] १ अनद्र । अशिष्ट । उद्द । २ उदास [को०] ।

अशील<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० अमद्र व्यवहार । अशिष्टता । उद्द । [को०] ।

अशीप<sup>(३)</sup>—संज्ञा पुं० [म० आशिप] आशीर्वाद । अमीस । दुष्ट ।

उ०—कछू जनि जी दुख पायहु माइ । सो देहु अशीप मिली  
फिरि आई ।—रामच०, पृ० ४८ ।

अशुचि—वि० [सं० अशुचि] १ 'अशुचि' । उ०—यत्ति विलक्षण है  
तब दुष्किया अशुच मृत्यु अरे अधमाधम ।—कविता कौ०,  
भा०, २, पृ० २४७ ।

अशुचि<sup>१</sup>—वि० [म०] [संज्ञा अशोच] १ अपवित्र । २ गंदा । मैला ।  
३ काला [को०] ।

अशुचि<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० १ काला रंग । २ अपवित्रता । ३. अपकर्ष ।  
अधोगमन [को०] ।

अशुचिता—वि० [सं०] १ अपवित्रता । २ ग्रीष्माभाव । ज्वेष्ठ और  
आषाढ का महीना [को०] ।

अशुद्ध<sup>१</sup>—वि० [सं० संज्ञा अशुद्धता, अशुद्ध] १ अपवित्र । अशोच-  
युक्त । नापाक । २ विना साफ किया हुआ । विना शोधा  
हुआ । अमस्कृत जैसे, अशुद्ध पारा । ३. वेठीक । गलत ।

यौ०—अशुद्ध वासक = सद्विध व्यक्ति ।

अशुद्ध<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० रक्त । खून [को०] ।

अशुद्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपवित्रता । मैलापन । गदगी ।  
२. गलती ।

अशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपवित्रता । अशोच । गदगी । २.  
गलती ।

अशुन<sup>(३)</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अश्विनी] अश्विनी नक्षत्र । उ०—अशुन,  
मरनि, रेवती भली । मृगसर मोल पुनरवमु वली ।—जायसी  
( शब्द० ) ।

अशुभ<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [म०] १ अमंगल । अकल्याण । अहित । २. पाप ।  
अपराध । ३ । दुर्भाग्य [को०] ।

अशुभ<sup>२</sup>—वि० जो शुभ न हो । अमंगलकारी । बुरा ।

यौ०—अशुभदर्शन = भद्दा । कुरूप । अप्रियदर्शन । अशुभसूचक =  
अमंगल की सूचना देनेवाला ।

अशुश्रूपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसकी आज्ञा में रहना चाहिए, उसकी  
आज्ञा में न रहने का अपराध ।

विशेष—स्मृति के अनुसार पारिवारिक व्यवस्था की दृष्टि से इस  
अपराध का राज्य की ओर से दंड होता था, जैसे—यदि  
पुत्र पिता की आज्ञा न माने तो वह दंडनीय माना गया है ।

अशून्य—वि० [सं०] शून्यरहित । प्रमाणित । अरिक्त । पूर्ण । पूरा ।  
उ०—(क) 'हमने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है  
सो लेना ।' भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २०७ । (ख) 'यही  
लेख अशून्य करने का होगी' ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ०  
२०८ ।

अशून्यशयन—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिथि जिस दिन विश्वकर्मा शयन  
करते हैं [को०] ।

यौ०—अशून्यशयन द्वितीया = दे० 'अशून्यशयनव्रत' ।

अशून्यशयनव्रत—संज्ञा पुं० [म०] विष्णु का एक व्रत जो श्रावण  
कृष्ण द्वितीया को होता है ।

अश्रुत—वि० [सं०] विना पका हुआ । कच्चा । अपरिपक्व [को०] ।

अश्व—वि० [सं०] सुखदायक । हर्षदायक [को०] ।

अश्व—वि० [सं०] १ श्वेतरहित । पूरा । समूचा । सब । तमाम ।  
उ०—विपमय यह गोदावरी अमृतन को फन देति । केगव  
जीवनहार को, दुख अश्वे हरि लेति ।—रामच०, पृ० ६६ ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

२ समाप्त । खतम । ३ अनन । अपार । बहुत । अधिक ।  
अगणित । अनेक । उ०—सानद आशिप अश्वे ऋषि  
दीन्हो ।—रामच०, पृ० ६६ । (ख) मिस रोम राजि  
रेखा सुवेप । विधि गनत मनो गुनगन अश्वे ।—गुमान  
( शब्द० ) ।

अश्वेता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णता । समग्रता [को०] ।

अश्वेसाम्राज्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

अशिक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] अर्हंत । उ०—'प्रथम आचार्यों के अनुसार  
'अर्हंत' से तीन यानों के उन आर्यों से आशय है जिन्होंने अशिक्ष  
फल का लाभ किया है' ।—संपू० अभि० ग्रं०, पृ० ३४६ ।

अश्व—वि० [सं०] अशुभ [को०] ।

अशोक<sup>१</sup>—वि० [सं०] शोकरहित । दुःखशून्य । उ०—देव अदेव नृदेव  
अरु, जितने जीव त्रिलोक । मन भायी पायी सबन कीन्हें सबन  
अशोक ।—रामच०, पृ० १६२ ।

अशोक<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ एक प्रसिद्ध पेड़ ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ आम की तरह लची लची और किनारों  
पर लहरदार होती हैं । इसमें सफेद मजरी ( मोर ) लगती  
है जिसके फूल जाने पर छोटे छोटे गोल फन लगते हैं जो पकने  
पर लाल होते हैं, पर खाए नहीं जाते । यह पेड़ बड़ा सुंदर  
और हरा भरा होता है, इससे इसे बगीचों में लगते हैं । शुभ  
अवसरों पर इसकी पत्तियों की बदनवारें बांधी जाती हैं । यह  
शीतल, कसैला, कड़ुआ, मल को रोकनेवाला, रक्तदोष को दूर  
करनेवाला और कृमिनाशक समझा जाता है । इसकी छाल  
विशेषकर स्त्री रोगों में दी जाती है । इसके दो भेद होते हैं—  
एक के पत्ते रामफल के समान और फूल कुछ नारंगी रंग के  
होते हैं । यह फागुन में फूलता है । दूसरे के पत्ते लंबे लंबे  
और आम के पत्तों के समान होते हैं और इसमें सफेद फूल  
वसंत ऋतु में लगते हैं ।

पर्या०—विशोक । मधुपुष्प । ककैलि । वेलिक । रक्तपल्लव ।  
रागपल्लव । हेमपुष्प । बजुन । कणूर । ताम्रपल्लव ।  
वामाश्रितान । राम । रामा । नट । पिंडी । पुष्प । पलाव-  
द्रुम । दोहलीक । सुभग । रोगितर ।

२ पारा । ३ भारतवर्ष का एक प्राचीन मौर्यवंशीय सम्राट् ।

४ विष्णु का एक नाम [को०] । ५ वकुल वृक्ष [को०] । ६.  
प्रसन्नता । आह्लाद [को०] ।

अशोकपुष्पमञ्जरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अशोकपुष्पमञ्जरी] दडक वृत्त का एक भेद जिसमें २८ अक्षर होते हैं और लघु गुरु का कोई नियम नहीं होता, जैसे—मत्यधर्म नित्य धारि व्यर्थ काम सर्व धारि भूति कै करो कदा न निद्य काम ।

अशोकपूर्णिमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] फाल्गुन की पूर्णिमा [को०] ।

अशोकवनिकान्याय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] किसी कार्य को करने का कारण न बताया जानेवाला व्यवहार, जैसे—रावण ने सीता जी को अशोक के ही नीचे रहने का कथो आदेश दिया ? इसका कारण नहीं बताया गया [को०] ।

अशोकवाटिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ वह बगीचा जिसमें अशोक के पेड़ लगे हों । २ शोक को दूर करने वाला रम्य उद्यान । ३ रावण का वह प्रसिद्ध बगीचा जिसमें उसने सीता जी को ले जाकर रखा ।

अशोकपण्ठी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] चैत्र शुक्ला पण्ठी । इस दिन कामाख्या तन के अनुसार पुत्रलाभार्थ पण्ठी देवी की पूजा की जाती है ।

अशोका—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ कुटकी । २ अशोक की कली । ३ दे० 'अशोकपट्टी' ।

अशोकारि—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] कदव [को०] ।

अशोकाष्टमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] चैत्र शुक्ला अष्टमी ।

विशेष—इस दिन पानी में अशोक के आठ पल्लव डालकर उसे पीने का विधान है तथा अशोक के फूल विष्णु को चढ़ाते हैं ।

अशोच—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ चिंता या परवाह का अभाव । २ शांति । ३ विनम्रता [को०] ।

अशोच्य—वि० [स०] शोक न करने योग्य । उ०—वे हैं अशोच्य, ह्रां स्मरण योग्य हैं मवके।—माकेत, पृ० २२३ ।

अशोधित—वि० [स०] बिना जोधन किया हुआ । बिना माफ किया हुआ । संस्काररहित [को०] ।

अशोभक—वि० [म०] माणिक्य का एक दोष [को०] ।

अशोभन—वि० [स०] असुंदर । अमद्र । सुंदर न लगनेवाला ।

अशोच—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ अपवित्रता । अशुद्धता । २. हिंदू शास्त्रा अनुसार अशोच की अवस्था ।

विशेष—इन अवस्थाओं में अशोच माना जाता है—(क) मृतक-संस्कार के पश्चात् मृत के परिवार या सम्बन्धियों में वर्णक्रमानुसार १०, १२, १५ और ३० दिन तक । (ख) सतान होने पर भी ऊपर के नियमानुसार । शोक के अशोच को सूतक और सतानोत्पत्ति के अशोच को वृद्धि कहते हैं । (ग) रजस्वला स्त्री को तीन दिन । (घ) मल, मूत्र, चाड़ान या मुर्दे आदि का स्पर्श होने पर स्नानपर्यंत । अशोचावस्था में संध्या तरेण आदि वैदिक कर्म नहीं किए जाते ।

अशोचसंकर—सञ्ज्ञा पुं० [म० अशोचसंकर] दो या दो से अधिक अशोचों का साथ होना, जैसे किसी परिवार में मृत्यु का अशोच लगा हो परंतु अशोच काल में ही बालक का जन्म हो जाय तो जन्म अशोच के कारण वही अशोचमकर की स्थिति होगी [को०] ।

अश्मंत<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म० अश्मन्त] १ चूल्हा । २ अमगल । ३. मरण । ४ खेत । ५ एक मसू [को०] ।

अश्मन्त<sup>२</sup>—वि० १. अशुभ । अमाना । २. असीमित [को०] ।

अश्मंतक—सञ्ज्ञा पुं० [म० अश्मन्तक] १ मूँज की तरह एक धाम जिससे प्राचीन काल में ब्राह्मण लोग मेखना अर्थात् कण्ठनी बनाते थे । २ आच्छादन । छाजन । ढकना । ३ दीपाधार । दीपट । ४. पापाणमेद । ५ तिमोडा । ६ कचनार । ७ चूल्हा । भट्ठी [को०] ।

अश्क—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] अश्रु । आँसू । उ०—कल जो टुक रोया किसी की याद में वह गुलबदन । अश्क ये आँखों में या मोती कुचनकर भर दिए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३३२ ।

अश्म—सञ्ज्ञा पुं० [म० अश्मन्] १ पर्वत । पहाड़ । २ मेघ । बादल । ३ पत्थर । ४ सोनामखड़ी । ५ लोहा ।

अश्मक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक प्राचीन देश का नाम जो आजकल द्रावकोर (श्रीवापुर) कहलाता है ।

अश्मकदली—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] एक प्रकार का केला जो कड़ा तथा कम स्वादवाला होता है । काण्डकदली । कडकेना [को०] ।

अश्मकुट्ट—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार के वानप्रस्थ जो मित्र, वट्टा या उखली आदि नहीं रखते थे, केवल पत्थर से अन्न कुटकर पकाते थे ।

अश्मगर्भ—सञ्ज्ञा पुं० [म०] पन्ना । मरकत ।

अश्मगर्भज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ शिलाजीत । २ गेरू । ३ लोहा [को०] ।

अश्मज—सञ्ज्ञा पुं० [म०] शिलाजतु । शिलाजीत । २ मोमियाई । ३ लोहा ।

अश्मभेद—सञ्ज्ञा पुं० [म०] पखानभेद नाम की जड़ी जो मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में दी जाती है ।

अश्मयोनि—सञ्ज्ञा पुं० [स०] पन्ना [को०] ।

अश्मर—वि० [स०] पथरीला ।

अश्मरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] मूत्ररोगविशेष । पथरी ।

यौ०—अश्मरीघ्न=वरुण वृक्ष । वरुण का पेड़ ।

अश्मसार—सञ्ज्ञा पुं० [म०] लोहा ।

अश्मा—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'अश्म' [को०] ।

अश्मोर—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'अश्मरी' [को०] ।

अश्मोत्थ—सञ्ज्ञा पुं० [म०] शिलाजीत [को०] ।

अश्र—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. आँसू । २ रक्त [को०] ।

अश्रद्ध—वि० [म०] श्रद्धा न रखनेवाला । विश्वास न रखनेवाला [को०] ।

अश्रद्धा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] [वि० अश्रद्धेय] श्रद्धा का अभाव ।

अश्रद्धेय—वि० [स०] अश्रद्धा के योग्य । घृणा के योग्य । बुरा ।

अश्रप<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] राक्षस ।

अश्रप<sup>२</sup>—वि० रक्त पीनेवाला । दुष्ट । अत्याचारी [को०] ।

अश्रवण<sup>१</sup>—वि० [स०] १ जो सुनना न हो । बहरा । २ कर्णहीन [को०] ।

अश्रवण<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ साँप । २. श्रवण शक्ति का अभाव । बहरापन [को०] ।

अश्रात—वि० [स० अश्रात] १ अवरुद्ध । स्वर-र । जो गाना-गाँदा न हो । २. विनाभरहा । लगातार । निरंतर । उ०—

चद्रमा नम मे हंसता या बाज रही थी वीणा अथात ।—  
भरना, पृ० ७१ ।

अथाति—सज्ञा स्त्री [सं० अथान्ति] आति या यकावट का अभाव ।  
उ०—ससारयात्रा में स्वपति की वे अटल अथाति हैं ।  
—भारत०, पृ० ५६ ।

अथाव्य—वि० [सं०] १ न सुनने योग्य । २ न कहने योग्य [को०] ।

अश्रि—सज्ञा स्त्री [म०] १ (कोठरी, घर आदि का) कोना । २  
अस्त्र शस्त्र की नोक । ३ धार ।

अश्री—सज्ञा स्त्री [सं०] १ अलक्ष्मी । दरिद्रा । २. दे० 'अश्रि' [को०] ।

अश्रीक—वि० [म०] १. शोभाहीन । जिसमें श्री न हो । २. भाग्य-  
हीन । अभागा [को०] ।

अश्रु—सज्ञा पुं [म०] मन के किसी प्रकार के आवेग के कारण आँखों  
में आनेवाला जल । आँसू । २ काव्य में अनुभाव के अतर्गत  
सात्विक के नौ भेदों में से एक ।

अश्रुकला—सज्ञा स्त्री [सं०] अश्रुविंदु [को०] ।

अश्रुगंस—सज्ञा स्त्री [सं० अश्रु + गंस] एक प्रकार की गंस  
जिसका प्रयोग अनियमित भीड़ को तितर बितर करने के लिये  
गामन द्वारा किया जाता है ।

अश्रुत—वि० [सं०] १ जो न सुना गया हो । अज्ञात । २ जिसने कुछ  
देखा सुना न हो । नातजबोकार । ३. अशिक्षित । अशास्त्रज्ञ  
मूर्ख [को०] ।

अश्रुतपूर्व—वि० [सं०] १ जो पहले न सुना गया हो । २ अद्भुत ।  
विलक्षण । अनोखा ।

अश्रुति<sup>१</sup>—वि० [म०] १ बिना कानवाला । श्रुति या श्रवणरहित ।

अश्रुति<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री १ न सुनना । अश्रवण । २ विस्मृति [को०] ।

अश्रुतिघर—वि० [म०] १ वेदों को न जाननेवाला । ध्यान में  
सुननेवाला । ध्यान न देनेवाला [को०] ।

अश्रुपात—सज्ञा पुं [म०] आँसू गिराना । रुदन । रोना ।

अश्रुमुख<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ आँसुओं से भरा हुआ । रोता हुआ । २.  
रोनी मूरत का । रुग्णात्मा ।

अश्रुमुख<sup>२</sup>—सज्ञा पुं ज्योतिष के अनुसार जिस नक्षत्रपर मंगल का  
उदय होता है, उसके १० वें, ११ वें, या १२ वें नक्षत्रपर  
यदि उसकी गति वक्र हो तो वह (वक्रगति) अश्रुमुख  
कहलाती है ।

अश्रेय<sup>१</sup>—वि० [म० अश्रेयस्] १ बुरा । खराब । २. कल्याणकर  
व्यर्थ । निकम्मा [को०] ।

अश्रेय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं १ बुराई । खराबी । २ अकल्याण । ३.  
दुःख [को०] ।

अश्रेष्ठ—वि० [सं०] १ जो श्रेष्ठ या उत्तम न हो । २. बुरा  
निकृष्ट [को०] ।

अश्रीत—वि [सं०] जो श्रुति या वेदसमत् न हो [को०] ।

अश्लाघ्य—वि० [सं०] १ जो श्लाघ्य न हो । अप्रशंसनीय । जो सरा  
हने योग्य न हो । निम्न । निन्द ।

अश्लिष्ट—वि० [म०] १ श्लेषशून्य । श्लेषरहित । २ असंबद्ध ।  
अलग ।

अश्लील<sup>१</sup>—वि० [म०] १ फूहड़ । मर्दा । २ लज्जाजनक ।

अश्लील<sup>२</sup>—सज्ञा पुं १ माहित्यशास्त्र के अनुगार काव्यादि में ऐसे  
शब्दों का प्रयोग जिनमें ब्रीडा जुगुप्सा और अमंगल की अमि-  
व्यक्ति होती हो । २ गैवाह मापा ।

अश्लीलता—सज्ञा स्त्री [म०] फूहड़पन । मर्दापन । गदापन । लज्जा  
का उत्पन्न । निवृज्जता । उ०—यो भक्ति रस भी सन गया  
अश्लीलता की नीट में ।—भारत०, पृ० १२३ ।

विशेष—काव्य में यह दोष माना जाता है ।

अश्लेष—वि० [सं०] श्लेषरहित । एकनिष्ठ । उ०—द्विस्वभाव अश्लेष  
में ब्राह्मण जानि अजेय ।—रामच०, पृ० १६० ।

अश्लेषा—सज्ञा स्त्री [म०] १. राशिचक्र के २७ नक्षत्रों में से नवाँ  
नक्षत्र ।

विशेष—यह नक्षत्र चक्राकार छ नक्षत्रों से मिलकर बना है ।  
इसका देवता मरु है और यह केतु ग्रह का जन्म नक्षत्र है ।  
२. अलग । विच्छेद । विश्लेष [को०] ।

अश्लेषाभव—सज्ञा पुं [म०] केतु ग्रह ।

अश्वत—वि० सज्ञा पुं [म० अश्वन्त] दे० 'अश्वत' [को०] ।

अश्व—सज्ञा पुं [सं०] १ घोड़ा । तुरग । २ मात की मध्या [को०] ।  
३ पुरुष की एक जाति [को०] ।

अश्वकदा—सज्ञा स्त्री [सं० अश्वकन्दा] अश्वगघ्रा [को०] ।

अश्वक—सज्ञा पुं [सं०] १ छोटा घोड़ा । २ नावारिन घोड़ा । ३  
घोड़ा । ४ खराब जानि का घोड़ा ।

अश्वकर्ण—सज्ञा पुं [म०] १. एक प्रकार का शाल वृक्ष । २ लता  
शाल । ३ घोड़े का कान [को०] । ४. विक्रिमा शास्त्र में वर्णित  
एक प्रकार का अस्थिमग [को०] ।

अश्वकनी—सज्ञा स्त्री [म०] अश्विनी नक्षत्र [को०] ।

अश्वकुटी—सज्ञा स्त्री [म०] घुड़मान [को०] ।

अश्वकुशल—वि० [म०] घोड़ा फेरनेवाला मवार । अश्वशिक [को०] ।

अश्वकोविद—वि० [म०] दे० 'अश्वकुशल' ।

अश्वकर्द—सज्ञा पुं [म० अश्वकर्द] १ एक प्रकार का पत्नी । २  
देवसेना का नायक [को०] ।

अश्वक्राता—सज्ञा स्त्री [म० अश्वक्रान्ता] नगीन में एक मूर्च्छना ।  
इसका स्वरगाम यो है—ग म प ध नि न रे ग म प ध नि ।

अश्वखरज—सज्ञा पुं [म०] खच्चर [को०] ।

अश्वखुर—सज्ञा पुं [म०] १ नख नामक मुगजिन द्रव्य । २ घोड़े का  
सुम [को०] ।

अश्वखुरा—सज्ञा स्त्री [म०] अपराजिता पीछे का नाम [को०] ।

अश्वगंवा—सज्ञा स्त्री [म० अश्वगन्वा] असगघ्रा ।

अश्वगति—सज्ञा पुं [सं०] १ छद्मशास्त्र में नील वृत्त का दूसरा  
नाम । यह पाँच भगण और एक गुरु का होता है, जैसे—मा  
शिव आनन गौरि जबै मन लाय लखी । लै गई ज्यो सुठि  
भूपण धारि वितान मखी । २, चित्र काव्य व एक चक्र जिसमें  
६४ खाने होते हैं । ३. घोड़े की चाल [को०] ।

अश्वगोयुग—सज्ञा पुं० [म०] घोड़े की जोड़ी [को०] ।  
 अश्वगोष्ठ—सज्ञा पुं० [न०] घुड़माल । अस्तवल [को०] ।  
 अश्वग्रीव—सज्ञा पुं० [म०] कश्यप ऋषि की दनु नाम्नी स्त्री में उत्पन्न पुत्र । हस्त्रीव ।  
 अश्वघ्न—सज्ञा पुं० [म०] कनेर का फूल तथा उमका पेड़ [को०] ।  
 अश्वचक्र—सज्ञा पुं० [म०] १ घोड़े के चिह्नो से शुभाशुभ का विचार । २ घोड़े का समूह ।  
 अश्वचिकित्सा—सज्ञा स्त्री० [म०] वह शास्त्र जिसमें पशुओं के रोगों तथा उनकी चिकित्सा का विवरण होता है [को०] ।  
 अश्वतर—सज्ञा पुं० [म०] [स्त्री० अश्वतरी] १ एक प्रकार का मर्प । नागराज । २ खच्चर । ३ बड़हा [को०] । ४ गजों की एक जाति [को०] ।  
 अश्वत्थ—सज्ञा पुं० [म०] १ पीपल । २ पीपल का गोदा [को०] । ३ सूर्य का एक नाम [को०] । ४ पीपल में फल आने का काल [को०] । ५ अश्विनी नक्षत्र [को०] ।  
 अश्वत्थक—सज्ञा पुं० [म०] १ पीपल में फल लगने के समय अदा किया जानेवाला ऋण । २ पीपल वृक्ष ।  
 अश्वत्था—सज्ञा स्त्री० [म०] आश्विन की पूर्णिमा [को०] ।  
 अश्वत्थाम—वि० [स०] घोड़े के समान शक्तिवाला [को०] ।  
 अश्वत्थामा—सज्ञा पुं० [म० अश्वत्थामन्] १ द्रोणाचार्य के पुत्र । २ मालवा के राजा इद्रवर्मा के एक हाथी का नाम जो महा-भारत के युद्ध में मारा गया था ।  
 अश्वत्थी—सज्ञा स्त्री० [म०] १ छोटा पीपल । २ पीपल की तरह लगनेवाला एक छोटा वृक्ष [को०] ।  
 अश्वदंष्ट्र—सज्ञा स्त्री० [म०] गोखरू ।  
 अश्वदूत—सज्ञा पुं० [स०] घुड़मवार दूत [को०] ।  
 अश्वनाय—सज्ञा पुं० [म०] घोड़े का चरवाहा [को०] ।  
 अश्वनिवधिक—सज्ञा पुं० [स० अश्वनिवन्धिक] अश्वपाल । साईम [को०] ।  
 अश्वपति—सज्ञा पुं० [स०] घुड़मवार । २ रिमालदार । ३ घोड़े का मालिक । ४ भरत जी के मामा । ५ केकय देश के राज-कुमारों की उपाधि ।  
 अश्वपाल—सज्ञा पुं० [म०] साईम ।  
 अश्वपुच्छी—सज्ञा स्त्री० [म०] मापपर्णी नामक पौधा [को०] ।  
 अश्ववध—सज्ञा पुं० [म० अश्ववन्ध] चित्रकाव्य में वह पद्य जो घोड़े के चित्र में इस रीति से लिखा हो कि उसके अक्षरों से अग प्रत्यय तथा साजों और आभूषणों के रूप निकल आएँ ।  
 अश्ववला—सज्ञा स्त्री० [म०] मेथी [को०] ।  
 अश्ववाल—सज्ञा पुं० [म०] काम का पौधा ।  
 अश्वभा—सज्ञा स्त्री० [म०] विजली [को०] ।  
 अश्वमार—सज्ञा पुं० [म०] कनेर का पेड़ ।  
 अश्वमारक—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अश्वमार' [को०] ।  
 अश्वमाल—सज्ञा पुं० [म०] एक प्रकार का साँप [को०] ।  
 अश्वमुख—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अश्वमुखी] किन्नर ।

विशेष—कहते हैं, किन्नरों का मुँह घोड़ों के समान होता है ।  
 अश्वमेद(पु)—सज्ञा पुं० [म० अश्वमेघ] दे० 'अश्वमेघ' । उ०—  
 अश्वमेद राजसू । खं गोप मेद वर ।—पृ० रा०, ५५।४० ।  
 अश्वमेघ—सज्ञा पुं० [स०] १ एक बड़ा यज्ञ ।  
 विशेष—इसमें घोड़े के मस्तक पर जयपत्र बाँधकर उसे भूम-डल में घूमने के लिये छोड़ देते थे । उसकी रक्षा के निमित्त किसी वीर पुरुष को नियुक्त कर देते थे जो सेना लेकर उसके पीछे पीछे चलता था । जिस किसी राजा को अश्वमेघ करने-वाले का आधिपत्य स्वीकृत नहीं होता था, वह उस घोड़े को बाँध लेता और सेना से युद्ध करता था । अश्व बाँधनेवाले को पराजित कर तथा घोड़े को छुड़ाकर सेना आगे बढ़ती थी । इस प्रकार वह घोड़ा संपूर्ण भूमंडल में घूमकर लौटता था, तब उसको मारकर उसकी चर्बी से हवन किया जाता था । यह यज्ञ केवल बड़े प्रतापी राजा करते थे । यह यज्ञ माल मर में होता था ।  
 २ एक प्रकार की तान जिसमें पड़न स्वर को छोड़कर शेष छह स्वर लगते हैं ।  
 अश्वमेधिक<sup>१</sup>—वि० [स०] अश्वमेघ मवधी [को०] ।  
 अश्वमेधिक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ अश्वमेघ के योग्य घोड़ा । २ महाभारत का चौदहवाँ पर्व [को०] ।  
 अश्वमेधीय—वि० [स०] दे० 'अश्वमेधिक' [को०] ।  
 अश्वयुज<sup>१</sup>—वि० [म०] १ जिसमें घोड़ा जुता हो । २ जो अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न हो [को०] ।  
 अश्वयुज<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० १ अश्विनी नक्षत्र । २ आश्विन महीना । ३ रथ जिसमें घोड़े जुते हो [को०] ।  
 अश्वयूप—सज्ञा पुं० [स०] अश्वमेघ के घोड़े को बाँधने का खूँटा [को०] ।  
 अश्वयोग—वि० [म०] घोड़े की तरह तेजी से पहुँचनेवाला [को०] ।  
 अश्वरक्ष—सज्ञा पुं० [स०] अश्वपान [को०] ।  
 अश्वरिपु—सज्ञा पुं० [म०] भैम [को०] ।  
 अश्वरोधक—सज्ञा पुं० [स०] कनेर ।  
 अश्वल—सज्ञा पुं० [स०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम ।  
 अश्वलक्षणा—सज्ञा पुं० [स०] घोड़े के शुभाशुभ लक्षणों का विचार [को०] ।  
 अश्वललित—सज्ञा पुं० [स०] अद्रितनया नामक वणवृत्त ।  
 अश्वलाला—सज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार का साँप [को०] ।  
 अश्ववक्त्र—सज्ञा पुं० [म०] किन्नर [को०] ।  
 अश्ववदन—सज्ञा पुं० [स०] एक प्राचीन देश का नाम ।  
 अश्ववह—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अश्ववाह' [को०] ।  
 अश्ववार, अश्ववारक—सज्ञा पुं० [म०] घुड़मवार [को०] ।  
 अश्ववाह, अश्ववाहक—सज्ञा पुं० [म०] घुड़मवार [को०] ।  
 अश्वविद्<sup>१</sup>—वि० [स०] १ घोड़ों का शिखर । २ घोड़े के लक्षणों को जाननेवाला [को०] ।  
 अश्वविद्<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १. घुड़मवार । २. राजा नल [को०] ।



अश्ववैद्य—सज्ञा पुं० [म०] घोड़े का वैद्य [को०] ।

अश्वव्यूह—सज्ञा पुं० [म०] वह व्यूह जिसमें कवचधारी (लोहे की पारवरवाले) घोड़े सामने और साधारण घोड़े पक्ष और कक्ष में हों ।

अश्वशकु—सज्ञा पुं० [स० अश्वशङ्कु] घोड़ा बाँधने का खूँटा [को०] ।

अश्वशक—सज्ञा पुं० [स०] घोड़े की लीद [को०] ।

अश्वशाला—सज्ञा स्त्री० [स०] वह स्थान जहाँ घोड़े रहे । घुड़साल । अस्तबल । तवेना ।

अश्वशास्त्र—सज्ञा पुं० [म०] वह शास्त्र जिसमें घोड़ों के शुभाशुभ लक्षणों एवं उनके रोगादि का वर्णन रहता है । शालिहोत्र [को०] ।

अश्वसाद—सज्ञा पुं० [स०] घुड़मवार [को०] ।

अश्वसादी—मज्ञा पुं० [म० अश्वसादिन्] दे० 'अश्वसाद' [को०] ।

अश्वसूक्त—सज्ञा पुं० [स०] वेद का एक सूक्त जिसमें घोड़ों का वर्णन है ।

अश्वस्तन<sup>१</sup>—वि० [पुं०] वर्तमान दिवस संबन्धी । केवल आज के दिन से संबंध रखनेवाला ।

अश्वस्तन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [वि० अश्वस्तनिक] वह गृहस्थ जिसे केवल एक दिन के खाने का धिक्का हो । कल के लिये कुछ न रखनेवाला गृहस्थ ।

अश्वस्तनिक—वि० [म०] १. कल के लिये कुछ न रखनेवाला । २. आगे के लिये सचय न करनेवाला ।

विशेष—यह एक प्रकार की ऋषिवृत्ति है ।

अश्वस्तर—सज्ञा पुं० [म०] घोड़े की पीठ पर रखा जानेवाला कपड़ा [को०] ।

अश्वहृदय—सज्ञा पुं० [स०] १. घोड़े का चिकित्साशास्त्र । शालिहोत्र । घुड़मवार [को०] ।

अश्वतक—मज्ञा पुं० [स० अश्वतक] कनेर [को०] ।

अश्वक्ष—मज्ञा पुं० [म०] १. देवमर्षि नामक पौधा । २. घोड़े की आँख [को०] ।

अश्वजनी—सज्ञा स्त्री० [स०] चावुक । कशा [को०] ।

अश्वार्थक्ष—सज्ञा पुं० [म०] घुड़मवार सेना का अध्यक्ष या नायक [को०] ।

अश्वानीक—मज्ञा स्त्री० [म०] घुड़मवार सेना । रिसाना [को०] ।

अश्वार्यवेद—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अश्वशास्त्र' [को०] ।

अश्वारि—सज्ञा पुं० [स०] १. सा । महिष । २. कर्वीर । कनेर ।

अश्वारुढ—वि० [म० अश्वारुढ] जो घोड़े पर मवार हो [को०] ।

अश्वारोह<sup>१</sup>—वि० [म०] अश्वारुढ [को०] ।

अश्वारोह<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १. घुड़मवार । २. घुड़मवारी [को०] ।

अश्वारोहक—सज्ञा पुं० [म०] असमग्र नामक पौधा [को०] ।

अश्वारोहण—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अश्वारोही] घोड़े की सवारी ।

अश्वारोही<sup>१</sup>—वि० [म० अश्वारोहिन्] घोड़े की सवारी करनेवाला ।

अश्वारोही<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० घुड़मवार ।

अश्वारवतारी—सज्ञा पुं० [म० अश्वारवतिन्] ३१ मावाग्री के छठे ही सज्ञा । वीर छद इमी के अतर्गत है ।

अश्विनी—सज्ञा स्त्री० [म०] १. घोड़ी । २. २३ नक्षत्रों में से २३वाँ नक्षत्र अश्विनी । याज्ञवल्क्य । ३. जयन्ती । वातवृद्ध ।

विशेष—तीन नक्षत्रों के मिलने से इसका रूप घोड़े के मुख के सदृश होता है ।

अश्विनीकुमार—सज्ञा पुं० [म०] त्वष्टा की पुत्री प्रभा नाम की स्त्री से उत्पन्न सूर्य के दो पुत्र ।

विशेष—एक बार सूर्य के तेज को महन करने में असमर्थ होकर प्रभा अपनी दो सतति यम और यमुना तथा अपनी छाया छोड़कर चुपके से भाग गई और घोड़ी बनकर तप करने लगी । इस छाया से भी सूर्य को दो सतति हुई । अग्नि और ताप्ती । जब छाया ने प्रभा की सतति का अन्याय आरम्भ किया, तब यह बात खुल गई कि प्रभा तो भाग गई है । इसके उपरांत सूर्य घोड़ा बनकर प्रभा के पास, जो अश्विनी के रूप में थी, गए । इस संयोग से दोनों अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई जो देवताओं के वैद्य हैं ।

पर्याय—स्ववैद्य । दक्ष । नामत्य । आश्विनेय । नासिक्य । गदागद । पुष्करम्भज । अश्विनीपुत्र । अश्विनीमुत् ।

अश्वियुगल—सज्ञा पुं० [म०] दो कल्पित देवता जो प्रभा के समय घोड़ों या पक्षियों से जुते हुए मोने के रथ पर चढ़कर आकाश में निकलते हैं ।

विशेष—कहते हैं कि यह लोगो को सुख मीमांसा प्रदान करते हैं और उनके दुःख तथा दरिद्रता आदि हरते हैं ।—कही कही यही अश्विनीकुमार भी माने गए हैं । कहते हैं कि दधीचि से मधुविद्या मीखने के लिये इन्होंने उनका मिर काटकर अलग रख दिया था, और उनके घड़ पर घोड़े का मिर रख दिया था, और तब उनसे मधुविद्या मीखी थी । वि० दे० 'दधीचि' ।

अश्वियुग—सज्ञा पुं० [स०] ज्योतिष में एक युग अर्थात् पाँच वर्षों का काल जिसमें क्रम से मंगल, कालयुक्त, मिथ्या, रौद्र और बुधमति सवत्सर होते हैं ।

अश्वीय<sup>१</sup>—वि० [स०] अश्वमवधी [को०] ।

अश्वीय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० घोड़ों का समूह [को०] ।

अषडक्षीण<sup>१</sup>—वि० [स०] जिसे छह आँखों ने न देखा हो अर्थात् दो ही व्यक्तियों को ज्ञात अथवा दृष्ट [को०] ।

अषडक्षीण<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० रहस्य । राज । [को०] ।

अषाढ<sup>(१)</sup>—सज्ञा पुं० [स० अषाढ] वह महीना जिसमें पूर्णिमा पूर्वाषाढ में तेड़े । असाढ । अपाढ ।

अषाढक—सज्ञा पुं० [म० अषाढक] अषाढ का महीना [को०] ।

अष्टम<sup>(१)</sup>—वि० [म० अष्टम] दे० 'अष्टमी' । उ०—कहिय नृपति अष्टम सुधि । राज राज फल गान ।—तृ० रा०, २५।१३ ।

अष्टमी<sup>(१)</sup>—वि० [म० अष्टमी] दे० 'अष्टमी' ।

अष्ट<sup>१</sup>—वि० [स० अष्टन्] आठ ।

अष्ट<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० आठ की संख्या ।

अष्टक—सज्ञा पुं० [स०] १. आठ वस्तुओं का समूह, जैसे—हृष्यष्टक ।

२. वह स्तोत्र या काव्य जिसमें आठ श्लोक हों, जैसे—द्व्याष्टक, गगाष्टक । ३. वह अष्टावयव जिसमें आठ अक्षराय आदि हों ।

४. मनु के अनुसार एक गण जिसमें पैशुन्य, माहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थदूषण, वाग्दंड और पारुष्य ये आठ अवगुण हैं । ५. पाणिनिक्त व्याकरण । अष्टाध्यायी । ६. आठ ऋषियों का एक गण ।

अष्टकमल—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] हठयोग के अनुसार मूलाधार से लगातार तक के आठ कमल जो, भिन्न भिन्न स्थानों में माने गए हैं—मूलाधार, विशुद्ध, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान, अनाहत (अनहद) आज्ञाचक्र, सहस्रारचक्र और सुरति कमल ।

अष्टकर्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा [को०] ।

विशेष—चार मुख होने के कारण ब्रह्मा के आठ कान हैं, अतः इन्हें अष्टकर्ण कहा जाता है ।

अष्टकर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जिसके कान पर आठ की सख्या (८) का चिह्न अंकित हो । उ०—ऋग्वेद में ऋषि नामाने दिष्ट हजार अष्टकर्णी गोएँ दान करने के कारण राजा सारणि की स्तुति करता है ।—मा० प्रा० लि०, पृ० ११ ।

अष्टका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अष्टमी । २ अग्रहन, पूस, माघ और फागुन महीने की कृष्ण अष्टमी । इस दिन श्राद्ध करने से पितरों की तृप्ति होती है । ३ अष्टमी के दिन का कृत्य । अष्टका याम । ४ अष्टका में कृत्य श्राद्ध ।

अष्टकुल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सपों के आठ कुल, यथा—शेष, वामुकि, कवच, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शङ्ख और कुलिक । किसी किसी के मत से—नक्षत्र, महापद्म, शङ्ख, कुलिक, कवच, अश्वत्थ, धृतराष्ट्र और वनाहक हैं ।

अष्टकुलाचल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रमुख पर्वत—नील, निषध, विंध्याचल, माल्यवान्, मलय, गंधमादन, हेमकूट और हिमालय [को०] ।

अष्टकुली—वि० [मं०] साँपों के आठ कुलों में से किसी में उत्पन्न ।

अष्टकृष्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वल्लभ कुल के मतानुसार आठ कृष्ण, यथा—श्रीनाथ, नवनीतप्रिय, मयूरानाथ, विट्ठलनाथ, द्वारकानाथ, गोकुलनाथ, गोकुलचन्द्रमा और मदनमोहन ।

अष्टकोण<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह क्षेत्र जिसमें आठ कोण हो । २ तत्र के अनुसार एक यत्र । ३ एक प्रकार का कुंडल जिसमें आठ कोण होते हैं ।

अष्टकोण<sup>२</sup>—वि० आठ कोनेवाला । जिसमें आठ कोने हो ।

अष्टगव्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अष्टगव्य] आठ सुगन्धित द्रव्यों का समाहार । दे० 'गुधाष्टक' ।

अष्टछाप—सञ्ज्ञा पुं० [मं० अष्ट + हि० छाप] वल्लभ सप्रदाय के प्रसिद्ध अष्ट कवियों का वर्ग, जिनके नाम हैं—सूरदास, कुमनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास ।

अष्टताल—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] ताल के आठ प्रकार—ग्राह, दोज, ज्योति, चद्रेश्वर गजन, पचताल, रुगल और समताल ।

अष्टदल<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] आठ पत्ते का कमल ।

अष्टदल<sup>२</sup>—वि० १ आठ दल का । २ आठ कानों का । आठ पहलू का ।

अष्टद्रव्य—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] आठ द्रव्य जो हवन के काम आते हैं—अश्वत्थ, गूजर, पाकर, वट, तिल, सरसो, पायस और घी ।

अष्टधाती—वि० [मं० अष्ट + धातु] १ अष्टधातुओं से बना हुआ । २ दुःख । मज्जन् । ३ उत्पाती । उपद्रवी । ४ जिसके मातापिता का ठीक ठिकाना न हो । वर्णसंकर ।

अष्टधातु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आठ धातुएँ—मोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, जस्ता, सीसा, लोहा और पारा ।

अष्टनायिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] आठ नायिकाएँ ।

विशेष—पुराणानुसार आठ प्रधान शक्ति—उग्रचंड, प्रचंडा, चंडोग्रा, चंडनायिका, चामुंडा, चंडा, अतिचंडा और चंडवती । कृष्ण की आठ पटरानियाँ—रुक्मिणी, सत्यभामा, जाववती, कालिंदी, मित्रवृंदा, नागनज्जिती, भद्रा और लक्ष्मणा । इंद्र की आठ नायिकाएँ—उर्वशी, मेनका, रभा, पूर्वचिती, स्वयंप्रभा, मित्रकेशी, जनवल्लभा और धृताची (तिलोत्तमा) । साहित्य में वर्णित आठ नायिकाएँ—वामकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, स्वाधीनभर्तृका, कलहातरिता, खडिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका और अभिसारिका कही गई हैं ।

अष्टपद—सञ्ज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अष्टपाद' ।

अष्टपदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ आठ पदों का एक समूह । एक प्रकार का गीत जिसमें आठ पद होते हैं । २ वेला नाम का फूल या उमका पौधा ।

अष्टपाद<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १. शरभ । शार्दूल । २ लूता । मकड़ी । ३. आठ अंगोंवाला एक जंतु । ४ अर्गला । सिट्किनी [को०] । ५ कैलास पर्वत [को०] । ६ मोना । स्वर्ण । ७ कण्डे की बनी विसात [को०] । ८ एक कोट [को०] । ९ जगली चमेली [को०] ।

अष्टपाद<sup>२</sup>—वि० आठ पैरोंवाला [को०] ।

अष्टप्रकृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ शुक्नीति के अनुसार राज्य के ये आठ प्रधान कर्मचारी—सुमन्त्र, पंडित, मंत्री, प्रधान अमात्य, प्राड्विवाक और प्रतिनिधि ।

विशेष—महाभारत, मनुस्मृति आदि में पहले सात ही अंग कहे गए हैं ।

२. राज्य के आठ अंग—राजा, राष्ट्र, अमात्य, दुर्ग, सेना, कोष, सामंत तथा प्रजा । ३ शरीर की आठ प्रकृति—क्षिति, जन, पावक, गगन, समीर, मन, बुद्धि, और अहंकार ।

अष्टप्रधान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] राज्य के आठ प्रकार के प्रधान जैसे—बैद्य, उपाध्याय, सचिव, मंत्री, प्रतिनिधि, राज्याध्यक्ष, प्रधान और अमात्य । शिवाजी के अष्टप्रधान ये थे—प्रधान, अमात्य, सचिव, मंत्री, लिपिक या लेखक, न्यायाधीश, सेनापति, और न्यायशास्त्री [को०] ।

अष्टभुजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

अष्टभुजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अष्टभुजा' ।

अष्टभैरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव के आठ गए दिनों के नाम हैं, भविताग, सहार, रुध, काल, क्रोध, ताम्रचूड, चंद्रचूड तथा महाभैरव [को०] ।

अष्टमंगल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अष्टमङ्गल] १ आठ मंगलद्रव्य या पदार्थ—पिह, दूर, नाग, कनक, पद्मा, वैजयंती, भेरी और दीपक । किसी किसी के मत से—त्र हाण, गो, अग्नि, सुवर्ण, घी, सूर्य, जल और राजा हैं । २ एक घृत्त जो बब, कुट, ब्राह्मी, मरमो, पील, सारिवा, सेंग ननक और धी इन आठ औषधियों से बनाया जाता है ।

अष्टम—वि० पुं० [म०] आठवाँ । उ०—सप्तम चेतनता लहै सोइ ।

अष्टम मास संपूरन होइ ।—सूर० १।३१४ ।

अष्टमान—संज्ञा पुं० [स०] आठ मुट्टी का एक परिमाण अर्थात् एक कुहव ।

अष्टमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ आधे पल या दो कर्ष का परिमाण ।  
२ चार तोले का एक परिमाण ।

अष्टमी<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शुक्ल और कृष्ण पक्ष के भेद से आठवीं तिथि । आठे । २ क्षीरकाकोली । पयस्वा ।

अष्टमी<sup>२</sup>—वि० स्त्री० [सं०] आठवी ।

अष्टमुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक माप । कु चि [को०] ।

अष्टमूर्ति—संज्ञा पुं० [म०] १ शिव । उ०—गनिये जु जीव आधार पुनि अष्ट (म) मूर्ति इतने कहत ।—शकुंतला, पृ० ३ ।  
२ शिव की आठ मूर्तियाँ क्षिति, जल, तेज वायु आकाश, जयमान, अर्क और चंद्र, अथवा सर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव ।

अष्टलोह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अष्टधातु' [को०] ।

अष्टवर्ग—संज्ञा पुं० [म०] जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि, इन आठ ओषधियों का समाहार । २ ज्योतिष का गोचरविशेष । ३ नीतिशास्त्र के अनुसार किसी राज्य के ऋषि, वस्ती (बाजार आदि), दुर्ग, सेतु, हस्तिवधन, खान, करग्रहण और सैन्यसंस्थापन का समूह ।

अष्टश्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा [को०] ।

अष्टश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० अष्टश्रवस्] दे० 'अष्टश्रवण' [को०] ।

अष्टसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग द्वारा प्राप्त होनेवाली आठ अलौकिक शक्तियाँ जिनके नाम हैं अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व [को०] ।

अष्टांग<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० अष्टाङ्ग] [वि० स्त्री० अष्टांगी] १ योग की क्रिया के आठ भेद—यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । उ०—भक्ति पथ कौं जो अनुमरै । सो अष्टांग योग कौं करै ।—सूर० १।३६४ । २ आयुर्वेद के आठ विभाग शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या कौमारभृत्य, अगस्त्य, रसायनतंत्र और वाजीकरण । ३ शरीर के आठ अंग—जानु, पद, हाथ, उर, शिर, वचन, दृष्टि, बुद्धि, जिनसे प्रणाम करने का विधान है । ४ अष्टविशेष जो मूर्ध को दिया जाता है । इसमें जल, क्षीर कुशाग्र, घी, मधु, दही, रक्त चंदन और करवीर होते हैं ।

अष्टांग<sup>२</sup>—वि० १ आठ अवयववाला । २ अष्टपहल ।

अष्टांगमार्ग—संज्ञा पुं० [सं० अष्टाङ्गमार्ग] बुद्ध द्वारा प्रतिपादित दुःख से त्राण दिलानेवाला आठ सूत्रों का मार्ग—सम्यग्दृष्टि, सम्यग्भसकल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्म, सम्यग्गाजीव, सम्यग्वायाम, सम्यक्स्मृति, सम्यक्ममाधि [को०] ।

अष्टांगयोग—संज्ञा पुं० [सं० अष्टाङ्गयोग] दे० 'अष्टांग' [को०] ।

अष्टांगायुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं० अष्टाङ्गायुर्वेद] दे० 'अष्टांग' [को०] ।

अष्टांगी—वि० [सं० अष्टाङ्गिन्] आठ अंगवाला ।

अष्टाकपाल—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी के आठ बरतनों या खप्परो में

पकाया हुआ पुरोडाश । २ वह यज्ञ जिसमें अष्टाकपाल पुरोडाश काम में लाया जाय ।

अष्टाकुल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अष्टकुल' । उ०—पारय मीस सोधि अष्टाकुल, तव जदुनदन ल्याये ।—सूर० १।२६ ।

अष्टाक्षर<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] १ आठ अक्षरों का मंत्र । २ विष्णु भगवान् का मंत्र—'ॐ नमो नागायण' । ३ बल्लभ कुल के मतवालों के मत से 'श्रीकृष्ण शरण मम' ।

अष्टाक्षर<sup>२</sup>—वि० आठ अक्षरों का । आठ अक्षरवाला ।

अष्टादश<sup>(१)</sup>—वि० [सं० अष्टादश] अठारह । उ०—रोमराजि अष्टादश मारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ।—मानस, ६।१५।

अष्टाध्यायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाणिनीय व्याकरण का प्रधान ग्रन्थ जिसमें आठ अध्याय हैं ।

अष्टापद—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना । २ शरभ । उ०—व/ विद्या मी आनद दानि । युत अष्टापद मनु शिवा मानि ।—राम च० पृ०, १०० । ३ लूता । मकड़ी । ४ कृमि । ५ कैलाम । ६ घट्टरा ।

अष्टावक्र—संज्ञा पुं० [म०] १ एक ऋषि । २ वह मनुष्य जिसके हाथ पैर आदि कई अंग टूटे मेड़े हो ।

अष्टाश्रि<sup>१</sup>—वि० [सं०] आठ कोनेवाला । अष्टकोणी ।

अष्टाश्रि<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० वह घर जिसमें आठ कोने हो ।

अष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सोलह अक्षर की एक वृत्ति जिसके चचला, चकिता, पचचामर आदि बहुत भेद हैं । २ मोह की सद्यो । ३ खेलने की विसात [को०] । ४ बीज [को०] । ५ फन का गूदा । गिरी [को०] ।

अष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक राग की एक रागिनी ।

अष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गुठली । २ बीज [को०] ।

अष्टीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक रोग जिसमें मूत्राशय में अफरा होने से पेशाब नहीं होता और गाँठ पड़ जाती है जिसमें मला-वरोध होता है और वस्ति में पीड़ा होती है । २ पत्थर की गोली । ३ गूदा । गिरी [को०] । ४ बीजान्न [को०] ।

अष्टीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का घाव । २ पत्थर का टुकड़ा [को०] ।

असक<sup>(१)</sup>—वि० [हि०] दे० 'अशक' । उ०—डहकि डहकि परिचेहु सब काहू । अति असक मन सदा उछाहू ।—मानस, १।१३७ ।

असका<sup>(१)</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं० अशङ्का] सदेह । शुबहा । शक । उ०—अस विचारि सब तजहु असका । सबहि सि सकर अकावा ।—मानस १।७२ ।

असकुल<sup>१</sup>—वि० [म० असङ्कुल] जहाँ जनममूह न हो । पुना हुआ । प्रशस्त । चौड़ा [को०] ।

असकुल<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ राजमार्ग । चौड़ी सड़क [को०] ।

असक्राते<sup>१</sup>—वि० [सं० असङ्क्रान्त] जो स्थानांतरित न हुआ हो । जिसका स्थान बदला न हो [को०] ।

असक्राते<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० अधिक मास । मलमास [को०] ।

असक्रातिमास—संज्ञा पुं० [म० असङ्क्रान्तिमास] विना सक्राति का महीना । अधिकमास । मलमास ।

प्रसंग<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'असंग'। उ०—मधुर उठती है नान  
असंग।—भरना, पृ० ४४।

असंग्य—वि० [सं० असङ्ग्य] जिसकी गिनती न हो सके। अन-  
गिनत। घेगुमार। बहुत अधिक। उ०—लहरें व्योम चूमती  
उठती, चपलाएँ असङ्ग्य नचती।—कामायनी, पृ० १६।

असङ्गक—वि० [सं० असङ्गक] दे० 'असङ्ग'। उ०—वन से  
असङ्गक आर्य यो इमलाम मे लाये गये।—भारत०, पृ० ७६।

असङ्गत—वि० [सं० असङ्गत] सङ्गतीत। जो गिना न जा  
सके [को०]।

असङ्ग्य<sup>१</sup>—वि० [सं० असङ्ग्य] सङ्गतीत। अनगिनत [को०]।

असङ्ग्य<sup>२</sup>—सङ्ग पुं० १ अत्यंत बड़ी सङ्ख्या। २ शिव का एक  
नाम। ३ विष्णु [को०]।

असङ्ग—वि० [सं० असङ्ग] १ बिना साथ का। अकेला। एकाकी।  
२ किसी में वास्ता न रखनेवाला। न्यारा। निरिन्धन। माया-  
रहित। उ०—(क) मन में यह वात ठहराई। होइ असंग  
भजौ जदुगई।—सूर० (शब्द०)। (ख) भस्म असंग मर्दन  
अनग, सनत असंग हर। सीसंग, गिरिजा अघग, भूपन  
सुप्रगवर।—तुलसी (शब्द०)। ३ जुदा। अलग। पृथक्।  
उ०—चद्रकला चत्र परी, असंगग ह्वै परी, भुजगी भाजि  
श्री गी, वरगी के वरत ही।—देव (शब्द०)।

असंग<sup>२</sup>—सङ्ग पुं० पुरुष। आत्मा। २. सपकाभाव। निरिन्धनता [को०]।

असंगचारी—वि० [सं० असङ्गचारिन्] आजादी से घूमनेवाला [को०]।

असंगत—वि० पुं० [सं० असङ्गत] १ अयुक्त। वेठीक। २ अनुचित।  
उ०—अम भयो मन भयो पछावज चलत असंगत चाल।—  
सूर० १। १५३। ३ असमान। वेमेल [को०]। ४. जो  
प्रमगविरुद्ध हो। अप्रामाणिक [को०]। ५ असंस्कृत। गैवार।  
उजड़ह [को०]।

असंगति—सङ्ग स्त्री० [सं० असङ्गति] १. असवध। वेसितसिन्धुपन।  
२ अनुपयुक्तता। नामुनासिवत। ३. एक काव्यालंकार जिसमें  
कार्यकारण के बीच देश-काल-सवधी अन्यथात्व दिखाया जाय,  
अर्थात् सृष्टिनियम के विरुद्ध कारण कही बताया जाय और  
कार्य वही; किसी नियत समय में होनेवाले कार्य का किसी  
दूसरे समय में होना दिखाया जाय। उ०—'हरत कुसुम  
छवि कामिनी, निज अगन सुकुमार। मार करत यह कुसुमसर,  
युवकन कहा विचार।' यहाँ फूलों की शोभा हरण करने का  
दोष स्त्रियों ने किया, उसका दंड उनकी न देकर कामदेव ने  
युवा पुरुषों को दिया।

विशेष—कुवलयानन्द में और दो प्रकार से असंगति का होना  
माना गया है। एक तो एक स्थान पर होनेवाले कार्य के  
दूसरे स्थान पर होने से, जैसे—'तेरे अंग की अगना, तिलक  
लगायो पानि'। दूसरे, किसी के उस कार्य के विरुद्ध कार्य करने  
से जिसके लिये वह उद्यत हुआ हो, जैसे—'मोह मिटावन हेतु  
प्रभु, लीन्हो तुम अवतार। उलटो मोहन रूप धरि, मोहघो सब  
ब्रजनार।'।

असंगतिप्रदर्शन—सङ्ग पुं० [सं० असङ्गतिप्रदर्शन] १. तर्क के क्रम में  
अत में ऐसी बात कह देना या ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचना जो मूल  
प्रतिपाद्य का विरोधी हो। २. दोष दिखाना।

असंगम<sup>१</sup>—सङ्ग पुं० [सं० असङ्गम] १. संग का प्रभाव। २. अना-  
सक्ति। ३. वेमेलपन [को०]।

असंगम<sup>२</sup>—वि० १ अलग। २. वेमेल [को०]।

असंगी—वि० [सं० असङ्गिन्] १. बिना लगाव का। अमरुद्ध। २.  
ससार में विरक्त [को०]।

असचय<sup>१</sup>—सङ्ग पुं० [सं० असञ्चय] एकत्र करने की कमी। सर्वव  
का अभाव [को०]।

यी०—असचयशील—सचय करने की जिगगी आदत न हो या  
जो सचय न करता हो।

असचय<sup>२</sup>—वि० आवश्यक वस्तुओं से हीन। ममाररहित [को०]।

असचयिक—वि० [सं० असञ्चयिक] जो सचय न करे [को०]।

असचयी—वि० [सं० असञ्चयिन्] सचय न करनेवाला [को०]।

असचर—सङ्ग पुं० [असञ्चर] वह मार्ग जिसपर मर लोग नहीं  
चलते। सर्वमाधारण के लिये निषिद्ध पथ अथवा म्यान [को०]।

असजोग<sup>१</sup>—सङ्ग पुं० [सं० असजोग] सवध या मरक का अभाव।  
असवध। उ०—असजोग ते कहूँ कहूँ एक अर्थ कविराई  
मिखारी अ०, भा० २, पृ० ७।

असज—वि० [सं०] सञ्चाररहित। चेतनारहित [को०]।

असज्ञा—सङ्ग स्त्री० [सं०] १ मजाहीनता। २ नामजस्य का  
अभाव [को०]।

असज्वर—वि० [सं०] क्रोध, शोक, द्वेष, रोग, आदि विकारों से  
रहित [को०]।

असत—वि० [सं० असन्त] बुरा। खरा। दुष्ट। उ०—मन—प्रमन भेद  
विलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।—मानस, ७।३७।

असतति—वि० [सं० असन्तति] जिसे सतति या बाल बच्चे न हो।  
नि संतान।

असतान—वि० [सं० असन्तान] सतानविहीन। जिसे पुन या पुत्री न  
हो [को०]।

असतुष्ट—वि० [सं० असन्तुष्ट] १ जो सन्तुष्ट न हो। २ अनृप।  
जिसका मन न भरा हो। जो अघाया न हो। ३. अप्रमन्न।

असतुष्टि—सङ्ग स्त्री० [सं० असन्तुष्टि] १. सतोष का अभाव। २.  
अतृप्ति। ३. अप्रसन्नता।

असतोष—सङ्ग पुं० [सं० असन्तोष] [वि० असन्तोषी] १ सतोष का  
अभाव। अर्धय। २. अतृप्ति। ३. अप्रसन्नता।

असतोषी—वि० [सं० असन्तोषिन्] [वि० स्त्री० असन्तोषिणी] जिसे  
सतोष न हो। जिसका मन न भरे। जो तृप्त न हो।

असादिग—वि० [सं० असन्दिग्ध] १ सदेह में परे। जिनके विषय में  
सदेह या आशका की गुजाइश न हो। २ निश्चित [को०]।

असाध—वि० [सं० असन्ध] १. जिनमें जोड़ न हो। २. प्रमीलित।  
३. जिसके खंड या टुकड़े न हुए हो।

असंधि<sup>१</sup>—वि० [सं० असन्धि] १. जिनमें प्रापम में संधि न हुई हो।  
संधिहीन (शब्द०, १२. अनमिल। स्वतंत्र [को०]।

असंधि<sup>२</sup>—सङ्ग स्त्री० १ संधि का अभाव। २. मेर या मर्दभ का  
अभाव [को०]।

असंयुक्त<sup>१</sup>—उज्जा खीं [न० असंयुक्त] १. दुर्भाग्य । २. मकनना या नयन का अभाव [को०] ।

असंयुक्त<sup>२</sup>—वि० अभाव । दन्ति [को०] ।

असंयुक्त<sup>३</sup>—उज्जा पुं० [न० असंयुक्त] अवग्रह न होना । अवग्रह का अभाव [को०] ।

असंयुक्त<sup>४</sup>—वि० [न० असंयुक्त] उपर्युक्त या अवग्रह न रखनेवाला ।

असंयुक्त<sup>५</sup>—वि० [न० असंयुक्त] अपूर्ण । जो पूरा न हो । अपूर्ण [को०] ।

असंयुक्त<sup>६</sup>—वि० [न० असंयुक्त] जो किसी के सम्पर्क में न हो । तटस्थ ।

असंयुक्त<sup>७</sup>—वि० [न० असंयुक्त] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

अधुने म म जाना हुआ ।

असंयुक्ततन्माधि—सज्ञा खीं [सं असंयुक्ततन्माधि] योग की दो तन्माधियों में से एक जिसमें न केवल बाहरी विषयों की वृत्ति जाना और ज्ञेय की भावना भी लुप्त हो जाय । निश्चित तन्माधि ।

असंयुक्त<sup>८</sup>—सज्ञा पुं० [न० असंयुक्त] अवग्रहीनता । अवग्रह का न होना [को०] ।

असंयुक्त<sup>९</sup>—वि० असंयुक्त [को०] ।

असंयुक्त<sup>१०</sup>—वि० [न० असंयुक्त] १ जो मिला न हो । जो मे १ में न हो । २ विलगाव । पृथक् । अलग । ३ अनमिल । वेमेन । विना मित्र पर का । अद्वय ।

यो०—असंयुक्तप्रपञ्च ।

असंयुक्तव्यतिशयोक्ति—सज्ञा खीं [न० असंयुक्तव्यतिशयोक्ति] अतिशयोक्ति, अलंकार का एक भेद जिसमें प्रस्तुत या वर्णनीय की तुलना में अप्रस्तुत या अवर्णनीय को हीन और अयोग्य सिद्ध किया जाता है । जैसे—अति सुन्दर मुख लखि तिय तेरो । आदर हम न करत सनि केरो । पचाकर ग्र०, पृ० ४० ।

असंयुक्त<sup>११</sup>—वि० [सं असंयुक्त] १ बिना बाधा का । अभाव । २ मुक्त । ३ जो मँकरा न हो । चौड़ा । विस्तृत । ४ सम्नाटा । ५ जिसमें कोई दुष्ट या कष्ट न हो । कष्टहीन [को०] ।

असंयुक्त<sup>१२</sup>—सज्ञा खीं [न० असंयुक्त] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, नगण, नगण, नगण और दो गुण होने हैं । ५५, ५५, ५५, ५५, ५५ जैसे—माता नासो गग कठिन भव की पीरा । जाते हैं निशक भवति तूमेरी नीरा । गाओ तेरी ही गुण निन दिन वेवाधा । पावो जाने वेगि सुमगति असंयुक्ता ।

असंयुक्त<sup>१३</sup>—वि० [वि०] १ 'असंयुक्त' । उ०—मुनि आनदचो चद निन, नीन मन आरम, जप्य जाय हवि होम मव, लखी कज्ज ममान ।—पृ० रा०, ६ । १४६ ।

असंयुक्त<sup>१४</sup>—वि० [न० असंयुक्त] जो सम्भव न हो । जो हो न सके । अनहोना । नामुमकिन । उ०—जायें वे इस गेह ही से रुड, नर अमभव, नृड, निरुचय भूड ।—संकेत पृ० १७८ ।

असंयुक्त<sup>१५</sup>—सज्ञा पुं० १ एक वाक्यालंकार जिसमें यह दियाया जाय कि जो बात हो गई है उम्मा होना असंभव या । उ०—किहि जागी जन्निधि यति दुस्तर । पीवहि घटज, उलघहि वदर । (मधु०) । २ अनस्तित्व । न होना [को०] । ३ अनहोनी । मग-वत्ता [को०] ।

असंयुक्त<sup>१६</sup>—वि० [न० असंयुक्त] १ जिना होना सम्भव न हो । २. उन्मत्त में न आने योग्य [को०] ।

असंयुक्त<sup>१७</sup>—वि० [सं असंयुक्त] १ जो सँभालने योग्य न हो । जिसका प्रवध न हो सके । २ अपार । बहुत बड़ा । उ०—विरहा समुद भरा असंयुक्ता । भीर मेनि जिउ लहरिन्ह मारा ।—जायसी ग्र०, पृ० ७४ ।

असंयुक्त<sup>१८</sup>—वि० [सं असंयुक्त, प्रा० असंयुक्त] जो सम्भव न हो । अनहोना । उ०—असंयुक्त वोजन आई है ढीठ गलितनी प्रात । ऐसी नाहि अचगरी मेरी कहा बनावनि वान ।—सूर०, १०।२६० ।

असंयुक्त<sup>१९</sup>—सज्ञा खीं [सं असंयुक्त] [वि० असंयुक्त, असंयुक्त] समावना का अभाव । अनहोना । प्रमत्तव्यता । उ०—भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती दारुन असंयुक्त वीती ।—मानस, १ । ११६ ।

असंयुक्त<sup>२०</sup>—वि० [सं असंयुक्त] दे० 'असंयुक्त' ।

असंयुक्त<sup>२१</sup>—वि० [सं असंयुक्त] जिसकी समावना न रही हो । जिसके होने का अनुमान न किया गया हो । अनुमान-विरुद्ध ।

असंयुक्त<sup>२२</sup>—वि० [सं असंयुक्त] जिसका होना असंभव हो । अव्यय में जिसका होना नामुमकिन हो [को०] ।

असंयुक्त<sup>२३</sup>—वि० [सं असंयुक्त] १ जिसकी समावना न हो । अनहोना । उ०—क्या असंयुक्त हो यह राघव के लिये धार्य ।—अपरा, पृ० ४४ । २ जो समय में आने योग्य न हो । दुर्बोध [को०] ।

असंयुक्त<sup>२४</sup>—वि० [सं असंयुक्त] १ न कहे जाने योग्य । न उच्चारण करने योग्य । २ जिससे बातचीत करना उचित न हो । बुरा ।

असंयुक्त<sup>२५</sup>—सज्ञा पुं० बुरा वचन । खराब बात ।

असंयुक्त<sup>२६</sup>—सज्ञा खीं [सं असंयुक्त] १ अस्तित्वहीनता । समृति का अभाव । २ पुनर्जन्म न होना । ३ असंभवता । ४ अनहोनी घटना । ५ अव्याकृति प्रकृति [को०] ।

असंयुक्त<sup>२७</sup>—वि० [सं असंयुक्त] १ अत्यन्तमिद्ध । महव । २ जिसका पोषण सम्पत्क रीति से न हुआ हो [को०] ।

असंयुक्त<sup>२८</sup>—वि० [सं असंयुक्त] जिसके साथ बैठकर खाना वर्जित हो [को०] ।

असंयुक्त<sup>२९</sup>—सज्ञा पुं० [सं असंयुक्त] हडबडी या अघोरता का अभाव । घोरता [को०] ।

असंयुक्त<sup>३०</sup>—वि० घोर । स्वस्थचित । अनुद्विग्न [को०] ।

असंयुक्त<sup>३१</sup>—वि० [सं] ययमरहित । जो नियमबद्ध न हो । क्रमशून्य ।

असंयुक्त<sup>३२</sup>—सज्ञा पुं० [सं] सयम का अभाव । इन्द्रियों को वश में न रखना ।

असंयुक्त<sup>३३</sup>—वि० [सं असंयुक्त] जो सयमी न हो ।

असंयुक्त<sup>३४</sup>—वि० [सं] न मिला हुआ । विभक्त । अलग [को०] ।

असंयुक्त<sup>३५</sup>—वि० [सं] दे० 'असंयुक्त' ।

असंयुक्त<sup>३६</sup>—सज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम [को०] ।

असंयुक्त<sup>३७</sup>—सज्ञा पुं० [सं] १ अवसर या योग का अभाव । २ समितन का अभाव [को०] ।



प्रसरोध—सङ्घा पुं० [सं०] हानि का न होना । प्रक्षेति [को०] ।  
 प्रसलक्ष्य—वि० [सं०] जिसे लक्षित न किया जा सके । दुर्वोध्य [को०] ।  
 प्रसलक्ष्यक्रमव्याप्य—सङ्घा पुं० [सं०] असलक्ष्यक्रमव्याप्य विवक्षितान्तरपरवाच्य ध्वनि का एक भेद जिसमें रसरूप लक्ष्य तक पहुँचने के क्रम का पता नहीं चलता, यद्यपि क्रम का निर्वाह वहाँ भी होता है, इसे रसध्वनि भी कहते हैं ।  
 प्रसवर—वि० [सं०] छिताने के अयोग्य । अनाच्छादित [को०] ।  
 प्रसवृत्<sup>१</sup>—वि० [सं०] अनाच्छादित । अरक्षित । खुला हुआ [को०] ।  
 प्रसवृत्<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० [सं०] नरकविशेष [को०] ।  
 प्रसर्वधानिक—वि० [सं०] सविधान के प्रतिकूल ।  
 प्रसव्यवहित—वि० [मं०] (देशकाल के) व्यवधान से रहित [को०] ।  
 प्रसशय<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ सशय रहित । निर्विवाद । निश्चित । २. यथार्थ । ठीक ।  
 प्रसशय<sup>२</sup>—क्रि० वि० नि सदेह । वेशक ।  
 प्रसश्रव—वि० [सं०] जहाँ साफ साफ सुनाई न दे [को०] ।  
 प्रसश्लिष्ट<sup>१</sup>—वि० [सं०] जो मिला हुआ न हो । पृथक् । अलग [को०] ।  
 प्रसश्लिष्ट<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० [सं०] शिव [को०] ।  
 प्रसपित्त<sup>१</sup>—वि० [मं०] असपित्त प्रा० असपित्त । विस्तृत । प्रचुर । विपुल । उ०—गज वाज लूटे असपित्त माल । लियो सग्रहे असपत्ती भुञ्जाल ।—पृ० रा०, ५७।२०६ ।  
 प्रससक्त—वि० [सं०] १ जो सक्त न हो । आसक्तिरहित । अनासक्त । २ विभक्त [को०] ।  
 प्रससक्ति—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ लगाव का न होना । निरलपत्ता । २ विरक्ति । सामारिक विपप्रवासनाओं का त्याग ।  
 प्रससारो—वि० [सं०] अससारिन् १ ससार से अलग रहनेवाला । विरक्त । २ ससार से परे । अलौकिक ।  
 प्रससृति—सङ्घा स्त्री० [सं०] समृति का अभाव । मुक्ति [को०] ।  
 प्रससृष्ट—वि० [सं०] समृष्टि से रहित । सवर्हीन । वेमेन [को०] ।  
 प्रससृष्ट<sup>१</sup>—वि० [सं०] असशय ३० 'प्रसशय' । उ०—सकै दिखाय मिरा कौ जो तेहि दोष अससै, ओ सहर्ष सशुद्ध के गुन कौ भाषि प्रससै ।—रत्नाकर, भा० १-पृ० ४७ ।  
 प्रसस्कृत—वि० [सं०] १ विना सुधारा हुआ । अपरिमार्जित । २ जिसका स्स्कार न हुआ हो । ब्राह्म । ३ असभ्य [को०] ।  
 यो०—असस्कृतालकी = अस्तव्यस्त केशोवाला ।  
 प्रसस्तुत—वि० [सं०] १ जो प्रसिद्ध न हो । अज्ञात । २ अपरिचित । ३ अद्भुत । ४ विना लगाव का । वेमेल [को०] ।  
 प्रसस्थान—सङ्घा पुं० [सं०] १ व्यवस्था का अभाव । अक्रम । २. सपथहीनता । ३ अस्थिरता । झुटि या अभाव [को०] ।  
 प्रसस्थित—वि० [सं०] १ अनवस्थित । २ चर । ३ व्यवस्था रहित । ४. असकृति । असगृहीत [को०] ।  
 प्रसस्थिति—सङ्घा स्त्री० [सं०] क्रमहीनता । अव्यवस्था [को०] ।  
 प्रसहत<sup>१</sup>—वि० [सं०] जो सहित या मिला हुआ न हो । बिखरा हुआ । [को०] ।  
 प्रसहत<sup>२</sup>—सङ्घा पुं० १ पुरुष । आत्मा (साध्य) । २. असहतव्यूह [को०] ।

असहतव्यूह—सङ्घा पुं० [सं०] सेना को छोटे छोटे समूहों में अलग-अलग खड़ा करना ।  
 अस<sup>१</sup>—वि० [सं०] ईदृश अथवा एव = यह १ इस प्रकार का । ऐसा । उ०—अस विवेक जव देइ विधाता । तव तजि दोष गुनहि मनु राता ।—मानस १।३।२ तुल्य । समान । उ०—जो सुनि सह अस लाग तुम्हारे । काहे न वोनहु वचनु सँभारे ।—मानस २।३० ।  
 असक<sup>१</sup>—वि० [सं०] अशक्त, प्रा० असक्क हिं असक ] शक्तिहीन । दुर्बल । असमर्थ उ०—कसि असक धोर कसि द्रव्य दड ।—पृ० रा०, ५७।२६५ ।  
 असकत<sup>१</sup>—वि० [सं०] अशक्त दुर्बल । कमजोर । उ०—उर भरम छेह लैणों अगम असकत उग्रम उक्कनी । कर भाव पार गुण सर करण साची नाम सरस्वती ।—रा० रू०, पृ० ६ ।  
 असकताना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [हिं] आसक्तन आलस्य में पड़ना । आनस्य अनुभव करना, जैसे—'असकताओ मत अभी उठो और जाओ।' (शब्द०) ।  
 असकति—वि० [सं०] अशक्ति शक्तिरहित । अशक्त । उ०—हूँ अप-कति, ज्यो त्यो इतहि सुमन चुनौगी चाहि । मानि विन मेरी अली, और ठोर तू जाहि ।—मिखारी प्र०, भा० २, पृ० १६ ।  
 असकत्ता—सङ्घा पुं० [सं०] अति = तलवार + करण = करना दो अगुल चोड़ा और जो मर मोटा लोहे का एक औजार जो रेतों के समान खुरदुरा या दानेदार होता है और जिससे म्यान के भीतर की लकड़ी साफ की जाती है ।  
 असकल—वि० [सं०] जो पूर्ण या समग्र न हो । असमग्र [को०] ।  
 असक्त<sup>१</sup>—वि० [सं०] अशक्त शक्तिहीन । उ०—हा आर्यसतति आज कैसी अध और अशक्त है ।—भारत०, पृ० १५१ ।  
 असक्त<sup>२</sup>—वि० [सं०] अशक्त लिप्त । विपका या सटा हुआ । उ०—विषय अमक्त, अभित अय वाकु । तवहूँ कछु न सँभारचो ।—सूर० १।१०२ ।  
 असक्त<sup>३</sup>—वि० [सं०] १ जो आसक्त न हो । तटस्थ । उदासीन । २. असम्बन्ध । ३. असयुक्त । ४ सामारिक विषयो से विरक्त [को०] ।  
 असक्तारभ—सङ्घा पुं० [सं०] असक्तारम्भ १ वह भूमि जिसमें बहुत थोड़े अम से अन्न पैदा हो । २ कम मेहनत और थोड़ी वर्षा से हो जानेवाली फसल ।  
 असकथ—वि० [सं०] सविषहीन । विना जाँघवाला । [को०] ।  
 असगध—सङ्घा पुं० [सं०] अश्वगधा एक सीधी भाड़ी जो गर्म प्रदेशों में होती है और जिसमें छोटे छोटे गोल फल लगते हैं ।  
 पर्या०—अश्वगधा । हयगधा । वाजिगधा । तुरगगधा । तुरगा । वाजिना । हया । बलदा । वातघनी । श्यामना । कामरूपिणी । काला । गंधपत्री । वाराहपत्री । वाराहकणी । वनजा । हयत्रिया । पीवरा । पलाशपर्णी । कबुका । कबुकाष्ठा । प्रियकारी । अवरोहा । अश्वारोहिका । कुञ्जगिनी । रमायनी । तित्ता ।  
 विशेष—इसकी मोटी मोटी जड़ दवा के काम आती है और वाजारी में विकती है । अश्वगध वनचारक तथा वात और फफ



या नाम तन्नेवासा है। इसके नीचे मे दूध जैम जाता है।  
उमने लई प्रगद प्रातुंरी। शीत वनने हैं, जैमे-परमग्रावृत्त,  
परमग्रावृत्त प्रादि ।

अमर--वि० [२० अमर] वृत्त छोटा ।

अमरगुण--वि० [२० अमरगुण] दे० 'अमरगुण' । उ०--अति गर्व  
मनः परमगुण परमगुण परमगुण हावते--मानस, ११७७ ।

अमरगुणियां--वि० [२० अमरगुणियां] दे० 'अमरगुणियां' (प्रत्यय) वह मनुष्य  
जिसका मुँह उगता हो। मनुष्य ।

अमरगोत्र--वि० [२०] [वि० अमरगोत्र] जो मरगोत्री न हो। मित्र-  
गोत्रीय [को०] ।

अमरज्जन--वि० [२०] उ० । यत् । दुष्ट । अमिष्ट । नीच । उ०--  
उदी नन अमरज्जन चरना । दुष्टप्रद उभय बीच कछु वरना ।--  
मानस, ११७८ ।

अमरज्जन--सज्ञा पुं० बुरा आदमी ।

अमरडिहा--वि० [२०] दे० 'अमरडिहा' । उ०--रही डोडहे आने  
कही अमरडिहा जाने ।--प्रेमपत्र, भा० २, पृ० १३ ।

अमरदियां--सज्ञा पुं० [२० अमरदियां] दे० 'अमरदियां' (प्रत्यय) एक प्रकार  
का वसा गाँव जिनकी पीठ पर कई प्रकार की चित्तियाँ होती  
हैं । दाम विप प्रहृत कम होता है ।

अमरगुण--सज्ञा पुं० [२० अमरगुण] गड्ढा । (वि०) ।

अमर--वि० [२०] १ मिथ्या । अस्तित्वविहीन । सत्ताहित । २.  
बुरा । खराब । ३ छोटा । अमाधु । अमरज्जन ।

अमर--सज्ञा पुं० १ अस्तित्व । २ अस्त्यता । मिथ्यात्व । ३.  
बुराई । अहित । [को०] ।

अमर--वि० [२० अमर] १ अमाधु । अमरज्जन । छोटा । उ०--  
ओषट घात तुनीदनी की मित्र, माया जन में नरनी ।--  
सू० ११०३ । २ अस्तित्वविहीन । सत्ताहित । मिथ्या ।  
उ०--उह शून्य अमर वा अघार, अघारा पटल का वार  
वार ।--कामायनी, पृ० २५१ ।

अमरनाथी--सज्ञा स्त्री [२०] दुष्टता, पाजीपन [को०] ।

अमरनि--वि० [२० अमर] दे० 'अमर' । उ०--जन की पर निया  
भारी नहीं, पर प्रानि ना भारी ।--श्रीराम, पृ० २०६ ।

अमरी--वि० [२०] जो मरी न हो । कुम्हटा । पुश्तकी । उ०--  
अमरीन हो निव मानि । निव तयो तनै कुम्हटानि ।--  
मित्रागी प्र०, भा० १, पृ० १६१ ।

अमरीत्व--सज्ञा पुं० [२०] अमरी का अभाव । कुम्हटापन । स्वीरा-  
चार [को०] ।

अमरीनी--सज्ञा स्त्री [२०] दे० 'अमरीनी' । उ०--पावति वदन  
हीन दश दासक पर गिराव । है न वरी अमरीनी कयो चही  
एवार्ति वात ।--मित्रागी प्र०, भा० १, पृ० ३५ ।

अमरुति--सज्ञा पुं० [२० अमरुति] प्राणना । मृति । उ०--अमरुति  
निदा मासा छोड़ें नर नान समिमान ।--करीर प्र०, पृ० १५० ।

अमरार--सज्ञा पुं० [२०] [वि० अमरार] १ अमान । निरादर ।

अमरार--वि० [२०] अमान । अमानित ।

असत्कृत्य<sup>१</sup>--वि० [२०] १ संमान न करने योग्य । २ अनुचित काम  
करनेवाला [को०] ।

असत्कृत्य<sup>२</sup>--सज्ञा पुं० अनुचित कर्म । दुष्कृत्य [को०] ।

असत्ख्याति--सज्ञा स्त्री [२०] १ अमात्मक ज्ञान [को०] ।

असत्ता--सज्ञा स्त्री [२०] १ सत्ता का अभाव । अस्तित्वमानता ।  
अनस्तित्व । नेस्ती । २ असाधुता । अमज्जाता ।

असत्त्व<sup>१</sup>--वि० [२०] १ सत्त्वहीन । कमजोर । २. जिसमें प्रच्छाई न  
हो । ३ पशुविहीन । प्राणहीन [को०] ।

असत्त्व<sup>२</sup>--सज्ञा पुं० १ अनस्तित्व । असत्ता । २ असत्यता । ३  
बुराई । खोटाई । ४ अघकार । अघेरा [को०] ।

असत्पथ--सज्ञा पुं० [२०] १ कुमार्ग । २ कदाचरण । दुराचरण  
[को०] ।

असत्परिग्रह--सज्ञा पुं० [२०] दे० 'असत्परिग्रह' [को०] ।

असत्पुत्र--सज्ञा पुं० [२०] १ कुपुत्र । बुरा लडका । २ पुत्रहीन व्यक्ति  
[को०] ।

असत्परिग्रह--सज्ञा पुं० [२०] [वि० असत्परिग्रही] वह दान जिसके  
लेने का शास्त्र में निषेध हो, जैसे--उभयमुखी गो, प्रेतान्न,  
चाडालादि का अन्न ।

असत्परिग्रही--वि० [२० असत्परिग्रहिन्] निषिद्ध दान लेनेवाला ।

असत्य<sup>१</sup>--वि० [२०] १ मिथ्या । झूठ । २ अवास्तविक [को०] ।  
२ अनिश्चित फनवाला [को०] ।

असत्य<sup>२</sup>--सज्ञा पुं० १ वह व्यक्ति जो झूठा न बोलता हो । २ झूठाई ।  
असत्यता [को०] ।

असत्यता--सज्ञा स्त्री [२०] मिथ्यात्व । झूठाई ।

असत्यवाद--सज्ञा पुं० [२०] [वि० असत्यवादी] मिथ्यावाद । झूठ  
बोलना ।

असत्यवादी--वि० [२० असत्यवादिन्] झूठ बोलनेवाला । झूठा ।  
मिथ्यावादी ।

असत्यशील--वि० [२०] असत्य बोलने के स्वभाव या प्रवृत्तिवाला  
[को०] ।

असत्यसंध--वि० [२० असत्यसन्ध] जो वादे का सत्ता न हो ।  
झूठा [को०] ।

असत्यसन्धि--वि० [२० असत्यसन्धि] झूठ या अमान्यता [को०] ।

असत्यन--सज्ञा पुं० [२० अति] १ जायक । ।--वि० ।

असत्यि--सज्ञा स्त्री [२० असत्यि] हड्डी । हाड । उ०--गविल  
मुकर मोनिन समुक्त मल अरु असत्यि समेत ।--सं० सुप्तक,  
पृ० १७ ।

असत्यि--वि० [२० असत्यि] चक्र । चक्रावर्तमान । उ०--रवि  
रजनीम घरातया यह असत्यि अमरुन ।--सं० सुप्तक,  
पृ० ३५ ।

असत्यूल--वि० [२० सुल] नीतिरहित । उ०--रवि रजनीम घरा ।  
तया यह असत्यि अमरुन ।--सं० सुप्तक, पृ० १७ ।

असदाचार<sup>१</sup>--सज्ञा पुं० [२०] [वि० असदाचारी] बुरा आचार ।  
नियम या धर्मविरुद्ध आचरण । अधर्म [को०] ।

असदाचार<sup>२</sup>--वि० बुरा आचारवाला [को०] ।

प्रसूत—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अमदृशी] १ अममान। अथवा।  
२ अनुचित। अयोग्य [को०]।

प्रसूतदृष्टि—वि० [सं०] दुर्बुद्धि। बुद्धिहीन [को०]।

प्रसूतद्वार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नव्य न्याय के अनुसार एक दोष जो तर्क के अवयवों के प्रयोग में होता है। २ अस्तित्व का अभाव। अविद्यमानता [को०]। ३ अनुचित विचार या भावना [को०]। ४ दुष्ट स्वभाव [को०]।

प्रसूतद्वार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह मित्रता जो मत्ता को कोई वस्तु ही न माने।

प्रसूतद्वि—वि० [सं०] दुर्वृत्त। अनाचारी। दुष्ट [को०]।

प्रसूतद्वि—सञ्ज्ञा स्त्री० अष्टचार। दुष्टता [को०]।

प्रसूतद्वय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अमन् या बुरे कार्यों में होनेवाला व्यय। खराब कामों में खर्च। उ०—हुनो आढ्य नव कियो असद्वय करी न ब्रज-वन-नाथ।—मूर०। १। २१६।

प्रसूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अशत] भोजन। अशन। उ०—तहँ न अशन नहि विप्र सुपारा। फिरेउ राउ मन मोच अरारा।—मानन १। १७४।

प्रसूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ फेंकना। क्षेत्रण २ पीनमाल वृक्ष [को०]।

प्रसूतपर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मानल या गोरुर्णी नामक वृक्ष [को०]।

प्रसूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अशत] पीतमाल वृक्ष।

विशेष—यह वृक्ष शान की तरह का होता है। इसके हीरे की लकड़ों दृढ़ होती और मकान बनाने के काम आती है तथा भूरापन लिए हुए काले रंग की होती है। इस पेड़ की पत्तियाँ माघ फागुन में झड़ जाती हैं।

प्रसूनान—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्नान, पुं० हिं० अस्नान] नहाना। स्नान। उ०—नृपति मुरसरी के तट आइ, कियो प्रसूनान मृत्तिका लाइ।—मूर० १। ३४१।

प्रसूनि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अशति] १ वज्र। हीरा। उ०—वेरी की कर्मि रही कपनि सु कारो साँप, दमन की लसनि अमनि दोहियत है।—मग०, पृ० २४। २ विद्युत्। उ०—तूक न अमनि केनु नहि राह।—मानस ६। ३१।

प्रसूनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अश्विनी] नक्षत्र विशेष।

अमन्नद्व—वि० [सं०] १ बिना शस्त्र का। २ जो तैयार या मुस्तैद न हो। अतत्पर। ३ अहकारी। यगडी। ३ विद्वत्ता में अपने को नगानेवाला। पण्डितमानी।

असन्निकर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निकट या पाम न होना। २ दूर होना [को०]।

असन्निधान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दूरता। २ अनुपस्थिति। अभाव। [को०]।

असन्निधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दूरी। असमीपता। २ अनिष्ठता का अभाव [को०]।

असन्निहित—वि० [सं०] १ जो निकट न हो। २ अनुचित रीति से रखा हुआ [को०]।

असपत्नी—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'असपति'। उ०—प्रटक हीण असपत्नी पाय ठित अवसर पायो।—रा० रू०, पृ० १६।

असपत्ति—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अश्वपति] १ घुड़पवारों का प्रधान। २ नरपति। राजा। उ०—असपत्ती अजमेरगढ़ रहियो पाँच दिक्कम।—रा० रू०, पृ० ५३।

असपत्न—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अश्वपत्नी] १ बिना पत्नी का। २ शत्रुरहित। शत्रुविहीन। ३ जो शत्रु न हो। अशत्रु [को०]।

असपिंड—वि० [सं० असपिण्ड] [असपिंडा] जो अपने कुल का न हो। अपने कुल की मात पीढ़ियों में बाहर का। जिससे परंपरागत रक्तसंबन्ध न हो [को०]।

असपत्ति—[हिं० अश्वपति] दे० असपति।—दोउ मयमत सुजाँण सेज दिसि बाहुडइ। जाँणें धरती काज, असपत्ति आहुडइ।—ढोला० दू० ५६६।

असफल—वि० [सं०] १ जो सफल न हो। नाकामयाव। उ०—आह स्वर्ग के अग्रदूत। तुम असफल हुए बिनीन हुए।—कामायनी, पृ० ७। २ व्यर्थ। निष्फल। उ०—तिरस्कृत कर उमको तुम भूल, बनाते हो असफल भवधाम।—कामायनी, पृ० ५३।

असफलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मफलता का अभाव। नाकामयावी [को०]।

असवर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] खुरासान में होनेवाली एक प्रकार की लबी घाम।

विशेष—इसमें पीने या मुनहने फूट लगते हैं। मुड़ाए हुए फूटों को अकगान व्यापारी मुनान में लाते हैं जहाँ वे अकथेर के साथ रेशम रँगने के काम में आते हैं।

असवाव—सञ्ज्ञा पुं० [अ० 'सवव' का बहुत व०] चीज। वस्तु। सामन। प्रयोजनीय पदार्थ। उ०—सव असवाव डाढो में न काढो तैन काढी, जिय की परी सँपार महन भडार को।—गुलमी ग्र०, पृ० १७३। २ कारणममूह [को०]।

असमई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० असम्पत्ता] अशिष्टता। बेहूदगी।

असम्प—वि० [सं०] १ ममा या गोष्ठी में बैठने के नाकाविन। २ अशिष्ट। गँवार। उजड्ड। उ०—हम मूर्ख और असम्प थे, उससे विदित होता यही।—भारत०, पृ० ११६।

असम्पत्ता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अशिष्टता। गँवारपन।

असमजस—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अमजस] १ दुविधा। पशोपेक्ष। प्रागापीछा। फेरफार। उ०—बना आइ असमजस आजू।—मानस १। १६७। २ अडचन। अडप। कठिनाई। चपकुल्लिस। उ०—जात तुम्हहि मई जानउँ नीके। करउँ काह असमजसु जीके।—मानस, २। २६३।

क्रि० प्र०—मे पडना।—होना।

असमजस—सूर्यवंशी राजा सगर का बड़ा पुत्र जो रानी केशी ने उदन्न या अशमजस—शि० १ जो व्यक्त न हो। अप्पट। २ अनुवि। अनुपयुक्त। ३ मूर्खतापूर्ण। बुद्धिविरहित। ४ अयुक्त। असगत [को०]।

असमत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असमत] चूल्हा।

असम—वि० [सं०] १ जो सम या तुल्य न हो। जो बराबर न हो। असम। उ०—जो अगम सुगम सुभाव निमन असम सम सीतल मदा।—मानस, ३। ७६। २ विषम। ताक। उ०—लोचन असम अग असम चिन्ता की लाइ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २५६। ३ ऊँचानीचा। ऊबड़खाबड़।

असम<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० एक काव्यालंकार जिसमें उपमान का भिन्नता असंभव बतलाया जाय, जैसे—प्रतिवन वन खोजन मर जैही। मालति कुसुम नहीं तुम पैही।

असमग्र—वि० [स०] अधूरा। अशमात्र [को०]।

असमता<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [अ० इस्मत > अस्मत] १ पातिव्रत्य। सतीत्व। पाकदामनी। २ पवित्रता। निष्कलुपता [को०]।

यौ०—असमतफरोश = सतीत्वहीन। कुलटा। असमतफरोशी = व्यभिचार।

असमता<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [स०] अममानता। विपमता। असाम्य [को०]।

असमद—वि० [स०] १ गर्वग्रहित। २ विरोधपूर्ण [को०]।

असमन—वि० [स०] १ विविध रंगवाला। २ विभिन्न मतवाला ३ विपम। समनाहीन [को०]।

असमनयन—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'असमनेत्र' [को०]।

असमनेत्र<sup>१</sup>—वि० [स०] जिसके नेत्र सम न हों, विपम (नाक) हो।

असमनेत्र<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० त्रिनेत्र। शिव।

असमवाण—सज्ञा पुं० [स०] विपमवाण। कामदेव [को०]।

असमय<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] विपत्ति का समय। बुरा समय। उ०—समय प्रतापमानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी—मानस, ११५८।

असमय<sup>२</sup>—क्रि० वि० कुपवसर। वेमौका। वेवक्त। उ०—दौने असमय नहीं अचानक तुम्हें जगाया।—साकेत पृ० ४१५।

असमर्थ—वि० [स०] १ सामर्थ्यहीन। दुर्बल। निर्बल। अशक्त। २ अयोग्य। नाकावित। ३ अपेक्षित शक्ति न रखनेवाला [को०]। ४ अभिप्रेतार्थ को व्यक्त करने में प्रक्षम [को०]।

असमर्थता—सज्ञा स्त्री० [स०] अक्षमता। अयोग्यता [को०]।

असमर्थपद—सज्ञा पुं० [स०] वह पद जो वाङ्मय अर्थ को प्रकट करने में समर्थ या क्षम न हो [को०]।

असमर्थममास—सज्ञा पुं० [स०] व्याकरण में ऐसा ममास जो अन्वय-दोष से दूषित हो, जैसे—अथाद्ध भोजी, असूर्यपश्य—इस समस्तपद में अनन्त ममास का यथार्थ मन्त्र पूर्ववर्ती शब्द अथाद्ध और सूर्य के नाश न होकर भोजी और पश्य के साथ है [को०]।

असमवायिकारण—सज्ञा स्त्री० [स०] १ न्यायदर्शन के अनुसार वह कारण जो द्रव्य न हो, गुण या कर्म हो, जैसे—उड़ने के वनने में गले और पंखों का संयोग अर्थात् आकार आदि की भावना जो कुम्हार के मन में थी अथवा जोड़ने की क्रिया जो द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई। २ वैशेषिक के अनुसार वह कारण जिसका कार्य से नित्य संबन्ध न हो, आकस्मिक हो, जैसे—हाथ के लगाव से मूसन का किसी वस्तु पर आघात करना। यहाँ हाथ का लगाव ऐसा नहीं है कि जब हाथ का लगाव हो, तभी मूसन किसी वस्तु पर आघात करे। हवा या और किसी कारण से भी मूसन गिर सकता है।

असमवायी—वि० [स० असमवायिन्] जो समवाय या नित्य संबन्ध रखनेवाला न हो। अनित्य। आनुपगिक [को०]।

असमवृत्त—सज्ञा पुं० [स०] संस्कृत काव्य में प्रयुक्त वे वर्णवृत्त जिनके चारों चरणों में समान गण न हों। त्रिपमवृत्त [को०]।

असमशर—सज्ञा पुं० [स०] कामदेव। उ०—रमादिह मुरनारि नवीना। सकल असमशर कना प्रीता।—तुलसी (शब्द०)।

असमस्त—वि० [स०] १ अपूर्ण। अधूरा। २ अशत। ३. समाप्त-हीन। जो सदिष्ट न हो। विमृष्ट। ४ जो एक न हो। ५ असंबद्ध। अलग [को०]।

असमान<sup>१</sup>—वि० [स०] जो समान या तुल्य न हो। उ०—हम लोगों ने माधारण नागरिकों में असमान उत्सव मनाने का निश्चय किया था।—इंद्र०, पृ० १३०।

असमान<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [स०, आसमान] दे० 'आसमान'। उ०—अचन अचन असमान दसी दिमि यर यर करै।—रूमीर०, पृ० १३।

असमानता—सज्ञा स्त्री० [स०] समानता का अभाव [को०]।

असमाप्त—वि० [स०] [सज्ञा अपनाप्ति] अपूर्ण। अधूरा।

असमाप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] अपूर्णता। अपूर्णपन। समाप्ति का अभाव। असमावर्तक—वि० [स०] जिसका समावर्तन सम्भार न हुआ हो [को०]।

असमावृत्त—वि० [स०] जिसका समावर्तन सम्भार न हुआ हो। जो बिना समावर्तन सम्भार हुए ही गुरुकुल छोड़ दे।

असमाहार—वि० सज्ञा पुं० [स०] १ अलगाव। पृथक्ता। २ अप्राप्ति [को०]।

असमाहित—वि० [स०] चित्त की एकाग्रता में रहित। अस्थिर चित्त। चंचल।

असमीचीन—वि० [स०] अनुचित। अयुक्त। बेठीक [को०]।

असमूच—वि० [हि०] दे० 'असमूचा'। उ०—नामा-नय-मुक्ता, विवाधर प्रतिविधिन असमूच। बाँटो कनक पास सुक मुदर, करकबीज गहि चूँच।—सूर०, २।३०६३।

असमूचा—वि० [स० अ + समुच्चय] १ जो पूरा या समूचा न हो। अधूरा। २ कुट। थोड़ा।

असमेव—सज्ञा पुं० [स० अश्मेव, प्रा० अश्मेव] दे० 'अश्मेव'। उ०—दस अश्मेव जगत जेइ कीन्ह।—जायसी (शब्द०)।

असम्मत<sup>१</sup>—वि० [स०] १ जो राजी न हो। विरुद्ध। २ विपरीत किसी की राय न हो।

असम्मत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० शत्रु [को०]।

असम्पत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० असम्पत्ति] १ समृद्धि का अभाव। २ विरुद्ध मत या राय। ३ अनादर [को०]।

असम्पत्ति—सज्ञा पुं० [स० अ + सम्पत्ति] तनवार।—(हि०)।

असम्पत्ति—वि० [स०] १ अपटु। प्रतुण्य। २ बिना मारा हुआ। ३ अपरिमेय [को०]।

असप्राना—वि० [हि० अ + प्राना] १ भोनामाला। सीधा सादा। छाया चतुराई से रहित। उ०—त्रिवुध मनेह पानी वानी असप्रानी सुनी हँस गंधो जानकी नपन तन हेरि हेरि। तुलसी प्र०, १६४। २ अनाडी। मूर्ख।

असर—सज्ञा पुं० [अ०] १ प्राव। दवाव। २. विह्वल। निशान [को०]। ३ गुण। तापीर [को०]। ४ दिन का चौथा पहर।

यौ०—असर की नमाज।

असरा—सज्ञा पुं० [हि० अरा] आराम देश के कठारों में उरात्र होनेवाला एक प्रकार का चावन।

असरार<sup>१</sup>—क्रि० वि० [हि० सरसर] निरतर । लगातार । बराबर ।  
उ०—कहो नद कहाँ छाँडे कुमार । करुणा करे य सोदा माता  
नैन नोर वहै असरार ।—सूर० (शब्द०) ।

असरार<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [अ० 'सिर' या 'सिर' का बहुव०] भेद । राज ।  
मर्म [क्रि०] ।

असरार<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काकडासिगी नामक पौधा ।

असल<sup>१</sup>—वि० [अ० अस्ल] १ सच्चा । खरा । २. उच्च । श्रेष्ठ ।  
३. विना मिलावट का । शुद्ध । खानिस ।

असल<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ जड़ । मूल । बुनियाद । तत्व । २. मूलधन ।  
उ०—माँचो सो लिखवार कहाँ । काया ग्राम मसाहत करि  
कै ब्रमा वाधि ठहरावै ।—करि अवारजा प्रेम प्रीति को  
असल तहाँ पतिगार ।—सूर० (शब्द०) ।

असल<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शहद । मधु [क्रि०] ।

असल<sup>४</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लंबा भाड़ जो मध्यप्रदेश,  
उत्तरप्रदेश, दक्षिणभारत और राजपूताने (राजस्थान) में  
पाया जाता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ तीन चार इंच लंबी होती हैं और डालियाँ  
नीचे की ओर झुकी होती हैं । इसकी छाल में चमड़ा बिछाया  
जाता है और बीज छाल तथा पत्तियों का औषध में व्यवहार  
होता है । अकाल पड़ने पर इसकी पत्तियाँ खाई भी जाती हैं ।  
इसकी टहनियों की दातून बहुत अच्छी होती है । जब जाड़े के  
दिनों में यह फूलता है तब बहुत सुंदर जान पड़ता है ।

असल<sup>५</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ लोहा नामक धातु । २. अस्त्र छोड़ने से  
पूर्व उसे अभिमंत्रित करने का एक मंत्र । ३. अस्त्र [क्रि०] ।

असलियत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अस्लियत] १ तथ्य । वास्तविकता । २.  
जड़ । मूल । बुनियाद । ३. मूलतत्त्व । सार ।

असली—वि० [अ० अस्ल फा० ई (प्रत्य०)] १. सच्चा । खरा ।  
२. मूल । प्रधान । ३. विना मिलावट का । शुद्ध ।

असवर्ण—वि० [मं०] भिन्न वर्ण या जाति का, जैसे—असवर्ण  
विवाह ।

असवर्णता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ममान जाति या वर्ण का न होना ।  
उ०—फिर भी असवर्णता का सामाजिक दोष उसके हृदय को  
व्यथित किया करता ।—इंद्र०, पृ० ६८ ।

असवर्ण विवाह—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] वह विवाह जिसमें वर और वधू  
विभिन्न वर्णों के हों [क्रि०] ।

असवारी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अश्ववार, प्रा० अस्सवार, असवार] ३०  
'मवार' । उ०—कबीर घोड़ा प्रेम का चेतनि चढ़ि असवार  
कबीर अ०, पृ० ७० ।

असवारी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० असवार + ई (प्रत्य०)] ३० 'सवारी' ।  
उ०—गाने को निज पुरय भूमि पर लक्ष्मी की असवारी ।—  
पवित्र, पृ० ५ ।

असह<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ न सहने योग्य । असह्य । उ०—भीत असह  
विष चिन चढ़े मुख न चढ़े परजक । दिन मोहन अग्रहन इने  
गैष्ट कौनो डक ।—ग० मत्तक, पृ० २७३ । २. अधीर ।

असह<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० छाती का मध्य भाग अर्थात् हृदय ।—(हि०) ।

असहकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] असहयोग । सहकार की भावना का अभाव ।  
मेल से काम न करना ।

असहन<sup>१</sup>—वि० [मं०] जो सहन न करे । असहिष्णु । ईर्ष्यालु ।

असहन<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ शत्रु । वैरी । २. अधीरता । असहिष्णुता  
(क्रि०) । ३. ईर्ष्या [क्रि०] ।

असहनशील—वि० [मं०] १ जिसमें सहन करने की शक्ति न हो ।  
असहिष्णु । २. चिड़चिड़ा । तुनकमिजाज ।

असहनशीलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. सहन करने की शक्ति का  
अभाव । असहिष्णुता । २. तुनकमिजाजी ।

असहनीय—वि० [मं०] न सहने योग्य । जो बरदाश्त न हो सके ।  
असह्य ।

असहयोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ साथ मिलकर काम न करने का  
भाव । २. आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में सरकार के  
साथ मिलकर काम न करने, उनकी सम्प्राप्ति में समन्वित न  
होने और उनके पद आदि ग्रहण न करने का मिश्रित । नक-  
मवालात । नान-कोप्रापरेसन ।

असहयोगवाद—सञ्ज्ञा पुं० [मं० असहयोग + वाद] राजनीतिक क्षेत्र में  
सरकार से असहयोग करने अर्थात् उनके साथ मिलकर काम  
न करने का मिश्रित ।

असहयोगवादी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असहयोग + वादिन्] राजनीतिक क्षेत्र  
में सरकार से असहयोग करने अर्थात् उनके साथ मिलकर काम  
न करने के सिद्धांत को माननेवाला मनुष्य ।

असहाइ<sup>१</sup> असहाई<sup>२</sup>—वि० [हि०] दे० 'असहाय' । उ०—एक किन्हु  
नहि भरत भलाई । निदरे रामु जानि अमहाई ।—मानस, २।२३८

असहाय—वि० [मं०] १. जिसे कोई सहारा न हो । नि सहाय । निर-  
वलव । निराश्रय । २. अनाथ । लाचार ।

असहिष्णु—वि० [सं०] १ जो सहन न कर सके । असहनशील । २.  
चिड़चिड़ा । तुनकमिजाज ।

असहिष्णुता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहन करने की शक्ति का अभाव ।  
असहनशीलता । २. चिड़चिड़ापन । तुनकमिजाजी ।

असही<sup>१</sup>—वि० [सं० असह] दूसरे की बढती न सहनेवाला । दूसरे को  
देखकर जलनेवाला । ईर्ष्यालु । उ०—असही दुगही मरहु  
मनहि मन, बैरिन बढहु विपाद । नृपसुत चारि चार विर-  
जीवहु, सकर गौरि प्रसाद ।—तुलसी अ० पृ० २६५ ।

यौ०—असही दुसही ।

असही<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] ककही या कवी नाम का पौधा ।

असह्य—वि० [सं०] न सहन करने योग्य । जो बरदाश्त न हो सके ।  
असहनीय ।

असह्यव्यूह—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] कौटिल्य के अनुसार वह दृढव्यूह जिसके  
दोनों पक्ष फैला दिए गए हों ।

असांच<sup>१</sup>—वि० [मं० असत्य, प्रा० असच्च] असत्य । झूठ । मूया ।  
उ०—सत्यकेतु कुल कोउ नहि वांचा । विप्र आप किमि होइ  
घसांचा ।—मानस १।१७५ ।

असांद्र<sup>१</sup>—वि० [सं० असांद्र] विरल । जो घनीभूत न हो [क्रि०] ।

असांप्रत—वि० [सं० असांप्रत] १ जो सांप्रत या उचित न हो। अनुचित। अयोग्य। २ जो वर्तमान या आज का न हो[को०]।

असांप्रदायिक—वि० [सं० असांप्रदायिक] १ जिसमें सांप्रदायिकता की भावना न हो। २ जो प्रथा या परंपरा से अनुमोदित न हो [को०]।

असा—सज्ञा पुं० [अ०] १ सोटा। डडा। २ चाँदी या सोने से मढा हुआ सोटा जिसे राजा महाराजाओं के आगे या बरात इत्यादि के साथ सजावट के लिये आदमी लेकर चलते हैं। दे० 'आसा'।

यो०—असावरदार = असा लेकर चलनेवाला। असावरदार।

असाई<sup>④</sup>—सज्ञा पुं० [सं० अशास्त्रीय] वह जिसे कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञानी। उ०—बोला गध्रबसेन रिसाई। कस जोगी कस भाट असाई।—जायसी ग्र०, पृ० ११३।

असाक्षात्—वि० [सं०] जो आँखों के आगे न हो। परोक्ष। दूरत (सबद्ध) [को०]।

असाक्षात्कार—सज्ञा पुं० [सं०] १ अनुपस्थिति। २ परोक्ष। अप्रत्यक्ष [को०]।

असाक्षिक—वि० [सं०] १ जिसका कोई गवाह न हो। अप्रमाणित २ शासकविहीन। ज़िमकी कोई देखरेख करनेवाला न हो [को०]।

असाक्षी—सज्ञा पुं० [सं० असाक्षिन्] वह जिसकी साक्षी या गवाही धर्मशास्त्र के अनुसार मान्य न हो। साक्षी होने का अनधिकारी। विशेष—धर्मशास्त्र के अनुसार इन लोगों की साक्षी ग्रहण नहीं करनी चाहिए—चोर, जुआरी, शराबी, पागल, बालक, अति वृद्ध, हत्यारा, चारण, जालसाज, विकलेंद्रिय (बहरे, अंधे लूले, लेंगड़े) तथा शत्रु, मित्र इत्यादि।

असाक्ष्य—सज्ञा पुं० [सं०] गवाही या साक्ष्य का अभाव [को०]।

असाढ़—सज्ञा पुं० [सं० आपाढ़] आपाढ़ का महीना। वर्ष का चौथा महीना।

असाढा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [देश०] महीन बटे हुए रेशम का तागा।

असाढा<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं० आपाढ़] एक प्रकार की खाँड। कच्ची चीनी।

असाढी<sup>१</sup>—वि० [सं० आपाढ़] आपाढ़ का।

असाढी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० १ वह फसल जो आपाढ़ में बोई जाय। खरीफ। २ आपाढीय पूर्णिमा।

असाढू—सज्ञा पुं० [देश०] मोटे दल की चट्टान। मोटा पत्थर। भोट। उमवट।

असात्म्य—सज्ञा पुं० [सं०] प्रकृतिविरुद्ध पदार्थ। वह आहार विहार जो दुःखकारक और रोग उत्पन्न करनेवाला हो।

असाध<sup>१</sup><sup>④</sup>—वि० [हिं०] दे० 'असाध्य'।

असाध<sup>२</sup>—वि० [हिं०] दे० 'असाधु'। उ०—बाहर दीसँ साध गति माँहँ महा असाध।—कवीर ग्र०, पृ० ४६।

असाधन<sup>१</sup>—वि० [सं०] साधन या उपकरण से रहित [को०]।

असाधन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० सिद्धि या पूर्णता का अभाव [को०]।

असाधारण<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो साधारण न हो। असामान्य।

२ न्याय में पक्ष या विपक्ष से पृथक्—जैसे हेतु [को०]। ३ जिसका दूसरा दावेदार न हो। निश्चित रूप से एक का—जैसे संपत्ति [को०]।

असाधारण<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ न्याय में हेतुमास का एक दोष। २. विशिष्ट संपत्ति [को०]।

असाधि<sup>④</sup>—वि० [हिं०] दे० 'असाध्य'। उ०—देखी व्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।—मानस, २।३४।

असाधित—वि० [सं०] जो साधा न गया हो। असिद्ध [को०]।

असाधु<sup>१</sup>—वि० [सं०][वि० स्त्री० असाध्वी] १ दुष्ट। बुरा। खल। दुर्जन। खोटा। २ अविनीत। अशिष्ट। ३ जो ठीक ढग से सिद्ध न हो। अष्ट। व्याकरणविरुद्ध [को०]।

यो०—असाधुवृत्ता = पुष्टि। म्वरिणी।

असाधु<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ अष्ट या पतित माधु। २ असज्जन।

असाधुता—सज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्जनता। अशिष्टता। खलता। खोटाई।

असाध्य—वि० [सं०] १ जिसका माधन न हो सके। न करने योग्य। दुष्कर। कठिन। २ न प्रायोग्य होने के योग्य। जिसके अच्छे या चगे होने की संभावना न हो, जैसे—यह रोग असाध्य है (शब्द)।

यो०—असाध्यसाधन = न हो सकनेवाले काम को कर लेना।

असाध्वी—सज्ञा स्त्री० [सं०] व्यभिचारिणी। कुंटा। अमती [को०]।

असानी—सज्ञा पुं० [अ० असाइनी] वह व्यक्ति जो अदालत की ओर से किसी दिवालिया की मांग, जिसके बहुत से नहनार हो, तक अपनी निगरानी में रखने के लिये नियुक्त हो, जब तक कोई रिसीवर नियत होकर संपत्ति को अपने हाथ में न ले।

असामयिक—वि० [सं०][वि० स्त्री० असामयिकी] जो समय पर न हो। जो नियत समय से पहले या पीछे हो। बिना समय का। वेक्त का।

असामर्थ्य—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ शक्ति का अभाव। अक्षमता। २ निर्वनता। नाताकती।

असामान्य—वि० [सं०] जो साधारण न हो। प्रसाधारण। गैरसामान्य।

असामी<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [अ० आतामी] १ व्यक्ति। प्राणी, जैसे—वह लाखों का असामी है (शब्द)। २ जिसमें किसी प्रकार का लेन देन न हो। जैसे, वह बड़ा खरा असामी है, रुपया तुरंत देगा (शब्द)। ३ वह जिसने लगान पर जोतने के लिये जमींदार से खेत लिया हो। रैन। काश्तकार। जोता। ४ मुद्दामेह। देनदार। ५ अपराधी। मुलजिम, जैसे—असामी हवागत से भाग गया (शब्द)। ६ दोस्त। मित्र। सुहृद। जैसे—वो तो, वहाँ बहुत असामी मिल जायेंगे (शब्द)। ७ ढग पर चढाया हुआ आदमी। वह जिससे किसी प्रकार का मतलब गाँठना हो।

यो०—खरा आदमी = चटपट दाम देनेवाला आदमी। डूअ असामी = गया गुजरा। दिवानिया। मोटा असामी = धनी पुरुष। लीचड असामी = देने में सुस्त। नादिहद।

मृहा०—असामी बनाना = अपने मतलब पर चढ़ाना। अपनी गों का बनाना।

असामी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० १ परकीया या वेश्या। २ खेली, जैसे—तुम्हारी असामी को कोई उडा ले गया (शब्द)। २ नौकरी। जगह, जैसे—कोई असामी खाली हो तो बतलाना (शब्द)।

असार<sup>१</sup>—वि० [म०] १ मार/हित। तत्त्वशून्य। नि मार। २ शून्य।  
खाली। ३ तुच्छ। ४ जो तत्पर न हो। उत्साहहीन [को०]।  
५ दरिद्र। निर्धन [को०]। ६ कमजोर। निर्बल [को०]।  
असार<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ रेंड का पेड़। २. अग्रह चदन। ३ मारहीन या  
निस्तत्व भाग [को०]।  
असार<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'असवार'।  
असारता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ नि गारता। तत्त्वशून्यता। २.  
तुच्छता। ३ मिथ्यात्व।  
असारभांड—सञ्ज्ञा पुं० [म० असारभाण्ड] कौटिल्य के अनुसार घटिया  
माल।  
असारलत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १ कुचीनता। २ सचाई। तत्व।  
असारलतन—क्रि० वि० [अ०] स्वप्न। खुद।  
असाराला—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अशालिका] हाला। चपुर।  
असारवान—वि० [स०] [सञ्ज्ञा असारवानता] जो सावधान या सतर्क  
न हो। खबरदार न हो। जो सचेत न हो।  
असारवानता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] बेपरवाही।  
असारवानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] बेखबरी। बेपरवाही।  
असारवी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० असारवी अथावा असारवी] छत्तीस  
रागिनीयों में से एक प्रधान रागिनी। भैरव राग की स्त्री  
(रागिनी)। यह रागिनी टोडी से मिलती जुलती है और सवेरे  
सात बजे से नौ बजे तक गाई जाती है।  
असारवी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अश्वपट्ट?] वस्त्रविशेष। उ०—पाँवरी  
पंक्ति न प्यारी जगई की ओढ़ि लैं चाँचरि चार असारवी।—  
मिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ५४।  
असारवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'असारवी'। उ०—सुदरि क्यों पहि-  
रति नग भूपन असारवी। तन की छुति तेरी सहज ही मसाल-  
प्रभावली।—मिखारी ग्र०, भा० १, पृ० २००।  
असारसा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० असारसह] १ माल। असबाब। २ संपत्ति।  
घन-शैलत।  
असारमुलवैत—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] घर का अमबाब। घर का प्रदाला।  
असि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ तलवार। खड्ग। वाराणसी के दक्षिण  
स्थित एक नदी। ३. श्वाभ [को०]।  
असिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ होठ और ठुड्डी के बीच का भाग। २  
एक देश का नाम।  
असिकनिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] युवती दासी [को०]।  
असिकनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अत पुर में रहनेवाली वह दासी जो  
बुद्धा न हो। २ पजाव की एक नदी। चिनाव। ३. वीरण  
प्रजापति की कन्या जो दक्ष को व्याही थी। ४. रात्रि [को०]।  
असिगड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असिगण्ड] गाल के नीचे रखने की छोटी  
तकिया [को०]।  
असिचर्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [नं०] तनवार चलाने का अभ्यास [को०]।  
असिजीवी—वि० [सं० असिजीविन्] तलवार के द्वारा जीविका उपा-  
जित करनेवाला। सैनिक।  
असित<sup>१</sup>—वि० [सं०] १. जो सफेद न हो। काला। उ०—असित  
कुटिल अलके तेरी। उचित हरति मनि है मेरी।—मिखारी  
ग्र०, भा० १, पृ० १६३। ३. दुष्ट। दुरा। ३. टेढ़ा। कुटिल।

असित<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ एक ऋषि का नाम। २ भरत राजा का पुत्र।  
३. शनि। ४ पिगला नाम की नाडी। ५ धो का पेड़। ६.  
काला या नीला रंग [को०]। ७ कृष्णपक्ष [को०]। ८. कृष्ण  
सर्प [को०]। ९ कृष्ण का एक नाम [को०]।  
असितगिरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नीलगिरि नाम का पहाड़ [को०]।  
असितग्रीव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। २ मयूर [को०]।  
असिताग<sup>१</sup>—वि० [सं० असिताङ्ग] १ काले रंग का। २ काले अंगों  
वाला।  
असिताग<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ एक मुनि। २ शिव का एक नाम।  
असिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ यमुना नदी। २ नीली या नील नाम  
का पौधा। ३ चद्रभागा नदी [को०]। ४ दक्षयत्नी का नाम  
[को०]। ५ अत पुर की वह दासी जिसके केश श्वेत न हुए हो  
[को०]। ६ रात्रि [को०]।  
असितोत्पल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असित + उत्पल] नील कमल [को०]।  
असितोपल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असित + उपल] नीलम [को०]।  
असिदत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असिदत्त] मकर नामक जलजीव। घड़ियाल  
[को०]।  
पर्या०—असिदत्त। असिदत्तक।  
असिद्ध<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जो सिद्ध न हो। २ बेपका। कच्चा। ३  
अपूर्ण। अधूरा। ४ निष्फल। व्यर्थ। ५. अप्रमाणित। जो  
साबित न हो।  
असिद्ध—सञ्ज्ञा पुं० १. एक प्रकार का बड़ा और ऊँचा वृक्ष जिसकी  
लकड़ी बहुत मजबूत होती है और पाय इमारत के काम में  
आती है। इसकी छाल से चमड़ा भी मिखाया जाता है। २.  
हेत्वाभास का एक भेद [को०]।  
असिद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अप्राप्ति। अनिष्पत्ति। २ कच्चापन।  
कच्चाई। ३ अपूर्णता।  
असिधाराव्रत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ असिधारा के समान व्रत। २  
पुरानी प्रथा के अनुसार पति और पत्नी का ब्रह्मचर्यव्रत,  
जिसमें पति और पत्नी सोते समय बीच में एक नगी तलवार  
रख लेते थे कि वे एक दूसरे का स्पर्श न कर सकें [को०]।  
असिधावक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तलवार आदि को साफ करनेवाला।  
सिकलीगर।  
असिधेनु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] छुरी [को०]।  
असिपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ईख। गन्ना। २. कृपाण का कोप  
[को०]।  
असिपत्रक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असिपत्र' [को०]।  
असिपत्रवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार एक नरक जिसके  
विषय में लिखा है कि वह सहस्र योजन की जलती भूमि है,  
जिसके बीच में ऐसे पेड़ों का एक जंगल है जिसके पत्ते तनवार  
के समान हैं।  
असिपथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] साँस लेने की राह। श्वाभमार्ग [को०]।  
असिपाणि—वि० [सं०] जिसके हाथ में तनवार हो। खड्गधारी  
[को०]।  
असिपुच्छ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मगर। २. नकुली मछली जो पूँछ  
से मारती है।



बहून्मायं मे प्रवृत्त होया है ।

६—समुद्री लवण । १० देवदार । ११, हाथी [को०] । १२.

एक लडाकू जाति [को०] ।

अमुरकुमार—सज्ञा पुं [म०] जैनशास्त्रानुसार एक त्रिभुवनपति देवता ।

अमुरगृह—सज्ञा पुं [म०] शुक्राचार्य ।

अमुरद्रुट—सज्ञा पुं [म०] अमुरद्रुह, देव । सुर [को०] ।

अमुरद्विष्ट—सज्ञा पुं [म०] अमुरद्विष्ट (ट) विष्णु [को०] ।

अमुरराज—सज्ञा पुं [स०] राजा बलि । दैत्यराज [को०] ।

अमुररिपु—सज्ञा पुं [म०] विष्णु [को०] ।

अमुरविजयी—सज्ञा पुं [स०] अमुरविजयिन् वह राजा जो पराजित की भूमि, धन, स्त्री, पुत्र आदि के अतिरिक्त उसकी जाति भी लेना चाहे ।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि दुर्बल राजा ऐसे शत्रु को भूमि आदि देकर जहाँ तक दूर रख सके, अच्छा है ।

अमुरसा—सज्ञा स्त्री [म०] एक प्रकार का तुलसी का पौधा [को०] ।

अमुरसूदन—सज्ञा पुं [म०] विष्णु [को०] ।

अमुरसेन—सज्ञा पुं [स०] एक राक्षस । कहते हैं कि इसके शरीर पर गया नामक नगर बसा है । उ०—अमुरसेन सम नरक निक

दिनि । मायु त्रिबुध कुलहित गिरिनदिनि ।—मानस, १।३१

अमुरा—सज्ञा स्त्री [म०] १. रात । २. वारागना । ३. राशि [को०] ।

अमुराई—सज्ञा स्त्री [स०] अमुर + हि० आई (प्रत्य०) । खोटाई ।

गरारत । उ०—वात चलत जाकी करै अमुराई नेहीन । है कछ

अद्भुत मत भरो तेरे दूगन प्रवीन ।—स० सप्तक, पृ० १६८ ।

अमुराचार्य—सज्ञा पुं [म०] १. शुक्र ग्रह । २. शुक्राचार्य । अमुर

गुरु [को०] ।

अमुराधिप—सज्ञा पुं [म०] १. अमुरराज । दैत्यो का अधिपति ।

२. जलघर नामक अमुरराज । उ०—परम सती अमुराधिप

नागी । तेहि वन ताहि न जिनहि पुरारी ।—मानस, १।२३ ।

३. राज बलि [को०] ।

अमुरारि—सज्ञा पुं [स०] देवता ।

अमुरारी—सज्ञा पुं [म०] अमुरारि दे० 'अमुरारि' । उ०—गो

द्विज हितकारी जय अमुरारी मिष्टसुता प्रिय कत ।—

मानस, १।१८६ ।

अमुराह्व—सज्ञा पुं [म०] कामा नामक घातु [को०] ।

अमुरी—सज्ञा स्त्री [म०] १. राक्षसी । २. राई [को०] ।

अमुविवा—सज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'अमुविधा' ।

अमुविलास—सज्ञा पुं [म०] १. छदविशेष [को०] ।

अमुस्य—वि० [म०] अनिश्चित । उद्विग्न । बीमार । रुग्ण [को०] ।

अमुस्यता—सज्ञा स्त्री [म०] उद्विग्नता । बीमारी [को०] ।

अमुक्षण—सज्ञा पुं [म०] अनादर [को०] ।

अमृक्ष—वि० [म०] अ + हि० सूक्ष्मा १. अंधेरा । अधकार-

मय । उ०—प्रगम अमृक्ष देखि डर खाई । परं नौ सप्त

पतालहि जाई ।—जायसी (शब्द) । २. जिमका बार बार न

दिखाई पड़े । अपार । बहुत विस्तृत । बहुत अधिक । उ०—

(क) कटक अमृक्ष देखि कै राजा गरव करेई । दंड क दसा न

देखै दुहुँ का कहैं जय देइ ।—जायसी अ०, पृ० ११२ । ३.

जि सके करने का उपाय न सूझे । विकट । कठिन । उ०—

दोऊ लड़े होय समुख लोहैं भयो अमृक्ष । शत्रु जूझ तव न्योरे

एक दोऊ मेंह जूझ ।—जायसी (शब्द०) ।

अमृत—वि० [म०] अस्पृष्ट । विरुद्ध । असंयुक्त । उ०—पुनि निन

प्रश्न कियो निज पूतहि । शास्त्र परम्पर कहत अमृतहि ।—

निश्चल (शब्द०) ।

अमृति—सज्ञा स्त्री [स०] १. वध्यात्व । बाँझपन । २. निवारण [को०] ।

अमृतिका—वि० स्त्री [स०] १. जिमका वच्चा न पैदा हुआ हो । २.

वध्या [को०] ।

अमृत्यक—वि० [म०] १. ईर्ष्या करनेवाला । छिद्रान्वयी २. अमृतुष्ट ।

अप्रमत्त [को०] ।

अमृत्यक—सज्ञा पुं निंदा करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

अमृषा—सज्ञा स्त्री [स०] [वि० अमृत्यक] १. पराए गुण में दोष

लगाना । उ०—मदा सत्यमय सत्यव्रत सत्य एक पति इष्ट ।

विगत अमृषा मील सै ज्यो अनसूया सृष्ट ।—स० सप्तक, पृ०

३६६ । २. रस के अतर्गत एक सचारी भाव । ३. क्रोध [को०] ।

अमृषिता—वि० [स०] अमृषितृ दे० 'अमृत्यक' [को०] ।

अमृत्यु—वि० [स०] दे० 'अमृत्यक' [को०] ।

अमृत्यपण्या—वि० [स०] अमृत्यपण्या १. सूर्य को भी न देखनेवाली ।

राजा के अतः पुर की स्त्रियों या रानियों के लिये प्रयुक्त जो

कठोर पदों में रहती थी । २. जिमको सूर्य भी न देखे । परदे

में रहनेवाली, जैसे,—'अमृत्यपण्या दमयंती को विपत्ति में

बन बन फिरना पड़ा ।

अमृत्यपण्या—सज्ञा स्त्री पतिव्रता या माधवी पत्नी [को०] ।

अमृल—सज्ञा स्त्री [अ० उल्ल] दे० 'उगल' ।

अमृल—वि० [अ० उल्ल] दे० 'वमन' ।

अमृक—सज्ञा पुं [म०] १. रक्त । रुधिर । २. मंगल ग्रह [को०] ।

३. कुकुम । केसर [को०] । ४. योग के सत्ताईस भेदों में से एक

[को०] ।

यौ०—अमृक, अमृक्या = रक्तपायी । राक्षस । अमृक्यात,

अमृक्याव = रक्तपात । खून बहना ।

अमृककर—सज्ञा पुं [स०] (शरीर में) रस से रक्त बनने की प्रक्रिया ।

अमृग—सज्ञा पुं [स०] अमृक दे० 'अमृक' [को०] ।

अमृग्रह—सज्ञा पुं [स०] मंगल ग्रह [को०] ।

अमृगदर—सज्ञा पुं [स०] मामिकधर्म का अनियमित या अधिक

होना [को०] ।

अमृगदोह—सज्ञा पुं [स०] रक्तस्राव [को०] ।

अमृगधरा—सज्ञा स्त्री [म०] चमड़ा । चर्म [को०] ।

अमृगधारा—सज्ञा स्त्री [स०] १. चमड़ा २. खून की धारा [को०] ।

अमृगवहा—सज्ञा स्त्री [म०] वह नाडी जिससे रक्तमंचार होता है ।

[को०] ।

अमृग्विमोक्षण—सज्ञा पुं [स०] रक्त निकासन [को०] ।

अमृष्ट—वि० [स०] १. जिसकी मृष्टि न हुई हो । अनुत्पन्न । २. जो

चल रहा हो । जारी । ३. जो प्रदान न किया गया हो अथवा

जिसका वितरण न हुआ हो [को०] ।

यौ०—असृष्टात्त=जो भोजन का वितरण न करे ।

असेगु—वि० [सं० असह्य] न सहने योग्य । असह्य । कठिन ।  
असेचन, असेचनक—वि० [सं०] खूबसूरत । जिसे बार बार देखने  
को जी चाहे [को०] ।

असेतु—वि० [सं० अ=हीं + श्वेत, प्रा० सेत्र, अप० सेत्त]  
अश्वेत । काला । बुरा । उ०—कीन्ही तुम सेत, मैं असेत कृति  
कीन्ही तुम धर्म अनुराग्यो मैं अधर्म अनुराग्यो है ।—पद्माकर  
ग्र०, पृ० २४८ ।

असेवन<sup>२</sup>—[सं०] १ सेवा न करनेवाला । २ अनुगमन न करने-  
वाला [को०] ।

असेवन<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० अश्वजा । ध्यान न देना [को०] ।

असेवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'असेवन—२' [को०]

असेवित—वि० [सं०] १ परित्याग । उपेक्षित । २ अव्यवहृत [को०] ।

असेषु—वि० [हिं०] दे० 'अशेष' । उ०—रात्रत न लेम अव विरन  
असेष को ।—मिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १६५ ।

असेसु—वि० [सं० अशेष, प्रा० असेस] अनत । बहुत । उ०—जात  
भोरसातल असस कठमल भेदि ।—रामचन्द्र०, पृ० १३५  
असेसमेट—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एसेसमेट] १ मालगुजारी या लगान  
लगाने के लिये जमीन का मोल ठहराने का काम । बशोवस्त ।

२ कर वा टैक्स लगाने के लिये वही खाते की जाँच का काम ।  
असेसर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एसेसर] १ वक्ता व्यक्ति जो जज को फौजदारी  
के मुकद्दमे में फौजदारी के समय राय देने के लिये चुना जाता है ।

२ वह जो वही खाता जाँच कर महसून या कर की रकम  
निश्चित करता है । ३ वह जो जमीन का मोल ठहराकर लगान  
या मालगुजारी की रकम निश्चित करता है । कर लगानेवाला ।

असैनिक—वि० [सं०] १ जो सैनिक न हो । जो सेना से सबंध न  
रखता हो ।

असैला—वि० [सं० अ=नहीं + शैली = रीति] [स्त्री० असैली]  
१ रीति नीति के विरुद्ध कर्म करनेवाला । कुमार्गी । उ०—  
सभा-सरवर, लोक-कोकनद-कोकनगन प्रमुदिन मन देखि  
दिनमनि भोर हैं । अदुष्ट असैले मनमैले महिगाल भए कछु  
उलूक कछु कुमुद चकोर हैं । तुलसी ग्र०, पृ० ३०७ । २  
शैली के विरुद्ध । अनुचित । रीतिविरुद्ध । उ०—मैं मुनी  
वातें असैली जे कहि निमिचर नीच । बरो न मारै गाल वँठो  
काल डाढनि बीच ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३७४ ।

असौ—क्रि० वि० [सं० इह = समय या अस्मिन् समय का सक्षिप्त  
रूप] इस वर्ष । इस साल ।

असोक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अशोक] दे० 'अशोक' । उ०—तव असोक  
पादप तर राखिसि जतन कराइ ।—मानस, ३, २३ ।

असोक<sup>२</sup>—वि० [सं० अशोक] शोकरहित । उ०—जहँ असोक तहँ  
सोक बस है न सिधहि निज बोध ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ४६ ।

असोकी—वि० [हिं० असोक = ई (प्रत्यय)] शोकरहित ।  
उ०—प्रभुहि तथापि प्रसन्न त्रिलोकी । माँगि अगम बर होउँ  
असोकी ।—मानस, १, १६४ ।

असोच—वि० [सं० अ + शोच] १ शोचरहित । विताररहित ।  
उ०—रहै असोच वन प्रभु पोसे ।—मानस, ४, ३ । २.

निश्चित । वेकित । उ०—माधो नृ, मन मवही विधि पोच ।  
अति उनमत्त, निरकुम, मँगल, चिन्तारहित असोच ।—  
सूर०, १, १०२ ।

असीज—सञ्ज्ञा पुं० [म० अश्वयुज, प्रा० असीय] आश्विन । क्वार  
असोड—वि० [सं०] १ असह्य । २ जो वण में न किया जा सके ।  
उद्धत [को०] ।

असोस—वि० [अ + शोष] जो सूखे नहीं । न सूखनेवाला ।  
उ०—(क) कविरा मन का माँहिना अवना वहै असोस ।  
देखत ही दह में परै देय किनी को दोस ।—कवीर (शब्द०) ।  
(ख) गोपिन कै अमुवनु मरी सदा असोम अपाग । डार डगर  
नै ह्वै रही बगर बगर के वार ।—विहारी र०, पृ० २६३ ।

असोसिएशन—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एसोसिएशन] समिति । ममाज । मन्था ।  
असौदर्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असौन्दर्य] अमृदरता । कुरूपता [को०] ।

असौव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं + हिं० सौव = सुर] दुर्गंध ।  
बदबू । उ०—जहँ आगम पीनहि को सुनिए । नित हानि  
असौवहि की सुनिए ।—केशव (शब्द०) ।

असौच—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अशौच] दे० 'अशौच' । उ०—हौं अमौच,  
अक्रिय अपराधी, सनमुख होन लजाउ ।—सूर०, १, १२८ ।

असौधा—वि० [हिं० असौध] १ दे० 'अशौध' । २ मुग्धब्रिहीन ।  
असौम्य—वि० [सं०] जो सौम्य न हो । अमृदर । कुरूप [को०] ।

असौष्ठव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निरुत्पापन । गुणहीनता । २ सुष्ठुता  
का अभाव । मद्भापन [को०] ।

असौष्ठव—वि० अमृदर । मद्भा । विरुद्ध [को०] ।

अस्कदित—वि० [सं० अस्कन्दित] १ अक्षरित । न बहा हुआ । २ न  
गया हुआ । ३ यनाक्रान्त । ४ अविस्मृत अनुपेक्षित—जैसे  
समय अथवा प्रतिज्ञा [को०] ।

अस्का—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] नैनीताल में बुनाक को कहते हैं । यह एक  
छोटी सी नथुरी और लटकन जिसे स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं ।  
अस्कन्न—वि० [सं०] १ न फटा हुआ । २ न खुला हुआ । ३ टिकाऊ ।  
४ न उड़ैला हुआ [को०] ।

अस्क—सञ्ज्ञा पुं० [ग०] फौज । सेना [को०] ।

अस्करी—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] सैनिक । योद्धा [को०] ।

अश्वल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आग । अग्नि [को०] ।

अश्वलित—वि० [सं०] १ चुन न होनेवाला । अच्युत । २ विचलित  
न होनेवाला । अटिग । ३ विशुद्ध । ४ शुद्ध उच्चारण करने-  
वाला [को०] ।

अस्तगत—वि० [सं० अस्तङ्गत] १ अस्त को प्राप्त । नष्ट । २ अवनत ।  
हीन ।

अस्त<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ छिगा हुआ । तिरोहित । २ जो दिखाई न  
पड़े । अदृश्य । हुआ हुआ, जैसे—सूर्य अस्त हो गया । ३.  
नष्ट । ध्वस्त, जैसे—मुगलों का प्रताप और गजब के पीछे  
अस्त हो गया (शब्द०) । ४ फँका हुआ । निपट [को०] । ५.  
समाप्त [को०] । ६ भेजा हुआ [को०] ।

अस्त<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तिरोधान । लोप । अदर्शन, जैसे—सूर्य अस्त के  
पहले आ जाना (शब्द०) । २. पश्चिम में (जिसके पीछे सूर्य

द्वता है) [को०] । ३ आवाम । घर [को०] । ४ ममाप्ति । मृत्यु [को०] ।

शो०—सूपास्त । शुक्रास्त । अस्तंगत ।

विशेष—सब ग्रह अपने उदय के लग्न से सातवें लग्न पर अस्त होते हैं। इसी से कुडली में मानवें घर की सजा 'अस्त' है। बुध को छोड़कर अन्य ग्रह जब सूर्य के साथ होते हैं, तब अस्त कहे जाते हैं।

प्रस्तक—सजा पु० [मं०] १ मोक्ष । २ घर [को०] ।

प्रस्तकाल—सजा पु० [मं०] दे० 'अस्तसमय' ।

प्रस्तगमन—सजा पु० [मं०] १ डूबना । लोप । २ मृत्यु । जीवन का अन्त [को०] ।

अस्तगिरि—सजा पु० [सं०] अस्ताचल । वह पर्वत जिसके पीछे सूर्य अस्त हो जाता है [को०] ।

अस्तानु—सजा पु० [मं० स्तन] दे० 'स्तन' । उ०—रूपट करि ब्रजहि पूतना आई । अति मुखप, त्रिप अस्तन लाए, राजा कम पडाई ।—सूर०, १०।५२ ।

अस्तनी—सजा स्त्री [मं०] वह स्त्री जिसके स्तन बहुत ही छोटे और नहीं के समान हो ।

अस्तप्राय—वि० [सं०] लगभग डूबा हुआ ।

अस्तवल—सजा पु० [अ०] घुड़माल । तबेरा ।

अस्तव्य—वि० [मं०] १ जो स्तव्य न हो । अचकित । २ वचन । ३ विनयी [को०] ।

अस्तभवन—सजा पु० [मं०] ज्योतिष के अनुसार उदय के लग्न से सप्तम लग्न [को०] ।

अस्तमती—सजा स्त्री [सं०] १ सरिवन का पेड़ । सातिवा । शालपर्णी ।

अस्तमन—सजा पु० [सं०] १ अस्त होना । तिरोधान । २ सूर्यादि ग्रहों का तिरोधान या अस्त होना ।

शो०—अस्तमनवेला ।

अस्तमननक्षत्र—सजा पु० [मं०] जिस नक्षत्र पर कोई ग्रह अस्त हो वह नक्षत्र उस ग्रह का अस्तमन नक्षत्र कहलाता है ।

अस्तमनवेला—सजा स्त्री [मं० अस्तमनवेला] सायकाल । सध्या का समय ।

अस्तमित—वि० [सं०] १ तिरोहित । छिपा हुआ । २ नष्ट । मृत ।

अस्तर—सजा पु० [फा०, मि० मं० आ + मृ आच्छादन, तह या आस्तर] १ नीचे की तह या पट्टा । मितल्ला । उपल्ले के नीचे का पट्टा । २ दोहरे कपड़े में नीचे का कपड़ा । ३ नीचे ऊपर रखकर सिले हुए दो चमड़ों में से नीचेवाला चमड़ा । ४ वह चदन का तेल जिसपर भिन्न भिन्न सुगंधों का आरोप करके अंतर बनाया जाता है । जमीन । ५ वह कपड़ा जिसे स्थियाँ बारीक साडी के नीचे लगाकर पहनती हैं । अंतरौटा । अंतरपट । ६ नीचे का रंग जिसपर दूसरा रंग चढ़ाया जाता है । ७ खच्चर [को०] ।

अस्तरकारी—सजा स्त्री [फा०] १ चूने की त्रिपाई । सफेदी । कलाई । २ गचकारी । पलस्तर । पत्रा लगाना ।

अस्तरवट्टी—सजा स्त्री [हि०] पत्थर की वह वट्टी जिससे तस्वीर की जमीन घोंटी जाती है [को०] ।

अस्तरौ—सजा स्त्री [सं० स्त्री] तारी । स्त्री । उ०—माया माता पिता, अति माया अस्तरौ मृता ।—कवीर ग्र०, पृ० ११५ ।

अस्तव्यस्त—वि० [मं०] उलटा पुलटा । छिन्न भिन्न । तितर बितर । उ०—अस्तव्यस्त है । वह भी ढक ले कौन सा अंग, न जिसमें कोई दृष्टि लगे उसे ।—भरना, पृ० २२ ।

अस्ताघ—वि० [मं०] अतिशय गभीर । बहुत गहरा [को०] ।

अस्ताचल—सजा पु० [मं०] एक कल्पित पर्वत जिसके मध्य में लोगों का यह विश्वास है कि अस्त होने के समय सूर्य इसी की आड़ में छिप जाता है । पश्चिमाचल । उ०—अस्ताचल जाते ही दिनकर के, सब प्रकट हुए कैसे ।—प्रेम०, पृ० ११ ।

अस्ताद्रि—सजा पु० [सं०] दे० 'अस्ताचल' ।

अस्ति—सजा स्त्री [सं०] १ भाव । मत्ता । २ विद्यमानता । वर्तमानता । ३ जरासंध की एक कन्या जो कम बोलती थी ।

अस्तिकाय—सजा पु० [मं०] जैनशास्त्रानुसार वे सिद्ध पदार्थ जो प्रदेशों या स्थानों के अनुसार कहे जाते हैं ।

विशेष—ये पाँच हैं—(क) जीवाम्तिकाय, (ख) पुद्गलास्तिकाय, (ग) धर्मास्तिकाय, (घ) अधर्मास्तिकाय और (च) आकाशास्तिकाय ।

अस्तिकेतुसज्ञा—सजा पु० [सं०] ज्योतिष में वह केतु जिसका उदय पश्चिम भाग में हो और जो उत्तर भाग में फैला हो । इसकी मूर्ति रक्ष होती है और इसका फल भयप्रद है ।

अस्तित्व—सजा पु० [सं०] १ मत्ता का भाव । विद्यमानता । मौजूदगी । उ०—सिर नीचा कर किमकी मत्ता सब करते स्वीकार यहाँ, सदा मौन हो प्रवचन करते जिसका वह अस्तित्व कहाँ ।—कामायनी, पृ० २६ । २ मत्ता । भाव । उ०—निज अस्तित्व बना रखने में जीवन आज हुआ था व्यर्थ ।—कामायनी, पृ० ३३ ।

अस्तिनास्ति—वि० [मं०] सदेहपूर्ण । हाँ नहीं । कुछ भूझ कुछ सच्चा [को०] ।

अस्तिमान्—वि० [मं० अस्तिमत्] धनवान् । धनाढ्य [को०] ।

अस्तीना—सजा स्त्री [हि०] दे० 'अस्तीन' ।

अस्तु—अव्य० [मं०] १ जो हो । चाहे जो हो । उ०—अस्तु, मुक्ते । कहो कहाँ फिर तुम रही, मेरे जाने बाद ।—वरुणा०, पृ० ३१ । २ खैर । मला । अच्छा । उ०—अस्तु सभी तुम शक्तिहीन हो गए ।—वरुणा०, पृ० ३२ ।

अस्तुति<sup>१</sup>—सजा स्त्री [मं०] निद्रा । अश्रुति ।

अस्तुति<sup>२</sup>—सजा स्त्री [सं०] [सं० स्तुति] दे० 'स्तुति' । उ०—निद्रा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कज ।—मानन ७।३८ ।

अस्तुरा—सजा पु० [फा० उम्तरा, मि० मं० अस्ता] वाल बनाने का छूटा ।

अस्तेय—सजा [सं०] १ चोरी का त्याग । चोरी न करना । २ योग के आठ अंगों में नियम नामक अंग का तीसरा भेद । यह स्वेय अर्थात् वन से या एकांत में पराए धन का अपहरण करने का उलटा या विरोधी । इसका फल योगशास्त्र में सब रत्नों

का उपस्थान या प्राप्ति है। ३ जैनशास्त्रानुसार अदत्तदान का त्याग करना। चोरी न करने का व्रत।

अस्तेयव्रत—सज्ञा पुं० [स०] अपनी आवश्यकता से अधिक सग्रह का त्याग। वह व्रत जिसमें जरूरत से ज्यादा संपत्ति रखने को चोरी जैसा पाप कर्म समझा जाता है [को०]।

अस्तोदय—सज्ञा पुं० [स० अस्त+उदय] १ डूबना उगना। २ विगडना वनना [को०]।

अस्त्यान—सज्ञा पुं० [स०] १ परदोषकथन। निंदा। २ भिडकी। भर्त्सना [को०]।

अस्त्र—सज्ञा पुं० [स०] १ वह हथियार जिसे फेंककर शत्रु पर चलावें, जैसे—बाण। शक्ति। २ वह हथियार जिससे कोई चीज फेंकी जाय, जैसे—धनुष, बंदूक। ३ वह हथियार जिससे शत्रु के चलाए हथियारों की रोक हो, जैसे—ढाल। ४ वह हथियार जो मंत्र द्वारा चलाया जाय, जैसे जू मास्त्र। ५ वह हथियार जिससे विविक्तक चीर फाड़ करते हैं। ६ शस्त्र। हथियार।

यौ०—अस्त्रशस्त्र।

अस्त्रकटक—सज्ञा पुं० [म० अस्त्रकटक] बाण। तीर [को०]।

अस्त्रकार—सज्ञा पुं० [म०] हथियार बनानेवाला कारीगर।

अस्त्रकारक—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अस्त्रकार' [को०]।

अस्त्रकारी—सज्ञा पुं० [स० अस्त्रकारिन्] दे० 'अस्त्रकार' [को०]।

अस्त्रघला<sup>७</sup> वि० [म० अस्त्र+घातक] अस्त्र चलानेवाला।

अस्त्रचिकित्सक—सज्ञा पुं० [स०] चीर फाड़ या जर्हि कर देनेवाला चिकित्सक। जर्हि [को०]।

अस्त्रचिकित्सा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वैद्यकशास्त्र का वह अंश जिसमें चीरफाड़ का विधान है। २ चीरफाड़ करना। अस्त्रप्रयोग। जर्हि।

विशेष—इसके आठ भेद हैं। (क) छेदन=नश्वर लगाना। (ख) भेदन=फाड़ना। (ग) लेखन=खरोचना। (घ) वेष्टन=सुई की नोक से छेद करना। (च) मेपण=घोना। साफ करना। (छ) आहरण=काटकर अलग करना। (ज) विश्रावण=फस्द खोलना। (झ) सीना=सीना या टाँका लगाना।

अस्त्रजीवी—सज्ञा पुं० [स० अस्त्रजीविन्] १ पेशेवर सैनिक। २ सैनिक [को०]।

अस्त्रधारी—सज्ञा पुं० [स० अस्त्रधारिन्] सैनिक [को०]।

अस्त्रवध—सज्ञा पुं० [स० अस्त्रवध] अनवरत बाणवर्षा। [को०]।

अस्त्रमार्जक—सज्ञा पुं० [म०] अस्त्रों को मार्जकर साफ करनेवाला [को०]।

अस्त्रलाघव—सज्ञा पुं० [स०] अस्त्रहीनता। ठीक ठीक और फुर्ती के साथ लक्ष्यवेष्ट करने की कुशलता [को०]।

अस्त्रविद्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १ बाण विद्या। २ अस्त्रचालन की विद्या [को०]।

अस्त्रवेद—सज्ञा पुं० [स०] वह शास्त्र जिसमें अस्त्र बनाने और प्रयोग करने का विधान हो। धनुर्वेद।

अस्त्रशस्त्र—सज्ञा पुं० [स०] अस्त्र और शस्त्र। हाथ में लिए हुए तथा हाथ से फेंककर प्रहार करने योग्य हथियार [को०]।

अस्त्रशाला—सज्ञा पुं० [म०] वह स्थान जहाँ अस्त्र शस्त्र रखे जायें। अस्त्रागार। भिलहखाना।

अस्त्रशास्त्र—सज्ञा पुं० [स०] १ अस्त्रचालन की शिक्षा देनेवाला शास्त्र या विद्या। २ धनुर्वेद [को०]।

अस्त्रागार—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अस्त्रशाला'।

अस्त्री—सज्ञा पुं० [स० अस्त्रिन्] [स्त्री० अस्त्रिणी] अस्त्रधारी मनुष्य। हथियारबंद आदमी।

अस्त्रीक—वि० [स०] १ पत्नीहीन। २ बिना स्त्री का [को०]।

अस्त्रैण—वि० [स०] १ बिना स्त्री का। जिसे स्त्री न हो। २ जो स्त्री सवधी न हो। ३ जो स्त्री का गुलाम न हो। ४ जो स्त्री द्वारा गौरवान्वित न हो [को०]।

अस्थल<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [स० स्थल] दे० 'स्थल'। उ०—अस्थल लीपि पात्र सब धोर, काज देव के कीन्ह।—मूर० १। ७८।

अस्थार्थ<sup>७</sup>—वि० [स० स्थायी] दे० 'स्थायी'।

अस्थान<sup>१</sup><sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [म० आस्थान] दे० 'स्थान'। उ०—प्रति ऊँचे मूधरनि पर भुजगन के अस्थान। तुलसी अति नीचे सुखद ऊँच, अन्न अरु पान।—तुलसी ग्र०, पृ० १२।

अस्थान<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ अनुपयुक्त अथवा बुरा स्थान। २ अनवसर [को०]।

अस्थानीय—वि० [स०] प्रसंग से भिन्न। अनुपयुक्त। उ०—उमने अपना बहुत सुधार लिया है कि जिसका आद्ययान यहाँ अस्थानीय है'।—प्रेमघन, भा० २, पृ० २६०।

अस्थायी<sup>१</sup>—वि० [स० अस्थायिन्] [वि० स्त्री० अस्थायिनी] जो स्थायी या टिकाऊ न हो। नश्वर। क्षणभंगुर [को०]।

अस्थायी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [स० अस्थायिन्] गीत का प्रथम चरण या टेक [को०]।

अस्थावर—सज्ञा पुं० [स०] १ जो स्थावर या अचल न हो। जाम। चल। २ कानून में वह माल जो चल हो—जैसे, मवेशी, जेवर आदि [को०]।

अस्थि—सज्ञा स्त्री० [म०] १ हड्डी। उ०—गौरी कथा मंत्र त्रिसराई लेत तुम्हारी नाम। सूर राम ता दिन तैं बिछुरे, अस्थि रहै कै चाम।—सूर०, २। ३३०६। २ फन की गुंती या गिरी [को०]।

अस्थिकुंड—सज्ञा पुं० [स० अस्थिकुण्ड] पुराण के अनुसार एक नरक जिसमें हड्डियाँ भरी हुई हैं।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त के अनुसार वे पुरुष इस नरक में पड़ते हैं जो गया में विष्णुद पर पिंडदान नहीं करते।

अस्थिकृत—सज्ञा पुं० [स०] १ हड्डी के भीतर स्थित स्नेह। मज्जा। २ वज्र [को०]।

अस्थिज—सज्ञा पुं० [स०] १ मज्जा। २ हड्डी से बना हुआ द्रव्य। ३ वज्र [को०]।

अस्थित<sup>१</sup>—वि० [स०] जो दृढ़ या स्थिर न हो [को०]।

अस्थित<sup>२</sup><sup>७</sup>—वि० [स० स्थित] उपस्थित। वर्तमान। स्थित। उ०—मेरी वचन मरु वरि पानी, छाँड़ी सबही मोह। तब जो सब पानी की चुपरी जो ली अस्थित दोह।—सूर०, १। ५३६

अस्थिति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १. दृढ़ता या स्थिरता का अभाव। चंचलता। ढाँवाडोलपन। २. अच्युत गऊर या सलीके की कमी को०।  
अस्थितुड—सञ्ज्ञा पुं० [म० अस्थितुड] १. गती। २. हड्डी की तरह कड़ी चोचवाला पक्षी को०।

अस्थितेज—सञ्ज्ञा पुं० [स० अस्थितेजस्] मज्जा को०।

अस्थितेज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] हड्डी का तेज को०।

अस्थिवन्धवा—सञ्ज्ञा पुं० [स० अस्थिवन्धवन्] शिव को०।

अस्थिपञ्जर—सञ्ज्ञा पुं० [स० अस्थिपञ्जर] शरीर का ढाँचा। हड्डी पमली। कंकाल। उ०—घघक रही सब ओर मूख की ज्वाला है घर घर में। माम नहीं है, शेष रही बस नाम अस्थिपञ्जर में।—पदिक, पृ० ४१।

अस्थिप्रक्षेप—मज्ञा पुं० [स०] गा या अन्य किसी पवित्र नदी या सरोवर में मृत व्यक्ति की अस्थि को प्रवाहित करना।  
अस्थिविसर्जन को०।

अस्थिवधन—मज्ञा पुं० [म० अस्थिवधन] स्नायु को०।

अस्थिभङ्ग—सञ्ज्ञा पुं० [स० अस्थिभङ्ग] हड्डी टूटना को०।

अस्थिभक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [स०] हड्डी खानेवाला। कुत्ता को०।

अस्थिभुक्—सञ्ज्ञा पुं० [स० अस्थिभुज] दे० 'अस्थिभक्षी' को०।

अस्थिभेद—मज्ञा पुं० [स०] दे० 'अस्थिभंग' को०।

अस्थिभेदी—वि० [म० अस्थिभेदिन्] १. हड्डी काटनेवाला। २. अत्यंत तीव्र को०।

अस्थिमाली—सञ्ज्ञा पुं० [स० अस्थिमालिन्] शिव।

अस्थि<sup>१</sup>—वि० [स०] १. जो स्थिर न हो। चंचल। चलायमान। ढाँवाडोल। उ०—दावाग्नि-प्रखर लपटों ने कर दिया सघन वन अस्थिर।—कामायनी, पृ० २८१। २—वे ठौर ठिकाने का। जिसका कुछ ठीक न हो। उ०—यो ही लगा चीतने उनका जीवन अस्थिर दिन दिन।—कामायनी, पृ० ३३।

अस्थिर<sup>२</sup>—वि० [स० अस्थिर] जो चंचल न हो। स्थिर उ०—मन्वन्ति ह्यट वंति अस्थिर ह्य, हरि नग निर्मल लेहि काम-क्रोध मद-लोभ-मोह तू सकल दलाली देहि।—सूर०, १। ३१०।

अस्थिरता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] चंचलता, व्यग्रता। व्याकुलता।

अस्थिविग्रह<sup>१</sup>—वि० [स०] दुबला पतला (व्यक्ति या जीव) जिसका शरीर सूखकर हड्डी का ढाँचा मात्र रह गया हो को०।

अस्थिविग्रह<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] शिव का भृगी नामक गुण को०।

अस्थिशेष—वि० [म०] कंकालशेष। जिसके शरीर में हड्डियाँ ही रह गई हो को०।

अस्थिसंचय—सञ्ज्ञा पुं० [स० अस्थिसंचय] भस्मात या अत्येष्टि संस्कार के अनंतर की एक क्रिया या संस्कार जिसमें जने से बची हुई हड्डियाँ एकत्र की जाती हैं।

अस्थिसन्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अस्थिसन्धि] हड्डियों का जोड़।

अस्थिसम्भव—सञ्ज्ञा पुं० [स० अस्थिसम्भव] १. मज्जा। २. वज्र को०।

अस्थिसमर्पण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. हड्डियों का नदी में प्रवाह।  
अस्थिविसर्जन को०।

अस्थिसार—सञ्ज्ञा पुं० [स०] मज्जा को०।

अस्थिस्नेह—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० 'अस्थिमार्' को०।

अस्थूल<sup>१</sup>—वि० [स०] जो स्थूल न हो। सूक्ष्म।

अस्थूल<sup>२</sup>—वि० [स० अस्थूल] दे० 'स्थूल'।

अस्थैर्य—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दृढ़ता का अभाव। अस्थिति। ढाँवाडोलपन।

उ०—दिया नृप को वशिष्ठ ने धैर्य कहा—यह उचित नहीं अस्थैर्य।—साकेत, पृ० ४२।

अस्नान—सञ्ज्ञा पुं० [स० स्नान] दे० 'स्नान'। करि अस्नान नद घर आए।—सूर०, १। २६०।

अस्नाविर—वि० [स०] जिसे स्नायु न हो। दुबली देह का (व्यक्ति) को०।

अस्निग्ध—वि० [म०] १. जो स्निग्ध या चिकना न हो। २. कठोर। निर्दय। हृदयहीन को०।

अस्निग्धदाह—सञ्ज्ञा पुं० [म०] देवदाह वृक्ष की जानि का एक वृक्ष को०।

अस्निग्धदाहक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] देवदाह की जानि का एक पेड़।

अस्नेहन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] शिव को०।

अस्पज—सञ्ज्ञा पुं० [यु० अस्पज] स्पंज। मुर्दा वादन को०।

अस्पद—सञ्ज्ञा पुं० [स० अस्पन्द] जिसमें स्पन्दन या कान न हो। गतिहीन को०।

अस्पताल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० हाँस्पिटल] औपचारिक। चिकित्सालय। दवाखाना।

अस्पर्श—वि० [स०] १. जिसमें स्पर्श न हो। २. जो छूने योग्य न हो को०।

अस्पर्श<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० अस्पर्श] दे० 'स्पर्श'। उ०—मैं अस्पर्श देवान धरि है। मेरी कह्यो नाहि यह टरि है।—सूर० ८। २।

अस्पष्ट—वि० [म०] जो साफ या स्पष्ट न हो। अप्रकट। अस्फुट। उ०—अस्पष्ट एक निपि ज्योतिमयी, जीवन की आँखों में भरते।—कामायनी, पृ० ६४।

अस्पृश्य—वि० [स०] जो छूने योग्य न हो। उ०—गिर जाय कुछ गंगावु भी अस्पृश्य नाली मे कभी, तो फिर उसे अवश्य ही बतलायेंगे निश्चय सभी।—मारत, पृ० १२३। —तीव्र जाति का। अत्यंत।

अस्पृश्यता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. अस्पृश्य होने का भाव या दशा। अछूतपन।

अस्पृष्ट—वि० [स०] जिसपर हाथ न लगाया गया हो। अछूता को०।

अस्पृह—वि० [स०] निस्पृह। निर्लोक। जिसमें लालच न हो।

अस्फटिक—सञ्ज्ञा पुं० [स० स्फटिक] दे० 'स्फटिक'। उ०—जिन ही बनी अबनी अमन अस्फटिक मनि पटरीन मो।—ब्रह्मवैवर्त, भा० १, पृ० १२०।

अस्फी—सञ्ज्ञा पुं० [फा० अस्फ + ई (प्रत्यय)] घुडसवार। अगारोड़ी। उ०—मु अस्फी घने दुदुगी हैं धुकारे। मी घनराने पर त्रिभु भारे।—पद्माकर ग्र०, पृ० २७८।



अस्फुट—वि० [मं०] १ जो स्पष्ट न हो। जो माफ न हो। उ०—  
अस्फुट कोलाहल भरति मर्मरित वन है।—साकेत, पृ० २१७।  
२. गूढ। जटिल।

अस्म<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अस्म] पत्यर। उ०—(क) जहँ जहँ जात तही  
तहीं आसत अस्म, लकुट पदत्रान।—सूर० १। १०३।  
(ख) आपुन तरि तरि औरनि तारत। अस्म अचेत प्रगटपानी  
में वनचर लै लै डारत।—सूर० १। १२३।

अस्मद्<sup>१</sup>—सर्व० [सं० अस्मत्] मैं।  
अस्मद्<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अस्मत्] जीव। आत्मा [को०]।  
अस्मदादि—सर्व० [सं०] हम सब [को०]।  
अस्मदादिक—सर्व० [सं०] दे० 'अस्मदादि'। हम सब।  
अस्मदीय—वि० [मं०] मेरा [को०]।

अस्मय—वि० [सं० अस्मय] पत्यर द्वारा निर्मित। उ०—जरासघ  
वदी कहँ नप कुल जस गावँ। अस्मय तन गौतम तिया कौ साप  
नसावँ।—सूर० १। ४।

अस्मार्त—वि० [सं०] जो स्मृतियों का अनुयायी न हो। स्मृतिविरोधी।  
२ जो स्मृत न हो। स्मरण से परे। ३ परपराविरुद्ध।  
अनुचित। ४ स्मार्त मत के विपरीत [को०]।

अस्मिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के  
क्लेशों में से एक। द्रक, द्रष्टा और दर्शन शक्ति को एक मानना  
या पुष्ट (आत्मा) और बुद्धि में अभेद मानना। २ अहंकार।  
साध्य में इसको मोह और वेदात में हृदयग्रथि कहते हैं।

अस्त्र<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कोना। २ रुधिर। ३ जल। ४ आँसू।  
उ०—प्रकृति-रजन-हीन, दीन अजस्र। प्रकृति विघना थी भरे  
हिम अस्त्र।—साकेत, पृ० १६५। ५ केसर। ६ बाल।

अस्त्र<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ दिन का चतुर्थ प्रहर। २ समय। वक्त।  
काल [को०]।

अस्त्रकठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अस्त्रकण्ठ] वाण। तीर [को०]।

अस्त्रखदिर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रक्तखदिर का वृक्ष [को०]।

अस्त्रज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मास [को०]।

अस्त्रय<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। २ मूल नक्षत्र। ३ जोक जो  
लहू (पस्त्र) पीती है।

अस्त्रय<sup>२</sup>—वि० रक्त पीनेवाला।

अस्त्रपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ जलोका। जोक। २ डाइन। टोना  
करनेवाली।

अस्त्रपित्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नासिका मुख आदि से रक्तस्राव होना  
[को०]।

अस्त्रफला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सलाई का पेड़।

अस्त्रफली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० अस्त्रफला [को०]।

अस्त्रमातृका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] देह के भीतर का रस [को०]।

अस्त्रोधिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नज्जालु नामक पौधा। छुईमुई [को०]।

अस्त्रार्जक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] श्वेत तुलसी।

अस्तु<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अस्तु] दे० 'अस्तु'।

अस्त—वि० [अ०] दे० 'असल'।

अस्ली—[अ०] दे० 'असली'।

अस्वत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अस्वत्तर] १ मृत्पु। २ खेत। ३ चून्डा। ४  
मस्तु विशेष [को०]।

अस्व<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अस्व] दे० 'अश्व'। उ०—होइय नाय अस्व  
असवारा।—मानस २। २०२।

अस्वच्छद—वि० [सं० अस्वच्छन्द] जो आत्मनिर्भर न हो। दूसरे के  
भरोसे पर रहनेवाला [को०]।

अस्वच्छ—वि० [सं०] जो स्वच्छ न हो। जो साफ न हो। गरा क्रेण।

अस्वतत्र—वि० [मं० अस्वतन्त्र] पराधीन। दाम। गुलाम [को०]।

अस्वप्न<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २ अनिद्रा।

अस्वप्न<sup>२</sup>—वि० [सं०] जिसे नीद न आती हो [को०]।

अस्वभाव<sup>१</sup>—वि० [सं०] भिन्न स्वभावशाला [को०]।

अस्वभाव<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अस्वभाविक लक्षण। भिन्न लक्षण [को०]।

अस्वर<sup>१</sup>—वि० [सं०] अस्पष्ट या मंद (स्वर)। बुरे या मंद स्वरवाता  
[को०]।

अस्वर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्वरभिन्न या व्यजन वर्ण [को०]।

अस्वर्य—वि० [सं०] जो स्वर्ग प्राप्ति में बाधक हो [को०]।

अस्वस्थ—वि० [मं०] १ रोगी। बीमार। २ अनमना।

अस्वादुकटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अस्वादुकण्टक] गोखरू।

अस्वाधीन—वि० [सं०] पराधीन। परतत्र [को०]।

अस्वाध्याय<sup>१</sup>—वि० [सं०] वेदों की आवृत्ति न करनेवाला। जिमने  
वेदपाठ न किया हो [को०]।

अस्वाध्याय<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वेद के स्वाध्याय के बीच पड़नेवाली  
बाधा या मिलनेवाला अवकाश [को०]।

अस्वाभाविक—वि० [सं०] १. जो स्वाभाविक न हो। प्रकृतिविह्वल।  
२ कृत्रिम। बनावटी।

अस्वामिक<sup>१</sup>—वि० [सं०] जिसका कोई स्वामी न हो। लावारिस [को०]।

अस्वामिक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जिसका कोई स्वामी न हो।  
[को०]।

अस्वामिकद्रव्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पराशरस्मृति के अनुसार वह धन  
जो किसी की मिलकियत न हो।

अस्वामिविक्रय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दूसरे के पदार्थ को उमकी आज्ञा  
के बिना बेच लेना। २ दूसरे की चीज जबरदस्ती छीनकर  
या कही पड़ी पाकर उसकी इच्छा के विरुद्ध बेच डालना।  
निक्षिप्त।

अस्वामिविक्रोत—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] मानिक की चोरी से बेचा हुआ।

विशेष—नारद ने कहा है कि ऐसी वस्तु का पता लगने पर  
मालिक उमका हकदार होता है। पर मानिक को हम वत  
की सूचना राज्य को कर देनी चाहिए।

अस्वामिसहत—वि० [सं०] (सेना) जिमका सेनानायक न मारा  
गया हो।

अस्वामी—वि० [सं० अस्वामिन्] १ जिसका कोई दावेदार या  
अधिकारी न हो। २ जिसका कोई स्वत्व वा अधिकार न हो  
[को०]।

अस्वार्थ—वि० [सं०] १ स्वार्थहीन । नि स्वार्थ । २. विरक्त । उदासीन । ३. निरर्थक । निकम्मा । बेकार [को०] ।

अस्वास्थ्य—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] बीमारी । रोग ।

अस्विन्न—वि० [सं०] अच्छी तरह न उवाला हुआ । अपक्व [को०] ।

अस्वीकरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अस्वीकृति । स्वीकार न करना ।

अस्वीकार—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] स्वीकार का उलटा । इन्कार । नामजूरी । नाही ।

क्रि० प्र०—करना ।

अस्वीकृत—वि० [सं०] अस्वीकार किया हुआ । नामजूर किया हुआ । नामजूर ।

अस्वीकृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नामजूरी । स्वीकार न करने की क्रिया या भाव । अस्वीकार [को०] ।

अस्सु—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] अस्व, प्रा० अस्स [घोडा] ।

अस्सी—वि० [सं०] अशीति, प्रा० असीति । सत्तर और दस की सख्या । दस का अठगुना ।

अस्सु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अश्व, प्रा० अस्सु । आँसू ।

अह—सर्व० [मं०] अहम् । मैं ।

अह—सञ्ज्ञा पुं० १ अहकार । अभिमान । उ०—(क) तुलसी मुखद भाति को सागर । संतन गायो कौन उजागर । तामे तन मन रहै समोई । अह अगिनि नहि दाहै कोई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ज्यो महाराज या जलधि तें पार कियो भव जलधि पार त्यों करी स्वामी । अह ममता हमें सदा लागी रहै मोह मद क्रोध जुत मद कामी ।—सूर०, (शब्द०) । २. संगीत का एक भेद जिसमें मव शुद्ध स्वरों तथा कोमल गंधार का व्यवहार होता है ।

अहकार—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ अभिमान । गर्व । घमंड । २. वेदान के अनुसार अन्नकरण का एक भेद जिसका विषय गर्व या अहकार है । 'मैं हूँ' या 'मैं कहता हूँ' इस प्रकार की भावना । ३. सांख्यशास्त्र के अनुसार महत्तत्त्व से उत्पन्न एक द्रव्य ।

विशेष—यह महत्तत्त्व का विकार है और इसकी पारिविक अवस्था से पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों तथा मन की उत्पत्ति होती है और तामस अवस्था से पंचतन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है, जिनमें क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति होती है । सांख्य में इसको प्रकृतिविकृति कहते हैं । यह अन्न करणद्रव्य है ।

४ अन्नकरण की एक वृत्ति । इसे योगशास्त्र में अस्मिता कहते हैं ।

५ मैं और मेरा का भाव । ममत्व ।

अहकारी—वि० [सं०] अहकारिन् । स्त्री० अहकारिणी । अहकार करनेवाला । घमडी । गर्वी ।

अहकृत्—वि० [मं०] अहङ्कृत् । अहकार करनेवाला । घमडी [को०] ।

अहकृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] अहङ्कृति । अहकार ।

अहता—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] अहन्ता । अहकार । घमंड । गर्व । उ०—या एक पूजा देह दीन, दूसरा अहं प्रज्ञा में तपो को सनक रहा प्रवीण ।—कामायनी, पृ० १६१ ।

अहधी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अहकार' ।

अहपद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अहम्पद । गर्व । अभिमान [को०] ।

अहपूर्व—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] अहम्पूर्व । लाग डाट में दूसरे से आगे बढ़ जाने की अभिलाषा रखनेवाला [को०] ।

अहपूर्विका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अहम्पूर्विका । होड । प्रतिस्पर्धा [को०] ।

अहप्रथमिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अहम्प्रथमिका । दे० 'अहपूर्विका' [को०] ।

अहप्रत्यय—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] अहम्प्रत्यय । घमंड । गर्व [को०] ।

अहम्भद्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अहम्भद्र । अपना व्यक्तित्व महान् ममभूता [को०] ।

अहमति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अहम्मति । (वेदात्त दर्शन में) अमात्मक आध्यात्मिक आत्मज्ञान [को०] ।

अहवाद—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] डींग मारना । शंखी हाँकना । उ०—अहवाद मैं ते नही दुष्ट मग नहि कोई । दुख ते दुख नहि रूपजे सुख से सुख नहि होइ ।—तुलसी (शब्द०) ।

अहंकार—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] अहङ्कार । दे० 'अहकार' । उ०—व्रयनयन, मयन मर्दन महेश । अहंकार निहार उदित दिनेस ।—तुलसी प्र०, पृ० ४६१ ।

अह<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अहन् १ दिन । २. विष्णु । ३. सूर्य । ४. दिन का अभिमानी देवता । ५. आकाश [को०] । ६. एक दिन का काम [को०] । ७. रात्रि [को०] । ८. किसी ग्रह का वह अंश जो एक दिन के लिये निश्चित हो [को०] ।

यौ०—अहनिश = दिन रात । लगातार । अहपति = सूर्य । अह-मुख = उपाकाल । अहर्ह = दिन दिन ।

अह<sup>२</sup>—अव्यय [सं०] अहर्ह । एक अव्यय सञ्चयन । आश्चर्य वेद और क्लेश आदि में इसका प्रयोग होता है, जैसे—अह ! तुमने बड़ी मूर्खता की (शब्द०) ।

अहक<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] ईहा । अछा । आकाक्षा । लालसा । उ०—अहक मोर वरपा ऋतु देखहु । गुरु चीन्हि कै योग विमेषहु—जायसी (शब्द०) ।

अहकना—क्रि० प्र० [हिं०] अहक । इच्छा करना । तालमा करना । अहकाम—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] हुक्म का वहवः । १. नियम । कायदा । २. हुक्म । आज्ञा ।

अहचरज—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] आश्चर्य । दे० 'आश्चर्य' । उ०—समर जीति जीहर को होन । जो अहचरज मयो यह तीन ।—हम्मीर०, पृ० ६५ ।

अहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'आहट' उ०—आह न अहट अघ अरी या अदाई की ।—गण०, पृ० ८२ ।

अहटाना—क्रि० प्र० [हिं०] आहट । आहट लगाना । पता चलना । उ०—रहत नयन के कोरवा चितवनि छाप्र । चलत न पग रैननिर्वा मग अहटाय ।—रहस्यन० (शब्द०) ।

अहटाना<sup>२</sup>—क्रि० प्र० [मं०] आहट लगाना । टोह लेना । पता चलाना ।

अहटाना<sup>३</sup>—क्रि० प्र० [मं०] अहान । दुखना । दर्द करना । उ०—

(क) तनिक किरकिरी के परे पन पन में अहटाय । क्यों मोर्वे सुख नींद दृग मीत वम जग आय ।—रत्ननिधि० (शब्द०) ।

(ख) सुनी दून बानी महामा गी खानजद जई, हियं प्रहटाना है रिसानी देह ता सर्म ।—मदन० (शब्द०) ।

अहटियाना—क्रि० म०, क्रि० अ० [हि०] दे० 'अहटाना' ।

अहत्—वि० [सं०] १ जो हत न हो । २ अज्ञात । ३ अनाहत ।  
४ जो पीटा या कचारा न गया हो । जैसे—वस्त्र । ५ जो  
कुठाग्रस्त या हताश न हो । ६ नया । विना घोषा द्वारा । ७  
निर्दोष । वेदाग [को०] ।

अहत्—सज्ञा पुं० [सं०] विना घुना नया वस्त्र [को०] ।

अहथिर—वि० [सं० स्थिर] दे० 'स्थिर' । उ०—मर्वा नास्ति वह  
अहथिर ऐस साज जेहि केर ।—जायसी (शब्द०) ।

अहद<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [अ०] प्रतिज्ञा । वादा । इकरार ।

क्रि० प्र०—करना=प्रतिज्ञा करना ।—टूटना=प्रतिज्ञा भंग  
होना ।—तोड़ना=प्रतिज्ञा भंग करना । वादा पूरा न करना ।  
२. सकल्प । इरादा । ३. समय । काल । राजत्वकाल, जैसे—  
'अकबर के अहद मे प्रजा बड़ी सुखी थी' ।

यौ०—अहदनामा । अहदशक्ति । अहदशिकनी अहद वो पैमान ।

अहद<sup>२</sup>—वि० [सं० अ=नहीं + अ० हद] सीमारहित । असीम । उ०—  
पलटू दीगर को नेस्त करै, होय खुद अहद इस भांति जाई ।—  
पलटू०, पृ० ६३ ।

अहददार—सज्ञा पुं० [फा०] मुगलमानी राज्य के समय का एक अफसर  
जिसे राज्य की ओर से कर का ठीका दिया जाता था ।  
उसको इस काम के लिये दो या तीन सया नैकड़ा वधेज  
मिलता था और राज्य मे वह सब कर का देनदार ठहरता  
था । एक प्रकार का ठेकेदार ।

अहदनमा—सज्ञा पुं० [फा०] १. एकरारनामा । वह लेख या पत्र  
जिसेके द्वारा दो या दो से अधिक मनुष्य किसी विषय मे  
कुछ इकरार या प्रतिज्ञा करें । प्रतिज्ञापत्र । २. सुलहनामा ।  
सधिपत्र ।

अहदी<sup>१</sup>—वि० पुं० [अ०] १ आनसी । अलहदी । आसकती । २ वह  
जो कुछ काम न करे । अकर्मण्य । निठलू । मठ्ठर ।

अहदी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० अकबर के समय के एक प्रकार के मिपाही जिनसे  
बड़ी आवश्यकता के समय काम लिया जाता था, शेष दिन  
वे बैठे खाते थे । उ०—घेर्यो आइ कुटुम लसकर में, जम  
अहदी पठ्यो । सूर नगर चौरासी भूमि भूमि, घर घर को जु  
भयो ।—सूर० १।६४ ।

विशेष—इसी से 'अहदी' शब्द आलसियों के लिये चल गया ।

ये लोग कभी कभी उन जमींदारों मे मालगुजारी वसूल करने  
के लिये भी भेजे जाते थे जो देने मे आनाकानी करते थे ।

ये लोग अडकर बैठ जाते थे और बिना पिएनही उठते थे ।

अहदीखाना—सज्ञा पुं० [फा० अहदीखानह] अहदियों के रहने का  
स्थान ।

अहदेहुकूमत—सज्ञा पुं० [फा०] शासनकाल । राज्य ।

अहन्—सज्ञा पुं० [सं०] दिन । दिवस ।

अहन—सज्ञा पुं० [सं० अहन्] १ दे० 'अहन्' । २ दिन । उ०—नेट को  
पढ़त गुन गढत, चढत गिरि अटत गहन वन अहन  
अघेडकी ।—तुलसी ग्र०, पृ० २२० ।

अहना—क्रि० प्र० [सं० अहति] वर्षमान रहना । होना ।  
२०—(क) राजा सेति कुंभर सब कह्यो । अस अस मचड

ममुद महे अहही ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जब लगि  
गुरु हों अहा न चीन्हा । कोदि अतरपट बीचहि दीन्हा ।—  
जायसी (शब्द०) ।

अहनाथ—सज्ञा पुं० [सं० अहनाथ] दिन के स्वामी । सूर्य । उ०—महि  
मयक अहनाथ को आदिग्यान भव भेद । ता विधि तेई जीव  
कहें होत ममुक विनु भेद ।—म० मत्तक, पृ० ३८ ।

अहनिसि—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अहनिष' । उ०—मुयो मुयो  
अहनिसि चित्ताई । ओही रोम नागन्ह धै खाई ।—जायसी  
(शब्द०) ।

अहन्पुष्प—सज्ञा पुं० [सं०] दुपहरिया का फूल । गुनदुपहरिया ।

अहमक—वि० [अ०] जड । धेवकूफ । मूर्ख । नाममग्न । उ०—लहरें  
थकं दुहि पीया खीरो, ताका अहमक कैं सरीरो ।—कवीर  
ग्र०, पृ० २३६ ।

अहमग्रिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] आगे बढ़ने की प्रतिस्पर्धा । होड़ [को०] ।

अहमहमिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] लागत । टोट । पहले हम नव दूसरा ।  
हमाहमी । चढा ऊपरी ।

अहमिति—सज्ञा स्त्री० [सं० अहम्मति] १. अविद्या । अज्ञान ।  
उ०—निमि दिन फिरत रहन मुहं वाए, अहमिति जनम  
विगोइसि । गोड पनारि परचो दोड नीकं, अत्र कैमी कह  
रोइसि ।—सूर०, १। ३३३ । २. अहंकार । उ०—मजेउ  
चापु दापु वड वाढा । अहमिति मनहु जीति जगु ठाढा ।—  
मानस, १। २८३ ।

अहमेव—सज्ञा पुं० [सं०] अहंकार । गर्व । घमड । उ०—(क)  
उदित होत शिवराज के, मुदित भए द्विज देव । कलियुग हट्यो  
मिट्यो सकल, म्लेच्छन को अहमेव ।—भूपग (शब्द०) ।  
(ख) सन्यासी माते अहमेव । तपमी माते तप के भेव ।—  
कवीर ग्र०, पृ० ३०२ ।

अहर—सज्ञा पुं० [देश०] छीपियों के रंग का मिट्टी का बरतन । नैया ।

अहरणोय—वि० [म०] १ न चूराने योग्य । २ (चूर्तना द्वारा)  
न अपनाने योग्य । ३ दृढ़ । सुस्थिर [को०] ।

अहरन—सज्ञा स्त्री० [सं० आ+घरण=रखना] निहाई । उ०—  
कविरा केवल राम की नू मनि छई ओट । वन अहरन विच  
लोह ज्यो घनी सहैं सिर चोट ।—कवीर (शब्द०) ।

अहरना—क्रि० स० [सं० आहरण=निकलना] १ लकड़ी को  
छीलकर सुडोल करना । २ डोलना ।

अहरनि—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अहरन' ।

अहरनिसि—क्रि० वि० दे० 'अहनिष-२' । उ०—अहरनिसि आस  
लागी रहै मुझ मे, बिना जल पिए क्या प्यास जाई ।—कवीर०  
२०, पृ० २६ ।

अहरा—सज्ञा पुं० [सं० आहरण=इकट्ठा करना] १ कडे का ढेर  
जो जलाने के लिये इकट्ठा किया जाय । २ वह आग जो इस  
प्रकार इकट्ठा किए हुए कडों से तैयार की जाय । ३. वह स्थान  
जहाँ लोग ठहरें । ४ प्याऊ । पीणाला ।

अहराम—सं० पुं० [अ० हरम=पुरानी इमारत का बहुव०] पुराने  
भवन । २. भित्त के स्तूप या रिरामिड ।

अहरी-सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आहरण = इकट्ठा होना] १ वह स्थान जहाँ पर लोग पानी पिएँ। प्याऊ। २ वह गड्ढा या होज जो कुएँ के किनारे जानवरों के पानी पीने के लिये बना रहता है। चरही। ३ होज जिसमें किसी काम के लिये पानी भरा जाय।  
 अहर्माण-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दिनों का समूह। २ ज्योतिष कल्प के आदि से किसी डण्ड या नियत काल तक का समय।  
 अहर्दल-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दोपहर मध्यदिवस [को०]।  
 अहर्निश-क्रि० वि० [सं०] १ रातदिन। २. सदा। नित्य।  
 अहर्मणि-सञ्ज्ञा पुं० [मं०] सूर्य।  
 अहर्मुख-सञ्ज्ञा पुं० [मं०] उप काल। दिनारम। सवेरा।  
 अहल<sup>१</sup>-वि० [सं०] अकृष्ट। विना जोता हुआ (खेत) [को०]।  
 अहल<sup>२</sup>-वि० [अ० अहल] लायक। समर्थ। योग्य [को०]।  
 अहलकार-सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १ कर्मचारी। २ कारिदा।  
 अहलकारी-सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] अहलकार का काम। कारिदागिरी।  
 अहलना<sup>३</sup>-क्रि० अ० [सं० अलह्नम] हिनना। काँपना।  
 दहलना। उ०-पहल पहल तन रुइ ज्यो भाँपि। अहल अहन अधिको हिय काँपि।-जायसी (शब्द०)।  
 अहलमद-सञ्ज्ञा पुं० [फा० अहलमद] अदालत का वह कर्मचारी जो मुकद्दमों की मिसलों को रजिस्टर में दर्ज करता और रखता है, अदालत के हुक्म के अनुसार हुक्मनामे जारी करता है तथा किसी मुकद्दमे का फैसला होने पर उसकी मिमिल को तर्तीव देकर मुहाफिजखाने में दाखिला करना है।  
 अहला<sup>४</sup>-सञ्ज्ञा पुं० [हि०] 'अहिना'।  
 अहलाद<sup>५</sup>-सञ्ज्ञा पुं० [सं० आह्लाद] दे० 'आह्लाद'। उ०-(क) ताको पुत्र भयो प्रह्लाद। भयो असुर मन अति अह्लाद।-मूर०, १।४२१। (ख) दूँटा पकरि उठावै पर्वत पगुल करै नृत्य अह्लाद। जो कोउ याको अर्थ विचारै सुदर मोई पावै स्वाद।-मुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५०८।  
 अहलादी<sup>६</sup>-वि० [हि०] 'आह्लादी'।  
 अहलि-वि० [सं०] दे० 'अहल' [को०]।  
 अहले गहले-क्रि० वि० [अनु०] मरती के साथ। प्रमत्ततापूर्वक। निश्चित मन से [को०]।  
 अहल्या<sup>७</sup>-वि० [सं०] जो (घरती) जाती न जा सके।  
 अहल्या<sup>८</sup>-सञ्ज्ञा स्त्री० गौतम ऋषि की पत्नी।  
 अहवान<sup>९</sup>-सञ्ज्ञा पुं० [मं० आह्वान] बुनाना। आवाहन। उ०-कियो आपने अयन पयाना। राति सरस्वति किय अहवाना।-रघुराज० (शब्द०)।  
 अहवाल-सञ्ज्ञा पुं० [अ० 'हाल' का बहु०] १ समाचार। वृत्त।  
 उ०-मरजे मुवारक का मरीज तब बग अहवाल सुनाऊँ।-प्रेमघन०, पृ० १६२। २ दशा। अवस्था। उ०-अजब अहवाल देखा हमने कल इस खाने बीरों का।-कविता को०, भा० ४, पृ० २३०।  
 अहस्वर-वि० [मं०] दिन में चनेवाना। दिनचारी [को०]।  
 अहसान-सञ्ज्ञा पुं० [अ० एहसा] १ किसी के साथ नेनी करना। सलूक। मलाई। उकार। २. कृपा। अनुग्रह। निहोरा।

उ०-बहु धन नै अहसान कै, पारी देन मराहि। वैद बधू हँसि भेद सो, रही नाह मुख चाहि।-विहारी (शब्द०)। ३. कृतज्ञता।

अहसानफरामोश-वि० [अ० एहसान + फा० फरामोश] उकार को न माननेवाला। कृतघ्न। उ०-प्रच्छा, मैं वेवफा, अहसान फरामोश सही, तुम तो बड़े वफादार हो।-श्रीनिवास ग्र०, पृ० १२३।

अहसानफरीश-वि० [अ० एहसान + फा० फरीश] उकार कर सबसे कहता फिरनेवाला [को०]।

अहसानमद-वि० [अ० एहसान + फा० मद] कृपज्ञ। किए हुए को माननेवाला [को०]।

अहसानमंदी-सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० एहसान + फा० मंदी] कृतज्ञता। उ०- 'वह मदनमोहन की अहमानमंदी के बहाने से हरवकन वहाँ बना रहता था।-श्रीनिवास ग्र०, पृ० २११।

अहस्कर-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दिनकर। २. सूर्य। ३. मदार [को०]।

अहस्त-वि० [सं०] विना हाथवाला। जिसके हाथ कटे हो [को०]।

अहस्पति-सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अहस्कर'।

अहह-अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका प्रयोग आश्चर्य, खेद, क्लेश और शोक सूचित करने के लिये होता है। उ०-अहह तात दारुन हठ ठानी।-मानस, १।२५८।

अहा-अव्य० [सं० अहह] इसका प्रयोग प्रसन्नता और प्रशंसा की सूचना के लिये होता है, जैसे-अहा। यह कैसा सुंदर फूल है।

अहाता-सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ घेरा। होता। २ प्रकार। चारदीवारी।

अहान-सञ्ज्ञा पुं० [सं० आह्वान] पुकार। शोर। चिल्लाहट। उ०-भड अहान पटुमावति चली। छत्तिस कुलि मड गोहन चली।-जायसी (शब्द०)।

अहार<sup>१०</sup>-सञ्ज्ञा पुं० दे० 'आहार'। उ०-करहि अहार साक फल कदा। सुमिरहि ब्रह्म सच्चिदानंदा।-मानस, १।१४४।

अहारना<sup>११</sup>-क्रि० सं० [सं० आहरण = खाना या हिं० अहार] १. खाना। भक्षण करना। उ०-तो हमरे आश्रम पगु घारी। निज रचि के फल विपुल अहारो।-रघुराज० (शब्द०)। २. चपकाना। लेई लगाकर लसना। ३. बपड़े में मँड़ी देना। ४. दे० 'अहरना'।

अहारी<sup>१२</sup>-वि० दे० 'आहारी'। उ०-जिमि अरुनोपन निकर निहारी। धावहि सठ खग मास अहारी।-मानस, ६।३६।

अहार्य-वि० [सं०] १ जो धन या घूस के लोभ में न आ सके। २. जो हरण न किया जा सके। जो चुराया न जा सकता हो।

यौ०-अहार्य शोभा।

अहाहा-अव्य० [सं० अहह] हर्षसूचक अव्यय।

अहिसक-वि० [सं०] १ जो हिंसा न करे। जो किसी का धान न करे। २. जो किसी को दुख न दे। जिससे किसी को पीडा न पहुँचे।

अहिंसा-सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ साधारण धर्मों में से एक। किसी को दुख न देना। २. योगशास्त्रानुसार पाँच प्रकार के धर्मों में पहला। मन, वाणी और कर्म में किसी प्रकार की कान्

मे किसी प्राणी को दुःख या पीडा न पहुँचाना। ३ बौद्ध-शास्त्रानुसार त्रय और स्यावर को दुःख न देना। ४ जैन-शास्त्रानुसार प्रमाद से भी त्रय और स्यावर को किसी काल मे किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना। धर्मशास्त्रानुसार शास्त्र की विधि के विरुद्ध किसी प्राणी की हिंसा न करना। ६ कटकापी या हैम नाम की घास। ७ सुरक्षा [को०]।

अहिंसावादी—वि० [म० अहिंसावादिन्] अहिंसा का पिढात मानने-वाला [को०]।

अहिंस<sup>१</sup>—वि० [म०] जो हिंसा न करे। अहिंसक।

अहिंस<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ एक प्रकार का पौधा। २ नुकसान न पहुँचाने-वाला व्यवहार [को०]।

अहि—सज्ञा पुं० [म०] १ गीत। २ गह। ३ वृत्रानुश। ४ खल। वचक। ५ आश्लेषा नक्षत्र। ६ पृथिवी। ७ सूय। ८ पथिक। ९ सीसा। १० मायिक गण म ठगण अर्थात् छह मायाओं के समूह का छठा भेद जिसमे क्रम से लघु गुरु गुरु लघु '। ५५ ।' मायाएँ होनी हैं, जैसे—दयासिधु। ११ इक्कीस अक्षरों के वृत्त का एक भेद जिसमे पहले छह मगण और अत मे मगण होना है, जैसे—भोग ममय हरि गेद जो नेलत नग मग्या यमुना तीरा। गेद गिरो यमुना दह मे भटि कृदि परे धरि के श्रीरा। भवान पुकार करी तव नद यशोमति रोवात ही धाए। दाऊ रहे समुभाय इतै अहि नामि उरै दह मे आए।—(शब्द०)। १२ नामि [को०]। १३ वादन [को०]। १४ जन [को०]।

अहिक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] १ अश्व मरी। २ ध्रुव तारा [को०]।

अहिक<sup>२</sup>—वि० [म०] स्थित रहनेवाला (यह सम्प्रदायचक्र शब्द के अन्त मे लगकर उतने दिनों का बोध कराता है) [को०]।

अहिकात—सज्ञा पुं० [म० अहिकान्त] पवन। वायु [को०]।

अहिका—सज्ञा स्त्री० [म०] सेमन का वृक्ष।

अहिकोप—सज्ञा पुं० [स०] १ निर्मोह। गान की केंचुन। २ छद्-विशेष [को०]।

अहिक्षेत्र—सज्ञा पुं० [म०] १ दक्षिण पावान की राजधानी। २ प्राचीन दक्षिण पावान। अहिच्छत्र।

विशेष—यह देश कपिल मे चवन तरु था। इसे अर्जुन ने द्रुपद से जीतकर द्रोण को गुहदक्षिणा मे दिया था।

अहिगण—सज्ञा पुं० [स०] पाँच मायाओं के गण-उगण का गातवाँ भेद जिसमे एक गुरु और तीन लघु होते हैं (गल), जैसे—पापहर।

अहिचक्र—सज्ञा पुं० [म०] नायिक चक्रविशेष [को०]।

अहिच्छत्र—सज्ञा पुं० [ग०] १ प्राचीन दक्षिण पावाल। यह देग अर्जुन ने द्रुपद से जीतकर द्रोण को गुहदक्षिणा मे दिया था। २ दक्षिण पावाल की राजधानी। ३ मेढासीपी।

अहिच्छत्रक—सज्ञा पुं० [म०] कुकुरमुत्ता [को०]।

अहिच्छत्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] १. अहिच्छत्र नामक देश की राजधानी। २ शकर। ३ मेघशृंगी। मेढामिगी [को०]।

अहिजित्—सज्ञा पुं० [स०] श्रीकृष्ण [को०]।

अहिजिन—सज्ञा पुं० [म० अहिजित्] १ उद। २ जगण।

अहिजिह्वा—सज्ञा स्त्री० [म०] नागकनी।

अहिटा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म० अहिदी] वह व्यक्ति जो जमींदार की ओर मे उम अगामी को फसल काटने म गोकने के निय बँठाया जाय त्रिमने लगान वा देना न दिया हो। गहना।

अहित<sup>१</sup>—वि० [म०] १ जय। २ गी। विगोधी। २ हानिकारक। अनुपकारी। उ०—अहित यमच्छ मच्छति क्ता वरनि न जाद।—मूर० १। ५६।

अहित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० चुगट। अकल्याण। उ०—दुःखाना दुःखोपन पठयो पाडय अहित विनारी।—गू०, १। १२२।

अहितकर—वि० [म०] अहित करनेवाला। हानिकर [को०]।

अहितकारी—वि० [म० अहितकारिन्] 'अहितकर'।

अहितु डिक—सज्ञा पुं० [म० अहितुडिक] १ नैपग। नाँव को वण मे करनेवाला। २ जादूगर [को०]।

अहिदेव—सज्ञा पुं० [म०] आश्लेषा नक्षत्र [को०]।

अहिदेवत—सज्ञा पुं० [म०] 'अहिदेव'।

अहिद्विट्—सज्ञा पुं० [म० अहिद्विप्] १ उद। २ ननुत। ३ मयूर। ४ गहट। ५ दृगण [को०]।

अहिनकुलित—सज्ञा स्त्री० [म०] १ गर्प और नेवने का स्वाभाविक बँर। २ गहज यन्त्रना [को०]।

अहिनाथ—सज्ञा पुं० [म०] नपेंराज। जेपनाग [को०]।

अहिनामभृत्—सज्ञा पुं० [म०] वलदेव का एक नाम [को०]।

अहिनाह<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म० अहिनाथ, प्रा० अहिनाह] जेपनाग। उ०—प्रगु विनाह जम भयेउ उछाह। मकहि न वरनि गिरा अहिनाह।—मानस, १। ३६१।

अहिनिमोह—सज्ञा पुं० [म०] नाप की केचुल [को०]।

अहिनी—सज्ञा स्त्री० [म०] नविणी। नागिन। उ०—दुष्ट हृदय दाहन जग अहिनी।—मानस, ३। १११।

अहिप—सज्ञा पुं० [म०] जेपनाग। उ०—अहिप महिप जहें नगि प्रमुनाई।—मानस, २। २५३।

अहिपति—सज्ञा पुं० [म०] १ वामुक्ति नाग। २ नपे आकार का गर्प। ३ जेपनाग। उ०—महि सक न गार उदार अहिपति वार वारहि मोहई।—मानस, ५। ३५।

अहिपुत्रक—सज्ञा पुं० [म०] एक प्रकार की सर्पकृति नीरा [को०]।

अहिपूतन—सज्ञा पुं० [म०] [स्त्री० अहिपूतना] त्रचो को होनेवाला एक रोग [को०]।

विशेष—इसमे वच्चो को पानी या दस्त आता है। गुदा से सदा मल बहा करता है। गुदा लाल बनी रहती है। धोने पोछने से गुजली उठती और फोडे निकलने हैं।

अहिफेन—सज्ञा पुं० [म०] १ गर्प के मुँह की लार या फेन। २. अफीम।

अहिवृध्न—सज्ञा पुं० [म०] १ एकादश खदो मे से एक। २ शिव। ३ उत्तराषाढा नक्षत्र। ४ एक मयू का नाम [को०]।

अहिबेल<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [स० अहिबेली, प्रा० अहिबेली] नागबेली।

पान। उ०—कनक कलिन अहिबेलि वटाई। लखि नहि परे  
सपरन नहाई।—तुलसी (शब्द०)।

अहिबुधन—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अहिबुधन'।

अहिभय—सज्ञा पुं० [म०] १ अपने ही पक्ष के विश्वासमान का भय।  
२ मर्प के काट खाने का भय।

अहिभयदा—सज्ञा स्त्री० [म०] माँ को भय देनेवाली। भूषामनकी।  
भूँडप्रायना [को०]।

अहिमानु—वि० [म०] मर्प की गति का जो कारण हो।—जैसे, वायु।  
२ वायु का विशेषण। ३ साँप सा चमकनेवाला [को०]।

अहिभुक्—सज्ञा पुं० [म० अहिभुज्] १ मोर पक्षी। २ नेत्रवा। ३  
गहड़ पक्षी। ४ गधनाकुली नामक पौधा [को०]।

अहिभृत्—सज्ञा पुं० [म०] मर्पवागी शिव [को०]।

अहिम—वि० [म० अ+हिन्] जो जीवन न हो। उष्ण [को०]।

यो०—अहिहर, अहिननेजा, अहिनदीविनि, अहिनद्युनि, अहि-  
मयूख, अहिनरश्मि, अहिनरुचि, अहिमरोचिपु = मर्प।

अहिमर्दनी—सज्ञा स्त्री० [म०] गधनाकुली नामक पौधा [को०]।

अहिमायु—सज्ञा पुं० [म०] मर्प।

अहिमान—सज्ञा पुं० [म० अहि = मर्प + मत् = युक्त अहिनान्] चाक  
में वह गढ़ा जिसके वन चाक को कीन पर रखते हैं।

अहिमानी—सज्ञा पुं० [म० अहिनालिन] मर्प की माला धरण करने-  
वाले शिव।

अहिमेघ—सज्ञा पुं० [म०] मर्पयज्ञ।

अहिरा—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अहीर'। उ०—अहिर जाति गोधन की  
माने।—सूर०, १०।१६२५।

अहिराइ—सज्ञा पुं० [म० अहिराज, प्रा० अहिराइ] सपर्राज। उ०—  
गर्व वचन कहि कहि मुख आपत, मोकी नहि जासत अहिराइ।—  
सूर०, १०।५५५।

अहिरिनी—सज्ञा स्त्री० [हि० अहिर] अहिर की स्त्री। उ०—अहि-  
रिनि हाथ देहेडि सगुन लेइ आवइ हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४।

अहिबुधन—सज्ञा पुं० [म०] १ ११ स्त्री में से एक। २ उत्तम-  
भाद्रपद नक्षत्र, जिसके देवता अहिबुधन हैं।

अहिबुधन्य—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अहिबुधन'।

अहिनता—सज्ञा स्त्री० [म०] नागवल्ली। पान।

अहिली—सज्ञा पुं० [म० अभिप्लव, प्रा० अहिल्लो, हि० होन, चहना  
= कौचड़] १ पानी की वाड़। बूड़ा। २ गहवड़। ३ दगा।

अहिलाद—सज्ञा पुं० [म० अहिल्लाद] दे० 'अहिल्लाद'। उ०—कामी  
लज्जा नाँ करै मन माँहि अहिलाद। नीद न माँगै माँहराँ भूप  
न माँगै स्वाद।—बकीर ग्रं०, पृ० ४१।

अहिलोलिका—सज्ञा स्त्री० [म०] भूषामनकी [को०]।

अहिलोचन—सज्ञा पुं० [म०] शिव का एक मर्प [को०]।

अहिल्या—सज्ञा स्त्री० [म० अहिल्या] दे० 'अहिल्या'।

अहिवर—सज्ञा पुं० [म०] दोहे का एक भेद जिसमें पाँच पुन और ३३  
लघु होते हैं, जैसे—कनक वरण नन मुकुन अनि कुमुन मरिम  
वरपाव। नखि इडि दूतरन ठकि रहे विमराई सब वान।

अहिबल्ली—सज्ञा पुं० [म०] पान। नाबूल। नागवल्ली।

अहिवात—सज्ञा पुं० [म० अविवात, प्रा० अह्वत ७ अहिगत]  
[वि० अहिवातीन, अहिवाती] सीमाग्य। मोहाग। उ०—

(क) राज करो वितडर गढ़ गाछी पिय अहिवात।—जायसी  
(शब्द०)। (ख) अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि  
गग जमुन जनधारा।—तुलसी (शब्द०)।

अहिवातिन—वि० स्त्री० [हि० अहिगत] सीमाग्यवती। मधवा।

अहिवाती—वि० स्त्री० [हि० अहिवात] सीमाग्यवती। मोहागिन।

अहिविपापहा—सज्ञा स्त्री० [म०] गधनाकुली पौधा [को०]।

अहिमाव—सज्ञा पुं० [म० अहिशावर] मर्प का वच्चा। पोत्रा।  
मोरोना।

अही—सज्ञा पुं० [म०] पृथिवी और आकाश [को०]।

अहीक—सज्ञा पुं० [म०] बौद्ध शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक।

अहीन<sup>१</sup>—वि० [म०] १ जो हीन न हो। आनिवृण जिसे हीन समझ  
लिया जाय। २ जो औरो से कम न हो। महान्। ३ दोष-  
रहित। ४ पूरा। पूर्ण। ५ जो जानिबुन न हो [को०]।

अहीन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [म०] १ कई दिनों में पूर्ण होनेवाला यज्ञविशेष।  
२ लया साँप। ३ वामुकि [को०]।

अहीनगु—सज्ञा पुं० [म०] एक सूर्यवंशी राजा। देवानीक का पुत्र।

अहीनवादो—वि० [म० अहीनवादिन्] जो निरुत्तर न हुआ हो।  
जो वाद में न हारा हो।

अहीर—सज्ञा पुं० [म० आभीर] [स्त्री० अहीरिन] एक जाति जिसका  
काम गाय भेंस रखना और दूध बेचना है। खाला। उ०—  
नोइ निवृत्ति पाय विस्वासा। निर्मन मन अहीर निज दागा—  
मानस, ७।११७।

अहीरणि—सज्ञा पुं० [म०] दो मुँहवाला साँप [को०]।

अहीरी<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] एक राग जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

अहीरी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि० अहीर] खालिन। अहीरिन।

अहीश—सज्ञा पुं० [म०] १ साँपो का राजा। जेपनाग २ जेप के  
अवतार नक्षत्र और वनराम आदि।

अहीस—सज्ञा पुं० [म० अहीश] जेपनाग। उ०—दानव देव अहीस  
महीस महामुनि तापम मिद्व समाजी।—तुलसी ग्रं० पृ० २२०।

अहुँठ—वि० [हि०] माढ़े तीन। तीन और आत्रा।

अहुँजी—सज्ञा स्त्री० [दे०] घीए के महीन टाँडों को मिलाकर  
पकाया हुआ चावल।

अहुटना—क्रि० प्र० [म० अ+हुट, हि० हटना] हटना। दूर होना।  
अलग होना। उ०—(क) विरह मयो घर अगन कोने। हम  
अवता अति दीन हीन मति तुमही हो विधि योग। मूर बदल  
देखन हो अहुटै या शरीर को रोप।—सूर (शब्द०)। (ख) दुई  
देखि दाटत हन भटत जाइ लपटन धाड़। फिरि को  
अहुटत चलन, चुहुटत दुई पुहुटत आउ—मदन (शब्द०)।

अहुटाना—क्रि० प्र० [म० अ+हुट हि० हटना] हटाना। दूर  
करना। अलग करना। भगाना। उ०—उमडि कितेहुन चोट  
चगाइ। मुनिडिनि मारि दए अहुटाइ।—मदन (शब्द०)।



अहुठ<sup>७</sup>—वि० [स०] अद्युष्ट या अर्धचतुर्थ प्रा० \*अद्वयज्य \*अद्वयज्य  
अद्युष्ट अद्वयज्य माढे तीन । तीन और आधा । उ०—(क)  
अहुठ हाथ तन-मरवर हिया कवल तेहि माँह—जायसी अ०,  
ओगाह । पृ० ५० । अहुठ पैर वसुधा सब कीन्ही घाम अवधि  
विरमावन ।—सूर (शब्द०) । (ग) कवहुँक अहुठ परग करि  
वसुधा कवहुँक देहरि उन्धि न जानी ।—सूर (शब्द०) ।  
अहुत<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] जप । ब्रह्मयज्ञ । वेद-पाठ । यह मनुस्मृति के  
अनुसार पाँच यज्ञों में से है ।  
अहुत<sup>२</sup>—वि० १ विना होम किया हुआ । २ अविहित ढग से हवन  
किया हुआ । ६ जिसे होनभाग या आहुति न मिली हो [को०] ।  
अहुर—सज्ञा पुं० [स०] जठराग्नि [को०] ।  
अहुरमज्ज—सज्ञा पुं० [पह अहुरमज्ज] पारसी धर्मशास्त्र के अनुसार  
धर्म, ज्ञान और प्रकाश का देवता ।  
अहुँठा—वि० [हि०] दे० 'अहुठ' ।  
अहुरनावहुरना<sup>७</sup>—कि० अ० [देश०] आना जाना । आने जाने  
की क्रिया ।  
अहुँठन—सज्ञा पुं० [स० स्थूल] जमीन में गाड़ा हुआ काठ का कुदा  
जिसपर रखकर विमान गंडा में से चारा काटते हैं । ठीहा ।  
अहृदय—वि० [स०] १ हृदयहीन । अरमिक । २ खटुनहवाम ।  
भक्तकी [को०] ।  
अहृद्य वि० [स०] १ जो हृदयहारी न हो । अरुचिकर । २ जो  
बलकारक न हो, जैसे—श्रीपद्य [को०] ।  
अहे<sup>१</sup>—पज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी भूरी लकड़ी मकानों में लगती  
है तथा हन और गाड़ी आदि बनाने के काम में आती है ।  
अहे<sup>२</sup>—अव्य (स०) १ दे० 'हे' । २ खेद, अलगाव या निंदा का वाचक  
[को०] ।  
अहेडमान—वि० [स०] जो अनचाहा या अनिच्छित न हो [को०] ।  
अहेतु<sup>१</sup>—वि० (स०) १ विना कारण का । विना सबब का । निमित्त-  
रहित । २ व्यर्थ । फजूल ।  
अहेतु<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० एक काव्यालंकार जिसमें कारणों के उकटते रहने पर  
भी कार्य का न होना दिखलाया जाय, जैसे—है सध्या हूँ  
रागयुग दिवमहु समुख नित । होत समागम तदपि नहि विधि  
गति अहो विचित्र ।  
अहेतुक—वि० [स०] दे० 'अहेतु' ।  
अहेतुसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक ।  
विशेष—यदि वादी कोई हेतु उरस्थित करे और उसके उत्तर में  
यह कहा जाय कि तुम्हारा यह हेतु भूत, अविष्य या वर्तमान  
किमी काल में हेतु नहीं हो सकता, तो ऐसा उत्तर अहेतुसम  
कहलाएगा ।  
अहेर—सज्ञा पुं० [स० आवेद, प्रा० अहेड] [वि० अहेरी] १ शिकार ।  
मृगया । २ वह जंतु जिसका शिकार होता जाय ।  
अहेरी<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि० अहेर + ई (प्रत्य०)] शिकारी । आ-  
खेटक । उ०—चित्रकूट मनु अचल अहेरी । मानस, २।१३३ ।  
अहेरी<sup>२</sup>—वि० शिकार खेलनेवाला । शिकारी । व्याधा ।  
अहेर—सज्ञा पुं० [स०] महाणतावरी या शतमूली नामक पौधा [को०] ।

अहे—कि० अ० [स० अस्ति, प्रा० अहद > अहे] है । उ०—अहे कुमार  
मोर लघु भ्राता ।—मानस, ३।११ ।

अहो—अव्य० [स०] एक अव्यय जिसका प्रयोग कभी मरोधन की तरह  
और कभी कक्षा, वेद, प्रश्नमा, हर्ष और विस्मय सूचित करने  
के लिये होता है, जैसे, (सवोधन) जाहु नहीं, अहो जाहु चले  
हरि जात चले दिनही बनि बागे ।—केशव (शब्द०) ।  
(कक्षा, वेद) अहो ! कैसे दुख का समय है । (प्रश्नमा)  
अहो ! धन्य तब जनम मुनीसा ।—नुतमी (शब्द०) । (हर्ष)  
अहो भाग्य ! आप आए तो । (विस्मय) दूनों दूनों वादत सुपूनों  
की निसा में, अहो आनंद अनूप रूप काहुँ ब्रज बाल को ।  
पद्याकर (शब्द०) । कभी कभी केवन पादपूरणार्थक भी प्रयोग  
होता है । जैसे, भारत कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत  
अहो ।—भारत०, पृ० ८५ ।

अहोई<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि०] मनानप्राप्ति के लिये स्त्रियों द्वारा की जाने  
वाली वह पूजा जो दीपावली से आठ दिन पहले होती है ।

अहोई<sup>२</sup>—वि० [स० अभावित्, प्रा० \*अहोई] न होनेवाली [को०] ।

अहोनस<sup>७</sup>—कि० वि० [स० अहोनिश] रात दिन ।

अहोरत्न—सज्ञा पुं० [स०] सूर्य [को०] ।

अहोरात्र—सज्ञा पुं० [स०] दिनरात । दिन और रात्रि का नाम ।

अहोरावहोरा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि० अहुरना + वहुरना] विवाह की  
एक रीति जिसमें दुल्हन ममुराल में जाकर उन्नी दिन अपने  
पिता के घर लौट जाती है । नेरफेरी ।

अहोरावहोरा<sup>२</sup>—कि० वि० बार बार । लौट लौटकर । उ०—अरद चद  
महँ खजन जोरी । फिरि फिरि लरहि अहोरावहोरी ।—जायसी  
(शब्द०) ।

अहृद—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अहद' ।

अह्ल—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अह' । (समासात् में) जैसे—मध्याह्न [को०] ।

अह्लिज—वि० [स० अह्लिज = सप्तमी रूप + ज] दिन में होनेवाला [को०] ।

अह्लि—वि० [स०] १ आरामतलब । स्थूल या मोटा । २ बुद्धिमान् ।  
विद्वान् । कवि [को०] ।

अह्लिय—वि० [स०] घृष्ट । ढीठ । निर्लज्ज । घमडी [को०] ।

अह्ली<sup>१</sup>—वि० [स०] निर्लज्ज [को०] ।

अह्ली<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० निर्लज्जता [को०] ।

अह्लीक<sup>१</sup>—वि० [स०] निर्लज्ज । वेशर्म, जैसे—मिक्षुक [को०] ।

अह्लीक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० बौद्ध मित् [को०] ।

अह्लुत—वि० [स०] १ जो टेढ़ा न हो । अकुटिल । २ अकपित [को०] ।

अह्ल—वि० [अ०] दे० 'अहन' [को०] ।

अह्लवाना—सज्ञा स्त्री० [अ० अह्लेखानह] पत्नी । भार्या । गृहस्वामिनी  
[को०] ।

अह्लेकलम—सज्ञा पुं० [अ०] लेखक । ममिजीवी [को०] ।

अह्लेवतन—सज्ञा पुं० [अ०] देशवासी । वनवाले [को०] ।

अह्लिया—सज्ञा स्त्री० [अ० अह्लियह] पत्नी । भार्या । जोरू [को०] ।

अह्लीयत—सज्ञा स्त्री० [अ०] योग्यता । पात्रता । निपुणता [को०] ।

अह्ल—सज्ञा स्त्री० [स०] १ झुंझता । २ निलावा । भल्लातक [को०] ।

## प्रा

- प्रा—हिंदी वर्णमाला का दूसरा अक्षर जो 'प्र' का दीर्घ रूपा है।  
 प्राकिक—सज्ञा पुं० [ सं० प्राकृतिक ] सख्याता । गणक । गणना करनेवाला ।  
 प्राकुशिक—सज्ञा पुं० [ सं० प्राङ्कुशिक ] अकुश से आघात करनेवाला [को०] ।  
 प्राक्षी—सज्ञा स्त्री० [ सं० प्राङ्क्षी ] एक प्रकार का वाद्य [को०] ।  
 प्राग<sup>१</sup>—वि० [ सं० प्राङ्ग ] [ वि० स्त्री० प्रागी ] १ अग या शरीरसवधी । २ शब्द के आधार या अग में सव्य रखनेवाला (व्या०) । ३ अग या अव्यवयुक्त या उसमें सव्य रखनेवाला । ४ गौण या निम्न पात्रों से सव्य रखनेवाला (नाट्य०) । ५ वेदों के अग से सव्य रखनेवाला । ६ अग देश में पैदा किया हुआ या उत्पन्न [को०] ।  
 प्राग<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ अग देश का राजकुमार । २ सुकुमार शरीर ।  
 (३) ३ अग । शरीर ।  
 प्रागक<sup>१</sup>—वि० [ सं० प्राङ्गक ] [ वि० प्रागकी ] प्राग देश में उत्पन्न [को०]  
 प्रागक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ अग देश का निवासी व्यक्ति । २ अग देश का शासक [को०] ।  
 प्रागदी—सज्ञा स्त्री० [ सं० प्राङ्गदी ] राजा अगद की राजधानी [को०] ।  
 प्रागविद्य—वि० [ सं० प्राङ्गविद्य ] १. अगविद्या सवधी । २. अगविद्या का जानकार या जानी [को०] ।  
 प्रागार—सज्ञा पुं० [ सं० प्राङ्गार ] कोयले का ढेर या समूह [को०] ।  
 प्रागारिक—वि० [ सं० प्राङ्गारिक ] गोय या सुनगाने या जाननेवाला [को०] ।  
 प्रागिक<sup>१</sup>—वि० [ सं० प्राङ्गिक ] [ स्त्री० प्रागिकी ] १ अगसवधी । अग का । २ अग की चेष्टा द्वारा व्यक्त या प्रकट किया हुआ, जैसे प्रागिक अभिनय (नाट्य०) ।  
 प्रागिक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ चित्र के भाव को प्रकट करनेवाली चेष्टा, जैसे भ्रूविक्षेप, हाव आदि । २ रस में कायिक अनुभाव । ३ नाटक में अभिनय के चार भेदों में से एक ।  
 विशेष—चार भेद ये हैं—(क) प्रागिक = शरीर की चेष्टा बनाना, हाथ, पैर हिलाना आदि । (ख) वाचिक = वातचीत आदि की नकल । (ग) आहार्य = वेशभूषा आदि बनाना । (घ) सात्विक = स्वरभंग, कण, वीचर्य आदि की नकल ।  
 यो०—प्रागिकाभिनय ।  
 ४ मृदग या ढोल का वादक [को०] । ५ बाँहदार या बाँहोलीदार पुष्पो का परिधान जो घुटनों के नीचे तक पहुँचता था ।  
 प्राग [को०] ।  
 प्रागिरस<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ सं० प्राङ्गिरस ] [ वि० स्त्री० प्रागिरसी ] १ अगिरा के पुत्र बृहस्पति, उत्तथ्य और सवर्त । २ अगिरा के गोत्र का पुत्र । ३ अथर्ववेद की चार ऋचाओं का सूक्त जिसके द्रष्टा अगिरा थे ।  
 प्रागिरस<sup>२</sup>—वि० [ सं० प्राङ्गिरस ] १ अगिरासवधी । अगिरा का ।  
 २ अगिरा में उत्पन्न [को०] ।  
 ५०

- प्रागिरस सत्र—सज्ञा पुं० [ सं० प्राङ्गिरस + सत्र ] यज्ञविशेष । बृहस्पति-सत्र [को०]  
 प्रागूप—सज्ञा पुं० [ सं० प्राङ्गूप ] स्तुति । ऋचा । स्तोत्र [को०] ।  
 प्रागल—वि० [ अ० ऐग्लो ] अंगरेजों में सवधित । अंगरेजी ।  
 प्राचन—सज्ञा पुं० [ सं० प्राञ्चन ] काँटा, बाण या इसी प्रकार की कोई नुकीली चीज शरीर में बाहर निकालना [को०] ।  
 प्राचलिक—वि० [ सं० प्राञ्चल ] अवन या स्थानविशेष का ।  
 प्राचलिकता—सज्ञा स्त्री० [ सं० प्राञ्चलिक + ता (तत्त्व०) ] क्षेत्र विशेष से सवध रखनेवाली स्थिति ।  
 प्राच्छन—सज्ञा पुं० [ सं० प्राञ्छन ] टूटी हुई हड्डी बँटाना । उतरा हुआ पैर या जोड़ ठीक करना [को०] ।  
 प्राजन<sup>१</sup>—वि० [ सं० प्राञ्जन ] १ अजनसवधी या अजनयुक्त । २ स्थूल । मोटा [को०] ।  
 प्राजन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ आँख का अजन । २ अजना के पुत्र हनूमान् ।  
 माहति ।  
 प्राजनिक्य—सज्ञा पुं० [ सं० प्राञ्जनिक्य ] आँख का अजन बनाने में काम आनेवाली चीज [को०] ।  
 प्राजनी—सज्ञा स्त्री० [ सं० प्राञ्जनी ] १ आँख का अजन । २ अजन की डिविया [को०] ।  
 प्राजनीकारी—सज्ञा स्त्री० [ सं० प्राञ्जनीकारी ] अजन तैयारी करनेवाली या लगानेवाली स्त्री [को०] ।  
 प्राजनेय—सज्ञा पुं० [ सं० प्राञ्जनेय ] अजना के पुत्र हनूमान् । उ०—प्राजनेय को अधिक कृती उन कातिकेय में भी लेखो ।—साकेत, पृ० ३८२ ।  
 प्राजनिक—सज्ञा पुं० [ सं० प्राञ्जिक ] एक प्रकार का अर्धचन्द्राकार बाण [को०] ।  
 प्राजलिक्य—सज्ञा पुं० [ सं० प्राञ्जलिक्य ] नम्रता में अजनि या हाथ जोड़ना [को०] ।  
 प्राजल्यक—सज्ञा पुं० [ सं० प्राञ्जल्यक ] करबद्ध होना । हाथ जोड़ना [को०] ।  
 प्राजस—वि० [ सं० प्राञ्जस ] [ वि० स्त्री० प्राजसी ] सद्यस्क । तात्कालिक । क्रमिक [को०] ।  
 प्राजिनेय—सज्ञा पुं० [ सं० प्राञ्जिनेय ] १ एक प्रकार की छिपकनी [को०] ।  
 प्राड<sup>१</sup>—वि० [ सं० प्राण्ड ] अडे से उत्पन्न [को०] ।  
 प्राड<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ ब्रह्मा । हिरण्यगर्भ । २ प्रडो का ढेर है ।  
 ३ अडकोण [को०] ।  
 प्राडज<sup>१</sup>—वि० [ सं० प्राण्डज ] अडे से उत्पन्न [को०] ।  
 प्राडज<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ पक्षी । २ पक्षी का शरीर । ३ सर्प [को०] ।  
 प्राडिक, पाडीक—वि० [ सं० प्राण्डिक, प्राण्डीकड ] अड्युक्त [को०] ।  
 प्राडी—सज्ञा स्त्री० [ सं० प्राण्डी ] अडकोप [को०] ।

आडीर—वि० [स० आण्डीर] १ बहुत अडोवाला । २ लवान । प्रोढ़ ( जैसे, वैन ) [को०] ।  
 आंत—वि० [स० आन्त] [वि० स्त्री० आंती] अंतिम [को०] ।  
 आतर<sup>१</sup>—वि० [स० आन्तर] छिपा हुआ । भीतरी । गुप्त । उ०—  
 इसके बाह्य और आतर सौंदर्य के भेद करना मेरे विचार से असंगत है ।—जय० प्र०, पृ० ३८ ।  
 आतर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ भीतरी स्वभाव । अतः प्रकृति । २ जिगरी दोस्त । ३ हृदय [को०] ।  
 आत पुरिक<sup>१</sup>—वि० [स० आन्त पुरिक] अतः पुरमवधी [को०] ।  
 आत पुरिक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० अतः पुर की वार्ता या कार्य [को०] ।  
 आतरज्ञ—वि० [स० आन्तरज्ञ] आतरिक या गुह्य तत्व को जानने-  
 वाला [को०] ।  
 आतरतम्य—सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्तरतम्य] घनिष्ठ या निकट सवध, जैसे दो अक्षरों का [को०] ।  
 आतरप्रपञ्च—सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्तर + प्रपञ्च] भ्रम के कारण उत्पन्न धारणा [को०] ।  
 आतरागारिक—वि० [स० आन्तरागारिक] भाडार या भाडागारिक के कर्तव्यों से मगध रखनेवाला [को०] ।  
 आतरायिक—वि० [स० आन्तरायिक] १ अतर से उपस्थित होने-  
 वाला । २ समय समय पर उद्धृत [को०] ।  
 आतराल<sup>१</sup>—वि० [स० आन्तराल] अतर की प्रकृति की जानकारी रखनेवाला [को०] ।  
 आतराल<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्तराल] एक दार्शनिक संप्रदाय ।  
 आतरिक वि० [स० आन्तर + इक (प्रत्य०)] १. आतर या हृदय-  
 सवधी । उ०—जब एक व्यक्ति अपने आतर सत्य को प्राप्त करने के लिये अपनी सारी शक्तियों को केंद्रीभूत करता है '।—मुशी अमि० ग्र०, पृ० ४७ । २ घरेलू । भीतरी । उ०—नद आतरिक विग्रह के कारण जर्जरित हो गया था ।—चंद्र०, पृ० ३२ ।  
 आंतरिकता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आतरिक + ता (प्रत्य०)] घनिष्ठता । आत्मीयता । उ०—वह कुछ सकुचाया और फिर जैसे उसने मुझे सह लिया और आतरिकता भी बढ़ गई ।—भस्मावृत०, पृ० १० ।  
 आतरिक्ष<sup>१</sup> वि० [स० आन्तरिक्ष] [वि० स्त्री० आतरिक्षी] १ अतरिक्ष सवध । २ अतरिक्ष में उत्पन्न [को०] ।  
 आतरिक्ष<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ पृथ्वी और आकाश के बीच का स्थान । २ वर्षा का जल [को०] ।  
 आतरीक्ष—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्तरीक्ष] दे० 'आतरिक्ष' [को०] ।  
 आतरीय—वि० [स० आन्तर + ईय (प्रत्य०)] आतरिक । भीतरी ।  
 हादिक । उ०— यदि आतरीय कण्ड न हो तो भी ।—प्रेम घन०, भा० २, पृ० १६० ।  
 आतर्गोहिक—वि० [स० आन्तर्गोहिक] [वि० स्त्री० आतर्गोहिणी] घर के भीतर का । घर के भीतर उत्पन्न [को०] ।  
 आतर्वेदिक—वि० [स० आन्तर्वेदिक] वेदिका या वेदी के भीतर का [को०] ।  
 आतर्वेशिक—सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्तर्वेशिक] दे० 'अतर्वेशिक' । उ०—

आतर्वेशिक से प्रश्न हुआ, कितनी नई दासियाँ अतः पुर में आई हैं ।—इरा०, पृ० ४७ ।  
 आतर्वेशिक—वि० [स० आन्तर्वेशिक] घर के अंदर या भीतरी भाग से संबंध रखनेवाला [को०] ।  
 आतिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आन्तिका] बड़ी बहन [को०] ।  
 आत्र<sup>१</sup>—वि० [स० आन्त्र] आत का । आत मवधी [को०] ।  
 आत्र<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० आत [को०] ।  
 आत्रिक—वि० [स० आन्त्रिक] आत सवधी [को०] ।  
 आंदोल—सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्दोल] १ हिलना डुलना । झूटना । २ काँटना । कान [को०] ।  
 आंदोलक—सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्दोलक] झूटना ।  
 आंदोलन—सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्दोलन] १ बार बार हिलना डुलना ।  
 इधर से उधर हिलना । काँटना । झूलना । उ०—आलोक रश्मि से बुने उपा अचल में आंदोलन अमद ।—कामायनी, पृ० १६८ । २ उबल पुबल करनेवाला सामूहिक प्रयत्न । हलचल । धूम, जैसे, शिक्षा के प्रचार के लिये वहाँ खूब आंदोलन हो रहा है । उ०—इसके पीछे तो खड़ी बोली के लिये एक आंदोलन ही खड़ा हुआ ।—इतिहास०, पृ० ५०६ ।  
 आंदोलित—वि० [स० आन्दोलित] [वि० स्त्री० आंदोलिता] हिलता डुलता हुआ भोके खाता हुआ । उ०—इन कवियों के मन में एक आंधी उठ रही थी जिसमें आंदोलित होते हुए वे उड़े जा रहे थे ।—इतिहास०, पृ० ६५० । २. कंपनयुक्त । हलचल से भरा ।  
 आघस—सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्घस] मड । माड [को०] ।  
 आघसिक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्घसिक] पाचक । पाककार । रसोइया [को०] ।  
 आघसिक<sup>२</sup>—वि० भोजन या खाना बनानेवाला [को०] ।  
 आघ्य—वि० [स० आन्घ्य] १ अघता । अघापन । २ अघकार [को०] ।  
 आघ्र<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्ध्र] १ ताप्ती नदी के किनारे का देश ।  
 २. भारत का तेलुगु भाषी प्रदेश या राज्य ।  
 आघ्र<sup>२</sup>—वि० आघ्र देश का निवासी ।  
 आघ्र—सञ्ज्ञा पुं० [स० आम्ब] अघ्र का एक प्रकार या भेद [को०] ।  
 आघ्रण्ट—सञ्ज्ञा पुं० [स० आम्बण्ट] अघ्रण्ट देश का निवासी व्यक्ति [को०] ।  
 आधिकेय—सञ्ज्ञा पुं० [स० आम्बिकेय] अघ्रिका का पुत्र । १ घृतराष्ट्र ।  
 २ कार्तिकेय [को०] ।  
 आवुद—वि० [स० आम्बुद] अघ्रुद या बादल सवधी [को०] ।  
 आभस—वि० [स० आम्भस] [वि० स्त्री० आभसी] १ जल सवधी ।  
 २ द्रव । तरल [को०] ।  
 आभसिक<sup>१</sup>—वि० [स० आम्भसिक] जल में रहनेवाला । जलचर [को०] ।  
 आभसिक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० मछली [को०] ।  
 आभसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आम्भसी] घेरड सहिता में वर्णित पाँच धारणा मुद्राओं में से एक । जलचरी मुद्रा ।  
 आशिक—वि० [स०] अशसवधी । अश विपयक । कुछ । थोड़ा ।  
 आशुक जल—सञ्ज्ञा पुं० [स०] किरण दिखाया हुआ पानी । वह जल जो एक तावे के वर्तन में रखकर दिन भर धूप में और रात

भर चाँदनी या ओम में रखकर छान लिया जाय। वैद्यक में इसका बड़ा गुण लिखा है।

श्रीश्र-वि० [सं०] अश से मन्त्र रखनेवाला [को०]।

श्री-ग्रन्थ० [अनु०] १ विस्मयपुत्रक शब्द, जैसे, श्री, क्या कहा? फिर तो कहो। २ वालक के रोने के शब्द का अनुकरण।

श्रीक-सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रीक] १ अक। चिह्न। निशान। २ संज्ञा का चिह्न। अदद। उ०-(क) तुलसी महीस देखे, दिन रजनीस जैसे, सुने पर सुन से मनो भिटाए श्रीक के।-तुलसी ग्र०, पृ० ३१८। (ख) कहत सब वेंदी दिये श्रीक दस गुनी होत।-विहारी र०, दो० २२७। ३ अक्षर। हरफ। उ०-(क) विरह तचै उरगो सु अरव सेंहुड कैसी श्रीकु।-विहारी र०, दो० ४५७। (ख) गुण पै अपार साधु, कहैं श्रीक चारि ही मे अर्थ विस्तारि कविराज टकसार है।-प्रिया० (शब्द०)। ४. गद्दी हुई बात। ५ दृढ़ निश्चय। निश्चित सिद्धांत। उ०-जाउँ राम पहि आएमु देह। एकहि श्रीक मोर मन एहू।-मानस, २।१७८। (ख) एकहि श्रीक इह मन माही। प्राप्न काल चलिहौ प्रभु पाहीं।-मानस, २।१८३। ६ अश। हिस्सा। उ०-काम-सकल डर निरखि बहु वामनहि आस नहि एकहू श्रीक निरवान की।-तुलसी ग्र०, पृ० ५६३। ७. किसी मनुष्य के नाम पर प्रसिद्ध वश, जैसे, वे बड़े कुलीन हैं, वे अमुक श्रीक के हैं। ८ अक्षर। गोद। उ०-पीछे ते गहि लाकरी, गही श्रीक री फेर।-म० सप्तक, पृ० २४३। मृहा०-श्रीक भरना=आलिंगन करना। उ०-छीतस्वामी गिरिवरधर भगन भए श्रीक भरत, सुख स्वाद इहै, समै कौ कहत न वनि आवै।-छीत०, पृ० ४१।

९ भाग्य। उ०-एक को श्रीक बनावत भेटत पोथिय काँख लिए दिन जैहैं।-वनानद (भू०) पृ० ५३। १० शान। उ०-कठिन काठियावाड चूटीले के परिपीने, चंचल चपल चलाक वाकपन श्रीक अनोखे।-रत्नाकर, भा० १, पृ० ११२। ११ अंकुर। उ०-जाम्यो श्रीक अकार नेह दिन दिन बढत करम सदेह।-भीखा श०, पृ० ४७। १२ तो मात्रा के छोरी की मन्त्रा। अक। १३ छकड़े या बेलगाड़ियों की बलियों के नीचे दिया हुआ लकड़ी का मजबूत ढाँचा जिसमें धुरी पहिए में पहनाई जाती है।

श्रीक<sup>२</sup>-सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'श्रीख'। उ०-जितवा है विन जिव मे सुनता है विन कान। देखता है विन श्रीक मे, कादर विन तन जान।-दक्खिनी०, पृ० ३८५।

श्रीकडा<sup>१</sup>-सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रीक, हि० श्रीक+डा (प्रत्य०)] १ श्रीक। अदद। सद्य का चिह्न। उ०-जनसङ्घा से सन्निधन समस्त श्रीकडे जनगणना १६५१ पर आधारित है।-शुक्ल अमि० ग्र०, (विविध) पृ० २।

श्रीकडा<sup>२</sup>-सञ्ज्ञा पुं० [देश०]-चोपायो की एक बीमारी।

श्रीकडा<sup>३</sup>-सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रीक, हि० श्रीक+डा (प्रत्य०)] मदार। श्रीक।

श्रीकनी<sup>१</sup>-सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रीक+नी=दानो] ज्वार की बाल की खुड़ी जिसमें से दाना निकाल लिया गया हो।

श्रीकनी<sup>२</sup>-सं० [सं० श्रीकनी] चिह्नित करना। निशान लगाना। दागना। उ०-खिन खिन जीव सेंडासन श्रीका। श्री नित डोम छुआवहि बाँका।-जायसी (शब्द०)। २ कूनना। अदाज करना। तखमीना करना। मूल्य लगाना। उ०-सन् १६५१ की पशुगणना के अनुसार राज्य में पशुधन से प्राप्त होनेवाले पदार्थों का मूल्य २१ करोड़ रुपए आँका गया है।-शुक्ल अमि० ग्र०, (विविध), पृ० १७। ३ अनुमान करना। ठहराना। निश्चित करना। उ०-ग्राम को कहत आमली है आमली को आम आक ही अनारन को आँकियो करति है।-पद्माकर, ग्र० पृ० २१८।

श्रीकवाँक-सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आक वाक'। उ०-जैसे कछु आँक वाँक वकत हैं। आजु हटि, तैसें जिन नाउँ मुख काइ को निकसि जाइ।-केशव ग्र०, पृ० ५३१।

श्रीकमा<sup>१</sup>-सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रीक] आनिगन। उ०-बाहु वनय श्रीकम भरे भाग, आपन आइति नहि आपम आँग।-विद्यापति, पृ० २०७।

श्रीकर<sup>१</sup>-वि० [सं० श्रीकर=खान, जो गहरी होती है] १ गहरा। 'स्याह' या 'सेव' का उलटा।

विशेष-जोताई दो तरह की होनी है-एक आँकर अर्थात् खूब गहरी (अँवाय) और दूसरी स्याह या सेव।

२ बहुत अधिक। उ०-मोहमद मात्यो रात्यो कुमति कुनारि सो विसारि वेद लोक लाज आँकरो अचेतु है।-तुलसी (शब्द०)।

श्रीकर<sup>२</sup>-वि० [सं० श्रीकर] महंगा।

श्रीकल<sup>१</sup>-सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रीक, हि० श्रीक=दाग] दागा हुआ साँड।-हि०]।

श्रीकुडा-सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रीकडा'।

श्रीकुर<sup>१</sup>-सञ्ज्ञा पुं० [हि०] पुं० 'अकुर'। उ०-डुङ्गु आसा दीप मिक्कएन, मदन श्रीकुर भाँगु।-विद्यापति, पृ० ३७।

श्रीकुस<sup>१</sup>-सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रीकुस] दे० 'प्रकुश'। उ०-जोवन अस मैमत न कोई, नव हस्ति जो आँकुन होई।-जायसी ग्र०, पृ० ७४।

श्रीकू-वि० [सं० श्रीक, हि० श्रीक+ऊ (प्रत्य०)] आँकने या कूनने-वाला। तखमीना करनेवाला।

श्रीख<sup>१</sup>-सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० श्रीख, प्रा० श्रीख, प० श्रीख] देखने की इन्द्रिय। वह इन्द्रिय जिसमें प्राणियों को रूप अर्थात् वर्ण-विस्तार तथा आकार का ज्ञान होता है।

विशेष-मनुष्य के शरीर में यह एक ऐसी इन्द्रिय है, जिसपर आलोक के द्वारा पदार्थों का विग्रह विज्ञा जाता है। जो जीव आरोह नियमानुसार अधिक उन्नत हैं, उनकी इन्द्रियों की बनावट अधिक पेचीली और जटिल होती है पर धूर्त जीवों में इनकी बनावट बहुत सादी, कही कही तो एक विधि के रूप में होती है; उनपर रक्षा के लिये पलक और बगीची इत्यादि बखेड़ा नहीं होता। बहुत क्षुद्र जीवों में चक्षुरिन्द्रिय बहुत सध्या नियत नहीं होती। शरीर के किसी चार, छः विधियाँ सी होनी हैं जिनसे

मकड़ियों की आठ आँखें प्रसिद्ध हैं ।। रीढ़वाले जीवों की आँखें खोपड़े के नीचे गड्ढों में बड़ी रक्षा के साथ बँठाई रहती हैं और उनपर पलक और बरोनी आदि का आवरण रहता है । वैज्ञानिकों का कथन है कि सभ्य जातियाँ वर्णभेद अधिक कर सकती हैं और पुराने लोग रंगों में इतने भेद नहीं कर सकते थे । आँख बाहर से लवाई लिए हुए गोल तथा दोनो किनारों पर नुकीली दिखाई पड़ती है । सामने जो मफेद बाँच की भी भिल्ली दिखाई पड़ती है उसके पीछे एक और भिल्ली है जिसके बीचोबीच एक छेद होता है । इसके भीतर उगी मे लगा हुआ एक उन्नतोदर कौंच के नट्टन पदार्थ होता है जो नेत्र द्वारा ज्ञान का मुख्य कारण है, क्योंकि इसी के द्वारा प्रकाश भीतर जाकर रेटिना पर के ज्ञानतनुओं पर कप वा प्रभाव डालता है ।

पर्या०—नोचन । नयन । नेत्र । ईक्षण । अक्षि । दृक् । दृष्टि । अवक । विनोचन । धीक्षण । प्रेक्षण । चक्षु ।

यौ०—उनींदी आँख=नींद से भरी आँख । वह आँख जिसमें नींद आने के लक्षण दिखाई पड़ते हों । कजी आँख=नीली और भूरी आँख । विल्ली की भी आँख । फँटीली आँख=पायन करनेवाली आँख । मोहित करनेवाली आँख । गिलाफी आँख=पपोटो से ढकी हुई आँख, जैसे बबूतर की । चचल आँख=यौवन के उमर के कारण स्थिर न रखनेवाली आँख । चरवाँक आँख=चचल आँख । चियों सी आँख=बहुन छोटी आँख । चोर आँख=(१) वह आँख जिसमें सुरमा या काजल मालूम न हो । (२) वह आँख जो लोगों पर इस तरह पड़े कि मालूम न हो । घेंसी आँख=भीतर की ओर धँसी हुई आँख । मतवाली आँख=मद में भरी आँख । मदभरी आँख, रतभरी आँख=वह आँख जिसमें भाव टपकना हो । रमौली आँख, शरवती आँख=गुलाबी आँख ।

मुहा०—आँख=(१) ध्यान । लक्ष्य । जैसे, उनकी आँखें बुराई ही पर रहती हैं । (२) विचार । विवेक । परख । शिनाउ । जैसे—(क) उनके आँखें नहीं हैं, वह क्या सोदा लेगा । (ख) राजा के आँखें नहीं कान होता है । (३) कृपादृष्टि । दया भाव, जैसे,—अब तुम्हारी वह आँखें नहीं रही । (४) सतति । सतान । लडका वाला, जैसे—(क) सोगिन मर गई, आँखें छोड़ गई । (ख) एक आँख फूटती है तो दूसरी पर हाथ रखते हैं । ( अर्थात् जब एक नटका मर जाता है तब दूसरे को देखकर धीरे धीरे हैं और उनकी रक्षा करते हैं । ) (ग) मेरे लिये तो दोनों आँखें बराबर हैं । आँख आना=आँख में लाली, पीड़ा और सूजन होना । आँख उठना=आँख आना । आँख में लाली और पीड़ा होना । आँख उठाना=ताकना । देखना । सामने नजर करना । जैसे—आँखें उठाई तो चारों ओर मैदान देख पड़ा । ( ) बुरी नजर में देखना । बुरा बर्ताव करना । हानि पहुँचाने की चेष्टा करना । जैसे—हमारे रहते तुम्हारी ओर कोई आँखें उठा सकता है ? आँखें ढाँककर न देखना=(१) ध्यान न देना । तिरस्कार करना, जैसे—(क) मैं उनके पास घटो बँठा रहा पर उन्होंने आँखें उठाकर भी नहीं देखा । (ख) ऐसी चीजों को तो हम आँखें

उठाकर भी नहीं देखते । (२) नामने न ताकना । नज्जा या मकोन से बराबर दृष्टि न करना, जैसे—उठ उठना तो आँखें ही ऊपर नहीं उठाता, हम सम्मानार्थे तथा । आँखें उलट जाना=(१) पुतली का ऊपर चढ़ जाना । आँखें पलकाना ( चढ़ मरने के समय होता है ), जैसे,—आँखें उलट गईं, अब तथा आशा है । (२) घमट से नजर बदल जाना । अभिमान होता, जैसे—इतने ही धन में तुम्हारी आँखें उलट गई हैं । आँखें ऊँची न होना=नज्जा में प्रभाव ताकने का साहस न होना । नज्जा में दृष्टि नीचे रहना, जैसे,—उस दिन मैं फिर उपाकी आँखें हमारे सामने ऊँची नहीं हुई । आँखें उतर न उठाना=(१) नज्जा या भय में नजर ऊपर की ओर न करना । दृष्टि नीची रहना । आँखें छोटा, पहाड़ छोटा=(१) निराशा होना । (२) जब आँखों के नामने नहीं, तब तथा दूर, तथा नजदीक । आँखें रुक आना=अधिर नाकने या जागने में एक प्रकार की पीड़ा होना । आँख का श्रमा, गाँठ का पूरा=मूर्ख धनवान । श्रमाही मानदार । वह धनी जिसे कुछ विचार या परख न हो, जैसे—(क) ते लगाने भेजो कोई आँख का श्रमा गाँठ का पूरा । (ख) जो आँख का श्रमा होगा, वही वह मटा कपड़ा लेगा । आँख का बँटा होना=(१) घटकना । पीड़ा देना । (कटक होना । बाधक होना । घमू होना, जैसे,—उगी के मारे तो हमारी कुछ करने नहीं पानी, वही तो हमारी आँखें ता ताँटा हो रहा है । आँख का काजल चुलना=गहरी चोरी करना । बड़ी तकली के साथ चोरी करना । आँख का जाना=आँखें फूटना, जैसे,—उमरी आँखें जानना में जानी रही । आँखें पा जाना=आँखों की पुतली पर एक तफेद भिल्ली जिसके कारण धुंध दिखाई देना है । आँख का रेंना=आँख का घट्टा । आँख का वह उभटा हुआ मफेद भाग जिसपर पुतली रहती है । आँख का तारा=(१) आँख का तिल । कनीनिका । (२) बहुत प्यारा व्यक्ति । (३) मत्तिल । आँख का तिल=आँख की पुतली के बीचोबीच छोटा गोल तिल के बराबर काला धब्बा जिसमें नामने की वस्तु का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है । यह पदार्थ में एक छेद है जिसमें आँख के मग्ने पिछने परदे का काला रंग दिखाई पड़ता है । आँख का तारा । कनीनिका । आँख का तेल निकालना=आँख को कष्ट देना । ऐसा महीन ताम करना जिसमें आँखों पर बहुत जोर पड़े, जैसे सीना पिरोना, चियना, पटना आदि । उ०—रंगों न पों देंगे आँख का तिल वे, आँख का तल जो निकालेगे । —चोमे०, पृ० १७ । आँख फान गुला रहना=सचेत रहना । नावधान होना । होशियार रहना । आँख का परदा=आँख के भीतर की भिल्ली जिसमें होकर प्रकाश जाता है । आँख का पर्दा उठना=ज्ञानचक्षु का मुक्तता । अज्ञान वा भ्रम का दूर होना । चेत होना, जैसे—उमरी आँख का परदा उठ गया है, अब वह ऐसी बातों पर विश्वास न करेगा । आँख पर पर्दा पटना=कुछ सुझाई न पड़ना । मोहप्रस्त होना । आँख का पानी ढल जाना=नज्जा छूट जाना । लाज शर्म का जाता रहना, जैसे,—जिसकी आँख का पानी ढन गया है, वह चाहे जो कर डाले । आँख का पानी मरना=३० 'आँख का पानी ढलना' । आँख की किरकिरी=आँख का काँटा ।



चक्षुशून्य। घटकनेवाली वस्तु या व्यक्ति। आँखों की ठडक = अत्यंत प्यारा व्यक्ति या वस्तु। आँख की पुतली = आँख के भीतर कानिया और लेंस के बीच का रंगीन भूरी भिल्ली का वह भाग जो सफेदी पर की गोत काट से होकर दिखाई पड़ता है। इसी के बीच में वह तिल या कृष्णानारा दिखाई पड़ता है जिसमें सामने की वस्तु का प्रतिबिम्ब भगवत्ता है। इसमें मनुष्य का प्रतिबिम्ब एक छोटी पुतली के समान दिखाई पड़ता है, इसी से इसे पुतली कहते हैं। (२) प्रिय व्यक्ति। प्यारा मनुष्य। जैसे,—वह हमारी आँख की पुतली है, उसे हम पाम में जाने न देंगे। आँख की पुतली फिरना = आँख की पुतली का चढ़ जाना। पुतली का स्थान बदलना। आँख का पहराना (यह मरने का पूर्वक्षण है)। आँख की बंदी भी के आगे = किसी के दोष को उसके इष्ट मित्र या भाई वधु के सामने ही कहना। आँख की सूइयाँ निकालना = किसी काम के कठिन और अधिक भाग के अन्य व्यक्ति द्वारा पूरा हो जाने पर उसके शेष अल्प और मरल भाग को पूरा करके सारा फल लेने का उद्योग करना, जैसे,—इतने दिनों तक तो मर मरकर हमने इसको इतना दुरुस्त किया, अब तुम आए हो आँखों की सूइयाँ निकालने।

विशेष—इस मुहाविर पर एक कहानी है। एक राजकन्या का विवाह वन में एक मृतक से हुआ जिसके सारे शरीर में सूइयाँ चुभी हुई थी। राजकन्या नित्य बैठकर उन सूइयों को निकाला करती थी। उसकी एक लोड़ी भी साथ थी जो यह देखा करती थी। एक दिन राजकन्या कहीं बाहर गई। लोड़ी ने देखा कि मृतक के शरीर की सारी सूइयाँ निकल चुकी हैं, केवल आँखों की बाकी हैं। उसने आँखों की सूइयाँ निकाल डाली और वह मृतक जी उठा। उस लोड़ी ने अपने को उसकी विवाहिता बतलाया, और जब वह राजकन्या आई, तब उसे अपनी लोड़ी कहा। बहुत दिनों तक वह लोड़ी इस प्रकार रानी बनकर रही। पर पीछे से सब बातें खुल गई और राजकन्या के दिन फिरे।

आँखों के आगे अंधेरा छाना = मस्तिष्क पर आघात लगने या कमजोरी से नजर के सामने थोड़ी देर के लिये कुछ न दिखाई देना। बेहोशी होना। मूर्च्छा आना। आँखों के आगे अंधेरा होना = समार सूना दिखाई देना। विपत्ति या दुख के समय घोर नैराश्य होना। जैसे,—बड़के के मरते ही उनकी आँखों के आगे अंधेरा हो गया। आँखों के आगे उजाला होना = प्रकाश होना। ज्ञान होना। आँखों में चमक आना = प्रसन्न होना। आँखों के आगे चिनगारी छूटना = आँखों का तिलमिलाना। तिलमिली लगना। मस्तिष्क पर आघात पहुँचने पर चकाचौंध सी लगना। आँखों के आगे नाचना = दे० 'आँखों में नाचना'। आँखों के आगे पलकों की बुराई = किसी के इष्ट-मित्र के आगे ही उनकी निंदा करना। जैसे,—नहीं जानते ये कि आँखों के आगे पलकों की बुराई कर रहे हैं, नव बातें खुल जायेंगी? आँखों के आगे फिरना = दे० 'आँखों में फिरना'। आँखों के आगे रखना = आँखों के सामने रखना। आँखों के कोए = आँखों के डेले। आँखों के डारे = आँखों के सफेद डेले

पर लाल रंग की बहुत बारीक नसें। आँखों के तारे दे० 'आँखों के आगे चिनगारी छूटना'। आँखों के मा नाचना = दे० 'आँखों में नाचना'। आँखों के सामने रखना निकट रखना। पाम में जाने न देना। जैसे,—तुम तो लड़को आँखों के सामने ही रखना चाहते हैं। आँखों सामने होना = समुख होना। आगे आना। आँखों रो बैठना = आँखों को खो देना। अघा होना, जैसे, यदि यही रोना घोना रहा तो आँखा को रो बैठेगी (नी० आँख खटकना = (१) आँख टोचना। आँख किरकिरान उ०—कुमकुम मारो गुनान, नद जू के कृष्णानान, ज कहूँगी कमराज में आँख खटक मोरी मई है लाल।—हो (शब्द०)। (२) किसी से मनमुटाव होना। आँख खुलना (१) पलक खुलना। परस्पर मिली या चिपकी हुई पलकों अलग हो जाना, जैसे,—(क) बच्चे की आँखों को डालो खुल जायें।—(ख) बिल्ली के बच्चों ने अभी आँखें न खोली। (२) नींद टूटना, जैसे,—तुम्हारी आँखें पाले ही में आँखें खुल गईं। (३) चेत होना। ज्ञान होना। भ्रम दूर होना, जैसे,—परिवर्तीय शिक्षा से भारतवासियों की आँखें खुल गईं। (४) चित्त स्वस्थ होना। ताजगी आना। हो हवास-दुरुस्त होना। तबियत ठिकाने आना। जैसे,—शरवत के पीते ही आँखें खुल गईं। आँख खुलवाना = (१) आँख बनवाना। (२) मुसलमानों के विवाह की एक रीति। दुल्हन के सामने एक दर्पण रखा जाता है और वे उस एक दूसरे का मुँह देखते हैं। आँख खोलना = (१) उठाना। ताकना। (२) आँख बनाना। आँख का जाला माँडा निकालना। आँख को दुरुस्त करना, जैसे,—डाक्टर यहाँ बहुत से अघों की आँखें खोली। (३) चेताना। सावध करना। ज्ञान का संचार करना। वास्तविक बोध करना जैसे—उस महात्मा ने सदुपदेश में हमारी आँखें खो दी। (४) ज्ञान का अनुभव करना। वाकफ होना। साव होना। उ०—भाई बंधु और कुटुंब कबीला भूटे मित्र गिनावे आँखें खोल जब देख बावरे! मव सपना कर पावे।—कवि (शब्द०)। (५) सुध होना। स्वस्थ होना, जैसे—चार दिन पर आज बच्चे ने आँखें खोली हैं। आँख गड़ना (१) आँख किरकिराना। आँख दुखना, जैसे—हमारी आँ कई दिनों से गड़ रही है, आँखेंगी क्या? (२) आँख घेंमना आँख बैठना, जैसे,—उसकी गड्डी गड्डी आँखें देखकर उसे पहचान लेना। (३) दृष्टि जमना। टकटकी बैठना जैसे,—(क) किस चीज पर तुम्हारी आँखें इतनी देर से गड़ हुई हैं। (ग) उसकी आँखें तो निजने में गड्डी हुई हैं, उ इधर इधर की क्या खबर। (४) बरी चाह होना। आँ की उत्कट इच्छा होना, जैसे,—जिग वस्तु पर तुम्हारी आँखें गड्डी हैं, उसे तुम लिए बिना नहीं छोड़ने। आँख गड़ना = (१) टकटकी बाँधना। स्तब्ध दृष्टि में ताकना। (२) नजर रखना। चाहना। प्राप्ति की इच्छा करना। जैसे,—अब तुम इसपर आँखें गड़ाए हो, काहे को बँधेगी। आँखें घुलना = चार आँखें होना। घूर घूगपूरी होना। दृष्टि ने दृष्टि मिलना, जैसे, पड़ो से पूर आँखें घुन रही हैं। आँखें



चढ़ना = नशे, नींद या सिर की पीड़ा में पतको का तन जाना और नियमित रूप से न गिरना। श्रील का लाल होना, जैसे—देखते नहीं उसकी श्रीलें चढ़ी हुई हैं और मुँह से नींदी बात नहीं निकलती। श्रील चमकाना = श्रीलों में तरह तरह के इशारे करना। श्रील की पुतली इधर उधर घुमाना। श्रील मटकाना। श्रील चरने जाना = दृष्टि का जाता रहना, जैसे—तम्हारी श्रील वया चरने गई थी जो सामने में चीज उठ गई। श्रील चार करना, चार श्रीलें करना = देखादेखी करना। सामने आना, जैसे—जिस दिन से मैंने खरी खरी गुनार, वे मुझसे चार श्रीलें नहीं करते। श्रीलें चार होना, चार श्रीलें होना = (१) देखादेखी करना। सामना होना। एक दूसरे के दर्शन होना, जैसे—श्रीलें चार होते ही वे एक दूसरे पर मरने लगे। (२) विद्या का होना, जैसे—हम तो अपह हैं, पर तूने तो चार श्रीलें हैं, तुम ऐसी भूल क्यों करते हो। श्रीलचौर चौर कर देखा = दे० 'श्रील फाड़ फाड़ कर देखा'। श्रील चुराना = नजर बचाना। कतराना। सामने न होना। जैसे—उम दिन से शायद ले गया है, श्रील चुराता फिता है। (२) लज्जा में बग़ावर न ताकना। दृष्टि नीची करना (३) गम्भीर करना। ध्यान न देना, जैसे—अब वे बड़े आदमी हो गए हैं, अपने पुराने मित्रों से श्रील चुराते हैं। श्रील चुराकर कुछ करना = छिाकर कोई काम करना। श्रील चुरा = नजर बचाना। दृष्टि हट जाना। अनावधानी होना, जैसे—श्रील चुराकी कि माल पारो का। श्रील छन से लगना = (१) श्रील ऊपर को चढ़ना। श्रील टेंगना। स्तब्ध होना। श्रील का एकदम गुनी रहना। (यह मरने के पूर्व की अवस्था है।) (२) टकटकी बंधना। श्रील छिपाना = (१) नजर बचाना। कतराना। टान-मटूल करना। (२) लज्जा से बराबर न ताकना। दृष्टि नीची करना। (३) रुखाई करना। वेमुरोवती करना। ध्यान न देना। श्रील जमना = नजर ठहरना। दृष्टि का स्थिर रहना, जैसे—पहिया इननी जल्दी जल्दी घूमता है कि उसपर श्रील नही जमती। श्रील रूपकना (१) श्रील बढ होना। पलक गिरना। (२) नींद आना। भपकी लगना, जैसे—श्रील भपकी ही थी कि तुमने जगा दिया। श्रील रूपकना = श्रील मारना। डगारा करना। श्रील झपना = दृष्टि नीची होना। लज्जा मालूम होना, जैसे—सामने आते ही श्रील झपती है। श्रील टेंगना = (१) श्रील ऊपर को चढ़ जाना। श्रील की पुतली का स्तब्ध होना। श्रील का एकदम खुना रहना (यह मरने का पूर्वलक्षण है)। (२) टकटकी बंधना, जैसे—तुम्हारे सामने में हमारी श्रीलें टेंगी रह गई, पर तुम न आए। श्रील टेढ़ी करना = (१) श्रीलें टेढ़ी करना। रोप दिखाना। (२) श्रीलें बदलना। रुखाई करना। वेमुरोवती करना। श्रीलें ठडी होना = तृप्ति होना। सतोष होना। मन भरना। इच्छा पूरी होना, जैसे—अब तो उसने मार खाई, तुम्हारी श्रीलें ठडी हुई? श्रीलें डबडवाना = (१) (कि० ग्र०) श्रीलों में श्रील भर आना। श्रीलों में श्रील आना, जैसे—यह सुनते ही उसकी श्रीलें डबडवा पाई। (२) कि० स०) श्रील में श्रील लाना। श्रील भरना, जैसे—वह श्रीलें डबडवाकर बोला। श्रील डालना = दृष्टि डालना। देखना। ध्यान देना। चाह करना। इच्छा करना, जैसे—

जैसे लोग पराई वस्तु पर श्रील नहीं डालता। श्रीलें ठेकर दहर करना = पतको की गति ठीक न रहना। श्रीलों का तिजभिताना। जैसे—उमने श्रीलों के उपयोग में उमकी श्रीलें दहर दहर कर रही हैं। श्रीलें तरमना = देखने के लिये प्राकृत होता। दर्शन के लिये दुर्ग होना, जैसे—तुम्हारे देखने के लिये श्रीलें तरम गई। श्रीलें तररना = फोड़ने श्रीलें निकाल कर देखना। तोष की दृष्टि न देखना। उ०—गुनि तछिमन बिहूँ बट्टर नयन तरे राम।—मानन, १।२७५। श्रील तले न आना = कुछ भी न जाना। उ०—देख देखि मन बानक दोऊ। प्रव त श्रील न आना।—मानन, १।२७५। श्रीलों तले न आना = कुछ न समझना। मुग्ध नमनना, जैसे—पूछ विद्या तो अपनी श्रीलें तले जाना है जो गुप्तारी बात मानेगा? श्रील दबाना = पतक बिगड़ना। श्रील भचकाना; जैसे, (क) प्रव जरा श्रील दबाना मानता है। प्रव प्रभुने प्राय की ओर श्रील दबाव मन की बहुरुरत बुरा गई। श्रील दिशास = फोड़ने श्रीलें निकालकर देखना। फोड़ की दृष्टि न देखना। फोड़ जाना। उ०—(क) जार्न प्रव मो विप्रवर श्रील देखावति दाई।—मानन, १।६६। (ग) गुनि नरोप मुनापहु प्राए। प्रव श्रील निश्रु श्रील देखाए।—मानन, १।२६३। (ग) नादाज क बा-बाई दबा दिशा-वत श्रील।—गुप्ती ग्र०, पृ ११४। श्रील सोड़े में डरना = दे० 'श्रील नाक में डरना'। श्रीलों दुगना = श्रील में पीडा होना। ओलते देखने = (१) श्रीलों के सामने। देखने हुए। जानबूझकर, जैसे—(क) श्रील देखते तो हम ऐसा अन्वय नहीं होने देंगे।—(ग) श्रीलों देखने मांगी नहीं निगनी जानी। (२) देखते देखते। रोते ही श्रीलों में, जैसे—श्रीलों देखते इतना बटा। पर निश्रु गया। श्रीलों देना = श्रीलों से देया हुआ। अपना देना। उ०—जब में अपने जल में रहे। श्रीलों देया गगने कहे।—(पहिली, वाचना), जैसे—यह तो हनानी श्रीलों देरी बात है। श्रीलें दीडाना = नजर दीडाना। डीठ पमाना। चारों ओर दृष्टि फेरना। इधर उधर देखना, जैसे—मैंने इधर उधर बसत श्रीलें दीडार पर कही कुछ न देख पडा। श्रील न उठना = (१) लज्जा से दृष्टि नीची रहना। (२) एहनान से रूखा रहना। (३) दे० 'श्रील न प्राना'। श्रील न उठाना = (१) नजर न उठाना। सामने न देखना। बराबर न ताकना। (२) लज्जा में दृष्टि नीची किए रहना। (३) किसी काम में बराबर लगे रहना, जैसे—वह सबेरे में जो गीने बंठा तो दिन भर श्रील न उठाई। श्रील न गोलना = (१) श्रील पद रखना। (२) मुस्त पडा रहना। वनुध रहना। गाफिन रहना, जैसे—प्राज चार दिन हुए पच्चे ने 'श्रील न खोरी। बादल का श्रील न खोलना = बादल का घिरा रहना। आराण का बादलो से ढगा रहना। मेह का श्रील न गोलना = पानी का न थमना। वर्षा का न रचना। श्रील न ठहरना = चमक या द्रुत गति के कारण दृष्टि न जमना। जैसे—(क) वह ऐसा बडकीला कपडा है कि श्रील नहीं ठहरती। (घ) पहिया इननी तेजी से घूमता था कि उसपर श्रील नहीं ठहरती थी। श्रील न पसीजना = श्रील में श्रील न आना। (एक) श्रील न भाता = बिनकुन

अच्छा न लगना, जैसे,—ये बातें हमें एक आँख नहीं भाती । आँख नाक से डरना = ईश्वर में डरना जो पापियों को अशा और नकटा कर देता है । पाप में डरना जिसमें आँख नाक जाती रहती है, जैसे—माई, मुझ दीन से न डर तो अपनी आँख नाक से तो डर । आँख निकालना = आँख दिखाना । क्रोध की दृष्टि में देखना, जैसे,—हमारे क्या आँख निकालते हो, जिसने तुम्हें कुछ कहा हो उसके पास जाओ ।—(२) आँख के डेले को छुरी से काटकर अलग कर देना । आँख फोड़ना, जैसे—उम दुष्ट सरदार ने शाह आनम की आँख निकाल ली । आँख नीची करना = दृष्टि नीची करना । सामने न ताकना जैसे—वहाँ आँख नीची किए चला जा रहा था । (२) लज्जा या सकोच से बराबर नजर न करना । दृष्टि न मिलाना । जैसे,—कब तक आँखें नीची किए रहोगे ? जो पूछते हैं, उसका उत्तर दो । आँख नीची होना = मिर नीचा होना । लज्जा उत्पन्न होना । अप्रतिष्ठा होना, जैसे,—कोई ऐसा काम न करना चाहिए जिससे हर आदमी के सामने आँखें नीची हो । आँख नीली पीली करना = रूढ़न होना करना । तेवर बदलना । आँख दिखाना । आँख पटपटा जाना = (१) आँख फूट जाना (स्त्रियाँ गाली देने में प्रयुक्त होती हैं) । (२) उत्पन्न भूया प्यास से व्याकुल होना । आँख पट्टम होना = आँख फूट जाना । आँख पडना = (१) दृष्टि पडना । नजर पडना, जैसे,—मयोग से हमारी आँख उमपर पड गई नहीं तो वह विष्कुन पास आ जाता । (२) ध्यान जाना । कृपादृष्टि होना, जैसे,—गरीबों पर किसी की आँख नहीं पडती । (३) चाह की दृष्टि होना । पाने की इच्छा होना, जैसे,—उनकी इस कितान पर बार बार आँख पड रही है । (४) कुदृष्टि पडना । ध्यान जाना, जैसे,—जिम वस्तु पर तुम्हारी आँख पडे, भला वह रह जाय ? आँख पथराना = पलक का नियमित गति से न गिरना और पुतली की गति का मारा जाना । नेत्र स्तब्ध होना (यह मरने का पूर्वक्षण है), जैसे,—(क) अब उनकी आँखें पथरा गई हैं, और बोली भी बंद हो गई है ।—(ख) तुम्हारी राह देखते देखते आँसे पथरा गई । आँखों पर आइए या बँडिए = आदर के साथ आइए । सादर पधारिए । (जब कोई बहुत प्यारा या बडा आता है या आने के लिये कहता है, तब लोग उसे ऐसा कहते हैं) । आँखों पर ठिकरी रख लेना = (१) जान बूझकर अनजान बनना । (२) रुखाई करना । बेमुरीवती करना । शील न करना । (३) गुण न मानना । उपकार न मानना । कृतघ्नता करना । (४) लज्जा खो देना । निर्लज्ज होना । बेहया होना । आँखों में पट्टी बाँधना = (१) दोनों आँखों के ऊपर कपडा ले जाकर सिरक पीछे बाँधना जिससे कुछ दिखाई न पडे । आँखों को ढकना । (२) आँख बंद करना । ध्यान न देना, जैसे—तुमने खूब आँखों पर पट्टी बाँध ली है कि अपना भला बुरा नहीं मूझना । आँखों पर परदा पडना = अज्ञान का अधकार होना । प्रमाद होना । भ्रम होना, जैसे,—तुम्हारी आँखों पर परदा पडा है, सच्ची बात क्यों मन में धँसेगी । (२) विचार का जाना रहना । विवेक का दूर होना, जैसे,—क्रोध के समय मनुष्य की आँखों पर परदा पड जाता है ।

(३) कमजोरी से आँखों के सामने अँधेरा छाना, जैसे—मू प्यास के मारे हमारी आँखों पर परदा पड गया है । आँखों पलकों का बोझ नहीं होता = (१) अपनी चीज का रखना भा नहीं मालूम होता (२) अपने कुदृष्टियों को खिलाना पना नहीं खलता । (३) काम की चीज मँही नही मातूम होती आँखों पर विठाव = बहुत आदर सत्कार करना । आवगमन प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना, जैसे—वह हमारे घर तो हम उन्हें आँखों पर विठावेंगे । आँखों पर रखना = बहुत करके रखना । बहुत आराम से रखना, जैसे,—आँखें निश्चिन्त रहिए, मैं उन्हें अपनी आँखों पर रखूँगा । आँखें पसारना फलाना = दूर तक दृष्टि बढ़ाकर देखना । नजर दौडाना । आँख फटना = चोट या पीडा से यह मानूम पडना कि आँखें निप पडती हैं, जैसे,—सिर के र्द से आँखें फटी पडती हैं । (२) आँखें बढना । आँखों की फाँक का फँकना । उ०—दौरत की ही में थकिए, थहरें पग, आवन जौध मटी सी । होत घरी थ छीन खी कटि, और है पाव मुवास मटी सी । हे रघुनाथ विनोदिके को तुम्हें आई न खेन सोच पटी सी । मैं न जानति हान कहा यह काहे ते जाति है आँखि फटी सी । रघुनाथ (अ० ६०) । आँख फडकना = आँख की पलक का बार बार हिलना । वायु के संचार से आँख की पलक का बार बार पडना । (वाहिनी या वाई आँख के पडने से लोग यात्री शु अशुभ का अनुमान करते हैं) । उ० सुनु मथरा वात फुर तोर दहिन आँखि नित फरकड मोरी ।—मानस, २।२० । आँख फाड कर देखना = खूब आँखें खोचकर देखना । उत्सुकता देखना । जैसे उ० र क्या है जो आँख फाडफाड कर देख रहे ह आँखें फिर जाना = (१) नजर बदल जाना । पहले की कृपा या स्नेह दृष्टि न रहना । बेमुरीवती आ जाना, जैसे जबसे वे हम लोगों के बीच से गए, तबसे तो उनकी आँ ही फिर गई ।—(२) चित्त में विरोध उत्पन्न हो जाना । मे बुराई आना । चित्त में प्रतिकूलता आना, जैसे,—उस आँखें फिर गई वह बुराई करने से नही चूकेगा । आँ फूटना = (१) आँख का जाना रहना । आँख की ज्योति नष्ट होना । (२) आँख रहते कुछ दिखाई न पडना, जैसे तुम्हारी क्या आँखें फूटी हैं, जो सामने की वस्तु नहीं दिखा देती । (आँखें एक बहुत प्यारी वस्तु है इसी में स्त्रियाँ प्र, इस प्रकार की शपथ खाती हैं कि मेरी आँखें फूट जायँ, मैंने ऐसा कहा हो) (३) बुरा लगना । कुढ़न होना । उ० (क) उसको देखने से हमारी आँखें फूटती हैं । (ख) किसी सुखी देखकर तुम्हारी आँखें क्यों फटती हैं । आँख फेर । (१) निगाह फेरना । नजर बदलना । पहले की सी कृपा स्नेहदृष्टि न रखना । मित्रता तोडना । (२) विरुद्ध होना प्रतिकूल होना । वाम होना । (३) अनुकूल होना । कृ करना । उ०—फेर दी आँख जी आया जैसे रसाल बीराया —गीतगुज, पृ० ४० । आँख फलाना = आश्चर्य से स्तब्ध हँना । आश्चर्यचकित होना । आँख फलाना = दृष्टि फलाना । दी पसारना । दूर तक देखना । नजर दौडाना । आँख फोडना (१) आँखों को नष्ट करना । आँखों की ज्योति का नाश करना (२) कोई काम ऐसा करना जिसमें आँखों पर जोर पडे

कोई ऐसा काम करना, जिसमें देर तक दृष्टि गहानी पड़े, जैसे लिखना पढ़ना, सीना, पिरोना, जैसे—(क) घटो बैठकर आँखें फोड़ी हैं, तब इतना सीया गया है (ख) घटो चूल्हे के आगे बैठकर आँखें फोड़ी हैं तब रसोई बनी है। आँख फोरना = दे० 'आँख फोड़ना'। उ०—सुरपति मुत जानै बल थोरा। राखा जियन आँखि गहि फोरा।—मानस, ३।३५। आँख बंद करके कोई काम करना, आँख मूँद कर कोई काम करना = (१) बिना पूछे पाछे कोई काम करना। बिना जाँच परताल किए कोई काम करना। बिना कुछ सोचे विचारे कोई काम करना। बिना आगा पीछा किए कोई काम करना, जैसे—(क) आँख मूँदकर दवा पी जाओ। (ख) जितना रुखा वे माँगते गए हम उनको आँख बंद करके देते गए। (२) दूसरी बातों की ओर ध्यान न देकर अपना काम करना। और बातों की परवाह न करके अपना नियत कर्तव्य करना। किसी के कुछ कहने-सुनने की परवाह न करके अपना काम करना, जैसे—तुम आँख मूँदकर अपना काम किए चलो, लोगों को बकने दो। आँख बंद होना = (१) आँख झपकना। पलक गिरना, जैसे—रुहो तो वह पाँच मिनट तक ताकता रह जाय, आँख बंद न करे। (२) मृत्यु होना। मरण होना, जैसे—जिम दिन इसके बाप की आँखें बंद होगी, वह अन्न को तरमेगा। आँख बचाकर कोई काम करना = इस रीति से कोई काम करना कि दूसरे न देख पाएँ। छिपाकर कोई काम करना, जैसे—बुगई भी करते तो जरा आँख बचाकर। आँख बचाना = नजर बचाना। सामना न करना। कतराना, जैसे—रुखा लेने को ले किया, अब आँख बचाते फिरते हो। आँख बचे का चाँटा = लडको का एक खेल जिसमें यह बाजी लगती है कि जिसे असावधान देखें, उसे चाँटा लगावें। आँख बदल जाना = पहले की सी कृपादृष्टि या स्नेहदृष्टि न रह जाना। पहले का सा व्यवहार न रह जाना नजर बदल जाना। मिजाज बदल जाना। बतवि मे रूखापन आ जाना, जैसे—(क) अब उनकी आँखें बदल गई हैं, क्यों हम लोगों की कोई बात सुनेंगे।—(ख) गौं निकल गई, आँख बदल गई।—(शब्द०)। (२) आकृति पर क्रोध दिखाई देना। क्रोध की दृष्टि होना। रिस चढ़ना, जैसे—थोड़े ही मे उनकी आँखें बदल जाती हैं। आँख बनवाना = आँख का जाला कटवाना = आँख का माडा निकलवाना। आँख की चिकित्सा करना, जैसे—जरा आँख बनवा आओ तो कपडा खरीदना। आँख बराबर करना = (१) आँख मिथाना। सामने ताकना, जैसे—वह चोर लडका अब मित्रने पर आँख बराबर नहीं करता। (२) मुँह पर बातचीत करना। सामने डटकर बातचीत करना। डिंवाई करना, जैसे—उमकी क्या हिम्मत है कि आँख बराबर कर सके। आँख बराबर होना = दृष्टि सामने होना। नजर से नजर मिथाना, जैसे—जबमे उसने वह खोटा काम किया तबसे मित्रने पर कभी उमकी आँख बराबर नहीं होनी। आँख बहना = (१) आँसू बहना। (२) आँख की बीनाई या रोशनी जाती रहना। आँख बहाना = आँसू बहाना। रोना। आँख बिगड़ना = (१) दृष्टि कम होना। नेत्र की ज्योति घटना। आँख में पानी उतरना या जाना

इत्यादि पड़ना। (२) आँख उन्नतना। आँख पथगाना, जैसे—उनकी आँखें बिगड़ गई हैं और ओंभी भी बंद हो गई है'। आँखें बिछना = मध्य स्वागत-गहकार होना। आँख बिछाना = प्रेम में स्वागत करना, जैसे—ये यदि मेरे घर पर उतरे, तो मैं अपनी आँखें बिछाऊँ। (२) प्रेमपूर्वक प्रतीक्षा करना। बाट जोहना। टकटकी बाँधकर राह देखना, जैसे—हम तो कब से आँख बिछाए बैठे हैं, वे आँखें नो। आँख बंधना = (१) आँख का भीतर की ओर बँप जाना। चोट या रोग में आँख का डेटा गड़ जाना (२) आँख फूटना। आँख भर आना = आँख में आँसू आना। आँख भर देवना = खूब अच्छी तरह देखना। तृप्त होकर देखना। अघाकर देखना। इच्छा भर देखना। उ०—गाज पर यहि ताज पै री अँखियाँ भरि देखन हूँ नहि पाई।—(शब्द०), जैसे—ननिकु वे यहाँ आ जाते, हम उन्हें आँख भर देना तो लेने। आँख भर लाना = आँसू भर लाना। आँख डडडाना। रोवाना हो जाना। आँख भी ठेड़ी करना = आँख दिखाना। क्रोध की दृष्टि में देखना। तेवर बदलना, जैसे—हमपर क्या आँख भी टेडी करने हो, जिमने तुम्हारी चीज ली हो उसके पाग जाओ। आँख मचकाना = (१) आँख छोटना और फिर बंद करना। पलको को पिकोडकर गिराना। (२) इगारा करना। मैन मारना, जैसे—तुमने आँख मचका दी, इसी में वह लडक गया। आँख मलना = सोकर उठने पर आँखों को जल्दी खुलने के लिये हाथ से धीरे धीरे रगड़ना, जैसे—उतना दिन चढ़ गया, तुम अभी चारपाई पर बैठे आँख मलते हो। आँख मारना = (१) इगारा करना। सनकारना। पलक मारना। आँख मटकाना (२) रौंदा से निषेध करना। इगारे में मना करना, जैसे—वह तो रुखे दे रहा था, पर उन्होंने आँख मार दी। आँख मिलना = साक्षात्कार होना। देखा देगी होना। नजर ने नजर मिलना। आँख मिलाना = (१) आँख सामने करना। बराबर ताकना। नजर मिथाना। (२) सामने आना। समुचा होना। मुँह दिखाना, जैसे—पव इतनी बेईमानी करके वह हमसे क्या आँख मिनावेगा। आँख मुँदना = आँख बंद होना। आँख मूँदना = (१) आँख बंद करना। पलक गिराना। (२) मरना, जैसे—सब कुछ उनके दम तल है, जिए दिन वे आँख मूँदेंगे, सब जहाँ का तहाँ हो जायगा। (३) ध्यान न देना, जैसे—उन्हे जो जी में आवे करने दो, तुम आँख मूँद लो, उ०—मूँदे आँखि कतहूँ कोउ नाही।—मानस, १।२८०। आँखों में = दृष्टि में। नजर में। परछा में। अनुमान में, जैसे—(क) हमारी आँखों में तो इसका दाम अधिक है। (ख) हमारी आँखों में यह जैव गई है। आँख में आँख डालना = (१) आँख में आँख मिथाना। बराबर ताकना। (२) डिंवाई में ताकना, जैसे—ठाँठा आँख में आँख डालता है, अपना काम नहीं देखता। आँख में काजल घुलना = काजल का आँख में खूब लगना। आँखों में खटकना = नजरों में बुरा लगना। अच्छा न लगना, जैसे—उनका रहना हमारी आँखों में छटक रहा है। आँखों में खून उतरना = क्रोध में आँख लाल होना। रिस चढ़ना। आँख में गड़ना = (१) आँख में खटकना। बुरा लगना। (२) मन

मे वपना । जँवना । पसद आना । ध्यान पर चढ़ना, जैसे,— वह वस्तु तो तुम्हारी भौख मे गडी हुई है । उ०—जाहु मने ही, कान्हू, दान प्रँग अग को माँगत । हमरो योवन रूा भौख इनके गडि लागत ।—सूर (शब्द०) । किसी की भौखों मे घर करना = (१) भौख मे बसना । हृदय मे समाना । ध्यान पर चढ़ना । (२) किसी को मोहना या मोहित करना, जैसे—पहली ही भेंट मे उसने राजा की भौखो मे घर कर लिया । भौखों मे चढ़ना = नजर मे जँवना । पसद आना । भौखों मे चरवी छाना = (१) घमड, बेरबारी या अमावधानी से नामने की चीज न दिखाई देना । प्रमाद से किसी वस्तु की ओर ध्यान न जाना, जैसे,—देखते नहीं वह सामने किताव रखी है, भौखो मे चरवी छाई है ? (२) मदाग्र होना । गर्व मे किसी की ओर ध्यान न देना । अभिमान मे चूर होना, जैसे,—ग्राजकन उनकी भौखो मे चरवी छाई है, वयो किसी को पहचानेंगे । भौख मे चुभना = (१) भौख मे घँसना । (२) भौख मे खटकना । नजरो मे बुरा लगना । (३) दृष्टि मे जँवना । ध्यान पर चढ़ना । पसद आना, जैसे,—तुम्हारी घडी हमारी भौखो मे चुमी हुई है, हम उसे बिना निए न छोडेगे । भौखो मे चुभना = (१) नजर मे खटकना । बुरा लगना । (२) भौखो मे जँवना । पसद आना । (३) भौखो पर गहरा प्रभाव डालना, जैसे,—उसके दुपट्टे का रंग तो भौखो मे चुमा जाता है । भौख मे चोय आना = चोट आदि लगने से भौख मे नवाई आना । भौखो मे झाँई पडना = भौखो का थक जाना । उ०—ग्रीवाडियाँ भौखी परी, पय निहारि निहारि । जीमडियाँ छाला परधो, राम पुकारि पुकारि ।—कबीर (शब्द०) । भौखों मे देसू फूलना, भौखों मे तीसी फूलना, भौखो मे सरसो फूलना = चारो ओर एक ही रंग दिखाई पडना । जो बात जी मे ममाई हुई है, उसी का चारो ओर दिखाई पडना । जो बात ध्यान मे चढो है, चारो ओर वही सूझना । (२) नशा होना । तरंग उठना, जैसे—भोग पीने ही भौखो मे सरसो फूलने लगी । (३) घमड होना । गर्व से किसी को न देना । भौखों मे तरुला या टेकुया चुभना = भौख फोडना । ( स्त्रियाँ जब किसी पर उसकी दृष्टि की वजह से बहुत कुपित होती हैं, तब कहती हैं कि 'जी चाहना है कि इसकी भौखो मे टेकुया चुमा दूँ' ) । भौखो मे तराश आना = भौखों मे ठडक आना । तबीयत का ताजी होना । भौखो मे घूल देना, भौखो मे घूल डालना = मरसर घोखा देना । भ्रम मे डानना, जैसे,—तमी तुम किताव ले गए हो, अब हमारी भौखो मे घूल डालते हो । उ०—(क) हरि की माया कोउ न जानै भौखि घूरि सी दीनही । लान दिगनि की मारी ताको पीन उडनियों कीनी ।—सूर (शब्द०) । (ख) सोइ अब अमृत पिबति है मुरली, मवहिनि के मिर नौखि । नियो छँडाइ मकन सुनि सूरज वैनु घूरि दै भौखि ।—सूर (शब्द०) । भौखो मे नाचना = दे० भौखो मे फिरना । भौखो मे नून देना = भौख फोडना । भौखों मे नून राई = भौखें फूटें । ( स्त्रियाँ उन लोगों के लिये कहती

हैं जो उनके वचनो को नजर लगाने हैं । किसी वचन की नजर लगने का मदेह होने पर वे उसका नाम लेकर और वचन के चारो ओर राई नमक घुमाकर आग मे छोड ती हैं ) । भौखो मे पालना = बडे मुखा चैन मे पालना । बडे नाड प्यार से पालन पोषण करना, जैसे,—जो लडके भौखो मे पाले गए उन ही यह दशा हो रही है । भौखो मे फिरना = ध्यान पर चढ़ना । स्मृति मे बना रहना, जैसे—उसकी सूरत मेरी भौखो के सामने फिर रही है । भौखो मे वपना = ध्यान पर चढ़ना । हृदय मे समाना । किसी वस्तु का इतना प्रिय लगना कि उसका ध्यान हर समय चित्त मे बना रहे, जैसे,—उस ही मूर्ति तुम्हारी भौखो मे बस गई है । भौखो मे बँठना = (१) नजर मे गडना । पसद आना । (२) भौखो पर गहरा प्रभाव डालना । भौखो मे घँसना (चटकीले रंग के विषय मे प्राय कहने हैं कि 'इस कपडे का रंग तो भौखो मे बँठा जाता है ।') । भौखो मे भग घुटना = भौख पर भोग का खूब नशा छाना । गहागड नशा होना । भौखो मे रक्षना = (१) लाड प्यार से रक्षना । प्रेम से रक्षना । मुखा से रक्षना, जैसे,—प्राप निश्चित रहिए मैं इस लडके को भौखो मे रखूँगा । उ०—भौखान मे सखि राखिवे जोग इन्है किमि कै बन-वास दियो है ।—तुलसी ग्र०, पृ० १६६ । (२) सावधानी से रक्षना । यत्न और रक्षापूर्वक रक्षना । हिक्रान मे रक्षना । जैसे,—मैं इस चीज को अपनी भौखो मे रखूँगा, कहीं इधर उधर न होने पाएगी । भौखो मे रात कटना = किसी कष्ट, बिता या व्यग्रता से सारी रात जागने बीतना । सारी रात नीद न पडना । विवोग में तडाना । भौखो मे रात काटना = किसी कष्ट, बिता या व्यग्रता के कारण जागकर रात बिताना । किसी कष्ट, बिता या व्यग्रता के कारण रात भर जागना, जैसे,—बचने की बीमारी से कन भौखों मे रात काटी । भौखो मे शीन होना = बिन मे होना होता । दिन में मुरीबन होना, जैसे,—उसकी भौखो मे शीन नहीं है, जैसे होगा, वैसे अपना रस लेगा । भौखो मे मरना = हृदय मे वपना । ध्यान पर चढ़ना । बिन मे स्वरण बना रहना, जैसे,—दमयंती की भौखों मे तो नन सनाए थे, उनो समा मे प्रौर किसी राजा की ओर देखा तक नहीं । भौख मोडना = दे० 'भौख फेरना' । भौख रक्षना = (१) नजर रक्षना । चौकसी करना, जैसे,—देखना, इस लडके पर मी भौख रक्षना कहीं भागने न पावे ।—(२) चाह रक्षना । इच्छा रक्षना, जैसे,—हम भी उस वस्तु पर भौख रखने हैं । (३) आश्रय रक्षना । भनाई की आशा रक्षना, जैसे,—उस कशेरुहदय से कोई क्या भौख रखे । भौख लगना = नीद लगना । झकी आना । सोना । उ०—जब जब वै सुवि कीजिये, तब तब सब सुधि जाहि । भौखनु भौखि लगी रहे, भौखे लागति नाहि ।—विहारी र०, दो० ६२, जैसे,—भौख लगती ही थी कि तुमने जगा दिया । (२) प्रीति होना । दिन लगना । उ०—(क) धार लगे तरवार लगे पर काहू से काहू की भौख नगै ना ।—(शब्द०) । (ख) ना खिन टरत टारे, भौखि न लगत पल, भौखान लगी प्रपामनुदर सनेने से ।—देव (शब्द०) । (३) टकटकी लगना । दृष्टि जमना, जैसे,—हमारी

प्रांखें उसी ओर तो लगी हैं, पर वे कही आते दिखाई नहीं देते। उ०—पलक प्रांख तेहि मारग, लागी दुनहुँ रहाहि। कोउ न सदेशी आवही, तेहिक सदेस कहाहि।—जायसी (शब्द०)। प्रांखो लगना=प्रांखो मे लगना। ऊपर पडना। ऊपर आना। शरीर पर बीतना। उ०—भारज रज लागे मोरी श्रैखियनि रोग दोष जजाल।—सूर०, १०। १३८। प्रांख लगाना=(१) टकटकी बांधकर देखाना। प्रीति लगाना। नेह जोडना। प्रांख लगी=(१) जिसमे प्रांख लगी हो। प्रेमिका। (२) सुरतिन। उडरी। प्रांख लडना=(१) देखा देखा होना। प्रांख मिनना। घूराघूरी होना। नजर-वाजी होना। (२) प्रेम होना। प्रीति होना, जैसे,—अब तो प्रांखें लड गई हैं, जो होना होगा सो होगा। प्रांख लडाना=प्रांख मिलाना। घूरना। नजरवाजी करना। (लडको का यह एक खेल भी है जिसमे वे एक दूसरे को टकटकी बांधकर ताकते हैं। जिसकी पक गिर जाती है, उसकी हार मानी जाती है)। प्रांख ललचाना=देखने की प्रवृत्ति इच्छा होना। प्रांख लाल करना=प्रांख दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखाना। क्रोध करना। प्रांख वाला=(१) जिमे प्रांख हो। जो देख सकता हो, जैसे,—माई, हम अवे सही, तुम तो प्रांखवाले हो देखाकर चलो। (२) परछावाला। पहचाननेवाला। जानकार। चतुर, जैसे,—तुम तो प्रांखवाले हो तुम्हे कोई क्या ठगेगा। प्रांख सामने न करना=सामने न ताकना। नजर न मिलाना। दृष्टि बराबर न करना (लज्जा और भय से प्रायः ऐसा होता है), जैसे,—जब से उसने मेरी पुस्तक चुराई कभी प्रांख सामने न की। (२) सामने ताकने या बाद प्रतिवाद करने का साहस न करना। मुँह पर बातचीत करने की हिम्मत न करना, जैसे,—भला उसकी मजाल है कि प्रांख सामने कर सके। प्रांख सामने न होना=लज्जा से दृष्टि बराबर न होना। शर्म से नजर न मिलना, जैसे,—उस दिन से फिर उसकी प्रांख सामने न हुई। प्रांखो सुख कलेजे ठडक=पूरी प्रसन्नता। ऐन खुशी। (जब किसी बात को लोग प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृत करते हैं तब यह वाक्य बोलते हैं)। प्रांख सेंकना=(१) दर्शन का सुखा उठाना। नेत्रानंद लेना। (२) सुंदर रूप देखाना। नज्जारा करना। उ०—जरा प्रांखें सेक आइए, मरवी उड रही होगी—रसीली नयनोवालियो ने फदा मारा।—फिसाना०, भा०, १, पृ० ३। प्रांख से प्रांख मिलाना=(१) सामने ताकना। दृष्टि बराबर करना। (२) नजर नडाना। प्रांखो से उतरना=नजरो से गिरना। दृष्टि मे नीचा ठहरना, जैसे—वह अपनी इन्ही चालो से सबकी प्रांखो से उतर गया। प्रांखो से उतारना या उतार देना=(१) किसी वस्तु या व्यक्ति को जान बूझकर भुला देना। (२) किसी वस्तु या व्यक्ति का मूल्य कम कर देना। प्रांखो से ओझल होना=नजर से गायब होना। सामने से दूर होना। प्रांखों से काम करना=इशारो से काम निकालना। प्रांखो से कोई काम करना=बहुत प्रेम और भक्ति से कोई काम करना, जैसे,—तुम मुझे कोई काम बतलाओ तो, मैं प्रांखों से करने के लिये तैयार हूँ। प्रांखो से गिरना=नजरो से गिरना। दृष्टि मे तुच्छ ठहरना, जैसे,—अपनी इसी चाल से तुम सबकी प्रांखो से गिर गए। प्रांख

से भी न देखना=ध्यान भी न देना। तुच्छ समझना, जैसे,—उससे बातचीत करने की कोन कहे मैं तो उमे प्रांखो से भी न देखूँ। प्रांखो से लगाकर रखना=बहुत प्रिय करके रखना। बहुत आदर-मत्कार मे रखना। प्रांखों से लगाना=प्यार करना। प्रेम मे लेना, जैसे,—उमने अपनी प्रिया के पत्र को प्रांखो से लगा लिया। प्रांख होना=परछा होना। पहचान होना। शिनाहन होना। जैसे,—तुम्हे कुछ प्रांख भी है कि चीजो के दाम ही लगाना जानते हो। (२) नजर गडाना। इच्छा होना। चाह होना, जैसे,—उम तमवीर पर हमारी बहुत दिनों मे प्रांख है। (३) जान होना। विवेक होना। उ०—देखो राम कंगो कहि कंद किए किए हिये, हृजिये कृपान हनुमान जू दयाल हो। ताही नमै फैल गए थोटी कोटि कपि नए लोचं तनु छेचं चीर मयो यों विहाल हो। गई तब प्रांखो दुख मागर वो चारों, अब वही हमें राखी भायों चारों धन मान हो।।—प्रिया० (शब्द०)।

प्रांख—संज्ञा पुं० [न० अक्षि, प्रा० अक्षि प० अवस्था] प्रांख के आकार का छेद या चिह्न, जैसे,—(१) प्रांख के ऊपर के नज्जल के समान दाग। (२) ईटा वी गोठ पर की टोठी जिनमे से पत्तियाँ निकलती हैं। (३) अनघाग के ऊपर के चिह्न या दाग। (४) मूँद का छेद।

प्रांखडी—संज्ञा पुं० [हि० प्रांख+डी (प्रत्य०)] घोंडा। उ०—(क) प्रांखडियो भोई परी पव निहारि निहारि, जीमडिया छाना परघो, राम पुकारि पुकारि।—कवीर (शब्द०)। (ग) मुझे पुकारे ताना मारे, भर आएँ प्रांखडियो।—ठंडा०, पृ० २०।

प्रांखफोडटिड्डा—संज्ञा पुं० [स० आक=मदार+हि० फोडना] हरे रंग का एक फीड़ा या फर्तिया जो प्रायः मदार के पेड पर रहता और उसकी पत्तियाँ छाता है। होता तो है यह चंगली के ही बराबर, पर इसकी मूँछें बड़ी लंबी होती हैं।

प्रांखफोडटिड्डा—वि० [हि० प्रांख+फोड+टिड्डा] कृतघ्न। बेमु-रोवत। ईप्सालु।

प्रांखफोडतोता—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'प्रांखफोड टिड्डा'। उ०—किमलिये प्रांख यो वचाते हो, मैं नहीं प्रांखफोड तोता हूँ।—चोखे०, पृ० ५०।

प्रांखफोरवा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'प्रांखफोड टिड्डा'। उ०—कठ-फोरवा प्रांखफोरवा को प्रांख मूँद निगल जाता है।—प्रेम-घन०, भा० २, पृ० २१।

प्रांखमिचौनी—संज्ञा स्त्री० [हि० प्रांख+√मिच+औनी(प्रत्य०)] दे० 'प्रांखमिचौली'। उ०—छाया की प्रांखमिचौनी मेघो का मतवालापन।—यामा, पृ० १६।

प्रांखमिचौली—संज्ञा स्त्री० [हि० प्रांख+√मिच+औली प्रत्य०] लडको का एक खेल। लडको द्वारा प्रांख मूँदकर छिपने और खोजने का एक खेल।

विशेष—इस खेल मे एक लडका किसी दूसरे लडके की प्रांख मूँदकर बैठता है। इस बीच और लडके छिप जाते हैं। तब उम लडके की प्रांखो खोल दी जाती है और वह लडको को छूने के लिये ढूँढता फिरता है। जिस लडके को वह छू पाता है, वह चोर हो जाता है। यदि वह किसी लडके को नहीं छू



पाता और सब लडके एक नियत स्थान को चूम लेते हैं, तो फिर वही लडका चोर बनाया जाता है। यदि सात बार वही लडका चोर हुआ तो फिर उसकी टांगे बांधी जाती हैं और उसके चारों ओर एक कुडल या गोडले खींच दिया जाता है। लडके वारी वारी से उस गोडले के भीतर पैर रखते हैं और उस लडके को 'बुडिया' 'बुडिया' कहकर चिढ़ाकर भागते हैं। यह चोर या बुडिया बना हुआ लडका मडल के भीतर ज़िमको छू पाता है, वह चोर हो जाता है।

प्रांखमिहीचनी ७१—सच्चा खीं [हिं० आँख + मिहीचनी = मीचनी] दे० 'प्रांखमिचोली'। उ०—प्रांखमिहीचनी खेलत मोहि दुह विधि सोध कहूँ नटि जाइ न।—देव ग्र०, पृ० ११।

प्रांखमीचली ७२—सच्चा खीं [हिं० आँख + √मीच + ली (प्रत्य०)] दे० 'प्रांखमिचोली'। उ०—कहुँ खेलत मिल ग्वाल मडली प्रांखमीचली खेल। चढीचढा को खेल सखन मे खेलत हैं रस रेल।—मूर (शब्द०)।

प्रांखमुचाई, प्रांखमुदाई—सच्चा खीं [हिं० आँख + √मीच + आई (प्रत्य०) तथा आँख + √मूद + आई प्रत्य०] दे० 'प्रांखमिचोली'। प्रांखा—सच्चा पुं [हिं०] दे० 'आखा'।

प्रांखि ७३—सच्चा खीं [हिं०] दे० 'आंख'। उ०—मो वह प्रांखि मीडि मीडि कै फिर फिर कै देखन लाग्यो।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० ६।

प्रांखी ७४—सच्चा खीं [हिं०] दे० 'आंख'। उ०—प्रांखी मद्धे पाखी चमकै पांखो मद्धे हारा।—कवीर श०, भा०, १, पृ० ५५।

प्रांग ७५—सच्चा पुं [सं० अङ्ग] १ अंग। उ०—(क) वानिनि चली सेंदुर दिये मांगा। कयविनि चली समाइ न आंगा।—जायसी ग्र०, पृ० ८१। (ख) कहि पठई जियभावती, पिय आवन की बात। फूली आंगन में फिरै, आंग न आंग समात।—विहारी २०, दो० २५४। २ कुच। स्तन। उ०—कहै पद्माकर कयो आंग न समात आंगी लागी काह तोहि जागी उर मे उचाई है।—पद्माकर ग्र०, पृ० ८४। ३ चराई जो प्रति चोपाये पर ली जाती है।

प्रांगन—सच्चा पुं [सं० अङ्गण] घर के भीतर का सहन। घर के भीतर का वह चौखूटा स्थान जिसके चारों ओर कोठरियाँ और वरामदे हो। चौक। अजिर। उ०—प्रांगन खेलै नद के नदा।—सूर०, १०। ११७।

प्रांगल—सच्चा खीं [सं० अंगल] अंगरी। अंगला। उ०—उब वा वाई ने किवाड दै कै आंगल मारि दई।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० ३४१।

प्रांगी ७६—सच्चा खीं [सं० अङ्गिका प्रा० अंगिआ] अंगिया। उ०—उठि आपुही आसन दै रसखान सो लाल सो आंगी कढावति है।—मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १७४।

प्रांगी ७७—सच्चा खीं [हिं०] दे० 'आंगी'।

प्रांगुर ७८—सच्चा पुं [हिं०] पुं० 'अंगुव'। उ०—द्वादस आंगुर पवन चलतु है नाहि सिमटि घर आना।—जग० वानी, भा० २, पृ० ६५।

प्रांगुरी ७९—सच्चा खीं [सं० अङ्गुली] उँगली। उ०—गयी अचानक अंगुरी छाती छलु छूवाइ।—विहारी २०, दो० ३८६।

मुहा०—आंगुरी फोरना = उँगलियों चटकाना। उ०—विर्मल अंगोछी पोछि भूपन सुधारि सिर आंगुरिन फोरि त्रिन तोरि तोरि डारती।—मिखारी० ग्र०, भा० २ पृ० १५७।

प्रांच—सच्चा खीं [मं० अचिं = आग की लपट, पा० अचिच] १. गरमी। ताप, जैसे,—(क) आग और दूर हटा दी, प्रांच लगती है। (ख) कोयले की आंच पर भोजन अच्छा पकता है। उ०—घोरी धेनु दुहाइ छानि पय मधुर प्रांचि मे ओटि सिरायो।—सूर०, १०। १६००।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।—लगना। २ आग की लपट। लौ, जैसे,—चूल्हे में और आंच कर दो, तब तक तो आंच पहुँचती ही नहीं।

क्रि० प्र०—करना।—फैलना।—लगना। ३ आग। अग्नि, जैसे—(क) आंच जला दो। (ख) जाओ थोड़ी सी आंच लाओ।

मुहा०—आंच खाना। गरमी पाना। आग पर चढ़ना। जैसे,—यह वरतन आंच खाते ही फूट जायगा। आंच दिखाना = आग के सामने रखकर गरम करना, जैसे,—जरा आंच दिखा दो तो वरतन का सब धी निकल आवे।

४ ताव। जैसे,—ग्रमी उस रस में एक आंच की कसर है। (ख) उसके पास से आंच का अन्नक है।

मुहा०—आंच खाना = ताव खाना। आवश्यकता से अधिक पकना। जैसे,—दूध आंच खा गया है, इससे कुछ कड़वा मालूम पड़ता है।

५. तेज। प्रताप। जैसे,—तलवार की आंच। ६ आघात। चोट। ७. हानि। अहित। अनिष्ट। जैसे,—(क) तुम निश्चित रहो, तुमपर किसी प्रकार की आंच न आवेगी।—(ख) सोंच को आंच क्या। उ०—निर्हर्षित होइ के हरि भजे मन मे राखै सोंच। इन पोंचन को बम करै, ताहि न आवै आंच।—कवीर (शब्द०)

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना। ८ विपत्ति। सकट। आफत। सताप। जैसे,—इस आंच से निकल आवें तो कहे। उ०—आए नर चारि पाँच, जानी प्रभु आंच, गडि लियो सो दिखायो आंच, चलै भक्त भाइ कै।—प्रिया० (शब्द०)। ९ प्रेम। मुहब्बत। जैसे,—माता की आंच बढी होनी है। १० काम। ताप।

प्रांचका—सच्चा पुं [दिश०] वह लटकता हुआ रस्ता जिसके छोर पर के छल्ले में से होकर वह रस्ता जाता है जिसपर खड़े होकर खलासी जहाज का पान धोते और लपेटते हैं।

प्रांचना ८०—क्रि० सं० [हिं० प्रांच] जगाना। तापना। उ०—कोप कुसानु गुमान अवाँ घट जो जिनके मन आंच न आंचै। तुलसी ग्रं०, पृ० २२६।

प्रांचना ८१—क्रि० सं० [सं० अचन] प्रवृत्त होना। गतिशील होना। उ०—मुद्रा खोनि गोविंद चंद जब वाचन आंचे। परम प्रेम रस माँचे अचर न परत वोंचे।—नद० ग्र०, पृ० २०४।

प्रांचना ८२—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'अचवना'। उ०—नाचो हे खरताल, आंचो जग ऋजु अराल।—आराधना, पृ० ५५।



आँचर(७)—सखा पुं [हिं०] दे० 'आँचल' । उ०—गोँहूँ कैंचै, आँचर उठि, मोरि, मुँहूँ मोरि मोरि नीठि नीठि मीरर गई, दीठि दीठि सौँ जोरि ।—विहारी २०, दो० २४२ ।

आँचल—सखा पुं [सं० अञ्चल] १ घोंती, दुहाड़ा आदि विना सिले हुए वस्त्रों के दोनों छोरों पर का भाग । पल्ला । छोर । उ०—पिश्रर उपरना काखा सोती । दुहुँ आँचरहि लगे मनि मोति ।—मानस, १।३२६ । २ साधुओं का अँचला । ३. स्त्रियों की साडी या ओढ़नी का वह छोर या भाग जो सामने छाती पर रहता है । उ०—वह मग मे रुक, मानो कुछ भुक् आँचल सँमारती फेर नयन ।—ग्राम्या, पृ० १७ ।

मुहा०—आँचल डालना=मुसलमान लोगों में विवाह की एक रीति । (जब दूल्हा दुल्हिन के घर जाने लगता है, तब उसकी वहन दरवाजे से उसके सिर पर आँचल डालकर उसे घर में ले जाती है । इसका नेग वहन को मिलता है ।) आँचल=दवाना=दूध पीना । स्तन मुँह में डालना । जैसे,—वच्चे ने आज दिन भर से आँचल मुँह में नहीं दवाया । आँचल देना=(१) वच्चे को दूध पिलाना (स्त्रि०) । जैसे, वच्चे को किसी के सामने आँचल मत दिया करो ।—(२) विवाह की एक रीति । (जब वारात वर के यहाँ से चलने लगती है, तब दूल्हे की माँ उसके ऊपर आँचल डालती है और उसे काजल लगाती है । इस रीति को आँचल देना कहते हैं ।) ३. आँचल से हवा करना (स्त्रि०) । जैसे—(क) दीए को आँचल दे दो, व्यर्थ जल रहा है । (ख) थोड़ा आँचल दे दो तो आग सुलग जाय । आँचल पडना=आँचल छू जाना । जैसे,—देखो, वच्चे पर आँचल न पड़ जाय । (स्त्रियों वच्चे पर आँचल पडना बुरा समझती हैं और कहती हैं कि इससे वच्चे की देह फूल जाती है) । आँचल फाड़ना=वच्चे के जीने के लिये टोटका करना । (जिस स्त्री के वच्चे नहीं या बाँझ होती है, वह किसी वच्चेवाली स्त्री का आँचल घात पाकर कतर लेती है और उसे जलाकर खा जाती है । स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसा करने से जिसका आँचल कतरा जाता है, उसके वच्चे तो मर जाते हैं और जो आँचल कतरती है, उसके वच्चे जीने लगते हैं) । आँचल में बाँधना=(१) हर समय साथ रखना । प्रतिक्षण पास रखना । जैसे,—वह किताब क्या हम आँचल में बाँधे फिरते हैं, जो इस वक्त माँग रहे हो । (२) कपड़े के छोर में इस अग्निप्राय से गोंठ देना कि उसे देखने से वक्त पर कोई बात याद आ जाय । जैसे,—तुम बहुत भूलते हो, आँचल में बाँध रखो । आँचल में बात बाँधना=(१) किसी कही हुई बात को अच्छी तरह स्मरण रखना । कभी न भूलना । जैसे,—किसी के झगड़े में पडना बुरा है यह बात आँचल में बाँध रखो । (२) दृढ़ निश्चय करना । पूरा विश्वास रखना । जैसे,—इस बात को आँचल में बाँध रखो कि उन लोगों में अवश्य खटपट होगी । आँचल में बातें बाँधना=टोटका करना । जादू करना । आँचल लेना=(१) किसी स्त्री का अपने यहाँ आई हुई दूसरी स्त्री का आँचल छूकर सत्कार या अग्निवादन करना । (२) किसी स्त्री का अपने से बड़ी स्त्री का आँचल से पैर छूना । पाँव छूना । पाँव पड़ना । जैसे—

जीजी, वृथा आई हैं, उठकर आँचल ले । आँचल सेभालना=आँचल ठीक करना । गरीब को अच्छी तरह ठकाना । उ०—फुलवा विनत डार डार गोविन के मग कुमार चद्रवदन चमकन वृषभानु की लनी । हे हे चवन कुमारि अपनो आँचल नैमार आवन वृजराज आज विनन को कली ।—(शब्द०) ।

आँचलपल्लू—सखा पुं [हिं० आँचल+पल्ला] कपड़े के एक छोर पर टँका हुआ चौड़ा ठप्पेदार पट्टा ।

आँचू—सखा पुं [देश०] एक कैंटीनी भाँटी जिसमें शरीफों के आकार के छोटे छोटे फल लगते हैं । इन फलों में मीठे रस से भरे दाने रहते हैं ।

आँजन—सखा पुं [सं० अञ्जन] दे० 'अंजन' ।

आँजना—क्रि० सं० [सं० अञ्जन] अंजन लगाना । उ०—(क) ललना गन जब जेहि प्ररहि धाड । लोचन आँजहि फगुमना मनाइ ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सा ही अनुरा ही जु आँजे माँजे न्हाए भाएँ, भूपन बनाए बीर बीरा खाए जानिबी ।—गग ग्रं०, पृ० ३३ । २ विलन करना । जैसे, आँजो मत, काम चटपट कर डालो ।

आँट—सखा पुं [हिं० अँटी] १ हथेली में तर्जनी और अँगूठे के बीच का स्थान ।

विशेष—इसमें कभी कभी जुप्रारी लोग कौड़ी छिपा लेते हैं ।

२ दाँव । वश । उ०—न ए विससियहि लजि नए दुरजन दुखह-सुमाइ । आँटें परि प्राननु हरत कौट जौं लजि पाइ ।—विहारी २०, दो० ३११ ।

मुहा०—आँट पर चढना=दाँव पर चढना । उ०—जहाँ तक हो आँट पर न चढो ।—चोटी०, पृ० १४४ ।

३ बैर । लागडाँट । ४ गिरह । गाँठ । जैसे—घोंती की आँट में रुपया रख लो । ५ पूना । गट्टा । पेंच ।

यो०—आँट साँट ।

आँटना(७)—क्रि० अ० [हिं० अँटना] १ समाना । अँटना । अमाना । २. पूरा पड़ना । काफी होना । उ०—अगनहि कह पानी गहि वाँटा । पिछलहि कह नहि काँटू पाँटा ।—जायसी (शब्द०) । ३. आना । मिनना । उ०—(कोइ) फून पाव, कोई पाती, जेहि के हाय जो आँट ।—जायसी ग्रं०, पृ० ८२ । ४ पढ़ेचना । उ०—मच्छ छुवाइ आँटहि गडि काँटी । जहाँ कमल तहँ हाय न आँटी ।—जायसी (शब्द०) ।

आँटी—सखा स्त्री [सं० अण्ड] १ लवे तूणों का छोटा गट्टा । पूना । २ लडको के खेने की गुलती । उ०—दिशो जनाय बात सो ही स्वरूप वालके । गोविंद स्वामी सग आँटि दह खेन हालके ।—रवुराज० (शब्द०) । ३ कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की टाँग में टाँग अडगते हैं और उसे कमर पर लादकर गिराते और चित करते हैं ।

क्रि० प्र०—मारना ।

४. सूत का लच्छा । ५. घोंती की गिरह । टेंड । पुरा । उ०—आपकी आँटी निकसी नाही तो करज बहुत सिर लीन्हा ।—फवीर ग्रं०, पृ० १० ।

क्रि० प्र०—देना । लगाना ।

मुहा०—आँटी काटना = गिरह काटना। जेव काटना।

आँटसाँट—सब्जा खी० [हि० आँट + सटना] १. गुप्त अभिसंधि। साजिश। २. मेनजोल।

आँठी—सब्जा खी० [म० अष्टि, प्रा अठ्ठि] १. दही, मलाई आदि वस्तुओं का लच्छा। थक्का। जैसे—उनके मुँह से कफ की सुखी आँठी गिरती है। २. गिरह। गाँठ। ३. गुठली। बीज। ४. नवोढा के उठते हुए स्तन।

आँडी—सब्जा पुं० [म० अण्ड] अडकोश।

आँडी—सब्जा स्त्री० [सं० अण्ड] १. अटी। गाँठ। कद। उ०—सँधा लोन परा सब हाँडी। काटी कद मूर फँ आँडी।—जायसी ग्रं०, पृ० २४५। २. कोटहू की जाट का गोला, सिरा वा मूँड। ३. बैलगाड़ी के पहिए के छेद के चारों ओर जड़ी हुई लोहे की मामी। वद।

आँडू—वि० [सं० अण्ड = अण्डकोश] जिस (चोपाए) के अडकोश न कूचे गए हो। अडकोशयुक्त।

विशेष—यह शब्द विशेष कर बैल के लिये ही प्रयुक्त होता है।

आँडेवाँडे खाना—कि० अ० [हि० अंडवड अयवा डांड = मँड + बाँध] इधर उधर फिरना। इधर उधर हवा खाना। चक्कर खाना।

विशेष—फूल बुझीगल के खेल में जब लडकों के दल बँध जाते हैं और दोनों दलों के महंतों को आपस में किसी फूल को निश्चित करना होता है, तब वे अपने अपने दल के लडकों को यह कहकर इधर उधर हटा देते हैं कि 'आँडेवाँडे खाओ'। लडके 'आँडे वाँडे' कहते हुए इधर उधर चले जाते हैं और फिर फूल बँधने के लिये आते हैं।

आँत—सब्जा स्त्री० [सं० अन्त्र] प्राणियों के पेट के भीतर वह लची नली जो गुदा मार्ग तक रहती है।

विशेष—खाया हुआ पदार्थ पेट में कुछ पचकर फिर इस नली में जाता है जहाँ से रम तो अग प्रत्यग में पहुँचाया जाता है और मल या रद्दी पदार्थ बाहर निकाला जाता है। मनुष्य की आँत उसके डील में पाँच या छ गुनी लंबी होती है। मासमशी जीवों की आँत शाकाहारियों से छोटी होती है। इसका कारण शायद यह है कि माँस जल्दी पचता है।

मुहा०—आँत उतरना—एक रोग जिसमें आँत ढीला होकर नाभि के नीचे उतर आती है और अडकोश में पीड़ा उत्पन्न होती है। आँत का बल बुलना—पेट भरना। भोजन से तृप्त होना। बहुत देर तक भूखे रहने के उपरांत भोजन मिलना। जैसे,—आज कई दिनों के पीछे आँतों का बल खुला है। आँतो का बल खुलवाना—पेट भर खिलाना। आँतें अकुलाना, कुल-कुलाना, कुलबुलाना—भूख के मारे बुरी दशा होना। आँतें गले में आना—नाको दम होना। जजाल में फँसना। तग होना। जैसे,—इस काम को अपने ऊपर लेते तो हो, पर आँते गले में आवेंगी। आँते मुँह में आना—दे० 'आँते गले में आना'। आँतों में बल पड़ना—पेट में बल पड़ना। पेट ऐँठना। जैसे,—हँसते हँसते आँतो में बल पड़ने लगा। आँतें सपेटना—भूख सहना। जैसे,—रात भर आँतें सपेटे बैठे रहे। आँतें

सूखना—भूख के मारे बुरी दशा होना। जैसे,—कन से कुछ खाया पीया नहीं है, आँतें सूख रही हैं।

आँतकटहू—सब्जा पुं० [हि० आँत + कटना] चोपायो का एक रे जिसमें उन्हे दस्त होता है।

आँतरा<sup>१</sup>—सब्जा पुं० [सं० अन्तर = भीतर] खेत का उतना जितना एक बार जोतने के लिये घेर लिया जाता है।

आँतरा<sup>२</sup>—सब्जा पुं० [सं० अन्तर = दो वस्तुओं के बीच का स्थान] १. पान के भीटे के भीतर की क्यारियों के बीच का स्थान ज आने जाने के लिये रहता है। पासा। २. ताने में दोनों सिर की खूँटियों के बीच की दो लकड़ियाँ जो थोड़ी थोड़ी दूर-साँधी अलग करने के लिये गाड़ी जाती हैं (जुलाहे)। ३. मिश्रता अंतर। उ०—जीव ब्रह्म आँतर नहीं कोय। एक रूप सर्वध होय।—दरिया० बानी, पृ० १६। ४. दूरी। फासला। उ० आँतर जनु हो तोहार। तेंदुर का उर हार। वध। पृ० ३३०।

आँतरा<sup>३</sup>—सब्जा पुं० [हि० आँतर] दे० 'अंतर'। उ०—साध स्वाँग आँतरा जैसा दिवस और रात।—दरिया० बानी, पृ० ३५।

आँदू—सब्जा पुं० [सं० अण्डू = वेडी] १. लोहे का कड़ा। वेडी। उ० हलै इतै पर मैन महावत लाज के आँदू परे जऊ पाइन। पदमाकर कौन कहौं गति माते मतपनि की दुखदाइन पद्याकर ग्रं०, पृ० १३०। २. बौधने का सीकड़। उ० आँदू सौं भरे जद्यपि तुव गज नैन। तदपि चलावत रहत भुकि भुकि चोटै सैन।—सं० सप्तक, पृ० १६३।

आँध<sup>१</sup>—सब्जा स्त्री० [सं० अन्ध] १. अंधेरा। धुंध। २. रतौंधी। ३. आफत। कष्ट। जैसे,—तुम्हें वहाँ जाते क्यों आँध आती है कि० प्र०—आना।

आँध<sup>२</sup>—वि० १. अंधा। नेत्रहीन। २. कामांध। मोहित। उ सकर को मन हरयो कामिनी, सेज छाडि भू सोयी। च मोहिनी आइ आँध कियो, तब नख तँ रोयी।—सूर०, १।४३

आँधना<sup>३</sup>—कि० अ० [हि० आँधी] वेग से धावा करना। दूटना उ०—मुसुंडिय और फुवडिय साधि। परे दुहुँ औरन ते आँधि।—(शब्द)।

आँधर—वि० [सं० अन्ध, प्रा० अघल] [स्त्री० आँधरी] अंधा। उ सूर कूर, आँधरी, मैं द्वार परचो गाऊँ। सूर०, १।१६६।

यो०—आँधर अंधुआ = अंधा। उ०—माया के बँधुआ आँधर।

अंधुआ साधु जाने एह जाने एह बातें।—सं० दरिया, पृ० १४१

आँधरा<sup>४</sup>—वि० [सं० अन्ध, प्रा० अघरअ] [स्त्री० आँधरी] अंधा आँधरभ<sup>५</sup>—सब्जा पुं० [हि० आँधर = अंधा (मूल)] जंसा + आरम्भ अंधेरखाता। विना समझा ब्रह्मा आचरण। उ०—करता कीरतन, ऊँचा करि करि दम। जाने ब्रह्म कछु नहीं, यो आँधराम।—कबीर (शब्द०)।

आँधी<sup>१</sup>—सब्जा स्त्री० [मं० अन्ध = अंधेरा, अंधा करनेवाली] बड़े वेग की हवा जिससे इतनी धूल उठे कि चारों ओर अंधेरा छा जाय अघड़। अघवाव।

विशेष—भारतवर्ष में आँधी का समय वसंत और ग्रीष्म है।

कि० प्र०—आना।—उठना।—वज्र।

मुहा०—श्रीघी उठाना=हलचल मवाना । घूम धाम मवाना ।  
 श्रीघी के आम=(१) श्रीघी मे आप से आप गिरे हुए आम ।  
 (२) बिना परिश्रम के मिली हुई चीज । बहुत सस्ती चीज ।  
 (३) थोड़े दिन रहनेवाली चीज ।  
 श्रीघी<sup>३</sup>—वि० श्रीघी की तरह तेज । किसी चीज को झटपट करनेवाला ।  
 चालाक । चुस्त । जैसे,—काम करने मे तो वह श्रीघी है ।  
 मुहा०—श्रीघी होना=बहुत तेज चलना ।  
 श्रीवपुं—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आम' । उ०—रुने सोहाए मधुर फन,  
 श्रीव गए भक्तभोरि ।—मिखारी० ग्र०, पृ० १३६ ।  
 श्रीवा<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] 'आम' । उ०—प्रौर यह वैष्णव श्रीवा लेन  
 कौं बजार मे गयो । सो बजार मे कहूँ श्रीवा न मिले ।—दो  
 सी बावन०, भा० २, पृ० ३४ ।  
 श्रीवाहलदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ग्रामाहलदी' ।  
 श्रौयवौय—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] श्रनापसनाप । अ डवड । व्यर्थ की बात ।  
 असबद्ध प्रलाप ।  
 श्रौव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आम = कच्चा] एक प्रकार का चिकना सफेद लस  
 दार विरुन द्रव्य या मन जो अन्न न पचने से होता है ।  
 कि० प्र०—गिरना ।—पडना ।  
 श्रौवठा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रोष्ठ हि० श्रोठ] १ किनारा । वारी । २  
 कपडे का किनारा । वरतन की वारी ।  
 श्रौवडना—कि० ग्र० [हि०/उमड] उमडना । उ०—भरे हचि  
 भार सुकुमार सरसिज सार सोमा रूप सागर अपार रस  
 श्रीवडे ।—देव (शब्द०) ।  
 श्रौवडा<sup>३</sup>—वि० [हि० उमडना] गहरा । उ०—जेता मेठा बोलवा,  
 तेता साधु न जान । पहिले थाह दिखाइ के, श्रीवडे देसी  
 आनि । कबीर (शब्द०) ।  
 श्रौवडा<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आम्रातक प्रा० अ बाडय] एक प्रसिद्ध खट्टा  
 फल । अमडा ।  
 श्रौवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आनन = मुँह] १ लोहे की सामी जो पहिए के  
 उस छेद के मुँह पर लगी रहती है जिसमे होकर धुरी का  
 दड जाता है । मुहंडो । २ वह ओजार जिससे लोहे के छेद  
 को लोहार लोग बढाते हैं ।  
 श्रौवरा<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्रा० आमलय] दे० 'श्रीवला' ।  
 उ०—शालूचा अमिली श्रीवहलदी, आन श्रीवरा साल अफनदी ।  
 —सुजान०, पृ० १६१ ।  
 श्रौवल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उल्वम = जरायु । अथवा, अवर = आच्छादन]  
 भिल्ली जिससे गर्म मे वच्चे निपटे रहते हैं । यह भिल्ली  
 प्राय वच्चा होने के पीछे गिर जाती है । खंडी । जेरी । साम ।  
 यौ०—श्रौवल नाल ।  
 श्रौवलगट्टा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० श्रीवला + हि० गट्टा वा गाँठ] श्रीवले का  
 सूखा हुआ फन ।  
 विशेष—यह दवा मे तथा सिर मलने के काम आता है ।  
 श्रौवला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्रा० आमलप्रो] १ एक प्रसिद्ध पेड़ ।  
 २ इस पेड़ का फन ।  
 विशेष—इसकी पत्तियाँ इमली की तरह महीन महीन होती हैं ।  
 इसकी लकड़ी कुछ सफेदी लिए होती है और उसके ऊपर का

छिलका प्रति वर्ष उतरा करता है कार्तिक से माघ तक  
 इसका फल रहता है जो गोल कागजी नीलू के बराबर  
 होता है । इसके ऊपर का छिलका उतना पतला होता  
 है कि उसकी नसे दिखाई देती हैं । यह म्माद मे कम नापन लिए  
 हुए होता है । आयुर्वेद मे उसे शीतल, हलका तथा दाह पित्त  
 और प्रमेह का नाश करनेवाला बताया है । इसके नयों से  
 श्रिकता, चक्करप्राण आदि ओषध बनते हैं । श्रीवले का मुरव्या  
 भी बहुत अच्छा होता है । श्रीवले की पत्तियों मे चमड़ा भी  
 सिझाया जाता है । इसकी नकदी पानी मे नहीं गडती । इसी  
 से कूब्रो के नीमचक आदि इसी से बनते हैं ।

३ विपक्षी को नीचे नाने का कुन्नी का एक पेंच ।

विशेष—जब विपक्षी का हाथ अपनी गरदन पर रहे, तब अपना  
 भी वही हाथ उसकी गरदन पर बढावे और दूसरे से  
 शत्रु के उस हाथ को जो अपनी गरदन पर है झटका देकर  
 हटाते हुए उसको नीचे लावे । इसका तोड़ विषम पैतरा करे  
 अथवा शत्रु की गरदन पर का हाथ केहुनी पर से हटाकर  
 पैतरा बढाने हुए बाहरी टोंग मार गिरावे ।

श्रौवलापती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० श्रीवला + पत्ती] एक प्रकार की मिनाई  
 जिसमे पत्ती की तरह दोनों ओर निरखे टाँके मारे जाते हैं ।

श्रौवलासारगधक—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० श्रीवला + सं० सार + गधक] खूब  
 साफ की हुई गधक जो पारदर्शक होती है, यह नाने मे अधिक  
 छाट्टी होती है ।

श्रौवा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आपाक—आंवा] वह गड्ढा जिसमे कुम्हार  
 लोग मिट्टी के बरतन पकाते हैं । जने, —कुम्हार श्रीवा लगा  
 रहा है ।

कि० प्र०—लगाता ।

मुहा०—श्रीवा का श्रीवा विगडना = सारे परिवार का विगडना ।  
 सारे परिवार का कुत्तित विचार होना । श्रीवा विगडना =  
 श्रीवों के बरतनों का ठीक ठीक न पकना ।

श्रीस<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काश—क्षत, हि० गोंत] मवेदना । दर्द ।

श्रीस<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अश' । उ०—विछुरत सुंदर अशरत,  
 रहन न जिहि घट सांस । मुरली नम पाई न हम प्रेम प्रीति  
 को श्रीस ।—सं० सप्तक, पृ० १८७ ।

श्रीस<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अश] श्रीसू । उ०—रूप रस पीवत अघात  
 ना हुते जो तब सोई अश श्रीस हूँ उबारि गिरिवो करे ।—  
 रत्नाकर, भा० १, पृ० १२१ ।

श्रीस<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अश प्रा० अशु] १ गुतरी । डोरी । २ रेखा ।

श्रीसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अश = भाग] १. भाजी । बंन । मिठाई जो  
 इष्ट-मित्रों के यहाँ बाँटी जाती है ।—न + लन बाल के ब्रह्मी  
 दिना तें परी मन आइ मनेह की फाँगी । काम कलोननि मे  
 मतिराम लगे मनो वाँटन मोद की श्रीसी ।—मतिराम ।—  
 (शब्द०) २ भाग । हिस्सा । उ०—नारि कुलीन कुलीननि  
 लै रमैं मैं उनमें चही एक न श्रीसी ।—मिखारी ग्रं०, भा०  
 पृ० १५६ ।

श्रीसु<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रीसू' । उ०—माता मरतु गोद बँठारे  
 श्रीसु पोछि मृदु वचन उचारे ।—मानस, २ । १६५ ।

आँसू—सब्बा पुं० [सं० अश्रु, पा० प्रा० अस्सु, प्रा अंसु] वह जन जो आँख के भीतर उम स्थान पर जमा रहता है, जहाँ से नाक की ओर नहीं जाती है। उ०—जो धनीभूत पीडा थी मस्तक मे स्मृति सी छाई, दुर्दिन मे आँसू बनकर वह आज बरसने आई।—आँसू, पृ० १४।

विशेष—यह जल आँख की झिल्लियों को तर रखता है और डेले पर गर्द या तिनके को नहीं रहने देता, धोकर साफ कर देता है। आँसू भी यूँ की तरह पैदा होता रहता है और बाहरी या मानसिक आघात से बढ़ता है। किसी प्रबल मनोवेग के समय, विशेषकर पीडा और शोक मे आँसू निकलते हैं। क्रोध और हर्ष मे भी आँसू निकलते हैं। अधिक होने पर आँसू गालों पर बहने लगता है और कभी कभी भीतरी नज़ी के द्वारा नाक मे भी चला जाता है और नाक से पानी बहने लगता है।

क्रि० प्र०—आना।—गिरना।—गिराना।—चलना।—रुकना।  
—टपकना।—डालना।—डालना।—निकालना।—बहना।  
—बहाना।

यो०—आँसू की धार। आँसू की लड़ी।

मुहा०—आँसू गिराना = रोना। जैसे,—वधो भूऽ भूऽ आँसू गिराते हो। आँसू डबडबाना = आँसू निकलना। रोने की दशा होना। जैसे—यह सुनते ही उसके आँसू डबडबा आए। आँसू डालना = आँसू गिराना। रोना। जैसे,—रगड़ डारि सकें नहीं आँसू। घुट घुट मौम गुप्त होय नासू।—जायसी (शब्द०)। आँसू तोड़ = कुममय की वर्षा (उग)। आँसू थमना = आँसू रुकना। रोना बंद होना। जैसे,—जब से उन्होंने यह ममाचार सुना है, तब से उनके आँसू नहीं थमते हैं। उ०—यमते थमते थमेगे आँसू। रोना है कुछ हँसी नहीं है।—मीर (शब्द०)। आँसू पीकर रह जाना = भीतर ही भीतर रोकर रह जाना। अपनी व्यथा को रोकर प्रकट न करना। मन ही मन मगोसकर रह जाना। जैसे,—(क) मेरे देखते उमने वच्चे पर हाथ चलाया था, और मैं आँसू पीकर रह गया। (ख) इतना दुःख उस पर पड़ा वह आँसू पीकर रह गया। आँसू पुछना = आश्वासन मिलना। ढारम बँधना। जैसे,—उस बेचारे की मारी सपत्ति चली गई पर घर बच जाने से आँसू पुछ गए।—(शब्द०)। आँसू पोछना = (१) बहते हुए आँसू को कपडे मे सुखाना। (२) ढारस बँधाना। दिलासा देना। तमलनी देना। आश्वासन देना। जैसे—(क) उसका घर ऐसा मत्थानाण हुआ कि कोई आँसू पोछनेवाला भी न रहा। (ख) हमारा मारा खया मारा गया, आँसू पोछने के लिये १०० मिले हैं।—आँसू भर आना = आँसू निकल पडना। आँसू भर लाना = रोने लगना। जैसे,—यह सुनते ही वह आँसू भर लाया। आँसू का तार बँधना = बराबर आँसू बहना। आँसूयो से मुँह धोना = बहुत आँसू गिराना। बहुत रोना। अत्यंत विनाप करना।

आँसूडाल—सब्बा पुं० [हि० आँसू + डालना] घोड़ों और चौपायों की एक बीमारी जिसमे उनकी आँखों से आँसू बहा करता है।

आँसूड—सब्बा पुं० [सं० आ + भंड] बरतन।

आँसूड वीहंडा—वि० [प्रा० आहंड = खोजना, भटकना + विहंड = दूटना, बिखरना] तितरबितर। ऊबडखावड।

आँहा—प्रव्य [हि० ना + हाँ] नहीं।

विशेष—यह शब्द किसी प्रश्न के उत्तर मे जीभ हिलाने के अ से बचने के लिये बोला जाता है स्वर और ऊष्म, विशेषकर 'ह' के उच्चारण में बहुत कम प्रयत्न करना पडता है।

आ<sup>१</sup>—अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका प्रयोग सीमा, अभिव्यक्ति, ईप्त् और अतिक्रमण के अर्थों मे होता है। जैसे—(क) सीमा—आसमुद्र = समुद्र तक। आमरण = मरण तक। आजानुबाहु = जानु तक लंबी बाहुवाला। आजन्म = जन्म से। (ख) अभिव्यक्ति—आपाताल = पाताल के अतर्भाग तक। आजीवन—जीवन भर। (ग) ईप्त् (थोडा, कुछ) आपिगल = कुछ कुछ पीला। आकृष्ण = कुछ काला। (घ) अतिक्रमण—आकाशिक = वेमौम का।

आ<sup>२</sup>—उ० [सं०] यह प्रायः गत्यर्थक धातुओं के पहले लगता है और उनके अर्थों मे कुछ थोड़ी सी विशेषता कर देता है, जैसे, आ। आधूर्णन, आरोहण, आकषण, आघ्राण। जब यह 'ग' (जान 'या' (जाना), 'दा' (देना) तथा 'नी' (ले जाना) धातुओं के पहले लगता है, तब उनके अर्थों को उलट देता है, जैसे 'गमन (जाना) से आगमन (आना), 'नयन' (ल जाना) से 'आनयन (लाना), 'दान' (देना) से 'आदान' (लेना)।

आ<sup>३</sup>—सब्बा पुं० [सं०] ब्रह्मा। पितामह।

आइदा<sup>१</sup>—वि० [फा० आइदह] आनेवाला। आगतुक। भविष्य जैसे,—आइदा जमाना।

आइदा<sup>२</sup>—सब्बा पुं० भविष्य काल। आनेवाला समय। जैसे—अइ के लिये खबरदार हो रहो।

आइदा<sup>३</sup>—क्रि० वि० आगे। भविष्य मे। जैसे,—हमने समझा दिया आइदा वह जाने उसका काम जाने।

यो०—आइदे। आइदे को। आइदे मे। आइदे से। ये सबके क्रि० वि० के समान प्रयुक्त होते हैं।

आइ(उ)ी—सब्बा स्त्री० [सं० आयु] १ आयु। जीवन। उ०—जै सुभाय चितवहि हितु जानी। सो जानें जनु आइ खुटानी—मानस, १।२६६।

आइटम—सब्बा पुं० [अ०] मद। उ०—वजट बनाने लगता है, तो ह एक आइटम मे दो चार लाख जादा लिखा देता है।—रगभूमि भा० २, पृ० ६०५।

आइडियल—वि० [अ०] श्रेष्ठ। आदर्श।

आइना<sup>१</sup>—सब्बा पुं० [फा० आइनह] दे० 'आईना'। उ०—है निराल प्रभु-कला जिममे वसी, वह निराला आईना है फूटता।—चोखे पृ० २३।

आइस(उ)—सब्बा पुं० [हि०] दे० 'आयस'।

आइसु(उ)—सब्बा पुं० [हि०] दे० 'आयस'।

आई<sup>१</sup>—सब्बा स्त्री० [सं० आयु] १ आयु। जीवन। उ०—सतयुग त वर्ष की आई, अंता दश सहस्र कह गई।—सूर (शब्द०)। २ मृत्यु। मोत (१०) मरा कटोरा दध का, ठंडा करके पी। त आई मैं मरूँ, किसी तरह तू जी।—(शब्द०)।

आई<sup>२</sup>—क्रि० अ० 'आना' का भूतकाल स्त्री०

यो०—आई गई = आकर गुजरी हुई बात।

मुहा०—आई गई करना = (१) बीनी को विसारना । (२) टाल जाना । उपेक्षा करना । आई गई होना = (१) घटित होकर गुजर जाना । २ अनुपस्थित होना ।

आई<sup>१</sup>—सच्चा ली० [सं अयिका, प्रा० अजिअ] १ पितामही । दादी । २ माँ ।

आई<sup>२</sup>—प्रत्य० [हि०] १ एक प्रत्यय जो भाववाचक सच्चा बनाने के लिये विशेषण शब्दों के अंत में जोड़ा जाता है, जैसे, 'कठिन' से 'कठिनाई', 'बड़ा' से 'बड़ाई', 'छोटा' से 'छोटाई', 'मीठा' से 'मिठाई' आदि । २ एक प्रत्यय जो धातुओं में लगकर भाववाचक सच्चाएँ बनाता है । जैसे, 'पढ़' 'पढ़ाई', लिखा से 'लिखाई', 'लड़' से 'लड़ाई' 'मिड़' से 'मिड़ाई' आदि ।

आईन—सच्चा पुं० [फा०] [वि० आईनी] १ नियम । विधि । कायदा । जावदा । २ कानून । राजनियम ।

यौ०—आईनदाँ—वकील । कानून जाननेवाला ।

आईना—सच्चा पुं० [फा० आईन्ह] १ आरसी । दर्पण । शीशा ।

यौ०—आईनादार । आईनावदी । आइनासाज । आइनासाजी ।

मुहा०—आईना होना = स्पष्ट होना । जैसे,—यह बात तो आप पर आईना हो गई होगी । आईने में मुँह देखना—अपनी योग्यता को जाँचना । ( यह मुहावरा उस समय बोला जाता है जब कोई व्यक्ति अपनी योग्यता से भी अधिक काम करने की इच्छा प्रकट करता है, जैसे,—तुम्हारे आईने में अपना मुँह तो देख लो, फिर बात करना ।

२ किवाड़े का दिलहा । वि० दे० 'दिलहा' ।

यौ०—आईनेदार = वह किवाड़ा जिसमें आईना या दिलहा हो ।

आईनादार—सच्चा पुं० [फा०] वह नौकर जो आईना दिखलाने का काम करे । नाई । हज्जाम ।

विशेष—दसहरे, दीवाली आदि त्योहारों पर नाई आईना दिखाता है और उसके बदले में लोगों से कुछ ईनाम पाता है ।

आईनावदी—सच्चा ली० [फा०] १ कमरे या बैठक में भाड़ फानूस आदि की सजावट । २ कमरे या घर के फर्श में पत्थर या ईंट की जुड़ाई । ३. रोशनी करने के लिये तरतीब से टट्टियाँ छाँदी करना ।

आईनासाज—सच्चा पुं० [फा० आईन्ह + साज] आईना बनानेवाला ।

आईनासाजी—सच्चा ली० [फा० आईन्ह + साजी] १ काँच की चद्दर के टुकड़े पर कलई करने का काम । २ आइनामाज का पेशा

आइनी—वि० [फा० आईन] कानूनी । राजनियम के अनुकूल ।

आउस—सच्चा पुं० [अ०] एक अंग्रेजी मान जो दो प्रकार का होता है । एक ठोस वस्तुओं के तोलने में और दूसरा द्रव पदार्थों के नापने में काम आता है । तोलने का आउस हिंदुस्तानी सत्ता दो तोले के बराबर होता है । ऐसे बारह आउसों का एक पाउंड होता है । नापने का आउस सोलह ड्राम का होता है और एक ड्राम साठ वूँदों का होता है ।

आउ<sup>१</sup>—सच्चा ली० [सं आयु] जीवन । उम्र । उ०—एहि वन रहत गई हम्ह आऊ । तरिवर चनत न देखा काऊ ।—जायसी ग्र०, पृ० २७ । (ख) सत्त मुक़्त को मोवा जानि जि रावुराउ ।

सहस्र द्वादस पचमत में कछु है अय आउ ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४२२ ।

आउज<sup>१</sup>—सच्चा पुं० [सं आयोज प्रा० आयोज्ज, आयज्ज] ताशा । उ०—घटा-घटि पखाउज-आउज भाभ वेनु टक-तार । नूपुर धुनि-मजीर मनोहर वरकन-भनकार ।—तुलसी ग्र०, २६५ ।

आउझ<sup>१</sup>—सच्चा पुं० [सं आयोज, प्रा० आयज्ज] दे० 'आउज' ।

आउट—वि० [अ०] खेन में हारा हुआ । बहिर्भूत ।

विशेष—यह क्रिकेट आदि खेल में बोला जाता है । जब बल्लेवाले किसी खिलाड़ी के खेलते समय गेंद विकेट में लग जाती है वा बल्ले से मारी हुई गेंद लोफ़ ली जाती है, तब वह आउट समझा जाता है, और बल्ला रखा देता है ।

आउवाउ<sup>१</sup>—सच्चा पुं० [सं वायु > आउ अनु०] अंड बड़ बात । अनर्थक शब्द । अमबद्ध प्रताप ।

क्रि० प्र०—वकना । उ०—मानम मनीन करनव कनिमन पीन जीह हू न जपेउ नाम वकेउ आउवाउ में ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८८ ।

आउस—सच्चा पुं० [सं आयु वेंग आउस] धान का एक भेद जो बगल में कई जून में बोया जाता है और अग्रस्त मितवर में काटा जाता है । यह दो प्रकार का होता है—एक मोटा, दूसरा महीन या लेपी । नदई । ओमहन ।

आऊपा<sup>१</sup>—सच्चा ली० [सं आयुष्य] उम्र । अवस्था । उ०—उनामिए पुत्री अवतरी । तिन आऊपा पूरी करी ।—अर्घ० पृ० ५७ ।

आकप—सच्चा पुं० [सं आकम्प] दे० 'आकपन' [क्रि०] ।

आकपन—सच्चा पुं० [सं आकम्पन] [वि० आकम्पित] काँपना । काँकरी ।

आकपित—वि० [सं आकम्पित] काँपा हुआ । हिला हुआ ।

आक<sup>१</sup>—सच्चा पुं० [सं अर्क, प्रा० अर्क] मदार । अक्रोमा । अक्वव ।

उ०—(क) पुरवा लागि भूमि जल पूरी । आक जवान भई तम भूरी ।—जायसी ग्र०, पृ० १५३ । (ख) कविरा चदन वीरवै, वेधा आक पलाश । आप मरीजा कर निया, जो होते उन पास ।—बवीर (शब्द०) । (ग) देत न प्रधात रीभि जात पात आक ही के मोनानाथ जोगी अथ प्रौढर डरत है ।—तुलसी ग्र० पृ० २३७ ।

मुहा०—आक की बुद्धिया = (१) मदार का घूसा । ( ) बहुत बूढ़ी स्त्री ।

आक<sup>२</sup><sup>१</sup>—वि० [सं अक = दुःख] दुखी । उ०—आक करम भेषज विदित, लडाव नही मति । तुलसी मठ अकम्प विडि दिन दिन दीन मलीन ।—स० सप्तम, पृ० ४७ ।

आकडा—सच्चा पुं० [सं अर्क, हि० आक + डा (रत०) ] मदार । अक्रोमा । अर्क ।

आकन<sup>१</sup>—सच्चा पुं० [सं आकरा = खोदना] १ घाव फूँव, जिसे जोते हुए खेत से निकालकर बाहर फेंकते हैं । २ जोते हुए खेत से घास फूँव निकालने की क्रिया । चिखुरना ।

आकवत—सच्चा ली० [प्र० आकवत] मरने के पीछे अवस्था । परलोक । जैसे,—बाबा, दिया लिपा ही आकवन में काम आवेगा ।

यौ०—आकवतश देश । आकवतश देशी ।

क्रि० प्र० विगड़ना = (१) परलोक विगड़ना । परलोक नष्ट



होना । (२) अजाम विगडना । बुरा परिणाम होना ।—  
विगाडना ।

मुहा०—आकवत मे दिया दिलाता = परलोक मे काम आना ।

आकवतअदेश—वि० [अ० आकवत + फा० अदेश] परिणाम सोचने-  
वाना । अग्रमोची । दूरदेश । दीर्घदर्शी ।

आकवतअदेशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [आकवत + फा० अदेशी] परिणाम  
का विचार । परिणामदर्शिता । दीर्घदर्शिता । दूरदेशी ।  
क्रि० प्र०—करना ।

आकवतीलगर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० आकवत + फा० ई० (प्रत्य०) + हि०  
लगर] एक प्रकार का लगर जो जहाज पर अगले मस्तूल की  
रस्सियों या रिंगिन के पाम बीच के टूटक मे रहता है और  
आफन के वत डाला जाता है ।

आकवाक—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० \*वक्कह > √वक मे अनुव्व०] अकवक ।  
अकवड वात । ऊटपटांगवात । उ०—(क) आकवाक वकति  
विया में वूड वूड जाति पी की सुधि आएँ जी की सुधि बुधि  
खोइ देत ।—देव (शब्द०) । (ख) । आकवाक वकि और की  
वृथा न छाती छोल ।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ७३७ ।

आकर<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ छानि । उत्पत्तिस्थान । उ०—सदा-  
मुमन फन महित मव, द्रुम नव नाना जाति । प्रगटी सुंदर मल  
पर, मनि आकर बहु मति ।—मानस, १।६५ । २ खजाना ।  
साठार ।

यौ०—गुणाकर । कमलाकर । कुमुमाकर । करुणाकर । रत्नाकर ।

३ भेद । किम्ब । जाति । उ०—आकर चारि लाख चौरामी  
जाति जीव जल यन न मवासी ।—मानस, १।८ । ४ तलवार  
के वत्तीन हाथो मे से एक । तलवार चलाने का एक भेद ।

आकर<sup>२</sup>—वि० १ श्रेष्ठ । उत्तम । २ अधिक । उ०—चपा प्रीति जो  
तेल है, दिन दिन आकर वाम । गलि गलि आप हेराय  
जो, मुए न छाँडे पास ।—जायसी (शब्द०) । ३ गणित ।  
गुणा । जैसे, पाँच आकर, दस आकर । उ०—अस भा सूर पुरुष  
निरमरा । सूर जाहि दस आकर करा ।—जायसी (शब्द०) ।  
४ दक्ष । कुशल । व्युत्पन्न ।

आकरकडा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आकरकरहा' ।

आकरकरहा—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] एक जडी जिसे मुँह मे रखने से जीभ  
मे चुनचुनाहट होनी है और मुँह से पानी निकलता है । यह  
एक वृक्ष की लकड़ी है । आकरकडा । दे० 'अकरकरा' ।

आकरखाना<sup>३</sup>—क्रि० सं० [हि०] दे० 'आकर्षण' ।

आकरिक<sup>१</sup>—वि० [म०] खान खोदनेवाला ।

आकरिक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० वह मनुष्य जो खान को स्वयं खोदे या औरों से  
खोदावे और उममे धातु निकाले ।

आकरी<sup>१</sup>—वि० [म० आकर = खान (धातु और पत्थर आदि की) ]  
कठोर । उ०—नारी बोलै आकरी तव दुख पावै नाह । सुंदर  
बोलै मधुर मुख तव सुख सीर प्रवाह ।—सुंदर० ग्र०, भा० २,  
पृ० ७०७ ।

आकरी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आकर + ई० (प्रत्य०) ] खान खोदने का  
काम । उ०—चाकरी न आकरी न बेती न बनिज भीछा जानत  
न छर कछु कसव वधार है ।—तुलसी ग्र०, पृ० ११२ ।

आकरी<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म० आकरिन्] दे० 'आकरिक' ।

आकर्ण<sup>१</sup>—वि० [म०] कान तक फैला हुआ ।

यौ०—आकर्णचक्षु । आकर्णकृष्ट ।

आकर्णन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० आर्णित] सुनना । कान करना  
अकनना ।

आकर्णित—वि० [स०] सुना हुआ ।

आकर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ एक जगह के पदार्थ का बल से दूसरी जगह  
जाना । खिंचाव । कशिश ।

क्रि० प्र०—करना—खींचना । उ०—तैसे ही भुवभार उतारन ही  
हलधर अवतार । कालिंदी आकर्ष कियो हरि मारे  
अपार ।—सूर । (शब्द०) ।

२ पासे का खेल । ३ बिसात जिसपर पासा खेला जाय  
चौपड । ४ इन्द्रिय । ५ धनुष चलाने का अभ्यास । ६ कसौटी ।  
७. चुबक ।

आकर्षक<sup>१</sup>—वि० [स०] १ वह जो दूसरे को अपनी ओर खींचे  
आकर्षण करनेवाला । खींचनेवाला । २. सुंदर ।

आकर्षक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० चुबक [को०] ।

आकर्षण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० आकर्षित, आकृष्ट] १ किसी वस्तु  
का दूसरी वस्तु के पाम उसकी शक्ति या प्रेरणा से लाया  
जाना । २ खिंचाव । ३ तन्त्रशास्त्र का एक प्रयोग जिसके द्वारा  
दूर देशस्थ पुरुष या पदार्थ पाम मे आ जाता है ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

यौ०—आकर्षण मंत्र । आकर्षण विद्या । आकर्षण शक्ति ।

आकर्षणशक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] भौतिक पदार्थों की एक शक्ति  
जिससे वे अन्य पदार्थों को अपनी ओर खींचते हैं ।

विशेष—यह शक्ति प्रत्येक परमाणु मे रहती है । क्या  
कारण, क्या कार्य रूप मे सब परमाणु या उनसे  
उत्पन्न सब पदार्थों की ओर आकृष्ट होने हैं । इसी से द्रवण,  
असरेणु तथा समस्त चराचर जगत् का संगठन होता है । इसी  
से पापाणादि के परमाणु आपस मे जुड़े रहते हैं । पृथ्वी के  
ऊपर कंकड़, पत्थर तथा जीव आदि सब इसी शक्ति के बल से  
ठहरे रहते हैं । जल के चद्रमा की ओर आकृष्ट होने से समुद्र मे  
ज्वार भाटा उठता है । बड़े बड़े पिंड, ग्रहमंडल, सूर्य, चंद्रादि सब  
इसी शक्ति से आकाशमंडल मे निराधार स्थित हैं और न  
से अपनी अपनी कक्षा पर भ्रमण करते हैं । पृथ्वी भी इसी  
शक्ति से बृहत् वायुमंडल को धारण किए हुए है । सूर्य से लेकर  
परमाणु तक मे यह शक्ति विद्यमान है । यह शक्ति भिन्न भिन्न  
रूपों से भिन्न भिन्न पदार्थों और दशाओं मे काम करती है  
माथानुसार इसका प्रभाव दूरस्थ और निकटवर्ती सभी पदार्थ  
पर पड़ता है । धारण या गुल्लवाकर्षण, चुंबकाकर्षण, सलग्ना  
कर्षण, केशाकर्षण, रासायनिकाकर्षण आदि इनके भिन्न  
प्रभेद है ।

आकर्षणी—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ एक लग्नी जिससे फन फूल तोड़ते हैं  
अंकुसी । लकसी । २ प्राचीन काल का एक सिक्का । ३ शरीर  
पर धारण की जानेवाली विशेष प्रकार की मुद्रा या चिह्न [को०],



आकर्षण④—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आकर्षण] दे० 'आकर्षण' ।

आकर्षणा④—क्रि० सं० [सं० आकर्षण से नाम०] खींचना । उ०—

आकर्षणो धनु करन लगि, छाँटे शर इकतीस।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कालिंदी को निकट बुनायो जलक्रीडा के काज । लियो आकरपि एक छन मे हलि कति समरथ यदुराज ।

—सूर (शब्द०) ।

आकर्षिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आकर्षिकी] दे० 'आकर्षक' [क्रि०] ।

आकर्षित—वि० [सं०] खींचा हुआ ।

आकलन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आकलनीय, आकलित] १ ग्रहण । लेना । २ मग्न । बटोरना । मचय । एकट्ठा करना । ३ गिनती करना । ४ अनुष्ठान । सापान । ५ अनुसंधान । जाँच । ६ इच्छा । कामना [क्रि०] । ७ वर्णन करना [क्रि०] ।

आकलना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'आकलन' । २ पूजा । भक्ति [क्रि०] ।

आकलनीय—वि० [सं०] १ ग्रहण करने योग्य । लेने योग्य । २ साग्रह करने योग्य । ३ गिनती करने योग्य । ४ अनुष्ठान करने योग्य । ५ जाँचने योग्य । पता लगाने योग्य ।

आकलित—वि० [सं०] १ लिया हुआ । पकड़ा हुआ । २ अर्पित । गूँथा हुआ । ३ गिना हुआ । परिगणित । ४ अनुष्ठित । सापादित । कृत । ५ अनुसंधान किया हुआ । जाँचा हुआ । परीक्षित ।

आकली<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आकुल + ई (प्रत्यय) या म० आकल्य = बीमारी] आकुलता । बेचैनी ।

आकली<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] चटक पक्षी । गोरैया ।

आकल्प<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वेश रचना । मिगार करना, जैसे, रत्नाकल्प । २ पोशाक । पहनावा [क्रि०] । ३ बीमारी [क्रि०] । ४ जोड़ना । बढाना [क्रि०] ।

आकल्प<sup>२</sup>—क्रि० वि० कल्प पर्यंत ।

आकल्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बीमारी । अस्वस्थता [क्रि०] ।

आकर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कसौटी ।

आकस्मात्④—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकस्मात्' । उ०—पथी माँहि पथ चलि आयी आकस्मात् ।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७५८ ।

आकस्मात्④—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकस्मात्' ।

आकस्मिक—वि० [सं०] जो बिना किसी कारण के हो । जो अचानक हो । महसा होनेवाला । जिसके होने का पहले से अनुमान न हो ।

यौ०—आकस्मिक अवकाश, आकस्मिक छुट्टी = अचानक काम से ली जानेवाली छुट्टी ।

आकाक्षक—वि० [सं० आकाङ्क्ष] इच्छा रखनेवाला । अभिलाषा करनेवाला ।

आकाश—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आकाङ्क्षा] [वि० आकाक्षक आकाक्षित, आकाक्षी] १ इच्छा । अभिलाषा । वाछा । चाह । २ अपेक्षा । ३ अनुसंधान । ४ न्याय के अनुसार वाक्यार्थज्ञान के चार प्रकार के हेतुओं में से एक ।

विशेष—वाक्य में पदों का परस्पर संबंध होता है और इसी संबंध से वाक्यार्थ का ज्ञान होता है । जब वाक्य में एक पद

का अर्थ दूसरे पद के अर्थज्ञान पर आश्रित रहता है तब यह कहते हैं कि उस पद के ज्ञान की आकाशा है, जैसे,—'देवदत्त आया' इस वाक्य में आया पद का ज्ञान देवदत्त के ज्ञान के आश्रित है ।

५. जैनियों के अनुसार एक अविचार । जैनियों के अविगिण्य अन्य मनवानों की विमूर्ति दम उभरे मरण करने की इच्छा ।

यौ०—आकांक्षाविचार ।

आकाक्षित—वि० [वि० आकाङ्क्षित] १ इच्छित । अभिलषित । वाछित । २ अपेक्षित ।

आकाक्षी—वि० [सं० आकाङ्क्षिन्] [वि० स्त्री० आकाक्षिणी] १ इच्छा रखनेवाली । इच्छु । चाहनेवाला । २ अपेक्ष करनेवाला ।

आका<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आकाय] १ बौटा । घना । २ बट्टी । ३ पजावा । शरी ।

आका<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आका] मानित । न्यायी ।

आकाप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निगाही शक्ति । २ निगाह । ३ आग्रह । विग्रह [क्रि०] ।

आकार<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्वरूप । शक्ति । शक्ति । रूप । २ तीन दोन । पद ३ पनापट । मयटन । ४ मिगाह । चिह्न । ५ चोट । ६ 'मा' गण । ७ तुल्य । ८ प्रमाण । उग । उ० सुंदर कर माना मगीप, अति राजन इति आकार । जनरह मनो बर विधु नों तजि, मि त गण उगहार । —सूर०, १०।२=३ ।

यौ०—आकारगुप्ति । आकारगोपन = हृदय या मन के भाव को कल्पित चोटों में छिपाना ।

आकार<sup>२</sup>—वि० स्पष्टता । साकार । उ०—तोई आकार कह कोई निराकार कह तत्व की छोटि निरतन धाई ।—कबीर २०, पृ० २८ ।

आकारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आह्वान । बुलावा । २ चुनौती [क्रि०] ।

आकारवान—वि० [सं० आकारवत्] १ आकार या शरीरवाला । २ सुगठित । सुंदर [क्रि०] ।

आकारात्—वि० [सं० आकारान्त] जिसके अंत में 'मा' स्वर हो [क्रि०] ।

आकारित—वि० [सं०] १ आहूत । २ स्वीकृत । ३. मांगा या चाहा हुआ [क्रि०] ।

आकारी④—वि० [सं० आकरण = आह्वान] [स्त्री० आकारिणी] आह्वान करनेवाला । बुलानेवाला । उ०—गौर मुख हिम किरण की जु किरणावली अवत मधुमान हिय पियत रगी । नागरी सरल सकेत आकारिणी गनत गुन गननि मति होती पगी ।—नागरी० (शब्द०) ।

आकारीठ④—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आकारण = बुलाना] सग्राम । युद्ध । (हिं०)

आकाश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अंतरिक्ष । आसमान । गगन । ऊँचाई पर का वह चारो ओर फैला हुआ अपार स्थान जो नीला और शून्य दिखाई देता है । जैसे,—पक्षी आकाश में उड़ रहे हैं । २. साधारणतः वह स्थान जहाँ वायु के प्रतिरिक्त और कुछ न हो, जैसे,—वह योगी ऊपर उठा और बड़ी देर तक आकाश में ठहरा रहा । ३. शून्य स्थान । वह अनंत विस्तृत अवकाश

जिनमें विश्व के छोटे बड़े सब वस्तु, वर, सूर्य, ग्रह, तारा आदि स्थित हैं और जो मन्त्र पदार्थों के भीतर व्याप्त है।

**विशेष**—वैशेषिककार ने आकाश को द्रव्यों में गिना है। उसके अनुयायी भाष्यकार प्रश्नस्तपाद ने आकाश, काल और दिशा को एक ही माना है। यद्यपि सूत्र के १७ गुरुओं में शब्द नहीं है, तथापि भाष्यकार ने कुछ और पदार्थों के साथ शब्द को भी ले लिया है। न्याय में भी आकाश को पंचभूतों में माना है और उसमें श्रोत्रेन्द्रिय की उत्पत्ति मानी है। सांख्यकार ने भी आकाश को प्रकृति का एक विकार और शब्दनन्मात्रा से उत्पन्न माना है और उसका गुण शब्द कहा है। पाश्चत्य दार्शनिकों में से अधिकांश ने आकाश के अनुभव और दूसरे पदार्थों के अनुभव के बीच वही भेद माना है जो वर्तमान प्रत्यक्ष अनुभव और व्यतीत पदार्थों या भविष्य समावनाओं की स्मृति या चिंतन प्रभूत अनुभव में है। काट आदि ने आकाश की भावना को अतःकरण से ही प्राप्त अर्थात् उसी का गुण माना है। उनका कथन है कि जैसे रंगों का अनुभव हमें होता है, पर वास्तव में पदार्थों में उनकी स्थिति नहीं है, केवल हमारे अतःकरण में है, उसी प्रकार आकाश भी है।

**यौ०**—आकाशकुसुम। आकाशगंगा। आकाशचारी। आकाशचोटी। आकाशजल। आकाशदीपक। आकाशधुरी। आकाशध्रुव। आकाशनीम। आकाशपुष्प। आकाशभाषित। आकाशफल। आकाशवेल। आकाशमंडल। आकाशमुखी। आकाशमूली। आकाशलोचन। आकाशवल्ली। आकाशवाणी। आकाशवृत्ति। आकाशव्यापी। आकाशस्तिकाय।

**पर्या०**—द्यौ। ध्रु। अक्ष। व्योम। पुष्कर। अवर। नभ। अतरिक्ष। गगन। अनत। सुरवर्त्म। ख। त्रियत्। त्रिणुपद। तारापथ। मेघाब्जा। महापिल। विहायस। मरुद्वर्त्म। मेघवेश्म। मेघवर्त्म। कुनभि अक्षर। विविण्टप। नाक। अनग।

**मुहा०**—आकाश की कोर = क्षितिज। आकाश खुलना = ग्राममान का माफ होना। वादन का जाना। वादन हटना। जैसे,—दो दिन की बदली के पीछे आज आकाश खुला है। आकाश छूना या चूमना = बहुत ऊँचा होना। जैसे,—काशी के प्रागद आकाश छूते हैं। आकाश पाताल एक करना = (१) भारी उद्योग करना। जैसे,—जब तक उसने इस काम को पूरा नहीं किया, आकाश पाताल एक किए रहा। (२) आदोलन करना। हलचल करना। घूम मवाना। जैसे,—वे जरा भी वान के नये आकाश पाताल एक कर देते हैं। आकाश पाताल का अंतर = बड़ा अंतर। बहुत फर्क। उ०—तो भी इनमें उनमें आकाश और पाताल का अंतर है। प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०३। आकाश बांधना = मनहोनी बात कहना। अमभव बात कहना। उ०—कहा कहति डरपाइ कछु मेरी घटि जैहै। तुम बांधति आकाश बात झूठी को सँहै।—सूर (शब्द०)। आकाश से बातें करना = बहुत ऊँचा होना। जैसे,—माधवगव के घरहरे आकाश से बातें करते हैं।

४ अवरक। अक्षर। ५ छिद्र। विवर [को०]। ६ (गणित में) शून्य [को०]। ७ प्रकाश। स्वच्छता [को०]। ८ ब्रह्म [को०]।

**आकाशकक्षा**—सज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश में वह मंडल जहाँ तक सूर्य की किरणों का संचार है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार इस मंडल की परिधि १८७१२०६६२००००००००० योजन है।

**आकाशकल्प**—सज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म [को०]।

**आकाशकुसुम**—सज्ञा पुं० [सं०] १ आकाश का फूल। खपुष्प। अनहोनी बात। असमव बात।

**आकाशगंगा**—सज्ञा स्त्री० [सं० आकाशगङ्गा] १ बहुत से छोटे छोटे तारों का एक विस्तृत समूह जो आकाश में उत्तर-दक्षिण फैला है।

**विशेष**—इसमें इतने छोटे छोटे तारे हैं जो दूरबीन के ही सहारे दिखाई पड़ते हैं। खाली आँख में उनका समूह एक सफेद सड़क की तरह बहुत दूर तक दिखाई पड़ता है। इसकी चौड़ाई बराबर नहीं है, कहीं अधिक कहीं बहुत कम है। इसकी कुछ शाखाएँ भी कुछ इधर उधर फैली दिखाई पड़ती हैं। इसी से पुराणों में इसका यह नाम है। देहाती लोग इसे आकाशजनेऊ, हाथी की डहर या केवल डहर अथवा दूधगंगा कहते हैं।

२ पुराणानुसार वह गंगा जो आकाश में है।

**पर्या०**—मदाकिनी। विद्युद्गंगा। स्वर्गगा। स्वर्णदी। सुरदीधिका।

**आकाशग<sup>१</sup>**—वि० [सं०] आकाशचारी [को०]।

**आकाशग<sup>२</sup>**—सज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

**आकाशगंगा**—सज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा [को०]।

**आकाशचमस**—सज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

**आकाशचारी<sup>१</sup>**—वि० [सं० आकाशचारिन्] [स्त्री० आकाशचारिणी] आकाश में फिरनेवाला। आकाशगामी।

**आकाशचारी<sup>२</sup>**—सज्ञा पुं० १ सूर्यादि ग्रह नक्षत्र। २. वायु। ३. पक्षी। ४. देवता। ५. राक्षस।

**आकाशचोटी**—सज्ञा पुं० [सं० आकाश + हि० चोटी] शीर्षविंदु। वह कल्पित विंदु जो ठीक सिर के ऊपर पड़ता है।

**आकाशजननी**—वि० [सं० आकाशजननि] दुर्गा आदि के प्राचीन में बने भरोसे या छिद्र [को०]।

**आकाशजल**—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह जल जो ऊपर से बरसे। मेघ का पानी।

**विशेष**—महा नक्षत्र में लोग बरसे हुए पानी को वरतनी में भर कर रख लेते हैं। यह औषध के काम आता है। २ ओस।

**आकाशदीप**—सज्ञा पुं० [सं०] आकाशदीया।

**आकाशदीया**—सज्ञा पुं० [सं० आकाश + हि० दीया] वह दीपक जो कांतिक में हिंदू लोग कडील में रहकर एक ऊँचे बाँस के मिरे पर बाँधकर जलाते हैं।

**विशेष**—कांतिक माहात्म्य के अनुसार २१ हाथ की ऊँचाई पर दिया जलाना उत्तम है, १४ हाथ पर मध्यम और ७ हाथ पर निकृष्ट है।

**आकाशधुरी**—सज्ञा स्त्री० [सं० आकाश + हि० धुरी] खगोल का ध्रुव। आकाशध्रुव।

**आकाशध्रुव**—सज्ञा पुं० [सं०] आकाशधुरी।

**आकाशगदी**—सज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा।

**आकाशनिद्रा**—सज्ञा स्त्री० [सं०] खुले हुए मंदिर में सोना।

**आकाशनीम**—सज्ञा स्त्री० [सं० आकाश + हि० नीम] एक प्रकार का पौधा जो नीम के पेड़ पर होता है। नीम का बाँदा।

आकाशपथिक--सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

आकाशपुष्प--सज्ञा पुं० [सं०] आकाश का फूल । आकाशकुसुम । खपुष्प ।

विशेष-- यह इस सब बातों के उदाहरणों में से हैं ।

आकाशफल--सज्ञा पुं० [सं०] सतान या लडका लडकी ।

आकाशवेल, आकाशवेलि--सज्ञा स्त्री० [सं० आकाश + हि० वेल] अमरवेल ।

आकाशभाषित--सज्ञा पुं० [सं०] नाटक के अभिनय में एक संकेत । बिना किसी प्रश्नकर्ता के आपसे आप वक्ता ऊपर की ओर देखकर किसी प्रश्न को इस तरह करता है, मानो वह उससे किया जा रहा है और फिर वह उसका उत्तर देता है । इस प्रकार के कहे हुए प्रश्न को 'आकाशभाषित' कहते हैं ।

विशेष--भारतेंदु हरिश्चंद्र के 'विपश्य विपमोपधम्' में इसका प्रयोग बहुत है । उ०--हरिश्चंद्र--अरे सुनो भाई, सेठ, साहूकार, महाजन, दुकानदारों, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं । किसी को लेना हो तो लो । (इधर उधर फिरता है । ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'वयो तुम ऐसा दुष्कर्म करते हो ?' आर्य, यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है । (ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'तुम क्या कर सकते हो, क्या समझते हो और किस तरह रहोगे?' इसका क्या पूछना है । स्वामी जो कहेगा वह करेंगे, इत्यादि ।--सत्य हरिश्चंद्र ।

आकाशमंडल--सज्ञा पुं० [सं० आकाशमंडल] नभमंडल । खगोल ।

आकाशमासी--सज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्र जटामांसी [को०] ।

आकाशमुखी--सज्ञा पुं० [सं० आकाश + हि० मुखी] एक प्रकार के साधु जो आकाश की ओर मुँह करके तप करते हैं । ये लोग अधिकांश शैव होते हैं ।

आकाशमूली--सज्ञा स्त्री० [सं०] जलकुम्भी । पाना ।

आकाशयान--सज्ञा पुं० [सं०] वह जो आकाशमार्ग से गमन करे । २ वायुयान । वलून [को०] ।

आकाशयोधी--सज्ञा पुं० [सं० आकाशयोधिन्] वह लोग जो ऊँची जमीन या टीले पर से लड़ाई कर रहे हों । [को०] ।

आकाशरक्षी--सज्ञा पुं० [सं० आकाशरक्षिन्] वह जो किले की बाहरी दीवार या बुर्ज पर खड़ा होकर पहरा दे [को०] ।

आकाशलोचन--सज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ से ग्रहों की स्थिति या गति देखी जाती है । मानमंदिर । आवजरवेष्टरी ।

आकाशवचन--सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आकाशभाषित' [को०] ।

आकाशवर्त्म--सज्ञा पुं० [सं०] १ वायुमंडल ।

आकाशवल्ली--सज्ञा स्त्री० [सं०] अमरवेल ।

आकाशवाणी--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह शब्द या वाक्य जो आकाश से देवता लोग बोलें । देववाणी । २ वेतार की युक्ति से प्रसारित वाणी या ध्वनि । रेडियो ।

आकाशवृत्ति<sup>१</sup>--सज्ञा स्त्री० [सं०] अनिश्चित जीविका । ऐसी आमदनी जो बँधी न हो ।

आकाशवृत्ति<sup>२</sup>--वि० [सं० आकाशवृत्तिक] १ जिसे आकाशवृत्ति का ही सहारा हो । २ (खेत) जिसे आकाश के जल ही का सहारा हो, जो दूसरे प्रकार से न सींचा जा सकता हो ।

आकाशमलिल--सज्ञा पुं० [सं०] १ वृष्टि । २ ओम [को०] ।

आकाशस्फटिक--सज्ञा पुं० [सं०] १ धोना । वनोरी । २ सूर्यस्त या चंद्रकांत मणि [को०] ।

आकाशास्तिकाय--सज्ञा पुं० [सं०] अंतर्गाम्यानुसार छह प्रकार के द्रव्यों में से एक । यह एक प्रकृति पदार्थ है जो लोक और अलोक दोनों में है और जीव तथा पुद्गल दोनों को स्थान या अवकाश देता है । आकाश ।

आकाशी--सज्ञा स्त्री० [सं० आकाश + ई० (प्रत्यय)] वह चांदनी जो धूप आदि से बचने के लिये तानी जाती है ।

आकाशीय--वि० [सं०] १ आकाशजन्य । आकाश का । २ आकाश में रहनेवाले । आकाशस्थ । ३ आकाश में होनेवाला । ४ दैवागत । आकस्मिक ।

आकास<sup>७</sup>--सज्ञा पुं० [सं० आकाश] दे० 'आकाश' । उ०--नका राज विभीषण राजें ध्रुव आकास विराजें, सूर्य, १, ३६ ।

आकासवानो<sup>७</sup>--सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आकाशवाणी' उ०--सूर, आकासवानी भई तब तहें, यहें बँदेहि है, कर मुहारा ।--सूर, ६। ७६ ।

आकिचन--सज्ञा पुं० [सं० आकिचन] गरीबी । निर्धनता । अकिचनता [को०] ।

आकिचन--वि० दे० 'आकिचन' । उ०--प्राकिचन उद्विगदमन, रमन राम इकतार । तुलसी ऐसे मत जन, बिरने या मगार ।--तुलसी ग्रं०, पृ० १२ ।

आकिल--वि० [अ० आकिल] बुद्धिमान् । जानी । अचनमद ।

आकिलखानी--सज्ञा पुं० [अ० आकिल + फा० खाना (नाम)] एक प्रकार का रंग जो कानापन लिए लाल होना है । एक प्रकार का खैरा या काकरेजी रंग ।

आकीर्ण<sup>१</sup>--वि० [सं०] १ व्याप्त । पूर्ण । मगदुप्रा । २ बिखरा या फैला हुआ । [को०] ।

यो०--कटककीर्ण । जनाकीर्ण ।

आकीर्ण<sup>२</sup>--सज्ञा पुं० गीड [को०] ।

आकुचन--सज्ञा पुं० [सं० आकुञ्चन] [वि० आकुचनीय आकुचिन] १ मिकुडना । बटुरना । निमटना । सकोच । २. वैशेषिक शास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के कर्मों में पदार्थों का मिकुडन । ३ ढेर लगाना [को०] । ४ टेढ़ा करना [को०] । ५ सेना का एक विशेष प्रकार का बढाव [को०] ।

आकुचनीय--वि० [सं० आकुञ्चनीय] मिकुडने योग्य । निमटने योग्य ।

आकुचित--वि० [सं० आकुञ्चित] १ मिकुडा हुआ । निमटा हुआ । २. टेढ़ा । कुटिल । बक्र ।

आकुठन--सज्ञा पुं० [सं० आकुठन] [वि० आकुठिन] १ गुठला होना । कुद होना । लज्जा । शर्म ।

आकुठित--वि० [सं० आकुठित] १ गुठला । कुद । २ लज्जित । शर्माया हुआ । ३. स्तब्ध । जडा । जैसे,--उनकी बुद्धि आकुठित हो गई है ।

आकुट्टी हिंसा--सज्ञा स्त्री० [प्रा० आकुट्टी + सं० हिंसा] उत्साहपूर्वक ऐसा निषिद्धकर्म करना जिसमें किसी प्राणी को दुःख हो ।

श्रीकृष्ण<sup>१</sup>—वि० [सं०] [संज्ञा श्रीकृष्ण] २ व्यग्र। धवराया हुआ।  
उ०—भारत अब भी श्रीकृष्ण विपत्ति के घेरे में।—दिल्ली०,  
पृ० २१। २ वस्तु। विवरा हुआ। जैसे,—केश। ३  
उद्विग्न। क्षुब्ध। ४. विह्वल। कातर। ५ अस्वस्थ। ६.  
व्याप्त। सकुन। ७ तारतम्यहीन। जिसका कोई ठीक मित-  
सिला न हो [को०]। ८. जगली। ऊबड़ खावड़ [को०]।

श्रीकृष्ण<sup>२</sup>—संज्ञा पु० [सं०] १ खच्चर। २ आवाद जगह [को०]।

श्रीकृष्णलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० श्रीकृष्णलता] १ व्याकुलता। धव-  
राहट। उ०—वह श्रीकृष्णलता अब कहाँ रही जिसमें सब कुछ  
ही जाय भूत।—कामायनी, पृ० १४५। २ व्याप्ति।

श्रीकृष्णत्व—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'श्रीकृष्णलता' [को०]।

श्रीकृष्णलित—वि० [सं०] १ व्याकुल। धवराया हुआ। उ०—यव साध्य  
मलय श्रीकृष्णलित दुकून कलित हो, यो छिपते हो क्यों।—चंद्र०  
पृ० ६३।

श्रीकृष्णलित—वि० [सं०] ईपत् सकृचित [को०]।

श्रीकृत—संज्ञा पु० [सं०] १ आशय। अभिप्राय २ हार्दिक भावना  
[को०]। ३ कामना इच्छा [को०]।

श्रीकृति—संज्ञा पु० [सं०] १ अभिप्राय। आशय। मतलब। २.  
पुराणानुसार मनु की तीन कन्याओं में से एक जो रुचि प्रजापति  
को व्याही थी। ३ उत्साह। अध्यवसाय। ४ सदाचार।  
आप्तरीति। ५ कर्मेन्द्रिय [को०]। ६ वायुपुराण के अनुसार एक  
कल्प का नाम [को०]।

श्रीकृती—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रीकृति] स्वायम्भुव मनु की तीन कन्याओं में  
से एक।

श्रीकृत<sup>१</sup>—वि० [सं०] व्यवस्थित। निर्मित। गठित। २ समीप लाया  
हुआ [को०]।

श्रीकृत<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रीकृति] मूर्ति। रूप।

श्रीकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वनावट। गढ़न। ढाँचा। २ अवयव।  
विभाग। उ०—जानु सुजघन करभकर श्रीकृति, कटि प्रदेश  
किकिन राजे।—सूर०, १। ६६।

विशेष—इसका प्रयोग हिंदी में चेतन के लिये अधिक और जड़  
के लिये कम होता है।

२ मूर्ति। रूप। ३ मुख। चेहरा। जैसे,—उसकी श्रीकृति बड़ी  
भयावनी है। ४ मुख का भाव। चेष्टा। जैसे,—मरते  
समय उस मनुष्य की श्रीकृति विगड़ गई। ५ २२ अक्षरों  
का एक वर्णवृत्त। मदिरा। हँसी। मद्रक। मदारमाला इसका  
भेद है। यह यथार्थ में एक प्रकार का सर्वैया है। उ०—  
भामत गौरि गुसाईन को वर राम धनू दुइ खड कियो। मालिनि  
को जयमाल गुहो हरि के हिय जानकि मेनि दियो। रावन  
की उतरी मदिरा चुपचाप पयान जो लक कियो। राम  
वरी मिय मोदमरी नभ में सुर जै जैकार कियो।—  
(शब्द०)। ६ जातिविशेष [को०]। ७. (गणित में) २२ की  
संख्या [को०]।

यौ०—श्रीकृतिगण। श्रीकृतिच्छत्रा। श्रीकृतियोग।

श्रीकृष्ट—वि० [सं०] खीचा हुआ। आकर्षित।

श्रीकृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खीचाव। २ (ज्योतिष में) गुरुत्वा-

कर्षण। ३ धनुष की डोरी का खिचना। ४ तत्रोक्त  
आकर्षणक्रिया [को०]।

श्रीकृष्ट—वि० [सं०] अधोन्मीनित (नेत्र) [को०]।

श्रीकोकर—संज्ञा पु० [सं०] मकर राशि [को०]।

श्रीकोप—संज्ञा पु० [सं०] ईपत् कोप। जरा सा गुस्सा [को०]।

श्रीकौशल—संज्ञा पु० [सं०] कुशलता का अभाव [को०]।

श्रीक्रद—संज्ञा पु० [सं० श्रीक्रन्द] १ रोदन। रोना। २ चिल्लाना।

चीखना। चिल्लाहट। ३ बुलाना। पुकार। ४ मित। भाई।

वधु। ५ चोर युद्ध। कड़ी लड़ाई। ६ ध्वनि। आवाज।

शब्द। ७ ग्रहयुद्ध में किसी एक ग्रह के दूसरे ग्रह की

अपेक्षा बलवान् या विजयी होने की अवस्था। ८ प्रधान शत्रु

के पीछे रहकर सहायता करनेवाला शत्रु राजा या राष्ट्र।

श्रीक्रन्दन—संज्ञा पु० [सं० श्रीक्रन्दन] १ रोना। २ चिल्लाना।

श्रीक्रन्दिक—वि० [सं० श्रीक्रन्दिक] उस स्थान पर पहुँचनेवाला जहाँ  
से चिल्लाहट सुनाई दे [को०]।

श्रीक्रदित<sup>१</sup>—वि० [सं० श्रीक्रन्दित] १ जोर जोर से रोने चिल्लाने-  
वाला। २ आहत (महायत्तार्थ) [को०]।

श्रीक्रदित<sup>२</sup>—संज्ञा पु० १ जोर की चिल्लाहट। २ पश्चात्ताप। रोना  
पीटना [को०]।

श्रीक्रदी—वि० [सं० श्रीक्रन्दित] रोने चिल्लानेवाला [को०]।

श्रीक्रम(पु)—संज्ञा पु० [सं० श्रीक्रम = परास्त करना] १ पराक्रम।  
शूरता। (हि०)। २ ३० 'श्रीक्रम'।

श्रीक्रमण—संज्ञा पु० [सं०] [वि० श्रीक्रमणीय, श्रीक्रमित, श्रीक्रांत] १.

वलपूर्वक सीमा का उल्लंघन करना। हमला। चढ़ाई। धावा।

जैसे,—महमूद ने कई बार भारत पर श्रीक्रमण किया। २.

आघात पहुँचाने के लिये किसी पर झपटना। हमला। जैसे,—

डाकुओं ने पथिकों पर श्रीक्रमण किया। ३ घेरना। छेकना।

मुहसिरा। ४ आक्षेप करना। निंदा करना। जैसे,—इस लेख

में लोगों पर व्यर्थ श्रीक्रमण किया गया है। ५ निकट जा

पहुँचना [को०]। ६ मोजन [को०]। ७ शक्ति [को०]।

श्रीक्रमणकारी—वि० [सं० श्रीक्रमणकारिन्] [स्त्री० श्रीक्रमणकारिणी]

श्रीक्रमण करनेवाला। श्रीक्रामक।

श्रीक्रमित—वि० [सं० श्रीक्रमिता] जिस पर श्रीक्रमण किया गया हो।

श्रीक्रमितानायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह प्रौढा नायिका जो मनसा,

वाचा, कमणा अपने प्रिय को बग में करे।

श्रीक्रय—संज्ञा पु० [सं०] १ व्यापारी। २ व्यापार [को०]।

श्रीक्रात—वि० [सं० श्रीक्रान्त] १. जिसपर श्रीक्रमण किया गया हो।

जिसपर हमला हुआ हो। २ घिरा हुआ। आवृत्त। छिका

हुआ। ३ वशीभूत। पराजित। विवश। ४. पीड़ित। दलित।

दवाया हुआ। ५ व्याप्त। आकीर्ण। ६ प्राप्त [को०]। ७.

सज्जित [को०]।

यौ०—श्रीक्रातनायिका = वह नायिका जिसका प्रेमी या पति जीत

लिया गया हो। श्रीक्रातमित = जिसकी मर्ति मारी गई हो।

श्रीक्राति—संज्ञा स्त्री० [श्रीक्रान्ति] १ उद्यम पुनर। उम्रव। २.

अधिकार करना [को०]। ३ दवाना। चीमना [को०]। ४.

ऊपर चढ़ना [को०]। ५. शक्ति। नाकत [को०]।



विशेष-मिन्न मिन्न तत्वों के मयोग से मिन्न प्रकार के आक्साइड बनते हैं, जैसे पारे से आक्साइड आफ मर्करी, जस्ते से आक्साइड आफ जिक, लोहे से आक्साइड आफ आइरन इत्यादि।

आक्सीजन - सञ्ज्ञा पुं० [अ०] एक गैस या सूक्ष्म वायु। अम्लज। अम्लजन। प्राणद। प्राणप्रद। ओपजन।

विशेष-—यह रूप, रम, गहराइन पदार्थ है और वायुमण्डलगत वायु से कुछ भारी होता है तथा पानी में घुल जाता है। यह जल में ८६ फी मदी होता है। धातु में लगकर यह मोरचा उत्पन्न करता है। प्राणियों के जीवन के लिये यह बहुत आवश्यक है। यह वृक्ष से पदार्थों में संयुक्त रूप में मिलता है।

आखडल—सञ्ज्ञा पुं० [म० आखडल] इद्र।

आख—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] खता। खती। रमा।

आखण—वि० [म०] (खोदने या खनने में) कडा। जैसे,—पत्थर [को०]।

आखत<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० अक्षत, प्रा० अखत] १ अक्षत।

उ०—मेवा मुमिग्न पूजितों पान आखत थोरे।—तुलसी ग्र०, पृ० ४५७। २ चदन या केसर में रंगा हुआ चावल जो मूर्ति के मस्तक पर स्थापना के समय और दूहा दुलहिन के माथे पर विवाह के समय लगाया जाता है। ३ वह अन्न जो गृहस्थ लोग नेगी परजो को विवाहादि अवसरों पर किसी विशेष कृत्य के उपलक्ष्य में देते हैं।

आखता—वि० [ला० आखता] जिसके अङ्कोश चौरकर निकाल लिए गए हों। वधिया।

विशेष—यह शब्द प्रायः घोड़े के लिये प्रयुक्त होता है, पर कोई कोई इस शब्द का कुत्ते और बन्दरे के लिये भी प्रयोग करते हैं।

आखन<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० आ + क्षण] प्रतिक्षण। हर घडी।

आखन<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'आख' [को०]।

आखना<sup>४</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म० आखान, प्रा० आखान, प० आखाना]

उ०—कहना। बोलना। उ०—(क) बार बार का आखिये, मेरे मन की मोय। कलि तो ऊखल होयगी, साईं और न होय।—बंदीर (शब्द०)। (ख) सत्यमय सांचे सदा, जे आखर आखे। प्रनतपाल पाए मही, जे फल अभिलाखे।—तुलसी (शब्द०)।

आखना<sup>५</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० आकाक्षा] चाहना। इच्छा करना। उ०—

तोहि मेवा विछुरन नहि आखीं। पीजर हिये वालि कै राखीं।—जायसी ग्र०, पृ० २२।

आखना<sup>६</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म० अक्षि, प्रा० आखि = अक्षि] देखना।

ताकना। उ०—अलक, भुअगिन अघरहि आखा। गहै जो नागिन सो रस चाखा।—जायसी।—(शब्द०)। (ख) आत्म और विप को मुख वाच्य पद आनंद को। विप सुख त्यागि आत्म मुख लक्ष्य आखिये।—निघचल (शब्द०)।

आखना<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि० आखा] मोटे आटे को आधे में ढालकर चालना। छानना।

आखनिक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ खनक। २ चूहा। ३ शूकर। ४ चो। ५ कुदाल [को०]।

आखर<sup>८</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म० अक्षर, प्रा० अखर] अक्षर। उ०—(क) तब चदन आखर हिय लिखे। सीख लेइ तुइ जोग न सिखे।—

जायसी ग्र०, पृ० ८४। (ख) कविहि अरथ आखर बलु माँवा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाँवा।—मानम, २।२४०।

क्रि० प्र०—देना = वात देना। प्रतिज्ञा करना।

आखर<sup>९</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ फावडा। कुदाल। २ खनक। ३ जानवर की माँद। विवर। ४ अग्नि का एक नाम [को०]।

आखा<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स० आखरण = छातना] भोजन कपड़े से मढा हुआ एक मेढरेदार वस्तु जिसमें मोटे आटे को रखकर चानने से मैदा निकलता है। एक प्रकार की चलनी। आशी।

आखा<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] खुरजी। गठिया।

आखा<sup>३</sup>—वि० [स० अक्षय, प्रा० अखय] १ कुन। पूरा। समूचा। समस्त। उ०—कहिये जिय न कछु मक राखी। लौरी मेलि दई हैं तुमको। वक्त रहौ दिन आखी।—सूर०, १।३५४०। जैसे,—उसे आज आखा दिन बिना ख ए बीना। २ अनगढ़ा। समूचा। जैसे,—आखा लकड़ी (लक्षकरी)।

आखानीज—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अक्षयतृतीया] वंशाख मुदी तीज। अक्षयतृतीया।

विशेष—इस दिन हिंदुओं के यहाँ बट का पूजन होता है और ब्राह्मणों को पखे, मुराहियाँ, कचड़ी, आदि ठठक पहुँचाने वाली चीजें दी जाती हैं।

आखानवमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अक्षयनवमी] कार्तिक शुक्ल नवमी। दे० 'अक्षय नवमी'।

आखिर<sup>१</sup>—वि० [फा० आखिर] अंतिम। पीछे का। पिछता।

यौ०—आखिर जमाना। आखिर दम।

आखिर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ अंत। जैसे,—आखिर को वह ले के टना। २ परिणाम। फल। नतीजा। जैसे,—इस काम का आखिर अच्छा नहीं।

आखिर<sup>३</sup>—वि० समाप्त। खतम। उ०—उपज ओ पाले अनुमरै। वावन अक्षर आखिर करै।—फवीर (शब्द०)।

आखिर<sup>४</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ अंत में। अंत को। जैसे,—(क) आखिर उसे यहाँ से चला ही जाना पडा। (ख) वह कितना ही क्यों न बढ़ जाय, आखिर है तो नीच ही। २ हारकर। हार मानकर थककर। लाचार होकर। जैसे,—जब उमने किसी तरह नहीं माना, तब आखिर उसके पैर पडता पडा। ३ अवशय। जरूर। जैसे,—आपका काम तो निकल गया, आखिर हमें भी तो कुछ मिलना चाहिए। ४ भला। अच्छा। खैर। तो। जैसे—अच्छा आज बच गए, जाओ, आखिर कभी तो भेंट होगी।

आखिरकार—सञ्ज्ञा पुं० [फा० आखिरकार] अंत में। अंजाम को। अंत को। जैसे—सुनते सुनते आखिरकार उमने नहीं रहा गया और वह बोल उठा।

आखिरत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० आखिरत] १ परलोक। २ आ। ३ फल। [को०]।

आखिरी—वि० [फा० आखिरी] अंतिम। सबसे। पिछता। उ०—केजव को लगना, स्वात्, आखिरी घाव अभी तक बरी है।—नाम० पृ० ३१।

आखु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मूसा। चूहा।

यौ०—आखुकर्णपणिका, आखुकर्णी, आखुपणिका, आखुपर्णी =



मूमाकानी लता । आखुग, आखुपत्र, आखुभुक् = विनार । आखु-  
रथ = आखुवाहन = गणेश ।

२ देवताल । देवहाड । ३. सूअर । शूकर । ४ कुदाल । फावडा  
[को०] । ५. चोर [को०] । ६ कृपण । कजूस [को०] ।

आखुकरीष—सज्ञा पुं [सं०] वाल्मीकि [को०] ।

आखुघात—सज्ञा पुं [सं०] मूस पकड़ने या मारनेवाला । मुसहर [को०] ।

आखुपापाण—सज्ञा पुं [सं०] १ चुवक पत्थर । २ सखिया  
नामक विष ।

आखुवाहन—सज्ञा पुं [सं० आखुवाहन] गणेश । उ०—अमिलाप  
लाख लाहन समुक्ति राखु आखुवाहन हृदय ।—मिखारी० ग्र०,  
भा० १, पृ० १ ।

आखुभुक् सज्ञा पुं [सं०] विडाल । विनार [को०] ।

आखुविषहा—सज्ञा पुं [सं०] देवताली लता [को०] ।

आखेट—सज्ञा पुं [सं०] अहेर । शिकार । मृगया ।

आखेटक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [सं०] शिकार । अहेर ।

आखेटक<sup>२</sup>—वि० [सं०] शिकार करनेवाला । शिकारी । अहेरी ।

आखेटिक<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ कुशल शिकार करनेवाला । २ भयानकी ।  
डरावना [को०] ।

आखेटिक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं १ शिकारी । २ शिकारी कुत्ता [को०] ।

आखेटी—वि० [सं० आखेटिन] [वि० स्त्री० आखेटिन] शिकारी । अहेरी ।

आखोट—सज्ञा पुं [सं० आखोट] अखरोट ।

आखोर<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [तु० आखोर] १ जानवरो के छाने से बची  
हुई घास या चारा । पखोर । २ चरनी । ३ जानवरो के  
पानी पीने का होद । ४ कूडा करकट । ५. निकम्मी वस्तु ।  
सड़ी गली चीज ।

मुहा०—आखोर की भरती = (१) निकम्मी का समूह । (२)  
निकम्मी चीजों का अटाला ।

आखोर<sup>२</sup>—वि० १ निकम्मा । बेकाम । २. सड़ा गला । रद्दी । ३.  
मैला कुचैता ।

आख्या—सज्ञा स्त्री [सं०] १ नाम । २ कीर्ति । यश । ३ विवरण ।  
व्याख्या । ४ आकृति । चेहरा [को०] । ५. सौंदर्य । गरिमा  
[को०] ।

आख्यात<sup>१</sup>—सज्ञा पुं [सं०] १ तिष्ठत क्रिया । २ राजवश के लोगो  
का वृत्तात । ३ प्रमाणकाल का आनुमानिक सूचन [को०] ।

आख्यात<sup>२</sup>—वि० १ प्रसिद्ध । नामवर । विख्यात । २ कहा हुआ ।  
उक्त ।

आख्यातव्य—वि० [सं०] वर्णन करने योग्य । कहते योग्य । वयान  
करने लायक ।

आख्याता—वि० [सं० आख्यात] कहनेवाला । उपदेशक । शिक्षक  
[को०] ।

आख्याति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ नामवरी । ख्याति । शुहरत । २  
कथन ।

आख्यान—सज्ञा पुं [सं०] [वि० आख्यात, आख्यातव्य, आख्येय]  
१. वर्णन । वृत्तात । वयान । २ कथा । कहानी । किस्सा ।  
३ उपन्यास के ती भेदों में से एक । वह कथा जिसे कवि ही  
कहे, पात्रों से न कहलावे ।

विशेष—इसका आरम्भ कथा के किसी अंश में कर सकते हैं, पर  
पीछे से पूर्वापर सवध खूब जाना चाहिए । इसमें पात्रों की  
वातचीत बहुत लंबी चौड़ी नहीं हुमा करती । चूर्तिक कथा  
कहनेवाला कवि ही होता है और वह पूर्वघटना का वर्णन  
करता है, इससे इसमें अधिकतर भूतकालिक क्रिया का प्रयोग  
होता है, पर दृश्यों को ठीक ठीक प्रत्यक्ष कराने के लिये कभी  
कभी वर्तमानकालिक क्रिया का भी प्रयोग होता है । जैसे,—  
सूर्य डूब रहा है, ठंडी हवा चल रही है, इत्यादि । आजकल के  
नए ढंग के उपन्यास इसी के अंतर्गत आ सकते हैं ।

४ जवाब । उत्तर [को०] । ५ भेदक धर्म [को०] । ६ प्रवधक  
काव्य का अद्याय या सर्ग [को०] । ७ पौराणिक कथा [को०] ।

आख्यानक—सज्ञा पुं [सं०] १ वर्णन । वृत्तात । वयान । १ कथा ।  
किस्सा । कहानी । ३ पूर्ववृत्तात । कथानक ।

आख्यानकी—सज्ञा स्त्री [सं०] इद्रवज्रा तथा उर्ध्ववज्रा के मेल से  
निमित छदविशेष [को०] ।

आख्यानिकी—सज्ञा पुं [सं०] दडक वृत्त के भेदों में से एक जिसके  
विषम चरणों में त, त, ज, ग, ग, और सम में ज, त, ज, ग,  
ग हो । उ०—गोविंद गोविंद सदा रटौ जू । अमार समार तव  
तगौ जू । श्रीकृष्ण राधा भजु नित्य भाई । जु मत्प चाहो अपनी  
भलाई (शब्द०) ।

विशेष—इसके विरुद्ध अर्थान् इसके विषम चरण का लक्षण सम  
चरण में आने और सम चरण का लक्षण विषम चरण में  
आवे, तो उम वृत्त को ख्यानिकी कहेंगे ।

आख्यापक<sup>१</sup>—वि० [सं०] [स्त्री० आख्यायिकी] कहनेवाला ।

आख्यायक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं दूत ।

आख्यापन—सज्ञा पुं [सं०] प्रकट करना । प्रकाश करना । कहना ।  
कथन ।

आख्यायक<sup>१</sup>—वि० [सं०] बतानेवाला । सूचना देनेवाला [को०] ।

आख्यायक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं १ दूत । २ नेता । प्रवक्ता [को०] ।

आख्यायिका—सज्ञा स्त्री [सं०] १ कथा । कहानी । किस्सा । २  
कल्पित कथा जिससे कुछ शिक्षा निकले । ३ एक प्रकार का  
आख्यान जिसमें पात्र भी अपने अपने चरित्र अपने मुँह से कुछ  
कुछ कहते हैं ।

विशेष—प्राचीनो में इसके विषय में मतभेद हैं । अग्निपुराण के  
अनुसार यह गद्यकाव्य का वह भेद है जिसमें विस्तारपूर्वक कर्ता  
की वशप्रशंसा, कन्याहरण, सग्राम विरोग और विजय का  
वर्णन हो, रीति, आचरण और स्वभाव विशेष रूप में दिखाए  
गये हों, गद्यमय हो और कही कही छंद हो । इसमें परिच्छेद  
के स्थान पर उच्छवास होना चाहिए । वामदेव के मत से यह  
गद्यकाव्य जिसमें नायिका ने अपना वृत्तात आप कहा हो,  
भविष्यद्विषयो की पूर्वसूचना हो, कन्या के अपहरण, समागम  
और अभ्युदय का हाल हो, मित्रादि के मुँह से चरित्र कहनाए  
गय हो और बीच बीच में कही कही पद्य भी हो ।

आख्येय—वि० [सं०] ३० 'आख्यातव्य' ।

आगता—वि० [सं० आगन्तु] आने की इच्छावाला [को०] ।

आगंतु—वि० [सं० आगन्तु] १ आनेवाला। २. बाहर से आनेवाला।  
३ पयघ्रष्ट। भटका हुआ। ४ अचानक होनेवाला। दे०  
'आगंतुक' [को०]।

आगंतुक<sup>१</sup>—वि० [सं० आगन्तुक] [स्त्री० आगंतुका, आगंतुकी] १ जो  
आवे। आगमनशील। २ जो डबर उबर से धूमता फिरता  
आ जाय। उ०—जगा कहने आगंतुक व्यक्ति मिटाता उत्कठा  
सविशेष।—कामायनी, पृ० ५०।

आगंतुक<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ अतिथि। पहुँचा। २ वह पशु जिसके स्वामी  
का पता न हो। ३ अचानक होनेवाला रोग। ३  
प्रक्षिप्त पाठ (को०)।

यो०—आगंतुक ज्वर=वह ज्वर जो चोट, भूत, प्रेत के भय या  
अधिक श्रम करने आदि ने अचानक हो जाय। आगंतुक अति-  
मिक्त लिंगनाश=एक प्रकार का चक्षुरोग जिसमें आँख की  
ज्योति मारी जाती है। प्राचीनों के अनुसार यह रोग देवता,  
ऋषि, गंधर्व, वडे सर्प और सूर्य के देखने से हो जाता है।  
आगंतुक रक्षण=वह धाव जो चोट के पकने से हो। आगंतुक  
व्याधि=किसी विमारी के बीच में होनेवाली विमारी।

आग<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्नि] १ तेज और प्रकाश का  
पूज जो उष्णता की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई वस्तुओं में देखा  
जाता है। अग्नि। वैमदर। २ जलन। ताप। गरमी। जैसे,—  
वह डाह की आग से झुनमा जाता है। ३ कामाग्नि। काम  
का वेग। जैसे—तुम्ह ऐसी ही आग है तो उनसे जाकर मिलो  
न। ४ वात्सल्य प्रेम। जैसे,—जो अपने बच्चे की आग होती  
है वह दूसरे के बच्चे की नहीं। ५ डाह। ईर्ष्या। जैसे,—जिस  
दिन ने हमें इनाम मिला है, उमी दिन से उमे बड़ी आग है।

आग<sup>२</sup>—वि० जलता हुआ। बहुत गरम। जैसे,—चिलम तो आग हो  
रही है। २ जो गुण में उष्ण हो। जो गरमी फूँके। जैसे,—  
अरुद्र की दान तो आजकल के लिये आग है।

मृहा०—आग उगलना=कड़ुए वचन सुनाना। जली कटी सुनाना।  
आग उठाना=झगडा उठाना। कलह या उपद्रव उत्पन्न  
करना। आग कँजियाना या कँवाना=आग का ठंडा होना।  
दहकने हुए कोंपले का ठंडा होकर काला पड़ जाना। आग  
करना=(१) आग जलाना। (२) बहुत गर्म करना। आग की  
तरह जलता हुआ बनाना। आग का पतला=चिनगारी। जलता  
हुआ कोयला। आग का पुतला=क्रोधी। चिड़चिड़ा। आग  
का बाग=(१) सुनार का अंगीठा। २ आतिशवाजी। आग  
फुरेदना=(१) गुस्सा भड़काना। क्रुद्ध करना। २ दवे या  
पुराने गुस्से को उमाडना। आग के मोल=बहुत महंगा।  
जैसे,—यहाँ तो चीजें आग के मोल विकती हैं। आग  
खाना, अंगार हगाना=जैसा करना, वैसा पाना। जैसे—हमें  
क्या, जो आग खाएगा, वह अंगार हनेगा। आग गाडना=  
कड़े को राख में सुरक्षित रखना। आग जोडना=आग  
सुलगाना। आग जलाना। आग झाडना=पत्थर या चकमक  
में आग बनाना। आग दिखाना=(१) आग लगाना। जलाने  
के लिये आग छलाना। (२) तोप में बत्ती देना। आग देना=

(१) चिता में आग लगाना। दाहकर्म करना। (२) आतिश  
वाजी में आग लगाना। आग लगाना। फूँकना। उ०—ना  
कंठ आगि देइ होरी। छार मई जरि अग न मोरी।—जाय  
ग्रं०, पृ० ३००। (३) बरवाद करना। नष्ट करना। जैसे,—उ  
पास है क्या, उमने तो अपने घर में आग दे दी। (४) तो  
में बत्ती देना=रजक पर पलीता छलाना। आग धोना=  
अगारों के ऊपर में राख दूर करना। जैसे,—प्राग धो  
चिलम पर रखना। आग पर आग डालना=किसी मडके ह  
व्यक्ति को और मडकाना। आग पर पानी डालना=रु  
शांत करना। आग पर लोटना=वेचैन होना। विफल होना  
तडपना। उ०—वह विरह के मारे आग पर लोट रहा है  
२ डाह से जलना। ईर्ष्या करना। जैसे,—यह हमें देख  
आग पर लोट जाता है। आग पानी का बैर=स्वभाविक  
शत्रुता। जन्म का बैर। आग फाँकना=(१) व्यर्थ।  
बकवाद करना। बान बघारना। झूठी श्रेष्ठी हाँकना। जैसे  
उनकी क्या बात है, वे तो यो ही आग फाँका करते हैं। (२)  
असंभव कार्य को संभव करने की चेष्टा। आग फूँकना=क्र  
उत्पन्न होना। रिम लगना। जैसे,—वह बात सुनने ही  
तन में आग फूँक गई। आग फूँक देना=जलन उत्पन्न कर  
गरमी पैदा करना। जैसे,—उम दवा ने तो और आग प  
दी है। आग फूँक का बैर=स्वभाविक शत्रुता। जन्म  
बैर। आग बनाना=आग सुलगाना। आग बबूला (बगू  
होना या बनाना=क्रोध के आवेश में होना। अत्यंत क्रु  
होना। जैसे,—इस बात के सुनने ही वह आगबबूला हो ग  
आग बरसना=(१) बहुत गरमी पडना। (२) लू चलन  
२ गोलियों की बौछार होना। आग बरमाना=शत्रु  
खूब गोलियाँ चलाना। जैसे,—सिपाहियों ने किले पर  
आग बरसाई। आग बुझा लेना=रुपर निकालना। व  
लेना। जैसे,—अच्छा मौका है, तुम भी अपनी आग बुझा  
आग बोना=(१) आग लगाना। उ०—योगी आहि विच  
कोई। तुम्हारे मंडन आगि जिन बोई।—जायसी, (शब्द०  
२ चुगलखोरी करके झगडा उत्पन्न खडा करना। जैसे,  
यह सब आग तुम्हारी ही बोई तो है। आग भड़कना=  
आग का धक्कना। २ नडाई उठाना। उत्पन्न खडा हो  
जैसे,—दोनों दलों के बीच आजकल खूब आग भड़की  
३ उद्देग होना। जोश होना। क्रोध और शोक आदि म  
का तीव्र और उद्दीप्त होना। जैसे—(क) शत्रु को सा  
देखकर उसकी आग और भड़क उठी। (ख) अपने मृत  
की टोपी देखकर माता की आग और भड़क उठी। आग  
भड़कना=(१) आग धक्कना। २ नडाई लगाना। ३  
और शोक आदि भावों को उद्दीप्त करना। जोग बडा  
आग भभूना होना=क्रोध में तान होना। आग में कूदना  
ज न बूझकर विपत्ति मोल लेना। आग में घी डालना=  
क्रोधित व्यक्ति को और क्रुद्ध करना। (२) आहुति डाल  
होम करना। आग में कूदना=अग्नि करना। जैसे,—  
चलो, वयो आग में मूतते हो। आग में लोखना=(१) अ  
में डाल देना। (२) बडही को ऐसे नर व्याह देना, जहाँ

हर घड़ी कष्ट हुआ करे। आग में पानी डालना = भगडा मिटाना। बढते हुए क्रोध को धीमा करना। आग लगना = आग से किसी वस्तु का जलना उ०—नयन चुवहि जस महवट नीरु। तेहि जल आग लाग सिर चीरु।—जायसी (शब्द०)। जैसे—उसके घर में आग लग गई। (२) क्रोध उत्पन्न होना। कुढ़न होना। बुरा लगना। मिर्चा लगना। जैसे,—(क) उसकी बढवी बातें सुनकर आग लग गई। (ख) तुम तो मनमाना वक्ते, अब हमारे जरा सी कहने पर आग लगती है। (३) ईर्ष्या होना। डाह होना। जैसे,—किसी को सुख चैन से देखा कि वस आग लगी। (४) लाली फैलना। लाल फूलों का चारों ओर फूलना। उ०—वागन वागन आग लगी है (शब्द०)। (५) महेगी फैलाना। गिरानी होना। जैसे,—(क) बाजार में तो आजकल आग लगी है। (ख) सब चीजों पर तो आग लगी है कोई ले क्या। (६) बदनामी फैलना। जैसे,—देखो चारों ओर आग लगी है, संभलकर काम करो (७) हटना। दूर होना। जाना। उ०—कभी यहाँ से तुम्हें आग भी लगेगी (शब्द०)। (८) किसी तीव्र भाव का उदय होना। जैसे,—उसे देखते ही हृदय में आग लग गई। ९ सत्यानाश होना। नष्ट होना। जैसे,—आग लगे तुम्हारी इस चाल पर (यह मुहाविरा स्त्रियों में अधिक प्रचलित है। वे इसे अनेक अवसर पर बोला करती हैं, कभी चिढ़कर, कभी हावभाव प्रकट करने के हेतु और कभी यों ही बोल देती हैं) जैसे,—(क) आग लगे मेरी सुध पर, क्या करने आई थी, क्या करने लगी। (ख) आग लगे, यह छोटा मा लडका कैसा स्वांग करता है। (ग) आग लगे, कहां से मैं इसके पास आई। आग लगाना = (१) आग से किसी वस्तु को जलाना। जैसे,—उसने अपने ही घर में आग लगा दी। (२) गरमी करना। जलन पैदा करना। जैसे,—उस दवा ने तो बदन में आग लगा दी। (३) उद्वेग बढ़ाना। जोश बढ़ाना। किसी भाव को उद्दीपित करना। मडकाना। ४ ईर्ष्या उत्पन्न करना। ५ क्रोध उत्पन्न करना। ६ चुगली करना। जैसे,—उसी ने तो मेरे भाई से जाकर आग लगाई है। ७ विगाडना। नष्ट करना। जैसे,—जो चीज उसे बनाने को दी जाती है, उसी में वह आग लगा देती है। (शब्द०)। ८ फूँकना। उडाना। बरबाद करना। जैसे,—वह अपनी सारी संपत्ति में आग लगाकर बैठ है। ९ खूब धूमधाम करना। बड़े बड़े काम करना। (व्यग्य) जैसे,—तुम्हारे पुरखों ने विवाह में कौन सी आग लगाई थी कि तुम भी लगाओगे। आग लगाकर पानी को बौडाना = भगडा उठाकर फिर सबको दिखाकर उसकी शांति का उद्योग करना। आग भी न लगाना = बहुत चुल्हा ममझना। जैसे,—उससे बोलने की कौन कहे, मैं तो उसको आग भी न लगाऊँ। (शब्द०)। आग लगने पर कुश्रं खोदना = (१) कोई कठिनाई कार्य आ पडने पर उसके करने के सीधे उपाय छोड वडी लवी चौडी युक्ति लगाना। (२) ऐन मौके पर कोई कार्य करने लग जाना। आग लगाकर तमाशा देखना = भगडा या उपद्रव खडा करके अपना मनोरंजन करना। आग लेने आना = आकर फिर थोडी देर में लौट जाना। उलटे पाँव लौटना। थोडी देर के लिये

आना। जैसे,—(क) जरा बैठो भाई, क्या आग लेने आए हो? (ख) आग लेने आई, घरवाली बदन बैठो। आग से पानी होना या हो जाना = क्रुद्ध ने शांत होना। रिस का जाता रहना। जैसे,—उसकी बातें ही ऐसी मीठी होती हैं कि आदमी प्रग से पानी हो जाय। आग होना = (१) गर्म होना। लाल अंगार होना। २ क्रुद्ध होना। रोप में भरना। जैसे,—यह बात सुनते ही वे आग हो गए। किसी की आग में कूदना या पडना = किसी की विपत्ति अपने ऊपर लेना। तलवों से आग लगाना—शरीर भर में क्रोध व्याप्त होना। रिस में भर उठना। जैसे,—उसकी झूठी बात से और भी तलवों से आग लग गई। पानी में आग लगाना = (१) ऐसी अनहोनी बातें कहना जिनका होना समभव न हो। (२) असमभव कार्य करना। (३) जहाँ लडाई की कोई बात न हो वहाँ भी लडाई लगा देना। पेट की आग = भूख। जैसे,—कोई दाता ऐसा है जो पेट की आग बुझावे। पेट में आग लगना = भूख लगना। जैसे—इस लडके के पेट में सवेरे से ही आग लगती है। मुँह में आग लगना = मरना। जैसे,—उसके मुँह में कब आग लगेगी। (अवदाह के समय मुँह के मुँह में आग लगाई जाती है।) आग लगे मेह मिलना या पाना = ताब पर किसी काम का चटपट होना। उ०—याकें तो आजु ही मिलीं कि अरि जाऊँ ऐसों। आगि लागे मेरी माई मेहु पाइयतु है—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ६६। आग पर आग मेलना = जले को जलाना। दुख पर दुख देना। उ०—बिरह आगि पर मेलै आगी। बिरह धाव पर धाव बजागी।—जायसी ग्र०, पृ० १०६।

यौ०—आगजंत्र = तोप।—(डि०)। आगवाण = अग्निवाण।

आग लगन = हाथी का एक रोग जिससे उसके सारे शरीर में फफोले पड जाते हैं।

आग<sup>३</sup> ॐ—कि० वि० [हि०] दे० 'आगे'। उ०—चित्त डोलै नहि खूँटी टरई पल पल पेखि आग अनुसरई।—जायसी (शब्द०)।

आग<sup>४</sup> ॐ—सज्ञा पु० [स० अग्र, प्रा० अग्र] १ दे० 'आग'। उ०—तू रिसभरी न देखेसि आगू। रिस महुँ काकर भयउ सोहागू।—जायसी ग्र०, पृ० ३७। २ ऊख का अगौरा या अगला हिस्सा। उ०—जोरी भली बनी है उनकी, राजहस अरु काग। सूरदास प्रभु ऊख छाँडिकै, चतुर चबोरत आग।—सूर०, १०। ३६५२। ३ हल के हरसे की नोक के पास के खड्डे जिनमें रस्सी अटक कर जुमाडे से बांधते हैं।

आगजनी—सज्ञा स्त्री० [हि० आग + फा० जन + हि० ई (प्रत्यय)]

अग्निकांड। उद्भविशो द्वारा लगाई जानेवाली आग।

आगडा—सज्ञा पु० [स० अ = नहीं + हि० गड = पुष्ट] ज्वार इत्यादि की वह बाल जिसके दाने मारे गए हो।

आगण—सज्ञा पु० [स० अग्रहायण] अग्रहन। मार्गशीर्ष। (डि०)।

आगत<sup>१</sup>—वि० [स०] [स्त्री० आगता] आया हुआ। प्राप्त। उद्भूत।

यौ०—अभ्यागत। आगतपतिका। क्रमागत। स्वागत। दंडागत।

गतागत। तथागत।

आगत<sup>२</sup>—सज्ञा पु० मेहमान। पाहुना। अतिथि।

आगत<sup>३</sup>—सज्ञा पु० दे० 'आयात'। जैसे,—आगत कर।

आगतत्व—सज्ञा पु० [स०] उत्पन्न। मूल। उद्गम [शब्द०]।

आगतपतिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदों में से एक। वह नायिका जिसका पति परदेश से लौटा हो। उ०—आवत बलम विदेस तै हरपित होइ जु वाम। आगत-पतिका नाइका ताहि कहत रसधाम।—पद्माकर ग्र०, पृ० १३६।

आगतसाव्वेस—वि० [सं०] भयभीत। डरा हुआ [को०]।

आगतस्वागत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आगत + स्वागत] आए हुए व्यक्ति का आदर। आदरसत्कार। आवभगत।

आगति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ आगमन। अवाई। २. प्राप्ति [को०]।

३ वापसी [को०]। ४. मूल। उत्स [को०]। मौका [को०]।

आगपीछा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आगापीछा'।

आगम<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अवाई। आगमन। आमद। उ०—श्याम कह्यो सब सखन सो लावहु गोधन फेरि। सध्या को आगम भयो ब्रज तैन हँकौ हेरि।—सूर (शब्द०)। २. भविष्य काल। आनेवाला समय। ३ होनहार। भवितव्यता। सभा-वना। उ०—प्राइ बुझाई दीन्ह पथ तहाँ। मरन खेल कर आगम जहाँ।—जायसी ग्र०, पृ० ६८।

यो०—आगमजानी। आगमज्ञानी। आगमवक्ता।

क्रि० प्र०—करना = ठिकाना करना। उपक्रम वाँधना। जैसे,—यह नहीं कहते कि चंदा इकट्ठा करके तुम अपना आगम कर रहे हो। उ०—मैं राम के चरनन चित दीनो। मनसा, वाचा और कर्मना बहुरि मिलन को आगम कीनो।—तुलसी (शब्द०)।—जनाना = होनहार की सूचना देना। उ०—कवहुँ ऐसा विरह उवाँ रे। प्रिय विनु देखे जिय जाँ रे। तो मन मेरा धीरज धरई। कोइ आगम आनि जनावै रे।—दादू (शब्द०)।—वाँधना = आनेवाली बात का निश्चय करना। जैसे,—अभी से क्या आगम वाँधते हो, जब वैसा समय आवेगा तब देखा जायगा। ४ समागम। सगम। उ०—अरुण, श्वेन सित भलक पलक प्रति को वरनै उपमाइ। मनु सरस्वती गंगा जमुना मिलि आगम कीन्हो आइ।—तुलसी (शब्द०)। ५ आमदनी। आय। जैसे,—इस वर्ष उनका आगम कम और व्यय अधिक रहा।

यो०—अर्थागम।

६ व्याकरण में किसी शब्दसाधन में वह वर्ण जो बाहर से लाया जाय। उ० उत्पत्ति। ८ योगशास्त्रानुसार शब्दप्रमाण। ९ वेद। उ०—आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका।—मानस, ७। ४६। १० शास्त्र। ११ तत्र शास्त्र। १२ नीतिशास्त्र। नीति। १३ तत्रशास्त्र का वह अंग जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, उनका साधन, पुरश्चरण और चार प्रकार का ध्यानयोग होता है। १४ प्रवाह। धारा [को०]। १५ ज्ञान [को०]। १६ संपत्ति की वृद्धि [को०]। १७ सिद्धांत [को०]। १८ नदी का मुहाना। १९ (व्याकरण में) प्रकृति और प्रत्यय [को०]। २० सड़क या मार्ग की यात्रा [को०]। २१ लिखित प्रमाणपत्र [को०]।

आगम<sup>२</sup>—वि० [सं०] आनेवाला। आगामी। उ०—दरसन दियो कृपा करि मोहन वेग दियो वरदान। आगम कल्प रमण तुव ह्वै है श्रीमुख कही बखान।—सूर (शब्द०)।

आगमजानी—वि० [सं० आगमज्ञानिन्] अथवा हिं० आगम = भविष्य + जानो = ज्ञाता [को०] आगमज्ञानी। होनहार का जाननेवाला।

आगमज्ञानी—वि० [सं० आगमज्ञानिन्] भविष्य का जाननेवाला। आगमजानी।

आगमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अवाई। आना। आमद। उ०—मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गएउ लै विप्र समाजा।—मानस, १। २०७। २ प्राप्ति। आय। लाभ। ३. उत्पत्ति। उद्गम [को०]। ४ सभोगार्थ नारी के पास आना [को०]।

आगमना—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आगे चलनेवाली सेना। २ पूर्व दिशा।

आगमनिरपेक्ष—वि० [सं०] साक्षिपत्र आदि से मुक्त। साक्षिपत्र आदि की अपेक्षा न रखनेवाला [को०]।

आगमनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आगमन + हिं० ई (प्रत्य०)] स्वागत के अवसर पर किया जानेवाला समारोह या उत्सव। उ०—अपनी आगमनी बना रही मैं आप कृद्व हूँ कारो मे।—चक्र, पृ० ७१।

आगमनीत—वि० [सं०] पठित। परीक्षित। अधीत [को०]।

आगमपतिका—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आगतपतिका'।

आगमरहित—वि० [सं०] १ साक्ष्यरहित। २ शास्त्र से परे [को०]।

आगमवक्ता—वि० [सं०] १ भविष्यवक्ता। ज्योतिषी।

आगमवाणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] भविष्यवाणी।

आगमविद्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ वेदविद्या। २ तत्रविद्या। वैदिकेतर विद्या।

आगमवृद्ध—वि० [सं०] ज्ञानवृद्ध। शास्त्रज्ञ [को०]।

आगमवेदी—वि० [सं० आगमवेदिन्] १. वेदज्ञ। २ शास्त्रज्ञ [को०]।

आगमश्रुति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] परंपरा। प्रथा [को०]।

आगमसोची—वि० [सं० आगम + हिं० सोच + ई (प्रत्य०)] आगे का भना बुरा सोचनेवाला। अग्रसोची। दूरदर्शी।

आगमापायी—वि० [सं० आगमापायिन्] जिसकी उत्पत्ति और विनाश हो। विनाशधर्मी। अनित्य।

आगमित—वि० [सं०] १ पठित। शिक्षित। २ निश्चित। निर्धारित ३ ले प्राया हुआ। [को०]।

आगमिष्ट—वि० [सं०] शीघ्रता या प्रसन्नतापूर्वक आनेवाला [को०]।

आगमी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आगम = भविष्य] सामुद्रिक विचारने-वाला। ज्योतिषी। अडबोपी। उ०—प्रवध आजु आगमी एकु आयो। करतल निरखि कहत सब गुनगन बहूतन परिचय पायो।—तुलसी ग्र०, पृ० २७६।

आगमी<sup>२</sup>—वि० भविष्यवक्ता। होनहार कहनेवाला।

आगमी<sup>३</sup>—वि० [सं० आगमिन्] १ भविष्य। २ पहुँचने वाला। ३ शास्त्रज्ञ।

आगर<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आकर = खाना] [स्त्री० आगरी] १ खान। आकर। २ समूह। ढेर।

विशेष—यह शब्द प्रायः समासात् में आता है। जैसे,—गुण-आगर। बल-आगर।

३ कोप। निधि। खजाना। उ०—अस वह फूँ बास का आगर भा नासिका समुद। जेति फूँ वह फूलहि ते सब भए सुगद।—जायसी (शब्द०)। ४ वह गड्ढा जिसमें नमक जाता है। ५ नमक का कारखाना।

आगर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्गल = व्योडा] व्योडा। अगरी। उ०—आगर इक लोह जटित लीन्हो वरिबड। दुहुँ करनि असुर हयो भयो मास पिंड।—सूर ६। ६६।

आगर्<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [न० आगर्=घर] १ घर। गृह। २. छाजन। वा एक भेद जिसमें फूम या खर की जड़ ओलती की ओर करके टवाई होती है। ३ छाजन। छप्पर। उ०—तृण तृण वरि भा भूँ खरी। भा वरपा आगर् सिर परी।—जायसी (शब्द०)।

आगर्<sup>४</sup>—वि० [मं० आगर्=अच्छे] [स्त्री० आगरि, आगरी] १. श्रेष्ठ। उत्तम। वढकर। उ०—(क) दई दीन्ह अस जगत अनूपा। एक एक ते आगर् रूपा।—जायसी (शब्द०)। (ख) जिनको माँई रंग दिया कवहुँ न होय कुरग। दिन दिन बानी आगरी चढै सवाया रग।—कवीर (शब्द०)। २ चतुर। होशियार। दक्ष। कुशल। उ०—जो लोच सत योजन सागर। करै सो रामकाज त्रि आगर्।—तुलसी (शब्द०)।

आगर्<sup>५</sup>—सज्ञा पुं० [म०] अभावस्था [को०]।

आगर्बध—सज्ञा पुं० [म० आ + गल + बध] कठमाला (डि०)।

आगरी—सज्ञा पुं० [हि० आगा] नमक बनानेवाला पुरुष। लोनिया।

आगल<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स० अगल] अगरी। व्योडा। बेंडा।

आगल<sup>२</sup>—क्रि० वि० [हि० अगला] मामने। आगे (लश०)।

आगल<sup>३</sup>—वि० अगता। उ०—आगल से पाछन मयो, हरि सो कियो न भेट। अब पछिताने का मया, चिडिया चुगि गई खेत।—(शब्द०)।

आगला<sup>४</sup>—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अगला'।

आगवन<sup>५</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आगमन'। उ०—जिमि तुम्हार आगवन सुनि भए नृपति बलहीन।—मानस, १।२३८।

आगवाह<sup>६</sup>—सज्ञा पुं० [स० अग्निवाह=धूम] धूआँ (हि०)।

आगस्—सज्ञा पुं० [म०] १ पाप। २ अपराध। दोष। ३ दंड सजा [को०]।

आगस्तो—सज्ञा स्त्री० [स०] अगस्त की दिशा। दक्षिण।

आगस्त्य—वि० [स०] १ दक्षिण दिशा। २ अगस्त्य मन्त्री [को०]।

आगा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स० अग्र, प्रा० अग] १ किमी चीज के आगे का भाग। अनाडी। २ शरीर का अग्र भाग। जैसे,—ऊँचे आगे का हाथी अच्छा होता है। ३ छाती। वक्ष स्थल। ४ मुख। मुँह। मुहरा। ५ लताट। माया। ६ लिंगेन्द्रिय। ७ अंगरखे कुरते आदि की काट में आगे का टुकड़ा। ८ पगड़ी का छज्जा। ९ घर के सामने का भाग। मुहरा। १० सेना या फौज का अग्र भाग। सेनामुख। हरावन। ११ नाव का अगला भाग। माँग। गलही। १२ घर के सामने का मैदान। घर के आगे का सहन। १३ पेशखीमा। आगडा। १४ पहिनावे का वह भाग जो आगे रहता है। पल्ला। आँचल। १५ आगे आनेवाला समय। भविष्य। परिणाम। जैसे,—(क) उसका आगा मारा गया है। (ख) उसका आगा अंधेरा है।

मुहा०—आगा काटना=यात्रा या कार्य में विघ्न डालना। आगा तागा लेना=आवगत करना आदर सत्कार करना। आगा भारी होना=(१) गर्म रहना। पैर भारी होना। जैसे,—व्याह होने ही उसका आगा भारी हो गया। (२) कहारो की बोली में राह में ठोकर गड़बड़ आदि का होना जिससे गिरने का भय हो। आगा मारना=किसी के कार्य में बाधा डालना। किसी

की उन्नति में रुकावट डालना। जैसे,—किमी का आगा मारना अच्छा नहीं। आगा मारा जाना=भावी उन्नति में विघ्न पड़ना। आगम मारा जाना। जैसे,—परीक्षा में फेल होने में उसका आगा मारा गया। आगा रुकना=भावी उन्नति में बाधा पड़ना। आगा रोकना=(१) आक्रमण रोकना। (२) कोई बड़ा कार्य आ पड़ने पर उसे संभालना। मुँहडा संभालना। जैसे,—इतनी बड़ी वारात आवेगी, उसका आगा रोकना भी तो कोई सज्ज वात नहीं है। (३) किमी के सामने इस तरह खड़े होना कि ओट हो जाय। आड करना। जैसे,—आगा मत रोको, जरा किनारे खड़े हो। (४) किसी की उन्नति में बाधा डालना। आगा लेना=शत्रु के आक्रमण को रोकना। भिडना। आगा संभालना=(१) मुँहडा संभालना। कोई बड़ा कार्य आ पड़ने पर उसका प्रवध करना। (२) किमी खुले गुप्त अग को ढकना। (३) वार रोकना। भिडना। जैसे,—राजपूताने की लडाइयों में पहले भी न ही लोग आगा संभालने थे।

आगा<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [तु० आगा] १ मातृक। सरदार। २ काबुती। अफगान। ३ ज्येष्ठ भाई [को०]।

आगाज—सज्ञा पुं० [फा० आगाज] प्रारम्भ। आदि। शुरु।

आगाता—वि० [स० आगातृ] गाकर पाने या कमानेवाला [को०]।

आगाध—वि० [स०] १ अत्यंत गहरा। २ जो कठिनाई से प्राप्त हो [को०]।

आगान<sup>१</sup>—सज्ञा दे० [स० आ + गान=वात] वात। प्रसंग। आचधान। वृत्तांत। उ०—श्रीर कृष्ण के व्याह को भूरा मुनहु आगान। पापहरण भवनिधि-तरण करन सकल कल्याण।—गोपाल (शब्द०)।

आगान<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [स०] वह व्यक्ति जो गाना गाकर उद्बोधन करे। गायक [को०]।

आगापीछा—सज्ञा पुं० [हि० आगा + पीछा] १ हिवक। सोच विचार। दुविधा। जैसे,—इस काम के करने में तुम्हें आगा पीछा क्या है?

क्रि० प्र०—करना। जैसे,—अच्छे काम में आगा पीछा करना ठीक नहीं।—(शब्द०)।—होना।

२. परिणाम। नतीजा। पूर्वापर मवध। जैसे,—कोई काम करने के पहले उसका आगा पीछा सोच लेना चाहिए।

क्रि० प्र०—देखना।—सोचना।

३ शरीर का अग्र भाग और पिछा भाग। शरीर के आगे और पीछे के गुप्त अग। जैसे,—मला इतना कपडा तो दो जिममें आगा पीछा ढँके। ४ आगे और पीछे की दशा। जैसे,—जरा आगा पीछा चला करो।

आगामि, आगामी—वि० [स० आगामिन्] [स्त्री० आगामिनी] भविष्य। होनहार। आनेवाला।

आगामिक—वि० [स०] १ भविष्यकालसंबन्धी। २. आनेवाला [को०]।

आगामुक—वि० [स०] १ आनेवाला। २ भावी [को०]।

आगार—सज्ञा पुं० [म०] १ घर। मंदिर। मकान। २ स्थान। जगह। जैसे,—अम्बगार। ३ जैन मतानुसार बाधक नियम और व्रतमंग। ४. खजाना। उ०—खान असी अकबर अली



जानत सब रम पंथ । रच्यो देव आगर गुनि यह मुखसागर  
ग्रव ।—देव (शब्द०) ।

आगरगोविका—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] छिपकिली । गृहगोधा की० ।

आगरदाही—वि० [मं० आगरदाहिन्] । घर जलानेवाला ।

आगरयूम—१ गृह में निकलनेवाला घुम्रा । २ एक पौधे का नाम  
[को०] ।

आगाह<sup>१</sup>—वि० [फा०] जानकार । वाकिफ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

आगाह<sup>२</sup>—वि० [हि० आग+आह (प्रत्य०) ] आगम ।  
होनहार । उ०—चाँद गहन आगाह जनावा । राजमूल गहि  
शाह चलावा ।—जायसी (शब्द०) ।

आगाही—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] जानकारी । वाकफियत । उ०—यही  
सबव है कि मुझे इन सब बातों से आगाही हो गई ।—सतति,  
भा० २१, पृ० १२ ।

आगि<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आग' । उ०—दुरदिन परे रहीम  
कहि दुरखल जैयत आगि । ठाढ़े हूजा घूर पर जब घर लागत  
आगि ।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १६२ ।

आगिल<sup>४</sup>—वि० [हि० आग+इल (प्रत्य०) ] १ आगे का ।  
अगला । उ०—तल में परलय वीतिया लोगन लगी तमारि ।  
आगिल मोच निवारि कै पाछे करो गोहारि ।—कवीर ।  
(शब्द०) । २ भविष्य का । होनेवाला । उ०—आगिल बात  
समुझि डर मोही ।—मानस, २ । १८ ।

आगिला<sup>५</sup>—वि० [हि०] दे० 'आगला' । उ०—आगिला अगनि  
होइवा अवधू, तो आपण होइवा पाणी ।—गोरख०, पृ० २३ ।

आगिवर्तक<sup>६</sup>—सञ्ज्ञा पु० [मं० अग्निवर्त्त] पुराणानुसार मेघ का  
एक भेद । उ०—मुनत मेघवर्तक सजि सैन लै आए ।  
जनवर्त वारिवर्त पवनवर्त वज्रवर्त आगिवर्तक, जलद संग  
लाए ।—सूर (शब्द०) ।

आगी<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आग' । उ०—जीवन तें जागी  
आगी, चपरि चोगुनी लागी, तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि  
कै ।—तुलसी ग्र०, पृ० १७५ ।

आगुआ—सञ्ज्ञा पु० [हि० आगे] तलवार इत्यादि की मुठिया के नीचे  
का गोल भाग ।

आगू<sup>८</sup>—क्रि० वि० [हि०] दे० 'आगे' । उ०—बासर चौये याम  
सतानद आगू दिए ।—रामच०, पृ० २५ ।

आगे—क्रि० वि० [मं० अग्र, प्रा० अग] १ और दूर पर । और  
बढ़कर । 'पीछे' का उलटा । जैसे—उनका मकान अभी आगे  
है । २ समक्ष । समुख । सामने । जैसे,—उसने मेरे आगे यह  
काम किया है । ३ जीवनकाल में । जीते जी । जीवन में ।  
उपस्थिति में । जैसे—वह अपने आगे ही इसे मालिक बना  
गए थे ।—४ इसके पीछे । इसके बाद । जैसे,—मैं कह चुका  
हूँ, आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने ।—५ भविष्य में ।  
आगे को । जैसे—अब तक जो किया सो किया, आगे ऐसा  
मत करना । ६ अंतर । बाद । जैसे,—वैत के आगे वैसाख  
का महीना आता है । ७ पूर्व । पहले । जैसे,—वह आप के  
भाने से आगे हो गया है । ८ अतिरिक्त । अधिक । जैसे,—

इससे आगे एक कौड़ी नहीं मिलने की । ९ गोद में । जैसे,—  
(क) उसके आगे एक लडकी है ।—(ख) गाय के आगे  
बछवा है या बछिया ?

मुहा०—आगे आगे=थोड़े दिनों बाद । क्रमशः । जैसे—देखो  
तो आगे आगे क्या होता है । आगे आना=(१) सामने  
आना । जैसे,—नाई । सिर में कितने बाल ? अभी आगे आते  
हैं । २ सामने पड़ना । मिलना । जैसे,—जो कुछ उसके आगे  
आता है, वह खा जाता है । ३ समुख आना । सामना  
करना । भिड़ना । जैसे,—अगर कुछ हिम्मत हो तो आगे  
आओ । ४ फन मिलना । बदला मिलना । उ०—(क) जो जैसा  
करे सो तैसा पावे । पूत भतार के आगे आवे । (ख) मत कर मास  
बुराई । तेरी धी के आगे आई । (शब्द०) । ५ घटित होना ।  
घटना । प्रकट होना । जैसे,—देखो जो हम कहते थे, वही  
आगे आया । आगे करना=(१) उपस्थित, करना । प्रस्तुत  
करना । जैसे,—जो कुछ घर में था, वह आपके आगे किया ।  
(२) अगुआ बनाना । मुखिया बनाना । जैसे,—इस काम में तो  
उन्हीं को आगे करना चाहिए । उ०—कमल सहाय सूर संग  
लीन्हा । राघव चेतन आगे कीन्हा ।—जायसी (शब्द०) ।  
(३) अगुआना । अग्रगता बनाना । उ०—राजै राकम नियर  
बोलावा । आगे कीन्ह पंथ जनु पावा ।—जायसी ग्र०, पृ० १७४ ।  
(४) आगे बढ़ाना । चलाना । उ०—चक्र सुदर्शन आगे  
कियो । कोटिक सूर्य प्रकाशित भयो ।—सूर (शब्द०) । (५)  
किसी आफन में डालना । जैसे,—जब शेर निकला तो वह मुझे  
आगे कर आप पेड़ पर चढ़ गया । आगे का उठा=खाने से  
बचा हुआ । जूठा । उच्छिष्ट । जैसे,—नीच जाति के लोग बड़े  
आदमियों के आगे का उठा खा लेते हैं । आगे का उठा खाने-  
वाला=(१) जूठा खानेवाला । टुकड़बोर । (२) दास । (३)  
नीच । श्रत्यज । (४) तुच्छ । नाचीज । आगे का कदम पीछे  
पड़ना=(१) घटती होना । ह्रास होना । तनज्जुनी होना ।  
अवनति होना । जैसे,—उनका पहले अच्छा जमाना था, पर  
अब आगे का कदम पीछे पड़ रहा है । (२) भय से आगे न  
बढ़ा जाना । दहशत छा जाना । जैसे,—शेर को देखते ही  
उनका आगे का कदम पीछे पड़ने लगा । आगे का कपड़ा=(१)  
घूँघट । (२) अचल । आगे का कपड़ा खींचना=घूँघट काढना ।  
आग की उल्लेख=कुश्ती का एक पेंच । खिलाडी का प्रतिद्वंद्वी  
की पीठ पर जाकर उसकी कमर की लपेट को पकड़कर जिघर  
जोर चले, उधर फँकना । अग्रोत्तोलन । आगे को=आगे ।  
भविष्य में । फिर । पुनः । जैसे,—अब की बार तुम्हें  
छोड़ दिया, आगे को ऐसा न करना । आगे चलकर, आगे  
जाकर=भविष्य में । इसके बाद । जैसे—तुम्हारे किए का  
फल आगे चलकर मिलेगा । आगे डालना=देना । पाने के लिये  
सामने रखना । जैसे,—(क) कुत्ते के आगे टुकड़ा डाल दो । (ख)  
बैल के आगे चारा डालो । (यह अवज्ञामुचक है और प्रायः  
इसका प्रयोग पशु आदि नीच श्रेणी के प्राणियों के लिये होता  
है ।) आगे डोलना=आगे फिरना । सामने खेलना कूदना ।  
लडको का होना । जैसे,—बाबा, दो चार आगे डोलते होते तो  
एक तुम्हें भी दे देती । आगे डोलना=बचवा । लडका ।  
जैसे,—उसके आगे डोलता कोई नहीं है । आगे देना=सामने



रखता । उपविष्ट करता । जैमे,—तोटे को दत्त खाते नहीं,  
 बौते के साथ रख दो । आगे पीछे, पीछे पीछे = (१) किसी  
 काम को जल्दी जल्दी करने जाना और यह उद्योग कि किए  
 हुए काम की बात करना होती है । (२) आगे उठो जाना और  
 पीछे का नुनो जाना । आगे धारण = (१) धारण करना ।  
 जैमे,—विपरीत सिद्धांत को साथ धारण काम करना करना  
 होता है । २. प्रशस्त करना । उद्दिष्ट करना । पेश करना ।  
 भेंट करना । भेंट देना । आगे विस्तार = ३२७ । जैमे,—  
 (क) यह दोन म समये आगे निकल गया । (ख) नेत्र पीन  
 हो गयी । की पार्श्व म यह अवधि दूजे के मय पदको मे आगे  
 निरत गया । आगे पीछे = एक के पीछे एक । ३०२,—  
 (१) विपरीत आगे पीछे पद धारण करना करना है ।  
 (२) मर लोग साथ ही आना, आगे पीछे आगे मे पीन ।  
 होता । (३) प्रशस्त या पराज । मर का पद । मर का और  
 पीछे पीछे । जैमे,—मैं किसी की कभी आगे पीछे पद नहीं  
 की है । (४) और पीछे । आगे धारण । जैमे,—उद्योग मर का  
 आगे पीछे रहना, दर मा पदना । (५) यह मा पीछे । जैमे—  
 आगे पीछे मनी पत्र कलेम, मरी कोई भी आगे पीछे ही रहता ।  
 (६) पुत्र का के आगे । मरकाज । जैमे,—यह उद्योग  
 काम को तात्पर आगे और मय आगे पीछे जाना रहता ।  
 (७) धार का उद्योग । यह पद । उद्योग पद । जैमे,—उद्योग  
 न नारे कामको को आगे पीछे कर दिया । ३०३ विविध ।  
 मरहाजिरी मे । जैमे,—मेरे मामो को किसी कामका हस्त  
 नहीं करता, आगे पीछे की बात जाने । किसी के आगे पीछे  
 होता = किसी काम मे किसी आगे का होता । जैमे,—  
 उनके आगे पीछे कोई नहीं है, हमसे उनके पीछे मर का  
 है । आगे रखता = (१) धारण करता । देता । पदना । (२)  
 उपविष्ट करता । पद करता । भेंट करता । जैमे,—यह मर का  
 कुछ बात का था, मरकाज रखता । आगे मे = (१) आगे  
 से । जैमे,—मनी यह हमारे आगे मे निकल गया । (२)  
 आदेश मे । भविष्य मे । जैमे,—तो कुछ निदा मा पदना  
 किया, आगे ऐसा मन करता । (३) पदना मे । पूर्व मे । यह  
 दिना मे । जैमे,—(क) यह आगे मे होता आया है । (ख)  
 हम दो आगे म जानते मे । आगे से सेना = संधर्षता  
 करना । उ०—हरि आगमता जानिषे भीषम आगे सेन  
 मिषाण । मूरदाग प्रनु ररमा मारन नगर लोग मय  
 आण ।—मूर०, १०।४१०८ । आगे होता = (१) आगे  
 बढ़ना । प्रसर होता । जैमे,—मरदार मर कह आगे  
 हुआ और उसके साथी पीछे पगे । (२) यह जाता ।  
 जैमे,—यह पढ़ो मे समये आगे हो गया । (३) मामने  
 आना । मुकाबिला करना । जैमे,—रगने आदमियों मे मरी  
 अकेला मेर के आगे आया । (४) मुगिया बनाना । जैमे,—मय  
 काम मे व आगे होने है, पर उनको पूछता वीन है । (५)  
 परदा करना । आठ करना । जैमे,—वह मरी मे मियी जेठ के  
 आगे नहीं आती । आगे होकर सेना = संधर्षता करना । उ०—  
 आगे ह्वे जेहि सुरपति नेई । मरसिहासन आयन देई ।—  
 पुलही । (शब्द०) ।

थी। २ अग्निविस्फोट अस्त्र या वह अस्त्र जो अग्नि उत्पन्न होने या विस्फोट होने से चने। जैसे,—बदक, पिस्तौल आदि।  
आग्नेयी<sup>१</sup>—वि० ली० [सं०] १ अग्नि को दीपन करनेवाली (औषध)।  
२ पूर्व और दक्षिण के बीच की (दिशा)।

आग्नेयी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्नि की पत्नी। स्वाहा। २ अग्नि की पुत्री जो उर की पत्नी थी [को०]। ३ प्रतिपदा तिथि। परिवा [को०]।

आग्या<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] दे० 'आज्ञा'—१। उ०—ज्यों गुरु आग्या सुनि चटमार। चट पड़ि उठत एक ही वार।—नद० ग्र०, पृ० २८६।

आग्यो<sup>७</sup>—वि० [सं० अग्र] भविष्य। उ०—तो तुम कोऊ तारथो नहि, जो मोमों पतिन न दाग्यो। हों श्रवननि सुनि कहत न एको, मुर सुधागे आग्यो।—सूर०, १।७३।

आग्र जाणिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्र + ज्ञानीक] आगे की बात जानने-वाला व्यक्ति। ज्योतिषी।—वर्ण०, पृ० ६।

आग्रभोजनिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो भोजन में अग्रस्थान का अधिकारी हो [को०]।

आग्रमास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चित्रक वृक्ष। चीते का पेड़ [को०]।

आग्रयण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अहिताग्नियो का नवगण्येष्टि। नवान्न विधान। नए अन्न से यज्ञ या अग्निहोत्र।

विशेष—इसका विधान श्रौतसूत्रानुसार होता है। यह तीन अन्नो में से तीन फसलों में किया जाता है। मार्ग में वर्षा ऋतु में, ग्रीष्म या चावल में हेमन्त ऋतु में और जी से वसन्त ऋतु में। गृह्यसूत्रानुसार जब इनका अनुष्ठान होता है, तब इन्हें नव-गण्येष्टि कहते हैं।

२ अग्नि का एक भेद [को०]। ३ यज्ञ का समय [को०]।

आग्रस्त—वि० [सं०] १ विधा हुआ। २ छिदा हुआ। छेदयुक्त [को०]।

आग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अनुरोध। हठ। जिद। जैसे,—वह बार बार मुझमें अपने साथ चलने का आग्रह कर रहा है।  
२ तत्परता। परायणता। दृढ़ निश्चय। उ०—राक्षस बड़े आग्रह और सावधानी से चद्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्ट साधन में प्रवृत्त हुए।—हरिश्चन्द्र (शब्द०)। २. वन। जोर। आवेश। उ०—और आप अपने मुख से अपने इस वाक्य का आग्रह दिखाते हैं 'सर्वं गुह्यतमं भूयः शृणु मे परम वच'।—हरिश्चन्द्र (शब्द०)। ४ आक्रमण [को०]। ५ हरण। ग्रहण [को०]। ६ अनुग्रह। कृपा [को०]। ७ र्वयं। नैतिक बल [को०]।

आग्रहायण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अग्रहन मास। मार्गशीर्ष मास। २ मृगशिरा नक्षत्र।

आग्रहायणक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आग्रहायण'।

आग्रहायणिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अग्रहन की पूर्णमासी। २ मृगशिरा नक्षत्र [को०]।

आग्रहायणी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्रहन मास। २ मृगशिरा नक्षत्र। ३ पाक यज्ञविशेष [को०]।

आग्रहायणी<sup>२</sup>—वि० [सं०] १ अग्रहन की पूर्णिमा को दिया जाने वाला। २ अग्रहन की पूर्णिमा से युक्त [को०]।

आग्रहारिक—वि० [सं०] १ दान के रूप में गांव या भूमि लेनेवाला।  
उ०—मार्ग में जो अग्रहार गांव पड़ते थे उनके अनपढ़ आग्र-

हारिक लोग मगन के लिये ग्राममहत्तरों के हाथ में जतकुंभ उठाए हुए आ रहे थे।—हर्ष०, पृ० १६२। २ अग्रहार का हरण करनेवाला [को०]। ३ अग्रहार की देखभाल करनेवाला [को०]।

आग्रहिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सहायता। अनुग्रह [को०]।

आग्रही—वि० [सं० आग्रहिन्] हठी। जिद्दी।

आग्रायण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आग्रयण'।

आघ<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अघ, प्रा० अघ = मूल्य] १ मूल्य। कीमत।  
२ आदर। मान। उ०—विदर मूँठ जाणे वृथा इधक पटारो आघ।—वांकी० ग्र०, भा० २ पृ० ८६।

आघट्टक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रक्त अपामार्ग। लाल चिचड़ी।

आघट्टक<sup>२</sup>—वि० [सं०] घर्षण उत्पन्न करनेवाला। रगड़नेवाला [को०]

आघट्टन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [ली० आघट्टना] १ रगड़। घर्षण।  
२ सपर्क [को०]।

आघट्टित—वि० [सं०] रगड़ा हुआ। मर्दिन [को०]।

आघण<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्रहायण] अग्रहन उ०—प्रायण कर दिन छोटा होई।—वीमल० रा०, पृ० ६७।

आघर्ष, आघर्षण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रगड़। घर्षण [को०]।

आघर्षणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घर्षण या रगड़ने में प्रयुक्त होनेवाली कूची, ब्रश आदि [को०]।

आघाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गांव की सीमा। गांव की हद्द। सिमान।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राचीन शिलालेखों में मिलता है। 'आघाटक' या 'आघाटन' शब्द भी इसी अर्थ में आया है।

२ अपामार्ग। चिचड़ी [को०]। ३ एक तरह का वाजा [को०]।

आघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ धक्का। ठोकर। २ मार। प्रहार। चोट। आक्रमण। जैसे,—निरपराधों पर आघात करना अच्छा नहीं। ३ वधस्थान। बूचड़खाना। ४ प्रतिध्वनि। उ०—निधो तेंबोल माथ धरि हनुमत, कियो चतुरगुन गात। चडि गिरि मिखर शब्द इक उच्चरचो, गनन उठयो आघात।—सूर० ६।७४। ५ वध। मारण [को०]। ६ वध करनेवाला व्यक्ति [को०]। ७ विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]। ८ भूगर्भाय रोग [को०]।

आघातज्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी चोट या आघात से होनेवाला ज्वर [को०]।

आघातन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वधस्थान। २ वध। हनन [को०]।

आघार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ और होम आदि में वे अहुतियाँ जो आदि में प्रजापति और इंद्र देवता को घी की अविच्छिन्न धारा से 'प्रजापतये स्वाहा' और 'इन्द्राय स्वाहा' कहकर वायव्य कोण से अग्नि कोण तक और फिर नैऋत्य से ईशान तक द जाती हैं। ऋग्वेदी इमे मौन होकर करते हैं और यजुर्वेदी जो से मंत्र का उच्चारण करके करते हैं। २ धो [को०]। ३ सिंचन। सींचना [को०]।

आघीर्ण—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अघ, प्रा० अघ = मूल्य] १ द्रव्य का व लेन देन जिसमें उधार लेनेवाला महाजन को आनेवाली फसल की उपज में से फ्री रूप की दर से अन्न आदि वसाज

स्थान में देता हूँ। २ वह अन्न जो इस त्रेण देन में व्याज के रूप में दिया जाय।

क्रि० प्र०—पर लेना।—पर देना।—देना।—लेना।

आघु०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० ‘आघ’। उ०—गदग्रचना, वरुनी अलक चितवनि नौह कमान। आघु बकाई ही चढै, तरनि तुरगम तान।—विहारी २०, दो० ३१६।

आघूर्ण—वि० [सं०] १ घूमता हुआ। फिरता हुआ। २ हिलता हुआ।

आघूर्णन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ चक्कर। घुमाव। २ इधर उधर डोलना। दोनन [दे०]।

आघूर्णित—वि० [सं०] इधर उधर फिरता हुआ। नटकता हुआ। चकराया हुआ।

यौ०—आघूर्णित लोचन = जिसकी आँखें चढ़ी हो।

आघृणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

आघोष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चारों ओर प्रचार करने के लिये किसी बात को ऊँचे स्वर से कहना [को०]।

आघोषण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आघोषणा] घोषणा [को०]।

आघोषणापटह—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आघोषणा + पटह] जननाधारण को सूचित करने के लिये या उनके आवाहन के लिये प्रयुक्त नगाड़ा।

आघोषित—वि० [सं०] घोषित।

आघ्राण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० वि० आघ्रात, आघ्रये] १ सूँघना। वास लेना। २ अन्नाना। आसूदगी। तृप्ति।

आघ्रात<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ सूँघा हुआ। २ तृप्त। अघाया हुआ। ३. सुगन्धित। सुवासित [को०]।

आघ्रात<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण के दम भेरी में से एक जिसमें चद्रमण्डन या सूर्यमण्डन एक ओर मलिन देख पड़ता है। कवित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण में अच्छी वर्षा होती है।

आघ्रये—वि० [सं०] सूँघा जाने योग्य [को०]।

आचचल—वि० [सं० आ + चञ्चल] अस्थिर। चंचल। उ०—बदोदय आरम्भकाल में आचचल गागर में।—पार्वती, पृ० १२३।

आचम—वि० [हि०] दे० ‘अचमा’। उ०—आचम रूप इच्छित सुनी जन जन वस्त वखानियाँ।—पृ० २०, १२। १०।

आच०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० सच = सवान करना] हाथ। उ०—जिर्का मलाई धन जोड़ियो, ऊग्रमियो निज आच।—दाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४८। (हि०)

यौ०—आचप्रभव = शत्रिय।

आचमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आचमनीय, आचमित] १ जल पीना। २ शुद्धि के लिये मुँह में जल लेना। ३ किसी धर्म सबधी कर्म के आरम्भ में दाहिने हाथ में थोड़ा सा जल लेकर मंत्रपूर्वक पीना यह पूजा के षोडशोपचार में से एक है। ४ सुगन्धवाना। नेत्रदाना।

आचमनक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आचमन का पात्र। २ आचमन का जल। ३ पीकदान [को०]।

आचमनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आचमनीय] एक छोटा चम्मच जो कलछी के आकार का होता है। इसे पचपात्र में रखते हैं और इसमें आचमन करते और चरणामृत आदि देते हैं।

आचमनीय, आचमनीयक—वि० [सं०] १ आचमन के योग्य। पीने योग्य। २ गुल्ला करने योग्य।

आचमित—वि० [सं०] रिया हुआ।

आचय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ चुनने का कार्य। २ राजा या देव [को०]।

आचयक—वि० [सं०] १ चयन या पकड़ करनेवाला। २ चयन करने में कुशल। ३ कृत आदि चयन करनेवाला [को०]।

आचर०—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० ‘आचर’। उ०—नाम नव छंदे अनुरागक श्रीगुरु धर्म मोर्गे आचरे मोह।—विद्यापति, पृ० ७३।

आचरज०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आचर्य] दे० ‘अचरज’। उ०—भुक्ति मन मोह आचरज नागरी।—मानव, १। १२४।

आचरजित०—वि० [सं० आचर्यजित] आचर्यजित। चरित। विमित।

आचरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आचरणीय, आचरित] १ अनुष्ठान। २ व्यवहार। वर्तन। चाल चलन। ३ उन्नत आचरण अच्छा नहीं है। ४ आचारशुद्धि। सफाई। ५ चर। छस्या। ६ चिह्न। चमक। ७ बौद्धों के अनुसार वे १५ आचरण जो महाचार माने जाते हैं।

विशेष—वे इस प्रकार हैं—(१) पीन। (२) उद्विग्न। (३)

मायाशिता। (४) नागरणानुरोध। ५ अदा। (६) ह्री।

(७) बहुश्रुत्य। (८) उताप, अर्थात् पछाता। (९) पापम।

(१०) स्मृति। (११) मति। (१२) प्रथम ध्यान। (१३)

द्वितीय ध्यान। (१४) तृतीय ध्यान। (१५) चतुर्थ ध्यान।

७ करना [को०]। ८ अनुष्ठान। अनुष्ठान [को०]।

आचरणीय—वि० [सं०] १ अनुष्ठान करने योग्य। २ व्यवहार करने योग्य। वर्तन करने योग्य। करने योग्य।

आचरन०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आचरण] दे० ‘आचरण’। उ०—मनु समय मुमिगत मुग्ध भरत आचरनु चार।—तुलसी १०, पृ० ६२।

आचरना०—क्रि० सं० [सं० आचरण ने नाम०] आचरण करना। व्यवहार करना। उ०—इहै नतिन वैराग्य जान यह हृत्ति तोषन यह पुन व्रत आचर। तुलसीदास विरामन मारन यह चलन मदा सपनेहु नाहिन उर।—तुलसी (शब्द०)।

आचरित<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ किया हुआ। अनुष्ठान किया हुआ। २ नियत का। रोजमर्रा का। नियमित [को०]। ३ व्यवहृत, जैसे—स्वान [को०]।

आचरित<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ धर्मशास्त्र के अनुसार ऋषी ने धन लेने के पाँच प्रकार के उपायों में से एक। ऋषी के स्त्री, पुत्र, पशु आदि को लेकर या उनके द्वार पर धरना देकर ऋण को चुका लेना। २ चरित्र। व्यवहार [को०]।

आचरितदायन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ऋण का वह चरित्र जो स्त्री, पुत्र को बाँधने या दरवाजे पर धरना देने में हो।

आचारितदण्ड—वि० [सं०] आचरण करने योग्य [को०]।

आचर्ज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आचर्य] दे० ‘आचर्य’। उ०—गुरु की टोरि एह गुरति छूटे नहीं अजय आचर्ज मम दरमबानी।—सं० दरिया, पृ० ८५।

आचार्य—वि० [सं०] [सञ्ज्ञा आचर्य] १ आचरण करने योग्य। २ जाने योग्य [को०]।

आचात—वि० [सं० आचान्त] १ आचमन किया हुआ। २ आचमन करने योग्य [को०]।

प्राचांति—सज्ञा स्त्री० [मं० प्राचान्ति] अचान ।

प्राचान—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अचमन' ।

प्राचानक—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अचानक' ।

प्राचाम—सज्ञा पुं० [मं०] १. भात । २. माँड । ३. आचमन ।

प्राचामक—सज्ञा पुं० [सं०] आचमन करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

प्राचार—सज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवहार । चलन । रहन सहन । २. चरित्र । चाल ढाल । ३. शील । ४. शुद्धि । सफाई । ५. भोजन । आहार [को०] । ६. आचरण का तरीका [को०] । ७. नित्य नैमित्तिक नियम [को०] ।

यो०—अनाचार । दुराचार । शिष्टाचार । समाचार । सदाचार । कुलाचार । देशाचार । भ्रष्टाचार ।

प्राचारज(पु०)—सज्ञा पुं० [मं० प्राचार्य] दे० 'प्राचार्य' । उ०—प्राचारज वासिष्ठ भी ऋत्विज वत्स प्रवीन ।—हम्मीर रा०, पृ० ५६ ।

प्राचारजी(पु०)—सज्ञा स्त्री० [मं० प्राचार्यो] पुरोहिताई । प्राचार्य होने का भाव । उ०—उनके घर किमकी प्राचारजी है ?

प्राचारतन्त्र—सज्ञा पुं० [मं० प्राचारतन्त्र] बौद्धों के चारतन्त्रों में से एक [को०] ।

प्राचारदीप—सज्ञा पुं० [मं०] आरती आदि पूजनविधियों में प्रयुक्त होनेवाला दीप [को०] ।

प्राचारपतित—वि० [सं०] आचारभ्रष्ट [को०] ।

प्राचारपूत—वि० [मं०] शुद्ध आचरण करनेवाला [को०] ।

प्राचारभेद—सज्ञा पुं० [मं०] आचार या आचरण सत्रधी नियमों का अंतर [को०] ।

प्राचारभ्रष्ट—वि० [सं०] आचार या आचरण की मर्यादा से रहित । पतित [को०] ।

प्राचारलाज—सज्ञा पुं० [मं०] राजा आदि पर डाला जानेवाला लावा [को०] ।

प्राचारवर्जित—वि० [सं०] १. आचारविरुद्ध या आचारभूष्य । २. जाति से वहिष्कृत । जातिच्युत [को०] ।

प्राचारवान्—वि० [सं० प्राचारवत्] [वि० स्त्री० प्राचारवती] पवित्रता से रहनेवाला । शुद्ध आचार का । उ०—शुचि प्राचारवती कल्याणी गिरजा जब अमिजाता । सूर्यवदना अरुणाचल पर करती सद्य म्नाता ।—पार्वती, पृ० ६१ ।

प्राचारविचार—सज्ञा पुं० [मं०] आचार और विचार । पवित्र आचरण ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अकसर आचार ही के अर्थ में होता है । जैसे,—वह बड़े आचारविचार से रहता है ।

प्राचारवेदी—सज्ञा स्त्री० [मं०] आचार की वेदी । आर्यावर्त [को०] ।

प्राचारहीन—वि० [सं०] आचरणभ्रष्ट । जिसमें आचार विचार न हो । पतित [को०] ।

प्राचारिक—सज्ञा पुं० [मं०] स्वास्थ्य संहिता । स्वास्थ्य मन्त्रों का नियम [को०] ।

प्राचारी<sup>१</sup>—वि० [मं० प्राचारिन्] [वि० स्त्री० प्राचारिणी] प्राचारवान् । चरित्रवान् । शुद्ध आचार का । उ०—सोई सयान जो परधन हारी । जो कर दण मो बड प्राचारी ।—मानस, ७ । ६८ ।

५४

प्राचारी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] रामानुज संप्रदाय का वैष्णव । श्रीवैष्णव ।

प्राचारी<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं०] दुरदुर । हिनमोचिका ।

प्राचार्य—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्राचार्या, प्राचार्याणी] [वि० प्राचार्यो] १. उपनयन के समय गायत्री मन्त्र का उपदेश करनेवाला । गुरु ।

विशेष—पाणिनि ने चार प्रकार के शिक्षकों का उल्लेख किया है । प्राचार्य, प्रवक्ता, श्रोत्रिय, अध्यापक । इनमें प्राचार्य का स्थान सर्वोच्च था । शिष्य का उपनयन कराने का अधिकार तो प्राचार्य को ही था । स्वयं प्राचार्य का काम करनेवाली स्त्री प्राचार्या कहलाती है । प्राचार्य की पत्नी को प्राचार्यानी कहते हैं ।

२. वेद पढ़ानेवाला । ३. यज्ञ के समय कर्मोपदेशक । ४. पूज्य । पुरोहित । ५. अध्यापक । ६. ब्रह्ममूत्र के चार प्रधान भाष्यकार—(क) णकर, (ख) रामानुज, (ग) मध्व और (घ) वल्लभाचार्य । ७. वेद का भाष्यकार । ८. शास्त्रीय व्याख्या करनेवाला । तात्त्विक दृष्टि से गुण दोष का विवेचन करनेवाला । ९. किसी महाविद्यालय का प्रधान अधिकारी और अध्यापक । प्रिन्सिपल । प्राचार्य [को०] । १. किसी शास्त्र या विषय का धुरधर पंडित या ज्ञाता [को०] ।

यो०—प्राचार्यकुल = गुरुकुल । प्राचार्यवान् = उपनीत ।

प्राचार्यक—सज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचार्योपदेश, शिक्षा, पाठ आदि । २. व्याख्या करने की शक्ति या योग्यता । व्याख्यातृत्व । ३. प्राचार्य का पद [को०] ।

प्राचार्यकरण—सज्ञा पुं० [सं०] माणवक या बटु को उपनीत करने का कार्य [को०] ।

प्राचार्यदेव—वि० [मं०] प्राचार्य को देव माननेवाला [को०] ।

प्राचार्यो—वि० स्त्री० [सं०] प्राचार्य की । प्राचार्य मन्त्रिणी । जैसे—प्राचार्यो दक्षिणा ।

प्राचित(पु०)—वि० [सं० अचिन्त्य] (परमेश्वर) जो चिन्तन में नहीं आ सकता । उ०—तेज अष्ट प्राचित का, दीन्हा सकल पमार । अष्ट शिखा पर बैठकर, अधर दीप निर्धार ।—कवीर (शब्द०) ।

प्राचित्य<sup>१</sup>—वि० [मं० अचिन्त्य] मन्त्र प्रकार से चिन्तन करने योग्य ।

प्राचिज्ज(पु०)—सज्ञा पुं० [मं० प्राश्चर्य, प्रा० प्राचिज्ज] दे० 'प्राश्चर्य' । उ०—एह वत्त प्राचिज्ज उज्जि मो पित्त तु तव्वह ।—पृ० २१०, ३१२० ।

प्राचित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] प्राचीन काल का एक मान जो २५ नार या २५ मन का होता था । २ गाड़ों भर का बोझ । एक छबड़े का भार ।

प्राचित<sup>३</sup>—वि० १. व्याप्त । २. एकत्र किया हुआ [को०] । ३. भरा हुआ [को०] । ४. बँधा हुआ [को०] । ५. फैलाया हुआ [को०] ।

प्राचीर्ण—वि० [सं०] प्राया हुआ । प्राम्वादिन [को०] ।

प्राचूपण—सज्ञा पुं० [मं०] १. चूमना । २. चूमकर राहूर निकालना । रक्त चूमने का मन्त्र लगाकर चूमना [को०] ।

प्राच्छद—सज्ञा पुं० [सं० प्राच्छद्] आवरण । रम्प ।

प्राच्छन्न—वि० [मं०] १. ढका हुआ । प्रावृत्त । २. छिपा हुआ । विरोहित ।

आच्छाक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] नील का सा एक पीधा जिससे लाल रंग बनता है। आल।

पर्या०—रंजनद्रुम। पक्षीक। पक्षिक। आच्छुक।

आच्छाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। परिधान [को०]।

आच्छादक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] ढँकनेवाला। जो ढाँके।

आच्छादन—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] [वि० आच्छादित, आच्छन्न] ढकना। आवरण। उ०—धीरे धीरे हिम आच्छादन हटने लगा घरातल से।—कामायनी, पृ० २३। २ वस्त्र। कपड़ा। ३ छाजन। छावाई। ४. छिपाना [को०]। ५. परिधान [को०]। ६ ठाठ। ठाठर [को०]। ७ लोप [को०]।

आच्छादित—वि० [सं०] १ ढँका हुआ। आवृत। उ०—फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण देखी जो आच्छादित किए हुए संमुख समग्र नभ को।—अनामिका, पृ० १५२। २. छिपा हुआ। तिरोहित।

आच्छादी—वि० [सं० आच्छादिन्] आच्छादान करनेवाला [को०]।

आच्छाद्य—वि० [सं०] १ ढकने योग्य (स्तन)। २ गोप्य। गोपनीय [को०]।

आच्छन्न—वि० [सं०] १ हटाया हुआ। २ नष्ट किया हुआ [को०]।

आच्छुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अच्छाक। आक्षिक [को०]।

आच्छुरित<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ मिश्रित। मिला हुआ। २ नख से चिह्नित या खँरोचा हुआ। क्षुब्ध [को०]।

आच्छुरित<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ नखवाद्य। नखों को रगड़कर शब्द करना। २. अट्टहास [को०]।

आच्छुरितक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नखक्षत। २ अट्टहास [को०]।

आच्छेत्ता—वि० [मं० आच्छेत्] छेदन करनेवाला। काटनेवाला [को०]।

आच्छेद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ काटना। काट डालना। २ किञ्चित् या कुछ काटना। ३. अपहरण। वलपूर्वक हरण करना [को०]।

आच्छेदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आच्छेद।

आच्छेप<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आक्षेप] दे० 'आक्षेप'। उ०—पहिले कहिए बात कछु, पुनि ताको प्रतिपेध। ताहि कहत आच्छेप है, भूपन मुकवि सुमेध।—भूपण ग्र०, पृ० ३६।

आच्छोटन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ चुटकी वजाना। २ डँगली फोड़ना। डँगली चटकाना।

आच्छोदन—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] अहेर। आखेट। मृगया [को०]।

आच्छटना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [देश०] धक्का देना। उ०—उचित वयम भोर मनमथ चोर ठेलि आछटि आकरए अगोर।—विद्यापति, पृ० ५६२।

आच्छतां<sup>१</sup>—क्रि० अ० [प्रा० √अच्छ, हि० आछना का कृदन्त रूप, जिसका प्रयोग क्रि० वि० वत् होता है।] होते हुए। रहते हुए। विद्यमानता मे। मौजूदगी मे। सामने। जैसे,—हमारे आछत उसे और कौन ले जा सकता है।—(शब्द०)। उ०—आखिन आछत आँधरो जीव करै बहु भाँति। धीर न वीरज विनु करै तृष्णा कृष्णा राति।—केशव (शब्द०)।

आछना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [मं० अस्=होना अथवा सं० आ+√क्षि, प्रा० √अच्छ] १ होना। २ रहना। विद्यमान होना। उ०—

भँवर आइ वनखंड सन, लेइ कमल कै वास। दादुर वास न पावई, भलहि जो आछै पास।—जायसीग्र०, पृ० ६।

विशेष—इस क्रिया के और सब रूपों का व्यवहार अब बोलचान से उठ गया है, केवल आछन, आछते (होते हुए) रह गया है।

आछरि<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अप्सर/ प्रा० अच्यरा] दे० 'अप्सरा'। आछा<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अच्छा'। उ०—हरि आवत गाइनि के पाछे। मोर मुकुट मकराकृत कुडन नैन विमाल कमल तै आछे।—सूर०, १०। ५०७।

आछादित<sup>१</sup>—वि० [सं० आच्छादित] दे० 'आच्छादित'। उ०—गज चर्म आछादित, भ्रम नाम, रहै वीर भँगे गन आस पास।—पृ० रा०, १। ३८६।

आछी<sup>१</sup>—वि० स्त्री० [हि० अच्छा] १ अच्छी। मली। उत्तम। उ०—लै पीढी आँगन ही मुत कौं छिटकि रही आछी उजिय-रिया।—सूर०, १०। २४६। २ स्वस्थ। नीरोग। ठीक। उ०—तव विट्ठन श्री गुमाई जी मो विनती करे, जो महाराज। मेरी देह आछी नाही।—दो मी वावन०, भा० १, पृ० १४०।

आछी<sup>२</sup>—वि० [मं० अक्षिन्] खानेवाला। उ०—पान फून आछी सब कोई। तुम कारन यह कीन रसोई।—जायनी (शब्द०)। आछी<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० आक्षिक] नुगधित फूनवाला एक पेड़ जिसकी लकड़ी हल्के पीले रंग की होती है।

आछे<sup>१</sup>—क्रि० वि० [मं० अच्छ=स्वच्छ, हि० अच्छा] अच्छी तरह। उ०—तिनके लच्छन-लच्छ अव आछे कहीं वखानि।—नद० ग्र०, पृ० २६४।

आछे<sup>२</sup>—वि० [हि०] दे० 'अच्छा'। उ०—जे परमेश्वर पै चढ़ें, तेई आछे फून।—भूपण ग्र०, पृ० ७१।

आछेप<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आक्षेप] आक्षेप नामक अलंकार। उ०—तहाँ कहत आछेप हैं कविजन मत उत्सेध।—मतिराम ग्र०, पृ० ४००।

आछे<sup>३</sup>—क्रि० वि० [सं० अक्षय, प्रा० अच्छ] दे० 'अक्षय'। उ०—आछै सगै रहै जु वा। ता कारण अनत सिधा जोगेश्वर हूवा।—गोरख०, पृ० २।

आछो<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अच्छा'। उ०—कनन परत, कमल मुख देखे, भूल्यो काम, घाम आछो वदन निहारि।—नद० ग्र०, पृ० ३५२।

आछोटन<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आच्छोदन=मृगया] शिकार। आखेट। अहेर।—(हि०)।

आछोप<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अछोप'। उ०—जाके भागवतु लेखियै, मतकर्म पेखिये तास की जाति आछोप छीपा।—संत रवि०, पृ० १३२।

आछौ<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'अच्छा'। उ०—आछो गात अकारथ गारचो। करी न प्रीति कमल लोचन सौं जनम जुआ ज्यौं हारचो।—सूर०, १। १०१। २ मगल। शुभ। उ०—आछो दिन सुनि महारि जमोदा, सबिनि बोलि सुभ गान करचो।—सूर०, १०। ८८।

आज<sup>१</sup>—क्रि० वि० [ सं० अद्य, पा० अज्ज ] १ वर्तमान दिन मे । जो दिन बीत रहा है उसमे । जैसे,—आज किसका मुँह देखा था जो सारा दिन भटकते बीता । २. इन दिनों । वर्तमान समय मे । जैसे,—(क) जो आज उनकी चलती है वह दूसरे की नहीं ।—(ख) आज करे सो कल पावेगा ।

आज<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ वर्तमान दिन । जो दिन बीत रहा है । जैसे,—आज की रात वह इलाहाबाद जायगा । २ इस वक्त । जैसे,—खबरदार आज से ऐसा मत करना ।

मुहा०—आज को = (१) इस समय । जैसे,—आज को यह बात कही, कल को दूसरी बात कहेगा ।—(२) इस अवसर पर । ऐसे समय मे । ऐसे मौके पर । जैसे,—आज को वह न हुए, नहीं तो बतला देते । आज तक = (१) आज के दिन तक । जैसे,—उसे बाहर गए वरसो हुए, पर आज तक उसका कोई खत नहीं आया ।—(२) इस समय तक । इस घड़ी तक । जैसे,—कल का गया आज तक न पलटा । आज दिन = इस समय । वर्तमान समय मे । जैसे,—आज दिन उनकी टक्कर का दूसरा विद्वान् नहीं । आज बरसकर फिर बरसेगा = ऐसा ही फिर होगा । आज लौं = आज तक । आज से = इस समय से । इस वक्त से । अब से । भविष्य मे । जैसे,—अब तक किया सो किया आज से न करना । आज हो कि कल = थोड़े दिनों मे । दो चार दिन के अंदर ही । जैसे,—उनका अब क्या ठिकाना, आज मरें कि कल ।

आज<sup>३</sup>—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आज्ञी] १ वक़रासंबंधी । २ वक़रे से उत्पन्न [को०] ।

आज<sup>४</sup>—संज्ञा पुं० १ गृध्र । गिद्ध । २ आज्या घृत । घी । ३. क्षेपण । फेंकना [को०] ।

आजक—संज्ञा पुं० [मं०] वक़रो का झुंड [को०] ।

आजकल—क्रि० वि० [हि० आज + कल] इन दिनों । इस समय । वर्तमान दिनों में । जैसे,—आजकल उनका मिजाज नहीं मिलता ।

मुहा०—आजकल मे = थोड़े दिनों मे । शीघ्र । जैसे,—घबराओ मत, आजकल मे देता हूँ । आजकल करना, आजकल बताना = टालमटोल करना । हीला हवाला करना । जैसे,—(क) व्यर्थ आजकल क्यों करते हो, देना हो तो दो । (ख) जब मैं माँगने जाता हूँ, तब वह मुझको आजकल बता देता है । आजकल लगाना = अब तब लगना । मरने मे दो ही एक दिन की देर होना । मरणकाल निकट आना । जैसे,—उनका तो आजकल लगा है, जा कर देख आओ । आजकल होना = (१) टालमटोल होना । हीला हवाला होना । जैसे,—महीनो से तो आजकल हो रहा है, मिले तब जानें ।—(२) दे० 'आजकल लगना' । आज मरे कल दूसरा दिन = मरने के पीछे जो चाहे सो हो, मरने के बाद कोई चिंता नहीं रहती ।

आजकार—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का बँल । नदी [को०] ।

आजगर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आजगरी] १. अजगर संबंधी । २. अजगर के समान [को०] ।

आजगव—संज्ञा पुं० [मं०] १ शिवधनुष । महादेव का धनुष । पिनाक । २ शिव के धनुष जैसा दृढ़ धनुष [को०] ।

आजनन<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसिद्ध या ज्ञात कुल । सद्बंश [को०] ।

आजनन<sup>२</sup>—क्रि० वि० [सं०] जन्म से ही [को०] ।

आजन्म—क्रि० वि० [सं०] १ जन्म से । जन्म से लेकर । उ०—आजन्म ते परद्रोह रत पापीधमय तव तनु अय ।—मानस, ६।१३० । २ जीवन भर । जन्म भर । जिंदगी भर । आजीवन । जब तक जिए तब तक ।

आजमाइश—संज्ञा स्त्री० [फा० आजमाइश] १ परीक्षा । इम्तहान । परख । २ खड़ी फसल का सरकारी अधिकारी द्वारा मूल्य लगाना या आँकना ।

आजमाना—क्रि० म० [फा० आजमाइश = परीक्षा] [वि० आजमूदा] परीक्षा करना । परखना । जाँच करना । उ०—हम कहाँ किस्मत आजमाने जायें ।—शेर०, पृ० ४६३ ।

आजमीद<sup>१</sup>—वि० [सं० आजमीद] अजमीद राजा के वंश का ।

आजमीद<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० अजमीद देश का राजा ।

आजमूदा—वि० [फा० आजमूदह] आजमाया हुआ । परीक्षित ।

आजर्जरित—वि० [सं०] फटा हुआ । टुकड़े टुकड़े । तार तार [को०] ।

आजयन—संज्ञा पुं० [मं०] १ विजय । २ युद्ध [को०] ।

आजवन—संज्ञा पुं० [सं०] १ त्वरा । वेग । २. युद्ध । ३. आक्रमण [को०] ।

आजवह<sup>१</sup>—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आजवहा] जिसे वकरी ले जाय या ढोए । आजवह<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० हिमालय का पर्वतीय देश जहाँ भोजन आदि की सामग्री वकरियों पर लदकर जाती है ।

आजस्त्रिक—वि० [सं०] अजस्र या प्रतिदिन होनेवाला [को०] ।

आजा—संज्ञा पुं० [सं० आर्यक, प्रा० अज्जश्र] [स्त्री० आजी] पितामह । दादा । बाप का बाप । उ०—आजा को घर अमर है बेटा के सिर भार । तीन लोक नाती ठगा, पंडित करी विचार ।—कवीर (शब्द०) ।

आजागुरु—संज्ञा पुं० [हि० आजा + गुरु] १ गुरु का गुरु । २ गुरु का आजा या दादा ।

आजात—वि० [सं०] उच्च या उपात कुल मे उत्पन्न [को०] ।

आजाति—संज्ञा स्त्री० [मं०] १ जन्म । उत्पत्ति । २. अच्छा वंश [को०] ।

आजाद—वि० [फा० आजाद] १ जो बद्ध न हो । छूटा हुआ । बरी । जैसे,—राज्याभिषेक के अवसर पर बहुत से कैदी आजाद किए गए । २ बेफिक्र । बेपरवाह । ३ स्वतंत्र । जो किसी के अधीन न हो । स्वाधीन । उ०—माहव ने इस गुलाम को आजाद कर दिया । लो बंदगी कि बंदगी मे छूट गए हम ।—शेर०, पृ० ४५६ । ४ निर्भर । निर्भर । अशक । बंधक । ५ स्पष्ट-वक्ता । हाजिरजवाब । ६ उद्वन । ७ अधिकृत । निष्परिग्रह । ८ कहीं एक जगह न रहनेवाला । बेपता । बे-निशान । ९ एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो दाढ़ी, सूँछ और भौं आदि मुँड्राए रहते हैं और न रोजा रखते हैं और न नमाज पढ़ते हैं । ये सूफी संप्रदाय के अंतर्गत हैं और अद्वैतवादी हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—रहना ।—होना ।



यी०—आजाद तबीयत, आजाद मिजाज = स्वेच्छाचारी । मन-  
मोजी । आनदी ।

आजादगी—सज्ञा स्त्री० [फा० आजादगी] स्वतंत्रता ।

आजादाना—क्रि० वि० [फा० आजादानह्] आजाद की तरह ।  
स्वतंत्रतापूर्वक । स्वच्छदतापूर्वक ।

आजादी—सज्ञा स्त्री० [फा० आजादी] १ स्वतंत्रता । स्वाधीनता । २  
निरकुशता [को०] ।

आजान<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ जन्म । जनन । २ उत्पत्ति या जन्म का  
कारण । ३ जन्मस्थान [को०] ।

आजान<sup>२</sup>—क्रि० वि० [सं०] सृष्टिकाल से [को०] ।

आजान<sup>३</sup>—क्रि० वि० [हिं० आजान] अनजान । न जाननेवाला ।  
उ०—करतलह सु कवि कितिय सुवर, पय थक्के आजान  
जिम ।—पृ० रा०, २५ । ५६८ ।

आजानज—वि० [सं०] सृष्टिकाल में उत्पन्न, जैसे देव आदि [को०] ।  
आजानदेव—सज्ञा पुं० [सं०] वे देवता जो सृष्टि के आदि में देवता रूप  
में ही उत्पन्न हुए थे ।

विशेष—देवता दो प्रकार के होते हैं—एक कर्मदेव, जो कर्म से  
देवता हो जाते हैं और दूसरे आजानदेव जो देवता रूप में ही  
उत्पन्न होते हैं ।

आजानि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ जननी । माता । २ जन्म । उत्पत्ति ।  
३ अच्छा वश [को०] ।

आजानु—वि० [सं०] जाँघ तक लंबा । घुटने तक लंबा ।

यो०—आजानुबाहु । आजानुभुज । आजानुलंबी ।

आजानुबाहु—वि० [सं०] जिसकी बाहु जाँघ तक लंबी हो । जिसके  
हाथ घुटने तक लंबे हो ।

आजानुभुज—वि० [सं०] दे० 'आजानुबाहु' । उ०—आजानुभुज सरबाप  
घर सग्रामजित खरदूपन ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७८ ।

आजानुलंबी—वि० [सं०] आजानुलम्बिन् घुटने तक लंबा [को०] ।

आजानेय<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की एक जाति जो उत्तम मानी  
जाती है ।

आजानेय<sup>२</sup>—वि० १ अच्छी नस्ल का (घोड़ा) । २. उच्चकुल में  
उत्पन्न । ३ निर्भय [को०] ।

आजार—सज्ञा पुं० [फा० आजार] १. रोग । बीमारी । व्याधि ।  
उ०—उस मसीहा को दिखा दो तो कुछ आजार नहीं, अभी  
हो जाय शिफा ।—श्यामा०, पृ० १०१ ।  
क्रि० प्र०—देना ।

२ दुख । कष्ट । तकलीफ । उ०—तेरे बीमार सा बीमार न  
होगा कोई । जिसको जाहिर में जो देखा तो कुछ आजार  
नहीं ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २२६ ।

क्रि० प्र०—देना ।—पहुँचना ।—पाना ।—लगाना ।

आजि—सज्ञा पुं० [सं०] १ युद्ध । रण । सग्राम । लड़ाई । उ०—  
चतुरंग सैन भगाइके, तब जीतियो वह आजि ।—रामच०, पृ०  
१७४ । २ दौड़ [को०] । ३ युद्धक्षेत्र या दौड़ का स्थान  
[को०] । ४ सीमा । घेरा [को०] । ५ पथ । मार्ग [को०] ।  
६ क्षण [को०] । ७. निंदा [को०] ।

आजिक्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध [को०] ।

आजिगमिपु—वि० [ग०] आने की इच्छा रखनेवाला [को०] ।

आजिगीपु—वि० [ग०] जय का इच्छुक [को०] ।

आजिग्रह—वि० [सं०] ग्रहण या दृश्य करनेवाला [को०] ।

आजिज—वि० [अ० आजिज] [ संज्ञा आजिजी ] १ दीन ।  
विनीत । २ हेरान । तंग । उ०—उजिन न आजिज तुम रहते  
इंद्री मारि गिराओ ।—पद्म० पानी, भा० ३, पृ० ५८ ।

क्रि० प्र०—आना ।—होना ।

आजिजी—सज्ञा स्त्री० [अ० आजिजी] १ दीनता । विनीत भाव ।  
नम्रता । २ हेरानी । ३. निराशा । ४. कमजोरी ।

आजिमुख—सज्ञा पुं० [ग०] युद्ध की श्रमपत्ति [को०] ।

आजी—सज्ञा स्त्री० [सं०] आयिका, प्रा० धञ्जिआ अय्या हिं आजा  
दादी । पितामही ।

आजीव—सज्ञा पुं० [सं०] १ जीविका । धन । २ जीविका का  
साधन या उपाय । ३. उचित नाम या प्राय । चागिव  
श्रामदनी ।

विशेष—जो लोग कारीगरी और श्रमिकों की श्रामदनी को घटाने  
का यत्न करते थे, उनके ऊपर चारण्य ने १००० पण  
जुरमाना लगाया है ।

४ राज्यकर । सरकारी टैक्स या महसूल ।

विशेष—यह भिन्न भिन्न पदार्थों पर लगता था ।

आजीवक—सज्ञा पुं० [सं०] १ गोगान द्वारा प्ररतित धामिक नप्रदाय  
का साधु (जैन) । उ०—उतने में एक आजीवक उमी स्थान  
पर आकर चदन से पूछने लगा ।—द्रा०, पृ० ७२ । २.  
मिषमगा । मिषुक [को०] ।

आजीवन—क्रि० वि० [म०] जीवनपर्यंत । जितनी भर । जब तक  
जीए तब तक ।

आजीवनिक—वि० [सं०] जीविका के लिये प्रयत्न करनेवाला [को०] ।

आजीवात—क्रि० वि० [सं०] आजीवान्त मरने की घड़ी तक । प्राण  
निकलने के क्षण तक ।

आजीविक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आजीवक' [को०] ।

आजीविका—सज्ञा स्त्री० [म०] वृत्ति । रोजी । रोजगार । जीवन का  
सहारा । जीवननिर्वाह का अवलंब । उ०—तेरी बहुत अच्छी  
आजीविका है ।—शकुंतला, पृ० १०१ ।

आजीवितात—क्रि० वि० [सं०] आजीवितान्त जीवनपर्यंत [को०] ।

आजीवी—वि० [सं०] आजीविन् जीविकायुक्त । २ एक प्रकार के  
मिक्षुक (एकदंडी) [को०] ।

आजीव्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ जीविका योग्य । जीविका बनाने योग्य ।  
३ निवास योग्य । ४. उपजाऊ [को०] ।

आजीव्य<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] जीविका या रोजी का साधन [को०] ।

आजु—क्रि० वि०, सज्ञा पुं० [हिं० आजु] दे० 'आज' । उ०—(क)  
आजु अनरसेहि भोर के, पय पियत न नीके ।—तुलसी ग्र०, पृ०  
२७४ । (ख) बहुत काल में कीन्ह मजबूरी । आजु दीन्ह बिधि  
बनि भलि भूरी ।—मानस, २ । १०२ ।

आजुर्दगी—सज्ञा स्त्री० [फा० आजुर्दगी] रज । खेद । दुःख ।

आजुर्दा—वि० [फा० आजुर्दह] खिन्न । दुःखी । उ०—वे लोग कैसे कुछ आजुर्दा खातिर हैं ।—प्रेमघन, भा० २, पृ० १०१ ।

आजू<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ वेगार । २ विना वृत्ति लिए काम करने-वाला नौकर (को०) । ३. नरक निवास या वास (को०) ।

आजू<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० [अ० वजू] दे० 'वजू' । उ०—ज्ञान का गुसल कर पाक का आजू कर पक तकवीर परतीत पाई—कवीर० रे०, पृ० २४ ।

आज्ञप्त—वि० [सं०] १ आदेश दिया हुआ । २ सूचित (को०) ।

आज्ञप्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ आज्ञा । आदेश । २. सूचना ।

यो०—आज्ञप्तिहर = संदेशवाहक । दूत ।

आज्ञा—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ बड़ो का छोटी को किसी काम के लिये कहना । आदेश । हुक्म । जैसे,—राजा ने चोर को पकड़ने की आज्ञा दी । २. छोटी को उनकी प्रार्थना के अनुसार बड़े का उन्हें कोई काम करने के लिये कहना । स्वीकृति । अनुमति । जैसे,—बहुत कहने सुनने पर हाकिम ने लोगों को जुआ खेलने की आज्ञा दी ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—मानना ।—लेना ।—होना ।

यो०—आज्ञाकारी । आज्ञावर्ती । आज्ञापक । आज्ञापालन । आज्ञाभंग ।

आज्ञाकर—वि० [सं०] दास । सेवक (को०) ।

आज्ञाकारी—वि० [मं०] आज्ञाकारिन् [स्त्री० आज्ञाकारिणी] १. आज्ञा माननेवाला । हुक्म माननेवाला । आज्ञापालक । उ०—लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि सब आज्ञाकारी । तुलमिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बैत कर धारी ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०८ । २. सेवक । दास । टहलुआ ।

आज्ञाचक्र—सञ्ज्ञा पु० [सं०] योग और तंत्र में माने हुए शरीर के भीतर के छह चक्रों में से छठा, जो सुषुम्ना नाडी के बीचोबीच दोनों भों के बीच दो दल के कमल के आकार का माना गया है ।

आज्ञाता—वि० [सं०] आज्ञातृ [स्त्री०] आज्ञा देने या करनेवाला (को०) ।

आज्ञादान—सञ्ज्ञा पु० [सं०] आज्ञा करना या देना (को०) ।

आज्ञाधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी जो राजा की आज्ञा से रखी या रखाई गई हो ।

आज्ञान—सञ्ज्ञा पु० [सं०] अवगम । ज्ञान । बोध (को०) ।

आज्ञापक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आज्ञापिका] १ आज्ञा देनेवाला । आज्ञा करनेवाला । २. प्रभु । स्वामी ।

आज्ञापत्र—सञ्ज्ञा पु० [सं०] वह लेख जिसके अनुसार किसी आज्ञा का प्रचार किया जाय । हुक्मनामा ।

आज्ञापन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [वि० आज्ञापित] सूचना । जताना ।

आज्ञापरिग्रह—सञ्ज्ञा पु० [सं०] आज्ञा प्राप्त करना या स्वीकार करना (को०) ।

आज्ञापालक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आज्ञापालिका] १ आज्ञा पालन करनेवाला । आज्ञाकारी । आज्ञा के अनुसार चलनेवाला । फरमावरदार । २. दास । टहलुआ ।

आज्ञापालन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] आज्ञा के अनुसार काम करना । फरमावरदारी ।

आज्ञापित—वि० [मं०] सूचित । जाना हुआ ।

आज्ञाप्य—वि० [सं०] आज्ञा या निर्देश के योग्य (को०) ।

आज्ञाप्रतिघात—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ आज्ञा का उल्लंघन । २. विद्रोह (को०) ।

आज्ञाभंग—सञ्ज्ञा पु० [सं०] आज्ञाभङ्ग [स्त्री०] आज्ञा न मानना । हुक्म उड़ली । क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

आज्ञायी—वि० [सं०] आज्ञापित् [स्त्री०] बोध या ज्ञानवाला । समझने-वाला (को०) ।

आज्ञाविवेय—वि० [सं०] आज्ञा माननेवाला । आज्ञाकारी (को०) ।

आज्य—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ घृत । घी । उ०—नौकरशाही दे चुकी, भारत तुझे स्वराज्य । डाल न आशा आग में असहयोग का आज्य ।—शंकर०, पृ० २०६ । २ (व्यापक भाव में) घृत की जगह तेल, दूध आदि हवनीय पदार्थ (को०) । ३ प्रातःकालिक होत्र के मंत्र (को०) । ४ वह सूक्त जिसमें उक्त मंत्र है (को०) ।

यो०—आज्यग्रह, आज्यघानी = घृतपात्र । आज्यदोह । आज्यप = घृत पीनेवाला । आज्यपा । आज्यभाग । आज्यभुक् । आज्यस्थाली ।

आज्यदोह—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सामवेद की तीन ऋचाओं का एक सूक्त जिसका जप या पाठ पवित्र करनेवाला होता है ।

आज्यधन्वा—सञ्ज्ञा पु० [सं०] आज्यधन्वन् वह जिसके धनुष में घृत की मालिश की गई हो (को०) ।

आज्यपा [संज्ञा पु० [मं०] सात पितरों में से एक । मनु के अनुसार ये वंश्यों के पितर हैं जो पुलस्त्य ऋषि के लड़के थे ।

आज्यभाग—सञ्ज्ञा पु० [सं०] घृत की दो आहुतियाँ जो अग्नि और सोमदेवताओं को उत्तर और दक्षिण भागों में आधार के पीछे दी जाती हैं ।

विशेष—इनके अविच्छिन्न होने का नियम नहीं है । ऋग्वेदी लोग अग्नये स्वाहा से उत्तर और और 'सोयाम स्वाहा' से दक्षिण और आहुति देते हैं, पर यजुर्वेदी लोग उत्तर और दक्षिण दिशाओं में भी पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध का विभाग करके उत्तर और दक्षिण दोनों के पूर्वार्ध भाग ही में देते हैं । आधार और आज्यभाग आहुति के विना हवि से आहुति नहीं दी जाती ।

आज्यभुक्, आज्यभुज—सञ्ज्ञा पु० [सं०] अग्नि ।

आज्यलेप—सञ्ज्ञा पु० [मं०] घी का मलहम (को०) ।

आज्यवारि—सञ्ज्ञा पु० [सं०] घृतसमुद्र । सात पौराणिक समुद्रों में से एक (को०) ।

आज्यविलापिनो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घृतपात्र (को०) ।

आज्यस्थाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक यज्ञपात्र जो बटली के आकार का होता है और जिसमें हवन के लिये घी रखा जाता है ।

आज्यहोम, आज्यआहुति—सञ्ज्ञा पु० [सं०] घी का होम (को०) ।

आज्ञा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आज्ञा [स्त्री०] इच्छा । उ०—प्राणहारा जादव खग प्राजा, अमरी खान पुरवण आम्हा ।—रा० छं०, पृ० २६७ ।

आज्ञाल<sup>७</sup>—वि० [सं आ + ज्ञाल] तेजस्वी उ०—प्रखई प्रोहित वम उजाली, आयी प्रिय दरसण आभिलो।—रा० ६०, पृ० ३००।

आटना—क्रि० अ० [म० अटन = घूमना से प्रेर० रूप आटन = घुमाना, फेरना।] पोतना। दवाना। उ०—(क) घोड़ो ही की लीद मे मारो आटि पठान।—सुजान०, पृ० ७०। (ख) क्यो इस वृद्ध पुरुष को अनुग्रह से आटे देते हो।—तोताराम।—(शब्द०)।

आटरूप—संज्ञा पुं० [म०] १ पौधा। अडूमा। २ एक वृत्त का नाम। अटरूप [को०]।

आटविक<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] १ वन मे निवास करनेवाला व्यक्ति। २ छह प्रकार की सेनाओं मे से एक। ३ वन्य जातियों का प्रधान पुरुष या मुखिया [को०]।

आटविक<sup>२</sup>—वि० [सं०] १ वन का। वन्य। जंगली। २ वनवासियों सबधी [को०]।

आटा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० आट = जोर से दाबना, प्रा० अट्ट] १ किसी अन्न का चूर्ण। पिसान। चून। २ पिसा हुआ गेहूँ या जौ। मुहा०—कगाली या गरीबी मे आटा गीला होना = धन की कमी के समय पास से कुछ और जाता रहना। आटा दाल का भाव मालूम होना = ससार के व्यवहार का ज्ञान होना। आटा दाल की फिर = जीविका की चिंता। आटे का आपा = मोली स्त्री। अत्यंत सीधी सादी स्त्री। आटा माटी होना = नष्ट भ्रष्ट होना। ३ किसी वस्तु का चूर्ण। चुकनी।

आटा<sup>२</sup>—अटना क्रिया का भूतकालिक रूप। उ०—अगिलहि कहे पानी लेई बाँटा। पछिलहि कहे नहि काँदो आटा।—जायसी ग्र०, पृ० ६।

आटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक चिड़िया का नाम। आढी। आटी। एक प्रकार की मछली [को०]।

आटिक, आटिक्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आटिकी] यात्रा के लिये प्रस्तुत। यात्रा के योग्य [को०]।

आटिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] शल्यक्रिया सबधी एक अस्त्र जिसका आकार आढी चिड़िया के मुख या चोंच का सा होता है। [को०]।

आटी<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] डाट। रोक। टेक।

आटी<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक चिड़िया का नाम। आढी [को०]।

आटीकन—संज्ञा पुं० [सं०] गाय के बछड़े का उछनना कूदना [को०]।

आटीकर—संज्ञा पुं० [म०] सांड। वृषभ [को०]।

आटोक्रैट—संज्ञा पुं० [अ०] १ निरकुश या स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट्। वह राजा या शासक जो दूसरो पर अपनी शक्ति का अवाध प्रयोग या मनमानी करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता हो। २ वह जिसे किसी विषय मे अमर्यादित अधिकार प्राप्त हो या जो किसी विषय मे अपना अमर्यादित अधिकार मानता हो। मनमानी करनेवाला। स्वेच्छाचारी। निरकुश। आटोक्रैसो—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ दूसरो पर अनियंत्रित या अमर्यादित अधिकार जो किसी एक ही व्यक्ति को हो। दूसरो पर मनमाना करने का अधिकार। स्वेच्छाचारिता। निरकुशता। २. किसी निरकुश स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट् की शक्ति। एकतत्रता।

आटोप—संज्ञा पुं० [सं०] १ आच्छादन। फैलाव। २ आडवर। विभव। ३ पेट की गुड़गुड़ाहट। ४ फूलना। शोथ [को०]। ५ भीड़ [को०]। ६ आधिक्य। प्राचुर्य [को०]। ७ गर्व। घमंड [को०]।

यौ०—घटाटोप। उ०—घटाटोप करि चहुँ दिनि घेरी। मुखहि निसान वजावहि भेरी।—मानस ६।३८।

आटोप—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक रोग जिममे पेट की नसें तन जाती हैं। २ पेट की नसों का तनाव।

आठ—वि० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ] एक संख्या। चार का दूना।

मुहा०—आठ आठ आँसू रोना = बहुत अधिक विलाप करना।

आठो गाँठ कुम्भेत = (१) सर्वगुणमपन्न। (२) चतुर। (३) छंटा हुआ। धूर्त। आठो पहर = दिन रात। आठो पहर जामे से बाहर रहना = हर समय क्रुद्ध रहना। बराबर झगड़ा रहना।

आठक<sup>७</sup>—वि० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ + हिं० एक] आठ।

आठवाँ—वि० [सं० अष्टम, प्रा० अट्ठवें, प्रा० अट्ठय, अट्ठवें] संख्या में आठ के स्थान पर का। अष्टम। जैसे,—इस पुस्तक का आठवाँ प्रकरण अभी पढ़ना है।

आठे, आठो—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी तिथि। जैसे,—आठो का मेला उ०—सवत सरस विभावन, भादों गाठे तिथि, बुधवार।—सूर०, १०।८६।

आठौगाँठ—वि० [हिं० आठों + गाँठ] सर्वांग। उ०—स्यामा सुगति सुवस की आठौ गाँठि अनुप। छूटी हाथ तै पातरी प्यारी छरी स्वरूप।—भिखारी० ग्र०, पृ० २७।

आडंबर<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० आडवर] १ गंभीर शब्द। २ तुरही का शब्द। ३. हाथी की चिंगाड़। ४ ऊपरी वनावट। तडक भडक। टीमटाम। झूठा आयोजन। ढोंग। कपटवेष जिससे वास्तविक रूप छिप जाय। जैसे,—(क) उसमे विद्या तो ऐसी ही वैसी है, पर वह आडंबर खूब बढ़ाए हुए है।—(ख) आजकल के साधुओं के आडंबर ही आडंबर देख लो।

क्रि० प्र०—करना।—फैलना।—बढ़ाना।—रचना।

५ आच्छादन।

यौ०—मेघाडवर।

६ तट्ट। ७ बड़ा ढोल जो युद्ध मे बजाया जाता है। पटह। ८

कोलाहल करना। जोर जोर से या अधिक बोलना [को०]।

९ वादलों का गर्जन। मेघगर्जन [को०]। १० युद्धघोषणा या

आक्रमण की सूचना देने का पटह या नगाडा [को०]। ११

प्रसन्नता। आह्लाद [को०]। १२ पलक [को०]। १३ अग-

सवाहन। मालिश [को०]। १४ क्रोध। कोप [को०]।

आडवर<sup>२</sup>—वि० अधिक। उच्च। अपार [को०]।

आडवराघात—संज्ञा पुं० [सं० आडम्बराघात] पटह या नगाडा बजानेवाला आदमी [को०]।

आडवरी—वि० [म० आडम्बरिन्] आडवर करनेवाला। ऊपरी वनावट करनेवाला २ घमंडी। अभिमानी [को०]।

आड<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री० [अल = वारण, रोक] १. ओट। परदा। ओझल। जैसे,—(क) वह दीवार की आड मे छिपा बैठा है। (ख) कपड़े से यहाँ आड़ कर दो।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—आड़े देना(७) = ओट करना । आड़ के लिये सामने रखना । उ०—आड़े दै आने वसन, जाड़े हूँ की राति । साहसु कर सनेह वस, सखी सवै ढिग जाति ।—विहारी २०, दो० २०३ । २ रक्षा । शरण । पनाह । सहारा । आश्रय । जैसे,—  
(क) अब वे किमकी आड पकड़ेंगे ? (ख) जब तक उनके आश्रयता जीते थे, तब तक बड़ी भारी आड थी ।

१० प्र०—वरना ।—पकड़ना ।—लेना ।

३ रोक । अडान । ४, ईट वा पत्थर का टुकड़ा जिसे गाड़ी के पहिए के पीछे डमलिये अडाते हैं जिसमें पहिया पीछे न हट सके । रोडा । ५ मगीत में अष्टताल का एक भेद । ६ धूनी । टेक । ७ तिल की बोड़ी जिसमें तिल भरे रहते हैं । ८ एक प्रकार का कलछुला जो चीनी के कारखानों में काम आता है ।

आड<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [म० अल = डंक, पा० अड, प्रा० आड] विच्छू या भिड़ आदि का डक ।

आड<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० [स० आलि = रेखा] १ लंबी टिकली जिसे स्त्रियाँ माथे पर लगाती हैं । उ०—गौरी गदकारी परै हँसत कपोलनु गाड । कैसी लसति गँवारि यह सुनकिरवा की आड ।—विहारी २०, दो० ७०८ । २ स्त्रियों के मस्तक पर का आडा तिलक । उ०—केसव, छवीलो छत्र सीसफून सारथी सो केमर की आडि ग्रवि रथिक रवी वनाइ ।—केशव ग्र०, मा० १, पृ० ६० । (ख) मगल विदु सुरगु, ससि मुखु केसरि आड गुरु । इक नारी लहि मगु, किय रसमय लोचन जगत ।—विहारी २०, दो० ४२ । ३ माथे पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना । टीका ।

आडगीर—सज्ञा पुं० [हि० + आड फा० गीर] खेत के किनारे की घास ।

आडण—सज्ञा स्त्री० [हि० आडना = रोकना] डाल ।—(हि०) ।

आडना—कि० म० [अल = वारण करना] १. रोकना । छेकना । उ०—अँचवन दियो न आजु अलि हरि छवि-प्रमी अघाइ । आडयो प्यासे दृगनि को लाज निगोडी आइ ।—भिखारी० ग्र०, पृ० ४५ । २ वाँघना । ३. मना करना । न करने देना । ४. गिरवी रखना । गहने रखना । जैसे,—सौ रुपए की चीज आड करके तो २५ लाया हूँ ।

आडवंद—सज्ञा पुं० [हि० आड + फा० वंद] १ फकीरो का लँगोट । २ पहलवानों का लँगोट जिसे वे जाँघिए के ऊपर कसते हैं ।

आडवना—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आडवद' ।

आड़ा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स० आलि = रेखा प्रा० अल, आड अथवा सं० अराला प्रा० अराल] [स्त्री० आडी] १ एक धारीदार कपड़ा । २ जहाज का लट्ठा । शहतीर । ६. नाव या जहाज में लगे हुए वगली तख्ते । ४ जुलाहों का लकड़ी का वह समान जिसपर सूत फैलाया जाता है ।

आडा<sup>२</sup>—वि० १ आँखों के समानांतर दाहिनी ओर से बाईं ओर को बाईं ओर से दाहिनी ओर को गया हुआ । २ बार से बार तक रखा हुआ ।

मुहा०—आड़े आना = (१) रुकावट डालना । बाधक होना । जैसे,—जो काम हम शुरू करते हैं, उसी में तुम बेहतर आड़े

आते हो । (२) कठिन समय में काम आना । गाढ़े में काम आना । सकट में खड़ा होना । उ०—कमरी थोड़े दाम की आँवें बहुते काम । खासा मलमल वाफता उनकर राखै मान । उनकर राखै मान बुद जहँ आड़े आँवें । वकुचा बाँधें मोट राति को भारि विछावै ।—गिरधर (शब्द०) । आडा तिरछा होना = विगड़ना । मिजाज बदलना । जैसे,—आड़े तिरछे क्यों होते हो, सीधे सीधे बातें करो । आड़े पडना = बीच में पडना । रुकावट डालना । उ०—कविरा करनी आपनी कवहुँ न निष्कन जाय । सात समुद आडा परै मिलै अगाऊ आय ।—कवीर (शब्द०) । आड़े हाथो लेना = किसी को व्यंग्योक्ति द्वारा लज्जित करना । जैसे,—वात ही वात में उन्होंने वनदेव को ऐसा आड़े हाथो लिया कि वह भी याद करेगा । आडा होना = रुकावट डालना । आगे न बढ़ने देना ।—मैं पीछे मुनि धीय के, चह्यो चलन करि चाव । मर्यादा आडी नई, आगे दियो न राव ।—लक्ष्मण (शब्द०) ।

आडा<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [हि० अड्डा] दे० 'अड्डा' । उ०—होइ निर्वित वैठे तेहि आडा । तब जाना खोवा हिय गाड ।—जायसी ग्र०, पृ० २८ ।

आडाखेमटा—सज्ञा पुं० [हि० आडा + खेमटा] मृदग का साढ़े तेरह मात्राओं का एक ताल ।

विशेष—इसमें तीन आघात और एक खानी रहता है । कोई कोई इसमें खानी का व्यवहार नहीं करते । इस ताल के बीन ये हैं—घा तेरे केटे धेने धागे नागे तेन । ताके तेरे केटे धेने धागे नागे तेन ।

आडाचीताल—सज्ञा पुं० [हि० आडा + चीताल] मृदग का एक ताल । यह ताल सात मात्राओं का होता है ।

विशेष—इसमें चार आघात और तीन खानी होते हैं । इस ताल के बीन ये हैं—धाग् धागे दिता, केटे धागे दिता गदि धेने धा । मतातर से इसके बीन ये हैं—धागे तेटे केटे ताग तागे तेटे, केटे तागे धेत्ता तेटेकता गदि धेने धा ।

आडाठेका—सज्ञा पुं० [हि० आडा + ठेका] नौ मात्राओं का एक ताल ।

विशेष—इसमें चार दीर्घ और चार अणु मात्राएँ होती हैं । चार दीर्घ मात्राओं की आठ दून मात्राएँ और चार अणु मात्राओं की एक मात्रा । इस प्रकार सब मिला कर नौ मात्राएँ होती हैं । किंतु जब ठेके में ४ दीर्घ मात्राएँ दी जाती हैं तो उनमें से प्रत्येक के साथ एक एक मात्रा अणु भी लगा दी जाती है । इसके मृदग के बीन ये हैं—धाकेटे नाग धी + ० + १ + + ऐन धा धा धिन धि ऐन ताकेटे तागधि ऐन धा धा तिऐन धा ।

आडापचताल—सज्ञा पुं० [हि० आडा + पंच + ताल] पाँच मात्राओं और नौ मात्राओं का एक ताल ।

+ १ १  
विशेष—इसके बीन ये हैं—धि निर किट, धिना धि धि ना ना नु ना, कुत्ता<sup>१</sup> धि धि, ना धि धि ना ।

आडालोट—सज्ञा पुं० [हि० आडा + लोटना] डाकौजीनन । का । क्षोभ (लश०) ।

क्रि० प्र०—मारना = जहाज का लहराना । जहाज का डगमगाना ।  
आडि, आडी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार की मछली । २ एक जलपक्षी जिसको शरालि भी कहते हैं । यह गिद्ध की तरह होता है ।

आडिटर—सज्ञा पुं० [अ०] आय व्यय का चिट्ठा जाँचनेवाला । आय-व्यय परीक्षक ।

आडिवी—सज्ञा पुं० [ सं० आडीविन् ] [ स्त्री० आडिविनी ] काक । कौआ [को०] ।

आडी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हिं० आडा] १ तबला, मृदंग आदि वजाने का एक ढग जिसमें किसी ताल के पूरे समय के तीसरे छठे या बारहवें भाग ही में पूरा ताल बजा लिया जाता है । २ चमारो की छुट्टी ।

आडी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [ हिं० ] दे० 'आरी' ।

आडी<sup>३</sup>—वि० [हिं० आड + ई (प्रत्य०)] सहायक । अपने पक्ष का । विशेष—जब किसी खेल में लड़कों के दो दल हो जाते हैं तब एक लड़का अपने दल के लड़के को आडी कहता ।

आडी<sup>४</sup>—वि० स्त्री० पड़ी । बँधी ।

मुहा०—आडी करना = चाँदी सोने के वर्क पीटनेवालों की बोली में लवे पीटे हुए वर्क को चौड़ा पीटना ।

आडू—सज्ञा पुं० [ सं० ] १ चंद्रमा [को०] ।

आडू—सज्ञा पुं० [सं० अंड अथवा आलु] १ एक प्रकार का फल जिसका स्वाद खटमीठा होता है । देहरादून की ओर यह फल बहुत अच्छा होता है । इसे शफालू भी कहते हैं । यह फल दो प्रकार का होता है—एक चकिया, दूसरा गोल । २ इस फल का वृक्ष ।

आड<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० आढक] चार प्रस्थ अर्थात् चार सेर की एक तोल ।

आड<sup>२</sup>(उ)—सज्ञा स्त्री० [हिं० आड] १ ओट । पनाह । २ सहारा । ठिकाना । उ०—ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों त्यों जगमग मुख मलीन लहे आड न ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६४ । ३ (उ) अतर । बीच । जैसे,—(क) एक दिन आड देकर आना । (ख) एक कोस-आड-देकर ठहरेंगे ।

मुहा०—आड आड करना = बीच में अवधि डालना । आजकल करना । टाल मटल करना । जैसे,—उ०—(क) हरि तेरी माया को न विगोयो । शकर को चित हरचो कामिनी सेज छाडि भू सोयो । जारि मोहिनी आड आड कियो तब नख सिख तें रोयो ।—सूर (शब्द०) । (ख) आड आड करत असाड आयो, एरो आली डर से लगत देखि तम के जमाक ते । श्रीपति ये मैन माते मोरन के बँन सुनि परत न चैन बुँदियान के क्षमाक ते ।—श्रीपति । (शब्द०) ।

आड<sup>३</sup>—वि० [सं० आढ्य = सपन्न] कुशल । दक्ष । उ०—स्वारथ लागि रहे वे आडा । नाम लेत जस पावक ढाढ़ा ।—कवीर, (शब्द०) ।

आड<sup>४</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० आडि] एक प्रकार की मछली ।

आड<sup>५</sup>—सज्ञा स्त्री० [हिं० आड = टीका] माथे पर पहनने का स्त्रियो का एक आभूषण । टीका ।

आढक—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक तोल जो चार सेर के बराबर होता है । २ अन्न नापने का काठ का बरतन जिसमें अनुमान से चार सेर अन्न आता है । ३ अरहर ।

आढकिक—वि० [सं०] १ आढकवाला आढकयुक्त । २ एक आढ से बोया हुआ (खेत) [को०] ।

आढकी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. अरहर नाम का अन्न । २ सीरा मृत्तिका । गोपीचंदन ।

आढत—सज्ञा स्त्री० [हिं० आडना = जमानत देना] १. किसी व्यापारी का माल रखकर कुछ कमीशन लेकर उसकी विक्री देने का व्यवसाय । २ वह स्थान जहाँ आढत का रहता हो । ३ वह धन जो विक्री कराने के बदले मिलता ।  
आढतदार—सज्ञा पुं० [ हिं० आढत + फा दार (प्रत्य०) ] वह व्यापारियों का माल अपने यहाँ रखकर दूकानदारों के हाँ बेचता हो । आढत का काम करनेवाला । अढतिया ।

आढतिया—सज्ञा पुं० [ हिं० ] दे० 'अढतिया' ।

आढ्यकर—वि० [सं० आढ्यङ्कर] अमपन्न को सपन्न करनेवाला ।

आढ्यभविष्णु—वि० [सं० आढ्यम्भविष्णु] धनी होनेवाला [को०] ।

आढ्य—वि० [सं०] १ सपूर्ण । पूर्ण । २ युक्त । विशिष्ट । ३ धनी [को०] ।

यौ०—आढ्यकुलीन = धनी कुल में उत्पन्न । आढ्यचर, आढ्य-पूर्व = पहले का धनी । आढ्यरोग = गठिया । वात रोग । गुणाढ्य । घनाढ्य । पुण्याढ्य । सनाढ्य ।

आढ्यता—सज्ञा स्त्री० [ सं० ] धन [को०] ।

आढ्यरोगी—वि० [सं० आढ्यरोगिन्] गठिया का रोगी [को०] ।

आढ्यवात—सज्ञा पुं० [सं०] वातरोग जनित पक्षाघात या लकवा [को०] ।

आणक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक रुपये का सोलहवाँ भाग । आना । २ एक प्रकार का रतिवध । पार्श्वसंभोग [को०] ।

आणक<sup>२</sup>—वि० अधम । कुत्सित ।

आणव<sup>१</sup>—वि० [सं०] [ स्त्री० आणवी ] अत्यन्त सूक्ष्म । अणु । अत्यन्त छोटा [को०] ।

आणव<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० अणुता । अत्यन्त सूक्ष्मता [को०] ।

आणविक—वि० [सं०] अणु से संबद्ध । अणु संबंधी ।

आणवीन—वि० [सं०] अणुघान्य (सर्वा आदि) बोलने योग्य [को०] ।

आत(उ)—सज्ञा पुं० [सं० आत्म, हिं० आतम] आत्मा । उ०—प्रागम पथ वाटा चढ़ी सुति घाटा, गगन गैर फाटा सो आत निआत । घट०, पृ० ३८६ ।

आतक—सज्ञा० पुं० [सं०] १. रौब । दबदबा । प्रताप । उ०—सहित गुमान गरव आतक, सुनि राजा के बवन निसक । हम्मीर ह०, पृ० १८ । २ भय । शका ।

क्रि० प्र०—छाना ।—जमना ।—फँचना ।

३ रोग । बीमारी ।

यौ०—आतंक-निग्रह ।

४ मुरचग की छ्वनि । ५ पीडा । कष्ट उ०—हो निर्भय निर्जय शक्ति के मद से यदि, पावस के प्रवाह सा फँसा भय, आतंक, विपाद ।—पार्वती पृ० ८६ । ६. सदेह [को०] । ७ निश्चय का अभाव [को०] ।

आतंकवादी—वि० [म० आतङ्क + वादिन्] जो राजनीतिक लक्ष्य की सिद्धि के लिये बल या अस्त्र शस्त्र में विश्वास रखता हो । जैसे, आतंकवादी सघटन ।

आतंकित—वि० [सं० आतङ्कित] भीत । त्रस्त । डरा हुआ । उ०—पशु फिरते सानद विहङ्गकुल मगल के स्वर गाते । आतंकित थे असुर, मनुज थे उत्सव पर्व मनाते । पार्वती०, पृ० ५४ ।

आतङ्कन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आतङ्कन] १ दूध को जमाने के लिये डाला जानेवाला जावन । जामन । २ सकुचित या संकीर्ण करनेवाला पदार्थ या व्यक्ति । ३ दही । ४ जमाने का कारण । ५ जमाने में दूध का जलीय अणु । ६ प्रेपक । ७ सतोपकारक या तोपकारक । ८ सकट । विपत्ति । ९ वेग । गति । १० धातुओं के मिश्रण में संयोजक तत्व । ११ स्थूलकरण । मोटा करना [को०] ।

आत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आतु] शरीफा । सीताफल । उ०—दिखा रहा था तह वृद मे खडा स्व आततायीपन, पेड आत का ।—प्रिय० प्र० १०५ ।

आतत—वि० [सं०] १ चढा या चढाया हुआ । खिचा हुआ । फैला हुआ ( धनुष या उसकी डोरी ) [को०] ।

आततज्य—वि० [सं०] जिसके ज्या (धनुष की डोरी) आतत (चढी या खिची) हो [को०] ।

आतताई—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आतनायी' । उ०—वरनि वताई, छिति व्योम की तनाई जेठ आयो आतताई पुटगक सौ करत है ।—कविता०, पृ० ५६ ।

आततायी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आततायिन्] [ स्त्री० आततायिनी ] १. आग लगानेवाला । २ विप देनेवाला । ३ बघोचत शस्त्रधारी । ४ जमीन छीन लेनेवाला । ५ धन हरनेवाला । ४ स्त्री हरनेवाला । ७ क्रूर व्यक्ति । अत्याचारी । लोकपीडक । संताप देनेवाला व्यक्ति ।

आतन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ तानना । फैलाना । विस्तृत करना । २ दृश्य [को०]

आतप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आतपी, आतप्त] १ धूप । घाम । उ०—मृदुल मनोहर सुंदर गाता । सहत दुसह वन आतप वाता ।—मानस, ४। १ । २ गर्मी । उष्णता । ३ सूर्य का प्रकाश । ४. ज्वर । बुखार ।

यौ०—आतपकलात ।

आतपत्र, आतपत्रक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छाता । छतरी । उ०—आतपत्र सा रुचिर शीश पर राजित जिनके व्योम वितान ।—पार्वती, पृ० ३० ।

आतपन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

आतपलघन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आतपलङ्घन] सूर्य के ताप में से गुजरना [को०] ।

आतपात्यय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रीष्म का बीतना । २ सूर्यास्त [को०] ।

आतपाभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के ताप का अभाव [को०] ।

आतपी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [आतपिन्] सूर्य ।

५५

आतपी<sup>२</sup>—वि० धूप का । धूप सबधी ।

आतपीय—वि० [सं०] सूर्यताप संबधी । धूपवाला [को०] ।

आतपोदक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मृगतृष्णा ।

आतम<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'आत्म' । उ०—आतम रूप सकन घट दरस्यो, उदय कियौ रवि ज्ञान ।—सूर०, २।३३ ।

आतम<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आत्म' । उ०—एक आतम हम तुम माही ।—सूर० ११। ४ ।

आतमक—वि० [सं० आत्मक] दे० 'आत्मक' । उ०—प्रथम मंगलाचरण को तीनि आतमक जानि । नमस्कार अरु ध्यान पुनि, आसिरवाद वखान ।—मिखारी, प्र०, भा० १, पृ० १ ।

आतमगामी—वि० [सं० आत्म + गामिन्] आत्मविद् । उ०—ज्ञान आतमानिष्ठ गुनत यो आतमगामी, कृष्ण अनावृत परम ब्रह्म परमात्म स्वामी ।—नद० प्र०, पृ० ४१ ।

आतमज्ञान—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आत्मज्ञान] आत्मज्ञता । उ०—ताते आतमज्ञान धन पायो नाहि अज्ञान ।—दीन० प्र०, पृ० १५२ ।

आतमवादी—वि० [सं० आत्मवादिन्] दे० 'आत्मवादी' । उ०—जे मुनिनायक आतमवादी ।—मानस ७। ७० ।

आतमहन्—वि० [सं० आत्महन्] दे० 'आत्महन्' । उ०—जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ । सो कृतनिदक, मदमति आतमहन् गति जाइ ।—तुलसी (शब्द०) ।

आतमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आत्मा] दे० 'आत्मा' । उ०—समयसिंधु नाम—बोहित भजि निज आतमा न तारयो ।—तुलसी-अं०, पृ० ५५६ ।

आतर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नदी पार जाने का महसूल । नाव का भाडा । उतराई ।

आतर्द—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छिद्र । सूराख [को०]

आतर्दन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ धक्का देकर खोने का कार्य । २ छिद्र । छेद । सूराख [को०] ।

आतर्पसा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मागलिक लेपन । ऐपन ।

आतश—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] आग । अग्नि । उ०—आदि अत मन मध्य न होते, आतश पवन न पानी । लख चौरासी जीव जनु नहि, साखी शब्द न बानी ।—कबीर (शब्द०) ।

यौ०—आतशखाना । आतशजनी । आतशदान । आतशपरस्त । आतशवाज । आतशवाजी ।

आतशक—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० आतशकी] फिरग रोग । उपदश । गर्मी ।

आतशखाना—सञ्ज्ञा पुं० [फा० आतशखानह्] १. अग्नि रखने का स्थान । वह स्थान जहाँ कमरा गर्म करने के लिये आग रखते हैं । २ वह स्थान जहाँ पारसियों की अग्नि स्थापित हो ।

आतशगाह—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] दे० 'आतशखाना' ।

आतशजदगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० आतशजदगी] आग लगाने का काम करना [को०] ।



आतशजन—वि० [फा० आतशजन] आप लगानेवाला [को०] ।  
 आतशजनी—सज्ञा स्त्री० [फा० आतशजनी] आग लगाने का काम ।  
 आतशदान—सज्ञा पुं० [फा०] अंगीठी । बोरसी ।  
 आतशपरस्त—स० पुं० [फा०] १ अग्नि की पूजा करनेवाला मनुष्य ।  
 २ अग्निपूजक । पारसी ।  
 आतशफिर्श—वि० [फा० आतशफिर्श] आग उगलनेवाला [को०] ।  
 आतशफिर्श—सज्ञा पुं० अग्निपर्वत । ज्वालामुखी पहाड़ [को०] ।  
 आतशवाज—सज्ञा पुं० [फा० आतशवाज] आतशवाजी बनाने-  
 वाला । हवाईगर ।  
 आतशवाजी—सज्ञा स्त्री० [फा० आतशवाजी] १ बारूद के बने हुए  
 खिलौनों के जलने का दृश्य । २ बारूद के बने हुए खिलौने ।  
 जैसे,—अनार, महतावी, छछूँदर, वान, चकरी, वमगोला,  
 फुलभूँडी, हवाई आदि । ३ अगोनी ( बुंदेल० ) ।  
 आतशमिजाज—वि० [फा० आतश + अ० मिजाज] शीघ्र उत्तेजित  
 या क्रुद्ध होनेवाला । विगडैल [को०] ।  
 आतशी—वि० [फा०] १ अग्नि सवधी । २ अग्नि उत्पादक । जैसे,—  
 आतशी शीशा जो सूर्यकिरणों की उत्पत्ति एकत्र करके आग  
 पैदा करता है । ३ जो आग में तपाने से न फूटे, न तडके,  
 जैसे,—आतशी शीशा ।  
 यौ०—आतशी आईना, आतशी शीशा = वह शीशा जिसके नीचे  
 रखी हुई रई आदि सूर्यतप से जल जाती है ।  
 आतस०—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आतश' । उ०—ज्यो छिन एक ही  
 में छुटि जाति है आतस के लगे आतसवाजी ।—पद्माकर ग्र०,  
 पृ० २४६ ।  
 आतसवाज०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आतशवाज' । उ०—आतसवाज  
 अनेक मिले बारूद बनावत ।—प्रेमघन० भा० १, पृ० ८२० ।  
 आतसवाजी०—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आतशवाजी' । उ०—ज्यो  
 छिन एक ही में छुटि जाति है आतस के लगे आतसवाजी ।—  
 पद्माकर ग्र०, पृ० २४६ ।  
 आतापि, आतापी—सज्ञा पुं० [स०] १ एक असुर जिसे अगस्त्य मुनि  
 ने अपने पेट में पचा लिया था । २ चील पक्षी ।  
 आतायी—सज्ञा पुं० [स० आतायिन्] चील पक्षी [को०] ।  
 आतार—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आतर' ।  
 आतासदेश—सज्ञा पुं० [स० आतु + व० सदेश] एक प्रकार की बंगला  
 मिठाई । इसमें आत (शरीफा) की सी सुगंध आती है और  
 कभी कभी शरीफे के आकाराश की भी इसमें थोड़ी भलक  
 आती है । यह छेने की बनती है ।  
 आति, आती—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पक्षी । आडी [को०] ।  
 आतिथेय—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० आतिथेयी] १ अतिथि के  
 सत्कार की सामग्री । २ अतिथिसेवा में कुशल मनुष्य । ३.  
 मेजवान ।  
 आतिथेयी—वि० [स० आतिथेयिन्] अतिथिसेवा करनेवाला [को०] ।  
 आतिथ्य—सज्ञा पुं० [स०] १ अतिथि का सत्कार । पहुनाई । मेह-  
 मानदारी । २ अतिथि को देने योग्य वस्तु । ३. मेहमान ।  
 अतिथि ।

यौ०—आतिथ्यसत्कार, आतिथ्यसत्क्रिया = अतिथि का ममान या  
 स्वागत आदि करना ।  
 आतिरश्चीन—वि० [स०] थोड़ा तिरछा [को०] ।  
 आतिरेक्य, आतिरैक्य—सज्ञा पुं० [स०] अतिरेक होना । आधिक्य  
 [को०] ।  
 आतिवाहिक—सज्ञा पुं० [म०] मरने के पीछे का वह निगशरीर  
 जिसे धारण करके जीव यमलोकादि में भ्रमण करता  
 है । यह शरीर वायुमय होता है । इसका दूसरा नाम  
 'भोगशरीर' भी है ।  
 आतिश—सज्ञा स्त्री० [फा० आतश] दे० 'आतश' ।—इष्टक पर  
 जोर नहीं, है यह वो आतिश गातिव । कि नगाए न लगे  
 और बुझाए न बने ।—जेर०, पृ० ५३६ ।  
 आतिशदान—सज्ञा पुं० [फा० आतशदान] दे० 'आतशदान' । उ०—  
 आतिशदान के कानिश् पर धरे हुए वक्म और वोनल चमक  
 उठे ।—आकाश०, पृ० ५० ।  
 आतिशयिक—वि० [स०] अत्यधिक [को०] ।  
 आतिशय्य—सज्ञा पुं० [स०] अतिशय होने का भाव । आधिक्य ।  
 बहुतायत । अधिकारी । ज्यादाती ।  
 आतीपाती—सज्ञा स्त्री० [हि० पाती = पत्ता] पहाड़ा । पहाड़ी डिनो ।  
 एक सेन ।  
 विशेष—इसमें बहुत से लडके जमा होकर एक लडके को चोर  
 बनाकर उसे किसी पेड़ की पत्ती लेने भेजते हैं । उसके चले  
 जाने पर सब लडके छिप रहते हैं । पत्ती लेकर लौट आने पर  
 वह लडका जिमको ढूँढकर छू लेता है, फिर वही चोर  
 कहलाता है । उस लडके को भी उसी प्रकार पत्ती लेने जाना  
 पड़ता है । यह खेल बहुधा चाँदनी रातों में खेला जाता है ।  
 आतुर<sup>१</sup>—वि० [स०] १ व्याकुल । व्यग्र । घबराया हुआ । जैसे,—  
 इतने आतुर क्यों होते हो, तुम्हारा काम सब ठीक कर दिया  
 जायगा । २ अधीर । उद्धिग्न । बेचैन ।  
 यौ०—आतुरसन्ध्यास । कामातुर । क्रोधातुर ।  
 ३ उत्सुक । दुखी । रोगी ।  
 आतुर<sup>२</sup>—क्रि० वि० शीघ्र । जल्दी । उ०—मर मज्जन करि आतुर  
 आवहु । दिव्या देउ ज्ञान जिहि पावहु ।—मानस, ६।५६ ।  
 आतुरता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ घबराहट । बेचैनी । व्याकुलता ।  
 व्यग्रता । उ०—तिय की लखि आतुरता पिय की अखियाँ अति  
 चारु चली जल चव ।—तुलसी ग्र०, पृ० १६४ । २ जल्दी ।  
 शीघ्रता ।  
 आतुरताई०—सज्ञा स्त्री० [स० आतुरता + हि० आई (प्रत्य०)]  
 उतावलापन । शीघ्रता । जल्दीबाजी । उ०—उठि कह्यो भोर  
 भयो भँगुली दै मुदित महिर लखि आतुरताई । बिहँसी खालि  
 जानि तुलसी प्रभु सकुचि चले जननी उर घाई ।—तुलसी ग्र०,  
 पृ० ४३५ ।  
 आतुरशाला—सज्ञा पुं० [स०] चिकित्सालय । अस्पताल [को०] ।  
 आतुरसन्ध्यास—सज्ञा पुं० [स०] वह सन्ध्यास जो मरने के कुछ पहले  
 त्वरापूर्वक धारण कराया जाता है ।  
 आतुरालय—सज्ञा पुं० [स०] अस्पताल । चिकित्सालय [को०] ।

आतुरिया<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आतुर + हिं० इया (प्रत्य०)] प्राविश्य ।  
उ०—दीपक ज्योति मलीन भई मनि भूपन जोति की  
आतुरिया है ।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १२१ ।

आतुरी<sup>१७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आतुर + ई (प्रत्य०)] १ घबराहट ।  
व्याकुलता । २ शीघ्रता । जल्दीबाजी । उतावलापन । वेसत्री ।

आतुरी<sup>२७</sup>—क्रि० वि० घबराहट से । आतुरतापूर्वक । उ०—नारि गई  
फिरि भवन आतुरी । नद घरनि अब भई चातुरी ।—  
सूर०, १०।३६१ ।

आतुरी<sup>३७</sup>—वि० घबराया हुआ । व्याकुल ।

आतुर्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ रोग । बीमारी । २ एक प्रकार का  
ज्वर [को०] ।

आतृणा<sup>१</sup>—वि० [म०] १ विद्ध । विद्या हुआ । २. कटा हुआ ।  
घायल [को०] ।

आतृणा<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ छिद्र । छेद । २ खुला हुआ घाव या जखम  
[को०] ।

आतृण्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मीताफन । शरीफा [को०] ।

आतोदी—वि० [सं० आतोदिन्] आघात द्वारा वजनेवाले बाजो को  
वजानेवाला [को०] ।

आतोद्य, आतोद्यक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] आघात से वजनेवाला बाजा  
[को०] ।

आत्त—वि० [सं०] १ लिया हुआ । प्राप्त । गृहीत । २ निकाला  
हुआ । ३. पकड़ा हुआ । हत । ४ अनुभव किया हुआ ।  
अनुभूत । ५ आरब्ध । प्रारभ किया हुआ [को०] ।

आत्तगध—वि० [सं० आत्तगन्ध] १. सूँघा हुआ । २ तिरस्कृत ।  
अपमानित । ३ पराजित । पराभूत [को०] ।

आत्तगर्व—वि० [सं०] गलितगर्व । जिसका गर्व हर लिया गया हो ।

आत्तदड—वि० [म० आत्तदण्ड] दडित । सजायापना [को०] ।

आत्तप्रतिदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पाई हुई वस्तु को लौटाना या  
फेरना [को०] ।

आत्तमनस्क—वि० [म०] हृषित । तुष्ट [को०] ।

आत्तमना—वि० [सं० आत्तमनस्] प्रसन्न । हृष्ट [को०] ।

आत्तलक्ष्मी—वि० [म०] धन से वंचित [को०] ।

आत्तवचस्—वि० [म०] वाक् या वाणी से रहित [को०] ।

आत्मभरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आत्मभरि] १. जो अकेले अपने को  
पाले । २ जो देवता पितर आदि को बिना अर्पित किए ही  
भोजन करे । उदरभरि [को०] ।

आत्म—वि० [म० आत्मन्] अपना । स्वकीय । निज का ।

आत्मक—वि० [सं०] [स्त्री० आत्मिका] मय । युक्त ।

विशेष—यह शब्द अकेले नहीं आता, केवल योगिक वर्ताने के  
काम में किसी शब्द के अंत में आता है । जैसे—गद्यत्मक =  
गद्यमय । पद्यत्मक = पद्यमय ।

आत्मकथा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आत्म + कथा] अपने ही मुख से कहा हुआ  
या अपना लिखा हुआ जीवनवृत्तान्त । आत्मचरित । आपबीती ।  
उ०—मुनकर क्या तुम भला करोगे ?—मेरी भोली  
आत्मकथा ?—लहर, पृ० ११ ।

आत्मकल्याण—सञ्ज्ञा पुं० [म०] अपना भना । अपनी भलाई ।

आत्मकाम—वि० [म०] [वि० स्त्री० आत्मकामा] १ स्वयं से ही प्रेम  
करनेवाला । गविष्ठ । २. आत्मतत्त्व का प्रेमी [को०] ।

आत्मकृत—वि० [सं०] १ अपना किया हुआ । २ अपने विरुद्ध किया  
हुआ [को०] ।

आत्मक्रीडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आत्मक्रीडा] आत्मतत्त्व के साथ  
क्रीडा [को०] ।

आत्मगत<sup>१</sup>—वि० [म०] १ अंतरात्मा का । आंतरिक । उ०—बढ़  
रहा था तेज तप का हुआ कृणतर गात । खिजी मुख पर  
दीप्ति कोई आत्मगत अज्ञान ।—पार्वती, पृ० १४५ । २ मान-  
सिक [को०] ।

आत्मगत<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाटक के पात्र का अपने ही मन में  
सोचना या विचार करना जिसे श्रोताओं को अवगत कराने के  
लिये जोर जोर से कहना पड़ता है । स्वगत ।

आत्मगति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अपनी गति [को०] ।

आत्मगत्या—क्रि० वि० [सं०] अपनी ही गति से । अपने ही कार्य  
से [को०] ।

आत्मगुप्ता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. केवांच । २ शतावर ।

आत्मगुप्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] किमी जानवर के रहने की छिपी  
जगह । माँद [को०] ।

आत्मगौरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अपनी बड़ाई या प्रतिष्ठा का ध्यान ।  
उ०—सती के पवित्र आत्मगौरव की पुण्ययात्रा गूँज उठी  
भारत के कोने कोने जिस दिन ।—लहर, पृ० ६३ ।

आत्मग्राही—वि० [सं० आत्मग्राहिन्] स्वार्थी । खुशगर्ज [को०] ।

आत्मघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अपने हाथों अपने को मार डालने का  
काम । खुदकुशी । आत्महत्या ।

आत्मघातक<sup>१</sup>—वि० [सं०] अपने हाथों अपने को मार डालनेवाला ।

आत्मघाती—वि० [सं० आत्मघातिन्] [वि० स्त्री० आत्मघातिनी] जो  
अपने हाथों अपने को मार डाले । उ०—आत्मघाती वन  
प्रकृति के रमण में खो शक्ति पारी ।—पार्वती, पृ० २ ।

आत्मघोष<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अपनी भाषा में अपना ही नाम  
पुकारनेवाला—होरा । २ मुर्गा । ३ वह व्यक्ति जो अपनी  
प्रशंसा आप करे [को०] ।

आत्मघोष<sup>२</sup>—वि० अपने मुँह से अपनी बड़ाई करनेवाला ।

आत्मचितन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आत्मचिन्तन] आत्म या आत्मा मन्त्री  
चितन । उ०—हृदय नहीं है परिचित मन से, मन है विमुख  
आत्मचितन से ।—प्रेमाजनि, पृ० ४५ ।

आत्मचतुर्थ<sup>१</sup>—वि० [म०] तीन हिस्सेदारों के अतिरिक्त चौथे भाग या  
हिस्सेवाला । चौथाई का हिस्सेदार [को०] ।

आत्मचरित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अपने जीवन का वृत्त या हाल । उ०—  
पुराने हिंदी साहित्य में यही एक आत्मचरित मिलता है ।—  
इतिहास, पृ० २२२ ।

आत्मज<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] [स्त्री० आत्मजा] १. पुत्र । लड़का । २.  
कामदेव । ३ रक्त । खून ।

आत्मज<sup>२</sup>—वि० [सं०] स्वयं उत्पन्न [को०] ।

आत्मजन्म—सज्ञा पुं० [सं०] पुत्र का जन्म [को०] ।  
 आत्मजन्मा—सज्ञा पुं० [सं०] आत्मजन्मन् दे० 'आत्मज' ।  
 आत्मजय—सज्ञा पुं० [सं०] इन्द्रियनिग्रह करने का कार्य [को०] ।  
 आत्मजा—सज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री । दुहिता [को०] ।  
 आत्मजात—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आत्मज' ।  
 आत्मजिज्ञासा—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० आत्मजिज्ञासु] अपने को जानने की इच्छा ।  
 आत्मजिज्ञासु—वि० [सं०] अपने को जानने की इच्छा रखनेवाला ।  
 आत्मज्योति—सज्ञा स्त्री० [सं०] आत्मा की ज्योति । अतरात्मा का प्रकाश [को०] ।  
 आत्मज्ञ—सज्ञा पुं० [सं०] जो अपने को जान गया हो । जिसे निज स्वरूप का ज्ञान हो ।  
 आत्मज्ञान—सज्ञा पुं० [सं०] निजत्व की जानकारी । जीवत्मा और परमात्मा के विषय में जानकारी । २ ब्रह्म का साक्षात्कार ।  
 आत्मज्ञानी—सज्ञा पुं० [सं०] आत्मज्ञानिन् १ जो आत्मतत्त्व को जान गया हो । आत्मा और परमात्मा के संबन्ध में जानकारी रखनेवाला ।  
 आत्मतत्र<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] आत्मतत्र अपने आधार [को०] ।  
 आत्मतत्र<sup>२</sup>—वि० १ अपने वश या अधिकार में किया हुआ । २. अपने पर अवलंबित । स्वतंत्र [को०] ।  
 आत्मतत्त्व—सज्ञा पुं० [सं०] आत्मा या परमात्मा का तत्त्व [को०] ।  
 आत्मतत्त्वज्ञ—वि० [सं०] आत्मा या परमात्मा के तत्त्व का जानकार [को०] ।  
 आत्मता—सज्ञा स्त्री० [सं०] सार । प्रकृति [को०] ।  
 आत्मतुष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आत्मज्ञान से उत्पन्न सतोप या आनन्द । २ आत्मसतोप ।  
 आत्मतृप्त—सज्ञा पुं० [सं०] स्वयं में सन्तुष्ट [को०] ।  
 आत्मत्याग—सज्ञा पुं० [सं०] १ परोपकार बुद्धि से अपने लाभ की ओर ध्यान न देना । दूसरों के हित के लिये अपना स्वार्थ छोड़ना । २ आत्मघात । खुदकुशी (को०) ।  
 आत्मत्यागी—वि० [सं०] आत्मत्यागिन् १ आत्मघाती । २ अविश्वासी [को०] ।  
 आत्मद्रोही—वि० [सं०] आत्मद्रोहिन् [वि० स्त्री० आत्मद्रोहिणी] अपने को हानि पहुँचानेवाला । अपनी हानि करनेवाला ।  
 आत्मधारणभूमि—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह अधीन राज्य या भूमि जिसका शासनप्रबन्ध वही की सेना और संपत्ति से हो जाय, साम्राज्य को उसके शासन का कोई खर्च न उठाना पड़े (को०) ।  
 आत्मन्—सज्ञा पुं० [सं०] निजत्व । अपनापन । अपना स्वरूप ।  
 विशेष—इसका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों में होता है और यह 'निज' या 'अपना' का अर्थ देता है । जैसे,—आत्मकल्याण । आत्मरक्षा । आत्महत्या । आत्मश्लाघा इत्यादि ।  
 आत्मनिवेदन—सज्ञा पुं० [सं०] १ अपने आपको या अपना सर्वस्व अपने इष्टदेव पर चढ़ा देना । आत्मसमर्पण । २ नवधामति में से अतिम भक्ति ।

आत्मनिवेदनासक्ति—सज्ञा पुं० [सं०] अपने सर्वस्व और शरीर को अपने इष्ट देव को सौंप देने की प्रवृत्ति इच्छा ।  
 आत्मनिष्ठ—वि० [सं०] आत्मज्ञान में रत । ब्रह्मनिष्ठ । मुमुक्षु ।  
 आत्मनिष्ठा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. आत्मज्ञान की रति । २. अपने प्रति निष्ठा । आत्मविश्वास [को०] ।  
 आत्मनीय—सज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र । २. माला । ३. विदूषक ।  
 आत्मनेपद—सज्ञा पुं० [सं०] १. संस्कृत व्याकरण में धातु में लगनेवाले दो प्रकार के प्रत्ययों में से एक । २. वह क्रिया जो आत्मनेपद प्रत्यय लगने से बनी हो ।  
 आत्मप्रशसा—सज्ञा पुं० [सं०] अपने मुँह से अपनी बड़ाई ।  
 आत्मप्रसार—सज्ञा पुं० [सं०] आत्मविस्तार । अपना फैलाव । उ०—मनुष्य उस कोटि की पहुँची हुई सत्ता है जो उस अल्पक्षण में ही आत्मप्रसार को बद्ध रखकर मनुष्य नहीं हो सकती ।—रस०, पृ० १४८ ।  
 आत्मप्रेरणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अपने भीतर से प्राप्त प्रेरणा । आंतरिक प्रेरणा । उ०—आत्मप्रेरणा की पीड़ा से आकुल थे मन्त्र प्राणी ।—पार्वती, पृ० ५६ ।  
 आत्मवोध—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आत्मज्ञान' । उ०—आत्मवोध और जगद्बोध के बीच ज्ञानियों ने गहरी खाई खोदी पर हृदय ने कभी उसकी परवाह की ।—रस०, पृ० ५५ ।  
 आत्मभू<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ अपने शरीर से उत्पन्न । २. आप ही आप उत्पन्न ।  
 आत्मभू<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १. पुत्र । २. कामदेव । ३. ब्रह्मा । ४. विष्णु । ५. शिव ।  
 आत्मभूत—वि० [सं०] आत्ममय । वह जो अपना अंग बन गया हो । अपनाया हुआ ।  
 आत्मयोनि—सज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा । २. विष्णु । ३. महेश । ४. कामदेव ।  
 आत्मरक्षक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मरक्षिका] अपनी रक्षा करनेवाला ।  
 आत्मरक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] अपना बचाव । अपनी हिफाजत ।  
 आत्मरक्षा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आत्मरक्षण' । २. इन्द्रवारुणी वृक्ष [को०] ।  
 आत्मरत<sup>१</sup>—वि० [सं०] आत्मरति १ जिसे आत्मज्ञान हुआ हो । ब्रह्मज्ञानप्राप्त । ब्रह्मज्ञानी । २. स्वयं को प्रेम करनेवाला ।  
 आत्मरत<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] महेंद्रवारुणी । बड़ी इद्रायन ।  
 आत्मरति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. आत्मज्ञान । ब्रह्मज्ञान । २. स्वयं से प्रेम करना ।।  
 आत्मवचक—वि० [सं०] आत्मवचक अपने को आप ठगनेवाला । अपनी हानि स्वयं करनेवाला । अज्ञानी ।  
 आत्मवाद—सज्ञा पुं० [सं०] अहंभाव । उ०—प्रथम हम हम करत पहुँच्यो आत्मवाद कठोर ।—बुद्ध०, पृ० १४५ ।  
 आत्मविक्रय—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आत्मविक्रयी] अपने को आप ही बेच डालना ।  
 विशेष—मनु के अनुसार यह कर्म एक उपपातक है ।

आत्मविक्रयी—वि० [म० आत्मविक्रयिन्] अपने को बेचनेवाला ।  
 आत्मविक्रेता—सज्ञा पुं० [म० आत्मविक्रेतृ] वह दास जो अपने आपको बेचकर दास हुआ हो ।  
 आत्मविचय—सज्ञा पुं० [म०] अपनी तलाशी या नगाओली देना ।  
 आत्मविद्—सज्ञा पुं० [स०] १ बुद्धिमान व्यक्ति । आत्मज्ञानी । २. अपने तथा अपने कुटुंब परिवार को जाननेवाला व्यक्ति ३. शिव का एक नाम (को०) ।  
 आत्मविद्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वह विद्या जिससे आत्मा और परमात्मा का ज्ञान हो । ब्रह्मविद्या । अध्यात्मविद्या । २. मिसमेरिज्म ।  
 आत्मविश्वास—सज्ञा पुं० [म०] अपनी शक्ति पर विश्वास । अपनी योग्यता का मरोमा ।  
 आत्मविस्मृत—वि० [स०] स्वयं को भूला हुआ ।  
 आत्मविस्मृति—सज्ञा स्त्री० [म०] अपने को भूल जाना । अपना ध्यान न रखना । आत्मविस्मरण ।  
 आत्मशल्या—सज्ञा स्त्री० [म०] सतावरी ।  
 आत्मशासन—सज्ञा पुं० [म० आत्म + शासन] दे० 'स्वराज' (क्व०) ।  
 आत्मश्लाघा—सज्ञा पुं० [म०] [वि० आत्मश्लाघी] अपनी तारीफ ।  
 आत्मश्लाघी—वि० [म० आत्मश्लाघिन्] अपनी प्रशंसा करनेवाला ।  
 आत्मसम्भव<sup>१</sup>—वि० [स० आत्मसम्भव] [वि० स्त्री० आत्मसंभाव] अपने शरीर से उत्पन्न ।  
 आत्मसम्भवे<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० पुत्र ।  
 आत्मसमान—सज्ञा पुं० [स० आत्मसम्मान] आत्मगौरव । अपने गौरव का भाव ।  
 आत्मसयम—सज्ञा पुं० [स०] अपने मन को रोकना । इच्छाओं को वश में रखना ।  
 आत्मसवेदन—सज्ञा पुं० [स०] अपनी आत्मा का अनुभव । आत्मबोध ।  
 आत्मसत्कार—सज्ञा पुं० [स०] अपना सुधार ।  
 आत्मसमुद्भव<sup>३</sup>—वि० [स०] [वि० स्त्री० आत्मसमुद्भवा] १ अपने शरीर से उत्पन्न । २ अपने ही आप उत्पन्न ।  
 आत्मसमुद्भव<sup>४</sup>—सज्ञा पुं० १ ब्रह्मा । २ विष्णु । ३ शिव । ४ कामदेव ।  
 आत्मसमुद्भवा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कन्या । २. बुद्धि ।  
 आत्मसाक्षी—सज्ञा पुं० [म० आत्मसाक्षिन्] जीवों का द्रष्टा ।  
 आत्मसिद्ध—वि० [म०] अपने आप होनेवाला । बिना प्रयास ही होनेवाला ।  
 आत्मसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] आत्मभाव की प्राप्ति । मुक्ति । मोक्ष ।  
 आत्महत्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अपने आपको मार डालना । खुदकुशी २ अपने आपको दुख देना ।  
 आत्महन्—वि० [स०] १. जो अपने आप को मार डाले । आत्मघाती । २. जो अपनी मलाई के प्रति उदासीन हो या उसकी उपेक्षा करे (को०) । ३. अविश्वामी (को०) । ४. मंदिर आदि में नोकरी करनेवाला (सेवक या पुजारी) (को०) ।

आत्महिमा—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'आत्महत्वा' ।  
 आत्मा—संज्ञा स्त्री० [स०] [वि० आत्मिक, आत्मीय] १ जीव । २ चित्त । ३ बुद्धि । ४ अहंकार । ५ मन । ६ ब्रह्म ।  
 विशेष—इस शब्द का प्रयोग विशेषकर जीव और ब्रह्म के अर्थ में होता है । इसका योगिक अर्थ 'व्याप्त' है । जीव शरीर के प्रत्येक अंग में व्याप्त है और ब्रह्म सनातन के प्रत्येक अणु और अवकाश में । इसीलिये प्राचीनो ने इसका व्यवहार दोनों के लिये किया है । कही कही 'प्रकृति' को भी आत्मा में इस शब्द से निदिष्ट किया गया है । साधारणतः जीव, ब्रह्म और प्रकृति तीनों के लिये या यों कहिए, अनिर्वचनीय पदार्थों के लिये इस शब्द का प्रयोग हुआ है । इनमें 'जीव' के अर्थ में उसका प्रयोग मुख्य और 'ब्रह्म' और 'प्रकृति' के अर्थों में क्रमशः गौण है । दार्शनिकों के दो भेद हैं—एक आत्मवादी और दूसरे अनात्मवादी । प्रकृति ने पृथक् आत्मा को पदार्थविशेष माननेवाले आत्मवादी कहलाते हैं । आत्मा को प्रकृति-विकार-विशेष माननेवाले अनात्मवादी कहलाते हैं, जिनके मत में प्रकृति के अतिरिक्त आत्मा कुछ है ही नहीं । अनात्मवादी आजकल योरोप में प्रसिद्ध हैं । आत्मा के विषय में इनकी धारणा यह है कि यह प्रकृति के भिन्न भिन्न वैचारिक अणुओं के संयोग से उत्पन्न एक विशेष शक्ति है, जो प्राणियों में गर्भावस्था में उत्पन्न होती है और मरणपर्यंत रहती है । पीछे उन तत्वों के विश्लेषण में, जिनसे यह उत्पन्न हुई थी, नष्ट हो जाती है । बहुत दिन हुए भारतवर्ष में यही बात 'बृहस्पति' नामक विद्वान् ने कही थी जिसके विचार चार्वाक दर्शन के नाम में प्रख्यात हैं और जिसके मत को चार्वाक मत कहते हैं । इनका कथन है कि 'तच्चैतन्य-विशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्' । देह के अतिरिक्त अन्यत्र आत्मा के होने का कोई प्रमाण नहीं है, अतः चैतन्यविशिष्ट देह ही आत्मा है । इस मुख्य मत के पीछे कई भेद हो गए थे और वे क्रमशः शरीर की स्थिति और ज्ञान की प्राप्ति में कारणभूत इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और अहंकार को ही आत्मा मानने लगे । कोई इसे विज्ञान मात्र अर्थात् क्षणिक मानते हैं । वैशेषिक दर्शन में आत्मा को एक द्रव्य माना है और निष्ठा है कि प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मन, गति, इन्द्रिय, अतविकार जैसे—मूत्र, प्यास, ज्वर, पीडादि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न आत्मा के विंग हैं । अर्थात् जहाँ प्राणादि लिंग वा चिह्न देखा पड़े वहाँ आत्मा रहती है । पर न्यायकार गौतम मुनि के मत में 'इच्छा' द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख और ज्ञान ( इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानाद्यात्मनो लिङ्गम् ) ही आत्मा के चिह्न हैं । सांख्यशास्त्र के अनुसार आत्मा एक अकर्ता साक्षीभूत प्रत्यक्ष और प्रकृति ने भिन्न एक अतीन्द्रिय पदार्थ है । योगशास्त्र के अनुसार यह वह अतीन्द्रिय पदार्थ है जिसमें क्लेश, कर्मविपाक और आशय हो । ये दोनों ( सांख्य और योग ) आत्मा के स्वान पर मुख्य शब्द का प्रयोग करते हैं । मीमांसा के अनुसार कर्मों का कर्ता और फलों का भोक्ता एक स्वतन्त्र अतीन्द्रिय पदार्थ है । पर मीमांसकों में प्रभाकर के मत से 'अज्ञान' और कुमारिल भट्ट के मत से 'अज्ञानोपहत चैतन्य' ही आत्मा है । वेदांत के मत से निश्च,

शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव ब्रह्म का अश्विषेय प्रात्मा है। बुद्धदेव के मत से एक अनिवर्चनीय पदार्थ, जिसकी आदि और अंत अवस्था का ज्ञान नहीं है, आत्मा है। उत्तरीय बौद्धों के मत से यह एक शून्य पदार्थ है। जैनियों के मत से कर्मों का कर्ता फलो का भोक्ता और अपने कर्म से मोक्ष और वधन को प्राप्त होनेवाला एक अरूपी पदार्थ है।

मृहा०—आत्मा ठंडी होना=(१) तृप्ति होना। तृप्ति होना। सतोप होना। प्रसन्नता होना। जैसे,—उसको भी दंड मिले तब हमारी आत्मा ठंडी हो। (२) पेट भरना। भूख मिटना। जैसे,—बावा कुछ खाने को मिले तो आत्मा ठंडी हो। आत्मा ममोसना=(१) भूख सहना। भूख दवाना। जैसे,—इतने दिनों तक आत्मा ममोसकर रहो। (२) किसी प्रबल इच्छा को दवाना। किसी आवेग को भीतर ही भीतर सहना। ७ देह। शरीर। ८ सूर्य। ९ अग्नि। १० वायु। ११ स्वभाव। धर्म। १२ पुत्र [को०]।

आत्माधीन<sup>१</sup>—वि० [सं०] अपने वश में।

आत्माधीन<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ पुत्र। २ विदूषक। ३ साला (को०)।

आत्मानन्द—सज्ञा पु० [सं० आत्मानन्द] आत्मा का ज्ञान। आत्मा में लीन होने का सुख।

आत्मानुभव—सज्ञा पु० [सं०] १ अपना अनुभव या तजुर्वा। स्वानुभूति। २ आत्मा की अनुभूति।

आत्मानुरूप—सज्ञा पु० [मं०] जो जाति, वृत्ति और गुण आदि में अपने समान हो। स्वानुरूप।

आत्माभिमान—सज्ञा पु० [सं०] अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा का खयाल। मान अपमान का ध्यान। स्वाभिमान।

आत्माभिमानी—सज्ञा पु० [सं० आत्माभिमानिन्] जिसे अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा का बड़ा खयाल हो। जिसे मान अपमान का ध्यान हो। स्वाभिमानी।

आत्मामिप सधि—सज्ञा स्त्री [सं० आत्मामिपसन्धि] कामदक्षीय नीति के अनुसार वह सधि जो स्वयं सेना के साथ शत्रु के पास जाकर की जाय।

आत्माराम—सज्ञा पु० [सं०] १ आत्मज्ञान से तृप्त योगी। २ जीवा ३ ब्रह्म। ४ तोता। सुगा।

आत्मावलंबी—सज्ञा पु० [सं० आत्मावलम्बिन्] जो सब काम अपने बल पर करे। जो किसी कार्य के लिये दूसरे की सहायता का भरोसा न रखे। स्वावलंबी।

आत्मिक—वि० [मं०] [वि० स्त्री० आत्मिका] १ आत्मासंबंधी। २ अपना। ३ मानसिक।

आत्मीकृत—वि० [मं०] अपनाया हुआ। स्वीकृत।

आत्मीय<sup>१</sup>—वि० [मं०] [वि० स्त्री० आत्मीया] निज का। अपना। स्वकीय।

आत्मीय<sup>२</sup>—सज्ञा पु० [सं०] स्वजन। अपना संबंधी। रिश्तेदार। इष्टमित्र। निकट का व्यक्ति।

आत्मीयता—सज्ञा स्त्री [मं०] अपनायत। स्नेह-संबंध। मैत्री।

आत्मोत्सर्ग—सज्ञा पु० [मं०] परोपकार के लिये अपने को दुःख या विपत्ति में डालना। दूसरे की भलाई के लिये अपने हितार्थ का ध्यान छोड़ना। स्वार्थत्याग।

आत्मोद्धार—सज्ञा पु० [सं०] अपनी आत्मा को ससार के दुःख से छुड़ाना या ब्रह्म में मिलाना। मोक्ष।

आत्मोद्भव—सज्ञा पु० [सं०] १ पुत्र। २ कामदेव। ३ दुःख। पीडा [को०]।

आत्मोद्भवा—सज्ञा स्त्री [सं०] १ कन्या। २ बुद्धि। ३ माणपर्णी [को०]।

आत्मोन्नति—सज्ञा पु० [सं०] १ आत्मा की उन्नति। २ अपनी तरक्की। स्वविकास।

आत्मोपजीवी—सज्ञा पु० [सं० आत्मोपजीविन्] १ अपने श्रम से जीविकोपार्जन करनेवाला। २ रोजही या दैनिक मजदूरी पर काम करनेवाला श्रमिक। ३ अभिनेता [को०]।

आत्मोपम—सज्ञा पु० [सं०] पुत्र [को०]।

आत्यंतिक—वि० [सं० आत्यन्तिक] [वि० स्त्री० आत्यन्तिकी] १ जो बहुतायत से हो। २ जिसका ओर छोर न हो।

यो०—आत्यंतिकदुःखनिवृत्ति=मोक्ष। आत्यंतिकप्रलय=पूर्ण प्रलय।

आत्ययिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्ययिकी] १. विनाशक। २ दुर्भाग्यपूर्ण। ३. आवश्यक। ४. देर किया हुआ। विलंबित [को०]।

आत्रेय<sup>१</sup>—वि० [सं० अत्रि] १. अत्रि के गोत्रवाला।

आत्रेय<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ अत्रि के पुत्र—दत्त, दुर्वासा, चद्रमा। २ आत्रेयी नदी के तट का प्रदेश जो दीनाजपुर जिले के अंतर्गत है। ३. शिव की एक उपाधि [को०]।

आत्रेयी—सज्ञा स्त्री [सं०] १ उपनिषद् काल की एक विदुषी तपस्विनी जो वेदांत में बड़ी निष्णात थी। २ पश्चिमोत्तराल की एक नदी का नाम। तिस्ता। ३ रजस्वला स्त्री। ४ अत्रि गोत्र की स्त्री।

आथ<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [सं० अथ] धन। पूँजी। उ०—आथ तेरे अभिलाप डम, इण भुजन् आवत।—बाँकीदास ग्र०, भा० ३ पृ० ६।

आथना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [सं० अस्त=होना, सं० अस्ति, प्रा० अस्थि] होना। उ०—(क) कविरा पढ़ना दूर कर, आथि पड़ा ससार। पीर न उपज जोव की, बयो पार्व करतार।—कवीर (शब्द०)। (ख) काया माया संग न आथी। जेहि जिउ सौपा सोई साथी।—जायसी ग्र०, पृ० ६०।

आथना<sup>२</sup>—क्रि० अ० [सं० अस्त, प्रा० अस्थि] अस्त होना। डूबना। समाप्त होना।

आथर्वण—सज्ञा पु० [सं०] १ अथर्ववेद का जाननेवाला ब्राह्मण। २. अथर्ववेदविहित कर्म। ३ अथर्व ऋषि का पुत्र। ४ अथर्व गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति।

आथी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री [सं० स्यात्, हि० याती अथवा सं० आयकी=आयक स्थिति प्रा० \*अस्थिई, \*आथइ] पूँजी। धन। उ०—साथी आथि निजाथि जो सकै साथ निरवाहि।—जायसी (शब्द०)।

आथी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री [सं० अर्थ] अर्थसंपन्नता। अमीरी। खुशहाली।

आदश—सज्ञा पु० [सं०] १ दाँत से काटना। २ दाँत काटने से बना हुआ घाव। ३ दाँत [को०]।

आदत्त—सज्ञा स्त्री [अ०] १ स्वभाव। प्रकृति। २ अभ्यास। टेव। वान। उ०—तू भी मजबूर है जाती नहीं आदत्त तेरी।—कवित्त कौ०, भा० ४, पृ० ५४५।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—लगना।—लगाना।



आदम—सज्ञा पुं० [अ० आदम, तुल० स० आदिम] १ इवरानी और अरबी लेखकों के अनुसार मनुष्यों का आदि प्रजापति । उ०—आदम आदि सुद्धि नहीं पावा । मामा होवा कहते आवा ।—कवीर (शब्द०) । २. आदम की सतान । मनुष्य । जैसे,—चलते चलते वह एक ऐसे जगल में पहुँचा जहाँ न कोई आदम था न आदमजाद ।

यौ०—आदमकद । आदमखोर । आदमचश्म । आदमजाद ।

आदमकद—वि० [अ० आदम + कद] आदमी के कद के बराबर । उ०—कमरे में बड़े बड़े आदमकद आइने रखे जाते हैं ।—गवर्न, पृ० १०६ ।

आदमखोर—वि० [अ० आदम + फा० खोर] आदमी को खानेवाला । मानवभक्षी (शब्द०) ।

आदमचश्म—सज्ञा पुं० [अ० आदम + फा० चश्म = चक्षु] वह घोड़ा जिसकी आँख की स्याही मनुष्य की आँख की स्याही के समान हो । ऐसा घोड़ा बड़ा नटखट होता है ।

आदमजाद—सज्ञा पुं० [अ० आदम + फा० जाद = पैदा] १. आदम की सतान । २. मनु की सतान । मनुष्य ।

आदमियत—सज्ञा पुं० [अ०] १. मनुष्यत्व । इमानियत । २. सम्मति । फ़ि० प्र०—पकड़ना ।—सीखना ।

आदमी—सज्ञा पुं० [अ०] आदम की सतान । मनुष्य । मानव जाति । मुहा०—आदमी बनना = सम्मति मीखना । अच्छा व्यवहार सीखना । शिष्टता मीखना । आदमी बनाना = शिष्ट और सम्मति करना ।

२. नौकर । सेवक । जैसे,—जरा अपने आदमी से मेरी यह चिट्ठी डाकवाने भिजवा दो ।

आदमीयत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १. मनुष्यत्व । इमानियत । उ०—गर फरिश्तावश हम्रा कोई तो क्या । आदमीयत चाहिए इसान में ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५५१ । २. सम्मति ।

आदर—सज्ञा पुं० [मं०] [वि० आदरणीय आदृत, आदर्य] समान । सत्कार । प्रतिष्ठा । इज्जत । कदर । जैसे,—(क) वे बड़े आदर के साथ हमें अपने घर ले गए । (ख) तुलसीदास के रामचरितमानस का समाज में बड़ा आदर है ।

आदरणीय—वि० [सं०] आदरयोग्य । आदर करने के लायक । समाननीय ।

आदरना<sup>①</sup>—फ़ि० सं० [सं० आदर से नाम०] आदर करना । मानना । उ०—जो प्रवच बुझ नहीं आदरही । सो श्रम वादि वाल कवि करही ।—मानस, १११४ ।

आदरभाव—सज्ञा पुं० [सं० आदर + भा] सत्कार । समान । कदर । प्रतिष्ठा । जैसे,—जहाँ अपना आदर भाव नहीं, वहाँ क्यों जाये ? उ०—ऊँची, चली विदुर के जइयै । दुरजोधन के कौन काज जहँ आदर भाव न पड़्यै ।—सूर०, १।२३६ ।

आदरस<sup>②</sup>—सज्ञा पुं० [सं० आदर्श] दे० 'आदर्श' । उ०—दरसो सारसरम भरे दृग आदरस मोगाय ।—स० सप्तक, पृ० २५८ ।

यौ०—आदरसमंदिर = शीशमहल । उ०—आछे अवलोकि रही आदरस मंदिर में इदीवर मुदर गुविंद को मुखारविंद ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०१ ।

आदर्य—वि० [सं०] आदर के योग्य । आदरणीय ।

आदर्श—सज्ञा पुं० [सं०] १. दर्पण । शीशा । आईना । २. वह जिससे श्रेय का अभिप्राय भूलक जाय । टीका । व्याख्या । ३. वह जिसके रूप और गुण आदि का अनुकरण किया जाय । नमूना । जैसे,—उसका चरित्र हम लोगों के लिये आदर्श है ।

यौ०—आदर्शमंडल । आदर्शमंदिर । आदर्शरूप ।

आदर्शक—सज्ञा पुं० [सं०] दर्पण । शीशा । कौ० ।

आदर्शन—सज्ञा पुं० [मं०] १. प्रदर्शित करना । दिखलाना । २. शीशा । दर्पण । कौ० ।

आदर्शविव—सज्ञा पुं० [सं० आदर्श विम्व] गोला शीशा । कौ० ।

आदर्शमंडल—सज्ञा पुं० [सं० आदर्श मंडल] १. एक तरह का साँप । २. गोल आईना । ३. दर्पण का तल । कौ० ।

आदर्शमंदिर—सज्ञा पुं० [सं० आदर्श मंदिर] शीशमहल ।

आदर्शवाद—सज्ञा पुं० [सं० आदर्श + वाद] [अ० आइडियलिज्म] वस्तुओं के ज्यों के त्यों वर्णन को प्रमुखता या महत्त्व न देकर न करके उनके आदर्शरूप का वर्णन करना । पश्चिम के दर्शन, शिक्षा दर्शन और साहित्यिक वादों आदि में प्रचलित विशेष विचारधारा ।

आदर्शवादी—वि० [सं० आदर्शवादिन्] [अ० आइडियलिस्ट] आदर्शवाद को माननेवाला या उसके अनुसार रचना करनेवाला ।

आदर्शत्मिक—वि० [सं०] काल्पनिक आदर्श के रू में विषयों के चित्रण या निरूपण से युक्त । आदर्शवाद से संबध रखनेवाला । आदर्शपरक ।

आदहन—सज्ञा पुं० [सं०] १. ईर्ष्या । जलन । २. शमशान । चिताभूमि ।

आदा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० आद्रक] अदरक ।

आदान—सज्ञा पुं० [सं०] १. लेना । ग्रहण करना । २. अर्जन । ३. रोग का लक्षण । ४. बाधना । सुनियोजित करना । ५. बोझ को फँसाना या बधनग्रस्त करना । जकड़वदी । ६. क्रिया या कार्य । ७. पराभूत करना । कौ० ।

आदानप्रदान—सज्ञा पुं० [सं०] लेना देना ।

आदानसमिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार आचारनियंत्रण के लिये स्थापित पंचसमिति में से एक जिससे यह ध्यान रहता है कि किसी जीव को कष्ट न हो । कौ० ।

आदापन—सज्ञा पुं० [सं०] कोई वस्तु ग्रहण करने के लिये किसी को बुलाना या अभिप्रेरित करना । कौ० ।

आदाव—सज्ञा पुं० [अ०] १. नियम । कायदा । २. लिहाज । आन । ३. नमस्कार । प्रणाम । सलाम । जोहार ।

मुहा०—आदाव अर्ज करना = प्रणाम करना । आदाव बर्ना लेना = नियमानुसार प्रणाम करना ।

आदि<sup>१</sup>—वि० [सं०] प्रथम । पहला । शुरु का । आरंभ का । जैसे—वाल्मीकि आदिकवि माने जाते हैं । उ०—गाइ गाउँ के बत्सला मेरे आदि सहाई ।—सूर०, १।२३८ ।

आदि<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १. आरंभ । वुनियाद । मूल कारण । जैसे,—(क) इस झगड़े का आदि यही है । (ख) हमने इस पुस्तक को आदि से अंत तक पढ़ डाला । २. परमात्मा । परमेश्वर । उ०—आदि किएउ आदेश सुनहि ते अस्थूल भए ।—जायसी ग्र०, पृ० ३०८ ।



मुहा०—आदि से अंत तक = आद्योपात । शुरु से आखीर तक ।  
 सपूर्ण । समग्र । सब ।  
 आदि३—अव्य० वगैरह । आदिक । उ०—सिंहसावक ज्यो तजै गृह,  
 इद्र आदि डरात । सुर०, ११०६ ।  
 आदिक—अव्य० [स०] आदि । वगैरह । उ०—कौसल्या आदिक  
 महतारी, आरति करहि बनाइ ।—सुर० ६।२६ ।  
 आदिकर—वि० [स०] आदि करनेवाला । स्रष्टा [को०] ।  
 आदिकरणी—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पौधा [को०] ।  
 आदिकर्ता—वि० [स०] आदिकर । स्रष्टा [को०] ।  
 आदिकर्म—सज्ञा पुं० [स०] कर्म का आदि या आरम्भ [को०] ।  
 आदिकवि—सज्ञा पुं० [स०] वाल्मीकि ऋषि । उ०—जान आदि-  
 कवि नाम प्रभाऊ । भएउ सुद्ध कहि उलटा नाऊ ।—  
 मानस, ११९६ । २ शुक्राचार्य ।  
 आदिकांड—सज्ञा पुं० [स० आदिकाण्ड] वाल्मीकि रामायण का पहला  
 कांड [को०] ।  
 आदिकारण—सज्ञा पुं० [स०] पहला कारण जिससे सृष्टि के सब  
 व्यापार उत्पन्न हुए । मूलकारण ।  
 विशेष—साध्यवाले प्रकृति को आदिकारण मानते हैं । नैयायिक  
 पुरुष या ईश्वर को आदि कारण कहते हैं ।  
 आदिकाल—सज्ञा पुं० [स०] प्रारम्भिक काल या समय [को०] ।  
 आदिकालीन—वि० [म०] प्रारम्भिक या आदिकाल से संबध  
 रखनेवाला [को०] ।  
 आदिकाव्य—सज्ञा पुं० [स०] वाल्मीकि रामायण ।  
 विशेष—यह महाकाव्य सबसे पुराना या पहला माना जाता है ।  
 आदिकृत्—वि० [म०] स्रष्टा [को०] ।  
 आदिकेशवे—सज्ञा पुं० [म०] १ काशी स्थित एक देवविग्रह । २.  
 विष्णु [को०] ।  
 आदिगदाधर—सज्ञा पुं० [स०] विष्णु [को०] ।  
 आदिजिन—सज्ञा पुं० [स०] ऋषमदेव (जैन) [को०] ।  
 आदित—क्रि० वि० [म०] प्रारम्भ से । आदि से [को०] ।  
 आदित०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आदित्य' । उ०—हरि दरमन  
 सत्राजित आयौ । लोगनि जान्यो आदित आवत हरि सौ जाइ  
 सुनायो ।—सुर०, १०।४८०८ ।  
 आदिताल—सज्ञा पुं० [म०] संगीत में ताल का प्रकारविशेष [को०] ।  
 आदितेय—सज्ञा पुं० [स०] १ अदिति का पुत्र । २. देव । ३.  
 सूर्य [को०] ।  
 आदित्य—सज्ञा पुं० [म०] १ अदिति के पुत्र । २ देवता । ३ सूर्य ।  
 ४ इद्र । ५ वामन । ६ वसु । ७ विश्वदेव । ८ वारह  
 माशाग्रो के छंदो की सज्ञा, जैसे—तोमर लीला । ९ मदार  
 मदार का पौधा ।  
 यो०—आदित्यपुराण = एक उपपुराण । आदित्यपर्णिका,  
 आदित्यपर्णानी, आदित्यपर्णी, आदित्यवल्लभा = एक जलीय  
 लता । आदित्यसूक्त, आदित्यस्तोत्र, आदित्यहृदय = सूर्य सबधी  
 सूक्त या स्तोत्र ।

आदित्यकेतु—सज्ञा पुं० [स० आदित्य + केतु] १ एक राजा जिसके  
 वंशजों ने नौ पीढ़ी तक ३७५ वर्ष दिल्ली में राज्य किया था ।  
 २ धृतराष्ट्र का एक पुत्र [को०] । ३ सूर्य का सारथि [को०] ।  
 आदित्यगति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सूर्य का मार्ग [को०] ।  
 आदित्यगर्भ—सज्ञा पुं० [स०] एक बोधिसत्व [को०] ।  
 आदित्यज्योति—वि० [स०] जिसमें सूर्य जैसा तेज या ज्योति हो [को०] ।  
 आदित्यदर्शन—सज्ञा पुं० [स०] चार मास के बालक को सूर्यदर्शन  
 कराने का एक संस्कार [को०] ।  
 आदित्यपत्र—सज्ञा पुं० [प०] १ एक पौधा । २ आक का पत्र या  
 पत्ता [को०] ।  
 आदित्यपाक—वि० [स०] सूर्यताप में पकाया हुआ [को०] ।  
 आदित्यपुष्पिका—सज्ञा स्त्री० [स०] लाल फूल का मदार ।  
 आदित्यभक्ता—सज्ञा स्त्री० [स०] दुरदुर ।  
 आदित्यमंडल—सज्ञा पुं० [स० आदित्यमण्डल] सूर्य के चतुर्दिक्  
 पड़नेवाला वलय या घेरा [को०] ।  
 आदित्यलोक—सज्ञा पुं० [स०] सूर्यलोक [को०] ।  
 आदित्यवार—सज्ञा पुं० [म०] एतवार । रविवार ।  
 आदित्यव्रत—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आदित्यव्रतिक] सूर्य का व्रत [को०]  
 आदित्यशयन—सज्ञा पुं० [म०] सूर्य की निद्रा या शयन [को०] ।  
 आदित्यसंवत्सर—सज्ञा पुं० [स०] सौर वर्ष [को०] ।  
 आदित्यसूनु—सज्ञा पुं० [स०] सूर्य का पुत्र—१. शनैश्चर । २ यम ।  
 ३ कर्ण । ४ सुयोव । ५ मनु [को०] ।  
 आदित्यानुवर्ती—वि० [स० आदित्यानुवर्तिन्] सूर्य का अनुवर्तन या  
 अनुगमन करनेवाला [को०] ।  
 आदित्व—सज्ञा पुं० [स०] पूर्वता । प्राथमिकता [को०] ।  
 आदित्सा—सज्ञा स्त्री० [स०] लेने की इच्छा [को०] ।  
 आदित्सु—वि० [स०] ग्रहण करने या लेने का इच्छु [को०] ।  
 आदिदीपक—सज्ञा स्त्री० [म०] छंद की विशेष व्यवस्था ( जिसमें  
 क्रियापद वाक्य के आदि में आता है ) [को०] ।  
 आदिदेव—सज्ञा पुं० [स०] १ ब्रह्मा । २ विष्णु । ३ शिव । ४  
 गणेश । ५ सूर्य [को०] ।  
 आदिदैत्य—सज्ञा पुं० [स०] हिरण्यकशिपु [को०] ।  
 आदिनव—सज्ञा पुं० [स०] १. अभाग्य । २ जूए की हार [को०] ।  
 आदिनाथ—सज्ञा पुं० [स०] १ आदिबुद्ध । २ एक जैन तीर्थंकर  
 [को०] ।  
 आदिपर्व—सज्ञा पुं० [स० आदिपर्वन्] महाभारत के पहले पर्व का  
 नाम [को०] ।  
 आदिपर्वत—सज्ञा पुं० [स०] मुख्य पर्वत [को०] ।  
 आदिपुराण—सज्ञा पुं० [स०] १. ब्रह्मपुराण । २ एक जैन धर्मग्रंथ  
 [को०] ।  
 आदिपुरुष, आदिपुरुष—सज्ञा पुं० [स०] १ परमेश्वर । विष्णु । २  
 हिरण्यकशिपु [को०] ।  
 आदिप्लुत—वि० [स०] (शब्द०) जिसका आदिस्वर प्लुत हो  
 (व्या०) [को०] ।

आदिवल—सञ्ज्ञा पुं० [म०] उत्पन्न या जनन शक्ति (सुश्रुत) [को०] ।

आदिभूत<sup>१</sup>—वि० [सं०] आदि मे उत्पन्न [को०] ।

आदिभूत<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा । २ विष्णु [को०] ।

आदिम—वि० [सं०] पहले का । पहला । प्रथम । उ०—आखेट के लिये उक्त आदिम नरो का भुडवीचवीच मे मिलता ।—इद्र०, पृ० ८८ ।

आदिमत—वि० [म०] जिसका आरम्भ आदि हो [को०] ।

आदिमूल—सञ्ज्ञा पुं० [म०] मूल कारण [को०] ।

आदियोगाचार्य—सञ्ज्ञा पुं० [म०] शिव [को०] ।

आदिरस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शृ गाररस ( माहित्य शा० ) ।

आदिराज—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ मनु । २ पृथु [को०] ।

आदिरूप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रथम रूप या लक्षण ( रोग का ) [को०] ।

आदिल—वि० [अ०] न्यायी । न्यायवान् । उ०—नोसरवाँ जो आदिल कहा । साहि अदल-मरि गोउ न अहा ।—जायसी ग्र०, पृ० ६ ।

आदिनुप्त—वि० [म०] (शब्द) जिसका प्रथम अक्षर लुप्त हो [को०] ।

आदिवराह—सञ्ज्ञा पुं० [म०] वराहरूप विष्णु । विष्णु [को०] ।

आदिवाराह—वि० [म०] आदि वराह मवधी [को०] ।

आदिविपुला—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छंदविशेष । वह आर्या जिसके प्रथम दल के प्रथम तीन गणों मे पाद अपूर्ण हो ।

आदिविपुलाजघनचपला—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छंदविशेष । वह आर्या जिसके प्रथम पाद के गणत्रय मे पाद अपूर्ण हो, दूसरे दल मे दूसरा और चौथा गण जगण हो ।

आदिशक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ मूल या आदि स्थानीय शक्ति । महामाया । २ दुर्गा [को०] ।

आदिशरीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मूल शरीर । २ सूक्ष्म शरीर [को०] ।  
आदिश्यमान—वि० [म०] आदेश पाया हुआ । जिसको आज्ञा दी गई हो ।

आदिष्ट—वि० [म०] आदेश पाया हुआ । जिसको आज्ञा दी गई हो । आज्ञा । आदेशप्राप्त ।

आदिष्टसधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० आदिष्टसन्धि] वह सधि जो प्रवल शत्रु को कोई भूमिखंड देने की प्रतिज्ञा करके की जाय । ( काम० द० ) ।

आदिसर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [म०] मूल या आदि की सृष्टि [को०] ।

आदी<sup>१</sup>—वि० [अ०] अग्र्यस्त । उ०—अब उतर आए हैं वो तारीफ पर । हम जो आदी हो गए दुश्नाम के ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ५५३ ।

आदी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० आर्द्रक] अदरक ।

आदी<sup>३</sup>—क्रि० वि० [म० आदि] विलकुल । नितात । जरा भी । उ०—(क) मातु न जानमि बालक आदी । हों बादला सिध रनवादी । जायसी ग्र०, पृ० २८२ ।

आदीचक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आर्द्रक + चक्र] एक प्रकार की अदरक जिमकी भाजी बनती है । अदरक की एक प्रकार की खट्टी चटनी ।

आदीनव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दोष । २ क्लेश । विपत्ति । ३. दुःख । वैचैनी (को०) ।

आदीपक—वि० [सं०] १ आग लगानेवाला । २. दाहक । ३ उत्तेजक [को०] ।

आदीपन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदीपित, आदीप्त, आदीप्य] १. उत्तेजित करना । २. आग लगाना । ३ उत्सव आदि के अवसर पर दीवार, फर्श आदि की सफाई या पुताई करना [को०] ।

आदीपित—वि० [सं०] प्रज्वलित । जलता हुआ [को०] ।

आदीप्य—वि० [सं०] जलने योग्य [को०] ।

आदीर्घ—वि० [सं०] कुछ लंबाई युक्त अडाकार [को०] ।

आदीर्य—वि० [सं०] फटा हुआ । दरका हुआ [को०] ।

आदृत—वि० [म०] आदर किया हुआ । समानित ।

आदृत्य—वि० [सं०] आदरणीय [को०] ।

आदृष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दृष्टि । नजर [को०] ।

यौ०—आदृष्टिगोचर, आदृष्टिप्रसार = दृष्टि की सीमा के भीतर ।

आदेय<sup>१</sup>—वि० [म०] लेने योग्य ।

यौ०—उपादेय । अनादेय ।

आदेय<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह लाभ जो सुगमता से प्राप्त हो, सुरक्षित रखा जा सके तथा शत्रु द्वारा न लिया जा सके (को०) ।

आदेयकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वह कर्म जिससे जीव को वाक्सिद्धि होती है, अर्थात् वह जो कहे वही होता है ।

आदेव<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देव सहित पूरी सृष्टि [को०] ।

आदेव<sup>२</sup>—वि० [सं०] देवभक्त । देवपूजक [को०] ।

आदेवक—वि० [सं०] १ खेल या क्रीडा करनेवाला । २. जुआ खेलने-वाला [को०] ।

आदेवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ खेल का स्थान । २ खेल का साधन या सामग्री । ३ खेल (जूए) मे होनेवाला लाभ [को०] ।

आदेश—सञ्ज्ञा पुं० [म०] [वि० आदिष्ट, आदिश्यमान, आदेशक] १.

आज्ञा । २ उपदेश । ३ विवरण (को०) । ४. प्रणाम । नमस्कार । उ०—शेख बडो बढ सिद्धि बखाना । किय आदेश सिद्धि बढ माना ।—जायसी (शब्द०) । ५ ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों का फल । ६ भविष्यकथन (को०) । ७ व्याकरण मे एक अक्षर के स्थान पर दूसरे अक्षर का आना । अक्षरपरिवर्तन ।

आदेशक—वि० [सं०] १ आज्ञा देनेवाला । २ उपदेश देनेवाला ।

आदेशकारी—वि० [सं० आदेशकारिन्] आज्ञा पालन करनेवाला [को०] ।

आदेशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा देना । निर्देशन [को०] ।

आदेशी—वि० [सं० आदेशिन] १ आदेश देनेवाला । २ भविष्यकथन करनेवाला । ३ (वह वर्ण या अक्षर) जिसके लिये कोई अन्य वर्ण या अक्षर रखा गया हो [को०] ।

आदेश्य—वि० [सं०] आदेश के योग्य [को०] ।

आदेष्टा—वि० [सं० आदेष्टु] आदेश देनेवाला [को०] ।

प्रादेश(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्रादेश] दे० 'प्रादेश' ।  
 प्राद्यत—किं वि० [सं० प्राद्यन्त] आदि से अत तक । आद्योपात ।  
 शुरु से आखीर तक ।  
 प्राद्य'—वि० [सं०] १ पहला । आरम्भ का । २ प्रधान । प्रथम ।  
 अद्वितीय (को०) ।  
 प्राद्य'—वि० [सं०/अद्= (खाना) > प्राद्य] खाने योग्य । जिसके  
 खाने से शारीरिक या आत्मिक बल बढे ।  
 प्राद्यकवि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा । २ वाल्मीकि (को०) ।  
 प्राद्यबीज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जगत् या सृष्टि का मूल कारण । साध्य के  
 अनुसार प्रधान या प्रकृति (को०) ।  
 प्राद्यमापक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक तोल जो पाँच गुजा या रत्ती के  
 बराबर होता था (को०) ।  
 प्राद्यश्राद्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मृतक के लिये ग्यारहवें दिन जो सोनह  
 श्राद्ध किए जाते हैं उनमे से पहला ।  
 प्राद्या—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्गा । प्रधान शक्ति । २ दश महाविद्याओं  
 मे से प्रथम देवी ।  
 प्राद्युदात्त—वि० [सं०] [सञ्ज्ञा प्राद्युदात्तत्वं] जिसका पहला वर्ण उदात्त  
 हो (को०) ।  
 प्राद्यून—वि० [सं०] १ अध्ययन करनेवाला । पेटू । २ बुद्धित ।  
 भूखा । ३ लोभी । लालची । ४ आदि रहित (को०) ।  
 प्राद्योत - सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रकाश । ज्योति । चमक (को०) ।  
 प्राद्योपात—किं वि० [सं० प्राद्योपान्त] शुरु से आखीर तक (को०) ।  
 प्राद्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० प्राद्रा] १ एक नक्षत्र । २. जब सूर्य इस  
 नक्षत्र का हो । इस नक्षत्र मे लोग धान बोना अच्छा मानते हैं ।  
 उ०—(क) चित्रा गेहूँ प्राद्रा धान । न उनके गेरुषी न उनके  
 घाम । (ख) प्राद्रा घाम पुनर्वसु पड़्या । गा किसान जब बोवा  
 चिरइया । (शब्द०) ।  
 प्राद्रिसार—वि० [सं०] लोहनिर्मित । लोहे से बना हुआ (को०) ।  
 प्राघ—वि० [सं० अर्द्ध प्रा० अर्द्ध हि० प्राघा] किसी वस्तु के दो  
 बराबर भागो मे से एक । प्राघा । निष्फ । उ०—जै जै कार  
 भयो भुव मापत नीनि पेंड भइ सारी । प्राघा पेंड वसुधा दै  
 राजा नातरु चलि सत हारी ।—सूर०, ८।१४ ।  
 विशेष—यह वास्तव मे प्राघा का अल्पार्थक रूप है और योगिक  
 शब्दो एव प्राय तोल और नाप के सूचक शब्दो के साथ  
 व्यवहृत होता है । जैसे,—प्राघ सेर प्राघ पाव, प्राघ छटाँक,  
 प्राघ गज ।  
 यो०—एक प्राघ=कुछ थोडे से । चद । जैसे,—एक प्राघ  
 आदमियो के विरोध करने से क्या होता है । (शब्द)  
 अधमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा (को०) ।  
 अधमराय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ऋणग्रस्त होना (को०) ।  
 अधर्मिक—वि० [सं०] धर्महीन । अधर्मी (को०) ।  
 अधवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कंठित करना । हिलाना डलाना (को०) ।  
 आघा—वि० [सं० अर्द्ध, वा अर्द्धो, प्रा० अर्द्ध] [स्त्री प्राघी]  
 किसी वस्तु के दो बराबर हिस्सो में से एक ।

यो०—प्राघा साक्षा । प्राघा सीसी ।  
 मुहा०—प्राघो प्राघ=दो बराबर भागो मे । जैसे—उन केनां  
 को प्राघो प्राघ बाँट लो । [यह किं वि० की तरह आता है,  
 जैसे, बीचो बीच] प्राघा तीतर प्राघा बटेर=कुछ एक तरह  
 का और कुछ दूसरी तरह का । बेजोड । बेमेल । अउबट ।  
 क्रमविहीन । प्राघा होन(=दुबला होना) । जैसे,—वह मोच  
 के मारे प्राघा हो गया । प्राघे प्राघ=दो बराबर हिस्सो  
 मे बाँटा हुआ । उ०—लागे जव मग गुग मेर भोग धरयो  
 रग प्राघे प्राघ पाव नले नगुर बजाइ के ।—प्रिया० (शब्द०) ।  
 प्राघे फान सुनना=यो ही या ऊपर मे गुन लेना । उ०—  
 फँले बरसाने मे न रावरी कहानी यह बानी कहूँ राघे प्राघे  
 फान सुनि पावे ना ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १४७ ।  
 प्राघी बात=जरा गी भी अपमानमूलक बात । जैसे,—  
 हमने किसी की प्राघी बात भी नहीं मुनी । प्राघे पेट  
 खाना=गरपेट न पाना । पूरा भोजन न करना । प्राघे पेट  
 रहना=तृप्त होकर न पाना । प्राघी बात कहना या मुँह से  
 निकालना=जरा गी अपमानमूलक बात कहना ।  
 जैसे,—मेरे रहते तुम्हें कोई प्राघी बात नहीं रह सकता ।  
 प्राघी बात न पूछना=कुछ ध्यान न देना । कदर न करना ।  
 जैसे,—अब ये जहाँ जाते हैं, कोई प्राघी बात भी नहीं पूछना ।  
 प्राधाझारा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्राधाट] अपमान । शोभा । निवन्दा ।  
 विचंडी ।  
 प्राधाता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्राधातृ] गिरवी रखनेवाला । बधक  
 रखनेवाला ।  
 प्राधान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. स्थापन । रचना ।  
 यो०—अन्याधान । गर्भधान ।  
 २ गर्भ । ३ गिरवी या बधक रचना । (को०) ४ अन्याधान  
 (को०) । ५ प्रयत्न । चेष्टा (को०) । ६ वह स्थान जहाँ कोई  
 वस्तु रखी जाय (को०) । ७ निश्चयात्मकता । ८ द्रवित करना  
 (को०) । ९ सामीप्य । सनिधि (को०) । १० मनुन (को०) ।  
 प्राधानवती—वि० स्त्री [सं०] गर्भवती ।  
 आधार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आश्रय । महारा । अवलंब । जैसे,—  
 (क) यह छत चार खम्भो के आधार पर है । (ख) वह चार  
 दिन फलो के ही आधार पर रह गया । २ व्याकरण मे  
 अधिकरण कारक । ३ थाला । आलवान । ४ पात्र  
 (नाटक) । ५ नींव । बुनियाद । मूल । ६ योगशास्त्र मे  
 एक चक्र का नाम ।  
 विशेष—इसे मूलाधार भी कहते हैं । इसमे चार दंत हैं । रंग  
 लाल है । स्थान इसका गुदा है और गणेश इसके देवता हैं ।  
 ७ वधा । बाँध (को०) । ८ नहर । प्रणाली (को०) । ९  
 सबध । लगाव (को०) । १० किरण (को०) । ११ बरतन ।  
 पात्र (को०) । १२ आश्रय देनेवाला । पालन करनेवाला ।  
 जैसे,—इस दशा मे ही वे हमारे आधार हो रहे हैं ।  
 यो०—आधाराधेय=आधार और आधेय का सबध, जैसे,—पात्र  
 और उसमे रखे हुए घी या टेबुल और उसपर रखी हुई  
 किताब का सबध । प्राणाधार जिसके आधार पर प्राण हो ।  
 पर मप्रिय ।

मुहा०—आवार होना = कुछ पेट भर जाना। कुछ भूख मिट जाना। जैसे,—इतनी मिठाई से क्या होता है, पर कुछ आधार हो जायगा।

आधारित—वि० [ स० आधार ] दे० 'आधृत'।

आधारी—वि० [ स० आधारित् ] [ स्त्री० आधारिणी ] १ सहारा रखनेवाला। सहारे पर रहनेवाला। जैसे,—दुग्धाधारी। २ साधुओं की टेवकी या अड़्डे के आकार की लकड़ी जिसका सहारा लेकर वे बैठते हैं। उ०—(क) मुद्रा श्रवण नहीं थिर जीऊ। तन त्रिमूल आधारी पीऊ।—जायसी (शब्द०)। (ख) परम तत आधारी मेरे, सिव नगरी घर मेरा।—कबीर ग्र०, पृ० १५४।

आवासीमी—सज्ञा स्त्री० [ स० अर्द्ध + शीर्ष ] अधकपाती। आधे सिर की पीढा।

आधि—सज्ञा स्त्री० [ स० ] १. मानसिक व्यथा। चिंता। फिक्र। शोच। मोच। उ०—आधि अगाधा व्याधि हरि, हरि राधा जप सोड।—स० सप्तक, पृ० ३४३। २ गिरी। गिरवी। वधक। रेहन। ३ स्थान। आवास [को०]। ४ पास पड़ोस [को०]। ५ विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]। ६ धर्म या कर्तव्य की चिंता [को०]। ७ परिभाषा। लक्षण [को०]। ८ आशा [को०]। ९ दंड [को०]। १० परिवार या कुटुंब की चिंता [को०]।

आधिक<sup>१</sup>—वि० [ हि० आधा + एक ] आधा। आधे के लगभग। उ०—(क) आधिक दूर लो जाय चित्त पुनि प्राय गरें लपटाय कै रोई।—मुबारक (शब्द०)। (ख) आधिक रात उठे रघुवीर कह्यो सुनु वीर प्रजा सब सोई।—हनुमान० (शब्द०)।

आधिक<sup>२</sup>—क्रि० वि० आधे के समीप। आधे के लगभग। थोड़ा। उ०—लखि लखि अखियनु अधखुलिनु, आंगु मोरि अंगराइ। आधिक उठि, लेटति लटकि, आलस मरी जैमाट।—विहारी ग्र०, दो० ६३०।

आधिकारिण—सज्ञा पुं० [ स० ] १ न्यायाधीश। २ सरकारी अधिकारी [को०]।

आधिकारिक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [ म० ] दृश्यकाव्य की वस्तु के दो भेदों में एक। मूल कथावस्तु। वि० दे० 'वस्तु'।

आधिकारिक<sup>२</sup>—वि० १ मुख्य या प्रधान। उ०—एक दल मनुष्य मनुष्य के बीच आतृप्रेम को ही काव्यभूमि का एकमात्र आधिकारिक भाव मानता है।—रस०, पृ० ७७। २ अधिकार या अधिकारी से संबद्ध। अधिकारयुक्त। साधिकार।

आधिक्य—सज्ञा पुं० [ म० ] बहुतायत। अधिकता। ज्यादाती।

आधिदैविक—वि० [ म० ] देवताओं द्वारा प्रेरित। यक्ष, देवता, मृत, प्रेत आदि द्वारा होनेवाला। देवताकृत।

विशेष—शुश्रूत में सात प्रकार के दुःख गिनाए गए हैं, उनमें से तीन अर्थात् कालबलकृत (वर्षा इत्यादि पड़ना, वर्षा अधिक होना इत्यादि), देवबलकृत (विजली पड़ना, पिशाचादि लगना), स्वभावबलकृत (भूख प्यास का लगना) आधिदैविक कहलाते हैं।

आधिधर्मा—सज्ञा पुं० [ स० ] जिसके पास कोई वस्तु गिरवी या रेहन रखी जाय [को०]।

आधिपत्य—सज्ञा पुं० [ स० ] प्रभुत्व। स्वामित्व। अधिकार।

आधिपाल—सज्ञा पुं० [ स० ] वह राजकर्मचारी जो जमा की हुई धरोहर की रक्षा का प्रवर्ध करता हो।

आधिमोग—सज्ञा पुं० [ स० ] धरोहर की वस्तु का उपयोग या उपभोग [को०]।

आधिभौतिक—वि० [ स० ] व्याघ्र, सर्पदि जीवों द्वारा कृत। जीव या शरीरधारियों द्वारा प्राप्त।

विशेष—शुश्रूत में रक्त और श्लेष्मक दोष तथा मिथ्या आहार विहार से उत्पन्न व्याधियों को आधिभौतिक के अंतर्गत ही माना है।

आधिमन्यु—सज्ञा पुं० [ म० ] ज्वर की जलन। बुखार की गर्मी [को०]।

आधिमोचन—सज्ञा पुं० [ म० ] गिरवी या वधक छुड़ाना।

आधिवेदनिक—सज्ञा पुं० [ स० ] वह धन जो पुरुष दूसरा विवाह करने के पूर्व अपनी पहली स्त्री को उसके मतोप के लिये दे। यह स्त्रीधन समझा जाता है।

आधिस्तेन—सज्ञा पुं० [ स० ] वह व्यक्ति जो धनाधिकारी की आज्ञा बिना जमा किए हुए धन का उपभोग करता है [को०]।

आधी—वि० स्त्री० [ म० अर्द्ध, प्रा० अर्द्ध ] आधा का स्त्रीलिंग रूप। उ०—प्राधो छोड सारी को धावै। आधी रहै न सारी पावै।—लोक०।

आधीन<sup>१</sup>—वि० [ म० अधीन ] दे० 'अधीन'। उ०—करीं धरी आधीन मैं करौं हरी आधीन।—मिखारी ग्र०, भा०, १, पृ० १८।

आधीनता<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [ म० अधीनता ] दे० 'अधीनता'।

आधीरात—सज्ञा स्त्री० [ स० अधिरात्रि ] वह समय जब रात का आधा भाग बीत चुका हो।

आधुनिक—वि० [ स० ] वर्तमान समय का। हाल का। आजकल का। वर्तमान काल का। सांप्रतिक। नवीन।

आधुनिकतम—वि० [ स० ] अद्यतन। नवीनतम।

आधृत—वि० [ स० ] १ कपित। कांपता हुआ। २ पागन। ३. व्याकुल।

आधूपन—सज्ञा पुं० [ म० ] धुँए या कुहरे में आवृत [को०]।

आधूष्र—वि० [ स० ] धुँए की तरह काले रंगवाला [को०]।

आधृत<sup>२</sup>—वि० [ स० ] किसी आधार पर टिका हुआ। आधार पाया हुआ [को०]।

आधेक—वि०, क्रि० वि० [ हि० ] दे० 'आधिक'। उ०—राधिका आधेक नैननि मूँदि हिए ही हिए हरि की छत्रि हेरति।—मिखारी ग्र०, भा०, १, पृ० १५८।

आधेय—सज्ञा पुं० [ म० ] १ आधार पर स्थित वस्तु। जो वस्तु किसी के आधार पर रहे। किसी सहारे पर टिकी हुई चीज। २ स्थापनीय। ठहराने योग्य। रखने योग्य। ३ गिरी रखने योग्य।

आधोरण—सज्ञा पुं० [ म० ] हाथीचान। महावत। पीनवान।

आध्मात<sup>१</sup>—वि० [ म० ] १ फूला हुआ। २ गर्व से भरा हुआ। ३. जला हुआ। ४. शब्दयुक्त। ध्वनिवाला। ज्वर वायु से अस्त [को०]।

आध्यात्म<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ उदर में होनेवाला वायु रोग । २ बुद्ध [को०] ।  
आध्यात्मन—सज्ञा पुं० [मं०] एक वातव्याधि । पेट का फूलना । अफरा  
आध्यामनी—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ नलिका नामक गंधद्रव्य । २  
फूँकनी । वह धातु या वाँस की नली जिसमें हवा फूँकी  
जाय [को०] ।

आध्यात्मिक—वि० [सं०] [स्त्री० आध्यात्मिकी] १ आत्म सबधी ।  
२ मन सबधी । ३ अध्यात्म से सबंध रखनेवाला [को०] ।

यो०—आध्यात्मिक ताप = वह दुःख जो मन आत्मा और देश  
इत्यादि को पीड़ा दे, जैसे,—शोक, मोह, ज्वर आदि ।

आध्यापक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अध्यापक' [को०] ।

आध्यायिक—वि० [सं०] [स्त्री० आध्यायिकी] वेदों के अध्ययन में  
सलग्न रहनेवाला [को०] ।

आध्यासिक—वि० [सं०] वेदाददर्शन में भ्रमात्मक (ज्ञान) [को०] ।

आनतर्य—सज्ञा पुं० [सं० आनतर्य] १ अचानक होनेवाली सफलता ।  
२ तात्कालिक अनुमान ।

आनृत्य—सज्ञा पुं० [सं० आनृत्य] १ अत या समाप्ति का अभाव ।  
अनतता । २ स्वर्ग । ३ अविनश्वरता ।

आनद<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० आनन्द] [वि० आनदित, आनदी] १ हर्ष ।  
प्रसन्नता । खुशी । सुख । मोद । आह्लाद ।

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—देना ।—पाना ।—भोगना ।  
मनाना ।—मिलना ।—रहना ।—लेना । जैसे,—( क ) कल  
हमको सँर में बड़ा आनद आया । ( ख ) यहाँ हवा में बैठे  
खूब आनद ले रहे हो । ( ग ) मूर्खों की सगति में कुछ भी  
आनद नहीं मिलता ।

यो०—आनदमगल ।

मुद्गा०—आनंद के तार या ढोल बजाना = आनंद के गीत गाना ।  
उत्सव मनाना ।

२ प्रसन्नता या खुशी की चरम अवस्था जो ब्रह्म की तीन प्रधान  
विभूतियों में से एक है । उ०—सत्, चित और आनद, ब्रह्म के  
इन तीन स्वरूपों में से काव्य और भक्तिमार्ग 'आनद' स्वरूप  
को लेकर चले ।—रस०, पृ० ५५ । ३ मद्य । शराव । ४  
शिव [को०] । ५ विष्णु [को०] । ६ बुद्ध के एक प्रधान शिष्य  
[को०] । ७ दंडक छंद का एक भेद [को०] । ८. ४८ वें  
सवत्सर का नाम [को०] ।

आनद<sup>२</sup>—वि० आनद । आनदमय । प्रसन्न । जैसे,—आनद रहो ।

विशेष—यह विशेषणवत् प्रयोग ऐसे ही दो एक नियत वाक्यों  
में होता है । पर ऐसे स्थानों में भी यदि आनद को विशेषण  
न मानना चाहें, तो उसके आगे 'से' लुप्त मान सकते हैं ।

आनंदक—वि० [सं० आनन्दक] आनंद प्रदान करनेवाला [को०] ।

आनंदकर—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दकर] चंद्रमा [को०] ।

आनंदकला—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दकला] ब्रह्म की आनंदमयी सत्ता ।

ईश्वर का आनंदमय स्वरूप । उ०—भगवान् की आनंदकला के  
विकास की ओर बढ़ती हुई गति है ।—रस०, पृ० ६० ।

आनंदकानन—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दकानन] दे० 'आनंदवन' ।

आनंदधन<sup>१</sup>—वि० [सं० आनन्द + धन] आनंद से भरा हुआ ।

आनंदधन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ श्रीकृष्ण भगवान् । २ हिंदी के एक कवि  
का नाम ।

आनंदज—वि० [मं० आनन्दज] तप के कारण उत्पन्न, जैसे,—  
अश्रु [को०] ।

आनंदना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [मं० आनन्द में नाम०] प्रसन्न होना ।  
आनंदयुक्त होना । उ०—ज्यो चकई प्रतिग्रिप देखिकै, आनंद  
पिय जानि । सूर पवन मनि निठुर विप्राता, चान किरी जन  
आनि ।—मूर०, पृ० १०३२६८ ।

आनंदपट—सज्ञा पुं० [मं० आनन्दपट] वैवाहिक पत्र । जोशनामा  
[को०] ।

आनंदपूर्ण—वि० [मं० आनन्दपूर्ण] अत्यधिक प्रसन्न [को०] ।

आनंदप्रभव—सज्ञा पुं० [मं० आनन्दप्रभव] गीत । मुद्र [को०] ।

आनंदवधार्ई—सज्ञा स्त्री० [मं० आनन्द + हि० वधार्ई] १ मगद-  
उत्सव । २ मगल अवसर । ३ मगन की वधार्ई ।

आनंदवन—सज्ञा पुं० [मं० आनन्दवन] काजी । तारागुनी । अविमुक्त  
क्षेत्र । बनारस । मत्तपुरियों में से चौथी ।

आनंदभैरव—सज्ञा पुं० [मं० आनन्दभैरव] १. जिस का एक नाम  
(को०) । २. वैद्यक में एक रस का नाम जो प्रायः ज्वरदि की  
चिकित्सा में काम आता है ।

विशेष—इनके बनाने की यह रीति है—शुद्ध पारा और शुद्ध  
गंधक की फजली, शुद्ध मिर्ची मुहरा, मिमरफ, सोठ, कावी  
मिर्च, पीपल, भूना गुहागा, इन सबका नूरां कर सेंगरीयों के रस  
में तीन दिन घरन कर आध आध रत्नी की गोमियां पकावे ।  
एक गोली नित्य दस दिन पर्यंत चिनाने में खाँसी, श्वस,  
मगहणी, सनिपात और मृगी के मत्र रोग नष्ट हो जाते हैं ।

आनंदभैरवी—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दभैरवी] भैरव रोग की रागिनी  
जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं । इनके गाने का समय प्रातः  
काल १ दंड में ५ दंड तक है ।

आनंदमंगल—सज्ञा पुं० [मं० आनन्द + मङ्गल] सुख चैन ।

आनंदमत्ता—सज्ञा स्त्री० [मं० आनन्दमत्ता] प्रोडा नायिका का एक  
भेद । आनंद से उत्पन्न प्रोडा । दे० 'आनंदममोहिता' ।

आनंदमय<sup>१</sup>—वि० [मं० आनन्दमय] आनंदपूर्ण । प्रसन्नता से युक्त  
[को०] ।

यो०—आनंदमयकोष = आत्मा के पंचकोषों में से एक (वेदांत) ।

आनंदमय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० ब्रह्म [को०] ।

आनंदमया—सज्ञा स्त्री० [मं० आनन्दमया] दुर्गा का एक रूप [को०] ।

आनंदलहरी—सज्ञा स्त्री० [मं० आनन्दलहरी] शंकराचार्य विरचित  
एक ग्रंथ जिसमें पार्वती जी की स्तुति है [को०] ।

विशेष—इसे सोदर्यलहरी भी कहते हैं ।

आनंदवाद—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दवाद] आनंद को ही मानव जीवन  
का मूल लक्ष्य माननेवाली विचारधारा या सिद्धान्त ।

आनंदसमोहिता—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दसमोहिता] वह नायिका  
जो रति के आनंद में अत्यंत निमग्न होने के कारण मुग्ध हो  
रही हो । यह प्रोडा नायिका का एक भेद है ।

आनदा—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दा] भाग [को०] ।

आनंदित—वि० [म० आनन्दित] हृषित । मुदित । प्रमुदित । सुखी ।  
उ०—आनंदित गोपी ग्वाल, नाचें कर दै दै ताल, अति  
अह्लाद भयो जमुमति माइ कै ।—सूर०, १० । ३१ ।

आनदी—वि० [स० आनन्दिन्] हृषित । प्रसन्न । सुखी । खुश ।

आन<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [ स० आणि = मर्यादा, सीमा ] १ मर्यादा । २  
शपथ । सौम्य । कसम । उ०—मोहि राम राउरि आन दसरथ  
मपथ मय सांची कहौ ।—मानस, २।१०० । ३. विजय-  
घोषणा । दुहाई ।

क्रि० प्र०—फिरना । उ०—वार वार यो कहत सकात न, तोहि  
हति लैहैं प्रान । मेरें जान, कनकपुरी फिरिहै रामचंद्र की  
आन ।—सूर०, ६। १२१ ।

४. ढग । तर्ज । अदा । छवि । जैसे,—उस मौके पर बड़ोदा नरेश  
का इस मादगी से निकल जाना एक नई आन थी । ५. अकड़ ।  
ऐंठ । दिखाव । ठसक । जैसे,—आज तो उनकी और ही आन  
थी । ६. अदब । लिहाज । दबाव । लज्जा । शर्म । हया ।  
शका । डर । भय । जैसे,—कुछ बड़ों की आन तो माना  
करो । ७. प्रतिज्ञा । प्रण । हठ । टेक । जैसे,—वह अपनी  
आन न छोड़ेगा ।

आन<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] क्षण । अल्पकाल । लमहा । जैसे,—एक  
ही आन में कुछ का कुछ हो गया है ।

मुहा०—आन की आन में = शीघ्र ही । अत्यल्प काल में । जैसे,—  
आन की आन में सिपाहियों ने पूरा का पूरा शहर घेर लिया ।

आन<sup>३</sup>—वि० [सं० अन्य] दूसरा । और । उ०—मुख कह आन,  
पेट बम आना । तेहि औगुन दस हाट विकाना ।—जायसी  
ग्र०, पृ० ३५ ।

आन<sup>४</sup>—क्रि० वि० [हि० आना] आकर । उपस्थित होकर । जैसे,—  
पत्ता पेड़ में आन गिरा ।

आनक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ डका । दुधुभी । भेरी । ढक्का । बड़ा  
ढोल । मृदंग । नगाडा । उ०—गोमुख आनक ढोल नफीरी मिलि  
कै साजै ।—नारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६४३ । २. गरजता  
हुआ वादल ।

यो०—आनक दुधुभी ।

आनक दुधुभि—सञ्ज्ञा पुं० [म० आनक दुधुभि] १. बड़ा नगाडा । २.  
कृष्ण के पिता वसुदेव ।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि जब वसुदेव जी उत्पन्न हुए थे, तब  
देवताओं ने नगाडे बजाए थे ।

आनडुह—वि० [सं०] बंन या सांड से सवद्ध [को०] ।

आनत—वि० [म०] अत्यंत भुका हुआ । अतिभ्रम । उ०—पशो के  
आनत अघरो पर, सो गया निखिल वन का मर्मर ।—गुजन,  
पृ० ७६ । २. कल्पमव के अतर्गत वैमानि नामक जैन देवताओं  
में से एक देवता ।

आनतान<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [ हि० आन = दूसरा + तान = गीत ] अंड  
बंड वात । ऊटपटांग वात । बेसिर पंर की वात ।

आनतान<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [ हि० आन + खितान = चाव ] १. मर्यादा ।  
ठसक । २. टेक । अड़ ।

आनति—पञ्चा स्त्री० [म०] १. नत होना । झुकना । झुकाव । २. प्रणाम  
करना । प्रणति । ३. सत्कार करना [को०] ।

आनतिकर—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] उपहार । पुरस्कार [को०] ।

आनद<sup>१</sup>—वि० [सं०] १. वेधा हुआ । कमा हुआ । २. मढा हुआ ।

आनद<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १. वह वाजा जो चमड़े से मढा हो, जैसे—ढोल  
मृदंग आदि । २. सज्जित होना । कपड़े आभूषण आदि  
पहनना [को०] ।

आनद्वस्तिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पेशाव या पाखाने का रुकना [को०] ।

आनन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मुख । मुँह । उ०—आनन रहित सकन  
रस भोगी ।—मानस, १।११८ । २. चेहरा । उ०—आनन है  
अरविद न फूल्यो आलीगन भूल्यो कहा मँडरात हो ।—  
मिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ६१ ।

यो०—वन्नान । गजानन । चतुरानन । पचानन । पडानन ।

आननफानन—क्रि० वि० [अ० आनन फानन] अतिशीघ्र । फौरन  
भटपट । बहुत जल्द ।

आनना—क्रि० सं० [ सं० आ + √नी = ले जाना या लाना  
लाना । उ०—आनहु रामहि वेगि बोलाई ।—मानस, २।३६ ।

आनवान—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० आन + वान] १. सज्जज । ठाट वाट  
तडक मडक । बनावट । उ०—जुही आनवान भरी, चमेरल  
जवान परी ।—आराधना, पृ० २३ ।

आनमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आनति' [को०] ।

आनयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. लाना । २. उपनयन सत्कार ।

आनर—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. संमान । प्रतिष्ठा । इज्जन । सत्कार । २.  
समानचिह्न । उपाधि ।

आनरेबुल—वि० [अ०] प्रतिष्ठित । माननीय ।

विशेष—अंगरेजी शासन में जो गवर्नर जनरल, गवर्नर, बड़े ला  
या छोटे लाट की कौंसिल के सभासद् होते थे, उन्हें तथा हा  
कोर्ट के जजों और कुछ चुने अधिकारियों को यह पदवी मिल  
थी । अब केवल हाइकोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट के जजों को इ  
नाम से पुकारा जाता है ।

आनरेरी—वि० [अ०] १. अवतनीक । कुछ वेतन न लेकर प्रतिष्ठा  
के हेतु काम करनेवाला ।

यो०—आनरेरी मजिस्ट्रेट । आनरेरी सेक्रेटरी ।

२. बिना वेतन लेकर किया जानेवाला । जैसे,—यह काम हम  
आनरेरी है ।

आनर्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आनर्तक] १. देशविशेष । द्वारक  
२. आनर्त देश का निवासी । ३. राजा शर्वाति के तीन पुत्रों  
में से एक । ४. नृत्यशाला । नाचघर । ५. युद्ध । ६. जन ।  
नृत्य [को०] ।

आनर्तक—वि० [सं०] नाचनेवाला ।

आनव<sup>१</sup>—वि० [सं०] १. मनुष्य की तरह शक्तिवान् । २. मनुष्य  
दया करनेवाला [को०] ।

आनव<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १. मनुष्य । मानव । २. विदेजीजन [को०] ।

आना<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आणक] १. रुपए का १६वां भाग । २. ि.  
वस्तु का १६वां अंश । जैसे,—(क) प्लेग के कारण शहर



श्रव चार आने लोग रह गए हैं। (ख) इस गाँव में चार श्राना उनका है।

श्राना<sup>१</sup>—क्रि० प्र० [ सं० आगमन, पु० हि० आगमन, आगमन, जैसे द्विगुण से दूना। अथवा सं० आगमन हि० आगमन ] १ वक्ता के स्थान की ओर चलना या उसपर प्राप्त होना। जिस स्थान पर कहनेवाला है, था या रहेगा उसकी ओर बराबर बढ़ना या वहाँ पहुँचना। जैसे,—(क) वे कानपुर से हमारे पास आ रहे हैं। (ख) जब हम बनारस में थे, तब आप हमारे पास आए थे। (ग) हमारे साथ साथ तुम भी आओ। २ जाकर वापस आना। जाकर लौटना। जैसे—तुम यहीं खड़े रहो, मैं अभी आता हूँ। ३ प्रारम्भ होना। जैसे,—बरसात आते ही मेढ़क बोलने लगते हैं। ४ फलना। फूलना। जैसे,—(क) इस साल आम खूब आए हैं। (ख) पानी देने से इस पेड़ में अच्छे फूल आवेंगे। ५ किसी भाव का उत्पन्न होना। जैसे,—आनन्द आना, क्रोध आना, दया आना, कसूर आना, लज्जा आना, शर्म आना।

विशेष—इस अर्थ में 'मैं' के स्थान पर 'को' लगता है। जैसे,—उनको यह बात सुनते ही बड़ा क्रोध आया।

६ आँच पर चढ़े हुए किसी भोज्य पदार्थ का पकना या सिद्ध होना। जैसे,—(क) चावल आ गए, अब उतार लो। (ख) देखो, चाशनी आ गई या नहीं। ७ स्थलित होना। जैसे—जो यह दवा खाता है, वह बड़ी देर से आता है।

मुहा०—आई=(१) आई हुई मृत्यु। जैसे,—आई कही टलती है। (२) आई हुई विपत्ति। आए दिन=प्रतिदिन। रोज रोज। जैसे,—यह आए दिन का भगड़ा अच्छा नहीं। आए गए होना=खो जाना। नष्ट होना। फजूल खर्च होना। जैसे,—वे रुपए तो आए गए हो गए। आओ या आइए=जिस काम को हम करने जाते हैं, उसमें योग दो। जैसे,—आओ, चलें घूम आवें। (ख) आइए, देखें तो इस किताब में क्या लिखा है। आ जाना=पड़ जाना। स्थित होना। जैसे,—उनका पैर पहिए के नीचे आ गया। आता जाता=आने जानेवाला। पथिक। बटोही। जैसे,—किसी आते जाते के हाथ रुपया भेज देना। आना जाना=(१) आवागमन। जैसे,—उनका बराबर आना जाना लगा रहता है। (२) सहवास करना। सभोग करना। जैसे,—कोई आता जाता न होता तो यह लड़का कहाँ से होता? आ घमकना=एकवारगी आ पहुँचना। अचानक आ पहुँचना। जैसे,—बागी इधर उधर भागने की फिर कर ही रहे थे कि सरकारी फौज आ घमकी। आ निकलना=एकाएक पहुँच जाना। अनायास आ जाना। जैसे,—(क) कभी कभी जब वे आ निकलते हैं, तब मुलाकात हो जाती है। (ख) मालूम नहीं हम लोग कहाँ आ निकले। आ पड़ना=(१) सहसा गिरना। एकवारगी गिरना। जैसे,—घरन एकदम नीचे आ पड़ी। (२) आक्रमण करना। जैसे,—उसपर एक साथ ही बीस आदमी आ पड़े। (३) अनिष्ट घटना का घटित होना। जैसे,—वेचारे पर बँटे बिठाए यह आफत आ पड़ी। (४) सकट, कठिनाई या दुख का उपस्थित होना। जैसे,—(क) तुमपर क्या आ पड़ी है जो

उनके पीछे दौड़ते फिरो। (ख) जब या पानी है तब कुछ नहीं सूझता। (५) उपस्थित होना। एकवारगी आना। जैसे,—(क) जब काम आ पड़ता है, तब वह निमक जाता है। (ख) उनपर गृहस्थी का याग बोज आ पड़ा। (गठ०) (ग) कल हमारे यहाँ दग मेहमान आ पड़े। (गठ०)। (६) डेरा जमाना। टिकना। निशाम करना। जैसे,—यों उधर उधर भटकते हो, चार दिन यहीं आ पड़ो। आया गया=अतिथि। अम्बागन। जैसे,—आए गए का अच्छी तरह नरकार करना चाहिए। आ रहना=गिर पड़ना। जैसे,—(क) पानी बरसते ही दीवार आ रही। (ख) वह चतुर्धर पर मे नीचे आ रहा। आ लगना=(१) किसी ठिकाने पर पहुँचना। जैसे,—(क) बात की बात में किसी ठिकाने आ गयी। (ख) रेलगाड़ी प्लेटफार्म पर आ गयी। (इस क्रियापद का प्रयोग जट पदार्थों के लिये होता है, चेतन के लिये नहीं।) (२) प्रारम्भ होना। जैसे,—ग्रहण का महीना आ गया है। (३) पीछे लगना। नाथ होना। जैसे,—बाजार में जाने ही दवाल आ लयते हैं। आ लेना=पाग पहुँच जाना। पकड़ लेना। जैसे,—टाकू भागे पर गवारी ने आ लिया। (२) घासमण करना। टूट पड़ना। जैसे,—हिन चुपचाप पानी पी रहा था कि बाघ ने आ लिया। किसी का किसी पर कुछ रुपया आना=किसी के जिम्मे किसी का कुछ रुपया निकलना। जैसे,—क्या तुम पर उनका कुछ आता है? हाँ, बीस रुपये। किसी को आ बनना=किसी को लाभ उठाने का अच्छा अवसर हाथ आना। स्वायंमाघन का मोटा मिटना। जैसे,—कोई देखने भालने वाला है नहीं, नीकरो की पूर आ बनी है। किसी को कुछ आना=किसी को कुछ बोध होना। किसी को कुछ जान होना। जैसे,—(क) उसे तो बोनना ही नहीं आता। (ख) उसे चार महीने में हिंदी आ जायगी। किसी को कुछ आना जाना=किसी को कुछ बोध या जान होना। जैसे,—उनको कुछ आता जाता नहीं। किसी पर आ बनना=किसी पर विपत्ति पड़ना। जैसे,—(क) आजकल तो हमपर चारों ओर से आ बनी है। (ख) मेरी जान पर आ बनी है। उ०—आन बनी सिर आपने छोट पराई आन (शब्द०) (किसी वस्तु) में आना=(१) ऊपर से ठीक बैठना। ऊपर से जमकर बैठना। चपकना। ढीला या तग न होना। जैसे,—(क) देखो तो तुम्हारे पैर में यह जूता आता है। (ख) वह सामी इस छड़ी में नहीं आवेगी। (२) भीतर अटना। समाना। जैसे,—इस वस्तु में दम सेर घी आता है। (३) अतर्गत होना। अतर्भूत होना। जैसे,—वे नए विषय विज्ञान ही में आ गए। किसी वस्तु से (घन या आय) आना=किसी वस्तु से आमदनी होना। जैसे,—(क) इस गाँव से तुम्हें कितना रुपया आता है? (ख) इस घर से कितना किराया आता है? (जहाँ पर आय के किमी विशेष भेद का प्रयोग होता है, जैसे,—माढा, किराया, लगान, मालगुजारी आदि वहाँ चाहे 'का' का व्यवहार करें चाहे 'से' का। जैसे,—(क) इस घर का कितना किराया आता है। (ख) इस घर से कितना किराया आता है। (पर जहाँ 'रुपया' या 'घन' आदि शब्दों का

प्रयोग होता है, वहाँ केवल 'से' आता है।) कोई काम करने पर श्राना = कोई काम करने के लिये उद्यत होना। कोई काम करने के लिये उत्तारु होना। जैसे,—जब वह पढ़ने पर आता है तो रात दिन कुछ नहीं समझना। जूतो या लात घूसों आदि से श्राना = जूतो या लात घूसों से आक्रमण करना। जूते या लात घूसे लगाना। जैसे,—अब तक तो मैं चुप रहा, अब जूनों से आऊँगा। (पीछे का) श्राना = (पीछे का) बढ़ना। जैसे,—घेत में गेहूँ कमर बराबर आए हैं। (मूल्य) को या में श्राना = दामों में मिलना। मूल्य पर मिलना। मोन मिलना। जैसे,—यह किताब कितने को आती है। (ख) यह किताब कितने में आती है। (ग) यह किताब चार रुपए को आती है। (घ) यह किताब चार रुपए में आती है। (इस) मुहाविरे तृतीया के श्रान पर 'को' या 'में' का प्रयोग होता है।)

विशेष—'श्राना' क्रिया के अपूर्णभूत रूप के साथ अधिकरण में भी 'को' विभक्ति लगती है, जैसे,—'वह घर को आ रहा था'। इस क्रिया को आगे पीछे लगा कर संयुक्त क्रियाएँ भी बनती हैं। नियमानुसार प्रायः संयुक्त क्रियाओं में अर्थ के विचार से पद प्रधान रहता है और गौण क्रिया के अर्थ की हानि हो जाती है, जैसे, दे डालना, गिर पड़ना आदि। पर 'श्राना' और 'जाना' क्रियाएँ पीछे लगकर अपना अर्थ बनाए रखती हैं, जैसे,—'इस चीज को उन्हें देते आओ।' इस उदाहरण में देकर फिर आने का भाव बना हुआ है। यहाँ तक कि जहाँ दोनों क्रियाएँ गत्यर्थक होती हैं वहाँ 'श्राना' का व्यापार प्रधान दिखाई देता है, जैसे,—चले आओ। वढे आओ। कहीं कहीं श्राना का संयोग किसी और क्रिया का चिर काल से निरंतर संपादन सूचित करने के लिये होता है, जैसे,—(क) इस कार्य को हम महीनों से करते आ रहे हैं। (ख) हम आज तक आप-के कहे अनुसार काम करते आए हैं। गतिमूचक क्रियाओं में 'श्राना' क्रिया धातुरूप में पहले लगती है और दूसरी क्रिया के अर्थ में विशेषता करती है, जैसे,—आ खपना, आ गिरना, आ घेरना, आ झपटना, आ टूटना, आ ठहरना आ घमकना, आ निकटना, आ पडना, आ पहुँचना, आ फँसना, आ रहना। पर 'आ जाना' क्रिया में 'जाना' क्रिया का अर्थ कुछ भी नहीं है। इससे मदेह होता है कि कदाचित् यह 'आ' उपसर्ग न हो, जैसे,—आयान, आगमन, आनयन, आपतन।

श्रानाकानी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० श्रानाकर्णन] १ सुनी अनसुनी करने का कार्य। न ध्यान देने का कार्य। उ०—श्रानाकानी आरसी निहारिनी करोगे को लो ?—इतिहास, पृ० ३४१। २. टाल-मटून। हीला हवाला। जैसे,—माल तो ले आए, अब रुपया देने में श्रानाकानी क्यों करते हो ?

क्रि० प्र०—करना।—देना।

३ कानाफूसी। धीमी बातचीत। इशारों की बात। उ०—श्रानाकानी कठ हँसी मुहावाही होन लगी देखि दसा कहत विदेह विलखाय की।—तुलसी (शब्द०)।

श्रानाथ्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] असहाय या श्रानाथ होने की अवस्था या भाव [को०]।

श्रानाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जाल। फंदा [को०]।

श्रानाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक उदरव्याधि। मलावरोध से पेट का फूलना। मलमूत्र रुकने से पेट फूलना। २ वाँघना [को०]। ३ लवाई (कपड़े आदि की) [को०]। ५ विस्तार [को०]।

श्रानि<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'श्रान'।

श्रानिल<sup>१</sup>—वि० [सं०] [वि० स्त्री श्रानिली] वायु से सघनित या उत्पन्न [को०]।

श्रानिल<sup>२</sup> श्रानिलि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हनुमान। २ भीम। ३ स्वाती नक्षत्र [को०]।

श्रानिला—सञ्ज्ञा पुं० [श्र०] जहाज के लगर की कुडी।

श्रानोजानी—वि० [हिं० श्राना + जाना] अस्थिर। क्षणभंगुर। उ०—दुनिया भी अजब सराय फानी देखी। हर चीज यहाँ की श्रानी जानी देखी। जो आके न जाए वह बुढ़ापा देखा। जो जाके न आए वह जवानी देखी।—अनीस (शब्द०)।

श्रानीत—वि० [सं०] लाया हुआ [को०]।

श्रानील<sup>१</sup>—वि० [सं०] हरे रंग का। हल्का नीला [को०]।

श्रानील<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० काला घोडा [को०]।

श्रानुकूलिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री श्रानुकूलिकी] अनुकूल [को०]।

श्रानुकूल्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अनुकूलता की स्थिति या भाव। २. कृपालुता। दयालुता [को०]।

श्रानुक्रमिक—वि० [सं०] क्रमानुसार [को०]।

श्रानुगतिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री श्रानुगतिकी] अनुगत या अनुगति से सावध रखनेवाला [को०]।

श्रानुगत्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अनुगत होने की क्रिया। २ अनुकरण। ३ परिचय। घनिष्ठता। उ०—पा लिया है सत्य-शिव-मुदर-सा पूर्ण लक्ष्य इष्ट हय सबको इसी का श्रानुगत्य है।—पाकेन पृ० २०१।

श्रानुग्रहिकरनीति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] राज्य की वह नीति जिसके अनुसार कुछ विशेष मालों पर रियायत की जाती है।

श्रानुग्रहिक दारो दय शुल्क—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह चुगी जो कुछ खास खास पदार्थों पर कम ली जाय। (अर्थशास्त्र, पृ० ११३ में यह दारादेय शुल्क या श्रानुग्रहिक कहा गया है।)

श्रानुग्रामिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री श्रानुग्रामिकी] ग्रामसंबंधी। ग्रामीण [को०]।

श्रानुपदिक—वि० [सं०] [स्त्री श्रानुपादिकी] १ पीछा करनेवाला। २ अनुकरण करनेवाला [को०]।

श्रानुपातिक—वि० [सं०] अनुपात संबंधी [को०]।

श्रानुपूर्वी—वि० [सं०] अनुपूर्वार्थ [क्रमानुसार]। एक के बाद दूसरा।

श्रानुमानिक—वि० [सं०] अनुमान संबंधी। खयाली।

श्रानुयात्रिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सेवक। नौकर। अनुचर [को०]।

श्रानुरक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'अनुरक्ति' [को०]।

श्रानुलोमिक—वि० [सं०] १ नियमित। क्रमिक। २ अनुकूल। उपयुक्त [को०]।

श्रानुवशिक—वि० [सं०] वशपरंपरा में आया हुआ। वशा-नुक्रमिक [को०]।

आप-तथा पुं० [यं व्याप = ज्ञ] १ जन । तान् । ८०—मिगल  
जटा कपात मागे पै पुनीत व्याप गावा नाना गाव भू पर  
वरत है ।—तुलसी यं०, पृ० २३७ ।

यी०—आपधर=बादल। उ०—रुनिए चाप परतापधर।  
तीन लोक मे आपधर। नृप नरज्यो जैमे आपधर। माँपधरन  
सम दापधर।—गोपाल (शब्द०)। आपनिधि=समुद्र। उ०—  
ज्ञानगिरि फोरि, तोरि लाज तर जाइ मि १, आप ही तें आपगा  
ज्यो आपनिधि प्रीनर्म।—केशव ग्र०, पृ० १२७।

२ आठ वसुधो मे से एक का नाम (को०)। ३ जलप्लावन। बाढ  
(को०)। ४ जन का सोना या प्रवाह (को०)। ५ आकाश (को०)।  
आपक—वि० [सं०] प्राप्त। प्राप्त करनेवाला (को०)।

आपकर—वि० [सं०] [वि० स्त्री आपकरी] १ बिना मैत्री का। अमित्रो-  
पूर्ण। २ बुराई या निंदा करनेवाला। ३ अनिष्टकारी (को०)।

आपकव—वि० [सं०] जो अच्छी तरह न पका हो। कम पका  
हुआ (को०)।

आपगा—सज्ञा स्त्री [सं०] १. नदी। २ एक नदी का नाम (को०)।

आपगेय—सज्ञा पुं० [सं०] भीष्म पितामह (को०)।

आपचार—सज्ञा पुं० [हिं०] मनमानी।

आपचारना—क्रि० अ० [हिं० आपचार+ना (प्रत्यय)] उ०—  
विप न विमारघौ तन, कै प्रिनामी आपचारघी, जान्यो हुनो  
मन ? तैं मनेह कछु नेल सो।—बनानंद, पृ० ६३।

आपरा—सज्ञा पुं० [सं०] १ हाट। बाजार। २ किराया या महमूल  
जो बाजार मे मिले। तहजारी।

आपत्—सज्ञा स्त्री [सं०] 'आपद' का समासगत रूप (को०)।

आपत—सज्ञा स्त्री [सं० आपद] दे० 'आपद'।

आपत्कल्प—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आपद' (को०)।

आपत्काल—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आपत्कालिक] १ विपत्ति। दुर्दिना  
२ दुष्काल। कुमय।

आपत्कृतकृपा—सज्ञा पुं० [सं०] वह कृपा जो कोई आपत्ति पडने पर  
लिया जाय।

आपत्ति—सज्ञा स्त्री [सं०] १. दुःख। क्लेश। विघ्न। २ विपत्ति।  
सकट। आफत। ३ कष्ट का समय। ४ जीविकाकष्ट। ५  
दोषागेषण। ६ उच्च। एतराज। जैसे,—हमको आपकी बात  
मानने मे कोई आपत्ति नहीं है। ७ प्राप्ति (को०)।

आपद्—सज्ञा स्त्री [सं०] १ विपत्ति। आपत्ति। २ दुःख। कष्ट।  
विघ्न।

यी०—आपदगत, आपदग्रस्त, आपदग्रान्त=(१) आफत मे पडा  
हुआ। (२) अनायास। आपदर्म। आपद्विनीत=कष्ट या  
विपत्ति मे नम्र होनेवाला।

आपद—सज्ञा स्त्री [सं० आपद] दे० 'आपद'।

आपदर्थ—सज्ञा पुं० [सं०] वह धन या संपत्ति जिसके प्राप्त करने पर  
आगे चलकर अपना अनिष्ट हो।

विशेष—जिस संपत्ति के लेने पर अनुश्रु की मद्रा बढ़े, व्यय  
या क्षय बढ़े अथवा दूसरो को बहुत कुछ देना पड़े, वह आपदर्थ  
है। कौटिल्य ने आपदर्थ के अनेक दृष्टांत दिए हैं, जैसे,—उह  
संपत्ति जो कुछ दिनों पीछे मिलनेवाली हो, जिसे पीछे से  
कुपित होकर पाणिग्रह छीन ले, जो मित्र के नाश या

सधिमग द्वारा हो, जिसके ग्रहण के विरुद्ध सारा मङ्गल हो,  
इत्यादि। (को०)।

आपदा—सज्ञा स्त्री [सं०] १ दुःख। क्लेश। विघ्न। २ विपत्ति।  
आफत। सकट। ३ सकट का समय। जीविका का कष्ट।

आपदार्थ—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह धर्म जिसका विधान केवल  
आपत्काल के लिये हो।

विशेष—जीविका के सकोच की दशा मे जीवनरक्षा के लिये शास्त्रो  
मे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के लिये बहुत से ऐसे व्यापारो से  
निर्वाह करने का विधान है, जिनका करना उनके लिये सुकाल  
मे वर्जित है, जैसे,—ब्राह्मण के लिये शस्त्रधारण, खेती और  
वाणिज्य आदि का करना मना है, पर आपत्काल मे इन व्यापारो  
द्वारा उनके लिये जीविका निर्वाह करने का विधान है।

आपदाप—सज्ञा स्त्री [हिं० आप+आप] अपनी अपनी चिन्ता।  
अपने अपने काम का ध्यान। दे० 'आपादापी'।

आपन—संज्ञा, आपनि—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—(क)  
आपन मोर नीक जो चहूँ मानस, २। ६१। (ख) आपनि  
दारुन दीनता कहउँ सबहि सिख नाइ।—मानस, २। १८२।

आपनपो—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपो'।

आपनपी—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपी'। उ०—तहँ साँव चलै  
तजि आपनपी, भिम्भके कपटी जो निसाँक नहीं।—इतिहास,  
पृ० ३४३।

आपना—संज्ञा, सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—मजि रघुपति कह  
हित आपना। छाडहु नाथ मृषा जल्पना।—मानस, ६। ५५।

आपनिक—सज्ञा पुं० [सं०] १. बहुमूल्य हरा पत्थर। पन्ना। २  
जंगली जाति। किरात (को०)।

आपनिधि—सज्ञा पुं० [सं० आपोनिधि] जलनिधि। समुद्र। उ०—  
आपहि ते आप गाज्यो आपनिधि प्रीति मे।—केशव ग्र०, भा०  
१, पृ० १२७।

आपनो—संज्ञा, सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—केहि अब अवगुन  
आपनो कउ डारि दिया रे।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७१।

आपन्न—वि० [सं०] १ आपदग्रस्त। दुःखी। २ प्राप्त।

यी०—आपन्नसत्त्व=गर्भणी। सकटापन्न।

आपपति—सज्ञा पुं० [सं० आप+पति] समुद्र। उ०—कौपि उठ्यो  
आपपति तपनहि ताप चढी, सीरी यो सगीर गति भई रजनीम  
की।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १२८।

आपमित्यक—वि० [सं०] विनिमय अथवा बदल बदल द्वारा प्राप्त  
(संपत्ति) (को०)।

आपया—सज्ञा स्त्री [सं० आपगा] नदी।

आपराहिक—वि० [सं०] अपराहण या तीमरे पहर होनेवाला (को०)।

आपहृष—वि० [हिं० आप+हृष] अपने हृष मे युक्त। मूर्तिमान्।  
साक्षात् (महापुरुषो के लिये)। जैसे,—इतने ही मे आपहृष  
मगवान प्रकट हुए।

आपहृष—सर्व० साक्षात् आप। आप महापुरुष। ये महापुरुष। खुद  
बदौलत। हजरत (व्यग्य)। जैसे,—(क) यह सब आपहृष ही  
की करवत है। (ख) यह देखिए अब आपहृष प्राए हैं।

आपरेशन—मला पुं० [अ० आपरेशन] प्रत्ययनिमित्ता ।

आपत्तुकि--वि० [मं०] किसी विशेष समय या प्रवृत्ति से संबंध रखने-  
वाला [को०] ।

आपवर्ग्य—वि० [म०] आपवर्गं या मोक्ष ते सवध रत्नमेवायम् (श्लो०) ।

प्रापस—तथा को० [हि० प्राप] [यि० प्रापसी] १ नवध । नाता ।  
भाईचारा । जैसे,—प्रापमवाली ने घोड़ा न होगा । २ एक  
दूसरे का साथ । एक दूसरे का नवध ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल 'पट्टी' और 'गणनी' में होता है। नियमानुसार पट्टी में यह विशेषण की तथा जाता है।  
जैसे,—(क) यह तो आपन की बात है। (घ) ये आपन में लट रहे हैं।

मुहा०—आपन का = (१) एक दूसरे में समान वध्वरानिताता।  
 अपने भाई वधु के बीच का। जैसे,—आपन का मामला।  
 आपन की बात। आपन ही फट। जैसे—कहो न, यही तो  
 सब आपस ही के लोग बैठे हैं। (२) परस्पर। परस्परता।  
 जैसे,—जरा नी बात पर उठो तो आपस का घाता जाता घट  
 कर दिया। आपस में = परस्पर। एक दूसरे के साथ। एक  
 दूसरे के बीच। उ०—( क ) हिंदू यमन विध्वन हो गई।  
 आपस में गार्ग नर दोऊ।—तवीर (सं०)। (घ) ब्रह्म  
 पादौ कान नुने पतिव्रता कन प्रापुस म पदुर्ग पदुर्ग।—  
 तुलसी ३०, पृ० १६७।

यो०- प्राप्तदारी = पण्य ता व्यवहार । भाट्टाचार्य । प्राप्तदारी  
= प्राप्तपण्य ।

आपस्तव—संज्ञा पु० [सं० आपस्तम्ब] [वि० आपस्तम्बीय] १ एक ऋषि जो कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा के प्रवक्तृ थे। यह शाखा उन्ही के नाम से प्रसिद्ध है। २ आपस्तम्ब शाखा के चार भूत-कार जिनके बनाए तीन भूत ग्रंथ हैं, मत्स्य, गृह्य और धर्म। ३ एक स्मृतिकार जिसकी स्मृति उनके नाम से प्रसिद्ध है।

आपस्तवीय—वि० [सं० आपस्तम्ब्योय] आपःतंय नप्रधी ।

आपा—सज्ञ पुं० [हि० आप] १ अपनी मत्ता । घपना घमिन्त ।  
जैसे,—अपने आपे को समझो, तब प्रसन्न होगा । २ घपनी  
अनन्यत । जैसे,—अपने आपको देखो तब वह बहार बाँ  
करना । ३ अहंकार । घमट । गर्व । उ०—(क) जग में बँगी  
कोड़ नहीं जामे शीतल होय । या आपा को डारि दे दया करे  
सब राय ।—कबीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—सोना ।—छोटना ।—जाना ।—मिटना ।

४ होश हवाम । गुध पुध । जैने,—यह दशा देव लोग घपना घापा भल गए ।

मुहा०—आपा सोना = (१) प्रहंकार त्यागना । नम्र होना । निरभिमान होना । उ०—ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय । श्रीरन को प्रीतिन करै आपुहि शीतल होय ।—कबीर (शब्द०) । (२) अपने वो बरवाद करना । अपने को मिटाना । अपनी मत्ता को भूलना । खाक में मिलाना । उ०—रगहि पान मिले जम होई । आपहि योग्य रहा होय नोई ।—जायसी (शब्द०) । (३) हस्ती विगाडना । प्राण तजना । मरना । जैसे,—उसने जरा सी बात पर अपना आपा खो दिया । आपा खालना

[illegible]

प्रापा<sup>३</sup>—मञ्जु स्त्री [हि० आप] बड़ी बहिन (मुनलमानी)।

प्रापा<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं बड़ा भाई (महाराष्ट्र)।

प्रापाक—मञ्जु पुं [म०] १ आँवा। २ मट्ठी [को०]।

प्रापात—सञ्ज्ञा पुं [म०] १ गिराव। पतन। २ किसी घटना का अचानक हो जाना। ३. आरम्भ। ४ अत। ५ पहली भूलक। प्रथम दर्शन (को०)। ६ गिराना। अध पतित करना (को०)। ७ हाथी पकड़ने के लिये उसे गड़्ढे में गिराना (को०)। ८ नरक [को०]।

प्रापातत—क्रि०वि० [सं०] १ अकस्मात्। अचानक। २ अत को। आखिरकार। ३ ऊपर ऊपर से। उ०—सहानुभूति और उदारता आदि—प्रापातत आभासित होते हैं।—सौनी, पृ० ११६।

प्रापातलिका—सञ्ज्ञा पुं [सं०] एक छद जो बँताली छद के विषम चरणों में ६ और सम चरणों में ८ मात्राओं के उपरांत एक भगण और दो गुरु रखने में बनता है। उ०—हर हर भज रात दिना रे, जजालहि तज या जग माही। तन, मन, धन सो जपिहो जो, हरधाम मिलव सशय नाही।

प्रापाद<sup>१</sup>—अव्य० [म०] पर तक [को०]।

यौ०—प्रापादमस्तक=मिर से पर तक।

प्रापाद<sup>२</sup>—मञ्जु पुं १ प्राप्ति। २ पुरस्कार। इनाम। ३ पारिव्रजिक [को०]।

प्रापाधापी—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० आप + धाप] १ अपनी अपनी चिन्ता। अपने अपने काम का ध्यान। अपनी अपनी धुन। जैसे,—आज सब लोग प्रापाधापी में हैं, कोई किसी की सुनता ही नहीं।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

२ खाँचतान। लगडॉट। जैसे,—उन लोगों में खूब प्रापाधापी है।

प्रापान, प्रापानक—सञ्ज्ञा पुं [म०] १ वह गोष्ठी जिसमें शराव पी जाय। शरावियों की गोष्ठी। उ०—रिक्त चपक मा चद्र लुठक-कर है गिरा, रजनी के प्रापानक का अब अंत है।—भरना, पृ० २५। २ शराव पीने का स्थान।

यौ०—प्रापानोत्सव, प्रापानकोत्सव=शराव पीने का समारोह।

प्रापापथी—वि० [हि० आप + सं० पन्थिन्] मनमाने मार्ग पर चलनेवाला। कुमार्गी। कुपथी।

प्रापायत(उ)—वि० [म० आप्यायित=वर्धित] प्रबल। जोरावर।—(टि०)।

प्रापालि—सञ्ज्ञा पुं [म०] जू। किलनी [को०]।

प्रापिजर<sup>१</sup>—वि० [म० आपिञ्जर] कुछ लाल रंग का [को०]।

प्रापिजर<sup>२</sup>—मञ्जु पुं स्वर्ण। सोना [को०]।

प्रापी(उ)—सञ्ज्ञा पुं [म० आप्य] वह नक्षत्र जिसका देवता जन है पूर्वपाद नक्षत्र।

प्रापीड<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं [सं० आपीड] १ सिर पर पहनने की चीज, जैसे,—पगड़ी, सिरगढ़, सिरपेच, वेनी इत्यादि। २ घर के बाहर पाग में निकले हुए बँडेरों का भाग। मँगरीरी। मँगरी। ३ एक प्रकार का विषम वृत्त जिसके प्रथम चरण में ८, दूसरे में १२, तीसरे में १६ और चौथे में २० अक्षर होते हैं। इसमें

समस्त चरणों के समस्त वर्ण लघु होते हैं, केवल अंत के दो वर्ण गुरु होते हैं।

प्रापीड<sup>२</sup>—वि० १ कष्ट देनेवाला। पीडक। २ दवानेवाला [को०]।

प्रापीडन—सञ्ज्ञा पुं [सं० आपीडन] १ दवाना या मनना। २. दुःख देना। कष्ट देना [को०]।

प्रापीत<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं [सं०] सोनामाखी।

प्रापीत<sup>२</sup>—वि० [सं०] सोनामाखी के रंग का। कुछ पीला।

प्रापीन<sup>१</sup>—वि० [म०] १ मोटा। २ मजबूत। बलवान् [को०]।

प्रापीन<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं १ यन या छीमी। २ कुआँ। कूप [को०]।

प्रापु(उ)<sup>१</sup>—सर्व० [हि०] दे० 'आप'। उ०—प्रापु गए अरु तिन्हूँ धालहि जे कहूँ सन्मार्ग प्रतिपानहि।—मानस, ७।१००।

प्रापुन<sup>१</sup>—सर्व० [हि०] दे० 'अपना'।

प्रापुन<sup>२</sup>—सर्व० [म० आत्मन्, प्रा० अप्पण, हि० आप] खुद।

स्वयं। उ०—प्रापुन चढे कदम पर धाई। वदन सकोरि

भौह मोरत हैं, हाँक देत करि मद दुहाई।—मूर०, १०।१४१८।

प्रापुनो(उ)<sup>१</sup>—सर्व० [हि०] दे० 'अपना'।

प्रापुस(उ)<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं [हि०] दे० 'आपस'। उ०—देखि हमें सब आपुस में जो कछू मन भावें सोई कहती हैं।—इतिहास, पृ० २६३।

प्रापूपिक—वि० [सं०] १ बढिया पुआ बनानेवाला। २ पुआ खाने में अभ्यस्त। पुआ खाने का शौकीन। ३ पुआ बेचनेवाला।

प्रापूप्य—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १. आटा। २. वेसन। ३. मँदा। ४. सत्तू [को०]।

प्रापूर—सञ्ज्ञा पुं [सं०] [वि० आपूरित, आपूर्ण] १ वाढ। वाढ का वेग। बहाव। २. जो भरा हो [को०]।

प्रापूरण—सञ्ज्ञा पुं [सं०] पूर्ण होना। पूरी तरह भर जाना [को०]।

प्रापूरना(उ)—क्रि० अ० [सं० आपूरण] भरना।

प्रापूरित, आपूर्ण—वि० [सं०] पूरी तरह भरा हुआ [को०]।

प्रापूर्ति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १ भरना। भरण। २ मनुष्य। पूर्ति [को०]।

प्रापूप—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ रांगा। २ सीमा।

प्रापृच्छा—सञ्ज्ञा स्त्री [म०] जिज्ञासा। औत्सुक्य। २. वातालाप। वातचीत [को०]।

प्रापेक्षिक—वि० [सं०] १ सापेक्ष। अपेक्षा रखनेवाला। २ अब तबन पर रहनेवाला। निर्भर रहनेवाला।

प्रापोविलम—सञ्ज्ञा पुं [सं०] [यू० एपोविलमा] जन्मकुंडनी का तीमरा छठा, नवाँ और बारहवाँ स्थान।

प्रापोजीशन—सञ्ज्ञा पुं [अ० प्रोपोजीशन] पार्लमेंट (समद) या व्यवस्थापिका सभाओं (विधानपरिषद) के सदस्यों का वह समूह या दल जो मन्त्रिमंडल या शासन का विरोधी हो। जैसे,—पार्लमेंट की कामसभा में प्रापोजीशन के लीडर ने हाम मेबर पर वोट आफ मॅसर या निंदात्मक प्रस्ताव उपस्थित किया।

प्राप्त<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ प्राप्त। प्राप्ताय रूप में लब्ध। उ०—इसका आधार 'प्रत्यक्ष' अनुभव नहीं रह गया, 'प्राप्त' शब्द हुआ।—रस०, पृ० १२६।

विशेष—इसका प्रयोग इस अर्थ में प्रायः समस्त पदों में मिलता है, जैसे,—प्राप्तकाम। प्राप्तगर्भा। प्राप्तकाल।



२ कुशल । दक्ष । ३ विषय को ठीक तौर से जानना ।  
साधारणधर्म ।

आप्त<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] १ ऋषि । २ गवार्न का पत्ता । प्रामाणिक  
कथन का कहनेवाला । ३ योगात्मक के अनुसार प्रारम्भ ।  
विशेष—पतञ्जलि के अनुसार प्राप्ति यह है जो प्रकृत तथा प्र-  
कृता के साथ जानकार या प्रष्टा या ज्ञाता हो तथा समाधि-  
के वश में पड़कर भी कभी अन्वयात् न रहे ।

यो०—आप्तप्रमाण । आप्तवाच्य । आप्तवचन । आप्तगम । आप्तोक्ति ।  
३ भाग का लक्ष्य ।

आप्तकाम—वि० [मं०] जिन्हीं नव कामनाएँ पूरी हो गई हों ।  
पूर्णकाम ।

आप्तकारी<sup>१</sup>—वि० [मं० आप्तकारिन्] उचित या शुभ रूप में कार्य  
करनेवाला [को०] ।

आप्तकारी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ विषय प्रभुता । २ प्रभुता [को०] ।

आप्तगर्भा—सज्ञा स्त्री० [मं०] गभवती स्त्री [को०] ।

आप्तवर्ग—सज्ञा पुं० [मं०] प्रजनन समूह [को०] ।

आप्तवाक्य—सज्ञा पुं० [मं०] 'आप्तवाचि' । उ० तब के पुनः प्र-  
वाक्य अवश्य मानते हैंगे ।—आप्त०, पृ० ४० ।

आप्ता—सज्ञा स्त्री० [मं०] गटा [को०] ।

आप्तागम—सज्ञा पुं० [मं०] १ विषयानीय बात जो परंपरा में चली  
आती हो । २ वेद, शास्त्र, स्मृति आदि [को०] ।

आप्ताधीन—वि० [मं०] विषय जनों पर निर्भर । विराज्य अधिकारी  
अधीन रहनेवाला [को०] ।

आप्ति—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ प्राप्ति । लाभ । २ पूरापन [को०] ।  
३ पहुँचना [को०] । ४ नवीन । नवध [को०] । ५ अवि-  
द्या [को०] ।

आप्तोक्ति—सज्ञा स्त्री० [मं०] वह उक्ति जिसे विद्वान् स्वयं प्रकृत विषय  
जाने । परंपरा में प्रामाण्य रूप में माने जायेवाली बात [को०] ।

आप्य<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [मं०] १ पूर्वापद नक्षत्र । २ ज्योतिष की  
आदि [को०] ।

आप्य<sup>२</sup>—वि० १ प्राप्तियोग्य । प्राप्य । २ जन में नवधित [को०] ।

आप्यायन—सज्ञा पुं० [मं०] [वि० आप्यायित] १ युद्ध । युद्ध । २  
वृत्ति । तपण । ३ एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्य  
होना । एक रूप में दूसरे रूप में जाना, जैसे—दूध में घृष्टा  
पदार्थ पढ़ने में दही जमना । ४ मृत् धातु को गृह, चुल्हा,  
घी आदि के समूह में जगाना या जीवित करना ।

- क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

आप्यायित—वि० [मं०] १ वृत्त । मनुष्य । २ आद्र । तर । ३ परिशिष्ट  
बड़ा हुआ । ४ अवस्थांतरप्राप्त । दूसरे रूप में परिवर्तित ।

आप्रच्छन्न—सज्ञा पुं० [मं०] १ विद्या करना या स्वागत करना । २  
मिलने के समय का कुशलप्रश्न [को०] ।

आप्रच्छन्न—वि० [मं०] रहस्य । गुप्त । छिपा हुआ [को०] ।

आप्रपद—सज्ञा पुं० [मं०] [वि० आप्रपदीन] परोक्ष या पहुँचनेवाला  
वस्तु [को०] ।

आप्लव—सज्ञा पुं० [मं०] १ स्नान । २ पानी से स्पर्श करना या  
सीचना [को०] ।

आप्लावणी—सज्ञा स्त्री० आप्लावित] प्रकृत साधन प्रमाण  
पर मूल प्रमाण का प्रमाण ।—आप्लावणी प्रमाण [को०] ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

वि० प्र०—आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

—आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

आप्लावित—वि० [मं०] १ प्रमाणित । २ प्रमाणित । ३ प्रमाणित  
प्रमाण ।

तू इसे व्यर्थ छेडकर अपने सिर आफत लाया । (२) मकट मे पडना । दुख को बुनाना । अपने को भ्रष्ट मे डालना । जैसे—  
तुम तो रोज रोज अपने मिर पर एक न इक आफत लाया करते हो ।

आफताव—सञ्ज्ञा पु० [फा० आफताव] [वि० आफतावी] १ सूर्य ।  
उ०—जाहि कै प्रताप सो मलीन आफताव होत, ताप तजि  
दुजन करत बहु ख्यान को ।—मूपण ग्र०, पृ० १०८ । २ धूप ।  
धाम [को०] ।

आफतावा—सञ्ज्ञा पु० [फा० आफतावह] एक प्रकार का गडुआ  
जिसके पीछे दस्ती और मुँह पर सरपोश या ढक्कन लगा रहता  
है । यह हाथ मुँह धुलाने के काम आता है ।

आफतावी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० आफतावी] पान के आकार का या गोल  
जरदोजी का बना पखा जिसपर सूर्य का चिह्न बना रहता  
है । यह लकड़ी के डंडे के सिरे पर लगाया जाता है और  
राजाओं के साथ या वरान और अग्य यात्राओं मे भंडे के  
साथ चलता है । २ एक प्रकार की आतशवाजी जिसके  
छूटने से दिन की तरह प्रकाश हो जाता है । ३ किसी  
दरवाजे या खिड़की के सामने का छोटा मायवान या ओमारी  
जो धूप के बचाव के लिये लगाई जाय ।

आफतावी<sup>२</sup>—वि० १ गोल । २ सूर्यमवधी ।

यो०—आफतावी गुलकद=वह गुलकद जो धूप मे तैयार की  
जाय ।

आफर—सञ्ज्ञा पु० [स० आफर] प्रदान करना । प्रस्तुत करना । सामने  
रखना । उ०—पर जब कभी कोई आफर करता तो दो एक  
दम लगा लेता था ।—सन्ध्यामी, पृ० ५१ ।

आफरी—अव्य० [फा० आफरी] शावाज । वाह वाह । उ०—कीन्हे  
तै आफताव खलक आफरी । कलमा बिन पडन कहै कुफर  
काफरी ।—घट०, पृ० २०६ ।

आफरीनिश—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० आफरीनिश] उत्पत्ति । मृष्टि [को०] ।

आफियत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० आफियत] कुशल । क्षेम ।

आफिस—सञ्ज्ञा पु० [अ० आफिस] दफ्तर । कार्यालय ।

आफू—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अफीम, तुल० मरा० अफू] अफीम । उ०—  
मीठी कोऊ वस्तु नहि मीठी जाकी चाह । अमली मिसरी छाँडि  
कै आफू खातु सराहि ।—स० सप्तक, पृ० ३२२ ।

आफूक—सञ्ज्ञा पु० [म०] दे० 'आफू' [को०] ।

आवंध—सञ्ज्ञा पु० [म० आवन्ध] १ वधन । बाँधना । २ गाँठ ।  
३ प्रेमवधन । प्रेम । ४ हल के जुए का वधन ( नाधा ) ।  
५ अलंकार की सजावट । अलंकरण [को०] ।

आवधन—सञ्ज्ञा पु० [म० आवन्धन] दे० 'आवध' [को०] ।

आव<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ चमक । तडक भडक । आभा । छटा ।  
द्युति । काति । झलक । पानी । उ०—(क) साधू ऐसा चाहिए  
ज्यो मोती की आव ।—कवीर (शब्द०) । (ख) चहचही चहल  
चहूँघाँ चार चदन की चद्रक चुनीन चौक चौकन चढ़ी है  
आव ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२५ । २ प्रतिष्ठा । महिमा ।  
गुण । उत्कर्ष । उ०—गैवई गाहक कौन केवरा अरु गुताव  
को । हिना पानड़ी बेल कौन बूझिहै आव को ।—व्यास

(शब्द०) । ३ जोभा । रौनक । छवि । उ०—वे न इहाँ  
नागर वढ़ी जिन आदर तो आव । फूल्यो अनफूल्यो भयो  
गवई गाँव गुलाव ।—विहारी २०, दो० ४३८ ।

कि० प्र०—उतरना । —जाना । —विगडना । —बढना । —  
—चढ़ाना । —देना ।

आव<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० १ पानी । जल । २. मदिरा [को०] । ३ किसी वस्तु  
का अर्क [को०] । ४ प्रस्वेद । पसीना [को०] । ५. अश्रु । आंसू  
[को०] । ६ मवाद । पीप [को०] । ७ फून का रस [को०] ।

मुहा०—आव आव करना=पानी माँगना । उ०—काबुल गए  
मुगल हो आए, बोलै बोल पठानी । आव आव करि पूता मर  
गए वरा सिरहाने पाने ।—(शब्द०) ।

यो०—आव व हवा=जलवायु । सरदी गरमी के विचार मे  
देश की प्राकृतिक स्थिति ।

आवकार—सञ्ज्ञा पु० [फा०] मद्य बनाने या बेचनेवाला । कलवार ।  
कलाल ।

आवकारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ वह स्थान जहाँ शराव चुआई  
जाती हो । हौली । शराबखाना । कनवरिया । भट्टी । २. मादक  
वस्तुओं से सबध रखनेवाला सरकारी मुहकमा ।

यो०—आवकारी कानून । आवकारी मुहकमा=एक सरकारी  
विभाग विशेष जिसे अंग्रेजी मे 'एक्साइज' विभाग कहते हैं ।

आवखुर्द—सञ्ज्ञा पु० [फा० आवखुर्द] १ भाग्य । किस्मत । २ भाग ।  
हिस्सा । ३ पेय जल का तालाब [को०] ।

आवखोरा—सञ्ज्ञा पु० [फा० आवखोरह] १ पानी पीने का वरतन ।  
गिलास । २. प्याला । कटोरा ।

आवगीना—सञ्ज्ञा पु० [फा० आवगीनह] १ शीशे का गिलास । २.  
आईना । ३ हीरा ।

आवगीर—सञ्ज्ञा पु० [फा०] जुलाहो की कूँची । । कूँचा ।

आवजोग—सञ्ज्ञा पु० [फा०] गरम पानी के साथ उवाला हुआ  
मुनक्का । लाल मुनक्का । दे० 'अगूर' ।

आवड—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] आवरण । घेरा ।

आवताव—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] तडक भडक । चमक दमक । द्युति ।  
काति । शोभा ।

आवदस्त—सञ्ज्ञा पु० [फा०] १ मलत्याग के पीछे गुदेंद्रिय को धोना ।  
सौंचना । पानी छूना । २ मलत्याग के अनंतर मन धोने का  
जल । हाथपानी ।

कि० प्र०—लेना ।

आवदाना—सञ्ज्ञा पु० [फा०] १ अन्नपानी । दानापानी । अन्नजल ।  
२ जीविका । जैसे,—आवदाना जहाँ जहाँ ले जायगा, वहाँ  
वहाँ जायेंगे ।

मुहा०—आवदाना उठाना=जीविका न रहना । रहायश न होना ।  
मयोग टलना । जैसे,—जब यहाँ से हमारा आवदाना उठ  
जायगा, तब अपना रास्ता लेंगे ।

आवदार<sup>१</sup>—वि० [फा०] चमकीला । कातिमान् । द्युतिमान् । भडकीला ।

आवदार<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० वह आदमी जो तोप मे सुवा और पानी का  
पुचारा देता है । उ०—केतेक जानदार आवदार लावदार  
हो ।—सूदन (शब्द०) ।

विशेष—पुरानी चाल की तोपी में जब एक बार गोला छूट जाता था, तब नल को ठंडा करने के लिये एक छड में लपेटे हुए चीथड़ी को भिगोकर उसपर पुचारा दिया जाता था, जिसमें नल के गरम होने के कारण वह गोला आप ही आप न छूट जाय।

श्रावदारी—सज्ञा स्त्री० [फा०] चमक। जिला। श्रोप। काति। उ०—श्रावदारी से है हर मिसरए तर आवेहयात।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६३।

श्रावदीदा—वि० [फा० श्रावदीवह्] अयुक्त। रोता हुआ [को०]।

श्रावदोज—सज्ञा पुं० [फा० श्रावदोज] पानी के भीतर चलनेवाली नाव या जहाज [को०]। पनहुच्ची।

श्रावद्ध<sup>१</sup>—वि० [स०] १ बंधा हुआ। २ कैद।

श्रावद्ध<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ अलकार। २ बून। जुआ। ३ दृढ या कठोर वधन [को०]।

श्रावनजूल—सज्ञा पुं० [फा० श्राव + श० नुजूल] फोते में पानी उतरने का रोग। श्रववृद्धि।

श्रावनूस—सज्ञा पुं० [फा०] [वि० श्रावनूसी] एक पेड़ जिसे तेंदू कहते हैं और जो जंगलों में होता है।

विशेष—यह पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है, तब इसकी लकड़ी का हीर बहुत काला हो जाता है। यही काली लकड़ी श्रावनूस के नाम से विकती है और बहुत बजनी होती है। श्रावनूस की बहुत सी नुमाइशी चीजें बनती हैं,—जैसे—छड़ी, कलमदान, रूल, छोटे वकस इत्यादि। नगीने में श्रावनूस का काम अच्छा होता है।

यौ०—श्रावनूस का कुदा = अत्यंत काले रंग का मनुष्य।

श्रावनूसी—वि० [फा०] श्रावनूस सा काला। अत्यंत श्याम। गहरा काला। २ श्रावनूस का। श्रावनूस का बना हुआ।

श्रावपाशी—सज्ञा स्त्री० [फा०] पिचाई।

श्रावरवाँ—सज्ञा पुं० [फा०] १ एक प्रकार का वारीक कपड़ा। बहुत महीन मलमल। २ बहता हुआ पानी।

श्रावरू—सज्ञा स्त्री० [फा०] इज्जत। प्रतिष्ठा। वडप्पन। मान।

क्रि० प्र०—उतरना। —उतारना। —खोना। —गंवाना। —जाना। —देना। —पर पानी फिरना। —विगडना। —मे बढ़ा लगना। —रखना। —रहना। —लेना। —होना। दे० 'इज्जत'।

श्रावरूह<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [फा० श्रावरू + हि० ह (प्रत्य०)] दे० 'श्रावरू'। उ०—हमारे सबद विवेक लगहि बूतर में सोटा। श्रावरूह लै भागु, पकरि के, फटिहैं भोटा।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८६।

श्रावला—सज्ञा पुं० [फा०] छाला। फफोला। फुटका।

क्रि० प्र०—पडना।

श्रावलोच<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [फा० श्राव + हि० लोच] सुंदरता का रस।

उ०—हम गुलाब में श्रावलोच धोल्या है।—दक्खिनी०, पृ० ४०५।

श्रावलय—सज्ञा पुं० [स०] श्रवलता। निर्वलता। बलहीनता [को०]।

श्रावशिनास—सज्ञा पुं० [फा० श्रावशिनास] जहाज का वह कार्यकर्ता जिसका काम गहराई जाँचकर गहन बताना होता है।

श्रावहवा—सज्ञा स्त्री० [फा०] मरदा गरमी आदि के विचार में किसी देश की प्राकृतिक स्थिति। जनवायु।

श्रावाद—वि० [फा०] १ बमा हुआ। २ प्रगट। पुष्टपूर्वक। जैसे,—श्रावाद रहों वावा श्रावाद रहो। ३ उपजाऊ। जोतन बोने योग्य (जमीन)। जैसे,—ऊपर जमीन को श्रावाद करने में बहुत खच पड़ता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रहना।

यौ०—श्रावादकार।

श्रावादकार—सज्ञा पुं० [फा०] १ एक प्रकार के शापकार जो जंगल बाटकर श्रावाद हुए हैं। २ एक प्रकार के जमींदार जिनकी मालगुजारी उन्हीं में वसूल की जाती है, नवरदार के द्वारा नहीं।

श्रावादानी—सज्ञा स्त्री० दे० 'श्रावादानी'।

श्रावादी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ उस्ती। २ जनमन्था। महुं मधुमारी। ३ वह भूमि जिसपर गेती होती हो।

श्रावाधा—सज्ञा स्त्री० [म०] १. पीटा। माननिक पीटा। चिता [को०]।

श्रावाल<sup>१</sup>—अव्य० [म०] वालों में लेकर। लड़कों में लेकर। जैसे, श्रावालवृद्ध।

श्रावाल<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० युवती। नायिका। उ०—लगन दना श्रावाल तन उजियारी किमि होति। विना नेह नहि बढत है तिय-तन दीपनि जोति।—स० गप्तक, पृ० ३४६।

श्राविल—वि० [म०] १ पकिल। गदा। २ तोड़नेवाला। मंग बरने-वाला। ३ नाफ करनेवाला [को०]।

श्रावी<sup>१</sup>—वि० [फा०] १ पानीसयवी। पानी वा। २ पानी में रहनेवाला। ३ रंग में हल्का। फीका। उ०—दूध बने गुलाबी मद भरे लखि अरिमुख श्रावी करत।—गोपाल (शब्द०)। ४ पानी के रंग का। हल्का नीला या आम्मानी। ५ जलतटनिवासी।

श्रावी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १. खारी नमक जो नूरों के ताप से पानी उड़ाकर बनता है। लवण। साँभर नमक। २ जल के किनारे रहने-वाली एक चिड़िया जिसकी चोंच और पैर हरे होते हैं और ऊपर के पर भूरे और नीचे के सफेद होते हैं। ३ एक प्रकार का अमूर।

श्रावी<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० वह भूमि जिसमें किसी प्रकार की श्रावपाशी होती हो। (खाकी के विरुद्ध)।

तौ०—श्रावी रोटी = रोटी जिसका आटा केवल पानी से बना हो। श्रावी शोरा।

मुहा०—श्रावी करना = दूध, पानी और लाजवर्द में बने हुए रंग से किसी कपड़े के धान को तर करके उसपर चमक लाना।

श्रावू—सज्ञा पुं० [म० श्रावुंद] श्रावली पर्वत पर का एक स्थान।

श्रावेरवाँ—सज्ञा पुं० [फा०] बहता हुआ पानी या आँसू। उ०—देख, तब सरवर मजलूम बेकस। वहा अँखियाँ सेती श्रावेरवाँ को असबस।—दक्खिनी०, पृ० १६१।

आवेश<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [म० आवेश] दे० 'आवेश'। उ०—आमा के आवेश अगोचर अब कौ लों भटकैहो।—घनानंद, पृ० ५२२।  
आवेह्यात—संज्ञा पुं० [पा० आव+अ० ह्यात] जीवनजाल। अमृत। मुग्धा। उ०—आवेह्यात जाके किमू ने पिया तो क्या। मानिंद बिजय जग मे अकेला जिया तो क्या।—कविता कौ० भा० ४, पृ० ४१।

आवद - वि० [सं०] वादल से उत्पन्न या सवद्ध [को०]।

आव्दिक—वि० [सं०] वायिक। मालाना। मावत्मरिक।

आव्रत<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [म० आव्रत] दे० 'आव्रत'। उ०—विमरै मुधि उनमद गति फिरै। लीलानिधि आव्रत मन धिरै।—घनानंद पृ० २६१।

आभ<sup>१</sup><sup>७</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं० आभा] शोभा। काति। आमा। धृति।  
आभ<sup>२</sup><sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [का० आव वा म० अम्भ प्र० अम्भ] पानी। जल। उ०—जिन्ह हरि जैसा जाणियाँ तिनकूँ तैमा लाम। ओमों प्यान न भाजई जत लग अँमै न गाम।—बवीर ग० पृ० ६।

आभ<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० [म० अम्भ] आकाश। (डि०)।

आभय—संज्ञा पुं० [मं०] १ काया अंगर। २ कुट नाम की ओपधि।

आभरण—संज्ञा पुं० [मं०] गहना। भूषण। आभूषण। जेवर। अलंकार।

विशेष—उनकी गणना १२ है—(१) नूपुर। (२) किकिणी। (३) चूड़ी। (४) अंगूठी। (५) कवरा। (६) विजायठ। (७) हार। (८) कटथी। (९) वेमर। (१०) बिरिया। (११) टीका। (१२) सीम फूल। आभरण के चार भेद हैं—(१) आवेद्य अर्थात् जो छिद्र द्वारा पहने जायें, जैसे—कर्णफून, वाली इत्यादि। (२) वधनीय अर्थात् जो बाँधकर पहनी जायें, जैसे—वाजूवद, पहँची, सीसफून, पुष्पादि। (३) क्षेप्य अर्थात् जिसमें अंग डालकर पहनें, जैसे—कडा, छडा, चूड़ी, मुँदरी इत्यादि। (४) आगोप्य अर्थात् जो किसी अंग में लटकाकर पहने जायें, जैसे—हार, कटथी, चपाकली, सिकरी आदि। २ पोषण। परवरिण।

आभरण<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [मं० आभरण] दे० 'आभरण'। उ०—जटिल जवाहिर आभरण छत्रि के उठत तरंग।—सं० सप्तक, पृ० ३७३।

आभरित—वि० [सं०] १ सजाया हुआ आभूषित। अलंकृत। २ पोषित।

आभा—संज्ञा स्त्री० [मं०] १ चमक। दमक। काति। उ०—थी अग सुरभि के सग तरंगित आभा।—साकेत, पृ० २०४। २ दीप्ति। धृति। प्रभा। उ०—उस घुँघले गृह मे आभा से तामस को छलती थी। कामायनी, पृ० ११८। ३ भूतक। प्रतिविम्ब। छाया। ४ बबून का पेड़।

आभाणक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार के नास्तिक। २ कहावत। मसल। अहाना।

आभात—वि० [मं०] १ चमकता हुआ। २ कातिपूर्ण। ३ दृश्य [को०]।

आभार—संज्ञा पुं० [सं०] १ वोभ। २ गृहस्थी का वोभ। गृहप्रबंध की देखभाल की जिम्मेदारी। उ०—चलन देत आभार मुनि, उही परोमहि नाह। लसी तमासे की दृगनु हाँसी आमुनु माँह।—विहारी २०, दो० ५५१। ३ एक वर्णवृत्त जो आठ

तगण का होता है, जैसे,—बोल्थो तवै शिष्य आभार तेरो गुरु जी न भूलो जपौ आठहूँ जाम। हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम। (शब्द०)। ४. एहसान। उपकार। निहोर।

आभारी—वि० [सं० आभारिन्] एहसान माननेवाला। उपकार माननेवाला। उपकृत। उ०—कितना आभारी हूँ, इतना सवेदनमय हृदय हुआ।—कामायनी, पृ० २२६।

आभाष—संज्ञा पुं० [मं०] १ संबोधित करना। २ परिचय। भूमिका। ३ भाषण। कथन [को०]।

आभाषण—संज्ञा पुं० [मं०] सभाषण। वातचीत करना। २. संबोधन [को०]।

आभास—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रतिविम्ब। छाया। झलक। जैसे,—हिंदू ममाज में वैदिक धर्म का आभास मात्र रह गया है। २ पता। संकेत। जैसे,—उनकी बातों में कुछ आभाम मिलेगा कि वे किमको चाहते हैं।

किं प्र० देना।—पाना।—मिलना।

३ मिथ्या ज्ञान। जैसे,—सर्प मे रस्मी का आभास।

यो०—प्रमाणाभाष। विरोधाभाष। रसाभास। हेत्वाभास।

आभासन—संज्ञा पुं० [मं०] स्पष्ट करना। आवासिन करना। प्रकाशित करना [को०]।

आभास्वर—वि० [मं०] पूर्णरूप से भासित होनेवाला। चमकीला। तेजोमय। उ०—हम आभास्वर देवताओं की तरह प्रीति का भोजन करने हैं। भस्मावृत० पृ० १०५।

आभिचारिक<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ अभिचार सवधी। होना या जादू सवधी [को०]।

आभिचारिक<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० अभिचार सवधी मंत्र [को०]।

आभिजन—संज्ञा पुं० [सं०] कुनीनता [को०]।

आभिजात्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ उच्च कुल में पैदा होने का भाव। कुलीनता। २ श्रेणी। ३ विद्वत्ता। ४ सौंदर्य [को०]।

आभिजित—वि० [सं०] अभिजित मुहूर्त या नक्षत्र में पैदा होनेवाला [को०]।

आभिवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ध्वनि। शब्द। २ नाम। ३ व्याख्या। उल्लेख [को०]।

आभिवानिक<sup>१</sup>—वि० [सं०] कोश सवधी या कोश में प्रयुक्त होनेवाला [को०]।

आभिवानिक<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० कोशकार [को०]।

आभिप्रायिक—वि० [मं०] अभिप्राय सवधी। ऐच्छिक [को०]।

आभिमुख—संज्ञा पुं० [मं०] १ आमने सामने होने की अवस्था या भाव। २ अनुकूल होना [को०]।

आभिरामिक—वि० [सं०] सुंदर। अच्छा [को०]।

आभिरूपक, आभिरूप्य—संज्ञा पुं० [मं०] सुंदरता। सौंदर्य [को०]।

आभिपेचनिक—वि० [मं०] अभिपेचन सवधी। राजतिनक सवधी [को०]।

आभिहारिक<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ उपहार में दिया हुआ। २. छल या बलपूर्वक लिया हुआ [को०]।

आभिहारिक<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ उपहार। भेंट। २. कमरा [को०]।

आभीर—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आभीरी] १ अहीर । ग्वाल । गोप ।  
उ०—आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अध रूप  
जे ।—मानस, ७।१३० ।

विशेष—ऐतिहासिकों के अनुसार भारत की एक वीर और प्रसिद्ध  
जाति जो कुछ लोगों के मत से बाहर से आई थी । इस  
जातिवालों का विशेष ऐतिहासिक महत्व माना जाता है । कहा  
जाता है कि उनकी संस्कृति का प्रभाव भी भारतीय संस्कृति पर  
पड़ा । वे आगे चलकर आर्यों में घुलमिल गए । इनके नाम पर  
आभीरी नाम की एक अपभ्रंश (प्राकृत) भाषा भी थी ।

यौ०—आभीरपल्ली = प्रहीरो का गाँव । ग्वालों की वस्ती ।  
२ एक देश का नाम । ३ एक छंद जिसमें ११ मात्राएँ होती हैं  
और अंत में जगण होता है । जैसे,—यहि विधि श्री  
रघुनाथ । गहे भरत के हाथ । पूजत लोग अपार । गए राज  
दरवार । ४ एक राग जो भैरव राग का पुत्र कहा जाता है ।

आभीरक<sup>१</sup>—वि० [म०] आभीर या अहीर संबंधी [को०] ।

आभीरक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ आभीर या अहीर जाति । २ आभीर या  
अहीर जीति का कोई सदस्य [को०] ।

आभीरनट—सज्ञा पुं० [म०] एक सकर राग जो नट और आभीर से  
मिलकर बनता है ।

आभीरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक सकर रागिनी जो देशकार,  
कल्याण, श्याम और गुर्जरी को मिलाकर बनाई गई है ।  
अवीरी । २ भारतवर्ष की एकप्राचीन भाषा जो ईसवी दूसरी  
या तीसरी शताब्दी में पंजाब में बोली जाती थी । आगे  
चलकर ईसवी छठी शताब्दी में यह भाषा अपभ्रंश के नाम से  
प्रसिद्ध हुई थी । उस समय इस भाषा में साहित्य का भी  
निर्माण होने लगा था ।

आभील—सज्ञा पुं० [सं०] दुख । कष्ट ।

आभूत—वि० [सं०] उत्पन्न । अस्तित्ववाला [को०] ।

आभूषण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आभूषित] गहना । जेवर । आभरण ।  
अलंकार । उ०—उधर धातु गनते, बनते हैं आभूषण ओ  
अस्त्र नए ।—कामायनी, पृ० १८१ ।

आभूषण<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [म० आभूषण] दे० 'आभूषण' ।

आभूत—वि० [सज्ञा] १ अच्छी तरह से भरा हुआ । ३ वैद्या हुआ ।  
३ उत्सादित [को०] ।

आभेरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी [को०] ।

आभोग—सज्ञा [सं०] १ रूप की पूर्णता । रूप में कोई कसर न  
रहना । किसी वस्तु को लक्षित करनेवाली सब बातों की  
विद्यमानता । जैसे—यहाँ आभोग से वस्ती का पास होना जाना  
जाता है । २ किसी पद्य के बीच में कवि के नाम का उल्लेख ।  
३ वरुण का छत्र । ४. सुख आदि का पूरा अनुभव ।

आभोजी—वि० [सं० आभोजिन्] खानेवाला [को०] ।

आम्यतर—वि० [सं० आम्यतर] भीतरी । अंतर का । उ०—काव्य का  
आम्यतर स्वरूप या आत्मा भाव या रस है ।—रम०, पृ० १०५ ।

यौ०—आम्यतर तप = भीतरी तपस्या । यह तपस्या छह प्रकार  
की होती है—(१) प्रायश्चित्त, (२) वैयावृत्ति, (३) स्वाध्याय,  
(४) विनय, (५) श्रुतमार्ग और (६) शुभ ध्यान ।

आम्यंतरप्रातिथ्य—सज्ञा पुं० [म० आम्यन्तर प्रातिथ्य] देश के भीतर  
आया हुआ विदेशी माल ।

आम्यतरकोप—सज्ञा पुं० [सं० आम्यन्तरकोप] मंत्री, पुण्यहित, सेनापति  
युवराज आदि का विद्रोह (को०) ।

आम्यतरिक—वि० [म० आम्यन्तरिक] अंतरंग । भीतरी ।

आम्युदयिक<sup>१</sup>—वि० [म०] आम्युदय संबंधी । मगन या कल्याण संबंधी ।

आम्युदयिक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] एक श्राद्ध जिसे नादीमुख भी कहते हैं ।

विशेष—इस श्राद्ध में दही, घैर और चावल को मिलाकर पिंड  
देते हैं और इसमें माता, दादी और परदादी को पहले तीन  
पिंड देकर तब बाप, दादा, परदादा, मातामह और वृद्ध प्रमाता  
मह आदि को पिंड देते हैं । इनके अतिरिक्त तीनो पक्षों के  
तीस विश्वदेवा होते हैं । उन्हें भी पिंड दिया जाता है । यह  
श्राद्ध पुनर्जन्म, जन्म और विवाह आदि शुभ अवसरों पर  
होता है । इसमें यज्ञकरनेवाले को अपमव्य नहीं होना पड़ता ।

आमजु—वि० [म० आमजु] अच्छा । मनोरम [को०] ।

आमत्रण—सज्ञा पुं० [सं० आमन्त्रण] [आमंत्रित] १ सवोधन ।  
बुलाना । पुकारना । आह्वान । २ निमंत्रण । न्योता । बुलावा ।  
उ०—खुले मसृण भूजमूनों से वह आमत्रण था मिलता ।  
—कामायनी, पृ० १२५ ।

आमत्रयिता—सज्ञा पुं० [सं० आमन्त्रयितृ] वह जो निमंत्रण देता  
है [को०] ।

आमंत्रित—वि० [सं० आमन्त्रित] १ बुलाया हुआ । पुकारा हुआ । २.  
निमंत्रित । न्योता हुआ । उ०—विस्तृत वसुधा की विभुता  
कल्याणसध की जन्मूमि आमंत्रित करती आई थी ।—  
लहर, पृ० ३३ ।  
क्रि० प्र०—करना । —होना ।

आमद्र<sup>१</sup>—वि० [सं० आमन्द्र] थोड़ा गभीर स्वरवाला [को०] ।

आमद्र<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० थोड़ा गभीर स्वर [को०] ।

आम्—अव्य० [सं०] अगीकार, स्वीकृति और निश्चयसूचक शब्द ।  
हाँ । इसका प्रयोग नाटकों की बोलचान में अधिक है ।

आम<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० आम्र] एक बड़ा पेड़ और उसका फल ।  
रसाल ।

विशेष—यह वृक्ष उत्तर पश्चिम प्रांत को छोड़ और सारे भारत वर्ष  
में होता है । हिमालय पर भूटान से कुमाऊँ तक इसके  
जंगली पेड़ मिलते हैं । इसकी पत्तियाँ नवी लवी गहरे हरे  
रंग की होती हैं । फागुन के महीने में इसके पेड़ मजूरियों  
या मीरों से लदे जाते हैं, जिनकी भीठी गध में दिशाएँ  
मर जाती हैं । चैत के आरंभ में मीर झड़ने लग जाते  
हैं और 'सरसई' ( सरसों के बराबर फल ) बैठने लगते  
हैं । जब कच्चे फल घैर के बराबर हो जाते हैं, तब  
वे 'टिकोरे' कहलाते हैं । जब वे पूरे बढ़ जाते हैं और  
उनमें जाली पड़ने लगती है, तब उन्हें 'अँवियाँ' कहते हैं ।  
फल के भीतर एक बहुत कड़ी गुठली होती है जिसके ऊपर  
कुछ रेशेदार गूदा चढ़ा रहता है । कच्चे फल का गूँगा सफेद  
और कड़ा होता है और पक्के फल का गीला और पीला ।  
किसी किसी में तो विलकुल पतला रस निकलता है । अच्छी

जाति के कलमी ग्रामो की गुठली बहुत पतली होती है और उनका गूदा बैदा हुआ, गाढा तथा विना रेशे का होता है। ग्राम का फल खाने में बहुत मीठा होता है। पक्के ग्राम आपाद से भादो तक बहुतायत में मिलते हैं।

केवल बीज से जो ग्राम पैदा किए जाते हैं उन्हें 'बीजू' कहते हैं। ये उत्तरे अच्छे नहीं होते। इसी में अच्छे ग्राम कलम और पैवद लगाकर उत्पन्न किए जाते हैं, जो 'कलमी' कहलाते हैं। पैवद लगाने की यह रीति है कि पहले एक गमले में बीज रखकर पौधा उत्पन्न करते हैं। फिर उस पौधे को किसी अच्छे पेड़ के पाम ले जाते हैं और उसकी डाल उस अच्छे पेड़ की डाल से बाँध देते हैं। जब दोनों की डाल बिलकुल एक होकर मिल जाती है, तब गमले के पौधे को अलग कर लेते हैं। इस प्रक्रिया में गमलेवाले पौधे में उस अच्छे पौधे के गुण आ जाते हैं। दूसरी युक्ति यह है कि अच्छे ग्राम की डाल को वादकर किसी बीजू पौधे के टूटे में ले जाकर मिट्टी के भाव बाँध देते हैं। ग्राम के लिये हट्टी की खाद बहुत उपकारी होती है।

ग्राम के बहुत भेद हैं, जैसे, मालदह, ववडया, दशहरी मक्खेदा, चौना, अलफालो लँगडा, सफेदा, कण्णभोग, रामकेला इत्यादि। मार्तवर्ष में दो स्थान ग्रामो के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं—मालदह (वगान में) और मभगाँव (ववई में)। मालदह ग्राम देखने में बहुत बड़ा होता है, पर स्वाद में फोका होता है। ववडया ग्राम मालदह से छोटा होता है, पर खाने में बहुत मीठा होता है। लँगडा ग्राम देखने में लंबा तथा होता है और सबसे मीठा होता है। बनारस का लँगडा प्रसिद्ध है। खनऊ का सफेदा भी मिठाम में अपने ढंग का एक है। इसका छिनका सफेदी लिए होता है, इसी से इसे सफेदा कहते हैं। जितने कलमी और अच्छे ग्राम हैं, वे सब छुगी में काटकर खाए जाते हैं।

ग्राम के रस को रोधी की तरह जमाकर अक्सर या अमावस बनाने हैं। कच्चे ग्राम का पन्ना लू लगने की अच्छी दवा है। कच्चे ग्रामो की चटनी बनती है तथा अचार और मुरब्बा भी पड़ता है। ग्राम की फाँको को खटाई के लिये मुखाकर रखते हैं जो अमहर के नाम से विकती है। इसी अमहर के चूर को अमचूर कहते हैं।

ग्राम की लकड़ी के तख्ते, किवाड़, चौखट आदि भी बनते हैं, पर उत्तरे मजबूत नहीं होते। इसकी छाल और पत्तियों से एक प्रकार का पीला रंग निकलता है। चौपायो को ग्राम की पत्ती खिलाकर फिर उनके मूत्र को डकटा करके प्योरी रंग बनाते हैं।

पर्या०—चूत। रसाल। अतिसौरभ। सहकार। मार्कंद।

यो०—अमचूर। अमहर।

मुहा०—ग्राम के ग्राम, गुठली के दाम=दोहरा लाभ उठाना।

ग्राम खाने से काम या पेड़ गिनने से=इस वस्तु से अपना काम निकालो इसके विषय में निरर्थक प्रश्न करने से क्या प्रयोजन। वारी में बारह ग्राम सट्टी में षट्ठारह ग्राम=जहाँ बीज महँगी मिलनी चाहिए, वहाँ उस स्थान से भी सस्ती मिलना जहाँ

माधारणत वह बीज सस्ती विकती है। (यह ऐसे अवसर पर कहा जाता है जब कोई किसी वस्तु का इतना कम दाम लगाता है जितने पर वह वस्तु जहाँ पैदा होती है, वहाँ भी नहीं मिल सकती।)

ग्राम<sup>२</sup>—वि० [सं०] कच्चा। अपक्व। असिद्ध। उ०—विगरत मन सन्यास लेत जल नावत ग्राम घरो मो।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४५।

ग्राम<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० [म०] १ खाए हुए अन्न का कच्चा, न पचा हुआ मल जो सफेद और लसीला होता है।

यो०—ग्रामातिमार।

२ वह रोग जिसमें श्राव गिरती है।

यो०—ग्रामज्वर। ग्रामवात।

ग्राम<sup>४</sup>—वि० [ग्र०] १ माधारण। सामान्य। मामूली। जैसे,—ग्राम आदमियों को वहाँ जाने की आदत नहीं है। उ०—ग्राम लोग उनकी सोहवत को अच्छा न समझते थे।—प्रताप० ग्र०, पृ० २७५।

यो०—ग्रामखास=महलों के भीतर का वह भाग जहाँ राजा या वादशाह बैठते हैं। दरबार ग्राम=वह राजसभा जिसमें सब लोग जा सकें। ग्रामफहम=जो सर्वसाधारण की समझ में आवे। उ०—इवारत वही अच्छी कही जायगी जो ग्रामफहम और खासपसद हो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०६।

२ प्रसिद्ध। विख्यात। जैसे,—यह बात अब ग्राम हो गई है, छिपाने से नहीं छिपती।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग वस्तु के लिये होता है, व्यक्ति के लिये नहीं।

ग्रामगधि—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रामगन्धि] विसायेध गंध, जैसे,—चिता के धूँए या कच्चे ग्राम या मछली की।

ग्रामग(पु०)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामार्ग] कुमार्ग। कुराह। उ०—वह पंडित श्री चतुर परेवा। ग्रामग न चलै जानि पति सेवा।—चित्रा०, पृ० १६२।

ग्रामगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रूण [को०]।

ग्रामचूर—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामचूर्ण, हि० अमचूर, ग्रामचूर] दे० 'अमचूर'। उ०—खड़े कीन्ह ग्रामचूर पर। लोग लायची सौ खंडवरा।—जायसी ग्र०, पृ० २४७।

ग्रामज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह ज्वर जो श्राव के कारण हो। २ वह ज्वर जिसमें श्राव गिरे।

ग्रामडा—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम्रात] एक बड़ा पेड़ जिसके फल ग्राम की तरह खट्टे और बड़े वेर के बराबर होते हैं, फलों का आचार पड़ता है। इसकी पत्तियाँ शरीफ की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं।

ग्रामणदूमण—वि० [मं० उन्नम + दुर्मन, प्रा० उन्नमण दुमन, राज० ग्रामण दूमणो] उदास। खिन्न। उद्विग्नमन। उ०—साहिब हैमउ न बोलिया, मुझपूँरीस ज आज। अतरि ग्रामण दूमणा, किसउज हवडउ काज—डोला०, दू० २१६।

ग्रामद—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ अवाई। आगमन। आना।

यो०—ग्रामदरपत=आना जाना। आवागमन।



मुहा०—ग्रामद ग्रामद होना = (१) ग्राम के समय अत्यंत निकट होना । (२) ग्राम की खबर फैलना या धूम होना ।

२ आय । ग्रामदनी । उ०—इन्ने थोड़ी ग्रामद मे अपने घर का प्रवध बहुत अच्छा बांध रक्खा है । —श्रीनिवास प्र०, पृ० ३०४ ।

ग्रामदनी—सज्ञा स्त्री [फा०] १ आय । प्राप्ति । ग्रामेवाला धन । उ०—इन्की ग्रामदनी मामूली नहीं है, तथापि जितनी ग्रामदनी आती है उससे खर्च कम किया जाता है । —श्रीनिवास प्र०, पृ० ३०४ । २ व्यापार की वस्तु जो और देशों से अपने देश में आवे । रफतनी का उलटा ।

ग्रामन—सज्ञा स्त्री [देश०] १ वह भूमि जिसमें साल भर में केवल एक ही फसल उत्पन्न हो । २ बगाल के धान की जाड़े की फसल ।

ग्रामनधूमना (७)—वि० [हि०] दे० 'ग्रामण धूमण' । उ०—यह मन ग्रामनधूमना, मेरी तन छीजत नित जाई । —कवीर प्र०, पृ० १६० ।

ग्रामनस्य—सज्ञा पुं [मं०] ग्रामनापन । दुख । रज ।

ग्रामना (७)—क्रि० अ० [हि०] ग्रामना दे० 'ग्रामना' ।

ग्रामनाय—सज्ञा पुं [पु०] ग्रामनाय दे० 'ग्रामनाय' ।

ग्रामनासामना—सज्ञा पुं [ग्रामना = सामना का अनु० + हि० सामना] मुकाबला । झेंट । जैसे,—इस तरह झगडा न मिटेगा । तुम्हारा उनका ग्रामना सामना हो जाय ।

ग्रामनी—सज्ञा स्त्री [देश०] १ वह भूमि जिसमें जाड़े का धान बोया जाता है । २ जाड़े में बोए जानेवाले धान की खेती ।

ग्रामनेसामने—क्रि० वि० [ग्रामने = सामने का अनु० + हि० सामने] एक दूसरे के समक्ष । एक दूसरे के मुकाबिले । इस प्रकार जिसमें एक का प्रमुख या अग्रभाग दूसरे के मुख या अग्रभाग की ओर हो । इस प्रकार जिसमें एक वस्तु के अग्रभाग से खींची हुई सीधी रेखा पहले पहल दूसरी वस्तु के अग्रभाग ही को स्पर्श करे । जैसे,—सभा के बीच वे दोनों प्रतिद्वंद्वी ग्रामने सामने बैठे । (ख) वे दोनों मकान ग्रामने सामने हैं, सिर्फ एक सड़क बीच में पड़ती है ।

ग्रामय—सज्ञा पुं [सं०] रोग । व्याधि । बीमारी । आरजा ।

ग्रामयावी—वि० [मं०] ग्रामयाविन् १ रोगी । २ मदाग्नि रोग से पीड़ित [क्रि०] ।

ग्रामरक्तातिसार—सज्ञा पुं [मं०] आंव और लहू के साथ दस्त होने का रोग ।

ग्रामरख (७)—सज्ञा पुं [मं०] ग्रामरपं दे० 'ग्रामरपं' ।

ग्रामरखना (७)—क्रि० अ० [मं०] ग्रामरपं = क्रोध, हिं० ग्रामरख + ना (प्रत्य०) ] क्रुद्ध होना । दुखपूर्वक क्रोध करना । उ०—(क) सुनि ग्रामरखि उठे अवनपीति लगे वचन जुनु तीर । —तुलसी (शब्द०) । (ख) तब विदेह पन वदिन प्रगट सुनायो । उठे भूप ग्रामरखि सगुन नहि पायो । —तुलसी (शब्द०) ।

ग्रामरण—क्रि० वि० [मं०] मरणकाल तक । जीवन की अवधि तक । मृत्यु पर्यंत ।

ग्रामरस—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'ग्रामरस' ।

ग्रामरदकी—सज्ञा स्त्री [सं०] १. ग्रामरकी । ग्रामला । आंवला । २. फाल्गुन शुक्ला एकादशी का नाम ।

ग्रामरदन—सज्ञा पुं [सं०] [वि०] ग्रामरदित १. जोर से मलना । २. खूब पीसना या रगड़ना ।

ग्रामरपं—सज्ञा पुं [मं०] १ क्रोध । कोप । गुस्सा । उ०—ग्रामरपं को जगानेवाली शिखा नई दे । —माम० पृ० ५७ । २. असहनशीलता । ३. रस में एक सचारी भाव । दूसरे का अहंकार न सहकर उसको नष्ट करने की इच्छा ।

ग्रामरलक—सज्ञा पुं [सं०] [स्त्री०] अत्पा० ग्रामरकी ] ग्रामला । आंवला । घात्रीफल । उ०—जानहि तीनि काल निज जाना । करतलगत ग्रामरलक नमाना । —मानम, १।३० ।

ग्रामरली—सज्ञा स्त्री [मं०] १ छोटी जाति का आंवला । आंवनी । २. फाल्गुन सुदी एकादशी ।

ग्रामरला—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'आंवला' ।

ग्रामरलेट—सज्ञा पुं [अ०] अड़े का बना नमकीन पदार्थ । उ०—चाय ग्रामरलेट उटाने में ही कितने रूप खर्च कर देते हैं । —सन्ध्यामी, पृ० १७४ ।

ग्रामरवात—सज्ञा पुं [मं०] एक रोग जिसमें आंव गिरती है और जोड़ों में पीडा तथा हाथ पैर में सूजन हो जाती है मुँह भी सूज जाता है और शरीर पीला पड़ जाता है । यह रोग मदाग्निवाले को अजीर्ण में भोजन करने से होता है ।

ग्रामरगूल—सज्ञा पुं [मं०] आंव मुड़ेरे का रोग । आंव के कारण पेट में मगोड होने का रोग ।

ग्रामरश्राद्ध—सज्ञा पुं [मं०] एक प्रकार का श्राद्ध जिसमें शिडदान के बदले में ब्राह्मणों को कच्चा अन्न दिया जाता है ।

ग्रामां—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'आवां' ।

ग्रामाजीर्ण—सज्ञा पुं [मं०] आंव का अजीर्ण । कच्चा अन्नपच । तुलमा । इस रोग में खाया हुआ अन्न ज्यों का त्यों गिरता है ।

ग्रामातिसार—सज्ञा पुं [सं०] आंव के कारण अधिक दस्त का होना । आंव मुरेडे के दस्त ।

ग्रामात्य—सज्ञा पुं [मं०] दे० 'ग्रामात्य' ।

ग्रामादगी—सज्ञा स्त्री [फा०] तैयारी । मुस्तैदी । मौजूदगी । तत्परता ।

ग्रामादा—वि० [फा०] ग्रामादह् ] उद्यत । तत्पर । उतारु । तैयार । सनद्ध । उ०—ग्राज खूदकुशी करने पर ग्रामादा है आकाश । —ठंडा, पृ० ६३ ।

क्रि० प्र०—करना । —होना ।

ग्रामानाह—सज्ञा पुं [मं०] आंव के कारण पेट का फूटना । आंव का अफरा ।

ग्रामान्न—सज्ञा पुं [मं०] कच्चा अन्न । बिना पका अनाज । कोरा अन्न । सूखा अनाज ।

ग्रामाल—सज्ञा पुं [अ०] कर्म । करनी । करतूल ।

यौ०—ग्रामालनामा ।

ग्रामालक—सज्ञा पुं [सं०] आ + माल या देश० ] पहाड के पास की भूमि ।

ग्रामालनामा—सज्ञा पुं [अ०] ग्रामाल + फा० नामा ] वह रजिस्टर जिसमें नौकरी की चालचलन और कार्य करने की योग्यता आदि का विवरण रहता है ।

ग्रामावास्य—वि० [स०] ग्रामावस्था से मन्वित [को०] ।

ग्रामाशय—सज्ञा पुं० [स०] पेट के भीतर की वह यैनी जिसमें भोजन किए हुए पदार्थ इकट्ठे होते और पचते हैं ।

विशेष—सुश्रुत में इसका स्थान नाभि और छाती के बीच में लिखा है, पर वास्तव में इस यैली का चौड़ा हिस्सा छाती के नीचे बाईं ओर होता है और फमश पतना होता हुआ दाहिनी ओर की घुमाव के साथ यकृत के नीचे तक जाता है । यह यैनी झिल्ली और मांस की होती है । इसके ऊपर बहुत से छोटे छोटे वारीक गड्ढे  $\frac{1}{100}$  इंच से  $\frac{3}{100}$  इंच तक के व्यास के होते हैं, जिनमें पाचन रस भरा रहता है । इन यैली में पड़ने पर भोजन बराबर इधर उधर लुढ़का करता है जिसमें उसके हर एक अणु में पाचन रस लगता है । इसी पाचन रस और पित्त आदि की क्रिया से खाए हुए पदार्थ का रूपांतर होता है, जैसे पित्त में मिलकर दूध पेट में जाने ही वही की तरह जम जाता है ।

ग्रामाहृदी—सज्ञा स्त्री० [स० ग्रामहरिद्रा] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ रंग में हृदी की तरह और गंध में कचूर की तरह होती है । यह बंगाल के जंगलों में बहुत जगह आपसे आप होती है । यह चोट पर बहुत फायदा करती है ।

ग्रामिक्षा—सज्ञा स्त्री० [स०] फटा हुआ दूध । छेना । पनीर ।

ग्रामिख—सज्ञा पुं० [स० ग्रामिप] दे० 'ग्रामिप' ।

ग्रामिन—सज्ञा स्त्री० [हि० ग्राम] अवध में ग्राम की एक जाति जिसके फल सफेदे की तरह मीठे पर बहुत छोटे होते हैं ।

ग्रामिर(७)—सज्ञा पुं० [अ०] हाकिम । अधिकारी । उ०—नव नागरितन मुलुक लहि जेवन ग्रामिर जोर । घटि बढि तैं बढि घटि रकम करी और की और ।—विहारी २०, दो० २२० ।

ग्रामिल<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [अ०] १. काम करनेवाला । अनुष्ठान करने वाला । २. कर्तव्यपरायण । ३. अमला । कर्मचारी । ४. हाकिम । अधिकारी । उ०—लिये सकल सुख छीन, विरहा ग्रामिल आडके ।—नट०, पृ० १०१ । ५. ओझा । सयाना । ६. पड़ुचा हुआ फकीर । सिद्ध ।

ग्रामिल<sup>२</sup>(७)—वि० [स० अम्ल] खट्टा । अम्ल । उ०—ग्रहै सो कहुना ग्रहै सो मीठा । ग्रहै मो ग्रामिल ग्रहै सो सीठा ।—जायसी (शब्द०) ।

ग्रामिश्वा—सज्ञा स्त्री० [स०] वह भूमि या राज्य जिसमें राजमत्त और राजद्रोही समान रूप से हों ।

विशेष—कोटिल्य ने कहा है कि राजमत्त जनता के महारे ही ग्रामिश्वा भूमि पर शासन किया जाय ।

ग्रामिप—सज्ञा पुं० [म०] १ मास । गोष्ठ । उ०—उनकी ग्रामिप-भोगी रमना आँखों से कुछ कहती ।—कामायनी, पृ० १११ ।

यौ०—ग्रामिपप्रिय । ग्रामिपाशी । ग्रामिपाहारी । निरामिप ।

२ भोग्य वस्तु । ३ लोभ । लानच । ४ वह वस्तु जिससे लोभ उत्पन्न हो । ५ जैवरी नीव ।

ग्रामिपप्रिय<sup>१</sup>—वि० [स०] जिसे माँस प्यारा हो ।

ग्रामिपप्रिय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० गिद्ध, चील और बाज आदि पक्षी जो माँस पर टूटते हैं ।

ग्रामिपभोगी—वि० [स० ग्रामिप + भोगी] मांसमक्षी । उ०—केतें न रक्त प्रसूननि देख फिरे खग ग्रामिपभोगी भुलाने ।—मिखारी ग्र०, भा० (?) पृ० ८० ।

ग्रामिपाशी—वि० [स० ग्रामिपाशिन] [वि० स्त्री० ग्रामिपाशिनी] मांस भक्षक । मांस खानेवाला ।

ग्रामिपी—सज्ञा स्त्री० [म०] जटामाँसी । बालछड ।

ग्रामी—अव्य० [इव०] एवमस्तु । ऐसा ही हो ।

मुहा०—ग्रामीं ग्रामीं करनेवाले = हाँ में हाँ मिलानेवाले । खुशामदी ।

ग्रामी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि० ग्राम] १ छोटा ग्राम । ग्रँविया । उ०—आईं उधरि प्रीति कलईं सी जैमी खाटी ग्रामी । सूर इते पर अनखनि मरियत ऊँघो पीवत ग्रामी ।—सूर०, १०।४२४७ । २ एक पेड़ जो कद में बहुत छोटा होता है । तुगा । भान ।

विशेष—हर माल शिशिर ऋतु में इसके पत्ते झड़ जाते हैं । इसके हीरे की लकड़ी स्याही लिए हुए पीली तथा बड़ी मजबूत और कड़ी होती है । इसमें सजावट की अनेक चीजें बनाई जाती हैं । हिमालय के पहाड़ी लोग इसकी पतली टहनियों की टोकरियाँ बनाते हैं । शिमला, हजारा तथा कुमाऊँ के पहाड़ों में यह वृक्ष अधिकतर पाया जाता है ।

ग्रामी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [स० ग्राम = कच्चा] जो और गेहूँ की भुनी हुई वाल ।

यौ०—ग्रामी होरा ।

ग्रामीलन—सज्ञा पुं० [स०] १ आँखें बंद करना । २ बंद करना [को०] ।

ग्रामुक्त—वि० [स०] १ मुक्त किया हुआ । छुटकारा पाया हुआ । २ फँका हुआ या त्यागा हुआ । ३ स्वीकार किया हुआ । अपनाया हुआ [को०] ।

ग्रामुख—सज्ञा पुं० [स०] नाटक का एक अंग । प्रस्तावना ।

ग्रामुखता—सज्ञा पुं० [फा० ग्रामोखता] दे० 'ग्रामोखता' । उ०—(क) कुछ दिन कही जाकर ग्रामुखता मुनाइए, तब कही आकर वार्ते बनाइए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६६ । (ख) कोउ ग्रामुखता पढत जोर सों सोर मचावत ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २० ।

ग्रामुचे(७)<sup>१</sup>—सर्व० [मरा० ग्रामुचा = हमारा] हमारे । उ०—तुम्ही ग्रामुचे देव, तुम्ही ग्रामुचे ध्यान ।—दादू० वा०, पृ० १७४ ।

ग्रामुष्मिक—वि० [म०] [वि० स्त्री० ग्रामुष्मिकी] पारलौकिक । परलोक मवधी ।

ग्रामूल—कि० वि० [म०] आरम्भ में अत तक । आरंभ । उ०—देखा विवाह ग्रामूल नवल । तुझ पर शुभ पटा कलश का जल ।—अनामिका, पृ० ३२ ।

ग्रामेज—वि० [फा० ग्रामेज] मित्रा हुआ । मिश्रित ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनाने के लिये होता है, जैसे,—दर्दग्रामेज । पनियामेज (वही वा अफीम) ।

ग्रामेजना—कि० स० [फा० ग्रामेज + हि० ना (प्रत्यय)] मिलाना । सानना । उ०—मीजी अरगजे में भई ना मरगजे सजी ग्रामेजे सुगव सेजें तजी शुभ्र शीत रे ।—देव (शब्द०) ।

श्रीमेजिश—सज्ञा स्त्री० [फा० श्रीमेजिश] मिलावट । मिश्रण । मेल  
श्रीमेर—सज्ञा पुं० [स० श्रम्बर] राजपूताने का एक नगर जो जयपुर  
के पास है और जहाँ पहले राजधानी थी ।

श्रीमोस्ता—सज्ञा पुं० [फा० श्रीमोस्तह] पढ़े हुए को श्रम्यास के लिये  
फिर पढ़ना । उद्धरण ।

क्रि० प्र०—करना ।—पढ़ना ।—फेरना । सुनाना ।

श्रीमोचन—सज्ञा पुं० [स०] वधनहीन करना । मुक्त करना [को०] ।

श्रीमोद—सज्ञा पुं० [स०] [वि० श्रीमोदित, श्रीमोदी] १ आनन्द । हर्ष ।  
खुशी । प्रसन्नता । उ०—हाँ श्रूयता है चित्त के श्रीमोद के  
आवेग मे ।—कानन०, पृ० ५३ । २ दिलबहलाव ।  
तफरीह । ३. दूर से आनेवाली महक । सुगंध । उ०—  
कमल तजि तन रूचत नाही आक कौं श्रीमोद ।—सूर०,  
१०।४५३५ । ४ शतावर ।

यौ०—श्रीमोदप्रमोद । श्रीमोदयात्रा = मन बहलाने की दृष्टि  
से यात्रा ।

श्रीमोदन—सज्ञा पुं० [स०] १ सुगन्धित करना । वासना । २ दे०  
'श्रीमोद' [को०] ।

श्रीमोदप्रमोद—सज्ञा पुं० [म०] भोगविलास । मुख चैन । हँसी खुशी ।  
श्रीमोदित—वि० [स०] १ प्रसन्न । खुश । हर्षित । २ दिल लगा  
हुआ । जी बहला हुआ । ३ सुगन्धित । उ०—प्रौर चदन  
कूर्परादि की सुगंध से धारणेंद्रिय तथा मस्तिष्क श्रीमोदित हो  
जाता है ।—प्रताप ग्र०, पृ० ५१५ ।

श्रीमोदी—वि० [स० श्रीमोदिन्] प्रसन्न रहनेवाला । खुश रहनेवाला ।

श्रीमोष—सज्ञा पुं० [स०] [वि० श्रीमोषी] चुराना । अपहरण ।  
छीनना [को०] ।

श्रीमोषी—सज्ञा पुं० [म० श्रीमोषिन्] तस्कर । चोर [को०] ।

श्रीमन्तात्<sup>१</sup>—वि० [स०] विचारा हुआ । कहा हुआ । २ दुहराया हुआ ।  
पढ़ा हुआ । ३ याद किया हुआ । स्मरण किया हुआ ।  
४ ग्रयोक्त । शास्त्रोक्त । ५ पवित्र प्रथादि के रूप में पर-  
परागत [को०] ।

श्रीमन्तात्<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [स०] अध्ययन [को०] ।

श्रीमन्ताय—सज्ञा पुं० [स०] १ श्रम्यास ।

यौ०—श्रीमन्ताय = वर्णमाला । कुलाम्नाय = कुलपरपरा । कुल  
की रीति ।

२ वेद आदि का पाठ और श्रम्यास । ३. वेद ।

श्रीमम्—सज्ञा पुं० [देश०] नेवले के प्रकार का एक जतु ।

श्रीम्र—सज्ञा पुं० [स०] १ आम का पेड़ । २ आम का फल ।

यौ०—श्रीम्रवन = आम का वन ।

श्रीम्रकूट—सज्ञा पुं० [स०] एक पर्वत जिसे श्रमरकटक कहते हैं ।

श्रीम्रगघक—सज्ञा पुं० [स० श्रीम्रगन्वक] एक पौधा । समष्ठिल [को०] ।

श्रीम्रात्, श्रीम्रातक—सज्ञा पुं० [स०] आमड़े का पेड़ और फल ।

श्रीम्ल<sup>१</sup>—वि० [स०] श्रम्लसवधी [को०] ।

श्रीम्ल<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [स० श्रीम्ल] १ खट्टापन । २ इमली [को०] ।

श्रीम्लवेतस—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'श्रम्लवेतस' ।

श्रीम्लिका—सज्ञा स्त्री० [म०] इमली ।

श्रीयैतीपायैती—सज्ञा स्त्री० [फा० पायताना श्रीयाम म० आदिन +  
पादत] मिरहाना पायताना । उ०—प्रायैती की छडियाँ पायैती  
और पायैती की प्रायैती ।—(शब्द०) ।

श्रीयद—वि०, क्रि० वि० दे० 'श्रीयदा' । उ०—उनके दिन पर पूरा  
श्रसर न हुआ तो, श्रीयद बनी खराबी की मूरत पैदा  
होगी ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३१ ।

श्रीयदा—वि०, क्रि० वि० दे० 'श्रीयदा' ।

श्रीय<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [म०] १ श्रीयदनी । श्रीयद । नाम । प्राप्ति ।  
धनागम ।

यौ०—श्रीयव्यय ।

२ जन्मकुडली में ११ वां स्थान । ३ श्रीयमन । श्रीयाना (को०)

४ अत पुत्रशुद्धक (को०) ।

श्रीय<sup>२</sup> (पु)—सज्ञा स्त्री० [म० श्रीयु] १ 'श्रीयु' । उ०—धन्य ने जे मीन  
से अवधि अबु श्रीय है ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३३७ ।

श्रीय<sup>३</sup>—क्रि० श्र० [म० श्रस् = होना] पुरानी हिंदी के 'श्रीयना'  
या 'श्रीहना' (होना) श्रिवा का वर्तमानकालिक रूप ।  
( शुद्ध शब्द 'श्रीहि' है ) ।

श्रीयत<sup>१</sup>—वि० [म०] विस्तृत । लंबा चौड़ा । दीर्घ । विनाल । उ०—  
सोहत व्याह साज मय साजे । उर श्रीयत उर मूपन  
राजे ।—मानस, १।३२७ ।

श्रीयत<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [श्र०] इजील का वाद्य । कुगन का वाद्य ।  
उ०—पुनि उश्मान मडित बड गुनी । निर्या पुरान जो श्रीयत  
सुनी ।—जायसी ग्र०, पृ० ५ ।

श्रीयतच्छदा—सज्ञा स्त्री० [म०] कदली । केरा [को०] ।

श्रीयतन—सज्ञा पुं० [म०] १ मकान । घर । मंदिर । २ विश्राम-  
स्थान । ठहरने का जगह । ३ देवताओं की वंदना की जगह ।

यौ०—रामपचायतन = जानकी सहित राम, लक्ष्मण, भरत और  
शत्रुघ्न की मूर्ति ।

४ ज्ञान के संचार का स्थान । वे स्थान जिनमें किसी काल तक  
ज्ञान की स्थिति रहती है, जैसे,—इंद्रियाँ और उनके विषय ।

विशेष—बौद्धमतानुसार उनके १२ आयतन हैं—(१) चक्षुषायतन,  
(२) श्रोत्रायतन, (३) घ्राणायतन, (४) जिह्वायतन, (५)  
कायायतन, (६) मनसायतन, (७) रूपायतन, (८) शब्दायतन,  
(९) गन्धायतन, (१०) रसनायतन, (११) श्रोतव्यायतन और  
(१२) धर्मायतन ।

श्रीयतनेत्र—वि० [स०] विशाल नेत्रोवाला । बड़ी बड़ी आँखोवाला  
[को०] ।

श्रीयतलोचन—वि० [स०] दे० 'श्रीयतनेत्र' [को०] ।

श्रीयति—सज्ञा स्त्री० [स०] भावी श्राय । आगे होनेवाली श्रीयदनी  
[को०] ।

श्रीयत्त—वि० [स०] [सज्ञा श्रीयत्ति] अधीन । वशीभूत ।

श्रीयत्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] अधीनता । परवशता ।

श्रीयद—वि० [श्र०] आरोपित । लगाया हुआ । जैसे,—तुम पर कई  
जुर्म श्रायद होते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

प्रायमन—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ लवाई । विस्तार । २ नियमन । ३. तानने या खींचने की क्रिया (जैसे धनुष को) । [को०]

प्रायमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] वह भूमि जो इमाम या मुल्ता को बिना लगान या थोड़े लगान पर दी जाय ।

प्रायवस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पशुओं के चरने के लिये घास का मैदान । २ पशुओं को खिलाने का स्थान [को०] ।

प्रायव्यय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जमाखर्च । आमदनी और खर्च । [को०]

प्रायस<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] [वि० आयसी] लोहा । १ लोहा २ लोहे का कवच । ३ अगर नाम की लकड़ी । ४ रत्न । मणि ।

प्रायस<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० आयसु] १ आदेश । हुक्म । आज्ञा । २ विवाह के अवसर की एक रीति ।

प्रायसी<sup>१</sup>—वि० [मं० आयसीय] लोहे का । आहनी । उ०—मजूपा आयसी कठोरा । बड़ि सृ खला लगी चहुँ ओरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

प्रायसी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कवच । जिरहवस्त्र ।

प्रायसीय—वि० [मं०] लोहे का । लोह का बना हुआ [को०] ।

प्रायसु—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] आज्ञा । हुक्म । उ०—प्रभु अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे ।—तुलसी प्र०, पृ० ३५६ ।

प्राया<sup>१</sup>—क्रि० अ० [हि० आना] आना क्रिया का मूतकालिक रूप ।

प्राया<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [पुर्त०] अंगरेजों के वच्चों को दूध पिलाने और उनकी रक्षा करनेवाली स्त्री । धाय । धात्री ।

प्राया<sup>३</sup>—अव्य० [फा०] क्या । जैसे—आया तुमने यह काम किया है या नहीं ।

प्रायात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु या माल जो व्यापार के लिये विदेश से अपने देश में लाया या भेजा गया हो । आगत । जैसे,—आयात व्यापार ।

प्रायातकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तुओं पर लगानेवाला महसूल ।

प्रायाति—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ आगमन । २. पास आना [को०] ।

प्रायान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आना । २ प्रकृति । स्वभाव । आदत [को०] ।

प्रायाम<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ लवाई । विस्तार । २ नियमित करने की क्रिया । नियमन ।

प्रायाम<sup>२</sup>—क्रि० वि० एक पहर तक ।

प्रायास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] परिश्रम । मेहनत ।

प्रायासक—वि० [मं०] १ परिश्रम करानेवाला । थकानेवाला । २. कष्टकारक [को०] ।

प्रायासी—वि० [मं० प्रायासिन्] १ जिसने परिश्रम किया हो । थका हुआ । २ प्रयाम में लगा हुआ । परिश्रमी [को०] ।

प्रायु शेष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्रायुस् + शेष] आयु का शेष भाग [को०] ।

प्रायु प्लेम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्रायुस् + प्लेम] दीर्घजीवन की प्राप्ति के लिये किया जानेवाला यज्ञविशेष [को०] ।

प्रायु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वय । उम्र । जिंदगी । जीवनकाल ।

क्रि० प्र०—क्षीण होता ।—घटना ।—पूरी होता ।—बढ़ता ।

मुहा०—प्रायु खुटाना=प्रायु कम होना । उ०—जेहि सुभाय चितवहि हित जानी । सो जानै जनु प्रायु खुटानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

प्रायु सिराना=प्रायु का अंत होना । उ०—जो ते कही सो सब हम जानी । पुढरीन की प्रायु मिरानी ।—गोपाल (शब्द०) ।

प्रायुक्त<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ नियुक्त । २ अधिकारप्राप्त । ३ संयुक्त । समिलित । ४ प्राप्त [को०] ।

प्रायुक्त<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ सचिव । मंत्री । २ कारिदा । ३ कोपाधिकारी । ४. कमिश्नर । [को०] ।

प्रायुक्त<sup>३</sup>—वि० [मं०] १ मिश्रित । २ द्रवित । पिघला हुआ [को०] ।

प्रायुत<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आघात पिघला हुआ नवनीत या मक्खन [को०] ।

प्रायुत<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आघात पिघला हुआ नवनीत या मक्खन [को०] ।

प्रायुतिक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दम हजार सिपाहियों का अध्यक्ष ।

प्रायुव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हथियार । शस्त्र । उ०—तिन्हके आयुध तिन सम करि काटे रघुवीर ।—मानस, ३/१३ ।

प्रायुवागार—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] सिनहखाना । प्रायुव्याम ।

प्रायुवजीवी<sup>१</sup>—वि० [मं० प्रायुवजीविन्] शस्त्र या हथियार की बदौलत जीविका उपार्जित करनेवाला [को०] ।

प्रायुवजीवी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० सैनिक । मिपाही [को०] ।

प्रायुवर्मिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जयती वृक्ष [को०] ।

प्रायुघन्यास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों में पूजन के पहले बाह्यशुद्धि का विधान । इनमें चक्र, गदा आदि आयुधों का नाम ले लेकर एक एक अंग का स्पर्श करते हैं ।

प्रायुघपाल—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] शस्त्रागार या सिनहखाने का अधिकारी [को०] ।

प्रायुवभृत्—वि० [मं०] शस्त्रधारी । हथियारबंद [को०] ।

प्रायुवशाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. 'प्रायुधारा' [को०] ।

प्रायुवसहाय—वि० [सं०] जिसका सहायक प्रायुध या हथियार हो । हथियारबंद [को०] ।

प्रायुधारा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शस्त्रागार । सिनहखाना [को०] ।

प्रायुधिक<sup>१</sup>—वि० [सं०] शस्त्र से सवध रखनेवाला [को०] ।

प्रायुधिक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० सैनिक । मिपाही [को०] ।

प्रायुधी—वि० [सं० प्रायुधिन्] १. 'प्रायुधीय' [को०] ।

प्रायुधीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. फौजी मिपाही । २. सैनिक या रंगस्ट देनेवाला गांव [को०] ।

प्रायुधीकाय—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] वह राष्ट्र जिसमें फौज में काम करनेवाले सिपाहियों की संख्या अधिक हो । (की०) ।

प्रायुर्दय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ फलित ज्योतिष में ग्रहों के बलावल के अनुसार आयु का निर्णय । जैसे अष्टम स्थान में बृहस्पति आयु बढ़ाता है और तीसरे, छठे और ११वें स्थान में राहु, मंगल और शनि आदि पापग्रह आयु बढ़ाते हैं । लग्न या चंद्रमा को यदि मारकेश वा अष्टमेश देखता हो, तो आयु क्षीण होती है । २. आयु । जीवनकाल ।

आयुर्वेद—सञ्ज्ञा पु० [मं०] १ घृत । घी । २ दवा । ओषधि [को०] ।

आयुर्वेत्त—सञ्ज्ञा पु० [मं०] आयुष्य । उम्न ।

आयुर्वेद—सञ्ज्ञा पु० [मं०] वह ग्रन्थयोग जिसके अनुसार ज्योतिषी किसी व्यक्ति के विषय में भविष्यकथन करते हैं [को०] ।

आयुर्वेद—सञ्ज्ञा पु० [मं०] [वि० आयुर्वेदीय] आयु सवधी शास्त्र । चिकित्साशास्त्र । वैद्य विद्या ।

विशेष—इस शास्त्र के आदि आचार्य अश्विनीकुमार माने जाते हैं जिन्होंने दध प्रजापति के घट में वक्रे का सिर जोड़ा था । अश्विनीकुमारों से इन्द्र ने यह विद्या प्राप्त की । इन्द्र ने धन्वतरि को मिखाया । काशी के राजा दिवोदास धन्वतरि के अवतार कहे गए हैं । उनसे जाकर सुश्रुत ने आयुर्वेद पढ़ा । अत्रि और भरद्वाज भी इस शास्त्र के प्रवर्तक माने जाते हैं । चरक की संहिता भी प्रसिद्ध है । आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाग माना जाता है । इसके आठ अंग हैं । (१) शल्य (चिरकाड), (२) शालाक्य (मलाई), (३) कायचिकित्सा (ज्वर, अतिमार आदि की चिकित्सा), (४) मूत विद्या (फाड़-फूँक), (५) कौमारतन्त्र (वातचिकित्सा), (६) अगदतन्त्र (विच्छू, माँप आदि के काटने की दवा), (७) रसायन और (८) बाजीकरण । आयुर्वेद शरीर में वात, पित्त, कफ मानकर चलता है । इसी से उनका निदानखंड कुछ संकुचित माना हो गया है । आयुर्वेद के आचार्य ये हैं—अश्विनीकुमार, धन्वतरि, दिवोदास (काशिराज), नकुल, महर्देव, अक्रि, चववन, जनक, युध, जावाल, जाजलि, पैल, करय, अग्रस्त, अत्रि तथा उनके छ शिष्य (अग्निवेश, मेड, जानूकरण, पराशर, मीरपाणि हारीत), सुश्रुत और चरक ।

आयुर्वेदिक—वि० [मं०] १ आयुर्वेद सवधी । २ आयुर्वेद में होने वाला [को०] ।

आयुर्वेदी—सञ्ज्ञा पु० [मं० आयुर्वेदिन्] वैद्य । आयुर्वेदानुसार चिकित्सा करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

आयुर्वेदी—वि० आयुर्वेद सवधी [को०] ।

आयुर्वृद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] आयु की वृद्धि । उम्न बढ़ना [को०] ।

आयुष—सञ्ज्ञा पु० [सं० आयुष] आयु । उ०—तो अयु नामदेव आयुष तें होइ तुम्हहि प्रभु दाता ।—भवतमाला, (श्री०) । पृ० ४२७ ।

आयुषमान—वि० [सं० आयुषमान] दे० 'आयुषमान' । उ०—ताते मरजा विरद भो सोमित सिंह प्रमान । रन-भूतिना सुभौसिला, आयुषमान नुमान ।—मूपण ग्रं०, पृ० ७ ।

आयुष्कर—वि० [सं०] आयुवर्धक । उम्न बढ़ानेवाला [को०] ।

आयुष्काम—वि० [मं०] तन्त्री उम्न की कामना रखनेवाला [को०] ।

आयुष्कौमारभृत्य—सञ्ज्ञा पु० [मं०] बच्चों के रोगों का इलाज ।

कौमार बच्चों की दवा [को०] ।

आयुष्टोम—सञ्ज्ञा पु० [मं०] एक प्रकार का यज्ञ जो आयु की वृद्धि के लिये किया जाता है ।

आयुष्मन्—सञ्ज्ञा पु० [सं०] आयुष्मान् का सर्वोद्यन रूप । उ०—फलपाण हो आयुष्मन्, तुम्हारे युवराज अपने अधिकारों से उदासिन हैं ।—स्कंद० पृ० ६ ।

आयुष्मान्—वि० [सं० आयुष्मत्, आयुष्मान्] [स्त्री० आयुष्मति] १ दीर्घजीवी । चिरजीवी । २ नाटकों में सूत रथी को आयुष्मान् कह कर सर्वोद्यन करते हैं । राजकुमारों को भी इसी शब्द से सर्वोद्यन करते हैं । ३ फलित ज्योतिष के विष्णु भ आदि २७ भेदों में से एक ।

आयुष्य—सञ्ज्ञा पु० [मं०] आयु । उम्न ।

आयुस—सञ्ज्ञा पु० [मं० आयुस्] आयु । उ०—आयुस किकर गए तव पावें ।—कबीर मा०, पृ० ४६२ ।

आयोग—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ साहित्य में विप्रलम्भ के दो पक्षों में से प्रथम जिसमें अविवाहित अवस्था में प्रेम हो जाने पर मिलन न होने से विरह दुःख उठाना पड़ता है । पूर्वराग की अवस्था । २ हल या बैलगाड़ी का जुगा । ३ पुष्पादि भेंट करने की क्रिया । ४ किनारा । तट । ५ नियुक्ति । ६ कार्यविशेष को पूर्ण करना । ७. ताल्लुक । सवध । ८. कमीशन [को०] ।

आयोगव—सञ्ज्ञा पु० [मं०] वैश्य स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न एक वर्गसंकर जाति जिसका काम विशेषकर काठ की कारीगरी है । वडई ।

आयोजक—वि० आयोजन या व्यवस्था करनेवाला । तैयारी करने-काला । प्रवधक [को०] ।

आयोजन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० आयोजना] [वि० आयोजित] १ किसी कार्य में लगाना । नियुक्ति । २. प्रवध । हतजाप । सामग्रीसंपादन । ठीक ठाक । तैयारी । उ०—राका रजनी आयोजनरत लोकोत्तर छविशाली ।—पारिजात, पृ० १० । ३ उद्योग । ४ सामग्री । सामान ।

आयोजित—वि० [सं०] ठीक किया हुआ । तैयार ।

आयोधन—सञ्ज्ञा पु० [मं०] १ युद्ध । लड़ाई । २ रणभूमि । लड़ाई का मैदान ।

आरजित—वि० [सं० आरजित] सम्यक् रूप से रजित । अच्छी तरह रंगा हुआ । उ०—नव नव उपा राग आरजित मनरंजन वनमाली ।—पारिजात, पृ० १० ।

आरम्भ—सञ्ज्ञा पु० [सं० आरम्भ] किसी कार्य की प्रथमावस्था का संपादन । अनुष्ठान । उत्थान । शुरू । समाप्ति का उलटा । उ०—आरम्भ और परिणामों के सवधसूत्र से बुनते हैं ।—कामायनी, पृ० ७५ ।

क्रि० प्र०—करना । जैसे,—उमने कल से पढ़ना आरम्भ किया ।—होना । जैसे,—अभी काम आरम्भ हुए कौ दिन हुए हैं ? ।

२ किसी वस्तु का आदि । उत्थान । शुरू का हिस्सा । जैसे,—हमने यह पुस्तक आरम्भ से अत तक पढ़ी है । ३. उत्पत्ति । आदि । ४ वय (को०) । ५ गर्व (को०) ।

आरम्भक—वि० [मं० आरम्भक] आरम्भ करनेवाला । शीघ्रशेष करनेवाला [को०] ।

आरम्भण—सञ्ज्ञा पु० [आरम्भण] १ आरम्भ करने की क्रिया । आरम्भ होने की क्रिया या भाव । २ अधिकार में करना । ३. मूढ (हैंडिल) [को०] ।

आरम्भत—अव्य० [मं० आरम्भन्तस्] आरम्भ से । मूल से । मूलतः । नए सिरे से [को०] ।

आरम्भना—क्रि० अ० [सं० आरम्भण] 'शुरू' होना ।

प्रारम्भना<sup>३</sup>—क्रि० सं० प्रारंभ या शुरू करना ।

प्रारम्भनिष्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [मं०] १ उपलब्धि । माल की माँग पूरी करना । २. माल पैदा करने या बनाने की लागत । [को०] ।

प्रारम्भवाद—संज्ञा पुं० [सं० प्रारम्भवाद] न्यायशास्त्र का वह मिथ्यात जिनके अनुसार विश्वसृष्टि परमाणुओं के योग से परमात्मा के इच्छानुसार हुई [को०] ।

प्रारम्भशूर—वि० [मं० प्रारम्भशूर] किसी काम को ठान देने में आगे रहनेवाला । उ०—अपने सहयोगियों में हास्यास्पद बन जाएँगे, प्रारम्भशूर कहवाय लेंगे ।—प्रताप ग्र०, पृ० ७१२ ।

प्रारम्भिक—वि० [सं० प्रारम्भिक] प्रारम्भ में प्रवृत्त रखनेवाला । शुरू का [को०] ।

प्रारंभो—वि० [सं० प्रारम्भित] १ प्रारंभ करनेवाला । २ नए और कठिन काम को करने के लिये सर्वप्रथम बढनेवाला ।

प्रार<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [मं०, तुल० अ० 'प्रोर'] १ वह लोहा जो खान से निकाला गया हो, पर माफ न किया गया हो । एक प्रकार का निकृष्ट लोहा । २ पीतल । ३ किनारा । ४ कोना ।

यो०—द्वादशार चक्र । षोडशार चक्र ।

विशेष—डम प्रकार के द्वादश कोण और षोडश कोण के चक्र बनाकर तादृक लोग पूजन करते हैं ।

५ पहिए का आरा । ६ हरतान ।

प्रार<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रार=डक] १ लोहे की पतली कील जो साँटे या पँने में लगी रहती है । अनी । पँनी । २ नर मुँगे के पंजे का काँटा जिससे लड़ते समय वे एक दूसरे को घायल करते हैं । ३ विच्छू, भिड़ और मधुमक्खी आदि का डक । उ०—बीछी प्रार सरिस टेई मूछे सबही की ।—प्रेमघन, भा० १, पृ० ८० ।

प्रार<sup>३</sup>—संज्ञा स्त्री० [मं० प्रार] चमड़ा छेदने का सूआ या टेढ़ा । मुतागी ।

प्रार<sup>४</sup>—संज्ञा पुं० [देश०] १ ईख का रस निकालने का कलछा । पल्लो । ताँवी । २ वर्तन बनाने के सचि में भीतरी भाग के ऊपर मुँह पर रखा हुआ मिट्टी का लोदा जिसे इस तरह बढ़ाते हैं कि वह श्रवण के चारों ओर बढ़ आता है ।

प्रार<sup>५</sup>—संज्ञा पुं० [हिं० अड़] अड़ । जिद । हठ । उ०—(क) श्रौचियाँ करत हैं अति प्रार । सुदर प्रथम पाहुने के मिस मिलि न जाहु दिन चार (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना—जिद करना । उ०—कवहुँक प्रार करत माखन की कवहुँक मेख दिखाइ विनानी ।—सूर (शब्द०) ।  
—ठानना । उ०—हरीचंद बलिहारी प्रार नहि ठानो ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४६८ ।

प्रार<sup>६</sup>—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ तिरस्कार । घृणा ।

क्रि० प्र०—करना । जैसे, भले लोग बदचलनों से प्रार करते हैं ।  
२ अदावत । वैर जैसे,—न जाने वे हमसे क्यों प्रार रखते हैं ।  
३ शर्म । हया । लज्जा । उ०—कुछ तूझीं मिलने से बेजार हो मेरे, वर्ना, दोस्ती नग नहीं, ऐव नहीं, प्रार नहीं ।—शेर०, भा० १, पृ० ११० ।

क्रि० प्र०—प्राना । जैसे,—इतने पर भी उसे प्रार नहीं आनी ।

प्रारक्त<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ ललाई लिए हुए । कुछ लाल । २ लाल ।

प्रारक्त<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चदन ।

प्रारक्तिम—वि० [मं०] थोड़ा लाल । हल्की लाली लिए हुए [को०] ।

प्रारक्ष<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [मं०] १ रक्षा । २ सैन्य । फौज । ३ हाथी के कुंभ का सधिमथल [को०] ।

प्रारक्ष<sup>२</sup>—वि० सुरक्षित । संभालकर रखा हुआ [को०] ।

प्रारक्षक—संज्ञा पुं० [मं०] १ पहरेदार । रक्षक । २ निपाही [को०] ।

प्रारक्षण—संज्ञा पुं० [मं०] निर्धारित करना । निश्चित करना । अं० रिजर्वेशन ।

प्रारक्षिक, प्रारक्षी—संज्ञा पुं० [मं०] दे० 'प्रारक्षक' [को०] ।

प्रारग्वध—संज्ञा पुं० [मं०] प्रमिलतास ।

प्रारचित—वि० [मं०] पूर्ण रूप से सज्जित । अच्छी तरह बनाया हुआ [को०] ।

प्रारचेस्ट्रा—संज्ञा पुं० [अं० प्रारचेस्ट्रा] १ वियेटर आदि में सामने बैठकर बाजा बजानेवालों का दल । २ वियेटर में वह म्यान जहाँ बाजा बजानेवाले एक साथ बैठकर बाजा बजाते हैं । ३ वियेटर में सबसे आगे की सीटें या आसन ।

प्रारज<sup>१</sup>—वि० [मं० प्रार्य] दे० 'प्रार्य' । उ०—फूटहि मो जयचंद बुनायो जयनन मारत घम । जाको फन अब लों भोगत सब प्रारज होत गुलाम ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २३६ ।

प्रारजपथ—संज्ञा पुं० [मं० प्रार्य+पथ] प्रार्यमार्ग । मदावार का मार्ग । उ०—प्रारजपथ मूली भर्त्त विरम परी हितकद ।—घनानंद, पृ० २३८ ।

प्रारजा—संज्ञा पुं० [अं० प्रारिजह] रोग । बीमारी ।

प्रारजू—संज्ञा स्त्री० [फा०] इच्छा । वाछा । जैसे,—(क) मुझे बहुत दिनों से उनके मिलने की प्रारजू है । (ख) बहुत दिनों के बाद मेरी प्रारजू पूरी हुई ।

यो०—प्रारजूमद ।

मुहा०—प्रारजू वर आना=इच्छा पूरी होना । आशा पूरना । जैसे,—बहुत दिनों से आशा थी, आज मेरी प्रारजू वर आई ।  
प्रारजू मिटाना=इच्छा पूरी करना । जैसे,—मैं भी अपनी प्रारजू मिटा लो ।

२ अनुनय । विनय । विनती ।

प्रारजूमद—वि० [फा०] इच्छुक । प्रमिलापी ।

प्रारट<sup>१</sup>—वि० [मं०] बार बार रट लगानेवाला । शोर करने वाला [को०] ।

प्रारट<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० विदूषक [को०] ।

प्रारट्ट—संज्ञा पुं० [मं०] १ पञ्जाब के उत्तर पूर्व का एक भूभाग । २ प्रारट्ट के निवासी । ३ प्रारट्ट जनपद का घोड़ा [को०] ।

प्रारण<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अहरन' । २—जिन्व प्रारण लोहा पाहीजै तपै भखै भाखाय ।—प्राण०, पृ० २११ ।

प्रारणि—संज्ञा पुं० [सं०] जलावर्त । भँवर [को०] ।

प्रारण्य<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] शुकदेव मुनि [को०] ।

प्रारण्य<sup>२</sup>—वि० [मं०] १ अरणि नामक यज्ञ में उत्पन्न या नवद्व [को०] ।

प्रारण्य<sup>३</sup>—वि० [मं०] १ जगली । वर्तना । २ जान का । घन का ।

यो०—प्रारण्य कुक्कुड । प्रारण्य गान । प्रारण्य पशु ।



आरण्य<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ दे० 'अरण्य' । २ जगली पशु । ३ गोमय । गोवर । ४ मेघ, वृष सिंह राशियाँ (ज्योतिष) । ५ बिना बोए उत्पन्न होनेवाला एक अन्न [को०] ।

यो०—आरण्यकाण्ड=रामायण का तृतीय काण्ड । आरण्य कुबकुट = बनमुर्गा । आरण्य गान=सामवाद के चार गानों में एक आरण्यपर्व=महाभारत का एक पर्व । आरण्यपशु=जगली पशु । आरण्यमुग्धा=एक प्रकार की मूंग [को०] । आरण्य राशि=(१) ज्योतिष में सिंह आदि राशियाँ । (२) कर्कराशि का पूर्वार्ध भाग ।

आरण्यक<sup>१</sup>—वि० [सं०] [स्त्री० आरण्यकी] १ जगल का । बन का । जगली । वनेला ।

आरण्यक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० वेदों की शाखा का वह भाग जिसमें वानप्रस्थों के कृत्य का विवरण और उनके लिये उपयोगी आदेश है ।

विशेष—वैदिक वाङ्मय में संहिताओं के अनंतर के ब्राह्मण ग्रंथों का उत्तरवर्ती वाङ्मय भाग जो उपनिषदों का पूर्ववर्ती है ।

यो०—आरण्यक संवाद=आरण्यक ग्रंथों में प्रतिपादित मिथ्या ।

उ०—सुनाने आरण्यक संवाद तथागत आया तेरे द्वार । —लहर, पृ० १२ ।

आरत<sup>१</sup>—वि० [सं० आरति] दे० 'आरति' । उ०—गीधराज सुनि आरत वानी । रघुकुल तिलक नारि-पहिचानी ।—मानस, ३।२३ ।

आरतहर<sup>१</sup>—वि० [सं० आरतिहर] दुःख दूर करनेवाला । कष्टहारी । उ०—ताथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो । मो समान आरत नहि आरतहर तोसो । तुलसी ग्रं०, पृ० ५०० ।

आरति<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ विरक्ति । विराग । स्थगन । रोक । २ दे० 'आरति' । ३ हठ । जिद । उ०—साँझहि ते अति ही विरु-भान्यौ चंदहि देखि करी अति आरति ।—सूर०, १०।२०० । ४ अनीति । उ०—नदधरनि ब्रजनारि विचारति । ब्रजहि वसत सब जनम सिरानो ऐसी करि न आरति ।—सूर०, १०।४२६ ।

आरति<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आरति] मनोरथ । इच्छा । उ०—मोको आत्मनिवेदन करवाइए और मेरी आरति पूरन करिए ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १६ ।

आरती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आरात्रिक] १ किमी मूर्ति के ऊपर दीपक को घुमाना । नीराजन । दीप । उ०—चढ़ी अटारिन्ह देखहि नारी । लिए आरती मगल थारी ।—मानस, १।३०१ ।

विशेष—इसका विधान यह है कि चार बार चरण, दो बार नाभि, एक बार मुँह के पास तथा सात बार सर्वांग के ऊपर घुमाते हैं । यह दीपक या तो घी से अथवा कपूर रखकर जलाया जाता है । वक्तियों की सख्या एक से कई सौ तक की होती है । विवाह में वर और पूजा में आचार्य आदि की भी आरती की जाती है ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—करना ।

मुहा०—आरती लेना=देवता की आरती हो चुकने पर उपस्थित लोगों का उस दीपक पर हाथ फेरकर माथे लगाना ।

२ वह पात्र जिसमें घी की वत्ती रखकर आरती की जाती है ।

३ वह स्तोत्र जो आरती के समय गाया या पढ़ा जाता है ।

आरति<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आरति] दे० 'आरति' । उ०—श्री कंवाई जी का स्मरण करि कै बोहोत आरति सो विनती करी ।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० १०७ ।

आरथ—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] एक वैन या एक घोड़े से चलेवाना रथ [को०] ।

आरन<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अरण्य] जंगल । वन । उ०—कीन्हेसि साउज आरन रहई । कीन्हेमि पखि उडमि जहँ चहई ।—जायसी ग्रं०, पृ० १ ।

आरनाल, आरनालक—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] १ कच्चे गेहूँ का खीचा हुआ अर्क । २ कांजी ।

आरपार<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आर=किनारा+पार=दूसरा किनारा] यह किनारा और वह किनारा । यह छोर और वह छोर । अधिक । जैसे,—नाव से उमी नदी का आरपार नहीं दिखाई देता ।

विशेष—यह शब्द समाहार द्वंद्व समास है, उसमें इसके साथ एक वचन क्रिया का ही प्रयोग होता है ।

आरपार<sup>२</sup>—क्रि० वि० [सं०] एक छोर से दूसरे छोर तक । एक किनारे से दूसरे किनारे तक । जैसे,—(क) उन दीवार में आरपार छेद हो गया है । (ख) आरपार जाने में कितनी देर लगेगी ?

आरफनेज—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ अनाथ बच्चों की रक्षा या पालन होता है । अनाथालय । यतीमघाना । जैसे,—हिंदू आरफनेज ।

आरवल<sup>१</sup>, आरवला<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'प्रागुर्वल' ।

आरव्य—वि० [सं०] आरम किया हुआ ।

आरव्यि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शुरुआत । आरम [को०] ।

आरभट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ माहमी व्यक्ति । २ माहम । बहादुरी । ३ विश्वास [को०] ।

आरभटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रोधादिक उग्र भावों की चेष्टा ।

उ०—भूठी मन भूठी मव काया, भूठी आरभटी । अरु भूठन को बदन निहारत मारत फिगत नटी ।—मृ० (गढर०) । २ एक प्रकार की नृत्यशैली [को०] । ३ नाटक में एक वृत्ति का नाम

विशेष—इस वृत्ति में यमक का प्रयोग अधिक होता है । इसके द्वारा माया, इद्रजाल, संग्राम, क्रोध, आघात प्रतिघात और वानादि विविध रौद्र, भयानक और वीर्यपूर्ण दृश्य दिखाए जाते हैं । इसके चार भेद हैं—वस्तुस्थान, सफाई, सक्षिप्ति और अवगातन (१) वस्तुस्थान=ऐसी वस्तुओं का प्रदर्शन या वर्णन जिसमें रौद्रादि रसों की सूचना हो । जैसे,—सियारों का बोचना और शमशान आदि । (२) सफाई=दो आदमियों का झगड़पट आकर मिट जाना । (३) सक्षिप्ति=क्रोधादि उग्र भावों की निवृत्ति । जैसे,—रामचंद्र जी की बानों को मुनकर परशुराम के क्रोध की निवृत्ति । (४) अवगातन=प्रवेश से निष्क्रमण तक रौद्रादि भावों का अविच्छिन्न प्रदर्शन ।

आरमण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हर्ष या आनंद मनाना । २ हर्ष । खुशी । ३ यौनसुख । ४ विश्रामस्थान । विराम [को०] ।

आरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शब्द । आवाज । २ आहट । उ०—धुरधूरात हय आरव पाए । चकित वि लोकन कान उठाए ।—तुलसी (शब्द०) ।

आरपी<sup>१</sup>—वि० [सं० आर्य] आर्य । ऋषियों की । उ०—भले भूप कहत भले भदेश नूपन सो लोक लखि बोलिए पुनीत रीति आरपी ।—तुलसी (शब्द०) ।

भारस<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० आलस] दे० 'आलस्य' । उ०—भोर खरी सारसमुखी भारस भरी जैभाय ।—सं० सप्तक, पृ० २५३ ।

भारस<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरमी' ।

भारसा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० रस्ता] १ रस्ता । जैसे,—वोए का भारसा = वह रस्ता जिसमे लगड का बोधा बँधा रहता है । २ रस्से की मुट्ठी जिसमे कोई चीज बाँधकर लटकाई या उठाई जाय । गाँठ ।

भारग्यो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आदर्श] १ शीशा । आईना । दर्पण । उ०—(क) कहा कुमुद, कह कौमुदी, कितक भारसी जोति । जाकी उजराई लखे, आखि ऊजरी होति ।—विहारी २०, दो० ५१२ । २ एक गहना जिमे म्त्रियाँ दाहिने हाथ के अँगूठे मे पहनती हैं । यह एक प्रकार का छल्ला है जिसके ऊपर एक कटोरी होती है जिसमे शीशा जडा होता है । उ०—कर मुँदरी की भारसी, प्रनिविधित प्यो पाइ । पीठि दिये निधरक लखै, इकटक डीठि लगाइ ।—विहारी २०, दो० ६११ ।

भारस्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रसहीनता । अरसता । शुष्कता [को०] ।

भारा<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० भारी] १ एक लोहे की दाँगीदार पटरी जिससे रेत कर लकड़ी चीरी जाती है । इसके दोनों ओर लकड़ी के दस्ते लगे रहते हैं । उ०—यह मन बाको दीजिए जो साँचा सेवक होय । सिर ऊपर आरा सहै, तबहुँ न दूजा सोय ।—कवीर (शब्द०) । २ चमड़ा सीने का टेकुआ या सूजा । सुतारी ।

यौ०—आराकश ।

भारा<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आर] लकड़ी की चौड़ी पटरी जो पहिए की गडारी और पुट्टी के बीच जडी रहती है । एक पहिए मे ऐसी दो पटरियाँ होती हैं, बाकी और जो पतली पतली चार पटरियाँ जडी जाती हैं, उन्हें गज कहते हैं ।

भारा<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० आडा] लकी की या पत्थर की पटरी जिसे दीवार पर रखकर उसके ऊपर घोड़िया या टोटा बँठाते हैं । यह इसलिये रखा जाता है कि घोड़िया आदि एक सीध मे रहे ऊपर नीचे न हो । दीवारदासा । दासा ।

भारा<sup>४</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आला' ।

भाराइश—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० आरास्ता] १ सजावट । २. कागज के फूल पत्ते जो बरात मे द्वारपूजा के समय साथ ले जाते हैं । फुलवाडी ।

भाराइशी—वि० [फा०] आराइश या साज सज्जा के काम आने वाला [को०] ।

भाराकश—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० आरा + फा० कश] आरा चलानेवाला आदमी ।

भाराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अराजकता । शासक के अभाव मे होनेवाली अशांति [को०] ।

भाराजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० आराजी] १ भूमि । जमीन । २. खेत ।

भाराण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० रण] युद्ध । संग्राम ।—(हिं०) [को०] ।

भारात(उ)—अव्य० [सं०] १ निकट । पास ।

भाराति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शत्रु । वैरी । उ०—सावधान होइ धाए जानि

सकल आराति । लागे वरपन राम पर अस्य शस्य बहू भाँति ।—मानस, ३।१३ ।

आराती(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आराति] शत्रु । आराति । उ०—पुनि उठि भगदहिँ सुर आराती । टरै न कीम चरन एहि भाँति ।—मानस, ६।३३ ।

आरात्—क्रि० वि० [सं०] १ पास । आसपास । २ दूर । दूरस्थ स्थान पर । ३ तुरंत । चटपट [को०] ।

आराधक—वि० [सं०] [स्त्री० आराधिका] उपासक । पूजा करने वाला ।

आराधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आराधक, आराधनीय, आराधित] १ सेवा । पूजा । उपासना । उ०—आराधन का दृढ आराधन से दो उत्तर ।—अनामिका, पृ० १५६ । २ तोपण । तर्पण । प्रसन्न करना । ३ पकाना । राँधना [को०] । ४ अर्जन [को०] ।

आराधना<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पूजा । उपासना ।

आराधना<sup>२</sup>(उ)—क्रि० सं० [सं० आराध = आ + √राध् + हिं० ना (प्रत्य०)] १ उपासना करना । पूजना । उ०—केहि आराधहु का तुम चहह । हम सन सत्य मर्म सब कहह ।—तुलसी (शब्द०) । २ सतुष्ट करना । प्रसन्न करना । उ०—इच्छिन फन विनु शिव आराधैं । लहइ न कोटि योग जन साधैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

आराधनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] उपासना । सेवा । पूजा । [को०] ।

आराधनीय—वि० [सं०] आराधना के योग्य । पूजनीय ।

आराधयिता—वि० [सं० आराधयितृ] आराधना करनेवाला [को०]

आराधित—वि० [सं०] जिसकी उपासना हुई हो । पूजित ।

आराध्य—वि० [सं०] पूज्य । पूजनीय ।

आराम<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वाग । उपवन । फुनवारी । उ०—परम रम्य आराम यह जो रामहिँ मुख देत ।—तुलसी (शब्द०) ।

आराम<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १ चैन । सुख । जैसे,—ममार मे कौन नही आराम चाहता ।

क्रि० प्र०—करना ।—चाहना ।—देना ।—पहुँचना ।—पाना ।—लेना ।—मिलना ।

२. चगापन । सेहत । स्वास्थ्य । जैसे,—जब से यह दवा दी गई है, तब से कुछ आराम है ।

क्रि० प्र०—करना ।—चाहना ।—देना ।—पाना ।—होना ।

३. विश्राम । थकावट मिटाना । दम लेना । जैसे,—बहुत चले, जरा आराम तो लेने दो ।

क्रि० प्र०—करना ।—पाना ।—लेना ।

यौ०—आरामगाह । आरामतलव । आरामदान । आरामपाई ।

मुहा०—आराम करना = सोना । जैसे,—उन्हे आराम करने दो, बहुत जागे हैं । आराम मे होना = सोना । जैसे,—प्रभी आराम मे हैं, इस वक्त जगाना अच्छा नहीं । आराम लेना = विश्राम करना । आराम से = फुरमत्त मे । धीरे धीरे । बेखटके । जैसे,—(क) कोई जल्दी पडी है, ठहरो आराम से लिखा जायगा । (ख) इस वक्त रखो, घर पर आराम से बैठकर देखेंगे । आराम से गुजरना = चैन से दिन कटना ।

आराम<sup>१</sup>—वि० [फा०] चगा। तदुक्त। जैसे,—उम वैद्य ने उसे बात की बात में आराम कर दिया।

क्रि० प्र०—करना। होना।

आरामकुरमी—मज्ञा स्त्री [फा०] एक प्रकार की लवी कुरसी जिसमें पीछे की ओर कुछ लवोनरा डामना होता है और दोनों ओर हाथ या पैर रखने के लिये लवी पटरियाँ लगी होती हैं। इस पर आदमी बैठा हुआ आराम से लेट भी सकता है।

आरामगाह—मज्ञा स्त्री [फा०] सोने की जगह। शयनागार।

आरामतलव—वि० [फा०] [सज्ञा आरामतलवी] १ मुख चाहने-वाला। मुकुमार। जैसे,—काम न करने में अमीर लोग आराम-तलव हो जाते हैं। २ मुक्त। आलसी। निकम्मा। जैसे,—वह इतना आरामतलव हो गया है कि कही जाता आता भी नहीं।

आरामदान—मज्ञा पुं० [फा० आराम + दान] १ पानदान। २ सितारदान।

आरामपाई—मज्ञा स्त्री [फा० आराम + हि० पाय] एक प्रकार की जूनी जिसे पहलेपहल लखनऊवालों ने बनाया था।

आरामशीतला—मज्ञा स्त्री [म०] आनदी। गद्याढ्या। महानदा। रामशीतला।

विशेष—यह उपवन में रहने के कारण शीतल होती है। राजनिष्ठ में इसे तिबत, शीतल, पित्तहारिणी, दाह और शोथ को दूर करनेवाली कहा गया है।

आरामाधिपति—सज्ञा पुं० [म०] वगोचो का अधिकारी।

विशेष—शुक्रनीति के अनुसार आरामाधिपति को फल फूल के पीछे बोलने में निपुण, खाद तथा पानी देने का समय जाननेवाला, जड़ी वृष्टियों को पहचाननेवाला होना चाहिए।

आरामिक—सज्ञा पुं० [स०] माली [क्रि०]।

आरालिक—वि० [म०] [वि० स्त्री आरालिका] रसोईदार। पाचक।

आराव—मज्ञा पुं० [म०] दे० 'आरव' [क्रि०]।

आरास्ता—वि० [फा० आरास्तह] सजा हुआ। सुमज्जित। उ०—चमकृत चीजों में वह आरास्ता और पैवस्ता है। प्रेमचन, भा० २, पृ० २३४।

क्रि० प्र०—करना। होना।

आराही<sup>१</sup>—वि० [सं० आराधक, प्रा० आराहण, अप० आराही] उपासक। आराधना करनेवाला। उ०—सुर जाकी पार न पावें वोडि मुनी जन ध्याई। दादू रेतेन ताकी है रे जाकी सकुन नोक आराही।—दादू० वा०, पृ० ५७३।

आरि<sup>१</sup>—मज्ञा स्त्री [हि० अरि] हठ। टेक। जिद। उ०—(क) द्वार हों भोर ही को आजु। रटत रिहिहा, आरि और न, की-ही ते काजु।—तुलसी अ०, पृ० ५६८। (ख) तब मकोप भगवान हृदि तोटन चक्र प्रहारि। घर ते सोम घरा, घरा, करि नीन्ही श्रुति आरि।—गोपाल (शब्द०)।

आरिज<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [अ० आरिज] कपोल। गाल। उ०—जगा दे मोनए पारिज ने गर वह आग गुलशन में।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० ४०।

आरिज<sup>२</sup>—वि० [अ०] १ अडचन डालनेवाला। बाधक। २ होने या लग जानेवाला (रोग आदि), [क्रि०]।

आरिजा<sup>१</sup>—मज्ञा पुं० [अ० पारिजह] १ रोग। बीमारी। २. कष्ट [क्रि०]।

आरिजी—वि० [अ० आरिजी] १. क्षणस्थायी। नश्वर। २. आकस्मिक। उ०—उसके खसार देख जीता हूँ। आरिजी मेरी जिवगानी है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २६।

आरित्रिक—वि० [म०] अरित्र से मवधित। नाव के डोंड से मवद्ध [क्रि०]

आरिफ—सज्ञा पुं० [अ० आरिफ] साधु। ज्ञानी। उ०—आरिफ जो हैं उनके हैं वस रज व राहत एक 'रसा'। जैसे वह गुजरी है यह भी किसी तरह निभ जाएगी।—भारतेंदु अ०, भा० ३, पृ० ८५६।

आरिया—मज्ञा स्त्री [स० आरुक् = ककडी] एक फल जो ककडी के समान होता है। यह भादो ववार के महीने में होती है और बहुत ठंडी होती है। यह एक वित्ता लवी और अँगूठे के बराबर मोटी होती है।

आरी<sup>१</sup>—मज्ञा स्त्री [हि० आरा का अल्पा०] १ लकड़ी चीरने का बडई का एक औजार।

विशेष—यह लोहे की एक दाँतीदार पटरी होती है जिसमें एक ओर काठ का दस्ता या मूठ लगी रहती है। मूठ की ओर यह पटरी चौड़ी और आगे की ओर पतली होती जाती है। इससे रेतकर लकड़ी चीरते हैं। हाथीदाँत आदि चीरने के लिये जो आरी होती है वह बहुत छोटी होती है।

२ लोहे की एक कील जो बेल हाँकने के पैसे की नोक में लगी रहती है। ३. जूता सीने का सूजा। मुतारी।

आरी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री [म० आर = किनारा] ओर। तरफ। उ०—विछवाए पौरि लो विछौना जरीबाफन के, खिचवाए, चाँदनी सुगध मव आरी में।—रघुनाथ (शब्द०)। २. कोर। अवंठ। वारी।

आरी<sup>३</sup>—वि० [अ०] तग। हैरान। आजिज। जैसे,—हम तो तुम्हारी चाल से आरी आ गए हैं।

क्रि० प्र०—घाना।

आरी<sup>४</sup>—सज्ञा स्त्री [देश०] १ वज्र की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसे जालवर्चुरक या स्थूलकटक भी कहते हैं। २ दुर्गंधघर। बबुरी।

आरु<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] १ ककट। केकडा। २ शूकर। ३ वृक्ष विशेष। ४ मेढक [क्रि०]।

आरु<sup>२</sup>—मज्ञा स्त्री घडा। जलपात्र [क्रि०]।

आरुक्<sup>१</sup>—मज्ञा पुं० [स०] औपध के काम आनेवाला एक प्रकार का पौधा जो हिमालय पर होता है। यह शीतलता प्रदान करता है [क्रि०]।

आरुक<sup>२</sup>—वि० हानिकारक [क्रि०]।

आरुण—वि० [म०] अरुण से संबंध रखनेवाला [क्रि०]।

आरुणि—सज्ञा पुं० [म०] १ अरुण के पुत्र। २. सूर्य के पुत्र यम, शनैश्चर आदि। ३ उद्दालक ऋषि [क्रि०]।

आरण्येय—मज्ञा पुं० [स०] आरुणि ऋषि के पुत्र। श्वेतकेतु [क्रि०]

आरुण्य—सञ्ज्ञा पुं० [म०] अरुणता । लनाई [को०] ।  
 आरुण्यकर—सञ्ज्ञा पुं० [स०] फलविशेष । भल्लातक [को०] ।  
 आरु<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] पिगल वर्ण । पीला रंग [को०] ।  
 आरु<sup>२</sup>—वि० पिगल वर्णवाला । भूरे और लाल रंग से मिश्रित [को०] ।  
 आरुहक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ एक जडी जो हिमालय पर से आती है ।  
 आढ । २ आलूबुखारा ।  
 आरुह—वि० [स० आरुह] १ चढा हुआ । सवार । उ०—खर  
 आरुह नगन दसमीसा । मुडित सिर खडित भुज वीसा ।—  
 मानस, ५।११ । २. दृढ । स्थिर । जैसे,—हम तो अपनी बात  
 पर आरुह हैं ।  
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।  
 यौ०—आरुहयौवना । अश्वारुह । गजारुह । विहासमारुह ।  
 आरुहयौवना—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आरुहयौवना] मध्या नायिका के चार  
 भेदों में से एक । वह स्त्री जिसे पतिप्रसंग अच्छा लगे ।  
 आरुह—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आरुह] १. कढाव । चढाई । २. आरुह  
 होने का भाव । ३. तत्परता [को०] ।  
 आरेक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. घटाना । २. खाली करना । ३. मदेह ।  
 ४. आधिक्य [को०] ।  
 आरेचन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. सकोचन । २. खाली करना या कराना ।  
 ३. वहिष्करण । बाहर करना या निकालना [को०] ।  
 आरेचित—वि० [स०] १. सकुचित । २. रिक्त । ३. घटाया  
 हुआ [को०] ।  
 आरेवत—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अमिलताम । आरग्वध ।  
 आरेस—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] डाह । ईर्ष्या । उ०—कवहुं न किएउ  
 सवति आरेसू । प्रीति प्रनीति जान सव देसू ।—मानस, २।४६ ।  
 आरो—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आरव' ।  
 आरोग<sup>१</sup>—वि० [स० आरोग्य] दे० 'आरोग्य' ।  
 आरोगना—क्रि० स० [स० आ + रोग (√रुज् = हिंसा)] खाना ।  
 उ०—(क) शवरी परम भक्त रघुवर की चरण कमल की  
 दासी । तकि फन आरोगे रघुपति पूरण भक्ति प्रकामी ।—  
 सूर (शब्द०) । (ख) आरोगन हैं श्रीगोपाल । पटरस सौं ज  
 वनाइ जसोदा, रचिकै कचन थाल ।—सूर०, १०।१०१ ।  
 आरोगाना—क्रि० म० [हि० आरोगना का प्रे० रूप] भोजन कराना ।  
 जिमाना । उ०—ताते आजु जो ए अपने घर भैंसि लैंके आवेंगे  
 तो मैं एक दिन की माखन आरोगाउँगी ।—दो सौ बावन०,  
 भा० २, पृ० ३ ।  
 आरोग्य—वि० [म०] नीरोग । रोगरहित । स्वस्थ । तदुस्त ।  
 आरोग्यता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] स्वास्थ्य । तदुस्त ।  
 आरोग्यप्रतिपद्व्रत—सञ्ज्ञा पुं० [स०] स्वास्थ्यलाभ के निमित्त किया  
 जानेवाला एक व्रत [को०] ।  
 आरोग्यशाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] चिकित्सा । अस्पताल [को०] ।  
 आरोग्यस्नान—सञ्ज्ञा पुं० [स०] बीमारी दूर हो जाने के बाद पहले  
 पहल किया जानेवाला स्नान [को०] ।  
 आरोचक—वि० [स०] चमकीला । प्रकाशवान् [को०] ।

आरोचन—वि० [स०] दे० 'आरोचक' । उ०—मोह पटल मोचन आरो-  
 चन, जीवन कभी नहीं जनशोचन ।—अर्चना, पृ० २ ।  
 आरोघ—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ अवरोघ । बाधा । घेरा । २. कंटीली  
 भाडी की वाड [को०] ।  
 आरोघना—क्रि० स० [स० आरोघ] रोकना । छेकना । आडना ।  
 उ०—देखन दे पिय मदनगोपालहि । अति आतुर आरोघि  
 अधिक दुख तेहि कहैं उरति न ओ यम कालहि । मन तो  
 पिय पहिले ही पहुँच्यो प्राण तही चाहत चित चालहि ।—  
 सूर० (शब्द०) ।  
 आरोप—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. स्थापित करना । लगाना । मढना । उ०—  
 कवियों को उनपर अपने भावों के आरोपण की आवश्यक-  
 कता नहीं होती ।—रस०, पृ० १४ । २. एक पेड़ को एक  
 जगह में उखाड़कर दूसरी जगह लगाना । रोपना । बैठाना ।  
 ३. मिथ्याध्यास । झूठी कल्पना । ४. एक पदार्थ में दूसरे  
 पदार्थ के धर्म की कल्पना । जैसे,—अमग जीवात्मा में कर्तृत्व  
 धर्म का आरोप । ५. एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के आरोप से  
 उत्पन्न मिथ्या ज्ञान । ६. (साहित्य में) एक वस्तु में दूसरी  
 वस्तु के धर्म की कल्पना ।  
 विशेष—यह आरोप दो प्रकार का माना गया है । एक आहार्य  
 और दूसरा अनाहार्य । आहार्य वह है जहाँ इस बात को जानते  
 हुए भी कि पदार्थों की प्रत्यक्षता से भ्रम की निवृत्ति हो सकती  
 है, कहनेवाला अपनी इच्छा के अनुसार उसका प्रयोग करता  
 है । जैसे 'मुखचद्र' । यहाँ 'मुख' और 'चद्र' दोनों के धर्म के  
 साक्षात् द्वारा भ्रम की निवृत्ति हो सकती है । दूसरा 'अनाहार्य'  
 है जिसमें ऐसे दो पदार्थों के बीच आरोप हो जिनमें एक या  
 दोनों परोक्ष हों ।  
 आरोपक—वि० [स०] दोष या अपराध लगानेवाला ।  
 आरोपण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० आरोपित, आरोप्य] १. लगाना ।  
 स्थापित करना । मढना । २. पीछे को एक जगह से उखाड़-  
 कर दूसरी जगह लगाना । रोपना । बैठाना । ३. किसी वस्तु में  
 स्थित गुण को दूसरी वस्तु में मानना । ४. मिथ्याज्ञान । भ्रम ।  
 आरोपना—क्रि० स० [स० आरोपण] १. लगाना । उ०—मानु  
 देखि दल चूरन कोप्यो । तजि अनिलास्य अनिल आरोप्यो ।—  
 गोपाल० (शब्द०) । २. स्थापित करना । उ०—सो सुनि नद  
 सवन दै थोपी । शिशुहि सप्यार अक आरोपी ।—गोपाल  
 (शब्द०) ।  
 आरोपित—वि० [स०] १. लगाया हुआ । स्थापित किया हुआ । मढा  
 हुआ । उ०—जहाँ तय्य केवल आरोपित या सभावित रहते हैं  
 वहाँ वे अलंकार रूप में ही रहते हैं ।—रस०, पृ० १४ । २.  
 रोपा हुआ । बैठाना हुआ ।  
 आरोप्य—वि० [म०] १. लगाने योग्य । स्थापित करने योग्य । २.  
 रोपन योग्य । बैठाने योग्य ।  
 आरोप्यमाण—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. वस्तु जिसपर किसी अन्य वस्तु  
 का आरोप किया जाय । २. साहित्य में उपमान या अपस्तुत  
 [को०] ।  
 आरोह—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० आरोह] १. ऊपर की ओर गमन ।  
 चढ़ाव । २. आक्रमण । चढ़ाई । ३. घोड़े, हाथी आदि पर

चटना। सवार। ४. वेदांत में क्रमानुसार जीवात्मा की उर्ध्वगति या क्रमशः उत्तमोत्तम योनियों की प्राप्ति होना। ५. नारण में कार्य का प्रादुर्भाव या पदार्थों की एक प्रवस्था में दूसरी अवस्था की प्राप्ति। जैसे,—बीज से अकुर, अकुर में वृक्ष, या श्रद्धे में वच्चे का निकलना। ६. क्षुद्र और अल्प चेतनावाले जीवों में क्रमानुसार उन्नत प्राणियों की उत्पत्ति। आविर्भाव। विकास।

विशेष—आधुनिक मृत्तित्वविदों की धारणा है कि मनुष्य आदि सब प्राणियों की उत्पत्ति आदि में एक या कई साधारण अवयवियों से हुई है जिनमें चेतना बहुत सूक्ष्म थी। यह सिद्धांत इस सिद्धांत का विरोधी है कि समार के सब जीव जिस रूप में आजकल हैं उसी रूप में उत्पन्न किए गए। निरवयव जड़ तत्त्व क्रमशः कई सावयव रूपों में सामने आया, जिनमें, भिन्न भिन्न मात्राओं की चेतनता आती गई। इस प्रकार अत्यंत सामान्य अवयवियों से जटिल अवयववाले उन्नत जीव उत्पन्न हुए। योरप में इस सिद्धांत के वनानेवाले डार्विन नाहव है जिनके अनुसार आरोह की निम्नलिखित विधि है—(क) देश काल के अनुसार परिवर्तित होते रहने की इच्छा। (ख) जीवनसंग्राम में उपयोगी अंगों की रक्षा और उनकी परिपूर्णता। (ग) मुद्दाम जीवों की स्थिति और दुर्बलांगों का विनाश। (घ) प्राकृतिक प्रतिग्रह या सवरण जिसमें दक्षि-प्रतिग्रह प्रधान समझा जाता है। (च) यह साधारण नियम कि किसी प्राणी का वर्तमान रूप उपर्युक्त शक्तियों का, जो समान आकृति उत्पादन की पतृक प्रवृत्ति के विरुद्ध कार्य करती है, परिणाम है।

७. संगीत में स्वरों का चढ़ाव या नीचे स्वर से क्रमशः ऊंचा स्वर निकालना। जैसे,—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा। ८. भूतड। नितव। ९. ग्रहण के दस भेदों में से एक।

विशेष—इस ग्रहण में ग्रस्त ग्रह को आवृत करनेवाला ग्रह (गृह) वतुलाकर ग्रहमंडल को आवृत करके पुनः दिखाई पड़ता है। फलित ज्योतिष के अनुसार इस प्रकार के ग्रहण के फलस्वरूप राजाओं में परस्पर सदेह और विरोध उत्पन्न होता है।

आरोहक<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ चढ़नेवाला। आरोही। २ ऊपर उठनेवाला [को०]।

आरोहक<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] १ मारधी। २ सवार। ३ वृक्ष [को०]।

आरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आरोहित] १ चढ़ना। सवार होना। उ०—उन्नति का आरोहण, महिमा शैल शृंग सी आति नहीं।—कामायनी, पृ० १८१। २ अंबुग्राणा। अकुर निकलना। ३. सीढ़ी। ४ नृत्यमंच [को०]। ५ ऊपर उठना [को०]।

आरोहन<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [सं० आरोहण] दे० 'आरोहण'। उ०—आरोहन आरोहन के कई फल सोई।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० १, पृ० ४१७।

आरोहना<sup>७</sup>—क्रि० प्र० [सं० आरोह] चढ़ना। तुलसी गनिन और दरसन नगि लोग अटनि आगे हैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३००।

आरोहित—वि० [सं०] १ चढ़ा हुआ। २ निकला हुआ। ३ अंबुग्राणा हुआ।

आरोही<sup>१</sup>—वि० [सं० आरोहिन्] [स्त्री० आरोहिणी] १ चढ़नेवाला। ऊपर जानेवाला। २ उन्नतिशील।

आरोही<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ संगीत शास्त्रानुसार वह स्वर जो पडज से लेकर निपाद तक उत्तरोत्तर चढ़ता जाय। जैसे,—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा। २ सवार।

आरौ—संज्ञा पुं० [सं० आरव] १ शब्द। ध्वनि। २ आहट। उ०—धूरधुरात हय आरौ पाएँ। चकित विलोकत कान उठाएँ।—मानस, १। १५६।

आर्क—वि० [सं०] अर्क अर्थात् (सूर्य या मंदार) से सवध रखनेवाला। [को०]।

आर्कि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र १ शनि। २ यम। ३. वैवस्वत मनु। ४ कर्ण [को०]।

आर्कस्ट्रा—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'आरचेस्ट्रा'।

आर्गल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्गल' [को०]।

आर्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीले रंग की एक प्रकार की मधुमक्खी जिसका सिर बड़ा होता है। सारंग मक्खी।

आर्घ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ आर्धा नाम की मक्खियों का मधु। सारंग मधु।

विशेष—यह कफ, पित्त नाशक और आँखों को लाभकारी है। यह पकाने से कुछ कड़ुआ और कसैला हो जाता है।

२ एक प्रकार का मधुआ जिसकी मफेद गोद मालवा देश से आती है।

आर्ज<sup>७</sup>—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आर्य'। उ०—जय मुनि मंडन धरमधर पर उपकारक आर्ज।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४९१।

आर्जव—संज्ञा पुं० [सं०] १ सीधापन। टेढ़ापन का उलटा। २ सरलता। सुगमता। ३ व्यवहार की सरलता। कुटिलता का अभाव।

आर्जुनि—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन का पुत्र। अमिमन्थु [को०]।

आर्ट—संज्ञा पुं० [अ०] १ कौशल। कृतित्व। कारीगरी। शिल्प-विद्या। दस्तकारी। २ कला। विद्या। शिल्प। हुनर। जैसे,—चित्रकारी। ३ चित्रकार या भास्कर का काम या व्यवसाय। ४ विश्वविद्यालय का वह विभाग जिसमें चिकित्साविज्ञान और व्यवहारशास्त्र (वकालत) तथा अन्य सब विषयों, विद्याओं और भाषाओं की उच्च शिक्षा दी जाती है। जैसे,—आर्ट्स कालेज।

यी०—आर्ट पेपर=चित्र आदि छापने के लिये एक प्रकार का चमकीला और चिकना कागज। आर्टस्कूल=वह पाठशाला जहाँ शिल्प और कलाकीर्षण की शिक्षा दी जाती हो।

आर्टिकिल—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ लेख। निबन्ध। २ चीज। वस्तु।

आर्टिकिल्स ऑव् एसोसिएशन—संज्ञा पुं० [अ०] किसी संस्था या ज्वाइंट स्टाक कंपनी या ममलित पूँजी में खुलनेवाली कंपनी की नियमावली।

आर्टिक्यूलेटा—संज्ञा पुं० [अ०] बिना रीढ़वाले ऐसे जंतुओं का एक



भेद जिनके गरीर सङ्कुचित रहते हैं, पर चलने की दशा में फैल जाते हैं, जैसे,—जोक ।

प्राटिलरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] तोपखाना ।

प्राटिस्ट—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] वह जो किमी कला में, विशेषकर ललित कला (चित्रकारी, तक्षणकला, संगीत, नृत्य आदि) में कुशल हो ।

आर्डर—सञ्ज्ञा पुं० (अ० आर्डर) १. आज्ञा । हुक्म । २. कोई वस्तु भेजने पहुँचाने या मुहैया करने के लिये मौखिक या लिखित आदेश । माँग । जैसे,—(क) वे बादामी कागज की एक गाँठ का आर्डर दे गए हैं ।—(ख) आजकल बाहर से बहुत कम आर्डर आते हैं ।

क्रि० प्र०—आना ।—देना ।—मिलना ।

यी०—आर्डरबुक = वह वही जिसमें आदेश या माँग लिखी जाय । आर्डर सप्लाय । आर्डर सप्लायर ।

३ स्थिरता । शांति । जैसे,—सभा में बड़ा हल्ला मचा, लोग 'आर्डर', 'आर्डर', कहने लगे । ४ क्रम । मिलसिला ।

आर्डरी—वि० [अ० आर्डर + हि० ई (प्रत्य०) ] आर्डरसवधी । आर्डर का ।

आर्डिनरी—वि० [अ० ऑर्डनरी] १ साधारण । सामान्य । मामूली । जैसे,—आर्डिनरी मेवर । आर्डिनरी शेयर । २ प्रसिद्ध । प्रधान ।

यी०—आर्डिनरी स्टार्क = कपनी का प्रधान या असली धन ।

आर्डिनेंस—सञ्ज्ञा पुं० [अ० ऑर्डिनेन्स] वह आदेश या हुक्म जो किसी देश के अधिकारी (भारत में वाइसराय, अब राष्ट्रपति) विशेष अवसरों पर जारी करते हैं और कुछ काल के लिये कानून माना जाता है । अस्थायी व्यवस्था या कानून । जैसे,—नए आर्डिनेंस के अनुसार बगल में कितने ही युवक गिरफ्तार किए गए ।

विशेष—भारत में वाइसराय अपने अधिकार से, बिना कौंसिल की समति लिए आर्डिनेंस जारी कर सकते थे । ऐसे आर्डिनेंस का काल छह महीने होता है पर आवश्यकता पड़ने पर बढ़ाया भी जा सकता है । स्वतंत्र भारत में यह अधिकार राष्ट्रपति को है ।

आर्णव—वि० [म०] अर्णव या समुद्र सवधी [को०] ।

आर्त, आर्त्त—वि० [स०] [सञ्ज्ञा आर्ति] १ पीड़ित । चोट खाया हुआ । २. दुःखित । दुखी । कातर । ३ अस्वस्थ । ४ नश्वर [को०] ।

आर्तगल—सञ्ज्ञा पुं० [म०] नीली कटसरैया ।

आर्तता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १. पीडा । दर्द । २. दुःख । क्लेश ।

आर्तध्यान—सञ्ज्ञा पुं० [स०] जैनियों के मतानुसार वह ध्यान जिससे दुःख हो ।

विशेष—यह चार प्रकार का है—(१) अनिष्टार्त सयोगार्त ध्यान । (२) इष्टार्त वियोगार्त ध्यान । (३) रोग निदानार्त ध्यान और (४) आग्रशोचनमार्त ध्यान ।

आर्तव्वनि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दुःखभरी पुकार । दर्दभरी आवाज [को०]

आर्तनाद—सञ्ज्ञा पुं० [म०] वह शब्द जिससे सुननेवाले को यह बोध हो कि उसका उच्चारण करनेवाला दुःख में है । दुःखसूचक शब्द ।

आर्तवधु—सञ्ज्ञा पुं० [म० आर्तवधु] १ दुःखियों का सहायक । दीनचंदु । भगवान् । परमात्मा [को०] ।

आर्तव<sup>१</sup>—वि० [स०] [स्त्री० आर्तवी] ऋतु में उत्पन्न । मौसमी । मामयिक । २ ऋतु सवधी । ३ मासिक स्त्राव सवधी [को०] ।

आर्तव<sup>२</sup>—वह रज जो स्त्रियों की योनि में प्रति मास निकलता है । पुष्प । रज ।

यी०—आर्तव रोग = स्त्रियों के मासिक धर्म का समयानुसार न होना । यह दो प्रकार का होता है—(१) रजन्नाव = जब रजोधर्म चार से अधिक दिन तक रहे अथवा महीने में एक से अधिक बार हो । (२) रजस्तंभ = जब रजोधर्म एक मास से अधिक काल पर हो या कई महीने का अंतर देकर हो ।

आर्तवाणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दुःखसूचक शब्द । आर्तस्वर । उ०—वृद्धों की आर्तवाणी, कदन रमणियों का भैरव संगीत बना ।—लहर, पृ० ६५ ।

आर्तवेयी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] रजस्वला स्त्री । ऋतुमति नारी [को०] ।

आर्तसाधु—वि० [स०] दे० 'आर्तवधु' [को०] ।

आर्तस्वर—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दुःखसूचक शब्द ।

आर्ति<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ पीडा । दर्द । २. दुःख । क्लेश । ३. व्याधि । रोग [को०] । ४ विनाश । वर्वादी (को०) । ५ बुराई । निंदा [को०] । ६ घनुप की कोर (को०) ।

आर्ति<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आरती' । उ०—फेरि रसोई में जाड ममं भए भोग सराइ श्री ठाकुर जी की मंगला आर्ति करि, मिगार धरते ।—दो मी० वावन, भा० १, पृ० १०१ ।

आर्तिवज—वि० [स०] [स्त्री० आर्तिवजा] ऋतिवजासवधी ।

यी०—आर्तिवजी दक्षिणा = ऋतिवज की दक्षिणा ।

आर्थिक—वि० [स०] १ धनसवधी । द्रव्यसवधी । रुपये जैसे का । माली । जैसे,—आर्थिक दशा । आर्थिक सहायता । उ०—नख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर, हारता रहा मैं स्वार्थ समर ।—अपरा०, पृ० १६६ । २. महत्वपूर्ण । महत्व का [को०] । ३. धनयुक्त । धनी [को०] । ४ चतुर । कुशल [को०] । ५ स्वाभाविक । नैसर्गिक [को०] । ६ किसी शब्द के अर्थ से निःसृत [को०] ।

आर्थी—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'कैतवापहनुति' ।

आर्थोडाक्स—वि० [अ० ऑर्थोडॉक्स] जो अपने धार्मिक मत या सिद्धांत पर अटल हो । अपने धार्मिक मत या सिद्धांत से टस से मस न होनेवाला । कट्टर सनातनी । जैसे,—परिपद के आर्थोडाक्स हिंदू मेवरों ने शारदा विवाह विल का घोर विरोध किया ।

आर्द्ध—वि० [स०] आधा । जैसे,—आर्द्धमासिक [को०] ।

आर्द्धिक—वि० स० दे० 'आधिक' [को०] ।

आर्द्र—वि० [स०] [मज्ञा आर्द्रता] १ गीला । ओढ़ा । तर । २. मना । लयपथ ।

यी०—आर्द्रवीर । आर्द्राजनि ।

आर्द्रक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] घदरक । आदी ।

आर्द्रक<sup>२</sup>—वि० १ आर्द्रा नक्षत्रसवधी वा आर्द्रा में उत्पन्न । २. गीला । तर [को०] ।



भार्द्रता—सज्ञा स्त्री० [स०] गीलापन । शीतलता । ठढक ।

भार्द्रपत्रक—सज्ञा पुं० [स०] वश । वांस [को०] ।

भार्द्रमाषा—सज्ञा स्त्री० [स०] मापवर्णी । वनमाप । मसवन ।

भार्द्रशाक—सज्ञा पुं० [स०] हरी अदरक । हरी आदी [को०] ।

भार्द्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सत्ताईस नक्षत्रों में छठा नक्षत्र ।

विशेष—ज्योतिषियों ने इसे पद्माकार लिखा है, पर कोई कोई इसे मणि के आकार का भी मानते हैं । इस नक्षत्र में केवल एक ही उज्ज्वल तारा है ।

२ वह समय जब सूर्य भार्द्र नक्षत्र का होता है । प्रायः आपाह के आरंभ में यह नक्षत्र उगता है । इसी नक्षत्र से वर्षा का आरंभ होता है । किसान इस नक्षत्र में धान बोते हैं । उनका विश्वास है कि इस नक्षत्र का धान अच्छा होता है । उ०—भार्द्रा धान पुनर्वसु पैया । गा किसान जब बोया चिरैया (शब्द०) । ३. ११ अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसके पहले और चौथे चरण में जगण, तगण, जगण और दो गुरु (ज त ज ग ग) दूसरे और तीसरे चरण में दो तगण, जगण और दो गुरु (त त ज ग ग) होते हैं । वृत्ति उपजाति के अंतर्गत है । उ०—साधो शलो योगन पै वडाओ । खडे रहो क्यो न त्वर्चै पचाओ । टीके सु छापे बहुते लगाओ । वृथा सबै जो हरि को न गाओ (शब्द०) ।

यो०—भार्द्राक्षक = केतु ।

४ अदरक । आदी । ५ अतीत ।

भार्द्रावीर—सज्ञा स्त्री० [स०] वाममार्गी ।

भार्द्राशिनि—सज्ञा स्त्री० [स०] १. विद्युत् । विजली । २. एक अम्र ।

भार्द्रिक—सज्ञा पुं० [स०] १ खेत की आधी उपज लेने की शर्त पर खेत जोतने बोलनेवाला । २ पाराशर स्मृति के अनुसार वैश्या माता और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न एक सकर जाति ।

विशेष—ये लोग ब्राह्मणों की पक्ति में भोजन कर सकते हैं । मनु के अनुसार यह वर्ण शूद्र माना गया है और भोज्यात है ।

भार्द्रव(७)—वि० [स० भार्द्रव] आर्णव या समुद्रसवधी । उ०—भार्द्रव नाव विहग जिमि, फिरि आर्व तिहि ठोर ।—नद प्र०, पृ० १३२ ।

भार्म—सज्ञा पुं० [अ०] हथियार । अस्त्र शस्त्र । जैसे,—आम्स ऐकट ।

भार्मपुलिस—सज्ञा स्त्री० [अ० भार्मड पोलिस] हथियारबंद पुनिम । सशस्त्र पुलिस ।

भार्मडकार—सज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की गाड़ी जिसपर गोलियों से वचाव के लिये लोहा मड़ा रहता है । बख्तरदार गाड़ी ।

विशेष—ऐसी गाड़ियाँ सेना के साथ रहती हैं ।

भार्मी—सज्ञा स्त्री० [अ०] सेना । फौज । जैसे,—इंडियन आर्मी ।

विशेष—भार्मी शब्द देश की समूची स्थान सेना का बोधक है ।

भार्थ<sup>१</sup>—वि० [स०] [स्त्री भार्थ] १ श्रेष्ठ । उत्तम । २ बड़ा । पूज्य । ३. श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न । मान्य । ४ आर्य जाति संबंधी । आर्य जाति का ।

भार्थ<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १. श्रेष्ठ पुरुष । श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न ।

विशेष—स्वामी, गुरु और सुहृद् आदि को संबोधन करने में इस

शब्द का व्यवहार करते हैं । छोटे लोग बड़े को जैसे,—श्री पति को, छोटा भाई बड़े भाई को, शिष्य गुरु को प्रार्थ या आर्यपुत्र कहकर संबोधित करते हैं । नाटकों में नटी भी मूनधार को आर्य या आर्यपुत्र कहती है ।

२ मनुष्यों की एक जाति जिम्मे नगार में बहने पड़ने सम्भना प्राप्त की थी ।

विशेष—ये लोग गोर, मुनिमत्ताग और चीन के नवें होते हैं ।

उनका माया ऊँचा, बाल घन, नाक उठी और नुनीली होती है । प्राचीन काल में उनका विस्तार मध्य एशिया तथा कैस्पियन सागर में लेकर गया समुद्रों के किनारों तक था । इनका आदिस्थान कोई मध्य एशिया, कोई स्कडिनेविया और कोई उत्तरीय भूतल बतलाते हैं । ये लोग मैनी करते थे, पशु पालते थे, धातु के हथियार बनाने थे, कपड़ा बुनते थे और रथ आदि पर चढ़ते थे ।

३. नार्वेण मनु का एक पुत्र [को०] । ४ बौद्ध धर्म का पावन करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

यो०—आर्य अष्टांगमार्ग = बौद्ध दर्शन के अनुसार वह मार्ग जिसमें निर्वाण या मोक्ष मिलता है । ये आठ हैं—(१) मध्यमष्टि, (२) मध्यक् मकल्पना, (३) मध्यक् ज्ञाना, (४) मध्यक् कर्मणा, (५) मध्यगाजीव, (६) मध्यगाव्यायाम, (७) मध्यक् स्मृति और (८) मध्यक् समाधि ।

यो०—आर्यक्षेत्र । आर्यपुत्र । आर्यभूमि ।

आर्यक—सज्ञा पुं० [ग०] १ आदरणीय जन । पूज्य व्यक्ति । २. पितामह । ३. एक ब्राह्मणों पितरों के गमानार्थ किया जाता है [को०] ।

आर्यका—सज्ञा स्त्री० [स०] १ श्रेष्ठ एवं आदरणीय महिला । २. एक नक्षत्र का नाम [को०] ।

आर्यकाव्य—सज्ञा पुं० [ग०] आर्यजातीय काव्य । भारतीय भाषों का काव्य । उ०—बाल्मीकीय रामायण को में आर्यकाव्य का आदर्श मानता हूँ ।—रम०, पृ० ११० ।

आर्यदेश—सज्ञा पुं० [स०] वह देश जिसमें आर्यों का निवास है [को०] ।

आर्यधर्म—सज्ञा पुं० [स०] सदाचार । उ०—वह आर्यधर्म, वह शिरोधार्य वैदिक समता ।—प्रणिमा, पृ० ३५ ।

आर्यपुत्र—सज्ञा पुं० [स०] आदरनूचक शब्द० । ४० 'आर्य' ।

आर्यभट्ट—सज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र के एक प्राचीन विद्वान् का नाम, जिन्होंने भारत में सर्व प्रथम बीजगणित का आविष्कार किया था । ये ईसा की पाँचवीं शताब्दी में हुए थे [को०] ।

आर्यभाव—सज्ञा पुं० [स०] सदाचार । शिष्टाचार [को०] ।

आर्यमिश्र<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] १ सस्कृत नाटकों में गौरवान्वित या पूज्य पुरुष के लिये इस शब्द का प्रयोग करते हैं ।

आर्यमिश्र<sup>२</sup>—वि० [स०] पूज्य । गौरवान्वित [को०] ।

आर्यरूप—वि० [स०] ढोगी । पाखंडी [को०] ।

आर्यलिंगी—वि० [स० आर्यलिङ्गिन्] दे० 'आर्यरूप' [को०] ।

आर्यव—सज्ञा पुं० [स०] १ उत्तम आचार । सदाचार । २. न्यायोचित व्यवहार [को०] ।

आर्यवाक्—वि० [म०] आर्यभाषा या संस्कृत बोलनेवाला [को०] ।

आर्यवृत्त—वि० [म०] धार्मिक । सदाचारी [को०] ।

आर्यवेश—वि० [म०] १ आर्यों का मा सम्य वेश धारण करनेवाला ।  
२ पाखंडी । ढोंगी [को०] ।

आर्यशील—वि० [म०] पुण्यचरित् । धर्मत्मा [को०] ।

आर्यश्वेत—वि० [म०] समाननीय । आदरणीय [को०] ।

आर्यसत्य—संज्ञा पुं० [म०] १ महान् सत्य । २ बौद्धधर्म के चार सिद्धांत जो उसके आधारभूत स्तंभ माने जाते हैं । वे हैं (१) जीवन दुःखमय है, (२) जीवनेच्छा दुःख का कारण है, (३) इच्छा की निवृत्ति दुःख की निवृत्ति है, (४) अष्टमार्ग निर्वाण की ओर ले जाते हैं [को०] ।

आर्यसमाज—संज्ञा पुं० [म०] एक धार्मिक समाज या समिति जिसके संस्थापक स्वामी दयानंद थे ।

विशेष—इस समाज के प्रधान दस नियम हैं । इन मत के लोग वेदों के संहिता भाग को अपौरुषेय और स्वतः प्रमाण मानते हैं । मूर्तिपूजा, श्राद्ध, तर्पण नहीं करते । गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्ण मानते हैं ।

आर्यसमाजी—संज्ञा पुं० [म०] आर्यसमाजिन् ] आर्यसमाज का अनुयायी । आर्यसमाज के सिद्धांतों को माननेवाला [को०] ।

आर्यसिद्धांत—संज्ञा पुं० [म०] आर्यसिद्धान्त ] आर्यभट्ट की कृति का नाम [को०] ।

आर्यहृद्य—वि० [म०] सज्जनो को प्रिय लगनेवाला [को०] ।

आर्या—संज्ञा स्त्री० [म०] १ पार्वती । २ मास । ३ दादी । पितामही ।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार पद में श्रेष्ठ या बड़ी बूढ़ी स्त्रियों के लिये होता है ।

४ अर्धमासिक छंद का नाम । इसके पहले और तीसरे चरण में बारह बारह तथा दूसरे और चौथे चरण में १५ मात्राएँ होती हैं ।

विशेष—इस छंद में चार मात्राओं के गण को समूह कहते हैं । इसके पहले, तीसरे, पाँचवें और सातवें चरण में जगण का निषेध है । छठे गण में जगण होना चाहिए । जैसे,—रामा, रामा, रामा, आठौं यामा, जपौ यही नामा । त्यागो सारे कामा, पैहो वैकुण्ठ विश्रामा । आर्या के मुख्य पाँच भेद हैं—(१) आर्या या गाढ़ा, (२) गीति या उम्गाहा (३) उपगीति या गाढ़, (४) उद्गीति या विग्गाहा और (५) आर्यागीति या रूक्यक या रवधा ।

यो०—आर्यासप्तशती = गोवर्धनाचार्य का आर्या छंद में निम्न लगभग ७०० छंदों का संस्कृत मुद्रक वाक्य ।

आर्यागीत, आर्यागीति—संज्ञा स्त्री० [म०] आर्या छंद का एक भेद जिसके विषम चरण में १२ और सम चरणों में २० मात्राएँ होती हैं । विषम गणों में जगण नहीं होता तथा अंत में गुरु होता है । जैसे,—रामा, रामा, रामा, आठौं यामा । जपौ यही नामा को । त्यागो सारे कामा, पैहो माँची मुनी हरि रामा को ।

आर्यावर्त—संज्ञा पुं० [म०] उत्तरी भारत जिसके उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विंध्याचल, पूर्व में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में अरब सागर है । मनु ने इस देश को पवित्र कहा है ।

आर्यावर्तीय—वि० [म०] १. आर्यावर्त का रहनेवाला । २. आर्यावर्त नवधी ।

आर्यिका—संज्ञा स्त्री० [म०] १ कुलीना और सदानारिणी स्त्री । २ एक नक्षत्र का नाम । ३. भागवत पुराण में वर्णिता एक नदी का नाम [को०] ।

आरली—संज्ञा पुं० [हि० अट] १ अट । २४ । २. निवेदन । अनुरोध । उ०—वृषमानु की धरति जगोमनि पुकार्यो । पई मुत काज क्यों कहति ही लाज नजि, पाइ परिके महिर करनि आरयो ।—सूर०, १० । १३६६ ।

आर्य—वि० [म०] १ ऋषिमवधी । २ ऋषिप्रणीत । ऋषिकुल । ३ वैदिक । ४ ऋषिसेवित ।

यो०—आर्यक्रम । आर्यग्रथ । आर्यपद्धति । आर्यप्रयोग । आर्यविवाह ।

आर्यक्रम—संज्ञा पुं० [म०] ऋषियों की प्रथा । ऋषियों की प्राचीन परिपाटी ।

आर्यग्रथ—संज्ञा पुं० [म०] आर्यग्रन्थ ] ऋषियों द्वारा प्रणीत या रचित धर्मग्रंथ । वेद । शास्त्र । रामायण । पुराण [को०] ।

आर्यप्रयोग—संज्ञा पुं० [म०] १ शब्दों का वह व्यवहार जो व्याकरण के नियम के विरुद्ध हो ।

विशेष—प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में प्रायः व्याकरणविरुद्ध प्रयोग मिलते हैं । ऐसे प्रयोगों को व्याकरण की नीति में प्रशुद्ध न कहकर आर्य कहते हैं ।

२ छंद में कवियों का किया हुआ व्याकरणविरुद्ध प्रयोग ।

आर्यभ—वि० [म०] १. ताँड में उत्पन्न । २. ऋषभशरीर । ऋषभ गोश्र में उत्पन्न ।

आर्यभि—संज्ञा पुं० [म०] १ ऋषभ का वंशज । २. भारत के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरत का एक नाम [को०] ।

आर्यभी—संज्ञा स्त्री० [म०] कपिकच्छु । नेवाँन ।

आर्यविवाह—संज्ञा पुं० [म०] आठ प्रकार के विवाहों में तीसरा जिसमें घर में कन्या का पिता दो बैत गुरु में लेकर कन्या देता था ।

आर्येय—संज्ञा पुं० [म०] १ ऋषियों का गोश्र और प्रवर । २ मयद्रष्टा ऋषि । ३. पटन पाठन, गहन वाजन, अध्ययन तद्व्यापन आदि ऋषि कर्म ।

आर्हत—वि० [म०] प्रहंत या जैन विद्या को माननेवाला धर्म । उनमें मयद्रष्टा रहनेवाला [को०] ।

आलंकारिक—वि० [म०] आलंकारिक ] १. पल्लवमय । २. अलंकारयुक्त । ३. अलंकार माननेवाला ।

आलंग—वि० [म०] आलङ्ग ] आलंग । मयद्र । तथा हृषा [को०] ।

आलंग्य—संज्ञा पुं० [दे०] तोड़ियों की मन्त्री ।

विशेष—उन शब्दों का प्रयोग विनाश के तोड़ियों के शब्दों में होता है ।

वि० प्र०—पर होता ।—पर आता ।

आलंब—संज्ञा पुं० [म०] आलम्ब ] १. पदपद । आधार । मूल । २.

गति । शरण । ३ अधिष्ठान [को०] । ४ लटकी हुई वस्तु वा पदार्थ [को०] ।

**आलवन**—सज्ञा पु० [स० आलम्बन] [वि० आलवित] १ सहारा । आश्रय । अवलवन । २ रस में एक विभाग जिसके अवलव से रस की उत्पत्ति होती है । जैसे,—(क) शृंगार रस में नायक और नायिका, (ख) रोद्र रस में शत्रु, (ग) हास्य रस में विलक्षण रूप या शब्द, (घ) करुण रस में शोचनीय वस्तु या व्यक्ति, (च) वीर रस में शत्रु या शत्रु की प्रिय वस्तु, (छ) भयानक रस में भयकर रूप, (ज) वीरस रस में घृणित पदार्थ, पीव, लोह, मांस आदि (झ) अद्भुत रस में अलौकिक वस्तु, (ट) शांत रस में अनित्य वस्तु, (ठ) वात्सल्य रस में पुत्रादि । ३ बौद्ध मत में किसी वस्तु का ध्यानजनित ज्ञान । यह छह प्रकार का है—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श शब्द और धर्म । ४ साधन । कारण । ५ आधार [को०] । ६ योगियो द्वारा कृत मानसिक ध्यान [को०] । ७ सहारा लेना । आश्रय लेना [को०] ।

**आलवनता**—सज्ञा स्त्री० [म० आलवन + ता (प्रत्य०)] आलवन का गुण, स्वभाव या धर्म । उ०—उसकी आलवनता स्त्री जाति और पुरुष जाति के बीच नैसर्गिक आकर्षण की बड़ी चौड़ी नींव पर ठहरी है ।—चिंतामणि, भा० २ पृ० ६० ।

**आलवित**—वि० [स० आलम्बित] आश्रित । अवलवित ।

**आलवितविन्दु**—सज्ञा पु० [स० आलम्बित विन्दु] प्रलवित पुल के आर पार के वे स्थान जहाँ जजीरो के छोर खम्भों से लगे रहते हैं ।

**आलवी**—वि० [स० आलम्बित] भूलने या लटकनेवाला । उ०—सब पर सोहत गुजमाल वनमाल सहित आलवी ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४१२ ।

**आलभ**—सज्ञा पु० [स० आलम्भ] १ छूना । मिलना । पकड़ना । २ उत्पादन । उखाड़ना [को०] । मरण । वध । हिंसा ।

**यो०—अश्वालभ । गवालभ ।**

**आलभन**—सज्ञा पु० [स० आलम्भन] दे० 'आलभ' ।

**आलभी**—वि० [स० आलम्भिन्] १ छूनेवाला । २ पकड़ने वाला [को०] ।

**आल<sup>१</sup>**—सज्ञा पु० [स०] हस्ताल ।

**आल<sup>२</sup>**—सज्ञा स्त्री० [स० अल = भूषित करना] १ एक पौधा जिसकी खेती पहले रंग के लिये बहुत होती थी ।

**विशेष**—यह पौधा प्रत्येक दूसरे वर्ष बीया जाता है और दो फुट ऊँचा होता है । इसका मूल रूप ३०-४० फुट का पूरा पेड़ होता है । इसके दो भेद हैं—एक मोटी आल और दूसरी छोटी आल । छोटी आल फल के बीच से बोई जाती है और मोटी आल बड़े पेड़ों के बीच से आपाड़ में बोई जाती है । इसकी छाल और जड़ गड़मि से काटकर हीज में सड़ने के लिये डाल दी जाती है और कई दिनों में रंग तैयार होता है । कहते हैं, इससे रंगे हुए कपड़े में दीमक नहीं लगती ।

२ इस पौधे से वना हुआ रंग ।

**आल<sup>३</sup>**—सज्ञा स्त्री० [वि०] १ एक कीड़ा जो सरसों की फसल को हानि पहुँचाता है । माहो । २ प्याज का हरा डल । ३ कद्दू । लोकी ।

**आल<sup>४</sup>**—सज्ञा पु० [अनुव्व०] भंजट । बखेडा । उ०—(क) आठ पहर गया, यों ही माया मोह के आल । राम नाम हिरदय नहीं, जीत लिया जमजाल ।—कवीर (शब्द०) ।

**यो०—आल जजाल, आल जँजाल, = भंजट । बखेडा । उ०—**कचन केवल हरिभजन, दूजा काय कवीर । झूठा आल जँजाल तजि, पकड़ा साँच कवीर ।—कवीर (शब्द०) । **आलजाल =** (१) वे सिर पर की बात । इधर उधर की बात (२) अड़ बड़ या इधर उधर की वस्तु ।

**आल<sup>५</sup>**—सज्ञा पु० [म० ओल या आर्द्र] १ गीलापन । तरी । जैसे,—ऐसा वरमा कि आल में आन मिल गई । २ आँसू । उ०—मिसक्यो जल किन लेत दृग, मर पलकन मैं आल । विचलत खँचत लाज की मचलत लखि नैदानाल ।—स० मत्तक, पृ० १६२ ।

**आल<sup>६</sup>**—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ खेती की सतति ।

**यो०—आल ओलाद = बाल बच्चे ।**

२ वज । कुल । खानदान ।

**आल<sup>७</sup>**—सज्ञा पु० [देश०] गाँव का एक भाग ।

**आल<sup>८</sup>**—वि० [स० ओल या आर्द्र] गीना । कच्चा । हरा । उ०—आलहि वाम कटाइन डंडिया फदाइन हो साधो ।—पलदू, भा० ३, पृ० १२ ।

**आल<sup>९</sup>**—सज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का कँटीला पौधा । स्याह काँटा किंगरई । वि० दे० 'किंगरई' ।

**आलकसी**—सज्ञा पु० [स० आलस्य] [वि० आलकसी, कि० अ० अलकसाना] आलस्य ।

**आलक्षण**—सज्ञा पु० [म०] १ परीक्षण । २ निरीक्षण । देखना । समझना [को०] ।

**आलक्षण्य**—सज्ञा पु० [म०] १ दुर्मग्य । २ अपराध [को०] ।

**आलक्षि**—वि० [स०] निरीक्षक । लक्षित करने या समझनेवाला [को०] ।

**आलक्षित**—वि० [म०] १ अभी भाँति देखा और समझा हुआ । २ अनुभव किया हुआ [को०] ।

**आलक्ष्य**—वि० [स०] १ दिखाई पड़ने लायक । प्रकट । २ जो कुछ कुछ दिखाई पड़े । पूरी तोर से न दिखाई पड़नेवाला [को०] ।

**आलङ्वाल**—सज्ञा पु० [अनु०] आडवर । साज सज्जा ।

**आलगर्द**—सज्ञा पु० [म०] जल में रहनेवाला एक माँप [को०] ।

**आलथीपालथी**—सज्ञा स्त्री० [हि० पालथी] बैठने का एक आमन जिममें दाहिनी एँडी बाएँ जधे पर और बाई एँडी दाहिने जधे पर रखते हैं ।

**क्रि० प्र०—मारना ।— लगाना ।**

**आलन**—सज्ञा पु० [देश०] १ घाम भूमा आदि जो दीवार पर लगाई जानेवाली मिट्टी में मिलाया जाता है । २ खर पात जो चूल्हा बनाने की मिट्टी या कड़े पाथने के गोबर में मिलाया जाता है । ३ बेसन या आटा जो साग बनाने के समय मिलाया जाता है ।

**आलना**—सज्ञा पु० [स० आलय, फा० लाना] घोमना ।

**आलपाका**—सज्ञा पु० [हि०] दे० 'अलपाका' ।

आलपीन--संज्ञा स्त्री० [ पुर्त० आलफिनेत ] एक घुटीदार छोटी मूई ।  
जिसे अँगरेजी में पिन कहते हैं ।  
आलविल<sup>७</sup>--संज्ञा पुं० [ सं० ऐलविल ] कुवेर ।-नट ग्र०, पृ० २१ ।  
आलम<sup>१</sup>--संज्ञा पुं० [ अ० ] १ दुनिया । ससार । जगत् । जहान । उ०--  
कई आलम किए हैं कत्ल उनने । करे क्या एकला हातिम  
विचारा ।-कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४० । २ अवस्था ।  
दशा । जैसे,--वे बेहोशी के आलम में है । ३ जनसमूह । बड़ी  
जमान । ४ हिंदी के एक रीतिकालीन कवि का नाम ।  
आलम<sup>२</sup>--संज्ञा पुं० १ एक प्रकार का नृत्य । उ०--उलथा टेंकी आलम  
सदिड । पद पलटि दृष्टमयी निशक्चिड ।-केशव (शब्द०) ।  
आलमन--संज्ञा पुं० [ म० ] १ ग्रहण । पकड़ना । २ छूना । स्पर्श ।  
३ मारना । हिमन । वध करना [को०] ।  
आलमनक--संज्ञा पुं० [ पुर्त० ] तिथिपत्र । पचाग । जथी ।  
आलमारी--संज्ञा स्त्री० [ हि० ] दे० 'अलमारी' ।  
आलय--संज्ञा पुं० [ म० ] १ घर । गृह । मकान । २ स्थान ।  
यौ०--अनायालय । देवालय । विद्यालय । शिवालय ।  
आलयविज्ञान--संज्ञा पुं० [ म० ] ऋहकार का आधार (बौद्ध) ।  
आलक--वि० [ सं० ] १ अलक से सवधित । अलक का । २ पागल  
कुत्ते का ( जहर ) [को०] ।  
आलवण्य--संज्ञा पुं० [ सं० ] १ लावण्यहीनता । असुदरता । २  
स्वादविहीनता [को०] ।  
आलवाल--संज्ञा पुं० [ म० ] थाल । अवाल ।  
आलस<sup>१</sup>--वि० [ म० ] आलसी । मुस्त । काहिल ।  
आलस<sup>२</sup><sup>७</sup>--संज्ञा पुं० [ म० आलस्य ] [ वि० आलसी ] आलस्य ।  
मुस्ती । उ०--तो कौतुकियन्ह आलमु नाही ।-मानस, १।८१ ।  
आलसी--वि० [ हि० आलस + ई (प्रत्य०) ] मुस्त । काहिल । धीमा ।  
अकर्मण्य । उ०--आलसी अभागे मोसे ते कृपालु पाले पोसे  
राजा मेरे राजाराम, अवध महर्ष ।-तुलसी ग्रं, पृ० ५८१ ।  
आलस्य--संज्ञा पुं० [ म० ] कार्य करने में अनुत्साह । मुस्ती । काहिली ।  
आला<sup>१</sup>--संज्ञा पुं० [ सं० आलय ] ताल । ताखा । अखा ।  
आला<sup>२</sup>--वि० [ अ० आलह ] १ आलव दजें का । सबसे बढ़िया ।  
श्रेष्ठ । उ०--कूँडा आला चाम का, भीतर भरा कपूर । दरिया  
वासन क्या करे, वस्तु दिखावे नूर ।-दरिया० बानी, पृ०  
३६ । २ मितार के उत्तरे और मुलायम स्वर ।  
आला<sup>३</sup>--संज्ञा पुं० [ अ० ] १ ओजार । हथियार । २ उपकरण ।  
यंत्र । साधन [को०] ।  
आला<sup>४</sup>--संज्ञा पुं० [ सं० आलात ] कुम्हार का आवा । पजावा ।  
आला<sup>५</sup><sup>७</sup>--वि० [ सं० आल, प्रा० अल ] १ गीला । ओढ़ा । नम ।  
भीगा । उ०--आडे दै आले बसन जाडे हूँ की राति । साहसु  
कक सनेह बस सखी मवे दिग जाति ।-विहारी २०, दो०  
२८३ । २ हरा । टटका । ताजा ।  
आलाइश--संज्ञा स्त्री० [ फा० ] १ गदी वस्तु । मल । गलीज । २  
घाव का गदा खन, पीव वगैरह । ३. पेट के भीतर की  
अंतर्दी आदि ।

आलाटाली--संज्ञा पुं० [ आला = अनु० + हि० टालना + ई (प्रत्य०) ]  
टालमटोल । उ०--ये इनकी आलाटाली है पर अपनी बात  
का प्रमाण देने के लिये मैं उनसे कोई चीज ले लूँ ।-  
श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३६ ।  
आलात<sup>१</sup>--संज्ञा पुं० [ सं० ] लकड़ी जिसका एक छोर जड़ता टूट्टा हो ।  
जलनी लुग्राठी । लुक ।  
यौ०--आलातक्रीडा । आलातचक्र ।  
आलात<sup>२</sup>--संज्ञा पुं० [ अ० ] ओजार ।  
यौ०--आलात काश्तकारी = खेती में काम आनेवाले हज़, पट्टा  
आदि यंत्र ।  
आलात<sup>३</sup>--संज्ञा पुं० [ देश० ] जहाज का रम्मा ।  
यौ०--आलाताखाना = जहाज में रम्मे वगैरह रखने की कोठरी ।  
आलातचक्र--संज्ञा पुं० [ म० ] वह मंडन जो जलने हुए लुक को वेग  
के साथ घूमने में दिखाई पड़ता है ।  
आलान--संज्ञा पुं० [ म० ] १ हाथी बांधने का खमा वा खूँटा । २  
हाथी बांधने का रम्मा या जजीर । ३ बघन । रम्पी ।  
आलाप--संज्ञा पुं० [ म० ] १ ऊयोःकरण । मापण । वानचीत ।  
यौ०--वार्तालाप ।  
२ संगीत के सात स्वरों का माधन । तान ।  
कि० प्र०--करना ।-लेना ।  
३ प्रश्न । जिज्ञासा [को०] । ४ मंती में सात स्वर [को०] ।  
आलापक--वि० [ म० ] १ बातचीत करनेवाला । २ गानेवाला ।  
आलापचारो--संज्ञा स्त्री० [ म० आलाप + चारो ] स्वरों को माधने की  
क्रिया । तान लडाने की क्रिया । जैसे,--वहाँ नौ गून आलाप-  
चारी हो रही है ।  
आलापन--संज्ञा पुं० [ म० ] १ स्वस्तिवाचन । स्वस्तिपाठ । २. वार्ते  
करना । ३ संगीत में गाना पढ़ने की क्रिया [को०] ।  
आलापना--कि० म० [ सं० आलापन या आलाप + हि० ना (प्रत्य०) ]  
गाना । मुर खीचना । तान पढ़ाना ।  
आलापित--वि० [ न० ] १ कथित । मभापित । २ गाया हुआ ।  
आलापिनी--संज्ञा स्त्री० [ म० ] १ वामुरी । बसी । २ तृमडी ।  
आलापी--वि० [ सं० आलापिन् ] [ वि० स्त्री० आलापिनी ] १  
बोलनेवाला । उ०--माधो जू, मो न और न पापी । मन  
क्रम बचन दुमह गवहित मौ कटुक वचन यवनापी ।  
-मूर० १।१४० । २ आलाप लेनेवाला । तान लगानेवाला ।  
गानेवाला ।  
आलावु, आलावू--संज्ञा पुं० [ म० ] आलावु । लोकी [को०] ।  
आलारामो--वि० [ सं० आलाम्य ? ] १ बेपरवाह । निर्द्वंद्व । २ जहाँ  
किसी बात की पूछाछ न हो । बेपरवाही का ।  
यौ०--आलारामी कारगुना = अंधेरगुना ।  
आलावर्त--संज्ञा पुं० [ म० ] १ पड़े का पंखा ।  
आलास्य--संज्ञा पुं० [ म० ] मगर नाम का जन्तु [को०] ।

आलिग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आलिङ्गन] दे० 'आलिगन' । उ०—विन देखे मन होत वाहि कैसे करि देखे । देखे ते चित होत अग आलिग विसेखे ।—ब्रज ग्रं०, पृ० ६० ।

आलिगन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आलिगित, आलिगी, आलिग्य] गले से लगाना । हृदय से लगाना । परिरक्षण । उ०—प्रजहूँ न लक्ष्मी चद्रगुप्तहि गाढ आलिगन करै ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ११ ।

विशेष—यह सात प्रकार की बहिरंतियों में गिना गया है, जैसे—आलिगन, चुवन, परस, मर्दन, नख-रद-दान । अघर-पान से जाहिए, बहिरति सात मुजान ।—केशव ग्रं० भा० १, पृ० १४ ।

आलिगना—क्रि० म० [सं० आलिङ्गन] अँकवार भरना । भँटना । लपटाना । हृदय से लगाना । गले लगाना । उ०—मिय चूम्यो मुँह चूमि होन रोमाचिन सगवग । आलिगित मदमानि पीय अगनि मेले अग ।—व्याम (शब्द०) ।

आलिगित—वि० [सं० आलिङ्गित] गले लगाया हुआ । हृदय से लगाया हुआ । परिरक्षित । उ०—प्रतिजन प्रतिमन आलिगित तुमसे हुई सम्प्रता यह नूतन ।—प्रतापिका, पृ० २१ ।

आलिगी—वि० [सं० आलिङ्गित] आलिगन करनेवाला ।

आलिग्य<sup>१</sup>—वि० [सं० आलिङ्ग्य] गले लगाने योग्य । हृदय से लगाने योग्य । परिरक्षण करने योग्य ।

आलिग्य<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० एक प्रकार का मृदग ।

आलिजर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बड़ा घड़ा या झंझर [को०] ।

आलिद, आलिदक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आलिन्द, आलिन्दक] दे० 'अनिद' [को०] ।

आलिपन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आलिम्पन] १. दीवार, फर्श आदि की सफेदी या लिपाई पुताई काम । २. लीपना । पोतना [को०] ।

आलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ सखी । सहेली । वयस्या । २ विच्छू । ३ भ्रमरी । ४ पक्ति । अवनी । ५ सेतु । बांध । ६ रेखा ।

आलिखित—वि० [सं०] १ चारों ओर रेखाकित । २ चित्रित । ३ लिखित । लिखा हुआ [को०] ।

आलिप्त—वि० [सं० आलिप्त] अलेप । निर्लेप । उ०—लिप्त नाहि प्राणिप्ल रहत है ज्यो रवि जोति समावै ।—जग० बानी पृ० ११६ ।

आलिप्त—वि० [सं०] विद्वान् । पंडित । जानकार ।

आली<sup>१</sup>—वि० [सं०] सखी । सहेली । गोइयाँ । उ०—एक कहइ नृपसुत तेइआली । सुने जे मुनि संग आए काली ।—मानस, १।२२६ ।

आली<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] चार दिक्के के बराबर का एक मान ।

विशेष—यह शब्द गढ़वाल और कुमाऊँ में बोला जाता है ।

आली<sup>३</sup>—वि० [सं०] भीगी हुई । गीली । तर ।

आली<sup>४</sup>—वि० [सं०] बड़ा । उच्च । श्रेष्ठ । माननीय ।

यो०—आलीशान । आलीजाह । जनाव आली ।

विशेष—इम शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों के साथ होता है ।

आली<sup>५</sup>—[वि० आल] आल के रंग का । जैसे,—प्राची रंग ।

आली<sup>६</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आलि] पक्ति । अवली । उ०—वरन दीन-दयान बँठि हमन की आली, मद मद पग देन अहो यह छल की चाली ।—दीन० ग्रं०, पृ० २०६ ।

आलीजा—वि० [अ० आलीजाह] दे० 'आलीजा' । उ०—प्राचीजा इक बार, हम मक्कौ लै गाव मै । जगन हरनि मिहार, सेवो ये अरजै करे । हम्मौर०, पृ० २ ।

आलीजाह—वि० [अ०] ऊँचे दर्जे का । उच्चपदस्थ । श्रीमान् ।

आलीढ<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दाहिनी जाँघ को फँकाकर और बाई जाँघ को मोड़कर बाण चलाने की मुद्रा [को०] ।

आलीढ<sup>२</sup>—वि० १ खाया हुआ । भूक्त । २ चाटा हुआ । ३. घायन । चोट खाया हुआ [को०] ।

आलीढक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] हाथ के ध्याए हुए बटुड़े की उछन कूद [को०] ।

आलीन<sup>१</sup>—वि० [म०] १ परिरक्षित । आलिगित । २ चिपगा हुआ । शिष्ट । ३. द्रवित । पिघला हुआ [को०] ।

आलीन<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १ टीन । २. मोना । ३. मपर्क [को०] ।

आलीनक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'आलीन' [को०] ।

आलीशान—वि० [अ०] मध्य । मउकीला । शानदार । विज्ञान ।

आलुचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आलुञ्चन] फाड़ना । चीरना । छेदना [को०] ।

आलुठन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आलुठन] चोरी करना । छीनना । अपहरण करना । लूटना [को०] ।

आलु<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का मूल । २ आवनूस । ३ नाव या वेडा । ४ पेचक । उल्लू [को०] ।

आलु<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० पानी रखने की भाँरी । मटकी [को०] ।

आलुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आलूकद । २. शेषनाग ।

आलुल—वि० [सं०] कपित । हिलता हुआ [को०] ।

आलुलायित—वि० [सं० आलुलित] > आलुलायित = हिलता हुआ । कपित । उ०—वजी निशा के बीच आलुलायित केशों के तम में । —नील०, पृ० १० ।

आलुलित—वि० [सं०] १ विचलित । २ झुट्टा [को०] ।

आल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आलु] एक प्रकार प्रसिद्ध कद ।

विशेष—स्वार कांतिक मेक्यारियो के बीच मेड बनाकर आलू बोए जाते हैं जो पूस में तैयार हो जाते हैं । एक पौधे की जड़ में पाव भर के लगभग आलू निकलता है । भारतवर्ष में अब आलू की खेती चारों ओर होने लगी है । पर पटना, नैनीताल और चौरापूची इसके लिये प्रसिद्ध स्थान हैं । नैनीताल के पहाड़ी आलू बहुत बड़े बड़े होते हैं । आलू दो तरह के होते हैं लाल और सफेद । यह पौधा वास्तव में अमेरिका का है । वहाँ से सन् १५८० ई० में यह यूरोप में गया । भारतवर्ष में इसका उल्लेख सबसे पहले उस भोज के विवरण में आता है जो सन् १६१५ ई० में मर टामस रो को आसफ खाँ की ओर से अजमेर में दिया गया था । जब पहले पहल आलू भारतवर्ष में आया या तब हिंदू लोग उसे नहीं खाते थे,

केवल मुपनमान और त्रैगरेज ही खाते थे। पर धीरे धीरे इसका खूब प्रचार हुआ और अब हिंदू व्रत के दिनों में भी इसे खाते हैं। 'आलू' शब्द पहले कई प्रकार के कंदों के लिये व्यवहृत होता था, विशेषकर 'अरुणा' के लिये। फारसी में कुछ गोल फलों के लिये भी आलू शब्द का व्यवहार होता है, जैसे,—पानूबुखारा, शफतालू आलूचा।

यौ०—रतालू। शफतालू।

आलू<sup>२</sup>—सब्जा स्त्री० [स० आलू] छोटा जलपात्र। भारी। लुटिया। घरी।

आलूचा—सब्जा पुं० [फा० आलूचह्] १ एक पेड़।

विशेष—यह पेड़ पश्चिमी हिमालय पर गढ़वाल से कश्मीर तक होता है। इसका फल गोल गोल होता है और पत्राव इत्यादि में बहुत खाया जाता है। फल पकने पर पीना और स्वाद में खटमीठा होता है। अफगानिस्तान में आलूचे की एक जाति होती है, जिसके सूखे हुए फल आलूबुखारा के नाम से भारतवर्ष में आते हैं। आलूचे के पेड़ से एक प्रकार का पीना गोद निकलता है। फल की गुठलियों से तेल निकाला जाता है, जो कहीं कहीं जलाने के काम आता है। इसकी लकड़ी बहुत मुलायम होती है। इससे काश्मीर में रंगीन और नक्काशीदार सड़क बनाते हैं।

पर्या०—भोटिया बदाम। गर्दालू।

आलूचाप—सब्जा पुं० [हि० आलू + अप० चाप] आलू का पकवान जो उवाले हुए आलू को पीसकर और गोल या चिपटी टिकियों की तरह बनाकर घी या तेल में तलकर बनाया जाता है। उ०—अत मे मने 'विणुद' आलूचाप का प्रस्ताव कैलास के सामने रखा।—सन्ध्यासी, पृ० ३४०।

आलूदम—सब्जा पुं० [हि०] दे० 'दमप्रातृ'।

आलूदा—वि० [फा० आलूदह्] लक्ष्यपथ। निथटा हुआ। लथापथ। सना हुआ। उ०—अशकू आलूदा मेरे इस कदर जारी है आज।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४०।

आलून—वि० [स०] काटा हुआ। काटकर अलग किया हुआ [को०]।

आलूवालू—सब्जा पुं० [स० आलू + वालू (अनु०)] आलूच की तरह का एक पेड़ जो पश्चिमी हिमालय पर होता है। इससे एक प्रकार का गोद निकलता है। योरोप में इसके फलों का आचर और मुरब्बा डालते हैं, बीज से शराब को स्वादिष्ट करते हैं और लकड़ी से बिन और वांसुरी आदि वाजे बनाते हैं।

पर्या०—गिलास। ओलची।

आलूबुखारा—सब्जा पुं० [फा० आलू बुखारह्] आलूचा नामक वृक्ष का मुखाया हुआ फल।

विशेष—यह फल पश्चिमी हिमालय में भी होता है, परंतु बुखारा प्रदेश का उत्तम नमूना जाता है। इसी से इसका यह नाम प्रसिद्ध है। यह आंवले के बराबर और आड़ू के आकार का होता है और स्वाद में खटमीठा होता है। हिंदुस्तान में आलूबुखारा अफगानिस्तान से आता है। यह दस्तावर है और ज्वर को शांत करता है। इसी से रोगियों को इसकी चटनी खिलाते हैं।

आलूशफतालू—सब्जा पुं० [हि० आलू + फा० शफतालू] (निरर्थक)। लडको का एक खेल जो पच्छिम में दिल्ली, मेरठ आदि स्थानों में खेला जाता है।

विशेष—इसमें एक लडका दूसरे को घोड़ा बनाकर उसकी पीठ पर सवार होता है और उसकी आंखें अपने हाथों में बंद कर लेता है। तब एक तीसरा लडका उसके पीछे खड़ा होकर उँगलियाँ बुझाता है। यदि घोड़ा बना हुआ लडका उँगलियों की सख्या ठीक ठीक बतला देता है, तो वह मरता हो जाता है और उस उँगली बुझानेवाले लडके को घोड़ा बनाकर उस पर सवार होता है।

आलेख<sup>१</sup>—सब्जा पुं० [स०] १ लिखावट। लिपि। लिखाई। २ लिखित वस्तु। लिखित सामग्री (रमाण आदि के लिये उपयोगी)।

आलेख<sup>२</sup>—वि० [सं० अलक्ष्य, प्रा० अलक्ष] जो लक्ष्य में न आए। अलक्ष्य। उ०—अब वह आलेख को देखिया कैसे भयो ब्रह्मरागी।—केणव० अमी०, पृ० १०।

आलेखन—सब्जा पुं० [स०] १ चित्र। तस्वीर। उ०—चतुर शिल्पी या चित्ते की भाँति अनेक मुद्र हन या आलेखन उपस्थित किए।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६५३। २. लिखने का कार्य। लिखना। उ०—इस ग्रंथ के आलेखन या संपादन में संपादन समिति के मित्रों के साथ विविध समिति के सदस्यों तथा अन्य मित्रों का सहयोग रहा है।—शुक्ल अभि० ग्र०, पृ० २।

आलेख्य<sup>१</sup>—सब्जा पुं० [स०] चित्र। तस्वीर।

आलेख्य<sup>२</sup>—वि० लिखने योग्य।

यौ०—आलेख्य विद्या=मुसव्वरी। चित्रकारी।

आलेपन—सब्जा पुं० [स०] १ लेप। २ उपलेप। पलमंतर।

आलेपन—सब्जा पुं० [स०] लेप करने का कार्य।

आलै<sup>१</sup>—सब्जा पुं० [स० आलय] घर। निधान। भवन। उ०—जो पं प्रभु करुणा के आलै। तौ कत कठिन कठोर होत मन, मोहि बहुत दुख सारै।—सूर०, १०। ४७७२।

आलोक—सब्जा पुं० [स०] [वि० आलोक्य] १. प्रकाश। चाँदनी। उजाला। रोशनी। २. चमक।

यौ०—आलोकवाक्य। आलोकमाला।

३ दर्शन। दीदार।

आलोकन—सब्जा पुं० [स०] दर्शन। अवलोकन।

आलोकनीय—सब्जा पुं० [स०] दर्शनीय। देखने योग्य।

आलोकित—वि० [स०] १ देखा हुआ। २ प्रकाशित। उद्गमिन।

आलोच<sup>१</sup>—सब्जा पुं० [स० आ + लुञ्चन] नेत्रों में गिरा हुआ अथ वीनना। णीला। (हिं०)।

आलोचक—वि० [स०] [वि० स्त्री० आलोचिका] १ देखनेवाला। २ जो किसी वस्तु के गुण दोष की विवेचना करे। जो आलोचना करे। जाँचनेवाला।

आलोचना<sup>१</sup>—सब्जा पुं० [हिं० आलोच] दे० 'आलोच'।

आलोचन—सब्जा पुं० [स०] १ दर्शन। २ गुण दोष का विचार। विवेचन। जाँच। ३ जैनमतानुसार पाप का प्रकाशन।

आलोचना—सब्जा स्त्री० [स०] किसी वस्तु के गुण दोष का विचार। गुण-दोष-निरूपण।



श्रालोचित—वि० [मं०] जिनके गुण दीप का निहाण किया गया हो। विचार किया हुआ।

श्रालोडन—सज्ञा पुं० [मं० श्रालोडन] १ मयना। हिलोरना। २. विचार। सोच विचार।

श्रालोडना—क्रि० म० [सं० श्रालोडन] १ मयना। २ हिलोरना। ३ खूब सोचना विचारना। ऊहापोह करना।

श्रालोडित—वि० [मं० श्रालोडित] १ मया हुआ। २ हिलोरा हुआ। ३ सुवित्तित। सोचा हुआ।

श्रालोप—सज्ञा पुं० [मं०] १ लुप्त करना। २ पहले का निश्चय रद्द करना [को०]।

श्रालोल—वि० [मं०] १ कुछ कुछ हिलता हुआ। तनिक चंचल। २ क्षुब्ध। अस्तव्यस्त। जैसे,—केश [को०]।

श्रालोलित—वि० [सं०] क्षुब्ध किया हुआ। आदोलित [को०]।

श्राल्टरनेटिव—सज्ञा पुं० [अ०] १ चारा। दूसरा उपाय। उ०—इनमे से किसी को एप्रूर बनाना होगा, और कोई आल्टरनेटिव नहीं है।—गवर्न, पृ० २८२।

श्राल्वार—सज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारतीय भागवत धर्म के नत उपदेशको की श्रेणी।

श्राल्हा—सज्ञा पुं० [देश०] १ २१ मात्राओं के एक छंद का नाम जिसे वीर छंद भी कहते हैं। इसमें १६ मात्राओं पर विराम होता है। जैसे,—सुमिरि भवानी जगदवा कौ श्री मारद के चरन मनाय। आदि सरस्वति तुमका ध्यावो माता कठ विराजो आय। २ महोदये के एक पुरुष का नाम जो पृथ्वीराज के समय में था। ३ बहुत लंबा चौड़ा वर्णन।

मुहा०—श्राल्हा गाना=अपना वृत्तान्त सुनाना। आपबीती सुनाना।

यो०—श्राल्हा का पेंवर=व्यर्थ का लंबा चौड़ा वर्णन। वितड़ावाद।

श्रावतक—म० [सं० श्रावन्तक] श्रावती से संबंधित [को०]।

श्रावतिक—वि० [मं० श्रावन्तिक] दे० 'श्रावतक'।

श्रावती सज्ञा स्त्री [सं० श्रावन्ती] श्रावति और उसके आस पास वाली जानेवाली प्राचीन भाषा।

श्रावत्य—वि० [मं० श्रावन्त्य] १ श्रावति देश का। २ श्रावति देश का निवासी।

श्रावदन—सज्ञा पुं० [सं० श्रावन्दन] नमस्कार। प्रणाम। [को०]।

श्रावै—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'श्रावा'।

श्राव—सज्ञा पुं० [मं० श्राव] श्राव। जिनगी। उ०—मोहन दूग इन दूगन से, जा दिन लख्यो न नेक। मति लेखी वह श्राव मे, विधि लेखनि नै छेक।—रमनिधि (शब्द०)।

श्रावप्रादर—सज्ञा पुं० [हिं० श्रावना + मं० आदर] श्रावभगत। आदर-सत्कार।

श्रावक—सज्ञा पुं० [हिं० श्रावना + क (प्रत्य०)] आमद। पहुँच।

यो०—श्रावकजावक=आनाजाना।

श्रावज—सज्ञा पुं० [सं० श्रातोद्य, प्रा० आशोज्ज, श्रावज्ज] एक पुराना वाजा जो ताशे के ढंग का होता है। उ०—उद्धत मुजान मुत बुद्धिबलवान सुनि, दिल्ली के दरनि वाजै श्रावज उछाही के।—सुजात०, पृ० १०१।

श्रावज—सज्ञा पुं० [हिं० श्रावज] दे० 'श्रावज'। उ०—पटह पखाउज श्रावज मोहैं। मिनि महनाडन मो मन मोहैं।—रामच०, पृ० ४४।

श्रावटना<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० श्रावत्त, प्रा० श्रावट्ट] १ हलचल। उथल पुथल। डावाँडोलपन। अस्थिरता। २ सकल विकल। ऊहापोह। उ०—जा घट जान विनान है, तिस घट श्रावटना घना। विन खाँडे मग्राम है नित उठि मन मो जूझना।—कवीर (शब्द०)।

श्रावटना<sup>२</sup>—क्रि० स० गरम करना। श्रोटाना। खोलाना।

श्रावटना<sup>३</sup>—क्रि० अ० गरम होना। श्रोटना। खोलना। उबाना। उ०—जिहि निदाध दुपहर गहै मई माघ की राति। तिहि उमरी की रावटी खरी श्रावटी जाति।—विहारी र० दो० २४४।

श्रावट्ट—सज्ञा पुं० [मं० श्रावत्त, प्रा० श्रावट्ट] दे० 'श्रावत्त'। उ०—ऐसो जु जुद्ध करिहै न कोउ। नय लप्प मान श्रावट्ट मोउ।—पृ० रा०, ६१। १०००।

श्रावडना—क्रि० अ० [सं० श्रावुड, प्रा० श्रावड्ड, गु श्रावड्डु] मम-भना। पसद आना। उ०—घड़ी एक नहि श्रावडे, तुम दरमन विन मोय। तुम ही मेरे प्राण जी, का सँ जीवन होय।—मत वानी०, भा० २, पृ० ७०।

श्रावघ—सज्ञा पुं० [हिं० श्रावुघ] दे० 'श्रावुघ'। उ०—(क) दाद सोधी नहीं सरीर की कहै अगम की बात। जान कहावै बापुडे, श्रावघनी लिये हाथ।—दाद० वानी, पृ० २२। (ख) मनो श्रावघ वज्जि जो वज्ज वदर।—पृ० रा०, २। १०१।

श्रावन—सज्ञा पुं० [मं० श्रागमन, पुं० हिं० श्रागवन] आगमन। आना। उ०—(क) द्वागे ठाढे हैं द्विज वावन। चागे वेद पढत मुख आगर अति सुकठ मुर गावन। वानी मुनि बनि पूछन लागे इहाँ विप्रकृत श्रावन।—सूर०, ८। ४४०।

श्रावना<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हिं० श्रावन] दे० 'श्रावन'। उ०—बहुर नहि श्रावना या देस।—कवीर श०, पृ० ५।

श्रावना<sup>२</sup>—क्रि० अ० [हिं० आना] दे० 'आना'।

यो०—श्रावना जावना=आना जाना। उ०—वार पार की हद्द पर हर वक्त मे भी, बीच श्रावना जावना लेखा है—कवीर र०, पृ० ३५।

श्रावनि—सज्ञा स्त्री [हिं० श्रावन] दे० 'श्रावन'।

श्रावनेय—सज्ञा पुं० [मं०] श्रावनि या पृथ्वी का पुत्र, मंगल।

श्रावपन—सज्ञा पुं० [मं०] १ बोप्राई। २ पेड़ का लगाना। ३ थाला। ४ सारे सिर का मुडन।

यो०—केशावपन।

श्रावभगत—सज्ञा पुं० [हिं० श्रावना + भक्ति] आदर सत्कार। खातिर तवाजा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

श्रावभावा—सज्ञा पुं० [सं० भाव] आदर सत्कार। खातिर तवाजा। उ०—श्रावभाव कै डोलिया पालकी सत्त नाम कै बाँस लगायो।—धरम० (शब्द०)।

श्रावय—सज्ञा पुं [सं०] १ प्रागमन । २ प्रागंतुक । आनेवाला [को०] ।  
श्रावरण—अव्य० [सं० श्रपर] और । उ०—सखी सिखाड कँदला  
गई । श्रावर मंदिर ठाढ़ी भई ।—माधवा०, पृ० १६७ ।

श्रावरक<sup>१</sup>—वि० [सं०] छिपानेवाला । श्रावरण डालनेवाला [को०] ।  
श्रावरक<sup>२</sup>—सज्ञा पुं [सं०] परदा । चिक [को०] ।

श्रावरखावो—सज्ञा पुं [सं० श्रावर = और + खं० खावो = खाऊंगा] एक प्रकार की वंगला मिठाई ।

श्रावरण—सज्ञा पुं [सं०] १ आच्छादन । ढकना । २ वह कपड़ा जो किसी वस्तु के ऊपर ढपेटा हो । वेठन । ३. परदा । उ०—  
सब कहते हैं खोलो खोलो छवि देखूंगा जीवनधन की, श्रावरण  
स्वयं बनते जाते हैं भीड़ लग रहो दर्शन की ।—कामायनी,  
पृ० ६८ । ४. ढाल । ५. दीवार इत्यादि का घेरा । ६. अज्ञान ।  
७. चलाए हुए अस्त्र शस्त्र को निष्फल करनेवाला अस्त्र ।

श्रावरणपत्र—सज्ञा पुं [सं०] वह कागज जो किसी पुस्तक के ऊपर उसकी रक्षा के लिये लगा रहता है और जिसपर पुस्तक और पुस्तककर्ता के नाम इत्यादि भी रहते हैं । कवर ।

श्रावरणशक्ति—सज्ञा स्त्री [सं०] वेदगत में आत्मा या चैतन्य की दृष्टि पर परदा डालनेवाली शक्ति ।

श्रावरिका—सज्ञा स्त्री [सं०] धुन्न आपण । छोटी दुकान [को०] ।

श्रावरित—वि० [सं०] ढका हुआ आवृत [को०] ।

श्रावरिता—वि० [सं० श्रावरित] ढकने या आच्छादित करनेवाला [को०]

श्रावरी—वि० [सं० श्रावरीत > श्रावरीता] ढकी हुई । आच्छादित ।  
उ०—मोह में श्रावरी हूँ बुधि वावरी सीख मुनै न दसा दुख  
छीजै ।—घनानंद, पृ० १४ ।

श्रावर्जक—वि० [सं०] आकर्षक [को०] ।

श्रावर्जन—सज्ञा पुं [सं०] १ आकृष्ट करना । २ सतुष्ट करना ।  
३ नीचा दिखाना । ४ दान की क्रिया [को०] ।

श्रावर्जना—सज्ञा स्त्री [सं०] १ आकर्षण । २ तिरस्कार । श्रवमानना ।  
उ०—मैं देव सृष्टि की रति रानी निज पचवाण से वचित हो,  
बन श्रावर्जना मूर्ति दीना अपनी अतृप्ति सी सचित हो ।  
—कामायनी पृ० १०२ ।

श्रावर्जित<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ त्याग किया हुआ । जिसे छोड़ दिया गया हो । छोड़ा हुआ । पराभूत । परास्त ।

श्रावर्जित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं [सं०] चंद्रमा की स्थिति विशेष [को०] ।

श्रावर्त<sup>१</sup>—वि० [सं०] १. पानी का भँवर । २. चार मेघाधिपों में से एक । ३. वह बादल जिसमें पानी न बरसे । ४. एक प्रकार का रत्न । राजवर्त । लाजवर्द । ५. सोनामाखी । ६. गोएँ की भँवरी । ७. सोच विचार । चिंता । ८. सप्ताह ।

श्रावर्त<sup>२</sup>—वि० घूमा हुआ । मुड़ा हुआ ।

यो०—दक्षिणावर्त शब्द = वह शब्द जिनकी गौरी दाहिनी तरफ गई हो । यह शब्द बहुत मंगलप्रद समझा जाता है ।

श्रावर्तक—राज्ञा पुं [ग०] योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नो में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग । मार्कंडेय पुराण के अनुसार इस विघ्न के द्वारा ज्ञान आकुल हो जाता है और उनका चित्त नष्ट हो जाता है ।

श्रावर्तकी—सज्ञा स्त्री [सं०] एक प्रकार की रता जिसे चर्मण और भगवद्बत्नी भी कहते हैं ।

श्रावर्तन—सज्ञा पुं [सं० श्रावर्तन] १ चक्कर देना । घुमाव । फिराव । उ०—बहु अनग पीडा अनुभव-सा अंगमगियों का नतन, मधुकर के मरद उत्सव मा मंदिर नाव ने श्रावर्तन ।  
—कामायनी, पृ० ११ । २. विलोडन । मथन । हिलाना । उ०—सौर चक्र में श्रावर्तन या प्रलय निजा का होता प्रात ।  
—कामायनी, पृ० २० । ३. धातु इत्यादि का गलाना । ४. दोपहर के पीछे पदार्थों की छाया का पश्चिम में पूर्व की ओर पडना । ५. तीसरा पहर । पराहण ।

श्रावर्तनी—सज्ञा स्त्री [सं०] १. वह कुल्हिया या घड़िया जिनमें धातु गलाई जाती है । २. कलछी । चमच । चमचा [को०] ।

श्रावर्तनीय—वि० [सं०] १ घुमाने योग्य । २ मथने योग्य ।

श्रावर्तमणि—सज्ञा पुं [सं०] राजावर्त मणि । राजवर्द पत्थर ।

श्रावर्तित—वि० [सं०] १ घुमाया हुआ । २. मथा हुआ ।

श्रावर्तिनी—सज्ञा स्त्री [सं०] १ भँवर । जलावर्त । गौरी । २ अज-शृंगी नाम का पौधा [को०] ।

श्रावर्ती—वि० [सं० श्रावर्तिन्] १ चक्कर काटनेवाला । घूमने या फेरा लगानेवाला । २ पिघलनेवाला । ३ घुलमिल जानेवाला [को०] ।

श्रावर्दी—वि० [फा०] १ लाया हुआ । २ कृपापात्र ।

श्रावर्दी<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'श्रावर्दी' ।

श्रावर्ष—सज्ञा पुं [सं०] वर्षा । बरसात । वृष्टि [को०] ।

श्रावलि—सज्ञा स्त्री [सं०] पंक्ति । पंक्त । अनुक्रमिकता । श्रेणी ।  
कतार । उ०—वन उपवन खिन आई कलियाँ, रवि छवि दर्शन की श्रावनियाँ ।—पाराधना, पृ० ३ ।

श्रावलित—वि० [सं०] बल खाया हुआ । कुछ मुड़ा या जुका [को०] ।

श्रावली—सज्ञा स्त्री [सं०] पंक्ति । श्रेणी । कतार । २. वह युक्ति या विधि जिसके द्वारा विम्बे की उपज का अदाज होता है । जैसे, विम्बे की उपज के सेर का आधा करने में बीघे की उपज का मन निकलता है ।

श्रावल्गित—वि० [सं०] घीरे घीरे हिनता हुआ । ईप्सुकवित [को०] ।

श्रावल्गी—वि० [सं० श्रावल्गिन्] नाचनेवाला [को०] ।

श्रावश्य—सज्ञा पुं [सं०] १ जरूरत । आवश्यकता । २ अनिवार्य काम या परिणाम [को०] ।

श्रावश्यक—वि० [सं०] १. जिसे अवश्य होना चाहिए । जरूरी । नापेक्ष्य । जैसे,—(क) आज मुझे एक श्रावश्यक कार्य है । (ग) तुम्हारा वहाँ जाना श्रावश्यक नहीं । २. प्रयोजनीय । काम का । जिनके बिना काम न चले । जैसे,—पढ़ने श्रावश्यक वस्तुओं का इकट्ठा कर लो ।

श्रावश्यकता—सज्ञा स्त्री [सं०] १ जरूरत । अपेक्षा । २ प्रयोजन । मतलब । उ०—शपनी श्रावश्यकता का अनुसरण गया, रे मनुष्य तू कितना नीचे गिर गया ।—कल्याण, पृ० २६ ।

श्रावश्यक्रीय—वि० [सं०] प्रयोजनीय । जरूरी ।

श्रावसति—सज्ञा स्त्री [सं०] १. रात । निजा । २. रात में रुने के लिये विभ्रामह्वान [को०] ।

श्रावसथ—पुं० [सं०] १ रहने की जगह । गृह । २ दम्नी । गाँव । ३ आश्रम । ४ व्रतविशेष ।

श्रावसथ्य<sup>१</sup>—वि० [सं०] घर का । खानगी ।

श्रावसथ्य<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० पाँच प्रकार की अग्निथो में से एक । वह अग्नि जो भोजन पकाने आदि के काम में आती है । लौकिकाग्नि ।

श्रावसान—वि० [सं०] ग्राम के अवसान या छोर का निवासी (जैसे चाडाल आदि) [को०] ।

श्रावसित—वि० [सं०] १ पूर्ण । पूरा किया हुआ । २ निश्चित किया हुआ । एकत्र किया हुआ (धान्य आदि) । ४ पका हुआ । पूर्ण विकसित ।

श्रावस्थिक—वि० [सं०] अवस्था के अनुकूल [को०] ।

श्रावस्सिक(पुं०)—वि० [सं०] आवश्यक] दे० 'आवश्यक' । उ०—कालि उहाँ भोजन करी श्रावस्सिक यह वात ।—ग्रं०, पृ० ३२ ।

श्रावह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वायु के सात स्कन्धों में पहले स्कन्ध की वायु । भूलोक और स्वर्लोक के बीच की वायु । भूवायु ।

विशेष—सिद्धातशिरमणि में इस वायु को १० योजन ऊपर माना है और इसी से विजली, ओले आदि की उत्पत्ति बतलाई है ।

२ अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक ।

श्रावहन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ढोकर पास ले जाना । समीप लाना [को०] ।

श्रावाँ<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हि० श्रावा, श्रावना] १ लोहा जब खूब लाल हो जाना है तो उसे पीटने के लिये दूसरे लोहार को बुलाते हैं । इस बुलावे को 'श्रावाँ' कहते हैं ।

श्रावाँ<sup>२</sup>, श्रावा(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] श्रापाक] दे० 'श्रावाँ' । उ०—जान प्यारे जोव कहूँ दीजिए सनेसो तोव श्रावा सम कीजिए जु कान तिहि काल हैं ।—रमखान, पृ० ५० ।

श्रावागमन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० श्रावा = श्रावा + म० गमन] १ श्रावा जाना । श्रावाई जवाई । श्रावदरपत । २ बार बार मरना और जन्म लेना । जन्म और मरण ।

यौ०—श्रावागमन (से) रहित = मुक्त । मोक्षपदप्राप्त । जैसे,—पूर्ण ज्ञान के उदय से मनुष्य श्रावागमन से रहित हो सकता है ।

श्रावागर्वन(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रावागमन' । उ०—छुटावें मोह को विपत्ति अति श्रावागमन सो । शकुंतला, पृ० १५४ ।

श्रावागौन(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रावागमन' ।

श्रावाज—सञ्ज्ञा पुं० [फा० श्रावाज, सं० श्रावाज, पा० श्रावाज] १ शब्द । ध्वनि । नाद ।

क्रि० प्र०—श्रावा ।—करना ।—देना ।—लगाना ।

२ बोली । वाणी । स्वर । जैसे,—वे गान तो हैं, पर उनकी श्रावाज अच्छी नहीं है । ३ फकीरो या सौदा बेचनेवालों की पुकार । ४ हल्ला गुल्ला । शोर ।

मृहा०—श्रावाज उठाना = (१) गाने में स्वर ऊँचा करना ।

(२) किसी बात के समर्थन या विरोध में कहना । श्रावाज कसना = (१) जोर से खींचकर शब्द निकालना । (२) दे० 'श्रावाज बमना' । उ०—अभी तो आप हमपर श्रावाज कस रहे थे ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५ । श्रावाज खुलना =

(१) बँठी हुई श्रावाज का साफ निकलना । जैसे,—चुन्हारा

गना बैठ गया है, इस दवा से श्रावाज खुल जायगी । (२) अधोवायु का निकलना । श्रावाज गिरना = स्वर का मद पड़ना । श्रावाज देना = जोर से पुकारना । जैसे,—हमने श्रावाज दी, पर कोई नहीं बोला । श्रावाज निकालना = (१)

बोलना । (२) चूँ बरना । जवान खोलना । जैसे—जो कहते हैं चुपचाप किए चलो, श्रावाज न निकालना । श्रावाज पड़ना =

श्रावाज बँठना । श्रावाज पर लगना = श्रावाज पहचान कर चलना । श्रावाज देने पर कोई काम करना । जैसे,—नीतर अपने पालनेवालों की श्रावाज पर लग जाते हैं । श्रावाज पर

कान रखना = (१) नुनना । ध्यान देना । श्रावाज फटना = श्रावाज भरना । श्रावाज लड़ना = (१) एक के मुर का

दूसरे के मुर से मेल खाना । (२) एक की श्रावाज दूसरे तक पहुँचाना । श्रावाज बँठना = कफ के कारण स्वर का

साफ न निकलना । गला बँठना । जैसे,—उनकी श्रावाज बँठ गई है, वे गावेंगे क्या ? श्रावाज भरना = दे० 'श्रावाज भारी

होना' । श्रावाज भारी होना = कफ के कारण कंठ का स्वर विकृत होना । श्रावाज मारना = जोर से पुकारना । श्रावाज मारी

जाना = स्वर मुरीला न रहना । स्वर का कर्कश होना । जैसे,—अवस्था बढ़ जाने पर श्रावाज भी मारी जाती है । श्रावाज

में श्रावाज मिलाना = (१) स्वर मिलाना । (२) हाँ में हाँ मिलाना । दूसरा जो कह रहा है, वही कहना । श्रावाज लगाना = दे० 'श्रावाज देना' ।

श्रावाजा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० श्रावाज] बोली ठोली । ताना । व्यय ।

क्रि० प्र०—कसना ।—फेंकना ।—मारना ।—सुनाना = व्यय वचन बोलना ।

यौ०—श्रावाजाकशी = किसी दूसरे के मध्यम ने की जानेवाली व्ययव्यक्ति । बोली बोलना ।

श्रावाजानी(पुं०)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० श्रावा + जाना] श्रावागमन । जन्म और मृत्यु का चक्र । उ०—धर्मदाम कवीर गिय पाए मिट गई श्रावाजानी ।—धरम० शब्द०, पृ० ३ ।

श्रावाजाही<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० श्रावा + जाना] श्रावाजाना । श्रावादाना—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० श्रावादाना] दे० 'श्रावादाना' ।

श्रावाप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वि० [श्रावापि] १ बीज बोना । २ आलवाल । थाला । ३ कगन या ककण । ४ फेंकना । छितराना । ५ मिलाना । मिश्रण करना । ६ अन्न पात्र । ७ शत्रुनाशपूर्ण उद्देश्य । ८ पात्रों को व्यवस्थित ढग से रखना । ९ असमतल भूमि । १० एक प्रकार का पेय [को०] ।

श्रावापक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सोने का ककण । कगन [को०] । श्रावापन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. करघा । २. घागा लपेटने की गोल लकड़ी । ३. बाल बनाना [को०] ।

श्रावापिक—वि० [सं०] १ बोने या क्षौर कर्म के लिये उत्तम । २. अतिरिक्त । महायक । पुरक [को०] ।

श्रावाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ थाला । २ घान आदि का खेत में रोटना । रोपाई । ३. हाथ का कड़ा । ककण । ४ वह सेना जो व्यूह बाँधने से बची हुई हो ।

विशेष—कीटिल्य ने कहा है कि परवा तथा प्रत्यावाय से जो सेना तीन गुनी ने आठ गुनी तक हो, उसका आवाय बना देना चाहिए ।

आवार—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] रक्षण । वचाव । शरण [को०] ।

आवारगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] आवारापन । शोहदापन ।

आवारजा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० आवारजह्, जमाखर्व की किताब । वि० दे० 'शवारजा' ।

आवारा—वि० [फा० आवारह्] [सञ्ज्ञा आवारगी] १ व्यर्थ ड़घर उधर फिरनेवाला । निकम्मा । २ वेठौर ठिकाने का । उठल्लू ।  
क्रि० प्र०—घूमना ।—फिरना ।—होना ।

३ बदमाश । लुच्चा । ४ कुशार्गी । शुहदा ।

आवारागर्द—वि० [फा०] व्यर्थ ड़घर उधर घूमनेवाला । उठल्लू । निकम्मा ।

आवारागर्दी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ व्यर्थ ड़घर उधर घूमना । २ बदमाशी । लुच्चापन । शुहदापन ।

आवाल—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] थाला ।

आवास—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ रहने की जगह । निवासस्थान । २ मकान । घर ।

आवासी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० आसना] अन्न का हरा दाना, विशेषतः जौ का दाना ।

आवाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ परिणयसंस्कार । विवाह । २ आम त्रण [को०] ।

आवाहन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मन्त्र द्वारा किसी देवता को बुलाने का कार्य । २ निमन्त्रित करना । बुलाना ।

क्रि० प्र०—करना ।

आवाहना—क्रि० म० [मं० आवाहन] बुलाना । आमन्त्रित करना [को०] ।

आवाहनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] देवता के आवाहन के अवसर पर की जानेवाली एक मुद्रा [को०] ।

आविक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कवल या ऊनी कपड़ा । भेड़ के रोएँ का वस्त्र ।

आविक<sup>२</sup>—वि० [सं०] १ ऊन का । ऊनी । २. भेड़ से संबंधित [को०] ।  
यो०—आविकसौत्रिक=ऊनी तागे से निर्मित [को०] ।

आविन—वि० [सं०] उद्विग्न । व्याकुल [को०] ।

आविद्ध<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ छिदा हुआ । भेदा हुआ । २ फँका हुआ । ३ कुटिल । वक्र । [को०] । ४ मूर्ख । जड़ [को०] । ५ निराश । हताश [को०] । ६ असत्य । झूठा [को०] ।

यो०—आविद्धकर्ण=जिमका कान छिदा हुआ हो । आविद्ध-  
कर्णिका, आविद्धकर्ण=एकलता पाठा या पाठा ।

आविद्ध<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक, जिममें तलवार को अपने चारों ओर घुमाकर दूसरे के चलाए हुए वार को व्यर्थ या खाली करते हैं ।

आविध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वड्डियों का औजार । वरमा [को०] ।

आविर्भाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आविर्भूत] १ प्रकाश । प्राकट्य । २. उत्पत्ति । जैसे,—रामानुज का आविर्भाव दक्षिण में हुआ था । ३ आवेश । जैसे,—महात्माओं में क्रोध का आविर्भाव नहीं होता ।

आविर्भूत—वि० [मं०] १ प्रकाशित । प्रकटित । २ उत्पन्न ।

आविर्मुखी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चटु । ग्राँथ [को०] ।

आविर्मुल—वि० [सं०] (वृक्ष) जिमकी जड़ या मूल खुदा हो [को०] ।

आविर्हित—वि० [सं०] प्रत्यक्षीकृत । देखा हुआ [को०] ।

आविर्होत्र—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] एक ऋषि का नाम ।

आविल—वि० [सं०] १ कलुपित । मैला । पकित । २ मिला हुआ । मिश्रित । उ०—दुख में आविल सुख में पकिल ।  
—नीरजा, पृ० १ ।

आविष्कर्ता<sup>१</sup>—वि० [सं०] आविष्कार करनेवाला । आविष्कारक [को०] ।  
आविष्कर्ता<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० आविष्कार करनेवाला व्यक्ति ।

आविष्कार—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] [वि० आविष्कर्ता, आविष्कृत] १. प्राकट्य । प्रकाश । २. कोई ऐसी वस्तु तैयार करना जिसके बनने की युक्ति पहले किसी को न मालूम रही हो । ईजाद । जैसे,—रेल का आविष्कार इंग्लैंड देश में हुआ । ३. किसी तत्व का पहले पहल ज्ञान प्राप्त करना । किसी बात का पहले पहल पता लगाना । साक्षात्करण । जैसे,—उम विद्वान् ने विज्ञान में बहुत से आविष्कार किए ।

आविष्कारक—वि० [सं०] दे० 'आविष्कर्ता' ।

आविष्कृत—वि० [सं०] प्रकाशित । प्रकटित । २. पता लगाया हुआ । जाना हुआ । ३. ईजाद किया हुआ । निकाला हुआ ।

आविष्क्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] दे० 'आविष्कार' ।

आविष्ट—वि० [सं०] १ आवेश में आया हुआ । २ भूतप्रेतादिग्रस्त । ३ तत्पर । सनद्ध । ४ अविभूत । आक्रांत । ५ प्रवेश किया हुआ । प्रविष्ट [को०] ।

आवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रसवकालीन पीड़ा । २ अतस्तत्त्वा । गर्भवती । ३ रजस्वला स्त्री [को०] ।

आवीत—वि० [मं०] पहना हुआ । धारित । २ गया हुआ । गत [को०] । ३ उपनीत [को०] ।

आवीती—वि० [सं० आवीतिन्] दाहिने कंधे पर जनेऊ रने हुए । जनेऊ उलटा रने हुए । अपसव्य ।

आवस—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आयुष्मन्, पालि-प्रा० आवुस] हे आयुष्मन् । प्रिय । उ०—पंचवर्गिय साधुओं ने कहा—आवुस गौतम हम जानते हैं' ।—वै० न०, पृ० ५० ।

आवृत—वि० [मं०] १ छिपा हुआ । ढका हुआ । उ०—था प्रेमलता में आवृत वृष धवल धर्म का प्रतिनिधि ।—कामायनी, पृ० २७५ । २ लपेटा हुआ । आच्छादित । उ०—अपने को आवृत किए रहो, दिखनाओ निज कृत्रिम स्वह्न ।—कामायनी, पृ० १६६ । ३ घिरा हुआ । छेका हुआ । उ०—उम शक्ति की विफलता की विपादमयी छाया से लोक को फिर आवृत दिखा कर छोड़ दिया ।—रम०, पृ० ६१ ।

आवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ढक्कन । आवरण [को०] ।

आवृत्त—वि० [सं०] १ दुहराया हुआ । आवृत्ति किया हुआ । २ लोटाया या फिराया हुआ । ३ पढ़ा हुआ [को०] ।

आवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ बार बार किसी बात का घमसान । एक ही काम को बार बार करना । जैसे,—पाठ की आवृत्ति

कर जाओ। २ पाठ करना। पढ़ना। ३ घूमना। लौटना [को०]। ४ पलायन [को०]। ५ संसृति। समार [को०]। ६ किसी पुस्तक आदि का पुनर्मुद्रण। सस्करण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आवृत्तिदीपक—सज्ञा पुं० [म०] दीपक अलंकार का एक प्रकार जिसमें क्रियापदों की अनेक बार आवृत्ति होती है [को०]।

आवृष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] वृष्टि। वर्षा [को०]।

आवेग—सज्ञा पुं० [स०] १ चित्त की प्रबल वृत्ति। मन की भोक। जोर। जोश। जैसे,—क्रोध के आवेग में हमने तुम्हें वे बातें कही थीं। २ रस के सवारी भावों में से एक। अकस्मात् इष्ट या अनिष्ट के प्राप्त होने से चित्त की आतुरता।

आवेजा—सज्ञा पुं० [फा० आवेजह्] १ लटकनेवाली वस्तु। २ किसी गहने में शोभा के लिये लटकती हुई वस्तु। जैसे,—लटकन। भुलनी इत्यादि।

आवेदक—वि० [स०] निवेदन करनेवाला। प्रार्थी।

आवेदन—सज्ञा पुं० [म०] [वि० आवेदक, आवेदनीय, आवेदित, आवेदी, आवेद्य] अपनी दशा को सूचित करना। निवेदन। अर्जी।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—आवेदनपत्र।

आवेदनपत्र—सज्ञा पुं० [स०] वह पत्र या कागज जिसपर मुद्धार की आशा से कोई अपनी दशा लिखकर सूचित करे।

आवेदनीय—वि० [स०] निवेदन करने योग्य।

आवेदित—वि० [स०] निवेदन किया हुआ। सूचित किया हुआ।

आवेदी—वि० [स० आवेदिन्] निवेदन या सूचित करनेवाला।

आवेद्य—वि० [म०] दे० 'आवेदनीय'।

आवेलतेल—सज्ञा पुं० [देश०] १ नारियल का वह तेल जो ताजी गरी से निकाला गया हो। २ वह तेल जो सूखी गरी से निकाला जाता है। 'मुठेल' का उलटा।

आवेश—सज्ञा पुं० [स०] १ व्याप्ति। संचार। दौरा। २. प्रवेश। ३. चित्त की प्रेरणा। भोक। वेग। आतुरता। जोश। उ०—क्रोध के आवेश में मनुष्य क्या नहीं कर डालता। --(शब्द०)। ४ भूत प्रेत की बाधा। ५ अपस्मार। मृगी रोग। ६. सकल्प। अभिनिवेश। आग्रह [को०]। ७ गर्व। मद [को०]।

आवेशन—सज्ञा पुं० [म०] १ चंद्र या सूर्य की परिधि वा परिवेश। २ प्रवेश। ३ कोप। क्रोध। ४ शिल्पशाला। शिल्पकेंद्र। ५. भूत प्रेतादि का आवेश [को०]।

आवेशनिक—सज्ञा पुं० [स०] मित्रों को दिया जानेवाला भोज। [को०]।

आवेशिक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ राजशेखर के मतानुसार कवियों की एक श्रेणी। मंत्र आदि के बल से प्राप्त सिद्धि द्वारा आवेश की स्थिति में कविता करनेवाला कवि। २ अतिथि। अभ्यागत [को०]। ३ अतिथिमत्कार। आतिथ्य [को०]। ४. भीतर जाना। प्रवेश करना। घुसना [को०]।

आवेशिक<sup>२</sup>—वि० १ असामान्य। प्रमाथारण। २ व्यक्तिगत। स्वगत। निजी। ३ अतर्निहित [को०]।

आवेष्टक—सज्ञा पुं० [म०] १ घेरा। २ जान [को०]।

आवेष्टन—सज्ञा पुं० [म०] [वि० आवेष्टित] १. छिपाने या ढँकने का कार्य। २ छिपाने या ढँकने की वस्तु। ३. वह वस्तु जिसमें कुछ नपेटा हो। वेठन। ४ चहारदीवारी।

आवेष्टित—वि० [स०] १ छिपा हुआ। ढँका हुआ। २ आवेष्टनयुक्त।

आवेश<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [म० आवेश, प्रा० आवेस] दे० 'आवेश'। उ०—वाकौ सेवा के आवेस में खाइवे की सुविधा न रहती।—दो सी धावन०, भा० १, पृ० २११।

आव्रज<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [स० आवरण] आच्छादन। घेरा। उ०—दह कोह सा स्वामि आराम छुट्टी। पछे पग रा मेन आव्रज उट्टी।—पृ० रा०, ६। २०३७।

आशकनीय—वि० [स० आशङ्कनीय] आशकायोग्य। मदेहास्पद [को०]।

आशका—सज्ञा स्त्री० [स० आशङ्का] [वि० आशङ्कित आशङ्कनीय] १ डर। भय। खौफ। उ०—उने अपने गिर जाने की आशका थी।—ककाल, पृ० ६४। २ शक। श्रुवहा। सदेह। ३. अनिष्ट की भावना।

आशङ्कित<sup>१</sup>—वि० [म० आशङ्कित] १ डरा हुआ। भयभीत। २ सदेहात्मक। सदेहयुक्त।

आशङ्कित—वि० १. सदेह। शक। २ भय। डर [को०]।

आशसन—सज्ञा पुं० [स०] १ आशा करना। इच्छा करना। २ कहना। घोषित करना [को०]।

आशंसा—सज्ञा स्त्री० [म०] १ इच्छा। २ आशा। ३ संकेत। ४. आपण। कथन। ५ कल्पना [को०]।

आशसित—वि० [स०] १ इच्छित। २ परिकल्पित। ३ कथित। ४ मोचा हुआ [को०]।

आशसिता—वि० [स० आशसितृ] १. आशा या इच्छा करनेवाला। २ वक्ता। कथन करनेवाला [को०]।

आशसी—वि० [म० आशसिन्] दे० 'आशसिता' [को०]।

आशसु—वि० [म०] दे० 'आशसिता' [को०]।

आश—सज्ञा पुं० [स०] आहार। भोजन (समाम में प्रयुक्त) [को०]।

आशक—वि० [म०] खानेवाला। भोजन करनेवाला [को०]।

आशकार—सज्ञा पुं० [स० आविष्कार, फा० आशकार, आशकारा, आशकारह] प्रकट। खुला हुआ। स्पष्ट। उ०—जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है। उसी का सब है जलवा जो जहाँ मैं आशकारा है।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८५१।

आशना—सज्ञा उभ० [फा०] १ जिसमें जान पहचान हो। २ चाहनेवाला। प्रेमी। ३. प्रेमपात्र। जैसे,—(क) वह औरत उसकी आशना है। (ख) वह उस औरत का आशना है।

आशनाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] १ जान पहचान। २. प्रेम। प्रीति। दोस्ती। ३ अनुचित संबंध।

आशफल—सज्ञा पुं० [मं०] एक प्रकार का वृक्ष जो मद्रास, बिहार और बंगाल में बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और सजावट के असंख्य बनाने के काम में आती है।

आशय—सज्ञा पुं० [सं०] १ अविप्राय । मतलब । २ वासना । इच्छा । जैसे,—ईश्वर क्लेश, कर्मविषाक और आशय से रहित है ।

यो०—उच्चाशय । नीचाशय । महाशय ।

३. स्थान । आधार । जैसे,—आमाशय, गर्भाशय । जलाशय । पक्वाशय । ४. गड्ढा । खात । ५. कटहल । पनश । ६. अभ्युदय । उन्नति [को०] । ७. धन । संपत्ति [को०] । ८. कजूर । कृपण [को०] । ९. अन्नागार । बखार [को०] । १०. भाग्य । निखन [को०] । ११. विश्रामस्थान [को०] । १२. घर । गृह । [को०] । १३. जंगली जानवरों को फँसाने का गड्ढा । अवट [को०] ।

आशर—सज्ञा पुं० [सं०] १ राक्षस । उ०—काहू कहूँ शर आशर मारिय । आरत शब्द अकाश पुकारिय ।—केशव (शब्द०) २. अग्नि ।

आशा—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ अप्राप्त के पाने की इच्छा और थोड़ा बहुत निश्चय । जैसे,—(क) आशा लगाए बैठे हैं, देखें कब उनकी कृपा होनी है । (ख) आशा मरे, निराशा जीए । २. अमिलपित वस्तु की प्राप्ति के थोड़े बहुत निश्चय से संतोष । जैसे,—आशा है, काय रूपया मिल जायगा ।

क्रि० प्र०—करना ।—तोड़ना ।—लगाना ।—रखना ।

मुहा०—आशा टूटना=आशा न रहना । आशा सग होना । जैसे,—तुम्हारे नहीं कर देने से हमारी इतने दिनों की आशा टूट गई । आशा तोड़ना=किमी को निराश करना । जैसे,—इस तरह किसी की आशा तोड़ना ठीक नहीं । आशा देना=किमी को उम्मेद बँधाना । किमी को उसके अनुकूल कार्य करने का वचन देना । जैसे,—किसी को आशा देकर धोखा देना ठीक नहीं है । आशा पूजना=आशा पूरी होना । आशा पूरी होना=इच्छा और समावना के अनुसार किसी कार्य या घटना का होना । जैसे,—बहुत दिनों पर हमारी आशा पूरी हुई । आशा पूरी करना=किमी की इच्छा और निश्चय के अनुसार कार्य करना । आशा बँचना=आशा उत्पन्न होना । जैसे,—रोग कमी पर है, इसी में कुछ आशा बँधती है । आशा-बाँचना=आशा करना ।

यो०—आशातीत । आशापाश । आशावद्ध । आशाभग । आशा-रहित । आशावान् । निराश । हताश ।

३. दिशा ।

यो०—आशागज=दिग्गज । आशापाल=दिक्पाल । आशावसन=दिगंबर । उ०—आशावसन व्यसन यह तिनही । रघुपति चरित होहि तहँ सुनही ।—तुलसी (शब्द०) ।

४. दक्ष प्रजापति की एक कन्या । ५. संगीत में एक राग जो मैत्र राग का पुत्र कहा जाता है ।

आशाढ—सज्ञा पुं० [सं० आशाद] आषाढ ।

६१

आशातीत—वि० [सं०] आशा से बहुत अधिक । आशा में परे [को०] । आशानिवर्दिसेना—सज्ञा स्त्री० [सं०] विजय से हताश सेना ।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि आशानिवर्दि तथा परिमृष्ट (भगोडे) सेना में आशानिवर्दि उत्तम है, क्योंकि वह अपना स्वार्थ देखकर युद्ध के लिये तैयार हो जाती है ।

आशापाश—सज्ञा पुं० [सं०] आशाओं का फंदा, जाल या बंधन । आशावध—सज्ञा पुं० [सं० आशावन्ध] आशापूर्ति का विषय या बंधन [को०] ।

आशावद्ध—वि० [सं०] तरह तरह की आशाओं में पड़ा या लटका हुआ ।

आशाभंग—सज्ञा पुं० [मं० आशाभङ्ग] आशा टूटना । आशा का न रह जाना [को०] ।

आशाशर—सज्ञा पुं० [सं०] आश्रयस्थान । मुख्या की जगह [को०] ।

आशालुब्ध(पुं०)—वि० [सं० आशालुब्ध, प्रा० आमालुब्ध] आशा के कारण लोभ में पड़ी हुई । आशालुब्ध । उ०—आशालुब्धी हूँ न मुद्घय सज्जन जजालेइ । ढोला०, दू० २०६ ।

आशावसन—सज्ञा पुं० [सं० आशा + वसन] दिशाएँ जिनके वस्त्र रूप में हैं अर्थात् १ शिव । २ शुक । ३ सनत्कुमार आदि । ४. दिग्बर साधु ।

आशावह—सज्ञा पुं० [मं०] १. आदित्य । सूर्य । २. वृष्णि [को०] ।

आशासन—सज्ञा पुं० [सं०] किमी वस्तु की आकांक्षा करना या तदर्थ निवेदन [को०] ।

आशासनीय<sup>१</sup>—वि० [सं०] आकांक्षनीय । अमिलपणीय [को०] ।

आशासनीय<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ आशीर्वचन । २ आकांक्षा । स्पृहा [को०] ।

आशास्य—वि०, सज्ञा पुं० [मं०] दे० 'आशासनीय' [को०] ।

आशिजन—सज्ञा पुं० [सं० आशिञ्जत] आभूषणों की ऋति [को०] ।

आशिजित—वि० [मं० आशिञ्जित] ऋतुन । ऋतुन करता हुआ [को०] ।

आशि—सज्ञा स्त्री० [सं०] मोजन । खाना । भक्षण [को०] ।

आशिक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [अ० आशिक] प्रेम करनेवाला मनुष्य । वित से चाहनेवाला मनुष्य । अनुरक्त पुरुष ।

आशिक<sup>२</sup>—वि० प्रेमी । आशक्त । चाहनेवाला । मोहित ।

क्रि० प्र०—होना ।

यो०—आशिकतन । आशिकजार=अनुरक्त प्रेमी । उ०—वेकरार आशिकजार भाँति भाँति की बोलियाँ बोल रहे हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११८ । आशिकनवाज=प्रेमियों पर दवानु । आशिक माशक=प्रेमी और प्रेमिका या प्रेमाशय । आशिक-मिजाज=(१) आशिकाना मिजाज का । प्रेमी हृदय का । (२) दिलफेंक (व्यंग्य) ।

आशिकाना—वि० [अ० आशिकानह] आशिकों की तरह का । आशिकों का सा । आशिकों के डग का ।

आशिकी—सज्ञा स्त्री० [अ० आशिक + फा० ई (प्रत्यय)] प्रेम । मुहब्बत ।

आशित—वि० [सं०] १. आशित । खाया हुआ । २. आ करके वृत्त ।

३. अधिक भोजन करनेवाला [को०] ।



आशिता—वि० [म० आशितृ] अधिक भोजन करनेवाला व्यक्ति ।  
पेट [को०] ।

आशिमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० आशिमन्] त्वरा । तेजी । वेग [को०] ।

आशियाँ—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १. चिड़ियों का बसेरा । पक्षियों के रहने का स्थान । घोंसला । उ०—गिरी है जिस पं कल विजली वोह मेरा आशियाँ क्यों हो ।—शेर०, पृ० ५२४ । २. छोटा सा घर । झोपड़ा । उ०—क्या करे जाके गुलसिताँ मे हम, आग रख आए आशियाँ मे हम ।—शेर०, पृ० २०३ ।

आशियाना—सञ्ज्ञा पुं० [फा० आशियानह] दे० 'आशियाँ' ।

आशिष—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आशिष, आशिस्] १. आशीर्वाद । आसीस । दुआ । उ०—गुरुजन की आशिष सीस धरो,—आराधना०, पृ० ५१ । २. एक अलंकार जिसमें अप्राप्त वस्तु के लिये प्रार्थना होती है । उ०—सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली, उर माल । इहि वानक मो मन सदा, वसी विहारोलाल ।—विहारीर०, दो० ३०१ । ३. दे० 'आशी' [को०] ।

आशिषाक्षेप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें दूसरे का हित दिखलाते हुए ऐसी बातों को करने की शिक्षा दी जाय जिनसे वास्तव में अपने ही दुख की निवृत्ति हो । उ०—मन्त्री मित्र पुत्र जन केशव कलत्र गन सोदर सुजन जन भट सुख माज सो । एतो सब होतै जात जो पं है कुशल गात, अवही चलो कै प्रात, सगुन समाज सो । कीन्हो जु पयान बाध छमिअ सु अपराध, रहिअ न पल आघ, वैधिअ न लाज सो । हों न कहो, कहत निगम सब अव तव, राजन परम हित आपने ही काज सो ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १५६ ।

आशी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १. सर्प का विपला दाँत । २. बुद्धि नाम की जड़ी जो दवा के काम में आती है । ३. सर्प का विष [को०] ।

आशी<sup>२</sup>—वि० [सं० आशितृ] [वि० स्त्री० आशिनी] खानेवाला । भक्षक ।  
यो०—वाताशी । फलाशी ।

विशेष—इसका प्रयोग समास के अंत ही में होता है ।

आशीर्वचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आशीर्वाद । आसीस । दुआ ।

आशीर्वाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी के कल्याण की कामना प्रकट करना । मंगलकामनासूचक वाक्य । आशिष । दुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—मिलना ।—लेना ।

यो०—आशीर्वादात्मक ।

आशीविष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके दाँतों में विष हो [को०] ।  
२. सर्प । साँप ।

आशीष—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आशिष] दे० 'आशिष' । उ०—देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं ।—माकेत, पृ० २०४ ।

आशु<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बरसात में होनेवाला एक धान । सावन भादों में होनेवाला । ब्रीहि । पाटल । आउस । साठी ।

आशु<sup>२</sup>—वि० तीव्र । तेज । त्वरित [को०] ।

आशु<sup>३</sup>—क्रि० वि० शीघ्र । जल्द । तुरत ।

विशेष—गद्य में इसका प्रयोग यौगिक शब्दों के साथ ही होता है ।

यो०—आशुकवि । आशुनोप । आशुव्रीहि । आशुमत ।

आशुकवि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह कवि जो तत्क्षण कविता कर सके ।

आशुकोपी—वि० [सं० आशुकोपिन्] शीघ्र ही क्रुद्ध हो जानेवाला ।  
भगडालू । चिड़चिड़ा [को०] ।

आशुग<sup>१</sup>—वि० [सं०] जल्दी चलनेवाला । शीघ्रगामी ।

आशुग<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १. वायु । २. वाण । तीर । ३. रवि [को०] ।

आशुगामी<sup>१</sup>—वि० [सं० आशुगामिन्] १. तेज चलनेवाला । तीव्रगामी ।  
२. त्वरान्वित [को०] ।

आशुगामी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० सूर्य [को०] ।

आशुतोष<sup>१</sup>—वि० [सं०] शीघ्र सतुष्ट होनेवाला । जल्दी प्रसन्न होनेवाला ।

आशुतोष<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० शिव । महादेव ।

आशुशुक्षिण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. वायु ।

आशुव्रीहि—सञ्ज्ञा पुं० [म०] एक घाव्य । आउस । साठी [को०] ।

आशोव—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १. आँख की पीड़ा । २. भय । डर । खौफ [को०] । ३. भगडा फमाद । गोरगुन [को०] ।

क्रि० प्र०—उठना । होना ।

आशोपण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पूरी तरह गोख लेने का काम [को०] ।

आशोच—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अशुद्धि । अशोच का भाव [को०] ।

आशीची—वि० [सं० आशीचिन्] अपवित्र । अशोच । अशुद्ध [को०] ।

आश्चर्य<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आश्चर्यित] १. वह मनोविकार जो किसी नई, अभूतपूर्व, असाधारण, बहुत बड़ी अथवा समझ में न आनेवाली बात के देखने, सुनने या ध्यान में न आने से उत्पन्न होती है । अचमा । विस्मय । तम्रजुग ।

क्रि० प्र०—करना ।—मानना ।—होना ।

यो०—आश्चर्यकारक । आश्चर्यजनक ।

२. रस के नी स्थायी भावों में से एक ।

आश्चर्य<sup>२</sup>—वि० आश्चर्ययुक्त । अद्भुत । विस्मयपूर्ण [को०] ।

आश्चर्यित—वि० [म०] विस्मित । चकित ।

आश्चर्योत्तनकर्म—वि० [सं०] आँख में दिन के समय किसी औषध की आठ बूँद डालना ।

आश्म<sup>१</sup>—वि० [सं०] अश्मरचित । पत्थर का बना हुआ [को०] ।

आश्म<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० पत्थर की बनी वस्तु [को०] ।

आश्मन<sup>१</sup>—वि० [सं०] दे० 'आश्म' ।

आश्मन<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गरुडाग्रज अरुण जो सूर्य का सारथी है [को०] ।

आश्मरिक—वि० [सं०] अश्मरी-रोग-ग्रस्त । पथरी का रोगी [को०] ।

आश्मिक—वि० [सं०] १. पत्थर ढोनेवाला । २. प्रस्तर निर्मित [को०] ।

आश्रयान्—वि० [सं०] जमकर कुछ सुखने या ठोस होनेवाला [को०] ।

आश्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आश्रु । आसू [को०] ।

आश्रपरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पाचन क्रिया । पाक क्रिया [को०] ।

आश्रम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आश्रमी] ऋषियों और मुनियों का निवासस्थान । तपोवन । २. साधुसत्त के रहने की जगह ।

जैसे,—कुटी या मठ। ३. विश्रामस्थान। ठहरने की जगह।  
उ०—आश्रय दो आश्रमवासिनि, मेरी हो तुम्हीं सहारा।—  
गीतिका, पृ० ६३। ४ विष्णु [को०]। ५ गुरुकुल [को०]। ६.  
स्मृति में कही हुई हिंदुओं के जीवन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ।  
ये अवस्थाएँ चार हैं ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और  
संन्यास। उ०—(क) देहि अभीस भूमिपुर प्रमुदित प्रजा  
प्रमोद वढाए। आश्रम धर्म विभाग वेद पथ पावन लोग चलाए।  
(शब्द०)।

यौ०—आश्रमगुरु। आश्रमधर्म। आश्रमपद, आश्रममंडल=तपो-  
वन। आश्रमवास। गृहस्थाश्रम। व्रणाश्रम।

प्राथमी—वि० [ म० आश्रमिन् ] १. आश्रममवधो। २ आश्रम में  
रहनेवाला। ३. ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमों में से किसी को  
धारण करनेवाला।

प्राथय—सज्ञा पुं० [स०] [ वि० आश्रयो, आश्रित ] १ आश्रय।  
सहारा। अवलंब। जैसे,—छत खम्भों के आश्रय पर है।

यौ०—प्राथयाश।

२ आश्रय वस्तु। वह वस्तु जिसके सहारे पर कोई वस्तु  
हो। ३. शरण। पनाह। ठिकाना। जैसे,—(क) वह चारों  
ओर मारा मारा फिरता है, उसे कहीं आश्रय नहीं मिलता।  
(ख) राजा ने उसको अपने यहाँ आश्रय दिया।

क्रि० प्र०—चाहना।—ढूँढ़ना।—देना।—पाना।—मिलना।  
—लेना।

४ जीवन निर्वाह का हेतु। भरोसा। सहारा। जैसे,—हमें  
तुम्हारा ही आश्रय है कि और किसी का। ५ राजाओं के  
छह गुणों में से एक। ६. घर। मकान ७. तरकस। माथी।  
तूणीर [को०]। ८. अभ्यास [को०]। ९ व्याकरण में उद्देश्य।  
१० बौद्ध मत में मन और पंच ज्ञानेंद्रिय [को०]। ११ सामीप्य।  
सन्निकटता। संनिधि [को०]।

आश्रयण—सज्ञा पुं० [स०] सहारा लेने का कार्य।

आश्रयणीय—वि० [म०] अवलंबन के योग्य। सहारा लेने योग्य।

आश्रयभुक्—सज्ञा पुं० [म० आश्रयभुज्] १ दे० 'आश्रयाण'। २  
कृत्तिका नाम का नक्षत्र [को०]।

आश्रयाश—सज्ञा पुं० [म०] अग्नि। आग।

आश्रयासिद्ध—वि० [म०] १ न्यायशास्त्र के अनुसार वह तर्क जिसका  
आधार असत्य हो। एक हेत्वाभास। २. असत्य या मिथ्या।  
३ अमान्य [को०]।

आश्रयी—वि० [ म० आश्रयिन् ] आश्रय लेनेवाला। आश्रय पाने-  
वाला। सहारा लेनेवाला। सहारा पानेवाला।

आश्रव—सज्ञा पुं० [म०] १ किसी के कहे पर चलना। वचन।  
स्थिति। २ अंगीकार। ३. क्लेश। ४ जैनमत के अनुसार  
मन, वाणी और शरीर से किए हुए कर्म का संस्कार जिसे  
जीव ग्रहण करके बढ़ होता है। यह दो प्रकार का है—  
पुण्याश्रव और पापाश्रव। ५. बौद्ध दर्शन के अनुसार  
विषय जिसमें प्रवृत्त होकर मनुष्य बंधन में पड़ता है। यह  
चार प्रकार का है—कामाश्रव, भावाश्रव, दृष्टाश्रव और

अविद्याश्रव। ६. अग्नि पर पकते हुए चावल के बुद्बुद  
या फेन [को०]। ७. मरिता। नदी [को०]। ८. प्रवाह।  
धारा [को०]।

आश्रि—सज्ञा स्त्री० [स०] अशिघारा। तनवार की धार [को०]।

आश्रित<sup>१</sup>—वि० [म०] १ सहारे पर टिका हुआ। ठहरा हुआ। उ०—  
यहि विवि जग हरि आश्रित रहई।—तुलसी (शब्द०)। २.  
भरोसे पर रहनेवाला। दूसरे का सहारा लेनेवाला। अधीन।  
शरणागत। जैसे,—वह तो आपका आश्रित ही है, जैसे चाहिए,  
उसको रखिए। ३. मेवक। दाम।

आश्रित<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० न्याय मत में आकाश और परमाणु नित्य द्रव्यों को  
छोड़ दूसरे अनित्य द्रव्यों का किसी न किसी अंश में एक दूसरे  
से साधर्म्य। आश्रितत्व। साधर्म्य।

विशेष—भिन्न भिन्न नित्य द्रव्य परमाणुओं ही में बने हैं अतः  
रूपांतर होने पर भी उनमें किसी न किसी अंश में समानता  
रहेगी। पर नित्य द्रव्य पृथक् हैं इसमें उनमें एक दूसरे से  
साधर्म्य नहीं।

आश्रितत्व—सज्ञा पुं० [म०] आश्रित रहने या होने का भाव।

आश्रुत—वि० [म०] १. गृहीत। अंगीकृत। स्वीकृत। २ आकर्णित।  
श्रुत। सुना हुआ [को०]।

आश्रुति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ स्वीकृति। वचनदान। २ आकर्णन।  
अवण [को०]।

आश्लिष्ट—वि० [स०] १ आलिंगित। हृदय में लगा हुआ। २. लगा  
हुआ। चिपका हुआ। सटा हुआ। मिला हुआ।

आश्लेष—सज्ञा पुं० [म०] १ आलिंगन। २ लगाव।

आश्लेषण—सज्ञा पुं० [स०] मिलावट। मेल।

यौ०—आश्लेषण विश्लेषण=कई दवाओं को एक साथ मिलाना  
और मिली हुई दवाओं को अलग अलग करना।

२ आश्रयण। नवें नक्षत्र का नाम।

आश्लेषा—सज्ञा स्त्री० [स०] नवें नक्षत्र का नाम।

आश्लेषित—वि० [स०] लगा हुआ। चिपका हुआ। आलिंगित।

आश्व—सज्ञा पुं० [स०] १. घोड़े का भुट। २ घोड़े की स्थिति या  
दशा। ३ वह रथ जिसे घोड़े खींचते हैं।

आश्वत्थ<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [म०] आश्वत्थ या पीपल का फल [को०]।

आश्वत्थ<sup>२</sup>—वि० [स०] १ अश्वत्थ या पीपल सबधी। २ पीपल में  
फल आने के समय में मयूक [को०]।

आश्वत्था—सज्ञा स्त्री० [स०] अश्विनी नक्षत्र की रात्रि [को०]।

आश्वमेविक—वि० [म०] अश्वमेघ यज्ञ या अश्वमेज मयधी [को०]।

आश्वयुज—सज्ञा पुं० [स०] वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्र  
युक्त हो। आश्विन। नवंबर।

आश्वलक्षणिक—सज्ञा पुं० [म०] घोड़ों के भले बुरे लक्षण पहचानने-  
वाला। शालिहोत्री [को०]।

आश्वलायन—मज्ञा पुं० [स०] आश्वलायन गृह्यसूत्रों और श्रौतसूत्रों  
के रचयिता ऋषि का नाम [को०]।

आश्वस्त—वि० [सं०] १ निर्भय । उ०—आर्यं सभ्यता हुई प्रतिष्ठित आर्य धर्म आश्वस्त हुआ ।—साकेत, पृ० ३७६ । २ उत्साह-युक्त [को०] ।

आश्वास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०][वि० आश्वासक] १. सात्वना । दिलासा । तसल्ली । आशाप्रदान । २ किसी कथा का एक भाग । ३ विराम [को०] । ४ पूरी तरह खुलकर सांस लेना [को०] ।

आश्वासक<sup>१</sup>—वि० [सं०] दिलासा देनेवाला । भरोसा देनेवाला ।

आश्वासक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० कपड़ा । वस्त्र [को०] ।

आश्वासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आश्वासनीय, आश्वासित, आश्वास्य] दिलासा । तसल्ली । सात्वना । आशाप्रदान । उ०—व्याकुल को आश्वासन सा देती हुई ।—महा०, पृ० ४ ।

आश्वासनीय—वि० [सं०] दिलासा देने योग्य । तसल्ली देने योग्य । प्रोत्साहन के योग्य ।

आश्वासित—वि० [सं०] दिलासा दिया हुआ । दिलासा पाया हुआ ।

आश्वासी—वि० [सं० आश्वासिन्] १ आश्वासन देनेवाला । दिलासा या ढाढस देनेवाला । २ आत्मविश्वासी । ३ प्रफुल्लित [को०] ।

आश्वास्य—वि० [सं०] दे० 'आश्वासनीय' ।

आश्विक<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ घोड़े से सवध रखनेवाला । अश्वारोही घोड़े से खीचा जानेवाला [को०] ।

आश्विक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० घुड़सवार सैनिक [को०] ।

आश्विन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्र में पड़े । नवार का महीना । २ अश्विनीकुमार । ३ एक यज्ञ [को०] ।

आश्विनेय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अश्विनीकुमार । २ नकुल और सहदेव ।

आष①—स्त्री पुं० [सं० आषु] दे० 'आषु' । उ०—आप इषि चष अग्न । घात मजार न मड़े ।—पृ० २१०, ६३।१६० ।

आषाढ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आषाढ] वह चाद्रमास जिसकी पूर्णिमा को पूर्वाषाढ़ नक्षत्र हो । जेष्ठ मास के पश्चात् और श्रावण के पूर्व का महीना । असाढ । २ ब्रह्मचारी का दंड । ३ पलाश । ढाक ।

आषाढक<sup>१</sup>—वि० [सं० आषाढक] आषाढ मास में होनेवाला । आषाढ़ सवधी [को०] ।

आषाढक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० आषाढ मास [को०] ।

आषाढा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आषाढा] पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा नक्षत्र ।

आषाढाभव, आषाढाभू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आषाढाभव-भू] मंगल ग्रह ।

आषाढी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आषाढी] १ आषाढ मास की पूर्णिमा ।

विशेष—इस दिन गुरुपूजा या व्यास पूजा होती है । वृष्टि आदि का आगम निश्चय करने के लिये वायुपरीक्षा भी इसी दिन की जाती है ।

२ इस पूर्णिमा के दिन होनेवाले कृत्य ।

आषाढी<sup>२</sup>—वि० [सं० आषाढिन्] पलाशदंड धारण करनेवाला [को०] ।

आषाढीय—वि० [सं० आषाढीय] आषाढा नक्षत्र में उत्पन्न [को०] ।

आषाढी योग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आषाढी योग] आषाढ शुक्ला पूर्णिमा को अन्न की तौल से सुवृष्टि आदि का निश्चय ।

विशेष—इस दिन लोग थोड़ा मा अन्न तीनकर हवा में रख देते हैं । यदि वहाँ की मील से अन्न की तौल कुछ बढ़ गई तो समझते हैं कि वृष्टि होगी और सुकाल रहेगा ।

आसग<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आसङ्ग] १ साथ । सग । २ लगाव । सवध । ३ आसक्ति । अनुरक्ति । लिप्तता । ४ मुलतानी मिट्टी जिसे सिर में मलकर लोग स्नान करते हैं ।

आसग<sup>२</sup>—क्रि० वि० सतत । निरंतर । लगातार ।

आसगत्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आसङ्गत्य] १ असगति का भाव या अवस्था । पार्थक्य । अलगव । २ वियोग [को०] ।

आसगिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आसङ्गिनी] ववंडर । वाय्याचक्र [को०] ।

आसगो—वि० [सं० आसङ्गिन्] १ सपत्नी । मेनजोन रखनेवाला ।

२. आसक्त [को०] ।

आसजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आसङ्जन] १ बाँधना या जोड़ना । २

पहनना या धारण करना । ३. अनुराग । ४ भक्ति । ५

मूठ [को०] ।

आसद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आसन्द] वासुदेव या विष्णु [को०] ।

आसदिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [आसन्दिका] १ मचिया । २ आसनी [को०] ।

आसदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ मचिया । मोटा । कुरसी । २ खटोला ।

आसबाध—वि० [सं० आसम्बाध] १ अवरुद्ध । घेरे में पड़ा हुआ । २ फैला हुआ [को०] ।

आससार—वि० [सं०] विकारी । प्रगतिशील । परिवर्तनशील [को०] ।

आससृति—वि० [सं०] दे० 'आससार' ।

आस<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आशा] १ आशा । उम्मेद । उ०—साथि चले सँग वीछुरा, भए विच समुद पहार । आस निरासा हौं फिरो, तू विधि देहि अघार ।—जायसी ग्र०, पृ० ३० । २ लालसा । कामना । उ०—तजहु आस निज निज गृह जाहू । लिखा तू विधि वैदेहि विवाहू ।—मानस, १।२१२ । ३ सहायता । आधार । भरोसा । जैसे,—हमें किसी दूसरे की आस नहीं ।

मुहा०—आस करना = (१) आशा करना । (२) आसरा करना ।

मुँह ताकना । जैसे,—चलते पौरुष किसी की आस करना ठीक

नहीं । आस छोड़ना = आशा परित्याग करना । उम्मेद न

रखना । आस टूटना = निराश होना । जैसे,—जब आस टूट

जाती है, तब कुछ करते धरते नहीं बनता । आस तकना =

(१) आसरा देखना । इतजार करना । जैसे,—तुम्हारी आस

तकते तकते दोपहर हो गए । (२) सहायता की अपेक्षा

रखना । मुँह जोहना । जैसे,—ईश्वर न करे किसी की आस

तकनी पड़े । आस तजना = आशा छोड़ना । आस तोड़ना =

किसी की आशा के विरुद्ध कार्य करना । किसी को निराश करना ।

जैसे,—किसी की आशा तोड़ना ठीक नहीं । आस देना = (१)

उम्मेद बँधाना । किसी को उसके इच्छानुकूल कार्य करने का

वचन देना । जैसे,—किसी को आस देकर तोड़ना ठीक नहीं ।

(२) संगीत में किसी बाजे या स्वर से सहायता देना । आस

पुराना = आशा पूरी करना । आस पूजना = आशा पूरी होना ।

इच्छानुकूल फल मिलना । उ०—एकहि वार आस सज पूजी ।  
अब कछु कहव जीम करि दूजी ।—मानस, २।१६ । आस  
पूरना=दे० 'आस पूजना' । आस बँधना=आशा उत्पन्न  
होना । जैसे,—रोगी की अवस्था कुछ सुधरी है, इसी से आस  
बँधती है । आस लगना=आशा उत्पन्न होना । आस  
लगाना=आशा बाँधना । आस होना=(१) आशा होना ।  
(२) सहारा होना । आश्रय होना । (३) गर्भ होना । गर्भ  
रहना । जैसे,—तुम्हारी बहू को कुछ आस है ।

यौ०—आस ओलाद ।

आस<sup>३</sup>④—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आशा] दिशा । उ०—जैसे तैसे वीतिगे  
कलपत द्वादश मास । आई वहुनि वसंत ऋतु विमल भई दस  
आस ।—रघुराज (जवद०) ।

आस<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ धनुष । कमान । २ चूतड़ । ३ आसन  
(को०) । ४ उपवेशन । बैठना (को०) । ५ सनिधि ।  
सामीप्य (को०) ।

यौ०—कप्यास ।

आसकती—सञ्ज्ञा पुं० [स० अशक्ति] [वि० आसकती, क्रि० असकताना]  
सुस्ती । आनस्य ।

आसकती—वि० [हि० आसकन + ई (प्रत्य०)] आलसी ।

आसक्त—वि० [स०] १ अनुरक्त । लीन । लिप्त । जैसे,—इन्द्रियो मे  
आसक्त रहना ज्ञानियो का काम नहीं । २. आशिक । मोहित ।  
लुब्ध । मुग्ध । जैसे—वह उस स्त्री पर आसक्त है । ३ विश्वास  
माननेवाला (को०) ।

आसक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ अनुरक्ति । लिप्ता । २. लगन । चाह ।  
आसक्ति④—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आसक्ति' । उ०—आसक्ति कहूँ न  
देखिहूँ, विन नाँव तुम्हारे ।—कवीर ग्र०, पृ० १५२ ।

आसतीन—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० आस्तोन] दे० 'आस्तोन' ।

आसते<sup>१</sup>④—क्रि० वि० [फा० आहिस्तह्] १ धीरे धीरे । उ०—  
पीन करि आसते न जाऊँ उठी वासतें, शरी गुलाबपास  
तें, उठाउ आसपास तें ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२२ । २.  
होते हुए ।

आसते<sup>२</sup>—क्रि० अ० [हि०] दे० 'आसना' ।

आसतोप④—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आशुतोष' । उ०—समरथ  
दूलनदास के आसतोप तुम राम ।—सतवानी०, भा० १,  
पृ० १३७ ।

आसति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ सामीप्य । निकटता । २ अर्थबोध के  
लिये बिना व्यवधान के एक दूसरे से सवध रखनेवाले पदो या  
शब्दों का पास पास रहना । जैसे,—यदि कहा जाय कि 'वह  
खाता था पुस्तक और पढ़ता था दाल चावल' तो कुछ बोध  
नहीं होता, क्योंकि आसति नहीं है । पर यदि कहें कि 'वह  
दाल चावल खाता था और पुस्तक पढ़ता था' तो तात्पर्य  
सुना जाता है । पदों का अवयव आसति के अनुसार होता है ।  
३ प्राप्ति । पाना । लाभ । (को०) । मेल । संगति (को०) ।

आसथा④—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आस्था] अंगीकार ।—(हि०) ।

आसथान④—सञ्ज्ञा पुं० [स० आस्थान] दे० 'आस्थान' ।

आसदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. लाभ । मुनाफा । २. मवध । नपक । ३.  
निकटता । समीपता । ४ बैठने की विधि । बैठना । ५.  
आसन (को०) ।

आसन<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्थिति । बैठने की विधि । बैठक । जैसे,—  
ठीक आसन से बैठो ।

विशेष—यह अष्टांग योग का तीसरा अंग है और पाँच प्रकार का  
होता है—पद्मासन, स्वस्तिकासन, मद्रासन, वज्रासन और वीरगसन ।  
कामशास्त्र या कोकशास्त्र में भी रतिप्रसंग के ८४ आसन हैं ।

यौ०—पद्मासन । सिद्धासन । गरुडासन । कमलामन । मयूरासन ।

मुहा०—आसन उखड़ना=(१) अपनी जगह से हिल जाना । (२) घोड़े  
की पीठ पर रान न जमना । जैसे,—वह अच्छा सवार नहीं  
है, उमका आसन उखड़ जाता है । आसन उठना=स्थान  
छूटना । प्रस्थान होना । जानना । जैसे,—तुम्हारा आसन यहाँ  
से कब उड़ेगा ? आसन करना=(१) योग के अनुसार अंगों  
को तोड़ मरोड़कर बैठना । (२) बैठना । टिकना । ठहरना ।  
जैसे,—उन महात्मा ने वहाँ आसन किया है । आसन फटना=  
अंगों को तोड़ मरोड़कर बैठना । आसन छोड़ना=उठ  
जाना । चला जाना । आसन जमना=(१) जिस स्थान  
पर जिस रीति से बैठे, उसी स्थान पर उसी रीति में स्थिर  
रहना । जैसे,—अभी घोड़े की पीठ पर उनका आसन नहीं  
जमता है । (२) बैठने में स्थिर भाव आना । जैसे,—अब तो  
वहाँ आसन जम गया, अब जल्दी नहीं उठते । आसन जमाना=  
स्थिर भाव से बैठना । जैसे,—वह एक घटी भी कहीं आसन  
जमाकर स्थिर भाव से नहीं बैठता । आसन जोड़ना=  
दे० 'आसन जमाना' । आसन ढिगना=(१) बैठने में स्थिर  
भाव न रहना । (२) चित्त चलायमान होना । मन डोलना ।  
इच्छा और प्रवृत्ति होना । (जिसमें जिस बात की आशा न हो  
वह यदि उस बात को करने पर राजी या उताव्ल हो तो  
उसके विषय में यह कहा जाता है ।) जैसे,—(क) जब कप्या  
दिखाया गया, तब तो उमका भी आसन ढिग गया । (ग)  
उस सुंदरी कन्या को देख नारद का आसन ढिग गया ।  
आसन ढिगाना=(१) जगह में विचलित करना । (२) चित्त  
को चलायमान करना । लोभ या इच्छा उत्पन्न करना ।  
आसन डोलना=(१) चित्त चलायमान होना । लोगों के  
विश्वास के विरुद्ध किसी की किमी वस्तु की ओर इच्छा या  
प्रवृत्ति होना । जैसे—मेनका के रूप को देख विश्वामित्र का  
भी आसन डोल गया । (२) रूप का लालच ऐसा है कि  
बड़े बड़े महात्माओं का भी आसन डोल जाता है । (३) चित्त  
झुंझ होना । हृदय पर प्रभाव पड़ना । हृदय में नय और  
करुणा का संचार होना । जैसे,—(क) विश्वामित्र के योग  
तप को देख इंद्र का आसन डोल उठा । (ग) जब प्रजा पर  
बहुत अत्याचार होता है, तब भगवान् का आसन डोल  
है । आसन डोल=कहारी की चोती । जब पापों का संचार  
बीच से छिनककर एक ओर होता है और पालती उन ओर  
भुक्त जाती है तब कहार लोग यह वाक्य बोलते हैं ।  
आसन तले आना=वश में आना । अधीन होना । आसन  
रेना=सत्कारार्थ बैठने के लिये कोई वस्तु रख देना या

वतला देना। बैठाना। आसन पहचानना = बैठने के ढग से घोड़े का सवार को पहचानना। जैसे,—घोड़ा सवार को पहचानता है, देखो मालिक के चढ़ने से कुछ इधर उधर नहीं करता। आसन पाटी = खाट खटोला। ओढ़ने विछाने की वस्तु। आसन पाटी लेकर पढ़ना = अटवाटी खटवाटी लेकर पढ़ना। दुख और कोप प्रकट करने के लिये ओढ़ना ओढ़कर या विछौना विछाकर खूब आडवर के साथ सोना। आसन बांधना = दोनों रानों के बीच दवाना। जाँघों से जकड़ना। आसन मारना = (१) जमकर बैठना। (२) पालथी लगा कर बैठना। उ०—मठ मडप चहुँ पास सकारे। जपा तपा सत्र आसन मारे।—जायसी (शब्द०)। आसन लगाना = (१) आसन मारना। जम कर बैठना। (२) टिकना। ठहरना। जैसे,—बाबा जी, आज तो यही आसन लगाइए। (३) किसी कार्य के साधन के लिये गड़कर बैठना। जैसे,—यदि आज न दोगे तो यही आसन लगावेगा। (४) बैठने की वस्तु फँसाना। विछौना विछाना। जैसे,—बाबा जी के लिये यही आसन लगा दो। आसन होना = रतिप्रसंग के लिये उद्यत होना। २ बैठने के लिये कोई वस्तु। वह वस्तु जिसपर बैठें।

विशेष—बाजार में ऊन, मूँज या कुश के बने हुए चौखूँटे आसन मिलते हैं। लोग इनपर बैठकर अधिकतर पूजन या भोजन करते हैं।

३ टिकान या निवास। (साधुओं की बोली)। ४. माधुओं का डेरा या निवास स्थान।

क्रि० प्र०—करना = टिकना। डेरा डालना।—देना = टिकाना। ठहराना। डेरा देना।

५ चूतड़। ६ हाथी का कधा जिसपर महावत बैठता है। ७ सेना का शत्रु के सामने डटे रहना। ८. उपेक्षा की नीति से काम करना। यह प्रकट करना कि हमें कुछ परवाह नहीं है।

विशेष—इस नीति के अनुसार शत्रु के चढ़ आने या घेरने पर भी राजा लोग नाचरंग का सामान करते हैं।

९ कीटिल्य के अनुसार उदासीन या तटस्थ रहने की नीति। आक्रमण के रोके रहने की नीति। १० एक दूसरे की शक्ति नष्ट करने में असमर्थ होकर राजाओं का सधि करके चुपचाप रह जाना।

विशेष—यह पाँच प्रकार का कहा गया है—विगृह्यासन, सधानासन, सभूयासन, प्रसगासन और उपेक्षासन।

आसन<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ जीवक नाम का अष्टवर्गीय ओपधि। २ जीरक। जीरा।

आसना<sup>१</sup>—क्रि० अ० [स० अस् = होना] होना। उ०—(क) है नाही कोई ताकर रूपा। ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा।—जायसी ग्र०, पृ० ३। (ख) मरी उरी कि टरी विथा, कहा खरी, चलि चाहि। रही कराहि कराहि अति अब मुँह आहि न आहि।—विहारी २०, दो० ५६।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग वर्तमान काल में ही मिलता है और इसका रूप 'आहि' या आहि का ही कोई विकारी रूप होता है।

आसना<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ जीव। २ वृक्ष।

आसनो—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० ग्रामन का हि० अल्पा०] छोटा ग्रामन। छोटा विछौना।

आसन्न—वि० [स०] निकट आया हुआ। समीपस्थ। प्राप्त।

यौ०—ग्रामन्नकाल = (१) प्राप्तकाल। आया हुआ समय। (२) मृत्युकाल। (३) जिसका समय आ गया हो। (४) जिसका मृत्युकाल निकट हो। आसन्नप्रसवा = जिसे शीघ्र वच्चा होनेवाला हो।

आसन्नता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] निकटत्व। समीप्य।

आसन्नपरिचारक—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ सदा मानिक के पास रहनेवाला नौकर। निकटवर्ती सेवक। २ अग्ररक्षक [को०]।

आसन्नभूत—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ वह भूतकाल जो वर्तमान में मिला हुआ हो, अर्थात् जिसमें बीते बीड़ा ही काल हुआ हो। २. भूतकालिक क्रिया का वह रूप जिसमें क्रिया की पूर्णता और वर्तमान में उगकी समीपता पाई जाय। जैसे,—में जा रहा हूँ। मैं आया हूँ। उसने खाया है। मैंने देखा है।

विशेष—सामान्य भूत की अकर्मक क्रिया के आगे कर्ता के वचन और पुरुष के अनुसार हूँ, है, हैं, हो लगाने में ग्रामन्नभूत क्रिया बनती है। पर सकर्मक क्रिया के आगे केवल कर्म के वचन के अनुसार 'है' या 'हैं' तीनों पुरुषों में लगता है।

आसन्नमरण—वि० [स०] जो कुछ ही देर में मरनेवाला हो [को०]।

आसन्नमृत्यु—वि० [स०] दे० 'आसन्नमरण'।

आसपास—क्रि० वि० [स०] आस = सामीप्य अथवा अनुध्व० आस + म० पाद्वं] चारों ओर। निकट। करीब। इर्द गिर्द। इधर उधर। अगल बगल। उ०—तब सरस्वती भी फँक साँस, श्रद्धा ने देखा आसपास।—कामायनी, पृ० २४७।

आमवद—सञ्ज्ञा पु० [म० आश्रय + वद] एक तागा, जो पटवों के पैर के अँगूठे में बँधा रहता है। इसी तागे में जेवर की अटकाकर गूँथते हैं।

आसमाँ—सञ्ज्ञा पु० [फा०] दे० 'आसमान'।

आसमान—सञ्ज्ञा पु० [फा०, मि० वं० म० अश्मन् = आकाश] १ आकाश। गगन। २ स्वर्ग। देवलोक। उ०—चहूँ ओर सब नगर के लसत दिवालें चार। आसमान तजि जनु रह्यो गीरवान परिवार।—गुमान (शब्द०)।

मुहा०—आसमान के तारे तोड़ना = कोई कठिन या असंभव कार्य करना। जैसे,—कहो तो मैं तुम्हारे लिये आसमान के तारे तोड़ लाऊँ। आसमान जमीन के कुवाले मिलाना = (१) खूब लबी चोड़ी हाँकना। खूब बढ़ चढ़कर बातें करना। (२) गहरा जोड़ तोड़ लगाना। विकट कार्य करना। आसमान झाँकना या ताकना = (१) घमड़ में सिर ऊपर उठाना। तनना। (२) मुँगेवाजों की बोली में मुर्ग का मस्त होकर लड़ने के लिये तैयार होना। झड़प चाहना। (जब मुर्ग जोश में भरता है तब आसमान की ओर देखकर नाचता है। इसी से यह मुहाविरा बना है)। जैसे,—अब तो मुर्गा आसमान झाँकने लगा। आसमान टूट पड़ना = किसी विपत्ति का अचानक आ पड़ना। वज्रपात होना। गजब पड़ना। जैसे,—क्यों इतना झूठ बोलते हो,



आसमान टूट पड़ेगा। आसमान दिखाना=(१) कुशती में पछाड़कर चित्त करना। (२) पराजित करना। प्रतिपक्षी को हरायाना। आममान पर उठना=(१) इतरगाना। गहर करना। (२) बहुत ऊँचे ऊँचे मकरूप बाधना। ऐसा कार्य करने का विचार प्रकट करना जो सामर्थ्य में बाहर हो। बहुत बड़ गढ़-कर बातें करना। डींग हाँकना। आसमान पर चढ़ना=गहर करना। घमंड दिखाना। शेखी मारना। सिट्ट मारना। जैसे,—(क) कौन सा ऐसा काम कर दिखाया है जो आसमान पर चढ़े जाते हो। (ख) उनका मिजाज आजकल आममान पर चढ़ा है। आसमान पर चढ़ाना=(१) अत्यंत प्रशंसा करना। जैसे,—आप जिसपर कृपा करने लगते हैं उसे आममान पर चढ़ा देते हैं। (२) अत्यंत प्रशंसा करके किसी को फुला देना। तारीफ करके मिजाज बिगाड़ देना। जैसे,—तुमने तो और उमको आममान पर चढ़ा रखा है, जिसके कारण वह किसी को कुछ समझता ही नहीं। आसमान पर चूकना=किसी महात्मा के ऊपर लाठन लगाने के कारण स्वयं निन्दित होना। किसी सज्जन के अपमानित करने के कारण उलटे आप निरस्कृत होना। आममान फट पड़ना=दे० 'आसमान टूट पड़ना'। उ०—फिर यह है कि दुनियाँ क्यों कर कायम है, आममान फट क्यों नहीं पड़ता।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६४। आममान में थिगली लगाना=विष्ट कार्य करना। जहाँ किसी की गति न हो वहाँ पहुँचना। जैसे,—कुटनियाँ आममान में थिगली लगाती हैं। आममान में छेद करना=दे० 'आसमान में थिगली लगाना'। आसमान सिर पर उठाना=(१) ऊँधम मचाना। उपद्रव मचाना। (२) हलचल मचाना। खूब आदोषन करना। धूम मचाना। आसमान सिर पर टूट पड़ना=दे० 'आममान टूट पड़ना'। आसमान से गिरना=(१) अकारण प्रकट होना। आप से आप आ जाना। जैसे,—अगर यह पुस्तक तुमने यहाँ नहीं रखी तो क्या आसमान में गिरी है? (२) अनायास प्राप्त होना। बिना परिश्रम मिलना। जैसे,—कुछ काम धाम करते नहीं, रुपया क्या आसमान में गिरेगा? आसमान से चारों करना=आममान छूना। आसमान तक पहुँचना। बहुत ऊँचा होना। जैसे,—माधवराय के दोनों घरहरे आसमान से बातें करते हैं। (हाल ही में एक घरहरा कमजोर होने से गिर गया। अब एक ही है)। दिमाग आसमान पर होना=बहुत अभिमान होना।

आसमानखोचा—सज्ञा पु० [फा० आसमान + हि० खोचा] १ लवा लगा या घरहरा जो ऊपर तक गया हो। २ बहुत लंबा आदमी। ३. एक तरह का हुक्का जिसकी नैची इतनी लंबी होती है कि हुक्का नीचे रहता है और पीनेवाला कोठे पर।

आसमानी—वि० [फा०] १ आकाश सबधी। आकाशीय। आसमान का। २. आकाश के रंग का। हल्का नीला। ३. दैवी। ईश्वरीय। जैसे,—उनके ऊपर आसमानी गजब पड़ा।

आसमानी—सज्ञा स्त्री० १ ताड़ के पेड़ में निकला हुआ मद्य। ताड़ी। २. किसी प्रकार का नशा, जैसे,—गाँग, शराब। ३. मिस्र देश की एक कपास। ४. पालकी के कहारों की एक बोली। (जब कोई पेड़ की टाल आदि आगे आ जाती है जिसका ऊपर से पालकी में धक्का लगने का डर रहता है,

तब आगेवाले कहार पीछेवालों को 'आसमानी, आसमानी' कहकर सचेत करते हैं।

आसमुद्र—क्रि० वि० [सं०] समुद्र पर्यंत। समुद्र के तट तक। उ०—आसमुद्र के छितीस और जाति की गनै। राजनीम भोज को सबै जने गए वनै।—केशव (शब्द०)।

आसय—सज्ञा पु० [सं० आशय] दे० 'आशय'। उ०—वैष्णवन के मत को आसय जानि गए।—दो सो बावन, भा० १, पृ० ३११।

आसर—सज्ञा पु० [सं० आशर] दे० 'आशर'।

आसर—सज्ञा पु० [अं० आशर] दा रुपए (बगाइयो की मोती)।

आसरना—क्रि० सं० [सं० आश्रयण] आश्रय लेना। महारा लेना। उ०—नर तनु भक्ति तुम्हारी होय। तन में जीव आसर सोय (शब्द०)।

आसरम—सज्ञा पु० [सं० आश्रम] दे० 'आश्रम'। उ०—चार विचार आसरम धरम।—पलटू०, पृ० ५५।

आसरा—सज्ञा पु० [सं० आश्रय प्रा० \*आसर] १ महारा। आघात। अवलव। जैसे—(क) यह छत खम्भों के आसरे पर है। (ख) बुढ़े लोग लाठी के आसरे पर चलते हैं। २. अरण्य पोषण की आशा। भरोसा। आन। ३. किसी ने उद्धारना पाने का निश्चय। जैसे,—हमें आन ही का आनग है हमरा हमारा कौन है।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

मुहा०—आसरा टूटना=भरोसा न रहना। नैराश्य होना। आसरा देना=वचन देना। किसी बात का विश्वास दिलाना।

४. जीवन या कार्य निर्वाह का हेतु। आश्रयदाता। महायक। जैसे,—हम तो अपना आसरा आपको ही समझते हैं। ५. शरण। पनाह। जैसे,—जिसने तुम्हें आश्रय दिया उसी के साथ ऐसा करते हो।

क्रि० प्र०—ढूँढ़ना।—पकड़ना।—देना।—लेना।

६. प्रतीक्षा। प्रत्याशा। इंतजार।

क्रि० प्र०—तकना।—देखना।—मे रहना।

७. आशा। जैसे,—अब उसका क्या आसरा है, चार दिनों का मेहमान है।

आसरैता—वि० [सं० आश्रित या हि० आसरा + ऐत (प्रत्यय)] १ आश्रित। किसी के महारे रहनेवाला। २. रूँत।

आसव—सज्ञा पु० [सं०] १ वह मद्य जो बनके ने न चूपाई जाय केवल फलों के खमीर को निचोड़कर बनाई जाय। उ०—इटा डालती थी वह आसव जिसकी बुकनी प्यागती।—कामायनी, पृ० १८३। २. औषध का एक भेद। ३. द्रव्यों को पानी में मिलाकर नूनि में ३० ४० या ६० दिन तक गाड़ रखने है फिर उन खमीर को निकालकर छान लेते हैं। इसी को आसव कहते हैं। ३. अर्क। ४. वह पाद जिसमें मद्य रचा जाय। ५. उत्तेजन। ६. मरुत। पुष्परम (पे०)। ७. अघर रम (को०)।

आसवद्र—सज्ञा पु० [सं०] १ तानवृक्ष। ताड़ का पेड़। २. गन्ध (पे०)।

आमवन—सज्ञा पु० [सं०] आमव बनाने की प्रिया (पे०)।



आसवी—वि० [सं० आसविन्] शरावी । मद्यप । मद्यमान करनेवाला ।  
उ०—वे नैनन से आसवी मैं न लखेघनस्याम । छकि छकि  
मतवारे रहैं, तव छवि मद वसु जाम ।—स० सप्तक, पृ० २७२ ।  
आसहर(७)—वि० [सं० आशा+हर] निराश । उ०—सबै आसहर  
तकर आसा । वह न काहु के आस निरासा ।—जायसी  
ग्र०, पृ० २ ।

आसा<sup>१</sup>(७)—सद्वा पु० [सं० आशा] २० 'आशा' ।

आसा<sup>२</sup>—सद्वा पु० [अ० असा] सोने चाँदी का डडा जिसे केवल  
सजावट के लिये राजा महाराजो अथवा वरात और जुलूस के  
आगे चौवदार लेकर चलने हैं ।

यौ०—आसावल्लम । आसासोंटा । आसावरदार ।

आसाडश—सद्वा पु० [फा०] आराम । सुख । चैन ।

आसाढ(७)—सद्वा पु० [हि०] दे० 'आपाढ' ।

आसादन—सद्वा पु० [सं०] १ प्राप्त करना । २ रखना । ३ भ्रष्ट-  
कर पकड़ लेना । ४ आक्रमण करना [को०] ।

आसादित—वि० [न०] १ प्राप्त । उपलब्ध । २ पहुँचा हुआ । ३  
विवेरा हुआ । ४ पूर्ण किया हुआ । ५. आक्रांत [को०] ।

आसान—वि० [फा०] सहज । सरल । सीधा । सहल ।

आसानी—सद्वा स्त्री० [फा०] सरलता । सुगमता । सुवीता ।

आसापाल—सद्वा पु० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

आसाम—सद्वा पु० [देश०] भारत का एक प्रांत या राज्य जो बंगाल  
के उत्तर पूर्व में है ।

विशेष—इसको प्राचीन काल में 'कामरूप' देश कहते थे । इस  
देश में हाथी अच्छे होते हैं । यहाँ पहले 'आहम' वंशी क्षत्रियो  
का राज्य था । इसी से इस देश का नाम 'आहम' या 'आसाम'  
पड़ गया है । मनीपुर के राजा लोग अपने को इसी वंश का  
वतलाते हैं ।

आसामी<sup>१</sup>—सद्वा पु०, स्त्री० [हि०] दे० 'अमामी' ।

आसामी<sup>२</sup>—वि० [हि० आसाम] आसाम देश का । आसाम देश सबधी ।

आसामी<sup>३</sup>—सद्वा पु० आसाम देश का निवासी ।

आसामी<sup>४</sup>—सद्वा स्त्री० आसाम देश की भाषा ।

आसामुखी(७)—वि० [सं० आशा+मुख+हि० ई (प्रत्य०)] किसी  
के मुख का आसरा देखनेवाला । मुखापेक्षी । उ०—(क)  
जो जाकर अस आसामुखी । दुख महेँ ऐस न मारै दुखी ।—  
जायसी ग्र०, पृ० ६७ । (ख) पाहन कूँ का पूजिए जे जनम  
म देई जाव । आधा नर आसामुखी, यों ही खोवँ आव ।—  
कवीर ग्र० पृ० ४४ ।

आसार<sup>१</sup>—सद्वा पु० [ग०] १ चिह्न । लक्षण । निशान । उ०—  
वारिश के आसार पाए जाते हैं ।—श्रीनिवा सग्र०, पृ० ।  
२ चौड़ाई । ३ नीव । बुनियाद [को०] । ४ खडहर [को०] ।

आसार<sup>२</sup>—सद्वा स्त्री० [मं०] १ धारा । संपान । मूसलाधार वृष्टि ।  
२ कौटिल्य के अनुसार लड़ाई में मित्र आदि से मिलनेवाली  
सहायता । ३ मेघमाला ।—(डि०) ४ हमला । हल्ला  
आक्रमण [को०] । ५ शत्रु की सेना को घेरने की क्रिया [को०] ।

आसारित—सद्वा पु० [सं०] एक वैदिक गीत ।

आसाव—वि० [सं०] प्रशसक । स्तुतिकारक [को०] ।

आसावरी—सद्वा पु० [हि० ?] १. श्रीराग की एक रागिनी । इसका  
स्वर घ, नि, स, म, प, ध है और गाने का समय प्रातःकाल  
१ दह से ५ दह तक । दे० 'असावरी' । २. एक प्रकार का  
कवूतर । ३. एक प्रकार का सूती कपड़ा ।

आसिक<sup>१</sup>—वि० [सं०] तलवार चलानेवाला । अधिकला में प्रवीण ।

आसिक<sup>२</sup>(७)—वि० [अ० आशिक] प्रेम करनेवाला [को०] ।

आसिक<sup>३</sup>—वि० [सं०] अभिमिचित । सीचा हुआ । भीगा हुआ [को०] ।

आसिख, आसिखा(७)—सद्वा स्त्री० [हि०] दे० 'आशिष' ।

आसित<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ बैठा हुआ । २ मुखासीन [को०] ।

आसित<sup>२</sup>—सद्वा पु० १ असित मुनि का पुत्र । २ णाडित्य षोडश का  
एक प्रवर विशेष । ३ बैठने का तरीका [को०] । ४ बैठने की  
वस्तु । आसन [को०] ।

आसिद्ध—सद्वा पु० [सं०] राजाज्ञा के अनुसार मुद्दई के द्वारा हिरामत  
में किया हुआ मुद्दालेह (प्रतिवादी) ।

आसिन—सद्वा पु० [मं० आश्विन] क्वार का महीना ।

आसिया—सद्वा स्त्री० [फा०] चक्की । जाता । पेरणी [को०] ।

आसिरवचन(७)—सद्वा पु० [सं० आशीर्वचन] आशीर्वाद । आसीस  
उ०—वदि वदि पग सिय सबही के । आसिरवचन लहे प्रिय  
जी के ।—मानम, २।२४५ ।

आसिरवाद(७)—सद्वा पु० [मं० आशीर्वचन] दे० 'आशीर्वाद' ।

आसिरा(७)—सद्वा पु० दे० 'आसरा' । उ०—दादू मैं ही मेरे आसिरे,  
मैं मेरे आधार ।—दादू वानी, पृ० १ ।

आसिषा(७)—सद्वा स्त्री० [हि०] दे० आशिष । उ०—औरी एक आसिषा  
मोरी । अप्रतिहत गति होइहि तोरी ।—मानम, ७।१०६ ।

आसिस(७)—सद्वा पु० [हि०] दे० 'आशिष' । उ०—दछिना देत नद पग  
लागत आसिस देत गरग सब द्विज वर ।—नद ग्र०, पृ० ५७१ ।

आसी(७)—वि० [सं० आशी] दे० 'आशी' ।

आसीन—वि० [सं०] बैठा हुआ । विराजमान ।

आसीनपाठ्य—सद्वा पु० [मं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार लाम्य के दस  
अंगों में से एक । शोक और चिंता से युक्त किमी आभूषितांगी  
नायिका का बिना किसी वाजे या नाज के यो ही गाना ।

आसीर्वाद—सद्वा पु० [सं० आशीर्वाद] दे० 'आशीर्वाद' । उ०—  
कोऊ वैष्णव को आसीर्वाद तो नहिँ भयो ?—दो मो वाक्त्रन०,  
भा० २, पृ० ४६ ।

आसीवन—सद्वा पु० [सं०] मीने की क्रिया । तागे डालना । टाँके  
लगाना [को०] ।

आसीस<sup>१</sup>—सद्वा पु० [सं० आ+शीर्ष] तक्रिया । उमीसा । उ०—तिस-  
पर फेन से बिछौने फूलो से सँवारे विशाल गड्डवा और आमीसे  
समेत सुगंध से महक रहे थे ।—लल्लू (शब्द०) ।

आसीस<sup>२</sup>—सद्वा पु० [मं० आशिष] दे० 'आशिष' ।

आसु<sup>१</sup>(७)—सर्व [मं० अस्य, प्रा० अस्स, आमु जैसे 'यस्य से जासु  
तस्य' में तासु] इसका । उ०—जानि पुठार जो भय वनवास ।  
रोवें रोवें परि फाँद न आसु ।—जायसी (शब्द०) ।

आमु<sup>१</sup> ७—क्रि० वि० [म० आमु] दे० 'आमु'। उ०—आनि कै पां परी देस लै, कोम लै आमु ही ईम सीता चलै ओक को।  
—रामच०, पृ० ११३।

आमुग<sup>७</sup>—वि० सञ्ज्ञा पुं० [म० आमुग] दे० 'आमुग'।  
आमुति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ प्रसवण। चुवाना। २ चुआकर वनाई जानेवाली ओपधिविशेष। ३ प्रसव। ४ स्थिरता [को०]।  
आमुतीवल—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. कन्यापालक। बालिक का अभिभावक। २. पुरोहित। ३. शराव चुप्रानेवाला कलाल। ४. बलि देनेवाला व्यक्ति [को०]।

आमुतोप<sup>१</sup> ७—सञ्ज्ञा पुं० वि० [म० आमुतोप] दे० 'आमुतोप'।

आमुर<sup>१</sup>—वि० [म०] १ अमुरमवधी।

यौ०—आमुर विवाह = वह विवाह जो कन्या के मातापिता को द्रव्य देकर हो। आमुरावेश = भूत लगना।

२ दैवी (को०)। ३. यज्ञादि न करनेवाला (को०)।

आमुर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १. राक्षस। अमुर। २. विरिया। मोवर नमक। कटीला। विड लवण। ३. रुधिर (को०)।

आमुरि—सञ्ज्ञा पुं० [म०] एक मुनि जो सायन योग के आचार्य कपिल मुनि के शिष्य थे।

आमुरी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'आमुरि'।

आमुरी<sup>२</sup>—वि० स्त्री० [म०] अमुर मवधी। आमुरो का। राक्षसी।

यौ०—आमुरी चिकित्सा = शस्त्रचिकित्सा। चीरफाड़। आमुरी साया = चक्कर में डालनेवाली राक्षसी की चाल। आमुरी सप्त। आमुरी सृष्टि।

आमुरी<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० १. राक्षस की स्त्री। उ०—कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावै। मुरी आमुरी बाँमुरी गीत गावै।—रामच०, पृ० २५। २. वैदिक छंदों का एक भेद। ३. राजिका। राई। ४. मरमां। ५. शस्त्रचिकित्सा। चीरफाड़ (को०)।

आमुरीसप्त—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आमुरीसप्त] १ राक्षसी वृत्ति। बुरे कर्मों का मंचय। २ कुमार्ग में आई हुई सपत्ति। बुरी कमाई का धन।

आमुरीसृष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दैवी आपत्ति। जैसे,—आग लगना, पानी की बाढ़, दुर्मिष आदि।

आमूत्रित—वि० [म०] १ माल बनानेवाला। मालाकार। २. माला पहननेवाला। ३. गुंथा हुआ [को०]।

आसूदगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] वृत्ति। सतोष।

आसूदा—वि० [फा० आसूदह] १ सतुष्ट। तृप्त। २ सपन्न। भरापूरा।  
यौ०—आसूदा हाल = खाने पीने से खुश।

आसेक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. मिगोना। अच्छी तरह मिगोना। २. सीचना। आसेवन। जलसिक्त करना। अच्छी तरह सीचना। [को०]।

आसेक्य—वि० [म०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का नपुमक।

आमेचन<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'आमेक'।

आसेचन<sup>२</sup>—वि० [सं०] मृदर। लुभावना [को०]।

आसेचनी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] लघु पात्र [को०]।

आमेद्धा—सञ्ज्ञा पुं० [म० आमेद्ध] बंदी बनानेवाला व्यक्ति। हिरामत में लेनेवाला [को०]।

आसेव—सञ्ज्ञा पुं० [म०] राजा की आज्ञा में वादी (मुर्दई) का प्रतिवादी (मुद्दालैह) को हिरामत में रखना।

आसेवक—वि० [सं०] दे० 'आमेद्धा' [को०]।

आसेव—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] [वि० आमेवो] १. भूत प्रेत की वाधा।  
क्रि० प्र०—उतरना।—उतारना।—लगना।—होना।

२. कष्ट। दुःख [को०]। ३. आघात। चोट [को०]। ४. रोक। वाधा [को०]।

आसेवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निरंतर सेवन करना। २ मेनजोन। बराबर होने का भाव [को०]।

आसेवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आसेवन' [को०]।

आसेवित—वि० [सं०] सतत किया हुआ। बहुत दिनों तक व्यवहृत [को०]।  
आसेवी—वि० [सं० आसेविन्] निरंतर सेवन करनेवाला। अभ्यासी [को०]।

आसेव्य—वि० [म०] १ निरंतर सेवा के योग्य। २ देखने योग्य [को०]।

आसेर(७)—सञ्ज्ञा पुं० [म० आश्रय] किला।—(डि०)।

आसोजी, आसोजा—सञ्ज्ञा पुं० [म० अश्वयुज] आश्विन मास। बवार का महीना। उ०—ग्राम रही आमोज आडहूँ पीवरी।—मुदर ग्र०, भा० १, पृ० ३६८।

आसौ(७)—क्रि० वि० [म० अस्तिन् प्रा० आस्ति] = इन + म० सम = वर्ष। इस वर्ष। इस माल।

आस्कंद—सञ्ज्ञा पुं० [म० आस्कन्द] १ नाग। २. गोपण। ३. आक्रमण। ४. आरोहण। ५. युद्ध। ६. घोड़े की एक चान। ७. अपशब्द। तिरस्कार या अपमान ८. आक्रमण करनेवाला व्यक्ति [को०]।

आस्कंदन—सञ्ज्ञा पुं० [म० आस्कन्दन] दे० 'आस्कंद'।

आस्कदित<sup>१</sup>—वि० [सं० आस्कन्दित] १. मारग्रस्त। २. कुचका गया [को०]।

आस्कदित<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० घोड़े की तेज मरपट चाल [को०]।

आस्कदी—वि० [म० आस्कन्दिन्] १ आक्रमणकारी। आक्राता। २. खर्च करनेवाला। ३. अपहर्ता [को०]।

आस्तर—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ बिछोना। बिछावन। २ हाथी की झूल। ३ बिछाना। फैलाना [को०]।

आस्तरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञवेदी पर बिछाए कुण्ड। २ दरी। बिछोना। ३ झूल। ४. फैलाना। बिछाना [को०]।

आस्तरणिक—वि० [सं०] १ विस्तरे पर मोनेवाला। २ फैलाया या बिछाया जानेवाला [को०]।

आस्तार—सञ्ज्ञा पुं० [म०] छितराना या बिखेरना [को०]।

आस्तारपत्ति—सञ्ज्ञा पुं० [म० आस्तार पट्ति] एक वैदिक छंद का नाम जिसके पहले ओर चौथे चरण में १२ वर्ण और दूसरे तथा तीसरे चरण में आठ वर्ण होते हैं। यह मंत्र मिश्रकर ४० वर्णों का छंद है।

आस्ताव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्तुतिपाठ। स्तवन। २ यज्ञ में वह स्थान जहाँ से स्तुतिपाठ किया जाता है [को०]।

आस्तिक<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ वेद, ईश्वर और परब्रह्म इत्यादि पर विश्वास करनेवाला। २. ईश्वर के अस्तित्व को माननेवाला।

आस्तिक<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० वेद, ईश्वर और परलोक को माननेवाला पुरुष ।  
 आस्तिकता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वेद, ईश्वर और परलोक में विश्वास ।  
 आस्तिकत्व—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दे० 'आस्तिकता' [को०] ।  
 आस्तिकपन—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] आस्तिक + हि० पन] आस्तिकता ।  
 आस्तिक्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर वेद और परलोक पर विश्वास ।  
 २ जैन शास्त्रानुसार जिनप्रणीत सब भावों के अस्तित्व पर विश्वास ।  
 आस्तीक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिन्होंने जनमेजय के सर्पसत्र में तक्षक के प्राण वचाए थे । ये जरत्कार ऋषि और वासुकि नाग की कन्या से उत्पन्न हुए थे ।  
 आस्तीन—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] पहनने के कपड़े का वह भाग जो बांह को ढँकता है । बाही ।  
 मुहा०—आस्तीन का साँप = वह व्यक्ति जो मित्र होकर शत्रुता करे । ऐसा सगी जो प्रकट में हिला मिला हो और हृदय से शत्रु हो । आस्तीन चढाना = (१) कोई काम करने के लिये मुस्तैद होना । (२) लड़ने के लिये तैयार होना । आस्तीन में साँप पालना = शत्रु या अशुभचिंतक को अपने पास रखकर उसका पोषण करना ।  
 आस्ते—अव्य० [अ० आहिस्तह्, हि० आसते] धीरे ।  
 आस्त्र—वि० [मं०] हथियार या आयुधसवधी [को०] ।  
 आस्था—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ पूज्य बुद्धि । श्रद्धा ।  
 क्रि० प्र०—रखना ।—होना ।  
 २ सभा । बैठक । ३ आलवन । अपेक्षा । ३ प्रयत्न । चेष्टा [को०] । ४ निवास का साधन या स्थान [को०] । ५ वादा । प्रतिज्ञा [को०] । ६ आशा [को०] ।  
 आस्थाता—वि० [सं० आस्थात्] १ चढनेवाला । आरोही । २ खडा होनेवाला [को०] ।  
 आस्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बैठने की जगह । बैठक । २ सभा । दरबार ।  
 यौ०—आस्थानगृह, आस्थाननिकेतन, आस्थानसंढप ।  
 आस्थानिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बैठने की कोई वस्तु । कुर्सी ।  
 मचिया [को०] ।  
 आस्थानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सभाकक्ष । सभागृह [को०] ।  
 आस्थापन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्थापित करना । खडा करना । २ एक बलवर्धक औषधि । ३ घी या तेल की वस्ति [को०] ।  
 आस्थापित—वि० [मं०] १ खडा किया हुआ । २ सस्थापित । दृढीकृत [को०] ।  
 आस्थायिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ ओताओं का समाज । २ दरबार [को०] ।  
 आस्थित—वि० [सं०] १ रहा हुआ । बसा हुआ । २ यत्न करता हुआ । ३ घेरा हुआ । ४ प्राप्त किया हुआ । पहुँचा हुआ । ५ व्याप्त । फैला हुआ [को०] ।  
 आस्थिति—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] अवस्था । दशा [को०] ।  
 आस्थेय—वि० [सं०] १ जिसके पाम पास पहुँचा जाय । २ गृहीत । ३ आदृत [को०] ।

आस्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पवित्रता । २ घोने या नहाने का पानी [को०] ।  
 आस्थेय<sup>१</sup>—वि० [सं०] रक्तरजित [को०] ।  
 आस्थेय<sup>२</sup>—वि० मुख सवधी [को०] ।  
 आस्पद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्थान । उ०—कोटि वार आश्चर्य का आस्पद है ।—श्यामा०, पृ० ७१ । २ कार्य । कृत्य । ३ पद । प्रतिष्ठा । ४ अल्ल । वश । कुल । जाति । जैसे,—आप कौन आस्पद हैं । ५ कुडली में दसवाँ स्थान ।  
 आस्पर्धा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] होडाहोडी । प्रतिस्पर्धा । लागडाट [को०] ।  
 आस्पर्धी—वि० [सं०] आस्पर्धन् [होड लेनेवाला प्रतिस्पर्धी [को०] ।  
 आस्फाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ धक्का देना । २ रगडना । ३ धीरे धीरे हिलाना । ४ हाथी का कान फडफडाना [को०] ।  
 आस्फालन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भटका । धक्का देना । झगटना । उ०—अपूर्व आस्फालन साथ श्याम ने । अतीव लंबी वह यष्टि छीन ली ।—प्रिय० प्र०, पृ० १५४ ।  
 आस्फुजित्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शुक्र नामक ग्रह [को०] ।  
 आस्फोट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ठोकर या रगड से उत्पन्न शब्द । २ ताल ठोकने का शब्द । ३ मदार ।  
 आस्फोटक<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अखरोट ।  
 आस्फोटक<sup>२</sup>—वि० ताल ठोकनेवाला [को०] ।  
 आस्फोटन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ताल ठोकना । २ फटकना । ३ हिलाना । कंपाना । ४ सकुचन । ५ ताली बजाना । ६ उद्घाटित करना । प्रकट करना । ७ माँडना [को०] ।  
 आस्फोटनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बरमी नामक बढई का औजार जिससे लकड़ी में छेद किया जाता है [को०] ।  
 आस्फोटा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नवमल्लिका । चमेली ।  
 आस्फोत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मदार । अर्क । २ कोविदार । ३ भूपलाश [को०] ।  
 आस्फोतक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आस्फोतका] दे० 'आस्फोत', 'आस्फोता' [को०] ।  
 आस्फोता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ मलिनका । २ अपराजिता । ३ सारिवा [को०] ।  
 आस्थ्यंदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आस्थ्यन्दन] प्रसवण । बहना । [को०] ।  
 आस्थ्यवय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आस्थ्यवय] चुबन करना [को०] ।  
 आस्थ्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मुख । मुँह । मुखमंडल । चेहरा । उ०—वैश भाषा भगियो पर हास्थ्य कर रहे थे सरस सवके आस्थ्य ।—साकेत, पृ० १७० ।  
 आस्थ्यपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कमल ।  
 आस्थ्यलागल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आस्थ्यलागल] १ कुत्ता । २ सूअर [को०] ।  
 आस्थ्यलोम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आस्थ्यलोमन्] दाढ़ी [को०] ।  
 आस्था<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ विश्राम की अवस्था । २ बैठना । ३ रहना । ४ वासस्थान [को०] ।  
 आस्था<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० लार । राल ।  
 आस्थासव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लाला । लार [को०] ।  
 आस्थ्युत—वि० [सं०] एक में सिला हुआ [को०] ।  
 आस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रक्त । खून [को०] ।

प्रासप<sup>१</sup>—वि० [सं०] रक्तपायी। खून चूसने या पीनेवाला [को०]।  
 प्रासप<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १. राक्षस। २. मूल नक्षत्र [को०]।  
 प्रासप<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म० आश्रम] दे० 'आश्रम'। उ०—मुम्हरे  
 आश्रम अर्वाहि ईस तप माधर्हि।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१।  
 प्रासव—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. उबलते हुए चावल का फेन। २. पनाना।  
 ३. इन्द्रियद्वार। उ०—प्रासव इन्द्रिय द्वार कहावै। जीवहि  
 विषयन और वहावै।—(शब्द०)। ४. क्लेश। कष्ट।  
 ५. जैनमतानुसार श्रौचरिक् और कामादि द्वारा आत्मा की  
 गति जो दो प्रकार की है—शुभ और अशुभ।  
 प्रास्राव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वहाव। २. घाव। ३. पीडा। ४. एक  
 रोग। ५. शूक [को०]।  
 प्रास्वनित—वि० [म०] पूर्णतया ध्वनि करता हुआ। आशब्दित [को०]।  
 प्रास्वात—वि० [म० आस्वान्त] दे० 'आस्वनित'।  
 प्रास्वाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रस। स्वाद। जायका। मजा। उ०—  
 सस्कार ने मुक्त सहृदय पुरुष रस का आस्वाद लेते हैं।—  
 रम क०, पृ० १८।  
 प्रास्वादन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] [वि० आस्वादनीय आस्वादित] चखना।  
 स्वाद लेना। रस लेना। मजा लेना।  
 प्रास्वादनीय—वि० [म०] चखने योग्य। स्वाद लेने योग्य। रस लेने  
 योग्य। मजा लेने योग्य।  
 प्रास्वादित—वि० [सं०] चखा हुआ। स्वाद लिया हुआ। रस लिया  
 हुआ। मजा लिया हुआ।  
 प्रास्वाद्य—वि० [म०] आस्वादन करने योग्य। जायकेदार। खाने में  
 मयुर। मोठा [को०]।  
 प्राह<sup>१</sup>—अव्य० [म० अह] पीडा, शोक, दुःख, वेद और श्लानिमुचक  
 अव्यय। उ०—पीडा—प्राह। बडा भारी काँटा पर मे घेसा।  
 दुःख शोक—प्राह। अन्न के बिना उसकी क्या दशा हो रही है।  
 थोडा क्रोध और खेद—प्राह। तुमने तो हमे हैरान कर डाला।  
 प्राह<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० कराहना। दुःख या क्लेशसूचक शब्द। ठडी साँस।  
 उसास। उ०—तुलसी प्राह गरीब की, हरि सो सही न जाय।  
 मुई खाल की फूँक मो, लोह भसम होइ जाय।—तुलसी  
 (शब्द०)।  
 मुहा०—प्राह करना=हाय करना। कल्पना। ठडी साँस लेना।  
 उ०—(क) प्राह करो तो जग जले, जगल भी जल जाय।  
 पापी जियरा ना जले, जिसमें प्राह समाय। (शब्द०)। (ख)  
 भरथरि विछुरी पिगला प्राह करत जिउ दीन्ह।—जायसी  
 ग्र०, पृ० २७२। प्राह खींचना=ठडी साँस भरना। उमास  
 खींचना। जैसे,—उमने तो प्राह खींचकर कहा कि तेरे जी में  
 जो आवे, नो कर। प्राह पडना=शाप पडना। किसी को  
 दुःख पहुँचाने का फल मिलना। जैसे,—तुम पर उसी दुष्टिया  
 की प्राह पडी है। प्राह भरना=ठडी साँस खींचना। उ०—  
 चितहि जो चित्र कीन्ह, धन रो रो अग ममीप। नहा सान  
 दुख प्राह भर, मुख परी कामीप।—जायसी (शब्द०)।  
 प्राह मारना=ठडी साँस खींचना। उ०—प्राह जो भारी बिरह  
 की, प्राग उठि तेहि लाग। हस जो रहा शरीर महँ पख जरे  
 तब नाग।—जायसी (शब्द०)। प्राह लेना=सताना। दुष्ट

देकर कल्पना। किसी को सताने का फन अपने ऊपर लेना।  
 जैसे,—नाहक किसी की प्राह क्या लेने हो।

प्राह<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [राज० आहस=वल] माह्न। हियाव। वन।  
 उ०—जड के निकट प्रवीन की, नहीं नवै कछु प्राह। चतुराई  
 दिग अघ के, करै चितेरी चाह।—दीनदयाल (शब्द०)।

प्राहक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. एक रोग जो नाक में होता है। २.  
 गीर्वाण [को०]।

प्राहचर्ज—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'प्राश्चर्य'। उ०—नदा ममोपिति  
 सविह्वं लखति अति प्राहचर्ज मीं।—रत्नाकर, पृ० ६।

प्राहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० प्रा=पाना+हट (प्रत्य०), जैसे—बुलाहट  
 घबराहट] १. शब्द जो चने में पर तथा और दूसरे अंगों से  
 होता है। आने का शब्द। पाँव की चाप। छटपटा। जैसे,—  
 (क) किसी के आने की प्राहट मिल रही है। उ०—होत न  
 प्राहट भो पग धारे। विनु घटन ज्यो गज मतवारे।—लाल  
 (शब्द०)। (ग) प्राहट पाय गोपाल की खानि गनी महँ  
 जाय के घाय लियो है। (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।—लेना।

२. आवाज जिसमें किसी के रहने का अनुमान हो। जैसे,—  
 कोठरी में किसी आदमी की प्राहट मिल रही है।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।—लेना।

३. पता। मुराग। टोह। निशान।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

प्राह<sup>४</sup>—वि० [सं०] [सञ्ज्ञा आहति] १. जिसपर आघात हुआ  
 हो। चोट खाया हुआ। घायल। जखमी। जैसे,—उस युद्ध  
 में ४०० मिपाही प्राहन हुए। २. जिस मन्त्रा को गुणित  
 करें। गुण्य। ३. आघात दोष से युक्त (वाक्य)। परस्पर  
 विरुद्ध (वाक्य)। असम्भव (वाक्य)। ४. तुरन्त घोया  
 हुआ (वस्त्र)। (वस्त्र) जो अनी धुनकर आया हो। ५.  
 पुराना। जीर्ण। गन्ना हुआ। ६. चलित। कपित। चराना  
 हुआ। हिलता हुआ। ७. हन। मृत् [को०]। ८. आघात किया  
 हुआ। बजाया हुआ [को०]। कुचना या रोंदा हुआ [को०]।

यी०—हताहत=मारे हुए और जखमी।

प्राह<sup>५</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. डोन्। २. नया अथवा पुराना वस्त्र [को०]।

प्राहति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोट। मार। २. गुणन। गुणना।  
 ३. मार डालना। वध [को०]।

प्राहन—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] लोहा।

प्राहनन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. यष्टि। डंडा। २. मारना। पीटना [को०]।

प्राहनी—वि० [फा०] लोहे का।

प्राहर<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म० मह] नमक। कान। दिन। उ०—फिन  
 तप कीन्ह छिछि ते गज्जू। प्राहर गरी न गा मिध काजू।  
 जायसी (शब्द०)।

प्राहर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म० प्राहरण] मुद्र। नडाँ।

प्राहर<sup>३</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म० प्राहार] [प्रता० प्राह्य] वह होइ तो  
 पोखरे में छोटा हो, पर तनैरा और मरु में बड़ा हो।

प्राहर<sup>४</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. स्वीकार। ग्रहण। लेना। २. वनिप्रदान  
 द्वारा। ३. बह्मपादु को श्राप के फल में स्वीकार करनी है [को०]।

श्राहितदास-सख ५० [स०] ग्य के बदले में त्रपने को गिरवी रख-  
कर बना हुआ दास। कर्जा पटाने के लिये बना हुआ गुलाम।

ग्राहितलक्षण—वि० [स०] जो किसी विशेष चिह्न से पहचाना जाय [को०] ।

ग्राहितस्वन—वि० [स०] शोरगुन मचानेवाला [को०] ।

ग्राहिताक—वि० [म० ग्राहिताङ्क] चिह्नवाला । चिह्नित [को०] ।

ग्राहिताग्नि—सज्ञा पु० [स०] अग्निहोत्री ।

ग्राहिता—सज्ञा स्त्री० [स०] स्थापन । रखना [को०] ।

ग्राहिस्ता—क्रि० वि० [फा० ग्राहिस्तह] धीरे से । धीरे धीरे । शनैः । धीमे में ।

यौ०—ग्राहिस्ता ग्राहिस्ता ।

ग्राहु—सज्ञा पु० [स० ग्राहव = ललकार, युद्ध, प्रा० ग्राह = बुलाना] ललकार । युद्ध के लिये किसी को प्रचारना । उ०—माल लाल वेंदी छए छुटे वार छवि देत । गह्यो राहु अति ग्राहु करि, मनु ससि सूर समेत ।—विहारी २०, दो० ३५५ ।

ग्राहुक—सज्ञा पु० [सं०] एक यादव का नाम ।

ग्राहुड—सज्ञा पु० [म० ग्राहव + हि० 'प्रत्यय'] युद्ध । लड़ाई ।

ग्राहुत<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [स०] १ अतिथियज्ञ । नृत्यज्ञ । मनुष्ययज्ञ । अतिथिसत्कार । २ भूतयज्ञ । वलिवैश्वदेव ।

ग्राहुत<sup>२</sup>—वि० हवन किया हुआ । हुत [को०] ।

ग्राहुति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ मन्त्र पढ़कर देवता के लिये द्रव्य को अग्नि में डालना । होम । हवन । उ०—शिव ग्राहुति बेरा जब आई । विप्रनि दच्छहि पूछ्यो जाई ।—सू०, ४१५ । २ हवन में डालने की सामग्री । ३ होमद्रव्य की वह मात्रा जो एक वार में यज्ञकुंड में डाली जाय । उ०—ग्राहुति जज्ञकुंड में डारी । कट्यो, पुरुष उपज्यो दल भारी ।—सूर०, ४१३६६ । क्रि० प्र०—करना ।—छोड़ना ।—डालना ।—देना ।—होना ।

यौ०—ग्राज्याहुति । पूर्णाहुति ।

ग्राहुतो<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ग्राहुति' ।

ग्राहुत्य—सज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का पौधा या क्षुप [को०] ।

ग्राहू—सज्ञा पु० [फा०] हिरन । मृग ।

ग्राहूत—वि० [स०] बुलाया हुआ । ग्राह्वान किया हुआ । निमंत्रित ।

यौ०—ग्रनाहूत ।

ग्राहूतसप्तजव—सज्ञा पु० [स० ग्राहूतसप्तजव] प्रलयकाल । प्रलय-कालीन जलप्लावन ।

ग्राहूति—सज्ञा स्त्री० [स०] ग्राह्वान । पुकार [को०] ।

ग्राहूत—वि० [स०] १ जो हरण किया हो । जो लिया गया हो ।

२ जो लाया गया हो । आनीत । लाया हुआ ।

ग्राहेय—वि० [स०] ग्रहि या सर्पसंवधी [को०] ।

ग्राहै<sup>१</sup>—क्रि० अ० [हि०] 'ग्रासना' क्रिया का वर्तमानकालिक रूप ।

ग्राह्व—वि० [स०] दिनसंवधी । दैनिक [को०] ।

ग्राह्विक<sup>१</sup>—वि० [स०] दिन का । दैनिक । रोजाना । जैसे,—ग्राह्विक कर्म । ग्राह्विक कृत्य ।

ग्राह्विक<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ एक दिन का काम । २ सुश्रात्मक शास्त्र के भाष्य का एक अंश जो एक दिन में पढ़ा जाय । ३. अध्यापक । ४ रोजाना मजदूरी । ५ एक दिन की मजदूरी ।

ग्राह्वीद—सज्ञा पु० [स०] [वि० ग्राह्वीदित] आनंद । खुशी । हर्ष । उ०—जब उमडना चाहिए ग्राह्वीद, हो रहा है क्यों मुझे अवसाद ।—साकेत, पृ० १६७ ।

यौ०—ग्राह्वीदप्रद = आनंददायक ।

ग्राह्वीदक—वि० [स०] [स्त्री० ग्राह्वीदिका] आनंददायक । खुशी देनेवाला ।

ग्राह्वीदन<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [स०] हर्ष । ग्राह्वीद [को०] ।

ग्राह्वीदन<sup>२</sup>—वि० आनंददायी । हर्ष प्रदान करनेवाला [को०] ।

ग्राह्वीदित—वि० [स०] आनंदित । हर्षित । प्रसन्न । खुश ।

ग्राह्वीदी—वि० [स० ग्राह्वीदिन्] १ प्रसन्न । हर्षयुक्त । २ हर्षप्रद । आनंद देनेवाला [को०] ।

ग्राह्वीय—सज्ञा पु० [स०] १ नाम । सज्ञा ।

यौ०—गजाह्वीय । नागाह्वीय । शताह्वीय ।

२ तीतर, बटेर, मेढे आदि जीवों की लड़ाई की बाजी ।

प्राणिच्युत ।

विशेष—मनु के धर्मशास्त्र में इसका बहुत निषेध है ।

ग्राह्वीयन—सज्ञा पु० [स०] १. नाम का उच्चारण । २ नाम [को०] ।

ग्राह्वीन—सज्ञा पु० [स०] १. बुलाना । बुलावा । पुकार । उ०—अंतर का ग्राह्वीन वेग से बाहर आया ।—साकेत, पृ० ४१० । २ राजा की ओर से बुलावे का पत्र । समन । तलबनामा । ३ यज्ञ में मन्त्र द्वारा देवताओं को बुलाना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ग्राह्वीय—सज्ञा पु० [स०] १ नाम । २ समन । तलबनामा [को०] ।

ग्राह्वीयक<sup>१</sup>—वि० [स०] ग्राह्वीन करनेवाला । पुकारनेवाला [को०] ।

ग्राह्वीयक<sup>२</sup>—सज्ञा पु० सदेशहर । संदेश ले जानेवाला । दूत [को०] ।

इ

ई—देवनागरी वर्णमाला में स्वर के अंतर्गत तीसरा वर्ण । इसका उच्चारणस्थान तालु और प्रयत्न विवृत है । ई इसका दीर्घ रूप है ।

ईकं—सज्ञा स्त्री० [अ०] स्याही । मसी । रोशनाई ।

विशेष—यह मुख्यतः दो प्रकार की होती है—लिखने की और छापने की । लिखने की स्याही कमीस, हड्ड, माजू आदि को

औटाकर बनती है और छापने की स्याही राल, तेल काजल इत्यादि को घोटकर बनाई जाती है ।

यौ०—ईकं पाठ = स्याही रखने का वर्तन । मसीपात्र । दावात ।

इक पंड = स्याही लगी एक छोटी सी गद्दो जिगमे स्वर की मुहर आदि पर स्याही लगाई जाती है ।

ईकंटेबुल—पंजा ५० [अ०] छापेखाने में स्याही देने की चीज़ ।



विशेष—यह दो प्रकार की होती है—(१) सिपुल (सादी) = यह सिर्फ एक चिकनी और साफ लोहे की ढली हुई चौकी होती है। (२) सिलिड्रिकल (वेलनदार) = लोहे की एक साफ और चिकनी चौकी होती है जिसके एक ओर लोहे का एक वेलन लगा होता है। वेलन के पीछे एक प्रकार की नाली सी बनी रहती है जिसमें कुछ पेंच लगे होते हैं और स्याही भरी रहती है। उन पेंचों को कसने और ढीला करने में स्याही आवश्यकता-नुसार कम वा अधिक आती है और पिसकर बराबर हो जाती है। वेलनवाली चौकी में स्याही देनेवाले को अधिक मनने का परिश्रम नहीं करना पड़ता।

इकर्मन—सज्ञा पुं० [अ०] छापेखाने में मशीनपर स्याही देनेवाला मनुष्य। स्याहीवान।

इकरोलर—सज्ञा पुं० [अ०] छापेखाने में स्याही देने का वेलन।  
विशेष—यह तीन प्रकार का होता है—(१) लकड़ी का मोटा वेलन जिसपर कवल, बनावत वगैरह लपेटकर ऊपर से चमड़ा मढ़ते हैं। यह वेलन पत्थर के छापे में काम देता है। (२) लकड़ी का वेलन जिमपर रबड़ ढालकर चढ़ाते हैं। यह बहुत कम काम में आता है। (३) तीसरे प्रकार का वेलन गराडीदार लकड़ी पर गला हुआ गुड और सरेम चढ़ाकर बनाते हैं। यही अधिक काम में आता है।

इग<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० इङ्ग = इशारा, चिह्न] १ चलना। हिलना। डुलना। २ इशारा। ३ निशान। चिह्न। ४ हाथी का दांत। उ०—वक लगे कुच बीच नखक्षत देखि भई दृग दूनी लजारी। मानो वियोग बराह हन्यो युग गैल की नखिनि इंगवै डारी।—केशव (शब्द०)। अग द्वारा भावों की अभिव्यक्ति। भावों की आगिक अभिव्यक्ति (को०)। ६ ज्ञान (को०)। ७ पृथिवी। भूमि (को०)।

इग<sup>२</sup>—वि० १ गतिशील। हिलता हुआ। चल। २ विस्मय-कारक। आश्चर्यजनक (को०)।

इंगन—सज्ञा पुं० [सं० इङ्गन] [वि० इगित] चलना। कपना। २. हिलना। डोलना। ३ इशारा। संकेत। ४ ज्ञान। जानकारी (को०)। ५ चलाना (को०)। ६. हिलाना डुलाना (को०)।

इगनी—सज्ञा स्त्री० [अ० मैंगनीज] एक प्रकार का मोर्चा जो धातुओं में आक्सीजन के मिलने से पैदा होता है।

विशेष—इगनी भारतवर्ष में राजस्थान, मैसूर, मध्यप्रान्त और मद्रास की खानों से निकलती है। यह काँच के हरेपन को दूर करने और काँच का लुक करने के काम आती है। यह अब एक प्रकार का संकेद लोहा बनाने के काम में भी आती है जिसे अंगरेजी में 'फेरो मैंगनीज' कहते हैं।

इगल<sup>७</sup>, इगला<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० इडा] हठयोग के अनुसार इडा नाम की एक नाड़ी। उ०—तीर चलै जो इगल माँही। उत्तिम समत जो चलि जाही।—स० दरिया, पृ० २७। (ख) इगला पिंगला नाता कर ले सुपमन के घर मेला।—रामानंद०, पृ० ३६। (ग) इगला पिंगला सुखमन नारी। शून्य सहज में बसहि मुरारी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह नाड़ी बाईं ओर होती है। इसका काम बाईं नाक के

नथने से श्वास निकालना और बाहर करना है। यह शब्द इस नाड़ी के साथ ही दूसरी नाड़ी 'पिंगला' की समन्वयात्मकता पर बना है। इस नाड़ी को 'चंद्र नाड़ी' कहते हैं। हठयोग के स्वरोदय में इसका विवरण है।

इगलिश<sup>१</sup>—वि० [अ०] १ उगने उदय मवधी। अंगरेजी। २ पेंशन (मिपाहियों की मापा)।

इगलिश<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० अंगरेजी मापा।

इंगलिशमैन—सज्ञा पुं० [अ०] उगने उदय निवासी व्यक्ति। अंगरेज।

इगलिस्तान—सज्ञा पुं० [अ० इगलिश + फा० स्तान = जगह, तुल० म० स्थान] अंगरेजों का देश। इंग्लैंड।

इगलिस्तानी—वि० [अ० इगलिश + फा० स्तानी] अंगरेजी। इंग्लैंड देश का। उ०—उगलिस्तानी और दरियाई कच्छी श्रोतदेजी। औरहु विविध जाति के बाजी नकन पवन की नेजी।—रघुराज० (शब्द०)।

इंग्लैंड—सज्ञा पुं० [अ०] अंगरेजों का देश। उगलिस्तान।

इगार<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [सं० इङ्गाल] १० 'अगार'। उ०—देही कण उगार जूतपै, राजर माय नयउ उगतउ भाण।—वी० रामो, पृ० २१।

इगालकर्म—सज्ञा पुं० [सं० अङ्गारकर्म] जैनमतानुसार वह व्यापार जो अग्नि से हो। जैसे,—तोहारी, मोहारी, ईट बनाना, कोयला बनाना।

इगित<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० इङ्गित] १ हृदय के अभिप्राय को व्यक्त करने-वाली आगिक चेष्टा। २ संकेतचिह्न। इशारा। उ०—सत्संग अपनी शाखाओं ने इगित करके उन्ने दिखाते मार्ग।—कानन०, पृ० ५७। ३ अभिप्राय। मन का विचार या भाव (को०)। ४. हिलना डोलना। चलन (को०)।

इगित<sup>२</sup>—वि० १. हिलता हुआ। २. चलित। कपित।

इगितकोविद—वि० [सं० इङ्गितकोविद] आगिक चेष्टा द्वारा आंतरिक भावों को जानने में उनकी अभिव्यक्ति में कुशल (को०)।

इगितज्ञ—वि० [सं० इङ्गितज्ञ] १० 'इगित कोविद' (को०)।

इगु—सज्ञा पुं० [सं० इङ्गु] एक रोग (को०)।

इगुद—सज्ञा पुं० [सं० इङ्गुद] १० 'इगुदी'।

इगुदी—सज्ञा स्त्री० [सं० इङ्गुदी] १ हिगोट का पेड़। उ०—विनमत निव विशाल इगुदी अरु आमलकी।—श्यामा, पृ० ३६। २. ज्योतिष्मती वृक्ष। मालकोगनी। ३. हिगोट की गरी (को०)।

इंगुर<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] १० 'इंगुर'।

इंगुरीटी—सज्ञा स्त्री० [हि० इंगुर + आटी (प्रत्यय)] वह द्विविधा या पात्र जिसमें सीमाग्यवती द्विविधा इंगुर रखती है। मिथोरा।

इगुल—सज्ञा पुं० [सं० इङ्गुल] १० 'इगुदी' (को०)।

इच—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ एक फुट का बारहवाँ हिस्सा। तीन आठे जव की लवाई। तस्मू। २ अत्यल्प। बहुत थोड़ा। उ०—इन महात्माओं के ध्यान में यह बात नहीं आती कि ऐसी दलीलो से उनकी अभ्रातिशीलता एक इच भी कम नहीं होती।—सरस्वती (शब्द०)।

इंचाक—सज्ञा पुं० [सं० इञ्चाक] एक प्रकार का मत्स्य। जल-  
वृश्चिक [को०]।

इंचार्ज—वि० [अ०] किसी कार्य या विभाग की देखभाल करनेवाला।  
किसी कार्य या विभाग की जिम्मेदारी वहन करनेवाला [को०]।

इच्छया—सज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] दे० 'इच्छा'। उ०—न तहाँ  
इच्छया ओ अकार। न तहाँ नाभि न नालि तार।

—रामानंद०, पृ० ८।

इच्छा—सज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] आकांक्षा। इच्छा।

इच्छना—क्रि० सं० [हिं० इच्छ+ना] (प्रत्य०)। दे० 'इच्छना'।  
उ०—पुनि तिनकी पद पकज रज अज अजहूँ छिछै। उदो वुद्धि  
विशुद्धनु सौं पुनि मो रह इछै।—नंद० प्र०, पृ० ४१।

इच्छा—सज्ञा स्त्री० दे० 'इच्छा'। उ०—वर सजोग मोहि मेरवहु कलस  
जाति ही मानि। जेहि दिन इच्छा पूजै वेगि चढ़ावौ ग्रानि।  
—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २५०।

इंजन—सज्ञा पुं० [अ० एंजिन] १ कन पेंच। २ भाप या विजली  
से चलनेवाला यन्त्र। ३. रेलवे ट्रैन में वह गाड़ी जो सबसे  
आगे रहती है और सब गाड़ियों को खींचती है। उ०—  
इच्छा कर्म सयोगी इंजन गारड ग्राप अकेला है।—प्रेमचन०,  
भा० २, पृ० ४०३।

यौ०—इंजनड्राइवर=इंजन को चलानेवाला व्यक्ति।

इंजर—सज्ञा पुं० [दे०] दे० 'समुद्रफल'।

इंजीनियर—सज्ञा पुं० [अ० एंजीनियर] १ यन्त्र की विद्या जाननेवाला।  
कलो का बनाने या चलानेवाला। २ शिल्प विद्या में निपुण।  
विश्वकर्मा। ३ वह अफसर जिसके निरीक्षण में सरकारी  
सड़कें, इमारतें और पुल इत्यादि बनते हैं।

इंजीनियरिंग—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ इंजीनियर का कार्य। यन्त्रादि  
के निर्माण का काम। २ लोहे के कल पुर्जे आदि बनाने का  
काम [को०]।

इंजील—सज्ञा स्त्री० [यू०] १. सुसमाचार। २ ईसाइयों की धर्म-  
पुस्तक। बाइबिल।

इंजेक्शन—सज्ञा पुं० [अ०] वह द्रव्य औषध जो सूई के द्वारा शरीर में  
प्रविष्ट कराया जाय। उ०—डाक्टरों ने इंजेक्शन लेने के लिये  
कहा।—सन्ध्यामी, पृ० १६६।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—देना।—लेना।

इंटेस—सज्ञा पुं० [अ० एंटेस] १ द्वार। दरवाजा। फाटक। २ अग्रजी  
पाठशालाओं की एक श्रेणी।

इंड—सज्ञा पुं० [सं० अंड] दे० 'अंड'। उ०—ध्यावै इंड करै चौचदा।  
आपु देखि ओर सहज अनदा।—कवीर सा०, पृ० ६०६।

इंडज—वि० [सं० अंडज] अंडा। अंडे के आकार का। उ०—  
तिहि रानी पूरव क्रम गतिय। इंडज आकृति हृद प्रसूतिय।—  
पू० रा०, ५७। १६६।

इंडस्ट्रियल—वि० [अ०] उद्योग वधा संबंधी। शिल्प सम्बंधी।  
औद्योगिक। जैसे,—इंडस्ट्रियल कानफरेंस।

इंडस्ट्री—सज्ञा स्त्री० [अ०] उद्योगधंधा। शिल्प।

इंडियन—वि०, पुं० [अ०] हिंदुस्तान निवासी। भारतीय [को०]।

इंडिया—सज्ञा पुं० [यू०, अ०] हिंदुस्तान। भारतवर्ष।

इंडियाग्राफिस—सज्ञा पुं० [अ० इंडिया ग्राफिक्स] ब्रिटिश शासनकाल  
में भारत संबंधी कार्य या व्यवस्था के लिये स्थापित लघु  
स्थित एक कार्यालय। भारत और पाकिस्तान के स्वतंत्र होने  
पर इस कार्यालय की सभी महत्वपूर्ण सामग्री यथाप्राप्य दोनों  
देशों में बांट दी गई।

इंडीक—सज्ञा पुं० [सं०] कलमतराण चाकू [को०]।

इंडेक्स—सज्ञा पुं० [अ०] (पुस्तक के) विषयों की आक्षरक्रम में बनी  
हुई सूची। विषयानुक्रमणिका। अनुक्रमणिका।

इंडेंट—सज्ञा पुं० [अ०] माल मंगाने के समय भेजी जानेवाली माल  
की वही सूची जो किसी व्यापारी के पान माल की माँग के  
साथ भेजी जाती है।

इंडोर्स—क्रि० सं० [अ० एंडोर्स] चेक या हुड़ी आदि पर रपए देने या  
पाने के संबंध में हस्ताक्षर करना।

इंडोली—सज्ञा स्त्री० [दे०] एक औषध का नाम।

इंडू—सज्ञा पुं० [सं०] हाथ की मुरझा के लिये मूज का दस्ताना [को०]।

इतकाम—सज्ञा पुं० [अ० इतकाम] प्रपकार का न दना। उदना [को०]।

इतकाल—सज्ञा पुं० [अ० इतकाल] १. मृत्यु। मौत। परलोकगम।  
२ एक जगह में दूसरी जगह जाना। ३. किसी जायदाद या  
संपत्ति का एक के अधिकार में दूसरे के अधिकार में जाना।

यौ०—इतकाल जायदाद=रेहन, वय आदि के कारण संपत्ति का  
दूसरे के हाथ जाना।

इतलाव—सज्ञा पुं० [अ० इतलाव] १. दूसरा या चौथी आदि के  
किसी लेख की बाजावते कराई हुई नकल। २. चुनना या  
छानना। ३. चुनाव [को०]।

इतजाम—सज्ञा पुं० [अ० इतजाम] प्रवच। वदोवस्त। व्यग्रम्या।

इतजार—सज्ञा पुं० [अ० इतजार] प्रतीक्षा। वाट जोहना। रास्ता  
देखना। अगोरना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

इंतशार—सज्ञा पुं० [अ०] १ चिता। परेशानी। उद्धिगता। २.  
विखरने की स्थिति। विखराव [को०]।

इतहा—सज्ञा पुं० [अ०] १ समाप्ति। अंत। उ०—उन्निदा में ही  
मर गए गव यार। उरक की कौन इतहा लाया।—कविता  
को०, भा० ४, पृ० १३३। २. हृद। पराजय।

मुहा०—इतहा करना=हृद कर देना। अग्नि कर देना।

यौ०—इतहापसद=अग्नि को पगद करनेवाला। अग्निमादी।

इतहाई—वि० [अ०] प्रत्यधिक। हृद दर्ज का। उ०—उतहाई उर-  
आल पैदा करनेवाले हावत का सितमिला वे दरीन में बांटे  
लगे।—समावृत० पृ० ३६।

इथिहा—सज्ञा पुं० [न०] ज्योतिष का एक पाणिभाषित ग्रन्थ। मुदा।  
मुतहा [को०]।

इदंवर—सज्ञा पुं० [सं०] नीला कमल। इदंवर [को०]।

इद'—सज्ञा पुं० [सं० इद, प्रा० इद] दे० 'उद'। उ०—यापरो हुनी  
रहो यह मद। उनि बलि गुम कट्टे परि उद। नर प्र०,  
पृ० ३१३।

इंदर<sup>२</sup>—कि० वि० [अ०] १ समीप । नजदीक । २ पर । किंतु [को०] ।  
 इंदर<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [देश०] दे० 'इंदुर' । उ०—प्रेम खटोलना कसि कसि  
 बाँधयो विग्रह वान तिहि लागू हो । तिहि चढि इंदरुँ करत  
 गैवमियाँ अरि जमवा जागी हो ।—कवीर ग्र०, पृ० ११२ ।  
 इंदका—सज्ञा पुं० [सं० इन्दका] भृगुशिरा नक्षत्र के ऊपर रहनेवाला  
 नक्षत्रेण [को०] ।  
 इंदर(७)—सज्ञा दे० [सं० इन्द्र] दे० 'इंद्र' । उ०—मुनि जन इंदर भलि  
 सब, भूते गौरि गनेस—सतवानी, भा० १, पृ० ११८ ।  
 यौ०—इंदर का अखाड़ा = अम्भराग्री, परियों का जमावड़ा ।  
 उ०—हमको 'नासिख' राजा इंदर का अखाड़ा चाहिए ।—  
 कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३५४ ।  
 इंदराज—सज्ञा पुं० [इंदिराज०] वहीखाता । लेखाजोखा या पजिका  
 में लिखा जाना [को०] ।  
 इंदव<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० एन्द्र] १ एक छद का नाम । इसके प्रत्येक  
 चरण में आठ मगण और दो गुरु होते हैं । इसे मत्तगर्द और  
 मालती भी कहते हैं ।  
 इंदव<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्र] चंद्रमा ।  
 इंदवभाल(७)—सज्ञा पुं० [हि० इंदव + भाल] चंद्रमाल शिव । उ०—  
 हरि न बनायो मुरमरी कीजो इंदवभाल ।—रहीम०, पृ० १ ।  
 इंदवान(७)—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्र + वाण = आयुध] शक्र का धनुष । इंद्र  
 धनुष । उ०—पर गजिय व्योम रजि इंदवान । गहि काम चाप  
 जनु दिय निसान ।—पृ० २०, ५७।६५ ।  
 इंदिदिर—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रिदिर] अमर । भौरा [को०] ।  
 इंदिप्र(७)—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय, प्रा० इंदिय] दे० 'इंद्रिय' ।  
 उ०—इंद्रिय दारुन जतहि हटिय ततहि ततहि धावे ।—  
 विद्यापति, पृ० ३७२ ।  
 इंदिया—सज्ञा पुं० [अ०] १. ममति । राय । विचार । मशा । २.  
 आकाश । इच्छा [को०] ।  
 इंदिरा—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दिरा] १. लक्ष्मी । विष्णुपत्नी । उ०—मती  
 विघात्री इंदिरा देखी अमित अनूप ।—मानस १।५५ । २.  
 कुआर के कृष्ण पक्ष की एकादशी । ३. शोभा । कांति ।  
 उ०—शरद इंदिरा के मंदिर की मानो कोई गैल रही ।—  
 कामायनी, पृ० ६८ ।  
 यौ०—इंदिरामंदिर = (१) विष्णु । (२) इंदीवर । नील कमल ।  
 इंदिरामण = लक्ष्मीरमण । विष्णु [को०] ।  
 इंदिरालय—सज्ञा पुं० [सं० इन्दिरालय] नीलकमल [को०] ।  
 इंदीवर, इंदीवर—सज्ञा पुं० [सं० इन्दिवर, इंदीवर] १ नील कमल ।  
 नीलोत्पल । उ०—स्वर्गंगा में इंदीवर की, या एक पक्षि कर  
 रही हास । कामायनी, पृ० १५२ । २ कमल ।  
 इंदीवरिणी—सज्ञा स्त्री० [सं० इंदीवरिणी] कमलिनी [को०] ।  
 इंदीवरी—सज्ञा स्त्री० [सं० इंदीवरी] शतमूली [को०] ।  
 इंदीवार—सज्ञा पुं० [सं० इन्दवार] दे० 'इंदीवर' [को०] ।  
 इंदु—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्र] १ चंद्रमा । २ कपूर । ३. एक प्रकार की  
 सन्ध्या । ४ मृगशिरा नक्षत्र । इस नक्षत्र का देवता चंद्र है ।

यौ०—इंदुकमल = श्वेतकमल । इंदुकिरीट, इंदुमूपण = शिव ।  
 इंदुनदन, इंदुपुत्र = चंद्रमा । इंदुलोक = चंद्रलोक । इंदुवासर =  
 सोमवार ।  
 इंदुक—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुक] अश्वत्थ का वृक्ष [को०] ।  
 इंदुकर—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुकर] चंद्रमा की किरण । उ०—जब विहार  
 विचार कर विद्याधरो की बालिका, आ गई हैं यथा, कि ये हैं  
 इंदुकर की जालिका ।—कानन०, पृ० ४२ ।  
 इंदुकला—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रुकला] १ चंद्रमा की कला । २ चंद्रमा  
 की किरण । उ०—भाल लाल बेंदी लवन, आखन रहे विगनि ।  
 इंदुकला कुज में बसी, मनो राहु मय माजि ।—विहारी  
 २०, दो० ६६० । ३ अमृत । पीयूष [को०] । ४. मोमनता ।  
 सोम [को०] । ५ गुडूची गुरुच [को०] ।  
 इंदुकलिका—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुकलिका] १ चंद्रमा की कला या चंद्रमा  
 की किरण । २ केतकी का पौधा [को०] ।  
 इंदुकात—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुकान्त] चंद्रकांत नामक मणि [को०] ।  
 इंदुकाता—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रुकान्ता] केतकी । इंदुकलिका । २  
 निशा । रात्रि [को०] ।  
 इंदुक्षय—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुक्षय] १ चंद्रमा का क्षीण होना या न  
 दिखाई देना । २ नए चांद का दिन [को०] ।  
 इंदुज—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुज] चंद्रमा का पुत्र । पुत्र [को०] ।  
 इंदुजनक—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुजनक] १ चंद्रमा का पिता समुद्र ।  
 अग्नि नामक ऋषि [को०] ।  
 इंदुजा—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रुजा] मोमोद्मवा । नर्मदा नदी ।  
 इंदुपर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रुपर्णी] पंजोरी नाम का पौधा [को०] ।  
 इंदुपुष्पिका—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रुपुष्पिका] कलियारी या जागली नाम  
 का पौधा [को०] ।  
 इंदुवधू(७)—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवधू] दे० 'इंद्रवधू' । उ०—ज्यो ज्यो  
 परसे लान तन त्यो त्यो राखति गोइ । नवल वधू लाजन ललित  
 इंदुवधू सी होइ ।—मतिराम ग्र०, पृ० ४४६ ।  
 इंदुभ—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुभ] १ कर्कराशि । २ मृगशिरा  
 नक्षत्र [को०] ।  
 इंदुभा—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रुभा] जलकमलिनी की एक जाति [को०] ।  
 इंदुभूत्—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुभूत्] शिव [को०] ।  
 इंदुमंडल—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुमण्डल] चंद्रमा का घेरा या परिधि  
 [को०] ।  
 इंदुमणि—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुमणि] १. चंद्रकांत मणि । २ मोनी  
 [को०] ।  
 इंदुमती—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रुमती] १ पूर्णिमा । २ राजा अज की  
 पत्नी जो विदर्भ देश के राजा की बहिन थी । ३ राजा चंद्र-  
 विजय की पत्नी । उ०—चंद्रविजय नृर रह्यो तहाँ ही । गानी  
 इंदुमती रति छाहीं । (शब्द०) ।  
 इंदुमान्—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुमन्] अग्नि [को०] ।  
 इंदुमुखी—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रुमुखी] एक लता [को०] ।  
 इंदुमौलि—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्रुमौलि] शिव । इंदुमूपण [को०] ।  
 इंदुर—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुर] चूहा । मूसा ।

इंदुरत्न—संज्ञा पुं० [मं० इन्दुरत्न] सुवना । मोती ।

इंदुरेखा, इंदुलेखा—संज्ञा स्त्री० [मं० इन्दुरेखा, -लेखा] १ चंद्रमा की कला । इंदुकला । २. सोमलता । ३. श्रमृता । ४. गुडूची(को०) । इंदुलतलव—किं० वि० [अ०] मांगने पर या जरूरत पड़ने पर (को०) । इंदुलोहक, इंदुलोह—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुलोहक, -लोह] चांदी रजत (को०) ।

इंदुवदना—संज्ञा स्त्री० [मं० इन्दुवदना] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में म ज स न ग ग ( S II I S I II S III SS ) होता है ।

उ०—इंदुवदना वदत जात्रे वनिहारी । जान मोहि दे धरहि मत्वर विहारी ।—(शब्द०) । २ इंदुतुल्य मुखवाली स्त्री (को०) ।

इंदुवधू—संज्ञा स्त्री० [मं० इन्दुवधू] इन्द्रधू ।

इंदुवल्ली—संज्ञा स्त्री० [मं० इन्दुवल्ली] सोमलता (को०) ।

इंदुवार—संज्ञा पुं० [मं० इन्दुवार] १ वर्ष कृष्ण की क सोलह योगों में से एक ।

जब तीसरे, छठे, नवें और बारहवें धर्म में क्रूर ग्रह हों, तब यह योग होता है । यह शुभ नहीं है । २ सोमवार का दिन (को०) ।

इंदुव्रत—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुव्रत] चांद्रायण नाम का एक व्रत ।

इंदूर—संज्ञा पुं० [मं० इन्दूर] चूना । मूना ।

इंद्र<sup>१</sup>—वि० [मं०] १ ऐश्वर्यावान् । विभूतिमय २. श्रेष्ठ । बड़ा ।

यी०—देवेंद्र । नरेंद्र । पादवेंद्र । योगेंद्र । दानवेंद्र । सुरेंद्र ।

इंद्र<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० १ एक सर्वप्रमुख वैदिक देवता जिसका स्थान अंतरिक्ष है जो और पानी वरसाता है । यह देवताओं का राजा माना गया है । शौर्य, युद्ध और वैभव का वह सर्वश्रेष्ठ वैदिक देव है । ऋग्वेद में सबसे अधिक सूक्तों द्वारा इंद्र के शौर्य, वीर्य, पराक्रम और मोमपान आदि का वर्णन किया गया है । ऋग्वेदयुगीन वैदिक यज्ञों में भी उसका अत्यंत प्रमुख स्थान है ।

विशेष—इसका वाहन ऐरावत और अश्व वज्र है । इसकी स्त्री का नाम शनि और सभा का नाम मुष्मती है, जिसमें देव, गंधर्व और अप्सराएँ रहती हैं । इसकी नगरी अमरावती और वन नदन है । उच्चैः श्रवा इसका घोड़ा और मातलि मारुती है । वृष, त्वष्टा, नमुचि, शवर, पण, वलि और विरोचन इसके शत्रु हैं । जयत इसका पुत्र है । यह ज्येष्ठा नक्षत्र और पूर्व दिशा का स्वामी है । पुराण के अनुसार एक मन्वन्तर में क्रमण चौदह उग्र भोग करते हैं जिनके नाम ये हैं—इंद्र । विश्वभुक्त । विपश्चित् । विभू । प्रभु । शिखि । मनोजव । तेजस्वी । वलि । श्रद्भुत । त्रिदिव । मुष्मति । सुकीर्ति । ऋतु घाता । दिवस्पति । वतमान काल में तेजस्वी इंद्र भोग कर रहे हैं ।

पर्या०—मस्तवान् । मघवा । विडोजा । पाकशासन । वृद्धश्रवा । शुनासीर । पुरहूत पुरदर । शिष्णु । लेखपंभ । शक्र । शतमन्यु । दिवस्पति । सुत्रामा । गोत्रभिद् । वज्री । वासव । वृषहा । वृषा । वास्तोष्पति । सुरपति । वलारति । शचीपति । जभभेदी । हरिहय । स्वराट् । नमुचिसूदन । सकंदन । बुद्ध्यवन । रुद्रापाह । मेघवाहन । आखडल । सहस्राक्ष । ऋभुक्ष । महेंद्र । कौशिक । पूतवतु । विश्वभर । हरि । पुरदंशा । शतधृति । पूतनापाड् । अहिद्विष । वज्रपाणि । वेवराज । पर्वतारि । पर्यण्य । देवाधिप । नाकनाय । पूर्वदिक्पति । पुलोमारि । अर्ह पचीन । वहि । तपस्तक्ष ।

यी०—इंद्र का अखाड़ा = (१) इंद्र की मभा जिसमें अप्सराएँ नाचती हैं । (२) बहुत बड़ी हुई मभा जिसमें खूब नाच रग होता हो । इंद्र की परी = (१) अप्सरा । (२) बहुत सुंदरी स्त्री । इंद्रसभा = इंद्र का अखाड़ा । उ०—इंद्रमभा जनु पग्गि डीठी ।—जायसी ग्र०, पृ० १८ ।

२ बारह आदित्यों में से एक । सूर्य । ३. विजयी । ४ राजा । मालिक । स्वामी । ५ ज्येष्ठा नक्षत्र । ६ चौदह की सख्या । ७ ज्योतिष में विष्णु आदिक २७ योगों में से २६वाँ । ८ कृत्तक वृक्ष । ९. रात । १० छप्पय छद के भेदों में से एक । ११ दाहिनी आंख की पुतली । १२ व्याकरण आदि के आचार्यों का नाम । १३ जीव । प्राण । १४ श्रेष्ठ या प्रधान व्यक्ति (को०) । १५ मेघ । वादन (को०) । १६ भारतवर्ष का एक भाग (को०) । १७ परमेश्वर (को०) । १८ वनस्पतिजन्य एक प्रकार का जहुर (को०) ।

इंद्रक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रक] गोष्ठी का स्थान । समागृह (को०) ।

इंद्रकर्मा—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकर्मन्] विष्णु (को०) ।

इंद्रकात—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकात] चौमजिले भवन की एक मजिल या मरातिव (को०) ।

इंद्रकामुक—संज्ञा पुं० [मं० इन्द्रकामुक] इंद्रायुध । इंद्रधनुष (को०) ।

इंद्रकील—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकील] १ मदराचल का एक नाम । २ चट्टान (को०) । ३ इंद्र की ध्वजा (को०) । ४ कंटिया । किल्ली (को०) ।

इंद्रकुजर—संज्ञा पुं० [मं० इन्द्रकुञ्जर] इंद्र का हाथी । ऐरावत (को०) ।

इंद्रकूट—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकूट] एक पर्वत का नाम (को०) ।

इंद्रकृष्ण<sup>१</sup>—वि० [मं० इन्द्रकृष्ण] वर्षा में अपने आप उत्पन्न होनेवाला (को०) ।

इंद्रकृष्ण<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० वर्षा के जन से अपने आप पैदा होनेवाली फसल (को०) ।

इंद्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकेतु] इंद्र की ध्वजा (को०) ।

इंद्रकोश, इंद्रकोप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकोश, -कोप] १ मवान । २ चारपाई । ३ वातखाना । छज्जा । ४ नागदंत । खूँटी (को०) ।

इंद्रकोष्ठ—संज्ञा पुं० दे० 'इंद्रकोण' ।

इंद्रगिरि—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगिरि] महेंद्र नाम का पर्वत (को०) ।

इंद्रगुरु—संज्ञा पुं० [मं० इन्द्रगुरु] देवगुरु वृहस्पति (को०) ।

इंद्रगोप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगोप] वीरवहूटी नाम का कीड़ा ।

इंद्रगोपक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगोपक] दे० 'इंद्रगोप' ।

इंद्रचदन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रचदन] श्वेतचदन । हरिचदन (को०) ।

इंद्रचाप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रचाप] दे० 'इंद्रधनुष' ।

इंद्रचिंभिटी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रचिंभिटी] इंद्रायण । एक लता-विशेष (को०) ।

इंद्रच्छेद—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रच्छेद] एक हजार आठ मोतियों की माला जो चार हाथ लगी होती थी ।

विशेष—इसका एक नाम 'इंद्रच्छेद' भी है ।

इंद्रज—संज्ञा पुं० [ म० इन्द्रज ] बालि नामक वानर जो इंद्र का पुत्र था [को०] ।

इंद्रजतु—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रजतु ] शिलाजीत [को०] ।

इंद्रजव—संज्ञा पुं० [ म० इन्द्रजव ] कुंडा । कौरैया का वृक्ष ।

विशेष—ये बीज लवे-लवे जव के आकार के होते हैं और दवा के काम में आते हैं । एक एक सीके में हाथ हाथ भर की लवी दो दो फलियाँ लगती हैं, जिनके दोनों छोर आपस में जुड़े रहते हैं । फलियों के अंदर रुई या धूँवा होता है जिसमें बीज रहते हैं । इसके पेड़ में कटि भी होते हैं । यह मलरोधक, पाचक और गरम है तथा सगृहणी और खूनी ववासीर में फायदा करता है । त्वचा के रोगों पर भी यह चलता है ।

इंद्रजाल—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रजाल ] १ मायाकर्म । जादूगरी । तिलस्म । उ०—सो नर इंद्रजाल नहि भूला ।—मानस, ३ । ३३ ।

विशेष—यह तंत्र का भी अंग है ।

२ एक प्रकार का रणचातुर्य । ३ अर्जुन का एक शस्त्र (को०) ।

इंद्रजालिक—वि० [ म० इन्द्रजालिक ] इंद्रजाल करनेवाला । जादूगर ।

इंद्रजाली—वि० [ म० इन्द्रजालिनी ] [ वि० स्त्री० इंद्रजालिनी ] इंद्रजाल करनेवाला । मायावी । जादूगर । उ०—यौं न कहौ कटि नाहि तो कुच हैं किहि आधार । परम इंद्रजाली मदन विधि को चरित अपार ।—भिखारी प्र०, भा० २, पृ० १६१ ।

इंद्रजित्<sup>१</sup>—वि० [ म० इन्द्रजित् ] इंद्र को जीतनेवाला ।

इंद्रजित्<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० रावण का पुत्र, मेघनाद ।

इंद्रजीत<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० [ सं० इन्द्रजित् ] दे० 'इंद्रजित्' । उ०—इंद्रजीत आदिक बलवाना ।—मानस, ६ । ३३ ।

इंद्रजी<sup>४</sup>—संज्ञा पुं० [ हि० इन्द्रजव ] दे० 'इंद्रजव' ।

इंद्रतरु—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रतरु ] १ अर्जुन नाम का वृक्ष । २ कुटज का पीछा [को०] ।

इंद्रतापन—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रतापन ] १. मेघगर्जन । बादलों का गरजना । २. एक दानव का नाम [को०] ।

इंद्रतूल, इंद्रतूलक—संज्ञा पुं० [ सं० इन्द्रतूल, -तूलक ] वह सूत जो वायु में उड़ जाय । २. रुई की ढेरी या समूह [को०] ।

इंद्रदमन—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रदमन ] १ बाढ़ के समय नदी के जल का किसी निश्चित कुंड, तान अथवा बट या पीपल के वृक्ष तक पहुँचना । यह एक पर्व समझा जाता है । २. वाणासुर का एक पुत्र । ३. मेघनाद का एक नाम ।

इंद्रदारु—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रदारु ] देवदारु ।

इंद्रद्युति—संज्ञा पुं० [ म० इन्द्रद्युति ] श्वेतचंदन [को०] ।

इंद्रद्रुम—संज्ञा पुं० [ म० इन्द्रद्रुम ] १ अर्जुन वृक्ष । २ कुटज [को०] ।

इंद्रद्वीप—संज्ञा पुं० [ सं० इन्द्रद्वीप ] भारतवर्ष के नौ खंडों में एक का नाम [को०] ।

इंद्रधनु—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रधनुष, प्रा० इंद्रधनु ] दे० 'इंद्रधनुष' । उ०—भरी धमनियाँ सरिताओं सी, रोष इंद्रधनु उदय हुआ ।—नागयज्ञ, पृ० ६५ ।

इंद्रधनुष—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रधनुष ] १. सात रंगों का बना हुआ एक अर्धवृत्त जो वर्षाकाल में सूर्य के विरुद्ध दिशा में आकाश में देख पड़ता है । जब सूर्य की किरणें घूमते हुए जल से पार होती हैं, तब उनकी प्रतिच्छाया से इंद्रधनुष बनता है ।

इंद्रध्वज—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रध्वज ] १ इंद्र की पताका । २. माद्राद शुक्ला द्वादशी को वर्षा और मेती की वृद्धि के लिये होनेवाला एक पूजन जिसमें राजा लोग इंद्र को ध्वजा चढ़ाते और उत्सव करते हैं । ३. प्राचीन भारत में प्रचलित एक उत्सव जिसमें वैदिक देव इंद्र की आराधना होती थी ।

इंद्रनील—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रनील ] नीलमणि । नीलम । उ०—उद्र-नील मणि अहाचपक था मोमरहित उलटा लटका ।—कामायनी पृ० २४ ।

इंद्रनेत्र—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रनेत्र ] १ १००० की मंढरा । २ इंद्र की आँख [को०] ।

इंद्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [ म० इन्द्रपर्णी ] दे० 'उद्रपर्णी' [को०] ।

इंद्रपर्वत—संज्ञा पुं० [ म० इन्द्रपर्वत ] १ महेंद्र पर्वत । २ एक काना पहाड़ [को०] ।

इंद्रपुरोहिता—संज्ञा स्त्री० [ म० इन्द्रपुरोहिता ] पुण्य नदी ।

इंद्रपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [ म० इन्द्रपुष्पा ] करियारी । कलियारी ।

इंद्रप्रस्थ—संज्ञा पुं० [ म० इन्द्रप्रस्थ ] एक नगर जिसे पांडवों ने खाडव वन जनाकर बसाया था । यह आधुनिक दिल्ली के निकट है ।

इंद्रप्रहरण—संज्ञा पुं० [ म० इन्द्रप्रहरण ] वज्र [को०] ।

इंद्रफल—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रफल ] इंद्रजव ।

इंद्रभगिनी—संज्ञा स्त्री० [ म० इन्द्रभगिनी ] पार्वती [को०] ।

इंद्रभाष—संज्ञा पुं० [ सं० इन्द्रभाष ] मगीत में इंद्रताल के छ भेदों में से एक ।

इंद्रभेषज—संज्ञा पुं० [ सं० इन्द्रभेषज ] सोठ [को०] ।

इंद्रमंडल—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रमण्डल ] अभिजित से अनुराधा तक के सात नक्षत्रों का समूह ।

इंद्रमख—संज्ञा पुं० [ सं० इन्द्रमख ] इंद्र की प्रसन्नता के निमित्त किया जानेवाला एक यज्ञ [को०] ।

इंद्रमद—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रमद ] पहली वर्षा के जन में उत्पन्न विष जिसके कारण जोक और मछलियाँ मर जाती हैं ।

इंद्रमह—संज्ञा पुं० [ स० इन्द्रमह ] १ दे० 'इंद्रमख' । २. वर्षा ऋतु । यौ०—इंद्रमहकामुक = श्वान । कुत्ता ।

इंद्रलुप्त—संज्ञा पुं० [ सं० इन्द्रलुप्त ] खल्वाट होने का रोग । गाज रोग ।

इंद्रलुप्तक—संज्ञा पुं० [ म० इन्द्रलुप्तक ] दे० 'इंद्रलुप्त' ।

इंद्रलोक—संज्ञा पुं० [ स० इंद्रलोक ] स्वर्ग । उ०—चढ़े अस्त्र लैं कृष्ण मुरारी । इंद्रलोक सब लाग गोहारी ।—जायसी प्र०, पृ० ११३ ।

इंद्रवशा—संज्ञा पुं० [ म० इन्द्रवशा ] १२ वर्षों का एक वृत्त जिसमें दो तगरा, एक जगरा और एक रगरा होते हैं । उ०—ताता जरा देखु विचारि कै मन । को मार को देत सुखै दुखै जन । सप्राम भारी कर आज वान सो । रे इंद्रवशा । तर कौरवान सो ।—छंद०, पृ० १७२ ।

इंद्रवज्रा—संज्ञा पुं० [ सं० इन्द्रवज्रा ] एक वर्णवृत्त का नाम जिसमें दो तगरा, एक जगरा और गुरु होते हैं । उ०—ताता जगो गोकुल



नाथ गावो । भारी मर्वे पापन को नसावो । साँची प्रभू काटहि  
जन्मवेरी । है इद्रवज्रा यह सीख मेरी । छंद०, पृ० १५७ ।

इंद्रवज्र—सज्ञा स्त्री० [म० इन्द्रवज्र] वीरवहूटी नाम का कीड़ा ।

इंद्रवल्ली—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रवल्ली] इद्रायन ।

इंद्रवस्ति—सज्ञा स्त्री० [म० इन्द्रवस्ति] जाँघ की हड्डी ।

इंद्रवारु—सज्ञा पुं० [म० इन्द्रवारुणी] इद्रायन । इद्रावन ।

इंद्रवारुणी—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रवारुणी] इद्रायन ।

इंद्रवृद्ध—सज्ञा पुं० [म० इन्द्रवृद्ध] [स्त्री० इन्द्रवृद्धा] एक प्रकार की फुसी ।

इंद्रव्रत—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रव्रत] वह राजा जो अपनी प्रजा को उसी तरह भरा पूरा रखे जैसे इंद्र पानी वरमाकर जीवों को प्रसन्न करता है ।

इंद्रशक्ति—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रशक्ति] शची । इद्राणी [को०] ।

इंद्रशत्रु—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रशत्रु] १ वृत्रासुर । २. प्रह्लाद [को०] ।

इंद्रसारथि—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रसारथि] १. मातलि । २. वायु । पवन [को०] ।

इंद्रसावर्णी—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रसावर्णी] चौदहवें मनु का नाम ।

इंद्रमुत—सज्ञा पुं० [म० इन्द्रमुत] इद्र के पुत्र (१) जयत । (२) बालि । (३) अर्जुन वृक्ष [को०] ।

इंद्रसुरस—सज्ञा पुं० [म० इन्द्रसुरस] निगुंडी या मिदुवार का पौधा [को०] ।

इंद्रसेन—सज्ञा पुं० [म० इन्द्रसेन] राजा बलि का एक नाम ।

इंद्रसेनानी—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रसेनानी] कार्तिकेय [को०] ।

इंद्रस्तोम—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रस्तोम] १ इद्र की प्रमन्नता के निमित्त यज्ञ । २ इद्र की प्रार्थना [को०] ।

इद्रा—सज्ञा स्त्री० [स० इद्रा] तुषार । हिम [को०] ।

इद्राग्निवूम—सज्ञा पुं० [स० इन्द्राग्निवूम] तुषार । हिम [को०] ।

इद्राणिका—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्राणिका] निगुंडी [को०] ।

इद्राणी—सज्ञा स्त्री० [स० इद्राणी] १ इद्र की पत्नी, शची । २ बड़ी डनायची । ३ इद्रायन । ४. दुर्गा देवी । ५. बाई प्रांख की पुतली । ६. शिशुवार वृक्ष । समाल् । निगुंडी ।

इंद्रानी<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्राणी] दे० 'इद्राणी' ।

इद्रानुज—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रानुज] विष्णु, जिन्होंने वामन अवतार लिया था । उपेंद्र ।

इद्रायण—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'इद्रायन' । उ०—कट्ट इद्रायण मे मुदर फन, मधुर ईख मे एक नही ।—कविता को०, भा०, २, पृ० १५१ ।

इंद्रायन—सज्ञा पुं० [स० इन्द्राणी] एक लता जो विनकुन तरबूज की लता की तरह होती है । उनाह । उ०—इद्रायन दाडिम विरम जहाँ न नेकु विवेक ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६६६ ।

विशेष—सिध, डेरा इस्माईनखी, मुनतान, बहावरपुर तथा दक्षिण और मध्य भारत मे यह आपसे आप उपजती है । इसका फल नारंगी क बराबर होता है जिसमें खरबूजे की तरह फाँके कटी होती हैं । पकने पर इसका रंग पीला हो जाता है । लाल रंग का भी इद्रायन होता है । यह फल विशेषता और रेचक

होता है । अंगरेजी और हिंदुस्तानी दोनों दवाओं मे इसका मंत काग आता है । यह फल देखने मे बड़ा मुदर पर अपने कढ़ूए-पन के लिये प्रसिद्ध है ।

मुहा०—इंद्रायन का फल—देखने मे अच्छा पर वास्तव मे बुरा । सूरतहराम । खोटा ।

इद्रायुध—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रायुध] १ वज्र । २. इद्रधनुष । उ०—वादवरी मे वणित इद्रायुध से क्या डोलडोल मे कम था ?—किन्नर०, पृ० ३४ ।

इद्रावरज—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रावरज] विष्णु । उपेंद्र [को०] ।

इद्रावसान—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रावसान] रेगिस्तान । मरुभूमि [को०] ।

इद्राशन—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्राशन] १. भाँग । मिट्टि । विजया । २. गुजा । घुघची । चिरमिट्टी ।

इद्रासन—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रासन] १ इद्र का सिंहासन । इद्रपद । २ राजसिंहासन । उ०—भाँक ऊँच इद्रामन साजा । गध्रवसेन बैठ तहँ राजा । जायसी ग्र०, पृ० १८ । ३ पिंगल में ठगण के पहले भेद की सजा, जिसमे पाँच माथाएँ इस क्रम से होती हैं—एक लघु और दो गुरु, जैसे,—'पुजारी' ।

इद्रिजित<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रियजित्] दे० 'इद्रियजित्' । उ०—देखि कै उमा कीं रुद्र लज्जित मए मैं कौन यह काम कीनी । इद्रि-जित हौं कहावत हूँ तो आपु को समुझि मन माहि ह्वै रह्यो खीनी ।—सुर० ८।१० ।

इद्रिय—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रिय] १. वह शक्ति जिसमे बाहरी विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है । वह शक्ति जिससे बाहरी वस्तुओं के भिन्न भिन्न रूपों का भिन्न भिन्न रूपों मे अनुभाव होता है । २. शरीर के वे अवयव जिनके द्वारा यह शक्ति विषयों का ज्ञान प्राप्त करती है ।

विशेष—साध्य ने कर्म करनेवाले अवयवों को इद्रिय मानकर इद्रियों के दो विभाग किए हैं—ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय । ज्ञानेंद्रिय वे हैं जिनमे केवल विषयों के गुणों का अनुभव होता है । ये पाँच हैं चक्षु (जिससे रूप का ज्ञान होता है), श्रोत्र (जिसमे शब्द का ज्ञान होता है), नासिका (जिसमे गंध का ज्ञान होता है), रसना (जिसमे स्वाद का ज्ञान होता है) और त्वचा (जिससे स्पर्श द्वारा कड़े और नरम आदि का ज्ञान होता है) । इसी प्रकार कर्मेंद्रियाँ भी, जिनके द्वारा विविध कर्म किए जाते हैं, पाँच हैं—वाणी (बो लने के लिये), हाथ (पकड़ने के लिये), पैर (चलने के लिये), गुदा (मलत्याग करने के लिये), उरस्थ (मूत्रत्याग करने के लिये) । इनके अतिरिक्त उभयात्मक अर्थात् इन्द्रिय 'मन' भी माना गया है जिसके मन, बुद्धि, ग्रहण और चित चार विभाग करके वेदातिथ ने कुल १४ इद्रियाँ मानी हैं । इनके पृथक् पृथक् दवता कल्पित किए हैं, जैसे, कान रु दवता दिशा, त्वचा क वायु, चक्षु के सूर्य, जिह्वा क प्रचा, नासिका के अश्विनीकुमार, वाणी क अग्नि, पैर क विष्णु, हाथ के इद्र, गुदा के मित्र, उरस्थ के प्रजापति, मन क चंद्रमा, बुद्धि के ब्रह्मा, चित्त के अच्युत, अहंकार के शंकर । न्याय के मत से पृथ्वी का अनुभव घ्राण से, जल का जिह्वा से, तेज का चक्षु से, वायु का त्वचा से और आकाश का कान से होता है ।



यौ०—इन्द्रियघात । इन्द्रियजन्य । इन्द्रियजित् । इन्द्रियदमन ।  
इन्द्रियनिग्रह । इन्द्रियसयम । इन्द्रियार्थ । इन्द्रियामक्त ।  
३ लिङ्गेन्द्रिय । ४ पाँच की सख्या । ५ वीर्य । ६ कुशती के  
एक पेंच का नाम ।  
इन्द्रियगोचर<sup>१</sup>—वि० [म० इन्द्रियगोचर] इन्द्रियो के ग्रहण के योग्य या  
ज्ञेय । इन्द्रियो का विषय होने योग्य ।  
इन्द्रियगोचर<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० इन्द्रियो का विषय [को०] ।  
इन्द्रियग्राम—सञ्ज्ञा पु० [स० इन्द्रियग्राम] इन्द्रियो का समूह [को०] ।  
इन्द्रियज—वि० [स० इन्द्रियज] इन्द्रियो के मयोग से होनेवाला । इन्द्रि-  
जन्य । उ०—ग्राम मे मनुष्य की चेतनसत्ता अधिकतर  
इन्द्रियज ज्ञान की समष्टि के रूप मे रही ।—रस०, पृ० २० ।  
इन्द्रियजित्—वि० [म० इन्द्रियजित्] जिसने इन्द्रियो को जीत लिया  
हो । जो इन्द्रियो को वश मे किए हो । जो विषयासक्त न हो ।  
उ०—नीलतिनिपुण मयणाकुशल ये वे रहस्वरक्षक इन्द्रियजित् ।  
—स्वप्न, पृ० ३६ ।  
इन्द्रियनिग्रह—सञ्ज्ञा पु० [म० इन्द्रियनिग्रह] इन्द्रियो को दबाना । इन्द्रियो  
के वेग को रोकने का नियम ।  
इन्द्रियवोधन—वि० [म० इन्द्रियवोधन] इन्द्रिय को जाग्रत या क्रिया-  
शील करनेवाला [को०] ।  
इन्द्रियलोलुप—वि० [स० इन्द्रियलोलुप] इन्द्रिय की तुष्टि के लिये  
व्याकुल [को०] ।  
इन्द्रियवज्जी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० इन्द्रिय + वज्ज] वाजीकरण क्रिया का  
एक भेद ।  
इन्द्रियवध—सञ्ज्ञा पु० [स० इन्द्रियवध] इन्द्रियो का अपने अपने विषय  
मे आसक्त न होना [को०] ।  
इन्द्रियवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० इन्द्रियवृत्ति] इन्द्रियो का कार्य [को०] ।  
इन्द्रियसन्निकर्ष—सञ्ज्ञा पु० [म० इन्द्रियसन्निकर्ष] ज्ञानेन्द्रियो का अपने  
अपने विषयो या मन से संपर्क ।  
इन्द्रियसुख—सञ्ज्ञा पु० [स० इन्द्रियसुख] विषयानन्द । विषयमुख [को०] ।  
इन्द्रियस्वाप—सञ्ज्ञा पु० [स० इन्द्रियस्वाप] इन्द्रियो को अपने विषयो का  
ज्ञान न होना । २ जडता । ३ प्रलय [को०] ।  
इन्द्रियागोचर—वि० [स० इन्द्रियागोचर] इन्द्रियो द्वारा अग्राह्य या  
इन्द्रियो का अविषय । अज्ञेय [को०] ।  
इन्द्रियातीत—वि० [स० इन्द्रियातीत] १ इन्द्रियो से परे । इन्द्रिया-  
गोचर । अज्ञेय [को०] ।  
इन्द्रियायतन—सञ्ज्ञा पु० [स० इन्द्रियायतन] इन्द्रियो का आयतन या  
निवास । शरीर । देह । २ आत्मा [को०] ।  
इन्द्रियाराम—वि० [स० इन्द्रियाराम] इन्द्रियलोलुप । विषयासक्त [को०] ।  
इन्द्रियार्थ—सञ्ज्ञा पु० [स० इन्द्रियार्थ] इन्द्रियो का विषय । वे विषय  
जिनका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा होता है, जैसे—रूप ।  
इन्द्रियार्थवाद—सञ्ज्ञा पु० [स० इन्द्रियार्थ + वाद] वह मत जिसके  
अनुसार बुद्धि-व्यापार-वर्जित इन्द्रियज मुख ही सब कुछ है और  
उसी की निष्पत्ति काव्य का प्रधान गुण है । उ०—कीदम्  
की कल्पना बहुत ही तत्पर थी वे अपने इन्द्रियार्थवाद के लिये  
प्रसिद्ध हैं ।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १३६ ।

इन्द्रियासग—सञ्ज्ञा पु० [स० इन्द्रियासङ्ग] इन्द्रियो और उनके  
विषयो के प्रति आसक्ति का अभाव । अनासक्ति । सन्यास ।  
वैराग्य [को०] ।  
इन्द्रियासक्त—वि० [स० इन्द्रियासक्त] इन्द्रियाराम । इन्द्रियलोलुप [को०] ।  
इन्द्रो(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० इन्द्रिय] दे० 'इन्द्रिय' । उ०—इन्द्रो मव न्यारी  
परी, मुख लूटति आँखि । सुरदाम जे सग रहैं, तेऊ मरै  
आँखि ।—सूर०, १०।२४०७ ।  
इन्द्रोजीत(पु)—वि० [म० इन्द्रियजित्] दे० 'इन्द्रियजित्' । उ०—प्रति  
अनन्य गति इन्द्रोजीना । जाको हरि विनु कतहुँ न चीता ।  
—तुलसी ग्र०, पृ० १० ।  
इन्द्रोजुलाव—सञ्ज्ञा पु० [म० इन्द्रिय + फा० जुलाव] वे ओषधियाँ  
जिनसे पेगाव अधिक आता है । इसके लिये पानी मिला हुआ  
दूध, थोरा, मिलाखड़ी आदि धनुएँ दी जाती हैं ।  
इन्द्रया(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रिय] दे० 'इन्द्रिय' ।  
इन्द्रज्य—सञ्ज्ञा पु० [म० इन्द्रज्य] देवगुह बृहस्पति [को०] ।  
इव<sup>१</sup>—वि० [म० इव] प्रकाशक । दीपक ।  
इव<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पु० १. जलावन । ईधन । २ परमात्मा [को०] ।  
इधन—सञ्ज्ञा पु० [स० इन्धन] १ जलाने की लकड़ी । जलावन ।  
उ०—पान क सए सोना क टका, चंदन क मूल इधन बिका ।—  
कीर्ति०, पृ० ६८ । २ वासना [को०] ।  
इशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० इशा] १. इवारन । वयान । २. पत्र लिखने  
की कला लिखानेवाली पुस्तक । चिट्ठियों की किताब [को०] ।  
इसाफ—सञ्ज्ञा पु० [अ० इन्साफ] [वि० सुतिफ] १ न्याय । अदल ।  
यौ०—इसाफसद—न्याय चाहनेवाला ।  
कि० प्र०—करना ।—होना ।  
२ फैसला । निर्णय ।  
इस्टिट्यूट—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० इन्स्टिट्यूट] सम्मेलन । समा । समाज ।  
इस्ट्रूमेन्ट—सञ्ज्ञा पु० [अ० इन्स्ट्रूमेन्ट] १ औजार । यंत्र । २ साधन ।  
इन्स्पेक्टर—सञ्ज्ञा पु० [अ० इन्स्पेक्टर] १ देखभाल करनेवाला ।  
निरीक्षक ।  
इंगरेज(पु)—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'अंगरेज' । उ०—प्रायो अंगरेज  
मुलक रँ ऊपर ।—चाँकी० अ० भा०, ३, पृ० १०४ ।  
इंगरेजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अंगरेजी' । उ०—फारसी की छार सी  
उडाय इंगरेजी पढ मानो देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे ।—  
कविता कौ०, भा० २, पृ० १०३ ।  
इंगुरीटो—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० इगुर + ओटा (प्रत्य०)] वह डिविया  
जिसमे सौभाग्यवती स्त्रियाँ ईगुर या मिदूर रखती हैं । सिंघोरा ।  
इंगुवा—सञ्ज्ञा पु० [स० इङ्गुव] हिमोद का पद और फल । गोदी ।  
ईचना(पु)—कि० प्र० [हि० खिचना] किसी ओर आकर्षित होना  
खिचना । उ०—(क) भीहुत आसति मुँह नटति आँखिनु सौं  
लपटातु । ऐँचि छुडावति कर ईची आगे आवति जाति ।—  
विहारी र०, दो० ६८३ । (ख) आवति आँख ईची खिची  
भीह भयो भ्रम आवतु है मति यापै ।—रघुनाथ (शब्द०) ।  
ईटकोहरा—सञ्ज्ञा पु० [हि० ईट + ओहरा (प्रत्य०)] ईट का फूटा  
टुकड़ा । ईट की गिट्टी ।

इंटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं ई ट] एक प्रकार का पट्टक। पेड़की।

इंडहर—संज्ञा पुं० [सं० पिण्ड + हिं हर (प्रत्य०)] उदं की दाल से बना हुआ एक सालन। उ०—अमृत इंडहर है रम सागर।

वेसन सालन अधिको नागर।—सूर०, १०। १२१३।

विशेष—यह इस रीति से बनता है उदं और चने की दाल एक साथ भिगो देते हैं, फिर दोनों की पीठी पीसते हैं। पीठी में मसाला देकर उसके लवे लवे टुकड़े बनाते हैं। इन टुकड़ों को पहले अदहन में पकाते हैं, फिर निकालकर उनके और छोटे छोटे टुकड़े करते हैं। अतः मे इन टुकड़ों को घी में तनते हैं और रसा लगाकर पकाते हैं।

इंडुप्रा०—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'इंडुवा'।

इंडुरी०—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] गुंडरी। विडई। विडवा। गेंडुरी।

इंडुप्रा०—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] कपड़े की बनी हुई छोटी गोल गद्दी जिसे बोक उठाते समय मिर के ऊपर रख लेते हैं। गेंडुरी।

इंण०—सर्व० [देश०] दे० 'इन'। उ०—साई दे दे सज्जना, रातड इंण पर रहन।—दोला० दू० ३७७।

इंदारा—संज्ञा पुं० [मं० अश्रु, या मं० ईद = जल + धर = धारण करने वाला] कूआ। कूप।

इंदारन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] इन्द्रायन। माहर।

इंदुप्रा—संज्ञा पुं० [देश०] इंडुरी। गेंडुरी। वेडुरी।

इंदोर०—संज्ञा पुं० [मं० इन्द्रवारुणी] दे० 'इंदारन'। उ०—वहुत जतन भेख रचो बनाय बिन हरि भजन इंदोवन पाय।—गुना०, पृ० ५।

इंदोरीडा—संज्ञा पुं० [सं० इन्दन + हिं ओड़ा < मं० आलय] ई धन रखने की कोठरी। इधनगृह। गोठीना।

इंदारन०—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इंदारन'। उ०—बिनु हरि भजन इंदारन के फल तजत नही करुआई।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४६।

इ<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. १०० की संख्या [को०]।

इ<sup>२</sup>—अव्य० क्रोध, तिरस्कार, सहानुभूति, सवोधन, आश्चर्य दुःख आदि का व्यंजक अव्यय [को०]।

इकक०—क्रि० वि० [मं० एक, प्रा० इक्क + सं० अक] निश्चय। अवश्य। उ०—राम तिहारे मुजम जग, कीन्हो सेत इकक।—मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ५७।

इकग<sup>१</sup>०—वि० [सं० एकाङ्ग] एकतरफा। एक ओर का। उ०—कुछो इकगी प्रीति सों, चानक, मीन, पतंग। घन जल दीप न जानहीं, उनके हिय को अंग।—रमनिधि (शब्द०)।

इकग<sup>२</sup>०—संज्ञा पुं० शिव। महादेव। अर्धनारीश्वर।

इकग<sup>३</sup>०—क्रि० वि० मिश्रित। एक में मिला। उ०—गरल अमृत इकग करि राखै। मित्र मित्र के विररै चाहै।—नद ग्र०, पृ० ११८।

इकत०—वि० [सं० एकान्त] दे० 'एकांत'।

इक०—वि० [हिं०] दे० 'एक'। उ०—इक करहि दाप न चाप सज्जन वचन जिमि टारै टरे।—तुलसी ग्र०, पृ० ५३।

इकमाँक०—क्रि० वि० [सं० एक, प्रा० इक्क + हिं० आँक]

निश्चय। निश्चय करके। अवश्य। उ०—जे तब होत दिखा-दिखी, भई अमी एक आँक। दगो तिरिछी दीठि अब हूँ बीछी को हाँक।—विहारी र०, दो० ६१५। (ख) यद्यपि लौंग ललितों तऊतू न पहिरि इक आँक। सदा साँक बढियै रहै रहै चढी सी नाँक।—विहारी र०, दो० ६८५।

इकइस०—वि० [हिं०] दे० 'इक्कीस'।

इकचोविया—संज्ञा पुं० [हिं० इक + चोव] एक चोव अर्थात् बल्ली-वाला तंतू या डेरा। वह तंतू जिसमें एक ही चोव लगती हो (बोल०)।

इकछत०—वि० [सं० एकच्छत्र] दे० 'एकछत्र' उ०—जो नर इकछत भूप कहावै। मिठासन ऊपर बैठे जतही चँवर दुरावै।—चरण० वानी०, पृ० ६४।

इकजोर०—क्रि० वि० [सं० एक + हिं० जोरना = जोड़ना] इकट्ठा। एक साथ। उ०—देखु सखि चार चद्र इकजोर। निरखति वैठि नितविनि मिय संग सार सुता की ओर।—सूर(शब्द०)।

इकट—संज्ञा पुं० [सं०] सरकड़े का गोफा या कोरल [को०]।

इकटक—क्रि० वि० [हिं० एकटक] एक दृष्टि से। लगातार। बिना दृष्टि हटाए। उ०—इकटक प्रतिविम्ब निरखि पुनकत हरि हरपि हरपि, लै उछग जननी रसभग जिय विचारी।—तुलसी ग्र०, पृ० २८१।

इकटग०—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इकटक'। उ०—इकटग ध्यान रहै त्यों लागै छाकि परे हरि रस पीवै।—दादू० वानी, पृ० ५६६।

इकट्ठा—वि० [सं० एकस्यउ प्रा० इकट्ठा] एकत्र। जमा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

इकठा०—वि० [हिं०] दे० 'इकट्ठा'। उ०—तो ये नाना कर्म विविध। इकठे रहन न पार्वे भिन्न।—नद० ग्र०, पृ० २३६।

इकठाई०—वि० [एक + ठाई = स्थान] एक स्थान पर या एकत्र। उ०—जब सब गाड भई इकठाई।—सूर०, १०। ६१४।

इकठैनी—वि० [हिं० इकठा] इकट्ठा। एकत्र। उ०—सुनत ही सब हाँकि ल्याए गाइ करि इकठैनी।—सूर०, १०। ४३७।

इकठौर—वि० [हिं० इक + ठौर = स्थान] एक स्थान पर। एकत्र। उ०—(क) जैवत कांह नद इकठौरें।—सूर०, १०। २२४ (ख) जब पाँडे इत उत कहूँ गए। बालक सब इकठौरें भए।—सूर०, ७। २।

इकडाल०—संज्ञा पुं०, वि० [हिं०] दे० 'एकडाल'।

इकतन०—क्रि० वि० [हिं० इक + तन = ओर, तरफ] एक तरफ। एक ओर। उ०—इकतन नर एकतन भई नारी। खेल मच्यो ब्रज के विच भारी।—सूर०, १०। २६०१।

इकतर०—वि० [हिं०] दे० 'एकत्र'। उ०—(क) मन औ पवन होत जब इकतर नाही बीच बराव।—जग० वानी, पृ० ७५। (ख) दई वडाई ताहि पच यह सिंगरे जानी। दे कोल्हू मे पेरि, करी हैं इकतर घानी।—गिरिधर (शब्द०)। (ग) प्रथमहि पत्र चमेली आनै। ताको कूटि लेइ रस छानै। कूट सोहागा मनसिल लीजै। मीठे तेन मे इकतर कीजै।—(शब्द०)।

इक्षरा<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [सं० एकान्तर] वह ज्वर जो जाड़ा देकर एक दिन छोड़ दूसरे दिन आता है। अंतरिया। उ०—बड़ दुख होइ इक्षरी आवै। तीन उपाम न बल तन खावै।—जाल (शब्द०)।

इक्षता<sup>२</sup>—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एकता'। उ०—इक्षता कागज हेतु की हेतु कहत सु कविद। परम पदारथ चारहू श्री राधा गोविंद।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६६।

इक्षताई<sup>३</sup>—संज्ञा स्त्री० [सं० एकता या फा० यक्षा + हिं० ई (प्रत्य०)] १ एक होने का भाव। एकत्व। सिखे आपनै दगनसै इक्षताई की बात। जूरी डीठ इक्ष सँग रहै, जह्नि जुदे दिखात।—सं० सप्तक, पृ० २। २ अकेले रहने की इच्छा, स्वभाव या वान। एकतसेविता।—अली गई अब गरवई इक्षताई मुकुताई। भली भई ही अमलई जौ पीदई दिखाइ।—सं० सप्तक, पृ० २८४।

इक्षताना<sup>४</sup>—वि० [सं० एकतान या हिं० एक + तान = खिंचाव] एक रस। एक सा। स्थिर। अनन्य। उ०—ऐसे ही देखत रहौ, जन्म सफल करि मानो। प्यारे की भावती, भावती के प्यारे जुगल किमोर जानो। पलौ न टरौ छिन इत उन न होउ रहौ इक्षतानो।—हरिदाम (शब्द०)।

इक्षतार<sup>५</sup>—वि० [हिं० एक + तार] बराबर। एकरम। समान। उ०—हरि के केसन सो सटी लखत खोर इक्षतार। मानहुँ रवि की किरन कछु छीन लई अंधियार।—व्यास (शब्द०)।

इक्षतार<sup>६</sup>—क्रि० वि० लगातार। उ०—प्राकिचन इद्रिप्रदमन रमन राम इक्षतार। तुलसी ऐसे सत जन विरले या ममार।—तुलसी ग्र०, पृ०, १२।

इक्षतारा—संज्ञा पुं० [हिं० एक + तार] १ एक बाजा। एक प्रकार का तानपूरा या तबूरा।

विशेष—इसकी बनावट इस प्रकार होती है चमड़े से मढ़ा हुआ एक तू दा बाँस के एक छोर पर लगा रहता है। तुवे के नीचे जो थोड़ा सा बाँस निकला रहता है उसमें एक तार तुवे के चमड़े पर की घोड़ियाँ या ठिकरी पर से होता हुआ बाँस के दूसरे छोर पर एक खूँटी में बाँधा रहता है। इस खूँटी को ऐठकर तार को ढीला करते और कसते हैं। वजानेवाला इस तार को तर्जनी में हिला हिलाकर बजाता है। प्रायः साधु इसे बजा बजाकर भीख माँगते हैं।

२ एक प्रकार का हाथ से बुना जानेवाला कपड़ा।

विशेष—इसके प्रत्येक वर्ग इंच में २४ ताने के और आठ वाने के तागे होते हैं। बुन जाने पर कपड़ा घोया जाता है और उसपर कुदी की जाती है। इसका थान ६ गज लंबा और ११ इंच चौड़ा होता है।

इक्षताला<sup>७</sup>—[हिं० एकताला] प्रथम ताल अर्थात् प्रथम दिवस। उ०—इक्षताला रँ चैत सुद। आद उदे नवरात।—रा० रू०, पृ० २७६।

इक्षताला<sup>८</sup>—संज्ञा पुं० दे० 'एकताला'।

इक्षतीयार<sup>९</sup>—संज्ञा पुं० [अ० इक्षित्यार] अधिकार। अक्षित्यार। उ०—बदे बदगी इक्षतीयार। साहिब रोप धरो कि पियार।—कबीर ग्र०, पृ० ३०७।

इक्षतीस<sup>१</sup>—वि० [म० एकत्रिंशत्, पा० एकनीस] तीस और एक।

इक्षतीस<sup>२</sup>—संज्ञा पुं० तीस और एक की संख्या। इक्षतीस का अक्ष।

इक्षतुत<sup>३</sup>—संज्ञा स्त्री० [म० एकत्रिति] डकड़ते रहने की स्थिति। जमाव। उ०—माँति माँति के मनुजन की निन रहति इक्षतुत।—प्रेमघन, भा० १, पृ० ११।

इक्षत्र<sup>४</sup>—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एकत्र'। उ०—मनहुँ सिंगार इक्षत्र ह्वै बंध्यो वार के वेस।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३८८।

इक्षदाम—संज्ञा पुं० [अ० इक्षदाम] १. किसी अपराध के करने की तैयारी या चेष्टा। २ सकल्प। इरादा। ३ कदम बढ़ाना (को०)। ४ आगे बढ़ना (को०)।

यौ०—इक्षदाम ए जुर्म = अपराध करने की चेष्टा या कोशिश।

इक्षत्री—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एकत्री'।

इक्षपेचा—संज्ञा पुं० [हिं० एक + फा० पेचह] एक प्रकार की पगड़ी जिसकी चाल दिल्ली आगरे में बहुत है।

इक्षवारगी—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एक्षवारगी'। उ०—बहुत भए इक्षवारगी, तिनको गुफ जु होय। ताहि समुच्चय कहत हैं, कवि कोविद नव कोय।—मतिराम ग्र०, पृ० ४१८।

इक्षवाल—संज्ञा पुं० [अ० इक्षवाल] दे० 'एक्षवाल'। उ०—राजाग्रो की रक्षा उनका इक्षवाल है।—काया०, पृ० १८६।

इक्षवाल दावा—संज्ञा पुं० [अ० इक्षवालदावा] मुद्दे के दावे का स्वीकरण। मुद्दे के दावे को अंगीकार करना।

इक्षवालमद—वि० [अ० इक्षवाल + फा० + मद] प्रतापशाली। भागवान् [को०]।

इक्षवालो गवाह—संज्ञा पुं० [अ० इक्षवाल + फा० ई (प्रत्य०) + गवाह] किए हुए अपराध को स्वीकार करनेवाला। जुर्म मजूर करनेवाला।

इक्षवालो बयान—संज्ञा पुं० [हिं० इक्षवाली + फा० बयान] वह साक्षी या गवाही जिसमें अपराध स्वीकार किया जाय।

इक्षवीस<sup>१</sup>—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एक्षिम'। उ०—इक्षवीमे वार नछथी अवनी कोन्ही पीइय धार कहर।—रघु० रू०, पृ० २५८।

इक्षरग<sup>२</sup>—वि० [हिं०] दे० 'एक्षरग'। उ०—छिरकि छिरकि घनस्याम सब इक्षरग कियो है।—नद ग्र०, पृ० ३८६।

इक्षरदन<sup>३</sup>—संज्ञा पुं० [म० एक, प्रा० इक्ष + म० रदन] दे० 'एक्षरदन'।

इक्षरस<sup>४</sup>—वि० [सं० एक + रस] एक्षरग। समान। बराबर। उ०—जो कटु अब का प्रीति न हममें। रहत न कोउ इक्षरस हरदम मे।—विश्राम (शब्द०)।

इक्षराजी<sup>५</sup>—वि० [सं० एक + राजा + हिं० ई (प्रत्य०)] एक शासक वाला। एक राजा से युक्त। उ०—दादू नगरी चैन तव जव इक्षराजी हाइ।—दादू वानी, पृ० १२४।

इक्षराम—संज्ञा पुं० [अ० इक्षराम] १ दान। पारितोषिक। २ इज्जत। माहात्म्य। आदर। प्रतिष्ठा। ३ अनुग्रह। कृपा (को०)।

यौ०—इनाम इक्षराम। इज्जत इक्षराम।

इक्षरार—संज्ञा पुं० [अ० इक्षरार] १. प्रतिज्ञा। वादा। २ कोई काम करने की स्वीकृति।

इक्षरारनामा—संज्ञा पुं० [अ० इक्षरार + फा० नामह] स्वीकृतिपत्र। प्रतिज्ञापत्र।

इकलस(५)---वि० [हि०] डे० 'इकरम' । उ०--'खड खड निज ना मया,  
इकलस एक नूर ।--दाहू० वानी, पृ० १०३ ।

इकला(५)---वि० [हि०] डे० 'अकेला' ।

इकलाई<sup>१</sup>---मंजा श्री० [हि० एक+लाई या लोई=पत] एक पाट का  
महीना दुपट्टा या चदर । उ०--क) आनपाम आनन के फवन  
फवी है कसी कुचित कुम्भी कोरदार इकलाई की ।--  
पद्याकर ग्र०, पृ० २१४ । (ख) दुपट्टा दुलाई चादरें इकलाई  
कटिवद वर । कचुकी कूलहिया ओढनी अगवस्त्र धोती  
अवर ।--सूदन (शब्द०) ।

इकलाई<sup>२</sup>---सजा पु० [हि० इकला+ई (प्रत्य०)] अकेलापन ।

इकलोम---सजा पु० [अ० इकलोम] १ पृथिवी । मूखड । २ राज्य ।  
३ समाज की आवाद भूमि का सानवा हिस्सा [श्री०] ।

इकले(५)---कि० वि० [हि०] डे० 'अकेले' । उ०--इकले प्रान पियारे  
पाए । देखि हरप अरे नयन सिराए ।--नंद ग्र० पृ० १७२ ।

यो०--इकले दुकेले=अकेले दुकेले ।

इकलो<sup>१</sup>---वि० [हि०] डे० 'इकला' या 'अकेला' । उ०--तब याको  
पिता मरयो । तब यह घर में इकलो रहे ।--दो मौ  
वावन, पृ० १९ ।

इकलोईकड़ाही---मंजा श्री० [हि० एक+लोई] वह कड़ाही जो एक  
ही लोई या तवे की वनी हो, अर्थात् जिसके पेंदे में जोड़न हो ।

इकलोता---मंजा पु० [हि० इकला+त० पुत्र, प्रा० ऊन] [श्री० इकलोनी]  
१. वह लड़का जो अपने मां बाप का अकेला हो । वह लड़का  
जिसके और भाई बहिन न हो । २. एकमात्र । अकेला ।  
उ०--तो इन्हें इकलोता बुद्धिमान मान लेना पड़ता है ।--  
प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८० ।

इकल्ला(५)---वि० [स० एकल=एकाकी, प्रा० एगल्ल, एकल्ल, इक्कल]  
१ अकेला । एकाकी । उ०--रगुधर इकल्ला है और अपने  
पास इतनी मेना है ।--श्रीनिवास ग्र०, पृ० १०७ ।

इकवाई---सजा श्री० [हि० एक+वाह] १ एक प्रकार की निहाई  
जो मदान या अरन के आकार की होती है । भेद इतना ही  
होता है कि सदान में दोनों ओर हाथे या कोर निकले रहते  
हैं और इसमें एक ही ओर । भारतवालों की इकवाई की एक  
कोर लंबी नोक होती है और दूसरी कोर सपाट चौड़ी  
होती है जिसके किनारे तीखे होते हैं । २ जो मद्य में तीन  
हो । तीन (दलाल) ।

इकस(५)---सजा श्री० [हि०] डे० 'अकम' ।

इकसठ<sup>१</sup>---वि० [स० एकपठि, पा० एकसट्ठि] माठ और एक ।

इकसठ<sup>२</sup>---सजा पु० वह अक जिसमें माठ और एक कावोध हो । ६१ ।

इकसर(५)---वि० [हि० एक+सर (प्रत्य०)] अकेला । एकाकी ।

इकसारा(५)---वि० [स० एक, हि० इक+म०सदृश, प्रा० सरिस, नारिस]  
एक सा । समान । बराबर । उ०--उनयौ मेघ घटा चढ़  
दिश तें वर्षन लगी प्रखंडित धार । बूढ़ी मेरु नदी सय सूखी भर  
लागी निमदिन इकसार ।--सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ५३१ ।

इकसीर---सजा श्री० [अ०] डे० 'अकसीर' ।

इकसूत(५)---वि० [म० एकश्रुत (= लगातार ) या एकसूत्रित ] १  
एक साथ । इकट्ठा । एकत्र । उ०--देखि के निकसे दोऊ ओर  
जे सखियां हूती । ते सर्व तुरतें दोरी वाहरी ह्वै इकमुती ।--  
गुमान (शब्द०) ।

इकहरा---वि० [हि०] [वि० श्री० इकहरी] डे० 'एकहरा' ।

इकहाड(५), इकहाई(५)---कि० वि० [हि० एक+हाड (प्रत्य०)] १ एक  
साथ । फोरन । उ०--(क) यह सुनि रानिन के वदन भे  
प्रमन्न हरखाइ । ज्यों सूरज के उदय ते खिलत कमन इकहाइ ।  
--(शब्द०) । (क) सीत भीत हरपादि तें उठै रोम  
इकहाइ । ताहि कहत रोमाव है सुकविन के समुदाइ ।--  
पद्याकर ग्र०, पृ० १६८ । २ एकदम । अचानक ।

इकहाऊ(५)---कि० वि० [हि० एक+हाऊ (प्रत्य०)] डे० 'इकहाइ' ।  
उ०--त्यो पदमाकर भोरी भमाइ सु दोरी मवै हरि पै  
इकहाऊ ।--पदमाकर ग्र०, पृ० १५५ ।

इकात(५)---वि० [म० एकांत] डे० 'एकात' ।

इकाई---सजा पु० [हि०] डे० 'एकाई' ।

इकार---सजा पु० [स०] स्वर वर्ण 'इ' ।

इकारात---सजा पु० [म० इकारांत] वह शब्द जिसके अंत में इकार  
हो । वह शब्द जिसका अंत 'इ' से हो ।

इकोस(५)---वि० [हि०] डे० 'इक्कीम' । उ०--तुलसी तेहि अवसर  
लावनिता दम, चारि नौ, तीनि, इकोस सर्व ।--तुलसी ग्र०,  
पृ० १५६ ।

इकेला(५)---वि० [हि०] डे० 'अकेला' । उ०--देहरी बैठी मेहरी  
रोवै द्वारे लौ सग माइ । मरहट लगि सब लोग कुटुंब मिलि  
हस इकेला जाइ ।--कवीर ग्र०, पृ० २८५ ।

इकेले(५)---कि० वि० [हि०] डे० 'अकेले' । उ०--भोजन करि कै  
इकेले ही गादि तकियान के ऊपर विराजे हते ।--दो सो  
वावन०, भा० २, पृ० १५ ।

इकैठ(५)---वि० [स० एकस्थ, प्रा० इकट्ठा] इकट्ठा । एकत्र ।

इकोतर(५)---वि० [हि०] डे० 'एकोतर' । उ०--और इकोतर नामहि  
पावै । तुम कहैं जीत हस घर आवै ।--कवीर सा०, पृ० १६ ।

इकोतरसै(५)---वि० [हि०] डे० 'एकोतर सौ' । उ०--इकोतर सैं  
पुरिपा नरकहि जाई । सति सति भापत श्री गोरखराई ।--  
गोरख० पृ० ५६ ।

इकोज---सजा पु० [स० एक+वज्या, प्रा० वज्झा, हि० वांझ, या स०  
एक+जा, या सं० काकवज्या > काकवज्झा > ककौज्झा >  
इकोजा ] वह स्त्री जिसको एक ही पुत्र या एक ही कन्या  
उत्पन्न हुई हो । वह स्त्री जो एक बार जनकर वांझ हो  
जाय । काकवंध्या ।

इकोना<sup>१</sup>---सजा पु० [हि० एक+वना] बिना छांटा हुआ अन्न । बिना  
चूना हुआ अनाज ।

इकोसी(५)---वि० श्री० [स० एक+वासी] [वि० पु० इकोसा] एकात में  
रहनेवाली । अकेली । उ०--अन्वेजी मुजान के कीनुक पै प्रति  
रीफि इकोसी ह्वै लाज थकै ।--घनानंद, पृ० ३३ ।

इकोसे(५)---कि० वि० [हि०] पृथक् । जुदा । अलग ।

इकोसो(७)।—वि० [म० एक + आवास या अवकाश (=स्यान), अप० श्रोताम] एकात। निराला। उ०—मेरो है इकोसो वाम जातै हरि दास, लेवो मुखरासि, करो चीठी दीर्ज जाय कै।—प्रिया (शब्द०)।

इक्क(७)।—वि० [अप०] दे० 'एक'। उ०—इक्क मथ्यो विना धाइ हथ्यो करें।—सुजान०, पृ० २०।

इक्कट—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सरकडा जिमकी चटाइयां बनती हैं [को०]।

इक्कवाल—सज्ञा पुं० [अ० इक्कवाल] १ ताजक ज्योतिष के मत से एक ग्रहयोग।

विशेष—जब किसी के जन्म के समय ग्रह कटक (१,४,७ १०) या पनकर (२,५,८,११) में हों, अथवा ३, ६, ९ और १२ में कोई ग्रह न हो तब यह राज्य और मुख को बढ़ानेवाला योग होता है।

२ अम्युदय। वढती।

इक्का<sup>१</sup>—वि० [सं० एक] १ एकाकी। अकेला। २ अनुपम। बेजोड़।

इक्का<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ एक प्रकार की कान की वाली जिममें एक मोती होता है। २ वह योद्धा जो लड़ाई में अकेला लड़े। उ०—कूदि परे लंका बीच इक्का रघुवर के।—मानकवि (शब्द०)। ३ वह पशु जो अपना झुंड छोड़कर अलग हो जाय। ४ एक प्रकार की दो पहिए की घोड़ा गाड़ी जिममें एक ही घोड़ा जोता जाता है। ५ तास का वह पत्ता जिममें किसी रंग की एक ही बूटी हो। यह पत्ता और सब पत्तों को मार देना है। जैसे, पान का इक्का। ईंट का इक्का।

इक्कादुक्का—वि० [हि० इक्का + दुक्का] अकेला दुकेला। जैसे, 'कोई इक्का दुक्का आदमी मिले तो बैठ लेना'।

इक्कावान<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'इक्यावन'।

इक्कावान<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'एक्कावान'।

इक्कासी<sup>१</sup>—वि० [हि०] दे० 'इक्यासी'।

इक्की<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० एक + ई (प्रत्य०)] ताश का वह पत्ता जिममें एक बूटी हो। एक्का।

इक्कीस<sup>१</sup>—वि० [सं० एकविंश, प्रा० एक्कवीस, अप० इक्कवीस] बीस और एक।

इक्कीस<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० बीस और एक की सख्या या अंक जो इस तरह लिखी जाती है—२१।

इक्यावन<sup>१</sup>—वि० [सं० एक्कविंशत्, प्रा० एक्कावन्] पचास और एक।

इक्यावन<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० पचास और एक की सख्या जो इस तरह से लिखी जाती है—५१।

इक्यासी<sup>१</sup>—वि० [सं० एकाशीति, प्रा० एक्कासि] अस्सी और एक।

इक्यासी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० अस्सी और एक की सख्या या अंक जो इस तरह लिखी जाती है—८१।

इक्ष्णा(७)।—क्रि० सं० [हि० इच्छना] दे० 'इच्छना'। उ०—लप्पन उदल, मुमट वर, ते इक्षत धमसान।—प० रा०, पृ० १३४।

इक्ष—सज्ञा पुं० [सं०] १ ईख। गन्ना। दे० 'ईख'। २ कोकिला नाम का एक वृक्ष (को०)। ३ मनोरथ। इच्छा (को०)।

यो०—इक्षुकांड। इक्षुगंवा। इक्षुतुल्या। इक्षुदंड। इक्षुपत्र।

इक्षुप्रमेह। इक्षुमती। इक्षुमेह। इक्षुरस। इक्षुविहारी। इक्षुविकार।

इक्षुकद—सज्ञा पुं० [सं० इक्षुकद] कूमाड। कुम्हडा [को०]।

इक्षुक—सज्ञा पुं० [सं०] ईख [को०]।

इक्षुकांड—सज्ञा पुं० [सं० इक्षुकाण्ड] १ ईख का डठन। २. कांस। ३ मूँज। ४ रामसर।

इक्षुकात—सज्ञा [सं० इक्षुकात] छर्मजिनी इमारत का एक भेद या श्रेणी [को०]।

इक्षुकीय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० इक्षुकीया] जहाँ ईख अधिक पैदा होती हो [को०]।

इक्षुकुट्टक—सज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो डकटा करना हो। गन्ना एकत्र करनेवाला व्यक्ति [को०]।

इक्षुगव—सज्ञा पुं० [सं० इक्षुगव] १. छोटा गोखरू। २. कांस।

इक्षुगवा—सज्ञा स्त्री० [सं० इक्षुगवा] १ गोखरू। २ कोकिनाक्ष। तालमखाना। ३. कांस। ४. मफेद विदागी कद।

इक्षुगविका—सज्ञा स्त्री० [सं० इक्षुगविका] भूमिकूमाड [को०]।

इक्षुज<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो ईख के रस में बने।

विशेष—त्रावीनों के अनुसार इसके छह भेद हैं—काणित (जूनी या शीरा), मत्स्ययडी (राव), गुड, खडक (खांड), मिता (चीनी) और सितोपल (मिथ्री)।

इक्षुज<sup>२</sup>—वि० ईख के रस से बना हुआ [को०]।

इक्षुगुल्ला—सज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वार या बाजरे के प्रकार का एक बीज जिमका रस मीठा होता है। कांस।

इक्षुदंड—सज्ञा पुं० [सं० इक्षुदंड] ईख का डंठल। ईख।

इक्षुदर्भ—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० इक्षुदर्भा] एक प्रकार का तृण।

इक्षुनेत्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ ईख का एक भेद। ईख की गाँठों पर होनेवाला आँख का आकार [को०]।

इक्षुपत्र—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० इक्षुपत्रा] १ ज्वार। मक्का। २ बाजरा।

इक्षुपाक—सज्ञा पुं० [सं०] गुड या राव [को०]।

इक्षुप्र—सज्ञा पुं० [सं०] रामशर। शर।

इक्षुप्रमेह—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह। इक्षुमेह। मधुमेह।

विशेष—इस रोग में मूत्र के साथ मधु या शर्करा जाती है। इसके रोगी के मूत्र पर चीटियाँ और मक्खियाँ बहुत बैठती हैं। मूत्र के अशो को रासायनिक क्रिया द्वारा अलग करने पर उसमें चीनी का अंश मिलता है।

इक्षुवालिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] काम या मूँज [को०]।

इक्षुभक्षिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] ईख पेरने की मशीन, कल या यंत्र [को०]।

इक्षुमती—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका कुश्नेत्र में होना लिखा है।

इक्षुमालिनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो इद्र पर्वत से निकलती है।

इक्षुमूल—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की ईख। बाँसी। २. ईख की जड़ या मूल [को०]।

इक्षुमेह—सज्ञा पुं० [सं०] इक्षुप्रमेह। मधुप्रमेह। मधुमेह।

इक्षुमेही—वि० [सं० इक्षुमेहिन्] मधुमेह का रोगी [को०]।

इक्षुयत्र—सज्ञा पुं० [सं० इक्षुयत्र] ईख पेरने की मशीन। कोल्हू [को०]।



इक्षुयष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ईख [को०]।

इक्षुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गोखरू। २. तालमखाना। ३. गन्ना [को०]।

इक्षुरस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ईख का रस। २. कास। ३. राव [को०]।

इक्षुरसवल्लरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरविदारी। दूधविदारी। महाश्वेता।

इक्षुरसोद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक जो ईख के रस का है।

इक्षुवण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ईख का डठल [को०]।

इक्षुवल्लरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १. पीले रंग की ईख। २. क्षीरकंद। क्षीरविदारी [को०]।

इक्षुवाटिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १. ईख की एक जाति। पुडूक। पोंडा। २. ईख का खेत या फारम [को०]।

इक्षुविकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गुड, राव आदि ईख के रस के छह रूप। २. कोई भी मीठा पदार्थ [को०]।

इक्षुविदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] विदारीकंद।

इक्षुवेष्टन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गन्ने की एक किस्म [को०]।

इक्षुशर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कास और उसका जगल [को०]।

इक्षुशाकट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गन्ना बोने लायक खेत [को०]।

इक्षुसमुद्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुराणोक्त सात महासमुद्रों में एक नाम [को०]।

इक्षुसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इक्षुविकार। गुड आदि [को०]।

इक्ष्वाकु<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्यवंश का एक प्रधान राजा। यह पुराणों में वैवस्वत मनु का पुत्र कहा गया है। रामचंद्र इसी के वंश के थे। २. इक्ष्वाकु के वंश का व्यक्ति (को०)।

यो०—इक्ष्वाकुनन्दन, इक्ष्वाकुवंशी = इक्ष्वाकु के पुत्र।

इक्ष्वाकु<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० कडवी लोकी। तितलीकी।

इक्ष्वारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ईख का. दुग्धमन—कास [को०]।

इक्ष्वालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. नरकट। नरकुल। २. सरपट। मूँज। ३. काम।

इखद<sup>३</sup>—वि० [सं०] ईपत् दे० 'ईपत्'।

इक्षफाय—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] इक्ष्वाय प्रकट न करना। गोपन। छिपाव [को०]।

यो०—इक्ष्वाये जुर्म, इक्ष्वाये वारदात = कानून में किसी पुरुष का किसी ऐसी घटना को छिपाना जिसका प्रकट करना नियमानुसार उसका कर्तव्य हो।

इखरना<sup>४</sup>—क्रि० अ० [हिं०] बिखरना का अनु० बिखरना। इधर उधर गिरना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'बिखरना' शब्द के साथ होता है।

यो०—इखरना बिखरना = इधर उधर हो जाना। किसी भी वस्तु का इनस्तत हो जाना (बोल०)।

इखराज—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. निकास। खर्च। २. बहिष्कार [को०]।

इखलाक—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] अखलाक व्यवहार। आचरण। उ०—उनका जितना सदाचार और इखलाक है, सब मदों का बनाया हुआ।—ज्ञानदान, पृ० ११७।

इखलाकी—वि० [हिं०] इखलाक आचरण या व्यवहार सबधी। व्यावहारिक। उ०—'मसायव का इखलाकी पहलू भी होता है।'—गोदान, पृ० ३६।

इखलास—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] इखलाह १. भेलमिलाप। मिश्रता। उ०—तू जा सुजानहि पास। हमसौं करे इखलास।—सूदन (शब्द०)। २. प्रेम। भक्ति। प्रीति। उ०—कुल आलम इके दीदम अखाहे इखलास। वद अमल वदकार तुई पाक यार पाम।—दादू (शब्द०)। ३. सन्ध। साविका।

क्रि० प्र०—जोड़ना। = बढ़ाना।

इखु<sup>५</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इषु 'इषु'। उ०—अमर अधिप वारन वरन दूसर अंत अगार। तुलसी इखु सह रागधर तारन तरन अघार।—सं० सप्तक, पृ० १६।

इखितयार—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] इखितयार १. अधिकार। २. अधिकारक्षेत्र। ३. सामर्थ्य। काबू। जैसे,—यह बात हमारे इखितयार के बाहर की है। ४. प्रभुत्व। स्वत्व। जैसे,—इस चीज पर तुम्हारा कुछ इखितयार नहीं है। ५. स्वीकार। ग्रहण। मजूर। उ०—सख्त काफिर था जिसने पहले मीर, मजहने इषक इखितयार किया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १३१।

क्रि० प्र०—करना = स्वीकार करना। अपनाना। ग्रहण करना। उ०—और पेशा भी दूसरे का इखितयार नहीं कर सकता है।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २४६।

यो०—इखितयारे समाप्त = विचार करने का अधिकार।

इखितलाफ—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] इखितलाफ १. विरोध। विभेद। विभिन्नता। अंतर। फर्क। २. अनयन। विगाड।

यो०—इखितलाफे राय = विचारवैमत्य। मतभेद।

इगारह<sup>६</sup>—वि० [हिं०] दे० 'ग्यारह'। उ०—सत जो धरें सो खेलन हारा। ठारि इगारह जाइ न मारा।—जायसी प्र०, पृ० १३७।

इगारहों—वि० [हिं०] इगारह एकादश की सख्यावाला। दस और एक की सख्यावाला। उ०—समा समासद निरधि पद पकरि उठायो हाथ। तुलसी कियो इगारहो वमतवेप जडुनाथ।—तुलसी प्र०, पृ० ११७।

इग्यारस<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एकादश दे० 'एकादशी'। उ०—वाहण वरत इग्यारस पारस सामंत कुमुम कज सामीर।—रघु०, पृ० २५५।

इग्यारह<sup>८</sup>—वि० [हिं०] दे० 'ग्यारह'।

इग्यारी<sup>९</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ग्यारी'।

इचकना<sup>१०</sup>—क्रि० अ० [दे०] क्रोध से दाँत या खीन निकानना।

इचन<sup>११</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] इचना बिचाव। तनाव। ऐचन। उ०—नीकी नासापुट ही की इचनि अचभे भरी, मुरिके इचनि मो न कयो हूँ मन तें मुरे।—घनानंद, पृ० ३२।

इचना<sup>१२</sup>—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'ऐचना'। उ०—डीठि मिचि जात



मिचि इचत ना ऐचि खँची खिचत न तसवीर तसवीरगर  
पै ।—पजनेस०, पृ० ७ ।

इचरज(७)—सज्ञा पु० [हि०] दे० आश्चर्य । उ०—शिवसू उमग पूछ  
मगत, इचरज अत आवत यहै ।—रघु० रू०, पृ० ४५ ।

इचिकिल—सज्ञा पु० [मं०] १ कीचड़ । २ तालाव या बावडी । ३.  
दलदल [को०]

इच्छक<sup>१</sup>—वि० [सं०] कामना या इच्छा करनेवाला ।

इच्छक<sup>२</sup>—सज्ञा पु० १ नारंगी का वृक्ष । २ गणित में जोड़ी हुई राशि  
या सख्या । जोड़ [को०] ।

इच्छना(७)—कि०सं० [सं० इच्छन] इच्छा करना । चाहना । उ०—  
इच्छ इच्छ विनती जस जानी । पुनि कर जोरि ठाढ़ भइ रानी ।  
—जायसी (शब्द) ।

इच्छा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक मनोवृत्ति जो किसी ऐसी वस्तु की  
प्राप्ति की ओर ध्यान ले जाती है जिससे किसी प्रकार के सुख  
की संभावना होती है । कामना । लालसा । अभिलाषा ।  
चाह । स्वादिष्ट ।

विशेष—वेदात और साख्य में इच्छा को मन का धर्म माना है ।  
पर न्याय और वैशेषिक में इसे आत्मा (गुण) धर्म या  
व्यापार माना गया है ।

पर्या०—आकांक्षा । वांछा । दोहद । स्पृहा । ईहा । लिप्सा ।  
तृष्णा । रुचि । मनोरथ । कामना । अभिलाषा । इषा । छद ।

यी०—इच्छाघात । इच्छाचार । इच्छाचारी । इच्छानुकूल । इच्छा-  
नुसार । इच्छापूर्वक । इच्छाबोधक । इच्छाभेदी । इच्छाभोजन ।  
इच्छावान् । इच्छावाचक । इच्छावसु । स्वेच्छा । ईश्वरेच्छा ।

२. माल की माँग ।

विशेष—आधुनिक अर्थशास्त्र में माँग या 'डिमांड' शब्द का व्यव-  
हार जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में कौटिल्य ने 'इच्छा' का  
प्रयोग किया है । उसने 'आयुधागाराध्यक्ष' अधिकरण में  
लिखा है कि आयुधेश्वर अस्त्रों की इच्छा और बनाने के व्यय  
को सदा समझता रहे ।

३. गणित में त्रैशिक की दूसरी शक्ति । ४. तितिक्षा या  
इच्छा शक्ति के प्रकट होने की पूर्वावस्था । उ०—वह एक वृत्ति  
चक्र है जिसके अतर्गत प्रत्यय, अनुभूति, इच्छा, गति या प्रवृत्ति,  
शरीरधर्म सबका योग रहता है ।—चित्तमणि, भा०, २,  
पृ० ८८ ।

इच्छाकृत—वि० [मं०] अपनी इच्छा के अनुसार किया हुआ [को०] ।

इच्छाचारी—वि० [मं० इच्छा + चारिन्] [वि० स्त्री० इच्छाचारिणी]  
अपनी इच्छा के अनुकूल गति या गमन करनेवाला । उ०—चले  
गगन महि इच्छाचारी ।—मानस, ५।३५ ।

इच्छादान—सज्ञा पु० [सं०] किसी याचक की आकांक्षा परिपूर्ण  
करना [को०] ।

इच्छानिवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [मं०] भोग-तृष्णा से विरक्ति । विराग [को०] ।

इच्छानुसारिणोक्तियाशक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार योग  
द्वारा प्राप्त एक शक्ति जिससे योगियों के इच्छानुसार कारण  
के बिना कार्य की सिद्धि हो जाती है । जैसे,—मिट्टी के बिना

घट या बीज के बिना वृक्ष इत्यादि का योगियों की इच्छा से उत्पन्न  
होना ।

इच्छान्वित—वि० [सं०] लिप्सायुक्त [को०] ।

इच्छाफल—सज्ञा पु० [मं०] किसी प्रश्न या समस्या का इच्छानुकूल  
समाधान [को०] ।

इच्छाभेदी—वि० [सं०] इच्छानुसार विवेचन करानेवाला (श्रीपद्म) ।  
प्रक्रिया भेद से जिसके खाने से उतने ही दस्त आएँ जितने  
की इच्छा हो ।

यी०—इच्छाभेदी वटिका, इच्छाभेदी रस = दे० 'इच्छाभेदी' ।

इच्छाभोजन—सज्ञा पु० [सं०] १ जिन जिन वस्तुओं की इच्छा हो,  
उनको खाना । रुचि के अनुसार भोजन । जैसे, आज हमें  
इच्छाभोजन कराओ । १ भोजन की वह सामग्री जिसे खाने  
की इच्छा हो । रुचि के अनुसार खाद्य पदार्थ जैसे, इतने  
दिनों पर आज हमें इच्छाभोजन मिला है ।

इच्छामय—वि० [मं०] रुचि के अनुकूल । जैसा चाहे वैसा । उ०—  
इच्छामय नखवेप सँवारे ।—मानस, १।१५२ ।

इच्छामरत—वि० [मं० इच्छा + मरण] अपनी इच्छा के अनुकूल  
जब चाहे तब मृत्यु प्राप्त करनेवाला । उ०—कामरूप इच्छा  
मरन ज्ञान विराग निधान ।—मानस, ७।११३ ।

इच्छारूप—वि० [मं०] अपनी इच्छा के अनुकूल जैसा चाहे रूप धारण  
करनेवाला । कामरूप । उ०—चेहरे बदलने के कारण ही  
समय इन्हें इच्छारूप और कामचारी कहा गया है ।—प्रा०  
भा० प०, पृ० ६ ।

इच्छावसु<sup>१</sup>—सज्ञा पु० [सं०] कुवेर ।

इच्छावसु<sup>२</sup>—वि० अपनी आकांक्षा के अनुकूल जब चाहे जितना धन  
प्राप्त करनेवाला [को०] ।

इच्छित—वि० [सं०] चाहा हुआ । वांछित । अभिप्रेत । अभीष्ट । उ०  
इच्छित फल की चाह दिलाती बल तुम्हें ।—कल्याण, पृ० १४ ।

इच्छु<sup>१</sup>(७)—सज्ञा पु० [सं० इक्षु] ईख । उ०—इच्छु रसह ते है सरम  
चरनामृत औ लवण समुद्र है लोनाई निरवधि कै ।—चरण  
(शब्द०) ।

इच्छु<sup>२</sup>—वि० [सं०] चाहनेवाला ।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक शब्द बनाने में ही होता है, जैसे—  
शुभेच्छु, हितेच्छु ।

इच्छुक—वि० [सं०] चाहनेवाला । अभिलाषी । आकांक्षायुक्त ।

इच्छना(७)—कि०सं० [हि०] दे० 'इच्छना' । उ०—छेल इछहि छोड़ह  
मोर भीर ।—विद्यापति, पृ० २०३ ।

इच्छा(७)—सज्ञा स्त्री० [दिश०] दे० 'इच्छा' । उ०—शीतल जल के इच्छा  
भूमि (क) कर्कशता ।—वर्ण०, पृ० १६ ।

इक्षु—वि० [सं० इक्षु] दे० 'इच्छुक' । उ०—धर्म तपनह पार । न  
कोऊ दास रहै इक्षु ।—पृ० १०, २५।१७३ ।

इजति(७)—सज्ञा स्त्री० [अ० इज्जत] दे० 'इज्जत' । उ०—इति पातमाह  
की इजति उमरावन की राखी रैया राव भावसिंह की रहति  
है ।—मतिराम अ०, पृ० ३८६ ।

इजतिराव—सज्ञा स्त्री० [अ० इजतिराव] व्यग्रता। व्याकुलता। बेचैनी।  
उ०—मरना बेहतर इस इजतिराव के बदले।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०३।

इजमत④—सज्ञा स्त्री० [अ० अजमत] दे० 'अजमत'। उ०—यसु ज्ञान इजमत कूँ देखो अनमुस एक ठानै।—चरण० वानी, भा० २, पृ० १४३।

इजमाल—सज्ञा पुं० [अ०] [वि० इजमाली] १ कुल। समष्टि। २ किसी वस्तु पर कुछ लोगों का संयुक्त स्वत्व। इस्तराक। साभा। शिरकत। ३ एकत्र करना। इकट्ठा करना (को०)। ४ संक्षेप कथन (को०)।

इजमाली—वि० [अ०] शिरकत का। मुश्तरका। संयुक्त। साभे का।  
इजरा<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० नि (= नितरा) + जरा (जीर्ण) अथवा हिं० इ + जरा = जीर्णता] वह भूमि जो बहुत दिनों तक जोतने से कमजोर हो गई हो और फिर उपजाऊ होने के लिये परती छोड़ दी जाय।

इजरा<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [अ० इजराय] दे० 'इजराय'।

क्रि० प्र०—इजरा कराना = किसी भी निर्णय या आदेश को प्रचलित और कार्यान्वित कराना।

इजराय—सज्ञा पुं० [अ०] १ जारी करना। प्रचार करना। २ काम में लाना। व्यवहार। अमल।

यो०—इजराय डिगरी = डिगरी का अमलदरामद होना। डिगरी को कार्यान्वित करना।

इजलास—सज्ञा पुं० [अ०] १ बैठक। २. वह जगह जहाँ हाकिम बैठकर मुकदमे का फैसला करता है। कचहरी। विचारालय। न्यायालय। अदालत।

यो०—इजलासकामिल = न्यायालय की वह बैठक जिसमें सब जज एक साथ बैठ कर फैसला करें।

इजहार—सज्ञा पुं० [अ०] जाहिर करना। प्रकट करना। प्रकाशन।  
उ०—धर्म का यह इजहार। खुदा है खुदा, न वह तिथि वार।—मधुज्वाल, पृ० ६।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ अदालत के सामने बयान। गवाही। साक्षी। साखी। उ०—  
एक दूसरे कीं के इजहार से स्पष्ट ज्ञात होता है।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० १०१।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—होना।

यो०—इजहारतहरीरी = लिखी हुई गवाही। लिखित बयान (को०)।

इजाजत—सज्ञा स्त्री० [अ० इजाजत] १ आज्ञा। हुक्म। २. परवानगी। मजूरी। स्वीकृति।

इजाफत—सज्ञा स्त्री० [अ० इजाफत] सवध। साविका। २ फारसी व्याकरण में छठे कारक का चिह्न (को०)।

इजाफा—सज्ञा पुं० [अ० इजाफह] १ बढ़ती। बेगी। वृद्धि। बढ़ोतरी।  
उ०—प्रपने अंग के जानि कै, जोवन नृपति प्रवीन। स्तन, मन, नैन, नितंब की, बड़ी इजाफा कीन।—विहारी र०, दो० २। २. बचा हुआ धन। वचत।

यो०—इजाफालगान = लगान का अधिक होना। कर या लगान की बढ़ती।

इजावत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ कबूनिपत। स्वीकृति। स्वीकार या मजूर करना। २ शौच। दम्त। निश्टान (को०)।

इजार—स्त्री० [अ०] पायजामा। मूयन। मुथना। उ०—तसन गूजरी ऊजरी विनसत लाल इजार। हिए हजारनि के हरै पैठी बाल वजार।—मतिराम ग्रं०, पृ० २९२।

क्रि० प्र०—उतारना = नगा होना। प्रतिष्ठा उतारना। उ०—श्रीर आदमी ही डाले है अपनी इजार उतार।—कविता को०, भा० ४, पृ० ३१७।

यो०—इजारबद।

इजारदार—वि० [अ० हजार + फा० दार (प्रत्यय)] [वि० स्त्री० इजारदारिन] किसी पदार्थ को इजारे वा ठेके पर लेनेवाला। ठेकेदार। अधिकारी। उ०—कहा तुमही हो ब्रज के इजारदार।—गीत (शब्द०)

इजारबद—सज्ञा पुं० [अ० इजार + फा० बद] सूत या रेगम का बना हुआ जालीदार बंधना जो पायजामे या लहंगे के नेफे में उसे कमर से बांधने के लिये पड़ा रहता है। नारा। ऊमरबद।

इजारा—सज्ञा पुं० [अ० इजारह] १ किसी पदार्थ को उज्रत या किराए पर देना। २ ठेका। ३. अधिकार। इन्तिवार। स्वत्व। जैसे,—तुम्हारा कुछ इजारा है?

क्रि० प्र०—करना = जिम्मेदारी स्वीकारना। जिम्मेदार होना। उ०—कर्मधा चाली मत करो, करो इजारी आय।—रा० रू०, पृ० ३१७।—देना।—लेना।

यो०—इजारदार। इजारेदार।

इजारादारी—सज्ञा स्त्री० [अ० इजारह + फा० दारी प्रत्यय०] ठेकेदारी स्वत्व। कब्जे में होने की स्थिति। उ०—इसे ही इजारादारी एकाधिपत्य या साम्राज्यवाद कहते हैं।—मान०, भा० १ पृ० २१२।

इजारेदार—वि० [अ० इजारह + फा० दार (प्रत्यय०)] दे० 'इजारेदार'।  
इजाला—सज्ञा पुं० [अ० इजालह] दूर करना। निवारण करना (को०)।  
इजाला हैसियत उर्फ—सज्ञा स्त्री० [अ० इजालह हैसियत उर्फ] कोई ऐसा काम करना जिससे दूसरे की इज्जत या आदर में घटाव लगे या उसकी बदनामी हो। हनकडज्जनी। मानहानि।

इज्जत—सज्ञा स्त्री० [अ० इज्जत] मान। मर्यादा। प्रतिष्ठा। आदर।  
उ०—समझने हैं इज्जत को दोलत से बेहतर।—कविता को०, भा० ४, पृ० ५६३।

मुहा०—इज्जत उतारना = मर्यादा नष्ट करना। जैसे,—जरा नी बात के लिये वह इज्जत उतारने पर तैयार हो जाता है।

क्रि० प्र०—करना = प्रतिष्ठा या समान करना।—लोना = अपनी मर्यादा नष्ट करना। जैसे,—तुमने अपने हाथों अपनी इज्जत खारि है।—गैमाना = २० 'इज्जत खोना'।—जाना। जैसे,—पैदल चलने से क्या तुम्हारी इज्जत बनी नायेगी।—देना = (१) मर्यादा खोना। जैसे,—वस राए त नावन में हम अपनी इज्जत देंगे? (२) गायमानित करना। महत्व बढ़ाना। जैसे,—बरात में गरीब होकर धान तब पड़ा इज्जत दी।—पाना = प्रतिष्ठा प्राप्त करना। जैसे,—उन्होंने इस दरबार में बड़ी इज्जत पाई।—विगाड़ना = प्रशिक्षण नष्ट करना। जैसे,—बदमाश भले आदमियों की राह चने इज्जत

विगाड देते हैं।—रखना = मर्यादा स्थिर रखना। वेइज्जती न होने देना। जैसे,—इस समय १००) देकर आपने हमारी इज्जत रख ली।—लेना = इज्जत विगाडना।—होना = आदर होना। जैसे,—उनकी चारों तरफ इज्जत होती है।

यी०—इज्जतदार।

इज्जतदार—वि० [अ० इज्जत + फा० दार (प्रत्य०)] प्रतिष्ठित। माननीय।

इज्जल—सञ्ज्ञा पु० [स०] हिज्जल नामक वृक्ष जो जलाशय के समीप अधिक होता है [को०]।

इज्जितराव—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० इज्जितराव] दे० 'इज्जितराव' [को०]।

इज्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. यज्ञ। २. देवपूजा।

इट—सञ्ज्ञा पु० [स०] १. वेंत। २. तृण। ३. तृण या वेंत का बना आस्तरण। चटाई [को०]।

इटली—सञ्ज्ञा पु० [अ०] यूरोप के दक्षिण का एक देश।

इटसून—सञ्ज्ञा पु० [स०] चटाई। आस्तरण [को०]।

इटालिक—सञ्ज्ञा पु० [अ०] दे० 'इटैलिक'।

इटालियन—सञ्ज्ञा पु० [अ०] १. एक प्रकार का कपड़ा।

विशेष—यह पहले पहल इटली से आया था। यह किसी वृक्ष की छाल से बनता है और बहुत चमकीला होता है। इसका रंग प्रायः काला होता है।

२. इटली देशवासी व्यक्ति।

इटैलिक—सञ्ज्ञा पु० [अ०] एक प्रकार का छापा या टाइप जिसमें अक्षर तिरछे होते हैं।

इट्चर—सञ्ज्ञा पु० [स०] निर्द्वंद्व घूमनेवाला सांड या बैल [को०]।

इठलाना—क्रि० अ० [देश०] १. इतराना। ठसक दिखाना। गर्वसूचक चेष्टा करना। जैसे,—क्षुद्र मनुष्य थोड़े में ही इठलाने लगते हैं। २. मटकना। नखरा करना। उ०—पाइहँ पकरि तव पाइ है न कैसे हूँ, तू थोर इठलात वे तो अति इठलात हैं।—केशव (शब्द०) ३. छकाने के लिये जान बूझकर अनजान बनना। छकाने के लिये जान बूझकर किसी काम को देर में करना। जैसे,—(क) इठलाओ मत, बताओ किताव कहाँ छिपाई है। (ख) इठलाओ मत जैसा कहते हैं, वैसा करो।

इठलाहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० इठलाना] इठलाने का भाव। ठसक।

इठलाहटी—वि० [हि० इठलाहट + ई (प्रत्य०)] इठलानेवाली। ठसक वाली। उ०—खरै अदब इठलाहटी, उर उपजावति त्रासु। दुसह सक विस को करै जैसे सोठि मिठामु।—विहारी २०, दो० ३६०।

इठाई<sup>७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० इष्ट, पा० इष्ट + हि० आई (प्रत्य०)] १. रुचि। चाह। प्रीति। उ०—खारिक खात न दारी उदाखन माखन हूँ सह मेदि इठाई।—केशव (शब्द०)। २. मित्रता। प्रेम।

इठाना<sup>७</sup>—क्रि० सं० [स० एषण या इषण] भोजना। पठाना। उ०—चाह जीयै मिलन की सो तो कहा जात रही, ग्यान ही इठावत है लायौ तू धिगानी रे।—ब्रज० ग्र०, पृ० १३२।

इठिमिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] यजुर्वेद से सबद्ध काठक का एक विभाग या अंग [को०]।

इठों—क्रि० वि० [म० इष, प्रा० \*इड, इर] यहाँ। इम ओर। इधर।

उ०—सरधे डठे डठे।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५५।

इड—सञ्ज्ञा पु० [म०] अग्नि [को०]।

इडरहरा—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'इडहर'। उ०—वने अनेक अन्न पकवाना। वरिन इडरहर म्वादु महाना।—घुराज (शब्द०)।

इडविडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. एक प्रकार की बकरी। २. बकरी की तरह मेमियाने की क्रिया [को०]।

इडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. पृथिवी। भूमि। २. गाय। ३. वाणी। ४. अनवरत प्रार्थना। स्तुति। ५. एक यज्ञपात्र। ६. आहुति, जो प्रयाजा और अनुयाजा के बीच दी जाती है। ७. एक प्रकार का अप्रिय देवता जो अमोमपा है। ८. अन्न। हवि। ९. नमदेवता। १०. दुर्गा। अधिका। ११. पार्वती। १२. कश्यप ऋषि की एक पत्नी जो दध की पुत्री थी। १३. वसुदेव की एक स्त्री। १४. मनु या इक्ष्वाकु की पुत्री, जो बुध की स्त्री थी, जिसमें पुत्रवा उत्पन्न हुआ था। इसे मैत्रावरुणी भी कहा जाता है। १५. ऋतध्वज रुद्र की स्त्री। १६. स्वर्ग। १७. एक नाडी जो बाईं ओर है।

विशेष—यह नाड़ी पीठ की रीढ़ से होकर नाक तक है। बाईं साँस इसी से होकर आती जाती है। स्वरोदय में चंद्रमा इसका प्रधान देवता माना गया है। प्राचीन के अनुसार यह प्रधान नाड़ी है।

इडाचिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] वरें। मिड [को०]।

इडाजात—सञ्ज्ञा पु० [म०] एक सुगन्धित द्रव [को०]।

इडावान—सञ्ज्ञा पु० [स०] १. यज्ञात्र को खाने का अधिकारी। २. उपाहार। जलपान [को०]।

इडिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] पृथिवी। धरती [को०]।

इडिक—सञ्ज्ञा पु० [स०] जगली बकरी [को०]।

इडुर—सञ्ज्ञा पु० [स०] दे० 'इट्चर' [को०]।

इडहर—सञ्ज्ञा पु० [देश०] दे० 'इडहर'।

इडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० इडा] दे० 'इडा'।

इण<sup>७</sup>—सर्व० [स० एनत, प्रा० एण, इण] दे० 'इम'। उ०—(क) इण रति साहिव ना चलइ, चालइ तिके गिमार।—ढोला०, दू० २४६। (ख) आवै इण भापा अमल, वयण सगाई वेस।—रघु० २०, पृ० १२।

इत—क्रि० वि० [म०] १. अत। इसलिये। २. यहाँ। ३. इस स्थान से। यहाँ से। ४. इधर। इस ओर। ५. इस समय से। अथ से [को०]।

इत पर—क्रि० वि० [स०] १. इसके उपरांत। इसके बाद। २. इतने पर। इस पर।

इत<sup>७</sup>—क्रि० वि० [म० इत] इधर। यहाँ। उ०—इततें उत औ उततें इत रहु यम की साँट सँवारी।—कवीर (शब्द०)।

यी०—इत उत = इधर उधर। उ०—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।—मानस १।२०३। (ख) इत उत वित्तें घँस्थो मदिर में हरि की दरसन पायो।—सूर०, १०।४१२७।

इत<sup>१७</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० इति] दे० 'इति'। उ०—सातू इत रो नह सोक लगर, सुखी सगला लोक।—रघु० २०, पृ० १२३।

इतकाद—सज्ञा पुं० [अ० एतकाद] दे० 'एतकाद' । उ०—तुम करो तयारी मव इमवारी, मैं दिल यह इतकाद करधौ।—सुजान०, पृ० १४ ।

इतनक(५)–वि० [हि० इतना + क (प्रत्य०)] इतना । थोड़ा । उ०—(क) जान कटा कटाच्छ तिहारे कमलैन मेरो इतनक सोरी । सूर०, १०।३०५ । (ख) सुदर विरहिन दुखित पीव नहीं पावरी । (परि हाँ) इतनक विष अब बाँटि सबी मुहि पावरी।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३४१ ।

इतना—वि० [सं० इयान् इयत्, पा० इयन्त प्रा० इयतन् अथवा हि० ई० यह + तना (प्रत्य०)] [कौ० इतनी] इन मात्रा का । इस कदर । उ०—(क) इतनामुख जो न समाता अतरिक्ष मे, जल यल मे ।—प्रास, पृ० ४६ । (ख) जनु इतनी विरंचि करतूती ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—इतने मे= इसी बीच मे । इसी समय । उ०—इतने में रन ठोर रुधिर नदी प्रगटत भई । गज हय सुमट करारे छिन्न अंग ह्वै ह्वै गिरे ।—(शब्द०) ।

इतनी(५)–वि० [हि०] दे० 'इतना' । उ०—सब को न कहैं, तुलसी के मते इतनी जग जीवन को फनु है ।—तुलसी० ग्र०, पृ० २०६ । इतफाक—सज्ञा पुं० [अ० इत्तफाक] दे० 'इत्तफाक' । उ०—काट जिका कुल ऊबटै, आठवाट इतफाक ।—ब्रांकी० ग्र०, भा० १, पृ० ६४ ।

इतवार—सज्ञा पुं० [अ० एतवार] विश्वास । प्रतीति । उ०—(क) सार शब्द से बाँचियो मानो इतवार ।—कवीर श०, भा० १, पृ० ५० । (ख) ऐसे घर मे जो बसै बाकी क्या इतवार ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३५ ।

इतवारी–वि० [हि० इतवार + ई (प्रत्य०)] एतवार के योग्य । विश्वामनात्र । उ०—गोरि न रण्यो पोरिया जे इतवारी धाम ।—पृ० २०, ६३ । २०४ ।

इतमाम—सज्ञा पुं० [अ० इहतिमाम=प्रबध] इनजाम । बदोबस्त । प्रबध । उ०—ताहि तखत बैठारि धारि सिर छत्र जटित जर चँवर मोरछल ढारि कियो इतमाम ग्राम घर ।—सूदन (शब्द०) ।

इतमीनान—सज्ञा पुं० [अ०] विश्वास । दिलजमई । सतोष । उ०—दिल के लेने को जमानत चाहिए, और इतमीनान जाबिन के लिये । कविता कौ०, भा० ४ पृ० ५५६ ।

क्रि० प्र०—करना । जैसे—तुम अपना हर तरह से इतमीनान कर लो, तब मकान खरीदो (शब्द०) ।—कराना ।—देना ।—होना । जैसे—'अब तुम्हारी बातों से हमें इतमीनान हो गया (शब्द०) ।

यो०—इतमीनाने कल्ब=हृदय का विश्वास या सतोष ।

इतमीनानी–वि० [अ० इतमीनानी फा० ई (प्रत्य०)] विश्वासनात्र । विश्वासनीय ।

इतर<sup>१</sup>–वि० [सं०] १. दूसरा । ऊपर । और । अन्य । उ०—बेटा इतर पदार्थों की क्या गणना है, मेरे शरीर का अब रक्त भी शेष नहीं । भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५१० । २. नीच । पामर । साधारण । उ०—महि परत सुमन रसफल पराग । जनु देत इतर नृप कर विभाग ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३४६ । इतर<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [अ० इतर] दे० 'अतर' ।

यो०—इतरदान=इतर रखने का पात्र । इतरफरोश=इतरविक्रेता । इतरतः, इतरत्र—क्रि० वि० [सं०] १. अन्यथा । व्यतिरिक्त । २. दूसरी जगह पर । अन्य स्थान पर [कौ०] ।

इतरथा—क्रि० वि० [सं०] अन्यथा [कौ०] ।

इनराज(५)–सज्ञा पुं० [अ० एतराज] दे० 'एतराज' ।

इतराजो(५)–सज्ञा स्त्री० [हि० इतराज + ई (प्रत्य०)] विरोध । विगाड । नाराजी । उ०—बड़ी मीत तुव मिलन की, वित राजी की चाव । इतराजी मत कर अरे, इत राजी है आव ।—स० सप्तक, पृ० २१६ ।

इतराना—क्रि० अ० [सं० इतर अथवा स० उत्तरण, हि० उतराना या देश०] १. सफलता पर फूल उठना । घमड करना । मदाघ होना । उ०—(क) बड़ो बड़ाई नहि तजै, छोटी बहु इतराय । ज्यो प्यादा फरजी भयो, टेढो टेढो जाय ।—कवीर (शब्द०) । (ख) जस थोरहु धन खन इतराई ।—मानस, ४।१६ । २. रूप और यौवन का घमड दिखाना । ठसक दिखाना । ऐंठ दिखाना । इठलाना । उ०—प्रब काहू के जाउ कही जनि आवति हैं युवती इतरात । सूर —(शब्द०) ।

इतराहट(५)–सज्ञा स्त्री० [हि० इतराना] इतराने का भाव । दर्प । घमड । गर्व । उ०—जीवन के इतराहट सौ अठिलाट अछो टटि ऐंठि ऐंठि ।—देव (शब्द०) ।

इतरेतर—क्रि० वि० [सं०] परस्पर । आपस मे ।

इतरेतरयोग—सज्ञा पुं० [सं०] १. परस्पर सङ्घ । २. एक प्रकार का द्वंद्वसमास जिसमे दो जाति के केवल एक एक व्यक्ति का समावेश होता है । हिंदी मे समास का यह भेद नहीं है ।

इतरेतराभाव—सज्ञा पुं० [सं०] न्यायशास्त्र मे एक के गुणों का दूसरे मे न होना । अन्योन्याभाव । जैसे,—गाय घोडा नहीं, क्योंकि गाय के घर्म घोडे मे नहीं हैं ।

इतरेतराश्रय—सज्ञा पुं० [सं०] तर्क मे एक प्रकार का दोष ।

विशेष—जब एक वस्तु की सिद्धि दूसरी वस्तु की सिद्धि पर निर्भर हो और दूसरी वस्तु की सिद्धि भी पहली वस्तु की सिद्धि पर निर्भर हो, तब वहाँ पर इतरेतराश्रय दोष होता है । जैसे—परलोक की सिद्धि के लिये शरीर से पृथक् असिद्ध जीवात्मा को प्रमाण मे लाना या जीवात्मा को शरीरातिरिक्त सिद्ध करने के लिये असिद्ध परलोक को प्रमाण मे लाना ।

इतरेद्यु—क्रि० वि० [सं०] दूसरे दिन । अन्येद्यु [कौ०] ।

इतरै(५)–क्रि० वि० [सं० इत. पर] इतने में । इसके उपरांत । उ०—इतरै एक आली ले आवी आनन आगलि आदरस ।—बेलि०, दू० ८३ ।

इतरौहाँ–वि० [हि० इतराना + औहाँ] (प्रत्य०)] जिससे इतराने का भाव प्रकट हो । इतराना सूचित करनेवाला । उ०—रहे परम पद साधत बीच परी चाह चकचौह । रतन खोइ कै कोड़ी पाई चाल चलै इतरौह ।—देवस्वामी (शब्द०) ।

इतलाक—सज्ञा पुं० [अ० इतलाक] १. जारी करना । इजराय । २. बंधनमुक्त करना । खोलना । ३. बोलना । कथन । ४. बह

दफ्तर या वैही जिसमें दस्तक और समनें ओदि के जारी होने और उनके तलवाने के आग्रह्य का लेखा लिखा जाता है।

यो०—इतलाकनवीस=वह कर्मचारी जो इतलाक में काम करे या इतलाक का हिसाब रखे।

इतवत=क्रि० वि० [स० इतस्त, प्रा० \*इतवतः हि० इतउत] इधर उधर। उ०—उभक्त इतवत देखि चलत ठठकत छवि पावत।—ब्रज० ग्र०, पृ० ६२।

इतवरी-सजा श्री० [स०] दे० 'इतवरी'।

इतवार-सजा पु० [स० आदित्यवार, प्रा० आइतवार=ऐतवार] शनि और सोमवार के बीच का दिन। रविवार।

इतस्त=क्रि० वि० [स०] इधर उधर। यहाँ वहाँ।

इता०—वि० [म० इयत् पा० इयन्त, प्रा० \*इयन्त, हि० इतन, इतना] इतना। इस मात्रा का। उ०—(क) बड़ा जुबोल मुख नन्हिया, इता बोल सिर पर धरै।—पृ० २०, ६४। १२६। (ख) साचा मुँह मोड़ै नही अर्थ इता ही वूक।—दादू०, पृ० ३२५।

इताग्रत=सजा श्री० [ग्र०] आज्ञापालन। तावेदारी। उ०—'इनकी वैसे ही इज्जत और इताग्रत करते हैं'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६२।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।

इताति=सजा श्री० [ग्र० इताग्रत] दे० 'इताग्रत'। उ०—को है जागजाल जो न मानत इताति है।—तुलसी ग्र०, पृ० २५५।

क्रि० प्र०—मानना=आज्ञा या हुक्म मानना। उ०—निमि वासर ताकहँ भलो, मानै राम इताति।—ग्र०, पृ० ५१५।

इताव=सजा पु० [ग्र०] क्रोध। कोप। गुस्सा [क्रि०]।

यो०—इतावनामा=क्रोध, नाराजी या विरोध व्यक्त करनेवाला, पन।

इति<sup>१</sup>—अव्य [स०] समाप्तिसूचक अव्यय।

इति<sup>२</sup>—सजा श्री० [स०] समाप्ति। पूर्णता। जैसे,—प्रव तुम्हारी पढाई की इति हो गई। २. गति। गमन। ३. ज्ञान [क्रि०]।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यो०—इतिकर्तव्यता। इतिवृत्त। इतिहास। इतिश्री।

इति<sup>३</sup>—क्रि० वि० इस प्रकार। ऐसा। उ०—(क) अचर-चर-रु हरि सर्वगत सर्वदा वसत, इति वासना धूप दीजै।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७६। (ख) इति वदत तुलसीदास।—तुलसी ग्र०, पृ० ७८।

इतिक<sup>१</sup>—वि० [स०] चलता हुआ। गतिशील [क्रि०]।

इतिक<sup>२</sup>—वि० [हि०] दे० 'इतेक'। उ०—पन कितो कहिरि कृष्ण होइ। इतिक विदा सजि चद को।—पृ० २०, ६१। ८८६।

इतिकथ=वि० [म०] १. अविश्वसनीय। २. नष्ट। अश्रद्धेय [क्रि०]।

इतिकथा=सजा श्री० [स०] अविश्वसनीय एवं निरर्थक बात [क्रि०]।

इतिकरण्य=वि० [स०] दे० 'इतिकर्तव्य' [क्रि०]।

इतिकर्तव्य=वि० [स०] जिसका करना आवश्यक और उचित हो। उ०—केवल प्रचलित प्रणाली का निर्वाह करना मात्र अपना इतिकर्तव्य मानते हैं। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५१।

इतिकर्तव्यता=सजा श्री० [स०] १. किसी काम के करने की विधि। परिपाटी। २. कर्म की पराकाष्ठा। कर्तव्य की समाप्ति या

पूर्णता। उ०—यंग कागजी बूढ़श्री में है याज इतिकर्तव्यता।—भारत०, पृ० १२५। ३. सीमा या पर्याय मन्त्र अर्थवाद बोधित वाक्य जिसमें किसी कर्म की प्रणया और उसके करने के विधान का बोध हो।

इतिमात्र=वि० [म०] इतना ही। इस मात्रा का ही [क्रि०]।

इतिय०—वि० [दिश०] दे० 'इतना'। उ०—यो ब्रजि मार प्रातुर इतिय ज्यो दूरिय बूढ़ धर।—पृ० २१०, १३। ११६।

इतिवृत्=क्रि० वि० [म०] इस प्रकार। इस उग में [क्रि०]।

इतिवृत्त=सजा पु० [म०] १. पुरावृत्त। पुरानी कथा। २. कहानी। किस्सा।

इतिश्री=सजा श्री० [म०] समाप्ति। अंत। जैसे,—प्रोगज्य ने ही मुगलो के राज्य की इतिश्री हुई। उ०—रूप में इतिश्री हो चुकी इसके अग्रिल उत्कर्ष की।—भारत०, पृ० २।

इतिह=क्रि० वि० [म०] इस प्रकार निश्चय ही [क्रि०]।

इतिहास=सजा पु० [म०] १. बोली हुई प्रसिद्ध घटनाओं और उनमें मयध रखनेवाले पुरुषों का कालक्रम से वर्णन। तवारीख। उ०—यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं।—भारत०, पृ० ४। २. वह पृष्ठा जिसमें बोली हुई प्रसिद्ध घटनाओं और भूत पुरुषों का वर्णन हो। उ०—प्रब भी 'लिपित मुनि' का चरित वह निप्रित है इतिहास में।—भारत०, पृ० १०। १. किसी विषय में मयधित तथ्यों का आदिकाल से वर्तमान समय तक का क्रमबद्ध वर्णन। जैसे—किसी शास्त्र, कला, संस्कृति का इतिहास। ५. गया। वृत्त। उ०—उग अनंत काले जानन वा, यह जब उच्छ्रव इतिहास।—कामायनी, पृ० ३८।

यो०—इतिहासकार=इतिहास लिखनेवाला। इतिवृत्त लेखक। इतिहासज्ञ=इतिहास का जानकार। इतिहासवेत्ता=इतिहासज्ञ।

इते०—वि० [हि०] दे० 'इतो'। उ०—एत घटे घटिहे कहा जो न घटे हरि नेह।—तुलसी ग्र०, पृ० १५१।

इतेका=वि० [हि० इत+एक] इतना एक। इतना।

इतै=क्रि० वि० [म० इत] उधर। इस तरफ। इस मोर। उ०—मोहन मानि मनायो मेरो। हौं बनिहारी नद नंदन की, नेकु इतै हंसि हेरो।—सूर०, पृ० २१६।

मुहा०—इतै उत=दे० 'इतउत'। उ०—उमटे जय मु'डदंटे उठालें। तवै तोरि तारै इतैउत पालें। पद्माकर ग्र० पृ० २७६।

इतो०, इतो०—वि० [स० इयत्=इतना] [वि० इतो] इतना।

इस मात्रा का। निदिष्ट मात्रा का। उ०—(क) कुटिल प्रलक छुटि परत मुख, बढिगी इतो उदोत। चक विकारी देत ज्यो राम रूपया होत।—बिहारी (शब्द०)। (ख) मेरे जान इन्हे बोलिये कारन चतुर जनक ठयो ठाठ इतो रो।—तुलसी ग्र०, पृ० ३०८। (ग) लैं नैं मोहन, चदा लैं। सूरदास प्रभु इतो बात को कत मेरे लाल हूँ।—सूर०, पृ० १६५।

इतोत०—क्रि० वि० [हि० इत+उत] इधर उधर। उ०—चद उदोत इतोत चितोत चकी सयकी चख चाह चकोरी।—बिहारी० ग्र०, भा० १, पृ० १५०।



इत्कट—सज्ञा पुं० [मं०] एक प्रकार का वृक्ष या घाम [को०]।  
 इत्किला—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक मुगध द्रव्य। गोरोचन [को०]।  
 इत्त०—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इत'। उ०—जा को रहना उत्त घर  
 सो क्यों लोडै इत। जैसे पर घर पाहुना रहै उठाए वित्त।—  
 कबीर सा० सं०, पृ० ७७।  
 इत्तन०—वि० [हिं०] दे० 'इतना'। उ०—इत्तन वचन कहाँ चर  
 आइय।—प० रा०, पृ० १२०।  
 इत्तफाक—सज्ञा पुं० [अ० इत्तिफाक] [वि० इत्तफाकिया, क्रि० वि०  
 इत्तफाकन] १ मेल। मिलाप। एका। २ सहमति।  
 मुहा०—इत्तफाक करना = सहमत होना। जैसे,—मैं आपकी राय  
 से इत्तफाक नहीं करता।  
 ३ मयोग। मौका। अवसर। जैसे,—इत्तफाक की बात है, नहीं  
 तो आप भी कभी यहाँ आते हैं?  
 मुहा०—इत्तफाक पड़ना = मयोग उपस्थित होना। मौका पड़ना।  
 अवसर आना। जैसे,—मुझे अकेले सफर करने का इत्तफाक  
 कभी नहीं पड़ा। इत्तफाक से = सशोणवश। अचानक।  
 अकस्मात्। जैसे,—'मैं स्टेशन जा रहा था, इत्तफाक से वे भी  
 रास्ते में मिल गए'।  
 इत्तफाकन्—क्रि० वि० [अ० इत्तिफाकन्] सयोगवश। अचानक। एकाएक।  
 इत्तफाकिया—वि० [अ० इत्तिफाकियह] आकस्मिक।  
 इत्तफाकी—वि० [अ० इत्तिफाक] दे० 'इत्तफाकिया'।  
 इत्तला—सज्ञा स्त्री० [अ० इत्तलाअ] सूचना। खबर। उ०—वहरे  
 खुदा जनाव दें हमको ये इत्तला। साहब का क्या जवाब था  
 वावू ने क्या कहा।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६२६।  
 क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।  
 मुहा०—इत्तला लिखना = राजकर्मचारियों का किसी बात की  
 सूचना लिखना।  
 यो०—इत्तलानामा।  
 इत्तलानामा—सज्ञा पुं० [अ० इत्तला अ + फा० नामह] किसी बात की  
 खबर देनेवाला पत्रक। सूचनापत्र।  
 इत्तहाद—सज्ञा पुं० [अ० इत्तिहाद] मेल मिलाप। एकता। उ०—खुदा  
 गवाह है, मैंने हमेशा इत्तहाद की कोशिश की।—काया०,  
 पृ० ३३४।  
 इत्ता—वि० [हिं० इतना] इतना। उ०—कडेल जवान न होगा तो  
 भला शेरों से इत्ता ठेगा मुकाबिला कर सकेगा।—फिसाना०,  
 भा० ३, पृ० १२।  
 इत्तिफाक—सज्ञा पुं० [अ० इत्तिफाक] सयोग। मौका। उ०—  
 'यह तो कई बार इत्तिफाक हुआ है कि हम पहाड़ की ऊँची  
 चोटी पर हैं'।—मैर कु०, पृ० ६२।  
 इत्तिहाम—सज्ञा पुं० [अ०] दोष। तुहमत।  
 क्रि० प्र०—देना।  
 इत्तो०—वि० [हिं०] दे० 'इतो'।  
 इत्थ—क्रि० वि० [मं० इत्थम्] इस प्रकार से। ऐसे। यों।  
 इत्थकार—क्रि० वि० [मं० इत्थकारम्] इस प्रकार। इस ढंग से [को०]  
 इत्थभूत—वि० [सं० इत्थभूत] इस प्रकार का। ऐसा। २ सत्य।  
 विश्वसनीय (कथा)।

इत्थविच—वि० [सं०] १ इस प्रकार का। ऐसा। २. इस प्रकार की  
 विशेषता या गुणों में युक्त [को०]।  
 इत्थमेव—वि० [सं०] ऐसा ही।  
 इत्थमेव—क्रि० वि० इसी प्रकार से।  
 इत्थशाल—सज्ञा पुं० [सं०; मि०, अ० इत्तिशाल] दे० 'इत्थसान' [को०]।  
 इत्थसाल—सज्ञा पुं० [अ० इत्तिशाल] ताजक ज्योतिष के अनुसार कुंडली  
 में १६ योगों में से तीसरा योग जहाँ वेगगामी ग्रह मदगामी  
 ग्रह से एक अश्र मे कम हो और वे परस्पर एक दूसरे को  
 देखते हों या सवध करते हों वहाँ इत्थसाल योग होता है।  
 इत्थ्या०—वि०, इत्थ्या०—क्रि० वि० [सं० इत] यहाँ। इस  
 स्थान पर।  
 इत्थादि—अव्य० [सं०] इसी प्रकार के अन्य। और। इसी तरह।  
 और दूसरे। वगैरह। उ०—वेटा हमारा धन, आम्रपन, वसन  
 इत्यादि सब लुटेरे बलात्कार हर ले गए'।—भारतेंदु ग्र०, भा०  
 १, पृ० ५०८।  
 विशेष—जहाँ किसी प्रमग से समान सवध रखनेवाली बहुत सी  
 वस्तुओं को गिनाने की आवश्यकता होती है, वहाँ लाघव के  
 लिये केवल दो तीन वस्तुओं को गिनाकर 'इत्यादि' लिप्य देते  
 हैं जिससे और वस्तुओं का आशय मिल जाता है।  
 इत्थादिक-वि० [सं०] इसी प्रकार के अन्य और। ऐसे ही और दूसरे  
 जैसे --राम कृष्ण इत्यादिकों ने भी ऐसा ही किया है।  
 विशेष—इस शब्द के आगे 'लोग' या इसी प्रकार के और  
 विशेष शब्द प्रायः लुप्त रहते हैं।  
 इत्र—सज्ञा पुं० [अ०] १ अंतर। पुष्पसार। इतर। उ०—न दो बू  
 एक ने ऐ गुलबदन तेरे पसीनों की, हजारों इत्र बिचकर  
 तबल ए अत्तार में आए। कविता को०, भा० ४, पृ० ३७७।  
 २. सुगंध। खुशबू। ३. सार। सत्त।  
 इत्रदान—सज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० दान] दे० 'अंतरदान'।  
 इत्रफरोश—सज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० फरोश] अंतर बेचनेवाला।  
 गंधी। अत्तार।  
 इत्रसाज—सज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० साज] इत्र बनानेवाला। गंधी [को०]।  
 इत्रीफल—सज्ञा पुं० [सं० त्रिफला] एक हकीमी दवा। हड, बहेड़े  
 और आंवले का चूर्ण तिगुने शहद में मिलाकर चालीस दिन  
 तक रखा जाता है और फिर व्यवहार में आता है।  
 इत्वर—वि० [सं०] १ क्रूरकर्मा। क्रूर। २ निम्न। नीच। ३  
 यात्री। पथिक [को०]। ४ निर्धन। धनहीन [को०]।  
 इत्वर—सज्ञा पुं० १. पड। नपुमक। २ उत्तमगं किया हुआ वृष या  
 छुड़ा पशु। खुना हुआ जानवर [को०]।  
 इत्वरी—वि० स्त्री० [सं०] १ छिनाल। कुलटा। २ अभिसारिका [को०]।  
 इत्थ—अव्य० [सं० अत्र, प्रा० इत्थ] यहाँ। अत्र। उ०—तैं इत्थ न  
 सतारि दें जो चाहहि नो लेहि।—मिखारी० ग्र०, भा० १,  
 पृ० १६७।  
 इत्थह—अव्य० [हिं०] दे० 'इथ'। उ०—तब लग्य मेछ इत्थह  
 प्रवेश।—पृ० रा०, ६१। ५६२।



इदंतन—वि० [स० इदन्तन] १ इस समय का। वर्तमान। २ क्षण-स्थायी। क्षणिक [को०]।

इदन्ता—सज्ञा स्त्री० [स० इदन्ता] सादृश्य। एकरूपता। समरूपता [को०]।

इदद्—सज्ञा पुं० [स० इदद्] वह जो (इस) इद (= जगत्) को देखता है। परमात्मा [को०]।

इदवर—सज्ञा पुं० [स० इदम्बर] नीला कमल। इसीवर [को०]।

इडम्—मर्व० [स०] यह।

इदमित्य—उद० [स० इदमित्यम्] यह ऐसा है। ऐसा ही है। ठीक है। उ०—हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्य कहि जाइ न सोई।—मानस, १।१२१।

इदराक—सज्ञा पुं० [अ० इद्राक] जान। बोध। समझूक। उ०—गफलत कि यह जागे नहीं यहाँ नाहिबे इदराक रह।—राम० धर्म०, पृ० ८६।

इदानीतन—वि० [स० इदानीतन] १ इस समय का। आधुनिक। २ नवीन। नया।

इडावत्सर—सज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति की गति के अनुसार प्रत्येक ६० वर्ष में १२ युग होता है और प्रत्येक युग में पाँच बीस वर्ष होते हैं। प्रत्येक युग के तीसरे वर्ष को इडावत्सर कहते हैं। विशेष—इनके नाम ये हैं—गुल, नाग, प्रमाथी, तारण, विरोधी, जय, विकारी, क्रीडी, मोक्ष, आनंद, मित्रार्थ और रक्षा इनमें अन्न और वस्त्र के दान का बड़ा माहात्म्य है।

इद्वत्—सज्ञा स्त्री० [प्र०] पति के मरने के बाद का ४० दिन का अशौच जो मुसलमान विधवाओं को होता है और जिनके बीन वे अन्य पुरुष में विवाह नहीं कर सकती।

विशेष—कहते हैं कि यह इतलिये रखा गया है जिससे यदि गर्भ हो तो उसका पता चल जाय। यह अवधि सताक की स्थिति में तीन महीने, पति की मृत्यु पर चार महीने दस दिन और गर्भवती के लिये सतान होने तक भी है।

इद्वि—वि० [सं०] १ प्रकाशित। उजोतित। २ प्रकाशमान। प्रम-कीला। ३ आश्चर्यकारक। विस्मयजनक। ४ पालन किया जानेवाला (आदेश)। ५ दीप्त। ६ दग्ध। ७ म्वच्छ। निर्मल [को०]।

इद्वि—सज्ञा पुं० १ आतन। घाम। २ दीप्ति। काति। ३ आश्चर्य। अचाना [को०]।

इद्विद्वि—सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग [को०]।

इद्विमन्यु—वि० [सं०] भयकर क्रोधी। अत्यधिक क्रोधयुक्त [को०]।

इद्विग्न—वि० [सं०] जिसकी अग्नि निरंतर प्रदीप्त रहती हो [को०]।

इद्वत्सर—सज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति की गति के अनुसार ६० वर्ष में १२ युग होते हैं और प्रत्येक युग में पाँच पाँच वत्सर होते हैं। प्रत्येक युग के पाँचवें व अंतिम वर्ष को इद्वत्सर कहते हैं।

विशेष—इनके नाम ये हैं—प्रजाति, घाता, वृष, व्यष, घर, दुर्मुख, पन्व, परागव, रोधकृत्, अनल, दुर्मति और क्षय।

इधक—वि० [सं० अधिक्] दे० 'अधिक'। उ०—इधक अनुरागकर पुरुष निरजुर अही।—रघु० ६०, पृ० ५७।

इधकार—सज्ञा पुं० [सं० अधिकार] दे० 'अधिकार'। उ०—जनक नाम इधकार जग नार माटी पणो।—रघु० ६०, पृ० २८।

इधर—वि० वि० [सं० इतल या इतर] १. उस ओर। २. वहाँ। इस तरफ। उ०—इधर कोई ५ यमी म तीर हुआ गया मर से अनुमान।—रामायणी, पृ० ५२।

मुद्दा—इधर उधर = (१) यहाँ वहाँ। इतल-इतल। अनिश्चित स्थानों में। जैसे,—मौसम तितल ते मार इधर उधर मार मार करते थे। (२) आगवाण। उधारे स्थान। अशुभ स्थानों में। जैसे,—मुद्दा पर फ इधर उधर कोई नाई ही मो डेर देता। (३) तारी घोरा। तल घोरा। जैसे,—इधर उधर देगी, पुगता रही यही लोनी। इधर उधर करना = (१) टाल-मट्ट करना। लोभा-व्यापार करना। जैसे,—इधर उधर करवा गयवा मीनो है, तल नम दार उधर करी। (२) टाल-व्यसन करना। डट्ट वृत्त करना। जन नंग करना। जैसे,—बाँते में मद कामगय इधर उधर कर रिता। (३) फिर फिर करना। भगवाना। जैसे,—दोषे उनम २० सोरी को मारकर इधर उधर कर रिता। (४) टालना। बिना निश्च स्थानों पर कर देना। जैसे,—महाराजो मार से उधर कर का मान इधर उधर कर रिता। इधर उधर की बात = (१) बाताम मर। चकमाट। मारी मरार कर। जैसे,—तल लेनी उधर उधर को बातों पर निश्चय नही करी। (२) डिटकी की बात। प्रमना बात। खरी की दासाद। जैसे,—तल कोई काम नही करी, खर्य इधर उधर ही बाँते रिता करे। इधर की उधर करना या लगाना = पुनरावृत्ति करना। पचाव करना। एक पक्ष के लोगों की बात दुसरे पक्ष के लोगों से कहना। झगडा करना। इधर की दुनिया उधर होना = मनहीनी बात का होना। मतलब का मगर भाव। जैसे,—बाँते इधर की दुनिया उधर हो जाय, पर तल देना कभी नही करे। इधर उधर की हाँसना = भट्ट भट्ट करना। तल समय मोना। जैसे,—तल इधर उधर में रतल करे मर, कोई काम नही करने नही। इधर उधर में = (१) अनिश्चित स्थान में। अनिश्चित जगह में। जैसे,—तल पुगता कही उधर उधर में भट्टक लाग हो। (२) भोगों में। दलोग में। जैसे,—(क) जरु तल इधर उधर में काम लवे, तल तल पोश मरी मोर से। (ग) उमे इधर उधर में नोजन तल ही जाय है, मर रसोई मरी बनावे। इधर उधर होना = (१) उलट वृत्त होना। भट्ट वृत्त होना। रिगटना। जैसे,—तल में तल कावत-पय उधर उधर हा गय। (२) जनमट्ट होना। लोभा-हवाला होना। जैसे,—महीनो में इधर उधर हो जा है देखे खया कय मिनना है। (३) तल जाना। तिलर रिार होना। जैसे,—तेर के बाँते ही नम मोर इधर उधर हा मर इधर का उधर करना = उलट वृत्त देना। पन्व-पन्व करना। क्रम बिगाटना। इधर का उधर होना = उलट जाना। विमर्ष होना। विपरीत होना। जैसे,—देखने देखे सारा मामला इधर का उधर हो गया। इधर या उधर होना = परस्पर विद्वद दो सभावित घटनाओं में से (जैसे—जीना या मरना, हारना या जीतना) किसी एक का होना। जैसे,—जल के मही

मुकदमा हो रहा है, दो चार दिन में इधर या उधर हो जायगा। इधर से उधर फिरना = चारों ओर फिरना। जैसे,—तुम व्यर्थ इधर से उधर फिरा करते हो। न इधर का होना न उधर का = (१) किसी ओर का न रहना। किसी पक्ष में न रहना। जैसे,—वे हमारी शिकायत उनसे और उनकी शिकायत हमसे किया करते थे, अतः मैं न इधर के हुए न उधर के। (२) किसी काम का न रहना। जैसे,—वे इतना पढ़ लिखकर भी न इधर के हुए न उधर के। (३) दो परस्पर विरुद्ध उद्देश्यों में किसी एक का भी पूरा न होना। जैसे,—वे नौकरी के साथ साथ रोजगार भी करना चाहते थे, पर अतः मैं न इधर के हुए न उधर के।

इष्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ काठ। लकड़ी। २. यज्ञ की समिधा जो प्रायः पलाश या आम की होती है।

यी०—इष्मजिह्व = ग्रन्थि। इष्मवाह = अगस्त्य ऋषि का एक पुत्र जो लोपामुद्रा से उत्पन्न हुआ था।

इष्मपरिवासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी की चैनी या टुकड़ा [को०]।

इष्मप्रवर्चन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुल्हाड़ी। टाँगी [को०]।

इष्मभृति—वि० [सं०] ईधन या लकड़ी लानेवाला [को०]।

इन<sup>१</sup>—पर्व० [हिं०] 'इय' का बहुवचन।

इन<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ प्रभु। स्वामी। ३ राजा। नरेश [को०]। ४ हस्त नाम का नक्षत्र [को०]।

इन<sup>३</sup>—वि० १ योग्य। शक्त। क्षम। २ बहादुर। ताकतवर। दृढ़। ३. गौरवपूर्ण [को०]।

इनग्राम—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इनग्राम] दे० 'इनाम'। उ०—इन लोगो को एक एक जोड़ा दुशाला इनग्राम दो।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५४२।

इनकम—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] आय। आमदनी। अर्थगम।

यी०—इनकम टैक्स।

इनकमटैक्स—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] आदमी पर महसूल। आय पर कर। आयकर।

इनकलाव—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इनकलाव] परिवर्तन। उलटफेर। उ०—सुना न कानो से था जो हमने वो आँख से इनकलाव देखा।—शेर०, भा० १, पृ० ६६२। २. क्रांति। राज्यपरिवर्तन।

यी०—इनकलाव जिदावाद = क्रांति विरजीवी हो। इनकलाव हकूमत = राज्यक्रांति। राज्य सवधी परिवर्तन।

इनकलावी—वि० [अ० इनकलावी] क्रांति या परिवर्तन लानेवाला।

इनकात—सञ्ज्ञा पुं० [सं० इनकान्त] सूर्यकांत मणि [को०]।

इनकार—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] अस्वीकार। नकारना। नामजूरी। नही करना। 'इकरार' का उलटा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

इनकारी<sup>१</sup>—वि० [अ०] इनकार करनेवाला। अस्वीकृतिसूचक [को०]।

इनकारी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० इनकार या अस्वीकार की स्थिति।

इनकिशाफ—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इनकिशाफ] १ गवेपणा। अनुसंधान। २. व्यक्त होना। प्रकट होना। जाहिर होना [को०]।

इनकिसार—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] खाकमारी। नम्रता। विनय [को०]। इनफार्मर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इनफार्मंड] वह जो गुप्त रूप से किसी बात का भेद लगाकर पुलिस को बताता है। गोइदा। भेदिमा। जैसे,—वह पुलिस का इनफार्मर है।

इनफिकाक—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इनफिकाक] १. रेहन का छुड़ाना। वधक छुड़ाना। २. मुक्त होना। छूटना [को०]। ३. अलग अलग होना [को०]।

यी०—इनफिकाक रेहन।

इनफिसाल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इनफिसाल] १. वाद का निर्णय होना। फैसला होना। २. फैसला। निर्णय [को०]।

इनफ्लुएजा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इनफ्लुएजा] सरदी का बुखार जिसे सिर भारी रहता है, नाक बहा करनी है और हराग्त रहती है।

इनसभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] राजसभा। शाही दरबार [को०]।

इनसान—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ मनुष्य। आदमी। २. सभ्य। मज्जन [को०]।

इनसानियत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १ मनुष्यत्व। आदमीयन। २. बुद्धिमानि। बुद्धि। शऊर। ३. भलमनमी। सज्जनता। मुरव्वन।

इनसानी—वि० [अ० इनसान + फा० (प्रत्यय)] १ मानवीय। मानव सवधी। २. मज्जनोचित [को०]।

इनसानीयत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'इनमानियत' [को०]।

इनसाफ—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इन्साफ] दे० 'इसाफ'। उ०—मौ और भाई मालिक में इनसाफ चाहने के लिये विलायत पहुँचे।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३४६।

इनसालवट, इनसालवेंट—वि० [अ०] वह व्यापारी जो व्यापार में घाटा आने के कारण अपना ऋण चुकाने में असमर्थ हो। दिवालिया। उ०—तो क्या इनसालवेंट होने की दरखास्त देनी पड़ेगी।—श्री निवाम ग्र०, पृ० ३८१।

इनसिदाद—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. बंद होना। रुक जाना। २. निवारण।

यी०—इनसिदादे जुर्म = अपराधो का रुकना। अपराधो का निवारण। छात्रा [को०]।

इनस्टिट्यूशन—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इन्स्टिट्यूशन] संस्था। समाज। मंडल।

इनहिदाम—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. ढहना। गिरना। २. ध्वस्त [को०]।

इनहिसार—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] निर्भरता। दारोमदार [को०]।

इनान—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] वल्गा। बाग। लगाम [को०]।

यी०—इनाने हकूमत = शासन की बागडोर। शासनयूत्र।

इनानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृक्ष। वटपत्री [को०]।

इनाम—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इनग्राम] १ पुरस्कार। ववशिज। उग्रहार। २. माफी जमीन।

यी०—इनाम इकराम = इनाम जो कृपापूर्वक या नेवा ने प्रमन्न होकर दिया जाय। इनामदार = प्रनाम प्राप्त करनेवाला।

इनायत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १ कृपा। दया। अनुग्रह। मेहरबानी।

उ०—इनायत है तुम पे यह सखर की। तुम्हें दूनी उमने पोशाक दी।—कविता को०, भा० २, पृ० २१३। २. एहसान।

क्रि० प्र०—करना ।—फरमाना ।—रखना ।

मुहा०—इनायत करना = (१) कृपा करके देना । जैसे,—जरा कलम तो इनायत कीजिए । २ रहने देना । वाज रखना । वचित रखना (व्यग्य) । जैसे,—इनायत कीजिए, मैं आपकी चीज नहीं लेता ।

इनारा—सञ्ज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'इंदारा' ।

इनारुनी—सञ्ज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'इंदारुन' ।

इनारु—सञ्ज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'इंदारुन' । उ०—मीठा जिसमें जानते थे वह इनारु का फल था ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०५ ।

इनेगिने—वि० [ हि० ] इने = गिने की अनुष्व० + गिनना । १. कतिपय । कुछ । चद । थोड़े से । २ चुने चुनाए । गिने गिनाए । जैसे,—इस विद्या के जाननेवाले अब इने गिने लोग हैं ।

इनोदय—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] सूर्योदय [ को० ] ।

इन्जिन—सञ्ज्ञा पुं० [ हि० ] इजन ] दे० 'इजन' । उ०—इच्छा कर्म सजोगी इन्जिन गारड आप्र ग्रकेला है ।—श्यामा०, पृ० ११४ ।

इन्टरनेशनल—वि० [ अंग० ] दे० 'अंतर्राष्ट्रीय' । जैसे,—इन्टरनेशनल एग्जिबिशन ।

इंटरमीडिएट—वि० [ अंग० ] बीच का । मध्य का । मध्यम । जैसे,—इंटरमीडिएट क्लास उच्चतर माध्यमिक कक्षा ।

इन्टरव्यू—सञ्ज्ञा पुं० [ अंग० ] १ व्यक्तियों का आपस में मिलना । एक दूसरे का मिलाप । भेंट । मुलाकात । साक्षात् वार्तालाप या प्रश्नोत्तर जैसे,—प्रयाग के एक संवाददाता ने उस दिन स्वराज्य पार्टी की स्थिति जानने के लिये उसके नेता प० मोतीलाल नेहरू का इंटरव्यू किया था । २ परीक्षा अथवा नियुक्ति के लिये किसी समिति के समुख साक्षात्कार के लिये उपस्थित होना ।

क्रि० प्र०—करना ।—लेना ।

३ आपस में विचारों का आदान प्रदान । वार्तालाप । जैसे,—समाचार पत्रों में एक संवाददाता और मालवीयजी का जो इंटरव्यू छपा है, उसमें मालवीय जी ने देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति पर अपने विचार प्रकट किए हैं ।

इन्नरी—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] अनोर = बिना जल का ] पेउस ( १० दिन के भीतर व्याई हुई गाय का दूध ) में गुड, सोठ, चिरोँजी और कच्चा दूध मिलाकर पकाने से वह जम जाता है । इसी जमे हुए दूध को इन्नर कहते हैं ।

इन्ग्राम—सञ्ज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'इनाम' । उ०—राजमती इन्ग्राम दी । मढी है यानीक चापानेर ।—वी० रासो, पृ० ६५ ।

इन्वेका—सञ्ज्ञा स्त्री० [ सं० ] इन्वेला नाम का पाँच तारों का समूह जो भृगुशिरा नक्षत्र के ऊपर रहता है ।

इन्वायस—सञ्ज्ञा पुं० [ अंग० ] १ व्यापारी द्वारा भेजे हुए माल की सूची जिसमें उस माल के दाम आदि का व्योरा रहता है । बीजक । रघोती । २ चालान का कागज ।

इन्ड्योरेंस—सञ्ज्ञा पुं० [ अंग० ] इन्ड्योरेंस ] दे० 'वीमा' । जैसे—लाइफ इन्ड्योरेंस, जीवनवीमा ।

इन्स—सञ्ज्ञा पुं० [ अंग० ] दे० 'इनसान' । उ०—बजुज खालिक जिन, इन्स व वशर, उनकी होनहारी की नई किस खबर ।—दक्खिनी०, पृ० ३७४ ।

इन्साइक्लोपीडिया—सञ्ज्ञा पुं० [ अंग० ] दे० 'विश्वकोश' ।

इन्साइक्लोपीडियान्नितानिका—सञ्ज्ञा पुं० [ अंग० ] अंग्रेजी का एक प्रसिद्ध विश्वकोश । उ०—न एतवार हो तो इन्साइक्लोपीडिया न्नितानिका खोलकर देख लीजिए ।—प्रेमघन०, भा० ३, पृ० ४१४ ।

इन्सोलिन—सञ्ज्ञा स्त्री० [ अंग० ] मधुमेह रोकने की दवा । उ०—सिर्फ एक बार शिमला में इन्सोलिन की सुई लगाई थी ।—किन्नर०, पृ० १५ ।

इन्हु—संज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'इन' । उ०—इन्हु कै दसा न कहेउ वखानी । सदा काम के चेरे जानी ।—मानस, १।८५ ।

इन्हन—सञ्ज्ञा पुं० [ सं० ] इन्धन ] दे० 'इधन' । उ०—ज्ञान अग्नि तामे दियो विषय इन्हन जरि जाय ।—भीखा श०, पृ० १०० ।

इफतरा—सञ्ज्ञा पुं० [ अंग० ] इफ्तिरह ] १ मिथ्या आरोप । तोहमत । २ व्यर्थ की बात । उ०—वेद कितेव इफनरा भाई दिल का फिकिर न जाई ।—कवीर ग्र०, पृ० १६७ ।

यौ०—इफनरा परवाज = कलक लगानेवाला । तोहमत लगानेवाला ।

इफतार—सञ्ज्ञा पुं० [ अंग० ] इफतार ] रोजा खोलना [ को० ] ।

इफतारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [ अंग० ] इफतारी ] वह वस्तु जिसे खाकर रोजा खोला जाता है [ को० ] ।

इफरात—सञ्ज्ञा स्त्री० [ अंग० ] इफरात ] अधिकता । ज्यादाती । अधिकारी । कमरत । बहुतायत ।

इफलास—सञ्ज्ञा पुं० [ अंग० ] इफलास ] मुफलसी । तगदस्ती । गरीबी । दरिद्रता । आवश्यकता । उ०—वह इफलास अपना छिपाते हैं गोया । जो दौलत से करते हैं नफरत ज्यादा ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६०० ।

इफलासी—सञ्ज्ञा स्त्री० [ अंग० ] इफलासी ] दे० 'इफलास' ।

इफाकत—सञ्ज्ञा पुं० [ अंग० ] इफाकत ] १. रोगमुक्ति । २. रोग में सुधार होना । स्वास्थ्यलाभ करना [ को० ] ।

इव—संज्ञा पुं० [ हि० ] दे० 'अव' । उ०—इव तो मोहि लागी बाई उन निहचल चित लियो चुराई ।—दादू, पृ० ४७० ।

इवतदा—सञ्ज्ञा स्त्री० [ अंग० ] इव्तिदा ] दे० 'इव्तिदा' । उ०—जो श्रीवल में पंदायश इवतदा, परम आतमा से हुई यह सदा ।—कवीर म०, पृ० ३८६ ।

इवन—सञ्ज्ञा पुं० [ अंग० ] इवन ] पुत्र । उ०—तेहि के कोख कोन्ह अवतरा । यूसुफ इवन अमीन हुई वारा ।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २३४ ।

इवरत—सञ्ज्ञा स्त्री० [ अंग० ] इव्रत ] १ विविधता । अद्भुत कार्य । २ चेतावनी । शिक्षा । नसीहत [ को० ] ।

यौ०—इवरतअंगेज = चेतावनी देनेवाला । शिक्षाप्रद । इवरत अमेज = अद्भुत । अद्वितीय । अनोखा ।

इवरानी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [ अंग० ] इव्र हीम नामक पंगवर के वगज । यहदी ।

इवरानी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० पॅलिस्तान देश की प्राचीन भाषा ।

इवरानी<sup>३</sup>—वि० यहूद या फिलिस्तीन देश का । उस देश से सम्बन्धित ।

इवरायनामा—सञ्ज्ञा पुं० [ फा० ] वह पत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य अपने स्वत्व या हक से दस्तवरदार हो । त्यागपत्र ।

इबराहीम—सच्चा पुं० [ अ० इब्राहीम ] यहूदी जाति के आदि पुरुष जो इस्लाम धर्म के अनुसार एक पैगंबर माने जाते हैं।—  
उ०—नूह की दसवीं पीढ़ी में इबराहीम उत्पन्न हुआ।—  
कबीर म०, पृ० ५२।

इबरो०—सच्चा स्त्री० [ अ० इब्रानी का सक्षिप्त रूप ] दे० 'इब्रानी'।  
उ०—इबरी श्री अरबी सुर बानी। पारस श्री तुर्की मिसरानी।  
—हिंदी त्रेमा०, पृ० २३३।

इबलीस—सच्चा पुं० [ अ० इब्लीस ] शैतान। उ०—खडग दीन्ह उन्ह  
जाइ कहैं देखि डरै इबलीस।—जायसी ग्रं०, पृ० ३२२।

इबा—सच्चा स्त्री० [ अ० ] १ एक तरह का कंवल। २ बड़ा चोगा [को०]।  
इवादत—सच्चा स्त्री० [ अ० ] पूजा। आराधना। उ०—उन्हे शौके  
इवादत भी है और गाने की आदत भी, निकलती हैं दुआएँ उनके  
मुँह से ठुमरियाँ होकर।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६२२।  
यो०—इवादतखाना।

इवादतखाना—सच्चा पुं० [ अ० इवादत + फा० खानह ] पूजा करने का  
स्थान। पूजा गृह। उपासना गृह।

इवारत—सच्चा स्त्री० [ अ० ] १ लेख। मजमून। उ०—उसके आसपास  
फारसी में बहुत सी इवारत लिखी थी।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ०  
१३०। २. लेखनी। वाक्यरचना। उ०—वस इवारत हो  
चुकी मतलब प आया चाहिए।—कविता को०, भा० ४, पृ० ०००।

यो०—इवारत आराई = आलंकारिक शैली।

इवारती—वि० [ अ० इवारत फा० ई (प्रत्य०) ] जो इवारत में  
हो। इवारतसवधी।

यो०—इवारती सवाल = वह हिसाब जिसमें राशीकृत अंकों के  
संबंध में कुछ पूछा जाय।

इब्तिदा—सच्चा स्त्री० [ अ० इब्तिदह ] आरम्भ। शुरुआत। उ०—सच  
य है इब्तिदान को यूरुप ने हलका कर दिया। इब्तिदा डाढ़ी से  
की श्री इब्तिदा में मूँछ ली।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६२४।

इब्तिदाई—वि० [ अ० इब्तिदह + फा० ई (प्रत्य०) ] आरम्भिक।

इब्तिदा—सच्चा स्त्री० [ अ० इब्तिदह ] १. आरम्भ। आदि। शुरु। उ०—  
इब्तिदा ही में मर गए सब यार। इष्क की कौन इब्तिदा  
लाया।—कविता को०, भा० ४, पृ० १३३। २. जन्म।  
पैदाइस। ३. विकास। उठान।

इब्न—सच्चा पुं० [ अ० ] पुत्र। बेटा। लड़का। उ०—ये फरजद दो  
उमर इब्न खताव।—दक्खिनी०, पृ० ३५७।

इब्राहीम—सच्चा पुं० [ अ० ] दे० 'इबराहीम'।

इब्राहीमो—सच्चा पुं० [ अ० ] एक सिक्का जो इब्राहीम लोदी के वक्त में  
जारी हुआ था।

इभ—सच्चा पुं० [ सं० ] [ स्त्री० अभी या इभ्या ] हाथी। उ०—राधे  
तेरे रूप की अधिकाइ। इभ टूटत अरु अरुन पगु भए विधना  
आन बनाइ।—सूर०, १०। २७७६।

इभ<sup>३</sup>—क्रि० वि० [ सं० इव ] इस प्रकार। ऐसे (हिं०)।

यो०—इभ आनन, इभानन = गणेश। इभकेशर = नागकेशर।  
इभगघा = विपरीत फलवाला एक पौधा। इभदता = एक प्रकार  
का पौधा। इभपोटा = अल्पवयस्का हथिनी। इभपोत = कम

वय का हाथी। इभभर—हाथियों का झुंड। इभयुवति =  
मादा हाथी। हथिनी।

इभकणा—सच्चा स्त्री० [ सं० ] गजपिप्पली। गजपीपल।

इभकुभ—सच्चा पुं० [ सं० इभकुम्भ ] हाथी का मस्तक।

इभानिमीलिका—सच्चा स्त्री० [ सं० ] १. विदग्धता। चातुर्य। बुद्धिमत्ता।  
२. भांग [को०]।

इभपालक—सच्चा पुं० [ सं० ] १. महावत। २. हाथी रखनेवाला व्यक्ति  
[को०]।

इभमाचल—सच्चा पुं० [ सं० ] सिंह [को०]।

इभया—सच्चा पुं० [ सं० ] स्वर्णक्षीरी का वृक्ष [को०]।

इभाख्य—सच्चा पुं० [ सं० ] नागकेशर का पौधा [को०]।

इभी—सच्चा स्त्री० [ सं० ] हथिनी [को०]।

इभोपणा—सच्चा स्त्री० [ सं० ] गजपिप्पली का पौधा [को०]।

इभ्य<sup>१</sup>—वि० [ सं० ] १. जिसके पास हाथी हो। २. धनवान्। धनी।  
यो०—इभ्यपुत्र = धनीपुत्र। रईसजादा।

इभ्य<sup>२</sup>—सच्चा पुं० १. राजा। २. हाथीवान। प्रहावत। ३. शत्रु।

इभ्यक—वि० [ सं० ] सपत्तिशाली। धनी [को०]।

इभ्या—सच्चा स्त्री० [ सं० ] १. हथिनी। सलई का पेड़।

इम(उ)—क्रि० वि० [ हिं० ] दे० 'इमि'। उ०—(क) निधरक भई  
कव्ति इम लहिए। सा परिकिया लच्छिता कहिए।—नददास  
ग्रं०, पृ० १४६। (ख) करत मंगलाचार इम नाशत विघ्न  
अनत।—मुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४।

इमकान—सच्चा पुं० [ अ० इम्कान ] १. संभावना। २. ताकत। मक-  
दूर। वस। काबू। जैसे,—हमने अपने इमकान भर कोशिश  
कर दी।

इमकानात—सच्चा पुं० [ अ० इम्कान का बहु० व० ] संभावनाएँ।  
उ०—मेरे दिमाग के उठने के ज्यादा इमकानात हैं।—  
दक्खिनी०, पृ० ४६१। ताकत। शक्ति [को०]।

इमकानी—वि० [ अ० इम्कानी ] संभावित [को०]।

इमकोस—सच्चा पुं० [ सं० कोश ] तलवार का म्यान।—(हिं०)।

इमचार—सच्चा पुं० [ सं० चर १ ] गुप्तचर। गुप्त दूत।—(हिं०)।

इमदाद—सच्चा स्त्री० [ अ० मदद का बहु० व० ] मदद। सहायता।  
उ०—दाग कोताही न कर यह वस्तु है इमदाद का—शेर०,  
भा० १, पृ० ६६६।

इमदादी—वि० [ अ० इमदाद ] १. मदद पानेवाला। जैसे,—इमदादी  
मदरसा = वह मदरसा जिसे मदद से कुछ द्रव्य की सहायता  
मिलती हो। २. इमदाद या सहायता के रूप में प्राप्त होनेवाला।

इमन—सच्चा पुं० [ हिं० ] दे० 'ईमन'। उ०—मीड़ मधुरतम विधुर इमन  
की।—गीतगुज, पृ० ६२।

इमरती—सच्चा स्त्री० [ सं० अमृत ] एक मिठाई।

विशेष—उर्द की फेंटी हुई महीन पीठी और चीरे को तीन चार  
तह कपड़े में, जिसके बीच एक छोटा गा छेद रहना है, रखकर  
खोलते हुए घी की तई में घुमा घुमाकर टपकान हैं, जिससे  
कगन के आकार की वस्तियाँ बनती जाती हैं। घी में तल लेने  
पर इनको चीनी के शीरे में डुबाते हैं।

इमरतीदार—वि० [ हि० इमरती + फा० दार (प्रत्य०) ] जिसमें इमरती की माँति गोल गोल घेरे या वल पडे हो। जैसे,— इमरतीदार कगन।

इमरित(उ)—सझा पु० [स० अमृत दे० 'अमृत']। उ०—लडिका वाका महा हुरामी इमरित मे विप धोरै।—पलटू०, भा० ३, पृ० ५४।  
इमला—सझा पु० [अ० इमलाह्] १ वर्तनी। शुद्ध लिखावट। २ वताई हुई इवारत को सही लिखना [को०]।

यी०—इमलानवीस = वर्तनी के अनुसार या शुद्ध लिखनेवाला।  
इमलाक—सझा स्त्री० [अ० मुल्क का बहु० व०] सपत्ति। जायदाद [को०]।

इमली—सझा स्त्री० [स० अम्ल + हि० ई (प्रत्य०)] १. एक बड़ा पेड़ जिसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी होती हैं और सदा हरी रहती हैं। इसमें लवी लवी फलियाँ लगती हैं जिनके ऊपर पतला पर कटा छिलका होता है। छिलके के भीतर खट्टा गूदा होता है जो पकने पर लाल और कुछ मीठा हो जाता है। २. इस पेड़ की फली।

मुहा०—इमली घोटना = विवाह के समय लडके या लडकी का मामा उसको आम्रपल्लव दाँत से खोटाता है और गयाशक्ति कुछ दक्षिणा भी वाँटता है। इसी रीति को 'इमली घोटना' कहते हैं।

इमसाक—सझा पु० [अ० इम्साक] १ रुकावट। २. आकर्षण। खिचाव। ३. कजूसी [को०]।

इमसाल—सझा पु० [फा० इम्साल] इस वर्ष [को०]।

इमाम—सझा पु० [अ०] [वि० इमामी] १ अगुआ। २. पुरोहित। मुसलमानों के धार्मिक कृत्य करानेवाला मनुष्य। ३ अली के बेटों की उपाधि। ४ मुसलमानों की तसवीह या माला का मुमेर।

इमामजिस्ता—सझा पु० [हि०] दे० 'इमामदस्ता'। उ०—यह तन कीर्ज इमामजिस्ता खमीर सवै करि डारिया रे।—स० दरिया०, पृ० ६६।

इमामत—सझा स्त्री० [अ०] इमाम का पद। पेशवाई [को०]।

इमामदस्ता—सझा पु० [फा० हव्वन + दस्तह] एक प्रकार का लोहे या पीतल का खल बट्टा।

इमामा—सझा पु० [अ० अम्मामह] एक प्रकार की बड़ी पगड़ी। अमामा।

इमामवाडा—सझा पु० [अ० इमाम + फा० वारह, हि० वाडा] वह हाता जिसमें शीया लोग ताजिया रखते और उसे दफन करते हैं।

इमारत—सझा स्त्री० [अ०] १ बड़ा और पक्का मकान। २ वैभव। शानशौकत। उ०—ग्राप मे हिंदोस्तानी इमारत पूरे तोर पर मौजूद है।—प्रेमवन०, भा० २, पृ० ६१।

इमारती—वि० [फा०] मकान का। मकान से संबंधित। जैसे,— इमारती नामान।

इमि(उ)—क्रि० वि० [स० एवम्] इस प्रकार। इस तरह। ऐसे। उ०—होहि प्रेम वम लोग इमि राम जहाँ जहाँ जाहि।—मानस, २। १२१।

इमोशन—संज्ञा पु० [अ०] १. संवेग (मनोवै०)। २ भाव। मनोविकार। उ०—अंगरेजी मे भाव को इमोशन और फारसी मे जजवा कहते हैं।—रस क०, पृ० ३६।

इम्तहान—संज्ञा पु० [अ०] परीक्षा। जाँच। 'इम्तिहान'। उ०—साफ कब इम्तहान लेते हैं। वह तो दम दे के जान लेते हैं।—शेर०, भा० १, पृ० ६७२।

इम्तिनाई—वि० [अ०] रोक लगानेवाला [को०]।

इम्तिनाय—संज्ञा पु० [अ०] निषेध। रोग मनाही [को०]।

इम्तियाज—संज्ञा पु० [अ० इन्तियाज] १, भेद। अंतर। २ विवेक। गुण दोष की पहचान। उ०—देख इकवार चषम अपना करके वाज। गरतुजे किस वात का है इम्तियाज।—दक्खिनी०, पृ० २०४।

इम्तिहान—संज्ञा पु० [अ०] १ दे० 'इम्तहान'। २ परख (को०)।  
इम्पीरियल—वि० [अ०] साम्राज्य या सम्राट् सर्वधी। राजकीय। शाही। जैसे,—इम्पीरियल सर्विस = राजकीय नौकरी।

इम्पीरियलगवर्नमेन्ट—संज्ञा स्त्री० [अ०] साम्राज्य सरकार। बड़ी सरकार। जैसे,—भारत में अंग्रेजी सरकार को भी इपीरियल गवर्नमेन्ट अर्थात् बड़ी सरकार कहते थे।

इम्पीरियलप्रेफरेंस—संज्ञा पु० [अ० इम्पीरिल प्रेफरेंस] साम्राज्य की वस्तुओं पर उसके अधीनस्थ देश में इस प्रकार आयात निर्यातकर वैधाने की नीति जिसे वह दूसरे देशों के मुकाबले में सस्ता माल बेच सके। साम्राज्य की बनी वस्तुओं को प्रशस्तता देना।  
इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स—संज्ञा स्त्री० [अ०] अंग्रेजी शासनकाल में वह सेना जो भारत के देशी रजवाड़े भारत सरकार के सहाय-तार्थ अपने यहाँ रखते थे और जिनकी देखभाल ब्रिटिश अफसर करते थे। आपत्काल में सरकार इस सेना से काम लेती थी।

इम्पोर्ट—संज्ञा पु० [अ०] पु० 'आयात'। जैसे,—इम्पोर्ट इयूटी = आयातकर।

इम्प्रित(उ)—संज्ञा पु० [स० अमृत] दे० 'अमृत'।

इयत्—वि० [स०] इतने विस्तारवाला। इतना बड़ा [को०]।

इयत्ता—संज्ञा स्त्री० [स०] सीमा। हद। परिमिति। उ०—तूने अपने ज्ञान की इयत्ता का खूब अच्छा प्रमाण दिया।—कालिदास, पृ० ६७।

इयार(उ)।—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'यार'। उ०—जग में जीवन थोरा थोरा वो इयार जी।—स० दरिया, पृ० १६८।

इरखा(उ)।—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'इर्षा'। उ०—सीतिन्ह कर इरखा नहि करना। साईं सग मदा जिय डरना।—चित्रा०, पृ० २२४।

इरखाना(उ)।—क्रि० प्र० [स० ईर्ष्या] ईर्ष्या करना। डाह करना। उ०—उनीदति अलसाति मोवत सधीर चाँकि चाहि चित अमित सगर्व इरखानि है।—मिखारी० अ०, भा० १, पृ० १४१।

इरण—संज्ञा पु० [स०] मरुभूमि। मरुस्थल [को०]।

इरम्मद<sup>१</sup>—वि० [म०] १ पीने में रुचि रखनेवाला। २ अग्नि का विशेषण [को०]।

इरम्मद<sup>२</sup>—संज्ञा पु० १. मेघज्योति। विद्युत। २. बड़वाग्नि [को०]।  
इरशाद—संज्ञा पु० [अ० इर्शाद] दे० 'इर्शाद'। उ०—बैखते ही मुझे महुफिब



मे यह इरशाद हुआ, कौन बैठा है उसे लोग उठाते भी नहीं।—शेर०, भा० १, पृ० ६७७ ।

इरपा(७)—सज्ञा स्त्री० [स० ईर्ष्या] दे० 'ईर्ष्या' । उ०—इंद्र देखि इरपा मन लायो । करि कै क्रोध न जल बरसायो ।—मूर०, ५, २ ।

इरपित(७)—वि० [स० ईर्षित] दे० 'ईर्षित' ।

इरसाल—सज्ञा पुं० [अ० इरसाल] १ प्रेषण । २. उपहार । भेंट ।

इरसी—सज्ञा स्त्री० [देश०] पहिए की धुरी ।

इरा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कश्यप की वह स्त्री जिससे बृहस्पति या उद्मिज उत्पन्न हुए । २ भूमि । पृथ्वी । ३. वाणी । वाचा । ४ जल । ५ अन्न । ६ मदिरा । शराव ।

यौ०—इराक्षीर=क्षीरसागर । इराचर=(१) ओला । करक । (२) जलचर । (३) भूमि में उत्पन्न ।

इराज—सज्ञा पुं० [स०] कामदेव [को०] ।

इराक—सज्ञा पुं० [अ०] पश्चिम एशिया का एक देश ।

इराकी<sup>१</sup>—वि० [अ०] इराक देश का ।

इराकी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ घोड़ों की एक जाति । उ०—सुमडे धुमडे उमडे इराकी ।—पद्माकर अ०, पृ० २८० । २. इराक देश का निवासी ।

इरादतन—अ० [अ०] इरादा करके । विचारपूर्वक । जानबूझकर [को०] ।

इरादा—सज्ञा पुं० [अ० इरादह] विचार । सकल्प । उ०—वदली जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया ।—वेला, पृ०, ८३ ।

इरावत<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] १ एक पर्वत का नाम । २ एक सर्प का नाम । ३ अर्जुन का एक पुत्र जो नागकन्या उलूपी से उत्पन्न हुआ था । इसका नाम वभ्रुवाहन था । ४. समुद्र । ५. मेघ ।

इरावत<sup>२</sup>—वि० तृप्तिदायक । सुखद [को०] ।

इरावती—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कश्यप ऋषि की मद्रमदा नाम की पत्नी से उत्पन्न कन्या, जिसका पुत्र ऐरावत नामक महागज हुआ । २ ब्रह्म देश की एक नदी । ३ पटपत्री । पथरचट ।

इरिका—सज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार का पौधा [को०] ।

इरिण—सज्ञा स्त्री० [स०] ऊसर । इरिण [को०] ।

इरिमेद—सज्ञा पुं० [स०] अरिमेदे । विद्वदिर [को०] ।

इरिविल्ला, इरिविल्लिका—सज्ञा स्त्री० [स०] सनिपात से उत्पन्न सिर की फुसी ।

इरिपा(७)—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ईर्ष्या' । उ०—जहँ प्रीतम को करत है कपट अनादर वाल । कछु इरिपा कछु मद लिए मो विद्वोक रसाल ।—भिखारी० अ०, भा० १, पृ० १४८ ।

इरेश—सज्ञा पुं० [स०] १. विष्णु । २. गरुड । ३. वरुण । ४. ब्राह्मण । ५. सम्राट् [को०] ।

इर्गइ—सज्ञा पुं० [म०] [स्त्री० इर्गला] दे० 'अर्गन' ।

इर्तकाव—सज्ञा पुं० [अ० इतिहास] १ पाप करना । २. कोई प्राराध करना ।

यौ०—इर्तकावेजुर्न=अपराध करना ।

इर्द गिर्द—क्रि० वि० [अनु० इर्द+फा० गिर्द] १. चारों ओर । चारों तरफ । २. आसपास । घूबर उबर । घगल बगल ।

इर्वारि, इर्वालु<sup>१</sup>—वि० [स०] हिंसक [को०] ।

इर्वारि, इर्वालु<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० एक प्रकार की ककड़ी [को०] ।

यौ०—इर्वारिस्तिका=एक प्रकार का खरबूजा ।

इर्वारिक—सज्ञा पुं० [म०] माँद के अंतर्गत रहनेवाला गानवर [को०] ।

इर्गाद—सज्ञा पुं० [अ०] १. ग्राजा । हुक्म । उ०—यूँ आंग उनकी कर्क के इशारा पलट गई । गोया कि लव से होके कुछ इर्गाद रह गया ।—कविता को०, भा० ४, पृ०, ५४८ । २. पथप्रदर्शन ।

इर्पना(७)—सज्ञा स्त्री० [म० एपणा] प्रबल इच्छा । उ०—छूटी त्रिविध इर्पना गाढी । एक लालसा उर अति बाढी ।—तुलसी (शब्द०) ।

इल<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स०] कर्दम प्रजापति के एक पुत्र का नाम जो वाहनीक देश का राजा था ।

इल<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [स० इला] पृथिवी । धरती । उ०—राक्षस हनि दाढे इल गह काढे सो थिर माढे निज सेनम् ।—राम० धर्म०, पृ० १७६ ।

इलजाम—सज्ञा पुं० [अ० इल्जाम] १. दोष । कलक । अपराध । उ०—मैं इलजाम उनको देता था कूमूर अपना निकल आया ।—शेर०, भा० १, पृ० ४७७ । २. अभियोग । दोषा-रोपण । उ०—चुप रहेंगे हया से वे कब तक, गुस्मा इनजाम से तो आया ।—शेर०, भा० १, पृ० ६६० ।

क्रि० प्र०—लपाना ।—देना ।

इलता—सज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जो दक्षिण भारत के मैदानों और पहाड़ों में होता है । उसमें बहुत बड़े बड़े फूल और फल लगते हैं । इसके छोटे छोटे कलनों से बहुत अच्छा कागज बनता है ।

इलम(७)—सज्ञा पुं० [अ० इल्म] दे० 'इल्म' । उ०—दादू अलिक एक अल्ला का जे पढि जायँ कोई । कुरान कतेवा इलम गव पढि करि पूरा होई ।—दादू०, पृ० ४७ ।

इलमास—सज्ञा पुं० [अ०] १ हीरा । २. शीशा [को०] ।

इलय—वि० [स०] गतिविहीन [को०] ।

इलव—सज्ञा पुं० [स०] १ हलवाहा । २. गरीब आदमी । ३. किमान । कर्पक ।

इलविला—सज्ञा स्त्री० [स०] १. विधवा की स्त्री, तृणपिंडु की कन्या और कुवेर की माता का नाम । २. पुनस्त्य की स्त्री ।

इलहाक—सज्ञा पुं० [अ० इल्हाक] १. सबध । मित्रता । संयोजन । २. किसी वस्तु को किसी दूसरी वस्तु के साथ मिला देने का कार्य ।

इलहाकदार—सज्ञा पुं० [अ० इल्हाक+फा० दार] वह मनुष्य जिसके साथ बंदोबस्त के बत मानुजारी प्रदा करने का इरारा-रनामा हो । नवरदार या नवरदार ।

इलहाम—सज्ञा पुं० [अ० इल्हाय] ईश्वर का शब्द । देववाणी । ईश्वरीय प्रेरणा । आत्मा की भावाज । आत्मिक दृष्टि ।

इलहामी—वि० [अ० इल्हामी] जिसको इलहाम हुआ हो । ईश्वर द्वारा प्रेरित । अंतरात्मा में स्फुरित ज्ञान में गवद्ध । [को०] ।

यौ०—इलहामी किताब=ईश्वरीय प्रेरणा से रचित पुस्तक । धर्मग्रंथ ।



इला-सखा ली० [सं०] १ पृथ्वी। २ पार्वती। ३ सरस्वती। वाणी।  
४. बुद्धिमती स्त्री। ५ गी। धेनु। ६ वैवस्वत मनु की कन्या जो बुध को ग्राही थी और जिससे पुरूरवा उत्पन्न हुआ था।  
इडा। ७ राजा इक्ष्वाकु की एक कन्या का नाम। ८ कर्दम प्रजापति का एक पुत्र जो पार्वती के गान से स्त्री हो गया था।  
९. एक की संख्या।

इलाका—सखा पुं० [अ० इलाक] १ सवध। लगान। उ०—कंधी कछू राखै राकापनि सो इनाका भारी भूमि की सनाका कै पताका पुन्यगान की।—पद्याकर ग्र०, पृ० २६२। २ एक से अधिक भोजे की जमींदारी। राज्य। रियासत। उ०—१३ दानव बुध्दिंठर के सन् १११ का है जो इलाका मंसूर में मिला है।—भारतेंदु प्र., भा० ३, पृ० १३५।

यी०—इलाकेदार।

इलाचा—सखा पुं० [देश०] एक कपड़ा जो रेशम और सूत मिला कर बुना जाता है।

इलाज—सखा पुं० [प्र०] १ दवा। औषध। २. चिकित्सा। ३ निवारण का उपाय, युक्ति या तदधीर। उ०—उदर भरन के कारन प्राणी करत इलाज।—प० सप्तक, पृ० ३३०।

इलादा (पु०-वि०) [हि०] दे० 'ग्रन्थदा'। उ० शब्द पद क्या सुनाता है भेद सबसे इलादा है। सत तुलसी०, पृ० ३६।

इलापत्र—सखा पुं० [म०] एक नाग का नाम।

इलाम (पु०-सखा पुं० [अ० ऐलान] १ इतना नाम। २. द्रुम। आज्ञा। उ०—ठान्यो न सलाम, मान्यो माहि को इलाम, धूमधाम कै न मान्यो रामसिंह हू को वरजा।—मृपण ग्र०, पृ० ५८।  
इलायची—सखा ली० [सं० एला + ची, फा० 'च' (प्रत्य०)] एक सदाबहार पेड़ जिसकी शाखाएँ खड़ी और खार से आठ फुट तक ऊँची होती हैं। यह दक्षिण में कनारा, मंसूर, कुर्ग तिरुवाकुर और मदुरा आदि स्थानों के पहाड़ों जंगलों में आप से आप होता है। यह दक्षिण में लगाया भी बहुत जाता है।

विशेष—इलायची के दो भेद होते हैं, सफेद (छोटी) और काली (बड़ी)। सफेद इलायची दक्षिण में होती है और काली इलायची या बड़ी इलायची नैपाल में होती है, जिसे बँगला इलायची भी कहते हैं। बड़ी इलायची तरकारी आदि तथा नमकीन भोजनों के मसालों में दी जाती है। छोटी इलायची मीठी चीजों में पड़ती है और पान के साथ खाई जाती है। सफेद या छोटी इलायची के भी दो भेद होते हैं—ननावार की छोटी और मंसूर की बड़ी। मलावारी इलायची की पत्तियाँ मंसूर इलायची से छोटी होती हैं और उनकी दूधरी और सफेद सफेद बारीक रोई होती है। इसका फल गोलाई लिये होता है। मंसूर इलायची की पत्तियाँ मलावारी से बड़ी होती हैं और उनमें रोई नहीं होती। इसके लिये तर और छायादार जमीन चाहिए, जहाँ से पानी बहुत दूर न हो। यह कुहरा और समुद्र की ठंडी हवा पार कर खूब बढ़ती है। इसे धूरा और रानी दोनों से बचाना पड़ता है। वार कानिक में यह बोई जाती है अर्थात् इसकी बेहन डाली जाती है। १७-१८ महीने में जब पीपे चार फुट के हो जाते हैं, तब उन्हें खोदकर मुपारी के पेड़ों

के नीचे लगा देते हैं और पत्ती की छाव देते रहते हैं। लगाने के एक ही वर्ष के भीतर यह चैत बँगला में फूलने लगता है और असाढ़ सावन तक उममें ढोही लगती है। वग कानिक में फल तैयार हो जाता है और इसके गुच्छे या पीपे लोड लिए जाते हैं और दो तीन दिन गुप्ताफ फलों को मलकर अलग कर लेते हैं। एक पेड़ में पाव भर लगभग इलायची निकलती है। इसका पेड़ १० या १२ वर्ष तक रहता है। कुर्ग से इलायची गुजरात होकर और प्रांतों में जाती थी, इसी में इसे गुजराती उलायची भी कहते हैं।

यी०—इलायची डोरा = इलायची की ढोही।

इलायचीदाना—सखा पुं० [हि० इलायची + फा० दाना] १. इलायची का मीठा या दाना। २ एक प्रकार का मिठाई। चोनी पाया हुआ इलायची या पोम्मे का दाना।

इलायची पंडू—सखा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली फल।

इलावर्त (पु०-सखा पुं० [सं०] दे० 'इलावृत्त'।

इलावृत्त, इनावृत्त—सखा पुं० [म०] जवू द्वीप के नौ खण्डों में से एक विशेष—भागवत के अनुसार यह सुमेरु पर्वत को घेरे हुए है। इसके उत्तर में नील, दक्षिण में निपथ पश्चिम में मात्यवान् और पूर्व में गधमादन पर्वत है।

इलाही—सखा पुं० [प्र०] ईश्वर। परमेश्वर। परमात्मा। भगवान् खुदा। उ०—यह रंग कीन रने तेरे मिया इलाही।—कविता को०, भा० ४, पृ० ३१३।

इलाही—वि० ईश्वरमन्वधी। ईश्वरीय। जैसे,—फाए हलाही। उ०—कीन को कलेऊ घों करैवा भयो कान अर का पैं घों परैया भयो गजब इलाही है।—पद्याकर ग्र., पृ० २२८।

इलाहीखर्च—सखा पुं० [अ० इलाही + फा० खर्च] फजून खर्च। अधिक खर्च। बेहिसाव खर्च। अपव्य।

इलाहीगज—सखा पुं० [अ० इलाही + फा० गज] अन्वर का चनाया हुआ एक प्रकार का गज जो ४१ अग्रुन (३३ १/२ इंच) का होता है और जो अब तक इमारत आदि नापने के काम में आता है।

इलाहीमुहर<sup>१</sup>—वि० [अ० इलाही + फा० मुह] ज्यों का त्यों। प्रकृता। खालिस।

इलाहीमुहर<sup>२</sup>—सखा ली० प्रमानत। धरोहर। न्यास।

इलाहीरात—सखा ली० [अ०] रतजगे की रात।

इलाहीसन्—सखा पुं० [अ० इलाही + हि० रात] अन्वर बादशाह का चलाया एक सन् या सवत्।

इलिका—सखा ली० [म०] पृथ्वी [को०]।

इली—सखा ली० [सं०] छोटी तम्बार। कटार [को०]।

इलीश, इलीष—सखा ली० [सं०] हिन्सा मछली।

इलेक्ट्रिक—वि० [अ०] विजली मन्वधी। विजली का।

यी०—इलेक्ट्रिक पावर = विजली की शक्ति। इलेक्ट्रिक लाइट = विजली की रोशनी।

इलेक्ट्रिकन—वि० [अ०] विजली सवधा [को०]।

इलेक्ट्रीसिटी—सखा ली० [अ०] विजली। विद्युत् [को०]।

इलेक्ट्रो<sup>१</sup>—सखा पुं० [अ०] विजली द्वारा तैयार किया हुआ। इलेक्ट्रिक का। जैसे,—इलेक्ट्रो टाइप, इलेक्ट्रो प्रस।

इलेक्ट्रो<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० तसवीर आदि का वह छप्पा या ग्लास जो बिजली की सहायता से तैयार किया गया हो।

यी०—इलेक्ट्रो टाइप=बिजली द्वारा किया जानेवाला अंकन या खुदाई का कार्य। इलेक्ट्रोपेथी=बिजली के तरंगसंचार द्वारा किसी रोग की बिकृति करने की प्रक्रिया।

इलेक्ट्रोन--सज्ञा पुं० [अ०] परमाणु (एटम) का अवयव जो उसके नाभिक (न्यूक्लियस) का चक्कर लगाता रहता है और जिसमें विद्युत् का ऋणावेश होता है।

इलजाम—सज्ञा पुं० [अ० इलजाम] आरोप। दोषारोपण। उ०—इलजाम यह रखा है खिलवत में कहा होता।—शेर०, भा० १, पृ० ६६५।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

इलतजा—सज्ञा स्त्री० [अ० इलतिजह] दे० 'इलतिजा'। उ०—कहीं वह आके मिटा दे न इलतजार का लुफ। कहीं कबून न हो जाय इलतजा मेरी।—शेर०, भा० १, पृ० ५४५।

इलतमास—सज्ञा स्त्री० [अ० इलतिमास] अनुगोच। प्रार्थना। उ०—(क) मुवह तक शमा मर को धुनती रही। क्या पलंगे ने इलतमास किया।—कविता को०, भा० ४, पृ० १७२। (ख) मेरी आप से यही इलतमास है कि आप उसकी वजारत कबूल करें।—मान०, भा० १, पृ० १८७।

इलतिजा—सज्ञा स्त्री० [अ० इलतिजह] १ निवेदन। प्रार्थना। २ मिन्नत। खुशामद।

क्रि० प्र०—करना।

इलतिफात—सज्ञा स्त्री० [अ० इलतिफात] १ कृपा। दया। २ ध्यान देना [को०]।

इलतिवास—सज्ञा पुं० [अ०] समानता। सादृश्य [को०]।

इलतिवा—सज्ञा पुं० [अ०] [वि० मुलतवी] किसी कार्य के लिये स्थिर समय का टल जाना। तारीख टलना।

विशेष—इम शब्द का प्रयोग अदालती कार्रवाइयो में अधिक होता है।

इल्म—सज्ञा पुं० [अ०] [वि० इल्मी] विद्या। ज्ञान। जानकारी। उ०—इल्म और दौलत जहाँ से मिले हासिल करनी चाहिए।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १२४।

यी०—इल्मेअदव=साहित्यशास्त्र। इल्मेइलाही=बहाविद्या, अध्यात्म। इल्मेगैव=परोक्षविज्ञान। इल्मेनुजूम=ज्योतिष विज्ञान।

इल्लत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ रोग। बीमारी। २ बाधा। झकड़। जैसे,—बुरी इल्लत पीछे लगी। ३ लत। व्यसन। उ०—पापों के बढ़ते दिल टूटें इल्लत की सहज लतें छूटें।—बेला, पृ० ७६। ४ दोष। अपराध। जैसे,—वह किस इल्लत में गिरपतार हुआ था।

मुहा०—इल्लत पालना=बुरी आदत डाल लेना।

यी०—इल्लत आफताव=कमल रोग। इल्लत फादली=निमित्त कारण। इल्लत माही=उपादान कारण।

इल्लल—सज्ञा पुं० [स०] एक पक्षी [को०]।  
इल्ला<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [स० कौल] छोटी कड़ी फुमी जो चमड़े के ऊपर निकलती है। यह मसे के समान होती है।

इल्ला<sup>२</sup>—अव्य० [अ० इल्लह] किन्तु। लेकिन। पर। उ०—इल्ला, अब जब कि हम दोनों एक तीसरे की रिआया हैं। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६।

इल्लिश, इल्लिस—सज्ञा पुं० [स०] इलीश। हिलमा मछली [को०]।

इल्ली—सज्ञा स्त्री० [स० इल्लिका] चीटी आदि के बच्चों का वह पहला रूप जो अंडे में निक्लने के उपरान्त तुरत होता है।

इल्लल—सज्ञा पुं० [म०] १ एक दैत्य या असुर का नाम।

विशेष—इसका एक नाम आतापि भी था। यह अपने छोटे भाई वातापि को भेडा बनाकर ब्राह्मणों को खिला देता और फिर उसका नाम लेकर बुलाता था। तब वह ब्राह्मण का पेट फाड़कर निकल आता था। इन दोनों को अग्रमृत्य मुनि खाकर पचा गए थे।

२ ईल या वाम मछली।

इल्लला—सज्ञा पुं० [म०] मृगशिरा नक्षत्र के मिर पर रहनेवाले पौव तारों का समूह।

इव—अव्य० [म०] उपमावाचक शब्द। समान। नाई। तरह। सदृश। तुल्य। जैसे। उ०—निज अघ समुक्ति न कछु रुहि जाई। तपै अवा इव उर अधिकाई।—मानस १। ५८।

इवापोरेशन—सज्ञा पुं० [अ० इवपोरेशन] गर्मी पाकर किसी पदार्थ का भाप के रूप में परिवर्तित होना। भाप बनकर उड़ना। वाष्पन। वाष्पीभवन। वाष्पीकरण। उच्छोषण।

इशरत—सज्ञा स्त्री० [अ०] सुख। चैन। आराम। भोग विंगम। उ०—फिर वह चर्चे हो फिर वही बातें। दिन हो इशरत के, ऐश की रातें।—शेर०, भा० १ पृ० ३७७।

यी०—ऐश व इशरत।

इशरती—वि० [अ० इशरत+ई (प्रत्य०)] आरामतन्त्र। विलासी। उ०—इशरती घर की मुहव्वत का मजा भूल गए।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६३३।

इशा—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ सध्या। २ रात। ३ रात की नमाज [को०]।

इशारत—सज्ञा स्त्री० [अ०] इशारा। संकेत। उ०—न मुझसे बोला न की इशारत न दी तमल्ली न कुछ सँमाला।—कविता को०, भा० ४, पृ० ३२५।

इशारा—सज्ञा पुं० [अ० इशारह] १ संन। संकेत। चेष्टा। उ०—यूँ आँख उनकी करके इशारा पलट गई। गोया कि लव से होके कुछ इशारे रह गया।—कविता को०, भा० ४, पृ० ५४८। २, संक्षिप्त कथन। उ०—जो इशारे में काम हो नक्का तो मुझको इतने बढ़ाकर कहने मैं क्या लाम।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २७२। ३ वारंकी महारा। सूक्ष्म आशय। जैसे,—एक लकड़ी के इशारे पर यह मट्ठक ऊपर टिका है। ४ गुप्त प्रेरणा। जैसे,—इन्हीं के इशारे में उसने यह काम किया।

यी०—इशारेबाजी=इशारा करना।

इशारात—सज्ञा पुं० इशारा का बहुवचन दे० 'इशारा'। उ०—नया बात कोई उस बुले ऐयार की समझे। बोले हैं जो हमसे तो इशारात कहीं और।—कविता को० भा० ४, पृ० २२३।

इशिका, इशीका—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपीका'।

इश्क—सज्ञा पुं० [अ० इश्क][वि० आशिक, माशूक] मूहव्वत। चाह।

प्रेम । लगन । अनुराग । आसक्ति । उ०—गम बहुत दुनिया मे है पर इश्क़ का गम और है । है इसी आलम मे लेकिन उनका आलम और है ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २२८ ।

यौ०—इश्क़मजाजी=लौकिक प्रेम । वासनायुक्त प्रेम । इश्क़-हकीमी=आध्यात्मिक प्रेम । ईश्वर के प्रति प्रेम ।

इश्क़वाज—[फा० इश्क़वाज] इश्क़ करनेवाला । प्रेमी । [को०] । इश्क़वाजी—संज्ञा स्त्री [अ० इश्क् + फा० वाजी] प्रेम के चक्कर मे पड़ना । उ०—इश्क़वाजी वाजिए शतरज है । चाल नादाँ रह गया दाना चला ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५१४ ।

इश्क़पेचाँ—संज्ञा पुं [अ०] एक प्रकार की वेल जिसकी पत्तियाँ सूत की तरह वारीक होती हैं और जिसमे लाल फूल लगते हैं । उ०—(क) दरखतो को सुखाता है लपटना इश्क़पेचाँ का ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३६४ । (ख) अत मे जब वो इश्क़पेचे की वेल पर जाकर बैठा तब मुझै उसके पकड़ने का समय मिला ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६२ ।

इश्क़िया—वि० [अ० इश्क़ियह] प्रेमसवधी । श्रृ गारिक ।

इश्तहार—संज्ञा पुं [अ०] विज्ञापन । नोटिश । जाहिरात । एलान । उ०—शहरो शहरो मुल्को मुल्को मे उन्हीं का इश्तहार ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १४१ ।

इश्तहारी—वि० [अ०] विज्ञापित । जिसके लिये नोटिस या सूचना निकाली गई हो [को०] ।

इश्तियाक—संज्ञा पुं [अ० इश्तियाक] १ शौक । २. इच्छा । अभिलाषा [को०] ।

इश्तियाल—संज्ञा पुं [अ०] १ दे० 'इश्तियालक' । २ भडकाना । उत्तेजित करना । ३ ली । लपट [को०] ।

इश्तियालक—संज्ञा स्त्री [अ०] १ वह सीक जो वत्ती बढ़ाने के लिये दीपक मे पड़ी रहती है । टहलवी । २ बढ़ावा उत्तेजना । क्रि० प्र०—देना ।

इश्तिराक—संज्ञा पुं [अ०] शिकरत । सामेदारी [को०] ।

इश्तिहा—संज्ञा स्त्री [प्र० इश्तिहह] १. चाह । अभिलाषा । २. बुमुक्षा । मूख [को०] ।

इप—संज्ञा पुं [स०] १ क्वार का महीना । आश्विन । २ वलवान् व्यक्ति ।

इषण, इषणा—संज्ञा स्त्री [म० एषणा] प्रवृत्ति इच्छा । कामना । स्वाहिष । वासना ।

इषणि—संज्ञा स्त्री [स०] १ मेजना । २ अभिलाषा [को०] ।

इषराया—संज्ञा स्त्री [म०] उत्कट अभिलाषा । प्रवल इच्छा [को०] ।

इपना—संज्ञा स्त्री [स० इषणा] दे० 'इषणा' ।

इषव्य—वि० [स०] वाणविद्या मे निपुण [को०] ।

इपित—वि० [स०] १ चलाया हुआ । २. प्रेषित । ३. उत्तेजित । प्रेरित । ४. तीव्र । प्रचंड [को०] ।

इपीका—संज्ञा स्त्री [स०] १ गाँडर या मूँज के बीच की सीक जिसके ऊपर जीरा या भूषा होता है । २ वाण । तीर । ३. हाथी की आँख का डेला ।

इपु—संज्ञा पुं [स०] १ वाण । तीर । २. क्षेत्रगणित मे वृत्त के अतर्गत जीवा के मध्यबिंदु मे परिधि तक खींची हुई मीची रेखा । दे० 'शर' । ३. पाँच की सख्या ।

इपुकार—संज्ञा पुं [स०] वाण बनाने का काम करनेवाला हो [को०] ।

इपुघर—संज्ञा पुं [स०] वाण चलानेवाला व्यक्ति । धनुर्वर [को०] ।

इपुधि—संज्ञा पुं [स०] तूण । तूणीर । तरकश ।

इपुधी—संज्ञा पुं [स० इपुधि] दे० 'इपुधि' । उ०—नेकु जही दुचितो चित कीन्हो । शूर वडी इपुधी धनु दीन्हो ।—केशव (शब्द०) ।

इषध्या—संज्ञा स्त्री [स०] गिडगिडाना । निवेदन करना [को०] ।

इषुपथ—संज्ञा पुं [स०] वाण की मार । वाण की पट्टी [को०] ।

इपुपुष्पा—संज्ञा स्त्री [स०] एक प्रकार का पौधा [को०] ।

इपुमात्र—संज्ञा पुं [स०] धनुष के बराबर लंबा एक माप जो लगभग तीन फुट का होता है ।

इपुमान—वि० [स० इपुमत < इपुमान्] वाण चलानेवाला । तीरदाज । उ०—तब इपुमान प्रधान चलेउ इपुमान ज्ञानधर । देवश्रवा सतान समर पर सान मान हर ।—गोपाल (शब्द०) ।

इपुमान—संज्ञा पुं वमुदेव का भाई । देवश्रवा का पुत्र ।

इपूपल—संज्ञा पुं [स०] किले के फाटक पर रखी जानेवाली एक प्रकार की तोप जिसे ककड पदर डालकर छोड़े जाते थे ।

इष्ट—वि० [स०] १ अभिलषित । चाहा हुआ । वांछित । जैसे,—(क) परिश्रम मे इष्ट फल की प्राप्ति होती है । (ख) हमे वहाँ जाना इष्ट नहीं है । २ अभिप्रेत । जैसे,—प्रधकार का इष्ट यह नहीं है । ३ पूजित । ४ अनुकूल । ५ प्रिय ।

यौ०—इष्टदेव ।

इष्ट—संज्ञा पुं १. अग्निहोत्रादि शुभ कर्म । इष्टापूर्त । धर्मकार्य । २. वह देवता जिसकी पूजा से कामना सिद्ध होती है । इष्टदेव । कुलदेव । ३ अधिकार । वश । जैसे,—उसको देवी का इष्ट है । ४. मित्र । दोस्त ।

यौ०—इष्टमित्र ।

५. पति । ६. रेंड का पेड़ । ७. ईंट ।

इष्टका—संज्ञा स्त्री [स०] १ ईंट । यज्ञकुट बनाने की ईंट ।

इष्टकाचित—वि० [स०] ईंटो द्वारा निर्मित [को०] ।

इष्टकाचिति—संज्ञा स्त्री [म०] ईंटो की पक्किवद्ध जोड़ाई । उ०—इम स्तूप की इष्टकाचिति अपने ढग की अनूठी है ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३०६ ।

इष्टकान्यास—संज्ञा पुं [स०] शिलान्यास । नींव रखना [को०] ।

इष्टकापथ—संज्ञा पुं [म०] १ मुगवित वास की जड़ । २ ईंट द्वारा निर्मित मार्ग [को०] ।

इष्टकाल—संज्ञा पुं [स०] फलित ज्योतिष मे किसी घटना के घटित होने का ठीक समय ।

इष्टगव—संज्ञा पुं [स० इष्टगव्य] १ सुगन्धित वस्तु । २. सिकता । बालू [को०] ।

इष्टजन—संज्ञा पुं [स०] प्रिय व्यक्ति [को०] ।

इष्टता—संज्ञा स्त्री [स०] मित्रता । मिताई । दोस्ती ।

इष्टदेव—सज्ञा पुं० [सं०] गाराधदेव। पूज्यदेवता। वह देवता जिनकी पूजा से कामना सिद्ध होनी हो। कुलदेवता। उ०—लहै बडाई देवता इष्टदेव जव होइ।—तुनसी ग्रं०, पृ० १२६।

इष्टदेवता—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'इष्टदेव'।

इष्टा—सज्ञा स्त्री० [सं०] प्रिया। प्रेमिका [को०]।

इष्टापत्ति—संज्ञा स्त्री० [म०] वादी के कथन में प्रतिवादी की दिखाई हुई ऐसी अगति जो उक्त कथन में किसी प्रकार का व्याघात या अंतर न डाल सके और जिसे अनुकूल होने से वादी स्वीकार कर ले। जैसे, वादी ने कहा—जीव ब्रह्म है। प्रतिवादी ने कहा—तो ब्रह्म भी जगत् की झूठी कल्पना करके भ्रष्ट हुआ। वादी—हो, इससे क्या हानि।

इष्टापूर्त—सज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्र करना, कुप्रां, तानाव खुदाना, वगीचा लगवाना आदि शुभ कर्म।

विशेष—वेद का पठन पाठन, अतिथिभोजन और अग्निहोत्र इष्ट कहलाते हैं, और कुप्रां, तालाव खुशाना, देवमंदिर बनवाना, वगीचा लगाना आदि कर्म 'इष्टापूर्त' कहलाते हैं। बड़े बड़े यज्ञों के वद होने पर इष्टापूर्त का प्रचार अधिकता से हुआ है।

इष्टापूर्ति—सज्ञा पुं० [सं०] १ 'इष्टापूर्त'। २ काम्य या वाछिन की मिद्धि या उपलब्धि।

इष्टि—सज्ञा स्त्री० [म०] १ इच्छा। अभिलाषा। २ व्याकरण में भाष्यकार की वक्ष्यमति जिसके विषय में सूत्रकार ने कुछ न लिखा हो। व्याकरण का वह नियम जो सूत्र और वार्तिक में न हो। ३ यज्ञ। ४ हवि। ५ प्राप्ति तथा मिद्धि के निमित्त होनेवाला प्रयत्न। ६ निवेदन। ७ निमग्नता [को०]।

इष्टिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'इष्टका' [को०]।

इष्टिपत्र—सज्ञा पुं० [म०] १ कृष्ण। कज्जु। २ यमुर [को०]।

इष्टिपशु—सज्ञा पुं० [म०] यज्ञ में बलि दिया जानेवाला पशु [को०]।

इष्टी—वि० [म०] इष्टिन् इष्टिसिद्धि करनेवाला। उ०—इष्टी स्वांगी बहु मिने हिरमी मिने अतः।—मतवाणी०, भा० १, पृ० १२८।

इष्टु—सज्ञा स्त्री० [म०] इच्छा। अभिलाषा [को०]।

इष्टु<sup>१</sup>—वि० [सं०] इच्छुक [को०]।

इष्टु<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १. कामदेव। २ वसन्त ऋतु। ३ गमन [को०]।

इष्टु<sup>३</sup>—सज्ञा पुं० [म०] वसन्त ऋतु।

इष्टु<sup>४</sup>—सज्ञा पुं० [म०] अध्यात्म की शिक्षा देनेवाला गुरु [को०]।

इष्टुनीक—सज्ञा पुं० [सं०] बाण की अनी। तीर की नोक [को०]।

इष्टुसन—सज्ञा पुं० [सं०] धनुष [को०]।

इष्टुस्त्र—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'इष्टुसन' [को०]।

इष्टुवास—सज्ञा पुं० [म०] १. बाण चलाना। २ धनुष। ३ धनुर्वेद। ४ योद्धा [को०]।

इस—मर्व० [सं० एष] सर्वनाम 'यह' शब्द का विभक्ति के पहले आदिष्ट रूप जो समय, स्थान आदि के अनुसार समीपस्थ, प्रसंग के अनुसार प्रस्तुत और उत्प्रेष के अनुसार कुछ ही पहले प्रयुक्त होता है।

विशेष—जब 'यह' शब्द में विभक्ति लगानी होती है, तब उसे 'इस' कर देते हैं। जैसे,—इसने, इसको, इससे, इसमें।

इसकदर—सज्ञा पुं० [यू० इस्कंदर] सिकंदर बादशाह। अलेक्जेंडर।

उ०—नग अमोल अम पाँचो मान समुंद वह दीन्ह। इसकदर नहि पाई जोरे समुंद जस लीन।—नायमी (शब्द०)।

इसक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [अ० इस्क] दे० 'इस्क'। उ०—याकी करि करि जतन अति अतन तपन अति ताप। गजत्र हिय समझ्यो न तब अजब इसक सताप।—सं० सप्तक, पृ० ३७७।

इसतरी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [मं० स्त्री, हिं० इस्त्री] दे० 'म्हरी'। उ०—नारि पुरुष की इसतरी पुरुष नारि का पूत।—सन्तवाणी०, भा० १, पृ० ५६।

इसनान<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं० स्नान, हिं० असनान] दे० 'स्नान'। उ०—वार वार स्नान जेऊ गंगा इसनान करै न कुटेव देव होन न प्रज्ञान है।—सुंदर ग्रं० (जी०) भा० १, पृ० १०५।

इसपज—सज्ञा पुं० [अ० स्पज] समुद्र में एक प्रकार के अत्यंत छोटे कीड़ों के योग से बना हुआ मुलायम रुई की तरह का मजीब पिंड जिसमें बहुत से छेद होते हैं, जिनमें से होकर पानी आता है। मुर्दा वादल। अन्ने मुर्दा।

विशेष—इसपज भिन्न भिन्न आकार के होते हैं। इनकी सृष्टि दो प्रकार से होती है—एक तो सन्निभाग द्वारा और दूसरे रजकीट और वीर्यकीट के संयोग से। इसकी वादामी रंग की, रुई के समान मुलायम ठठरी जिसमें बहुत से छेद होते हैं, बाजारों में इसपज के नाम से बिक्री है। इसमें पानी सोखने की बड़ी शक्ति होती है, इसी से लडके इसमें स्नेह पोछने और डाक्टर लोग घाव पर का खून आदि सुखाते हैं। पानी सोखने पर यह खूब मुलायम होकर फूल जाता है।

इसपात—सज्ञा पुं० [सं० अयत्पत्र अयवा पुर्त० स्पेडा] एक प्रकार का कार्बन मिश्रित कड़ा लोहा। फौलाद।

इसपिरिट—सज्ञा स्त्री० [अ० स्पिरिट] १ किसी प्रकार का सन। २. एक प्रकार का खालिस शराब।

इसपेशल<sup>१</sup>—वि० [अ० स्पेशल] विशेष। खास।

इसपेशल<sup>२</sup>—स्त्री० नियत समयों पर चलनेवाली मचारी गाड़ी (रेल, मोटर आदि) के अतिरिक्त विशेष गाड़ी जो किसी विशेष अवसर पर या किसी विशेष व्यक्ति की यात्रा के लिये छोड़ी जाती है।

इसवगोल—संज्ञा पुं० [फा० इस्पगगोल, इस्पगोल] चिकित्सा कार्य में प्रयुक्त एक भांडी या पोछा।

विशेष—यह फारस में बहुत होता है। पत्राव और पत्र में भी इसकी भांडियाँ लगाई जाती हैं। इसमें तिन के आकार के बीज लगते हैं जो भूरे और गुलाबी होने हैं। यूनानी चिकित्सा में इसका व्यवहार अधिक है। यह शीतल, वदकारक और रक्तनिमारनाशक है। यह ववाणीर, नरुसीर आदि रक्तक्षय की बीमारियों में बहुत फायदा करता है। अतिवार और नूनाक में भी दिया जाता है।

इसम<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [अ० इम्] दे० 'इम्'। उ०—पुत्राजय इसम अंगाली हमेशा।—दक्खिनी०, पृ० ११५।

इसमाईल—सज्ञा पुं० [इब०] १. इब्राहीम का बेटा जो हाजिरा

नाम्नी दामी से उत्पन्न हुआ या । २ सावर तत्र मे एक योगी का नाम जिसकी आन प्राय मत्रो मे दी जाती है ।

इसमाईली—सज्ञा पुं० [इव०] शीया मुसलमानो की एक शाखा [को०] ।

इसर०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ईश्वर' ।

इसराईल—सज्ञा पुं० [इव०] याकूब । पैगवर का नाम । २ यहूदी । ३ एक देश का नाम ।

इसराईली<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [इव०] याकूब के वंशज । यहूदी [को०] ।

इसराईली<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० इसरायल की भाषा ।

इसराईली<sup>३</sup>—वि० इसरायल देश संबंधी ।

इसराज—सज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का सारंगी की तरह का बाजा । उ०—इधर परदादी चपाकनी ने इसराज सँमालकर पीलू का रियाज करना आरम्भ किया ।—शरावी, पृ० १७ ।

इसराफ—सज्ञा पुं० [अ० इसराफ] फजूलखर्ची । अपव्यय [को०] ।

इसरफील—सज्ञा पुं० [इव० इसराफील] उस फरिश्ते का नाम जो कयामत के दिन दो बार सूर फूँकेगा । पहली बार जीवित प्राणी मृत हो जायेंगे और दूसरी बार सभी मृत जीवित हो जायेंगे [को०] ।

इसरार—सज्ञा पुं० [अ०] १ हठ । जिद । आग्रह । अनुरोध । उ०—तब वह इनकार और इसरार के लिए क्या वाकी छोडती हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६२ । २ सारंगी की तरह का एक बाजा ।

इसरी०—वि० [हि०] दे० 'ईश्वरीय' ।

सलाम—सज्ञा पुं० [अ० इस्लाम] [वि० इसलामिया] मुसलमानी धर्म । मुहम्मद साहब का चलाया हुआ धर्म ।

क्रि० प्र०—(कबूल) करना ।

इसलामी—वि० [अ०] इसलामसंबंधी ।

इसलाह—सज्ञा पुं० [अ० इस्लाह] सशोधन । दुरुस्त करना ।

इसवर०—सज्ञा पुं० [अ० ईश्वर] दे० 'ईश्वर' । उ०—इसवर सीध सेस चढे रथ ऊपर ।—रघु०, पृ० १०६ ।

इसहाक—सज्ञा पुं० [अ० इसहाक] इसलाम धर्म के एक पैगवर ।

इसा०—वि० [हि०] दे० 'ऐसा' । उ०—अडिग इसा है मेरु ज्यो डोलै न डुलाया ।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ५१२ ।

इसाई—वि० [हि०] दे० 'ईसाई' ।

इसान०—सज्ञा पुं० [अ० ईशान] दे० 'ईशान' । उ०—हिमवान कहेउ इसान महिमा अगम निगम न जानई ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३९ ।

इसारत०—सज्ञा स्त्री० [अ० इशारत] सकेत । इशारा । उ०—मुख सो न कह्यो कछु हाथ की इसारत सो गारी दै दै आपसी किंवारी दोऊ दै गई ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

इसिम—सज्ञा पुं० [अ० इसिम] दे० 'इस्म' । उ०—सत सिपाहिक पूत इसिम मे दाग न लागै ।—पलटू०, पृ० ३४ ।

इसी—सर्व० [हि० इस + ही वा ई (प्रत्यय)] 'इस' शब्द पर जोर देने के लिये यह रूप बनाता है ।

इसीका०—सज्ञा स्त्री० [अ० इसीका] दे० 'इपीका' ।

इसे—सर्व० [अ० एष] 'यह' का कर्मकारक और संप्रदानकारक रूप ।

इसै०—वि० [अ० इस्सै] इस प्रकार । ऐसा ।

इसो०—वि० [हि० ऐसा] । ऐसा । इस प्रकार ।

इस्क—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'इष्क' । उ०—तत्र इनको राग रंग को इष्क लग्यो ।—दो मी वावन०, भा० १, पृ० २८८ ।

इस्कात—सज्ञा पुं० [अ० इस्कात] गिरना । पतन । २ गर्भपात । हमन गिरना ।

इस्कूल०—सज्ञा पुं० [अ० स्कूल] दे० 'स्कूल' । उ०—कथा कहानी मिखन हिन इस्कूलन मे जाहि ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १८० ।

इस्ट<sup>१</sup>०—सज्ञा पुं० [अ० इस्ट] दे० 'इष्ट' । उ०—प्राय घर घर औरही वयण इष्ट दे वीच ।—वांकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ५७ ।

इस्ट<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [अ०] पूर्वं दिशा ।

इस्टामी—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'स्टाय' । उ०—या मेरे अल्लाह, अय मैं क्यों कर कहूँ । इस्टाम के कागज पर लिख दूँ, मुहर कर दूँ ?—संर०, पृ० ३० ।

इस्टेशन<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'स्टेशन' । उ०—इस्टेशन मे केवन दै ही कोम दूर पर ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८ ।

इस्तगी—सज्ञा स्त्री० [अ० इस्तिग] जहाजी मे वह रस्मी जो धिन्नी में लगी होती है और जिससे पान के किनारे आदि ताने और खींचे जाते हैं ।

क्रि० प्र०—चाँपना ।

इस्तकवाल—सज्ञा पुं० [अ० इस्तिकवाल] स्वागत । अग्रवाणी । उ०—चमन मे मुन खबर आने की इस्तकवाल को चनियाँ ।—कविता० को०, भा० ४, पृ० ४३ ।

इस्तखारा—सज्ञा पुं० [अ० इस्तखारह] देवी सहायता चाहना । ईश्वर से मंगलकामना करना । उ०—यहाँ नालो से मिलता है पियारा । अवम देखै है जाहिद इस्तखारा ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ३६ ।

इस्तमरारी—वि० [अ० इस्तमरारी] सब दिन रहनेवाला । जिसमे कुछ अदल बदल न हो । नित्य । अविच्छिन्न ।

यौ०—इस्तमरारी वदोवस्त = जमीन का वह वदोवस्त जिसमे मालगुजारी सदा के लिये मुकर्रर कर दी जाती है । यह वदोवस्त लार्ड कार्नवालिस ने उत्तर प्रदेश के कुछ भागो मे किया था ।

इस्तरी<sup>१</sup>—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'स्ट्री' । उ०—देखो हम दो टोगी दिए । मर्द इस्तरी उनमे जिए ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६५ ।

इस्तिजा—सज्ञा पुं० [अ० इस्तिजह] पेशाव करने के बाद मिट्टी के डेले मे इद्रिय मे लगी हुई पेशाव की बूँदो को मुखाने की क्रिया जो मुमनमानो में प्रचलित है । उ०—खडे होकर इस्तिजा मत करो ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६१ ।

मुहा०—इस्तिजे का डेला = अनाहूत व्यक्ति । तुच्छ मनुष्य ।

इस्तिजा लड़ना = अत्यंत मित्रता होना । दाँतकाटी रोटी होना ।

इस्तिजा लड़ाना = अत्यंत मित्रता करना ।

इस्तिकलाल सज्ञा पुं० [अ० इस्तिकलाल] दृढ़ता । मजबूती । सकल्प की दृढ़ता [को०] ।

इस्तिगासा—सज्ञा पुं० [इस्तिगासह] न्याय के निमित्त किया गया निवेदन । नालिश । फौजदारी का दावा [को०] ।

इस्तिरो—सज्ञा स्त्री० [अ० स्तरी (= तह करनेवाली) स्तु] घोड़ी का



वह श्रीजार जिससे वह धोने और सुखाने के बाद कपड़े की तह को जमाकर उसकी शिकन मिटाता है। इसके नीचे का भाग जो कपड़े पर रगड़ा जाता है, पीतल या लोहे का होता है। उसके ऊपर एक खोखला (हवादार) स्थान होता है, जिसमें कोयले के अगारे भरे जाते हैं।

इस्तिलाह—सज्ञा स्त्री [अ०] १ परस्पर मधि करना। २ परिभाषा द्वि अर्थ। परिभाषिक शब्दावली [को०]।

इस्तिस्नाय—सज्ञा पुं [अ०] १ पृथक् करना। अलग रखना। २ अपवाद होना [को०]।

इस्तिहकाम—सज्ञा पुं [अ०] दृढता। स्थिरता। पापदारी [को०]।

इस्तीफा—सज्ञा पुं [अ० इस्तीफा] नौकरी छोड़ने की दरखास्त। काम छोड़ने का प्रार्थनापत्र। त्यागपत्र।

क्रि० प्र०—देना।

इस्तेदाद—सज्ञा स्त्री [अ०] विद्या की योग्यता। लियाकत। विद्वत्ता।

इन्तेमाल—सज्ञा पुं [अ०] प्रयोग। उपयोग। व्यवहार।

क्रि० प्र०—करना।—मे आना।—मे लाना।—होना।

इस्त्रि, इस्त्री—सज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'स्त्री'। उ०—(क) वार वरग जो लिंग के भाषा में नहीं होइ। स्त्री पुस नपु सकहि इस्त्रि नपु सक जोइ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ५४४। (ख) वर वृक्ष को इस्त्री भाँवरि देति है।—मिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १५७।

इस्त्री—सज्ञा स्त्री [स० स्त्री, हि० इस्त्री] दे० 'इस्त्री'।

इस्त्रीजित—वि० [म० स्त्रीजित्] स्त्रियों का गुणाम। स्त्रीमत्त। उ०—कोउ कहै ये परम धर्म इस्त्रीजित पूरे। लख लावव सधान घरें आयुध के सूरें।—नद० ग्र०, पृ० १८१।

इस्थिर—वि० [म० स्थिर] दे० 'स्थिर'। उ०—(क) कहै कबीर सुनो भाई साधो करो इस्थिर मन ध्यान।—कबीर ग्र०, भा० ३, पृ० २०। (ख) बूढ़ा वारा जवान नहीं है कोई इस्थिर।—पलटू०, भा० १, पृ० ५४।

इस्नान—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'स्नान'। उ०—अथा जग वया तप मयमो क्या व्रत क्या इस्नान।—कबीर ग्र०, पृ० ३२६।

इस्पज—सज्ञा पुं [हि० इस्पज] दे० 'इस्पज'।

इस्पंद—सज्ञा पुं [फा०] राई।

मुहा०—इस्पंद करना = बुरी नजर दूर करने के लिये गई जलाना।

इस्पीच—सज्ञा स्त्री [अ० स्पीच] वस्तुता। भाषण। लेखन। उ०—करनी कछु नहि देत जग सिच्छा की इस्पीच।—प्रेमन०, भा० १, पृ० १६१।

इस्म—सज्ञा पुं [अ०] नाम। सज्ञा।

यी०—इस्मनवीसी = (१) गवाहीं की सूची। (२) किमी गवाही, नौकरी या जगह के लिये नामजद करने का कार्य। ३ पटवारी की जगह के लिये जमींदार का किमी व्यक्ति का नाम चुनना।

इस्लाम—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'इमलाम'। उ०—बुतपरस्ती को तो इस्लाम नहीं कहते हैं।—कविता को०, भा० ४, पृ० १२८।

इस्लोक—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'श्लोक'। उ०—कथा श्री कवित इस्लोक रसरी बटै वकै बहु वाय मुख मूढ़ मारी।—कबीर रे०, भा० २, पृ० ५।

इस्सर—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'इश्वर'। उ०—(क) आइ परा गुहनाथ गोमाई। पंथ वीच इस्सर की नाई।—इद्रा०, पृ० १५५। (ख) इस्सर गैठें दरिदर निकमै।—(लोक०)।

इह<sup>१</sup>—क्रि० वि० [सं०] इस जगह। इस लोक में। इस काल में। यहाँ इह<sup>२</sup>—सज्ञा पुं यह ससार। यह लोक। उ०—हृदय के जगते उ निवेदित इह के निवासी।—हरी घाम०, पृ० १६।

यी०—इहामुत्र।

इह<sup>३</sup>—सर्व० [हि०] दे० 'यह'। उ०—ते मर छाँडन अवनन माँही। पुरुषराव इह पौरुष नाही।—नद० ग्र०, पृ० १३५।

इहइ—सर्व० [हि० यह + ही] दे० 'यही'।

इहकाल—सज्ञा पुं [सं०] इस लोक का जीवन। लौकिक जीवन [को०]।

इहतिमाम—सज्ञा पुं [अ०] दे० 'एहत्तमाम' [को०]।

इहतिमाल—सज्ञा पुं [अ०] [वि० इहतिमाली] १ सभावना। २. सदेह [को०]।

इहतियाज—सज्ञा पुं [अ०] १ अभाव। आवश्यकता। २ अवसर।

इहतियात—सज्ञा स्त्री [अ०] १ सावधानी। खबरदारी। उ०—दिल के तई गिरह से कभी खोलती नहीं। है जुल्फ को भी अपने परेशाँ की इहतियात।—कविता को०, भा० ४, पृ० १६१। २. रक्षा। बचाव। उ०—दागो की अपने कपो न करे 'दर्द' परवरिष। हर वागवाँ करे है गुलिस्ताँ की इहतियात।—कविता को०, भा० ४, पृ० १६१।

यी०—इहतियाती कार्रवाई = अनिष्ट को रोकने के लिये किया जानेवाला प्रयास।

इहतियातन्—क्रि० वि० [अ०] सावधानीपूर्वक [को०]।

इहतिलाम—सज्ञा पुं [अ०] स्वप्नदोष [को०]।

इहलीला—सज्ञा स्त्री [सं०] इस लोक का जीवन तथा उससे सबद्ध समस्त क्रियाकलाप [को०]।

इहलोक—सज्ञा पुं [सं०] यह ससार। जगत्। दुनिया। उ०—किन्तु वह शीघ्र ही इहलोक में आने के लिये विवश हुआ।—रग-भूमि, पृ० ४७३।

इहलौकिक—वि० [म०] इहलोकसंघी। इस लोक का। ससारिक। २ इस लोक में सुख देनेवाला।

इहवाँ—क्रि० वि० [सं० इह] इस जगह। यहाँ।

इहवै—क्रि० वि० [सं० इह] यही। इसी स्थान पर।

इहसाना—सज्ञा पुं [अ०] दे० 'एहसान'।

इहाँ—क्रि० वि० [हि०] दे० 'यहाँ'। उ०—कहड़ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया।—मानस, २। ३३।

इहामुत्र—सज्ञा पुं [सं०] यह लोक और परलोक। उ०—स्वर्गादिक की करिय न इच्छा इहामुत्र त्यागै मुख दोह।—मुदर० ग्र०, भा० १, पृ० ४०।

इहामृग—सज्ञा पुं [सं० इहामृग] दे० 'इहामृग'।

इहि—सर्व० [हि०] दे० 'यह'। उ०—कहत लगे इहि भवन कोन के।—नद० ग्र०, पृ० २१४। २ दे० 'इस'। उ०—तिहुँ काल में प्रगट प्रभु प्रगट न इहि कलिकाल।—नद० ग्र०, पृ० १४३।

इहै—सर्व० [हि०] दे० 'यही'। उ०—घरनी घन घाम सरीर भलो सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै।—तुलसी ग्र०, पृ० २०७।





क्रि० प्र०—लगाना ।

ईदर—सब्बा पु० [देश०] आठ दस दिन की ब्याई हुई गाय के दूध को ओटाकर बनाई हुई एक प्रकार की मिठाई । प्योसी । ईदर ।

ई धन—सब्बा पु० [म० इन्धन] १. जलाने की लकड़ी, कोयला, कड़ा आदि । जलावन । जरवनी । उ०—विद्य न ईधन पाइए सायर जुरे न नीर । परं उपाम कुवेर घर जो विपच्छ रघुवीर ।—तुलसी (शब्द०) । २ किसी यंत्र को गतिशाल करने के लिये उसमें दी जानेवाली सामग्री या पदार्थ, जैसे—तेल, पेट्रोल, कोयला आदि । ३ ऐसी बात जो क्रुद्ध व्यक्ति को और अधिक उत्तेजित करने में सहायक हो ।

ई—सब्बा स्त्री० [म०] लक्ष्मी ।

ई०—सर्व० [सं० ई = निकट का सकेत] यह । उ०—(क) कहहि कवीर पुकारि कै ई लेख व्यवहार । एक राम नाम जाने बिना भव ब्रूहि मुखा ससार ।—कवीर (शब्द०) । (ख) विरल रमिक जन ई रस जान ।—विद्यापति०, पृ० ३०८ ।

ई—अव्य० [सं० हि०] जोर देने का शब्द । ही । उ०—पत्रा ही तिय पाइए वा घर के चहुँ पास । नित प्रति पुन्यो ई रहै आनन ओप उजास ।—विहागी (शब्द०) ।

ई—सब्बा पु० [म०] कामदेव [क्रि०] ।

ईकार—सब्बा पु० [सं०] 'ई' स्वर अथवा दीर्घ ई का सूचक वर्ण [क्रि०] ।

ईकारात—वि० [सं० ईकारात्] (शब्द०) जिसके अंत में 'ई' हो । वह शब्द जिसके अंत में ईकार हो ।

ईक्षु—सब्बा स्त्री० [म० इक्षु] दे० 'ईख' । उ०—मयी सरकरा ईक्ष रस व्यापि मिठाई माहि । सुंदर ब्रह्म मु जगत है, जगत ब्रह्म है नाहि ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८०२ ।

ईक्षक—मज्ञा पु० [मं०] १ देखनेवाला । दर्शक । २ विचार या विमर्श करनेवाला [क्रि०] ।

ईक्षण—सब्बा पु० [मं०] [वि० ईक्षणीय, ईक्षित, ईक्ष्य] १ दर्शन । देखना । २ आँख । उ०—पंकज के ईक्षण शरद हँसी ।—वेला, पृ० २२ । ३ दो (२) की संख्या का सूचक शब्द (क्रि०) । ४. विवेचन । विचार । जाँच ।

विशेष—इसमें अनु, नि, परि, प्रति, अभि, अप, उप, या सम् उपसर्ग लगाकर अन्वीक्षण, निरीक्षण, परीक्षण, प्रतीक्षण, अमीक्षण, अपेक्षण, उपेक्षण, समीक्षण आदि शब्द बनाए जाते हैं ।

ईक्षणिक, ईक्षणिक—सब्बा पु० [सं०] [स्त्री० ईक्षणिका] १ दैवज्ञ । ज्योतिषी । २. सामुद्रिक जाननेवाला ।

ईक्षा—सब्बा स्त्री० [सं०] १ दृष्टि । दर्शन । २. विवेचन । ३. आत्मज्ञान [क्रि०] ।

विशेष—इसमें परि, अप, मम्, उप, प्र, वि आदि लगाकर परीक्षा, समीक्षा, अपेक्षा, उपेक्षा, वीक्षा आदि शब्द बनाए जाते हैं ।

ईक्षिका—सब्बा स्त्री० [सं०] देखने की इद्रिय । आँख । दृष्टि [क्रि०] ।

ईक्षित—वि० [सं०] १ दृष्ट । देखा हुआ । २. विवेचित [क्रि०] ।

ईक्षिता—वि० [ईक्षित] देखनेवाला [क्रि०] ।

ईख—सब्बा स्त्री० [मं० इक्षु, प्रा० इक्खु] शर जाति का एक प्रकार जिसके डठल में मोठा रस मरा रहता है । इसके रस से गुड़ चीनी और मिथी आदि बनती है । डठल में ६-६ या ७-७ अंगुल पर गाँठें होती हैं और सिरे पर बहुत लंबी लंबी पत्तियाँ होती हैं, जिन्हें गंदा कहते हैं ।

विशेष—भारतवर्ष में इसकी दुग्राई चैत वैसाख में होती है कार्तिक तक यह पक जाती है, अर्थात् इसका रस मीठा होता जाता है और कटने लगती है । डठलो को कोटहू में पेरकर रस निकालते हैं । रस को छानकर कड़ाहे में ओटाते हैं । जब र पककर सूख जाता है तब गुड़ कहलाता है । यदि राय व १५ हुआ तो ओटाते समय कड़ाहे में रेंडी की गूदी का पुट देते हैं जिससे रस फट जाता है और ठंडा होने पर उसमें कलमें व. रवे पड़ जाते हैं । इसी राय से जूमी या चोटा दूर करके ० बनाते हैं । खाँड और गुड़ गला कर चीनी बनाते हैं ।

ईख के तीन प्रधान भेद माने गए हैं । ऊख, गन्ना और पौंढा । (क) ऊख—इसका डंठल पतला, छोटा और कड़ा होता है । इसका कड़ा छिलका कुछ हरापन लिये हुए पीला होता है और जल्दी छीला नहीं जा सकता । इसकी पत्तियाँ पतली, छोटी, नरम और गहरे हरे रंग की होती हैं । इसकी गाँठों में उतनी जटाएँ नहीं होती, केवल नीचे दो तीन गाँठें तक होती हैं । इसकी आँखें, जिनसे पत्तियाँ निकलती हैं, दबी हुई होती हैं । इसके प्रधान भेद घोल, मतना, कुसवार, लखडा, सरोनी आदि हैं । गुड़ चीनी आदि बनाने के लिये अधिकतर इसी की खेती होती है । (ख) गन्ना—यह ऊख से मोटा और लंबा होता है । इसकी पत्तियाँ ऊख से कुछ अधिक लंबी और चौड़ी होती हैं । इसका छिलका कड़ा होता है, पर छीलने से जल्दी उतर जाता है । इसकी गाँठों में जटाएँ अधिक होती हैं । इसके कई भेद हैं, जैसे,—प्रगील, दिक्चन, पसाही, काला गन्ना, केतारा, बढीखा, तका, गोडारा । इससे जो चीनी बनती है उसका रंग साफ नहीं होता । (ग) पौंढा—यह विदेशी है । चीन, मारिशस (मिरच का टापू), सिंगापुर इत्यादि से इसकी भिन्न भिन्न जातियाँ आई हैं । इसका डठल मोटा और गूदा नरम होता है । छिलका कड़ा होता है और छीलने से बहुत जल्दी उतर जाता है । यह यहाँ अधिकतर रस चूसने के काम में आता है । इसके मुख्य भेद थून, काला गन्ना और पौंढा है । राजनिघट्ट में ईख के इतने भेद लिखे हैं—पौंड़क (पौंढा) मीरक, वंशक (बढीखा), शतपोरक (मरोती), कातार (केतारा), तापसेक्षु, काष्टेक्षु (लखडा), सूचिपत्रक, नंपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर (काला गंदा), कोणकृत (कुशवार या कुसियार) ।

ईखत—वि० [सं० ईप्त्] दे० 'ईपत्' ।—नद० ग्रं०, पृ० १०० ।

ईखना—क्रि० सं० [सं०, ईक्षण प्रा० इक्खण] देखना । अवलोकना ।—(हि०) ।

ईखराज—सब्बा पु० [हि० ईख + राज] ईख बोनो का प्रथम दिन । ईच्छा—सब्बा स्त्री० [सं० इच्छा] दे० 'इच्छा' । उ०—जो प्रभुन की ईच्छा मई सो सही ।—दो सो वाचन०, भा० १, पृ० २२६ ।

ईछन—सब्बा पु० [सं० ईक्षण = आँख, प्रा० ईच्छन] आँख । उ०—दगनु लगत वेघत हियहि, विरल करत अँग आन । ये तेरे सवत विषम ईछन तोछन वान ।—विहारी २०, दो० ३४६ ।

ईछना—क्रि० सं० [सं० इच्छा] इच्छा करना । चाहना । उ०—बाहिर भीतर भीतर बाहिर ज्यों कोउ जानें रंग ही करि ईछो । जैसे ही आपुनो भाव है सुंदर तपोहि है दग खालि कै भीछो ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५७७ ।

ईछा(५)—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'इच्छा'। उ०—विपरी सवहि जुद्ध कै ईछा।—मानस, ६।४६।

ईछी(५)—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'इच्छा'। उ०—त्रेप मये विप, भावे न भूपण भोजन को कुछ हूँ नहि ईछी।—देव (शब्द०)।

ईजति(५)—संज्ञा स्त्री [अ० इज्जत] दे० 'इज्जत'। उ०—हिंदुवान द्रुपदी की ईजति वचैव काल भाटि विराटपुर बाहर प्रमान कै।—भूपण ग्र०, पृ० ६६।

ईजा—संज्ञा स्त्री [म० इजह्] दुख। तकलीफ। पीडा। कष्ट। उ०—जत मनमा तस आगे ग्रावै, कहै कवीर ईजा नहि पावै।—कवीर सा०, पृ० ४४४।

क्रि० प्र०—देना।—पहुँचना।—पहुँचाना।

ईजाद—संज्ञा स्त्री [अ०] किमी नई चीज का बनाना। नया निर्माण। आविष्कार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ईजान—वि० [सं०] १ यज्ञ करनेवाला। यजमान। २ यज्ञ करानेवाला [को०]।

ईठ(५)—वि०, संज्ञा पुं० [सं० इष्ट, प्रा० इट्ठ] १ जिसे चाहें। प्रिय। मित्र। सखा। उ०—(क) पार दोस्त बोले जा ईठ।—खुमरो (शब्द०)। (ख) ज्यों बयो हूँ न मिलै कहूँ केशव दोऊ ईठ।—केशव (शब्द०)। (ग) करै निरादर ईठ को निज गुमान गहि वाम।—पद्माकर ग्र० पृ० १७७। २ चेष्टा। यत्न। उ०—केशव कंभड़ ईठन दीठि हूँ दीठ परे रति ईठ कन्हारै।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ४६।

ईठना(५)—क्रि० अ० [सं० इष्ट + हि० ना (प्रत्य०)] चाह करना। इच्छा करना।

ईठा(५)—वि० [सं० इष्ट] अभिलषित। उ०—नानक वारवाँ हाटु अनत सुख ईठा।—प्राण०, पृ० १४५।

ईठि(५)—संज्ञा स्त्री [म० इष्टि, प्रा० इट्ठि] १ मित्रता। दोस्ती, प्रीति। उ०—नहि सुनै घर कर गहत दिठादिठी की ईठि। गडी सूचित नाही करति करि ललचौही दीठि।—विहारी र०, दो० ५८२। २ चेष्टा। यत्न। उ०—सखियाँ कहै सु सौच है लगत कान्ह की झीठि। कालि जु मो तन तकि रह्यो उमरयो आजु सो ईठि।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ७। ३ सखी। उ०—लोने मुहुँ दीठि न लगै, यों कहि दीनो ईठि। दूनी हूँ लागन लगी, दिऐँ दिठौना दीठि।—विहारी र०, दो० २७।

ईठी<sup>१</sup>—संज्ञा स्त्री [देश०] १ भाला। वरछा। २. दड।

ईठी<sup>२</sup>—वि० [सं० इष्ट] प्यारी।

ईठी(५)<sup>३</sup>—संज्ञा स्त्री [सं० इष्टि] प्रीति। उ०—लागै न वार मृताल के तार ज्यो दूटंगी लाल हमैं तुम्हैं ईठी।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २५।

ईठादाडू(५)<sup>४</sup>—सं० पुं० [हि० ईठी + दड] चौगान खेलने का डडा।

ईडन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रशंसा करना। प्रशंसना [को०]।

ईडि—संज्ञा स्त्री [सं० ईडा = स्तुति] [वि० ईडित, ईडित] स्तुति। प्रशंसा। उ०—(क) कीन्हि विडौजा ईडि जिमि बार बार सिर नाय। कहूँ अमय वर दीन्ह हरि पठ्यो त्यहि समु-

भाय -लल्लू (शब्द०)। (ख) रति मांगी तुमते करि ईडा।

पारथ करहु सग मम क्रीडा।—सवल (शब्द०)।

ईडित—वि० [सं० ईडित] जिसकी स्तुति की गई हो। प्रशंसित। उ०—तीये अम्य अनेक हाय गिरजा, लीन्ह महा ईडितै।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २६२।

ईडुरी(५)—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'ईडुरी'।

ईड्य—वि० [सं०] पूज्य। मूर्ति के योग्य।—प्रशंसित। उ०—अहो ईड्य नव घन तन म्शाम। तडिदिव पीन वगन अभिराम।—नद० ग्र०, पृ० २६८।

ईड(५)—संज्ञा स्त्री [सं० इष्ट प्रा० इट्ठ अथवा मं० हठ > प्रा० \*पड, \*प्रड \*ईड] [वि० ईडी] जिद। हठ। उ०—बोनिये न भूड ईड मूड पैन कीजई। दीजयै जो विताहाय मूलिहूँ न लीजई।—केशव (शब्द०)।

ईत(५)—संज्ञा स्त्री [सं० ईति] दे० 'ईति'। उ०—ईत तयो नह भीत अगजी मान दुजा मन मेर।—रघु० क०, पृ० ६२।

ईतर<sup>१</sup>(५)—वि० [हि० इतराना] इनरानेवाला। ठीठ। जोख। गुस्ताख। उ०—गई नद घर काँ मवै, जसुमति तहैं भीतर। देखि महिरि काँ कहि उठी मुत कीन्हो ईतर।—सूर०, १। १।२१०४।

ईतर<sup>२</sup>—वि० [सं० इतर] निम्न श्रेणी का। माधारण। नीच। उ०—कोटि विलास कटाच्छ कलोल बढ़ावै हुनामन प्रीतम हीतर। यो मनि यामैं अनूपम रूप जो मेनका मेन वधू कही ईतर।—सूर०, १।१४८६।

ईतरता(५)—संज्ञा स्त्री [सं० इतरता] भेदभाव। अन्वत्य। परायापन। मिन्नता। उ०—ईहा और ईरपा भानों। ईतरता कवहूँ नहि आनों।—सुदर० ग्र० भा० १, पृ० २१६।

ईति—संज्ञा स्त्री [सं०] १. खेती को हानि पहुँचानेवाले उमद्रव। ये छह प्रकार के हैं—(क) अतिवृष्टि। (ख) अनावृष्टि। (ग) टिड्डी पडना। (घ) चूहे लगना। (च) पक्षियों की अधिकता। (छ) दूसरे राजा की चढाई। उ०—दसरथ राज न ईति भय नहि दुख दुरित दुकाल। प्रभुदित प्रजा प्रसन्न सब सुखसदा सुकाल।—तुलसी ग्र०, पृ० ६८। २. वाधा। उ०—अब राघे नाहिनें ब्रजनीति। सखि विनु मिलै तो ना बनि ऐहै कठिन कुराज राज की ईति।—सूर (शब्द०)। ३. पीडा। दुख। उ०—चाफनी और की वायु वहे यह सीत की ईति है वीस विसा मे। राति बढी जुग सी न सिराति रह्यो हिम पूरि दिशा विदिशा मे।—गोकुल (शब्द०)।

ईतिभय—संज्ञा पुं० [सं० ईति + भय] ईति नामक विपत्ति की आशंका।

ईथर—संज्ञा पुं० [य०] १ एक प्रकार का अति सूक्ष्म और लचीला द्रव्य या पदार्थ जो समस्त क्षुण्य स्थल में व्याप्त है। यह अत्यंत घन पदार्थों के परमाणु के बीच में भी व्याप्त रहता है। उष्णता और प्रकाश का संचार इसी के द्वारा होता है। २. एक रासायनिक द्रव पदार्थ जो अलकोहल और गंधक के तेजाब से बनता है।

विशेष—बोतल में अलकोहल और गंधक का तेजाब बराबर मात्रा में मिलाकर भरते हैं। फिर आंच द्वारा उसे दूसरी बोतल में

टपका लेते हैं, जो ईश्वर कहलाता है। यह बहुत शीघ्र जनने-वाला पदार्थ है। खुला रखा रहने से यह बहुत जल्द उड़ जाता है और बहुत शीत पैदा करता है, इसलिये वरफ जमाने में काम आता है। रामायणिक क्रियाओं में इससे बड़े बड़े कार्य होते हैं। सूँघने से यह थोड़ी बेहोशी पैदा करता है तथा क्लोरोफार्म की जगह भी काम में लाया जाता है। यह जरसनी में बहुत ज्यादा बनता है।

ईद<sup>१</sup>—सच्चा खी० [अ०] मुसलमानों का एक त्योहार। रमजान महीने में तीस दिन रोजा (व्रत) रखने के बाद जिस दिन दूज का चाँद दिखाई पड़ता है, उसके दूसरे दिन यह त्योहार मनाया जाता है। उ०—ईद और नौरोज है सब दल के साथ। दिल नहीं हाजिरा तो दुनियाँ है उजाड़।—शेर०, भा० १, पृ० ७३१।  
महा०—ईद का चाँद = दुर्लभ। कम दृष्टिगोचर वस्तु या व्यक्ति।  
ईद का चाँद होना = बहुत कम दीख पड़ना। ईद मनाना = प्रसन्नता व्यक्त करना।

ईद<sup>२</sup>—सच्चा पु० [स० ईन्दु] चद्रमा। इंदु। उ०—हैं दरीग जो कहीं ईद उगमे कुहु निमि।—पृ० २१०, ६४। २०४४।

ईदगा<sup>३</sup>—सच्चा खी० [फा० ईदगाह] दे० 'ईदगाह'। उ०—बड़ी मसीत ईदगावाली।—रा० रु०, पृ० २८४।

ईदगाह<sup>४</sup> सच्चा खी० [अ० ईद + फा० गाह] वह स्थान जहाँ मुसलमान ईद के दिन इकट्ठे होकर नमाज पढ़ते हैं।

ईदिया—सच्चा पु० [अ० ईदियह] दे० 'ईदी' [खी०]।

ईदी—सच्चा खी० [अ०] १ त्योहार के दिन दी हुई सौगात या तोहफा। २ किसी त्योहार की प्रशंसा से बनाई हुई कविता जो मौलवी लोग उस त्योहार के दिन अपने शिष्यों को देते हैं। ३ वह बेलबूटेदार कागज जिसपर यह कविता लिखकर दी जाती है। ४ वह दक्षिणा जो इस कविता के उपलक्ष्य में मौलवियों को शिष्य देते हैं। ५ नौकरो या लडकों को त्योहार के खर्च के लिये दिया हुआ रुपया पैसा। (मुसलमान)।

ईदुज्जुहा—सच्चा खी० [अ० ईदुज्जुह] मुसलमानों का एक मुख्य त्योहार जिसमें भैंस, बकरी आदि की कुर्बानी होती है। बकरीद [खी०]।

ईदुलफितर—सच्चा खी० [अ० ईदुलफित्र] दे० 'ईद'।

ईदूश<sup>१</sup>—खी० वि० [म०] [खी० ईदूशी] इस प्रकार। इस तरह। इस भाँति। ऐसे।

ईदूश<sup>२</sup>—खी० इस प्रकार का। ऐसा।

ईद्रीजीत<sup>३</sup>—खी० [हि० इंद्रोजीत] दे० 'इंद्रियजित्'। उ०—मुज को आडवे दवजर कोपिन। इस विध जोगी ईद्रीजीत।—रामानंद०, पृ० ४६।

ईप्सन्—सच्चा पु० [स०] प्राप्त करने की अभिलाषा करना [खी०]।

ईप्सा—सच्चा खी० [स०] [खी० ईप्सित, ईप्सु] १ इच्छा। वाछा। आलापा। उ०—मान कर भी, सभी ईप्सा, सभी काक्षा, जगत् की उपलब्धियाँ सब है लुभानी आति।—हरीधाम०, पृ० १३। २ प्राप्ति की इच्छा।

ईप्सित—खी० [स०] चाहा हुआ। अभिलषित। उ०—(क) अब अपनी नौका ईप्सित घाट पर आई।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११८। (ख) सारे श्रम उसको फूलों के हार से लगते हैं जो पाता ईप्सित वस्तु को।—करुणा०, पृ० १४।

ईप्सु—खी० [स०] चाहनेवाला। वाछा करनेवाला।

ईफाय—सच्चा पु० [अ० ईफाय] वचनपालन। वचन पूरा करना [खी०]।  
ईफायडिगरी—सच्चा खी० [अ० ईफाय + अ० डिगरी] डिगरी रुपया अदा कर देना। जर डिगरी देवाक कर देना।

ईफायवादा—सच्चा पु० [अ० ईफाय + फा० ए-अ० वादह] १। १५। १ वादे को निमाना [खी०]।

ईवीसीवी<sup>३</sup>—सच्चा खी० [अनुध्व०] मिसकारी का शब्द। 'भी' शब्द जो मंभोग के अत्यंत आनंद के समय मुँह में निकलता उ०—गूजरी बजावै रव रसना सजावै कर चूरी छमकावै गहति गहकि कै। मुख मोरि त्योरी तोरि मोहैं नायिका नरे देव ईवीसीवी बोल बोलति पहकि कै।—देव (शब्द०)।

ईमन्—सच्चा पु० [फा० यमन्] सतूर्ण जाति की एक रागिनी। ऐ उ०—आसा करि लागि पिय सो रटपवम सुर गा ईमन्।—भारतेंदु प्र०, भा० २, २८८।

ईमनकल्याण—सच्चा पु० [हि० ईमन् + सं० कल्याण] एक मित्र राग का नाम।

ईमाँ—सच्चा पु० [अ० ईमान] दे० 'ईमान'। उ०—ईमाँ की का दुश्मने जानी है हमारा।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५।

ईमा—सच्चा पु० [अ०] १ इशाग। मकेत। आदेश। हुक्म। २ तात्पर्य [खी०]।

ईमान—सच्चा पु० [अ०] १ विश्वास। आस्था। आस्तित्व पु० उ०—दादू दिल अरवाह का सो अपना ईमान। सोई साँ राखिए जहँ देखइ रहिमान।—दादू (शब्द०)।

फि० प्र०—लाना = विश्वास या आस्था रखना। जैसे—इ कहते हैं कि ईसा पर ईमान लाओ।

२. चित्त की सद्बृत्ति। अच्छी नीयत। धर्म मत्त्व। जैसे (क) ईमान से कहना, झूठ मत बोलना। (ख) ईमान ही कुछ है, उसे चार पैसे के लिये मत छोड़ो। (ग) यह तो ईमान की बात नहीं है।

फि० प्र०—खोना। —छोड़ना। —डिगना। —डिगा —डोलना। —डोलना।

मुहा०—ईमान की कहना = सच कहना। न्याय की बात ईमान जाना = नीयत विगडना। उ०—उधर है जेल की जह इधर है कोम की लानत। उधर आराम जाता है इधर ई जाता है।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६५५। ईमान न होना = धर्मभाव दृढ़ न रहना। ईमान देना = मध्य छोड़न धर्म विरुद्ध कार्य करना। ईमान में फर्क आना = धर्म भाव ह्रास होना। नीयत विगडना। ईमान लाना = दृढ़ विश्वास करना। ईमान से कहना = सच सच कहना।

ईमानदार—खी० [अ० ईमान + फा० दार] १. विश्वास करनेवाला। २. विश्वासपात्र। जैसे—ईमानदार नौकर। ३. सच्चा। दियानतदार। जो लेनदेन या व्यवहार में सच्चा हो। ५ का पक्षपाती।

ईमानदारी—सच्चा खी० [अ० ईमान + फा० दारी] १. ईमान स्थिति। ईमानदार होने का भाव। २. मन्वनिष्ठता। दिय दारी [खी०]।

ईर<sup>१</sup>—सच्चा खी० [हि०] दे० 'ईद'।

ईर<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] वायु [को०] ।

ईरखा<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० ईर्षा] दे० 'ईर्षा' । उ०—करै ईरखा ।  
सो जु तिय मनभावन सो मान ।—मतिराम ग्र०, पृ० २६४ ।

ईरज—सज्ञा पुं० [सं०] वायुपुत्र हनूमान् [को०] ।

ईरणा<sup>१</sup>—वि० [सं०] विक्षुब्ध करनेवाला । उत्तेजित करनेवाला [को०] ।

ईरणा<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ हवा । पवन । २ जाना । गमन । ३ भेजना ।  
प्रेषित करना । प्रेषण । ४ कण्ट से मल का निकलना । ५  
कहना । कथन [को०] ।

ईरपाद—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प [को०] ।

ईरपुत्र—सज्ञा पुं० [सं०] हनूमान् [को०] ।

ईरमद<sup>७</sup>—सज्ञा पुं० [सं० इरम्मद] दे० 'इरम्मद' ।

ईरान—सज्ञा पुं० [फा०] [फ़ि० ईरानी] फारस देश ।

ईरानी<sup>१</sup>—वि० [फा०] ईरान से संबंधित । ईरान का [को०] ।

ईरानी<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० ईरान का निवासी [को०] ।

ईरानी<sup>३</sup>—सज्ञा स्त्री० ईरान देश की भाषा [को०] ।

ईरिणा<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] बलुप्रा मैदान । ऊसर जमीन ।

ईरिणा<sup>२</sup>—वि० [सं०] ऊसर [को०] ।

ईरित<sup>७</sup>—वि० [सं०] प्रेषित । प्रेरित । उ०—ऊघो विधि ईरित भई  
है भाग कोरति, लही रति जसोदा सुत पायनि परस की ।—  
घनानंद, पृ० २०२ । २ कहा हुआ [को०] । ३ कांपता हुआ ।  
हिलता झुनता हुआ [को०] । ४ गया हुआ । गत [को०] ।

ईर्म<sup>१</sup>—वि० [सं०] १ क्षुब्ध । २ निरंतर गतिशील । ३ उत्तेजित  
करनेवाला [को०] ।

ईर्म<sup>२</sup>—सज्ञा पुं० १ बाहु । २ व्रण । फोड़ा [को०] ।

ईर्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] यंत्रियों की भाँति भ्रमण करना [को०] ।

ईर्यासमिति—सज्ञा पुं० [सं०] जैनमतानुसार साढ़े तीन हाथ तक आगे  
देखकर चलने का नियम । यह नियम इस कारण रखा गया है  
कि जिसमें आगे पड़नेवाले कीड़े फर्तिले दिखाई पड़ें ।

ईर्वारि—सज्ञा पुं० [सं०] ककड़ी [को०] ।

ईर्वणा<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री० [सं० इर्वणा] ईर्ष्या । हसद । डाह । उ०—  
पर की पुण्य अधिक लखि सोई । तब ईर्वणा मन में होई ।—  
विश्राम (शब्द०) ।

ईर्षा—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० ईर्षालु, ईर्षित, ईर्षु] हमारे की बढ़ती  
देखकर होनेवाली जलन । डाह । हसद । उ०—तजि द्वेप ईर्षा  
प्रोह निदा देश उन्नति सब चहै ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १,  
पृ० ५१४ ।

ईर्षारति—सज्ञा पुं० [सं०] अर्धनपुंसक व्यक्ति [को०] ।

ईर्षालु—वि० [सं०] ईर्षा करनेवाला । दूसरे की बढ़ती देखकर जलने-  
वाला । हमारे के उत्कर्ष से दुखी होनेवाला ।

ईर्षापंड—सज्ञा पुं० [सं० ईर्षापण्ड] एक प्रकार का अर्धनपुंसक व्यक्ति ।  
हिरसी टट्टू ।

ईर्षित—वि० [सं०] जिससे ईर्षा की गई हो ।

ईर्षु—वि० [सं०] डाह करनेवाला । ईर्षालु ।

ईर्ष्य—वि० [सं०] ईर्षालु [को०] ।

ईर्ष्यक<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार के नपुंसक  
जिन्हें उस समय कामोत्तेजना होती है जिस समय वे किसी  
हमारे को मैथुन करते हुए देखते हैं ।

ईर्ष्यक—वि० ईर्षालु । डाह करनेवाला [को०] ।

ईर्ष्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईर्षा' । उ०—ईर्ष्या हमारे वित्त में क्षण  
मात्र भी हटती नहीं ।—भारत०, पृ० १४६ ।

ईर्ष्यालु—वि० [सं०] दे० 'ईर्षालु' [को०] ।

ईर्ष्य—वि० [सं०] दे० 'ईर्ष्य' [को०] ।

ईल<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [देश०] एक वर्णला जंतु ।

ईल<sup>२</sup>—सज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की मछली । बांग ।

ईलि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ यष्टि । लाठी । लगुड । २ एक शस्त्र ।  
छोटी अस्ति या कटार [को०] ।

ईली—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईलि' [को०] ।

ईश<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईशा, ईशी] १ स्वामी । मातृक ।  
उ०—जो सबते हित मोकहँ कीजत, ईश दया करिकै ब्रह्म  
दीजत ।—रामचंद्र०, पृ० १६१ । २. राजा । ३ ईश्वर ।  
परमेश्वर । ४ महादेव । शिव । रुद्र । उ०—चंद्रहि वदन हैं  
मव केशव ईश त वदन ता त्रिति पाई ।—रामच०, पृ० १६१  
यो०—ईशकोण ।

५ ग्यारह की मखा । ६ आर्द्रा नक्षत्र । ७ एक उग्रनिपद्  
जो शुक्र यजुर्वेद की वाजपतयि शाखा के अंतर्गत है । इसका  
पहला मंत्र 'ईश' शब्द से प्रारंभ होता है । ईशावाम्य उग्रनिपद् ।  
यो०—देवेश । नरेश । वागीश । सुरेश ।

८ पारद । पारा ।

ईश<sup>२</sup>—वि० १ ऐश्वर्यशाली । २ मामर्थ्यवान् [को०] ।

ईशकोण—सज्ञा पुं० [सं०] उत्तर और पूर्व का कोना [को०] ।

ईशता—सज्ञा स्त्री० [सं०] स्वामित्व । प्रभुत्व ।

ईशत्व—सज्ञा पुं० [सं०] ईश्वरत्व । स्वामित्व । प्रभुत्व । उ०—  
उस सृष्टिकर्ता ईश का ईशत्व क्या हममें नहीं ।—भारत०,  
पृ० १५५ ।

ईशदगरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] काशी [को०] ।

ईशपुरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईशनगरी' [को०] ।

ईशवल—सज्ञा पुं० [सं०] पाशुपत नामक त्रय [को०] ।

ईशसख—सज्ञा पुं० [सं०] कुवेर [को०] ।

ईशा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऐश्वर्य । २ ऐश्वर्यसंपन्न स्त्री । ३ दुर्गा ।

ईशान<sup>१</sup>—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईशानी] १ स्वामी । अधिपति ।  
प्रभु । २ शिव । महादेव । रुद्र । ३ ग्यारह की सखा । ४.  
ग्यारह रुद्रों में से एक । ५ शिव की प्राठ मूर्तियों में से एक ।  
सूर्य । ६ पूरव और उत्तर के बीच का कोना । ७ आर्द्रा नक्षत्र  
[को०] । ८ प्रकाश । उद्योति [को०] । ९ शमी वृक्ष [को०] ।

ईशान<sup>२</sup>—वि० १ शास्ता । शासक । २ ऐश्वर्यशाली । ३. संपन्न [को०] ।

ईशानी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा । २ सेमल का वृक्ष [को०] ।

ईशिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. आठ प्रकार की सिद्धियों में से एक जिससे साधक सब पर शासन कर सकता है। २. ईश्वरत्व। ३. प्राधान्य।

ईशित्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'ईशिता'।

ईशी<sup>१</sup>—वि० [सं० ईशित्] १. शासन रखनेवाला। २. प्रधानता रखनेवाला [को०]।

ईशी<sup>२</sup>—सञ्ज्ञा पुं० १. देवता। २. पति। ३. मालिक। स्वामी [को०]।

ईश्वर<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईश्वरी] १. मालिक। स्वामी। प्रभु। २. योगशास्त्र के अनुसार क्लेश, कर्म, विनाश और आश्रय से पृथक् पुरुषविशेष। परमेश्वर। भगवान्।

यौ०—ईश्वरप्रणिधानं। ईश्वराधिष्ठान। ईश्वराधिष्ठित। ईश्वराधीन।

३. महादेव। शिव। ४. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो ससार का कर्त्ता, अभादान, अतर्क्य और ऐश्वर्य तथा वीर्य आदि से संपन्न माना जाता है। (शेष दो पदार्थ चित् और अचित् हैं)। ५. राजा। ६. यति। ७. पारद। ८. पीतल। ९. कामदेव। पुण्यधन्वा [को०]। १०. एक सवत्सर [को०]।

ईश्वर<sup>२</sup>—वि० समर्थ। शक्तिमान्। संपन्न।

ईश्वरता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वर की भावना। ईश्वर भाव। उ०—(क) नाहि ईश्वरता अटकी वेद में।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १३४। (ख) यदि जग में है ईश्वरता तो है मनुष्यता में ही।—सागरिका, पृ० ८०।

ईश्वरनिपेक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर में अविश्राम। नास्तिकता [को०]।

ईश्वरनिष्ठ—वि० [सं०] ईश्वर में विश्राम या निष्ठा रखनेवाला [को०]।

ईश्वरपूजक—वि० [सं०] १. ईश्वर की उपासना करनेवाला। २. पवित्र [को०]।

ईश्वरप्रणिधान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के नियमों में से अंतिम एकाग्रध्यानात्मक। ईश्वर में अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति रखना तथा अपने सब कर्मों के फलों को उसे अर्पित करना।

ईश्वरप्रसाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भगवान् की कृपा [को०]।

ईश्वरभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. प्राधान्य। २. ऐश्वर्य। ३. मामर्य [को०]।

ईश्वरवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ईश्वर + वाद] ईश्वर को जगत् का कर्त्ता माननेवाला मत जिसमें भगवान् के दया दाक्षिण्य की भक्त जगत् के नाना रूपों और व्यापारों में रहस्य की दृष्टि में देखी जाती है। उ०—ईसाइयों में जो रहस्यभावना प्रचलित थी वह ईश्वरवाद के भीतर थी।—चित्तामणि, भा० २, पृ० १४०।

ईश्वरवादी—वि० [सं० ईश्वर + वादिन्] ईश्वरवाद का अनुयायी।

ईश्वरविभूति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] परमात्मा के विभिन्न स्वरूप [को०]।

ईश्वरसत्त्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिवजी के सत्त्व, कुबेर।

ईश्वरसम्पन्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवालय। मंदिर [को०]।

ईश्वरसेवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] परमात्मा का पूजन अर्चन [को०]।

ईश्वरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. लक्ष्मी। ३. शक्ति [को०]।

ईश्वराधीन—वि० [सं०] ईश्वर के इच्छानुसार होनेवाला [को०]। ईश्वरी<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. ३० 'ईश्वरा'। २. नाकुनी, क्षुद्रवटा, वध्या ककंदी, लिगिनी आदि पौधे [को०]।

ईश्वरी<sup>२</sup>—वि०, ३० 'ईश्वरीय' [को०]।

ईश्वरीय—वि० [सं०] १. ईश्वर मन्त्रों। उ०—हे भाव सबके आननों पर ईश्वरीय प्रमाद के।—भारत०, पृ० ६५।

ईश्वरोपामना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वरमेवा। ईश्वर की पूजा [को०]।

ईप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आश्विन मास। कुम्हार। २. शिव का एक गण। तृतीय मनु के एक पुत्र का नाम [को०]।

ईपण—वि० [सं०] शीघ्रता या जल्दी करनेवाला [को०]।

ईपणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. शीघ्रता। तेजी। २. तेज गति [को०]।

ईपत्<sup>१</sup>—वि० [सं०] थोड़ा। कुछ। कम। अल्प।

यौ०—ईपद् उष्ण। ईपद् हास्य।

ईपत्<sup>२</sup>—क्रि० वि० कुछ कुछ। अल्प रूप में। आशिक रूप में [को०]।

ईपत्कर—वि० [सं०] १. आशिक रूप में करनेवाला। कम करनेवाला। २. आसन [को०]।

ईपत्कार्य—वि० [सं०] १. अत्यंत आमन। २. अल्पप्रभावयुक्त [को०]।

ईपत्पुरुष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्षुद्र व्यक्ति [को०]।

ईपत्स्पृष्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वर्ण के उच्चारण में एक प्रकार का आभ्यन्तर प्रयत्न जिसमें जिह्वा, तालु, मूर्धा और दंत को तथा दांत, श्रोण को कम स्पर्श करता है। 'य', 'र', 'ल', 'व' ईपत्स्पृष्ट वर्ण हैं।

ईपद्—वि० [सं०] ३० 'ईपत्'।

ईपद्—वि० [सं० ईपद्, हि० ईपद्] ३० 'ईपद्'।

ईपद्हास(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ईपद्हास] हल्की हँसी। मुस्कराहट। उ०—ईपद्हास दंत दुति विगसित मानिक मोनी अरे जनु पोई।—मृ०, १०। २१०।

ईपद्गुण—वि० [सं०] कुनकुना। कुछ कुछ गरम [को०]।

ईपद्दर्शन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. माधारण दृष्टि। स्वल्प दृष्टांत। २. चितवन [को०]।

ईपद्दास सजापुं० [सं० ईपद् + हास्य] हल्की मुसकान। मुस्कराहट [को०]।

ईपना(उ)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० एपणा] प्रवल इच्छा। उ०—मुत् वित लोक ईपना नीनी। केहि कै मति इह कृत न मनीनी।—मानस, ७। ७१।

ईग्लनभ—वि० [सं०] अल्प मूल्य में उपनय [को०]।

ईगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] गाड़ी या हल में वह लकड़ी लकड़ी जिसके बिरे पर जुआ बाँध कर बैन को जोतते हैं। हरमा। हरिम।

ईपादंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ईपादण्ड] हल की मूठ [को०]।

ईपादत्<sup>१</sup>—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ईपादन्व] १. लवे दांत का हाथी। २. हल की मूठ। ३. हाथी के दांत [को०]।

ईपादत्<sup>२</sup>—वि० लवे दांतवाला [को०]।

ईपिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. हाथी की आँख का छोडरा या गोचक। २. चित्रकारी में रंग भरने की कल्प। कंची। ३. बाण। ४. सिरकी। सीक।



ईपिर—सद्या पुं [सं] अग्नि । आग [को०] ।

ईपीका—सद्या स्त्री [सं] दे० 'ईपिका' [को०] ।

ईप्म—सद्या पुं [मं] १. वसत ऋतु । २. कामदेव । मदन [को०] ।

ईटव—सद्या पुं [मं] अध्यात्म की शिक्षा देनेवाले गुरु [को०] ।

ईस<sup>७</sup>—सद्या पुं [सं] ईश, प्रा० ईस] दे० 'ईश' । उ०—तेहि द्विज बटु आज्ञा करत अहह कठिन अति ईस ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३०७ ।

ईसन<sup>७</sup>—सद्या पुं [सं] ईशान] ईशान कोण । पूरव और उत्तर के बीच का कोना । उ०—सतमी पूनिहें पायव आछी । अठई अमावस ईसन लाछी ।—जायसी (शब्द०) ।

ईसवगोल—सद्या पुं [हिं] दे० 'इसवगोल' ।

ईसर<sup>७</sup>—सद्या पुं [सं] ऐश्वर्य] धनमपत्ति । ऐश्वर्य । बंभव । उ०—कहेन्हि न रोव बहुत तैं रोवा । अब ईसर भा दारिद खोवा ।—जायसी (शब्द०) ।

ईसर<sup>३</sup><sup>७</sup>—सद्या पुं [सं] ईश्वर प्रा० इस्वर, ईसर] दे० 'ईश्वर' । उ०—ईसर केर घट रन बाजा ।—जायसी ग्र०, पृ० ११७ ।

ईसरगोल—सद्या पुं [हिं] दे० 'इसवगोल' ।

ईसरी<sup>७</sup>—[सं] ईश्वरीय] दे० 'ईश्वरीय' ।

ईसवी—वि० [अ०] ईसा से सवध रखनेवाला ।

यो०—ईसवी सन्=ईसा ममीह के जन्मकाल से चना हुआ सवत् ।

विशेष—यह सवत् पहली जनवरी से आरम्भ होना है और इसमें प्राय ३६५ दिन होते हैं । ठीक ठीक सौ वर्ष का हिसाब पूरा करने के लिये प्रति चौथे वर्ष जब सन् की सख्या चार से पूरी विभक्त हो जाती है, तब फरवरी में एक दिन बड़ा दिया जाता है और वह वर्ष, ३६६ दिन का हो जाता है । इसमें और विक्रमीय सवत् में ५७ वर्ष का अंतर है ।

ईसा—सज्ञा पुं [अ०] ईसाई धर्म के प्रवर्तक या आचार्य ।

यो०—ईसामसीह=ईसा जिनका घर्माभिर्भिचन किया गया था ।

ईसाई—वि० [फा०] ईसा को माननेवाला । ईसा के बनाए धर्म पर चलनेवाला । क्रिश्चियन । उ०—मैं इससे घृणा करता हूँ क्योंकि यह ईसाई है ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५६४ ।

ईसान<sup>७</sup>—सज्ञा पुं [सं] ईशान] दे० 'ईशान' ।

ईसानी<sup>७</sup>—सज्ञा स्त्री [मं] ईशानी] दे० 'ईशानी' ।

ईसार—सज्ञा पुं [अ०] दूसरे के लिये अपने स्वार्थ का त्याग करना [को०] ।

ईसारपेशा—वि० [अ०] ईसार+फा० पेशाह्] परोपकारी । अपना स्वार्थत्याग करके दूसरे का हित करनेवाला [को०] ।

ईसुर<sup>७</sup>—सद्या पुं [हिं] ईश्वर] दे० 'ईश्वर' । उ०—जौं ईसुर हो तो कहूँ सुनतो कबना बँन ।—श्यामा०, पृ० १६६ ।

ईसुरी<sup>७</sup>—सद्या स्त्री [सं] ईश्वरी] दुर्गा । पार्वती । उ०—इनके नमक तैं ईसुरी हमको करै रन में अदा ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १८ ।

ईसुरी<sup>३</sup>—वि० [सं] ईश्वरीय] दे० 'ईश्वरीय' । उ०—दस ओतार ईसुरी माया करता करि जिन्ह पूजा । कहै कबीर सुनो हो साधो उपजै खपै सो दूजा ।—घट०, पृ० २६४ ।

ईस्ट—सद्या पुं [अ०] पूरव । पूर्व दिशा ।

ईस्वर<sup>७</sup>—सद्या पुं [हिं] 'ईस्वर' । उ०—ऐगें सुजस सुपंथ में ईस्वर सबको देत ।—हम्मीर०, पृ० ४१ ।

ईस्वरता<sup>७</sup>—सद्या स्त्री [हिं] दे० 'ईश्वरता' । उ०—श्री गुसाईं जी बाकों समुझावत में अपनी ईस्वरता जताए ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० १५६ ।

ईहग—सद्या पुं [सं] ईहा=इच्छा+ग=गमन करनेवाला] कवि । चारण ।—(डि०) ।

ईहाँ<sup>७</sup>—अव्य० [हिं] दे० 'यहाँ' । उ०—इह न कहइ अस ईहाँ ऐसे । जैसिन वस्तु प्रकासक तैसे ।—नद० ग्रं०, पृ० ११७ ।

ईहा—सद्या स्त्री [सं] [वि० ईहित] १. चेष्टा । उ०—सूखम समुक्ति परासयहि ईहा सामिप्राय । कर जोरत लखि हरिहि तिय लख कज्जल दृग लाय ।—पदमाकर ग्रं०, पृ० ६३ । २. उद्योग । ३. इच्छा । बाछा । ४. लोभ ।—(डि०)

ईहाम—सद्या पुं [अ०] आति । भ्रम । वहम [को०] ।

ईहामृग—सद्या पुं [मं] १. नाटक का एक भेद जिसमें चार अंक होते हैं । इसका नायक ईश्वर या किसी देवता का अवतार और नायिका दिव्य स्त्री होती है जिसके कारण युद्ध होता है । इसकी कथा प्रसिद्ध और कुछ कल्पित होती है । कुछ लोग इसमें एक ही अंक मानते हैं । मृग के तुल्य अलभ्य कामिनी की नायक इसमें ईहा करता है । अतः इसे ईहामृग कहते हैं । २. भेडिया ।

ईहार्थी—वि० [सं] ईहार्थिन्] [वि० स्त्री० ईहार्थिनी] धनलाभ या उद्देश्यपूर्ति के लिये यत्नशील [को०] ।

ईहावृक—सद्या पुं [सं] लकड़बग्घा ।

ईहित—वि० [सं] इच्छित । ईप्सित । चाहा हुआ । वांछित ।

